श्रीः।

व्रतराजः।

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीव्रतराजः

दैवज्ञकुलभूषण–याज्ञिकशिरोमणिना संगमेश्वरोपाह्व–श्रीविश्वनाथशर्म्मणा विरचितः ।

विविधग्रन्थानां लेखकेन रिसर्चस्कालर इत्युपाधिधारिणा पंडितवर्य्येण माधवाचार्य्येण संपादितया भाषाटीकया च समलंकृतः ।

मुद्रक व प्रकाशक :

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष – "श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेस, बंबई.

संवत् २०४०, सन् १९८४

व्ययभार वृद्धि सहित सूची मूल्य १०० रुपये मात्र

अनेक ग्रन्थोंके लेखक :

रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्य्य शर्म्मा

पुष्पाञ्जलि

श्रीमान् श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तक परम-श्रद्धास्पद प्रातःस्मरणीय सम्राट्सम्मानित काञ्ची प्रतिवादिभयं-करमठाधीश्वर–

श्रीः १००८ जगद्गुरु श्रीमदनन्ताचार्य्यजी महाराज सूरि !

इस कराल घोर कलिकालके दुर्दान्त प्रभावसे मुक्त होकर बडे बडे अगम्य स्थानोंतककी कठिन यात्राएं करके, भील कोल किरातों तकके कानोंमें भगवानके शरणवरणतत्त्वका उपदेशामृतचुवाना एवम् भारतके कोने कोनेमें सनातन धर्मकी दुन्दुभि बजाना सिवा आपके आज और किसका कार्य्य हो सकता है ? आपके ऐसे ही अमित दिव्य आचार्य्योंकेसे गुणोंपर मुग्ध हुए आपके चरणचंचरीक इस तुच्छ जनकी एक अतिसाधारण कृति श्रीव्रतराजकी भाषाटीकारूपी पुष्पाञ्जलि आपके पवित्र पादपद्मोमें सादर सर्मापत है ।

आपका विनीत–

माधवाचार्य्य

प्रस्तावना.

अखिल विश्वके सारे मानव समाजोंपर दृष्टि डालकर देखलीजिए, आधुनिक और प्राचीन सभ्यताओं-पर पूरा विचार कर लीजिए, भूमण्डलके किसीभी छोटेसे छोटे और वडेसे वडे खण्डको ले लीजिए चाहें असभ्य कहलानेवाले नरोंकाही समूह क्यों न हो ? कोई भी समुदाय एवं संप्रदाय व्रतों और उत्सवोंसे खाली नहीं है, अपने २ ढंगके सभी उत्सव मनाते हैं और व्रत करते हैं । व्रतोंकी महिमा वेदनेभी बड़े ही आदरके साथ गाई है, व्रत करनेवाला सुयोग्य पुरुष जगदीशसे प्रार्थना करता हैं कि–" **अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्, तन्मे राध्यताम्, इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि** " हे व्रतोंके अधिपते ! सबसे वडे परमात्मन् ! मैं व्रत करूंगा, ऐसी मेरी इच्छा है मैं उस व्रतको पूरा करसकूं, यह मुझे शक्ति दीजिए । यह तो व्रतकर्ताकी व्रतारम्भसे पहिलेका बीत है कि, वह व्रतके पूरा करनेसे मेरा कल्याण होगा इस भावनासे प्रेरित होकर उसकी सफलताके लिए परमात्मासे प्रार्थना करता है । जब वह व्रतनिष्ठ होजाता है तो उस कालमें सत्य मानता है कि, मैं अपने जीवनके अमूल्य समयको वृथा ही नष्ट कर रहा था उससे अब विरत होकर सच्चे उपयोगकी ओर जाता हूँ । जितना मैं व्रतमें समय लगाऊँगा वही सच्चा समय है, वाकी तो अनृत यानी झूठा उपयोग है । उससे जीवनकी कोई सार्थकता नहीं होती । यह है व्रतपर वदिकोंका विश्वास कि, व्रत ही सच्चा जीवन बनाता है यही कारण है कि, कितनीहि ऋग्वेदकी ऋचाओंमें अत्यन्त, सम्मानके साथ व्रत शब्दका उल्लेख किया है– " **आदित्य शिक्षीत व्रतेन, वयमादित्य व्रते जन्मनि व्रते, प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम्, अपामपि व्रते** " ये ऋग्वेदके मन्त्रोंके वे थोडेसे टुकडेभी दिखा दिये हैं जिनमें व्रत शब्दका प्रयोग परिस्फुट दीख रहा है । व्रत शब्दके अर्थ का विचार तो निरुक्तमें किया गया है । इसे महर्षि यास्कने कर्मके पर्य्यायोंमें रखा है, इसी कारण उन्होंने कह दिया है कि, व्रत एक कर्म विशेष ही है । वृत्र-धातुसे उणादि अतचू प्रत्यय होकर व्रत शब्द बनता है । निरुक्तकारनें इसके विवरण " **वृणोति** " पदसे किया है कि, जो कर्म कर्ताको वृत्त करे वह व्रत है । दूसरा विवरण-उन्होंने " **वारयति** " पदसे दिया है, कि जो अपनेमें प्रवृत्त हुए पुरुषको स्त्री आदि अपचारों से रोकता है, यह नियम कराता है, एवं अनेकों विषिद्ध कर्मोंसे रोकता है; जिन्हें कि, परिभाषाप्रकरणमें व्रतराजने गिन २ कर समझाया है । यदि विचार करके देखा जाय तो निरुक्तकारके दोनों अर्थ व्रतराजके व्रतपर घटते हैं । यह एक तरहके संकल्प विशेषको व्रत कहता है, इस व्रतराजके व्रतके अर्थपर गहरी दृष्टिसे विचार किया जाय तो दोनोंके अर्थका स्वारस्य एकही होता है । महर्षि यास्कके अर्थसे उसका कोई भी वास्तविक भेद नहीं रहजाता । व्रतराजकारका अर्थ कर्मके पदार्थसे किसी भी अंशमें बाहर नहीं जा सकता, व्रतियों के सामान्य धर्मो तथा उपवासके धर्मोमें विस्तारके साथ वे पदार्थ लिखे हुए हैं; जो कि, उन्हें करने और छोडने चाहिये । निषिद्ध कर्मोका रोकनेवाला व्रत ही है । क्योंकि, उनके करनेमें व्रतीको व्रतके भंग होनेका पूरा भय रहता है । इसी कारण वह उनको नहीं करता । इस तरह यह व्रत, व्रतीका वारक भी सिद्ध होता है तथा इसका फल व्रतकर्ताको प्राप्त होता है इसके सविधि पूर्ण होनेमें उसकी उन्नति तथा खंडित करनेसे प्रत्यवायकी प्राप्ति होती है इस तरह यह पाप और पुण्य दोनोंही फलोंका देनेवाला भी है । अतएव दूसरा भी निरुक्तकारका अर्थ व्रतराजके व्रतार्थमें घट जाता है । व्रतकी अर्थसंकलनाके देखनेसे तो इसी निश्चयपर पहुँचते है कि, ग्रन्थकारकी दृष्टि वडी ऊँची थी । उनके दृष्टिपथमें वैदिकमार्ग समाया हुआ था । यद्यपि उन्होंने उत्सव शब्दका बहुत कम प्रयोग किया है पर उत्सव या त्यौहार एक भी इनसे नहीं बचा है त्यौहारोंको इन्होंने व्रतके नामसे भी कहा है और भिन्न भी प्रति पादन किया है । जैसे संकटचतुर्थी आदि जिनमें केवल उत्सवके साथ देव पूजन आदि भी किए जाते हैं । बहुतसे उत्सवोंका तो उत्सव नामसे उल्लेख ही कर दिया है । जो केवल व्रतका अर्थ उपवास समझते हैं उन्हें यह भ्रांति होजाती है कि व्रतमें उत्सव कैसे आजायेंगे पर पूर्वोक्त अर्थोंमें तो उत्सव भी व्रतोंमें ही आजाते हैं । कितनी ही जगह व्रतोंकी पूजामें कहते भी हैं कि " —**कर्तव्यश्च महोत्सवः** " बडा भारी उत्सव करना चाहिए । इस तरह अनेकों उत्सवों का व्रतोंमें ही प्रतिपादन हो जाता है; वे भी व्रतोंमें ही आजाते हैं । जो जाति जितनी ही नई होती है उसके उत्सव उतने ही कम होते हैं; क्योंकि, उत्सवोंका सम्बन्ध, उस जातिके गण्य मान्यः विशिष्ट पुरुषोंकी असाधारण महत्त्व-

पूर्ण घटनाओं से ही होता है । वे घटनाएँ ही सम्मानकी दृष्टिसे देखनेवाले समुदायमें उत्सवोंको जन्म दे देती हैं । समय२ पर उत्सवके रूपमें उन्हें वे यादकरलिया करते हैं । किन्तु उसका जन्म थोडे समयका होने के कारण उन घटनाओंकी संख्याके कम होनेसे उनके उत्सव भी कम हुआ करते हैं । यही कारण है कि, चार छः हजार वर्ष मात्र की जनमी हुई जातियोंके उत्सव इतने ही कम हैं कि, उनकी संख्या उंगलियोंपर ही गिनी जा सकती है । अतएव उन जातियोंको उनका ज्ञान अनायास ही है । उनके इतिहासका ज्ञान करनेके लिए उन्हें कोई कष्ट नहीं उठाना पडता । उनके अबोध बालक आपही आप अपने बडे बूढोंसे बातों बातोंमें ही सुनकर जान जाते हैं । पर जिस जातिको संसारकी सभी जातियाँ अपनेसे प्राचीन मानकर नतमस्तक होती हैं, जिसका इतिहास लाखों वर्षका पुराना माना जाता है, जो अपने को अनादि सनातन एवम् सारे मानवसमाजको सभ्यता सिखानेवाला गुरु कहती है, जिसके अनेकों ही विशिष्ट पुरुषोंकी घटना विशेषोंसे सने उत्सव और व्रत इतने कम नही हैं जो कि आधुनिक जातियोंके उत्सवों और व्रतोंकी तरह अंगुलियोंपर संभाले जासकें । न वह ऐसी किसी साधारणकी बातको लेकर प्रचलित ही हुए हैं जो कि, बातोंमें ही बता दिये जायें । न वह अगण्य या महत्त्वहीनही हैं जो कि, उपेक्षाके गढ्ढेमें गेरकर दूर देनेयोग्य हों । प्रत्येककी स्मृति जातिमें नवीन जीवन लानेवाली है । हरएक के साथ जातिके गौरवकी मात्राएँ अत्यन्त प्रचुरताके साथ लगी हुई हैं । पूर्व पुरुषोंका गौरवास्पद इतिहास इनके साथ मिला हुआ है उनकी श्रद्धाकी अमूल्य कहानी मिली हुई है जिस श्रद्धाको योग भाष्यकारने साधककी माके तुल्य कहा है । इनका, स्मृतियोंने सादर स्मरण किया है । इतिहास ग्रन्थोंने इनका गौरवोंकी गरिमासे बोझिल हुआ पुरावृत्त विस्तारकेसाथ गाया है । पुराणोंने इनका हर जगह उल्लेख करके इनकी प्राचीनताकी दुन्दुभि बजाई है । अनेको प्राचीनआर्य ग्रन्थोंमें रत्नोंकी तरह उचित स्थलोंपर पुवेहुए इन व्रतोत्सवोंका अनेकों धर्मशास्त्रकारोंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार संग्रह किया है । फिर भी उनसे बहुतसे बाकी बच गये हैं क्योंकि, जो सृष्टिके आरंभकाभी उत्सव व्रत करते हैं उनके व्रतादिकों का पता विना अलौकिक साधनोंके कहाँसे मिल सकता है ? जातिके चमकते हुए सितारेके प्रकाशमें ये आबाल वृद्ध वनिताओंतक व्याप्त थे इस गिरे समयके संग्रहकारोंको इन्हें हिन्दूधर्मशास्त्रोंसे मथकर निकालना पडा है । यही कारण है कि, पूरा नहीं कर पाये हैं । फिर भी उनका परिश्रम अगण्य नहीं है उन्होंने अपनेसे पीछे के उत्साहियोंको अपनी संग्रहकी हुई निधि देकर उन्हें आगाडी बढनेके लिए उत्साहित किया है । व्रतराजके लेखकको इस पुराने संग्रहसे अच्छी सहायता मिली है तथा बहुतसी नूतन खोज करके इस कमीको पूरा कर दिया है । हिन्दूधर्मके प्रदीप्त मार्तण्ड विश्वनाथशर्म्मा आजसे दोसौ वर्षके लगभग पहिले हुए थे, आपने पुराण, धर्मशास्त्र तथा अनेक संग्रह ग्रन्थोंको इकट्ठा करके समन्वय और विशेष विधियोंके साथ व्रतोत्सवोंको अपने व्रतराज ग्रन्थमें रखदिया है । इन्होंने भरसक इस कमीको पूरा किया है तथा इसमें ये इतने कृतकार्य हुए हैं कि, इनके पहिलेका दूसरा कोईभी इस विषयका संग्रह करनेवाला नहीं हुआ हैं । दूसरे संग्राहकारोंके व्रतोत्सवोंके संग्रहको अपने ग्रन्थमें लेतीवार हमारे यशस्वी ग्रन्थकर्ताने कोई कृतघ्नता नहीं की है । किन्तु उसके नामका आदरके साथ उल्लेख सप्रमाण किया है कि, अमुकने इसे इस पुराणसे लिया था, उसे मैं यहाँ रख रहा हूँ । इनका ग्रन्थ व्रतराज निर्णयसिन्धुसे किसी तरह भी कम नहीं है । इनके निर्णयके सामने कमलाकरभट्टके धर्मनिर्णय अगण्यसे बन जाते हैं । व्रत और उत्सवोंको तिथियोंके निर्णय करनेके समय इन्हें निर्णय सिन्धुका निर्णय बहुतही अखरा है; यहाँतक कि, स्पष्ट शब्दोंमें कहदिया है कि, इन कारणोंसे ऐसा निर्णय करनेवालोंका निर्णय ठीक नहीं है । यदि दूसरे शब्दोंमें कहूँ तो यह कह सकता हूँ कि निर्णयसिन्धुकी जिन त्रुटियोंका मार्जन उसकी सुगूढ टीका धर्मसिन्धुभी नहीं कर सका था जिनका कि, जान लेना दूसरोंके लिए महा कठिन कार्य था, वे त्रुटियाँ व्रतराजने सर्वसाधारणके सामने अनायासही रखदी है । व्रतोत्सवोंकी तिथियोंके निर्णयकी निणयसिन्धुकी गलतियोंको दिखानेमें व्रतराजने अणुमात्रभी मुलाहिजा नहीं किया है । यही नहीं, किन्तु सप्रमाण सिद्ध करनेकी चेष्टाभी की है, जहाँ ऐसे स्थल आये हैं वहाँ हमने यथाज्ञान उन्हें परिस्फुट करने की चेष्टा की है तथा करतीवार इस बातकाभी ध्यान रखा है कि, अनावश्यक विस्तार न बढ़नेपाये । विशेष कहतीवार [ ] इसकोष्टकके बीचमें कहदिया है जब इतनेसे भीहमें सन्तोष नहीं हुआ है तो टिप्पणी देकर उसविषयको पूरा प्रकट–

करनेका प्रयत्न किया है । दूसरे स्थलों पर भी जहाँ हमने टिप्पणीसे ग्रन्थके विषयोंकी ग्रन्थि सुलझानेकी पूर्ण चेष्टा की है । यह सब कुछ करके हम इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि, निर्णयसिन्धु आदि धर्मशास्त्रके संग्रह ग्रन्थोंका परिष्कारही व्रतराजके नामसे श्रीविश्वनाथजीने करडाला है । इसके सभी निर्णय वर्तमानके सभी संग्रह ग्रन्थोंसे उच्च कोटिके है जो कि, आजतक के किसी धर्मशास्त्रोंके संग्रह करनेवालेसे नहीं किये गये थे । वह केवल व्रतोत्सवोंपरही रहा हो, दूसरे कल्याणकारी विषयोंपर ध्यान न दिया हो, यह भी बात नहीं है; किन्तु उनके वहाने कर्मकाण्डके बहुत बडे भागको कहडाला है । देवोपासनाके लिये तो इसने अमृतके निधिकाही काम किया है । देवोंके पूजन, उपासन एवम् उसकी प्रियवस्तुएँभी इसने पूर्णरूपसे दिखाईं हैं । जिनके वैधप्रयोगसे उपासक इष्टदेवका साक्षात् करसकता है, जिन जिन विशिष्ट पुरुषोंने उन, विधियोंसे इष्टदेवका साक्षात्कार करके अपने ऐहलौकिक एवं पारलौकिक कामोंको पाया है उनका पूरा इतिहास मान्य प्रमाणोंके साथ दिया है जिसके देखनेसे कलियुगके कलुषित प्राणियों की भी श्रद्धा उनमें उत्पन्न हो तथा वह भी सुखपूर्वक अपना कल्याण कर सकें । हवनादिका भी बहुतसा विषय आया है अनेक तरह की आहुति और भद्रोंके भी विधान विस्तारके साथ आये हैं । कोई भी लौकिक कर्मकाण्डका देवता वाकी न रहा होगा जिसका कि, पूजन हवन इसमें न आया हो । सबही की सब बातें विस्तारके साथ, आगईं हैं । व्रतचर्याके वहने मानवीय धर्मशास्त्रकाभी बहुत वड़ा भाग कह दिया है, जो परिभाषा आदि प्रकरणोंमें इधर उधर सूत्रमें मणिकी तरह पिरोया हुआ है । हविष्य वस्तुओंके नामपर खाद्याखाद्यकाभी निर्णय करदिया है। इस तरह इन्होंने धर्म शास्त्रके किसीभी उपयोगी सार्वजनीक विषयको नही छोडा है । जिन्हें देखकर हम यह कह दें कि, व्रतराजके नामपर मानवसमाजका जितनाभी कल्याणकारी उपदेश है, एवं जो भी कुछ अत्यावश्यक कर्मकलाप है वह सब उसको कहदिया है तो कोई अत्युक्ति न होगी । आजकलके कर्मकलापमें ऐसे अनेकों ही मन्त्र प्रचलित हैं जिनकी कि, भाष्यकारोंने किसी दूसरे देवतामें योजना की है तथा उनका आधुनिक कर्मकाण्डमें दूसरे देवताके विषयमें विनियोग देखाजाता है । ऐसे ही दोसौके लगभग मन्त्र इस व्रतराजमें भी आये हैं जिनका कि, अर्थ यहांके विनियोगके अनुसारही हमने किया है । जहां तक हो सका है यह भी ध्यान रखा है कि, किसी भी भाष्यकारसे विरोध न हो, यह योजना सिवा इस व्रतराजकी टीकाके दूसरी जगह कम देखनेको मिलेगी । यह किया भी इसी उद्देश्यसे है कि, मन्त्रके अर्थसे उसी देवताका परिपूर्ण अनुसन्धान करके कर्मकलापको सर्वोत्कृष्ट गुणवाला वनाया जासके ; क्योंकि, विना देवताका अनुसन्धान किये उस कर्मको श्रुतियोंने उत्तम नहीं बताया है । जो मंत्र यहाँ आये हैं वह ही आजके कर्मकाण्डके ग्रन्थोंमें उन्हीं कामोंमें विनियुक्त किये गये हैं । इस अर्थने उनके लिये वहाँ भी पथ दिखादिया है कि, इस अर्थसे उनके देवताओंका अनुसंधान कर लीजिये ।वेदके भाष्यकारोंका अर्थ वहाँ की व्यवस्थाके अनुसार है । ऐसा क्यों किया गया इसका हेतु भी वहीं टीकामें दिखादिया गयाहै । यद्यपि पुराना एक ऐसाभी आर्ष संप्रदाय था कि, मन्त्रोंका अर्थ न मानकर केवल मन्त्रोंमें आये हुए नामोंके अनुसार विनियोगोंकी व्यवस्था करके उन्हीं नामवाले मन्त्रोंसे उस नामके देवताओंकी स्तुति करने लग जाता था पर निरुक्तने इसे कोई महत्त्व नहीं दिया है तथा महर्षि पाणिनिने अपनी शिक्षामें अर्थके अनुसंधानके विना मंत्रप्रयोगको निरर्थक बताया है । इस अर्थसे कर्मकाण्डी वास्तविक लाभ उठा सकेंगे यह समझ कर इस टीकामें उनका विनियोगके अनुसार अर्थ करदिया है । निर्णयसिन्धु और व्रतराजका व्रतादिके लिखनेमें अन्तर तो यही है कि, निर्णयसिन्धुने प्रत्येक मासके जुदे जुदे व्रतोत्सव दिखाये हैं पर व्रतराजने मासोंका हिसाब छोडकर तिथियोंका हिसाब लिया है । प्रतिपदासे लेकर अमावसतकके सब व्रत और उत्सव एक साथ दिखा दिये हैं । इसमें भी निर्णयसिन्धुसे इसकी संख्या बहुत ज्यादा है । वारव्रत तो निर्णयसिन्धुमें है ही नहीं । इनके सिवा और भी अनेकों व्रत हैं जिनका कि इन ग्रन्थोंमें कोई प्रसंगही नहीं आया है । सब व्रतराजमें विस्तारके साथ कहे गये हैं । इसमें व्यय किये गये कालको तो हमने कितनीही तरहसे सार्थक समझा है । उसमें एक हमारी विचारधारा यह भी है कि, मनुस्मृति आदि सभी धर्मशास्त्रके ग्रन्थ पापोंके प्रायश्चित्त करनेमें कृच्छ्र तप्तकृच्छ्र चान्द्रायण आदिका विधान करते हैं । यदि इनको गंभीर दृष्टिसे देखाजाय तो ये सब उपवासों के रूपविशेष हैं जो कि, व्रतोंमें साधारण रीतिसे विधान किये गये हैं । यही नहीं, व्रतोंमें प्रायश्चित्तोंसे कम उपवास हों, मासोपवास व्रतके उपवास

तो प्रायश्चित्तोंके उपवासोंसे भी अगाड़ी वढगये हैं। अनेको भव्य पुरुषोंने भी अपनेको व्रतोपवासोंसे शुद्ध करकेही सुखमय ईश्वरीय साम्राज्यमें वसनेकी योग्यता पाई थी। ये आत्मशोधन करके पुरुपको कैवल्यका अधिकारी बना देते हैं । इस कारण मोक्ष कामीको भी सर्वतोभावसे उपादेय हैं। सकाम पुरुष इनको विधिके साथ साङ्गोपाङ्ग पूरा करके अपनी कामनाओंको अनायास ही पाजाते हैं अतःएव मुक्तिके साधनभी येही हैं। ऋग्विधान वासिष्ठी शिक्षा आदि वैदिक ग्रन्थोंमें भी तो यही बात है। पतित प्राणियोंको उच्चकोटिका बनानेवाले व्रतही तो हैं एवं सभी समाजोंके शिष्ट पुरुषोंमें देखा जाता है। ऐसे भुक्तिमुक्तिसंपादक व्रतोंका स्मरण, हमने अपनी लेखनीसे अनवरत परिश्रमके साथ किया है कि, व्रतराजके कहे हुए सब व्रत आदिकोंको तो शायद इस जीवनमें न कर सकूं, उनके पापहारी परम पवित्र स्मरणसेही अपने पापोंको धोडालू।

व्रतराजमें आये हुए संग्रह ग्रन्थ- हेमाद्रि, कल्पतरु, मदनरत्न, पृथ्वीचन्दोदय, गौडनिवन्ध, षट्त्रिंशन्मत, सिद्धान्त शेखर, शारदातिकल, पदार्थादर्श, गोविन्दार्णव, भार्गवार्चनदीपिका, माधवीय, ज्ञानमाला, निर्णयामृत, द्वैतनिर्णय आचार मयूख, दुर्गाभक्तितरंगिणी, शिवरहस्य, कालादर्श, रुद्रयामल, ब्रह्मयामल बाचस्पतिनिवन्ध, पुराणसमुच्चय आदि ग्रन्थ हैं। व्रतराजकारने अपने ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

पुराण-ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, विष्णुधर्म, विष्णुधर्मोत्तर, शैव, लिङ्ग, गारुड, नारदीय, बृहन्नारदीय, भागवत, आग्नेय, स्कान्द, भविष्य, भविष्योत्तर, ब्रह्मववैर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मात्स्य, कौर्म, ब्रह्माण्ड, देवी, भारत; आदित्यपंचरात्र, गणेश, कालिका, नृसिह, अगस्त्यसंहिता आदि इतने पुराणोंमें आये हुए व्रतों और उत्सवोंको तथा व्रत और उत्सवोंसे संबन्ध रखनेवाले विशेष वचनोंको व्रतराजमें रखा है। स्कन्द और भविष्य तथा भविष्योत्तर और विष्णु धर्मोत्तर के व्रत अधिक संख्यामें आये हैं।

स्मृति-मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, देवल, विष्णु, हारीत, यम, आपस्तंव, कात्यायन, बृहस्पति, व्यास, शङ्ख, दक्ष, वसिष्ठ, वृद्धवसिष्ठ, सत्यव्रत, पैठीनसि, छागलेय, बोधायन आदि आई हैं।

वेद-ऋग्, साम, यजु, कृष्ण यजु और अथर्व तथा दूसरी दूसरी शाखाओंमें भी मंत्र आये हैं। कर्मकाण्डके ग्रन्थोंका यद्यपि उल्लेख नहीं किया है पर ग्रन्थके कलेवरको देखनेसे पता चलता है कि, कर्मकाण्डका भी कोई ग्रन्थ इससे नहीं बचा है। इसकी भाषाटीका करती वार हमें इन ग्रन्थोंमेंसे जो मिलसके उन सब ग्रन्थोंको इकठ्ठा करना पडा तथा इनके अलादा और भी बहुतसे ग्रन्थ हमें इकट्ठे करने पडे। इसग्रन्थका पूर्वपक्ष आदि दिखानेके लिये निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, जयसिहकल्पद्रुम आदिका उल्लेख किया है तथा चारों वेदोंका सायणभाष्य और निरुक्त आदि वैदिक ग्रन्थोंका भी उपयोग हुआ है। सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश, गोविन्दार्चनचन्द्रिका,मंत्रमहार्णव, मंत्रमहोदधि, नवग्रहविधानपद्धति, प्रतिष्ठासंग्रह, मन्त्रसंहिता, ग्रहशान्ति, पारस्करगृह्यसूत्र, आपस्तंबसूत्र, सूर्य्यसिद्धान्त, ग्रहलाघव, लीलावती, मुहूर्तचिन्तामणि, बृहज्ज्योतिषार्णव, कर्मकाण्डसमुच्चय, आश्वलायनसूत्र, ब्याकरणमहाभाष्य, वाल्मीकीरामायण, हिरण्यकेशीय ब्रह्मकर्मसमुच्चय, आदिका भी टीकामें उपयोग हुआ है। इन ग्रन्थोंके प्रमाण आदि हमारी टीकामें मिलेंगे। कहीं हमने नामनिर्देश कर दियाहै तो कहीं विषय दिखाया है उसके नामका और कोई संकेत नहीं किया है। इस महाग्रन्थमें हमें एक वर्षके करीब अनवरत परिश्रम करना पडा। फिर भी नहीं कह सकते कि, यह परिपूर्ण होगई क्योंकि, मानवी बुद्धि कहीं स्थगित होती ही है। सायणाचार्य्यके अनुभवके अनुसार किसीन किसी कक्षामें अज्ञान रह ही जाता है। यद्यपि वेद पुराणोंकी संमिलित सेवा करनेके पीछे हम लिखनेके कार्य्यसे विरत हो लेखिनीको विश्राम देते हुए दूसरी रीतिसे धर्मसेवामें लगे हुए थे, दूसरे शब्दोंमें यह कहें तो कह सकते हैं कि, हम अपने अधीत वेदवेदांगोंका उपयोग करना छोडकर निरर्थक ही भुला रहे थे, कि भारत के अतिप्राचीन " **श्रीवेंकटेश्वर** " प्रेसके स्वत्वाधिकारी एवम् **क्षेमराज श्रीकृष्णदास** नामके प्रसिद्ध फर्मके अधिपति सनातनधर्मभूषण **रावबहादुर सेठ श्रीरङ्गनाथजी** तथा **श्रीनिवासजी** ने हमें परम सहृदयताके साथ कलमसे देश और धर्मसेवा करने में अग्रसर किया। यह उन्हींकी प्रेरणाका फल है जो हम ब्रह्मसूत्रका वेदान्तपदार्थप्रकाश आदि तथा व्रतराजकी इस भाषाटीकाको धार्मिक देशवासियोंकी सेवामें रख रहे हैं। न जाने इनके हृदयमें धर्मके लिये कितना प्रेम एवं कितनी श्रद्धा है कि

धर्मप्रचारके लिये जाते हुए प्रतिवादिभयंकर मठके अधीश्वर राजसम्मानित जगद्गुरु श्रीमदनन्ताचार्यजी महाराजको देख मुझे वाणीद्वारा अगम्य पहाडी स्थानोंमें भी लोगोंमें धार्मिक जीवनकी लहर वहा देनेके लिये भेजा । वही क्यों ? सनातनधर्मके लिये आपने समय समयपर अपूर्व त्याग किया है । भारत के विशिष्ट पुरुषोंके स्मृतिचिन्होंको देखनेके लिये मैंने पैदल यात्रा तक करते देखा है । यदि थोडे शब्दोंमें कहें तो यह कह सकते हैं कि, यह उन्हीं की धार्मिक भावनाओंसे ओतप्रोत हुई रुचिर प्रेरणा है जिसे कि, मैं व्रतराजकी इस भाषाटीकाके रूप में रख रहा हूँ ।

पुस्तकके विषय-मंगलाचरण करते हुए अनुबन्धचतुष्टयके साथ ग्रन्थकारने अपना परिचय दिया है। सामान्यपरिभाषाप्रकरणमें व्रतका लक्षण, देश, अधिकारी, धर्म, प्रायश्चित्त, उपवासधर्म, हविष्य, उपयुक्त वस्तु, भद्रमंडल, उसके देवता, पूजन अग्निमुख आदि वे विषय हैं जिनका सभी व्रतोंमें उपयोग होता है । इसी कारण इस प्रकरणका नाम परिभाषाप्रकरण लिखा दिया है । इसके पीछे प्रतिपदासे लेकर अमावसतककी तिथियोंके व्रत तथा होली आदि सब उत्सव, व्रतोंकी देव पूजा, कथा, उद्यापन तथा विधि और उनकी तिथियोंका निर्णय एवं अन्य ऐतिहासिक वृत्त है, इसके पीछे वारव्रत हैं । इनमें प्रत्येक वारके सूर्य आदि देवोंका पूजन और उनकी कथाएँ वर्णित हैं । बुध और बृहस्पतिके व्रत हमने और भी दूसरे ग्रन्थोंसे लाकर जोड दिये हैं । कुछ प्रदोष आदिके व्रत भी ऐसे ही गये हैं जो वार तिथि दोनों सेही सबन्ध रखते हैं । व्यतीपातके व्रत दान आदि आये हैं जिसके ताराके प्रकरणको लेकर हमने एक वैदिक टिप्पणी दी है । संक्रान्तिके प्रकरणके पीछे लक्षपूजा आदिका प्रकरण आया है । पीछे मंगलागौरीके व्रत आदि आकर और भी वहुतसे व्रत आदि आये हैं जो कि, अनुक्रमणिकामें सब भिन्न भिन्न किरके दिखा दिये गये हैं और भी अनेकों धर्मशास्त्रके प्रयोजनीय विषय आये हैं जिनका पृष्ठाङ्क अनुक्रमणिकामें लिखा हुआ है पर मूलमें कहीं मासोंके मानोंमें हेरफेर हुआ है । हमने उसे अविरोधके पथसे लेजानेकी चेष्टा की है फिर भी विवेकी पाठक उसे सुधारकर पढ़ लेंगे । यद्यपि शिलायन्त्रोंसे कितनीहि बार मनमानी रीतिसे दूसरे दूसरे प्रेसोंने इसका प्रकाशन किया था, पर इतने बडे धार्मिक मान्य ग्रन्थका पदार्थ विचार एवं धर्मशास्त्रके दूसरे दूसरे ग्रंन्थोंको रखकर संशोधनपूर्वक परिष्कारके साथ किसीने भी इसका प्रकाशन नहीं किया । धर्मशास्त्रके प्रतिष्ठित ग्रन्थकी यह दुर्दशा देखकर अनेकों माननीय पुरुषोंके मुखसे उच्चस्वरसे येही शब्द निकले कि, ऐसा न होना चाहिये; इस ग्रन्थका सुधारके साथ यथार्थ रूपमें प्रकाशन हो । हिन्दू संस्कृतिके पोषक एवं शास्त्रोंके उद्धारका अनवरत व्रत रखनेवाले वैकुण्ठवासी सेठ **श्रीखेमराजजीने** खाडिलकर आत्मारामजी शास्त्री तथा महाबल कृष्णशास्त्रीको आमंत्रित करके इसका संशोधन करा, आवश्यक टिप्पणियोंसे मूलका परिष्कार कराके आजसे ४३ वर्ष पहिले अपने श्रीवेंकटश्वर प्रेस बंबई से प्रकाशित किया । अवतक यह ग्रन्थ कितनीही वार उसी रूपमें प्रकाशित हो चुका है । हमने हिन्दीटीका लिखते वार इसकी टिप्पणीपरभी ध्यान दिया है एवम् यथाज्ञान मूल और टिप्पणीकाभी संशोधन किया है तथा उसके दिखाये पाठभेदोंकाभी अर्थ करते चले हैं, जहाँ कि, हमने उसका अर्थ दिखाना आवश्यक समझा है । पद पदपर इस बातका ध्यान रखा है कि, धर्मशास्त्रमें हमारी साधारण बुद्धिके दोषसे कोई उलटा सीधा अर्थ न हो जाय जिससे कि, धार्मिक जनोंके हृदयोंपर कुछका कुछ प्रभाव पडे । आदमी के हाथसे लिखी हुई टीकामें कोई गलती न हो इस बातपर हृदय विश्वास नहीं करता क्योंकि " **मर्त्यस्य चित्तमभिसंचरेण्यम्**, मनुष्यके चंचल चित्तका ठिकाना है ? आज एक बातका निश्चय करता है तो कल उसको असत् समझकर उसे त्यागनेको उतावला होता है । हाँ, मेरेसे जितनाभी हो सका है शुद्ध ही संपन्न करनेकी चेष्टा की है जो कुछ किया है वह धार्मिक जगत्को सेवा तथा विद्वानोंके मनोविनोदके भावको लेकर ही किया है कि, धार्मिक जन अपने अशेष व्रतोत्सवोंका ज्ञान अनायासही प्राप्तकर सकेंगे । तथा विज्ञापन इसकी सरलतापर प्रसन्नता प्रकट करेंगे । आशा भी यही करता हूँ कि, भारतके सभी संप्रदायोंके सुयोग्य हिन्दू इस अपनाकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे ।।

विदुषां वंशवद :–

पं० माधवाचार्य्यः

सूचना

★

श्रीलक्ष्मीवेङ्कटेशः सकलशुभगुणालंकृतः सत्यरूपः
श्रीभूपद्माविलासी त्रिभुवनविजयी ब्रह्मरुद्रेन्द्रपूज्यः।
मिथ्याकर्मान्धरात्रिप्रमथनतरणिः प्रेमपूर्णान्तरङ्गः
सर्वेषां नस्तनोतु प्रतिदिनमुदयं श्रीहरिः शान्तमूर्तिः ॥ १ ॥

जगन्निवासस्य हरेः परतन्त्रो जनो भुवि ॥ प्रेरणात्प्राप्नुयादाशामाह्लादस्येतरस्य वा ॥ २॥
अस्माभिर्व्रतराजस्य विश्वनाथकृतेः खलु ॥ ग्रन्थस्यात्यनवद्यस्य सर्वाङ्गैरनुसंभृतैः ॥ ३ ॥
लेखकानां पाठकानां प्रमादेनानवस्थितेः ॥ सम्पूर्णविषयापूर्ति दृष्ट्वा तत्संग्रहेण वै ॥ ४ ॥
सारल्यं संविधातुं च शास्त्रिमण्डलमण्डनौ ॥ आत्मारामाख्यकृष्णाख्यशास्त्रिणौ सुनिमन्त्रितौ ॥ ५ ॥
ताभ्यां महाप्रयत्नेन सर्वान्ग्रन्थान्विलोड्य च ॥ स्थले स्थले टिप्पणीभिः संस्कार्य विशदीकृतः ॥ ६ ॥
सर्वान्प्रपूर्य विषयानुपकारकरः कृतः । सो ऽयं ग्रन्थो मुद्रयित्वाऽसाधारण्यमनीयत ॥ ७ ॥
नगारिनागधरणीमितीयनृपशासने ॥ आरोहणेन स्वातंत्र्यबन्धनैकनिबन्धनः ॥ ८ ॥
परत्वस्य च ग्रन्थस्य कर्मणा स्वेन सूचितः ॥ **हेगिष्ठे** इत्युपाख्यो वै वैश्यवर्यः सुबुद्धिमान् ॥ ९ ॥
मोरेश्वरो बापुजीजोऽविचायवाथ मुद्रणे ॥ प्रवृत्तोऽसौ तदास्माभिः सूचितो ' **नैव मुद्रयताम्** ॥ १० ॥
इति ' तन्नोररीकृत्य यथाप्रति अमुद्रयत् ॥ ततोऽस्माभिर्**हायकोर्टाख्यायां** वै राजसंसदि ॥ ११ ॥
जज्जाख्यनीत्यधीशस्य पुरो वादः प्रवर्तितः ॥ तत्र साक्ष्यादिभिर्वादे विपुलीकारिते सति ॥ १२ ॥
न्यायाधीशमुखादेषा निर्गता वै सरस्वती ॥ **प्रतिवादिमुद्रितोऽयं ग्रन्थो वादव्ययश्च वै** ॥ १३ ॥
सर्वं देयं वादिने च सत्वरं प्रतिवादिना ॥ इति तन्निर्गतां देवीमनादृत्य सरस्वतीम् ॥ १४ ॥
लक्ष्मीर्निगमरन्ध्रं वा कुर्वन्निव पुनः स्वयम् ॥ **अपीलाख्य** वादशोधं **जज्जाग्रे** समकारयत् ॥ १५ ॥
तत्रापि सत्येतरभीशंकया सुविचक्षणौ ॥ न्यायाधीशौ द्वावपीदमनूचतुरमुष्य वै ॥ १६ ॥
धार्ष्ट्यमेतन्नैव सत्यः प्रतिवादो भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा पूर्ववच्चास्माकं वादोऽङ्गीकृतः खलु ॥ १७ ॥
कृतश्च निश्चयश्चापि जज्जेन प्रथमेन यः ॥ **कृतश्च निश्चयः सोऽथ सत्य एवान्यथा न हि** ॥ १८ ॥
एवमुक्त्या विवादश्च सम्पूर्णः समकार्यत ॥ फाल्गुने शुक्लपक्षेऽथ दशम्यां भौमवासरे । । १९ ॥
दशाधिकाष्टादशाख्यशते श्रीशालिवाहने ॥ सत्यं सर्वत्र जयति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २० ॥
सत्येन वर्द्धते कीर्तिः सत्येन सुखमेधते ॥ असत्यं सर्वदा हेयमसत्येनायशो भवेत् ॥ २१ ॥
बचप्यसत्येन नीयाद्यमो दद्याद्दमं न किम् ॥ सारमित्थं विजानन्तु सुधियो व्यवहारिणः ॥ २२ ॥
न मन्तव्यं कदा केन राजमंदिरवर्त्मनि ॥ वयं विजयिनः सुज्ञास्तथापि किं फलं महत् ॥ २३ ॥
बहुद्रव्यव्ययो नूनमुभयोरपि जायते ॥ तत्रापि किंचिज्जयिनो लब्धमित्यभिभासते ॥ २४ ॥
पराजयी तु सुतरां क्लेशमायाति सर्वतः ॥ तस्माद्यदि जनाः सुज्ञास्तदा शृण्वंतु मे वचः ॥ २५ ॥
विवादे तु समुत्पन्न उभयोरपि सांत्वनम् ॥ उभाभ्यामेव कर्तव्यं नान्यत्तत्र विचार्यताम् ॥ २६ ॥
नोचेन्महादुर्दशा स्याद्विन्मृशंत्वीति सज्जनाः ॥ २७ ॥

(ज्ञातव्यं–४३ वर्ष पहिले इसे मूल टिप्पणीके रूप में प्रकाशित किए पीछे मोरेश्वर बापूजीने अविचारके वश ही प्रकाशित कर डाला था पीछे उन्हें खर्चके साथ पुस्तक श्रीवेंकटेश्वर प्रेसकी देनी पड़ी थी इसीका विवरण इन श्लोकोंमें है।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेंकटेश्वर " मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष :–बम्बई.

श्रीः

व्रतराजस्य विषयानुक्रमणिका

★

विषयः पृष्ठांकः

प्रतिपदाके व्रत ।

द्वितीयाके व्रत ।

तृतीयाके व्रत ।

चतुर्थीके व्रत ।

व्रतराजके वैदिक मंत्रोंकी सूची

इति मंत्रसूची समाप्ता

अथ

श्री व्रतराजः

हिन्दीटीकासमेतः

★

श्रीगणेशायनमः श्रीगुरुभ्योनमः

ॐकारविघ्नेशगुरून्सरस्वतीं गौरीशसूर्यौ च हरिं च भैरवम् । प्रणम्य देवान्कुरुते हि ग्रन्थं दैवज्ञशर्मा जगतो हिताय ।।१।। विष्णवर्चनं दानशिवार्चनं च उत्सर्गधर्मव्रतनिर्णयश्च ।। वेदात् पुराणात्स्मृतितश्च तद्वद्व्रतोक्तोक्तसिद्धान्तविधिं विधत्ते ।।२।। संगृह्य सर्वस्य मतं पुराणं सिद्धान्तवाक्यं मुनिभिः प्रणीतम् ।। लोकोपकाराय कृतो निबन्धो व्रतप्रकाशः सुधियां मुदे स्यात् ।।३।। यावन्तो ब्राह्मणा लोके धर्मशास्त्रविशारदाः ।। तावन्तः कृपया युक्ताः कुर्वन्तु ग्रन्थशोधनम् ।। ४ ।। विज्ञाप्यन्ते मया सर्वे पण्डिता गुणमण्डिताः ।। प्रचारणीयो ग्रन्थोऽयं बालवद्बालकस्य मे ।। ५ ।। रामाङ्कमुनिभूसंख्ये (१७९३) वस्विष्वङ्गेन्दुसंख्यके (१६५८) ।। वर्षे शाके शुक्लपक्षे पञ्चम्यां तपसः शुभे ।। ६ ।। विलोक्य विविधान् ग्रन्थांल्लिख्यतेऽज्ञजनाय वै ।। तन्निमित्तोयमारम्भः किमज्ञातं मनीषिणः ।। ७ ।। चित्तपावनजातीयः शाण्डिल्यकुलमण्डनः ।। गोपालात्मजदैवज्ञः सङ्गमेश्वरसंज्ञितः ।। ८ ।। दुर्गाघट्टे वसन् काश्यां नत्वा पितृपितामहान् ।। कुर्वे वै विश्वनाथोऽहं व्रतराजं सविस्तरम् ।।९।।

यत्कृपालेशतो मन्दाः विदुषां यान्ति पूज्यताम् । तं देवं देवदेवेशं राधाकान्तं दयाकरम् ।।
सद्गुरूनखिलांश्चैव नत्वाऽहं माधवो मुदा । इदानीं व्रतराजस्य हैन्दवीं वृत्तिमारभे ।।

जिसकी कृपाके लेशसे मन्द जन भी विद्वानोंके पूज्य बनजाते हैं उस दयाके खजाने राधाके प्यारे देवदेवेश देव और सब सद्गुरुओंको नमस्कार करके मैं माधवाचार्य आनंदसे इस मसय व्रतराजकी भाषाटीकाका प्रारंभ करता हूँ ।।

ओंकार वाच्य ईश्वर तथा प्रज्ञानघन परब्रह्म परमात्माको और विघ्नों के अधिपति गणपतिजी महाराज एवम् सब गुरुदेव श्री सरस्वतीजी, गौरीजी, भगवान् सूर्य्यनारायण, श्रीविष्णु भगवान्, भैरव और अशेष देवताओंको नमस्कार करके मैं काशी क्षेत्रका रहनेवाला संगमेश्वर उपनामवाला श्रीगोपालजीका बालक ज्योतिषी विश्वनाथ शर्म्मा, संसारके कल्याणके लिये यह ग्रन्थ बनाता हूं ।।१।। वेदोंमें पुराणोंमें और स्मृतियोंमें जो, श्री विष्णु भगवान्‌के पूजनका दानका और शिवजीकी पूजाका विधान है तथा उत्सर्ग धर्मका निर्णय है एवम् व्रतमें कहे हुए सिद्धान्तोंकी जो विधियाँ हैं वे सब इस हमारे ग्रन्थमें यथावत् रहेंगी।।२।। यही नहीं किन्तु मैंने इस ग्रन्थमें सबके प्राचीन मतोंका संग्रह किया है तथा ऋषि मुनियोंके बनाये हुए सिद्धान्त

वाक्योंका भी उल्लेख किया है, मेरा इसके बनानेमें निजी कोई भी स्वार्थ नहीं है केवल लोकके कल्याणकी कामनासे प्रेरित होकर ही इसे लिखने बैठा हूं मेरी आन्तरिक इच्छा यह है कि यह मेरा ग्रन्थ विद्वानोंके अनान्दके लिये हो ॥३॥ इसं संसारमें जितने भी धर्म शास्त्रके जाननेवाले विद्वान ब्राह्मण हैं वे सबकेसब मुझपर दया करके मेरे इस छोटेसे ग्रन्थका संशोधन करनेकी कृपा करेंगे ॥४॥ मैं गुण मण्डित सकल पंडित गणोंसे विनीत प्रार्थना करता हूं कि, जिस तरह मांबाप बालककी अस्पष्ट तोतली बोलीका प्रचार आनन्दसे करते हैं इसी तरह आप अपने इस बालकके ग्रन्थको भी प्रचलित करेंगे ॥५॥ संवत् सत्रह सौ तिरानवेंके तथा शक सोलह सौ अठानवेंके माघ सुदी पंचमीके दिन ॥६॥ अनेकों ग्रन्थको देखकर*अज्ञ लोगोंके लिये मैंने लिखना प्रारम्भ किया है। ऐसेही लोगोंको समझानेके कारण ही मैंने यह आरंभ किया है। क्योंकि, विद्वान् तो सब कुछ जानतेही हैं ॥७॥ मेरा जन्म चित्तपावन जातिमें हुआ है मेरा वंश शांडिल्य कुलमें खास स्थान रखता है, मुझे लोग संगमेश्वर कहा करते हैं मेरे पिता श्रीका नाम गोपालजी है मैं ज्योतिषी हूं ॥८॥ बनारसमें मेरा रहना दुर्गा घाट पर होता है वही मैं पिता तथा बाबा आदिको प्रणाम करके खासे विस्तारके साथ व्रतराज नामके ग्रन्थको लिखता हूँ ॥९॥

व्रतलक्षणम् ॥ अत्र केचित्स्वकर्तव्यविषयो नियतः संकल्पो व्रतमिति ॥ तन्न,–अग्निहोत्रसंध्यावन्दनादिविषये सङ्कल्पेऽतिप्रसक्तेः । अतोऽभियुक्तप्रसिद्धिविषयो यः संकल्पविशेषः स एव व्रतम् ॥ न च व्रतं संकल्पयेदित्यनन्वय इति वाच्यम्। पाकं पचति दानं दद्यादितिवत्प्रत्ययानुग्रहार्थम् प्रयोगोपपत्तेरिति नव्याः ॥

अब व्रत शब्दके अर्थका निर्णय करते हैं कि, व्रत शब्दका असली अर्थ क्या है ? कोई २ व्रतके रहस्यको न जाननेवाले अपने करनेके कामको करनेके दृढ संकल्पको ही व्रत कहते हैं सो उनका यह कहना ठीक नहीं है. क्योंकि, फिर तो आपका व्रतका लक्षण सन्ध्यावन्दन अग्निहोत्र आदिमें भी चला जायगा पर इनका व्रतशब्दसे व्यवहार नहीं देखा जाता किन्तु नित्य नियम शब्दसे इनका व्यवहार लोकमें देखा जाता है। इस कारण यह मानना होगा कि जिसका योग्य पुरुष व्रतशब्दसे व्यवहार करते चले आ रहे हैं उसीका नाम व्रत है। यह व्रत भी एक प्रकारका संकल्पही है फिर व्रतका संकल्प करे यह करना नहीं बन सकेगा क्योंकि संकल्प और व्रत दोनों एक ठहरे, पर यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि पके पकायेको पाक कहते हैं तो भी संसारमें ऐसा व्यवहार देखा जाता है कि पाकको पकाओ तथा दियेको दान कहते हैं फिर भी लोकमें यह कहते हुए लोग दृष्टिगोचर होतेहैं कि दानको देदो इसी तरह व्रतका संकल्प करलो यह व्यवहार हो जायगा ऐसा नये आचार्य्य कहते हैं।

अथ व्रतकालः

तत्रादौ निषिद्धकालमाह हेमाद्रौ गार्ग्यः–अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे ॥ उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत् ॥ तत्रैव वृद्धमनु–बृहस्पती–अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ॥ माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् । बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे चास्तंगते गुरौ ॥ मलमासे च एतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥ लल्लः–नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जी-

* धर्म शास्त्र तो प्राणिमात्र के लिये उपादेय है, अज्ञजनों के लियें अपने संग्रह को कहना, विद्वानों के लियें नहीं यह ग्रन्थकार की विनम्रता मात्र है ।

बन्धोऽथ चूडापरिणयविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्या सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ।। इति । नीचस्थो मकरस्थः ।। कल्पतरो देवी पुराणे सिंहस्थं गुरुं शुक्रं सर्वारम्भेषु वर्जयेत् ।। प्रारब्धं न च सिद्धचेत महाभयकरं भवेत् ।। पुत्रमित्रकलत्राणि हन्याच्छीघ्रं न संशयः ।। देवारामतडागेषु व्रतोद्यानगृहेषु च ।। सिंहस्थ मकरस्थे च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ।। वसिष्ठः—सिंहस्थे तु मघासंस्थं गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ।। अन्यत्र सिंहभागे तु सिंहस्थोपि न दुष्यति ।। सिंहस्थगुरोर्वर्जनीयत्वं नर्मदोत्तरभाग एव, अन्यत्र तु सिंहांश एव वर्ज्यः ।। तथा च मदनरत्नादिधृतकालविधाने—सिंहस्थितः सुरगुरुर्यदि नर्मदायाः तं वर्जयेत्सकलकर्मसु सौम्यभागे ।। विन्ध्यस्य दक्षिणदिशि प्रवदन्ति चार्याः सिंहांशके मृगपतावपि वर्जनीयः ।। सिंहांशस्तु पूर्वफल्गुन्याः प्रथमः पादः ।। मृगपतौ मकरस्थे ।। मकरस्थे गुरौ देशविशेषमाह लल्लः—नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योत्तरदक्षिणे ।। गण्डक्याः पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् ।। केषांचित्स्त्रीकर्तृकाणामन्येषां च व्रतानामगस्त्योदयेप्यारम्भं निषेधति हेमाद्रौ लौगाक्षिः—उद्यानिका शिवपवित्रकमेघपूजापूर्वाष्टमी फलविरूढकजागराणि ।। स्त्रीणां व्रतानि निखिलान्यपि वार्षिकाणि कुर्यादगस्त्य उदिते न शुभानि लिप्सुः ।। इति । उद्यानिका—व्रतविशेषः ।। शिवपवित्रकम् आषाढ्यामथवा भाद्रयां विहितं शिवपवित्रारोपणम् ।। मेघपूजा व्रतविशेषः ।। दूर्वाष्टमी भाद्रशुक्लाऽष्टमी । फलविरूढकं भाद्रपद शुक्लचतुर्दश्यां पाली पालीव्रतं कदलीव्रतापरनामकम् ।। जागरम् आश्विनपौर्णिमास्यां कोजागरव्रतम् ।। कार्तिकशुक्लचतुर्दश्यां विहितं जागरव्रतं वा ।। अत्रोभयत्रागस्त्योदयस्यावश्यंभावित्वेन विधेरनवकाशत्वापत्तेर्विकल्पो ज्ञेयः ।। वार्षिकाणीत्यत्र वर्षासु भवानि वार्षिकाणीत्येव व्युत्पत्तिर्न तु वर्षे भवानीति ।। तथा सति शरदादिग्रीष्मपर्यन्तमगस्त्योदयानुवृत्तेस्तन्मध्ये विहितानां स्त्रीव्रतानां सर्वथानारंभ एवापद्यतेति ।। अगस्त्योदयकालश्च ।। दिवोदासीयेउदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमे ह्यगस्त्यः ।। स सप्तमेऽस्तं वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादिभिरित्यभाणि ।। व्रतारंभसमाप्त्योस्तिथिं विशिनष्टि हेमाद्रौ सत्यव्रतः -उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक् ।। सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम् ।। एतद्व्यतिरिक्तायामखण्डायां प्रारंभमाह ।। तत्रैव वृद्धवसिष्ठः—खखण्डव्यापिमार्तण्डा यद्यखण्डा भवेत्तिथिः ।। व्रतप्रारम्भणं तस्यामनस्तगुरुशुक्रयुक् ।। इति ।। अनस्तमितगुरुशुक्रायां तिथौ व्रतमारंभणीयमित्यर्थः ।। रत्नमालायाम्-सोमसौम्यगुरुशुक्रवासरा । सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः ।। भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिद्धयति ।।

विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगाः तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः ।। स वैधृतिस्तु व्यतिपात- नामा सर्वोप्यनिष्टः परिघस्य चार्द्धम् ।। तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघात- संज्ञे नवपञ्चशूले ।। गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ।। दर्शं संक्रान्तिपातौ परिघमुखदलं वैधृतिं पातयोगं विष्कम्भाद्यत्रिनाडीः शुभ- कृतिषु च षड्गण्डयोः पञ्चशूले ।। व्याघाते वज्रकेऽङ्काः पितृमृतिदिवसोना- धिमासान्कुहोरां जह्याज्जन्मोत्थमासोडुतिथिख (ल) लु तिथिं व्युद्गमां द्व्यु मां च ।। ब्रह्मयामले-दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा ।। न त्याज्या शुभकार्येषु प्राहुरेवं पुरातनाः ।। इति ।।

अब व्रतके समयका निर्वचन करते हैं, व्रतकाल निषिद्ध कालको वता देनेसे व्रतके समयका अपने आप निर्णय हो जाता है इस कारण सबसे पहले व्रतके निषिद्ध कालकोही कहते हैं । हेमाद्रिमें गार्ग्यने कहा है कि जब बृहस्पति और शुक्रके तारे अस्त हो गये हों, उदित भी हों तो इनका बालकाल व वृद्धकाल हो, ऐसे समयमें तथा मलमासमें न तो कोई उद्यापन करना चाहिये तथा न किसी व्रतका ही प्रारंभ करना चाहिये इसी विषयमें वृद्ध मनु और बृहस्पतिका वाक्य है कि–श्रौत स्मार्त अग्नियोंकी स्थापना, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत और मंगलकी कामनासे अभिषेक या मंगलका काम और अभिषेक मलमासमें न होना चाहिये । यदि शुक्र और बृहस्पति अस्त होगये हों तथा उदित भी हो तो किसी तरह बालवृद्ध संभाले जा रहे हों अथवा मलमास हो तो न तो किसी अपूर्व देवका दर्शन करना चाहिये एवम् न पहिले निशेध किये हुए कामही करने चाहिए । लल्लका कहना है कि, बृहस्पतिजी महाराज मकर राशिपर विराज रहे हों अथवा टेढे बैठे हों अस्त हों अथवा बाल वृद्धोंमें गिने जा रहे हों अथवा नियत राशिको लांघकर दूसरी अनियत राशिपर चले गये हों उस समय संन्यास तथा देवयात्रा न होनी चाहिये व्रत और नियमकी कोई विधि तथा कर्णछेद दीक्षा जनेऊ मुंडन उद्वाह वास्तु प्रतिष्ठा और मूर्तिप्रतिष्ठा न होनी चाहिये । सज्जनोंको कभी भी ऐसे समय ये काम न करने चाहिये । यदि बृहस्पतिजी सिंह राशिपर बैठे हों तो भी ये काम न होने चाहिये । कल्पतरु देवीपुराण ग्रन्थमें कहा है कि बृहस्पति और शुक्र सिंह राशिपर हों तो कोई भी व्रतादि शुभ कर्म न करना चाहिये क्योंकि ऐसे समयमें प्रारंभ किया हुआ कोई भी मांगलिक कर्म सिद्ध नहीं होता प्रत्युत महाभयंकर होता है । वो शीघ्रही पुत्र मित्र और परिवारिको नष्टकर डालता है इसमें कोई संदेह नहीं है । यदि देवमंदिर बगीची बावडी व्रत बाग और घर बनवाना हो तो सिंह राशि और मकर राशिपर बैठे हुए बृहस्पतिको प्रयत्नके साथ परित्याग कर दे । वशिष्ठजीका कथन है कि–सिंह राशिको भोगकर यदि बृहस्पतिजी मघाराशिपर आये हों तो उन्हें सावधानीके साथ छोड़ना चाहिये । यदि मघाको भोगकर सिंह राशिपर आये हों तो फिर कोई दोष नहीं हैं । नर्मदाके उत्तर भाग में ही सिंह राशिपर स्थित बृस्हस्पति का त्याग किया जाता है और जगहोंमें तो सिंहांशकाही निषेध है । यही मदन रत्नादिके धृत कालविधानमें लिखा हुआ है कि–श्रेष्ठ पुरुष ऐसा कहते गंडकीके पश्चिममें मकर राशिपर बैठा हुआ भी बृहस्पति दूषित नहीं है । हेमाद्रिमें लौगाक्षिने अगस्त्यके उदयमें बहुतसे उन व्रतोंके आरंभका निषेध किया है जिन्हें प्रायः स्त्रियां किया करतीं हैं–कि जो कोई अपना कल्याण चाहे उसे चाहिये कि स्त्रियोंके व्रत उद्यानिका शिव पवित्रक मेघपूजा दूर्वाष्टमी फल विरूढक और जागरण व्रत तथा वर्षा ऋतुके व्रतोंको कभी न करे । उद्यानिका एक व्रतका नाम है । शिव पवित्रक एक व्रतका नाम है वह आषाढ वा भादोंकी पूर्णिमाके दिन होता है जिसमें शिवजीपर पवित्री चढाई जाती है मेघपूजा एक व्रतका नाम है । दूर्वाष्टमी भादोंकी शुक्लाष्टमीको कहते हैं । फलविरुढक, भादोंकी शुक्ला चतुर्दशीके दिन होता है जिसे पालीव्रत तथा कदली व्रत कहते हैं । आश्विनकी पौर्णमासीके कोजागर व्रतको जागर कहते हैं । अथवा कार्तिककी शुक्ला चतुर्दशीको जागर व्रत होता है। यहां दोनों जगह अगस्त्यका उदय अवश्यंभावी है तब विधिके लिये कोई अवकाश ही

न रहेगी इसकारण दोनों जगह विकल्प किया है । "वार्षिकाणि "का वर्षामें होनेवाले व्रतोंको न करे यह अर्थ है, यह अर्थ नहीं है कि वर्ष भरके व्रतोंकोही न करे। यदि ऐसा न मानोगे तो शरदसे तो लेकर ग्रीष्म तकके समयमें अगस्त्यका सम्बन्ध होनेसे इस कालमें कहे गये स्त्री व्रतोंका सर्वथा निषेध हो जायगा । दिवोदासी यग्रन्थमें अगस्त्यजीके उदयका काल गर्ग आदिके वचनोंको उद्धृत करके कहा है कि, अगस्त्यजीका उदय दक्षिण दिशा में होता है जब कि सिंहकी संक्रांतिके इक्कीस अंश बीत जाते हैं तथा वृषकी संक्रांतिके सात अंश व्यतीत होने पर अस्त होते हैं । हेमाद्रिमें सत्यव्रतने व्रतके आरंभ करने और समाप्ति करनेकी तिथिको बताया है कि–सूर्य्य नारायणके उदयके समयमें तो जो तिथि हो पर मध्याह्नके समयमें वह न रहे उस खण्डा तिथिमें न तो व्रतका प्रारंभ करना चाहिये तथा न व्रतकी समाप्ति ही करनी चाहिए । तहां ही वृद्ध वसिष्ठने खण्डासे भिन्न जो अखण्डा तिथि है उसमें व्रतके प्रारंभ करनेको कहा है कि जिस मध्याह्नकालमें भगवान् सूर्य देव आकाशको पूर्ण व्याप्त करते हैं उस समय जो तिथि खण्डित न हो तथा शुक्र और गुरु दोनों हों तब व्रतका आरंभ करना चाहिये । यानी जिसमें शुक्र और बृहस्पतिजी अस्त न हों उसमें व्रतका प्रारम्भ करना चाहिये यह इस कथनका तात्पर्य हुआ । रत्नमालामें कहा है कि–सोमवार बुधवार बृहस्पति और शुक्रवारको कोई भी शुभ कर्म करो उसकी अवश्य सिद्धि होगी क्योंकि ये सिद्धि देनेवाले हैं पर रविवार मंगल औरशनिवारमें प्रारंभ किया हुआ वो ही कर्म सिद्ध हो सकता है जो इनमें कहा गया है सब नहीं हो सकते, जोयोग शुभ-कर्ममें वर्जनीय बताये गये हैं उनका प्रथम पाद ही अनिष्ट कारी है पर वैधृति और व्यतीपात ये दोनों पूरे अनिष्टकारी हैं किन्तु परिघ योगका आधा भागही वर्जनीय है । विष्कंभ और वज्र योगकी तीन घडियाँ और गंड अतिगंडयोगकी छः घड़ियां शुभ काममें सदा छोड़ देनी चाहिये । अमावस, संक्राति, पातपरिघका प्रथमचरण, वैधृति, पातयोग तथा विष्कंभकी पहिली तीन घडियाँ गंड अतिगंडकी ६ घड़ियां शूलकी पांच, व्याघातकी एक, और वज्रकी ९ घड़ियें शुभकाममें छोड़ देनी चाहिये, एवम् पिताके मरनेका दिन, ऊनमास अधिकमास, बुरे नक्षत्र, जन्म मास, जन्म नक्षत्र विवाह द्विरागमन और जन्मतिथिको शुभकामका, प्रारंभ या समाप्ति न करनी चाहिये । ब्रह्मयामलमें कहा है कि दिनकी भद्रा रातमें हो और रातकी भद्रा दिनमें हो तो उस भद्राका परित्याग न करना चाहिये ऐसा पुराने आचार्योंका मत है ।

अथ देशमाह व्यासः-सर्वे शिलोच्चयाः पुण्याः सागराः सरितस्तथा ।। अरण्यानि च पुण्यानि विशेषान्नैमिषं तथा ।। देवीपुराणे-देशो नदी गया शैलो गङ्गानर्मदपुष्करम् ।। वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागं जम्बुकेश्वरम् ।। केदारं वामपादं च कुडवं पुष्कराह्वयम् ।। सोमेश्वरं महापुण्यं तथा चामरकण्टकम् ।। कालञ्जरं तथा विन्ध्यं यत्र वासो गुहस्य च ।। गुहः–स्वामिकार्तिकेयः ।। मनुः–सरस्वती-दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।। तं ब्रह्मनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।। यस्मिन् देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ।। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ।। कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनिकाः ।। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्ता-दनन्तरः ।। मत्स्याः–विराटाः ।। पंचालाः कान्यकुब्जाः । शूरसेनिकाः–मथुरा-देशाः ।। अनन्तर समः ।। हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेश उदाहृतः ।। विनशनं कुरुक्षेत्रम् ।। आसमुद्रात्तु वै पूर्वादास-मुद्रात्तु पश्चिमात् ।। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।। सिन्धुनदी-पश्चिमतीरव्यावृत्त्यर्थमाह–कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।। स ज्ञेयो

प्रज्ञियो देशो म्लेच्छदेश स्ततः परः ।। एतान्द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः ।। याज्ञवल्क्योऽपि--यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्मान्निबोधत ।। इति ।।

अथ देश-निर्णयः--व्यासने कहा है कि, पर्वत पवित्र तथा सब समुद्र और नदियां पुण्यवन व्रतादि करनेके देश हैं नैमिषारण्य तो विशेष करके हैं । देवीपुराणमें कहा है कि--नदीका किनारा, गया, शैल, गंगा, नर्मदा, पुष्कर, बनारस, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, जंबुकेश्वर, केदार, वामपाद, कुडव, पुष्कर,महापुण्य, सोमेश्वर, अमरकंटक, कालंजर, विंध्याचल जहां कि गुह भगवान् विराजते हैं । गुह स्वामिकार्तिकको कहते हैं । ये सब पुण्य देश हैं । मनु महाराजने पुण्य देशको बताया है कि सरस्वती और दृष्टद्वती दोनों देव नदियोंके बीचमें जो प्रदेश है उस ब्रह्मासे निर्माण किये गये देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं । जिस देशमें जो अवान्तर जातियों सहित चारों वर्णोंकी परंपराके क्रमसे आया हुआ आचार है उसे सदाचार कहते हैं । कुरुक्षेत्र बिराट, पंजाब, मथुरा, ये ब्रह्मर्षि देश हैं यह भी ब्रह्मावर्तके बराबरका है । अब ग्रन्थकार मनुस्मृतिके कुछ पदोंका आपही अर्थ करते हैं कि मत्स्य विराटको कहते हैं *पंचांग कान्यकुब्जका नाम है शूरसेन मथुराका नाम है । अनन्तर बराबरको कहते हैं । हिमालय और विन्ध्याचलके बीचका कुरुक्षेत्रसे नीचे नीचेका तथा प्रयागसे इधर २ का भाग मध्य देश कहलाता है । इस श्लोकमें जो ।'विनशन'शब्द आया है उसका कुरुक्षेत्र अर्थ होता है पूर्वो समुद्रसे लेकर पश्चिमी समुद्रतकका तथा हिमालयसे लेकर विन्ध्याचलतकका देश आर्यावर्त कहलाता है इसमें सिन्धुनदीका पश्चिमी किनारा भी आजाता है उसकी निवृत्तिके लिये यानी उसकी भी कहीं पुण्यदेशमें गिनती न होजाय इस कारण कहते हैं कि जिस देशमें काला हिरण स्वभावसे विचरता हो वह यज्ञ करने लायक देश है, जहां कृष्णसार मग स्वभावसे नहीं विचरता हो वह म्लेच्छ देश है । मनुजी महाराज कहते हैं कि,ये जो हमने पुण्य देश बताये हैं इनका द्विजातिगण प्रयत्नके साथ आश्रय लें याज्ञवल्क्यने भी कहा है कि जिस देशमें कृष्णसार-मृग रहता है उस देशके धर्मोंको मुझसे जानो ।

व्रताधिकारिणः

स्कान्दे--निजवर्णाश्रमाचारनियतः शुद्धमानसः ।। अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः ।। व्रतेष्वधिकृतो राजन्नन्यथा विफलश्रमः ।। श्रद्धावान्पापभीरुश्च मददम्भविवर्जितः ।। पूर्वम् निश्चयमाश्रित्य यथावत्कर्मकारकः ।। अवेदानिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु ।। निजवर्णाश्रमाचारेत्यनेन चतुर्वर्णानामधिकारो गम्यते अत एव कौर्मे--ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तम ।। अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानसमाधिभिः ।। व्रतोपवासनियमैर्होम स्वाध्यायतर्पणैः ।। तेषां वै रुद्रसायुज्यं सामीप्यं चातिदुर्लभम् ।। सलोकता च सारूप्यं जायते तत्प्रसादतः ।। देवलोऽपि--व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा ।। वर्णाः सर्वे विमुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः ।। अत्राधिकारिविशेषणस्य पुंस्त्वस्याविवक्षितत्वात्स्त्रीणामप्यधिकारः ।। भारते--मामुपाश्रित्य कौन्तेय येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ।। क्वचिन्म्लेच्छानामप्यधिकारो हेमाद्रौ देवीपुराणे--स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृभिः ।। वैश्यैः शूद्रैर्भक्ति-

---

*पंचालका जो कान्यकुब्ज अर्थ किया है उसके हम सहमत नहीं हैं क्योंकि संस्कृतके विद्वान् पंजाब प्रान्तकाही पांचालनामसे व्यवहार करते देखे जाते हैं कन्नोजका नहीं करते । पांचालका सीधा अर्थ यह है कि जो पांच नदियोंसे भूपित हो ऐसा पंजाबही है कन्नोज नहीं है ।

युक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ।। स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं श्रृणु ।। वैश्य-शूद्रयोस्तु द्विरात्राधिकोपवासो न भवति ।। वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते ।। त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न विद्यते ।। इति प्राच्यलिखित-निषेधात् ।। व्युष्टिः—फलम् ।। सभर्तृकाणां स्त्रीणां भर्त्राद्याज्ञां विना नाधिकारः ।। तथा च मदनरत्ने मार्कण्डेयपुराणे—यानारी ह्यननुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा ।। निष्फलं तु भवेत्तस्या यत्करोति व्रतादिकम् ।। भर्त्राज्ञया सर्वव्रतेष्वधिकारः ।। भार्या भर्तुर्मतेनैव व्रतादीन्याचरेत्सदा ।। इतिकात्यायनोक्तेः । यत्तु—पत्यौ जीवति या नारी ह्युपवासव्रतं चरेत् ।। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ।। इति विष्णु वचनं तद्भर्तुरननुज्ञापरम् ।। यत्तु कश्चित्, नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न यतं नाप्युपोषणम् ।। भर्त्तुः शुश्रूषयैवैताँल्लोकानिष्टान् व्रजन्ति ताः ।। यद्देवेभ्यो च्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च ।। तस्य ह्यर्द्धम् सा फलं नान्य-वित्ता नारी भुंक्ते भर्तृशुश्रूषयैव ।। इति स्कान्दात् सभर्तृकाणामेकादश्याद्युप वासादावनधिकार इति ।। तन्न ।। तस्यापि पृथक्स्वातंत्र्येण भर्त्रननुज्ञापरत्वात् । अत एव व्यासः—कामं भर्तुरनुज्ञाता व्रतादिष्वधिकारिणी ।। इति।। शङ्खोपि—कामं भर्तुरनुज्ञया व्रतोपवासनियमाः स्त्रीधर्माः ।। इति । न चानुज्ञया व्रतेष्विव यज्ञेपि पृथगधिकारापत्तिरिति शङ्कयम् । तस्याः श्रुत्यध्ययनानधिकारात् ।। यद्वा । स्कान्दस्य भर्तुः शुश्रुषायाः स्तावकत्वेनाप्युपपन्नत्वादिति । न च भर्तुरनु-ज्ञयैवाधिकारसिद्धेर्विधवाया व्रतेऽनधिकारापत्तिरिति वाच्यम् । नारी खल्वन-नुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा ।। विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।। इति मार्कण्डेयोक्तेः । पित्राद्याज्ञया तस्या अधिकार इति हेमाद्रिः ।। स्त्रीणां व्रत-ग्रहणे विशेषो हेमाद्रौ हरिवंशे—स्नानं च कार्यम् शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् ।। स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती ।।

व्रताधिकारि निर्णय—स्कन्द पुराण में बताया है कि, हे राजन् जो पुरुष अपने वर्ण और आश्रमके आचारमें लगा रहता हो, शुद्ध मनका हो, लोलुप न हो सत्य बोलनेवाला हो, सब प्राणियोंके कल्याणमें लगा रहता हो उसका ही व्रतोंमें अधिकार है, नहीं तो व्यर्थकाही परिश्रम है । जो पुरुष श्रद्धालु है जिसे पापोंसे डर लगता है । जिसके मद और दंभ दोनों नहीं हैं, पहिले निश्चय करके फिर उसीके अनुसार करनेवाला है, जो वेदकी निन्दा नहीं करता तथा जो बुद्धि मान है उसका सब व्रतादिकोंमें अधिकार है । ग्रन्थकार कहते हैं कि, उदाहृत श्लोकमें जो यह कहा है कि, अपने २ वर्ण और आश्रमके आचारमें सदा लगे रहनेवाले, इससे प्रतीत होता है कि व्रतादिकोंमें चारोंही वर्णोंका अधिकार है । तब ही कूर्म पुराणमें कहा गया है कि—हे द्विजो-त्तम ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, यज्ञ दान समाधि, व्रत, उपवास, नियम, होम, स्वाध्याय और तर्पणसे भगवान् महादेवका अर्चन करते हैं उन्हें भगवान् शिवकी कृपासे अत्यन्त दुर्लभ जो सायुज्य-सामीप्य सालोक्य और सारुप्य आदि चारों मोक्ष हैं वे मिलजाते हैं । देवलनेभी कहा है कि, सभीवर्णके लोग व्रत उपवास नियम और कायक्लेशके तपोंके करनेसे पापोंसे छूट जाते हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । इन वचनोंमें अधि-कारियोंके प्रति पुंल्लिगके शब्दोंका प्रयोग किया है वह विवक्षित नहीं है क्योंकि इससे पहिल कहे हुए पुरुषोंकेसे

गुण यदि स्त्रियोंमें हों तो वे भी व्रत करनेकी अधिकारिणी हैं । भारत में कहा है कि कौन्तेय ! जो पाप-योनियोंमें पैदा हुए जीव भी हैं तथा जो स्त्री वैश्य (कोई 'वेश्याः' ऐसा पाठ मानते हैं) और शूद्र हैं वे सब मेरी उपासना करके परमगतिको पा जाते हैं । कहीं किसी २ में म्लेच्छोंका अधिकारभी देखा जाता है हेमाद्रिमें देवीपुराणका वचन है कि, हे कुरुशार्दूल ! जिसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भक्तियुक्त शूद्र स्त्री और म्लेच्छ तथा अन्य मनुष्य स्नान करके प्रसन्नताके साथ कर सकते हैं इस व्रतका यह विधान है आप सुनें वैश्य और शूद्रोंके लिये दो रात्रसे अधिक उपवासकी विधि नहीं है कि–जो वैश्य और शूद्र मोहके वशमें होकर तीन रात व पांच रातका उपवास कर बैठते हैं उन्हें उसका फल नहीं मिलता यह पहिलोंका लिखा हुआ अनुरोध है । श्लोकमें जो व्युष्टि शब्द आया है उसका फल अर्थ है । सधवा स्त्रियोंको विना पतिकी आज्ञाके व्रतादि करनेका अधिकार नहीं है । ऐसा ही मदनरत्न ग्रन्थने मार्कण्डेय पुराणसे उद्धृत करके लिखा है कि, जिस स्त्रीको पति पिता और पुत्रसे व्रत करनेकी आज्ञा नहीं मिली हो यदि वह व्रतादि करेगी तो वे व्रतादि उसको फल देनेवाले नहीं होंगे । स्त्री, पतिकी आज्ञासे सभी व्रतोंको कर सकती है क्योंकि कात्यायनने कहा है कि स्त्रीको चाहिये कि हमेशा पतिकी आज्ञासे ही व्रतादिकोंको करे, विना आज्ञाके न करना चाहिये ।। यह जो विष्णुका वचन है कि, जो स्त्री पतिके जीवित रहते हुए उपवास व्रत करती है वो पतिकी आयुका नाश करती है जिससे उसे नरक होता है इसका तात्पर्य बिना आज्ञासे करनेमें है इसके सिवा और कुछ भी नहीं है ।। कोई २ यह कहते हैं कि, स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है कि स्त्रियोंको पतिसे पृथक् यज्ञ व्रत और उपोषण न करना चाहिये; उनको तो पतिकी सेवासे ही इष्ट लोक मिल जाते हैं । पतिमें अन्तःकरणको लगा देनेवाली सती स्त्री पतिकी सेवा मात्रसे ही पतिके किये हुए देवपूजन पितृपूजन आदि सत्कर्मोंमेंसे आधा फल पालेती है । इन वचनोंसे स्त्रियोंको व्रत उपवास आदिका अधिकार नहीं यह नहीं कह सकते. क्योंकि ये स्वतंत्र करनेकी मनाई करते हैं आज्ञा पाकर करनेकी मनाई नहीं करते, इसीलिये व्यासने लिखा है कि पतिकी आज्ञा लेकर इच्छानुसार व्रत कर सकती है । शंखने भी लिखा है कि, पतिकी आज्ञासे स्त्रियाँ इच्छानुसार व्रत उपवास और नियमोंको कर सकती हैं । अब वहां यह शंका होती है जैसे व्रत आदि पतिकी आज्ञासे कर सकती हैं उसी तरह यज्ञ आदि करनेमें स्त्रियोंको कौन रोक सकता है ? उस पर उत्तर देते हैं कि, यज्ञमें यजमान नहीं वेदपाठी होना चाहिये और स्त्रियोंको वेदका अधिकार नहीं है इस कारण पतिकी आज्ञा प्राप्त करनेपर भी यज्ञ आदि नहीं कर सकतीं । अथवा यों समझ लीजिये कि पतिकी अनन्य भक्ताके लिये जो पतिके किये हुए शुभ कर्मोंका भागीदार कहा है वह सेवा करनेवालियोंकी प्रशंसा की गयी है, यह मान लेनेपर भी ग्रन्थ लग सकता है । यदि यह कहो कि पतिकी आज्ञासे ही स्त्री व्रतकर सकती है तो जिनके पति नहीं हैं वे विधवा स्त्रियें व्रत कर ही नहीं सकतीं, सो नहीं कह सकते, क्योंकि वे पिताकी तथापिताके अभावमें भाईकी आज्ञासे व्रतादि कर सकती हैं । हेमाद्रिने श्रीमार्कण्डेयजीके वचनसे कहा है कि जो स्त्री विना पतिकी आज्ञा तथा पुत्र और पिताके पूछे परलोकके कार्य्य करती है वे सब उसके निष्फल होते हैं इस वचनसे पतिके अभावमें पिता आदिसे पूछकर कर सकती है । हेमाद्रिमें हरिवंशको लेकर स्त्रियोंके व्रत ग्रहणके बारेमें लिखा है कि जब कोई व्रत करना चाहती हो तो उन स्त्रियोंको चाहिये कि, शिर समेत स्नान करके पीछे पतिदेवकी आज्ञा प्राप्त करके व्रत करें । तब वो उस व्रतके फलको पासकेगी अन्य था नहीं पासकती ।।

अथ व्रतधर्माः

व्रतसंकल्पविधि भरते––गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।। उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद्बुधः । औदुम्बरम्––ताम्रमयम् । औदुम्बरं स्मृतं इति विश्वोक्तेः । यद्वा अन्यन्नक्तव्रतादिकं कल्पयेदिति कल्पतरुः ।। श्री दत्तस्तु––कल्पतरुमते वाकारश्चार्थे । तेनायमर्थः यत्तु नक्तादि कर्तुमिच्छेत्तदपि उक्तविधिनैव गृह्णीयादिति तन्मतं परिष्कृत्य वाकारस्योपवासपदस्य च वैय-

र्थ्यापत्तेर्यत्संकल्पयेत्तद्गृह्णीयादित्यनेनैवोपपत्तेरित्यदूषयत् । ताम्रपात्राद्यभावे हस्तेनापि जलं गृहीत्वा संकल्पयेदित्युक्तम् ।। मदनरत्ने तु यथा संकल्पयेदिति पाठः ।। यथा कामफलमुल्लिखेदित्यर्थः ।। अतएव मार्कण्डेयः–संकल्पं च यथा कुर्यात्स्नानदानव्रतादिके ।। अनन्तरं कृत्यमाह मदनरत्ने देवलः– अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः ।। सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ।। अत्र प्रातर्व्रतमाचरेदित्येवान्वयः । प्रधानक्रियान्वयस्याभ्यर्हितत्वात् । अभुक्त्वेति त्वशक्तस्याभ्यनुज्ञातेक्ष्वादिभक्षणापवादः ।। केचितु, व्रतदिने प्रातराहारमभुक्त्वा व्रतमाचरेदित्याहुः । तन्न, उपवासो व्रते कार्य इत्यनेनैवाभुक्तवतोऽधिकारस्य प्राप्तत्वादेतस्य वैयर्थ्यापत्ते ।। अन्येतु, पूर्वदिने प्रतिदिने प्रातराहारमभुक्त्वा अर्थादेकभक्तं कृत्वोत्तरदिन स्नात्वाचम्य व्रतादिकं कुर्यादित्याहुः ।। परेतु, सर्वत्र पूर्वेद्युरेव सायं संध्योत्तर व्रतं ग्राह्यम्, वारव्रतादौ बहुशस्तथा दृष्टत्वात् ।। प्रातः स्नात्वेति चान्वय इत्याहुः ।। सामान्यधर्माः ।। हेमाद्रौ भविष्ये––क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।। देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ।। सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः ।। देवपूजा–यद्दैवत्यं व्रतं तस्य पूजा । अग्निहवनं पूज्यदेवतोद्देशेन होमः ।। उपक्रमात् । तच्च सप्तमीव्रते सूर्यपूजा अग्निहवनम् । नवमीव्रते दुर्गापूजा ।। अनुक्तदेवताव्रते इष्टदेवता पूजा । हवनं व्याहृतिहोम इति केचित् ।। अत्र क्षमादीनां स्वतन्त्रतया चतुर्वर्गसाधनत्वेन विहितानां व्रताङ्गतया विधानं खादिरं वीर्यकामस्थ यूपं कुर्यात् इतिवत्संयोग-पृथक्त्वादुपपन्नमिति हेमाद्रिः । सर्वव्रतेष्वित्यत्र सर्वव्रतपदे भविष्यपुराणोक्त-सर्वव्रतपरमतो व्रतान्तरे विध्यन्तरसत्वे एव होमादोनामङ्गत्वम्, नान्यथा । अतएव एकादशीव्रतादौ शिष्टानां होमाद्यनाचरणमित्ति केचित् ।। वस्तुतस्तु येष्वेव पुराणान्तरोक्तव्रतेषु होमादिविधिरस्ति, तद्विषयकमेव सर्वपदम्, अन्यथा तदितरत्वेन संकोचापत्तेरिति ।। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे––स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः ।। पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्यैता भूमिशायिना ।। जपो होमश्च सामान्यां व्रतान्ते दानमेव च ।। चतुर्विंशद्वादश वा पञ्च वा त्रय एव वा ।। विप्राः पूज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। व्रतमूर्तयः तद्देवप्रतिमाः ।। देवलः–ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमामिषवर्जनम् ।। व्रतेष्वेतानि चत्वारि चरितव्यानि नित्यशः ।। स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिः संकथनादपि ।। नश्यते ब्रह्मचर्यम् च न दारेष्वृतुसंगमात् ।। स्वदारेष्वृतुसंङ्गमादितिक्वचित्पाठः ।। आमिषं मांसम् ।। आमिषं दृतिपानीयं गोवर्जम् क्षीरमामिषम् ।। मसूरमामिषं सस्ये फले जंबीर-मामिषम् ।। आमिषं शुक्तिकाचूर्णमारनालं तथामिषम् ।। इति स्मृत्यन्तरोक्तं

वा ।। व्रताद्यारम्भे वृद्धिश्राद्धं कार्यम् ।। तदाह शातातपः–नानिष्टवा तु पितॄ-ञ्छ्राद्धे कर्म किंचित्समारभेत् ।।

व्रतधर्म–व्रतके संकल्पकी विधि महाभारतमें लिखी है कि, हाथमें भरा भराया तांबेका पात्र लेकर उत्तर दिशाकी ओर मुख कर संकल्प करके उपवासको ग्रहण करना चाहिये । यदि रातका कोई उपवास करना हो तो उसमें भी इसी प्रकार संकल्प करना चाहियें । अब ग्रन्थकार श्लोकको व्याख्या करते हैं कि, औदुम्बर तांबेके पात्रको कहते हैं क्योंकि विश्वकोशमें औदुम्बर तांबेके पात्रके पर्य्यायमें आया है । कल्पतरु ग्रन्थमें ऊपरके श्लोकका अर्थ करते हुये लिखा है कि दिनकी तरह रातके व्रतादिकोंका भी संकल्पकरना चाहिये । श्रीदत्तने तो कल्पतरुकारके मतके श्लोकमें आये हुए वाकारको ' च ' के अर्थमें माना है चका और अर्थ होता है, यह करनेसे श्लोकका जो अर्थ होता है कि दिनके व्रतकी तरह रातके व्रतकोभी संकल्प पूर्वक ग्रहण करे वह पहिलेही कहा जा चुका है । इस तरह माने विना श्लोकमें आये हुए वा और उपवास ये दोनों पद व्यर्थ होजाते हैं क्योकि, इनके विनाभी इनका तात्पर्य वाको विकल्पार्थक मानने पर निकल आता है । यदि तांबेका बर्तन उपस्थित न हो तो हाथमें ही पानी लेकर संकल्प कर लेना चाहिये । यद्वा 'संकल्पयेत्' के स्थानमें मदन-कारने यथा संकल्पयेत् ऐसा पाठ लिखा है । यथाका तात्पर्य यह है कि जैसी कामना हो उसको कहकर संकल्प करना चाहिये । इसी कारण मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि जिन कामनाओंको लेकर व्रत करना चाहता हो उन्हें संकल्पमें कहकर ही स्नान दान और व्रत आदि करने चाहियें ।

संकल्पके बादके कृत्य–मदनरत्नग्रन्थमें देवलने कहे हैं कि, विना भोजन किये एवम् स्नान आदिसे निवृत्त होकर एकाग्रवृत्ति करके भगवान् सूर्यनारायण तथा अन्य देवताओंके लिये नमस्कार कर प्रातःकाल व्रतका संकल्प करके व्रतको ग्रहण करना चाहिये । इस श्लोकमें 'प्रातर्व्रतमाचरेत्' ऐसा अन्वय होता है क्योंकि प्रधान क्रियाके साथ अन्वय होना अच्छा समझा गया है, तब सबका अर्थ होता है कि प्रातःकालसे व्रतको करना चाहिये यह पहिलेही लिखचुके हैं 'अभुक्त्वा ' यह जो पद श्लोकमें है इसका तात्पर्य यही होता है कि अशक्त पुरुष भले ही कही हुई गड़ेली आदि चूंस ले पर प्रातः यह भी न होना चाहिये । कोई २ तो इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि, प्रातःकाल विना भोजन किये हुए व्रत करना चाहिये उनका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा कहाही गया है कि व्रतमें उपवास करना चाहिये इससे विना भोजन किये हुएका ही व्रत करनेका अधिकार प्रतीत होता है फिर विना भोजन किये इस अर्थवाले अभुक्त्वा पदका श्लोकमें लिखना ही झूठा होता है । दूसरे कोई २ तो पहिले दिन प्रातःकाल भोजन न करके अर्थात् एकभक्त यानी एकवार सायंकालको ही भोजन कर दूसरे दिन स्नानादि तथा आचमन करके व्रतादिकोंको करना चाहिये; ऐसा कहते हैं । दूसरे कोई तो सब व्रतोंमें पहिले दिन सायंकालकी सन्ध्याके पीछे व्रतका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वारोंके व्रतादिकोंमें ऐसा अनेक वार देखा गया है कि ऐसा कहते हैं । इनके मतमें इस श्लोकके प्रातः पदका अन्वय स्नात्वाके साथ होगा जिसका यह अर्थ होगा कि प्रातःकाल स्नान करके व्रतादिका ग्रहण करना चाहिये ।

व्रतियोंके सामान्य धर्म–हेमाद्रिमें भविष्यको लेकर कहा है कि–क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, देवपूजा, अग्निहवन, सन्तोष, अस्तेय यह दश तरहका सामान्य धर्म सब व्रतोंमें करना चाहिये । जिस देवताका व्रत हो उसकी पूजा, व्रतकी देवपूजा कहाती है । पूज्य देवताके उद्देशसे अग्निमें विधिके साथ किये हुए हवनको अग्निहवन कहते हैं । जिस बातको लेकर श्लोक लिखा है यह बात उससेही प्रतीत हो जाती है । कोई २ ऐसा कहते हैं कि–सप्तमीके व्रतमें सूर्यकी पूजा और सूर्यके लिये हवन तथा नवमीके व्रतमें दुर्गाकी पूजा और उसीके लिये हवन होना चाहिये । एवम् जिस व्रतका कोई देवताही न कहा गया हो उसमें अपने इष्ट देवकी पूजा और व्याहृति (भूर्भुवःस्वः) से हवन होना चाहिये । हेमाद्रिने लिखा है कि स्वयम् क्षमा आदि चतुर्वर्गके साधन हैं पर यहां ये व्रतके अंगके रूपमें विधान किये गये हैं इसका यही प्रयोजन है कि इन सहित व्रत करनेसे व्रतका अभ्युदय बढ जाता है जैसे 'वीर्य चाहने वालेको खैरके यूपकाही विधान' किया गया

हैं । श्लोकमें 'सर्वव्रतेषु' यह जो पद आया है जिसका सब व्रतोंमें, ऐसा अर्थ किया गया है इसमें व्रत भविष्य पुराणके कहे हुए ही हैं उन्हींमें होम आदि की विधि है व्रत मात्रमें यह व्यवस्था माननेसे ठीक नहीं होगा । पृथ्वीचन्द्रोदय ग्रन्थमें अग्निपुराणके मतको लेकर लिखा है कि–व्रतके समयमें भूमिपर शयन करनेवाले व्रतीको चाहिये कि सब व्रतोंमें स्नानके पीछे शक्तिके अनुसार सोने आदिकी बनाई हुई व्रतकी मूर्तिका पूजन करे फिर सामान्य जप होम करनाचाहिये व्रतके अन्तमें दान भी देना चाहिये । शक्तिके अनुसार चौवीस या १२ या पांच या तीन ब्राह्मणोंको भोजन करा, उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये । जिस देवका व्रत हो व्रतके लिये बनाई गई उसकी मूर्तिको व्रतमूर्ति कहते हैं । देवलने लिखा है कि–जब कभी व्रत करे उस समय सदाही ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य और निरामिष भोजन ये अवश्य ही करे । स्त्रियोंके देखनेसे छूनेसे तथा उनके साथ बातें चीतें करनेसे ब्रह्मचर्य्यका नाश होता है । ऋतुकालमें अपनी स्त्रीके साथ समागम करनेसे व्रत नष्ट नहीं होता । श्लोकमें न दारेषु इसके स्थानमें स्वदारेषु ऐसा पाठ मानते हैं । तब स्वदारमें ऋतुगामी होनेपरभी व्रत नाश हो जाता है, यह पक्षांतर अर्थ है । मांस, मुसकका पानी और गऊको छोड़कर बाकी पशुओंके दूधको आमिष कहते हैं सस्योंमें मसूर आमिष तथा फलोंमें जंभीरी आमिष है सोपीका चूरन भी इसी कोटिमें है तथा कांजिक भी आमिषमें ही सँभाला है, ये दूसरे २ स्मृतिकारोंके मतोंसे आमिष गिनाये हैं । व्रतादिकोंके आरंभमें नांदीमुखश्राद्ध अवश्य करना चाहिये । यही शातातपने कहा है कि–नांदीमुख श्राद्धमें विना पितरोंका पूजन किये किसी भी कर्मका प्रारंभ न करना चाहिये ।।

गृहीतव्रतानाचरणे ।। मदनरत्ने छागलेयः–पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाचरेत्काम मोहितः ।। जीवन्भवति चाण्डालो मृते श्वाऽभिजायते ।। काममोहित इति विशेषणाद्व्याध्यादिनाऽनाचरणे न दोषः ।। तथा च हेमाद्रौ स्कान्दे-सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् ।। अव्रतघ्नानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः ।। सर्वेभ्यो भूतेभ्यः सकाशाद्व्रतकर्तुर्भयमिति हेमाद्रिः । मदनरत्ने तु सर्वभूतभयं व्याधिरित्यपरिचितत्वाद्व्याख्यातम् सर्वभूतभयम्–सर्वेभ्यो भूतेभ्यः सकाशाद्व्रतकर्तुर्भयमिति सर्पादिभयद्व्रताङ्गवैकल्ये न व्रताहानिर्भवतीत्यर्थः ।। गुरुशासनम् गुरोराज्ञा ।। सकृदुक्तयाऽसकृत्त्यागे प्रायश्चित्तम् ।। तदुक्तं स्कान्दगारुडयोः–क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गे भवेद्यदि ।। दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा ।। न चात्र प्रायश्चित्तोक्तेरतिक्रान्तव्रतानाचरणमितिवाच्यम् । प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।। इतिस्कान्दात् ।।

संकल्पित व्रतको न करनेका प्रायश्चित्त–मदनरत्नग्रंथमें छागलेयके मतको लेकर लिखा है कि, जो पुरुष पहले व्रत ग्रहण करके काममोहित हो पीछे उसे न करे तो वो जीता हुआ ही चांडाल है तथा मरनेके बाद कुत्ता होता है । श्लोकमें जो 'काममोहित' लिखा है उसका यही तात्पर्य निकलता है कि, जो काममोहित होकर न करे तो उसे प्रायश्चित्त है । यदि व्याधि आदि कारणोंसे न कर सके तो उसके लिये कोई दोष नहीं है । ऐसा ही हेमाद्रिमें स्कान्दका प्रमाण है कि, किसी भी जीव आदिका भय, राग, भूल और गुरुकी आज्ञा यदि ये एकवार उपस्थित भी हो जाय तो इनसे व्रतकानाश नहीं होता । श्लोक में जो 'सर्वभूतभयम्' यह पद आया है, हेमाद्रिने इसका अर्थ किया है कि चाहें किसी भी प्राणीसे भय हो, पर *मदनरत्नने इसका

* मदनरत्नने तो इसका अर्थ इस प्रकार कर दिया है कि मानो वह इससे परिचित ही न हो यह आशय भी इस (अपरिचितत्वाद् व्याख्यातम्) को विभक्त करनेसे निकलता है पहिले अभिवक्त दशाका अर्थ किया है ।

अर्थ यह किया है कि किसी भी अपरिचित जीवके भयसे व्रतकर्ताके भीत होनेपर यदि व्रतमें त्रुटिहो तो दोष नहीं है। पर परिचित सर्प आदिक भयसे कर्म लोप हो तो अवश्यमेव व्रतकी हानि होती है। सर्प आदिक भयसे व्रतका वैकल्य होनेपरभी कोई दोष नहीं है। यह ग्रन्थकर्ताका उक्तपदका आशय। गुरुशासनका अर्थ गुरुकी आज्ञा होता है। एकवार इस अर्थवाला सकृत् शब्द श्लोकमें रखा है इससे यही सिद्ध होता है कि वारंवार इन बातोंसे व्रत कर्मके लोप करनेमें प्रायश्चित होता है। यही स्कन्द और गरुड पुराणमें कहागया है कि क्रोध प्रमाद और लोभके कारण यदि व्रतभंग हो जाय तो तीन दिन भोजन न कराना चाहिये। यदि यह न हो सके तो शिरका मुंडन ही करलेना चाहिए। इससे यह बात नहीं है कि, जो व्रत बिगड गया हो फिर वो किया हो न जाय; क्योंकि स्कन्दपुराणमें ही लिखा है कि, प्रायश्चित्त करके फिर व्रती हो जाय अर्थात् जो व्रत बिगड़ गया है प्रायश्चित्तकरके फिर उसे पूरा करना चाहिये ॥

अथोपवासधर्माः

तत्रोपवासस्वरूपं कात्यायनवृद्धवसिष्ठाभ्यां दर्शितम् ॥ उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥ उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥ गुणैः–तज्जाप्ययजनध्यानतत्कथाश्रवणादयः ॥ उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ दया सर्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमनायासोऽकार्पण्य च माङ्गल्यमस्पृहेत्यादिभिर्विष्णुधर्मोत्तरगौतमादिप्रतिपादितैः ॥ तच्छब्देनोपास्या देवता व्रतदेवता वा ॥ एवञ्च पापनिवृत्या गुणानुष्ठानसहितो निराहारस्य वासोऽवस्थानमुपवास इत्युक्तं भवति इदं च फलसाधनस्योपवासस्य स्वरूपमुक्तम् ॥ उपवासपदार्थस्तु स्मृतिपुराणव्यवहारे रूढचा निराहारावस्थानमात्रम् ॥ वृद्धवसिष्ठः–उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ काष्ठेनेति शेषः ॥ अतएव तान्निन्दति दन्तानां काष्ठसंयोगो हन्ति सप्तकुलानि च ॥ इतिवाक्यशेषाद्विधोरिव निषेधस्यापि विशेषपरता युक्तैव । तेन अलाभे वा निषेध वा काष्ठान दन्तधावने ॥ पर्णादिना विशुद्धचेत जिव्होल्लेखः सदैव हि । इति पैठीनसिवचनात् ॥ अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ ॥ अपां द्वादश गण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥ इति व्यासवचनाच्च पर्णादिना द्वादशगण्डूषैर्वा दन्तधावनं कार्यमेव ॥ देवलः-असकृज्जलपानाच्च सकृत्तांबूलचर्वणात् ॥ उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥ अशक्तौ तु तेनैव जलपानमभ्यनुज्ञातम् —–अत्यये चाम्बुपानेन तोपवासः प्रणश्यति ॥ अत्यये जलपानं विना प्राणात्यये ॥ विष्णुधर्मे असकृज्जलपानं च दिवास्वापं च मैथुनम् ॥ तांबूलचर्वणं मांसं वर्जयेद्व्रतवासरे ॥ असकृदित्युक्त्या सकृज्जलपानेनादोषः ॥ अत्र-पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम् ॥ असमाप्ते व्रते पूर्वे कुर्यान्नेव व्रतान्तरम् ॥ इति तस्यापि व्रतवासरत्वान्मांसनिषेधः पारणादिने एव, न तूपवासदिने । उपवासे प्रसक्त्यभावात् । अतएव निर्णयामृते व्यासः–वर्जयेत्पारणे मांसं व्रताहेऽप्यौषधं सदा ॥ अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपोमूलं फलं पयः ॥ हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ इति स्कान्दवचनात्प्रसक्त-

मौषध रूपमपि मांसं व्रताहे वर्जयेदित्यर्थः ।। विष्णुरहस्ये:–स्मृत्यालोकनगन्धादिस्वादनं परिकीर्तनम् ।। अन्नस्य वर्जयेत्सर्वं ग्रासानां चाभिकांक्षणम् ।। गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम्।।व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यद्बलरागकृत्।। इति ।। हारीतः–"पतितपाखण्डादिनास्तिकादिसंभाषणानृताश्लीलादिकमुपवासादिषु वर्जयेत्" इति अन्नादिपदेन यत्पुरुषार्थतया सर्वदा निषिद्धं तदपि क्रत्वर्थतया संगृह्यते । अत एव व्रताधिकारे सुमन्तः–विहितस्याननुष्ठानमिन्द्रियाणामनिग्रहः । निषिद्धसेवनं नित्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ।। पतितादर्शने तु विष्णुपुराणे––तस्यावलोकनात्सूर्यं पश्येत् मतिमान्नरः ।। स्पर्शादौ ।। विष्णुधर्मे-संस्पर्शे च नरः स्नात्वा शुचिरादित्यदर्शनात् ।। संभाष्य तान्छुचिपदं चिन्तयेदच्युतं बुधः ।। योगियाज्ञवल्क्यः––यदि वाग्यमलोपः स्याद्व्रतदानक्रियादिषु ।। व्याहरेद्वैष्णवं मंत्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ।। यमः–मानसे नियमे लुप्ते स्मरेद्विष्णुमनामयम् ।। इति ।। बृहन्नारदीये–रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा।सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम्।।व्रतादिमध्ये श्रृणुयाद्ध्येषां ध्वनिमुत्तमः ।। अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमातरम् ।। वेदमाता-गायत्री ।। मिताक्षरायां दक्षः–संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।। यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलमश्नुते ।। अत्र प्रातःसंध्यैवाङ्गमित्याहुः केचित् ।। अविशेषात्तत्सन्ध्योत्तरभाविनि कर्मादौ साङ्गमिति युक्तमित्याहुः प्राज्ञाः ।। प्रातःकालीनव्रतादिसंकल्पस्तु प्रातःसन्ध्या कृत्वैव कार्यः ।। प्रातःसन्ध्या बुधः कृत्वा संकल्पं तत आचरेत् ।। इति गौडनिबंधधृतस्मृतेः ।। मार्कण्डेयपुराणे–सूर्योदयं विना नैव व्रतदानादिकक्रमः ।। इति ।। क्रमः–उपक्रमः क्रियाः इतिपाठे––स्नानदानादिकाः क्रियाः । सूर्योदयशब्देन उषःकालो लक्ष्यते । "तं विना रात्रौ स्नानादिकं न कार्यम्" इति कल्पतरुः ।। छन्दोगपरिशिष्टे––सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।। विशिखो व्युपवीती च यत्करोति न तत्कृतम् ।। पित्र्यमन्त्रानुद्रवणे आत्मालंभे अवेक्षणे ।। अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहारेऽनृतभाषणे ।। मार्जारमूषकस्पर्शे आक्रोशे क्रोधसंभवे ।। निमित्तेष्वेषु सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ।। मार्कण्डेयपुराणे––शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा ।। वराहपुराणे ––स्नानसन्ध्यातर्पणादि जपो होमः सुरार्चनम् ।। उपवासवता कार्यं सायंसन्ध्याहुतीर्विना ।। भगवद्गीतायाम्––तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।। आपस्तम्बः–त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यः कर्मारम्भेषु सर्वशः ।। त्रिमात्रः।–प्रणवः (इति सामान्यपरिभाषा ।।) विस्तृता चेयं सामान्यपरिभाषा आचारमयूखे द्रष्टव्या ।। अत्रस्त्रीणां विशेषः ।। हेमाद्रौ पाद्मे––गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी चाथ रोगिणी ।। यदाऽशुद्धा तदाऽन्येव

कारयेत्प्रयता स्वयम् ।। प्रयता-शुद्धा, स्वयंकुर्यादित्यर्थः ।। पुंसोप्येष विधिर्लिङ्गस्याविवक्षितत्वादिति हेमाद्रिः ।। एवं स्त्रीभी रजो दर्शनेपि कार्यम्।।तथाच सत्यव्रतः–प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां चेद्रजो भवेत् ।। न च तत्र व्रतस्य स्यादुपरोधः कथंचन ।। व्रतस्य-उपवासस्येत्यर्थः ।। पूजादिकं त्वन्येन कारयेत् । तथा च मदनरत्ने मात्स्ये-अन्तरा तु रजःस्पर्शे पूजामन्येन कारयेत् ।। सूतकेप्येवम् ।। तथा च तत्रैव-पूर्वं संकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः ।। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ।। इति ।। अथ प्रतिनिधिः ।। केन कारयेदित्यपेक्षायाम्, तत्रैव पैठीनसिः–भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ।। आसामर्थ्येऽपरस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ।। अपरः–पुत्रादिः ।। तत्रैव वायुपुराणे––उपवासे त्वशक्तस्तु आहिताग्निरथापि वा ।। पुत्राद्वा कारयेदन्याद्ब्राह्मणाद्वापि कारयेत् ।। उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ।। नारी च पतिमुद्दिश्य एकादश्यामुपोषिता ।। पुण्यं शतगुणं प्रोक्तमित्याह गालवो मुनिः ।। मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यामुपोषणे ।। कृते च भक्तितो विप्राः समग्रं फलमाप्नुयुः ।। एते च प्रतिनिधयो न काम्ये ।। तथा च मण्डनः–काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः ।। काम्येऽप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः ।। न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु ।। स देशकालयोः शब्दे *नारणेः पुत्रभार्ययोः ।। नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ।।

अथ उपवास धर्म–वृद्ध कात्यायन और वसिष्ठजीने उपवासका स्वरूप बताया है कि, पापोंसे निवृत्त हुए पुरुषका जो गुणोंके साथ वास है वह उपवास कहलाता है, उसमें कोई भी भोग नहीं होता । इष्टदेव अथवा व्रतके देवताके जाननेके मंत्र, यजन, ध्यान और कथा सुनने आदिको गुण कहते हैं, ये विद्वानोंने उपवास करनेवालोंके गुण बताये हैं, सब प्राणियोंपर दया, सहन, अनिंदन, पवित्रता, अपरिश्रम, कृपणताका न लाना, मंगलके काम करना और अनुचित इच्छाका त्याग करना ये भी उपवास करनेवालोंके गुण हैं, इन्हे विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें गौतमने प्रतिपादन किया है । तत्कथाश्रवणादयः में जो तत् शब्द है उसके दो अर्थ होते हैं । पहिला अर्थ तो यह है कि, जिस देवताका व्रत हो उसकी पूजा करनी चाहिये, जिस व्रतका कोई देवता न कहा गया हो उसमें अपने इष्टदेवका ही पूजन करलेना चाहिये, यह तत् शब्दका दूसरा अर्थ होता है । इस प्रकार उपवास शब्दका अर्थ होता है कि, निराहारका जो पाप निवृत्ति पूर्वक गुणोंके साथ रहता है वह उपवास कहाता है यह सकाम उपवासका लक्षण कहा गया है । स्मृति और पुराणोंमें उपवासशब्दका रूढि अर्थ निराहार रहना मात्रहै । वृद्धवसिष्ठने लिखा है कि, उपवास और श्राद्धमें दन्तधावन न करना चाहिये । यह काठसे दन्त धावन करनेका ही निषेध है, अन्यसे करनेका नहीं । यही कारण है कि काठकी दातूनकी निन्दा की है कि, श्राद्ध तथा उपवासमे काठकी दातुन करनेसे सात कुल नरकमें पड़ जाते हैं, इस वाक्यविशेषसे विधिकी तरह निषेधकी भी विशेष व्यवस्था हो जाती है कि काठकी दँतूनकाही निषेध है, इसी लिये पैठीनसीने लिखा है कि, जब काठकी दातुन न मिले अथवा जब दातुन करनेका निषेध हो उस समय अन्य उपायोंसे मुख शुद्धि कर लेनी चाहिये और पर्ण आदिसे जीभ साफ कर लेनी चाहिये. क्योंकि, जिह्वा शुद्धि सदा होनी चाहिये,

* नारणेरग्निरेवसेत्यपिपाठः ।

चाहे व्रत हो चाहे न हो । व्यासस्मृतिमें कहा है कि, जिस दिन दातुन न मिलता हो अथवा जिन तिथियोंमें काठकी दातुन करनेका निषेध हो उनमें पानीके १२ कुल्लोंसे मुखशुद्धि कर लेनी चाहिये । इन वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि, पर्ण आदिसे जीभ तथा कुल्लोंसे दांतोंको उस समय भी शुद्ध रखना चाहिये, जब कि दातुन न मिल रही हो अथवा दातुन करनेका निषेध कर दिया हो । देवलस्मृतिमें कहा है कि एकवारको छोडकर ज्यादा पानी पीनेसे तथा एकवारके भी पान खा लेनेसे, दिनके सोने और मैथुनसे उपवास नष्ट होजाता है । पानी पिये विना न रहा जाय तो एकवार पानी पी लेना चाहिये, यह इसी वचनसे प्रतीत हो जाता है कष्टके समय पानी पीनेसे उपवास नष्ट नहीं होता, वो कष्टभी साधारण न हो किन्तु मरणान्तसा प्रतीत हो यह (अत्यये) का ग्रन्थकारका आशय है । विष्णुधर्ममें लिखा है कि, वारंवार पानी पीना, दिनमें सोना, मैथुन करना, पानका चवाना और मांसका खाना व्रतके दिन कभी न होना चाहियें । वार वार पानी पीनेका निषेध किया गया है । इस कारण एक बार पानी पीनेका कोई दोष नहीं है । जब तक व्रतकी पारणा न हो उस दिन तक व्रतका दिन समझा जाता है । व्रतकी समाप्तिमें ब्राह्मणभोजन अवश्य होना चाहिये । जबतक पहिला व्रत पूरा न होले तबतक दूसरे व्रतका प्रारंभ न करना चाहिये । पारणाका दिन भी व्रतका ही दिन है, इस कारण मांस आदि निषिद्ध वस्तुओंका सेवन पारणाके दिन भी न होना चाहिये । उपवासमें तो भोजनकी प्राप्ति ही नहीं है'। क्योंकि, इस श्लोकमें व्रतका संबन्ध है उपवासका संबन्ध ही नहीं है । तबही निर्णयामृतमें व्यासजीका वचन है कि, व्रत और पारणा दोनों ही के दिन मांस अथवा जिनकी मांस संज्ञा की गयी है ऐसी औषधियोंको कभी भोजनके कार्य्यमें न लाना चाहिये । जल, फल, पय, ब्राह्मण काम्या, हवि, गुरुके वचन और औषध ये आठो व्रतको नष्ट नहीं करते; इस स्कन्दाके वचनसे जो औषधिके रूपमें मांससंज्ञक औषधोंका सेवन प्राप्त हुआ था उसकाभी निराकरण उक्त निर्णयामृतके वचनसे हो जाता है । विष्णुरहस्यमें लिखा है कि, अन्नका स्मरण, दर्शन, गन्धोंका आस्वादन, वर्णन और ग्रासोंकी चाह इन सबका त्याग व्रतके दिन होना चाहिये तथा व्रतीपुरुषको चाहिये कि शरीरका उबटना, शिरका तेल लगाना, पानका चबाना सुगन्धित द्रव्योंका लगाना, बल और राग उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंका सेवन न करे । हारीत कहते हैं कि, पतित, पाखण्डी और नास्तिकोंसे बोलना, झूठी बातें बनाना एवम् गंदी बातें करना ये सब काम व्रतादिकोंमें न करने चाहियें । अन्नका तात्पर्य केवल भोजन वस्तुसे ही नहीं है किन्तु जो भोगजात निषेध किये हैं वे भी अन्नके कहनेसे आजाते हैं कि निषिद्ध वस्तुओंके भी स्मरण आदि न करने चाहिये । अथवा व्रतमें अन्नादिके दर्शन स्पर्शन आदिका जो व्रतीपुरुषके लिये निषेध किया है वो निषिद्ध भी हवन आदिमें करना चाहिये अर्थात् हवनादिके विषयमें व्रती पुरुषको अन्नादि स्पर्शादिका निषेध नहीं है । तब ही व्रताधिकारमें सुमन्तुने कहा है कि, कहे हुएका अनुष्ठान न करना, इन्द्रियोंको न रोकना, निषिद्ध चीजोंका सेवन करना इन कामोंको प्रयत्नके साथ छोड देना चाहिये । पतित आदिकोंके दर्शनमें तो विष्णुपुराणमें कहा है कि, बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि, पतितादिकोंको देखकर भगवान् सूर्य नारायणके दर्शन कर ले स्पर्शादिकके बारेमें विष्णुपुराणमें कहा है कि यदि व्रती कोई पतित आदिसे छू जाय तो स्नान करनेके बाद सूर्य भगवान्का दर्शन करके शुद्ध हो जाता है । यदि उनसे बातें चीतें की हों तो दश हजार वार शुचिपद (विष्णु भगवान्का) चिन्तन करके शुद्ध होजाता है । योगी याज्ञवल्क्यने कहा है कि यदि व्रत दान और क्रिया आदिकोंमें वाणीके यम (मौन) का लोप होजाय तो वैष्णव मंत्रका जप अथवा विष्णु भगवान्का ध्यान करना चाहिये । यमस्मृतिमें लिखा है कि, मानस नियमके लुप्त हो जानेपर आधि व्याधिरहित जो विष्णु भगवान् हैं उनका स्मरण करना चाहिये । बृहन्नारदीयमें लिखा है कि, व्रतकरनेवाला उत्तम पुरुष जो व्रतादिकोंमें रजस्वला, चांडाल, महापातकी. सूतिका पतित, झूठ मुँहवाले एवम् धोबी आदिकी बातें सुनले तो वो १००८ हजार गायत्री जप करकेही शुद्ध हो सकता है । मिताक्षरामें दक्षने कहा है कि, जो सन्ध्या नहीं करता वो सदाही अपवित्र है, वो किसी भी वैदिक कर्मको नहीं कर सकता. यदि किसी वैदिक कामको करता भी है तो उसे उसका फल नहीं मिलता । इस विषयमें कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि प्रातःकालकी सन्ध्याके बारेमें ये बातें हैं कि प्रातःकालकी सन्ध्याही सब कार्योका अंग है पर बुद्धिमान् शिष्ट लोगोंका यह कहना है कि. दोनोंही मुख्य हैं । प्रातः काल होनेवाले कर्ममें प्रातःकालकी

सन्ध्या तथा सायंकालकी संध्याके पीछे होनेवाले कर्मोंमें सायंकालकी संध्या अंग है वह पहिले होनी चाहिये। प्रातःकालमें होनेवाले व्रतसंकल्प तो प्रातः संध्या करके ही करने चाहियें. क्योंकि गौडनिबंधग्रन्थमें लिखा हुआ है कि विद्वानको प्रातः कालकी संध्या करकेही व्रतका संकल्प करना चाहिये। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, सूर्योदयके बिना व्रत और दान आदिका क्रम नहीं है। क्रम उपक्रमको कहते हैं, जिसका प्रारंभ अर्थ होता है। कोई 'व्रतदानादिकक्रमः' इसके स्थानपर 'व्रतदानादिकक्रियाः' ऐसा पाठ रखता है उसके मतमें–व्रत दान आदिक क्रियाएँ ऐसा अर्थ होगा कि ये सूर्योदयके विना न होनी चाहिये। सूर्योदयशब्दसे उषःकालका ग्रहण है. क्योंकि, कल्पतरुग्रन्थमें लिखा है कि, उषःकालके विना रातमें स्नान आदि न करने चाहिये। छन्दोग परिशिष्टमें लिखा हुआहै कि, उपवीतसे सदा रहना चाहिये तथा चोटी कभी भी खुली न रहनी चाहिये। जो मनुष्य चोटीमें बिना गांठ दिये अथवा बिना चोटीके तथा बिना जनेऊ पहिरे एवम् उपवीती न होकर जो शुभ काम करता है वो न किये हुएके बराबर है। पितरोंके वैदिक मंत्रोंमें आगे पीछे पाठादिक करनेमें, अस्पृश्य लोगोंको छू लेनेमें, देखनेमें, अपनी सौगन्ध आदि खालेनेमें, अधोवायुके आजानेपर, झूठ बोलने और प्रहार करने पर तथा बिल्ली मूसेके छूने, किसीको गाली देने, क्रोध करने और बुरी चीज छू, कर्म करता हुआ पुरुष आचमन करके शुद्ध हो जाता है। मार्कण्डेय पुराणमें लिखा हुआ है कि, देव और पितर संबन्धी वैदिक कर्मोंको करनेवाला पुरुष शिर सहित स्नान करके प्रारंभ करे। वाराहपुराणमें कहा है कि उपवास किये हुए ही स्नान संध्या तर्पणादिक जप होम और देवपूजा करे पर सायंकालकी सन्ध्या और आहुती तक उपवासही करता रहे यह बात नहीं होनी चाहिये। गीतामें लिखा है कि, इसी कारण ब्रह्मवादी जन जब विधानके विषयमें किसी दूसरे कालको किसी पुण्य कालका प्रतिनिधि न बनाना चाहिये तथा किसी पुण्य देशका किसी दूसरे देशको प्रतिनिधि न मानना चाहिये, अरणिका प्रतिनिधि दूसरे काष्ठ वा पत्थरको न बना लेना चाहिये तथा पुत्र और अपनी स्त्रीकाभी किसीको प्रतिनिधि न बनाना चाहिये। जिस वस्तुका कहीं निषेध कर दिया गया है वह उसीसे तात्पर्य रखता है उसका प्रतिनिधि न करना चाहिये॥

अथ व्रते हविष्याणि

हेमाद्रौ छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ॥ माषको-द्रवगौरादीन् सर्वाभावेपि वर्जयेत् ॥ तत्रैवाग्निपुराणे–– व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सलिलं पयः ॥ श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः ॥ कूष्माण्डालाबुवृन्ताकपालकीज्योत्स्निकास्त्यजेत् ॥ चतुर्भक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं मधु ॥ श्यामाकाः शालिनीवारा यावकं मूलतन्दुलम् ॥ हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् ॥ *मधु मांसं विहातव्यं सर्वैश्च व्रतिभिस्तथा ॥ पालकी पाथरी। ज्योत्स्निका कोशातकी ॥ तत्रैव भविष्ये–हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः ॥ कलायकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥ षष्टिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् ॥ कन्दः सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी ॥ पिप्पली जीरकं चैव नागरङ्गकतिन्तिणी ॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् ॥ अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥ लवणे मधुसर्पिषी ॥ इति क्वचित्पाठः ॥ हैमन्तिकं धान्यं कलमास्तदपि सितं श्वेतमस्विन्नं च हविष्यम् ॥ कलायाः सतीनकपर्याया

* मधु मांसं विहायान्यद्व्रते च हितमीरितमित्यपिपाठः।

मटर इतिप्रसिद्धाः ।। वाटाणे इति दक्षिणप्रसिद्धा ।। वास्तुकं बथुवा इति ख्यातः ।। हिलं शुक्रं मोचयति इति क्षीरस्वाम्युक्तेः शुक्रासारी हिलसार इति प्रसिद्धाः शाका जलोद्भवाः । गौडदेशे हेलांचले इति प्रसिद्धाः।।कालशाकमुत्तरदेशे कालिकेति प्रसिद्धम् ।। केमुकं केमुत्रा इतिपूर्वदेशे प्रसिद्धम् ।। नागरङ्गकं नारिङ्गम् ।। "ऐरावतो नागरङ्गो नादेयी भूमिजंबुका" इत्यमरात् ।। नागरं चैवेति पाठे । नागरं शुण्ठी ।। लवली रायआंवलीतिमहाराष्ट्रभाषयोच्यमानं फलम् । हर फररेवडी इतिमध्यदेशभाषया ।। अतैलपक्वमित्येतत्कथितहविष्याणामेव विशेषणम् ।। मनुः—मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ।। अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ।। अनुपस्कृतमपक्वम् ।

अथ व्रतको हविष्य चीजें—हेमाद्रि ग्रन्थमें छान्दोग्यपरिशिष्टमें कात्यायनके वचन कहे हैं कि, हविष्य अन्नोंमें जो मुख्य कहे हैं, उनके पीछे व्रीहिकी गणना है, चाहें कुछ भी न मिले पर उडद, कोदों और सफेद सरसोंको कभी ग्रहण न करना चाहिये । इसी विषयमें अग्निपुराणमें कहा है कि, शाली, सांठी चावल, मूंग तथा कलाय, पानी, दूध, श्यामाक, नीवार और गेहूं आदि पारणमें हितकारी हैं । पेठा या काशीफल, घीया, बैंगन, पालकका साग, ज्योत्स्निका इनका त्याग करना चाहिये । मीठा दधि, घृत, चतुर्भक्ष्य, सामा, शाली चावल, नीवार, सत्त कण, शाक, साधारण चावल, यावक, ये सब रातके व्रतादिमें हविष्यान्न कहे गये हैं तथा अग्निकार्य्यमें भी इनका ग्रहण हो सकता है ।पर किसी भी व्रती पुरुषको* मधु मांसका कभी भी व्रतमें

---

* नोट—यद्यपि हमें कितने ही स्थलोंमें मांस शब्द मिलता हैं, अर्थ भी सीधा मांस ही किया हुआ पाया जाता है जो कि, मांस आज संसारमें प्रसिद्ध है, मनुस्मृतिके श्राद्धप्रकरणमें मांस शब्द अनेक विशेषणोंके साथ दृष्टि गोचर हो जाता है सब ग्रन्थोंमें भी इसका कम-प्रसंग नहीं आया है, पुराणोंमें भी इसकी पूरी कहानी मिलती है, इसे देखकर प्रत्येकके हृदयमें यह शंका होनी स्वाभाविक है कि, क्या प्राचीन आर्य्योंके यहां मांसकी गिनती हविष्यान्नतकमें हुआ करती थी ? जब मनुस्मृति इसे प्रकृतिसे हवि कह गयी तो फिर इसके हविष्यान्नपनेमें कौनसा सन्देह बाकी रह जाता है । उचित तो यह था कि जैसे व्रतराजके लेखकने अग्निपुराणका यह वचन उद्धृत किया है कि—" मधु मांसं विहातव्यं सर्वेश्व व्रतिभिः सदा" सभी व्रतवालोंको मधु मांसका सर्वथा त्याग करना चाहिये, और इसी ग्रन्थमें पारणाके दिनको भी व्रतका दिन संभाला है, इससे यह बात सिद्ध होती है कि, व्रत अथवा पारणाके दिन मधुमांसका ग्रहण न करना चाहिये । इसके पीछे इसी प्रकरणमें लेखक मनुका वचन इसके हविष्य होनेमें रखता है, तब इस ग्रन्थसे हविष्य और अहविष्यका निर्णय करनेवाले लोग इस विषयमें क्या समझेंगे ? यद्यपि लेखकने इस विषयमें यहीं अच्छी व्यवस्था करदी थी पर लेखककी व्यवस्था दुरूह हुई है, इस कारण यहाँ इसकी कुछ व्यवस्था करना अत्यावश्यक है । मनुस्मृतिकारने मांसादि न खानेको महाफलशाली बताया है, तथा मांसकी निरुक्ति करतीवार यह भी कह दिया है जो मुझे यहां खाते हैं मैं उन्हें वहां खाऊंगा, इस कारण बुद्धिमान् मांसको मांस कहते हैं । इन वचनोंके देखनेसे प्रतीत होता है कि मनुस्मृतिकार मांस खानेको धर्म नहीं मानते फिर कहीं मांसका विधान देखा जाता है वह उन्हीं मांस खोरोंकी विशेष व्यवस्थाके लिये है जो अधर्मकी तरफ ध्यान देकर मांस भक्षण करते हैं । यदि उनकी भी व्यवस्थाएँ शास्त्र न बताए तो शास्त्रके सार्वभौम पनेमें बट्टा आयेगा कि शास्त्र मांस खोरोंपर हितकारी शासन नहीं रखता । जो किसी तरह भी मांस नहीं खाते उनका वह कभी भी हविष्य नहीं हो सकता पर जो मांस भक्षणमेंही अपना कल्याण समझता है वह तो व्रतके उपवास कालमें मांसके ही स्वप्न देखता रहा होगा, वह कभी भी भोजनके समय रुक नहीं सकता उसका हविष्य तो वह मांस ही होगा, यही समझकर शास्त्रने भी कह दिया है कि, मांस भक्षण सदा ही सदोष है पर जो खा रहा है वो हविष्यके स्थानमें भी खा सकता है । इसके कोई मांसका अपूर्व विधान नहीं मालूम होता एवम् न मांसको अपूर्व हविष्यका रूप दिया जा रहा है ।

सेवन न करना चाहिये । ग्रन्थकारके यहां पालको, पाथरी और ज्योस्निका, कोशातकीको कहते हैं । भविष्यमें कहा है–हेमन्त ऋतुमें होनेवाला हैमन्तिक, विना भींगे हुए सफेद धान, मूंग, जौ, तिल,मटर, कांगुनी, नीवार, बथुआ, हिलमोचिका, सांठी चावल, काल शाक, केबुकको छोडकर बाकी मूल, कंद, सेंधा और समुद्र नोन, तथा गऊके दधी और घी, मलाई आदि न निकाला हुआ दूध, कटहर, आम, हरीतकी, पीपल, जीरा, नारंगी, इमली, केला, लंवली, आमला ये सभी हविष्यान्न हैं । पर ईखका गुड हविष्य अन्न नहीं है । जो व्रतग्राह्य वस्तु तेलमें न पकाई हों वो व्रतमें ग्रहण कर लेनी चाहिये । ऋषियोंने इन चीजोंको हविष्य बताया है । जिनकी कि हम गणना करचुके हैं । कहीं २ 'गव्ये च दधिसर्पिषी' के स्थानमें 'लवणे मधुसर्पिषी' ऐसा भी पाठ है जिसका अर्थ होता है कि, दोनों नमक, मधु और सर्पि इत्यादि भी हविष्यान्न है । हैमन्तिक धानका नाम है कलमा, वह भी विना भीगी हुई सितऔर श्वेत–हविष्य है । कलाय और सतीनक दोनों पर्य्यायवाची शब्द हैं । यह मटर करके प्रसिद्ध है. इसे दक्षिण देशमें वाटाणे ऐसा बोलते हैं, वास्तुक बथुआके नामसे प्रसिद्ध है । 'हिल शुकं–हिल माहिने शुकको जो, मोचयति' छुडवादे उसे हिलमोचिका कहते हैं, ऐसी क्षीर स्वामीने व्युत्पत्ति की है । जिसे शुक्रासारी और हिलसार भी कहते हैं । यह एक पानीमें होनेवाला शाक है, जिसे गौडदेशमें हेलांचल कहते हैं । कालशाक उत्तर देशमें कालिका करके प्रसिद्ध है । केमुक केमुत्रा करके पूरव देशमें प्रसिद्ध है । नागरंग–नारंगीका नाम है, क्योंकि अमरसिंहने ऐरावत, नागरंग, नादेयी, भूमिजम्बुका. ये पर्य्याय वाचक शब्द रखे हैं । यदि 'नागरं चैव' ऐसा पाठ रखेंगे तो नागर शुंठी अर्थ होगा । लवली रायआंवलीको महाराष्ट्र भाषामें कहते हैं । जिसे मध्यदेशमें हरफररेवडी कहते हैं । अतैल पक्व यह कहे हुए हविष्य अन्नोंका ही विशेषण है । मनुस्मृतिमें कहा गया है कि, दूर सोम, मांस, और विना उपस्कार किया हुआ मांस एवम खारी नौनको छोडकर बाकी नमक ये स्वभावसे ही हविष्यान्न हैं । अनुपस्कृत अपक्व, यानी विना पकाया हुआ मांस भी हविष्यान्न है ।

अथ व्रताद्युपयुक्तानि वस्तूनि

तत्र पंचरत्नानि ।। आदित्यपुराणे–सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम् ।। रत्नपञ्चकमाख्यातं शेषं वस्तु ब्रवीम्यहम् ।। कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकमं ।। एतानि पञ्चरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः ।। इति समयप्रदीपधृतकालिकापुराणोक्तानि वा ।। कुलिशं हीरकम् ।। स्मृत्यन्तरे-अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत् ।। विष्णुधर्मोत्तरे-मुक्ताफलं हिरण्यं च वैदूर्यं पद्मरागकम् ।। पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा ।। प्रवालयुक्तानि महारत्नानि वै नव ।। अथ पल्लवाः ।। हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे-अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः ।। पञ्चभङ्गा इति ख्याताः सर्वकर्मसु शोभनाः ।। पञ्चभङ्गाः पंचपल्लवाः ।। पञ्चगव्यं च ।। तत्रैव स्कान्दे-गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिर्यथाक्रमम् ।। विष्णुधर्मे गोमूत्रं भागतश्चार्द्धं शकृत्क्षीरस्य च त्रयम् ।। द्वयं दध्नो घृतस्यैकमेकश्च कुशवारिजः ।। गोमूत्रप्रमाणं तु प्रायश्चित्तमयूखे ज्ञेयम् ।। विष्णुधर्मे-गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।। आप्यायस्वेति क्षीरं च दधिक्राव्णोऽथ वै दधि ।। शुक्रमसीति आज्यं च देवस्य त्वा कुलोदकम् ।। एभिस्तु पञ्चभिर्युक्तं पञ्चगव्यं प्रचक्षते ।। पञ्चामृतं तु ।। हेमाद्रौ शिवधर्मेपञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं स्मृतम् ।। मदनरत्ने कात्यायनः–आज्यं क्षीरं मधु

तथा मधुरत्रयमुच्यते ।। षड्रसाः ।। तत्रैव भविष्ये-मधुरोऽम्लश्च लवणः कषायस्तिक्त एव च ।। कटुकश्चेति राजेन्द्र रसषट्मुदाहृतम् ।। चतुःसमं तु ।। गारुडे-कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च ।। कुंकुमस्य त्रयश्चैकः शशिनः स्याच्चतुःसमम् ।। कुंकुमम् केशरम् ।। शशी ।। कर्पूरः ।। सर्वगन्धम् ।। कर्पूरश्चन्दनं दर्पः कुंकुमं च समांशकम् ।। सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुरभूषणम् ।। दर्पः कस्तूरिका ।। यक्षकर्दमः ।। तथा–कस्तूरी ह्यगुरुश्चैव कर्पूरश्चन्दनं तथा ।। कंकोलं च च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्दमः ।। अथ सर्वौषधयः ।। छन्दोगपरिशिष्टे कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा सैलेयचन्दनम् ।। वचा चम्पकमुस्तं च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ।। सौभाग्याष्टकम् ।। पाद्मेइक्षवस्तृणराजं च निष्पावाजाजिधान्यकम् ।। विकारवच्च गोक्षीरं कुसुमं कुंकुमं तथा ।। लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते ।। तृणराजः तालः ।। अजाजी जीरकम् ।। अर्घ्याष्टाङ्गानि ।। आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा ।। यवाःसिद्धार्थकाश्चेति ह्यर्घ्योऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ।। मण्डलार्थम् पञ्चवर्णानि ।। पञ्चरात्रे–रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलार्थं हि काययेत् ।। शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसंभवम् ।। रक्तं कुसुभसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवम् ।। हरितालोद्भवं पीतं रजनीसंभवं तथा ।। कृष्णं दग्धयवैर्हरित्पीतकृष्णवोमिश्रितम् ।। रजनी हरिद्रा ।। कौतुकसंज्ञानि ।। भविष्ये–दूर्वा यवांकुराश्चैव वालकं चूतपल्लवाः ।। हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः ।। कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः । अथ सप्तमृदः ।। मात्स्ये-गजाश्वरथवल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात् ।। मृदमानीय कुंभेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा ।। गोकुलावधि सप्त, चत्वरेण सहाष्टौ मृदो भवन्ति ।। सप्तधातवः ।। हेमाद्रौ भविष्ये-सुवर्णं रजतं ताम्रमारकूटं तथैव च ।। लोहं त्रपु तथा सीसं धातवः सप्त कीर्तिताः ।। आरकूटं पित्तलम् ।। सप्तधान्यानि ।। षट्त्रिंशन्मते तत्रैवयवगोधूमधान्यानि[१] तिलाः कङ्गुस्तथैव च ।। श्यामाकं चीनकं चैव सप्तधान्यमुदाहृतम् ।। सप्तदशधान्यानि ।। मार्कण्डेयपुराणे–व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ।। प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सतीनकाः ।। माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलित्थकाः।।आढक्यश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः ।। कोरदूषाः कोद्रवाः ।। सतीनकाः कलायाः मटरइति प्रसिद्धाः ।। अष्टादशधान्यानि ।। ।। स्कान्दे–व्रीहिर्यवास्तिलाश्चैव यावनालास्तथैव च ।। सतीनकाः कुलित्थाश्च कङ्गुकाः कोरदूषकाः ।। माषमुद्गमसूराश्च निष्पावाः श्यामसर्षपाः ।। गोधूमाश्चणकाश्चैव नीवाराढक्य एव च ।। एवं क्रमेण जानीयाद्धान्यान्यष्टादशैव तु ।। शाकानि ।। हेमाद्रौ क्षीरस्वामी–मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः[२]।।त्वक् पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविध स्मृतिम् ।। करीरं वंशांकुरः ।। अग्रं पल्लवः ।। काण्डं नालम् ।। कवकं छत्राकम्

१ व्रीहयः । २ अंकुराः ।

कलशा उक्ताः विष्णुधर्मे–हेमराजतताम्राश्च मृन्मया लक्षणान्विताः ।। यात्रोद्वाहप्रतिष्ठादौ कुम्भाः स्युरभिषेचने ।। तत्परिमाणं च ।। तत्रैव—पञ्चाशाङ्गुलैवपुल्या उत्सेधे षोडशाङ्गुलाः ।। द्वादशाङ्गुलमूलाः स्युमुखमष्टाङ्गुलं भवेत् ।। पंचगुणिता आशाश्च पंचाशा आशा दश । पंचाशदंगुलानि वैपुल्यमित्यर्थः । केचितु पञ्चदशांगुलवैपुल्या इत्याहुः ।। प्रतिमाद्रव्ययोः परिमाणम् ।। हेमाद्रौ भविष्ये-अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवता प्रतिमा नृप ।। सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्तिकी तथा ।। चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुसारतः ।। आमाषात्पलपर्यन्ता कर्तव्या शक्तिसंभवे ।। अंगुष्ठपर्वमारभ्य वितस्त्यवधिका स्मृता ।। मात्स्ये तु विशेषः-अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।। गृहे तु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ।। आषोडशात्तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः ।। इति ।। अधिकं कल्पतरौ प्रतिष्ठाकाण्डे ज्ञेयम् ।। अनादेशे होमसङ्ख्या ।। तथा –अनुक्तसंख्याहोमे तु शतमष्टोत्तरं स्मृतम् ।। मात्स्ये—होमो ग्रहाधिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते ।। मदनरत्ने ब्राह्मे—यथोक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।। धान्यप्रतिनिधिः ।। यवाभावे च गोधूमा व्रीह्यभावे च तण्डुलाः ।। आनादेशे होमद्रव्यम् ।। आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहुयाच्च यथाविधि ।। अनादेशे मन्त्रदैवतम् ।। मंत्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः । मंत्रस्य देवतायाश्चाविधाने प्रजापतिर्देवता समस्तव्याहृतिर्मन्त्रः ।। स्मृत्यन्तरेपि– "न व्याहृत्या समं हुतः" इति ।। गारुडे—प्रणवादिनमोन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम ।। देवतायाः स्वकं नाम मूलमंत्रः प्रकीर्तितः ।। द्रव्याभावे प्रतिनिधिः ।। हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलाभे तथा गुडः ।। घृते प्रतिनिधिः कार्यः पयो वा दधि वा नृप ।। तत्रैव मैत्रायणीपरिशिष्टे—"दर्भाभावे काशः" पैठीनसिः–"सर्वाभावे यवाः"।। तत्रैव देवलः–आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद्घृतम् ।। तदभावे महिष्यास्तु आजमाविकमेव तु ।। तदभावेतु तैलं स्यात्तदभावे तु जातिलम् ।। तदभावे तु कौसुम्भं तदभावे तु सार्षपम् ।। अथ पवित्रम् ।। हेमाद्रौ परिशिटेष्कात्यायनः– अनंतर्गभितं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ।। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रे यत्र कुत्रचित् ।। आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु ।। अथेध्माः ।। पलाशाश्वत्थखदिरवडोदुम्बराणाम् । तदभावे कण्टकवर्जसर्ववनस्पतीनाम् ।। अथ धूपाः ।। अगुरुश्चन्दनं मुस्ता सिह्लकं वृषणं तथा।।समभागैस्तु कर्तव्यो धूपोऽयममृताह्वयः ।। सिह्लकं सिह्लाद इति प्रसिद्धम् ।। वृषणं कस्तूरी ।। षड्भागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पंच नखस्य भागाः ।। हरीतकीसर्जरसः समांसी भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् ।। घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो

मुनीन्द्रैः ।। सर्जरसो राल इति प्रसिद्धः ।। मांसी जटामांसी ।। त्रिलवं त्रिभागम् घनः कर्पूरः ।। पुरो गुग्गुलुः ।। सुवर्णमानमाह ।। याज्ञवल्क्यः---जालसूर्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतम् ।। तेऽष्टौ लिक्षास्तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते । गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः ।। कृष्णलः पंच ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ।। पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम् ।। रजतमानमाहः ।। द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ।। शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु ।। निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः ।। इति ।। ताम्रमानमाह---कार्तिकस्ताम्रिकःपणः इति पल-चतुर्थांशेन कर्षेणोन्मितः कार्षिकस्ताम्रसम्बन्धी पणो भवति ।। कर्षसंज्ञा च निघण्टौ---ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् ।। इति ।। ते षोडश माषा अक्षाः स च कर्ष इत्यर्थः ।। धरणस्यैव पुराण इति संज्ञान्तरम् ।। ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् ।। इति मिताक्षरायां स्मृतेः ।। शतमानपले पर्याये ।। सुवर्ण-चतुष्टयसमतोलितं रूप्यं राजतो निष्कइत्यर्थः । सुवर्णनिष्कस्तु---चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ।। इतिमनूक्तेः, स च पल समान एव ।। कोऽत्र कार्षापण इत्यपेक्षायां देशभेदेन कार्षापणो । भिन्न इत्याह, हेमाद्रौ नारदः –कार्षापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्तते ।। पणैर्निबद्धः पूर्वस्यां षोडशैव पणाः स तु ।। षोडशपणाः अष्टौ ढब्बूका कार्षापणः पूर्वास्यामित्यर्थः ।। तावता लभ्यं रूप्यं दक्षिणस्यां स इति द्वैतनिर्णये ।। लीलावत्याम् ---वराटकानां दशकद्वयं यत्सा काकिणी ताश्च पणश्चतस्रः ।। ते षोडश द्रम्म इहावगम्यो द्रम्मैस्तथा षोडशभिश्च निष्कः ।। इति ।।

व्रतके लिये आवश्यक वस्तुएँ–सबसे पहिले आदित्य पुराणके कहे हुए पंच रत्नोंको बताते हैं–सोना चांदी, मोती, मूंगा और लाजवर्दी ये पांच रत्न कहें हैं । बाकी वस्तुअंगाडी कहेंगें । समयप्रदीप ग्रन्थमें रखे हुए कालिकापुराणके कहे हुए पंचरत्न–सोना, हीरा, नीलम, पुखराज और मोती ये हैं रत्न शास्त्रवेत्ता इन्हें पांच रत्न मानते हैं । मूलश्लोकमें जो कुलिशशब्द आया है उसका हीरा अर्थ है । स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि, सब रत्नोंके अभावमें सब जगह सोनेकी योजना कर दे । विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है–मुक्ता, सोना, वैडूर्य्य, पद्मराग. पुष्पराग, गोमेद, नील, गारुत्मत और प्रवाल ये महारत्न कहे गये हैं ।

पंचपल्लव–हेमाद्रिमें ब्रह्माण्ड पुराणसे कहा है कि, पीपर, गूलर, प्लक्ष, आम और वरकी डारें पंच पल्लव कहाती हैं । इस श्लोकमें पंचभंगा ऐसा पाठ आया है । जिसका पंचपल्लव अर्थ है, ये सब कामोंमें उपयुक्त है । पंचगव्य–हेमाद्रिमें स्कान्द पुराणसे पंचगव्य कहा है कि, गोमूत्र, गोवर, दूध, दही और गऊका ही सर्पि ये पंचगव्य कहाते हैं । विष्णुधर्ममें कहा है कि, जितना पंचगव्य बनाना हो तो आधाअंश तो गोमूत्र लेना चाहिये, तीन तीन भाग गोवर और दूधका होना चाहिये, दो भाग दही और १ भाग घृत तथा बाकीका कुशजल होना चाहिये । जितना पंचगव्य तयार करना हो उसमें हमें तीन अंश गोबर और तीन अंशदूधका तथा दो अंश दहीके तथा आधा अंश गोमूत्र और बाकी एक अंश कुशजलका मिलाकर ही तयार करना चाहिये । जैसे २१ तोले पंचगव्यमें एक तोले गोमूत्र, दो तोले कुशजल तथा दो तोले घी, ४ तोले दही और ६ तोले गोबर और छः तोले दूध लेना चाहिये । विष्णुधर्ममें लिखा हुआ है कि, गायत्री मंत्र बोलकर गोमूत्र

तथा 'गन्धद्वाराम्' इस मंत्रको बोलकर गोबर एवम् 'आप्यायस्व' इस मंत्रसे दूध तथा 'दधिक्राव्णो' इस मंत्रसे दही और 'शुक्रमसि' से घी और 'देवस्य त्वा' से कुशका पानी मिलाना चाहिये । ऊपर कही हुई पांचों चीजोंके योगसे पंचगव्य बनता है ।

"ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।" यह लक्ष्मीसूक्तका मंत्र है लक्ष्मीके विषयमें इसका अर्थ यह अर्थ होता है कि, अनेक तरहकी स्वच्छ सुगन्धिकी द्वारभूत, किसीसे भी अभिभूत न होनेवाली तथा सदा सब तरहसे पुष्ट करनेवाली, दानमें चित्तकरनेवाली अथवा हाथियोंकी ईश्वरी हाथी आदि उत्तम सवारी देनेवाली संपूर्ण जगतकी ईश्वरी श्रीको बुला रहा हूं । गोमयके विषयमें विविध तरहकी सुगन्धि देनेवाले तथा किसीसे न दबनेवाले, सदा ही पुष्टिके देनेवाले एवम् शुष्क गोमय रूपमें आजानेवाले सब प्राणियोंसे प्रशंसित तथा विविध शोभा संयुक्त गोमयको बुलाता हूँ । जिस मंत्रका जिस विषयमें प्रयोग हो उसका उसी विषयमें अर्थ होना चाहिये । "ओंआप्यायस्व समेतुते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ।" हे सोम ! आपका बलवर्धक सत्त्व चारों ओरसे आजाय मुझे वाजके संगमके लिये हो ॥

"ओं दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभिनो मुखाकरत् प्रण आयूंषि तारिषत् ।" दूधमें शीघ्रही व्याप्त हो जानेवाले, बलशाली, व्यापन शील दहीको इनमें मिला रहा हूं । अथवा प्रत्येक पाद विक्षेपमें पृथ्वीको आक्रान्त करनेवाले, जयशील तथा वेगवाले अश्वका संस्कार कर दिया है । वो दधि अथवा अश्व हमारे मुखोंमें सुगन्धि कर दे एवम् हमारी आयुको बढा दे । "ओं शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देव यजनमसि ।" हे आज्य ! तू शुक्र-दीप्तिमान् अथवा वीर्य्य रूप है । आप विनाश रहित हो यानी जो आपका सेवन करता है उसकी शीघ्रही अल्पायुमें मृत्यु नहीं होती । आप शीघ्र विकृत होते हो आप धामनाम है, आप देवोंके प्यारे तथा नहीं तिरस्कृत होनेवाले देव यजन यानी देवताओंको यजन करनेकी वस्तु हो । "ओम् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोबाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।।" देव सविताकी आज्ञामें प्रवर्तमान हुआ मैं अश्विनीकी बाहु तथा पूषाके हाथोंसे ग्रहण करता हूं । याज्ञिक विनियोगादिके आधारपर लिखे गये वेद भाष्योंमें इन मंत्रोंका वही अर्थ है जो इनके विनियोगके हिसाबसे होता है । एक काममें विनियोग किये गये मंत्रोंका यह नियम नहीं है कि, फिर दूसरे काममें उनका विनियोग हो न हो किन्तु दूसरेमें भी उनके विनियोग होता है, यह हमें मीमांसाका ऐन्द्रीन्याय बता रहा है । पर जहां विनियोग होगा उसी विनियोगके अनुसार उनका अर्थ होना चाहिये, यही सोचकर हमनेभी इनका वैसाही अर्थ किया है, जहांतक हो सका है भाष्यकारोंके अर्थकाभी ध्यान रखा है । या वैसाही अर्थ गायत्री मंत्रके अर्थ करतीवार गोमूत्रमें वैसीही भावना करलेना चाहिये ।

पंचामृत–हेमाद्रिमें शिवधर्मोंमें बताया है कि दही, दूध, खांड, सहत और घी ये पांचो मिलकर पंचामृत कहाते हैं । मधुरत्रय-मदनरत्नग्रन्थमें कात्यायनका वचन है कि, घी, दूध और सहत इन तीनोंको मधुरत्रय कहते हैं । षड्रस–मदन रत्न ग्रन्थमें ही भविष्यका वचन रखा है कि, हे राजेन्द्र ! मधुर, अम्ल, लवण, कषाय, तिक्त, कटुक ये छः रस कहे गये हैं । चतुःसम–गरुडपुराणमें कहा है कि, दो अंश कस्तूरी, चार अंश चन्दन, तीन अंश कुंकुम और एक अंश कपूर ये चारो मिलकर चतुस्सम कहाते हैं । जैसे दश रत्ती बनाना होतो दो रत्ती कस्तूरी, ४ चंदन, ३ कुंकुम और एक रत्ती कपूर लेना चाहिये । ग्रन्थकार कुंकुमसे केशरका और शशिसे कपूरका ग्रहण करते हैं । सर्वगन्ध-कर्पूरचन्दन, दर्प, कुंकुम, जब ये चारों बराबर लिये जाँय उस समय इन्हें सर्वगन्ध कहते हैं । यह सब देवताओंका भूषण है । ग्रन्थकार दर्पशब्दसे कस्तूरीका ग्रहण करते हैं । यक्ष कर्दम-कस्तूरी, अगुरु, कर्पूर, चन्दन, कँकोल ये पांचों मिलकर यक्षकर्दम कहाते हैं । सर्वौषधी-छन्दोग प्ररिशिष्टमें लिखा है कि–कूट, कंकोल, दोनों हलदी, मुरा, शैलेय चन्दन, वचा, चंपक, मुस्त इन दशोंको सर्वोषधि कहते है । सौभाग्याष्टक–पद्मपुराणमें लिखा है कि, ईख, तृणराज, निष्पाव, अजाजी, धान्य, दही, कुसुम, कुंकुम, लवण ये आठ सौभाग्याष्टक कहाते हैं । तृणराज ताड़को कहते हैं । अजाजी जीरेका नाम है । अष्टांग अर्घ्य–पानी, दूध, कुशाके अग्रभाग, दही, चावल और तिल जौ और सफेद सरसों ये अष्टांग अर्घ्य कहाते हैं । पंचरात्र

शास्त्रमें लिखा हुआ है कि, मण्डल बनानेके लिये पांच रंगके पांच चूर्ण तयार करना चाहिये, श्वेतके स्थानमें गेहूं, चावल तथा यवका चून वरतना चाहिये । कुसुम, सिन्दूर और गेरुको लालके स्थानमें तथा हरतालके और हलदीके चूनका पीलेरंगके स्थानमें लेना चाहिये । जले हुये जौओंसे काला तथा पीले और कालेसे हरा बना लेना चाहिये । क्योंकि इन दोनोंको मिला देनेसे हरा रंग बन जाता है । श्लोकमें रजनी शब्द हरिद्राका ही पर्याप्त आया है । कौतुकसंज्ञका–भविष्य पुराणमें लिखा हुआ है कि, दूध, जौके अंकुर, खसकी जड, आमकी डार, दोनों हलदियाँ, सफेद सरसों, मोर पंख, सांपकी काँचली ये कंकणकी ओषधि हैं इन्हें कौतुक कहते हैं । सप्तमृद–मत्स्य पुराणमें लिखा है कि जिस स्थानमें घोडा बँधे और हाथी बँधे उन दोनों जगहोंकी धूल, रथकी रेत, बामीकी मिट्टी, नदियोंके संगमकी मिट्टी, तालाबकी मिट्टी, गउओंके खिरककी और चौराहेकी मिट्टी ये सात मृत्तिकाए हैं । इन्हें घटेमें गेरे । जहां गेरना कहा हो वहां, अन्यत्र नहीं । श्लोकमें गोकुलतक सात तथा एक चौराहेकी इस तरह आठ मिट्टी होती हैं । सप्तधातु–हेमाद्रिग्रन्थमें भविष्यका लिखा है कि, सुवर्ण, रजत, ताम्र, आरकूट, लोह, त्रपु और सीसा ये सात धातु हैं । आरकूट पीतलको कहते हैं । वहां ही सप्तधान, षट्त्रिंशद् ग्रन्थके मतसे–यव, गोधूम, व्रीहि, तिल, कंगु, श्यामाक और चीनक इन सातोंको सप्तधान्य कहते हैं । सत्रहधान–मार्कण्डेय पुराणमें कहे हैं कि व्रीहि, यव, गोधूम, अणु, तिल, प्रियंगु, कोविदार, कोरदूष, सतीनक, माष, मूंग, मसूर, निष्पाव, कुलित्थिका, आढकी, चणक और शण ये १७ धान्य कहाते हैं । कोरदूषका पर्य्याय कोद्रव है । तथा सतीनकका पर्य्याय कलाय है जिसे लोग मटर कहते हैं । अठारह धान्य–स्कान्दपुराणमें कहे हैं कि–व्रीहि, यव, तिल, यावनाल (रामदाना) सतीनक, कुलित्थ, कंगु, कोरदूष, माष, मुद्ग, मसूर, निष्पाव, श्याम, सर्षप, गोधूम, चणक, नीवार, आढकी, ये क्रमसे गिननेसे अठारह होजाते हैं ।

शाक–हेमाद्रि ग्रन्थमें क्षीरस्वामीके मतसे शाकभी गिनाये हैं कि, शाक दश तरहके होते हैं, सब शाक उन्हींके भीतर आजाते हैं । कोई-जड कोई पत्ते तथा कोई कुला और कोई पल्लव एवम् कोई फल और कोई कोंपर, उपजे हुए अंकुर, छाल, फूल और कोई कवचके रूपमें होते हैं । करीरवंशाकुर यानी कुलेको कहते हैं । पल्लवको अग्र तथा काण्डको नाल एवम् कवचको छत्राक कहते हैं । कलश-विष्णुधर्ममें कहा है कि, कलश अपने लक्षणके अनुसार सोने, चांदी, तांबे और मिट्टीके होते हैं, ये यात्रा विवाह और प्रतिष्ठादिकमें अभिषेकके निमित्त होते हैं । कलशका परिमाणभी वहीं कहा है कि, पंचाशांगुल विपुल, सोलह अंगुल ऊंचा, १२ अंगुल जड़वाला और आठ अंगुलका मुंह होता है । दिशा दश हैं इस लिये आशा शब्दसे दशका बोध होता है । पांचसे दशको गुणाकर देनेपर ५० होते हैं, जिसका यह मतलब होता है कि पचास अंगुल विपुल हो । कोई २ तो १५ अंगुल ही विपुल मानते हैं, विपुलका अर्थ चौडा होता है ।

प्रतिमा और उसके द्रव्यका परिणाम जहां लिख दिया है वहां तो बातही नहीं है. किन्तु जहां प्रतिमा और उसके द्रव्य तथा उनका परिणाम नहीं कहा गया है उसके लिये विचार करते हैं–हेमाद्रिने भविष्य पुराणको लेकर लिखा है कि हे राजन् ! जहां देवताकी प्रतिमाका द्रव्य और उसका परिमाण तथा मूर्तिका परिमाण नहीं कहा गया हो वहां जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार मापसे लेकर पल तकको सोने, चांदी और तांबेकी बनवा लेनी चाहिये । यदि यहभी न हो सके तो मिट्टीकी ही बनवा ले, नहीं तो चित्रपटको ही पूज दे तथा पिष्ट लेपसे ही काम चलाले । प्रतिमा अंगूठेके पोरुएसे लेकर चाहें विलस्ति तक बड़ी हो । मत्स्य पुराणमें तो प्रतिमाके प्रमाणमें कुछ विशेषता कही है कि अंगूठेके पोरुएसे लेकर एक विलाँयद तककी मूर्ति घरमें पूजनी चाहिये. इससे अधिक घरकी मूर्तिको विद्वान् शुभ नहीं बताते । हवेलीमें १६ अंगुलसे बड़ी भगवान्की मूर्ति न होनी चाहिये । यदि इस विषयमें अधिक जाननेकी इच्छा हो तो कल्पतरु ग्रन्थके प्रतिष्ठा काण्डको देख लेना चाहिये ।

होम–जहां होमकी कोई संख्या न कही हो वहां १०८ समझनी चाहिये । मात्स्य पुराणमें कहा है कि ग्रहादिकी पूजामें १०८ आहुति होती हैं २८, तथा ८ भी हुआ करती हैं यह करनेवालेकी शक्तिके ऊपर निर्भर है, वो जितनी चाहे उतनी आहुति दे । मदन रत्न ग्रन्थमें ब्रह्म पुराणको लेकर कहा है कि, जो चीज

कही गयी वो न मिले तो उस जैसी दूसरी वस्तुको लेलेना चाहिये । जैसे—जौ न हों तो गेहुंओंसे तथा व्रीहि न हों तो तण्डुलोंसे काम कर लेते हैं । जहां कोई हवन द्रव्य न लिखा हो वहां विधिके साथ घीकोही आहुति देनी चाहिये । जहां कोई मंत्र देवता न कहा गया हो वहां प्रजापति समझना चाहिये । ऐसी स्थिति है । इसका ग्रन्थकार अर्थ करते हैं कि, मंत्र और देवताके अविधानमें प्रजापति देवता और समस्त व्याहृति ही मंत्र होता है । दूसरी २ स्मृतियोंमें भी लिखा हुआ है कि, व्याहृतियोंसे हवन करनेके बराबर दूसरा कोई हवन नहीं है अथवा व्याहृतियोंके बराबर कोई हवन मंत्र नहीं है । गरुड़ पुराणमें लिखा हुआ है कि हे सत्तम ! जिस देवताका मूल मंत्र बनाना हो उस देवताके नामको चतुर्थीका एक वचनान्त करके उसके आदिमें ओम् और अन्तमें नमः लगानेसे सब देवताओंके मूल मंत्र बन जाते हैं ।

द्रव्याभावे प्रतिनिधि—हेमाद्रिमें विष्णुधर्मको लेकर लिखा हुआ है कि, हे राजन् यदि दही न मिले तो दूध तथा मधुके अलाभमें गुडसे काम करना चाहिये । यदि घी न होतो दही व दूधसे काम लेना चाहिये । उसी ग्रन्थमें मैत्रायणीय परिशिष्टका वचन है कि, दूबके अभावमें काशको लेलेना चाहिये । पैठीनसिने कहा है कि, सबके बदले जौओंसे काम लेना चाहिये । इस विषयमें वहां देवलका भी वाक्य है कि जहां कहीं आज्यका होम है वहां सब जगह गौका ही घृत लेना चाहिये । यदि गौका न मिले तो भैंसका यदि भैंसका भी नि मिले तो बकरी और बकरीका भी न हो तो भेडका वर्तना चाहिये । यदि यह भी न हो तो तिलका तेल तथा तिलका तेलभी न हो तो जार्तिलका तेल तथा इसके भी अभावमें कौसुंभका तेल तथा इसकेभी अभावमें सरसोंका तेल लेना चाहिये ।

पवित्र—हेमाद्रिग्रन्थमें कात्यायन परिशिष्टके मतको लेकर लिखा है कि, जिनके बीचमें कुछ दल न हो अग्र भाग साबित हो ऐसी द्विदल कुशा लेनी चाहिये वो प्रादेश मात्र होनी चाहिये । जहां भी कहीं पवित्राका प्रकरण आये वह तथा जहां कहीं घृतकी शुद्धिके लिये पवित्र आया है वहां भी ऐसा ही समझना चाहिये ।। इध्म—पलाश, अश्वत्थ, खदिर, वट, उदुम्बरये समिध हैं । इनके अभावमें कांटेदारोंको छोड कर सब वनस्पतियाँ लेलेनी चाहिये । धूप—अगुरु, चन्दन, मुस्ता, सिह्लक, वृषण इन पांचो वस्तुओंको बराबर लेकर जो धूप बनाया जाता है उसे अमृत कहते हैं । सिह्लकको सिह्लार कहते हैं, वृषण कस्तूरीको कहते हैं ।

दशांगधूप—६ भाग कुष्ठ, १२ भाग गुड़, ३ भाग लाक्षा, पांच भाग नख, हरीतकी, सर्जरस और मांसी ये तीनों एक एक भाग, तथा त्रिलव, सिलाजीत चार भाग, घन एक भाग पुर इन सबको मिलाकर दशांग धूप बनता है । ऐसा बड़े २ मुनि कहते हैं । सर्जरस रालका नाम है, मांसी जटामांसीको कहते हैं । त्रिलवका मतलब तीन भागोंसे है, घन कपूरका नाम है । गूगलको पुर कहा है ।

सुवर्णमान—याज्ञवल्क्यने कहा है कि, जालमें सूर्यकी किरणोंमें जो कण उड़ते, चलते दीखते हैं, इनमेंसे एकका नाम त्रसरेणु है । आठ त्रसरेणुओंको मिल जानेपर एक लिक्षा होता है । तीन लिक्षाओंका एक राजसर्षप (राई) होता है । तीन राज सर्षपोंका एक गौर (सफेद सरसों) होता है । छः गौरोंका एक मध्य यव होता है । तीन तीन जौओंका या तीन विचले जौ भर एक कृष्णल होता है । पांच कृष्णलका एक मास होता है । सोलह माषोंका एक सुवर्ण होता है । पांच या चार सुवर्णोंका एक पल होता है । यह तो कोशकारोंने भी माना है कि चार सुवर्णोंका एक पल होता है पर याज्ञवल्क्य स्मृतिमें जो पांच सुवर्णोंसे भी पल कहा गया है इस पर विचार होता है कि कौनसे पांच सुवर्णोंका एक पल होता है इस पर याज्ञवल्क्यकी मिताक्षरा टीकामें जो विचार किया है उसे हम यहां उद्धृत करते हैं । मिताक्षराने कहा है कि मध्यम यवादिसे मान करतीवार तो चार सुवर्णोंका एक पल होता है, पर यह मध्यम, साधारणसे सवाया होना चाहिये तबही वैसे चार सुवर्णोंका एक पल होजायगा जैसा कि साधारण यवादिके पांच सुवर्णोंका पल होता है, यह जो पांच सुवर्णका भी पल याज्ञवल्क्य जीने लिखा है वो नारदादिकोंके मतकी ओर ध्यान देकर लिखा है, यदि उनका यह मत होता तो जैसे उन्होंने चारकी भूमिका बाँधी है वैसीही पांचकी भूमिका बांधते, यह तोलका विषय है इसमें विना व्यवस्थाके व्यवहार नहीं चल सकता ।

रजत मान–दो कृष्णलोंका एक रूप्यमाष होता है। सोलह मासोंका एक धरण होता है, दश धरणोंका एक शतमान पल होता है, याज्ञवल्क्यजीके कहे हुए चार *सुवर्णोंकाही एक निष्क होता है।

ताम्रमान–चांदीके मानके पलका चौथाहिस्सा जो कर्ष है उससे तोला हुआ कार्षिक बनता है यह तांबेका पण होता है। यह याज्ञवल्क्य स्मृतिसे ही लिखा गया है। वैद्यकके निघण्टुमें कर्षका अर्थ किया है कि–सोलह माषोंका एक कर्ष तथा चार कर्षोंका एक पल होता है। सोलह माषोंका एक अक्ष होता है, उतनाही कर्ष होता है, ऐसा ग्रन्थकार कहते हैं धरणका दूसरा नाम पुराण भी है–क्यों कि, मिताक्षरामें लिखा है कि, सोलहका धरण होता है जिसे चांदीके तोलमें पुराण भी कहते हैं। शतमान यह पलकाही पर्य्याय है। चार राजतसुवर्णोंके बराबर तुला हुआ रूप्य यानी राजत निष्क होता है एवम् चार सोनेके सुवर्णके बराबर सुवर्ण निष्क होता है। ऐसा मनुने कहा है वो पलके समान होता है। अब यहां यह जाननेकी अपेक्षा होती है कि, यहां कार्षापण क्या है ? देशभेदसे कार्षापण भिन्न है। इसी विषयमें हेमाद्रिमें नारदजीका वाक्य है कि, दक्षिण देशमें रौप्य कार्षापणही प्रचलित है। पूरबमें सोलह पणोंसे कार्षापण निबद्ध है। सोलह पण या आठ ढब्बूका पूरबमें कार्षापण होता है। दक्षिणदिशामें उतनेहीमें रूप्य मिल जाता है,यह द्वैतनिर्णयमें लिखा हुआ है। लीलावतीमें तो यह लिखा हुआ है कि, २० कोडियोंकी एक काकिणी तथा चार काकिणीका एक पण होता है सोलह पणोंका एक द्रम्म तथा सोलह द्रम्मोंका एक निष्क होता है। (यह पहिले समयकी तोल है तथा सिक्काओंमें भी यही व्यवहार होता था. वैद्यकशास्त्रमें भी कहीं २ इसका व्यवहार देखा जाता है पर व्यापक रूपमें नहीं हैं)

अथ धान्यमानम्

भविष्ये–––पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम् ।। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्था प्रस्थाश्चत्वार आढकः ।। आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः ।। कुंभो द्रोणद्वयं शूर्पः खारी द्रोणास्तु षोडश ।। द्रोणद्वयम् वै शूर्प इति संज्ञा ।। पलं च कुडवः प्रस्थ आढको द्रोण एव च ।। धान्यमानेषु बोद्धव्याः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ।। द्रोणैः षोडशभिः खारी विंशत्या कुंभ उच्यते ।। कुंभैस्तु दशभिर्वाहो धान्यसंख्याः प्रकीर्तिताः ।। विंशत्येत्यत्रापि द्रोणैरिति संबद्धचते ।। तथाच–––कुम्भो द्रोणद्वयमिति पक्षाद्विंशतिद्रोणमितः कुम्भ इति पक्षान्तरम् ।। द्रोणाढकयोः परिमाणान्तरमुक्तं पराशरेण–––वेदवेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ।। प्रस्था द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः ।। इति ।। एतेषां न्यूनाधिकपक्षाणां शक्तिदेशकालाद्यपेक्षया व्यवस्था ज्ञेया ।।

धानमान–भविष्य पुराणके अनुसार धनका मान कहते हैं कि, दो पलको प्रसृत कहते हैं, दो प्रसृतोंका एक कुडव होता है, चार कुडवोंका एक प्रस्थ होता है। चार प्रस्थोंका एक आढक होता है। चार आढकोंका एक द्रोण होता है, दो द्रोणका एक कुंभ तथा शूर्प होता है सोलह द्रोणोंकी एक खारी होती है। ग्रन्थकार लिखते हैं कि कुंभ और शूर्प दोनों पर्य्याय वाची शब्द हैं। पल कुडव प्रस्थ आढक और द्रोण ये धानके बाँट हैं, इनमें एकसे एक चौगुना होता है। यानी चार पलका एक कुडव चार कुडवका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका एक आढक तथा चार आढकका एक द्रोण होता है। सोलह द्रोणोंकी एक खारी तथा बीस द्रोणका एक कुंभ होता है दश कुंभोंका एक बाँट होता है। यह धानकी संख्या होती है। ग्रन्थकार कहते हैं कि, श्लोकमें जो 'विंशत्या' पद है इसका सम्बन्ध 'द्रोणैः' इस पदके साथ है, इससे हमने बीस द्रोण लिये हैं न कि बीस खारी। दो द्रोणोंका एक

* नोट–पूर्व व्यवस्थाके अनुसार नारदादिके पांच सुवर्णोंका भी एक निष्क होना चाहिये।

कुंभ होता है इस पक्षसे भिन्न वीस द्रोणके बराबर कुंभ होताहै यह भी किसीका पक्षहै । पराशरजीने द्रोण* और आढकका कुछ और ही परिणाम कहा है कि, धर्म शास्त्रोंके अनुपालक वेद तथा वेदांगोंके जाननेवाले ब्राह्मण ३२ प्रस्थोंका द्रोण और दो प्रस्थका आढक मानते हैं ।यह जो कहीं छोटा और कहीं उसके अधिकका जो द्रोण तथा आढक तथा अन्य मान कहा है उसकी देश और कालके अनुसार व्यवस्था जाननी चाहिये कि, उस समय उस देशमें यह व्यवस्था थी तथा उस देशमें उस समय वह थी आज इनका व्यवहार नहींके बराबर है।

अथ होमद्रव्यमानम्

सिद्धान्तशेखरे---होमद्रव्यप्रमाणानि वक्ष्यन्ते तु यथाक्रमम् ।। कर्ष-प्रमाणमाज्यं स्यान्मधुक्षीरं च तत्समम् ।। तण्डुलानां शुक्तिमात्रं पायसं प्रसृतेः समम् ।। कर्षमात्राणि भक्ष्याणि लाजा मुष्टिमिता मताः ।। अन्नं ग्राससमं ग्राह्यं शाकं ग्रासार्द्धमात्रकम् ।। मूलानां तु विभागः स्यात्कन्दानामष्टमोंशकः ।। इक्षुः पर्व-प्रमाणः स्यादङ्गुलद्वितयं लता ।। प्रादेशमात्राः समिधो व्रीहीणां चाञ्जलिः समः ।। तिलसक्तुकणादीनां मृगीमुद्राप्रमाणतः ।। तत्र पुष्पफलादीनां प्रमाणाहुतिरिष्यते ।। चन्द्रश्रीखण्डकस्तूरीकुंकुमागुरुकर्दमाः ।। हरिमन्थसमाः प्रोक्ता गुग्गुलुर्बदरोपमः ।। हरिमन्थः चणकः ।। आहुतीनामिदं मानं कथितं वेदवेदिभिः स्यात्त्रिमुद्रा मृगीमुद्रा होमे सर्वफलप्रदा ।। मानान्तरं शारदातिलकटीकायां पदार्थादर्शे कर्षप्रमाणमाज्यं स्याच्छुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् ।। उक्तानि पञ्च-गव्यानि शुक्तिमात्राणि साधुभिः ।। तत्समं मधु दुग्धान्नं ग्रासमात्रमुदाहृतम् ।। दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युमुष्टिसंमिताः ।। पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः सक्तवोऽपि तथाविधाः ।। पलार्द्धं गुडमानं च शर्करापि तथाविधा ।। ग्रासार्द्धमात्र-भक्ष्याणामिक्षुः पर्वप्रमाणतः एकं स्यात्पत्रपुष्पं च तथा धूपादि कल्पयेत् ।। मातु-लिङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा कृतम् ।। अष्टधा नारिकेलं च चतुर्धा कदलीफलम् ।। त्रिधा कृतं फलं बैल्वं कापित्थं खण्डितं द्विधा ।। व्रीहयो मुष्टिमानाः स्युर्मुद्गा माषा यवास्तथा ।। तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसंमिताः ।। लवणं शुक्तिमात्रं स्यान्मरीचान्येकविंशतिः।। घृतस्य कार्षिको होमः क्षीरस्य मधुनस्तथा । शुक्तिमात्राहुतिर्दध्नः प्रसृतिः पायसस्य च ।। खण्डत्रयं तु मूलानां फलानां स्व-प्रमाणतः ।। ग्रासमात्रं तु होतव्या इतरेषां च तण्डुलाः ।। अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता अभावे व्रीहयः स्मृताः ।। तदभावे च गोधूमा न तु खण्डिततण्डुलाः ।। येषां केषां-चिदन्येषां द्रव्याणामप्यसम्भवे ।। सर्वत्राज्यमुमादेयं भरद्वाजमुनेर्मतात् ।। सर्व-प्रमाणमाहुत्या पञ्चाङ्गुलगृहीतया ।। इति ।। संपूर्णानि च सर्वत्र सूक्ष्माणि पञ्च

---

* मेदिनी आदि कोशकारोंने चार कुडव (पाव) की एक प्रस्थ (१ सेर) तथा ४ प्रस्थका एक आढक एवम् आठ आढकका एक द्रोण माना है इस तरह ३२ प्रस्थका एक द्रोण हो जाता है पर आढकके परि-माणमें कोशकार और पराशरजीका अन्तर रह ही जाता है । पहले समयमें यह तोल प्रचलित थी जब कि भारत की मातृभाषा संस्कृत थी पर इस समयमें तो सेर मन आदिका ही सर्वत्र व्यवहार है ।

पंच च ।। इक्षूणां पर्वकं मानं लतानामङ्गुलद्वयम् ।। चन्द्रचन्द्रनकाश्मीरकस्तूरी-यक्षकर्दमान् ।। कलायसंमितानेतान् गुग्गुलुं बदरास्थिवत् ।। द्रवः स्रुवेण होतव्यः पाणिना कठिनं हविः ।। स्रुवपूर्णा द्रवाः प्रोक्ताः कठिना ग्रासमात्रकाः ।। व्रीहयो यवगोधूमप्रियङ्गुतिलशालयः ।। स्वरूपेणैव होतव्या इतरेषां च तण्डुलाः ।।

होम द्रव्यमान–सिद्धान्त शेखरमें कहा है कि, एक कर्ष आज्य हो तथा मधु और दूधभी उसीके बराबर हों, चावल शुक्ति भर तथा खीर प्रसृतिके बराबर लेनी चाहिये । जितने भी भक्ष्य हैं वे सब कर्षमात्र लेने चाहिये, खील मुट्ठीभर होनी चाहिये । ग्रासके बराबर अन्न तथा आधे ग्रासके बराबर शाक होना चाहिये, मूलका तीसरा और कन्दका आठवां हिस्सा एवम् ईख पोरुएके बराबर एवम् दो अंगुल लता तथा प्रादेश मात्रकी समिध और व्रीहियोंकी अंजलि, तिल और सत्तुकण आदिकोंको मृगीमुद्राके बराबर लेना चाहिये । पुष्प और फलकी जहां जैसी आहुति लिखी हो वहां वैसी होनी चाहिये । चंद्र, श्रीखण्ड, कस्तूरी, कुंकुम, अगुरु, कर्दम ये चनेके बराबर तथा गूगल बेरके बराबर होना चाहिये । हरिमन्थ चनाको कहते हैं, वेदके जानने वालोंने आहुतियोंका यह मान कहा है । मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठको मिलाकर किसी वस्तुके उठानेमें मृगीमुद्रा होजाती है, यह होममें सब फलोंको देनेवाली है । मानान्तर–शारदातिलककी पदार्थादर्श टीकामें लिखा हुआ है कि, कर्षके बराबर घृत तथा शुक्तिके बराबर दूध तथा शुक्तिमात्र ही पंचगव्य लेना चाहिये ऐसा श्रेष्ठ पुरुषोंका मत है । दूध और मधु भी शुक्तिमात्र ही लेना चाहिये, दूधका अन्न ग्रासके बराबर लेना चाहिये । प्रसृतिके बराबर दही एवम् खील, पृथुक और सक्तु मुष्टिके बराबर लेने चाहिये । गुड़ और शर्करा आधे पल होने चाहिये । आधे ग्रासके बराबर अन्न और पोरुएके बराबर ईख होनी चाहिये । पत्ता या फूल एक होना चाहिये ऐसे ही धूपकी भी कल्पना होनी चाहिये । विजोरेके चार टुकडे तथा कटहरके १०, नारियलके ८, केलाकी गिरहके चार, बेलके तीन और कैथके दो टुकडे करना चाहिये । व्रीहि, मूंग, उड़द और जौ मुट्ठीभर आधी मुट्ठी तंदुल और कोद्रव एक मुट्ठी होने चाहिये, २१ मिरच, एक शुक्तिभर नमक, घी दूध और सहत एक कर्षभर हवनमें आने चाहियें । दहीकी शुक्तिभर आहुति तथा खीरकी प्रसृतिभर होनी चाहिये । मूलके तीन टुकडे तथा फलोंके प्रमाणके अनुसार टुकडे हो जाने चाहिये । दूसरी चीजें तथा तन्दुल ग्रासके बराबर होने चाहिये । सावित चावलोंको अक्षत कहते हैं, इन अक्षतोंके अभावमें यव, तथा यवोंके अभावमें व्रीहि लेने चाहिये । यदि व्रीहि भी न हों तो गेहूं लेलेना चाहिये पर टूटे अक्षत (चावल) कभी न लेने चाहिये । भारद्वाज-मुनि का तो यह मत है कि, जिस किसी भी द्रव्यका अभाव हो उसके बदलेमें सब जगह घी वर्तलेना चाहिये, सब जगह पांच पांच सूक्ष्म तत्त्व होते हैं इस कारण चारो अंगुरियां और अंगूठाको मिलाकर आहुति देनी चाहिये एक पोरुवेके बराबर ईख, दो अंगुलोंके बराबर लता तथा चंद्र, चंदन, केशर, कस्तूरी और यक्षकर्दम ये मटरके बराबर तथा गूगलको बेरके बराबर लेना चाहिये । द्रव द्रव्यका स्रुवसे तथा कठिन हव्य द्रव्यका हाथसे हवन करना चाहिये । स्रुवा भरकर द्रवद्रव्य तथा कठिन द्रव्य ग्रासके बराबर लेने चाहिये । व्रीहि, यव, गोधूम, प्रियंगु, तिल, शाली, ये जैसेके तैसे ही हव्यके रूपमें लेने चाहिये, इनके प्रतिनिधि नहीं हुआ करते पर दूसरोंके बदलेमें तंदुल आते हैं ।

अथ ऋत्विग्वरणम्

हेमाद्रौ पाद्मे––बालाग्निहोत्रिणं विप्रं सुरूपं च गुणान्वितम् ।। सपत्नीकं च संपूज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।। पुरोहितं मुख्यतमं कृत्वान्यांश्च तथर्त्विजः ।। चतुर्विंशद्गुणोपेतान् सपत्नीकान्निमंत्रितान् ।। अहताम्बरसंछन्नान् स्रग्विणः शुचिभूषितान् ।। आचार्यादेर्भूषणानि ।। अङ्गुलीयकानि (च) तथा कर्णवेष्टान् प्रदापयेत् ।। तत्रैव लैङ्गे–वस्त्रयुग्मं तथोष्णीषे कुण्डले कण्ठभूषणम् ।। अङ्गुली-

भूषणं चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ।। एतानि चैव सर्वाणि प्रारम्भे धर्मकर्मणाम् ।। पुरोहिताय दत्त्वाथ ऋत्विग्भ्यः संप्रदापयेत् ।। पूर्वोक्तं भूषणं सर्वं सोष्णीषं वस्त्रसंयुतम् ।। दद्यादेतत्प्रयोक्तृभ्य आच्छादनपटं तथा ।। व्रताङ्गमधुपर्कमाह विश्वामित्रः—संपूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्मकारयेत् ।। अपूज्य कारयन् कर्म किल्बिषेणैव युज्यते ।। ऋत्विजां संख्यामाह ।। तत्रैव मात्स्ये—हेमालङ्कारिणः कार्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः ।। येच्च समं सर्वानाचार्ये द्विगुणं भवेत् ।। दक्षिणया तोषयेदित्यर्थः ।।

ऋत्विक् संवरण—हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन कहा है कि—अनेक सद्गुणोंसे युक्त परम सुन्दर छोटी उम्रके अग्निहोत्र करनेवाले सपत्नीक विद्वान् ब्राह्मणकी भली भांति पूजा कर फिर अनेक तरहके आभूषणोंसे अलंकृत करके मुख्य पुरोहित बनावे, पीछे दूसरे ऋत्विजोंका वरण करे । वे ब्राह्मण भी सपत्नीक तथा चौबीस गुणोंसे युक्त, अहतवस्त्र (अहत वस्त्रका लक्षण—"अहतं यन्त्रनिर्मुक्तमुक्तं वासः स्वयम्भुवा । तच्छस्तं माङ्गलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ।" स्वयंभूने कहा है कि कोरे वस्त्रको अहत वस्त्र कहते हैं वही माङ्गलिक कार्य्योंमें श्रेष्ठ नियतसमयको है) और माला पहिने हुए एवम् अनेक प्रकारके पवित्र भूषणोंसे विभूषित हुए हो उन्हें अपनी ओरसे छाप, छल्ले और कुंडल देने चाहिये । वहां ही लिंग पुराणका वचन रखा है कि जिन ब्राह्मणोंका वरण किया हो उनमें सबसे पहिले पुरोहितको दो वस्त्र, पाग, कानोंके दो कुण्डल, कंठका भूषण, अंगुलियोंके भूषण, मणि बन्धका भूषण और आच्छादन पट, सब कार्मोंके प्रारंभमें ही देना चाहिये । पीछे अन्य ऋत्विजोंको भी ये ही सब चीजें देनी चाहियें । व्रतांग मधुपर्कविश्वामित्रजीने कहा है कि मधुपर्कसे ऋत्विजोंकी पूजा करनेके पीछे उनसे कर्म कराना चाहिये, विना पूजे कर्म करानेसे करानेवालेको पाप लगता है । ऋषित्विजोंकी संख्या—हेमाद्रिमें ही मत्स्यपुराणसे लिखी है कि, सोनेके अलंकार पहिने हुए पच्चीस ऋत्विज वरण करने चाहियें । उन सबको बराबर और आचार्य्यको इनसे दूना प्रसन्न करना चाहिये । ग्रन्थकार कहते हैं कि, द्विगुणं तोषयेत् का मतलब है कि दूनी दक्षिणासे तुष्ट करें ।

अथ सर्वतोभद्रमण्डलम्

हेमाद्रौ स्कान्दे—प्रागुदीच्यायता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिम् ।। खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणे श्रृङ्खला पञ्चभिः पदैः ।। एकादशपदा बल्लीभद्रं तु नवभिः पदैः चतुर्विंशत्पदा वापी विंशत्या परिधिः पदैः ।। मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम् ।। श्वेतेन्दुः श्रृङ्खलाः कृष्णा वल्लीर्नीलेन पूरयेत् ।। भद्रं रक्तं सिता वापी परिधिः पीतवर्णकः ।। बाह्यान्तरदलाः श्वेताः कर्णिका पीतवर्णिका ।। परिध्या वेष्ठितं पद्मं बाह्ये सत्त्वं रजस्तमः ।। तन्मध्ये स्थापयेद्देवान्ब्रह्माद्यांश्चसुरेश्वरान् ।। इति सर्वतोभद्रपीठम् ।।

सर्वतोभद्र मण्डल*—हेमाद्रिमें स्कान्दपुराणसे कहा गया है कि, पूरबसे और उत्तरसे लंबी लंबी उन्नीस उन्नीस रेखाएँ बनानी चाहियें. भद्रके चारों कोनोंमें खण्ड चन्द्रमाका त्रिपदाकार तथा उसके आगे चारों ओर पांच पदोंसे शृंखला बनावे, एकादश पदोंसे बल्ली तथा नौ पदोंसे भद्र-बनाना चाहिये । चौबीस पदोंसे वापी तथा

---

* बृहज्ज्योतिषार्णवके छठे स्कन्धके सत्रहवे अध्यायमें अनेक तरह के भद्र बताये हैं तथा यह श्री वेंकटेश्वर प्रेसमें भद्रोंके चित्रोंके साथ प्रकाशित भी हो गया है । जिस किन्हीं महाशयोंको भद्रोंके विषयकी विशेष जिज्ञासा हो उन्हें देखलेना चाहिये ।

२० पदोंकी परिधि होनी चाहिये, बीचमें सोलह कोष्ठोंसे अष्टदल कमल बनाना चाहिये । उन्नीस उन्नीस आडी सीधी लकीरोंके बनेहुए इन कोठोंमें रंग भरनेसे खण्ड चन्द्रमा आदि बन जाते हैं । सो कैसे बनते हैं ? इसीपर लिखते हैं कि, चन्द्रमामें श्वेत तथा शृंखलाओंमें काला, सब वल्लिओंमें नीला रंग भरना चाहिये । भद्रमें लाल, वापीमें श्वेत, परिधिमें पीला, दलोंमें सफेद और कर्णिकाके कोष्ठकोंमें पीला रंग भरना चाहिये । मध्य कमलको परिधिसे परिवेष्टित करके बाहिर सत्व-रज-तम समझने चाहिये । इसके मंडलमें ब्रह्मादि देवोंकी स्थापना करके उनका वैध पूजन करना चाहिये ।

अथ लिंगतोभद्रम्

चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः ।। कोणेषु शृङ्खलाः पञ्च पदा वल्ल्यस्तु पार्श्वतः ।। पदैर्नवभिरालेख्याश्चतुर्भिर्लघुशृङ्खलाः ।। लघुवल्ल्याः पदैः षड्भिस्ततोऽष्टादशभिः पदैः ।। कृत्वा लिङ्गानि वाप्यः स्युस्त्रयोदशभिरन्तराः ।। ततो वीथीद्वयेनैव पीठं कुर्याद्विचक्षणः ।। तस्य पादाः पञ्चपदा द्वाराण्यपि तथैव च ।। एकाशीतिपदं मध्ये पद्मं स्वस्तिकमुच्यते ।। कोणेषु शृङ्खलाः कार्याः पदैस्त्रिभिस्ततः परम् ।। पदैश्चतुर्भिर्दिक्षु स्युर्भद्राण्येषां समन्ततः ।। एकादशपदा वल्ल्यो मध्येऽष्टदलमालिखेत् ।। पद्मं नवपदं ह्येव लिङ्गतोभद्रमुच्यते ।। शृङ्खलाः कृष्णवर्णेन वल्लीर्नीलेन पूरयेत् ।। रक्तेन शृङ्खला लघ्वीर्वल्लीः पीतेन पूरयेत् ।। लिङ्गानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्यथवापिकाः ।। पीठं सपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ।। मध्ये स्युः शृंखला रक्ता वल्लीर्नीलेन पूरयेत् ।। भद्राणि पीतवर्णानि पीता पङ्कजकर्णिका ।। दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् ।। तिस्रो रेखा बहिः कार्याः सितरक्तसीताः क्रमात् ।।

लिंगतोभद्र—पूरबसे और दक्षिणसे लम्बी लम्बी चौवीस चौवीस रेखाएँ खींचनी चाहिये । कोनोंमें पांच पदकी शृंखला बनानी चाहिये, पार्श्वमें नौ पदोंसे वल्ली बनानी चाहिये । चारपदोंसे छोटी शृंखला बनानी चाहिये, छः पदोंसे लघुवल्ली बनानी चाहिये, फिर अठारह पदोंसे लिंग बनाना चाहिये, उसके भीतर तेरह पदोंसे वापी बनाना चाहिये, दो वीथियोंसे पीठकी रचना होनी चाहिये । इसके पाद और द्वार पंचपदके होते हैं । मध्यमें इक्यासी पदोंका पद्म होता है जिसे स्वस्तिक भी कहते हैं । इसके बाद कोनोंमें तीन पदकी शृंखला करनी चाहिये । सब दिशाओंमें चार चार पदोंके भद्र होते हैं, ग्यारह पदोंकी वल्ली होती है । उसके बीचमें अष्टदल कमल होता है, इस प्रकार नौपद पद्मका लिंगतोभद्र होता है, शृंखला कृष्णवर्णसे, वल्ली नीलसे, लघु शृंखला लालसे वल्ली पीलेसे, कृष्णसे लिंग और श्वेतसेभी वापी तथा श्वेतसे पादपीठ और पीतसे द्वारको भरना चाहिये । मध्यमें शृंखला लाल हो और वल्लीको नीलेसे भरना चाहिये, भद्र पीत वर्णके और कमलकी कर्णिकामें पीला रंग तथा दलोंमें श्वेत अथवा चितकवरा भरना चाहिये । बाहिर तीन रेखा होनी चाहिये, उनमें क्रमसे सफेद लाल और काला भरना चाहिये ।

अथ मण्डलदेवताः

लैङ्गे—रेखास्त्वष्टादश प्रोक्ताश्चतुर्लिङ्गसमुद्भवे ।। कोणेस्त्रिपदैः श्वेतस्त्रिपदैः कृष्णशृंखलाः ।। वल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् ।। भद्रपार्श्व महारुद्रं कृष्णमष्टादशैः पदैः ।। शिवस्य पार्श्वतो वापीं कुर्यात्पीतं पदत्रयम् ।।

लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशति रक्तवर्णकाः ।। परिधिः पीतवर्षैस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः ।। पदैस्तु नवभिः पश्चाद्रक्तं पद्मं सकर्णिकम् ।।

चतुर्लिंगतोभद्र–चतुर्लिंगभद्रमें पूर्वकी तरह अठारह २ रेखायें होती हैं उनके कोणोंमें सफेद रंगका तीन पदका चन्द्रमा बनावे, काले रंगसे त्रिपदकी बनी श्रृंखलाको भरना चाहिये, सप्त पदकी वल्ली नीले रंगसे भरना एवम् चार पदका भद्र लाल रंगसे भरना चाहिये । अठारहपदोंके भद्रपार्श्वमें कृष्णमहारुद्र तथा उनके पार्श्वमें पांच पदकी वापी बनानी चाहिये । जिसमें श्वेत रंग भरना चाहिये भद्र और वापीके बीचका पाद पीले रंगका होना चाहिये तथा श्रृंखलाके शिरेके तीन पादभी पीले रंगके होने चाहिये । लिंगोंके स्कन्धमें आये हुए बीस कोष्ठ लाल रंगके होने चाहिये, सोलह पदोंकी परिधि पीले रंगकी होनी चाहिये । पीछे नौ पदोंसे कर्णिका सहित लाल रंगका कमल बनाना चाहिये ।

अथ द्वादशलिंगोद्भवम्

तत्रैव–––प्रागुदीच्यायता रेखाः षट्त्रिंशद्धि प्रकल्पयेत् । पदानि द्वादशशतं पञ्चविंशतिरेव च ।। खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणे श्रृंखलाः षट्पदैः स्मृताः ।। त्रयोदशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः ।। त्रयोदशपदा वापी लिङ्गमष्टादश स्मृतम् ।। लिङ्गत्रयस्य पंक्तौ तु शोभाकोष्ठाश्चतुर्दश ।। तेषामुपरि पंक्तौ तु कोष्ठाः सप्तदशैव तु ।। पूजापंक्तिस्तु विज्ञेया परितः परिकीर्तिता ।। पूजापंक्त्यन्तरा पंक्तौ कोष्ठा द्व्यशीतिसंख्यया ।। परिधिः स च विज्ञेयो मण्डले ह्यन्तरा द्वयोः ।। परिध्यकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् ।। विशेषश्चात्र विज्ञेयः श्रृंखला षट्पदा भवेत् ।। त्रयोदशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः ।। पञ्चविंशत्पदा वापी परिधिः षोडत्मकः ।। मध्ये नवपदं पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।। सत्त्वं रजस्तमोवर्णाः परितो मण्डलस्य तु ।। त्रयः परिधयः कार्यास्तत्र द्वाराणि कारयेत् ।। सितेन्दुः श्रृंखला कृष्णा वल्ली नीला प्रकीर्तिता । भद्रं चैवारुणं ज्ञेयं वापी स्याच्छ्वेतवर्णिका ।। लिङ्गानि कृष्णवर्णानि पार्श्वतो द्वादशैव तु ।।परिधिः पीतवर्णः स्यात्कमलं पञ्चवर्णकम् ।। इति सर्वतोभद्रलिङ्गतोभद्रादिमण्डलानि ।। अथ सर्वतोभद्रमंडलविभागः ।। उच्यते–––शिवव्रतं विना सर्वव्रतोद्यापनेषु सर्वतोभद्रमण्डलं कारयेच्छिवव्रते तु लिङ्गतोभद्रमालिखेत् ।। तत्र कारिका ।। बाहुमात्रायतां वेदीं कुर्याच्छुद्धमृदा बुधः ।। तद्वेद्यां सर्वतोभद्रं मण्डलं विलिखेत्ततः ।। शिवव्रतेषु तत्रैव लिङ्गतोभद्रमालिखेत् ।। तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्याश्च सुरेश्वरान् ।।

द्वादशलिंगोद्भव–पूरव और उत्तरसे छत्तीस छत्तीस रेखायें बनानी चाहिये । सबमें बारह सौ पच्चीस पद होंगे, कोणमें तीन पदोंका खण्ड चन्द्र, छःपदोंकी श्रृंखला, तेरह पदोंकी वल्ली एवं नौ पदोंका भद्र, तेरह पदोंकी वापी तथा अठारह पदोंका लिंग होना चाहिये । तीन लिंगोंकी पंक्तिमें–––चौदह शोभा कोष्ठ होने चाहिये उनकी ऊपरकी पांतमें सत्रह कोठोंकी पूजा पंक्ति चारों ओर होती है । पूजा पंक्ति भीतरवाली पंक्तिमें बियासी कोठोंकी परिधि होती है, यह दोनों मण्डलोंके बीचमें होती है । परिधिके भीतरके कोठोंमें सर्वतोभद्र लिखना चाहिये । इसमें विशेषता यह है कि छःपदोंकी श्रृंखला, तेरह पदकी वल्ली, नौपदका भद्र, पच्चीस पदकी परिधि होती है । बीचमें नौ पदका पद्म होता है । सतोगुणके श्वेत, रजोगुणके लाल, तथा तमोगुणके

काले रंगकी मंडलके चारों ओर परिधि बनानी चाहिये । इनमें द्वारभी बनाने चाहिये । श्वेतरंगका चन्द्रमा' कालेरंगकी शृंखला, नीलेरंगकी वल्ली बनानी चाहिये । लाल रंगका भद्र तथा श्वेतवर्णकी वापी बनानी चाहिये । बगलमें कृष्णवर्णके बारह लिंग बनाने चाहिये । पीतवर्णकी परिधि होनी चाहिये, पचरंग कमल बनाना चाहिये । भद्र मंडलोंका समय विभाग–सारे व्रतोंके उद्यापनोंमें सर्वतोभद्र मण्डल बनाना चाहिये । पर शिवव्रतोंके उद्यापनोंमें लिंगतोभद्र लिखना चाहिये, इस विषयमें यह कारिका प्रमाण है कि, विद्वान्को बाहुके बराबर लम्बी शुद्ध मिट्टीकी वेदी बनानी चाहिये उस वेदीपर सर्वतोभद्र मंडल लिखना चाहिये और शिवव्रतोंमें लिंगतो भद्र मंडल बनाना चाहिये, उसके बीचमें ब्रह्मादिक देवता तथा इन्द्रादि देवोंको स्थापित करना चाहिये ।

अथ मण्डलदेवता

तन्मध्ये ब्रह्माणम् ।। ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ।। मध्ये ब्रह्मावाहने विनियोगः ।। ॐ ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः ।। सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्चयोनि मसतश्च विवः ।। भो ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ पूजां गृहाण मम संमुखः सुप्रसन्नो वरदो भव ।। इत्येवं प्रकारेण सर्वदेवतानामावाहनं ज्ञेयम् ।। तत् उदीचीमारभ्य वायवीपर्यन्तं सोमादयो वाय्वन्ता अष्टौ लोकपालाः स्थापनीयाः ।।१।। तत्र आप्यायस्व राहूगणो गौतमः सोमो गायत्री ।। सोमावाहने विनियोगाः ।। ओम् आप्यायस्व समेतु ने विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।। भवा वाजस्य संगथे ।।२।। अभि त्वाऽजीगर्तिः शुनः शेप ईशानो गायत्री ।। ऐशान्यामीशानावाहने वि० ।। ओम् अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् ।। सदावन्भागमीमहे ।।३।। इंद्र वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री ।। पूर्वे इन्द्रावा०।। ओंइन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।। आस्माकमस्तु केवलः ।।४।। अग्नि दूतं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री आग्नेय्यामग्न्यावा० ।। ओम् अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।।५।। यमाय सोमं वैवस्ततो यमोऽनुष्टुप् ।। दक्षिणे यमावा० ।। ओम् यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरं कृतः ।।६।। मोषुणो घोरः काण्वो निर्ऋतिर्गायत्री ।। नैर्ऋत्यां निर्ऋत्यावा० ।। ओम् मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् ।। पदीष्ट तृष्णया सह ।।७।। तत्त्वायामि शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप् ।। पश्चिमे वरुणावा० ।। ओम् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ।।८।। वायो शतं वामदेवो वायुरनुष्टुप् वायव्यां वाय्वावाहने विनि० ।। वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् । उत वा ते सहस्रिणोरथ आयातु पाजसा ।।९।। वायेसोमयोर्मध्ये अष्टौ वसवः ।। ज्मया अत्र मैत्रावरुणो वसवस्त्रिष्टुप् ।। वायुसोम योर्मध्ये वस्वावाहने वि० ।। ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।। अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं

श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ।।१०।। आरुद्रासः श्यावाश्च एका दश रुद्रा जगती ।। सोमेशानयोर्मध्ये एकादशरुद्रावा० ।। ओम् आरुद्रास इन्द्रावन्त सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।। इरं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजेन दिव उत्सा उदन्यवे ।। ११।। त्यां नु मत्स्यः सांमदो द्वादशादित्या गायत्री ।। ईशानेन्द्रयोर्मध्ये द्वादशादित्यावा० ।। ओम् त्यां नु क्षत्रियां अव आदित्यान्याचिषामहे ।। सुमृलीकाँ अभिष्टये ।।१२।। अश्विनावर्ति राहूगणो गौतमोऽश्विनावुष्णिक् ।। इन्द्राग्न्योर्मध्ये अश्व्यावा० ।। ओम् अश्विनावर्तिरस्मदा गोमद्दस्राहिरण्यवत् ।। अर्वाग्रंथ समवसा नियच्छतम् ।।१३।। ओमासो मधुच्छन्दा विश्वेदेवा गायत्री ।। अग्नि यमयोर्मध्ये विश्वेदेवावा० ।। ओम् ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आगत ।। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ।।१४।। अभि त्यं देवं गोतमो वामदेवः सप्तयक्षा अष्टी ।। यमनिर्ऋत्योर्मध्ये सप्तयक्षावा० ।। ओम् अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् ।। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सविमति हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः ।।१५।। आयंगौ सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री ।। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये सर्पावा० ।। ओम् पृश्निरक्रमी दसदन्मातरं पुरः ।। पितरं च प्रयन्त्स्वः ।।१६।। अप्सरसामेतश ऋष्यश्रृङ्गो गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्टुप् ।। वरुणवाय्वोर्मध्ये गन्धर्वाप्सरसामान० ।। ओम् अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।। केशी केतस्य विद्वान्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ।।१७।। यदक्रंद औचथ्यो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ।। ब्रह्मसोमयोर्मध्ये स्कवदावा० ।। ओम् यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।। श्येनस्य पक्ष हरिणस्य बाहूः उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ।।१८।। तत्रैव ऋषभम् । ऋषभं मां वैराजो नन्दीश्वरोऽनुष्टुप् ।। ब्रह्मसोमयोर्मध्ये नन्दीश्वरावा० ।। ओम् ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।। हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपति गवान् ।। १९।। कद्रुद्राय कोरः काण्वःशूलो गायत्री ।। तत्रैव शुलावा० ।। ओम् कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढ्हुष्टमाय नव्यसे ।। वोचेम शंतमं हृद्रे ।।२०।। कुमारं कुमारो महाकालस्त्रिष्टुप् ।। तत्रैव महाकालावा० ।। ओम् कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।। अनीकमस्य नमिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहतम रतो ।। २१ ।। अतितिर्लोक्यो बृहस्पति र्दक्षोऽनुष्टुप् ।। ब्रह्मेशानयोर्मध्ये दशादिसप्तगणावा० ।। अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।। तान्देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ।। २२ ।। तामग्निवर्णां सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् ।। ब्रह्मेन्द्रयोर्मध्ये दुर्गा० ।। ओम् तामग्निवर्णाम् तपसा ज्वलन्तीम् वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।। दुर्गाम् देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसितरसे नमः ।।२३।। इदं विष्णुः काण्वो मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ।। ब्रह्मेन्द्रयो-

मध्ये विष्णवावा० ।। ओम् इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।। समूलहमस्य पांसुरे ।।२४:।। उदीरतां शंखः स्वधा त्रिष्टुप् । ब्रह्माग्न्योर्ममध्ये स्वधावा० ।। ओम् उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सौम्यासः ।। असुं य ईयुर वृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु तिरो हवेषु ।।२५।। परं मृत्योः सकुंसुको मृत्युरोगास्त्रिष्टुप् । ब्रह्मयमयोर्मध्ये मृत्युरोगावा० ।। परं मृत्यो अनु परेहि पाथाँ यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।। चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ।।२६। गणानां त्वा शौनको गृत्समदो गणपतिर्जगती ।। ब्रह्मनिर्ऋत्योर्मध्ये गणपत्यावा० ।। ओम् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ।।२७।। शन्नोदेवीराम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री ।। ब्रह्मवरुणयोर्मध्ये अबावा० ।। ओम् शं नो देवीर-भिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः।।२८।।ॐमरुतो यस्य राहूगणो गौतमो मरुतो गायत्री ।। ब्रह्मवाय्वोर्मध्ये मरुदावा० ।। ओम् मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः स सुगोपातमोजनः ।।२९।। स्योनापृथिवी काण्वो मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री ।। ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः पृथिव्यावा० ।। ओम् स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।। यच्छा नः शर्म सप्रथः ।।३०।। इमं मे गङ्गे सिंधुक्षित्प्रैमेधो गंगादिनद्यो जगती ।। तत्रैव अंगादिनद्यावा० ।। ओम् इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणु ह्या सुषोमया ।।३१।। धाम्नो गौतमो वामदेवः सप्त सागरा अष्टी ।। तत्रैव सप्तसागरावा० ।। ओम् धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च ।। यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण मो मुञ्च ।। मयि वापोमोषधीर्हि सरितो विश्वव्यचाभूस्त्वेतो वरुणो मुञ्च ।।३२।। तदुपरि मेरुं नाममंत्रेण पूजयेत् ।। मेरवे नमः ।। मेरुमावा० ।। ततो मण्डलाद्बहिः सोमादिस-न्निभौ तत्क्रमेणा युधान्यावाहयेत् ।। सोमसमीपे पाशम् ।। ईशानसमीपे फलम् ।। इन्द्रसमीपे वज्रम् ।। अग्निसमीपे शक्तिम् ।। यमसमीपे दण्डम् ।। निर्ऋतिसमीपे खड्गम् ।। वरुणसमीपे पाशम् ।। वायुसमीपे अङ्कुशम् ।।८।। तद्बाह्ये उत्तरे गौतमाय नमः गौतममा० । एवमैशान्यां भरद्वाजम् ।। पूर्वे विश्वामित्रम् ।। आग्नेयां कश्य-पम् ।। दक्षिणे जमदग्निम् ।। नैऋत्यां वसिष्ठम् ।। पश्चिमे अत्रिम् ।। वायव्या-मरुन्धतीम् ।। तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण ऐन्द्रीं० कौमारीं० ब्राह्मीं० वाराहीं० चामुण्डां० वैष्णवीं० माहेश्वरीं० वैनायकीमावाहयामि इत्यष्टौ शक्तिः प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सह वा पूजयेत् ।। इति मण्डलदेवताः ।।

मण्डल देवता–सबसे पहिले मण्डलके मध्यमें ब्रह्माजीको स्थापित करना चाहिये, "ब्रह्म जज्ञानम्" इस मंत्रका गौतम वामदेव ऋषि है। ब्रह्मादेवता है त्रिष्टुप् छन्द है मध्यमें ब्रह्माके आवाहनमें इसका विनियोग होता है। जिस वाक्यके अन्तमें विनियोग आवे वहां सीधे हाथमें पानी लेकर विनियोगान्त पद समुदायको बोलकर पानी भूमिपर छोड देना चाहिये। यह सब जगह समझना चाहिये। ब्रह्म जज्ञानं प्रथमम् इस मंत्रको बोलकर ब्रह्माकी स्थापना करनी चाहिये मंत्रका अर्थ–(१) पहिले सर्व प्रथम ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे जब इन्होंने तपस्यासे भगवान्‌के दर्शन करके वेन पद पालिया उस समयमें क्रान्तदर्शी होगये, पीछे उन्होंने नियमित रूपसे सुन्दर प्रकाश शील देवता रचे तथा जो वस्तु हम देख रहे हैं एवम् हमारे जो दृष्टि गोचर नहीं हैं उन सब वस्तुओंको और उनके कारणोंका उसीने विस्तार किया था। ऊपरके भी लोक इसीने रच्चे हैं, इसकी बराबरीका कोई नहीं है॥ हे ब्रह्मन्! यहां आओ यहां बैठो, मेरी पूजाको ग्रहण करो, मेरे सन्मुख हो, भली भांति प्रसन्न होकर वरदान देनेवाले हो॥ श्रीब्रह्माजीकी तरह और भी सब देवताओंका आवाहन करना चाहिये, इसके पीछे आठों लोकपालोंको शास्त्रोक्त क्रमसे उत्तर, ईशान कोण, पूरव, वह्नि कोण, दक्षिणा नैऋत्यकोण, पश्चिम, वायव्य कोण; इन आठों दिशाओंमें स्थापित कर देना चाहिये "आप्यायस्व" इस मंत्रका राहूगण गौतम ऋषि है, सोम देवता है, गायत्री छन्द है, उत्तरमें सोमको आवाहनमें इस मंत्रका विनियोग किया है. (२) मंत्रार्थ–हे सोम। हमें बढ़ाओ आप भी बढो, आपका जो अनेक कामनाओंका देनेवाला भाव है वो सब ओरसे प्राप्त हो, हमें अन्नके साथ संगम करानेके लिये यहां प्रतिष्ठित हो जाओ! चाहे कहीं इसका कुछ अर्थ किया गया हो पर यहां इसका अर्थ चन्द्रमाके पक्षमें होना चाहिये जिसके कि उत्तर स्थापनमें इसका प्रयोग किया जा रहा है॥ इसके बाद वही पूर्वकी विधि होती है कि हे सोम यहां आओ, यहां बैठो, पूजा ग्रहण करो, हमारे सामने होवो और प्रसन्न हो वर दो। यही बात हर एक देवताके विषयमें समझनी चाहिये। "अभित्वा" इत्यादि जो मंत्र है, इसका अजीगर्तका लडका शुनःशेप ऋषि है, ईशान देवता है, गायत्री छन्द है, ईशान कोणमें ईशके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (३) हे सबके सविता-उत्पादन करनेवाले देव तुम वरोंके ईशानको तुम्हारा भाग देते हो, आप हमारी सदा रक्षा करें॥"इन्द्रंवो"इस मंत्रके मधुच्छन्दा ऋषि हैं, इन्द्र देवता है, गायत्री छन्द है, पूर्वमें इन्द्रके आवाहनमें इनका विनियोग होता है (४) हमारे लिये इन्द्र ही सर्व जनोंसे बडा है, हम इन्द्रको ही बुलाते हैं, वो हमारे लिये केवल हों॥ "अग्निदूतं" इस मंत्रका काण्व मेधातिथि ऋषि है, अग्नि देवता है, गायत्री छन्द है, अग्नि कोणमें अग्निके आवाहन करनेमें इसका विनियोग करते हैं, (५) सबको जाननेवाले अथवा अखिल धनवाले देवदूत तथा सब देवताओं बुलानेवाले अग्नि देवको जो कि हमारे इस यज्ञके अच्छे करनेवाले हैं, उन्हें हम वरण करते हैं॥ "यमाय सोमम्" इस मंत्रका वैवस्तव यम देवता है, तथा वही ऋषि भी है, अनुष्टुप् छन्द है, दक्षिण दिशामें यमके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (६) यमके लिये सोमका हवन करो, यमके लिये हविका हवन करो, क्यों कि परितृप्त अग्नि, अलंकृत होकर उन्हें बुलाने चल दिया है॥ "मोषुणो" इस मंत्रका घोरका पुत्र काण्व ऋषि है, निर्ऋति देवता है, गायत्री छन्द है, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिके आवाहनमें इसका विनियोग होता है॥ (७) दुर्हणा निर्ऋति अपने तृष्णाके साथ हमसे सदा दूर रहें, हमें कभी न मारे, यहां अपनी जगह बैठ जाय॥ "तत्त्वायामि" इस मंत्रका शुनःशेप ऋषि है, वरुण देवता है त्रिष्टुप् छन्द है, पश्चिममें वरुणके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (८) यजमान हवि आदि पूजनके द्वारा आपसे ही सब आशाएँ किया करते हैं, मैं भी आपको यहां आवाहन करनेके लिये तथा अपनी रक्षाके लिये प्राप्त हुआ हूं, हे वरुण देव! आप शान्त चित्तसे मेरी प्रार्थनाएँ सुनिये॥ मेरी आयुको नष्ट मत कीजिये यानी मेरी आयुको बढाइये॥ "ओम् वायो शतम्" इस मंत्रका वामदेव ऋषि है वायु देवता है, अनुष्टुप् छन्द है, वायव्यमें वायुके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (९) मैं आपको यहां पूजनादिके लिये बुला रहा हूं, हे वायो! आप अपने पले पलाये हजार घोडोंको रथमें जोडदो, आपको लिये हुए अनेकों घोडोंका जुता जुताया रथ वेगके साथ यहां आजाय। वायु और सोम दोनोंके मध्यमें अष्टावसु स्थापित करने चाहिये।।"ज्मया अत्र" इस मंत्रके मैत्रावरुणऋषि हैं, अनुषिष्टुप् छन्द है, वसुदेवता हैं, वायु और सोमके बीचमें वसुओंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है(१०)

यह आपके विराजनेकी जगह है । हे भूमिपर विचरनेवाले वसु देवो ! यहां रमण करो । हे सुंदरो ! इस विस्तृत अन्तरिक्षमें आप विचरते हो । आपने हमारे भेजे दूतका बुलावा सुन लिया है, आनेकी इच्छासे वेगके साथ चलनेवाले आप, सामनेके रास्तेको तय करके आजाओ । "आरुद्रासः" इस मंत्रका श्यावाश्व ऋषि है, ग्यारह रुद्र देवता हैं, जगती छन्द है, सोम और ईशानके बीचमें एकादश रुद्रोंके आवाहनमें इसका विनियोग होत है (११) इन्द्रवाले परस्पर प्रेम रखनेवाले, सोनेके रथवाले ग्यारहों रुद्र इस मेरे यज्ञमें आजाओ, यह मेरी स्तुति आपको चाहती है, जैसे कि, पानी चाहनेवाले गौतमके लिये आपने मेघ भेजे थे उसी तरह हमें भी अभिमत दें ।। "त्यांनु क्षत्रियान्" इस मंत्रका मत्स्य सांमद ऋषि है, द्वादश आदित्य देवता हैं, गायत्री छन्द है, उनके आवाहनमें इनका विनियोग होता है (१२) सुख देनेवाले पतनसे रक्षा करनेवाले जो आदित्य हैं उन आदित्योंको याचता हूं कि वो मेरी रक्षाकरें तथा यहाँ आकर मेरी प्रार्थना सुनें मेरी मनोकामनाको पूरा करें । "अश्विनार्वति", इस मंत्रके राहुगण गौतम ऋषि हैं । अश्विनी देवता हैं, उष्णिक् छन्द है, इन्द्र और अग्निके बीचमें उनके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (१३) हे एक मनवाले देखने योग्य अश्विनी कुमारो ! सोनेके झिलमिलाहट करनेवाले रथको सामने ले आओ ।। "ओमास" इस मंत्रके मधुच्छन्दा ऋषि हैं, अग्नि और यमके बीचमें विश्वेदेवाओंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (१४) हे विश्वे देवाओ ! तुम सबके रक्षक हो मनुष्योंके धारण करनेवाले हो आप यजमानोंको पुत्र दिया करते हो संकल्प करके देनेवाले यजमानके सेवन किये हुए सोमको पीनेके लिये यहां आओ और अपने स्थानपरविराजमान होजाओ।। 'ओम् अभित्यं देवं' का गौतम वामदेव ऋषि है, सप्त यक्ष देवता हैं, अष्ट छन्द है, यम और नैर्ऋत्यके बीचमें सात यक्षोंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (१५)में उस सामनेवाले सूर्यका पूजन करता हूं । इसमें क्रान्त दर्शित्व आदि अनेक गुण हैं, जिसकी कि मति प्रकाश शील है वो मेरे मनोरथोंका पूरा करे ।। "आयं गौ" इस मंत्रकी सार्पराज्ञी ऋषिका है, सर्प देवता हैं,गायत्री छन्द है, निर्ऋति और वरुणके बीचमें सर्प देवताके आवाहनमें विनियोग होता है (१६) जो कि अपनी शीघ्र गतिसे जमीनमें घुसकर बैठ जाते तथा आसमानमें अव्याहत चले जाते हैं ऐसे अनेक तरहके सर्प देव मेरे सामने अपने स्थानपर पूजाके लिये विराजमान हो जाओ ।। "अप्सरसां गन्धर्वाणाम्" इस मंत्रके ऋष्यश्रृंग ऋषि हैं, गंधर्व और अप्सरा देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, वरुण और वायुके मध्यमें गन्धर्व और अप्सराओंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है । (१७) अप्सरा और गंधर्वोंके विचरनेके स्थानमें विचरनेवाला अभूतपूर्वका ज्ञाता केशी सखा है, सब रसोंका आस्वाद करलेनेवाला है, अत्यंत तृप्त है वो अप्सरायें और गन्धर्वोको यहां लाकर बिठादें "ओम् यदक्रन्द" इस मन्त्रका औतथ्य दीर्घतमा ऋषि है, स्कन्द देवता तथा त्रिष्टुप् छंद है, ब्रह्मा और सोमके बीचमें स्कन्दके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (१८) हे अत्यन्त वेगवान् स्कन्द ! आपके जन्मकी सबको प्रशंसा करनी चाहिये । सबकामोंके पूरक शिवजी महाराजसे पैदा होते ही तारककों ललकारते हुए घनघोर गर्जना की थी । युद्धके समय जो तेजी वाजके पंखोंमें होती है वो आपके हाथोंमें है । जैसे हिरण चौकडी मारता है ऐसे ही आप वैरीपर झपटते थे ।। "ऋषभंना" इस मन्त्रका वैराज ऋषभ ऋषि है, नंदीश्वर देवता है, अनुष्टुप् छन्द है, ब्रह्मा और सोम के बीचमें नन्दीश्वरके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (१९) हे नन्दीश्वर ! जैसे आप हैं उसी तरह मुझे भी यहां आकर बराबरवालोंमें सबसे श्रेष्ठ तथा वैरियोंका असह्य तथा मुझे मारनेकी चेष्टा करनेवालोंका मारनेवाला एवं गऊओंका बड़ा गोस्वामी बनादें ।। "कद्रुद्राय" इस मन्त्रका घोर काण्व ऋषि है, (ये शकुन्तलाके पोषकपितासे भिन्न हैं) शूल देवता है, गायत्री छन्द है, वहां ही शूलके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२०) सबके जाननेवाले; दुष्टोंको भगानेवाले, भक्तोंको सींचनेवाले पापके नाश करनेवाले अत्यन्त सुखरूप शिवके लिये हृदयसे अनेक बार कहते हैं कि यहां आइये ।। "कुमारम्" इस मंत्रका आत्रेय कुमार ऋषि है. महाकाल देवता है, त्रिष्टुप् छंद है । वहां ही महाकालके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२१) युवती माता भली भांति छिपा कर रखे हुए जिस कुमारको गुहामें धारण करती है । पिताके लिये नहीं देती जिसकी युद्धमें बढी हुई सेनाको जन सामने देखते हैं ।। "आदिति" इस मन्त्रका लोक्य बृहस्पति

ऋषि है, दक्ष देवता है, अनुष्टुप् छन्द है, ब्रह्मा और शिवके बीचमें दक्षादि सप्त गणोंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२२) हे दक्ष ! आपकी दुहिता जो अदिति उत्पन्न हुई थी उसको सम्बन्धसे ही अमृत पीनेवाले भद्रदेव आदित्य उत्पन्न हुए थे अथवा हे दक्ष ! आपकी लड़की अदितिने जो आदित्य पैदा किये उन्हींके पीछे अमृत पीनेवाले सब देव पैदा हुए हैं ।। "तामग्निवर्णाम्" इसका सौभरि ऋषि है, (यह गोत्रकार अंगिराकी परंपरामें है, आदिसूरने इनके वंशोपवंशको भी बुलाया था, इनका ऋग्वेदमें इतिहास है, ये एक विशिष्ट गौडवंशके प्रधान हैं) इस मंत्रकी दुर्गा देवता हैं, त्रिष्टुप् छन्द है, ब्रह्मा और इन्द्रके बीचमें दुर्गाके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२३) कर्म फलोंके निमित्त पूजीजाने वाली अग्निके वर्णकी तथा तपसे देदीप्यमान हुई वैरोचनी दुर्गा देवीके शरणको मैं प्राप्त हुआ हूँ, अच्छे वेगवाली देवि ! तेरे वेगके लिये नमस्कार है, आप हमें अच्छीतरह पार लगा दें ।। "इदं विष्णु" इस मन्त्रका काण्व मेधातिथि ऋषि है, विष्णु देवता है, गायत्री छन्द है, ब्रह्मा और इन्द्रके बीचमें विष्णु भगवान्‌के आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२४) इन श्री विष्णु भगवान् महाराजने वामनावतार लेकर बलिके दान लेनेके लिए तीन डँग भरे थे, तीसरा डँग धूरि धूषित बलिके शिरपर रखा था, ऐसे ये विष्णु भगवान् हैं । 'उदीरताम्' इस मन्त्रका शंख ऋषि है । स्वधा देवता है त्रिष्टुप् छन्द है पितृओंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२५) इस लोकमें परलोकमें और मध्य लोकमें जो पित्रेश्वर स्थित स्वधा तथा सोम संपादक हैं वे ऊँचेके लोगोंमें चले जायं । जो निःसपत्न सत्यके जाननेवाले हैं, जिन्होंने असुको प्राप्त कर लिया है, वे हवोंमें मेरी रक्षा करें । अथवा उत्तम मध्यम और अधम जितने भी पित्रेश्वर हैं, वे सब हमारी हविको ग्रहण कर हमसे अनुकूल रहें । जो उत्यके जाननेवाले हैं वो प्राणोंके रक्षक हों ।। "परं मृत्यो" इस मन्त्रका संकुसुक ऋषि है, मृत्यु और रोग देवता है । ब्रह्म और यमके बीचमें मृत्यु और रोग बिठानेमें इसका विनियोग होता है । (२६) हे मृत्यु और रोगो ? आपका जो रास्ता देवयान पथसे भिन्न पितृयान है, उसपर आप जायें कान और आंखोंवाले आपके लिए मैं कह रहा हूँ, आप मेरी प्रजाको और वीरोंको मारने की इच्छा मत करना ।। "गणानान्त्वा" इस मन्त्रके गृत्समद शौनक ऋषि हैं, गणपति देवता हैं, जगती छन्द हैं, ब्रह्मा और निर्ऋतिके बीचमें गणपतिके आवाहनमें इसका विनियोग है (२७) अपने गणोंके पति तथा कवियोंके कवि एवम् जिसका यश मात्रही सबकी उपमा हो सकता है । वे जो राजनेवालेमें सर्व श्रेष्ठ तथा प्रशंसनीयोंको भी प्रशंसनीय हैं । उन्हें मैं यहां बुलाता हूँ, हे ब्रह्मणस्पते हमारी प्रार्थनाको सुनते हुए रक्षाके साथ इस अपने बैठनेकी जगह आ बैठिये ।। "शन्नो देवी" इस मन्त्रके अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप ऋषि हैं, आपो देवता हैं, गायत्री छन्द है, ब्रह्मा और वरुणके बीचमें आप देवताके आवाहनमें इसका विनियोग होता है (२८) देवी आप हमारे यज्ञ, अभिषेक और पीनेके लिये सुखकारी हों तथा हमारे हुए रोगोंको शान्त करने और होनेवालोंको दूर करनेके लिये बहें ।। "मरुतो यस्य" इस मंत्रका राहूगण गौतम ऋषि है, मरुत देवता हैं, गायत्री छन्द है, ब्रह्मा और वायुके बीचमें मरुतोंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है । (२९) हे दिवके अत्यन्त तेजस्वी मरुत देवताओ ! जिस यज्ञमानके घरमें : आप सोम पीते हैं अथवा अन्यवस्तु पान करते हैं, वो जन आपसे अत्यन्त रक्षित होता है ।। "स्योना पृथिवी" इस मंत्रका काण्व मेधातिथि ऋषि है, भूमि देवता है, गायत्री छंद है, ब्रह्माके पादमूलमें कर्णिकाके नीचे पृथ्वीदेवीके आवाहन में इसका विनियोग होता है (३०) हे भूमि ! आप हमारे लिये कंटक कांकडियोंसे हीन सुविस्तृत निवेश देनेवाली सुखरूप हो जाओ और खूब आनन्ददायी हो ?? "इमें मे गंगे यमुने" इस मंत्रका प्रियमेधाका पुत्र सिन्धुक्षित् ऋषि है, गंगादि नदी देवता हैं । जगती छन्द है वहांही गंगादि नदियोंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है । (३१) हे वायुके वेगसे बढनेवाली ! गंगे यमुने ! सरस्वती मेरे स्तोत्रका भलीभांति सेवन करो, तथा हे वायुसे तरंगित होनेवाली विपाट् ! आपभी इरावती वितस्ता और सिन्धुनदके साथ सामने होकर सुनें ।। "धाम्नोधाम्न" इस मंत्रका गौतम वामदेव ऋषि है, सप्त सागर देवता हैं, अष्टी छंद है, तहांही सातों समुद्रोंके आवाहनमें इसका विनियोग होता है ।। (३२) हे राजन् वरुण ! जो जो आपकी भयकी जगह हों उन सबसे हमें छुडादो, जैसे गौ हिंसाके योग्य नहीं है उसी तरह वश पडते दूसरोंकी भी हत्या न करनी चाहिये पर हमने की है । हे वरुण ! उस पापसे भी हमें छुटा दीजिये, आपकी औषधि और पानी भी हमें कोई नुकसान

न पहुँचावे तथा व्यापक भूके भी विघ्नोंसे मुझे बचालो ।। इसके पीछे मेरुका मेरुके नाम मन्त्रसे पूजन करना चाहिये, (ओम्मेरवे नमः) मेरुके लिये नमस्कार है । मेरुका आवाहन करता हूँ । इसके पीछे मंडलसे बाहिर सोमादिके पास उनके आयुधोंकी स्थापना क्रमसे करना चाहिये । सोमके पास पाश, शिवके पास त्रिशूल, इंद्रके पास वज्र, अग्निके पास शक्ति, यमके पास दण्ड, निर्ऋतिके समीप तलवार, वरुणके पास पाश, वायुके समीप अंकुश स्थापित करना चाहिये । इसके पीछे इनके बाहिर ऋषियोंको स्थापित करना चाहिये जैसे कि देवताओंको स्थापित किया करते हैं ।उत्तरमें गौतम, ईशानमें भरद्वाज, पूर्वमें विश्वामित्र,अग्निकोणमें कश्यप, दक्षिणमें जमदग्नि, नैर्ऋत्यमें वसिष्ठ पश्चिममें अत्रि और वायव्यकोणमें अरुन्धतीको स्थापित करना चाहिये । इसके बाहिर इसी क्रमसे ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी और वैनायकी इन आठों महा शक्तियोंकी देवताओंकी तरह आवाहन प्रतिष्ठा करके चाहें तो एक एकका, चाहें सबका एक साथ पूजन करना चाहिये ।।

अथ लक्षपूजनोद्यापनविधिरुच्यते

अद्य पूर्वोच्चरितैवंगुणविशेषविशिष्टायां पुण्यतिथौ मया कृतस्याऽमुकदेवताप्रीत्यर्थमम्मुकलशपूजनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थम् तदुद्यापनं करिष्ये ।। तदंगत्वेन पञ्चवाक्यैः पुण्याहवाचनमाचार्यादिवरणं च करिष्ये ।। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थम् गणपतिपूजनं करिष्ये ।। ततो गणपतिं संपूज्य पुण्याहं वाचयेत् ।। तदित्थम्---अस्य लक्षपूजननोद्यापनकर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्वित्युक्तो ब्रुवन्तु ।। कर्म ऋध्यताम् ।। श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ।। अस्तु श्रीः ।। कल्याणं भवतो ब्रुवन्तो ब्रुवन्तु ।। अस्तु कल्याणम् ।। कर्माङ्गदेवता प्रीयताम् ।। ततो गोत्रनामोच्चारणपूर्वकममुकगोत्रोऽमुकशर्माहं यजमानोऽमुकगोत्रममुकशर्माणं स्वशाखाध्यायिनं ब्राह्मणमस्मिल्लंक्षपूजनोद्यापनाख्ये कर्मण्याचार्यं त्वां वृणे ।। आचार्यत्वेन वृतोस्मि । यथाज्ञानं कर्म करिष्यामि ।। आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः ।। तथा त्वं मम यज्ञेस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ।। इति संप्रार्थ्य गन्धादिना आचार्यपूजनं कुर्यात् ।। तथैव ब्रह्माणं वृणुयात् ।। यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा स्वर्गलोके पितामहः ।। तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ।। इतिब्रह्माणं संप्रार्थ्य ।। अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया ।। सुप्रसन्नैश्च कर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम् ।। इति सर्वानृत्विजः प्रार्थयेत् ।। आचार्यः आचम्य प्राणानायम्य यजमानेन वृतोऽहममुकं कर्म करिष्ये ।। कर्माधिकारार्थमात्मनः शुद्ध्यर्थं च पुरुषसूक्तजपमहं करिष्ये ।। पृथिवीत्यस्य मंत्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः ।। कूर्मो देवता ।। सुतलं छन्दः । आसनोपवेशने विनियोगः ।। ओम् पृथ्वि त्वया धृता लोका० ।। पुरुषसूक्तजपान्ते---यदत्र संस्थितमिति मंत्रद्वयेन सर्वतः सर्षपान्विकिरेत् ।। ततः शुचि वो हव्येत्यापोहिष्ठेति त्र्यृचेन साधितपंचगव्येन कुशैः प्रोक्षणं कार्यम् ।। ततः कृताञ्जलिः स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमिति मंत्रद्वयं पठेत् ।। देवा आयान्तु । यातुधाना अपयान्तु ।। विष्णोदेवयजनं रक्षस्वेति वदेत् ।। ततः कलशपूजनं कृत्वा सर्वतोभद्रे लिङ्गतोभद्रे वा ब्रह्मादीनावाहयेत्पूजयेच्च ।।

अथ लक्ष पूजा और उद्यापनविधि–स्नानादिसे निवृत्त होकर हाथमें पानी लेकर संकल्प बोलना चाहिये कि, आज ऐसी २ पुण्य तिथिमें इस महीनाके इस पक्षमें इस संवत्सरमें इस देवताके प्रसन्न करनेके लिये इस लक्ष कर्मकी सांगता सिद्धिके लिये यानी यह लक्ष कर्म अंगोंसहित पूरा हो जाय इसके लिये उसका उद्यापन करता हूं एवम् तदंग होनेसे पुण्याहवाचन और आचार्य्यवरण भी करता हूं, । उसमें सबसे पहिले गणपतिपूजन करता हूं (इस इसकी जगह करती बार जो तिथि हो कहना चाहिये तथा इस देवताका मतलब है कि, जो देवता हो उसका नाम लेना चाहिये इसी तरह और भी समझना) इसके पीछे गणपतिका पूजन करके पुण्याह वाचन कराना चाहिये, वो पुण्याहवाचन इस प्रकार है–यजमान ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करताहै कि, आप इस लक्ष पूजनके उद्यापनका पुण्याह कहो । यजमानके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणोंको कहना चाहिये कि पुण्याह हो । यजमान-आप कहें कि, ऋद्धि हो । पीछे ब्राह्मण-कर्म्म ऋद्धिको प्राप्त हो । यजमान-श्री हो ऐसा आप कहे, ब्राह्मण–श्री हो । यजमान–कल्याण हो ऐसा आप कहे, ब्राह्मण–हो कल्याण । संस्कृतमें जो वाक्य जिसे बोलने कहे हें वे उसे संस्कृतमें ही बोलने चाहियें) । कर्मके अंगभूत देवता प्रसन्न हो जाओ ।।

आचार्य्य वरण–यजमान आचार्य वरण करती वार कहता है कि, इस गोत्रका इस नामका मैं, इस गोत्र और इस नामके इस शाखाके इस ब्राह्मणको, इस लक्ष पूजनणके उद्यापनमें आचार्यके रूपमें वरण करता हूँ । वरण होनेके पीछे आचार्य कहता है कि, मैं आचार्यके रूपसे वरण किया गया हूँ, जैसा मुझे ज्ञान है उसके अनुसार कर्म कराऊंगा । पीछे यजमान आचार्यकी प्रार्थना करताहै कि, जैसे स्वर्गमें इन्द्रादिकोंका आचार्य बृहस्पति है, उसी तरह सुव्रत आप इस कर्ममें मेरे आचार्य होजावो । पीछे यजमान अपने आचार्यका पूजन किया करतेहैं । इसके बाद अन्य ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये । हे द्विजोत्तम ! जैसे स्वर्गमें चतुर्मुख पितामह ब्रह्मा होते हैं उसी तरह आप मेरे इस कर्ममें ब्रह्मा वन जावो । इसके बाद यजमानको ऋत्विजोंसे प्रार्थना करनी चाहिये कि, मैंने इस यागकी सिद्धिके लिये आपका वरण किया है, आप भली भाँति प्रसन्न होकर इस कर्मको विधिपूर्वक करें । पीछे आचमन प्राणायाम करणके आचार्यको कहना चाहिये कि मुझे यजमानने अच्छी तरह वर लिया है । मैं कर्म करूंगा तथा कमके अधिकारके लिये आत्मशुद्ध्यर्थ पुरुषसूक्तका जपभी करूंगा "पृथ्वी" इस मंत्रका मेरुपृष्ठऋषि है, सुतल छन्द है, कूर्म देवताहै, आसनपर बैठनेमें इसका विनियोग होता है "पृथ्वित्वया धृता लोका देवि त्वंविष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्" हे पृथिवि देवि ! आपने लोकोंको धारण कर रखा है । हे देवि ! आपको विष्णुभगवान्ने धारण किया है, आप मुझे धारण करें और इस आसनको पवित्र करे । यजुर्वेदकी इकत्तीसवीं अध्यायके प्रारंभसे लेकर सोलह मंत्रोंको पुरुषसूक्त* कहा है उसका जपकर लेनेके पीछे हाथमें सफेद सरसों लेकर "ओम् यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ।। अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् । सर्वोषामविरोधेन लक्षपूजां समारभे ।।"

जो यहां दुष्टसत्त्व सदाही इस स्थानका आश्रय लेकर बैठे रहते हैं वे सब जहांके हैं तहां ही चलेजायें । भूत और पिशाच चारों ओर भाग जायें, मैं किसीके विना विरोधके लक्षपूजाकी उद्यापन विधियों करता हूँ । इन दोनों मंत्रोंसे उन्हें अभिमंत्रिक करके चारों ओर बखेर देना चाहिये । इसके पीछे–" ओम् शुचीवो हव्या मरुतः शुचीनां, शुचि हिनोम्यध्वरं शुचिभ्य ऋतेन सत्यमृत साफ आयन् शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ।।" हे हमारे याज्ञिक मरुतो ! मैं पवित्रोंके पवित्र यज्ञको आपके लिये ही आ रहा हूं । क्योंकि इस यज्ञसे सत्यकी प्राप्ति होती है, देखो, ये शुचिजन्मा तथा स्वयंशुचि सत्यदायक पवित्रताके उत्पादक आगये । इस मंत्रसे तथा " ओम् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षसे ।" हे आप ! मुझे सुख देनेवाले होओ, तथा बडे भारी रमणीक दर्शनके निमित्ति तथा आपने रसके अनुभव करनेके लिये मुझे धारण करो । " ओम् यो वः शिवतमोरसः तस्य भाजयतेह नः उशतीरिव मातयः ।" तुम्हारा जो सुखका देनेवाला रस है, यहां उसका सेवन मुझे कराओ जैसे बेटेपर प्यार करनेवाली बेटेकी मां अपने बेटोको चरती है । " ओम् तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जनयथा च नः ।।" हे आप ! तुम जिस पापके नाश करनेके लिये हमें प्रसन्न हो उस पापके नष्ट करनेके लिये आपको ही अपने शरपर रखते हैं । आप हमें पुत्र पौत्रादि पैदा करनेमें समर्थ

* इसका आगाडीभी पूरा प्रकरण आयेगा वहीं हम इसके अर्थको लिखेंगे और कहीं नहीं, वहीं सब जगह यही अर्थ समझना चाहिये ।

बनादें । अथवा आपके उस रससे हम तृप्त हो जायें जिसके निवासके लिये आप प्रसद्ध हैं, आप उस रसका स्वामी हमें बनादें । इन मंत्रोंसे कुशाओंसे पंचगव्यसे प्रोक्षण करना चाहिये । प्रोक्षण छींटा देनेको कहते हैं । इसके पीछे हाथ जोड़कर " ओम् स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिम्, महद्भुवं व्यचसं देवतानाम् । असुरघ्नमिन्द्र सखं समत्सु, बृहद् यशो नावमिवारुहेम " तारनेमें समर्थ जो नाव है, उसकी तरह जिसके प्रवाहको कोई रोक नहीं सकता ऐसे गरुड भगवान्के स्वस्त्ययनपर आरूढ होता हूँ, संग्राममें हमारे वीरोंको न नष्ट होने देनेवाले देवताओंके सबसे बडे, अग्रणी प्रेमी यशस्वी इन्द्रका आश्रय लेता हूँ ।। " ओम् अंहो मुञ्च मां गिरसो संगयं च स्वस्त्या त्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम्, प्रयतपाणिः ईरणं प्रपद्ये स्वस्ति सम्बाधे अभयं अभयं नो अस्तु ।" हे पापसे छुटानेवाले ! मुझे पापोंसे छुडा दे, मैं वाणीसे अग्निकी स्वस्ति और मनसे तार्क्ष्यकी स्वस्ति प्राप्त हो गया हूं । मैं हाथ जोडकर आपकी शरण प्राप्त हुआ हूँ । विवादके कार्य्यमें हमारा कल्याण हो तथा किसी प्रकारका भय न प्रतीत हो । इन दोनोंको बोलना चाहिये । देवता आजायें और राक्षस लोग यहांसे चले जायें । हे विष्णु भगवन् ! देव यजन भूमिकी रक्षा करो, ऐसा करकहकर कलश पूजन करना चाहिये ।। लिंगतोभद्र बनाया होय तो लिंगतोभद्रमें तथा सर्वातोभद्र बनाया होय तो सर्वतोभद्रमें ब्रह्मोदिक देवोंका आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये ।

ततो मूर्तावग्न्युत्तारणम् ।। अस्यां मूर्तौ अवधातादिदोषपरिहारार्थमग्न्युत्तारणं देवतासान्निध्यार्थं प्राणप्रतिष्ठां च करिष्ये ।। अग्निः सप्तिमिति सूक्तमग्निपदरहितं सहितं च पठन्प्रतिमायां जलं पातयेत् ।। सूक्तं यथाॐअग्निः सप्तिं वाजं भरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् ।। अग्नी रोदसी विचरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ।।१।। अग्ने रजसः समिदस्तु भद्राऽग्निर्मही रोदसी आविवेश।। अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निवृत्राणि दयते पुरूणि ।।२।। अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरभ्द्यो निरद हज्जरूथम् ।। अग्निरत्रिं धर्म उरुष्यदन्तरग्निनृमेघं प्रजया सृजत्सम् ।।३।। अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिंयः सहस्रासनोति ।। अग्निर्दिवि हव्यमाततानाग्नेर्धामानि बिभृता पुरुत्रा ।।४।। अग्निमुक्थैर्ऋषयो विह्वयन्तेऽग्निं नरोयामनि बाधितासः ।। अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः-सहस्रा परियाति गोनाम् ।।५।। अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो विजाताः ।। अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिधृत आनिसत्ता ।।६।। अग्नये ब्रह्म ऋभ वस्ततरक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।। अग्ने प्रावजरितारं यविष्ठाग्ने महि प्रवि मायजस्व ।। ७।। इत्यग्न्युत्तारणम् ।। प्राणप्रतिष्ठा ।। ततो देवे प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।। अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ।। ऋग्यजुः सामाथर्वाणि च्छन्दांसि ।। क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता ।। आं बीजम् ।। ह्रीं शक्तिः ।। क्रौं कीलकम् । अस्यां मूर्तो प्राणप्रतिष्ठापने विनि०। । ॐआं ह्रीं क्रौं अं यं रं लं वं शं षं हं ळं क्षं अः।। क्रों ह्रींआं हं सः सोहम् ।। अस्यां मूर्तो प्राण इह प्राणाः ।। ॐआं न्ह्रींमित्यादि पुनः पठित्वा अस्यां मूर्तौ जीव इह स्थितः । पुनः आं ह्रींमित्यादि पठित्वा अस्यां मूर्तौ सर्वेन्द्रियाणि वाङमनस्त्वक्चक्षु

श्रोत्रजिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानीहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।। ॐ असुनीते पु० या नः स्वस्ति ।। गर्भाधानादि पञ्चदशसंस्कारसिद्धयर्थं पञ्चदश प्रणवावृत्तिं करिष्ये ।। प्रणवं पञ्चदशवार जपित्वा ।। रक्ताम्भोधिस्थपीतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यंकुशं पञ्च बाणान् ।। बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या देवी बालार्कवर्णाभवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ।। ततो मण्डलोपरि व्रीह्यादिधान्ययवतिलैस्त्रिकूटं कृत्वा तत्र महीद्यौरित्यादिना अव्रणं कलशं संस्थाप्य कलशोपरि पूर्णपात्रं संस्थाप्य तस्योपरि त्र्यंबकमंत्रेणोमया सह त्र्यम्बकं वा, विष्णुमंत्रेण लक्ष्म्या सह विष्णुं, सिद्धिबुद्धिसहितं गणेशं वा पत्न्या सहितं सूर्यं वा भवानीं तत्तन्मंत्रेणावाह्य शिवस्य दक्षिणे लक्ष्म्या सह विष्णुमावाहयेत् ।। शिवस्योत्तरे सासावित्र्या सह ब्रह्माणम् ।। एवं विष्ण्वादीनामपि । अथ षोडशोपचारपूजा ।। ततः सहस्रशीर्षेत्यावाहनम्।पुरुष एवेदमित्यासनम्।।एतावानस्येति पाद्यम्।।त्रिपादूर्ध्वमित्यर्घ्यम्।।तस्माद्विराडित्याचमनीयम्।।यत्पुरुषेणेति स्नानम् ।। तं यज्ञमिति वस्त्रम्।। तस्माद्यज्ञादित्युपवीतम् ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच इति गन्धम् ।। तस्मादश्वेति पुष्पम् ।। यत्पुरुषं व्यदधुरिति धूपम् ।। ब्राह्मणोऽस्येति दीपम् ।। चन्द्रमा मनस इति नैवेद्यम् ।। नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणाः ।। सप्तास्येति नमस्कारान् ।। यज्ञेन यज्ञमिति मंत्रपुष्पाञ्जलिम् ।। इति षोडशोपचारैः पञ्चामृतैश्च वैदिकमन्त्रैः पुराणोक्तमंत्रैश्च स्थापितदेवताः संपूज्य रात्रौ जागरणं कुर्यात् ।। प्रातर्नित्यकृत्यं विधाय तस्य लक्षपूजनस्य वा आचरितव्रतस्य साङ्गतासिद्धयर्थं पूजनदशांशेन तिलयवव्रीहिभिः पायसादिभिर्वा होमं करिष्ये । होमस्तु वेदोक्तेन मूलमन्त्रेण पुराणोक्तेन वा कार्यः ।।

अग्न्युत्तारण– इसके पीछे मूर्तिमें अग्न्युत्तारण करना चाहिये, संकल्पमें जैसे तिथिवार आदि बोले जाते हैं उन्हें बोल करके पीछे संकल्पमें यह जोड देना चाहिये की, अवधातादि दोषोंकी निवृत्तिके लिये अग्न्युत्तारण तथा देवताकी संनिधिके लिये प्राणप्रतिष्ठा भी करता हूं। इसके पीछे, " ओम् अग्निः सप्तिम् " इस सूक्तको अग्निपदरहित और सहित पढ़ता हुआ तप्त प्रतिमापर पानी छोड़ना चाहिये । इस सूक्तके प्रत्येक मंत्रमें अग्निपद आया है यहाँ हरएक मंत्रको एक बार तो जैसेका तैसा एवम् एक बार अग्निपदके विना पढ़ना चाहिये (१) अग्नि देव, वेग्रको धारण करनेवाले अन्न संपादक शीघ्र गामी कोड़ोंको देते हैं, वेदोंके पढ़नेवाले पुत्रको तथा कर्म निष्ठाको कर देते हैं, जमीन आसमानमें विचरते हुए अग्नि देव, सुन्दरी स्त्रीको वीर पुत्रोंकी जननी बना देते हैं । (२) कर्मवान् अग्निकी समित् सुन्दर हो, अग्नि ही इन बड़े भारी जमीन आसमानोंमें व्याप रहा है, वो अपने भक्तोंकी आप ही रक्षा करता है, यहांतक कि उस अकेलेके अनेकों वैरियोंको आप ही मार डालता है । (३) अग्निने ही जरत्कर्ण नामके ऋषिकी रक्षाकी थी, अग्निने ही जरूथ नामके दैत्यको जला डाला था; धर्मके बीचमें बैठे हुए अत्रिकी रक्षा अग्निने ही की थी, अग्निने ही नृमेधका परिवार बढ़ाया था । (४) प्रेरक ज्वालारूप अग्नि धनीको देता है, इसीने इस मंत्र प्रष्टा ऋषिको पुत्र दिया है तथा

ए क हजार गऊएँ दक्षिणामें दी थीं, अग्नि ही यजमानकी दी हुई हविको देवताओंमें पहुंचाता है; यही अपने अनेक रूप करके अनेक जगह विराजमान है, (५) अग्निको ही ऋषि लोग स्तुतियोंसे अनेक भांति बुलाते हैं, मनुष्योंको जब युद्धमें कष्ट होता है तो अग्निकी ही शरण जाते हैं, आकाशमें उड़नेवाले पक्षी अग्निको ही देखते हैं, अग्नि ही गऊओंकी रक्षाके लिये जाता है। (६) मानुषी प्रजा अग्निकी ही प्रार्थना करती है, नहुषके वंशज भी अग्निकी ही उपासना करते हैं, अग्नि ही यज्ञकी गान्धर्वी (वाणीरूपी) पथ्या है, अग्नि ही घीका भरा हुआ रास्ता है। (७) ऋभुओंने अग्निके लिये ही वैदिक स्तुतियोंका अन्वेषण किया था, हम शीघ्र ही मनोरथोंको पूराकर देनेवाले अग्निकी स्तुति बोल रहे हैं, अग्नि स्तुति करनेवालेका रक्षण करता हुआ बड़ा भारी धन देता है ॥ प्राणप्रतिष्ठा--इसके पीछे देवताओं प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिये इस प्राणप्रतिष्ठा मंत्रके ब्रह्मा विष्णु और महेश ऋषि हैं, ऋग्, यजु साम और अथर्वछन्द हैं, क्रियामय शरीरवाला प्राण नामक देवता है, आं बीज है, ह्रीं शक्ति है, क्रौं कीलक है, इस मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा करनेमें इसका विनियोग होता है। पीछे उलटा हाथ मूर्तिपर रखकर-- ओम् आं ह्रीं क्रौं अं यं रं लं वं शं षं सं लं क्षं अः क्रौं ह्रीं आं हं सः सोहम् इन बीजोंका उच्चारण करते हुए यह भावना करते रहना चाहिये कि इस मूर्तिमें प्राण आग गये वे यहां हैं। फिर दुबारा इन बीजोंको बोलकर यह भावना करनी चाहिये कि, इस मूर्तिमें यहां स्थित है फिर तिबारा इन्ही बीजोंको बोलकर भावना करनी चाहिये कि इस मूर्तिमें ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय सुख पूर्वक रहें। ' ओम् असुनीते ' यहांसे लेकर, ' यानः स्वस्ति ' तक एक ऋग् ८--१--२३ का मंत्र हैं। यह पूरा--ओम् असुनीते पुनरस्मासुचक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्। ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुच्चरन्तम्, अनुमते न मृडया नः स्वस्ति ॥ यहांतक है। हे असुनीते ! यहां हमारे इन देवोंमें फिर ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय प्राण और भोगको स्थापित कर, हम रोज ऊपर चढ़ते हुए सूर्य्यको चिर काल तक देखें, इन मूर्तियोंमें ये सब सदा बना रहे हे अनुमते ! हमें हमें सुखीकर हमारा कल्याण हो (गोविन्दार्चन चंद्रिकामें तथा सर्वदेवप्रतिष्ठा प्रकाश आदि ग्रन्थोंमें प्राणप्रतिष्ठाके विषयमें इस मंत्रको नहीं रखा है तथा श्रीमान् चौबे बनवारीलालजीने तो इसी मंत्रकी प्रतीकको प्रणवावृत्तिके संकल्पमें ही सामिल कर दिया है न उक्तविषयमें पं० चतुर्थीलालजीनेही उक्त मंत्रका उल्लेख किया है) पूर्वोक्त ऋचाका पाठ करके गर्भाधान आदि पन्द्रहों संस्कारोंकी सिद्धिके लिये पन्द्रहवार प्रणवका जप करता हूँ इस प्रकार संकल्प करके पन्द्रह वार प्रणवका जपकरना चाहिये। पीछे प्रणवशक्तिका ध्यान करना चाहिये कि, लालरंगके समुद्रमें सुन्दर जहाजपर लालकमलके आसनपर विराजमान हुई है, तथा हाथोंमें पाश, ईखका धनुष प्रत्यंचा अंकुश और पांच बाणोंको धारण किये हुए है तथा लोहूसे भरा हुआ कपाल भी हाथोंमें लिये हुए है, तीन नेत्र हैं, बड़े बड़े वक्षस्थल हैं तथा बालसूर्यके समान अरुण रंगकी पराप्राणशक्तिदेवी हमें सुखकारी होवे। पीछे बनाये हुए सर्वतोभद्र या लिंगतोभद्र दोनोंके ही ऊपर व्रीहि आदिके तथा धान्य यह और तिलसे तीनकूटवाला पर्वत बनाकर उसपर " ओम् मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञस्मिमिक्षताम् पिपृताम्नो भरीमभि " महती भू हमारे यज्ञको पूर्ण करे तथा जो आवश्यकीय वस्तु हैं उनसे हमारे घरको भर दे। इस मंत्रसे विना फूटे घडेको रख, उसके ऊपर पूर्णपात्र रखकर पीछे "ओम् त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिपुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो र्मुक्षीय मामृतात् " हमारे यशको बढ़ानेवाले तथा हमारी पुष्टिके बढ़ानेवाले त्र्यम्बकका यजन करता हूं, वो ककडीके बन्धनकी तरह मुझे मौतसे मुक्त करें पर, अमरत्वसे कभी मुक्त न करें, इस मंत्रसे उमासहित त्र्यंबक भगवान्को अथवा विष्णुमंत्रसे लक्ष्मीसहित विष्णु भगवान्को अथवा सिद्धि और बुद्धिसहित गणेश भगवान्को अथवा पत्नियों सहित सूर्य भगवान्को अथवा भवानीको मंत्रोंसे बुलाकर शिवके दांये हाथमें लक्ष्मीसहित विष्णुभगवान्को बुलानाचाहिये शिवके उत्तर सावित्रीसहित ब्रह्माको बुलाना चाहिये, यही हिसाब विष्णु आदिकी प्रधानतामें भी होना चाहिये कि प्रधानके दांये बांये दूसरे बैठने चाहिये।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सभूमिꣳसर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥

वह परब्रह्म परमात्मा श्री विष्णु भगवान् अनेकों शिर आदि अंग तथा अनेकों ही ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रियवाला है वो इस सृष्टिमें सब ओरसे ओत प्रोत होकर नाभिसे द्वादश अंगुल जो हृदय है, उसमें विराजमान होता है । इस मंत्रसे भगवान् का आवाहन करना चाहिये ।

ॐ पुरुष एवद१७ंसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ।।

जो कुछ अनुभवमें आ रहा है तथा जो हो चुका और होगा वह सब पुरुष ही है वो मोक्षका अधिपति है तथा जीवोंको कर्मफल देनेके लिये कारणावस्थासे कार्य्यावस्था स्थूल जगत्के रूपमें आता है । इस मंत्रसे आसन देना चाहिये ।

ॐ एतावानस्य महिमातोज्यायाँश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।

इसकी इतनी तो महिमाहै, इससे पुरुष बड़ा है, सबजीव इसके अंश मात्र हैं और अंशी वो नित्यधाम वैकुण्ठमें विराजमान है । इस मंत्रसे पाद्यका प्रतिपादन करना चाहिये ।

ॐत्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादौऽस्येहाऽभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ व्यक्रामत्साशनानशनेऽभि ।।

वो त्रिपाद पुरुष ऊर्ध्व उदित है, उसका अंश जीव लिंगदेहसे बारंवार आवागमन करता है । वो अंश, देव मनुष्यादि अनेक रूपमें होकर संसार में भ्रमता फिरता है तथा जड़ चेतनादि व्यवहारभाक् एवम् बद्ध मुक्त होता रहता है । इस मंत्रसे अर्घ्य देना चाहिये ।

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पुरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।।

इसके पीछे इससे विराट् उत्पन्न हुआ एवं उस विराट्में विराट्का अभिमानी पुरुष हुआ वो देव मनुष्यादिभावसे भिन्न–भिन्न अनेक प्रकारका हो गया इसके पीछे क्रमशः पुर और नगर रचे गये ।इस मंत्रसे आचमन-समर्पण करना चाहिये ।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वतः ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यङग्रीष्मऽइध्मःशरद्धविः ।।

जिस समय देवगण पुरुष रूपी हविसे यज्ञ करने लगे उस समय वसन्त आज्य, ग्रीष्म इध्म और शरद हविके स्थानमें हुआ । इस मंत्रसे स्नानका समर्पण करना चाहिये ।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अजयन्तं साध्या ऋषयश्च ये ।।

अगाडीके ऋषि मुनियोंने उस यज्ञ पुरुषको प्राणायामोंसे साक्षात् किया तथा जो भी साध्य और ऋषि हुए उन सबोंने उसीसे उसका चयन भी किया । इस मंत्रसे वस्त्र समर्पण करना चाहिये ।

ओं तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत ।।

सब यज्ञोंमें जिसके लिये जिसका ही वहन होता है उससे ऋचायें और साम प्रकट हुए, छन्द भी उससे प्रादुर्भूत एवम् यजु भी उसीसे प्रकट हुआ । इस मंत्रसे गंध द्रव्य समर्पण करना चाहिये ।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ।।

उसी परमात्मासे पृषत और आज्य दोनों प्रकट हुए तथा उसीने वायव्य एवम् ग्रामीण और वन्य पशुओंको उपजाया । इस मंत्रसे उपवीतका समर्पण करना चाहिये ।

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।

उसीने अश्व तथा अश्व सरीखे प्राणी एवम् जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर दांत हैं उनको उत्पन्न किया, उसीने गऊ और भेड़ बकरी आदि बनाये । इससे पुष्प समर्पित करने चाहिये ।

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहूकिमुरूपादा उच्येते

जब विराट् उत्पन्न हुआ था उस समय उसमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ की गयीं वोही प्रश्नोत्तरके रूपमें भगवती ऋचा कहती है कि, उसका मुख बाहु उरू और पाद कौन कहे जाते हैं ? इस मंत्रसे धूप देनी चाहिये ।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यःकृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यःपद्भ्या ᳪ शूद्रोऽजायत।।

मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, उरूसे वैश्य और पदोंसे शूद्र उत्पन्न हुए । इस मंत्रसे दीप देना चाहिये

ॐ चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्य्योऽअजायत
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।

मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य, श्रोत्रसे वायु और प्राण तथा मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ । इस मंत्रसे नैवेद्य निवेदन करना चाहिये ।

ॐनाभ्याआसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।

नाभीसे अन्तरिक्ष, शिरसे दिव, चरणोंसे भूमि, श्रोत्रसे दिशा उत्पन्न हुई । इसी प्रकार अन्य लोकोंकी भी कल्पना की गयी । इस मंत्रसे प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।

ॐसप्तास्यासन् परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।।

सात परिधि और इक्कीस समिधकी देवताओंने यज्ञका विस्तार करके पुरुष पशुको बाँधा।इससे नमस्कार करना चाहिये ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहऽनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।

देवोंने यज्ञसे यज्ञ पुरुषका ही यजन किया । वे यज्ञ पुरुष पूजनसंबंधी धर्म मुख्य थे । वे स्वर्गमें पूजित हुए जो कोई अब भी वैसा करेंगे वे वहीं जाकर पूजेंगे जहां कि पहिले साध्य देव पूज रहे हैं । इससे पूज्यदेवको पुष्पांजलिका समर्पण करना चाहिये । इस प्रआर षोडशोपचारसे पूजन करना चाहिये । पंचामृतसे पुराणोंके ऐसेही श्लोकोंसे स्थापित दूसरे देवताओं का भी पूजन करना चाहिये तथा रातको जागरण करना चाहिये ।।

प्रातःकाल नित्य कर्मसे निवृत्त होते ही लक्ष व्रत अथवा किये हुए व्रतकी साङ्गता सिद्धिके लिये तिल, जौ और व्रीहियोंसे अथवा खीर आदिसे पूजनका दशवां हिस्सा हवन करूंगा, इस प्रकारका संकल्प करना चाहिये । वेदोक्त मूल मंत्रसे, या पुराणोक्त मूल मंत्रसे हवन करना चाहिये ।

अथाग्निमुखम्

आचम्य प्राणानायम्य तिथ्यादिसंकीर्त्य एवंगुणविशेषणविशिष्टायां पुण्य-तिथावमुककर्माङ्गतया विहितामुकहवनमहं करिष्ये इति संकल्प्य गोमयादि-लिप्ते शुद्धे देशे शुद्धमृदा ईशानीमारभ्य उदक्संस्थं चतुरङ्गुलोन्नतं वा चतुर्दिक्षु मिलित्वा द्विसप्तत्यंगुलपरिधिकं फलितमष्टादशांगुलविस्तृतं होमानुसारेण तद-धिकं वा न तु ततो न्यूनं मध्योन्नतं स्थण्डिलं कुर्यात् ।। तद्गोमयेन प्रदक्षिणमुप-लिप्य दक्षिणेऽष्टावुदीच्यां द्वे प्रतीच्यां चत्वारि प्राच्यामर्धमित्यंगुलानि त्यक्त्वा दक्षिणोपक्रमामुदक्संस्थां प्रादेशमात्रामेकां लेखां (लिखित्वा) तस्या दक्षिणो-त्तरयोः प्रागायते पूर्वरेखयाऽसंसृष्टे प्रादेशसंमिते द्वे लेखे लिखित्वा तयोर्मध्ये परस्परमसंसृष्टा उदक्संस्थाःप्रागायताः प्रादेशसंमितास्मिस्त्र इति षड् लेखा यज्ञियशकलमूलेन दक्षिणहस्तेनोल्लिख्य लेखासु तच्छकलमुदगग्रं निधाय स्थण्डिल-मद्भिरभ्युक्ष्य शकलमाग्नेय्यां निरस्य पाणिं प्रक्षाल्य वाग्यतो भवेत् ।। तैजसपात्र-युग्मेन संपुटीकृत्य सुवासिन्या श्रोत्रियागारात्स्वगृहाद्वा समृद्धं निर्धूममाहृतमग्निं स्थण्डिलादाग्नेय्यां दिशि निधाय । जुष्टोदमूना आत्रेयो वसुश्रुतोऽग्निस्त्रिष्टुप् ।। अग्न्यावा० ।। ॐ जुष्टोदमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान् ।। विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामाभरा भोजनानि ।।१।। एह्यग्न इत्यस्य मंत्रस्य राहूगणो गौतम ऋषिः ।। अग्निर्देवता ।। त्रिष्टुप्छन्दः ।। अग्न्यावा० ।। ॐ एह्यग्न इह होता निषीदादब्धः सुपुर एता भवा नः ।। अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजामहे सौमनसाय देवान् ।।२।। इत्यक्षतैरावाह्य आच्छादनं दूरीकृत्य समस्त-व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिः प्रजापतिर्बृहती ।। अग्निप्रतिष्ठापन वि० ।। ॐ भूर्भुवः स्वरित्यात्माभिमुखं पाणिभ्यां षड्लेखासु तत्तत्कर्मविहितनामकममुक-नामानमग्निं प्रतिष्ठापयामीत्यग्निं प्रतिष्ठाप्य ।। चत्वारि शृङ्गा गौतमो वाम-देवोऽग्निस्त्रिष्टुप् ।। अग्निमूर्त्ति ध्याने वि० ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आवि-वेश ।। सप्तहस्तश्चतुःशृङ्गः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः ।। त्रिपाद् प्रसन्नवदनः सुखा-सीनः शुचिस्मितः ।। स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा ।। बिभ्रद्दक्षिण-हस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्रुचं स्रुवम् ।। तोमरं व्यजनं वामैर्धृतपात्रं च धारयन् ।। आत्मा-भिमुख मासीनं एवंरूपो हुताशनः । एष हि देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वोहि जातः स उ गर्भे अन्तः ।। स विजायमानः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ मुखस्तिष्ठति विश्वतो-मुखः ।। अग्ने वैश्वानर शाण्डिल्यगोत्रज मेषध्वज प्राङमुख मम संमुखो वरदो भव।। ततोऽन्वाधानं कुर्यात् ।। तच्चेत्थम्--आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ

संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं क्रियमाणेऽमुकव्रतोद्यापनहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये । अस्मिन्नन्वाहितऽग्नौ जातवेदसमग्निमिध्मेन प्रजापतिं, प्रजापतिं चाधारदेवते आज्येनात्र प्रधानदेवताः अमुकहोम्यद्रव्येण प्रत्येकममुकसंख्याकाभिराहुतिभिर्ब्रह्माद्यावाहितदेवताश्च नाममंत्रेण प्रत्येक मेकैकयाऽऽज्याहुत्या यक्ष्ये । शेषेण स्विष्टकृतमग्निमिध्मसन्नहनेन रुद्रमयासमग्निदेवाग्निविष्णुर्मग्निं वायुं सूर्य्यं प्रजापतिं चैताः प्रायश्चित्तदेवता आज्यद्रवेण ज्ञाताज्ञातदोषनिर्बहणार्थं त्रिवारमग्निं मरुतश्चाज्येन विश्वान्देवान्त्संस्रावेणाङ्गदेवताः प्रधानदेवताः सर्वाः सन्निहिताः सन्तु । एवं साङ्गोपाङ्गेन कर्मणा सद्यो यक्ष्ये ।। व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिः प्रजापतिबृहती । अन्वाधानसमिद्धोमे विनियोगः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतय इदं० ।। तत इध्माबर्हिषोः सन्नहनं कृत्वाऽग्निं परिसमुह्य परिस्तृणीयात् ।। तच्चेत्थम् अग्न्यायतनादष्टाङ्गुलमिते देशे ऐशानीं दिशमारभ्य प्रदक्षिणं समन्तात्सोदकेन पाणिना त्रिः परिमृज्य षोडशदर्भैः परिस्तृणीयात् । तत्र प्राच्यां प्रतीच्यां चोदग्ग्रा दर्भाः ।। अवाच्यामुदीच्यां च प्रागग्राः ।। पूर्वपश्चात्परिस्तरणमूलयोरुपरि दक्षिणपरिस्तरणम् ।। उत्तरपरिस्तरणं तु तदग्रयोरधस्तात् ।। ततोग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनार्थमुत्तरतश्च पात्रासादनार्थं कांश्चिद्दर्भान्प्रागग्रानास्तृणीयात् अग्नेरीशानस्त्रिरभ्यसा परिषिच्य उत्तरास्तीर्णेषु दर्भेषु दक्षिणसव्यव्यपाणिभ्यां क्रमेण चरुस्थालीप्रोक्षण्यौ दर्वीस्रुवौ प्रणीताऽज्यपात्रे इध्माबर्हिषी इति द्वंद्वश उदगपवर्गं प्राक्संस्थं च न्युब्जानि पात्राण्यासादयेत् । ततः प्रोक्षणीपात्रमुत्तानं कृत्वा प्रादेशमात्रकुशद्वयरूपे पवित्रे निधाय अद्भिस्तत्पात्रं पूरयित्वा गन्धपुष्पाक्षतान्निक्षिप्याङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामुदगग्रे पृथक्पवित्रे धृत्वा अपस्त्रिरुत्पूय पात्राण्युत्तानानि कृत्वा इध्मं च विस्रस्य सर्वाणि पात्राणि त्रिःप्रोक्षेत् । ता आपः किं चित्कमण्डलौ क्षिपेदित्येके । प्रणीतापात्रमग्नेः प्रत्यङ्निधाय तत्र ते पवित्रे निधाय उदकेन पूरयित्वा गन्धपुष्पाक्षतान्निक्षिप्य । ब्रह्मपक्षे– अस्मिन्कर्मणि ब्रह्माणं त्वाऽहं वृणे इति पाणिना पाणिं स्पृष्ट्वा वृतो ब्रह्मा वृतोस्मीत्युक्त्वा प्राङ्मुखो यज्ञोपवीत्याचम्य समस्तपाण्यङ्गुष्ठोभूत्वाग्रेणाग्निं परीत्य दक्षिणत उदङ्मुखः स्थित्वाऽऽसनार्थं दर्भेषु दक्षिणभागस्थमेकं दर्भमङ्गुष्ठानामिकाभ्यां गृहीत्वा निरस्तः परावसुरिति नैर्ऋत्यां निरस्यापःस्पष्टेदमहमर्वावसोः सदने सीदामीत्युक्त्योदङ्मुख एव वामोरूपरि दक्षिणाङ्घ्रिं संस्थाप्योपविश्य गन्धाक्षतादिभिरर्चितः सन्, बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदन आशिष्य ते बृहस्पते यज्ञं गोपाय सयज्ञं पाहि स यज्ञपतिं पाहि स मां पाहीति जपित्वा यज्ञमना एव वर्तेत ।। ततः कर्ता ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामीत्युक्ते–ॐभूर्भुवः स्वर्बृहस्पतिप्रसूतेत्युपांश्वोंप्रणयेत्युच्चे-

रुक्त्वातिसृजेत् ।। ततः कर्ता तत्प्रणीतापात्रं दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां नासिका-समीपं नीत्वोत्तरतोग्नेर्निधायान्यैर्दर्भैराच्छादयेत् । ते पवित्रे आज्यपात्रे निधाय तत्पात्रं पुरतःसंस्थाप्य तस्मिन्नाज्यमासिच्य परिस्तरणाद्बहिरुत्तरतोङ्गारानपोह्य तदुपर्याज्यपात्रं निधाय ज्वलता दर्भोल्मुकेनावज्वल्य दर्भाग्रद्वयं निक्षिप्य पुनस्ते-नैवोल्मुकेन प्रधानाद्रव्यसहितमाज्यं त्रिःपर्यग्निकृत्वातदुल्मुकं निरस्यापः स्पृष्टा-ङ्गारानग्नौ क्षिपेत् ।। अंगुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा।सवितुष्ट्वेति मन्त्रस्य हिरण्यस्यस्तूप ऋषिः ।। शविता देवता ।। पुर उष्णिक् छन्दः । आज्यस्योत्पवने-विनि० ।। ॐ सवितुष्टा प्रसव उत्पन्नाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ।। इति मंत्रेण प्रायुत्पुनाति सकृद्द्विस्तूष्णीम् ।। ते पवित्रे अद्भिः प्रोक्ष्याग्नौ प्रहरेत् ।। स्कन्दाय स्वाहा स्कन्दायेदं नममेति ।। तत आत्मनोऽग्रतो भूमिं प्रोक्ष्य । तत्र बर्हिः-सन्नहनीं रज्जुमुदगग्रां प्रसार्य तस्यां बर्हिरास्तीर्य तदुपरि आज्यपात्रं निधाय कुशान् वामहस्तेन स्रुक्स्रुवौ च दक्षिणहस्तेन गृहीत्वाऽग्नौ प्रताप्य दर्वीं निधाय स्रुवं वामहस्ते गृहीत्वा दक्षिणहस्तेन स्रुवबिलं दर्भाग्रैस्त्रिः संमृज्य तथैव स्रुवपृष्ठं दर्भाग्रैरात्माभिमुखं त्रिः संमृज्य कुशमूलैर्दण्डस्याधस्ताद्बिलपृष्ठादारभ्य यावदुप-रिष्टाद्बिलं तावत् त्रिः संमृज्याद्भिः प्रोक्ष्य प्रताप्य धृतादुत्तरतः स्थापयेत्पुनस्तथैव स्रुचं संमृज्य प्रोक्ष्य प्रताप्य स्रुवोत्तरतः स्थापयेद्दर्भानद्भिः क्षालयित्वाऽग्नौ प्रह-रेत् ।। स्रुवेणाज्यं गृहीत्वा होमद्रव्यमभिधार्य उदगुद्वास्य अग्न्याज्ययोर्मध्येन नीत्वाऽऽज्याद्दक्षिणतो बर्हिषि सान्तरमासाद्य ततो, विश्वानि न इति तिसृणां वसुश्रुतोग्निस्त्रिष्टुप् ।। द्वाभ्यामर्चनेऽन्त्ययोपरथानेवि० ।। ॐविश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः।। सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।। अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानः ।। अस्माकं बोध्याविता तनूनाम् । यस्त्वा हृदा कीरणा मन्यमानः ।। अमर्त्यं मर्त्यो जोह-वीमि ।। जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमस्याम् ।।२।। यस्मै त्वँ सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवस्योनम् । अश्विनं सुपुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिनं शते स्वस्ति ।।३।। इति अष्टदिक्षु गन्धपुष्पादिभिरग्निमभ्यर्च्य आत्मानं चालंकृत्य एकयोपस्थाय ततः पाणिनेध्ममादाय मूलमध्याग्रेषु स्रुवेण त्रिरभिघार्य मूलमध्ययोर्मध्यभागे गृहीत्वा । अयंत इध्म इत्यस्य मंत्रस्य वामदेव ऋषिः ।। जातवेदोग्निर्देवता ।। त्रिष्टुप्छन्दः ।। इध्महवने विनियोगः ।। ॐ अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्वस्त बर्द्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्र-ह्मवर्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।। इतीध्वमग्नावाधाय अग्नये जातवेदस इदं न ममेति त्यक्त्वा । स्रुवेणाज्यं गृहीत्वा वायवा दिशमारभ्य आग्नेयीपर्यन्तमाज्य-धारां जुहुयात्–प्रजापतय इति मनसा ध्यायन्स्वाहेति जुहुयात् ।। तथैव निर्ऋति-

दिशमारभ्य ईशानदिक्पर्यन्तं जुहुयात् उभयत्र प्रजापतय इदं न ममेति त्यजेत् ।। तत उत्तरे । अग्नये स्वाहा ।। अग्नय इदं ०।। दक्षिणे सोमाय स्वाहा । सोमायेदं न ममेत्येतावाज्यभागौ हुत्वा प्रधानहोमं कुर्यात् ।। ततो ब्रह्मादिदेवतानां मंत्रेणैकैकया आहुत्या जुहुयात् । ब्रह्मणे स्वाहा ।। सोमाय स्वाहा ।। ईशानाय स्वाहा ।। इन्द्राय स्वाहा ।। अग्नये स्वाहा । यमाय स्वाहा ।। निर्ऋतये स्वाहा । वरुणाय स्वाहा।।वायवेस्वाहा ।। अष्टवसुभ्यः स्वाहा।। एकादशरुद्रेभ्यः स्वाहा ।। द्वादशादित्येभ्यः स्वाहा।।अश्विभ्यां स्वाहा ।। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ।। सप्तयक्षेभ्यः स्वाहा ।। भूतनागेभ्यः स्वाहा । गंधर्वाप्सरोभ्यः स्वाहा ।। स्कंदाय स्वाहा ।। नन्दीश्वराय स्वाहा ।। शूलाय स्वाहा ।। महाकालायस्वाहा ।। दक्षादिसप्तगणेभ्य स्वाहा ।। दुर्गायैस्वाहा ।। विष्णवे स्वाहा ।। स्वधायैस्वाहा ।। मृत्युरोगेभ्यः स्वाहा।। गणपतेय स्वाहा ।। अभ्द्यस्वाहा ।। मरुभ्द्यः स्वाहा ।। पृथिव्यै स्वाहा ।। गंगादिनदीभ्यः स्वाहा ।। सप्तसागरेभ्यः स्वाहा ।। मेरवे स्वाहा ।। दाभ्यै स्वाहा ।। त्रिशूलाय स्वाहा ।। वज्राय स्वाहा ।। शक्तये स्वाहा ।। दण्डाय स्वाहा ।। खड्गायस्वाहा ।। पाशायस्वाहाः।।अङ्कुशाय स्वा०।।गौतमायस्वा० ।। भरद्वाजाय स्वा०।। विश्वामित्राय स्वाहा ।। कश्यपायस्वाहा ।। जमदग्नये स्वाहा ।। वसिष्ठाय स्वाहा।। अत्रये स्वाहा ।। अरुन्धत्यै स्वाहा ।। ऐन्द्यै स्वाहा ।। कौमार्ये स्वाहा ।। ब्राम्ह्यै स्वाहा ।। वाराह्यै स्वाहा ।। चामुंडायै स्वाहा ।। वैष्णव्यै स्वा० माहेश्वर्यै स्वा० वैनायक्यै स्वाहा ।। अथ स्विष्टकृद्धोमः – यदस्य कर्मण इत्यस्य मंत्रस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः ।। अग्निः स्विष्टकृद्देवता ।। अतिधृतिश्छन्दः ।। स्विष्टकृद्धोम विनियोगः।। ॐ यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहारकम् ।। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे ।। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान् समर्धयस्वाहा ।। अग्नेय स्विष्टकृत इदं न० ।। त्रिसन्धानेन रुद्रं ॐ रुद्राय पशुपतये स्वा० । रुद्राय पशुपतय इदंनमम ।। अप उपस्पृश्य । स्रुवेण प्रायश्चित्ताज्याहुतीः सप्त जुहुयात् ।। तत्र मंत्राः ।। आयाश्चेत्यस्य मंत्रस्य विमद ऋषिः ।। अयाळग्निर्देवता ।। पंक्तिश्छन्दः ।।प्रायश्चित्ताज्यहोमे विनियोगः ।। ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तीश्च सत्यमि त्वमया असि ।। अयसा वयसा कृतो यासन् हव्यमूहिषे अयानो धेहि भेषजं स्वाहा । अयसेऽग्नयइदं ० । अतो देवा इति द्वयोः काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । अद्याया देवा देवताः ।। द्वितीयाया विष्णुर्देवता ।। गायत्रीछन्दः ।। प्रायश्चित्ताज्यहोमेवि० ।। ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।। पृथिव्याः सप्तधामभिः स्वाहा ।।

देवेभ्य इदं न ०।। ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।। समूळहमस्यपांसुरे स्वाहा । विष्णव इदं ० ।। व्यस्तसमस्तव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाज-प्रजापतय ऋषयः ।। अग्निवायुसूर्यप्रजापतयो देवताः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहत्य-श्छन्दांसि ।। प्रायश्चित्ताज्यहोमे वि० ।। ॐ भूःस्वाहा अग्नयइदं० ।। ॐ भुवः वायवइदं ।। ॐ स्वः स्वा९ सूर्यायेदं० ।। ॐ भुर्भुवः स्वःस्वाहा प्रजापतयइदं ।। ततो ब्रह्मा कर्तारं परीत्याग्नेर्वायव्यदेशे तिष्ठन्नेता एव सप्ताहुतिर्जुहुयात् ।। त्यागं यजमानोऽत्र कुर्यात् ।। अनाज्ञातमिति मंत्रद्वयस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः ।। अग्नि-र्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।। ज्ञाताज्ञातदोषपरिहारार्थं प्रायश्चिताज्यहोमे वि० ।। ॐ अनाज्ञातं यदाज्ञातं यज्ञस्य क्रियते मिथु।।अग्ने तदस्य कल्पय त्व हि वेत्थ यथा-तथ स्वाहा ।। अग्नयइ० ।। ॐ पुरुषसंमितो यज्ञो यज्ञः पुरुषसंमितः ।। अग्ने पदस्य कल्पय त्व हि वेत्थ यथावथ स्वाहा ।। अग्नयइ० ।। यात्पाकत्रेत्यस्य मंत्रस्य आप्त्यास्त्रित ऋषिः ।। अग्निर्देवता ।। त्रिष्टुप्छंदः ।। ज्ञाताज्ञातदोष-परिहारार्थं प्रायश्चित्ताज्यहोमेवि० ।। ॐ यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्तासः ।। अग्निनष्टद्धोता ऋतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवा ऋतुशो यजाति स्वाहा ।। अग्नयइदं ।। यद्वो देवा इत्यस्य अभितपा ऋषिः ।। मरुतो देवताः ।। त्रिष्टुप्छन्दः ।। मंत्रतंत्रविपर्यासादिनिमित्तकप्रायश्चित्ताज्यहोमेवि० ।। ॐ यद्वो देवा अतिपातयानि वाचा च प्रयुती देवहेळनम् ।। अरायो अस्माँ अभिदुच्छुनायते-न्यत्रास्मिन्मरुतस्तन्निधेतन स्वाहा ।। मरुभ्द्य इदं न ममेति त्यजेत् ।। ततः कर्ता पूर्णाहुतिं जुहुयात् ।। तद्यथा--स्रुवेणाज्यं गृहीत्वा स्रुचं द्वादशवारं चतुर्वारं वा पूरयित्वा तस्यां स्रुवमूर्ध्वबिलं निधाय पुनरधोबिलं निक्षिप्य स्रुवाग्रे पुष्पाक्षत-फलसहितं तांबूलं निधाय सव्यपाणिना स्रुक्स्रुवमूले धृत्वा दक्षिणपाणिना स्रु-क्स्रुवं शंखमुद्रया गृहीत्वा तिष्ठन् ।। स्रुवाग्रन्यस्तदृष्टिः धामं ते वामदेव आपो-जगती । । पूर्णाहुतिहोमेवि० ।। ॐ धामं ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तःसमुद्रे हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मि स्वाहेति पठन्यवपरिमितां धारां स्रुगग्रेण सन्ततां सशेषं हुत्वा अभ्द्य इदं न ममेति त्यक्त्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति संस्रावं हुत्वा विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदं न ममेत्युक्त्वा र्वाहिषि पूर्णपात्रं निधाय दक्षिणपाणिना स्पृशन् ।। ॐ पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः सुपूर्ण-मसि सुपूर्णं मे भूयाः ।। सदसि सन्मे भूयाः ।। सर्वमसि सर्वं मे भूयाः ।। अक्षिति-रसिमा मेक्षेष्ठाः ।। इति जपित्वा कुशाग्रैः प्रागादिषु दिक्षु मंत्रैर्जलञ्च यथालिङ्ग सिञ्चेत् ।। ते च मंत्राः ॐ प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्ताम् ।। दक्षिणस्यां दिशि मासाः पितरो मार्जयन्ताम् ।। अप उपस्पृश्य ।। प्रतीच्यां दिशि ग्रहाः पशवो

मार्जयन्ताम् ।। उदीच्यां दिश्याप ओषधयो मार्जयन्ताम् ।। ऊर्ध्वायां दिशि यज्ञः संवत्वरः प्रजापतिर्मार्जयतामिति –– तत एकश्रुत्या पठन् कुशाग्रैः स्वशिरसि मार्जयेत् ।। तत्र मन्त्राः–आपो असमानित्यस्य देवा आपस्त्रिस्टुप् ।। ।। मार्जने वि० ।। ॐ आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।। विश्वं हि रिप्र प्रवहन्ति देवी रुदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि । इद मापः सिन्धुद्वीप आपोऽनुष्टुप् ।। मार्जने ।। वि० ।। ॐ इदमापः प्रवहत यत्किंच दुरितं मयि ।। यद्वा शेप उतानृतम् ।। सुमित्र्या न आप ओधयः सन्तु ।। योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं हन्मीति निर्ऋतिदेशे कुशाग्रैरपः सिञ्चेत् ।। ततो ब्रह्मा कर्तृवामपार्श्वस्ति तपत्न्यञ्जलिस्थजलौ पूर्णपात्रस्थं जलम्–ॐ माहं प्रजां परासिचं या नः सया वरीस्थ नः ।। समुद्रे वो नियानि स्वं पाथो अपीथ ।। इति मंत्रमेकश्रुत्या पत्न्या वाचयन् स्वयं वा पठन् प्रत्यङ्मुखं निषिच्याञ्जलिस्थजलैः पापापनोदनार्थमात्मानं यजमानं पत्नीं च प्रोक्षेत् ।। पत्नी तज्जलं बर्हिषि निषिञ्चेत् ।। अथवा यजमान एव बर्हिष्युत्तानं स्ववामपाणिं निधाय दक्षिणपाणिना पूर्णपात्रमादाय माहं प्रजामिति तज्जलं तस्मिन्प्रत्यङ्मुखं निषिच्य ता आपः समुद्रं गच्छन्तीति ध्यात्वा पाणिस्थ जलैरात्मानं पत्नीं च प्रोक्षेत् ।। ततः कर्त्ता वायव्यदेशे तिष्ठन्नग्निमुपतिष्ठेत् ।। तद्यथा–अग्ने त्वं न इति चतसृणां गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुत बन्धुर्विप्रबन्धुच्चेकैकर्चा ।। ऋषयः ।। अग्निर्देवता ।। द्विपदा विराट्छन्द ।। अग्न्युपस्थाने वि० ।। ॐ अग्ने त्वं नो अंतम उत त्राता शिवो भवावरूथ्यः ।। वसुरग्निर्वसुश्रवाअच्छानक्षिद्युमत्तमं रयिं दाः ।। स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणो अघायतः । समस्मात् ।। तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुन्मनाय नूनमीमहे सखिभ्याः ।। ॐ च मे स्वरश्च मे यज्ञोप च ते नमश्च । यत्तेन्यूनं त उप यत्तेऽतिरिक्तं तस्मै ते नम ।। ॐ स्वस्ति श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यां बुद्धिं श्रियं बलम् ।। आयुष्यं तेज आरोग्यं दहि मे हव्यवाहन ।। मा नस्तोक इति मंत्रस्य कुत्स ऋषिः ।। रुद्रो देवता जगतीछन्दः ।। विभूतिग्रहणे वि० ।। मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।। वीरान्मा नो रुद्र भामितोवधीर्हविष्मन्तः ।। सदमि त्वा हवामहे ।। ज्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे ।। कश्यपस्यत्र्यायुषमिति कण्ठे ।। अगस्त्यस्य त्र्यायुषमिदि नाभौ ।। यद्देवानां त्र्यायुषमिति दक्षिणस्कन्धे । तन्मे अस्तु त्र्यायुषमिति वामस्कन्धे ।। सर्वमस्तु शतायुषमिति शिरसि ।। इति विभूतिं धृत्वा परिस्तरणान्युत्तरे विसृज्य परिसमुह्य ३, पर्युक्ष्य ३, पुष्पादिभिरलंकृत्य नैवेद्यं ताम्बूलं च निवेद्य–यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।। न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।। प्रामादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।। स्मरणा-

देव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।। इति विष्णुं नत्वा स्मृत्वाचानेन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतामित्युक्त्वा– गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ।। इत्यग्निं विसृजेत् ।। एवं होमं संपाद्य उत्तरपूजां कृत्वा आचार्यं संसूज्य गां दद्यात्–यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघौघनाशिनी ।। विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा ।। इति ।। ततो ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य ।। यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ।। इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ।। इति स्थापितदेवतां विसृज्य पीठमाचार्याय दद्याद् ।। इत्यग्निमुखम् ।।

अथ अग्निमुखम्–आचमन्, प्राणायाम करके संकल्प करना चाहिये कि, आज ऐसे ऐसे पवित्र दिनमें इस कामके अंग रूपमें कहे गये अमुक हवनको करता हूँ । पीछे गोबरसे लीपे हुए शुद्ध स्थलमें शुद्ध मिट्टीसे एक स्थण्डिल बनना चाहिये, ईशान कोणसे लेकर उत्तरकी तरफ बनाना प्रारंभ करना चाहिये, यह स्थण्डिल चार अंगुल ऊंचा होना चाहिये चारों दिशाओंमें मिलकर बहत्तर अंगुलकी परिधि होनी चाहिये, अठारह अंगुलका विस्तार होना चाहिये । यदि होम अधिक करना हो तो बड़ा हो सकता है पर कम करना हो तो छोटा नहीं हो सकता किन्तु स्थण्डिल मध्यमें ऊंचा अवश्य होना चाहिये । उस स्थण्डिलको गोबरसे प्रदक्षिणाके क्रमसे लीप देना चाहिये । पीछे दक्षिणमें आठ अंगुल तथा उत्तरकी तरफ दो अंगुल, पश्चिममें चार अंगुल और पूरवमें आधा अंगुल छोड़कर, यज्ञिय शकलके मूलसे दायें हाथसे स्थण्डिलपर यज्ञिय शकलद्वारा दक्षिण दिशासे लेकर उत्तरको तरफ प्रादेशमात्र एक लकीर खींचकर, उस लकीर के दक्षिणोत्तरमें वैसी ही मध्यरेखासे न छिपी हुई हों रेखाएं और खींचनी चाहिये । इस तरह तीन उत्तरकी रेखाएं तथा तीन पूरवकी रेखाएं कुल मिलाकर छः रेखाएँ होनी चाहिये । उस शकलको उत्तरकी ओर अग्रभाग करके रख देना, पीछे पानीसे प्रोक्षण करके उस शकलको अग्निकोणमें तटककर हाथ धो, मौनी हो जाना चाहिये । फिर किसी सौभाग्यवती सुवासिनी स्त्रीके हाथसे, किसी भी धातुके बने हुए कटोरमें, कटोरेसे ढकी हुई दधकती हुई इतनी अग्नि म गवालेनी चाहिये जो कि कुछ देरतक बुते नहीं तथा वेदी कर्ममें सौम्य हो । यह अग्नि या तो किसी वेद पाठीके घरकी होनी चाहिये । अथवा अपने ही घरकी होनी चाहिये । जैसी आये, वैसी ही स्थण्डिलसे अग्निकोणमें रखदे । इसके पीछेका जो कर्म है सो अगाडी कहते हैं । " ओं जुष्टो दमूना " इस मंत्रका आत्रेय, वसुश्रुत ऋषि है, अग्नि देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है, अग्निके आवाहनमें इसका विनियोग होता है । परम प्रसन्न दयाशील तथा वैरियोंके दमन करनेवाले एवम् जिसकी हम सेवा करते हैं ऐसे अतिथि अग्नि, यजमानके घर आ उपस्थित हों, हे सब कुछके जाननेवाले अग्नि देव ! हम परआरोप करनेवाले सब को मार, वैरियोंकी शक्ति तथा धनका हरण करके हमें दे दीजिये । " ओम् एह्यग्म् " इस मंत्रका राहूगण गौतम ऋषि है, अग्नि देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है, अग्निके आवाहनमें इसका विनियोग होता है : ।हे देवोंको बुलाकर ला देनेवाले अग्नि देव ! यहां निर्भर होकर अविराजो, इस यज्ञको पूरा करो द्यावा पृथिवी तेरी रक्षा करें, मैं प्रसन्नताके लिये सब देवताओंका यजन यजन करता हूं । इन दोनों मंत्रोंसे अक्षतोंसे आवाहन करके, ढकनेको हठाकर–पीछे संपूर्ण व्याहृतियोंका परमेष्ठी प्रजापति ऋषि है, बृहती छन्द है, प्रजापति देवता है, अग्निको प्रतिष्ठामें इसका विनियोग होता है । ओं भूर्भुवः स्वः । इससे अपने सामने दोनों हाथोंसे , छः रेखाओंके बीचमें जिस कामके लिये जो अग्नि स्वरूप, नाम कहागया है, उस रूप नामको कहकर अग्नीकी स्थापना कर देनी चाहिये, कि ऐसे २ अग्निको इस २ काममें मैं स्थापित करता हूं । ओम् " *चत्वारि शृंगाः " मन्त्रका गौतम वामदेव ऋषि हैं, अग्नि देवता हैं, त्रिष्टुप

---

* व्याकरण महाभाष्यकारने इसका शब्दपरकर अर्थकिया है । भागवतने ईसीके भावका एसाही एकश्लोक रखकर भगवान् विष्णुजीकी और घटाया है ।

छन्द है, अग्निकी मूर्तिके ध्यानमें इसका विनियोग होता है । इस अग्नि देवके चार शृंग, तीन पाद, दो शिर और सात हाथ हैं, तीन तरहसे अथवातीनजगहबँधा हुआ है, बड़ा भारी देव है, सब कार्यों का पूरा करनेवाला है, वो यहां मनुष्यों के बीच आविराजा है ।।भगवान् अग्नि देवके सात हाथ चार शृंग, सात जिह्वा दो शिर और तीन पाद हैं, सदाही प्रसन्न मुख हैं,सुखसे बैठे सुन्दर स्मित कर रहे हैं, दाईं ओर स्वाहा और बाईं ओर स्वधा बैठी हुई हैं, दायें हाथ में शक्ति, अन्न, स्रुक्, और स्रुवा तथा बायें हाथमें तोमर व्यजन और घीका पात्र है, ऐसे भव्य अग्नि देव मेरे सामने विराज रहे हैं । हे मनुष्यो ! सब प्रदिशाओंमें यही अग्नि देव है, सबसे पहिले यही हुआ है, यही गर्भके बीच में है, यही विशेषरूपसेहो रहा है और यही होगा, है मनुष्यो ? यद्यपि सर्वतो मुख है पर तो भी आपके सामने विराजमान हो रहा है । हे शण्डिल्य गोत्री मेषकी ध्वजा वाले एवम् पूरबकी ओर मुख करके बैठे हुए आप मेरे समान मुझ वर देनेवाले हूजिये । अन्वाधान–आचमन प्राणायाम करके, देश-कालका कीर्त्तन करके,करनेवालेको कहना चाहिये कि परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये किये इस व्रतके उद्यापनके होममें, देवताके परिग्रहके लिये, अन्वाधान कर्म करता हूँ । इस अन्वाहित अग्निमें जातवेदा अग्निको तथा प्रजापतिको इध्मसे, प्रजापति आधार देवता तथा अग्नि और सोम इन दोनोंको एवम् नेत्रोंको आज्यसे इस कर्मके प्रधान देवताओं को इस हव्य द्रव्यसे इतनी आहुतियोंसे तथा ब्रह्मादिक आहूत देवताओं को नाममन्त्रसे एक–एक आज्यकी आहुतिसे यजन करूँगा, बाकी बचे शाकल्यसे स्विष्टकृत् अग्निको तथा समिधाके बन्धनसे रुद्रको, एवम् अयासअग्निदेव विष्णु अग्नि वायु सूर्य और प्रजापति ये जो प्रायश्चित्तके देवता हैं इन सबको आज्यसे तथा जाने और वे जाने हुए दोषोंके निवारण के लिये अग्नि और मरुतको तीनवार आज्यसे, विश्वे-देवताओं को संस्रावसे एवम् जो अंडदेवता वा प्रधान देवता उपस्थित हों मैं सबका सांगोपांग कर्म विधिसहित यजन करूँगा । व्याहृतियोंके परमेष्ठी प्रजापति ऋषि हैं । प्रजापति देवता हैं बृहती छन्द है अन्वाधानको समि-धाओंके होममें इनका विनियोग होता है । फिर भूर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतय इदं न मम यह कहकर अग्निमें समिध हवन कर देनी चाहिये । इसके पीछे समिध और कुशाओंको सन्नहनकर अग्निके परिसमूहन करना चाहिये । इसके बाद अग्निको चेताकर उसका चारों ओरसे परिस्तरण करना चाहिये । परिस्तरण चारों ओर कुशके बिछानेको कहते हैं । उसका क्रम यह है कि, वेदीके चारों ओर ईशान कोणसे लेकर प्रदक्षिणके क्रमसे तीन-वार मार्जन करके पीछे सोलह कुशाओंको बिछाना चाहिये । पूरब और पश्चिममें उदगग्र दर्भ, तथा दक्षिण उत्तरमें प्रागग्र दर्भ होनी चाहिये । पूर्व और पश्चात्के परिस्तरणके मूलके ऊपर दक्षिण परिस्परण होना चाहिए । तथा उनके अगाडीके नीचे उत्तर परिस्तरण होना चाहिये । इसके पीछे अग्निसे दक्षिण ब्रह्माके आस-नके लिये तथा अग्निसे उत्तर पात्रोंके आसनके लिए एक एक प्रागग्र दर्भोंको बिछाना चाहिये, पीछे अग्निसे लेकर ईशानकोण तक दीनवार पानी छिडक कर उत्तर दिशा की ओर बिछी हुई कुशाओंपर दोनों हाथोंसे क्रमसे नीचे लिखी हुई दो दो चीजें उठाकर रख देनी चाहिये । पहिले चरुस्थाली प्रोक्षणी, इसके पीछे दर्वी, स्रुव तथा फिर प्रणीता आज्यपात्र, इध्म बर्हि, इन सबोंको उत्तरकी तरफ नौकर तथा पूरबकी तरफसे स्थापित करता हुआ उलटा रख दे । पीछे प्रोक्षणी पात्रको सीधा करके उसपर प्रादेशिके बराबर दो कुशोंको पवित्रीके रूपमें रखकर, उसे पानीसे भर, उसमें सुगंधित फूल और अक्षतोंको डालकर, अँगूठे और कनिष्ठिकासे उदग्र पृथक पवित्र रखकर तीनवार पानीका उत्पवन करके, इध्मको ठीक करके, सब पात्रोंको पानीसे तीनवार प्रोक्षण करना चाहिये । कोई–कोई ऐसा कहते हैं कि, वो थोडासा पानी कमण्डलमें भरदेना चाहिये । प्रणीता-पात्रको अग्निके पूर्वमें रखकर उसपर दोनों पवित्रा रखकर पानी भरकर, सुगन्धित पुष्प तथा अक्षत डाल दे । पीछे कहे कि, मैं इस काममें आपको ब्रह्माके रूतमें वरण करता हूं, बननेवाले द्विजकोभी चाहिये कि वो हाथ पकडकर कहे कि मैं तेरा ब्रह्मा बन गया; पीछे ब्रह्माजी पूरबकी ओर मुख करके यज्ञका उपवीत पहिन, आच-मन कर, हाथ पैरोंको इकट्ठा करके अगाड़ीसे अग्नि को धोकर, दक्षिणसे उत्तर मुख करके बैठे, आसनके लिये दर्भोंमेंसे एकदर्भ अंगूठा और अनामिकासे लेकर " निरस्वःपरावसु " परावसु निरस्तकर दिया शीघ्र यह मुखसे कहते हुए कुशाको नैर्ऋत्य कोणमें फेंककर आचमन करके " इदमहमर्वावसोःसदने सीदामि " में अर्वा-वसुके सदन पर बैठता हूं यह कहता हुआ उत्तरकी ओर मुंह रखता हुआ ही बायें घोंटूके ऊपर दायें पैर रखता

हुआ बैठ जाता है । जिस समय यजमान उनका गंध अक्षत आदिसे पूजन करता है उस समय ब्रह्मा कहता है। कि " इन्द्रके घरपर बृहस्पतिजी ब्रह्मा बनते हैं वो ही बृहस्पति इस यज्ञकी रक्षा यज्ञपतिकी रक्षा करें, मेरी रक्षा करें, इस प्रकार जपता हुआ यज्ञमें मन लगाकर बैठ जाय । यजमान ब्रह्मासे पूछता है कि ब्रह्मन् जलका प्रणयन करूंगा । यह सुनकर ब्रह्मा, " ओम् भूः भुवः स्वः बृहस्पति प्रसूता तानो मुञ्चन्तु अंहसः ।" बृहस्पति-जीसे आज्ञा पाये हुए वे पानी तुमें पापसे छुडादें यह मंत्र धीरे तथा पानीकाप्रणयन करो यह ऊंचे स्वरसे कहकर पीछे मौन छोड़ दे, इसके पीछे कर्ता दोनों हाथोंसे प्रणीता पात्रको नाकके समीप लाकर अग्निके उत्तरमें रख· कर दूसरी कुशाओंसे ढक दे, उन दोनों पवित्रोंको आज्य पात्र पर रखकर उस पात्रको सामने स्थापित करे फिर उसमें घी करके उसे परिस्तरणके बाहिर उत्तरकी ओर अंगारोंपर रखकर जलते हुए कुशोंगो आज्य-पात्रके चारों ओर घुमाकर आगपे पटक दे, पीछे दो उल्कोंसे प्रधान द्रव्य सहित तीन वार पर्य्यग्नि कर उल्कको फेंक आचमन करके अंगारोंको अग्निमें छोड़ दे । अंगुष्ठ और उपकनिष्ठिकोंसे दो पवित्र लेकर, " ओम् सवि-तुष्टा" इस मंत्रका हिरण्यस्तूप ऋषि है, सूर्य देवता है, पुरउष्णिक् छन्द है, आज्यके उत्पवनमें इसका विनियोग होता है । सविताकी आज्ञामें चलता हुआ मैं निर्दोष पवित्रे और सबके वसानेवाले सूर्य्य देवकी किरणोंसे तेरा उत्पवन करता हूं । इस मंत्रको एकवार बोल कर तथा दोवार चुपचाप घीका उत्पवन करना चाहिये । उन दोनों पवित्रोंका पाणीसे प्रोक्षण करके अग्निमें डाल देना चाहिये । उस समय यह स्कन्दके लिये स्वाहा है । यह मेरा नहीं है । इस अर्थके ऊपर लिखे हुए मंत्रको मुखसे कहना वैध है । इसके पीछे अपने सामनेकी भूमिका प्रोक्षण करके वहां ही उत्तरकी तरफ अग्रभाग करके वहां बर्हिके बाँधनेकी रज्जुको बिछाकर उसपर आज्य पात्र रखकर बांये हाथमें कुशा और दायें हाथमें स्रुक् ले अग्निसे तथा दर्वीको रखकर पीछे बायें हाथमें स्रुवा ले और दाये हाथमें कुश लेकर उस स्रुवके विलको तीनवार शुद्ध करे । इसी तरह अपने सामने तीन बार स्रुवकी पीठको शुद्ध करे, पीछे कुशोंकी जडोंसे स्रुवोंके बिलकी पीठसे लेकर ऊपरके विलतक तीनवार शुद्ध करके फिर पानीसे उनका प्रोक्षण करके पीछ उन्हें अग्निसे तपाकर घृतके उत्तरमें रख देना चाहिये, फिर इसी तरह स्रुचको शुद्ध करके पीछे उसका प्रोक्षण करके स्रुवासे उत्तरकी ओर रख दे । दर्भोंका पानीसे प्रक्षालन करके उन्हें भी आगमें पटक दे । स्रुवसे घी लेकर होमकी चीजोंमें मिला दे, पीछे उसे उत्तरकी ओर उद्वासन करके घी और आगके बीचमें लेजाकर घीसे दक्षिणकी ओर कुशासनके कुशाओंपर रख दे ।" ओम् विश्वानि न " इत्यादि तीन ऋचाओंका वसुश्रुत ऋषि है, अग्नि देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है । दोका पूजनमे तथा एकका उपस्थानमें विनियोग होता है । हे जात वेद ! आप हमारे सब कष्टोंको नष्ट करते हैं आप हमें ऐसे पार लगा देते हैं जैसे कि योग्य जहाजी समुद्रसे पार कर देता है । हे अग्ने जैसे आपने अत्रिकी नमस्कारें सुन दुःखोंसे पार किया था उसी तरह हमारी भी सुनो एवम् हम और हमारोंकी रक्षा करो । हे अग्ने जो मरणशील मनुष्य आपकी स्तुति-योंमें रत रहनेके कारण विक्षिप्त हुए हृदयसे आपको सबका पूरा करने वाला मानकर बुलाता है उसके सब काम पूरे करते हो, हे जातवेद ! हमें यश दो, मैं अपनी प्रजाके साथ अमृतत्वको भोगूं । हे जातवेद ! जिस सुकृतीके लिये आप सुख लोक करते हैं उसे घोड़े, बेटे, वीर बहादुर पुत्र तथा अनेक तरहके धनका लाभ होता है जो सदा ही बना रहता है ऐसी आपकी कृपा है, आठों दिशाओंमें गन्ध, पुष्प, अक्षतादिकोंसे अग्निको पूज-कर अपनेको वस्त्राभूषणोंसे भूषित करके एकसे पस्थानकर पीछे हाथसे समिध लेले उनके मूल और अग्र-भागको स्रुवसे तीनवार भिगाकर उन्हें बीचमें पकड़े, पीछे" आयन्त इध्म " इस मंत्रको बोलकर अग्निमें हवन कर दे । ओम् अयन्त इस मंत्रका वामदेव ऋषि है, जातवेदा अग्नि देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है, इध्मके हव-नमें इसका विनियोग होता है : ।हे जातवेद, यह इध्म आपकी आत्मा है इससे आप प्रकाशित हुजिये और बढ़िये तथा हमें प्रजा पशु और ब्रह्मतेजसे बढ़ाकर प्रकाशित करिये । ये आहुति जातवेदा अग्निकी है, इसमें कुछ भी मेरा नहीं है । इस प्रकार आहुति छोड़ते हुए कहना चाहिये इसके वाद स्रुवसे आज्य लेकर वायुकोणसे लेकर अग्निकोणतक धीकी धाराका हवन करना चाहिये । सो भी " प्रजापतये स्वाहा " यह मनसे हवन करता हुआ ही आहुतिको छोड़े । इसी तरह नैर्ऋत्य कोणसे लेकर ईशान कोण तक मनसे " प्रजापतये स्वाहा " इस प्रकार कहता हुआ घीकी धारका हवन करना चाहिये कि, यह प्रजापतिका है मेरा नहीं है । उसके बाद

उत्तरमें भी इसी तरह हवन करना चाहिये ।" अग्नये स्वाहा " इदमग्नये न मम, यह मैंने अग्निके लिये दिया अब इसमें मेरा कुछ नहीं है । दक्षिणमें " ओम् सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय नमम" ये सोमके लिये हैं इस पर मेरा कोई सत्त्व नहीं है, इन दोनों आहुतियोंके पीछे प्रधान होम करना चाहिये । इसके पीछे बिना मंत्रके ही ब्रह्मादिक देवताओंको एक एक आहुति दे " ओम् ब्रह्मणे स्वाहा" यहांसे लेकर " ओम् वैनायकयं स्वाहा " यहां तक आहुतियाँ है एक एक पर एक एक आहुति देनी चाहिये । अथ स्विष्टकृद्धोम–"ओमग्रदस्य कर्मणः " इस मंत्रका हिरण्यगर्भ ऋषि है, स्विष्टकृत् अग्नि देव है, अतिधृतिछन्द है, स्विष्टकृत् होममें इसका विनियोग होता है । इस कर्मका मुझसे कुछ बाकी रह गया हो या उसमें मुझसे कुछ न्यूनता आ गयी हो तो उसे संभालनेवाला ज्ञाता स्विष्टकृत् अग्निदेव, सबको अच्छा कर दे । यह विधिके साथ किये गये हवनको ग्रहण करनेवाले सभी प्रायश्चित्तकी आहुतियोंके कामोंका समर्थन करनेवाले एवम् अच्छी इष्टी करनेवाले अग्नि देवके लिये है । हे अग्ने ! हमारी सब कामनाओंको पूरा करिये, यह अच्छी इष्टी करनेवाले अग्निके लिये है । मेरे लिये नहीं है । इससे तीन बार सन्धान करके पीछे पशुपति रुद्रके लिये स्वाहा है यह पशुपति रुद्रके लिये है मेरा नहीं है । इससे एक आहुति देकर पीछे हाथ पैर धो डाले । पीछे स्रुवेसे सात प्रायश्चित्तकी आहुतियां दे । इन सातों आहुतियोंके भिन्न भिन्न मंत्र हैं । उन्हें यहीं मूलमें लिखा है । उनके अर्थ यहां लिखते हैं । " ओम अयाश्च " इस मंत्रका विमद ऋषि है, अग्नि देवता है, पंक्ति छन्द है, प्रायश्चित्तके आज्य होममें इसका विनियोग होता है । हे अयास् अग्ने, आप हमारी बुराईको दूर करना, क्योंकि आप वास्तवमें अयास हो तथा आप वयससेभी अयास हो परिपूर्ण हविको देवोंमें पहुँचाते हो : ।हे अयास् । हमारे लिये भेषजको धारण करो । ' ओम अतो देवा तथा ओम् इदं विष्णुर्विचक्रमे " इन दोनों मंत्रोंके काण्व मेधातिथि ऋषि हैं, पहिलेके देव तथा दूसरेके विष्णु देव देवता हैं, गायत्री छन्द है, प्रायश्चित्तके आज्य होममें इनका विनियोग होता है । हे देवताओ ! आप हमारी उससे रक्षा कर जिससे विष्णु भगवान् पृथिवीके सातों धामों पर चले थे । यह देवोंकी है ।। मेरी नहीं है, श्री विष्णु भगवान् अपने लोकसे चले और आहवनीय आदि तीनों कुण्डोंमें अंशसे आ विराजे, बाकी नित्य धाममें रहे ।। यह विष्णु भगवान्की है मेरी नही है । भूः, भुवः, स्वः इन तीनों व्याहृतियोंमेंसे एक एकके क्रमशः विश्वामित्र, जमदग्नि और भरद्वाज ऋषि हैं, अग्नि वायु और सूर्य देवता हैं, गायत्री उष्णिग् और अनुष्टुप् छन्द हैं तथा तीनोंके एक साथ रहने पर प्रजापति ऋषि, प्रजापति देवता और बृहती छन्द है, प्रायश्चित्तके आज्य होममें इनका विनियोग होता है । ओम् भूः स्वाहा अग्नये इदं न मम–यह अग्निके लिये है मेरी नहीं है । ओम् भुवः स्वाहा वायवे इदं न मम–यह वायुके लिये है यह मेरी नहीं है । स्वः स्वाहा, सूर्य्याय इदं न मम-यह सूर्य्यके लिये है मेरी नहीं है । ओम् भुर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतये इदं न मम-यह प्रजापतिके लिये है मेरी नहीं है । इसके पीछे, ब्रह्मा कर्ताकी प्रदक्षिणाकर अग्निसे वायव्य देशमें बैठकर इन सातों आहुतियोंको हवन करे और यहां आहुति–त्याग यजमानही करे ।" ओम् अनाज्ञातम् " इन दोनों मंत्रोंके हिरण्यगर्भ ऋषि है अग्निदेवता है, त्रिष्टुप् छन्द है, जाने और वे जाने दोषके निवारणके लिये प्रायश्चित्तके आज्य होममें इनका विनियोग होता है । हे अग्ने ! इस यज्ञमें जो जानके विनाजाने दोष हुआ हो आप सबको यथावत् जानते हैं, इस कारण आप उसका निवारण करदे । यह अग्निके लिये है, मेरी नहीं है. पुरुषसे यज्ञ तथा यज्ञसे पुरुष होता है । हे अग्ने ' यज्ञकी मेरी त्रुटियोंको आप जानते हो आप यज्ञको निर्दोष करदें । यह अग्निके लिये है मेरी नहीं है ।। " ओम् यत्पाकत्रा " इस मंत्रके आप्त्य त्रित ऋषि हैं, अग्नि देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है, ज्ञात और अज्ञात दोषके परिहारके किये प्रायश्चित्तके आज्यहोममें इसका विनियोग होता है । जो विशिष्ट ज्ञान रहित मनसे दीन दक्ष मनुष्य यह समझते हैं कि, हमने यज्ञका सब ठीक कर दिया है पर यज्ञके जाननेवाले देवताओंके यजन करनेवाले अग्निदेव उसकी सब त्रुटियोंको जानते हैं, ऐसे अग्नि देव ही देवताओंका यतन ऋतु ऋतुमें दूरा करते हैं । यह आहुति अग्निके लिये है मेरी नहीं है । " ओम् यद्वो देवा " इस मंत्रका अभितपा ऋषि है, मरुत देवता हैं, त्रिष्टुप् छन्द है, अशुद्ध मंत्रके बोलनेसे जो प्रायश्चित्त होता है उसके होममें इसका विनियोग होता है । हे देवो । मैंने जो वाणीसे मंत्र बोलनेमें लरती की है उससे होनेवाले पापसे जो हमारा अनिष्ट शोच रखा है, हे मरुतो ! उसे हमसे दूर कर दो । यह मरुतोंके लिये है मेरी नहीं है । इन आहुतियों को देनेके

बाद पूर्णाहुति दे । पूर्णाहुति कैसे दी जाती है सो लिखते हैं—स्रुवासे बारह वार या चारवार घी लेकर स्रुक्को भर लेना चाहिये फिर स्रुक्के ऊपर सीधा स्रुवा रखकर फिर उसे ओंधा रख दे, पीछ स्रुक्के अग्र भागमें पुष्प अक्षत और ताम्बूल रखकर सव्य हाथसे स्रुक् और स्रुवके मूलको रखकर हायें हाथसे शंखमुद्रा पूर्वक स्रुव स्रुक्को शे उसीपर दृष्टि जमाकर बैठ जाय । "ओम् धामं ते" इस मंत्रका वामदेव ऋषि है, आप देवता जगती छन्द है, पूर्णाहुतिके होममें विनियोग होता है । हे जल देव ! तेरा तेज अखिल विश्वमें फैला हुआ है, समुद्रके हृदयके भीतर आपका आयु है मीठी जो तेरी ऊर्मि पानीके समुदायमें है, मैं उसीका भोग करता हूं । इस मंत्रको कहता हुआ जौके बराबर धारा तब तक अग्निमें पड़ती रहे जबतक कि थोडासा बाकी न रह जाय, जल देवके लिये वह है मेरा नहीं है, यह कहकर आहुति दे—दे—"ओम विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा" इस मंत्रसे संस्रावका हवन कर दे, यह विश्वे देवाओंके लिये हैं । पीछे कुशाओंपर पूर्ण पात्रको रखकर, उसे दांये हाथसे छूते हुए कहना चाहिये कि, तू पूर्ण है मेरा भी पूरा हो, तू सुपर्ण है मेरा भी सुपर्ण हो, तू सद् है, मेरा भी सद् हो, तू सब है, मेरा भी सब हो, तू अक्षिति है, मुझे भी अक्षय करदे, इस प्रकार जपकर पांच दिशाओंमें उनके मंत्रोंसे कुश जल छिड़कना चाहिये । वे मंत्र ये हैं—प्राची दिशामें सुयोग्य ऋत्विजों मार्जन करें । दक्षिण दिशामें मास और पितर मार्जन करें । पश्चिम दिशामें ग्रह और पशु मार्जन करें । उत्तर दिशामें आप औषधि और वनस्पति मार्जन करें । ऊर्ध्व दिशामें यज्ञ, संवत्सर और प्रजापति मार्जन करें । दिशाओंके मार्जनके बाद एक स्वरसे नीचे लिखे "आपो अस्मान् मातरः" इत्यादि मंत्रोंद्वारा कुशजलसे अपना मार्जन करना चाहिये । "ओम् आपो अस्मान्" इस मंत्रका दवश्रवा ऋषि है, आप देवता हैं त्रिष्टुप् छन्द न, मार्जनमें विनियोग होता है । संसारकी माकीसी पालन करनेवाले आप हमें प्रोक्षणसे शुद्ध करें । जलसे पवित्र करनेवाली जलसे पवित्र करें, देवी आप, मेरे सब अनिष्टोंको दूर कर रही हैं, मैं पानीसे पवित्र होकर ही स्वर्ग जाऊंगा ।। "ओम् इद-मापः" इस मंत्रका सिन्धुद्वीप ऋषि है, आप देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, मार्जनमें इसका विनियोग होता है । हे जलो ! जो भी कुछ मेरेमें दुरित हैं उन्हें बहा लेजाओ, जो मैंने कि सीसे झूठा वैर किया है तथा किसीको झूठी गाली दी है अथवा जो मुझसे करते हों, इस पापसे मुझे छुडादें, हमें आप और औषधियां अच्छे मित्रवाली हों, दुखदायी उसे हों जो हमसे वैर करता है या जिससे मैं वैर करता हूं । वे उसे मारता हूं । यह मंत्र कह कर नैर्ऋत्यकोणमें कुशाओंसपानी छिड़क दे । इसके पीछे ब्रह्माजी यजमानके बायें पार्श्वमें बैठी हुई यजमानपत्नीको अंजलिमें पूर्णपात्रके पानीकी "ओम् माहं प्रजाम्" इत्यादि मंत्रको पूरव की ओर मुख करके कहता हुआ या कहलाता हुआ भर दे । मंत्रार्थ—मैं अपनी उस प्रजाको परे न फेंकूं जो कि मुझे प्राप्त हो रही है, हम तुम्हें समु-द्रमें लेजायगे वहां आप अपना पीना । इसके पीछे ब्रह्माको चाहिये कि, उस जलसे पाप निवारणके लिये आप और यजमानपत्नीका प्रोक्षण कर दे, पीछे यजमानपत्नी उस पानीको कुशाओं पर छोड़ दे । अथवा यजमान-ही पूर्वाभिमुख अपना बाँया हाथ सीधा कुशाओंपर रखकर सीधे हाथमें पूर्ण पात्र लेकर "ओम् माहं प्रजां परासिचं या नः सयावरीस्थनः समुद्रे वो निनयामि स्वं पाथो पीथ" इस मंत्रको बोलता हुआ पत्नीकी अज लीमें पानी छोड़ता हुआ पानी समुद्रको जा रहा है ऐसा ध्यान करके अपना और पत्नीका दोनोंका प्रोक्षण करना चाहिये । इसके पीछे कर्ता वायव्यमें बैठा हुआ उपस्थान करे ।"ओम् अग्ने" त्वंनो इत्यादि चार मंत्रोंके क्रमसे गोपायन, लौपायन अथवा बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु ऋषि हैं । अग्नि देवता है, द्विपदा विराट् छन्द है, अग्निके उपस्थानमें इसका विनियोग होता है । हे अग्निदेव ! आप हमारे त्राता तथा नितान्त रक्षक हैं आप समुदायके रक्षक हैं धनकीकीर्ति वाले तथा धन है आप हमें बसाइये आपही हमें देवताओंके उत्तम धनके देनेवाले हैं । हमारे बैरी हमें चारों ओरसे दबाना चाहते हैं, आप उन्हें देखें, एवम् हमारे आह्वानको सुने ।। हे प्रकाशशील ! ऐसे तुझे स्वर्गीय सुखके लिये बुला रहे हैं कि, हमें और हमारेस ाथियोंको अद्र त सुख हो । और स्वर मेरे लिये हों । हे यज्ञ ! तेरे लिये नमस्कार है, जो तेरे लिये कम है उस तेरे तथा जो तेरे लिये ज्यादा है उस, तेरे लिये नमस्कार है : । हे हव्यवाहन ! स्वस्ति, श्रद्धा, मेधा, यश, प्रज्ञा, विद्या, बुद्धि, श्रीबल,आयुष्य तेज और अरोग्य मुझे दे "मानः स्तोके" इस मंत्रके कुत्सऋषि हैं रुद्र देवता है,जगती छन्द है, विभूतिके ग्रह-ण में इसका विनियोग होता है ।हे रुद्र, हमारे तोक,तनय आयु गो और अश्वोंमें मारनेका भाव न करियेगा न

हमारे क्रोधी वीरोंकोही मारियेगा, क्योंकि हम आपको सदा ही अपने घरपर बुलाते रहते हैं, " ओम् त्र्यायुषं जमदग्ने :" इस यंत्रसे ललाटमें " ओम् कश्यपस्य त्र्यायुषम् " इस मंत्रसे कंठमें " ओम् अगस्त्यस्य त्र्यायुषम् " इस मंत्रसे नाभिमें " ओम् यद्देवानां त्र्यायुषम् " इस मंत्रसे दांये कन्धेपर " ओमतन्मे अस्तु त्र्यायुषम् " इस मंत्रसे बांये कन्धेपर एवम् " ओम् सर्वमस्तु शतायुषम्" इस मंत्रसे शिरपर विभूति लगाना चाहिये । अर्थ–जमदग्नि, कश्यप, अगस्त्य और देवोंके तीनों आयुष्य हैं वे सब मेरे आयुष्य हों सब शतायु हों । विभूति धारणके बाद उत्तरमें परिस्तर्णोंको छोड़कर तीनवार परिसमूहन और प्रोक्षण करके पीछे फूलोंसे अलंकृत करि, नैवेद्य और पानका निवेदन करके भगवान्‌की प्रार्थना करनी चाहिये कि, जिसके स्मरणसेही यज्ञ दान तप आदिकी न्यूनता शीघ्र पूरी हो जाते हैं, मैं उस अच्युतके लिये नमस्कार करता हूं । यज्ञमें कर्म करके हुए हमसे प्रमादके वश होकर कोई गरती हो तो वो विष्णु भगवान्‌के स्मरण से पूरी हो जाय । पीछे विष्णु भगवान्‌को नमस्कार करके कहना चाहिये कि इस कर्मसे विष्णु भगवान प्रसन्न हो जाओ । हे परमेश्वर ! हे सुरश्रेष्ठ ! आप अपने धामको पधारिये । हे हुताशन ! जहाँ ब्रह्मादिकं देवता गये हों, वहां ही आप भी पधार जाइये । इस प्रकार अग्निका विर्जन करना चाहिये । इस प्रकार होमका संपादन करके उत्तर पूजा कर तथा आचार्य्यका पूजन करके उन्हें गाय देनी चाहिये, " यज्ञसाधनभूताया :" यह गो दानका मंत्र है कि, जो यज्ञको साधनभूत है सारे पापों का नाश करनेवाली है, ऐसी गऊके दानसे विश्वरूपधारी भगवान् प्रसन्न हो जायें । इसके बाद ब्राह्मण भोजनका संकल्प करके " यान्तु देवगणाः " इससे देवोंका विसर्जन करना चाहिये कि, सब देवगण मेरे इष्ट कामोंको सिद्ध करनेके लिये तथा फिर आनेके लिये मेरी पार्थिवी पूजा लेकर अपने अपने लोकको जायं । (केवल गणपतिजी और लक्ष्मीजी रह जायं) देवविसर्जन करनेके पीछे पीछ आचार्यके लिये दे देना चाहिये ।। यह अग्निमुखका विधान पूरा हुआ ।

अथ मुद्रालक्षणम्

हेमाद्रौ--संमुखीकृत्य हस्तौ द्वौ किंचित्संकुचितांगुली ।। मुकली तु समाख्याता पङ्कजप्रसृतैव सा ।। पूर्वोक्ता मुकुली या च प्रादेशे निःसृतांगुलिः ।। व्याकोशमुद्रा मुकुला पद्ममुद्रा प्रकीर्तिता ।। अंगुष्ठौ कुञ्चितान्तौ तु स्वकीयांगुलिवेष्टितौ ।। उच्चावभिमुखौ हस्तौ योजयित्वा तु निष्ठुरा ।। तर्जन्यौ कुञ्चिते कृत्वा तथैव च कनीयसी ।। अधोमुखी दृष्टनखा स्थिता मध्ये करस्य तु।। चतस्रश्चोत्थिताः पृष्ठे अंगुष्ठावेकतः करु ।। नालं व्यवस्थितौ द्वौ तु व्योममुद्रा प्रकीर्तिता ।। तन्त्रान्तरे सर्वदेवतापूजनसाधारण्येन षण्मुद्रा उच्यन्ते ।। देवताननसंतुष्टा सर्वदा संमुखी भवेत् ।। अंगुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वावाहनी मता ।। संग्रथ्य निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वासनसंज्ञिका ।। अधोमुखी त्वियं चेत्स्यात्स्थापनीमुद्रिका मता ।। उच्छितावुच्छितौ कुर्यात्संमुखीकरणी भवेत् ।। प्रसृतांगुलिकौ हस्तौ मिथःश्लिष्टौ तु संमुखौ ।। कुर्यात्स्वहृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका ।। इत्येवंसर्वदेवानां पूजने षट् प्रदर्शयेत् ।। शिवपूजने लिङ्गमुद्रा ।। उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं वामांगुष्ठेन बन्धयेत् ।। वामांगुलीदक्षिणाभिरंगुलीभिश्च वेष्टयेत् ।। लिङ्गमुद्रेति विख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ।। श्रीकामः शीर्षिण कुर्वीत राज्यकामस्तु नेत्रयोः ।। मुखे त्वन्नादिकामस्तु ग्रीवायां रोगशान्तिकृत् ।।हृदये सर्वकामी च ज्ञानार्थी नाभिमण्डले ।। राज्यकामस्तु गुह्ये च राष्ट्रकामस्तु पादयोः ।। रामपूजने सप्तदशमुद्राः ।। तथा च रामार्चनचन्द्रिकायामगस्त्यः–आवाहनी स्थापनी च सन्निधीकरणी तथा ।। सुसंनिरोधिनी मुद्रा

संमुखीकरणी तथा । संकलीकरणी चैव महामुद्रा तथैव च ।। शङ्खचक्रगदापद्म-धेनुकौस्तुभगारुडाः ।। श्रीवत्सवनमाले च योनिमुद्राः प्रकीर्तिताः । एताभिः सप्तदशभिमुद्राभिस्तु विचक्षणः ।। यो राममर्चयेन्नित्यं मोदयेत्स सुरेश्वरम् ।। द्रावयेदपि विप्रेन्द्र ततः प्रार्थितमाप्नुयात् ।। मूलाधाराद्द्वादशान्तमानीतः कुसु मा-ञ्जलिः ।। त्रिस्थानगततेजोभिर्विनीतः प्रतिमादिषु ।। आवाहनी च मुद्रा स्याद्देवा-र्चनविधौ मुने । एषैवाधोमुखी मुद्रा स्थापने शस्यते पुनः।।उन्नतांगुष्ठयोगेन मुष्टी-कृतकरद्वया ।। सन्निधीकरणी मुद्रा देवार्चनविधौ मुने ।। अंगुष्ठगर्भिणी सैव मुद्रा स्यात्सन्निरोधिनी ।। उत्तानमुष्टियुगला संमुखीकरणी मता ।। अङ्गैरेवाङ्गविन्यासः संकलीकरणी भवेत् ।। अन्योन्यांगुष्ठसंलग्नविस्तारित करद्वया ।। महामुद्रेय-माख्याता न्यूनाधिकसमापनी।। कनिष्ठानामिकामध्यान्तः स्थांगुष्ठात्तदग्रतः ।। गोपितांगुष्ठमूलेन सन्निधौ मुकुलीकृता ।। करद्वयेन मुद्रा स्याच्छङ्खाख्येयं सुरार्चने ।। अन्योन्याभिमुखस्पर्शव्यत्ययेन तु वेष्टयेत् ।। अंगुलीभिः प्रयत्नेन मण्डलीकरणं मुने ।। चक्रमुद्रेयमाख्याता गदामुद्रा ततः परम् ।। अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा ततः कौस्तुभसंज्ञिका ।। कनिष्ठेन्योन्यसंलग्नेऽभिमुखं हि परस्परम् ।। वामस्य तर्जनीमध्ये मध्यानामिकयोरपि ।। वामानामिकसंसृष्टा तर्जनीमध्यशोभिता ।। पर्यायेणानतांगुष्ठद्वयी कौस्तुभलक्षणा ।। कनिष्ठान्योन्यसंलग्न विपरीतं तु योजिता। अधस्तात्प्रापितांगुष्ठा मुद्रा गरुडसंज्ञित ।। तर्जन्यंगुष्ठमध्यस्था मध्यमानामिका-द्वयी ।। कनिष्ठाऽनामिकामध्यतर्जन्यग्रकरद्वयी ।। मुद्रा श्रीवत्समुद्रेयं वनमाला भवेत्ततः ।। कनिष्ठानामिकामध्या मुष्टिरुन्नततर्जनी ।। परिभ्रान्ताशिरस्युच्चै-स्तर्जनीभ्यां दिवौकसः ।। योनिमुद्रा स माख्याता द्योतत्करद्वयाश्रिता ।। तर्जन्याकृष्टमध्यान्तोत्थितानामिकयुग्मिका ।। मध्यस्थलास्थितांगुष्ठा सेयं शस्ता मुनेऽर्चने ।।

इति मुद्रालक्षणम्

मुद्राओंका लक्षण हेमाद्रिसे कहते हैं–– जिसमें दोनों हाथों को सामने करके अंगुलियोंको कुछ संकुचित करके रखते हैं उसे "मुकुलीमुद्रा" कहते हैं "पंकजप्रसृता" भी इसीका नाम है । जिस मुकुलीमुद्रामें प्रादेशमें अंगुलियाँ निकली हुई हों तो "व्याकोशमुद्रा तथा कलीकीतहखिली हुई हों, तो "पद्ममुद्रा" कहते हैं । जिसमें अंग कुछ सिकुडे हुए हों तथा अपनी अगुलिसेवेष्टित हों, दोनों हाथ सामने ऊँचे जुडे हों, उसे निष्ठुरा ' मुद्रा कहते हैं । जिसमें दोनों तर्जनी तथा कनीयसी अंगुली संकुचित हो, जिनके कि नख दीख रहे हों वो हाथ के मध्यमें, हो इसे "अधोमुखी मुद्रा" कहते हैं । चारों अंगुलियां पीठकी तरफ उठी हुई हों, दोनों अंगूठे एक तरफ हों, पर दोनों अच्छीतरह व्यवस्थित न हों, इसे "व्योम मुद्रा" कहते हैं । अन्य तन्त्र ग्रन्थोंमें सब देवताओं के पूजन करनेकी छः मुद्राएँ कही हैं, उन्हें हम यहाँ ही कहते हैं । देवताके आननसे जो सदा सन्तुष्ट रहे वो "संमुखी मुद्रा" कहाती है । जिसमें अंगूठे निकाले जाँय वो "अवाहनी मुद्रा" है ! जिसमें इकट्ठी करके नीचे करे वो "आसन मुद्रा" कहाती है । यदि आसन मुद्राको अधोमुखी कर दिया जाय तो यह "स्थापनी मुद्रा" कही जायगी । यदि ऊँचे ऊँचे करे तो "सम्मुखी

करणी मुद्रा" होगी। दोनों हाथोंकी अगुंलियाँ फैलाकर फिर उन दोनों को मिलाकर हृदयपर करनेसे "प्रार्थना मुद्रा" हो जाती है। उन छओं मुद्राओं को सब देवताओंके पूजनमें दिखावे। शिवपूजनमें लिंगमुद्रा करनी चाहिये। उठे हुए दांये अँगूठेको बांये अँगूठेसे बांध दे तथा बाँये हाथकी अंगुलियोंको दांये हाथकी हाथ की अंगुलियोंसे वेष्टित कर दे, उस समय "लिंगमुद्रा" होती है। यह शिवका सान्निध्य देनेवाली होती है। श्रीकामवाला इस मुद्राको शिरपर तथा राज्यकामी नेत्रोंपर, अन्नादि चाहनेवाला मुखपर, रोगशान्ति चाहनेवाला ग्रीवापर, सब चाहनेवाला हृदयपर, ज्ञान चाहनेवाला नाभिमण्डलपर, राज्यकामी गुह्यपर और राष्ट्रकामी पैरोंपर इस मुद्रासे स्पर्श करे। रामपूजनमें १७ मुद्राएँ होती हैं, ऐसाही रामार्चन चन्द्रिकामें अगस्त्यजीने कहा है कि-आवाहनी स्थापनी, सन्निधीकरणी, सुसंनिरोधिनी, सन्मुखीकरणी, संकलीकरणी, महामुद्रा, शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा, पद्ममुद्रा, गदामुद्रा, धेनुमुद्रा, कौस्तुभमुद्रा, गरुडमुद्रा, श्रीवत्समुद्रा, वनमाला मुद्रा और योनिमुद्रा ये सत्रहमुद्रायें हैं। जो बुद्धिमान इन सत्रहों मुद्राओंसे देवाधिदेव भगवान् रामका अर्चन करता है, एवम् उन्हें प्रसन्न करता है, वा उनके हृदयको अपनेपर दयालु बना जो चाहता है सो लें लेता है। मूलाधारसे लेकर द्वादशांततक लाई हुई जो कुसुमांजलि है, उससे प्रतिमाके तेजकी वृद्धि होती है, हे मुने! देवार्चनविधिमें "आवाहनीमुद्रा" ही श्रेष्ठ है, फिर इसी मुद्राको स्थापनके समयमें अधोमुखी मुद्रा कहते है। दोनों अंगूठोंको ऊपर उठाकर मुठ्ठी कर लेनेसे "सन्निधीकरणी मुद्रा" बन जाती है जो कि देवार्चनमें उपयुक्त है। उन्नत किये हुए अंगूठोंके साथ दोनों हाथोंकी मुट्ठी करनेसे "संनिरोधिनी मुद्रा" बन जायगी, मुट्ठी ऊँचको दोनों मुट्ठी करनेपर "सम्मुखी करणी" बन जायगी, अंगोंसे गोंका विन्यास करने से "संकलीकरणी" मुद्रा बनती है, अंगूठोंको आपसमें लगे रहते हुए भी हाथको फैला देनेसे "महामुद्रा" बन जाती है। वह कम वेशकी पूर्ति करनेवाली होती है। कनिष्ठिका और अनामिका ये दोनों अंगुलियाँ विचली अंगुलियोंमेंके अन्तमें आ उपस्थित हुए अग्रभागमें छिपी हुई हों ऐसा ही जिसका संस्थापन हो तथा अँगूठेका अग्रभाग उनमें छिपा हुआ हो इसे "मुकुलीकरण मुद्रा" कहते हैं। देवपूजामें दोनों हाथों में "शंखमुद्रा" बनती है, इसमें अंगुलियों की नोकोंको आपसमें वेष्टित कर दे। अंगुलियोंको प्रयत्नके साथ गोल करने पर, "चक्रमुद्रा" बन जाती है। एक एक के सामने सामने करके मिलाने से "गदा मुद्रा" होती है। दोनों कनिष्ठिकाएँ आमने सामने आपसमें मिलगयी हों तथा बाँये हाथकी तर्जनीके बीचमें एवम् मध्य और अनामिकामें दूसरे हाथकी मध्या और अनामिका मिल गयी हों, तर्जनी मध्यमें शोभित हो, क्रमसे दोनों अंगूठे जिसमें नमते हो उसे "कौस्तुभ मुद्रा" कहते हैं। कनिष्ठिका आपसमें विपरीत मिली हों, अंगूठे नीचे चले हो तो उसे "गरुडमुद्रा" कहते हैं। तर्जनी और अंगुष्ठके बीचमें मध्यमा और अनामिका दोनों आजानी चाहिये। कनिष्ठिका और अनामिका तर्जनीके मध्यमे आनी चाहिये, यह 'श्रीवत्समुद्रा" कहावेगी, कनिष्ठा अनामिका और मध्याकी एकमूठि बांधनी चाहिये जिसमें तर्जनी उठी हुई होनी चाहिये इसे फिर देवताके शिरपर रखनेसे "बनमालिका मुद्रा" बनजाती है। दोनों हाथोंकी अनामिका दोनों हाथोंकी तर्जनीपर रखी हुई हों, दोनों अनामिकाएँ खडी हों, मध्यस्थलमें अँगूठे हों तो "योनिमुद्रा" बनती है, यह पूजनमें अतिश्रेष्ठ है। ये मुद्राओंके लक्षण समाप्त हुए ॥ (ग्रन्थ में उपचार दिखाकर उनकी संख्या लिखी है, उसमें ज्यादा कम हो जाते हैं तथा कहीं कुछ, और कहीं कुछ होता है)

अथोपचाराः

पदार्थादर्शे ज्ञानमालायाम्--अष्टत्रिंशत् षोडश वा दश पञ्चोपचारकाः ॥ तान्विभज्य प्रवक्ष्यामि के ते तैश्च कृतैश्च किम् ॥ अर्घ्यं पाद्यमाचमनं मधुपर्कमुपस्पृशम् ॥ स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचामनं चोपवीतकम् ॥ पुनराचमभूषे च दर्पणालोकनं ततः ॥ गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं च ततः क्रमात् ॥ पानीयं तोयमाचामं हस्तवासस्ततः परम् ॥ हस्तवासः करोद्वर्त्तनम् ॥ ताम्बूलमनुलेपं च

पुष्पदानं ततः पुनः ।। गीतं वाद्यं तथा नृत्यं स्तुतिश्चैव प्रदक्षिणाः ।। पुष्पाञ्जलिनमस्कारावष्टात्रिंशत्समीरिताः ।। इत्यष्टत्रिंशदुपचाराः ।। अन्यच्च--आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।। मधुपर्कासनस्नानवसनाभरणानि च ।। सुगन्धः सुमनो धूपो दीपमन्नेन भोजनम् ।। माल्यानुलेपने चैव नमस्कारविसर्जने ।। इति षोडशोपचाराः ।। अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानं वस्त्रनिवेदनम् ।। गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ।। शारदातिलके षोडशोपचारा उक्ताः ।। ते च–आसनस्नानवस्त्राणि भूषणं च विवर्जयेत् ।। रात्रौ देवार्चने तैश्च पदार्थैर्द्वादशैः क्रमात् ।। पूजनं कपिलेनोक्तं तत्सर्वं च विसर्जयेत् ।। गौन्धतैलमथो दद्याद्देवस्याप्रीतये ततः ।। अर्घ्यादिद्रव्याणि ।। दूर्वा च विष्णुक्रान्ता च श्यामाकं पद्ममेव च ।। पाद्याङ्गानि च चत्वारि कथितानि समासतः ।। कर्पूरमगुरुं पुष्पं द्रव्याण्याचमनीयके ।। सिद्धार्थमक्षतं चै वदूर्वा च तिलमेव च ।। यवगन्धफलं पुष्पमष्टाङ्गं त्वर्घ्यमुच्यते ।। स्नाने वस्त्रे तथा भक्ष्ये दद्यादाचमनीयकम् । उद्वर्तनपदार्थाः ।। उद्वर्तनमपि तत्रैव--रजनी सहदेवी च शिरीषं लक्ष्मणापि च ।। सदाभद्रा कुशाग्राणि उद्वर्तनमिहोच्यते ।। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे–अक्षता गन्धपुष्पाणि स्नानपात्रे तथा त्रयम् ।। उक्तद्रव्याभावे प्रतिनिधिः ।। तत्रैव–द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाः शुभाः ।। तत्रैवोक्तमगस्त्यसंहितायाम्–तथाचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातीफलं मुने ।। लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके ।। द्रव्याभावे ।। तन्त्रान्तरे उक्तम्–तण्डुलान्निक्षिपेत्तेषु द्रव्याभावे तु तत्स्मरन् ।। मूर्त्यादिस्नाननिर्णयः ।। प्रयोगपारिजाते [illegible] पटवस्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् ।। कारयेत्पर्वदिवसे यदा [illegible] ।। विष्ण्वादिदेवपूजने वर्ज्याणि ।। ज्ञानमालायाम्-नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।। न दूर्वया यजेद्देवीं बिल्वपत्रैश्च भास्करम् ।। उन्मत्तमर्कपुष्पं च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः ।। "अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ताः इति पदार्थादर्शे उक्तात्वाद्यवानामेवायं प्रतिषेधो न तण्डुलानाम् ।। तन्त्रान्तरे-महाभिषेकं सर्वत्र शङ्खेनैव प्रकल्पयेत् ।। सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना ।। विस्तरस्त्वाचारमयूखे प्रष्टव्यः ।। अथ व्रतोद्यापनानुक्तौ ।। पृथ्वीचन्द्रोदये नन्दिपुराणे--कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम् ।। उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् ।। यत्र चोद्यापनं नोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत् ।। वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते ।। गां चैव काञ्चनं दद्याद्व्रतस्य परिपूर्तये ।।इति ।। समाप्तावुद्यापनमनुक्तोद्यापनविषयम् ।।

उक्तोद्यापनेतु-आदौ मध्ये तथा चान्ते व्रतस्योद्यापनं भवेत्।तद्व्रतोद्यापनं कार्यं संपूर्णफलमाप्नुयात् ।। अथ व्रतभङ्गे संपूर्णताया विधिः– हेमाद्रौ भविष्ये-युधिष्ठिर उवाच ।। संपूर्णतामनुष्ठाने व्रतानां नन्दनन्दन ।। कुरु प्रसादं गुह्यार्थमेतन्मे

वक्तुमर्हसि ।। श्रीकृष्ण अवाच ।। साधु साधु महाबाहो कुरुराज युधिष्ठिर ।। रहस्यानां रहस्यं ते कथयामि व्रते तव ।। संपूर्णता कृता यत्र तत्र सम्यक् फलफलप्रदम् ।। यच्चीर्णं नरनारीभिर्भवेत्संपूर्णकारकम् ।। अवश्यं तच्च कर्तव्यं संपूर्णफलकांक्षिभिः ।। किंचिद्भग्नं प्रमादेन यद्व्रतं व्रतिना स्थितम् ।। तत्संपूर्णं भवेत्सर्वं व्रतेनानेन पाण्डव ।। उपद्रवैर्बहुविधैर्महामोहाच्च पाण्डव ।। यद्भग्नं किंचिदेव स्याद्व्रतं विघ्नविनाशनम् ।। तत्संपूर्णं भवेत्पार्थ सत्यं सत्यं न संशयः।। काञ्चनं रूप्यकं रूपं शिल्पिना तु घटापयेत् ।। भग्नव्रतस्य यो देवस्तस्य रूपं विनिर्दिशेत्।।व्रतं स्त्रीपुंसयोः पार्थ प्रारब्धं यद्व्रतं किल । न च निष्पादितं किंचिद्दैवात्सर्वं तथा स्थितम् ।। द्विभुजं पङ्कजारूढं सौम्यं प्रहसिताननम् ।। निष्पादितं शिल्पिना च तस्मिन्नेव दिने पुनः ।। तन्मानं तु मनःप्राप्तं ब्राह्मणैर्विधिना गृहे स्नापयेत्पयसा दध्ना घृतक्षौद्ररसाम्बुभिः ।। वस्त्रचन्दनपुष्पैश्च पूजां कुर्यात्समाहितः ।। तोयपूर्णस्य कुम्भस्य मुने विन्यस्य देवताम् ।। धूपदीपाक्षतैर्वस्त्रै रत्नैर्बहुप्रकारकैः ।। अर्घ्यं प्रदद्यात्तन्नाम्ना मन्त्रेणानेन पाण्डव ।। उपवासस्य दानस्य प्रायश्चित्तं कृतं मया ।। शरणं च प्रपन्नोऽस्मि कुरुष्वाद्य दयां मम ।। व्रतच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं व्रतकर्मणि।सत्सर्वं त्वत्प्रसादेन संपूर्णं यतां मम । प्रसन्नो भव भीतस्य भिन्नचर्यव्रतस्य च ।। कुरु प्रसादं संपूर्णं व्रतं संजायतां मम ।। पूर्वदक्षिणयोः पश्चादुत्तरे च बलिं हरेत् ।। उर्पयधस्तात्सर्वेभ्यो दिक्पालेभ्यो नमो नमः ।। इदमर्घ्यमिदं पाद्यं तेभ्यस्तेभ्यो नमो नमः ।। पादौ च जानुनी चैव कटी शीर्षकवक्षसी ।। कुक्षिं तु हृदयं पृष्ठं वाक्[1] चक्षुश्च शिरोरुहान्।। पूजयित्वा तु देवस्य ततः पश्चात्क्षमापयेत् ।। पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम ।। ऐतिहिकामुष्मिकीं देव कार्यसिद्धिं दिशस्व मे ।। एवं क्षमापयित्वा तु प्रणमेच्च प्रयत्नतः ।। तन्मूर्तिं च द्विजातिभ्यो विधिवत्प्रतिपादयेत् ।। स्थित्वा पूर्वमुखो विप्रो गृह्णीयाद्दर्भपाणिना ।। विप्रहस्ते प्रयच्छेच्च दाता चैवोत्तरामुखः ।। मन्त्रेणानेन कौन्तेय सोपवासः प्रयत्नतः । इदं व्रतं मयाखण्डं कृतमासीत्पुरा द्विज ।। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु तव मूर्तिप्रदानतः ।। ब्राह्मणोऽपि प्रतीच्छेत मन्त्रेणानेन तन्नृप ।। व्रतखण्डकृतं पूजाव्रतेनानेन ते पुरा ।। सम्पूर्णं स्यात्प्रदानेन तव पूर्णा मनोरथाः ।। ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते तन्मन्यन्ते दिवौकसः ।। सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ।। जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम् ।। सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः ।। ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्महत्या विनश्यति ।। अश्वमेधफलं साग्रं लभते नात्र संशयः ।। व्यासवाल्मीकिवचनात्पराशरवसिष्ठयोः ।। गर्गगौतमधौम्यात्रि-वासि-

---

१　नासाचक्षुःशिरोरुहानिति पाठान्तरम् ।

ष्ठाङ्गिरसां तथा ।। वचनान्नारदादीनां पूर्णं भवतु ते व्रतम् ।। एवं विधिविधानेन गृहीत्वा ब्राह्मणो व्रजेत् ।। दाता तत्प्रेषयेत्सर्वं ब्राह्मणस्य गृहे स्वयम् ।। ततः पञ्चमहायज्ञान्कृत्वा वै भोजनादिकम् ।। एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नरोत्तम ।। तस्य संपूर्णतां याति तद्व्रतं यत्पुरा कृतम् ।।खण्डं संपूर्णतां याति प्रसन्ने व्रतदैवते ।। भग्नानि यानि मदमोहवशाद्गृहीत्वा जन्मान्तरेष्वपि नरेण समत्सरेण ।। संपूर्ण-पूजनपरस्य पुरो भवन्ति सर्वव्रतानि परिपूर्णफलप्रदानि ।।

अथ उपचार-पदार्थादर्शमें ज्ञानमालासे लेकर लिखा है कि ३८,१६,१० और पांच (५) ये उपचार हैं इन्हें यहाँ मैं अलग अलग दिखाऊँगा तथा इनके करनेसे क्या फल होता है सो भी लिखूंगा । अर्घ्य, पाद्य, आसन, मधुपर्क, उबटन, स्नान , आरती, वस्त्र, आचमन, उपवीत, पुनराचमन, अलंकार, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पानीय, तोय, आचमन, करोद्वर्तन, पान, अनुलेप, पुष्पदान, गीत, वाद्य, नृत्य, स्तुति, प्रदक्षिणा, पुष्पांजलि, नमस्कार, ये अडतीस उपचार हैं । अथ षोडश उपचार-आसान, स्वागत, अर्घ्य पाद्य, आचमन, मधुपर्कासन, स्नान, वसन, आभरण, सुगन्ध, फूल, धूप, दीप, अन्नभोजन, माल्यअनुलेपन, नमस्कार और विसर्जन ये (सोलह) शोडश उपचार कहाते हैं । दशोपचार-अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान और वस्त्रनिवेदन तथा गंधसे लेकर नैवेद्यतक क्रमसे दशउपाचार होते हैं । शारदातिलकमें सोलह उपचार कहे हैं । रातके पूजनमें अनुपयुक्त उपचार-कपिलजीने कहा है कि, जब रातको देवपूजन करना हो तो आसन, स्नान, वस्त्र और भूषण इन उपचारोंको न करे, बाकी बारह उपचारोंको करना चाहिये । इसके बाद परम सुगन्धित अतर देना चाहिये । पाद्यांग-दूर्वा विष्णुक्रान्ता, श्यामक और पद्म ये संक्षेपसे पाद्यके अंग कहे हैं । आचमनांग-कर्पूर, अगुरु और पुष्प इनको आचमनीमें डालकर, आचमन करना चाहिये । अर्घ्यांग-सिद्धार्थ, अक्षत, दूर्वा, तिल यव, गन्ध, फल और पुष्प इन सबको अर्घ्य पात्रमें डालकर अर्घ्य देना चाहिये । स्नानके पीछे वस्त्र और भूषणके पीछे आचमन कराना चाहिये । उद्वर्तनभी-शारदा तिलकमें बताया है कि, हलदी, [illegible], [illegible], [illegible], सदाभद्रा और कुशाग्र ये सब वस्तु उद्वर्तनमें ग्रहणकी जाती है । स्नानपात्रके द्रव्य-मंत्रतंत्रप्रकाशमें लिखा है कि, द्रव्यके अभावमें साफ किये हुए तंडुल लेने चाहिये । वहीं ही अगस्त्यसं-हितामें कहा है कि, हे मुने ! आचमन पात्र में जातीफल, लवंग और कंकोल डालना अत्यन्त उत्तम है । उपचार-द्रव्यके अभावमें भी उस द्रव्यका स्मरण करके धुले चावल वरतने चाहिये । मूर्ति आदिके स्नाननिर्णय-पर पर प्रयोगपारिजातमें व्यासजीका वचन है कि, प्रतिमाके वस्त्र और यन्त्रोंको रोज स्नान न कराना चाहिये, जिस दिन कोई पर्व हो उस दिन अथवा मैले होगये हों तो धो दे नहीं तो न धोना चाहिये । ज्ञानमालामें, विष्णवादि देवपूजनमें के हेयपदार्थ लिखे हुए हैं कि, अक्षतोंसे विष्णुका तथा तुलसीदलोंसे गणपतिका, दूर्वासे देवीका तथा वेलपत्रोंसे सूर्य्यका कभी भी पूजन न करना चाहिये । धतूरे आर आकके फूल कभी भी विष्णु भगवान्पर न चढाने चाहिये । पदार्थादर्शमें लिखा हुआ है कि, यवोंको अक्षत कहते हैं, फिर यह अक्षतोंका निषेध यवोंका ही होगा न कि चावलोंका । तंत्रान्तरमें लिखा हुआ है कि, सब जगह शंखसे ही महाभिषेक होना चाहिये,क्योंकि शिव और सूर्य्यार्चनको छोडकर, सब जगह शंख प्रशस्त है । (द्रविडदेशमें श्रीवैष्णवोंके यहाँ विष्णु पूजनमें भी शंखका व्यवहार नहींके बराबर है) यदि अधिक देखना हो तो आचारमयूख नामके ग्रन्थमें देखलो । जिस व्रतका उद्यापन न कहा हो उसका अद्यापन, पृथ्वीचन्द्रोदयनामके ग्रन्थमें नन्दि पुराणसे लेकर कहाहै कि-व्रतकी समाप्ति पर जो कहा गया है वो उद्यापन अवश्य करना चाहिये । क्यों कि, विना उद्यापनके व्रत निष्फल होजाता है । जिस व्रतका उद्यापन न कहा गया हो उसका उद्यापन उस व्रतके अनुसार ही करले तथा अपनी श्रद्धाके अनुसार दान भी कर दे । गऊ और सोना भी व्रतकी पूर्तिके लिये दान करे । जिस व्रतमें उद्यापन नहीं कहा गया है उसके अन्तमें उद्यापन करना चाहिये । उद्यापन कहा गया हो तो–उन व्रतोंके आदि मध्य और अन्तमें उद्यापन होता है । उद्यापन करनेसे ही व्रतका संपूर्ण फल

पाता है, अन्यथा नहीं पाता । व्रत भंगमें संपूर्ण करनेकी विधि–हेमाद्रिने भविष्य पुराणको लेकर कही है । युधिष्ठिर महाराज श्रीकृष्ण परमात्मासे पूछने लगे कि , व्रत कैसे पूरे होते हैं ? इस गुप्त विषयको मुझे बतलाइये । श्रीकृष्णजी बोले कि, हे महाबाहो कुरुराज युधिष्ठिर । यह रहस्योंका भी रहस्य है, मैं तेरे लिये कहूंगा । जहाँ व्रतकी संपूर्णता करदी वहाँ ही वह अच्छे फलोंका देनेवाला होजाता है । जिसके कियेसे संपूर्णकारक हो जाता है, सम्पूर्णताकोचाहनेवाले स्त्रीपुरुषोंको चाहिये उसे अवश्य करें । व्रत करनेवालोंके प्रमादसे जो व्रत भग्न हुआ पडा हो वो व्रत, हे हे पाण्डव ! इसके करनेसे पूरा हो जायगा । अनेक तरहके उपद्रवोंसे तथा अज्ञानके कारण जो विघ्ननाशक व्रत भग्न होगया हो,वो इसके कियेसे पूरा होजायगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । जिस देवताका व्रत किया हो उसी देवताकी सोने चाँदीकी मूर्ति किसी कारीगरसे बनवा लेनी चाहिये, जिस किसीने इस व्रतको किया हो पर वो पूरा न कर सका हो दैवात् विघ्न उपस्थित हो गये हों तो समाधानभी उसीको करना चाहिये । उसी दिन किसी शिल्पीसे ऐसी मूर्ति बनवानी चाहिये, जो कमलासनपर विराजमान हो, उसके दो भुजाएं हों, सुन्दर हंसता हुआ मुख हो, जितने प्रमाणकी मन चाहे उतने ही बनवाना चाहिये, फिर घर पर उसे ब्राह्मणोंसे स्नान कराना चाहिये । स्नानके पानीमें दहीं, दूध, घृत और सहद मिला रहना चाहिये, स्नानके पीछे वस्त्र चन्दन और फूलोंसे देवताकी पूजा करनी चाहिये, हे पाण्डव ! जिसका उद्यापन किया जारहा हो पहिले पूर्णकुम्भके ऊपर उस देवताको स्थापित करके उसी देवताके नाममंत्रसे धूप, दीप, अक्षत और अनेक तरहके रत्नोंसे अर्घ्य देना चाहिये, उपवास और दानका प्रायश्चित मैंने कर दिया है, मैं आपके शरण हूँ, अब आप मुझे पर दया करें । व्रतका छिद्र, तपका छिद्र एवम् जो व्रतके कर्ममें छिद्र हों, वो सब आपकी कृपासे पूरे होजाएँ मैं व्रतकी गलतीसे बडा डरा हूँ मैंने ब्रह्मच्चर्य्यका भी पालन नहीं किया है, आप मुझपर कृपा करें जो मेरा व्रत पूरा होजाय । पूर्व और दक्षिणके पीछे उत्तरमें बलि दे,उत्तरमें बलि दे, पीछे ऊपर और नीचे बलिदान करे, सब दिक्पालोंको बलि देता हुआ उन्हें नमस्कार करके कहे कि, लीजिये यह आपका अर्घ्य है, यह आपका पाद्य है, आप सबोंके लिये मेरा वारंवार नमस्कार है । देवताके चरण, जानु, कटी, शीर्षक, वक्ष, कुक्षि, हृदय, पृष्ठ, वाक् चक्षु, और वालों को पूजकर क्षमापन करना चाहिये । हे सुरोत्तम ! जैसी मेरी शक्ति, थी, उसके अनुसार मेंने आपका पूजन कर दिया, अब आप इस लोक और परलोक दोनोंकी कार्य्यसिद्धि करो । इस प्रकार क्षमापन कराके प्रयत्नके साथ प्रणाम कर एवम् उस मूर्तिको विधिके साथ ब्राह्मणको देदे,ब्राह्मण भी पूर्व मुख करके कुशयुक्त हाथसे ले । तथा दाताको देतेवार उत्तराभिमुख होना चाहिये । मूर्तिदान करनेतक यजमानको निराहार करना चाहिये, तथा मंत्र कहते हुए मूर्त्तिवान देना चाहिये कि, हे द्विज ! मैंने पहिले इस व्रतको खण्डित किया था वो सब आपको मूर्ति देनेसे पूरा हो जाय, हे युधिष्ठिर ! मूर्ति लेनेवाले ब्राह्मण भी मूर्ति हाथमें लेकर 'व्रतखंडकृतं पूजा'''' इस मंत्रको कहता हुआ ले कि, जो तुमने अपने व्रतको खण्डित किया था सो इस मूर्तिके दानसे पूरा हो गया, तुम्हारे मनोरथ पूरे होंगे । जिस वातको ब्राह्मण कहते हैं, देवता उस वातको मानते हैं । यह जो कहा जाता है कि, सब देवमय ब्राह्मण हैं वात झूठी नहीं है । इन महात्मा ब्राह्मणोंने समुद्रको खारा, पावकको सर्वभक्षी और शक्रको सहस्रनेत्र कर डाला । ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे ब्रह्महत्या नष्ट होजाती है, समग्र अश्वमेधका फल मिल जाता है, इसमें सन्देह नहीं है । व्यास, वाल्मीकि, पराशर, वसिष्ठ, गर्ग, गौतम, धौम्य, अत्रि, वासिष्ठ, अंगिरस और नारदादिकोंके वचनोंसे आपका व्रत पूरा होजाय, इस विधिविधानसे ब्राह्मण मूर्ति लेकर अपने घरको चला जाय । तथा देनेवाला स्वयं ही इस सब सामानको ब्राह्मणके घर पहुँचा दे । पंचमहायज्ञोंको करके भोजन करना चाहिये । हे नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार जो भक्तिके साथ व्रत करता है उसका पहिले किया हुआ व्रत पूर्णताको प्राप्त हो जाता है, जब व्रत देवता ही प्रसन्न हो गया तो व्रतके पूरे होनेमें क्या कमी रह जाती है । हे युधिष्ठिर ! इस जन्मकी तो बात ही क्या है, जो दूसरे जन्मोंमें भी मदमोहके वशमें होकर व्रत भंगहो गया हो, वह भी इस प्रकार पूजन करनेवालेका पूरा हो जाता है और पूरा फल देता है ।।

अथ सर्वव्रतेषु सामान्यतः पूजाविधि

सहस्रशीर्षेत्यावाहनम् ।। आगच्छागच्छ देवेश तेजोराशे जगत्पते ।। क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम ।। पुरुष एवेदमित्यासनम् ।। नानारत्नसमायुक्तं

कार्तस्वरविभूषितम् ।। आसनं देवदेवेश प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।। एतावानस्येति पाद्यम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हृतम् ।। तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। त्रिपादूर्ध्वं इत्यर्घ्यम् ।। नमस्ते देवदेवश नमस्ते धरणीधर।। नमस्ते कमलाकान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। तस्माद्विराळेत्याचमनीयम् ।। कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् ।। आचम्यतां जगन्नाथ मयादत्तं हि भक्तितः ।। यत्पुरुषेणेति स्नानम् ।। गङ्गा च यमुना चैव नर्मदा च सरस्वती ।। कृष्णा च गौतमी वेणी क्षिप्रा सिन्धुस्तथैव च ।। तापी पयोष्णीरेवा च ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ।। तोयमेतत्सुखस्पर्शं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पञ्चामृतस्नानं पञ्चामृतस्नानं पञ्चमन्त्रैः पृथक्कारयेत् ।। तं यज्ञमिति वस्त्रम् ।। सर्वभूपाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे । मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।। वस्त्रे च होमदैवत्ये लज्जायाः सुनिवारणे ।। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।। तस्माद्यज्ञादिति यज्ञोपवीतम् ।। दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ।। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत इति गन्धम् ।। श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।। विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् अक्षतास्तंडुलाः शुभ्राः कुंकुमाक्ताः सुशोभनाः ।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।। तस्मादश्वेति पुष्पम् ।। माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।। मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। यत्पुरुषं व्यदधुरिति धूपम् ।। वनस्पति रसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। ब्राह्मणोस्येति दीपम् ।। साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ।। चन्द्रमा मनस इति नैवेद्यम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्।। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।। तेन मे सफला वाप्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि ।। फलम् ।। नाभ्या आसीदिति ताम्बूलम् ।। पूगीफल महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।। कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। सप्तास्येति दक्षिणा ।। हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छमे ।। चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च ।। त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नीराजनम् ।। यज्ञेन यज्ञमितिमन्त्रपुष्पाञ्जलिः ।। नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते ह्यमरप्रिय ।। नमस्ते कमलाकान्त वासुदेव नमोऽस्तु ते ।। यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।। तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे ।। इति प्रदक्षिणाः ।। नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।। साष्टाङ्गोऽयं प्रणामोऽस्तु प्रणयेन मया कृतः ।। इति नमस्कारः ।। इति सामान्यपूजाविधिः ।।

इति श्री व्रत राजे परिभाषा समाप्ता

अथ सब व्रतोंकी सामान्यपूजा विधि–" ओम् सहस्रशीर्षा" इस मंत्रसे आवाहन करना चाहिये और कहना चाहिये कि, हे सुर सत्तम, हे देवेशा ! हे तेजके खजाने ! हे संसारके स्वामी ! आजाओ आजाओ, की हुई मेरी पूजाको ग्रहण करो । " ओम् पुरुष ऐवदम् " इस मंत्रसे आसन देना चाहिये, कहना चाहिये कि, हे देवदेवेश! आपकी प्रसन्नताके लिये अनेक रत्नोंसे जडा हुआ सोनेका सुन्दर सिंहासन रखा हुआ है, आप इसे ग्रहण करें । "ओम् एतावानस्य" इस मंत्रसे पाद्य अर्पण करना चाहिये कि, मैंने गंगा आदिक सब तीर्थोंसे प्रार्थना करके यह शीतल पानी लिया है, आप पाद्यके लिये इसे ग्रहण करें " ओम् त्रिपादूर्ध्व " इस मंत्रसे अर्घ्य देना चाहिये कि, हे धरणीधर ! हे कमलाकान्त हे देवदेवेश ! आपके लिये बारंबार नमस्कार है, आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें, आपके लिये नमस्कार करता हूँ । 'ओम् तस्माद्विराड " इस मंत्रसे आचमन करावे कि, यह कर्पूरसे सुगन्धित हुआ पानी मंदाकिनीसे लाया हूँ, हे जगन्नाथ ! मैं भक्तिके साथ दे रहा हूँ आप आचमन करें । " ओम् यत्पुरुषेण" इस मंत्रसे स्नान कराना चाहिये कि हे देव ! यह ठण्डा पानी, गंगा, यमुना, नर्मदा, सरस्वती कृष्णा, गौतमी, वेणी, क्षिप्रा, सिन्धु, तापी, पयोष्णी और रेवा इन दिव्य नदियोंसे लाया हूँ, आप स्नानके लिये इसे ग्रहण करें, पंचामृतसे स्नान तो पांच मंत्रोंसे पृथक् कराना चाहिये " ओम् तं यज्ञम् " इस मंत्रसे वस्त्र समर्पण कराना चाहिये कि, मैं आपको दो वस्त्र देता हूँ, आप इन्हें ग्रहण करें ये सब भूषणोंसे उत्तम सुन्दर हैं, लोकलाजको निवारण करनेवाले हैं, मैंने आपकेही लिये तैयार किये हैं । इन वस्त्रोंका सोम देवता है, लज्जाके भले निवारक हैं , मैं इन्हें आपके लिये लायाहूँ "ओम् तस्माद्यज्ञात्" इस मंत्रसे यज्ञोपवीत देना चाहिये कि, हे दामोदर ! तेरे लिये नमस्कार है मेरी भवसागरसे रक्षा करिये, हे पुरुषोत्तम ! उत्तरीय सहित ब्रह्म-सूत्रको ग्रहण करिये । " ओम् तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः " इस मंत्र से गन्ध निवेदन करना चाहिये, कि, हे सुरश्रेष्ठ यह घिसा हुआ गन्धसे परिपूर्ण मनोहारी दिव्य-श्रीखण्ड चन्दन, आपकी प्रसन्नताके लिये तयार है, आप इसे ग्रहण करें । हे परमेश्वर ! कुंकुमसे सने हुए सुन्दर अक्षत मैंने भक्तिसे गापको निवेदन कर दिये हैं आप इन्हें ग्रहण करें । 'ओम् तस्मादश्वा " इस मंत्रसे पुष्प निवेदन करने चाहिये । हे प्रभो ! मैं आपकी पूजाके लिये मालाएँ और मालतीके सुगन्धित पुष्प लाया हूँ आप उन्हें ग्रहण करें । " ओम् यत् पुरुषं व्यदधु " इस मंत्रसे धूप देनी चाहिये, हे धूप ! तू वनस्पतिके रससे बना है, गन्धोंसे भरा पडा है, उत्तम गन्ध है, सभी देवोंके सूंघने लायक है, हे परमेश्वर ! इसे ग्रहण करिये ! " ओम् ब्राह्मणोऽस्य " इस मंत्रसे दीप देना चाहिये । घीसे भरा हुआ है, सुन्दर बत्ती पडी हुई है जगादिया यह तीनों लोकों के अन्धरकारका नाशक है, हे देवेश ! ग्रहण करिये । " चन्द्रमा मनस " इस मंत्रसे तथा छओ रसों से युक्त भक्ष्य और भोज्य से संयुक्त, चारों प्रकार का अन्नउप-स्थित है, इस नैवेद्यको आप ग्रहण करें । "ओम् इदं फलं मया देव" इस मंत्रसे फल निवेदन करना चाहिये कि हे देव आपके सामने जो फल रखा हुआ है, मैं इसे लाया हूँ, इससे मुझे प्रत्येक जन्ममें फलकी प्राप्ति होवे । " ओम् नाभ्या आसीत् " इस मंत्रसे ताम्बूल निवेदन करना चाहिये कि, हे परमेश्वर । ! जिसमें सुन्दर सुपारी पडी हुई है, नागवल्ली का दलभी है, कर्पूरादिक भी पड़े हुये हैं ऐसे पानको ग्रहण करो । " ओम् सप्तास्य " इस मस्त्रसे दक्षिणा देनी चाहिये । हिरण्यगर्भके गर्भमें स्थित जो अग्निका हेम बीज है, वो अनन्त पुण्यका देनेवाला है, इससे आप मुझे शान्ति दें । चाँद, सूरज, जमीन और अग्नि तुही सर्वज्योति है, मेरी इस आरतीको ग्रहण कर " ओम् यज्ञेन यज्ञम् " इस मंत्र से पुष्पांजलि देनी चाहिये । हे पुण्डरीकाक्ष ! तेरे लिये नमस्कार है, हे अमर प्रिय । तेरे लिये नमस्कार है । हे कमलाकान्त ! तेरे लिये नमस्कार है । हे वासुदेव ! तेरे लिये नमस्कार है, 'ओम् यानिकानि च पापानि ' इससे प्रदक्षिणा करनी चाहिये, प्रदक्षिणके पद पद पर वे वे सब पाप नष्ट होते हैं, जो इस जन्म और अनेक जन्मों में किये हैं ' नमः सर्वहितार्थाय ' इस मंत्रसे भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये कि, सबके हितकारीके लिए नमस्कार है एवम् सारे जगत्के आधारभूत जो आप हैं आपके लिये मेरी साष्टाङ्गप्रणाम है । इसे मैं अपने नमते हुए शरीरसे करता हूँ ।। यह सामान्य पूजाविधि समाप्त हुई । तथा इसी के साथ व्रतराजकी परिभाषा भी समाप्त हुई । इति परिभाषा प्रकरणम् समाप्तम् ।

अथ प्रतिप्रदादितिथिव्रतानि लिख्यन्ते

मात्स्ये—वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् ।। दद्याद्वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रैर्युतानि च ।। रस पात्रैः—दध्यादिपात्रैः ।। संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति ।। हेमाद्रौ पाद्मे च-वर्जयेच्चैत्रमासे तु यस्तु गन्धानुलेपनम् ।। शुक्ति गन्धभृतां दद्याद्विप्राय श्वेतवाससी ।। भक्त्या तु दक्षिणां दद्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ।। गन्धवस्त्रदानमंत्रौ—नन्दनावासमन्दारसखे वृन्दारकार्चित ।। चन्दन त्वं प्रसादेन सान्द्रानन्दप्रदो भव ।। शरण्यं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम् ।। सुवेशधारित्वं यस्माद्वासः शान्ति प्रयच्छ मे ।। इति मंत्राभ्यां गन्धवाससी दद्यात् ।।

प्रतिपदा तिथि के व्रत लिखे जाते हैं

मत्स्य पुराणमें लिखा है कि, जो चैत्रके महीनें में दही, दूध, घृत और मीठेका त्याग करके रस पात्रोंसे युक्त सूक्ष्मवस्त्र देता है । रस पात्रका अर्थ रेही आदिके पात्र यह होता है । एवं देतीवार ब्राह्मण ब्राह्मणीका पूजन करके यह कहता है कि, गौरी मुझ पर प्रसन्न हो जाय तो वो व्रतकरके कल्याणको पाता है । हेमाद्रिमें पद्म पुराणको लेकर लिखा है कि, जो तो चैत्रके महीनेमें गंधका अनुलेपन छोड़ कर, ब्राह्मणके लिये गंधसे भरी हुई सिपी और दो सफेद कपड़ा देता है, तथा सब कामोंकी अर्थसिद्धिके लिये भक्तिभावसे दक्षिणा देता है वो व्रतको पुरा कर लेता है । गन्ध और वस्त्रदानके मंत्र-हे नन्दन बनमें वासकरनेवाले मन्दारके मित्र तथा देवगणोंसे पूजित चन्दन ! तुम आनन्दके साथ सघन आनन्द देनेवाले हो ओ । इस मन्त्रसे गन्ध समर्पित करनी चाहिये । सब लोकोंका शरण एवम् लज्जा का परम रक्षण तथा जिसके धारण करनेसे सुन्दर वेष बन जाता है ऐसे ये वस्त्र मुझे शांति दें । इससे वस्त्र समर्पित करने चाहिये ।

अथ चैत्रशुक्लप्रतिपदि सवत्सरारम्भविधिः

ब्राह्मे—अत्र प्रतिपत्सूर्योदयव्यापिनी ग्राह्या ।। चैत्रे मासि जगद्ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि ।। शुक्लपक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति ।। इतिवचनात् ।। प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ।। इति भविष्योत्तराच्च ।। दिनद्वये व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वैव ।। वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्य तथैव च ।। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ।। इति वृद्धवसिष्ठवचानादिति बहवः ।। युक्तं तु, दिनद्वयेप्युदयसम्बन्धाभावे संवत्सरारम्भप्रयुक्तकार्यलोपप्रसक्ताविदं वचनं पूर्वयुताग्राह्यताविधायकम् ।दिनद्वये तत्सम्बन्धे तु संपूर्णत्वादेव पूर्वाप्राप्तेः । कदा कार्यमित्याकांक्षाविरहात्पूर्वयुतत्वविरहाच्च नैतद्वचनात्पूर्वेति ।। ब्राह्मे-प्रवर्तयामास तथा कालस्य गणनामपि ।। ग्रहानब्दानृतून्मासान्पक्षान् संवत्सराधिपान् ।। ददौ स भगवान् ब्रह्मा सर्वदेवसमागमे । ब्राह्मयां सभायां ब्रह्माणमनिर्देश्यतनुं ततः ।। यथावत्तास्ते नमस्यन्तः स्तुवन्तश्चाप्युपासते ।। तपस्ते कृतशुश्रूषा गत्वा चैव हिमालयम् ।। स्वानि स्वान्यथ कर्माणि तेन युक्ताश्च चक्रिरे ।। ब्राह्मी सभा कामरूपा विशषेण तदानघ ।। धारयन्त्यमलं रूपमनिर्देश्यं मनोहरम् ।। ततःप्रभृति यो धर्मः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः ।। अद्यापि रूढः सुतरां स कर्त्तव्यः प्रयत्नतः ।। तत्र कार्या महाशान्तिः सर्वकल्मषनाशिनी ।। सर्वोत्पातप्रशमनी कलिदुःखप्रणाशिनी ।। आयुःप्रदा वृद्धि-

करी धनसौभाग्यवर्धिनी ।। मङ्गल्या च पवित्रा च लोकद्वयसुखावहा ।। तस्यामादौ तु संपूज्यो ब्रह्मा कमलसंभवः ।। पाद्यार्घ्यं पुष्पधूपैश्च वस्त्रालंकारभूषणैः ।। होमैर्बल्युपहारैश्च तथा ब्राह्मणभोजनैः ।। ततः क्रमेण देवेभ्यः पूजा कार्या पृथक्पृथक् ।। कृत्वोऽङ्कारनमस्कारौ कुशोदकतिलाक्षतैः ।। पुष्पधूपप्रदीपाद्यैर्भोजनैश्च यथाक्रमम् ।। मंत्रं संपूजनार्थे तु बहुरूपं परिस्पृशेत् ।। मंत्रमिति जातावेकवचनम् ।। बहुरूपं मंत्र नानारूपान्मंत्रान्परिस्पृशेत्परिगृह्णीयादित्यर्थः ।। तेन "ॐनमो ब्रह्मण" इत्यादि "विष्णवे परमात्मने नमः" इत्यन्तमंत्रवाक्यवृन्दोपात्ता देवताशब्दाश्चतुर्थ्यन्ताः प्रणवादयो नमोऽन्ता मंत्रत्वेन ग्राह्याः ।। प्रार्थनामंत्राः—ॐनमो ब्रह्मणे तुभ्यं कामाय च महात्मने ।। नमस्तेऽस्तु निमेषाय त्रुटये च नमोस्तु ते ।। लवाय च नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु क्षणाय च ।। नमो नमस्ते काष्ठायै कलायै ते नमोऽस्तु ते ।। नाडिकायै सुसूक्ष्मायै मुहूर्ताय नमो नमः ।। नमो निशाभ्यः पुण्येभ्यो दिवसेभ्यश्च नित्यशः ।। पक्षाभ्यां चाथ मासेभ्य ऋतुभ्यः षड्भ्य एव च ।। अयनाभ्यां च पञ्चभ्यो वत्सरेभ्यश्च सर्वदा ।। नमः कृतयुगादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च नमो नमः ।। अष्टाविंशतिसंख्येभ्यो नक्षत्रेभ्यो नमो नमः ।। राशिभ्यः करणेभ्यश्च व्यतीपातेभ्य एव च ।। प्रतिवर्षाधिपेभ्यश्च विज्ञातेभ्यो नमः सदा ।। नमोऽस्तु कुल नागेभ्यः सानुयात्रेभ्य एव च ।। सानुयात्रेभ्यः—सानुचरेभ्यः ।। नमोऽस्तु सर्वदिग्भ्यश्च दिक्पालेभ्यो नमो नमः ।। नमश्चतुर्दशभ्यश्च मनुभ्यस्तु नमो नमः ।। नमः पुरन्दरेभ्यश्च तत्संख्येभ्यो नमो नमः ।। पञ्चाशते नमो नित्यं दक्षकन्यामय एव च ।। नमोऽदित्यै सुभद्रायै जयायै चाथ सर्वदा ।। सुशास्त्राय नमस्तुभ्यं सर्वास्त्रजनकाय च ।। नमस्ते बहुपुत्राय पत्नीभिः सहिताय च ।। नमो बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै निद्रायै धनदाय च।।नमः [१]कुबेरपुत्राय गुह्यकस्वामिने नमः ।। नमोऽस्तु शङ्खपद्माभ्यां निधिभ्यामथ नित्यशः ।। भद्रकाल्यै नमस्तुभ्यं सुरभ्यै च नमो नमः ।। वेदवेदाङ्गवेदान्तविद्यासंस्थेभ्य एव च ।। नागयक्षसुपर्णेभ्यो नमोऽस्तु गरुडाय च ।। सप्तभ्यश्च समुद्रेभ्यः सागरेभ्यश्च सर्वदा।।उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च नमो [२]मेरुगताय च ।। भद्राश्वकेतुमालाभ्यां नमः सर्वत्र सर्वदा । इलावृत्ता (त) य च नमो हरिवर्षाय चैव हि ।। नमः किंपुरुषेभ्यश्च भारताय नमो नमः । नमोभारतभेदेभ्यो [३]महद्भ्यश्चाथ सर्वदा ।।पातालेभ्यश्च सप्तभ्यो नरकेभ्योः नमो नमः ।। कालाग्निरुद्रशैवाभ्यां हरये क्रोडरूपिणे ।। सप्तभ्यस्त्वथ लोकेभ्यो महाभूतेभ्य एव च ।। नमः संबुद्धये चैव नमः प्रकृतये तथा ।। पुरुषायाभिमानाय नमस्त्वव्यक्तमूर्तये ।।

१ नलकूबरयक्षाय । २ हैरण्वताय । ३ नवभ्य इति च पाठः ।

हिमवत्प्रमुखेभ्यश्च पर्वतेभ्यो नमस्त्वथ ।। पौराणीभ्यश्च गङ्गाभ्यः सप्तभ्यश्च नमो नमः ।। नमोस्त्वादि मुनिभ्यश्च सप्तभ्यश्चाथ सर्वदा ।। नमोस्तु पुष्करादिभ्यस्तीर्थेभ्यश्च पुनःपुनः ।। निम्नगाभ्यो नमो नित्यं वितस्तादिभ्य एव च ।। चतुर्दशभ्यो दीर्घाभ्यो धरणीभ्यो नमो नमः ।। नमो धात्रेविधात्रे च च्छन्दोभ्यश्च नमो नमः ।। सुरभ्यैरावणाभ्यां च नमो भूयोनमोनमः ।। नमस्तथोच्चैः–श्रवसे ध्रुवाय च नमो नमः ।। नमोस्तु धन्वन्तरये शस्त्रास्त्राभ्यां नमो नमः । विनायककुमाराभ्यां विघ्नेभ्यश्च नमः सदा ।। शाखाय च विशाखाय नैगमेयाय वै नमः।। नमः स्कन्दग्रहेभ्यश्चस्कन्दमातृभ्य एव च ।। ज्वराय रोगपतये भस्मप्रहरणाय च ।। ऋषिभ्यो वालखिल्येभ्यः केशवाय नमः सदा ।। अगस्तये नारदाय व्यासादिभ्यो नमो नमः ।। अप्सरोभ्यः सोमपेभ्यो देवेभ्यश्च नमो नमः ।। असोमपेभ्यश्च नमस्तुषितेभ्यो नमः सदा ।। दिभ्येभ्यो नमो नित्यं द्वादशभ्यश्च सर्वदा ।। एकादशभ्यो रुद्रेभ्यस्तपस्विभ्यो नमो नमः ।। नमो नासत्यदस्रायामश्विभ्यां नित्यमेव हि ।। साध्येभ्यो द्वादशभ्यश्च पौराणेभ्यो नमः सदा ।। एकोनपञ्चशते च मरुद्भ्यश्च नमो नमः ।। शिल्पाचार्याय देवाय नमस्ते विश्वकर्मणे ।। अष्टभ्यो लोकपालेभ्यः सानुगेभ्यश्च सर्वदा ।। आयुधेभ्यो वाहनेभ्यो वर्मभ्यश्च नमः सदा ।। आसनेभ्यो दुन्दुभिभ्यो देवेभ्यश्च नमः सदा ।। दैत्यराक्षसगन्धर्वपिशाचेभ्यश्च नित्यशः ।। पितृभ्यः सप्तभेदेभ्यः प्रेतेभ्यश्च नमः सदा ।। सुसूक्ष्मेभ्यश्च देवेभ्यो भावगम्येभ्य एव च ।। नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने ।। अथ किं बहुनोक्तेन मंत्रेणानेन वार्चयेत् ।। प्राङ्मुखोदङ्मुखो विप्रान् देवानुद्दिश्य पूर्ववत् ।। अथवा किमत्र विस्तरेण ब्राह्मणानेव देवतोद्देशेन पूजयेदित्यर्थः ।। पूर्ववत् मन्त्रोक्तक्रमेण ।। अर्घ्यैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रमाल्यैः सुहृष्टकम् ।। सुहृष्टकम्–सरोमाञ्चं हृष्टरोमा सन्नर्चयेदित्यर्थः ।। धनधान्यानुविभवैर्दक्षिणाभिश्च सर्वदा ।। इतिहासपुराणानां प्रवक्तृंश्च द्विजोत्तमान् ।। कालज्ञान्वेदवेदज्ञान् भृत्यान् सम्बन्धिबान्धवान् ।। अनेनैवतु मंत्रेण स्वाहान्तेन पृथक्पृथक् ।। यविष्टायाग्नये होमः कर्तव्यः सर्वतृप्तये ।। वेदविच्चक्षुषी दत्त्वा स्थाने प्राधानिके सदा ।। यविष्ठाय श्रेष्ठाय ।। वेदवित् वेदोक्त विधिज्ञः ।। मदनरत्ने तु वेदवदिति पठित्वा वेदोक्तविधिनेति व्याख्यातम् ।। चक्षुषी आज्यभागौ ।। प्राधानिके स्थाने प्रधानहोमारम्भे ।। होमारम्भे ततः कुर्यान्मङ्गलारम्भणं नरः ।। मदनरत्ने–शालाशोभां ततः कुर्यान्मङ्गलालम्भनं ततः ।। इति पाठः ।। भोजयित्वा द्विजान्सर्वान्सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।। विशेषेण च भोक्तव्यं कार्यश्चापि महोत्सवः ।। वनसंवत्सरारम्भः सर्वसिद्धिप्रवर्तकः ।। इति संवत्सरारम्भविधिः ।।

अथ चैत शुक्ला प्रतिपदाको संवत्सरके आरंभ की विधि

ब्रह्म पुराणमें लिखा है, इसमें सूर्योदय व्यापिनी प्रतिपद लेनी चाहिये। क्योंकि, इसी पुराण में लिखा हुआ है कि चैत्रमासकी शुक्लप्रतिपदाको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनाका आरम्भ किया था, उस दिन प्रतिपदा उदय व्यापिनी थी। भविष्योत्तरपुराणमें लिखा हुआ है कि, मधुमास के प्रवृत्त होने पर, उदयव्यापिनी प्रति-पदाको सृष्टि रचनेका प्रारम्भ किया था, यदि दोनों दिनोंकी प्रतिपदा उदयव्यापिनी हो, अथवा दोनों दिनोंमें उदयव्यापिनी न हो तो पहिली लेनी चाहिये। ऐसा—संवत्सरके आरंभकी प्रतिपदा वसन्तके आदिकी प्रतिपदा तथा कार्तिकी शुक्ला प्रतिपदा सदा पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये। वृद्धवसिष्ठके वचनसे बहुतसे कहते हैं, परन्तु दोनों दिन उदयव्यापिनी न मिलो तो संवत्सरके आरंभमें जो कार्य्य होता था वो तो हो न सकेगा इस कारण पूर्वामें कार्य्यका विधान करनेवाला यह वचन युक्त ही है, दोनों दिन ही उदयव्यापिनी होगी, तब तो पहिले दिन ही उदयव्यापिनी मिल जानेके कारण पूर्वाका ही ग्रहण होगा क्योंकि, उस समय कब करना चाहिये यह आकांक्षा तो रहती ही नहीं तथा पक्षान्तरमें पूर्वयुतपनेका अभाव भी रहता ही है इस कारण, पूर्वाका ग्रहण होता है यह बात नहीं है कि, इस वचन से ही पूर्वाका ग्रहण हो रहा हो। ब्राह्म पुराणमें लिखा हुआ है कि, इसी दिनसे ब्रह्माजीने कालकी गणनाका प्रारंभ किया था। ग्रह, अब्द, ऋतु, मास और पक्षोंको सब देवोंका समागम होने पर संवत्सर आदिके अधिपोंको दे दिया। ब्रह्मा की सभामें अनिर्देश्य तनुवाले ब्रह्माजीकी सब देवता और मुनि आदिकों ने नमस्कार स्तुति करते हुए उपासना की। इसके पीछे वे सब ऋषि मुनि आदि ब्रह्माजीकी शुश्रषा कर हिमालय चले गये वहाँ जाकर दत्तचित्त होकर अपने अपने काममें लग गये, हे निष्पाप! उस समय ब्रह्माकी सभा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी, विशेष करके वो मनोहर निर्दोष अनिर्देश्य रूप धारण किये रहती थी, उस दिनसे लेकर पहिले और उनसे भी पहिलोंसे जो धर्म पालन किया गया है अब भी वही धर्म चला आता है, उसे प्रयत्नके साथ करना चाहिये। इस प्रतिपादाके दिन सब पापोंके नाश करनेवाली, सब उत्पातोंको शान्त करनेवाली, कलिके दुःखोंको नाश करनेवाली, आयुको बढानेवाली, सौभाग्यके वर्धन करनेवाली मंगलकरनेवाली, दोनों लोकोंमें सुख देनेवाली और परम पवित्र जो महाशान्ति है उसे कर देना चाहिये। चैत्रसुदी प्रतिपदाको पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, धूप, वस्त्र, अलंकार, भूषण, होम, बलि, उपहार और ब्राह्मणभोजनसे सबसे पहिले कमलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माजीकी पूजा होनी चाहिये। ब्रह्माजीकी पूजाके पीछे क्रमसे सब देवताओं की जुदी जुदी पूजा होनी चाहिये। पूजनके मंत्रोंमें आदिमें ओंकार और अन्तमें नमस्कार जोड़नी चाहिये। कुशोदक, तिल, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, पाद्य और भोजनसे यथाक्रम सब देवोंका पूजन करना चाहिये। पूजनके लिये मंत्रको तो बहुरूप कर लेना चाहिये, 'मंत्रम्' यह जातिमें एक वचन हैं, इसका बहुवचनसे तात्पर्य है, 'बहुरूपम्' यही 'मंत्रम्' का विशेषण है इसका मिलकर यही मतलब होता है कि सब देवोंके जुदे जुदे मंत्र पढकर उनका पूजन करे। 'ओम् नमो ब्रह्मणे' यहाँसे लेकर 'ओम् विष्णवे परमात्मने नमः' यहाँ तक जो मंत्र वाक्योंके समुदायमें आये हुए चतुर्थ्यन्त देवता शब्द है; जिनके कि, आदिमें ओम् और अन्तमें नमः लगा हुआ है, वह सब मंत्ररूपसे ग्रहण किये जायँगे यानी जिस देवता का पूजन करना हो उसके नामकी चतुर्थ्यन्त करके उसके आदिमें ओम् और अन्तमें नमः लगाकर उससे पूजन होता है। प्रार्थनाके मंत्र-ब्रह्माजीको नमस्कार, महात्मा कामको नमस्कार, निमेषके लिये नमस्कार, त्रुटिके लिये नमस्कार, लवके लिये नमस्कार, तुम क्षणके लिये नमस्कार, काष्ठाके लिये नमोनमः, कलाके लिये नमस्कार, सुसूक्ष्मा नाडिकाके लिये नमस्कार, मुहूर्तके लिये नमोनमः, निशाके लिये नमस्कार, पुण्य दिवसोंके लिये नमस्कार है। दोनोंपक्ष, बारहों महीने, छओंऋतु, दोनों अयन और पाँचो संवत्सरों के लिये सदा नमस्कार है। कृत युगादिकों को लिये नमस्कार है। ग्रहादिकों के लिये नमस्कार है, अट्ठाइसों नक्षत्रों के लिये नमस्कार है। राशियोंके, करणोंके, व्यतीपातोंके, प्रतिवर्षके अधिपोंके और विज्ञानोंके लिये सदा नम-स्कार है, अनुचर सहित कुल नागोंके लिये नमस्कार है, सानु यात्रका मतलब अनुचर सहितसे है। दिशाओंके लिये और दिक्पालोंके लिये नत्मस्कार है, चौदहों मनुओंके लिये बारंबार नमस्कार है। इन्द्रोंके लिये नमस्कार

तथा उनकी संख्याओंके लिये नमस्कार है, दक्षकी पचासों कन्याओं के लिये नमस्कार है दिति सुभद्रा और जयाके लिये नमस्कार है । तुझ सुशास्त्रके लिये नमस्कार है, सब अस्त्रोंके जनक के लिये नमस्कार है, पत्नियों करिके सहित बहु पुत्रवाले तुझे नमस्कार है । बुद्धिके लिये, वृद्धिके लिये, निद्राके लिये और धनदाके लिये नमस्कार है । कुबेर जिसका पुत्र है ऐसे महापुरुषके लिये नमस्कार है । गुह्यकोंके स्वामीके लिये नमस्कार है । शंख और पद्म इन दोनों के खजानोंके लिये सदा नमस्कार है । हे भद्राकाली तेरे लिये नमस्कार है, हे सुरभी ! तेरे लिये वारंवार नमस्कार है, वेद वेदांग और वेदान्तकी विद्या संस्थाके लिये नमस्कार है । नाग, यक्ष, सुपर्ण और गरुडके लिये नमस्कार है, सातों समुद्र और सागरोंके लिये नमस्कार है, उत्तर कुरुके लिये और मेरुके रहनेवालोंके लिये नमस्कार है । भद्राश्व और केतुमालके लिये सब जगह सदाही नमस्कार है, इलावृत्तके लिये, हरिवर्षके लिये और किंपुरुष वर्षके लिये नमस्कार है । भारतदेशके बडे बडे भेदोंके लिये नमस्कार है, सातोंपाताल और सातों नरकोंके लिये नमस्कार है, कालाग्निरुद्र और शिव दोनोंके लिये नमस्कार है, वाराहरूपधारी भगवान् के लिये नमस्कार है, सातों लोकोंके लिये और महाभूतोंके लिये नमस्कार है, सद्बुद्धिके लिये और प्रकृतिके लिये नमस्कार है पुरुषके लिये और अभिमानके लिये एवम् अव्यक्त मूर्तिके लिये नमस्कार है, हिमवान्से लेकर जो मुख्य पर्वत हैं उनके लिये नमस्कार है,पुराणोंमें आई हुई सातों गंगाओंके लिये नमस्कार है । सातों आदि मुनियोंके लिये सर्वदा नमस्कार है पुष्करादि तीर्थोंके लिये वारंवार नमस्कार है, वितस्ता आदिक नदियोंके लिये वारंवार नमस्कार है, चौदहों बडी बडी धरणियोंके लिये नमस्कार है, धाता बिधाता और छन्दोंके लिये नमस्कार है, सुरभी और ऐरावणके लिये वारंवार नमस्कार है, उच्चैः श्रवाके लिये और ध्रुवके लिये नमस्कार है, धन्वन्तरिजी एवम् शस्त्र अस्त्रोंके लिये सावारंवार नमस्कार है । विनायक कुमार और विघ्नेशोंके लिये सदा नमस्कार है । शाख विशाख और नैगमेयके लिये नमस्कार है, स्कन्दग्रहों और स्कन्ध मातृकोंके लिये नमस्कार है ज्वर रोगपति और भस्मप्रहरणके लिये नमस्कार है वालखिल्य ऋषियों और केशव भगवान् के लिये सदा नमस्कार है, अगस्त्यजी, नारदजी और व्यासजीके लिये वारंवार नमस्कार है, अप्सराओंके लिये और सोम पीनेवाले देवोंके लिये वारंवार नमस्कार है असोम-पाओंके लिये एवम् तुषित देवोंके लिये सदा नमस्कार है। वारहों आदित्योंके लिये सदा सर्वदा नमस्कार है, तपस्वी ग्यारहों रुद्रोंके लिये सदा सर्वदा नमस्कार है, नासत्य, दस्र, अश्विनीकुमारोंके लिये नित्य नमस्कार है, पुराणोंके कहे हुए बारहों साध्योंके लिये सदा नमस्कार है । उनञ्चासों मरुतोंके लिये नमस्कार है, शिल्पा-चार्य्य देव विश्वकर्माके लिये नमस्कार है, अपने अनुयायियों सहित आठों लोकपालोंके लिये नमस्कार है, आयुध, वाहन और कवचोंके लिए सदा नमस्कार है । आसन,दुंदुभि और देवोंके लिये नमस्कार है, दैत्य रासक्ष गन्धर्व, पिशाच, पितृ और उनके सप्तभेदवाले प्रेत इन सबके लिए सदा नमस्कार है । अत्यन्त सूक्ष्मोंके लिये, देवोंके लिये और भावगम्योंके लिये नमस्कार है, बहुरूपी परमात्मा आप विष्णुके लिये नमस्कार है । अथवा बहुत कहने से क्या है, अपना पूरब मुख करके वा उत्तर मूख करके पहिले की तरह देवताओंके उद्देशसे ब्राह्मणों का पूजन करदे । "अथ किं बहुना" इस श्लोकका निबन्ध कर्ता स्वयम् अर्थ करते हैं कि, यहाँ विस्तारसे क्या प्रयोजन है देवताओंके उद्देशसे ब्राह्मणोंका ही पहिले की तरह मन्त्र क्रमसे पूजन करदेना चाहिए । अर्घ्य, पुष्प, धूप, वस्त्र और माल्यसे सुहृष्ट रोमा होकर पूजे, रोमांच सहितको सुहृष्टक कहते हैं, हृष्टरोमा होकर पूजन पूजन करे, यह सुहृष्टकका अर्थ है । केवल अर्घ्यादिकही नहीं किन्तु धन धान्य और दक्षिणा अनुविभवोंसे सदाही इतिहास पुराणोंके वक्ताओं एवम् काल और वेद वेदान्तोंके जाननेवालोंका पूजन करे तथा भृत्यसम्बंधी और बान्धवोंकाभी सत्कार करे इसी स्वाहान्त मन्त्रसे सबकी तृप्तिके अर्थ अलग अलग यविष्ठ अग्निमें हवन करना चाहिए । यह वेदविदके हाथसे होना चाहिये । दोनों प्रधान देवोंके लिये प्रधान आज्य भागोंको प्रधान होममें उसेही देना चाहिये, यविष्ठिका मतलब श्रेष्ठसे है, वेद विदका मतलब वेदकी कही हुई विधियोंको जाननेवाले से है । मदनरत्नग्रन्थोंमें तो वेदविदकी जगह वेदवत् ऐसा पाठ रखकर इसका वेदोक्तविधि अर्थ किया है, चक्षुषीका मतलव आज्य भागसे है, प्राधानिक स्थानका अर्थ, प्रधान होमारंभ है । इसकेबाद होमा-रंभके निमित्त, मंगलारंभ करना चाहिये । मदनरत्नमें लिखा है कि, पीछे मंगलाचरण, शालाको सजाकर

चाहिये । सब ब्राह्मणोंको, मित्रोंको, संबन्धियोंको और बान्धवोंको सानुरोध भोजन कराके पीछे आप भोजन करना चाहिये, महोत्सव भी होना चाहिये, यह नये संवत्सरके आरंभकी विधि सब सिद्धियों के देनेवाली है । इति संवत्सरारंभ विधिः ॥

आरोग्यप्रतिपद्व्रतम् ॥ अथात्रैव विष्णुधर्मोत्तरोक्तमारोग्यप्रतिपद्व्रतम् ॥ पुष्कर उवाच ॥ संवत्सरावसाने तु पञ्चदश्यामुमुपोषितः ॥ प्रातः प्रतिपदि स्नातः कुर्याद्व्रतमनन्यधीः ॥ पूजयेद्भास्करं देवं वर्णकैः कमले कृते ॥ वर्णकैः—रक्तनीलश्वेतपीतादिभिः ॥ शुद्धेन गन्धमाल्येन चन्दनेन सितेन च ॥ तथा कुन्दुरुधूपेन घृतदीपेन भार्गव ॥ कुन्दुरुः[1] शल्लकीनिर्यासः ॥ अपूपैः सैकतैर्दध्ना परमान्नेन भूरिणा ॥ सैकतैः शर्कराविकारैः ॥ ओदनेन च शुक्लेन सता लवणसर्पिषा ॥ सता उत्तमेन ॥ क्षीरेण च फलैः शुक्लैर्बहुब्राह्मणतर्पणैः ॥ पूजयित्वा जगद्धाम दिनभागेः चतुर्थके ॥ आहारं प्रथमं कुर्यात्सघृतं मनुजोत्तम ॥ सर्वं च मनुजश्रेष्ठ घृतहीनं विवर्जयेत् ॥ भुक्त्वा च सकृदेवान्नमाहारं च समाचरेत् ॥ पानीयपानं कुर्वीत ब्राह्मणानुमते पुनः ॥ प्रथममाहारम् प्रथमग्रासम् ॥ सर्वम्-प्रथममप्रथमं चाहारम् ॥ सकृदेवान्नं भुक्त्वा एकमेव ग्रासं भक्षयित्वाऽवशिष्टमन्नं त्यजेत् ॥ ब्राह्मणानुमत्या पुनराहारमवशिष्टान्नभोजनं पुनः पानीयपानं च कुर्यादित्यर्थः ॥ ब्राह्मणानुमत्या भुञ्जानोपि घृतहीनं न भुञ्जीत घृतहीनं विवर्जयेदिति निषेधात् ॥ संवत्सरमिदं कृत्वा ततः साक्षात्त्रयोदशम् ॥ पूजनं देवदेवस्य तस्मिन्नहनि भार्गव ॥ संवत्सरं प्रतिमासं शुक्लप्रतिपदि ॥ त्रयोदशमिति लिङ्गदर्शनात् ॥ सवस्त्रं सहिरण्यं च ततो दद्याद्द्विजातये ॥ पूजनम् पूजोपकरणं प्रतिमादि ॥ व्रतेनानेन धर्मज्ञ रोगमेवं व्यपोहति ॥ आरोग्यमाप्नोति गतिं तथाऽग्र्यांयशस्तथाऽर्थान्विपुलांश्च भोगान् ॥ व्रतेन सम्यक्पुरुषोऽथ नारी संपूजयेद्यस्तु जगत्प्रधानम् ॥ जगत्प्रधानम्—सूर्यम् ॥ इति चैत्रशुक्लप्रतिपद्यारोग्यदायकव्रतम् ॥ विद्याप्रतिपद्व्रतम् ॥ अस्यामेवोक्तं विद्याव्रतं मदनरत्ने विष्णुधर्मे ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अष्टपत्रं तु कमलं विन्यसेद्वर्णकैः शुभैः ॥ ब्रह्माणं कर्णिकायां तु न्यस्य संपूजयेद्विभुम् ॥ ऋग्वेदं पूर्वपत्रे तु यजुर्वेदं तु दक्षिणे ॥ पश्चिमे सामवेदं तु उदक् चाथर्वणं तथा । आग्नेये च तथाङ्गानि धर्मशास्त्राणि नैर्ऋते ॥ पुराणं चैव वायव्यामीशान्यां न्यायविस्तरम् ॥ एवं विन्यस्य धर्मज्ञः सोपवासस्तु पूजयेत् ॥ चैत्रशुक्लमथारभ्य सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ सदा प्रतिपदं प्राप्य शुक्लपक्षस्य यादव ॥ संवत्सरं महाराज शुक्लगन्धानुलेपनैः ॥ भूषणैः परमान्नेन धूपदीपैरतन्द्रितः ॥ संवत्सरान्ते गां दद्याद्व्रते चीर्णे नरोत्तम ॥ इदं व्रतं यस्तु

१ वह्नि इति पाठान्तरम् ।

करोति राजन् स वेदवित्स्याद्भुवि धर्मनिष्ठः ।। कृत्वा सदा द्वादशवत्सराणि विरिञ्चिलोकं पुरुषः प्रयाति ।। इति विद्याप्रतिपद्व्रतम् ।। तिलकव्रतम् ।। अथात्रैव भविष्योक्तं तिलकव्रतम् ।। श्रीकृष्णउवाच ।। वसन्ते किंशुकाशोकशोभिते प्रतिपत्तिथिः ।। शुक्ला तस्यां प्रकुर्वीत स्नानं नियममाश्रितः ।। अनेन सामान्यतो वसन्तसम्बन्धिशुक्लप्रतिपल्लाभेपि तया व्रतमिदं चैत्रे गृहीतं द्विजसंनिधावित्यग्रिमवचनानुरोधाच्चैत्रशुक्लप्रतिपदेव ग्राह्या ।। नारी नरो वा राजेन्द्र संतर्प्य पितृदेवताः ।। नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा तदलाभतः ।। पिष्टातकेन विलिखेद्वत्सरं पुरुषाकृतिम् ।। पिष्टातकः पटवासको गन्धद्रव्यचूर्णविशेषः ।। ततश्चन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनाऽर्चयेत् ।। मासर्तुनामभिः पश्चान्नमस्कारान्तयोजितैः ।। मासर्तुनामभिः—चैत्रवसन्तादिनामभिः ।। पूजयेद्ब्रह्मणो विद्वान् मंत्रैर्वेदोदितैः शुभैः ।। संवत्सरोसीति पठन्मन्त्रं वेदोदितं द्विजः ।। नमस्कारेण मंत्रेण शूद्रोपीत्थं प्रपूजयेत् ।। शूद्रोपीत्यनेन तु स्त्रीणां परग्रहः ।। तासां विशेषविध्यभावे वैदिकमन्त्रानधिकारात् ।। संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीत्यादियजुर्वेदप्रसिद्धो मन्त्रः ।। नमस्कारेण मन्त्रेण संवत्सराय ते नम इत्यादिना ।। एवमभ्यर्च्य वासाऽभिः पश्चात्तमभिवेष्टयेत् ।। कालोद्भवैर्मूलफलैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः ।। ततस्तं पूजयेत्पार्थ पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिः ।। भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे ।। संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषतः ।। एवमुक्त्वा यथाशक्त्या दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।। ललाटपट्टे तिलकं कुर्याच्चन्दनपङ्कजम् ।। ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालंकृतं मुखम् ।। धार्यं संवत्सरं यावच्छशिनेव नभस्तलम् ।। एवं नरो वा नारी वा व्रतमेतत्समाचरेत् ।। सदैव पुरुषव्याघ्र भोगान् भुवि भुनक्त्यसौ ।। भूतप्रेतपिशाचा ये दुर्वारा वरिणो ग्रहाः ।। निरर्थका भवन्त्येते तिलकं वीक्ष्य तत्क्षणात् ।। निरर्थकाः प्रयोजनशून्याः ।। अनिष्टकरणे असमर्था इत्यर्थः ।। पूर्वमासीन्महीपालो नाम्ना शत्रुञ्जयो जयी ।। चित्रलेखेति तस्याऽभूद्भार्या चारित्रभूषणा ।। तया व्रतमिदं चैत्रे गृहीतं द्विजसन्निधौ ।। वत्सरं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ।। हन्तुमाक्षेप्तुकामो वा समागच्छति यः पुनः ।। प्रयाति प्रियकृत्तस्या दृष्ट्वा तु तिलकं नरः ।। सपत्नीदर्पापहरा वशीकृतमहीतला ।। भर्तुर्दृष्ट्वा प्रहृष्टा सा सुखमास्ते निराकुला ।। यावद्गजेनाभिभूतो भर्ता पुत्रः सवेदनः ।। शिरोर्तिना संप्रयातः सुहृदां सुखदायकः ।। शिरोर्तिना संप्रयातः शिरोवेदनया युतः ।। धर्मराजपुरात्प्राप्ताः सर्वभूतापहारकाः ।। तस्मिन्क्षणे महाराज धर्मराजस्य किंकराः ।। तस्या द्वारमनुप्राप्ताः प्रविष्टा गृहमञ्जसा ।। शत्रुञ्जयं समानेतुं कालमृत्युपुरःसराः ।।

---

१ तस्येति पाठे तस्य कमलस्य कर्णिकायामित्यर्थः ।

पार्श्वे स्थितां चित्रलेखां तिलंकालकृताननाम् ।।दृष्ट्वा प्रनष्टसंकल्पाः परावृत्य गताः पुनः ।। गतेषु तेषु स नृपः पुत्रेण सह भारत ।। नीरुजो बुभुजे भोगान् पूर्वं कर्मार्जिताञ्छुभान् ।। अक्रूरेण समाख्यातं मम पूर्वं युधिष्ठिर ।। एतत्त्रिलोकीतिलका ख्यभूषणं पुण्यव्रतं सकलदुष्टहरं परं च ।। इत्थं समाचरति यः स सुखं विहृत्य मर्त्यः प्रयाति पदमच्युतमिन्दुमौलेः ।। इति तिलकव्रतम् ।। अस्यामेव नवरात्रारम्भः तत्र परायुता ग्राह्या ।। अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयायां गुणान्विता ।। अत्रैव प्रपादानमुक्तम् ।। अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैव महोत्सवे ।। पुण्येऽह्नि विप्र कथितं प्रपादानं समारभेत् ।। ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान् मन्त्रेणानेन मानवः ।। प्रपेयं सर्वसामान्यभूतेभ्यः प्रतिपादिता ।। अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः ।। अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ।। प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना ।। प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ।। ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।। एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।। अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ।। अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ।। प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ।। इति प्रपादानम् ।। अथाचारप्राप्तं रोटकव्रतम् ।। तच्च श्रावणशुक्लप्रतिपत्सोमवारयुता यदा तदा श्रावणे प्रथमसोमवारे वा प्रारम्भ सार्द्धमासत्रयं कार्यम् ।। तिथ्यादि संकीर्त्याधिकसौभाग्यसंपूर्णसंपत्तिकामः श्रीसोमेश्वरप्रीत्यर्थं रोटकव्रतं करिष्ये । इति संकल्प्य प्रत्यहं कार्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्तं सोमेश्वरं साम्बं पूजयेत् ।। तत्र पूजाविधिः ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य श्रीसोमेश्वरप्रीत्यर्थं गृहीतरोटकव्रताङ्गत्वेन विहितं श्रीसोमेश्वरपूजनं करिष्ये इति संकल्प पूजां कुर्यात् ।। एवं कार्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्त प्रत्यहं कथाश्रवणपूर्वकं बिल्वदलैः संपूज्य कार्तिकशुक्लचतुर्दश्यामुपोष्य रात्रौ पञ्चामृतपुरः सरं नानापुष्पादिभिः संपूज्य प्रातः पुरुषाहारसंमितं रोटकपञ्चकं कृत्वा द्वौ ब्राह्मणाय एकं देवाय दत्त्वा द्वौ स्वयं भुञ्जीत।।एवं पञ्चवर्षं कृत्वाऽन्ते वक्ष्यमाणोद्यापदविधिना उद्यापनं कुर्यादिति ।।

अथ आरोग्यप्रतिपद्व्रतम्-विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें आरोग्य प्रतिपद्का व्रत कहा है पुष्कर बोले कि, संवत्सरकी समाप्तिमें पन्द्रसके दिन उपवास करके प्रतिपदके दिन, प्रातः काल स्नान करके अनन्य चित्त होकर व्रत करे, वर्णकोंसे वनाये हुए कमलोंपर, सूर्य नारायणका पूजन करना चाहिये । लाल, नीला, सफेद और पीले आदिको वर्णक कहते हैं, हे भार्गव ! शुद्ध गन्धमालासे, सफेदचन्दनसे, कुन्दुरूकी धूपसे तथा घृतसे दीपकसे। कुन्दुरू-शल्लकीके निर्यासको कहते हैं । संकतके पूओंसे, दधिसे तथ बहुतसी खीरसे (शर्कराके बने हुओंको संकत कहते हैं सफेद । भातसे और सत्नमक और सत्घीके पदार्थोंसे सत् उत्तमको कहते हैं । क्षीरसे और उन सफेद फलोंसें जिनसे बहुतसे ब्राह्मण तृप्त हो सकें, इन सबसे जगद्धाम सूर्यका पूजन करके श्रेष्ठ मनुष्यको चाहिये कि दिनके चौथे भागमें घृत सहित प्रथम आहार करे तथा कोई भी चीज हो पर विना घीके होतो सबको छोड़ दे, एक ग्रास ही उस अन्नके आहारको करे, फिर ब्राह्मण आज्ञा दें तब पानीयका पान करे । प्रथम आहारका

मतलब पहिले ग्राससे है, घृत हीन चाहे पहिला ग्रास हो, चाहे दूसरा हो, उसे छोड़ दे । एकहीवार अन्नको खाकर यानी एकही ग्रासको खाकर, बकी को छोडदे ब्राह्मणोंकी सलाहसे फिर बाकी आहारका भोजन करके पानी पीना चाहिये, ब्राह्मणों की आज्ञासे भोजन करता हुआ भी घृत हीन वस्तुका भोजन न करना चाहिये । क्यों कि ,घृतहीनको न खाय, यह निषेध है । हे भार्गव ! एक साल तक इस व्रतको करते हुए तेरहों प्रतिपदाओंको देव देवका पूजन करना चाहिये । शुक्ला प्रतिपदका प्रतिमास संवत्सर व्रत करना चाहिये । क्योंकि, त्रयोदश यह लिखा हुआ है । इसके बाद वस्त्रसहित सोना और पूजन के उपकरण प्रतिमा आदिकों को ब्राह्मणको दे देना चाहिये, इस व्रतके प्रभाव से व्रती अपने सब रोगोंको नष्टकर देता है, चाहें पुरुष हो चाहें स्त्री हो इस व्रतसे जो जगत् प्रधानको पूजता है वो आरोग्य प्राप्त करता है तथा उत्तम गति यश और अनेक भोग उसे प्राप्त होते हैं । यहाँ जगत् प्रधान सूर्यको कहते हैं । यह चैत्र शुक्ला प्रतिपदाका आरोग्य दायक व्रत पूरा हुआ ।

अथ विद्याप्रतिपद्व्रतम्

इसी चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको विद्याव्रत होता है । यह मदनरत्नमें विष्णुधर्ममें लिखा हुआ है । मार्कण्डेयजी बोले कि, सुन्दर रंगोंसे अष्टदलकमल बना, ब्रह्माजीको उसकी कर्णिकापर बिठाकर उनका पूजन करना चाहिये । पूर्व पत्रपर ऋग्वेद, दक्षिण पत्रपर यजुवद, पश्चिम पत्रपर सामवेद तथा उत्तर पत्रपर अथर्ववेद लिखना चाहिये । वेदाङ्गोंको आग्नेयमें तथा धर्मशास्त्रोंको नैर्ऋत्य कोणके पत्रपर तथा वायव्यकोणके पत्रपर पुराण और ईशानमें न्यायका विस्तार लिख धर्मके जाननेवालोंको चाहिये कि उपवास पूर्वक पूजन करें । हे यादव ! चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे लेकर उपवास करता और जितेन्द्रिय रहता हुआ प्रत्येक मासकी प्रतिपत्को व्रतकरता रहे । एक सालतक इस व्रतको करे, सफेद गन्धोंका अनुलेपन करे, आलस्यरहित भूषणोंसे धूपदीपसे व्रत मनाता रहे । संवत्सरके पीछे व्रत पूरा होजानेपर ब्राह्मणको गऊ दान करे, हे राजन् ! जो पुरुष इस व्रतको करता है वो वेदोंका जाननेवाला धार्मिक बनता है, बारह वर्ष इस व्रतको करके ब्रह्मलोकमें चला जाता है । तिलकव्रत-भविष्यपुराणमें कहा है । श्री कृष्ण बोले कि ढाक शुक और अशोकसे शोभित हुए वसन्तमें शुक्लप्रतिपत् तिथि आती है, उसमें नियम लेकर स्नान करना चाहिये । इस वाक्से सामान्य रूप से वसन्तकी शुक्ला प्रतिपदका लाभ होनेपर भी यह जो अगाड़ी लिखा हुआ है कि, उसने यह व्रत चैत्रमें ब्राह्मणोंके सन्मुख ग्रहण किया था, इस वचनके अनुरोध से चैत्रशुक्ला प्रतिपदा ही लेनी चाहिये; हे राजेन्द्र ! स्त्री हो वा पुरुष हो उसे नदीके किनारे अथवा तडागपर यदि ये न मिले तो घरपर ही पितृ-देवताओंका भलीभाँति तर्पण करके पिष्टातकसे मनुष्य जैसी आकृतिका संवत्सर लिखना चाहिये पिष्टातकको पटवासक कहते हैं; यह एक सुगन्धित वस्तुका चूर्ण है । इसके बाद चन्दनके चूर्णसे और पुष्प धूपादिकसे उन्हें पूजे । पीछे नमस्कार लगाये हुए मास और ऋतुओंके नामसे अर्थात् मास चैत्र आदि और ऋतु वसन्तादिके नामसे शुभ वैदिक मंत्रोंद्वारा, विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि, पूजन करे। द्विजोंको चाहिये कि "संवत्सरोऽसि" इस वेदके मंत्रको बोलते हुए पूजन करे तथा नमस्कार मंत्रोंसे शूद्र भी इसी तरह पूजे,वहाँ शूद्र शब्दसे स्त्रियोंका भी ग्रहण होता है कि, स्त्रियाँ नमस्कार मंत्रस पूजन करे, क्योंकि विशेष* विधिके विना स्त्रियोंको वैदिक मंत्रोंका अधिकार नहीं है । "संवत्सरोऽसि' ' परिवत्सरोऽसि" यह यजुवदका प्रसिद्ध मंत्र है, इस मंत्रको मय अर्थके यहीं लिखे देते ह—ओम् संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसि, इदावत्सरोऽसि, इद्वत्सरोऽसि उषसस्ते कल्पन्तामहारोत्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्ताम्मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताम् संवत्सरस्ते कल्पन्ताम् ।। प्रेत्याऽएत्यै सञ्चाञ्च प्रच सारय सुपर्ण चिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ।। हे देव ! आप संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर इदवत्सरः और वत्सर हो । उष, अहोरात्र, अर्धमास, मास, ऋतु और संवत्सर आपमें हैं । आप

---

* विभिन्न जातिकी बीसके लग भग स्त्रियाँ ऋग्वेगमें ऋषिकी देखी जाती हैं गार्गी आदि अनेक बिदुषियोंका प्रसंग उपनिषदोंमें भी पाया जाता है,इतिहास और पुराण भी इससे शून्य नहीं हैं,काश्मीरके प्रसिद्ध विद्वान् न्याखाल दासजी न्यायरत्न तथा आहिताग्नि त्रिकालदर्शी पं. वंशीधरजी अग्निहोत्रीका बरसों शास्त्रार्थ चला था,अग्निहोत्रियोंकी स्त्रियोंको छोड़कर किसीको भी वेदमंत्रोंका अधिकार नहीं है वह निर्णय हुआ था।

आने जानेके लिये अपना संकोच और विकाश कर लेते हो। इस सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यहां अचल रहो मेरी रक्षा करो। नमस्कार मंत्रसे यानी ओम् संवत्सराय ते नमः इत्यादि मंत्रोंसे पूजन करना चाहिये। फिर वस्त्रोंसे उसे वेष्टित कर देना चाहिये। फिर सामयिक मूल फल नैवेद्य और मोदकोंसे संवत्सरका पूजन करना चाहिये। हे पार्थ ! फिर सामने बैठ दोनों हाथ जोडकर करना चाहिये कि, हे भगवन्, आपकी कृपासे यहाँ मेरा वर्ष भर क्षेम रहे, एवम् इस सालके मेरे विघ्न नाशको प्राप्त हो जायें, पीछे अपनी शक्तिके अनुसार दान देना चाहिये। जैसे चन्द्रमासे नभस्तल सुशोभित रहता है उसी तरह उसी दिनसे मुख भी चन्दनसे अलंकृत रहना चाहिये, प्रति दिन माथेपर चन्दनका तिलक करना चाहिये। हे पुरुष-व्याघ्र स्त्री हो, अथवा पुरुष हो, जो इस व्रतको एक साल तक करता है, वो भूमंडलमें दिव्य भोगोंको भोगता है। भूत, प्रेत, पिशाच और ऐसे वैरी तथा ग्रह जिनका निवारण ही न हो सके वे इस तिलक को देखते ही निरर्थक हो जाते हैं, निरर्थक यानी प्रयोजन शून्य, जो किसी तरह भी अनिष्ट न करसकें। पहिले एक शत्रुंजय नामक जयी राजा था उसकी चित्रलेखा नामकी स्त्री थी, जो परम चरित्र शालिनी थी। उसने यह व्रत चैत्र-मासमें ब्राह्मणों के सामने ग्रहण किया था तथा संवत्सरका पूजन करके भगवान्का ध्यान किया। जो कोई उसे मारनेके लिये भी आता था वह चित्रलेखाके तिलकको देखकर उसका शुभ चिन्तक बनकर जाता था। इसके सामने सौतोंका अभिमान चूर्ण होता था, सब इसके वश थे, यह अपने पतिका मुख देखकर प्रसन्न रहती थी इसे कोई आकुलता नहीं थी, जितने में मत्त हाथीने इसके पतिको मार डाला उतनेमें सुहृदोंका सुख देनेवाला पुत्र शिरकी पीडासे मर गया, वहाँ सब भूतोंको लेजानेवाले धर्मराजके पुरसे प्राप्त हुए। हे महाराज ! उसी क्षण धर्मराजके किंकर चित्रलेखाके द्वारपर आये और झट घर घुसगये ये काल मृत्युके अगाडी चलनेवाले थे, शत्रुंजयको लेनेकेलिये आये थे, पर उसके पार्श्वमें तिलक लगाये हुए चित्रलेखा बैठी हुई थी, उसे देखकर उनका संकल्प नष्ट हो गया और वापिस चले गये। हे भारत ! उनके चले जानेपर राजा पुत्रके साथ रोगरहित होगया, तथा पूर्वकर्मसे संग्रह किये हुए पवित्र भोगोंको भोगने लगा, हे युधिष्ठिर ! पहिले यह मुझे अक्रूरजीने कहा था, यह तिलक त्रिलोकी तिलक है, सकल दुष्टोंका हरनेवाला परम पुण्यव्रत है, इस प्रकार जो कोई इस व्रतको करता है वह इस लोकमें सुखभोगकर अन्तमें न नष्ट होनेवाले इन्दुमौलिक पदको चल जाता है, यह तिलक-व्रतकी कथा पूरी हुई। नवरात्र-इसीमें ही नवरात्रका आरंभ होता है, नवरात्रमें प्रतिपद् द्वितीयासे युक्त ग्रहण करनी चाहिये। चंडिकाके पूजनमें अमावस्या युक्त प्रतिपद् न करनी चाहिये पर द्वितीया युक्त मुहूर्त्त मात्र भी हो तो उसमें प्रारंभ करना चाहिये। प्याऊका दान—भी इसीमें कहा है, कि, फाल्गुनमासके व्यतीत होजानेपर तथा उत्सवके पुण्य दिन आजानेपर, ब्राह्मणोंके कथनानुसार प्याऊ दिलाना प्रारंभ करदे विद्वान मनुष्य इस मंत्रसे प्याऊ दिलावे कि—यह प्याऊ सर्व प्राणिमात्रके लिये बनाई है। इसके प्रदानसे पितर और पितामह तृप्त हो जायें। चार माहतक उसका पानी न टूटने पाये, जो प्याऊ देनेकी शक्ति न रखता हो पर विशेष धर्म चाहता ही हो तो, हरएक दिन मिट्टीके धर्मघटको ऊपरसे ढककर, ठंढे स्वच्छपानीसे भरकर, ब्राह्मणके घर दे आवे और देतीवार कहे कि, यह धर्मघट ब्रह्मा-विष्णु-शिव रूप है, इसके प्रदानसे मेरे संपूर्ण मनोरथ सफल हो जाओ। जो इस विधिसे धर्म घटका दान करता है वो प्रपादानका फल पालेता है इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह प्रपा दान समाप्त हुआ। अथ आचार प्राप्त रोटक व्रत-जब श्रावण शुक्ला प्रतिपदा सोमवारी हो उसदिन, अथवा श्रावणके पहिले सोमवार से लेकर साढे तीन महीना तक इस व्रतको करना चाहिये। तिथि आदि कहकर अधिक सौभाग्य और परिपूर्ण संपत्तिकी इच्छावाला मैं, श्री सोमेश्वरकी प्रसन्न-ताके लिये रोटक व्रत-करता हूँ। ऐसा संकल्प कर इस रोजसे कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीतक साम्ब सोमेश्वर भगवान्का पूजन करना चाहिये। सोमेश्वरके पूजनकी विधि लिखते हैं—पूजनका संकल्प तो मास पक्ष आदि का उल्लेख करके कहे कि, श्रीसोमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये, ग्रहण किये हुए रोटक व्रतके अंग रूपसे कहे गये, श्री सोमेश्वरके पूजनको करता हूँ। पीछे पूजा करनी चाहिये। इसी तरह कार्तिक की शुक्ला चतुर्दशीतक हररोज कथा सुनता हुआ, बिल्वपत्रोंसे सोमेश्वरका पूजन करके, कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको व्रत करके रातको पंचामृतसे लेकर जितने भी पुष्पादिक हैं उनसे शिवका पूजन करके पुरुषके भोजन के बराबर पाँच रोट करके

दो ब्राह्मण के लिये तथा एक देवके लिये देकर दोनोंका स्वयम् भोजन करले इस प्रकार पांच वर्षकरके पीछे वक्ष्यमाण उद्यापन विधिसे उद्यापन करना चाहिये।

अथ सर्वशिवव्रतेषु पूजा

आयाहि भगवञ्छम्भो शर्व त्वं गिरिजापते ।। प्रसन्नो भव देवेश नमस्तुभ्यं हि शंकर ।। त्रिपुरान्तकरं देवं चन्द्रचूडं महाद्युतिम् ।। गजचर्मपरीधानं सोममावाहयाम्यहम् ।। आवाहनम् ।। बन्धूकसन्निभं देवं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ।। त्रिशूलधारिणं देवं चारुहासं सुनिर्मलम् ।। कपालधारिणं देवं वरदाभयहस्तकम् ।। उमया सहितं शम्भुं ध्यायेत्सोमेश्वरं सदा ।। ध्यानम् ।। विश्वेश्वर महादेव राजराजेश्वरप्रिय ।। आसनं दिव्यमीशान दास्येऽहं तुभ्यमीश्वर ।। आसनम् ।। महादेव महेशान महादेव परात्पर ।। पाद्यं गृहाण मद्दत्तं पार्वतीसहितेश्वर ।। पाद्यम् ।। त्र्यंबकेश सदाचार जगदादिविधायक ।। अर्घ्यं गृहाण देवेश साम्ब सर्वार्थदायक ।। अर्घ्यम् ।। त्रिपुरान्तक दीनार्तिनाश श्रीकण्ठ शाश्वत ।। गृहाणाचमनीयं च पवित्रोदककल्पितम् ।। आचमनीयम् ।। क्षीरमाज्यं दधि मधु सितेत्यमृतपञ्चकम् ।। प्रकल्पितं मयोमेश गृहाणेदं जगत्पते ।। पंचामृतम् ।। गङ्गा गोदावरी रेवा पयोष्णी यमुना तथा ।। सरस्वत्यादितीर्थानि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। स्नानम् ।। वस्त्राणि पट्टकूलानि विचित्राणि नवानि च ।। मयानीतानि देवेश गृहाण जगदीश्वर ।। वस्त्रम् ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं कार्पासं वा तथैव च ।। उपवीतं मया दत्तं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।। उपवीतम् ।। सर्वेश्वर जगद्वन्द्य दिव्यासनसमास्थित ।। मलयाचलसम्भूतं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। गन्धम् ।। गन्धोपरि शुक्लाक्षतान् ।। अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ शुभ्रा धौताश्च निर्मलाः ।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।। अक्षतान् ।। माल्यादीनि सुगन्धीनि० ।। पुष्पाणि ।। वनस्पति० इति धूपम् ।। आज्यं च इति दीपम् ।। आपूपानि च पक्वानि मण्डकावटकानि च ।।पायसं सूपमन्नं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। मध्ये पानीयम् ।। करोद्वर्तनम् ।। कूष्माण्डं मातुलिङ्गं च नालिकेरफलानि च ।। रम्याणि पार्वतीकान्त सोमेश प्रतिगृह्यताम् ।। फलम् ।। पूगीफलम्० इति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भ० इति दक्षिणाम् ।। अग्निर्ज्योतीरविर्ज्योतिर्ज्योतिर्नारायणो विभुः ।। नीराजयामि देवेशं पञ्चदीपैः सुरेश्वरम् ।। नीराजनम् ।। हेतवे जगतामेव संसारार्णवसेतवे ।। प्रभवे सर्वविद्यानां शम्भवे गुरवे नमः ।। नमस्कारः यानि कानि च० इति प्रदक्षिणा : ।। हर विश्वाखिलाधार निराधार निराश्रय ।। पुष्पाञ्जलिं गृहाणेश सोमेश्वर नमोऽस्तु ते ।। पुष्पाञ्जलिम्। सुनिर्मितं सुवर्णेन त्रिशूलाकारमेव च ।। मयार्पितं तु तच्छम्भो बिल्वपत्रं गृहाण मे ।। बिल्वपत्रार्पणम् ।। इति पूजा ।। अथ रोटकव्रतकथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।।

हृषीकेश मयाकारि व्रतं दानमनेकधा ।। श्रोतुमिच्छामिदेवेश व्रतं सम्पत्तिदायकम् ।। १ ।। येन व्रतेन देवेश पुना राज्यं लभामहे ।। तथा व्रतं तु मे ब्रूहि यादवानां कृपाकर ।। २ ।। श्री भगवानुवाच ।। वदामि शुभदं पार्थ लक्ष्मीवृद्धिप्रदायकम् ।। धर्मार्थकाममोक्षाणां निदानं परमं व्रतम् ।। ३ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। केन चादौ पुराचीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ।। विधिना केन कर्तव्यं तत्सर्वं ब्रूहि केशव ।। ४ ।। श्रीभगवानुवाच ।। आसीत् सौम्यपुरे राजा सोमो नामेति विश्रुतः ।। क्षात्रधर्मेऽतिकुशलः प्रजापालनतत्परः ।। ५ ।। तस्य राज्ये प्रजाः सौम्याः सर्वधर्मपरायणाः ।। तस्य राज्ञस्तु चामात्यः सोऽपि सौम्यशुभावहः ।। ६।। तस्मिन्सरस्तु सौम्यं च सदा साम्याम्बुना प्लुतम् ।। अभूत्सोमेश्वरो देवो लोकानां पालनाय च ।। ७ ।। तत्राभवत्सोमशर्मा ब्राह्मणो वेदपारगः ।। वेदार्थविच्छास्त्रविच्च शुद्धाचारोऽतिदुर्लभः ।। ८ ।। तस्या भार्या शुभाचारा पुरन्ध्री चारुभाषिणी ।। भर्तृशुश्रूषणरता कल्याणी प्रियवादिनी ।। ९ ।। सोऽकरोच्च कुटुम्बार्थं कणयज्ञं दिनेदिने ।। न लेभे चाधिकं तेन धनधान्यं तथैव च ।। १० ।। अतीव खेदखिन्नस्तु विचार्य च पुनः पुनः ।। क्व करोमि क्व गच्छामि सभार्योऽहं महीतले ।। ११ ।। केन कर्मविपाकेन ईदृशं लभ्यते फलम् ।। अथवार्थकरं धर्मं देवपूजादिकं शुभम् ।। १२ ।। स सोमेशेऽकरोद्भक्ति दैन्यनाशाय पार्थिव ।। कदाचिदतिखिन्नः सन् स जगाम सरोवरम् ।। १३ ।। अभूत्सोमेशः प्रत्यक्षस्तस्मिन्सौम्यसरोवरे ।। वृद्धब्राह्मणरूपेण कृपया परया युतः ।।१४।। तेनासौ दुःखितो दृष्टः सोमशर्मा द्विजोत्तमः ।। किमर्थं क्रियते दुःखं त्वया विद्यावरेण च ।। १५ ।। सोमशर्मोवाच ।। किंचिद्वृत्तं नास्ति पूर्वं तदर्थमीदृशी दशा ।। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणस्त्विवदमब्रवीत् ।।१६।। भो भो विप्रवरश्रेष्ठ व्रतमेकं वदामि ते । श्रीभगवानुवाच ।। नेनादिष्टंव्रतं चेदं पूर्णसंपत्तिदायकम् ।। १७ ।। सोमशर्मोवाच ।। भो भो ब्राह्मणशार्दूल व्रतं तद्वद मे प्रभो ।। यस्यानुष्ठानमात्रेण लक्ष्मीवृद्धिः प्रजायते ।। १८ ।। कस्मिन्मासे च कर्तव्यं किं दानं कस्य भोजनम् ।। धनलाभाय कर्तव्यं कस्य देवस्य पूजनम् ।।१९।। कैस्तु पुष्पैः प्रकर्तव्या पूजा चारुतरा शुभा।। नैवेद्यं कीदृशं देयमर्घ्यं कैस्तु फलैर्भवेत् ।।२०।। यदि तुष्टोऽसि विप्रेन्द्र तत्सर्वं ब्रूहि मे प्रभो ।। ब्राह्मण उवाच ।। साधु त्वया विप्र पृष्टं व्रतमृद्धिप्रदायकम् ।। २१ ।। विधानं तस्य वक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। श्रावणे च सिते पक्षे प्रथमे सोमवासरे ।। २२ ।। प्रकर्तव्यं व्रतं विप्र शुभं नियमपूर्वकम् ।। सार्द्धमासत्रयं विप्र कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ।। २३।। बिल्वपत्रैरखण्डैश्च पूजनं च दिनेदिने ।। पञ्चसप्तत्रिभिश्चैव पूजनं विधि पूर्वकम् ।। २४ ।। परिपूर्णं तुकर्तव्यं चतुर्दश्यां नु कार्तिके । व्रतारम्भे तु कर्तव्यो नियमस्तु विचक्षणैः ।।२५।।

अद्यारभ्य व्रतं देव रोटकाख्यं मनोहरम् ।। करोमि परया भक्त्या पाहि मां जगतां गुरो ।। २६ ।।दिनेदिने प्रकर्तव्या पूजा देवस्य शूलिनः । कथां विना न भोक्तव्यं प्रत्यहं च पुनः पुनः ।। २७ ।। उपोषणं चतुर्दश्यां कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ।। शुचिर्भूत्वा दिने तस्मिन् कर्तव्यं रोटकव्रतम् ।। २८ ।। अथ उपोषणप्रार्थनामन्त्र :--चतुर्दश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि ।। भोक्ष्यामि पार्वतीनाथ सर्वसिद्धि प्रदायक ।। २९ ।। कृत्वा माध्याह्निकं कर्म स्थापयेदव्रणं घटम् ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं पवित्रोदकपूरितम् ।। ३० ।। सर्वोषधिसमायुक्तं पुष्पादिभिरलङकृतम् ।। वेष्टितं श्वेतवस्त्रेण सर्वाभरणभूषितम् ।। ३१।। तस्योपरिन्यसेत्पात्रं ताम्रं चैवाथ वैण-वम् ।। विरच्याष्टदलं तत्र पूजयेदुमया शिवम् ।। ३२।। कृत्वा सायाह्निकं कर्म नित्यपूजादिकं तथा । तस्यां रात्रौ तु कर्तव्या पूजा देवस्य शूलिनः ।।३३।। शुभे चैव प्रदेशे तु कर्तव्यः पुष्पमण्डपः ।। पूज्यस्तत्र शिवो देवो धर्मकामार्थसिद्धये । ।।३४।। क्षीरादिस्नापनं कुर्याच्चन्दनादि विलेपनम् ।। कृष्णागुरुसकर्पूरमृगनाभि-विमिश्रितम् । ।३५।। पुष्पैर्नानाविधै रम्यैः पूज्यो देवो महेश्वरः ।। धनकामेन कर्तव्या पूजा देवस्य शूलिनः ।।३६।। बिल्वपत्रैरखण्डैश्च तुलसीपत्रकैस्तथा ।। नीलोत्पलैश्चारुतरैः कर्तव्या पुण्यवर्धिनी ।। ३७ ।। कल्हारकमलैश्चैव कुमुदैश्चा-तिशोभनैः ।। चम्पकैर्मालतीपुष्पैर्मुचुकुन्दैः शुभावहैः ।। ३८ ।। मन्दारैश्चार्क-पुष्पैश्च पूजार्हैश्च शिवप्रियैः ।। अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैर्ऋतुकालोद्भवैस्तथा ।।३९।। धूपैर्नानाविधैः पार्थ पुण्यवर्धनसाधकैः ।। दीपास्तत्र प्रकर्तव्या घृतपूर्णा मनोरमाः ।।४०।। लेह्यैः पेयैस्तथा भोज्यैः स्वादुभिश्च शिवप्रियैः ।। अन्यैर्नानाविधै रम्यै-रुपचारवरैस्ततः ।।४१ ।। नैवेद्यं तुः प्रकुर्वीत रोटकानां विशेषतः ।। कर्तव्या रोटकाः पञ्च पुरुषाहारमानतः ।।४२।। शालितण्डुलपिष्टेन समभागेन वा पुनः ।। द्वौ तु विप्राय दातव्यौ द्वाभ्यां वै भोजनं शुभम् ।।४३ ।। एको देवाय दातव्यो नैवेद्यार्थं सदा बुधैः ।। महेशाय च दातव्यं ताम्बूलं सुमनोहरम् ।।४४।। अर्घ्यदानं प्रकर्तव धनसंपत्तिदायकम् ।। जम्बीरं नालिकेरं च क्रमुकं बीजपूरकम् ।। ४५।। खर्जूरी च शुभा द्राक्षा मातुलिङ्गं मनोहरम् ।। अक्षोडानि च दाडिम्बं नारिङ्गाणि शुभानि च ।। ४६ ।। कर्कटी च शुभा प्रोक्ता अर्घ्यदाने मनोहरा ।। अन्यैर्नानाविधैः पार्थ ऋतुकालोद्भवैः शुभैः ।।४७ ।। यः करोत्यर्घ्यदानं च तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ।। इलां च सागरैर्युक्तां रत्नैश्चान्यैर्मनोहरैः ।।४८।। दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तेन तत्फलमाप्नुयात् ।। अनेनैव विधानेन तत्कार्यं व्रतमुत्तमम् ।।४९।। पञ्चवर्षं तु कर्तव्यमतुलं धनमीप्सुभिः ।। पश्चादुद्यापनं कुर्याद्रोटकाख्यव्रतस्य च ।।५०।। उद्यापने तु कर्तव्यौ हेमरूप्यौ तु रोटकौ।।बिल्वपत्रं सुवर्णस्य सोमेशप्रीतये शुभम् ।।

।।५१।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूज्यो देवो महेश्वरः ।। पूर्णेन विधिना विप्र कर्तव्यं च शिवप्रियम् ।।५२।। दारिद्र्यनाशनं पुण्यं लक्ष्मीवृद्धिप्रदायकम् ।। कर्तव्यं विधिवद्भक्त्या श्रोतव्यं तु कथानकम् ।। ५३।। गीतवाद्यादिसहितं कुर्याज्जागरणं निशि ।। ततः प्रभाते विमले स्नात्वा पूजां समापयेत् ।। ५४।। पूर्वोक्तेर्विधिना तेन कर्तव्यं शिवपूजनम् ।। तत्सर्वं दापयेद्भक्त्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।५५।। विप्राय वेदविदुषे वस्त्रालंकारभोजनैः ।। सपत्नीकं गुरुं पूज्य ततो भक्त्या क्षमापयेत् ।। ५६।। यन्न्यूनं कृतसंकल्पे व्रतेऽस्मिन् ब्राह्मण प्रभो ।। तत्सर्वं पूर्णतां यातु युष्मद्दृष्टिविलोकनात् ।। ५७।। एवं यः कुरुते पार्थ शास्त्रोक्तं रोटकव्रतम् ।। अनायासेन सिद्ध्यन्ति हृद्याः सर्वे मनोरथाः ।।५८।। सभर्तृका महानारी करोति विधिवद्व्रतम् ।। पतिव्रता सा कल्याणी जायते नात्र संशयः ।। ५९।। इति शिवपुराणे रोटकव्रतकथा ।।

अथ पूजा-हे भगवन् ! शंभो ! हे गिरिजापते ! हे शर्व ! आप आइये, हे देव देवेश ! हे शंकर ! ! आपके लिये नमस्कार है, आप प्रसन्न हूजिये । त्रिपुरका अन्त करनेवाले गजचर्मको पहिने हुए महाद्युति चन्द्रचूडदेव श्रीसोमेश्वरका आवाहन करता हूँ । इस मंत्रसे आवाहन करना चाहिये ।। बंधूकके समान कान्तिवाले तीन नेत्रधारी जिसके कि, शिखरमें चन्द्रमा है ऐसे त्रिशूल धारण करनेवाले, सुन्दर हासवाले, अत्यन्त स्वच्छ वराभय मुद्रासे युक्त रहनेवाले, कपालधारी जो उमासहित सोमेश्वर शिव हैं उनका मैं ध्यान करता हूँ । यह ध्यान है ।। हे महाराज ! विश्वेश्वर ! हे राजेश्वर ! हे ईश्वर ! हे प्रिय ! ईशान ! मैं आपको दिव्यआसन देता हूँ । इस मंत्रसे आसन दे ।। हे परसे भी पर ! हे महादेव ! हे महेशान ! हे ईश्वर ! मेरे दिये हुए पाद्यको उमा सहित ग्रहण करिये । इससे पाद्यका प्रतिपादन करे ।। हे त्र्यंबकेश ! सदाचार ! हे जगत्के आदि विधायक हे देवेश ! हे शर्वक ! हे प्रयोजनके सिद्धकरनेवाले! अंबासहित अर्घ्यको ग्रहण करिये । इस मंत्रसे अर्घ देना चाहिये ।। हे त्रिपुरान्तक ! हे दीनोंके दुःख नाशक ! हे श्रीकंठ ! हे शाश्वत ! पवित्र पानीसे तयार की हुई आचमनीयको ग्रहण करिये । इससे आचमनीय देनी चाहिये ।। क्षीर, आज्य, दधि, मधु, शर्करा इन पाँचों अमृतोंसे पंचामृत बनाया है, हे जगत्के मालिक ! आप इसे ग्रहण करिये । इससे चामृतका निवेदन करना चाहिये ।। गंगा, गोदावरी, रेवा, पयोष्णी, यमुना और सरस्वती आदि तीर्थोंके पानी उपस्थित हैं, स्नानके लिये ग्रहण करिये । इससे स्नान कराना चाहिये ।। हे जगदीश्वर ! मैं आपके लिये अनोखे नये वस्त्र लाया हूँ, ग्रहण करिये । इससे वस्त्र निवेदन करना चाहिये ।। सोना, चाँदी, तांबा और कपासका उपवीत आपकी प्रसन्नताके लिये लाया हूँ ग्रहण करिये । इससे उपवीत देना चाहिये ।। हे सर्वेश्वर ! हे संसारके वन्दनीय ! हे बडे दिव्य आसनपर बैठनेवाले ! इस मलयागिरिके चन्दनको ग्रहण करिये । इससे चन्दन चढाना चाहिये ; चन्दन लगाकर उसपर सफेद अक्षत लगाने चाहिये । हे सुरश्रेष्ठ ! धोयेहुए निर्मल सफेद अक्षत हैं मैं भक्तिके हाथ निवेदन करता हूँ, आप ग्रहण करें । इस मंत्रसे अक्षत ।। 'माल्यादीनि सुगन्धीनि' इस मंत्रसे पुष्प चढाना चाहिये । पूरा मंत्र और अर्थ पीछे लिख चुके हैं ।'ॐवनस्पति रसोद्भूतः । इस मंत्रसे धूप और 'आज्यं च' इससे दीप देना चाहिये । इनका अर्थ पहिले ही लिख चुके हैं । सिद्ध किये हुए पूये, मांडे, बटक, चावल और दाल आदि नैवेद्य ग्रहण करिये । इससे नैवेद्य, बीचमें पानी और करोद्वर्तन करे । पेठा,बिजौरा, नारियल आदि सुन्दर फल उपस्थित हैं, हे पार्वतीके प्यारे सोमेश ! आप ग्रहण करिये । इससे फल निवेदन करना चाहिये । इसके पीछे सुपारी और पान निवेदन करना चाहिये ।'ओम् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदा धार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेय ।। मंत्रार्थ-सबसे पहिले

प्राणिमात्र का पति हिरण्यगर्भ हुआ उसीसे जमीन आसमानको धारण किया, हम उसी प्रजापतिके लिये करते हैं । इससे दक्षिणा देनी चाहिये । अग्नि रवि और विभु नारायण ये तीनों ज्योति हैं । मैं इन दीपोंसे सुरेश्वर देवेशको नीराजन करता हूँ । इससे नीराजित करना चाहिये । जगतके हेतु एवम् संसारसमुद्रके सेतु तथा सब विद्याओं के प्रभव, गुरु शंभुके लिये नमस्कार है, इस मंत्रसे नमस्कार ।। "- यानि कानि च " इससे प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।। इसका अर्थ पहिले ही लिख चुके हैं । हे हर ! हे अखिल विश्वके आधार ! और स्वयं निराधार निराश्रय ईश सोमेश्वर ! पुष्पांजलि ग्रहणकर, तेरे लिये नमस्कार है । इस मन्त्रसे पुष्पांजलि निवेदन करना चाहिये ।। सुवर्णसे भली भाँति बनाया हुआ त्रिशूलकेसे आकारवाला यह मेरा बिल्वपत्र है, हे शंभो ! इसे ग्रहण करिये, ; इस मंत्रसे बेलपत्र चढ़ाना चाहिये ।। अथ कथा–युधिष्ठिर बोले कि, हे हृषीकेश ! मैंने अनेक तरहके व्रत और दान किये हे देवेश ! मैं आपसे उस व्रतको सुनना चाहता हूँ जो संपत्ति देनेवाला हो ।। १ ।। हे देवेश ! जिस व्रत के करने से मुझे फिर राज्य मिल जाय, हे यादवों के कृपाकर ! उस व्रत को मुझे कहिये ।। २ ।। भगवान् बोले कि, हे पार्थ ! मैं आपको एक व्रत कहता हूँ, जो शुभ का देनेवाला, लक्ष्मी की वृद्धि करनेवाला एवम् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का परम कारण है ।।३।। युधिष्ठिर बोले कि, पहिले इस व्रतको किसने किया था, कौन इसे प्रकाशमें लाया था, एवम् किसतरह इसे करना चाहिये, हे केशव ! सब कुछ मुझ कहिये ।। ४।। श्रीभगवान् बोले कि–पहिले एक बडा अच्छा सोमनामका राजा था, वो क्षात्र धर्ममे कुशल था प्रजा पालनमें तत्पर था ।।५।। इसके राज्यमें उसकी प्रजा धर्म परायण तथा सज्जन थी, उस राजाके जो मंत्रीलोग थे वे भी सौम्य थे और सुख देनेवाले थे ।।६।। उसके नगरमें एक सुन्दर सरोवर था जिसमें बडा स्वच्छ पानी रहा करता था, वहाँ लोकोंके पालनके लिये सोमेश्वर शिव विराजा करते थे ।।७।। वहाँ एक वेदवेदान्तों का जाननेवाला, सकल शास्त्रोंकावेत्ता अत्यन्त सदाचारी वैसा कि कहीं ढूँढनेनेसे भी न मिल सके,ऐसा एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री अत्यन्त सदाचारिणी, मिष्ट और प्रियभाषिणी परमसुन्दरी पतिकी सेवा करनेवाली और कल्याणी थी ।।९।। उस ब्राह्मणके पास अधिक धन धान्य तो था नहीं, इस कारण वो प्रत्यह कुटुम्बके कण यज्ञ किया करता था ।।१०।। एक दिन अत्यन्त खिन्न होकर विचारने लगा कि मैं क्या करूँ, स्त्री समेत कहाँ चला जाऊं ।।११।। कौनसे कर्मसे मुझे ऐसा फल मिले अथवा देवपूजादिक ही शुभ अर्थ धर्मकर धर्म है ।।१२।। हे पार्थिव ! वो कंगालीके नाश करनेके लिये सोमेशमें भक्ति करनेलगा, कभी अत्यन्त खिन्न होकर सरोवर पर पहुँचा ।।१३।। हे सौम्य ! उस सुन्दर सरोवरपर परमकृपासे युक्त श्री सोमेश्वर भगवान् वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें उसे प्रत्यक्ष हुए ।।१४।। उन्होंने वो उत्तम ब्राह्मण सोमशर्म्माको अत्यन्त दुःखी देख बोले कि, आप इतने बडे विद्यावान् होकर क्यों दुखी हो रहे हैं ।।१५।। सोमशर्मा बोला कि, मैंने पहिले कुछ दान नहीं किया था इस कारण मेरी यह दशा हो रही है । सोमशर्म्माके वचन सुनकर वो वृद्ध ब्राह्मण बोला कि ।।१६।। हे श्रेष्ठ विप्रवर ! मैं तुम्हें एक व्रतकहता हूँ, उस व्रतको कर लोगे तो सब सम्पत्तियाँ मिल जायँगी ।।१७।। सोम-शर्म्मा बोला कि, हे श्रेष्ठ विप्रवर्य्य ! आप उस व्रतको मुझे कहिये । जिसके अनुष्ठान मात्र से लक्ष्मीकी वृद्धि हो जाय ।।१८। कौनसे महीनेमें व्रत करना चाहिये, क्या दान देना चाहिए, किसे भोजन करना, धनके लाभके लिये कौनसे पूजन करना चाहिये ।।१९।। वो शुभ सुन्दर पूजा किसके फूलोंसे की जाय, नैवेद्य और अर्घ्य कैसा दिया जाय तथा कौनसे फल काममें आये ।। २० ।। हे विप्रेन्द्र ! यदि आप प्रसन्न हैं तो प्रभो ! सब कहिये, यह सुन ब्राह्मण कहने लगा कि, हे ब्राह्मण ! तुमने ऋद्धि देनेवाले व्रतको अच्छा पूछा।।२१।। मैं सर्व सिद्धि दायक व्रत विधान कहता हूँ, श्रावण शुक्ल पक्षमें जिस दिन प्रथम सोमवार हो ।।२२।। हे ब्राह्मण ! उस दिन इस शुभ व्रतको नियम पूर्वक करना चाहिये, यह व्रत विधिपूर्वक साढे तीन महीने होता है ।।२३ ।। अखण्ड पाँच तीन व सात बिल्वपत्रों से हर रोज विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये ।।२४।। कार्तिकको शुक्ला चतुर्दशीके दिन व्रतकी पूर्ति करना चाहिये । बुद्धिमानोंको चाहिये कि, व्रतके आरंभमें नियम कर ले ।।२५।। हे देव ! आज से लेकर रोटकनामके मनोहर व्रतको परम भक्ति के साथ करता हूँ , सब प्राणिमात्रके गुरो ! मेरी रक्षा करिये ।।२६।। प्रत्येक दिन शिवका पूजन करना चाहिये, कभी भी बिना कथा सुने भोजन न करना चाहिये ।। २७।। चतुर्दशीको विधिपूर्वक उपोषण करना चाहिये, उस दिन पवित्र होकर रोटक व्रत करना चाहिये ।।२८।। अथ

उपोषणकी प्रार्थनाके मन्त्र-हे सब सिद्धियोंके देने हारे पार्वतीनाथ ! चतुर्दशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा ।।२९।। मध्याह्न कालके सब कृत्य करके एक साबित घट स्थापन करना चाहिये, वो पंचरत्नोंसे युक्तहो तथा पवित्र पानीसे भरा हुआ हो ।।३०।। वा सब औषधियोंसे युक्त हो तथा फूलोंसे अलंकृत हो, श्वेत वस्त्रसे वेष्टित हो तथा सब आभूषणोंसे भूषित हो ।।३१।। उस कलशके ऊपर तांबेका अथवा वेणुका पात्र हो तहाँ अष्टदल कमलको बनाकर पर्वती सहित शिवजीका पूजन करना चाहिये ।। ३२ ।। सायंकालका नित्यकर्म तथा नित्यपूजा करके उसी रातको शूलधारी शिवकी पूजा करे ।। ३३ ।। सुन्दर जगहमें पुष्प मंडप करना चाहिये । वहाँ धर्म, काम और अर्थकी सिद्धिके लिये शिवका पूजन करना चाहिये ।।३४।। क्षीरादिसे स्नान कराकर चन्दनादिका लेप करना चाहिये, उसमें कृष्ण अगर कपूर और कस्तूरी मिली रहनी चाहिये ।।३५।। तथा अनेक तरहके फूलोंसे धनकी कामनावालेको पूजा करनी चाहिये ।।३६।। अखण्ड बिल्वपत्र तथा तुलसीदलोंसे तथा नीले कमलोंसे की हुई पूजा अत्यन्त पुण्य बढाती है । ।।३७।। कल्हार, कमल एवम् सुन्दर कुमुद और शुभावह चंपक, चमेली और मुचुकुन्दके फूलोंसे ।।३८।। मन्दारके पुष्प तथा शिवजी के प्यारे आकके फूलोंसे तथा ऋतुकालके अनेक तरहके पुष्पोंसे शिवार्चन करना चाहिये ।।३९।। पुण्य बढानेके साधन जो अनेक तरहके धूप हैं, उन्हें पूजामें लाना चाहिये तथा घीसे भरे हुए सुन्दर दीपक करने चाहिये ।।४०।। शिवजीके प्यारे स्वादिष्ठ लेह्य, पेय और भोज्यों तथा अनेक तरहके सुन्दर अन्य उपचारोंसे ।।४१।। नैवेद्य करना चाहिये, पर विशेषकरके तो रोटोंकाही नैवेद्य हो । पुरुषके आहारके पाँच रोट हों ।।४२।। इन रोटों में चावल और गेहूँका आटा बराबर हो, दो तो ब्राह्मणको देदे तथा दोका अपना भोजन हो ।।४३।। समझदारको चाहिए कि, सदा एक रोट देवके लिये, नैवेद्यमें देदे फिर शिवके लिए सुन्दर ताम्बूल दे ।।४४।। पीछे धनसंपत्ति देनेवाला अर्घ्य दान करना चाहिये । जंबीर, नारियल, क्रमुक, बीजपूरक।।४५।। अखरोट, खजूर अच्छी द्राक्षाएँ और मनोहर मातुलिङ्ग, अनार और सुन्दर नारंगियाँ ।।४६।। तथा सुंदर कर्कटी भी अर्घ्यदानमें अच्छी कहीं है और भी अनेक तरह के ऋतुकालके सुन्दर फलोंसे ।।४७।। जो अर्घ दान करता है मैं उसके पुण्यको कहता हूँ ।।४८।। जो ससागररत्नगर्भा भूमिको देकर जिस फलको पाता है वही उससे पाजाता है । इसी विधानसे इस उत्तम व्रतको करना चाहिये । ।।४९।। अतुल धन चाहनेवालेको यह व्रत पांचवर्ष करना चाहिये, पीछे इस रोटकव्रतका उद्यापन करे ।।५०।। उद्यापनमें एक रोट सोनेका और एक चांदीका बनाना चाहिये तथा सोमेशको प्रसन्नताके लिये सोनेका बिल्वपत्र भी होना चाहिये ।।५१।। रातमें जागरण करे, इसमें देव महेश्वर पूज्य हैं, हे ब्राह्मण ! पूरी विधिके साथ यह शिवजीका प्यारावत करना चाहिये ।। ५२।। यह दारिद्रयका नाशक है लक्ष्मीकी वृद्धिका करनेवाला है भक्तिके साथकरना चाहिये, सुनने चाहिये ।।५३।। जागरण गाने बजानेके साथ होना चाहिये, पीछे प्रातःकाल स्नान करके पूजाकी समाप्ति करना चाहिये ।।५४।। पहिले कहे हुए विधानसे शिव पूजन करनी चाहिये, जो भी कुछ पूजनका सामान हो वह सब कुटुम्बी ब्राह्मणके लिये भक्तिपूर्वक दिवा दे ।।५५।। वो वेदका जाननेवाला होना चाहिये, पीछे वस्त्र, अलंकार और भोजनसे सपत्नीक गुरुका पूजन करके पीछे भक्तिके साथ क्षमापन करना चाहिये ।। ५६।। हे ब्राह्मण ! प्रभु ! इस संकल्पित व्रतमें जो भी कुछ नून्यता हुई हो वो सब आपकी कृपा दृष्टिसे पूरी हो जाय ।।५७।। हे पार्थ ! जो शास्त्रोक्त रोटक व्रत करता है उसके चाहे हुए सब मनोरथ अना-यास ही सफल हो जाते हैं ।५८।। जो सुहागिन स्त्री इसको विधिके साथ करती है वो कल्याणी पतिव्रता बन-जाती है । इसमें सन्देह नहीं है ।।५९।। यह शिवपुराणकी कहीं हुई रोटक व्रत कथा पूरी हुई ।।

दौहित्रप्रतिपत् ।। अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रेण मातामहश्राद्धं कार्यम् ।। तदुक्तं हेमाद्रौ-जात मात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले ।। कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ।। इयं च सङ्गवव्यापिनी ग्राह्येति निर्णयदीपे उक्तम् ।। प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम् ।।

श्राद्धं मातामहं कुर्यात् सपिता सङ्गवे सति ।। जातमात्रोपि दौहित्रो जीवत्यपि हि मातुले ।। प्रातः सङ्गवयोर्मध्ये याऽश्वयुक्प्रतिपद्भवेत् ।। अत्र सपिता इति विशेषणाज्जीवत्पितृक एवाधिकारी पिण्डरहितं कुर्यात् ।। मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ।। न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ।। इति पिण्डनिषेधात् ।। अत्रैव नवरात्रारम्भः ।। तत्र परविद्धा ग्राह्या ।। तदुक्तं गोविन्दार्णवे मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः–पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी ।। नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ।। देशभङ्गो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते ।। नन्दायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम् ।। तथा देवीपुराणे-न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।। उदये द्विमुहूर्ताऽपि ग्राह्या सोदयकारिणी ।। यदा पूर्वदिने संपूर्णा शुद्धा भूत्वा परदिने वर्धते च तदा संपूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव ।। यानि तु द्वितीयायोगनिषधपराणि वचनानि श्रुतानि तानि शुद्धाधिकनिषेधपराण्येव ।। परदिने प्रतिपदसत्त्वे तु अमायुक्तापि ग्राह्या ।। तदाह लल्लः–तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम् ।। इति ।। यानि त्वमायुक्ता प्रकर्तव्येति नृसिंहप्रसादोदाहृतवचनानि तान्यप्येतद्विषयाण्येव ।। अत्र देवीपूजा प्रधानम् ।। उपवासादि त्वङ्गम् ।। अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् ।। पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः ।। इति हेमाद्रौ भविष्ये तस्या एव फलसम्बन्धात् ।। चित्रावैधृतियोगनिषेधो देवीपुराणे–चित्रावैधृतियुक्ता चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।। तयोरन्ते विधातव्यं कलशस्थापनं गृह ।। इति ।। यदा तु वैधृत्यादिरहिता प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं कात्यायनेन–प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद्वैधृतिचित्रयोः ।। आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम् ।। इति ।। रुद्रयामले–संपूर्णा प्रतिपद्देव चित्रायुक्ता यदा भवेत् ।। वैधृत्वया वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यन्दिने रवौ ।। भविष्येऽपि–चित्रा वैधृतिसंपूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप ।। त्याज्या अंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम् ।। इदं च रात्रौ न कार्यम् ।। न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम् ।। इति मात्स्योक्तेः ।। भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः ।। प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु ।। आद्याः षोडशनाडीस्तु त्यक्त्वा यः कुरुते नरः ।। कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ।। अत्र नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः ।। वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां ह्रासेऽमाप्रतिपन्निशि।। प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोऽर्थवत् ।। इतिवचना दिति केचित् ।। वस्तुतस्तु तिथिवाच्येवायम् ।। तदुक्तम्–तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम् ।। अष्टरात्रे न दोषोऽयं नवरात्रतिथिक्षये ।। इति ।।

१ प्रातस्ततस्सङ्गवनामधेयंमध्याह्नमस्मात्परतोऽपराह्णम् । सायाह्नमन्ते च भणन्ति भव्या व्यासानुराजाज्ज्वलनैर्मुहूर्तैं ।।

अथआश्विन शुक्ल प्रतिपदाको मातामहका श्राद्धदौहित्रको करना चाहिये यह हेमाद्रिमें है कि,जन्म लेतेही दौहित्र उचित है कि मामाके जिन्दे रहते हुए भी आश्विन शुक्ला प्रतिपदाको नानाका श्राद्ध करे । यह प्रतिपदा संगव कालतक रहनेवाली लेनी चाहिये; यह निर्णय दीपमें कहा है कि पिताके जिन्दे रहते हुए दौहित्रको चाहिये; कि आश्विन शुक्ला प्रतिपदाके संगव काल में मातामहका श्राद्ध करे । जातमात्र भी दौहित्र मामाके जीवित रहते हुए भी प्रातःकाल और संगवके मध्यमें जो आश्विनकी प्रतिपदा हो तो अवश्य श्राद्ध करे । यहाँ दौहित्रका जो "सपिता" यह विशेषण किया है, इससे पिताके जिन्दे रहते ही अधिकारी हैं । श्राद्धभी पिण्ड रहित करना चाहिये, क्यों कि, जिसका बाप जिन्दा हो, उसे मुण्डन, पिण्डदान और प्रेतकर्म न करना चाहिये न गर्भिणी स्त्रीके पतिको ही ये काम करने चाहिये ।। इसमें ही नवरात्रका आरंभ होता है-इसमें द्वितीया-सेविद्धा प्रतिपदालेनी चाहिये येही गोविंदार्णवमें देवीपुराण और मार्कण्डेय पुराणके वचन कहे हैं कि पूर्व से विद्धा जो आश्विन प्रतिपदा हो तो, शुभ चाहनेवालेको उसमें नवरात्रका प्रारंभ न करना चाहिये ऐसा करनेसे वहाँ देश भंगभी होता है तथा अकाल पडता है, जो दर्शयुक्त नन्दामें मेरा पूजन होयतो । ऐसे ही देवी पुराणमें भी लिखा है कि, जिस प्रतिपदामें अमावसकी एक कला भी मिलीगई हो वो चंडिकाके पूजनमें उपयुक्त नहीं है । परा उदय कालमें दो घडी भी प्रतिपदा हो तो वह उदय करनेवाली है उसमें दुर्गा पूजन करना चाहिये । जब प्रतिपदा पूर्व दिनमें संपूर्ण शुद्ध होकर द्वितीयामें बढती हो तो उस समय संपूर्ण होनेके कारण तथा अमा-वास्याका योग न होनेकेकारण पूर्वाही करनी चाहिये । जो तो द्वितीयाके योगमें निषेध करनेवाले वाक्य सुनेगये हैं, वे शुद्धसे अधिक के विषयमें निषेधपर है । पर दिन प्रतिपद् न हो तो अमा युक्तका भी ग्रहण कर लेना । यही लल्ल कहते हैं कि–तिथि ही शरीर है, तिथि कारण है और तिथि ही प्रमाण है । जो नरसिंह प्रसादने वचन उद्धृत किये हैं कि अमायुक्ता करनी चाहिये वे भी पर दिन प्रतिपद् न हो तो अमायुक्तमें ही करो, इस विषयके ही हैं । इसमें देवी पूजन प्रधान है, उपवास आदिक उसके अंग हैं । क्योंकि, हेमाद्रिमें भवि-ष्यका वचन है कि, आश्विन मासमें अष्टमी और नवमीके दिन जगन्माता अम्बिकाका पूजन करके मनुष्य शोक रहित हो जाता है इसमें विशोक आदि फलोंका पूजाके साथ ही संवन्ध दिखाया है । देवी पुराणमें चित्रा और वैधृति योगका निषेध किया है कि, हे गुह ! चंडिकाके पूजनकी प्रतिपद् चित्रा और वैधृतिसे युक्त हो तो उनके समाप्त होने परही कलश स्थापन करना चाहिये जो वैधृत्यादि रहित प्रतिपदा न मिले तो कात्यायनने कहा है कि, आश्विन मासमें वैधृति और चित्रामें प्रतिपद हो तो पूर्वार्धको छोडकर नवरात्रका आरंभ करना चाहिये रुद्रयामलमें भी लिखा है कि, जब संपूर्ण प्रतिपदाही चित्रासे युक्त हो या वैधृतिसे युक्तहो तो मध्याह्न कालमें पूजनकरना चाहिये । भविष्य पुराणमें भी कहा है कि, चित्रा और धृतिमें ही सारी प्रतिपदा हो तो तीन अंशोंको छोडकर, चौथे अंशमें पूजनादिक करना चाहिये । पर रातको यहनकरना चाहिये । क्योंकि मत्स्य पुराणमें लिखा हुआ है कि, रातमें देवीका स्थापन और घटाभिषेचन न करना चाहिये । सूर्योदयसे लेकर दश नाडी तक प्रातःकाल कहाहै उसमें स्थापन और आरोपण आदि करने चाहिये । सूर्योदयसे लेकर जो सोलह नाडियोंको छोडकर कलश स्थापनकरता है उसमें निश्चय होअरिष्ट पैदा होता है । यहाँ नवरात्र शब्द नौ अहोरात्रको कहता है । यदि कोई तिथि बढजाय तो अष्टमीको समाप्ति करनी चाहिये यदि घट जाय तो अमावस्याकी रातको ही प्रतिपद् माननी चाहिये । नौरात दुर्गाके पूजनमें आजाती है इस कारण, नवरात्र शब्द सार्थक हो जाता है, ऐसाभी कोई कहते हैं, वास्तवमें नवरात्र शब्द तिथिवाची ही है ऐसा ही कहा भी है कि, तिथिके बढ घट जानेपर यह नवरात्रशब्द सार्थक नहीं होता, पर नवरात्र में तिथिक्षय होनेसे अष्टरात्र होने पर भी दोष नहीं है, इससे नवरात्रशब्द तिथिवाची ही मालूमहोता है ।।

प्रतिपदि प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा देशकालौ संकीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिर लक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्ध्यर्थं शारदनवरात्रे प्रतिपदि विहितं कलशस्थापनं

दुर्गापूजां कुमारीपूजादि करिष्ये ।इति संकल्प्य तदङ्गं गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये इति संकल्प्य गणपतिपूजादि कृत्वा ततो महीद्यौरिति भूमिं स्पृष्ट्वा ओषधयः संवदंत इति यवान्निक्षिप्य आकलशेष्विति कुम्भं संस्थाप्य इमं मे गङ्गे इति जलेनापूर्य गन्धद्वारामिति गन्धम् ।। ओषधयइति सर्वोषधीः ।। काण्डात्काण्डादिति दूर्वाः ।। अश्वत्थे व इति पञ्चपल्लवान् ।। स्योनापृथिवीति सप्तमृदः ।। याः फलिनीरिति फलम् ।। स हि रत्नानीति पंचरत्नानि ।। हिरण्यरूप इति हिरण्यं क्षिप्त्वा ।। युवा सुवासा इति वस्त्रेण सूत्रेण वाऽऽवेष्टच पूर्णादर्वीति पूर्णपात्रं कलशोपरि निधायतत्र वरुणं संपूज्य जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् ।। नूतनमूर्तिकरणेऽग्न्युत्तारणं कुर्यात् अथ पूजा ।। आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनी ।। पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ।। सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितम् ।। इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवि गणैः सह ।। दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ।। बलिपूजां गृहाण त्वमष्टभिः शक्तिभिः सह ।। शंखचक्रगदाहस्ते शुभ्रवर्णे शुभासने ।। मम देवि वरं देहि सर्वेश्वर्यप्रदायिनी ।। सहस्रशीर्षा० हिरण्यवर्णा० इत्यावाहनम् ।। नानाप्रभासमाकीर्णं नानावर्णविचित्रितम् ।।आसनं कल्पितं देवि प्रीत्यर्थं तव गृह्यताम् ।। पुरुषए० तांमआ० इत्यासनम् ।। गंगादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतं तोयमुत्तमम् ।। पाद्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण परमेश्वरि ।। एतावानस्य ० अश्वपूर्णा० पाद्यम् ।। गंधाक्षतैश्च संयुक्तं फलपुष्पयुतं तव ।। अर्घ्यं गृहाण दत्तं मे प्रसीद परमेश्वरि ।। त्रिपादूर्ध्व० कांसोस्मितां० अर्घ्यम् ।। गंगा गोदावरी चैव यमुना च सरस्वती ।। ताभ्य आचमनीयार्थमानीतं तोयमुत्तमम् ।। तस्माद्विराः चन्द्रांप्र० आचमनीयम् ।। पञ्चामृतं मयानीतं पयोदधिसमेन्वितम् ।। घृतं मधु शर्करया प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।। आप्यायस्व०१ दधिक्राव्णोअ०२ घृतंमिमि० ३मधुवाताऋ०४ स्वादु पवस्व०५ इति पञ्चभिर्मंत्रैः पञ्चामृतस्नानम् ।। ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि ।। स्नानं गृहाण देवि त्वं नारायणि नमोस्तु ते ।। यत्पुरुषेण०आदित्यवर्णे०स्नानम् निर्मितं तन्दुभिः सूक्ष्मैर्नानावर्णविचित्रितम् ।। वस्त्रं गृहाण मे देवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृ० । तस्माद्यज्ञा० क्षुत्पिपासा० उत्तरीयम् ।। अलंकारन्महादिव्यान्नानारत्नविनिर्मितान्।। गृहाण देवदेवि त्वं प्रसीद परमेश्वरि ।। अलंकारान् ।। मलयाद्रिसमुद्भूतं कर्पूरागुरुवासितम् ।। मया निवेदितं भक्त्या चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। तस्माद्यज्ञा० गन्धद्वारां० गन्धम् ।। अक्षताश्च सुरश्रेष्ठे कुंकुमेन समन्विताः ।। मया निवेदिता भक्त्या प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।। अक्षतान् ।। मन्दारपारिजातानि पाटलीपङ्कजान्यपि ।। मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ।। तस्मादश्वा०

मनसः काम० पुष्पाणि ।। अहिरिव भोगैः० ऋक् ।। परिमलद्रव्याणि ।। अथाङ्ग-पूजा ।। दुर्गायै नमः पादौ पूजयामि । महाकाल्यै० गुल्फौ पू० । मङ्गलायै० जानुनीपू० । कात्यायन्यै० ऊरू पू० । भद्रकाल्यै० कटी पू० । कमलायै नाभि पू० । शिवायै० उदरं पू० । क्षमायै० हृदयं पू० । स्कन्दायै० कण्ठं पू० । महिषासुर-मर्दिन्यै० नेत्रे पू० । उमायै० शिरः पू० । विन्ध्यवासिन्यै० सर्वाङ्गं पू० । दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम् ।। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। यत्पुरुषंव्य० कर्दमेनप्रजाभू० धूपम् । आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।। दीपं गृहाण देवि त्वं त्रैलोक्यतिमिरापहे ।। ब्राह्मणोस्य० आपः सृजन्तु० दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्द्रमा० आर्द्रां पुष्क० नैवेद्यम् ।। आचमनीयम् ।। मलयाचल-संभूतं कस्तूर्या च समन्वितम् ।। करोद्वर्तनकं देवि गृहाण परमेश्वरि ।। करोद्व-र्तनम् ।। इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि । नाभ्याआ० आर्द्रायःकरि० फलम् ।। पूगीफलम् महद्दिव्यं नागवल्ल्या दलैर्युतम् ।। कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। यज्ञेनयज्ञं०यः शुचिःप्र० ।। मंत्रपुष्पाञ्जलिम् ।। अश्वदायै गोदायै इत्यादि प्रार्थयेत् ।। ॐ श्रियेजातः नीराजनम् ।। श्रीसूक्तं संपूर्णं पठित्वा पुष्पाञ्ज-लिम् ।। मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।। यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।। महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ।। यशो देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ।। नमस्कारम् ।। अथ कुमारीपूजा ।। ।। एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थे तां विवर्जयेत् ।। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ।। तेन द्विवर्षमारभ्य दशवर्षपर्यन्ता एव पूज्या न त्वन्याः ।। सामान्यपूजामंत्रस्तु-मंत्रा-क्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ।। वनदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाह-याम्यहम् ।। इति ।। तासां पृथङ नामान्याह—द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षा-न्तविग्रहाम् ।। पूजयेत्सर्वकार्येषु यथाविध्युक्तमार्गतः ।। कुमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा तु त्रिमूर्तिका ।। चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी ।।षष्ठवर्षा तु काली स्यात्सप्तवर्षा तु चण्डिका ।। अष्टवर्षा शाम्भवी चदुर्गा च नवमे स्मृता ।। दश वर्षा सुभद्रेति नामतः परिपूजयेत् ।। प्रातःकाले विशेषेण कृत्वाऽभ्यङ्गं समा-हितः ।। आवाहयेत्ततः कन्यां मन्त्रैरेभिः पृथक्पृथक् ।। तानेव मंत्रानाह—जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।। पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते ।। १ ।। त्रिपुरां त्रिगुणाधारां त्रिमार्गज्ञानरूपिणीम् ।। त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्ति पूज याम्यहम् ।। २ ।। कालात्मिकां कालातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम् । कल्याण-

जननीं नित्यां कल्याणीं पूजयाम्यहम् ।। ३ ।। अणिमादिगुणाधारामकारा-द्यक्षरात्मिकाम् ।। अनन्तशक्तिभेदां तां रोहिणीं पूजयाम्यहम् ।। ४ ।। कामचारीं कामरात्रीं कालचक्रस्वरूपिणीम् ।। कामदां करुणाधारां कालिकां पूजयाम्यहम् ।। ५ ।। उग्रध्यानां चोग्ररूपां दुष्टासुरनिर्बर्हिणीम् ।। चार्वङ्गीं चण्डिकां लोके पूजितां पूजयाम्यहम् ।। ६ ।। सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम् ।। सर्व-भूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ।।७ ।। दुर्गमे दुस्तरे युद्धे भयदुःखविना-शिनीम् ।। पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गार्तिनाशिनीम् ।। ८ ।। सुन्दरीं स्वर्ण-वर्णाभां सर्वसौभाग्यदायिनीम् ।। सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ।।९।। इति कुमारीपूजनम् ।। प्रारम्भोत्तरं सूतकप्राप्तावाह ।। सूतके पूजनं प्रोक्तं जपदानं विशेषतः ।। देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते ।। इति ।। अनारब्धे त्वन्येन कारयेत् ।। रजस्वला तु ब्राह्मणैः पूजादिकं कारयेत् : सूतकवद्विशेषवचनाभावात्।। सभर्तृकस्त्रीणां नवरात्रे गन्धादिसेवनं न दोषाय ।। तदुक्तं हेमाद्रौ गारुडे–गन्धा-लंङ्कारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् ।। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ।। इत्याश्विनशुक्लप्रतिपत्कृत्यम् ।।

अथ नौरात्र के घट स्थापन की विधि-प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल उबटना करके देश कालको कहकर मेरे इसी जन्म में दुर्गा के पूजन के प्रभाव से संपूर्ण आपत्तियों के शान्ति के साथ, दीर्घायु, विपुल धन और पुत्र पुत्रादिकों की अविच्छिन्न संसतिवृद्धि स्थिर लक्ष्मी, कीर्ति लाभ शत्रुपराजय आदि अच्छी अभीष्टसिद्धि के लिये शारद नवरात्रमें प्रतिपदामें कहा हुआ कलश स्थापनदुर्गापूजा और कुमारीपूजा आदिके अनेक कृत्य करूँगा ऐसा संकल्प करिये पीछे उसके अंग जो गणपतिपूजन पुण्याहवाचन और मातृकापूजन हैं उन्हें भी करूँगा यह संकल्प करके गणपति पूजा आदि करके पीछे "ओम् मही द्यौ" इस मंत्रसे (इसका अर्थादि पीछे कहचुके हैं।) भूमिका स्पर्श करके "ओम् ओषधयः समवदन्त सोमेम सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मण स्तं राजन् पारयामसि" औषधियोंने सोमराजासे साधिकार कहा है कि, ब्राह्मण जिसके लिये हमको प्रयुक्त करता है उस कार्यको हम सिद्धकर देती हैं" इस मंत्रसे यवोंको बिछाकर उन पर 'ओम् आकलशेषु धावति, पवित्रे, परिषिच्यते उक्थैर्यज्ञेषे वर्द्धते' 'हे पवमान ! आप कलशोंतक धावते हैं पवित्रमें भर दिये जाते हो, यज्ञोंमें उक्थोंसे बढते हो यह पवमान आप मडलके अनु-सार अर्थ है । स्थानीय विनियोगमें तो यह है । कलश उठा लाये गये पवित्रपर रख दिये गये, ये यज्ञोंमें वेद मंत्रोंसे बढाये जाते हैं इस मंत्रसे कुंभ स्थापित करके 'ओम् इमं मे गंगे यमुने' (यह मंडल देवतामें लिखा है) इस मंत्रसे उस घटको पानीसे पूर्ण कर "ओम् गन्धद्वाराम्" इस मंत्रसे गन्ध के छींटे देकर "ओम् ओषधयः" इस मंत्रसे सब ओषधी डालकर –"ओम् काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दुर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च" हे दुर्वे ! जैसे तू काण्ड काण्ड और पर्व पर्वसे अंकुरित होती है इसी तरह हमें भी सबसे बढ़ा, हम सहस्र और शत सब ओरसे वढ़ें । इस मंत्रसे दूर्वांकुरोंको डालकर "ओम् अश्वत्थे वो निषदनं पण वो वसतिष्कृता । गोभारग इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।" अश्वत्थमें विश्राम और पर्णमें आपने वस्ती की है आप सूर्यकी किरणोंमें हो, आप इस यजमानकी रक्षा करें ।। इस मंत्रसे पांच पल्लव डालकर "ओम् स्योना पृथिवी" इस मंत्रसे सातों मृत्तिकायें डालकर (इस मंत्रका अर्थादि मण्डल ब्राह्मणमें करदिया है) "ओम् याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतस्तानो मुञ्चन्त्वंहसः ।।५९।। जो ओषधी फलवाली हैं,जो अफला हैं जिनके पुष्प ही नहीं आते,या जिसपर पुष्प ही पुष्प आते हैं वे बृहस्पति महाराजकी प्रेरणासे मुझे पापसे बचायें । इस मंत्रसे उसमें सुपारी डालकर "सहिरत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भग :

तं भागं चित्रमीमहे" वे सर्वैश्वर्य्यशाली सूर्य देव जयमानके लिये रत्न देते हैं, हम उनसे चाहने लायक भाग्यको माँगते हैं। इस मंत्रसे पंचरत्न डालकर "ओम् हिरण्यरूपा उषसो विरोक, उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च, आरोहतं वरुणमित्रगर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च। मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥"–हे सुवर्णके समान रूपवाले इन्द्र और सूर्य्य, आप दोनों उषा कालके समाप्त होते ही प्रकट होते हो, आप दोनों इस कलशमें विराजमान हों अदिति और दिति दोनोंको देखो। इस मंत्रसे उस कलशमें सुवर्ण डालना चाहिये। "ओम् युवा सुवासाः परिवीत आगात् सउ श्रेयान् भवति जाय मानः ॥ तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देव यन्तः ॥ यदि अच्छे कपडे पहिननेवाला युवा परिवीती होकर आता है तो वो अच्छा लगता है उसको विचारशील कान्त दर्शी विद्वान् पवित्र मनसे विचार करते हुए उत्पन्न करते हैं। इस मंत्रसे कलश पर वस्त्र डाल सूत्रसे वेष्टित कर "ओम् पूर्णा दर्वि परापत, सुपूर्णा, पुनरापत, वस्नेव विक्रीणावहे इषमूर्जं शतक्रतो ॥" हे पूर्णपात्र ! तू उत्कृष्ट होकर इस पर बैठ जा, सुपूर्ण होकर फिर आ, हे शतक्रतो ! मूल्य देकर खरीदके ने समान इस और ऊर्ज लेते हैं। इस मंत्रसे पूर्णपात्रको कलश पर रखदे फिर उसपर वरुणका पूजन करके नूतन मूर्ति हो वा पुरानी मूर्ति हो, उसमें दुर्गाका आवाहन करना चाहिये। यदि नयी मूर्ति हो तो पूर्वकी तरह अग्न्युत्तारण करना चाहिये। अथपूजा–हे वरकेदेनेवाली देवी ! हे दैत्योंके अभिमानको नाशकरनेवाली आ, हे सुमुखि ! पूजाको ग्रहण कर, हे शंकरकी प्यारी तेरे लिये नमस्कार है। सब तीर्थमय जल सब देवोंसे समन्वित हैं, हे देवि ! अपने गणोंके साथ इस घटपर आकर बैठो। हे दुर्गादेवि ! यहाँ आकर मुझे सन्निधि हो एवम् आठों शक्तियोंके साथ पूजा और बलिको ग्रहण करिये। हे शंखचक्र और गदाको हाथमें लिये हुए, हे सुन्दरवर्ण और शुभमुखवाली, हे सर्व ऐश्वर्योंको देनेवाली देवी, मुझे वर दे "ओम् सहस्र शीर्षा" इस मंत्रसे तथा "हिरण्यवर्णां हरिणी सुवर्णरजतस्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥" हे जात वेद ! तेजस्व रूपिणी, सब दुखोंको हरनेवाली, सोने चाँदीको रखनेवाली एवम् सबको आल्हादिक करनेवाली, तेजोमय लक्ष्मीको बुलाओ। इससे दुर्गाका आवाहन करे। हे देवि ! आपकी प्रसन्नताके लिये अनेक तरहकी प्रभाओंसे व्याप्त रंग विरंगा आसन तयार है। ग्रहण करिये। ओम् पुरुष एवेद सर्वम् इस मंत्रसे तथा ताम् आवाह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ हे जात वेद ! उस न जानेवाली लक्ष्मीको लादे, जिसमें मैं गो, अश्व, हिरण्य और पुरुषको पाऊँ, इससे आसन देना चाहिये। गंगाआदिक सब तीर्थोंसे उत्तम पानी मँगाया है, मैं तुझे पाद्य समर्पित करता हूँ, हे परमेश्वरि ! ग्रहणकर। तथा "ओम् एतावानस्य' इस मंत्रसे तथा "अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम्" मैं ऐसी श्रीदेवीका आह्वान करता हूँ, जिसके अगाडी अगाडी घोडे, बीचबीचमें रथ बग्गियाँ हो, हाथी चिंघाडते चलें, वो श्री देवी मुझे प्राप्त हो, इससे पाद्य देना चाहिये। गन्ध अक्षत फल और पुष्पोंसे युक्त आपका अर्घ्य दियाजारहा है। इसे ग्रहण करिये। हे परमेश्वरि ! प्रसन्न हूजिये। इससे तथा "ओम् त्रिपादूर्ध्व" इस मंत्रसे तथा "कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारा मार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्। पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्" अनिर्वचनीय मन्दहासवाली, हिरण्यके प्रकारवाली, तेजस्विनी, दयालु, स्वयंतृप्त तथा स्वभक्तोंको तृप्त करनेवाली, पद्मपर स्थित और कमलकेसे वर्णवाली, उस श्रीको मैं बुला रहा हूँ। इस मंत्रसे अर्घ्य देना चाहिये। गंगा, गोदावरी, यमुना और सरस्वतीसे आचमनके लिये उत्तम पानी लाया हूँ इस मंत्रसे तथा "ओम् तस्माद्विरा०" इस मंत्रसे तथा "चन्द्रा प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्। तां पद्मनेमिं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि" चाँदके समान प्रकाशमान, प्रकृष्ट कांतिवाली एवं यशसेभी प्रकाशमान, उदार, जिसकी कि, इन्द्रादिक भी सेवा करते हैं, पद्मनेमि, उस श्रीके शरण हूँ, अपनी अलक्ष्मीको नाश करनेके लिये मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ। इस मंत्रसे आचमनीय देना चाहिये। आपकी प्रसन्नताके लिये मैं पंचामृत लाया हूँ इसमें घी, दूध, दही, मधु और सक्कर मिली हुई है, ग्रहण करिये। इस मंत्रसे तथा "ओम् आप्यायस्व" इस मंत्रसे (इसके अर्थादि, मण्डलदेवतामें लिख चुके हैं) तथा "ओम् दधिक्राव्णो" इस मंत्रसे

* इस पुरुष सुक्तका अर्थ पृ० ३१ में कहा जाचुका है।

(इसको पंचगव्य प्रकरणमें लिख चुके हैं । तथा घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते मिश्रतो घृतमस्य धाम, अनु ष्वधमावह मादयस्व, स्वाहाकृतं वृषभवक्षि हव्यम्" में इस देवको घृतसे सींचनेकी इच्छा रखता हूँ, इसकी घृत ही योनि है, घृतमें ही श्रित है, घृतकी धाम है, तू पवित्रता ला, हमें प्रसन्न करदे, हे कामोंकेपूरे करनेवाले, स्वधाके अनुसार स्वाहाकृत हव्यले तथा–"ओम् मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।।" सत्य देवके लिये वायु मधु लारहा है, नदियां मधु वह रहीं है, हमारे लिये भी ओषधी मधुमय हों । तथा "ओम् स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने, स्वादु रिन्द्रायसुहवीत नाम्ने, स्वादुः मित्राय वरुणाय वायवे, बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ।। आप दिव्य उदयके लिये स्वादिष्ठ हो जायें तथा इन्द्रके लिये स्वादिष्ठ होकर सुहव करें, मित्र वरुण वायु और बृहस्पतिके लिये नहीं दब सकनेवालीले मीठे स्वादिष्ठहो जायें, इन पाँचों मंत्रों से पंचामृत स्नान कराना चाहिये । हे ज्ञानमूर्ते ! हे भद्रकालि ! हे दिव्य मूर्ते ! हे सुरेश्वरि ! हे नारायणि ! हे देवि ! तेरे लिये नमस्कार है, स्नान ग्रहणकर इससे, तथा–"ओम् यत्पुरुषेण" इस मंत्रसे तथा "आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः । तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।।" हे सूर्यके समानवर्णवाली आपके तपसे वनस्पति हुआ आपका फल तो बिल्व है, उसके फल तपके फल तपके प्रभाव से मेरी बाहिर भीतरकी अलक्ष्मीको नष्ट कर दें । इस मंत्रसे उत्तरीय देना चाहिये । दे देव देवि ! अनेक प्रकारके रत्नों से जडे हुए महादिव्य अलंकारोंको ग्रहण कर और प्रसन्न हो । इस मंत्रसे । अलंकार देने चाहिये ।। यह चन्दन मलयगिरिका है कर्पूर और अगर इसमें डाले गये हैं । मैं परम भक्तिसे आपको निवेदन करता हूँ, आप इसे ग्रहण करिये, इस मंत्रसे तथा "ओम् तस्माद्यज्ञा" इस मंत्रसे तथा–"गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।" जिसकी प्राप्तिका द्वार सुगन्धिही है, जिसको कोई डरा नहीं सकता, जो सदा पुष्ट करती है, जिससे अनेकों गाय आदि आजाती हैं, जो सब प्राणियों की स्वामिनी है, उसे मैं बुलाता हूँ, इस मंत्रसे गन्ध समर्पण करना चाहिये । हे सुरश्रेष्ठे ! ये कुंकुम मिले हुए अक्षत रखे हुए हैं, मैं भक्तिपूर्वक आपको निवेदन करता हूँ ग्रहण करिये इस मंत्रसे अक्षत समर्पण करने चाहिये ।। हे देवि ! मैं आपकी पूजाके लिये मंदार, पारिजात तथा पाटली पंकज लाया हूँ, उन्हें ग्रहण करिये । इस मंत्रसे तथा–"ओम् तस्मादश्वा" इस मंत्रसे तथा-मनसः काममाकूति वाचः सत्यमशीमहि, पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः" ।। श्री देवीजीके प्रभावसे हमारे मनकी इच्छायें तथा संकल्पें और वाणी सत्य हों, पशुओंके दही, दूध आदि तथा अन्नकी चीजें हमें प्राप्त हों श्री और यश मुझमें रहें, इन मंत्रोंसे पुष्प चढाने चाहियें । "ओम् अहि रिव भोगैः पर्य्येति बाहुं ज्याया हेतिम्परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ।।" जैसे साँप अपने शरीरसे चारों ओर लिपट जाता है, उसी तरह तू भी ज्याके आघातोंको निवारण करता हुआ शरीरके चारो ओर भोग की तरह फैल गयाहै, तू सब कामोंका जाननेवाला है, सब ओरसे मेरी रक्षा कर ।। इस मंत्रसे परिमल द्रव्योंका समर्पण होना चाहिये। इसके बाद दुर्गाके अंगों की पूजा करनी चाहिये, एकएक अंगके पूजने का जुदा जुदा मंत्र है । पहिले मंत्र बोलकर पीछे उस अंगका पूजन कर डाले दुर्गा देवीको नमस्कार इससे पाद, तथा महाकालीके लिये नमस्कार, इससे दोनों गुल्फ तथा मंगलाके लिये नमस्कार, इससे दोनों जानु तथा कात्यायनीके लिये नमस्कार इससे ऊरू, एवं भद्रकालीके लिये, नमस्कार इससे कटि तथा कमलाके लिये नमस्कार, इससे नाभि, तथा शिवाके लिये नमस्कार, इससे उदर और क्षमाके लिये नमस्कार, इससे हृदय, स्कन्दोंके लिये नमस्कार, इससे कंठ एवम् महिषासुर मर्दिनीके लिये नमस्कार, इससे नेत्र, उमाकेलिये नमस्कार, इससे शिर तथा विन्ध्यवासिनीके लिये नमस्कार, इससे सर्वांगको पूज देना चाहिये । दशांगगूगल जिसमें है, जो चंदन और अगरसे संयुक्त है, ऐसा धूप मैंने शक्ति भावसे निवेदित किया है, हे परमेश्वरी ! ग्रहण कर इस; मंत्रसे तथा "ओम् यत्पुरुषं व्यदधुः" इस मंत्रसे, तथा–"कर्दमेन प्रजा भूतामयि सँभ्रक कर्दमाश्रियं वासय मे कुले, मातरं पद्ममालिनीम् ।।" हे कर्दम ! आपने प्रजा उत्पन्न की, आप मेरे में यथेष्ट भ्रमण करिये, पद्ममालिनी माता श्रीको मेरे कुलमें वसा दीजिये । इस मंत्रसे धूप देना चाहिये । इस दीपकमें घी और बत्ती पडीहुई है, मैंने जोड़ भी दिया है,

हे तीनों लोकों के अन्धकारको नष्ट करनेवाली दीपकको ग्रहण कर ।। इस मंत्रसे तथा "ओम् ब्राह्मणोऽस्य" मंत्र से तथा "आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वसमे गृहे । निच देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।। " हे समुद्र ! आप लक्ष्मी जैसे ही पदार्थोंको पैदा करें, हे लक्ष्मीके पुत्र चिक्लीद ! मेरे घरमें रह, देवी माताश्रीको मेरे कुलमें वसा ।। इस मंत्रसे दीप देना चाहियें।चारों तरफका स्वादु अन्न जिसमें छओं रस मिलें हुए है, भक्ष्य और भोज्य से युक्त है, आपकी प्रसन्नताके लिये लाया हूँ ग्रहण करिये ।। इस मंत्रसे तथा "ओम् चन्द्रमा मनसो जातः" इस मंत्रसे तथा–"आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् । चंद्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ।।" जिसका अभिषेक दिग्गज करते हें तथा सबको पुष्टि देती है, पिङ्गल वर्णकी है, कमलकी मालायें पहिने हें, सबको प्रसन्न करनेवाली है, दयार्द्रचित्त है स्वयं तेजोमय है, ऐसी लक्ष्मीको हे जातवेद ! मुझे ला दे ।। इस मंत्रसे नैवेद्य निवेदन करना चाहिये । पीछे आचमनके मंत्रोंसे आचमन कराना चाहियें । यह मलयाचलपर पैदा हुआ है, कस्तूरी इसमें मिली हुई है,तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यह करोद्वर्तन तयार है, ग्रहण करियें । इस मंत्र से करोद्वर्तन देना चाहिये । । हे देवी ! यह फल मैंने आपके सामने स्थापित किया है, इससे मुझे इस जन्ममें तथा दूसरे जन्ममें सफल प्राप्ति हो ।। इस मंत्रसे, तथा–'ओम् ना भ्या आसीदन्त' इस मंत्रसे । तथा– 'आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् । सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ।।' भक्तोंपर जिसका कि, दिग्गज अभिषेक करते रहते हैं । जो स्वयम् सब प्रयत्न करती है, सुन्दर वर्णवाली सोने की मालाएँ पहिने हुई है, जो सूर्यके भीतर भी बिराजमान रहती है, ऐसी तेजोमयी लक्ष्मीको हे जातवेद तू ले आ ।। इस मंत्रसे फल समर्पित करना चाहिये ।। बडा सुन्दर पान है । सुन्दर सुपारी, इलायची और कपूर पड़ा हुआ है, इसे आप ग्रहण करिये, इस मंत्रसे ताम्बूल देना चाहिये । 'ओम् हरिण्यगर्भ' इस मंत्रसे दक्षिणा दे, 'ओम् यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' इससे, तथा–'यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमावहम् । श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।।' जिसे धनकी इच्छा हो वह पवित्रतापूर्वक सावाधन होकर रोज हवन करता हुआ श्रीसूक्तकी पंद्रहों ऋचाओंका निरन्तर जप करता रहे ।। इससे मंत्रपुष्पाञ्जलि दे । तथा–'अश्वदायै गोदायै धनदायै महाधने । धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ।।' अश्व, गौ और धन देनेवालीके लिये नमस्कार है । हे महाधनवाली देवि ! मेरे सब कामोंको मुझे दे तथा दनका भी सेवनकरे । अथवा हे महाधनवाली देवी अश्व, गौ और धन देनेके लिये मुझसे प्रेम कर तथा धन और सब कामोंको दे । इस मंत्रसे प्रार्थना करनी चाहिये । । 'ओम् श्रिये जातः श्रिय आनिरीयाय श्रियं वयो जरितृभ्यो ददाति श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्यासमिथामितद्रौ ।।' श्रीके लिये पैदा हुआ श्रीके लिये ही प्राप्त हुआ है स्तुति करनेवालोंके लिये श्री और वयस देता है, श्रीको रखनेवाले अमृतत्वको प्राप्त होते हैं, वेही संग्रामके वीर, मित चलनेवाले, सत्यसाबित होते हैं । इस मंत्रसे आरती करनी चाहिये । संपूर्ण श्रीसूक्त पढकर पुष्पांजलि देनी चाहिये । कि, हे सुरेश्वरि ! जो मैंने आपका भक्तिहीन क्रियाहीन और मंत्रहीन सूजन किया है वो मेरा परिपूर्ण हो, हे महिषासुरको मारनेवाली महामाये ! हे मुण्डोंकी माला पहिननेवाली चामुण्डे ! मुझे यश दे धन दे, और सब कामोंको दे । इससे नमस्कार करना चाहिये ।।

अब कुमारी पूजा-एक वर्षकी कन्याको पूजनमें ग्रहण न करे, क्योंकि उसकी प्रीति गन्ध पुष्प और फल आदिकों में नहीं होती इस कारण दो वर्षकीसे लेकर दशवर्ष तक की ही पूज्या हैं, अन्य नहीं हैं । सामान्य पूजा मंत्र तो यह है कि, मंत्राक्षरमयी लक्ष्मी तथा मातृकाओंका रूप धारण करनेवाली साक्षात् नवदुर्गात्मिका कन्याका मैं आवाहन करता हूँ उनके पृथक् नाम भी कहते हैं–दो वर्षकी कन्यासे लेकर दश वर्षतककी कन्याको विधिके अनुसार सब कामों में पूजना चाहिये।। दो वर्षकी का नाम कुमारिका तथा तीन वर्षकी त्रिमूर्तिका तथा चार वर्ष की कल्याणी एवम् पाँच वर्षकी रोहिणी, छःवर्षकी काली, सात वर्षकी चंडिका, आठ वर्षकी शांभवी तथा नौ वर्षकी दुर्गा और दशवर्षकी भद्राके नामसे पूजी जानी चाहिये । प्रातः काल विशेषरूपसे उबटन करके नित्यनैमित्तिक कृत्यसे निवृत्त हो, एकाग्रचित्तसे बैठजाय फिर इन मन्त्रोंसे पृथक्२ कन्याओंका आवाहन करे । उन्हीं मन्त्रोंको कहते हैं–जिनसे कि आवाहन किया जाता है–हे जगकी पूज्ये ! हे–जगतकी वन्द्ये ! हे सर्वशक्तियों के स्वरूपवाली कौमारी देवी । पूजा ग्रहणकर, हे जगन्मातः ! तेरे लिये नमस्कार

है ।।१।। लोग जिसे त्रिपुरा कहते हैं, जो तीनों गुणोंकी आधार है तीनों मार्गके ज्ञानकी रूपवाली है, ऐसी तीनों लोकोंद्वारा बन्दित त्रिमूर्ति देवीको मैं पूजता हूँ ।।२।। जो कालात्मिक है कलासे अतीत है, करुणा भरे हृदयकी है, शिवा है कल्याणकी जननी है, नित्य है, ऐसी कल्याणी देवीको मैं पूजता हूँ ।।३ ।। अणिमादिक गुणोंकी आधार है अकारादि अक्षरात्मिका है, अनन्त शक्तियोंके भेदवाली है ऐसी रोहिणीका मैं पूजन करता हूँ ।।४ ।। जो कामचारिणी कामरात्री तथा कालचक्रके स्वरूपवाली है, कामोंको देनेवाली है, जिसमें करुणा भरी हुई है, ऐसी कालिकाको मैं पूजता हूँ ।।५।। उग्र ध्यानवाली । उग्र रूपवाली, दुष्ट असुरोंको मारनेवाली, सुंदर शरीरवाली तथा लोकमें पूजिता श्रीचंडिका देवीजीकी मैं पूजा करता हूँ ।।६ ।। जो सदा आनंद करनेवाली, शान्त है, जिसे सब देवता नमस्कार करते हैं, जिसकी सब प्राणी आत्मा हैं, ऐसी लक्ष्मी शांभवीको मैं मैं पूजता हूँ ।।७।। जो दुर्गम तथा दुस्तर युद्धमें भय और दुःखका नाश करती है, उस कठिन आपत्तियोंका नाशकरनेवाली दुर्गाको मैं भक्तिके साथ सदाही पूजता हूँ ।।८।। परम सुंदरी तथा सोनेके रंगकीसी आभावाली, सब सौभाग्योंको देनेवाली, सुभद्रकी जननी, देवी सुभद्राको मैं पूजता हूँ ।।९।। इति कुमारी पूजनम् ।। प्रारंभ करने पर सूतक हो जाय तो-उसमें कुछ विशेष कहते हैं कि, सूतकमें देवीका उद्देश लेकर पूजन और विशेष करके जप दान करने चाहिये । इनमें कोई दोष नहीं है । पर प्रारम्भ न किया हो तो दूसरोंसे ही कराने चाहिये । जो रजस्वला हो उसे तो ब्राह्मणोंसे पूजादिक कराने चाहिये । क्योंकि, सूतककी तरह इसके लिये कोई विशेष वचन नहीं है । सुहागिन स्त्रियाँ यदि नवरात्रिमें गन्ध आदि सेवन करें तो उन्हें कोई दोष नहीं है, ऐसा हेमाद्रिमें गरुडपुराणका वचन कहा है कि गंधः अलंकार, पान, फूलमाला, अनुलेपन, दंतधावन और मज्जन उपवासमें भी सुहागिन स्त्रियाँ कर सकतीं हैं । यह आश्विनशुक्ला प्रतिपदाका कृत्य समाप्त हुआ ।

अथ कार्तिकशुक्लप्रतिपत् ।। सा पूर्वा ग्राह्या ।। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ।। इति पाद्मोक्तेः ।। अत्राभ्यङ्गो नित्यः ।। वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ।। तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ।। इति वसिष्ठोक्तेः अत्र कर्तव्यमाह ।। प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतं चापि समाचरेत् ।। भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः ।। अथ द्यूतप्रतिपत्कथा ।। वालखिल्या ऊचुः ।। प्रतिपद्युदयेऽभ्यङ्गं कृत्वा नीराजनं ततः ।। सुवेषः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसं नयेत् ।। १ ।। शङ्कर स्तु तदा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम् ।। कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत् ।। २ ।। प्रत्युवाच वचश्चेदं देवीं प्रति सदाशिवः ।। कालक्षेपाय केषांचित्केषांचिद्धनहेतवे ।। ३ ।। केषांचिद्धननाशाय पश्य द्यूतं कृतं मया ।। तस्य त्वं कौतुकं पश्य भुवनं लापयाम्यहम् ।।४।। ऊह्येत्थं कीर्तितं ताभ्यां भवान्या च जितं तदा ।। पुनर्द्वितीयं भुवनं लापितं निर्जितं तया ।। ५ ।। पुनस्तृतीयं भुवनं लापितं निर्जितं तया ।। पुनर्वृषं पुनश्चर्म पुनः पन्नगबन्धनम् ।। ६ ।। शशिलेखां डमरुकं सर्वं तस्याप्यजीजयत् ।। निर्गतस्तु हरो गेहाच्चीरवल्कलधारकः ।। ७ ।। गङ्गातीरं समागत्य तस्थौ चिन्तासमन्वितः ।। तस्मिन्क्षणे कार्तिकेयः खेलितुं च गतःक्वचित् ।। ८ ।। गङ्गातीराद्ययौ गेहमपश्यत्पथि शंकरम् ।। ईषत्क्रुद्धं विरक्तं च ननाम चरणौ पितुः ।। ९ ।। नेतेनापि मूर्ध्नि चाघ्रातः पुत्र याहि गृहं सुखम् ।। तव मात्रा जितश्चाहं गच्छामि गहनं वनम् ।। १० ।। स्कन्द उवाच ।। कथं मात्रा जितो देवो वनं कस्माच्च गच्छसि ।। अहमप्यागमिष्यामि त्वत्पादौ सेवयाम्यहम् ।। ११ ।। शिव उवाच ।। विजित्य तव मात्रा तु क्षणं न स्थेयमत्र वै ।। मम लोके

तथेत्युक्तः क्वचिद्गच्छाम्यहं ततः ।। १२ ।। स्कन्द उवाच ।। मा गच्छ त्वं महादेव द्यूतमार्गं प्रदर्शय ।। आनीयते मया जित्वा सर्वं तव धनाधिकम् ।।१३ ।। शिवेनापि तथेत्युक्त्वा द्यूतमार्गं प्रदर्शितः ।। स्कन्दोपि गृहमागत्य पार्वतीं वाक्यमब्रवीत् ।। १४ ।। स्कन्द उवाच ।। देवि देवो गतः क्वाऽसौ वृषभोऽत्रैव संस्थितः । शीर्षे च न विधुः कस्मान्मातः सत्यं वदाद्य मे ।। १५ ।। देव्युवाच ।। स्वयमेव कृतं द्यूतं स्वयमेव पराजितः ।। स्वयमेव गतः क्रोधात्प्रार्थ्यतां स कथं मया ।।१६ ।। स्कन्द उवाच ।। मया सह क्रीडितव्यं कथं तत्क्रीडनं त्विति ।। देव्यक्रीडत्तेन सार्द्धं ततः स्कन्देन निर्जितम् ।। १७ ।। मयूरेण वृषस्तस्याः शक्त्या पन्नगबन्धनम् ।। वृषेणेन्दुस्ततोऽर्धाङ्गं तत्सर्वं तेन निर्जितम् ।। १८ ।। कौपीनं निर्जितं चर्म गृहीत्वा तदुपाययौ ।। गङ्गातीरे यत्र शिवस्तत्रागत्य न्यवेदयत् ।। १९ ।। ततो देवीसमीपे तु विघ्नराजः समाययौ ।। किमर्थं म्लानवदना देवी जातासि तद्वद ।। २० ।। देव्युवाच ।। मया जितो महादेवः स तु गोहाद्विनिर्गतः ।। आयास्यति वृषाद्यर्थमिति संचित्य संस्थितम् ।। २१ ।। तव भ्रात्रा तु तज्जित्वा सर्वं तस्मै निवेदितम् ।। नायास्यत्यधुना देव इति चिन्तापरास्म्यहम् ।। २२ । गणेश उवाच ।। देवि शिक्षय मां द्यूतं जेष्यामि भ्रातरं हरम् ।। आनयिष्यामि सामग्रीं यद्यहं स्यां सुतस्तव ।।२३।। इति पुत्रवचः श्रुत्वा तस्मै द्यूतमशिक्षयत् ।। स गृहीत्वा पाशयुगं सारिकाः शीघ्रमाययौ ।।२४।। पृष्ट्वा पृष्ट्वा यत्र देवाः स्कन्दो यत्र व्यवस्थितः ।। गणेश उवाच ।। मयानीताविमौ पाशौ सारिकाः पट एव च ।। २५ ।। क्रीडा त्वं तु मया सार्द्धं देवस्याग्रे ममाग्रज ।। इति भ्रातृवचः श्रुत्वा ह्युभाभ्यां क्रीडितं तदा ।। २६ । मूषकेण बलीवर्दं मयूरं चाप्यजीजयत् ।। शिवस्य सर्वविषयं स्कन्दस्य च तथैव च ।। २७ ।। गृहीत्वा स तु विघ्नेशस्तत्कालेपार्वतीं ययौ ।। पार्वत्यपि च संतुष्टा गणेशं वाक्यमब्रवीत् ।। २८ ।। सम्यक् कृतं त्वया पुत्र नानीतोसौ महेश्वरः ।। सामदानादिकं कृत्वा आनयात्र महेश्वरम् ।।२९ ।। तथेत्युक्त्वा गणेशोऽसौ समारुह्य च मूषकम् ।। त्वरितं चाययौ तत्र गृहं नेतुं महेश्वरम् ।। ३० ।। ईश्वरस्तु समुत्थाय हरिद्वारं समागतः ।। नारदेरितवृत्तान्तो विष्णुस्तत्र समागतः ।।३१ ।। विष्णुरुवाच ।। त्र्यक्षां विद्यां कुरु शिव एकाक्षोहं भवाम्यहम् ।। रावणेन तथेत्युक्तं काणो[1] भव जनार्दन ।। ३२ ।। विष्णुरुवाच ।। ओतुवत्पश्यसे मां त्वं तस्मादोतुर्भविष्यसि ।। नारदउवाच ।। देव सिद्धं महत्कार्यमायाति स गणेश्वरः ।। ३३ ।। ज्ञातुमत्र भवद्वृत्तं मूषकस्तस्य धर्ष्यताम् ।। इति श्रुत्वा नारदस्य वचनं रावणोग्रतः ।।३४।। [2]कुर्वन्मार्जारवच्छब्दं मूषकोऽसौ पलायितः ।। मूषकं त्यज्य गणपः शनैः शनैरुपाययौ ।। ३५ ।। जातो विष्णु पाश इति दूरतस्तद्विलोकितम् ।। प्रणिपत्य

१ एकश्चासावक्षः पाशकश्चेतिविग्रहे विवक्षितेपि बहुव्रीहिणा शब्दच्छकात्काण इत्युक्तम् ।

२ कुर्वन्नभूदितिशेषः

महादेवं विनयानतकन्धरः ।। ३६ ।। गणेश उवाच ।। आगम्यतां देव गेहं देवीमातृपुरःसरम् ।। यदि नायासि गेहं त्वं प्राणांस्त्यक्ष्यति चाम्बिका ।। ३७ ।। त्वय्यागते मया सर्वं कार्यमेतदुपायनम् ।। महादेव उवाच ।। एषा त्र्यक्षा माविक्षाऽधुना गणपनिर्मिता ।। ३८ ।। अनया क्रीडते देवी आगमिष्ये गृहं तदा ।। गणेश उवाच ।। सर्वथैव क्रीडितव्यं देव्या नास्त्यत्र संशयः ।। ३९ ।। आगम्यतां गृहं देव भ्रात्रा सह हि मा व्रज ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा ईश्वरः सगणो ययौ ।।४०।। नारदोप्यागतस्तत्र महोतुरपि चागतः ।। उपविष्टास्तु कैलासे देवास्तत्र समागताः ।। ४१ ।। दृष्ट्वा देवीं प्रहस्यादौ महेशो वाक्यमब्रवीत् ।। त्र्यक्षविद्या महादेवि गङ्गाद्वारे विनिर्मिता ।। ४२ ।। अनया जयसे त्वं चेत्तदा त्वं सत्यभाषिणी ।। देव्युवाच ।। वृषादि तव सामग्री मयेयं लापिता शिवा ।।४३ ।। त्वया किं लाप्यते ब्रूहि दर्शयस्व सदोगतान् ।। इतिश्रुत्वा वचस्तस्याः प्रेक्षताधोमुखं हरः ।।४४ ।। तस्मिन् क्षणे नारदेन स्वकौपीनं समर्पितम् ।। वीणादण्डश्चोपवीतमनेन क्रीडताभिति ।।४५।। सदाशिवः प्रसन्नोभूत्क्रीडनं संप्रचक्रतुः ।। यद्यद्याचयते रुद्रस्तथा विष्णुः प्रभाषते ।।४६ ।। यद्यद्याचयते देवी विपरीतः पतत्यसौ ।। स्वकीयाभस्मादि च महादेवेन निर्जितम् ।। ४७ ।। स्कन्दा लङ्कारिकं सर्वं पुनराप्तं हरेणच।। ततो गणेशः प्रोवाच वाक्यं सदसि गर्वितः ।।४८ ।। न क्रीडितव्यं हे मातः पाशो लक्ष्मीगतिः स्वयम् ।। कृतो हरेण सर्वस्वं ते हरिष्यति मत्पिता ।। ४९ ।। इति पुत्रवचः श्रुत्वा पार्वती क्रोधमूर्छिता ।। तथाविधां तामालोक्य रावणो वाक्यमब्रवीत् ।। ५० ।। रावण उवाच ।। पापिष्ठेनाद्य शप्तोऽस्मि [1]दुर्दुरूढेन विष्णुना ।। अधर्मेण न कर्तव्य इत्युक्तं तु मया यतः ।।५१ ।। देव्युवाच ।। सर्वाञ्छपिष्ये वत्साहं धूर्तानेतान् महाबलान् ।। सामर्थ्यं पश्य मे पुत्र धर्मत्यागफलं तथा ।।५२।। देव यस्मादबलया कपटं च कृतं त्वया ।। तस्मात्सदास्तु ते मूर्धा गङ्गाभारप्रपीडितः।। इतस्ततः कुचेष्टां त्वं यतः शिक्षयसे मुने ।। सदैव भ्रमणं ते स्यादेकव न भवेत्स्थितिः ।। ५४ ।। यतः कृता त्वबलया सह माया त्वया हरे ।। एष[2] वैरी रावणोयं तव भार्यां नयिष्यति ।। ५५ ।। हित्वा मां मातरं पुत्र बालकत्वं त्वया कृतम् ।। अतस्त्वं न युवा वृद्धो बाल एव भविष्यसि ।। ५६ ।। स्वप्नेपि ते सुखं स्त्रीणां न कदापि भविष्यति ।। गणेश उवाच ।। अनेन चौतुरूपेण मूषकोऽयं पलायितः ।। ५७ ।। मध्येमार्गं कृतं विघ्नं शपैनं राक्षसाधमम् ।। देव्युवाच ।। यस्माद्विघ्नं त्वया दुष्ट कृतं मद्बालकस्य तु ।।५८।। तस्मादयं तव रिपुर्विष्णुस्त्वां घातयिष्यति ।। इति देव्या वचः श्रुत्वा सर्वे संक्रुद्धमानसाः ।। ५९।। देवीशापे मनश्चक्रुर्नारदो वाक्यमब्रवीत् ।। नारद उवाच ।। कोपं कुर्वन्तु मा देवा नेयं शप्या कदाचन ।।६०।।

---

१ कुत्सितेन । २ एष रावणस्तव वैरी भविताऽयं नव भार्या नयिष्यतीति संबंधः । इट्छांदसः ।
३ विदूषको विनोदकृत् ।।

सर्वेषामादिमायेयं यथायोग्यफलप्रदा ।। नायं शाप इयं देवी स्मर्तव्या तु विचक्षणैः ।।६१ गङ्गा सदा तिष्ठतु रुद्रमस्तके बलाद्रमां वा नयतु क्षपाचरः ।। जायाहरस्याथ यथोचितामृतिश्चानङ्गतृष्णारहितः कुमारः ।। ६२ ।। अहं भ्रमामि धरणीं न स्थातव्यं तपोधनैः ।। सम्यग्देवि त्वया प्रोक्तं शृण्विदानीं वचो मम ।। ६३ ।। सर्वक्रोधापनुत्त्यर्थं ननर्तमुनिपुङ्गवः ।। कक्षानादं चकारोच्चैर्हाहाहीहीति चाब्रवीत् ।।६४।। तस्य चेष्टां विलोक्याथ सर्वे हर्षमवाप्नुयुः ।। देव्युवाच ।। भो भो विदूषकश्रेष्ठ कृतकृत्योसि नारद ।। ६५ ।। वरं वरय भद्रं ते यद्यन्मनसि रोचते ।। नारद उवाच ।। याचयन्तु वरं सर्वे कोकीं याचयिष्यति ।। ६६।। सर्वे ते याचयिष्यन्ति यथाचेष्टं ब्रुवन्तु तत् ।। शिव उवाच ।। सर्वं संक्षम्यतां देवि जितं यद्वृषभादिकम् ।। ६७ ।। तन्ममास्तु द्यूतशतैर्नं ग्राह्यं जगदम्बिके ।। देव्युवाच ।। मास्तु त्वया समेनाथ स्वप्नेपि मम चान्तरम् ।। ६८ ।। एतदेव वरं मन्ये क्रोधो माभून्ममोपरि ।। कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत् ।। ६९ ।। जयो लब्धो मया त्वत्तः सत्ये नैव महेश्वर ।। तस्माद्द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तच्च मानवैः ।।७०।। तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ।। विष्णुरुवाच ।। अहं यं यं करिष्यामि श्रेष्ठं वा लघुमेव वा ।।७१।। तथातथा भवतु तद्वरमेनं वदाम्यहम् ।। स्कन्द उवाच।। सदा मनस्तपस्यायां मम तिष्ठतु देवताः ।। ७२ ।। कदापि विषये मास्तु देय एष वरो मम ।। गणेश उवाच ।। संसारे यानि कार्याणि तदादौ मम पूजनात् ।।७३।। यान्तु सिद्धिं मम कृपां विना सिध्यन्तु मा क्वचित् ।। रावण उवाच ।। वेदव्याख्यानसामर्थ्यं मम शीघ्रं भवन्त्विति ।। ७४।। सदाशिवे सदा चास्तु भक्तिर्मेऽव्यभिचारिणी ।। नारद उवाच ।। क्रुद्धाक्रुद्धाश्च ये केचिन्मूर्खामूर्खाश्च ये जनाः ।।७५।। मद्वाक्यं सत्यमित्येव मानयन्तु सहासुराः ।। इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे देवा रुद्रपुरोगमाः ।। ७६।। तस्मात्प्रतिपदिद्यूतं कुर्यात्सर्वोपि वै जनः ।। द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वा प्रतिपदं बुधाः ।। ७७।। स्वयोद्यमादिज्ञानाय कुर्याद्द्यूतमतन्द्रितः ।। विशेषवच्च भोक्तव्यं सुहृद्भिर्ब्राह्मणैः सह ।। ७८ ।। दयिताभिश्च सहितं नेया सा च भवेन्निशा ।। ततः संपूजयेन्मानैरन्तः पुरसुवासिनीः ।। ७९ ।। पदातिजनसंघातान् ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः ।। स्वनामाङ्कैः स्वयं राजा तोषयेत्स्वजनान्पृथक् ।।८०।। वृषभान्महिषांश्चैव युद्धचमानान् परैः सह ।। गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीत्समलंकृतान् ।।८१।। मञ्चारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् ।। योधयेन्न त्रासयेच्च गोमहिष्यादिकं तथा ।। ८२ ।। ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत ।। मार्गपालीं प्रबध्नीयात्तुङ्गस्तंभेऽथ पादपे ।। ८३।। कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्युताम् ।। दर्शयित्वा गजानश्वान् सायमस्यास्तले नयेत् ।।८४।।

कृते होमे द्विजेन्द्रैश्च बध्नीयान्मार्ग पालिकाम् ।। नमस्कारं ततः कुर्यान्मंत्रेणानेन सुव्रत ।। ८५।। मार्गपालि नमस्तेस्तु सर्वलोकसुखप्रदे ।। विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पूरयेहां वृतस्य मे ।। ८६।। नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् ।। मार्गपालीत तलेनाथ यान्ति गावो वृषा गजाः ।। ८७।। राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ।। मार्गपालीं समुल्लंघ्य नीरुजास्तु सुखान्विताः ।। ८८ ।। तस्मादेतत्प्रकुर्वीत धृतास्मं विधिपूर्वकम् ।। ८९।। इति सनत्कुमारसंहितायां द्यूतविधिः ।।

अथ कार्तिकशुक्लाप्रतिपदा-पूर्वा ग्रहणकरनी क्योंकि पद्मपुराणमें लिखा हुआ है,शिवरात्रि और कार्तिकशुक्ला प्रतिपदा पूर्वविद्धाही करनी चाहिये, इसमें उवटन करना जरूरी है, क्योंकि वत्सरके आदिमें, वसंतके आदिमें तथा बलिके राज्य में जो तैलाभ्यङ्ग नहीं करता वो नरकमें जाता है, यह वसिष्ठजीने कहा है ।। इस तिथिमें क्या करना चाहिये ? सो कहते हैं कि -प्रातःकाल गोवर्धन का पूजन करे तथा जूआ भी खेले तथा गऊओंका पूजन और शृङ्गार भी करना चाहिये । अथ कथा-वालखिल्य बोले कि, प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल उवटन स्थान करके अपना शृंगार करना चाहिये । फिर अच्छी कथा वार्ताओं में इस दिनको पूरा करना चाहिये ।।१।। श्रीमहादेवजीने कार्तिकशुक्ला प्रतिपदाको सत्यकी तरह सुंदर जूआ रचा था ।।२।। सदाशिव भगवान्ने देवीजीसे कहा कि हे देवी ! किसी के कालक्षेपके लिये तथा किसीको धन पानेकेलिए ।।३।। एवम् किसीके धनके नाशके लिये मैंने जूआ बना दिया है,इस जुएके खेलको आप देखें मैं एक भुवन को दावपर लगाता हूँ ।।४।। एक भुवन दावपर रख दिया और दोनों जूआ खेलने लगे पर पार्वतीजीने उस दावको जीत लिया । महादेवजीने दूसरा भुवन दावपर रखदिया श्रीसतीने वह भी जीत लिया ।।५।। महादेवजीने तीसरा भुवन भी दावपर रख दिया, उसे भी अम्बाने जीत लिया, फिर नादिया, इसके पीछे चर्म, फिर साँप दावपर लगादिया ।।६।। फिर त्रिशूल, इसके पीछे डमरू दावपर रखा, इन सबोंको पार्वतीजीने जीत लिया । शिवजी सब कुछ हारकर वल्कल पहन कर घरसे चले गये ।।७।।शिवजी गंगाकिनारे चले आये और गहरी चिन्तासे व्याकुल होकर वहीं बैठ गये, उस समय कार्तिकेय वहीं कहीं खेलने गये थे ।।८।। गङ्गाकिनारेसे घर जा रहे थे कि, मार्गमें शिवजी दीख पड़े, कुछ क्रोधमें थे, तथा सबसे विरक्त हो रहे थे, स्वामिकार्तिकजीने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया ।।९।। शिवजीने पुत्रके शिरको सूँघकर कहा कि, बेटे सुखपूर्वक घर जाओ, तुम्हारी माँने मुझे जीत लिया है, इस कारण मैं तो गहन वनको जाऊँगा ।।१०।। यह सुन स्कंद बोले कि, आपको माँने कैसे जीत लिया ? तथा क्यों वनको जा रहे हो ? मैं भी आता हूँ, आपके चरणोंकी सेवा करूँगा ।।११।। शिवजी बोले कि, तुम्हारी माताने जीतकर कह दिया है कि, यहाँ मेरे लोकोंमे मत ठहरना, इस कारण मैं कहीं जा रहा हूँ ।।१२।। यह सुन स्कन्द बोले कि, हे महादेव । आप कहीं न जायें आप मुझे जूआ सिखादें । मैं आपके खोये हुओंको जीत करके ला दूंगा ।।१३।।शिवजीने कहा कि, अच्छी बात है, स्वामी कार्तिकको जूआ खेलना बता दिया, स्कन्दभी घर आकर पार्वतीजीसे बोले ।।१४ ।। कि, हे देवि ! देव कहाँ हैं नांदिया यहीं है आज माँयेपर चन्द्रमाभी नहीं रखा है । यह क्यों ? हे मातः ! मुझे सब बातें सच सच बता दीजिये ।।१५ ।। देवी बोली कि, अपने आपही जूआ बनाया तथा आपही पराजित हुए, एवम् आपही गुस्साके मारे चले गये मैं उन्हें कैसे मनाऊँ ।।१६।। स्कंद पार्वतिजीसे बोले कि, मेरे साथ खेलिये, जूआ कैसे खेला करते हैं, पार्वतिजी स्कन्दके साथ-खेली, स्कन्दने पार्वतीजी को जीत लिया ।।१७।। मयूरसे नांदिया जीता, शक्तिसे पन्नगबन्धनको जीता, इस प्रकार सब कुछ जीत लिया ।।१८।। स्कन्दजी शिवजीके कौपीन और चर्म उमासे जीतकर गंगाकिनारे वहाँ लेकर पहुँचे, जहाँ गंगा के किनारे शिवजी बैठे थे सब उनके सामने निवेदन करदिया ।।१९।।इसके बाद गणेशजी पार्वतीजीके पास आये और बोले कि माता मलीनमन क्यों हो; बताओ ।।२०।। देवी बोली कि, मैंने शिवजीको जीतलिया वे घरसे चले गये, मैंने सोचा कि, अपने वृषादि लेनेके लिये घर आयेंगे इसीलिये बैठी रह गयी ।।२१।। तेरे भाईने सब जीतकर उन्हें देदिया वो अब नहीं आ रहे हैं मैं इसी चिन्तामें हूँ । २२ ॥

यह सुनकर गणेश बोले कि, हे देवी ! मुझे जूआ खेलना सिखादे में भाई और शिवको जीतकर सब कुछ लादूं तो तेरा बेटा, नहीं तो नहीं ।।२३।। पुत्रके ऐसे वचन सुनकर उन्हें जूआ खेलना बतादिया, वो दो पासे और गोट लेकर खेलने चलदिये ।।२४।। पूछते पूछते वहां चले आये, जहां स्वामिकार्तिकजी बैठेथे । स्वामिकार्तिक-जीसे बोले कि, में दो पासे गोट और कपडा लेकर चला हूँ ।।२५।। हे बडे भाई ! आप मेरे साथ शिवजीके सामने खेलें, भाईके वचनसुनकर स्कन्द खेलनेको तयार होगये, फिर दोनों भाइयोंमें जूआ मचा ।।२६।। गणेशजीने मूसेसे वृषभ और मयूरको भी जीतलिया तथा शिवजी और स्कन्दकी सब कुछ ।।२७ ।। जीतकी चीजेंलेकर गणेश पार्वतीके पास आये पार्वतीजीभी जयी पुत्रसे बोलीं कि ।।२८।। पुत्र ! यह तो तूने ठीक किया पर शिवजीको न लाया । जा, साम दामादिक करके शिवजीको यहां लेआ ।।२९।। गणेशजीने कहा कि अच्छी बात है, अभी लाताहूँ, झट मूसेपर सवार हो शीघ्रही शिवजीको घर लानेके लिये चलदिये ।।३०।। शिवजी वहांसे उठकर हरिद्वार चले आये, नारदजीने यह सब समाचार विष्णुभगवान्से कहा, विष्णुभगवान् शिवजीके पास पहुँचे ।।३१ ।। विष्णु भगवान् शिवजीसे बोले, कि शिव महाराज ! त्र्यक्ष विद्याकरिये, में एक अक्ष हो जाऊँगा, रावण वहां सुनरहा था बोला कि अच्छी बात है, आप काने हो जाइये ।।३२।। यह सुन विष्णु भगवान् बोले कि, तुम मेरे ओर विलावकी तरह देखते हो इस कारण आप विल्ले होजाओ । नारदजी बोले कि हे देव ! अब बडा कार्य सिद्ध होगया, वो गणेश्वर आ रहा है ।।३३।। आपका समाचार जाननेको हे रावण ! तुम उनके मूसेको डरा दो । श्रीदेवर्षिके ऐसे वचन सुनकर रावण अगाडीसे ।।३४।। बिलावकी तरह शब्द करने लगा, जिसको सुनकर मूसा भाग गया, गणेशजी मूसेको छोड धीरे धीरे पैदल चले आये ।।३५।। गणेशजीने दूरसेही देखलिया कि, विष्णुभगवान पासा बन गये हैं, महादेवजीके सामने प्रणामकरके नम्रतासे नीचा शिरकरके बोले ।।३६।। कि, हे देव ! माने आपको मानपूर्वक घर बुलाया है, यदि आप न पधारेंगे तो अंबिका प्राणोंको छोड देगी ।।३७।। आप जब घर चल आवेंगे तो मैं वहां सब भेट कर दूंगा, यह सुन शिवजी बोले कि हे गणेश ! इस समय मैंने त्र्यक्ष महा विद्या निर्माण की है ।।३८।। यदि इनसे मेरे साथ पार्वतीजी खेलें तो मैं आऊँ । यह सुनगणेशजी बोले कि आपके साथ माँ अवश्य खेलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।३९।। भाईको साथ लेकर आइये जाइये न गणेशके ऐसे वचन सुनकर गणोंसहित शिवजी घरको चलदिये ।।४०।। वहां नरदजीभी आगये और विलाव बना हुआ रावणभी आगया, वहां कैलासपर सब देवता भी आये हुए बैठे थे ।।४१।। महादेवजी पार्वतीजीको देखते ही हँसपडे और बोले कि, हे महादेवी ! मैंने इस त्र्यक्ष विद्याको गंगा द्वारपर बनाया है ।।४२।। इस विद्यासे भी जो आप मुझे जीत लेंगी तोआप सच बोलनेवाली हैं यह सुनकर देवी बोली कि आपकी वृषादिक सामग्री मैंने दावपर लगादी ।।४३।। आप क्या लगाते हैं कहें, सभासदोंको दो दिखा दें; पार्वतीजीके ऐसे वचनसुनकर, शिवजी नीचेको मुंहकरके देखने लगे ।।४४।। उसी समय नारद-जीने कौपीन, बीणा दण्डऔर जनेऊ शिवजीको समर्पित किये कि, इनसे खेल लीजिये ।।४५।। सदाशिव प्रसन्न होकर खेलने लगे, रुद्र जो दाव चाहते थे, विष्णु वही बनजाते थे ।।५६।। पर जो पार्वतीजी का दाव होता था वो उलटा ही पडता था, इस तरह शिवजीने अपने हारे हुए सब आभरणादिक फिर जीत लिये । ।।४७।। स्कन्दके भी अलंकारकी जो वस्तुएँ थीं वे सब भी शिवजीने फिर जीत लीं, इसके बाद उसी सभामें गणेशजी गर्वके साथ बोले कि ।।४८।। हे मातः ! मत खेलो, लक्ष्मीपति स्वयम् पाशे बने हुए हैं, पिताजी तेरा सर्वस्व हर लेंगे ।।४९।। पुत्रके ऐसे वचन सुनकर पार्वती क्रोधसे मूर्छित हो गयीं, पार्वतीजीको इस प्रकार देखकर रावण बोला कि ।।५०।। मैंने केवल विष्णुसे यही कहा था कि, अधर्म न कर, इसी बातपर इस पापीने मुझे शाप दे डाला ।।५१।। यह सुन देवी बोली कि हे वत्स । इन सब महाबलशाली धूर्तोको में शाप दूंगी । पुत्र मेरे सामर्थ्यको देख ! तथा इनके धर्मत्यागके फलको देख ! ।।५२ ।। हे देव ! आपने एक अबलाके साथ कपट किया है, इस कारण आपका शिर सदा गंगाके भारसे पीडित रहेगा ।।५३।। पीछे नारदजीसे दुर्गाने कहा कि, हे मुने आप इधर उधर कुचेष्टाएँ करते फिरते हैं, इस कारण आप भ्रमते ही रहें, एक जगह आपकी स्थिति न रहे, ।।५४।। हे विष्णो ! तुमने जो एक अबलासे माया की है, इस कारण आपका वैरी यह रावण आपकी स्त्रीको हरेगा ।। ५५।। पीछे पार्वतीजी स्कन्दसे बोली कि हे पुत्र ! तूने मुझ मांको छोडकर जो लडक

पन किया है, इस कारण तू सदा बालक ही रहेगा, न युवा होगा और न बूढाही होगा ।।५६।। तुझे स्वप्नमें भी स्त्री सुख न मिलेगा यह सुनकर गणेशजी पार्वतीजीसे बोले कि, माँ ! इसने बिल्ला बनकर मेरे मूसेको भगा दिया था ।।५७।। इसने मेरे मार्गके बीचमें विघ्न किया था, इस कारण इस अधम राक्षसको तो शाप दे । देवी बोली कि, हे दुष्ट ! तूने मेरे पुत्रके मार्गमें विघ्न किया था ।५८।।। इस कारण, यह तेरा वैरी विष्णु तुझे मारेगा, देवीके ऐसे वचन सुनकर सबको मनमें क्रोध आगया ।।५९।। इन्होंने देवीको शाप देनेका विचार किया कि, नारदजी बोले–हे देवो ! आप क्रोध न करो, यह किसी तरह भी शाप देने योग्य नहीं है ।।६०।। यह सबकी आदिमाया है, यथा योग्य फलकी देनेवाली है, यह शाप नहीं है, यह तो सदा विद्वानोंके यादकरने योग्य है ।।६१।। गंगा का सदाही शिवके शिरपर रहना अच्छा है, बलात भले ही रमाको राक्षस हरे पर विष्णुके हाथसे इसकी मत्यु उचित ही है, कुमारका काम तृष्णासे अलग रहना ही अच्छा है ।।६२।। मैं भूमिपर घूमता ही रहूँ, क्योंकि, तपोधनोंको कभी एक जगह न रहना चाहिये, हे देवी ! आपने ठीक ही कहा है, अब मैं कहूँ सो सुनो ।।६३।। यह कह मुनिपुंगव श्री नारदजी सबके क्रोधको दूर करनेके लिये नाचने लगे, कक्षानाद करने लगे, हा हा हूहू आदि अनेक शब्द करने लगे ।।६४।। नारदजीकी चेष्टाओंको देखकर सब प्रसन्न होगये, इतनेमें देवी कहनेलगी कि, भो भो विदूषक श्रेष्ठ नारद ! आप कृतकृत्य हों । तुम्हारा कल्याण हो, जो आपको अच्छा लगे वो वरदान माँगलो, यह सुन नारदजी बोले कि, हे देवो ! सब वरदान माँग लो, कौन क्या माँगेगा ।।६६।। जो वरदान माँगना चाहते हैं उनको जो माँगना हो सो कहें । यह सुन शिवजी बोले कि, जो वृषभसे लेकर जो भी कुछ आपने जीता था, उसे आप क्षमा करिये ।।६७।। हे जगदम्बिके ! मेरी वस्तु मुझपर ही रहनी चाहिये चाहें आप सौ बार जीतीं परमेरी चीजें मुझे मिलें, यह सुन पार्वतीजी बोलीं कि, मेरा आपसे कभी स्वप्नमें भी वियोग न हो ।।६८।। मैं यह भी माँगती हूँ कि, आपका क्रोध मुझपर कभी न हो । कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाके दिन मैंने सत्यके समान ही ।।६९।। हे महेश्वर ! सत्यसे ही मैं आपसे जीती हूँ, इस कारण आजके दिन प्रातःकाल सबको जूआ खेलना चाहिये ।।७०।। आजके दिन जिसकी जीत होगी, उसकी सालभर जीत रहेगी; यह सुनकर विष्णु भगवान् बोले कि, जिसको मैं छोटा या बडा बना दूँ ।।७१।। वो वैसाही हो जाय, यह वर मैं आपसे माँगता हूँ । स्कन्द बोले कि हे देवो ! मेरा मन सदा तपस्या ही में लगा रहे । ?।७२।। कभी विषयमें न पडे यही मुझे वर दो, गणेशजी कहने लगे कि, संसार में जो कोई काम हो उसमें मेरे पूजनको सबसे पहिले होनेपर ।।७३।। सिद्धि हो मेरी कृपाविना सिद्धि न हो । रावण बोला कि, वेदोंके भाष्य रचनेकी मेरेमें शीघ्र ही सामर्थ्य हो जाय ।।७४।। तथा सदाशिवमें मेरी सदा अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहे, नारजी बोले कि, जो परम क्रोधी हैं अथवा जिन्हें कभी क्रोध ही नहीं आता है चाहें मूर्ख हों चाहे विज्ञ हों ।।७५।। मेरे वाक्योंपर सब विश्वास करें, इस प्रकार वर याचना और वरदान होनेपर सब देव अन्तर्धान हो गये ।।७६।। इस कारण कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको सबको जूआ खेलना चाहिये । हे विद्वानों ! इस प्रतिपदाको छोडकर, बाकी सब दिनोंके लिये जुआ खेलना निषिद्ध है ।।७७।। अपने साल भरके हानी लाभ जाननेके लिये निरालस होकर जुआ खेलना चाहिये तथा दो पहरके समय अपने कुटुम्बी मित्र एवम् योग्य ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भोजन करना चाहिये ।।७८।। इस निशाको प्यारी स्त्रियोंके साथ बितानी चाहिये एवम् अन्तःपुरकी सुवासिनियों का मान सन्मान करना चाहिये ।।७९।। पदातिजन तथा पासके रहनेवाले अपने जनोंको जिनपर कि, अपने नामकी छापलगी हुई हो ऐसे गलेके भूषण और कडूलों से प्रसन्न करना चाहिये ।।८०।। इसके बाद घोडे , हाथी, वृष, भैंसे आदिको सजवा कर उन्हें आपसमें लडवावे तथा सैनिकोंका भी नकली युद्ध देखे ।।८१।। राजा मंचपर बैठा हुआही देखे । नट नर्तक और चारणोंकी भी नकली लडाई देखे तथा साँड, भैंसा आदि किसीको भी डराना नहीं चाहिये । ।।८२।। इसके पीछे मध्याह्नके समयमें पूर्वदिशामें राजाको चाहिये कि, किसी ऊँचे वृक्षपर अथवा किसी ऊँचे लटठेपर, मार्गपाली बँधवादे ।।८३।। वो कुशकाशकी बनी हुई भव्य होनी चाहिये, जिसमें बहुतसे लटकन लगे रहने चाहिये, पहिले घोडे हाथियों को उसका दर्शन कराके, सायं-कालको उन्हें उसके नीचे होकर निकलवाना चाहिये ।।८४।। ब्राह्मणोंसे होम कराकर मार्गपाली बाँधनी चाहिये, हे सुव्रत ! फिर इस मंत्रसे उसे नमस्कार करना चाहिये ।।८५।। हे मार्गपालि ! तेरे लिये नमस्कार

है, हे सब लोकोंको सुख देनेवाली ! विधेय, पुत्र, दार आदिकोंसे मुझे परपूर्ण कर दे ।।८६।। वहांही राष्ट्रको जयदेनेवाली आरती करे, मार्गपालीके नीचेसे जो गऊ, वृष, गज आदि ।। ८७ ।। तथा राजा, राजपुत्र ब्राह्मण और शूद्र जातिके लोग निकल जाते हैं वे नीरोग एवम् सुखी हो जाते हैं । ८८।।।। इस कारण द्यूत आदिको विधिपूर्वक करना चाहिये ।।८९।।

यह सनत्कुमारसंहिताकी द्यूतविधि समाप्त हुई ।

अथ बलिपूजागोक्रीडनवष्टिकाकर्षणानि

तत्रैव–वालखिल्या ऊचुः ।। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या प्रतिपद्वलिपूजने ।। वर्धमानतिथिर्नन्दा यदा सार्द्धत्रियामिका ।। द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा पत्र चोच्यते।। बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ।। गृहमध्यमशालायां विन्ध्यावल्या समन्वितम् ।। जिह्वा च ताल्वक्षिप्रान्तौ करयोः पादयोस्तले ।। रक्तवर्णेनास्य केशान् कृष्णेनैव समालिखेत् ।। सर्वाङ्गं पीतवर्णेन शस्त्राद्यं नीलवर्णतः । वस्त्रं च श्वेतवर्णेन यथाशोभं प्रकल्पयेत् ।। सर्वाभरणशोभाढ्यं द्विभुजं नृपचिह्नितम् ।। लोकौ लिखेद् गृहस्यान्तः शय्याग्रां शुक्लतण्डुलैः ।। मन्त्रेणानेन संपूज्य षोडशैरुपचारकैः ।। बलिराजनमस्तुभ्यं दैत्यदानवपूजित ।।इन्द्रशत्रोऽमराराते विष्णुसान्निध्यदो भव ।। बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानिमुनि पुङ्गवाः ।। यानि तान्यक्षयाणि स्युर्मयैतत्संप्रदर्शितम् ।। कौमुत्प्रीतिर्बलेर्यस्माद्दीयतेऽस्यां युधिष्ठिर ।। पार्थिवेन्द्रैर्मुनिवरास्तेनेयं कौमुदी स्मृता ।। यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ।। हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति वै।।बलिपूजां विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत् । गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः । सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभीः पूजकांस्तथा ।। प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं च गवां मतम् ।। परायोगे तु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ।। अलंकारार्यास्तदा गावो ग्रासाद्यैश्च स्युरर्चिताः ।। गीतावादित्रघोषेण नयेन्नगरबाह्यतः । आनाय्य च गृहं पश्चात्कुर्यान्नीराजनाविधिम् ।। अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत् ।। द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाम् ।। एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते । प्रतिपत्पूर्वविद्धैव [1]वष्टिकाकर्षणं भवेत् ।। कुलकाशमयीं कुर्याद्वष्टिकां सुदृढां नवाम् ।। देवद्वारे नृपद्वारेऽथवा नेय। चतुष्पथे ।। तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः ।। गृहीत्वा कर्षयेमुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः ।। समसंख्या द्वयोः कार्या सर्वेऽपि बलवत्तराः ।।जयोऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ।। उभयोः पृष्ठतःकार्या रेखा स्वाकर्शकोपरि । खान्ते यो नयेत्तस्य जयो भवति नान्यथा ।। जयचिह्नमिदं राजा विदधीत प्रयत्नतः ।। अन्नकूटकथा ।। अथान्नकूटापरपर्यायो गोवर्द्धनोत्सवः । सनत्कुमारसंहितायाम् ।। वाल-

१ लोके वेंठशब्देन प्रसिद्धो रज्जुविशेषः ।

खिल्या ऊचुः ।। कार्त्तिकस्य सिते पक्षे ह्यन्नकूटं समाचरेत् ।। गोवर्द्धनोत्सवश्चैव श्रीविष्णुः प्रीयतामिति ।।१।। ऋषय ऊचुः ।। कोऽसौ गोवर्द्धनो नाम कस्मात्तं परिपूजयेत् । कस्मात्तदुत्सवः कार्यः कृते किंच फलं भवेत् ।।२।। वालखिल्या ऊचुः।। एकदा भगवान् कृष्णो गतो गोपालकैः सह ।। गृहीत्वा गाः प्रतिपदि कार्त्तिकस्य सिते वने ।।३।। तत्र नानाविधा लोका गोप्यश्चापि सहस्रशः ।। गोवर्द्धनसमीपे तु कुर्वन्त्युत्सवमादरात् ।।४।। खाद्यं लेह्यं च चोष्यं च पेयं नानाविधं कृतम् ।। कृता नगास्तथान्नानां नृत्यन्ति च परे जनाः ।।५।। नानापताकाः संगृह्य केचिद्धावन्ति चाग्रतः ।। केचिद्गोपाः प्रनृत्यन्ति स्तुवन्ति च तथापरे ।।६।। तस्ततो वितानानि तोरणानि सहस्रशः ।। दृष्ट्वैतत्कौतुकं कृष्णो वाक्यमेतदुवाच ह।।७।। कृष्ण उवाच ।। उत्सवः क्रियते कस्य देवता का च पूज्यते ।। पक्वान्नखादनार्थाय कल्पितो वोत्सवोऽधुना ।।८।। न भक्षयन्ति ये देवास्तेभ्योऽन्नं तु प्रदीयते ।। प्रत्यक्षभोजिनो देवास्तेभ्योऽन्नं न तु दीयते ।।९।। दृष्ट्वेदृशीं भवद्बुद्धिं गोपाला वेधसा कृताः ।। गोपाला ऊचुः ।। एवं मा वद कृष्ण त्वं वृत्रहन्तुर्महोत्सवः ।। वार्षिकः क्रियतेऽस्माभिर्देवेन्द्रस्य च तुष्टये ।।१०।। इन्द्रं पूजय भद्रं ते भविष्यति न संशयः ।। अद्य कुर्वेति[1] देवेन्द्र महोत्सवमिमं नयः ।।११।। दुर्भिक्षं च तथाऽवृष्टिर्देशे तस्यन जायते ।। तस्मात्त्वमपि कृष्णात्र कुरूत्सवमनेकधा ।।१२।। कृष्ण उवाच ।। अयं गोवर्धनः साक्षाद्वृष्टि सौभिक्ष्यकारकः ।। मथुरास्थैर्व्रजस्थैश्च पूजितव्यः प्रयत्नतः ।।१३।। हित्वैतत्पूजनं लोके वृथेन्द्रः पूज्यते कथम् ।। उत्सवः क्रियतामस्य प्रत्यक्षोऽयं भुनक्ति च ।।१४।। करिष्यति कृषिं सम्यगुपसर्गान् हनिष्यति ।। यदायदा संकटं मे महदागत्य जायते ।।१५।। तदातदा पूजयामि दृश्यं गोवर्धनं गिरिम् ।। श्रवणेश्रवणे गोपा वार्ता कुर्वन्ति किंत्विदम् ।।१६।। तेषां मध्ये कैश्चिदुक्तं कृष्णोक्तं क्रियतामिति ।। यदा खादति चान्नं वै नगो गोवर्धनस्तथा ।।१७।। तदा कृष्णोक्तमखिलं सत्यमेव भविष्यति ।। सर्वएव तदा गोपा विनिश्चित्य च नन्दजम् ।।१८।। वचन प्राहुरित्थं चेन्निश्चयोस्ति तथा कुरु ।। सर्वेषामग्रणीभूत्वा गोवर्धनमहोत्सवम् ।।१९।। ततः कृष्णस्तथेत्युक्त्वा उत्सवे कृतनिश्चयः ।। नानासामग्रिकं चक्रुर्यथोक्तं नन्दसूनुना ।।२०।। नानावस्त्राणि पात्राणि विस्तृतानि नगाग्रतः ।। तत्र दत्तोऽन्नपुञ्जस्तु यथा गोवर्द्धनो महान् ।।२१।। भक्तं सूपानि शाकाश्च काञ्चिकं वटकास्तथा ।। रोटकाः पूरिकाद्यं च लड्डुकान्मण्डकादिकम् ।।२२।। दुग्धं दधि घृतं क्षौद्रं लेह्यं चोष्यं तथामिषम् ।। कथिकाद्यं सर्वमपि तत्र दत्त्वा वचोऽब्रवीत् ।।२३।। कृष्णउवाच ।। मन्त्रं पठित्वा गोपाला नेत्रे संमीलयस्तु च ।। गोवर्धनेन

---

१ कुर्वे इति प्रतिजानातीति विशेषः ।। इलोपआर्षः।। नर इति राजोपलक्षणम् ।। यः करोति च देवेन्द्रमहोत्सवमिमं परमिति पाठस्तु सुगमः । दृश्यते चायं सनत्कुमार संहितास्थकार्तिकमाहात्म्ये ।।

भोक्तव्यं सर्वमन्नं न संशयः ।।२४।। गोवर्द्धन धराधार गोकुलत्राणकारक ।। बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ।। २५ ।। लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।। घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ।।२६।। पठित्वैवं मन्त्रयुगं सर्वे मुद्रितलोचनाः ।। कृष्णो गोवर्द्धनं विश्व सर्वमन्नमभक्षयत् ।।२७।। भक्षणावसरे कैश्चिज्जनैर्दृष्टो गिरिस्तथा ।। अतीवाभूत्तदाश्चर्यं तच्चेतसि मुनीश्वराः ।।२८।। ततो नाडीद्वयात् कृष्णो गोपान्वाक्यमुवाच सः ।। अहो गोवर्द्धनेनात्र क्षणाद्भुक्तमिदं स्फुटम् ।।२९।। पश्यन्तु सर्वे गोपालाः प्रत्यक्षोऽयं न संशयः ।। यद्यस्ति सुखवाञ्छा वः कुर्वन्त्वस्य महोत्सवम् ।।३०।। इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे विस्मितमानसाः ।। गोवर्द्धनोत्सवं चक्रुरैन्द्राच्छतगुणं तथा ।।३१।। इन्द्रोत्सवं द्रष्टुकामः समागच्छत नारदः । गोवर्द्धनोत्सवं दृष्ट्वा देवेन्द्रस्य समां ययौ ।।३२।। देवेन्द्रेण कृतातिथ्यो वारंवारं प्रणोदितः ।। नोवाच वचनं किंचिद्देवेन्द्रः प्रत्यभाषत ।।३३।। इन्द्र उवाच ।। युष्माकं कुशलं विप्र वर्तते वा नवेति वा ।। मदग्रे कथ्यतां दुःखं मुनीश्वर हराम्यहम् ।।३४।। नारद उवाच ।। अस्माकं किं मुनीन्द्राणामिन्द्र दुःखस्य कारणम् ।। परं गोवर्द्धनः शैलः शक्रो जातो विलोकितः ।।३५।। त्वदुत्सवे पूज्यतेऽसौ गोपा लैर्गोकुलस्थितैः ।। अतःपरं यज्ञभागान् ग्रहीष्यति स एव हि ।।३६ ।। इन्द्रासनं तथेन्द्राणीं क्रमान्सर्वं हरिष्यति ।। यस्य वीर्यं च शस्त्रं च तस्य राज्यं प्रजायते ।।३७।। किमस्माकं मुनीन्द्राणां य एवेन्द्रासने वसेत् ।। वर्षाद्वा मासषट्काद्वा द्रष्टव्योऽसौ समागमः ।।३८।। इत्थमुक्त्वा च देवेन्द्र प्रययौ नारदो भुवि ।। इत्थं नारदवाक्यं स श्रुत्वा शक्रोऽभ्यभाषत ।। ३९।। अहो आवर्तसंवर्ता द्रोणनीलकपुष्कराः ।। सर्वे मेघा जलं गृह्य करकाभिः समन्विताः ।।४०।। प्रयान्तु गोकुले शीघ्रं मारयन्तु च गोपकान् ।। गोवर्द्धनं स्फोटयन्तु वज्रपातैरनेकशः ।।४१।। घातयन्तु च गाश्चापि गृहाण्युच्चाटयन्तु च ।। ततो घनघटाघोषो गोकुलेऽभून्मुनीश्वराः ।।४२।। जात आरादन्धकारो मध्याह्नसमयेतदा ।। कम्पिदास्तु तदा गोपाः-किमकाण्डमुपस्थितम् ।। ४३ ।। ववृषुर्बहुपानीयं करकास्मितदा घनाः।। गोपा ऊचुः ।। हा कृष्ण कृष्ण हे कृष्ण किमिदानीं विधीयताम् ।।४४।। मृताः स्म सर्वे गोपालाः कुपितोऽयं हि वासवः । कृष्ण उवाच ।। निमील्याक्षीणि भो गोपा ध्येयो गोवर्धनो गिरिः ।। ४५ ।। रक्षाकर्ता स एवास्ति नान्येस्ति जगतीतले ।। इत्युवोत्पाटच तं शैलं तत्तले स्थापितास्तु ते ।। ४६ ।। ततः प्रोवाच वचनं गोपान् प्रति बलानुजः ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। अहो गोवर्द्धनेनैतत्स्थलं दत्तं व्रजन्त्विह ।।४७।।अन्यः कोऽस्ति स्थलं दातुं प्रत्यक्षोऽयं नगोत्तमः।एवं सप्तदिनं तोयंवृष्टं मुसलधारया ।। ४८ ।। नानादेशा ययुर्नाशं न गोपाः शरणं ययुः ।। गोवर्द्धनस्य

नाम्नैव कृष्णो नित्यं प्रयच्छति ।। ४९ ।। पक्वान्नानि च गोपेभ्यस्तत्र ते सुखमावसन् ।।इत्येवं कौतुकं दृष्ट्वा सत्यलोकं ययौ मुनिः ।। ५० ।। ब्रह्मंस्त्वं किं प्रसुप्तोऽसि जायते सृष्टिनाशनम् ।। तस्माच्छीघ्रं गोकुले त्वं गत्वा वृष्टिं निवारय ।। ५१ ।। ब्रह्मोवाच ।। किमर्थं जायते वृष्टिः कथं सृष्टिविनाशनम् ।।कच्चिद्दैत्यः समुत्पन्नः सर्वमाख्याहि मे मुने ।। ५२ ।। नारद उवाच ।। नोत्पन्नो दैत्यराट् कश्चित्त्यक्तः शक्रोत्सवो भुवि ।। गोपकैरिति संक्रुद्ध इन्द्र एवं प्रवर्षति ।। ५३ ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा हंसमारुह्य वै विधिः ।। आगतो यत्र शक्रोऽस्ति क्रोधादेव प्रवर्षति ।। ५४ ।। ब्रह्मोवाच ।। कथं व्यवसिता बुद्धिरीदृशी ते सुरेश्वर ।। त्रैलोक्यनाथो भगवान्निर्जेतव्य कथं त्वया ।। ५५ ।। एकयैव करांगुल्या पश्य गोवर्द्धनो धृतः ।। ईर्ष्या कथं तेन साकं त्वया शक्र विधीयते ।। ५६ ।। इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा मेघान्संस्तभ्य वासवः ।। प्रणिपत्य च तं कृष्णं शक्रो वचनमब्रवीत् ।। ५७ ।। इन्द्र उवाच ।। क्षन्तव्या मत्कृतिर्विष्णो दासोऽहं शरणागतः ।। यद्रोचते तत्प्रदेयमपराधापनुत्तये ।। ५८ ।। कृष्ण उवाच ।। अज्ञात्वा तव सामर्थ्यं गोपालैरर्चितं त्विदम् ।। एषां दण्डस्तु योग्योऽयं सम्यगेव त्वया कृतः ।। ५९ ।। अहं कनीयांस्ते भ्राता तवाज्ञापरिपालकः ।। शरणागतजातीनां रक्षणं तु मया कृतम् ।। ६० ।। यदि प्रसन्नो देवेश उत्सवोऽयं प्रदीयताम् ।। गोवर्द्धनाय गिरये गोकुलं रक्षितं यतः ।। ६१ ।। वालखिल्या ऊचुः ।। शक्रोपि च तथेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।। गते शक्रे गिरीन्द्रं तं संस्थाप्य हरिरब्रवीत् ।। ६२ ।। कृष्ण उवाच ।। गोपा दृष्टं तु माहात्म्यमद्भुतं शैलजं तु यत् ।। अद्यारभ्य प्रकर्तव्यो महान् गोवर्द्धनोत्सवः ।।६३ ।। गोवर्द्धनेन शैलेन निखिला तु धरा धृता ।। एतत्सारमजानद्भिः कथं संक्रीडितं पुरा ।। ६४ ।। अद्य पर्वतराजस्तु सर्वं ब्रूते ममाग्रतः ।। एतत्सेवाप्रभावेन बलं लब्धं मया महत् ।। ६५ ।। प्रतिसंवत्सरं तस्मादन्नकूटो विधीयताम् ।। गवां भवति कल्याणं पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ।। ६६ ।। ऐश्वर्यं च सदा सौख्यं भवेद्गोवर्द्धनोत्सवात् ।। कृतं यत्कार्तिके स्नानं जपहोमार्चनादिकम् ।। ६७ ।। सर्वं निष्फलतां याति नो कृते पर्वतोत्सवे ।। एवमुक्तास्तु ते गोपाः सत्यं सर्वममन्यत ।। ६८ ।। ययुः कृष्णादयः सर्वे नवमेऽहनि गोकुलम् ।। वालखिल्या ऊचुः ।। इत्येतत्सर्वमाख्यातमस्माभिस्तु मुनीश्वराः ।। ६९ ।। श्रीकृष्णस्य तु संतुष्टयै अन्नकूटो विधीयताम् ।। नानाप्रकारशाकानि देशकालोचितानि च ।। ७० ।। पक्वान्नानि विचित्राणि कुर्याच्छक्त्यनुसारतः ।। सर्वान्नपर्वतं कुर्याच्छ्रीकृष्णाय निवेदयेत् ।। ७१ ।। गोवर्द्धनस्वरूपाय मन्त्रं कृष्णोदितं पठन् ।। एवं यः कुरुते मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ।। ७२ ।। इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां प्रतिपत्कृत्यम् ।।

अथ बलिपूजा, गोक्रीडन, वष्टिकाकर्षण—बलिकी पूजा, गऊओंके साथ खेल और वष्टिकाका कर्षण (रस्सी खींचना) भी इसी दिन होता है, सनत्कुमारसंहितामेंही कहा है । वालखिल्य ऋषि बोले कि, बलिके पूजनमें पूर्वविद्धा प्रतिपदा करनी चाहिये, यदि वर्धमाना प्रतिपदा साढे तीनपहर को । द्वितीयामें वृद्धिगामी होनेके कारण उत्तरा प्रतिपदा लेनी चाहिये । पंचरंगके दैत्येन्द्र बलिको विन्ध्यावलीके साथ घरके बीचकी शालामें काढतीवार जीभ, तालु, आंख और हाथ, पावोंके तले लालरंगसे लिखने चाहिये तथा केश काले ही रंगसे बनाने चाहिये । सारा शरीर पीतवर्णका हो, शस्त्रादिक नीले रंगके बनाये जायं, वस्त्र श्वेत रंगके जैसे शोभित लगें वैसे ही बनाये जायँ, सब आभरण पहिनाये जायँ, जिनसे कि, सुन्दर लगे, द्विभुज एवम् राज् चिह्नसे चिह्नित होना चाहिये । घरके भीतरकी शय्यापर तंडुलोंसे इसके लोकको लिख दे, तथा इस निम्न-लिखित मंत्र समुदायसे सोलहों उपचारोंसहित पूजे । हे दैत्यदानवपूजित बलिराज ! तेरे लिये नमस्कार है, हे अमरोंके अराते । एवम् इन्द्रके शत्रु ! विष्णुके सान्निध्यको देनेवाला हो, हे मुनिपुंगवो ! बलिके उद्देशसे जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय हो जाते हैं । यह मैंने तुम्हें बतादिया है । हे मुनिवरो ! इस प्रतिपदाके दिन इस भूमिपर राजालोगोंद्वारा किये हुए पूजनसे बलिको प्रसन्नता होती है, इस कारण इसे कौमुदी कहते हैं, हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य जिस भावसे इसमें रहेगा चाहें उसे हर्ष हो चाहें उसे शोक हो वे ही सालभरतक बराबर चलता रहेगा ।। इस प्रकार बलिपूजा करके पीछे गोक्रीडन करना चाहिये । जिस दिन कि, गोक्रीडनमें रातको चाँदका प्रकाश हो तो सोमराजा उन पशुओं तथा सुरभियों और पूजकोंका नाश कर देते हैं, इस कारण प्रति-पदा और दर्शके योगमें गोक्रीडन होना चाहिये । जो द्वितीया युक्त प्रतिपदाके दिन गोक्रीडन और गोनर्तन कराता है उसके पुत्र दारका नाश होता है । गोक्रीडनके दिन गऊओंको खिला पिलाकर सजाना चाहिये, गीत बाजोंसे उन्हें गामके बाहिर लेजाय, पीछे घर लाकर उनकी नीराजनविधि होनी चाहिये । यदि प्रतिपदा थोडी हो तो स्त्रियोंसे आरती कराना चाहिये और द्वितीयामें अनेक मंगलकृत्य कराने चाहिये । इस प्रकार नीराजन करके सब पापोंसे छूट जाता है । पूर्वविद्धा प्रतिपदा ही वष्टिका कर्षणमें ली जाती है, द्वितीया युक्ता नहीं ली जाती । कुशकाशकी एक सुन्दर नई सुदृढ रस्सीको देवद्वारपर या नृपद्वारपर अथवा चौराहेपर एक तरफ राजकुमार आदि उच्च वर्णके लोग खीचें तथा एक ओर हीन वर्णके लोग खींचें जबतक वे न थकें, तबतक खींचते ही रहें । खींचनेवालोंकी दोनोंही तरफ बराबरकी संख्या रहनी चाहिये, जो इसमें जीतेगा उसकी एक सालतक बराबर जीत रहती है । दोनों ही ओर हद्दकी रेखाएं रहनी चाहिये, जो अपनी ओर खींचकर हद्दतक लेजाये उसकी जीत होती है, अन्यथा नहीं ।। राजाको चाहिये, कि राजा इस जीतके चिह्नको प्रयत्नके साथ बनावे यह बलिपूजा, गोक्रीडन और वृष्टिकाकर्षणकी विधि पूरी हुई ।।

अन्नकूट—सनत्कुमार संहितामें गोवर्धनोत्सव कहा है जिसे लोग अन्नकूट कहते हैं । वालखिल्यऋषि बोले कि, कार्तिकके शुक्लपक्षमें अन्नकूट और गोवर्धनोत्सव, श्रीविष्णुभगवान्की प्रसन्नताके लिये करे ।। १ ।। ऋषि लोग बोले कि, यह गोवर्धन कौन है, किस कारण उसे पूजे, क्यों उसका उत्सव किया जाय, तथा कियेपर क्या फल होता है ? ।। २ ।। बालखिल्य बोले कि, एकसमय भगवान् कृष्ण कार्तिक शुक्लप्रतिपदको ग्वाल-बालोंके साथ गायें लेकर वनको गये ।। ३ ।। वहां अनेक तरहके लोग और हजारों ही गोपियाँ गोवर्धनके समीपमें आदरसे उत्सव कर रहे थे ।। ४ ।। अनेक तरहके खाद्य, लेह्य, चोष्य और पेय पदार्थ बनाये थे, अन्न कट कर रखे थे बहुतसे नाच रहे थे ।। ५ ।। कोई २ अनेक तरहकी झन्डियोंको लेकर अगाडी अगाडी चलते थे; कोई गोप नांच रहे थे, तो कोई स्तुतियां कर रहे थे ।। ६ ।। इधर उधर अनेक तोरण और तंबू तने हुए थे, भगवान्कृष्ण यह कौतुक देख कर बोले ।। ७ ।। किसका उत्सव कर रहे हो ? किस देवताको पूज रहे हो ? अथवा पक्वान्न खानेके लिये ही आपने यह उत्सव किया है ।। ८ ।। जो देवता नहीं खाते उन्हे तोदे रहे हो पर जो देव प्रत्यक्ष भोजी हैं, उन्हें नहीं देते ।। ९ ।। आपकी ऐसी बुद्धिको देखकर ही आपको ब्रह्माने गोपाल किया है । यह सुन गोपाल बोले कि, हे कृष्ण ! आप ऐसे न कहें । यह वृत्रके हन्ताका उत्सव है, हम देवराज इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये हर साल करते हैं ।। १० ।। आप भी प्रसन्नचित्तसे इन्द्रकी पूजा अवश्य करिये, आप का कल्याण होगा । जो कोई आजके दिन इन्द्रकी पूजा करता है ।। ११ ।। उसके देशमें कभी अकाल और

अनावृष्टि नहीं होती, इस कारण हे कृष्ण ! आप भी इस उत्सवको अनेक तरहसे मनायें ।। १२ ।। यह सुन कृष्ण बोले कि, देखो यह साक्षात् देवता गोवर्धन हैं यह वृष्टि और सौभिक्ष्य करनेवाला है, मथुरावासी और व्रजवासियोंको प्रयत्नके साथ इसका पूजन करना चाहिए ।। १३ ।। इसके पूजनको छोडकर लोकमें इन्द्र क्यों वृथा पूजा जाता है । इसका उत्सव करो, यह प्रत्यक्ष खायगा ।। १४ ।। खेती अच्छी करेगा, विघ्नोंका नाश करेगा, जब जब मुझे कोई बडा भारी संकट आ जाता है ।। १५ ।। तब तब मैं इसी प्रत्यक्ष देव गोवर्धनको पूजता हूं यह सुन गोप आपसमें काना फुस्सी करने लगे कि, क्या करें ।। १६ ।। उन गोपोंमेंसे कुछएक कहने लगे कि, कृष्णकी कही मानों, यदि यह खा लेगा तो इसे केवल पहाड न समझ कर गोवर्धन देव समझना ।। १७ ।। तब जो कुछ कृष्ण करता है वो सत्य ही होगा, इस प्रकार सब गोप निश्चित्त करके कृष्णसे बोले ।। १८ ।। कि, जिससे हमें निश्चय हो सो करिये ।। तथा सबके आगाडी होकर गोवर्धनोत्सव मनवाइये ।। १९ ।। भगवान्ने भी उत्सवका निश्चय करके कहा कि, अच्छी बात है, फिर कृष्णजीने जो सामग्रियां कराना चाहीं गोपोंने सब तयार करदी ।। २० ।। अनेक तरहके वस्त्र और बडे बडे पात्र गोवर्धन सामने रख दिये तथा वहां एक गोवर्धनके बराबरकासा अन्नपुञ्ज लगा दिया ।। २१ ।। भात, कढी, दाल, शाक, कांजी, बडे, रोटियां, पूरियां, लड्डू और मांडे आदिक ।।२२।। दूध, दही, घी, सहद, चटनी, चूसनेकी चीज तथा बिना मांसकी सब चीजें देकर ।। २३ ।। कृष्ण बोले कि, हे गोपो ! मन्त्रको पढकर आंखें मींचलो, इतनेमें ही गोवर्धन सब खालेगा, इसमें कोई संदेह मत करना ।। २४ ।। हे गोवर्धन ! हे धराधार ! हे गोकुलके त्राण एवम् ! अनेकों भुजाओंमें छाया करनेवाले ! हमें करोड गऊ दें ।। २५ ।। जो लोकपालोंकी लक्ष्मी धेनुरूपसे स्थित हो यज्ञके लिये घृत देती हैं, वो मेरे पापोंका दूर कर ।। २६ ।। इन दोनों मन्त्रोंको पढकर सबने आंखें मींचली, इतनेमें ही गोपाल कृष्ण गोवर्धनमें प्रविष्ट होकर सब अन्न खा गये ।। २७ ।। कोई गोप जो आँख बिना मिचे बैठे थे उन्होंने देखा कि, गोवर्धन सबका भोजन कर गया है तो हे मुनीश्वरो ! उनके आश्चर्यका ठिकाना ही न रहा । ।। २८ ।। इसके दो नाडीके बाद, भगवान कृष्ण गोपोंसे बोले कि देखो–गोवर्धनने एक क्षण भरमें ही सब खा लिया ।। २९ ।। हे गोपालो ! देखो यह प्रत्यक्ष देव है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, यदि आपको सुखकी इच्छा हो तो सब मिलकर इसका उत्सव करिये ।। ३० ।। भगवान् कृष्णके ऐसे वचन सुनकर सबने बडे ही आश्चर्यके साथ इन्द्रके उत्सवसे सौगुना, गोवर्धन का उत्सव किया ।। ३१ ।। नारदजी आये तो थे इन्द्रोत्सव को देखने पर गोवर्धनका उत्सव देखकर इन्द्रकी सभामें दाखिल जा हुए ।। ३२ ।। देवेन्द्रने आतिथ्य करके बार बार पूछा, पर जब नारदजीने कुछ न कहा तो इन्द्र बोला कि, ।। ३३ ।। हे विप्र ! आप प्रसन्न हैं या नहीं कहें ? मैं आपके कष्टोंको मिटा दूंगा ।। ३४ ।। यह सुन नारद बोले कि, हे–इन्द्र ! इससे ज्यादा और मेरे दुःखका कारण क्या होगा कि, एक पहाड़को भी मैंने दूसरा इन्द्र बना देखा ।। ३५ ।। आज आपके उत्सवमें वह गोकुलके ग्वालोंसे पूजा जा रहा है इसके बाद वह यज्ञके भागको कभी न कभी लेगा ही ।।३६।। धीरे धीरे वह इन्द्रासन और इन्द्राणीको लेकर सब कुछ हर लेगा क्योंकि, जिसके पास हथियार हों तथा जिसमें पुरुषार्थ होता है उसका ही राज होता है ।। ३७ ।। हम मुनीन्द्रोंका क्या है, वांही भले इन्द्र हो, साल छः महीनोंमें उसे इस सिंहासनपर बैठा हुआ इस सभामें देखेंगे ।। ३८ ।। नारदजी तो इस प्रकार इन्द्रसे कहकर भूमिपर चले आये, नारदजीके ऐसे वचनोंको सुनकर अपने सभ्योंसे इन्द्र बोला ।। ३९ ।। हे आवर्त ! संवर्त ! द्रोण ! नील ! और पुष्करो ! आप सब मेघगण उपलोंके साथ पानी भरकर ।। ४० ।। शीघ्र गोकुल जाओ । गोपोंको मार दो, वज्रोंसे गोवर्धनके अनेकों टुकडे उडादो ।। ४१ ।। गायोंको मार डालो, घरोंको उजाड दो । इसके पीछे हे मुनीश्वरो ! गोकुलपर घनकी घटाओंका घोष होने लगा ।। ४२ ।। मध्याह्नकालमें एकदम अन्धकार छागया. गोप इकदम कांप उठे, कि यह अकारण क्यों हो गया ।। ४३ ।। बहुतसे पानीके साथ ओले बरसने लगे । गोप कहने लगे कि, हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! ! हे कृष्ण ! ! हे कृष्ण ! ! ! अब क्या करना चाहिए ।। ४४ ।। यह इन्द्र नाराज हो रहा है, हम सब गोपाल मर रहे हैं, यह सुनकर भगवान् कृष्ण बोले कि, हे गोपो ! आंख मींचकर गिरिगोवर्धनका ध्यान करो ।।४५ ।। इस भूमिपर सिवा गोवर्धनके दूसरा कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है, यह कहकर गोवर्धन-को उठा, सबको उसके नीचे बिठा दिया ।। ४६ ।। इसके पीछे भगवान् गोपोंसे बोले कि, देखो ! गोवर्धन

ने जगह देदी ! यहां सब आ जाओ ।। ४७ ।। इस समयकौन स्थल दे सकता है,इसीने दिया है,यह उत्तम नग प्रत्यक्ष देव है ! सात दिनतक मूसलधार पानी बरसा ।। ४८ ।। उस समय वे अनेक देश नष्ट हो गये, जिन्होंने शरणागति नहीं की थी, पर शरणगोप नष्ट न हुए, गोवर्धनके नामसे भगवान कृष्ण रोज देते थे ।। ४९ ।। गोपोंके लिये पक्वान्नके दाता थे जिससे गोप वहां सुखपूर्वक रहे आयें, नारदजी यह सब कौतुक देखकर सत्य-लोक चले गये ।। ५० ।। वहां जा कर ब्रह्माजी से बोले कि, हेब्रह्मन् ! आप सोरहे हैं क्या ! सष्टिका नाश हो रहा है, इस कारण शीघ्र गोकुलमें जाकर वष्टिका निवारण करिये ।। ५१ ।। यह सुन ब्रह्माजी बोले कि,किस लिये वृष्टि हो रही है, सृष्टिका नाश कैसे हो रहा है ? हे मुने ! क्या कोई दैत्य पैदा होगया ? मुझे सब बता दें ।। ५२ ।। नारद बोले कि, दैत्यराट् तो कोई नहीं हुआ है पर भूमिमंडलपर गोपोंने इन्द्रोत्सव छोडदिया है, इससे इन्द्र नाराज होकर वरस रहा है ।। ५३ ।। ब्रह्माजी यह सुनकर हंसपर चढे और वहां आये जहां इन्द्र क्रोधित होकर मूसलाधार वरस रहा था ।। ५४ ।। ब्रह्माजी इन्द्रसे बोले कि, हे इन्द्र ! तेरी ऐसी बुद्धि कैसे होगई, क्या तू त्रिलोकनाथ भगवान्को जीत सकता है ? ।। ५५ ।। देख, एकही चिटली उंगलीसे इसने गोवर्धन उठा रखा है, हेइन्द्र ! तू उसके साथ क्यों ईर्ष्या कर रहा है ।। ५६ ।। इन्द्रने ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर मेघोंको रोक दिया, एवम् भगवान् कृष्णके चरणोंमें पडकर बोला ।। ५७ ।। कि–भगवन् ! मैं आपका शरणागत दास हूं । मेरे कारनामें क्षमा किये जायें. यदि ऐसी ही इच्छा हो तो अपराधको दूर करनेके लिये दण्डही दे दीजिये ।। ५८ ।। भगवान् कृष्ण बोले कि, हे इन्द्र ! तेरी ताकतको जाने विना इन गोपालोंने यह पूजडाला, इनको जो तुमने दण्ड दिया वह ठीकही दिया है ।। ५९ ।। मैं आपकी आज्ञा माननेवाला, आपका छोटा भाई हूं, मैंने शरण आये हुओंका रक्षण किया है ।। ६० ।। यदि आप प्रसन्न हैं तो आप इस गिरिगोवर्धनको अपना उत्सव देदें, जिससे कि, मैंने गोकुलकी रक्षा की है ।। ६१ ।। वालखिल्य बोले कि, इन्द्रभी एवमस्तु कहकर वहीं अन्तर्धान हो गया, इन्द्रके चले जानेपर भगवान् पर्वतको रखकर बोले ।। ६२ ।। हे गोपो ! तुमने गोवर्धनका माहात्म्य देखा आजसे लेकर आप सदा गोवर्धनका ही उत्सव करना ।। ६३ ।। इसी गोवर्धनने सारी भूमि धारण कर रखी है, पहिले आपने इसकी शक्तिको न जान, कैसा खेल किया था ।। ६४ ।। यह पर्वत सब कुछ मुझसे कह देता है, इसकी सेवाके प्रभावसे ही इतना भारी बल मुझे मिला है ।। ६५ ।। इससे आप हरसाल अन्नकूट करना, जिससे गौओंका कल्याण होगा और पुत्र पौत्रादि सन्ततियां प्राप्त होंगी ।। ६६ ।। गोवर्धनके उत्सवसे ऐश्वर्य्य और सदा सौख्य प्राप्त होगा, कार्तिकके महीनामें जो भी कुछ जप होम अर्चन किया हो ।६७। वो विना गोवर्धनके उत्सव किये, निष्फल हो जाता है । भगवान्ने गोपोंसे कहा तथा गोपोंने उसे सत्य मान लिया ।। ६८ ।। नौमें दिन कृष्णादिक सब गोकुल चले गये, बालखिल्य बोले कि, हे मुनीश्वरो ! हमने सब आपको सुनादिया है ।। ६९ ।। भगवान् कृष्णको प्रसन्न करनेके लिये अन्नकूट करना चाहिये, देशकालके अनुसार अनेक तरहके शाक ।। ७० ।। तथा अपनी शक्तिके अनुसार अनेक तरहसे पक्वान्न बनाने चाहिये, सब अन्नोंके पर्वत बनाकर श्रीकृष्णके लिये निवेदन कर दे ।। ७१ ।। यह भी गोवर्धनस्वरूपी कृष्णके लिये दोनों मंत्रोंको पढकर निवेदन होता है, जो कोई इस प्रकार अन्नकूटको श्रीकृष्णके लिये निवेदन करता है, वो विष्णु लोकको पाता है ।। ७२ ।। ये सनत्कुमारसंहिताके कहे हुए प्रति-पदाके व्रतादिक पूरे हुए ।

अथ द्वितीयाव्रतानि

यमद्वितीयानिर्णयः ।। कार्तिकशुक्लद्वितीया यमद्वितीया ।। सा अपराह्ण-व्यापिनी ग्राह्या ।। ऊर्जे शुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् ।। स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति ।। ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः ।। वेष्टितः किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वाञ्छितम् ।। इति स्कान्दात् ।। दिनद्वये अपराह्णव्याप्तवव्याप्तौ वा परैवेति युग्मवाक्यात् ।। प्रथमा श्रावणे मासि तथा

भाद्रपदे परा ।। तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिकी भवेत् ।। श्रावणे कलुषा नाम्नी तथा भाद्रे च निर्मला ।। आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिके याम्यतो मता ।। ।। इति ।। चतस्रो द्वितीया उपक्रम्य प्रथमायां किंचित्प्रायश्चित्तं द्वितीयायां सरस्वतीपूजा तृतीयायां श्राद्धमुक्त्वा चतुर्थ्यां यमपूजनमुक्तम् ।। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां युधिष्ठिर ।। यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ।। अतो यम-द्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।। अस्यां निजगृहे पार्थ न भोक्तव्यमतो नरैः ।। यत्नेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।। दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः ।। स्वर्णालंकारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः ।। सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः ।। प्रतिपन्नकाः–मित्रभगिन्य इति हेमाद्रिः ।। पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ।। मातुलस्य सुता हस्ताद्द्वितीयायां युधिष्ठिर ।। पितुर्मातुः स्वसुश्चैव तृतीयायां तयोः करात् ।। भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् ।। सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम् ।। धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधकम् ।। यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितो निजकरा-त्स्वसृसौहृदेन ।। तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नधनधान्य-मनुत्तमं सः ।। इति हेमाद्रौ भविष्ये यमद्वितीयाविधिः ।।

अथ यमद्वितीयाकथा–वालखिल्या ऊचुः ।। कार्तिकस्य सिते पक्षे द्वितीया यमसंज्ञिता ।। तत्रापराह्णे कर्तव्यं सर्वथैव यमार्चनम् ।। १ ।। प्रत्यहं यमुनागत्य यममप्रार्थयत्पुरा ।। भ्रातर्मम गृहं याहि भोजनार्थं गणावृतः ।। २ ।। अद्यश्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः ।। कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते ।। ३ ।। तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः ।। स गतः कार्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः ।। ४ ।। नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैः सह रवेः सुतः ।। कृतातिथ्यो यमुनया नानापाकाः कृतास्तथा ।। ५ ।। कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः ।। उद्वर्तनं लापयित्वाः स्नापितः सूर्यनन्दनः ।। ६ ।। ततोऽलंकारिकं दत्तं नाना-वस्त्राणि चन्दनम् ।। माल्यानि च प्रदत्तानि समं चोपर्युपाविशत् ।। ७ ।। पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वा सा स्वर्णभाजने ।। यमं च भोजयामास यमुना प्रीतमानसा ।। ८ ।। भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलंकारैः समर्चयत् ।। नानावस्त्रैस्ततः प्राह वरं वरय भामिनि ।। ९ ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् ।। यमुनोवाच ।। प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ।। १० ।। अद्य सर्वे मोचनीयाः पापिनो नरकाद्यम ।। ये चैव भगिनीहस्तात्करिष्यन्ति च भोजनम् ।। ११ ।। तेषां सौख्य-प्रदो हि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् ।। यम उवाच ।। यमुनायां तु यः स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ।। १२ ।। भुनक्ति भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि ।। कदाचिदपि

मद्द्वारं न स पश्यति भानुजे ।। १३ ।। वीरेशैशानदिग्भागे यमतीर्थं प्रकीर्तितम् ।। तत्र स्नात्वा च विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ।। १४ ।। पठेदेतानि नामानि आमध्याह्नं नरोत्तमः ।। सूर्यस्याभिमुखो मौनी दृढचित्तः स्थिरासनः ।। १५ ।। यमो निहन्ता पितृधर्मराजौ वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः ।। भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्त एतद्दशनामभिर्जपेत् ।। १६ ।। एतानि च तानि दश तैः नामदशकेनेत्यर्थः ।। ततो यमेश्वरं पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत् ।। मन्त्रेणानेन च तया भोजितः पूर्वमादरात ।। १७ ।। भ्रातस्तवानुजाताहं भुंक्ष्व भक्ष्यमिदं शुभम् ।। प्रीतये यमराजस्य यमुनायाः विशेषतः ।। १८ ।। सन्तोषयेद्यो भगिनीं वस्त्रालंकरणादिभिः ।। स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ।। १९ ।। नृपैः कारागृहे ये च स्थापिता मम वासरे ।। अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनार्थं स्वसुर्गृहे ।। २० ।। विमोक्तव्या मया पापा नरकेभ्योऽद्य वासरे ।। येऽद्य बन्दीकरिष्यन्ति ते दण्ड्या मम सर्वथा ।। २१ ।। कनीयसी स्वसा नास्ति तदा ज्येष्ठागृहं व्रजेत् ।। तदभावे सपत्नीजां तदभावे पितृव्यजाम् ।। २२ ।। तदभावे मातृस्वसुर्मातुलस्यात्मजां तथा ।। सापत्नगोत्रसम्बधैः कल्पयेत्तु यथाक्रमम् ।। २३ ।। सर्वाभावे माननीया भगिनी काचिदेव हि ।। गोनद्याद्यथवा तस्या अभावे सति कारयेत् ।। २४ ।। तदभावेऽप्यरण्यानीं कल्पयेत्तु सहोदरीम् ।। अस्यां निजगृहे देवि न भोक्तव्यं कदाचन ।। २५ ।। ये भुञ्जन्ति दुराचारा नरके ते पतन्ति च ।। स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।। २६ ।। दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः ।। श्रावणे तु पितृव्यस्य कन्याहस्तेन भोजनम् ।। २७ ।। मातुलस्य सुताहस्ताद्भोक्तव्यं भाद्रमासके ।। पितृमातृष्वसृकन्ये आश्विने तु तयोः करात् ।। २८ ।। अवश्यं कार्तिके मासि भोक्तव्यं भगिनीकरात् ।। एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः ।। २९ ।। तस्मादृषिवराः सर्वे कार्तिकव्रतकारिणः ।। भुञ्जन्तु भगिनीहस्तात्सत्यं सत्यं न संयशः ।। ३० ।। यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम् ।। न कुर्याद्वर्षजं पुण्यं नश्यतीति रवेः सुतम् ।। ३१ ।। या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ ।। अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ।। ३२ ।। भ्रातुरायुःक्षयो नूनंन भवेत्तत्र कर्हिचित् ।। अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने ।। ३३ ।। अज्ञानाद्यदि वा मोहान्न भुक्तं भगिनीगृहे ।। प्रवासिना वाभावाद्वा जरितेनाथ बन्दिना ।। एतदाख्यानकं श्रुत्वा भोजनस्य फलं लभेत् ।। ३४ ।। इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां यमद्वितीयाख्यानकं संपूर्णम् ।। भ्रातृद्वितीया ।। अत्रैव भ्रातृद्वितीयाविधिस्तिथितत्त्वे–यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत् ।। अर्घ्यश्चात्र प्रकर्तव्या यमाय सहजद्वयैः ।। सहजद्वयैः–भ्रातृभगिनीभिः ।। अर्घ्यमन्त्रस्तु–

एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश ।। भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते ।। धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज ।। त्राहि मां किंकरैः सार्द्धं सूर्य पुत्र नमोऽस्तु ते ।। लैङ्गे—कार्तिके तु द्वितीयायां शुक्लायां भ्रातृपूजनम् ।। या न कुर्याद्विनश्यन्ति भ्रातरः सप्तजन्मसु ।। पाद्मे उत्तरखण्डे—भद्रे भगिनी भो जातस्त्वदंघ्रिसरसीरुहम् ।। श्रेयसेऽद्य नमस्तुभ्यमागतोऽहं तवालयम् ।। मृदुवाक्यं ततः श्रुत्वा सत्वरं क्रियते तथा ।। अद्य भ्रातृमती भ्रातस्त्वया धन्यास्मि मानद ।। भोक्तव्यं तेऽद्य मद्गेहे स्वायुषे मम मानद ।। कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सहोदरः ।। यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ।। अस्मिन्दिने यमेनात्र नारी वा पुरुषोपि वा ।। अपविद्धाः कर्मपाशैः स्वेच्छया ये पचन्ति हि ।। पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ताः कर्मनिबन्धनात् ।। तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्र-सुखावहः ।। तस्माद्बन्धोऽत्र मद्गेहे भोजनं कुरु कार्तिके ।। आशिषः प्रतिगृह्याथ नमस्कृत्य समर्चयेत् ।। सर्वा भगिन्यः संपूज्या ज्येष्ठास्तत्र तु संस्मृताः ।। वस्त्रादिना च सत्कार्या निजवित्तानुसारतः ।। भ्रातुरायुष्यवृद्ध्यर्थं भगिनीभिर्यमस्य वै ।। पूजनीयाः प्रयत्नेन प्रतिमाश्च विधानतः ।। मार्कण्डेयो बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।। कृपो द्रौणिः परशुराम एतेऽष्टौ चिरजीविनः ।। मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ।। चिरंजीवी यथा त्वं हि तथा मे भ्रातरं कुरु ।। इति भ्रातृ-द्वितीया ।।

द्वितीयाव्रतानि

अथ यम द्वितीयाका व्रत—कार्तिकके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको यमद्वितीया कहते हैं, इसे ऐसीको लेना चाहिये जो कि अपराह्नमें भी व्यापक हो । क्यों कि, ऐसा लिखा मिलता है कि, जो मनुष्य कार्तिकके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको यमुनाजीमें स्नान करके अपराह्न समय यमका पूजन करता है वो यमलोकको नहीं देखता । प्यारे किन्नरोंसे घिरे हुए यमराज, कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वितीयाके दिन तृप्त और प्रसन्न करनेपर पूजन करने-वालेको मनवांछित फल देते हैं ऐसा स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है । यदि दो दिन द्वितीया हो, चाहे दोनों ही दिन मध्याह्नव्यापिनी हो, चाहें दोनों ही दिन मध्याह्न व्यापिनी न हो, तो दूसरीको ही यमद्वितीया माननी चाहिये । श्रावणमें पहिली तथा भादोंमें दूसरी एवम् क्वारमें तीसरी और कार्तिकमें चौथी ये चार यम—द्वितीयाएं होती हैं । श्रावणीका नाम कलुषा, तथा भादोंकीका नाम निर्मला, एवम् क्वारकीका नाम प्रेतसंचारा और कार्तिककी द्वितीयाका नाम यम द्वितीया है । इन चारोंमेंसे पहिलीमें प्रायश्चित्त तथा दूसरीमें सरस्वतीपूजा तीसरीमें श्राद्ध और चौथी यमद्वितीयामें यमका पूजन होता है । हे युधिष्ठिर ! पहिले यमुनाजीने यमको अपने घरपर बुला, सत्कार कर उसे भोजन कराया था इस कारण इसे तीनों लोकोंमें यमद्वितीया कहते हैं इसी कारण हे पार्थ ! इस द्वितीयाको अपने घरपर भोजन न करके प्रयत्नके साथ बहिनके हाथसे स्वादिष्ठ भोजन करना चाहिये तथा उस दिन बहिनको विशेषरूपसे दान देने चाहिये । सोनेके अलंकार, सुन्दर वस्त्र और सुस्वादु अन्नसे सभी बहिनोंकी पूजा, सत्कृति होनी चाहिये । यदि बहिन न हों तो जिन्हें बहिन मान रखा हो उनको इसी विधिसे सत्कृत करना चाहिये । क्योंकि, श्लोकमें जो प्रतिपन्नभगिनी शब्द आया है उसका अर्थ मानी हुई मित्र बहिन होता है ऐसा हेमाद्रिका मत है । हे युधिष्ठिर ! पहिली द्वितीयाको तो चाचाकी बेटीके

हाथसे तथा दूसरी द्वितीयाको मामाकी बेटीके हाथसे खाना चाहिये तथा क्वार शुदी द्वितीयाके दिन भूआकी या मौसीकी बेटीके हाथसे तथा कार्तिक शुक्ला द्वितीयाके दिन अपनी बहिनके, हाथसे सपत्नीक भोजन करना चाहिये. यदि ऐसा न हो सके तो सभी द्वितीयाओंको अपनी सगी बहिनके हाथसे धन्य एवम् यशके देनेवाला, आयुका बढ़ानेवाला और धर्म, अर्थ, कामका देनेवाला बलवर्धक भोजन करना चाहिये । जिस तिथिको भगिनी प्रेममें डूबी हुई यमुनाजीने अपने हाथसे यमदेवको जिमाया था, उस दिन जो मनुष्य अपनी बहिनके हाथसे जीमता है वो अपूर्व रत्न तथा धनधान्योंको प्राप्त होता है । यह हेमाद्रिमें भविष्यके अनुसार यमद्वितीयाकी विधि कही है ॥

यमद्वितीयाकी कथा–वालखिल्य ऋषि कहने लगे कि कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यमद्वितीया कहते हैं, उसमें सायंकारके समय यमका पूजन करना चाहिये ॥१॥ प्रति दिन श्रीयमुना महारानी आकर यमदेवकी प्रार्थना करने लगीं कि, हे भाई ! अपने सब इष्ट मित्रों को लेकर मेरे घर भोजनके लिये आओ ॥२॥ यमका भी यह काम रहता था कि कल आऊंगा या परसों आजाऊंगा क्योंकि, हम काममें लगे रहते हैं इस कारण अवकाश नहीं मिलता ॥३॥ हे मुनीश्वरो ! एक दिन जबरदस्ती निमन्त्रण दे दिया, तथा यह भी कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वितीयाको ययुनाजीके घर भोजन करने गया ॥४॥ जातीसार रविसुत यमने अपने पाशसे सब लोगोंको मुक्त कर दिया था एवम् अपने इष्ट गणोंको लेकर यमुनाजीके घर गया था तथा यमुनाजीने यमका प्रिय आतिथ्य किया और पाक भी अनेक तरहके बनाये ॥५॥ यमुनाजीने सुगन्धित तैलोंसे यमका अभ्यङ्ग किया, पीछे उवटने करके स्वच्छ जलसे स्नान कराया ॥६॥ पीछे यमके लिये अलंकार करनेके अनेक तरहके सामान वस्त्र और चन्दन माला आदिक दिये जो कि, मके नपानेके ही होते थे ॥७॥ अनेक तरहके पक्वान्नोंसे सोनेके थालोंको सजाकर अत्यन्त प्रसन्नताके साथ यमको भोजन कराया ॥८॥ भोजन करनेके पीछे यमने भी, अनेक तरहके वस्त्रालंकारोंसे बहिनका पूजन करके बहिनसे कहा कि, ए बहिन ! आपकी जो इच्छा हो सो मांगो ॥९॥ यमके ऐसे वचन सुनकर यमुनाजी कहने लगीं कि, आप प्रतिवर्ष आजके दिन मेरे घरपर भोजन करनेके लिये पधारा करें ॥१०॥ तथा जिन पापियोंने आजके दिन आपकी तरह अपनी बहिनके हाथसे भोजन किया हो, उन पापियोंको आप अपने पाशसे सदा मुक्त करते रहें एवम् जो बहिनके हाथसे इस प्रकार भोजन करें ॥११॥ आप उन्हें सदा सुख पहुंचावें, यही मैं आपसे वरदान मांगती हूं, इतनी सुनकर यम कहने लगा कि, जो तुझमें स्नान पर्पण करके ॥१२॥ बहिनके घर भोजन करे उसका पूजन करेंगे हे सूर्यपुत्रि ! वे मनुष्य कभी भी मेरे दरवाजे को न देखेंगे ॥ १३॥ वीरेश महादेवकी ईशानी दिशामें एक यमतीर्थ है, उनसमें स्नान करके विधिके साथ पितर और देवताओंका तर्पण करके ॥१४॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ, एकाग्र चित्तसे मौनपूर्वक स्थिरासनसे सूर्य्यके सामने मध्याह्न कालमें इन नामोंको पड़ता है ॥१५॥ वे नाम ये हैं कि यम, निहन्ता, पितृराज, धर्मराज, वैवस्वत, दण्डधर, काल, भूताधिप, दत्तकृतानुसारी और कृतान्त तथा इन दश नामोंका जप करता है ॥ १६ ॥ श्लोकमें जो "एतद्दशभिः" यह पद आया है, इसका ग्रन्थकार अर्थ करते हैं ये वे दश नाम हैं, इन दश नामोंके द्वारा यमका जप करता है ॥ इन दशनामोंसे यमेश्वरका जप पूजन करके बहिनके घर आजाय तथा बहिन भी इस मंत्रसे आदरके साथ भाईको भोजन करावै ॥ १७ ॥ कि, हे भाई ! मैं तेरी छोटी बहिन हूं, इस पवित्र भोजनको यमदेव और यमुनाजीको विशेषप्रसन्नताके लिये आप करें ॥ १८ ॥ वस्त्र और अलंकारोंसे बहिनको सन्तुष्ट करे, फिर स्वप्नमें भी यमलोकको दर्शन नहीं होते ॥ १९ ॥ राजाओं को भी यह चाहिये कि, जितने कैदी उनके जेलखानेमें हो वे सब इस दूजके दिन अपनी बहिनके घर जीमनेके लिये भेज देने चाहिये ॥ २० ॥ आजके दिन मैं भी पापियोंको नरकसे छोड़ूंगा तथा जो कोई राजे महाराजे आजके दिन किसीको कैद करेंगे वे जरूरही मेरे दण्डय होंगे ॥ २१ ॥ यदि छोटी बहिन न हो तो बडी बहिनके ही घर जाकर भोजन करना चाहिये, यदि बडी भी न हो तो अपनी माकी बहिनके यहां जाना चाहिये, कदाचित् यह भी न हो तो काका चाचा ताऊओंमेंसे किसीके यहा जा बहिनके हाथसे खाना चाहिये ॥ २२ ॥ यदि इनमें भी कोई न हो तो मौसीकी बेटीके घर जाना चाहिये, नहीं तो मामाकी बेटीके ही हाथसे भोजन करना चाहिये, यदि यह भी न हो तो गोत्र आदिकी कैसी भी बहिन अवश्य चाहिये ॥ २३ ॥ यदि अपने

सम्बन्धकी भी वहां कोई न हो तो मानी हुई बहिनके घरही भोजन करना चाहिये, नहीं तो गौ, नदी आदिकोही बहिन मानकर, उनके पास ही भोजन करना चाहिये ।। २४ ।। यदि ये भी न प्राप्त हों किसी वनीको ही अपनी बहिन मान ले, हे देवि ! इसमें अपने घरपर कभी भी भोजन न करना चाहिये ।। २५ ।। जो दुराचारी लोग यम द्वितीयाके दिन अपने घरपर भोजन करते हैं, वे नरकमें पडते हैं, इस दिन तो प्रेमके साथ बहिनके ही हाथसे पुष्टिकर पदार्थ खाने चाहिये ।। २६ ।। इस दिन बहिनको विशेष रूपसे दान देने चाहिये, श्रावणकी द्वितीयाको तो चाचाकी बेटीके हाथसे भोजन करना चाहिये ।। २७ ।। भादोंकी द्वितीयाको मामाकी बेटीके हाथसे, तथा कारकी द्वितीयाको मौसीकी बेटी अथवा भूआकी बेटीके हाथसे भोजन करना चाहिये ।। २८ ।। पर कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको जरूर ही अपनी बहिनके हाथसे भोजन करना चाहिये, ऐसा कहकर, धर्मराज यम संयमनी नामकी अपनी पुरीको चले गये ।। २९ ।। इस कारण हे कार्तिकके व्रत करनेवाले ऋषिवरो ! यम द्वितीयाके दिन बहिनके घर पहुँचकर, उनके हाथसे भोजन करो जो कुछ कहा गया है, इसमें सन्देह न करना, यह सत्य है ।। ३० ।। श्रीसूर्य भगवानने तो यहांतक कहा है कि, जो मनुष्य यमद्वितीयाके दिन बहिनके हाथका भोजन नहीं करता, उसके सालभरके किये हुए सब सुकृत नष्ट हो जाते हैं ।। ३१ ।। जो कोई स्त्री यम द्वितीयाके दिन भाईको अपने घरपर भोजन कराकर उसे पान खिलाती है वो कभी विधवा नहीं होती ।। ३२ ।। न उसके भाईकी आयुका ही क्षय होता है, अपराह्णतक रहनेवाली जब द्वितीया हो तबही भाईको भोजन कराना चाहिये ।। ३३ ।। यदि अज्ञानसे अथवा मोहसे या विदेशमें रहनेके कारण वा बन्दी होनेसे जिसने बहिनके हाथसे भोजन नहीं किया हो वो यमद्वियाकी कथाको सुनकर बहिनके हाथसे भोजनका फल पालेता है ।। ३४ ।। यह सनत्कुमारसंहिताकी कही हुई यम द्वितीयाकी कथा पूरी हुई ।। भैया दौज-अब तिथितत्त्वके अनुसार भैया दौजकी विधि कहते हैं । इस ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि, बहन और भाई दोनों मिलकर यम, चित्रगुप्त और यमके दूतोंका पूजन करें तथा सबको अर्घ दें । इस श्लोकमें जो 'सहज द्वयैः' यह पद आया है इसका बहिन भाई अर्थ है । इसीमें अर्घ्यका मंत्र लिखा हुआ है । जिसका अर्थ होता है कि, हे सूर्यके सुत ! पाश हाथोंमें रखनेवाले अन्तक ! सब लोगोंके धारण करनेवाले यम ! आओ, आओ, इस भैया दूजकी पूजा और अर्घको ग्रहण करो, आपके लिये वारंवार नमस्कार है । हे धर्मराज ! तेरे लिये नमस्कार है तथा हे यमुनाके बडे भाई ! तेरे लिये नमस्कार है अपने किंकरोंके साथ मेरी रक्षा करो, हे सूर्यसुत ! तेरे लिये वारंवार नमस्कार है । लिंगपुराणमें लिखा हुआ है कि, जो स्त्री इस भैया दूजके दिन भाईका पूजन नहीं करती, वो सात जन्मतक विना भाईकीही रहती है । पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा हुआ है कि-जब भाई बहिनके घर जाय तो बहिनसे कहे कि, हे भद्रे बहिन ! मैं तेरे चरण कमलोंको प्राप्त हुआ हूं, अपने श्रेयके लिये मैं तेरे घर आया हूं । भाईके ऐसे प्यारे वाक्योंको सुनकर बहिनको भी शीघ्रही कह देना चाहिये कि, आज मैं तेरेसे भाईवाली हुई हूं, हे मानके देनेवाले ! आज मैं तेरेसे धन्य हुई हूं ।। अब आप मेरी और अपनी आयुकी वृद्धिके लिये मेरे घरपर ही भोजन करें । क्योंकि कार्तिकके शुक्ल पक्षकी द्वितीया है, आजके ही दिन यमुनाजीने अपने सहोदर भाई यमदेवजीको अत्यन्त सन्मानके साथ जिमाया था । जो स्त्री, पुरुष यमलोकमें अपने अशुभ कर्मोंके फलोंको भोग रहे थे, जिन्होंने अपने बुरे परिपाकको आप उपस्थित किया था आज यमने उन सबको छोड दिया है, वे कर्मबन्धनसे छूट गये हैं उन लोगोंका यमके दरबारमें बडा भारी महोत्सव हो रहा है, जिसमें सभी आनन्द मना रहे हैं । इस कारण हे भाई ! आज इस भैया दूजको मेरे घरपर भोजन करो, और भी अनेक प्रकारकी आशिष करती हुई भाईको नमस्कार करके उसका पूजन करे, सबही बहिनोंका पूजन सत्कार होना चाहिये, पर बडी बहिनका तो मुख्य रूपसे अपनी शक्तिके अनुसार पूजन करना ही चाहिये । पीछे सब बहिनोंको चाहिये कि, वे मिलकर भाईकी आयुकी वृद्धिके लिये यमकी प्रतिमाका पूजन करें। मार्कण्डेय, बलि, व्यास, हनूमान, विभीषण, कृप, द्रौणि और परशुराम ये आठत्रचिरंजीवी हैं । हे सात कल्पतक जीनेवाले, महाभाग्यशाली, चिरंजीवी मार्कण्डेय ! जैसे आप हैं वैसा ही मेरे भाईको भी कर दें ।। इति भ्रातृद्वितीया ।।

अथ तृतीयाव्रतानि

सौभाग्यशयनव्रतम् ।। तत्र चैत्रशुक्लतृतीयायां सौभाग्यशयनव्रतम् । मात्स्ये मत्स्य उवाच ।। वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय ।। सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रमुखेप्सुभिः ।। शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत् ।। तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती ।। पाणिग्रहणिकैर्मन्त्रैरुद्ढा वरवर्णिनी ।। तया सहैव देवेशं तृतीयायां समर्चयेत् ।। फलैर्नानाविधैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्य संयुतैः ।। [1]प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन च ।। पञ्चामृतैः स्नापयित्वा गौरीं [2]शंकरसंयुताम् ।। नमोऽस्तु पाटलायै च पादौ देव्याः शिवस्य तु ।। शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोस्तथा ।। त्रिगुणायेति रुद्रस्य भवान्यै जंघयोर्युगम् ।। शिवं रुद्रेश्वरायेति जयायै इति जानुनी ।। संकीर्त्य हरिकेशाय तथोरू वरदे नमः ।। ईशायेशं कटिं रत्यै शंकरायेति शंकरम् ।। कुक्षिद्वयेच कोटर्यै शूलिनं शुलपाणये ।। मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चापि पूजयेत् ।। सर्वात्मने नमो रुद्र मीशान्यै च कुचद्वयम् ।। शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत् ।। त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम् ।। त्रिलोचनायेति हरं बाहू कालानलप्रिये ।। सौभाग्यभुवनायेति [3]भूषणाहिं समर्चयेत् ।। स्वाहास्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनः ।। अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च कामदौ ।। स्थाणवे च हरं तद्वदास्यं चन्द्रमुखप्रिये ।। नमोऽर्द्धनारीशहरमसिताङ्गीतिनासिकाम् ।। नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ।। शर्वाय पुरहन्तारं वासुदेव्यै तथालकम् ।। नमः श्रीकण्ठनाथाय शिवं केशांस्तथार्चयेत् ।। भीमोग्रसौम्यरूपिण्यैः शिरः सर्वात्मने नमः ।। शिवमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः ।। स्थापयेद्वृत्तनिष्पावकुसुंभक्षीरजीरकम् ।। तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुंबुरुमथाष्टमम् । दत्तं सौभाग्यकृद्यस्मात्सौभाग्याष्टकमित्यतः ।। एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुरः । चैत्रे श्रृङ्गोदकं प्राश्य स्वपेद्भूमावरिन्दम ।। पुनः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः ।। संपूज्य द्विजदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः ।। सौभाग्याष्टकसंयुक्त सुवर्णप्रतिमाद्वयम् ।। प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। एवं संवत्सरं यावत्तृतीयायां सदा मुने ।। प्राशने दानमंत्रे च विशेषं हि निबोध मे ।। गोश्रृङ्गोदकमाद्ये स्याद्वैशाखे गोमयं पुनः । ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् ।। श्रावणे दधि संप्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम् । क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्त्तिके पृषदाज्यकम् ।।

---

१ गौरीशयोः प्रतिमामित्यर्थः । २ स्वापयित्वाऽर्चयेग्दौरीमिन्दुशेखरसंयुतामितिपाठोहेमाद्रितार्कयोः। ३ भूषणाहिं शिवम् ।

मार्गशीर्षे गोमूत्रं पौषे संप्राशयेद्घृतम् ।। माघे कृष्णतिलांस्तद्वत्पञ्चगव्यं च फाल्गुने ।। ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ।। वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती ।। उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ।। मल्लिकाशोक कमलकदम्बोत्पलमालती ।। कुब्जकं करवीरं च बाणमल्लानकुंकुमम् ।। सिन्दुवारं च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् ।। बाणम्-नीलकुरण्टकः ।। अम्लानम्-महासहापुष्पम् ।। सिन्दुवारम्-निर्गुण्डीपुष्पम् ।। जपाकुसुमकौसुंभमालतीशतपत्रिकाः ।। यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा ।। एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ।। स्त्री वा भक्त्या कुमारी वा शिवावभ्यर्च्यशक्तितः । व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ।। उमाममहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह ।। स्थापयित्वा च शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। अन्यान्यपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभिः ।। धान्यालंकारगोदानैरभ्यर्च्य धनसञ्चयैः ।। वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः ।। एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशयनव्रतम् ।। सर्वान्कामानवाप्नोति पदमानन्त्यमश्नुते ।। फलस्यैकस्य च त्यागमेतत्कुर्वन् समाचरेत् ।। यत्र कीर्ति समाप्नोति प्रतिमासं नराधिप ।। सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालंकारभूषणैः ।। न वियुक्ता भवेद्राजन्नब्दार्बुदशतत्रयम् ।। यस्तु द्वादशवर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ।। करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः ।। पूज्यमानो वसेत्सम्यग्यावत्कल्पायुतत्रयम् ।। नारी वा कुरुते भक्त्या कुमारी वा नरेश्वर ।। सापि तत्फलमाप्नोति देव्यानुग्रहलालिता । शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ।। सोपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत् ।। इति मत्स्यपुराणे सौभाग्यशयनव्रतम् ।।

अथ तृतीयाके व्रत

मत्स्यपुराण में लिखा है कि, चैत्रशुक्ल तृतीयाको सौभाग्यशयन नामका व्रत होता है। मत्स्य भगवान् कहते हैं कि, वसन्तऋतुके महीनामें तृतीयाके दिन हे जनप्रिय ! दासी और पुत्र सुख चाहनेवाली स्त्रियोंको सौभाग्यके लिये व्रत करना चाहिये ।। पहिले तो शुक्लपक्षके पूर्वाह्णमें तिलोंसे स्नान करना चाहिये । क्योंकि, इसी दिन वरवर्णिनी सती देवीका वैदिकविधिसे परमेश्वर शिवके साथ विवाह हुआ था, अनेक तरहके फूलोंसे, धूपसे, दीपसे और नैवेद्यसे सती देवीके साथ शिवजीका पूजन करना चाहिये । शंकर भगवान् सहित गौरी देवीकी प्रतिमाको पंचगव्यसे गंधोदकसे और पंचामृतसे स्नान कराना चाहिये । दोनोंके अंग प्रत्यङ्गोंके पूजनके मंत्र भिन्न भिन्न हैं, उनसे ही अंग प्रत्यंगोंका पूजन होना चाहिये "ओम् पाटलायै नम :" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् शिवाय नमः" इस मंत्रसे शिवके चरणोंकी पूजा करनी चाहिये । "ओम् जयायै नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् त्रिगुणाय नमः" इस मंत्रसे शिवके गुल्फोंका पूजन करना चाहिये ।।"ओम् भवान्यै नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् रुद्रेश्वराय नमः" इस मंत्रसे शिवके जंघाओंका पूजन करना चाहिये "ओम् जयायै नमः" इससे गौरीके जानु तथा "ओम् हरिकेशाय नमः" इस मंत्रसे शिवके जानुओंका पूजन करना चाहिये । 'ओम् वरदायै नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् ईशाय नमः" इस मंत्रसे शिवके ऊरुओंका पूजन करना चाहिये। "ओम् रत्यै नमः' इस मंत्रसे गौरीकी तथा 'ओम् शंकराय नमः" इस मंत्रसे शिवकी कटिका पूजन करना चाहिये । "ओम् कोटयै नमः" इस मंत्रसे गौरीकी तथा "ओम् शूलपाणये-

नमः" इस मंत्रसे शिवकी दोनों कोखोंका पूजन करे ।।ओम् मंगलायै नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् सर्वात्मने नमः" इस मंत्रसे शिवके उदरको पूजे ।।ओम् ईशान्यै नम : इस मंत्रसे पार्वतीके कुचोंको तथा "ओंवेदात्मने नमः" इस मंत्रसे शिवके कुचोंको पूजना चाहिये । "ओम् रुद्राण्यै नमः इस मंत्रसे गौरीसे तथा "ओम् त्रिपुरघ्नाय नमः" इस मंत्रसे शिवके कंठका पूजन करना चाहिये । "ओम् अनन्तायै नमः इस मंत्रसे श्री गौरीके तथा "ओम् त्रिलोचनाय नमः" इस मंत्रसे शिवके करोंका पूजन होना चाहिये । "ओम् कालानलप्रिये नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम सौभाग्यभुवनाय नमः" इस मंत्रसे शिवके दोनों बाहुओंकी पूजा करनी चाहिये । "ओम् स्वाहा स्वधायै" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् ईश्वराय नमः" इस मंत्रसे शिवके मुखकी पूजा करनी चाहिये । "ओम् अशोक मधुवासिन्यै नमः" इस मंत्रसे गौरीके और "ओम् स्थाणवेनमः" इस मंत्रसे शिवके होठोंका पूजन होना चाहिये । "ओम् चन्द्रमुखप्रियायै नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् अर्धनारीशायनमः इस मंत्रसे शिवके मुखका दुबारा पूजन करना चाहिये । "ओम् असिताङ्गायै नमः" इस मंत्रसे गौरीको तथा "ओम् उग्राय नमः" इस मंत्रसे शिवजीकी नासिकाका पूजन होना चाहिये। "ओम् ललितायै नमः" इस मंत्रसे गौरीकी तथा "ओम् शर्वाय पुरहन्त्रे नमः" इस मंत्रसे शिवकी भौंहोंका पूजन करना चाहिये । "ओम् वासुदेव्यैः नमः" इस मंत्रसे गौरीके तथा "ओम् श्रीकण्ठाय नमः इस मंत्रसे शिवके केशोंका पूजन करना चाहिये । "ओम् भीप्रसौम्यरूपिण्यै नमः" इस मंत्रसे गौरीके और "ओम् सर्वात्मने नमः" इस मंत्रसे शिवके शिरका पूजन करना चाहिये । इस प्रकार दोनोंका पूजन कर लेनेके बाद, इनके सामने सौभाग्यकी आठ वस्तुओंका निवेदन करना चाहिये । मटर, कसूम, दूध, जीरा, तालपत्र, ईखका गाडा, लवण और कुस्तुम्बुरु इदको सौभाग्याष्टक करते हैं । क्योंकि, ये वस्तु सौभाग्यके करनेवाली हैं । अरिन्दम ! इस प्रकार दोनों के सामने सौभाग्याष्टकका निवेदन करके, पीछे गोशृंगके परिमाणमात्र पानी पीकर भूमिपर शयन करना चाहिये । दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य कर्मसे निवृत्त होकर माला वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मण दम्पतियोंका पूजन करे, पीछे सौभाग्याष्टकके साथ गौरी पार्वतीकी बनीहुई सोनेकी व्रतमूर्तिको उस ब्राह्मणको दे दे और कहे कि, इस दानसे ललिता देवी मुझपर प्रसन्न हो जाय इसीतरह चैत्रशुक्ला तृतीयासे लेकर प्रतिमासकी शुक्ला तृतीयाको यह व्रत करना चाहिये । इसके प्राशन और दान-मंत्रोंमें जो कुछ विशेषताए हैं उन्हें भी कहते हैं । गोशृंगमात्रतो पानी पहिलीमें तथा वैशाखको थोडासा गोबर खाकरही रहजाना चाहिये, ज्येष्ठमें मन्दारके फूल तथा आषाढमें बेलपत्र श्रावणमें थोडासा दही, भादोंमें कुशका पानी, क्वार में दूध, कार्तिकमें गायका आज्य, मार्गशीर्षमें गोमूत्र, पौषमें घी, माघमें कालेतिल और फागुनमें पंचगव्य लेना चाहिये । दानके समय यह कहना चाहिये कि, ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मंगला, कमला, सती ये सब देवियाँ इस दानसे परमप्रसन्न होजायँ, पीछे दान देना चाहिये । इन नामोंमेंसे हरएक नामको लेकर उसके पीछे "प्रीयताम्" लगाना चाहिये तथा पहिलेमें पहिली और दूसरेमें दूसरी देवीकी प्रसन्नताके लिये दान देना चाहिये, तथा उसीके लिये "प्रीयताम्" कहना चाहिये । चैत्रमें मल्लिकाके, वैशाखमें अशोकके ज्येष्ठमें कमलके, आषाढमें कदम्बके, श्रावणमें उत्पलके, भाद्रपदमें मालतीके, क्वारमें कुब्जकके, कार्तिकमें करवीरके, अगहनमें बाणके, पौषमें अम्लानके, माघमें कुंकुमके, और फागुनमें सिंधुरवारके फूलोंके फूलोंको चढाना चाहिये । बाण नाम नीले कुंरटकका है – महासहाको अम्लान कहते हैं । निर्गुण्डीको सिन्धुवार कहते हैं । जपा, कुसुम, कौसुंभ, मालती और शतपत्रिका मिलजायं तो चढावे, नहीं तो रहने दे, पर करवीरकी कभी नागा न होनी चाहिये, उसे तो अवश्यही चढ़ाना चाहिये । स्त्री हों अथवा कुमारी हों, इस प्रकार एक सालतक व्रत करती हुई शक्तिके अनुसार शिवपूजन करती रहें, व्रतकी समाप्तिपर सब उपकरणोंके साथ शय्यादान करना चाहिये, उसपर सोनेके शिव, गौरी पार्वती शक्ति हो उसके अनुसार दूसरी २ भी वस्तु जोडेसे देनी चाहिये. इसके शिवा और भी धान्य अलंकार आदि अनेक धन संचयोंसे ब्राह्मण ब्राह्मणीको पूजना चाहिये । वित्तके दानमें शठता न होनी चाहिये, निःसन्देह होकर करना चाहिये । जो इस प्रकार भलीभांति सौभाग्यशयनका व्रत करती है वो सब कामोंको प्राप्त हो, अन्तमें मोक्षकी पदवीको प्राप्त होजाती है । किसी एक फलका त्याग करके व्रत करना चाहिये । हे राजन् ! जो इस व्रतको प्रतिमास करती है वो सौभाग्य, आरोग्य, रूप, आयु, वस्त्र, अलंकार और भूषणोंसे एक अर्ब वर्षतक कभी भी वियुक्त नहीं होती । जो कोई बारह वर्षतक सौभाग्य

शयनीका व्रत करेगी अथवा ७ वर्ष आठ वर्षतक इस व्रतको करती रहेगी वो देवतोंसे पूजित हुई तीस हजार कल्प कैलासमें निवास करेगी । हे राजन् जो स्त्री वा कुमारी भक्तिके साथ इस व्रतको करती है वह भी भगवतीके अनुग्रहसे पूर्वोक्त फलको पाती है । जो कोई इस व्रतकी कथाको सुनेगा अथवा जो कोई इसव्रतके करनेकी सलाहदेगा वहभी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गमें वास करेगा । गौरीके दोलाका उत्सव-इसी तृतीयाको गौरीके हिंडोलेका उत्सव होता है । इसी विषयपर हेमाद्रिमें देवीभागवतको लेकर कहा है कि, जिस स्त्रीको अपने शुभकी इच्छा हो उसे चैत्रशुक्ला तृतीयाके दिन गौरी पार्वतीका पूजन करके डोलेका उत्सव करना चाहिये ।

अत्रैव गौर्या दोलोत्सवः

तदुक्तं हेमाद्रौ देवीपुराणे–चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम् ।। संपूज्य दोलोत्सवकं कुर्यान्नारी शुभेप्सुका ।। तथा च निर्णयामृते–तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् ।। कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रस्त्रगर्चिताम् ।। सुगन्धिपुष्पधूपैश्च दमनेन विशेषतः ।। तत आन्दोलयेद्वत्स शिवोमातुष्टये सदा ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रातर्देया तु दक्षिणा ।। सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्या पुत्रसुखेप्सुभिः इय च परा ग्राह्या ।। मुहूर्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे । इति माधवोक्तेः ।। इय च मन्वादिः ।। कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु ।। हायनानि द्विसाहस्र पितॄणांतृप्तिदं भवेत् ।। अधिमासेपि इदं कर्तव्यम् ।। अत्र पिण्डदानं नास्ति ।। अथ चैत्रशुक्लतृतीयायां मनोरथ तृतीयाव्रतम् । [1]ईश्वर उवाच ।। साधु कृतं त्वया देवि कृतवत्या परिग्रहम् ।। अस्येह धर्मपीठस्य [2]मनोरथकृतः सताम् ।।१ ।। त एव विश्वभोक्तारो विश्वमान्यास्त एव हि ।। ये त्वां विश्वभुजामत्र पूजयिष्यन्ति मानवाः ।।२।। विश्वे विश्वभुजे विश्वस्थित्युत्पत्तिलयप्रदे ।। नरास्त्वदर्चकाश्चात्र भविष्यन्त्यमलात्मकाः ।। ३ ।। मनोरथतृयायां यस्ते भक्तिं विधास्यति ।। तन्मनोरथसंसिद्धिर्भवित्री मदनुग्रहात् ।।४।। नारी वा पुरुषो वापि त्वद्व्रताचरणात्प्रिये ।। मनोरथानिह प्राप्य ज्ञानमन्ते च लप्स्यते ।। ५ ।। देव्युवाच ।। मनोरथतृतीयाया व्रतं कीदृक्कथानकम् ।। किंफलं कैः कृतं नाथ कथयैतत्कृपां कुरु ।। ६ ।। ईश्वर उवाच ।। श्रणु देवि यथा पृष्टं भवत्या भवतारिणि ।। मनोरथव्रतं चैतद्गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।। ७ ।। पुलोमतनया पूर्वं तताप परमं तपः ।। कंचिन्मनोरथं तप्तं न चाप तपसः फलम् ।।८।। अपूजयत्ततो मां सा भक्त्या परमया मुदा ।। गीतेन सरहस्येन कलकण्ठी[3] कलेन हि ।। ९ ।। तद्गानेनातिसन्तुष्टो मृदुना मधुरेण च।। सुतालेन सुरङ्गेण [4]धातुमात्राकलावता ।। १० ।। प्रोवाच त्वं वरं ब्रूहि प्रसन्नोस्मि पुलोमजे । अनेन च सुगीतेन त्वनया लिङ्गपूजया ।। ११ ।। पुलोमजोवाच ।। यदि प्रसन्नो देवेश तदा यो मे मनोरथः ।। तं पूरय महादेव महादेवीमहाप्रिय

१ काश्या धर्मपीठमाश्रित्यस्थितां पार्वतीं प्रति शिवोक्ति काशीखंडे । २ षष्ठयन्तमिदम् । ३ कोकिलाया मधुरस्वरतुल्येनेत्यर्थः । ४ तानमानकलावतेत्यर्थः ।

।। १२ ।। सर्वदेवेषु यो मान्यः सर्वदेवेषु सुन्दरः ।। यायजूकेषु सर्वेषु यः श्रेष्ठः सोस्तु मे पतिः ।। १३ ।। यथाभिलषितं रूपं यथाभिलषितं सुखम् । यथाभिलषितं चायुः प्रसन्नो देहि मे भव ।। १४ ।। यदा यदा च पत्या मे सङ्गः स्याद्धृत्सुखेच्छया ।। तदा तदा च तं देहं त्यक्त्वाऽन्यं देहमाप्नुयाम् ।। १५ ।। सदा च लिङ्गपूजायां मम भक्तिरनुत्तमा ।। भव भूयाद्भवहर जरामरणहारिणी ।। १६ ।। धर्तुर्व्ययेपि वैधव्यं क्षणमात्रमपीह न ।। मम भावि महादेव पातिव्रत्यं च यातु मा ।। १७ ।। स्कन्द उवाच ।। इमं मनोरथं तस्याः पौलोम्याः पुरसूदन ।। समाकर्ण्य क्षणं स्थित्वा प्राहेशो विस्मयान्वितः ।। १८ ।। ईश्वर उवाच ।। पुलोमकन्ये यश्चैष त्वयाऽकारि मनोरथः ।। लप्स्यसे व्रतचर्यातस्तत्कुरुष्व जितेन्द्रिया ।। १९ ।। मनोरथतृतीयायाश्चरणेन भविष्यति ।। तत्प्राप्तये व्रतं वक्ष्ये तद्विधेहि यथोदितम् ।। २० ।। तेन व्रतेन चीर्णेन महासौभाग्यदेन तु ।। अवश्यं भविता बाले तव चैवं मनोरथः ।। २१ ।। पुलोमकन्योवाच ।। कारुण्यवारिधे शम्भो प्रणतप्राणिसर्वद ।। [1]किंनामा चाथ का शक्तिः का पूज्या तत्र देवता ।। २२ ।। कदा च तद्विधातव्यमितिकर्तव्यता च का ।। त्याहकर्ण्य शिवो वाक्यं तां तु प्रणिजगाद ह ।।२३।।ईश्वर उवाच ।। मनोरथतृतीयाया व्रतं पौलोमि तच्छुभम् ।। पूज्या विश्वभुजा गौरी भुर्जाविंशतिशालिनी।।२४।।वरदाभयहस्तश्च साक्षसूत्रः समोदकः ।। देव्याः पुरस्ताद्व्रतिना पूज्य आशाविनायकः ।।२५।। चतुर्भुजश्चारुनेत्रः सर्वसिद्धिकरः प्रभुः ।। चैत्रशुक्लद्वितीयायां कृत्वा वै दन्तधावनम् ।। २६ ।। सायन्तनीं च निर्वर्त्य नातितृप्त्या भुजिक्रियाम् ।। नियमं चेति गृह्णीयाज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।। २७ ।। संत्यक्तास्पृश्यसंस्पर्शः शुचिस्तद्गतमानसः ।। प्रातर्व्रतं चरिष्यामि मातर्विश्वभुजेऽनघे ।। २८ ।। विधेहि तत्र सान्निध्यं मन्मनोरथसिद्धये ।। नियमं चेति संगृह्य स्वपेद्रात्रौ शुभं स्मरन् ।। प्रातरुत्थाय मेधावी विधायावश्यकं विधिम् ।। २९ ।। शौचमाचमनं कृत्वा दन्तकाष्ठं समाददेत् ।। ३० ।। अशोक वृक्षस्य शुभं सर्वशोकनिशातनम् ।। नित्यन्तनं च निष्पाद्य विधिं विधिविदां वर ।। ३१ ।। स्नात्वा शुद्धाम्बरः सायं गौरीपूजां समाचरेत् ।। आदौ विनायकं पूज्य घृतपूरान्निवेद्य च ।। ३२ ।। ततोर्चयेद्विश्वभुजामशोककुसुमैः शुभैः ।। अशोकवर्तिनैवेद्यैर्धूपैश्चागुरुसंभवैः ।। ३३ ।। कुंकुमेनानुलिप्यादावेकभुक्तं ततश्चरेत् ।। अशोकं वर्तिसहितैर्धृतपूरैर्मनोहरैः ।। ३४ ।। एवं चैत्रतृतीयायां व्यतीतायां पुलोमजे ।। राधादिफाल्गुनान्तासु तृतीयासु व्रतं चरेत् ।। ३५ ।। क्रमेण दन्तकाष्ठानि कथयामि तवानघे ।। अनुलेपनवस्तूनि कुसुमानि तथैव च ।। ३६ ।। नैवेद्यानि गजास्यस्य

---

१ किमात्मिकार्यका शक्तिरिति क्वचित्पाठः ।

देव्याश्चापि शुभव्रते ।। अन्नानि चैकभक्तस्य शृणु तानि फलाप्तये ।। ३७ ।- जम्ब्वपामार्गखदिर जातीचूतकदम्बकम् ।। प्लक्षोदुम्बरखर्जूरीबीजपूरीसदाडिमी ।। ३८ ।। दन्तकाष्ठद्रुमा एते व्रतिनः समुदाहृताः ।। सिन्दूरागुरुकस्तूरी चन्दनं रक्तचन्दनम् ।। ३९ ।। गोरोचनं देवदारुं पद्माक्षं च निशाद्वयम् ।। प्रीत्यानुलेपन बाले यक्षकर्दमसंभवम् ।। ४० ।। सर्वेषामप्यलाभे च प्रशस्तो यक्षकर्दमः ।। कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुङ्कुमस्य च ।। ४१ ।। चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि ।। यक्षकर्दम इत्येष समस्तसुरवल्लभः ।। ४२ ।। अनुलिप्याथ कुसुमैरर्चयेद्वचिम तान्यपि ।। पाटलामल्लिकापद्मकेतकीकरवीरकैः ।। ४३ ।। उत्पलैराजचंपैश्च नन्द्यावर्तैश्च जातिभिः ।। कुमारीभिः कर्णिकारैरलाभे तच्छदैः सह ।। ४४ ।। सुगन्धिभिः प्रसूनौघैः सर्वालाभेऽपि पूजयेत् ।। करम्भो दधिभक्तं च सचूतरसमण्डकाः ।। ४५ ।। फेणीका वटकाश्चैव पायसं च सशर्करम् ।। समुद्गं सघृतं भक्तं कार्त्तिके विनिवेदयेत् ।। ४६ ।। इन्देरिकाश्च लड्डुका माघे लंपसिका शुभा ।। मुष्टिकाः[1] शर्करागर्भाः सर्पिषा परिसाधिताः ।। ४७ ।। निवेद्याः फाल्गुने देव्यै सार्द्धं विघ्नजिता मुदा ।। निवेदयेद्यदन्नं हि एकभक्तेऽपि तत्स्मृतम् ।। ४८ ।। अन्यन्निवेद्य सम्मूढो भुञ्जानोत्पतेदधः ।। प्रतिमासं तृतीयायामेवमाराध्य वत्सरम् ।। ४९ ।। व्रतसंपूर्तये कुर्यात्स्थण्डिलेऽग्निसमर्चनम् ।। जातवेदसमंत्रेण तिलाज्यद्रविणेन च ।। ५० ।। शतमष्टाधिकं होमं कारयेद्विधिना व्रती ।। सदैव नक्ते पूजोक्ता सदा नक्ते तु भोजनम् ।। ५१ ।। नक्त एव हि होमोऽयं नक्त एव क्षमापनम् ।। गृहाण पूजां मे भक्त्या मार्तविघ्नजिता सह ।। ५२ ।। नमोस्तु ते विश्वभुजे पूरयाशु मनोरथम् ।। नमो विघ्नकृते तुभ्यं नम आशाविनायक ।। ५३ ।। त्वं विश्वभुजया सार्द्धं मम देहि मनोरथम् ।। एतौ मंत्रौ समुच्चार्य पूज्यौ गौरीविनायकौ ।। ५४ ।। व्रतक्षमापने देयः पर्यङ्कस्तूलिकान्वितः ।। उपधान्य समायुक्तो[2] दीपीदर्पणसंयुतः ।। ५५ ।। आचार्यं च सपत्नीकं पर्यंके उपवेश्य च ।। व्रती समर्चयेद्वस्त्रैः करकर्णविभूषणैः ।। ५६ ।। सुगन्धं चन्दनैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितः ।। दद्यात्पयस्विनीं गां च व्रतस्य परिपूर्तये ।। ५७ ।। तथोपभोगवस्तूनि च्छत्रौपानत्कमण्डलून् ।। मनोरथतृतीयाया व्रतमेतन्मया कृतम् ।। ५८ ।। न्यूनातिरिक्तं संपूर्णमेतदस्तु भवद्गिरा ।। इत्याचार्य समापृच्छ्य तथेत्युक्तश्च तेन वै ।। ५९ ।। आसीमान्तमनुव्रज्य दत्त्वान्येभ्योपि शक्तितः ।। नक्तं समाचरेत् योष्यैः सार्द्धं सुप्रीतमानसः ।। ६० ।। प्रातश्चतुर्थ्यां संभोज्य चतुरश्च कुमारकान् ।।

---

१ पूरिकाः २ दीपधारिका पुत्तलिका

अभ्यर्च्य गन्धमाल्याद्यैर्द्वादशापि कुमारिकाः ।। ६१ ।। एवं संपूर्णतां याति व्रतमेतत्सुनिर्मलम् ।। कार्यं मनोरथावाप्त्यै सर्वैरेतद्व्रतं शुभम् ।। ६२ ।। पत्नीं मनोरमां कुल्यां मनोवृत्त्यनुसारिणीम् ।। तारिणीं दुःखसंसारसागरस्य पतिव्रताम् ।। ६३ ।। कुर्वंश्चैतद्व्रतं वर्षं कुमारः प्राप्नुयात्स्फुटम् ।। कुमारी पतिमाप्नोति स्वाढ्यं सर्वगुणाधिकम् ।। ६४ ।। सुवासिनी लभेत्पुत्रान् पत्युः सौख्यमखण्डितम् ।। दुर्भगा सुभगा स्याच्च धनाढ्या स्याद्दरिद्रिणी ।। ६५ ।। विधवापि न वैधव्यं पुनराप्नोति कुत्रचित् ।। गुर्विणी च शुभं पुत्रं लभते सुचिरायुषम् ।। ६६ ।।ब्राह्मणो लभते विद्यां सर्वसौभाग्यदायिनी ।। राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं वैश्यो लाभं च विन्दति ।। ६७ ।। चिन्तितं लभते शूद्रो व्रतस्यास्य निषेवणात् ।। धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ।। ६८ ।। कामी कामानवाप्नोति मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् । यो यो मनोरथो यस्य स तं तं विन्दते ध्रुवम् ।। ६९ ।। मनोरथतृतीयाया व्रतस्य चरणाद्व्रती ।।७०।। इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे उत्तरार्धे अशीतितमेऽध्याये चैत्रशुक्लतीयायां मनोरथतृतीयाव्रताख्यानं संपूर्णम् ।।

निर्णयामृतमें भी लिखा हुआ है कि, चैत्र शुक्ला तृतीयाके दिन, कुंकुम, अगरु, कर्पूर, मणि, वस्त्र, माला, सुगन्धित पुष्प, धूप और कस्तूरीसे गौरीसहित शिवका पूजन करना चाहिये, पीछे शिवके सहित पार्वतीजीका डोला निकालना चाहिये, इनकी प्रसन्नताके लिये रातको जागरण करके भक्तिपूर्ण पद गाने चाहियें, प्रातःकाल दक्षिणा देनी चाहिये, जो पुत्रसुखकी इच्छा करती हों अथवा जो सौभाग्य चाहें उन्हें अवश्य ही इस व्रतको करना चाहिये । यहां उदयव्यापिनी तृतीयाका ग्रहण है क्योंकि, माधवाचार्यका ऐसा मत है कि चौथमें, उदयकालमें यदि एक मुहूर्त भी तृतीया हो तो, उसीमें ये सब कार्य करने चाहियें, ये मन्वादि तिथि हैं, इसके लिये लिखा हुआ है कि, मन्वादि और युगादि तिथिमें विधानके साथ किया हुआ श्राद्ध दोहजार वर्षतक पित्रीश्वरोंकी तृप्ति करताहै अधिमासमें भी इसे करे, पर अधिमासमें पिण्डदानका विधान नहींहै ।। मनोरथ तृतीयाका व्रत–चैत्र शुक्ला तृतीयाको मनोरथ तृतीयाका व्रत होता है एक दिन महादेवजी पार्वतीजीसे बोले कि हे उमे ! तुमने परिग्रह करतेहुए यह बहुत ही अच्छा किया जो सज्जनोंको मनोरथपूर्णकरनेवाले धर्मपीठको तुमने ग्रहण किया है ।। १ ।। जो मानव विश्वके भोगनेवाली तेरा पूजन करते हैं वेही सब वस्तुके भोगनेवाले और विश्वके वन्दनीय होते हैं ।। २ ।। हे विश्वात्मके ! हे विश्वको भोगनेवाली ! हे संसारकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकी मालिकिनि ! तेरा पूजन करनेसे मनुष्योंका अन्तरात्मा शुद्ध हो जाता है ।। ३ ।। जो कोई मनोरथ तृतीयाके दिन तेरी भक्ति करेगा मेरी कृपासे उसके मनोरथकी सिद्धि अवश्य ही होवेगी ।।४ ।। हे प्यारी ! स्त्री हो वा पुरुष हो, तेरे व्रतको करके यहां मनोरथोंको पाता है तथा अन्तमें उसे ज्ञान प्राप्त होता है ।। ५ ।। इतना सुनकर पार्वतीजी पूछने लगीं कि, मनोरथ तृतीयाका व्रत कैसे होता है तथा उसकी कथा कैसी है, एवम् कैसे यह व्रत किया जाता है तथा इसका फल क्या है ? यह तो कृपा करके बतलाइये ।। ६ ।। श्री गौरीके ऐसे वचन सुनकर शिवजी कहने लगे कि, हे संसारसे पारलगानेवाली ! तुमने जो पूछा है, उसे सुनो, यह मनोरथ देनेवाला व्रत है । गोपनीयसे भी परम गोपनीय है ।। ७ ।। एकवार पुलोमाकी सुयोग्य पुत्रीने किसी मनोरथको पानेके लिये कठिन तप किया । पर उसे वो फल नहीं मिला ।। ८ ।। इसके पीछे उसने परम प्रसन्नताके साथ भक्तिभावसे मेरा पूजन किया तथा कोयलकेसे कंठसे मुझे अनेकों रहस्य पूर्ण गाने सुनाये ।। ९ ।। वो साधारणगान नहीं था, वो कोमल और मधुर था, लय, ताल

मात्रा आदिसे परिपूर्ण था ।। १० ।। मैं प्रसन्न होकर बोला कि, क्या मांगती है, मांग । मैं तेरी लिंगपूजा और इस गानेसे परम प्रसन्न हुआ हूं ।। ११ ।। पुलोमाकी पुत्री बोली कि, हे पार्वतीके प्यारे महादेव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे मनोरथोंको पूराकरो ।। १२ ।। सब देवोंमें जो मान्य हो तथा सब देवोंमें जो सुन्दर हो तथा यज्ञ करनेवालोंमें जो सर्वश्रेष्ठ हो, वो ही मेरा पति हो ।। १३ ।। हे भव ! आप प्रसन्न होकर मुझे जैसा मैं चाहूं वैसा रूप सुख और आयु प्रदान करें ।। १४ ।। हृदयके सुख पहुँचानेकी इच्छासे, जब जब मेरा पतिके साथ संग हो, तब तब मैं, उस देहको छोडकर दूसरे देहको पाजाऊं ।। १५ ।। हे भव हर ! ! जरा और मरणको नाश करनेवाली मेरी तो अलौकिक भक्ति, आपकी लिंगपूजामें हो ।। १६ ।। हे महादेव ! पतिके व्यय होजानेपर भी मैं एकक्षण भरभी विधवा न होऊं तथा भविष्यका मेरा पातिव्रत भी अक्षुण्ण बनारहे ।। १७ ।। इतनी कथा सुना कर स्कन्द कहने लगे कि, पुरसूदन शिवपुलोमजाके इन मनोरथोंको सुनकर विस्मयके मारे एक क्षण तो रुकेरहे ।। १८ ।। फिर बोले–हे पुलोमजे ! जो तूने मनोरथ कियाहै वह अवश्य ही तुझे प्राप्त होगा पर प्राप्त होगा व्रतकरनेसे ।। १९ ।। इस कारण तू जितेन्द्रिय होकर व्रत कर, मनोरथ तृतीयाके व्रत करनेसे वो होगा मैं उस व्रतकी विधि बतलाता हूं, जैसी बताऊं वैसीही करना ।। २० ।। हे बाले ! उस सौभाग्यके देनेवाले व्रतके करनेपर तेरे मनोरथ अवश्य ही पूरे होजायंगे ।। २१ ।। यह सुनकर पुलोमाकी कन्या कहनेलगी कि, हे करुणाके खजाने ! हे शरणोंके रक्षक ! सर्वस्वके दाता शिव देव ! उस व्रतका क्या नाम है, उसमें क्या शक्ति है, उसमें किस देवताका पूजन होता है ।। २२ ।। कब उस व्रतको एवम् कैसे करना चाहिये ? पुलोमजाके ऐसे वचन सुनकर शिव कहने लगे कि ।। २३ ।। हे पुलोमजे ! मनोरथ तृतीयाका व्रत बडा अच्छा है इसमें चारों ओर बीस भुजावाली गौरीका पूजन करना चाहिये ।। २४ ।। ठीक देवीके सामने ही आशा विनायक गणेशका पूजन करना चाहिये, ये गणेश वरके देनेवाले, हाथमें अभय लिये हुए अक्षसूत्र पहिने हुए लड्डू हाथमें लिये हुए आशा विनायक हैं, इनका देवीसे पहिले पूजन करना चाहिये ।। २५ ।। ये चार भुजावाले और सुन्दर नेत्रवाले हैं एवम् सब सिद्धिके करनेवाले हैं । चैत्र शुक्ला द्वितीयाको सोती वार दातुन करे ।। २६ ।। तथा सायंकालको हलका भोजन करके क्रोध रहित जितेन्द्रिय होकर, नियमको ग्रहण करे ।। २७ ।। द्वितीयाकी रातको ही अस्पृश्योंके स्पर्शको छोड़े पवित्रताके साथ भगवतीमें मनको लगाकर कहे कि, हे अनघे ! विश्वभुजे माता मैं प्रातःकाल तेरा व्रत करूंगा ।। २८ ।। आप मेरे मनोरथ सिद्ध करनेके लिये अपनी संनिधि दें । इस प्रकार नियमका ग्रहण करके शुभका स्मरण करता हुआ सो जाय ।। २९ ।। व्रत करनेवाले बुद्धिमान्को चाहिये कि प्रातःकाल उठ, आवश्यक कार्य्योंसे निवृत्त होकर, शौच आचमन करके दातुन करे ।। ३० ।। अशोक वृक्षकी दातुन उत्तम है, यह सब शोकोंका नाश करती है विधि जानने-वालेको उचित है कि वो, नित्यकी विधियोंका संपादन करके ।। ३१ ।। स्नान करके पवित्र वस्त्रोंको धारण करे, फिर पूजाओंसे विनायकका पूजन करके, गौरीका पूजन करे ।। ३२ ।। इस कृत्यके पीछे अशोकके फूल और अशोकके नैवेद्य एवम् अगरुके धूपसे विश्वभुजादेवीका पूजन करे ।। ३३ ।। कुकुमसे देवीका लेपन करना चाहिये । व्रतीको चाहिये कि, उन्हीं पूआ एवम् नैवेद्य आदिका ही एकवार, आहार करे ।। ३४ ।। हे पुलो-मजे ! इस प्रकार चैत्रकी तृतीयाको व्यतीत करके वैशाखकीसे लेकर फाल्गुनकी तृतीया तक व्रत करना चाहिये।३५।हे निष्पाप पुलोमजे! जिन जिन तृतीयाओंमें जिस जिस पेड़की दातुन एवम् देवीके लेपकी वस्तु और जिन जिन वृक्षोंके फूल आते हैं, वह भी मैं तुझे बताताहूं ।। ३६ ।। हे शुभव्रते ! विनायक तथा देवीके नैवेद्य तथा एकबार भोजन करनेवालेके अन्न भी फल प्राप्तिके लिये बताता हूं तू सावधान होकर सुन ।। ३७ ।। जामुन, अपामार्ग, खदिर, जाती, चूत (आम) कदम्ब, प्लक्ष, उदुम्बर, खर्जूर, बीजपूरी अनार ।। ३८ ।। ये व्रत करनेवाले पुरुषोंकी दातुनहैं । चैत्रकीसे लेकर एक एकमें एक एक वृक्षकी तथा माघ और फाल्गुन इन दोनों मासोंकी तीजोंको अनारकी हो दातुन करनी चाहिये । सिन्दूर, अगुरु, कस्तूरी, चंदन, रक्तचन्दन ।। ३९ ।। गोरोचन, देवदारु, पद्म, अक्ष, दोनों हलदी, ये प्रत्येकमासमें क्रमसे अनुलेपन होते हैं । हे बाले ! प्रीतिका अनुलेपन यक्ष कर्दमका है ।। ४० ।। सबके अभाव में यह यक्षकर्दम ही प्रशस्त है, दो अंश कस्तूरी और ो अंश कुंकुम ।। ४१ ।। तीन अंश चन्दन, एक अंश कपूर, इन सबको मिलानेसे देवताओंका प्यारा यक्षकर्दम

बनजाता है, जिसे सब देवता प्यारा समझते हें ।। ४२ ।। इन वस्तुओंका लेपन करके पुष्पोंको चढ़ावें उन फूलोंको भी बताये देते हें–पाटल, चमेली, कमल, केतकी, करवीर ।। ४३ ।। उत्पलराज, चम्पा, जुही, जाती, कुमारी और कर्णिकारके फूलोंसे चैत्रादि मासमें क्रमसे पूजन करे । यदि फूल न मिलें तो उनके पात्रोंसेही पूजन कर लेना चाहिए । ।। ४४ ।। यदि बताये हुये वृक्षोंके न तो फूल ही मिलें और न पत्ते ही मिलें तो कोई भी सुगंधित फूल हो उसीसे पूजन कर देना चाहिये ।। करंभ, दही, भात, आमका रस, माड, ।। ४५ ।।फेणीका वडा, शक्कर पडी हुई खीर, मूंग और घीसहित भात, ये सब कार्तिक मासके नैवेद्यहें ।।४६।। जलेबी, लड्डू हलुवा, तथा घीके मौमन दी हुई पर्गमां पूडी ।। ४७ ।। यह नैवेद्य फागुनके महीनेमें विनायक और माताके सामने निवेदन करना चाहिये, यही एक भक्तवाले के भी लिये है ।। ४८ ।। जो व्रती अपने नैवेद्यसे इतरका भोजन करता है तो उसका अधःपतन होता है. कही हुई विधिसे प्रत्येक मासकी तृतीयाका व्रत करना चाहिये इस प्रकार एक सालतक करना चाहिए ।। ४९ ।। व्रतकी पूर्तिके लिये तिल, आज्य आदिसे "ओम् जातावेदसे" इस मन्त्रसे स्थण्डिल पर अग्निहोत्र करना चाहिये ।। ५० ।। "ओम् जातवेदसे सुनवाम सोमम्, अरातीयतो निदहाति वेदः ।। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।।" मैं जातवेदा अग्निके लिये सोमका सेवन करता हूं, वो मेरे वैरियोंके धनको जला रहा है,एवम् मुझे मेरी आपत्तियोंसे इस प्रकार पारलगा रहा है, जैसे चतुर मल्लाह समुद्रमेंसे नावको पार लेजाता है ।। विधिके साथ १०८ वार हवन करना चाहिये सदा रातको पूजा और रातकों ही भोजन करना चाहिये ।। ५१ ।। रातको ही हवन करना चाहिये । एवम् रातकोही क्षमापन करना चाहिये ।। हे–मातः ! भक्तिके साथ जो मैं तेरी पूजा कर रहा हूं, उसे विनायकके साथ ग्रहण कर ।। ५२ ।। हे विश्वभुजे ! तेरे लिये नमस्कार है, मेरे मनोरथोंको शीघ्रही पूरा कर, हे–विघ्नेश ! हे आशाविनायक ! तेरे लिये बारम्बार नमस्कार है ।। ५३ ।। हे विनायक ! आप विश्वभुजाके साथ मेरे मनोरथोंको पूरा करो । इन मन्त्रोंको कहकर गौरी और विनायककी पूजा कर देनी चाहिये ।। ५४ ।। व्रतके अपराधोंको क्षमा करानेके लिये व्रतीको चाहिये कि, सर्वोपरकरणसहित शय्यादान करे, जिसपर तकिया दर्पण आदि सब कुछ हें ।। ५५ ।। यहभी व्रतीका कर्तव्य है कि, आचार्य्य और उनकी पत्नी दोनोंको पलङ्गपर बिठाकर, वस्त्र तथा हाथ और कानोंके आभूषणोंसे उनका पूजन करे ।। ५६ ।। सुगन्ध चन्दन मालाएँ एवम दूध देनेवाली गौ और दक्षिणाएँ ये सब चीजें आनन्दके साथ व्रतकी पूर्तिके लिए दे ।। ५७ ।। तैसे ही उपभोगकी अन्य वस्तुएं छत्र, जूते, कमण्डलु इनको भी आचार्य्यको देना चाहिये, इसके पीछे आचार्य्यसे पूछना चाहिये कि, मनोरथ तृतीयाका जो मैंने व्रत किया है ।। ५८ ।। इसमें जो कमी वेशी हुई हो वो आपके वचनों से पूरी होजाय । आचार्य्यको भी चाहिये कि, कह दे कि, आपका व्रत सबतरहसे पूरा होगया ।। ५९ ।। अपनीसीमा तक आचार्य्य-को विदा करने जाय, दूसरे जो याचक आदि बैठे हों उन्हें भी यथाशक्ति दान दे, पीछे अपने अनुजीवियोंको साथ लेकर रातको प्रसन्न चित्तसे भोजन करे, ।। ६० ।। चौथके दिन चार, पांच २ वर्षके लडके एवम् १२ पांच पांच वर्षकी लडकियोंको गन्ध, माल्यसे पूजन करके उन्हें भोजन कराना चाहिये ।। ६१ ।। इस प्रकार यह सुनिर्मल व्रत पूरा होता है, जिन्हें मनोरथ पूरा करनेकी इच्छा हो उन्हें चाहिये कि, वो इस शुभ व्रतको करें ।। ६२ ।। मनको आनन्द देनेवाली तथा मनके अनुसार चलनेवाली दुःखसंसारके समुद्रसे पार लगानेवाली कुलीन तथा पतिव्रताको ।। ६३ ।। वो कुमार प्राप्त करता है, जो एक साल तक इस व्रतको करता है, तथा इस व्रतको एक सालतक करनेवाली कुमारी सर्वगुण सम्पन्न धनी पतिको पाजातीहै ।। ६४ ।। सुवासिनी स्त्रीको पुत्र और पतिका अखण्डित सौख्य प्राप्त होता है । इस व्रतके प्रभावसे दुर्भगा सुभगा और दरिद्रा धनाढ्य बनजाती है ।। ६५ ।। विधवाभी फिर कभी वैधव्यको प्राप्त नहीं होती ।। गर्भिणीको अच्छा, चिरजीवी पुत्र मिलता है ।। ६६ ।। ब्राह्मणको सब सौभाग्योंको देनेवाली विद्याकी प्राप्ति होती है, राज्यभ्रष्टको राज्य तथा वैश्यको धनका लाभ होता है ।। ६७ ।। जो शूद्र इस व्रतको करे तो, उसकी चाही हुई वस्तु उसे मिल जाय, धर्मार्थी धर्म तथा धनार्थी धनको पा जाता है ।। ६८ ।। कामीको काम तथा मोक्षार्थीको मोक्ष मिलता है जिसका जो मनोरथ होता है इस व्रतके करनेसे उसे वही मिल जाता है यह निश्चित है ।। ६९ ।। मनोरथ तृतीयाके व्रत करनेसे व्रतीको सब कुछ मिलता है ।। ७० ।। यह स्कन्द पुराण काशीखण्ड उत्तरार्धके ८० वें अध्यायकी चैत्र शुक्ला तृतीयामें की मनोरथ तृतीयाके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथ अरुन्धतीव्रतम्

अथ चैत्रशुक्लतृतीयायां मध्याह्नव्यापिन्यामरुन्धतीव्रतम् । तत्र स्त्रीणामेवाधिकारः–अवैधव्यादिफलश्रवणात् ।। तत्रादौ संकल्पः मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च बालवैधव्यनाशार्थमनेकसौभाग्यपुत्ररूपसंपत्तिसमृद्ध्यर्थमरुन्धतीव्रतमहं करिष्ये । निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं करिष्ये इति संकल्प्य धान्योपरि कलशस्थपूर्णपात्रे हैमीं वसिष्ठं ध्रुवं च संस्थाप्य पूजयेत् ।। तद्यथा–अष्टकर्णिकया युक्ते मण्डले पूजयेत्तु ताम् ।। अरुन्धतीं महादेवीं वसिष्ठसहितां सतीम् ।। आवाहनम् ।। अरुन्धति महादेवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।। दिव्यं सुचारुवेषं च आसनं प्रतिगृह्यताम् ।। आसनम् ।। सुचारु शीतलं दिव्यं नानागन्धसुवासितम् ।। पाद्यं गृहाण देवेशि अरुन्धति नमोस्तु ते ।। पाद्यम् ।। अरुन्धति महाभागे वसिष्ठप्रियवादिनि ।। अर्घ्यं गृहाण कल्याणि भर्त्रा सह पतिव्रते ।। अर्घ्यम् ।। गङ्गातोयं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।। आचम्यतां महाभागे वसिष्ठसहितेऽनघे ।। आचमनीयम् ।। गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।। स्नापितासि मया देवि तथा शान्ति कुरुष्व मे ।। स्नानम् ।। नानारङ्गसमुद्भूतं दिव्यं चारु मनोहरम् ।। वस्त्रं गृहाण देवेशि अरुन्धति नमोस्तु ते ।। वस्त्रम् ।। कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नैः समन्वितम् ।। गृहाण त्वं मया दत्तमरुन्धति नमोस्तु ते ।। उपवस्त्रम् ।। कर्पूरकुङ्कुमैर्युक्तं हरिद्रादिसमन्वितम् ।। कस्तूरिकासमायुक्तं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। हरिद्रा कुंकुमं चैवं सिन्दूरं कज्जलान्वितम् ।। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। सौभाग्यद्रव्यम् ।। माल्यादीनि सुगं० पुष्पम् ।। वनस्पतिरसोद्भूतो० धूपम् ।। आज्यं च वर्तिसंयुक्तम्० दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। नैवेद्यं गृह्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ।। नैवेद्यम् ।। पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्ल्या दलैर्युतम् ।। कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।।ताम्बूलम् ।। इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि ?? फलम् ।। हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे । दक्षिणाम् ।। पुत्रान्देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते । अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोस्तु ते ।। प्रार्थनाम् ।। अरुन्धति महाभागे वसिष्ठप्रियवादिनि ।। सौभाग्यं देहि मे देवि धनं पुत्रांश्च सर्वदा ।। उत्तरार्घ्यम् ।। द्विभुजां चारुसर्वाङ्गीं साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।। प्रतिमां काञ्चनीं कृत्वा नामभिः परिपूजयेत् ।। देववन्द्यायै नमः पादौ पूजयामि ।। लोकवंद्यायै० जानुनी पू० । संपत्तिदायिन्यै० कटी पू० । गंभीरनाभ्यै० नाभिपू० । लोकधात्र्यै० स्तनौपू० । जगद्धात्र्यै० कण्ठंपू० । शान्त्यै न० बाहूपू० । वरप्रदायै० हस्तौपू० । धृत्यैन०

मुखंपू० । अरुन्धत्यै० शिरःपू० । सकलप्रियायै० शिखांपू० । वसिष्ठप्रियायै० वसिष्ठध्रुवसहितं सर्वाङ्गं पू० । नमो देव्यै इति नीराजनम् ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। वायनं दद्यात्–वंशपात्रे स्थितं पूर्णं वाणकं घृतसंयुतम् ।। अरुन्धती प्रीयतां च ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ।। वायनम् ।। सुवर्णमूर्तिसंयुक्तां वसिष्ठध्रुवसंयुताम् । अरुन्धतीं सोपचारां ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ।। मूर्तिदानमंत्रः ।। गच्छ देवि यथास्थानं सर्वालंकारभूषिते ।। अरुन्धति नमस्तुभ्यं देहि सौभाग्यमुत्तमम् ।। इति विसर्जनम् ।। अथकथा–स्कन्द उवाच ।। पुरावृत्तमिदं विप्राः शृणुध्वं व्रतमुत्तमम् ।। आसीत्कश्चित्पुरा विप्र सर्वशास्त्रविशारदः ।। १ ।। तस्यैका कन्यका जाता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।। ततो विवाहं सम्यग्वै पिता 'तस्याकरोद्द्विजः ।। २ ।। कुलशीलवते दत्ता सा कन्या वरवर्णिनी ।। अचिरेणैव कालेन भर्त्ता तस्या मृतो द्विजः ।। ३ ।। बालरण्डा तु सा जाता निर्वेदादगमद्गृहात् ।। यमुनातीरमासाद्य चकार विपुलं तपः ।। ४ ।। एकभुक्त्यादिकैश्चैव कृच्छ्रचान्द्रायणैस्तथा ।। मासोपवासनियमैरात्मानं पावयत्सती ।। ५ ।। कदाचिदागतस्तत्र भ्रमन् गौर्या सदाशिवः ।। यमुनातीरमासाद्य वनितां तां ददर्श सा ।। ६ ।। कृपया च शिवा गौरी महादेवमुवाच सा ।। देव केनेदृशीं प्राप्ता बालवैधव्यतादशाम् ।। ७ ।। वद मां कृपया देव कृपां कुरु दयानिधे ।। महादेव उवाच ।। अयं विप्रः पुरा गौरि कुलशीलयुतो भुवि ।। ८ ।। तेन कन्या परिणीता सुरूपा युवती सती ।। स तां विवाह्य तरुणीं विदेशमगमद्द्विजः ।। ९ ।। ततो बहुतिथं कालं सापश्यद्भर्तुरागमम् ।। नागतस्तु तदा विप्रो यावज्जीवं गतो द्विजः ।। १० ।। तस्या जन्म गतं सर्वं विफलं पतिना विना ।। तेन पापेन विप्रोऽसौ नारीत्वं प्राप्तवाञ्छिवे ।। ११ ।। स्वनारीं यः परित्यज्य निर्दोषां कुलसम्भवाम् ।। याति देशान्तरं चाथ अन्धा इव महार्णवे ।। १२ ।। परदाररतो वा स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रियम् ।। सोऽन्यजन्मनि देवेशि स्त्रीभूत्वा विधवा भवेत् ।। १३ ।। या नारी तु पतिं त्यक्त्वा मनोवाक्कायकर्मभिः ।। रहः करोति वै जारं गत्वा वा पुरुषान्तरम् ।। १४ ।। भोगान् भुक्त्वा च या योषिन्मदेन प्रमदा सती[1] ।। तेन कर्मविपाकेन सा नारी विधवा भवेत् ।। १५ ।। स्वपत्नीं कुलसंभूतां पतिव्रतरतां सतीम् ।। अनुकूलां परित्यज्य परां यो याति स्वेच्छया ।। १६ ।। स पापी जायतेऽन्यस्मिन्स्त्रीहीनो विप्रजन्मनि ।। अनेन सदृशं देवि लोकेऽस्मिन्नास्ति पातकम् ।। १७ ।। न वैधव्यात्परो व्याधिर्न वैधव्यात्परो ज्वरः ।। न वैधव्यात्परः शोको न वैधव्यात्परोऽङ्कुशः ।। १८ ।। निरयो न च वैधव्यात्कष्टं वैधव्यता नृषु ।। तेन पापेन बहुना जायते बालरण्डिका ।। १९ ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा सा गौरी विस्मिता-

१ तिष्ठतीतिशेषः

भवत् ।। पप्रच्छ तं महादेवं गौरी सा करुणान्विता ।। २० ।। केनेदृशं महत्पापं बालवैधव्यदायकम् ।। नश्यते कर्मणा देव तन्मां वद कृपां कुरु ।। २१ ।। महादेव उवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बालवैधव्यनाशनम् ।। अरुन्धतीव्रतं पुण्यं नारी-सौभाग्यदायकम् ।। २२ ।। यत्कृत्वा बालवैधव्यान्मुच्यते नात्र संशयः ।। श्रुतमे-तत्तदा विप्रा गौर्या शंकरतो व्रतम् ।। २३ ।। यमुनातीरमासाद्य उपविष्टं तदा द्विजाः ।। तस्यै नार्ये महादेव्या कारितं व्रतमुत्तमम् ।। २४ ।। तेन पुण्येन महता व्रतजेन मुनीश्वराः ।। सा नारी चागमत्स्वर्गमुक्ता वैधव्यतस्तदा ।। २५ ।। इत्थं व्रतं श्रुतं सम्यगुपदिष्टं मुनीश्वराः ।। कृतमन्यैश्च बहुभिस्तेऽपि मुक्ता मुनी-श्वराः ।। २६ ।। अरुन्धतीव्रतमिदं सदा कार्यं मुनीश्वराः ।। नारी वैधव्यतो मुच्येत्सौभाग्यं प्राप्नुयात्परम् ।। २७ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे अरुन्धतीव्रतम् ।। अथ उद्यापनम् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि अरुन्धत्याः सुरेश्वर ।। भक्तितः श्रोतुमिच्छामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। कृष्ण उवाच ।। अरुन्धतीव्रतं वक्ष्ये नारीसौभाग्यदायकम् ।। येन चीर्णेन वै सम्यक् नारी सौभाग्यमाप्नुयात् ।। जायते रूपसंपन्ना पुत्रपौत्रसमन्विता ।। वसन्तर्तु समासाद्य तृतीयायां युधिष्ठिर ।। माघे वा माधवे चैव श्रावणे कार्तिकेऽथवा ।। स्नानं कृत्वा तु वै सम्यक् त्रिरात्रोपोषिता सती ।। मिथुनानि च चत्वारि समाहूय पतिव्रता ।। पूजयेत्पुष्पतांबूलैश्चन्दनैश्च तथाक्षतैः ।। कुंकुमागुरुकस्तूरीकर्पूरमृगनाभिभिः ।। शिलापट्टे च संस्थाप्य जीरकं लवणान्वितम् ।। लोष्टकेन समायुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।। आवाहयेदरुन्धतीं वसिष्ठप्राणसंमिताम् ।। पतिव्रतानां सर्वासां मुख्यां वै देवभामिनीम् ।। द्विभुजां चारुसर्वाङ्गीं साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।। प्रतिमां काञ्चनीं कृत्वा नामभिः परिपूज-येत् ।। वसिष्ठं च ध्रुवं चैव [1]प्रतिमां पूजयेद्व्रती ।। देववन्द्ये नमः पादौ जानुनी लोकवन्दिते ।। कटिं संपूजयेत्तस्याः सर्वसंपत्तिदायिनि ।। नाभिं गभीरनाभ्यै तु लोकधात्र्यै तथा स्तनौ ।। जगद्धात्र्यै तथा स्कन्धौ बाहू शान्त्यै नमस्तथा ।। हस्तौ तु वरदायै तु मुखं धृत्यै नमः पुनः ।। अरुन्धत्यै शिरः पूज्य सर्वाङ्गं सकलप्रिये ।। एवं संपूज्य तां देवीं गन्धपुष्पोपचारकैः ।। पूजयित्वा सतीं देवीं ततश्चार्घ्यं प्रदा-पयेत् ।। अरुन्धति महाभागे वसिष्ठप्रियवादिनि ।। सौभाग्यं देहि मे देवि धनं पुत्रांश्च सर्वदा ।। पुत्रान्देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते ।। अन्यांश्च सर्व-कामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। सुवासिन्योथ संपूज्याः समाप्तिदिवसे तदा ।। शुभगन्धाक्षतैः पुष्पैर्दद्याच्छूर्पेण भक्षकान् ।। होमं चैव तदा कुर्यात्समिद्भिश्च तिलैः पृथक् ।। संख्ययाष्टोत्तरशतं प्रार्थनामन्त्रतः सुधीः ।। मिथुनानि च संपूज्य

---

१ प्रतिमारूपं वसिष्ठं ध्रुवं चेत्यर्थः

भूषणाच्छादनादिभिः ।। नानाविधोपचारैश्च चतुर्विंशतिसंख्यया ।। आचार्याय च गां दद्याद्वस्त्राण्याभरणानि च ।। शय्यां सोपस्करां दद्यात्कांस्यपात्रं सदीपकम् ।। आदर्शं चामरं चैव अश्वं दद्यात्सुशोभनम् ।। यथावद्भोजयित्वाथ स्त्रियः शूपात्समोदकान् ।। मोदकान्काञ्चनं चैव तथा वस्त्रं यथाविधि ।। पोलिका घृतपूपांश्च पूरिकाश्च विशेषतः ।। सोहालिकाश्च दातव्या एकैकं द्विगुणं तथा ।। भोजनद्वयपर्याप्तं दीनानाथांश्च पूजयेत् ।। अनेनैव विधानेन भामिनी कुरुते व्रतम् ।। अवैधव्यमवाप्नोति तथा जन्मसहस्रकम् ।। पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमावृता ।। जीवेद्वर्षशतं साग्रं सहभर्त्रा महाव्रता ।। एवमभ्यर्चयित्वा तु पदं गच्छेदनामयम् ।। देवभार्या यथा स्वर्गे ऋषिभार्या यथैव च ।। राजते च महाभागा सर्वकामसमृद्धिभिः।। इति श्रीस्कन्दपुराणे अरुन्धतीव्रतोद्यापनम् ।।

अरुन्धतीका व्रत–मध्याह्न व्यापिनी चैत्रशुक्ला तृतीयाको अरुन्धती व्रत होता है । इस व्रतके करनेका अधिकार स्त्रियोंको ही है । क्योंकि, इसके अवैधव्य आदिक फल सुने जाते हैं । व्रतके आदिमें संकल्प है कि, अपने इस जन्मके और जन्मान्तरोंके वैधव्यको नाश करनेके लिये तथा अनेक सौभाग्य और पुत्ररूपसमृद्धिके लिये अरुन्धतीके व्रतको मैं करती हूं ।। यह व्रत निर्विघ्न समाप्त हो जाय इस कारण गणपतिजीका पूजन भी करती हूं ।। पीछे धान्योंके ऊपर कलश रखकर, उस कलशपर पूर्णमपात्रकी स्थापना करके, उसपर सोनेके गौरी, वसिष्ठ और ध्रुवको स्थापित करके पूजन करना चाहिये । पूजनकी विधि यह है कि आठ कर्णिकाके मण्डलपर वसिष्ठजीसहित सती अरुन्धतीको विराजमान करके पूजना चाहिये । देवी, अरुन्धतीके लिये नमस्कार है, मैं अरुन्धतीका आवाहन करता हूं । इत्यादि आवाहनके मंत्र है । हे महादेवी ! हे सब सौभाग्योंके देनेहारी देवी अरुन्धती ! आप इस मेरे सुन्दर सुहावने आसनको ग्रहण करो । इससे आसन देना चाहिये ।। हे देवोंकी मालिका अरुन्धती ! इस सुन्दर शीतल और अनेक सुगन्धोंसे सुगन्धित पाद्यको ग्रहण करो । आपके लिये नमस्कार है । इससे पाद्य देना चाहिये । अर्घका मंत्र हे वसिष्ठकी प्यारी बोलनेवाली महाभाग कल्याणी अरुन्धती ! अपने पतिके साथ मेरे अर्घको ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है ।। आचमनका मंत्र–हे निष्पापदेवि ! अरुन्धति ! आप वसिष्ठजीके साथ आचमन करिये, मँगाया हुआ गंगाजल सोनेके कलशमें रखा हुआ है ।। स्नानका मंत्र–हे देवि ! आपको, गंगा, सरस्वती, रेवा, पयोष्णी और नर्मदाके जलसे मैंने जैसे स्नान कराया है तैसेही आप भी मुझे शान्ति दें । वस्त्रका मंत्र–हे देवेशि ! अरुन्धति ! सुन्दर मनोहर दिव्य एवम् अनेक रंगोंका रँगा हुआ वस्त्र ग्रहण करिये, आपके लिये नमस्कार है । उपवस्त्रका मंत्र–हे देवि ! अरुन्धति ! तेरे लिये नमस्कार है, अनेक रत्नोंके साथ कंचुकी और उपवस्त्र देता हूं, ग्रहण करिये । चन्दनका मंत्र–चन्दन ग्रहण करिये इसमें कपूर, कुंकुम, हलदी और कस्तूरी पडी हुई हैं । सौभाग्य द्रव्यका मंत्र–हलदी, कुंकुम और कज्जल समेत सिन्दूरको मैं भक्तिभावसे निवेदन करता हूं, हे परमेश्वरि ! ग्रहणकर । पुष्पोंका मंत्र–"माल्यादीनि सुगन्धीनि मालन्यादीनि वैप्रभो । मयाऽऽहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्।।" हे प्रभो ! मैंने आपकी पूजाके लिये मालती आदिके सुगन्धित पुष्प इकट्ठे किये हैं आप उन्हें ग्रहण करिये । धूपका मंत्र–"वनस्पति रसोद्भूतः सुगन्धाढ्यो मनोहरः ।। आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।" अत्यन्त सुगन्ध मिला हुआ मनोहर तथा सबके सूंघनेलायक, एवम् वनस्पतियोंके रससे बनना हुआ यह धूप है, इसे ग्रहण करिये । दीपदानका मंत्र–"साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण देवेशि त्रैलोक्यतिमिरापहे ।।" बत्ती पडे हुए घीके दीपकको जला दिया है, हे देवेशि ! इस तीनों लोकोंके अन्धकारको नष्ट करनेवाली, इस दीपकको ग्रहण करिये । नैवेद्यनिवेदनका मंत्र–हे परमेश्वरि ! छहों रसोंसे युक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और पेय यह चारों तरहका स्वादिष्ठ अन्न तैयार है, इस नैवेद्यको ग्रहण करिये और प्रसन्न हूजिये । पान लीजिये

इसमें कपूर इलायची सुपारी और नागवल्लीके पत्ते पडे हुए हैं, इससे ताम्बूलनिवेदन कर दे । हे देवि ! यह फल मैंने आपके सामने रखा है, इससे मुझे जन्म जन्ममें सफला अवाप्ति हो । इससे फला० । अग्निका हेम बीज हिरण्य गर्भके गर्भस्थ है अनन्त फलका देनेवाला है, उससे मुझे शान्ति दे । इससे दक्षिणा० हे सुव्रते ! मुझे सौभाग्य दे, धन दे और पुत्रादिक दे तथा और भी सब कामोंको दे, तेरे लिये नमस्कार है । इससे प्रार्थना करे । हे वसिष्ठकी प्रियवादिनी महाभागे अरुन्धती देवि ! सौभाग्य दे । और सदा धन तथा पुत्रादिक दे । इससे उत्तर अर्घ दे । सुन्दर शरीरवाली तथा अक्षसूत्र और कमण्डलुसे युक्त दो भुजोंकी सोनेकी प्रतिमा बनाकर नाम मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये । देववन्द्यके लिये नमस्कार है, चरणोंको पूजता हूं । लोकवन्द्यके लिये नमस्कार है, जानुओंका पूजन करता हूं । संपत्तिदायिनीके लिये नमस्कार है, कटीको पूजता हूं । गंभीर-नाभीवालीके लिये नमस्कार है, नाभिको पूजता हूं । लोकधात्रिके लिये नमस्कार है, स्तनोंको पूजता हूं । जगद्धात्रीके लिये नमस्कार है । कंठको पूजता हूं । शांतिके लिये नमस्कार है, बाहुओंका पूजन करता हूं । वरप्रदाके लिये नमस्कार है, हाथोंको पूजता हूं । धृतिके लिये नमस्कार है, मुखको पूजता हूं । अरुन्धतीके लिये नमस्कार है शिरका पूजन करता हूं । सकल प्रियाके लिये नमस्कार है, शिखाको पूजता हूं ।। वसिष्ठ ध्रुवके सहित सर्वाङ्गको पूजता हूं । देवीको पूजता हूं, इससे नीराजन करना चाहिये । ऊपर "ओम् देव वन्द्यायै नमः" इत्यादि मन्त्रोंसे लिखित अंगोंका पूजन करे । सबके आदिमें ओंकार लगादे, अंग पूजनके पीछे पुष्पांजलि दे, पीछे वायन दे । " वंशपात्रे स्थितम् " यह इसका मन्त्र है कि, वंशपात्रमें रखे हुए घृत संयुक्त वाणकको मैं ब्राह्मणको देता हूं, इससे अरुन्धती प्रसन्न होजाय ? सुवर्णकी मूर्तिसे संयुक्त तथा वसिष्ठजी और धवके साथ अरुन्धतीकी मूर्तिका सोपचार दान करता हूं इससे मूर्तिदान करना चाहिये । हे सब अलंकारोंसे विभूषित अरुन्धती ! तेरे लिये नमस्कार है, मुझे उत्तम सौभाग्य दे और यथास्थान पधार, इस मंत्रसे विसर्जन होता है । अथ अरुन्धतीके व्रतकी कथा-स्कन्द बोले कि, हे ब्राह्मण ! पुराने जमानेकी एक अच्छी बात सुनो । पहिले एक ब्राह्मण जो सब शास्त्रोंमें निष्णात था ।। १ ।। उसके एक अद्वितीय सुन्दरी लडकी थी, उस ब्राह्मणने उसका बडी अच्छी तरह विवाह किया ।। २ ।। उस वरवर्णिनी कन्याको एक कुलीन पुरुषको दे दिया पर थोडेही दिनमें उसका पति स्वर्गवास कर गया ।। ३ ।। वो बालविधवा हो गयी, इसी दुःखसे पिताके घर चली आई और यमुनाजीके किनारे घोर तपस्या करने लगी ।। ४ ।। वहां उसने अनेकों एकभुक्त अनेकों कृच्छ्र तथा-अनेकों चांद्रायण एवं अनेकों महीनोंके उपवासके नियमोंसे अपनी आत्माको पवित्र किया ।। ५ ।। एक दिन वहां पार्वती सहित महादेवजी घूमते हुए पहुंच गये और यमुनाजीके किनारे तप करते हुए उस बालविधवाको देखा ।। ६ ।। गौरीजीको दया आई वह शिवजीसे पूछने लगीं कि, हे देव ! किस कारणसे इसे बाल वैधव्य मिला ।। ७ ।। देव ! कृपा करिये. मुझे बताइये । महादेव बोले कि, हे गौरी ! पहिले यह एक कुलीन ब्राह्मण था ।। ८ ।। इसने एक सुन्दरी कन्याके साथ विवाह किया था और विवाहमात्र करके ही विदेशको चलागया ।। ९ ।। उस सतीने बहुत दिनतक पतिकी प्रतीक्षा की, जिन्दगी चली गई, पर वो लौटकर नहीं आया ।। १० ।। उस कन्याका जन्म साराही व्यर्थ चलागया, उसके पापसे हे शिवे ! यह ब्राह्मण इस जन्ममें स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ है ।। ११ ।। जो पुरुष कुलीन तथा निर्दोष अपनी स्त्रीको छोडकर इस तरह विदेश चला जाय जैसे कि, आंधरा महासमुद्रमें चला जाता है ।। १२ ।। परदाररत हो अथवा दूसरी स्त्रीको करले सो, दूसरे जन्ममें स्त्री होकर वैधव्यको भोगता है ।। १३ ।। जो तो स्त्री मनसे, वाणीसे अथवा अन्तः करणसे एकान्तमें छिपकर जार करती है अथवा दूसरे पुरुषको करलेती है ।। १४ ।। अथवा मदसे प्रमदा हुई भोगोंको भोगती है, इस कर्मविपाकसे वो नारी विधवा हो जाती है ।। १५ ।। अथवा जो पुरुष कुलीना सदाचारिणी सती तथा अनुकूला स्वपत्नीको छोडकर, इच्छानुसार दूसरीसे रमण करता है ।। १६ ।। वो पापी दूसरे जन्ममें स्त्रीहीन होता है । हे शिवे ! इसके बराबर कोई पाप नहीं है ।। १७ ।। वैधव्यसे पर कोई व्याधि नहीं है तथा वैधव्यसे परे कोई ज्वर भी नहीं है एवं न वैधव्यसे परे कोई शोक है ।। १८ ।। न वैधव्यके बराबर कोई निरयही है एवम् न इसके समान कोई कष्टही है बहुत करके इस पापसे ही बालविधवाएँ होती हैं ।। १९ ।। शिवजीके ऐसे वचन सुनकर गौरीजीको बडा विस्मय हुआ तथा आर्द्र हृदयसे शिवजीसे पूछने लगी ।। २० ।। कि, हे भगवन् !

कौनसे कर्मसे यह बालवैधव्य देनेवाला महापाप नष्ट हो, यह कृपा करके बतादीजिये ।। २१ ।। यह सुन महादेवजी बोले कि, हे देवि ! मैं बालवैधव्यका नाश करनेवाला एक अरुन्धती व्रत कहता हूं । यह सौभाग्यका देनेवाला भी है ।। २२ ।। इसको सुनकर बालवैधव्यके पापसे छूट जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है । हे ब्राह्मणो ! उस समय गौरीजीनें इस व्रतको शिवजीसे सुना था ।। २३ ।। हे ब्राह्मणो ! इस व्रतको गौरीजीने शिवजीसे सुनकर उस स्त्रीसे इस व्रतको कराया ।। २४ ।। हे मुनीश्वरो ! इस व्रतके पुण्यसे वो स्त्री स्वर्ग यचली गई और वैधव्यसे छूटगई ।। २५ ।। हे मुनीश्वरो ! मेंने जैसे सुनाया वैसाही कर दिया, इसे दूसरे भी बहुतोंन किया, वे भी सब आत्माएँ मुक्त होगईं ।। २६ ।। हे मुनीश्वरो ! इस अरुन्धतीके व्रतको सदा करना चाहिये, इसके करनेसे स्त्री वैधव्य योगसे छूटकर परम सौभाग्यको प्राप्त होती है ।। २७ ।। यह स्कन्द पुराणकी अरुन्धती व्रतकी कथा हुई ।। अथ उद्यापनम्–युधिष्ठिरजी भगवान् कृष्णजीसे बोले कि, हे सुरेश्वर ! अरुन्धतीके व्रतकी उद्यापन विधि कहिये, मैं व्रतकी संपूर्तिके लिये भक्तिसे सुनना चाहता हूं ।। भगवान् कृष्ण बोले कि, नारियोंको सौभाग्य देनेवाले अरुन्धतीके व्रतके उद्यापनको कहूंगा, जिसके भलीभांति करनेसे नारी सौभाग्यको पाजाती है । रूपसे संपन्न और पुत्र पौत्रोंसे समन्वित होती है । हे युधिष्ठिर ! वसन्त ऋतुकी तृतीयाको चाहें माघ हो, चाहें वैशाख हो, अथवा श्रावण और कार्तिक हो, स्नानादि कर तीन रात उपवास करके, व्रत करनेवाली, चार दम्पतियोंको बुलाकर पुष्प, तांबूल, चन्दन और अक्षतोंसे उनका पूजन करे तथा कुंकुम अगर, कस्तूरी, कपूर आदिसे पूजे, शिलापट्टपर लवण सहित जीरेको लोढेके साथ रखकर दो वस्त्रोंसे वेष्ठित कर दे । वसिष्ठजीके प्राणोंकी प्यारी अरुन्धतीका आवाहन करे, जो सब पतिव्रताओंमें मुख्य, देव भामिनी है । सर्वाङ्गसुन्दरी दो भुजाकी, अक्ष सूत्र, कमंडलु युक्त सोनेकी मूर्ति बनाके नामंत्रसे पूजे ।। व्रती, वसिष्ठजी ध्रुवजी और प्रतिमा तीनोंको ही पूजे । "ओम् देववन्द्ये नमः" इस मंत्रसे चरण "ओम् लोकवन्दिते नमः" इससे जानु । ओम् सर्वसंपत्तिदायिनी नमः" इससे कटि "ओम् गंभीरनाम्न्यै नमः" इससे नाभि "ओम् लोकधात्र्यै नमः', इससे स्तन "ओम् जगद्धात्र्यै नमः" इससे स्कंद "ओम् शान्त्यै नमः" इससे बाहु "ओम् वरदायै नमः:" इससे हस्त "ओम् धृत्यै नमः" इससे मुख "ओम् अरुन्धत्यै नमः" इससे शिर तथा "ओम् सकलप्रिये नमः इससे सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये । देववन्द्या, लोकवन्दिता, सर्व संपत्तिके देनेहारी, ओंढीनाभिवाली.लोकधात्री - जगद्धात्री, शान्ती, वरदा, धृति, अरुन्धती और सकल प्रिया जो तू है तेरे लिये नमस्कार है । इस प्रकार गन्धो, पचारसे सती देवी अरुन्धती का पूजन करके अर्घ देना चाहिये । हे महाभागे ! अरुन्धती ! हे वसिष्ठकी प्यारी बोलने वाली ! हे देवी ! हे सुव्रते मुझे सदा सौभाग्य और धन पुत्र दे । पुत्रोंको दे, धन दे और सौभाग्य दे और भी सब कामोंको दे । हे देवी ! तेरे लिये नमस्कार है । समाप्तिके दिन सुवासिनी स्त्रियोंका गन्ध, पुष्प, और ,क्षतोंसे पूजन होना चाहिये तथा सूपमें रखकर भक्ष्य देना चाहिये । उसी समय समिध और तिलोंसे होम वस्त्राच्छादनोंसे तथा अनेक तरहके उपचारोंसे, चौबीस दम्पतियोंका पूजन करके, आचार्य्यको गऊ और वस्त्राभरण दे । उपस्कर सहित शय्या दे तथा दीपक सहित काँग्रेसका पात्र दे, दर्पण और चमर दे तथा सुशोभन अश्व दे । स्त्रियोंको यथावत् भोजन कराकर, लड्डू भरे हुए सूप एवं विधिके साथ मोदक, कांचन, वस्त्र, पोलिका, घृत, पूप, पूरी और सुहालिका देनी चाहिये ये चीज एक एकको दो दो दे ।दीन और अनाथोंको इतना दे दे जो दो दो भोजन करसके, जो भामिनी इस प्रकार व्रत करती है उसे हजार जन्मतक वैधव्य नहीं प्राप्त होता । उसे यथेष्ठबेटा, नाती और धन, धान्य मिलता है वो महाव्रता पतिके साथ सौवर्षतक जिन्दी रहती है, इस प्रकार पूजन करनेसे मोक्षपदकी प्राप्ति हो जाती है,जैसे स्वर्गमें देवभार्य्या और ऋषि भार्य्याएं सुशोभित होती हैं उसी तरह व्रत करनेवाली भी महाभागा सब काम समृद्धियोंसे शोभायमान होती है । यह स्कन्दपुराणका व्रत अरुन्धती के व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अक्षय्यतृतीयाव्रतम्

अथ वैशाखशुक्ल तृतीयायां भविष्योत्तरोक्तमक्षय्यतृतीयाव्रतम् ।। तीर्थे वैतद्दिने स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् ।। दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ।। माधवे

मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ।। तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं विधीयते ।। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ।। वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया ।। मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् ।। वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणं रवेः ।। प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ।। मधुसूदनसन्तोषाद्ब्राह्मणानामनुग्रहात् ।। निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ।। माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन ।। प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदः पापहा भव ।। यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः ।। तत्र चोच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ।। अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ।। प्रातः स्नातः सनियमः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। वैशाखे विधिवत्स्नात्वा भोजयेद्ब्राह्मणान्दश ।। कृत्स्नशः सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। इति वैशाखस्नानविधिर्भविष्येयं ।। इयमेव तृतीया परशुरामजयन्ती ।। सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।। तदुक्तं भार्गवार्चनदीपिकायां स्कन्दभविष्ययोः--वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ ।। निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः ।। स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते ।। रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो विभुः स्वयम् ।। दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा ।। अन्यथा पूर्वैव ।। तदुक्तं तत्रैव भविष्ये--शुक्ल--तृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिनद्वये ।। निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तराऽन्यत्र पूर्विका ।। तत्रैव वैशाखतृतीया अक्षय्यतृतीया ।। सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या ।। दिनद्वये तद्व्याप्तौ तु परैवेति ।। इयं युगादिरपि ।। या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवः ।। स्नात्वा हुत्वा च जप्त्वा च सहस्रानन्तफलं लभेत् ।। श्राद्धेपि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या ।। पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः ।। दैवे कर्मणि पैत्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः ।। वैशाखस्य तृतीयां च पूर्वविद्धां करोति वै ।। हव्यं नेवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ।। इति । अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधान-रात्रौ भुक्ते[1] वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु ।। अभिस्ववृष्टि[2] मन्त्रं च जपेदष्टोत्तरं शतम् ।। अतरार्के यमः कृतोपवासाः ससिलं ये युगादिदिनेषु च ।। दास्यन्त्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः ।। इति ।। अथ विधिः ।। वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुम् ।। नारायणं पूजयेच्च पुष्पधूपविलेपनैः ।। योऽस्यां ददाति करकान्वारिव्यजनसंयुतान्[3] ।। स याति पुरुषो वीर लोकान्वै हेममालिनः ।। वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च ।। गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।। तथात्रैव ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। बहुनात्र किमुक्तेन किं बह्वक्षरमालया ।। वैशाखस्य सितामेकां तृतीयामक्षयां शृणु ।। तस्यां स्नानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।। दानं च क्रियते तस्यां

---

१ भुक्ते २ अभीप्यवृष्टि इति पाठान्तरम् ३ बीजसमन्वितानितिपाठे–बीजमन्त्रम्

तत्सर्वं स्यादिहाक्षयम् ।। आदिः कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथ्यते ।। सर्वपापप्रशमनी सर्व सौख्यप्रदायिनी ।। पुरा महोदयः पार्थ वणिगासीत्सुनिर्मलः ।। प्रियंवदः सत्यवृत्तिर्देवब्राह्मणपूजकः ।। पुण्याख्यानैकचित्तोऽभूत् कुटुम्बव्याकुलोपि सन् ।। तेन श्रुता वाच्यमाना तृतीया रोहिणीयुता ।। यदा स्याद बुधसंयुक्ता तदा सा तु महा फला ।। तस्यां यद्दीयते किंचिदक्षयं स्यात्तदेव हि ।। इति श्रुत्वा च गङ्गायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ।। गृहमागत्य कारकान् सान्नानुदकसंयुतान् ।। अन्नपूर्णान्बृहत्कुम्भाञ्जलेन विमलेन च ।। यवगोधूमलवणान् सक्तु दध्योदनं तथा ।। इक्षुक्षीरविकारांश्च सहिरण्यांश्च शक्तितः।। शुचिः शुद्धेन मनसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ वणिक् ।। भार्यया वार्य्यमाणोऽपि कुटुम्बासक्तचित्तया ।। तावत्तस्थौ स्थिरे सत्त्वे मत्त्वा सर्व विनश्वरम् ।। धर्मासक्तमतिः पार्थ कालेन बहुना ततः ।। जगाम पञ्चत्वमसौ वासुदेवमनुस्मरन् ।। ततः स क्षत्रियो जातः कुशावत्यां युधिष्ठिर।। बभूव चाक्षयातस्य समृद्धिधर्मसंयुता ।। ईजे स च महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।।स ददौ गोहिर ण्यानि दानान्यन्यान्यहर्निशम् ।। बुभुजे कामतो भोगान्दीनान्धांस्तर्पयञ्छनैः ।। तथाप्यक्षयमेवास्य क्षयं याति न तद्धनम् ।।श्रद्धापूर्वं तृतीयायां यद्दत्तं विभवं विना।। इत्येतत्ते समाख्यातं श्रूयतामत्र यो विधिः।। तृतीयां तु समासाद्य स्नात्वा संतर्प्य देवताः ।।एकभुक्तं तदा कुर्याद्वासुदेवं प्रपूजयेत्।।तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ।। यवान्दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान्।। उदकुम्भान्सकनकान् सान्नान्सर्वरसैः सह ।। यवगोधूमचकान्सक्तु दध्योदनं तथा।। ग्रैष्मकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते ।। तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य च।। उदकुम्भप्रदानेन शिवलोके महीयते ।। तत्र मन्त्रः—एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।। अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु पितरोऽपि पितामहाः ।। गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुम्भं सदक्षिणम् ।। पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु ।। छत्रोपानत्प्रदानं च गोभूकाञ्चनवाससाम् ।। यद्यदिष्टं केशवस्य तद्देयमविशंकया ।। एतत्ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। अनाख्येयं न मे किञ्चिदस्ति स्वस्त्यस्तु तेऽनघ ।। नास्यां तिथौ क्षयमुपैति हुतं च दत्तं तेनाक्षयेति कथिता मुनिभिस्तृतीया।। उद्दिश्य दैवतपितॄन् क्रियते मनुष्यैस्तच्चाक्षयं भवति भारत सर्वमेव ।। इति श्रीभविष्ये अक्षयय्यतृतीयाव्रतम् ।। अस्यामेव विष्णुधर्मोत्तरोक्तमक्षय्यतृतीयाव्रतम् ।। वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयामुपोषितः ।। अक्षय्यं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ।। तथा सा कृत्तिकोपेता विशेषेण च पूजिता ।। तत्र जप्तं हुतं दत्तं सर्वमक्षय्युमुच्यते ।। अक्षय्या सा तिथिस्तस्मात्तस्यां सुकृतमक्षयम् ।। अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साप्यक्षया स्मृता ।। अक्षतैस्तु नरःस्नातो विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षतान्।। सक्तूंश्च

संस्कृतांश्चैव हुत्वा चैव तथाक्षतान् ।। विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथासक्तून्सुसंस्कृतान् ।। पक्वान्नंतु महाभाग फलमक्षय्यमश्नुते ।। एकामप्युक्तां यः कुर्यात्तृतीयां भृगुनन्दन ।। एतावत्तु तृतीयानां सर्वासां तु फलं लभेत् ।। इति अक्षय्यतृतीयाव्रतं संपूर्णम् ।।

अथ अक्षय तृतीया व्रतम्-वैसाख शुक्ला तृतीयाके दिन भविष्यपुराणमें अक्षय तृतीयाका व्रत कहा है कि, इस दिन तीर्थमें स्नान और तिलोंसे पितरोंका तर्पण करे, धर्म घटादिकोंका दान और मधुसूदनका पूजन करे, क्यों कि, वैसाखमें भगवान्का तुष्टिदेनेवाला पूजन अवश्य कर्तव्य है । तुला, मकर और मेषराशिमें प्रातः स्नानका विधान है, इसमें हविष्यान्न भोजन और ब्रह्मचर्य्य, महापापोंका नाश करनेवाला है । भगवान्का पूजन करके संकल्पपूर्वक ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्त करके वैसाखके स्नानका नियम लेना चाहिये । हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! वैसाखके मासमें मेषके सूर्य्यमें हे नाथ ! इस प्रातः स्नानसे मुझे फल देनेवाले हो जाओ और पापोंका नाश करो ! हे ब्राह्मणो ! जो तीर्थका नाम पता न हो तो उसको विष्णुतीर्थ कहना चाहिये । चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष हो जो नियमपूर्वक प्रातः स्नान करता है । वो सब पापोंसे छूटा जाता है । वैसाखमें विधिके साथ स्नान करके दश ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये,वह सब पापोंसे छूट जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है, यह भविष्यकी वैशाखस्नानकी विधि होगई । परशुरामजयन्ती-इसीतृतीयाको कहते हैं । परशुरामजयंती प्रदोष व्यापिनी लेनी चाहिये । यही भार्गवार्चनदीपिकामें स्कन्द और भविष्यपुराणका प्रमाण दिया है कि, वैशाख शुक्ला तृतीया पुनर्वसुमें रातके पहिले पहरमें परशुराम् भगवान् उच्चके छःग्रहोंसे युक्त मिथुनराशिपर' राहुके रहते, रेणुकाके गर्भसे अवतीर्ण हुए । ये स्वयं भगवान्के अवतार थे। दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो अथवा अंशतः । दोनों दिन हो तो, परा ग्रहण करनी चाहिये, नहीं तो पूर्वाही लेनी यही बात वहां ही भविष्यपुराणसे कही है कि, वैसाख शुक्ला तृतीया शुद्धाको व्रत करे, यदि दोनों दिन हो तो, रातके पहिले पहरमें रहे तो दूसरी करनी चाहिये, नहीं तो पहिली करनी चाहिये । अक्षय तृतीया-तहां ही वैसाखकी तृतीयाको अक्षय तृतीया कहा है, उसे पूर्वाह्ण व्यापिनी लेना, यदि दोनों ही दिन पूर्वाह्णव्यापिनी हो तो दूसरी ही लेनी चाहिये । यह युगादि तिथि भी है. जो तिथि युगादि हो अथवा मन्वन्तरके आदिकी हो, उसमें अन्नदान स्नान और हवन करके सबसे अधिक फलको पाता है । श्राद्धमें भी यह तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । क्यों कि, मनु और युगादिक शुक्ला तिथियां पूर्वाह्णमें हों तो देवकर्म करने चाहियें । यदि कृष्णपक्षमें हों तो अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । जो वैसाखकी पूर्वविद्धा तृतीयाको करता है उसके उस हव्यको देव तथा कव्यको पितर लोग नहिं लेते । ऋग्विधानमें लिखा हुआ है कि, जो कोई मन्वादिक और युगादिक तिथियोंमें रातको भोजन करता है वो, अभिस्ववृष्टिं मदे, अस्य युध्यतो रघ्वीरिव, प्रवणे सस्रु रूतम ः। यद्वज्री घृषमाण अन्धसा ऽभिनद् बलस्य परिधीं रिवात्रतः-इस वृष्टिको हम अपने आनन्दके लिये युद्धकालकी शीघ्रगतिकी तरह चाहते हैं । पानीकी धारकी तरह नम्र हम लोगोंमें उसकी रक्षाएं वही चली आ रही हैं ! वज्रधारी इन्द्रने निर्भीकता पूर्वक वृत्रकी परिधियोंको भेद डाला ।। इस मंत्रको १०८ वार जपकर शुद्ध हो सकता है । (यह शौनकोक्त एवम् अग्नि पुराणोक्त ऋग्विधानमें नहीं मिला) अपरार्कमें यम भी कहता है कि, उपवास किये हुए जो पुरुष, अन्नादिके साथ पानी देते हैं उन्हें ऊंचे लोगोंकी प्राप्ति होती है । अथ विधि-वैसाखकी तृतीयाको पुष्प धूप और विलेपनोंसे लक्ष्मी सहित भगवान् जगद्गुरु नारायणका पूजन करना चाहिये । अक्षय तृतीयाके दिन जो पुरुष, पानीके घडेके साथ बीजना और खांडके ओले देता है । हे वीर ! वो पुरुष, दिव्य लोकोंको चला जाता है । वैशाखशुक्ला तृतीयाको गंगाके पानीमें स्नान करके सब पापोंसे छूट जाता है । भगवान् कृष्ण बोले कि, बहुतसी बातोंमें क्या रखा है एक वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीयाको सुन । अक्षय तृतीयाके दिन स्नान, जप, होम, स्वाध्याय पितृतर्पण और दान जो भी कुछ किया जाता है, वो सब अक्षयहो जाता है । यह कृतयुगकी सबसे पहिलेकी तिथि है, इस कारण, इसे युगादि तिथि कहते हैं, यह सब पापोंके नाश करनेवाली तथा सब सौभाग्योंको देनेवाली है । हे पार्थ ! पहिले समयमें एक सत्यका रोजगारी, प्यारा बोलनेवाला, तथा देव

और ब्राह्मणोंका पूजक, सुनिर्मल महोदय नामका बनिया था । उसकी पुण्याख्यान सुननेमें रुचि रहती थी, यदि सबके काममें भी वो व्याकुल होता था, तब भी उसका मन शास्त्रमें ही रहता था । एक दिन उसने रोहिणी नक्षत्र शालिनी अक्षय तृतीयाका माहात्म्य सुना कि,यदि वो बुध संयुक्त हो तो महा फलवाली होती है । जो कुछ उसमें दान दिया जाता है उसका अक्षय फल होता है । ऐसा सुन वो वैश्यगंगा किनारे पहुंचा. वहां उसने पितृ देवताओंका तर्पण किया, पीछे घर आकर, अन्न और पानीके साथ ओले,तथा अन्न और स्वच्छ पानीके भरे हुए बडे २ घडे, यव गोधूम, लवण, सक्तु, दध्योदन, ईख और दूधके बने पदार्थ, शुद्ध मनसे शक्तिके अनुसार सोनेके साथ ब्राह्मणोंको दान दिये । स्त्रीका चित्त कुटुम्बमें आसक्त था इस कारण उसे बहुत रोका पर जबतक वो वासुदेवका स्मरण करके मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ हे पार्थ ! तब तक वो धर्ममें आसक्त मतिवाला वैश्य बहुत कालतक सबको विनश्वर मानकर स्थिर सत्वमें रहा । हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे वो कुशावतीपुरीमें क्षत्रिय हुआ, उसकी धर्मसंयुक्त अक्षय संपत्ति हुई, उसने बडी लंबी चौडी दक्षिणाके साथ बडे बडे यज्ञ पूरे किये, तथा रात दिन गौओंके सोनेके तथा अन्यभी अनेकों वस्तुओंके बहुतसे दान दिये । उसने इच्छानुसार भोगोंको भोगा तथा धीरे २ अनेकों दीन और अन्धोंको तृप्त किया, इतना करने परभी इसका धन अक्षय था, नष्ट नहीं होता था, क्योंकि इसने अक्षय तृतीयाके दिन विभवको छोड कर श्रद्धापूर्वक जो दिया था उसकाही फल था । यह में तेरे लिये कहदिया यहां जो विधि है उसे सुन । तृतीयाके दिन स्नान तथा देवतर्पण करके एक वार भोजन करता हुआ वासुदेवका पूजन करना चाहिये । इसमें यवोंका होम और वासुदेवका पूजन होता है। ब्राह्मणोंके लिये जौओंको दे और पवित्र होकर जौओंका ही प्राशन करे । कनकसहित पानीके भरे हुए घडे, सब रस अन्न, यव, गोधूम, चणक, सतुआ और दध्योदनका दान करना चाहिये । इसमें ग्रीष्म ऋतुके सस्य दान कियेहुए अच्छे होते हैं । वैसाख तृतीयाके रोहिणी नक्षत्रमें शिवपूजन करनेके बाद उदकुंभदान करके शिवलोकमें चला जाता है । यह घट दानका मंत्र है कि, ब्रह्मा विष्णु और शिवरूप यह धर्मघट मैंने देदिया है, इसकोदानसे पितर और पितामह तृप्त हो जायें । गन्धोदक और तिलोंके साथ तथा अन्न और दक्षिणासहित, घट देता हूं, यह दान पितरोंके लिये अक्षय होय जाय । छत्र, जूते, गो, जमीन, सोना और वस्त्र जो भी कोई भगवान्‌की प्यारी वस्तु श्रीकृष्णार्पण की जायगी वह सब अक्षय होगी, यह सब मैंने कह दिया और क्या सुनना चाहते हो । हे निष्पाप ! तेरेसे मुझे कुछ भी गोपनीय नहीं है । हे भारत ! इस तिथित्रको जो भी हवन दान किया जाता है वो कभी नाशको प्राप्त नहीं होता । इस कारण इसे अक्षयतृतीया कहते हैं । देवता और पितृयोंके उद्देश्यसे जो भी कुछ किया जाता है वह सब अक्षय हो जाता है । यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ अक्षय तृतीयाका व्रत पूरा हुआ तथा–इसीमें विष्णु धर्मोत्तर पुराणका कहा हुआ, अक्षय तृतीयाका व्रत कहा है कि, वैशाख शुक्ला तृतीयाके दिन उपवास करके सब सुकृतका अक्षय फल पाजाता है। यदि यह कृत्ति का नक्षत्रसे युक्त हो तो अधिकश्रेष्ठ है, इसमें जप, हवन किया सब अक्षय हो जाता है, इसीसे अक्षया तिथि कहते हैं कि, इसमें सुकृत अक्षय होजाता है, इसको अक्षय कहनेका एक और कारण भी है कि, इसमें अक्षतोंसे भगवान्‌की पूजा होती है, अक्षतोंसे स्नान किया हुआ मनुष्य विष्णु भगवान्‌के लिये अक्षतोंको दे संस्कृत सतुओंका और अक्षतोंका हवन करके वैसे ही अक्षत और संस्कृत सतुओंको और पक्वान्नको ब्राह्मणोंको दे, अक्षय फल पा जाताहै । हे भृगुनन्दन ! जो इस प्रकार एक भी तृतीयाको कर लेता है वो सब तीजोंके व्रतोंका फल पा जाता है, यह अक्षय तृतीयाका व्रत पूर्ण हुआ ॥

रम्भाव्रतम्

अथ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम् ॥ तदुक्तं माधवीये भविष्ये–कृष्ण उवाच॥ भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नात्वा नियमतत्परा ॥ पूर्वविद्धा तिथिर्ग्राह्या तत्रैव व्रतमाचरेत् ॥ बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी॥ कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या संमुखो तिथिः ॥ व्रतविध्या-

दिकं तु हेमाद्रौ संवत्सरकौस्तुभादौ द्रष्टव्यम्।। इति रम्भाव्रतनिर्णयः ।। मधुस्रवा ।। अथ श्रावणशुक्लतृतीयायां मधुस्रवाख्या गुर्जरेषु प्रसिद्धा ।। तस्या अस्मद्देशेऽप्रसिद्धत्वाद्विधिर्नोक्ताः ।। सा परयुता ग्राह्या ।। स्वर्णगौरीव्रतम् ।। अथाचारप्राप्तं श्रावणशुक्लतृतीयां स्वर्णगौरीव्रतम् ।। एतच्च कर्णाटकदेशे भाद्रपदशुक्ल तृतीयायां प्रसिद्धम् ।। तत्र संकल्पः—मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च अक्षय्यसौभाग्यप्राप्तिकामायः पुत्रपौत्रादिधनधान्यैश्वर्यप्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्वर्णगौरीव्रतमहं करिष्ये ।। तत्र पूजा-देवदेवि समागच्छ प्रार्थयेऽहं जगत्पते।। इमां मया कृतां पूजां गृहाण सुरसत्तमे ।। आवाहनम् ।। भवानि त्वं महादेवि सर्वसौभाग्यदायिके अनेक रत्नसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ।। आसनम् ।। सुचारु शीतलं दिव्यं नानागन्धसुवासितम् ।। पाद्यं गृहाण देवेशि महादेवि नमोऽस्तुते ।। पाद्यम् ।। श्रीपार्वति महाभागे शंकरप्रियवादिनि ।। अर्घ्यं गृहाण कल्याणि भर्त्रा सह पतिव्रते।। अर्घ्यम् ।। गङ्गातोयं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।। आचम्यतां महाभागे भवेन सहितेऽनघे ।। आचमनीयम् ।। गङ्गासरस्वतीरेवाकावेरीनर्मदाजलैः।। स्नापितासि मया देवि तथा शांतिं कुरुष्व मे ।। स्नानम्।। सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।। वस्त्रम् ।। कञ्चुकीम् ।। आचमनीयम् ।। कर्पूरकुङ्कुमैर्युक्तं हीरद्रादिसमन्वितम् ।। कस्तूरिका समायुक्तं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। हरिद्राकुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा।। सौभाग्य द्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ।। सौभाग्यद्रव्यम् ।। माल्यादीनीति पुष्पम् ।। देवद्रुमरसोतद्भूतः कालागुरुसमन्वितः ।। आघ्रायतामयं धूपो भवानि घ्राणतर्पणः ।। धूपम् ।। आज्यं चेति दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु० इति नैवेद्यम् ।। आचमनीयम् ।। कर्पूरैलालवङ्गादिताम्बूलीदलसंयुतम् ।। क्रमुकापियुतं चैव ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् ।। इदं फलं मया देवि० इति फलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजनम् ।। नमस्कारम् ।। यानि कानि च पापानि० इति प्रदक्षिणाम् ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते ।। अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोस्तु ते ।। इति प्रार्थना ।। भवान्याश्च महदेव्या व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। प्रीतये द्विजवर्याय वाणकं प्रददाम्यहम् ।। नानाषोडशपक्वान्नैर्वेणुपात्राणि षोडश ।। कुर्याद्वस्त्रादिभिर्युक्तान्याहूय द्विजदम्पतीन् ।। व्रतोद्यापनसिद्धयर्थं तेभ्यो दद्याद्व्रती नरः ।।स्वलंकृतः सुवासिन्यः पातिव्रत्येन भूषिताः ।। मम कामसमृद्धयर्थं प्रतिगृह्णन्तु वाणकम् ।। इति स्वर्णगौरीपूजा ।

अथ रंभाव्रतम्–ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयाके दिन रंभाव्रत होता है, यह माधवीय धर्मशास्त्रमें भविष्य पुराणको लेकर कहा है । भगवान् कृष्ण सुभद्रासे बोले कि, प्रयत्नके साथ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयामें स्नान करके

नियममें तत्पर होकर रंभानामके उत्तम व्रतको करे । इसमें पूर्वविद्धा तिथि ग्रहण करनीचाहिये । उसीमें व्र तभी करना चाहिये क्योंकि, कृष्णाष्टमी बृहत्तपा, रंभा, भूता और वटपैतृकी सावित्रीके व्रतोंमें पूर्व समुखी तिथि 'पूर्व विद्धा' करनी चाहिये । यदि व्रतकी विधि तथा दूसरे विधान देखने होंतो, हेमाद्रि तथा संवत्सर कौस्तुभादिकमें देखने । यह रंभाके व्रतका निर्णय हुआ ॥

अथ मधुस्रवा व्रतम्–श्रावण शुक्ला तृतीयामें मधुस्रवा नामका व्रत गुजरातमें होता है पर वो व्रत हमारे देशमें प्रसिद्ध नहीं है इस कारण नहीं कहा । उसे जब तृतीया चौथसे युक्त हो तब ग्रहण करना चाहिये ॥ स्वर्ण, गौरीव्रत–अब आचारसे प्राप्त जो श्रावण शुक्ला तृतीयामें स्वर्णगौरीव्रत होता है उसे लिखते हैं । इसे कर्णाटक देशमें भाद्रपद शुक्ला तृतीयाको करते हैं, इसका संकल्प तो मेरे इस जन्म और जन्मारतमें अक्षय सौभाग्य और पुत्र पौत्रादि धन धान्य और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये तथा श्रीपरमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये स्वर्णगौरीव्रत में करता हूं, यह है । स्वर्णगौरीकी पूजा कहते है–हे देवि ! हे देवि ! आजा, हे सुरसत्तमें ! मेरी की हुई पूजाको ग्रहणकर । इससे आवाहन । तथा–आप भवानी और आपही महादेवी हैं आपही सब सौभाग्यकी देनेवाली ह–इस अनेक रत्नोंसे जड हुए आसनको आप ग्रहण करें, इस मन्त्रसे आसन । तथा–अच्छी तरह ठण्डा एवम् अनेक तरहकी सुगन्धियोंसे सुगन्धित हुआ पाद्य–ग्रहण करिये, हे देवेशि ! हे महा-देवि ! तेरे लिये नमस्कार है । इस मन्त्रसे पाद्य । तथा शंकरकी प्यारी बोलनेवाली महाभागे पार्वति ! कल्याणि ! पतिसमेत अर्घ्य ग्रहण करिये, इस मंत्रसे अर्घ्य ! तथा गङ्गाजल लाया हूं वो सोनेके कलशमें रखा हुआ है हे महाभागे ! अनघे ! शिवके साथ आचमन कर, इस मन्त्रसे आचमनीय । तथा गङ्गा, सरस्वती, रेवा, कावेरी और नर्मदाके पानीसे मैंने आपको स्नान कराया है तैसे ही आपभी मुझे शांति दें, इस मंत्रसे स्नान । तथा–ये सुन्दर वस्त्र सब आभूषणोंसे बढ़कर हैं लोककी लज्जाका निवारण इनसे ही होता है, मैं इन्हें आपको देता हूं आप ग्रहण करिये, इस मन्त्रसे वस्त्र देकर कंचुकी और आचमनीयको देना चाहिए ॥ कर्पूर, कुंकुम, हलदी और कस्तूरी इसमें पडी हुई हैं ऐसे चन्दनको ग्रहण करिये, इस मंत्रसे चन्दन । तथा हरिद्रा, कुंकुम, सिंदूर और कज्जलको सौभाग्यद्रव्योंके साथ ग्रहण करिये । इससे सौभाग्य द्रव्य । तथा–"माल्यादीनि" इस मन्त्रसे पुष्प । तथा–देवद्रुमके रससे बनया गया, जिसमें कि, कालागुरु मिले हुए हैं ऐसे धूपको सूंघिये, हे भवानी ! इसमें बडी सुन्दर सुरभि आ रही है, इस मन्त्रसे धूप । तथा–"आज्यं च वर्तिसंयुक्तम्" इस मन्त्रसे दीप । तथा–"अन्नं चतुर्विधं स्वादु" इससे नैवेद्य निवेदन कर, आचमन कराना चाहिये ॥ इसमें कपूर, एला, लवंग, तांबूलीदल और सुपारी पडी हुई है पान लीजिये, इस मंत्रसे पान । तथा–"इदं फलं मया देवि" इससे फल । तथा–"ओम् हिरण्य गर्भः" इस मन्त्रसे दक्षिणा, पीछे नीराजन नमस्कार और "यानि कानि च पापानि" इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा, तथा–पुष्पाञ्जलि; एवम् हे सुव्रते ! पुत्र दे, धन दे, सौभाग्य दे तथा और भी सब कामनायें पूरी कर, तेरे लिये नमस्कार है । इस मन्त्रसे प्रार्थना करनी चाहिये । तथा-व्रत संपूर्तिके लिये और महादेवी भवानीकी प्रसन्नता के लिये, ब्राह्मणको वाणक देता हूं । इस मन्त्रसे वाणक देकर, पीछे व्रती पुरुषको चाहिये कि, सोलह वेणुपात्रोंमें सुहाल भर, द्विजदंपतियोंको बुलाकर, व्रतके उद्यापनकी सिद्धिके लिए उन्हें दे दे तथा देतीवार यह कहना चाहिये–हे पातिव्रत्यसे भूषित स्वलंकृत सुवासिनियो ! मेरी मनोकामनाको पूरी करनेके लिए वाणक लो । यह स्वर्णगौरीकी पूजा ॥

अथ कथा॥ पुरा कैलासशिखरे सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ उमया सहितं स्कन्दः पप्रच्छ शिवमव्ययम् ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ करुणासागरेशान लोकानां हित-काम्यया ॥ व्रतं कथय देवेश पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ॥ २ ॥ शंकर उवाच॥ साधु पृष्टं महाभाग कथयामि षडानन ॥ स्वर्णगौरीव्रतं नाम सर्वसंपत्करं नृणाम् ॥ ३ ॥ पुरा सरस्वतीतीरे विमलाख्या महापुरी॥ तत्र चन्द्रप्रभो नाम राजाभूद्धनदोपमः ॥ ४ ॥ तस्य द्वे रूपलावण्ये सौन्दर्यस्मरविभ्रमे ॥ महादेवीविशालाक्ष्यौ भार्ये

वालमृगेक्षणे ॥५॥ तयोः प्रियतरा ज्येष्ठा तस्यासीन्नृपतेर्मता ॥ स कदाचिद्वनं भेजे मृगयासक्तमानसः ॥ ६ ॥ तत्र शार्दूलवाराहवनमाहिषकुञ्जरान् ॥ हत्वा बभ्राम तृष्णार्तः स तस्मिन् विपिने महत् ॥ ७ ॥ चकोरचक्रकारण्डखञ्जरीटशताकुलम् ॥ उत्फुल्लहल्लकोद्दामकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ ८ ॥ अपूर्वमवनीशौऽसौ ददर्शाप्सरसां सरः ॥ समासाद्य सरस्तीरं पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ भक्त्या गौरीमर्चयन्तं ददर्शाप्सरसां गणम् ॥ किमेतदिति पप्रच्छ राजा राजीवलोचनः ॥ १० ॥ अप्सरस ऊचुः ॥ स्वर्णगौरीव्रतमिदं क्रियतेऽस्माभिरुत्तमम्॥सर्वसंपत्करं नृणां तत्कुरुष्व नृपोत्तम ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ विधानं कीदृशं ब्रूत किंफलं [1]व्रतचारणात् ॥ ता ऊचुर्योषितः सर्वा नभोमासि [2]तृतीयके ॥ १२ ॥ प्रारब्धव्यं व्रतमिदं गौर्याः षोडशवत्सरान् ॥ तच्छ्रुत्वा सोऽपि जग्राह व्रतं नियतमानसः ॥ १३ ॥ गुणैः षोडशभिर्युक्तं दोरकं दक्षिणे करे ॥ बबन्धानेन मन्त्रेण भक्त्या गौरीं प्रपूज्य च ॥ १४ ॥ दोरकं षोडशगुणं बध्नामि दक्षिण करे ॥त्वत्प्रीतये महेशानि करिष्येऽहं व्रतं तव ॥ १५ ॥ ततः कृत्वा व्रतं देव्या अगमन्निजमन्दिरे ॥ विशालाक्ष्या ततो दृष्टो राजा गौर्याः प्रपूजकः ॥ १६ ॥ बद्धं तं दोरकं हस्ते दृष्टा च पतिकोपना ॥ न कर्तव्यं न कर्तव्यमिति राज्ञि वदत्यपि ॥ १७ ॥ त्रोटित्वा सा च चिक्षेप बाह्यशुष्कतरूपरि ॥ तेन संस्पृष्टमात्रेण तरुः पल्लवितां गतः ॥ १८ ॥ तद्द्वितीया ततो दृष्ट्वा विस्मयाकुलिताभवत् ॥ तन्मूले दोरकं छिन्नं गृहीत्वा सा बबन्ध ह ॥१९॥ ततस्तद्व्रतमाहात्म्यात्पतिप्रियतराभवत्॥ देवीव्रतापचारेण सा त्यक्ता दुःखिता वने ॥२०॥ प्रययौ सा महादेवीं ध्यायन्ती नियमान्विता ॥ मुनीनामाश्रमे पुण्ये निवसन्ती सती क्वचित् ॥२१॥ निवारिता मुनिवरैर्गच्छ पापे यथासुखम् ॥ धावन्ती विपिनं घोरं गणाध्यक्षं ददर्श ह ॥२२॥ तं च दृष्ट्वापि सा गौरीं द्रक्ष्याम्यहमुपोषिता ॥ इति निश्चित्य मनसा गन्तुं प्रववृतेऽन्यतः ॥ २३ ॥ ततो ददर्शाग्रतस्तु गच्छन्ती च सरोवरम् ॥ ततो वमश्रियं चाग्रे सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २४ ॥ पश्यन्ती शनकैस्तद्वद्व्रजन्ती चैव मानुषी ॥ तैस्तैर्निराकृता दुष्टा निर्विण्णा निषसाद ह ॥ २५॥ ततस्तत्कृपया गौरी प्रादुरासीन्महासती ॥ तां दृष्ट्वा दण्डवद्भूमौ नत्वा स्तुत्वा नृपप्रिया ॥२६ ॥ जय देवि नमस्तुभ्यं जय भक्तवरप्रदे ॥ जय शंकरवामाङ्गे मङ्गले सर्वमङ्गले ॥२७ ॥ ततो लब्ध्वा वरं भक्त्या गौरीमभ्यर्च्य तद्व्रतम्॥चक्रे देवीपदं तस्यै ददौ सौभाग्यसंपदः ॥ २८॥ इति तस्याः प्रसादेन सर्वान् भोगानवाप्य च ॥ विशालाक्षी प्रिया राज्ञो भूत्वा च मुमुदे भृशम् ॥ २९ ॥ एवमाराधयन् गौरीं भुक्त्वा भोगाननुत्त-

१ विस्ताराऽन्ममेतिक्वचित्पाठः २ तृतीयायामित्यर्थः

मान् ।। अन्ते शिवपुरं प्राप्तः कान्ताभिः सहितो नृपः ।। ३० ।। यच्छोभनं व्रतमिदं कथितं शिवायाः कुर्यान्मम प्रियतरो भवता च गौर्याः ।। प्राप्य श्रियं समधिकां भुवि शत्रुसंघोन्निर्जित्य निर्मलपदं सहसा प्रयाति ।। ३१ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे गौरीखण्डे सुवर्णगौरीव्रतकथा ।। अथोद्यापनम् ।।युधिष्ठिर उवाच।। उद्यापनविधिं ब्रूहि तृतीयायाः सुरेश्वर ।। भक्तितः श्रोतुमिच्छामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।।१ ।। कृष्ण उवाच ।। उद्यापनविधिं वक्ष्ये सावधानेन वै शृणु ।। त्रिंशद्दण्डप्रमाणेन प्रमितं दक्षिणोत्तरे ।।२ ।। प्रत्यक्प्रागपि राजेन्द्र नव गोचर्म इष्यते ।। गोचर्ममात्रं संलिप्य गोमयेन विचक्षणः ।। ३ ।। मण्डपं कारयेत्तत्र नानावर्णं सुशोभनम् ।।ग्रहमण्डल-पार्श्वे तु पद्ममष्टदलं लिखेत् ।। ४।। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भमव्रणं मृन्मयं शुभम् ।। ताम्रपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिस्तथा ।। ५।। तदर्धार्धेन वा कुर्याद्वित्त शाठ्यं विविर्जयेत् ।। श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं श्वेतयज्ञोपवीति च ।।६।। भाजनं च तिलैः पूर्णं कलशोपरि विन्यसेत् ।। कर्षमात्रसुवर्णेन प्रतिमां कारयेद्बुधः ।।७ ।। तदर्धं मध्यमं प्रोक्तं तदर्धं तु कनिष्ठकम् ।। कृत्वा रूपं प्रयत्नेन पार्वत्याश्च हरस्य च ।।८ ।। वेदोक्तेन प्रतिष्ठा च कर्तव्या तु यथाविधि ।। अथ ताम्रमये पात्रे प्रतिमां तत्र विन्यसेत् ।।९।। पार्वत्यास्तु युगं* दद्यादुपवीतं शिवस्य च ।। पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा देवस्य चोत्तमम् ।। १०।। स्नानं च कारयेत्पश्चात्ततः पूजां समाचरेत् ।। चन्दनेन सुगन्धेन सुपुष्पैश्च प्रपूजयेत् ।।११।। धूपं च कल्पयेद्गन्धं चन्दनागुरुसं-युतम् ।। नानाप्रकारैर्नैवेद्यं तथा दीपं च कारयेत् ।।१२ ।। अर्चयेत्पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पैः फलाक्षतैः ।। आवाहनादि कर्तव्यं पुराणागमसंभवैः ।।१३ ।। कार्या विधानतः पूजा भक्तिश्रद्धासमन्वितम् ।। देवदेव समागच्छ प्रार्थयेऽहं जगत्पते ।। १४ ।। इमां मया कृतां पूजां गृहाण सुरसत्तम ।। एवं पूजा प्रकर्तव्या रात्रौ जागरणं ततः ।। १५।। गीतनृत्यादिसंयुक्तं कथाश्रवणपूर्वकम् ।। अर्चयेत्पूर्ववद्देवं पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।। १६ ।। स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं ततः ।। प्रारभेच्च ततो होमं नवग्रहपुरः सरम् ।।१७ ।। तिलांश्च यवसंमिश्रानाज्येन च परिप्लुतान् ।। जुहुयाद्रुद्रमन्त्रेण गौरीमन्त्रेण वेदवित् ।।१८ ।। अष्टोत्तरशतं वापि अष्टाविंशतिमेव वा ।। एवं समाप्य होमं तु तत्राचार्यं प्रपूजयेत् ।।१९ ।। अर्घ्य-पुष्पप्रदानैश्च वस्त्रालंकारभूषणैः ।। शक्त्या च दक्षिणां दद्यात्प्रचारैर्गोधिकां मताम् ।। २०।। धेनुं सदक्षिणां दत्त्वा सुशीलां च पयस्विनीम् ।। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनसंयुताम् ।। २१ ।। रत्नपुच्छां वस्त्रयुतां ताम्रपृष्ठामलं-

* वस्त्रयुगम्

कृताम् ।। सवत्सं मव्रणां भद्रां धेनुं दद्यात्प्रयत्नतः ।।२२ ।। सुवर्णेन समायुक्ता-माचार्याय च साधवे ।। षोडशभिः प्रकारैश्च पक्वान्नैः प्रीणयेच्च तम् ।।२३ ।। षोडशप्रमितैर्दद्याद्ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ।। वंशपात्रस्थितैः पश्चात्पक्वान्नैर्वायनं शुभैः ।। २४।। अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां च प्रयत्नतः ।। बन्धुभिः सह भुञ्जीत नियतश्च परेऽहनि ।। एवं कृत्वा भवेत्पार्थ परिपूर्णव्रती यतः ।।२५ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे कृष्णयुधिष्ठिरसंवादे स्वर्णगौरीव्रतोद्यापनम् ।।

अथ कथा--पहिले समयमें सिद्ध गन्धर्वोंसे सेवित कैलासके शिखरपर, उमा सहित अव्यय शिवजीसे श्रीस्कन्दजी पूछने लगे ।। १ ।। हे करुणाके सागर ईशान ! हे-देवेश ! एक ऐसा व्रत कहिये जिससे कि, बेटे नातीयोंकी वृद्धि हो ।। २ ।। शिवजी बोले कि, हे महाभाग षडानन ! तुमने ठीक पूछा. मनुष्योंको सर्वसंपत् देनेवाला स्वर्णगौरी व्रत है ।। ३ ।। पहिले सरस्वती नदीके किनारे एक विमला नामकी महापुरी थी वहां कुबेरके समान चन्द्रप्रभा नाम का राजा था ।। ४ ।। उसकी महादेवी और शिवालाक्षी दो स्त्रियाँ थीं जो रूप लावण्य सौन्दर्य और स्मरविभ्रममें अद्वितीया थीं, आखें हिरणके बच्चेकी सी थीं ।। ५ ।। उसे बडी सबसे ज्यादा प्यारी थी, एक दिन वो शिकार खेलने गया ।। ६ ।। वहां वो शेर, शूकर, जङ्गलीभैंसे और हाथि-योंको मारकर, प्यासका मारा बनमें घूमने लगा ।। ७ ।। सैकडों ही चकोर, चक्र कारंडव और खञ्जरीटोंसे आकुल तथा उत्पल और हल्लोंसे व्याप्त एवम् कुमुद और उत्पलों से मंडित ।। ८ ।। एक अपूर्व अप्सराओंका सर देखा, उसके पास पहुंचकर उत्तम पानी पिया ।। ९ ।। वहां भक्तिभावके साथ गौरीका पूजन करते हुए अप्सराओंके समूहको देख राजाने उनसे पूछा कि, आप क्याकर रही हैं ? ।। १० ।। अप्सरायें बोलीं कि, हम उत्तम स्वर्णगौरी व्रतकर रही हैं इससे मनुष्योंको सब संपत्तियाँ मिल जाती हैं, हे नृपोत्तम आपभी करें ।। ११ ।। राजा बोला कि, उसका विधान कैसा है तथा व्रतके करनेसे क्या फल होता है ? कहें तब वे स्त्रियाँ बोलीं कि भाद्रपद शुक्ला तृतीयाके दिन ।।१२।। इस व्रतका प्रारंभ करना चाहिये, यह षोडश वत्सरका है, यह सुन राजाने भी उस व्रतको नियमके साथ ग्रहण किया ।। १३ ।। राजाने भक्तिभावसे गौरीजीकापूजन करके निम्नलिखित मंत्रके साथ सोलह तारका भागा बांधा ।। १४ ।। कि हे महेशानि ! तेरी प्रसन्नताके लिए मैं दायें हाथमें सोलह धागोंका एक वरन बांधता हूं, मैं तेरा व्रत करूँगा ।। १५ ।। वो देवीका व्रत करके अपने मकान आया, विशालाक्षीने देखा कि, राजा गौरीका पूजन करता है ।। १६ ।। हाथमें उस डोरेको बँधा हुआ देखकर पतिपर नाराज हुई राजा कहते ही रहे कि, न तोडिये न तोडिये ।। १७ ।। पर उसने उस डोरेको तोड, सूखे वृक्षपर पटक दिया, उस डोरेके छू जानेसे सूखा पेड हरा हो गया ।। १८ ।। दूसरी यह देख विस्मित हो गयी और उस डोराको उठाकर अपने हाथमें बांध लिया ।। १९ ।। वो उस व्रतके माहात्म्यसे पतिकी अत्यन्त प्यारी होगई किन्तु जो प्यारी थी वो देवीके व्रतके अपचारसे राजाने वनमें छोड दी ।। २० ।। वो कभी मुनियोंके पवित्र आश्रममें वसती हुई, नियमपूर्वक महादेवीका ध्यान करती हुई चलने लगी ।। २१ ।। मुनि लोग भी उसे अपने आश्रमसे निकाल देते थे कि, पापिष्ठे ! तेरी राजी हो वहां चली जा; एक दिन उसे चलते फिरते एक घोर वनमें गणपतिजी मिल गये ।। २२ ।। गणेशजीको देख करके भी उसने निश्चय किया कि, मैं व्रत करके गौरीको देखूंगी, यह शोच, वहांसे अन्यत्र चल दी ।। २३ ।। इससेके बाद उस सरोवर जाती हुई सजी सजाई वनश्री सामने मिली ।। २४।। जो जो इसे मिले, सभीने इस दुष्टाका तिरस्कार किया जिस जिसको कि, इसने वनमें धीरे धीरे घूमते हुए देखा था पीछे यह दुखी होकर एक जगह, बैठ गई ।। २५ ।। उस रानीपर कृपा करके महासती गौरी प्रकट हुई, उन्हें देखकर दुखी रानीने दण्डकी तरह भूमिमें नवकर स्तुति की ।। २६ ।। हे देवि ! तेरी जय हो, हे भक्तोंको वर देनेवाली तेरी जय हो, हे शंकरकी वामाङ्गे ! तेरी जय हो, हे मंगले ! सर्व मंगले ! तेरी जय हो ।। २७ ।। गौरीजीसे वरले, भक्ती भावसे गौरीजीका पूजन करके, उस व्रतको किया, देवीचरणोंने उसे सौभाग्य संपत्ति दी ।। २८ ।। भगवतीके प्रसादसे विशालाक्षीको सब भोगोंकी प्राप्ति हुई

यह राजाकी प्यारी स्त्री होकर एकदम प्रसन्न हुई ।। २९ ।। इस प्रकार, गौरीकी कृपासे, आराधन करते हुए विशालाक्षीने ऐसे भोगोंको भोगा जिनसे कोई उत्तम ही न हो, अन्तमें स्त्रियों सहित वो राजा शिवपुर चला गया ।। ३० ।। यह मैंने गौरीका सुन्दर व्रत कहा है, जो इस व्रतको करता है वो मेरा और गौरीका प्यारा होता है तथा लोकोत्तरश्रीवाला हो, वैरियोंके समुदायोंको जीत, सहसाही निर्मलपदको पाजता है ।। ३१ ।। यह स्कन्दपुराणमें गौरीखण्डके स्व० व्रतकी कथा पुरी हुई ।। अथोद्यापनम्–युधिष्ठिरजी भगवान् कृष्णजीसे बोले कि, हे सुरेश्वर ! तृतीयाके उद्यापनकी विधि कहिये, मैं व्रतकी संपूर्तिके लिये भक्तिसे सुनना चाहता हूं ।। १ ।। श्रीकृष्ण बोले कि, मैं तुझे उद्यापनकी विधि कहता हूं, सावधान मन करके सुन, जो तीस दण्डके (१२० हाथके) प्रमाणसे दक्षिणोत्तरमें नपी हुई ।। २ ।। तथा पूर्वसे पश्चिममें ३६ हाथ हो वो गोचर्म मात्र कहाती है हे राजेंद्र ! चतुर व्रती, कहे हुए गोचर्म मात्रको गोबरसे लीप कर ।। ३ ।। उसमें अनेक रंगोंसे सुशोभित एक मण्डप करा, ग्रहमण्डलकी बगलमें एक अष्टदल कमल लिखाये ।। ४ ।। इसके बीचमें एक सावित शुभ मिट्टीका कलश स्थापित कर दे, सोलहपलोंका एक तामेका पात्र बनावे ।।५।।यह नहो सके तो इसके आधेका ही बनवाले, इसमें लोभ न करना चाहिये उसे दो सफेद कपडोंसे ढककर सफेद ही जनेऊ डालकर ।। ६ ।। उसमेंतिल भर कर कलशके ऊपर रख दे । समझदारको चाहिये कि, एक कर्षभर सोनेकी मूर्ति बनवाले ।। ७ ।। आधे कर्षकी मूर्त्ति मध्यम तथा चौथाईकी कनिष्ठ कही है, वो हूबहू गौरी पार्वतिकी होनी चाहिये ।। ८ ।। वैदिकविधिसे उसकी यथावत् प्रतिष्ठा करके उसे तांबेके पात्रपर रख देना चाहिये ।। ९ ।। पार्वतीजीको दो वस्त्र तथा शिवजीको जनेऊ देकर, देवका पंचामृतसे उत्तम स्नान कराकर ।। १० ।। पीछे शुद्ध पानीसे स्नान कराके पूजा प्रारंभ करनी चाहिये, सुगन्धित चन्दन और अच्छे खिले हुए पुष्पोंसे पूजे ।। ११ ।। चन्दन और अगर जिसमें पड़े हों ऐसी धूप दे तथा अनेक तरहके नैवेद्यको निवेदन करके दीपक कराये ।। १२ ।। गन्ध, पुष्प फल और अक्षतोंसे वेदोक्त और पुराणोक्त मंत्रोंसे आवाहनादिक करने चाहिये ।। १३ ।। श्रद्धा और भक्तिके साथ विधानसे पूजा करनी चाहिये कि, हे देव ! हे देव ! आओ, हे जगत्पते! मैं आपकी प्रार्थना करता हूं ।। १४ ।। हे सुरसत्तम ! मैंने जो यह पूजा की है इसे ग्रहण करिये पूजा करके रातको जागरण करना चाहिये ।। १५ ।। उसमें गाने बजानेके साथ कथाका भी श्रवण करे, पहिलेकी तरह देवका अर्चन करके पीछे होम करना चाहिये ।। १६ ।। अपने गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार नवग्रहके पूजनके साथ अग्निस्थापन करके हवनकरना चाहिये ।। १७ ।। वेदका जाननेवाला, घीसे भिगोये हुए तिल जौओंका रुद्र मंत्रोंसे और गौरीमंत्रसे हवन करे ।। १८ ।। एकसौ आठ आहुति अथवा अट्ठाईस आहुति दे, होम समाप्त करके आचार्यका पूजन करे ।। १९ ।। अर्घ दे, फूल चढावे तथा और भी वस्त्रालंकार दे, गौसे अधिक मूल्यकी दक्षिणा दे ।। २० ।। गौकी दक्षिणासहित गऊ दे जो दूध देनेवाली हो, सुशीलहो, जिसके सोने मढे सींग और खुरोंमें चांदीहो अथवा सोनेके सींग और चांदीके खुर भी उसके साथ दे, कांसेका एक दोहना दे ।। २१ ।। रत्नोंकी पूंछ तांबेकी पीठ भी देनी चाहिये, वह कपडा उढाई हुई अलंकृत होनी चाहिये ।।२२।। गऊके साथ कुछ सोना भी देना चाहिये, यह सब साधु आचार्यको दे, उसे सोलह प्रकारके पक्वानोंसे उत्पन्न करना चाहिये ।। २३ ।। सोलह सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रयत्नके साथ भोजन कराकर, सुन्दर पक्वान्नके साथ उन्हें बांसकी सोलह सौभाग्य पिटारी दे ।। २४ ।। दूसरे ब्राह्मणोंकोभी प्रयत्नके साथ दक्षिणा देकर दूसरे दिन नियमपूर्वक भाइयोंके साथ भोजन करे । हे पार्थ ! इस प्रकार करके उसका व्रत पूरा हो जाता है ।। २५ ।। यह स्वर्णगौरीव्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ सुकृततृतीयाविधिरुच्यते

श्रावणशुक्लतृतीयायां सुकृतव्रतम् ।। तत्र सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । अथ कथा ।। शौनक उवाच ।। सर्वकामप्रदायीनि व्रतानि कथितानि वै ।। व्रतं कथय यत्नेन येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।१।। सूत उवाच ।। साधु साधु महाभाग-

लोकानां हितकारम्।।कथायामि व्रतं दिव्यं योषितां पलदायकम्।।२।। कृष्णस्यावरजा साध्वी सुभद्रा नाम विश्रुता ।। रूपलावण्यसंपन्ना सुभगा चारुहासिनी ।। ३ ।। गाण्डीवधन्वनश्चासौ योषितां च वरा प्रिया ।। त्रैलोक्याधिपतिः कृष्णस्त स्याहं भगिनी प्रिया ।। ४ ।।इति गर्वसमाविष्टा न किंचिदकरोच्छुभम् ।। कालोऽपि यस्य चाज्ञां व शिरसा धारयेत्सदा ।। ५।। स मे भ्राता सखा कृष्णो दनुजानां निकृन्तनः ।। इति संचिन्त्य मनसि न किंचित्साकरोत्तदा ।।६ ।। सर्वं ज्ञातं तदा तेन देवदेवेन शार्ङ्गिणा ।। इति संचिन्त्य मनसि भ्रातृत्वान्मम गौरवात् ।।७ ।। भवाब्धितारणं किंचिन्मूढत्वान्न करिष्यति ।। ध्यात्वा मुहूर्तं मनसि श्रीकृष्णो भक्तवत्सलः ।। ८।। सुभद्रानिकटे गत्वा वचनं चेदमब्रवीत् ।। परलोकजिगीषार्थं न किंचिदपि ते कृतम् ।। ९।। व्रतं कुरुष्व मनसा सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।। सुकृतिं तारकं लोके लोकानां हितकारकम् ।। १०।। यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संयशः ।। भुक्तिमुक्तिप्रदं चापि सर्वसौभाग्यदायकम् ।।११ ।। व्रतं कुरुष्व चाद्यैव सुकृतस्य पलाप्तये ।। कालोऽहं सर्वलोकेषु वृक्षरूपेण संस्थितः ।।१२ ।। धर्मस्तस्य च मूलं हि ऋतवः स्कन्ध एव च।। मासा द्वादशसंख्याकाश्चोपशाखा ह्यनुक्रमात् ।। १३ ।। षष्टयाधिकं च त्रिशतं फलानि दिवसास्तथा ।। पर्णानि घटिकाः प्रोक्ताः कालोऽहं वृक्षरूपकः ।। १४।। तस्मात्फलानां प्राप्त्यर्थं व्रतं कुरुष्व शोभने ।। नभोमासे च संप्राप्ते शुक्लपक्षे च भामिनि ।। १५।। तृतीया हस्तसंयुक्ता व्रतं कार्यमिदं शुभम् ।। प्रातश्चैव समुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।।१६ ।। स्नानं कुर्याद्यथान्यायं हरिद्राभिः समन्वितम् ।। मध्याह्नेचैव संप्राप्ते कृत्वा गोमयमण्डलम् ।। १७ ।। चतुर्द्वारेण सहितं मण्डपं तत्र कारयेत्।। वेदीं विरच्य धवलां हस्तमात्रां विशेषतः ।। १८।। तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममक्षतैः परिकल्पयेत् ।। पीठे मां चोपरि स्थाप्य क्षीराब्धिसुतया सह ।। १९।। उपचारैः षोडशभिः पूजयेद्भक्तिसंयुतः ।। षष्टयाधिकं च त्रिशतं सुकृतस्य फलानि वै ।। २०।। गोधूमचूर्णेन फलं शर्कराभिः समन्वितम् ।। उदुम्बरस्य वृक्षस्य फलाकारं च कारयेत् ।।२१ ।। वेणुपात्रे च संस्थाप्य वाणकं च द्विजातये ।। सहिरण्यं सताम्बूलं दद्याच्चैव यथाविधि ।।२२ ।। वायनमन्त्रः – पुत्रपौत्रसमृद्धयर्थं सौभाग्यावाप्तये तथा ।। वाणकं वै प्रदास्यामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। २३।। पिष्टस्य च फलानां वै पायसं परिकल्पयेत् ।। भ्रातृस्वरूपिणं मां च भोजयित्वा यथाविधि ।। २४।। इति कृत्वा च विधिवत्समाप्य च ततः परम् ।। तृतीये वत्सरे प्राप्ते उद्यापनविधिं चरेत् ।।२५।। आचार्यं वरयेद्भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगम् ।। सुशीलं सर्वधर्मज्ञंशान्तं दान्तं कुटुम्बिनम् ।।२६ ।। स्वस्ति वाच्यं द्विजैः साकं नान्दीश्राद्धं विधाय च ।। हैमीं च प्रतिमां कुर्यान्निष्कनिष्कार्धसंख्यया ।।२७ ।। क्षीराब्धिसुतया साकं मम शक्त्या तु भक्तितः ।। नवीनं कलशं

ताम्रं विधानेन समन्वितम् ।।२८।। पल्लवैश्च हिरण्यैश्च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।। तन्मध्ये मां प्रतिष्ठाप्य उपचारैः प्रपूजयेत् ।।२९।। ततः पुष्पाञ्जलिं दद्यात्क्षमाप्य च पुनः पुनः ।। वाणकं हि प्रदद्याच्च व्रतसंपूर्तिहेतवे ।।३० ।। लक्ष्मीनारायणो देवो ह्यस्मात्संसारसागरात् ।। रक्षेद्वै सकलात् पापादिह सर्वं ददातु मे ।।३१ ।। अच्युतः प्रतिगृह्णाति अच्युतो वै ददाति च ।।* अच्युतस्तारकोभाभ्यामच्युताय नमो नमः ।। ३२।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रमङ्गलैः ।। पुराणश्रवणेनैव रात्रिशेषं ततो नयेत् ।।३३ ।। प्रभाते विमले स्नात्वा नित्यकर्म समाप्य च ।। विष्णोर्नुकं सक्तुमिव होममन्त्रद्वयं स्मृतम् ।।३४ ।। अष्टाधिकद्विशतं च तिलैर्होमं तु कारयेत् ।। कलशं प्रतिमायुक्तमाचार्याय निवदेयेत् ।।३५ ।। गां दद्यात्कपिलां चैव सालंकारां सदक्षिणाम् ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रैराभरणैरपि ।।३६ ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्चतुर्विंशतिसंख्यकान्।।आशिषो वै गृहीत्वाथ स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।।३७।। इति तस्य वचः श्रुत्वा तत्सर्वं हि चकार सा ।। भुक्त्वा भोगान्यथा-काममन्ते स्वर्गं जगाम सा ।। ३८।। इतिश्रीभविष्योत्तरपुराणे सुकृतव्रतकथा ।।

अथ सुकृततृतीयाव्रतम्–अब सुकृत्य तृतीयाके व्रतको कहते हैं । श्रावण शुक्ला तृतीयाको सुकृतव्रत होता है, पर तृतीया मयाह्न व्यापिनी होनी चाहिये । अथ कथा । शौनकादिक ऋषि गण बोले कि, आपने सब कामनाओंके देनेवाले व्रत तो कहदिये अब प्रयत्नके साथ उन व्रतोंको कहिये जिनसे हमें श्रेय मिले ।। १ ।। सूतजी बोले कि, हे महाभाग ! आपने अच्छा पूछा इससे लोकका हितहै कि ऐसे दिव्यव्रतको कहूंगा जो स्त्रियोंको फलदायक है ।। २ ।। भगवान् कृष्णकी छोटी बहिन, सुभद्राके नामसे प्रसिद्ध थी । वो रूप लावण्यसे संपन्न, सुन्दर हसनेवाली सुमुखी थी ।। ३ ।। गाण्डीव धन्वा अर्जुनकी प्यारी पटरानी और तीनों लोकोंके स्वामी कृष्णकी में प्यारी छोटी बहिन हूं ।। ४ ।। इस अभिमानसे उसने शुभका कुछ भी संचय नहीं किया, जिसकी आज्ञाको काल भी अपने शिरपर सदा धारण करता है ।। ५ ।। वो मेरा भाई सखाकृष्ण है जो राक्षसोंका संहार करता है । ऐसा मनमें शोचकर उस समय उसने कुछ भी नहीं किया ।। ६ ।। देवदेव कृष्णने यह सब जान लिया और यह शोचकर कि, मैं इसका भाई हूं, मेरे गौरवसे ।। ७ ।। संसार सागरसे तरनेका कुछ भी उपाय न करेगी क्योंकि मूढहै यह थोडी देर शोच भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ।। ८।। सुभद्राके समीप जाकर बोले कि, पर लोकको जीतनेकी इच्छासे तैंने कुछ भी नहीं किया है ।। ९ ।। तू मनसे व्रतकर सब कामोंको पावेगी लोकमें सुकृततारक है, लोकोंका हितकारक है ।। १० ।। इस व्रतको करके सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, यह भुक्ति और मुक्तिपद तथा सब सौभाग्योंका देनेवाला है ।। ११ ।। तू अभी सुकृत फलको पानेके लिये व्रतको कर, मैं काल हूं, सब लोकोंमें वृक्ष रूपसे स्थित हूं, ।। १२ ।। धर्म ही मूल है, ऋतु स्कन्द हैं, अनुक्रमसे बारहों महीना उप शाखाएं हैं ।। १३ ।। तीनसौ साठ दिन ही उसके फल हैं, घडी पत्तियां हैं ऐसा कालरूप वृक्ष में ही हूं ।। १४ ।। हे शोभने ! इस कारण फलोंकी प्राप्तिके लिये तू व्रतकर हे भामिनि ! भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षकी ।। १५ ।। हस्तनक्षत्रसंयुक्ता तृतीयाके दिन इस शुभव्रतको करना चाहिये । प्रातःकाल उठकर दातुन करके ।। १६ ।। उचित रीतिसे हलदी लगाकर स्नान करना चाहिये ।। मध्याह्नकालमे गोबरका चौका लगाकर ।। १७ ।। उसमें चतुर्द्वारसहित एक मण्डप बनाना चाहिये, उसमें हाथ भरकी सफेद बेदी बनाकर ।। १८ ।। उसके बीचमें अक्षतोंसे अष्टदल कमल बना डाले, उसमें सिंहासनपर लक्ष्मीके साथ मुझे बिठलाकर ।। १९ ।। षोडशोपचारसे भक्तिसहित पूजे, तीनसौ साठ सुकृतके फल ।। २० ।। गेहूंके चूनेके

१ सन्धिरार्षः

बनेहुए तथा शर्करा मिले हुए, गूलरके फलके बराबर बनाले ।। २१ ।। उन्हें बांसके पात्रमें सोना और पानके साथ रखकर, उस वाणकको विधिके साथ ब्राह्मणके लिये दान कर दे ।।२२।। वायनका मंत्र--पुत्र पौत्रोंकी समृद्धि तथा सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये तथा व्रतकी संपूर्तिके लिये वाणकका दान करता हूं ।। २३ ।। पिष्टकी और फलोंकी क्षीर बना भ्रातृस्वरूपी मुझे भोजन कराकर ।। २४ ।। इस प्रकार विधिके साथ व्रतको समाप्त करके इसके बाद, तीसरे वर्षमें उद्यापन करे ।। २५ ।। वेदवेदान्तोंके जाननेवाले, सर्वधर्मज्ञ, सुशील, शान्त, दान्त और कुटुम्बी आचार्य्यका वरन भक्ति भावके साथ करके ।। २६ ।। स्वस्तिवाचनपूर्वक नान्दीश्राद्ध करा, निष्ककी हो, चाहें आधे निष्ककी हो, एक सोनेकी प्रतिमा करावे ।। २७ ।। वो मूर्ति लक्ष्मीनारायणकी हो, ढकनेके साथ नया तांबेका कलश ।। २८ ।। जो पंचपल्लवोंसे हिरण्यसे और दो वस्त्रोंसे वेष्टित हो, उसके बीचमें मुझे प्रतिष्ठित करके उपचारोंसे भली प्रकार पूजना चाहिये ।। २९ ।। इसके पीछे पुष्पांजलि दे, वारंवार क्षमापन कर, व्रतकी संपूर्तिके लिये वाणक देना चाहिये ।। ३० ।। लक्ष्मीनारायण देव ही इस संसार सागर और सब पापोंसे मेरी रक्षाकरें तथा यहां मुझे सब दें ।। ३१ ।। अच्युत ही देते लेते हैं, दोनोंसे अच्युत ही पार करते हैं, अच्युतके लिये ही वारंवार नमस्कार है ।। ३२ ।। इसके पीछे गाने बजानेके साथ रातको जागरण करना चाहिये, बाकी रात तो पुराणकी कथा सुनकर, बितानी चाहिये ।। ३३ ।। निर्मल प्रभातमें स्नानकर, नित्यकर्मसे निवृत्त हो "ओम् विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रवोचम् पार्थिवानि विममे रजांसि । यो अस्कभाय दुत्तरं सधस्थे विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः" भगवान् श्रीकृष्णन्नारायणके पुरुषार्थको कौन वर्णन करसकता है, जिस क्रान्त दर्शीने पंचतत्त्वके बने हुए, तथा शुद्ध सत्व अथवा अप्राकृत तत्त्वके बने हुए, लोकोंका निर्माण किया है । जो तीन डगमें बलिका राज्य ले उपेन्द्र बनकर बैठ गया । तीनों विधानोंसे जिसकी बडी बडी स्तुतियाँ गायी जाती हैं । इस मंत्रसे तथा "ओम् सक्तमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीराः मनसा वाचमक्रत ।। अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ।।" इस मंत्रका महर्षि पतंजलिजीने दूसरा ही अर्थ किया है, पर पहिला हवन विष्णु भगवानका है तथा प्रयोगभी लक्ष्मीनारायण भगवान्की पूजाके बाद हवनमें होता है तब इस मंत्रका लक्ष्मीपरक अर्थ होना अत्यावश्यक है । जैसे सतुओंको चालनीसे छानकर पवित्र बना लेते इसी तरह धीर पुरुष मनसे लक्ष्मीके पवित्र मंत्रोंको विशुद्ध कर लेते हैं । इस अवस्थामें ऐसे पुरुष लक्ष्मीका साक्षात्कार कर लेते हैं, ऐसे पुरुषोंकी भद्रा लक्ष्मी वेदके मंत्रोंसे यहां प्रतिष्ठित की गई है । दोनों मंत्रोंसे आहुति एक होती, पर ध्यान दोनोंका किया जाता है । चाहें दोनों मंत्रोंके अन्तमें आहुति देतीवार यह भावना कर लेनी चाहिये कि, यह आहुति लक्ष्मीनारायण भगवान्की है मेरी नहीं है ।। ३४ ।। कहे हुए मंत्रोंसे दोसौ आठवार तिलोंकी आहुति देनी चाहिये, प्रतिमासहित कलशको आचार्य्यके निवेदन कर देना चाहिये ।। ३५ ।। तथा अलंकार और दक्षिणासहित कपिला गायको दे, भक्तिभावके साथ वस्त्रालंकारोंसे आचार्यको पूजदे ।। ३६ ।। पीछे चौबीस ब्राह्मणों भोजन करा, उनके आशीर्वाद लेकर, आप मौन होकर भोजन करे ।। ३७ ।। भगवान् कृष्णके ऐसे वचन सुनकर सुभद्राने वैसाही किया, इस लोकमें भोगोंको भोग कर, अन्तमें स्वर्गको चली गयी ।। ३८ ।। यह भविष्यतोत्तरपुराणकी सुकृतव्रतकी कथा पूरी हुई ।।

हरितालिकाव्रतम्

अथ भद्रपदशुक्लतृतीयायां शिष्टपरिगृहीतं हरितालिकाव्रतम् ।। तच्च परयुतायां (विद्धायां) कार्यम् "मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे इति माधवोक्तेः ।। हरितालिकाव्रतपुरस्कारेणापि परविद्धाग्रहणवचनाद्दिवोदासीये उदाहृतत्वाच्च ।। तत्र व्रतविधिः ।। भाद्रपदशुक्लतृतीयायां प्रातस्तिलामलक कल्केन स्नात्वा पट्टवस्त्रं परिधाय मासपक्षाद्युल्लिख्य मम समस्तपापक्षयपूर्वक-सप्तजन्मराज्याखण्डितसौभाग्यादिवृद्धये उमामहेश्वर प्रीत्यर्थं हरितालिकाव्रतमहं

करिष्ये ।। तत्रादौ गणपतिपूजनं करिष्ये । इति संकल्प्य गौरीयुक्तं महेश्वरं पूज-येत् ।। अथ पूजा।। पीतकौशेय वसनां हेमाभां कमलासनाम् ।। भक्तानां वरदां नित्यं पार्वतीं चिन्तयाम्यहम् ।। मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालांकित-शेखराय।। दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय । उमामहे-श्वराभ्यां नमः ध्यायामि ।। देवि देवि समागच्छ प्रार्थयेऽहं जगन्मये।। इमां मया कृतां पूजां गृहाण सुरसत्तमे।। उमामहेश्वराभ्यां नमः । आवाहनम् ।। भवानि त्वं महादेवि सर्वसौभाग्यदायिके ।। अनेकरत्नसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम्।। आसनम् ।। सुचारू शीतलं दिव्यं नानागन्धसमन्वितम्।। पाद्यं गृहाण देवेशि महादेवि नमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। श्रीपार्वति महाभागे शंकरप्रियवादिनि।। अर्घ्यं गृहाण कल्याणि भर्त्रा सह पतिव्रते ।। अर्घ्यम् ।। गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।। आचम्यतां महाभागे रुद्रेण सहितेऽनघे ।। आचमनीयम् ।। गङ्गासरस्वतीरेवाप-योष्णीनर्मदाजलैः ।। स्नापितासि मया देवि तथा शान्ति कुरुष्व मे।। स्नानम् ।। दध्याज्यमधुसंयुक्तं मधुपर्कं मयाऽनघे ।।दत्तं गृहाण देवेशि भवपाशविमुक्तये ।। मधुपर्कम् ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॐपञ्चामृतस्नानम् ।। किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती ।। मणिकर्णीजलं शुद्धं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। स्नानन् ।। सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रति गृह्यताम् ।। वस्त्रम् ।। पन्त्रमयं मयादत्तं परब्रह्ममयं शुभम् ।। उपवीतमिदं सूत्रं गृहाण जगदम्बिके ।। उपवीतम् ।। कंचुकीमुपवीतं च ननारत्नैः समन्वितम् ।। गृहाण त्वं मया दत्तं पार्वत्यै च नमोऽस्तु ते ।। कंचुकीम् ।। कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैर्युतम् ।। विलेपनं महा-देवि तुभ्यं दास्यामि भक्तितः ।। गन्धम् ।। रञ्जिताः कुंकुमौघेन अक्षताश्चाति-शोभनाः ।। भक्त्या समर्पितास्तुभ्यं प्रसन्ना भव पार्वति ।। अक्षतान् ।। हरिद्रां कुकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्नितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ।। सौभाग्यद्रव्याणि ।। सेवन्तिकाबकुलचम्पकपाटलाब्जैः पुन्नागजातिकरवीर-रसाल-पुष्पैः ।। विल्वप्रवालतुलसीदलमालतीभिस्त्वां पूजयामि जगदीश्वरि मे प्रसीद ।। पुष्पम् ।। अथाङ्गपूजा ।। उमायै० । पादौ० । गौर्यैनमः जंघे० । पार्वत्यैन० । जानुनीपू० । जगद्धात्र्यै० । ऊरूपू० । जगत् प्रतिष्ठायै० । कटीपू० । शान्तिरूपि० नाभिपू० । देव्यैन० । लोकवन्दितायै० । स्तनौपू० । काल्यैन० । कण्ठंपू० । शिवायैन० । मुखम्पू० । भवान्यै० । नेत्रेपू० । रुद्राण्यै० । कर्णौ पू० । शर्वाण्यै० । ललाटं पू० । मङ्गलदात्र्यै० शिरःपू० ।। देवद्रुमरसोद्भूतः कृष्णागुरुसमन्वितः ।। आनीतोऽयं मया धूपो भवानि प्रतिगृह्यताम् ।। धूपम् ।। त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां

तेजसां तेज उत्तमम् ।। आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। आचमनीयम् ।। मलयाचलसंभूतं कर्पूरेण समन्वितम् ।। करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगतः पते ।। करोद्वर्तनम् ।। इदं फलं मया देवि० फलम् ।। पूगीफलं महद्दिव्यं० । ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भस्थं० । दक्षिणाम् ।। वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।। पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ।। भूषणम् ।। चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्त्वमेव च ।। त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नीराजनम् ।। अथ नामपूजा ।। उमायैनमः गौर्यै० पार्वत्यै० जगद्धात्र्यै० जगत्प्रतिष्ठायै० शान्तिरूपिण्यै० हराय० महेश्वराय० शंभवे न० शूलपाणये० पिनाकधृषे० शिवाय० पशुपतये० महादेवाय० । पुष्पाञ्जलिम् ।। यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ।। प्रदक्षिणाम् ।। अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।। तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वरि ।। नमस्कारम् ।। पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते ।। अन्याश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। इति प्रार्थना ।। ततो वैणवादिपात्रस्थानि सौभाग्यद्रव्यवसहितानि वायनानि दद्यात् ।। अन्नं सुवर्णपात्रस्थं सवस्त्रफलदक्षिणम् ।। वायनं गौरि विप्राय ददामि प्रीतये तव ।। सौभाग्यारोग्यकामाय सर्वसंपत्समृद्धये ।। गौरिगौरीश तुष्टयर्थं वायनं ते ददाम्यहम् ।। इति मन्त्राभ्यां वायनम् ।। इतिपूजा ।। अथ कथा ।। सूत उवाच ।। मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालांकितशेखराय ।। दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ।। १ ।। कैलासशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शंकरम् ।। गुह्याद्गुह्यतरं गुह्यं कथयस्व महेश्वर ।। २ ।। सर्वस्वं सर्वधर्माणामल्पायासं महत्फलम् ।। प्रसन्नोऽसि यदा नाथ तथ्यं ब्रूहि ममाग्रतः ।। ३ ।। केन त्वं हि मया प्राप्तस्तपोदानव्रतादिना ।। अनादिमध्यनिधनो भर्ता चैव जगत्प्रभुः ।। ४ ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तवाग्रे व्रतमुत्तमम् ।। यद्गोप्यं मम सर्वस्वं कथयामि तव प्रिये ।। ५ ।। यथा चोडुगणे चन्द्रो ग्रहाणां भानुरेव च ।। वर्णानां च यथा विप्रो देवानां विष्णुरेव च ।। ६ ।। नदीनां च यथा गङ्गा पुराणानां च भारतम् ।। वेदानां च यथा साम इन्द्रियाणां मनो यथा ।। ७ ।। पुराणवेदसर्वस्वमागमेन यथोदितम् ।। एकाग्रेण शृणुष्वैतद्यथादृष्टं पुरातनम् ।। ८ ।। येन व्रतप्रभावेण प्राप्तमर्धासनं मम ।। तत्सर्वं कथयिष्येऽहं त्वं मम प्रेयसी यतः ।। ९ ।। भाद्रे मासि सिते पक्षे तृतीया हस्तसंयुता ।। तदनुष्ठानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। १० ।। शृणु देवि त्वया पूर्वं यद्व्रतं चरितं महत् ।। तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावृत्तं हिमालये ।। ११ ।। पार्वत्यु-

वाच ।। कथं कृतं मया नाथ व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।।तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्स-काशान्महेश्वर ।। १२ ।। शिव उवाच ।। अस्ति तत्र महान्दिव्यो हिमवान्नग उत्तमः ।। नाना भूमिसमाकीर्णो नानाद्रुमसमाकुलः ।। १३ ।। नानापक्षि समा-युक्तो नानामृगविचित्रकः ।। यत्र देवाः गसन्धर्वाः सिद्धचारणगुह्यकाः ।। १४ ।। विचरन्ति सदा हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः ।। स्फाटिकैः काञ्चनैः शृङ्गैर्मणिवै-दूर्यभूषितैः ।। १५ ।। भुजैर्लिखन्निवाकाशं सुहृदो मन्दिरं यथा ।। हिमेन पूरितो नित्यं गङ्गाध्वनिविनादितः ।। १६ ।। पार्वति त्वं यथा बाल्ये परमाचरती तपः। अब्दद्वादशकं देवि धूम्रपानमधोमुखी ।। १७ ।। सम्वत्सरचतुःषष्टि पक्वपर्णाशनं कृतम् ।। माघमासे जले मग्ना वैशाखे चाग्निसेविनी ।। १८ ।। श्रावणे च बहिर्वासा अन्नपानविवर्जिता ।। दृष्ट्वा तातेन तत्कष्टं चिन्तया दुःखितोऽभवत् ।। १९ ।। कस्मै देया मया कन्या एवं चिन्तातुरोऽभवत् ।। तदैवाम्बरतः प्राप्तो ब्रह्मपुत्रस्तु धर्मवित् ।। २० ।। नारदो मुनिशार्दूलः शैलपुत्रीदिदृक्षया ।। दत्त्वार्घ्यं विश्ष्टरं पाद्यं नारदं प्रोक्तवान् गिरिः ।। २१ ।। हिमवानुवाच ।। किमर्थमागतः स्वामिन् वदस्व मुनिसत्तम ।। महाभाग्येन संप्राप्तं त्वदागमनमुत्तमम् ।। २२ ।। नारद उवाच ।। शृणु शैलेन्द्रमद्वाक्यं विष्णुना प्रेषितोऽस्म्यहम्।। योग्यं योग्याय दातव्यं कन्यारत्नमिदं त्वया ।। २३ ।। वासुदेवसमो नास्ति ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ।। तस्मै देया त्वया कन्या अत्रार्थे संमतं मम ।। २४ ।। हिमवानुवाच ।। वासुदेवः स्वरं देवः कन्यां प्रार्थयते यदि ।। तदा मया प्रदातव्या त्वदागमनगौरवात् ।। २५ ।। इत्येवं गदितं श्रुत्वा नभस्यन्तर्दधे मुनिः ।। ययौ पीताम्बरधरं शंखचक्रगदाधरम् ।। २६ ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मुनीन्द्रस्तमभाषत ।। नारद उवाच ।। शृणु देव भवत्कार्यं विवाहो निश्चितस्तव ।। २७ ।। हिमवांस्तु तदा गौरीमुवाच वचनं मुदा ।। दत्तासि त्वं मया पुत्रि देवाय [१]गरुडध्वजे ।। २८।। श्रुत्वा वाक्यं पितुर्देवी गता सा सखिमन्दिरम् ।। भूमौ पतित्वा सा तत्र विलालापातिदुःखिता ।। २९ ।। विलपन्ती तदा दृष्ट्वा सखी वचनमब्रवीत् ।। सख्युवाच ।। किमर्थं दुःखिता देवि कथयस्व ममाग्रतः ।। ३० ।। यद्भवत्याभिलषितं करिष्येऽहं न संयशः ।। पार्वत्यु-वाच ।। सखि शृणु मम प्रीत्या मनोऽभिलषितं मम ।। ३१ ।। महादेवं च भर्तारं करिष्येऽहं न संशयः ।। एतन्मे चिन्तितं आर्य तातेन कृतमन्यथा ।।३२ ।। तस्माद्देह-परित्यागं करिष्येऽहं सखि प्रिये ।।पार्वत्या वचनं श्रुत्वासखी वचनमब्रवीत् ।।३३।। सख्युवाच ।। पिता यत्र न जानाति गमिष्यावो हि तद्वनम् ।। इत्येवं संमतं कृत्वा नीतासि त्वं महद्वनम् ।। ३४ ।। पिता निरीक्षयामास हिमवांस्तु गृहेगृहे ।। केन नीतास्ति मे पुत्री देवदानवकिन्नरैः ।। ३५ ।। नारदग्रे कृतं सत्यं किं दास्ये गरुड-

१ छांदसम्

ध्वजे ।। इत्येवं चिन्तयाविष्टो मूर्च्छितो निपपात ह ।। ३६ ।। हाहा कृत्वा प्रधावपन्त लोकास्ते गिरिपुंगवम्।। ऊचुर्गिरिवरं सर्वे मूर्च्छाहेतुं गिरे वद ।।३७।। गिरिरुवाच ।। दुःखस्य हेतुं शृणुत कन्यारत्नं हृतं मम ।। दष्टा वा कालसर्पेण सिंहव्याघ्रेण वा हता ।। ३८ ।। न जाने क्व गता पुत्री केन दुष्टेन वा हृता ।। चकम्पे शोकसंतप्तो वातेनेव महातरु ।। ३९ ।। गिरिर्वनाद्वनं यातस्त्वदालोकन कारणात् ।। सिंहव्याघ्रैश्च भल्लैश्च[1] रोहिभिश्च महाघनम् ।। ४०।। त्वं चापि विपिने घोरे व्रजन्ती सखिभिः सह ।। तत्र दृष्ट्वा नदीं रम्यां तत्तीरे च महागुहाम् ।। ४१ ।। तां प्रविश्य सखीसार्द्धमन्नभोगविवर्जिता ।। संस्थाप्य वालुकालिङ्गं पार्वत्या सहितं मम ।। ४२ ।। भाद्रशुक्लतृतीयायामर्चयन्ती तु हस्तभे ।। तत्र वाद्येन गीतेन रात्रौ जागरणं कृतम् ।। ४३ ।। व्रतराजप्रभावेण आसनं चलितं मम ।। संप्राप्तोऽहं तदा तत्र यत्र त्वं सखिभिः सह ।। ४४ ।। प्रसन्नोऽस्मि मया प्रोक्तं वरं ब्रूहि वरानने ।। पार्वत्युवाच ।। यदि देव प्रसन्नोऽसि भर्ता भव महेश्वर ।। ४५ ।। तथेत्युक्त्वा तु संप्राप्तः कैलासं पुनरेव च ।। ततः प्रभाते संप्राप्ते नद्यां कृत्वा विसर्जनम् ।। ४६ ।। पारणं तु कृतं तत्र सख्या सार्द्धं त्वया शुभे ।। हिमवानपि तं देशमाजगाम घनं वनम् ।। ४७ ।। चतुराशा निरीक्षंस्तु विह्वलः पतितो भुवि ।। दृष्ट्वा तत्र नदीतीरे प्रसुप्तं कन्यकाद्वयम् ।। ४८ ।। उत्थाप्योत्सङ्गमारोप्य रोदनं कृतवान् गिरिः ।। सिंहव्याघ्राहिभल्लूकैर्वने दुष्टे कुतः स्थिता ।। ४९ ।। पार्वत्युवाच ।। शृणु तात मया ज्ञातं त्वं दास्यसीश्वराय माम् ।। तदन्यथा कृतं तात तेनाहं वनमागता ।। ५० ।। ददासि तात यदि मामीश्वराय तदा गृहम् ।। आगमिष्यामि नैवं चेदिह स्थास्यामि निश्चितम् ।। ५१ ।। तथेत्युक्त्वा हिमवता नीतासि त्वं गृहं प्रति ।। पश्चाद्दत्ता त्वमस्माकं कृत्वा वैवाहिकीं क्रियाम् ।। ५२ ।। तेन व्रतप्रभावेण सौभाग्यं साधितं त्वया ।। अद्यापि व्रतराजस्तु न कस्यापि निवेदितः ।। ५३ ।। नामास्य व्रतराजस्य शृणु देवि यथाभवत् ।। आलिभिर्हरिता यस्मात्तस्मात्सा हरितालिका ।। ५४ ।। देव्युवाच ।। नामेदं कथितं देव विधिं वद मम प्रभो ।। किं पुण्यं किं फलं चास्य केन च क्रियते व्रतम् ।। ५५ ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु देवि विधिं वक्ष्ये नारीसौभाग्यहेतुकम् ।। करिष्यति प्रयत्नेन यदि सौभाग्यमिच्छति ।। ५६ ।। तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् ।। आच्छाद्य पट्टवस्त्रैस्तु नानावर्णविचित्रितैः ।। ५७ ।। नन्दनेन सुगन्धेन लेपयेद् गृहमण्डलपम् ।। शंखभेरीमृदङ्गैस्तु कारयेद्बहुनिःस्वनान् ।। ५८ ।। नानामङ्गलगीतं च कर्तव्यं मम सद्मनि ।। स्थापयेद्वालुकालिङ्गं पार्वत्या सहितं मम ।। ५९ ।। पूजयेद्बहुपुष्पैश्च गन्धतूपादिभिर्नवैः ।। नानाप्रकारैर्नैवेद्यैः पूजयेज्जागरं चरेत् ।। ६० ।। नालिकेरैः पूगफलैर्जम्बीरैर्बकुलै-

---

१ भल्लकैरहिभिः सहितं वनमित्यपि पाठः

तस्था ॥ बीजपूरैः सनारिङ्गैः फलैश्चान्यैश्च भूरिशः ॥ ६१ ॥ ऋतुकालोद्भवैर्भूरिप्रकारैः कन्दमूलकैः ॥ नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने ॥ ६२ ॥ नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे ॥ शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे ॥ ६३ ॥ शिवायै सर्वमाङ्गल्यै शिवरूपे जगन्मये ॥ शिवे कल्याणदे नित्यं शिवरूपे नमोऽस्तु ते ॥ ६४ ॥ शिवरूपे नमस्तुभ्यं शिवायै सततं नमः ॥ नमस्ते ब्रह्मचारिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः ॥ ६५ ॥ संसारभयसन्तापात्त्राहि मां सिंहवाहिनि ॥ येन कामेन देवि त्वं पूजितासि महेश्वरि ॥६६॥ राज्यसौभाग्यसंपत्तिं देहि मामम्ब पार्वति ॥ मन्त्रेणानेन देवि त्वां पूजयित्वा मया सह ॥ ६७ ॥ कथं श्रुत्वा विधानेन दद्यादन्नं च भूरिशः ॥ ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति देया वस्त्रहिरण्यगाः ॥ ६८ ॥ अन्येषां भूयसी देया स्त्रीणां वै भूषणादिकम् ॥ भर्त्रा सह कथां श्रुत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ६९ ॥ कृत्वा व्रतेश्वरं देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सप्तजन्म भवेप्राज्यं सौभाग्यं चैव वर्द्धते ॥ ७० ॥ तृतीयायां तु या नारी आहारं कुरुते यदि ॥ सप्तजन्म भवेद्वन्ध्या वैधव्यं जन्मजन्मनि ॥ ७१ ॥ दारिद्रं पुत्रशोकं च कर्कशा दुःखभागिनी ॥ पच्यते नरके घोरे नोपवासं करोति या ॥ ७२ ॥ राजते काञ्चने ताम्रे वैणवे वाथ मृन्मये ॥ भाजने विन्यसेदन्नं सवस्त्रफलदक्षिणम् ॥ दानं च द्विजवर्याय दद्यादन्ते च पारणा ॥ ७३ ॥ एवं विधिं या कुरुते च नारी त्वया समाना रमते च भर्त्रा ॥ भोगाननेकान् भुवि भुज्यमाना सायुज्यमन्ते लभते हरेण ॥ ७४ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ कथाश्रवणमात्रेण तत्फलं प्राप्यते नरैः ॥ ७५ ॥ एतत्ते कथितं देवि तवाग्रे व्रतमुत्तमम् ॥ कोटियज्ञकृतं पुण्यमस्यानुष्ठानमात्रतः ॥ ७६ ॥ इतिश्रीभविष्योत्तरपुराणे हरगौरीसंवादे हरितालिकाव्रत कथा संपूर्णा ॥ अथोद्यापन ॥ पार्वत्युवाच ॥ उद्यापनविधिं ब्रूहि तृतीयायाः सुरेश्वर ॥ भक्तितः श्रोतुमिच्छामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥ १ ॥ महादेव उवाच ॥ उद्यापनविधिं वक्ष्ये व्रतराजस्य शोभने ॥ यस्यानुष्ठानमात्रेण संपूर्णं हि व्रतं भवेत् ॥ २ ॥ चतुःस्तम्भं चतुर्द्वारं कदलीस्तम्भमण्डितम् ॥ घण्टिकाचामरयुतं कमलैरुपशोभितम् ॥ ३ ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैर्लेपितं मण्डपं शुभम् ॥ मध्ये वितानं बध्नीयात्पञ्चवर्णैरलंकृतम् ॥ ४ ॥ तन्मध्ये कारयेत्पद्मं पञ्चवर्णैः सुशोभनैः ॥ तस्योपरि न्यसेद्व्रीहीन् द्रोणेन परिसंमितान् ॥५॥ सौवर्णं राजतं ताम्रं कलशं विन्यसेद्बुधः ॥ पञ्चरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ ६ ॥ तस्योपरिन्यसेपात्रं सौवर्णं राजतं च वा ॥ वृषारूढं महादेवं रजतेन विनिर्मितम् ॥ ७ ॥ सर्वावयसंयुक्तां गौरीं हेम्ना विनिर्मिताम् ॥ पूजयेत्तत्र गन्धाढ्यैः पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ॥ ८ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्कथावाचनपूर्वकम् ॥ ततः प्रभात-

समये कृतस्नानादिकर्म च ।। ९ ।। पूर्ववच्चार्चयेद्देवीं पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।। स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं ततः ।। १० ।। प्रारभेच्च ततो होमं नवग्रहपुरःसरम् ।। तिलांश्च यवसंमिश्रानाज्येन च परिप्लुतान् ।। ११ ।। जुहुयाद्रुद्रमंत्रेण गौरीमन्त्रेण वेदवित् ।। अष्टोत्तरशतं चापि अष्टाविंशतिमेव वा ।। १२ ।। एवं समाप्य होमं तु तत्राचार्यं प्रपूजयेत् ।। सुवर्णरत्नवासोभिर्गां दद्याच्च यथाविधि ।। १३ ।। शय्यां सोपस्करां दद्यादाचार्याय प्रयत्नतः ।। षोडशद्विजयुग्मानि सुपक्वान्नैश्च भोजयेत् ।।१४।। सौभाग्यद्रव्य वस्त्राणि वंशपात्राणि षोडश।। दातव्यानि प्रयत्नेन ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ।। १५ ।। अन्येभ्यो द्विजवर्येभ्यो दक्षिणां च प्रयत्नतः ।। भूयसीं परया भक्त्या प्रदद्याच्छिवतुष्टये ।। १६ ।। उद्दिश्य पार्वतीशं च सर्वं कुर्यादतन्द्रिता ।। बन्धुभिः सह भुञ्जीत नियता च परेऽहनि ।। १७ ।। एवं या कुरुते नारी व्रतराजं मनोहरम् ।। सौभाग्यमखिलं तस्याः सप्त जन्म न संशयः ।। १८ ।। इति श्रीहरितालिकाव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

हरितालिकाव्रतम् – भाद्रपद शुक्लतृतीयाको शिष्टपरिगृहीत हरितालिकाका व्रत होता है, वह परसे विद्धा (युता) जो भाद्रपदशुक्ला तृतीया हो उसमें होताहै । क्यों कि, माधवका कथन है कि, चौथके दिन मुहूर्त मात्रभी तीज हो तो गौरीव्रत होता है दूसरे दिवोदासीय ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि, भाद्रपदशुक्ला तृतीयाको हरितालिकाव्रत होता है वह चतुर्थी विद्धामें होता है । अब व्रतकी विधि–कहते हैं कि, कही हुई भाद्रपदशुक्ला तृतीयाके दिन प्रातःकाल तिल और आमलकके कल्कसे स्नानकर पट्टवस्त्र पहिन, संकल्प कहते हुए मास पक्ष आदिका उल्लेखकर मेरे समस्त पापोंके नाश पूर्वक सात जन्मतक राज्य और अखण्डित सौभाग्यादिकोंकी वृद्धिके लिये तथा उमामहेश्वरकी प्रीतिके लिये हरितालिकाव्रत मैं करता हूं, तहां सबसे पहिले गणपतिका पूजन करूंगा, ऐसा संकल्प करके गौरी सहित महेश्वरका पूजन करे । अथ पूजा–पीले कौशेवस्त्रवाली सुवर्णके समान चमकनी, कमलके आसनपर विराजमान होनेवाली; भक्तोंको वरदाता, पार्वतीजीको मैं याद करता हूं ।। मैं उस शिवा और शिवके लिये नमस्कार करता हूं, जो एकके अलक मन्दारकी मालासे आकुलित हो रहे हैं तो, दूसरेका शेखर कपालोंकी मालासे अंकित हो रहा है । एक दिव्य वस्त्र धारण किये हुए हैं तो एक दिगम्बर है । उमामहेश्वरके लिये नमस्कार है, ध्यान करता हूं. हे देवि ! हे देवि ! पधारिये, पधारिये, हे जगन्मये ! मैं तेरी प्रार्थना करता हूं. हे सुरसत्तमे ! इस मेरी पूजाको ग्रहण कर, उमा महेश्वरके लिये नमस्कार है । इससे आवाहन, तथा –हे भवानि ! हे महादेवि ! हे सब सौभाग्योंके देने हारी ! रतन, जटितआसनपर विराजमान होजा, इससे आसन तथा–सुन्दर शीतल दिव्य एवम् अनेक गन्ध मिले हु ए पाद्यको ग्रहण कर । हे देवेशि ! महादेवि ! तेरे लिये नमस्कार है, इससे पाद्य । तथा–हे श्रीपार्वति ! हे महाभागे ! हे शंकरकी प्रियवादिनि ! हे कल्याणि ! पतिव्रते ! भर्ताके साथ अर्घ ग्रहण करिये । इस मंत्रसे अर्घ्य । तथा –मैंने गंगाजल मंगाया है, वो सोनेके कलशमें रखा हुआ है, हे अनघे ! महाभागे ! शिवजीके साथ आचमन करिये । इस मंत्रसे आचमन । तथा-गंगा, सरस्वती, रेवा पयोष्णी और नर्मदाके पानीसे जैसे मैंने स्नान कराया है उसी तरह आपभी मुझे शान्ति दे । इस मंत्रसे स्नान । तथा –हेअनघे ! मैंने दधि, घी और मधुसे बना हुआ मधुपर्क दिया है, हे देवेशि ! संसारके पाशोंको दूर करनेके लिये उसे ग्रहण कर । इस मंत्रसे मधुपर्क । तथा–पय, दही, घी, शर्करा और मधु इनका बना जो पंचामृत, इसके स्नानको आप अपनी प्रसन्नताके लिये ग्रहण करें । इस मंत्रसे पंचामृत स्नान । तथा पुण्य तोया, किरणा, धूतपापा, सरस्वती और मणिकर्णीके शुद्ध जलको स्नानके लिये ग्रहण करिये । इस मंत्रसे स्नान, तथा "सर्वभूषाधि" इस मंत्रसे वस्त्र । तथा–हे जगदम्बिके ! मंत्रमय मैंने दिया है, यह परब्रह्म मय और शुभ है इस उपवीतसूत्रको ग्रहण करिये । इस मंत्रसे

उपवीत । तथा–अनेकरत्नोंके साथ कंचुकी और उपवस्त्रोंको में देता हूं, आप ग्रहण करिये, हे पार्वति ! तेरे लिये नमस्कार है । इससे उपवस्त्र और कंचुकीको । जिसमें कुंकुम, अगर, कपूर, कस्तूरी और चन्दन हैं ऐसे विलेपनको हे महादेवी ! मैं भक्तिभावके साथ समर्पित करता हूं ।। इससे गन्ध । तथा–सुन्दर अक्षत, कुंकुमसे रंगे हुए हैं, मैं भक्तिभावके साथ समर्पित करता हूं, हे पार्वती ! प्रसन्न हो जा । इस मंत्रसे अक्षत । तथा–हरिद्रा कुंकुम सिन्दुर और कज्जलके साथ सौभाग्य द्रव्य ग्रहण करिये । इस मंत्रसे सौभाग्य द्रव्य । तथा–सेवन्तिका, बकुल, चंपक, पाटल, कमल, पुन्नाग, जाति, करवीर और रसालके फूलोंसे तथा बिल्व, प्रवाल, तुलसीदल और माल तीसे तेरा पूजन करता हूँ : हे जगदीश्वरि ! प्रसन्न होजा । इस मंत्रसे पुष्प चढाने चाहिये । अब भगवतीके अंगोंका पूजन कहते हैं ओम् उमायै नमः पादौ पूजयामि–उमाके लिये नमस्कार है पादोंको पूजता हूं । ओम् गौर्य्यै नमःजंघे पू०–गौरीके लिये नमस्कार है जंघाओंका पूजन करता हूं इससे जंघा तथा–ओम् पार्वत्यै नमः जानुनी पू०–पार्वतीके लिये नमस्कार है, जानुओंको पूजता हूं, इससे जानु, तथा–ओम् जगद्धात्र्यै नमःऊरू पू०–जगत्‌को धारण करनेवालीके लिये नमस्कार है ऊरुओंको पूजता हूं । इससे ऊरु, तथा–ओम् जगत्प्रतिष्ठायै नमः कटी पूजयामि–जगत्‌की जिससे प्रतिष्ठा है उसके लिये नमस्कार है, कटीको पूजता हूं, इस मंत्रसे कटि, तथा-ओम् शान्ति रूपिण्यै नमः । नाभिपूजयामि–शान्ति रूपिणीके लिये नमस्कार है नाभिका पूजन करता हूं । इससे नाभि, तथा–ओम् देव्यै नमः उदरं पूजयामि–देवीके लिये नमस्कार है उदरका पूजन करता हूं इससे उदर, तथा-ओम् लोकवन्दितायै नमः स्तनौ पू०–लोक जिसे वन्दन करता है उसके लिये नमस्कार है, स्तनोंका पूजन करता हूं, इससे स्तनोंका, तथा–ओम् काल्यै नमः कण्ठं पू०–कालीके लिये नमस्कार है, कंठको पूजता हूं । इससे कंठ तथा-ओम् शिवायै नमः मुखं पूजयामि । शिवाके लिये नमस्कार है, मुखका पूजन करता हूं इससे मुख, तथा ओम् भवान्यै नमःनेत्रे पू०–भवानीके लिये नमस्कार है, नेत्रोंका पूजन करता हूं । इससे नेत्र तथा–ओम् रुद्राण्यै नमः कर्णौ पू०–रुद्राणीके लियें नमस्कार है, कानोंका पूजन करता हूं । इससे कान, तथा–ओम् शर्वाण्यै नमः ललाटं पू०–शर्वाणीके लिये नमस्कार है, ललाटका पूजन करता हूं इससे ललाट, तथा ओम् मंगलदात्र्यै नमः शिरः पू०–मङ्गल दायिकाके लिये नमस्कार है इससे शिरकी पूजा करनी चाहिये ।। देवद्रुमके रससे तयार किया तथा कृष्णागुरु मिलाया हुआ धूप में लाया हूं, हे भवानि ! ग्रहण करिये । इस मंत्रसे धूप, तथा–तू सब देवोंकी ज्योति और तेजोंका उत्तम तेज है तूही आत्माकी ज्योति और परंधाम है, इस दीपकको ग्रहण करिये । इस मंत्रसे दीपक तथा–जिसमें चार तरहका स्वादिष्ठ अन्न छः रसोंसे समन्वित तथा भक्ष्य भोज्य आदि विभागोंमें विभक्त मौजूद है, ऐसे नैवेद्यको ग्रहण करिये । इससे नैवेद्य, तथा–मलयाचलका चन्दन कपूरके साथ घिसा हुआ है, यह आपका सुन्दर करोद्वर्तनक है । हे जगत्पते ! ग्रहण करिये । इस मंत्रसे करोद्वर्तन, तथा–"इदं फलं मया देवि" इस मंत्रसे फल निवेदन, तथा–"पूगीफलं महद्दिव्यम्" इस मंत्रसे ताम्बूल तथा–"हिरण्यगर्भगर्भस्यम्" इस मंत्रसे दक्षिणा, तथा–यह वज्र माणिक्य वैदूर्य्य मुक्ता और विद्रुमोंसे मण्डित है, इसमें पुष्परागमणि लगी हुई है, इस भूषणको ग्रहण करिये । इससे भूषण, तथा–चांद, सूरज, धरणी, विद्युत और अग्नि तूही है, सब ज्योतिवाली तूही है, आरतीको ग्रहण कर । इस मंत्रसे नीराजन निवेदन करना चाहिये ।। अथ नाम पूजा–उमाके लिये नमस्कार, गौरीके लिये नमस्कार, पार्वतीके लिये नमस्कार, जगद्धात्रीके लिये नमस्कार, जिससे जगतकी प्रतिष्ठा है उसे नमस्कार, शान्तिरूपिणीके लिये नमस्कार, हरके लिये नमस्कार, महेश्वरको नमस्कार, शंभुको नमस्कार, शूलपाणिको नमस्कार, पिनाकधृषको नमस्कार, शिवको नमस्कार, पशुपतिको नमस्कार, महादेवको नमस्कार । इसमेंसे प्रत्येक नामसे पूजन करके पुष्पांजलि समर्पित करनी चाहिये । जो कोई भी ब्रह्महत्याके बराबरके पाप हैं वे सब प्रदक्षिणाके पद पदपर नष्ट हो जायें । इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।। और कोई शरण नहीं है, तूही मेरा शरण है, इस कारण कारुण्यभावसे हे परमेश्वरि ! मुझे क्षमा कर । इससे नमस्कार, तथा–पुत्रोंको दे, धन दे, हे सुव्रते ! सौभाग्य दे और भी सब कामोंकोदे हे देवि ! तेरे लिए नमस्कार है । इससे प्रार्थना करनी चाहिए । इसके पीछे सौभाग्यद्रव्योंके साथ बांस आदिके पात्रमें रखे हुए वायनोंका दान करना चाहिये, फल, वस्त्र, और दक्षिणासहित सुवर्णपात्रमें रखे हुए अन्नरूप वायनको हे गौरि ! आपकी प्रसन्नताके लिए ब्राह्मणको

देता हूं । सौभाग्य और आरोग्य प्राप्त होने तथा सब कामोंकी समृद्धिके लिये एवं गौरी और गौरीशकी प्रसन्नताके लिए तेरे वायनको दान करता हूं ! इन दोनों मन्त्रोंसे दान करना चाहिये ।। पूजाविधि पूरी हुई ।। अथ कथा--सूतजी शौनकादिकोंसे कहते हैं, कि, एकके अलक तो मन्दारकी मालाओंसे आकुलित हो रहे हैं तो दूसरेका शेखर कपालोंकी मालासे अंकित हो रहा है, एकके पास दिव्य वसन हैं तो एक बिलकुल कपडा ही नहीं रखता, उन दोनों शिवा और शिवजीके लिये नमस्कार है ।। १ ।। कैलाससे शिखरपर गौरीजी शिवजीसे पूछ रही हैं कि, जो गोप्यसे भी अत्यन्त गोपनीय गोप्य हो हे महेश्वर ! उसे मुझे कहिये ।। २ ।। हे नाथ ! यदि आप प्रसन्न हों तो मेरे सामने कहो, जो सब धर्मोंका सर्वस्व हो, जिसमें परिश्रम थोडा और फलअधिक हो ।। ३ ।। मैंने ऐसा कौन सा तप, दान, व्रत किया था जो आप आदि, मध्य तथा अन्तसेरहित एवम् जगत्के स्वामी, मुझे भर्ताके रूपमें प्राप्त हुए ।। ४ ।। शिवजी बोले--हे देबि ! सुन मैं तेरे आगे एक उत्तम व्रत कहता हूँ, वो मेरे सर्वस्वकी तरह गोप्य है हे प्रिये ! मैं तुझे कहूंगा ।। ५ ।। जैसे उडुगणमें चन्द्रमा, ग्रहोंमें सूर्य्य, वर्णोंमें ब्राह्मण, देवों में विष्णु ।। ६ ।। नदियोंमें गङ्गा, पुराणोंमें भारत, वेदोंमें सामवेद, और इन्द्रियोंमें मन श्रेष्ठ है ।। ७ ।। ऐसे ही यह पुराण वेदका सर्वस्व, जैसा कि आगमने कहा है उसे एकाग्र मनसे सुन जैसा कि, मैंने यह प्राचीन वृत्तान्त देख रखा है ।। ८ ।। जिस व्रतके प्रभावसे तुमने मेरा आधा आसनपाया, तुम मेरी प्यारी हो इस कारण सब मैं तुमें कहूंगा ।। ९ ।। भाद्रपद शुक्ला हस्त संयुक्ता तृतीयाके दिन, उसका अनुष्ठान मात्र करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है ।। १० ।। हे देवि ! सुन तुमने जो पहिले बडा भारी व्रत किया था वो सब कहूंगा जैसा कि, हिमालयपर हुआ था ।। ११ ।। पार्वतीजी बोलीं कि, हे नाथ ! मैंने कैसे सब व्रतोंका श्रेष्ठ व्रत किया, हे महेश्वर ! यह सब मैं आपसे सुनना चाहती हूं ।। १२ ।। शिव बोले कि, एक हिमवान् नामका दिव्य उत्तम पर्वत है, जो अनेक तरहकी भूमिसे व्याप्त तथा अनेक तरहके वृक्षोंसे समाकुल है ।। १३ ।। जिसपर अनेक तरहके पक्षीगण रहते हैं, अनेकों तरहके नवजीवोंसे विचित्र हो रहा है, जिसपर सिद्ध चारण यक्ष गन्धर्व और देव ।। १४ ।। हृष्ट हुए विचरते रहते हैं, गन्धर्व गीतगानेमें तत्पर रहते हैं, जो मणि और वैदूर्यसे विभूषित स्फटिक और सोनेके शृङ्ग रूपी ।। १५ ।। भुजोंसे आकाशको लिखते हुए स्थित है, जैसे कि, विष्णुका मंदिर होता है जो हिमसे पूरित तथा गङ्गाजीकी ध्वनिसे शब्दायमान रहता है ।। १६ ।। हे--पार्वति ! अपने बाल्यकालमें परम तप करते हुए बारह वर्ष तक धूम्रपान करते हुये नीचेको मुख करके तप किया ।। १७ ।। चौसठ वर्षतक सूखे पत्ते खाकर रही, माघ मासमें जल तथा वैशाखमें अग्नि सेवन किया ।। १८ ।। श्रावणमें अन्नपान छोडकर बाहिर रही, जब आपके पिताने यह दुख देखा तो चिन्तासे दुखीहो गये ।। १९ ।। कि, इस लडकीको मैं किसे विवाहूं ! उसी समय धर्मके जाननेवाले ब्रह्मपुत्र आकाशमार्गसे प्राप्त हुए ।। २० ।। मुनि शार्दूल नारदजीको शैलपुत्रीके देखनेकी इच्छा थी, हिमालय नारदजीको अर्घ्य, विष्टर और पाद्य देकर बोला ।। २१ ।। हे स्वामिन् ! आप किस लिये आये हैं ? हे मुनि सत्तम ! कहिये, आपका श्रेष्ठ आगमन मुझे बडे भाग्योंसे मिला है ।। २२ ।। नारदजी बोले कि, हे शैलेन्द्र हिमवन् ! सुन, मुझे विष्णुने भेजा है कि, इस योग्य कन्यारत्नको योग्य वरके लिये देदेना चाहिये ।। २३ ।। ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें वासुदेवके बराबर कोई नहीं है, इस कारण आप अपनी कन्याको विष्णुके लिये दे दें, यह मेरी भी संमति है ।। २४ ।। यह सुन हिमवान् बोले, कि वासुदेव स्वयं आकर यदि कन्या मांगेंगे तो मैं देदूंगा क्योंकि, आप उनके लिये आये हैं ।। २५ ।। नारदजी यह सुनकर आकाशमें अन्तर्धान होगये और वहां पहुँचे जहां कि, पीताम्बर वस्त्र पहिन, शंख, चक्र, गदा और पद्म हाथमें लिये हुए विष्णु भगवान् रहते हैं ।। २६ ।। हाथ जोडकर नारदजी बोले कि, हे देव ! सुनिये आपकाही कार्य है मैंने आपके विवाहका योग लगाया है ।। २७ ।। उस समय हिमवान् तो प्रसन्नताके साथ गौरीजीसे बोले कि, हे पुत्रिके ! मैंने तुम्हें गरुडध्वज देवके लिये दे दिया है ।। २८ ।। पिताके ये वचन सुनकर पार्वतीजी सखीके घर चली गयीं और वहां जमीनपर गिर, अत्यन्त दुखी होकर रोने लगीं ।। २९ ।। इन्हें रोते हुए देखकर सखी बोली कि, हे देवि ! किस लिये इतनी दुखी हो रही हो ? मेरे सामने कहो ।। ३० ।। जो आपकी इच्छा होगी वही मैं करूंगी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है, यह सुन पार्वतीजी बोलीं कि, हे सखि ! जो मेरे मनकी बात है उसे ।। ३१ ।। प्रेमसे सुन, मैंने तो यह निश्चय

किया था कि, महादेवको अपना पति बनाऊंगी पर पिताने कुछ और ही कर दिया ।। ३२ ।। हे प्यारी सखि ! इस कारण अब मैं देह परित्याग करूंगी, पार्वतीके ऐसे वचन सुनकर सखी बोली कि ।। ३३ ।। जिसको पिता नहीं जानते उस वनको चलेंगी, शिवजी पार्वतीजीसे कहने लगे कि, ऐसा निश्चय करके तुम्हें तुम्हारी सखी वनको ले गयी ।। ३४ ।। आपके पिता हिमवान्‌से आपको घर घर देखा कि, मेरी बेटीको देव, दानव और किन्नरोंमेंसे कौन लेगया ।। ३५ ।। मैंने नारदके सामने सत्यकह दिया था अब विष्णुको क्या दूंगा इस प्रकारकी चिन्तासे मूच्छित होकर वे भूमिपर गिरगये ।। ३६ ।। उस समय लोग हाहाकार करके भगे और बोले कि, गिरिवर ! मूच्छित क्यों हो रहे हो, बताओ तो सही ।। ३७ ।। गिरि बोले कि, मेरे दुःखके कारणको सुनो, मेरा कन्यारत्न हरलिया गया है, या तो उसे कालसर्पने खा लिया है अथवा व्याघ्रने मार डाला है ।। ३८ ।। नजाने बेटी कहां चली गई, कौन दुष्ट चुरा लेगया ? शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि, इस प्रकार आपके पिताजी शोक सन्तप्त होकर, ऐसे कांपने लगे जैसे कि, आँधीसे भारी वृक्ष कांपा करता है ।। ३९ ।। और आपको देख-नेके कारण वन वन फिरने लगे जो कि, व्याघ्र भल्ल और रोहियोंसे सापोंसे महाघने हो रहे थे ।। ४० ।। आप भी घोरवनमें सखियोंके साथ घूमती हुई एक रमणीक नदीको देख उसके किनारेकी सुन्दर गुफामें ।। ४१ ।। सखीके साथ घुस गयीं, अन्नका परित्याग करदिया । पार्वतीसहित मेरा बालूका लिंग स्थापित करके ।। ४२ ।। पूजतेहुए भाद्रपद्र शुक्ला तृतीयाके हस्तनक्षत्रमें व्रतादि करके, रात्रिको गानेबजानेके साथ जागरण किया ।। ४३ ।। व्रतराजके प्रभावसे मेरा आसन हिलगया उसी समय मैं वहां पहुंचा जहां कि, आप सखियोंके साथ विराजमान थीं ।। ४४ ।। मैंने कहा कि, मैं प्रसन्न हूं, हे वरानने ! वर मांगना हो सो मांग यह सुन पार्वती बोलीं कि, हे महेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे पति हो जाइये ।। ४५ ।। मैंने कहा अच्छी बात है फिर कैलास चला आया आपने इसके बाद प्रभातकाल नदीमें प्रतिमाका विसर्जन किया ।। ४६ ।। आपने सखियोंके साथ पारण किया तथा हिमवान्‌भी उस जगह चले आये जो कि, आपकी गुहावाला महावन था ।। ४७ ।। वहां चारों दिशाओं को देख विह्वल हो जमीनपर गिर गया, पीछे नदीकिनारेपर देखा तो दो लडकियाँ सो रहीं हैं ।। ४८ ।। उन्हें उठा गोदीमें बिठाकर रोने लगा कि, बेटियो ! सिंह, व्याघ्र, सर्प और भल्लूकोंसे दूषित इस वनमें कहांसे आबैठीं ।। ४९ ।। यह सुन पार्वती जी बोलीं कि, मुझे यह पता था कि आप मुझे शिवजीको देगें, पर जब यह पता चला कि, आपने अन्यथा किया है तो मैं वन चली आई ।। ५० ।। यदि आप मुझे महादेवजीके लिये दें तो मैं घर चलूं नहीं तो मैं यहांही रहूंगी यह निश्चय है ।। ५१ ।। हिमवान्‌ने कहा कि, ऐसाही होगा और आपको घर ले आये, पीछे विवाहविधि करके आपको हमें दे दिया ।। ५२ ।। उसी व्रतके प्रभावसे आपने सौभाग्यसिद्ध किया वो व्रतराज आजतक मैंने किसीके सामने नहीं कहा ।। ५३ ।। इन व्रतराजका नाम हरि-तालिका क्यों पडा ? सो सुन ! आली सहेलियोंने जिसका हरण किया इस कारण वो तुम हरितालिका हुईं ।। ५४ ।। देवी बोली कि, प्रभो ! आपने यह तो मेरे हरितालिका इस नामका निर्वचन किया, इस व्रतका क्या फल है, कियेसे क्या पुण्य होता है और किसने इस व्रतको किया है ? ।। ५५ ।। शिव बोले कि, हे देवि ! इसकी विधिको कहता हूं यह स्त्रियोंको सौभाग्य देनेवाला है, जो सौभाग्य चाहती है वो प्रयत्नसे करेगी ।। ५६ ।। केलाके स्तंभसे मंडित, तोरणादिक करने चाहिये, उन्हें अनेक वर्णोंसे चित्रित, पट्टवस्त्रसे ढकना चाहिये ।। ५७ ।। सुगन्धित चन्दनसे गृहमण्डलको लीपना चाहिये तथा शंख, भेरी और मृदङ्गके वारंवार शब्द कराने चाहिये ।। ५८ ।। मेरे मंदिरमें अनेक तरहके मंगल गीतोंके शब्द करने चाहिये तथा बालुकाका मेरा लिङ्ग पार्वती सहित स्थापित करना चाहिये ।। ५९ ।। नये गन्ध, धूपादिक और पुष्पोंसे मेरा पूजन करना चाहिये तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे पूजकर जागरण करना चाहिये ।। ६० ।। नारियल, सुपारी, जंबीर, बकुल, बीजपूर और नारंगी आदि फलोंसे वारंवार पूजन करना चाहिये ।। ६१ ।। तथा ऋतुकालमें होनेवाले कन्दमूलोंसे पूजन करे. पंचवक्त्र शान्त तथा शूलधारी शिवके लिये नमस्कार है ।। ६२ ।। नन्दि, भृङ्गि, महा काल आदि अनेक गणयुक्त शम्भुके लिये तथा हर की कान्ता सृष्टिकी हेतु जो प्रकृति रूपी शिवा है उसके लिये नमस्कार है ।। ६३ ।। हे सर्वमंगलोंके देनेहारी, जगन्मय शिवरूप कल्याणदायके ! शिवरूपे शिवे ! तेरे लिये सदा वारंवार नमस्कार है ।। ६४ ।। शिवरूपा तेरे लिये तथा शिवाके लिये सतत नमस्कार है, ब्रह्मचारिणीके लिये नमस्कार

तथा जगद्धात्रीके लिये नमो नमः है ।। ६५ ।। हे सिंहपर चढनेवाली संसारके भयके सन्तापसे मेरी रक्षा कर, हे महेश्वरि देवि ! जिस कामसे मैंने तेरा पूजन किया है उसे पूराकर ।। ६६ ।। हे अंब ! हे पार्वति ! वो राज्य, सौभाग्य और सम्पत्ति दीजिये. इस मंत्रसे मेरा और देवीका पूजन करके ।। ६७ ।। कथा सुने और विधानके साथ ब्राह्मणोंको बहुतसा अन्न दे तथा शक्तिके अनुसार वस्त्र, हिरण्य और गऊभी दान करे ।। ६८ ।। औरोंको भी बहुतसी दक्षिणा दे तथा स्त्रियोंको आभूषण दे. भक्तियुक्त चित्तसे पतिके साथ कथा सुने ।। ६९ ।। हे देवि इस प्रकार व्रतको करके सब पापोंसे छूट जाता है, सातजन्मतक इसका राज्य होता है तथा सौभाग्य बढता है ।। ७० ।। इस तृतीयाके दिन जो स्त्री आहार करती है वो सातजन्मतक बांझ, तथा जन्म २ विधवा होती है ।। ७१ ।। यही नहीं किन्तु जो उपवास नहीं करतीं वो दुःख भागिनी कर्कशा हो, दारिद्र और पुत्रशोक देखती है तथा घोर नरकमें दुःखपाती है ।। ७२ ।। चांदीके सोनेके तांबेके कांसेके अथवा मिट्टीके पात्रमें अन्न रख कर वस्त्र फल और दक्षिणाके साथ एक अच्छे ब्राह्मणको देकर पीछे पारणा करे ।। ७३ ।। इस प्रकार जो स्त्री व्रत करती है वो तेरे समान पतिके साथ रमण करती है, अनेक भोगोंको भोग कर अन्तमें हरका सायुज्य पाती है ।।७४।। एक सहस्र अश्वमेध तथा एकसौ वाजपेयका जो फल होता है वो फल कथाके सुनने मात्रसे मिल जाता है ।। ७५ ।। हे देवि ! यह मैंने तुम्हें कह दिया तथा उत्तम व्रत भी कह दिया इसके करनेसे कोटि यज्ञका फल होता है ।। ७६ ।। यह भविष्योत्तरपुराणके हर गौरीको संवादपूर्वक हरितालिका व्रतकी कथा संपूर्ण हुई ।। अथोद्यापनम्-पार्वती बोलीं कि हे सुरेश्वर ! इस तृतीयाके व्रतकी उद्यापनविधि कहिये, मैं व्रतकी संपूर्तिके लिये भक्तिभावके साथ सुनना चाहती हूं ।। १ ।। श्रीमहादेवजी बोले कि, हे शोभने ! व्रतराजकी उद्यापन विधिको कहता हूं जिसके करनेसे व्रत संपूर्ण होजाता है ।। २ ।। चारथम्भका चार द्वारका केलेके स्तंबोंसे मंडित, घंटिका और चामरोंसे सजा हुआ तथा कलशोंसे भली भांति शोभित ।। ३ ।। तथा चन्दन, अगर और कपूरसे लिपाहुआ शुभ मण्डप तयार करे । बीचमें पांच वर्णोंसे अलंकृत वितान बांधे ।। ४ ।। उसके बीचमें सुन्दर पांचवर्णोंसे पद्म बनादे उसके ऊपर एक द्रोणके बराबर व्रीहि रखदे ।। ५ ।। सब औष-धियोंके साथ पांचों रत्नोंको पटक कर, सोनेके चान्दीके अथवा तांबेके कलशको स्थापित करे ।। ६ ।। उसके ऊपर सोनेके अथवा चांदीके पात्रको रखे उसके ऊपर चांदीके वृषारूढ महादेव ।। ७ ।। और सर्वाङ्गसंपूर्ण सोनेकी श्रीगौरीको अनेक तरहके शुभ सुगन्धित पुष्पोंसे पूजदे ।। ८ ।। रातमें कथा वाचनके साथ साथ जागरण होना चाहिये, इसके बाद प्रातः कालके समय स्नानादि कर्म करके ।। ९ ।। पहिलेकी तरह देवीका पूजन करके पीछे होमका सरंजाम करना चाहिये । अपने गृहसूत्रके कहे हुए विधानके अनुसार अग्निस्थापन करके ।। १० ।। नवग्रहोंकीपूजा करके होम करना चाहिये । घीसे परिश्रुत हुए जौ मिलें हुए तिलोंकी ।। ११ ।। वेदका वेत्ता रुद्रमंत्र और गौरीमंत्रसे १०८ अथवा अट्ठाईस आहुति दे ।। १२ ।। इस प्रकार होमकी समाप्ति करके पीछे सोने, रत्न और वस्त्रोंसे आचार्य्यका पूजन करे और विधिके साथ गऊ दे ।। १३ ।। तथा उपकरणसहित शय्या दे एवम् सोलह ब्राह्मण दम्पतियोंको अच्छे पक्वान्नसे भोजन करावे ।। १४ ।। सौभाग्य द्रव्य वस्त्र और सोलह पात्र बांसके, प्रयत्नपूर्वक विधिके साथ ब्राह्मणोंको दे दे ।। १५ ।। अन्य ब्राह्मणोंको भी प्रयत्न पूर्वक भक्ति-भावके साथ शिवजीकी तुष्टिके लिये बहुतसी दक्षिणा दे ।। १६ ।। जो भी कुछ करे वो निरालसा होकर पार्वती और शिवजीके उद्देशसे करे तथा दूसरे दिन नियम पूर्वक कुटुम्बियोंके साथ भोजन करे ।। १७ ।। जो स्त्री इस प्रकार व्रतराजको करती है, उसका सातजन्मतक सौभाग्य अचल रहता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। १८ ।। यह श्रीहरितालिकाव्रतका उद्यापान पूरा हुआ ।

बृहद्गौरीव्रतम्

अथ भाद्रपदकृष्णतृतीयायां बृहद्गौरीव्रतम् ।। डोर्लीति देशभाषायाम् ।।-शाखामूलफलैः सह रींगिणीतिप्रसिद्धां बृहतीं गृहमानीय सिकतावेद्यां निक्षिप्य उदकेनासिच्य तत्र तां न्यसेत् । चन्द्रोदयं दृष्ट्वा सुस्नाता पञ्चसखीभिः सह

अलंकृत्य पूजयेत् ।। तद्यथा मम इह जन्मनि जन्मान्तरे चाक्षय्यसौभाग्यप्राप्तिकामा पुत्रपौत्रादिधनधान्यैश्वर्यप्राप्त्यर्थं श्रीगौरीप्रीत्यर्थंबृहद्गौरीव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य कलशे वरुणं संपूज्य बृहद्गौरीं पूजयेत् ।। चतुर्भुजां सुवर्णाभां नाना-लंगकारभूषिताम् ।। हिमेन्दुतुहिनाभासां मुक्तामणिविभूषिताम् ।। पाशाङ्कुशधरां देवीं ध्यायेत् सर्वार्थसिद्धिदाम् ।। कमण्डलुधरां सूक्ष्मां पानपात्रं च बिभ्रतीम् ।। ध्यायामि ।। एहि मार्तविशुद्धे त्वं त्रिगुणे परमेश्वरि ।। आवाहयामि भक्त्या त्वां प्रसन्ना भव सर्वदा ।। आवाहनम् ।। हेमरत्नकृतं देवि आसनं ते विनिर्मितम् । पाशाङ्कुशधरां देवीमासने स्थापयाम्यहम् ।। आसनम् ।। अक्षमालाङ्कुशधरे वीणापुस्तकधारिणि ।। भक्त्या दत्तं मया तोयं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यम् ।। अर्घ्यं ददामि ते मातर्भक्तानामभयंकरे ।। गृहाण त्वं बृहद्गौरि गन्धाक्षतसमन्वितम् ।। अर्घ्यम् ।। भक्तानामिष्टदे मातः सर्वालंकारसंयुते ।। आचम्यता जगन्मातर्बृहद्गौरि नमोऽस्तु ते ।। आचमनम् ।। ततः पञ्चामृतस्नानम् ।। स्नापयामि जगन्मातस्त्वां सुतीर्थजलेन वै ।। प्रार्थयित्वा मया देवि सद्यस्तापविनाशिनि ।। स्नानम् ।। वस्त्रं धौतं मया देवि दुकूलं तव निर्मितम् ।। भक्त्या समर्पितं मातर्गृह्यतां जगदम्बिके ।। वस्त्रम् ।। हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्त गृहाण परमेश्वरि ।। सौभाग्यद्रव्यम् ।। पञ्च सूत्रविनिर्मितं दोरकमर्पयेत् ।। मलयाचलसंभूतं घनसारं मनोहरम् ।। गन्धं गृहाण देवि त्वं बृहद्गौरि नमोऽस्तु ते ।। गन्धम् ।। करवीरैर्जातिकुसुमैश्चम्पकैर्बकुलैः शुभैः ।। शतपत्रैश्च कह्लारैरर्चयेत्परमेश्वरीम् ।। पुष्पम् ।। धूपोऽयं गृह्यतां देवि कालागुरुसमन्वितः ।। आघ्रेयः सर्वदेवानां देवद्रुमरसोद्भवः ।। धूपम् ।। दीपं गृहाण देवेशि त्रैलोक्यतिमिरापहे ।। वह्निना योजितं मातर्बृहद्गौरि नमो नमः ।। दीपम् ।। नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।। ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ।। नैवेद्यम् ।। पानीयम् ।। इदं फलमिति नारिकेलफलम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजनम् ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। अथ कण्ठे दोरकं बध्नीयात् ।। धारयिष्यामि भद्रे त्वां त्वद्भक्त्या त्वत्परायणा ।। आयुर्देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शिवे ।। दोरकबन्धनम् ।। क्षेमसम्पत्करे देवि सर्वसौभाग्यदायिनी ।। सर्वकामप्रदे देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। इति विशेषार्घ्यम् ।। ततश्चन्द्रार्घ्यम्—क्षीरोदार्णवसंभूत लक्ष्मीबन्धो निशाकर ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहित : शशिन् ।। प्रार्थना—गगनाङ्गणसंदीप क्षीराब्धिमथनोद्भव ।। भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोस्तु ते ।। पक्वान्नफलसंयुक्तं वायनं दद्यात् ।। आहूतासि मया देवि पूजितासि मया शुभे ।। सौभाग्यं मम देहि त्वं यत्रस्था तत्र

गम्यताम् ।। इति विसर्जनम् ।। अथ कथा ।।विजयोवाच ।। अथान्यच्च बृहद्गौरी-व्रतं वक्ष्यामि कन्यके ।। मासि भाद्रपदे कृष्णे तृतीयायां च तद्व्रतम् ।।१।। आनयेद् बृहतीं गौरीं शाखामूलफलैः सह ।। रिंगिणीवृक्षं समूलमानयेत् ।। निक्षिप्य देवतां वेद्यां तदधः सिकतां शुभाम् ।। २ ।। न्यसेच्चन्द्रोदयं दृष्ट्वा स्नात्वा धौताम्बरावृता ।। सखीभिः सहिता सम्यगलंकृत्य प्रपूजयेत् ।। ३ ।। गौरीमावाह्य विधिवत्सिकतामण्डले शुभे ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्दिव्यैर्धूपदीपैरनेकशः ।। ४ ।। सर्वोपचारैर्बृहतीं युक्तां पञ्चभिरर्चयेत् ।। एवं पूज्य यथाशक्त्या कृत्वाचैव प्रदक्षिणाम् ।। ५ ।। बध्नीयाद्दोरकं पश्चात्तन्तुपञ्चकनिर्मितम् ।। बध्नामि दोरकं कण्ठे त्वद्भक्त्या त्वत्परायणा ।। ६ ।। आयुर्देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शिवे ।। अनेन दोरकं बद्ध्वा चन्द्रायार्घ्यं समर्पयेत् ।।७।। क्षेमसंपत्करे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।। सर्वकामप्रदे देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ८ ।। गगनाङ्गणसंदीप क्षीराब्धिमथनोद्भव ।। भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ।। ९ ।। कथामेतां च शृणुयाद्गौर्यग्रे तन्मनाः सदा ।।ततो गोधूमचूर्णेन पञ्चभिः कुडवैर्युतम् ।। ।। १० ।। पक्वान्नमर्धं विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत च स्वयम् ।। एवं वै पञ्चवर्षाणि कृत्वा व्रतमनुत्तमम् ।। ११ ।। सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।। ऋषिकन्योवाच ।। केन चादौ पुरा चीर्णं व्रतमेतत्त्वयोदितम् ।। १२ ।। ईप्सितं कोपि लेभे वा व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। विजयोवाच ।। शृणु कन्ये यथा प्राप्तं पार्वत्या कथितं पुरा ।। १३ ।। सूत उवाच ।। शृणुध्वमृषयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ।। पुरा कृतयुगस्यादौ सर्वभूतहितैषिणा ।।१४।। शंभुना कथितं गौर्ये तद्व्रतं कथयाम्यहम् ।। कदाचिदुपविष्टं तं पार्वती पर्यपृच्छत ।। १५ ।। पार्वत्युवाच ।। शंभो त्वां प्रष्टुमिच्छामि करुणाकर शंकर ।। सर्वबाधोपशमनं सर्वकामफलप्रदम् ।। १६ ।। व्रतानां सर्वदानानामुत्तमं ब्रूहि तत्त्वतः ।। आयुरारोग्यदं देव पुत्रपौत्रप्रदायकम् ।। १७ ।। तद्व्रतं ब्रूहि देवेश यद्यहं तव वल्लभा।।ईश्वर उवाच ।। शृणु देवि परं गुह्यं व्रतं परमदुर्लभम् ।। पुराभूद्द्वापरस्यान्ते पाण्डोः प्रियवराङ्गना ।।१८ ।। वर्षषोडशसंपूर्णा संपन्नवयौवना ।। अनपत्या तु सा कुन्ती भर्तारमिदमब्रवीत् ।। १९ ।।। कुन्त्युवाच ।। केन कर्मविपाकेन पुत्रहीनास्मि दुःखिता । अनपत्यप्रतीकारमिदानीं ब्रूहि तत्त्वतः ।। २० ।। पाण्डुरुवाच ।। ऋषिशापोऽस्ति मे भद्रे यतस्ते न भविष्यति ।। २१ ।। भर्तुस्तद्वचनं श्रुत्वा पितृगेहेऽभ्यगात्स्वयम् ।। पितुर्गेहे वर्तमाना कुन्ती व्यासं ददर्श ह ।।२२ ।। नमस्कृत्य च तं प्राह कुन्ती मुकुलिताञ्जलिः ।। कुन्त्युवाच ।। तात मे कथयाशु त्वं पुत्रसन्तानकारकम् ।। २३ ।। सर्वसंपत्करं नृणां व्रतमेकं महामुने ।। व्यास उवाच ।। शृणु त्वं बृहतीगौर्या व्रतं

१ सखीभिरित्यपि पाठः २ सोमराज इत्यपि पाठः ३ अनपत्यत्वप्रतीकारमित्यर्थः ४ अपत्यमितिशेषः

सन्तानदायकम् ।। २४ ।। भाद्रकृष्णतृतीयायां निशि चन्द्रोदये शुभे।। स्नानं कृत्वा च विधिवन्मौनी भूत्वा व्रतं चरेत् ।। २५ ।। सर्वसंपत्करं चैव स्त्रीणां पुत्रान्नसौख्य-कृत् ।। भूहिरण्यादिदानानां सर्वेषामधिकं व्रतत् ।। २६ ।। पञ्चवर्षं विधातव्यं तत उद्यापनं चरेत् ।। उद्यापनविधानेन संपूर्णं फलमश्नुते ।। २७ ।। अन्ते तु कारये-द्भक्त्या सौवर्णं बृहतीफलम् ।। षष्ट्युत्तरचतुर्भिश्च शुभैर्बीजैर्युतं तु तत् ।।२८।। देव्याः पुरस्तु संस्थाप्य पूर्ववत्प्रतिपूजयेत् ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या विप्रान् पञ्च तथैव च ।। २९ ।। सुवासिन्यः पञ्च पूज्या वस्त्रालंकारभषणैः ।। कंचुकैश्चैव ताटंकैकण्ठसूत्रैर्हरिद्रया ।।३०।। वंशपात्राणि पञ्चेव सूत्रैः संवेष्टितानि च ।। सिन्दूरं जीरकं चैव सौभाग्यद्रव्यसंयुतम् ।। ३१ ।। गोधूमपिष्टजातं च बृहतीफलपञ्च-कम् ।। वायनानि च पञ्चैव ताभ्यो दद्यात्तु भोजनम् ।। ३२ ।। अर्घ्यं दत्त्वा वाय-नानि दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतः ।। तत्फलं धारयेत्कण्ठे सर्वकाम समृद्धये ।। ३३ ।। ततः प्रातः समुत्थाय सालंकारा सखीजनैः ।। गीतावाद्ययुता नद्यां गौरीं तां तु विसर्जयेत् ।। ३४ ।। आहूतासि महादेवि पूजतासि मया शुभे ।। मम सौभाग्यदानाय यथेष्टं गम्यतां त्वया ।। ३५ ।। एतद्व्रतप्रभावेण काचिद्ब्राह्मणकन्यका ।। पतिं सञ्जीवयामास निर्भत्स्र्य यमकिंकरान् ।। ३६ ।। तस्माच्चर त्वं व्रतमेतदाद्य-मायुःप्रदं पुत्रसमृद्धिदं च ।। पुत्रैश्च पौत्रैश्च युता च पत्या गौरीप्रसादद्भव जीव-वत्सा ।। ३७ ।। य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।। स भुक्त्वा विपुलान् भोगानन्ते शिवपदं व्रजेत् ।। ३८ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे बृहद्गौरीकथा संपूर्णा ।। इदं कर्णाटके प्रसिद्धम् ।।

अथ बृहद्गौरीव्रतम्--भाद्रपद कृष्णा तृतीयाको बृहद्गौरीव्रत होता है । भाषामें इसे ढोली कहते हैं, शाखा, मूल और फलों सहित बडीकटेरीको जिसे दक्षिणकी भाषामें रींगिणी कहते हैं । घर लाकर रेतीकी वेदी पर निक्षिप्त करके पानीसे सींचकर तहां ही उसे रखदे । अच्छी तरह स्नान की हुई स्त्री, सजधजकर चन्द्रोदयको देख पांच सखियोंके साथ पूजे । उसकी विधि यह है कि, मेरे इस जन्म और अन्यजन्मोंमें अक्षय सौभाग्यको चाहनेवाली मां, पुत्र, पौत्र आदि, धन,धान्य, ऐश्वर्य्यप्राप्तिके लिये तथा श्री गौरीदेवीकी प्रसन्नताके लिये बृहद्गौरीके व्रतको मैं करतीहूं ऐसा संकल्प करके कलशपर वरुणका पूजन कर बृहद्गौरीको पूजे । चतुर्भुजी, सोनेकीसी कान्तिवाली, अनेक तरहके अलंकारोंसे भूषित हुई, हिम, इन्दु और तुहिनकी तरह चमकनेवाली, मुक्तामणियोंसे विभूषित एवम् पाश और कुशको हाथमें लिये हुए जो सब सिद्धियोंकी देने-वाली तथा कमंडलु और पान पात्रको लिये हुए है ऐसी जो देवी है उसका मैं ध्यान करती हूं । हे मातः ! आ, तू विशुद्ध है, और तीनों गुणोंकी मालिक है, मैं भक्तिके साथ तेरा आवाहन करती हूँ, आप मुझपर सदा प्रसन्न रहिये इन मंत्रोंसे आवाहन, तथा हे देवि ! आपका आसन हेमरत्नोंका किया है, पाश और अंकुश धारिणी देवीको मैं आसनपर स्थापित करता हूं । इस मंत्रसे आसन, तथा--हे अक्षमाला, अंकुश और वीणा पुस्तकको धारण करनेवाली ! मैंने भक्तिभावसे पानी दिया है इसे आप पाद्यके लिये ग्रहण करिये, इस मंत्रसे पाद्य, तथा--हे भक्तोंको अभयकरनेवाली मातः !! मैं तेरे लिये अर्घ देता हूं इसमें गन्ध और अक्षत मिले हुए हैं । हे बृहद्गौरी ! आप ग्रहण करें । इस मंत्रसे अर्घ, तथा--हे भक्तोंको इष्ट देनेवाली माता ! हे सब अलंकारोंसे

संयुक्त ! आचमन करिये । हे जगत्की माता बृहद्गौरी ! तेरे लिये वारंवार नमस्कार है, इस मंत्रसे आचमन, तथा इसके बाद पंचामृतसे स्नान कराना चाहिये कि, हे जगन्मातः ! हे शीघ्र ही तापको नष्ट करनेवाली ! आपकी प्रार्थना करके अच्छे तीर्थोंके पानीसे आपको स्नान कराता हूं । इस मंत्रसे स्नान, तथा–हे देवि ! इस धौत वस्त्रका दुकूल, आपके लिये बनाया गया है, मैं भक्तिभावसे समर्पित करता हूं, हे जगदम्बिके मातः ! ग्रहण करिये । इस मंत्रसे वस्त्र, तथा हरिद्रा, कुंकुम तथा कज्जल सहित सिन्दूर ये सब अन्य सौभाग्य द्रव्योंके साथ हे परमेश्वरि ! ग्रहण करिये । इस मंत्रसे सौभाग्य द्रव्य, तथा पांच सूत्रका बनाया हुआ डोरा अर्पण कर दे, हे देवि ! मलयाचलपर पैदा हुआ सुगन्धित सुन्दर घनसार उपस्थित है, ग्रहण करिये हे बृहद्गौरी ! तेरे लिये नमस्कार है । इससे गन्ध, तथा शुभकरवीर, जाति, कुसुम, चंपक, वकुल, शतपत्र और कह्लारोंसे परमेश्वरीका पूजन करना चाहिये । इस मंत्रसे पुष्प, तथा हे देवि ! इस धूपको ग्रहण करिये, इसमें काला गुरु मिले हुए हैं, सबके सूंघनेलायक है, देवद्रुमके रससे बनाया है । इससे धूप, तथा–हे तीनों लोकोंके तिमिरको हरनेवाली देवेशि ! जलायेहुए दीपकको ग्रहण कर, हे बृहद् गौरी ! तेरे लिये नमस्कार है । इससे दीप, तथा–हे देवि ! नैवेद्य ग्रहण कर और मेरी भक्तिको अचलकर, यहां चाहेहुए वर दे तथा अन्तमें मोक्ष दे, इससे नैवेद्य । इसकेबाद पानीय तथा "इदम् फलम्" इस मंत्रसे नारियल, तथा–"पूगीफलम्" इस मंत्रसे ताम्बूल और "हिरण्यगर्भ" इस मंत्रसे दक्षिणा, इसके बाद नीराजन, इसके पीछे पुष्पांजलि तथा–इसके पीछे कण्ठमें डोरा बांधना चाहिये कि, मैं आपका भक्त आपमें ही चित्तको लगानेवाला आपको धारण करता हूं, हे भद्रे ! शिवे ! मुझे आयु दे, यश दे और सौभाग्य दे । यह डोरा बांधनेकी विधि हुई ।। हे क्षेम और संपत्की करनेवाली तथा सब सौभाग्योंकी देनेवाली और सब कामोंको प्रदान करनेवाली देवि ! अर्घ्य ग्रहणकर, तेरे लिये नमस्कार है इस मंत्रसे विशेष अर्घ्य दे । इसके बाद चन्द्रमाको अर्घ्य दे कि, हे क्षीरसागरसेउत्पन्न होनेवाले लक्ष्मीके भाई निशाकर ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको हे शशिन् ! रोहिणीके साथ ग्रहण करिये । हे आकाशरूपी आंगनके दीये ! हे क्षीरसमुद्रके मथनसे उत्पन्न होनेवाले ? हे अपनी रोशनीसे दिग्दिगन्तोंको प्रकाशित कर देनेवाले लक्ष्मीके छोटे भाई ! तेरे लिये नमस्कार है । इस मंत्रसे चन्द्रमाकी प्रार्थना करनी चाहिये । पीछे पक्वान्न और फलोंके साथ वायना देना चाहिये । पीछे हे देवि ! मैंने तुम्हें वुलायाथा तथा हे शुभे ! मैंने तेरा पूजन किया है, मुझे सौभाग्य दे तथा जहां विराजती हो वहां आनन्दके साथ चली जा । इस मंत्रसे विसर्जन करना चाहिये ।। अथ कथा–विजया बोली कि, हे कन्यके ! मैं तुझे बृहद्गौरिके व्रतको कहता हूं–भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयाको वह व्रत होता है ।। १ ।। बृहती गौरीको शाखा, फल और मूलके साथ लावे ग्रन्थकार कहते है कि, बृहती गौरीका मतलब बडी कटहरीसे है । उस देवताको बेदीपर रख, बडी कटहरीके नीचे सुन्दर बालू डालनी चाहिये ।। २ ।। स्नानकर, धुले हुए अच्छे कपडे पहिन, चाँदके उगने पर सखियोंके साथ मङ्गलकृत्य करके उसका पूजन करना चाहिये ।। ३ ।। उस सिकताके पवित्र मंडलपर विधिके साथ गौरीका आवाहन करके अनेक तरहके दिव्य गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप और दीपोंसे ।। ४ ।। तथा सब उपचारोंसे पञ्चाङ्गसहित बडी कटहरीका पूजन करना चाहिये । इसप्रकार यथाशक्ति पूजन कर प्रदक्षिणा करके ।। ५ ।। पीछे पांच लरका डोरा बाँधे कि, मैं इस डोरेको कंठमें बांधताहूं अपने तू शरणागतोंकी संभालनेवाली एवम् उनकी परमगति है ।। ६ ।। हे शुभे ! आयु दे, यश दे और सौभाग्य दे, इस मंत्रसे डोरा बांध कर चन्द्रमाके लिये अर्घ देना चाहिये ।। ७ ।। हे क्षेम और संपत्की करनेवाली तथा सब सौभाग्योंको देनेवाली, सब कामनाओंको पूरी करनेवाली देवि ! अर्घ ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है ।। ८ ।। हे आकाशके आंगनके दीप ! तथा क्षीर समुद्रके मथनसे होनेवाले ! हे अपने प्रकाशसे दिग् दिगन्तोंके प्रकाशित करनेवाले लक्ष्मीजीके छोटे भाई सोमराज ! तेरे लिये नमस्कार है ।। ९ ।। गौरीके सामने तन्मना होकर इस कथाको सुने तथा पांच अंजली गेहूंके चूनका पक्वान्न बनाकर भोग धरे ।। १० ।। आधा पक्वान्न ब्राह्मणको देकर आधेका स्वयम् भोजन करे । इस प्रकार पांच वर्ष इस अपूर्व व्रतको करके ।। ११ ।। सब कामोंको पाजाता है, इसमें विचार करनेकी बात नहीं है । यह सुन ऋषिकन्या बोली कि, सबसे पहिले आपका कहा हुआ यह व्रत किसने किया था ।। १२ ।। तथा इस व्रतके प्रभावसे किसे इच्छितफल मिला है ? यह सुन विजया बोली कि, हे कन्यके

सुन, मुझे सबसे पहिले पार्वतीजीने कहा था ।। १३ ।। सूतजी बोले कि, सभी नैमिषारण्य वासी ऋषियो ! सुनो । पहिले कृतयुगके आदिमें सब प्राणियोंके हितैषी ।। १४ ।। शंभुने यह व्रत गौरीके लिये कहा था, उसे कहता हूं, कभी बैठेहुए शिवजीसे पार्वतीजीने पूछा था ।। १५ ।। हे करुणाकर ! शंकर ! शंभो ! मैं आपसे पूछती हूं कि, सब बाधाओंको शमन करनेवाला तथा सभी इच्छाओंको पूरी करनेवाला ।। १६ ।। सब देनेवाले व्रतोंमें जो सर्वोत्तम व्रत हो सो कहिये । वो आयु, आरोग्य तथा पुत्र,पौत्रोंका देनेवाला हो ।। १७ ।। हे देवेश ! यदि आपका मुझपर प्रेम है तो उस व्रतको मुझसे कहिये । यह सुन शिवजी बोले कि, हे देवि ! सुन अत्यन्त गोपनीय परमदुर्लभ व्रत सुनाता हूं । पहिले द्वापरके अन्तमें पाण्डुकी प्यारी सुन्दरी सोलह वर्षकी अवस्थावाली नवीन यौवना कुन्ती सन्तानके न होनेके कारण पतिसे बोली कि,कौनसे कर्म विपाकके कारण मैं निस्सन्तान होनेसे दुःखी हूं ।। २० ।। इस दोषका प्रतीकार यथार्थ रूपसे कहिये।यह सुन पाण्डुराजा बोले कि, मुझे ऋषिका शाप है, इस कारण तेरे सन्तान न होगी ।।२१।। भर्ताके ऐसे वचन सुनकर आप पिताके घर चल दी, पिताके घरमें रहते हुए एक दिन व्यास देवके दर्शन हुए ।।२२।। उन्हें नमस्कारपूर्वक हाथ जोडकर बोली कि, कोई पुत्र सन्तान होनेका उपाय शीघ्रही कहिये ।।२३।। जिससे सब तरहकी संपत्ति होजायें, हे महामुने ! ऐसा व्रत होना चाहिये । यह सुन व्यासजी बोले कि, बृहती गौरीका व्रत सन्तानका देनेवाला है ।।२४।। भाद्रपद कृष्णातृतीयाकी रात चन्द्रमाके उदय होनेपर विधिके साथ स्नान करके मौनी हो व्रत करना चाहिये ।।२५।। यह सब संपत्तियोंका करनेवाला है तथा स्त्रियोंको पुत्र और अन्नसे सुखी करता है, भूमि और हिरण्यदानसे भी इसका अधिक फल होता है ।।२६।। पांच वर्ष इस व्रतको करके पीछे इसका उद्यापन करना चाहिये, उद्यापन करनेसे सब फलको पाजाता है ।।२७।। अन्तमें तो भक्तिके साथ एक सोनेका कटेरीका फल बनाना चाहिये, उसमें सोनेके चौसठ बीज बनाने चाहियें ।।२८।। उसे देवीके सामने रखकर पहिलेकी तरह पूजना चाहिये तथा वहीं भक्तिके साथ आचार्य्यकाऔर पात्र ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये ।।२९।। कंचुकी, सैंठा, कंठसूत्र तथा वस्त्र, अलंकार, हरिद्रा और भूषणोंसे पांच सुवासिनियोंको पूजना चाहिये ।। ३० ।। पांच बांसके पांच सूत्रसे वेष्टिकरके सिंदूर जीरा और सौभाग्य द्रव्यके साथ ।।३१।। गेहूंके चूनके पाँच पके हुए कटेरीके फल बनाकर,एक एक फल और एक एक बायन उन सुवासिनियोंको भोजन कराकर देदे ।।३२।। अर्घ्य और वायन देकर मौन हो भोजन करे सब कामोंकी पूर्तिके लिये उस फलको कण्ठमें बांधे ।।३३।। इसके बाद प्रातःकाल उठकर नित्यचर्य्यासे निवृत्त हो, अलंकार पहिन सखियोंको साथ ले. गाने बजानेके साथ उस गौरीका नदीमें विसर्जन कर दे ।।३४।। हे देवि ! मैंने तुम्हारा आह्वान किया था तथा पूजन भी किया है, मुझे सौभाग्य देनेकेलिये यथेष्ठ गमन करिये ।।३५।। इसी व्रतके प्रभावसे किसी ब्राह्मणकी लडकीने यमके नौकरोंको डरा कर पतिको जीवितकर लिया था ।।३६।। इस कारण तुम इस व्रतको करो। यह आयु तथा पुत्र पौत्रोंकी स्मृद्धि देनेवाला है, तू भगवती गौरीके प्रसादसे पुत्र पौत्रों सहित जीतेहुए वत्सोंवाली हो ।।३७।। जो इसे एकाग्रचित्तसे सुनते सुनाते हैं, वे यहां अनेकों तरहके भोगोंको भोगकर अन्तमें शिवपदको पाजाते हैं ।।३८।। यह श्रीभविष्योत्तर पुराणके बृहद्गौरीव्रतकी कथा संपूर्ण हुई । यह व्रत अधिकतर कर्णाटक देशमें प्रसिद्ध है ।।

सौभाग्यसुन्दरीव्रतम्

अथ मार्गशीर्षे माघे वा कृष्णतृतीयायां सौभाग्यसुन्दरीव्रतम् ।। तच्चतुर्थीयुतायां कार्यं न द्वितीयाविद्धायाम् ।। द्वितीयावेधरहिता तृतीया याऽसिता भवेत् ।। चतुर्थीयोगिनी किंचिच्छुद्धा वापि यदा भवेत् ।। इति कथायामुक्तेः ।। अथ कथा ।। नारद उवाच ।।भगवंस्ते प्रजाःसृष्टा नानावर्णास्तथा गुणाः ।। स्वेदजा अण्डजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ।। १ ।। देवासुराः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।। एके सुरूपाः सुभगा बलिनश्चापरे तथा ।। २ ।। तथान्ये दुःखसंयुक्ताः काणा मूकाश्च

पङ्गवः।।दुःशीला दुर्भगा दीनाः परकर्मकराः सदा।। ३ ।।एवं मे हृदि सन्तापं संशयं छेत्तुमर्हसि ।। ब्रह्मोवाच ।। शृणु वत्सं प्रवक्ष्यामि त्वंभक्तोऽसि प्रियोऽसिमे ।।४।। कर्मबीजप्ररूढं हि शरीरं पाञ्चभौतिकम् ।। ये दत्तदाना जायन्ते सुरूपाः सुखिनो जनाः ।। ५ ।। तपः–प्रभावाज्जायन्ते बलिनः सुभगास्तथा ।। अदत्तदाना जायन्ते परकर्मकराः सदा ।।६।। परापवादवक्तारः परद्रव्यापहारकाः । हन्तारः प्राणिनां चैव अभक्ष्याणां च भक्षकाः ।। ७ ।। क्रमशो नरकान् भुक्त्वा जायन्ते कुत्सिता नराः ।। दरिद्राः पङ्गवो मूकाः काणाद्या दुर्भगास्तथा ।। ८ ।। नारदैवं स्वकर्मोत्था नरा नार्यश्च दुःखिताः नारद उवाच ।। उपायं ब्रूहि भगवन्येन कर्मक्षयो भवेत् ।। ९ ।। तपो दानं व्रतं तीर्थं शरीरस्य च शोषणम् ।। दुःखसन्तापतप्तानां जीवितान्म-रणं वरम् ।। १० ।। ब्रह्मोवाच शृणु नारद यद् गृह्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। सर्व-दुःखप्रशमनं व्याधिदारिद्रनाशनम् ।। ११ ।। सुखसौभाग्यजननं पुत्रपौत्रप्रदाय-कम् ।। सुरूपदं च सौभाग्यकारणं कामदं तथा ।। १२ ।। नारीणां च विशेषेण सुखसौभाग्यदायकम् ।। वसिष्ठाय पुरा प्रोक्तमृषीणां च समागमे ।।१३।। कैलास-शिखरे रम्ये शंकरेण महात्मना ।। नारद उवाच ।। कस्मात्प्रोवाच भगवान्कृपा कस्मादजायत ।। १४ ।। ब्रह्मोवाच ।। दृष्ट्वाद्भुतं च सौभाग्यमरुन्धत्या जग-त्प्रभुः ।। तथा रूपं च शीलं च सौभाग्यमतुलं तथा ।। १५ ।। कृत्वा शिरःप्रकम्पं च जहास मृदु शंकरः ।। पृष्टवाञ्छंकरं देवं वसिष्ठः स्मितकारणम् ।। १६ ।। ईश्वर उवाच ।। अहो व्रतस्य माहात्म्यंश्रूयतामृषिसत्तमाः ।। पुरा जन्मनि शूद्रस्य दास-कर्मकरा सदा ।। १७ ।। उच्छिष्टभोजना नित्यमुच्छिष्टशयना सदा ।। कुरूपा दुर्भगा दीना रूक्षा गद्गदभाषिणी ।। १८।। नाम्ना मेघवती ख्याता दुर्दर्शवदना-शुभा ।। एकदा प्रेषणार्थं सा गता ब्राह्मणसन्निधौ ।। १९ ।। कृतं व्रतं च नारीणां वाच्यमानं द्विजन्मना ।। सौभाग्यसुन्दरी नाम तृतीया सर्वकामदा ।। २० ।। ज्ञानवैराग्यदे शास्त्रे सर्वकामफलप्रदा ।। मया प्रकाशिता पूर्वं प्रार्थियेनोमया तथा ।। २१ ।। चीर्णं तासां प्रसङ्गाच्च मेघवत्या प्रयत्नतः ।। कुत्सितं चैव नैवेद्यं दत्तं दानं च किञ्चन ।। २२ ।। हविष्यं च तथोच्छिष्टं पारणं च तथा कृतम् ।। केवलं च व्रतं चीर्णं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ।। २३ ।। श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः।। ऋषयश्चक्रिरे धर्मं श्रद्धया भावितात्मना ।। २४ ।। तेन धर्मविपाकेन निषादाधि-पतेः सुता ।। सुरूपा च सुशीला च सर्वलक्षणसंयुता ।।२५।। सम्पूर्णावयवा जाता तस्या देव्याः प्रसादतः ।। उच्छिष्टभोजनाज्जाता निषादानां च योनिषु ।। २६ ।। अदत्तदानात् संजाता तथा सा भोगवर्जिता ।। व्रतप्रभावात्संजाता सुरूपा च पतिव्रता ।। २७ ।। महासौभाग्यसंयुक्ता साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ।। सर्वकामप्रदा

देवी नन्दिनी वसते गृहे ।। २८ ।। तद्व्रतं चास्ति देवर्षे सर्वकामफलप्रदम् ।। नारद उवाच ।। व्रतस्यास्य विधिं ब्रूहि को विधिः किं च पूजनम् ।।२९ ।। कस्मिन्मासे प्रकर्तव्यं देवता का प्रकीर्तिता ।। किंपुण्यं किंच नैवेद्यं ध्यानं किं स्याच्च पूजने ।। ३० ।। ब्रह्मोवाच ।। व्रतस्यारम्भणं चादौ मार्गशीर्षेऽथ माघके ।। द्वितीयावेधरहिता तृतीया याऽसिता भवेत् ।। ३१ ।। चतुर्थी योगिनी किंचिच्छुद्धा वापि यदा भवेत् ।। उपवासं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ।। ३२ ।। अपामार्गेण कुर्वीत दन्तशुद्धिं तदा व्रती ।। उमे देवि नमस्तुभ्यं शंकरस्यार्द्धधारिणी ।। ३३ ।। नियमन्त्रः ।। प्रसीद श्रीमहेशानि करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।। सान्निध्यं कुरु मे देवि व्रतेऽस्मिन् हरवल्लभे ।। ३४ ।। सौभाग्यसुन्दरीनाम वशिनी सा प्रकीर्तिता ।। सर्वकामप्रदा देवी सर्वसत्त्ववशंकरी ।। ३५ ।। तस्या दर्शनमात्रेण दासवज्जायते जगत् ।। द्रोणपुष्पैश्च सम्पूज्या दाडिमं चार्घ्यहेतवे ।। ३६ ।। नैवेद्यं मोदकान्दद्यात्कर्पूरं प्राशयेत्ततः ।। सर्वासु च तृतीयासु विधिरेष उदाहृतः ।। ३७ ।। वत्स पौषासिते पक्षे तृतीयायां व्रतं भवेत् ।। चेल्लिकादन्तकाष्ठं च मरुकेण च पूजनम् ।। ३८ ।। राज्य सौभाग्यदां नाम सुन्दरीं पूजयेत्ततः ।। धात्रीफलं ददेदर्घ्यं[1] कंकोलं प्राशयेन्निशि ।। ३९ ।। नैवेद्ये वटकाः कार्या घृतशर्करयान्विताः ।। कंकोलाम्बु तथा प्राश्य राज्यसौभाग्यहेतवे ।। ४० ।। घृतेन बोधयेद्दीपं रात्रौ जागरणं चरेत् ।। सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखहरा सदा ।। ४१ ।। सर्वेश्वर्यप्रदा देवी सर्वपापहरा शुभा ।। एकापि बहुधात्मेयं नामरूपप्रभेदतः ।। ४२ ।। माघमासे च संप्राप्ते बदर्या दन्तधावनम् ।। प्रातःकुर्वीत नियमं रूपसौभाग्यहेतवे ।। ४३ ।। अपराह्णे ततःस्नात्वा सर्वाभरणभूषिता ।। चूतपुष्पैश्च सम्पूज्या रूपसौभाग्यसुन्दरी ।। ४४ ।। नालिकेरार्घ्यदानं च नैवेद्यं शष्कुली स्मृता ।। प्राशनं चैव कस्तूर्य्या रूपसौभाग्यसुन्दरीम् ।। ४५ ।। पूजयेत्तत्र सा सर्वरूपसौभाग्यसुन्दरी ।। फाल्गुनस्यासिते पक्षे प्रातर्नियमसंयुता ।। ४६ ।। सौभाग्यसुन्दरीं बैल्वं दन्तकाष्ठं तु कारयेत् ।। स्नानं कृत्वा तथा नारी काञ्चनारैश्च पूजयेत् ।। ४७ ।। नैवेद्यं सक्तवस्तत्र घृतशर्करयान्विताः ।। यक्षकर्दमजो लेपो धूपश्चागुरुसंभवः ।। ४८ ।। बीजपूरार्घ्यदानं च प्राशनं चन्दनोदकम् ।। प्राशनस्य प्रभावेण सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।। ४९ ।। पारणं च प्रकर्तव्यं सह सर्वैश्च बान्धवैः ।। चैत्रे मासि प्रकर्तव्या तृतीया पापनाशिनी ।। ५० ।। यत्नेन पूजनीयास्यां सुखसौभाग्यसुन्दरी ।। दन्तकाष्ठं समुद्दिष्टं जम्बूवृक्षसमुद्भवम् ।। ५१ ।। पूजा दमनकैर्नाम अर्घ्ये बिल्वफलं स्मृतम् ।। नैवेद्यं मण्डकाः प्रोक्ताः शर्कराघृतसंयुताः ।। ५२ ।। सुखसौभाग्यप्रात्यर्थं प्राशनं वज्र-

---

१ परस्मैपदमार्षम्

चारिणः ।। वैशाखस्यासिते पक्षे तृतीयायामुपोषयेत् ।। ५३ ।। मालतीदन्तकाष्ठं च नियमग्रहणं ततः ।। पतिसौभाग्यदां[1] देवीं सुंदरींपूजयेत्ततः ।। ५४ ।। पद्मैः सितैः सुरक्तैश्च मल्लिकाभिश्च पूजयेत् ।। दधिभक्तं सकर्पूरं शर्कराकघृतसंयुतम् ।। ५५ ।। नैवेद्यं कल्पयेद्देव्या अर्घ्यं चाम्रफलं भवेत् ।। हेमोदकं च संप्राश्य पुष्टिं सौभाग्यमाप्नुयात् ।। ५६ ।। ज्येष्ठे मासि तृतीयामुपवासपरा भवेत् ।। यूथिका दन्तकाष्ठं च लावण्यसुभगार्थिनी ।। ५७ ।। मल्लिकाकुसुमैः पूज्यां यक्षकर्दमचर्चिताम् ।। लावण्यसुभगां देवीं सुन्दरीं पूजयेत्ततः ।। ५८ ।। कदलीफलार्घ्यदानं च नैवेद्यं घृतपूरिका ।। मौक्तिकाम्बु ततः पीत्वा लावण्यसुभगा भवेत् ।। ५९ ।। आषाढे च ततो मासि पति[2]सौभाग्यसुन्दरी ।। प्रातरुत्थाय कर्तव्यं दन्तकाष्ठमशोकजम् ।। ६० ।। नियमं तत्र कुर्वीत तृतीयायां प्रयत्नतः ।। बिल्वपत्रैः कोमलैश्च पतिसौभाग्यसुन्दरी ।। ६१ ।। जम्बूफलार्घ्यदानं च नैवेद्यं पायसं स्मृतम् ।। शर्कराघृतसंयुक्तं सुंदरी प्रीयतां मम ।।६२ ।। विद्रुमाम्बु निशि प्राश्य हविषा पारणं स्मृतम् ।। सपत्नीनां मुखं नैव सा पश्यति कदाचना ।। ६३ ।। श्रावणे मासि संप्राप्ते तृतीयायामुपोषिता ।। बैल्वं वा बादरं काष्ठं जातिपुष्पैश्च शोभनैः ।। ६४ ।। स सर्वैश्वर्यसौभाग्यसुन्दरीं पूजयेत्ततः ।। नैवेद्यं श्वेतपक्वान्नं धूपदीपादिकं तथा ।। ६५ ।। कदलीफलार्घ्यदानं च प्राशयेद्राजतं पयः ।। गजाश्वपशुदासीनां हेमरत्नादिवाससाम् ।। ६६ ।। ईश्वरी सर्वलोकानां भगवत्याः प्रसादतः ।। मासि भाद्रपदे प्राप्ते पूज्या सौभाग्यसुन्दरी ।। ६७ ।। दन्तकाष्ठं तु कर्तव्यं मातुलिङ्गसमुद्भवम् ।। उत्पलैः पूजयेद्देवीमर्घ्यं कर्कटिकाफलम् ।। ६८ ।। नैवद्येऽशोकवर्त्तिन्यः पिबेन्माणिक्यजं पयः ।। (कर्पूरागुरुकस्तूरीमुखदेशे सुगन्धिना) ।। ६९ ।। आश्वयुज्यसिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत् ।। दन्तकाष्ठं प्रकर्तव्यं प्लक्षवृक्षसमुद्भवम् ।। ७० ।। पूजयेत् परया भक्त्या पुत्रसौभाग्यसुन्दरीम् ।। उत्पलैः शतपत्रैश्च पूजा कार्या प्रयत्नतः ।। ७१ ।।नारिङ्गमर्घ्यदानार्थं कूष्माण्डं वापि कल्पयेत् ।। नैवेद्ये [3]गणकाञ्छुभ्राञ्छर्कराघृतपाचितान् ।। ७२ ।। औदुम्बरं पयः प्राश्य सुन्दरी प्रीयतां मम ।। पुत्रपौत्रसमायुक्ता सुखसौभाग्यसुन्दरी ।। ७३ ।। कार्तिके मासि सम्प्राप्ते तृतीयायामुपोषिता ।। औदुम्बरं दन्तकाष्ठं कृत्वा व्रतमुपाचरेत् ।। ७४ ।। केतकीभिश्च सौभा[4]ग्यनाम्ना संयोगसुन्दरीम् ।। निवेदयेदपूपांश्च सुगन्धाञ्छालिसम्भवान् ।। ७५ ।। अक्रोडं चार्घ्यदानेन लवङ्गं प्राशयेत्ततः ।। सा वियोगं न चाप्नोति पितृभ्रातृसुतादिभिः ।। ७६ ।। एवं चीर्णे व्रते कुर्यादुद्यापनविधिं ततः ।।

---

१ सौभाग्यसुन्दरीं पूजयेदित्यन्वयः २ पूज्येतिशेषः ३ पक्कान्नविशेषान् ४ सौभाग्यनाम्ना सौभाग्यशब्देन सहितांसंयोगसुन्दरीं सौभाग्यसंयोगसुन्दरीमित्यर्थः

सर्वशास्त्रमधीयानमागमेषु विशारदम् ।। ७७ ।। आचार्यं प्रार्थयेत्प्रातर्मार्गशीर्षे यथाविधि ।। चीर्णं व्रतं मयाचार्य उद्यापनविधिं मम ।। ७८ ।। व्रतवैकल्यनाशाय यथाशास्त्रं समाहितः ।। सुन्दरीमण्डलं कार्यं गौरीतिलकमेव वा ।। ७९ ।। उमामहेश्वरं देवं सुवर्णेन तु कारयेत् ।। व्रतारम्भे यथाशक्त्या राजतं वापि कारयेत् ।। ८० ।। वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं सति द्रव्ये फलार्थिना ।। वर्षं प्रपूज्य तां मूर्ति तामेव मण्डलेऽर्चयेत् ।। ८१ ।। सर्वोपहारैर्गन्धैश्च पुष्पैर्नानाविधैरपि ।। एकैव सा जगन्माता बहुरूपैर्व्यवस्थिता ।। ८२ ।। रूपैर्द्वादशभिश्चैव पूज्या सौभाग्यसुन्दरी ।। ततः पद्मनिभां देवीं रक्तवस्त्रोपशोभिताम् ।। ८३ ।। रक्ताभरणशोभाढ्यां रक्तकुङ्कुमचर्चिताम् ।। ध्यात्वा चैवंविधां देवीं पूजयेदेकमानसा ।। ८४ ।। रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ततः सर्वाणि पुष्पाणि नैवेद्यादिफलानि च ।। ८५ ।। अर्घ्यार्थं परिकल्प्यानि सर्वकामार्थसिद्धये ।। ततः प्रभाते विमले स्नानं कृत्वा विधानतः ।। ८६ ।। कुसुम्भकुसुमैर्होमं किंशुकैर्वापि कारयेत् ।। अष्टोतरशतं पूर्णं मधुत्रयसमन्वितम् ।। ८७ ।। तदभावे तु कर्तव्यः शतपत्रैर्विधानतः ।। आसुरेण च मन्त्रेण गौणं मुख्यं समाचरेत् ।। ८८ ।। भोजयेच्च प्रयत्नेन चतुरोऽष्टौ विधानतः ।। मिष्टान्नेन सपत्नीकान् भक्त्या वै परितोषयेत् ।। ८९ ।। वस्त्रालंकरणैश्चैव यथाशक्ति प्रपूजयेत् ।। सौभाग्यवस्त्रं चैकैकं नारीणां चैव दापयेत् ।। ९० ।। ततो हस्ते प्रदातव्यं कुङ्कुमं लवणं गुडम् ।। नालिकेरं तथा वल्ली दूर्वा सिन्दूरकज्जलम् ।।९१।। मङ्गलाष्टकमेतद्वै दत्त्वा सौभाग्यमाप्नुयात् ।। आचार्यं च सपत्नीकं वस्त्रालंकरणैः शुभैः ।। ९२ ।। परिधाप्य यथाशक्ति मण्डलं तत्समर्पयेत् ।। प्रार्थयेच्च ततो देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।।९३।। पूजितासि मया देवि सर्वसौभाग्यसुन्दरि ।। दत्त्वा मत्प्रार्थितान्कामान् गच्छ देवि यथासुखम् ।। ९४ ।। मूर्ति च मङ्गलां देव्या उपहारांश्च सर्वशः ।। गुरो गृहाण सर्वं त्वं सुन्दरी प्रीयतामिति ।। ९५ ।। त्वत्प्रसादान्मया चीर्णं व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।। क्षमस्व विप्रशार्दूल प्रसादसुमुखो भव ।। ९६ ।। एवं चीर्णव्रता नारी कृतकृत्वा भवेत्सदा ।। येनेनं च कृतं वर्षं संप्राप्तं जन्मनः फलम् ।।९७।। नातः परतरं किंचित्व्रतं सौभाग्यकारकम् ।। देहान्ते शिवलोके तु भोगान् भुक्त्वा यथेप्सितान् ।। ९८ ।। इतिश्रीभविष्योत्तरपुराणे सौभाग्यसुन्दरीव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

सौभाग्य सुन्दरी व्रतम्-मार्गशीर्ष वा माघमें कृष्णपक्षकी तीजको सौभाग्य सुन्दरी व्रत होताहै । यह व्रत चतुर्थीसे युक्त तृतीयामें तो कर लेना चाहिये पर द्वितीयासे विद्ध तृतीयामें न करना चाहिये । क्योंकि इसकी कथामें कहा गया है कि द्वितीयाके वेधसे रहित जो कृष्णपक्षकी तीज हो भले ही वह चतुर्थीके साथ युक्त हो अथवा किंचित् शुद्ध हो तबही सौभाग्य सुन्दरी व्रत करना चाहिये । अथ कथा–एक समय देवर्षि

१ अच्छेदिति शेषः

नारद पितामह ब्रह्माजीसे शिष्टाचारके उपरान्त बोले कि, हे भगवन् ! आपनेही अनेकों वर्ण तथा अनेकों गुणवाली ये प्रजा रची है, पसीनासे पैदा होनेवाले, अण्डों से पैदा होनेवाले तथा भूमिसे निकलनेवाले पौदे एवम् जरायुज मनुष्यादिक सब आपके ही पैदा किये हुए हैं ॥१॥ मय गन्धर्वोंके देव और असुर, यक्ष, सर्प, राक्षस, सुरूप, बलवान्, तथा कुरूप, निर्बल ॥२॥ एवम् अनेक प्रकारके दुःखी, काने, गूंगे, पंगु, दुराचारी दुर्भाग्य तथा सदा दूसरेके कानमें लगे रहनेवाले आपके ही बनाये हुए हैं ॥ ३ ॥ यही मेरे हृदयमें संताप है कि, आपके बनाए हुए ऐसे क्यों हो गये हैं? आप मेरे इस संदेहको मिटाकर मुझे शांति प्रदान करिये । इतना सुनकर ब्रह्माजी कहनेलगे कि, हे वत्स ! तुम मेरे प्यारे भक्त हो, इस कारण मैं तुम्हें सुनाता हूं, तुम सावधान होकर सुनों ॥ ४ ॥ यह पञ्चभूतों से बना हुआ शरीर कर्मरूपी बीजका पौदा है, जिन्होंने दान दिए हैं वे सुन्दर और सुखी होते हैं ॥ ५ ॥ तपके प्रभावसे बली और सुभग होते हैं पर जिन्होंने दान नहीं दिया है वे दूसरोंकी नौकरी करकेही अपना जीवन बिताते हैं ॥६ ॥ दूसरेकी बुराई करनेवाले, दूसरेके धनको हरनेवाले, प्राणियोंके मारनेवाले एवम् अभक्ष्यके खानेवाले घृणित जीव ॥७॥ अपने २ कर्मोंके अनुसार नरकोंको भोगकर उसी कर्मके लेखासे यहां आकर दरिद्री, लंगडे, गूंगे, कांने कोजडे और दुर्भग होते हैं ॥८ ॥ हे नारद ! इस कारण ये प्राणी अपने २ कर्मोंसे आप दुखी हो रहे हैं । इतनी सुनकर नारदजी महाराज ब्रह्माजीसे कहने लगे कि हे भगवन् ! कोई ऐसा उपाय बताइये जिनसे इन दुःखी जीवोंके अशुभ कर्मोंका नाश हो जाय ॥९॥ यदि ऐसा कोई तप, किंवा दान व्रत तीर्थ और शरीरका शोषण भले ही हो, बतला दीजिये क्योंकि दुःखके सन्तापसे तपे हुए इन जीवोंका जीनेसे मरनाही अच्छा है ॥१०॥ यह सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे कि, हे नारद ! सावधानीके साथ सुन लेना, व्रतोंमेंसे अत्यन्त गोपनीय एक उत्तम व्रत है वो सब दुःखोंका शान्त करनेवाला एवम् व्याधि और दारिद्रका नष्ट करनेवाला है ॥११॥ सुख तथा सौभाग्यका पैदा करनेवाला और पुत्र पौत्रोंका देनेवाला है, सुरूपका देनेवाला सौभाग्यका कारण तथा सब कामनाओंका देनेवाला है ॥१२॥ और स्त्रियोंको तो विशेष करके सुख सौभाग्यका देनेवाला है । पहिले इस व्रतको सब ऋषियों के समागममें वसिष्ठजीके लिए ॥१३॥ महात्मा शंकर भगवान्ने कैलाशकी सुन्दर शिखरपर कहा था । इतनी कथा सुनकर देवर्षि नारदजी पितामहसे कहने लगे कि, हे महाराज यह तो बताइये कि, यह व्रत वसिष्ठजीके लिये शिवजी ने क्यों कहा तथा यह कृपा वसिष्ठजी पर क्यों हुई ॥ १४ ॥ इतना सुनकर ब्रह्माजी नारदजीसे कहने लगे कि, हे पुत्र ! शिवजीने अरुन्धतीका अतुल अद्भुत, सौभाग्यतथा सौन्दर्य और सुचरित्रोंको देखकर ॥ १५ ॥ सिर हलाकर सुन्दर मन्दहास किया । उसी समय वसिष्ठजीने उस मन्दहासका कारण पूछा कि, भगवन् ! आपने किस कारण मंदहासकिया है ॥ १६ ॥ शिवजी कहनेलगे कि, हेश्रेष्ठऋषियों ! व्रतके माहात्म्यको सुनो, पहिले जन्ममें सदा शूद्रके दास्यको करनेवाली ॥१७॥ झूठिन खानेवाली, त्यक्त शय्यापर सोनेवाली, बुरी सुरतकी, दुर्भगा, दीना, कठोर स्वभावकी, तोतला बोलनेवाली ॥ १८ ॥ जिसकी कि, तरफ कोई प्यारकी एक नजरभी न डाल सके ऐसी मेघवती नामकी दासी थी ॥ वो एकबार किसीके पहुंचानेके लिये किसी ब्राह्मणके यहां गयी ॥ १९ ॥ उस समय ब्राह्मण देव बहुतसी स्त्रियोंको सौभाग्य सुंदरी नामक तृतीयाके व्रतकी कथा सुना रहे थे जो सब कामनाओंके पूरे करनेवाली है ॥ २० ॥ ज्ञान और वैराग्यकी देनेवाली तथा सब कामोंके फलोंकी दाता है, एकवार उमाने मुझसे प्रार्थना की थी उस समय मैंने ही इसे प्रकाशित किया था ॥ २१ ॥ इन व्रत करनेवाली स्त्रियोंके प्रसंगसे दासी मेघवतीने भी इस व्रतको प्रयत्नसे पूरा किया, उस व्रतमें प्राप्त हुये सडे बुसे थोडेसे नैवेद्यकाभी दान दिया ॥ २२ ॥ तथा व्रतकी समाप्तिमें इसने पारणाभी झूठे अठसे की, पर इसके हृदयमें व्रतके लिये अपार श्रद्धा उसी थी श्रद्धासे इसने व्रतको किया था ॥ २३ ॥ यह निश्चित बात है कि श्रद्धाने धर्मको धारणकर रखा है, बहुतसी धन राशियां भी धर्मको धारण नहीं कर सकतीं, पर ऋषियोंने विना धनके भी भावनासे उत्पन्न हुई जो श्रद्धा है उसीसे धर्म किया था ॥ २४ ॥ मेघवती दासी उसी व्रतके प्रभावसे परम सुंदरी सुशील एवम् सर्व लक्षण लक्षिता निषादराज की कन्या बनी ॥ २५ ॥ उसका कोई भी अङ्ग विफल नहीं था, सौभाग्य सुन्दरीकी कृपासे वो सर्वांग सुंदरी हुई । पर पारणामें जो झूठा अन्न खाया था, इस कारणही वो निषादयोनिमें उत्पन्न हुई ॥२६ ॥ इसने दान

तो दियाही नहीं था,इसकारण इसे इस योनिमें भोगनेके लिये भी कुछ न मिला, पर व्रतके प्रभावसे सुरूप और पतिव्रता हुई ।।२७।। महासौभाग्यसे संयुक्त यह ऐसी मालूम होती थी मानों दूसरी लक्ष्मी ही हो यह सबको आनन्द देनेवाली तथा सब कामनाओंको पूरा करनेवाली निन्दिनी होकरही अपने पिताके घर रही ।।२८।। हे देवर्षे ! यह सब कामोंकाफल देनेवाला है । नारद बोले कि, इस व्रतकी विधि कहिये, कैसे पूजन होता है ।।२९।। कौनसे मासमें करना चाहिये कौन इसका देवता है, इसका पुण्य क्या है, नैवेद्य कौन २ है, पूजनमें कैसे ध्यान करना चाहिये ।। ३० ।। यह सुन ब्रह्मा बोले कि, मार्गशीर्षमें या माघमें इस व्रतका आरंभ करना चाहिये । जबकि, कृष्ण पक्षकी तृतीया–द्वितीया विद्धा न हो ।।३१।। चाहेवो किंचित् चतुर्थी योगिनी हो अथवा शुद्धा हो इसमें पहिले दांतुन करके पीछे उपवास करना चाहिए ।।३२।। व्रती अपामार्गकी दातुन करे । हे शंकरकी अर्धाङ्गिनि उमे देवि ! तेरे लिए नमस्कार है ।।३३।। नियम मंत्र–हे, महेशानि ! प्रसन्न हो जा तेरे इस उत्तम व्रतको करूँगा, हे शिवकी प्यारी ! इस व्रतमें तू मुझे सान्निध्य देना ।। ३४ ।। इस व्रतकी देवी सौभाग्य सुन्दरी है कोई इसे वशिनी भी कहते हैं यह सब कामोंके देनेवाली है ।।३५।। जिसके दर्शन मात्रसे जगत् दासकी तरह होजाता है इस कारण इसे वशिनी भीकहते हैं।द्रोण पुष्पोंसे पूजन और अनारका अर्घ्य होता है ।।३६।। लड्डुओंका नैवेद्य और कर्पूरका प्राशन करावे यही सब तृतीया-ओंकी विधि है ।।३७।। हे वत्स ! पौषके कृष्णपक्षकी तृतीयाके दिनसे इस व्रतका प्रारंभ होता है, इसमें दांतुन ओंगाकी और पूजन दोना मरुएके फलोंसे होता है ।।३८।। इसके पीछे राज्य और सौभाग्यके देनेवाली सौभाग्य सुन्दरीको पूजे, आमलेका अर्घ्य दे तथा कंकोलका प्राशन रातको करावे ।।३९।। घी शक्कर मिले हुए वटकोंका नैवेद्य करे तथा राज्य और सौभाग्यके लिये कंकोलके पानीका प्राशन करे ।। ४०।। घृतका दीपक जलाकर रातको जागरण करे, देवी सब कामोंको देनेवाली तथा सब दुःखोंके हरनेवाली है ।।४१।। सब ऐश्वर्यके देनेवाली तथा सब पापोंके हरनेवाली एवम् एक होते हुए भी नामरूप भेदसे अनेक आत्मावाली है ।।४२।। माघ मासमें रूप और सौभाग्यके लिये प्रातःकाल नियमके साथ बेरियाकी दांतुन करना चाहिये ।।४३।। इसके बाद अपराह्णमें स्नान करके सब आभरणोंसे विभूषित हो, रूपसौभाग्य सुन्दरीका आमके फूलोंसे पूजन करना चाहिये ।।४४।। नारिकेलका अर्घ तथा शष्कुलीका नैवेद्य और कस्तूरीका प्राशन होता है । इस दिन जो रूप सौभाग्य सुन्दरीको ।।४५।। पूजती है वो सर्वरूप और सौभाग्यसे सुन्दरी होती है । फाल्गुन कृष्णपक्षकी तीजके दिन नियमवाली होकर ।।४६।। सौभाग्यसुन्दरीको बिल्वकी दांतुन करावे तथा स्नान करके कचनारके फूलोंसे देवीका पूजन करे ।।४७।। इसमें घी सक्करमिले हुए सतुएही नैवेद्य होते हैं, यक्षकर्दमका लेप और अगरका धूप दिया जाता है ।।४८।। बीजपूरका अर्घ तथा चन्दनके पानीका प्राशन हो; इस प्राशनके ही प्रभावसे सब कामोंको पाजाता है ।। ४९ ।। इसके बाद सब कुटुंबी जनोंके साथ पारणा करे, चैत्रमासमें पापनाशिनी तृतीया अवश्य करनी चाहिये ।।५०।। इसमें भी सुखसौभाग्य सुन्दरीका साव-धानीसे पूजन होना चाहिये, इसमें दांतुन जामुनकी होतीहै ।।५१।। दमनकके फूलोंसे पूजा तथा बेलपत्रका अर्घ एवम् घी सक्कर संयुक्त माडे नैवेद्य होते है ।।५२।। इसमें सुख और सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये हीरेके पानीका प्राशन करना चाहिये । वैसाख कृष्णा तृतीयाके दिन व्रत करना चाहिये ।।५३।। इसमें मालतीकी दांतुनका नियम है । फिर स्नानादिके पीछे पति और सौभाग्य देनेवाली सुन्दरीदेवीका पूजन करे ।।५४ ।। लाल, सफेद कमल और चमेलीसे पूजे घी, शक्कर और कपूर मिले हुए दही चावलोंका ।।५५।। नैवेद्य बनावे तथा आमके फलका अर्घ दे, सोनेके पानीका प्राशन करे,इससे पुष्टि और सौभाग्यकी प्राप्ति होती हैं ।।५६।। जिस स्त्रीको लावण्य तथा सुभगता प्राप्तकरनेकी इच्छा हो वो ज्येष्ठ कृष्णा तृतीयाको उपवास करे, यूथिकाकी दांतुन करे ।।५७।। लावण्य सुभगा सुन्दरी देवीको यक्षकर्दमसे चर्चित करके मल्लिकाके फूलोंसे पूजे ।।५८।। कदलीफलका अर्घदान तथा घृतकोपूरियोंका नैवेद्य करके मोतियोंका पानी पीना चाहिये, इससे लावण्य सुभगा होजाती है ।।५९।। आषाढ कृष्णा तृतीयाकोपति सौभाग्यसुन्दरीका व्रत करना चाहिये, प्रातःकाल उठकर अशोकको दांतुन करनी चाहिये ।।६०।। व्रतके नियम, प्रयत्नसे करने चाहियें । पति सौभाग्य सुन्दरीका कोमल बेलपत्रोंसे पूजन करे ।। ६१।। जामुनाका अर्घ दान तथा खीरका नैवेद्य हो जिसमें घी और शक्कर मिली हुई हो तथा सौभाग्य सुन्दरी देवी प्रसन्न हो, यह कहना चाहिये ।।६२ ।। विद्रुमके पानीका प्राशन तथा हविका पारण कहा है,इस व्रतको करनेवाली स्त्री सौतोंका मुँह नहीं देखती ।।६३।। श्रावणमहीनामें कृष्णा तृतीयाको उपवास करे, दांतुन बेलीकी या बेरियाकी होनी चाहिये और

सुन्दर जाती पुष्पोंसे ।। ६४ ।। सर्वैश्वर्य्यसंपन्न सौभाग्य सुन्दरीका पूजन करना चाहिये, श्वेतपक्वा अन्नका नैवेद्य और धूप दीपादिक हों ।। ६५ ।। कदली फलका अर्घ दे, राजतपयका प्राशन करे; इस व्रतके प्रभावसे उसके धरमें घोडा, हाथी, पशु, दास, दासी, सोना, चांदी, रेशमी कपडे और रत्न सब कुछ होजाता है ।।६६।। तथा भगवतीकी कृपासे वो सब लोकोंकी ईश्वरी होजाती है।भादोंकी कृष्णातृतीयाके दिन सौभाग्य सुन्दरीका पूजन करना चाहिये ।।६७।। इसमें बिजौरेके काठकी दांतुन तथा कमलोंसे पूजन होना चाहिये और ककडीके फलका अर्घ होना चाहिये ।। ६८ ।। नैवेद्यमें अशोककी मंजरियाँ तथा माणिक्यके पानीका प्राशन करे ।।६९।। क्वार कृष्णा तृतीयाके दिन व्रत करना चाहिये, इसमें पिलखनकी दांतुनका विधान है ।।७०।। शतपत्र और कमलोंसे प्रयत्नके साथ पुत्र सौभाग्य सुन्दरीका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये ।।७१।। नारङ्गीके फलका अर्घ अथवा पेठेका अर्घ तथा घीमें पके और मिश्रीमें पगे हुए, शुभ्रगणकोंका नैवेद्य करना चाहिये ।।७२।। तथा उदुम्बरका पानी प्राशन करके कहना चाहिये कि, मुझपर सुन्दरी प्रसन्न होजाय इस प्रकार करनेपर उसे पुत्र पौत्र सुखसौभाग्य सब मिलजाते हैं ।।७३।। कार्तिक कृष्णातृतीयाके दिन उदुम्बरका दन्तधावन करे, उपवास पूर्वक व्रत करना चाहिये ।।७४।। केतकीके फूलोंसे सौभाग्य संयोग सुन्दरीका पूजन और शालिके अपूपोंका नैवेद्य करना चाहिये ।।७५।। अखरोटके फलोंको अर्घमें कामलाना चाहिये तथा लवंगका प्राशन करना चाहिये । ऐसा करनेवाली पति, भाई और पुत्रोंके वियोगको कभी नहीं देखती ।।७६।। इस व्रतके पूरे होजानेपर उद्यापन अवश्य करना चाहिये । जो सब शास्त्रोंका पढा हुआ हो तथा आगमोंमें विशारद हो ।।७७।। ऐसे आचार्य्यसे मार्गशीर्षमें विधिके साथ प्रार्थना करनी चाहिये कि, मैंने व्रत पूरा कर लिया है, अब आप उद्यापन कराइये ।।७८।। तथा आप भी व्रतके वैकल्यको दूर करनेके लिये समाहित हो जाय । सुन्दरी मण्डल करना चाहिये अथवा गौरी तिलक होना चाहिये ।।७९।। व्रतके आरंभमें जैसी अपनी शक्ति हो सोने चांदीकी उमामहेश्वरकी मूर्ति बनवालेनी चाहिये ।। ८० ।। फलार्थीको चाहिये, कि द्रव्य होनेपर वित्त शाठ्य न करे जो मूर्ति साल भर पूज दी गयी है उसी सोने चांदीकी मूर्तिको मंडलपर भी पूजन होना चाहिये ।।८१।। अनेक प्रकारके उपहार तथा गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन करे, एक ही जगन्माता बहुरूपसे व्यवस्थित हैं ।।८२।। अपने बारहरूपोंसे सौभाग्यसुन्दरी पूजीजाती है इसके बाद कमलके समान शोभावाली, लालवस्त्रोंसे शोभित हुई ।।८३।। लालही आभरणोंको पहिने हुई एवम् लालही कुंकुमसे पूजी गई, सौभाग्य-सुन्दरी देवीका ध्यान करके एकमनसे पूजन करे ।।८४।। गाने बजानेके साथ रातको जागरण करना, पीछे सब तरहके फूलों और नैवेद्योंको ।।८५।। यदि यह इच्छा हो कि मेरे सब काम, होजायें तो अर्घमें परिकल्पित करे ! पीछे प्रातःकाल विधिके साथ स्नान करके ।।८६।। कुसुम्भके फूलोंसे अथवा किंशुकके फूलोंसे होम कराना चाहिये । तीनों मधु इसमें रहने चाहियें तथा १०८ आहुतियां होनी चाहियें ।।८७।। यदि ये न मिलें तो शतपत्रोंसेही हवन संपादन करे, यह गौण और मुख्य दोनोंही हवन आसुरमंत्रसे होने चाहियें ।।८८।। चार वा आठ सपत्नीक ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक वासधानताके साथ भक्तिभावसे, भोजन कराकर प्रसन्न करे।।८९।। जैसी शक्ति हो उसके अनुसार वस्त्र और अलंकार भी दे तथा स्त्रियोंको एक एक सौभाग्यवस्त्र भी दे ।।९०।। इसके बाद हाथमें कुंकुम, लवण और गुड, नारिकेल, पान, दूर्वा, सिन्दूर और कज्जल देना चाहिये ।।९१।। इस मंगलाष्टकके देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है,तथा सपत्नीक आचार्य्यका सुन्दर वस्त्र और अलंकारोंसे यथाशक्ति पूजन करके ।।९२।। उन्हें मण्डल दे देना चाहिये, इसके बाद देवीकी प्रार्थना करनी चाहिये ।। ९३ ।। हे सर्व सौभाग्यसुन्दरी देवि ! मैंने तुझे पूजा है तू मेरे मांगे हुए कामोंको देकर यथासुख चली जा ।।९४।। हे गुरो ! देवीजीकी मंगलीक मूर्ति तथा सब उपहारोंको आप लीजिये । देतीवार कहना चाहिये कि, सुन्दरी देवी प्रसन्न हो ।।९५।। हे विप्रशार्दूल! मैं आपकोही कृपासे इस कठिन व्रतको पूराकर सकाहूं मेरेको क्षमा करते हुए मुझपर प्रसन्न हूजिये ।। ९६ ।। इस प्रकार जिस स्त्रीने एकसाल व्रतकर लिया वो कृतकृत्या हो गई, उसने जन्म लेनेका फल पा लिया ।। ९७ ।। इससे अधिक दूसरा कोई भी व्रत सौभाग्य देनेवाला नहीं है । जो स्त्री इस व्रतको करती है वो देहके अन्तमें शिवलोकमें चली जाती है ।।९८ ।। यह श्रीभविष्योत्तरपुराणका सौभाग्यसुन्दरीका व्रत पूरा हुआ ।।

अथ चतुर्थीव्रतानि लिख्यन्ते

संकष्टचतुर्थीव्रतम्

तत्र श्रावणकृष्णचतुर्थ्यां संकष्टचतुर्थीव्रतम् ।। तच्च चन्द्रोदयव्यापिन्यां कार्यम् ।। श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यां तु विधूदये ।। गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घ्यं प्रदापयेत्—इति कथायां तत्र व्रतपूजाविधानात् ।। द्विनद्वये तद्वयाप्तौ पुर्वेव ।। "मातृविद्धा गणेश्वर" इतिवचनात् ।। दिनद्वयेऽव्याप्तौ परैव ।। हेमाद्रौ-चन्द्रोदयाभावे चतुर्थी निशि षट्घटिकाव्याप्ता परैव व्रते । इति ।। अथ व्रतविधिः ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य तिथौ मम विद्याधनपुत्रपौत्रप्राप्त्यर्थं समस्तरोगमुक्तिकामः श्रीगणेशप्रीत्यर्थं संकष्टचतुर्थीव्रतमहं करिष्ये ।। तत्रादौ स्वस्तिवाचनं गणपतिपूजनं कलशार्चनं करिष्ये ।। सौवर्णरौप्यताम्रमृन्मयाद्यन्यतमां गणपतिमूर्तिं कृत्वा जलपूर्णं पूर्णपात्रं वस्त्रयुतकुम्भो परि स्थापयित्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । तद्यथा—लम्बोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम् ।। नानारत्नैः सुवेषाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत्।।ध्यायेद्गजाननं देवं तप्तकाञ्चनसुप्रभम् ।। चतुर्बाहुं महाकायं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।। इति ध्यानम् ।। आगच्छ त्वं जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।। अनाथनाथ सर्वज्ञ विघ्नराज कृपां कुरु ।। सहस्रशीर्षा० ।। गजास्याय नमो गजास्यमावाहयामि इति आवाहनम् ।। गोप्ता त्वं सर्वलोकानामिन्द्रादीनां विशेषतः ।। भक्तदारिद्र्यविच्छेत्ता एकदन्त नमोस्तु ते ।। पुरुष एवेदं० विघ्नराजाय० आसनम् ।। मोदकान्धारयन्हस्ते भक्तानां वरदायक ।। देवदेव नमस्तेस्तु भक्तानां फलदो भव ।। एतावानस्य० लम्बोदराय० पाद्यम् ।। महाकाय महारूप अनंतफलदो भव ।। देवदेव नमस्तेऽस्तु सर्वेषां पापनाशन ।। त्रिपादूर्ध्व० शंकरसूनवे० अर्घ्यम् ।। कुरुष्वाचमनं देव सुरवन्द्य सुवाहन ।। सर्वाघदलनस्वामिन्नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ।। तस्माद्विराड० उमासुताय० आचमनीयम् ।। स्नानं पञ्चामृतेनैव गृहाण गणनायक ।। अनाथनाथ सर्वज्ञ नमो मूषकवाहन ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।। वक्रतुण्डाय० पञ्चामृतस्नानम् ।। गङ्गा च यमुना चैव गोदावरिसरस्वती ।। नर्मदा सिन्धुकावेरी जलं स्नानाय कल्पितम् ।। यत्पुरुषेण० हेरंबाय० स्नानम्।। रक्तवस्त्रसुयुग्मं च देवानामपि दुर्लभम् ।। गृहाण मङ्गलं देव लम्बोदर हरात्मज ।। तं यज्ञं० शूर्पकर्णाय० वस्त्रम् ।। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण गणनायक ।। आरक्तं ब्रह्मसूत्रं च कनकस्योत्तरीयकम् ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृ० ।। कुब्जाय० यज्ञोपवी०।। गृहाणेश्वर सर्वज्ञ दिव्यचन्दनमुत्तमम् ।। करुणाकर गुञ्जाक्ष गौरीसुत नमोस्तु ते ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचःसा० गणेश्वरा०गन्धम्० ।। अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः

सुशोभितः ।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण गणनायक ।। अक्षतान् ।। सुगन्धि-दिव्यमालां च गृहाण गणनायक ।। विनायक नमस्तुभ्यं शिवसूनो नमोस्तु ते ।। मालाम् ।। माल्यादीनि सुगन्धी० तस्मादश्वा विघ्ननाशिने नमः पुष्पाणि० ।। अनेनैव नाम्ना दूर्वाकुङ्कुमादि दद्यात् ।। अथाङ्गपूजा–गणेश्वराय० पादौपू० । विघ्नराजाय० जानुनीपू० । आखुवाहनाय० ऊरूपू० । हेरंबाय० कटींपू० कामारि-सूनवे नाभिपू० । लंबोदराय० उदरंपू० गौरीसुताय० स्तनौपू० । गणनायकाय० हृदयंपू० । स्थूलकण्ठाय० कण्ठंपू० । स्कन्दाग्रजाय० स्कन्धौपू० । पाशहस्ताय० हस्तौपू० । गजवक्त्राय वक्त्रंपू० । विघ्नहर्त्रे० ललाटंपू० । सर्वेश्वराय० शिरः पूजयामि । श्रीगणाधिपाय० सर्वाङ्गंपू० ।। दशाङ्गं गुग्गुलं धूपमुत्तमं गणनायक ।। गृहाण देव देवेश उमासुत नमोस्तु ते ।। यत्पुरुषं विकटाय० धूपं० । सर्वज्ञ सर्व-रत्नाढ्य सर्वेश विबुधप्रिय ।। गृहाण मङ्गलं दीपं घृतवर्तिसमन्वितम् ।। ब्राह्मणोस्य० वामनाय० दीपं० । नैवेद्यं गृह्यतां देव नानामोदकसंयुतम् ।। पक्वान्नफलसंयुक्तं षड्रसैश्च समन्वितम् ।। चन्द्रमामन० सर्वदेवाय० नैवेद्यम् ।। कृष्णावेण्यागौतमीनां पयोष्णीनर्मदाजलैः ।। आचम्यतां विघ्नराज प्रसन्नो भव सर्वदा ।। आचमनम् ।। फलान्यमृतकल्पानि सुगन्धीन्यघनाशन ।। आनीतानि यथाशक्त्या गृहाण गण-नायक ।। सर्वार्तिनाशिने० फलं० । ताम्बूलं गृह्यतां देव नागवल्ल्या दलैर्युतम् ।। कर्पूरेण समायुक्तं सुगन्धं मुखभूषणम् ।। विघ्नहर्त्रेन० ताम्बूलं० ।। सर्वदेवाधिदेव त्वं सर्वसिद्धिप्रदायक ।। भक्त्या दत्तां मया देव गृहाण दक्षिणां विभो ।। सर्वेश्वराय० दक्षिणां० ।। पञ्चवर्तिसमायुक्तं वह्निना योजितं मया ।। गृहाण मङ्गलं दीपं विघ्नराज नमोस्तु ते ।। नीराजनम् ।। यानि कानि च पा० नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणाः ।। नमोस्त्वनं० ।। सप्तास्येति नमस्कारः ।। यज्ञेनयज्ञमितिमंत्रपुष्पाञ्ज-लिम् ।। एवं पूजा प्रकर्तव्या षोडशैरुपचारकैः ।। मोदकान्कारयेन्मातस्तिलजान्दश पार्वति ।। देवाग्रे स्थापयेत्पञ्चपञ्च विप्राय कल्पयेत् ।। पूजयित्वा तु तं विप्रं भक्ति-भावेन देववत् ।। दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा वै पञ्चमोदकान् ।। पूजयेन्निशि चन्द्रं च अर्घ्यं दत्त्वा यथाविधि ।। क्षीरसागरसंभूत सुधारूप निशाकर ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रीतिवर्द्धनम् ।। रोहिणीसहितचन्द्रमसे नमः इदमर्घ्यं० ।। क्षीरोदार्ण-वसंभूत सुधारूपनिशाकर । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितः शशिन् ।। रोहिणीसहितचन्द्राय० इदमर्घ्यम्० ।। गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक ।। संकष्टं हर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु पूजितोसि विधूदये ।। क्षिप्रं प्रसादितो देव गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। संकष्टहरगणेशाय० इदमर्घ्यम् ।। तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे ।। सर्वसंकष्टनाशाय चतुर्थ्यर्घ्यं नमोस्तु

ते ।। चतुर्थ्यै० अर्घ्यम् ।। वायनमंत्रः--विप्रवर्य नमस्तुभ्यं मोदकान्वै ददाम्यहम् ।। मोदकान्सफलान्पञ्च दक्षिणाभिः समन्वितान् ।। आपदुद्धरणार्थाय गृहाण द्विज-सत्तम ।। प्रार्थनाअबुद्धमतिरिक्तं वा द्रव्यहीनं मया कृतम् ।। सत्सर्वं पूर्णतां यातु विप्ररूप गणेश्वर ।। ब्राह्मणान् भोजयेद्देवि यथान्नेन यथासुखम् ।। स्वयं भुञ्जीत पञ्चैव मोदकान्फलसंयुतान् ।। अशक्तश्चैकमन्नं वा भुञ्जीत दधिसंयुतम् ।। अथवा भोजनं कार्यमेकवारं हिमागजे ।। प्रतिमां गुरवे दद्यादाचार्याय सदक्षिणाम् ।। वस्त्रकुम्भसमायुक्तामादौ मन्त्रमिमंजपेत् -- नमो हेरम्ब मदमोहित संकष्टान्निवारय निवारय ।। इतिमूलमन्त्रमेकविंशतिवारं जपेत् ।। विसर्जन-मन्त्रः--गच्छगच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने त्वं गणेश्वर ।। व्रतेनानेन देवेश यथोक्त-फलदो भव ।। इतिपूजा ।।

चतुर्थीव्रतानि

संकष्ट चतुर्थीव्रत--श्रावण कृष्ण चतुर्थीके दिन संकष्ट चतुर्थीका व्रत होता है इस व्रतको उस चतुर्थीमें करना चाहिये जो कि चन्द्रमाके उदयमें व्याप्त हो । क्योंकि, संकट चतुर्थीकी व्रतकथामें, श्रावण शुक्ला चौथको चन्द्रमाका उदय होने पर गणेशजीका पूजन करके चन्द्रमाको अर्घ देना चाहिये । यह चन्द्रोदय व्यापिनी चतुर्थीमें व्रतकी पूजाका विधान किया है । यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदय व्यापिनी हो तो तृतीयासे विद्धा पूर्वा ही ग्रहण करनी चाहिये क्योंकि गणेश्वरके व्रतमें मातृ (तृतीयासे) विद्धा ग्रहण की जाती है यह वचन मिलता है । यदि दोनोंही दिन चन्द्रोदय व्यापिनी न हो तो परली ही चतुर्थीका ग्रहण होता है । क्योंकि, चन्द्रोदयके अभावमें रातको छः घडीतक रहनेवाली परा चतुर्थीकाही व्रतमें ग्रहण होता है ऐसा हेमाद्रिने कहा है । अब व्रतकी विधि कहते हैं--सवसे पहिले संकल्प करना चाहिये कि अमुक मास, अमुक पक्ष और अमुक तिथिमें विद्या, धन, पुत्र, पौत्र, प्राप्तिके लिये तथा समस्त रोगोंसे मुक्त होनेके लिये श्रीगणेशजीकी प्रसन्नताके लिये, संकटचौथका व्रत मैं करता हूं तथा पहिले स्वस्तिवाचन गणपति पूजन एवम् कलशका पूजन भी करूंगा ।। सोने चांदी तांबे और मिट्टीमेंसे अपने वित्तके अनुसार किसीभी धातुकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे कुंभस्थ पूर्ण पात्रपर वैध स्थापित करके सोलहों उपचारोंसे पूजन करना चाहिये । पूजन निम्नलिखित रीतिसे होता है--अनेक तरहके रत्नोंसे भली भांति सुसज्जित, रक्तवर्ण, चार भुजावाले, तीन नेत्र धारी प्रसन्न मुख, लम्बोदर भगवान्का चिन्तन करना चाहिये । तपाये हुए सोनेकी प्रभावाले, कोटि सूर्य्यके समान चमकीले बडे लम्बे चौडे शरीरके, चतुर्भुजी गजानन देवका ध्यान करना चाहिये । इन मंत्रोंसे ध्यान, तथा हे सुरासुरनमस्कृत जगन्नाथ ! तुम आओ । हे अनाथोंके नाथ ! सर्वज्ञ विघ्नराज ! कृपा करो । इस मंत्रसे तथा "ओम् सहस्र शीर्षा" इस मंत्रसे तथा--गजास्यको नमस्कार है गजाननका आवाहन करता हूं इनसे आवाहन करना चाहिये । तुम इन्द्रादिक सब लोकोंके गोप्ता हो, विशेष करके भक्तोंके दारिद्रको नाश करनेवाले हो, हे एकदन्त ! तेरे लिये नमस्कार है । इस मंत्रसे तथा "ओम् पुरुष एवेदम्" इस मंत्रसे तथा विघ्नराजके लिये नमस्कार है, इससे आसन देना चाहिये । आप लड्डुओंको हाथ में रखते हुए भक्तोंको वर देते रहते हो, हे देवदेव ! तेरे लिये नमस्कार है, आप भक्तोंके लिये फल देनेवाले हो । इस मंत्रसे तथा "ओम् एतावानस्य महिमा" इस मंत्रसे तथा लम्बोदरके लिये नमस्कार है, इस मंत्रसे पाद्य देना चाहिये । जैसे आप महाकाय और महारूप हैं उसी तरह अनन्त फलके देनेवाले भी हो, हे सब पापोंके नाश करनेवाले देव-देव ! तेरे लिये नमस्कार है, इस मंत्रसे तथा "ओम् त्रिपादूर्ध्व" इस मंत्रसे एवम् शंकरके सुतके लिये नमस्कारहै इस मंत्रसे अर्घ देना चाहिये । फिर आचमन करावे 'कुरुष्व' हे देव ! हे देवताओंके पूज्य ! हे सुन्दर मूसकके ऊपर आरूढ होनेवाले हे

सबके पाप या दुःखोंके दलन करनेमें मुख्य ! हे नीलकण्ठ ! आप आचमन करें आपको मैं प्रणाम करता हूं। "ओंतस्माद्विराडजायत विराजो" इस मंत्रसे तथा उमासुताय नमः आचमनीयं समर्पये उमासुतके लिये नमस्कार है मैं आचमनीय समर्पित करताहूं। ऐसे कहकर आचमन करावे। फिर पञ्चामृतसे स्नान करावे हे गणाधीश हे अनाथोंके नाथ हे मूषकवाहन ! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये आपको पञ्चामृतसे स्नान कराताहूं इसमें दूध, दधि, घृत, शर्करा और सहत मिले हुए हैं आप ग्रहण करिये। वक्रतुण्डाय नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पये वक्रतुण्ड देवके लिये नमस्कार है पञ्चामृतसे स्नान कराता हूं इससे पञ्चामृत स्नान तथा गङ्गा यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरीका जल, आपको स्नान करानेके लाया हूं इससे आप स्नान करिये "यत्पुरुषेण" इस मंत्रको तथा-हेरम्बाय नमः स्नानं कारयामि हेरम्बके लिये नमस्कार है मैं स्नान कराता हूं इसे कह कर शुद्धजलसे स्नान कराना चाहिये। 'रक्तं वस्त्रं, हे लम्बोदर हे शंकरनन्दन, देवताओंकोभी दुर्लभ इन सुन्दर लालरङ्गवाले भव्य दोनों वस्त्रोंको धारण करिये इस मंत्रसे तथा "तं यज्ञं बर्हिषि" इस मंत्रसे तथा शूर्पकर्णाय नमः। वस्त्रं परिधापयामि शूर्पकर्णके लिये प्रणाम है, मैं वस्त्र धारण कराताहूं। इससे १ वस्त्र कटिमें बाँधे, दूसरा वस्त्र ऊपर उढादेना चाहिये। 'ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीय' हे गणनायक ! यह सुन्दर लालरङ्गका डुपट्टा और यह सुवर्णके तारोंका यज्ञोपवीत है, आप इन्हें स्वीकृत करें इससे तथा "तस्माद्यज्ञात्" इस मंत्रसे एवम्-कुब्जाय नमः, यज्ञोपवीतमुत्तरीयं च समर्पये-कुब्जकी तरह चलनेवाले देवदेवकेलिये नमस्कार है, मैं उनको यज्ञोपवीत एवं डुपट्टा धारण कराताहूं, इससे यज्ञोपवीत और डुपट्टा धारण कराना चाहिये। 'गृहाणेश्वर सर्वज्ञ' हे ईश्वर हे सर्वज्ञ हे करुणाके आकर हे गुञ्जाक्ष हे गौरीसुत ! आपको प्रणाम है, आप उत्तम दिव्य चन्दनसे अपनेको चर्चित करो। इससे तथा-"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत" इस मंत्रसे एवम्-गणेश्वराय नमः, गन्धं समर्पये-गणेश्वरकेलिये नमस्कार है, मैं गन्ध चढाता हूं, इससे सुगन्धित लालचन्दन चढाना चाहिये। 'अक्षताश्च सुर' हे सुरश्रेष्ठ हे गणनायक ! ये रोलीसे रङ्गेहुए सुन्दर अक्षत मैंने भक्तिपूर्वक आपकी भेंट किये हैं, आप स्वीकृत करिये, इस प्रकार कहके लाल अक्षत चढाना चाहिये। 'सुगंधि दिव्यमालांच-' हे गणोंके नायक हे विनायकः हे शिवसूनो ! आपके लिये नमस्कार है, नमस्कार है, आप सुगन्धित दिव्य मालाको धारण करिये। इसप्रकार कहके माला पहिनाना चाहिये। फिर 'माल्यादीनि' मैं आपकी पूजाके लिये माल्यादिक सुगन्धि एवम् ऐसे ही अनेक प्रकारके द्रव्य लाया हूं, हे गणनायक ! इन्हें ग्रहण करिये। इस मंत्रसे, तथा-"ओम् तस्मादश्वा" इस मंत्रसे एवम् विघ्नविनाशिने नमः-पुष्पाणि समर्पये-विघ्नविनाशकके लिये नमस्कार है मैं पुष्प चढाता हूं, इससे फूल चढाना चाहिये "विघ्नविनाशिने नमः दूर्वांकुरान् समर्पयामि विघ्नविनाशीके लिये नमस्कार है दूबके अंकुर समर्पित करता हूं, विघ्नवि-कुंकुमं समर्पयामि, उसीको कुंकुमसमर्पित करता हूं, वि. नमः सुगन्धित तैलं समर्पयामि उसीको सुगन्धित तेलसमर्पित करता हूं इस प्रकार विघ्नविनाशीके नामसे अन्य वस्तु भी गणेशजीको भेंट करनी चाहिये। अंगपूजा-ओम् गणेश्वराय नमः पादौ पूजयामि गणेश्वरके लिये नमस्कार है, चरणोंका पूजन करता हूं। इससे चरण, तथा ओम् विघ्नराजाय नमः जानुनी पूजयामि-विघ्नराजके लिये नमस्कार है, जानुओंका पूजन करता हूं। इससे जानू, तथा-ओम् आखुवाहनाय नमःऊरू पूजयामि-मूसेके वाहनवालेके लिये नमस्कार है ऊरूका पूजन करता हूं। इससे ऊरू, तथा-हेरम्बाय नमः कटी पूजयामि हेरंबके लिये नमस्कार है कटिका पूजन करता हूं इससे कटि, तथा-ओम् कामारिसूनवे नमः नाभिं पूजयामि-कामारिके सुतके लिये नमस्कार है नाभिको पूजता हूं। इससे नाभि तथा ओम् लम्बोदराय नमः उदर पूजयामि लम्बोदरके लिये नमस्कार है, उदरका पूजन करता हूं। इससे उदर तथा ओम् गौरीसुताय नमः स्तनौ पूजयामि-गौरीसुतके लिये नमस्कार है स्तनोंका पूजन करता हूं, इससे स्तन, तथा-ओम् गणनायकाय नमः हृदय पूजयामि गणनायकके लिये नमस्कार है हृदयका पूजन रकता हूं। इससे हृदय, तथा-ओम् स्थूलकण्ठाय नमः कण्ठं पूजयामि-स्थूल कंठवालेके लिये नमस्कार है कंठको पूजता हूं इससे कंठ, तथा-ओम् स्कन्दाग्रजाय नमः स्कन्धौ पूजयामि-स्कन्दके बडे भाईके लिये नमस्कार है कन्धोंको पूजता हूं। इससे कन्धे, तथा-ओम् पाशहस्ताय नमः हस्तौ पूजयामि पाशको हाथमें रखनेवालेके लिये नमस्कार है।हाथोंका पूजन करता हूं इससे हाथ, तथा गजवक्त्राय नमः वक्त्रं पूजयामि-

हाथीके मुंहवालेके लिये नमस्कार है मुंहका पूजन करता हूं । इससे मुख, तथा–ओम् विघ्न हन्त्रे नमः ललाटं पूजयामि–विघ्नोंके नाश करनेवालेके लिये नमस्कार है ललाटका पूजन करता हूं । इससे ललाट, तथा–ओम् सर्वेश्वरायः नमः शिरः पूजयामि–सर्वेश्वरके लिये नमस्कार है । शिरका पूजन करता हूं । इससे शिर, तथा–ओम् श्रीगणेशाय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि श्रीगणेशजीके लिये नमस्कार है सब अंगोंका पूजन करता हूं, इससे सर्वाङ्ग पूज देना चाहिये । तदनन्तर 'दशाङ्गंगुग्गुलं यह दशाङ्ग' गुग्गलयुक्त उत्तम धूप है हे गणनायक ! हे देव देवेश ! हे उमासुत ! आप इसे स्वीकृत करें, आपके लिये नमस्कार है । इस मंत्रसे तथा यत्पुरुषं व्यदधुः इस मंत्रसे एवम् विकटाय नमः, धूपमाघ्रापयामि विकटमूर्ति गणपतिके लिये नमस्कार है, धूपका गन्ध अर्पित करता हूँ इससे धूप देना चाहिये । "सर्वज्ञ सर्वरत्नाढच" हे सर्वज्ञ हे सब प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न हे सबके ईश्वर हे देवताओंके पियारे" घृत और बत्तीयुक्त इस माङ्गलिक दीपकको अङ्गीकृत करो ! "ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्" इस मंत्रसे तथा वामनाय नमः, दीपं दर्शयामि वामनरूप गणराजके लिये नमस्कार है - दीपक दिखारहाहूं । ऐसे कहके दीपक दिखा दीपक पर अक्षत छोडके हाथोंको प्रक्षालित करे । फिर "नैवेद्यं गृह्यताम् देव" बहुतसे लड्डुओं एवं पक्वान्नयुक्त छः रसवाले भोज्यपदार्थोंसे रुचिर, इस नैवेद्यको ग्रहण करो इस मंत्रसे तथा–"चन्द्रमा मनसो जातः" इससे तथा–सर्व देवाय नमः नैवेद्यं निवेदयामि सबके पूज्य गणपतिके लिये नमस्कार है मैं नैवेद्य निवेदित करता हूं, जिससे नैवेद्य भोगलगा दें । कृष्णा, वेणी, यमुना, प्रयागराज, गौतमी, पयोष्णी और नर्मदाके जलसे हे विघ्नराज ! आप आचमन करो और सदा मुझपरप्रसन्न रहो । इससे आचमन करावे । 'फलान्यमृत' हे पाप ! और दुःखोंको नष्टकरनेवाले हे गण नायक ! मैं यथाशक्ति अमृतसदृश मधुर एवं सुगन्धितं फल आपके लिये लायाहूं आप इनका स्वादलें इससे तथा सर्वार्तिनाशिने नमः, फलं समर्पयामि–सब पीडाओंके नाशक गणेशजीके लिये नमस्कार है, मैं फल चढाता हूं ऐसे कहके ऋतु फल चढावे । 'ताम्बूलं गृह्यताम्' हे देव नागरपान कपूर और सुगंधित पदार्थोंसे युक्त, मुखकोविभूषित करनेवाले ताम्बूलको ग्रहण करिये इससे तथा विघ्नहर्त्रे नमः मुखशुद्ध्यर्थं ताम्बूलं समर्पयामि विघ्नोंके रहनेवालेके लिये नमस्कार है आपकी मुखशुद्धिके लिये ताम्बूल चढाताहूं इतना कहके ताम्बूल समर्पणकरे । "सर्वदेवाधि" हे सबदेवताओंके पूज्य हे सबके प्रति सिद्धि देनेवाले ! मैं भक्तिसे दक्षिणा चढाता हूं हे विभो ! आप इसे स्वीकृतकरो । सर्वेश्वराय नमः दक्षिणां समर्पयामि–सर्वेश्वरके लिये नमस्कार है दक्षिणा चढाता हूं इतना कहकर दक्षिणा चढावे । फिर पांच बत्ती चासकर उस दीपकसे आरती करता हुआ 'पञ्चवर्त्ति' इस पद्यको पढे, इसका यह अर्थ है कि हे विघ्नराज ! पांचबत्तीवाले प्रज्वलित इस मांगलिक दीपकको अङ्गीकृत करो आपके लिये प्रणाम है । पीछे यानिकानि च पापानि, इस पूर्वोक्त पद्यको तथा "नाभ्या आसीत्" इस मन्त्रको पढते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये "नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये' इस पहले कहे एहु पद्यको तथा "सप्तास्यासन् परि०' इस मंत्रको पढता हुआ हाथ जोडकर प्रणाम करना चाहिये "ओम् यज्ञेन यज्ञमयजन्त" इस मन्त्रको पढकर पुष्पाञ्जली चढावे । गणेशजी पार्वतीसे कहते हैं कि हे मातः पार्वति ! इस प्रकार सोलहों उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये, पूजाके अन्तमें तिलोंके दशमोदकोंमेंसे पाँच गणपतिके सम्मुख भेंट करे और पाँच लड्डुओंको देवताके समान आचार्य्यका पूजन करके उन्हें यथा शक्ति दक्षिणाके साथ देदे । फिर रातमें चन्द्रोदय होनेपर यथाविधि चन्द्रमाका पूजन करके, 'क्षीरसागर' आदिमन्त्रोंसे अर्घ्यदान करना चाहिये। इनका अर्थ यह है कि, हे क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हे सुधा रूप ! हे निशाकर ! आप रोहिणी सहितमेरे दिये हुए गणेशके प्रेम बढानेवाले अर्घ्यको ग्रहण करो, रोहिणीसहित चन्द्रमाके लिये नमस्कार है यह अर्घ चन्द्रमाको समर्पित करता हूं, इस मंत्रसे चन्द्रमाको अर्घ दे । तथा हे क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न होनेवाले हे सुधारूप निशाकर ! मैं अर्घ देता हूं हे शशिन् ! रोहिणी सहित आप इसे ग्रहण कररिये. रोहिणीसहित चन्द्रमाके लिये इस अर्घको देता हूं ! इससे रोहिणी सहित चन्द्रमाके लिये अर्घ दे । तत्पश्चात् गणपतिके लिये अर्घ्य देता हुआ और 'गणेशाय' इत्यादि पढे इसका यह अर्थ हे कि, सबसिद्धियोंके देनेवाले गणेशजी महाराज आपके लिये नमस्कार हैं, हे देव ! सब संकटोंका हरण करिये तथा मेरे अर्घ्यदानको अङ्गीकृत करिये आपके लिये वारंवार नमस्कार

है । कृष्णपक्षकी चौथके दिन चन्द्रमाके उदय हो जानेपर पूजन करके शीघ्नही प्रसन्न कर लिया है, हे देव ! अर्घ ग्रहण करिये. आपको नमस्कार है । यह अर्घ संकटहर गणेशजीके लिये मेरा नहीं हैं । पीछे चतुर्थीकोभी अर्घ देना चाहिये कि, हे चतुर्थि ! तुम तिथियोंमें श्रेष्ठ हो, तथा गणपतिजीकी अयन्त पियारी हो इस कारण मैं अपने संकटोंकी निवृत्तिके लिये आपको प्रणाम करता हुआ अर्घ्यदान करताहूं । फिर दक्षिणासहित फल और पाँच मोदकोंका वायना आचार्यके लिये देवे और 'विप्रवर्य नमः' इसको पढे, इसका अर्थ यह है कि, हे विप्रवर्य्य ! आपके लिये प्रणाम है, मैं मोदक प्रदान करताहूँ, हे द्विजोत्तम आचार्य ! आप इन फल और दक्षिणासमेत पांच मोदकोंको मेरी आपत्तियां दूर करनेके लिये स्वीकृत करो । फिर 'अबुद्धमतिरिक्तं' इस मन्त्रसे आचार्यकी साञ्जलि प्रार्थना करे कि, मैंने जो विना जाना, या विना कहा हुआ किया वह या जितने द्रव्यकी जरूरत थी उस द्रव्यसे शून्यजो इस व्रतानुष्ठानको किया है, उससे जो त्रुटियां होगयी हों, वे सब नष्ट हों और हे ब्राह्मण आचार्य रूपी गणाधीश ! आपकी कृपासे वह सब व्रतानुष्ठान सम्पूर्णताको प्राप्त हो । श्रीगणपतिजी अपने मातासे कहते हैं कि, हे हिमालय नन्दिनी हे देवि ! यथाविहित अथवा जैसा समयपर तैयार किया कराया हो उस अन्नसे शान्तिपूर्वक आनन्दके साथ ब्राह्मणोंको भोजन करावे, व्रतकरनेवाला फल एवं पञ्च मोदकोंका भोजन करे, व्रत करनेवाला असमर्थ होतोदधिके साथ किसी भी एक अन्नका भोजन करले अथवा एकबार भोजन करके ही व्रतानुष्ठान करे । फिर गणेशजीकी मूर्ति और दक्षिणा तथा वस्त्र एवम् कलशदान आचार्यको देदे । मूर्तिदान करनेसे पहिले यजमानको चाहिये कि वह "ओं नमो" इस मुख्य मन्त्रको २१ वार जपे । इस मन्त्रका यह अर्थ है कि, हे हेरम्ब ! आपके लिये नमस्कार है, आप मद एवं मोहजन्य संकटोंसे बचाओ बचाओ । तदनन्तर 'गच्छ गच्छ' इस मन्त्रको पढता हुआ अक्षतोंको पूजा स्थानमें गेरे और पूजाकार्यको समाप्त करे, इसका यह अर्थ है कि, हे सुरश्रेष्ठ ! हे गणेश्वर ! आप अपने स्थानमें सानन्द पधारें, मैंने जो यह आपका व्रतानुष्ठान किया है इसका जो शास्त्रकारोंने फल कहा है उसको मुझे दे । इस प्रकार संकट चतुर्थीके दिनकी गणपति पूजन विधि समाप्त होती है ॥

अथ कथा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ दारिद्रयशोककष्टाद्यैःपीडितानां च वैरिभिः ॥ राज्यभ्रष्टैर्नृपैः सर्वैः क्रियते किं शुभार्थिभिः ॥ १ ॥ धनहीनैर्नरैः स्कन्द सर्वोपद्रवपीडितैः ॥ विद्यापुत्रगृहभ्रष्टै रोगयुक्तैः शुभार्थिभिः ॥ २ ॥ कर्तव्यं किं वदोपायं पुनःक्षेमार्थसिद्धये ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ३ ॥ संकष्टतरणं नामामुत्रेह सुखदायकम् ॥ येनोपायेन संकष्टं तरन्ति भुवि देहिनः ॥४॥ यद्व्रतं देवकीपुत्रः कृष्णो धर्माय दत्तवान् ॥ अरण्ये क्लिश्यमानाय पुनः क्षेमार्थ सिद्धये ॥ ५ ॥ यथा कथितवान् पूर्वं गणेशो मातरं प्रति ॥ तथा कथितवाञ्छ्रीशो द्वापरे पांडवान्प्रति ॥ ६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं कथितवानम्बां पार्वतीं श्रीगणेश्वरः ॥ यथा पृच्छन्ति मुनयो लोकानुग्रहकांक्षिणः ॥ ७ ॥ स्कन्द उवाच ॥ पुरा कृतयुगे पुण्ये हिमाचलसुता सती ॥ तपस्तप्तवती भूरि तेनालब्धः शिवः पतिः ॥ ८ ॥ तदास्मरत्सा हेरम्बं गणेशं पूर्वजं सुतम् ॥ तत्क्षणादागतं दृष्ट्वा गणेशं परिपृच्छति ॥ ९ ॥ पार्वत्युवाच ॥ तपस्तप्तं मया घोरं दुश्चरं लोमहर्षणम् ॥ न प्राप्तः स मया कान्तो गिरीशो मम वल्लभः ॥१०॥ संकष्टतरणं दिव्यं व्रतं नारद उक्तवान् ॥ त्वदीयं यद्व्रतं तावत्

१ न दृष्टः शंकरः पतिरित्यपि पाठः

कथयस्व पुरातनम् ।। ११ ।। तच्छ्रुत्वा पार्वतीवाक्यं संकष्टतरणं व्रतम् ।। प्रीत्या कथितवान् देवो गणेशो ज्ञानसिद्धिदः ।। १२ ।। गणेश उवाच ।। श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यां तु विधूदये ।। गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घ्यं प्रदापयेत् ।। १३ ।। पार्वत्युवाच ।। क्रियते केन विधिना किं कार्यं किं च पूजनम् ।। उद्यापनं कदा कार्यं मन्त्राः के स्युस्तु पूजने ।। १४ ।। किं ध्यानं श्रीगणेशस्य गणेश वद विस्तरात् ।। गणेश उवाच ।। चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।। १५ ।। ग्राह्यं व्रतमिदं पुण्यं संकष्टतरणं शुभम् ।। कर्तव्यमिति संकल्प्य व्रतेऽस्मिन् गणपं स्मरेत् ।। १६ ।। स्वीकारमन्त्रः–निराहारोऽस्मि देवेश यावच्चन्द्रोदये भवेत् ।। भोक्ष्यामि पूजयित्वाहं संकष्टात्तारयस्व माम् ।। १७ ।। एवं संकल्प राजेन्द्र स्नात्वा कृष्णतिलैः शुभैः ।। आह्निकं तु विधायैव पश्चात्पूज्यो गणाधिपः ।। १८ ।। त्रिभिर्माषैस्तदर्द्धेन तृतीयांशेन वा पुनः ।। यथाशक्त्या तु वा हैमी प्रतिमा क्रियते मम ।। १९ ।। हेमाभावे तु रौप्यस्य ताम्रस्यापि यथासुखम् ।। सर्वथैव दरिद्रेण क्रियते मृन्मयी शुभा ।। २० ।। वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कृते कार्यं विनश्यति ।। जलपूर्णं वस्त्रयुतं कुम्भं तदुपरि न्यसेत् ।। २१ ।। पूर्णपात्रं तत्र पद्मं लिखेदष्टदलं शुभम् ।। देवतां तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ।। २२ ।। एवं व्रतं प्रकर्तव्यं प्रतिमासं त्वयाद्रिजे ।। यावज्जीवं तु वा वर्षाण्येकविंशतिमेव वा ।। २३ ।। अशक्तोऽप्येकवर्षं वा प्रतिवर्षमथापि वा ।। उद्यापनं तु कर्तव्यं चतुर्थ्यां श्रावणेऽसिते ।। २४ ।। स्वीकारश्च तथा कार्यः संकष्टहरणे तिथौ ।। गाणपत्यं तथाचार्यं सर्वशास्त्रविशारदम् ।। २५ ।। श्रद्धया प्रार्थयेदादौ तेनोक्तं विधिमाचरेत् ।। एकविंशतिविप्रांश्च वस्त्रालंकारभूषणैः ।। २६ ।। पूजयेद्गोहिरण्याद्यैर्हुत्वाग्नौ विधिपूर्वकम् ।। होमद्रव्यं मोदकाश्च तिलयुक्ता घृतप्लुताः ।। २७ ।। अष्टोत्तरसहस्रं वा नोचेदष्टोत्तरं शतम् ।। अष्टाविंशतिसंख्याकान्मोदकान्वा सशर्करान् ।। २८ ।। अशक्तोष्टौ शुभान् स्थूलाञ्जुहुयाज्जातवेदसि ।। वैदिकेन च मंत्रेण आगमोक्तेन वा तथा ।। २९ ।। अथवा नाममंत्रेण होमं कुर्याद्यथाविधि ।। पुष्पमण्डपिका कार्या गणेशाह्लादकारिणी ।। ३० ।। पूजयेत्तत्र गणपं भक्तसंकष्टनाशनम् ।। गीतवादित्रनिनदैर्भक्तिभावपुरस्कृतैः ।। ३१ ।। पुराणवेदनिर्घोषैस्तोषयेच्च गणेश्वरम् ।। एवं जागरणं कार्यं शक्त्या दानादिकं तथा ।। ३२ ।। सपत्नीकमथाचार्यं तोषयेद्वस्त्रभूषणैः ।। उपानच्छत्रगोदानकमण्डलुफलादिभिः ।। ३३ ।। शय्यावाहनभूदानं धनधान्यगृहादिभिः ।। यथाशक्त्या प्रकर्तव्यं दारिद्र्याभावमिच्छता ।। ३४ ।। एकविंशतिविप्रांश्च भोजयेन्नामभिर्मम ।। गजास्यो विघ्नराजश्च लम्बोदर शिवात्मजौ ।। ३५ ।। वक्रतुण्डः शूर्पकर्णः कुब्जश्चैव विनायकः ।। विघ्ननाशो हि विकटो वामनः सर्वदैवतः ।। ३६ ।। सर्वार्तिनाशी भगवान् विघ्नहर्ता च धूम्रकः ।। सर्वदेवाधिदेवश्च सर्वे

षोडश वै स्मृताः ।। ३७ ।। एकदन्तः कृष्णापिङ्गो भालचन्द्रो गणेश्वरः ।। गणपश्चैकविंशश्च सर्व एते गणेश्वराः ।।३८।। दुर्गोपेन्द्रश्च रुद्रश्च कुलदेव्याधिकं भवेत् विशेषेणाष्टसंख्याकैर्मोदकैर्हवनं स्मृतम् ।। ३९ ।। एवं कृते विधानेन प्रसन्नोऽहं न संशयः ।। ददामि वाञ्छितान् कामांस्तद्व्रतं मत्प्रियं कुरु ।। ४० ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। एवं तु कथितं सर्वं गणेशेन स्वयं नृप ।। पार्वत्या तत्कृतं राजन् व्रतं संकष्टनाशनम् ।। ४१ ।। व्रतेनानेन सा प्राप महादेवं पतिं स्वकम् ।। तत्कुरुष्व महाराज व्रतं संकष्टनाशनम् ।। ४२ ।। चतुर्थी संकटा नाम स्कन्देन कथिता ऋषीन् ।। ऋषिभिर्लोककामैस्तैर्लोके ततमिदं व्रतम् ।। ४३ ।। सूत उवाच ।। कृतं युधिष्ठिरेणैतद्राज्यकामेन वै द्विज ।। तेन शत्रून्निहत्याजौ स्वराज्यं प्राप्तवान् स्वयम् ।। ४४ ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतं कार्यं विचक्षणैः ।। येन धर्मार्थकामाश्च मोक्षश्चापि भवेत्किल ।। ४५ ।। यः करोति व्रतं विप्राः सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।। स वांच्छितफलं प्राप्य पश्चाद्गणपतां व्रजेत् ।।४६।। यदा यदा परं विप्रा नरः प्राप्नोति संकटम् ।। तदा तदा प्रकर्त्तव्यं व्रतं संकष्टनाशनम् ।। ४७ ।। त्रिपुरं हन्तुकामेन कृतं देवेन शूलिना ।। त्रैलोक्यभूतिकामेन महेन्द्रेण तथा कृतम् ।। ४८ ।। रावणेन कृतं पूर्वं वालिबन्धनसंकटे ।। स्वकीयं प्राप्तवान्राज्यं गणेशस्य प्रसादतः ।। ४९ ।। सीतान्वेषणकामेन कृतं वायुसुतेन च ।। संकल्प दृष्टवान्सोऽयं सीतां रामप्रियां पुरा ।।५०।। दमयन्त्या कृतं पूर्वं नलान्वेषणकारणात् ।। सा पतिं नैषधं लेभे पुण्यश्लोकं द्विजोत्तमः ।। ५१ ।। अहल्यापि पतिं लेभे गौतमं प्राणवल्लभम् ।। विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात् ।। पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते ।। ५२ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं संकष्टचतुर्थीव्रतम् ।।

कथा--ऋषिगणोंने भगवान् स्वामिकार्तिकजीसे पूछा कि, हे प्रभो ! दारिद्र, रोग तथा कुष्ठादि रोगोंसे महादुःखित एवम् वैरियोंद्वारा राज्यसे च्युत किये गये शुभाकांक्षी सब नरेशोंको क्या करना चाहिये ।। १ ।। हे स्कन्द ! सभी उपद्रवोंसे पीडित तथा विद्या पुत्र ग्रह और धनसे विहीन, शुभाकांक्षी मनुष्योंको क्या करना चाहिये ।। २ ।। वो कर्तव्य उपाय कहिये जिससे उन्हें क्षेम और अर्थकी सिद्धि हो जाय, यह सुन स्कन्द बोले कि, हे ऋषिगणों ! सब सावधान होकर सुनो, मैं एक उत्तम व्रत कहता हूं ।। ३ ।। संकष्टतरण उसका नाम है वो इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखका देनेवाला है, प्राणी इसी उपायसे भूमण्डलपर सब कष्टोंसे पार होजाते हैं ।। ४ ।। इस व्रतको देवकीपुत्र कृष्णने क्षेम और अर्थ सिद्धिके लिये धर्मराजको दिया था जब कि वो वनमें दुःख पा रहेथे ।। ५ ।। जैसे कि, गणेशजीने अपनी माको सुनाया था, वैसेही श्रीकृष्ण परमात्माने द्वापरमें पाण्डवोंको सुनाया था ।। ६ ।। ऋषिगण कहने लगे कि, गणेशजीने अपनी माताको क्यों सुनाया था, क्योंकि ऐसी बातें तो लोकका कल्याण चाहनेवाले ऋषिलोग पूछते हैं ।। ७ ।। यह सुन स्कन्द बोले कि, पहिले पुण्य कृतयुगमें सती हिमाचलकी सुताने घोर तप किया, पर शिवको पतिके रूपमें न पासकी ।। ८ ।। उस समय पार्वतीजीने अपने पहिले पुत्र गणपति हेरम्बका स्मरण किया, उसी समय गणेश आ उपस्थित हुए, तब वो गणेशजीसे पूछने लगीं ।। ९ ।। कि मैंने ऐसा दुश्चर घोर तप किया जिसकी कि कहानी सुनकर रोंगटे खडे होजायें, पर मेरे प्यारे गिरीशको मैंने पतिके रूपमें पास नहीं पाया ।। १० ।। देवर्षि नारदजीने आपका संकट

तरण नामक एक दिव्य व्रत कहाथा, आप अपने उस पुराने व्रतको मुझसे कहिये । पार्वतीजीके ऐसे वाक्य सुनकर ज्ञात और सिद्धि देनेवाले गणेशजी परमप्रसन्नताके साथ, संकष्टतरण नामके अपने व्रतको कहने लगे ॥ १२ ॥ श्रावण कृष्णा चौथके दिन चतुर्थीमेंही चन्द्रोदय होनेपर गणेशजीका पूजन करके चन्द्रमाको अर्घ प्रदान करना चाहिये ॥ १३ ॥ यह सुन पार्वतीजी बोली कि, उस व्रतका किस विधिसे तथा कैसे पूजन होना चाहिये, कब उद्यापन हो, और पूजनके मंत्र कौनसे हैं । ॥ १४ ॥ हे गणेश ! श्रीगणेशका ध्यान कौनसा है, विस्तारके साथ सुना दीजिये । यह सुन गणेशजी बोले कि, चौथके दिन उठ, दन्तधावन पूर्वक ॥ १५ ॥ परम पवित्र इस संकष्ट तरण नामके व्रतको ग्रहण करे, फिर व्रतका संकल्प कर इस व्रतमें गणेशजीका स्मरण करे ॥ १६ ॥ स्वीकार मंत्र–हे देव ! जबतक चांदका उदय न होगा उतने समयतक मैं निराहार रहूंगा, आपका पूजन करकेही भोजन करूंगा, आप मुझे संकटोंसे पार लगा दें ॥ १७ ॥ भगवान् कृष्ण युधिष्ठिरजीसे कहते हैं कि, हे राजेन्द्र ! स्नानादिसे निवृत्त हो, शुभ काले तिलोंसे आह्निक कर्म करके पीछे गणपतिका पूजन करना चाहिये ॥ १८ ॥ गणेशजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि, तीन मासेकी, डेढ मासेकी अथवा एक मासेकी सोनेकी गणेशजीकी मूर्ति शक्तिके अनुसार बनवा ॥ १९ ॥ यदि सोनेकी न बनवा सके, तो चांदीकी या तांबेकी ही बनवाले यह भी न हो सके तो मिट्टीकी ही बनवा लेनी चाहिये ॥ २० ॥ इस कार्यमें धनका लोभ न क रना चाहिये लोभसे कार्य नष्ट होता है, इस मूर्तिको पानीसे भरे एवम् वैधवस्त्रोंसे ढकेहुए कुंभके ऊपर, क्रमशः स्थापित कर देना चाहिये ॥ २१ ॥ कलश पर पूर्णपात्र रख दे, तहां अष्टदल कमल लिखना चाहिये तहां विधिपूर्वकदेवता स्थापित करके पीछे वैध पूजन करना चाहिये ॥२२॥ हे गिरिजे ? आप प्रतिमास इसी प्रकार व्रत करें जबतक कि आप जीवें, अथवा इक्कीस बरसतक करें ॥ २३ ॥ यदि शक्ति न हो तो एक वर्ष अथवा वर्षमें एक दिन तो अवश्य ही करे । श्रावण कृष्णा चौथके दिन उद्यापन करें ॥ २४ ॥ संकष्टहरण चौथके दिन स्वीकार करना चाहिये सब शास्त्रोंके जाननेवाले गणपतिजीके व्रतोंके विधानोंको जाननेवाले जो आचार्य हों, उनको ॥ २५ ॥ श्रद्धासे प्रार्थना करनी चाहिये, फिर जैसे वो कहें वैसेही व्रत करना चाहिगे । इक्कीस ब्राह्मणोंको वस्त्र अलंकार और भूषणोंसे ॥ २६ ॥ तथा गऊ और सोने आदिकसे पूजन करके विधि-पूर्वक हवन करे, इसमें होमद्रव्य, घीसे भीगे हुए सतिल मोदक हैं ॥ २७ ॥ एक हजार आठ अथवा एकसौ आठ तथा अट्ठाईस मोदक चीनीके बने होने चाहिये ॥ २८ ॥ यदि इतनी शक्ति न हो तो वैदिक मंत्रसे अथवा गाणपत्य शास्त्रके मंत्रसे बडे बडे आठ सुन्दर लड्डुओंका अग्निमें हवन करना चाहिये ॥ २९ ॥ अथवा नाम मंत्रसे विधिसहित हवन करना चाहिये, गणेशजीको प्रसन्न करनेवाला फूलोंका मण्डप बनाना चाहिये ॥ ३० ॥ भक्तोंके कष्ट नाशनेवाले गणेशजीका तहां पूजन करना चाहिये; भक्तिभावसे किये गये गाने बजानेके शब्दोंसे ॥ ३१ ॥ पुराण और वेदके शब्दोंसे गणेशजीको प्रसन्न करे इस प्रकार रातको जागरण करके शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ वस्त्र, भूषण, छत्र जूती, जोडा, गौ, कमण्डलु और फला-दिकोंसे, सपत्नीक आचार्य्यको प्रसन्न कर देना चाहिये ॥ ३३ ॥ जिसकी यह इच्छा हो कि मेरे घर कोई दारिद्र न रहे उसे अपनी शक्तिके अनुसार शय्या, वाहन, भू, धन, धान्य और गृहादिकोंसे सत्कार करना चाहिये ॥ ३४ ॥ मेरे नामसे २१ ब्राह्मणोंका भोजन करना चाहिये । मेरे नाम–गजास्य, विघ्नराज, लम्बोदर, शिवात्मज ॥ ३५ ॥ वक्रतुण्ड, शूर्पकर्ण, कुब्ज, विनायक, विघ्ननाश, वामन, विकट, सर्वदैवत ॥ ३६ ॥ सर्वार्तिनाशी, भगवान् विघ्न हर्ता, धूम्रक, सर्वदेवाधि देव ॥ ३७ ॥ एकदन्त, कृष्णपिङ्ग, भालचन्द्र, गणेश्वर और गणप ये हैं ये इक्कीस गणनायक हैं ॥ ३८ ॥ दुर्गा, उपेन्द्र, रुद्र और कुलदेवी इनके नामके चार ब्राह्मण अधिक हो जाते हैं विशेष करके आठ मोदकोंकाही हवन कहा गया है ॥ ३९ ॥ विधिपूर्वक ऐसा करनेसे मैं प्रसन्न हो जाता हूं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, मैं सब मनोकामनाओंको पूरा करता हूं, हे मात ! मेरे प्यारे इस व्रतको करो ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरजीसे कहते हैं कि, इस प्रकार गणेशजीने अपने आप कहा तथा पार्वतीजीने उस संकष्ट नाशन व्रतको किया ॥ ४१ ॥ इसी व्रतके प्रभावसे पार्वतीजीने शिवजीको अपना पति पाया, हे राजन् ! आप इस कष्टनिवारक व्रतको करिये ॥ ४२ ॥ स्कन्दने यह संकटा चतुर्थी ऋषियोंको सुनाई थी । लोकके कल्याण चाहनेवाले ऋषियोंने इसे प्रचलित करदिया ॥ ४३ ॥ सूतजी शौनका-

विक महर्षियोंसे बोले कि, हे द्विजो ! राज्यकी इच्छासे महाराज युधिष्ठिरने इस व्रतको किया था इसी व्रतके प्रभावसे युद्धमें वैरियोंको मारकर अपना राज्य पा लिया था ।। ४४ ।। इस कारण सबको प्रयत्न पूर्वक इस व्रतको करना चाहिये, जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिल जायें ।। ४५ ।। हे ब्राह्मणो ! जो सभी काम अर्थोंकी सिद्धि देनेवाले इस व्रतको करता है वो वांछित फलको पाकर अन्तमें गणपतिपनेको पाजाता है ।। ४६ ।। हे ब्राह्मणो ! जब जब मनुष्योंको बडा भारी कष्ट प्राप्त हो सबको उस समय संकटचतुर्थीका व्रत करना चाहिये ।। ४७ ।। त्रिपुरको मारनेके लिये शिवजीने इस व्रतको किया था तथा तीनों लोकोंकी विभूति चाहनेवाले इन्द्रने इसी व्रतको किया था ।। ४८ ।। जब रावणको बालिने बाँध लिया था, उस समय रावणने भी इसी व्रतको किया था उसने भगवान् गणेशजीकी कृपासे फिर अपना राज्य पालिया था ।। ४९ ।। मैं सीताका पता पा जाऊं इस इच्छासे इस व्रतका संकल्प हनुमान्जीने किया था इसके ही प्रभावसे वो सीताजीका पता लगासके ।। ५० ।। हे ब्राह्मणो । नलका पता पानेके लिये दमयन्तीने भी इसी व्रतको किया था, उसने पवित्र यशवाले नैषध नलको पति पाया ।। ५१ ।। अहल्याने भी प्राणवल्लभ गौतम प्राप्त किया था । इस व्रतसे विद्यार्थीको विद्या, धनार्थीको धन तथा सुपुत्रार्थीको पुत्र और रोगीको आरोग्यकी प्राप्ति होती है ।। ५२ ।। यह श्रीस्कन्दपुराणका संकष्टचतुर्थीका व्रत पूरा हुआ ।।

दूर्वागणपतिव्रतम्

अथ श्रावणे कार्तिके वा शुक्लचतुर्थ्यां दूर्वागणपतिव्रतम् ।। मदनरत्ने सौरपुराणे–स्कन्द उवाच ।। केन व्रतेन भगवन्सौभाग्यमतुलं भवेत् ।। पुत्रपौत्रधनैश्वर्यैर्मनुजः सुखमेधते ।। तन्मे वद महादेव व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। येन चीर्णेन देवेश नरो राज्यं च विन्दति ।। राज्ञी च जायते नारी अपि दासकुलोद्भवा ।। राजपुत्रो जयेच्छत्रून् गरुडःपन्नगानिव ।। ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्त्वं प्राप्य सर्वाधिको भवेत् ।। वर्णाश्रमविहीनोऽपि सोपी सिद्धिं च विन्दति ।। महादेव उवाच ।। शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। अस्ति दूर्वागणपतेर्व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।। भगवत्या पुरा चीर्णं पार्वत्या श्रद्धया सह ।। सरस्वत्या च इन्द्रेण विष्णुना धनदेन च ।। अन्यैश्च देवैर्मुनिभिर्गन्धर्वैः किन्नरैस्तथा ।। चीर्णमेतद्व्रतं सर्वैः पुराकल्पे षडानन ।। चतुर्थी या भवेच्छुक्ला नभोमासस्य पुण्यदा ।। तस्यां व्रतमिदं कुर्यात्कार्तिक्यां वा षडानन ।। गजाननं चतुर्बाहुमेकदन्तं विपाटितम्[1] ।। विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेमपीठासनस्थितम्[2] ।। तथा हेममयीं दूर्वां तदाधारे व्यवस्थिताम् ।। संस्थाप्य विघ्नहर्तारं कलशे ताम्रभाजने ।। वेष्ठितं रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले ।। पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभि ।। बिल्वपत्रमपामार्गःशमी दूर्वा हरिप्रिया[3] ।। अन्यैः सुगन्धकुसुमैः पत्रिकाभिः सगन्धिभिः ।। फलैश्च मोदकैः पश्चादुपहारं प्रकल्पयेत् ।। उपचारैस्तु विधिना पूजयेद्गिरिजासुतम् ।। इत्यावाहनमन्त्रः ।। उमासुत नमस्तुभ्यं विश्वव्यापिन् सनातन ।। विघ्नौघांश्छिन्धि सकलानर्घ्यं पाद्यं ददामि ते ।। पाद्यार्घ्ययोर्मंत्रः ।। गणेश्वराय देवाय उमापुत्राय वेधसे ।। पूजामथ प्रयच्छामि गृहाण भगवन्मम।। गन्धमन्त्रः ।। विनायकाय शूराय वरदाय गजानन ।।

१ मदधारास्राविणम् । २ विघ्नेशासने । ३ तुलसी ।

उमासुताय देवाय कुमारगुरवे नमः ।। लंबोदराय वीराय सर्वविघ्नौघहारिणे ।। पुष्पमन्त्रः ।। उमाङ्गमलसंभूतो दानवानां वधाय वै ।। अनुग्रहाय लोकानां स देवः पातु विश्वधृक् ।। धूपमन्त्रः ।। परञ्ज्योतिः प्रकाशाय सर्वसिद्धिप्रदायक ।। दीपं तुभ्यं प्रदास्यामि महादेवाय ते नमः ।। दीपमन्त्रः ।। गणानांत्वा० सादनम् ।। उपहारमन्त्रः ।। गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरी पुत्र गजानन ।। व्रतं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादिभानन ।। प्रार्थनामन्त्रः ।। एवं संपूज्य विघ्नेशं यथाविभवविस्तरैः ।। सोपस्कारं गणाध्यक्षमाचार्याय निवेदयेत् ।। गृहाण भगवन्ब्रह्मन् गणराजंसदक्षिणम् ।। व्रतं त्वद्वचनादद्य पूर्णतां यातु सुव्रत ।। दानमन्त्रः ।। अथवा शुक्लपक्षस्य चतुर्थ्यां संयतेन्द्रियः ।। एवं यः पञ्चवर्षाणि कृत्वोद्यापनमाचरेत् ।। ईप्सिताँल्लभते कामान् देहान्ते शांकरं पदम् ।। कुर्याद्वर्षत्रयं त्वेवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। उद्यापनं विना यस्तु करोति व्रतमुत्तमम् ।। तेन शुक्लतिलैः कार्यं प्रातः स्नानं षडानन ।। हेम्ना वा राजतेनापि कृत्वा गणपतिं बुधः ।। पञ्चगव्यैस्तु संस्नाप्य दूर्वाभिः संप्रपूजयेत् ।। मन्त्रैस्तु दशभिर्भक्त्या दूर्वायुग्मैः शिखिध्वज ।। दूर्वायुग्मैर्दशभिर्मंत्रैः दूर्वायुक्तैः पञ्चगव्यैः स्नपनम् ।। ते च दश नाममन्त्रा उक्ताःस्कन्दपुराणे-गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन ।। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक ।। एकदन्तेभवक्रेति तथा मूषकवाहन ।। कुमारगुरवे तुभ्यमेभिर्नामपदैः पृथक् ।। इत्येवं कथितं सम्यक् सर्वसिद्धिप्रदं शुभम् ।। व्रतं दूर्वागणपतेः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। इति सौरपुराणोक्तं दूर्वागणपतिव्रतम् ।।

अथ दूर्वागणपतिव्रत-श्रावणके महीनामें अथवा कार्तिकके महीनामें शुक्लपक्षकी चतुर्थीके दिन दूर्वागणपतिका व्रत होता है । मदरत्न ग्रन्थमें सौर पुराणको लेकर कहा है । स्कन्दजी बोलेकि, हे भगवन्! कौनसे व्रतके करनेसे अतुल सौभाग्य हो और पुत्र, पौत्र, धन तथा ऐश्वर्यसे मनुष्य सुख पूर्वक बढता हो।हे महादेव ! सब व्रतोंमें जो उत्तम व्रत है उसे मुझसे कहिये जिसके करनेसे साधारण मनुष्य राजा बन जाय तथा दास घरानेमें पैदा हुई भी स्त्री रानी होजाय । राजपुत्र अपने वैरियोंको ऐसे जीजलें जैसे गरुड़ सापोंको जीत लेता है । ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी होकर सबसे अधिक होजाय । जो वर्णाश्रम धर्मसे हीन भी हो वह भी सिद्धिको पाजाय । यह सुन महादेवजी बोले कि, हे वत्स ! सुन; मैं सब व्रतोंसे उत्तम व्रत कहता हूं ऐसा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध दूर्वागणपतिका व्रत है पहिले इसे भगवती पार्वतीने श्रद्धाके साथ किया था । हे षडानन ! सरस्वती, इन्द्र, विष्णु, कुबेर तथा दूसरे २ देव, मुनि, गन्धर्व, किन्नर इन सबोंसे पहिले कल्पमें इस व्रतको किया है । हे षडानन ! जो श्रावण या कार्तिक मासकीपुण्यदा शुक्लाचतुर्थी हो, उसमें इस व्रतको करना चाहिये सोनेकी एक ऐसी विघ्नेश गजाननकी मूर्ति बनानी चाहिये जिसके गण्डसे मद चुचारहा हो, चतुर्भुजी और एक दन्त हो उसे सोनेके सिंहासनपर बिठा देना चाहिये, सिंहासनके नीचे सोनेकी दूब रखना चाहिये (उस मूर्तिके निर्माणमें यह सब होना चाहिये) पीछे विधिपूर्वक विघ्नहर्ताको तांबेके कलश पर स्थापित कर देना चाहिये । कलश, सर्वतो भद्रमण्डलपर लालवस्त्रसे वेष्टित करके रखना चाहिये । लाल फूल और बिल्व, अपामार्ग, शमी, दूर्वा और तुलसी इन पांचोंकी पत्रिकाओंसे पूजन करना चाहिये । इससे सुगन्धितपुष्प पत्रिका, सुगन्धि द्रव्य और लड्डुओंसे पीछे भेंटकी कल्पना करनी चाहिये । उपचारोंसे विविधके साथ गिरिजा सुतका

साङ्गोंपाङ्ग पूजन करना चाहिये । यह आवाहनका मंत्र है (जो आवाहनका मंत्र कहा है इसमें कोई पद आवाहनका प्रतीत नहीं होता इस कारण आवाहनकी दूसरी जगहकी विधि यहां भी समझनी चाहिये कि, हे दूर्वा प्रिय गणपते ! आपकी प्रसन्नताके लिये प्रणाम करता हूं, हे देव ? में यहां आपकी पूजा करना चाहता हूं, इसलिये आपका आवाहन करता हूं, मेरी पूजा स्वीकार करनेके लिये आप पधारें मैं उसके लिये प्रार्थना करता हूं, हे परमेश्वर । आप मेरेपर प्रसन्न हों । यह आवाहन मंत्र है) हे उमासुत । हे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले ! हे सनातन ! आपके लिये प्रणाम है, आप मेरे कार्योंमें जो जो विघ्न उपस्थित हों, उन सब विघ्नोंके पुञ्जोंको छिन्न भिन्न करिये, मैं अर्घ्य तथा पाद्यदान करता हूं ! इससे अर्घ पाद्य, तथा यह पाद्य तथा अर्घ्य दानका एकही मन्त्र है । हे भगवन् । आप गणोंके ईश्वर, विजय करनेवाले, पार्वतीके पुत्र और जगत्‌की उत्पत्ति करनेवाले हैं, आपकी प्रसन्नताके लिये दिव्य गन्ध सर्मापित करता हूं, आप इस गन्धको स्वीकृत करें । इससे गन्ध, तथा-विनायक, शूर, वरदेनेवाले, उमाके नन्दन, स्वामि कार्तिकेयके बडे भ्राता, समस्त विघ्नोंके समूहको नष्ट करनेवाले वीर लम्बोदरके लिये प्रणामहै, आप सुगन्धित पुष्प और दूर्वाके अंकुरोंको स्वीकृत करिये । इससे पुष्प तथा उमा (पार्वती) के शरीरसे गिरे हुए मैलसे जिसका अवतार, लोकोंके कल्याण एवं दानवोंके संहारके लिये हुआ है वही सब जगत्‌को धारण करनेवाला देव मेरी रक्षा करें । इससे धूप, तथा हे सब प्राणियों सिद्धिके देनेवाले आप, परम ज्योति स्वरूपका प्रकाश करनेवाले महादेव हैं आपके लिये प्रणाम है मैं आपके लिये दीपक सर्मापित करता हूं । उससे दीपक, तथा-"ओम् गणानांत्वा" इससे उपहार, तथा-हे गणेश्वर ! हे गणाध्यक्ष ! हे गौरीपुत्र ! हे गजानन ! वह मैंने जो आपका व्रत किया है, वह आपकी प्रसन्नतासे सफल हो, इससे प्रार्थना करनी चाहिये । महादेवजी स्वामिकार्तिकेयसे कहते हैं कि इस प्रकार अपने विभवके अनुसार गणपतिका पूजन करके, उसकी सामग्री और आभूषणादिसमेत गणपतिकी मूर्तिको आचार्यकी भेंट करना चाहिये । उसका यह मन्त्रहै कि-हे भगवन् ! हे ब्रह्मन् ! दक्षिणासहित गणराजकी मूर्ति दान करता हूं, आप स्वीकृत करिएगा और तुम्हारे "अस्तु परिपूर्णं ते" हे सुव्रत ! आपके इस वचनसे यह मेरा किया हुआ दूर्वा-गणपतिका व्रत सम्पूर्ण हो, यह दानका मन्त्र है अथवा जिस किसी भी महीनेकी शुक्लपक्षवाली चतुर्थी हो उसी दिन जितेंद्रिय हो दूर्वागणपतिके व्रतको करे, फिर पांच वर्षतक करके उद्यापनकरे। इस प्रकार इस सोद्यापन व्रतका करनेवाला, इस लोकमें वाञ्छितपदार्थोंको तथा देहके अन्तमें शंकरके पदको पाता है, तीन वर्षतक इस व्रतको करनेसे सब सिद्धियां मिल जाती हैं । जो विना उद्यापनके इसव्रत को करना चाहे, हे षडानन! उसका प्रातःस्नान सफेद तिलोंसे होना चाहिए, विधिविधानको जाननेवाले व्रतीको चाहिये कि, सोनेकी अथवा चांदीकी गणपतीजीकी मूर्ति बनवाकर पंचगव्यसे स्नान कराके दूबसे पूजन करे, हे-शिखिध्वज ! वो पूजन दश मन्त्रोंसे दोदो दूर्वाओंसे भक्तिपूजन करना चाहिये, यानी दो दो दूर्वाओंसे दस मन्त्रोंसे पूजा तथा दूर्वा युक्त पञ्चगव्यसे स्नान कराना चाहिये, दूर्वा चढानेके दशनाम मंत्र स्कन्दपुराणमें कहे हैं हे गणाधिप' तुम्हारे लिए नमस्कार है, हे उमापुत्र ! तुम्हारे लिए नमस्कार है, हे अधनाशन ! तुम्हारे लिये नमस्कार हैं, हे विनायक ! तुम्हारे लिए नमस्कार है, हे ईशपुत्र ! तुम्हारे लिये नमस्कार है, हे सर्वसिद्धिप्रदायक ! तुम्हारे लिए नमस्कार है, हे एकदन्त ! तुम्हारे लिए नमस्कार है, हे इभवक्र ! तुम्हारे लिए नस्कार है, हे मूषकवाहन तुम्हारे लिए नमस्कार है, हे स्वामिकार्तिकके बडे भाई ! तुम्हारे लिए नमस्कार है, इस प्रकारसे दश नाम मन्त्रोंको अलग अलग कहता हुआ दशावार दूर्वाके दल चढाने चाहिए । महादेवजी कातकेयसे कहते हैं कि, यह सब सिद्धियोंका देनेवाला दूर्वागणपतिका व्रत तो कह दिया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? यह सौरपुराणका कहा हुआ दूर्वागणपतिका व्रत पूरा हुआ ।।

अथैकविंशतिदिनं गणपतिपूजनव्रतम् ।। तच्चश्रावणशुक्लचतुर्थीमारभ्य श्रावणकृष्णदशमीपर्यन्तम् । तत्र चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।। अथ पूजा-एकदन्तं शूर्पकर्णं गजतुण्डं चतुर्भुजम् ।। पाशांकुशधरं दवं मोदकं बिभ्रतं करे ।। ध्यानम् ।। आगच्छ जगदाधार सुरासुरवरार्चित ।। अनाथनाथ

सर्वज्ञ गीर्वाणपरिपूजित ।। आवाहनम् ।। स्वर्णसिंहासनं दिव्यं नानारत्नसमन्वितम् ।। समर्पितं मया देव तत्र त्वं समुपाविश ।। आसनम् ।। देवदेवेश सर्वेश सर्वतीर्थाहृतं जलम् ।। पाद्यं गृहाण गणप गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ।। पाद्यम् ।। प्रवालमुक्ताफलपूगरत्नताम्बूलजाम्बूनदमष्टगन्धम् ।। पुष्पाक्षतैर्युक्तममोघशक्ते दत्तं मयार्घ्यं सफलीकुरुष्व ।। अर्घ्यम् ।। गङ्गादिसर्वतिर्थेभ्य आनीतं तोयमुत्तमम् ।। कर्पूरैलालवङ्गैश्च युक्तमाचम्यतां विभो ।। आचमनम् ।। चम्पकाशोकबकुलमालतीमोगरादिभिः ।। वासितं स्निग्धताहेतुस्तैलं चारु प्रगृह्यताम् ।। अभ्यङ्गस्नानम्।।कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्।।पावनं यज्ञहेत्वर्थं पयः स्नानार्थमर्पितम् ।। पयःस्नानम् ।। पयसस्तु समुद्भूतं हिमादिद्रव्ययोगतः ।। दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। दधिस्नानम् ।। नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम् ।। यज्ञाङ्गं देवताहेतोर्घृतं स्नानार्थमर्पितम् ।। घृतस्नानम् ।। पुष्पसारसमुद्भूतं मक्षिकाभिः कृतं च यत् ।। सर्वतुष्टिकरं देव मधु स्नानार्थमर्पितम् ।। मधुस्नानम् ।। इक्षुरससमुद्भूतां शर्करां सुमनोहराम् ।। मलापहरणस्नाने गृहाण त्वं मयार्पिताम् । शर्करास्नानम् ।। सर्वमाधुर्यताहेतुः स्वादुः सर्वप्रियंकरः ।। पुष्टिकृत्स्नातुमानीत इक्षुसारभवो गुडः ।। गुडस्नानम् ।। कांस्ये कांस्येन पिहितो दधिमध्वाज्यसंयुतः ।। मधुपर्को मया नीतः पूजार्थे प्रतिगृह्यताम् ।। मधुपर्कम् ।। सर्वतीर्थाहृतं तोयं मया प्रार्थनया विभो ।। सुवासितं गृहाणेदं सम्यक्स्नातं सुरेश्वर ।। स्नानम् ।। रक्तवस्त्रयुगं देव लोकलज्जानिवारणम् ।। अनर्घ्यमतिसूक्ष्मं च गृहाणेदं मयार्पितम् ।। वस्त्रम् ।। राजतं ब्रह्मसूत्रं च रत्नकाञ्चनसंयुतम् ।। भक्त्योपपादितं देव गृहाण परमेश्वर ।। यज्ञोपवीतम् । अनेकरत्नयुक्तानि भूषणानि बहूनि च ।। तत्तदङ्गे काञ्चनानि योजयामि तवाज्ञया ।। भूषणम् ।। अष्टगन्धसमायुक्तं रक्तचन्दनमुत्तमम् ।। द्वादशाङ्गेषु ते देव लेपयामि कृपां कुरु ।। चन्दनम् ।। रक्तचन्दनसंमिश्रांस्तण्डुलांस्तिलकोपरि ।। शोभायै संप्रदास्यामि गृहाण जगदीश्वर ।। अक्षतान्० ।। पाटलं कर्णिकारं च बन्धूकं रक्तपंकजम् ।। मोगरं मालतीपुष्पं गृह्यतां भुवनेश्वर ।। पुष्पाणि ।। नानापंकजपुष्पैश्च ग्रथितां पल्लवैरपि ।। बिल्वपत्रयुतां मालां गृहाण सुमनोहराम् ।। मालाम् ।। अथाङ्गपूजा—गणेशाय पादौ पू० । गौरीपुत्राय० गुल्फौ पू० । विश्वेश्वराय० जानुनी पू० । गजानाय० ऊरू पू० । लंबोदराय० वक्षस्थलं पू० । गणनाथाय० स्तनौ पू० । द्वैमातुराय० कण्ठं पू० । वक्रतुण्डाय० शिरः पू० ।। अथैकविंशतिपत्रपूजा-गणाधिपाय० भृंगिराजपत्रं स० ।। उमापुत्राय० बिल्वपत्रंस० गजाननाय० दूर्वापत्रं स० । लंबोदराय० बदरीपत्रं स० । हरसूनवे० मधुपत्रं स० । गजवक्त्राय० तुलसीपत्रं स० । गुहाग्रजाय० अपामार्गपत्रं स० ।एकदन्ताय० बृहती-

पत्रं स० । इभवक्त्राय० शमीपत्रं स० । विकटाय० करवीरपत्रं स० । विनायकाय० अश्वत्थपत्रं स० । कपिलाय० अर्कपत्रं स० । बटवे नमः चंपकपत्रं स० । अभयप्रदाय० अर्जुनपत्रं स० । पत्नीहिताय० विष्णुक्रान्तापत्रं स० । सुराधपतये० देवदारुपत्रं० । भालचन्द्राय० अगरुपत्रं स० । हेरंबाय० श्वेतदूर्वापत्रंस० । शूर्पकर्णाय० जातीपत्रंस० । सुरनाथाय० धत्तूरपत्रंस० । एकदन्ताय० केतकीपत्रंस० ।। अथैकविंशतिनामपूजा—गजाननायनमः । विघ्नराजाय० । लंबोदराय० । शिवात्मजाय० । वक्रतुण्डाय० । शूर्पकर्णाय० । कुब्जाय० विनायकाय० । विघ्ननाशनाय० । विकटाय० वामनाय० । सर्वार्तिनाशिने० । भगवतेन० । विघ्नहर्त्रे० । धूम्रकाय० । सर्वदेवाधिदेवाय० । एकदन्ताय० । कृष्णपिङ्गाय० । भालचन्द्राय० । गणेश्वराय ०। गणपाय० । पुष्पं स० ।। दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं सर्वसौगन्ध्यकारकम् ।। सर्वपापक्षयकरं गृहाण त्वं मयार्पितम् ।। धूपम् ।। सर्वज्ञ सर्वलोकेश तमोनाशनमुत्तमम् ।। गृहाण मङ्गलं दीपं देवदेव नमोऽस्तुते ।। दीपम् ।। नानापक्वान्नसंयुक्तं पायसं शर्करान्वितम् ।। राजिकाधान्यसंयुक्तं मेथीपिष्टं सतक्रकम् ।। हिंगुजीरकूष्माण्डमरीचमाषपिष्टकैः।।संपादितैः सुपक्वैश्च भर्जितैर्वटकैर्युतम् ।। मोदकापूपलड्डूकशष्कुलीवटकादिभिः ।। पर्पटै रससंयुक्तैर्नैवेद्यममृतान्वितम् ।। हरिद्राहिंगुलवणसहितं सूपमुत्तमम् । मया निवेदितं तुभ्यं गृहाण जगदीश्वर ।। नैवेद्यम् ।। अतितृप्तिकरं तोयं सुगन्धि च पिबेच्छया ।। त्वयि तृप्ते जगत्तृप्तं नित्यतृप्ते महात्मनि ।। मध्ये पानीयम् ।। उत्तरापोशनार्थं ते दद्मि तोयं सुवासितम् ।। मुखपाणिविशुद्ध्यर्थं पुनस्तोयं ददामि ते ।। उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं मुखप्रक्षालनम् ।। दाडिमं मधुरं निम्बुजम्ब्वाम्रपनसादिकम् ।। द्राक्षारम्भाफलं पक्वं कर्कन्धूखार्जुरं फलम् ।। नालिकेरं च नारिङ्गं कलिङ्गमाञ्जिरं तथा ।। उर्वारुकं च देवेश फलान्येतानि गृह्यताम् ।। फलानि ।। कस्तूरीकुङ्कुमोपेतं गोरोचनसमन्वितम् ।। गृहाण चन्दनं चारु कराङ्गोद्वर्तनं शुभम् ।। करोद्वर्तनम् ।। नानापरिमलद्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम् ।। अबीरनामकं पुण्यं गन्धि चारु प्रगृह्यताम् ।। नानापरिमलद्रव्यम् ।। नागवल्लीपत्रपूगचूर्णखादिरचन्द्रयुक् ।। एलालवङ्गसंमिश्रं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् ।। न्यूनातिरिक्तपूजायां संपूर्णफलहेतवे ।। दक्षिणां काञ्चनीं देव स्थापयामि तवाग्रतः ।। दक्षिणाम् ।। सितपीतैस्तथारक्तैर्जलजैः कुसुमैः शुभैः ।। ग्रथितां सुन्दरां मालां गृहाण परमेश्वर ।। मालाम् ।। हरिताः श्वेतवर्णा वा पञ्चत्रिपत्रसंयुताः ।। दूर्वाकुरा मया दत्ता एकविंशतिसंमिताः ।। गणाधिपाय० । दूर्वाकुरं समर्प० । उमापुत्राय० । अभयप्रदाय० । एकदन्ताय० । मूषकवाहनाय० । विनायकाय० । ईशपुत्राय० । इभवक्त्राय० । सर्वसिद्धिप्रदायकाय० । लम्बोदराय०।विघ्नराजाय० । विकटाय० ।

मोदकप्रियाय० । विघ्नविध्वंसकर्त्रे० । विश्ववन्द्याय० । अमरेशाय० । गजकर्णकाय० । नागयज्ञोपवीतिने० भालचन्द्राय० विद्याधिपाय० । विद्याप्रदाय दूर्वांकुरं समर्पयामि । इति ।। गणेशं हृदये ध्वात्वा सर्वसंकष्टनाशनम् ।। एकविंशति संख्याकाः करोमि च प्रदक्षिणाः ।। प्रदक्षिणाः ।। औदुम्बरे राजते वा कांस्ये काञ्चनसम्भवे ।। पात्रे प्रकल्पितान्दीपान् गृहाण च पुरोर्पितान् ।। विशेषदीपान् ।। पञ्चार्तिक्यं पञ्चदीपैर्दीपितं परमेश्वर ।। चारु चन्द्रप्रभं दीपं गृहाण परमेश्वर ।। पञ्चार्तिक्यम् ।। कर्पूरस्य मया देव दीपस्तेऽयं निवेदितः ।। यथास्य नेक्षते भस्म तथा पापं विनाशय ।। कपूरदीपम् ।। स्तोत्रैर्नानाविधैः सूक्तैः सहस्रनामभिस्ततः ।। उपविश्य स्तुवीतैनं कृत्वा स्थिरतरं मनः ।। दीनानाथदयानिधे सुरगणैः संसेव्यमान द्विजैर्ब्रह्मेशानमहेन्द्रशेषगिरिजागन्धर्वसिद्धैः स्तुत ।। सर्वारिष्टनिवारणैकनिपुण त्रैलोक्यनाथ प्रभो भक्तिं मे सफलां कुरुष्व सकलान्क्षांत्वाऽपराधान्मम ।। आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम् ।। विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां जगदीश्वर ।। क्षमापनम् ।। गौरीसुत नमस्तेऽस्तु सर्वसिद्धिप्रदायक । सर्वसंकष्टनाशार्थमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् ।। अनेनएकविंशत्यर्घ्यान् दद्यात् ।। कृतपूजायाः साङ्गतासिद्ध्यर्थं ब्राह्मणाय वायनप्रदानं करिष्ये इति संकल्प्य ब्राह्मणपूजनं कृत्वा ।। दशमोदकसंयुक्तं वाणकं च फलप्रदम् ।। गणेशप्रीणनार्थाय गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।। इति वायनं दत्त्वा साङ्गतासिद्धये ब्राह्मणान्भोजयेत् ।। इत्येकविंशतिदिनगणपतिपूजा ।।

अथ इक्कीस दिनतक गणपतिके दूर्वाविसे पूजन करनेके व्रतको कहते हैं—यह इक्कीश दिन पर्य्यन्त गणपति पूजन नामक व्रत, श्रावणसुदि चतुर्थीको आरम्भ करके भाद्रपद वदि दशमीतक करना चाहिये । इस व्रतमें मध्याह्नव्यापिनी चतुर्थी ग्रहण करनी चाहिये । पूजनविधि कहते हैं—"एकदन्त" इससे ध्यान करे, इस मन्त्रका यह अर्थ है कि एक दांतवाले, शूर्पसदृश कर्णवाले, गजसदृश मुखवाले, चारभुजावाले, पाश और अंकुशधारी तथा अपने दाहिने हाथ में मोदक लिए हुए गणपति देवका मैं ध्यान करता हूं । "आगच्छ" इस मंत्रसे आवाहन करे, इसका अर्थ यह है कि, हे जगदाधार ! हे देव दानवोंमें श्रेष्ठ जो देवता और दानव हैं उनके पूज्य ! हे अनाथोंके नाथ ! हे सर्वज्ञ ! आप यहां पधारें 'स्वर्ण' यह आसनपर बैठनेका मन्त्र है, इसका अर्थ यह है कि, हे देव ! मैंने आपके विराजमान होनेके लिए नाना रत्नोंसे जटित दिव्य सुवर्णके सिंहासन को समर्पित किया है आप उसपर विराजमान हों, "देवदेवेश" यह पाद्यदान करनेका मंत्र है, इसका अर्थ यह है कि, हे देवदेवोंके भी ईश्वर ! हे सर्वेश्वर ! आपको पादप्रक्षालन करनेके लिए सब तीर्थोंसे जल लाया हूं, इसमें गन्ध तथा अक्षत भी मिला दिये हैं, अतः हे गणपते ! आप ईस पाद्यको स्वीकृत करिये । "प्रवाल" इससे अर्घ्यदान करें, इसका यह अर्थ है कि, हे अमोघशक्ते ! मूंगा, मुक्ता, उत्तम सुपारी, ताम्बूल, सुवर्ण, अष्टगन्ध और पुष्प, अक्षतोंसेयुक्त यह अर्घ्य मैंने आपको दिया है, आप इसे अङ्गीकार करके सफल करो । "गङ्गादि" इस मन्त्रसे आचमन करावे इसका यह अर्थ है कि, हे विभो ! आपके आचमनके लिये सब पवित्र तीर्थोंसे पवित्र जल, कपूर, इलायची, और लवंग मिलाके लाया हूं आप इसका आचमन करें । "चम्पकाशोक" इस मन्त्रसे अतर लगाता हुआ स्नान करावे, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि, चम्पा, अशोक, मोलसरी, मालती और मोगरा आदि पुष्पोंगी सुगन्धसे पूर्ण, स्निग्ध करने वाला यह सुन्दर अतर है, इसको आप स्वीकृत करें । "कामधेनु" यह दुग्धसे स्नान करानेका मंत्र है, इसका अर्थ यह है कि, कामना पूर्णकरनेवाली गौका यह दूध

सब प्राणियोंको जिलानेवाला तथा पवित्र करनेवाला एवं यज्ञके योग्य है, आपको स्नान करनेके लिए इसे लाया हूं, आप अपने स्नानके लिये स्वीकार करिये । "पयसस्तु" इस मन्त्रसे दधिस्नान करावे, इसका अर्थयह है कि, हे देव ! दूधको जमाकर यह दधि तैयार किया है, इसमें शीतलता उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंको मिलाया है, इस प्रकार बहुत उत्तम यह दधि, आपके स्नानार्थ लाया हूं, आप इसे स्वीकृत करें । "नवनीतम्" इससे घृतस्नानकरावे, इसका अर्थ यह है कि, मक्खनसे निकाला हुआ सबकी तुष्टिकारक एम् यज्ञका साधनभूत यह आपके स्नान करनेके लिए सर्मपित करता हूं । "पुष्पसार" यह मधुसे स्नान करानेका मन्त्र है । इसका अर्थ यह है कि, मक्खियोंने पुष्पोंसे जिस सारको निकालकर इकट्ठा किया था, जो कि सबको संतुष्ट करनेवाला है वह सहत आपको स्नानार्थ सर्मपित करता हूँ, "इक्षुरस" इससे शर्करास्नान करावे, इस मन्त्रका यह अर्थ है कि, आपके मैलाको दूर करनेके लिये इस ईखके रसकी बनी हुई शर्कराको अर्पित करता हूं, आप ग्रहण करें । "सर्वमाधुर्य" इस मंत्रसे गुडसे स्नान करावे, इसका अर्थ यह है कि, सब पदार्थोंमें मधुरता उत्पन्न करने-वाला अतएव सबकी प्रीतिकरनेवाला ईखके रससारका बना हुआ पुष्टिकारक यह गुड आपको स्नानकराने लाया हूं । "कांस्ये" इससे मधुपर्क प्राशन करावे, कांसेके पात्रमें कांसेके ही पात्रसे ढककर दधि, सहत और घृतसे संयुक्त, यह मधुपर्क आपके पूजनके लिये लाया हूं, आप इसे स्वीकृत करें, इस मन्त्रसे मधुपर्क प्राशन करावे । "सर्व" इस मन्त्रसे शुद्ध स्नान करावे, इस मन्त्रका यह अर्थ है, कि, हे विभो ! यह जल सब तीर्थोंसे लाकर सुगंधित किया है–हे सुरेश्वर ! प्रार्थना करता हूं कि, आप इसे अङ्गीकृत करके भलीभांति स्नान करें । "रक्त" इस मन्त्रसे लाल रंगके, दो वस्त्र धारण करावे, इसका यह अर्थ हैकि, हे देव ! लोकलाज का निवारण करनेवाले अत्यन्त सूक्ष्म, बहुमूल्य इन लाल दो वस्त्रोंको आप अङ्गीकृत करें,मैंने आपके भेंट किए हैं । रत्नव र्गयुक्त चांदीके तारोंका यह यज्ञोपवीत है, हे देव ! हे परमेश्वर ! मन यह आपके भेंट किया है, आप इसे स्वीकृत करें । "अनेकरत्न" इससे आभूषण धारण करावे । इस मन्त्रका यह अर्थ है कि, आपके उस उस अङ्गपर इनअनेक रत्न जटित सुवर्णके आभूषणोंको आपकी अभ्यनुज्ञालेकर धारणकराता हूं । "अष्टगन्ध", इससे चन्दन लगाना चाहिए, इसका यह अर्थ है कि, हेदेव ! आपके ललाटग्रीवा द्वादश अगोंपर अष्टगन्धवाले लाल चन्दनको लगाता हूं, आप कृपाकरें । "रक्तचन्दन" इससे लाल अक्षत चढाववे । इसका यह अर्थ है कि हे जगदीश्वर ! लाल चन्दनसे रँगे हुए, इन अक्षतोंको आपके तिलकोंकी शोभा वृद्धिके लिये तिलकोंके ऊपर चढ़ाता हूं, आप अङ्गीकार करें, "पाटलं कर्णि" इससे पुष्प चढावे, इस मन्त्रका यह अर्थ है कि पाटल, कर्णिकार बन्धूक, लाल कमल, मोगरा और मालती इन पुष्पोंको हे भुवनोंके इश्वर ! स्वीकृत करिये । "नाना" इस मन्त्रसे माला पहरावे, इसका यह अर्थ है कि विविध कमलके पुष्पों कोमल रुचिरपत्तों तथा विल्पपत्रोंसे गूंथी हुई इस सुन्दर मालाको अङ्गीकार करिये । फिर "गणेशायनमः पादौ पूजयामि" इत्यादि नाम मन्त्रोंसे तत्तत् अङ्गोंकी पूजाकरे, इनका यह अर्थ है कि गणेशके लिये नमस्कार है, मैं उनके चरणोंका पूजन करता हूं । गौरीपुत्रके लिये नमस्कार है, गुल्फोंका पूजन करता हूं । विश्वेश्वरके लिये नमस्कार है, जानु पूजता हूं । गजाननके लिये नमस्कार है ऊरू पूजता हूं । लम्बोदरके लिये नमस्कार है वक्षःस्थलका पूजन करता हूं, गणनायके लिये नमस्कार है, स्तनोंको पूजता हूं । द्वै मातुरके लिये नमस्कार है, कण्ठका पूजन करता हूं । वक्रतुण्डके लिये नमस्कार है, मस्तककी पूजा करता हूं ।। इक्कीस पत्रोंसे पूजा–'गणाधिपाय नमः भृङ्गिराजपत्रं समर्पयामि गणाधिपके लिये नमस्कार, भृङ्गिराजके पत्ते चढाता हूं । उमापुत्रके लिये नमस्कार, बिल्वपत्र चढाता हूं । गजाननके लिये नमस्कार दूबके पत्ते चढाता हूं । लम्बोदरके लिये नमस्कार, बदरीके पत्ते चढाता हूं । हर-सूनुके लिये नमस्कार, मधुके पत्ते चढाता हूं । गजवक्रके लिये नमस्कार है, तुलसीके पत्ते चढाता हूं । कार्तिके-यके ज्येष्ठभ्राताके लिये नमस्कार है, अपामार्गके पत्ते चढाता हूं । एकदन्तके लिये नमस्कार है, बृहतीके पत्त चढाता हूं । इभवक्रके लिये नमस्कार है, शमीपत्रोंको सर्मपित करता हूं । त्रिकटके लिये नमस्कार है, कनेरके पत्ते चढाता हूं । विनायकके लिये नमस्कार है, पीतलके पत्ते सर्मपित करता हूं । कपिलके लिये नमस्कार है, आकके पत्ते चढाता हूं । बटुरूप धारीके लिये नमस्कार है, चम्पकके प्रत्ते चढाताहूं । अभयके देनेवालेके लिये नमस्कार है, अर्जुनके पत्ते चढाता हूं । पत्नीहितके लिये नमस्कार है, विष्णुक्रान्ताके पत्ते चढाता हूं । सुराधिपति

के लिये नमस्कार है, देवदारुके पत्ते चढाता हूं। भालचन्द्रके लिये नमस्कार है. अगरुके पत्र सर्मापित करताहूं। हेरम्बके लिये नमस्कार है सफेद दूबके पत्ते चढाता हूं। शूर्पकर्णके लिये नमस्कार है, जातीके पत्रोंको सर्मापित करता हू। देवताओंके अधिपतिके लिये नमस्कार है धत्तूरेके पत्ते चढाता हूं । एकदन्तके लिये नमस्कार है केतकीपत्र सर्मापित करता हूं। यह इक्कीस पत्रोंसे पूजा पूरी हुई ।। अब इक्कीस नामोंसे पूजा कहते हैं 'गजाननाय पुष्पं समर्पयामि' इत्यादि इक्कीस नाम मन्त्रोंसे इक्कीसवार पुष्पसर्मापित करे । इनका यह अर्थ है-गजाननके लिये पुष्पार्पण करता हूं। ये इक्कीसों नाम प्राय : वेही हैं, जो पत्र पूजामें आचुके हैं पर क्रम भिन्न है तथा कुछ नये नामभी हैं इस कारण फिर लिखते हैं। १ गजानन, २ विघ्नराज, ३ लम्बोदर, ४ शिवात्मज, ५ वक्रतुण्ड, ६ शूर्पकर्ण ७ कुब्ज, ८ विनायक, ९ विघ्ननाशक, १० विकट, ११ वामन, १२ सर्वातिनाशी, १२ भगवान् १४ विघ्नहन्ता, १५ धूम्रक, १६ सर्व देवाधिदेव, १७ एकदन्त, १८ कृष्णपिंग, १९ भालचन्द्र, २० गणेश्वर, २१ गणप, ये इक्कीस गणेशजीके नाम हैं इनमेंसे हरएक नामके साथ "के लिये नमस्कार" लगाकर पुष्प चढाने चाहियें । आदिमें "ओम्, अंतमें नमः" तथा नामको चतुर्थीका एकवचनान्त करनेसे नाममंत्र बनजाते हैं उनसे ही समर्पण करना चाहिये । "दशाङ्गम्" इससे धूप करे, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि, सर्वत्र सुगन्धी करके सबके पापोंको क्षीण करनेवाले दशाङ्ग गूगलवाली धूपकी सुगन्ध मैंने की है, आप इसे स्वीकृत करें। "सर्वज्ञ" इससे दीपक करे, अर्थ यह है कि हे सर्वज्ञ ! हे सब लोकोंके ईश्वर ! हे देव-देव ! अन्धकार नष्ट करनेमें मुख्य ! इस माङ्गलिक दीपकको ग्रहण करो, आपको प्रणाम करता हूं। "नाना" इन चार मन्त्रोंसे नैवेद्य चढावे, इनका यह अर्थ है कि विविध पक्वान्न, शर्करामिश्रित पायस, राई धनिया पडा हुआ तक्र संयुक्त पिसी मेथीका रायता बनाया गया है, हींग जीरा कूष्माण्ड और मिरच पडी हुई उरदकी पिठीके बडे जो कि घीमें यहांतक सेके गये हैं कि भुंजसे गये हैं, मोदक, अपूप, लड्डू, जलेबी, वटक और रससंयुक्त पर्पटोंसे अमृतके समान हो रहा है, उलदी, हींग और नमक पडी हुई सुन्दर दाल तयार है इस नैवेद्यको मैं भक्तिभावके साथ आपको निवेदन कर रहा हूं हे जगदीश्वर। आप ग्रहण करिये । "अतितृप्ति" अत्यन्त तृप्ति करदेनेवाले सुगन्धित पानीको यथेष्ट पीजिये स्वतः तृप्त रहनेवाले जो महापुरुष आप हैं आपके तृप्त होनेपर सब संसार तृप्त हो जायगा, इस मंत्रसे भोजनके बीचमें पानी देना चाहिये। "उत्तरापोशनार्थम्" आपके लिये सुगन्धित पानी देता हूं इससे आप उत्तरापोशन करके मुख और हाथोंकी शुद्धि कर लीजिये । इससे भोजनके अन्तका अपोशन, पान हस्त प्रक्षालन और मुखप्रक्षालन किया जाता है। "अतितृप्ति" इस मन्त्रसे भोजनके बीचमें जलपान करावे. इस मन्त्रका अर्थ यह है कि आप इस अत्यन्त तृप्तिकारक सुगन्धित जलका यथेष्ट पानकरो सदा तृप्त रहनेवाले महात्मा (परमात्मा) जो आप हैं आपकी तृप्ति होनेसे सब जगत् स्वतः तृप्त होता है। फिर उत्तरापोशन करावे, उत्तरापोशन पीछे पीना हाथ धुलाना तथा मुख धुलाना है उसका "उत्तरोशनं" यह मन्त्र है-इसका अर्थ यह है कि, आपके भोजनोत्तर आचमनके लिये सुगन्धित जलदान करता हूं. और हाथ एवं मुख प्रक्षालनके लिये जल देता हूं। "दाडिमम्" इस मन्त्रसे नानाविध फल चढावे, इस मन्त्रका अर्थ यह है कि पका मीठा दाडिम, नींबू, जामन, आम, पनस (कटहल), द्राक्षा, केला, बेर, खजूरके फल, नरियल, नारिंगी और कलिङ्ग देशके अंजीर, तथा काकडी ये सब आपको सर्मापित करता हूं, हे देवेश! आप ग्रहण करिये "कस्तूरी" इस मन्त्रसे करोद्वर्त्तन करावे, यानी दोनों हाथोंकी अनामिकाओंसे चन्दन चढावे इसका अर्थ यह है कि कस्तूरी केसर, तथा गोरोचन मिले हुए चन्दनको ग्रहण करो, यह आपका करोद्वर्तन है "नाना" इससे अबीर चढावे, इसका अर्थ यह है कि विविध सुगंधित परिमलद्रव्योंसे सुगन्धित यह सुन्दर अबीर है, आप ग्रहण करिये "नागवल्ली" इससे पान सुपारी चढावे, इसका यह अर्थ है कि सुपारी, कत्था, कपूर, इलायची, लवंग इन सबसे मधुर हुआ यह ताम्बूल है इसे आप मुखशुद्धिके लिये स्वीकृत करो । दक्षिणा चढाता हुआ "न्यूनाति" इस मन्त्रको पढे इसका अर्थ यह है कि पूजामें जो न्यूनता रहगयी हो या जो और कुछ हो गया हो उसके दोषकी निवृत्ति तथा पूजनके सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये हे देवेश आपके सम्मुख सुवर्णकी दक्षिणा भेंट करता हूं "सितपीतैः" इससे माला चढावे, इसका यह अर्थ है कि हे परमेश्वर ! सफेद, लाल कमलोंके पुष्पोंकी गूंथी हुई इस सुन्दर मालाको धारण करो । "हरिता" हरित या सफेद वर्णके पांच या तीन पत्तेवाले दूबके इक्कीस

अंकुर मैंने आपके भेट किये हैं, इस मंत्रको पढकर 'गणाधिपाय नमः दूर्वांकुरं समर्पयामि' इत्यादि इक्कीस नाम ग्रन्थोंको पढता हुआ हरे या सफेद वर्णकी पांच या तीन पत्तेकी दूब इक्कीस बार ओम् गणाधिपाय नमः दूर्वांकुरं समर्पयामि–गणाधिपके लिये नमस्कार है दूर्वांकुरोंका समर्पण करता हूं। ओम् उमापुत्राय नमः दूर्वांकुरं समर्पयामि–उमापुत्रके लिये नमस्कार है दूर्वांकुरोंका समर्पण करता हूं। इसी तरह अभयप्रद, एकदन्त, मूषकवाहन, विनायक, ईशपुत्र, इभवक्त्र, सर्व सिद्धि प्रदायक, लम्बोदर, विघ्नराज, विकट, मोदकप्रिय, विघ्न विध्वंसकर्तृ, विश्ववन्द्य, अमरेश, गकर्ण, नाग यज्ञोपवीतिन्, भालचन्द, विद्याधिप, विद्याप्रद, इन नामोंके आदिमें "ओम्" और अन्तमें "नमः" तथा इन्हें चतुर्थीके एक वचनान्त करके "दूर्वांकुरं समर्पयामि" लगाकर गणेशजी पर दूब चढानी चाहिये। "गणेश हृदये" सब संकटोंके नाश करनेवाले गणेशजीको हृदयमें ध्यान करके इक्कीस प्रदक्षिणा करता हूं। इससे इक्कीस परिक्रमाएं करनी चाहिये, "औदुम्बरे" हे देव! आपके सामने, चांदी, सोने, तांबे और कांसेके पात्रमें कल्पित किये गये दीपक रखे हुए हैं आप इन्हें स्वीकार करें, इससे विशेष दीपक समर्पित करने चाहिये। पञ्चार्तिक्यम्, हे परमेश्वर! चांदकी चांदनीकीसी चमकवाले, पांच दीपोंसे दीपित इस पंचार्तिक्य दीपको ग्रहण करिये, इससे पंचार्तिक्यका निवेदन करना चाहिये। "कर्पूरस्य" हे देव! मैंने कपूरका दीपक आपकी भेंट किया है जैसे इसकी भस्म नहीं दीखती इसी तरह मेरे पापोंको भी इस तरह मिटादे कि फिर न दीखें, इससे कर्पूरका दीप देना चाहिये। इसके बाद आसनपर बैठ, एकाग्र चित्त होकर अनेक तरहके स्तोत्र, सूक्त, सहस्रनाम और नामस्तोत्रसे गणपतिकी स्तुतिकरे, और "दीनानाथ" इत्यादि मन्त्रोंको पढता हुआ साञ्जलि अपराध क्षमा करावे इसका अर्थ यह है कि, हे दीन एवम् अनाथोंपर दयाके समुद्ररूप! हे सुरगणोंसे सेव्यमान! हे द्विज (ब्राह्मण) और ब्रह्मा, महादेव, देवराज, शेष, पार्वती, गन्धर्व तथा सिद्धोंसे स्तूयमान! हे समस्त अरिष्टोंके निवारण करनेमें अत्यन्तचतुर! हे त्रिलोकके सबप्राणियोंके प्रभो! हे नाथ! मैंने जो आपकी आराधना की है उसे सफल करो और मेरे सब अपराधोंको क्षमा करो, मैं आपके आवाहनकी तथा पूजा एवं विसर्जनकी विधिकोनहीं जानता हूं, हे जगदीश्वर! आप इसलिये आवाहनादिकोंकी त्रुटिकों क्षमा करें। "गौरीसुत" इससे इक्कीसवार अर्घ्यदान करे, इस मन्त्रका यह अर्थ है कि, हे गौरीसुत! हे सब सिद्धियोंके देनेवाले! आपके प्रणाम है, आप मेरे सब संकटोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्यग्रहण करिये इससे २१ अर्घ दे। की हुई पूजाकी साङ्गतासिद्धिके लिये ब्राह्मणको वायना देता हूं इस प्रकार संकल्प करके आचार्यका पूजन करे, फिर "दशमोदक" इस मंत्रसे आचार्यको दश मोदकोंका वायना दे, इस मंत्रका यह अर्थ है कि हे द्विजोत्तम! बहुत फल देनेवाले दश मोदकोंका वायना, गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये मैंने आपको दिया है, आप ग्रहण करिये। पीछे पूजनकी साङ्गोपाङ्ग परिपूर्णताके लिये (इक्कीस) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यह इक्कीस दिन गणपतिपूजन करनेकी विधि समाप्त हुई॥

अथैकविंशतिदिनगणपति पूजाव्रतकथा॥ शौनक उवाच॥ सूतसूत महाप्राज्ञ व्यास विद्याविशारद॥ संकटे च समुत्पन्ने कार्यसिद्धिः कथं नृणाम्॥ १॥ सूत उवाच॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे शौनकप्रमुखानघाः॥ संकष्टनाशनं पुण्यं व्रतं वच्मि यथाश्रुतम्॥ २॥ यत्कृत्वा सर्वकार्याणि सिद्धिं यान्ति न संशयः॥ पूजयेच्च गणेशं हि एकविंशद्दिनावधि॥ ३॥ शौनक उवाच॥ कथं पूज्यो गणाध्यक्षो विघ्नहर्ता गणाधिपः॥ केन चादौ पुरा चीर्णं व्रतं विघ्नहरस्य च॥ ४॥ वद सर्वं महाप्राज्ञ अस्माकं विधिपूर्वकम्॥ प्राप्तोऽसि त्वं महाभाग्यादरण्ये सत्रमण्डपे॥५॥ सूत उवाच॥ एवमेव पुरा पृष्टः षण्मुखो वदतां वरः॥ सनत्कुमारमुनिना ब्रह्मपुत्रेण योगिना॥ ६॥ सनत्कुमार उवाच॥ कार्तिकेय महाप्राज्ञ देवसेनाधिप भो॥ संकटात्तु कथं मुच्येज्जनो वै ज्ञानदुर्बलः॥ ७॥ श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्मसूनोः

सर्वेषां कार्यगौरवात् ।। सेनानीस्तु तदा हर्षादुवाच च महामुनिम् ।। ८ ।। स्कन्द उवाच ।। विप्रवर्य महायोगिन् पार्वत्या मुखतः श्रुतम् ।। वदामि तद्व्रतं तुभ्यं शृणु सर्वं समासतः ।। ९ ।। कैलासभवने रम्ये वसमानो महेश्वरः ।। स्नातुं जगाम भगवान् भोगवत्यां यथासुखम् ।। १० ।। तस्मिन्नेव दिने अम्बा ह्यभ्यङ्गस्नानमारभत् ।। स्वशरीरान्मलं गृह्य तस्य मूर्तिमकल्पयत् ।। ११ ।। सजीवां च पुनः कृत्वा एहि पुत्रेत्यचोदयत् ।। अवदद्वै ततो नाम बल्लवस्त्वं विनायकः ।। १२ ।। पुत्र गच्छ बहिर्द्वारे तिष्ठ तत्र दृढायुधः ।। आयास्यति कदाचिद्वै पुरुषो भवनान्तरे ।। १३ ।। तं निवारय निःशंक यावत्स्नानं करोम्यहम् ।। ममाज्ञां गृह्य पश्चात्त्वं प्रवेशयितुमर्हसि ।। १४ ।। मात्राज्ञां गृह्य शिरसि अगमद्द्वारदेहलीम् ।। मुद्गरं तु समादाय हस्ते बल्लवनामकः ।।१५।। अरक्षद्द्वारदेशं स पार्वत्याज्ञां स्मरन् बली ।। तदानीमेव चायातो विभूत्या चर्चितो विभुः ।। १६ ।। संप्राप्ते भवनद्वारे शम्भुः सर्वेश्वरो हरः ।। देहलीं प्रविशेद्यावद्वा[1]रयद्द्वारपो बली ।।१७।। द्वारपाल उवाच ।। कोऽसि त्वं च किमर्थं हि गम्यते भवने शुभे ।। मात्राज्ञा याति यावत्तु स्थातव्यं तावदेव हि ।। १८ ।। स्कन्द उवाच ।। द्वारपालवचः श्रुत्वा शम्भुः कोपमथाकरोत् ।। शम्भुरुवाच ।। कस्याज्ञा च मया ग्राह्या कोऽसि त्वं भाषसे कथम् ।। १९ ।। गृहीत्वा डमरुं हस्ते द्वारपालशिरोऽहरत् ।। प्राविशच्च ततस्तूर्णं स्वगृहं पार्वतीपतिः । २० ।। दृष्ट्वा नाथं सकोपं साऽचिन्तयत्पार्वती हृदि ।। बहुधा बाधते क्षुद्वै शंकरे कोपकारणम् ।। २१ ।। अलंकृता च सुस्नाता पार्वती जगदम्बिका ।। पायसन तु पूर्णे द्वे भक्ष्यभोज्येन संयुते ।। २२ ।। संस्थाप्य पात्रे पीठाग्रे घृतेन सितयान्विते ।। पात्रद्वयं समालोक्य अवदत्पार्वतीं शिवः ।। २३ ।। शम्भुरुवाच ।। दिव्यं काञ्चनसंभूतं दर्वीयुक्तं सुलोचने ।। भोज्यपात्रं तु कस्येदं स्थापितं च द्वितीयकम् ।। २४ ।। भोजनार्थं द्वितीयोऽद्य को याति वद वल्लभे ।। नायाति त्वरया चात्र विलम्बे कारणं वद ।। २५ ।। इति श्रुत्वा वचः शम्भोः सर्वेशस्य महासती ।। भीतिहर्षसमायुक्ता सर्वज्ञमवदत्तदा ।। २६ ।। पार्वत्युवाच ।। देवाद्य स्नानसमये उद्वर्तनमलोद्भवम् ।। पुत्रं विरच्य च दृढो देहल्यां स्थापितो मया ।। २७ ।। तदर्थंच द्वितीयं वै भाजनं स्थापित ध्रुवम् ।। इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्चकम्पे प्राकृतो यथा ।। २८ ।। शिव उवाच ।। प्रविशन्तं च मां द्वारं तव पुत्रो न्यवारयत् ।। कोऽसि त्वं च मया पृष्टस्तेन नोक्ता तवाभिधा । २९ ।। कोपेन च ततस्तस्य शिरश्छित्त्वा निपातितम् ।। इति श्रुत्वा ततो देवी विह्वला पतिता भुवि ।।३०।। पार्वत्युवाच ।। पुत्रं जीवयसे देव तर्हि भोक्ष्ये महेश्वर ।। तथैव च मम प्राणा गमिष्यन्ति न संशयः ।। ३१ ।। इत्युक्त्वा च

---

१ अडभावआर्षः　　२ अतिष्ठदितिशेषः

ततो देवी हा कष्टमित्यवीवदत् ।। पुनः पपात सा भूमौ वातेन कदली यथा ।। ३२ ।। शिव उवाच ।। उत्तिष्ठ भद्रे त्वं दुःखं पुत्रार्थं मा कुरु प्रिये ।। अधुना तव पुत्रे हि जीवयामि शिरो विना ।। ३३ ।। प्रियामेवं समाश्वास्य गतो द्वारं स्वयं विभुः ।। इतस्ततोवलोक्याथ गजो दृष्टो मृतस्तदा ।। ३४ ।। निकृत्य तन्नागशिरो बल्लवं योजयद्विभुः ।। संजीव्य बल्लवं पुत्रं पार्वत्यै तं न्यवेदयत् ।। ३५ ।। दृष्ट्वा गजशिरं पुत्रं पार्वती हर्षनिर्भरा ।। भोजयित्वा पतिं पुत्रं स्वर्णपात्रे सुलोभन ।। ३६ ।। नमस्कृत्य ततो देवं पतिपात्र उपाविशत् ।। बुभुजे तु ततो देवी पतिशेषं तु भोजनम् ।। ३७ ।। कैलासभुवने रम्ये पार्वत्या न्यवसद्विभुः ।। अटन् बहु कदाचित्स वृषभेण बलीयसा ।। ३८ ।। पार्वत्या सहितो देवः प्राप्तवान्नर्मदातटम् ।। रम्यं रेवाततटं दृष्ट्वा पार्वती ह्यवदच्छिवम् ।। ३९ ।। पार्वत्युवाच ।। देवदेवं महादेव शंकर प्राणवल्लभ ।। अक्षक्रीडनकामाहं त्वया सार्द्धं सुरेश्वर ।। ४० ।। शंकर उवाच ।। अक्षक्रीडनकामा त्वमासनेऽस्मिन्थिरा भव ।। जये पराजये चात्र साक्ष्यर्थं योजय प्रिये ।। ४१ ।। स्वामिवाक्यं च सा श्रुत्वा एरकां गृह्य मुष्टिना ।। नराकृतिमथाकल्प्य प्राणात्सा समयोजयत् ।।४२।। देहं तस्य च सा स्पृश्य पाणिपद्मेन साम्भसा।। तमुवाच ततो बालमक्षकीडां विलोकय ।। ४३ ।। आवाभ्यां क्रीडमानाभ्यां को जयीति वद ध्रुवम् ।। इति मातुर्वचः श्रुत्वा बालको वै तथेति भोः ।। ४४ ।। अक्षक्रीडा समारब्धा पार्वत्या शंकरेण च ।। जयो जातश्च पार्वत्याः शंकरस्तु पराजितः ।। ४५ ।। शंकरस्तुतदाऽपृच्छत्कोजितो वद बालक ।। अवदद्बालकस्तत्र जितं देवेन शूलिना ।। ४६ ।। पुनः क्रीडाप्रवृत्ता सा साक्षीकृत्वा तु बालकम् ।। पुनर्जितं तु पार्वत्या शंकरस्तु पराजितः ।। ४७ ।। बालं पप्रच्छ सा देवी जितं केन वदाधुना ।। पुनरप्याह बालोऽसौ जितं देवेन शूलिना ।। ४८ ।। हर्षेण च समायुक्तः पार्वतीं प्राह शंकरः ।। क्रीडां कुरु महादेवि रोषं त्यज शुभानने ।। ४९ ।। क्रीडति स्म पुनर्देवी जितो देव्या स शंकरः ।। लज्जितः शंकरो बालं को जितो वद निश्चितम् ।। ५० ।। शंकरं प्राह बालोऽसौ जितस्त्वं भुवनाधिप ।। बालवाक्यं समाकर्ण्य पार्वती कोपनिर्भरा ।। ५१ ।। मिथ्या वदसि दुष्टात्मन् पादहीनोऽत्र कर्दमे ।। पच्यमानोऽतिदुःखेन भविष्यसि न संशयः ।। ५२ ।। बाल उवाच ।। विशापं कुरु मां मातर्बालभावान्ममेरितम् ।। इति श्रुत्वा वचस्तस्य मातृभावाद्दयान्विता ।।५३।। पार्वत्युवाच ।। नागकन्या यदा पुत्र पूजार्थिन्यस्तटे शुभे ।। गणेशं पूजयन्त्यार्या दृष्ट्वा पूजाविधिं शिवम् ।। ।। ५४ ।। तासां श्रुत्वा वचो दिव्यं तव भक्तिर्भविष्यति ।। गणेशं पूजयित्वा तु मम सान्निध्यमेष्यसि ।। ५५ ।। इत्युक्त्वा सा ततो देवी हिमाचलमगाद्रुषा ।। व्यतीते वत्सरे पूर्णे श्रावणे मासि चागते ।। ५६ ।। गणेश-

पूजनार्थं ता नागकन्याः समागताः ।। दृष्टवान्नर्मदातीरे स्त्रीवृन्दं बहुभूषितम् ।। ५७ ।। बाल उवाच ।। किमर्थं चागता बालाः किंचात्र क्रियतेऽधुना ।। भवतीभिः पूज्यते कः किंफलं वदताद्य मे ।। ५८ ।। नागकन्या ऊचुः ।। वत्स पूजा गणेशस्य क्रियतेऽस्माभिरुत्तमा ।। पूजिते तु जगन्नाथे लभ्यते वाञ्छितं ध्रुवम् ।। ५९ ।। बाल उवाच ।। कथं पूज्यो गणाध्यक्षः कियत्कालं वदन्तु भोः ।। को विधिः के च संभाराः कदा पूज्योगणेश्वरः ।। ६० ।। नागकन्या ऊचुः ।। श्रावणे मासि संप्राते चतुर्थ्यां च खगोदये ।। तिलामलककल्केन स्नानं कुर्याज्जलाशये ।। ६१ ।। शुक्लपक्षे समारभ्य या कृष्णा दशमी भवेत् ।। मध्याह्ने पूजयेत् तावदेकविंशद्दिनावधि ।। ६२ । एकविंशतिदूर्वाभिस्तावत्पुष्पैः शुभैः सदा ।। मोदकैरेकविंशैश्च पूजयेत्प्रत्यहं जनः ।। ६३ ।। मोदका दश विप्राय दातव्याश्च सदक्षिणाः ।। एकं गणाधिपे दत्त्वा स्वयं चाद्याद्दशैव तु ।। ६४ ।। पूजा मौनेन कर्तव्या भोजनं च तथानघ ।। ब्रह्मचारी भूमिशायी शूद्रभाषणवर्जितः ।। ६५ ।। हविष्याशी तथा भूयाच्छुचिरन्तर्बहिः सदा ।। एवं नियममास्थाय पूजा कुर्यात्सदा व्रती ।। ६६ ।। ताम्रपात्रे जलं गृह्य गन्धपुष्पसमन्वितम् ।। फलरत्नसमायुक्तं मर्घ्यं दाद्गणा धिपे ।। ६७ ।। गणेशाय नमस्तेऽस्तु पार्वतीनन्दनाय च ।। गन्धपुष्पसमायुक्तं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ६८ ।। प्रदक्षिणाः सदा वत्स एकविंशन्निवेदयेत्।। पूजासमाप्तौ विप्राय वायनं च समर्पयेत् ।। ६९ ।। गणेशप्रीतये तुभ्यं वायनं दशमोदकम् ।। दक्षिणाफलसंयुक्तं वंशपात्रे सुकल्पितम् ।। ७० ।। गणेशः प्रतिह्लाति गणेशो वै ददाति च ।। गणेशस्तारकोभाभ्यां गणेशाय नमोनमः ।। ७१ ।। एवं पूज्यो गणाध्यक्षो नार्मदो भक्तितः शुभः ।। गणेशे पूजिते वत्स तव सिद्धिर्भविष्यति ।। ७२ ।। एवमुक्त्वा गता देव्यो नागकन्याः शुचिस्मिताः ।। बालकेन कृतं पश्चादन्यस्मिन् वत्सरे ततः ।। ७३ ।। श्रावणे मासि संप्राते शुक्ल पक्षे तिथौ शुभे।।चतुर्थ्यां कृतसम्भारी व्रतं जग्राह बालकः ।। ७४ ।। गणेशं नार्मदं तत्र एकविंशद्दिनावधि ।। विधिवत्पूजयामास नमस्कृत्य गणेश्वरम् ।। ७५ ।। गणेशो वरदो जातो याचयस्व यदीप्सितम् ।। श्रुत्वा वाक्यं गणेशस्य हर्षनिर्भरमानसः ।। ७६ ।। बाल उवाच ।। नमस्कृत्य गणेशानं वरं देहि नमोऽस्तु ते ।। पादयोर्मे बलं देहि वासं शंकरसन्निधौ ।। ७७ ।। गणेश उवाच ।। यथेच्छसि तथैवास्तु पार्वत्याः प्रीतिरस्तु ते ।। इत्युक्त्वा तु गणेशोऽसौ तत्रैवान्तर्दधे विभुः ।। ७८ ।। दृढपादश्च बालोऽसौ कैलासमगमत्ततः ।। दृष्ट्वा रहस्य चरणौ शिरसा जगृहे शुभौ ।। ७९ ।। शिव उवाच ।। उत्तिष्ठ वत्स ते पादौ कथं जातौ दृढौ वद ।। कस्य प्रसादात्त्वमिह आगतोऽसि ममालयम् ।। ८० ।। बाल उवाच ।।

कृतं मया गणेशस्य एकविंशद्दिनात्मकम् ।। श्रुतं च नागकन्याभ्यस्तद्व्रतं पूजनं मया ।। ८१ ।। तेन पुण्यप्रभावेण प्राप्तोऽहं तव संन्निधौ ।। गणेशस्य प्रसादेन शरीरं दृढतां गतम् ।।८२।। शिव उवाच।।कीदृशं तद्व्रतं ब्रूहि करिष्येहं च तद्व्रतम् ।। वल्लभाया दर्शनार्थं पार्वत्या रोषशान्तये ।। ८३ ।। बाल उवाच ।। श्रावणे शुक्लपक्षे तु चतुर्थ्यां च समारभेत् ।। श्रावणे बहुले पक्षे दशम्यां च समापयेत् ।। ८४ ।। गणेशं पूजयेन्नित्यमेकविंशद्दिनावधि ।। एकविंशतिदूर्वाभिः पुष्पैरपि तथैव च ।। ८५ ।। कर्तव्या मोदकास्तत्र एकविंशतिसंख्यकाः ।। दश विप्राय दत्त्वा तु एकं देवे नियोजयेत् ।। ८६ ।। अवशिष्टाः स्वयं भक्ष्याः श्रुतमेवं मया विभो ।। किं मयाद्य त्वयाज्ञप्तं कर्तव्यं वर्तते विभो ।। ८७ ।। आचरच्छम्भुरप्येवं गणेशस्य व्रतं शुभम् ।। पूजनात्तु गणेशस्य पार्वत्याश्चलितं मनः ।। ८८ ।। हिमाचलं नमस्कृत्य वचनं चेदमब्रवीत् ।। पार्वत्युवाच ।। गम्यतेऽद्य मया तात कैलासं निजमन्दिरम् ।। ८९ ।। शिवस्य चरणौ द्रष्टुमुत्सुकं मे मनोभवत् ।। शीघ्रं देहि ममाज्ञा भोः क्षणं स्थातुं न शक्यते ।। ९० ।। हिमाचल उवाच ।। प्रेषयिष्ये क्षणं तिष्ठ विमानेनार्कवर्चसा ।। सैन्यं ददामि रक्षार्थं तव मार्गे शुचिस्मिते ।। ९१ ।। पितृवाक्यं समाकर्ण्य विमानं चारुरोह सा ।। क्षणमात्रेण सा याता कैलासभवनोत्तमम् ।।९२।। दृष्ट्वा महेश्वरं देवं प्रणनाम विहस्य च ।। किं कृतं भो न जानेहं मनो मे चाहृतं त्वया ।। ९३ ।। वाक्यंश्रुत्वा प्रियायाश्च मनसा चालिलिङ्ग ताम् ।। अवदत् कारणं तस्या हरणे मनसो ध्रुवम् ।। ९४ ।। शिव उवाच ।। कृतं मया गणेशस्य पूजनं तव हेतवे । तेन पुण्यप्रभावेण आगता त्वं ममान्तिकम् ।। ९५ ।।पार्वत्युवाच ।। कथं पूज्यो गणाध्यक्षो वद मह्यं जगत्प्रभो ।। अहमद्य करिष्यामि सेनानीदर्शनाय च ।। ९६ ।। शंकर उवाच ।। कुरु देवि गणेशस्य पूजनं च यथाविधि ।। एकविंशति दूर्वाभिः पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।। ९७ ।। मोदकैरेकविंशैश्च एकविंशद्दिनानि च ।। अर्घ्यैश्च तावत्संख्याकैस्तथा ब्राह्मणतर्पणैः ।। ९८ ।। त्रिलोचनमुखाच्छ्रुत्वा गणेशः पूजित-तथा ।। एकविंशद्दिनात्पश्चात् कुमारोभ्यगमत्स्वयम् ।।९९।। स्कन्दं दृष्टवा तदाः देव्याः स्तनाभ्यां निर्झरा ववुः ।। सुतमालिङ्ग्य सा देवी चुचुम्ब च मुखं पुना ।। १०० ।। वत्साद्य च मुखं दृष्टं गणेशस्य प्रसादतः ।। बहुकालं च मां त्यक्त्वा गतः षण्मुख बालक ।। १ ।। कृतकृत्याद्य जातास्मि दर्शनात्ते न संशयः ।। रोषं त्यज महाबुद्धे शपथं ते वदाम्यहम् ।। २ ।। स्कन्द उवाच ।। मातर्वद गणेशस्य पूजनं च यथाश्रुतम् ।। विश्वामित्रं च राजानं मम मित्रं वदाम्यहम् ।। ३ ।। पार्वत्युवाच ।। वद मित्रं गणेशस्य पूजनं कुरु भक्तितः ।। एकविंशतिदूर्वाभिरेकविंशतिपुष्पकैः ।। ४ ।। कर्तव्या मोदकास्तत्र एकविंशतिसंख्यकाः ।। दशविप्राय दातव्याः स्वयं चाद्याद्दशैव तु ।। ५ ।। एकं गणाधिपे दत्त्वा अर्घ्यानपि तथैव च ।। पूजयस्व गणाध्य-

क्षमेकविंशद्दिनावधि ।। ६ ।। इदं व्रतं गणेशस्य भक्तितो यः करिष्यति ।। तस्य कार्याणि सिद्ध्यन्ति मनसा चिन्तितानि च ।। ७ ।। व्रतराजविधिं श्रुत्वा सेनानीश्च तथाकरोत् ।। सेनानीनामग्रणीत्वं समवाप्य शुचिव्रतः ।। ८ ।। कथयामास विप्राय विश्वामित्रं नराधिपम् ।। सोऽपि राजा नमस्कृत्य व्रतं तत्स्वयमाचरत् ।।९।। गणेशो वरदो जातो विश्वामित्राय तत्क्षणात् ।। गणेश उवाच ।। वद राजन्किमिच्छास्ति ददामि तव याचितम् ।। ११० ।। विश्वामित्र उवाच ।। देहि देव प्रसन्नश्चेत्प्राग्विप्रर्षित्वमस्त्विति ।। प्राप्तेन विप्रर्षित्वेन सर्वे प्राप्ता मनोरथाः ।। ११ ।। गणेश उवाच ।। विप्रर्षित्वं च राजेन्द्र प्राप्स्यसि ब्रह्मपुत्रतः ।। वसिष्ठाद्ब्रह्मण श्रेष्ठान्मम वाक्यं न संशयः ।। १२ ।। एवमुक्त्वा गणेशोऽसौ पूजितो भूमिपेन च ।। पुनरन्यं वरं चादात्पूजकानां हिताय वै ।। १३ ।। यदा यदा च राजेन्द्र संकटं च कलौ भुवि ।। भविष्यति जनानां हि कर्तव्यं पूजनं मम ।। १४ ।। स्मरिष्यन्ति च मां भक्त्या नमस्कृत्य पुनः पुनः ।। तेषां दुःखानि सर्वाणि नाशयामि न संशयः ।। १५ ।। एवं दत्त्वा वरान्सम्यक् तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।। सनत्कुमार योगीन्द्र पार्वत्या मुखपद्मतः ।। १६ ।। श्रुतं मया च त्रेतायां गणेशस्य व्रतं महत् ।। निवेदितं च तत्सर्वं कुरु विप्र तपोनिधे ।। १७ ।। सनत्कुमार उवाच ।। महदाख्यानकं श्रुत्वा तृप्तोऽहं तु न संशयः ।। सूत उवाच ।। एवमुक्त्वा गतो योगी नमस्कृत्य षडाननम् ।। १८ ।। सनत्कुमारसेनानीसंवादं च यथाश्रुतम् ।। व्यासप्रसादाच्छ्रुतवांस्तथा तुभ्यं निवेदितः ।। १९ ।। इदं व्रतं गणेशस्य करिष्यति च मानवः ।। तस्य कार्याणि सर्वाणि सिद्धिं यास्यन्ति सत्वरम् ।। १२० ।। किमन्यद्बो जनश्रेष्ठाः श्रोतुकामास्तपोधनाः ।। तत्सर्वं कथयिष्यामि वक्तव्यं यदि चेच्छथ ।। २१ ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या आख्यानं च समाहितः ।। तदीप्सितानि कार्याणि स लभेन्निश्चितं भुवि ।। २२ ।। शौनकाद्या ऋषिगणाः श्रुत्वा सूतवचोद्भुतम् ।। पौराणिकं नमस्कृत्य विरामासने शुभे ।। १२३ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे स्कन्दसनत्कुमारसंवादे तृतीयोल्लासे एकविंशतिदिवसगणपतिव्रतकथा संपूर्णा ।।

अब कथा–अब इक्कीस दिन पर्य्यन्तगणपति पूजनके व्रतकी "कथाको" कहते हैं–शौनक महर्षिने सूतजीसे पूछा कि, हे सूत ! हे महाप्राज्ञ, हे व्यासजीकी विद्याके चतुरपण्डित ! आप यह बतावें कि जब संकट उपस्थित हो ऐसे समयमें मनुष्योंके कार्य किस उपायसे सिद्ध होते हैं, कहिये ।। १ ।। यह सुन सूतजी बोले कि, हे समस्त शौनक प्रभृति पवित्र मुनियो ! आपलोगोंको संटकोंको नष्टकरनेवाले पुण्य व्रतको जैसा मैंने सुना है वैसे कहता हूं आपलोग सुनों ।। २ ।। जिस पुण्य व्रतको करनेवालेके सब कार्य अवश्य सिद्ध होते हैं वही यह पवित्र व्रत है । इस व्रतमें इक्कीस दिन तक गणेशजीका पूजन करना चाहिये ।। ३ ।। शौनक मुनिने फिर पूछा कि विघ्नोंके हर्ता, गणोंके अध्यक्ष गणाधिप की किस प्रकार पूजा करनी चाहिये विघ्नहर्ताका यह व्रत पहिले किसने किया है ।। ४ ।। हे महाप्राज्ञ ! उस व्रतको विधिपूर्वक हमारे लिए कहो । हमारा बडाभारी भाग्य है, क्योंकि, जहां हम केवल यज्ञ करनेके लिये ही इकट्ठे हुए थे उस जंगलके यज्ञमण्डपमें आप हमें प्राप्त

हुए हैं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, हे मुनिवरो ! जैसे आप लोगोंने मुझसे प्रश्न किया है वैसे ही ब्रह्माजीके पुत्र योगी सनत्कुमार मुनिने वक्ताओंमें श्रेष्ठ षडाननसे प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ कि, हे कार्तिकेय हे महाप्राज्ञ ! हे देवताओंकी सेनाके अधीश्वर ! हे प्रभो अज्ञानी जन किस उपायको करनेसे संकटोंसे छूट सकता है ॥ ७ ॥ सूतजी शौनकादिकोंसे कहने लगे कि, ब्रह्मजीके पुत्र सनत्कुमार महात्माने जब यह प्रश्न किया तब उस प्रश्नके उत्तरको महत्त्वका हेतु मानकर बडी प्रसन्नतासे स्वामिकार्तिकने महामुनि सनत्कुमारको उत्तर दिया ॥ ८ ॥ स्वामी कार्तिक बोले कि, हे विप्रवर्य ! हे महायोगिन् ! मैंने पार्वजीके मुखसे जो सुना है उसी व्रतको आपके लिये संक्षेपसे कहता हूं आप सुनें ॥ ९ ॥ रमणीय कैलासमें निवास करनेवाले भगवान् महादेवजी एक समय सुखपूर्वक भोगवती गंगामें स्नान करनेको चल दिये ॥ १० ॥ उसी दिन अम्बिका भगवतीने भी उबटना लगाकर स्नान किया और अपने शरीरके मर्दनसे जो मैल निकला, उसे लेकर उसकी एक मूर्ति बनाली ॥११॥ फिर उसमें जीवात्माका आधान करके कहा कि, हे पुत्र ! तुम यहां मेरे समीपमें आओ, फिर पार्वतीने नाम भी कहा कि, आप वल्लब और विनायक सबको वशमें करनेवाले हो ॥ १२ ॥ हे पुत्र ! बाहर द्वारपर जाओ, वहां दृढ शस्त्रको लेकर खडे रहो जो कोई पुरुष इस भवनकेभीतर आवे ॥१३॥ मैं जब तक स्नान करती हूं, तबतक तुम निःशंक होकर उसे दरवाजेपही रोको । मेरी आज्ञा लेकर भीतर प्रविष्ट करना चाहिये ॥ १४ ॥ सूतजी बोले कि, वह बल्लव विनायक माताजी आज्ञाको शिरोधार्य कर, दरवाजेकी देहलीपर अपने हाथमें मुद्गर लेकर खडा होगया ॥ १५ ॥ वहांपर खडा होकर वह बीरवल्लव पार्वतीका आज्ञाका स्मरण करता हुआ द्वारदेशकी रक्षा करने लगा, वहांपर उसी समय विभूति लगाये हुए सर्वेश्वर भगवान् शम्भुदेव आ पहुंचे ॥ १६ ॥ जब वे देहलीके भीतर प्रवेश करने लगे तो वह द्वारपाल उनको रोकता हुआ ॥ १७ ॥ बोला कि, तुम कौन हो, सुन्दर भवनके भीतर क्यों जाते हो, जबतक मेरी मांकी आज्ञा न हो तबतक यहांही ठहरो ॥१८॥ स्वामि कार्तिकजी श्रीसनत्कुमार मुनिसे बोले कि, द्वारपालके ऐसे वचनोंको सुनकर महादेवजीने कोप किया और बोले कि, मैं किसकी आज्ञाको मानूं तुम कौन हो बिनाजाने क्या बक रहे हो ? ॥१९ ॥ फिर पार्वतीपति भगवान्ने हाथमें डमरु लेकर उस द्वारपाल श्रीबल्लवनामक विनायकका मस्तक काट डाला और झट अपने घरके भीतर घुस गये ॥ २० ॥ अपने पतिको कुपित हो भीतर आते हुए देखकर पार्वती अपने अन्तःकरणमें सोच करने लगी कि, क्षुधा सता रही है इससे आज ये नाराजसे हो रहे हैं ॥ २१ ॥ पार्वती उस समय स्नान करण अलंकार धारण कर चुकी थी इसलिये दो भोजन पात्र खीरसे तथा भक्ष्य भोज्यसे पूर्णकर ॥२२॥ अलग अलग दो चौकियोंपर स्थापित करदिये जो घृत तथा शर्करासे युक्त थे, महादेवजी उस दिन उन भोजन-पात्रोंको देखकर बोले ॥२३॥ कि, हे सुलोचने ! यह दूसरी दिव्य सुवर्णका दर्वी (करछुली) युक्त भोजन-स्थाली किसके लिये रखी है ॥२४॥ हे वल्लभे ! भोजनके लिये दूसरा कौन आता है, सो तुम कहो । अब-तक आया नहीं, तुमने भोजनापत्र परोस दिया, यह विलम्ब क्यों हो रहा है, बताओ ॥२५॥ ऐसे जब महा-देवजीने पूछा तब वह सतियोंमें अग्रणी पार्वती उन सर्वेश्वर भगवान्के वचनोंको सुनकर भय तथा हर्षसे समाविष्ट हुई बोली ॥२६ ॥ भय इसलिये हुआ कि, मेरा पुत्र द्वारसे कहां चला गया ये भीतर कैसे आये और हर्ष इसलिये कि, आज आप मेरे पुत्रको देखेंगे तब ये बहुत प्रसन्न होंगे । पार्वती बोली कि, हे देव ! आज स्नान करनेके समय उद्वर्त्तनसे उत्पन्न मैलसे मजबूत पुत्र बनाकर मैंने द्वारक्षाके लिये बाहर स्थापित किया था ॥२७ ॥ उसकेही लिये इस भोजन पात्रको रखा था । फिर महादेवजी पार्वतीके इन वचनोंको सुनकर साधा-रण जनकी तरह कांप गये ॥२८ ॥ और बोले कि तेरे पुत्रने भीतर आनेके समय मुझे रोका, फिर मैंने उससे पूछा भी कि तुम कौन हो ? पर उसने यह नहीं कहा कि, मैं पार्वतीका पुत्र हूं ॥२९ ॥ जब तेरा नाम नहीं लिया और मेरेको मना किया तब कुपित होकर मैंने उसके शिरको काटकर गिरादिया, पार्वती यह सुनकर शोकसे व्याकुल हो जमीनपर गिरपडी ॥३० ॥ और बोली कि, हे देव ! हे महेश्वर ! उस पुत्रको जिन्दा करोगे तबही भोजन करूंगी, नहीं तो मेरे भी प्राण चले जायेंगे इसमें कोई सन्देह न समझना ॥३१ ॥ 'हा बहुत अनर्थ हुआ' ऐसा कहती हुई शोकसे बारबार भूमिपर इस तरह गिरी जैसे वायुके वेगसे केला कागाछ गिरा करता है ॥ ३२ ॥ महादेवजी पार्वतीसे बोले कि, हे भद्रे ! तुम खडी हो जाओ, हे प्रिये ! तुम पुत्रके

लिये शोक मत करो, अभी मैं तुमारे पुत्रको जीवित करताहूं, केवल वह शिर नहीं जीवित करूंगा ।। ३३ ।। अपनी प्रिया पार्वतीको ऐसे आश्वासन देकर विभु (महादेवजी) द्वारपर पहुंचे, फिर इधर उधर दूसरेका मस्तक जोडनेके लिये देखने लगे तो उन्हें वहांपर एक मृत हस्तीका शरीर दीखा ।।३४।। तदनन्तर उस हस्तीके मस्तकको काटकर बल्लवके शरीरसे जोड दिया । इस प्रकार बल्लवको जीवित करके पार्वको दे दिया ।। ३५ ।। पार्वतीभी अपने उस बल्लव पुत्रको गजाननके रूपमें देखकर बडी हर्षित हुई और अपने प्रियपति महादेवजीको तथा उस पुत्रको सुन्दर सुवर्णके दोनों पात्रोंमें भोजन करा ।। ३६ ।। पीछे महादेवजीको प्रणाम कर उनके उच्छिष्ट पात्रमें महेश्वरके भोजनसे बचे हुए अन्नका भोजन किया ।। ३७ ।। महादेवजी पार्वतीके साथ रमणीय कैलासके शिखरपर अपने मन्दिरमें निवास करने लगे एकवार महादेवजी बलवान् नन्दिकेश्वरपर चढकर पार्वतीके साथ इतस्ततः विहार करते हुए ।। ३८ ।। नर्मदाके तटपर पहुँचे पार्वती नर्मदाके तटको रमणीय देखकर महादेवजीसे बोली ।। ३९ ।। कि, हे देव देव ! महादेव ! हे शंकर ! हे प्राणोंसेभी अधिक प्यारे ! हे सुरेश्वर ! मैं आपके साथ पाशा गेरके खेलना चाहती हूं ।। ४० ।। महादेवजी बोले कि, हे प्रिये ! तुम पाशा गेरके खेलना चाहती हो तो इस आसनपर स्थिर होकर बैठो और जीत तथा हारकी निगाह देनेके लिये किसी दूसरेको नियुक्त करो ।। ४१ ।। स्वामी महादेवजीके ऐसे वचनको सुनकर एक मुट्ठीभर एरे उपाडकर मनुष्यकी तरह खड़े करदिये, उस एरोंके पुञ्जमें प्राणोंको भरदिया ।। ४२ ।। पीछे पार्वतीजी अपने हस्तकमलमें जल लेकर उससे उसके शरीरका स्पर्श करके उसके प्रति बोली कि, तुम हमारे पाशोंके खेलको देखते रहो ।। ४३ ।। हम दोनों यहां पाशोंसे खेलते हैं, जिसकी जीत हो उसकी जीत और जिसकी हार हो उसकी हार बता देना । माताके ऐसे वचन सुनकर उसबालकने कहा ठीक है ।। ४४ ।। फिर पार्वतीने, महेश्वरके साथ द्यूतक्रीडाका प्रारम्भ किया, उस द्यूतक्रीडामें पार्वतीका विजय, महादेवजीका पराजय, हुआ ।। ४५ ।। तब महादेवजीने उस बालकसे पूछा कि, हे वत्स ! तुम कहो, किसकी जीत हुई ? उस बालकने वहांपर झूठेही कहदिया कि, महादेवजीकी जीत हुई ।। ४६ ।। तब पार्वती अपनी हार मानकर उसी बालकको साक्षी करके वैसेही खेलने लगीं । इस बारभी पार्वतीका जय तथा महादेवजीका पराजय हुआ ।। ४७ ।। ।। पार्वतीने पूर्ववत् फिर उससे पूछा कि किसने जय लाभ किया है ? तुम कहो. फिर उस बालकने मिथ्याही कह दिया कि, महादेवजीका जय हुआ है ।। ४८ ।। फिर महादेवजी हृष्ट होकर पार्वतीसे बोले कि, हे महादेवि ! तुम खेलो, हे शुभानने ! रोष छोड़ो ।। ४९ ।। ऐसे कहकर फिर पूर्ववत् पार्वतीके साथ खेलने लगे पर फिर भी पार्वतीने महादेवजीको हरादिया, तब महादेवजी लज्जित होकर उस बालकसे बोले कि, हे वत्स ! अच्छा ठीक कहो, किसने जय किया ? ।। ५० ।। तब वह बालक फिर महादेवजीसे बोला कि, हे भुवनाधिप ! आपका ही जय हुआ है, पार्वती उस बालकके वचन सुन क्रोधित होकर बोली कि ।। ५१ ।। रे दुष्टात्मन् ! तू झूठ कहता है, इससे तेरे पाद न रहेंगे और इस कीचडमें पडा ऐसेही दुःख भोगेगा, इसमें संशय मत करना ।। ५२ ।। बालक बोला कि, हे मातः ! मैंने जो झूंठ बोला वह बालकपनके कारणही बोला है, न कि, राग द्वेशके कारण इसलिये मेरे बालकपनकी ओर निगाह देकर मेरे अपराधको क्षमाकरके मुझे शापसे निर्मुक्त करो । सूतजी शौनकादि मुनियोंसे कह रहे हैं कि, ऐसे जब उसने फिर प्रार्थना की तब भगवती स्वाभाविकमातृवात्सल्यसे दयापूर्ण हृदया हो ।। ५३ ।। बोली कि, हे पुत्र ! जब पुत्रोंकी सम्पत्तिकी इच्छावाली नागकन्याएं इस नर्मदाकेतटपर आकर गणपतिका पूजन करेंगी, तू उनकी आनन्ददायक पूजनविधिकोदेखेगा, उनके मुखसे गणेशकी पूजाके अलौकिक माहात्म्यको सुनेगा ।। ५४ ।। तब उस पूजन के दर्शन तथा माहात्म्यश्रवणके प्रभावसे तेरे मनमें गणपतिकी भक्ति उत्पन्न होगी, तदनन्तर तुमभी गणपतिका पूजन करके मेरे सामीप्यपदका लाभ करोगे ।। ५५ सूतजी शौनकादि मुनियोंसे कहते हैं कि, भगवती देवी पार्वती उस बालकसे ऐसा कहकर फिर क्रोधसे वहांसे उठकर, अपने हिमालयके समीप चली गयी । फिर उसको वैसेही दुःख भोगते जब एकवर्षव्यतीत होगया और श्रावण मास आगया ।। ५६ ।। तब नागकन्याएं गणपतिका पूजनकरने वहां पर आयीं, वो नर्मदाके किनारेपर आभूषणोंसे विभूषित उन नागन्कयाओंके समूहको देखकर ।। ५७ ।। बोला कि, हे बालाओ ! तुम किसलिये आयी हो अब यहांपर क्या कर रही हो ? तुमलोग किसका पूजन करती हो, इस पूजनसे क्या फल

मिलता है ? यह सब तुम्हारे मुखसे सुनना चाहता हूं ।। ५८ ।। नागकन्या बोलीं कि, हे वत्स ! हम सभी गणेशजीका उत्तम पूजन कर रही हैं. क्योंकि, ये गणपति समस्त जगत्के नाथ हैं, इनकी प्रसन्नता होनेपर ऐसा कौनसा वांछित है जो न प्राप्त हो सकेगा ।। ५९ ।। बालक बोला कि, भोः । किस प्रकार एवम् कितने समयतक गणपतिका पूजन करना चाहिये उस पूजनकी क्या विधि है, उस पूजनके लिये क्या क्या सामग्री चाहये । कब गणपतिका पूजन करना चाहिये ? नागकन्याएं बोलीं कि, श्रावण (सुदि) चतुर्थीके दिन सूर्योदयके समय तिल और आंवलोंकी पीठीसे शरीर मलकर किसी जलके स्थानमें स्नान करना चाहिये, सब कर्म श्रावणसुदि चतुर्थीको आरम्भ करके इसी मासकीसुदि दशमीको समाप्त करना चाहिये, प्रतिदिन प्रातःकाल तिल और आवलोंकी पीठीसे जलाशयमें स्नान करके मध्याह्नमें २१ दिनतक गणपतिका पूजन करना चाहिये ।। ६२ ।। इक्कीस बार दूब और सुगन्धि पुष्प रोज चढाना चाहिये और इक्कीस लड्डुओंसे पूजा होनी चाहिये उन इक्कीस लड्डुओंमेंसे दक्षिणासहित दश लड्डू ब्राह्मणको दे । दशों लड्डुओंका आप भोग लगावे, तथा एक लड्डू गणेशजीके यहां रहनेदे ।। ६४ ।। सूतजी शौनक मुनिसे कहते हैं कि हे अनघ ! रोज पूजन करनेके समयमें दूसरेसे सम्भाषण न करे, पूजाके मन्त्रोंकाभीमनमें ही उच्चारण करे, इक्कीसदिनतक ब्रह्मचर्य्यसे रहे, पृथिवीपर शयन और शूद्र म्लेच्छ, पतित, रजस्वला आदि नीचोंसे सम्भाषण न करे ।। ६५ ।। व्रती पुरुषको सदाही हविष्य भोजन और बाहिर भीतरकी शुद्धि रखनी चाहिये और यह भी चाहिये कि, वो सदा इस प्रकार नियम पालन करता हुआ ही गणेशजीका पूजन करे ।। ६६ ।। गन्ध, पुष्प मिला हुआ पानीसे भरा हुआ तांबेका पात्र लेकर फल रत्नसहित गणेशको अर्घ देना चाहिये ।। ६७ ।। कि, पार्वतीकेनन्दन गणपतिके लिये प्रणाम है आप गन्धपुष्पान्वित अर्घ्य ग्रहण करो, आपकेलिये प्रणामहै ।। ६८ ।। हे वत्स ! इक्कीस वार प्रदक्षिणा करनी चाहिये । जब पूजन समाप्त हो उस समय ब्राह्मणकेलिये वायनादेना चाहिये ।। ६९ ।। आपको गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये बाँसके पात्रमें रखकर दक्षिणासहित दश लड्डुओंकावायना देताहूं ।। ७० ।। कि गणेशजीही देनेवाले हैं और गणेशजीही लेनेवाले हैं तथ गणेशजीही अपने दोनोंके उद्धारकरनेवाले हैं ऐसे गणेशजी के लिये वारवार नमस्कार है ।। ७१ ।। इस प्रकार नर्मदाके होनेके कारण नार्मद नामवाले गणेशजीकीशुभ करनेवालीपूजा भक्तिपूर्वक करनी चाहिये । हे वत्स ! गणेशजीका पूजनकरनेसे तुम्हारे सब कार्योंकी सिद्धि होजायगी ।। ७२ ।। मन्दस्मित वाली देवी नागकन्या उस बालकसे ऐसा वचन कहते चली गयी फिर उस बालकने दूसरे वर्षमें वैध व्रत किया ।। ७३ ।। जब श्रावणसुदि चतुर्थी आई तब बहुतसी पूजाकी सामग्री इकट्ठी करके व्रत करनेका संकल्प किया ।। ७४ ।। तहां नर्मदा तटपर विराजमान होनेवाले गणेशजीको इक्कीसदिनपर्यन्त विधिवत्प्रणाम करके पूजनकिया ।। ७५ ।। गणेशजी वरदेनेवाले होकर उससेबोले कि, हे तात! जो तुम्हारे अभिलषितपदार्थ हो उन्हें मांगलो गणेशजीके ऐसे वचनोंको सुनकर, मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो ।। ७६ ।। वो बालकगणोंके अधिपतिकोप्रणाम करके बोला कि, हे प्रभो आप मेरे लिये वरदें आपके लिये प्रणाम है, मेरे पैरोंमें बल और महादेवजीके समीपमें मेरानिवास हो यही वर चाहता हूं ।। ७७ ।। गणेशजी बोले, जैसा चाहते हो वैसाही होगा अर्थात् तुम्हारे चरणोंमें चलनेकी ताकत और महादेवजीके पासनिवास होगा, तुम्हें पार्वतीकी प्रसन्नताभी प्राप्त होगी । सूतजी शौनक मुनिसे कहते हैं कि गणेशजी इस प्रकार वर देकर उसी जगह अन्तर्धान होगये ।। ७८ ।। वह बालकभी अपने पैरोंमें चलनेकी ताकतको पा कैलासको चलागया, वहां महादेवजीके दर्शन कर उनके शुभ चरणोंपर अपना शिर रख दिया ।। ७९ ।। महादेवजी बोले कि हे वत्स ! तुम खडे हो, तुम्हारे पैरों में चलनेकी ताकत कहांसे आई, किसकी प्रसन्नतासे तुम यहां मेरे स्थानमें आपहुंचे हो ? कहो ।। ८० ।। बालक बोला कि, हे प्रभो ! मैंने नागकन्याओंसे इक्कीस दिनका गणेश-व्रत सुनाया और उसीके अनुसार वह व्रत और पूजन किया ।। ८१ ।। गणेशजीके इक्कीशदिनके पूजन व्रतके पुण्य प्रभावसे मैं आपके समीपमें प्राप्तहुआ हूं गणेशजीकी प्रसन्नतासे मेरा शरीर दृढ हुआ है ।। ८२ ।। महा-देवजी बोले कि, हे वत्स ! वो व्रत कैसा है यह मुझसे कहो, मैं भी उस व्रतको करूंगा, प्रिया पार्वतीका रोष शान्त और दर्शन हों ।। ८३ ।। बालक बोला कि श्रावण सुदी चतुर्थीसे प्रारंभ करके श्रावण कृष्णदशमीको पूरा करना चाहिये ।। ८४ ।। इक्कीस दिनतक रोज गणेशजीका इक्कीस दूब और फूलोंसे पूजन करना चाहिये

।। ८५ ।। इसमें इक्कीस मोदक बनाने चाहियें उनमेंसे दशमोदक ब्राह्मणणलिये और एक गणेशजीके भेंट करके ।। ८६ ।। अवशिष्ट दश मोदकोंको आप ग्रहण करे, हे प्रभो ! मैंने नागकन्याओंके मुखसे गणेशजीके इक्कीस दिन पूजनवाले इस व्रतका विधान ऐसेही सुना था और उसी प्रकार मैंने किया भी । हे प्रभो ! अब आप मुझे जो आज्ञा करें वह करूं ।। ८७ ।। सूतजी शौनक मुनिसे बोले कि, फिर महादेवजीने भी पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये गणेशजीका इक्कीस दिनके पूजनवाला व्रत किया, उसके समाप्त होतेही उसी पूजाके प्रभावसे पार्वतीका मनमहादेवजीकी ओर चलायमान हुआ ।। ८८ ।। अपने पिता हिमालयको प्रणाम करके बोली कि, हे तात ! आज मैं अपने घर कैलाशको जाती हूं ।। ८९ ।। मेरा चित्त महेश्वरके चरणोंके देखनेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है। आप मेरे लिये शीघ्र जानेकी अनुमति दें, अब यहां एक क्षण भी नहीं ठहर सकती ।। ९० ।। यह सुन हिमालय बोला कि, तुम क्षणभर ठहरो, मैं सूर्य सदृश दीप्यमान विमानमें बैठाकर तुमको भेजूंगा, हे शुचिस्मिते ! रस्तेमें तुम्हारी रक्षाके लिये सेना भी देता हूं ।। ९१ ।। पार्वतीजी भी पिताके उन वचनोंको सुनकर तदनुसार दिव्यविमानपर चढकर क्षणमात्रमें अपने उत्तम भवन कैलास पहुँच गयी ।। ९२ ।। फिर महादेवजीके दर्शन करके हँसते हुए उन्हें प्रणाम करतीहुई प्रेमपूर्वक पूछने लगी कि, हे प्रभो ! आपने क्या किया ? यह तो समझमें नहीं आया पर आपने मेरा मन एकदम वहांसे खींच लिया ।। ९३ ।। प्यारीके इस कथनको सुनकर भगवान् महादेवजीने मनसे पार्वतीको आलिङ्गन किया और उनके मनके हरनेका कारण कारण कहते हुए ।। ९४ ।। बोले कि हे पार्वति ! मैंने तेरी प्राप्तिके लिये गणपतिका पूजन किया था उसी पुण्यके प्रभावसे तुम मेरे समीप आई हो ।। ९५ ।। पार्वती बोली कि, हे जगत्प्रभो ! गणेशजीका पूजन किस प्रकार करना चाहिये ? आप मुझे कहिये, मैं स्वामिकार्तिकको देखनेकी इच्छासे गणपति पूजाको करूंगी ।। ९६ ।। महादेवजी बोले कि, हे देवि ! तुम विधिवत् गणेशपूजन करो, उस पूजनकी यही विधि है कि, इक्कीस दूबके अंकुर एवम् इक्कीस ही नानाविध उत्तम पुष्पोंसे ।। ९७ ।। इस व्रतमें गणेशजीका पूजन किया जाता है और वह पूजन इक्कीस दिनपर्य्यन्त करना चाहिये । इक्कीस मोदकोंका नैवेद्य बनवाके उसमेंसे दश ब्राह्मणके, दश अपने और एक गणपतिके भेंट करदेना चाहिये और प्रतिदिन २१ अर्घ्यदान और इक्कीस ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ।। ९८ ।। महेश्वर देवके मुखसे गणेश पूजनकी विधिको सुनकर पार्वतीने गणेशजीका पूजन किया, इक्कीस दिन व्यतीत होते ही स्वामिकार्तिकजी वहां आपही चले आये ।। ९९ ।। स्वामिकार्तिकजीको देखते ही उसी समय पार्वतीजीके स्तनोंसे दूधका झरना वहने लगा । अपने पुत्रका आलिङ्गन करके मुखको वारंवार चूमने लगी ।। १०० ।। हे वत्स षण्मुख ! बहुत समयसे मुझको छोडकर तुम दूसरी जगह चले गये थे, आज मैं गणेशजीके व्रत प्रभावसे तुम्हारे मुखको देखसकी ।। १०१ ।। आज मैं तुझको देखकर कृतार्थ होगयी । इसमें सन्देह नहीं है, हे महाबुद्धे ! तुम कोप छोडो मैं शपथ करती हूं कि, अब कभीभी तुमको नाराज नहीं करूंगी ।। १०२ ।। स्वामिकार्तिक बोले कि, हे मात ! गणेशजीका पूजाविधान जैसा तुमने सुना है वैसा मुझसे कहो, मैं अपने मित्र राजा विश्वामित्रको सुनाऊँगा ।। १०३ ।। पार्वती बोली कि, हे तात ! तुम अपने मित्र विश्वामित्रसे कहो और तुमभी भक्तिपूर्वक गणेशजीका पूजन करो, उस पूजनमें इक्कीश दूबके अंकुर और इक्कीशही पुष्प चढाने चाहिये ।। १०४ ।। और इक्कीस मोदक बनवा, उनमेंसे दश मोदक ब्राह्मणके लिये देदे और दश मोहक अपने भोजनके लिये रख ले ।। १०५ ।। अवशिष्ट रहे एक मोदकको गणेशजीके भेंट करदे अर्घ्य भी इक्कीसही होने चाहिये और इक्कीस दिनतक गणेशजीका पूजन करना चाहिये ।। १०६ ।। गणेशजीके इस पूजन व्रतको जो करता है उसके चाहे हुए सभी काम सिद्ध होते हैं ।।१०७।। अपनी माताके मुखसे व्रतराजकी बिधिको सुनकर स्वामिकार्तिकनेभी उसे विधिकेसाथ किया, वो शुचिव्रत उस व्रतके प्रभावसे सेनापतियोंमें सबका शिरमौर हुआ ।।१०८।। हे विप्रोंमें अग्रगण्य ! स्वामिकार्तिकने फिर राजा विश्वामित्रको गणेजीके उस व्रतका अनुष्ठान विधान कहा, विश्वामित्रने गणेशजीको नमस्कार करके वह व्रतकिया ।। १०९ ।। उसी समय गणेशजी राजा विश्वामित्रके लिये वरदान देनेवाले होगये और बोले कि, हे राजन् ! तुम क्या चाहते हो, जो तुम मांगोगे वही दूंगा ।। १० ।। विश्वामित्र बोले कि, हे देव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे पहिले ब्रह्मर्षिपददान करो । क्योंकि इस पदके मिलनेसे ही सब पदार्थ

मिलगये ऐसा मैं मानता हूं ।। ११ । गणेशजी बोले कि, हे राजेन्द्र ! तुमको ब्रह्मर्षिपद तो विप्राग्रगण्य ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ ऋषिसे मिलेगा, इसमें संयश नहीं है यह मेरा वाक्य है ।। ११२ ।। ऐसा कहकर फिर और भी राजाके पूजित हो पूजा करनेवालोंके हितके लिये अन्यभी वरदान किया कि ।। ११३ ।। हे राजन् ! जबजब जिन जिन मनुष्योंको कलियुगमें घोर संकट उपस्थित हो तबतब उन मनुष्योंको चाहिये कि वे मेरी पूजा करें ।। ११४ ।। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मुझे बारंवार नमस्कार करते हुए याद करेंगे, उनके सब दुःखको नष्ट करूंगा इसमें संशय नहीं है ।। ११५ ।। ऐसे वरोंको देकर गणेशजी वहां ही अन्तर्हित होगये। स्वामिकार्तिक सनत्कुमारसे कहते हैं कि, हे योगीन्द्र ! सुनत्कुमार ! मैंने पार्वतीके मुखारविन्दसे ।।११६।। त्रेतायुगके आरम्भमें गणेशजीके इस बडे भारी व्रतको सुनाया, हे विप्र ! हे तपोनिधे ! वही मैंने तुम्हें कह दिया है इसे आप करें ।। ११७ ।। सनत्कुमार बोले कि, हे प्रभो ! मैं इस महान् आख्यानको सुनकर तृप्त हो गया हूँ इसमें संदेश नहीं है । सूतजी बोले कि, योगी सनत्कुमार ऐसा कहकर, स्वामिकार्तिकजीको प्रणाम करके चले गये ।। ११८ ।। मैंने सनत्कुमार और स्वामिकार्तिकका यह संवाद भगवान् वेदव्यासजीकी प्रसन्नतासे जैसा सुना था वैसाही आपके निवेदन कर दिया है ।। ११९ ।। इस गणेशजीके इक्कीस दिनके व्रतको जो मनुष्य करेगा उसके सब कार्य शीघ्रही सिद्ध होंगे ।। १२० ।। हे सब मनुष्योंमें श्रेष्ठो ! ओ तपरूप धनसेही सम्पन्नता माननेवाले ! और आप लोग क्या सुनना चाहते हो, यदि मेरे कहनेको आप सुनना चाहेंगे तो मैं सब कहूंगा ।। १२१ ।।जो मनुष्य समाहित होकर इस व्रतकी कथाको सुनेगा, उसके पृथिवी पर ही सभी वाञ्छित कार्य निश्चित ही सिद्ध होंगे ।।१२२ ।। शौनक प्रभृति मुनियोंने सूतके अद्भुत वचन सुनउन्हें प्रणाम करके अपने अपने पवित्र आसन पर विश्राम किया ।। १२३ ।। यह भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत स्कन्द और सनत्कुमारके संवादके तृतीय उल्लासमें इक्कीस दिन पर्य्यन्त गणपति पूजनके व्रतकी कथा सम्पूर्ण हुई ।।

स्कान्दोक्तदूर्वागणपतिव्रतम्

अन्यच्च–भानुवासरयुतायां यस्यां कस्यांचिच्छुक्लचतुर्थ्यामारभ्य षण्मासपर्यन्तं कर्तव्यतया विहितं स्कन्दपुराणोक्तं दूर्वागणपतिव्रतम् ।। एतदेव शिष्टाचारे श्रावणशुक्लचतुर्थीमारभ्य माघ शुक्लचतुर्थीपर्यन्तं क्रियमाणं दृश्यते ।। मासपक्ष्याद्युल्लिख्य मम समस्तपापक्षयपूर्वकसप्तजन्म राज्यसौभाग्यादिविवृद्धये महागणपतिप्रीतिद्वारा उमामहेश्वरसालोक्यसिद्धये षण्मासपर्यन्तं दूर्वागणपतिव्रतमहं करिष्ये इति संकल्प शोडशोपचारैः पूजयेत् ।। अथ कथा ।। सूत उवाच ।। कैलासशिखरे रम्ये सर्वदेवनिषेविते ।। सिद्धसंघसमाकीर्णे गन्धर्वगणसेविते ।। १ ।। देव्या सह महादेवो दीव्यत्यक्षैर्विनोदतः ।। जितासि त्वं जितेत्याह पार्वतीं परमेश्वरः ।। २।। सा पि त्वं जित इत्याह सविवादस्तयोरभूत् ।। चित्रनेमिस्तदा पृष्टो मृषावादमभाषत ।। ३ ।। तदा क्रोधसमाविष्टा गौरी शापं ददौ ततः ।। प्रसादिता ततस्तेन विशापं कुरुं पार्वति ।। ४ ।। पार्वत्युवाच ।। यदा सरोवरे रम्ये चरिष्यति भवान् भुवि ।। तदा स्वर्गणिकाः सर्वा वीक्ष्यसे त्वं समागताः ।। ५ ।। तदा भव विशापस्त्वमित्युक्तः स पपात ह ।। ततः कतिपयाहोभिः कृष्णानन्तसरोवरे ।।६।। कृष्णो भूत्वा सवसंस्तत्रददर्श स्वर्विलासिनीः ।। ततस्तु सादरं गत्वा पप्रच्छ प्रणिपत्य ताः ।। ७ ।। क्रियते किं महाभागाः पूजायां वाञ्छितं च किम् ।। ततस्ता अब्रुवंस्तस्मै दूर्वाबिघ्नेश्वरव्रतम् ।। ८।। क्रियतेऽस्माभिरिह च परत्राभीष्टसिद्धये ।। ततोऽब्रवीच्चित्रनेमिर्व्रतं मे दातुमर्हथ ।। ९ ।। येनाहं गिरिजाशापान्मुच्येयं चिरदुः-

खितः ।। ततस्ता अब्रुवन्सर्वा व्रतमेतदनुत्तमम् ।। १० ।। दूर्वाविघ्नेश्वरो यत्र पूज्यते सर्वसिद्धिदः ।। शुक्लपक्षे चतुर्थी या भानुवारेण संयुता ।। ११ ।। तस्यां तिथौ समारम्य षण्मासं व्रतमाचरेत् ।। प्रत्यहं षण्नमस्काराः षड्दूर्वाः षट् प्रदक्षिणाः ।। १२ ।। शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां च प्रत्येकं चैकविंशतिः । एकभक्तं च कर्तव्यं कथां च शृणुयादिमाम् ।। १३ ।। ध्यायेद्विनायकं देवं समाहितमनाः सदा ।। तरुणारुणसंकाशं सर्वाभरणभूषितम् ।। १४ ।। जटाकलापसुभगं कुङ्कुमेनोपरञ्जितम् ।। गजाननं प्रसन्नास्यं सिन्दूरतिलकाङ्कितम् ।। १५ ।। विशालवक्षसं भातमुक्तामणिविभूषितम् ।। चतुर्भुजमुदाराङ्गं किंकिणीकंकणैर्युतम् ।। १६ ।। पा शाङ्कुशधरं देवं दन्तमोदकधारिणाम् ।। महोदरं महानागबद्धकुक्षिं मुदान्वितम् ।। १७ सुन्दरांशुकसंवीतमिभास्यमपराजितम् । प्रणतामरसन्दोहमौलिमाणिक्यरश्मिभिः ।। १८ ।।। विराजितांघ्रिकमलं सर्वं देवनमस्कृतम् ।। अभीष्टफलदं देवं सर्वभूतोपकारकम् ।। १९ ।। एवं ध्वात्वा यजेन्नित्यं विनायकमतन्द्रितः ।। एवं चरित्वा षण्मासाञ्छुचिः सत्यपरायणः ।। २० ।। पश्चाद्गन्धादिदूर्वाभिरर्चयेत्तं सदा पुनः ।। उद्यापनं प्रकर्तव्यं देशकालानुसारतः ।। २१ ।। ततो मगधदेशस्य मानेन यवपिष्टकम् ।। दशमानकमादाय दशाष्टावपि मोदकान् ।। २२ ।। कृत्वा घृतप्लुतान्सम्यक्षड् देवाय षडात्मने ।। षट् विप्राय दातव्याः श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।। २३ ।। विनायकं गणाध्यक्षं विघ्नेशं श्रीगणाधिपम् ।। वरदं सुमुखं चैव दूर्वाषट्कैः प्रपूजयेत् ।। २४ ।। षड्दूर्वाश्च तथा दद्यान्महापूजां प्रकल्पयेत् ।। एवं कुरु महेशानप्रीत्यर्थमभिवांच्छितम् ।।२५।। तथेत्युक्त्वा चित्रनेमिः प्रीणयित्वा विनायकम् ।। शापान्मुक्तस्ततः शम्भुमभ्यगात् प्रहसन्निव ।। २६ ।। शंकरेण ततः पृष्टश्चित्रनेमिर्व्रतं जगौ ।। व्रतं श्रुत्वा ततः शंभुर्गणेशस्य कुतूहलात् ।। २७ ।। गौरीकोपप्रसादाय शिवोऽपि कृतवानथ ।। सापि देवी शिवेनोक्तं चक्रे व्रतमनुत्तमम् ।। २८ ।। कार्तिकेयोऽपि मात्रोक्तः स्वसख्युर्दर्शनेच्छया ।। व्रतं चकार नन्दी च कार्तिकेयोक्तमादरात् ।। २९ ।। सोऽपि राजप्रसादाय पुत्रार्थं च चकार ह ।। ततः क्रमेण लोकेऽस्मिन् प्रचुरीभूतमुत्तमम् ।। ३० ।। व्रतं दूर्वागणेशस्य सर्वसिद्धिकरं परम् ।। शोकव्याधिभयोद्वेगबन्धव्यसनदुःखतः ।।३१।। विमुक्तः पुत्रपौत्रादि धनधान्यसमावृतः ।। इहलोके सुखी भूत्वा पश्चाच्छिवपुरं व्रजेत् ।। ३२ ।। व्रतेनानेन दूर्वाख्यविघ्नेशस्य प्रसादतः ।। यः पठेत्परया भक्त्या कथामेतां दिनेदिने ।। शृणुयाद्वापि सततं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।। ३३ ।। इतिश्रीस्कन्दपुराणोक्तं दूर्वागणपतिव्रतम् ।।

---

१ प्राप्तुमिति शेषः

छः महीनेतक करनेका दूर्वागणपति व्रत–

इसके अलावा रविवार युक्ता जिस किसी महीनेकी शुक्ला चतुर्थीके दिन आरम्भकर छः महीनेतक करने योग्य, स्कन्द पुराणका कहा हुआ दूर्वा गणपतिका व्रत है । यही दूर्वाचतुर्थीव्रत शिष्टोंके व्यवहारके कारण श्रावण सुदि चौथसे आरंभकर माघसुदि चौथतक किया जाता है । यानी रविवार शुक्ला चतुर्थीसे लेकर छः मास तक किये जानेवाला इक्कीस दिनका दूर्वा गणपतिका व्रत स्कन्द और सनत्कुमारके संवादके रूपमें कहा है । इसे अच्छे अच्छे लोग श्रावण शुक्ला चतुर्थी से लेकर माघ शुक्ला चौथतक करते हैं यह तात्पर्य है । इस व्रतका संकल्प करती बार मास, पक्ष आदिका उल्लेख करके कहे कि, मेरे समस्त पापोंके नाश पूर्वक सात जन्मोंमें राज्य और सौभाग्यकी वृद्धिके लिये तथा महागणपतिकी प्रीतिद्वारा उमामहेश्वरके सालोक्यके लिये छः मासतक दूर्वागणपतिका व्रत मैं करूंगा । संकल्पके बाद सोलहों उपचारोंसे गणेशजीका पूजन करना चाहिये । अथ कथा–सिद्धोंके समूहसे समाकीर्ण, गन्धर्व जनोंसे सेवित तथा सब देवता जिसका निरन्तर सेवन करते रहते हैं ऐसे कैलासके रमणीक शिखरपर ॥ १ ॥ पार्वतीजीके साथ पासोंसे खेलते खेलते बोले कि, तुम जीत गईं जीत गईं ॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि, आप जीत गये आप जीत गये, यही दोनोंका विवाद हो गया. उस समय चित्रनेमिसे पूछा तो वो झूठ बोलने लगा ॥ ३ ॥ उस समय पार्वतीजीने क्रोधमें आकर शाप दे दिया । चित्रनेमिने खुशामद की कि हे पार्वति ! मुझे शाप रहित कर दीजिये ॥ ४ ॥ ऐसा सुनकर पार्वतीजी बोलीं कि जब तुम घूमते हुए रमणीक सरोवर पर आई हुई सब अप्सराओंको देखोगे ॥ ५ ॥ उस समय तुम शापसे रहित होजाओगे, यह सुनकर वो गिर गया, इसके कुछ दिनोंके पीछे कृष्णानन्त नामके सरोवर पर ॥ ६ ॥ कुष्ठी होकर रहने लगा एक दिन वो कृष्ण स्वर्गकी विलासिनियोंको देख, आदर पूर्वक उनके पास पहुंचकर प्रणाम करके पूछने लगा ॥ ७ ॥ कि हे महाभागो ! क्या करती हो, इस पूजासे आप क्या चाहती हैं ? यह सुनके सारी बोलीं कि, हम दूर्वा गणपतिका व्रत ॥ ८ ॥ अपने इस लोक और परलोकको इच्छाओंकी पूर्तिके लिये करती हैं । यह सुनकर चित्रनेमि बोला कि इस व्रतकोमुझे दे दीजिये ॥ ९ ॥ मैं बहुत समयसे दुःखी हूं इससे मैं पार्वतीके शापसे छूट जाऊंगा फिर उन सबोंने उस व्रतको कहा ॥ १० ॥ जिसमें सब सिद्धियों का देनेवाला दूर्वागणपति पूजा जाता है । जो शुक्लपक्षकी रविवारी चौथ हो ॥ ११ ॥ उसमें आरंभ करके छः मासतक व्रत करना चाहिये प्रतिदिन छः दूर्वा, छः नमस्कार और छः प्रदक्षिणाएं करनी चाहिये ॥ १२ ॥ किन्तु शुक्ल पक्षकी [illegible] इक्कीस प्रणाम इक्कीस दूर्वा और इक्कीस प्रदक्षिणाएं एकवार भोजन और इस कालतक लवण न खाना चाहिये ॥ १३ ॥ सदा एकाग्रचित्तसे विनायक देवका ध्यान करना चाहिये कि, सूल निकले हुए अरुणकीसी आभावाले, सब आभरणोंसे भूषित ॥ १४ ॥ सुन्दर जटावाले, सुभग एवम् कुंकुम लगाये हुए सिन्दूरके तिलकको लगाये हुए, मुखपर चमकती हुई प्रसन्नतावाले गजमुख ॥ १५ ॥ तथा बडी बडी बगलोंवाले, चमकनेवाली मुक्तामणियोंसे विभूषित, चतुर्भुजी, लम्बे चौड़े शरीरवाले, किंकिनी और कडूलोंको पहिने हुए ॥ १६ ॥ पाश और अंकुश हाथोंमें लिये हुए टूटादांत लड्डू रखेहुए,बड़े पेटवाले बड़े नागोंसे कसे पेटवाले, प्रसन्न चित्त ॥ १७ ॥ सुन्दर वस्त्रोंको पहिने हुए इभके मुखवाले, किसीसे न हारने-वाले, नमस्कार करनेवाले देवजन समूहोंके शिरोंके माणिक्योंको रश्मियोंसे ॥ १८ ॥ जिनके चरण कमल विराज रहे हैं जिसको सबदेव नमस्कार करते हैं जो देव सबको अभीष्ट फलका देनेवाला तथा सब भूतोंका उपकारक है ॥ १९ ॥ इस प्रकार गणेशजीका ध्यान, निरालस होकर करना चाहिये सत्यपरायण और पवित्र होकर इस व्रतको करके ॥ २० ॥ पीछे गन्ध दूर्वा आदिसे हमेशाही गणपतिजीका पूजन करते रहना चाहिये, पीछे देश काल के अनुसार उद्यापन करना चाहिये ॥ २१ ॥ मगधदेशके मानसे दशमानक यवपिष्ट लेकर अठारह लडडू बना ॥२२॥ उन सबको घीसे भलीभांति भिगोकर उनमेंसे छः लड्डू षड़ात्मदेवकी भेंट कर दे तथा छः वेदपाठी कुटुम्बी ब्राह्मणको दे दे ॥ २३ ॥ विनायक, गणाध्यक्ष विघ्नेश, गणाधिप, वरद और सुमुख इन नामोंके आदिमें ओम् और अन्तमें नमः लगा नामोंको चतुर्थ्यन्त करके इनसे छः दूर्वाओंसे पूजन करना चाहिये ॥ २४ ॥ छः दूर्वाओंको देकर महापूजा करनी चाहिये आप गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये इस व्रतको करें ॥ २५ ॥ चित्रनेमिने देवाङ्गनाओंसे कहा कि अच्छी बात है मैं व्रत करूंगा, पीछे गणेशजीका

व्रत करके शापसे मुक्त हो महादेवजीके पास हँसता हुआ पहुंच गया ।। २६ ।। महादेवजीके पूछनेपर चित्रनेमिने महादेवजीके सामने इस व्रतको कहा और शंभुने बडे ही कुतूहलसे ।। २७ ।। गौरीके क्रोधको शान्त करनेके लिये किया शिवजीके उपदेशसे पार्वतीजीने भी इस उत्तम व्रतको किया ।। २८ ।। कार्तिकेयने भी माताके उपदेशसे अपने मित्रके देखनेकी इच्छासे प्रेरित होकर इस व्रतको आदर पूर्वक किया कार्तिकेयके मुखसे सुनकर नंदिकेश्वरने भी इस व्रतको आदरके साथ किया ।। २९ ।। नन्दिकेश्वरने भी राजकीय प्रसन्नता और पुत्रके लिये एकान्तमें इस व्रतको किया इसी तरह क्रमसे यह उत्तम व्रत लोकमें प्रचलित होगया ।। ३० ।। सब सिद्धियोंको देनेवाले दूर्वागणेशके इस उत्तम व्रतको करके शोक, व्याधि, भय, उद्वेग, बन्ध और व्यसनोंसे ।। ३१ ।। छूटकर पुत्र पौत्र, धन, धान्य सब कुछ पाजाता है इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें शिव लोकमें जाता है ।। ३२ ।। इस व्रतके प्रभावसे दूर्वागणेशजीकी प्रसन्नता होनेसे सब कुछ होजाता है । जो नर रोज परम भक्तिके साथ इस व्रतको करता है अथवा जो इसे निरन्तर सुनता है वह भी सब सिद्धिको पाजाता है ।। ३३ ।। यह स्कन्दपुराणका कहा हुआ दूर्वागणपतिका व्रत पूरा हुआ ।।

सिद्धिविनायकव्रतम्

अथ भाद्रपदशुक्लचतुर्थ्यां सिद्धिविनायकव्रतं हेमाद्रौ स्कान्द-तच्च मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम् ।। प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप ।। इति तत्रैव पूजाविधानात् ।। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पूर्वाऽन्यथा परा-चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते ।। मध्याह्नव्यापिनी सा तु परतश्चेत्परेऽहनि ।। इतिबृहस्पत्युक्तेः । अथ व्रतविधिः ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे च पुत्रपौत्रधनविद्याजययशः स्त्रीप्राप्त्यर्थमायुष्याभिवृद्ध्यर्थं च सिद्धि-विनायकप्रीत्यर्थं यथाज्ञानेन पुरुषसूक्तपुराणोक्तमंत्रैर्ध्यानावाहनादिषोडशोपचारैः पञ्चामृतैः सह पार्थिवगणपतिपूजनं करिष्ये ।। तथा मूर्तौ प्राणप्रतिष्ठादिक-मासनादिकं कलशाराधनं पुरुषसूक्तन्यासांश्च करिष्ये ।। हेरम्बाय० मृदाहरणम् ।। सुमुखाय० संघट्टनम् ।। गौरीसुताय० स्थापनम् ।। अथ प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।। अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ।। ऋग्यजुः सामाथर्वाणि च्छन्दांसि ।। क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता ।। आंबीजम् ।। ह्रीं शक्तिः ।। क्रों कीलकम् ।। अस्यां मूर्तौ प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः अं आंह्रीं क्रौं अं यं रं लं वं शं षं हं ळं क्षं अः अस्यां मूर्तौ प्राणा इह प्राणाः ।। पुनः ॐ आं ह्रीं क्रों अं० अस्यां मूर्तौ जीव इह स्थितः ।। पुन ॐ आं० अस्यां मूर्तौ सर्वेन्द्रियाणि । श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-घ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।। असुनीते पुनरिति ऋचं पठित्वा गर्भाधानादिपञ्चदशसंस्कार सिद्ध्यर्थं पञ्चदशप्रणवावृत्तीः करिष्ये संकल्प पञ्चदशवारं प्रणवमावर्त्य तच्चक्षुर्देवहितम् इतिमन्त्रेण देवस्या-ज्येन नेत्रोन्मीलनं कृत्वा पञ्चोपचारैः पूजनं कुर्यात् । आसनविधिं कृत्वा पुरुष-सूक्तन्यासान् विधाय पूजनमारभेत् ।। एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।। पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धि विनायकम् ।। ध्यायेद्देवं महाकायं तप्तकाञ्चन-सन्निभम् ।। दन्ताक्षमालापरशुपूर्णमोदकहस्तकम् । मोदकासक्तशुण्डाग्रमेकदन्तं विनायकम् ।। ध्यानम् ।।आवाहयामि विघ्नेश सुरराजार्चितेश्वर ।। अनाथनाथ

सर्वज्ञ पूजार्थं गणनायक ।। सहस्रशीर्षेत्यावहनम् ।। विचित्ररत्नरचितं दिव्यास्तरण-संयुतम् ।। स्वर्णसिंहासनं चारु गृहाण सुरपूजित ।। पुरुषएवेदं० आसनं० ।। सर्व-तीर्थसमानीतं पाद्यं गन्धादिसंयुतम् ।। विघ्नराज गृहाणेनदं भगवन् भक्तवत्सल ।। एतावा० पाद्यम् ।। अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ।। गणाध्यक्ष नमस्तेस्तु गृहाण करुणानिधे ।। त्रिपादूर्ध्वं० अर्घ्यम्।।दध्याज्यमधुसंयुक्तं मधुपर्कं मयाहृतम् ।। गृहाण सर्वलोकेश गणनाथ नमोस्तु ते ।। मधुपर्कम् ।। विनायक नमस्तुभ्यं त्रिदशैर-भिवन्दित ।। गङ्गाहृतेन तोयेन शीघ्रमाचमनं कुरु ।। तस्माद्वि० आचमनम् ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतं गृहाणेदं स्नानाय गणनायक ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतं तोयमुत्तमम् ।। भक्त्या समर्पितं तुभ्यं स्नानायाभीष्टदायक ।। यत्पुरुषेण० स्नानम् ।। रक्तवस्त्रयुगं देव दिव्यं काञ्चनसंभवम् ।। सर्वप्रद गृहाणेदं लम्बोदर हरात्मज ।। तं यज्ञ० वस्त्रम् ।। राजतं ब्रह्मसूत्रं च काञ्चनं चोत्तरीयकम् ।। गृहाण चारु सर्वज्ञ भक्तानां वरदो भव ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतम्० यज्ञोपवीतम् ।। उद्यद्भास्करसंकाशंसन्ध्यावदरुणं प्रभो ।। वीरालंकरणं दिव्यं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ।। सिन्दूरम् ।। नानाविधानि दिव्यानि नानारत्नोज्ज्वलानि च ।। भूषणानि गृहाणेश पार्वतीप्रियनन्दन ।। आभर-णानि ।। कस्तूरीरोचनाचन्द्रकुङ्कुमैश्च समन्वितम् ।। विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच इति गन्धम् ।। रक्ताक्षतांश्च देवेश गृहाण द्विरदानन ।। ललाटपटले चन्द्रस्तस्योपरि विधार्यताम् ।। अक्षतान् ।। माल्यादीनि सुगंधीनि० करवीरैर्जातिकुसुमैश्चंपकैर्बकुलैः शुभैः ।। शतपत्रैश्च कह्लारैरर्चयेयं-द्गणनायकम् ।। तस्मादश्वेति पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा-गणेश्वराय नमः पादौ पूजयामि ।। विघ्नराजाय० जानुनीपू० । आखुवाहनाय० ऊरूपू० । हेरंबाय० कटीपू० । कामारिसूनवे० नाभिपू० । लंबोदराय उदरंपू० । गौरीसुताय० स्तनौपू० । गणनायकाय० हृदयंपू० स्थूलकर्णाय० कण्ठंपू० । स्कन्दाग्रजाय० स्कंधौपू० । पाशहस्ताय० हस्तौपू० । गजवक्त्राय० वक्त्रंपू० । विघ्नहर्त्रेन० ललाटंपू० । सर्वेश्व-राय० शिरपूःपू० । गणाधिपाय० सर्वांगपू० ।अथ पत्रपूजा-सुमुखाय० मालतीपत्रं समर्पयामि । अधिपाय भृङ्गराजपत्रम्० । उमापुत्राय० बिल्वप० । गजाननाय० श्वेतदूर्वाय० । लंबोदराय० बदरीप० । हरसूनवे० धत्तूरप० । गजकर्ण । काय० तुलसीप० वक्रतुण्डाय० शमीपत्रं० । गुहाग्रजाय० अपामार्गप० । एकदन्ताय० बृहतीप० विकटाय० करवीरप० । कपिलाय० अर्कप० गजदन्ताय० अर्जुनप० । विघ्नराजाय० विष्णुक्रांताप० । बटवे० दाडिमीपत्रम् । सुराग्रजाय० देवदारुप० । भालचन्द्राय० मरुप० । हेरम्बाय० अश्वत्थप० ; चतुर्भुजाय० जाप० । विनायकाय० केतकीप० । सर्वेश्वराय० अगस्तिप० । दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं सुगन्धं च मनोहरम् ।।

गृहाण सर्वदेवेश उमापुत्र नमोस्तु ते ।। यत्पुरुषम्० धूपम् ।। सर्वज्ञ सर्वलोकेश त्रैलोक्यतिमिरापह । गृहाण मङ्गलं दीपं रुद्रप्रिय नमोऽस्तु ते ।। ब्राह्मणोऽस्य० दीपम् । नैवेद्यं गृह्यतां देव० नानाखाद्यमयं दिव्यं नैवेद्यं ते निवेदितम् । मया भक्त्या शिवापुत्र गृहाण गणनायक ।। चन्द्रमामन० नैवेद्यम् ।। एलोशीरलवङ्गा-दिकर्पूरपरिवासितम् ।। प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण गणनायक ।। मध्ये पा० उत्त-रापो० मुखप्रक्षालनम् ।। मलयाचलसंभूतं कर्पूरेण समन्वितम् ।। करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगतः पते ।। करोद्वर्तनम् ।। बीजपूराम्रपनसखजूरीकदलीफलम् ।। नारि-केलफलं दिव्यं गृहाण गणनायक ।। इदं फलं मया० फलम् ।। एकविंशतिसंख्याकान् मोदकान् घृतपाचितान् ।। नैवेद्यं सफलं दद्यान्नमस्ते विघ्ननाशिने ।। गणेशाय० मोदकार्प० । पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्ल्याद० ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षि-णाम् ।। वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।। पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रति-गृह्यताम् ।। भूषणानि ।। दूर्वायुग्मं गृहीत्वा तु गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ।। पूजयेत्सिद्धि-विघ्नेशं प्रत्येकं पूर्वनामभिः ।। गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन ।। एकदन्ते-भवक्त्रेति तथा मूषकवाहन ।। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक ।। कुमारगुरवे नित्यं पूजनीयः प्रयत्नतः ।। इतिदूर्वार्पणम् ।। चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युद-ग्निस्तथैव च ।। त्वमेव सर्वतेजांसि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नीराजनम् ।। विघ्ने श्वर विशालाक्ष सर्वाभीष्टफलप्रदा । प्रदक्षिणं करोमि त्वां सर्वान्कामान् प्रयच्छ मे ।। नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणां० नमस्ते विघ्नसंहर्त्रे नमस्ते ईप्सितप्रद ।। नमस्ते देवदेवेश, नमस्ते गणनायक ।। सप्तास्यासन्परि० नमस्कारान् ।। विनायकेशपुत्रः त्वं गजराज सुरोत्तम् ।। देहि मे सकलान् कामान्वन्दे सिद्धिविनायक ।। यज्ञेनयज्ञ० मन्त्रपुष्पं स० ।। यन्मयाचरितं देव व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।। गणेश त्वं प्रसन्नः सन्सफलं कुरु सर्वदा ।। विनायक गणेशान सर्वदेवनमस्कृत ।। पार्वतीप्रिय विघ्नेश मम विघ्नान्निवारय ।। प्रार्थनाम् ।। अथैकविंशतिं गृह्य मोदकान् घृतपाचितान् ।। स्थापयित्वा गणाध्यक्षसमीपे कुरुनन्दन ।। दश विप्राय दातव्याः स्थापयेद्दश आत्मनि ।। एकं गणाधिपे दद्यात्सघृतं मोदकं शुभम् ।। दशानां मोदकानां च फलदक्षिणया युतम् ।। विप्राय फलसिद्धचर्थं वायनं प्रददाम्यहम् ।। वायनमन्त्रः ।। विनायकस्य प्रतिमां वस्त्रयुग्मेन वेष्टिताम् ।। तुभ्यं संप्रददे विप्र प्रीयतां मे गजा-ननः ।। गणेशः प्रतिगृह्णाति गणेशो वै ददाति च ।। गणेशस्तारकोभाभ्यां गणेशाय नमोनमः ।। इति प्रतिमादानमन्त्रः ।। अथ कथा ।। शौनकाद्या ऋषि गणा नैमि-षारण्यवासिनः ।। सूतं पौराणिक श्रेष्ठमिदमूचुर्वचस्तदा ।। १ ।। ऋषय ऊचुः ।। निर्विघ्ने तु कार्याणि कथं सिद्धचन्ति सूतज ।। अर्थसिद्धिः कथं नृणां पुत्रसौभाग्य-

सम्पदः ।। २ ।। दम्पत्योः कलहे चैव बन्धुभेदे तथा नृणाम् ।। उदासीनेषु लोकेषु कथं सुमुखता भवेत् ।। ३ ।। विद्यारम्भे तथा नृणां वाणिज्ये च कृषौ तथा ।। नृपतेः परचक्रे च जयसिद्धिः कथं भवेत् ।। ४ ।। कां देवतां नमस्कृत्य कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।। एतत्समस्तं विस्तार्य ब्रूहि मे सूत पृच्छतः ।। ५ ।। सूत उवाच ।। सन्नद्धयोः पुरा विप्राः कुरुपाण्डवसेनयोः ।। पृष्ठवान् देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।। ६ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। निर्विघ्नेन जयं मह्यं वद त्वं देवकीसुत ।। कां देवतां नमस्कृत्य सम्यग्राज्यं लभेमहि ।। ७ ।। कृष्ण उवाच ।। पूजयस्व गणाध्यक्षमुमामलसमुद्भवम् ।। तस्मिन्सम्पूजिते देवे ध्रुवं राज्यमवाप्स्यसि ।। ८ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। देव केन विधानेन पूजनीयो गणाधिपः ।। पूजितस्तु तिथौ कस्यां सिद्धिदो गणपो भवेत् ।। ९ ।। कृष्ण उवाच ।। मासि भाद्रपदे शुक्ले चतुर्थ्यां पूजयेन्नृप ।। मासि माघे श्रावणे वा मार्गशीर्षेऽथवा भवेत् ।। १० ।। गजवक्त्रं तु शुक्लायां चतुर्थ्यां पूजयेन्नृप ।। यदा चोत्पद्यते भक्तिस्तदा पूज्यो गणाधिपः ।। ११ ।। प्रात- शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप ।। निष्कमात्रसुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। १२ ।। स्वशक्त्या गणनाथस्य स्वर्णरौप्यमयाकृतिम् ।। अथवा मृत्मयीं कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। १३ ।। एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।। पशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् ।। १४ ।। [1]ध्यात्वा चानेन मन्त्रेण स्नाप्य पञ्चामृतैः पृथक् ।। गणाध्यक्षेति नाम्ना वै गन्धं दद्याच्च भक्तितः ।। १५ ।। आवाहनार्थे पाद्यं च दत्त्वा पश्चात्प्रयत्नतः ।। रक्तवस्त्रयुगं सर्वप्रदं दद्याच्च भक्तितः ।। १६ ।। विनायकेति पुष्पाणि धूपं चोमासुताय च ।। दीपं रुद्रप्रियायेति नैवेद्यं विघ्ननाशिने ।। १७ ।। किञ्चित्सुवर्णपूजां च ताम्बूलं च समर्पयेत् ।। ततो दूर्वाङ्कुरान् गृह्य विंशतिं चैकमेव हि ।। १८ ।। पूजनीयः प्रयत्नेन एभिर्नामपदैः पृथक् ।। गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन ।। १९ ।। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक ।। एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन ।। २० ।। कुमारगुरवे तुभ्यं पूजनीयः प्रयत्नतः ।। दूर्वायुग्मं गृहीत्वा तु गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ।। २१ ।। एकैकेन तु नाम्ना वै दत्त्वैकं सर्वनामभिः ।। अथैकविंशतिं गृह्य मोदकान् घृतपाचितान् ।। २२ ।। स्थापयित्वा गणाध्यक्षसमीपे कुरुनन्दन ।। दश विप्राय दातव्याः स्वयं ग्राह्यास्तथा दश ।। २३ ।। एकं गणाधिपे दद्यात्सननैवेद्यं नृपोत्तम ।। विनायकस्य प्रतिमां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। २४ ।। विनायकस्य प्रतिमां वस्त्रयुग्मेनवेष्टिताम् ।। तुभ्यं संप्रददे विप्र प्रीयतां मे गजाननः ।। २५ ।। विनायक गणेश त्वं सर्वदेवनमस्कृत पार्वतीप्रिय विघ्नेश मम विघ्नं विनाशय ।। २६ ।। गणेशः प्रतिगृह्णाति गणेशो

१ पूजनमितिशेषः २ पाठक्रमादर्थक्रमस्य बलीयस्त्वात्प्रसिद्धपूजोक्तः क्रमोऽत्र बोध्यः

वै ददाति च ।। गणेशस्तारकोभाभ्यां गणेशाय नमो नमः ।। २७ ।। कृत्वा नैमित्तिकं कर्म पूजयेदिष्टदेवताम् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भुञ्जीयात्तैलवर्जितम् ।। २८ ।। एवं कृते धर्मराज गणनाथस्य पूजने ।। विजयस्ते भवेन्नूनं सत्यं सत्यं मयोदितम् ।। २९ ।। त्रिपुरं हन्तुकामेन पूजितः शूलपाणिना ।। शक्रेण पूजितः पूर्वं वृत्रासुरवधेच्छया ।। ३० ।। अन्वेषयन्त्या भर्तारं पूजितोऽहल्यया पुरा ।। नलस्यान्वेषणार्थाय दमयन्त्या पुरार्चितः ।। ३१ ।। रघुनाथेन तद्वच्च सीतायान्वेषणे पुरा ।। द्रष्टुं सीतां महाभागां वीरेण च हनूमता ।। ३२ ।। भगीरथेन तद्वच्च गङ्गामानयता पुरा ।। अमृतोत्पादनार्थाय तथा देवासुरैरपि ।। ३३ ।। अमृतं हरता पूर्वं वैनतेयेन पक्षिणा ।। आराधितो गणा ध्यक्षो ह्यमृतं च हृतं बलात् ।। ३४ ।। रुक्मिण हंतुकामेन पूजितोऽसौ मया प्रभुः ।। तस्य प्रसादाद्राजेन्द्र रुक्मिणीं प्राप्तवाहनम् ।। ३५ ।। यदा पूर्वं हि दैत्येन हृतो रुक्मिणिनन्दनः ।। आराधितो मया तद्वद्रुक्मिण्या सहितेन च ।। ३६ ।। कुष्ठव्याधियुतेनाथ साम्बेनाराधितः पुरा ।। जयकामस्तथा शीघ्रं त्वमाराधय शांकरिम् ।। ३७ ।। विद्याकामो लभेद्विद्यां धनकामो धनं तथा ।। जयं च जयकामस्तु पुत्रार्थो विन्दते सुतान् ।। ३८ ।। पतिकामा च भर्तारं सौभाग्यं च सुवासिनी ।। विधवा पूजयित्वा तु वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित् ।। ३९ ।। वैष्णव्याद्यासु दीक्षासु आदौ पूज्यो गणाधिपः ।। तस्मिन्संपूजिते विष्णुरीशो भानुस्तथा ह्युमा ।।४०।। हव्यवाहमुखा देवाः पूजिताः स्युर्न संशयः ।। चण्डिकाद्या मातृगणाः परितुष्टा भवन्ति च ।। ४१ ।। तस्मिन्संपूजिते विप्रा भक्त्या सिद्धिविनायके ।। एवंकृते धर्मराज गणनाथस्य पूजने ।। ४२ ।। प्राप्स्यसि त्वं स्वकं राज्यं हत्वा शत्रून् रणाजिरे ।। सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि नात्र कार्या विचारणा ।। ४३ ।। एवमुक्तस्तु कृष्णेन सानुजः पाण्डुनन्दनः ।। पूजयामास देवस्य पुत्रं त्रिपुरघातिनः ।। ४४ ।। शत्रुसंघंनिहत्याजौ प्राप्तवान्राज्यमोजसा ।। सूत उवाच ।। यः पूजयेन्मन्दभाग्यो गणेशं सिद्धिदायकम् ।। ४५ ।। सिद्ध्यन्ति तस्य कार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि ।। ख्यातिं गमिष्यते तेन नाम्ना सिद्धिविनायकः ।। ४६ ।। य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।। सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि विनायकप्रसादतः ।।४७।। इति सिद्धि विनायकव्रतं भविष्योक्तं संपूर्णम् ।।

सिद्धिविनायकव्रत–भाद्रपद शुक्ला चौथके दिन होता है । यह स्कन्दपुराणसे लेकर हेमाद्रिने कहा है इसको मध्याह्नकालव्यापिनी चौथेके दिन करना चाहिये, क्योंकि हेराजन् ! प्रातःकाल शुक्ल तिल मिश्रित जलसे स्नान करके मध्याह्नमें गणेशका पूजन करना चाहिये, यह यहां मध्याह्न कालमें पूजाका विधान किया गया है । यदि दोनोंही दिन मध्याह्नव्यापिनी मिले अथवा दोनोंही दिन न मिले अथवा एकदेशव्याप्ति हो तो पूर्वा ही लेनी चाहिये, नहीं तो परकाही ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि, बृहस्पतिने कहा है कि, गणेशके व्रतमें तृतीया विद्धा चौथ उत्तमा होती है, यदि पर दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तो पंचमीसहिता दूसरे दिन की जाती है । व्रतविधि-संकल्प करतीवार मास पक्ष आदि का उल्लेख करके कहना चाहिये कि मेरे इस जन्म और

जन्मातरोंमें पुत्र, पौत्र, धन, विद्या, जय, यश और स्त्रीकी प्राप्तिके लिये और आयुष्यकी वृद्धिके लिये और सिद्धिविनायककी प्रसन्नताके लिये जैसा मुझे ज्ञान है उसके अनुसार पुरुषसूक्त और पुराणके कहे हुए मन्त्रोंसे ध्यान आवाहन और षोडशोपचारोंके साथ पंचामृतसे पार्थिव गणपतिका पूजन मैं करूंगा । तैसेही मूर्तिमें प्राण प्रतिष्ठा आदिके आसन आदिक कलशाराधन और पुरुषसूक्तका न्यास करूंगा ।। पीछे शुद्ध जगहसे 'ओम् हेरम्बायनमः' मृत्तिकामाहरामि, हेरम्बके लिये नमस्कार है, मृत्तिका लेता हूं इससे मिट्टी ग्रहणकर 'ओम् सुमुखाय नमः' सुमुखके लिये नमस्कार है, इस मंत्रको बोलते हुए मूर्ति बनाना चाहिये । 'ओम् गौरी-सुताय नमः' गौरी सुतको नमस्कार है इससे स्थापन करना चाहिये । इसके बाद प्राणप्रतिष्ठा होती है (अस्य श्री 'यहांसे लेकर पंचदशवारं प्रणवमावृत्य' यहांतक प्राणप्रतिष्ठा पृष्ठ ३१ में एकसी है इसी कारण इतनेका यहां अर्थ नहीं करते हैं) 'ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरास्ताच्छुक्र उच्चरत् पश्येम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतम्-अदीनाः स्याम शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात् वेदभाष्य तथा सन्ध्या आदिकमें सूर्यकी प्रार्थनामें इसका अर्थ किया है तथा विनियोग भी किया है पर यहां आज्यसे देवके नेत्रोन्मीलनमें इसका प्रयोग है इस कारण अर्थ भी ऐसाही होना चाहिये कि हे देव ! हितकारीआपके वे नेत्र घृतसे खुल गये जैसे आप अपने नेत्रोंसे देखते हैं उसी तरह हम भी सौवर्षतक देखते रहें, तथा सुनना और कहना भी सौवर्षतक रहे, न सौवर्षतक दीन ही हों फिर भी हम सौसे भी अधिक सौवर्षतक ये सब भोगें, इस मंत्रको बोलकर घीसे नेत्र खोलकर पंचोपचारसे पूजन करना चाहिये । आसनविधिके बाद पुरुषसूक्तके न्यासोंको करना चाहिये, वो इस प्रकार होता है—"ओम् सहस्रशीर्षा" इत्यादि षोडश मंत्रोंसे १ शिखा २ ललाट ३ नेत्र ४ कर्ण ५ नासा ६ कण्ठ ७ वक्षःस्थल ८ नाभि ९ कटि १० जघन ११ ऊरु १२ जंघा १३ जानु १४ गुल्फ १५ पाद पार्ष्णिव एवं १६ पादतलभागमें स्पर्श करे । ऐसे ही पादतलादि शिखापर्यन्तस्थानोंमें करके फिर विपरीत क्रमसे हस्त न्यास करे । फिर समस्तमूर्तिका स्पर्श करता हुआ इन मन्त्रोंको पढना चाहिये । 'एकदन्त' इन मन्त्रोंको पढकर भगवान् गजाननदेवका ध्यान करे । इन मन्त्रोंका यह अर्थ है कि, एकदन्त शूर्पकर्ण, गजसदृश मुख, चर्तुभुजी, पाश तथा अंकुशको धारण करनेवाले, सिद्धिविनायक देवताका मैं ध्यान करता हूं, महान् शरीर, तप्तकाञ्चनके सदृश उज्ज्वलाकृति, दन्त, रुद्राक्षमाला, परशु एवं मोदकोंको धारण करनेवाले, शुण्डके अग्रभागमें मोदकको ग्रहण करते हुए एक दन्तविनायक भगवान् मैं ध्यान करता हूं 'आवाहयामि' इससे आवाहनके लिये प्रार्थना करे । इसका यह अर्थ है कि हे विघ्नराज ! हे समस्त देवता एवं असुरोंसे पूजित ! हे अनाथोंके नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे गणनायक ! आपका पूजन करनेके लिये आवाहन करता हूं । और "सहस्रशीर्षा" इस वैदिकमन्त्रको पढके आवाहन करे । 'विचित्र' इससे आसनपर विराजमान होनेके लिये प्रार्थना करे । इसका अर्थ यह है, हे सुरपूजित ! आपके विराजमान होनेके लिये विविधरत्नोंसे जडा हुआ, दिव्य आस्तरणसे शोभित, यह सुन्दरसिंहासन है, आप इसे स्वीकृत करिये "ओम् पुरुष एवेदं" इस मन्त्रको पढकर आसनपर विराजमान करे । 'सर्वतीर्थ' इसमें पाद्यग्रहणके लिये प्रार्थना करे, इस श्लोकका यह अर्थ है कि, हे विघ्नराज ! हे भगवन् ! हे भक्तवत्सल सभी तीर्थोंसे प्राप्त किया हुआ गन्धादिसे संयुक्त यह पाद्य है आप इसे स्वीकृत करें । फिर "एता-वानस्य" इस मन्त्रसे पाद्य प्रदान करे । 'अर्घ्यं च' इससे अर्घ्य ग्रहणके लिये प्रार्थना करे, इसका अर्थ है कि, हे गणाध्यक्ष ! हे करुणानिधे ! आपकेलिये प्रणाम है, आप गन्ध पुष्प एवम् अक्षतसे युक्त इस अर्घ्यको ग्रहण करो "त्रिपादूर्ध्वमुदैत्" इस मंत्रसे अर्घ्यदान करे । "दध्याज्य" इससे मधुपर्क दानकरे । इसका अर्थ यह है कि, हे सब लोकोंके ईश्वर ! हे गणनाथ ! आपके लिये प्रणाम है, दधि, घृत और सहत इन तीनों द्रव्योंको कांत्यसम्पुटमें धरकर मधुपर्क तैयार किया है, आप इसे स्वीकृत करिये । 'विनायक' इससे आचमनके लिये प्रार्थना करे । इसका यह अर्थ है कि, हे विनायक ! हे त्रिदशोंके पूज्य ! आपके लिये प्रणाम है, आपको आचमन करानेके लिये गङ्गाजल ले आया हूं, आप इससे शीघ्र आचमन करें तथा 'ओम् तस्माद्विराडजायत" इससे आचमन करावे । 'पयोदधि इससे पञ्चामृत स्नान करावे, इसका अर्थ यह है कि, हे गणनायक ! आप दूध, दधि, घृत, शर्करा और सहत इन पञ्चामृत रूप द्रव्योंसे स्नान करें, गङ्गादि' इससे शुद्ध स्नान करनेके लिये प्रार्थना करे, इसका अर्थ यह है, गङ्गाऽदि सभी पवित्र तीर्थोंका यह जल लाया हुआ है हे अभिलषित पदार्थोंके देनेवाले !

आप इससे स्नान करें, "ओम् यत्पुरुषेण" इससे स्नान करावे। "रक्तवस्त्र' इससे वस्त्र धारण करनेकी प्रार्थना करे, इसका अर्थ यह है कि, हे देव ! हे लम्बोदर ! हे शिवकुमार ! हे सर्व पुरुषार्थोंके देनेवाले ! ये दिव्य सुवर्णके तन्तुओंसे बने हुए दो वस्त्र हैं, आप इन्हें धारण करिये, "तं यज्ञं बर्हिषि" इससे एक धौत, वस्त्र दूसरा अंगोछा धारण करावे। 'राजतं ब्रह्म' इससे डुपट्टा धारण करावे, इसका यह अर्थ है कि, चाँदी और सुवर्णके सूतोंकासा यह डुपट्टा है हे सर्वज्ञ ! आप इस सुन्दर वस्त्रको धारण करो और भक्तोंको वरदान दो। "ओं तस्माद्यज्ञात्" इससे यज्ञोपवीत पहनावे 'उद्यद्भास्कर' इससे सिन्दूर चढावे, इसका अर्थ यह है कि, उदय होते हुए सूर्यके सदृश और सन्ध्याके समान लालवर्ण, वीरताका आभूषण रूप यह सिन्दूर है हे प्रभो ! इसे स्वीकृत करो। 'नाना' इससे आभूषण पहरावे, इसका यह अर्थ है कि, हे शंकर एवं पार्वतीके परम आनन्द करनेवाले इन नानाविध दिव्य रत्न जडित आभूषणोंको धारण करिये। कस्तूरी इससे सुगन्धित चन्दन चढानेके लिये प्रार्थना करे, इसका अर्थ यह है कि, हे सुरश्रेष्ठ ! कस्तूरी, गोरोचन, कपूर और केसर इनसे मिश्रित (लाल) चन्दनके विलेपनको ग्रहण करो। "तस्माद्यज्ञात्सर्व" इससे उस (लाल) चन्दनको विलेपन करे। 'रक्ताक्षतांश्च' इससे लाल रङ्गे हुए चावल चढावे, इसका अर्थ है हे देवेश्वर ! हे हस्तीके सदृश मुखवाले ! इन लाल चावलोंको ललाटपर रहनेवाले चन्द्रमाके ऊपर धारण करिये। 'माल्यादीनि' इस पूर्वोक्त मन्त्रसे एवम् करवीर, मालती, चम्पा, मौलसरी, कमल और कल्हार कमलके फूलोंसे गणेशजीकी पूजा होनी चाहिये। इस मंत्रसे तथा "तस्मादश्वा अजायन्त" इस मंत्रसे फूल चढाने चाहिये। अङ्गपूजा-गणेश्वरके लिये नमस्कार है चरणोंका पूजन करता हूं, विघ्नराजके लिये नमस्कार है जानुओंमें पूजन करता हूं, मूसेका वाहन रखनेवालेके लिये नमस्कार है ऊरुका पूजन करता हूं, हेरम्बके लिये नमस्कार है कटीका पूजन करता हूं। कामके वैरीके सुतके लिये नमस्कार है नाभिका पूजन करता हूं, लम्बोदरके लिये नमस्कार उदरका पूजन करता हूं, गौरी सुतके लिये नमस्कार, स्तनोंका पूजन करता हूं, गणनायकके लिये नमस्कार हृदयका पूजन करता हूं, स्थूल कानवालेके लिये नमस्कार है कंठका पूजन करता हूं, स्कन्दके बडे भाईके लिये नमस्कार है, स्कन्धोंका पूजन करताहूं। पाशको हाथमें रखनेवालेके लिये नमस्कार है हाथोंका पूजन करता हूं। गजकेसे मुखवालेके लिये नमस्कार है मुखका पूजन करता हूं, विघ्नहन्ताके लिये नमस्कार है ललाटका पूजन करता हूं। सर्वेश्वरके लिये नमस्कार है शिरका पूजन करता हूं। गणाधिपके लिये नमस्कार है सर्वाङ्गका पूजन करता हूं ॥ पत्र पूजा—सुमुखके लिये मालतीके पत्र, गणाधिपके लिये भृङ्गराजके पत्ते, उमाके पुत्रके लिये बिल्वपत्र, गाजाननके लिये सफेद दूब, लम्बोदरके लिये बेरका पत्ता, हरके सूनुके लिये धतूरेके पत्ते, हाथीकेसे कानोंवालेके लिये तुलसीके पत्ते, वक्रतुण्डके लिये शमीके पत्ते, गुहके बडे भाईके लिये ओंगके पत्ते, एकदन्तके लिये बृहतीके पत्ते विकटके लिये करवीरके पत्ते, कपिलके लिये अर्कके पत्ते, गजदन्तके लिये अर्जुनके पत्ते, विघ्नराजके लिये विष्णुक्रान्ताके पत्ते, वटुके लिये दाडिमके पत्ते, सुराग्रजके लिये देवदारुके पत्ते, भालचन्द्रके लिये मरुएके पत्ते, हेरम्बके लिये पीपलके पत्ते, चार भुजावालेके लिये, जातीके पत्ते, विनायकके लिये केतककीके पत्ते और सर्वेश्वरके लिये अगस्तिके पत्ते समर्पित करता हूं। 'दशाङ्गं' इस श्लोकसे धूपके लिये प्रार्थना करे, "यत्पुरुषं व्यदधुः" इससे धूप करे। 'सर्वज्ञ' इस श्लोकसे दीपकके लिये प्रार्थना करे, इसका यह अर्थ है कि, हे सर्वज्ञ हे त्रिलोकीके अन्धकारको नष्ट करनेवाले ! हे रुद्र भगवान् के पियारे ! आपके लिये प्रणाम है, आप माङ्गलिक दीपकको स्वीकृत करो। तथा "ब्राह्मणोऽस्यमुख" इससे दीपक प्रज्वलितकरके निवेदित करे, तदनन्तर हाथ धोकर नैवेद्य ग्रहणके लिये प्रार्थना करे। उस प्रार्थनामें "नवैद्यं गृह्यतां देव" इस पूर्वोक्त श्लोकका या "नाना खाद्यमयं" इस श्लोकका उच्चारण करे. इसका अर्थ यह है कि, हे पार्वतीनन्दन ! हे गणाधिराज ! मैंने आपके लिये नानाविध भक्ष्य, भोज्यादि पदार्थोंसे मधुर नैवेद्य भक्तिपूर्वक निवेदित करदिया है, आप इसे स्वीकृत करिये इससे तथा "चन्द्रमा मनसो" इससे नैवेद्य चढावे "एलोशीरलवङ्गादि" इससे जल पिला, कुल्ला तथा मुख प्रक्षालन करावे। इसका यह अर्थ है कि, हे गणनायक ! इलायची खशखश, लवङ्ग और ऐसी ही दूसरी २ सुगन्धित वस्तुएं तथा कपूरसे सुवासित किया हुआ यह जल आपके पीने आदिके लिए है, इससे इसे स्वीकृत

करिये, "मलयाचल" इससे करोद्वर्तन कर इसका अर्थ यह है कि, हे जगत्पते ! चन्दन और कपूरको घिसकर आपके करोद्वर्तन करानेके लिए लाया हूं, आप इस सुन्दर करोद्वर्तनको अंगीकार करो । "बीजपूराम्रम्" इससे तथा "इदं फलं" इस पूर्वोक्त श्लोकसे फल भोग लगावे, इसका यह अर्थ है–हे गणनायक बीजपूर, आम, कटहर, खजूर, केला और नारियलके फलों को ग्रहण करो । फिर इक्कीस लड्डुओंका फलोंके साथ गणपतिके भोग लगावे और "एकविंशति" इस श्लोकका उच्चारण करे। इसका अर्थ यह है कि,घीके इक्कीश लड्डुओंका नैवेद्य, फलोंके साथ आपको चढाता हूं, विघ्नोंको नष्ट करनेवाले, आपके लिए प्रणाम है । और "गणेशाय नमः मोदकानपर्यामि" गणेशको नमस्कार है, मोदकोंका अर्पण करता हूं इस वाक्यकाभी उच्चारण करे । "पूगीफलं" इससे ताम्बूल और पूगीफल चढावे, "हिरण्यगर्भगर्भस्थं" इस पूर्वोक्त मन्त्रको पढता हुआ दक्षिणा चढावे, "वज्रमाणिक्य" इससे रत्नाभरण चढावे । अर्थ यह है कि, हीरा, माणिक्य, वैडूर्य, मोती, मूंगा, और पुष्पराजसे जटिल आभूषणोंको धारण करिए । फिर दूबके दो दल तथा गन्ध पुष्प और अक्षतोंको लेकर पूर्वोक्त नाम मन्त्रोंसे सिद्धि तथा विघ्नोंके पति देवगणेशजीका पीछे "ओम् गणाधिपायनमः" गणाधिपके लिए नमस्कार है "ओम् उमापुत्राय नमः" उमापुत्रके लिये नमस्कार है, "ओम् अघ नाशिनेनमः" अघ-नाशीके लिए नमस्कार है, "ओम् एकदन्ताय नमः" एक दांतवालेके लिये नमस्कारहै '"ओम् इभवक्त्राय नमः' हाथाके मुखवालेके लिए नमस्कार है, "ओम् मूषकवाहनायनमः" मूसको वाहन रखनेवालेके लिए नमस्कार है, 'विनायकाय नमः" विनायक के लिए नमस्कार है, "ओम् ईशपुत्रायनमः" ईशके पुत्रके लिए नमस्कार है, "ओम् सर्वसिद्धिप्रदायनमः" सर्वसिद्धियोंको देनेवालेके लिए नमस्कार है । इन नामोसे दूर्वासे प्रयत्नके साथ पूजनकरना चाहिए । फिर "चन्द्रादित्यौ" इससे नीराजन करे । इसका अर्थ यह कि, हे देव ! आपही चन्द्रमा आपही सूर्य आपही पृथ्वी आपही विद्युत, आपही अग्नि और आपही सब चन्द्रमा आदिकोंको प्रकाशित करने-वाले तेजः स्वरूप हैं । आपका निराजन करता हूं, आप स्वीकृत करो, हे विघ्नेश्वर ! हे विशालाक्ष ! हे सब वांछितफलोंको देनेवाले ! आपकी प्रदक्षिणा करता हूं । आप मेरी सब कामनाओंको पूर्ण करो । इस प्रकार प्रार्थना करके "नाभ्या आसी" इस मन्त्रको पढता हुआ प्रदक्षिणा करे । "ओम् नमस्ते विघ्न" इस श्लोकको तथा 'सप्तास्यासन्' इस मन्त्रको पढता हुआ पूजनके अन्तमें प्रणाम करे । इस लोश्कका यह अर्थ है कि, आप विघ्नोंके संहारकारी हैं, आपके लिए प्रणाम है, हे वांछित फलोंके देनेवाले ! आपको प्रणाम करता हूं, देव-देवेश ! आपके लिएप्रणाम है, हे गणनायक ! आपके लिये प्रणाम है "विनायक" इस श्लोकसे तथा "यज्ञेनयज्ञ" इस मंत्रसे पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । इस श्लोकका अर्थ यह है कि, हे विनायक ! हे ईशपुत्र ! हे गणराज ! हे सुरोत्तम ! हे सिद्धि विनायक ! आपको प्रणाम करता हूं आप मेरे लिए सब वाञ्छित पदार्थोंको प्रदान करो । 'यन्मयाऽऽचरितं' इन श्लोकोंसे क्षमा प्रार्थना करे, इनकाअर्थ यह है कि, हे देव ! हे गणेश ! जो मैंने यह दुर्लभ व्रत किया है, इससे आप प्रसन्न होंऔर इस व्रतको पूर्णतया सफल करें ! हे विनायक हे गणेश ! हे सब देव-ताओंके पूज्य ! हे पार्वतीके पियारे ! हे विघ्नेश्वर ! आप मेरे विघ्नोंको निवारण करिये फिर पहिले इक्कीश घीके लड्डू गणेशजीके समीप स्थापित करके पीछे हे युधिष्ठर ! उनमेंसे दश कथा सुनानेवाले ब्राह्मणको दे दे और दश मोदकोंका आप भोजन करले एक सघृत मोदको गणेशजीके समीपही रहने दे और ब्राह्मणको जब दशमोदकोंको दे उस समय फल और दक्षिणाभी देना चाहिये और प्रार्थना भी करनी चाहिये में इन दश मोदकोंको, फल एवं दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको वायनाके रूपमें दे रहा हूं, इससे यह व्रत सफल हो जाय, फिर 'विनायकस्य' इन दो श्लोकको पढ, गणेशजीकी प्रतिमा दो वस्त्रोंके साथ ब्राह्मणको दे देनी चाहिये । इनका अर्थ यह है कि, ब्राह्मण ! दो वस्त्रोंसे वेष्टित इस विनायक देवकी प्रतिमाका आपके लिये दान करता हूं इससे गजानन मेरे पर प्रसन्न हो जाँय गणेशजीही लेनेवाले और देनेवाले हैं तथा हे ब्राह्मण ! गणेशजीही तुम्हारा और हमारा तरण करनेवाले हैं, अतः गणेश जीको बारंबार प्रणाम है ।। व्रत कथा–नैमिषारण्यमें निवास करने-वाले शौनकादि महर्षिजन पुराण शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले सूतजीसे ये वचन बोले ।। १ ।। कि हे सूतनंदन ! किस उपायके करनेसे कार्य्य निर्विघ्न सिद्धिहोते हैं मनुष्योंकी पुरुषार्थ सिद्धि किस उपायसे होती है, पुत्र पौत्रादि सौभाग्य और सम्पत्ति कैसे प्राप्त हों ! यदि कहिये स्त्री और पतिका कलह हो या बान्धवोंमें

पारस्परिक फूट पडजाय, या अपनेमें लोगोंका प्रेम नरहे तो उस समय क्या करना चाहिये जिससे यह सब शांतहो ॥ ३ ॥ विद्यारम्भ, वाणिज्य, खेती, दूसरे राज्यपर राजाके आक्रमणके समय जय तथा सिद्धि किस उपायको करनेसे होती है ॥ ४ ॥ किस देवताकी आराधनाकी जाय ? जिससे कार्यसिद्ध हो, हमारे लिये इन सब प्रश्नोंका अच्छी तरह उत्तर दें ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, हे विप्रो ! जब कौरव तथा पाण्डवोंकी सेना परस्पर युद्धके लिए तैयार खडी हो रही थी उस समय कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर देवकीनन्दन भगवान्से पूछने लगे कि, हे देवकीनंदन ! निर्विघ्न जयप्राप्त करनेका उपाय मेरे लिये बताइये, किस देवताकी आराधनाकी जाय जिससे जयपूर्वक राज्य मिले उस देवताकी आराधनाका उपदेश मुझे करिए ॥ ७ ॥ कृष्ण बोले कि, हे राजन् ! पार्वतीजीके मैलसे जिन्होंने अवतार लिया है ऐसे गणपतिदेवका पूजन करो, क्योंकि, उनका पूजन करनेसे आप राज्यको पाजायेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर बोलेकि, हे देवदेव ! किस विधिके अनुसार गणपतिका पूजन करना चाहिये और किस तिथिमें पूजनेसे सिद्धियाँ देते हैं आप कहो ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजन् ! भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी या श्रावण अथवा मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्लपक्षकी चतुर्थीके दिन गणपतिका पूजन करिये ॥ १० ॥ यदि अन्य महीनोंमें गणपति पूजनके लिये प्रेम ज्यादा हो तो उस महीनेकी शुक्लाचौथमें ही गणपतिका पूजन करलेना चाहिये ॥ ११ ॥ हे राजन् प्रातःकाल सफेद तिलोंसे स्नान करके मध्याह्नमें गणेशजीका पूजन करना चाहिये । एक निष्क या आधे निष्क अथवा इससे आधेही तोलेकी सुवर्णकी ॥१२ ॥ या चान्दीकी गणपति मूर्ति अपनी सम्पतिके अनुरूपबनवाले, यदि सर्वथा संकोच हो तो मृत्तिकाकी ही गणपति मूर्ति बनवालेनी चाहिये पर सम्पत्ति रहते कृपणता न करनी चाहिये ॥ १३ ॥ एकदन्त, छाजके सदृश कानवाले, हस्तीके समान मस्तकवाले, चतुर्भुज पाश और अंकुशको धारण करनेवाले सिद्धिविनायक भगवान्का ध्यान करना चाहिये ॥ १४ ॥ पीछे 'ओम् सिद्धि विनायकाय नमः इन मन्त्रोंसे पञ्चामृतके दुग्ध आदि पदार्थोंसे पृथक् तथा संमिलितोंसे स्नान करावे 'ओम् गणाध्यक्षाय नमः' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक गन्धदान करना चाहिये ॥ १५ ॥ और स्नानसे आवश्यकीय काम आवाहन, आसन, पाद्यार्घ्यादिभी 'आ गणाध्यक्षाय नमः' इसी नाममन्त्रसे करने चाहियें स्नानकरानेके पीछे वस्त्रपहरानाआदिक भी 'गणाध्यक्षाय नमः" इसी नाम मन्त्रसे भक्ति श्रद्धाऽन्वित होकर करने चाहियें ॥ १६ ॥ "ओं विनायकाय नमः" इस मन्त्रसे पुष्प, उमासुतायनमः' इससे धूप 'रुद्रप्रियायनमः' इससे दीपक प्रज्वालन और विघ्नविनाशिने नमः" इससे नैवेद्य चढावे और इसी मन्त्रसे आचमन और ऋतुफलोंको भी दे ॥ १७ ॥ फिर कुछ सुवर्णकी दक्षिणा तथा ताम्बूल सर्मापत करके इक्कीस दूबके अंकुर लेकर ॥ १८ ॥ उनकी प्रयत्नके साय पृथक् पृथक् नीचे लिखे हुए नाम मंत्रोंसे पूजन करे । हे गणाधिप तेरे लिये नमस्कार है, हे उमासुत ! तेरे लिये नमस्कार है, हे अघनाशन तेरे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे विनायक ! तेरे लिये नमस्कार है, हे ईशपुत्र ! तेरे लिये नमस्कार है, हे सर्व-सिद्धिदायक तेरे लिये नमस्कार है, हे एकदन्त ! तेरे लिये नमस्कार है, हे इभवक्त्र तेरे लिये नमस्कार है, हे मूषकपर चढनेवाले ! तेरे लिये नमस्कार है ॥ २० ॥ तुम्ह कुमारके गुरुके लिये नमस्कार है । इसी प्रकार इक्कीसों नामोंसे प्रयत्नके साथ पूजन करना चाहिये ! पीछे गंध, पुष्प और अक्षतोंके साथ दो दो दूब लेकर ॥ २१ ॥ इक्कीसों नाम मंत्रोंमेंसे एक एक जोडा चढातीवार एक एक बोलना चाहिये, पीछे घीके इक्कीस अच्छे लड्डुओंको लेकर ॥ २२ ॥ गणेशजीके समीपमें स्थापित करके हे कुरुनन्दन ! उनमेंसे दश ब्राह्मणको देने तथा दश स्वयं लेने चाहियें ॥ २३ ॥ नैवेद्य समेत एक गणपतिके लिये दे दे, हे नृपोत्तम ! विनायककी मूर्तिको ब्राह्मणके लिये दे देना चाहिये ॥ २४ ॥ उस समय यही प्रार्थना करे कि, हे ब्राह्मण ! मैं आपको गजानन भगवान्के प्रतिमाका दान करता हूं, इससे गजानन भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥ गणेशजीका स्मरण करता हुआ प्रार्थना करे कि, हे विनायक ! हे गणेश ! हे समस्त देवताओंके पूज्य ! हे पार्वतीके पियारे पुत्र हे विघ्नोंके ईश्वर ! आप मेरे विघ्नोंका विनाश करियें ॥ २६ ॥ गणेशजीही देनेवाले हैं, गणेशजीही लेनेवाले हैं । गणेशजीही हम दोनों यजमान एवं आचार्यके उद्धारक हैं अत : गणेशजीके लिये बार बार प्रणाम है । ॥ २७ ॥ इसप्रकार नैमित्तिक कर्म्मरूप गणपति पूजनादि अनुष्ठानको समाप्त करके अपने इष्ट देवताकी पूजा करनी चाहिये, पीछे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर तैलरहित वस्तुका भोजन करना चाहिये ॥ २८ ॥ हे धर्म्मराज ! इस प्रकार गणेजीका पूजन करनेसे तुम्हारा अवश्य विजय होगा, इसमें सन्देह नहीं, यह कथन

सर्वथा सत्य है ।। २९ ।। जब त्रिपुरासुरको मारनेके लिये त्रिशूलधारी महादेवजीने, वृत्रासुरके विनष्ट करनेके लिये इन्द्रने पूजाकी ।। ३० ।। अपने पति गौतममुनिकी प्राप्तिके लिये अहल्याने नलकी प्राप्तिके लिये दमयन्तीने ।। ३१ ।। सीताजीकी पुन: प्राप्तिके लिये रघुनाथजीने, सीताजीके दर्शनोंके लिये हनुमानजीने ।। ३२ ।। गङ्गाजीको लानेके लिये भगीरथने, समुद्रसे अमृत निकालनेके लिये देवता तथा दैत्योंने भी पहिले गणपतिकीही आराधना की थी और अपने अपने चिकीर्षित कार्योंमें सफलताके भागी हुये थे ।। ३३ ।। और गरुडने जब देहराजके हाथसे अमृतकलशको छीनकेलानेके लिये स्वर्गकी ओर धावा किया था तब उसने भी गणाध्यक्षकी ही अर्चना की थी, गणपतिजीकी ही कृपासे वहां जाकर बलपूर्वक कलश छीन लिया ।। ३४ ।। मैंने भी रुक्मिणी-हरण करनेकी इच्छासे भगवान् गणेशजीकी ही आराधनाकी थी उनकेही प्रसादसे मैं रुक्मिणीको पा गया ।।३५।। जब सम्बर दानव रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नको प्रसूतिकागृहसे लेगया तब और रुक्मिणीने गणेशजीकी पूजाकीउसीके प्रतापसे हमको प्रद्युम्न फिर प्राप्त होगया ।। ३६ ।। जब साम्बके कुष्ठ होगया था उस समय उसने अपने कुष्ठरोगकी निवृत्तिके लिये गणपतिकी आराधना की थी जिससे उसे निरोगता प्राप्त हो गयी । इसलिये हे राजन् ! तुम भी यदि अपनी जय चाहते हो तो शंकरनन्दन गणराजकी शीघ्र आराधना करो ।। ३७ ।। क्योंकि गणेजीकी पूजा करनेसे विद्यार्थी विद्याका, धनार्थी धनका, जयार्थी जयका, पुत्रार्थी पुत्रोंका ।। ३८ ।। पतिकी कामनावाली कन्या पतिका, सुवासिनी सौभाग्यसम्पत्तिका लाभ लेते हैं । वैधव्यदु:खसे पीडित हुई स्त्री, यदि गणेशजीकी पूजा करे तो फिर वह जन्मजन्मान्तरमें कभी भी वैधव्य दु:खको नहीं देखती ।। ३९ ।। वैष्णवी शैवी आदि जब दाक्षीग्रहण करती हो उस समयमें भी पहिले गणेशजीकाही पूजन कराना चाहिये । क्योंकि गणेशजीके पूजन करनेपर विष्णु, महादेव, सूर्य, पार्वती ।। ४० ।। और हुताशन आदि सभी देवता पूजित हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है, चण्डिकादि मातृगण भी परितुष्ट होजाते हैं ।। ४१ ।। सूतजी मुनियों कहते हैं कि, हे मुनिवरो ! भक्तिपूर्वक सिद्धिविनायकका पूजन करनेसे ये सब सन्तुष्ट होजाते हैं । श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् राजासे कहते हैं कि, हे राजन् युधिष्ठिर ! इस प्रकार गणनाथ भगवान् पूजन करनेसे ।।४२।। तुम भी संग्राममें अपने शत्रुओंको मारकर अपनी राज्यसम्पत्तिको प्राप्त होगे । पूजन करनेसे सभी कामना पूर्ण होती हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कहना चाहिये ।। ४३ ।। भगवान् कृष्णने महाराज युधिष्ठिरको गणेशजीके व्रतका अनुष्ठान कहा उक्त महाराजने भी भाइयोंके साथ त्रिपुरघाती देवके पुत्रकी पूजा की ।। ४४ ।। संग्राममें शत्रुओंको मार बलसे राज्य प्राप्त कर लिया । सूतजी शौनकादि मुनियोंसे कहते हैं कि, जो मन्द प्रारब्धभी हो पर सिद्धिदाता गणपतिका पूजन करे तो ।। ४५ ।। उस मन्दभागीके भी मनके विचारे सब कार्य सिद्ध होते हैं, प्रारंभ किये हुए कार्य सिद्ध हों, इसमें तो सन्देह ही क्या है, इस प्रकार अपने भक्तोंको सिद्धिप्रदान करनेसे गणेशजीका नाम सिद्धिविनायक प्रसिद्ध होगया है ।। ४६ ।। इस पवित्र आख्यानको जो समाहित चित्तसे सुनता है अथवा सुनाता है उसके सभी कार्य, सिद्धिविनायक की प्रसन्नतासे अवश्य सिद्ध होते हैं ।। ४७ ।। यह भविष्यपुराणकी कही हुई सिद्धि विनायकके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अत्र चन्द्रदर्शननिषेधः

मासि भाद्रपदे शुक्ले शिवलोके प्रपूजिता ।। तस्यां स्नानं तथा दानं उपवासोऽर्चनं तथा ।। क्रियमाणं शतगुणं प्रसादान्तिनो नृप ।। चतुर्थीत्यनुषङ्गः ।। अस्यामेव चन्द्रदर्शने दोषमाह पराशरः कन्यादित्ये चतुर्थ्यां च शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् ।। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ।। तद्दोषशान्तये मन्त्रो विष्णुपुराणे-सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।। अथ स्यमन्तकोपाख्यानम् ।। नन्दिकेश्वर उवाच । शृणुष्वैकाग्रचित्तः सन्व्रतं गाणेश्वरं महत् ।। चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे तु सदा कार्यं प्रयत्नतः ।। १ ।।

सनत्कुमार योगीन्द्र यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।। नारी वा पुरुषो वापि यः कुर्याद्विधिवद्व्रतम् ।।२।। मोचयत्याशु विप्रेन्द्र संकष्टाद्व्रतिनं हि तत् ।। अपवादहरं चैव सर्वविघ्नप्रणाशनम् ।। ३ ।। कान्तारे विषमे वापि रणे राजकुलेऽथवा ।। सर्वसिद्धिकरं विद्धि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ४ ।। गजाननप्रियं चाथ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।। अतो न विद्यते ब्रह्मन् सर्वसंकष्टनाशनम् ।। ५ ।। सनत्कुमार उवाच ।। केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्यलोके कथं गतम् ।। एतत्समस्तं विस्तार्य ब्रूहि गाणेश्वरं व्रतम् ।। ६ ।। नन्दिकेश्वरउवाच ।। चक्रे व्रतं जगन्नाथो वासुदेवः प्रतापवान् ।। आदिष्टं नारदेनैव वृथालाञ्छनमुक्तये ।। ७ ।। सनत्कुमार उवाच ।। षड्गुणैश्वर्यसंपन्नः सृष्टिसंहारकारकः ।। वासुदेवो जगद्व्यापी प्राप्तवाँल्लाञ्छनं कथम् ।। ८ ।। एतदाश्चर्यमाख्यानं ब्रूहि त्वं नन्दिकेश्वर ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। भूमिभारनिवृत्त्यर्थं वसुदेवसुताबुभौ ।।९।। रामकृष्णौ समुत्पन्नौ पद्मनाभफणीश्वरौ ।। जरासन्धभयात्कृष्णो द्वारकां समकल्पयत् ।। १० ।। विश्वकर्माणमाहूय पुरीं हाटकनिर्मिताम् ।। तत्र षोडशसाहस्रं स्त्रीणां चैव शताधिकम् ।। ११ ।। भवनानि मनोज्ञानि तेषां मध्ये व्यकल्पयत् ।। पारिजाततरुं मध्ये तासां भोगाय कल्पयत् ।। १२ ।। यादवानां गृहास्तत्र षट्पंचाशच्च कोटयः ।। अन्येऽपि बहवो लोका वसन्ति विगतज्वराः ।। १३ ।। यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु सुन्दरं तत्र दृश्यते ।। सत्राजितप्रसेनाख्यौ पुत्रावुग्रस्य विश्रुतौ ।। १४ ।। अम्भोधितीरमासाद्य तन्मनस्कतया च सः ।। सत्राजितस्तपस्तेपे सूर्यमुद्दिश्य बुद्धिमान् ।। १५ ।। व्रतं निरशनं गृह्य सूर्यसम्बद्धलोचनः ।। ततः प्रसन्नो भगवान्सत्राजितपुरः स्थितः ।। १६ ।। सत्राजितोऽपि तुष्टाव दृष्ट्वा देवं दिवाकरम् ।। तेजोराशे नमस्तेऽस्तु नमस्ते सर्वतोमुख ।। १७ ।। विश्वव्यापिन्नमस्तेऽस्तुनमस्ते विश्वरूपिणे ।। काश्यपेय नमस्तेऽस्तु हरिदश्व नमोऽस्तु ते ।। १८ ।। ग्रहराज नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डरोचिषे । वेदत्रय नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते ।। १९ ।। प्रसीद पाहि देवेश सुदृष्ट्या मां दिवाकर ।। इत्थं संस्तूयमानोऽसौ देवदेवो दिवाकरः ।। २० ।। स्निग्धगम्भीरमधुरं सत्राजितमुवाच ह ।। सूर्य उवाच ।। वरं ब्रूहि प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ।। २१ ।। सत्राजित महाभाग तुष्टोऽहं तव निश्चयात् ।। सत्राजित उवाच । स्यमन्तकमणिं देहि यदि तुष्टोऽसि भास्कर ।। २२ ।। ददौ तस्य च तद्रत्नं स्वकण्ठादवतार्य सः ।। भास्कर उवाच ।। भाराष्टकं शातकुम्भं स्रवतेऽसौ महामणिः ।। २३ ।। शुचिष्मता सदा धार्यं रत्नमेतन्महोत्तमम् ।। सत्राजित क्षणेनैतदशुचिं हन्ति मानवम् ।। इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तेजोराशिर्दिवाकरः ।। २४ ।। तत्कण्ठरत्नज्वलमानरूपी पुरीं स कृष्णस्य विवेश सत्वरम् ।। दृष्ट्वा तु लोका मनसा दिवाकरं सञ्चिन्तयन्तो हि विमुष्टदृष्टयः ।। २५ ।। समागतोऽयं हरिदश्वदीधितिर्जनार्दनं द्रष्टुमसंशयेन ।। नायं सहस्रा-

शुरितीह लोकाः सत्राजितोऽयं मणिकण्ठभास्वान् ।। २६ ।। स्यमन्तकं महारत्नं दृष्ट्वा तत्कण्ठमण्डले ।। स्पृहाञ्चक्रे जगन्नाथो न जहार मणिं ततः ।। २७ ।। सत्राजितोजातभयो याचयिष्यति मां हरिः ।। प्रसेनाय ददौ भ्रात्रे धार्योऽयं शुचिना त्वया ।। २८ ।। एकदा कण्ठदेशेऽसौ क्षिप्त्वा तं मणिमुत्तमम् ।। मृगयाक्रीडनार्थाय ययौ कृष्णेन संयुतः ।। २९ ।। अश्वारूढोऽशुचिश्चासौ हतः सिंहेन तत्क्षणात् ।। रत्नमादाय सिंहोऽपि गच्छन् जाम्बवता हतः ।। ३० ।। नीत्वा स विवरे रत्नं ददौ पुत्राय जाम्बवान् ।। पुरीं विवेश कृष्णोपि स्वकैः सर्वैं समावृतः ।। ३१ ।। प्रसेनोऽद्यापि नायाति हतः कृष्णेन निश्चितम् ।। मणिलोभेन हा कष्टं बान्धवः पापिना हतः ।। ३२ ।। द्वारकावासिनः सर्वे जना ऊचुः परस्परम् ।। वृथापवादसंतप्तः कृष्णोऽपि निरगाच्छनैः ।। ३३ ।। सहैव तैर्गतोऽरण्यं दृष्ट्वा सिंहेन पातितम् ।। प्रसेनं वाहनयुतं तत्पदानुचरः शनैः ।। ३४ ।। ऋक्षेण निहतं दृष्ट्वा कृष्णश्चर्क्षबिलं गतः ।। विवेश योजनशतमन्धकारं स्वतेजसा ।। ३५ ।। निवारयन् ददर्शाग्रे प्रासादं बद्धभूमिकम् ।। तं कुमारं जाम्बवतो दोलायाममितद्युतिम् ।। ३६ ।। माणिक्यं लम्बमानं च ददर्श भगवान् हरिः ।। रूपयौवनसंपन्नां कन्यां जाम्बवतीं पुनः ।। ३७ ।। दोलां दोलयमानां च ददर्श कमलेक्षणः ।। महान्तं विस्मयं चक्रे दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम् ।। दोलां दोलयमाना सा जगौ गीतमिदं मुहुः ।। ३८ ।। सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।। सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।। ३९ ।। मदनज्वरदाहार्ता दृष्ट्वा तं कमलेक्षणम् ।। उवाच ललितं बाला गम्यतां गम्यतामिति ।। ४० ।। रत्नं गृहीत्वा वेगेन यावच्छेते तु जाम्बवान् ।। इत्याकर्ण्य वचः शौरिः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ।। ४१ ।। आकर्ण्य सहसोत्थाय युयुधे ऋक्षराट् ततः । तयोर्युद्धमभूद्घोरं हरिजाम्बवतोस्तदा ।। ४२ ।। द्वारकावासिनः सर्वे गतास्ते सप्तमे दिने ।। मृतः कृष्णो भक्षितो वा निःसंदिग्धं विचार्य च ।। ४३ ।। परलोकक्रियां चक्रुः परेतस्य तु ते तदा ।। एकविंशद्दिनं यावद्बाहुप्रहरणो विभुः ।। ४४ ।। युयुधे तेन ऋक्षेण युद्धकर्मणि तोषितः ।। जाम्बवान् प्राक्तनं स्मृत्वा दृष्ट्वा देवबलं महत् ।। ४५ ।। जाम्बवानुवाच ।। अजेयोऽहं सुरैः सर्वैर्यक्षराक्षसदानवैः ।। त्वया जितोऽहं देवेश देवस्त्वमसि निश्चितम् ।। ४६ ।। जाने त्वां वैष्णवं तेजो नान्यथा बलमीदृशम् ।। इति प्रसाद्य देवेशं ददौ माणिक्यमुत्तमम् ।। ४७ ।। सुतां जाम्बवतीं नाम भार्यार्थं वरवर्णिनीम् ।। पाणिं वै ग्राहयामास देवदेवं च जाम्बवान् ।।४८।। मणिमादाय देवोऽपि जाम्बवत्यापि संयुतः ।। तद्वृत्तान्तं समाचष्टे द्वारकावासिनां स्वयम् ।। ४९ ।। सत्राजितस्य माणिक्यं दत्तवान्संसदि स्थितः ।। मिथ्यापवादसंशुद्धिं प्राप्तवान्मधुसूदनः ।। ५०।। सत्राजितोऽपि संत्रस्तः कृष्णाय प्रददौ सुताम् ।। सत्यभामां महाबुद्धिस्तदा सर्वगुणान्विताम् ।। ५१ ।। शतधन्वाक्रूरमुखा यादवा

दुष्टमानसाः ।। सत्राजितेन ते वैरं चक्रू रत्नाभिलाषिणः ।। ५२ ।। दुरात्मा शत-धन्वापि गते कृष्णे च कुत्रचित् ।। सत्राजितं निहत्याशु मणिं जग्राह पापधीः ।।५३।। कृष्णस्य पुरतः सत्या समाचष्टे विचेष्टितम् ।। अन्तर्हृष्टो बहिःकोपी कृष्णः कपटनायकः ।। ५४ ।। बलदेवपुरो वाक्यमुवाच धरणीधरः ।। हत्वा सत्रा-जितं दुष्टो मणिमादाय गच्छति ।। ५५ ।। निहत्य शतधन्वानं गृह्णीमो रत्न-मावयोः ।। मम भोग्यं च तद्रत्नं भविष्यति सुनिश्चितम् ।। ५६ ।। एतच्छ्रुत्वा भयत्रस्तः शतधन्वापि यादवः ।। आहूयाक्रूरनामानं माणिक्यं प्रददौ च सः ।। ५७ ।। आरुह्य वडवां वेगान्निर्गतो दक्षिणां दिशम् ।। रथस्थावनुगच्छेतां तदा रामजना-र्दनौ ।। ५८ ।। शतयोजनमात्रेण ममार बडवा तदा ।। पलायमानो निहतः पदा-तिस्तु पदातिना ।।५९।। रथस्थे बलदेवे तु हरिणा रत्नलोभतः।। न दृष्टं तत्र तद्रत्नं बलदेवपुरोऽवदत् ।। ६० ।। तदाकर्ण्य महारोषादुवाच वचनं बली ।। कपटी त्वं सदा कृष्ण लोभी पापी सुनिश्चितम् ।। ६१ ।। अर्थाय स्वजनं हंसि कस्त्वां बन्धुः समाश्रयेत् ।। अनेकशपथैः कृष्णो बलदेवं प्रसादयत् ।। ६२ ।। सोऽपि धिक्कष्ट मित्युक्त्वा ययौ वैदर्भमण्डलम् ।। कृष्णोऽपि रथमारुह्य द्वारकां प्रययौ पुनः ।। ६३ ।। तथैवोचुर्जनाः सर्वे न साधीयानयं हरिः ।। निष्कासितो रत्नलोभाज्ज्येष्ठो भ्राता बलो बली ।। ६४ ।। तच्छ्रुत्वा दीनवदनः पापीयानिव संस्थितः ।। वृथाभिशापा-त्संतप्तो बभूव स जगत्पतिः ।। ६५ ।। अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य तीर्थयात्रानिमित्ततः ।। काशींगत्वा सुखेनासौ यजन्यज्ञपतिं प्रभुम् ।। ६६ ।। तोषमुत्पादयामास तेन द्रव्येण बुद्धिमान् ।। सुरालयगृहैश्चित्रैर्नगरं समकल्पयत् ।। ६७ ।। न दुर्भिक्षं न वै रोग ईतयो न च विड्वरम् ।। शुचिना धार्यते यत्र मणिः सूर्यस्य निश्चितम् ।। ६८ ।। जानन्नपि हि तत्सर्वं मानुषं भावमाश्रितः ।। लोकाचारं तथा मायामज्ञानं च समा-श्रितः ।। ६९ ।। बन्धुवैरं समुत्पन्नं लाञ्छनं समुपस्थितम् ।। वृथापवादबहुलं जाय-मानं कथं सहे ।। ७० ।। इति चिन्तातुरं कृष्णं नारदः समुपस्थितः ।। गृहीत्वा तत्कृतां पूजां सुखासीनस्ततोऽब्रवीत् ।। ७१ ।। नारद उवाच ।। किमर्थं खिद्यसे देव किं वा ते शोककारणम् ।। यथावृत्तं समाचष्टे नारदाय च केशवः ।। ७२ ।। नारद उवाच ।। जानामि कारणं देव यदर्थं लाञ्छनं तव ।। त्वया भाद्रपदे शुक्लचतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् ।। ७३ ।। कृतं तेन समुत्पन्नं लाञ्छनं तु वृथैव हि ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। वद नारद मे शीघ्रं को दोषश्चन्द्रदर्शने ।। ७४ ।। किमर्थं तु द्वितीयायां तस्य कुर्वन्ति दर्शनम् ।। नारद उवाच ।। गणनाथेन संशप्तश्चन्द्रमा रूपगर्वितः ।। ७५ ।। त्वद्दर्शने नराणां हि वृथानिन्दा भविष्यति ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। किमर्थं गणनाथेन शप्तश्चन्द्रः सुधामयः ।। ७६ ।। इदमाख्यानकं श्रेष्ठं यथावद्वक्तुमर्हसि ।। नारद

उवाच ।। गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण विहितः पुरा ।। ७७ ।। अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ।। ७८ ।। भार्यार्थं प्रददौ देवो गणेशस्य प्रजापतिः ।। पूजायित्वा गणाध्यक्षं स्तुतिं कर्तुं प्रचक्रमे ।। ७९ ।। ब्रह्मोवाच ।। गजवक्त्र गणाध्यक्ष लम्बोदर वरप्रद ।। विघ्नाधीश्वर देवेश सृष्टिसंहारकारक ।। ८० ।। यः पूजयेद्गणाध्यक्षं मोदकाद्यैः प्रयत्नतः ।। तस्य प्रजायते सिद्धिर्निर्विघ्नेन न संशयः ।। ८१ ।। असंपूज्य गणाध्यक्षं ये वाञ्छन्ति सुरासुराः ।। न तेषां जायते सिद्धिः कल्पकोटिशतैरपि ।। ८२ ।। त्वद्भक्त्या तु गणाध्यक्ष विष्णुः पालयते सदा ।। रुद्रोऽपि संहरत्याशु त्वद्भक्त्यैव करोम्यहम् ।। ८३ ।। इत्थं संस्तूयमानोऽसौ देवदेवो गजाननः ।। उवाच परमप्रीतो ब्रह्माणं जगतां पतिम् ।। ८४ ।। श्रीगणेश उवाच ।। वरं ब्रूहि प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ।। ब्रह्मोवाच ।। क्रियमाणस्य मे सृष्टिर्निर्विघ्नं जायतां प्रभो ।। ८५ ।। एवमस्त्विति देवोऽसौ गृहीत्वा मोदकान् करे ।। सत्यलोकात्समागच्छत्स्वेच्छया गगने शनैः ।। ८६ ।। चन्द्रलोकं समासाद्य चलितो गणनायकः ।। उपहासं तदा चक्रे सोमो रूपमदान्वितः ।। ८७ ।। तं दृष्ट्वा कोपताम्राक्षो गणनाथः शशाप ह ।। दर्शनीयः सुरूपोऽहं सुन्दरश्चाहमित्यथ ।। ८८ ।। गर्वितोऽसि शशांक त्वं फलं प्राप्स्यसि सत्वरम् ।। अद्यप्रभृति लोकास्त्वां न हि पश्यन्ति पापिनम् ।। ८९ ।। ये पश्यन्ति प्रमादेन त्वां नरा मृगलाञ्छनम् ।। मिथ्याभिशापसंयुक्ता भविष्यन्तीह ते ध्रुवम् ।। ९० ।। हाहाकारो महाञ्जातः श्रुत्वा शापं च भीषणम् ।। अत्यन्तं म्लानवदनश्चन्द्रो जलमथाविशत् ।। ९१ ।। कुमुदं कौमुदीनाथः स्थितस्तत्र कृतालयः ।। ततो देवर्षिगन्धर्वा निराशा दीनमानसाः ।। ९२ ।। तुरासाहं पुरोधाय जग्मुस्ते तं पितामहम् ।। देवं शशंसुश्चन्द्रस्य गणेशस्य च चेष्टितम्।। ९३ ।। दत्तः शापो गणेशेन कथयामासुरादरात् ।। विचार्य भगवान्ब्रह्मा तान् सुरानिदमब्रवीत् ।। ९४ ।। गणेशशापो देवेन्द्र शक्यते केन वान्यथा ।। कर्तुं रुद्रेण न मया विष्णुना चापि निश्चितम् ।। ९५ ।। तमेव देवदेवेशं व्रजध्वं शरणं सुराः । स एव शापमोक्षं च करिष्यति न संशयः ।। ९६ ।। देवाऊचुः।। केनोपायेन वरदो गजवक्त्रो गणेश्वरः।। पितामह महाप्राज्ञ तदस्माकं वद प्रभो ।। ९७ ।। पितामह उवाच ।। चतुर्थ्यां देवदेवोऽसौ पूजनीयः प्रयत्नतः।। कृष्णपक्षे विशेषेण नक्तं कुर्याच्च तद्व्रतम् ।।९८।। अपूपैर्घृतसंयुक्तैर्मोदकैः परितोषयेत् ।। मधुरान्नं हविष्यं च स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। ९९ ।। स्वर्णरूपं गणेशस्य दातव्यं द्विजसत्तम ।। शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। १०० ।। एवं श्रुत्वा च तैः सर्वैर्गीष्पतिः प्रेषितस्तदा ।। स गत्वा कथयामास चन्द्राय ब्रह्मणोदितम् ।। १ ।। व्रतं चक्रे ततश्चन्द्रो यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ।। आविर्बभूव भगवान् गणेशो व्रततोषितः ।। २ ।। तं क्रीड-

मानं गणनायकं च तुष्टाव दृष्ट्वा तु कलानिधानः ।। त्वं कारणं कारणकारणानां वेत्तासि वेद्यं च विभो प्रसीद ।। ३ ।। प्रसीद देवेश जगन्निवास गणेश लम्बोदर वक्रतुण्ड ।। विरिञ्चिनारायणपूज्यमान क्षमस्व मे गर्वकृतं च हास्यम् ।। ४ ।। ये त्वामसंपूज्य गणेश नूनं वाञ्छन्ति मूढाः स्वकृतार्थसिद्धिम् ।। ते दैवनष्टा निभृतं च लोके ज्ञातो मया ते सकलः प्रभावः ।। ५ ।। ये चाप्युदासीनतरास्तु पापास्ते यान्ति वासं नरके सदैव ।। हेरम्ब लम्बोदर मे क्षमस्व दुश्चेष्टितं तत्करुणासमुद्र ।। ६ ।। एवं संस्तूयमानोऽसौ चन्द्रेणाह गजाननः ।। तुष्टोऽहं तव दास्यामि वरं ब्रूहि निशाकर ।। ८ ।। चन्द्र उवाच ।। लोकानां दर्शनीयोऽहं भवामि पुनरेव हि ।। विशापोऽहं भविष्यामि त्वत्प्रसादाद्गणेश्वर ।। ८ ।। गणेश उवाच ।। वरमन्यं प्रदास्यामि नैतद्देयं मया तव ।। ततो ब्रह्मादयः सर्वे समाजग्मुर्भयार्दिताः ।। ९ ।। विशापं कुरु देवेश प्रार्थयामो वयं तव ।। विशापमकरोच्चन्द्रं कमलासनगौरवात् ।। ११० ।। भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु ये पश्यन्ति सदैव हि ।। मिथ्या पवादमावर्षं प्राप्स्यन्तीह न संशयः ।। ११ ।। मासादौ पूर्वमेव त्वां ये पश्यन्ति सदा जनाः ।। भद्रा (द्वितीया) यां शुक्लपक्षस्य तेषां दोषो न जायते ।। १२ ।। तदाप्रभृति लोकोऽयं द्वितीयायां कृतादरः ।।पुनरेव तु पप्रच्छ कलावान् गणनायकम् ।। १३ ।। केनोपायेन देवेश तुष्टो भवसि तद्वद ।। गणेश उवाच ।। यश्च कृष्णचतुर्थ्यां तु मोदकाद्यैः प्रपूज्य माम् ।। १४ ।। रोहिण्या सहितं त्वां च समभ्यर्च्यार्घ्यदानतः ।। यथाशक्त्या च मद्रूपं स्वर्णेन परिकल्पितम् ।। १५ ।। दत्त्वा द्विजाय भुञ्जीयात् कथा श्रुत्वा विधानतः ।। सदा तस्य करिष्यामि संकष्टस्य निवारणम् ।। १६ ।। भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु मृण्मयी प्रतिमा शुभा ।। हेमाभावे तु कर्तव्या नानापुष्पैः प्रपूज्य माम् ।। १७ ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाज्जागरं च विशेषतः ।। स्थापयेदव्रणं कुम्भं धान्यस्योपरि शोभितम् ।। १८ ।। यथाशक्त्या च मद्रूपं शातकुम्भेन निर्मितम् ।। वस्त्राद्वयसमाच्छन्नं मोदकाद्यैः प्रपूज्य माम् ।। १९ ।। रक्ताम्बरधरो मर्त्यो ब्रह्मचर्यव्रतः शुचिः ।। रोहिणीसहितं त्वां च पूजयेत् स्थाप्य मत्पुरः ।। १२० ।। रजतस्य तु रूपं ते कृत्वा शक्त्या विनिर्मितम् ।। वस्त्रं शिवप्रियायेति उपवस्त्रं गणाधिपे ।। २१ ।। गन्धं लम्बोदरायेति पुष्पं सिद्धिप्रदायके ।। धूपं गजमुखायेति दीपं मूषकवाहने ।।२२ ।। विघ्ननाथाय नैवेद्यं फलं सर्वार्थसिद्धिदे ।। ताम्बूलं कामरूपाय दक्षिणां धनदाय च ।। २३ ।। इक्षुदण्डैर्मोदकैश्च होमं कुर्याच्च नामभिः ।। विसर्जनं ततः कुर्यात्सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। २४ ।। एवं संपूज्य विघ्नेशं कथां श्रुत्वा विधानतः ।। मन्त्रेणानेन तत्सर्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। २५ ।। दानेनानेन देवेश प्रीतो भव गणेश्वर ।। सर्वत्र सर्वदा देव निर्विघ्नं कुरु सर्वदा ।। २६ ।। मानोन्नतिं च राज्यं

च पुत्रपौत्रान् प्रदेहि मे ।। गाश्च धान्यं च वासांसि दद्यात्सर्वं स्वशक्तितः ।। २७।। दत्त्वा तु ब्राह्मणे सर्वं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। मोदकापूपमधुरं लवणक्षारवर्जितम् ।। २८ ।। एवं करोति यश्चन्द्र तस्याहं सर्वदा जयम् ।। सिद्धिं च धनधान्ये च दादामि विपुलां प्रजाम् ।। २९ ।। इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो विघ्नराजो विनायकः ।। तद्व्रतं कुरु कृष्ण त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।। १३० ।। नारदेनैवमुक्तस्तु व्रतं चक्रे हरिः स्वयम् ।। मिथ्यापवादं निर्मृज्य ततः कृष्णोऽभवच्छुचिः ।। ३१ ।। ये शृण्वन्ति तवाख्यानं स्यमन्तकमणीयकम् ।। चन्द्रस्य चरितं सर्वं तेषां दोषो न जायते ।। ३२ ।। भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु क्वचिच्चन्द्रस्य दर्शनम् ।। जातं तत्परिहारार्थं श्रोतव्यं सर्वमेव हि ।। ३३ ।। यदा यदा मनःकष्टं संदेह उपजायते ।। तदा तदा च श्रोतव्यमाख्यानं कष्टनाशनम् ।। एवमुक्त्वा गतो देवो गणेशः कृष्णतोषितः ।। ३४ ।। यदा यदा पश्यति कार्यमुत्थितं नारी नरश्चाथ करोति तद्व्रतम् ।। सिद्ध्यन्ति कार्याणि मनेप्सितानि किं दुर्लभं विघ्नहरे प्रसन्ने ।। १३५ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे नन्दिकेश्वरसनत्कुमारसंवादे स्यमन्तकोपाख्यानं संपूर्णम् ।।

चौथकी महिमा–उसकी कही है जो भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षमें आये कि, यह शिवलोकमें भी मानी गई हे राजन् ! इसमें दान, स्नान; उपवास और अर्चन जो भी कुछ किया जाता है वह गणेशजीको कृपासे सौगुना हो जाता है पूर्व श्लोकमें चतुर्थीका लाभ प्रसंगसे होता है । दोष-पाराशर ऋषिने इसी चौथको चन्द्रमाके देखनेका दोष कहा है कि, कन्याके सूर्य्यमें शुक्लपक्षकी चौथको चाँदका देखना मिथ्या दोष लगाता है, इस कारण इस दिन चाँदको भी न देखे । दोष शान्तिका मंत्र विष्णु पुराणमें कहा है कि, सिंहने प्रसेनको मारा, सिंहको जाम्बवान्ने मार दिया, हे सुकुमारक ! रो मत यह स्यमन्तकमणि तेरा ही है । स्यमन्तकमणिका उपाख्यान–नन्दिकेश्वर बोले कि, सब गणेशजीके महाव्रतको एकाग्रचित्तसे सुनो, यह व्रत सदा शुक्लपक्षको चौथके दिन प्रयत्नके साथ करना चाहिये ।। १ ।। हे योगीन्द्र सनत्कुमार ! यदि अपना भला चाहे तो स्त्री हो अथवा पुरुष हो वो विधिके साथ इस व्रतको करे ।। २ ।। हे विप्रेन्द्र ! यह व्रत, व्रतीको सब कष्टोंसे छुडा देता है यह अपवादोंका नाश करनेवाला एवम् विघ्नोंका निर्मूल करनेवाला है ।। ३ ।। दुर्गम पथवाले वनमें, रणमें राजकाजमें सब सिद्धि करनेवाले व्रतोंमें इसे उत्तम समझिये ।। ४ ।। यह गणेशजीका प्यारा है तथा तीनों लोकमें प्रसिद्ध है । हे ब्रह्मन् इससे अधिक दूसरा कोई भी व्रत नहीं है जिससे कष्ट नष्ट हों ।। ५ ।। सनत्कुमार बोले कि, इस व्रतको पहिले किसने किया है यह मृत्युलोकमें कैसे गया ? यह सब बताये हुये मुझे गणेश्वरका व्रत विस्तारके साथ कहिये ।। ६ ।। नन्दिकेश्वर बोले कि, सृष्टिके स्वामी प्रतापी कृष्णने इस व्रतको किया था । झूठे दोष मिटानेके लिये नारदजीने श्रीकृष्ण परमात्माको कहा था ।। ७ ।। सनत्कुमार बोले कि छः गुण और ऐश्वर्यसे संयुक्त, सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करनेवाले संसारके अन्तर्यामी वासुदेवको लाञ्छन कैसे लगा ।। ८ ।। हे नन्दिकेश्वर ! इस अनोखे आख्यानको आप मुझे सुनाएं । यह सुनकर नन्दिकेश्वर बोले कि, भूके भारको मिटानेके लिये दोनों, वासुदेवके पुत्र ।। ९ ।। रामकृष्णके रूपमें पद्मनाभ और फणीश्वर उत्पन्न हुये कृष्णने जरासन्धके भयसे द्वारका बनवाई ।।१० ।। विश्वकर्माको बुलवाकर सोनेकी पुरी बनवाई गई थी वहां सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियोंके उतने ही ।। ११ ।। उसमें सुन्दर भवन बनवाये गये, रानियोंको आनन्द देनेके लिये हरएक महलमें पारिजातका वृक्ष लगवाया गया था ।। १२ ।। उस पुरीमें छप्पन कोटि यादवोंके रहनेके लिये अलग अलग भवन थे और भी बहुतसे लोग उसमें निर्बाध रहते थे ।। १३ ।। और क्या कहा जाय, जो कुछ अन्य जगह त्रिलोकी भरमें सौन्दर्य्य या ऐश्वर्य्य था वह सब यहां दिखायी देता था । उग्रके

प्रसिद्ध पुत्र सत्राजित और प्रसेन भी इस द्वारकापुरीमें निवास करते थे ॥ १४ ॥ इनमें बुद्धिमान् सत्राजित सूर्य नारायण भगवान्का परमभक्त था। इस लिये यह समुद्रके किनारेपर सूर्यमें ही अपने मनको लगा ॥ १५ ॥ घोर निरशन व्रतरूप तपको सूर्यमें दृष्टि बांधकर करने लगा सूर्यनारायणउसके तपसे प्रसन्न होकर समीप आ उपस्थित हुये ॥ १६ ॥ सत्राजितभी भगवान् सूर्यकी स्तुति करने लगा कि, हे तेजके पुञ्जरूप देवदेव ! आपको प्रणाम है, हे देव ! आप सब ओर सम्मुखसे ही सदा प्रतीत होते हो, ऐसे आपके लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ आप समस्त विश्वमें व्याप्त हो, आपके लिये प्रणाम है, समस्त जगत् आपका स्वरूप है अतः ऐसे विश्वरूपके लिये प्रणाम है, हे कश्यप नन्दन ! हे हरिदश्व ! (हरे रंगके अश्व हैं जिसके) ऐसे आपके लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे ग्रहोंके अधिराज ! आपके लिये प्रणाम है आपका तेज बहुत प्रचण्ड है, अतः आपके लिये प्रणाम है और हे प्रभो ! ऋग् यजुः एवं साम ये तीनों वेद और समस्त देवता आपके स्वरूप हैं अतः आपके लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ हे देवेश ! हे दिवाकर ! आप मुझपर प्रसन्न हों और वात्सल्य पूर्ण दृष्टिसे मेरी रक्षा करें। नन्दिकेश्वरजी सनत्कुमारसे कहते हैं कि, हे सनत्कुमार ! ऐसे जब सत्राजितने स्तुति की तब सूर्यनारायण प्रसन्न हो ॥ २० ॥ स्नेहसे पूर्ण गम्भीर मधुर ध्वनिसे सत्राजितको प्रसन्न करते हुए बोले कि, हे महाभाग सत्राजित ! तुम्हारे प्रेममें मैं प्रसन्न हूं, अतः तुम्हारे मनमें जिस पदार्थकी इच्छा हो उसीको मांगो, मैं तुम्हारे लिये यथेष्ट वर दूंगा ॥ २१ ॥ सत्राजित बोला कि, हे भास्करदेव ! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हुये हैं तो आप मुझे स्यमन्तक मणि दे दें ॥ २२ ॥ सूर्य देवने अपने कंठसे रत्नको उतार कर सत्राजितको दे दिया और बोले कि हे सत्राजित ! यह महामणि प्रतिदिन आठभार वर्णको उगलती है ॥ २३ ॥ पर इसको पवित्र होकर ही अपने कण्ठमें धारण करना, क्योंकि हे सत्राजित ! अपवित्र अवस्थामें धारण करनेसे यह मणि धारण करने-वालेको क्षणभरमें ही मार देती है। ऐसा कहकर तेजोराशि सूर्यदेव अन्तर्हित हो गये ॥ २४ ॥ सत्राजित उस स्यमन्तकमणिको अपने कण्ठमें धारण कर चमकता हुआ श्रीकृष्ण भगवान्की द्वारिकापुरीमें शीघ्र ही प्रविष्ट हुआ, उस समयमें स्यमन्तकमणिसे सूर्यकी तरह चमकते हुए सत्राजितको देखते ही द्वारकानिवासी समस्त जनोंकी आँखे बन्द होगयीं और उसे मनमें सूर्यनारायण समझ ॥ २५ ॥ सबने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके समीप दौडकर निवेदन किया कि, हे भगवन् जनार्दन ! आपके दर्शन करनेको साक्षात् सूर्यदेव आरहा है। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे यादवो ! यह सहस्र किरणोंवाला सूर्यदेव नहीं है, किन्तु स्यमन्तक मणिको कण्ठमें धारण करनेसे सूर्यकी तरह सत्राजित चमक गया है तुम व्यर्थ भ्रांत क्यों हो रहे हो ॥ २६ ॥ पर सत्राजितके चित्तमें यह भय हो गया कि, कहीं श्रीकृष्णचन्द्र इस मणिको मांगलेंगे तो देनी होगी, नहीं तो यहां रहकर जीवन निर्वाह करनाभी दुष्कर हो जायगा। अतः सत्राजितने अपने भाई प्रसेनको उस मणिको दे दिया और उसे कहभी दिया कि, तुम इसे पवित्र होकरही धारण करना ॥ २८ ॥ एक दिन प्रसेन् उस उत्तम मणिको कण्ठमें धारण करके श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के साथ शिकार खेलनेको चला गया ॥ २९ ॥ फिर जब वह प्रसेन घोडेपर चढकर अशुचिहुआ शिकार खेलने लगा तब उसे एक सिंहने मारकर उससे झट वह स्यमन्तकमणि छीन ली। पर वह सिंह भी अशुचित था, इसलिये जाम्बवान् ऋक्षराजने उस सिंहको मार्गमें ही मारकर उससे वह मणि छीनली ॥ ३० ॥ ऋक्षराजने उस स्यमन्तकमणिको अपनी गुहामें लेजाकर अपनी पुत्रीको खेलनेके लिये देदी। श्रीकृष्णचन्द्रभी अपने अन्य अनुयायियोंके साथ द्वारकापुरीको चले आये ॥ ३१ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र तो आगये पर प्रसेन नहीं आया, ऐसी अवस्थामें लोगोंने यह कहना सुरूकर दिया कि, कृष्णके साथ प्रसेन जंगलमें गया था, आजतक फिर वह वापिस नहीं आया, इससे प्रतीत होता है कि, कृष्णने प्रसेनको मारडाला, हाय बहुतही कष्टकी बात है कि, पापी कृष्णने मणिके लोभसे अपना बान्धवभी मार दिया ॥ ३२ ॥ कुछ भी अपने मनमें नहीं शोचा, द्वारकामें रहनेवाले सभी लोग परस्परमें इस प्रकार चर्चा करने लगे पर श्रीकृष्णचन्द्रने कुछ नहीं किया था अत एव इस झूठे अपवादसे बहुतही सन्तप्त हो चुपचाप चलदिये ॥ ३३ ॥ प्रसेनकी खोज करनेके लिये सब द्वारका निवासियोंको साथ ले उस जंगलकी ओर गये वहांपर जबश्रीकृष्णचन्द्र प्रसेनकी खोज करने लगे तो एक जगहमें प्रसेनका शरीर पडा हुआ मिला और यह भी ज्ञात हुआ कि, किसी सिंहने घोडेसमेत प्रसेनको मारडालाहै फिर श्रीकृष्णचन्द्र अपने अनुयायियोंके साथ साथ शनैः शनैः ॥ ३४ ॥ उस

सिंहके पादचिन्होंकी खोज करते हुए कुछ आगे गये तो वह सिंह भी मरा हुआ मिला और खोज करनेसे ज्ञात हुआ कि सिंहको मारनेवाला कोई भयंकर ऋक्ष है, अतः उस ऋक्षराजकी खोज करते २ कुछ दूर गये तो एक अत्यन्त भयानक गुहा देखी, इसमें बहुत गाढा अन्धकार था और वह गुहा चारसौ कोश लंबी थी । अपने अनुयायी अन्यलोगोंको बाहरही ठहराकर अपने तेजसे गुहाके अन्धकारको दूर करतेहुए उसके भीतर घुस गये, एग बहुत सुदृढ महलमें परमतेजस्वी जाम्बवान्के झूलनेपर झूलते हुए कुमारको एवम् उसके झूलामें अपरिमित कान्तिवाली ।। ३५ ।। ३६ ।। उस मणिको भी भगवान् कृष्णने लटकते हुए देखा तथा वहीं रूप और यौवनसे संपन्न जाम्बवती नामकी लडकीको भी देखा ।। ३७ ।। जो डोलेको हिला रही थी उस सुन्दरी हँसनेवाली सुन्दरीको देखकर कमलनयन कृष्णजीको भी बडा विस्मय हुआ ।। वो झूलाको हिलाती हुई इस गीतको गा रही थी ।। ३८ ।। कि सिंहको प्रसेनने मारा, उस सिंहको जाम्बवन्तने मारदिया, ऐ सुकुमारक ! तू रो क्यों रहा है ? यह स्यमन्तकमणि तेरा ही है ।। ३९ ।। जाम्बवती कमलेक्षण कृष्णचन्द्रको देखके कामज्वरसे पीडित हुयी प्रेमपूर्वक बोली कि, हे सुन्दर ! आप यहांसे जाओ ।। ४० ।। इस रत्नको लेकर झट यहांसे भागो. जवतक कि मेरा पिता जाम्बवान् शयन कर रहा है, (तबतकही तुम्हारा यहां जीवन रह सकता है. पश्चात् नहीं रहेगा । और मैं इस तुम्हारे कोमलसुन्दर शरीरको देखके मदनार्त्त हो रही हूं. पर क्या करूं यह बहुत भयंकर पराक्रमी है मैं यही चाहती हूं कि, तुम्हारेको इस मणिकी यदि इच्छाहै तो इसे लेकर जैसे आये हो वैसेही प्राण बचानेके लिये भागो, ठहरो मत) जाम्बवतीके ऐसे वचन सुनकर अकुतोभय प्रतापी कृष्ण भगवान्ने अपने पाञ्चजन्य शंखको बजादिया ।। ४१ ।। उस शंखकी ध्वनिके कानोंमें पडतेही जाम्बवान् एकदम उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करने लगा, उन दोनोंका परस्परमें भयानक युद्ध हुआ ।। ४२ ।। जाम्बवान्की गुफाके बाहिर जो भगवान्के अनुयायी द्वारकाके जन आये थे, वे वहां सात दिनतक ठहरे, पर फिरभी भगवान् वापिस नहीं आये तो उन्होंने यह समझ लिया कि, कृष्णचन्द्र तो मरगये या किसीने खा लिये, ऐसा निर्णय करके वे सभी द्वारकानिवासी लोग अपने अपने घरकी ओर चले गये ।। ४३ ।। द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रको मृत समझकर उनकी परलौकिक क्रिया की गई ।। विभु श्रीकृष्णचन्द्रदेव इक्कीस दिनतक बाहु प्रहार करते हुए ।। ४४ ।। लडे युद्धमें जाम्बवान्को मृत करदिया, पर कृष्णके अप्रतिहत पौरुषको देखकर पुरातन प्रभु-रामचन्द्रका स्मरण करके जाम्बवान् बोला कि ।। ४५ ।। हे समस्त देवताओंके अधिपते । मेरेको कोई भी यक्ष, राक्षस या दानव जीत नहीं सकता, पर आपने मुझे जीत लिया, अतः मेरेको निश्चय होगया है कि, आप कोई देवताही हैं ।। ४६ ।। और उन देवताओंमें भी मैं आपको नारायणका ही स्वरूप समझता हूं, नारायणके तेज विना ऐसा अक्षय्यपराक्रम दूसरेमें नहीं हो सकता । इस प्रकार देवाधिदेव श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करके उनको सर्व श्रेष्ठ स्यमन्तकमणि दे दी ।। ४७ ।। अपनी वर वर्णिनी श्रीजाम्बवतीको भी भार्यार्थ दे दिया । जाम्बवानने अपनी पुत्रीका पाणिग्रहण श्रीकृष्णके साथ कर दिया ।। ४८ ।। उन दोनोंको लेकर श्रीकृष्ण द्वारकामें आये और उस वृत्तान्तको द्वारका निवासियोंके सम्मुख कहा ।। ४९ ।। राजा उग्रसेनकी सभामें अपने आप उपस्थित होकर स्यमन्तकमणि सत्राजितको दे दी । भगवान्को स्यमन्तकमणिके हरणका जो मिथ्या दूषण लगाथा ऐसा करनेसे वह निवृत्त होगया ।। ५० ।। सत्राजितने भगवान्को जो झूठा कलंक लगाया था उसके साबित होनेपर वो बडा भयभीत हुआ यह बडा चतुर था, झटही सर्वगुण संपन्न सत्यभामा नामकी लडकीका विवाह कृष्णके साथ कर दिया ।। ५१ ।। शतधन्वा, अक्रूर और दूसरे जो दुष्ट हृदयके यादव थे वे मणि लेनेके लिये सत्राजितके साथ वैर करने लगे ।। ५२ ।। श्रीकृष्णचन्द्र कहीं चले गये थे तब दुरात्मा शतधन्वाने सत्राजितको मारकर उसकी स्यमन्तकमणि छीन ली ।। ५३ ।। सत्यभामाने अपने पिताको मारनेका वृत्तान्त श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख जाकर कहा, कपटियोंके अधिपति श्रीकृष्णचन्द्र, अपने श्वशुर सत्राजितके वध होनेकी बात सुन, बाहिरसे नाराज और अन्तःकरणसे प्रसन्न हुए कि, इसने झूठा कलंक लगाकर मुझे बहुत दुःखित किया था अतः ऐसे पापीको दूरही दण्ड मिल गया, सत्यभामाके सामने केवल उसे दिखानेके लिये बहुत नाराज हुए ।। ५४ ।। फिर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके सम्मुख जाकर बोले कि, हे धरणीधर ! दुष्ट शतधन्वा सत्राजितको मार स्यमन्तक मणिको लेकर जा रहा है ।। ५५ ।। हम शतधन्वाको मारकर उस

मणिको लेलें, फिर वह मणि मेरे उपभोगमें रहेगी इसमें आप सन्देह न समझें ।। ५६ ।। जब श्रीकृष्णचन्द्रने अपनासंकल्प प्रकट किया, तो शतधन्वा भयसे संत्रस्त होकर अक्रूरको अपने पास बुला, स्यमन्तकमणि उसे दे दी ।। ५७ ।। और आप घोडीपर चढकर दक्षिण दिशाकी ओर जोरसे भागा, बलदेवजी तथा श्रीकृष्ण ये दोनों भाई रथमें बैठकर शतधन्वाके पीछे दोडे ।। ५८ ।। (वह घोडी चारसौ कोश ही जासकती थी, विशेष दौडनेकी उस घोडीमें सामर्थ्य नहीं थी) उस घोडीने चारसौ कोशतक दौडकी, फिर अपने प्राण छोड डिये, घोडीके मरनेपर शतधन्वा अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये पदाति होकर दौडा नो भगवान् श्रीकृष्णने भी पदाति होकर उसके शिरको (सुदर्शनचक्रसे) काट दिया ।। ५९ ।। बलदेवजी उस समय रथमेंही बैठे रहे थे, पर श्रीकृष्णचन्द्रजीने रत्नके लोभसे ये सब काम किये थे, शतधन्वाके पासमें खोज करनेपर भी मणि न मिली तो बलदेवजीसे बोले ।। ६० ।। कि, मैंने मणिकी खोज की पर नहीं मिली । बलदेवजी इन वचनोंको सुनकर अत्यन्त नाराज होकर कहने लगे कि, हे कृष्ण ! तुम सचमुच सदासे ही कपटी, लोभी एवं पापकर्म्मकारी हो ।। ६१ ।। धनके लिये अपने बान्धवको भी मारनेसे पराङ्मुख नहीं होते, इसी लिये ऐसा कौन बुद्धिमान् बान्धव होगा जो आपके विश्वाससे सुखी रखना चाहे और तुम्हारा आश्रय ले ? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने इस लांछनारोपको सुनकर बलदेवजीको अनेक शपथें खाकर प्रसन्न किया ।। ६२ ।। बलदेवजी-हाय कैसी दुःखकी वार्ता है कि, बान्धवभी धनके लोभसे अपने बान्धवकी हत्या करनेसे पराङमुख नहीं होता संसार बडा बुरा है, इस प्रकार कहकर विदर्भराडकी राजधानी मिथिलामें चले गये और श्रीकृष्णचन्द्र अपने रथमें बैठकर द्वारकाको चले आये ।। ६३ ।। द्वारकानिवासी लोगोंने एकाकी श्रीकृष्णचन्द्रको वापिस आये हुए देखकर निन्दा करना आरम्भ किया कि, यह कृष्ण भला मनुष्य नहीं है, इसने रत्नके लिये अपने बली बडे भाईकोभी द्वारकासे निकाल दिया ।। ६४ ।। जगन्नाथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका निवासियोंकी दोषारोपोक्तिको सुन, घोर, पापिष्ठके समान दीनमुख होकर मिथ्या दोषारोपकी चिंतासे अत्यन्त संतप्त हुए ।। ६५ ।। अक्रूरजीने शतधन्वासे स्यमन्तकमणि लेकर द्वारकामें रहना अच्छा नहीं समझा, तीर्थयात्राके बहाने द्वारकासे काशी आकर यज्ञपति परमात्माकी तृप्तिके लिये यज्ञोंको आनन्दसे करने लगे ।। ६६ ।। स्यमन्तकमणिके प्रभावसे सुवर्णके अनायास मिलनेके कारण उस काशीजीमें बहुतसे विचित्र विचित्र मन्दिरोंका निर्म्माण तथा सुवर्णका दान करके दीनजन तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया ।। ६७ ।। सूर्यकी स्यमन्तकमणिको पवित्र होकर धारण करनेवाला जहां निवास करता है वहां दुर्भिक्ष, रोग, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, खेतोंमें मूसोंका लगना, टीडियोंका उपद्रव, पक्षियोंसे हानि, राजाओंका द्वेष महामारी तथा सर्प आदिके उत्पात नहीं होते ।। ६८ ।। यद्यपि भगवान् सब जानते थे पर साधारण जनोंकी तरह लोकाचार, माया और अज्ञानका आश्रयसा लेकर बोले कि ।। ६९ ।। भाइयों के वैरसे होनेवाला लांछन मुझे मिल गया है इसमें सबकी सब झूठी बातें हैं मैं कैसे सहूं ।। ७० ।। भगवान् कृष्ण इस लौकिकी चिन्तासे आकुलसे थे कि नारदजी आगये, उसकी की गयी पूजाको ग्रहण करके बोले ।।७१।। कि हे देव ! आप क्यों इतने दुःखी हो रहे हैं ? आपके शोकका कारण क्या है, ऐसा सुनकर भगवान् कृष्णचन्द्र जीने जो हाल था वो सब कह सुनाया ।। ७२ ।। नारद बोले कि हे देव ! जिस कारण आपको लांछन लगा है उसे मैं जानता हूं आपने भाद्रपद शुक्ला चौथको चांदका दर्शन ।। ७३ ।। कर लिया था इस कारण आपको झूठा कलंक लगा है ऐसा सुनकर कृष्ण महाराज कहने लगे कि, हे नारद ! कि उस दिन चांदके देखनेसे क्या दोष होता है ? यह मुझे शीघ्र ही सुना दीजिये ।। ७४ ।। द्वितीयाके चांदका तो दर्शन क्यों करते हैं तथा चौथके देखनेमें दोष क्यों है, वह सुनकर नारद बोले कि, अपनी सुन्दरतापर अभिमान करनेवाले चांदको गणेशजीने शाप दे दिया था ।। ७५ ।। कि आजके दिन तुझे देखनेसे मनुष्योंकी झूठी निन्दा होगी, यह सुन कृष्णजी बोले कि, गणेशजीने अमृतवर्षानेवाले चांदको क्यों शाप दे दिया ? ।। ७६ ।। इस श्रेष्ठ कथाको, मुझे यथावत् सुना दीजिये, यह सुन नारदजी कहने लगेकि, महादेवजीने गजाननको गणोंका पति बना दिया ।। ७७ ।। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये अष्ट सिद्धियां हैं ।। ७८ ।। इन सबको रुद्र देवने गणेशको स्त्री बनानेके लिये दे दिया, प्रजापति गणेशजीकी पूजाकरके उनकी प्रार्थना करने लगा ।।७९।। कि हे गजवक्त्र ! हे गणाध्यक्ष ! हे लम्बोदर ! हे वरोंके देनेवाले विघ्नाधीश्वर ! हे देवेश ! हे

सृष्टिसंहारकारक ! आपके लिये प्रणाम है ।। ८० ।। जो मोदकादिकोंसे प्रयत्नके साथ गणपतिका पूजन करता है उसे निर्विघ्न सिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं है ।। ८१ ।। सुर हो वा असुर हो गणेशजीका बिना पूजन किए सिद्धि चाहते हैं वो सौ कोटि कल्पसे भी नहीं पा सकते ।। ८२ ।। हे गणाध्यक्ष ! आपकी भक्तिके ही प्रताप से विष्णु सदा सृष्टिका पालन करते हैं, शिव संहार करते हैं, मैं भी आपकी भक्तिसे बलपाकर सृष्टिकी रचना करता हूँ ।। ८३ ।। इस प्रकार ब्रह्माजी स्तुति करनेपर देव २ गजानन परम प्रसन्न होकर जगत्पति प्रजापतिसे बोले ।। ८४ ।। हे ब्रह्मन् ! जो तुम्हारे मनमें कामना हो वही मांगो, मैं दूंगा । ब्रह्माजी बोले कि–हे प्रभो ! त्रिलोकीकी रचना करनेमें किसी भी प्रकारका विघ्न न हो, मैं यही वर मांगता हूँ ।। ८५ ।। गणपतिजीने कहा कि, अच्छा ऐसाही हो, तुम जो त्रिलोककी रचना करते हो उसमें किसीभी प्रकारका विघ्न न उपस्थित होगा । फिर अपने हाथमें लड्डू लेकर शनैः शनैः सत्यलोकसे नीचेकी ओर आकाशमार्गसे आने लगें ।। ८६ ।। चलते चलते चन्द्रमाके भुवनमें पधारे, चन्द्रमाने उनका लम्बा पेट देखकर उनसे अपनी सुन्दरताको उत्तममान उनकी दिल्लगी की ।। ८७ ।। गणपति चंद्रमाकी ओर देख कोपसे अरुण नेत्र करके शाप देनेलगे कि, रे गर्वी चन्द्र ! तुझे यह अभिमान है कि, मैं देखनेके योग्य सुरूप हूँ ।। ८८ ।। अस्तु अब तुझे गर्वकरनेका फल जल्दी मिलेगा, आज (भादवा सुदि चतुर्थी) के दिन तुझ पापात्माको कोई भी लोग नहीं देखेंगे ।। ८९ ।। और यदि कोई मनुष्य प्रमादवश तेरा दर्शन करभी लेंगे वे सभी झूठे कलंकके जरूर ही भागी बनेंगे ।। ९० ।। जब गणपतिजीके भयंकर शापको सुनकर सब लोकोंमें महान् हाहाकार मच गया, चन्द्रमाभी अत्यन्त मलीन मुख करके लज्जाका मारा जलके भीतर चला गया ।। ९१ ।। और जलके भीतरभी कुमुदमें अपना वासकरने लगा, तब सब देवता, ऋषि और गन्धर्व निराश एवम् दीनमना होगए ।। ९२ ।। पीछे इन्द्रको अग्रणी करके ब्रह्माजीके पास गये, वहां जाकर उन्होंने ब्रह्माजीको गणेशजी और चन्द्रमाका सब वृत्तान्त सानुनय कहसुनाया ।। ९३ ।। कि महाराज गणेशजीने यह शाप चन्द्रमाको दिया है, फिर भगवान् ब्रह्माजी सोच विचारकर देवताओंसे कहने लगे कि ।। ९४ ।। हे देवराज ! तुम गणेशजीके प्रभावको जानते ही हो, गणेशजीके दिए शापको कौन अन्यथा कर सकता है ? न महादेवजीमें न मेरे (ब्रह्मा) में और न विष्णुमेंही शाप टालने की सामर्थ्य है ! ।। ९५ ।। इसलिए हे देवताओ ! आप उनही देवदेवोंके ईश्वर गणपतिजीकी शरणमें जाओ, वही अपने शापकी आप निवृति करेंगे ।। ९६ ।। देवता बोले कि, महाप्राज्ञ पितामह प्रभो ! किस प्रकार आराधना करनेसे गणेशजी प्रसन्न होकर वर दिया करते हैं उस उपायको आप हमें कहो ।। ९७ ।। ब्रह्माजीने कहा कि, चतुर्थीके दिन प्रयत्नपूर्वक गणपतिकापूजन करना चाहिए सभी महीनोंकी कृष्णपक्षकी चतुर्थीके दिन में व्रत रातको गणपतिका विशेषकरके पूजन करना चाहिए ।। ९८ ।। जिस दिन रात्रिमें चतुर्थीक योग हो उसी दिन गणेशजीका व्रत पूजनादि करे, घृतके पूडे और मोदकोंका नैवेद्य चढाकर उनको प्रसन्न करे, व्रत करनेवालोंको चाहिए कि, आप भी मधुर हविष्यान्नकाही मौन होकर भोजन करे ।। ९९ ।। हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! व्रतके अन्तमें गणेशजीकीसुवर्णमूर्तिको ब्राह्मणके लिए दान करके यथाशक्ति दक्षिणाभी दे, दानमें कृपणता नहीं करनी चाहिए ।। १०० ।। इस प्रकार ब्रह्माजीने गणेशजीको प्रसन्न करनेका उपाय बताया देवताओंने उसे सुनकर अपने आचार्य बृहस्पतिजीको चन्द्रमाके समीपमें भेजा, बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीके बताए उपायको चन्द्रमाके लिए जाकर कहा ।। १०१ ।। चन्द्रमाने ब्रह्माजीके कथनानुसार गणेश भगवान्का व्रत और पूजन किया इससे गणेशजी प्रसन्न होकर चन्द्रमाको वर देनेके लिए प्रकट हो गए ।। १०२ ।। मानों गणपतिजी बालक्रीडा कर रहे हो, ऐसे स्वरूपसे दिखाई दिये. चन्द्रमाने उस बाल मूर्ति गणेशजीका दर्शन और स्तवन किया, कि हेविभो ! आप पृथ्व्यादिकोंके जो तन्मात्रारूप कारण हैं, उनके कारण जो अहंकारादि हैं उसके भी कारण जो महत्तत्त्वादि हैं उनके आप कारणस्वरूप हैं, यानी समस्ततत्त्वोंके आदिकारण आपही हैं, यह जो समस्त वेद्यात्मक (ज्ञेयरूप) प्रपञ्च है यह एवं इसके ज्ञाताभी आपही हैं, हे विभो ! आप अनुग्रह करें ।। ३ ।। हे देवताओंके ऊपर अनुग्रह एवं निग्रह करनेकी शक्तिवाले ! हे तीनों भुवनोंमें व्याप्त होकर रहनेवाले ! हे गणोंके ईश्वर ! हे लम्बोदर ! हे वक्रतुण्ड ! आप अपनी स्वाभाविक प्रसन्नताको प्रगट करें, आपकी पूजा ब्रह्मा और विष्णु आदिक सभी देवता करते हैं, आपकी महिमा वचनोंके अगोचर है, आप अपने

स्वाभाविक महत्त्वकी ओर दृष्टि देकर मैंने जो अपने सौन्दर्यके गर्वसे आपका हास्य किया था उस अपराधको क्षमाकरिए ।। ४ ।। मैंने जान लिया है कि, जो मनुष्य आपकी महिमा को न जानते हुए आपकी पूजान कर, अपने कार्योंकी सफलता चाहते हैं वे निश्चयही मूढ हैं, उनकी बुद्धि प्रारब्धने भ्रष्टकर दी है, अच्छी तरह आपका क्या प्रभाव है यह मैंने जान लिया है ।। १०५ ।। जो पापी आपके चरणोंकी सेवा में अनुराग न कर उदासीन हो रहे हैं वे सभी नरकमें अवश्य पडनेवाले हैं, हे हेरम्ब ! हे लम्बोदर ! आप करुणाके समुद्र हैं, अतः आप हास्यकरनेके अपराध को क्षमा करो ।। १०६ ।। जब चंद्रमाने ऐसे अपने अपराधकी इसप्रकार क्षमा मांगी; तब गणपतिजी बोले कि, हे निशाकर ! मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूं, तुमको जो वर चाहिये सो मांगो, मैं दूंगा ।। १०७ ।। चन्द्रमाने फिर प्रार्थना की कि, हे गणाधिराज ! आपके अनुग्रहसे मैं पहिलेके माफिक लोगोंका दर्शनीय और आपके शापसे निर्मुक्त होजाऊँ, यही वर मांगता हूँ ।। १०९ ।। गणेशजीने कहा हे चन्द्र ! और जो कुछ चाहो सो वर मांगलो, इस वर को तो नहीं दूंगा । जब गणेशजीने अपना शाप हटाना नहीं चाहा तब सभी ब्रह्मादि देवता भयभीत हुए वहां पर आये ।। १०९ ।। और गणेशजीकी प्रार्थना करने लगे कि, हे प्रभो ! हम सभी आपकी प्रार्थना करते हैं, आप चंद्रमाको शापसे निर्मुक्त करें । जब इस प्रकार ब्रह्माजीने भी प्रार्थना की तब उनके गौरवकी रक्षाके लिए चंद्रमाको शापसे निर्मुक्त कर दिया ।। ११० ।। गणेशजीने फिर कहा कि, जो लोग भाद्रपद शुक्लाचतुर्थीके दिन ही चन्द्रमाका दर्शन करेंगे तो वे वर्षपर्य्यन्त वृथा अपयशके अवश्य भागी होंगे ।। १११ ।। किन्तु जो शुक्लपक्षकी पहिलीतिथिमें यानी भाद्रशुक्ला द्वितीयाके दिन पहिले ही चन्द्रदर्शन करलेंगे, वे फिर यदि चतुर्थीके दिन भी चन्द्रदर्शन करेंगे तो भी वे मिथ्यावादके भाजन नहीं होंगे ।। ११२ ।। इसलिये भाद्रशुक्ल द्वितीयायमें चन्द्रमाके दर्शन करनेसे भाद्रशुक्ला चतुर्थीको चन्द्रमाके दर्शन करनेपरभी गणेशजीके शापके अनुसार मिथ्या अपवादके भागी नहीं होते, द्वितीयाके दिन लोग चन्द्रमाको प्रेमसे देखा करते हैं । चन्द्रमा फिर गणेशजीसे पूछने लगा ।। ११३ ।। हे प्रभो ! आप किस तरह संतुष्ट होते हैं, उस उपायको आपही कहो । गणेशजीने उत्तर दिया कि, जो पुरुष कृष्णपक्षकी चतुर्थीके दिन मेरा पूजन करके मोदकादिकोंका भोग लगावे रोहिणी समेत आपका पूजन करके अर्घ्यदान करे, तथा शक्तिके अनुसार बनाई हुई सोनेकी मेरी मूर्तिको ।। ११५ ।। ब्राह्मणको दे विधिपूर्वक मेरी कथा सुनकर भोजन करता है उसपर मैं सदा संतुष्ट रहता हूं, उसके समस्त संकटोंका निवारण करता हूं ।। ११६ ।। भाद्रपदशुक्ला चतुर्थीके दिन मेरी सुवर्ण सुन्दर मूर्ति बनवानी चाहिये, यदि सुवर्णमूर्ति बनवानेकी शक्ति न हो तो शुद्ध मृत्तिकाकीही बनवाले, उस मूर्तिमें मेरा आवाहनादि करके अनेक तरहके पुष्पोंसे मेरी पूजा करके ।। ११७ ।। ब्राह्मणोंको भोजन करावे, फिर रातमें जागरण अवश्य करे । पूजनकी विधि यह है कि, सर्वतोभद्रमण्डल या नवग्रह मण्डल बनवा कर उसके मध्यमें धान्यराशि रखके उसपर विना छिद्रका कलशस्थापन करे ।। ११८ ।। उस कलशके ऊपर पूर्णपात्रको रख वस्त्रवेष्टित करके उसपर मेरी सुवर्णमयी प्रतिमाको, शक्ति न होतो मृत्तिकाकीही मूर्तिको स्थापित कर,दो वस्त्रोंसे नेपथ्यकरके मोदकादिद्वारा पूजन करना चाहिये ।। ११९ ।। पूजन करनेवालेको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यकी रक्षा करता हुआ अरुण वस्त्र धारण करे । मेरी पूजाके समयमें मेरी मूर्तिके आगे रोहिणीके साथ तेरी रजतमयी मूर्तिको स्थापित करके पूजन करे ।। १२० ।। वह रजतमयी चन्द्र मूर्ति भी अपनी सम्पत्तिके अनुरूपही बनवाये "ओं शिवप्रियाय नमः वस्त्रं समर्पये" शिवके प्यारे पुत्रके लिये नमस्कार, वस्त्र देता हूं इस मंत्रसे धौत वस्त्र "ओम् गणाधिपाय नमः उपवस्त्रं समर्पये" गणाधिपके लिये नमस्कार उपवस्त्रका समर्पण करताहूं इससे डुपट्टा (उपवस्त्र) "ओं लंबोदराय नमः गन्धं-समर्पये" ओं लम्बोदरके लिये नमस्कार गन्ध देता हूं इससे रक्त सुगन्धितचन्दन, "ओम् सिद्धिप्रदायकाय नमः पुष्पाणि समर्पये" सिद्धिदेनेवालेके लिये नमस्कार फूल चढाता हूं इससे सुगन्धित पुष्प, "ओम् कामरूपाय नमः ताम्बूलं समर्पये" कामरूपीके लिये नमस्कार पान चढाता हूं इससे ताम्बूल, और "धनदाय नमः, दक्षिणां समर्पये" धन देनेवालेके लिये नमस्कार दक्षिणा देता हूं इससे दक्षिणा चढावे । मेरे ये तथा अन्यान्य नाममंत्रोंसे ईखके दण्डे एवं लड्डुओंका होम करे पर होमके समयमें "नमः"इस पदकी जगहमें "स्वाहा" पदका नेवेश करना चाहिये । हवन करनेके पश्चात् सब सिद्धियोंके प्रदाता गणपतिका विसर्जन करे ।।१२४।। इस

प्रकार गणेशका पूजन करके विधि पूर्वक कथा सुने, तत्पश्चात् इस मंत्रसे मेरी मूर्तिको ब्राह्मणके लिये दे दे ।। १२५ ।। कि, हे देवोंके देव ! हे गणेश्वर ! आप इस दानसे प्रसन्न हों । हे देव ! मेरे सभी कार्य सदा सब जगह निर्विघ्न पूर्ण हों, मेरा सर्वत्र आदर हो, मुझे राज्यसम्पत्ति मिले, मेरे पुत्र पौत्रन सम्पत्ति बढे । ऐसा आप मुझपर अनुग्रह करें । व्रत करनेवाला अपनी धनसम्पत्तिके अनुसार गौ, धान्य और वस्त्रोंकोभी ब्राह्मणोंके लिये दे ।। १२७ ।। ब्राह्मणके दान देनेके बाद मौनी होकर मधुर मोदक और पूड़ोंका भोजन करे, पर लवण एवं क्षारके पदार्थोंका भोजन न करे ।। १२८ ।। हे चन्द्र ! जो मनुष्य इस प्रकार व्रत करते हैं, उनकी सदा जय होती है । मैं उसके लिये अणिमा आदिक मुख्य तथा आकाश गमनादिक गौण अथवा कार्य्य सिद्धि एवं धन धान्यकी सम्पत्तिप्रदान करता हूं । सन्तानसुखको बढाता हूं ।। १२९ ।। इस प्रकार पूजनविधि और उसका माहात्म्य बताकर भगवान् गणपणिजी अन्तर्हित होगये । हे श्रीकृष्ण ! आप भी मिथ्या अपवादकी शान्तिके लिये गणपति व्रतको करो, इससे तुम्हारीभी सिद्धि होगी ।। १३० ।। नारदजीने व्रत करनेके लिये कहा तथा भक्तोंके पाप दुखोंको हरनेवाले स्वयम् कृष्णचन्द्रजीने भी इस गणपतिव्रतको किया वे इस व्रतके प्रभावसे ही मिथ्यापवादको धोकर शुद्ध हो गये ।। ३१ ।। जो लोग तुम्हारे उस स्यमन्तकमणिवाले आख्यानको सुनेंगे उन लोगोंकेभी भाद्रशुक्ला चतुर्थीमें चन्द्रदर्शन जन्यदोष स्पर्श नहीं करेगा ।। १३२ ।। हे श्रीकृष्ण ! तुमने किसी समयमें भाद्रशुक्ला चतुर्थीको चन्द्रदर्शन किया था । इसीसे तुम्हारे यह दोष लगा है । ऐसेही जिनके भाद्रशुक्ला चतुर्थीके दिन चन्द्रदर्शन करनेसे मिथ्या अपवाद लगे, वेभी उस दोषकी शान्तिके लिये इस समस्त चरितको सुनें ।।१३३।। और जवजब मनमें व्याकुलता खडी हो या कोई सन्देह उपस्थित हो तब तव इस संकटनिवारण स्यमन्तकोपाख्यानको सुने । इतना कहकर कृष्णजीके प्रसन्न किये हुए श्रीगणेशजी अपने धामको चले गये ।। १३४ ।। अतः, जब किसी कार्यको करना हो उससमय सभी स्त्री और पुरुषोंको चाहिये कि, वे श्रीगणेशजीके इस भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीवाले व्रतको अवश्य करे । इसव्रतके करनेसे उनके मन चाहे सब कार्य सिद्ध होते हैं । विघ्नराज गणेशजीके प्रसन्न होने पर कुछ भी कठिन नहीं है किसी भी कार्यमें विघ्न उपस्थित नहीं होता ।। १३५ ।। इस प्रकार स्कन्द पुराणान्तर्गत नन्दिकेश्वर सनत्कुमारके संवादरूपमें स्यमन्तकोपाख्यान पूरा हुआ ।

अथ कपर्दिविनायकव्रतम्

श्रावणस्य सिते पक्षे चतुर्थ्यामेकभुग्व्रती ।। व्रतं कुर्याद्गणेशस्य मासमेकं व्रतं चरेत् ।। सर्वसिद्धिकरं नृणां सुखं चैत्र सुरेश्वर ।। तद्विधिः–तिथ्यादि स्मृत्वा मम चतुर्विधपुरुषार्थं सिद्ध्यर्थं कर्पादि गणेशव्रतमहं करिष्ये इति संकल्प्य, मूलमन्त्रेण षडङ्गन्यासं कृत्वा पूजां समारभेत् ।। तत्रादौ पीठपूजा ॐ नमोभगवते सकलगुणात्मशक्तियुतानन्तयोगपीठायनमः ।। अष्टदलकेसरेषु ।। ॐ तीव्रायै नमः । ज्वालिन्यै० । नन्दायै० । भोगदायै० । कामरूपिण्यै० । उग्रायै० । तेजोवत्यै० । सत्यायै० । मध्ये विघ्नविनाशिन्यै० ।। अथ ध्यानम्-एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम् ।। विघ्ननाशकरं देवं गणेशं प्रणमाम्यहम् ।।इमां पूजां गृहाणेश कर्पादिगणनायक ।। इतिध्यात्वा ।। आगच्छ देवदेवेश स्थाने चात्र स्थिरो भव ।। यद्व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधौभव ।। इतित्रिवारं पठेत् ।। विनायक नमस्तुभ्यमुमामलसमुद्भव ।। इमां मया कृतां पूजां प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।। सहस्रशीर्षेत्यावाहनम् ।। अलंकारसमायुक्तं मुक्तामणिविभूषितम् ।। स्वर्णसिंहासनं चारु प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पुरुष एवेदमित्यासनम् ।। गौरीसुत नमस्तेऽस्तु शंकरप्रिय-

कारक ॥ भक्त्या पाद्यं मया दत्तं गृहाण गणनायक ॥ एतावानस्येति पाद्यम् ॥ व्रतमुद्दिश्य विघ्नेश गन्धपुष्पादिसंयुतम् ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वसिद्धिप्रदायक ॥ त्रिपादूर्ध्व इत्यर्घ्यम् ॥ गणाधिप नमस्तेऽस्तु गौरीसुत गजानन ॥ गृहाणाचमनीयं त्वं सर्वसिद्धिप्रदायक ॥ तस्माद्विराडित्याचमनीयम् ॥ अनाथनाथ सर्वज्ञ गीर्वाण-परिपूजित ॥ स्नानं पञ्चामृतं देव गृहाण गणनायक ॥ आप्यायस्वेति दुग्धम् ॥ दधि क्राव्णो इति दधि ॥ घृतं मिमिक्ष इति घृतम् ॥ मधुवातेति मधु ॥ स्वादुः पयस्वेति शर्करा ॥ इति पंचामृतस्नानम् ॥ गङ्गाजलं समानीतं हेमाम्भोरुह-वासितम् ॥ स्नाने स्वीकुरु विघ्नेश कर्पादिगणनायक ॥ यत्पुरुषेणेति स्नानम् ॥ हरिद्वस्त्रद्वयं देव देवाङ्गवसनोपमम् ॥ भक्त्या दत्तं गृहाणेश लंबोदर हरात्मज ॥ तं यज्ञमिति वस्त्रम् ॥ नानालंकारसंयुक्तं नानारत्नेर्विभूषितम् ॥ अनेकदिव्या-भरणं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ आभरणानि ॥ राजतं ब्रह्मसूत्रं च काञ्चनं चोत्तरी-यकम् ॥ भालचन्द्र नमस्तुभ्यं गृहाण वरदो भव ॥ तस्माद्यज्ञादिति यज्ञोपवीतम् ॥ कर्पूरकुंकुमैर्युक्तं दिव्यचन्दनमुत्तमम् ॥ विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत इति गन्धम् ॥ अक्षतान्धवलान्देव सिद्धगन्धर्वपूजित ॥ भक्त्या दत्तान् गृहाणेमान् सर्वसिद्धिप्रदायक ॥ अक्षतान् ॥ सुगंधीनि च पुष्पाणि ऋद्धि-सिद्धिप्रदायक ॥ कर्पादिगणनाथेश मया दत्तानि गृह्यताम् ॥ तस्मादश्वेति पुष्पाणि । अथाङ्गपूजा-कर्पादिगणनाथाय० पादौपू० गणेशाय० जानुनीपू० । गणनाथाय० ऊरूपू० । गणक्रीडाय० कटिंपू० । वक्रतुण्डाय० हृदयंपू० । लम्बोदराय० कण्ठंपू० । गजाननाय० स्कन्धौपू० । हेरम्बाय० हस्तौपू० । विकटाय० मुखंपू० । विघ्न-राजाय० नेत्रेपू० । धूम्रवर्णाय० शिरःपू० । कर्पादिनेन० सर्वाङ्गंपू० ॥ अथावरण-पूजा-ईशानाय० अघोराय० तत्पुरुषाय० वामदेवाय० सद्योजाताय० इतिप्रथमा-वरणम् ॥ १ ॥ वक्रतुण्डाय० एकदन्ताय०महोदराय०गजाननाय०विकटाय० ॥ विघ्नराजाय० धूम्रवर्णाय० विनायकाय० द्वितीयावरणम् ॥ २ ॥ ब्राह्मैन० माहेश्वर्यै० कौमार्यै० वैष्णव्यै० वाराह्यै० इन्द्राण्यै० चामुण्डायै० महालक्ष्म्यै० तृतीयावरणम्[1]॥ ३ ॥ इन्द्राय० अग्नये० यमाय० निर्ऋतये० वरुणाय० वायवे०। सोमाय० ईशानाय० । वरुणनिर्ऋत्योर्मध्ये अनन्ताय० । इन्द्रेशानयोर्मध्ये ब्रह्मणे० । इतिचतुर्थावरणम् ॥ ४ ॥ वज्राय० शक्तये० दण्डाय० खड्गाय० पाशाय० अंकुशाय० गदायै० त्रिशूलाय० चक्राय० अब्जाय० इति पंचमावरणम् ॥ ५ ॥ दशाङ्गं गुग्गुलुं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम् ॥ उमासुत नमस्तुभ्यं गृहाण वरदो भव ॥

१ कुबेरायेतिपाठः

यत्पुरुषमिति धूपम् ।। गृहाण मंगळं देव घृतवर्तिसमन्वितम् ।। दीपं ज्ञानप्रदं चारु रुद्रप्रिय नमोस्तु ते ।। ब्राह्मणोस्येति द्वीपम् ।। नैवेद्यं गृह्यतां देव०।। चन्द्रमायनस इति नैवेद्यम् ।। आचमनीयम् ।। इदं फलमितिफलम् ।। पूगीफलमिति तांबूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। अग्निर्ज्योती रविर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निर्विभावसुः ।। ज्योतिस्त्वं सर्वदेवानां गणाधिप नमोऽस्तु ते ।। नीराजनम् ।। यानि कानि च० नाभ्या आसिदिति प्रदक्षिणाः ।। नमोस्त्वनन्ताय० सप्तास्यासन्निति नमस्कारः ।। गणाधिप नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽतु गजानन ।। लंबोदर नमस्तेस्तु नमस्तेस्त्वम्बिकासुत ।। एकदन्त नमस्तेस्तु नमस्तेऽस्तु भवप्रिय ।। स्कन्दाग्रज नमस्तेऽस्तु नमस्तेस्त्वीप्सितप्रद ।। कपर्दिगणनाथेश सर्वसंपत्प्रदायक ।। यज्ञेनयज्ञ० मन्त्रपुष्पांजलिम्।। अथ ब्रह्मचारिपूजा-अकणान्मुष्टिगणितांस्तण्डुलान्सवराटकान् ।। विप्राय बटवे दद्याद्गन्धपुष्पार्चिताय च ।। तण्डुलान्वै ततो दद्यात्पाके चान्ने च शोभनान् ।। कपर्दिगणनाथोऽसौ प्रीयतां तण्डुलैः सदा । कथां श्रुत्वा विधानेन देवमुद्वासयेत्ततः ।। इतिकपर्दिगणपतिपूजा ।। अथ कथा ।। सूत उवाच ।। कदाचिदुपविष्टश्च पार्वत्या सह शंकरः ।। इति प्राह प्रियां तां तु किं द्यूते रतिरस्ति ते ।। १ ।। दुरोदरमिषाज्जेतुं वाञ्छितं प्रत्युवाच सा । ममापि तस्मिन्सास्त्येव त्वया चेद्दयिते पणः ।। २ ।। शिव उवाच । तव किंकिमभीष्टं तु दास्यामि परमेश्वरि ।। लोकत्रयं प्रयच्छस्व किमन्यैर्वचनैर्वृथा ।। ३ ।। पार्वत्युवाच ।। यच्छामि पश्चादेतन्मे दातव्यमिति वोच्यते ।। यदि त्वया तदानीं तु विश्वासो नास्ति मे त्वयि ।। ४ ।। वाक्यमेवंविधं श्रुत्वा शर्वः सर्वात्मनाम्बिके ।। न विश्वासयितुं केन शक्यते किंपुनर्मम ।। ५ ।। सोल्लुण्ठनेन किं देवि द्यूतेच्छास्ति तवैव चेत् ।। पणः प्रकल्प्य क्रियतां पणेतिष्ठाम्यहं सदा ।। ६।। भावं सञ्चिन्त्य पार्वत्याः पणमाकल्प्य यत्नतः । त्रिशूलं त्रिदशान् सर्वान् साक्ष्यर्थं च दुरोदरे ।। ७ ।। तस्मिन्कर्मणि तज्जित्वा पणमप्यग्रहीच्छिवा ।। एवं डमरुकादीनि तान्यन्यान्यजयत्पृथक् ।।८।। दीनो भूत्वा महादेवो भवानीब्रवीदिति ।। शार्दूलचर्म तन्मध्ये देहि मे गिरिजे शुभे ।। ९ ।। पार्वत्युवाच ।। न चैवं वक्तुमुचितं महादेव पणे गते ।। पणे जिते न दास्यामि पूर्वमुक्तोऽसि तत्स्मर ।। १०।। अविचिन्त्य ब्रवीषि त्वं जगदीश कृपानिधे ।। इति श्रुत्वा वचो देव्याः कुपितोऽसौ महेश्वरः ।।११।। आद्वादशदिनं देवि न करिष्यामि भाषणम् ।। इत्युक्त्वा च महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ।। १२ ।। रक्षरक्ष क्व गच्छामि किञ्जीवनमतः परम् ।। इतिसञ्चिन्त्य सा द्रष्टुमुद्यानं प्रत्यपद्यत ।। १३ ।। गिरिजा तत्र वनितावृन्दं दृष्ट्वाब्रवीदिति ।। किमर्थमागताः सर्वाः किमेतत्क्रियतेऽधुना ।। १४ ।। स्त्रिय ऊचुः ।। कपर्दिगणनाथस्य व्रतं कर्तुमिहागताः ।। तस्य पूजां विधा-

यादाविदानीं श्रूयते कथा ।। १५ ।। पार्वत्युवाच ।। किमर्थं तद्व्रतं नार्यो युष्माभिः क्रियते वने ।। फलमस्य किमस्तीति पार्वती प्राह ताः प्रति ।। १६ ।। स्त्रिय ऊचुः ।। पृच्छ्यते किं त्वया देवि नरैर्नारीभिरम्बिके ।। अभीष्टसिद्धिरस्मात्तु लभ्यते भुवनत्रये ।। १७ ।। इति श्रुत्वा वचस्तासां पार्वती प्राह ता भुवि ।। मत्तः कुपित्वा भगवान्निर्गतस्तु महेश्वरः ।। १८ ।। तस्य सन्दर्शनायैव करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।। व्रतस्यैतस्य किं दानं विधानं कीदृशं मम ।। १९ ।। सर्वं विचिन्त्य मनसा कथयन्तु सुराङ्गनाः ।। स्त्रिय ऊचुः ।। कालो विधानं दानं च व्रतस्यास्य फलं तथा ।। २० ।। तत्सर्वं सावधानेन वक्ष्यामः शृणु पार्वति।।पातादिदोषरहिते सचतुर्भानुवासरे।२१। मासे कार्यं व्रतं सम्यग्गणेशार्पितमानसैः ।। तैलताम्बूलभोगादीन्वर्जयित्वा शिवप्रिये ।। २२ ।। मन्दवारे तु भुञ्जीयादेकवारं मितं यथा ।। प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा स्नानंकुर्याद्विधानतः ।। २३ ।। वापीकूपतडागेषु नद्यां शुक्लतिलैःसह ।। संध्यादिकं यथान्यायं सर्वं निर्वर्त्य यत्नतः ।। २४ ।। अर्चनागारमासाद्य गोमयेनोपलिप्य च ।। गोचर्ममात्रं तन्मध्ये कुर्याद्गन्धेन मण्डलम् ।। २५ ।। तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं तन्मध्ये गणनायकम् ।। पूजयेत्स्वच्छकुसुमैर्हरिद्रामिश्रिताक्षतैः ।। २६ ।। गां गीं गूं गैं गौं गश्च न्यासं कृत्वा ततः परम् ।। मन्त्रेणानेन कुसुमैर्देवमावाह्य निक्षिपेत् ।। २७ ।। अथवा गणनाथस्य प्रतिमामथ पूजयेत् ।। ततस्तद्गतचित्तः सन् ध्यानं कुर्याद्विधानतः ।। २८ ।। एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम् ।। विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ।। २९ ।। इमां पूजां गृहाणेश कर्पादिगणनायक । आगच्छेति त्रिरुच्चार्य कुर्यादावाहनोदकम् ।। ३० ।। पुराणमन्त्रैरथवा वेदमन्त्रैश्च षोडशैः । पूजयेदुपचारैश्च मूलमन्त्रेण पार्वति ।। ३१ ।। तत्तत्प्रकाशकैर्मंत्रैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।। इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेद्देवसन्निधौ ।। ३२ ।। लम्बोदर नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्त्वम्बिकासुत । एकदन्त नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्त्वीप्सितप्रद ।। ३३ ।। कर्पादिगणनाथस्य सर्वसम्पत्प्रदायिनः ।। पूजाप्रकारः कथितस्तवास्माभिः शुचिस्मिते ।। ३४ ।। अकणानञ्जलिमितान् हविष्यव्रीहितण्डुलान् ।। स्वच्छान्यत्नेन संशोध्य चूर्णं कुर्यान्महेश्वरि ।। ३५ ।। शिवे तु चूर्णं प्रथमे भानुवारेऽर्धचन्द्रवत् । कुर्याद्द्वितीये सम्पूर्णं चन्द्रवद्यष्टिकाष्टकम् ।। ३६ ।। तृतीये पायसान्नं च दध्यन्नं च चतुर्थके ।। आनीयाष्टांशकं सम्यग्देवं सम्पूज्य भक्तितः ।। ३७ ।। कल्पितान्नानि विधिवद्विद्यन्ते यानि यानि च ।। तेषां तेषामष्टमांशं तस्मै सम्यक् समर्पयेत् ।। ३८ ।। ततः शुद्धाय बटवे दद्यादेकं वराटकम् ।। मुष्टचा मितांस्तण्डुलांश्च भुञ्जीयाद्भागसप्तमम् ।। ३९ ।। याः कामयन्ते ये भक्ताः पूजास्ते प्राप्नुवन्ति हि ।। इत्यूचुस्ता भवानीं तु स्त्रियो विगतकल्मषाः ।। ४० ।। तासां तद्वचनं श्रुत्वा तदानीमकरोद्व्रतम् ।। तत्र क्षणाच्च विश्वेशः प्रत्यक्षः समजायत ।। ४१ ।। पार्वत्यु-

वाच ।। त्रिलोकनाथ देवेश करुणाकर शंकर ।। दीनामनन्यगतिकां भक्तवत्सल पाहि माम् ।। ४२ ।। तुष्टश्च शंकरः प्राह कथमेतत्त्वया कृतम् ।। पार्वत्युवाच ।। कपर्दिगणनाथस्य माहात्म्यात्किं न सिद्धयति ।। ४३ ।। सूत उवाच ।। व्रतस्यैतस्य माहात्म्यं ज्ञातुं वाञ्छितवान् स्वयम् ।। उद्दिश्यागमनं विष्णोरकरोत्तद्व्रतं शिवः ।। ४४ ।। तदानीं गरुडारूढः समागत्य तमब्रवीत् ।। मदागमननिमित्तं च किं कृतं शंकर त्वया ।। ४५ ।। ममापि ज्ञापनीयं तदित्युक्ते ज्ञापयच्छिवः ।। अथैतदकरोद्विष्णुरुद्दिश्यागमनं विधेः ।।४६।। आगतः सन्विधिः शीघ्रं मामाज्ञापय माधव ।। विष्णुरुवाच ।। प्रयोजनं नास्ति विधे तवागमनकारणम् ।।४७।। एकदन्त व्रतं किञ्चिद्भवत्येव न संशयः ।। इन्द्रागमनमुद्दिश्य-तदानीं तेन तत्कृतम् ।।४८।। आगत्य सहसा सोऽपि ममाज्ञापय विश्वसृट् ।। विधिरुवाच ।। हेरम्बव्रतमाहात्म्यं द्रष्टुमेवं कृतं मया ।। ४९ ।। ममापि ज्ञापनीयं तदित्युक्ते विधिनोदितम् ।। विक्रमादित्यमुद्दिश्य वज्री तदकरोच्च सः ।। ५० ।। आगतोऽहं मनुष्यस्त्वामिन्द्र मत्तकिमीप्सितम् ।। कपर्दिहस्तिवदनव्रतमाहात्म्यमीदृशम् ।। ५१ ।। इति ज्ञातुं मयाभीष्टं तल्लब्धं तं तदाब्रवीत् ।। विधानं तस्य माहात्म्यं ज्ञापनीयं त्वयेति मे ।। ५२ ।। पप्रच्छ विक्रमादित्य उत्सुकश्च पुरन्दरम् ।। पुरन्दरमुखाज्ज्ञात्वा तत्सर्वं स्वपुरीं प्रति ।। ५३ ।। आवृत्य प्रययौ राजा पराक्रमपरायणः ।। कपर्दीशव्रतं कृत्वा महिष्याः पुरतोऽवदत् ।। ५४ ।। जेष्यामि सकलाञ्छत्रून्प्राप्स्यामि च महोन्नतिम् ।। तस्य व्रतस्य किं दानमिति सा प्राह विक्रमम् ।। ५५ ।। प्रत्युवाच क्रियामर्को दद्यादेकं वराटकम् ।। एवं राज्ञो मुखाच्छ्रुत्वा दूषयामास तद्व्रतम् ।। ५६ ।। एवं चेत्तन्न कर्तव्यं मद्गेहे यत्र कुत्र चित् ।। कपर्दिगणनाथेन किं स्यान्मम सुशोभनम् ।।५७।। क्रियते न मया नाथ कपर्द्याख्यं तु यद्व्रतम् ।। इत्यादिदूषणादाशु कुष्ठव्याधिमवाप सा ।।५८।। कुष्ठव्याधियुतां पत्नीं दृष्ट्वा राजाऽब्रवीत्तदा ।। न स्थातव्यं त्वयात्रेति सर्वं राज्यं विनश्यति ।। ५९ ।। अर्कस्य वचनं श्रुत्वा ऋष्याश्रममगाच्च सा ।। परिचर्यावशात्तुष्टास्तस्याः सर्वे मुनीश्वराः ।। ६० ।। निश्चित्य योगमार्गेण सर्वे तामब्रुवन्सतीम् ।। कपर्दीशव्रताक्षेपाद्दुःखं प्राप्तं त्वया शुभे ।। ६१ ।। कुरुष्व तद्व्रतं सम्यक्सर्वं भद्रं भविष्यति ।। ऋषीणामाज्ञया कृत्वा कपर्दीशव्रतं महत् ।। ६२ ।। तदानीं राजमहिषी दिव्यं देहमवाप सा ।। अस्मिन्नन्तरिते काले भवान्या सह शंकरः ।। ६३ ।। द्रष्टुं ययौ वृषारूढो भुवनानि चतुर्दश ।। मध्योमार्गं द्विजेन्द्रस्य रोदनं भववल्लभा ।। ६४ ।। श्रुत्वा ब्राह्मण मारोदीः किमर्थं तव रोदनम् ।। ब्राह्मण उवाच ।। न किमप्यस्ति मे दुःखं दारिद्र्यादेव केवलात् ।। ६५ ।। देव्युवाच । दुखं चेत्तव विपेन्द्र कपर्दीशव्रतं कुरु ।। ब्राह्मण उवाच ।। एतत्कर्तुं

व्रतं देवि सामर्थ्यं नास्ति मेऽधुना ।। ६६ ।। देव्युवाच ।। विक्रमार्कपुरे सर्वं वैश्यो दास्यति तत्कुरु ।। कपर्दीशव्रतेनैव मन्त्रित्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ।। ६७ ।। दारिद्र-मोचनं सम्यग्भविष्यति न संशयः ।। सूत उवाच ।। गृहं प्रतिसमागम्य गृहीत्वा तण्डुलान्द्विजः ।। ६८ ।। वैश्याद्गृहीत्वा तत्सर्वं तदानीमकरोद्व्रतम्।।तस्मिन्नर्क पुरे विप्रस्तन्मन्त्रित्वमवाप सः ।। ६९ ।। आज्ञातयत्कपर्दीश व्रतं वैश्यस्य तत्क्ष-णात् ।। अकरोत्स्वसुतायश्च विक्रमः पतिरस्त्विति ।। ७० ।। व्रतप्रभावादादित्य उपयेमे विशः सुताम् ।। अनेनैव विवाहेन परां प्रीतिमवाप सा ।। ७१ ।। एवमन्त-रिते काले मृगयार्थं प्रविश्य सः ।। गहनं क्षुत्तृषार्त्तः सन्ययौ मुनिवराश्रमम् ।। ७२ ।। उपचारैः श्रमं नीत्वा तेषामर्को मनोरमाम् ।। रमणीयाश्रमे तस्मिन्दर्श यामास विक्रमः ।। ७३ ।। इत्यपृच्छन्मुनीन्सर्वान् दातव्यैषा ममाङ्गना ।। तवेयं महिषी-त्युक्त्वा ते तां तस्मै समर्पयन् ।। ७४ ।। समं महिष्या स्वपुरीं दिव्यनारीनरैर्यु-ताम् ।। हृष्टः सन्विक्रमादित्यः संभ्रमात्प्राप भूपतिः ।। ७५ ।। कर्पादिगणनाथस्य व्रतं कृत्वा स्त्रिया सह ।। अजयद्विक्रमादित्यः सकलं शत्रुमण्डलम् ।। ७६ ।। गण-नाथव्रतेनैव पुत्रपौत्रवृतश्च स ।। धनधान्यादिसंपद्भिः सुखेन न्यवसद्भुवि ।। ७७ ।। एतद्व्रतं ये कुर्वन्ति याश्च कल्पविधानतः।।चतुरः पुरुषार्थश्च ते ताश्च प्राप्नुवन्ति हि ।। ७८ ।। हयमेधस्य विघ्ने तु संजाते सगरः पुरा ।। इदमेव व्रतं कृत्वा पुनरश्वं प्रलब्धवान् ।। ७९ ।। इमां कथां पञ्चवारं प्रथमे भानुवासरे ।। द्वितीये च तृतीये च षड्वारं शृणुयाद्व्रती ।।८०।। इति श्रीस्कन्दपुराणे कर्पादिविनायक-व्रतकथा समाप्ता ।।

कर्पादिविनायक व्रतका निरूपण करते हैं–व्रतकरनेवाला श्रावणसुदि चतुर्थी रविवारसे एक वक्त भोजनकरता हुआ एक महीना इस व्रतको करे । इसके करनेसे हे सुरेश्वर ! मनुष्योंको सब सिद्धियां प्राप्त होजाती हैं । अब इस व्रतके करनेकी विधि कहते हैं–प्रथम संकल्प करे उस संकल्पमें तिथ्यादिका स्मरणकरके कहे कि, मैं अपने चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये कर्पादिविनायकके व्रतको करता हूं, फिर कर्पादिविनायकके मूलमंत्रसे षडङ्ग न्यास करके उनकी पूजाकरे "ओं नमः कर्पादिने" यह मूलमंत्र है इससे अङ्गन्यास करनेवाला, ओम् नमः हृदयाय नमः, ओम्क शिरसे स्वाहा, ओम् शिखाये वषट्, ओं दिकवचाय हुं, ओं नेत्रत्राय वौषट्, ओं नमः कर्पादिने अस्त्राय फट् । इस प्रकार छः वार उच्चारण करता हुआ हृदयादि षडङ्गन्यास करे । पीछे पूजनके आरंभमें पीठ पूजन करे । पीठ (आसन) कर्णिकायुक्त अष्टदल कमलके आकारका बनावे, दहिने हाथमें अक्षत और पुष्प लेकर आसनपर छोडता हुआ ओम् नमः' यहांसे 'पीठाय नमः' यहांतक पढे इस मंत्रका अर्थ यह है कि, संपूर्ण गुणवाले आत्म शक्तिवाले अनन्त पीठोंवाले भगवान्के लिये नमस्कार है । अष्टदल कमलके आठों दलों और उसके केशर पर नीचे लिखे हुए मंत्रोंमें एक एकको एक एक कर बोलता हुआ अक्षत छोडता जाय, "ओं तीव्रायै नमः' तीव्राके लिये नमस्कार 'ओम् ज्वालिन्यै नमः ज्वालिनी के लिये नमस्कार 'ओम् नन्दायै नमः' नन्दाके लिये नमस्कार 'ओम् भोगदायै नमः' भोगदाको नमस्कार 'ओम् कामरूपिण्यै नमः' कामरूपीके लिये नमस्कार 'ओं उग्राय नमः ' उग्राके लिये नमस्कार 'ओं तेजोवत्यै

नमः' तेजवालीको नमस्कार 'ओम् सत्यायै नमः' सत्याके लिये नमस्कार इन आठ मन्त्रोंको पढे फिर उसकी कर्णिका पर अक्षत पुष्पोंको छोड़ता हुआ 'विघ्न विनाशिन्यै नमः' विघ्नविनाशिनीके लिये नमस्कार इसको पढे फिर ध्यान करे कि, एकदन्त, महा (स्थूल) काय, लम्बोदर, गजसदृश मुखवाले, विघ्नोंके नाशक गणपति-देवको मैं प्रणाम करता हूं। हे जटाजूट धारी गणनायक मैं जो आपकी पूजा करूं आप उसको अङ्गीकार करिये इस प्रकार ध्यान करके 'आगच्छ' इस मन्त्रका तीनबार हाथ जोडकर उच्चारण करे कि, हे देव देवे श ! आप इस स्थलमें पधारकर तबतक स्थिर हो जबतक कि आपका व्रत समाप्त न हो जाय। 'विनायक' इस पौराणिक और 'ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस वैदिक मन्त्रसे आवाहन करे कि, हे विनायक ! हे पार्वतीके शरीरसे उतरते हुए मैलसे प्रगट होनेवाले ! आपके लिये प्रणाम है, आपकी प्रीतिके लिये जो मैं पूजा करता हूं उसे आप ग्रहण करिये 'अलंकार' इस पौराणिक तथा 'ओम् पुरुष एवेद ' इस वैदिकम न्त्रसे आसन प्रदान करे कि,अलंकार एवं मोतियोंसे सुशोभित यह सिंहासन आपके विराजमान होनेके लिये है, इस सुन्दर आसनको आपकी प्रसन्नताके लिये समर्पण करताहूं आप इसे ग्रहण करिये 'गौरीसुत' इस पौरणिक मंत्रसे तथा 'एतावानस्य' इस वैदिक मंत्रसे पाद प्रक्षालनार्थ पाद्य दान करे, हे गौरीनन्दन ! आप महेश्वरको प्रसन्न करनेवाले हैं, हे गणोंके अधि-राज ! आपके लिये भक्तिसे मैंने पाद्य प्रदान किया है आप इसे ग्रहण करिये 'व्रतमुद्दिश्य' इत्यादिक पौराणिक एवं त्रिपादूर्ध्व इस वैदिक मन्त्रसे हस्तप्रक्षालनार्थ अर्घ्य प्रदान करे। अर्थ यह है कि, हे विघ्नेश्वर ! मैंने व्रतकी सद्गुणाके लिये गन्ध पुष्पादिसे युक्त अर्घ्य प्रदान किया है, हे समस्त सिद्धियोंके प्रदायक ! आप इसे ग्रहण करिये ' गणाधिप' इस तान्त्रिक एवम् 'तस्माद्विराडजायत' इस वैदिक मंत्रसे अचामनीय प्रदान करे कि, हे गणाधिप ! हे गौरीनन्दन ! हे गजानन ! हे सर्व सिद्धप्रदायक ! आप आचमन करो, आपको आचमन करानेके लिये यह आचमनीय है 'अनाथनाथ इस तान्त्रिकमन्त्रसे पञ्चामृतस्नान करावे कि, अनाथोंके नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे देवताओंके भी पूज्य ! हे गणाधिराज ! हे देव ! स्नान करनेके लिये पञ्चामृतग्रहण करिये। पञ्चामृतसे स्नान करानेके पूर्व "ओम् आप्यायस्व समेंतु" इस वैदिकमन्त्रसे दुग्ध स्नान कराकर शुद्ध जलसे स्नान करावे, 'ओम् दधि क्राव्णो इस वैदिकमन्त्रसे दधि स्नान,फिर शुद्धस्नान करावे। 'ओम्घृतं मिमिक्षे इससे घृतस्नान, फिर शुद्ध जलसे स्नान करावे। 'ओम् मधुवाता ऋतायते' इस वैदिकमन्त्रसे मधुस्नान, फिर शुद्धजलसे स्नान करावे। और "ओम् स्वादुः पयस्व" इससे शर्करा द्वारा स्नान कराकर शुद्ध जलसेस्नान करावे। इस प्रकार दुग्ध आदि द्वारा, अलग अलग और पञ्चामृतद्वारा एकवार स्नान कराकर (पञ्चामृतके मंत्रोंको पीछे लिख चुके हैं) 'गङ्गाजल' इस पौराणिक और 'ओम् यत्पुरुषेण हविषा' इस वैदिक मन्त्रद्वारा शुद्ध-स्नान करावे कि,हे कपर्दि गणनायक! हे विघ्नराज'स्नानार्थ सुवर्णके कमलकी सुगन्धीसे सुवासित इस गङ्गाजल-को स्नानके लिये स्वीकृत करिये 'हरिद्वस्त्रद्वयं इस पौराणिक तथा 'ओं तं यज्ञं बर्हिषि " इस वैदिकमन्त्रसे वस्त्र धारण करावे। तान्त्रिक मन्त्रका यह अर्थ है कि, हे लम्बोदर ! हे शंकर नन्दन ! देवताओंके शरीरपर धारण करारे योग्य ये दो हरे रंगके वस्त्र आपके लिये भक्तिसे समर्पित किये हैं, हे ईश ! हे प्रभो ! आप इनको धारण करिये, 'नानालंकार' इससे आभूषण पहरावे कि, विविध अलंकार और रत्नोंसे सुन्दर इस आभरणोंकी राशिको आपकी प्रसन्नताके लिये समर्पित करता हूं आप इसे ग्रहण करिये 'राजतं" इस सेतथा"ओम् तस्माद्यज्ञात्सर्व" इससे यज्ञोपवीत पहिरावे। "राजतं" इस पद्यका यह अर्थ है कि, हे चन्द्रशेखर ! आपके लिये प्रणाम है, आप इस चांदी तारोंके इस यज्ञोपवीतको कांचन उत्तरीयको धारण करो" आपके लिये प्रणाम है, आप वर प्रदान मेरे प्रति करो "कर्पूरकुङकुमै" इस तान्त्रिक "ओम् तस्माद्यज्ञात्" इस वैदिकमन्त्रसे लाल सुगन्धित चन्दन लगावे। कर्पूर इसका अर्थ यह है कि, हे सुरश्रेष्ठ! कपूर केसरसे रुचिर इस दिव्य घिसे हुये चन्दनको, आप अपनी प्रसन्नताके लिये ग्रहण करिये 'अक्षतान्' इससे चावल लगावे। अर्थ इसका यह है कि, हे देवता, सिद्ध एवं गन्धर्वोंसे सेवित ! हे सर्व सिद्धि प्रदायक ! आपके लिये भक्तिसे सफेद अक्षत चढाये हैं आप इन्हें ग्रहण करिये 'सुगन्धीनि' इससे तथा 'ओम् तस्मादश्वा अजायन्त' इस वैदिकमन्त्रसे पुष्प तथा पुष्प-माला चढावे। 'सुगन्धीनि' इस लौकिक मन्त्रका अर्थ यह है कि, हे ऋद्धि और सिद्धिके प्रदान करनेवाले ! हे

कर्पाद गणेश ! आपके लिये मैंने ये सुगन्धित पुष्प समर्पण किये हैं आप इन्हे ग्रहण करिये फिर 'ओं कर्पादि-गणनाथाय नमः पादौ पूजयामि' इन मूलके कहे मन्त्रोंसे गणेशजीके चरणादि अङ्गोंकी अलग अलग पूजा करे । इन चतुर्थ्यन्त गणपति वाचक पदोंके आगे 'नम': इस पदका, द्वितीयान्त पादादि अङ्ग वाचक पदोंके आगे 'पूजयामि' इस क्रियापदका प्रयोग है । अर्थ स्पष्ट है । कि कर्पादि गणनाथ आदिके लिये नमस्कार है पाद जानू ऊरू आदिको पूजता हूं । ये बारह नाम हैं इनसे क्रमशः बारहों अंगोंकी पूजा होती है । अथ आवरणपूजा-शानके लिये नमस्कार, अघोरके लिये नमस्कार, तत्पुरुषके लिये नमस्कार, वामदेवके लिये नमस्कार, सद्यो-जातके लिये नमस्कार इनसे पहिले आवरणकी पूजा करनी चाहिये । वक्रतुण्डके लिये नमस्कार, एक दन्तकेधि० महोदयके०, गजाननके० बिकटके०, विघ्नराजके०, धूम्र वर्णके०, विनायककेलिये नमस्कार इनसे दूसरे आवरणकी पूजा होती है । ब्राह्मीके०, माहेश्वरी०, कौमारी०, वैष्णवी०, बाराही०, इन्द्राणी०, चामुण्डा० और महालक्ष्मीके लिये नमस्कार इससे तीसरे आवरणकी पूजा होती है । इन्द्रके लिये अग्निके लिये, यमके वरुण लिये, वायुके, लिये, सोमके लिये, ईशानके लिये, वरुण और नैर्ऋतिके बीचमें अनन्तके लिये इन्द्र और ईानके बीचमें ब्रह्माके लिये नमस्कार है, इनसे चौथे आवरणकी पूजा होती है । वज्र०, शक्ति०, दण्ड०, खड्ग०, पाश, अंकुश, गदा०, त्रिशूल०, चक्र०, और कमलके लिये नमस्कार, इनसे पांचमे आवरणकी पूजा होती है । 'दशाङ्गम्' इस तांत्रिक "ओयत्पुरुषम्" इस वैदिक मन्त्रसे धूप करे कि, हे पार्वतीनन्दन ! चन्दन और अगरसे सुगन्धित इस दशांग गुग्गलकी धूपको ग्रहण करके वर प्रदान करो, मेरे आपको प्रणाम हैं । 'गृहाण' इस पौराणिक और "ओं ब्राह्मणोऽस्य" इस वैदिकमन्त्रसे दीपक प्रज्वलित करके दीपककी ओर अक्षत छोडे, फिर हाथ धोवे । हे शंकरप्रिय ! आपके समीप यह माङ्गलिक सुन्दर घीसे पूर्ण और वत्तीसे युक्त प्रकाशस्वरूप ज्ञानको करनेवाला दीपक प्रज्वलित किया है, आप इस को ग्रहण करिये, आपके लिये प्रणाम है, 'नैवेद्यं गृह्यतांदेव' इस पूर्वोक्त पौराणिक मन्त्रसे, तथा "ओम् चन्द्रमा मनसो" इस वैदिकमन्त्रसे भोग धरे तदनन्तर "शीतलं निर्मलं तोयं" इस मन्त्रसे आचमन कराकर 'इदं फलं मया देव स्थापितम्" इस मन्त्रसे ऋतुफल, "पूगीफलं महद्दिव्यम्" इससे एला लवङ्ग समेत ताम्बूल और सुपारी, "हिरण्य गर्भगर्भस्यम्" इससे दक्षिणा समर्पण करना चाहिये फिर कपूर प्रज्वलित करके आरती करता हुआ "अग्निर्ज्योती" इस मन्त्रका उच्चारण करे । इसका अर्थ यह है कि, अग्नि और सूर्य प्रकाशस्वरूप है और ज्योति (प्रकाश) भी अग्नि एवं सूर्य स्वरूप है । हे गणाधिप ! आप समस्त देवताओंकी ज्योति हैं आपके लिये प्रणाम है "यानि कानि च पापानि" इस प्रागुक्त तान्त्रिकमन्त्रसे तथा "ओम् नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्" इस वैदिकमन्त्रसे प्रदक्षिणा करे । "नमो-स्त्वनन्ताय" ओंसप्तास्यासन् पीरधयः" इन मंत्रोंसे प्रणाम, "गणाधिप" इन पौराणिक तथा "ओम् यज्ञेन यज्ञम जयन्त" इस वैदिकमन्त्रसे पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । तान्त्रिकमन्त्रोंका अर्थ यह है कि, हे गणाधिप ! हे गजानन ! हे लम्बोदर ! हे पार्वतीनन्दन ! हे एकदन्त ! हे महादेवजीके पियारे पुत्र ! हे स्वामिकार्तिकके अग्रज ! हे अमितवरके प्रदानकारिन् ! हे कर्पादिन ! हे गणनाथ ! हे ईश्वर हे समस्तसम्पत्तिप्रद ! आपके लिये बारबार प्रणाम है । फिर ब्रह्मचारी बटुकका पूजन करे, उस पूजनमें उस ब्रह्मचारीकी पूजा करके उसके लिये विना फूटे, एक मुट्ठीभर, वराटकसमेत, भात करनेयोग्य सुगन्धित चावलोंको देकर प्रार्थना करे कि इन चावलोंके प्रदानसे कर्पादिगणनाथभगवान् मेरेपर सदा प्रसन्न रहें फिर कथाको सुने तदनन्तर उनका विसर्जन करें यह कर्पादिगणपतिका पूजाविधान पूरा हुआ ।। अब कथा कहते हैं—सूतजी शौनकादि मुनियोंसे बोले कि, किसी समय पार्वती और महादेवजी दोनों कैलासपर्वतपर विराजमान हो रहे थे, महादेवजी अपनी प्रिया पार्वतीजीसे बोले कि, हे पार्वति ! क्या तुम्हारी द्यूतक्रीडा करनेकी अभिलाषा है ।। १ ।। तब पार्वतीजीने भी द्यूतक्रीडामें महादेवजीको जीतनेके लिये प्रत्युत्तर दिया कि, मेरी भा द्यूतक्रीडा करनेकी अभिलाषा है यदि आप पण (डाव) लगावें ।। २ ।। महादेवजीने कहा कि, हे परमेश्वरि ! आपको क्या क्या पण (डाव) लगवाना है ? सो कहिये । मैं उसी पणको लगाऊंगा ; अस्तु मैंने त्रिलोकीका पण लगाया है. अब में जीतता हूं, लाओ, त्रिलोकीका प्रतिपादन कर, विशेष कहनेकी क्या जरूरत है ।। ३ ।। पार्वतीजीने उत्तर दिया कि, फिर यह प्रदान करेगी या नहीं, इस विषयमें आपको मेरा विश्वास नहीं है तो आप पहिलेही लीजिये में पहि-

लेही देती हूं ।। ४ ।। पार्वतीजीके ऐसे वचनोंको सुनकर महादेवजीने कहा कि, हे अम्बिके ! ऐसा कौन होगा जो आपका सर्वथा विश्वास न करे, फिर मैं आपका विश्वास न करूं, यह तो कभी हो ही नहीं सकता ।। ५ ।। किंतु हे देवि ! तुम ऐसे टेढे वचन क्यों बोलती हो, यदि आपकी द्यूतक्रीडाके लिये लालसा है तो दाव क्या रखती हो ? सो रखो, मैं दाव लगानेको सदा तैयार रहताहूं ।। ६ ।। महादेवजी, पार्वतीजीका दावलगानेके विषयमें विचार समझकर महादेवजीने अपने त्रिशूलको पणके रूपमें रखा और सभी देवताओंको हारजीतके अनुसन्धानके लिये साक्षिरूपसे स्थित किया ।। ७ ।। पार्वतीजीने जूएमें वह दाव जीत लिया । ऐसेही महादेवजीने जो जो अपने डमरु आदि उपकरण दावपर धरे वे भी सब पार्वतीजीने एक एक करके जीत लिये ।। ८ ।। इस प्रकार सब सामग्रीके हारनेपर महादेवजीका मुख दीन होगया, म्लानवदन होकर पार्वतीसे बोले कि, हे शुभे ! गिरिजे ! आपने जो जीते हैं उनमेंसे व्याघ्रचर्म मुझे देदीजिये ।। ९ ।। पार्वतीजीने कहा कि, अब आप वापिस देनेको मत कहो आप द्यूतमें दाव लगाकर हार गये हैं, मैंने पहिले ही कहाथा कि, हारनेपर कोई भी वस्तु वापिस नहीं दीजायगी आप उसे याद करें ।। १० ।। हे विश्वेश्वर ! हे दयासागर ! अब जो वापिस माँगते हो यह माँगना अविचार मूलक है । इस प्रकार जब पार्वतीजीने कहा, तब महेश्वर भगवान्‌ने नाराज होकर कहा ।। ११ ।। कि, मैं आजसे बारह दिनतक सम्भाषण नहीं करूंगा झट आप वहां ही अन्तर्हित हो गये ।। १२ ।। महादेवजीके बिना पार्वतीजी उद्विग्न होकर पुकारने लगी कि, हे नाथ ! आप मेरी रक्षा करो रक्षा करो, मैं कहां जाऊं आपके विना यहां किसलिये रहूं ? इस प्रकार शोचकर बगीचेमें चली गई ।। १३ ।। उस बगीचेमें बहुतसी स्त्रियोंको पूजन करती हुई देखकर पार्वतीने पूछा कि, हे स्त्रियो आप क्यों आई हो । इससमय क्या करती हो ।। १४ ।। किस उद्देशको लेकर इस व्रतको कर रही हो, इसके करनेसे कौन फल मिलता है ।। १५ ।। स्त्रियोंने उत्तर दिया कि, हे देवि ! हे अम्बिके ! आप क्या पूछती हो, तीनों लोकोंके स्त्रीऔर पुरुष इसव्रतको अपने कार्योंकी सिद्धिके लिये करते हैं उनको इसके करनेसे सिद्धि मिलती है ।। १६ ।। इस प्रत्युत्तरको सुनकर पार्वतीजीने कहा कि, हे सुराङ्गनाओ ! महेश्वरदेव मुझपर कुपित होकर कहीं चले गये हैं ।। १८ ।। मैं उनके दर्शनार्थ इस व्रतको करूंगी पर कहो इसमें किस वस्तुका दान दियाजाता है ? इसकी विधि क्या है ? ।। १९ ।। आप मनमें सोचकर ठीक २ कहें । देवियोंने कहा कि, हे पार्वती ! हम आपके लिये इस व्रतके समय, विधान, दान एवं फलोंको ।। २० ।। कहती हैं, आप सुने, इस व्रतको उस महीनेमें किया जाय, जिसमें चार रविवार हों, पांच रविवार न हों और जिस महीनेमें व्रतके दिन व्यतीपात, संक्रांति, मासान्त और व्याघातादि दुर्योग न हों ।। २१ ।। (यहां चान्द्रमासके उद्देश्यसे यह कहा है चान्द्रमास प्रकृतमें श्रावण सुदि, एकसे भाद्रकृष्णा अमावस्यापर्यन्त समझना, क्योंकि पहिले श्रावण सुदि चतुर्थीका व्रतारम्भ कह आये हैं यहां पर रविवारको है इस लिये व्रतारंभकी श्रावण शुक्ला चतुर्थीभी रविवारी होनी चाहिये, और वह व्यतीपात वैधृति आदि दुर्योगोंसे दूषित न हो) जिनका मन गणेशमें लगा हुआ है उन्हें चाहिये कि, पूर्वोक्त मासमें व्रत करें । हे भवानि ! व्रत करनेवाला तैल और ताम्बूल एवं भोगविलासादि न करे ।। २२ ।। श्रावण सुदि तीज शनिवारके दिन एकही बार परिमित भोजन करे । प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करे ।। २३ ।। स्नान वापी, कूप, तडाग, या नदीमें करना चाहिये । स्नान करनेसे पहिले सफेदतिलोंसे स्नान करना चाहिये पीछे प्रयत्नके साथ विधिपूर्वक सन्ध्या तर्पणादि नित्यकर्म्म करके ।। २४ ।। पूजन करनेके स्थानमें पहुंचकर उसे गोबरसे लीपे उसमें १२० लम्बा तथा ३६ हाथ चौडा मंडल रोलीसे करना चाहिये ।। २५ ।। उस मंडलके बीचमें आठ दल कमल लिखें, उस कमलकी कर्णिकाके ऊपर गणेशजीकी मूर्तिको स्थापित करके स्वच्छ पुष्प और रोलीसे रङ्गे हुए चावलोंसे पूजा करनी चाहिये ।। २६ ।। 'गां गीं गूं गैं गौं गः' ये छः गणेशजीके मंत्रके बीज हैं, न्यास स्थापनाको कहते हैं भावनासे क्रमशः अँगूठे और अँगुलियोंपर तथा हाथके नीचे ऊपरइन्हें स्थापित किया जाता है उसीको कहते हैं—ओम् गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ओम् गीं तर्जनीभ्यां नमः, ओम् गूं मध्यमाभ्यां नमः, ओम् गैं अनामिकाभ्यां नमः, ओम् गौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ओम् गः करतल कर पृष्ठाभ्याम् नमः । इसी तरह अङ्गन्यास होता है कि, ओम् गां हृदयाय नमः, ओम् गीं शिरसे स्वाहा, ओम् गूं

वषट्, ओम् गें कवचाय हुं, ओम् गौं नेत्रत्रयाय वौषट् ओम् गः अस्त्राय फट्, इसे अङ्गन्यास कहते हैं। जिस मंत्रसे अंगन्यास और करन्यास कहे हैं। इसी मंत्रसे गणेशजीका फूलोंसे आवाहन करके फूलोंको बिखेर देना चाहिये ॥ २७ ॥ अथवा इसके पीछे गणेशजीकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये, पीछे गणेशजीमें ही चित्त लगाकर विधिपूर्वक ध्यान करना चाहिये ॥ २८ ॥ एकदांतवाले, महानस्थूलशरीरवाले, लम्बे उदरवाले, गजमुखके सदृश मुखवाले विघ्नोंके नाशक ! हेरम्बदेवको प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ फिर प्रार्थना करे कि, हे ईश ! हे कर्पादिगणनायक ! आप यहां पधारकर इस पूजनको अङ्गीकृत करिये, हे कर्पादि गणनायक ! आओ आओ आओ" इस प्रकार आवाहन और "अस्मिन्नासने सुस्थिरो भव" इस आसनपर बैठिये इससे आसनोपवेशनादि करे ॥ ३० ॥ हे पार्वति ! पौराणिक मन्त्रोंसे पूजन करे। अथवा पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंसे षोडशोपचार सहित पूजन करे। या "ओम् नमः कर्पादिविनायकाय" इत्यादि मन्त्रसे पूजन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ इस पूजनमें गन्ध पुष्प एवं चावल आदि जो भी कुछ गणेशजीके भेंट चढावे, वें सव अन्यत्र कहे हुए तान्त्रिक गन्धादिकोंके मन्त्रोंसे चढाने चाहिये, गणेशजीके समीपमें ही इन्द्रादि लोकपालोंका पूजन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ इसका यह अर्थ है, हे लम्बोदर ! हे पार्वतीनन्दन ! हे एकदन्त ! हे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले ! आपके लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ देवाङ्गनाओंने पार्वतीजीको इस प्रकार पूजन विधान बताकर कहा कि, हे पवित्र मन्दहास करनेवाली ! समस्त संपत्तियोंके देनेवाले कर्पादिगणेशजीके पूजनका विधान हमने आपके लिये कह दिया ॥ ३४ ॥ हे महेश्वरि ! जिनमें किणके अर्थात् फूटे चावल न हों ऐसे एक अञ्जलि भर हविष्य व्रीहियोंको अच्छी तरह बीनकर पीसले ॥ ३५ ॥ हे शिवे ! पहिले रविवारको यानी श्रावणसुदि चौथ रविवारके दिन उसका अर्द्ध चन्द्राकर पक्वान्न विशेष बनावे, दूसरे रविवार व्रतके दिन संपूर्ण चन्द्राकार आठ यष्टिक नामके पक्वान्न विशेषको बनावे ॥ ३६ ॥ तीसरे रविवार व्रतके दिन विनायकके एवम् बिना टूटे चावलोंकी खीर बनावे चतुर्थ रविवार व्रतके दिन दधिभात बनावे, फिर इनके अष्टमांशसे भक्तिपूर्वक गणपतिका पूजन करे ॥ ३७ ॥ जो भी कुछ पदार्थ भोग लगानेके लिये तैय्यार करावे उनके अष्टमांशको भी भगवान् गणेशजीके समर्पित कर दे ॥ ३८ ॥ फिर पवित्र ब्रह्मचारीके लिये एक कोडी और.एक मूठीभर सावत चावल दे देने चाहियें वाकी बचे सात हिस्सोंके पदार्थोंका आप भोजन करने ॥ ३९ ॥ ऐसे कर्पादि विनायकके भक्त पूजन एवं व्रतको करते हुए जो कामना करते हैं उनकी वे सब कामना पूरी होती हैं ॥ ४० ॥ तपस्विनी निष्पाप देवाङ्गनाओंने पार्वतीजीसे कहा। पार्वतीजीने देवियोंके इन वचनोंको सुनकर व्रत किया। वहांपर क्षणभरके बादमें ही विश्वनाथ भगवान् प्रत्यक्ष होगये ॥ ४१ ॥ पार्वतीजीने कहाकि, हे त्रिलोकीके नाथ ! हे देवताओंके अधिराज ! हे करुणानिधे ! हे आनन्द करनेवाले ! मेरा आपके सिवाय दूसरा शरण नहीं है, इस दीनकी आपही रक्षा करो। हे प्रभो ! आप भक्तोंपर वात्सल्य रखनेवाले हैं ॥ ४२ ॥ ऐसे वचनोंको सुनकर महादेवजी प्रसन्न होकर कहा कि, हे देवि ! यह व्रत तुमने कैसे किया जिससे मुझको यहां आनाही पडा। तव पार्वती बोलीं कि, हे प्रभो ! आप जानते ही हैं, कर्पादिनाथका कैसा प्रभाव है, उसके प्रभावसे ऐसा कौन कार्य है सो सिद्ध न हो, मैंने कर्पादि गणेशजीकी आराधना की थी, उसके प्रभावसेही आपका रोष शान्त हुआ और आप बिना बुलायेही यहां पधारे, इससे यह सब प्रताप कर्पादि गणेशजीका है ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले कि महादेवजीने उस व्रतका माहात्म्य प्रत्यक्ष करनेके लिये, श्रीपति यहां पधारें, इस उद्देशको मनमें करके कर्पादिगणनाथका व्रतानुष्ठान किया ॥ ४४ ॥ पूरा होतेही श्रीपति, गरुडपर चढकर वहां आगये और बोले कि, हे शंकर ! मेरा विना कार्यही आना हुआ है, इससे प्रतीत होता है, एक तुमने मेरा आकर्षण किया है, वह कौन उपाय है ? जिसको करनेसे तुम मुझे बुलानेमें कृतकार्य हुए हो ॥ ४५ ॥ मैं भी उस उपायको जानना चाहता हूं विष्णुके ऐसा कहनेपर महादेवजीने कर्पादि गणेशजीके व्रतको उन्हें बता दिया। फिर विष्णु भगवान्ने ब्रह्माजीको बुलानेके लिये वही व्रत किया ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी वहां आये और बोले कि, हे विष्णो ! मैं यहां कैसे चला आया, तुमने किस लिये मुझे बुलाया है शीघ्र ही कहिये विष्णु बोले कि, हे ब्रह्मन् ! यहाँ बुलानेका कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ४७ ॥ कर्पादि गणेशजीका व्रत कुछ होता है इसमें सन्देह नहीं है उसीसे आपका अकस्मात् आना हुआ। ब्रह्माजीने इन्द्रको बुलानेके लिये यह व्रत किया ॥ ४८ ॥ इन्द्रभी आया वैसे ही उसनेभी

पूछा कि, हे प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दें । ब्रह्माजीने कहा, गणेशव्रतके माहात्म्यकी परीक्षाके लिये मैंने यह किया था और कुछभी प्रयोजन नहीं है ।। ४९ ।। इन्द्रके पूछनेपर ब्रह्माजीने इन्द्रसे कहा फिर इन्द्रने राजा विक्रमादित्यको देखनेके लिये यही व्रत किया ।। ५० ।। विक्रमादित्य इन्द्रके पास गया और पूछा कि, मैं मनुष्य हूं, आप देवताओंके प्रभु हैं, आप आज्ञा दें आप मुझसे क्या सहायता चाहते हैं । तब इन्द्रनेकहा कि, कपर्दि गणनाथका व्रत कैसा प्रभावशाली है ।। ५१ ।। इस बातकी जांच करनेके लिये ही किया था, जो चाहता था वह मिल गया, राजाने कहा कि, आप मुझे उसका माहात्म्य और विधान बतायें ।। ५२ ।। राजा विक्रमादित्यने बडी उत्सुकताके साथ पूछा था पीछे इन्द्रसे व्रत विधान सुनकर अपनी राजधानी चला आया ।। ५३ ।। पराक्रमके लगे रहनेवाले राजाने लौटकर कर्पाद गणपतिके व्रतको रानियोंके सामने कहा ।। ५४ ।। कि वैरियोंको जीतूंगा, बडी भारी उन्नतिको पाऊंगा, यह सुन राजमहिषी राजासे पूछने लगी कि, उस व्रतका दान क्या है ।। ५५ ।। विक्रमादित्यने उत्तर दिया कि एक कोडी दान दी जाती है, रानी राजाके मुखसे यह सुनकर उस व्रतकी निन्दा करने लगी ।। ५६ ।। यही है तो आप मेरे घर इस व्रतको न करें दूसरी किसी जगह कर लेना, ऐसे कर्पाद गणनाथ मेरा क्या भला कर सकते हैं ।। ५७ ।। हे नाथ ! जिसका नाम ही कोडी हो मैं व्रतको क्या करुगी ? ऐसेही अनेक प्रकारके दूषण देनेके कारण शीघ्र ही कुष्ठिनी और व्याधिता होगई ।। ५८ ।। कुष्ठ तथा अन्यान्य व्याधियोंसे दुःखी रानीको देखकर राजाने कहा कि, आप राज्यसे निकल जायें नहीं तो राज्यकी खैर नहीं है ।। ५९ ।। विक्रमादित्यके वचनोंको सुनकर रानी ऋषियोंके आश्रममें चली गई, उसकी सेवासे सब मुनिलोग राजी हो गये ।। ६० ।। सबने योग मार्गसे निश्चय करके उस सतीसे कहा कि, हे शुभे ! तुमने कर्पादगणराजके व्रतकी निन्दा की थी उसीसे इतना दुःख भोगना पडा ।। ६१ ।। उस व्रतके विधानके साथ कर सब कल्याण होंगे ऋषियोंकी आज्ञासे कपर्दी विनायकके महत्त्वशाली व्रतको करके ।। ६२ ।। उसी समय दिव्य देह पागई । इसी बीचमें पार्वतीजीके साथ महादेवजी ।। ६३ ।। वृषभपर चढकर चौदहों भुवनोंको देखने निकले, रास्तेके बीचमें किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणका रुदन सुनकर पार्वती ।। ६४ ।। बोली कि, हे ब्राह्मण क्यों रोता है ? तू रो न । वो ब्राह्मण बोला कि सिवा दारिद्रके मुझे कोई दुःख नहीं है ।।६५।। ऐसा सुनकर पार्वतीजी बोलीं कि, यही दुःख है तो कपर्दीशका व्रत कर । ब्राह्मण बोला कि, इस समय उस व्रतके करनेकी शक्ति, मुझमें नहीं है ।। ६६ ।। देवी बोली कि, विक्रमादित्यकी नगरीमें तुझे एक वैश्य सब उपकरण देदेगा वहां इस व्रतको करना तू निश्चय समझ कि, इस व्रतके प्रभावसे तू दीवान बन जायगा ।। ६७ ।। तेरा दारिद्र बिलकुल ही न रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है । सूतजी बोले कि वो ब्राह्मण घर आकर वहांसे व्रतश्रद्धासे केवल तण्डुल लेकर चला ।। ६८ ।। वैश्यसे सब कुछ लेकर उसने व्रत किया वो विक्रमके नगरमें दीवान बन गया ।। ६९ ।। उस ब्राह्मणने उस वैश्यको कपर्दीशका व्रत बताया उसने व्रत किया कि, मेरी लडकी विक्रमादित्यको व्याही जाय ।। ७० ।। व्रतके प्रभावसे प्रभावित होकर विक्रमादित्यने वैश्यकी भी लडकीके साथ शादी करली । यही नहीं किन्तु इस विवाहसे वो परमप्रसन्न भी हुआ ।। ७१ ।। इसके कुछ दिन पीछे विक्रमादित्य शिकार खेलनेको गया, वहां गहन वनमें घुस, भूख प्याससे व्याकुल होकर मुनियोंके आश्रममें जा दाखिल हुआ ।। ७२ ।। ऋषियोंके किये हुये आतिथ्यसे विक्रमादित्यका परिश्रम दूर हो गया, वहां सुन्दर स्थलमें एक दिव्य सुन्दरी देखी ।। ७३ ।। उसने मुनियोंसे कहा कि इसे मुझे दे दो, आपकी ही स्त्री है ऐसा कह करके मुनियोंने उसे विक्रमादित्यको ही दे दिया ।। ७४ ।। अपनी राज महिषीको पा आनन्द मनाता हुआ राजा अपनी नगरीमें आया, जिसमें अनेकों दिव्य नारीनर रहते थे ।। ७५ ।। विक्रमार्कने स्त्रीके साथ कर्पादगणनाथका व्रत किया, इसीके प्रभावसे उसने वैरियोंके समुदाय तथा उनके सारे देश जीत लिये ।। ७६ ।। इसी व्रतके प्रभावसे राजाका घर बेटे नातियोंसे भर गया था । धन, धान्य और संपत्तियोंसे उसका घर भरा रहता था ।। ७७ ।। जो स्त्री वा पुरुष कल्प विधानके साथ इस व्रतको करते हैं वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको पाते हैं ।। ७८ ।। पहिले सगरके, अश्वमेध यागमें बडा भारी विघ्न उपस्थित हुआ था, उस समय उसने इस व्रतको करके ही फिर अपना घोडा पाया था, ।। ७९ ।। व्रत करनेवाला पहिले रविवारको इसकी कथा पांच बार सुने तथा दूसरे और तीसरे रविवारको छः वार सुननी चाहिये ।। ८० ।। यह स्कन्द पुराणकी कही हुई कर्पाद गणेशके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

दशरथललिताव्रतम्

अथाश्विनकृष्णचतुर्थ्यां दशरथललिताव्रतम् ।। तच्च पौर्णिमान्तमाने कार्तिक वद्यचतुर्थ्यां कार्यम् ।। देशकालौ संकीर्त्य मम पुत्रपौत्रादिसकलकामनासिद्ध्यर्थं दशरथललिताप्रीत्यर्थं यथामिलितोपचारैः पूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य ।। कलशाराधनादि कृत्वा आगच्छ ललिते देवि सर्वसंपत्प्रदायिनि ।। यावत्पूजां करिष्यामि तावत्त्वं सन्निधौ भव ।। आवाहनम् ।।नीलकौशेयवसनां हेमाभां कमला-सनाम् ।। भक्तानां वरदां नित्यं ललितां चिन्तयाम्यहम् ।। ध्यायामि ।। कार्तस्वर-मये दिव्ये नानामणिसमन्विते ।। अनेकरत्नसंयुक्ते आसने संविस्व भोः ।। आस-नम् ।। गङ्गादिसर्वतिर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हृतम् ।। तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यम् ।। दक्षस्य दुहितः साध्वि रोहिणीनाम विश्रुते ।। पुत्र-संपत्तिकायार्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। अर्घ्यम् ।। पाटलोशीरकपूरसुरभि स्वादु शीतलम् ।। तोयमाचमनीयार्थं शिशिरं प्रतिगृह्यताम् ।। आचमनीयम् ।। पयादधिघृतमधुशर्करासंयुतेन च ।। पञ्चामृतेन स्नपनात्प्रीयतां परमेश्वरी ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। मन्दाकिन्याः समानीतं हेमाम्भोरुहवासितम् ।। स्नानाय ते मया दत्तं नीरं स्वीक्रियतां शिवे ।। स्नानम् ।।सर्वसत्त्वाधिके सौम्ये लोकलज्जा-निवारणे ।। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।। वस्त्रम् ।। मलयाचल-संभूतं घनसारं मनोहरम् ।। हृदयानन्दनं चारु चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमे-श्वरि ।। सौभाग्यद्रव्यम् ।। माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि यानि तु ।। मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा—दशाङ्ग-ललितायै० पादौ० । भवान्यै० गुल्फौपू० । सिद्धेश्वर्यै० जंघेपू० । भद्रकाल्यै० जानुनीपू० । श्रियैन० ऊरूपू० । विश्वरूपिण्यै० कटिपू० । देव्यैन० नाभिपू० । वरदायै० कुक्षिपू० । शिवायै० हृदयंपू० । वागीश्वर्यै० स्कन्धौपू० । महादेव्यैन० बाहूपू० । भद्रायै० करोपू० । पद्मिन्यै० कण्ठंपू० । सरस्वत्यै०मुखंपू० । कमला-सनायै० नासिकांपू० महिषमर्दिन्यै० नेत्रेपू० । लक्ष्म्यै० कर्णौपू० । भवान्यै० ललाटंपू० । विन्ध्यवासिन्यै० शिरः पू० । सिंहवाहिन्यै० सर्वाङ्गपू० ।। वन-स्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यश्च मनोहरः ।।आघ्रेय : सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्य-ताम् ।। धूपम् ।। साज्यं च वर्तिसंयुक्तम्० ।। दीपम् ।। नैवेद्यं गृह्यताम्० ।। नैवे-द्यम् ।। मध्ये पानीयम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। पूगीफलं मह० ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम्० ।। कपूरगौरम्० ।। नीराजनम् ।। नमो देव्यै महादेव्यै० मन्त्रपुष्पम् ।। यानि कानि च पापानि० ।। प्रदक्षिणाम् ।। अन्यथा शरणं नास्ति

त्वमेव शरणं मम ।। तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष मां परमेश्वरि ।। दशरथललिता भक्त्या नित्यमाराधिता मया ।। पुत्रकामनया देवी सर्वान् कमान्प्रयच्छतु ।। प्रार्थना ।। दशरथललितादेव्या व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। वाणकं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। वायनम् ।। सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया ।। ममानुग्रहं कुर्वाणा गच्छ त्वं निजमन्दिरम् ।। विसर्जनम् ।। सूत उवाच ।। अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवा दुःखकर्शिताः ।। कृष्णं दृष्ट्वा महात्मानं प्रणिपत्य यथाक्रमम् ।।१ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। देवदेव जगन्नाथ लक्ष्मीप्रिय जनार्दन ।। कथयस्व सुरश्रेष्ठ दशाङ्कललिताव्रतम्[१] ।। २ ।। कथमेषा समुत्पन्ना केनादौ पूजिता भुवि।। पूजनात् किं फलावाप्तिः कथयस्व सुरेश्वर ।। ३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पुरा त्रेतायुगे पार्थ राजा दशरथो महान् ।। तस्य भार्या तु कौसल्या अपुत्रा सा पतिव्रता ।। ४ ।। अथाजगाम कस्मिंश्चिदृश्यश्रृङ्ग ऋषीश्वरः ।। स्वागतं च कृतं राज्ञा सोपविष्टो वरासने ।। ५ ।। तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठः स्तोत्रैश्च बहु तोषितः ।। तस्य भक्त्या तु संतुष्ट ऋषिर्वचनमब्रवीत् ।। ६ ।। मुनिरुवाच ।। तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र कौसल्या-भार्यया सह ।। ब्रूहि त्वं च महाभाग किं प्रियं ते करोम्यहम् ।। ७ ।। दशरथ उवाच ।। यदि तुष्टोऽसि मे विप्र अपुत्रोऽहमृषीश्वर ।। तीर्थं वा व्रतमेकं वा तद्वदस्व मुनी-श्वर ।। ८ ।। मुनिरुवाच ।। शृणु राजन्नवहितो व्रतमेकं ब्रवीमि ते ।। पुत्रकामव्रतं श्रेष्ठं कृतं राजन् सुरासुरैः ।। ९ ।। रोहिणीनाम चन्द्रस्य भार्या परमवल्लभा ।। सा चैव ललिता नाम्नी रोहिणीति नराधिप ।। १० ।। आश्विनस्यसिते पक्षे दशम्यादि प्रपूजयेत् ।। दशम्यादि चतुर्थ्यन्तं दिग्दिनानि व्रतं चरेत् ।। ११ ।। आश्विन स्यासिते पक्षे चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।। स्नात्वा सायन्तने काले पूजयेद्भ क्तिभावतः ।। १२ ।। कूष्माण्डैर्मातुलिङ्गाद्यैर्जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः ।। गन्ध-पुष्पैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैर्दशमोदकैः ।। १३ ।। अर्घ्यं दद्याच्च देव्यग्रे पूजयित्वा क्षमा-पयेत् ।। ततो मङ्गलवाद्यैश्च गायनैश्च प्रतोषयेत् ।। १४ ।। चन्द्रोदये च संप्राप्ते अर्घ्यं दद्याद्युधिष्ठिर ।। शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पाक्षतचन्दनम् ।। १५ ।। जानु-भ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं दशपुष्पैः समन्वि-तम् ।। १६ ।। अक्षतैश्च समायुक्तं चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ।। दशरथललिते देवि दशपुष्पं दशाञ्जलिम् ।। १७ ।। सुधाकरेण सहिते गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। दशरथललिता भक्त्या नित्यमाराधिता मया ।। १८ ।। पुत्रकामनया देवी सर्वा-न्कामान्प्रयच्छतु ।। दशसंख्याश्चय करकाः शीतोदकसमन्विताः ।।१९ ।। वर्षेवर्षे प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ।। इत्थं प्रपूजयेद्देवीं दशवर्षाणियत्नतः ।। २० ।।

१ स्थिताआसन्नितिशेषः २ दशरथः

नारी नरो वा राजेन्द्र व्रतमेतत्करोति वै ।यं यं चिन्तयते कामं व्रतस्यास्य प्रभावत–पुत्रं पौत्रं धनं धान्यं लभते नात्र संशयः ।। २१।। इति भविष्योत्तरपुराणे दशरथ। ललिताव्रतकथा संपूर्णा ।।

दशरथ ललिताव्रत-आश्विनी कृष्णा चौथके दिन होताहै । यह कथन अमावसको मास समाप्त हो जानेवालोंके हिसाबसे लिखा हुआ मानकर इसकी पूर्णिमान्त मासके साथ तुलनाकरें तो यह व्रत कार्तिक वदि चौथके दिन आकर पडता है इसी दिन इस व्रतको करना भी चाहिये । देशकाल कहकर अपने पुत्र पौत्रादि सब कामोंकी सिद्धिके लिये दशरथ ललिता देवीकी प्रसन्नताके लिये जो मुझे उपचार मिल जायें उनसे पूजन करूंगा, संकल्प करके कलशस्थापन करे पीछे-हे सब संपत्तियोंकी देनेवाली ललिता देवि ! आइये, जबतक में पूजा करूं तबतक यहां ही रहिये, इससे आवाहन तथा नीले रेशमी वस्त्रोंको पहिने हुए कमलपर विराजमान हुई सोनेकीसी आभावाली जो कि, अपने भक्तोंको हर समय वर देनेके लिये तयार रहती है उसे में याद करता हूं, इससे ध्यान तथा अनेकों मणियाँ जिसपर लगीं हुई हैं ऐसे सोनेके रत्नजडित सिंहासनपर, हे देवि ! विराजमान होजा, इससे आसन तथा गंगादि सब तीर्थोंकी प्रार्थना करके उनसे शीतल पानी ले आया हूं, आप इसे पाद्यकेलिये ग्रहण करें, इससे पाद्य तथा हे रोहिणीके नामसे प्रसिद्ध हुई दक्षकी साध्वी दुहिता ! मुझे पुत्र और संपत्ति देनेके लिये अर्घ ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है, इससे अर्घ तथा पाटला, खसखस और कपूर आदिसे सुगन्धित हुए स्वादिष्ठ शीतल पानीको ठंडे आचमनके लिये ग्रहण करिये, इससे आचमनीय तथा पय, दधि, मधु, शर्करा सहिता पंचामृतके स्नानसे परमेश्वरी प्रसन्न होजाय, इस मंत्रसे पंचामृत स्नान तथा "सर्वसत्त्वाधिके" इससे वस्त्र तथा "मलयाचल" इससे चन्दन तथा "हरिद्रा" इससे सौभाग्य द्रव्य तथा "माल्यादीनि" इससे पुष्प समर्पण करना चाहिये । क्योंकि पूर्वकी ही विधि समझनी चाहिये ।। अङ्गपूजा–दशाङ्गललिता, भवानी, सिद्धेश्वरी, भद्रकाली, श्री, विश्वरूपिणी, देवी, वरदा, शिवा, वागीश्वरी, महादेवी, भद्रा, पद्मिणी, सरस्वती, कमलासना, महिषमर्दिनी, लक्ष्मी, भवानी, विन्ध्यवासिनी, सिंहवाहिनी, इन नामोंके आदिमें "ओम्" अन्तमें "नमः" तथा इन नामोंको चतुर्थी विभक्तिके एक वचनान्त करके इनसे पाद, गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरू, कटि, नाभि, कुक्षि, हृदय, स्कन्द, बाहु, कर, कण्ठ, मुख, नासिका, नेत्र, कर्ण, ललाट, शिर और सर्वाङ्ग इनमेंसे दोओंको द्वितीया द्विवचनान्त तथा एक अंगको एकवचनान्त करके अन्तमें "पूजयामि" लगाकर उस २ अङ्गका पूजन कर देना चाहिये जो जो ऊपर लिखे जा चुके हैं ।। यह पूजन फूलोंसे होता है. पूजनके मंत्र बोलकर देवमूर्तिपर फूल छोडे जाते हैं । 'वनस्पति' इससे धूप तथा "साज्यं च वर्ति" इससे दीप तथा "नैवेद्यं गृह्यताम्" इससे नैवेद्य तथा मध्यके पानीके पानीके मंत्रसे बीचमें पानीय तथा "इदं फलम्" इससे फल तथा "पूगीफलं" इससे पान तथा "हिरण्यगर्भ" इससे दक्षिणा तथा "कर्पूर गौर" इससे नीराजन तथा "नमो देव्यै महादेव्यै" इससे पुष्प तथा "यानि कानि च पापानि" इससे तथा मेरा और कोई उपाय नहीं है तूही उपाय है हे परमेश्वरि ! इस कारण दयाभावसे प्रेरित होकर मेरी रक्षा कर, मैंने दशरथ-ललितादेवीका भक्तिभावके साथ पुत्रेच्छासे प्रेरित होकर रोजही आराधन किया है, वो मुझपर प्रसन्न होकर मेरे सब कामोंको पूरा करे । इससे प्रार्थना तथा दशरथ ललिता देवीके व्रतको पूर्ण करनेके लिये ब्राह्मणको सोना सहित वाणक देता हूं । इससे ब्राह्मणको वायना देकर पीछे, वरदा देवी मैंने वाहन और शक्तिके साथ पूजी है वो मेरे पर कृपाभाव रखती हुई अपने स्थानको पधारें, इससे विसर्जन कर देना चाहिये ।। अथ कथा-सूतजी, कहते हैं कि, जब दुःखोंसे दुःखी हुए पाण्डव वनमें रहते थे उस समय कृष्ण परमात्मा वहांही उनके पास पहुँचे क्रमशः सबने उनको प्रणाम किया, पीछे अपने समयपर युधिष्ठिरजी प्रणाम करके बोले ।। १ ।। हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे लक्ष्मीके प्यारे ! हे जनार्दन ! सुरश्रेष्ठ ! दशरथललिताव्रतको मुझसे कहो ।। २ ।। यह कैसे उत्पन्न हुई, भूमण्डलपर सबसे पहिले किसने इसे पूजा, इसके पूजनसे कौनसा फल मिलता है ? हे सुरेश्वर ! बताइये ।। ३ ।। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, पहिले त्रेतायुगमें एक दशरथ नामके बड़े भारी राजा थे, इनकी पतिव्रता स्त्री कौशल्याके कोई पुत्र नहीं था ।। ४ ।। वहां कभी किसी तरह ऋषीश्वर ऋष्यशृंग

आये, राजाने उनका स्वागत किया पीछे वो अच्छे आसनपर विराजमान होगये ।। ५ ।। वो मुनिश्रेष्ठ, राजाकी स्तुतियोंसे परमसन्तुष्ट हुए, उनकी भक्तिसे सन्तुष्ट थे ही इस कारण बोले ।। ६ ।। हे राजेन्द्र ! मैं आपपर सन्तुष्ट हूं, महाभाग ! आप अपनी कौशल्या भार्याके साथ कहिये, मैं आपका क्या प्रिय करूं ? ।। ७ ।। दशरथ बोले कि, यदि आप प्रसन्न हैं तो हे ऋषिश्वर ! मेरे कोई सन्तान नहीं है ऐसा कोईही तीर्थ या कोई व्रत बतादीजिये ।। ८ ।। मुनि बोले कि, हे राजन् ! सावधान होकर सुन; मैं एक व्रत कहता हूं, हे राजन् ! पुत्र कामना देनेके विषयमें यह सबसे श्रेष्ठ व्रत है, इसे सुर असुर सबने किया था ।। ९ ।। चन्द्रमाकी रोहिणी नामकी परम प्यारी स्त्री है, हे राजन् ! उस रोहिणीको ललिता भी कहते हैं ।। १० ।। अमान्त मास आश्विन-शुक्लपक्ष दशमीसे लेकर आश्विन कृष्णपक्षतक करना चाहिये, दशमीसे लेकर चौथतक, दशदिन व्रत करना चाहियें ।। ११ ।। आश्विन कृष्णपक्षकी चौथके दिन तो स्नान करके सायंकाल भक्तिभावसे विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये ।। १२ ।। कूमाण्ड, मातुलुङ्ग और मतीरे भेंट करे । सुगन्धित जुई, चमेली आदिके पुष्प चढावे । फिर धूप, दीप, करके दश मोदकोंको भोग लगावे ।। १३ ।। अर्घ्य दान दे, पूजाके पीछे देवीकी क्षमा प्रार्थना करे कि, हमने जो पुत्रसन्ततिके अवरोधक कर्म्म किये हैं उनको आप नष्ट करिये और ऐसी कृपा करें जिससे चिरायु पुत्र सम्पत्ति हो । फिर माङ्गलिक बाजे बजाकर, गाने गाकर उसे सन्तुष्ट करे ।। १४ ।। श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, हे युधिष्ठिर ! चन्द्रोदय होनेपर शंखमें पुष्प, अक्षत, चन्दन एवं जल भरकर अर्घ दे ।। पञ्चरत्न तथा दश पुष्प भी उसमें गेरने चाहियें, वो भूमिमें जानू टेकके चन्द्रमाको देना चाहिये ।। १६ ।। उस अर्घमें अक्षत भी होने चाहियें तब वो अर्घ चांदको देना चाहिये । कि हे दशरथललिते देवि ! दश पुष्प मिली हुई ये दश अंजलियाँ हैं ।। १७ ।। चन्द्रमाके साथ इस अर्घको ग्रहणकर, हे देवि ! तेरे लिये नमस्कार है मैंने भक्तिभावसे दशरथ ललिता देवीका रोज आराधना किया है ।। १८ ।। वो देवी पुत्रकामनासे सेयी गयी थी, मेरी सब कामनाओंको पूरा करे, यह अर्घदानका मंत्र है, ठण्डे पानीके साथ दश ओले वा उससे भरे करवे ।। १९ ।। प्रतिवर्ष सावधानीके साथ ब्राह्मणोंको देने चाहियें, इस तरह प्रयत्नपूर्वक दशवर्षतक देवीकी पूजा करनी चाहिये ।। २० ।। हे राजेन्द्र ! स्त्री हो वा पुरुष हो जो इस व्रतको करता है जिस जिस वस्तुको वो चाहता है वो वो पुत्र, पौत्र, धन, धान्य सब पाता है इसमें संदेह नहीं है ।। २१ ।। यह भविष्योत्तर पुराणके दशरथललिताव्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथोद्यापनम्–ऋष्यशृङ्ग उवाच ।। उद्यापनविधिं वक्ष्ये व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु आश्विने व्रतमाचरेत् ।। १ ।। दशविप्रैः सपत्नीकैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।। स्नात्वा सायं प्रकुर्वीत मण्डपं भक्तिभावतः ।। २ ।। चतुःस्तम्भं चतुर्द्वारं कदलीस्तम्भमण्डितम् ।। तन्मध्ये कारयेत् पद्मं पञ्चवर्णैः सुशोभितम् ।। ३ ।। कलशं स्थापयेत्तत्र विधानेन समन्वितम् ।। ताम्रं वा मृण्मयं वापि वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ।।४।। तस्योपरि न्यसेद्राजन्रोहिण्यासहितं विधुम् ।। सौवर्णी रोहिणी कार्या चन्द्रमा रजतस्य च ।। ५ ।।पूर्वोक्तेन विधानेन पूजां कृत्वा समाहितः ।। मोदकान् कारयेद्राजंस्तिलजानेकविंशतिम् ।। ६ ।। दश विप्राय दातव्या आत्मार्थं स्थापयेद्दश ।। एको देवाय दातव्यो ललिताप्रीतये व्रती ।। ७ ।। दशरथललितादेव्या व्रतसंपूर्तिहेतवे ।।वाणकं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। ८ ।। दशरथललिता भक्त्या नित्यमाराधिता मया । पुत्रकामनया देवी सर्वान् कामान्प्रयच्छतु ।। ९ ।। इति संप्रार्थ्य देवेशीं चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ।। स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं ततः ।। १० ।।अन्वाधानं सुसंपाद्य तिल-

पायसलड्डुकैः ।। अष्टोत्तरशतं वापि अष्टाविंशतिमेव वा ।। ११ ।। जुहुयाच्चन्द्रमन्त्रेण गौरीमन्त्रेण चैव हि ।। एवं समाप्य होमं तु व्रताचार्यं प्रपूजयेत् ।। १२ ।। दशविप्रान् सपत्नीकान् वस्त्राद्यैश्च प्रपूजयेत् ।। तेभ्यश्च करकान् दद्याद्गन्धोदकसमन्वितान् ।। १३ ।। [1]विप्राय पीठदानं च ततः कुर्याद्विसर्जनम् ।। ततः पुत्राः प्रजायन्ते धनधान्यसमन्विताः ।। १४ ।। सौभाग्यसुखसंपत्तिर्जायते भूभृतां वर ।। अवैधव्यं च लभते नारी कामानवाप्नुयात् ।। १५ ।। एतत्ते कथितं भूप किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। कृष्ण उवाच ।। कृते दशरथेनास्मिन् कौसल्याभार्यया सह ।। १६ ।। तुष्टा दशरथे देवी ललिता तु सचन्द्रमाः ।। यस्माच्च कृतकृत्योऽसौ भार्यया सह मोदते ।। १७ ।। [2]पश्चाद्दशरथनामललिता भुवि कीर्तिता ।। एतत्ते कथितं राजन् दशरथललिताव्रतम् ।। १८ ।। य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।। अश्वमेधसहस्रस्य फलं तस्य ध्रुवं भवेत् ।।१९ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे दशरथललिताव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

उद्यापन–ऋष्यशृङ्ग बोले कि, व्रतकी संपूर्तिके लिये उद्यापन कहूंगा, आश्विनकृष्णा चौथके दिन उपवास पूर्वक यह करना चाहिये ।। १ ।। व्रत करनेवाले मनुष्यका कर्त्तव्य है कि, वह पहिले स्नान करे, पश्चात् शुद्धवस्त्र धारण करे पीछे सायंकालमें सपत्नीक दश वेदवेदाङ्गवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रेमसे मण्डप बनवावे ।। २ ।। उस मण्डपके चारों दिशाओंमें चार केलेके स्तम्भ खडे करे, चार दरवाजे बनवावे, उसके बीचमें पांच रङ्गोंसे कमल बनावे ।। ३ ।। उस कमलकी कर्णिकापर विधिपूर्वक कलसको स्थापित करे, वह कलह तांबे या मृत्तिकाका हो, उसके कण्ठभागमें दो वस्त्र लपेटे ।। ४ ।। फिर उस कलसपर रोहिणीके साथ चन्द्रमाको स्थापित करे । सुवर्णकी दशाङ्गललिता और चांदीका चन्द्रमा बनवावे ।। ५ ।। फिर पूर्वोक्तविधिसे एकाग्रचित्त होकर पूजा करके हे राजन् ! इक्कीश तिलोंके लड्डू बनवावे ।।६।। उनमेंसे दश लड्डू कथाव्यासको दे दे । दश लड्डू अपने लिये अलग रखे, एक बचे लड्डूको देवताकी भेंट चढादे । जिससे ललिता (रोहिणी देवी प्रसन्न हो ।।७।। फिर व्रतपूर्तिके लिये सुवर्ण और वाणक एक उत्तम ब्राह्मणके लिये दे और कहै कि, मैंने भक्तिसे जो दशाङ्गललिताका व्रत किया है उसकी पूर्तिके लिये सुवर्ण सहित वायन इस द्विजवरको देता हूं ।। ८ ।। मैंने पुत्रकामनासे भगवती ललिता देवीकी पूजा की, इससे वह देवी प्रसन्न होकर मेरी सभी कामनाएं पूर्ण करे ।। ९ ।। इस प्रकार रोहिणीकी प्रार्थना करना, पीछे चन्द्रमाके लिये एक अर्घ्य दे । अपनी गृहशास्त्रोक्तविधिसे अग्निस्थापन करके फिर ।। १० ।। अन्वाधानकके तिलमिश्रित खीरसे लड्डुओं या तीनों एकसौ आठ या अट्ठाईस आहुतियां दे ।।११।। चन्द्रमाके और देवी मंत्रोंसे हवन करे ।। ऐसे हवन पूर्वक व्रतकी समाप्ति करके व्रतका उपदेश देनेवाले आचार्यकी पूजा करे ।। १२ ।। सपत्नीक दश ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषण आदि देकर अच्छीतरह प्रसन्न करे । उनके लिये सुगन्धित जलसे भरे हुए दश करवेभी दे ।। १३ ।। फिर आचार्यके लिये पूजाकी समस्त सामग्री और आसन देकर उस व्रतका विसर्जन करे । इस प्रकार व्रतानुष्ठानकरने व्रत करनेवालेके घरमें धनधान्यशाली बहुतसे पुत्र होते हैं ।। १४ ।। हे नृपतिवर्य ! सौभाग्य एवं सुखकी वृद्धि होती है । यदि इस व्रतको स्त्री करे तो उसका वैधव्ययोग निवृत्त हो जाता है और समस्त मनोऽभिलषित फलको प्राप्त होजाती है ।। १५ ।। श्रीकृष्ण चन्द्र बोले कि, हे राजन् यह व्रत मैंने ! तुम्हारे लिये कहदिया और क्या सुनना चाहते हो ? कहो । इस व्रतको महात्मा ऋष्यश्रृंगके कहनेसे राजा शदरथ और कौल्याल्यारानीने कियाथा ।। १६ ।। उससे चन्द्रमा और ललिता (रोहिणी) संतुष्ट होगये । राजा दशरथ इस व्रतके रनेसे कृतार्थ हो गया और स्त्री सहित प्रसन्न रहा ।।१७।। इसी कारण यह दशरथललिताव्रत विख्यात

१ आचार्याय २ दशरथनामसहिता ललिता

हुआ, अर्थात् दशाङ्ग ललिताव्रतका नाम दशरथललिताव्रत इस प्रकार हो गया। हे राजन्! मैंने आपसे यह दशरथललिताव्रतकी कथा कहदी है ।।१८।। जो समाहित होकर इस व्रतकी कथा सुनेगा या सुनावेगा उसको एक सहस्र अश्वमेध करनेका फल मिलेगा इसमें संदेह नहीं है ।। १९। ।श्रीभविष्योत्तरपुराणके दशरथ (दशाङ्ग) ललिताव्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

करकचतुर्थीव्रतम्

अथ कार्तिककृष्णचतुर्थ्यामथवा दक्षिणदेशे आश्विनकृष्णचतुर्थ्यां करक चतुर्थीव्रतम् ।। अत्र स्त्रीणामेवाधिकारः । तासामेव फलश्रुतेः ।। आचम्य मासपक्षाद्युल्लिख्य मम सौभाग्यपुत्रपौत्रादि सुस्थिर श्रीप्राप्तये करकचतुर्थीव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य वटं विलिख्य तदधस्ताच्छिवं गणपतिं षण्मुखयुक्तां गौरीं च लिखित्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् ।। पूजामन्त्र---नमः शिवायै शर्वाण्यै सौभाग्यं सन्ततिं शुभाम् ।। प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हरवल्लभे ।।इत्यनेन गौर्याः, ततो नमोन्तनाममन्त्रेण शिवषण्मुखगणपतीनां पूजा कार्या ।। ततः सपक्वान्नाक्षत संयुक्तान् दशकरकान् ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ।। ततः पिष्टकनैवेद्यं भोग्यं सर्वं निवेदयेत् ।। ततश्चन्द्रोदयोत्तरं चन्द्रायार्घ्यं दद्यात् ।। अथ कथा--मान्धातोवाच ।। अर्जुने तु गते तप्तुमिन्द्रकीलगिरिं प्रति ।। विषण्णमानसा सुभ्रूर्द्रौपदी समचिन्तयत् ।। १ ।। अहो किरीटिना कर्म समारब्धं सुदुष्करम् ।। बहवो विघ्नकर्तारो मार्गे वै परिपन्थिनः ।। २ ।। चिन्तयित्वेति सा देवी कृष्णा कृष्णं जगद्गुरुम् ।। भर्त्तुः प्रियं चिकीर्षन्ती सापृच्छद्विघ्नवारणम् ।। ३ ।। द्रौपद्युवाच ।। कथयस्व जगन्नाथ व्रतमेकं सुदुर्लभम् ।। यत्कृत्वा सर्वविघ्नानि विलयं यान्ति तद्वद ।। ४ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। एवमेव महाभागे शम्भुः पृष्टः किलोमया ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्राह देवो महेश्वरः ।। ५ ।। शृणु देवि वरारोहे वक्ष्यामि त्वां महेश्वरि ।। सर्वविघ्नहरेत्याहुः करकाख्यां चतुर्थिकाम् ।। ६ ।। पार्वत्युवाच ।। भगवन् कीदृशी प्रोक्ता चतुर्थी करकाभिधा ।। विधानं कीदृशं प्रोक्तं केनेयं च पुरा कृता ।। ७ ।। ईश्वर उवाच ।। शक्रप्रस्थपुरे रम्ये विद्वज्जनसमाकुले ।। स्वर्णरौप्यसमाकीर्णे रत्नप्राकारशोभने ।। ८ ।। दिव्यनारीजनालोकवशीकृतजगत्त्रये ।। वेदध्वनिसमायुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे ।। ९ ।। वेदशर्मा[1] द्विजस्तत्रावसद्देशे विदां वरः ।। पत्नी तस्यैव विप्रस्य नाम्ना लीलावती शुभा ।। १० ।। तस्यां स जनयामास पुत्रान् सप्तामितौजसः ।। कन्यां वीरावतीनाम्नीं सर्वलक्षणसंयुताम् ।। ११ ।। नीलोत्पलाभनयनां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ।। तां तु काले शुभदिने विधिवच्च द्विजोत्तमः ।। १२ ।। ददौ वेदाङ्गविदुषे विप्राय विधिपूर्वकम् ।। अत्रान्तरे भ्रातृदारैश्चक्रे[2] गौर्य्या व्रतं च सा ।। १३ ।। चतुर्थ्यां कार्तिकस्याथ कृष्णायां तु विशेषतः ।। स्नात्वा सायन्तने काले सर्वास्तः

१ वेदधर्मेत्यपि क्वचित्पाठः २ सहेतिशेषः

भक्तिभावतः ।। १४ ।। विलिख्य वटवृक्षं च गौरीं तस्य तले लिखन् ।। शिवेन विघ्ननाथेन षण्मुखेन समन्विताम् ।। १५ ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्गौरीं मन्त्रेणानेन पूजयन्[1] ।। नमः शिवायै शर्वाण्यै सौभाग्यं सन्ततिं शुभाम् ।। १६ ।। प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हरवल्लभे ।। तस्याः पार्श्वे महादेवं विघ्ननाथं षडाननम् ।। १७ ।। पुनः पुष्पाक्षतैर्धूपैरर्चयंश्च पृथक्पृथक् ।। पक्वान्नाक्षतसंपन्नान् सदीपान् करकान् दश ।। १८ ।। तथा पिष्टकनैवेद्यं भोज्यं सर्वं न्यवेदयन् ।। प्रतीक्षन्त्यः स्त्रियः सर्वाश्चन्द्रमर्घ्यपराः स्थिताः ।। १९ ।। सा बाला विकला दीना क्षुत्तुड्भ्यां परिपीडिता ।। निपपात महीपृष्ठे रुरुदुर्बान्धवास्तदा ।। २० ।। समाश्वास्य च वा तैस्तां मुखमभ्युक्ष्य वारिणा ।। तद्भ्राता चिन्तयित्वैवमारुरोह महावटम् ।। २१ ।। हस्ते चोल्कां समादाय ज्वलन्तीं स्नेहपीडितः ।। भगिन्यै दर्शयामास चंद्रं व्याजोदितं तदा ।। २२ ।। तं दृष्ट्वा चार्तिमुत्सृज्य बुभुजे भावसंयुता ।। चन्द्रोदयं तमाज्ञाय अर्घ्यं दत्त्वा विधानतः ।। २३ ।। तद्दोषेण मृतस्त्वस्याः पतिधर्मश्च दूषितः ।। पतिं तथाविधं दृष्ट्वा शिवमभ्यर्च्य सा पुनः ।। २४ ।। व्रतं निरशनं चक्रे यावत्संवत्सरो गतः ।। चक्रुः संवत्सरेऽतीते व्रतं तद्भ्रातृयोषितः ।। २५ ।। पूर्वोक्तेन विधानेन सापि चक्रे शुभानना ।। तदा तत्र शची देवी कन्याभिः परिवारिता ।। २६ ।। एतदेव व्रतं कर्तुमागता स्वर्गलोकतः ।। वीरवत्यास्तदाभ्याशमगमद्भाग्यतः स्वयम् ।। २७ ।। दृष्ट्वा तां मानुषीं देवीं पप्रच्छ सकलं च सा ।। वीरावती तदा पृष्टा प्रोवाच विनमान्विता ।। २८ ।। अहं पतिगृहं प्राप्ता मृतोऽयं मे पतिः प्रभुः ।। न जाने कर्मणः कस्य फलं प्राप्तं मयाधुना ।। २९ ।। मम भाग्यवशाद्देवि आगतासि महेश्वरि ।। अनुगृह्णीष्व मां मातर्जीवयाशु पतिं मम ।। ३० ।। इन्द्राण्युवाच ।। त्वया पितृगृहे पूर्वं कुर्वत्या करकव्रतम् ।। वृथैवार्घ्यस्तदा दत्तो विना चन्द्रोदयं शुभे ।। ३१ ।। तेन ते व्रतदोषेण स्वामी लोकान्तरं गतः ।। इदानीं कुरु यत्नेन करकव्रतमुत्तमम् ।। ३२ ।। पतिं ते जीवयिष्यामि व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। कृष्ण उवाच ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्रतं चक्रे विधानतः ।। ३३ ।। प्रसन्ना साऽभवद्देवी शक्रस्य प्राणवल्लभा ।। तया व्रते कृते देवी जलेनाभ्युक्ष्य तत्पतिम् ।। ३४ ।। जीवयामास चेन्द्राणी देववच्च बभूव सा ।। ततश्चागाद्गृहं स्वीयं रेमे सा पतिना सह ।। ३५ ।। धनं धान्यं सुपुत्रांश्च दीर्घमायुः स लब्धवान् ।। तस्मात्त्वयापि यत्नेन व्रतमेतद्विधीयताम् ।। ३६ ।। सूत उवाच ।। श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चकार द्रौपदी व्रतम् ।। तद्व्रतस्य प्रभावेण जित्वा तान् कौरवान्रणे ।। ३७ ।। लेभिरे राज्यमतुलं

१ अपूजयन्

पाण्डवा दुःखनाशनम् ।। याः करिष्यन्ति सुभगा व्रतमेतन्निशागमे ।। ३८ ।। तासां पुत्रा धनं धान्यं सौभाग्यं चातुलं यशः । करकं क्षीरसंपूर्णं तोयपूर्णमथापि वा ।। ३९ ।। ददामि रत्नसंयुक्तं चिरं जीवतु मे पतिः ।। इति मन्त्रेण करकान् प्रदद्याद्द्विजसत्तमे ।। ४० ।। सुवासिनीभ्यो दद्याश्च आदद्यात्ताभ्य एव च ।। एवं व्रतं याकुरुते नारी सौभाग्यकाम्यया ।। सौभाग्यं पुत्रपौत्रादि लभतेसुस्थिरां श्रियम् ।। ४१ ।। इति वामनपुराणे करकाभिधचतुर्थीव्रतं सम्पूर्णम् ।।

अब कार्तिक वदि चतुर्थीके दिन या दक्षिणदेशमें प्रसिद्ध आश्विनकृष्णा चतुर्थी के दिन होनेवाले करक चतुर्थीके व्रतका निरूपण करते हैं–इस व्रतको करनेका केवल स्त्रियोंकाही अधिकार है; क्योंकि व्रत करनेवाली स्त्रियोंकी ही फलश्रुति मिलती है । प्रथम आचमन करे फिर "ओम् तत्सत्" इत्यादि रीतिसे देश कालका स्मरण करे, फिर "मम" इत्यादि वाक्य द्वारा संकल्प करे कि, मैं अपने सौभाग्य एवं पुत्र पौत्रादि तथा निश्चल सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये करकचतुर्थीके व्रतको करूंगा । उस प्रकार संकल्प करनेके पीछे एक बडको लिखे उस, बडके मूलभागमें महादेवजी, गणेशजी, और स्वामिकार्तिकसहित पार्वतीजीका आकार लिखे, (फिर प्राणप्रतिष्ठा करके) षोडशोपचारसे पूजन करे । पूजाके मंत्र–"शर्वाणी शिवा" के लिये प्रणाम है । हे महेश्वर भगवान्‌की प्यारी ! आप अपनी भक्त स्त्रियोंको सौभाग्य और शुभसन्तान प्रदान करें, इस मन्त्रसे गौरी की पूजा करके पीछें, नमः जिनके अन्तमें रहता है ऐसे नाम मन्त्रोंसे शिवजी स्वामिकार्तिक तथा गणपति देवकी पूजा करनी चाहिए । इसके पीछे पक्वान्न और अक्षतों के साथ दश करवे ब्राह्मणोंको देने चाहिए । पीछे पिष्टकका नैवेद्य और भोज्य सब निवेदन कर दे । पीछे चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमाको अर्घ देना चाहिए ।। अथ कथामान्धाता कहने लगे कि, जब अर्जुन इन्द्रकील पर्वतपर तप करने चला गया उस समय सुभ्रु द्रौपदीका चित्त कुम्हिला गया और चिन्ता करने लगी ।। १ ।। कि अर्जुनने बडा कठिन काम करना प्रारंभकर दियाहै, यह निश्चय है कि मार्गमें विघ्न करनेवाले बहुतसे वैरी हैं ।। २ ।। कृष्णाकी यह इच्छा थी कि, पतिदेव के काममें कोई विघ्न न आवें इसी चिन्ताको करके जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण भगवान्‌से पूछा ।। ३ ।। द्रौपदी बोली हे जगन्नाथ ! आप एक अत्यन्त गोप्य व्रतको बतावें, जिसके करनेसे सब ओरके विघ्न दूर टल जायें ।। ४ ।। श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाभागे ! जैसा आपने मुझसे पूछा है, उसी प्रकार पार्वतीजीने महादेवजीसे पूछा था उनके प्रश्नको सुनकर महादेवीजीने कहा कि ।। ५ ।। हे विरारोहे ! हे महेश्वरि ! तुम सुनो, मैं तुम्हे सब विघ्नहारिणी करक चतुर्थीका व्रत कहता हूं ।। ६ ।। पार्वतीने पूछा कि हे भगवन् ! करक चतुर्थीका माहात्म्य और इस व्रतको करने की क्या विधि है ? आप कहिये यह व्रत पहिले किसने किया था इसको भी कहिए ।।७ ।। महादेवजी बोले कि, जहां बहुतसे विद्वान् रहते हैं, जिस जगह बहुतसा चांदी सोना एवम् रत्नोंको शहरपनाह है ।। ८ ।। जो सुंदर स्त्री पुरुषोंके दर्शनसे तीनों भुवनोंको वशीभूत करलेता है, जहां निरन्तर वेदध्वनि होती रहती है ऐसे स्वर्गसे भी रमणीय इन्द्रप्रस्थपुरमें ।। ९ ।। वेदशर्मा नामक विद्वान ब्राह्मण निवास करता था, उसकी स्त्रीका नाम लीलावती था वो अच्छी थी ।।१० ।। उस वेदशर्मासे लीलावतीमें सात परमतेजस्वी पुत्र और एक सर्व लक्षण सुलक्षण वीरावती नामक कन्या उत्पन्न हुई ।। ११ ।। फिर वह ब्राह्मण अपनी नीलकमलसदृश नेत्रवाली पूर्णचन्द्रमाके समान मुख-, वाली उस वीरावती कन्याको विवाह योग्य शुभ समयमें ।। १२ ।। वेदवेदाङ्ग (शिक्षाव्याकरणादि) शास्त्रज्ञ उत्तम ब्राह्मणके लिए विधिपूर्वक दानकर दिया, उसीसमय वीरावतीने अपनी भाभियोंके साथ गौरीव्रत किया ।।१३ ।। फिर जब कार्तिक वदि चतुर्थी आई उस समय वीरावती और उसकी भाभी सब मिलकर बड़े प्रेमसे सन्ध्याके समय ।। १४ ।। बटके वृक्षको लिखकर उसके मूलमें महेश्वर, गणेश एवं कार्तिकेयके साथ गौरीको लिखके ।। १५ ।। गन्ध, पुष्प और अक्षतोंसे इस गौरी मन्त्रको बोलतीं हुई पूजने लगीं कि शर्वाणी शिवाके लिए नमस्कार है, सौभाग्य और अच्छी सन्तति ।।१६ उन स्त्रियोंको दे जो, हे हरकीप्यारी ! तेरी भक्तिवाली हो, उसके पार्श्वमें स्थित महादेव, गणेश और स्वामिकार्तिकेयको ।।१७।। फिर, धूप, दीप और

पुष्प अक्षतोंसे जुदा जुदा पूजन कर पीछे पक्वान्न अक्षत और दीपकों सहितदश करुए ।। १८ ।। तथा पिष्ट-कका नैवेद्य एवम् सब तरहका भोज्य, चन्द्रमाको अर्घ देनें की प्रतीक्षामें बैठी हुई सब स्त्रियोंने निवेदन कर दिया ।। १९ ।। वो बालिकाथी भूख प्याससे पीडित थी इस कारण दीन एवम् विकल होकर भूमिपर गिर पडी, उस समय उसके बान्धवगण रोने लगे ।। २० ।। कोई उसको हवा करने लगा, कोई मुखपर पानी छिडकने लगा, उसका भाई कुछ शोच विचारकर एक बडे भारी पेडपर चढ गया ।। २१ ।। बहिनके प्रेममें पीडित या हाथमें एक जलती हुई मसाल ले रखी थी उस जलती मसालको ही उसने चन्द्र बताकर दिखा दिया ।। २२ ।। उसने उसे चांद समझ, दुख छोड, विधिपूर्वक अर्घदेकर भावके साथ भोजनकिया ।। २३ ।। इसी दोषसेउसका पति मर गया, धर्म दूषित हुआ । पतिको मरा देख शिवका पूजन किया ।। २४ ।। फिर उसने एक सालतक निराहार व्रत किया, पर उसकी भाभियोंने संवत्सरके बीत जानेपर वो व्रत किया ।। २५ ।। पहिले कहे हुए विधानसे शोभन मुखवाली वीरावतीने भी व्रत किया, उस समय कन्याओंसे घिरी हुयी शची देवी ।। २६ ।। इसी व्रतको करनेके लिए स्वर्ग लोकसे चली आई और वीरावतीके भाग्यसे उसके पास अपने आप पहुंच गई ।। २७ ।। शची देवीने उस मानुषीको देखकर उससे सब बातें पूछी, एवम् वीरावतीने नम्रताके साथ सब बातेंबतादी ।। २८ ।। हे देवेश्वरि ! मैं विवाहके पीछे जब अपने पतिके घर पहुंची तभी मेरा पति मरगया, न जानें मैंने ऐसा कौन उग्र पाप किया है, जिसका यह फल मिल रहा है ।। २९ ।। पर फिर भीआज मेरे किसी पुण्यका उदय हुआ है, जिससे हे महेश्वरि ! आप यहां पधारी हैं, आपसे यही प्रार्थना है कि, आप मेरे पतिको शीघ्र जीवित करने की कृपा करें ।। ३० ।। यह सुन इन्द्राणी बोली कि, हे वीरावति ! तुमने अपने पिताके घरपर करकचतुर्थीका व्रत किया था, पर वास्तविक चन्द्रोदयके हुए बिनाही अर्घ देकर भोजन कर लिया था ।। ३१ ।। इस प्रकार अज्ञानसे व्रत भङ्ग करनेपर यत् किञ्चिदपराधके कारण तुम्हारा पति मरगया है, इस कारण आप अपने पतिके पुनर्जीवनके लिए विधिपूर्वक उसी करकचतुर्थीका व्रत करिए ।। ३२ ।। मैं उस व्रतके ही पुण्य प्रभावसे तुम्हारे पतिको जीवित करूंगी । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे द्रौपदी ! इन्द्राणीके वचन सुनकर उस वीरावतीने विधिपूर्वक करकचतुर्थीका व्रत किया ।। ३३ ।। उसके व्रतको पूरा हो जानेपर इन्द्राणीभी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार प्रसन्नता प्रकट करतीहुई एक चुलू जल लेकरवीरावतीके पतिकी मरण-भूमिपर छिडककर उसके पतिको ।।३४।। जीवीत करदिया, वो पति देवताओंके समान हो गया।वीरावती अपने घरपर आकर अपने पतिके साथ क्रीडा करने लगी ।। ३५ ।। वो धन, धान्य सुन्दर पुत्र और दीर्घ आयु पा गया । इससे तुमभी अच्छी तरह इस व्रतको करो ।। ३६ ।। सूतजी शौनकादिक मुनियोंसे कहते हैं कि, इस प्रकार श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान्‌के वचनोंको सुनकर द्रौपदीने करक चतुर्थीके व्रतको किया, उसी व्रतके प्रभावसे संग्राममें कौरवोंको पराजित करके ।। ३७ ।। उसके पति पाण्डव सब दुःखोंको मिटानेवाली अतुल राज्य संपत्तिको पा गये । और जो सुभगास्त्रियाँ इस व्रतको संध्याकालमें करेंगी और रात्रिको चन्द्रोदयमें अर्घ्य देकर भोजन करेंगी ।। ३८ ।। उनस्त्रियोंको पुत्र, धन, धान्य, सौभाग्य और अतुलयशकी प्राप्ति होगी । दुग्ध या जलसे भरे हुए रत्नसमेत करवे ।। ३९ ।। मैं दान करती हूं, इससे मेरा पति चिरंजीवी हो, इस प्रकार कहकर उनको योग्य ब्राह्मणके लिये देना चाहिये, और ।। ४० ।। इस व्रतमें सुहागिन स्त्रियोंके लियेही देना चाहिये, सुहागिन स्त्रियोंसे ही लेना चाहिये । इस प्रकार जो स्त्री अपने सौभाग्यसुख सम्पत्तिके लिये इस व्रतको करती है उसको सौभाग्य पुत्र पौत्रादि तथा निश्चलसम्पत्ति मिलती है ।। ४१ ।। यह वामन पुराणका करक चतुर्थीका व्रत पूरा हुआ ।।

गौरीचतुर्थीव्रतम्

अथ माघशुक्लचतुर्थ्यां गौरीचतुर्थीव्रतम् ।। हेमाद्रौ ब्राह्मे-उमाचतुर्थ्यां माघे तु शुक्लायां योगिनीगणैः ।। प्राग्भक्षयित्वा ससृजे भूयः स्वाङ्गात्स्वकैर्गुणैः ।। तस्मात्सा तत्र सम्पूज्या नरैः स्त्रीभिर्विशेषतः ।। कुन्दपुष्पैः प्रयत्नेन सम्यग्भक्त्या

समाहितः ।। कुंकुमालक्तकाभ्यां च रक्तसूत्रैः सकंकणैः ।। रक्तपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्बलिभिरेव च ।। गुडार्द्रकाभ्यां पयसा लवणेनाथ पालकैः।। पालकैर्मृद्भाण्डैरिति हेमाद्रिः ।। पूज्या स्त्रियश्च विविधास्तथा विप्राश्च शोभनाः ।। सौभाग्यवृद्धये पश्चाद्भोक्तव्यं बन्धुभिः सह ।। इति गौरीचतुर्थीव्रतं ब्रह्मपुराणोक्तम् ।।

गौरी चतुर्थीव्रत-माघसुदी चौथके दिन होता है, ऐसाही हेमाद्रिने ब्रह्मपुराणको लेकर लिखा है, माघ मासकी शुक्ला चौथके दिन उमाने अपने ही अंगोंसेअपने ही गुणोंके द्वारा फिर वही सृष्टि रचदी जो कि, पहिले योगिनियोंके साथ खाली थी । इस कारण इसचतुर्थीको सब मनुष्योंकोचाहिये कि उसको पूजे पर स्त्रियोंको तो इस व्रतको अवश्य ही करना चाहिये । भक्ति भावके साथ यत्नपूर्वक भली भांति इकट्ठे किये गये कुन्दके पुष्पोंसे तथा कुंकुम और अलक्तक एवम् कंकणकेसाथ रक्त सूत्रोंसे लाल पुष्प, धूप, दीप और बलिसे पूजन करना चाहिये । गुड, अदरख, दूध नमकके साथ पालकोंसे (हेमाद्रिके मतमें मिट्टीके वर्तनकोपालक कहते हैं) अनेक स्त्रियोंका तथा सुशील ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये अपने सौभाग्यको बढानेके लिये, पीछे बन्धुवर्गोंके साथ भोजन करना चाहिये । यह गौरीचतुर्थीका व्रतपूरा हुआ ।।

वरदचतुर्थीव्रतम्

अथ माघशुक्लचतुर्थ्यां वरदचतुर्थीव्रतम् ।। तदुक्तं काशीखण्डे—माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रत परायणाः ।। ये त्वां ढुण्ढेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम् ।। विधाय वार्षिकीं यात्रां चतुर्थीं प्राप्य तापसीम् ।। शुक्लांस्तिलान् गुडैर्बद्धा प्राग्नीयाल्लड्डुकान् व्रती ।।तापसी—माघी ।। अत्रनक्त ग्रहणात्प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति सिद्धम् ।। इति वरदचतुर्थीव्रतम् ।। अथ माघकृष्णचतुर्थ्यां संकष्टहरगणपतिव्रतम् ।। अथ पूजाविधिः—येभ्यो माता ऋक् १ एवा पित्रेति च जपित्वा ।। आगमार्थं तु० घण्टानादं कृत्वा ।। अपसर्पत्विति छोटिकामुद्रया भूतान्युत्सार्य ।। तीक्ष्णदंष्ट्रेति क्षेत्रपालं संप्रार्थ्य आचम्य प्राणानायम्य मम सहकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यविजयाभयायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं धर्मार्थ काममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं श्रीसंकष्टहरगणेश्वरप्रीत्यर्थं नारदीयपुराणोक्तप्रकारेण पुरुषसूक्तविधानेन यथासंभावितनियमेन यथामिलितोपचारैः संकष्टचतुर्थीव्रताङ्गत्वेन विहितं गणपतिपूजनमहं करिष्ये इतिसंकल्प्य कलशार्चनं शङ्खार्चनं च कृत्वा मूलमन्त्रेण न्यासान् कुर्यात् ।। अस्य श्रीगणपतिमंत्रस्य शुक्ल ऋषिः ।। श्रीसंकष्टहरगणपतिर्देवता ।। अनुष्टुप्छन्दः ।। श्रीसंकष्टहरगणपतिप्रीत्यर्थं न्यासे विनियोगः ।। नमो हेरम्ब अगुष्ठाभ्यां नमः ।। मदमोहित तर्जनीभ्यां० ।। मम संकष्टं निवारय मध्यमाभ्यां ।। निवारय अनामिकाभ्यां० ।। हुंफट् कनिष्ठिकाभ्यां० ।। स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।। एवं हृदयादि ।। भूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बंधः ।। नमो हेरंब मदमोहित मम संकष्टं निवारय निवारय हुं फट् स्वाहा ।। अथ ध्यानम्-श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः क्षीराब्धौ रत्नदीपे सुरतरुविमले

रत्नसिंहासनस्थम् ।। दोर्भिः पाशांकुशेष्टाभयधृतिरुचिरं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ।। लंबोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम् ।। सर्वाभरणशोभाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत् ।। गणपतये नमः ।। ध्यायामि ।। आगच्छ विघ्नराजेन्द्र स्थाने चात्र स्थितो भव ।। आराधयिष्ये भक्त्याहं भवन्तं सर्वसिद्धये ।। सहस्रशीर्षा० गणेशाय० आवा० । अभीप्सितार्थ-सिद्धयर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ।। पुरुष एवेदं० विघ्ननाशिने० ।। आसनम् ।। गणाधिप नमस्तेऽस्तु सर्वसिद्धिकर प्रभो ।। पाद्यं गृहाण देवेश सुरासुरसुपूजित ।। एतावानस्य० लंबोदराय० पाद्यम् ।। रक्तगन्धाक्षतोपेतं रक्तपुष्पसमन्वितम् ।। अर्घ्यं गृहाण देवेश मया दत्तं हि भक्तितः ।। त्रिपादूर्ध्वं० चन्द्रार्धधारिणेन० । अर्घ्यम् ।। सुरासुरसमाराध्य सर्वसिद्धिप्रदायक ।। मया दत्तं सुरश्रेष्ठ गृहाणाचमनीयकम् ।। तस्माद्विराळ० विश्वप्रियाय० आच-मनीयम् ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पंचामृतेन स्नपनं करिष्ये सर्वसिद्धिदम् ।। विघ्नहर्त्रे० पंचामृतस्नानम् ।। गंगादिसलिलं शुद्धं सुवर्णकलशे स्थितम् ।। सुवासितं परिमलैः स्नापयामि गणेश्वर ।। यत्पुरुषेण० ब्रह्मचारिणेन० शुद्धोदकस्नानम् ।। रक्तवर्णं वस्त्रयुग्मं सर्वकार्यार्थसिद्धये ।। मया दत्तं गणाध्यक्ष गृह्यतामखिलार्थद ।। तं यज्ञं० सर्वप्रदाय० वस्त्रयुग्मम् ।। कुंकुमाक्तं मया दत्तं सौर्वणमुपवीतकम् ।। उत्तरीयेण संयुक्तं गृहाण गणनायक ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृ० वक्रतुण्डाय० यज्ञोपवीतम् ।। चन्द्रनागुरुकर्पूरकुंकुमादिसमन्वितम् ।। गन्धं गृहाण देवेश सर्वसिद्धिप्रदायक ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋ० रुद्रपुत्राय० गन्धम् ।। अक्षतांश्च सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्तान् सुशोभनान् ।।गृहाण विघ्नराजेन्द्र मया दत्तान्हि भक्तितः ।। गजवदनाय० अक्षतान् ।। रक्तपुष्पाणि विघ्नेश एकविंशतिसंख्यया ।। गृहाण सुमुखो भूत्वा मया दत्तान्युमासुत ।। तस्मादश्वा० गुणशालिने नमः पुष्पाणिस० ।। सुगन्धीनि च माल्यानि गृहाणगणनायक ।। विनायक नमस्तुभ्यं शिवसूनो नमोऽस्तु ते ।। विघ्नराजाय० माल्यादीनि० ।। एकविंशतिनामभिर्दू-र्वाभिः पुष्पैर्वा पूजयेत्— गजाननाय नमः । विघ्नराजाय० ।लंबोदराय० । शिवात्मजाय० । वक्रतुण्डाय० । शूर्पकर्णाय० । कुब्जाय० ।गणेशाय० । विघ्न-नाशिनेन० । विकटाय० । वामदेवाय० । सर्वदेवाय० । सर्वार्तिनाशिने० । विघ्न-हर्त्रेन० । धूम्राय० । सर्वदेवाधिदेवाय० । उमापुत्राय० । कृष्णपिङ्गलाय० । भालचन्द्राय० । गणाधिपाय० । एकदन्ताय० ।। २१ ।। इत्येकविंशतिदूर्वाः पुष्पाणि वा समर्पयेत् ।। अथअंगपूजा—संकष्टनाशिने नमः पादौपू०। स्थूलजंघाय० जंघेपू० । एकदन्ताय० जानुनीपू० । आखुवाहनाय० ऊरूपू० ।हेरम्बाय० कटिंपू० ।

लम्बोदराय० उदरंपू० । गणाध्यक्षाय० हृदयंपू० । स्थूलकण्ठाय० कण्ठंपू० । स्कन्दाग्रजाय० स्कन्धौपू० । परशुहस्ताय० हस्तौपू० । गजवक्त्राय० वक्त्रंपू० । सर्वेश्वराय० शिरः पू० । संकष्टनाशिने० सर्वाङ्गंपू० ।। अथावरणपूजा–गणाधिपाय० । उमापुत्रा० । अघनाशिने० । हेरंबाय० । लंबोदराय० । गजवक्त्राय० । एकदन्ताय० । धूम्रकेतवे० । भालचन्द्राय० । ईशपुत्राय० । इभवक्त्राय० । मूषकवाहनाय० । कुमारगुरवे० । संकष्टनाशिने० ।। इति प्रथमावरणम् ।। १ ।। विघ्नगणपतये० । वीरगणपतये० । शूर्पकर्णगणपतये० । प्रसादगणपतये० । वरदगणपतये० । इन्द्रगणपतये० । एकदन्तगणपतये० । लंबोदरगणपतये० । क्षिप्रगणपतये० । सिद्धिगणपतये० इति द्वितीयावरणम् ।। २ ।। रामाय० । रमेशाय० । वृषांकाय० । रतिप्रियाय० । पुष्पबाणाय० । महेश्वराय० । वराहाय० । श्रीसदाशिवाय० ।। इति तृतीयावरणम् ।। ३ ।। आदित्याय० । चन्द्राय० । कुजाय० बुधाय० । बृहस्पतये० । शुक्राय० । शनैश्चराय० । केतवे० । सिद्ध्यै० । समृद्ध्यै० । कान्त्यैन० मदनरत्यै० । मदद्राविण्यै० । वसुमत्यै० । वैनायक्यै० ।। इति चतुर्थावरणम् ।। ४ ।। इन्द्रायन० । अग्नये० । यमाय० । निर्ऋतये० । वरुणाय० वायवे० । सोमाय० । ईशानाय० ।। इति पञ्चमावरणम् ।। अथ पत्रपूजा-गणाधिपाय० पाचीपत्रं० ।। सुमुखाय० । भृङ्गराजप० । उमापुत्राय० बिल्व० । गजवक्त्राय० श्वेतदूर्वाप० । लंबोदराय० बदरीपत्रम्० । हरसूनवे० धत्तूरप० । गृहाग्रजाय० तुलसीप० । गजकर्णाय० अपामार्ग० । एकदन्ताय० बृहतीपत्रम् । इभवक्त्राय० शमीप० । मूषकवा हनाय० । करवीरपत्रं । विनायकाय० वेणुप० । कपिलाय० अर्कप० । भिन्नदन्ताय० अर्जुनपत्रं० । पत्नीहिताय० विष्णुक्रान्ताप० । बटवेन० दाडिमीप० । भालचन्द्राय० देवदारुप० । हेरंबाय० मरुपत्रं० । सिद्धिदाय० सिंदुवारपत्रं० सुराग्रजाय० जातीपत्रम् । विघ्नराजाय० केतकीपत्रं० ।। प्रत्येकविंशति पत्राणि ।। अथ पुष्पपूजा–सुमुखाय० जातीपु० । एकदन्ताय० शतपत्रपु० । कपिलाय० यूथिकापु० । गजकर्णाय० चंपकपु० । लम्बोदराय० कह्लारपु० । विकटाय० केतकीपु० । विघ्ननाशिने० बकुलपुष्पं । विनायकाय० जपापुष्पं । धूम्रकेतवे० पुन्नागपु० । गणाध्यक्षाय० धत्तूरपु० । भालचन्द्राय मातुलिंगपुष्पं० । पत्नीहिताय० विष्णुक्रान्तापु० ।। उमापुत्राय० करवीरपु० । गजाननाय० पारिजातपु० ।। इशपुत्राय० कमलपु० ।। सर्वसिद्धिप्रदाय० गोकर्णिकापु० । मूषकवाहनाय० कुमुदपु० कुमारगुरवेनमः तगरपु० । दीर्घशुण्डाय० सुगन्धिराजपु० । इभवक्त्राय० अगस्तिपु० । संकटनाशनाय पाटलापु० । इत्येकविंशतिपुष्पाणि ।। २१ ।। अथाष्टोत्तरशतनाम पूजा– अस्य श्रीमदष्टोत्तरशतविघ्नेश्वरदिव्यनामामृतस्तोत्रमन्त्रस्य ।। गृत्स-

मद ऋषिः ।। गणपतिर्देवता ।। अनुष्टुप्छन्दः ।। रं बीजम् ।। नं शक्तिः ।। मं कीलकम् । श्रीगणपतिप्रसादसिद्धयर्थं पूजने वि० ।।ॐ कारपूर्वकाणि नामानि ।। विनायकाय० विघ्नराजाय० गौरीपुत्राय० गणेश्वराय० स्कन्दाग्रजाय० अव्ययाय० पूताय० दक्षाध्यक्षाय० द्विजप्रियाय० अग्निगर्वच्छिदे० इन्द्रश्रीप्रदाय० वाणीबलप्रदाय० सर्वसिद्धिप्रदाय० शर्वतनयाय० शिवप्रियाय० सर्वात्मकाय० सृष्टिकर्त्रे० देवानीकार्चिताय० शिवाय० शुद्धाय० बुद्धिप्रियाय० शान्ताय० ब्रह्मचारिणे गजाननाय० द्वैमातुराय० मुनिस्तुत्याय० भक्तविघ्नविनाशनाय० एकदन्ताय० चतुर्बाहवे० चतुराय० शक्तिसंयुताय० लम्बोदराय० शूर्पकर्णाय० हेरम्बाय० ब्रह्मवित्तमाय० कालाय० ग्रहपतये० कामिने० सोमसूर्याग्निलोचनाय० पाशाङ्कुशधराय० चण्डाय० गुणातीताय० निरञ्जनाय० अकल्मषाय० स्वयंसिद्धाय० सिद्धार्चितपदाम्बुजाय० बीजपूरप्रियाय० अव्यक्ताय० वरदाय० शाश्वताय० कृतिने० विद्वत्प्रियाय० वीतभयाय० गदिने० चक्रिणे० इक्षुचापधृते० अब्जोत्पलकराय० श्रीशाय० श्रीपति स्तुतिहर्षिताय० कुलाद्रिभृते० जटिने० चन्द्रचूडाय० अमरेश्वराय० नागोपवीतिने० श्रीकण्ठाय० रामार्चितपदाय० व्रतिने० स्थूलकण्ठाय० यीकर्त्रे० सामघोषप्रियाय० अग्रण्याय० पुरुषोत्तमाय० स्थूलतुण्डाय० ग्रामण्ये० गणपाय० स्थिराय० वृद्धिदाय० सुभगाय० शूराय० वागीशाय० सिद्धिदायकाय० दूर्वाबिल्वप्रियाय० कान्ताय० पापहारिणे० कृतागमाय० समाहिताय० वक्रतुण्डाय० श्रीप्रदाय० सौम्याय० भक्तकांक्षितदात्रे० अच्युताय० केवलाय० सिद्धिदाय० सच्चिदानन्दविग्रहाय० ज्ञानिने० मायायुताय० दान्ताय० ब्रह्मिष्ठाय० भयवर्जिताय० प्रमत्तदैत्यभयदाय० व्यक्तमूर्तये० अमूर्तिकाय० पार्वतीशंकरोत्सङ्गखेलनोत्सवलालसाय० समस्त जगदाधराय० वरमूषकवाहनाय० हृष्टचित्ताय० प्रसन्नात्मने० सर्वसिद्धिप्रदायकाय नमः ।। १०८ ।।
अष्टोत्तरशतेनैवं नाम्ना विघ्नेश्वरस्य च ।। तुष्टाव शंकरः पुत्रं त्रिपुरं हन्तुमुद्यतः ।। यः पूजयेदनेनैव भक्त्या सिद्धिविनायकम् ।। दूर्वादलैर्बिल्वदलैः पुष्पैर्वा चन्दनाक्षतैः ।। सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वापद्भ्यः प्रमुच्यते ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे विघ्नेश्वराष्टोत्तरशतदिव्यनामस्तोत्रं संपूर्णम्।। वनस्पतिसोद्भूतं दशाङ्गं गुग्गुलान्वितम् गृहाणागुरुधूपं त्वं मया दत्तं विनायक ।। यत्पुरुषम् ० भवानीप्रियकर्त्रे० धूपम् । घृताक्तवर्तिसंयुक्तं दीपं शक्तिप्रदायकम् ।। गृहाणेश मया दत्तं तेजोराशे जगत्पते ।। ब्राह्मणोस्य० रुद्रप्रियाय० दीपं० । अन्नं चतुर्विधं० गृह्यताम् ।। भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान्मोदकान्घृतपाचितान् ।। गृहाण विघ्नराजेन्द्र तिललड्डूसमन्वितान् ।। चन्द्रमाम० विघ्ननाशिने० नैवेद्यम् ।। फलानीमानि रम्याणि स्थापितानि

तवाग्रतः ।। तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि ।। संकटनाशिने० फलंस० ।। पूगीफलं० नाभ्याआसी० सिद्धिदाय० ताम्बूलं० । पूजाफलसमृद्धिचर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वर ।। स्थापितं तेन मे प्रीतः पूर्णान् कुरु मनोरथान् ।। सप्तास्यासम्० विघ्नेशाय० सुवर्णपुष्पं० श्रिये जात इति नीराजनं० अथ दूर्वा युग्मार्पणम्– गणाधिपाय० दूर्वायुग्मंस० । उमापुत्राय० दूर्वायुग्मं० । अघनाशनाय० दूर्वायु० एकदन्ताय० दूर्वायु० । इभवक्त्राय० दूर्वायु० । विनायकाय० दूर्वायु० ईशपुत्राय दुर्वायुमं । सर्वसिद्धिप्रदायकाय० दूर्वायु० । कुमारगुरवे० दूर्वायु । श्रीगणराजाय० एकदूर्वांकुरं समर्पयामि ।। गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन ।। एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन ।। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक ।। कुमारगुरवे तुभ्यं गणराज प्रयत्नतः ।। एभिर्नामपदैर्नित्यं दूर्वायुग्मं समर्पयेत् ।। श्रीगणेशो वक्रतुण्ड उमापुत्रस्तथैव च ।। विघ्नराजःकामदश्च गणेश्वर इति स्मृतः ।। जीमूतशक्तिरित्युक्तस्तथाञ्जनसमप्रभः ।। योगिध्येयो दिव्यगुणो महाकाय इतीरितः।। ततश्च सिद्धिदः प्रोक्तो महोदय इति स्मृता : ।। गजवक्त्रः कर्मभीयस्ततः परशुधार्यपि ।। करिकुम्भो विश्वमूर्तिरुग्रतेजास्ततः परम् लम्बोदरस्ततः सिद्धिगणेशश्चैकविंशति ।। नामानि रमणी यानि जपेदेभिश्च पूजयेत् ।। गणेशात्तस्य नश्यन्ति संकष्टानि महान्त्यपि ।। महासंकष्टदग्धोऽहं गणेशं शरणं गतः ।। तस्मान्मनोरथं पूर्णं कुरु विश्वेश्वरप्रिय ।। ततः स्वर्णमयं पुष्पं विघ्नेशाय निवेयेदत् ।। प्रदक्षिणानमस्कारान्कृत्वा देवं क्षमापयेत् ।। यज्ञेनयज्ञ० संकष्टनाशाय० पुष्पाञ्जलिम् ।। नमोस्तु देवदेवेश भक्तानामभयप्रद ।। विघ्नानां नाशकर्त्रे च हरात्मज नमोस्तु ते ।। विघ्ननाशिने० नमस्कारम् ।। ततः । नमो हेरम्ब इति मूलमन्त्रं एकविंशतिवारं जपेत् ।। अथ गणेशायार्घ्यं दद्यात्–गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक ।। संकष्टहर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु सम्पूजित् विधूदये ।। क्षिप्रं प्रसीद देवेश गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। एताभ्यां मन्त्राभ्यां संकष्टहरगणपतये नम इत्यर्घ्यद्वयं दद्यात् ।। तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रिय वल्लभे ।। सर्वसंकष्टनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। चतुर्थ्येन० इदम० ।। रोहिणीसहितचन्द्रं पञ्पोपचारैः पूजयित्वा ।।क्षीरोदार्णवसंभूत लक्ष्मीबन्धो निशाकर ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितः शशिन् ।। रोहिणीसहितचन्द्राय० इदम० इत्यर्घ्यं दद्यात् ।। गगनाङ्गणसंदीप क्षीराब्धिमथनोद्भव ।। भाभासितादिगाभोग सोमराज नमोस्तु ते ।। चन्द्राय नमस्कारः ।। ततः आचार्यं संपूज्य वायनं दद्यात्–मोदकान्सफलान्पंच दक्षिणाभिः समन्वितान् ।। गृहाण त्वं द्विजश्रेष्ठ व्रतस्य परिपूर्तये ।। वायनम् ।।प्रतिभां गुरवे दद्यादाचार्याय सदक्षिणाम् ।। वस्त्रकुंकुभसमायुक्तामादौ

मंत्रमिमं जपेत् ।। गणेशस्य प्रसादेन मम सन्तु मनोरथाः ।। तुभ्यं संप्रददे विप्र प्रतिमां तु गजाननीम् ।। इष्टकामार्थसिद्धचर्थं पुत्रपौत्रप्रिवर्धिनीम् ।। गणाधिराज देवेश विघ्नराज विनायक ।। तव मूर्तिप्रदानेन प्रसन्नो भव सर्वदा । इतिकलश प्रतिमादानमंत्रः ।। अथ प्रतिग्रहमंत्रः—गणेशः प्रतिगृह्णाति गणेशो वै ददाति च ।। गणेशस्तारकोभाभ्यां गणेशाय नमो नमः ।। संसार पीडाव्यथितं सदा मां कष्टाभिभूतं सुमुख प्रसीद ।। त्वं त्राहि मां नाशप कष्टसंघान्नमो नमः कष्टविनाशनाय ।। इतिप्रार्थना ।। यदुद्दिश्य कृतं तेऽद्य यथाशक्ति प्रपूजनम् ।। संकष्टं हर मे देव उमासुत नमोऽस्तु ते ।। इति नमस्कारः इतिपूजाविधिः ।।

वरदचतुर्थीव्रत—माघ शुक्ला चौथके दिन होता है यह काशीखण्डमें कहा है । हे ढुंढे ! माघ शुक्ला चौथके दिन जो रातका व्रत करते हुए तेरा पूजन करेंगे, देवता उनको अपना पूज्य मानेंगे । एक सालतक तीर्थयात्रा करके पीछे तापसी चौथके दिन इस व्रतको करे, व्रतकी समाप्तिमें सफेदतिलोंके गुडके लड्डू बनाकर भोग धरके खाने चाहिये, तापसी माघकी चौथका नाम है । रातका ग्रहण है इससे यह बात तो स्वतः ही सिद्ध हो जाती है कि चौथ प्रदोष व्यापिनी होनी चाहिये यह वरद चौथका व्रत पूरा हुआ ।। संकष्ट हर गणपतिव्रत—माघ कृष्ण चौथके दिनहोता है ।। अथपूजाविधि 'ओम् येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः, पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबहीः । उक्थ शुष्मान् वृष भरान्त्स्वप्नस स्ताँऽआदित्याँ अनुमदा स्वस्तये" जिनके लियेसुन्दर केशोंवाली अदितिमाता मीठा पय पिलाती है जिनके लिये दिव अमृत देता या धारण करता है, हे बलवान् कामनोंको पूरा करनेवाले मंत्र, मेरे अनुष्ठानसे मेरे कल्याणके लिये मुझपर देवताको प्रसन्न कर दे । "ओम् एवापित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः । बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्यामपतयो रयीणाम्" सब कामनाओंके देनेवाले, अन्न मेरा पालनकरने वाले सर्व देवमय गणेशके लिये यहां हवि और नमस्कारोंसे यह सब कुछ करते हैं हे वेदके स्वामिन् ! हम अच्छी सन्तान वाले, वीरवाले और धनवाले हो जायँ । इन दोनों मंत्रोंको जपकर पीछे 'आगमर्थं तु देवानां घण्टानादं करोम्यहम् । तेन त्रस्ता यातुधाना अपसर्पन्तु कुत्रचित् ।।' मैं देवताके आगमनके लिये घंटा बजाता हूं, इससे डरते हुए दैत्यादि कहीं भी भाग जायँ । इस मंत्रसे घंटा बजाकर, "अपसर्पन्तु" इस मंत्रको बोलता हुआ छोटिका मुद्रासे भूतोंको भगाकर पीछे 'तीक्ष्ण दंष्ट्र महाकाय भूतप्रेतगणाधिप । नमस्ते क्षेत्रपालाप प्रसन्नो भव सर्वदा ।।' हे बडी २ डाढोंवाले बडेभारी शरीरवाले, भूत और प्रेतोंके समुदायके स्वामी ! हमपरसदा प्रसन्न रहिये, हे क्षेत्रपाल ! तेरे लिये प्रणाम है । इससे क्षेत्रपालकी प्रार्थना करके आचमन प्राणायामपूर्वक संकल्प करना चाहिये कि, मेरी और मेरे कुटुम्बकी क्षेम, स्थैर्य्य, विजय, अभय, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी वृद्धिके लिये तथा धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरषार्थोंकी सिद्धि और संकटहर गणपतिको प्रीतिके लिये नारदीयपुराणकी कही हुई विधिके अनुसार पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे जिस प्रकार होसके उसी नियमसे उपस्थित सामग्री द्वारा संकटचतुर्थी व्रतके अङ्गरूपसे अवश्य करने योग्य गणपति पूजनको करूंगा, इस गणपतिमंत्रके शुक्ल ऋषि हैं, श्रीसंकष्ट हरण गणपतिजी देवता हैं, अनुष्टुप छन्द है, श्री संकष्टहरण गणपतिकी प्रसन्नताके लिये अंगन्यास और करन्यासमें इसका विनियोग होता है । कलशपूजन और शंखपूजन करके 'ओ नमो हेरम्ब मदमोहित मम संकष्टं निवारय निवारय हुं फट्स्वाहा' यह मूलमंत्र है, इस मूलमंत्र, ओं नमः, अंगुष्ठाम्यां नमः, हेरम्ब तर्जनीभ्यां नमः, मदमोहित मध्यामाभ्यां नमः, मम संकष्टं निवारय निवारय अनामिकाभ्यां नमः । हूं फट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः, और स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, यह करन्यास करना चाहिये । पीछे ओं नमों हृदयाय नमः, हेरम्ब शिरसें स्वाहा, मदमोहित शिखायै वषट् मम संकष्टं निवारय निवारय कवचाय हुं, हुंफट् नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्, इस प्रकार हृदयादिन्यास, तथा भूर्भुवः स्वरोम्' इससे दिग्बन्ध करना चाहिये । अब गणपतिके

ध्यानके मन्त्र कहते हैं, "श्वेताङ्गं" इसका अर्थ है कि, श्वेत जिनके अङ्ग हैं, श्वेतही जिनके वस्त्र हैं, श्वेतपुष्पोंसे तथा चन्दनसे जिनका पूजन किया जाता है क्षीर समुद्रके बीच कल्प वृक्षोंसे रमणीय रत्नद्वीपमे रत्नजटित सिंहासनपर विराजते हैं, पाश, अंकुश, वरदानमुद्रा, अभय तथा धैर्यदानमुद्राको हाथोंमें धारण करते हैं, ऐसे चन्द्रशेखर त्रिलोचन प्रसन्नमुख निर्मल सर्व नियन्ता श्रीगणपतिजीका समस्त प्रकारकी शान्तिके लिये ध्यान करता हूं। "लम्बोदरं" इस मन्त्रसे भी ध्यान करे। इसका यह अर्थ है कि, चतुर्भुज, त्रिलोचन, शोणकान्ति, समस्त आभूषणोंसे शोभायमान प्रसन्नमुख लम्बोदर गणपतिजीका ध्यान करता हूं गणपतिके लिये प्रणाम है, मैं उनका ध्यान करता हूं। "आगच्छ" इस लौकिक तथा "सहस्रशीर्षा" इस वैदिक मन्त्रको पढकर "गणेशायनमः आवाहयामि" इससे आवाहन करे, पूर्वोक्त लौकिक मन्त्रका अर्थ है कि, हे विघ्नराजोंके अधीश्वर! आप यहाँ पधारकर स्थित हों, मैं सब कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्तिसे आपकी पूजा करूंगा। फिर "अभीप्सितार्थ" इस लौकिक और "ओं पुरुष एवे०" इस वैदिक मन्त्रको पढकर "विघ्ननाशिने नमः, आसनं समर्पयामि' इसके पढता हुआ आसन (या आसनार्थ पुष्प अक्षत) समर्पित करे। श्लोकका अर्थ है कि, सब देवता एवं दैत्यजन अपने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये जिसका पूजन करते हैं, उस समस्त विघ्नोंको छिन्न करनेवाले गणपतिके लिये नमस्कार है। विघ्नान्तकको प्रणाम है, मैं आसन भेंट करता हूं। "गणाधिप" इससे और "ओं एतावानस्य" इस मन्त्रको पढकर "लम्बोदराय नमः, पाद्यं समर्पयामि" इसको पढकर पाद्य दे, श्लोकका अर्थ है कि, हे देवेश्वर ! हे सुर और असुरोंके पूज्य ! हे सब सिद्धियोंके देनेवाले गणाधिराज ! आपके लिये प्रणाम है, आप पाद्य ग्रहण करिये। "रक्तगन्धाक्षतोपेतं" इस लौकिक मन्त्रको तथा "ओं त्रिपादूर्ध्वमुदं० इस वैदिकमन्त्र और "चन्द्रार्घधारिणे नमः अर्घ्यं समर्पयामि" इससे अर्घ्यदान करे। लौकिक मन्त्रका अर्थ है कि, हे देवेश ! मैंने भक्तिसे यह अर्घ्य, रक्तचन्दन, रक्ताक्षत तथा रक्तपुष्पोंसहितसमर्पित किया है आप इसे स्वीकार करें, चन्द्रमाको ललाटमें धारण करनेवालेके लिये प्रणाम है, मैं अर्घ्यदाप्रन करता हूं। हे सुर तथा असुरोंके आराधनीय ! हे समस्त सिद्धियोंके देनेवाले ! हे सुरश्रेष्ठ ! मैं आपके लिये आचमनीय प्रदान करता हूं, आप इससे आचमन करें, इस मन्त्रसे तथा "ओं तस्माद्विराडजायत" इस वैदिकमन्त्रसे "विश्वप्रियाय नमः, आचमनीयं समर्पयामि" विश्वप्रियके लिये प्रणाम है, आचमनीय समर्पण करता हूं, इससे आचमनीय देना चाहिये। "पयोदधि घृतं" तथा "ओं विघ्नहर्त्रे नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि" इनसे पञ्चामृत स्नान कराना चाहिये। इनका अर्थ है कि, दूध, दधि, घृत, खांड और सहत इन पञ्चामृतमय द्रव्योंसे आपको स्नान कराता हूं. क्योंकि यह स्नान समस्तसिद्धियोंका देनेवाला है, विघ्नहर्ताके लिये नमस्कार है, पंचामृतका स्नान समर्पण करता हूं। 'गङ्गादितीर्थ०' इस लौकिक तथा "ओं यत्पुरुषेण०" इस वैदिक मन्त्र और "ब्रह्मचारिणे नमः, शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि" इस वाक्यसे शुद्ध स्नान करावे, लौकिक मंत्रका अर्थ है कि, सुवर्णके घटमें गंगाआदि तीर्थोंका पवित्र जल परिमल सुगन्धसे सुगन्धित किया भरा हुआ है, हे गणेश्वर ! मैं उसी जलसे आपको स्नान कराता हूं, ब्रह्मचारिस्वरूप गणेशजीको प्रणाम है, शुद्ध जलसे स्नान कराता हूं। 'रक्तवर्णं' इस लौकिक मंत्रसे तथा "ओं तं यज्ञं बर्हिषि०" इस वैदिक मंत्रसे दो वस्त्र चढावे और "सर्वप्रदाय नमः, वस्त्र-युग्मं समर्पयामि" सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले गणपतिके लिये नमस्कार है, मैं दो वस्त्रचढाता हूं, लौकिक मंत्रका अर्थ है कि, हे गणाध्यक्ष ! मैंने अपने समस्त पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये दो लाल वस्त्र आपको समर्पण किये हैं, हे समस्त पुरुषार्थोंके देनेवाले उन्हें आप अङ्गीकार करें, 'कुंकुमाक्तं' हे गणनायक ! केसर या रोलीसे रँगे हुए सुवर्ण सदृश इस उपवीत और दुपट्टेको स्वीकार करिये। इस लौकिक मंत्र तथा "ओं तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं" इस वैदिक मंत्रसे तथा "वक्रतुण्डाय नमः, सोत्तरीयं यज्ञोपवीतं समर्पयामि" वक्रतुण्ड देवके लिये प्रणाम है, मैं उत्तरीय तथा यज्ञोपवीत चढाता हूं, इस प्रकार कहता हुआ जनेऊ और दुपट्टा देना चाहिये। 'चन्दनागुरु' हे देवेश ! हे समस्त सिद्धियोंके देनेवाले ! आप चन्दन, अगर, कपूर और केसर आदिसे मिश्रित इस विलेपनको स्वीकार करें, इस लौकिक मंत्रसे, तथा "ओं तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः" इस वैदिक मंत्रसे और "रुद्रपुत्रायनमः, गन्धं विलेपयामि" महेश्वरनन्दनके लिये प्रणाम है, मैं चन्दन लगता हूं" इस वाक्यसे

चन्दन लगावे। 'अक्षतांश्च' इससे तथा 'गजवदनाय नमः, अक्षतान् समर्पयामि' इससे चावल चढाने चाहिये, इसका अर्थ है कि, हे विघ्नराजोंके ईश्वर ! हे सुरवर ! आपके लिये भक्तिभावसे कुंकुमसे रञ्जितसुन्दर अक्षत समर्पण किये हैं आप इनको स्वीकार करें। राजवदनके लिये नमस्कार है, मैं अक्षत चढाता हूं। 'रक्तपुष्पाणि' इस लौकिक मंत्रसे तथा "ओंतस्मादश्वा अजायन्त" इस लौकिक मंत्रसे तथा "गुणशालिने नमः, पुष्पाणि समर्पयामि" हे विघ्नेश ! हे पार्वतीनन्दन ! मैंने इक्कीस लालपुष्प आपके लिये समर्पण किये हैं, आप प्रसन्न होकर इन्हें स्वीकार करें, गुणशालिको नमस्कार है मैं पुष्प चढाता हूं, इनसे पुष्प चढाने चाहिये। "सुगन्धीनि-विघ्नराजायः नमः भाल्यानि समर्पयामि" इनसे सुगन्धित मालायें चढावें। इनका अर्थ है कि, हे गणनायक ! हे विनायक ! हे शिवनन्दन ! आपको प्रणाम है, आप सुगन्धित मालाधारण करिये, विघ्नराजके लिये नमस्कार है, मैं मालाधारण कराता हूं ।। फिर इक्कीस नामोंसे दूर्वासे अथवा फूलोंसे गणेशजीका पूजन करना चाहिये। गजानन, विघ्नराज, लम्बोदर, शिवात्मज, वक्रतुण्ड, शूर्पकर्ण, कुब्ज, गणेश, विघ्नाशिन्, विकट, वामदेव, सर्वदेव, सर्वार्तिनाशिन्, विघ्नहर्ता, धूम्र, सर्वदेवाधिदेव, उमापुत्र, कृष्णपिंगल, भालचन्द्र, गणाधिप, एकदन्त, ये इक्कीस नाम हैं, इनकेआदिमें "ओम्" और अन्तमें "नमः" तथा इन्हें चतुर्थीका एकवचनान्त करनेसे नाम मंत्र बन जाता है, एक एक नाम मंत्रको बोलकर एक एकवार दूर्वा या फूल चढाने चाहिये, यह नाममंत्रोंसे पूजा पूरी हुई ।। अङ्गपूजा–पुष्प तथा दूबसे की गई पूजाकी तरह नाम मंत्रोंसे अङ्गपूजा भी होती है, संकष्टनाशिन्, स्थूलजंघ, एकदन्त, आखुवाहन, हेरम्ब, लम्बोदर, गणाध्यक्ष, स्थूलकंठ, स्कन्दाग्रज, परशु-हस्त, गजवक्त्र, सर्वेश्वर, संकष्टनाशिन् इन नामोंके आदिमें "ओम्" और अन्तमें "नमः" तथा इन्हें चतुर्थीका एक वचनान्त करनेसे ये नाम मंत्रके रूपमें आजाते हैं इसप्रकार तैयार किये गये नाम मंत्रोंमेंसे एक एकसे पाद, जंघा, जानु, ऊरू, कटि, उदर, हृदय, कंठ, स्कन्ध, हस्त, वक्र, फिर इनमेंसेदोकोद्वितीयाका द्विवचनान्त-करके प्रत्येकके साथ "पूजयामि" लगाकर तथा सर्वाङ्गशब्द और एकअंगको एक वचनान्त करके उसीको लगाकर इन अङ्गोंका पूजन करना चाहिये, अर्थ वही है कि अमुकके लिये नमस्कार है अमुक अंगका पूजन करताहूं, (गणेशजीके ही व्रत प्रकरणमें इस प्रकारकी अंगपूजा तथा नाम पूजा हम कई जगह कह आये हैं इस कारण विस्तारके साथ अर्थ नहीं करते हैं) आवरण पूजा–गणपतिजीके चारों ओर क्रमशः पांच आवरण या टक्कन मानकर उनपर जय पानेके लिये उनकी भी पूजा करनी चाहिये। गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशिन्' हेरंब लंबोदर, गजवक्र, एकदन्त, धूम्रकेतु, भालचन्द्र, ईशपुत्र, इभवक्त्र,मूषकवाहन, कुमारगुरु, संकष्टनाशिन् इन नामोंके मंत्रोंसे पहिले आवरणकी पूजा करनी चाहिये। विघ्नपति, वीरगणपति, शूर्पगणपति, प्रसाद-गणपति, बरदगणपति, इन्द्रगणपति, एकदन्तगणपति, लम्बोदरगण पति, क्षिप्रगणपति, सिद्धिगणपति इन नामोंके मंत्रोंसे दूसरे आवरणकी पूजा करनी चाहिये। राम, रमेश, वृषांक, रतिप्रिय, पुष्पबाण, महेश्वर, वराह, श्रीसदाशिव इन नामोंके मंत्रोंसे तीसरे आवरणकी पूजा करनी चाहिये। आदित्य, चन्द्र, कुज, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, केतु, सिद्धि, समृद्धि, कान्ति, मदनरति, मदद्राविणी, वसुमति, वैनायकी, इन नाम-मंत्रोंसे चौथे आवरणकी पूजा करनी चाहिये। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईश, इन नाम मंत्रोंसे पांचमें आवरणका पूजन करना चाहिये। यह आवरण पूजन समाप्त हुआ ।। पत्रपूजा–गणाधिप, सुमुख, उमापुत्र, गजवक्त्र, लम्बोदर, हरसूनु, गुहाग्रज, गजकर्ण, एकदन्त, इभवक्त्र, मूषकवाहन, विनायक, कपिल, भिन्नदन्त, पत्नीहित, बटु, भालचन्द्र, हेरम्ब, सिद्धिद, सुराग्रज, विघ्नराज, इन इक्कीस नाम मंत्रोंसे पाची, भृंगराज, बिल्व, श्वेतदूर्वा, बदरी, धत्तुर, तुलसी, अपामार्ग, बृहती, शमी, करवीर, वेणु, अर्क, अर्जुन, विष्णुक्रान्ता, दाडिमी, देवदारु, मरु, सिन्धुवार, जाती, केतकी, ये इक्कीस बूटोंके नाम हैं इनके साथ पत्र जोडकर फिर द्वितीयान्त करके सबके साथ "समर्पयामि" जोडकर फिर एक नाम मंत्रके साथ एक एक इसको लगाकर कहे हुए गामोंमेंसे जिसको इस प्रकार बोले उसीके पत्ते चढाने चाहिये ।। पाची पत्र एक वृक्षके सुगन्धित पत्तेका नाम है, उस वृक्षको पाची कहते हैं। भृङ्गराज नाम भांगरेका है। अपामार्ग नाम ऊंगेका है, इसेही ओला काटाभी कहते हैं। बृहती नाम कटेरीका है। शमी जांटको कहते हैं। करवीर कनीरको कहते हैं। वेणुनाम बांसका है। अर्क आकको कहते हैं। अर्जुन और विष्णुक्रान्ता (नर्गिस)ये दो प्रसिद्ध वृक्ष-

विशेष हैं । सिन्धुवार निर्गुण्डीको कहते हैं । और सब नाम प्रसिद्ध हैं । इस कारण उनका परिस्फुट नहीं करते हैं । यह पत्रपूजा समाप्त हुई ।। पुष्पपूजा-सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्न, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र, पत्नीहित, उमापुत्र, गजानन, ईशपुत्र, सर्वसिद्धिप्रद, मूषकवाहन, कुमारगुरु, दीर्घतुण्ड, इभवक्त्र, संकष्टनाशन इन इक्कीस नामोंके मंत्रोंसे जाती, शतपत्र, यूथिका, चंपक, कल्हार, केतकी, बकुल, जपा, पुन्नाग, धत्तूर, मातुलिंग, बिष्णुकान्ता, करवीर, पारिजात, कमल, गोकर्णिका, मुकुद, तगर, सुगन्धिराज, अगस्ति, पाटला ये इक्कीस फूलके गाछोंके नाम हैं इनमेंसे हर एकके साथ "पुष्पं समर्पयामि" लगाकर उसीके फूलको गणेशजीपर चढा देना चाहिये ।। यह क्रमशः इक्कीस नाम मंत्रोंसे चढाने चाहिये । इनमें शतपत्रनाम कमलका, यूथिकानाम जूईका, कल्हार नाम एक प्रकारके लाल एवं तीनों कालोंमें खिले रहनेवाले कमलका, बकुल नाम, मोलसरीका, जपा नाम जबाका, मातुलुङ्ग नाम बिजौरेका, करवीर नाम कनीरका, पारिजात नाम हार श्रृङ्गारका, गोकर्णिका नाम मुहार (मधूलिका) सुगन्धिराज नाम गन्धराजका और अगस्ति नाम अगस्त्यका है । बाकी सब प्रचलित नाम हैं इस कारण उनका अर्थ नहीं करते । यह इक्कीस तरहके फूलोंसे होनेवाली पूजा समाप्त हुई ।। एकसौ आठ नामोंसे पूजा–अब एकसौ आठ नामोंसे गणेशजीका पूजाका विधान कहते हैं, इस एकसौ आठ गणपतिजीके दिव्य नामोंके स्तोत्र रूप मंत्रका गृत्समद ऋषि है, गणपति देवता है, अनुष्टुप् छन्द है, रंबीज है, नं शक्ति है, मं कीलक है, श्रीगणपतिदेवकी प्रसन्नताके लिये गणपतिके पूजनमें इसका विनियोग होता है, इस प्रकार कहकर, उस जलको भूमिपर छोड दे । ये एकसौ आठ नाम यहां भी लिखते हैं, ये सब मूलमें हैं जो चतुर्थी विभक्तिके एक वचनान्तके रूपमें लिखे हैं उनके आदिमें "ओम्" और अन्तमें नमः लगाकर एक एकको बोलकर पूजन करते जाना चाहिये । विनायक, १ विघ्नराज, गौरीपुत्र, गणेश्वर, स्कन्दाग्रज, अव्यय, पूत, दक्षाध्यक्ष, द्विजप्रिय अग्निगर्वच्छित् इन्द्रश्री-प्रद, वाणीबलप्रद, सर्वसिद्धिप्रद, शर्वतनय, शिवप्रिय, सर्वात्मक, सृष्टिकर्तृ देवानीकार्चित, शिव, शुद्ध, बुद्धि-प्रिय, शान्त, ब्रह्मचारिन्, गजानन, द्वैमातुर, मुनिस्तुत्य, भक्तविघ्नविनाशन, एकदन्त, चतुर्बाहु, चतुर, शक्ति संयुक्त, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, हेरंब, ब्रह्मवित्तम, काल, ग्रहपति, कामिन्, सोमसूर्य्याग्निलोचन, पाशाङ्कुशधर, चण्ड, गुणातीत, निरञ्जन, अकल्मष, स्वयंसिद्ध, सिद्धार्चितपदाम्बुज, बीजपूरप्रिय, अव्यक्त, वरद, शाश्वत कृतिन्, विद्वत्प्रिय, वीत भय, गदिन्, चक्रिन्, इक्षुचापधृत्, अब्जोत्पलकर, श्रीश, श्रीपति, स्तुति हर्षित, कुलाद्रिभृत्, जटिन्, चन्द्रचूड, अमरेश्वर, नागयज्ञोपवीतिन्, श्रीकंठ, रामार्चितपद, व्रतिन्, स्थूलकंठ, त्रयीकर्त्रे, सामघोषप्रिय, अग्रगण्य, पुरुषोत्तम, स्थूलतुण्ड, ग्रामणी, गणप, स्थिर, वृद्धिद, सुभग, शूर, वागीश, सिद्धिदायक, दुर्वाबिल्वप्रिय, कान्त, पापहारिन् कृतागम, समाहित, वक्रतुण्ड, श्रीपद, सौम्य, भक्तकांक्षितदातृ, अच्युत केवल, सिद्धिद, सच्चिदानन्दविग्रह, ज्ञानिन्, मायायुत, दान्त, ब्रह्मिष्ठ, भयवर्जित, प्रमत्त दैत्यभयद, व्यक्त मूर्ति, अमूर्तिक, पार्वती शंकरोत्संग खेलनोत्सव लालस, समस्त जगदाधर, वर मूषकवाहन, हृष्टचित्त, प्रसन्नात्मन्, सर्व सिद्धि प्रदायक, ये १०८ नाम हैं जो स्तोत्रके रूपमें पाठ किये जाते हैं (इनमेंसे जो प्रचलित नाम हैं उनका अर्थ तो यहां नहीं दिखाते पर जो प्रचलित नहीं हैं तथा कई शब्दोंके समासके रूपमें आये हैं उनका यहांही अर्थ करेंगे तथा जिन नामोंका अर्थ लिखेंगे उनपर अर्थ क्रमके नम्बर दे देंगे) १ जो सबका नायक है जिनपर कि कोई नायक नहीं है । २ स्कन्दके बडे भाई । ३ जो कभी नष्ट न हो । ४ चन्द्रमा या ब्राह्मणोंके प्यारे । ५ अग्निके गर्वको नष्ट करनेवाले । ६ इन्द्रको श्रीके देनेवाले । ७ देवताओंकी सेनासे पूजित होनेवाले । ८ चांद, सूर्य्य और अग्नि हैं नेत्र जिसके ऐसे । ९ सिद्ध जिसके चरणोंकी पूजा ही करते हैं । १० विष्णुकी की हुई स्तुतियोंको सुनकर प्रसन्न होनेवाले । ११ प्रमत्त दैत्योंको भय देनेवाले १२ पार्वतीजी और शिवजीकी गोदमें खेलनेका उत्सव चाहनेवाले । यह बाल्य भावका परिचायकस्मरण किया गया है । जब महादेवजी त्रिपुरको मारनेके लिये तैयार हुए उस समय गणेशजीके इन्ही एक-सौ आठ नामोंके स्तोत्रसे गणेशजीको प्रसन्न किया था जो कोई भक्ति भावके साथ इस स्तोत्रसे सिद्धिविनायकका पूजन करता है तथा पुष्प, चन्दन, अक्षत दुर्वादल और बिल्वपत्रोंको चढाता है उसकी सब इच्छाएं पूरी होजाती हैं और सब आपत्तियोंसे छूट जाता है । यह श्री भविष्योत्तर पुराणका कहा हुआ श्रीगणपतिजीके एकसौ आठ दिव्य नामोंका स्तोत्र पूरा

हुआ ।। पूजन–'वनस्पति रसोद्भूतम्' इस मंत्रसे तथा "यत्पुरुषम्" इसमंत्रसे एवम् ओम् भवानी प्रियकर्त्रेनम धूपमाघ्रापयामि' भवानीके प्रिय कार्य्य करनेवालेके लिये नमस्कार है । गणेशजीको धूपकी सुगन्धि सुंघाताहूं, इससे धूप देनी चाहिये । 'घृताक्तवर्ति' इस मंत्रसे तथा "ब्राह्मणोस्य" इससे एवम् 'ओम् रुद्रप्रियायनमः दीपं दर्शयामि' शिवजीके प्यारे पुत्र एवम् शिवजीसे अधिक प्यार रखनेवालेके लिये नमस्कार है दीपको दिखाता हूं, इससे दीपक दिखाना चाहिये । 'अन्नंचतुर्विधम्' इससे तथा अनेक तरहके भक्ष्योंके साथ, तिलोंके लड्डू समेत घीमें पकाये हुए मोदकोंको, हे विघ्नराजेन्द्र ! ग्रहण करिये, इससे तथा "चन्द्रमाम०" इस मंत्रसे एवम् ओम् विघ्नविनाशिने नमः नैवेद्यं निवेदयामि विघ्न विनाशकके लिये नमस्कार है नैवेद्यका निवेदन करता हूं, इससे नैवेद्यका निवेदन करना चाहिये । "फलानि" इससे तथा 'ओम् संकटनाशिने नमः फलं समर्पयामि' संकटनाशीके लिये नमस्कार है फलोंका समर्पण करताहूं इससे फल चढाने चाहिये । 'पूगीफलम्' इससे तथा "नाभ्या आसी" इससे एवम् ओम् 'सिद्धिदाय नमः ताम्बूलं समर्पयामि सिद्धियोंके देनेवालेके लिये नमस्कार है ताम्बूल चढाताहूं । हे ईश्वर ! पूजाके फलकी प्राप्तिके लिये आपके सामने सोनेका फूल रखा है, इससे आप प्रसन्न होकर मेरे मनोरथोंको पूरा करें, इससे तथा "सप्तास्यासन्" इससे एवम् 'ओम् विघ्नेशाय नमः सुवर्णपुष्पं समर्पयामि' विघ्नेशके लिये नमस्कार है सोनेका फूल चढाताहूं, इससे सोनेका फूल चढाना चाहिये । "श्रिये जातः" इससे आरती करनी चाहिये ।। अब दो दो दूर्वाएं चढानेकी विधि कहते हैं–गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशन, एक दन्त, इभवक्त्र, विनायक, ईशपुत्र, सर्वसिद्धिप्रदायक, कुमार गुरु, श्री गणराज, इन नामोंके आदिमें "ओम्" तथा अन्तमें "नमः इन्हे चतुर्थीका एक वचनान्त करके जैसे मूलमें हुं, वैसे नाम मंत्र बन जाते हैं प्रत्येकके साथ "दूर्वांकुरयुग्मं समर्पयामि" लगाकर गणेशजीपर दो' अन्तमें एक दूर्वा चढाना चाहिये, ये सब गणेशजीके प्रसिद्ध नाम हैं । अब इनहीं ग्यारह नाम मन्त्रोंका श्लोकों द्वारा भी इनका अनुवाद करते हैं कि, हे गणाधिप ! आपके लिये नमस्कार है, हे उमा (पार्वति) के नन्दन! आपके लिये नमस्कार है, हे अघों (पापों, या उसके दुःखों) के नाशन आपको नमस्कार है, हे एकदन्त आपको नमस्कार है, हे हस्तिके सदृश मुखवाले आपको नमस्कार है, हे मूषक वाहन आपको नमस्कार है, हे विनायक आपको नमस्कार है, हे ईश (महादेवजी) के पुत्र आपको नमस्कार है, हे समस्त सिद्धियोंके देनेवाले आपको नमस्कार है, स्वामि-कार्तिकेयके (बडेभाई) आपको नमस्कार है, हे गणराज ! आपको नमस्कार है इन पूर्वोक्त नाम मंन्त्रोंसे गणेशजी पर प्रयत्नके साथ दो दो दूबके दल चढावे और "१ श्रीगणेश, २ वक्त्रतुण्ड, ३ उमापुत्र, ४ विघ्नराज, ५ कामद, ६ गणेश्वर, ७ जीमूत (मेघोंकी) शक्ति, ८ अञ्जनसमप्रभ, ९ योगिध्येय, (योगिजन जिनका ध्यान करें ऐसे) १० दिव्यगुण, ११ महाकाय, १२ सिद्धिद, १३ महोदर, १४ गजवक्त्र १५, कर्मभीम, १६ परशुधारि, १७ करि कुम्भ, (हाथीके समान गण्डस्थलवाले) १८ विश्वमूर्ति १९ उग्रतेजा, १० लम्बोदर, २१ सिद्धि गणेश" ये इक्कीस सुन्दर नाम हैं, इनको जो जपता या इनसे पूजन करता है गणेशजीके अनुग्रहसे उसके घोरसे घोरभी जो संकट हों वे सब टलजाते हैं।पीछे 'महासंकष्ट' इस श्लोकको पढता हुआ प्रणाम और प्रार्थना करे कि, हे विश्वके स्वामी श्रीमहादेवजीके प्रिय नन्दन ! मैं घोर संकटरूप दावानलसे जलरहाहूं, अब आपकी शरण प्राप्त हुआ हूं, इस कारण आप मेरे मनोरथको पूरा करिये, पीछे सुवर्ण सदृश पीत या सुवर्णके ही पुष्पको विघ्नराजजीके भेंट करे । तदनन्तर प्रदक्षिणा और प्रणाम करके क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये । फिर "ओं यज्ञेन यज्ञ" इस मन्त्रसे, तथा "संकष्टनाशनाय नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि" संकटोंके संहार करनेवालेके लिये नमस्कार है, मैं पुष्पाञ्जलि चढाता हूं इससे पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । 'नमस्ते' इससे प्रणाम करे कि हे देवदेव ! आपके लिये नमस्कार है । हे ईश ! हे भक्तोंके भयको दूर करनेवाले ! हे शिवकुमार ! आपके लिये नमस्कार है । "विघ्ननाशिने नमः" विघ्नोंके नाश करनेवालेके लिये नमस्कार है इससे नमस्कार करे । फिर "ओं नमो हेरम्ब मदमोहित मम संकष्टं निवारय २ हुं फट् स्वाहा" इस पूर्वोक्त मूल मन्त्रका इक्कीस बार जप करे । फिर गणेशजीके लिये अर्घ्यदान करे और 'गणेशाय' इत्यादि दो मंत्रोंको पढकर "संकष्टहरगणपतये नमः" संकष्ट हरगणपतिके लिये नमस्कार है, इस प्रकार बोलता हुआ दो बार अर्घ्यदान करे, अर्थात् एक एक मन्त्रके अन्तमें पूर्वोक्त वाक्यकी योजना करता हुआ गणेशजीके

लिये अर्घ्य दान करे । उन दो श्लोकोंका यह अर्थ है कि, हे समस्त सिद्धियोंके देनेवाले गणेश ! जो आप हैं, आपके लिये नमस्कार है । हे संकटोंके हरनेवाले देव ! आप अर्घ्य ग्रहण करिये आपके लिये नमस्कार है । कृष्णपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमाके उदयमें जिनका अच्छी तरह पूजन किया है ऐसे हे देवदेव ! हे ईश ! आप प्रसन्न हों, अर्घ्य ग्रहण करें, आपके लिये नमस्कार है । तदनंतर "तिथीनां" हे तिथियोंमें उत्तम हे देवि ! हे गणेशजीकी परमप्यारी ! आपके लिये नमस्कार है, आप मेरे समस्त संकटोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्य ग्रहण करें "चतुर्थ्यै नमः इदमर्घ्यं समर्पयामि" चतुर्थी तिथिकी अधिष्ठात्री देवीके लिये नमस्कार है. मैं इस अर्घ्यका दान करता हूं इस प्रकार कहकर चौथके लिये एक अर्घ्यदान करे । फिर रोहिणीसहित चन्द्रमाको पञ्चोपचारोंसे पूजा करके "क्षीरोदार्णव" हे क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न होनेवाले ! हे लक्ष्मीके बान्धव ! हे निशाकर ! हे शशी ! आप रोहिणी सहित अर्घ्य ग्रहण करें, "रोहिणीसहित चन्द्राय नमः इदमर्घ्यं समर्पयामि " रोहिणी सहित चन्द्रमाके लिये नमस्कार है, मैं इस अर्घ्यको सर्मापत करता हूं इससे अर्घ दान करे । 'गगनाङ्गण' हे आकाशरूप आँगनमें दीपककी तरह प्रकाश करनेवाले ! हे क्षीरसमुद्रके मंथनसे उत्पन्न होनेवाले ! हे अपनी कान्तिसे दिगन्तरालमें प्रकाश करनेवाले ! हे सोमराज ! आपके लिये नमस्कार है चन्द्राय नमस्कार; चन्द्रमाके लिये नमस्कार यानी इस प्रकार चन्द्रमाके लिये नमस्कार करना चाहिये । पीछे आचार्यकी पूजा करके 'मोदकान्' इस मंत्रसे वायना दे, हे द्विजश्रेष्ठ ! आप मेरे व्रतकी पूर्णता करनेके लिये फल और दक्षिणासमेत पञ्च मोदक ग्रहण करें ।। फिर गुरु आचार्यके लिये प्रतिमा दक्षिणा और वस्त्रसहित कलस प्रदान करे उसके पहिले, 'गणेशस्य, गणेशजीकी प्रसन्नतासे मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हों, हे विप्र ! मैं गणपतिकी स्वर्णमूर्तिको आपकेलिये देता हूं । यह मूर्त्ति पुत्र और पौत्रादिकोंको बढानेवाली है, इस दानके करनेसे अभिलषित कामना पूर्ण हों, इसीलिये इसका दान करता हूं । इस प्रकार आचार्यकी प्रार्थना करके गणेशजीकी प्रार्थना करे कि, हे गणाधिराज ! हे देवताओंके ईश्वर ! हे विघ्नराज ! हे विनायक ! मैंने जो आपकी प्रतिमाका दान किया है, इससे आप सदैव मुझपर प्रसन्न रहें । यह कलसके ऊपर पूर्ण पात्रमें गणपतिकी मूर्ति स्थापित करके देनेका मन्त्र है । अब मूर्ति लेनेके समयमें आचार्यके पढनेका मंत्र लिखते हैं कि, 'गणेशः' गणेशजी ही प्रदाता हैं, गणेशजी ही ग्रहीता हैं, गणेशजी ही अपने दोनोंके उद्धार करनेवाले हैं, गणेशजीके लिये बार २ प्रणाम है । फिर यजमान 'संसार' इस पद्यको पढे, कि, हे सुमुख ! मैं सदा सांसारिक दुःखोंसे दुःखित हो कष्ट भोग रहा हूं, अतः आप मेरेपर प्रसन्न हों, मेरी रक्षा करें, मेरे समस्त कष्टोंको नष्ट करें, आप कष्टोंको विनष्ट करनेवाले हैं, आपके लिये वारंवार प्रणाम है यह प्रार्थना पूरी हुई । मैंने जिस संकटकी निवृत्तिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार आपका पूजन किया है, हे पार्वतीनन्दन ! मेरे उस संकटको आप हरें, आपके लिये नमस्कार है । यह पूजनान्तमें नमस्कार करनेका मंत्र है । यह पूजाकरनेकी विधि पूरी हुई ।।

अथ संकष्टनाशन कथा ।। सूत उवाच।।अरण्ये वर्तमानं तं पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ।। सबान्धवं सुखासीनं प्रययौ व्यास आदरात् ।।१।। तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं व्यासं प्रत्याययौ नृपः ।।मधुपर्कं च सार्घ्यं स दत्त्वा तस्मै ह्युवाच तम् ।।२।।युधिष्ठिर उवाच।।अद्य मे सफलं जन्म भवतागमने कृते।।यत्संकष्टं हि संजातं वने मम निवासिनः।।३।।तत्सर्वं विलयं यातं भवतो दर्शनेन हि ।। आत्मानं साधु मन्येऽहं राज्यतृष्णापराङमुखम् ।। ४ ।। दुःखितं मां पुनः स्वामिन्राज्यभ्रष्टं वने स्थितम् ।। एते भीमादयः सर्वे बान्धवा व्यथयन्ति भोः ।। ५ ।। दुराधर्षाः सुवीर्या हि मच्छासनविधौरताः ।। इयं तु द्रौपदी साध्वी राजपुत्री पतिव्रता ।। ६ ।। राज्योपभोगयोग्या साप्यद्य दुःखोपभोगिनी ।। मया च किं कृतं व्यास पूर्वं कष्टानुजीविना ।। ७ ।। दायादै-

र्लुण्ठितं राज्यं द्यूतच्छद्मरतैस्तथा ।। पराजिता वयं ब्रह्मन्सुहृद्भिर्बन्धुभिस्तथा ।। ८ ।। वनं प्रस्थापिता दूतैरिदमूचुस्तथैव च ।। कुर्वन्तु गमनं शीघ्रं वनाय भवदादयः ।। ९ ।। इत्थं निराकृताः स्वामिन्यदा तद्वनमागताः ।। अहं तदाप्रभृत्यर्हान्न द्रक्ष्यामि भवादृशाम् ।। १० ।। यद्यस्ति व्रतमेकं हि सर्वसंकष्टनाशनम् ।। तद्व्रतं कथय ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सुव्रत ।। ११ ।। इत्युक्तवन्तं राजानं सर्वसंकष्टनाशनम् ।। उवाच प्रीणयन् व्यासो धर्मजं व्रतमुत्तमम् ।। १२ ।। व्यास उवाच ।। नास्ति भूमण्डले राजंस्त्वत्समो धर्मतत्परः ।। कथयामि व्रतं तेऽद्य व्रतानामुत्तमोत्तमम् ।। १३ ।। संकष्टनाशनं नित्यं शुभदं फलदं भुवि ।। यत्कर्तुः सर्वकार्याणां निष्पत्तिर्जायते ध्रुवम् ।। १४ ।। विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।। प्रोषिता[1] या पुरन्ध्री च करोति व्रतमुत्तमम् ।। १५।। ईप्सितं लभते सर्वं पतिना सह मोदते ।। संकष्टेपि यदाक्षिप्तो मानवो[2] ग्रहपीडितः ।। १६ ।। साम्राज्ये दीक्षितो नित्यं मंत्रिभिः परिवारितः ।। सुहृद्भिर्बन्धुभिश्चैव तथा पुत्रैः समन्वितः ।। १७ ।। तस्य तु प्रियकर्त्री च पत्नी गुणवती प्रिया ।। नाम्ना रत्नावलीत्यासीत्पतिव्रतपरायणा ।। १८ ।। तयोः परस्परं प्रीतिरभवच्च गुणाश्रया ।। कदाचिद्दैवयोगेन हृतं राज्यं च वैरिभिः ।। १९ ।। कोशोबलं चापहृतं विध्वस्तो बन्धुभिः सह ।। रत्नावल्या तया साध्व्या निर्गतो भूमिवल्लभः ।। २० ।। वने क्षुधार्तः कृशितो ह्येकवासास्तृषार्दितः ।। इतस्ततश्चरन्राजन्नातपेनातिपीडितः ।। २१ ।। एकाकी वनमासाद्य पत्न्या सार्द्धं युधिष्ठिर ।। सूर्ये चास्ताचलं याते अरण्ये च शिवार्दिते ।। २२ ।। व्याघ्राश्च चुक्रुशुस्तत्र पर्जन्योऽपि ववर्ष ह ।। कण्टकैःक्लेशिता राज्ञी दुःखादाक्रन्दपीडिता ।। २३ ।। तां विलोक्य नृपश्रेष्ठो दुःखेनैव तु पीडितः ।। ततः प्रभातसमये मार्कण्डेयं महामुनिम् ।। २४ ।। ददर्श राजा तत्रैव विस्मयाविष्टमानसः ।। उपगम्य शनैस्तं तु दण्डवत्पतितो भुवि ।। २५ ।। अब्रवीद्वचनं राजा मार्कण्डेयं महामुनिम् ।। किं कृतं हि मया स्वामिन् दुष्कृतं कथयस्व तत् ।। २६ ।। केन कर्मविपाकेन राज्यलक्ष्मीः पराङमुखी ।। मार्कण्डेय ऊवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्कृतं पूर्वजन्मनि ।। २७ ।। पूर्वं हि लुब्धकश्चासीद्गतोऽसि गहनं वनम् ।। मृगशार्दूलशशकान्विनिघ्नन्परितो वने ।। २८ ।। तस्मिन्रात्रौ भ्रमन्राजंश्चतुर्थ्यां माघकृष्णके ।। दृष्टं शुभं च कृष्णायास्तद्राकं[3] पृथुनिर्मलम् ।।२९।। तत्तीरे नागकन्यानां समहं रक्तवाससाम् ।। गणेशं पूजयन्तीनां दृष्टवान्निरतं व्रते ।। ३० ।। उपगम्य शनैस्तत्र पृष्टास्तास्तु त्वया विभो ।। आर्याः किमेतन्मे सर्वं कथयध्वं हि तत्त्वतः ।। ३१ ।। नागकन्या ऊचुः ।। पूजयामो गणपतिं व्रतं सिद्धिप्रदायकम् ।।

---

१ प्रोषितभर्तृकेत्यर्थः २ मानवो राजा ३ कृष्णावेण्याः

शान्तिदं पुष्टिदं नित्यं सर्वव्याधिविनाशनम् ।। ३२ ।।पुनः पृष्टं त्वया तत्रकिं दानं पूज्यतेऽत्र कः ।। स्त्रिय ऊचुः ।। यदा चोत्पद्यते भक्तिर्माघे मासि गणाधिपम् ।। ३३ ।। कृष्णायां च चतुर्थ्यां वै रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ।। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैरन्यैर्भक्तिसमाहृतैः ।। ३४ ।। विविधान्मोदकान्कृत्वा पूरिका घृतपाचिताः ।। नैवेद्यं षड्रसं सर्वं गणेशाय निवेदयेत् ।। ३५ ।। ततो गृहीत्वा राजेन्द्र त्वया संकष्टनाशनम् ।। व्रतं कृतं भक्तिपूर्वं साङ्गं तस्य प्रभावतः ।। ३६ ।। अभवद्धनधान्यं ते पुत्रपौत्रसमन्वितम् ।। कस्मिंश्चित्समये राजन् धनमत्तेन सिद्धिदम् ।। ३७ ।। विस्मृतं तद्व्रतं नैव कृतं यत्नेन भूतिदम् ।। ततः प्राप्तं हि पञ्चत्वमायुषोऽन्ते त्वया विभो ।। ३८ ।। तत्प्रभावाद्राजकुले विशाले प्राप्तमुत्तमम् ।। त्वया जन्म नृपश्रेष्ठ राज्यंप्राप्तं तथा विभो ।। ३९ ।। सुहृन्मित्रप्रियायुक्तः प्राप्तोऽसि विपुलं वसु ।। कृत्वाऽवज्ञा व्रतस्यान्तस्तत्प्राप्तं फलमीदृशम् ।। ४० ।। राजोवाच ।। अधुना क्रियते स्वामिन् कथ्यतां मम सुव्रतम् ।। यत्कृत्वा सकलं राज्यं प्राप्यते च मया पुनः ।। ४१ ।। ऋषिरुवाच ।। व्रतसंकल्पमाशु त्वं कुरु चादौ नृपोत्तम ।। प्राप्स्यसि त्वं हि राज्यं च सन्देहं मा कुरु प्रभो ।। ४२ ।। इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो ह्यन्तर्धानमगात्ततः ।। मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा व्रतसंकल्पमातनोत् ।। ४३ ।। राजाकरोन्मुनिप्रोक्तं सकलं तद्व्रतं शुभम् ।। आयाताःसकलास्तस्य मन्त्रिभृत्याश्च सैनिकाः ।। ४४ ।। समाययौ नृपश्रेष्ठस्तत्क्षणात्स्वयमेव हि ।। लब्ध्वा स्वकीयं राज्यं च गणेशस्य प्रसादतः ।। ४५ ।। बुभुजे मेदिनीं राजा पुत्रपौत्रसमन्वितः ।। तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कुरु संकष्टनाशनम् ।। ४६ ।। व्रतं सिद्धिप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव विशेषतः ।। युधिष्ठिर उवाच ।। सविस्तरं व्रतं ब्रूहि कृपया कष्टनाशनम् ।। ४७ ।। व्यास उवाच ।। यदा संक्लेशितो राजन् दुःखैः संकष्टदारुणैः ।। पुमान्कृष्णचतुर्थ्यां तु तदा पूज्यो गणाधिपः ।। ४८ ।। श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थी स्याद्विधूदये ।। तस्मिन् दिने व्रतं ग्राह्यं संकष्टाख्यं युधिष्ठिर ।। ४९ ।। माघे वा कृष्णपक्षे तु चतुर्थी स्याद्विधूदये ।। तस्मिन्दिने व्रतं ग्राह्यं संकष्टाख्यं नृपोत्तम ।। ५० ।। प्रातः शुचिर्भवेत्सम्यग्दन्तधावनपूर्वकम् ।। निराहारोऽद्य देवेश यावच्चन्द्रोदयो भवेत् ।। ५१ ।। भोक्ष्यामि पूजयित्वाऽहं गणेशं शरणं गतः ।। कृत्वैवमादौ संकल्पं स्नात्वा शुक्लतिलैः शुभैः ।। ५२ ।। आह्निकं तु विधायैवं पूजां च कुरु सुव्रत ।। यथाशक्त्या तु सौवर्णीं प्रतिमां च विधाय च ।। ५३ ।। सौवर्णे राजते ताम्रे मृन्मये वाथ शक्तितः ।। कुम्भे पुष्पैः फलैः पूर्णे देवं तत्रैव विन्यसेत् ।। ५४ ।। शुभेदेशे न्यसेत्कुम्भं वस्त्रं तत्र निधाय च ।। पद्ममष्टदलं कृत्वा गन्धाद्यैः पूजयेत्ततः ।। ५५ ।। रक्तपुष्पैश्च धूपैश्च एभिर्नामपदैः पृथक् ।। आवाहनं गणेशाय आसनं विघ्न-

नाशिने ।। ५६ ।। पाद्यं लम्बोदरायेति अर्घ्यं चन्द्रार्धधारिणे ।। विश्वप्रियायाचमनं स्नानं च ब्रह्मचारिणे ।। ५७ ।। वक्रतुण्डायोपवीतं वस्त्रं सर्वप्रदाय च ।। चन्दनं रुद्रपुत्राय पुष्पं च गुणशालिने ।। ५८ ।। भवानीप्रियकर्त्रे च धूपं दद्याद्यथाविधि ।। दीपं रुद्रप्रियायेति नैवेद्यं विघ्ननाशिने ।। ५९ ।। ताम्बूलं सिद्धिदायेति फलं संकष्टनाशिने ।। इति नामपदैः पूजां कृत्वा मासयमाञ्छृणु ।। ६० ।। श्रावणे सप्तलड्डूकान्नभस्ये दधिभक्षणम् ।। आश्विने चोपवासं च कार्तिके दुग्धपानकम् ।।६१।। मार्गशीर्षे निराहारं पौषे गोमूत्रपानकम् ।। तिलांश्च भक्षयेन्माघ फाल्गुने घृतशर्कराम् ।। ६२ ।। चैत्रे मासि पञ्चगव्यं दूर्वारसं[1] तु माधवे ।। ज्येष्ठे घृतं तलं भोज्यमाषाढे मधुभक्षणम् ।। ६३ ।। इति मासयमान्कृत्वा नरो मुच्येत संकटात् ।। भुञ्जीयाद्वा तथा सप्तग्रासान् वा स्वेच्छया सुखम् ।। ६४ ।। अशक्तश्चेत्ततःसिद्धिर्भविष्यति न संशयः ।। एवं पूजा प्रकर्तव्या षोडशैरुपचारकैः ।। ६५ ।। नानाभक्ष्यादिसंयुक्तमुपहारं प्रकल्पयेत् ।। मोदकान्कारयेद्राजंस्तिलजान् दशसंख्यकान् ।। ६६ ।। देवाग्रे स्थापयेत्पञ्च पञ्च विप्राय दापयेत् ।। पूजयित्वा तु तं विप्रं भक्तिभावेन देववत् ।। दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा पञ्चैव मोदकान् ।। ६७ ।। संसारपीडाव्यथितं हि मां सदा संकष्टभूतं सुमुख प्रसीद ।। त्वं त्राहि मां नाशय कष्टसंघान्नमो नमः कष्टविनाशनाय ।। ६८ ।। इति संप्रार्थ्य देवेशं चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाग्दणेशप्रीतये सदा ।। ६९ ।। स्वयं भुञ्जीत पञ्चैव मोदकान् बन्धुभिः सह ।। अशक्तौ त्वेकमन्नं वा भुञ्जीयाद्दधिना[2] सह ।।७० ।। अथवा भोजनं कार्यमेकवारं हि पाण्डव ।। भूमिशायी जितक्रोधी लोभदम्भविवर्जितः ।। सोपस्करां च प्रतिमामाचार्याय निवेदयेत् ।। ७१ ।। गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।। व्रतेनानेन सुप्रीतो यथोक्तफलदो भव ।। ७२ ।। उद्यापनं प्रकर्तव्यं चतुर्थ्यां माघकृष्णके ।। गाणपत्यं सदाचारं सर्वशास्त्रविशारदम् ।। ७३ ।। आचार्यं वरयेदादौ यथोक्तविधिनार्चयेत् ।। एकविंशतिविप्रान्वै वस्त्रालंकारभूषणैः ।। ७४ ।। पूजयेद्गोहिरण्याद्यैर्मोदकैश्चैव होमयेत् ।। अष्टोत्तरसहस्रं तु शतं चाष्टाधिकं तथा ।। ७५।। अष्टाविंशतिरष्टौ वा वेदोक्तैस्तिलसर्पिषा[3] ।। सपत्नीकं[4] सुवर्णाद्यैर्गोभूवस्त्रादिभूषणैः ।। ७६ ।। छत्र चोपानहौ दद्यात्कमण्डलुगृहादिभिः ।। आचार्यं पूजयेद्राजन् गणेशस्य तु तुष्टये ।। ७७ ।। एवं कृत्वा विधानेन प्रसन्नो नात्र संशयः ।। प्रतिमासं तु यः कुर्यात्त्रीण्यब्दान्येकमेव वा ।। ७८ ।। अथवा जन्मपर्यन्तं तस्य

---

१ वैशाखे शतपत्रिकाम् ।। घृतस्यभोजनं ज्येष्ठे आषाढे इतिपाठान्तरम्　　२ आर्षमेतत्
३ मंत्रैरित्यर्थः　　४ सपत्नीकमाचार्यं सुवर्णाद्यैः पूजयेत्तस्मै छत्रमुपानहौ दद्यादित्यन्वयः

दुःखं कदाचन ।। दारिद्रं न भवेत्तस्य संकष्टं न भवेदिह ।। ७९ ।। वत्सरान्ते द्वादश वै ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।। विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।। पुत्रार्थी लभते पुत्रान्सौभाग्यं च सुवासिनी ।। ८० ।। शृण्वन्ति ये व्रतमिदं शुभमीदृशं हि ते वै सुखेन भुवि पूर्णमनोरथाः स्युः ।। नित्यं भवन्ति सुखिनो ललनाः पुमांसः सत्पुत्रपौत्रधनधान्ययुताः पृथिव्याम् ।। ८१ ।। एवमुक्त्वा ततो व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत ।। युधिष्ठिरस्तु तत्सर्वमकरोद्राजसत्तमः ।। ८२ ।। तेन व्रतप्रभावेण स्वराज्यं प्राप्तवान्नृपः ।। हत्वा रिपून् कुरुक्षेत्रे स्वराज्यमलभन्नृपः ।। ८३ ।। इतिश्रीनारदीयपुराणे कृष्णचतुर्थीसंकष्टहरणपतिव्रतकथा समाप्ता ।।

कथा–सूतजी शौनकादिकोंसे कहते हैं, पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर जंगलमें जाकर निवास करता था, भीमसेनादि चारों भाई और द्रौपदीके साथ सुखपूर्वक बैठा हुआ था, उस समय उनसे मिलनेके लिये भगवान् वेदव्यासजी आदरसे उनके पास गये ।। १ ।। राजा युधिष्ठिर मुनिवर वेद व्यासजीका दर्शन करतेही झट सम्मुख खडे हो गये, उनके लिये अर्घ्य एवं मधुपर्कदान करके बोले ।। २ ।। कि, आज मेरा जन्म आपके पधारनेसे सफल होगया, वनवासके कारण मुझे जो कष्ट था ।। ३ ।। वह सब आपके दर्शन करनेसे ही विलीन होगया, मैं राज्यकी लालसासे विमुख अपनेको धन्य मानता हूं ।। ४ ।। पर हे प्रभो ! जबसे मैं वनका दुःख भोग रहा हूं और मेरा राज्य नष्ट हो गया है, तभीसे ये सब भीमसेनादिक बान्धव मुझे दुःखित करते हैं ।। ५ ।। ये मेरे भाई कभीभी दूसरोंको तेजके सहनेवाले नहीं हैं और न कोई इनको जीतही सकता है, क्योंकि, ये वडे पराक्रमी हैं, परमेरीआज्ञाकेवशवर्ती हैं औरयह पतिव्रता साध्वी द्रौपदीभी द्रुपदराजकी पुत्री है ।। ६ ।। अतः यह भी राज्यके सुख भोगने योग्य है, पर दुःख भोग रही है, इस लिये मैं आपसे पूछता हूं कि, मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है जिससे ऐसा हो रहा है ।। ७ ।। मेरे हिस्सेदारोंने जुएमें कपटसे मेरे राज्यको छीन लिया, हे ब्रह्मन् ! हम अपने प्यारे बान्धवोंके साथ सब कुछ हार गये ।।८।। दूतोंसे हम इस जंगलको निकलवा दिये गये और कह दिया गयाकि, आप सब जल्दीही जंगलको चले जायं ।। ९ ।। हे स्वामिन् ! जब ऐसे तिरस्कार किये गये हम वनमें चले आये और जबसे हम जंगलमें दुःख भोगने लगे हैं, तबसे आपसे पूज्य महात्माओंके दर्शनभी नहीं करपाता ।। १० ।। यदि कोई सब संकटोंको दूर करनेवाला व्रत हो तो हे ब्रह्मन् ! हे सुव्रत ! मुझे उसका उपदेश करें, मैं दुःखित हूं, मुझपर आपसे महात्माओंको दया करनी चाहिये ।। ११ ।। इस प्रकार कहते हुए धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करते हुए भगवान् वेदव्यासजीने संकष्टनाशन उत्तम व्रतका उन्हें उपदेश कर दिया ।। १२ ।। वेदव्यासजी बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारे सदृश पृथिवीपर कोई भी दूसरा धर्मनिष्ठ नहीं है, इसलिये आज मैं आपको व्रतोंमेंके उत्तम व्रतको कहता हूं ।। १३ ।। पृथिवीभरमें संकष्टनाशन नामक व्रतके समान नित्य शुभफलका देनेवाला दूसरा कोई भी व्रत नहीं है । इस व्रतके करनेसे सब काम सिद्ध होते हैं ।। १४ ।। विद्यार्थी विद्याका, धनार्थी, धनका लाभ लेता है, (प्रोषित, जिसका वल्लभ परदेशगया है) ऐसी सुन्दरी जो इस व्रतको करती है वह समस्त वाञ्छित पदार्थोंको प्राप्त करके पतिके साथ आनन्द करती है ।। १५ ।। अब इस प्रसङ्गमें एक इतिहास सुनाते हैं, मनुवंशमें एक राजा था, जब उसको दुष्ट ग्रहोंने दवालिया तव वह भी संकटमें गिर गया ।। १६ ।। वह राजा चक्रवर्त्ती था, मन्त्रिगण भी नित्यही उसको घेरे रहते थे, उसके मित्र बान्धव और पुत्र भी तैसे ही थे ।। १७ ।। और उसके अनुसार काम करनेवाली सद्गुणसम्पन्न पतिव्रता रत्नावली नाम की प्यारीभार्या थी ।। १८ ।। राजा तथा रानीका पारस्परिक गुणोंके कारण बडा भारी प्रेम था, फिर भी किसी समय दैववश शत्रुओंने उसका राज्य ले लिया ।। १९ ।। खजाना, सेना आदि सब कुछ नष्ट भ्रष्ट कर दिया, तब राजा अपने बान्धव और पतिव्रता रत्नावली रानीके साथ निकलकर चला गया ।।२०।। वनमें क्षुधा और तृषाकी पीडासे कृश हो गया, धारणकरनेके लिए वस्त्रभी एकही रह गया, इधर उधर घूमता हुआ घामसे अत्यन्त व्याकुल हो गया ।। २१ ।। हे राजन् ! युधिष्ठिर ! ऐसे पत्नीके साथ बनमें वह राजा इस प्रकार दुःख भोगने लगा, एक दिन सूर्य अस्ताचलपर चला गया उस समय शृगालोंने चारों ओर वनमें उपद्रव शुरू किया ।। २२ ।। व्याघ्र भी भयंकर

शब्द करने लगे, मेघभी बरसने लगा, कांटोंने रानीके चरण बींध दिए, जिससे यह घबराकर रोने लगी ।। २३ ।। राजा अपनी रानीको उस संकटमें पडी हुयी देखकर उसके दुःखसे और भी दुःखित हो गया, इसके बाद प्रभातकालके समय महामुनि मार्कण्डेयका ।। ३४ ।। आकस्मिक दर्शनकर चकित हो गया, शनैः शनैः उनके समीप जाकर दण्डवत् प्रणाम भूमिपर गिरकर किया ।। २५ ।। पीछे उनसे अपने दुःखका कारण पूछने लगा कि, हे स्वामिन् ! मैंने ऐसा कौनसा पापकिया है उसे कहिए ।। २६ ।। जिसके कारण मुझसे राज्य लक्ष्मी विमुख हो गयी । यह सुन मार्कण्डेयजीने कहा कि, हे–राजन् ! पूर्वजन्ममें जो तुमने दुष्कर्म किया है, उसे सुनो, मैं कहता हूं, पहिले जन्ममें आप व्याध थे, गहन वनमें गये. वहां चारों ओर मृग, शार्दूल और खरगोशोंको मारते ।। २९ ।। उसी वनमें रातको घूमते हुए माघ कृष्णा चतुर्थी के दिन हे राजन् ! कृष्णा नदीका एक सुन्दर एवम् निर्मल पानीका तालाब देखा ।। २९ ।। उसके किनारेपर लाल कपडा पहिन गणेशजीको पूजती हुई नागकन्याओंका समूह व्रतमें लगा हुआ देखा ।। ३० ।। हे विभो राजन् । आपने शनैः शनैः उनके पास जाकर उनसे पूछा कि, हे पूज्याओ ! यह तुम क्या करती हो ? सो, तुम सब वृत्तान्त यथार्थ कहो ।। ३१ ।। नागकन्याओंने कहा. कि हम गणपतिका पूजन करती हैं, उन्हींका व्रत किया है, यह व्रत सदाही सिद्धि, शान्ति और पुष्टिका देनेवाला, समस्त व्याधियोंका नाश करनेवाला है ।। ३२ ।। तुमने फिर, उन नागकन्याओंसे पूछा कि, इस व्रतमें क्या दिया जाता है, किसका पूजन होता है ! नागकन्याओंने उत्तर दिया कि, जब कभी भक्ति उपजे, तभी माघमें गणपतिजीका कृष्ण चतुर्थीके दिन लाल पुष्पोंसे पूजन करे और भक्तिभावसे इकट्ठे किए गये धूप दीप, नैवेद्य और अन्यान्य उपचारों द्वाराभी पूजन करना चाहिए ।। ३३ ।। ३४ ।। नानाविधि मूंग, चणे, तिल आदिकोंके लड्डू और घीकी पूरियोंका एवम् छः रसवाले पदार्थोंका भोग लगावे ।। ३५ ।। हे राजेन्द्र ! उन नागकन्याओंसे ग्रहण करके तुमने साङ्गोपाङ्गविधिसे भक्तिपूर्वक संकष्टनाशन व्रत करना आरम्भकर दिया, फिर उस व्रतके प्रभावसे ।। ३६ ।। तुम्हारे पुत्र, पौत्र और धन धान्यकी अमित सम्पत्ति हुई, पर कुछ समयके पश्चात् संपत्तिके मदसे तुमने सिद्धिदायक सम्पत्तियोंका देनेवाला ।। ३७ ।। वह व्रत करना भूलकर छोड दिया और जिस प्रकार करना चाहिए था उस प्रकार नहीं किया, फिर आयु बीत गयी, तुमारा मरण हो गया ।। ३८ ।। तुमने जो पहिले भक्तिभावसे व्रत किया था उसके प्रभावसे तुम्हारा राजवंश में जन्म और विशाल राज्य हुआ ।। ३९ ।। सुहृद, मित्र, पतिव्रता स्त्री और विपुल धन प्राप्त हुआ, किन्तु तुमने अन्तमें धनके मदसे उसकी अवज्ञाकी थी, इसी दोषसे यह संकट प्राप्त हुआ है ।। ४० ।। राजाने फिर प्रार्थना की कि, हे विभो ! अब मुझे क्या करना चाहिए, कोई व्रत कहिए जिसके करनेसे फिर मुझे राज्य मिल जाय ।। ४१ ।। मार्कण्डेय मुनि बोले कि, हे नृपोत्तम ! तुम अब उसी व्रतको करनेका जल्दीही संकल्पकरो, आप सन्देह न करें आप फिर अपने उस राज्यको प्राप्त हो जायंगे ।। ४२ ।। मार्कण्डेय मुनि इतना कहकर अन्तर्हित हो गए, उस राजाने इनकी अनुमतिके अनुसार व्रत करनेका संकल्प किया ।। ४३ ।। मुनिजीने जो विधि बतायी थी उसी विधिसेउस सारे पवित्र व्रतको पूरा किया, जिसके करनेसे बिछुडे हुए सभी मन्त्री, बान्धव, किंकर और सैनिक फिर आ गये ।। ४४ ।। उनको साथ लेकर वो भी उसी समय वापिस आया और गणेशजीकी प्रसन्नतासे अपना राज्य फिर ले लिया ।। ४५ ।। राजा पुत्र पौत्रोंके सुखके साथ राज्य संपत्तिको भोगने लगा । इससे हे राजेंद्र ! यह संकष्टनाशन आपको भी करना चाहिए ।। ४६ ।। पुरुषोंको भी इसे करना चाहिए स्त्रियोंको विशेष रूप से सिद्धि देनेवाला है ।। यह सुन युधिष्ठिर महाराज बोले कि, आप कृपया इस संकष्टनाशन व्रतको यथार्थ रूपसे वर्णन करें ।। ४७ ।। वेद व्यासजी बोले कि, जब मनुष्य बहुतसे दारुण संकटोंसे दुःखी हो तभी वदि चतुर्थीके दिन गणपति पूजन करना चाहिए ।। ४८ ।। हे राजन् युधिष्ठिर ! श्रावण कृष्णाचतुर्थी के दिन चन्द्रमाके उदय होनेपर उसमें इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये ।। ४९ ।। अथवा हे नरपतियोंमें श्रेष्ठ ! माघ कृष्णपक्षको चन्द्रमाके उदयमें चौथ हो तो उस दिन इस व्रतको ग्रहण करना चाहिए ।। ५० ।। प्रातःकाल दांतुनकरके पवित्र होजाय, फिर हे देवेश ! जबतक चन्द्रोदय न होगा तबतक मैं निराहार रहूंगा ।। ५१ ।। मैं गणेशकी शरण हूं पीछे पूजन करके भोजन करूंगा; इस प्रकार संकल्प और सफेद तिलोंसे स्नान करके ।। ५२ ।। हे सुव्रत ! नित्यकर्मसे निवृत्त हो

पीछे पूजा करना, जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार सोने की मूर्ति बनवाकर ।। ५३ ।। उसे शक्तिके अनुसार सोने चांदी या तांबे मिट्टीके फल पुष्पोंसे भरे हुए कुंभपर वैध स्थापित करनी चाहिए ।। ५४ ।। कुंभकोपवित्रस्थल वस्त्रसे ढककर रखना चाहिये अष्टदल कमलको बनाकर उसपर धरना चाहिये ।। ५५ ।। वहां गन्धादिकोंसे पूजन करना चाहिये ।। ७५ ।। रक्त पुष्प और धूपसे इन जुदे जुदे नामोंसे पूजे, गणेशजीके लिये नमस्कार इससे आवाहन तथा विघ्नोंके नाश करनेवालेके लिये नमस्कार इससे आसन निवेदन करना चाहिये ।। ५६ ।। लम्बोदरके लिये नमस्कार पाद्य समर्पित करता हूं, अर्धचन्द्रधारीको नमस्कार अर्घ समर्पित करता हूं, सबके प्यारे अथवा सबही जिसे प्यारे हैं उसके लिये नमस्कार आचमन समर्पित करता हूं, ब्रह्मचारीके लिये नमस्कार स्नान कराता हूं, ।। ५७ ।। टेढे तुण्डवालेके लिये नमस्कार उपवीत निवेदन करता हूं, सब कुछ देनेवालेके लिये नमस्कार वस्त्र पहिनाता हूं, रुद्रके पुत्रके लिये नमस्कार चन्दन लगाता हूं, गुणशालीके लिये नमस्कार पुष्प समर्पण करता हूं ।। ५८ ।। तथा भवानीके प्रिय करनेवालेके लिये धूप भी विधिके साथ देनी चाहिये कि उसके लिये नमस्कार धूप सुंघाता हूं । रुद्रके प्यारेके लिये नमस्कार दीपक दिखाता हूं, विघ्ननाशीको नमस्कार नैवेद्यका निवेदन करता हूं ।।५९।। सिद्धि देनेवालेके लिये नमस्कार पान समर्पित करता हूं, संकटनाशीके लिये नमस्कार फल समर्पण करता हूं, इन नाममंत्रोंसे पूजा करनी चाहिये, महीनोंके नियमोंको सुन ।। ६० ।। श्रावणमें सात लड्डू, भादोंमें दधि भोजन, क्वारमें उपवास, कार्तिकमें दूध पान ।।६१।। मार्गशीर्षमें निराहार, पौषमें गोमूत्र पान, माघमें तिल और फाल्गुनमें घी और सक्करका भोजन ।। ६२ ।। चैत्रमें पंचगव्य, वैसाखमें दूब रस, ज्येष्ठमें पलभर घृत और आषाढ़में मधु भोजन करना चाहिये ।।६३।। इस प्रकार मासोंके नियमोंको करके मनुष्य संकटसे छूट जाता है । यदि ऐसा करनेमें अशक्त हो तो सात ग्रास खाकर सुखपूर्वक रह जाय ।। ६४ ।। यदि मासोंके यम करनेमें अशक्त हो तो, उसे अवश्य सिद्धि होगी इसम सन्देह नहीं इसी तरह सोलहों उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये ।। ६५ ।। नाना विध भक्ष्य भोज्य गणपति देवके भेंटकरे, हे राजन् ! दश तिलोंके लड्डू बनावे ।।५६।। उनमेंसे पांच गणेशजीके आगे रखदे, पांच लड्डू ब्राह्मणको दे दे । जब ब्राह्मणको लड्डू दे तब देनेके पहिले देवताकी तरह उस आचार्यकी भक्तिसे पूजा करे, शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे पर लड्डू पांचही होने चाहियें ।। ६७ ।। गणेशजीकी प्रार्थनाइस प्रकार करनी चाहिये कि, हे सुमुख! (जिनके मुख दर्शनसे मङ्गलहो ऐसे) मैं सदैव सांसारिक दुःखोंसे दुःखित रहता हूं आप मुझपर प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करें । मेरे संकटसंघोंको नष्ट करिये संकटोंके विनाशक आपके लिये बारबार प्रणाम है ।। ६८ ।। इस प्रकार गणेशजीकी प्रार्थना करके चन्द्रमाको अर्घ्यदान करे, फिर गणेशजीकी शाश्वतिक प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंको भोजन करावें ।। ६९ ।। पीछे बान्धवोंके साथ आपभी पांचही लड्डुओंको खाकर रह जाय, यदि पांच लड्डुओंसे निर्वाह करनेकी शक्ति न हो तो दधि और एक किसी अन्नके पदार्थका भोजन करले ।।७०।। अथवा हे पाण्डुनन्दन ! व्रतके दिन एकबार भोजन करके ही रहना चाहिये, पृथ्वीपर शयन करे, क्रोधको आने न दे एवम् लोभ और दम्भको पासभी न आने दे, उपस्करके साथ गणपतिकी प्रतिमाको आचार्यके लिये दे दे ।। ७१ ।। प्रतिमादानसे पहिले प्रतिमामें आवाहित देवताकी कलाका विसर्जन करे और कहे कि, हे सुर श्रेष्ठ ! हे परमेश्वर ! आप अपने धामको पधारें और इस व्रतानुष्ठानसे प्रसन्न होकर यथोक्त फलप्रद हों ।। ७२ ।। माघ वदि चतुर्थीके दिन उद्यापन करना चाहिये । उसके लिये गणपतिके भक्त सदाचारी एवं समस्त शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ ।। ७३ ।। ब्राह्मणका विधिपूर्वक आचार्य रूपसे वरण करके पूजन करना चाहिये । इक्कीस ब्राह्मणोंको वस्त्र, अलंकार और आभूषण ।। ७४ ।। गौ, सुवर्णादिसे पूजकर मोदकोंका भोजन कराना चाहिये । एवम् हवन करना चाहिये उसमें एक सहस्र आठ, या एकसो आठ ।। ७५ ।। या अठ्ठाइस और इतनी भी शक्ति न हो तो आठही आहुतियां वैदिक मन्त्रोंसे तिल घृतके द्वारा देनी चाहिये फिर सुवर्णकी दक्षिणा और गौ, पृथिवी, वस्त्रादि एवं भूषण देकर सपत्नीक आचार्यका पूजन करना चाहिये ।। ७६ ।। छत्ता, जूती, जोडा, लोटा और मकान आदिभी आचार्यको दे, जिससे गणपतिजी प्रसन्न हो जायें, जो व्रत तथा उद्यापन विधिपूर्वक करता है उसके ऊपर गणेशजी प्रसन्न हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है । जो तीन वर्षतक या एक वर्ष प्रतिमास करता है ।। ७५ ।। अथवा जीवनपर्यन्त इस व्रतको करता है उसके दुःख दरिद्रता और संकट कभीभी नहीं

होते ।। ७९ ।। सँवत्सर बीतनेपर द्वादश ब्राह्मणोंको भोजन करावे, विद्यार्थीको विद्या, धनार्थीको धन, पुत्रार्थीको पुत्र और सुवासिनी (स्त्री) को सौभाग्य प्राप्त होता है ।। ८० ।। और जो इस व्रतकी कथाका श्रवण करते हैं उनके मनोरथ अनायास पूर्ण होते हैं और वे पुरुष पृथिवीपर सुखी और सत्पुत्र, पौत्र, धन एवं धान्यसे सम्पन्न होते हैं ।। ८१ ।। भगवान् वेदव्यासजी राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर वहां ही अन्तर्धान होगये । नृपतिवर राजा युधिष्ठिरने यथोक्त विधिसे उस व्रतको किया ।। ८२ ।। राजा युधिष्ठिर उस व्रतके प्रभावसे अपने शत्रुओंको कुरुक्षेत्रमें मारकर राज्यको प्राप्त हो गये ।। ८३ ।। यह श्रीनारदीयपुराणमें कही हुई कृष्णपक्षकी चतुर्थीके दिनकी संकट हरण गणपतिके व्रतकी कथा समाप्त हुई ।।

अङ्गारकचतुर्थीव्रतम्

अथ गणेशपुराणेऽङ्गारकचतुर्थीव्रतकथा ।। कृतवीर्यपितोवाच ।। अङ्गारकचतुर्थ्यां च विशेषोऽभिहितः कुतः ।। वद त्वं कृपया ब्रह्मन् प्रश्रयावनताय मे ।। १ ।। शृण्वतो न च मे तृप्तिर्गजाननकथां शुभाम् ।। ब्रह्मोवाच ।। अङ्गारकचतुर्थ्यास्तु महिमानं महीपते ।। २ ।। शृणुष्वावहितो भूत्वा कथयामि तवाग्रतः[1] ।। अवन्तीनगरे राजन् भारद्वाजो महामुनिः ।। ३ ।। वेदवेदाङ्गवित्प्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।। अग्निहोत्ररतो नित्यं शिष्याध्यापनतत्परः ।। ४ ।। नदीतीरे गतस्तिष्ठन्ननुष्ठानरतो मुनिः ।। अकस्मात्कामिनीं दृष्ट्वा कामासक्तोऽभवन्मुनिः ।। ५ ।। कामबाणाभिभूतः सन्निपपात महीतले ।। अतिविह्वलगात्रस्य तस्य रेतस्तदास्खलत् ।। ६ ।। प्रविष्टं तस्य तद्रेतः पृथिवीबिलमध्यतः ।। तत एकः कुमारोऽभूज्जपाकुसुमसन्निभः ।। ७ ।। तं धरित्री स्नेहवशात्पालयामास सादरम् ।। जनुः स्वं तेन धन्यं सा मनुते पितरौ कुलम् ।। ८ ।। ततः स सप्तवर्षस्तां पप्रच्छ जननीं निजाम् ।। मयि लोहितिमा कस्मान्मानुषं देहमास्थिते ।। ९ ।। कश्च मे जनको मातस्तन्ममाचक्ष्व सांप्रतम् ।। धरोवाच ।। भारद्वाजमुने रेतःस्खलितं मयि सङ्गतम् ।। १७ ।। ततो जातोऽसि रे पुत्र वर्धितोऽसि मया शुभम् ।। सूत उवाच ।। तर्हि तं मे मुनिं मातर्दर्शयस्व तपोनिधिम् ।। ११ ।। ब्रह्मोवाच ।। तमादाय तदा देवी भारद्वाजं जगाम कुः ।। उवाच प्रणिपत्यैनं त्वद्वीर्यप्रभवं सुतम् ।। १२ ।। वर्धितं तं पुरोधार्य स्वीकुरुष्व मुनेऽधुना ।। तदाज्ञया ययौ धात्री स्वधाम रुचिरं तदा ।। १३ ।। भारद्वाजः सुतं लब्ध्वा मुमुदे चालिलिङ्ग तम् ।। आघ्राय शिर उत्सङ्गे स्थापयामास तं मुदा ।। १४ ।। सुमुहूर्ते शुभे लग्ने चकारोपनयं मुनिः ।। वेदशास्त्राण्युपाशिक्ष्य गणेशस्य मनुं शुभम् ।। १५ ।। उवाच कुर्वनुष्ठानं गणेशप्रीतये चिरम् ।। सन्तुष्टो दास्यते कामान् सर्वांस्तव मनोगतान् ।। १६ ।। ततो मन्दाकिनीतीरे[2] पद्मासनगतो मुनिः ।। संनियम्येन्द्रियाण्याशु ध्यायन् हेरम्बमन्तरे ।। १७ ।। जजाप परमं मन्त्रं वायुभक्षो भृशं कृशः ।। एवं वर्षसहस्रं स तपस्तेपे सुदारुणम् ।। १८ ।। माघकृष्णचतुर्थ्यां तमुदये शशिनः[3] शुभे ।। दर्शयामास स्वं रूपं गणनाथोऽथ दिग्भु-

१ समासतः २ ततः स नर्मदा इत्यपि पाठः ३ शशिनोमले इत्यपि पाठः

जम् ।। १९ ।। दिव्याम्बरं भालचन्द्रं नानायुधलसत्करम् ।। चारुशुण्डं लसद्दन्तं शूर्पकर्णं सकुण्डलम् ।। २० ।। सूर्यकोटिप्रतीकाशं नानालंकारमण्डितम् ।। ददर्श रूपं देवस्य स बालः पुरतः स्थितम् ।। २१ ।। उत्थाय प्रणिपत्यैनं तुष्टाव जगदीश्वरम् ।। नमस्ते विघ्ननाशाय नमस्ते विघ्नकारिणे ।।२२ ।। सुरासुराणामीशाय सर्वशक्त्युपबृंहिणे।।निरामयाय नित्याय निर्गुणाय गुणच्छिदे ।।२३।। नमो ब्रह्मविदां श्रेष्ठ स्थितिसंहारकारिणे ।। नमस्ते जगदाधार नमस्त्रैलोक्यपालक ।। २४ ।। ब्रह्मादयेब्रह्म विदे ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।।लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपाय दुर्लक्षणच्छिदे नमः ।।२५।। नमः श्रीगणनाथाय परेशाय नमो नमः ।। इति स्तुतः प्रसन्नात्मा परमात्मा गजाननः ।। २६ ।। उवाच श्लक्ष्णया वाचा बालकं संप्रहर्षयन् ।। गाजानन उवाच ।। तवोग्रतपसा तुष्टो भक्त्या स्तुत्यानयापि च ।। २७ ।। बालभावेऽपि धैर्यात्ते ददामि वाञ्छितान्वराम् ।। एवमुक्तो भूमिपुत्रो वच ऊचे गजाननम् ।। २८ ।।भौम उवाच।। धन्या दृष्टिर्जननमपि मे दर्शनात्ते सुरेश धन्यं ज्ञानं कुलमपि तथा भूः सशैलाद्य धन्या ।। धन्यं चैतत्सकलमपि तपो येन दृष्टोऽसि चक्षुर्धन्या वाणी वसतिरपि या संस्तुतो मूढभावात् ।। २९ ।। यदि तुष्टोऽसि देवेश स्वर्गे भवतु मे स्थितिः ।। अमृतं पातुमिच्छामि देवैः सह गजानन ।। ३० ।। कल्याणकारि मे नाम ख्यातिमेतु जगत्त्रये ।। दर्शनं मे चतुर्थ्यां ते ज़ातं पुण्यप्रदं विभो ।।३१।। अतः सा पुण्यदा नित्यं सर्वसंकष्टहारिणी ।। कामदा व्रतकर्तॄणांत्वत्प्रसादात्सुरेश्वर[1] ।। ३२ ।। गजानन उवाच ।। अमृतं प्राप्स्यसे सम्यग्देवैः सह धरासुत।। मङ्गलेति च नाम्ना त्वं लोके ख्यातिं गमिष्यसि ।। ३३ ।। अङ्गारकेति रक्तत्वाद्वसुमत्या यतः सुतः ।। अङ्गारकचतुर्थीं ये करिष्यन्ति नरा भुवि ।। ३४ ।। तेषामब्दभवं पुण्यं संकष्टीव्रतसम्भवम् निर्विघ्नता सर्वकार्ये भविष्यति न संशयः ।। ३५ ।। अवन्तीनगरे राजा भविष्यसि परन्तपः ।। व्रतानामुत्तमं यस्मात् कृतं ते व्रतमुत्तमम् ।। ३६ ।। यस्य संकीर्तनान्मर्त्यः सर्वकामानवाप्नुयात् ।। ब्रह्मोवाच ।। इति दत्त्वा वरान्देवोऽन्तर्दधे द्विरदाननः ।। ३७ ।। ततस्तु मङ्गलो देवं स्थापयित्वा प्रयत्नतः ।। शुण्डामुखं दशभुजं सर्वावयवसुन्दरम् ।। ३८ ।। प्रासादं कारयामास गजाननमुदावहम् ।।संज्ञां मङ्गलमूर्तीति देवदेवस्य सोऽकरोत् ।। ३९ ।। ततोऽभवत्कामदातृ क्षेत्रं सर्वजनस्य तत् ।। अनुष्ठानात् पूजनाच्च दर्शनात्सर्वमोक्षदम् ।। ४० ।। ततो विनायको देवो विमानवरमुत्तमम् ।। प्रेषयामास स्वगणान्भौममानेतुमन्तिके ।। ४१ ।। ते गत्वा तेन देहेन (तं) भौममानयन् बलात् ।। गणेशस्यान्तिकं राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।। ४२ ।। ततो भौभोऽभवत्ख्यातस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।। यतो भौमेन संकष्ट-

१ सदाऽस्तुचेत्यापि पाठः

चतुर्थी भौमसंयुताम् ।। ४३ ।। कृत्वा प्राप्तं यथा स्वर्गे सुधापानं सुरैः सह ।। अतश्चाङ्गारकयुता चतुर्थी प्रथिता भुवि ।। ४४ ।। चिन्तितार्थप्रदानेन चिन्तामणिरिति प्रथाम् ।। प्रयातो मङ्गलमूर्तिः सर्वानुग्रहकारकः ।। ४५ ।। पारिनेरात्तु नगरात्पश्चिमे प्रथितोऽभवत् ।। चिन्तामणिरिति ख्यातः सर्वविघ्ननिवारणः ।। ४६ ।। अतः स सिद्धगन्धर्वैः पूज्यते स विधूदये ।। ददाति वाञ्छितानर्थान् पुत्रपौत्रादिसंपदः ।। ४७ ।। इति श्रीगणेशपुराणे ब्रह्मकृतवीर्यपितृसंवादे अङ्गारकचतुर्थीव्रतकथा सम्पूर्णा ।। इति चतुर्थीव्रतानि ।।

अङ्गारकचतुर्थीके व्रतकी कथा गणेशपुराणमें निरूपणकरी है कि, कृतवीर्य राजाकेपिताने ब्रह्माजीसे पूछा कि, हे ब्रह्मन् ! और चतुर्थीके व्रतोंकी अपेक्षा मंगलवारी चतुर्थीके दिन व्रत करनेका माहात्म्य अधिक क्यों कहा है, उसे आप अत्यन्त प्रणत मुझको कृपा करके कहो ।। १ ।। गणेशजीकी पवित्र कथाओंके सुननेसे मेरा चित्त तृप्त नहीं होता । यह सुन ब्रह्माजीने उत्तर दिया कि, हे महीपते ! अंगारकचतुर्थीकी महिमाको ।। २ ।। तुम समाहित चित्त होकर सुनो में तुमारे सम्मुख कहता हूं । उज्जयिनी नगरीमें महामुनि भारद्वाज रहते थे ।। ३ ।। वे वेद और वेदाङ्गोंके परिज्ञाता, मीमांसाऽऽदि समस्त शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता, नित्य अग्निहोत्र करनेवाले और शिष्योंको वेद पढानेमें परायण थे ।। ४ ।। वह मुनि किसी समय नदीके किनारे बैठा हुआ अपना नैत्यिक एवं नैमित्तिक अनुष्ठान कर रहाथा, वहांपर अकस्मात् आयी हुई एक सुन्दरीको देखकर कामासक्त हो गया ।। ५ ।। फिर कामदेवके बाणोंसे पीडित होकर धरतीपर गिर पडे और जब वे अत्यन्त मूढ होगये तब उन महात्माजीका वीर्य भी स्खलित होगया ।। ६ ।। उनका वह वीर्य धरणीके बिलमें चला गया, उससे एक कुमार उत्पन्न हुआ, उसकी आकृति जपापुष्पके समान लाल थी ।। ७ ।। पृथिवीने बडे ही स्नेहसे उसकी पालना की और उस बालकके उत्पन्न होनेसे उसने अपने जन्म और मातापिता और कुलको धन्यमाना ।। ८ ।। जब वह बालक सात वर्षका हो गया, तब उसने अपनी मातासे पूछा कि मैं भी जब और मनुष्योंके समान मनुष्य हूं, तब मेरा शरीर ही ऐसा लाल क्यों हो गया ।। ९ ।। हे मातः ! मेरे पिताका क्या नाम है, यह सब मुझसे कहो पृथिवीने उत्तर दिया कि, भारद्वार मुनिका वीर्य गिरकर मेरेमें रुक गया ।। १० ।। उसीसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, हे पुत्र मैंने तुम्हारी अच्छी तरह पालना की, जिससे तुम इतने बडे हो गये । सूतजी कहते हैं कि, यह सुन पुत्र बोला कि, यदि ऐसे ही मेरा जन्म हुआ है तो हे मातः ! मुझको उन महात्माके दर्शन करा दे ।। ११ ।। ब्रह्माजी बोले कि, फिर पृथिवीदेवी उस बालकको साथ लेकर महामुनि भारद्वाजके आश्रममें गयी और उनको प्रणाम करके बोली कि, यह आपके वीर्यसे उत्पन्न हुआ आपका पुत्र है ।। १२ ।। मैंने इतने समयतक इसकी पालना की, अब आपके समीप लायी हूं, आप इसको अङ्गीकार करो । महामुनिकी आज्ञा लेकर पृथिवी अपने स्थानको चली गयी ।। १३ ।। भारद्वाज मुनि उस बालकके मिलनेसे बहुत प्रसन्न हुए उस बालकका घ्राण एवम् आलिगन करके आनन्दसे गोदमें बिठा लिया ।। १४ ।। फिर शुभ मुहूर्त एवं शुभ लग्नमें उन्होंने उसका उपनयन संस्कार कराकर उसे वेदशास्त्र पढाये और गणपतिका मंत्र जप करनेकी आज्ञा दी ।। १५ ।। कि हे तात ! तुम गणेशजीके इस मंत्रका जप करो, जिससे गणपतिजी प्रसन्न होकर तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण करेंगे ।। १६ ।। महामुनि भारद्वाजजीकी ऐसी आज्ञा होतेही वह बालक मुनिव्रत धारण कर गंगाजीके (पाठान्तर के अनुसार नर्मदाके) तटपर अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर हृदयमें गणपतिका ध्यान करता हुआ ।। १७ ।। परम गुह्य मंत्रको जपता हुआ एक सहस्र वर्ष पर्य्यन्त केवल वायु भक्षण करनेके कारण दुबला होकर भी घोर तपश्चर्यामें तत्पर रहा ।। १८ ।। फिर माघ वदि चतुर्थीमें चन्द्रमाके निर्मल उदय होतेही गणेशजीने अपने अष्टभुजी स्वरूपके उसे दर्शन दिये ।। १९ ।। फिर उस भारद्वाजमुनिके पुत्र-दिव्य वस्त्रधारी, भालचन्द्र, नानाविध शस्त्रोंसे विभूषित हस्तवाले, सुन्दर शुण्डसे शोभायमान, सुन्दर दन्त एवम्

शूर्पसदृश सुन्दर कुण्डल मण्डित कानवाले ।। २० ।। कोटि सूर्योंके समान दीप्यमान, नानाऽलंकरोंसे मण्डित गणेशजीके उस स्वरूपको देखकर ।। २१ ।। खडे हुये और उन जगदीश्वर गणपतिदेवकी स्तुति करने लगे कि, हे प्रभो ! आप विघ्नों का नाश करनेवाले हो आपके लिये नमस्कार है, आपही विघ्नोंके करनेवाले हो आपके लिये नमस्कार है ।। २२ ।। देवता एवं दैत्योंके अधिपति, समस्तशक्तियोंसे सम्पन्न, निरामग्न, नित्य, निर्गुण और संसार बंधनके हेतुभूत गुणोंके छेदनकारी आप हं आपके लिये प्रणाम है ।। २३ ।। हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! आप सबका पालन और संहार करनेवाले हैं आपके लिये प्रणाम है, हे जगदाधार आपके लिये प्रणाम है । हे त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले आपके लिये नमस्कार है ।। २४ ।। ब्रह्माके भी पूर्ववर्त्ती, ब्रह्म (वेद) के वेत्ता, ब्रह्म और ब्रह्मस्वरूप आपके लिये नमस्कार है और जिनका स्वरूप लक्ष्य होते हुए भी पारमार्थिक रूपसे अलक्ष्य हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार, कुलक्षणोंके दोषको मिटानेवाले आपके लिये नमस्कारहै ।। २५ ।। श्रीगणेशजीके लिये प्रणाम है, परम ईश्वरके लिये बारबार प्रणाम है। इस प्रकार स्तुति करनेसे परमात्मा गणपतिदेव प्रसन्न होकर ।। २६ ।। स्निग्धवाणीसेउस बालकको प्रसन्न करते हुए बोले कि, तुम्हारी उग्रत-पश्चर्या, परमभक्ति तथा इस स्तुतिसे मैं परम सन्तुष्ट हूं ।। २७ । तुमने बालक होकर भी इतना धैर्य रखा इससे मैं तुम्हें वांछित वरदान करता हूं । ऐसे जब गणपति वरदान करने उद्यत हुए, तब भूमिनन्दन गणेशजीसे बोला ।। २८ ।। कि, हे देवाधिराज ! आज आपके दर्शन करनेसे मेरे नेत्र और जन्म कृतार्थ हैं ज्ञान, मेरे कुल, एवं पर्वतमालिनी पृथिवी भी कृतार्थ है मेरा यह सब तप भी सफल है, जिन नेत्रोंसे मैंने दर्शन किये और जिस वाणीसे मैंने स्तुति की वे नेत्र और वह वाणीभी आजधन्य है मेरी यह वासभूमिभी धन्य है, जहांपर मैंने मूढ होकर भी आपकी स्तुति की ।। २९ ।। हे देवेश यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं तो हे गजानन ! मेरा निवास स्वर्गमें हो मैं देवताओंके साथ अमृतपान करना चाहता हूं ।। ३० ।। मेरा नाम तीनों भुवनोंमें कल्याण करने-वाला, यानी मंगल विख्यात हो । हे प्रभो ! मैंने आपके पुण्यप्रद दर्शनआज (माघ वदि) चतुर्थीके दिन किये हैं ।। ३१ ।। इससे यह चतुर्थी नित्य पुण्य देनेवाली एवम् संकटहारिणी हो इस दिन आपका जो कोई व्रत करे, हे सुरेश्वर ! उसकी समस्त कामना आपकी कृपासे पूर्ण हो ।। ३२ ।। गणेशजी बोले कि, हे भूमिनन्दन ! तुम अनायास देवताओंके साथ अमृत पान करोगे, तुम्हारा मङ्गल नाम सब जगत्में विख्यात होगा ।। ३३ ।। पृथिवीके तुम पुत्र हो तुम्हारा रंग लाल है इससे "अङ्गारक" यह नामभी तुम्हारा होगा और यह अङ्गारक चतुर्थी नामसे विख्यात होगी, भूपर जो नर इस दिन मेरा व्रत करेंगे ।। ३४ ।। उनको एक वर्ष पर्यन्त चतुर्थी-व्रतके करनेका फल मिलेगा, उनके सभी कार्यों में निर्विघ्नता होगी, इसमें सन्देह नहीं है ।। ३५ ।। अवन्ती नगरमें तुम परन्तपनामके राजा होगे क्योंकि तुमने व्रतोंमेंके उत्तम इस व्रतको किया है ।। ३६ ।। यह व्रत ऐसा है कि जिसके कीर्तन करनेसे मनुष्यके सब काम पूर्ण होते हैं । ब्रह्माजी बोले कि, इस प्रकार गजानन देव वर देकर अन्तर्हित हो गये ।। ३७ ।। धरानन्दन मङ्गलने शुण्डादण्डवाले दशभुज, सर्वांग सुन्दर गणपति देवका यत्नपूर्वक स्थापन करके ।। ३८ ।। एक आनन्द वर्धक मन्दिर बनवाया उस मूर्तिका नाम "मंगलमूर्ति" रख दिया ।। ३९ ।। वह समस्त अवन्तिदेश (उज्जयिनी राज्यभर) सभीकी कामना पूर्ण करनेवाला और अनु-ष्ठान, पूजन और दर्शन करनेसे सबके लिये मोक्षप्रद होगया ।। ४० ।। फिर विघ्ननायक देवने सुन्दर विमानपर चढकर धरासुतको अपने पास बुलानेके लिये अपने गणोंको उनके समीप भेजा ।। ४१ ।। वे उसी मनुष्य शरीरसे भूमिनन्दनको जबरदस्ती गणेशजीके समीप ले आये, हे राजन् ! मनुष्यशरीरसे स्वर्ग प्राप्त करना अभूतपूर्व चरित हुआ ।। ४२ ।। इससे भूमिपुत्र, चर अचर सहित तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगया, भौमने भौम वारी संकट चतुर्थी।। ४३ ।। करके जैसे देवोंके साथ अमृत पिया, उसीसे यह अंगारक चतुर्थीके नामसे भूपर प्रसिद्ध हुई ।। ४४ ।। एवम् चिन्तित अर्थको देनेके कारण इसका चिन्तामणि भी नाम हुआ, सबपर कृपा करनेवाले मंगल मूर्ति गणेश जाकर ।। ४५ ।। परिनेरलगरसे पश्चिममें प्रसिद्ध हुए, यह चिन्तामणि करके प्रसिद्ध है सभी विघ्नोंके नष्ट करनेवाली है ।। ४६ ।। इसी कारण सिद्ध गन्धर्वादि सब चन्द्रमाके उदयमें इसका पूजन करते हैं । यह मनोकामनाओंको पूरा करती है तथा पुत्र पौत्रादि समृद्धियोंको देती है ।। ४७ ।। यह श्रीगणेशपुराणकी कही हुई अंगारक चतुर्थीके व्रतकी कथा पूरी हुई । यहांही चतुर्थीके व्रतभी पूरे होजाते हैं ।।

अथ पञ्चमीव्रतानि

हरिपूजनम् ।।

अथ चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः ।। तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये–ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता ।। वैशाखस्य तृतीयायाः कृष्णायाः फाल्गुनस्य च ।। पञ्चमी चैत्रमासस्य तस्यै–वान्या तथा परा ।। तस्यैव चैत्रस्यैव । परा कल्पादिरित्यर्थः ।। शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ।। नवमीमार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम् ।। कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः ।। अस्यां दोलोत्सवः कार्यः ।। तदुक्तम्–चैत्रे मासि सिते पक्षे पञ्चम्यां पूजयेद्धरिम् ।। तत्र दोलोत्सवं कुर्यात्पुष्पधूपैश्च पूजयेत् ।। नारी नरो वा राजेन्द्र सन्तर्प्य पितृदेवताः ।। स्रक्चन्दनसमायुक्तान् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।। इति हेमाद्रौ भविष्ये ।। अथ श्रावणशुक्लपञ्चमी, नागपूजायां परा–पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका ।। अत्रैव प्रभासखण्डोक्तं सर्पविषापहं पंच[1]मीव्रतम् ।। ईश्वर उवाच ।। श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे वरानने ।। द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्वणाः । घृतोदकाभ्यां पयसा स्नापयित्वा वरानने । गोधूमैः पयसा चैव लाजैश्च विविधैस्तथा ।। पूजयेद्विधिवद्देवि दधिदूर्वाङ्कुरैः क्रमात् ।। गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणम् ।। अथवा श्रावणे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः ।। यश्चालेख्य नरो नागान् कृष्णवर्णादिवर्णकैः । गुरुकल्पांस्तथा वीथ्यां स्वगृहे वा पटे बुधः ।।पूजयेग्दन्धधूपैश्च पयसा पायसेन च ।। तस्य तुष्टिं समायान्ति पद्मकास्तक्षकादयः ।। आसप्तमात्कुले तस्य न भयं नागतो भवेत् ।। दिवारात्रौ नरैः कार्यं मेदिनीखननं नहि ।। मन्त्रोऽयमुच्यते सर्पविषस्य प्रतिषेधकः ।। तस्य प्रजपमात्रेण न विषं क्रमते सदा ।। ॐ कुकुलं हुं फट्स्वाहा ।। इत्येवं कथितं देवि नागव्रतमनुत्तमम् ।। यच्छ्रुत्वा च पठित्वा च मुच्यते सर्वपातकैः ।।

पञ्चमी व्रतानि ।।

अब पंचमी व्रतोंको कहते हैं–उनमें चैत्र शुक्ला पंचमी कल्पके आदिकी तिथि कही गई है, यह हेमाद्रि ग्रन्थमें मत्स्य पुराणसे कहा है कि, ब्रह्माके दिनके आदिकी जो तिथि हैं उसे कल्पादि तिथि कहते हैं, ये सात हैं, १–वैशाख शुक्ला तृतीया, २–फाल्गुन कृष्णा तृतीया, ३–चैत्र शुक्ला पंचमी, ४–चैत्र कृष्णा पंचमी, ५–माघशुक्ला त्रयोदशी, ६–कार्तिक शुक्लासप्तमी, ७–मार्गशीष शुक्ला नवमी। श्लोकमें जो "तस्यैव" पद आया है इसका ग्रन्थकार अर्थ करते हैं कि, उस चैत्रकी परा दूसरी पंचमी भी कल्पादि है यानी चैत्रकी दोनों ही पंचमी कल्पादि हैं। जैसा कि, हम पहिले ही गिनाचुके हैं, इन सातों तिथियोंमे जो दान दिया जाता है उसका

१ इदमेव नागपंचमीत्वेन व्यवहृत्य लोकाः कुर्वंतीति प्रतिभाति

अक्षय फल होता है । इसमें भगवान्के डोलेका उत्सव करना चाहिये, यह हेमाद्रिमें भविष्य पुराणको लेकर कहा है कि, चैत्र शुक्ला पंचमीको भगवान्का पूजन करना चाहिये फिर डोलेका उत्सव करना चाहिये फूल और धूपसे भगवान्का पूजन करना चाहिये, हे राजेन्द्र ! स्त्री हो अथवा पुरुष हो पितृगण और देवताओंका तर्पण करके माला पहिने और चन्दन लगाये हुए ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ।। इसीमें प्रभास खण्डका कहा हुआ सर्पोंके विषको नाश करनेवाला पंचमीका व्रत होता है । शिवजी कहते हैं कि, हे वरानने ! श्रावण मासकी शुक्ला पंचमीके दिन द्वारके दोनों ओर गोमयसे ऐसे सर्प काढने चाहिये जिनसे विष परिस्फुट दीखें, हे वरानने ! घृत, उदक और दूधसे स्नान कराकर गो धूप पय और लाजोंसे तथा अन्य वस्तुओंसे हे देवि ! दधि और दूब अंकुरोंसे क्रमसे विधिवत् पूजन करना, हे देवि ! फिर गन्ध पुष्प और उपहारसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे । अथवा श्रावणसुदि पंचमीके दिन जो बुद्धिमान् मनुष्य श्रद्धासे काले नीले आदि विचित्र रंगवाले स्थूल और लम्बी आकृतिवाले सर्पोंको, घरके किसी एक देशमें या अपने यशनादिक जो मुख्य घर हो उसमें अथवा वस्त्रपर लिखे गन्ध, पुष्प, धूप, दूध और पायससे पूजित करे, उसके ऊपर पद्मक तक्षक आदि सब प्रसन्न होते हैं यानी उस दिन उक्तविधिसे नागपूजन करनेवाला पद्मक तक्षक वासुकि प्रभृति नागोंका आशीर्वाद या उनकी कृपाका पात्र बनजाताहै । सात पीढी तक उसे सर्पका भय नहीं होता श्रावणसुदी पंचमीके दिन सूर्यके रहते और सूर्यके अस्तमें भूमिमें गड्ढा न करें। और "ओं कुकुलं हुं फट् स्वाहा" यह मन्त्र सर्पोंकी विष बाधाको शान्त करनेवाला है, इसलिये इसमन्त्रका आराधन करनेवाला सर्पोंकी विषबाधासे पीडित नहीं होता ।

नागपञ्चमी ।।

अथ भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यां नागपञ्चमीव्रतं हेमाद्रौ प्रभासखण्डे ।। ईश्वर उवाच ।। मासि भाद्रपदे वापि शुक्लपक्षे तु पञ्चमी ।। सा तु पुण्यतमा प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ।। कुर्याद्द्वादशवर्षैस्तु पञ्चम्यां च वरानने ।। चतुर्थ्यामेकभुक्तं तु तस्य नक्तं प्रकीर्तितम् ।। भूरि चन्द्रमयं नाग मथवा कलधौतजम् ।। कृत्वा दारुमयं वापि अथवा मृन्मयं प्रिये ।। पञ्चम्या-मर्चयेद्भक्त्या नागं पञ्च फणाभृतम् ।। करवीरैः शतपत्रैर्जातिपुष्पैश्च पद्मकैः ।। तथा गन्धादिधूपैश्च पूजयेन्नागमुत्तमम् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्घृतपायसमो-मोदकैः ।। अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मं कम्बलमेव च ।। तथा कर्कोटकं नागं नाग-मश्वतरं तथा ।। धृतराष्ट्रं शङ्खपालं कालियं तक्षकं तथा ।। पिङ्गलं च महानागं मासि मासि प्रकीर्तितम् ।। व्रतस्यान्ते पारणं स्यात्क्षीरैर्ब्राह्मणभोजनम् ।। सुवर्ण-भारनिष्पन्नं नागं दद्याच्च गां तथा ।। तथा वस्त्राणि देयाति विप्रायामिततेजसे ।। एवं संपूजयेन्नागान्सदा भक्त्या समन्वितः ।। विशेषतस्तु पञ्चम्यां पयसा पायसेन च ।। इति प्रभासखण्डे नागपञ्चमीव्रतम् ।। अत्रैव नागदष्टव्रतम् ।।

ऐसेनागपञ्चमी व्रतके माहात्म्यको सुनने या पढनेवाला समस्त पातकोंसे छूट जाता है ।। भाद्रपद शुक्ला-पञ्चमीको भी नागपञ्चमीका व्रत होता है । यह हेमाद्रि ग्रन्थमें प्रभास खण्डसे लेकर लिखा है । ईश्वर बोले कि, भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी अत्यन्त श्रेष्ठ कही है, यह देवताओंको भी दुर्लभ है । हे सुन्दर मुखवाली ! इसे बारह बरस तक पञ्चमीको करना चाहिये, इससे पहिली चौथकी रातको एक बारही भोजन करना चाहिये, फिर चाँदीका या सोनेका अथवा काठका या हे प्रिये ! मिट्टीका ही पांच फणवाला नाग बनवाकर भक्तिभावके

१ व्रतमितिशेषः २ रुप्यमयम् ३ सौवर्णम् ४ जयोदिति शेषः

साथ उसका पूजन करना चाहिये । इस उत्तम नागका पूजन कनेर, शतपत्र, जाती और पद्म तथा गंधसे लेकर धूप दीप आदि सबसे करना चाहिये । फिर ब्राह्मणोंको घृतयुक्त पायस और मोदकोंका भोजन करावे । और १ अनन्त, २ वासुकि, ३ शेष, ४ पद्म, ५ कंबल, ६ कर्कोटक, ७ अश्वतर, ८ धृतराष्ट्र, ९ शंखपाल, १० कालिय, ११ तक्षक, १२ पिङ्गल ये द्वादश महानाग हैं, इनकी श्रावण आदि द्वादश मासोंमें क्रमसे पूजा करनी चाहिये (यदि श्रावणमें नाग पूजन करना हो तो "अनन्ताय नमः, अनन्तमावाहयामि, भो अनन्त इहागच्छ इह सुस्थितो भव, त्वामर्चयामि" इत्यादि वाक्यसे अनन्तनामक प्रधान रूपसे प्रयोग करता हुआ नागराजोंका पूजन करे । और ऐसेही भाद्रपदादि अन्यान्य मासोंमें भी वासुकिप्रभृति प्रागुक्त क्रम प्राप्त नामोंके नागोंका प्रधान रूपसे उच्चारण करता हुआ पूजन करे) । व्रतके अन्तमें पारणाकरे, ब्राह्मणोंको दूध या दूधके पदार्थ खिलावे, इस व्रतमें एक भार सुवर्णका नाग बनाना चाहिये, उसको ब्रह्मवर्चस्वी किसी ब्राह्मणको दे देना चाहिये । उस दानके साथ गौ और वस्त्रोंको भी दे । और सभीको चाहिये कि, वे इस प्रकार भक्ति परायण होकर नागराजोंका सर्वदा पूजन करें, विशषरूपसे श्रावणसुदि ५ को नागराजोंका पूजन करे, दूध या दूधके पदार्थका भोग लगावे । इस प्रकार प्रभासखण्डमेंके नागपञ्चमीका व्रत पूरा हुआ ।।

अत्रैव नागदष्टव्रतम् ।।

हेमाद्रौ भविष्योत्तरपुराणे ।। सुमन्तुरुवाच ।। नागदष्टो नरो राजन् प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः ।।अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ।।१।। शतानीक उवाच ।। नागदष्टःपिता यस्य भ्राता वा दुहितापि च ।। माता पुत्रोथवा भार्या कर्तव्यं तद्वदस्य मे ।। २ ।। मोक्षाय तस्य विप्रेन्द्र दानं व्रतमुपोषणम् ।। ब्रूहि मे द्विजशार्दूल यद्भवेत्त-त्करोम्यहम् ।। ३ ।। सुमन्तुरुवाच ।। उपोष्या पञ्चमी सम्यक् नागानां बल-वर्धिनी ।। सममेकं यावच्च विधानं शृणु भारत ।। ४ ।। समकं संवत्सरम् ।। उपोष्येति दिवाभोजनाभावः ।। "तस्यां नक्तम्" इत्यग्रे नक्तोक्तेः ।। मासि भाद्र-पदे राञ्छुक्लपक्षे तु पञ्चमी ।। सापि पुण्यतमा प्रोक्ता ग्राह्यासौ गतिकाम्यया ।। ५ ।। चतुर्थ्यामेकभक्तं च तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।। कुर्याच्चान्द्रमसं नागमथवा कलधौतजम् ।। ६ ।। हैमं रौप्यं चेत्यर्थः ।। अथ दारुमयं भव्यं मृन्मयं वाप्य-शक्तितः ।। पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागं पञ्चफणं तथा ।। ७ ।। करवीरैस्तथा पद्मैर्जातिपुष्पैः सुगन्धिभिः ।। गंधधूपैश्च नैवेद्यैः स्नाप्य क्षीरादिभिर्नृप ।। ८ ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्घृतपायसमोदकैः ।। अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कंबलमेव च ।। ९ ।। तथा कर्कोटकं नागं नागमश्वतरं नृप ।। धृतराष्ट्रं शङ्खपालं कालियं तक्षकं तथा ।। १० ।। पिङ्गलं च तथा नागं मासिमासि क्रमाद्यजेत् ।। पूजयित्वा प्रयत्नेन पञ्चम्यां नक्तभुग्भवेत् ।। ११ ।। एवं द्वादशकृत्वा वै मासि भाद्रपदे नृप ।। वत्सरान्ते यथाशक्त्या अन्नदानं च कारयेत् ।। १२ ।। ब्राह्मणानां यतीनां च नागा-नुद्दिश्य भक्तितः ।। इतिहासविदे नागं काञ्चनं रत्नचित्रितम् ।। १३ ।। गां च दद्यात्सवत्सां वै सर्वोपस्करसंयुताम् ।। दानकाले पठेदेतत्स्मरन्नारायणं विभुम्

१ महाभोज्य तु

॥ १४ ॥ सर्वगं सर्वधातारमनन्तमपराजितम् ॥ ये केचिन्मे कुले सर्पैर्दष्टाः प्राप्ता ह्यधोगतिम् ॥ १५ ॥ व्रतदानेन गोविन्द मुक्तिभाजो भवन्तु ते ॥ इत्युच्चार्याक्षतैर्युक्तं सित चन्दनमिश्रितम् ॥ १६ ॥ वासुदेवाग्रतो भूप तोयं तोयेऽथ निःक्षिपेत् ॥ अनेन विधिना सर्वे ये मरिष्यन्ति वा मृताः ॥ १७ ॥ सर्पतस्तेऽभियास्यन्ति स्वर्गतिं नृपसत्तम ॥ व्रती सर्वान्समुद्धृत्य कुलजान् कुरुनन्दन ॥ १८ ॥ प्रयाति विष्णुसान्निध्यं सेव्यमानोऽप्सरोगणैः वित्तशाठ्यविहीतनो यः सर्वमेतत्फलं लभते ॥ १९ ॥ नक्तेन भक्तिसहिताः सितपञ्चमीषु ये पूजयन्ति भुजगान्कुसुमोपहारैः ॥ तेषां गृहेष्वभयदा हि भवन्ति सर्पा दर्पान्विता मणिमयूखविभासिताङ्गाः ॥ २० ॥ इति नागदष्टपञ्चमीव्रतं भविष्योक्तम् ॥

और इसी श्रावणसुदि पञ्चमीमें नागदष्टव्रतभी होता है । क्योंकि हेमाद्रिमें भविष्योत्तर पुराणका ऐसाही उल्लेख मिलता है, (किसी समय राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा कि, सर्प यदि किसीको डस ले और वह उस विषकी वेदनासे गतप्राण हो जाय, तो उस सर्पदंशसे मृत जन्तुकी कौनसी गति होती है, आपके मुखसे यह सुनना चाहता हूं ।) सुमन्तुमुनि बोले कि, हे राजन् ! सांपके डंक लगनेसे जो मर जाय, वो नारकी गतिको प्राप्त होता है, उत्तम गतिको नहीं प्राप्त होता, सर्पदष्ट प्राणी मरणके बाद प्रथम नरकमें गिरता है, फिर सर्पयोनिमें जन्म लेता है, पर इस योनिमें जन्म लेकरभी अन्यान्य सर्पोंकी तरह विषवाला काला नाग नहीं होता, किन्तु बिना विषका होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ शतानीक बोला–जिसके बाप, भाई, मा, बेटे या स्त्री और प्रियबन्धुजनको सांपने डस लिया हो, उसका क्या कर्त्तव्य है यह मुझे बताइये ? ॥ २ ॥ ऐसा कौनसा दान, व्रत या उपवास है, जिसके करनेसे सर्पके डसनेसे मरनेका दोष निवृत्त हो, हे विप्रवर्य्य ! आप कृपया उसी दान व्रत या उपासका मेरे लिये उपदेश करें यदि हो सकेगा तो करूंगा ॥ ३ ॥ सुमन्तु बोले कि, हे भारत ! जिस वर्षमें जिस किसीके बान्धव जनका सर्प दंशसे मरण होजाय, वह उसी एक समक, नागोंके बल बढानेवाली पञ्चमीको उपवास करे, उसका जो विधान है उसे सुन ॥ ४ ॥ यहां मूलमें "समकम्" इसका संवत्सर अर्थ है और "उपोष्या" इसका अर्थ दिवा निराहार रहना है । क्योंकि, उस व्रतकी कथाके प्रसङ्गमें आगे चलकर स्वयं सुमन्तुमुनि कहेंगे कि, चौथको एक बार दिनमें ही भोजन करना रातको न करना ही इसका नक्त व्रत कहा है, इससे प्रतीत होता है कि, पञ्चमीके दिन दिनके ही भोजनका निषेध किया गया है, रातको तो भोजन करना हीचाहिये। भाद्रपद सुदि पञ्चमी तिथिको शास्त्रकारोंने अत्यन्त पवित्र माना है । इसलिये अपने अभ्युदयकी इच्छावाले जन इसी तिथिमें व्रत करे ॥ ५ ॥ व्रत करनेवाले मनुष्योंका कर्त्तव्य है कि, वे व्रतके पहिले चतुर्थीके दिन एक बारही भोजन करें और पञ्चमीके दिन रात्रिको एक भक्त व्रत करें, उस नागपूजनमें वह चान्द्रमसी नागकी मूर्ति बनवानी चाहिये, पूजन करनेवाले विशेष सम्पन्न हों तो कलधौतज नागमूर्ति हो ॥ ६ ॥ कलधौतज सोनेकी तथा चान्द्रमस चाँदीको कहाती है । और सम्पत्तिका ह्रास हो तो काष्ठ या मृत्तिकाका ही नाग बनवालें, वह नाग सुन्दर और पांच फणोंका होना चाहिये । भादवा वदि पाँचेको भक्तिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठादि करके पीछे पूजन करना चाहिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! दूध आदिसे स्नानकराके पीछे चन्दन चढावे । करवीर,कमल, मालती, चमेली आदिके सुगन्धित पुष्प, धूप, दीपक, मधुरखीर एवं घृतके मोदकोंका निवेदन करे ॥ ८ ॥ ऐसे पूजन काण्डको समाप्त करके, हे राजन् ! ब्राह्मणोंको मधुर खीर या मोदकोंका भोजन करावे । १ अनन्त, २ वासुकि, ३ शंख, ४ पद्म, ५ कंबल, ॥ ९ ॥ ६ कर्कोटक, ७ अश्वतर, ८ धृतराष्ट्र, ९ शंखपाल, १० कालिय, ११ तक्षक ॥ १० ॥ १२ वाँ पिङ्गल इन नामोंके नागराजोंका महीने महीनेमें पूजन होना चाहिये, पंचमीके दिन इन्हें प्रयत्नके साथ पूजकर रातको भोजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ भाद्रपदसे प्रारंभ करके इसी प्रकार

२ तिलेति च पाठान्तरम्

बारह महीना करना चाहिये वर्ष समाप्त होजानेके बाद अपनी शक्तिके अनुसार नागोंके उद्देशसे ब्राह्मण और यतियोंको भक्तिके साथ अन्न दान भी करना चाहिये ।। १२ ।। इतिहासके जाननेवालेको रत्नजटित सोनेका नाग देना चाहिये ।। १३ ।। सब उपस्करके साथ बछडेवाली गाय देनी चाहिये, देतीवार नारायण भगवान्‌का स्मरण करता हुआ कहे कि ।। १४ ।। केवल नारायण ही नहीं, किन्तु उनके इन गुणोंके साथ स्मरण करे कि, सर्वत्र व्यापक, सबके धारणा करनेवाले, जिसका अन्त नहीं है ऐसे, किसीसे न हारनेवाले भगवान् हैं।। "जो "जो कोई मेरे कुलमें साँपसे काटे जाकर अधोगतिको प्राप्त हुए हैं ।। १५ ।। हे गोविन्द ! वो मेरे इस व्रत दानसे उससे उद्धार पाजायँ" यह बोलकर अक्षतोंसे युक्त एवम् सित चन्दनसे मिश्रित ।। १६ ।। पानीको हे भूप ! भगवान्‌के सामने पानीमें डालदे । जो मर गये, अथवा जो मरेंगे इस विधिसे ।। १७ ।। हे श्रेष्ठ राजन् ! वे सब सर्पके काटे हुए स्वर्गको चले जाते हैं, हे कुरु नन्दन ! वो व्रती, अपने सब कुटुम्बियोंका उद्धार करके ।। १८ ।। अप्सराओंसे सेवित हुआ विष्णु भगवान्‌के समीप चला जाता है जो इसके करनेमें धनका लोभ नहीं करता वही इसके सारे फलको पाता है ।। १९ ।। जो चतुर्थीको रात भोजन छोड भक्तिके साथ शुक्ला पंचमीको फूल और भेंटसे नागोंका पूजन करते हैं उनके घरमें विषके अभिमानी एवम् मणियोंकी किरणोंसे चमकते हुए शरीरवाले साँप भी कभी भय उत्पन्न नहीं कर सकते ।। २० ।। यह नाग दष्ट पंचमीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

ऋषिपञ्चमी

अत्रैव ऋषिपञ्चमीव्रतम् ।। तच्च मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम् ।। तथा च माधवीय हारीतः—पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः ।। इति ।। दिनद्वये तद्व्याप्तौ वा पूर्वविद्धायां कार्यं युग्मवाक्यात् ।। प्राप्य भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षस्य पञ्चमीम् ।। तस्यांमध्याह्नसमये नद्यादौ विमले जले ।। अपामार्गस्य काष्ठैश्च ह्यष्टोत्तर-शतोन्मितैः ।। अथवा सप्तभिः कार्यं दन्तधावनमादितः ।। वनस्पतिप्रार्थना—आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वन-स्पते ।। संप्रार्थ्यानेन मंत्रेण कुर्याद्वै दन्तधावनम् ।। तत्र मंत्रः—मुखदुर्गन्धिनाशाय दन्तानां च विशुद्धये ।। ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम् ।। अनेन दन्तान् संशोध्य स्नायान्मृत्स्नानपूर्वकम् ।। ततो ब्रह्मकूर्चविधिना पंचगव्यं संपाद्य प्राश-येत् ।। तच्चेत्थम्—देशकालौ संकीर्त्य शरीरशुद्धयर्थं ब्रह्मकूर्चहोमपूर्वकं पञ्चगव्य-प्राशनमहंकरिष्ये इति संकल्प्य ताम्रादिपात्रे गायत्र्या गोमूत्रम् । गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेतिक्षीरम् । दधिक्राव्ण इति दधि । शुक्रमसि ज्योतिरसी-त्याज्यमादाय देवस्यत्वेति कुशोदकं प्रक्षिप्य प्रणवेनालोड्य यज्ञियकाष्ठेन तेनैव निर्मथ्य प्रणवेनाभिमंत्र्य सप्तपत्रैर्हरितैः कुशैः पंचगव्यमुद्धृत्य इरावतीति पृथिव्यै० इदं विष्णुरिति विष्णवे० मानस्तोके इति रुद्राय० ब्रह्मजज्ञानमिति ब्रह्मणे० अग्न-येस्वाहेत्यग्नये० सोमायस्वाहेति सोमाय० गायत्र्या सूर्याय० ।स्वाहेति प्रजा-पतये० ।भर्भुवः स्वाहेति प्रजापतये० अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेत्यग्नये स्विष्ट-कृते० ।। एवं दशाहुतीर्हुत्वा हुतावशिष्टं यत्त्वगस्थीति मंत्रं पठित्वा प्रणवेन प्राश-येत् ।। होमाकरणपक्षे उक्तमंत्रैः पंचगव्यं संपाद्य प्राशयेत् ।। स्त्रियस्तु तूष्णीं पञ्चगव्यं प्राशयेयुः ।।

ऋषि पंचमी-का व्रतभी भाद्रपद शुक्ला पंचमीके दिन होता है, यह व्रत तब करना चाहिये जब कि, मध्याह्न व्यापिनी तिथि हो। ऐसा ही माधवीय ग्रन्थमें हारीतका वचन है कि, सभी पूजा व्रतोंमें मध्याह्न-व्यापिनी तिथि लेनी चाहिये। यदि दो दिन मध्याह्न व्यापिनी हो तो पूर्वविद्धा ही लेनी, क्यों कि, दो वाक्य ऐसे ही मिलते हैं। भाद्रपद महीनाकी शुक्लपक्षकी पंचमी आजाने पर मध्याह्नके समयमें नदी आदिकके विशुद्ध पानीमें स्नान करके ओंगाकी एकसौ आठ अथवा सात दांतुन लेकर एक एकसे दांतुन करनी चाहिये। करते समय, हे वनस्पते ! आयु, बल, यश, वर्च, प्रजा, पशु, वसु, ब्रह्म, प्रज्ञा और मेधा हमें दे, इस मंत्रसे पहिले ही वनस्पतिकी प्रार्थना करनी चाहिये, पीछे दांतुन करनी चाहिये। करनेके समय पर कहना चाहिये कि, मुखकी दुर्गन्धके नाशके लिये, दातोंकी शुद्धिके लिये तथा गात्रोंके ष्ठीवनके लिये मैं दन्त धावन करता हूं, इसके पीछे ब्रह्मकूर्च विधिसे पंचगव्य तैयार करके उसका प्राशन करना चाहिये, वो इस प्रकारसे होता है, देश कालको कहकर शरीरकी शुद्धिके लिये ब्रह्मकूर्च होमके साथ पंचगव्यका प्राशन करूंगा ऐसा संकल्प करके, तांबे आदिके पात्र में गायत्रीसे गोमूत्र, "गन्धद्वाराम्" इससे गोमय, "आप्यायस्व" इससे दूध तथा "दधिक्राव्ण" इससे दही और "शुक्रमसि" इससे आज्य लेकर "देवस्य त्वा" इससे कुशका पानी डालकर, प्रणवसे यज्ञीय काष्ठसे आलोडन और उसीसे मथकर प्रणवसे अभिमंत्रित करके कुशके सात हरे पत्तोंसे पञ्चगव्यका उद्धरण करके पीछे दश आहुति देनी चाहिये व किस प्रकार दी जाती हैं यह लिखते हैं। "ओं इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिणी मनुषेदशस्या। व्यस्तम्ना रोदसी विष्णवे ते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥" इस मंत्रसे पृथिवीको, "इदं विष्णुः" इससे विष्णुको, "मानस्तोके" इससे रुद्रको, "ब्रह्मजज्ञानम्" इससे ब्रह्माजीको, 'अग्नये स्वाहा' इससे अग्निको सोमाय स्वाहा' इससे चन्द्रमाको, "तत्सवितुर्वरेण्यं" इस गायत्री मंत्रसे सूर्यको "ओं स्वाहा" इससे प्रजापतिको, "ओं भूर्भुवः-स्वः स्वाहा" इस व्याहृतित्रयवाले मंत्रसे पुनर्वार प्रजापतिको, एवम् "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" इससे अग्निको स्विष्टकृत् होमके पञ्चगव्यकी आहुति दे, इस प्रकार दश आहुतियाँ पृथिव्यादि दश देवताओंको देकर बचेहुए पञ्चगव्यको अपने दाहिनी हथेलीमें रखकर "ओं यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मासके। प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम् ॥" जो मेरे देहमें त्वचा और हड्डियोंके भीतर पहुंचकर पाप रहता है वो पञ्चगव्यके प्राशनसे इस प्रकार जलजाय जैसे आगसे ईंधन जल जाता है, इस मंत्रको बोलकर प्रणवसे प्राशन करना चाहिये। होम न करनेके पक्षमें कथित मंत्रोंसे पञ्चगव्य बनाकर प्राशन करले, स्त्रियोंको तो चाहिये कि, वो चुपचाप ही पञ्चगव्यका प्राशन करें। (यहां उन मंत्रादिकों का अर्थ नहीं किया है जिनका कि, हम पहिले कर आये हैं इसी कारण उन्हें पूरा भी नहीं लिखा है, यही हमारी बात अन्य मंत्रोंके विषयमें भी है, जिनको हम एकबार लिख देते हैं उन्हें फिर दुबारा लिखना नहीं चाहते।

अथ व्रतविधि ॥

नद्यादिके तदा स्नात्वा कृत्वा नियममेव च ॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वापि वरानने ॥ कृत्वा नैमित्तिकं कर्म गत्वा निजगृहं पुनः ॥ वेदीं सम्यक् प्रकुर्वीत गोमयेनोपलेपिताम् ॥ रङ्गवल्लीसमायुक्ते सर्वतोभद्रमण्डले ॥ अव्रणं सजलं कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा ॥ संस्थाप्य वस्त्र-संयुक्तं कण्ठदेशे सुशोभितम् ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं फलगन्धाक्षतैर्युतम् ॥सहिरण्यं समासाद्य ताम्रेण पटलेन वा ॥ वंशमृन्मयपात्रेण यवपूर्णेन चैव हि ॥ आच्छादयेत्तं

---

१ इसका तात्पर्य्य यह है कि, जब दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी तिथि हो तो हेमाद्रिके मतसे पर-तथा माधवके मतसे पूर्वा लेनी कही है, अब कैसे निश्चय हो इसके लिये यह सिद्धान्त है कि, जिसके मतमें बाहु मत हो उसीके वाक्यको ग्रहण करना चाहिये। हेमाद्रिके मतका पोषक दिवोदासका वचन मिलता है, इस कारण युग्मवाक्यसे पष्ठीयुताका ग्रहण प्राप्त है। निर्णय सिन्धुमें ऐहा ही लिखा है तथा ज्वाला प्रसादजी की उसपर ऐसी ही टीका है। यह जो मूल ग्रन्थमें " पूर्व विद्धायां कार्य्यम् " यह लिखा हुआ है यह विचारणीय ही है।

चैलेन लिखेदष्टदलं ततः ।। तत्र सप्तऋषीन्दिव्यान्भक्तियुक्तः प्रपूजयेत् ।। अथ संकल्पः ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य मया ज्ञानतोऽज्ञानतो वा रजस्वलावस्थायां कृत-संपर्कजनितदोषपरिहारार्थमरुन्धतीसहितकश्यपादिसप्तऋषिप्रीत्यर्थमृषिपूजनमहं करिष्ये ।।

व्रतविधि—हे सुंदर मुखवाली पार्वति ! ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा ही व्रत करनेवाली क्यों न हो, वह नदी तडागादिकोंमें स्नान करके अपने नैत्यिक और नैमित्तिक कर्मसे निवृत्त हो घरपर चली आय पीछे वेदीका निर्म्माण करके उसे गोबरसे लीप दे, उस पर रंग वल्लियोंके सहित सर्वतो भद्रमण्डल लिखे, उसके, मध्यभागमें अव्रण तांबे या मृत्तिकाका कलशके जलसे पूर्ण करके स्थापित करदे, कण्ठ भागमें उसे रक्तवस्त्रसे वेष्टि कर उसमें पञ्चरत्न, पुगीफल, गन्ध और सुवर्ण डाले, पीछेयवोंसे पूर्ण भरी हुई तामडी या बाँसकी पिटारी उसके मुखपर स्थापित करके वस्त्रसे ढक दे, उसपर अष्ट दल कमलका आकार लिखे, उस अष्टदल-वाले कमलके ऊपर दिव्य सातों ऋषियों और एक अरुन्धतीको स्थापित करे, फिर भक्तिसे अपने मनको पूर्ण रखता हुआ अरुन्धती सहित सप्तर्षियोंका पूजन करे, उस पूजनके आरम्भमें जल और अक्षत दहिने हाथमें लेकर "ओं तत्सत् अद्यैतस्य" इत्यादि वाक्यसे देश और महीने आदिका उल्लेख करके कहे कि, मैंने अपने जान या अनजानमें रजस्वला होनेपर भी जो सम्पर्क किया है उससे जो प्रत्यवाय प्राप्त हुआ है उसकी शान्ति तथा अरुन्धती सहित कश्यपादि सप्तर्षियोंकी प्रीतिके लिये अरुन्धती सहित कश्यपादि सप्तर्षियोंका पूजन करूंगा ।।

अथ ऋषिपूजविधिः ।।

आगच्छन्तु महाभागाश्चतुर्वेदपरायणाः ।। यावद्व्रतमिदं कुर्वे कृपया भवतामहम् ।। आवाहनम् ।। मूर्तं ब्रह्मण्यदेवस्य ब्रह्मणस्तेज उत्तमम् ।। सूर्यकोटिप्रतीकाशमृषिवृन्दं विचिन्तये ।। ध्यानम् ।। ऋग्यजुःसामवेदानां स्वरूपेभ्यो नमोनमः ।। पुराणपुरुषेभ्यो हि देवर्षिभ्यो नमोनमः ।। आस-नम् ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं पाद्यं गृह्णन्तु भो द्विजाः ।। प्रसादं कुरुत प्रीतास्तुष्टाः सन्तु सदा मम ।। पाद्यम् ।। नभस्ये शुक्लपञ्चम्यामर्चिता ऋषिसत्तमाः ।। दहन्तु पापं सर्वंगृह्णन्त्वर्घ्यं नमो नमः ।। अर्घ्यम् ।। लोकानां तुष्टिकर्तारो यूयं सर्वे तपोधनाः ।। नमो वो धर्मविज्ञेभ्यो महर्षिभ्यो नमो नमः ।। आचमनम् ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं करिष्ये ऋषिसत्तमाः ।। पञ्चामृतम् ।। मन्दाकिनी गौतमी च यमुना च सरस्वती ।। कृष्णा च नर्मदा तापी ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ।। स्नानम् ।। सर्वे नित्यं तपोनिष्ठा ब्रह्मज्ञाः सत्यवादिनः वस्त्राणि प्रतिगृह्णन्तु मुक्तिदाः सन्तु मे सदा ।। वस्त्राणि ।। नानामन्त्रैः समुद्भूत त्रिवृतं ब्रह्मसूत्रकम् ।। प्रत्येकं च प्रयच्छामि ऋषयः प्रतिगृह्यताम् ।। उपवी-तानि ।। कुंकुमागुरुकर्पूरसुगन्धैर्मिश्रितं शुभम् ।। गन्धाढ्यं चन्दनं दिव्यं गृह्णन्तु ऋषिसत्तमाः ।। गन्धम् ।। शुभ्राक्षताश्च संपूर्णाः प्रक्षाल्य च नियोजिताः ।। शोभायै वो मया दत्ता गृह्यन्तां मुनिसत्तमाः ।। अक्षतान् ।। मालतीचम्पकादीनि

१ जलं गृह्यवामिति शेषः

तुलस्यादीनि वै द्विजाः ।। मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पुष्पाणि ।। वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। धूपम् ।। साज्ज्यं च वर्त्तिसं० ।। दीपम् ।। नानापक्वान्नसंयुक्तं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। गृह्णन्तु ऋषयः सर्वे मया नैवेद्यमर्पितम् ।। नैवेद्यम् ।। मध्ये पानीयम् ।। उत्तरापो० हस्तप्रक्षाल०· करोद्वर्तनार्थे चन्द० ।। नमो वेदविदः श्रेष्ठा ऋषयः सूर्यसन्निभाः ।। गृह्णन्त्विदं फलं तुष्टा मया दत्तं हि भक्तितः ।। फलम् ।। पूगीफलं मह० ।। तांबूलम्० ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।। तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ।। प्रदक्षिणाः ।। नमोऽस्तु ऋषिवृन्देभ्यो देवर्षिभ्यो नमोनमः ।। सर्वपापहरेभ्यो हि वेदविद्भ्यो नमो नमः ।। नमस्कारान् ।। एते सप्तर्षयः सर्वे भक्त्या संपूजिता मया ।। सर्वं पापं व्यपोहन्तु ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ।। प्रार्थना ।। अथ वायनम् ।। कृतायाः पूजायाः साङ्गतासिद्ध्यर्थं ब्राह्मणाय वायनप्रदानं करिष्ये । तथा ब्रह्मपूजनम् ।। वायनं फलसंयुक्तं सघृतं दक्षिणान्वितम् ।। द्विजवर्याय दास्यामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। भवन्तः प्रतिगृह्णन्तु ज्योतीरूपास्तपोधनाः ।। उभयोस्तारका सन्तु वायनस्य प्रदानतः ।। वायनम् ।। न्यूनातिरिक्तकर्माणिमया यानि कृतानि च ।। क्षमध्वं तानि सर्वाणि यूयं सर्वे तपोधनाः ।। यान्तु देव० विसर्जनम् ।। एवं संपूज्य विधिवद्भक्तियुक्तेन चेतसा ।। तेषामग्रे च श्रोतव्यंशुभं चैव कथानकम् ।। इति पूजाविधिः ।। अथ कथा ।। सिताश्व उवाच ।। श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि सुबहूनि च ।। सांप्रतं मे समाचक्ष्व व्रतंपापप्रणाशनम् ।। १ ।। ब्रह्मोवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ऋषिपञ्चमीति विख्यातं सर्वपापहरं परम् ।। २ ।। येन चीर्णेन राजेन्द्र नरकं नैव पश्यति ।। अत्रैवोदाहरिष्यन्ति इतिहासं पुरातनम् ।। ३ ।। वैदर्भे[1] च द्विजवर उत्तंको नाम नामतः ।। तस्य भार्या सुशीलेति पतिव्रतपरायणा ।। ४ ।। तस्या अपत्ययुगलं पुत्रो हि सुविभूषणः ।। अधीतवान् सुतस्तस्य वेदान् साङ्गपदक्रमान् ।। ५ ।। समाने च कुले तेन सुता चापि विवाहिता ।। विवाहितैव सा दैवाद्वैधव्यं प्राप सत्तम ।। ६ ।। सतीत्वं पालयन्ती सा आस्ते निजपितुर्गृहे ।। तस्या दुःखेन संतप्तः सुतं संस्थाप्य वेश्मनि ।। ७ ।। गङ्गातीरवनं प्राप्तः सकलत्रस्तया सह ।। स तत्राध्यापयामास शिष्यान्वेदं द्विजोत्तमः ।। ८ ।। सुता च कुरुते तस्य पितुः शुश्रूषणं परम् ।। पितुः शुश्रूषणं कृत्वा परिश्रान्ता कदाचन ।। ९ । निशीथे किल संसुप्ता कृमिराशिरजायत ।। तथाविधां च तां दृष्ट्वा विवस्त्रां प्रस्तरस्थिताम् ।। १० ।। शिष्या निवेदयामासुस्तन्मातुः करुणान्विताः ।। न जानीमो वयं किंचिद्देवीं साध्वीं तथाविधाम् ।। ११ ।।

१ वैदेहेऽद्भूद्विज इत्यपि पाठः

कृमिराशिमयी जाता मातः संप्रति दृश्यते ।। वज्रपातसदृक्षं तच्छ्रुत्वा शिष्यैरुदीरितम् ।। १२ ।। सा भ्रान्तमानसा शीघ्रं तत्समीपमुपागमत् ।। सा तां तथाविधां दृष्ट्वा विललाप सुदुःखिता ।।१३।। उरश्च ताडयामास सुतरां मोहमाप च।। क्षणेन प्राप्तचैतन्यां तामुत्थाप्य प्रमृज्य च ।। १४ ।। समालम्ब्य च बाहुभ्यां निन्ये तत्पितुरन्तिकम् ।। स्वामिन्कथय मे साध्वी केन दुष्कृतकर्मणा ।।१५।। निशीथे संप्रसुप्तेयं जायते कृमिसंकुला ।। एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यमृषिर्ध्यानपरायणः ।। १६ ।। ज्ञात्वा निवेदयामास तस्या प्राक्जन्मचेष्टितम् ।। ऋषिरुवाच ।। प्रागियं सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी ह्यभूत् ।। १७ ।।रजस्वला च संजाता भाण्डादीन्यस्पृशत्तदा ।। अस्यास्तु पाप्मना तेन जायते क्रिमिवद्वपुः ।। १८ ।। रजस्वलायाः पापेन युक्ता भवति सानघे ।। प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।। १९ ।। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ।। तदा तया सखीसङ्गाद्व्रतं दृष्ट्वावमानितम् २० ।। दृष्टव्रतप्रभावेण जाता द्विजकुलेऽमले ।। अवमानाद्व्रतस्यास्य कृमिराशिमयीधुना[1] ।। २१ ।। एतत्ते कथितं सर्वं कारणं दुष्कृतस्य च ।। सुशीलोवाच ।। दर्शनादपि यस्यास्य विप्राणां निर्मले कुले ।। २२ ।। जन्म युष्मद्विधानां हि जायते ब्रह्मतेजसाम् ।। अवज्ञया प्रजायन्ते निशिथे[2] कृमिराशयः[3] ।। २३ ।। महाश्चर्यकरं नाथ तद्व्रतं कथयस्व मे ।। ऋषिरुवाच ।। सुशीले शृणु तत्सम्यग्व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। २४ ।। येन चीर्णेन सहसा पापादस्मात्प्रमुच्यते ।। दुः[4]खत्रयाच्च मुच्येत नारी सौभाग्यमाप्नुयात् ।। २५ ।। कल्याणानि विवर्द्धन्ते संपदश्च निरापदः ।। नभस्ते शुक्लपक्षे तु यदा भवति पञ्चमी ।। २६ ।। नद्यादिषु तदा स्नात्वा कृत्वा नियममेव च ।। विधाय नित्यकर्माणि गत्वा द्वारवतीमृषीन् ।।२७।। स्नापयेद्विधिवद्भक्त्या पञ्चामृतरसैः शुभैः ।। द्वारवती-अग्निहोत्रशाला वस्त्रमण्डपं गृहं वा ।। २८ ।। चन्दनागुरुकर्पूरैर्विलिप्य च सुगन्धिभिः ।। पूजयेद्विविधैः पुष्पैर्गन्धधूपादिदीपकैः ।। २९ ।। समाच्छाद्य शुभैर्वस्त्रैः सोपवीतैर्यथाविधि ।। ततो नैवेद्यसंपन्नमर्घ्यं दद्याच्छुभैः फलैः ।। ३० ।। कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रस्तु गौतमः ।। जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयःस्मृताः ।। ३१ ।। गृह्णन्त्वर्घ्यं मया दत्तं तुष्टा भवत मे सदा ।। श्रोतव्यमिदमाख्यानं शाकाहारं प्रकल्पयेत् ।। ३२ ।। स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण ऋषिध्यानपरायणैः ।। अनेन विधिना सम्यग्व्रतमेतत्समाचरेत् ।। ३३ ।। तस्य यज्जायते पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।। सर्वदानेषु यत्पुण्यं तदस्य व्रतचार-

---

१ ग्रामसूकरीत्यपिपाठः २ अत्रालोप आर्षः ३ विग्रहा ४ दुःखत्रयाभिघातश्च जायतेनात्र संशयः इत्यपिपाठः

णात् ।। ३४ ।। कुरुते या व्रतं चैतत्सा नारी सुखभागिनी ।। रूपलावण्यसंयुक्ता पुत्रपौत्रादिसंयुता ।। ३५ ।। इह लोके सदैव स्यात्परत्राप्यक्षया गतिः ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।।३६।। इति हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे ऋषिपञ्चमी कथा

पूजन विधि–हे चारों वेदोंके परायणों, महाभागो, अरुन्धती सहित सप्तर्षियों ! पधारो, जबतक मैं इस व्रतको करूं तबतक यहीं विराजे रहो. इससे आवाहन; मैं उस ऋषिवृन्दको याद करता हूं जिसका तेज कोटि सूर्य्यके समान है, जो कि ब्रह्मका उत्तम तेज तथा ब्रह्मण्य देवका स्वरूप है, इससे ध्यान; ऋग् यजु और सामके स्वरूपोंके लिये वारंवार नमस्कार है, पुराण पुरुष देवर्षियोंके लिये वारंवार नमस्कार है अथवा ऐसे देवर्षियोंके लिये वारंवार नमस्कार है इससे आसन; हे द्विजो ! आप गन्ध, पुष्प, अक्षतयुक्त पाद्यको लें और मेरेपर प्रसन्नता प्रकट करें एवं सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहें इससे पाद्य, भाद्रपद सुदि पञ्चमीके दिन मैंने ऋषिसत्तमोंका पूजन किया है, इससे ये पूजित हुये मेरे समस्त पापोंको दग्ध करते हुए अर्घ्य ग्रहण करें इनके लिये बारबार नमस्कार है इससे अर्घ्य, लोकोंको संतुष्ट करनेवाले आप सब तपोधन और धर्मवेत्ता महर्षि हैं, आपको बारंबार प्रणाम है, इससे आचमन, दूध, दधि, घृत, शर्करा और सहत इन पञ्च अमृतमय पदार्थोंसे हे ऋषिसत्तमो ! आपको स्नान कराता हूं, इससे पञ्चामृतद्वारा स्नान, गङ्गा, गौतमी, यमुना, सरस्वती, कृष्णा, नर्मदा और तापी इत्यादि माहानदियोंसे आपके शुद्धस्नानार्थ यह जल लाया गया है, आप इसे स्वीकार करिये इससे शुद्ध स्नान, आप सभी नित्य तपःपरायण, ब्रह्मवेत्ता और सत्यवादी हैं, वस्त्र ग्रहण करें और मुझे सदा मोक्ष (ब्रह्म ज्ञान) देनेवाले हों, इससे वस्त्र; विविध मन्त्रोंसे त्रिगुणित ये ब्रह्मसूत्र तैयार किये हैं, आप सभीके लिये अलग चढा रहा हूं, आप ग्रहण करें, इससे ब्रह्मसूत्र; कुंकम, अगर, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थोंसे सुगन्धित इस दिव्य चन्दनको हे ऋषि सत्तमो ! (आप) ग्रहण करें, इससे गंध; हे ऋषिश्रेष्ठो ! इन सफेद चावलोंको लेकर आपको देने आया हूं, आप अपनी शोभाके लिये इनको ग्रहण करिये, इससे अक्षत हे ऋषियो ! मालती चम्पकादि पुष्प, तुलसी प्रभृति पत्रोंको आपकी पूजाके लिये लाया हूं, आप इन्हें ग्रहण करिये, इससे पुष्प; 'वनस्पति रसोद्भूतः' इससे धूप, 'साज्यं च वर्ति' इससे दीप; 'नाना पक्वान्न' इससे नैवेद्य; मध्यमें पानीय; उत्तरापोशन; हस्त प्रक्षालन एवम् करोद्वर्तनके लिये चन्दन; हे वेदके जाननेवाले सूर्यके समान ऋषियो ! आपके लिये नमस्कार है मैंने भक्तिसे आपको फल दिया है इससे प्रसन्न होकर आप मुझे फल दो, इससे फल; 'पूगीफलं' इससे पूगीफल पानके मंत्रसे ताम्बूल समर्पण करे । 'हिरण्यगर्भगर्भस्थं' इससे दक्षिणा चढावे. 'यानि कानि च' इससे प्रदक्षिणा करे. वेदवेत्ता, समस्तपापोंके विनाशक, देवर्षि और समस्त ऋषियोंके लिये बारंबार प्रणाम है, इससे नमस्कार तथा मैंने इन सब सप्तर्षियोंका भक्तिसे पूजन किया है, ये मेरे जान अथवा अनजानके किये पापोंको नष्ट करें, इससे प्रार्थना करे. मैंने जो यह पूजन किया है, इसकी साङ्गतापूर्णताके लिये ब्राह्मण (आचार्य) को वायनप्रदान गौर ब्राह्मण पूजन करूंगा ऐसा संकल्प करके व्रतकी पूर्त्यर्थ ब्राह्मणके लिये मैं फल घृत और दक्षिणासहित वायना देताहूं । ज्योतिः स्वरूप तपोधन आप उसे स्वीकार करें, इस वायनाके प्रदानसे मेरे (दाताके) एवं ब्राह्मण (प्रतिगृहीता) के आप उद्धार करनेवाले हों; इससे वायना; 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं स्वधाम परमं मुदा ।।' मैंने जो यह पूजन किया है, इसे ग्रहण करके मेरी अभिलषित कामनाओंको पूर्ण करते हुए अपने अपने परम धामको आनन्दसे पधारें, इससे विसर्जन करे ।। इस प्रकार भक्तिपूर्वक विधिसे पूजन करके उन ऋषियोंके सम्मुख उनके व्रतकी पवित्र कथाको सुने ।। व्रतकी कथा-सिताश्व राजाने (ब्रह्माजीसे) पूछा कि, हे देवदेवेश ! मैंने आपके मुखसे बहुतसे व्रत सुने, अब मेरे लिये किसी एक पापविनाशक व्रतको कहो ।। १ ।। ब्रह्माजी बोले कि, हे राजन् ! सुनो, मैं तुम्हें उस उत्तम व्रतको कहताहूं, जो समस्त पापोंको सर्वथा नष्ट करनेवाला है । उसका नाम ऋषिपञ्चमी है ।। २ ।। हे राजेन्द्र ! इसके करनेपर मनुष्य नरकके दर्शनतक नहीं करता, वहां यातना भोगनी तो दूर रही. इसी प्रसङ्गमें ही महात्मालोग पुरानी बात कहा करते हैं ।। ३ ।। कि, विदर्भदेशकी राजधानीमें उत्तंग नामक एक उत्तम ब्राह्मण रहता था, उसकी सुशीला नास भार्या थी, यह पतिव्रतमें परायण थी, ४ । इस सुशीलाके दो

सन्तान उत्पन्न हुईं; एक पुत्र, दूसरी पुत्री; इनमें पुत्र बहुतही सद्‌गुणोंसे भूषित था, उसने अङ्ग, पद और क्रम सहित सब वेद पढ़े ।। ५ ।। उत्तंग ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह अपने कुलानुरूप घरमें करदिया, पर हे सत्तम ! प्रारब्धयोगसे वह लडकी विधवा होगयी ।। ६ ।। अपने पतिव्रता धर्मकी पालना रखती हुई पिताके घरपरही समय व्यतीत करने लगी । वो ब्राह्मण उस दुःखसे दुःखित हो अपने पुत्रको घरमें ही छोड ।। ७ ।। अपनी स्त्री और उस पुत्रीको लेकर गङ्गाजीके तटपर चला गया; वहां जाकर वो शिष्योंको वेदाध्ययन कराने लगा ।। ८ ।। वह लडकी अपने पिताकी शुश्रूषा करने लगी, किसी दिन पिताकी शुश्रूषा करती करती हारगयी ।। ९ ।। अर्द्धरात्रिका समय था, एक पत्थर पर गयी, उसके शयन करतेही शरीर एकदम कृमिमय होगया, शरीरके वस्त्र भी कृमिरूप ही होगये ।। १० ।। ऐसे जब उस गुरुपुत्रीकी दशा होगयी तब उसका वृत्तान्त अपनी गुरुपत्नीके समीप जाकर शिष्योंने बहुत दुःखके साथ निवेदन करते हुए कहा. हे मातः ! हम कुछ नहीं जानते, उस सच्चरित्र आपकी पुत्रीकी ऐसी दशा क्यों हो गयी ? ।। ११ ।। आज उसका शरीर तो कुछ दिखाई ही नहीं देता, केवल कृमियां ही दीखती हैं । माको शिष्योंके ये वचन वज्रपातके सदृश लगे ।। १२ ।। वह एक दम घबराकर उठी और अपनी पुत्री जहां पडी हुई थी वहां गयी, वहां जाकर ठीक वैसीही उसकी अवस्था देखते ही अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगी ।। १३ ।। छातीपर कराघातें करती हुई अच्छी तरह मूर्च्छित हो धरती पर गिरपड़ी । फिर कुछ देरमें जब उसको चेत हुआ तब उस लडकीको खडी करके अपने आँचलसे पोछकर ।। १४ ।। अपनी दोनों भुजाओंका सहारा देकर उसके पिताके पास ले आयी और बोली कि, हे स्वामिन् ! आप कहो कि, यह सच्चरित्रा किस पापके प्रभावसे इस दशाको प्राप्त हो गयी है ।। १५ ।। देखिए, यह अर्धरात्रिका समय है, इसमें वह सोती थी, इस सोती हुयीको शरीरमें इतने कीडे पडगये सो कुछ कहा नहीं जा सकता, यह सुन वो महात्मा क्षणभर नारायणपरायण हो समाधि लगाकर ।। १६ ।। उस लडकीके पूर्वजन्मके पापोंको देखकर बोला कि, हे अनघे ! इस जन्मसे पहिले सातवें जन्ममें भी यह ब्राह्मणी ही थी ।। १७ ।। उस जन्ममें रजस्वला होकर भोजनादिकोंके पात्रोंके स्पर्शास्पर्शका विचार नहीं किया, सभीको हाथ लगाया, इसी पापके कारण इसका शरीर कृमिमय होगया है ।। १८ ।। हे अनघे ! रजस्वला कालमें स्त्री पापिन होती है, पहिले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी ।। १९ ।। तीसरे दिन रजकी (धोबिन) होती है फिर चौथे दिन शुद्ध होती है । उसी जन्ममें इसने अपनी सखियोंके दुःसङ्गसे ऋषिपञ्चमीके व्रतको देखकरभी अपमान किया था ।। २० ।। उस व्रतानुष्ठानके उत्सवका दर्शन किया था इसीसे पवित्र ब्राह्मणोंके कुलमें इसका जन्म हुआ, इस व्रतकी अवज्ञा की, इससे इसके शरीरमें अब कृमिराशि पडगयी है ।। २१ ।। यह सब मैंने तुमको इसके पापका कारण बता दिया है । यह सुन सुशीला बोली कि, जिस ऋषिपञ्चमीव्रतके उत्सवका केवल दर्शन करनेपर आपसे ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मणोंके पवित्र कुलमें ।। २२ ।। जन्म मिलता है और अवज्ञा करनेसे रातमें शरीर कृमिमय हो जाता है ।। २३ ।। यह बहुत आश्चर्यकी बात है कि, हे नाथ ! आप इस विलक्षण व्रतको मुझे बता दें । ऋषि बोले कि, हे–सुशीले ! तुम अच्छी तरह चित्त लगाकर सुनो, मैं सब व्रतोंमें उत्तम व्रतको कहता हूं ।। २४ ।। जिसके करनेसे इस प्रकारके सब पापोंसे छुटकारा हो जाता है और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति एवं स्त्रियोंको सौभाग्य-सुखकी प्राप्ति होती है ।। २५ ।। (पाठान्तरके अनुसार यह अर्थ है कि–तीनों दुःखोंका विनाश अवश्य होता है, इसमें सन्देह नहीं करना) एवं सब प्रकारके आनन्दों और सम्पत्तियोंकी प्राप्ति होती है । तथा आपत्तियां दूर टलजाती हैं । भाद्रपद सुदि पञ्चमीके दिन ।। २६ ।। किसी नदी, तलाब आदि जलाशयमें स्नान करके व्रतका नियम धारण करनाचाहिए, फिर नित्यकर्त्तव्य सन्ध्योपासनादि कर्म्मोंको करके द्वारवतीमें जाकर सप्तऋषियोंको ।। २७ ।। स्थापन करके विधिवत् पवित्र पञ्चदुग्धादि अमृतमय पदार्थोंसे स्नान कराना चाहिए । द्वारवतीनाम प्रतिदिन हवनकरनेके स्थानका या पूजनके लिए सजाये हुए मण्डपका नाम है ।। २८।। सुगन्धित चन्दन, अगर और कपूर इनको चढावे । विविध पुष्पोंका शृङ्गार करे, फिर धूप दीपक आदिसे पूजे ।। २९ ।। विधिपूर्वक उपवीत एवम् अहतवस्त्र उपवस्त्र धारण करावे । फिर अच्छे, अच्छे फल और नैवेद्य लेकर, इनके साथ साथ अर्घ्यदान करे ।। ३० ।। उस समय कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जम-

दग्नि और वसिष्ठ ये सात ऋषि हैं ।। ३१ ।। ये सब मेरे दिये अर्घ्यजलको स्वीकार करें और इससे प्रसन्न हों, इसको कहना चाहिए । यह कथा अवश्य सुनने योग्य है, इस व्रतमें शागका ही भोजन करना ।। ३२ ।। तथा ब्रह्मचर्य रखना एवं सातों ऋषियोंका स्मरण करना चाहिये । इस विधिसे इस व्रतको अच्छी तरह करना चाहिये ।। ३३ ।। सब और और तीर्थोंमें स्नानादि तथा सब तरहके दानादि करनेसे जो फल मिलता है वह एक इस व्रतके प्रभावसे मिलजाता है ।। ३४ ।। जो स्त्री इस व्रतको करती है वह सुखियारी रूपलावण्यसे पूर्ण शरीरवाली एवं सदा पुत्रपौत्रादिसे संपन्न होती है ।। ३५ ।। इस लोक में सदा सुखसे रहना और परलोकमें अक्षयपदकी प्राप्ति तथा पूर्वजन्मके चरित्रोंका स्मरण होजाता है ।। ३६ ।। यह हेमाद्रिमें ब्राह्माण्डपुराणसे लेकर कही गयी ऋषिपञ्चमीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथ भविष्योत्तरोक्ता ऋषिपंचमी कथा ।।

युधिष्ठिर उवाच ।। श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि सुबहूनि च ।। सांप्रतं मेऽन्यदाचक्ष्व व्रतं पापप्रणाशनम् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। अथान्यदपि राजेन्द्र पञ्चमीमृषिसंज्ञिताम् ।। कथयिष्यामि यत्कृत्वा नारी पापात्प्रमुच्यते ।। २ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कीदृशी पञ्चमी कृष्ण कथं च ऋषिसंज्ञिता ।। पातकान्मुच्यते कस्मान्नारी यदुकुलोद्भव ।। ३ ।। पापानि च बहून्यत्र विद्यन्ते किल केशव ।। कथं वा ऋषिपञ्चम्यां नारी कस्मात्प्रमुच्यते ।। ४ ।। कृष्ण उवाच ।। अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि या स्त्री जाता रजस्वला ।। दुष्टा स्पृशति भाण्डानि गृहकर्मणि संस्थिता ।। ५ ।। प्राप्नोति सा महापापं सत्यं सा नरकं व्रजेत् ।। श्रृणु तत्कारणं यस्माद्वर्जनीया रजस्वला ।। ६ ।। प्रोत्सार्या गृहतो दूरं चातुर्वर्ण्येन भारत।।ब्रह्महत्यां पुरा शक्रो वृत्रं हत्वा ह्यवाप च ।।७।। तया वै राजशार्दूल व्रीडितो वृत्रसूदनः ।। ब्रह्माणं समुपागच्छदात्मनः शुद्धिकारणात् ।। ८ ।। ततो देवैः समं ब्रह्मा क्षणं ध्यात्वा चकार वै ।। शुद्धिं शक्रस्य राजेन्द्र प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।। ९ ।। विभज्य ब्रह्महत्यां तु चतुर्धा च चतुर्मुखः ।। प्राक्षिपद्राजशार्दूल चतुःस्थानेषु वै तदा ।। १० ।। वह्नौ प्रथमज्वालासु नदीषु प्रथमोदके पर्वतेषु च राजेन्द्र नारीरजसि पार्थिव ।। ११ ।। अतो रजस्वला नारी प्रोत्सार्या च प्रयत्नतः ।। ब्रह्मणः शासनात्पार्थ चातुर्वर्ण्येन सर्वदा ।। १२ ।। प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातकी ।। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ।। १३ ।। अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि जातं संपर्कपातकम् ।। तत्पापसंक्षयार्थं वै कार्येयमृषिपञ्चमी ।। १४ ।। सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ।। ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः स्त्रीभिः कार्या विशेषतः ।। १५ ।। अत्रार्थे यत्पुरावृत्तं प्रवक्ष्यामि कथानकम् ।। पुरा कृतयुगे राजा विदर्भायां बभूव ह ।।१६।। श्येनजिन्नाम राजर्षिश्चातुर्वर्ण्यानुपालकः ।। तस्य देशेऽवसद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ।। १७ ।। सुमित्रो नाम राजेन्द्र

---

१ श्रृणु इतिशेषः

सर्वभूतहिते रतः ।। कृषिवृत्त्या सदा युक्तः कुटुम्बपरिपालकः ।। १८ ।। तस्य भार्या सुसाध्वी च पतिशुश्रूषणे रता ।। जयश्रीर्नामविख्याता बहुभृत्यसुहृज्जना ।। १९ ।। अतिचिन्तान्विता सा च प्रावृट्काले सुमध्यमा ।। क्षेत्रादिषु रता साध्वी व्याकुली कृतमानसा ।। २० ।। एकदा सात्मनः प्राप्तमृतुकालं व्यलोकयत् ।। रजस्वलापि सा राजन् गृहकर्म चकार ह ।। २१ ।। भाण्डादीन्यस्पृशद्राजनृतौ प्राप्तेऽपि भामिनी।। कालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमत्तदा ।। ।। २२ ।। तस्या भर्तापि विप्रोऽसौ कालधर्ममुपेयिवान् ।। एवं तौ दम्पती राजन्स्वकर्मवशगौ तदा ।। २३ ।। भार्या तस्य जयश्रीः सा ऋतुसंपर्कदोषतः ।। शुनीयोनिमनुप्राप्ता सुमित्रोऽपि नरेश्वर ।। २४ ।। तस्याः संपर्कदोषेण बलीवर्दो बभूव ह ।। एवं तौ दम्पती राजन् स्वकर्मवशगौ तदा ।। २५ ।। ऋतुसंपर्कदोषेण तिर्यग्योनिमुपागतौ ।। स्वधर्माचरणाज्जातावुभौ जातिस्मरौ तथा ।। २६ ।। सुतस्यैव गृहे राजन्स्मरन्तौ पूर्वपातकम् ।। सुमित्रस्य च पुत्रोऽभूद्गुरुशुश्रूषणे रतः ।। २७ ।। सुमतिर्नाम धर्मज्ञो देवतातिथिपूजकः ।। अथ क्षयाहे संप्राप्ते पितुस्तु सुमतिस्तदा ।। २८ ।। भार्यां चन्द्रवतीं प्राह सुमतिः श्रद्धयान्वितः ।। अद्य सांवत्सरदिनं पितुर्मे चारुहासिनि ।।२९।। भोजनीया द्विजा भीरु पाकसिद्धिर्विधीयताम् ।। तया कृता पाकसिद्धिः सुमतेर्भर्तुराज्ञया ।। ३० ।। मुक्तं पायसभाण्डे वै सर्पेण गरलं ततः ।। दृष्ट्वा ब्रह्मवधाद्भीता शुनी भाण्डानि सास्पृशत् ।। ३१ ।। द्विजभार्या च तां दृष्ट्वा उल्मुकेन जघान ह ।। भाण्डादीनि च प्रक्षाल्य त्यक्त्वा पाकं सुमध्यमा ।। ३२ ।। पुनः पाकं च कृत्वा तु श्राद्धं कृत्वाविधानतः ।। ततो भुक्तेषु विप्रेषु नोच्छिष्टं च ददौ बहिः ।। ३३ ।। भूमौ क्षिप्तं तया शुन्या उपवासस्तदाभवत् ।। ततो रात्र्यां प्रवृत्तायां सा शुनी क्षुधिता भृशम् ।। ३४ ।। बलीवर्दमुपागत्य भर्तारमिदमब्रवीत् ।। बुभुक्षिताद्य हे भर्तर्न दत्तं भोजनादिकम् ।। ३५ ।। ग्रासादिकं च न प्राप्तं क्षुधा मां बाधते भृशम् ।। अन्यस्मिन्दिवसे पुत्रो मम लेह्यं ददात्यसौ ।। ३६ ।। अद्यं मह्यं किमप्येष उच्छिष्टमपि नो ददौ ।। पायसान्ने पपाताद्य गरलं सर्पसंभवम् ।। ३७ ।। मया विचिन्त्य मनसा मरिष्यन्ति द्विजोत्तमाः ।। संस्पृष्टं पायसं गत्वा बद्धाहं ताडिता भृशम् ।। ३८ ।। दुःखितं तेन मे गात्रं कटिभंग्ना करोमि किम् ।। ततः प्राह च सोऽनड्वान् भद्रे ते पापसंग्रहात् ।। ३९ ।। किं करोमि ह्यशक्तोऽहं भारवाहत्वमागतः ।। अद्याहमात्मनः क्षेत्रे वाहितः सकलं दिनम् ।। ४० ।। मारितश्चात्मजेनाहं मुखं बद्धा बुभुक्षितः ।। वृथा श्राद्धं कृतं तेन जाताद्य मम कष्टता ।। ४१ ।। कृष्ण उवाच ।। तयोः संवदतोरेवं मातापित्रोश्च भारत ।। श्रुत्वा पुत्रस्तथा वाक्यं यदुक्तं च तदोभयोः ।। ४२ ।। पितरौ तौ विदित्वा तु दत्तवान् सुमतिस्तदा ।। तस्यां रजन्यां

तत्कालं ददौ तस्यै च भोजनम् ।। ४३ ।। तदासौ दुःखित पुत्रो ज्ञात्वावस्थां तथा तयोः ।। मातापित्रोस्तु राजेन्द्र द्रुतं संप्रस्थितो वनम् ।। ४४ ।। ज्ञातुमिच्छामि वै कष्टमिति निश्चित्य भारत ।। तत्र गत्वा ज्ञानवृद्धानृषीन् परमधार्मिकान् ।। ४५ ।। प्रणिपत्याब्रवीद्वाक्यं हित चैव तदा तयोः ।। सुमतिरुवाच ।। कथयध्वं विप्रवर्याः प्रश्नमेकं समाहिताः ।। ४६ ।। केन कर्मविपाकेन पितरौ मे तपोधनाः ।। इमामवस्थां संप्राप्तौ मोक्ष्येते पातकात्कथम् ।। ४७ ।। कृष्ण उवाच ।। तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुमतेर्दुःखितस्य च ।। ऋषिः सर्वतपा नाम सर्वज्ञः करुणान्वितः ।। ४८ ।। सुमतिं प्रत्युवाचेदं तत्पित्रोर्मुक्तये तदा ।। ऋषिरुवाच ।। तव माता पुरा विप्र स्वगृहे बालभावतः ।। ४९ ।। प्राप्तमृतुं विदित्वा तु संपर्कमकरोद्द्विज ।। तेन कर्मविपाकेन शुनीयोनिमुपागता ।। ५० ।। पितापि स्पर्शदोषेण बलीवर्दो बभूव ह ।। एतयोर्मुक्तिकामार्थं कुरु त्वमृषिपञ्चमीम् ।। ५१ ।। भार्यया सह विप्रेन्द्र ऋषीन्संपूज्य यत्नतः ।। आचरस्व व्रतं तत्र सप्तवर्षं द्विजोत्तम ।। ५२ ।। अन्ते चोद्यापनं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। शाकाहारस्तु कर्तव्यो नीवारैः श्यामकैस्तथा ।। ५३ ।। कन्दैर्वाथ फलैर्मूलैर्हलकृष्टं न भक्षयेत् ।। प्राप्य भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षस्य पञ्चमीम् ।। ५४ ।। तस्यां मध्याह्नसमये नद्यादौ विमले जले ।। कृत्वापामार्गसमिधा दन्तधावनमादितः ।। ५५ ।। आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ।। ५६ ।। संप्रार्थ्यानेन मंत्रेण कुर्याद्वै दन्तधावनम् ।। मुखदुर्गन्धिनाशाय दन्तानां च विशुद्धये ।। ५७ ।। ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम् ।। अनेन दन्तान्संशोध्य स्नायान्मृत्स्नानपूर्वकम् ।। ५८ ।। तिलामलककल्केन केशान्संशोध्य यत्नतः ।। परिधाय नवे शुद्धे वाससी च समाहितः ।। ५९ ।। पूजयस्व ऋषीन्दिव्यानरुन्धत्या समन्वितान् ।। कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।। ६० ।। जमदग्निर्वसिष्ठश्च साध्वी चैवाप्यरुन्धती ।। मन्त्रेणानेन सप्तर्षीन् पूजयेत्सुसमाहितः ।। ६१ ।। व्रतेन ऋषिपञ्चम्याः कृतेनैव द्विजोत्तम ।। ऋतुसंपर्कजो दोषः क्षयं याति न संशयः ।। ६२ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। तच्छ्रुत्वा सुमतिर्वाक्यं परममृषिभाषितम् ।। गृहमेत्य व्रतं चक्रे सभार्यः श्रद्धयान्वितः ।। ६३ ।। व्रतं तु ऋषिपञ्चम्याः सर्वपापप्रणाशनम् ।। कृत्वा सर्वं यथोक्तं च माता पित्रोः फलं ददौ ।।६४।। व्रतपुण्यप्रभावेण माता तस्य श्वयोनितः ।। मुक्ता नृपतिशार्दूल विमानवरसंस्थिता ।। ६५ ।। दिव्याम्बरधरा भूत्वा गता स्वर्गं च भारत ।। पितापि स मृतो मुक्तः सुमतेः पशुयोनितः ।। ६६ ।।

---

१ कर्तव्यःश्यामाकाहार एव च । नीवारैर्वापि कर्तव्यो हलकृष्टं न भक्षयेत् इत्यपि पाठः अन्नाहार इति शेषः २ प्रयत्नेनेत्यपि पाठः ३ प्राप्नोतीति शेषः

स्वर्गं प्राप्तो महाराज व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। कायिकं वाचिकं वापि मानसं यच्च दुष्कृतम् ।। ६७ ।। तत्सर्वं विलयं याति व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। तस्य यज्जायते पुण्यं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ।। ६८ ।। सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।। सर्व-दानेषु दत्तेषु तदेतद्व्रतचारणात् ।।६९।। कुरुते या व्रतं नारी सा भवेत्सुखभागिनी ।। रूपलावण्ययुक्ता च पुत्रपौत्रादिसंयुता ।। ७० ।। इह लोके सदैव स्यात्परत्र च परां गतिम् ।। एतत्ते कथितं राजन् व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ७१ ।। सर्वसंपत्प्रदं चैव नारीणां पापनाशनम् ।। धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च पुत्रदं च युधिष्ठिर ।। पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापप्रणाशनम् ।। ७२ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे ऋषिपञ्चमीव्रतकथा संपूर्णा ।।

अब भविष्यपुराणोक्त ऋषिपंचमी के व्रतका निरूपण करते हैं-राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे देवदेवेश ! आपके कहे बहुतसे व्रत सुने, अब आप पापविध्वंसक किसी दूसरे व्रतको सुनाओ ।।१।। श्री कृष्ण बोले कि, हे राजेंद्र ! मैं अब और भी एक ऋषिपंचमीके व्रतको कहता हूं जिसके करनेसे स्त्रियोंके सब पाप नष्ट होते हैं ।। २ ।। राजा युधिष्ठिरने पूछा कि, वह पंचमी कौनसी है, उसका नाम ऋषिपञ्चमी क्यों है ? हे यदुनन्दन ! इस व्रतका ऐसा प्रभाव कैसे है जिसके करनेसे स्त्रियोंके सब पातक छूटजाते हैं।। ३ ।। हे प्रभो ! पाप तो बहुत प्रकारके होते हैं, उन पापोंसे स्त्री ऋषिपञ्चमीके दिन व्रत करनेसे ही कैसे छूटजाती है ! इसमें क्या रहस्य है ? कहिये ।। ४ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले-हे राजन् ! जान वा अनजानसे रजस्वला हुयी दुष्टा स्त्री घरके कामोंको परतन्त्रतासे घरके पात्रोंको छूती है ।। ५ ।। इससे उसको महान् पाप लगता है, मरनेपर नरक की प्राप्ति होती है । इसका जो कारण है उसे सुनो जिससे रजस्वला स्त्री ऐसी दूषित होती है ।। ६ ।। हे भारत ! ब्राह्मण, क्षत्रित्र, वैश्य और शूद्रको चाहिये कि, ये रजस्वला स्त्रीको घरसे अलग करें । पहिले देवराज इन्द्र वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्या करनेके दोषका भागी होगया था ।। ७ ।। हे राजशार्दूल ! इससे वृत्रसूदन लज्जित हो पवित्र होनेके उपायको पूछनेके लिये देवताओंके साथ ब्रह्माजीके समीप गया ।। ८ ।। ब्रह्माजीने क्षणभर समाधि लगाके हे राजेन्द्र ! उसको प्रसन्न चित्तसे पवित्र कर दिया ।। ९ ।। हे राजशार्दूल ! चतुर्मुख ब्रह्माजीने इन्द्रकी ब्रह्महत्याके चार विभाग किये और उन पापोंको चारजगह फेंक दिया ।। १० ।। एक भाग तो अग्निमें गिरा, जो अग्निको जलानेके समय पहिले धूवां सहित ज्वाला उठती है वह उस अग्निमें इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक भाग है, वर्षान्तमें नदियोंके प्राथमिक आगेके जलमें जो मैलापन दीखता है वह ब्रह्महत्याका दूसरा हिस्सा है । पर्वतोंके ऊपर वृक्षोंमें जो गोंद है वह ब्रह्महत्याका तीसरा भाग है, हे पार्थिव ! ऐसे ही स्त्रियां जो तीन दिन रजस्वला होती हैं वह चौथा हिस्सा ब्रह्महत्याका है ।। ११ ।। अतः रजस्वला स्त्रीको घरसे अवश्य अलग रखे, क्योंकि ब्रह्माजीने चारों वर्णवालोंके लिये यही आज्ञा दी है ।। १२ ।। पहिले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्महत्यारी और तीसरे दिन धोबिनसी रहती है । ऐसे तीन दिन तक ब्रह्महत्याके चतुर्थ भागको महिने महिने भोगती है फिर चौथे दिन शुद्ध होती है ।। १३ ।। इससे जानमें या अनजानमें जो उसका किसीके भी साथ सपर्म्क होता है उसको पातकी समझना चाहिये । उस पापके नाशके लिये ऋषिपञ्चमीका व्रत करना चाहिये ।। १४ ।। यह ऋषिपञ्चमी सब पाप और उपद्रवोंको शान्त करती है । ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र चारों वर्णवाले सभी इस व्रतको कर सकते हैं, विशेष करके स्त्रियोंको चाहिये कि, अवश्य करें ।। १५ ।। इस प्रसंग में जो पहिले एक घटना हो चुकी है, उसे सुनाता हूं । पूर्वकालमें सत्ययुगके समय विदर्भा नाम राजधानीमें एक राजा हुआ था।। १६ ।। यह श्येनजित् राजर्षि चारों वर्णको पालना करता था । उसके देशमें वेद और वेदोंके अङ्गोंका पारदर्शी ।। १७ ।। सब प्राणियों पर दयादृष्टि रखनेवाला, सुमित्रनामक ब्राह्मण वसता था । हे राजन् ! वह खेतीकरके अपने कुटुम्बका निर्वाह करता था

॥ १८ ॥ उसकी जयश्री नामकी स्त्री अत्यन्त साध्वी तथा पतिकी शुश्रूषा करनेवाली थी, उसके बहुतसे नौकर तथा प्यारे बान्धव लोग थे ॥ १९ ॥ वर्षाऋतुमें खेतीके कामोंसे उसे विश्राम नहीं मिलता था; इससे वह सुन्दरी मनमें घबरा गई ॥ २० ॥ एक दिन उसने अपने ऋतुधर्मको प्राप्त हुआ देखा, पर रजस्वला होकर भी वह अपने घरके कामोंको करती रही ॥ २१ ॥ हे राजन् ! रजस्वला होनेपर भी वो भामिनी पात्रोंको छूती रही, बहुत कालके बाद जब वह मरी तब ॥ २२ ॥ उसका पति भी मृत्युको प्राप्त होगया । हे राजन् ! ऐसे वे दोनों स्त्री पुरुष अपने किये कर्मोंके अनुसार लोकान्तरके पथिक होगये ॥ २३ ॥ उस ब्राह्मणकी जयश्री नामकी स्त्रीने रजस्वला होनेपर भी जो पात्रोंका स्पर्श किया था उस दोषसे वो कुतिया बनी, हे राजन् ! उसका पति सुमित्र भी ॥ २४ ॥ उसके संपर्कके दोषसे बैल होगया, हे राजन् ! इस प्रकार वे (दोनों) दम्पती अपने कर्म्मोंके वश होकर ॥ २५ ॥ ऋतुके संपर्कके दोषसे तिर्य्यंग्योनिमें उत्पन्न हुए, किंतु उन्होंने और बहुतसे धर्म्मोंका आचरण पालन किया था, इससे पूर्वजन्म वृत्तान्त याद रहा ॥ २६ ॥ इससे वे ऐसी नीच योनिमें पडकर भी जातिस्मर हो पूर्वपातकको याद करते हुए अपने पुत्रके यहां ही निवास करने लगे । सुमित्रका पुत्र अपने बडोंकी शुश्रूषामें लग गया ॥ २७ ॥ यह सुमति बडाही धर्म्मज्ञ एवम् देवता और अतिथियोंका पूजक था । जब पिताकी मरणतिथि आई उस दिन वह पिताका श्राद्धकरनेके लिए तयार होकर ॥ २८ ॥ चन्द्रवती भार्यासे श्रद्धाके साथ बोला कि, हे चारुहासिनि ! आज मेरे पिताका सांवत्सरिक श्राद्ध दिन है ॥ २९ ॥ हे भीरु ! ब्राह्मणोंको भोजन कराना है, तुम रसोई तैयार करो, पतिकी आज्ञासे उसने पाक तैयार किया ॥ ३० ॥ सर्पने खीरमें जहर डाल दिया । (सुमतिकी जो माता कुत्ती होकर वहां रहती थी, उसने विचारा कि, पूर्वजन्ममें मैंने रजस्वला होकर भी भाण्डोंसे हाथ लगाया था इसीसे मैं कुत्ती बनी,) इस खीरको यदि ब्राह्मण खायँगे तो मेरा पुत्र ब्रह्महत्याका पातकी होगा, इस कारण उस कुत्तीने खीरके पात्रोंसे मुख लगा दिया ॥ ३१ ॥ चन्द्रवतीने यह देख, जलती लकडी उसके शिरमें मार दी, फिर उस सुमध्यमाने अन्नको दूर गेर पात्रोंको धो दिया ॥ ३२ ॥ पीछे दूसरी बार फिर रसोई तयार करके विधिवत् श्राद्ध किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराके उनका उच्छिष्ट अन्न बाहर नहीं गेरा ॥ ३३ ॥ किंतु धरतीमें गड्ढा खुदाकर उसमें डाल दिया । इससे उस कुत्तीका उस दिन अपने आप उपवाससा हो गया, फिर रातको वह कुत्ती भूखसे अति पीडित हो अपने पति बैलके पास जाकर बोली कि, मैं भूखी मरती हूँ, आज मुझे खानेपीनेको ही कुछ न मिला है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ पत्रावलिमें जो ग्रास दिया जाता है वह भी नहीं मिला इससे भूख मुझे अत्यन्त पीडित कर रही है, और दिन तो यह मेरा पुत्र लेह्य पेय दिया करता था ॥ ३६ ॥ आज तो कुछ झूठा मुझे नहीं दिया है, खीरमें सर्पने जहर गेर दिया था ॥ ३७ ॥ मैंने शोचा कि, यदि द्विजोत्तमोंने यह खाली तो अवश्य मरेंगे, इससे उसे छू लिया, मैं बांधकर बहुत पीटी गई हूँ ॥ ३८ ॥ उससे मेरा शरीर बहुत पीडित होगया, कटि टूट गयी है, अब क्या करूं ? यह सुन वो बैल कहने लगा कि, हे भद्रे ! तेरे पापके दोषसे ॥ ३९ ॥ मैं इस भारवाहकी योनिमें पडा हुआ हूं, मैं क्या करूँ ? मेरी चलनेकी शक्ति नहीं थी तो भी आज मुझको दिनभर अपना खेत जोतना पडा है ॥ ४० ॥ मेरा मुंह बांध दिया, मुझे बहुत पीटा, इसने मेरा, जो श्राद्ध किया है वह सब निष्फल होगया क्योंकि मैं तो इतने कष्टमें पडा हुआ हूं ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले–हे भारत ऐसे वे दोनों मातापिता कुत्ती और बैल बनकर रातमें अपनाअपना दुःख कहरहे थे, उसको सुनकर ॥ ४२ ॥ सुमतिने जानलिया कि, ये दोनों मेरे माता पिता हैं, उसी रातको उसने दोनोंको भोजन दिया ॥ ४३ ॥ वो पुत्र अपने माँ-बापोंकी ऐसी अवस्था देखकर हे राजेन्द्र ! वनको चल दिया ॥ ४४ ॥ मेरे माबापोंकी ऐसी दशा क्यों हुई ? इस बातको जाननेके लिये ही वो वनमें गया था. वहां उसने परम धार्मिक ऋषियोंको ॥४५॥ प्रणाम करके उनके सामने मातापिताके कल्याणकारी वचन कहे कि, हे श्रेष्ठ बुद्धिमान् ब्राह्मणों ! मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं एकाग्र होकर कहें ॥ ४६ ॥ हे तपोधनो ! किस कर्मविपाकसे मेरे माता पिता इस दशाको प्राप्त हुए हैं कैसे उन्हें छुटाऊं ? सो कहिये ॥ ४७ ॥ भगवान् कृष्ण बोले कि, उस दुखित सुमतिके ऐसे वचनोंको सुनकर दयालु सर्वज्ञ सर्वतपा नामक ऋषिने उसके ॥ ४८ ॥ मातापिताओंकी मुक्तिका उपाय बताया कि हे विप्र ! पहिले जन्ममें अपने घरमें तेरी माताने बालभावके कारण ही ॥ ४९ ॥ प्राप्तहुए ऋतुकालको

जानकर भी हे द्विज ! सम्पर्क कर लिया था, उसी कर्मविपाकसे वह कुतिया बनी है ।। ५० ।। आपका पिता भी स्पर्शके दोषसे बैल होगया है. इन दोनोंको इससे छुटानेके लिये तू ऋषिपंचमी कर ।। ५१ ।। हे विप्रेन्द्र ! स्त्रीके साथ ऋषियोंका पूजन करके प्रयत्नके साथ सात वर्षतक इस व्रतको करना ।। ५२ ।। ष नफे लोभको छोडकर अन्तमें उद्यापन और शाकाहार करना चाहिये । नीवार या श्यामाक भी काममें ले लेने चाहिये ।। ५३ ।। अथवा कन्द, मूल, फल इनसे आहार कर ले, पर हल जोतकर पैदा की हुई किसीभी वस्तुको न ले ।। ५४ ।। इसमें मध्याह्नके समय नदी आदि निर्मल जलके किनारे अपामार्गकी समिधसे पहिले दन्तधावन करे ।। ५५ ।। दन्त धावन करनेसे पहिले " आयुर्बलं " इस मन्त्रको पढता हुआ उस अपामार्गके काष्टका स्पर्श करे कि. हे वनस्पते ! तुम आयु बल, यश. वर्च, वसु (धन) ब्रह्म ज्ञान और मेधा (स्मरणशक्ति) को मुझे दो ।। ५६ ।। दन्तधावनके समय मनमें यह भावना रखे कि, मैं मुखकी दुर्गन्धीके दूर होनेके लिये एवम् दाँतोंके साफ होनेके लिये और गात्रोंके ष्ठीवन (कफ पातन द्वारा शुद्धि) के लिये दन्तधावन करता हूं । इस प्रकार अपामार्गके काष्ठसे दाँतोंको मलकर कुल्ले करे, फिर मृत्तिका लगाके स्नान करे ।। ५७ ।। ५८ ।। पीछे तिलोंकी और आँवलोंकी पीठी लगाकर केशोंके मैलको अच्छी तरह दूरकरे, पीछे समाहित हो दो शुद्ध नूतन वस्त्र धारण करे ।। ५९ ।। फिर अरुन्धती सहित दिव्य सप्त ऋषियोंकी पूजा करे । वे सात ऋषि येहैं—१ कश्यप, २ अत्रि ३ भरद्वाज, ४ विश्वामित्र, ५ गौतम ।। ६० ।। ६ जमदग्नि, ७ भगवान् वसिष्ठ और आठवीं पतिव्रता महाभागा अरुन्धती । इनका पूजन इनके ही नामोंसे मन्त्र कल्पना करके समाहित हो करे कि, "ओं भूर्भुवः स्वः कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि, कश्यपके लिये नमस्कार है कश्यपको बुलाता हूं, भो कश्यपइहागच्छ हे कश्यप यहां आ, इह तिष्ठ यहां बैठ, पूजां गृहाण पूजा ग्रहणकर, ओं भूर्भुवः स्वः अरुन्धती सहिताय वसिष्ठाय नमः अरुन्धती सहित वसिष्ठके लिये नमस्कार है, अरुन्धती सहित वसिष्ठमावाहयामि अरुन्धती सहित वसिष्ठको बुलाता हूं' इत्यादिरूपसे नाममन्त्रोंकी कल्पना करके अरुन्धती सहित सप्तर्षियोंका पूजन करना चाहिये ।। ६१ ।। ऋषिपञ्चमीके व्रतके करनेसे ऋतुकालके सम्पर्कका पातक अवश्य नष्ट होगा इसमें संयश मत करो ।। ६२ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, सर्वतपा ऋषिके उत्तम वचनोंको सुनकर सुमति अपने घरपर आया । फिर श्रद्धान्वितहो उसने अपनी भार्याके साथ उसी विधिसे समस्त पातकोंका अन्त करनेवाला ऋषिपञ्चमीका व्रत किया ।। ६३ ।। जैसे सर्वतपा मुनिने व्रत करना बताया था ठीक उसी रीतिसे उस सुमति ब्राह्मणने ऋषिपञ्चमीके व्रतको (सात वर्षतक) करके (उद्यापनके बाद) उसका पुण्यफल अपने मातापिताओंके लिये दे दिया ।। ६४ ।। इसके मिलनेसे उसकी माता जयश्री कुत्तीकी योनिसे छूटकर हे नृपतिशार्दूल ! उत्तम विमानपर चढ गई वह दिव्य वस्त्रादिकोंसे भूषित हुई विमानपर चढ स्वर्गमें चली गई, हे भारत ! हे महाराज ! ! वह सुमतिका पिताभी बैलकी योनिसे छूटकर स्वर्ग पहुंच गया । कायिक, वाचिक और मानसिक जो जो पाप हों ।। ६५-६७।। वे सब ऋषिपञ्चमीके व्रत करनेसे विलीन होजाते हैं । हे नृपोत्तम ! इस व्रतका जो पुण्यफल होता है उसे मैं सुनाता हूं, आप सुनें ।। ६८ ।। दूसरे दूसरे जो व्रत हैं उन सबके करनेसे तथा सब तीर्थोंके सेवन एवं सब दानोंके करनेसे जो पुण्य होता है वह सब इस एक ऋषि पञ्चमीके व्रतानुष्ठानसे मिलता है ।। ६९ ।। जो स्त्री इस व्रतको करती है वह सदा सुख भोगनेवाली और रूप लावण्यसे सम्पन्न एवं पुत्र पौत्रादिशालिनी होती है ।। ७० ।। इस लोकमें सदा सुखभोग, परलोकमें सद्गतिको प्राप्त होती है हे राजन् ! मैंने व्रतोंमें उत्तम व्रत तुम्हारे लिये कहा है ।। ७१ ।। हे युधिष्ठिर ! यह व्रत सब सम्पत्तियोंका देनेवाला स्त्रियोंके पापोंका नाशक, धन, यश, स्वर्ग और पुत्रसुखका देनेवाला है । इस व्रतकी कथाको जो पढ़ते या सुनते हैं उनके सब पाप नष्ट होते हैं ।।७२।। यह भविष्य पुराणका कहे हुए ऋषिपंचमीके व्रतकी कथा पूरीहुई ।।

अथोद्यापनम् ।।

युधिष्ठिर उवाच ।। किमस्योद्यापनं प्रोक्तं व्रतपूर्णफलप्रदम् ।। सुमतिः केन विधिना चकार वद तत्त्वतः ।। १ ।। कृष्ण उवाच ।। पूर्वस्मिन्दिवसे कुर्यादेकभक्तं समाहितः ।। प्रातरुत्थाय सुस्नातस्ततो गुरुगृहं व्रजेत् ।। २ ।। प्रार्थयेत्तं त्वमाचार्यो भवोद्यापनकर्मणि ।। पूर्वोक्तेनैव विधिना स्नात्वा भक्त्या समन्वितः ।। ३ ।। शुचौदेशे समालिप्य सर्वतोभद्रमण्डले ।। अव्रणं सजलं कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा ।। ४ ।। संस्थाप्य वस्त्रसंवीतं कण्ठदेशे सुशोभनम् ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं फलगन्धाक्षतैर्युतम् ।। ५ ।। सहिरण्यं समाच्छाद्य ताम्रेण पटलेन वा ।। वंशमृन्मयपात्रेण यवपूर्णेन चैव हि ।। ६ ।। आच्छादयेत्तु चैलेन लिखेदष्टदलं ततः ।। सौवर्ण्यः प्रतिमाः कार्या ऋषीणां भावितात्मनाम् ।। ७ ।। पलेन वा तदर्धेन तदर्धाधेन वा पुनः ।। शक्त्या वा कारयेत्तत्र वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। ८ ।। वितानं पञ्चवर्णं च फलपुष्पसमन्वितम् ।। बध्नीयादुपरि श्रीमत्संभारान् संविधाय च ।। ९ ।। मध्याह्ने पूजयेद्भक्त्या ऋषीञ्छ्रद्धासमन्वितः ।। कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।। १० ।। जमदग्निर्वसिष्ठश्च साध्वी चैवाप्यरुन्धती ।। मन्त्रेणानेन राजेन्द्र कृत्वा पूजां समाहितः ।। ११ ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ।। कृतनित्यक्रियः प्रातर्जुहुयात्तिलसर्पिषा ।। १२ ।। वैदिको वाथ पौराण अधि[1]कारान्मनुः स्मृतः ।। अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।। १३ ।। पुनः पूजां ततः कृत्वा गुरुं संपूजरेद्व्रती ।। स्वर्णाङ्गुलीयवासोभिः कुण्डलामृतभोजनैः ।। १४ ।। दद्यादेकां सवत्सां च गुरवे गां पयस्विनीम् ।। पूजयेदृत्विजः सप्त वासोभिर्दक्षिणादिभिः ।। १५ ।। कलशानुपवीतानि दद्यात्तेभ्यः सुभक्तितः ।। आचार्यं च सपत्नीकं प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।। १६ ।। भोजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या दीनानाथान् प्रतर्प्य च ।। लब्ध्वानुज्ञां तु भुञ्जीत इष्टैर्बन्धुजनैः सह ।। १७ ।। उद्यापनविधिः प्रोक्तः सर्वत्रायं फलार्थिनाम् ।। एवं या कुरुते भूप उद्यापनविधिं परम् ।। १८ ।। सर्वपापविनिर्मुक्ता स्वर्गे लोके महीयते ।। इह लोके चिरं कालं भर्त्रा सह शुचिस्मिता ।। १९ ।। पुत्रपौत्रैः परिवृता भुक्त्वा भोगान्मनोहरान् ।। निष्पापा सुभगा नित्यं लभते चाक्षयां गतिम् ।। २० ।। इति श्रीभविष्यपुराणे ऋषिपंचमीव्रतोद्यापनविधिः ।।

अब उद्यापनकी विधि कहते हैं—युधिष्ठिर बोले कि, इस व्रतका उद्यापन किस प्रकार करना चाहिये ! सो कहिये, जिसके करनेसे व्रतका पूरा फल मिले । सुमतिने किस प्रकार उद्यापन किया था सो आप यथार्थ रूपसे कहो ।। १ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, व्रत करनेवाला उद्यापनके प्रथम दिन अर्थात् चौथके दिन समा-

---

१ असंधिरार्षः

हित हो ऋषियोंके चरणोंमें ही चित्त लगाता रहे, एक बार भोजन करे । दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर विधिवत् स्नानादि करे, फिर गुरुके घरजाय ।। २ ।। और प्रार्थना करे कि हे प्रभो ! आप उद्यापन करानेके लिये आचार्य होवें । फिर पूर्वोक्त विधिके अनुसार स्नान करे ।। ३ ।। भक्तिपूर्वक पवित्र स्थलमें गोमयादिकोंका लेप करे उसमें सर्वतोभद्रमण्डल लिखे, उसके मध्यमें अव्रण, जलपूर्ण तांबेका या मृत्तिकाका कलश ।। ४ ।। स्थापित करें उसके कण्ठभागमें सुन्दर वस्त्र बांधे, उसमें पञ्च रत्नोंको छोडके पूगीफल, गन्ध, अक्षत ।। ५ ।। और सुवर्ण भी डाले । पीछे तांबेके, काष्ठके या मृत्तिकाके यवपूर्ण पात्रसे उसके मुखको ढक दे ।। ६ ।। उसके ऊपर वस्त्र बिछावे, उसमें अष्टदल कमलका आकार लिखे, उसके आठ दलोंमें कश्यपादि सप्त ऋषियों तथा आठवी अरुन्धतीकी सुवर्णमयी (आठ) प्रतिमाओंको स्थापित करे ।। ७ ।। वो एक या, आधे या चौथाई पल सुवर्णकी होना चाहिये, इनके बनानेवाला जैसी सम्पत्तिवाला हो तदनुसार ही सुवर्णकी कमी बेशी करे, वित्त रहते कृपणता न करनी चाहिये ।। ८ ।। फिर सर्वतोभद्रमण्डलके ऊपर वितान करे, उस वितानका वस्त्र पांचरङ्गका हो, उसके चार भागोंमें या विशेषभागोंमें जैसा सम्भव हो फल और पुष्पोंको लटकवावे, वितानके ऊपर भी ध्वज पताकादि बांधे । ऐसे उत्तम उत्तम सम्भारोंसे उस सर्वतोभद्रमण्डलकी शोभा ठीक करके ।। ९ ।। भक्ति और श्रद्धा सहित मध्याह्नमें अरुन्धती सहित सप्तर्षियोंका पूजन करे । "ओं भूर्भुवःस्वः कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि" कश्यपके लिये नमस्कार, कश्यपको बुलाताहूं । सूर्वोक्त नाममन्त्रोंसे हे राजेन्द्र ! कश्यपादि वसिष्ठान्त सात ऋषियों और अरुन्धतीका आवाहनादि षोडशोपचारविधिसे पूजन करना चाहिये ।। १० ।। ११ ।। रातमें जागरण करे, उसमें पुराणोंकी पवित्र कथाओंका श्रवण, पठन और मननादि करे । फिर प्रातःकाल नित्यक्रिया करके तिल घृतसे हवन करे ।। १२ ।। अधिकारीके अनुरूप वैदिक या पौराणिकमन्त्र समझने, यानी यदि व्रती उपनीत हो तो वैदिकमन्त्रोंसे, यदि न हो तो पौराणिकमन्त्रोंसे ही हवन करे । मन्त्रोंके अन्तमें "स्वाहा इस पदकी योजना करनी चाहिये । आठ अधिक एक हजार, या एक सौ आठही आहुतियां दे ।। १३ ।। हवनान्तमें फिर पूजा करे फिर आचार्यकी पूजा करनी चाहिये । सुवर्णकी अँगूठी, वस्त्र, कुण्डल और मधुर भोज्यपदार्थ दे ।। १४ ।। बच्छे समेत दूधवाली एक गौको भी आचार्यके लिये दे । सात ऋत्विजोंको सात वस्त्र और दक्षिणा देकर उनका पूजन करे ।। १५ ।। इनके लिये भक्तिसे कलश और यज्ञोपवीतका दान करे । सपत्नीक आचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके क्षमा प्रार्थना करे ।। ६ ।। कि, मेरा यह व्रतोद्यापन आपके अनुग्रहसे परिपूर्ण हो, इसमें जो मैंने त्रुटि की हो वे सब आपके आशीर्वादसे पूर्ण हो. आचार्यभी "एवमस्तु" ऐसे कहे, ब्राह्मणोंको भक्तिसे भोजन करावे दीन अनाथजनोंकी याचना पूर्ण करके उनको संतुष्ट करे, ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर प्रियजन एवं बान्धवोंके साथ भोजन करे ।। १७ ।। यह उद्यापनविधि है, जो व्रतका संपूर्णफल चाहते हैं उनके लिये यही विधि सब शास्त्रोंमें लिखी है । हे राजन् ! जो स्त्री इस उत्कृष्ट उद्यापन विधिको करती है ।। १८ ।। वह सब पापोंसे निर्मुक्त हो स्वर्गमें सुख भोगती है तथा इस लोकमें भी वह मन्दहासिनी पतिके साथ चिरकाल । १९ ।। पुत्रपौत्रोंके सुखको देखती हुई सुन्दर भोग भोगती है, निष्पाप वह सुभगा दिव्य पदको प्राप्त होती है ।। २० ।। यह भविष्यपुराणके कहे हुए ऋषिपञ्चमीके व्रतकी उद्यापनविधि पूरी हुई ।।

उपांगललिताव्रतम् ।।

आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतम् । तत्र दाक्षिणात्यानां शिष्टाचार एव प्रमाणम् । तच्च मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम् " पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः" इति माधवीये हारीतोक्तेः । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा " युगभूतानां " इति युग्मवाक्यात् यत्तु शक्तिपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्येति भूरिजन्मा जजल्प तत्तुच्छम् । रात्रिव्यापिन्या ग्रहणे प्रमाणाभावात् । "भुक्त्वा

जागरणे नक्ते चन्द्रायार्ध्यव्रते तथा । ताराव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते ।।" इति हेमाद्रच्युदाहृतवचनस्य जागरणप्रधानव्रतविषये सावकाशत्वात् अङ्गानुरोधेन प्रधान निर्णयस्य क्वाप्यदृष्टत्वादङ्गभूतजागरणानुरोधेनैतन्निर्णयस्यायोग्यत्वात् ।। एतद्विधिस्तु–प्रातरुत्थायावश्यकं कर्म निर्वर्त्य वनं गत्वा– आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते।। इति मंत्रेण वनस्पतिं संप्रार्थ्य ।। अपामार्गसमुद्भूतैर्दन्तकाष्ठैः करोम्यहम् ।। दन्तानां धावनं मातः प्रसन्ना भव सर्वदा ।। इति मंत्रेणाष्टचत्वारिंशत्काष्ठान्युपादाय नद्यादौ गच्छेत् ।। ततो मुखदुर्गन्धिनाशाय दन्तांना च विशुद्धये ।। ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनमिति मंत्रेणाष्टचत्वरिंशद्वारं दन्तधावनं कृत्वा यथाविधि स्नानानि विधाय शुक्ले वाससी परिधाय गृहमागच्छेत् ।। ततः शुचौ देशे मण्डपिकां कृत्वा तन्मध्ये सुवर्णादिनिर्मितां करण्डकपिधानरूप प्रतिमां स्थापयित्वा षोडशोपचारैर्विशेषतो दूर्वाभिश्च पूजयेत् ।। ततो विंशत्या वटकैर्वायनं दत्त्वा तावद्भिर्वटकैः स्वयं भोजनं विधाय विर्जनं कुर्यादिति ।। अथ पूजा ।। आचम्य प्राणानायम्य देशकालौसंकीर्त्य पुत्रविद्याधनरोगनिर्मुक्तिसुखोविजयपुष्टचायुष्यादिकामः, स्त्री तु अवैधव्यकामा, उपाङ्गललिताप्रीत्यर्थं यथा मिलितोपचारैरुपाङ्गललितापूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य पूजयेत् ।। नीलकौशेयवसनां हेमाभां कमलासनाम् ।। भक्तानां वरदां नित्यं ललितां चिन्तयाम्यहम् ।। ध्यायामि ।। आगच्छ ललिते देवि सर्वसंपत्प्रदायिनि ।। यावद्व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधौ भव।।हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।। चन्द्रां हिरण्यमीं लक्ष्मीं जातवेदोममावह ।। आवाहनम् ।। कार्तस्वरमयं दिव्यं नानामणिगणान्वितम् ।। अनेकशक्तिसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ।। तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।। यस्यांहिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। आसनम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ।। तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। अश्वपूर्णां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।। पाद्यम् ।। विधानं सर्वरत्नानां त्वमनर्घ्यगुणा ह्यसि ।। तथापि भक्त्या ललिते गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। कांसोस्मितांहिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तींतृप्तां तर्पयन्तीम् ।। पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।। अर्घ्यम् ।। पाटलोशीरकर्पूरसुरभि स्वादु शीतलम् ।। तोयमाचमनीयार्थं ललिते प्रतिगृह्यताम् ।। चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।। तां पद्मनेमिं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ।। आचम० ।। पयोदधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं प्रीयतां परमेश्वरि ।। आप्याय० ऋक् । दधिक्राव्णो० ऋक् । घृतं

मिमिक्षे इति ऋक् । मधुवातेति ऋक् । स्वादुःपवस्वेति ऋक् । पंचामृतस्नानम् ।। मंदाकिन्याःसमुद्भूतं हेमाम्भोरुहवासितम् ।। स्नानाय ते मया भक्त्या दत्तं स्वीक्रियतां जलम् ।। आदित्यवर्णे तपसोधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोथ बिल्वः ।। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायांतराश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।। स्नानम् ।। सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।। उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।। प्रादुर्भुतोस्मि राष्ट्रेस्मिन्कीर्तिमृद्धि ददातु मे ।। वस्त्रम् ।। मुक्तामणिगणोपेतमनर्घ्यं च सुखप्रदम् ।। उत्तरीयं सुखस्पर्शं ललिते प्रतिगृह्यताम् ।। उत्तरीयवस्त्रम् ।। कृष्णकाचाष्टकयुतं सूत्रं ग्रैवेयकं तथा ।। दास्यामि कण्ठभूषार्थं प्रत्यङ्गललिते तव ।। कण्ठमालाम् ।। मलयाचलसम्भूतं धनसारं मनोहरम् ।। हृदयानन्दनं चारु चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।। अभूतिमसमृद्धि च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।। चन्दनम् ।। अक्षता विमलाः शुद्धा मुक्तामणिसमप्रभाः ।। भूषणार्थं मया दत्ता देहि मे निर्मलां धियम् ।। गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।। ईश्वरीं सर्वभूतानां तापिहोपह्वये श्रियम् ।। अक्षतान् ।। मालती चम्पकं जातितुलसी केतकानि च ।। मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।। पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा– उपाङ्गललितायै नमः पादौ पूजयामि । भवान्यै० गुल्फौ० ।। सिद्धेश्वर्यै० जंघे पू० । भद्रकाल्यै० जानुनी पू० । श्रियै० ऊरू पू० । विश्वरूपिण्यै० कटिं पू० । देव्यै० नाभिं पू० । वरदायै० कुक्षिं पू० । शिवायै० हृदयं पू० । वागीश्वर्यै० स्कंधौ पू० । महादेव्यै० बाहू पू० । प्रकृतिभद्रायै० करौ पू० । पद्मिन्यै कण्ठं पू० । सरस्वत्यै० मुखं पू० । कमलासनायै० नासिकां पू० । महिषमर्दिन्यै० नेत्रे पू० । लक्ष्म्यै० कर्णौ पू० भवान्यै० ललाटं पू० । विंध्यवासिन्यै० शिरः पू० सिंहवाहिन्यै० सर्वाङ्गं पू० ।। देवद्रुमरसोद्भूतः कालागुरुसमन्वितः । आघ्रेयतामयं धूपो भवानि घ्राणतर्पणः ।। कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दम ।। श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।। धूपम् ।। चक्षुर्दं सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम् ।। आर्तिक्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। आपः स्रजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।। दीपम् ।। मोदकापूपलड्डूकवटकोदुम्बुरादिभिः ।। सहित पायसान्नेन नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिपिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।। नैवेद्यम् ।। मलयाचलसंभूतं घनसारं मनोहरम् ।। करोद्वर्तनकं चारु गृहाण परमे-

श्वरि ।। करोद्वर्तनम् ।। कर्पुरैलालवङ्गादितांबूलीदलसंयुतम् ।। क्रमुकस्य फलेनैव ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।। सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह । तांबूलम् ।। मातुलिङ्गं नारिकेलं फलं खर्जुर-संभवम् ।। जम्बीरं पनसं वापि गृह्यतां परमेश्वरि ।। इदं फलं मया देवि० तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽ-श्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ।। फलम् ।। हिरण्यगर्भ० यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहु-यादाज्यमन्वहम् ।। श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।। दक्षिणाम् ।। चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रति-गृह्यताम् ।। पद्मासने पद्म ऊरू पद्माक्षि पद्मसंभवते ।। तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ।। नीराजनम् ।। उपाङ्गललिते मातर्नमस्ते विन्ध्यवासिनि ।। दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं नमस्ते विश्वरूपिणि ।। अश्वदायै च गोदायै धनदायै महाधने ।। धनं मे लभतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। अथ दुर्वांकुरान् साग्रांश्चत्वारिंशत्तथाष्टभिः ।। अधिकान् हस्त आदाय मंत्रमेतं जपेद्बुधः ।। मंत्रः– बहुप्ररोहा सततममृता हरिता लता ।। यथेयं ललिते मातस्तथा मे स्युर्म-नोरथाः ।। इत्युक्त्वा पूजयेद्देवीं दूर्बाभिः कुसुमैस्तथा ।। मंत्रेणानेनाष्टचत्वारिं शद्भिस्तु समाहितः ।। दूर्वांकुरान् ।। प्रदक्षिणात्रयं देवि प्रयत्नेन मया कृतम् ।। तेन पापानि सर्वाणि व्यपोहन्तु नमाम्यहम् ।। प्रदक्षिणाम् ।। साष्टाङ्गोऽयं प्रणा-मस्ते कृतस्तुभ्यं यथाविधि ।। त्वद्दास इति मां भक्त्या प्रसीद परमेश्वरि ।। नम-स्कारम् ।। दीनोऽहं पापयुक्तोऽहं दारिद्रैकनिकेतनः ।। समुद्धर कृपासिन्धो कामान्मे सफलान्कुरु ।। प्रार्थनाम् ।। अथ वायनम्–अथ वाणकमादाय विंशत्या वटकैर्युतम् ।। क इदं कस्मेति मंत्रेण आचार्याय निवेदयेत् ।। पक्वान्नफलसंयुक्तं सघृतं दक्षिणा-न्वितम् ।। द्विजवर्याय दद्यात्तु व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। उपाङ्गललितादेव्या व्रतसंपूर्ति-हेतवे ।। वाणकं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। इति वायनमन्त्रः ।। ततः कथां समाकर्ण्य वाणकान्नस्य संख्यया ।। स्वयं भुञ्जीत चैवान्नं वाग्यतः सह बान्धवैः ।। रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ।। प्रभाते पूजयद्देवीं ततः कुर्याद्विसर्जनम् ।। सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया ।। मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दि-रम् ।। इति विसर्जनम् ।। इति वार्षिकपूजाविधिः ।।

उपाङ्गललिताव्रत–आश्विन सुदि पञ्चमीके दिन होता है । इसका प्रमाण केवल दक्षिणियोंका परम्परा-प्राप्त शिष्टाचार ही है । यह उपाङ्गललिताव्रत मध्याह्नव्यापिनी तिथिमें करना चाहिये, क्योंकि, कालमाध-वमें, माधवाचार्यने हारीतस्मृतिके वाक्यका आधार लेकर पूजाप्रधान सभी व्रतोंमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी लिखी है । पञ्चमी दो दिन मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा दोनोंही दिन नहीं हो तो पहले दिन ही यह व्रत करना चाहिये. क्योंकि ' युगभूतानाम् " यह युग्मवाक्य है यानी जब व्रततिथियोंके निर्णयके समय यह

सन्देह उपस्थित हो कि, यह तिथि दोनों दिन उस समयमें वर्त्तमान है, या दोनों ही दिन उस समयमें नहीं हैं तब किस दिन व्रत किया जाय ? तब युग्मवाक्यसे निर्णय करना चाहिये; यह शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है ।

युग्मवाक्य–" युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ।। प्रतिपद्यप्यभावस्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यस्तं महादोषं (दुष्टं) हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।" द्वितीया-युग्म, तृतीया–अग्नि, चतुर्थी–युग, पञ्चमी–भूत, षष्ठी–षट्, सप्तमी–मुनि, अष्टमी–वसु, नवमी–रन्ध्र, एकादशी–रुद्रसे द्वादशी, चतुर्दशीसे पूर्णिमा, प्रतिपदा और अमावस्या इन तिथियोंमें दो दो तिथियोंका योग हो यानी द्वितीयाके साथ तृतीयाका, एवं चतुर्थीके साथ पञ्चमीका इत्यादि क्रमसे संयोग हो तो यह अत्यन्त पुण्यफलका देनेवाला है और इनका संयोग न होना पूर्वोपार्जित पुण्यको भी नष्ट करता है ।। जो भूरिजन्माने यह कहा है कि, उपाङ्गललिता शक्ति देवी है, अतः इसके पूजनमें भी रात्रिव्यापिनी ही पञ्चमी ग्रहण करनी चाहिये. यह उनका कहनाभी तुच्छ है यानी अविचार रमणीय है, क्योंकि, उपाङ्गललिताकी व्रतकथामें कोई विशेष वाक्य तो मिलताही नहीं कि, रात्रिमें उपाङ्गललिताका पूजन करे. शक्तिपूजाभी विशेषप्रमाणके न होने पर मध्याह्नमें ही की जा सकती है इससे यह भी सिद्धान्त बाधित नहीं हुआ कि दुर्गा लक्ष्मी पूजनादि भी दिनमें क्यों नहीं किये जाते रात्रिमेंही क्यों होते हैं ? क्योंकि–दुर्गा लक्ष्मी आदि देवियोंका पूजन रात्रिमें करना स्मृत्यन्तरमें सिद्ध है । यदि इस व्रतकी कथामें रात्रिपूजाका वर्णन मिलता तो रात्रिव्यापिनी ही ग्राह्य मानी जाती । यदि ऐसे कहें कि, " रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिःस्वनैः " इस व्रतकी कथामें यह लिखा है कि, गान वाद्यादि करता हुआ रात्रिमें जागरण करे । जागरण रात्रिमें ही विहित है इससे पूजन भी रात्रिमें ही करे, यह सिद्ध नहीं. क्योंकि, जागरणादिरूप पूजाके अङ्गभूत कर्मोंके अनुरोधसे प्रधानभूत पूजनादिरुप कर्म्मोंके करनेका निर्णय करना किसीभी शास्त्रमें नहीं मिलता । इससे अङ्ग (गौण) रूप जागरणका रात्रिमें विधान मानकर अङ्गी (प्रधान) पूजाका विधान भी रात्रिमें मानना ठीक नहीं है । हेमाद्रिने कालनिर्णय प्रसङ्गमें ' भुक्त्वा " इत्यादि निर्णायकवाक्य लिखा है । इसका यह अर्थ है कि, भोजन करके जागरण करना जिसमें विहित हो तथा रात्रिमें जो व्रत विहित है (जैसे कोजागरीव्रत) एवं जिस व्रतमें चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदानकरना लिखा हो (जैसे कृष्णपक्षकी चतुर्थीव्रत) जो जो, तारावत हैं, इन सबमें रात्रिव्यापिनी तिथिका ग्रहण करे, इस हेमाद्रिके वाक्यसे यह सिद्ध हुआ कि–रात्रिव्यापिनी तिथि जागरणादि प्रधान कर्म्मोंमें ग्राह्य है और उपाङ्गललिता व्रत जागरण प्रधान नहीं है, इसलिये यह व्रत मध्याह्नव्यापिनी पञ्चमीमें ही करना चाहिये । ऐसे माननेसे रात्रिव्यापिनी तिथि फिर कब ग्राह्य मानी जाय ? क्योंकि सभी व्रत पूजा प्रधान है इससे रात्रिव्यापिनी तिथिका विचार करना आदि भी निष्फलहोगा । यह शंका भी नहीं कर सकते, क्योंकि, रात्रिव्यापिनी तिथिमाननेके लिये हेमाद्रिके कहे हुए वाक्यके अनुसार जागरणादि अवशिष्ट हैं, उनमें यह वाक्य चरितार्थ हो जाता है ।। इस व्रतकी विधि–प्रातःकाल जागकर आवश्यकीय कर्मसे निवृत्त हो जंगलमें जाय वहां अपामार्गके समीप पहुँच, " आयुर्बलं " इस मंत्रसे उसकी प्रार्थना करे । फिर उपा-ङ्गललितादेवीकी प्रार्थना करे कि, हे मातः ! मैं अपामार्गके काष्ठोंसे दन्तधावन करूंगा, इससे आप प्रसन्न हों । पीछे अपामार्गकी अडतालीस लकडी लेकर नदी तलाव आदि किसी पवित्र जलाशयके किनारे जाय । फिर " मुख " इस श्लोकका उच्चारण करे कि, मुखकी दुर्गन्धीके विनाशार्थ दन्तोंकी पवित्रताके लिये और गात्रोंके अर्थात् मुखके अवयव रूप जिह्वाऽऽदिके मैल साफ करनेके लिये दन्तधावन करता हूं । फिर अडतालीस बार अडतालीस अपामार्गकी शाखाके टुकडोंसे दांत और जीभ शुद्ध करके शास्त्रोक्त विधिके अनुसार मृत्तिका गोमयादिसे स्नान करे । फिर सफेद दो शुद्ध, अहेत और अदग्ध वस्त्रोंको धारणकरके अपने घर चला आये, पीछे पवित्र (गोमयादिद्वारा परिष्कृत) स्थलमें छोटा मण्डप बनावे । उसके बीचमें अपनी शक्ति अनु-सार सोने आदिकी देवीकी प्रतिमा बनावे । इसको पिटारीके ढक्कनकी भांति स्थापित करके षोडशोपचार विधिसे विशेष करके दूर्वाके द्वारा पूजन करे । फिर बीस बड़े लेकर वायना दे, बीस बडोंका आप भी भोजन करे; फिर देवीका विसर्जन करे । आचमन और प्राणायाम करके देशकाल कहकर पूजन करनेका संकल्प करे कि, मैं पुत्र, विद्या, धन, रोगोंसे छुटकारा, सुख, विजय, पुष्टि (पुष्टता) और आयुष्य इत्यादि प्राप्तिके

लिये ललचा हुआ, पूजा करनेवाली स्त्री हो तो सदाके सौभाग्यके लिये कामना करती हुई मैं उपाङ्ग ललिता देवीको प्रसन्न करनेके लिये इस समय जो जो उपचार सामग्री उपस्थित हैं उनके द्वारा उपाङ्गललिता देवीका पूजन करूंगा (स्त्री हो तो करूंगी) फिर पूजन करे । ' नील कौशेय ' इस श्लोकको पढ़कर ध्यान करे कि, नीले रेशमी वस्त्रको धारण करती हुई सुवर्णके समान उज्ज्वल गौर कान्तिवाली, कमलके आसनपर विराजमान हो भक्तोंको अभय देती हुई ललितादेवीका प्रतिदिन ध्यान करता हूँ । ' आगच्छ ' इससे तथा " हिरण्य " इससे आवाहन करे । पहिलेका अर्थ यह है कि, हे ललिता देवी ! आप यहां पधारें । आप सदा सभी सम्पत्तियोंको देती हो, जब तक मेरा यह व्रत समाप्त न हो तबतक यहां ही रहें । ' कार्तस्वर ' इस पौराणिक तथा " तां म आवह " इस श्रीसूक्तके मन्त्रसे आसन प्रदान करे । पहिलेका भाव यह है कि, विविध रत्नोंसे जडित सुवर्णके इस अनेक शक्तिशाली दिव्य आसनके ऊपर विराजें । ' गंगा ' इस तान्त्रिक तथा " अश्वपूर्वां " वैदिक मन्त्रसे पाद्य प्रदान करे । तान्त्रिक मन्त्रका यह अर्थ है कि, मैं प्रार्थनाकर गङ्गाऽऽदि पवित्र तीर्थोंसे सुहावना जल लाया, आप इसे पाद्यके लिये ग्रहण करें । ' निधानं ' इस तांत्रिक और " कांसोऽस्मि " इस वैदिकमन्त्रसे अर्घ्य दे । तांत्रिकमन्त्रका यह अर्थ है कि, यद्यपि आप सब रत्नोंके आश्रय (उत्पत्ति कारणभूता) एवम् परम उत्तम गुणोंसे पूर्ण हो, तथाऽपि हे ललितादेवी आप अर्घ्य लें आपके लिये प्रणाम है ।' पाटलोशीर ' इस तांत्रिक तथा " चन्द्रां प्रभासां " इस वैदिकमन्त्रसे आचमन करावे । तांत्रिकका यह अर्थ है कि, पाटला खश और कपूरकी सुगन्धीसे सुगंधित, मधुर ठंढ़ा यह जल है । हे ललितादेवी ! आप इसे लेकर आचमन करें । ' पयोदधि ' इस तांत्रिकमंत्रको पढ़कर पंचामृतसे स्नान करावे । और " आप्यायस्व समेतु " " दधिक्राव्णो अकारिषं " " घृतं मिमिक्षे " " मधुव्वाता ऋतायते " तथा " स्वादुः पयस्व " इन पांच वैदिक मन्त्रोंको भी पढ़े । तांत्रिकका यह अर्थ है कि, दूध,दधि, घृत, सक्कर और सहद इन पांच अमृतमय पदार्थोंसे स्नान कराता हूँ । हे परमेश्वरि ! आप स्नान करें और प्रसन्न हों । ' मन्दाकिन्या ' इस तांत्रिक मन्त्रसे तथा " आदित्यवर्णे " इस वैदिकमन्त्रसे शुद्ध जलद्वारा स्नान करावे । तांत्रिकका यह अर्थ है कि, सुवर्णसदृश पीत कमलोंकी सुगन्धीसे सुगंधितमन्दाकिनी गङ्गाका यह पवित्र जल स्नान करनेके लिये प्रेमसे मैंने आपके समर्पण किया है, इसे स्वीकार करें । ' सर्वभूषाऽधिके ' इस तांत्रिकमन्त्रको एवम् " उपैतु मां देव " इस वैदिकमन्त्रको पढ़कर वस्त्र धारण करावे । तांत्रिक श्लोकका यह अर्थ है कि सब भूषणोंकी अपेक्षा उत्तम, लौकिक लज्जाके निवारण ये दो वस्त्र मैंने आपके भेंट किये हैं, आप धारण करें । ' मुक्तावलि ' इस श्लोकको पढ़कर दुपट्टा धारण करावे । अर्थ यह है कि, हे ललितादेवी ! मोती लगे हुए अमूल्य सुखकारी कोमल दुपट्टाको धारण करो । । ' कृष्णकाचाष्ट ' इससे कंठमें माला पहरावे । अर्थ यह है कि, हेसमस्त अङ्गोंमें सुंदरता धारण करनेवाली ! काले काचकी आठमणियोंसे सुंदर, यह हार आपकेठकंमें पहराता हूं ' मलयाचल ' इससे, तथा " क्षुत्पिपासा " इसऋचासे चन्दन चढ़ावे । ' अक्षता ' इस पद्यसे तथा " गन्धद्वारां " इस ऋचासे चावल चढावे, पद्यकाअर्थ यह है कि,शुद्ध मोतियोंके समान स्वच्छ ये अक्षत मैंने चढाये हैं । आप प्रसन्न होकर निर्म्मल ज्ञानका दान करो ।' मालती ' इस श्लोकसे तथा " मनसः काम " इस ऋचासे पुष्प चढ़ावे । श्लोकका अर्थ यह है कि मालती, चम्पा, जाति (जूई) तुलसीकी मञ्जरी और केतकी आदिके पुष्प मैं लाया हूं आप स्वीकार करें । अथ अंगपूजा—उपाङ्ग ललिता, भवानी, सिद्धेश्वरी, भद्रकाली श्री, विश्वरूपिणी, देवी, वरदा, शिवा, वागीश्वरी, महादेवी, प्रकृतिभद्रा, पद्मिनी, सरस्वती, कमलासना, महिषमर्दिनी, भवानी, विन्ध्यवासिनी सिंहवाहिनी ये उपाङ्गललिता, देवीके ही नाम हैं तथा गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरू, कटि, नाभि, कुक्षि, हृदय, स्कन्ध, बाहू, कर, कंठ, मुख, नासिका नेत्र, कर्ण, ललाट, शिर ये शरीरके हिस्से हैं तथा सर्वाङ्ग कथनमें समूहावलंबनसे सब अंगोंमें एक बुद्धि करके सबोंको एक समझ लिया जाता है, देवीके नाम और अंगोंका अर्थ प्रायः प्रसिद्ध ही है, पूजामें नाम और अङ्गोंका उपयोग इस प्रकार है कि, जिस क्रमसे नाम और अङ्ग लिखे हैं उसी क्रमसे उनकी परस्परमें योजना करे प्रत्येक नामके आदिमें ओम् और अन्तमें नमः तथा उसको चतुर्थीका एकवचनान्त करके, यदि दो अङ्ग हों तो द्विवचनान्त तथा एक हो तो द्वितीयाका एक वचनान्त करके ' पूजयामि-पूजता हूं ' इसे साथ लगाकर उन उन अङ्गोंपर चावल या अक्षत छोड़ने चाहिये ।। ' देवद्रुम ' इससेतथा " कर्दमेनप्रजा " इस मंत्रसे धूपदेना चाहिये

' चक्षुर्द ' इस श्लोक तथा " आपः सृजन्तु " इस ऋचाको पढ़ना हुआ आरती करके उनके समीप दीपकको चावलोंपर स्थापित करे । श्लोकार्थ यह है कि, सब लोगोंके नेत्रोंके समान पदार्थ दिखानेवाले अन्धकारके निवारक इस दीपकसे हे परम ईश्वरी ! मैंने भक्तिसे आपका नीराजन किया है, आप इसे स्वीकार करें । हस्त प्रक्षालन करके ? ' मोदका ' इस तान्त्रिक श्लोकसे एवम् " आर्द्रा " इस ऋचासे पूडे लड्डू आदि भोग लगावे । श्लोकका यह अर्थ है कि, मोदक अर्थात् तृप्तिकरनेवाले पूरे, लड्डू, बड़े, उदुम्बरादिकोंके फल और खीर इन पदार्थोंका नैवेद्य भोगलगाओ ' मलया चल ' इस तान्त्रिक मंत्रसे दोनों अनामिकाओंसे चन्दन चढावे । इसका अर्थ है कि, हे परमेश्वरि ! कर्पूर मिश्रित सुन्दर चन्दनसे आपका करोर्द्वत्तन करता हूं आप ग्रहण करें । ' कर्पूरैला ' इस श्लोकको तथा " आर्द्रां यः " इस ऋचाको पढकर ताम्बूल अर्पण करे । ' मातुलुङ्ग० ' इससे तथा ' इदं फलं मया देवि ' इस श्लोक और " मां मआवह " इस ऋचाकोपढकरऋतुफल चढावे । मातुलुङ्गइसका यह अर्थ है कि हे परमेश्वरी ! मातुलुङ्ग, नारियल, खजूर, जँभीरा और पनस इनके फलोंका भोग लगाओ । ' हिरण्यगर्भगर्भस्थं ' इस पद्यको तथा " यः शुचिः प्रयतो " इस ऋचाको पढकर सुवर्णकी दक्षिणा चढावे । ' चन्द्रादित्यौ च ' इस श्लोकको तथा " पद्मासने " इस ऋचाको पढके आरती करे कि, ' उपाङ्गललिते ' इस श्लोकसे एवम् " अश्वदायै " इस मंत्रसे प्रणाम करता हुआ पुष्पाञ्जलि समर्पण करे । श्लोकार्थ यह है कि, हे उपाङ्गललिते ! हे मातः ! हे विन्ध्यवासिनि ! हे दुर्गे ! हे देवि ! हे विश्वरूपिणि ! आपके लिये प्रणाम है; इस प्रकार पूजनकरके अडतालीस दूर्वाके अंकुर चढावे. और इस ? बहुप्ररोहा ' इस मंत्रको भी अडतालीस बार पढ़े । इसका अर्थ यह है कि, बहुत अंकुरोंसे सुन्दर अमृत और हरी यह दूब जिस प्रकार है हे ललिते ! हे मातः ! उसी प्रकार मेरे मनोरथ भी बहुत प्रकारसे बढ़ें, ये दूर्वादल अडतालीस बार ही चढावे और इनके साथ साथ पुष्प भी चढ़ाता रहे ।' प्रदक्षिणा ' इससे प्रदक्षिणा करे । इसका अर्थ यह है कि, हे देवि ! ये मैंने प्रेमसे जो तीन प्रदक्षिणा किये हैं, इनके पुण्यसे मेरे सब पापोंको आप नष्ट करें मैं प्रणाम करता हूं । ' साष्टाङ्गोऽयं ' इससे साष्टाङ्ग प्रणाम करे, अर्थ यह है कि, हे परमेश्वरि ! मैंने विधिवत् यह साष्टाङ्ग प्रणाम भक्तिसे किया है, आप मुझे ' यह पेरा दास है ' ऐसा समझें और मेरेपर प्रसन्न रहें । ' दीनोऽहं ' इससे प्रार्थना करे, इसका यह अर्थ कि, मैं दीन, पापी, दरिद्री हूं, हे कृपाके सागर ! आप मेरा दुःखोंसे उद्धार करके मेरे मनोरथोंको पूर्ण करें । फिर बीस बडे पक्वान्न एवं घृत और दक्षिणा लेकर व्रत पूर्तिके अर्थ आचार्यको वायना दे और देतीवार " क इदं कस्मै " इस मन्त्राको पढकर 'उपाङ्ग' इस श्लोकका उच्चारण करे । अर्थ यह है कि, उपाङ्ग ललिताके व्रतकी पूर्तिके लिये सुवर्णकी दक्षिणा समेत इस वायनेको द्विजवर आचार्यके लिये देता हूं, इसके देनेसे मेरा व्रत साङ्ग पूर्ण हो । फिर कथाका श्रवण करके वायनेमें जितनी बडोंकी गिनती थी उतनेही ग्रास लेकर भोजन समाप्त करे, भोजन अपने बान्धवोंके मध्यमें बैठ मौन व्रत धारण करके करना चाहिये, रातको जागरणमें नाच गान वाद्य आदिकोंके माङ्गलिक शब्द होने चाहियें, प्रभात कालमें देवीका विसर्जन करती बार'सवाहना' इस श्लोकको पढे इसका अर्थ यह है कि, हे मातः! वाहन और शक्तिसमेत वरदायिनी आपका मैंने पूजन किया है, आप मुझपर अनुग्रह करती हुई अपने दिव्य धामको पधारें । यह प्रतिवर्ष पूजा करनेका विधान पूरा हुआ ।।

अथ कथा

सूत उवाच ।। पुरा कैलासशिखरे सुखासीनं षडाननम् ।। कथयन्तं कथां दिव्यामिदमूचुर्महर्षयः ।। १ ।। ऋषय ऊचुः ।। महासेन महादेवनन्दनानन्तविक्रम ।। आख्यानानि सुपुण्यानिश्रुतानि त्वत्प्रसादतः ।। २ ।। कथास्त्वद्वदनादेव प्रसूता भूरिभूतयः ।। न तृप्तिमधिगच्छामः पायंपायं सुधामिव ।। ३ ।। शुश्रूषवो वयं देव्या व्रतं तत्कथय-

स्वनः ।। मनोभिलषितार्थानां सिद्धिर्यस्मिन् कृते भवेत् ।।४।। स्कन्द उवाच ।। साधु पृष्टं महादेव्या माहात्म्यं मुनिपुङ्गवाः ।। वच्मि सर्वं विधानेन तच्छृणुध्वं जगद्धितम् ।।५।।भृगुक्षेत्रे किल पुरा विप्रोऽभूद्गौतमाभिधः ।। श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञो धनी च बहुबान्धवः ।। ६।। अनपत्यस्य तस्याथ जज्ञाते जरतः सुतौ ।। श्रीपतिर्गोपतिश्चैव नामानी विदधे तयोः ।।७।।अचिरेणैव कालेन स पञ्चत्वमगाद्द्विजः । तौ तु बालौ धनं बन्धून्हित्वा सा धर्मचारिणी।।८।।सती विवेश दहनं स्वर्यातुं पतिना सह ।। अथ तद्बान्धवाः सर्वे हा कष्टमिति चुक्रुशुः ।।९।। रुदन्तो दुःखिताश्चक्रुस्तत्क्रियां पारलौकिकीम् ।। अथ तस्य सपत्नोभूद्भ्राता स जगृहे धनम् ।।१०।। आक्रोशन्तौ च तौ गेहं निजमानीय दुर्मनाः।। नास्ति चक्रे धनं सर्वं ताभ्यां किंचिन्न वै ददौ ।।११।। ततो मौञ्जीधरौ बालौ बन्धुभिः कथितं वसु ।। ययाचतुः पितृव्यं तं देहि नो द्रविणं हि तत् ।।१२।। स तावूचे गतं द्रव्यं युवां केन प्रतारितौ ।। निर्गच्छतां मम गृहादित्यादि परुषं बहु ।। १३ ।। तौ तद्वचोभिर्निर्विण्णौ बालौ श्रीपतिगोपती ।। बभाषाते मिथः कष्टं धिगहो पितृहीनता ।।१४।। यावो देशान्तरं यत्र स्वजनो नास्तिकश्चन ।। अनाभाष्यैव स्वजनाञ्जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ।।१५।। भिक्षाचारौ बहून्देशान्वनानि सरितो गिरीन् ।। समतिक्रम्य ययतुर्विशालां नामतः पुरीम् ।। १६।। कासारमीक्षाञ्चक्राते ततोऽस्याः सन्निधौ शुभम् ।। पुण्डरीकवनाकीर्णं रक्तसन्ध्याविभूषितम् ।।१७।। सन्ध्याभ्रभूषितं[1] चारु यथा तारकितं नभः ।। श्रान्तौ पथि गतौ बालौ क्षणं विश्रम्य तत्तटे ।।१८।। आचम्य शिशिरं तोयं सस्नतुस्तौ यथाविधि ।। गताध्वखेदौ विप्राग्र्यौ पुरं प्राविशतां ततः ।।१९।। वीथीचतुष्पथयुतं चारुगोपुरमण्डितम् ।। देवतागाररुचिरं सौधराजिविराजितम् ।।२०।। नानावीथीरतिक्रम्य विप्रावासमवापतुः ।। कस्यचित्त्वथ विप्रस्य क्षुत्पिपासार्दितौ गृहम् ।।२१।। ईयतुर्वेदिकायां ताबुपविष्टौ श्रमातुरौ ।। स्वामी ततोऽस्य गेहस्य विवेक इति विश्रुतः ।।२२।। आयातो वैश्वदेवान्ते स ददर्शातिथी द्विजौ ।। अनापृच्छंस्तयोः शीलं तथा च कुलनामनी ।।२३।। ऋषिवत्पूजयामास स्मरन्धर्मं सनातनम् ।। अतिथी भोजयामास स्वाद्वन्नेन द्विजोत्तमः ।।२४।। व्रता ह्मचारिणौ विप्रौ सपर्यां तां विलोक्य च ।। देशबन्धुपरित्यागखेदमुक्तौ बभूवतुः ।।२४।। अथापृच्छत्कृपालुस्तौ कौ युवां कुत आगतौ ।। किमर्थमल्पवयसौ निर्गतौ स्वगृहादिति ।।२६।। तद्विवेकस्य वचनमाकर्ण्य श्रीपतिस्तदा ।। आनुपूर्व्येण सकलं वृत्तान्तं समभाषत ।।२७।। पितृहीनौच तौ ज्ञात्वा त्यक्तौ बन्धुजनेन च ।। आश्वास्य स्थापयामास स्वगृहे बहुवासरम् ।।२८।। प्रचक्रमेऽथ

१ कपिशमित्यपि पाठः

शिष्यैश्च सहाध्यापयितुं श्रुतिम् ।। बभूवतुश्च तौ बालौ गुरुशुश्रूषणे रतौ ।।२९।। गुरोर्गेहे निवसतोरागता निर्मला शरत् ।। फुल्लपद्मविशालाक्षी प्रसन्नेन्दुशुभानना ।।३०।। तस्यां सशिष्यमाचार्यं चरन्तं व्रतमुत्तमम् ।। पप्रच्छतुर्भोः किमिदमावाभ्यामिति कथ्यताम् ।।३१।। ताभ्यामेवं कृते प्रश्ने विवेक इदमब्रवीत् ।। विवेक उवाच ।। उपाङ्गललिता देव्या व्रतं देवर्षिपूजितम् ।। ३२ ।। सर्वकामकरं नृणामस्माभिः समुपास्यते ।। विद्याकामेन कर्तव्यं तथैव धनकाम्यया ।।३३।। सुतार्थिना प्रकर्तव्यं व्रतमेतदनुत्तमम।। विद्याकामौ च तौ बालौ व्रतमाचरतुर्मुदा ।।३४।। भक्तितो गुर्वनुज्ञातौ यथाशक्ति यथाविधि ।। व्रतप्रसादात् सकलं शास्त्रं वेदानवापतुः ।।३५।। अन्यस्मिन् हायने भक्त्या विवाहार्थं प्रचक्रतुः ।। श्रीपतिर्गोपतिश्चैव व्रतमेतत्तपोधनाः ।।३६।। अचिरेणैव कालेन मासि माघे तयोर्गुरुः ।। स्वां विवाहोचितां कन्यां नाम्ना गुणवतीमिति ।।३७।। विनीताय श्रुतवते यूने श्रीपतये तदा ।।३८।। विचार्य बान्धवैः साकं ददौ पुण्यर्क्षवासरे ।।३९।। पारिबर्हं बहु मुदा प्रादाद्दुहितृवत्सलः।।विवेकोऽपि मुदं लेभे सानुरागौ विलोक्य तौ ।।४०।। अन्याब्दे पुनरेतत्तु व्रतं देव्याश्च चक्रतुः ।। भ्रातरौ तौ निजं देशमिच्छन्तौ च धनादिकम् ।।४१।। अथान्याहनि कस्मिंश्चित्तावुपाध्यायमूचतुः ।। स्वामिन्युष्मत्प्रसादेन लब्धा विद्या तथा वसु ।।४२।। अनुजानीहि गच्छावो निजं देशमितः पुनः ।। इत्याकर्ण्य समालोक्य शुभं वासरमादृतः ।।४३।। स्वयं प्रापयितुं विप्रस्तौ तां कन्यां च निर्ययौ ।। अथ देव्याः प्रसादेन पितृव्यस्य तयोः किल ।। ४४ ।। अन्वेषणे मतिर्जाता गतौ श्रीपतिगोपती ।। निर्गतौ कं गतौ देशं वसतः क्वेत्यचिन्तयत् ।।४५।। लोका निन्दन्ति मां कुर्वंस्तयोरन्वेषणे मतिम् ।। दिदृक्षुस्तौ ततः सोऽपि निर्जगाम निजात्पुरात् ।।४६।। किंचित्स नगरं प्राप द्विजो बालौ गवेषयन् ।। तदेव नगरं प्राप्तो विवेकाख्यो द्विजोत्तमः ।।४७।। सशिष्य कन्यया सार्द्धं क्रमन्मार्गं शनैःशनैः ।। तत्र तेषां समजनि सङ्गमो मुनिपुङ्गवाः ।।४८।। विदांचकार तौ कृच्छ्रान्मध्यमे वयसि स्थितौ ।। श्रीपतिस्तु पितृव्याय तत्तत्सर्वं न्यवेदयत् ।।४९।। तं दृष्ट्वा तादृशं विप्रं विवेको ब्राह्मणोत्तमः।।प्रणम्य विधिनाभ्यर्च्य ततः प्रोचे वचो मुदा ।।५०।।भ्रातुस्तव सुतावेतौ पालितौ पाठितौ मया ।। प्रयातस्तौ प्रापयितुं भवतां ग्राममुत्तमम् ।।५१।। इति श्रुत्वा विवेकस्य वचनं मुदितोऽभवत् ।। आलिलिङ्ग च तौ बालौ मूर्ध्नि जिघ्रे पुनःपुनः ।।५२।। पादानतां गुणवतीं विवेकेन प्रणोदिताम् ।। आशीर्भिरभिनन्द्याथ सहर्षोऽभूद्द्विजोत्तमः।।५३।। विवेक वचनं प्रोचे त्वत्प्रसादादिमौ सुतौ ।। दृष्टौ मत्तो न धन्योस्ति सुहृत्त्वं यस्य हि द्विज ।।५४।। अथ ते मुदिताः सर्वे भृगुक्षेत्रं ययुर्मुदा ।। ज्ञातिभिः सह संगम्य शृण्वद्भिस्तद्विचे-

ष्टितम् ।।५५।। तौ पितृव्यगृहे स्थित्वा हायनान्यष्ट सप्त च।। लब्ध्वा पितृधनं गेहं निजं श्रीपतिगोपती ।।५६।।ईयतुस्तदनुज्ञातो ऽविवेकः स्वां पुरीं ययौ ।। श्रीमतिर्गोपतेस्तत्र विवाहमकरोत्तदा ।।५७।। तावेकचेतसौ तत्र चक्रतुर्द्विजतर्पणम् ।। श्रीपतिः श्रद्धया युक्तः कनीयान् व्ययशङ्कितः ।।५८।। विचार्य भार्यया साकं विभक्तः श्रीपतेरभूत् ।। स भोगान् विविधान् भुञ्जन्प्रमत्तो बहुसम्पदा ।।५९।। न देव्याराधनं चक्रे गोपतिः सुखलम्पटः।। अथ स्वल्पेन कालेन नष्टं तस्य शनैर्धनम् ।।६०।। अकिञ्चनो गतश्चिन्तां भार्ययाश्वासितस्तदा ।। तव भ्रातृगृहे विप्रा भुञ्जते बहवः सदा ।।६१।। गच्छावोऽनुदिनं कान्त तत्र भोक्तुमुभावपि ।। एवं भोजनवेलायामागत्यागत्य तद्गृहम्।।६२।। [1]भुञ्जन्भुञ्जन्निजगृहं गतो तौ बहुवासरम् ।। कदाचिदागतो यावद्गोपतिर्भार्यया सह।।६३।। उपविष्टेषु विप्रेषु भोक्तुं नोऽविन्ददासनम् ।। अथान्नराशेरभ्याशे भोजनाय क्षुधातुरः ।।६४।। उपविष्टः श्रीपतेस्तु भार्यया स निवारितः ।। अस्मादुत्तिष्ठा वै तूर्णं त्वमुच्छिष्टं करिष्यसि ।।६५।। तिष्ठ तिष्ठ क्षणं चैव पश्चाद्भुंक्ष्वेति साब्रवीत् ।। गोपतेःकान्तया दृष्टं ततो विमनसावुभौ ।।६६।। अभुक्तावेव निष्क्रान्तौ जग्मतुर्निजमन्दिरम् ।। ततः स्वजायां प्रोवाच निजमार्गं विचिन्तयन् ।।६७।। भ्रात्रा मया समं वित्तं संविभक्तमपि प्रिये ।। दुर्गतोऽहं धनोन्मत्तः श्रूयतामत्र कारणम्।।६८। पुराऽऽवाभ्यां गुरुगृहे व्रतमाचरितं शुभम् ।। उपाङ्गललितादेव्या विद्यादिसकलं ततः ।।६९।। प्राप्तं मया तत्सकलं परित्यक्तं प्रमादतः ।। ज्येष्ठ आचरते नित्यं तस्माच्छ्रीस्तं तु सेवते ।।७०।। तस्मादहं तदा भोक्ष्ये यदा द्रक्ष्यामि तां शिवाम् ।। इत्युक्त्वा निर्गतस्तस्माद्गृहादकृतभोजनः ।।७१।। तद्भार्या चिन्तयाविष्टा सापि तस्थावनश्नती ।। भुक्तवत्सु ब्राह्मणेषु श्रीपतिः पर्यपृच्छत ।।७२।। क्व गतो गोपतिरिति तच्छ्रुत्वा सोपि दुःखितः ।। गोपतिस्तु सरिद्दुर्गं वनानि बहुशो भ्रमन् ।।७३।। पृच्छंश्च पथिकान्मार्गे न देव्याः पदमभ्यगात् ।। पञ्चमे वासरे प्राप्ते क्षुत्पिपासार्दितो वने ।।७४।। अलब्धदर्शनो देव्या दुःखितो निपपात ह ।। तं कृच्छ्रगतमालोक्य भवानी भक्तवत्सला ।।७५।। कृपापराधमपि तमनुजग्राह वै तदा ।। गतमूर्च्छः समुत्थाय दिगन्तान् प्रविलोकयन् ।।७६।। ददर्श दूरतो गोपं चारयन्तं गवां गणम् ।। तं दृष्टा किंचिदाश्वस्तो ययौ तस्यान्तिकं शनैः ।।७७।। अपृच्छत्क्व भवान्यातः कुत्रत्यः कुत आगतः । कोऽयं देशः कश्च भूपः किं पुरं नाम तद्वद ।।७८।। निशम्य वचनं तस्य वक्तुं गोपः प्रचक्रमे ।। गोप उपाच ।। उपाङ्गं नाम नगरमुपाङ्गो

१ स्वपितृव्यगृहे कांश्चिदुषित्वा दिवसांस्तदा इति पाठान्तरम् । २ आसीदिति शेष, ३ भुक्त्वा हमीयतुर्बहुवासनम् ४ गोपतिर्भार्यया दुःखं गतो इत्यापि पाठः

नाम भूपतिः ।।७९।। उपाङ्गललितादेव्या विद्यते यत्र मन्दिरम् ।। तत्रत्योऽहं समायातः पुनस्तत्र व्रजाम्यहम् ।।८०।। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विप्रः प्रमुदितोऽभवत् ।। स गोपसहितः सायं नगरं प्रविवेश ह ।।८१।। दूराद्ददर्श भवनं पुरमध्ये तपोधनाः ।। उपाङ्गललितादेव्याः स्फाटिकं गगनंलिहन् ।।८२।। सौवर्णेन विचित्रेण कलशेनोपशोभितम् ।। यथोदयाचलः शैलो दधानो भानुमण्डलम् ।।८३।। त्वरितो गोपमामंत्र्य प्रासादं स ययौ मुदा ।। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा ।। ८४ ।। उपाङ्गललितां देवीमथ स्तोतुं प्रचक्रमे ।। गोपतिरुवाच ।। नमस्तुभ्यं जगद्धात्रि भक्तानां हितकारिणि ।। जगद्भीतिविनाशिन्यै सर्वमङ्गलमूर्तये ।। ८५ ।। हत्वा निशुम्भमहिषप्रभृतीन् सुरारीनिन्द्रादयो निजपदेषु ययाभिषिक्ताः ।। लोकत्रयावनगृहीतमहावतारे मातः प्रसीद सततं कुरु मेऽनुकम्पाम् ।।८६।। त्वां मुक्तये निजजनाः कुटिलीकृताङ्गीं गौरीं निजे वपुषि कुण्डलिनीं भजन्ति ।। मुक्त्यै च देवमनुजाः कनकारविन्दबद्धासनामविरतं कमलां स्तुवन्ति ।।८७।। देवीं चतुर्भुजां चैकहस्ते चैव गदाधराम् ।। शार्ङ्गखड्गधरां चैव सौम्याभरणभूषिताम् ।।८८।।सरस्वतीं पद्मिनीं च पद्मकेसरवासिनीम् ।। नमामि त्वामहं देवीं तथा महिष मर्दिनीम् ।।९८।। अपराधाः कृताः पूर्वं मया जन्मनिजन्मनि ।। तत्सर्वं क्षम्यतां देवि मातर्मे सुविशारदे ।।९०।। सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।। इदानीमनुकम्प्योऽहं यद्वाञ्छामि कुरुष्व तत् ।।९१।। इति स्तुत्वाथ शर्वाणीं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।। कृतसंध्याविधिस्तत्र सुष्वापाकृतभोजनः ।।९२।। स्वप्ने मूर्तिमती देवी विप्रमेवं समादिशत् ।। गोपते वत्स तुष्टास्मि गच्छोपाङ्गमहीपतिम् ।।९३।। मत्पूजनकरण्डस्य प्रार्थयस्व पिधानकम् ।। तत्पूजयन्निजगृहे परामृद्धिमवाप्स्यासि ।।९४।। स्वप्न इत्याप्तसन्देशः प्रभाते गोपतिस्तदा ।। राजदर्शनवेलायां नृपद्वारं समभ्यगात् ।।९५।। प्रविष्टोऽसौ नृपसभां प्रतिहारैर्निवेदितः ।। राज्ञा संभावितस्तत्र निषसादासने शुभे ।।९६।। पृष्टो गमनहेतुंश्च ययाचे नृपपुङ्गवम् ।। देव्यर्चनकरण्डस्य पिधानं देहि मे नृप ।।९७।। इत्यर्थितः स विप्रेण जातादेशो नृपो ददौ ।। पिधानकं नमस्कृत्य तस्मै चाभ्यर्चनादिकम् ।।९८।। आशीर्भिरभिनन्द्याथ तमामंत्र्य च भूपतिम् ।। उपाङ्गललितादेव्याः प्रासादं पुनरागमत् ।।९९।। प्रणिपत्याम्बिकां विप्रस्त्वरितो निर्ययौ बिलात् ।। समीपे स्वपुरं दृष्ट्वा हृष्टो गृहमुपागमत् ।।१००।। सुहृद्भिः सह संगम्य सर्वं तत्कथयन्मुदा ।। पूजयित्वा पिधानं तद्विदधे पारणां द्विजः ।। १ ।। एवमाराध्यमानस्तु स समृद्धोऽभवत्पुनः ।। सोऽपि सत्रं समारेभे द्विजाग्र्यो बहुवासरम् ।।२।। एका

१ विवरम् इति पाठान्तरम् २ वासोधनादि च ३ पुरात् इत्यापि पाठान्तरम्

तस्याभवत्कन्या ललितानाम सुन्दरी ।। सा तत्पिधानमादाय विहर्तुं याति सर्वदा।३। प्रमत्तत्वात्प्रियत्वाच्च पितृभ्यामनिवारिता ।। कदाचित् स्ववयस्याभिः साकं गङ्गाजले शुभे ।।४।। क्रीडन्ती ददृशे तोये नीयमानं कलेवरम् ।। पिधानहस्ता सासिचदन्याश्चाञ्जलिभिस्तदा ।। ५ ।। स सर्पदष्ट उत्तस्थौ ततो देव्याः प्रसादतः ।। सातिकान्तं द्विज दृष्ट्वा मनसा चकमे पतिम्।।६।।जुहावाभ्यवहाराय जनकस्य निकेतनम्।।मार्गे च परिपप्रच्छ कुलं शीलं च तस्य सा ।।७।। सोऽपिसर्वं समा चख्यौ गुणराशीति नाम च ।। ललिता मंत्रयामास गुणराशिं द्विजोत्तमम् ।।८।। परिविष्टेषु चान्नेषु पितृवेश्मनि मे द्विज ।। गृहीतापोशनो भूत्वा भार्यार्थं मां त्वमर्थय ।।९।। मयानुमोदितस्तातः स मां तुभ्यं प्रदास्यति ।। तयोक्तो गुणराशिस्तु तथा सर्वं चकार ह ।। ११०।। गोपतिर्भार्यया भ्रात्रा समालोच्य स्वबान्धवैः ।। परीक्षिताय विप्रत्वे विद्यायां कुलशीलयोः।।११।। प्रतिजज्ञे ततः कन्यां ललितां गुणराशये ।। शुभे मुहूर्ते च तयोर्विवाहं कृतवान् प्रभुः ।।१२।। वराय ब्राह्मणेभ्यश्च ददौ बहुधनं मुदा ।। विदधे च तयोर्गेहं नातिदूरं स्ववेश्मतः ।।१३।। तत्रोषतुः सानुरागौ मिथस्तौ दम्पती चिरम् ।। पिधानकं तया नीतं निजं ललितया गृहम् ।।१४।।शनैरथ धनं सर्वं गोपतेरगमद्गृहात् ।। गुणराशिर्धनी जातो महादेव्याः प्रसादतः ।।१५।। करण्डस्य पिधानं तज्जनन्या बहुवासरम् ।। याचितापि न वै प्रादाल्ललिता पूजितं गृहे ।।१६।। अथ सा गोपतेर्भार्या तस्यैवानर्चनाद्गतम् ।। इत्थं विचिन्त्य पापात्मा जामातरमघातयत् ।। १७।। समिदर्थं वनं यातं स्वयं तद्गेहमाययौ ।। शोचन्तीं किल तां कन्यां स तु देव्याः प्रसादतः।।१८।। उत्थाय विपिनादेत्य भुक्त्वा शेते सुखं गृहे।। पादसंवाहनं तस्य कुरुते ललिता तदा ।।१९।। तं दृष्टा दुःखिता भूमौ प्रणिपत्य पुनः पुनः ।। लज्जिता कृच्छ्रतः पृष्टा निजपापं न्यवेदयत् ।।१२०।। स्कन्द उवाच ।। गुणराशिस्तदा तस्यै प्रायश्चित्तं ददौ बहु ।। सात्मानं बहुकालेन पूतं कृच्छ्रैश्चकार ह ।।२१।। श्रीपतेस्त्वचलां लक्ष्मीं समालोक्य तपोधनाः ।। गोपतिस्तमथापृच्छद्भ्रातस्त्वं वर्तसे कथम्।।२२।।किमाचरसि कल्याणं येन श्रीरनपायिनी ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा श्रीपति विस्मितः पुनः।। ।२३। अस्मारयद्व्रतं देव्या यत्कृतं गुरुमन्दिरे।। सोऽपि भक्त्या व्रतं चक्रे पुनर्भ्रात्रोपदेशितम् ।।२४।। लेभे स परमामृद्धिं पुत्रांश्च मुदितोऽभवत् ।। उपाङ्गललितादेव्याः कुर्यादाराधनं ततः ।। २५ ।। एवमेतत्पुरावृत्तं माहात्म्यं कथितं मया ।। कृतमन्यैश्च बहुभिस्तेपि लब्धमनोरथाः ।।२६।। व्रतमेतत्तु यः कुर्यादपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ।। इदं तु ललितादेव्याः कृत्वा व्रतमनुत्तमम् ।।२७।। पूज्यो भवति लोकस्य सत्यं सत्यं न चान्यथा ।। विधानमस्य वक्ष्येऽहं तच्छृणुध्वं तपोधनाः

।।२८।। शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यामिषे मासि चरेद्व्रतम् ।। गर्जितं संध्ययोस्त्याज्यं दिनवृद्धिक्षयौ तथा ।।२९।। निर्वर्त्यावश्यकं कर्म शुची रागविवर्जितः ।। ततो गत्वा वनं विप्राः प्रार्थयेच्च वनस्पतिम् ।।१३०।। आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशु-वसूनि च ।। ब्रह्म प्रज्ञां च मेघां च त्वं नो देहि वनस्पते ।।३१।। वनस्पतिप्रार्थना।। अपामार्गसमुद्भूतैर्दन्तकाष्ठैः करोम्यहम् ।। दन्तानां धावनं मातः प्रसन्ना भव सर्वदा ।।३२।। दन्तकाष्ठग्रहणम् ।। चत्वारिंशत्तथाष्टौ च कल्पयित्वा विधानतः।। दन्तकाष्ठान्युपादाय तडागं वा नदीं व्रजेत् ।।३३।। मुखदुर्गन्धिनाशाय दन्तानां च विशुद्धये ।। ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम् ।।३४।। इति दन्तधाव-नम् ।। दन्तधावनपूर्वाणि मज्जनानि समाचरेत् ।। ततो यथाविधि स्नात्वा शुक्ल-वासा गृहं व्रजेत ।।३५।। शुचौ देशे मण्डपिकां कृत्वातीव मनोहराम् ।। सौवर्णीं प्रतिमां शक्त्या कल्पयेन्मंत्रपूर्विकाम् ।।३६।। उपचारैः षोडशभिरेभिर्मंत्रैः समा-हितः ।। कुर्यात्पूजां प्रयत्नेन दूर्वाभिश्च विशेषतः ।।३७।।द्विजाय वाणकं दद्या-द्विशत्या वटकादिभिः ।। ततः कथां समाकर्ण्य वाणकान्नस्य संख्यया ।।३८।। स्वयमद्यात्तदेवान्नं वाग्यतः सह बान्धवैः ।। रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादि-मङ्गलैः ।।३९।। प्रभाते पूजयेद्देवीं ततः कुर्याद्विसर्जनम् ।। सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया ।।१४०।। मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम् ।। तमर्चां गुरवे दद्याद् [1]दानानि च स भूरिशः ।।४१।। व्रतमेवं च यः कुर्यात्पुत्रबान्धववान्भ-वेत् ।। विद्यावान्रोगनिर्मुक्तः सुखी गोधनवान्भवेत् ।।४२।। अवैधव्यं च लभते स्त्री कन्या वरमुत्तमम् ।। वि यं पुष्टिमायुष्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् ।।४३।। इत्येतद्गतमाख्यातं सेतिहासं महर्षयः ।। शृण्वन्नपि नरो भक्त्या सुखमाप्नोति निश्चितम् ।।४४।। निर्मुक्तः स सुखी धीमान् व्रतराजप्रसादतः ।। वित्तमारोग्य-मायुष्यं प्राप्नोति च न संशयः ।।४५।। इति श्री उपांगल० कथा संपूर्णा ।।

अथ कथा–सूतजी (शौनकादिकोंसे) बोले कि, पहिले कैलासके शिखरपर विराजमान होकर कार्तिकेयजी दिव्य कथाएँ कहा करते थे उन्हें सुनते हुए ऋषियोंने प्रार्थना की थी ।।१।। कि, हे महासेन ! हे महेश्वरके नन्दन ! अनन्त पराक्रमवाले आपकी प्रसन्नतासे हमने बहुत पवित्र २ कथाएँ सुनी ।।२।। जितने इतिहास हैं जगत् में उनकी प्रसिद्धि आपने ही की हैं । ये सब कथा बहुत हैं उनकी विभूति (विस्तार) बहुत है, उनके सुननेसे तृप्ति नहीं होती जैसे अमृतसे पेट नहीं भरता है ।।३।। अब हम भगवतीके व्रतका माहात्म्य सुनना चाहते हैं उसको कहो, वह व्रत ऐसा हो जिसके करनेसे अनायास मनोवाञ्छित पदार्थ मिलें ।।४।। कार्तिकेय बोले कि, हे मुनिवरो ! तुमने अच्छा पूछा, मैं महादेवीके व्रतका सब जगत्का कल्याणकारी माहात्म्य कहता हूं, उसे विधिपूर्वक सूनो ।।५।। पहिले भृगुक्षेत्रमें वेद एवं धर्मशास्त्र और पुराणोंका तत्वज्ञ, धनवान् और बहु कुटुम्बी गौतम नामका ब्राह्मण रहता था, इसके पहले तो कोई सन्तान नहीं हुई पर बुढापेमें दो पुत्र उत्पन्न हुए । उसने उन पुत्रोंमेंसे एकका श्रीपति और दूसरेका गोपति नाम रखदिया ।।६७।। पुत्रोंके जन्म

१ निशि वा स्याद्विसर्जनमित्यपि पाठ ।

होनेके थोडेही समय पीछे वह ब्राह्मण मृत्युको प्राप्त हो गया, उसकी पतिव्रता धर्म चारिणी स्त्रीने पतिके साथ स्वर्ग जानेके लिये बालक पुत्रोंको धनको और बान्धवोंको छोडकर ।।८।। अग्निमें प्रवेश किया । उसके बन्धु-बान्धवोंने बडे दुःखकी बात हुई ऐसा कह ।।९।। रो रो अश्रूपात करके दोनोंकी पारलौकिकी क्रिया की, उस ब्राह्मणके एक विमाताका पुत्र भाई था, उसने वैरी होकर सब धन छीन लिया ।।१०।। वे दोनों बालक रोतेही रह गये वह, दुष्टात्मा अपने घरमें सब धन ले आया पर उसने उनके लिये कुछ भी नहीं दिया उनकी रक्षाका बंदोबस्त भी न किया ।।१२।।यद्यपि उन बालकोंने यज्ञोपवीत लेकर भिक्षाटनके समय अपने और और बान्धवोंका बताया हुआ धन अपने पितृव्यसे माँगा था कि हमें धन दीजिये ।।१२।। पर पितृव्यने यही उत्तर दिया कि, तुम किसके कहनेसे बावले हो गये हो ? जो धन था वह तो कभीका नष्ट होगया । पीछे नाराज होकर धन देना तो दूर रहा, प्रत्युत मेरे घरसे निकलो, ऐसे कठोर वचन और कहे ।।१३।। वे बालक श्रीपति और गोपति पितृव्यके इन अन्याय वचनोंको सुन चित्तमें बहुत दुःखित हुए पर बालक थे और क्या कर सकते थे; केवल आपसमें यही कहा कि पितृहीन बालकोंके जीवनको धिक्कार है यह जीवन बहुत दुःखदायी है।।१४।।अब ऐसे देशमें चलें जहां अपना कोई भी बान्धव न हो, ऐसे आपसमें विचार, अपने किसी भी बान्धवको कुछ न कहकर उत्तर दिशाकी ओर चले गये ।।१५।। भिक्षा माँगके अपनी उदरपूर्ति करते हुए बहुतसे देश, वन, नदी और पर्वतोंका उल्लंघन कर, विशालापुरी आ गये ।।१६।। वहां पर नजीकमें सुन्दर तलाव देखा, उसमें सफेद लाल कमलोंका वन लग रहा था यह रक्त सन्ध्यासे विभूषित था ।।१७।। जैसे सन्ध्याकालके बद्दलोंसे विभूषित, तारोंसे चमकता आकाश दीखता है वे चलते चलते थक गये थे इससे क्षणभर उसके किनारे बैठ गये ।।१८।। ठंढे जलका आचमन करयथा विधिस्नान किया, रास्तेकीथकावट छूट जानेपर पुरीमें घुस गये ।।१९।। बहुतसी छोटी गलियां तथा बहुतसे बडे बडे रस्ते थे, उनमें दुकानोंकी पंक्तियां लग रही थीं, चतुष्पथ थे पुरीके द्वार बहुत सुन्दर थे, देवताओंके मन्दिर एवम् धनियोंके घरोंकी पंक्तियां बहुत शोभा दे रही थीं ।।२०।। इन सबको देखते एवम् अनेकों विथियोंको लाँघते हुए ब्रह्मणोंके योग्य स्थानमें पहुंच गये । वे भूखसे पीडित थे, इससे किसी एक उत्तम ब्राह्मणके घर ।।२१।। जाकर आङ्गनमें बैठ गये । घरवाले ब्राह्मणका नाम विवेक था ।।२२।। यह अपने बलि वैश्वदेवकरनेके अन्तमें उन दो अतिथि ब्राह्मणोंको आया हुआ देखकर ही बिना उनके स्वभाव, कुल और नामके पूछे ।।२३।। सनातन धर्मके अनुरोधसे जैसे ऋषियोंका पूजन करना चाहिये. वैसेही उनका पूजन किया, द्विजोत्तमने उनको मधुर अन्न भोजन कराया ।।२४।। वे दोनों ब्रह्मचारी ब्राह्मण-बालक उसकी की हुई शुश्रूषासे प्रसन्न हो देश और बान्धओंके त्यागनेके खेदको भूल गये ।।२५।। दयालु ब्राह्मणने उनसे यह भी पूछा कि, तुम कौन हो कहाँसे आये हो, छोटी उमरमें घरसे क्यों चले आये ?।।२६।। विवेकके वचन सुनकर श्रीपतिने अपना सब वृत्तान्त क्रमसे यथावत् सुनादिया ।।२७।। उनके कथनसे उसने समझ लिया कि, इनके पिता नहीं है, बान्धवोंने इनको निकाल दिया है । इसलिये उनको आश्वासन देकर अपने घरमें बहुत दिनोंतक ठहराया ।।२८।। अपने दूसरे शिष्योंके साथ उनको भी वेद पढाने लगे, वे दोनों भाई भी गुरुकी सेवामें तत्पर हो गये ।।२९।। गुरुके घरमें प्रेम पूर्वक निवास करते हुए उन्हें निर्मल शरद ऋतु प्राप्त हुई, यह परम सुन्दरीकी समता रखती है, खिले कमलोंसे तो यह कमलनयनी तथा निर्मल चाँदके उदयसे यह चन्द्रवदनी बन जाती है ।।३०।। इस ऋतुमें गुरुदेव अपने शिष्योंके साथ एक उत्तम व्रत कर रहे थे. उन्होंने पूछा कि, गुरुदेव ! क्या कर रहे हो ? हमें भी बता दो ।।३१।। आचार्य्यने उत्तर दिया कि, हम उपाङ्गललिता देवीका व्रत करते हैं, देवर्षियोंमें भी इस व्रतका आदर है ।।३२।। यह मनुष्योंकी सब कमनाओंकी पूर्ति करता है, हम भी उसकी उपासना कर रहे हैं, जैसे विद्या चाहने वालेको इसे करना चाहिये उसी तरह धन चाहनेवालेको भी इसे करना चाहिये ।।३३।। यही नहीं; किन्तु, पुत्रार्थीको भी इस श्रेष्ठ व्रतको करना चाहिये, ये दोनों बालक विद्या चाहते थे इन्होंने भी उस व्रतको किया ।।३४।। गुरुने आज्ञा देदी थी, ये भक्तिके साथ विधिपूर्वक करते थे जैसा कि शास्त्रमें विधान है, इससे वे सब वेद और शास्त्रोंके पण्डित हो गये ।।३५।। हे तपोधनो ! किसी दूसरे वर्ष श्रीपति और गोपतिने इस व्रतको भक्तिके साथ विवाहके लिये किया ।।३६।। बहुत थोडे ही समयमें माघके महीनेमें उनके गुरुने विवाहके लायक जो उनकी गुणवती कन्या थी उसको विनम्र विद्वान् एवम् वृद्ध

संहनन युवा श्रीपतिके लिये भाइयोंके साथ परामर्श करके पवित्र नक्षत्र और दिनमें दे दिया ।।३७–३९।। लड़कीपर बडा भारी प्रेम था इस कारण बहुतसा दहेजभी दिया एवं उन दोनोंका परस्पर प्रेम देख कर गुरुको बडा भारी आनन्द हुआ ।।४०।। फिर तीसरे वर्षमें वह दोनों भाई अपने देशमें जानेके लिये धनादिकी कामनासे व्रत करने लगे ।।४१।। किसी दिन वे दोनों अपने गुरुसे प्रार्थना करते हुये बोले कि, हे स्वामिन् ! आपकी कृपासे विद्या और धन दोनोंही पदार्थ मिल गये ।।४२।। अब हमको अपने देशमें जाने की अनुमति दें तथा विवेकने आदर भी किया । उसने उनके वचनोंको सुन प्रेमके साथ अच्छा मुहूर्त देखा ।।४३।। फिर शुभ दिनमें उनको तथा अपनी पुत्रीको पहुंचानेके लिये पीछे पीछे गया। इधर उपाङ्गललिता देवीकी प्रसन्नतासे उनके पितृव्यका चित्त भी उनकी ।।४४।। खोज करनेको हुआ । वह सोचने लगा कि, हाय ! श्रीपति और गोपति घरसे निकलकर किस देशमें चले गये, अब वे कहां हैं ।।४५।। लोग मेरी निन्दा करते हैं वे न करें ऐसे शोचकर खोज करने लगा एवं अपने नगरसे चल दिया ।।४६।। वह उन बालकोंकी खोज करता हुआ एक शहरमें पहुंचा । उसी शहरमें द्विजोत्तम विवेक भी प्राप्तहुआ ।।४७।। शनैः शनैः अपने शिष्य और पुत्रीकेसाथ मार्ग तय करता हुआ, हे मुनिपुङ्गवो ! उन सबका उस सहरमें एकत्र मिलाप हो गया ।।४८।। पितृव्यने उन बालकोंको छोटी अवस्थामें देखा था, फिर देखा नहीं था इससे बहुत देरमें कठिनतासे पहचान सका, क्योंकि उस समय उनकी युवावस्था थी । जो जो हुआ था श्रीपतिने वह सब उन्हें कह सुनाया ।।४९।। विवेक मुनि उनके पितृव्यको देखकर प्रणाम और विधिपूर्वक अभ्यर्चन करके प्रसन्नतासे बोला ।।५०।। कि ये तुम्हारे भाईके पुत्र हैं इनकी मेंने पालनाकी है इन्हें पढा दिया । तुम्हारे उत्तम गाममें पहुंचानेके लिए में भी आया हूं ।।५१।। ऐसे वचनोंको सुनकर उनका पितृव्य परम प्रसन्न हुआ, उनको छातीसे लगाकर बारबार उनके मस्तकोंको सूंघने लगा ।।५२।। और विवेकके कहनेसे गुणवतीने अपने श्वसुरके चरणोंमें प्रणाम किया । वह अनेकवार आशीर्वादसे उसे प्रसन्न करके आपभी कृतार्थके समान आह्लादित हो ।।५३।। विवेकसे बोला कि,हे महात्मन् ! आपके अनुग्रहसे इन बालकोंको मेंने पाया है । आज में कृतपुण्य हूं, क्योंकि आप हमारे प्रिय सम्बन्धी हो गये ।।५४।। वे सब मिलकर अपने भृगुक्षेत्र नामक ग्राममें आनन्दके साथ गए। बान्धवोंसे मिले, चाचाकी ऐसी वैसी बातें सुनी ।।५५।। पितृव्यके घरमें पन्द्ररह वर्षतक रहके चाचासे अपने पिताका धनले अपने घर आ गये ।।५६।। विवेक उनको चाचाके यहां पहुंचा अनुमति ले अपने आश्रमको चला आया । अपने घरपर आकर श्रीपति ने अपने छोटे भाई गोपतिका विवाह किया ।।५७।। वे दोनों भाई स्परस्पर बहुत प्रेम करते थे, पर उनमें श्रीपति ब्राह्मणोंको तृप्त करनेमें बहुत श्रद्धा रखता था, गोपति खरचसे डरता था । इससे श्रीपति तो ब्राह्मणोंको भोजनाच्छादनादि दानद्वारा तृप्त करने लगा, और गोपति खरचसे घबराकर ।।५८।। अपनी स्त्रीके साथ सलाहकर श्रीपतिसे अपना हिस्सा ले अलग हो अनेक प्रकारके भोग भोगने लगा, फिर उसको संपत्तिके मद एवं विषयभोगोंकी असक्तिसे ऐसा प्रमाद हो गया ।।५९।। कि जिससे सुखलम्पट उस उपाङ्गललितादेवीका आराधन करना भी छोड़ दिया । इससे उसकी बहुतसी भी वह सम्पति कुछ ही समयमें शनैः शनैः क्षीण हो गयी ।।६०।। जब उसके पास भोजन के लिए भी कुछ नहीं रहा, तब वह गोपति बहुत चिन्ता करने लगा । स्त्रीने आश्वासन दिया कि, तुम्हारे बड़े भाई श्रीपतिके घरपर नित्य बहुतसे ब्राह्मण भोजन किया करते हैं ।।६१।। हे कान्त ! हम भी वहां रोज चला करेंगे, और भोजन करेंगे, स्त्रीने आश्वासन देकर जब ऐसे कहा, तब वे दोनों उसके घर भोजनके समय रोज आ आकर ।।६२।। भोजन करके अपने घर चले जाने लगे। बहुत दिनोंतक ऐसाही चला. किसी दिन अपनी स्त्रीके साथ गोपति भोजन करने आया ।।६३।। और सब ब्राह्मण तो भोजन करनेके लिए बैठ गए थे पर उसको बैठनेके लिए कोई आसन नहीं मिला, क्षुधार्थ गोपति जहां भण्डार था उसके पास ।।६४।। जा बैठा, वहांपर श्रीपतिकी भार्या गुणवती ने मनाकर दिया और कहा कि, यहां मत बैठ, यहांसे जल्दी उठकर दूर चला जा, नहीं तो यह सब अन्न उच्छिष्ट हो जायगा ।।६५।। दूर जाकर खडा रह, ये भोजन कर लेते हैं, थोडी देर बाद तुमभी भोजन कर लेना । गोपति की स्त्रीने भी यह वृत्तान्त देखा । इससे दोनों उदास होकर ।।६६।। बिना भोजन किए ही वहांसे निकलकर अपने घर चले आये। गोपति अपना पथ सोचता हुआ अपनी स्त्रीसे अपनी व्यवस्था कहने लगा ।।६७।। हे प्रिये ! भाईका क्या दोष

है ? मैंने उससे बराबरका हिस्सा लिया था मैं धनसंपतिके प्रमादसे मत्त होकर दुर्गतिको प्राप्त हुआ, धन गमादिया मैं दरिद्री होगया, यहां जो कारण है उसे सुन ॥६८॥ जब मैं और श्रीपति गुरु विवेकके यहां विद्याध्ययन करते थे, तब हम दोनोंने उपाङ्गललितादेवीका पवित्र व्रत किया था, उसके प्रभावसे हम दोनोंको विद्या और धन आदि ॥६९॥ मिले थे; पर मैंने धनके प्रमादसे प्रमत्त हो सब छोड़ दिया, मेरा बडा भाई श्रीपति उस व्रतको करता है, इससे नित्य इतना खरच करने पर भी लक्ष्मी उसकी सेवा करती ही रहती है ॥७०॥ इससे मैं अब भोजन तब ही करूंगा, जब कि पहिले उस देवीका दर्शन कर लूंगा । ऐसे कहकर बिना भोजन किये ही घरसे निकल कर चला गया ॥७१॥ अपने पतिकी चिन्तासे उसकी स्त्री भी घरमें बिना भोजन किये ही बैठी रही । इधर श्रीपतिने जब और ब्राह्मणभोजन कर चुके तब अपनी स्त्रीसे पूछा कि ॥७२॥ गोपति कहां गया? उसके जानेका हाल सुनकर श्रीपतिको भी बडा भारी दुख हुआ । इधर गोपति घरसे निकलकर नदी, दुर्गम देश और वनोंमें घूमता हुआ ॥७३॥ रस्तेमें चलने वालोंसे देवीके मिलनेका स्थान पूछता रहा, पर देवीके स्थानका पता नहीं लगा । ऐसे पांच दिन बीत गये, भूख प्यासके मारे व्याकुल एवं ॥७४॥ देवीके दर्शन हुए नहीं थे इससे दुखित हो गिर गया. भक्तवत्सला देवी उसे दुखी देख ॥७५॥ यद्यपि वो अपराधी था तो भी उस समय उसपर दया ही की, मूर्छाके बीतजानेपर दिशाओं को देखने लगा तो ॥७६॥ कुछ दूरीपर बहुतसी गऊओंको चराता हुआ एक गोपाल दीखा. उसके देखनेसे कुछ आश्वासन मिला, शनैः शनैः उसके पास पहुंच गया ॥७७॥ उससे पूछा कि, तुम कहां जाते हो ? कहां तुम्हारा निवास है ? कहांसे आये हो ? इस देशका क्या नाम है (जो थोडी दूरी पर दीखता है) ॥७८॥ इन वचनोंको सुनकर गोप बोला कि, यह उपाङ्गनामका शहर है, उसके राजाका नाम भी उपाङ्ग है ॥७९॥ यहां उपाङ्गललिता देवीका मन्दिर है । मैं भी यहां ही रहता हूं, यहांसे नहीं जाउंगा ॥८०॥ गऊ चरानेवालेके वचनोंको सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ, पीछे गोपालकों साथ ले सन्ध्याके समय उपाङ्गनगरमें घुस गया । "नगर" इसके स्थानपर "विवरं" पाठ भी मिलता है इसका यह अर्थ समझना कि, उस गोपालके साथ सायंकाल होनेपर एक गुहाके भीतर घुस गया॥८१॥ हे तपोधनो ! उस शहरके बीच उसने दूरसे ही एक मन्दिर देखा, वह भगवती उपाङ्गललिताका था, उस मन्दिरमें स्फटिकमणिकीही थी. ऊंचाईमें इतना ऊंचा था कि, मानो आकाशको चाट रहा है ॥८२॥ उसके शिखरपर सुवर्णका कलश लगा हुआ था, उससे उस मन्दिरकी शोभा ऐसी हो रही थी, जैसे सूर्यमण्डलसे उदयाचलकी होती है ॥८३॥ उसको देखकर पूछा कि, यह स्थान किसका है? उसने बताया कि, यही उपाङ्गललिता देवीका मन्दिर है । फिर वह झटपट प्रसन्न हो भगवती मन्दिरके भीतर चला गया, पृथिवीपर गिरकर हाथ जोड दण्डवत् प्रणाम किया ॥८४॥ देवीका स्तवन करने लगा कि, हे जगत्की धात्रि ! आपके लिये नमस्कार है. आप भक्तोंके भले करनेवाली हो, जगत्के भयोंको विनष्ट करती हो, सब प्रकारके मङ्गल आपही के स्वरूप हैं॥८५॥ निशुम्भ महिष प्रभृति देवशत्रुओंको मारकर इन्द्रादिक सब देवताओंको फिर अपने अपने अधिकार पर आपने पहुंचा दिया आपके अवतार त्रिलोकीकी रक्षाके लिये ही होते हैं । हे मातः। आप प्रसन्न हो मेरे पर सदा कृपा करें ॥८६॥ तेरे भक्त योगीजन योगपथसे तुझे पानेके लिये सुषम्ना नाडीके मुख पर लिपट फन रखकर बैठी हुई कुण्डलिनी शक्तिके रूपमें तुझे भजते हैं । मुक्तीके ही लिये देव मनुष्य कमलाके रूपमें सोनेके कमलपर आसन मारकर बैठी हुई आपका निरन्तर ध्यान करते हैं ॥८७॥ सुवर्णके कमलासनपर निरन्तर विराजी हुई आपकाही स्तवन करते हैं । आप चारभुजावाली हो उत्तम एवं सुन्दर आभूषणोंको पहिने हुई हो, एक हाथमें गदा और दो हाथोंमें शार्ङ्गधनुष और खड्गको धारण करती हो, चौथे हाथसे शरणागतोंको अभय दान करती हो ॥८८॥ आप सरस्वती हो आप कमल हस्ता लक्ष्मी हो, आप कमलोंके केसरोंमें वसती हो । आप महिषासुरको मर्दन करनेवाली हो । मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥८९॥ हे सबके जानेवाली देवि ! मैंने जन्म जन्ममें बहुतसे अपराध किये हैं, हे मातः ! उनको आप क्षमा करो ॥९०॥ मैं यद्यपि अपराधी हूं, पर हे जगदम्बिके ! तुम्हारे शरण आ गया हूं, इससे अब आपकी कृपाका अधिकारी हो गया हूं जो मेरी इच्छा है उसे पूर्ण करिये ॥९१॥ वह गोपति ऐसे देवीका स्तवन कर बारबार प्रणाम करके सायं सन्ध्या कर बिना भोजन किये वहां ही सो गया ॥९२॥ स्वप्नमें देवीने साक्षात् दर्शन देकर कहा कि, हे वत्स ! हे गोपते ! ! खडा हो, मैं संतुष्ट हूं

।।९३।। आप उपाङ्ग राजाके पास जाकर उससे मेरी पूजा करनेकी पिटारीके ढक्कनको मांगना ! उसको लेकर अपने घर चला जा वहां उसकी पूजा करते हुए परम समृद्धिको प्राप्त होगे ।।९४।। स्वप्नमें देवीका ऐसा सन्देश पा प्रभातमें गोपति खडा हो राजाके दर्शन करनेके समयमें राजद्वार पहुंचा ।।९५।। प्रतीहारोंने आनेकीखबर दी. भीतर बुलाया हुआ राजसभामें गया, राजाने सम्मान किया, राजाके दिये एक अच्छे आसनपर बैठ गया ।।९६।। राजाने गोपतिसे पधारनेके कारण पूछे । उसने नृपवरसे यही कहा कि, मैं आपके पाससे उपाङ्ग-ललितादेवीकी पूजाके करण्डविधानको मांगने आया हूं, आप मेरे लिये उसका दान करें ।।९७।। राजाने उसकी याचना सुन, अपने नौकरोंको उसे ला कर देनेको कहा और प्रणामकर और भी पूजनकी सामग्रियाँ दीं ।।९८।। गोपति प्रसन्न हो राजाको अनेक आशीर्वाद दे उसकी प्रशंसा करता हुआ अनुमति लेकर भगवती उपाङ्गललिताके मन्दिर को प्राप्त हुआ ।।९९।। उस बिलसे (गुहासे) झट बाहर निकल आया। ("बिलात्") इसके स्थानमें " पुरात् " भी पाठ है, उसका अर्थ यह है कि–उपाङ्गनामक नगरसे) फिर बाहर आया तो क्या देखता है कि, मेरा भृगुक्षेत्रग्राम भी नजदीक ही है, प्रसन्न हो अपने घर आ गया ।।१००।। अपने सुहृद् भाई बन्धुओंसे मिला । प्रेमके साथ सब वृत्तान्त कहा उस ढक्कनकी पूजा करके इतने दिन निराहार रहनेका जो व्रत हो गया था उसकी पारणाकी ।।१०१।। वह उस ढक्कनकी पूजा रोज करने लगा, इससे अत्यन्त समृद्धिशाली हो गया, श्रेष्ठ ब्राह्मण था, अतएव बहुत दिनों तक सत्रयज्ञका अनुष्ठान किया ।।२।। उसके एक ललिता नामकी सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, वह उस ढक्कनको लेकर बाहिर विहारके लिये रोज जानेलगी ।।३।। वह लडकी भोली थी, बडी प्यारी थी, इससे माता पिताओंने उसको लेजानेसे मना नहीं किया । किसी दिन वह ललिता अपनी बराबरकी ऊमरवाली और और कन्याओंके साथ गङ्गाजीके स्वच्छ पानीमें ।।४।। खेलते हुए, उसमें बहता हुआ एक मृतकशरीर देखा । उसके हाथमें ढक्कन था, इससे उसने उस ढक्कनमें जल-भर उसके ऊपर बूरसेही सींचा, सहेलियोंने अपने अपने हाथोंसे सींचा।।५।।जिसका वह गतप्राण शरीर था, वह सांपके डंकसे मर गया था, ढक्कनके जल पडनेसे देवीकी कृपाके कारण वह मुर्दा जिन्दा हो गया । वह अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मण था । उसे देख ललिताका मन पति बनानेको हो गया ।।६।। फिर पिताके घर भोजन करनेके लिये उसको आह्वान किया । रस्तेमें ललिताने उससे कुल स्वभाव आदि पूछे ।।७।। उसने कहा कि, मेरा नाम " गुणराशि " है । इतना कहकर अपने कुलादि भी बताये । फिर ललिताने उससे बातचीत करके समझाया ।।८।। कि, जब हमारे पिताके घरपर दूसरे दूसरे ब्राह्मणोंको परोसा जायगा, तब तुमको भी पाव प्रक्षालन कराकर आचमन कराया जायगा फिर भोजनकरनेके लिये मेरा पिता कहे तो तुम कहना कि, हम भोजनार्थी नहीं हैं, आप देना चाहें तो अपनी कन्याको देदें।।९।।मैं उसका अनुमोदन करूंगी,पिता मेरा दान तुमको दे देगा । ललिताके समझाये हुए गुणराशिने वही किया जो समझाया था ।।११०।। गोपतिने भार्य्या भाई और बान्धवोंके साथ विचार करके बिप्रत्व विद्या और कुल शीलकी परीक्षा लेकर ।।११।। पीछे ललिता देनेकी प्रतिज्ञा करके शुभ मुहूर्तमें दोनोंका विवाह कर दिया ।।१२।। जामाताके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये बहुतसा धन आनन्दके साथ दिया अपने जमाता तथा लडकीके रहनेके लिये अपने घरके समीपही एक घर बनवादिया ।।१३।। ललिता और गुणराशि परस्परमें बहुत प्रेम रखते हुए वहां बहुत दिनतक रहे. ललिता पतिके साथ आनेके समय उस ढक्कनको भी ले आई ।।१४।। गोपतिके घरपर ढक्कनकी पूजा नहीं हुई, इस कारण उसकी सब सम्पत्ति धीरे धीरे चली गई । ललिता उसकी पूजा करती थी, इससे देवीकी प्रसन्नताके कारण गुणराशि धनाढय हो गया ।।१५।। माताने उस ढक्कनके लिये बहुत वार याचना की पर उसने वह नहीं दिया ।अपने घर पूजती रही ।।१६।। फिर गोपतिकी स्त्रीने निश्चय किया कि, हमारे घरकी सम्पत्ति उस ढक्कनकी पूजा न रहनेसे ही नष्ट हुई है । गुणराशि होमके लिये समिधा लानेको जँगलमें गये उस अपने जामाता को भी दुष्टात्मा गोपतिकी स्त्रीने मरवा दिया ।।१७।। फिर कृत्रिम शोचको दिखाती हुई ललिताके घर आई, जँग-लमें मराया हु आभी गुणराशि देवीके अनुग्रहसे ।।१८।। शयनसे उत्थितकी भाँति उठकर घर में जा भोजनकर शयन करता था, ललिता उसके चरणोंको दबाती थी ।।१९।।यह देख दुःखित एवं लज्जित हो बारंबार भूमिमें

प्रणाम करके अत्यन्त कष्टके साथ ललिताकी माने अपने सब पाप कह दिये ।।१२०।। स्कन्द कहते हैं कि, गुणराशिने उसे बहुतसा प्रायश्चित दिया, वो अपनेको बहुतसे समयमें अनेकों कृच्छोंसे पवित्र करसकी ।।२१।। हे तपोधनो ! श्रीपतिकी अचल लक्ष्मीको देखकर गोपतिने पूछा कि, भाई ! आप कैसे रहते हैं ?।।२२।। आप ऐसा कौनसा कल्याणकारी कार्य करते हैं जिससे आपके घर लक्ष्मी सदा बनी रहती है । गोपतिके ऐसे वचन सुनकर श्रीपतिको बडा विस्मय हुआ, पीछे ।।२३।। गुरुजीके घर जो व्रत किया था उसकी याद दिलाई, स्त्रीने भी कहा, गोपतिने फिर व्रत किया ।।२४।। इससे उसे परम समृद्धि प्राप्त हुई पुत्र मिले प्रसन्न हुआ । इस कारण हे तपोधनो ! उपाङ्गललिता देवीका आराधन करना चाहिये ।।२५।। यह मैंने पहिलेकी बात और व्रतका माहात्म्य कह दिया है और भी बहुतोंने इस व्रतको किया था उन सबको भी उनके मनोरथ प्राप्त हुए ।।२६।। अपुत्र इस व्रतको करनेसे पुत्रवान् हो जाता है, जो इस ललिता देवीके उत्तम व्रतको करता है ।।२७।। वो लोकका पूज्य होता है, यह सर्वथा सत्य है झूठ नहीं है. हे तपोधनो ! मैं इसका विधान कहता हूं आप सावधान हो कर सुनें ।।२८।। आश्विनमास शुक्ला पंचमीके दिन इस व्रतको करना चाहिये यदि सन्ध्याकालमें मेघ गरजजाय अथवा दिनकी वृद्धि और क्षय हो तो न करना चाहिये ।।२९।। पवित्र और राग रहित हो नित्य कर्मसे निवृत्त होकर बनमें उपस्थित हो अपामार्गकी प्रार्थना करे ।।३०।। 'आयुर्बलम्" यह पहिले कहा हुआ प्रार्थनाका मंत्र है ।।३१।। यह वनस्पति प्रार्थना हुई । विधिसे अडतालीस या आठ दांतुन बना उन्हें तडाग या नदी पर ले जाय ।।३२।।३३।। फिर पूर्व कहेहुए दन्तधावनके मंत्रको बोलकर दांतुन करे ।।३४।। यह दांतुन विधान पूरा हुआ । दांतुन करके मज्जन करे पीछे स्नान करके अहतवस्त्र पहिन घरपर चला आवे ।।३५।। पवित्रस्थलमें एक अत्यन्त सुन्दर छोटीसी मंडपिका बनाकर उसमें शक्तिके अनुसार सोनेकी बनीहुई मंत्रपूर्वक वैधनिष्पन्न मूर्तिको स्थापित करके ।।३६।। मंत्रसहित षोडशोपचारसे एकाग्रचित्त हो प्रयत्नके साथ पूजन करे । विशेष करके दूर्वाओंसे पूजन होना चाहिये ।।३७।। बीस बडोंका बायना आचार्यको देना चाहिये, पीछे कथा सुनकर बायनेके अन्नकी संख्याके बराबर भाइयोंके साथ मौन ।।३८।। होकर आप भोजन करना चाहिये रातमें जागरण कर उसमें नाच गान और वाद्य होने चाहिये ।।३९।। प्रभातमें देवीका पूजन करके विसर्जन कर देना चाहिये कि, बाहुल और शक्तिके साथ वरदाका पूजन किया है ।।४०।। हे मातः ! मुझ पर कृपा करती हुई अपने स्थानको चली जा, अर्चा गुरुके लिये बहुतसी दक्षिणा देनी चाहिये ।।४१।। जो इस व्रतको करता है वो पुत्र बान्धव विद्या और गोधनवाला सुखीतया रोगरहित होता है ।।४२।। स्त्रीको सौभाग्य, कन्याकोउत्तम वर मिलता है, विजय पुष्टि और आयुष्य एवम् जो भी कुछ मनका चाहा होता है वह सब मिल जाता हैं ।।४३।। हे महर्षियो ! मैंने यह व्रत इतिहासके साथ कहा है; इसे सुनकर भी मनुष्य सुखको प्राप्त होता है यह निश्चित है ।।४४।। इस व्रतराजके प्रसादसे वो सब कष्टोंसे रहित सुखी और बुद्धिमान् होता है तथा वित्त आरोग्य और आयुष्यको पाता है इसमें सन्देह नहीं है ।।४५।। यह श्रीस्कन्दपुराणकी कही हुई उपाङ्गललिताव्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथोद्यापनम्—आचार्यं वरयेत्पश्चादृत्विजो विंशतिं तथा ।। उपलिप्ते शुचौ देशे विलिखेन्मण्डलं ततः ।।१।। ब्रह्मादींश्च ततः स्थाप्य पूजयेद्विधिमन्त्रतः ।। अव्रणे कलशे शुद्धे ललितां स्थापयेत्तथा ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते होममाचरेत् ।। इक्षुदण्डतिलैः शुद्धैः पायसेनापि वा व्रती ।। अष्टोत्तरशतं हुत्वा बलिदानं समाचरेत् ।। वायनं च ततो दद्याद्वंशपात्रे निधाय च ।। वटकान् विंशतिसंख्यान्निर्मलान्घृतपाचितान् ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालङ्कार धेनुभिः ।। ऋत्विजश्च तथा दद्यात् कुम्भ वस्त्रं सदक्षिणम् ।। विसृज्य च ततः पीठमाचार्याय निवेदयेत् ।। भोजयेच्च ततो विप्रान् पायसान्नेन भक्तितः ।। विप्राज्ञां च ततो गृह्य स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः

।। इति श्रीस्क० पु० उपा० उद्यापनम् ।। वसन्तपञ्चमी विधिः ।। अथ माघशुक्लपञ्चम्यां वसन्तप्रवृत्तिः ।। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा ।। तत्र विष्णोः पूजा कार्या ।। माघे मासि सिते पक्षे पञ्चम्यां पूजयेद्धरिम् ।। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या वसन्तादौ तथैव च ।। तैलाभ्यङ्गं ततः कृत्वा भूषणानि च धारयेत् ।। नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा [1]पिष्टातेनार्चयेद्धरिम् ।। गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यैः पूजयेत्सदा ।। नारी नरो वा राजेन्द्र संतर्प्य पितृदेवताः ।। स्रक्चन्दनसमायुक्तान्ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।। इति हेमाद्रौ वसन्तपञ्चमीविधिः ।।

उद्यापन–पहिले आचार्य्यका विधिपूर्वक वरण करके पीछे बीस ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये, लिपे हुए पवित्र स्थलमें मण्डल लिखना चाहिये, पीछे विधि एवं मन्त्रोंसे ब्रह्मादिक देवोंकी स्थापना करके पूजन करना चाहिये, विना फूटे शुद्ध कलशपर विधिपूर्वक ललिताकी स्थापना करके पूजन करना चाहिये, रातको जागरण करके प्रातःकाल होम करना चाहिये, व्रतीको चाहिये कि, शुद्ध ईखके टुकडे और तिलोंसे अथवा खीरसे एक सौ आठ आहुति देकर बलिदान करना चाहिये। २० वटकों (उडद्के वडों) को जो कि अच्छे घीमें पकाये गये हों उन्हें वांसके पात्रमें रखकर वायना देना चाहिये। पीछे वस्त्र अलंकार और धेनुसे आचार्य्यका पूजन करना चाहिये तैसेही ऋत्विजोंको भी दक्षिणा और वस्त्र सहित कुंभ देना चाहिये, पीछे विसर्जन करके पीठ आचार्य्यको दें, पायसान्नसे भक्ति भावके साथ ब्राह्मण भोजन करावे, पीछे ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर आप सब बन्धुओंके साथ भोजन करे। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ उपाङ्गललितादेवीके उद्यापनका विधान पूरा हुआ ।।

वसन्तपंचमी–माघ शुक्ला पंचमी कहाती है इसमें वसन्तकी प्रवृत्ति मानते हैं, यह तिथि मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये। यदि दो दिन यह मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा दोनों ही दिन न हो तो पूर्वाका ग्रहण करना चाहिये, इसमें विष्णु भगवान्की पूजा करनी चाहिये। माघ शुक्ला पंचमीको भगवान्का पूजन करना चाहिये, वसन्तके आदिमें इसे पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये, तैलाभ्यङ्ग करके विधिपूर्वक भूषण धारण करने चाहिये, नित्य नैमित्तिक कर्म करके गुलालसे भगवान्का पूजन करना चाहिये, गन्ध, पुष्प, धूप और नैवेद्यमें सदा पूजे, हे राजेन्द्र ! स्त्री हो वा पुरुष हो इस प्रकार पित्रीश्वर और देव तर्पण, करके गलेंमें माला तथा शिरमें चन्दन लगाये हुए जो ब्राह्मण हों उन्हें भोजन कराना चाहिये। यह हेमाद्रिकी कही हुई वसन्त पंचमीको विधि पूरी हुई, इसके साथ ही पंचमीके व्रतभी पूरे हुए ।।

अथ षष्ठीव्रतानि

ललिताषष्ठी

तत्र भाद्रशुक्लषष्ठ्यां ललिताव्रतं हेमाद्रौ भविष्ये ।। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा, जागरणप्रधानत्वात् ।। इदं गुर्जरदेशे प्रसिद्धम् ।। कृष्ण उवाच ।। भद्रे भाद्रपदे मासि शुक्ले षष्ठ्यां सुसंयुता ।। नारी स्नात्वा प्रभाते तु शुक्लमाल्याम्बरा शुचिः ।। सुवेषाभरणोपेता भूत्वा संगृह्य वालुकाम् ।। कृत्वा तस्या वंशपात्रे पञ्चपिण्डाकृतिं शुभाम् ।। ध्यात्वा तु ललितां

१ गुलालेति प्रसिद्धेन ।

देवीं तपोवननिवासिनीम् ।। पङ्कजं करवीरं च नेवालीं मालतीं तथा । नीलोत्पलं केतकं च संगृह्य तगरं तथा । एकैकाष्टशतं ग्राह्यमष्टाविंशतिरेव वा ।। अक्षताः कलिका ग्राह्यास्ताभिर्देवीं समर्चयेत् ।। प्रार्थयेदग्रतो भूत्वा देवीं तां गिरिशप्रियाम् ।। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।। स्नात्वा कनखले तीर्थे हरं लब्धवतीं पतिम् ।। ललित ललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि ।। अनन्तं देहि सौभाग्यं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।। मन्त्रेणानेन कुसुमैश्चम्पकैर्बकुलैः शुभैः ।। एवमभ्यर्च्य विधिना नैवेद्यं पुरतो न्यसेत् ।। त्रपुसैलपि कूष्माण्डैर्नारिकेरैः सुदाडिमैः ।। बीजपूरैः सतुण्डीरैः कारवेल्लैः सचिर्भटैः ।। फलैस्तत्कालसंभूतैः कृत्वा शोभां तदग्रतः ।। विरूढैर्धान्यसंभूतैर्दीपिकाभिः समन्ततः ।। सार्धं सगुडकैर्धूपैः सोहालककरञ्जकैः ।। घृतपक्वैः कर्णवेष्टैर्मोदकैरुपमोदकैः ।। बहुप्रकारैर्नैवेद्यैर्यथाविभवसारतः ।। एवमभ्यर्च्य विधिवद्रात्रौ जागरणोत्सवम् ।। गीतवाद्ययुतैर्नृत्यैः प्रेक्षणीयैरनेकधा ।। सखीभिः सहिता साध्वी तां रात्रिं प्रशमं नयेत् ।। न च संमीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टयम् ।। दुर्भगा दुःखिता वन्ध्या नेत्रसंमीलनाद्भवेत् ।। एवं जागरणं कृत्वा सप्तम्यां सरितं नयेत् ।। गन्धपुष्पैरथाभ्यर्च्य गीतवाद्यपुरःसरम् ।। तच्च दद्याद्द्विजेन्द्राय नैवेद्यादि नृपोत्तम ।। स्नात्वा वस्त्रं परीधाय धृत्वा सौभाग्यकुंकुमम् ।। ततो गृहं समागत्य हुत्वा वैश्वानरं क्रमात् ।। देवान्पितॄन्ब्राह्मणांश्च पूजयित्वा सुवासिनीः।। कन्यकाश्चैव संभोज्य दीनानाथांश्च भोजयेत् ।। भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्दत्त्वा दानानि भूरिशः ।। ललिता मेऽस्तु सुप्रीता इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ।। यः कश्चिदाचरेदेतद्व्रतं सौभाग्यदं परम् ।। षष्ठ्यां तु ललितासंज्ञं सर्वपापनिबर्हणम् ।। नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु ।। यत्तु लभ्यं व्रतैश्चान्यैर्दानैर्वा नृपसत्तम ।। तपोभिर्नियमैर्वापि तदेतेन हि लभ्यते ।। इह चैवातुला संपत्सौभाग्यमनुभूय च ।। कृत्वा मूर्ध्नि पदं पार्थ सपत्नीनां यशस्विनी ।। मृता शिवपुरं प्राप्य देवैरसुरपन्नगैः ।। प्राप्नोति दर्शनं देव्यास्तया तु सह मोदते ।। पुण्यशेषादिहागत्य पुण्यसौख्यैकभाजनम् ।। सा स्त्री त्रेतायुगे साध्वी सीतेव प्रियवल्लभा ।। इदं यः शृणुयात् पार्थ पठेद्वा साधुसंसदि ।। सोऽपि पापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते ।। षष्ठ्यां जलान्तरगतां वरवंशपात्रे संगृह्य पूजयति या सिकतां क्रमेण ।। नक्तं च जागरमनुद्धतवेषशीला कुर्यादसौ त्रिभुवने ललितेव भाति ।। इति हेमाद्रौ ललिताषष्ठीव्रतम् ।।

---

१ गुडपुष्पैरित्यपि पाठः २ कुर्यादिति शेषः ३ समापयेदित्यर्थः ४ ब्राह्मण्यो दश पंच चेत्यपि पाठः

षष्ठीव्रतानि

अथ छठके व्रत कहते हैं । ललिताव्रत–भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको होता है यह हेमाद्रिने भविष्यपुराणको लेकर लिखा है । यह मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये, मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा न हो दो हों तो पूर्वा ही लेनी चाहिये । क्योंकि इसमें जागरण प्रधान है, जागरण रातमें होता है उसमें तिथि रहनी ही चाहिये । यह गुर्जर देशमें प्रसिद्ध है । भगवान् कृष्ण बोले कि, सुन्दर भाद्रपद महीनाकी शुक्ला षष्ठीके दिन समाहित चित्तवाली स्त्रीको चाहिये कि, प्रातःकाल स्नान करके सफेद माला और अम्बर धारण कर पवित्रतापूर्वक अच्छे वेष बना आभूषणोंसे सज बालू ले उसके पांचपिण्ड बनाबांसके पात्रमें रखकर तपोवननिवाहिनी ललितादेवीका ध्यान करे । पंकज, करवीर, नेवाली, मालती, नीलोत्पल, केतक, तगर इन सबको एक एक सौ आठ या अट्ठाईस २ ले विना टूटी हुई कली ले उनसे देवीकापूजन करे । अगाडी होकर शिवकी प्यारी देवीकी प्रार्थना करे कि, जिसने गंगाद्वार कुशावर्त्तविल्वक (तीर्थविशेष) नीलपर्वत और कनखलमें स्नान कर उसके प्रभावसे महादेवजीका पाणिग्रहण किया है उस महेश्वरवल्लभा ललितादेवीकी प्रार्थना करे कि, हे सुन्दरि ललिते ! हे सौख्य और सौभाग्यको देनेवाली ! आप मुझे अनन्त पुत्रपौत्रोंकी समृद्धिवाले सौभाग्य सुखको, दे इस मन्त्रको पढती हुई चम्पेके और मोलसरीके सुगंधित पुष्पों से विधिवत् पूजन करके नैवेद्य सम्मुख धरे । उसमें त्रपुस (फलविशेष) कूष्माण्ड, नारिकेल, अनार, बीजपूर (बिजोर) तुण्डीर (फलविशेष), कारवेल्ल (करेला) और चिर्भट (फलविशेष) इन फलोंको रखदे, एवं जो जो फल उस समयमें उत्पन्न होते हों उनको चढावे । नवीन धान्यकी मञ्जरियां चारों ओर लटकाकर छोटी छोटी दीपिकाएँ लटकावे, जिससे कि उस स्थानकी शोभा बढे, धूप करे, गुडके बने हुए पदार्थ, सुहाली, करञ्जक, धृतकी जलेबी, लड्डू और अन्यप्रकारके लड्डू आदि नाना पदार्थोंका अपनी शक्तिके अनुसार नैवेद्य लगावे, इस प्रकार विधान समाप्त करके रात्रिमें जागरणका उत्सव करे गान वाद्य और अनेक प्रकारके दर्शनीय नृत्य करे, ये सब अपनी सखियोंके साथमें करे । जागरणमेंही रात्रि समाप्त करे । नेत्र न मींचे क्योंकि, नेत्रोंके मीचनेसे दुर्भगा दुःखिता और वन्ध्या हो जाती है । ऐसे षष्ठीमें जागरण करके सप्तमीके प्रातःकाल नदीपर ले जाय, वहां उसकी गन्ध पुष्पादिकोंसे पूजा और गान वाद्य वादनादि करे । हे नृपोत्तम ! जो सामग्री देवीके अर्पण की हैं उनको तथा वालुकामयी देवीको आचार्यके लिये दे नदीमें स्नान करे, वस्त्र पहिरे, सौभाग्यसूचक, रोली सिन्दूर आदि लगावे । पीछे घर आकर अग्निमें हवन, देवता, पितृजन, ब्राह्मण और सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन करके कन्या, दीन और अनाथोंको बहुविध भक्ष्य भोज्य खिलावे और ' ललितादेवी मेरे पर प्रसन्न हो ' ऐसा कह बहुतसा द्रव्य दे, उनको विदाकर पीछे विसर्जन करदे । जो कोई इस छठके सौभाग्यदायी सब पापोंके संहारक ललिताव्रतको करता है वो पुरुष हो या स्त्री; जिस फलको पाता है उसे सुनो हे नृपसत्तम ! दूसरे सब व्रतों एवम् दान तप और नियमानुष्ठानोंसे जो फल मिलता है, वह सब इस व्रतसे मिल जाता है । व्रत करनेवाली स्त्री इस लोकमें अतुल सम्पत्ति और सौभाग्य सुख भोगकर, सपत्नियोंके शिरपर पग रख यश लाभ करती है एवं मरनेपर कैलास जा देवता, असुर और पन्नगोंके अर्हानिश वाञ्छित भगवतीके दर्शनोंको करती हुई देवीके साथ सहेलीकी भाँति निवास करती है । पुण्य भोग यहां जन्म ले पुण्यमय आनन्द भोगती है । और वह स्त्री त्रेतायुगमें जैसे सीता रामचन्द्रजीकी प्रेयसी हुई है, वैसेही अपने पतिकी प्यारी होती हैं । हे पार्थ ! जो मनुष्य महात्माओंकी मण्डलीमें बैठकर इस व्रतकी कथा सुनता है या पढता है वह भी पापोंसे छूटकर इन्द्रलोकमें चला जाता है । जो भादों सुदि षष्ठीके दिन नदीकी वालुकासे पञ्चपिण्डरूपा देवीको बना बांसकी पिटारीमें धरकर पूजन और रातमें जागरण करती है और शान्त पवित्र वेष और स्वभाव रखती है, वह स्त्री त्रिलोकीमें ललिता (गौरी) के समान गिनी जाती है यह श्री हेमाद्रिमें कही हुई ललिताषष्ठीके व्रतकी कथा पूरी हुई ॥

कपिलाषष्ठी ॥ अथ भाद्रपदकृष्णषष्ठ्यां कपिलाषष्ठीव्रतम् ॥ तच्च योगविशेषेण पूर्वविद्धायां परविद्धायां वा कार्यम् ॥ ते च योगाः पुराणसमुच्चये दर्शिताः–भाद्रे मास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते ॥ पाते कुजे च रोहिण्यां सा

षष्ठी कपिला स्मृता । संयोगे तु चतुर्णां च निर्दिष्टा परमेष्ठिना ।। अथ व्रतविधि-र्हेमाद्रौ स्कान्दे ।। विक्रान्त उवाच ।। रूपसंपदमारोग्यं सन्ततिं चाति पुष्कलाम् ।। प्राप्नुवन्ति नरा येन नियमं तं वदस्व मे ।।१।। अगस्त्य उवाच ।। साधुसाधु महा-प्राज्ञ यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।। तत्सर्वं कथयिष्यामि ततः श्रेयोभविष्यति ।। शृणु पार्थिव वक्ष्यामि स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम् ।।२।। यच्च गुप्तं पुरा राजन्ब्रह्मरुद्रेन्द्र-दैवतैः । असुराणां च सर्वेषां राक्षसानां तथैव च ।।३।। शंकरेण पुरा चैतत्षण्मु-खाय निवेदितम् ।। षण्मुखेन ममाख्यातं महापातकनाशनम् ।।४।। यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।। अगारदाही गरदः सर्वपापरतोऽपि वा ।।५।। मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं च गच्छति । यच्च पुण्यं पवित्रं च नृणामद्भुतनाश-नम् ।।६।। उपकाराय लोकानां तथा तव नृपोत्तम ।। शृणु भूप महापुण्यं षष्ठी-माहात्म्यमुत्तमम् ।।७।। [1]प्रौष्ठपदासिते पक्षे षष्ठी भौमेन संयुता ।। व्यतीपातेन रोहिण्या सा षष्ठी कपिला स्मृता ।।८।। [2]आश्विनस्यासिते पक्षे महापुण्यप्रवर्धिनी ।। षष्टिसंवत्सरस्यान्ते सा पुनस्तेन संयुता ।।९।। चैत्रवैशाखयोर्मध्येऽसिते पक्षे शुभो-दया ।। वैशाखेऽपि च राजेन्द्र द्वारवत्यां परा स्मृता ।।१०।। यदि हस्ते सहस्रां-शुस्तदा कार्यं व्रतं बुधैः ।। अस्यां चैव हुतं दत्तं यत्किञ्चित् प्रतिपादितम् ।।११।। तस्य सर्वस्व पुण्यस्य संख्या वक्तुं न शक्यते ।। यस्मिन्काले भवेदेतैर्गुणैः षष्ठीयुता तदा ।। १२।। पञ्चम्यामेकभक्तं च कुर्यात्तत्र विचक्षणः ।। षष्ठ्यां प्रातः समुत्थाय कृत्वादौ दन्तधावनम् ।। जलपूर्णाञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।१३।। निरा-हारोऽद्य देवेश त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ।। पूजयिष्याम्यहं भक्त्या शरणं भव भास्कर ।।१४।। अर्घ्यं दत्त्वेति संकल्पं कृत्वा यत्नाच्छुचिस्ततः ।। स्नानं कृत्वा प्रयत्नेन नद्यां तीर्थेऽथवा ह्रदे ।।१५।। तडागे दीर्घिकायां वा गृहे वा नियतात्मवान् ।। देवदारुं तथोशीरं कुंकुमैलामनःशिलम् ।।१६।। पद्मकं पत्रकं [1]षष्टिं [2]मधुगव्येन पेषयेत् ।। क्षीरेणालोड्य कल्केन स्नानं कुर्यात् समन्त्रकम् ।।१७।। आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च।।पापं शमय देवेश मनोवाक्कायकर्मजम्।।१८।।पञ्चग-व्यकृतस्नानः पञ्चभङ्गैस्तु मार्जयेत् ।। आनेयमृत्तिकां शुद्धां स्नानार्थं वै प्रयत्नतः ।।१९।। मृत्तिके ब्रह्मपूतासि काश्यपेनाभिमन्त्रिता ।। पवित्रं कुरु मां नित्यं सर्व-पापात्समुद्धर ।।२०।। अनेन मृत्तिकास्नानम् ।। मन्त्रेणानेन वरुणं प्रार्थयेद्भक्ति-मान्नरः ।।२१।। पाशाग्रहस्तः वरुण सर्ववारीश्वर प्रभो ।। अद्याहं प्रार्थयामि त्वां पूतं कुरु सुरेश्वर ।।२२।। आदित्यो भास्करो भानू रविः सूर्यो दिवाकरः ।। प्रभा-

---

१ भाद्रपदः २ हेमाद्रौ तु एतदर्धस्थाने—द्वितीया तु महापुण्यादुर्लभा व्रतिनः क्वचित् इत्यर्धमस्ति पूर्वोक्तयोनेन १ षष्टिकतण्डुलाः २ पांचपल्लवं

करो वितिमिरो देवः सर्वेश्वरो हरिः ॥२३॥ इति जपित्व ॥ गोमयेनोपलिप्तायां भूम्यां वै कुंकुमेन तु ॥ मण्डलं सर्वतोभद्रमालिखद्बुद्धिमान्नरः ॥ तत्र मध्ये लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥२४॥ पूर्वपत्रे न्यसेत्सूर्यमाग्नेये तपनं न्यसेत् ॥ सुवर्णरेतसं याम्ये नैर्ऋत्ये च न्यसेद्रविम् ॥२५॥ आदित्यं वारुणे पत्रे वायव्ये च दिवाकरम् ॥ सौम्ये प्रभाकरं तत्र सूरमीशानपत्रके ॥२६॥ तीव्ररश्मिधरं देवं ब्रह्माणं चैव विन्यसेत् ॥ आधाररूपिणं देवं मध्ये चैवारुणं न्यसेत् ॥२७॥ सहस्ररश्मि सूर्यं च सूक्ष्मस्थूलगुणान्वितम्॥ सर्वगं सर्वरूपं च मध्ये भास्करमेव च ॥ सप्ताश्वरथमारूढं पद्महस्तं दिवाकरम् ॥ अक्षसूत्रधनुष्पाणि कुण्डलैर्मुकुटेन च ॥ रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णं तत्र कारयेत् ॥ शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धं कर्षतोऽपि वा॥ सौवर्णमरुणं कुर्याद्रज्जुं चैव तथाविधाम् ॥ सप्ताश्वैर्भूषितं कृत्वा रथं तस्याग्रतः स्थितम्॥अरुणं विनतापुत्रं गृहीताश्वमनूरुकम् ॥ एवंरूपं रथं कृत्वा पद्मस्योपरि विन्यसेत् ॥तस्योपरि न्यसेद्देवं रक्तवस्त्रविभूषितम्॥ रक्तचन्दनमाल्यादिमण्डितं चातिशोभनम् ॥ अग्रतः सारथिं कृत्वा पूजयेदरुणं शुचिः ॥ रक्तपुष्पैस्तु गन्धैश्च तथान्यैरपि शक्तितः ॥ विनतातनयो देवः कर्मसाक्षी तमोनुदः ॥ सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च अरुणो मे प्रसीदतु॥मन्त्रेणानेन संपूज्य सारथिं तदनन्तरम्॥देवस्य त्वासनं कल्प्यं प्रभूतादिकपञ्चकम्॥प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं शुभम्॥दीप्तादिशक्तिभिश्चैव ततो भानुं प्रपूजयेत् ॥दीप्तासूक्ष्मा तथा भद्रा बिम्बिनी विमलानघा ॥ अमोघा वैद्युता चेति नवमी सर्वतोमुखी ॥अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ॥ यः स्मरेद्भास्करं देवं स बाह्याभ्यन्तरःशुचिः ॥ शिखायां भास्करं न्यस्य ललाटे सूर्यमेव च ॥ चक्षुर्मध्ये न्यसेद्भानुं मुखे तत्र रविं न्यसेत् ॥ कण्ठे न्यसेद्भानुमन्तं पद्महस्तं द्विहस्तयोः ॥ तिमिरक्षयकृद्देवं स्तनयोरेव विन्यसेत् ॥ जातवेदोभिधं नाभ्यां कट्यां भानुं तथा न्यसेत् ॥ उग्ररूपं गुह्यदेशे तेजोरूपं द्विजंघयोः ॥ पादयोः सर्वरूपं तु सूक्ष्मस्थूलगुणान्वितम् ॥एवं यथोक्तं विन्यस्य पात्रं गृह्य ततोऽर्चयेत् ॥ करवीरार्ककुसुमैरक्तचन्दनमिश्रितैः ॥ पुष्पैः सुगन्धैर्धूपैश्च कुंकुमैरुपशोभितम् ॥ मार्तण्डं भानुमादित्यं भास्करं तपनं रविम् ॥ हंसं दिवाकरं चेति पादतो मुकुटावधि ॥ पादौ जंघे तथा जानुद्वयमूरू कटी तथा ॥ नाभिर्वक्षस्थलं शीर्षमेतेष्वङ्गेषु पूजयेत् ॥ आनयेदर्घ्यपात्रं चेद्रौप्यं वा ताम्रमेव च ॥

---

१ अत्रमध्ये पूज्यं भास्करमनूद्य तत्रध्येयागुणाविधीयन्ते । २ विनतेत्यपि पाठः ३ पात्रमित्यर्चनान्तर्गतार्घ्यसमय एव वक्ष्यमाणद्वादशार्घ्यसाधारणपात्रपरिग्रहो विधीयते ॥ शोभितमित्यर्चयेदिति क्रियाविशेषणम् ॥ (कौ ०) २ चेदित्यनेन वक्ष्यमाणद्वादशार्घ्येषु पूजान्तर्गतार्घ्यपात्रात्पात्रभेदपक्षो ज्ञाप्यते (कौ०)

अर्घ्यार्थं[1] दैवतं[2] पात्रमुदकेन प्रपूरयेत्।।पूजयेत्तत्र प्रागादिदेवतास्ताः समाहितः।दिग्देवतास्ततः पूज्या गन्धपुष्पानुलेपनैः ।। पात्रे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ।। जानुभ्यामवनिं गत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्।। वेदगर्भ नमस्तुभ्यं देवगर्भ नमोऽस्तु ते ।। अव्यक्तमूर्तये तुभ्यमर्घ्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते।। ब्रह्ममूर्तिधरायेश चतुर्वक्त्र सनातन ।। सृष्टिस्थितिविनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। विष्णुरूपधरो देवः पीतवस्त्रचतुर्भुजः ।। प्रभवः सर्वलोकानामर्घ्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते।। तं रुद्ररूपिणं वन्दे भगवन्तं त्रिशूलिनम् ।। यो दहेच्च त्रिलोकं वै अर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते।। उदयस्थ महाभूत तेजोराशिसमुद्भव।। तिमिरक्षयकृद्देव ह्यर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।। मन्त्रपूत गुडाकेश नृगते व्याधिनाशन।।सप्तभिश्चैव जिह्वाभिरर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।। त्वं ब्रह्मा च त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च प्रजापतिः।।त्वमेव सर्वभूतात्मा अर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।। कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा सर्वतोमुखः ।। जन्ममृत्युजराशोकसंसारभयनाशनः ।। दारिद्र्यव्यसनध्वंसी श्रीमान् देवो दिवाकरः ।। सुवर्णःस्फाटिको भानुः स्वर्णरेता दिवाकरः।। हरिदश्वोंशुमाली च अर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।। चतुर्भिर्मूर्तिभिः संस्था त्वष्टाभिः परिगीयते ।। सामध्वनिस्तुतो यज्ञे अर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।। अथ गन्धं च पुष्पं च तथा धूपंप्रदीपकम्।।नैवेद्यं च यथा शक्त्या प्रार्थयेत्सूर्यदेवताम् ।। अग्निमीळे नमस्तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे ।। इषे त्वैव नमस्तुभ्यमग्ने चैव नमोनमः ।। शन्नो देवी नमस्तुभ्यं जगज्जन्म नमो नमः ।। आत्मरूपिन्नमस्तुभ्यं विश्वमूर्ते नमोनमः ।। त्वं धाता त्वं च वै विष्णुस्त्वं ब्रह्मा त्वं हुताशनः । मुक्तिकाममभीप्सामि प्रार्थयामि सुरेश्वर ।। विश्वतश्चक्षुराख्यातो विश्वतश्चरणाननः ।। विश्वात्मा सर्वतोदेवः प्रार्थयामि सुरेश्वर ।। इति मंत्रं समुच्चार्य नमस्कुर्वीत भास्करम् ।। संवर्चसेति पाणिभ्यां तोयेन विमृजेन्मुखम् ।। हंसः शुचिषदित्यृचा सूर्यस्यैवावलोकनम् ।। उदुत्यं चित्रमित्येतत्सूक्तं देवाग्रतो जपेत् ।। पद्मकेसरकोणे तु फलकं चैव कारयेत् ।। फलैः पुष्पैरक्षतैश्च भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ।।

---

१ अर्घ्या वक्ष्यमाणास्तदर्थम् ।। दैवतं दैवकर्मार्हं ताम्रादिजातीयम् ।। प्रपूरयेदिति वक्ष्यमाणार्घ्यपर्याप्तं पूरणं कार्यमित्याशयः ।।पूरितपात्रेष्टदिक्षु दिशां पूजनं ततो दिक्पालानामिन्द्रादीनां ततः पूर्वार्घ्यपात्रेपात्रान्तरे वा तोयं समादायेति क्रियावीप्सया समादाय समादायार्घ्यं निवेदयेदित्यर्थः ।। (कौ०) २ अत्र हरिहस्त्र इत्यर्धस्य कालात्मेत्याद्यर्द्धचतुष्टयान्तेषु प्रत्येकमनुषङ्गान्मंत्रचतुष्टयं बोध्यम् ।। अत एव दारिद्र्येत्यर्धद्वये दिवाकर पदपाठनिमित्तपौनरुक्त्यभावः ।। एवं सति द्वादशमंत्राः संपद्यन्ते (कौ) ३ दत्त्वेति शेषः १ प्रशस्ते चैव कोणेचेत्यपिपाठः (कौ०)

१ अत्रास्तप्रारंभसमये कोणफलकोपरि ऐशानदिशि शय्यां निधाय तत्समीपे फलपुष्पाक्षतनानाविधभक्ष्यैः सह षड्रसषड्धान्यानि निधाय शय्याया अधो लवणं निधाय राजतं खड्गहस्तं पुरुषं शय्योपरि निधाय तत्र नमस्त इति मंत्रेण पंचोपचारपूजनं तदन्तर्गतार्घ्यदानं त्वायाव्याप्तमिति मन्त्रेणेति बोध्यम्।। (कौ०)

शय्यां तत्र च देवस्य शुभे देशे प्रकल्पयेत् ।। षड्धान्यं षड्रसं चैव रोप्यं चैव महाप्रभुम् ।। पुरुषं खड्गहस्तं च कारयेच्चैव बुद्धिमान् ।। वस्त्रयुग्मेन सञ्छन्नं लवणोपरि विन्यसेत् ।। अनेनैव तु मन्त्रेण स्नानमर्घ्यार्चनं ततः ।। नमस्ते क्रोधरूपाय खड्गहस्त जिघांसवे ।। जिघांसकं च त्वां दृष्टा दुद्रुवुः सर्वदेवताः।। त्वया व्याप्तं मेरुपृष्ठं चण्डभास्कर सुप्रभम्।।अतस्त्वां पूजयिष्यामि अर्घ्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते ।। क्षपयित्वा तु तां रात्रिं गीतवादित्रनिःस्वनैः ।। ततस्त्वभ्युदिते सूर्ये होमं कुर्यात्स्वशक्तितः ।। पूजयेत्तत्र[1] शक्त्या[2] च देवांश्च[3] विधिवद्गुरुम्।।होमोऽर्कस्य समिद्भिश्च घृतमिश्रैस्तिलैस्तथा ।। संसिद्धं च चरुद्रव्यं घृतं च जुहुयाद्द्विजः ।। आकृष्णेनेति मन्त्रेण शतमष्टोत्तरं क्रमात् ।। होमो व्याहृतिभिर्वाथ स्विष्टकृत्तदनन्तरम् ।। कपिलां पूजयेद्देवीं सवत्सां पापनाशिनीम् ।। वस्त्रयुक्तां सघण्टां च स्वर्णशृङ्गविभूषिताम् ।। ताम्रपृष्ठीं[4] रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् ।। मन्त्रे[5]णानेन तां दद्याद्ब्राह्मणाय च शक्तितः।।कपिले[6] सर्वभूतानां[7] पूजनीयासि रोहिणी ।। सर्वतीर्थमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।। या लक्ष्मीं सर्वदेवानां या च देवेष्ववस्थिता ।। धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ।। देहस्था या च रुद्राणां शङ्करस्य च या प्रिया ।। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ।। विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा चैव विभावसोः ।। चद्रार्कानलशक्तिर्या धेनुरूपास्तु मे श्रिये।। चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च। लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ।। स्वधा त्वंपितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजामपि।। वषड् या प्रोच्यते लोके सा धेनुस्तुष्टिदास्तु मे ।। गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।। गावः स्पृष्ट्वा नमस्कृत्य यो वै कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।। नमस्ते कपिले देवि सर्वपापप्रणाशिनि ।। संसारार्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि ।। हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः ।। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।। रक्तवस्त्रयुगं यस्मादादित्यस्य च वल्लभम् ।। प्रदानात् तस्य मे सूर्यो ह्यतः शान्तिं प्रयच्छतु ।। सु[8]वर्णं वस्त्रयुग्मं च परिधानं च कारयेत् ।। एतैः प्रकारैः संयुक्तां दद्याद्धेनुं द्विजातये ।। भानुं सदक्षिणं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः ।। भास्करः प्रतिगृह्णाति भास्करो वै ददाति च ।। भास्करस्तारकोभाभ्यां तेन वै भास्करो मम ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पायसेन गुडेन च ।। शक्त्या च दक्षिणां दद्यात्तेभ्यश्चैव विशेषतः ।। अल्प-

---

१ तत्र होमारंभे ।।२ शक्त्या पञ्चोपचारैरपि । ३ देवानावाहितान् । ४ सुवर्णास्यामित्यपि पाठः ।।५ अस्य पूजयेदिति पूर्वक्रियान्वयः ।।६ कपिले इत्यादिभिः षण्मंत्रैः क्रमेण गंधपुष्पधूपदीपनैवेद्यतांबूलानि देयानि ।। गावो मे इत्यनेन तु स्पर्शननमस्कार प्रदक्षिणा आवृत्त्या कार्या ।। ततो ब्राह्मणं संपूज्य नमस्ते कपिले इति मन्त्रेण गां दद्याद् ।। हिरण्यगर्भेत्यनेन हेमरूपां दक्षिणां रक्तवस्त्रयुगमित्यनेन रक्तवस्त्रयुग्मं च दद्यात् ।। ततो भास्करः प्रतिगृह्णातीति मन्त्रेण सूर्यप्रतिमां सदक्षिणां दद्यात् ।। (कौ०) ७ देवानामित्यपि पाठः । ८ सुवर्णमलङ्कारं वस्त्रयुग्मं च परिधानं यथास्थानधृतं कारयेत्परिग्राहकेण (हे०)

वित्तोऽपि यः कश्चित्सोऽपि कुर्यादिमं विधिम् ।। आत्मशक्त्यानुसारेण सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ।। आचार्यस्य ततो भक्त्या सर्वं पाणौ विनिक्षिपेत् ।। गोभूहिरण्यवासांसि व्रीहयो लवणं तिलाः ।। एतत्सर्वं प्रदत्वा तु कपिलां प्रार्थयेत्ततः ।। कपिले पुण्यकर्मासि निष्पापे पुण्यकर्मणि ।। मां समुद्धर दीनं च ददतो ह्यक्षयं कुरु ।। दिवि वादित्रशब्दैश्च सेव्यसे कपिला सदा ।। तथा विद्याधराः सिद्धा भूतनागगणा ग्रहाः।। कपिलारोमसंख्यातास्तत्र देवाः प्रतिष्ठिताः ।। पुष्पवृष्टिं प्रमुञ्चन्ति नित्यमाकाशसंस्थिताः।। ब्रह्मणोत्पादिते देवि अग्निकुण्डात्समुत्थिते ।। नमस्ते कपिले पुण्ये सर्वदेवनमस्कृते ।। जय नित्यं महासत्त्वे सर्वतीर्थादिमङ्गले ।। दातारं स्वजनोपेतं ब्रह्मलोकं नयाशु वै ।। ततः प्रदक्षिणां कृत्वा नत्वा ब्राह्मणपुङ्गवान् ।। आशीर्वादान्वदेयुस्ते पुत्रपौत्रधनागमान् ।। आरोग्यं रूपसौभाग्यं सर्वदुःखविवर्जितः ।। अन्ते गोलोकमासाद्य चिरायुः सुखभाग्वेत्।।यदा स्वर्गात् प्रपतति राजा भवति धार्मिकः।। सप्तद्वीपवर्त्ती भुङक्ते सदा राज्यमकण्टकम् ।। अहो व्रतमिदं पुण्यं सर्वदुःखविनाशनम् ।। अतःपरं प्रवक्ष्यामि दानस्य फलमुत्तमम् ।। महावेदमये पात्रे सद्वृत्ते चाक्षयं भवेत् ।। कपिलाख्या यदा षष्ठी जायते भुवि मानद ।। व्रतं सर्वव्रतश्रेष्ठमिदमग्र्यं महाफलम् ।। उद्धरिष्यति दातारं नूनमक्षय्यमव्ययम् ।। एवं देव गणाः सर्वे भूतसङ्घा महर्षयः ।। आकाशस्थाः प्रनृत्यन्ति पुण्येऽस्मिन्दिवसागमे ।। पात्रभूताय ऋषये श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।। एवं यः कपिलां दद्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा ।। स याति परमं स्थानं यावन्न च्यवते पुनः ।। इति हेमाद्र्युक्तो व्रतविधिः ।। अथ स्कान्दे प्रभासखण्डे तु संक्षेपेणोक्तो व्रतविशेषः ।। उपलिप्ते शुचौ देशे पुष्पाक्षतविभूषिते ।। स्थापयेदव्रणं कुम्भं चन्दनोदकपूरितम् ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् ।। रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेणसंयुतम् ।। रथं रौप्यपलस्यैव एकचक्रसुचित्रितम् ।। सौवर्णो पलसंयुक्तां मूर्ति सूर्यस्य कारयेत् ।। कुम्भस्योपरि संस्थाप्य गन्धपुष्पैस्तथार्चयेत् ।। आदित्यं प्रपूजयेद्देवं नामभिः स्वैर्यथोदितैः ।। आदित्य भास्कर रवे भानो सूर्य दिवाकर ।। प्रभाकर नमस्तुभ्यं संसारान्मां समुद्धर ।। भुक्तिमुक्तिप्रदो यस्मात्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ।। नमो नमस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते ।।नमोऽस्तु विश्वरूपाय विश्वधात्रे नमोऽस्तु ते।। एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवं दिवाकरम्।। पूजयेत्कपिलां धेनुं वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।। दानमन्त्रः—दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः ।। कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ।। यस्मात्त्वं कपिले पुण्ये सर्वलोकस्य पावनी ।। प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव ।। इतिस्कान्दे कपिलाषष्ठीव्रतम् ।।

कपिलाषष्ठीका व्रत—भाद्रपद यदि छठके दिन होता है । यह व्रत योग विशेषसे पूर्व विद्धा और पर विद्धा दोनोंमें ही होता है यानी जो योग चाहिये वे जिसमें हों वही ग्रहण करली जाती है, वे योग पुराण समुच्चयमें दिखाये गये हैं कि, जिस भाद्रपद कृष्णाषष्ठीके दिन हस्त नक्षत्रमें सूर्य्य हो एवं व्यतीपात रोहिणी नक्षत्र और

मंगलवारका योग होतो वह कपिला कहायेगी, यह ब्रह्माजीका निर्देश है हेमाद्रिने जो स्कन्दपुराणसे लेकर व्रत विधि कही है उसे कहते हें । विक्रान्त पूछते हें कि–रूप, संपद् आरोग्य और अत्यन्त पुष्कल सन्तति जिस व्रतके करनेसे मिलती हे उसे आप मुझसे कहें ।।१।। अगस्त्यजी बोले कि, हे निष्पाप ! आपने बहुतही अच्छा पूछा, सब कहदूंगा जिससे बडा कल्याण होगा, हे राजन् ! उस व्रतको कहताहूं जिससे अनायास स्वर्ग और मोक्ष मिल जाते हें ।।२।। जिसे कि, हे राजन् ! देव असुर राक्षस ब्रह्मा और इन्द्र कोई भी नहीं जानता ।।३।। शंकर भगवान्ने इसे स्वामिकार्तिकजीसे कहा था. उन्होंने पापोंके प्रणाशक इस व्रतको मुझसे कहा ।।४।। चाहे ब्रह्महत्यारा गो मारनेवाला, शरावी, गुरुपत्नीसे सहवास करनेवाला, मकान जलानेवाला, जहर देनेवाला और सब प्रकारके पाप करनेवाला ही क्यों न हो इसे सुन कर ।।५।। सब पापोंसे छूट जाता है,स्वर्ग चला जाता है, मनुष्योंके पापोंको नष्ट करनेवाला जो भी कुछ पवित्र पुण्य है वो यह हें ।।६।। हे नृपोत्तम ! तेरे और संसारके कल्याणके लिये सुनाता हूं हे भूप ! इस महापुण्यशाली षष्ठीके माहात्म्यको सावधानी के साथ सुन ।।७।। भाद्रमासके कृष्णपक्षमें मङ्गलवार रोहिणीनक्षत्र और व्यतीपात; इन योगोंके सहित यदि षष्ठी हो तो उसे कपिला षष्ठी कहते हें।।८।।आश्विनमासके कृष्णपक्षमें यदि षष्ठी मङ्गलवारादि पूर्वोक्त योगवाली हो तो उसे महापुण्यप्रवर्धिनी कहते हें । यह षष्ठी साठवर्षोंके बाद (प्रायः) आया करती है ।।९।। यह योग किसी वर्षमें चैत्र या वैशाखमें भी कृष्णाषष्ठीके दिन मिलाकरता है, पर उस समय उस षष्ठीका नाम शुभोदया षष्ठी माना जाता है । हे राजेन्द्र ! द्वारकाजीकी ओर रहनेवाले लोग वैशाखकी शुभोदयाको परा नामसे भी कहते हें ।।१०।। कपिलाषष्ठीमें मङ्गलवारादिकोंका योग तो होता ही है, पर उसमें हस्तनक्षत्रपर सूर्यका योग परमावश्यक है यानी हस्तसूर्यके रहते भाद्रपदकी कृष्णाषष्ठी मङ्गलवार रोहिणीनक्षत्र और व्यतीपात इन योगोंवाली हो तो उसे कपिलाषष्ठी कहना चाहिये, इसीमें व्रतकरे । यह षष्ठी भाद्रपद या आश्विन मासके विना अन्य मासोंमें नहीं होसकती । क्योंकि हस्तनक्षत्रपर सूर्य अन्यमासोंमें नहीं रहते, जिस समय इन गुणोंके साथ षष्ठी हो उसमें यानी इस कपिलाषष्ठीमें हवन, दान आदि जो पुण्य कर्म किये गये हों उस पुण्यकी संख्या नहीं की जासकती ।।११–१२।। योग्यव्रती पञ्चमीके दिन एकबार भोजन करे, प्रात्तःकाल उठ कर पहिले दन्तधावन करे । फिर पुष्पाञ्जलि लेकर कहे ।।१३।। कि, हे देवेश ! हे भास्कर ! में तुम्हारा भक्त तुम्हारी सेवामें परायण हो निराहार रहूंगा । भक्तिसे पूजन करूंगा, आप मेरे नियमको पालन करानेमें सहायक हों ।।१४।। इस प्रकार अर्घ्य देकर उक्त अर्घ्यदानके मन्त्रार्थके अनुसार संकल्प करे । फिर नदी, तीर्थ, तलाव।। १५।। वापिका या और ऐसा जलाशय समीप न हो तो अपने घरपर ही विधिवत् स्नान करे । फिर चित्तको सावधान करके देवदारु खशखश, केसर, इलायची, मनःशिला ।।१६।। पद्मक, पत्रक और षष्टि इन सबको पञ्चगव्यमें घिसकर दूधमें मिला पतली पीठी तैयार करके पीछे इसको जिस जलसे स्नान करे उसमें प्रथम मिलावे फिर " आपस्त्वमसि " इत्यादि मन्त्रोंको पढता हुआ स्नान करे ।।१७।। कि हे देवेश ! आपही जल हें, आपही सूर्य (चन्द्र)हें, आप मेरे मन, वाक् और शरीरके कामोंसे किये गये पापोंको शान्त करें ।।१८।। पीछे पञ्चगव्यसे स्नान करे, फिर पञ्चपल्लवोंके जलसे अपने शरीरका मार्जन करे, स्नानार्थ लायी हुई शुद्ध गोस्थानादिकोंकी मृत्तिका लगाकर मृत्तिकास्नान करे । मृत्तिका लेपन करनेके समय " मृत्तिके ब्रह्मपूतासि " इस मन्त्रको पढे । इसका यह अर्थ है कि, हे मृत्तिके ! तुम ब्रह्म (वेदों) के समान पवित्र हो, कश्यपजीने तुम्हारा अभिमन्त्रण (प्रशंसा) की है, मुझे आप पवित्र करें । मैंने जो आजतक पाप किया है उन सबको नरक वासरूप यन्त्रणासे बचायें ।।२०।। मृत्तिका लगाकर स्नान करनेके पीछे जलाधिष्ठाता वरुणकी " पाशाग्र " इससे प्रार्थना करे ।।२१।। हे पाशको हाथमें धारण करनेवाले ! हेसमस्त जलोंके ईश्वर ! हे प्रभो हे सुरेश्वर '! वरुण ! में आपकी प्रार्थना करता हूं, आप मुझे पवित्र करें ।।२२।। इसके पीछे स्नान करके सब कर्मोंके साक्षी सूर्य देवके ग्यारह नामोंको जपे । वे नाम ये हें–१ आदित्य, २ भास्कर, ३ भानु, ४ रवि, ५ सूर्य, ६ दिवाकर, ७ प्रभाकर, ८ वितिमिर, ९ देव, १० सर्वेश्वर और ११ हरि ।।२३।। फिर धौतवस्त्रादि धारणकर गोमयसे लीपी पृथिवीपर रौली आदिसे बुद्धिमान् नर विधिपूर्वक सर्वतोभद्रमण्डल लिखे, उस मण्डलके बीचमें कर्णिकासमेत अष्टदल कमल लिखे ।।२४।। पूर्व पत्रमें सूर्य, अग्निकोणके पत्रमें तपन, दक्षिणपत्रमें सुवर्णरेता, निर्ऋतिकोणके

पत्रमें रवि ।।२५।। पश्चिमपत्रमें आदित्य, वायुकोणके पत्रमें दिवाकर, उत्तर पत्रमें प्रभाकर और ईशान-कोणके पत्रमें सूरनामक भास्कर भगवान्‌का उल्लेख करे ।।२६।। उसकी कर्णिकामें तीव्रतेजवाले एवं सबके आधाररूप ब्रह्मनामवाले सूर्य और अरुणनामवाले सूर्यका स्थापन करे ।।२७।। वहांपरही सहस्त्ररश्मि स्थूल एवं सूक्ष्म गुणोंवाले सर्वत्र विचरनेवाले सर्वरूप, प्रकाशके करनेवाले, सात घोडोंके रथमें विराजमान, कमलको हस्तमें धारण करनेवाले, दिनको करनेवाले, रुद्राक्ष और धनुषको हाथोंमें धारण करनेवाले कुण्डल एवं मुकुटसे शोभित भगवान् सूर्य्यनारायणकी प्रतिमा नानाविध रत्नोंसे जडीहुई ऐसीही सोनेकी होनी चाहिये । वैभव अधिक हो तो एक पलसुवर्णसे अधिककी, यदि कम हो तो आधे पलया चौथाई पलकी होनी चाहिये । अरुण नामा सारथि और वैसी ही सुवर्णकी घोडोंकी बागडोर होनी चाहिये, उस रथमें सुवर्णकेही सात घोड़े जुते हुए हों । विनतानन्दन अनूरु अरुणनामके सारथिको तो रथके जूडेपर बिठावे उसके हाथमें सातों घोडोंकी रश्मियां दे दे । सूर्यको उस रथमें विराजमान करे पर उस रथमें विराजमान करनेके स्थानमें केसर चन्दनादिसे कमलका आकार लिखे । सूर्यदेवको कमलपर रथके बीचमें स्थापित करे । सूर्यभगवान्‌की मूर्तिको शोणवर्णकी घोती और डुपट्टासे शोभितकरे । लाल चन्दन लगावे लालपुष्पोंकी माला गलेमें पहरावे । फिर लालफूल, लाल-चन्दन और लाल अक्षतादिकोंसे उनकी अर्चना करे । सूर्यदेवकी अर्चनाके पहिले अरुणकी पूजा करे, ऐसे कहे, कि, विनतानन्दन, प्रकाशकारी, कर्मोंको देखनेवाले, अन्धकारके, विनाशक, सप्तअश्वों और सप्त रश्मियोंवाले अरुणदेव मुझपर अपनी प्रसन्नता प्रगट करे । फिर १ प्रभूत, २ विमल. ३ सार, ४ आराध्य और ५ परमशुभ इन पांच आसनोंकी कल्पना सूर्यभगवान्‌के लिये करे, यानी ये प्रभूतादि आसनोंपर विराजमान हैं । १ दीप्ता, २ सूक्ष्मा, ३ भद्रा, ४ बिम्बिनी, ५ विमला, ६ अनघा, ७ अमोघा, ८ विद्युत और ९ सर्वतोमुखी, इन नवशक्तियोंका सूर्यभगवान्‌के समीपमें पूजन करे । शिखामें भास्कर, ललाटमें सूर्य, नेत्रोंके बीचमें भानु, मुखपर रवि, कण्ठमें भानुमान्, दोनों हाथोंपर पद्महस्त, दोनों सीनोंपर तिमिर क्षयकृत् देव, नाभिपर, जात-वेद, कटिपर भानु, गुह्यदेशमें उग्ररूप, दोनों जंघाओंपर तेजोरूप और पावों पर स्थूल और सूक्ष्म गुणोंसे अन्वित सर्वरूपका न्यास करे । न्यास कर चुकनेके पीछे अर्घ्यपात्र लेकर फिर पूजे, करवील और अर्क (आक) के पुष्पोंको लालचन्दनके साथ लेकर उनमें और भी सुगन्धित लाल कमल गुलाब आदि पुष्पोंको सम्मिलित करे, फिर उन पुष्पोंसे तथा सुगन्वित धूप और रौलीसे सूर्यदेवका पूजन करे । पीछे ' ओं मार्तण्डाय नमः, पादौ पूजयामि" इत्यादि नाममन्त्रोंकी कल्पना करके १ पाद,२ जङ्घा, ३ जानु, ४ ऊरु, ५ कटि, ६ नाभि, ७ वक्षःस्थल, और ८ मस्तक इन आठ अङ्गोंमें १ मार्तण्ड, २ भानु, ३ आदित्य, ४ भास्कर, ५ तपन, ६ रवि, ७ हंस और ८ दिवाकर इन नामोंके मन्त्रोंसे अलग अलग पूजन करे । पीछे चांदी या तांबेके पात्रको अर्घ्य दानके लिये लेकर जलसे पूर्ण करे, उसमें अर्घ्यके उपयुक्त चन्दन पुष्पादि रखे, उस अर्घ्यपात्रके जलसे पूर्वादि (८) आठ दिशा-ओंके मार्तण्डादि आठ देवताओंका अथवा दिक्पालोंका पूजन करे, यानी "ओंपू पूर्वाधिष्ठात्रे मार्तण्डाय नमः अर्घ्यं समर्पयामि " पूर्वके अधिष्ठाता मार्तण्डके लिए नमस्कार अर्घ्य देता हूँ इत्यादि नामन्त्रोंसे आठों दिशा-ओंमें अर्घ्यदान करे । गन्ध, पुष्प, चन्दन चढावे । पुष्प, फल और चन्दनयुक्त जलपात्रको हाथमें लेकर जानू मोड़कर सूर्यके लिए (१२) द्वादशवार अर्घ्य दे । और ' वेदगर्भ ' इत्यादि द्वादश मन्त्रोंको पढे कि, १ हे वेद-गर्भ ! आपके लिए प्रणाम है, हे वेदगर्भ ! आपके लिए प्रणाम है, अव्यक्तमूर्ति आपके लिए प्रणाम है, आप मेरे इस अर्घ्यको ग्रहण करें । २ हे चतुर्वक्त्र ! हे सनातन ! आप ब्रह्माजीके स्वरूपको धारण करनेवाले सबकी उत्पत्ति पालन और विनाशके करनेवाले हैं आप अर्घ्यको अङ्गीकार करें । आपके लिए प्रणाम है । ३ विष्णु (सर्वान्त-र्यामी), के रूपको धारण करनेवाले देव (दीप्तमान्) पीताम्बरधारी, चार भुजाओंवाले और सब लोकोंकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप आप हैं, आपके लिए प्रणाम है । आप इस अर्घ्यको अङ्गीकार करें ।४ जो त्रिलोकीको दग्ध करता है उस त्रिशूलधारी भगवान् रुद्रके स्वरूपको धारनेवाले आपके लिए ही यह अर्घ्य है, आप इसे अङ्गीकार करें. आपको प्रणाम है । ५ हे उदयाचलपर विराजमान होनेवाले ! हे महाभूतरूप तेजोंके पुञ्जसे प्रगट होनेवाले ! हे अन्धकारको क्षाण करनेवाले ! हे देव ! आप अर्घ्य ग्रहण करें, आपके लिए प्रणाम है । ६ हे मन्त्ररूप ! हे पूत (पवित्ररूप) ! हे निद्राके अधीश्वर ! हे सब मनुष्योंके आश्रयस्वरूप ! हे कुष्ठादिम-

हाव्याधियोंके नष्ट करनेवाले आप अग्निरूपसे सात जिह्वा धारण करते हो आपके लिए प्रमाण है । आप अर्घ्य ग्रहण करें । ७ आप ब्रह्मा हो, आप विष्णु हो, आप रुद्र हो, आप दक्षादि प्रजापति हो और आपही समस्त प्राणि-स्वरूप हो आपके लिए प्रमाण है आप अर्घ्य ग्रहण करिये८काल सर्वभूत और वेदरूप सर्वतोमुख आप हैं अर्घ ग्रहण करिये, आपको नमस्कार है । ९ आप जन्म मृत्यु जरा और संसारके भयको नष्ट करनेवाले हैं । आपको नमस्कार है अर्घ ग्रहण करिये ।१० दरिद्रता और परिभवादिकोंके दुःखोंके विध्वंसक, श्रीमान् देव (प्रकाशक) और दिनके करनेवाले आप हरिदश्व हैं । अर्घ्य ग्रहण करिये । आपके लिये प्रणाम है ।११ सुवर्णसुन्दर दिव्य वर्णवाले, स्फाटिक-स्फटिकके पदार्थकी भ्रांति स्वच्छ, स्वर्ण जिनका वीर्य है ऐसे हरिदश्वनामा दिवाकरआप अर्घ्य ग्रहण करें, आपके लिए प्रणाम है । १२ चारों वेदोंसे सिद्ध जिसकी संस्था अर्थात् जिसका स्वरूप, आठ मूर्तियोंसे यानी कमलकी आठ कर्णिकाओंमें स्थापित सूर्य तपनादि नामवाले आठ स्वरूपोंसे गाते हैं, साम वेदजिसकी यज्ञमें स्तुति करता है ऐसे, आप अर्घ्य ग्रहण करें, आपके लिए प्रणाम है । इस प्रकार द्वादशमासोंके भेदसे द्वादशात्मा सूर्य नारायणके लिये द्वादश मन्त्रोंसे द्वादशवार अर्घ्यप्रदान करे फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसे यथाशक्ति पूजन करके फिर सूर्य्यदेवताकी प्रार्थना करनी चाहिये । इस प्रार्थनामें कुछ वेदके मन्त्र आ गए हैं इस कारण उनका अर्थपूर्वक उल्लेख करके कहते हैं-" अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम्, होतारं रत्नधातमम्।' हम सबसे पहिले स्थापित होनेवाले अग्निकी स्तुति करते हैं जो सबके बुलानेवाले समय-पर यज्ञका यजन करानेवाले हैं, अपने भक्तोंको रत्नादि देनेवाले हैं, वैदिक जीवनमें पुरोहित पदका बडा सुन्दर अर्थ किया है । सायनाचार्यके अर्थ की छाया इसमें और उक्त भाष्यमें पूर्णरूपसे झलकती है ' अग्निके मन्त्र तो सूर्योपस्थानतकमें आचुके हैं । ऋग्वेदकी सन्ध्यामें रख भी दिये हैं । तात्पर्य यह कि, ऐसे आदित्य के लिए नम-स्कार है ।" ओं जातवेदसे सुनवाम सोम मरातीय तो निदहाति वेदः स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः- " जातमात्रके जाननेवालेको सोमका स्तवन करता हूं हमसे वैर करनेवालोंके वो ज्ञान और धन को जला रहा है एवम् मुझे मेरी आपत्तियोंसे ऐसे पार लगा रहा है जैसे चतुर मल्लाह समुद्रसे पार लगा देता है । ऐसे जो आदित्य देव हैं उनके लिए नमस्कार है । ' 'ओं इषेत्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघ-शंसो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ' वृष्टिके लिय काटता हूं । रसके लिये तुझे सीधा करता हूं । हे बछडो ! खेलनेमें लगे हुए हो । आपको सवितादेव पवित्र कर्मके लिये अच्छे स्थानको ले जायें । हे अहिंसनीय गउओ ! इन्द्रके लिये उसके भागकी रक्षा करना, जिससे निरोग और उत्तम सन्ततिवाली हों, तुम चोर आदि पापी न देखें न निन्दक की ही तुमपर दृष्टि पडे, इस यजमानके घर बहुतसी हो सदा बनी रहना । तुम इन सबकी रक्षा करना । ऐसे आदित्य देवके लिए नमस्कार है । ' अग्ने स्वयं नो ' और शं नो देवी " इन दोनोंका पीछे अर्थ कर चुके हैं ऐसे आदित्यके लिए नमस्कार है (यद्यपि हमारी शैली समुपस्थित विनियोगके अनुसार अर्थ करनेकी है इनका यहां विनियोग आदित्यके नमस्कारमें देखा जा रहा है अतः आदित्यकी नम-स्कृतिके अनुसारही अर्थ भी चाहिये पर अग्निके नामके मन्त्र आदित्यकी प्रार्थनामें देखे जाते हैं दूसरेमें या तो आदित्यको व्यापकरूपसे जलदेव मानकर निर्वाह कर लिया जाय या इसका भी आदित्यपर अर्थकर लिया जाय कि यजनादिके लिये आदित्य देव हमारे लिए शांति दें, व्यापक किरणें हमारे रक्षणके लिए हों, हुये रोगोंकी शांति तथा बिना हुओंकी दूरही निवृत्ति करदें) जगत्को जन्म देनेवाले आपके लिये नमस्कार है, हे आत्मरू-पिन् ! आपके लिये नमस्कार है. विश्व आपकी मूर्ति है, आपके लिये नमस्कार है ! आपही धाता हैं, आपही विष्णु हैं, आपही ब्रह्मा और हुताशन हैं, हे सुरेश्वर ! मैं मुक्ति चाहता हूं, आपके सब ओर चक्षु और सब ओर चरण बताये गये हैं, आप सब ओर हैं विश्वात्मा देव हैं, हे सुरेश्वर ! आपकी प्रार्थना करता हूं, इन मन्त्रोंको कहकर सूर्यदेवको नमस्कार करना चाहिये ।" ओम् संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्माहि मनसा संशिवेन, त्वष्टा सुद त्रो विदधातु रायोऽनुमा र्ष्टुतन्वो यद्विलिष्टम्"- हम तेज, पय, शुद्ध मन और शुद्ध, अङ्गोंसे सङ्गत होते हैं अच्छे दानी दीप्तिमान् देव हमें मोक्ष या धन दें, शरीरमें जो दोष हों उन्हें दूर कर दें, इस मन्त्रसे पानीसे हाथोंद्वारा मुँह धोना चाहिये । ' ओम् हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद तिथिरोणसत् नृषद्वरसद्

ऋतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् " भगवान् सूर्यदेव तेजोरूप हो विराजते हैं, अन्तरिक्षमें बैठते हैं यज्ञशालामें आहवनीय कुण्डमें बैठकर देवताओंके आवाहन करनेवाले होते हैं, वेदीपर भी आपही विराजते हैं । आप सबके पूजनीय हैं मनुष्योंमें श्रेष्ठ जगहमें यज्ञमें और सत्यमें आप रहते हैं, भूत ग्राममें पाषाणमें मेघमें और जलमें आप किसी न किसी रूपसे विराजमान हैं, आप सर्वगत हैं एवं सबसे बड़े हैं इस मन्त्रसे सूर्यदेवके दर्शन करने चाहिये ।

ओं उदु[1] त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः, दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥१॥

सबके जाननेवाले प्रकाशशील उन सूर्य देवको किरणें ऊपरको चढा ले जा रही हैं ॥१॥

ॐ अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रायन्त्यक्तुभिः सूराय विश्वचक्षसे ॥२॥

हे सूर्य्य देव ! चोर आकाशमें सबको दिखानेवाले आपको देखकर आपके लिये ऐसी भावना करते हैं कि, ये छिप जायें तो विना चाँदनी केवल तारे भरी रात आजाय जिसमें हम खूब चोरी करें हमें कोई न देख सके ॥२॥

ॐ अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जनाँऽ अनुभ्राजन्तोऽअग्नयो यथा॥३॥

मनुष्योंके सामने जैसे स्वच्छ विद्युदादि अग्नियाँ चमका करती हैं उसी तरह सबका ज्ञान करानेवाली सूर्य्य देवकी किरणोंको हम सामने देख रहे हैं ॥३॥

ॐ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य विश्वमाभासि रोचनम् ॥४॥

हे सूर्य्यदेव ! आप संसार सागरको पार करनेवालोंके लिये नाव हो, सबके लिये सब ओरसे देखने योग्य हो, प्रकाशके करनेवाले हो अथवा प्रकाशक चांद नक्षत्रादिक आपके ही प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं, नामरूपसे विभक्त इस जगत्‌को भी आप ही प्रकाशित करते हैं ॥४४॥

ॐ प्रत्यङ देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् प्रत्यङविश्वं स्वर्दृशे ॥५॥

अपने पवित्र मण्डलको दिखानेके लिये आप दैवी प्रजा और मानुषी प्रजा इन दोनोंके सामने उदय होते हो, यही नहीं, किन्तु इसीके लिये आप सभी संसारके सामने उदय होते हो ॥५॥

ॐ येनापावकचक्षसा भुरण्यन्तं जनाँऽअनु, त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

हे वरुण ! जिस पवित्र प्रेममयी दृष्टिसे पक्षीसम उत्तरायणके पथिकको एवम् यज्ञानुष्ठानीको अपनी ओर आतीवार आप देखते हैं उसी दृष्टिसे इन अपने तुच्छ जनोंको भी देखिये ॥६॥

ॐ विद्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानोऽअक्तुभिः, पश्यन् जन्मानि सूर्य्य ॥७॥

हे सूर्य्य ! बहुतसे दिनों और रातोंसे आप सब लोकोंको नापते एवम् जीवों के जन्मों को देखते हुए जाते हो यह मैं जानता हूं ॥७॥

ॐ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य्य, शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

हे विचक्षण । हे देव सूर्य्य ! प्रभाके केशोंवाले आपको सात हरे रंगके घोडे खींचते हैं ॥८॥

ॐ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः, ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥९॥

शीघ्र चलनेवाली सात घोडियाँभी आपके रथमें जुतती हैं, उन अपनी जोडी हुई घोडियोंसे सूर देव जाते हैं ॥९॥

---

१ यह सूक्त प्रथमाष्टकके चौथे अध्यायमें ७ वां सूक्त है, यहां से सूर्य –सूक्त ८ तक चलता है "चित्रं देवानाम् ।" यह इसीका ८अ० का७ वा सूक्त है यहाँ आकर सौर सूक्त पूरा हो जाता है मूलमें " उदुत्यं चित्र मित्येतत् सूक्तम् " यह रखा है इससे उदुत्यंसे लेकर चित्रं तक सूर्य्यके सूक्तोंका ग्रहण हो जाता है। ये मंत्र भिन्न २ क्रमसे सन्ध्या आदिकोमें आये हैं । यदि सूक्त न देकर मंत्र पद देदिया होता तो दो मंत्रोंकाही ग्रहण होता पर सूक्तका ग्रहण किया है इस कारण ये उन्नीस मंत्र लिये जा रहे हैं ।

ॐ उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्, देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

हम देव लोकमें स्थित हो तमसे परे सर्वोत्कृष्ट ज्योतिको देखते हुए देव सूर्य्यको प्राप्त हो सूर्य्यान्तरवर्ती तेजोमय कमलेक्षणको पा गये ॥१०॥

ॐ उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्,हृद्रोगं मम सूर्य्य हरिमाणं च नाशय ॥११॥

हे सुकृतियोंको मित्रके रूपमें देखनेवाले सूर्य्य ! दिवमें ऊपर चढ़ते हुए मेरे बड़े भारी हृदयके रोग और जर्दी वा हरियापनेको नष्ट करिये ॥११॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि, अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥१२॥

आप मेरी जर्दी या हरियापनेको तोता और पिट्ठी मैना आदि पक्षियोंमें रखदें उससे भी जो बाकी बचे मेरे उस त्वच रोगादिको हरिद्राओंमें धरदें, पर मुझे उससे सर्वथा मुक्त कर दें ॥१२॥

ॐ उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह, द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मोअहं द्विषते रधम् ॥१३॥

भगवान् सूर्य्य देव अपने पूरे बलके साथ मेरे लिये मेरे वैरियोंको दबाते एवम् मुझे मेरे वैरियोंकेऊपर रखते हुए उदय हुए हैं ॥१३॥

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षं सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४॥

किरणोंका पूजनीय समूह उदय हो गया, इसीमें मित्र वरुण और अग्निकी ख्याति है यानी इसीको मित्र वरुण और अग्नि भी कह देते हैं, यह द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्षमें पूर्णरूपसे पूरा रहा है यही सूर्य्य स्थावर और जंगम दोनोंकी आत्मा है ॥१४॥

ॐ सूर्य्यो देविमुषसं रोचमानां मर्य्यो न योषामभ्येति पश्चात्, यत्रानरो देवयन्तो युगानि, वितन्वते प्रतिभद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥

जैसे मनुष्य स्त्रीके पीछे अभिगमन करता है उसी तरह भगवान् सूर्य्यदेव प्रकाशमान उषाके पीछे आते हैं, जिसमें देवयजनको चाहनेवाले मनुष्य भद्रके लिये भद्रके प्रति युगोंका विस्तार करते हैं ॥१५॥

भद्रा अश्वा हरितः सूर्य्यस्य चित्रा एतग्वा, अनुमाद्यासः समस्यन्तो दिव आपृष्टमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥१६॥

सूर्य्यदेवके हरेरंगके नानाप्रकारकी चाल जाननेवाले पूजनीय भद्राश्व हैं जो सदा प्रसन्न करनेके योग्य हैं ये सूर्य्य भगवान्को नमस्कार एवम् सूर्य्यदेवके भक्तोंके लिये अन्न देतेहुए दिवकी पीठपर अपनी आस्था करते हैं एवम् निरालंबही द्यावा पृथिवीकी परिक्रमा कर जाते हैं ॥१६॥ (भागवतमें गायत्री आदि छन्दोंके नामही सातों घाड़ोंके नाम माने है)

ॐ तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्याकर्तोर्विततं संजभार, यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्रीवासस्तनुते सिमस्मै ॥१७॥

मैं इसको भगवान् सूर्य्यका देवत्व और महत्व समझता हूं कि लोग तो अपने अपने कामोंमें ही लगे रह जाते हैं पर यह अपनी फैली हुई किरणोंको जो कि अनेक साधनोंसे भी न हटाई जा सकें झट हटा ले ता है, जब

यह अपने हरेरंगके घोडे या भूमिसे रसको खींचनेवाली किरणोंको जिस भूखण्डसे वियुक्त करता है वहीं सबके लिये रात हो जाती है ॥१७॥

ॐ तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे अनन्तमन्यद्रु-शदस्य पाजः कृष्ण¹मन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥१८॥

आकाशरूपी आङ्गणके बीच सूर्यदेव पापियोंको दंड देनेके लिये वरुणका और धर्मात्माओंपर अनुग्रह करनेके लिये मित्रका रूप धारण करते हैं, एक इनका तेजरूप बल अनन्त है जो कि इसके भीतर विराजमान रहता है, दूसरा यह कृष्ण है जिसे ये किरणें धारण करती हैं ॥१८॥

ॐ अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसःपिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुःपृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

सूर्यदेवकी प्रकाशशील किरणें उदय हो गयीं वो मुझे पाप और झूठसे बचायें मेरी इस बातका मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु और पृथिवी सब अनुमोदन करें ॥१९॥

इन सूक्तोंको भगवान् सूर्य नारायणके सामने जपना चाहिये । सर्वतोभद्रके समीप एक उत्तम स्थलमें अथवा सर्वतो भद्रके कमलके कोनेमें एक फलक रख दे. उसपर फल, पुष्प, अक्षत और अनेक प्रकारके भक्षोंसे शुभदेशमें देवकी शय्या बनानी चाहिये, षडधान्य और षड रस वहां रखने चाहिये, उसपर भगवान् आदित्यकी मूर्तिरखनी चाहिये, जो चाँदीकी बनी हुई हो, हाथमें तलवार लगी हुई हो, दो कपड़े धारण किये हुए हो, इसी तरह नहीं, किन्तु नमकपर रखनी चाहिये पीछे इन मंत्रोंसे स्नान और अर्चन होना चाहिये कि दुष्टोंको मारनेकी इच्छासे खड्ग हाथमें लिये हुए क्रोधरूपी आपके लिये नमस्कार है, मारनेकी इच्छावाले आपको देखकर सब देवता भाग गये, हे भास्कर ! आपने चमकता हुआ मेरुदण्ड व्याप्तकर रखा है इसी कारण मैं आपको पूजता हूं, अर्घ ग्रहण करो, तेरे लिये नमस्कार है । उस रातिको गाने बजानोंमें पूरी करके सूर्यके उदय होनेपर यथाशक्ति होम करना चाहिये, उसमें शक्तिके अनुसार देवता और गुरुओंका पूजन करना चाहिये । सूर्यका होम समिध और घीके मिलेहुए तिलोंसे करना चाहिये । द्विजको चाहिये कि, विधिपूर्वक बनाये हुए चरू द्रव्य और घीका हवन करे ।

" ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो यातिभुवनानि पश्यन्"

रात और दिन पापियोंको मृत और पुण्यात्माओंको अमृत देते हुए भगवान् सूर्य देव तेजोमयरथसे भुवनोंको देखते हुए जाते हैं । इस मंत्रसे एकसौ आठ आहुतियां देनी चाहिये, अथवा व्याहृति (ओं भूर्भुवः स्वः) योंसे होना चाहिये, पीछे स्विष्टकृद् होम भी होना चाहिये । पीछे पापोंके विध्वंस करनेवाली, बच्छे सहित कपिला गौरूप षष्ठीकी अधिष्ठात्री देवीका पूजन करे । वस्त्रसे आवृत एवं घण्टोंसे शोभायमान कण्ठ-

---

१ कृष्ण—प्रायः सब लोक तेजका शुक्ल भास्वर रूप मानते देखे जाते हैं, लोकमें भी ऐसी ही प्रतीति होती है, न्यायसिद्धान्त मुक्तावली वेदान्त पंचदशी न्याय और वैशेषिक ऐसा ही कहते हैं, तब यहां " कृष्ण मन्यद् " पर शंका होती है कि सूर्यकी लौकिक किरणोंको कृष्ण क्यों कह रहे हैं इस पर हमें वैदिक व्यवस्था चाहिये, वो छान्दोग्योपनिषद् प्रथम प्रपाठक षष्ठ खण्ड ५ व ६ में मिलती है कि, यह जो सूर्यकी सफेद दीप्ति है वही ऋग् है तथा उससे भीतर जो कृष्ण दीखती है वही साम है, इससे यह सिद्ध होता है कि शुक्ल तहके भीतर काले रूपकी तह है अथवा तेजके अन्तःका कृष्णरूप है । पद्मसिंहजी विहारी सतसईकी समालोचनामें इसी नीतीजेपर पहुंचे हैं इस विषयमें उन्होंने एक उर्दूके कविकी उक्ति दी है कि हे प्रभो ! मैं उस तेज साररूपी मुखवालेके कैसे बराबर हो सकता हूं जिसे गर प्रलयकालका सूर्य देखले तो यह कहने लग जाय कि मैं तो इसके कपोलका एक काला तिलही हूं (?) ॥

वाली, सुवर्णके पत्रोंसे आच्छन्न शृङ्गवाली, तामेके पत्रसे शोभित पीठवाली, चाँदीके पत्रोंसे मण्डित खुरवाली कपिला गऊको आचार्यके लिये दे । उसके दोहनके लिये कांसेकी दोहनी दे, अपनी शक्तिके अनुसार वस्त्रादि उपस्करभी दे और कहे कि, हे कपिले ! तुम मस्त प्राणियोंकी पूजनीया एवं समस्ततीर्थरूपा और रोहिणी स्वरूपा हो, अतः पाप मुझे शान्ति प्रदान करो ! जो सब देवताओंकी लक्ष्मीरूपा है और सब देवताओंमें प्रतिष्ठिता है, वही आज गऊके रुपसे विराजमान कपिलादेवी मुझे शान्ति प्रदान करे । जो एकादश रुद्रोंके शरीरमें स्थित है, जो महेश्वरकी प्रिया है वही देवी गऊरूप दनके मेरे पापोंको नष्ट करे । जो विष्णु भगवान्‌के वक्षःस्थलमें लक्ष्मीरूपसे, अग्निकी स्वाहा एवं चन्द्रमा, सूर्य और अग्निकी शीतल, गरम और दग्ध करनेकी शक्ति स्वरूपा है, वही आज गऊरूपसे मेरी सम्पत्तिके लिये हो । जो ब्रह्मा कुबेर और इन्द्रादिलोकपालोंकी विभूतिरूपा है वही गऊरूप होकर मुझे वरदान दे ।तुम सब पितरोंकी तृप्तिकरनेके लिये स्वधा यज्ञभोक्ता देवताओंकी तृप्ति करनेमें स्वाहा, एवम् लोकोंमें विख्यात वषट्कार स्वरूपा है गो मुझे तुष्टि देनेवाली हो । इनही छः मन्त्रोंसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल गऊपर चढाकर दान करनेके पहिले उनकी पूजा करनी चाहिये । और ' गावो मे . इसमन्त्रको पढता हुआ गऊका स्पर्शकरके प्रणाम कर पीछे प्रदक्षिणा करनी चाहिये । उक्त मन्त्रका अर्थ है कि, गऊएं मेरे अगाडी पिछाडी रहें, गऊएं मेरे हृदयमें और गऊओंके बीचमें मैं निवास करता हूं । जो पुरुष इस पूर्वोक्तन्त्रिसे गऊरुको हाथलगा प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करता है,उसने सातद्वीपोंवाली पृथिवीकी प्रदक्षिणा करली । फिर हे कपिले ! हे देवि ! हे सब पापोंको दग्धकरनेवाली ! ! ! आपके लिये प्रणाम है । हे गोमातः संसारसमुद्रमें डूबेहुए मेरा उद्धार करिये आप मेरी रक्षा करने योग्य है ऐसाकहकर प्रार्थना करे । ' हिरण्यगर्भ ' मन्त्रसे दक्षिणा समर्पण करे । दो लाल वस्त्र सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये दे कि, ये दो लालवस्त्र हैं इसी कारण सूर्यदेवके प्रिय है इनके प्रदानसे मुझे सूर्यदेव शान्ति प्रदान करें और व्रतानुष्ठानकी समाप्तिके समय सुन्दर वस्त्र और अलंकारोंसे शोभायमानगऊ और सूर्यदेवकी प्रतिमाका दान करे और दानप्रतिष्ठाके निमित्त दक्षिणा दे । और दाता एवं प्रतिग्रहीता दोनों कहें कि, सूर्य देनेवाले, सूर्य लेनेवाले और सूर्यही अपने दोनोंके उद्धार करनेवाले हैं, अतः सूर्यके लिये बारबार प्रणाम है । गुडखीरसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर शक्तिके अनुसार आचार्य और ऋत्विजोंके लिये ज्यादा और कुछ अन्यब्राह्मणोंके लिये भी दक्षिणा दे । यदि व्रतीके धन कम भी हो तो वह इस विधिके करनेमें त्रुटि न करे, किन्तु दानमें तारतम्य अपनी शक्तिके अनुरूप करे । इससे निर्धनभी कपिलाषष्ठीके अनुष्ठानका फलभागी होता है । फिर गऊ, जमीन, सुवर्ण, वस्त्र, धान्य, लवण और तिल इन सबको आचार्यके हाथोंमें समर्पण करके गपिला गऊको प्रार्थना करे कि, हे कपिले ! तुम पुण्यकर्म्मा निष्पाप हो, मैं दीन हूं और इस पुण्यकर्म्ममें आपका प्रदान करता हूं अतः आप मेरा उद्धार करें
तुम पुण्यकर्म्मा निष्पाप हो, मैं दीन हूं और इस पुण्यकर्म्ममें आपका प्रदान करता हूं अतः आप मेरा उद्धार करें
मेरे किये कर्म्मके पुण्यको अक्षय करें । हे कपिले ! स्वर्गमें रहनेवाले देवता लोग तुम्हारे आगे बाजे बजाते हुए तुम्हारी पूजा किया करते हैं । और तुम्हारे जितने रोम हैं उन सबमेंसे एक एक रोममें विद्याधर, सिद्ध, भूत, नाग और ग्रह वसते हैं । आप जब पृथिवीपर विराजती हो तब आपके ऊपर आकाशसे देवतालोग नित्यही पुष्प वर्षाते हैं ! हे देवि ! ब्रह्माजीने आपको उत्पन्न किया है, तुम ब्रह्माजीके यज्ञ कुण्डसे प्रगट हुई हो, हे कपिले ! सब देवतालोग आपको प्रणाम करते हैं इससे आपके लिये मेरा प्रणाम है । आप महसत्त्वारूपा हो यानी परमात्मा स्वरूपा हो, सब तीर्थोंमें जो पुण्य फल मिलता है उसकी प्रोप्तिमें मुख्य कारण तुमही हो, आपके दानसे ही वे वे तीर्थ मङ्गलके हेतु होते हैं । हे देवि ! आप बान्धवोंके साथ मुझे ब्रह्म पदको शीघ्र प्राप्त कराओ, ऐसी प्रार्थना करनेके पीछे प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणपुङ्गवोंको प्रणाम करे । वे ब्राह्मण ऐसे आशीर्वाद दें, जिससे वह इस लोकमें सब दुःखोंसे छूटकर पुत्र, पौत्र, धन, स्वाध्याय, आरोग्य, रूप और सौभाग्य '(यशस्विता)' को प्राप्त हो एवम् अन्तमें गोलोक जाकर चिरकाल सुख भोगे । (यहां गोलोक परमात्माके धामका वाचक नहीं है, किंतु किसी उत्तमपदका है, इसीसे कहते हैं कि,) जब पुण्यफल भोगकर स्वर्गसे गिरता है तो यहां धर्म्मनिष्ठ चक्रवर्ती राजा होता है, सप्तद्वीपा पृथिवीके निष्कण्टक राज्यसुखको जीवनपर्यन्त भोगता है । यह व्रत महान् पवित्र एवम् सर्वदुःखोंका नाशक है । इसके पीछे आचार्यको कपिला दान करनेका फलभी सुनाता हूं कि,

समस्त वेदोंके अध्ययन आदि करनेसे, वेदमूर्ति, सदाचारनिष्ठ रहनेसे, सुपात्र आचार्यके लिये देनेसे अक्षय पुण्य होता हैं, अतः ऐसेही आचार्यके लिये दान करे! हे मानद । कपिलाषष्ठी जिस सँवत्सरमें प्राप्त हो तब यह व्रत दूसरे उब व्रतोंसे उत्तम एव महान् पुण्य फलका देनेवाला होता हैं, तब स्वर्गनिवासी देवगण भूतगण और महर्षिगण नृत्य करते हुए पुकारते हैं कि ,अब यह व्रत दानियोंको यहां प्राप्त करके अक्षय, अव्यय पुण्य भोगनेका अधिकार करेगा सुपात्र, वेदपाटी, कुटुम्बी और ऋषिके समान सदाचारी । ब्राह्मणके लिये जो शास्त्र-विधिके अनुसार कपिलादान करता है वह उस परमपदको प्राप्त होता है, जिस पडसे फिर गिरना न हो । इस प्रकार हेमाद्रिमें कही हुई कपिलाषष्ठीके व्रतकी विधि पूरी हुई ।। स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें संक्षेपसे व्रतविशेष कहा है कि, गोमय और मृत्तिकादिकोंसे लिपी हुई, एवं पुष्प और अक्षतोंसे विभूषित पवित्र भूमिमें धान्यराशिपर चन्दनमिश्रितजलसे पूर्ण, पंचरत्न सहित दूब, फूल और अक्षतयुक्त, अव्रण कुम्भको स्थापित करे, उसको दो लाल वस्त्रोंसे आच्छादित करके एक तांबेका पात्र रख दे, एक पर चांदीके एक चक्रवाले विचित्र-रथको स्थापित करे ।उसमें एक पल सोनेकी सूर्यमूर्तिको रखके गन्धपुष्पादिकोंसे पूजन करे । उस सूजनके उपयोगी आदित्यादि नाममन्त्र है । " ओं आदित्याय नमः, आदित्यको नमस्कार, ओं भास्करायनमः, भास्करको नमस्कार, ओं रवये नमः, रविको नमस्कार, ओं भानवे नमः, भानुको नमस्कार, सूर्यायनमः, सूर्यको नमस्कार, ओं दिवाकरायनमः दिवाकरको नमस्कार, पादयोः पाद्यं समर्पयामि, हस्तयोरर्घ्यम्, मुखआचमनीयम् चरणोंको पाद्य, हाथोंके लिये अर्घ्य और मुखके लिये आचमनीय देताहूं" इत्यादि क्रम से पूजन करे । पीछे प्रार्थना करे कि, हे प्रभाकर ! आपके लिये प्रणाम है, आप मेरा संसारसे उद्धार करें, क्योंकि, आप ऐहिक पारलौकिक भोगसम्पत्तियों एवं मोक्षके देनेवाले हैं । इससे मेरे लिये शान्ति प्रदान करें । हे वर देने वाले ! आपके लिये नमस्कार है, हे ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदके अधिपते ! आपके लिये नमस्कार हे । आपका समस्त विश्वही स्वरूप है, या विश्वको प्रगट करनेवाले आपही हैं, ऐसे आपके लिये नमस्कार है । विश्व को धारण करनेवाले आपके लिये बार बार नमस्कार है ऐसे विधिवत् प्रार्थनापर्यन्त देवदेव सूर्य-भगवान् की पूजा करके कपिला गऊका दान करे । इससे पहिले उसकी प्रथम वस्त्र माला और चन्दन चढाके पूजा करे । उसको देनेका यह मन्त्र है, कि दिव्यस्वरूप, भुवनोंके नेत्ररूप (अर्थात् प्रकाश) द्वादशात्मा, सूर्य और कपिला मुझे मुक्ति प्रदान करें । हे पुण्य कपिले ! आप सब जगत् को पवित्र करनेवाली हो, मैंने आज आपको सूर्यभगवान्के साथ आचार्यके लिये समर्पित किया है, इससे मुझे प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करें । यह स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डका कहा हुआ कपिलाषष्ठीका व्रत पूरा हुआ ।

स्कन्धषष्ठी

अथ कार्तिके स्कन्दषष्ठीव्रतम् ।। सा पूर्वयुता ग्राह्या––कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी ।। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ।।इति भृगूक्तेः।। हेमाद्रौ भविष्येश्रीकृष्ण उवाच ।। षष्ठ्यां फलाशनो राजन्विशेषात्कार्तिके नृप ।। राज्यच्युतो विशेषेण स्वं राज्यं लभतेऽचिरात् ।। षष्ठी तिथिर्महाराज सर्वदा सर्वकामदा ।। उपोष्या सा प्रयत्नेन सर्वकालं जयार्थिना ।। कार्तिकेयस्य दयिता एषा षष्ठी महातिथिः ।। देवसेनाधिपत्यं हि प्राप्तमस्यां महात्मना ।। अस्यां हि श्रीसमायुक्तो यस्मात्स्कन्दोऽभवत्पुरा ।। तस्मात्षष्ठ्यां न भुञ्जीत प्राप्नुयाद्भार्गवीं[1] सदा ।।दत्त्वार्घ्यं कार्तिकेयाय स्थित्वा वै दक्षिणामुखः ।। दध्नाऽक्षतोदकैः पुष्पैर्मन्त्रेणानेन सुव्रत ।। सप्तर्षिदारज स्कन्द सेनाधिप महाबल ।। रुद्रोमाग्निज षड्वक्त्र गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ।। प्रीयतां देवसेनानीः संपादयतु हृद्ग-

---

१ लक्ष्मीम्

तम् ।। दत्त्वा विप्राय चामान्नं यच्चान्यदपि वर्तते ।। पश्चाद् भुङ्क्ते त्वसौ रात्र्यां भूमिं कृत्वा तु भाजनम् ।। एवं षष्ठीव्रतस्थस्य उक्तं स्कन्देन यत्फलम् ।। तन्निबोध महाराज प्रोच्यमानं मयाखिलम् ।। षष्ठ्यां फलाशनो यस्तु नक्ताहारो भविष्यति।। शुक्लायामथ कृष्णायां ब्रह्मचारी समाहितः ।। तस्य सिद्धिं धृतिं पुष्टिं राज्यमायुर्निरामयम् ।। पारत्रिकं चैहिकं च दद्यात्स्कन्दो न संशयः।।अशक्तश्चोपवासे वै स च नक्तं समाचरेत् ।। तैलं षष्ठ्यां न भुञ्जीत न दिवा कुरुनन्दन ।। यस्तु षष्ठ्यां नरो रक्तं कुर्याद्भरतसत्तम ।। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो गाङ्गेयस्य प्रसादतः ।। स्वर्गे च नियतं वासं लभते नात्र संशयः ।। इह चागत्या कालेन यथोक्तफलभाग्भवेत् ।। देवानामपि वन्द्योऽसौ राजराजो भविष्यति ।। इति भवि. स्कन्दषष्ठीव्रतम्।।

स्कन्दषष्ठीव्रत–कार्तिक में होता है, उसे कहते हैं । यह स्कन्दषष्ठीपञ्चमी योगवाली ग्राह्य है । क्योंकि भृगुस्मृतिमें यह कहा है कि, कृष्णजन्म की अष्टमी, स्वामि कार्तिकेयके व्रतकी षष्ठी और शिवरात्रिव्रतकी चतुर्दशी ये तीनों तिथियां पहिली तिथियोंसे युक्त ही ग्राह्य हैं यानी कृष्णाष्टमी सप्तमीविद्धा, स्कन्दषष्ठी पञ्चमीविद्धा और त्रयोदशीविद्धा शिवरात्रिव्रतकी चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये, किंतु पारण व्रतकी तिथियोंके अन्तमें ही करे, अर्थात् कृष्णाष्टमीका नवमीमें स्कन्दषष्ठीका सप्तमीमें, शिवरात्रिका अमावास्यामें । और "तिथिभान्ते च पारणम् यह भी सिद्धान्त वचन है यानी तिथिप्रधान व्रत तिथिके अन्तमें और नक्षत्रप्रधान व्रत नक्षत्रके अन्तमें समाप्त करने चाहिये । हेमाद्रिके चतुर्वर्ग चिंतामणिग्रन्थमें भविष्यपुराणके जो वाक्य मिलते हैं उन्हें यथास्थित दिखाते हैं:श्रीकृष्ण चन्द्र राजा युधिष्ठिरसे बोले कि, हे राजन् ! सभी षष्ठीतिथियोंमें फलोंका ही आहार करनेका नियम पालना चाहिये, पर हे नृप ! कार्तिकमें तो विशेष करके फलभोजी होना चाहिये जो राज्यसे (तुम्हारी तरह) च्युत हुआ हो, वह और भी अधिक नियम पाले, ऐसा रहनेसे बहुत जल्दी राज्य वापिस मिलजाता है । हे महाराज ! स्कन्दषष्ठी सदैव सब कामनाओंको पूर्ण करती है । विजयका अभिलाषी राजा प्रतिवर्ष इस दिन विधिवत् उपवास करे । क्योंकि, यह छठ स्वामिकार्तिककी प्रेम पात्र है । इससे यहछठ और तिथियोंकी अपेक्षा महती उत्कृष्ट है, इस छठमें महात्मा स्वामिकार्तिकेयजीने समस्त देवत्ताओंकी सेनाके आधिपत्यपदका लाभ किया था और इस छठके दिनही पहिले स्वामिकार्तिक विजयलक्ष्मीको प्राप्त हुये थे । इससे जो पुरुष छठके दिन भोजन न करेगा वह भार्गवी (लक्ष्मी) को सदाके लिये प्राप्त होता है । "सप्तर्षि" इस डेढ श्लोक मन्त्रसे कार्तिकेयके लिये दक्षिणाभिमुख होकर अर्घ्य दे हे सुव्रत ! उस अर्घ्यमें अक्षत, जल और पुष्पोंको भी ले, हे सप्तर्षियोंकी (कृत्तिकानाम) भार्यासे उत्पन्न होनेवाले ! हे शत्रुओं (दैत्यों) की सेनाओंका स्कन्दन करनेसे स्कन्दनामसे विख्यात, हे देवताओंकी सेनाओंके अधिनाथ ! हे महान् बलको धारण करनेवाले ! हे महादेवजी पार्वतीजी । और अग्निसे उत्पन्न होनेवाले हे षडानन ! हे गंगाजीके नन्दन ! आपके लिये प्रणाम है हे देवताओंके सेनानी ! आप प्रसन्न हों, मेरी वांछित कामना को पूर्ण करें । फिर द्विजवरके लिये कच्चे अन्नको और भोजनके उपयुक्त घृत सक्कर शाक आदि पदार्थोंको दे । पीछे रात्रिमें पृथिवीकोही भोजनपात्र बनाकर फल भोजन करे । इस प्रकार छठके दिन व्रत करनेवालेको जो फल प्राप्त होता है, उसे स्वामिकार्तिकजीने आपही अपने मुखसे कहा है, हे महाराज ! उस फलको यथावत् कहता हूं समझो । षष्ठी तिथि शुक्लपक्षकी हो, या कृष्णपक्षकी हो, इन दोनों षष्ठियोंमेंही जो ब्रह्मचारी (ब्रह्मचारी के नियमोंसे स्थित) और विषयासक्तिसे पराङ्मुख होकर फलोंका रात्रिमें भोजन करेगा उसेसिद्धि (जो चाहे उसीको प्राप्त करनेकी शक्ति), धृति (कभीभी घबराहट न होना), पुष्टि (पुष्टता), राज्य (स्वतन्त्रता और दूसरोंपर आधिपत्य), एवं निरामय (रोगपीडाशून्य) जीवन परलोकके

और इस लोकके सब भोग स्वामिकार्तिक निःसन्देह दिया करते हैं । जो षष्ठीमें भोजन किये विना न रह सकता हो, वह भी दिनमें भोजन न कर रात्रिमें करे । इस कथनमें यही विशेष है कि फल न खाकर रात्रिमें अन्न खा सकता है । हे कुरुनन्दन ! षष्ठीके दिन तैलके पदार्थोंका भोजन न करे । जो षष्ठीके दिन नक्तव्रत करता है, वह गङ्गानन्दन कार्तिकेयके अनुग्रहसे सब पापोंसे विमुक्त होता है । हे कुरुनन्दन ! वह स्वर्ग प्राप्त होकर भोग सम्पत्ति को प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं है । फिर जब कभी इस मनुष्यलोकमें प्राप्त होता है, तब भी उसको वैसी ही सुख सम्पत्ति मिलती है और तो क्या षष्ठीव्रती पुरुषको देवतालोग भी प्रणाम किया करते हैं, और वह कुबेरके सदृश धनसम्पन्न या महाराजा होता है । यह भविष्यपुराणका स्कन्दषष्ठीव्रत पूरा हुआ ॥

चम्पाषष्ठी

अथ भाद्रपदे व मार्गशीर्षे शुक्ले चम्पाषष्ठीव्रतं हेमाद्रौ स्कान्दे ॥ सोत्तरयुता ग्राह्या–"षण्मुन्योः" इति युग्मवाक्यात् ॥ स्कन्द उवाच ॥ प्राप्तराज्यं च राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ कदाचिदाययौ द्रष्टुं दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥ तं पप्रच्छ महातेजा धर्मसूनुः कृताञ्जलिः ॥ राज्यलाभः कथं जातो मम विप्र तपोनिधे । तद्व्रतं श्रोतुमिच्छामि कर्तुं च मुनिसत्तम ॥ दुर्वासा उवाच ॥ शृणु राजन्महाभाग व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ अस्तीह यच्चीर्णमात्रं सर्वकामास्तु पूरयेत् ॥ षष्ठी भाद्रपदे शुक्ला वैधृत्या च समन्विता ॥ विशाखा भौमयोगेन सा चम्पाइति विश्रुता ॥ देवासुरमनुष्याणां दुर्लभा षष्टिहायनैः ॥ कृते त्रेतायां पञ्चाशद्धायनी द्वापरे पुनः ॥ चत्वारिंशत्कलौ त्रिंशद्धायनी दुर्लभा ततः ॥ आदौ कृतयुगे पूर्वं या चीर्णा विश्वकर्मणा ॥ तत्फलं विश्वकर्तृत्वं प्राजापत्यमवाप्तवान् ॥ पृथुना कार्तवीर्येण भुवि नारायणेन च ॥ ईश्वरेणोमया सार्द्धमितरेतरलिप्सया ॥ यश्चैनां विधिवत्कुर्यात्सोऽनन्तं फलमश्नुते ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ तद्विधिं श्रोतुमिच्छामि विस्तराद्गदतो मुने ॥के मन्त्राः के च नियमाः सापि किंलक्षणा भवेत् ॥ दुर्वासा उवाच ॥ द्विदैवत्यर्क्षभौमेन वैधृतेन समन्विता ॥ भाद्रे मासि सिते षष्ठी सा चम्पेति निगद्यते ॥ पञ्चम्यां नियमं कुर्यादेकभक्तं समाचरेत् ॥ चम्पाषष्ठीव्रतं कुर्याद्यथोक्तं वचनाद् गुरोः ॥ ततः प्रभाते विमले दन्तधावन पूर्वकम् ॥ कृत्वा स्नानं शुचिर्भूत्वा संकल्प्य च यथाविधि ॥ संकल्पमन्त्रः–निराहारोऽद्य देवेश त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या शरणं भव भास्कर ॥ ततः स्नानं प्रकुर्वीत नद्यादौ विमले जले ॥ मृदमालभ्य मंत्रैश्च तिलैः शुक्लैश्च मंत्रवित्॥ सावित्रः परमस्त्वं हि परं धाम जले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥ इति प्रार्थना ॥ आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च ॥ पापं नाशय मे देव

वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ।। इति स्नानमंत्रः ततः संतर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणानपि ।। ततश्चैत्य गृहं मौनी पाखण्डालाप वर्जितः ।। स्थण्डिलं कारयेच्छुद्धं चतुरस्रं सुशोभ-भनम् ।। स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।। रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं रक्त-चन्दनर्चाचितम् ।। तस्योपरि न्यसेत्सूर्यं सौवर्णं सरथारुणम् ।। शक्त्या वा वित्त-सारेण वित्तशाठ्यविर्वाजितः ।। तमर्चयेद्गन्धपुष्पैर्विधिमन्त्रपुरः सरम् ।। पञ्चा-मृतेन स्नपनं कुर्यादर्कस्य संयतः ।। ततस्तु गन्धतोयेन परां पूजां समारभेत् ।। गन्धैर्नानाविधैर्दिव्यैः कर्पूरागुरुकुंकुमैः ।। [1]फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः कुंकुमैश्च सुगन्धि-भिः ।। मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्पमालाविभूषितम् ।। यथाशोभं प्रकुर्वीत अधश्चोपरि सर्वतः ।। ततः संपूजयेद्देवं भास्करं कमलोपरि ।। मध्ये दलेषु पूर्वादिष्वादित्यादीन् सुपूजयेत् ।। [2]आदित्याय नमः । तपनाय० पूष्णे न०भानुमते न० भानवे न० अर्यम्णे न० विश्ववक्त्राय[3]० अंशुमते० सहस्रांशवे नमः । खनायकाय० सुराय० सूर्याय नमः । खगाय नमः ।। १३ ।। जन्मान्तरसहस्रेषु दुष्कृतं यन्मया कृतम् ।। तत्सर्वं नाशमायातु [4]त्वत्प्रसादाद्दिवाकर ।। विनतातनयो देवः कर्मसाक्षी तमोनुदः ।। सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च अरुणो मे प्रसीदतु ।। इति रथपूजामन्त्रः ।। ततः संपूजये-द्देवमच्युतं तद्रथस्थितम् ।।अष्टाक्षरेण मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।। "ओं घृणिः सूर्य आदित्य" इति मंत्रः संप्रदायादवगन्तव्यः ।। कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः ।। जन्ममृत्युजरारोगसंसारभयनाशनः ।। इति उदयेऽर्ध्य-मन्त्रः ।। ततः सं पूजयेच्छुक्लां सवत्सां गां पयस्विनीम् ।। सवस्त्रघण्टाभरणां कांस्यपात्रे च दोहिनीम् ।। ब्रह्मणोत्पादिते देवि सर्वपापविनाशिनि ।। संसारार्णव-र्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि ।। सुरूपा बहुरूपाश्च मातरो लोकमातरः ।। गावो मामुपसर्पन्तु सरितः सागरं यथा ।। या लक्ष्मीः सर्वदेवानां या च देवेषु संस्थिता ।। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ।। या लक्ष्मीर्लोकपालानां या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।। चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे । इति धेनुपूजामन्त्रः । तिलहोमं ततः कुर्यात्साविञ्यष्टोत्तरं शतम् ।। ततस्तां कल्पयेद्धेनुमर्को मे प्रीयता-मिति ।। आचार्याय ततो दद्यादादित्यं सरथारुणम् ।। सकुम्भरत्नवस्त्रैश्च सर्वोप-स्करसंयुतम् ।। ददामि भानुं भवते सर्वोपस्करसंयुतम् ।। मनोभिलषितावाप्ति करोतु मम भास्करः ।। इति दानमन्त्रः ।। गृह्णामि भास्कर रवे भवन्तं विश्वतो-मुखम् ।। मनोभिलषितावाप्तिमुभयोः कर्तुमर्हसि ।। इति प्रतिग्रहणमंत्रः ।।

---

१ फलैस्तदनुसंभूतैरनेकैश्च सुगंधिभिरित्यपि पाठः । २ एषु प्रथमेण मन्त्रेणे मध्ये पूजनम्, इतरैर्द्वादशभिः पूर्वादिदलक्रमेण पूजनमितिहेमाद्रौ । ३ विश्वचक्रायेति पाठान्तरम् । ४ दिवाकर पवार्चनात् इति पाठान्तरम्

सर्वतीर्थमयीं धेनुं सर्वयज्ञमयीं शुभाम् ।। सर्वदानमयीं देवीं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ।। इतिगोदानमंत्रः ।। गृह्णामि सुरभिं देवीं सर्वयज्ञमयीं शुभाम् ।। उभौ पुनीहि वरदे उभयोस्तारिका भव ।। इतिप्रतिग्रहमंत्रः ।। ततस्तु भोजयेद्विप्रान् द्वादशैव स्वशक्तितः ।। दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।। ततस्तु स्वयमश्नीयाद्द्विजानामवशिष्टकम् ।। सह पुत्रैः कलत्रैश्च अन्यैर्बहुजनैर्वृतः ।। एवं यः कुरुते चम्पां सोऽत्यन्तं पुण्यमश्नुते ।। प्रभूणां च विधिः प्रोक्तस्तत्प्रभूणां च गोचरः ।। सर्वैश्चैतद्व्रतं कार्यं स्वशक्त्या दुःखभीरुभिः ।। प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।। विफलं तत्तु तस्य स्यादनीशस्त्वनुकल्पितः ।। अथ निर्धनस्य विधिः ।। पञ्चम्यां नियमं कुर्यादाचार्यवचनाद्व्रती ।। षष्ठ्यां स्नानं प्रकुर्वीत संतर्प्य पितृदेवताः । अभ्येत्य स्वगृहं मौनी सूर्यं मनसि चिन्तयेत् ।। स्थापयेदव्रणं कुम्भं मृत्पात्रं च तथोपरि ।। तस्योपरि न्यसेत्सुर्यं पलैकेन विनिर्मितम् ।। सौवर्णं भक्तिसंयुक्तं रथं सारथिना युतम् ।। तमर्चयेज्जगन्नाथं गृहीत्वाज्ञां गुरोः स्वयम् ।। षडक्षरेण मंत्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।। "ॐनमः सूर्याय"इति मंत्रः ।। संपूज्य विधिवद्देवं फलपुष्पादिकं च यत् ।। सूर्यायावेदयेत्सर्वं सूर्यो मे प्रीयतामिति ।। ततः प्रभाते विमले गत्वा गरुगृहं व्रती ।। सर्वोपकरणैः सूर्यमाचार्याय निवेदयेत् ।। धान्यं पुष्पं फलं वस्त्रं रत्नधेन्वादिकं च यत् ।। गवां कोटिसहस्रं तु कुरुक्षेत्रेऽर्कपर्वणि ।। चम्पादानस्य राजेन्द्र कलां नार्हति षोडशीम् ।। सर्वतीर्थप्रदानानि तथान्यान्यपि षोडश ।। चंपया तुलितानीह चम्पैका त्वतिरिच्यते ।। इति श्रीस्कंदपुराणोक्तं चंपाषष्ठीव्रतं संपूर्णम् ।। अथ मार्गशीर्ष शुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठ ।। [1]मार्गे मासे शुक्लपक्षे षष्ठी वैधृतिसंयुता ।। रविवारेण संयुक्ता सा चम्पा इति कीर्तिता।। इति मल्लारिमाहात्म्ये ।। मार्गशीर्षेऽमले पक्षे षष्ठ्यां वारेंशुमालिनः ।। शततारागते चन्द्रे [2]लिङ्गं स्याद्दृष्टिगोचरम् ।। इति ।। इयं योगविशेषण पूर्वा । योगाभावे परा ग्राह्या ।। इति चम्पाषष्ठी । इति षष्ठीव्रतानि ।।

चम्पाषष्ठीका व्रत--भाद्रपद या मार्गशीर्ष मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठीके दिन होता है, यह हेमाद्रि-ग्रन्थमें स्कन्दपुराणसे कहा है । यह सप्तमीके साथ सम्बन्ध रखनेवाली ग्राह्य है क्योंकि षट्--छठ, और मुनि-सात यह दोनोंका वाक्य है यानी इन दोनों तिथियोंके सम्मेलनमें पूर्वा ग्रहण करनी चाहिये, यह सिद्धान्त है । स्कन्द मुनियोंसे बोले कि, हे तपस्वियो ! जब राजा युधिष्ठिरको फिर राज्य मिल गया, तब किसी दिन मुनिवर दूर्वासा उन्हें देखने आये । धर्मनन्दन महातेज राजा युधिष्ठिरने हाथ जोडकर उनसे पूछा कि, हे तपोनिधे ! हे विप्र ! मुझे जो यह राज्य मिला है, वह किस व्रतके पुण्यसे मिला है ? हे मुनिसत्तम ! मैं उसे करनेकी तथा उसके माहात्म्य सुननेकी इच्छा करताहूं । दुर्वासा बोले कि, हे महाभाग हे राजन् ! इस सर्वोत्तम व्रतके माहात्म्यको सुनो । यह व्रत ऐसा है कि, जिसके करनेसे सब कामना पूरी होती हैं । भाद्रपदशुक्ला षष्ठी वैधृतियोग, विशाखानक्षत्र और मङ्गलवारके मिलने से चम्पाषष्ठी कहाती है । यह षष्ठी सत्ययुगमें देवता दैत्य और मनुष्योंको षष्ठि वर्षोंमेंभी दुर्लभ थी । त्रेतायुगमें पच्चास

१ मार्गे भाद्रपदे शुक्लेपि पाठः (कौ) २ शिवलिंगदर्शनं कार्यमित्यर्थ इति ((कौ०)

वर्षोंमें द्वापरमें चालीस वर्षोंमें एवं कलियुगमें तीस वर्षोंके पूर्व देवता आदि सभी को दुर्लभ है। पहिले सत्ययुगमें विश्वकर्माने चम्पाषष्ठीके दिन उपवास किया था, इससे उसको जगत्के सब पदार्थोंकी बहुत सरलतासे रचना करनेकी चतुरता प्राप्त हुई। वह विश्वकर्म्मा प्रजापतियोंके पदका अधिकारी होगया. ऐसे ही राजा पृथु, कार्तवीर्य, नारायण भगवान् और महादेव पार्वती सहित चन्द्रशेखरदेवने यही व्रत दूसरे अभिलषितार्थोंको पानके लिये किया था, इससे ये सब कृतार्थ हुए, पृथु आदिकोंका जो प्रभाव सुननेमें आता है, वह इसी व्रतका प्रभाव है। जो पुरुष विधिके अनुसार इस चम्पाषष्ठीके व्रतको करे, तो वह अनन्त पुण्यफल भोगता है। राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे मुने! व्रतके करनेकी विधिका विस्तारपूर्वक वर्णन करें, मैं उसको आपके मुखसे सुनना चाहता हूं। इस दिन किस किस मंन्त्र और नियमकी आवश्यकता है, वह चम्पाषष्ठी कैसी होती, यानी यह चम्पाषष्ठी ही है और यह नहीं ऐसा कौनसा लक्षण है, किस किस नियमका पालन करे, किस किस मन्त्रसे कौन कौन कार्य करना चाहिये? यह सब आप मुझे कहें। दुर्वासा मुनि बोले कि, विशाखा नक्षत्र, भौमवार और वैधृतियोग इनसे युक्त जो भाद्रपदमासमें षष्ठी हो, उसे चम्पाषष्ठी कहते हैं। पञ्चमीके दिन एक बार भोजन करनेका नियम पालन करे, आचार्यको वरके उसकी आज्ञानुसार चम्पाषष्ठीके व्रतको विधिवत् करे। फिर दूसरे दिन स्वच्छ प्रभातमें उठकर दन्तधावन करके स्नान करे, पवित्र होकर यथाविधि संकल्प करे कि हे भास्कर! आज मैं निराहार, रहूंगा, मैं आपका भक्त हूं आपही मेरे परम आधार हैं, मैं आपका भक्तिमें पूजन करूंगा अतः मैं आपकी शरण में हूं, मेरे इस संकल्पको पूर्ण कराओ। फिर नदी आदि पवित्र जलाशयपर जाकर उसके जलमें स्वच्छ स्नान करे, इस स्नानकी यह विधि है 'मृत्तिके ब्रह्म पूतासि' इत्यादि मन्त्रोंसे प्रथम मृत्तिका लगावे फिर स्नान करे. तदनन्तर फिर शुक्लतिलोंको जलमें गेरके प्रार्थना करे कि, आप परम सविता हैं 'सावित्रः परमः' इस पाठान्तरका यह अर्थ है कि, सविता (परमेश्वर) का जो परम उत्कृष्ट प्रभाव या प्रताप है वह आपही हैं। आप अपनी किरणोंद्वारा जलका मोचन करते हैं, इससे जलमें भी आपका ही धाम (तेज प्रताप) है, अब मेरे पाप आपके तेजसे हजारों तरह परिभ्रष्ट होकर विलीन हों। ऐसे प्रार्थना करनेके पीछे स्नानकरे। जलमें प्रवेशकरके सूर्यकी या तीर्थकी प्रार्थना करे कि हे देवताओंके ईश! आपही जल रूप हैं, आपही ज्योतियोंके अधीश्वर हैं। हे देव! मैंने अपनी वाणी, मन या शरीरसे जो जो दुष्कर्म्म, किये हैं मेरे उन सब पापोंको आप नष्ट करें। ऐसे स्नानादि कर्म्मसे निवृत्त होकर देवता, ऋषि और पितृगणोंका तर्पण करे। फिर अपने घर आ पाखण्डके आलापोंको छोड यथासम्भव मौन रहे और गोमयसे लिप्त शुद्ध चौकूटा स्थण्डिल बनावे, उसमें अच्छिद्र जलपूर्ण घट रखे, उसमें पञ्चरत्न गेरे फिर दो वस्त्रोंसे उसे ढकदे लालचन्दनसे चर्चित करे। उस कलशपर, सुवर्णके साश्वरथ और सारथिसहित सूर्यको बनवाकर स्थापित करे। रथादि बनवानेमें सामर्थ्य या अपने धनके अनुसार सुवर्ण व्यय करे किंतु वित्त रहते कृपणता न करे। उस सूर्य देवका विधिवत् सौरसूक्तके मंत्रोंसे पूजन करे। निश्चलेन्द्रिय होकर पञ्चामृतसे स्नान कराके, सुगन्धित जलसे स्नान करावे। पीछे बहुविधि कपूर अगर और केसर आदि सुगन्धित द्रव्योंके साथ घिसे हुए चन्दनको चढावे, अनेक फल एवम् सुगन्धित रोली आदि चढावे। फिर कलश के समीपही एक मण्डपकी कल्पना करे, उसमें पुष्पमाला लगाकर नीचे, ऊपर चारों ओर सजावे। उस मण्डपके भीतर वस्त्रको बिछाकर रोलीसे बारह पत्तेका कमल लिखे। मध्यमें एक कर्णिकाकी रचना करे। फिर "आदित्याय नमः पूजयामि" इस प्रथममन्त्रसे कमलकी कर्णिकापर आदित्यके नामके मंत्रसे पूजन करे, कमलके द्वादश पूर्वादि दलोंपर तपन आदि द्वादश सूर्योंका पूजन करे। उनके नाम मन्त्र 'ओं तपनाय नमः' इत्यादि मूलमें लिखे हैं। इनमें 'ओं इस अक्षरको पहिले और जोड देना चाहिये कहीं कहीं 'विश्ववक्त्राय नमः इस स्थानमें 'विश्वचक्राय नमः' ऐसा मंत्र भी लिखा है। प्रागुक्त द्वादशमंत्रों से द्वादश आदित्योंकी, कमलके द्वादश पत्रोंपर और 'ओं आदित्याय नमः' इस नाममंत्रसे कमलकी कर्णिकापर प्रधान स्वरूप आदित्य देवका पूजन करना चाहिये। तपन, पूषणन् भानुमत्, भानु, अर्यमन्, विश्ववक्त्र, अंशुमत्

सहस्रांशु, खनायक, सुर, सूर्य्य, खग ये बारह सूर्य्य के नाम हैं। इन्हींके मंत्रोंसे दलोंपर पूजन होता है। हे दिवाकर ! आजतक मेरे हजारों बार जन्म होगये, इन जन्मोंमें मैंने जो पाप किये हैं वे सब आपके अनुग्रहसे नाशको प्राप्त होजायें। फिर सूर्यभगवान्के रथका पूजन करे कि, सातघोडे जिसमें जुतेहुए हैं, सात ही रस्सियां यानी बागडोर जिसके घोडोंपर लगी हुई हैं; ऐसा रथ और इसके चलनेवाले कर्मोंके साक्षी एवम् सूर्यके प्रकाशसे प्रथम ही आगे बैठकर जगत् के अन्धकारको शान्त करनेवाले विनतानन्दन अरुणदेव मेरे उपर प्रसन्न हों उस रथमें सदा रहनेवाले, अच्युतस्वरूप सूर्यदेवका "ओं घृणि सूर्य आदित्य' इस आठ अक्षरवाले मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, अक्षतादिद्वारा'पूजन करे। इस अष्टाक्षर मन्त्र को गुरुओं की उपदेश परम्परासे जानना चाहिये। सूर्यके उदय होतेही 'कालात्मा' इस मन्त्रसे सूर्यके लिये अर्घ्यदान करे कि, कालस्वरूप सब प्राणियोंकी आत्मा, वेदरूपी, सब ओर मुखवाले संसारके जन्म, मरण वृद्धपना और रोगादिकोंके उपद्रव या भय हैं, उन सबके विनाशक सूर्यदेव अर्घ्य ग्रहण करें। फिर गोदान करे। वह गौ श्वेतवर्णा एवं बच्छेवाली दुग्ध देनेवाली, वस्त्र घण्टा तथा कण्ठभरसे विभूषित और कांसेकी दोह्निवाली होनी चाहिये और पूजन करनेके मन्त्र ये हैं कि, हे देवि ! ब्रह्माजीने सब पापोंको नष्ट करानेके लिये आपकी उत्पन्न की है, हे गोमाता ! संसारसमुद्रमें डूबेहुए मुझे बचा, सुन्दर एवं बहुविरूपवाले लोकोंकी माता, गौमाताएं, समुद्रके नदियोंको भांति मुझे प्राप्त होती रहें। जो सब देवताओंकी लक्ष्मी हैं जो देवताओंमें सुरभिरूपसे स्थित है वह देवी मेरे सब पापोंको नष्ट करे। जो लोकपालोंकी लक्ष्मी है, जो कुबेरकी भी लक्ष्मी है जो चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्रकी शक्ति है वही गऊ मेरी कामनाएं पूर्ण करे फिर 'ओं तत्सवितुर्वरेण्यम्" इस गायत्री (सावित्री) मन्त्रसे एकसौ आठ वार तिलोंका (तिल-प्रधान हवनीय द्रव्यका हवन करे। फिर गऊको वहाँ उपस्थित कराके कहे कि 'अर्को मे प्रीयताम्' सूर्य मेरेपर प्रसन्न हों आर्यके लिये रथ और अरुणसहित सूर्यदेवको, सर्वोपस्करसंयुक्त, सव्लऔर पञ्चरत्न-सहित सुन्दर कलशको विधिके साथ दे दे। सूर्यदानका ददामि' यह मन्त्र है कि मैं सब रथादि उपस्कर (सामग्री) सहित सूर्यदेवको आपके लिये देताहूं, इससे संतुष्ट हुए सूर्यदेव मेरी मनोकामना पूर्णकरें। प्रतिग्रहका 'गृह्णामि भास्करम्' यह मंत्र है कि, हे भास्कर ! हे रवे ! आप विश्वतोमुखहैं, मैं आपका अङ्गीकार करताहूं । अतः आप हम दोनों प्रतिग्रहीता और दाताके मनकी अभिलषित कामनाओंको पूर्ति करें। फिर 'सर्वतीर्थं' इस मन्त्रसे गोदान करे । कि मैं समस्त तीर्थ, यज्ञ और दानरूप पवित्र गोमाताको ब्राह्मणके लिये देता हूं। 'गृह्णामि सुरभिम्' यह प्रतिग्रहका मन्त्र है। कि, मैं समस्त यज्ञरूप पवित्र एवं साक्षात् सुरभिरूप गऊको लेता हूं। हे वरदेनेवाली देवि ! हम दोनों दाता और प्रतिग्रहीताको पवित्र कर और उद्धारकारिणी हो। फिर द्वादश ब्राह्मणोंको भोजन करावे। पीछे अपनी शक्तिके अनुसार उनके लिये दक्षिणा दे और प्रणाम करके अनुष्ठानका विसर्जन करे। ब्राह्मणोंको भोजन करानेपर बचेहुए अन्न का आप अपने पुत्र, स्त्री और सब बान्धओंके साथ बैठकर भोजन करे। पूर्वोक्तविधिके अनुसार जो मनुष्य चम्पाषष्ठीका व्रत करता है, उसको विशेष पुण्य मिलता है। यह जो विधि कही है वह समर्थोंकी है क्योंकि, इस प्रकार सुवर्ण रथादिका दान अत्यन्त धनशाली ही कर सकते हैं। और निर्धनभी अपने अपने दुःखोंको मिटानेके लिये व्रत करें, पर पूजनविधि अपनी शक्तिके अनुसार करे। जो समर्थ होकर इस-विधिसे न कर, निर्धनोंके अनुरूप विधिसे करता है उसका वह करना निष्फल होता है. किंतु निर्धन उस अनुकल्पविधिसे यदि करता है तो वही सफल होता है। अब निर्धनकी कर्त्तव्य विधिका निरूपण करते हैं—व्रती पञ्चमीके दिन आचार्यसे पूछकर नियम ग्रहण करे, षष्ठीके दिन स्नान करके पितृदेवता आदिकोंका तर्पण करे । फिर मौनी होकर अपने घरमें आ, सूर्यदेवका ध्यान करे। अव्रण कलशको स्थापित करके उसके ऊपर मृत्तिकापात्र रखे। उसपर एक पल सुवर्णकी सूर्यमूर्ति और भक्तिके साथ सुवर्णका सारथि, अश्व आदि रथको स्थापित करे। फिर गुरुसे पूछकर आप उस जगन्नियन्ता सूर्यदेवका 'ओं नमः सूर्याय' इस छः अक्षरवाले मन्त्रसे गन्ध, पुष्पादिद्वारा पूजन करे। ऐसे पूजन करके जो फर पुष्पादि उपस्थित हों उनको सूर्यके लिये चढावे । पीछे 'सूर्यो में प्रीयताम्' सूर्य मेरे पर प्रसन्न हो ऐसे कहता रहे। पीछे दूसरे

दिन स्वच्छ प्रभातमें गुरुके यहां जाय, तथा सब उपकरण समेत सूर्यकोगुरुके लिये निवेदन करे । इसके साथ अपनी सामर्थ्यानुसार धान्य, पुष्प, फल, वस्त्र, रत्न और गऊ आदि जो देने हों उनको भी दे दे । कोटिको सहस्र गुणित कर जितनी संख्या होती है उतनी गऊओंको सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र में देनेसे जो फल मिलता है हे राजेन्द्र ! वह दान पुण्य चम्पाषष्ठीका दान फलकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं करसकता । सब तीर्थोंमें दानोंके पुण्योंको और षोडश महादानोंकोएक तरफ तुलापर रखे, दूसरी ओर चम्पाषष्ठीका पुण्य; पर इस चम्पापुण्यकी बराबरीउन सब पुण्योंसे नहीं होती. चम्पाषष्ठीकाही पुण्यफल भारी रहता है । यह श्रीस्कन्दपुराण की कहीहुई चम्पाषष्ठीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।। मार्ग शीर्षशुक्ला षष्ठी चम्पाष्ठीके व्रतको कहते हैं । मार्गशीर्षमासकी (पाठान्तरके अनुसार मार्गशीर्ष या भाद्रमास) शुक्ल पक्षकी षष्ठी यदि वैधृतियोग और रविवारसे युक्त हो तो उसे चम्पाषष्ठी कहते हैं, यह मल्लारिमाहात्म्यमें लिखा हुआ है, दूसरे ग्रन्थोंमें तो यह लिखा हुआ है कि, मार्गशीर्षशुक्ला षष्ठी शतभिषानक्षत्रसे युक्त रविवारी हो तो उसे चम्पाषष्ठी कहते हैं, इसमें शिव लिङ्गके अवश्य दर्शन करने चाहिये इसके योग पूर्वामें हो पूर्वा यदि परामें हो तो परा लेनी चाहिये योग विशेष शतभिषानक्षत्र और रविवार आदिक हैं ये पूर्वा परा वा शुद्धा जिसमें हो उसीको चम्पाषष्ठी समझा जायगा । यह चम्पाषष्ठीका व्रत पूरा हुआ ।। इसके ही साथ षष्ठीके व्रत भी पूरे होते हैं ।।

अथ सप्तमी व्रतानि

गङ्गोत्पत्तिः ।। तत्र वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः, तत्पूजा चोक्ता, पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मेवैशाखशुक्लसप्तम्यां जाह्नवी पुरा । क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात् ।। तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम् ।। इति ।। हरिवंशे पुण्यकव्रतान्ते अब्दं प्रातःस्नानमभिधाय-गङ्गया व्रतकं दत्तं तदेवौमं[1] यशस्करि ।। स्नानमभ्यधिकं त्वत्र प्रत्यूषस्यात्मनो[2] जले।। अन्यत्र वा जले माघशुक्लपक्षे हरिप्रिये ।। एतद्गङ्गाव्रतं नाम सर्वकामप्रदं स्मृतम् ।। सप्त सप्त च सप्ताथ कुलानि हरिवल्लभे । स्त्री तारयति धर्मज्ञा गङ्गाव्रतकचारिणी ।। देयं कुम्भसहस्रं तु गङ्गाया व्रतके शुभे ।। तारणं[3] पारणं चैव तद्व्रतं सार्वकामिकम् ।। इति ।। अन्यत्रोक्तम्-वैशाखशुक्लपक्षे तु सप्तम्यां पूजयेद्धरिम् ।। गंगायां विधिवत्स्नात्वा भोजयेद्ब्राह्मणान् दश ।। पूजयेत्सूक्ष्म वस्त्रैश्च पुष्पस्रक्चन्दनैः शुभैः ।। पूजकः सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। इयं च शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदशव्याप्तौ वा पूर्वा-युग्मवाक्यात् ।। इति गंगासप्तमीव्रतम् ।।

सप्तमी व्रतानि

अब सप्तमीके व्रतोंको कहते हैं । उनमें सबसे पहिले गंगा सप्तमी-वैशाख शुक्लमें आती है, इस दिन गंगाजी पुनः प्रकट हुई थीं । इसमें गंगाजीका पूजन होता है । पृथ्वी चन्द्रोदय ग्रन्थमें ब्रह्म पुराणसे कहा है कि, राजर्षि जह्नुने पहिले क्रोधमें आ गंगा पीली थी पीछे इस सप्तमीको उनके कानसे नग्न कन्याके रूपमें दिगम्बर ही प्रकट हुई; अत एव इस दिन ऐसी ही गंगाका पूजन करना चाहिये । हरिवंशमें पुण्यक व्रतके अन्तमें इस व्रतको कहा है कि, हे यशके करनेवाली ! गंगाजीने यह व्रत पार्वतीजीके लिये कहा था इस कारण यह पार्वतीजीके नामसे आज भी कहा जाता है, इसमें विधिपूर्वक प्रातःकाल गंगा स्नान

१ उमासंबंधीत्यर्थः २ गंगायाः ३ तारणं दुःखानां पारणं मनोरथानाम्

करना चाहिये । हे हरिकीप्यारी ! माघ शुक्लाको दूसरे भी किसी जलस्थानमें स्नान किया जा सकता है, यह गंगाजीका व्रत सब कामनाओंकी पूर्ति करता है । इस कारण इसे सर्व कामप्रद भी कहते हैं । हे हरिकी प्यारी ! जो धर्मके जाननेवाली स्त्री इस व्रतको करती है वो इसके प्रभावसे सात पीहरके और सात सासरेके तथा सात ननसारके पुरुषोंका उद्धार कर देती है । इस उत्तम गंगाव्रतमें एक हजार कुंभोंका दान देना चाहिये, यह व्रत तारने, पार करने एवं सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है । दूसरे पुराणोंमेंभी यह व्रत लिखा हुआ है कि, वैशाख शुक्ला सप्तमीको भगवान्का पूजन करना चाहिये गंगामें विधिपूर्वक स्नान करके दश ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये, अच्छे पुष्प माला और चन्दनोंसे तथा सूक्ष्मवस्त्रोंसे उनका पूजन करना चाहिये । पूजक सब पापोंसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है । यह गङ्गासप्तमी व्रत जिस दिन सप्तमी मध्याह्न व्यापिनी हो उसीदिन करना चाहिये. क्योंकि, शिष्ट पुरुष ऐसे ही मानते आये हैं, किंतु दोनों दिन मध्याह्नमें सप्तमी हो, या न हो अथवा किसी एक अंशमें पहिले (षष्ठी) के दिनही सप्तमीका सम्भव हो तो गङ्गासप्तमी व्रतमें सप्तमी षष्ठी विद्धाही ग्रहण करनी चाहिये । क्योंकि सप्तमीव्रत निर्णय प्रसङ्गमें षष्ठी युक्ता सप्तमीही ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा युग्मवाक्यका निर्णय है । यह गङ्गासप्तमीके व्रतकी कथा पूरी हुई ॥

शीतलासप्तमी ॥ अथ शुक्लादिश्रावणकृष्णसप्तम्यां शीतलाव्रतम् ॥ तच्च मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम् ॥ तथा च माधवीये हारीतः- पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्न-व्यापिनी तिथिः ॥इति॥ अथ व्रतविधिः । स्कान्दे-वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ॥ मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ कुम्भे संस्थापयेद्देवीं पूजयेन्नाममन्त्रतः ॥ शीतले पञ्चपक्वान्नदध्योदनयुतं शुभम् ॥ नैवेद्यं गृह्यतां देवि घृतमिश्रं च सुन्दरि॥शीतले दह मे पापं पुत्रपौत्रसुखप्रदे॥ धन धान्यप्रदेदेवि पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते॥ शीतले शीतलाकारे अवैधव्यसुतप्रदे॥श्रावणस्यासिते पक्षे अर्घ्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते ॥ सम्पूज्य सप्त गौरीश्च भोजयेच्च प्रयत्नतः॥अथ पूजा ॥ मासपक्षाद्युल्लिख्य मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च अवैधव्यप्राप्तये अखण्डितभर्तृ-संयोगपुत्रपौत्रादिधनधान्यप्राप्तये च शीतलाव्रतं करिष्ये । तथा यथामिलितोप-चारैः शीतलां पूजयिष्ये इति संकल्प्य अष्टदलयुते पीठे अव्रणं कलशं संस्थाप्यायैदु-परि सौवर्णीं शीतलां संस्थाप्य वन्देहं शीतलां देवीमिति मंत्रेण ध्यात्वा ॐ शीतलायै नमः इति नाममन्त्रेण आवाहनम् आसनम् पाद्यम् अर्घ्यम् आचमनम् स्नानम् वस्त्रम् उपवस्त्रम् विलेपनम् अलंकारान् पुष्पाणि धूपम् दीपम् शीतले पञ्चपक्वा-न्नमिति मंत्रेण नैवेद्यम् करोद्वर्तनम् फलम् तांबूलम् दक्षिणाम् नीराजनम् पुष्पा-ञ्जलि च समर्प्य प्रदक्षिणाम् नमस्कारान् शीतले दह मे पापमिति मन्त्रेण प्रार्थनां च कृत्वा शीतले शीतलाकारे इति मन्त्रेण विशेषार्घ्यं दद्यात् ॥ ततो व्रतसंपूर्णफला-वाप्तये ब्राह्मणाय वायनं दद्यात् । तत्र मन्त्रः-दध्यन्नं दक्षिणायुक्तं वाणकं फल-संयुतम् ॥ शीतलाप्रीतये तुभ्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥ इति पूजनम् ॥ अथकथा ॥ भविष्ये-कृष्ण उवाच ॥ प्रसिद्धं श्रूयतां रम्यं नगरं हस्तिनापुरम ॥ इन्द्रद्युम्नश्च राजाभून्नृपतिर्लोकपालकः ॥ १ ॥ धर्मशीलाभिधा चासीत्तस्य भार्या यशस्विनी॥

क्रियाकाण्डे रता साध्वी दानशीला प्रियंवदा ।।२।। बभूव प्रथमः पुत्रो महाधर्मेति नामतः ।। नन्दते पितृ वात्सल्यात्कालेऽन्यस्मिंस्ततो भवेत् ।। ३ ।। द्वितीयाथ तथा पुत्री तस्य जाता गुणोत्तमा ।। पुत्री लक्षणसंपन्ना शुभकारीति नामतः ।। ।। ४ ।। ववृधे सा पितुर्गेहे सर्वाङ्गगुणसुन्दरी ।। नाम्ना रूपेण सा बाला सर्वासां च गुणाधिका ।। ५ ।। सामुद्रिकगुणोपेता पद्महस्ता प्रियंवदा ।। कौण्डिन्यनगरे राजा सुमित्रो नाम नामतः ।।६।। तत्पुत्रो गुणवान्नाम शुभकार्याः पतिर्बभौ ।। वरो हि देहमानेन लक्ष्मीवान् रूपवान् गुणैः ।। ७ ।। गुणवाञ्छुभकारिण्याः पाणिं जग्राह धर्मवित् ।। गृहीत्वा पारिबर्हाणि गतोऽसौ नगरं प्रति।।८।। पुनः समाययौ राजा गुणवान् हस्तिनापुरम् ।। वृतः परिजनैः सर्वैस्तत्पुत्र्या नयनोत्सुकः।।९।। तं दृष्ट्वा शुभकारी सा सहर्षा जातसंभ्रमा।।प्रणम्य च पितुः पादौ तमूचे चारुहासिनी ।। १० ।। मया तात परिज्ञातं यदुक्तं पद्मयोनिना ।। पातिव्रत्यसमो धर्मो नास्तीह भुवनत्रये ।। ११ ।। तस्मादाज्ञां देहि राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।। रथमारुह्य यास्यामि स्वामिना स्वपुरं प्रति ।। १२ ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पितोवाच सुतां प्रति ।। स्थित्वैकं वासरं पुत्रि शीतलाव्रतमुत्तमम् ।। १३ ।। सौभाग्यारोग्यजनकमवैधव्यकरं परम् ।। कृत्वा याहि मतं ह्येतत्त्वन्मातुर्मम चैव हि ।। १४ ।। इत्युक्त्वा व्रतसामग्रीं पूजोपकरणं तथा ।। संपाद्य राजा तां सद्यः शीतलामर्चितुं नृपाः ।। १५ ।। प्रेषयामास सरसि ब्राह्मणं वेदपारगम् ।। सपत्नीकं तया सार्धं गता सा तद्वनान्तरे ।। १६ ।। भ्रमन्ती तत्सर स्तत्र नापश्यद्विधिसाधनम् ।। श्रान्ता भ्रमन्ती विजने स्मरन्ती शीतलां मुहुः ।। १७ ।। ददर्श सा ततो नारीं वृद्धां रूपगुणान्विताम् ।। विप्रस्तु संभ्रमञ्छ्रान्तः सुप्तो निद्रावशं गतः ।। १८ ।। दष्टोऽहिना मृतस्तस्य भार्या तन्निकटे स्थिता ।। शुभकारीं ततो वृद्धा सोवाच करुणार्द्रधीः ।। १९ ।। भविष्यति चिरंजीवी भर्ता ते राजकन्यके ।। आगच्छ पूजनार्थाय दर्शयामि सरोवरम् ।। २० ।। तया सह गता साध्वी तडागं विधिपूर्वकम् ।। पूजयामास हर्षेण तोषयामास शीतलाम् ।। २१ ।। तस्या वरं प्राप्य मुदा स्वमार्गं गन्तुमुद्यता ।। ततः सा ददृशेऽरण्ये ब्राह्मणं दष्टसर्पकम् ।। २२ ।। भार्यां तु तस्य निकटे रुदतीं ब्राह्मणीं मुहुः ।। राजपुत्री लब्धवरा शीतलायाः पतिव्रता ।। २३ ।। तयोस्तरुणदम्पत्योर्योग्यसौभाग्यदर्शनात् ।। रुदती करुणं सापि शुशोच च मुहुर्मुहुः ।। २४ ।। आश्वास्य ब्राह्मणी सा तु राजपुत्रीमुवाच ह ।। तिष्ठ तिष्ठ क्षणं सुभ्रु प्रविशामि हुताशनम् ।। २५ ।। अनेन सह गच्छामि स्वर्गलोकं सुखावहम् ।। तस्यास्तद्वच आकर्ण्य राजपुत्री दयान्विता ।। २६ ।। सस्मार शीतलां

१ तस्य पुत्री अभवत्सा च गुणोत्तमा जातेति नाम द्वयम्

देवीं महावैधव्यभञ्जनीम् ।। आगच्छच्छीतला तत्र वरं दातुं शुचिस्मिता ।। २७।। शीतलोवाच ।। वरं वरय वत्से त्वं किं दुःखं चारुहासिनि ।। शीतलाव्रतजं पुण्यं देहि त्वं ब्राह्मणीं शुभाम् ।। २८ ।। तेन पुण्यप्रभावेण भर्तास्या निर्विषो भवेत् ।। इति देव्या वचः श्रुत्वा अवदद्ब्राह्मणीं ततः।।२९।।बुबोधाशु ततो विप्रश्चिरं सुप्तो यथा पुनः ।। शीतलाया व्रते बुद्धिर्ब्राह्मण्याश्चाभवत्तदा ।। ३० ।। अकरोत्सापि तत्पूजां भक्तिभावपुरःसरा ।। तत्रान्तरे राजपुत्र्याः पतिरागाद्वनान्तिकम् ।। ३१ ।। सोपि दष्टोऽथ सर्पेण गच्छन्त्यग्रे ददर्श तम् ।। विललाप ततः साध्वी सख्या सह वनान्तरे ।। ३२ ।। शीतलोवाच ।। वत्से मया पूर्वमुक्तं स्मर तद्वरवर्णिनि ।। शीतलाव्रतचारिण्या वैधव्यं नैव जायते ।। ३३ ।। स्वयमुत्थाय कल्याणि पतिं सुप्तं गृहे यथा ।। बोधयाशु तथा भीरु व्रतं वैधव्यशाशनम् ।। ३४ ।। इत्युक्ता बोधयामास भर्तारं सा पतिव्रता ।। भर्तापि मुदितो दृष्ट्वा स्वां प्रियां प्रीतिमानभूत् ।। ३५ ।। दृष्ट्वा तु महदाश्चर्यं तद्ग्रामस्थायिनो जनाः ।। सर्वे ते विस्मयं जग्मुर्ब्राह्मणीपतिरक्षणात् ।। ३६ ।। ब्राह्मणी हर्षिता वृद्धां प्रणिपत्य पतिव्रता ।। देहि मातर्नमस्तेऽस्तु अवैधव्याावियोगिनी ।। ३७ ।। अन्यापि शीतलायास्तु व्रतं नारी करिष्यति ।। अवैधव्यमदारिद्यमवियोगं स्वभर्तृतः ।। ३८ ।। तथेत्यन्तर्दधे देवी शीतला कामरूपिणी ।। शीतलाया वरं लब्ध्वा जगामात्मीयवेश्मनि ।।३९।। पद्माकरावासिसुविश्ववन्द्यासमर्हणासादितविश्वमङ्गला ।। प्रसादमासाद्य च शीतलाया राज्ञः सुता पार्वतिवद्बभूव ।। ४० इति भविष्ये शीतलाव्रतं सम्पूर्णम् ।।

अब शीतलासप्तमी व्रत कहते हैं–यह व्रत शुक्ल पक्षसे मासारम्भके मानानुसार श्रावण वदि सप्तमीको करना चाहिये, जब कि सप्तमी मध्याह्न व्यापिनी हो । ऐसेही कालमाधवमें हारीतस्मृतिका प्रमाण मिलता है कि, पूजाप्रधान व्रतोंमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्राह्य है । इस व्रतकी विधिको कहते हैं । स्कन्दपुराणमें लिखाहै कि प्रथम शीतला देवीके सम्मुख जाकर साञ्जलि प्रार्थना करे कि, रासभ (गर्दभ) वाहना, दिगम्बर (नग्न) हाथोंमें मार्जनी (झाडू) और कलशकोधारण करनेवाली, मस्तकपर जिसके शूर्प (छाज) है ऐसी शीतला देवीको मैं प्रणाम करता हूं । फिर कलशके ऊपर पूर्वोक्त स्वरूपा शीतला देवीकी मूर्ति स्थापित करे । 'ओं शीतलायै नमः' शीतलाके लिये नमस्कार इस नाममन्त्रसे उसे स्नानादि करावे, फिर पाँच प्रकारका पक्वान्न, सघृत दधि और भात यह नैवेद्य आपके निवेदन करता हूं, हे देवि ! हे सुन्दरि ! आप इस नैवेद्यका भोग लगाओ । ऐसे नैवेद्य लगाकर दक्षिणा समर्पण करे । पीछे पूजन समाप्त करके प्रार्थना करे कि, हे शीतले ! आप मेरे पापोंको दग्ध करो । मुझे पुत्र पौत्रादिकोंका सुख, धन और धान्यकी सम्पत्तिका दान करो । हे देवि ! मैंने जो आपका पूजन किया है इसे अङ्गीकार करो, आपके लिये नमस्कार है । पीछे अर्घ्यदान करे, उस समय 'शीतले' इस श्लोकको पढे । इसका यह अर्थ है कि, हे शीतल आकारवाली ! हे स्त्रियोंको सौभाग्य और पुत्र देनेवाली ! हे शीतले ! श्रावण वदि सप्तमीके दिन मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कर, तुमारे लिये नमस्कार है । फिर सातवर्षकी सात कन्याओंका प्रेम से पूजन करके अच्छी तरह भोजन करावे । इस व्रतके आरम्भमें 'ओं तत्सत् ३ अद्यैतस्य ब्रह्मणो' इत्यादि वाक्य योजना करके मास पक्षादिरूप काल और भरतवर्षादिरूप देश, गोत्रादि रूप अपने स्वरूपका उल्लेख करके 'मम' इत्यादि मूलमें लिखे वाक्यको पढकर संकल्प करे । यह संकल्प स्त्रियोंकोही उपयुक्त

है. इसका यह भाव है कि, अमुक गोत्रवाली अमुकनाम्नी जो मैं हूं, मुझे इस और दूसरे जन्मोंमें सौभाग्य मिले. पतिके अखण्डितसंयोग (सम्भोग) सुखकी प्राप्ति हो । पुत्र पौत्रादि तथा धनधान्यकी सम्पत्ति प्राप्त हो; इस लिये शीतलासप्तमी व्रत और जो ये पूजनके उपचार इकट्ठे हुए हैं इनसे शीतलाका पूजन करूंगी । एक चौकीपर वस्त्र बिछाकर उसपर अक्षतोंसे अष्टदल कमलका आकार करे, उसमें अच्छिद्र कलश स्थापित करे, उस कलशपर सुवर्णमयी शीतलामूर्तिको स्थापित करे । फिर 'वन्देऽहं शीतलां' इस पहिले कहे मन्त्रसे ध्यान और प्रणाम करे । पीछे 'ओं शीतलायै नमः आवाहयामि, शीतलाके लिये नमस्कार शीतला का आवाहन करताहूं इस नाममन्त्रसे आवाहन करे । ऐसेही 'ओं शीतलायै नमः आसनमर्पयामि, इहागत्य अत्रातिष्ठ' श्री शीतलाके लिये नमस्कार आसन देता हूं यहां । आकर यहां बैठ जो इस नाममन्त्रसे आसन प्रदान करे । इसी प्रकार वाक्य कल्पना करती हुई पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवस्त्र चन्दन, अलंकार, पुष्प, धूप और दीपक दान करे । 'शीतले पञ्च' इस पहिले कहे हुए मन्त्रसे भोग लगा कर नाम मन्त्रसे करोद्वर्त्तन, फल, ताम्बूल, दक्षिणा, आरती, पुष्पाञ्जलि चढावे । फिर नाम मन्त्रसे प्रदक्षिणा करके वन्देऽहं शीतलां' इस पहिले कहे हुए मन्त्रसे प्रणाम, 'शीतले दह पापं' इस मन्त्रसे प्रार्थना और 'शीतले शीतलाकारे' इस पूर्वोक्त मन्त्रसे विशेष अर्घ्य दान करे । फिर व्रतके पूर्णफलकी प्राप्तिके लिये ब्राह्मणके लिये वायना दे । उसका 'दध्यन्नं' यह मन्त्र है । इसका यह अर्थ है कि, शीतलाकी प्रीतिके लिये मैं दधि, अन्न, फल और दक्षिणासहित वायना तुमें देती हूं ।। इस व्रतकी कथा–भविष्यपुराण में कही है । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे नृपते ! आप सुने । हस्तिनापुर नामका एक नगर प्रसिद्ध है, उसमें लोकोंका रक्षक इन्द्रद्युम्न नामका राजा था ।। १ ।। उसकी पतिव्रता यशस्विनी, धर्मशीला नामकी स्त्री थी, वह अनेकों पुण्यानुष्ठानकरनेवाली उदार चित्तवाली और मधुर भाषिणी थी ।। २ ।। उसके पहिले एक पुत्र हुआ, उसका महाधर्म नाम रखदिया, उसपर पिताका वात्सल्य प्रेम था । इससे वह सदा प्रसन्न रहता था, दूसरीबार शुभकारी नामकी कन्या उत्पन्न हुई । यह कन्या भी गुणोंसे उत्कृष्ट एवम्शुभ लक्षणोंसे युक्त थी ।। ३ ।। ४ ।। पिता इस पुत्रीको भी वत्सलतासे आनंदित करता था । यह शुभकारी अपने पिताके घरमें सब अङ्ग और गुणोंसे सुन्दर एवं नाम और सुन्दरता से भी सब लडकियोंमें उत्कृष्ट थी ।। ५ ।। सामुद्रिक शास्त्रमें जो शुभ लक्षण कहे हैं उनसे सम्पन्न, करमें कमल चिह्नवाली और मधुरभाषिणी थी । कौण्डिन्य नगरमें एक सुमित्र नामका राजा था ।। ६ ।। सुमित्राका गुणवान् नामका पुत्र शुभकारीका पति हुआ, देहके मानसे गुणोंसे श्रेष्ठ था रूपवान् और लक्ष्मीवान् था ।। ७ ।। धर्मनिष्ठ गुणवान्‌न राजसुताका विधिवत् पाणिग्रहण किया पीछे ससुरालसे बहुतसा पारिबर्ह (दहेज) लेकर अपने पिताकी राजधानी चला गया ।। ८ ।। वह राजकुमारी कुछदिन रहके अपने पतिके घरसे पिताके घर चली आयी, पीछे राजकुमार अपने कौण्डिन्यपुरवाले बान्धवोंके साथ गौना करनेके लिये हस्तिनापुर आया ।। ९ ।। इसको देखते ही शुभकारी शुभराशिके नेत्र प्रेम आनन्दसे पूर्ण होगये । फिर अपनेपतिके साथ कौण्डिन्य पुर जानेके लिये उद्यत हो प्रसन्नतासे; चारु (मधुर मन्द मन्द) हासकरने लगी सम्भ्रम हो गया, अपने पिताके समीप जा उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की ।। १० ।। कि हे तात ! विधाताने जो कहा है कि तीनों लोकोंमें पातिव्रत्यके बराबर कोई धर्म नहीं है, यह मैं जान गई ।। ११ ।। उसीको पालन करनेके लिये कौण्डिन्यपुर जाती हूं अतः आप प्रहृष्ट अन्तःकरणसे अनुमति दीजिए,जिससे मैं रथ में बैठकर स्वामीके साथ अपने घरको जाऊं।। १२ ।। इन्द्रद्युम्न राजा अपनी पुत्रीसे बोला कि, हे पुत्रि ! तुम अभी एक दिन यहां और ठहरो, शीतलाव्रत करो ।। १३ ।। यह व्रत स्त्रियोंके सौभाग्य और आरोग्यका बढानेवाला है । इसके अनुष्ठानसे वैधव्य भय नष्ट होता है । यह मेरी और तुम्हारी माताकी सलाह है ।। १४ ।। ऐसे कहकर उसे ठहराय शीतलाके पूजनकी सामग्री इकट्ठी करायी, शीतलाजीके पूजनका स्थान वनमें तलावके कूलपर बताया, फिर राजाने उस पुत्रीको व्रतकी सामिग्री दे जलाशयपर शीतला-पूजनके लिये भेज दी ।। १५ ।। पूजन करानेके लिये एक वेदवेत्ता सपत्नीक ब्राह्मणको उसके पीछे भेजा । वह शुभकारी (शुभराशि) सम्भ्रमसे आगे जँगलमें दौडकर चली गयी ।। १६।। पर उसे कहीं भी शीतला

स्थान नहीं मिला । अतः घूमती घूमती थक गयी पर शीतलाजीका वारंवार स्मरण करती हुई आगे तलावको खोजते खोजते फिरने लगी ।। १७ ।। उसने वहां एक बूढी सुन्दर स्त्री देखी । जो पूजन करानेके लिये ब्राह्मण भेजा गया था वह न राजकुमारीके पास पहुंचा और न उस तलाव परही, किंतु रास्तेमेंही भटकता भटकता थक गया, अतः उसे नींद आगयी ।। १८ ।। उसके पास ब्राह्मणी बैठगयी । फिर किसी दुष्टसर्पने वहां ऐसा डसा कि, उससे वह वहांही उसीक्षण मरगया । इधर उस राजकुमारी शुभकारीसे उस वृद्धस्त्रीने दयार्द्र होकर कहा ।। १९ ।। कि हे राजकन्ये ! तुमारा भर्ता चिरंजीवी होगा तुम मेरे साथ पूजनके लिये आवो, मैं तुझे वह तलाव दिखाती हूं ।। २० ।। शुभकारी (शुभराशि) उसके साथ तलावपर गयी, वहां पर प्रसन्न चित्त होकर राजकुमारीने शीतलाजीका विधिवत् पूजन किया एवम् शीतलाजीको संतुष्टभी किया ।। २१ ।। फिर शीतलादेवीने प्रसन्न हो वर दिया, वर मिलनेपर अपने घरके रस्तेकी ओर चलनेकी तैयारी की तब उसके कुछ दूर चलकर जंगलमें सर्पके डंकसे मरा हुआ ब्राह्मणको देखा ।। २२ ।। उसके पास उसकी ब्राह्मणी भी बारंबार ऊंचे स्वरसे रोदन करती थी । शीतलादेवीकी प्रसन्नतासे जिसे सौभाग्य वर मिला है वह साध्वी राजसुता शुभकारीने ।। २३ ।। उन तरुण ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी दशा देखती हुई करुणस्वरसे रोती हुई वारंवार शोच करने लगी ।। २४ ।। पतिव्रता ब्राह्मणीने राजसुताको आश्वासन देकर कहा कि, जबतक चिताचिन इस पतिके साथ हुताशनमें प्रविष्ट न हों तबतक तुम यहांही ठहरो, जावो मत ठहरो ।। २५ ।। पतिके साथ हुताशनमें प्रवेश करनेसे स्त्रियोंके लिये स्वर्गसुख होता है । ब्राह्मणीके वचन सुन शुभकारी और भी दयाविष्ट हो ।। २६ ।। महान् (अटल) वैधव्य दुःखको भी विनष्ट करनेवाली भगवती शीतलादेवीका स्मरण करने लगी । शीतलादेवी प्रसन्नतासे मन्दमन्द मधुर हसती हुई वहां वर देने चली आई ।। २७ ।। और बोली कि, हे वत्से ! हे प्रियपुत्रि ! वर मांगो, हे चारुहासिनी ! तुझे कौनसा दुःख उपस्थित हुआ है ? जिसको मिटानेके लिये मेरा स्मरण किया । यदि तुम इस ब्राह्मणीके दुःखसे दुःखित हो, तो शीतलाके व्रतका पुण्यफल इसको दे दो ।। २८ ।। उस पुण्यफलसे सर्पका विष दूर होजायगा, यह झट अभी जीवित होकर प्रबुद्ध होवेगा । श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरसे कह रहे हैं कि शीतलाके इन वचनोंको सुन उस राजकुमारीने दयावश हो अपने किये शीतलाव्रतके पुण्यको उसे दे दिया ।। ।। २९ ।। उस पुण्यफलके मिलनेसे वह ब्राह्मण जैसे कोई बहुत देरसे सोता हुआ जागता है वैसेही निर्विष हो त्वरित प्रबुद्ध होगया । ऐसे पुण्यप्रभावको देखनेसे ब्राह्मणीके मनमें भी शीतला व्रत करनेका प्रेम उत्पन्न होगया ।। ३० ।। इससे प्रेम वश हो ब्राह्मणीने भी शीतलाजीका पूजन किया । इसी बीच राजपुत्री शुभकारीके प्रेमसे अन्वेषण करता हुआ उसका पति गुणवान् भी वहां आरहा था कि रास्तेमें ।। ३१ ।। उसे भी सर्पने डस लिया और वह पतिव्रता राजसुता अपने संग उस वृद्धा शीतला और दोनोंको लिये आरही थी, कुछ दूरपर आगे पतिकोभी वहां उसीतरह गिरा देख वो ब्राह्मणीके साथ विलाप करने लगी ।। ३२ ।। तब शीतला वहां पधारके बोली कि, हे वत्से ! हे वरवर्णिनि ! सुन्दरि ! मैंने पूर्व जो कहा था उसे याद करो, शीतलाके व्रतको जो स्त्री करती है, उसे वैधव्यका दुःख कभी भी नहीं होता ।। ३३ ।। इससे तुम विलाप मत करो, खडी हो घरमें सुप्त पुरुषको जैसे जगाया करते हैं, वैसे ही इसे भी तुम खडी होकर स्वयं अपने हाथसे इसके हाथको पकड कर खडा करो । और हे भीरु । पर मेरे व्रतका अनुष्ठान करती रहना, क्योंकि यह वैधव्यके दुःखका भञ्जन करनेवाला है ।। ३४ ।। ऐसे जब भगवती शीतलाजीने कहा, तब उस शुभकारी (राशी) ने खडी होकर उस अपने मृत पतिको जगाया तो वह तत्क्षण खडा होगया । उसका भर्ता गुणवान् भी वहां प्रियाको देखकर और प्रिया अपने पतिको जीवित देखकर दोनों प्रसन्न होगये ।। ३५ ।। वहांके रहनेवाले जन, इस बडे भारी आश्चर्य्य को देखकर बडा भारी आश्चर्य्य मानने लगे, ब्राह्मणी पतिके रक्षणसे ।। ३६ ।। परम प्रसन्न हुई. क्योंकि, वो पतिव्रता थी उसने उस वृद्धाको प्रणाम करके कहा कि, हे मातः ! मुझे वो वर दे कि, मैं कभी विधवा और वियोगिनी न हूं ।। ३७ ।। यह भी आपसे वर माँगतीहूं कि, जो भी स्त्रीकोई शीतलाका (आपका) व्रत करे, वह भी विधवा, दरिद्रा और वियोगिनी न हो ।। ३८ ।। जैसे उस ब्राह्मणीने प्रार्थना की उस

वृद्धा स्त्रीने यही कहा कि, ऐसा ही हो। फिर वह अन्तर्हित होगयी। क्योंकि वह स्वयं अपनी इच्छा से रूपधारणकरनेवाली शीतलादेवी ही थी, न कि वृद्धा और कोई दूसरी स्त्री थी : ऐसे शीतला देवी का वर मिलनेसे वह राजकुमारी अपने पति और उन ब्राह्मण-ब्राह्मणीके साथ अपने पिताके घर चली गई ।। ३९ ।। शीतला देवीके प्रसादका लाभकर विश्ववन्द्या शीतलाके समर्हण (पूजन) करनेसे जिसने समस्त जगत्के आनन्दमङ्गल प्राप्त किये हैं ऐसी पार्वतीजीकी भाँति पद्माकर कमलवन या लक्ष्मीसे पूर्ण खजानोंको अपने भवनों मेंविलासिनी हुई ।। ४० ।। इति श्रीभविष्यपुराणका शीतला व्रत ।।

मुक्ताभरणसप्तमीव्रतम्

अथ भाद्रशुक्लसप्तम्यां मुक्ताभरणव्रतम् हेमाद्रौ ।। सा[१] मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।। तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा परा ।। मम इह जन्मनि जन्मान्तरे वा अखण्डित-सन्ततिपुत्रपौत्रवृद्धये मुक्ताभरणव्रते उमामहेश्वरपूजनं करिष्ये इति संकल्प्य शिवाग्रे दोरकं विन्यस्य शिवं पूजेयत् ।। अथ पूजा – देवदेव महेशान परमात्म-ञ्जगद्गुरो ।। प्रतिपादितया सोम पूजया पूजयाम्यहम् ।। आवाहनम् ।। अनेक-रत्नखचितं सौवर्णं मणिसंयुतम् ।। मुक्ताचितं महादेव गृहाणासनमुत्तमम् ।। आसनम् ।। पाद्यं गृहाण देवेश सर्वविद्यापरायण ।। ध्यानगम्य सतां शंभो सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। इदमर्घ्यमनर्घ्यं त्वममराधीश शंकर ।। किंकरी-भूतया सोममया दत्तंगृहाण भोः ।। अर्घ्यम् ।। गङ्गादि सर्वतीर्थेभ्यः समानीतं सुशीतलम् ।। जलमाचमनीयार्थं गृहाणेशोमया सह ।। आचमनीयम् ।। मध्वाज्य-दधिसंमिश्रं मधुना परिकल्पितम् ।। शंकरप्रीतये तेऽहं मधुपर्कं निवेदये ।। मधु-पर्कम् ।। पयोदधिवृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं करोमि पर-मेश्वर ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती ।। एताभ्य आहृतं तोयं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। शुद्धोदकस्नानम् ।। स्नानादूर्ध्वं महादेव प्रीत्या पापप्रणाशन ।। वस्त्रयुग्मं मया दत्तमहतं प्रतिगृह्यताम् ।। वस्त्रम् ।। उप-वीतं सोत्तरीयं नानाभूषण भूषितम् ।। गृहाण सोम विमलं मया दत्तमिदं शुभम् ।। उपवीतम् ।। मलयाचलसंभूतं सुगन्धि घनसारयुक् ।। चन्दनं पञ्चवदन गृहाण वनितायुत ।। चन्दनम् ।। जातीचम्पकपुन्नागबकुलैः पारिजातकैः ।। शतपत्रैश्च कह्लारैरर्चयेऽहमुमापतिम् ।। पुष्पाणि ।। त्रैलोक्यपावनानन्त परमात्मञ्जग-द्गुरो ।। चन्दनागुरुकर्पूरधूपं दास्यामि शंकरम् ।। धूपम् ।। शुभवर्तियुतं सर्पिः सहितं वह्निना युतम् ।। दीपमेकमनेकार्कप्रतिमाकलयत्विमम् ।। दीपम् ।। पाय-सापूपकृसरं दुग्धान्नं सगुडौदनम् ।। दिव्यान्नं षड्रसोपेतं सुधारससमन्वितम् ।। दधिक्षीराज्यसंयुक्तं नैवेद्यार्थं प्रकल्पितम् ।। समर्पयामि देवाहं किंकरी शंकराय ते ।। नैवेद्यम् ।। पुनराचमनं शुद्धं कुरु सोमाम्बुनामुना ।। मुखशुद्धिकरं तोयं कृपया

१ सा पूर्वयुता ग्राह्या षण्मुन्योरीति युग्मवाक्यादिति निर्णयसिन्धौ २ इस विषयपर निर्णय-सिन्धुमें लिखा है कि, " षण्मुन्योः " इस युग्मवाक्यसे षष्ठीयुता सप्तमीकाही ग्रहण होता है ।

त्वं गृहाण भोः ।। आचमनीयम् ।। कस्तूरिकासमायुक्तं मलयाचलसंभवम् ।। गृहाण चन्दनं सोम करोद्वर्तनहेतवे ।। करोद्वर्तनम् ।। नालिकेरफलं जम्बूफलं नारिंगमुत्तमम् ।। कूष्माण्डं पुरतो भक्त्या कल्पितं प्रतिगृह्यताम् ।। फलम् ।। पुगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजनम् ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। प्रदक्षिणाम् ।। नमस्कारान् ।। महादेव महाराज प्रीत्या पापं प्रणाशय ।। अस्माकं कुर्वतां पूजां साधु वासाधुयोजिताम् ।। ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि भवतो विहिता च मया ।। संपूर्णयतु तां पूजां विश्वेशो विमलो भवान् ।। इति प्रार्थना ।। देवदेव जगन्नाथ सर्वसौभाग्यदायक ।। गृह्णीयां दोररूपं त्वां पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ।। इति दोरकग्रहणम् ।। सप्तसामोपगीतं त्वं धारयामि जगद्गुरो ।। सूत्रग्रन्थिस्थितं नित्यं धारयामि स्थिरो भव ।। इति दोरकबन्धनम् ।। हर पापानि सर्वाणि तुष्टिं कुरु मत्कृते ।। प्रसन्नः सन्नुमाकान्त दीर्घायुःपुत्रदो भव ।। इति जीर्णदोरकोत्तारणम् ।। अथ वायनम्—मण्डकान्वेष्टकान्वाथ सघृतान्दक्षिणायुतान् ।। एकादशशतं कृत्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।। वेदशास्त्रप्रवीणाय दद्यात्सोमस्य तुष्टये ।। शंकर प्रतिगृह्णाति शंकरो वै ददाति च ।। शंकरस्तारकोभाभ्यां शंकराय नमो नमः ।। इति वायनम् ।। एवं यः पूजनं कुर्यात्सोमस्य सुखदस्य च ।। सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रपौत्रैश्च मोदते ।। इति पूजा ।। अथ कथा—श्रीकृष्ण उवाच ।। मुनीन्द्रो लोमशो नाम मथुरायां गतः पुरा ।। सोऽर्चितो वसुदेवेन देवक्या च युधिष्ठिर ।। १ ।। उपविष्टः कथाः पुण्याः कथयित्वा मनोरमाः ।। ततः कथयितुं भूयः कथामेतां प्रचक्रमे ।। २ ।। कंसेन ते हताः पुत्रा[1] जाताजाताः पुनः पुनः ।। मृतवत्सा देवकि त्वं पुत्रदुःखेन दुःखिता ।। ३ ।। यथा चन्द्रमुखी दीना बभूव नहुषप्रिया ।। पश्चाच्चीर्णव्रता चैव बभूवामृतवत्सका ।। ४ ।। त्वमपि देवकि तथा भविष्यसि न संशयः ।। देवक्युवाच ।। का सा चन्द्रमुखी ब्रह्मन्बभूव नहुषप्रिया ।। ५ ।। किं च चीर्णं व्रतं पुण्यं तथा सन्ततिवर्धनम् ।। सपत्नीदर्पदलनं सौभाग्यारोग्यदं विभो ।। ६ ।। लोमश उवाच ।। अयोध्यायां पुरा राजा नहुषो नाम विश्रुतः ।। तस्यासीद्रूपसंपन्ना देवी चन्द्रमुखी प्रिया ।। ७ ।। तथा तस्यैव नगरे विष्णुगुप्तोऽभवद्द्विजः ।। आसीद्गुणवती तस्य पत्नी भद्रमुखी तथा ।। ८ ।। तयोरासीदतिप्रीतिः स्पृहणीया परस्परम् ।। अथ ते द्वे[2] अपि सख्यौ स्नानार्थं सरयूजले ।। ९ ।। प्राप्ते प्राप्ताश्च तत्रैव बह्व्यो वै नगराङ्गनाः ।। ताः स्नात्वा मण्डलं चक्रुस्तन्मध्येऽव्यक्तरूपिणम् ।। १० ।। लेखयित्वा शिवं शान्तमुमया सह शंकरम् ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्भक्त्या पूजयित्वा यथाविधि ।। ११ ।। प्रणम्य गन्तुकामास्ताः पप्रच्छतुरुभे[3] स्त्रियौ ।।

---

१ पुत्रि इत्यपि पाठः २ द्वेऽपिसख्यौ वै इति प्रचुरः पाठः तत्र संधिरार्षः ३ वरस्त्रिय इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः पाठः तत्र वरस्त्रीः प्रतीत्यर्थः

आर्याः किमेतत्क्रियते किंनाम व्रतमीदृशम् ।। १२ ।। ता ऊचुः शंकरोऽस्माभिः पार्वत्या सह पूजितः ।। बध्द्वा सूत्रमयं तन्तुं शिवस्यात्मा निवेदितः ।। १३ ।। धारणीयमिदं तावद्यावत्प्राणविधारणम् ।। मुक्ताभरणकं नाम व्रतं[1] सन्तानवर्धनम् ।। १४ ।। अस्माभिः क्रियते सख्यौ सुखसौभाग्यदायकम् ।। तासां तद्वचनं श्रुत्वा सख्यौ ते चापि देवकि ।। १५।। कृत्वा च समयं तत्र बध्द्वा दोर्भ्यां सुदोरकम्।। तसस्ताश्च गृहं जग्मुः स्वसखीभिः समावृताः ।।१६।। कालेन महता तस्यास्तद्व्रतं विस्मृतं शुभम् ।। चन्द्रमुख्याः प्रमत्ताया विस्मृतः स तु दोरकः ।। १७ ।। भद्रमुख्यास्तथा भद्रे विस्मृतं सर्वमेव तत् ।। मृते कैश्चिदहोरात्रैः सा बभूव प्लवङ्गमी ।। १८ ।। भद्राख्या कुक्कुटी जाता व्रतभङ्गाच्छुभानने ।।संभूय भूयः समयं प्राक्कृतं चक्रतुः सदा ।। १९ ।। कालेन पञ्चतां प्राप्ते सखीभावात्सहैव ते ।। अदेवमातृके देशे जाते गोकुलसंज्ञके ।। २० ।। ब्राह्मणी ब्राह्मणी जाता क्षत्रिया क्षत्रिया तथा ।। राज्ञा जाया बभूवाथ पृथ्वीनाथस्य वल्लभा ।। २१ ।। ईश्वरी नाम विख्याता यासीच्चन्द्रमुखी पुरी ।। नाम्ना भद्रमुखी यासीद्भूषणानाम साभवत् ।। २२ ।। अग्निमीढस्य सा दत्ता पित्रा तस्य पुरोधसः ।। अतीव वल्लभा चासीद्भूषणा भूषणप्रिया ।। २३ ।। भूषिता भूषणवरै रूपेणालंकृता स्वयम् ।। तस्यां बभूवुरष्टौ च पुत्राः सर्वगुणान्विताः ।। २४ ।। मातृवद्रूपसंपन्नाः पितृवद्धर्मशीलिनः ।। सख्यौ ते चैव तद्वच्च जाते जातिस्मरे किल ।। २५ ।। पुनर्निरन्तरा प्रीतिस्तयोरासीद्यथापुरा ।। काले बहुतिथे याते त्यक्ताशा त्यक्तयौवना ।। २६ ।। मध्ये वयसि राज्ञी सा पुत्रमेकमजीजनत् ।। ईश्वरी रोगिणं मूकं प्रज्ञाहीनं च विस्वरम् ।। २७ ।। तादृशोऽपि महाभागे मृतोऽसौ नववार्षिकः ।। ततस्तां भूषणा द्रष्टुमीश्वरीं पुत्रदुःखिताम् ।। २८ ।। सखिभावादतिस्नेहात् पुत्रैः स्वैः परिवारिता ।। अमुक्ताभरणा भद्रा स्वरूपेणैव भूषिता ।। २९ ।। (सा हि भद्रा द्विजस्याभद्भार्या भूषणनामिका ।। पुरोहितस्य कालेन कुक्कुटी बहुपुत्रिणी) ।। तां दृष्टा तादृशीं भव्यां प्रजज्वालेश्वरी रुषा ।। ३० ।। ततो गृहं प्रेषयित्वा ब्राह्मणीं तीव्रमत्सरा ।। चिन्तयामास सा राज्ञी तस्याः पुत्रवधं प्रति ।। ३१ ।। निश्चित्य चेतसा क्रूरा घातयामास तत्सुतान् ।। कस्मिंश्चिद्दिवसे सा च तानाहूय गृहं प्रति ।। ३२ ।। भोजनस्य मिषात्तेषामन्नमध्ये विषं ददौ ।। तत्पुत्रा हृष्टवदना भुक्त्वान्नं गृहमागताः ।।३३।। सामर्थ्याद्व्रतराजस्य मातुर्न निधनं गताः ।। पुनस्तान् प्रेषयामास यमुनाया ह्रदं प्रति ।। ३४ ।।तच्छिक्षिता ह्रदे भृत्याः पातयन्ति स्म पुत्रकान्।।जानुदघ्नाऽभवत्सा तु यमुना तत्प्रभा-

---

१ आयतेति शेषः

वतः ।। ३५ ।। पुनः सा पापचित्ता स्वान् भृत्यानाहूय यत्नतः ।। शस्त्रैः कृत्वाथ तानूचे वधस्तेषां विधीयताम् ।। ३६ ।। तथेत्युक्त्वा वनं गत्वा तैः साकं दुष्टबुद्धयः ।। खड्गैस्तीक्ष्णैर्वधं तेषां कर्तुं ते पापवृत्तयः ।। ३७ ।। प्रहारान्निष्ठुरं चक्रुस्तत्पुत्रा हृष्टमानसाः ।। तेषां प्रहारास्तृणवज्जाता मातुः प्रभावतः ।। ३८ ।। एवं राज्ञी बहुतरानुपायान् कृतवत्यथ ।। हताहताश्च ते पुत्राः पुनर्जीवन्त्यनामयाः ।। ३९।। तदद्भुततरं दृष्ट्वा सखीमाहूय भूषणाम् ।। उपवेश्यासने श्रेष्ठे बहुमानपुरःसरम् ।। ४० ।। अपृच्छद्विस्मयाविष्टा राज्ञी सा मृतवत्सका ।। ब्रूहि तथ्यं महाभागे किं त्वया सुकृतं कृतम् ।। ४१ ।। दानं व्रतं तपो वापि शुश्रूषणमुपोषणम् ।। येन ते निहताः पुत्राः पुनर्जीवन्त्यनामयाः ।। ४२ ।। तथा हि बहुपुत्रा च जीवद्वत्सा शुभानने ।। अमुक्ताभरणा नित्यं भर्तुश्चेतस्यवस्थिता ।। ४३ ।। अतीव शोभसे भद्रे विद्युद्धर्मात्यये यथा ।। भूषणोवाच ।। शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि जन्मान्तरविचेष्टितम् ।। ४४ ।। किं तद्धि विस्मृतं सर्वमयोध्यायां कृतं हि यत् ।। आवाभ्यां व्रतवैकल्यं प्रमत्ताभ्यां वरानने ।। ४५ ।। येन त्वं प्लवगी जाता जाताहं कुक्कुटी तथा ।। तथापि व्रतवैकल्यं त्वया चापल्यतः कृतम् ।। ४६ ।। मया तु सर्वभावेन चेतसाध्याय शंकरम् ।। तिर्यग्योन्यनुतापेन मनोवृत्त्या ह्यनुष्ठितम् ।। ४७ ।। एतद्धि कारणं भद्रे नान्यत्किंचित्करोम्यहम् ।। लोमश उवाच ।। इत्याकर्ण्य वचः स्मृत्वा पूर्वजन्मविचेष्टितम् ।। ४८ ।। ईश्वरी च तया सार्द्धं पुनः सम्यक् चकार ह ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण पुत्रपौत्रादिसंभवम् ।। ४९ ।। भुक्त्वा तु सौख्यमतुलं मृता शिवपुरं गता ।। तस्मात्त्वमपि कल्याणि व्रतमेतत्समाचर ।। ५० ।। आरब्धेऽस्मिन्व्रते दिव्ये जीवत्पुत्रा भविष्यसि ।। देवक्युवाच ।। ब्रह्मन्नाख्याहि मे सम्यग्व्रतमेतत्सुखप्रदम् ।। ५१ ।। सन्तानवृद्धिकरणं शिवलोकस्थितिप्रदम् ।। लोमश उवाच ।। भद्रे भाद्रपदे मासि सप्तम्यां सलिलाशये ।। ५२ ।। स्नात्वा शिवं मण्डलके लेखयित्वा तथाम्बिकाम् ।। भक्त्या संपूज्य समयं कुर्याद्बध्द्वा करे गुणम् ।। ५३ ।। यावज्जीवं मयात्मा तु शिवस्य विनिवेदितः।।इत्येवं समयं कृत्वा ततःप्रभृति दोरकम् ।। ५४ ।। सौवर्णं राजतं वापि सौत्रं वा धारयेत्करे ।। मण्डकान्वेष्टकान् दद्यान्मासे पक्षेऽथवाब्दके ।। ५५ ।। स्वयं तांश्चैव भुञ्जीत व्रतभङ्गभयाच्छुभे ।। प्रतिमासं तु सप्तम्यां शुक्लपक्षे विशेषतः ।। ५६ ।। कुर्यादेवं व्रतं भद्रे वर्षान्तेऽपि तु देवकि ।। पारिते मुद्रिकां चैव हैमीं रूप्यां स्वश-

---

१ अयमधिकश्लोकः

क्ततः ।। ५७ ।। ताम्रपात्रोपरि स्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। आचार्याय विशेषेण सुवर्णस्यांगुलीयकम् ।। ५८ ।। पुष्पकुंकुमसिन्दूरताम्बूलाञ्जनसूत्रकैः ।। सुवासिनीं पूजयेच्च व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। ५९ ।। सहार्थे तृतीया ।। एवं तत्पारयित्वा तु व्रतं सन्ततिवर्द्धनम् ।। सर्वपापविनिर्मुक्ता भुक्त्वा सौख्यमनामयम् ।। ६० ।। सन्तानं वर्द्धयित्वा च शिवलोके महीयते ।। एतत्ते सर्वमाख्यातमाख्यानसहितं व्रतम् ।। ६१ ।। कुरु देवकि यत्नेन जीवत्पुत्रा भविष्यसि ।। कृष्ण उवाच ।। इत्युक्त्वा तु मुनिश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ।। ६२ ।। चकार सर्वं यत्नेन यदुक्तं तेन धीमता ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण देवकी मामजीजनत् ।। ६३ ।। तस्मात्पार्थ नरैः कार्यं स्त्रीभिः कार्यं विशेषतः । व्रतं पापप्रशमनं सुखसन्ततिवर्द्धनम् ।। ६४ ।। इदं यः शृणुयाद्भ-क्त्या यश्चैतत्प्रतिपादयेत् ।। व्रतमाख्यानसहितं सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ।। ६५ ।। आख्यानकं व्रतमिदं सुखमोक्षकामा या स्त्री चरिष्यति शिवं हृदये निधाय ।। दुःखं विहाय बहुशो गतकल्मषौघा सा स्त्री व्रताद्भवति शोभनजीववत्सा ।।६६।। इति हेमाद्रौ भविष्ये मुक्ताभरणसप्तमीव्रतं संपूर्णम् ।।

अब भविष्यपुराणके प्रमाणसे हेमाद्रिमें निरूपित मुक्ताभरण व्रत भाद्रशुक्लसप्तमीमें होताहै । इसमें मध्याह्नव्यापिनीका ग्रहण होता है । यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा दोनों ही दिन न हो तो पराका ग्रहण होता है ।। 'ओं तत्सत् ३ अद्यैतस्य' इत्यादि वाक्यद्वारा देश, काल और गोत्र नामादिका उल्लेख करके 'मम' इत्यादि मूलोक्तवाक्यको बोले और संकल्प करे । इसका यह अर्थ है कि, मैं अपने इस जन्म और जन्मान्तरमें अखण्डित सन्तति (कुल) वाले पुत्रपौत्रोंकी वृद्धिके लिये मुक्ताभरण व्रतकी सम्पूर्तिके निमित्त उमामहेश्वर (पार्वतीशंकर) भगवान्का पूजन करूंगी । फिर महादेवीजीकी मूर्तिके या महादेवजीकी लिङ्गमूर्तिके अग्रभागमें दोरक रखकर उनकी पूजा करे । अब पूजाविधि कहते हैं–हे देवोंके भी देव ! हे महेशान ! हे परमात्मन् ! हे जगद्गुरो ! हे सोम यानी पार्वती सहित सदा रहने-वाले ! मैं शास्त्रकारोंसे प्रतिपादित पूजा विधिके अनुसार पूजन करतीहूं, इससे आप यहां पधारें इससे आवाहन करे । फिर आसन समर्पण करता हुआ कहे कि, बहुविधरत्नोंसे खचित, सुवर्णसे गढ़ाकर तैयार किया हुआ, मणियोंसे शोभायमान और मुक्ताओंसे चारों ओर व्याप्त यह आपके विराजमान होनेके लिये उचित आसन है । हे महादेवजी महाराज ! आप इस पर विराजमान हों । पाद्य देती हुई प्रार्थना करे कि, हे देवेश ! हे समस्त विद्याओंके परायण ! परमाधार ! हे सज्जनोंको ध्यानसे प्राप्त होने लायक ! हे सर्वेश्वर ! आपके लिये प्रणाम है, आप पाद्य ग्रहण कीजिये। 'इदमर्घ्यम्' इससे अर्घ्यदानकरे कि हे अनर्घ्य (परममहनीय) ! हे देवताओंके अधीश । हे शंकर ! भोः पार्वती सहित ! मैंने आपकी दासीके बराबर हो आपके लिये यह अर्घ्य दिया है, आप इसे स्वीकार करें । 'गङ्गाऽऽदि' कहतो आचमन करावे कि, हे ईश ! आप उमासहित इस जलसे आचमन कीजिये, यह आपको आचमन करानेके लिये ही गङ्गादि समस्त पुण्य तीर्थोंसे शीतल जल लायी हूं । मधुपर्क देती हुयी 'मध्वाज्य' इसको कहे कि, हे शंकर ! मैं आपकी प्रीतिके लिये मधु, घृत और दधिको कांस्यपात्रमें मिलाकर तैयार किये हुए मधुपर्कको निवेदन करती हूं । 'पयोदधि' इससे पञ्चामृत स्नान करावे । इसका यह अर्थ है कि, हे परमेश्वर ! दुग्ध, दधि, घृत, शक्कर और मधु; इनसे तैयार किये हुए पञ्चामृतसे स्नान कराती हूं । 'गङ्गाच यमुना' इससे शुद्ध स्नान करावे कि, गङ्गा यमुना गोदावरी और सरस्वतीसे आपके स्नानके लिये लाये हुए जलको स्वीकार करो । फिर दो वस्त्र समर्पण करे और कहे कि, हे महादेव ! हे पापोंके विनाश करनेवाले

मैंने आपको स्नान कराकर ये दो अहत वस्त्र आपके समर्पण किये हैं; आप ग्रहण कीजिये । यज्ञोपवीत चढाती हुई कहे कि, हे पार्वतीजीके साथ विहार करनेवाले ! मैंने नानारत्नोंसे भूषित उत्तरीय और शुद्ध यज्ञोपवीत समर्पण किये हैं । आप ग्रहण कीजिये । चन्दन चढावे और कहे कि, सुगन्धित कपूरके साथ घिसे हुए इस चन्दनको हे पञ्चानन ! आप पार्वती सहित ग्रहण करें । इससे पुष्प चढावे कि, हे प्रभो ! मैं पार्वतीपति आपका पूजन जाती, चम्पक, पुन्नाग, बकुल, पारिजात (हार शृङ्गार), शतपत्र और कल्हारोंसे करती हूं । 'त्रैलोक्यपावना' इससे धूप करे । और कहे कि, हे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले ! हे अनन्त ! हे परमात्मन् ! हे जगद्गुरो ! मैं चन्दन, अगर और कपूर आदि सुगन्धित पदार्थोंसे तैयार की हुई इस शंकरी (आनन्द करनेवाली) धूपको करती हूं । 'शुभवर्ति' इससे दीपक करे । इसका यह अर्थ है कि, अनेक सूर्यकी जो मूर्तियां हैं उनकी कलावाले प्रज्वलित घृत वर्त्ति युक्त इस दीपकको स्वीकार करे । "पायसापूप" इन दो मन्त्रोंको पढकर नैवेद्य निवेदित करे कि, पायस, अपूप, कृसर (दुग्धसे तैयार किया हुआ गुडमिश्रित भात) और छः रसवाले अमृतसम दिव्य अलौकिक एवं दधि, दुग्ध और घृतयुक्त यह नैवेद्य मैंने आपके लिये तैयार किया है । मैं आपकी सेवा करनेवाली हूं । हे देव ! आप शंकर हैं; आपके लिये इनका समर्पण करती हूं । 'पुनराचमनम्' इससे आचमन कराती हुई कहे कि भो सोम ! (पार्वती शंकर) मुखकी शुद्धी करनेवाला यह जल मैं लायी हूं, कृपया आप लीजिये, और इस जलसे भोजनोत्तर-कालिक आचमन कीजिये । 'कस्तूरिका' इससे करोद्वर्त्तन करावे और कहे कि, आप अपने करोद्वर्त्तनार्थ कस्तूरी मिश्रित मलयागिरिके घिसे चन्दनको लीजिये । 'नालिकेर' इससे फलार्पण करे । 'पूगीफलं मह-द्दिव्यम्' इस मन्त्रसे ताम्बूल चढावे 'हिरण्यगर्भगर्भस्थम् इस मन्त्रसे दक्षिणा चढ़ावे । प्रार्थना करे । फिर नीराजन करके पुष्पाञ्जलि समर्पण एवं प्रदक्षिणा करे, बारवार प्रणाम करे । पीछे 'महादेव', इनदो मन्त्रोंसे प्रार्थना करे कि, हे महाराज ! हे महादेव ! हम आपकी प्रीतिसे साधु या असाधु जो भी कुछ पूजा करनेवाले हैं इन सबके पापोंको सर्वथा नष्ट कीजिये । जान या अनजानसे जो आपका पूजा अनुष्ठान किया है वह यथार्थ किये हुएकी भांति पूर्ण हो ऐसी आप हमपर अनुकम्पा करें. क्योंकि, आप शुद्ध हैं और त्रिलोकीके प्रभु हैं । 'देवदेव' इससे डोरा अपने बायें हाथमें बांधनेके लिये लेवे कि, हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सबको सौभाग्य सुख देनेवाले ! पुत्रपौत्रादि देनेवाले ! आपके डोरेवाली मूर्ति को सदाके लिये हाथमें धारण करती हूं । 'सप्तसामोप०' इससे उसे बांधे । इसका यह अर्थ है कि, हे जगद्गुरो ! सूत्रकी ग्रन्थियोंमें स्थित आपके इस स्वरूपको सात सामभी स्तवन किया करते हैं, मैं इसीको हाथमें नित्य धारण करती हूं । आप इसी सूत्रकी ग्रन्थियोंमें विराजमान रहें । 'हर पापानि' इससे जीर्ण डोरेको खोलकर किसी पवित्र जलाशयादिकमें छोड दे कि, हे दयाके निधान ! आप मेरे सब पापोंको हरो, मुझपर सन्तुष्टता प्रगट करें । हे पार्वतीपते ! आप प्रसन्न होकर मुझे ऐसे ऐसे पुत्र दीजिये, जो दीर्घायु और प्रभावशाली हों । फिर वायना दे । इसकी यह विधि है कि, घीके मण्डक (मालपूरा) अथवा वेष्टक जलेबियां ग्यारहसौ इकट्ठी करके दक्षिणा सहित किसी कुटुम्बी, वेदशास्त्रके वेत्ता ब्राह्मणके लिये दान करे और प्रार्थनाकरे कि, 'अनेन वाणकदानेन सोमः शंकरः प्रीयताम्' यह जो मैंने कुटुम्बी ब्राह्मणके लिये वायना दिया है, इससे पार्वती सहित शंकर भगवान् प्रसन्न हों । देने और लेनेवाले शंकर भगवान हैं । वो ही हम तुम दोनोंको पार करेंगे । उनके लिये नमस्कार है । इस प्रकार पूजन करनेका फल कहते हैं कि, जो स्त्री पूर्वोक्त विधिसे पार्वती । सहित शंकर देवका पूजन करती है वह पूर्णकाम एवं पुत्र पौत्रोंके आनन्दवाली होती है । इस प्रकार पूजन करके कथा श्रवण करना चाहिये । अथ कथा—श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज युधिष्ठिरसे कहने लगे कि, पहिले लोमश नामक ऋषि मथुरामें गये उनका । देवकी और वसुदेवने प्रीतिपूर्वक पूजन किया ।। १ ।। फिर वे आसनपर विराजमान हों नानाविध मनोहर पुण्य कथाओंकी कहके इस कथाको सुनाने लगे जो अब मैं तुम्हारे सम्मुख कह रहा हूं ।। २ ।। हे देवकि ! तुम्हारे बहुत पुत्र हुए, पर जैसे जैसे जो उत्पन्न हुआ, वैसे ही उसे दुरात्मा कंसने मार दिया । इस प्रकार पुत्रोंके मारे जानेसे तुम मृतवत्सा गऊकी भांति दुःखिता हो ।। ३ ।। पहिले एक नहुषकी स्त्री बहुत दीन रहती थी । पर उस चन्द्रमुखीने

व्रत किया । उसके करनसे जैसे उसके पुत्र नहीं मरे इससे वो अमृतवत्सा हो सुखियारी हो गयी ।। ४ ।। वैसे ही यदि तुम भी व्रतको करोगी तो तुम्हारे पुत्र भी अमृत रहेंगे । उन्हें कोई भी नही मार सकेगा । यह संशय करनेवाला कथन नहीं है । देवकीजी बोली कि हे ब्रह्मन् ! वह नहुष एवं उसकी प्यारी कौन चन्द्रमुखी थी ? ।। ५ ।। उसने कौन सा पवित्र व्रत किया था जिससे पुत्रसुख होता है । हे विभो ! आप उसको कहें जो सपत्नियोंके दर्पको शान्त करनेवाला है सौभाग्य एवम् आरोग्यका दानकरनेवाला है ।।६।। लोमशमुनि बोले कि, अयोध्यापुरीमें परमविख्यात एक नहुष राजा हुआ था, उसकी प्यारीसुन्दर चन्द्रमुखी मुख्य रानी थी ।। ७।। उसकी राजधानीमें एक विष्णुगुप्त नामका ब्राह्मण रहता था । उसके दो स्त्रियां थीं एकका नाम गुणवती एवं दूसरी का नाम भद्रमुखी था ।। ८ ।। इन दोनोंका जैसे सपत्नियों का परस्परमें वैमनस्य रहता है वैसा नहीं था, किन्तु बहुत ही प्रशंसनीय प्रेम था । वे दोनों सखियोंकी भांति स्नान करनेको सरयू तटपर गयीं ।। ९ ।। उस समय वहां और भी बहुतसी स्त्रियाँ स्नानकेलिये आ गयीं । उन सब स्त्रियोंने स्नान करके सरयूके कूलपर ही मंडल बनाया । उस मंडलके बीच पार्वती सहित अव्यक्तात्मा तथा शान्त शंकर का महादेवीके स्वरूप लिखाकर गन्ध पुष्प और अक्षतादि जो पूजा सामग्री लायी थीं उससे यथाविधि प्रेमपूर्वक पूजन किया ।। १० ।। ११ ।। फिर प्रणामकर जब वे अपने घरकी ओर जानेको तैयार हुई तो उन्हें गुणवती और भद्रमुखी ब्राह्मणियोंने पूछा कि, हे आर्याओ ! यह तुमने क्या किया ? ऐसे व्रतका क्या नाम है ? क्या माहात्म्य है ? ।। १२ ।। उन स्त्रियोंने कहा कि, हमने पार्वती और महेश्वर इन दोनोंका यह पूजन किया है. इस डोरेमें वे स्वयं रहते हैं; अतः हमने इसे अपने हाथमें बांध अपनेको शंकरके भेंट कर दिया है ।। १३ ।। यह डोरा जब तक प्राण रहें तबतक धारण करना चाहिये । इस व्रतका नाम मुक्ताभरण है इसके करनेसे सन्तान सुख बढ़ता है ।। १४ ।। हे सहेलियो ! हम इस व्रतको प्रतिवर्ष किया करती हैं; क्योंकि यह सुख और सौभाग्यका देनेवाला है । लोमशमुनि बोले कि हे देवकि ! उन स्त्रियोंके इन वचनोंको सुनकर उन दोनों ब्राह्मणियोंने भी संकल्प करके ।। १५ ।। व्रत किया और वैसे ही पूजन कर अपनी भुजाओंमें वैसे ही डोरे बांध अपने घरकी राह ली और सब स्त्रियाँ सहेलियोंके साथ अपने अपने घरकी ओर वापिस चली आयीं ।। १६ ।। पीछे बहुत समय बीतनेपर रानी चन्द्रमुखीको वह व्रत करना याद न रहा, क्योंकि वह राजसम्पत्तिके सुखसे प्रमत्त हो गयी थी । हे भद्रे ! जो उस चन्द्रमुखीकी बाहुमें डोरबँधा हुआ था वह भी उसके प्रमादसे कहीं गिर गया ।। १७ ।। जैसे रानी चन्द्रमुखीका डेरा गिर गया और व्रत करने की याद नहीं रही वैसे ही हे भद्रे ! भद्रमुखी ब्राह्मणीको भी व्रतकी याद नहीं रही व्रत करनेंका जो नियम किया था डोरेको जीवनपर्यन्त धारण करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी वे सब भद्रमुखीको विस्मृत हो गये । फिर कुछ दिन बीतनेपर चन्द्रमुखी मरकर बांदरी बनी ।। १८ ।। हे शुभानने ! व्रतभङ्ग करनेके दोषसे भद्रमुखी कुक्कुटी हुयी । पर पहिले जन्मके किये हुएको याद करके साथ करती रहीं यानी उन दोनोंके वानर और कुक्कुटकी योनिमें जन्म लेनेपर भी पहिले जो व्रत किया था उस पुण्यके प्रभावसे पूर्ववृत्तान्त विस्मृत नहीं हुआ, दूसरे जन्ममें भी स्मरण होगया कि, हमारे प्रमादसे यह अनर्थ हो गया है, इससे हम इन योनियोंमें पडी हैं । इस प्रकार यादगारी होनेसे वे दोनों उस दोषकी निवृत्ति करनेकी चेष्टा करती हुयीभी कुछन कर सकीं, केवल मिलकर मनमें पश्चात्ताप और भगवान् शंकरका ध्यान एवम् उपवासकरती रहीं । वे दोनों वानरी और मुरगी होनेपरभी सहेलियोंकी भांति रहीं ।। १९ ।। तथा समयपर दोनोंने एक साथ शरीरको त्यागा फिर वे दोनोंही जहां नदी आदि बृहज्जलाशय था, ऐसे गोकुल देशमें उत्पन्न हुईं ।। २० ।। ब्राह्मणी भद्रमुखी ब्राह्मणी हुई, क्षत्राणी चन्द्रमुखी क्षत्रिया हुई । रानी इस जन्ममें भी राजाकी प्यारी स्त्री हुई ।। २१ ।। इनमें चन्द्रमुखीका इस जन्ममें ईश्वरी नाम हुआ । जो पूर्वजन्ममें भद्रमुखी ब्राह्मणी थी वह इस जन्ममें भूषणानामवाली हुई ।। २२ ।।इसके पिताने इसका विवाह अग्निमीढनामके पुरोहितके साथ कर दिया । यह भी उस राजाके पुरोहित अग्निमीढकी परम बल्लभा हुई । इस भूषणा को भूषण धारण करनेका बहुत चाव था ।। २३ ।। इससे सदैव यह सुन्दर अलंकारोंसे अलंकृतही रहा करती थी । इस भूषणाके सर्व

गुण सम्पन्न आठ पुत्र हुये ।। २४ ।। जो अपनी माताके समान सुन्दर और पिताके समान धर्म्मनिष्ठ हुये । इन दोनों रानी ईश्वरी और ब्राह्मणी (भूषणा) को इस जन्ममें भी पूर्वजन्मोंका स्मरणरहा, इससे ये दोनों सहेलियां रहीं ।। २५ ।। इन्होंका पारस्परिक प्रेमभी सदा अटल बना रहा, जैसा कि, पहले तिर्य्यग्योनिमें था । बहुत समय बीतनेपर मध्यमावस्थामें भी जब ईश्वरीके कोई पुत्र नहीं हुआ तो इसने सन्तान होनेकी आशा छोड दी । यौवन भी उसका गिरगया । पीछे ईश्वरीके एक पुत्रहुआ । वहभी सदा रोगपीडित मूक और मूढ विस्वर था ।। २६ ।। ।। २७ ।। हे महाभागे ! ऐसा भी नव वर्षका होतेही मर गया । इसके बाद पुत्रोंके अभावसे दुखित ईश्वरीको देखने के लिये ।। २८ ।। दुखित हुई भूषणा सखीभावके कारण तथा अतिप्रेमके कारण समवेदना प्रकटकरने अपने पुत्रोंको साथ लेकर चली आई । भूषणाने उस समय मोतियोंके आभूषण नहीं धारण कर रखे थे, रूप ही इसका ऐसा सुन्दर था जिससे बहुतही मनोरम दीखती थी या यह भाव भी है कि, सखीके दुःखके समयमें भी आभरण नहीं त्यागे और स्वभावसे भी मरणीय थी ।। २९ ।। (और इस प्रसङ्गमें "साहि भद्रा" यह श्लोक मूलपुस्तकोंमें प्रायः मिलता है, पर प्रक्षिप्त, एवं ग्रन्थके पूर्वापर कथनको दूषित करता है । अतः परित्याज्य है । उसका अर्थ यह है कि, जो भद्रा पूर्वजन्ममें मुरगी थी उसीका दूसरे जन्ममें ब्राह्मणकुलमें जन्म लेनेपर पुरोहितसेसे विवाह हुआ। इसका नाम भूषणा हुआ। यह बहुतसे पुत्रोंवाली थी) ईश्वरी अपने समीपमें उस भूषणाको देखकर क्रोधसे भीतर ही भीतर प्रज्वलित हो गयी ।। ३० ।। क्रोधसे ही उसे अपने घरको लौटजाने के लिये कहकर उस भूषणाके पुत्रोंके मरानेका बिचार करने लगी ।। ३१ ।। दुष्टात्मा ईश्वरीने उसके पुत्रोंको मरानेका दृढ निश्चयकरके उसके पुत्रोंको मरवाया । किसी दिनउनको अपने महलमें बुलवाकर ।। ३२ ।। भोजनके बहाने अन्नमें विष मिला दिया । भूषणाके पुत्र भोजनकर प्रसन्नसुखहुए अपने घरको लौटआये ।। ३३ ।। भूषणाने इस जन्ममें पूर्व परिज्ञात मुक्ताभरण व्रतका परित्यागनहीं किया था, अतः माताके व्रतराजके प्रभावसे वे मृत्युको प्राप्त नहीं हुए। फिर उसने यमुनाके ह्रदको भिजवाया ।। ३४ ।। रानीके सिखाये नीच नौकर बालकोंको यमुना जीके जलमें पटकते थे, पर उनकी माताके किए हुये व्रतके प्रभावसे यमुनाजीका जल उन बालकोंके जानुके बराबर होगया ।। ३५ ।। फिर उसके मनमें उनके मरानेकी आई, प्रयत्नके साथ अपने विश्वासी नौकरोंको बुलाकर कहाकि शस्त्रोंसे उनका बध कर डालो।। ३६ ।। नौकर दुर्बुद्धि थे ही; झट कह दिया कि, अच्छी बात है मार देंगे, फिर वे मारनेके इरादेवाले पैनी तलवारोंसे उन्हें मारनेके लिए उनके साथ बन जाकर ।। ३७ ।। निष्ठुर प्रहार करने लगे । पर वे पुत्र प्रसन्नही रहे । माताके प्रभावसे वे प्रहार तिनकाके बराबर हो गये ।। ३८ ।। इस प्रकार रानीने उन पुत्रों को मरवानेके लिए बडे २ उपाय किए परन्तु वे बालक फिर जिन्दे होजाते थे और कोई कष्ट भी उन्हें नहीं होता था ।। ३९ ।। इस आश्चर्यको देख उसने अपनी भूषणा सखी बुलाई और बहुमान पूर्वक श्रेष्ठ आसनपर बिठा ।। ४० ।। पूछने लगी; क्योंकि इसके मनमें भारी विस्मय था, इसके बालक मारनेपरभी जिन्दे रहते थे, तथा अपने बालक जिलानेकी कोशिश करनेपर भी नहीं जिये थे । हे महाभागे! आपने कौनसा सुकृत किया है ! यथार्थ रूपसे कहिये ।। ४१ ।। ऐसा कोई दान, व्रत, तप, शुश्रूषण और उपोषण है जिससे आपके पुत्र मरेभी जी जाते हैं एवम् उन्हें कोई कष्टभी नहीं होता ।। ४२ ।। हे शुभानने ! तेरे पुत्रभी बहुत हैं और सब जीवितभी हैं । तू कभी आभूषणोंका त्याग नहीं करती तथा पतिके भी मनमें विराजी रहती है ।। ४३ ।। हे भद्रे ! आप अत्यन्त सुन्दरी लगती हैं, जैसे बरसातमें नीले २ बद्दलोंमें बिजली अच्छी लगती है । यह सुन भूषणा बोली कि, हे देवि ! मैं जन्मान्तरकी बातें कहती हूं । तू सावधान होकर सुन ।। ४४ ।। क्या उन सब बातोंको भूलगयी जो आयोध्यामें की थी । हे वरानने ! हम तुम दोनोंने प्रमत्त् हो व्रत बिगाड दिया था ।। ४५ ।। उस दोषसे तुम दूसरे जन्ममें वानरी और मैं मुरगी हुई । तुम वानरी थी, इसलिये अपनी स्वाभाविक चपलताके कारण उस जन्ममें भीतुमसे यह व्रत यथार्थ नहीं हो सका ।। ४६ ।। किन्तु मैंने नही छोडा मनमें शंकर काध्यानकिया और पश्चात्ताप भी किया कि, हाय ! कब इस तिर्य्यग्योनिसे छूंटू और भगवान्की सेवाकरूं।ऐसे मनमें, पूर्वजन्ममें व्रतविकलता करनेका

और उस जन्ममें भी शंकर भगवान्का यथार्थ पूजन नकर सकनेका अनुताप प्रकट किया था ।। ४७ ।। और कुछभी मेरेइस सुखसम्पत्तिकी स्थिरतामें कारणनहीं है।लोमशमुनि बोलेकि इस प्रकार जब भूषणाने कहा, उनवचनोंसे इश्वरीनेअपने पूर्वजन्मकी चेष्टाका स्मरणकिया ।।४८।। ईश्वरीने भूषणाके साथ विधिवत् मुक्ताभरणव्रत किया । उसके प्रभावसे उसकेभी बहुतसे पुत्र पौत्र होगए ।। ४९ ।। उनके अतुल सुखको भोग मरके कैलाश पहुंच गई । इसलिए हे कल्याणि ! तुमभी इस व्रतको करो ।। ५० ।। इस दिव्यव्रतके करनेसे तुमारेभी पुत्र जीते रहेंगे । देवकी बोली कि, हे ब्रह्मन् ! तुम इस सुखकारी शंकर भगवान्के व्रतका निरूपण करो ।। ५१ ।। जिस व्रतके करनेसे पुत्र पौत्रादि सन्तान सुख और कैलासका निवास मिलता है । लोमशमुनि बोले कि हे भद्रे ! भादवा (सुदि) सप्तमीके दिन जलाशयमें ।। ५२ ।। स्नान करके कूलपर एक मण्डल लिखे । उसके मध्यमें पार्वती और महादेवजी इन दोनोंके आकारका उल्लेख करे । फिर स्थापना करे । भक्तिसे सम्यक् पूजा करे, नियम करके अपने हाथमें डोरा धारण करे ।। ५३ ।। नियम यह करना चाहिये कि, मैंने जीवन पर्यन्त अपनी आत्माको महादेवजी के अर्पण करदिया है, इसप्रकार प्रतिज्ञा करके उसी समयसे ।। ५४ ।। डोरेको चाहे वो सुवर्णका हो चांदीका हो या सूतका ही हो; पार्वतीशंकर स्वरूप समझती हुई हाथमें धारण करे । फिर प्रतिमास या प्रतिपक्ष अथवा प्रतिवर्ष सप्तमीके दिन मण्डक और वेष्टकोंका (मालपूए और जलेबियोंका) दान करे ।। ५५ । आपभी उनही मण्डलक वेष्टकोंका भोजन करे । हे शुभे ! अन्यथा व्रत भंग होता है । प्रतिपक्ष यह व्रत करना चाहिये, किंतु शुक्लपक्षमें सप्तमी के दिन इस व्रतको अवश्य करे ।। ५६ ।। हे भद्रे देवकि ! वर्ष बीतनेपर व्रतके अन्तमें पारणाके समय अपनी शक्ति अनुरूप सुवर्ण या रजतकी अँगूठी बनवा ।। ५७ ।। उसे तामडीमें धर ब्राह्मणके लिये यदि सम्भव हो तो आचार्यके लिये सुवर्णकी ही अँगूठी समर्पण करे ।। ५८ ।। उस अँगूठीके साथ पुष्प, कुंकुम, सिन्दूर, ताम्बूल, अञ्जन और सुवर्ण चान्दी या सूतके डोरे का दान करना चाहिये । व्रतकी पूर्तिके लिये सुवासिनीको भी पूजना चाहिये ।। ५९ ।। जो स्त्री इस पूर्वोक्त विधिसे सन्तति सुखके बढानेवाले इस मुक्तारभण नामक व्रतको करती है वह सब बातोंसे निर्म्मुक्त होकर निष्कण्टक सौभाग्यसुखके राज्यको भोगती है ।। ६० ।। इस लोकमें सन्तानकी वृद्धिकेआनन्दका लाभ करती है और परलोकमें महादेवजीके पदमें प्रतिष्ठा प्राप्त करती है । ऐसे मैंने यह सब कथा तथा विधि समेत व्रतका माहात्म्य तुम्हारे सम्मुख वर्णन किया ।। ६१ ।। अब हे देवकि ! तुम विधिवत् इस मुक्ताभरण व्रतको करो जिससे जीवत्पुत्रा हो जाओगी । श्रीकृष्णचन्द्र (राजा युधिष्ठिरसे) बोले कि हे राजन् ! मुनिवर लोमश महात्मा इतना कहकर वहांही अन्तर्धान हो गये ।। ६२ ।। जिस विधि से व्रत करने के लिये महात्मा लोमशमुनिने कहा था तदनुसारही हमारी माता देवकीजीने यह व्रत किया । उस व्रतके प्रभाव से देवकीजीके हम पुत्र चिरायु हुए ।। ६३ ।। हे पार्थ ! इससे यह व्रत पुरुषों और विशेष करके स्त्रियों को करना चाहिये । यह पापोंका विनाशक और सुख एवं सन्तानका बढानेवाला है ।। ६४ ।। जो भक्तिसे इस व्रतको करता है एवं जो इस व्रतको करनेका उपदेश करता है कथा सुनाता है और विधि बताता है वह भी सब पापोंसे छूट जाता है ।। ६५ ।। ऐहिक एवं पारलौकिक सुख और मोक्ष पदकी कामना रखती हुई जो स्त्री अन्तःकरणमें महेश्वर भगवान्का ध्यान धर इस व्रतको करके कथाका श्रवण करती है, वह इसलोकमें जो दुःख होते हैं उन सब दुःखोंसे निस्तीर्ण हो चिरजीवी पुत्रोंवाली अवश्यही होती है ।। ६६ ।। यह हेमाद्रिमें भविष्य पुराणसे कहागया मुक्ताभरण सप्तमीका व्रत पूरा हुआ ।।

बिल्वशाखाप्रवेशादि

अथ आश्विनशुक्लसप्तम्यां बिल्वशाखाप्रवेशपूजनादि ।। अत्र च सप्तमी उदयव्यापिनी ग्राह्या–युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।। रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ।। इति प्रतापमार्तण्डे भविष्योक्तेः ।। वर्षवृद्धिः– जन्मतिथिः ।।

बिल्वशाखा प्रवेश पूजनादि–आश्विन शुक्ला सप्तमीको बिल्व शाखाका प्रवेश और पूजनादिक होते हैं । इसमें उदयव्यापिनी सप्तमी लेनी चाहिये । क्योंकि, प्रताप मार्तण्ड में भविष्य पुराण का वचन है कि युगादि तिथि, वर्षवृद्धि और पार्वती प्यारी सप्तमी ये सूर्यके उदयकी प्रतीक्षा करतीहैं । इनमें तिथियों की युग्मता नहीं होती यानी कथितयुग्मवाक्य से प्रथम नहीं लेनी चाहिये । केवल उदय कालमें सप्तमी का योगही देखना चाहिये । वर्षवृद्धि जन्मतिथिको कहते हैं ।।

सरस्वतीपूजाविधिः

तत्रैव मूलनक्षत्रे पुस्तकस्थापनमुक्तं रुद्रयामले––मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती ।। पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद्वैष्णवमृक्षकम् ।। नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन ।। पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः ।। अहं भद्रा च भद्राहंनावयोरन्तरं क्वचित् ।। सर्वसिद्धि प्रदास्यामि भद्रायां ह्यर्चितास्म्यहम् ।। संग्रहे–आश्विनस्य सिते पक्षे मेधानाम सरस्वती ।। मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ।। इति सरस्वतीपूजनम् ।।

सरस्वती पूजन–इसी सप्तमीको कहा है कि इसी दिन मूल नक्षत्रमें पुस्तकों को देवता की तरह स्थापित करे । यह रुद्रयामल में लिखा हुआ है कि, हे सुराधीश ! मूल नक्षत्रमें सरस्वतीका आवाहन कर उस रोजसे श्रवण नक्षत्रतक बराबर पूजन होना चाहिये । इसमें पढना पढाना और लिखना तीनों ही काम कभीभी न करने चाहिये । विद्याकामी द्विजको चाहिये कि पुस्तकोंको स्थापित करके पूजन करे । सरस्वतीजी कहती हैं कि मैं भद्रा और भद्रा मेरा स्वरूप है । हम दोनोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है । भद्रामें पूजित हुई मैं सब सिद्धियोंको देती हूं । संग्रह ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि, आश्विन शुक्ला सप्तमीको मेधा नामकी सरस्वतीका पूजन होता है । मूलमें आवाहन और श्रवणमें विसर्जन करना चाहिये । यह श्रीसरस्वतीजी का पूजन पूरा हुआ ।।

१– इस विषयपर कुछ निर्णयसिन्धुसे आवश्यकीय उद्धृत करते हैं– गौड निबन्ध ग्रन्थमें देवी पुराणसे कहा गया है कि, ज्येष्ठानक्षत्र युक्त षष्ठीके दिन सामको बिल्वको नौता दे आना; तथा मूलयुक्ता सप्तमीके दिन उसकी शाखा ले आनी चाहिये । पूर्वाषाढायुक्त अष्टमीको पूजा होम और व्रत आदि करने चाहिये । उत्तराषाढासेयुक्त नवमीको शिवाका पूजन करना चाहिये । श्रवणयुक्त दशमीके दिन प्रणाम करके विसर्जन कर देना चाहिये । कालिका पुराणमें लिखा हुआ है कि षष्ठीको बिल्व शाखा और फलोंमें देवीका बोधन करे एवम् सातेंके दिन बिल्वशाखाको घरपर लाकर उसका पूजन करना चाहिये । फिर अष्टमीके दिन विशेष करके पूजा करे । उसी महानिशामें जागरण और बलिदान भी होना चाहिये एवम् नवमीको विशेष करके बलिदान करना चाहिये । दशमींके दिन शरदकारके उत्सव जो धूलि और कीचके पटकने हैं उनसे तथा क्रीडा कौतुक और मण्डलोंसे विसर्जन कर देना चाहिये । यहां सब जगह तिथि और नक्षत्रके योगका आदर मुख्य है । नक्षत्रके अभावमें तिथिका ही ग्रहण कर लेना चाहिये; क्योंकि, विद्यापतिने लिखितके वचनसे कहा है कि, देवताका शरीर तिथि है नक्षत्र भी तिथिमें ही होता है इसी कारण तिथिकी प्रशंसा करते हैं तिथिके विना नक्षत्रकी बड़ाई नहीं है, तिथि और नक्षत्रके योगमें दोनोंका ही पालन करना चाहिये, यदि वो योग न हो तो देवीकी पूजामें तिथि ही ग्रहण करलेनी चाहिये । तहां ही देवलका यह वाक्य है । यदि बिल्वप्रबोधिनी सप्तमीसे पहिले सायंकालमें षष्ठी न हो तो उसके पहिले दिनही बिल्वका निमंत्रण पूजन करना चाहिये । पत्री प्रवेशसे पहिले दिन सायंकालमें षष्ठीका अभाव हो तो उससे भी पहिले बिल्ववृक्षमें अधिवासन करना चाहिये यदि उस दिन भी सायंकालमें षष्ठी न मिले तो अधिवासन (निमंत्रणादि) न करने चाहिये; क्योंकि सायंकालको षष्ठीमें बिल्वमें अधिवासन करना चाहिये । यह पहिले ही कहचुके हैं । यह कल्पतरुका मत है । आचार्य

अथ रथसप्तमीव्रतम्

अस्यां स्नानविधिः ।। तच्च अरुणोदयव्यापिन्यां कार्यम् ।। तदुक्तं मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे–सूर्यग्रहणतुल्या सा शुक्ला माघस्य सप्तमी ।। अरुणोदयवेलायां स्नानं तत्र महाफलम् ।। माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिपुण्यदा ।। कुर्यात्स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसंपदः ।। द्विनद्वये अरुणोदव्यापित्वे पूर्वेव ।। एतद्विधिस्तु भविष्ये–कृत्वा षष्ठ्यामेकभक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् ।। रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।। तथा जलं प्रक्रम्य–न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ।। सौवर्णे राजते ताम्रे भक्त्यालाबुमयेऽथवा ।। तैलेन वर्तिर्दातव्या महा[1]रजनरञ्जिता ।। समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।।भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।। नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः ।। वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिदश्व नमोस्तु ते ।। जले परिहरेद्दीपं ध्वात्वा संतर्प्य देवताः ।। इति ।। लोलार्के रथसप्तम्यां स्नात्वा गङ्गादिसंगमे ।। सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।। इति गर्गः ।। षष्ठिसप्तमिसंयोगे वारश्चेदंशुमालिनः ।। योगोऽयं पद्मकोनाम सहस्रार्कग्रहैः समः ।। एतच्च स्नानं तिथ्यादिस्मरणानन्तरं शिष्टाचारात् ।। इक्षुदण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि सप्त बदरीपत्राणि च शिरसि निधाय स्नायात् ।। तत्र मन्त्रः–यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु ।। तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ।। स्नानानन्तरमर्घ्यं च दातव्यं मन्त्रपूर्वकम् ।।

१ कुसुम्भम्

चूडामणि तो यह कहते हैं कि सायंकालका श्रवण फलातिशयको द्योतन करनेके लिये है । यदि उसमें षष्ठी न हो तो भी अधिवासन कर्मका लोप नहीं होता । इसमें बिल्वके पास जाकर देवी और बिल्वकी प्रार्थना करनी चाहिये कि, रामपर कृपा करने और रावणको मारनेके लिये असमयमें ब्रह्माने हे बिल्व ! तुमसे देवीको जगाया था । इसी कारण मैं भी आपके अत्याश्रित होकर शामको छटमें तुमसे देवीको जगवाता हूँ । हे बिल्व ! आप कैलासके शिखर पर पैदा हुए हैं श्रीफल हैं और श्रीके निवास स्थान हैं आप ले जाने योग्य हैं । इस कारण आइये । मैं दुर्गारूपसे आपका पूजन करूंगा । इस प्रकार देवीका अधिवासन करके दूसरे दिन निमंत्रित बिल्वशाखाको लाकर प्रवेश पूजा करनी चाहिये, यही हेमाद्रिने लिंग पुराणसे लिखा है कि, मूल नहीं हो तो भी केवल सप्तमीमें ही प्रवेश कराये । नवीन बिल्व शाखाको दो फलोंके साथ लाके उसी तरह-वयकी प्रतिमाको स्नान करा छिडककर प्रवेश करावे । यहां उपवास और पूजादिकोंमें उदय कालमें रनेवाली सप्तमी तिथिका ग्रहण करना चाहिये । यह न होना चाहिये कि, युग्मवाक्यसे पूर्वाकाही ग्रहण किया जाय । इसमें वो ही प्रमाण कृत्यतत्वार्णवके नामसे दिया है जो व्रतराज मूलमें प्रताप मार्तण्डके नामसे दिया है । तिथितत्वमें नन्दिकेश्वर पुराणसे लिखा है कि, विद्वान्का कार्य होना चाहिये कि, भगवतीके प्रवेशसे विर्जन तकके सब काम उदय व्यापिनी तिथिमें करे । दुर्गाभक्ति तरंगिणीमें यही लिखा हुआ है । इसमें भी एक घडीसे कम होनेपर परा न करनी चाहिये; क्योंकि व्रत उपवास और नियमोंमें कठिन घटी भी जो तिथि हो, यह देखनेका एक घडीका उपादान किया है ऐसा गौड कहता है । पर दक्षिणात्य तो पूर्व वचनको विना देखेती युग्म वाक्यसे पूर्वाही ग्रहण करते हैं । कृत्यतत्वार्णवमें कहा है कि, पत्रिका पूजा पूर्वाह्णमें ही करना चाहिये न कि मूल नक्षत्रके अनुरोधसे मध्याह्नमें ही हो यह कृत्यतत्वार्णवमें कहा है । ये बिल्वकी शाखाका प्रवेश और उसकी पूजा आदिके विधान पूरे हुए ।।

सप्तसप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।। सप्तम्या सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ।। अर्घ्यम् ।। जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके ।। सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले ।। प्रार्थना इति स्नानविधिः ।। अनेनैव तु मन्त्रेण पूजयेच्च दिवाकरम् ।। कृत्वा षोडशधा राजन् सप्ताश्वरथमण्डले ।। अथ कथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कथं सा क्रियते कृष्ण मनुष्यै रथसप्तमी ।। चक्रवर्तित्वफलदा या हि ख्याता त्वया मम ।। १ ।। कृष्ण उवाच ।। आसीत्काम्बोजविषये यशोवर्मा नराधिपः ।। वृद्धे वयसि तस्यासीत्सर्वव्याधियुतः सुतः ।। २ ।। तत्कर्मपाकं सोऽपृच्छद्विनीतो द्विजपुङ्गवम् ।। स प्राह राजन्वैश्योऽयं कृपणः पूर्वजन्मनि ।। ३ ।। ददर्श रथसप्तम्याः क्रियमाणं व्रतं नृप ।। व्रतदर्शनमाहात्म्यादुत्पन्नो जठरे तव ।। ४ ।। अदाता विभवे यस्मात्तेनायं व्याधितोऽभवत् ।। ततः स राजा पप्रच्छ किमेतस्य विधीयताम् ।। ५ ।। ब्राह्मण उवाच ।। यस्य संदर्शनात्प्राप्तो लोभी तव निकेतनम् ।। तदेव क्रियतां राजन् रथसप्तमिसंज्ञितम् ।। ६ ।। व्रतं पापहरं येन चक्रवर्तित्वमाप्यते ।। राजोवाच ।। ब्रूहि विप्र व्रतं कृत्स्नं सविधानं समंत्रकम् ।। ७ ।। रोगिणां च दरिद्राणां सर्वसंपत्प्रदायकम् ।। द्विज उवाच ।। शुक्लपक्षे तु माघस्य षष्ठ्यामामंत्रयेद्गृही ।। ८ ।। स्नानं शुक्लतिलैः कार्यं नद्यादौ विमले जले ।। वापीकूपतडागेषु विधिवद्वर्णधर्मतः ।। ९ ।। देवादीन्पूजयित्वा तु गत्वा सूर्यालयं ततः ।। सूर्यं पूज्य नमस्कृत्य पुष्पधूपाक्षतैः शुभैः ।। १० ।। आगत्य भवनं पश्चात्पञ्चयज्ञांश्च निर्वपेत् ।। संभोज्यातिथि भृत्यांश्च बालवृद्धाश्रितान् स्वयम् ।। ११ ।। विद्यमानेऽदिनेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तैलवर्जितम् ।। रात्रौ विप्रं समाहूय सर्वज्ञं वेदपारगम् ।। १२ ।। संपूज्य नियमं कुर्यात्सूर्यमाधाय चेतसि ।। सप्तम्यां तु निराहारो भूत्वा भोगविवर्जितः ।। १३ ।। भोक्ष्येऽष्टम्यां जगन्नाथ निर्विघ्नं तत्र मे कुरु ।। इत्युच्चार्य नृपश्रेष्ठ तोयंतोयेषु निक्षिपेत् ।।१४।। ततो विसृज्य तं विप्रं स्वपेद्भूमौ जितेन्द्रियः ।। ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वावश्यं शुचिर्नरः ।। १५ ।। कारयित्वा रथं दिव्यं किंकिणीजालमालिनम् ।। सर्वोपस्करसंयुक्तं रत्नैः सर्वाङ्गचित्रितम् ।। १६ ।। काञ्चनं राजतं वाथ हयसारथिसंयुतम् ।। ततो मध्याह्नसमये कृतस्नानादिको व्रती ।। १७ ।। अतिर्यग्वीक्षमाणस्तु पाषण्डालापवर्जितः ।। सौरसूक्तं जपन्प्राज्ञः समागच्छेत्स्वमालयम् ।। १८ ।। निर्वृत्तनित्यकार्यस्तु कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।। वस्त्रमण्डपिकामध्ये स्थापयेत्तं रथोत्तमम् ।। १९ ।। कुंकुमेन सुगन्धेन चर्चयित्वा समन्ततः ।। मालाभिः पुष्पदीपानां समन्तात्परिवेष्टयेत् ।। २० ।।

---

१ ईश्वराणामित्यपि क्वचित्पाठः २ नद्यभावे तु कुत्रचित् विमले सलिले राजन् इति हेमाद्र्यादौ पाठः

धूपेनागुरुमिश्रेण धूपयित्वा तथोपरि ।। रथस्य स्थापयेद्भानुं सर्वसंपूर्णलक्षणम् ।। २१ ।। वित्तानुरूपं हैमं च वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। शाठ्याद्व्रजति वैकल्यं वैकल्याद्विकलं फलम् ।। २२ ।। ततो देवं समभ्यर्च्य सरथं सहसारथिम् ।। पुष्पैधूपैस्तथा गन्धैर्वस्त्रालंकारभूषणैः ।। २३ ।। फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ।। पूजयेद्भास्करं भक्त्या मन्त्रैरेभिस्त्रिभिः क्रमात् ।। २४ ।। भानो दिवाकरादित्य मार्तण्ड जगतांपते ।। अपांनिधे जगद्रक्ष भूतभावन भास्कर ।। २५ ।। प्रणतार्तिहराचिन्त्य विश्वचिन्तामणे विभो ।। विष्णो हंसादिभूतेश आदिमध्यान्तकारक ।। २६ ।। भक्ति हीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं जगत्पते ।। प्रसादात्तव संपूर्णमर्चनं यदिहास्तु मे ।। २७ ।। एवं संपूज्य देवेशं प्रार्थयेत्स्मनोगतम् ।। ददाति प्रार्थितं भानुर्भक्त्या सन्तोषितो नरैः ।। २८ ।। वित्तहीनोऽपि विधिना सर्वमेतत्प्रकल्पयेत् ।। रथं ससारथिं साश्वं वर्णकैर्भित्तिलेखितम् ।। २९ ।। सौवर्णं च तथा भानुं यथाशक्त्या विनिर्मितम् ।। प्रागुक्तेन विधानेन पूजयित्वा सुविस्तरम् ।। ३० ।। जागरं कारयेद्रात्रौ गीतवादित्रनिस्वनैः ।। प्रेक्षणीयैर्विचित्रैश्च पुण्याख्यानकथादिभिः ।। ३१ ।। रथयात्रां प्रपश्येत भानोरायतनं श्रितः ।। अनिमीलितनेत्रस्तु नयेत्तां रजनीं बुधः ।। ३२ ।। प्रभाते विमले स्नात्वा कृतकृत्यस्ततो द्विजान् ।। तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैर्वासोविभूषणैः ।। ३३ ।। अश्वमेधेन तुल्यं तदिदं ब्रह्मविदो विदुः ।। अतो देयानि दानानि यथाशक्त्या विचक्षणैः ।। ३४ ।। रथस्तु गुरवे देयो यथोपस्करसंयुतः ।। सरक्तवस्त्रयुगलो रक्तधेनुसमन्वितः ।। ३५ ।। एवं चीर्णव्रती राजन् किं नाप्नोति जगत्त्रये ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुरु त्वं रथसप्तमीम् ।। ३६ ।। येनारोग्यो भवेत्पुत्रस्त्वदीयो नृपसत्तम ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण प्रसादाद्भास्करस्य च ।। ३७ ।। भविष्यति महातेजा महाबलपराक्रमः ।। भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्कृत्वा राज्यमकण्टकम् ।। ३८ ।। दत्त्वासौ रथसप्तम्यां मृते त्वयि महाभुजः ।। उत्पाद्य पुत्रान्पौत्रांश्च सूर्यलोकं स यास्यति ।। ३९ ।। तत्र स्थित्वा कल्पमेकं चक्रवर्ती भविष्यति ।। कृष्ण उवाच ।। इति सर्वं समाख्याय तपोयुक्तो द्विजोत्तमः ।। ४० ।। यथागतं जगामासौ नृपः सर्वं चकार ह ।। यथादिष्टं द्विजेन्द्रेण तत्तत्सर्वं बभूव ह ।। ४१ ।। एवं स चक्रवर्तित्वं प्राप्तवान्नृपनन्दनः ।। श्रूयते यस्तु मान्धाता पुराणेषु परन्तपः ।। ४२ ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेच्च यथाविधि ।। तस्यैव तुष्यते भानुर्यच्छत्येवापि संपदः ।। ४३ ।। एवंविधं रथवरं वरवाजियुक्तं हैमं च हेमशतदीधितिना समेतम् ।। दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति ।। ४४ ।। इति भविष्योत्तरे रथसप्तमीव्रतं संपूर्णम् ।।

१ अर्शआद्यजन्तम्

रथ सप्तमीव्रत कहते हैं–इसमें भी सब से पहिले स्नानकी विधि है, इसे अरुणोदय व्यापिनी लेनी चाहिये । यही मदन रत्नमें संग्रहसे कहा है कि, माघ शुक्ला सप्तमी सूर्य ग्रहणके बराबर है, अरुणोदयके समयमें इसमें स्नान महाफलावाला होता है । जो मनुष्य स्नान दानादि करता है उस मनुष्यको स्नानादिकों का कोटि गुणित पुण्यफल मिलता है । स्नानदान और अर्घ्यसे आयु आरोग्य और सम्पत्ति प्राप्त होती है । यदि माघ सुदि सप्तमी दो दिन अरुणोदयमें मिले तो पूर्व सप्तमी ही ग्राह्य है । इसमें जो करना चाहिये, उसकी विधि भविष्यपुराणमें कही है कि, माघसुदि छठके दिन एकभक्त व्रत करके दूसरे दिन प्रातःकाल रात्रिके अवसानमें निश्चल जलको तुम हलाना चलाना शिरपर दीपक रखके, फिर प्रदक्षिणा करनी चाहिये । पीछे जबतक दूसरा कोई आकर उस जलको न हलावे तबतक उसमें स्नान करता रहे । वह दीपक सुवर्ण, चांदी, तामे या तूम्बेके काष्ठका हो, उसमें तैलके साथ कुसुम्भेसे रंगी हुई बत्ती देनी चाहिये । दीपकको शिरपर देकर अपने चित्तको और और वासनाओंसे निवृत्त करके भगवान् सूर्यदेवका ध्यान करे । और "नमस्ते रुद्र" इस मंत्रको पढे कि, आप रुद्रस्वरूप हैं, आप जलोंके अधिपति जो समुद्र है तत्स्वरूप है, आप वरुण स्वरूप हैं, आपके लिये बारंबार प्रणाम है । आपही हरिदश्व (सूर्य) हैं । आपकेलिये प्रणाम है। ऐसे ध्यान और देवताओंका तर्पण करके शिरके ऊपर रखे हुए दीपकको जलपर रखदे । [और गर्गसंहिताकार गर्गाचार्यने यह कहा है कि, जहां गङ्गा यमुना आदि महानदियोंका सम्मेलन होता हो वहांपर माघ सुदि रथसप्तमीके दिन जलमें जलके हलनेसे हलता हुआ सूर्यका स्वरूप दीखता हो उस समय स्नान करनेसे पूर्व सात जन्मोंके किये पापोंके दुःखभोगसे उसी क्षण निर्मुक्त होजाता है) षष्ठी और सप्तमीके मेलमें सूर्यवार यदि हो तो इसे पद्मक योग कहते हैं, यह एक सहस्र सूर्य ग्रहणके समान है । इस दिन स्नान करना जो पूर्व कहा है, वह संकल्प करनेके पश्चात् ही कर्तव्य है; क्योंकि शिष्टोंका ऐसा ही आचार है । और पूर्व जो निश्चल जलको चञ्चल करना कहा है उसकी विधि यह है कि, ऊखके दण्डको पकडकर उससे जलको चञ्चल करे, फिर आकके सात पत्ते और सात बदरी फलोंको अपने शिरपर रखकर स्नान करे । उस स्नानका 'यद्यज्जन्म' यह मन्त्र है, इसका यह अर्थ है कि, सात जन्मोंमें आजतक जो जो पाप मैंने किये हैं उनसे होनेवाले रोग और शोकको यह रथसप्तमी दूर करे । स्नान करनेके पीछे 'सप्त-सप्तति' मन्त्रसे सूर्यमण्डलस्थ भगवान् सूर्यदेवका ध्यानकरके उनको अर्घ्य दे । इसका यह अर्थ है कि, हे सात घोडेवाले रथमें स्थित होकर प्रसन्न दीखनेवाले ! हे सात (भूर्भुवः स्वर्महोजनतपः सत्य) भूरादि लोकोमें प्रकाश करनेवाले ! हे दिवाकर ! हे देव ! आप सप्तमी (रथसप्तमी) सहित मेरे अर्घ्यदानको ग्रहण करिये । "जननी" इससे प्रार्थना करे । इसका यह अर्थ है कि, हे रथसप्तमि ! हे सात सप्ति घोडे-वाली ! हे भूरादिक सात व्याहृति स्वरूपवाली ! हे सूर्यमण्डलमें विराजमान होनेवाली ! आप समस्त भूतोंकी जननी हो । आपके लिये प्रणाम है । यह स्नानविधि समाप्त हुई । फिर हे राजन् ! सात घोडों-वाले रथको बनवाकर या वैसे भगवान्के रथका ध्यान कर उसमें स्थापित या विराजमान सूर्यदेव षोडश उपचारोंसे पूजन करे । उन षोडश उपचारोंकाभी 'पूर्वोक्त' जननी यही मंत्र है । कथा-राजा युधिष्ठिरने पूछा कि, हे कृष्ण ! आपने जिसका माहात्म्य चक्रवर्ती राज्यके देनेवाला कहा था, मनुष्य उस रथसप्तमीके दिन किस विधिसे स्नानादि करें ? सो आप कहिये ।। १ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, पूर्वकालमें काम्बोज देशका यशोवर्म्मा नाम एक राजा था । उसके पहिले तो कोई पुत्र न हुआ, फिर वृद्धावस्थामें एक पुत्र हुआ । वह भी नानारोगोंसे ग्रस्त ही हुआ ।। २ ।। तब यशोवर्माने नम्रतापूर्वक एक किसी महात्मा ब्राह्मणसे पूछा कि हे प्रभो ! इस बालकने ऐसा कौन पाप किया था, जिसके फलोंको भोगता है । ऐसा पूछनेपर वह महात्मा कहने लगे कि, हे राजन् ! तुम्हारा यह पुत्र पूर्वजन्ममें कृपण ।। ३ ।। वैश्य था हे नृप ! कोई पुरुष रथसप्तमीका व्रत करता था, उस पुण्यात्माके इसने दर्शन किये थे और कोई पुण्य कर्म्म इसने नहीं किया, उस व्रतीके दर्शन करनेके प्रभावसे तुम्हारे घरमें उत्पन्न हुआ है ।। इसके सम्पत्ति बहुत थी. पर इसने कुछभी कभी दान नहीं किया, इसी दोषसे यह रोगग्रस्त है ।

श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं कि, फिर उस यशोवर्म्मा राजाने पूछा कि, अब क्या उपाय करना चाहिये ? जिससे इसका पूर्वपाप निवृत्त हो और प्रसन्न हो ।। ५ ।। ब्राह्मण बोला कि, जिस व्रत करनेवाले के केवल दर्शनसे तुमारे घरमें जन्म हुआ है उसी रथसप्तमीके व्रतका अनुष्ठान कराना योग्य है ।। ६ ।। आप अपने पुत्रके पापोंके निवर्तक करनेवाली पुण्यवृद्धिके लिये रथसप्तमीके व्रतको करें । यह सब पापोंका विनाशक और चक्रवर्ति राज्यका देनेवाला है । राजा बोला कि, हे विप्र ! आप विधि और मंत्रों सहित उस व्रतको कहें ।। ७ ।। जिसके प्रभावसे रोगियोंके रोग दरिद्रियोंके दरिद्र नष्ट होते हैं और सुख सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं । ब्राह्मण बोला कि, गृहस्थी माघसुदि षष्ठीके दिन आमंत्रण करे ।। ८ ।। पीछे शुक्ल तिलोंको लेकर नद्यादिकोंके कूलपर पहुंचे । नदी न होतो वापी, कूप या तलावके तटपर ही जाय । फिर निर्म्मल जलमें उन श्वेत तिलोंको मिलाकर विधिवत् स्नान करे, अपने अपने वर्ण धर्म्मानुसार ।। ९ ।। देवादिकोंका पूजन करे पीछे सूर्यभगवान्के मन्दिरमें जाकर प्रणाम करके पवित्र पुष्प धूप और अक्षतादिकोंसे उनका पूजन करे ।। १० ।। अपने घरपर पञ्चमहायज्ञ करे । पीछे अभ्यागत, भृत्य, बालक, वृद्ध और आश्रित जनोंको उत्तम रीतिसे भोजन करावे । पीछे ।। ११ ।। सूर्यके अस्त होनेपर रात्रिमें मौनी होकर भोजन करे, पर तैलका कोई पदार्थ भोजन नहीं करे । सर्वज्ञ वेदवेत्ता ब्राह्मण को आचार्य्य बनाने अपने घरपर निमन्त्रित कर बुलावे ।। १२ ।। उनका विधिवत् पूजन करे । तदनन्तर अपने चित्तमें सूर्य का ध्यान करता हुआ नियम करे कि, मैं सप्तमीके दिन आहार न करूंगा और न भोगविलास ही करूंगा ।। १३ ।। अष्टमीके दिन भोजन करूंगा । हे जगन्नाथ ! आप मेरे इस कार्यमें विघ्नोंको टारें । हे नृप ! इस प्रकारका नियम अपने हाथमें जल लेकर करना चाहिये । फिर उस जलको जलमेंही डाल देना चाहिये ।। १४ ।। आचार्यको उस समय अपने घर लौट जानेके लिये विदा करे और आप जितेन्द्रिय हो पर्य्यंकपर शयन न कर भूमिपर ही शयन करे । प्रातःकाल उठकर आवश्यक मलमूत्रादि त्याग और स्नानादि कार्य करके पवित्र हो ।। १५ ।। दिव्य एक सुवर्ण याचांदीका रथ तैयार करावेउस रथके चारों ओर छोटी छोटी किंकिणि ग्रोंके जालको भी लगवावे । उसमें आसनादि सामग्री स्थापित करे । जहां तहां चारों ओर रत्न जडवा अतिसुन्दरतासे सजावे । रथके सात घोडे और सारथि (अरुण) की मूर्तियाँ भी यथास्थान सुसज्जित करावे । फिर व्रतीपुरुष मध्याह्नमें स्नानादिकोंसे निवृत्त होकर सरलदृष्टि धार्म्मिकभाषी हो, फिर सौरसूक्तका जप करता हुआ अपने घरकी ओर चला आवे ।। १६–१८ ।। नैत्यि कर्मोंसे निवृत्त होकर आचार्यादि ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचनादि करावे सज्जित एक वस्त्रोंसे मण्डप तैयार कराके उसके बीचमें सूर्यदेवके उत्तम रथको स्थापित करे ।। १९ ।। सुगन्धित रौली या केसरमिश्रित चन्दनसे उसको चारों ओरसे चर्चित करे । सुन्दर पुष्प मालाओंसे परिवेष्टित करे ।। २० ।। अगरु मिश्रित धूपसे धूपित करे, रथके ऊपर सर्वलक्षणोंसे युक्त सूर्यको स्थापित करे ।। २१ ।। (सूर्यकी मूर्ति ऐसी हो, जिसके चारभुजा, हस्तोंमें सुवर्णके कमल, चक्र, गदा आदिहों, मस्तकपर मुकुटकानोंमें, कुण्डल, चरणोंमें नूपुर, प्रकोष्ठमें कंकण और कण्ठादिमें मणि आदि, कटिभाग और स्कन्धभागोंमें धौत और उत्तरीय वस्त्र हों ।) अपने धन सम्पत्तिके अनुरूप सोनेकी सूर्य्य भगवान्की मूर्ति बनानी चाहिये। वित्तके रहते कृपणता करनेसे विफलता होती है । विकलता होनेसे किया हुआ सब कर्म्म निष्फल होता है ।। २२ ।। रथमें सूर्य भगवान्की प्रतिमाको सुन्दर कमलासनपर बैठा रथ सारथि और दीप्ति आदि शक्तियों समेत पूजे । पुष्प, धूप, गन्ध, वस्त्र अलंकार दिव्य आभूषण ।। २३ ।। विविध फल, भक्ष्य और घृतमें पकाये हुए भोज्यान्न चढाकर भक्तिसे इन मंत्रोंसे पृथक् २ क्रमसे पूजन करे ।। २४ ।। इन पुष्पादिकोंके समर्पणके समयमें "भानो" इत्यादि तीन मन्त्रोंको क्रमसे पढे । इनका अर्थ यह है कि, हे भानो ! हे दिवाकर ! हे आदित्य ! हे मार्तण्ड ! हे जगन्नाथ ! हे जलोंके निधान ! हे प्राणियोंको आनन्दित करनेवाले ! हे भास्कर ! आप सब जगत्की रक्षा करें ।। २५ ।। हे प्रणाम करनेवाले जनोंकी आर्तिको हरने वाले ! हे अचिन्त्य ! हे त्रिलोकीकी कामनाओंको पूर्ण करनेमें चिन्तामणि सदृश ! हे विभो ! प्रभो ! हे विष्णो ! हे हंस मित्रादि नामोंसे एवम् द्वादशमासोंमें द्वादश नामोंसे प्रसिद्ध ! हे ईश ! हे

सब त्रिलोकीकी उत्पत्यादि करनेवाले ।। २६।।हे जगत्के पालक ! मैंने भक्ति, क्रिया और मन्त्रसे शून्य जो पूजन किया है वह सब आपकी कृपासे यहांही पूरा हो जाय ।। २७ ।। इस प्रकार देवेश सूर्य्यकी पूजा करके अभिलषित वरकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करे । भक्तिसे प्रसन्न कियेहुए सूर्य देव भक्त जो कुछ प्रार्थना करता है उसे पूर्ण करते हैं ।। २८ ।। यदि धन न हो तो भी उक्त विधिसे सब कुछ करे । परधन-साध्य सामग्री न करे । रङ्ग रेखा आदिकोंसे भित्त्यादिकोंपर चित्रादिरूपसे कल्पना करे ।। २९ ।। अथवा अपनी जैसी शक्ति हो उसीके अनुसार सोनेका सूर्य्य बनावे । यथोपस्थित फल पुष्पादि द्वारा पूजन करे । (सर्वथाही भिक्षुक और रुग्ण हो तो मनसे पूर्वोक्त पूजन विधिका स्मरण ही करे) प्रागुक्तविधिसे अच्छी तरह सूर्यदेवका पूजन कर ।। ३० ।। जागरण करे गान वाद्य देखनेलायक नाना नृत्यादि पवित्र इतिहास और कथा वाचनादिसे रातमें जागरण करे ।। ३१ ।। सूर्यके मन्दिरमें बैठ कर, सूर्य नारायणकीरथ यात्राको देखे । रात्रिभर नेत्र मीलन नहीं करे ।। ३२ ।। दूसरे दिन प्रभात काल निर्म्मलजलमें स्नान करके नित्य अवश्यकर्त्तव्य सन्ध्योपासनादि कर्मोंको करे, पीछे नानाविध वाञ्छित पदार्थ तथा वस्त्र आभूषण-दिका दान देकर आचार्यादि ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे ।। ३३ ।। इस प्रकार किया हुआ रथसप्तमीव्रत अश्वमेधके समान पुण्यप्रद होता है ऐसा वेदवेत्ता लोगोंका सिद्धान्त है । अतः विद्वान् व्रतीजनोंका कर्तव्य है कि, अपनी शक्तिके अनुरूप नानाविध दान करें ।। ३४ ।। रथपर सब उपस्कर सहित रथ आचार्यके लियेही देना चाहिये । लाल धोती और डुपट्टा जो भगवान्के चढाये थे और लालरंगकी गऊ भी आचार्यको दे दे ।। ३५ ।। हे राजन् ! जो इस प्रकार व्रतको साङ्ग समाप्त करता है उसको त्रिलोकीमें अप्राप्य वस्तु कोई भी नहीं है । इस कारण आपभी अच्छी तरह प्रयत्नपूर्वक रथसप्तमीका व्रत करिये ।। ३६ ।। हे नृपसत्तम ! इससे तुम्हारा पुत्र आरोग्य होगा, व्रतके प्रभाव एवं सूर्यदेवकी प्रसन्नतासे तुम्हारा पुत्र ।। ३७ ।। अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त बलवान् और अत्यन्त उत्साही होगा । इस लोकमें नाना सुखोंको भोगेगा ।। ३८ ।। तुम्हारे मरनेपर निष्कण्टक चक्रवर्त्ती राज्य करेगा । फिर पुत्र और पौत्रोंको राज्य देकर सूर्यधामको पधारेगा ।। ३९ ।। वहाँ एक कल्प वास करके जब इस लोकमें जन्म लेगा तब फिर चक्रवर्ती राजा होगा । श्रीकृष्णचन्द्र (राजा युधिष्ठिरसे) बोले कि, इस प्रकार वह तपस्वी ब्राह्मण राजा यशो-वर्म्माको व्रत और उसकी विधि तथा माहात्म्य कहके ।।४०।। जैसे आया था वैसेही अपने आश्रमको चला गया । राजाने उसके कथनानुसार रथसप्तमीका व्रत व्रत वैसेही किया ।। ४१ ।। उससे राजपुत्र रोगरहित पुत्र पौत्रादि सम्पत्तिमान् और निष्कण्टक चक्रवर्ति राज्यकी भोगसम्पत्तियोंकी प्राप्ति जो कुछ कहाथा वह सब होगया । पुराणोंमें जिस मान्धाता राजाको परमप्रतापशाली सुनते होवह पूर्वजन्ममेंरथसप्तमीके व्रतको करनेवाले यशोवर्म्माका पुत्रही था । वह इस जन्ममें भी सार्वभौम राज्यका करनेवाला पर नाप हुआ ।। ४२ ।। जो मनुष्य भक्तिसे इस आख्यानको विधिवत् सुनता या सुनाता है, उसके लिये भी संतुष्ट हुए भगवान् सूर्यदेव सब सम्पत्तियां अवश्य देते हैं ।। ४३ ।। पहिली कहीहुई विधिसे बनवाये हुए अश्व और सारथियुक्त सुवर्णके रथ और सूर्यदेवकी प्रतिमाको, माघशुदि सप्तमीके दिन व्रत करके जो किसी द्विजवरको दान करता है वह अप्रतिहत रथकी गतिवाला होकर पृथिवीका शासन करता है; यानी निष्कण्टक साम्राज्यपदके ऐश्वर्यको भोगता है ।।४४।। यह भविष्योत्तरपुराणका कहा हुआ रथसप्तमीका व्रत पूरा हुआ ।

अत्रैव अचलासप्तमीव्रतम् ।। यु[1]धिष्ठिर उवाच ।। कथं स्त्रियः सुरूपाः स्युः सुभगाः सुप्रजास्तथा ।। पुण्यस्य महतश्चात्र सर्वमेतत्फलं यतः ।। अल्पायासेन सुमहद्येन पुण्यमवाप्यते ।। स्त्रीभिर्माघे मम ब्रूहि स्नानं तद्धि जगद्गुरो ।। श्रीकृष्ण

१ एतदुत्तरं श्लोकत्रयं विलासिनीत्येतदग्रे च सार्धश्लोकनवकं हेमाद्रावधिकं दृश्यते । तत्त व्रतार्केऽ-लिखनादनेन लिखितम्

उवाच ।। श्रूयतां भरतश्रेष्ठ रहस्यं मुनिभाषितम् ।। यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तमीव्रतम् ।। वेश्या चेन्दुमतीनाम रूपौदार्यगुणान्विता ।। आसीत् कुरुकुलश्रेष्ठ सगर[1]स्य विलासिनी ।। सा वसिष्ठाश्रमं पुण्यं जगाम गजगामिनी ।। वसिष्ठमृषिमासीनं प्रणम्यानतकन्धरा ।। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा प्राहेदं जगतो हितम् ।। मया न दत्तं न हुतं नोपवासव्रतं कृतम् ।। भक्त्या न पूजितः शम्भुः स्वामिच्छाङ्र्गधरो न च ।। साम्प्रतं तप्यमानाया व्रतं किञ्चिद्वदस्व मे ।। येन दुःखाम्बुपंकौघादुत्तरामि भवार्णवात् ।। एतत्तस्याः सुबहुशः श्रुत्वातिकरुणं वचः ।। कारुण्यात्कथयामास वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ।। माघस्य सितसप्तम्यां सर्वकामफलप्रदम् ।। रूपसौभाग्यजननं स्नानं कुरु वरानने ।। कृत्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् ।। रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।। माघस्य सितसप्तम्यामचलं चालितं च यत्[2] ।। जलं मलानां सर्वेषां स्नानं प्रक्षालनं ततः ।। वसिष्ठवचनं श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भारत ।। चकारेन्दुमती स्नानं दानं सम्यग्यथाविधि ।। स्नानस्यास्य प्रभावेण भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।। इन्द्रलोकेऽप्सरोमध्ये नायिकात्वमवाप सा ।। अचलासप्तमीस्नानं कथितं ते विशांपते ।। सर्वपापप्रशमनं सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। सप्तमीस्नानमाहात्म्यं श्रुतं निरवशेषतः ।। साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि विधिं मन्त्रसमन्वितम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। एकभक्तेन संतिष्ठेत् षठ्यांसंपूज्य भास्करम् ।। सप्तम्यां तु व्रजेत्प्रातः सुगम्भीरं जलाशय ।। सरित्सरस्तडागं वा देवखातमथापि वा ।। सुखावगाहसलिलं दुष्टसत्त्वैरदूषितम् ।। व्यालाम्बुपक्षिभिश्चैव जलगैर्मत्स्यकच्छपैः ।। न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ।। सौवर्णे राजते पात्रे भक्त्यालाबु[3]मयेऽथवा ।। तैलस्य वर्तिर्दातव्या महारजनरञ्जिता ।। महारजनम् कुसुम्भम् ।। समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।। भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।। नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः ।। वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोस्तु ते ।। जलोपरि हरेद्दीपं स्नात्वा संतर्प्य देवताः ।। चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।। मध्ये शिवं सपत्नीकं प्रणवेन च संयुतम् ।। शाक्रे दले रविः पूज्यो भानुश्चैवानले तथा ।। याम्ये विवस्वान्नैर्ऋत्ये भास्करं पूजयेत्ततः ।। पश्चिमे सविता पूज्यः पूज्योऽर्कश्चानिले दले ।। सौम्ये सहस्रकिरणः शैवे सर्वात्मको नृप ।। पूज्याःप्रणवपूर्वास्तु नमस्कारान्तयोजिताः ।। पुष्पैः सुगन्धैर्धूपैश्च पृथक्त्वेन युधिष्ठिर ।। विसृज्य वस्त्रसंवीतं स्वस्थानं गम्यतामिति ।। विसर्जिते सहस्रांशौ समागम्य स्वमालयम् ।। ताम्रपात्रेऽथवा

१ मागधस्येत्यपि पाठः २ यद्यस्माच्चलितं जलं सर्वेषां मलानां क्षालनं ततो हेतोः स्नानं कुर्यादित्यर्थः
३ ताम्रमये इत्यपि पाठः

शक्त्या मृन्मये वाथ भक्तिमान् । स्थापयेत्तिलपिष्टं च सघृतं सगुडं तथा ।। कांचनं तालकं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् ।। सञ्छाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत् ।। ततः सञ्चालयेद्विप्रैर्दद्यान्मन्त्रेण तालकम् ।। आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च ।। दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ।। तालकम् तालकपत्रं कर्णाभरणविशेषः ।। पूजयित्वोपदेष्टारं विप्रानन्यांश्च पूजयेत् ।। ततो दिनं समग्रं च भास्करध्यानतत्परः ।। भास्क'रस्य कथाः शृण्वन्नन्या वा धर्मसंहिताः ।। पाषण्डादिभिरालापदर्शनस्पर्शनादिकम् ।। वर्जयेत्क्षपयेत्प्राज्ञस्ततो बन्धुजनैः सह ।। नक्तं भुञ्जीत च नरो दीनान् संभोज्य शक्तितः ।। एतत्ते कथितं पार्थ रूपसौभाग्यकारकम् ।। अचलासप्तमीस्नानं सर्वकामफलप्रदम् ।। इति पठति सम'ग्रं यः शृणोति प्रसङ्गात्कलिकलुषविनाशं सप्तमीस्नानमेतत् ।। मति मपि च जनानां यो ददाति प्रयत्नात्सुरसदनगतोऽसौ सेव्यते चाप्सरोभिः ।। इति भविष्ये अचलासप्तमीव्रतकथा समाप्ता ।। अस्यामेव पुत्रसप्तमीव्रतम् ।। मदनरत्ने आदित्यपुराणे ।। आदित्य उवाच ।। माघमासे तु शुक्लायां सप्तम्यां सम्'पोषितः ।। यः पूजयेत मां भक्त्या तस्याहं पुत्रतां व्रजे ।।एवं चोभय'सप्तम्यां मासि मासि सुरोत्तम ।। यस्तु मां पूजयेद्भक्त्या समकमेकमादरात् ।। समकः—संवत्सरः ।। प्रयच्छामि सुतं तस्य ह्यात्मनो ह्यङ्गसंभवम् ।। वित्तं यशस्तथा पुत्रमारोग्यं परमं सदा ।। माघमासे तु यो ब्रह्मञ्छुक्लपक्षे जितेन्द्रियः ।। पाषण्डान्पतितानन्त्यान्न जल्पेद्विजितेन्द्रियः ।। उपोष्य विधिवषत्ष्ठ्यां श्वेतमाल्यविलेपनैः ।। पूजयित्वा तु मां भक्त्या निशि भूमौ स्वपेद्‌बुधः ।। प्रातरुत्थाय सप्तम्यां कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ।। पूजयित्वा तु मां ब्रह्मन् वीरहोमं समाचरेत् ।। वीरहोमो नाम अग्निहोत्रहोमः ।। प्रीणयित्वा हरिं भक्त्या हविषा पद्मलोचनम् ।। हरिः—आदित्यः ।। दध्योदनेन पयसा पायसेन द्विजांस्तथा ।। तस्यैव कृष्णपक्षस्य षठ्यां सम्यगुपोषितः।। तस्यैवेति माघमासस्य ।। रक्तोत्पलैः सुगन्धाढ्यै रक्तपुष्पैश्च पूजयेत्।। एवं यः पूजयेद्भक्त्या नरो मां विधिवत्सदा ।। उभयोरपि देवेन्द्र स पुत्रं लभते वरम् ।। इति पुत्रसप्तमीव्रतं संपूर्णम् ।।"

अचलासप्तमी–व्रतभी इसी दिन करना चाहिये । इस प्रसङ्गमें राजा युधिष्ठिर एवं श्रीकृष्णचंद्रका संवाद कहते हैं । राजा युधिष्ठिर बोले कि हे प्रभो ! स्त्रियाँ सुरूप, सुभाग और पुत्रोंवाली किस महान् पुण्य व्रतादिकोंके करनेसे होती हैं ? जिस अनुष्ठानमें परिश्रम अल्प हो महान् पुण्य फल मिले सो कहो । हे जगद्‌गुरो ! स्त्रियां माघमासमें स्नान किया करती हैं, उसका फल क्या होता है ? उसे भी कहिये । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे भरतश्रेष्ठ ! वसिष्ठमुनिने जिस व्रतका निरूपण किया था, मैंने जो कभी किसीके

---

१ ता एव चेत्यपि पाठः २ च इत्थमिति पाठः ३ षष्ठ्यामुपोषितः सन्सप्तम्यां पूजयेदित्यन्वयः अग्रे षष्ठ्यामेवो पोषणस्य विधानात् ४ शुक्लकृष्णसप्तम्याम् ५ प्रीणयेदिति शेषः ६ सप्तम्योः

सम्मुखमें कहा नहीं, जो परमगोपनीय है उसी अचलासप्तमीके व्रतको कहता हूं आप सुने । हे कुरुकुलके श्रेष्ठ ! सगरराजाके साथ विहार करनेवाली सौन्दर्यकी उदारतासे परिपूर्ण इन्दुमती नामकी वेश्या हुई थी । वह किसी समय महात्मा वसिष्ठजीके परम पवित्र आश्रमको हस्तिके समानमत्त होकर धीरे धीरे चली गयी । वहांपर महात्मा ब्रह्मर्षिवर्य्य वसिष्ठजीविराजमान थे, उनको देख मस्तक नवा हाथजोड प्रणाम करके जगत्का हितकारी प्रश्न किया कि, हे प्रभो ! मैंने कोई दान, हवन, उपवास, व्रत और शंकर या विष्णुके पूजन कभी भक्तिसे नहीं किये । मेरा चित्त इस समय स तप्त हो रहा है । इससे आप ऐसे किसी व्रत दानको कहें जिसके अनुष्ठान करनेसे मैं दुःखरूपी पंकपरिपूर्ण संसार समुद्रसे उत्तीर्णहो जाऊँ । उस इन्दुमती वेश्याने जब अत्यन्त दीन होकर बारबार प्रार्थना की तब मुनिपुङ्गव वसिष्ठजी दया करके बोले कि, हे वरानने ! माघसुदि सप्तमीके दिनस्नान करो । यह स्नान सब मनोरथोंकीपूर्ति सौंदर्य्य और सौभाग्य देता है । इसकी विधि यह है कि, पहिले दिन छठको एक बार भोजन करे । फिर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर किसी ऐसे जलाशयपर जाय, जिसके जलको किसीने स्नानकरके हिलाया न हो । क्योंकि, हिलाया हुआ जल पहिले हिलानेवालोंके मलोंको प्रक्षालित करते हैं, अतः आपही यदि शिरपर दीपक रख पहिले स्नान करके हिलायेगी तो तेरेही पापोंको वे दूर करनेवाले होंगे । ऐसे वसिष्ठके कथनको सुन इन्दुमतीने माघसुदि सप्तमीके दिन प्रथम तो बहुत विधिसे स्नान किया, पीछे दान दिया। इस स्नानके प्रभावसे इस लोकके सब वांछित भोगोंको भोग अन्तमें स्वर्ग चली गयी । वहां इन्द्रकी सब अप्सराओंमें मुख्य हुई । हे राजन् ! मैंने अचला सप्तमीका स्नान आपको कह दिया है । यह सब पापोंका नाश करनेवाला तथा सुख सौभाग्यका बढानेवाला है । युधिष्ठिर बोले कि, हे प्रभो ! मैंने तुम्हारे मुखसे अचला सप्तमीके स्नानका फल अच्छीतरह सब सुन लिया । अब आपसे स्नान करनेकी विधि और मन्त्र एवं जो कर्त्तव्य हों उन सबको सुनना चाहता हूं । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजन् ! छठके दिन विधिवत् स्नानादि एवं नित्य नैमित्तिक कार्योंको समाप्त करे, फिर समाहित चित्त शुद्ध होकर भगवान् सूर्यदेवका पूजन प्रेम अच्छी तरह करे, उस दिन रातमें एकवार सूर्य्यको पूजकर भोजन करे । सप्तमीके दिन प्रभातकाल उठकर मलमूत्रत्याग एवं साधारण स्नान कर शुद्ध हो अत्यन्त गम्भीर जलवाली नदी, सरोवर, तलाव या किसी देवखात जलाशयके तटपर जाय, पर वह जलाशय ऐसा न हो जिसमें नक्रादि दुष्टजन्तु उपद्रवकरतेहों खड्डे आदिका उपद्रव भी नहीं हो, क्योंकि ऐसे जलाशयोंमें स्नान करनेवालेको मरण भयभी उपस्थित होता है, सर्प, जलज तु मत्स्य एवं कच्छपोंने भी जबतक न चलाया हो, उससे पहिलेही स्नान करे । अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, चांदी या अलाबुके ही पात्रमें तैलकी महारजन (कुसुंभ) से लालरङ्गी हुई बत्तीको प्रज्वलितकरे और एकाग्रचित होकर आप उस दीपकको अपने शिरपर धरे, सूर्यदेवका ध्यान अपनेमनमें करता हुआ 'नमस्ते' इस मन्त्रको पढे, फिर उस दीपकको शिरसे उतार जलाशयके जलके ऊपर रखदे स्नान करे । देवताओंका तर्पण करे । फिर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमल लिखे, जिसके भीतर कर्णिका वर्तुळ आकार लिखे । कर्णिक भागमें पार्वतीसहित भगवान् शंकरकास्थापन करे । उनकेसमीप "ओं" इसको भी लिखे फिर इनका पूजन करे, पूर्वके पत्तेपररवि, अग्निकोणके पत्तेपर भानु, दक्षिण विवस्वान्, नैर्ऋत्यमें भास्कर, पश्चिममें सविता, वायव्यमें अर्क, उत्तरमें सहस्रकिरण और ऐशान सर्वात्माको इन्ही के नाम मन्त्रोंसे पूजे । 'ओंरवये नमः स्नापयामि, ओंभानवेनमः स्नापयामि' इत्यादि रूपसे उस उस नामके अनुरूप मन्त्रकी कल्पना करके स्थापनादि उस उस क्रिया करानेकी प्रार्थना करता हुआ रवि आदि आठोंका पूजन करे । हे युधिष्ठिर ! सुगन्धित पुष्प, धूप, वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि चढावे । 'स्वस्वस्थानं गच्छन्तु भवन्तः' आप अपने २ स्थानको जाँय, 'प्रसीदन्तु चानया कृतयापूजया इसकी हुई पूजासेप्रसन्नहों इस प्रकार कहके उनका विसर्जन करे । ऐसे सूर्य देवकेरवि प्रभृति आठस्वरूपोंको तथा पार्वती महेश्वरदेवको विसर्जन करके अपने घरको चला आवे । फिर तामेके यदि शक्ति न हो तो प्रेमसे मृत्तिकाके ही पात्रमें तिलोंकी पीठी घृत, गुड और सुवर्णका तालपत्राकार आभूषण यदि सामर्थ्य न हो तो तिलकी पीठीकाही वह भूषण बना उसे लालवस्त्रसे आच्छादित करे । पुष्प धूपादि द्वारा उसका

पूजन करे। पीछे आचार्य और अन्यान्य ब्राह्मणोंका पूजन करके 'ओं आदित्यस्य' इस मन्त्रको पढता हुआ उसे अपने घरपर लेजानेकी अनुमति दे, उसका यह अर्थहै कि, आदित्य देवके प्रसाद और अचलासप्तमीको प्रातःकालके स्नानके पुण्यसे यह तालपत्राकार कर्ण भूषण मेरे दुष्ट दौर्भाग्य दारिद्रचादि दुःखोंको नष्ट करे। मैं इसे इन ब्राह्मणोंको दे चुका हूं फिर अवशिष्ट जो दिन रहे उसमें भास्कर भगवान्का अपने मनमें ध्यान रक्खे, उन्हींकी पवित्र कथाओंको सुने और जो धार्भिक और और कथाहों उनकाभी श्रवण करे, किंतु नास्तिक पापी जनोंके साथ सम्भाषण और मिलाप न करे। होसके तो ऐसे जनोंका दृष्टिपातभी न होनेंदे। इस प्रकार उस अवशिष्ट दिनको बिताकर रात्रिमें बान्धवोंको अपने पास बैठाकर आप भोजन करे और दीनोंको भी यथाशक्ति भोजन करावे। श्रीकृष्ण बोले कि हे पार्थ! मैंने अचला सप्तमीके स्नानकी सब विधि कह दी है यह स्नान सौन्दर्यसम्पत्तिको ही नहीं, किंतु स्नान करनेवालेके सब मनोरथोंकी पूर्ति भी करता है। जो पुरुष किसी कारणान्तरसे भी इस पूर्वोक्तविधिवाले अचलासप्तमीके समग्र स्नान माहात्म्यको सुनता है उसके भी कलियुगके प्रभावसे किये पाप नष्ट हो जाते हैं! स्नान करनेवाला मरनेके बाद सुरपुर प्रस्थान करता है, जो कथा सुनाता है वह अप्सराओंसे सेवित हुआ विहार करता है। यह भविष्यपुराणकी कही हुई अचला सप्तमीके व्रतकी कथा समाप्त हुई ॥

पुत्र सप्तमी-यह व्रतभी इसी सप्तमीमें होता है, मदनरत्नोंने आदित्य पुराणसे लेकर कहा है। आदित्य बोले कि जो उपोषणके साथ माघ शुक्ला सप्तमीके दिन भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करता है मैं उसके पुत्रभावको प्राप्त हो जाता हूं। हे सुरोत्तम! जो एक समक प्रत्येक मासकी प्रत्येक सप्तमियोंमें भक्तिभावके साथ इसी तरह मेरा पूजन करता है, मैं उसे औरस पुत्र देता हूं। समक संवत्सरको कहते हैं। उसे सदा वित्त, यश पुत्र और परम आरोग्य भी देता हूं! हे ब्रह्मन्! माघ मासके शुक्लपक्षमें जिते- न्द्रिय हो एवम् भली भाँति इन्द्रियोंको जीतकर पतित पाखण्ड और नीचोंसे भाषण न करके षष्ठीमें वैध उपोषण करके सफेद माला और विलेपनोंसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करके भूमिपर सोजाय। सप्तमीमें प्रातःकाल उठकर स्नानादि क्रिया करके मेरी पूजा कर, हे ब्रह्मन्! वीरहोम करे। वीरहोम नाम अग्नि- होत्र होमका है। हविसे पद्मलोचन हरिको प्रसन्न करके, हरि आदित्यको कहते हैं। दध्योदन पय और पायससे ब्राह्मण भोजन कराये उसी माघमासके कृष्णपक्षकी षष्ठीको भलीभाँति उपोषण करणके (उसीकेसे मतलब माघमाससे है) रक्त उत्पल एवं सुगन्धिदार लाल फूलोंसे पूजन करे. जो मनुष्य हमेशा मेरा इस प्रकार वैध पूजन करता है एवम् दोनों सप्तमियोंमें व्रत करता जाता है, हे देवेन्द्र! वह श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। यह पुत्र सप्तमी के व्रतकी कथा पूरी हुई। इसके साथही सप्तमीके व्रतभी पूरे होते हैं ॥

अथ अष्टमीव्रतानि लिख्यन्ते

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्युत्पत्तिः ॥ तत्र युग्मवाक्यात्परा ग्राह्या ॥ अत्र भवानीयात्रोक्ता काशीखण्डे-भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः ॥ न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ॥ अत्रैव अशोककलिकाप्राशनमुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे-अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥ प्राशनमन्त्रस्तु-त्वामशोकवराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम् ॥ पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥ अत्रैव विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये-पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ॥ प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥

अष्टमीके व्रत-लिखेजाते हैं। चैत्रशुक्ला अष्टमीको भवानीकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये भवानी भान्त्यष्टमीव्रत चैत्र सुदि अष्टमीके दिन करना चाहिये। यह अष्टमी नवमीसे सम्बन्धवाली ही ग्राह्य है,

क्योंकि अष्टमी नवमीके योगमें अष्टमी नवमीसे सम्मिलित ग्रहण करे । ऐसा युग्मतिथियोंके निर्णयमें धर्म्ममीमांसकोंने कहा है । इस अष्टमीके दिन भवानीके दर्शनोंकेलिये यात्राकरे । यह काशीखण्डमें लिखाहै कि, जो पुरुष चैत्र सुदि अष्टमीके दिन भगवती पार्वतीजीका दर्शन करता है, वह पुरुष कभीभी पुत्रादिकोंके मरणजन्य शोकका भागी नहीं होता, किंतु सदैव आनन्द मूर्ति रहता है । अशोककलिका प्राशान-यानी इसी चैत्रसुदि अष्टमीके दिन अशोकवृक्षकी कलिकाका भक्षण करना चाहिये । यह हेमाद्रिने लिङ्गपुराणसे लिखा है कि, जो पुरुष चैत्रसुदि अष्टमीके दिन पुनर्वसु नक्षत्रके रहते अशोककी आठ कलियोंको पीसके पीते हैं, वे कभी भी शोकके भागी नहीं बनते । पीनेके समय 'त्वामाशोक' इस मन्त्रको पढे कि, हे अशोक ! तुम परमपवित्र हो । चैत्रमासमें तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है । मैं शोककी यादसे सन्तप्त हुआ आपकी कलिकाओंके रसका पान करता हूं, आप मुझे सदा अशोक करें ।। इस विषयमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें कुछ विशेष लिखा है कि, चैत्रसुदि अष्टमी पुनर्वसु नक्षत्र और बुधवारसे संयुक्ता हो तो इसमें प्रातःकाल स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञके फलको पाजाता है ।।

बुधाष्टमी ।। अथ बुधवारयुक्तायां शुक्लाष्टम्यां बुधाष्टमीव्रतम् ।। सा च परयुता ग्राह्या ।। शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ।। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा ।। मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि परा ।। चैत्रे मासि च संध्यायां प्रसुप्ते च जनार्दने ।। बुधाष्टमी न कर्तव्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।। अथ व्रतविधिः––मासपक्षाद्युल्लिख्यमम इहजन्मनि जन्मान्तरे च बाल्यादारभ्य कर्मणा मनसा वाचा जानताजानता वा कृतपरस्वाद्यपहृतिदोषपरिहारार्थं पुत्रपौत्रादिसकलमनोरथसिद्धिप्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बुधाष्टमीव्रतमहं करिष्ये । तत्र विहितं बुधपूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य ।। बुधं षोडशोपचारैः कलशोपरि पूजयेत् ।। चतुर्बाहुं ग्रहपतिं सुप्रसन्नमुखं बुधम् ।। ध्यायेऽहं शंखचक्रासिपाशहस्तमिलाप्रियम् ।। पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः ।। खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ।। ध्यानम्[1] ।। तारासुत नमस्तेऽस्तुनक्षत्राधीश्वरप्रिय ।। गृहाण पूजां भगवन्समागत्य ग्रहेश्वर ।। आवाहनम् ।। उद्बुध्यस्वेत्यृचा मध्ये बुधमावाह्य अधिदेवतां मध्ये बुधमावाह्य अधिदेवतां विष्णुमिदंविष्णुरिति मन्त्रेण प्रत्यधिदेवतां नारायणं सहस्रशीर्षेति ससूक्तेनावाहयेत् ।। इलापते नमस्तेऽस्तु निशेशप्रियसूनवे ।। हेमसिंहासनं देव गृहाण प्रीतये मम ।। आसनं स० ।। शीतलोदकमानीतं सुपुण्यसरिदुद्भवम् ।। पाद्यं गृहाण देवेश ममाघपरिशुद्धये ।। पाद्यं स० ।। तारासुत नमस्तेऽस्तु सततं भगवतिप्रय ।। गृहाणार्घ्यं ग्रहपते नानाफलसमन्वितम् ।। अर्घ्यं स० ।। सुगन्धद्रव्यसंयुक्तैः शुद्धैः स्वाद्वसरिज्जलैः ।। आचम्यतां निशानाथनन्दन प्रीतये मम ।। आचमनं स० ।। पयोदधिघृतमधुशर्करासंयुक्तं मया ।। पञ्चामृतं समानीतं स्नानार्थं स्वीकुरु प्रभो ।। पञ्चामृतम् ।। वासितं गन्धपूरैर्निर्मलं जलमुत्तमम् ।। स्नानाय

१ इदं ध्यानं मात्स्योक्तमन्यदेव

ते मया भक्त्या दीयते व्रतसिद्धये ।। अतो देवादिकैः षड्भिः स्नापनीयस्ततो बुधः ।। पौरुषेण च सूक्तेन उद्बुधस्वेत्यृचैकया ।। स्नानम् ।। पीतवस्त्रद्वयं देव राजवंशकर प्रभो ।। उर्वशीनाथ जनक गृहाण प्रीतये सदा ।। वस्त्रम् ।। यज्ञोपवीतकं सूत्रं त्रिगुणं त्रिदशप्रिय ।। मम पाशविनाशार्थं गृहाण प्रीतये बुध ।। उपवीतम् ।। हरिचन्दनकस्तूरीकपूर्रादिसमन्वितम् ।। गन्धं समर्पये तुभ्यमिलानाथ नमोऽस्तु ते ।। गन्धं स० ।। अक्षतांश्च० अक्षतान्० ।। माल्यादी० पुष्पाणि० ।। अथाङ्गपूजा बुधाय० पादौ पू० । सोमपुत्राय० जानुनी पू० । पारकाय० कटिं पू० । राजपुत्राय० उदरं पू० । इलाप्रियाय० हृदयं पू० । कुमाराय० वक्षःस्थलं पू० । पुरूरवःपित्रे० बाहू पू० । सोमसुताय० स्कन्धौ पू० । पीतवर्णाय० मुखं पू० । ज्ञानाय० नेत्रे पू० । बुधाय० मूर्धानं पू० । सोमसूनवे० सर्वाङ्गं पू० ।। वनस्पतिर० धूपम् ।। आज्यं चेति दीपम् ।। नैवेद्यं गृ० नैवेद्यम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। श्रियेजात इति नीराजनदीपम् ।। उद्बुध्यस्वेति पुष्पाञ्जलिम् ।। उर्वश्याश्च पतिर्यस्तु यः पुरूरवसः पिता ।। ग्रहमध्ये सुरूपो यो बुधो नः सम्प्रसीदतु ।। विशेषार्घ्यम् ।। यानि कानि चेति प्रदक्षिणाम् ।। नमस्कारान् ।। आवाहनं नेति प्रार्थना ।। संतुष्टो वायनादस्मादिलानाथो ग्रहेश्वरः ।। सतांबूलाष्टलड्डूकं प्रतिगृह्णातु वायनम् ।। वायनम् ।। इति पूजनम् ।। अथ कथा ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। बुधाष्टमीव्रतं भूप वक्ष्यामि शृणु पाण्डव ।। येन चीर्णेन नरकं नरः पश्यति न क्वचित् ।। १ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। बुधाष्टमीव्रतं किं तत्कस्मात्पापाच्च मुञ्चति ।। तत्सर्वं वद निश्चित्य मम देव दयानिधे ।। २ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह ।। बहुभृत्यसुहृन्मित्रैर्मन्त्रिभिः परिवारितः ।। ३ ।। जगाम हिमवत्पार्श्वं महादेवेन पालितम् ।। योऽस्यां प्रविशते भूमौ स स्त्री भवति निश्चिम् ।। ४ ।। स राजा मृगयासक्तः प्रविष्टस्तदुमावनम् ।। एकाकी हयमारूढ : क्षणात्स्त्रीत्वं जगाम ह ।। ५ ।। सा बभ्राम वने शून्ये पीनोन्नतपयोधरा ।। क्वाहं कस्य कुतः प्राप्ता न साबुध्यत किञ्चन ।। ६ ।। तां ददर्श बुधस्तन्वीं रूपौदार्यगुणान्विताम् ।। अष्टम्यां बुधवारे च तस्यास्तुष्टो बुधग्रहः ।। ७ ।। ददौ गृहाश्रमं रम्यमात्मीयं रूपतोषितः ।। पुत्रमुत्पादयामास योऽसौ ख्यातः पुरूरवाः ।। ८ ।। चन्द्रवंशकरो राजा आद्यः सर्वमहीभृताम् ।। ततः–प्रभृति पूज्येयमष्टमी बुधसंयुता ।। ९ ।। सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ।। अथान्यदपि ते वच्मि धर्मराज कथानकम् ।। १० ।। कृष्ण उवाच ।। आसीद्राजा विदेहायां निमिर्नामा स वैरिभिः ।। संग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्यातिनिर्धना ।। ११ ।। ऊर्मिला नाम बभ्राम महीं बालकसंयुता ।। अवन्तीनगरं प्राप्य ब्राह्मणस्य

निकेतने ।। १२ ।। चकारोदरपूर्त्यर्थं नित्यं कण्डनपेषणे ।। हृत्वा सा सप्तगोधूमान्ददौ बालकयोस्तदा ।। १३ ।। कारुण्यात्पुत्रवात्सल्यात्क्षुधासंपीडयमानयोः ।। कालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमत्तदा ।। १४ ।। पुत्रतस्या विदेहायां गत्वा स्वपिपुरासन्ने ।। उपविष्टः सत्त्वयोगाद्बुभजे गामनाकुलाम् ।। १५ ।। अन्विष्य धर्मराजेन सा कन्या निमिवंशजा ।। विवाहिता हिता भर्तुः सा महानायिकाभवत् ।। १६ ।। श्यामलानाम चार्वङ्गी सर्वलक्षणसंयुता ।। तामुवाच वरारोहां धर्मराजः स्विकां प्रियाम् ।। १७ ।। वहस्व सर्वव्यापारं श्यामले त्वं गृहे मम ।। कुरुष्व सर्वभृत्यानां दानशिक्षां यथोचिताम् ।। १८ ।। किन्त्वेते प्रवराः सप्तकीलकैरतियन्त्रिताः । कदाचिदपि नोद्घाटयास्त्वया वैदेहनन्दिनि ।। १९ ।। एवमस्त्विति वै प्रोक्ता निजकर्म चकार ह ।। (ततो भुक्त्वा बुधस्याग्रे बान्धवैः प्रीतिपूर्वकम् ।। तावदेव हि भोक्तव्यं यावत्सा कथ्यते कथा) कदाचिद्व्याकुलीभूत्वा धर्मराज विदेहजा ।। २० ।। उद्घाटयित्वा प्रथमं ददर्श जननीं स्विकाम् ।। पच्यमानां च रुदतीं भीषणैर्यमकिंकरैः ।। २१ ।। लीलया क्षिप्यते बद्धा तप्ततैलेषु सा पुनः ।। तथैव तां समालोक्य व्रीडिता सा मनस्विनी ।। २२ ।। द्वितीये प्रवरे तद्वत्तां ददर्श स्वमातरम् ।। यन्त्रे निष्पीडयमानां सा शिलायां लोष्टकेन च ।। २३ ।। तृतीये प्रवरे तद्वत्तामेव च ददर्श सा ।। करिभिः पीडयमाना सा घण्टायुक्तैश्च कल्पितैः ।। २४ ।। श्वभिश्चतुर्थे प्रवरे भीषणैर्दारुणाननैः ।। अभक्ष्यभक्षणाद्यैश्चा क्रन्दन्तीं तां पुनः पुनः ।। २५ ।। पञ्चमे प्रवरे भूमौ कण्ठे पादेन ताडिताम् ।। सन्दंशैर्घनपातैश्च छिद्यमानां सहस्रशः ।। २६ ।। षष्ठे तामिक्षुयन्त्रस्थां मस्तके मुद्गराहताम् ।। संपीडयमानामनिशं सुभृशं दारुखण्डवत् ।। २७ ।। सप्तमे प्रवरे चैव कृमिरूपैः सदारुणैः ।। दृष्ट्वा तथागतां तां तु मातरं दुःखकर्शिताम् ।। २८ ।। श्यामला म्लानवदना किंचिन्नोवाच भामिनी ।। अथागतो यमः प्राह सशोकां श्यामलामिति ।। २९ ।। किमर्थं म्लानवदना तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ।। कारणं तत्र मे ब्रूहि कच्चिन्नोद्घाटितास्त्वया ।। ३० ।। एते प्रवरकाः सप्त निषिद्धा ये पुरा मया ।। इत्युक्ता श्यामला प्राह भर्तारं विनयान्विता ।। ३१ ।। किं नु पापं कृतं राजन् मम मात्रा सुदारुणम् ।। येनेत्थं विविधैर्घोरैर्बाध्यते बहुशस्त्वया ।। ३२ ।। इत्युक्तः प्रियया प्राह तां यमः प्रहसन्निव ।। तव मात्रा सुतस्नेहाद्गोधूमा वै हृताः किल ।। ३३ ।। किं न जानासि तद्भद्रे येन पृच्छसि मामिह ।।

---

१ प्रसिद्धा श्रूयते श्रतविति हेमाद्रौ पाठः २ कोष्टाः भाषायां कोठयीशब्देन सिद्धाः।। हेमाद्रौ तु सर्वत्र प्रवरस्थाने पंजरशब्दो दृश्यते ३ अयं श्लोकः पूर्वोत्तरसंबंधाभावादत्रानुपरुक्तः लोकव्यवहारस्तु चकारहेत्यन्तं कथा श्रवणानंतर भोजनत्यागरूपो दृश्यते । ४ युधिष्ठिरसंबोधनम्

ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।। ३४ ।। तदेव कृमिरूपेण विलश्ना-त्यासप्तमं कुलम् ।। गोधूमास्त इमे भूत्वा कृमिरूपाः सुदारुणाः ।। ३५ ।। ये पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्ते त्वत्कृते मया ।। जानाम्येतदहं सर्वं यत्ते मात्रा कृतं पुरा ।। ३६ ।। श्यामलोवाच ।। तथापि त्वां समासाद्य देवं जामातरं विभुम् ।। मुच्यते तेन पापेन यथा त्वमधुना कुरु ।। ३७ ।। तच्छ्रुत्वा चिन्तयाविष्टश्चिरं ध्यात्वा जगाद ताम् ।। धर्मराजः सुखासीनः प्रियां प्राणधनेश्वरीम् ।। ३८ ।। इतस्त्वं सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी शुभा ।। आसीस्तस्मिंस्तदा सङ्गात्सखीनां पर्युपासिता ।। ३९ ।। बुधाष्टमी तु संपूर्णा यथोक्तफलदायिनी ।। तस्याः पुण्यं ददस्व त्वं सत्यं कृत्वा ममाग्रतः ।। ४० ।। तेन मुच्येत नरकात्ते माता पापसंघकृत ।। तच्छ्रुत्वा त्वरितं स्नात्वा ददौ पुण्यं त्रिवाचिकम् ।। ४१ ।। स्वमात्रे श्यामला तुष्टा तेन मोक्षं जगाम सा ।। ऊर्मिला रूपसंपन्ना दिव्य देहा वरांशुका ।। ४२ ।। विमानं-वरमारुढा दिव्यमाल्याम्बरावृता ।। भर्तुः समीपे स्वर्गस्था दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः ।। ४३ ।। बुधस्य पार्श्वे नभसि निमिराजसमीपगा ।। विस्फुरन्ती महाराज बुधाष्टम्याः प्रभावतः ।। ४४ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। यद्येवं प्रवरा कृष्णा तिथिर्वै तु बुधाष्टमी ।। तस्या एव विधिं ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि माधव ।। ४५ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु पाण्डव यत्नेन बुधाष्टम्या विधिं शुभम् ।।यदायदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेन्नृप ।। ४६ ।। तदातदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशनैर्नृभिः ।। स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे गृहीत्वा करकं नवम् ।। ४७ ।। जलपूर्णं च सद्रत्नैः कृत्वानर्घ्यैः समन्वितम् ।। सूजयेच्च गृहं नीत्वा बुधमेवं क्रमेण तु ।। ४८ ।। एकमाषसुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। कारयेद्बुधरूपं तु स्वशक्त्या वा प्रयत्नतः ।। ४९ ।। अंगुष्ठ-मात्रं पुरुषं चतुर्बाहुं सुलक्षणम् ।। पद्ममध्येऽव्रणं कुम्भं पूजयेत्सिततण्डुलैः ।। ५० ।। हेमपात्रे च संस्थाप्य पीतवस्त्रयुगेन च ।। वस्त्रोपरि स्थितं देवं पीतवस्त्राक्षता-दिभिः ।। ५१ ।। पञ्चामृतेन संस्नाप्य तत्तन्मन्त्रैः क्रमेण तु नैवेद्यं गुग्गुलुं धूपं दशाङ्गेन सुगन्धितम् ।। ५२ ।। पायसैर्घृतपूरैश्च मोदकाशोकवर्तिभिः ।। फलैश्च विविधैश्चैव शर्कराभिर्गुडैः शुभैः ।। ५३ ।। ततः पुष्पाक्षतैः पीतैर्वक्ष्यमाणैश्च नामभिः ।। नमो बुधाय पादौ तु सोमपुत्राय जानुनी ।। ५४ ।। तारकाय कटी चैव राजपुत्राय चोदरम् ।। इलाप्रियाय हृदयं कुमारायेति वक्षसि ।। ५५ ।। बाहू पुरूरवःपित्रे अंसौ सोमसुताय च ।। मुखं तु पीतवर्णाय ज्ञानाय नयनद्वयम् ।। ५६ ।। मूर्धानं तु बुधायेति एषु स्थानेषु पूजयेत् ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं पात्रमादाय शोभ-नम् ।। ५७ ।। गन्धपुष्पाक्षतैः पीतैर्गुडमिश्राम्बुपूरितैः ।। जानुभ्यामवनिं गत्वा

तेन चार्घ्यं निवेदयेत् ।। ५८ ।। उर्वश्याः श्वशुरो यस्तु यः पुरूरवसः पिता ।। यो ग्रहाणामधिपतिर्बुधो मे संप्रसीदतु ।। ५९ ।। वरांश्च विष्णुना दत्तान् सकलान्नः प्रयच्छतु ।। मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं जप्त्वा मन्त्रमिमं पुनः ।। ६० ।। प्रथमे मोदकान् दद्याद्द्वितीये फेणिकास्तथा ।। तृतीये घृतपूराश्च चतुर्थे वटकांस्तथा ।। ६१ ।। पञ्चमे मण्डकान् दद्यात्षष्ठे सोहालिकास्तथा ।। अशोकवर्तिकाश्चैव सप्तमे मासि कारयेत् ।। ६२ ।। अष्टमे शर्करामिश्रैः खाण्डवैश्च युधिष्ठिर ।। विप्राय वायनं दद्याद्व्रती भोजनमाचरेत् ।। ६३ ।। एवं क्रमेण कर्तव्यं बुधाष्टम्यां युधिष्ठिर । बांधवैः सह मित्रैश्च भोक्तव्यं प्रीतिपूर्वकम् ।। सौम्यमाख्यानकं शृण्वन्नरकेभ्यो विमुच्यते ।। ६४ ।। यश्चाष्टमीं बुधयुतां समवाप्य भक्त्या संपूजयेच्छशिसुतं करकोपरिस्थम् ।। पक्वान्नपात्रसहितं सहिरण्यवस्त्रं पश्यत्यसौ यमपुरीं न कदाचिदेव ।। ६५ ।। इति भविष्योत्तरपुराणोक्ता बुधा[१]ष्टमीव्रतकथा ।। अथोद्यापनम् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि कृपया भक्तवत्सल ।। कस्मिन्काले च किं द्रव्यं कथं सफलभाग्भवेत् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। आदौ मध्ये तथा चान्ते कुर्यादुद्यापनक्रियाम् ।। सप्तम्यां प्रयतो भूत्वा कुर्याद्वै दन्तधावनम् ।। आचम्य कुर्यात्संकल्पं दशविप्रान्निमन्त्रयेत् ।। अष्टम्यां प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा व्रती ततः ।। गङ्गाद्यादिमहातीर्थे स्नात्वा नित्यकृतक्रियः गृहमध्ये शुचौ देशे रङ्गवल्लया विराजिते ।। पुण्याहवाचनं कृत्वा कुर्याद्रक्षाविधानकम् ।। प्राणानायम्य विधिवत्कृत्वा संकल्पनादिकम् ।। तिथ्याद्युल्लेखनान्ते च व्रतनाम प्रकीर्तयेत्।।मया कृतं बुधाष्टम्यां व्रतं साङ्गफलाप्तये ।। उद्यापनं करिष्येऽहमित्यक्षतकुशोदकम् ।। त्यक्त्वाचार्यादिवरणं कुर्याद्वस्त्रादिभिः फलैः ।। ब्रह्माणं वृणुयात्तत्र वस्त्रतांबूलभूषणैः ।। ततः पूजादिकं कुर्याद्ग्रहयज्ञपुरःसरम् ।। ततस्त्वष्टदलं कुर्यान्मध्ये कर्णिकया सह ।। पञ्चवर्णैः समापूर्य दलाग्राणि च केसरान् ।। कर्णिकायां न्यसेद्धान्यं पञ्चप्रस्थप्रमाणतः दलेषु च दलाग्रेषु यथाशक्त्या विनिक्षिपेत् ।। तत्रैव स्थापयेत् कुम्भान्मध्ये पूर्वादिक्षु च ।। गङ्गाजलेन संपूर्य वस्त्रादिभिरलङ्कृतान् ।। पञ्चत्वक्पल्लवोपेतान्नवकुम्भान्यथाविधि ।। तदुत्तरे ग्रहान्सर्वान्मंडले स्थापयेत्ततः ।। तत्पूर्वे स्थापयेत्कुम्भं वारुणं च विशेषतः ।। वस्त्रत्वक्पल्लवफलैः पञ्चरत्नैः सकाञ्चनैः ।। तत्तन्मन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य पूजयेच्च यथाविधि ।। सप्तजन्मार्जितं चोपपातकादि च यत्कृतम् ।। तद्दोषपरिहाराय बुधाष्टमीव्रतं कृतम् ।। तस्य साङ्गफलप्राप्त्यै पूजां होमं करोम्यहम् ।। बुधप्रीत्यै च तत्सर्वमिति संकल्प्य पूजयेत् ।। कर्षमात्रेण राजेन्द्र तदर्धार्धेन वा पुनः ।। बुधस्य प्रतिमां कुर्यात्सुवर्णेन विचक्षणः ।। कर्णिकायां मध्यकुम्भे ताम्रपात्रे बुधं न्यसेत् । पञ्चामृतेन स्न[२]पनं वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ।। ध्याय-

१ अत्र हेमाद्रौ पाठवैषम्यं श्लोकाधिक्यं च बहुतरं दृश्यते २ कृत्वेति शेषः

न्नारायणं देवं बुधं बाणसमाकृतिम् ।। चतुर्भुजं शंखचक्रगदाशार्ङ्गधरं जयेत् ।। आत्रेयं पीतवस्त्रं च पीतपुष्पाक्षतादिभिः ।। उपचारैः षोडशभिः पुरुषसूक्तविधानतः ।। तद्दक्षिणे विष्णुमिदंविष्णुरित्यधिदैवतम् । सहस्रशीर्षापुरुषं वामे प्रत्याधिदैवतम् ।। दलेषु विन्यसेद्देवान् प्रागारभ्य प्रदक्षिणम् ।। रविं चन्द्रं कुजगुरू शुक्रार्की राहुकेतुकौ ।। अनन्तं वामनं विष्णुं शौरिं सत्यं जनार्दनम् ।। हंसं नारायणं चाष्टौ दलाग्रेषु च पूजयेत् ।। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः फलैश्च विविधैर्यजेत् ।। बहिरिन्द्रादयः पूज्या दशदिक्पालकास्तथा ।। यमं च चित्रगुप्तं च श्यामलां दक्षिणे यजेत् ।। कुम्भेषु वंशपात्रेषु अष्टावष्टौ च लड्डुकान् ।।यज्ञोपवीत सफल दक्षिणासहितान्न्यसेत् ।। पूजयित्वा ततो होम[१] शाखोक्तविधिना सुधीः ।। मण्डलात्पश्चिमे भागे स्थण्डिलं चतुरस्रकम् ।। कृत्वा तूल्लेखनादीनि कृत्वाग्निं स्थापयेत्सुधीः ।। इध्मं दर्भैः परिस्तीर्य पात्रासादनमाचरेत् ।। पूर्णपात्रविधानान्ते ब्रह्मसनमतः परम् ।। इध्माधानमुखप्रान्ते प्रधानाहुतिहावनम् ।। अपामार्गसमिद्भिश्च यवव्रीहितिलैर्घृतैः ।। गोधूमैः सतिलैर्होमं पृथक्पृथगतन्द्रितः ।। उद्बुध्यस्वेति मन्त्रेण होममष्टोत्तरं शतम् ।। कृत्वा तु विष्णुमन्त्रेण तथा नारायणं हुनेत् ।। अधिप्रत्यधिदेवौ च मन्त्राभ्यां जुहुयात्तथा ।। ग्रहादिभ्यश्च जुहुयात्प्रायश्चित्तादिकं तथा ।। पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कुर्याद्ब्रह्मविसर्जनम्।। पूर्णपात्रोद्वासनं च बलिदानमतः परम् ।। वह्न्यादिपूजनं कृत्वा देवतोद्वासनं ततः ।। अभिषिच्याथ तिलकं रक्षाबन्धनमेव च ।। आचार्यं च सपत्नीकं पूजयित्वा यथाविधि ।। प्रतिमावस्त्रकलशान् गोदानं दक्षिणां तथा ।। दत्त्वा ब्रह्मादिविप्रेभ्यः कलशांश्च सदक्षिणान्।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादाशिषो वाचयेत्तथा ।। इति भविष्योत्तरपुराणे बुधाष्टमीव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

बुधाष्टमीव्रत--बुधवारी अष्टमीको होता है । इसमें अष्टमी नवमीसे युक्ता लेनी चाहिये, क्योंकि, शुक्लपक्षकी अष्टमी और शुक्लपक्षकी चतुर्दशी पूर्वविद्धा न करे किन्तु पर संयुक्ता करनी चाहिये, यदि दो दिन उसकी व्याप्ति हो अथवा न हो तो पूर्वा लेनी चाहिये, यदि मुहूर्तमात्र भी हो तो भी परालेनी चाहिये । (ग्रन्थकारने बुधवारी शुक्लाष्टमीको बुधाष्टमीव्रतका विधान किया है । अष्टमी तिथि पूर्वविद्धा और परयुता दोनोंही मिलसकती है, केवल अष्टमीका ही विचार हो तो पूर्वाके ग्रहणका ऊपर कहाहुआ विचार होसकता है पर यह व्रत वारप्रधान मालूम होता है, वार दो नहीं हो सकते, इस कारण लेखककी कहीहुई बुधवारी अष्टमी दो दिन नहीं मिलसकती । इस कारण उसके लिये ऐसा विचार करना उचित नहीं जानपडता । इसीतरह अष्टमीके ग्रहणका विचार भी केवल त्याग और ग्रहणमात्रकाही मालूम होता है कि, बुधवारको पूर्वविद्धाका ग्रहण न करे परयुता हो तो उसमें व्रत करें पर इस पूर्वनिर्णीत सिद्धान्तके साथ भी "दिनद्वयोः" इस पंक्तिका विरोध होता है, इसके सिवा निर्णयसिन्धुमें लिखा है कि, व्रतमात्रमें कृष्णाष्टमी पूर्वा और शुक्लाष्टमी परा ग्रहणकी जाती है ऐसा माधवका मत है । दीपिकामें भी यही लिखा है कि, परयुता शुक्लाष्टमी और पूर्वविद्धा कृष्णाष्टमी ग्रहणकी जाती है, किन्तु शिव और शक्तिके उत्सवोंमें कृष्णाष्टमी भी परयुता या उत्तराही लीजाती है । यह माधवका कथन है, दिवोदासीयमें भविष्यसे लिखा है कि हे राजन् !

---

१ कुर्यादिति शेषः

जब जब शुक्लाष्टमी बुधवारी हो तब तब उसे एक भक्तवाले पुरुषको ग्रहण करनी चाहिये किन्तु संध्या-काल चैत्र और जनार्दनके शयनमें बुधाष्टमी न करनी चाहिये, क्योंकि, करनेसे पूर्व पुण्योंका नाश करती है, इ सका आखिरी "हन्ति पुण्यं पुराकृतम्" इतना टुकडा नहीं रखा है । इससे निषेध तक तो उसके यह, भी सिद्धही है कि, इनमें बुधाष्टमी भी करनी चाहिये ।। इसे देखकर हम इसी सिद्धान्तपर पहुंचे हैं कि, वार प्रधान माननेपर तो इस विचारकी कोई संगति ही नहीं है । यदि वार प्रधान न हो तो उस समयभी पूर्वविद्धाके ग्रहणका निषेध करनेवाला वाक्य स्वयंही निर्णायक होगा । उस पक्षमें भी इसकी आवश्यकता नहीं है इस सबके ऊपर दृष्टिपात करनेसे सुतरां हम इस निश्चयपर पहुंच जाते हैं कि यह पाठ सर्वथा असंगत है इसकी कोई आवश्यकता नहीं है ।) चैत्रमासमें, सन्ध्यामें, जनार्दनके शयनमें बुधाष्टमी न करे, करे तो पूर्वपुण्यका नाश होता है ।। व्रतविधि–प्रथम चावल जल और कुछ द्रव्य हाथमें लेकर 'ओं तत्सत्' इत्यादि देश, काल और अपने गोत्र नामादिकोंका उल्लेख करके 'मम' इस मूलमें उल्लिखित वाक्यसे संकल्प करे और उन चावल, जल और द्रव्यको छोडे । 'मम' इसका अर्थ है कि, मैंने अपने इस जन्ममें तथा दूसरे जन्मके बाल्यावस्थासे लेकर अबतकके शरीरसे, मनसे और वाणी से एवं जानसे या अनजानसे दूसरेके द्रव्यादिका जो अपहरण किया है, उस पापकी निवृत्ति तथा पुत्र पौत्रादिकोंकी सम्पत्ति एवं दूसरे दूसरे सभी मनोरथोंकी पूर्ति तथा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये बुधाष्टमीके व्रतको करूँगा और उस बुधाष्टमीमें विहित बुधपूजनको भी करूंगा । बुधदेव की मूर्ति बनवाकर कलशपर स्थापित करे, षोडश उपचारों से पूजन करे । 'ध्यायेऽहं' इस मन्त्रसे प्रथम बुधदेवका ध्यान करे । इसका यह अर्थ है कि, चतुर्भुज, ग्रहोंमें श्रेष्ठ अत्यन्त प्रसन्न मुखारविन्दवाले, शख, चक्र, खड्ग, और पाशसे शोभायमान चार हाथवाले इलाके वल्लभ (पति) बुध देवका मैं ध्यान करता हूं । पीत पुष्पोंकी माला और पीताम्बरको धारण करनेवाले, कर्णिकारके समान कान्तिवाले, खड्ग चर्म्म और गदाधारी, सिंहवाहन बुधदेव वर देनेवाले हैं । 'तारासुत' इससे आवाहन करे । इसका यह अर्थ है कि, हे तारानन्दन ! हे नक्षत्राधीश चन्द्रमाके प्रिय पुत्र ! हे ग्रहोंमें मुख्य बुध ! आप यहां पधारें मैं आपका पूजन करता हूँ । आप स्वीकार करें। आपके लिये नमस्कारहै "ओं उद्बुध्यस्वाग्नेप्रतिजागृति त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयञ्च, अस्मिन् सधस्थेऽ-अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत" इस मंत्रका यज्ञमें विनियोग किया है । अग्नि देवता, पर-मेष्ठी ऋषि और आर्षीत्रिष्टुप माना है । इसका अर्थभी अग्नि देवके विषयमें ही किया है । पर कर्मकाण्ड मंत्रसंग्रहमें इसे बुधके आवाहनमें इसका विनियोग किया हैइस कारण इसका बुधपरक अर्थ करते हैं–आप बुधदेव हैं आपसावधान हों मेरे आह्वानको सुनकर यहाँ पधारें। आप इष्टापूर्त और निरोगताके देने वाले हैं, इन सबके साथ बैठनेके स्थानमें आपबैठेंजहां कि, सब देवता औरयजमान बैठे हैं। इसमंत्रसे मध्यमें बुधका आवाहन करके "इदं विष्णुर्विचत्तमे" इस मंत्रसे अधिदेव विष्णु भगवान्का आवाहन करके प्रत्यधिदेव नारायण भगवान्का पुरुषसूक्तसे आवाहन करे (इनका पहिले अर्थ कर चुके हैं) 'इलापते' इस मंत्रसे बुधदेवके लिये आसन दे । इसका यह अर्थ है कि, हे इलावल्लभ ! हे चन्द्रमाके प्रियनन्दन ! आपके लिये प्रणाम है । आप मुझ पर प्रसन्न हों, सुवर्णके सिंहासनपर विराजिये । 'शीतलोदक' इस मंत्रसे पाद्य दान करे । इसका यह अर्थ है कि, देवेश ! आपके पाद प्रक्षालन करनेके एवं पापोंसे निर्मुक्त होनेके लिये पवित्र नदियोंसे शीतल पानी लाया हूँ । इस पाद्यको आप ग्रहण करें । 'तारासुत' इससे अर्घ्यदान करे । अर्थ यह है कि, हे तारानंदन ! हे भगवान्के पियारे ! हे ग्रहपते बुध ! आप पूगीफलादि समेत इस अर्घ्यपात्रको ग्रहण कीजिये । सुगंधद्रव्य इससे आचमनीय पात्रसे आचमन करावे । इसका यह अर्थ है कि हे निशानाथके नन्दन ! आप मेरे भलेके लिये सुगन्धित, पवित्र, मधुर नदीजलसे पूर्ण इस आचमनीय पात्रको लेकर आचमन कीजिये । 'पयोदधि' इससे पंचामृत स्नान करावे । इसका यह अर्थहै कि हे प्रभो ! दुग्ध, दधि, घृत, मधु और शर्करा इन पांचोंअमृतोंको आपके स्नान कराने के लिए लाया हूं । आप ग्रहण करें । 'वासितं' इस मंत्रसे शुद्ध स्नान करावे । इसका यह अर्थ है कि, चन्दन कपूरसे सुगन्धित निर्म्मल जल आप के स्नान करानेके लिये लाया हूँ । एवं भक्तिसे समर्पित करता हूँ आप इसे लीजिये,

जिससे यह व्रत पूर्ण हो अतो देवा यह ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय दोका सातवां छः ऋचाओंका सूक्त है ।। (इसमेंसे-"अतोदेवा" तथा "इदं विष्णु:" इन दोनों मंत्रोंकी व्याख्या ३९ वे पृष्ठमें कर चुके हैं) "ओं त्रीणि पदा विचक्रमें विष्णुर्गोपाऽअदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन्" किसीसे किसी तरह भी न दबाये जानेवाले सबके रक्षक विष्णु भगवान्ने हव्यवाह अग्निके रूपसे तीन अग्नि कुण्डोंमें अथवा वामन रूप से तीन पदोंसे अतिक्रमण किया । अग्निसे यज्ञादिक धर्म तथा उपेन्द्ररूपसे इंद्रका परिपालन और वात्सल्यादि धर्मों को धारण किया । "ओं विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे, इंद्रस्य युज्यः सखा ।" जिस कारण व्रतोंका निर्माणं किया है विष्णु भगवान्के उन कर्मोंको जानों । ये इंद्रके योग पाने योग्य सखा हैं ।। "ओं तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्" प्रकाशशील वैकुण्ठमें जिसके लिये कि, ऋषि मुनि यत्न करते करते थक गये पर न पासके उस परमपदको यानी आश्रितवत्सल भगवच्चरणको विष्वक् सेनादि अनंत कोटि सूरि निर्मिमेष दृष्टिसे देखते रहते हैं, अथवा जैसे आवरण रहित आकाशमें आँख खोलकर सब कुछ देखलेते हैं इसी तरह परा भक्तिके परमात्माके परमपदको देखा करते हैं । "ओं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समन्धते, विष्णोर्यत् परमं पदम् ।" विष्णु भगवान्का जो परमपद है उसे वे विचारशील मेधावी एवम् अपने पथपर सदा जगेहुए स्तुति शील सुजन ही देखते हैं । वे ही वैकुण्ठमें जाकर देदीप्यमान् होते हैं । इन छः मन्त्रोंसे पुरुष सूक्त और 'उदबुध्यस्व' इससे बुधको स्नान कराना चाहिये । (अधिदेवता प्रत्यधिदेवता और देवताके क्रमसे तो यही ध्यानमें आता है कि, अतोदेवा आदि छः मन्त्रोंसे विष्णु भगवान् को तथा पुरुषसूक्तसे नारायणका एवम् उद्बुध्यस्व इससे बुधको स्नान कराना चाहिये क्योंकि आवाहनमें यही क्रम है) 'पीत वस्त्र, इससे वस्त्र चढ़ावे । इसका यह अर्थ है कि, राजाओंके वंशको उत्पन्न करनेवाले हे प्रभो ! हे उर्वशीके पति पुरूरवाके जनक ! आप मुझपर कृपा करनेको इन दोनों पीतवस्त्रोंको स्वीकार करें । 'यज्ञोपवीतकम् इससे यज्ञोपवीत चढावे । इसका यह अर्थ है कि, हे देवताओंके पियारे हे बुध ! आप त्रिगुणित सूत्रवाले यज्ञोपवीतको लीजिये । मेरे पापोंका नाश करनेके लिये मुझे अनुगृहीत करें । 'हरिचन्दन' इससे चन्दन चर्चित करे । यह इसका अर्थ है कि, हे इलाके प्राणनाथ ! चन्दन, कस्तूरी, कपूर और केसर इनसे मिश्रित इस गन्धसे आपको चर्चित करता हूं, आपके लिये प्रणाम है । 'अक्षतांश्च' इससे चावल और 'माल्यादीनि' इससे पुष्पोंको चढावे । अङ्ग पूजा-बुध, सोमपुत्र, तारक, राजपुत्र, इलाप्रिय, कुमार पुरूरवः पिता, (पुरूरवाराजाके पिता) सोमसुत, पीतवर्ण ज्ञान, बुध, सोमसुनु ये बारह नाम हैं तथा पाद जानु, कटि उदर, हृदय, वक्षःस्थल, बाहु, स्कन्द, मुख, नेत्र, मूर्धा और सर्वाङ्ग ये बारह हैं । पहिले कहे हुए नामोंके मन्त्रोंसे से एकएकसे एक अङ्गका पूजन होता है । वाक्य योजनाका वही पहिला तरीका है । 'वनस्पति' इस पूर्वव्याख्यातमंत्रसे धूप, 'साज्यं च वर्त्तिसंयुक्तं' इससे दीपक 'नैवेद्यं गृहतां' इससे नैवेद्य, 'पूगीफलं महद्दिव्यं' इससे ताम्बूल और पूगीफल, 'इदं फलं मया' इससे ऋतुफल, 'हिरण्यगर्भगर्भस्थं' इससे दक्षिणा, "श्रियेजातः" इससे नीराजन 'ओं उद्बुध्यस्वाग्ने" इससे पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । उर्वश्याश्च' इससे विशेष अर्घ्यदान करे । अर्थ यह है कि, जो उर्वशीका वल्लभ राजा पुरूरवा हुआ है, उसके पिता और सब ग्रहोंमें सुन्दरजो बुध हैं वे हमपर प्रसन्न हों अर्घ्यग्रहण करें । 'यानिकानिच' इससे प्रदक्षिणा करके अंजलि जोड साष्ठाङ्गप्रणाम वारबार करे, 'आवाहनं न जानामि' इससे प्रार्थना करे। 'सन्तुष्टो वायना' इससे गुरुको वायना प्रदान करे । अर्थ यह है कि, ताम्बूल और आठ लड्डू के वायने देनेसे इलापति ग्रहश्रेष्ठ बुध प्रसन्न होते हैं । अतः ताम्बूलादिकोंका वायना दान करता हूं, आप अङ्गीकार करें ।। कथा-श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजन् ! हे पाण्डुनन्दन ! जिस व्रतके करनेसे मनुष्य कभी भी नरकका द्वार नहीं देखता मैं उसी बुधाष्टमीके व्रतको कहता हूं ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले कि, हे दयानिधान ! वह बुधाष्टमी व्रत किस प्रकारका होता है ? उसके करनेसे किस पापकी निवृत्ति होती है ? आप निश्चयकरके एक यथार्थ तत्त्व जो उसे कहिये ।। २ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, पहिले सत्ययुगके आरम्भकालमें एक इलनामक राजा हुआ था । (इस राजाका दूसरा नाम 'सुद्युम्न' था ।) वह किसी समय बहुतसे किंकर पियारे मित्र एवं

मन्त्रियोंको संग ले ।। ३ ।। हिमालय पर्वतके एक पार्श्ववर्त्ती प्रदेशमें गया जो महादेवजीसे पालित था। उसमें घुसनेवाला जरूरही स्त्री बनजाता था ।। ४ ।। मृगया विहारमें आसक्त हो उमावनमें घुसगया, जैसे कि सवसङ्गियोंको पीछे छोड घोडेपर आरूढ हुआ एकाकी हो उस वनमें प्रविष्ट हुआ वैसेही स्त्री होगया ।। ५ ।। (वह पार्वतीके विहार करनेका रहोवन था, इसीसे उमावन कहते हैं । इसमें प्रवेशके विषय में महादेवजीकी यह आज्ञा है कि, जो कोई यहां पुरुष चिह्नवाला प्राणी आवेगा, वह उसी क्षण अवश्यही स्त्री चिह्न धारी हो जायगा ।) इसीलिये यह पीन उन्नतस्तनोंसे सुन्दर, सुभ्र हो शून्य वनमें इधर उधर अपने अनुयायियोंकी खोजमें घूमने लगा । वह इलारानी अपने मनमें शोचने लगी कि, मैं कहां आगयी यह स्थान किसका है ? मैं यहां कैसे चली आयी ? पर उसे पहले नामरूपका भी स्मरण न रहा ।। ६ ।। ऐसे सुन्दररूप और दिव्य यौवनसे सम्पन्न हुई उस इलारानीको चन्द्रसुत बुध देखकर कामासक्त होगये । वह बुधाष्टमीका दिन था । जिस दिन बुधजीने उस इलारानी पर संतुष्ट हो आसक्ति की थी ।। ७ ।। उसके सौन्दर्यको देख चन्द्रनन्दनने अपने गृहकी नायिका बनायी । उसमें उन्होंने एक पुत्र उत्पन्न किया । उसका नाम "पुरूरवा" हुआ ।। ८ ।। यही पुरूरवा चन्द्रवंशी सब राजोंका वंशप्रवर्तक आदिमें सम्राट् हुआ इसी समयसे यह बुधाष्टमी अत्यन्त पूज्य हुई ।। ९ ।। इसीसे इस दिन बुधकी प्रसन्नताके निमित्ति जो बुधका पूजन, व्रत और दानादि करते है उनके सब पापोंकी शान्ति एवं समस्त उपद्रवोंकी निवृत्ति होती है । हे धर्म्मराज ! इस बुधाष्टमीके विषयमें और भी कुछ कथा कहता हूं, उसे भी सुनो ।। १० ।। पूर्वकालमें विदर्भा (मिथिला) नगरीमें निमिनामका राजा था । शत्रुओंने परस्परमें मिलकर उस वीरको संग्राममें मार उसका राज्य अपने अधीन कर लिया उसकी रानीके पास कुछ न रहने दिया ।। ११ ।। निर्धना ऊर्मिला रानी अपने छोटी अवस्थावाले पुत्रीपुत्रोंको साथ लेकर अन्न वस्त्रकी चिन्तामें इतस्ततः घूमती हुई उज्जयिनी नगरी आ पहुंची । एक ब्राह्मणके ।। १२ ।। कूटने पीसनेके कामपर नियुक्त होकर उदर पूर्ति करनेलगी । उसने उसके गेहूंओंमेंसे सात गेहूंके दाने उठाकर अपने दोनों बालकोंको चाबनेके लिये दे दिये ।। १३ ।। क्योंकि वे बालक क्षुधासे अत्यन्त पीडित हो रहे थे । सन्तानमें स्वाभाविक वात्सल्य प्रेमभी हुआ ही करता है । वह साध्वी बहुत समय बीतनेपर मर गयी ।। १४ ।। उसके पुत्रने अपने पिताके अनुरूप स्वाभाविक ओजस्यिता धारणकर उसी विदर्भापुरीमें अपने पिताके आसनपर बैठकर अपने बलसे भूमिको निःसपत्न करके भोगा ।। १५ ।। उस अपनी बहिनको, वरकी खोज करके धर्म राजके साथ व्याहदी ! वह पतिकी हितकारिणी महानायिका हुई ।। १६ ।। श्यामला उसका नाम था । अंगना थी सभी श्रेष्ठ लक्षण उसमें थे । धर्मराज सर्वाङ्ग सुन्दरी अपनी प्यारीसे बोला ।। १७ ।। कि हे श्यामले ! मेरे घरका सब कामकाज तू कर । एवम् नौकर चाकरोंको यथार्थ रीतिसे शिक्षा दे ।। १८ ।। किन्तु देख । ये सात कोठे या पिंजडे कीलोंसे खूब बन्दकर रखे हैं, हे वैदेह नन्दिनि ! इन्हें कभी भूलकरभी मत खोलना ।। १९ ।। फिर "एवमस्तु" अर्थात् जैसी आपने आज्ञा की है, वैसेही सब किया जायगा, और वैसाही हो । इस प्रकार स्वीकार कर अपने उचित कार्य करने लगी । (यहांपर एकश्लोक पूर्वापर कथासे विरुद्धार्थक मिलता है, अतः वह प्रक्षिप्त है । उसका अर्थ यह है कि, फिर अपने बान्धवोंको समीप बैठाकर बुधके सम्मुख प्रसन्न चित्त होकर भोजनकरे । भोजनभी तवतकही करना चाहिये, जबतक वह कथा कही जाय । अर्थात् कथा सुननेके समयही व्रतका विसर्जन करके भोजन करे) पीछे हे धर्मराज ! किसी समय प्रमादवश हो विदर्भ नन्दिनी श्यामला देवीने ।। २० ।। एक कीला निकालकर पहिलाप्रवर ((पींजरा) देखा । उसमें देखा कि, मेरी माता यहां कैद है । यमराजके भीषण किंकर उसे पीडित कर रहे हैं । वह रोती है।। २१।। निर्दय किंकर उसे बारबार बांधकर तप्त तैलसे भरेहुए कडाहोमें पटकते हैं । यह उन्होंने एक खेलकर रखा है । इस प्रकार अपनी माताकी दशा अपने यहां देखकर वह मनस्विनी श्यामलादेवी लज्जित होगयी ।। २२ ।। फिर उसके मनमें आतंक हो गया । इससे दूसरे प्रवरे (पींजरे) को उद्घाटित करके देखा । वहांपरभी वही अपनी माता है, जैसे ऊखको या कपास आदिको यन्त्रमेंदेकर पेलते तथा शिलापर पीसते हैं, ऐसेही उसेभी करतेहैं ।। २३ ।। कभी

शिलाके ऊपर बैठाकर लोष्टंकोंसे पीसते हैं। फिर वैसेही तीसरा प्रवर (पिञ्जरा) खोला, उसमेंभी वैसेही अपनी माताको देखा । बडीबडी घण्टा जिन्होंके दोनों ओर लटकरही हैं, ऐसे हाथी उसे अपनी सूंडसे उठा उठाकर नीचे पटकते हैं बारबार ठोकरोंसे ठुकराते हैं ।। २४ ।। फिर चतुर्थ प्रवर (पिंजर) देखातो उसमें भी भयंकर दंष्ट्रा और दन्तवाले भयंकर मुख कुत्ते खारहे हैं और कभी जो अभक्ष्य(मलमूत्रादि) भक्षण करनेके लिये उद्यत कर उसे रुलाते हैं । कभी कुवाक्योंसे बारबार दुखी करते हैं । वही माता रोरही है ।। २५ ।। पञ्चम प्रवर (पिञ्जर) खोला तो उसमें भी माताको सताते मिले । उसे नीचे पटककर-शिरमें लात मारते हैं । सँडासियोंसे कण्ठको पकडकर वस्त्रकी भांति निचोडते हैं । कभी सहस्त्रों घनोंसे पीडितकर छिन्न-भिन्न करते हैं ।। २६ ।। छट्ठे प्रवरको (पिंजडे को) जब खोलकर देखा. तब उसमें भी अपनी माताकी वैसी दुर्दशा हो रही है । ऊखके रस निकालनेके यन्त्रमें दबाके उसके मस्तकपर मुद्गरोंका प्रहार करते हैं । कभी जैसे काष्ठको ताँछते हैं, ऐसे ही बारबार इसेभी ताँछते हैं ।। २७ ।। पीछे सप्तम प्रवर (पिञ्जर) के द्वारका कीला दूरकर खोला । उसमें भी माता उसीप्रकार पीडित की जाती है । भयंकर कृमियां खा रहे हैं वो अत्यन्त दुःखी है ।। २८ ।। पर उस संकटमें जीती हुई अपनी दुःखित माताके दुःखको देखके श्यामला देवी शोकग्रस्त होगयी । मुखम्लान होगया । चुपचाप होकर एक जगह पडगयी । फिर यमराज आये, उन्होंने अपनी प्रियाको शोकग्रस्त देखपूछा कि ।। २९ ।। हे भामिनी ! क्यों उदास हो रहीहो ? हे अनिन्दिते ! खडी हो । तुमें क्या चिन्ता है ? उसका कारण कहो । क्या तुमने वे प्रवर (पिञ्जरे) तो नहीं खोले हैं ।। ३० ।। मैंने इनको खोलनेकी मनाही पहिले ही कीथी । ऐसे जब अपने प्राणप्रिय धर्म्मराजजीने पूछा, तब श्यामलाने अपनेशिरको उनके चरणोंमें टिकाके प्रार्थना की ।। ३१ ।। कि, हे राजन् ! मेरी माताने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था, जिसके कारण आप उसे इस प्रकार नाना तरहसे पीडित करते हो ।। ३२ ।। हे राजन् ! जब इस प्रकार प्रियाने पूछा तो उस प्रश्नको सुन मन्दमन्द हंसते हुए धर्मराज बोले कि, तुम्हारी माताने तुमारे स्नेहसे (ब्राह्मणके सात) गोधूम उठालिए थे ।। ३३ ।। हे भद्रे ! क्या तुम उस चोरीको भूल गयी हो ! या नहीं जानती हो ? जो मुझसे तुम पूछती हो । याद रखना कि ब्राह्मणका अन्न प्रेमसे भी यदि खाया जाय तो भी वह अन्न खानेवालेके सात कुलोंको दग्ध करता है ।। ३४ ।। इसीसे तुम्हारी माता सप्तम कुलतक कृमि आदिकों से पीडित हो रही है । (ये प्रवर (पिञ्जर) कुलही हैं) वेही गोधूम भयंकर कीडे हो गए हैं ।। ३५ ।। जो पहिले तुम्हारे लिए ब्राह्मणके घरसे चोरे थे, जो तुम्हारी माताने पहिले किया था उसे मैं जानता हूँ ।। ३६ ।। श्यामलाबोली कि, हे प्रभो ! फिरभी आप उसके जामाता हैं, सर्वथा प्रभु हैं; आपका इस प्रकार आश्रय होते हुए वह किसी प्रकार उस पापसे छूटे. उस उपायको आप करें ।। ३७ ।। श्यामलाके वचनसुनकर धर्मराज पहिले तो बहुत चिन्तामें हुए, बहुत समयतक विचार किया, फिर शोचकर अच्छी तरह अपने आसनपर विराजमान हो अपनी प्राणेश्वरीसे बोले ।। ३८ ।। कि इस जन्मसे पूर्व सप्तम जन्ममें तुम ब्राह्मणी थी । उसमें तुमने अपनी सखियोंसे मिलकर बुधाष्टमीका व्रत किया था उसकी जो विधि है तदनुसार उपवासकर वह व्रत संपूर्ण किया था । अब तुम अपनी इस माताको मेरे सम्मुख सत्यप्रतिज्ञाकर उस व्रतके पुण्यको दे दो ।। ३९ ।। ४० ।। जिसके प्रतापसे अभी तुम्हारी माता पापपुञ्जके क्लेशसे निर्मुक्त हो जायगी । अपने प्राणप्रिय धर्मराजके इन बचनोंको सुन श्यामलादेवीने झट स्नान किया और प्रसन्न हो तीनवार प्रतिज्ञा करके यानी संकल्प वाक्य को तीनवार पढके, पुण्यफल दे दिया ।। उसके मिलते ही श्यामलाकी माता उर्मिला पीडासे निर्मुक्त हो दिव्यशरीर दिव्याम्बर धारणकर ।। ४१ ।। ४२ ।। दिव्य विमानपर आरूढ हो दिव्यमाला धारणकरती हुई अपने पति निमिके समीप पहुँच गयी । आज भी सब मनुष्य उसे अपने पति के समीप स्वर्गमें (आकाशमें) दीप्यमान देखते हैं ।। ४३ ।। उसका वह स्थान बुधके पास निमिके पार्श्वमें है । वह बुधाष्टमीव्रतके प्रभावसे हे राजा युधिष्ठिर ! अबभी चमक रही है ।। ४४ ।। युधिष्ठिर बोले कि, हे कृष्ण ! यदि ऐसी ही उत्तम बुधाष्टमी तिथि है तो उसीकी विधिको आप मुझे कहें, हे माधव ! यदि आप मुझ पर अनुग्रह रखते हैं ।। ४५ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे पांडुनन्दन ! आप चित्तको एकाग्र करके सुनिये, मैं बुधाष्टमीके व्रतका विधान कहता हूँ । जब जब सितपक्षमें अष्टमी

बुधवारी हो ॥ ४६ ॥ तब तब व्रतके लिए एकबार भोजन करनेवाला हो व्रतका आदर करना चाहिये । प्रातःकाल उसदिन नदीमें स्नान करके एक नूतन करवा अपने हाथोंमें लेवे ॥ ४७ ॥ उसे जलसे पूर्ण करे, उस जलमें अमूल्य उत्तम रत्न डाले । उसे घर लाकर उसका पुष्पादिकोंसे पूजन करे, फिर बुधको स्थापित कर उनका पूजन करे ॥ ४८ ॥ वह मूर्ति एकमासे भर सुवर्ण की प्रयत्नपूर्वक करानी चाहिये, शक्तिह्रास हो तो आधे मासेभर सुवर्णकी, अधिक शक्तिह्रास हो उससे भी आधे सुवर्ण की हो । अपनी शक्तिके अनुसार और भी कमावेश हो सकती है । वैसीही सामग्री इकट्ठी कर उसका पूजन करे ॥ ४९॥ एक अंगुष्ठ परिणाम मूर्तिहोनी चाहिये । पुरुषाकृति हो, चार भुजा हों, दीखनेमें सुन्दर हो। उसके पूजनका प्रकार यह है कि, किसी पवित्र देशमें कमलका आकार लिखके उसके मध्यभागमें कर्णिकाके ऊपर अव्रत कलशको कलशस्थापनकी विधिके अनुसार स्थापितकर उसका श्वेत तण्डुलोंसे पूजनकरे ॥ ५० ॥ उसके ऊपर श्वेततण्डुलोंसे पूर्ण सुवर्ण पात्रको रखे । (शक्तिह्रासमें मिट्टीतकके पात्रको रख ले) उसे दो पतिवस्त्रोंसे ढकदे । उसपर बुधदेवको विराजमान करे, फिर उनका पीतवस्त्र पीतअक्षत पीतपुष्प आदि उपचारोंसे दूजन करे ॥ ५१ ॥ पञ्चामृतसे अलग अलग और एकबार सम्मिलितकी रीति सभी स्नान करावे । उस स्नान करानेके वैदिक और तांत्रिकमन्त्र (पूर्व कह आये ही हैं या) प्रसिद्धही हैं । नैवेद्य चढावे, दशाङ्ग सुगन्धित गुग्गुलकी धूप करे, ॥ ५२ ॥ घृतपूर्ण खीर घीके लड्डु अशोककी कलिका नानाविध फल तथा पक्व और पीत गुडके पदार्थोंका भोग लगावे ॥ ५३ ॥ पीछे एकादश नाममन्त्रोंको बोलता हुआ पीत पुष्प और पीताक्षतों द्वारा चरणादि अङ्गोंकी पृथक् पृथक् पूजा करे । उसका प्रकार यह है कि, १ "ओं बुधाय नमः, पादौ पूजयामि" २ "ओं सोमपुत्राय नमः जानुनी पूजयामि" ॥ ५४ ॥ ३ "ओं तारासुताय नमः, कटी पूजयामि" ४ "ओं द्विजराजपुत्राय नमः, उदरं पूजयामि" ५ "ओं इला-प्रियायनमः, हृदयं पूजयामि" ६ "ओं कुमारायनमः, वक्षः पूजायामि" ॥ ५५ ॥ ७ " ओं पुरूरवःपित्रे नमः, बाहू पूजयामि" ८ "ओं सोमसुताय नमः, स्कन्धौ (अंसौ) पूजयामि" ९ "ओं पीतवर्णाय नमः, मुखं पूजयामि" १० "ओं ज्ञानमूर्तये नमः, नयने पूजयामि" ॥ ५६ ॥ ११ "ओं बुधाय नमः मूर्धानं (मस्तकं) पूजयामि" ॥ एकादशमन्त्रोंसे १ चरण, २ जानु, ३ कटि, ४ उदर, ५ हृदय–६ वक्षःस्थल, ७ बाहु, ८ स्कन्ध, ९ मुख, १० नेत्र और ११ वाँ मस्तक, इन अङ्गोंपर पीत पुष्पाक्षत् चढावे । ये अंगभी पूजनकी प्रक्रियाके साथ ऊपर दिखाये जा चुके हैं, फिर सोने चांदी या तांबेके सुन्दर पात्रमें ॥ ५७ ॥ गुग्गुल, गन्ध, पुष्प, और अक्षतोंको लेकर अपनी जानुओंको धरतीपर भिडा विशेष अर्घ्य दान करें ॥ ५८॥ कि, जो उर्वशीका श्वशुर एवं पुरूरवा राजर्षिका पिता और सब ग्रहोंमें श्रेष्ठ है वह बुधदेव अर्घ्यको ग्रहण करके मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५९ ॥ विष्णु भगवान् तत्तद्योगसे मोक्षपर्यन्त जिन वरोंका प्रदान करते हैं, उन सबोंको बुधदेव मेरे लिये दान करें । इस मंत्रसे अर्घ्य देकर फिर इस मंत्रको जपे ॥ ६० ॥ प्रथम-बार बुधाष्टमीके दिन मोदक, द्वितीय बार फेनी, तीसरी बार घृतपूर (पक्वान्नविशेष) चतुर्थबार वटक ॥ ६१ ॥ पञ्चम बार मण्डक, छठी बार सुहालियां, सातवीं बार अशोककी वर्त्तियां करावे ॥ ६२ ॥ आठवीं बार सक्करके खाण्डवोंको बाँसके पात्र में धरकर हे युधिष्ठिर ! योग्य आचार्यके लिये वायनादे फिर भोजन करे ॥ ६३ ॥ मोदकादि पदार्थोंका ही पूर्वोक्तक्रमसे भोजन करे । हे युधिष्ठिर ! बुधा-ष्टमीमें इसी प्रकार करना चाहिये । पीछे प्रीतिपूर्वक भाइयोंके साथ खाना चाहिये । जो पुरुष भक्तिपूर्वक बुधाष्टमीकी कथा सुनते हैं वे सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ६४ ॥ जो इसमें भक्तिपूर्वक बुधको करवेपर स्थापित कर पूजते हैं पक्वान्न और कलशपात्रादि तथा सुवर्ण एवं वस्त्रको उत्तम ब्राह्मणके लिये देते हैं, वह फिर कभीभी यमपुरीका दर्शन नहीं करते ॥६५॥ ये श्रीभविष्योत्तरपुराणकी कही हुई बुधाष्टमीके व्रतकी कथा समाप्त हुई । अब इस बुधाष्टमी व्रतके उद्यापनकी विधि–राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे भक्तवत्सल ! आप कृपा कर बुधाष्टमी व्रतके उद्यापनकी विधि कहिये । यह उद्यापन किस समय करना चााहिये ? कौन कौन पदार्थ इसमें चाहिये ?? जिससे यह उद्यापन एवं व्रत सफल हो। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, प्रथमव्रतके अन्तमें या चतुर्थव्रतके अन्तमें या अष्टम व्रतको करके उद्यापन करना चाहिये बुधाष्टमीके

पूर्वदिन यानी सप्तमी के दिन प्रातःकाल उठकर मलन्मूत्रत्यागादि एवं दन्तधावन करे, पीछे साधारण स्नान करके शुद्ध हो आचमन करके संकल्प करे। दश उत्तम सदाचारनिष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। दूसरे दिन अष्टमीमें प्रातःकाल उठकर मलमूत्रत्यागादि करे। फिर स्नानादि करे और पवित्र होकर पवित्र नदी आदि जलाशयपर स्नान करे। पीछे नैत्यिक सन्ध्योपासनादि कर्म्मानुष्ठानसे निवृत्त हो रङ्ग वल्लिआदिसे सजाये हुए पवित्र घरके मध्यभागमें पवित्र होकर पुण्याहवाचन और रक्षाविधान करे। विधिवत् प्राणायाम करके संकलपादि करे। संकलपकी यह विधि है कि, प्रथम जलाक्षतादि दक्षिण हाथमें लेकर "ओं तत्सत् सत्" इत्यादि वाक्यकल्पना द्वारा देश तथा तिथ्यादि कालका उल्लेख करके अपने गोत्रनामका उल्लेख करता हुआ कहे कि, मैंने जो अद्यावधि बुधाष्टमीके व्रत किये हैं उनके साङ्गपूर्ण होनेके फलोंकी प्राप्तिके लिये बुधाष्टमीव्रतका उद्यापन करूंगा। पीछे अपनेहाथमें स्थित जलाक्षत कुश और द्रव्यको पृथिवीपर छोड दे। पीछे वस्त्र पात्र गन्ध द्रव्याभूषणादि द्वारा आचार्य, ऋत्विगादिकोंका वरण करे। वस्त्र ताम्बूल एवं भूषणादिद्वारा ब्रह्माका वरण करे। गणपति पूजनपूर्वक नवग्रहोंका पूजन करे। फिर महान् विस्तृत अष्टदल कमलका आकार लिखे, उसके मध्यभागमें कर्णिकाका आकारभी लिखे। पाँच रंगोंको दलभाग एवं केसरोंमें उत्तम रीतिसे पूर्ण करके उसे सुन्दर बनावे। कर्णिकामें पांच प्रस्थ धान्य रखदे। पत्ते एवं पत्तोंके अग्रभाकगोंमें भी यथाशक्ति धान्य रखदे। धान्यराशियोंपर नव कलशोंको स्थापित करे। गङ्गाजलसे उनको पूर्ण करके वस्त्र तथा मालासे वेष्टित करके पञ्चत्वक् तथा पञ्चपल्लवोंसे शोभित करे। इन कलशोंको ऐसे देशमें रखे, जिसके उत्तरमें ग्रहमण्डल हो। या उस ग्रहपूजनपालीको इन कलशोंके उत्तरमें स्थापित करे। ग्रहमण्डलके पूर्व अर्थात् ईशानमें, वरुणका कलश अवश्य रखे! उस कलशमें जलपूर्ण करके उसके कण्ठभागमें वस्त्र वेष्टित करे, उसके मुखमें पल्लव, त्वक् (छाल) फल रखे। उसके उदरमें पञ्चरत्न और सुवर्णको छोडे। इनके जो जो मन्त्र हैं, उन उनसे धान्यादि स्थापन करे। विधिके अनुसार प्रतिष्ठा करके पूजन करे। जलाक्षत दहिने हाथमें लेकर संकल्प करे कि, मैंने सात जन्मोंमें जो जो पाप किये हैं, उनके दुष्ट भोगोंकी निवृत्तिके लिये बुधाष्टमीव्रत किया है (किये हैं), मैं अब उस (उन) की साङ्गफल प्राप्तिके अर्थ बुधका पूजन और हवन करता हूँ। यह सब पूजनादि बुधदेवकी प्रीतिके लिये हो। श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं कि, एक कर्ष (तोले) या आधे कर्ष (आधे तोले) या एक पाद कर्ष (चार आने) भर सुवर्णकी ही बुधप्रतिमा बनवा पूर्व उल्लिखित कमल कर्णिकामें स्थापित किये कलशके ऊपर तामडी रखके वस्त्र आस्तीर्ण कर उसपर उसको स्थापित करे। पञ्चामृतसे स्नान कराकर कटि तथा अंसोंमें पीत धौतवस्त्र एवं पीत डुपट्टा धारण कराके बाणाकार बुधको, भगवान् नारायणस्वरूपसे ध्यान करे। यही ध्यान करे कि ये बुधदेव साक्षात् चतुर्भुज शंख, चक्र, गदा, और शार्ङ्गधनुर्धारी भगवान् हैं। अत्रि गोत्रीय बुधका पूजन पीतवस्त्र, पीतपुष्प, पीताक्षतादिद्वारा पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंसे षोडश उपचारोंसहित करना चाहिये। उस बुधके दक्षिणमें "ओं इदं विष्णुर्व्विचक्रमे" इस मन्त्रसे अधिदेव विष्णुकी, "ओं सहस्रशीर्षा" इस मन्त्रसे बुधके वामभागमें प्रत्यधिदैव नारायणकी स्थापना करे। कमलके पूर्वादि अष्ट कोणोंमें स्थापित कलशोंके ऊपर प्रदक्षिण क्रमसे सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतुके स्थापनादि करने चाहिये ।। कमलके अग्रभागोंमें १ अनन्त, २ वामन, ३ विष्णु, ४ शौरि ५ सत्य, ६ जनार्दन, ७ हंस और ८ वें नारायणका स्थापन पूजन करे। धूप, दीप, विविधि नैवेद्य और फलादि समर्पण करे। कमल पत्रोंके बाहिर पूर्वादि आठ भागोंमें प्रदक्षिण क्रमसे १ इन्द्र, २ अग्नि, ३ यम, ४ निर्ऋति, ५ वरुण, ५ वायु, ७ कुबेर और ८ वें ईशानका स्थापन पूजन करे। दक्षिणमें यमराजके समीप वाम भागमें श्यामला और चित्रगुप्तका स्थापन पूजन करे। कमलके अष्टदलोंमें धान्यराशियोंपर स्थापित आठ कलशोंके ऊपर आठ सूर्यादिकोंका जो स्थापन पूर्व कहा है वह कललोंके ऊपर बांस पत्रोंको पहिले रखकर करना चाहिये। और बांसके पात्रोंमें आठ आठ लड्डु, यज्ञोपवीत ऋतुफल और दक्षिणा रखदे पीछे मण्डलके पश्चिम भागमें चतुरस्र स्थण्डिल,

शुद्ध मृत्तिकाका बनावे । उस स्थण्डिलमें स्रुवेसे भूमिके उल्लेखनादिरूप पांच संस्कार करके अग्निस्थापन करें, विद्वान् व्रतीको चाहिये कि वह समिधा, कुशास्तरण और प्रणीतादि पात्र इकट्ठे करे । पूर्णपात्र तथा ब्रह्मासनका आस्तरण करे। इस प्रकार समिधाधान करने पीछे अपनी अपनी शाखानुसार गृह्यसूत्रोंके कहेहुए विधानको स्थण्डिलमें प्रधान आहुतिका हवन करे। देव अधिदेव और प्रत्यधिदेव इन तीनोंके लिये आहुतियाँ देनी चाहिये । इसी विषयमें यह वाक्य है कि, पृथक् २ होम करे यानी तीनोंको भिन्न २ द्रव्योंसे आहुतियाँ देनी चाहिये; घी मिश्रित अपामार्गकी समिध एवं घी मिश्रित यव व्रीहि तिल तथा घी मिश्रित तिल और गोधूमसे पृथक् पृथक् निरास होकर हवन करे । "ओम् उद्बुध्यस्व' इस मंत्रसे १०८ आहुतियाँ बधके लिये तथा विष्णुके मंत्रसे विष्णुके लिये और नारायणके मंत्रसे नारायणको आहुति दे । ग्रहादिकोंके लिये आहुति देकर प्रायश्चित्तकी आहुतिका हवन करे । पूर्णाहुतिका हवन करके पीछे ब्रह्माका विसर्जन करदेना चाहिये । पूर्णपात्रका उद्वासन और बलिदान होना चाहिये । पीछे अग्निका पूजन करके देवताओंका विसर्जन कर देना चाहिये । अभिषेकके पीछे तिलक और रक्षाबन्धन होना चाहिये । सपत्नीक आचार्य्यका विधिपूर्वक पूजन करके गऊ, प्रतिमा, वस्त्र और कलश उन्हें देना चाहिये । ब्रह्मासे लेकर जो बाकी याज्ञिक द्विजवर बैठे हुए हों उन्हें कलश देने चाहिये । पीछे ब्राह्मण भोजन कराकर सबसे आशीर्वाद लेना चाहिये । यह श्री भविष्य पुराणका कहा हुआ बुधाष्टमीके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।

दशाफलाष्टमी व्रतम्

अथ शुक्लादिश्रावणकृष्णाष्टम्यां दशाफलव्रत्तम् ।। सा निशीथव्यापिनी ग्राह्या ।। तत्र पूजाविधिः—तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ।। श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ।। महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।। उद्दाम काञ्च्यङ्ग[1]दकंकणादिर्भिविराजमानं वसुदेव ऐक्षत ।। कृष्णाय० ध्यानम् ।। वासुदेवाय० आवाहनम् ।। शेषशायिने० आसनम् ।। तीर्थपादाय० पाद्यम् ।। गङ्गाजनकाय० अर्घ्यम् ।। यमुनावेगसंहारिणे न० आचमनम् ।। नित्यमुक्ताय० पञ्चामृतस्नानम् ।। श्रीगोपालाय० स्नानम् ।। पीतवाससे न० वस्त्रम् ।। यज्ञप्रियाय० यज्ञोपवीतम् ।। सर्वेश्वराय० चन्द्रनम् ।। अधोक्षजाय० अक्षतान् ।। कमलाप्रियाय० पुष्पाणि ।। तुलसीपत्रैर्नामपूजा—कृष्णाय नमः विष्णवे न० । हरये न० । शेषशायिने० । गोविन्दाय० । गरुडध्वजाय० दामोदराय० । हृषीकेशाय० । पद्मनाभाय० । उपेन्द्राय ।। १० ।। अथ दोरकबन्धनम्——संसारार्णवमग्नानां नराणां पापकर्मणाम् ।। इह मोक्षफलावाप्ति कुरुष्व पुरुषोत्तम ।। इति दोरकबन्धनम् ।। पारिजातापहाराय० धूपम् ।। ज्ञानप्रदीपाय० दीपम् ।। चक्रिणे न० नैवेद्यम् ।। अघनाशिने न० तांबूलम् ।। सर्वव्यापिने० दक्षिणाम् ।। पद्मनाभाय० नीराजनम् ।। अनंताय० पुष्पाञ्जलिम् ।। देवदेव नमस्तेऽस्तु भक्तप्रिय दयानिधे ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहित प्रभो ।। विशेषार्घ्यम् त्रिलोकनाथोदेवेशः सर्वभूतदया-

1 नूपुरादिभिर्विरोचमानं इत्यपि पाठः ।

निधिः ।। दानेनानेन सुप्रीतो भवत्विह सदा मम ।। इति वायनमन्त्रः ।। श्रीकृष्णः प्रतिगृह्णाति श्रीकृष्णो वै ददाति च ।। श्रीकृष्णस्तारकोभाभ्यां श्रीकृष्णाय नमोनमः ।। इति प्रतिग्रहमन्त्रः ।। यस्य स्मृत्येति प्रार्थना ।। अथ कथा ।। सूत उवाच ।। शृणुध्वमृषयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ।। पुरा च द्वापरस्यान्ते कृष्णदेवेन भाषितम् ।। १ ।। तद्व्रतं वः प्रवक्ष्यामि साङ्गोपाङ्गं मुनीश्वराः।। पुरा च द्वापरस्यान्ते पाण्डवाः कौरवास्तथा ।। २ ।। द्यूतै प्रचक्रिरे सर्वे धनमानेन मोहिताः ।। निर्जिताः पाण्डवा दुःखाद्वनं जग्मुर्मुनीश्वराः ।। ३ ।। कुन्ती विदुरगेहेः तु संस्थिता च[2] महायशाः ।। तच्छ्रुत्वा कृष्णदेवोऽपि कृपया परया युतः ।। ४ ।। आययौ गरुडारूढो विदुरस्य गृहं प्रति ।। तत्रापश्यन्महाबाहुं कुन्ती परमहर्षिता ।। ५ ।। विदुरेणार्चितः कृष्ण कुन्त्या चैव हि भक्तितः ।। नत्वाह कुन्तीं तां देवीमश्रस्याभां विडम्बयन् ।। ६ ।। त्वत्पुत्रास्तु महादुःखात् प्रययुर्गहनं वनम् ।। तवापि सुमहद्दुःखं सर्वदा तन्ममाप्रियम् ।।७।। कुन्त्युवाच ।।हृषीकेश महाबाहो महादुःखेन कर्शिता कृपया परया देव रक्षिता वयमीदृशाः ।। ८ ।। मम चैव महद्दुःखं त्वयि मां त्रातरि स्थिते ।। त्वत्पुत्रास्तु महादुःखात्प्रविष्टा गहनं वनम् ।। ९ ।। कृपया विदुरो मह्यं कौरव्यः प्रस्थसंमितम् ।। ददाति प्रीतिदः कृष्ण जीवनाय महामतिः ।। १० ।। गृहस्य पश्चिमे भागे वसामि च जनार्दन ।। दर्शिता कौरवाणां हि सर्वेषां कुमतिस्तथा ।।११।। इति तस्या वचः श्रुत्वा कृष्णः परमधर्मवित् ।। आह चैनां वासुदेवो भक्तप्रियतमस्तदा ।। १२ ।। व्रतं ते कथयिष्यामि येन दुःखात्प्रमुच्यसे ।। पुत्रपौत्रैः परिवृता स्वं राज्यं प्राप्स्यसेऽचिरात् ।। १३ ।। दशाफलमिति ख्यातं तद्व्रतं कुरु सुव्रते ।। कुन्त्युवाच ।। कस्मिन्काले तु कर्तव्यं तद्व्रतं केशव प्रभो ।।१४।। वद मां प्रति इत्युक्तो यादवेन्द्रो जगाद ह ।। श्रावणस्यासिते पक्षे अष्टम्यां च निशीथके ।। ।। १५ ।। देवक्यां वासुदेवश्च प्रादुर्भूतो न संशयः ।। तस्याग्रे दशगुणितं सूत्रं स्थाप्ये प्रपूजयेत् ।।१६।। हस्ते बद्ध्वा तु तत्सूत्रं दशाहं व्रतमाचरेत् ।। संसारार्णवमग्नानां नराणां पापकर्मणाम् ।। १७ ।। इहामुत्र फलावाप्ति कुरुष्व पुरुषोत्तम । अनेन दोरकं बध्वा दशवर्षं व्रतं चरेत् ।। १८ ।। देवस्य पुरतो नित्यं दशपद्मानि कारयेत् ।। ततश्च शृणुयात्पुण्यां कथामेतां शुभावहाम् ।। १९ ।। तुलस्याः कृष्णवर्णाया दलैर्दशभिरर्चयेत् ।। कृष्ण विष्णुं तथानन्तं गोविन्दं गरुडध्वजम् ।। २० ।। दामोदरं हृषीकेशं पद्मनाभं हरिं प्रभुम् ।। एतैश्च नामभिर्नित्यं कृष्णदेवं समर्चयेत् ।।२१।। नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणसमन्वितम् ।। एवं दशदिनं कुर्याद्व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। २२ ।। आदौ मध्ये तथा चान्ते होमं कुर्याद्विधानतः ।। कृष्णमन्त्रेण जुहुयाच्चरुणाष्टोत्तरं शतम् ।। २३ ।। ततो होमान्ते विधिवदाचार्यं

---

२ दुःखिता भृशमित्यपि पाठः ।

पूजयेत्सुधीः ॥ सौवर्णे ताम्रपात्रे वा मृन्मये वेणुपात्रके ॥ २४ ॥ सौवर्णं तुलसीपत्रं कारयित्वा सुलक्षणम् ॥ प्रतिमां च तथा कृत्वा अर्चयित्वा विधानतः ॥ २५ ॥ निधाय प्रतिमां तत्र आचार्याय निवेदयेत् ॥ दातव्या गौः सवत्सा च वस्त्रालंकारभूषिता ॥ २६ ॥ दश होमे तु कृष्णाय पूरिका दश चार्पयेत् ॥ दापयेत्तु ब्राह्मणाय स्वयं भुक्त्वा तथैव च ॥ २७ ॥ उपायनं च गृह्णीष्व सर्वोपस्करसंयुयुतम् । संसरार्णवमग्नं मां पाहि त्वं देवकीसुत ॥ २८ ॥ अनेनोपायनं दत्त्वा नमस्कृत्य क्षमापयेत् ॥ दक्षिणाभिर्युता देवि दातव्याः कृष्णसन्निधौ ॥ २९ ॥ व्रतान्ते दश विप्रेभ्यः प्रत्येक दशपूरिकाः ॥ एवं दशसु वर्षेषु व्रतं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३० ॥ एवं व्रतं त्वया देवि कर्तव्यं कृष्णसन्निधौ ॥ एवमुक्तं तु कृष्णेन कुन्ती श्रुत्वा मुदान्विता ॥ ३१ ॥ उवाच कृष्णदेवं सा मम वित्तं न विद्यते ॥ प्रत्युवाच हृषीकेशस्तव वित्तं भविष्यति ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वा ययौ कृष्णः कर्णं द्रष्टुं सुखान्वितः ॥ कर्णोऽपि च महात्मानं कृष्णं दृष्ट्वा प्रहर्षितः ॥ ३३ ॥ सिंहासनं ददौ तस्मै पाद्यमर्घ्यं तथैव च ॥ कर्णोऽप्युवाच देवेश किमर्थं तव चागमः ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः कृष्णदेवोऽथ तव मातातिदुःखिता ॥ कर्ण उवाच ॥ भूरिभयात्तथा कृष्ण मातरं याम्यहं कथम् ॥ ३५ ॥ कथं वा दुःखतो माता प्रमुच्येत वदस्व मे ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सुवर्णपात्रे संपूर्य पायसं क्षीरसंयुतम् ॥ ३६ ॥ निधाय श[1]तनिष्कं तु दातव्यं वायु[2]हस्तके ॥ तव माता तथा प्रीता भविष्यति न संशयः ॥ ३७ ॥ एवमुक्त्वा ततः कृष्णो द्वारकामाजगाम ह ॥ कृष्णवाक्यं ततः श्रुत्वा कर्णश्चक्रे महायशाः ॥ ३८ ॥ पायसेन समायुक्तं पात्रं स्वर्णेन कारितम् ॥ शतनिष्कसमायुक्तं वायुहस्ते प्रदाय [3]सः ॥ ३९ ॥ प्रहसन्ती तथा कुन्ती पात्रं दृष्ट्वा प्रहर्षिता ॥ देवस्य सन्निसौ सा तु व्रतं चक्रेऽथ भक्तितः ॥ ४० ॥ कृष्णेन कारितं सर्वं मम भाग्याय वै ध्रुवम् ;। कृष्णपूजां ततः कृत्वा कथां श्रुत्वाथ भक्तितः ॥ ४१ ॥ उपायनं ददौ तत्र ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम् ॥ तुलसीदलं सुवर्णेन कारयित्वा सुलक्षणम् ॥ ४२ ॥ प्रतिमां विष्णुभक्ताय स्वर्णपात्रे निधाय च ॥ गोदानेन समायुक्तामाचार्याय महामते ॥४३ ॥ कुन्ती ददौ महादेवी विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥ व्रतं दशसु वर्षेषु चकारोद्यापनं ततः ॥४४॥ तद्व्रतस्य प्रभावेण तनूजाश्चागतास्ततः ॥ हत्वा शत्रून् मृधे सर्वान्कृष्णस्यैव प्रसादतः ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा स्वं राज्यं प्राप्तवान्सुधीः ॥ प्रोवाचेदं व्रतं कुन्ती द्रौपदीं च पतिव्रताम् ॥ ४६ ॥ दशाफलमिति ख्यातं कृष्णदेवेन भाषितम् ॥ यूयं सर्वे महादुःखं निस्तीर्य स्वपुरींगताः ॥ ४७ ॥

---

१ सहस्रशतनिष्कं तु दातव्य इत्यपि क्वचित् २ वायुहस्ते दातव्य मित्यस्य कर्णेन प्रेषितमिति तथा यथा न ज्ञास्यते तथा प्रेषणीयमित्यर्थः ३ प्रेषयामासेति शेषः

व्रतस्यास्य प्रभावेण कृष्णस्यैव प्रसादतः ।। त्वमप्येवं व्रतं भद्रे कुरुष्व सुसमाहिता ।। ४८ ।। पुत्रपौत्रैः परिवृता सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।। आचख्यौ तद्व्रतं तस्यै कुन्ती परमहर्षिता ।। ४९ ।। सापि चक्रे महाभागा द्रौपदी व्रतमुत्तमम् ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं सुजनैः सदा ।। ५० ।। या भक्त्या कुरुते नारी व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ।। ५१ ।। इदं व्रतं महापुण्यं व्रतानामुत्तमं शुभम् ।। वदतां शृण्वतां चैव विष्णुलोको भवेद्ध्रुवम् ।। ५२ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे दशाफलव्रतकथा ।। अत्र मूलं चिन्त्यम् ।।

दशाफलव्रत--शुक्लपक्षसे मासारंभ माननेके हिसाबसे श्रावण वदि अष्टमीके दिन करना चाहिये । इसमें अष्टमी अर्धरात्र व्यापिनी होनी चाहिये ।। पूजाविधि--पूजाविधानको कहते हैं--'तमद्भुतम्' इत्यादि दो मन्त्रोंसे ध्यान करना चाहिये । कि, कमलसदृश विशाल सुन्दर नेत्रवाले, चतुर्भुज, शंख, गदा और चक्र इन लोकोत्तर शस्त्रोंको धारण करनेवाले, वक्षः--स्थलमें श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित, कौस्तुभमणिसे शोभायमान कण्ठवाले, पीताम्बरधारी, सान्द्र जलद सदृश रमणीय, अत्यन्त महनीय वैदूर्यजटित मुकुट और कुण्डलोंकी कान्तिसे मिश्रित सहस्र कुन्तलोंवाले, अभिलषणीय मेखला, अङ्गद और कंकणादिकोंसे शोभमान उस दिव्य बालमूर्ति मुकुन्द देवका मैं ध्यान करता हूं, ऐसे स्वरूपमें वसुदेवजीने जिसके दर्शन किये थे । 'कृष्णाय नमः ध्यायामि' कृष्णचन्द्रके लिये प्रणाम है, मैं ध्यान करता हूं' । इस प्रकार कहे । वासुदेवाय नमः, आवाहयामि' वासुदेवके लिये नमस्कार, आवाहन करता हूं, इससे आवाहन करे, शेषपर शयन करनेवालेके लिये नमस्कार इससे आसन; सबको पवित्रकर चरणोंवालेको नमस्कार, इससे पाद्य; गंगाके जनकके लिये नमस्कार इससे अर्घ्य; यमुनाके वेगसंहारीके लिये नमस्कार इससे आचमन; नित्य जो मुक्त है उसके लिये न. इ. पंचामृत स्नान, श्रीगोपालके लिये न. इ. स्नान; पीतवस्त्र धारण करनेवालेके लिये न. इ. वस्त्र; यज्ञ है प्यारी जिसको उसके लिये नमस्कार, इससे यज्ञोपवीत, सबके ईश्वरके लिये न. इ. चन्दन, अधोक्षजके लिये न. इ. अक्षत; लक्ष्मी है प्यारी जिसे उसके लिये नमस्कार, इससे पुष्प चढावे ।। तुलसीपत्रोंसे नाम-पूजा--कृष्ण, विष्णु, हरि, शेषशायिन्, गोविन्द, गरुडध्वज, दामोदर, हृषीकेश, पद्मनाभ, उपेन्द्र ये ग्यारह नाम हैं । इनके एक एक नाममंत्रको बोलकर एक एकसे एक एक वार तुलसीदल चढाता जाय, नाममंत्रकी वही प्रक्रिया है जिसे कईवार लिख चुके हैं ।। इस मंत्रसे डोरा बांधे कि हे पुरुषोत्तम ! संसार समुद्रमें डूबे हुए पापकर्मी मुझे जैसे मनुष्योंको भी इसी जन्ममें मोक्षफलकी प्राप्ति करिये । पारिजातके हरण करनेवालेके लिये नमस्कार । धूप सुंघाता हूं, ज्ञानके प्रदीपके लिये न०, दीप दिखाता हूं । चक्रधारण करनेवालेके लिये नमस्कार, नैवेद्यका निवेदन करता हूं । पापोंके नाश करनेवालेके लिये नमस्कार, पान समर्पण करता हूं । सर्वव्यापीकेलियेनमस्कार दक्षिणा चढाता हूं । पद्मनाभके लिये न०, नीराजन करता हूं । अनन्तके लि. पुष्पाञ्जलि चढाता हूं हे भक्तोंके प्यारे ! हे दयाके खजाने ! हे प्रभो ! आपके लिये नमस्कार है आप देवकीके साथ अर्घ्य ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य निवेदन करना चाहिये, इसके पीछे वायना देना चाहिये कि, तीनों लोकोंके स्वामी, देवताओंके मालिक दयाके खजाने भगवान् कृष्ण यहां ही मेरे इस दानसे परम प्रसन्न होजायें, कथा । सूतजी बोले--कि, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले समस्त हे शौनकादि मुनिवरो ! आप सुनें । पहिले द्वापर युगके अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जिसका वर्णन किया है ।। १ ।। मैं उसी व्रतकी कथा अङ्ग उपाङ्गोंसहित कहता हूं । पूर्व द्वापर युगके अन्तमें पाण्डव और कौरव ।। २ ।। धनके अभिमानसे प्रमत्त होकर द्यूतक्रीडा करने लगे । उसमें कौरवोंका विजय हुआ पाण्डव पराजित होकर दुःखसे चले गये ।। ३ ।। महायशाः कुन्ती विदुरजीके यहां निवास करने लगी । इस वृत्तान्तको सुनकर कृष्ण देवभी परम कृपासे आप्लुत हो ।। ४ ।। गरुडपर चढके विदुरजीके घर चले आये । कुंती महाभुज श्रीकृष्णचन्द्रको वहां देखकर परम प्रसन्न हुई ।। ५ ।। विदुरजी और कुन्तीने

भगवान् कृष्णका पूजन भक्तिभावसे किया । भगवान् भी मेघकी आभाको छकाते हुए देवी कुन्तीको नमस्कार करके बोले ॥ ६ ॥ कि तेरे पुत्र बडे दुःखोंसे वनमें निकल गये, तुमें भी इसका बडा भारी दुःख है । मेरा भी यह अप्रिय है ॥ ७ ॥ यह सुन कुन्ती बोली कि, हे हृषीकेश ! हे महाबाहो ! हम तो महादुःखोंसे दुःखित हुए हैं । पर हे देव ! ऐसे भी हमें आपने परम कृपासे बार बार बचाये हैं । मेरे चित्तमें यह बडा भारी दुःख है कि आप जैसे ॥ ८ ॥ रक्षक रहनेपर भी मुझे दुःख है । मेरे पुत्र तो, बडे भारी कष्टोंके मारे गहनवनमें निकल ही गये हैं ॥ ९ ॥ प्रीतिसे देनेवाला भारी बुद्धिमान् कौरव्य विदुर मुझे मेरे निर्वाहके लिये एक सेर अन्न दे देता है ॥ १० ॥ हे जनार्दन ! मैं घरके पश्चिम भागमें रहती हूं । मैंने सबी कौरवोंकी कुमति देख ली है ॥ ११ ॥ भक्तोंके प्रियतम धर्मके उत्कृष्ट ज्ञाता भगवान् कृष्ण कुन्तीके वचन सुनकर बोलेकि, ॥ १२ ॥ मैं आपको एक व्रत कहता हूं, जिसके करनेसे सब दुःखोंसे छूट जायगी, पुत्र पौत्रोंसे परिवृत्त होकर थोडेही समयमें अपने राज्यको पाजायगी ॥ १३ ॥ उसको दशाफल कहते हैं हे सुव्रते ! उस व्रतको करो यह सुन कुन्ती बोली कि, हे प्रभो केशव ! यह बताइये किस समय वह व्रत करना चाहिये ॥ १४ ॥ यह मुझे बताइये । यह सुन भगवान् बोले कि, श्रावण कृष्णा अष्टमीको आधीरात ॥ १५ ॥ देवकीमें वसुदेवसे वासुदेव उत्पन्न हुए । इसमें कोई सन्देह नहीं है । उसके आगे दशतन्तु डोरा कर, स्थापित करके पूजे ॥ १६ ॥ हाथमें उस सूत्रको बांधकर दश दिन व्रत करे कि "संसार सागरमें डूबे हुए मज्ञ जैसे पापकर्मी मनुष्योंको ॥ १७ ॥ हे पुरुषोत्तम इस लोक और परलोकके फलोंको प्राप्ति कर" इस प्रकार डोरा बांधकर दशवर्षतक व्रत करना चाहिये ॥ १८ ॥ व्रत करनेवाला दशदिनपर्य्यन्त मेरे सम्मख प्रतिदिन दशकमल चढाता रहे । इस आनन्द मङ्गल देनेवाली पवित्र कथाको सुने ॥ १९ ॥ मेरा पूजन श्यामा तुलसीके पत्रोंसे करे । वे पत्ते भी दशही हों । उन पत्तोंके समर्पण करनेके समय १ 'ओं कृष्णाय नमः' २ 'ओं विष्णवे नमः' ३ 'ओं अनन्ताय नमः' ४ 'ओं गोविन्दाय नमः' ५ 'ओं गरुडध्वजाय नमः' ॥ २० ॥ ६ 'ओं दामोदराय नमः' ७ 'ओं हृषीकेशाय नमः' ८ 'ओं पद्मनाभाय नमः' ९ 'ओं हरये नमः' और १० वाँ 'ओं प्रभवे नमः' इन दश नमामन्त्रोंको पढे यानी इन्हींसे पूजन करना चाहिये ॥ २१ ॥ पीछे नमस्कार पूर्वक प्रणाम करके प्रदक्षिणा करे । ऐसे इस व्रतको दशदिनतक प्रतिवर्ष करता हुआ दशवर्ष पर्य्यन्त करे ॥ २२ ॥ इस व्रतके आरम्भ, मध्य तथा समाप्तिमें प्रतिवर्ष तीन बार हवन करे । और कृष्णमन्त्रसे हवन करना चाहिये । और एकसौ आठ बार चरुकी आहुतियाँ अग्निमें दे ॥ २३ ॥ हवनके अन्तमें बुद्धिमान् व्रती विधिवत् आचार्यका पूजन करके उनको मेरी प्रतिमाका दान करे । इसकी यह विधि है कि, सुवर्ण, ताम्र मृत्तिका या वेणुपात्र में ॥ २४ ॥ सुवर्णका सुन्दर, तुलसीके पत्तेके समान पत्र बनवाके रखदे, मेरी सुवर्णमयी प्रतिमाभी स उसीमें रखदे विधिवत् पूजन करें ॥ २५ ॥ फिर प्रेमसे उसको (दक्षिण हस्तमें रखके) आचार्य्यको दे दे । फिर वस्त्र तथा सुवर्णमय शृङ्गादिद्वारा सुशोभित की हुई बछडे (और) कांसीके दोहनपात्रके साथ गऊका दान करे ॥ २६ ॥ हवनके समय कृष्णचन्द्रके लिये दशपुरी और इतनी ही आचार्यके लिये दान करे । और आपभी दश पूरियोंका ही भोजन करे ॥ २७ ॥ और सब उपस्करके साथ उपायन एवम् व्रतकी साङ्गतया पूर्ति करनेवाले दक्षिणा लेकर मेरे समर्पण करे, और प्रार्थना करे । हे देवकीनन्दन ! मैं संसार समुद्रमें डूबा हुआ हूं आप मेरी रक्षा करें, सब आपके पूजनकी सामग्री समेत दक्षिणाको स्वीकृत करें ॥ २८ ॥ इसप्रकार इससे वायना देकर पीछे प्रणाम करके मेरेसे क्षमा प्रार्थना करे । फिर कृष्णचन्द्रके समीपमें दश ब्राह्मणोंको आसनोप बैठा उन्हें दक्षिणा और दशदश पूरियाँ दे । यह सब प्रतिव व्रतान्तमें करे और दशवर्षपर्य्यन्त उस व्रतको करे । प्रमाद नहीं करे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे देवि ! हमने जो विधि बतायी है तदनुसार तुमभी कृष्णचन्द्रकी मेरी प्रतिमा स्थापित करके पूजन करती हुई दशाफलव्रतको करो । कृष्णने इस प्रकार कहा इसे सुनकर कुन्ती प्रसन्न हुई । अपने समीप द्रव्य न देख बोली कि, हे कृष्ण ! मेरे पास द्रव्य नहीं है । मैं इसविधिसे कैसे करूं ? ॥ ३१ ॥ हृषीकेश बोले कि, चिन्ता मत करो आपके धन होगा ॥ ३२ ॥ ऐसे कुन्तीको कहकर प्रसन्नतापूर्वककर्णसे मिलने चले गये । कर्ण भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख बहुत प्रसन्न हुआ

।। ३३ ।। खडा होकर उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान करके पाद्य और अर्घ्य दिया । पीछे कृष्ण-चन्द्रसे पूछा कि, हे प्रभो ! आप आज कैसे पधारे ? ।। ३४ ।। ऐसा पूछने पर भगवान् कृष्णचन्द्रजीने कहा कि, तुम्हारी माता (कुन्ती) अत्यन्त दुःखित होरही है । कर्ण बोला कि, हे कृष्ण ! यद्यपि मैं जानता हूं पर मुझे बहु भय लगा है, कैसे उसके पास जाऊं ? ।। ३५ ।। कैसे उसकी सेवा करूं ? ("कर्णकी माताभी कुन्तीही है" यहवृत्तान्त यदि राजा धर्म्मनन्दन युधिष्ठिरके सुननेमें आजायगा तो वह राज्यादि मुझे दान करेगा । मैं दुर्योधनके अधीन करूंगा और दुर्योधनको छोड यदि पाण्डवोंसे मिलके रहूं तो मेरे विश्वासपर युयुत्सु होनेवाले दुर्योधनका विश्वासघातक बनूंगा । दूसरे पृथिवीके भारको दूर करनेका आपका संकल्पभीभग्न होता है । इसमें मैं डरके उससे एकदम अलग रहता हूं, कभी भी उससे मातापुत्र-पनेका नाता नहीं दिखाता हूं । यही मुझे बहुत भय है । अस्तु) आपही ऐसा उपाय बतावे जिससे वह माताःखित न रहे । श्रीकृष्ण बोले कि, सुवर्णके पात्रमें दुग्धकी खीर भरके ।। ३६ ।। इसमें सौ निष्कोंको अर्थात् दीनारों (पल प्रमाण सुवर्णकी मुहरोंको) धरे । फिर उसे वायुहस्तसे दिवाय भेजे अर्थात् कर्णने यह वस्तु भेजी है, यह किसीको भी मालुम न हो इस प्रकार उसे कुन्तीके पासमें पहुँचा दो । इससेतुम्हारी माता प्रसन्न होगी. संशय मत करो ।। ३७ ।। सूतजी बोले कि, इस प्रकार कर्णसे कहकर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका चले गये, दानियोंमें महाशयवाले कर्णने श्रीकृष्णचन्द्रके वचन सुन वैसाही किया ।। ३८ ।। सुवर्णके पात्रमें खीर भरके उसमें ही सौ निष्क सुवर्णोंको अर्थात् सो मुहरोंको डालके एकदम गुप्तरीतिसे कुन्तीके पास पहुंचा दिया । जब ऐसे द्रव्य कुन्तीको मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुई । श्रीकृष्णचन्द्रकी वैसी ही मूर्ति बनवाके उसको अपने सन्निहित कर उन्हींकी बतायी हुई विधिके अनुसार भक्तिपूर्ण हो व्रत करने लगी ।। ३९ ।। ४० ।। कुन्ती मनमें यह विचारके बहुत प्रसन्न हुई कि, श्रीकृष्णने मेरे कल्याणोदयके लिये कहकर यह व्रत कराया है । इससे मेरा अवश्य अभ्युदय होगा । श्रीकृष्णचन्द्रका भक्तिपूर्वक पूजन करके पीछे कथा सुन ।। ४१ ।। दश ब्राह्मणोंके लिये क्रमप्राप्त उपायन (भेंट, दक्षिणा) दी । सुवर्णमय सुन्दर तुलसी पत्रके साथ ।। ४२ ।। सुवर्णमयी भगवान्की प्रतिमा सुवर्णके पात्रमें स्थापित कर गऊके साथ महामति आचार्यको ।। ४३ ।। महादेवी (महाराज्ञी) कुन्ती ने देदी इससे वासुदेव भगवान् प्रसन्न हों । ऐसे दशवर्षपर्य्यन्त (प्रतिवर्ष दशदिनपर्य्यन्त) व्रत करके पीछे कुन्तीने उद्यापन किया ।। ४४ ।। उस व्रतके करनेसे उसके पुत्र सानन्द वनसे लौट आये । भगवान् कृष्णचन्द्रकी ही सहायतासे सब शत्रुओंको संग्राममें मारकर ।। ४५ ।। धर्मात्मा सुधी युधिष्ठिर अपने राज्यको प्राप्त होगये, कुन्तीने पतिव्रता स्नुषा द्रौपदीसे यह सब वृत्तान्त कह सुनाया ।। ४६ ।। कि मैंने ऐसे दशाफल व्रत किया था । श्रीकृष्णचन्द्रने आप मेरे समीप आकर यह कहा था । द्रौपदी ! तुम उसी व्रतके प्रभावसे सब संकटोंसे बचकर सानन्द अपनी पुरीमें आयी हो । अतः हे कल्याणि ! समाहित चित्त होकर उस व्रतको करो ।। ४७ ।। ४८ ।। उससे पुत्र पौत्रोंसे सम्पन्न हो सर्वथा पूर्णकामा होगी । ऐसे कह अत्यन्त हृष्टमना हो द्रौपदीको दशाफलाष्टमीके व्रत करनेकी विधि बतादी ।। ४९ ।। फिर उस परम भाग्यशालिनी द्रौपदीने यह उत्तम व्रत किया। हे मुनिजनो ! इसलिये वह दशाफल व्रत अवश्यही सभी सज्जनोंको करना चाहिये ।। ५० ।। जो स्त्री भक्तिसे इस उत्तम व्रतको करती है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं, अन्तमें विष्णुभगवान्के धाममें आनन्दविहार करनेवाली होती है ।। ५१ ।। यह व्रत महान् पुण्यफलका देनेवाला, उत्तम और पवित्र है, जो प्रेमसे इसकी पवित्र कथाका कीर्तन या श्रवण करते हैं, वेभी मरनेपर वैकुण्ठधामको प्राप्त करते हैं ।। ५२ ।। यह श्रीभविष्योत्तरपुराणकी कहीहुई दशा फलके व्रतकी कथा समाप्त हुई ।। यद्यपि पर-म्परासे यह आख्यान चला आ रहा है, पर भविष्योत्तरपुराणमें यहपाठ मिलता नहीं है, अतः इस आख्यानकी वास्तविक खोज करनी चाहिये ।।

जन्माष्टमी व्रतम्

अथ कृष्णादिमासेन भाद्रकृष्णाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतम् ।। तच्च अर्धरात्रव्यापिन्यां कार्यम् "रोहिण्या सहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी ।। अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये तथा ।। नियतात्मा शुचिः सम्यक्पूजां तत्र प्रवर्तयेत् ।" इति विष्णुधर्मोत्तरे तस्य पूजाकालत्वोक्तेः ।। दिनद्वये अर्धरात्रव्याप्तावव्याप्तौ वा परैव ।। प्रातः संकल्पकाले सत्त्वाद्दिवारात्रियोगात् ,वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमी संयुताष्टमी" इति ब्रह्मवैवर्ते सप्तमीयुक्तानिषेधाच्च ।। यदापूर्वेद्युर्निशीथे केवलाष्टमी उत्तरेद्युर्निशीथास्पर्शिन्यष्टमी रोहणीयुक्ता तदा पूर्वैव ग्राह्या–कर्मकालसत्त्वात् ।। रोहिणीयोगस्तु केवलं फलातिशयार्थो नवमीबुधादियोगवन्न तु निर्णयोपयोगी । इतरथा–प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः ।। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता ।। किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ।। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटयास्तु मुक्तिदा ।। इति सरोहिणीमप्यष्टमीं विहाय बुधनवमीयुता कार्यापद्येत ।। सोमेनेत्यस्य सोमेवारेणेत्यर्थ इति केचित् ।। "तारापत्युदये 'तथा" इति विष्णु धर्मोत्तरैकमूलकल्पनालाघाच्चन्द्रोदये चेति मयूखे ।। उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि ।। भवेत्तु बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ।। अपि वर्षशतेनापि लभ्यते यदि वा न वा ।। तत्र उदयशब्दश्चन्द्रोदयपरः ।। सूर्योदयपरत्वे तु यदा पूर्वेद्युर्निशीथे केवलाष्टमी उत्तरेद्युर्निशीथास्पर्शिन्यष्टमी रोहिण्या युक्ता सती बुधयुक्ता तदैवोत्तरा स्यान्न तदभावे ।। यावद्वचनं वाचनिकमिति न्यायात् ।। यदि तु बुधाभावेऽपि रोहिणीयोगमात्रादेवोत्तरोच्यते तदा रोहिणीयोगाभावेऽपि बुधमात्रसद्भावादुत्तरा स्यात् ।। अन्यतरायेऽप्येतद्वचनप्रवृत्तेरङ्गीकारात् ।। ऋक्षयोगवद्वारयोगस्यापि प्राशस्त्यहेतुत्वाच्च ।। किंच यथा पूर्वेद्युर्निशीथेऽष्टमीमात्रसत्त्वे उत्तरेद्युश्च निशीथात्पूर्वमृक्षयोगे बुधसत्त्वे च एतद्वचनादुत्तरेद्युर्व्रतमेवं पूर्वेद्युर्निशीथेशऋक्षाष्टमीसत्त्वे बुधाधिक्यादुत्तरेद्युर्व्रतापत्तिरिति ।। यच्च विष्णुरहस्ये–प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी ।। मुहूर्तमपि लभ्येत सोपोष्या च महाफला ।। इति ।। अत्रापि मुहूर्तपदं निशीथाख्यमुहूर्तपरम् ।। यत्त्विदमत्यन्ताशुद्धम् ।। तथात्वे वाक्यस्यैवानर्थक्यप्रसङ्गात् ।। यदा हि शुद्धाप्यष्टम्यर्द्धरात्रे वर्तमाना ग्राह्या, तदा रोहिणीसहिता सुतरामिति किं वचनेन ।। मुहूर्तमप्यहोरात्रे यस्मिन्युक्तं हि लभ्यते ।। अष्टम्या रोहिणीऋक्षं तां सुपुण्यामुपावसेत् ।। इति विष्णुरहस्ये एव स्पष्टैवाहोरात्रसंबंधि यत्किंचिन्मुहूर्तप्रतीतिरिति कालतत्त्वविवेचनने तद्विपरीतम् ।। ऋक्षयोगस्य

सति इति पाठान्तरम्

स्तावकत्वेन सार्थक्यात् ।। किञ्चैतद्वचनद्वयगतापिशब्दस्य स्वार्थे तात्पर्याभावेन ऋक्षयोगस्तावकत्वेन प्राशस्त्यबोधकत्वस्यैवोचितत्वादिति ।। यत्पुनरतत्रोक्तं कर्मकालव्याप्तिशास्त्रादेव प्रधानभूताया अष्टम्या एव अर्धरात्रसत्त्वेन प्राप्तं ग्राह्यत्वम् ।। दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणी कला ।। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम् ।। इति वचनेन रोहिणीयोगाभावविषये विशेषः क्रियते । एवं तस्यार्थ :---दिनावच्छेदेन रात्र्यवच्छेदेन वा कलामात्रापि चेद्रोहिणी अष्टम्यां नास्ति तदैव चन्द्रोदयसहितामर्धरात्रव्यापिनीमिति यावत् ।। दिनद्वयेऽति तादृश्या अभावे बहुरात्रिसंयुतामुत्तरां प्रकुर्वीतेति ।। तन्न ।। नेदं कर्मकालशास्त्रबाधकमन्यथाप्यर्थसंभवात् ।। तथाहि, दिनद्वये वैषम्येण निशीथे स्पर्शे अहोरात्रावच्छेदेन रोहिणीयोगाभावे च विशेषणाधिक्येनेन्दुसंयुता अधिकनिशीथ व्यापिनी ग्राह्येति यावत् ।। रोहिणीयोगे त्वधिकनिशीथव्यापिनीमपि विहाय स्वल्पापि निशीथयोगिनी रोहिणीयुतैव ग्राह्येति व्याख्यान्तरं मयूखे द्रष्टव्यम् ।। पारणं तु तिथिभान्ते कार्यम् ।। तदाह भृगुः--जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च ।। पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणाम् ।। इति ।। निषेधोऽपि ब्रह्मवैवर्ते--अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं क्वचित् ।। हन्यात्पुराकृतं कर्म उपवासार्जितं फलम् । तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् ।। तस्मात्प्रयत्नात्कुर्वीत तिथिभान्ते च पारणम् ।। इति तत्र दिवसे उभयान्ते पारणमिति मुख्य पक्षः ।। एकतरान्ते त्वनुकल्पः ।। यदा तु तिथि नक्षत्रयोरन्तरस्यैव दिनेऽन्तस्तदा रात्रौ पारणानिषेधादन्यतरान्ते पारणाभ्यनुज्ञानाद्दिवैवान्यतरान्ते कार्या ।। अत एव वह्निपुराणे--भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम् ।। इति ।। इति जन्माष्टमीनिर्णयः ।।

जन्माष्टमीव्रत

प्रध्माय वेणुं रुचिरे कदम्बे कदम्बमाहुय वराङ्गनानाम् ।।
निधूयमानं यमुनानिकुञ्जे रतोऽच्युतः सोऽवतु मां प्रपन्नम् ।।
केशप्रसारणं यत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तत्र तस्यैव रूपस्य देहि मे दर्शमच्युत ।।
संसारसागरे घोरे माधवस्त्वां समाश्रित ।
कृपया पाहि देवेश ! शरण्योऽसि जनार्दन ।।

कृष्णपक्षसे मासका प्रारंभ माननेपर भाद्रपद कृष्णा अष्टमीको जन्माष्टमीका व्रत होता है । इसमें अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी होनी चाहिये- इसमें प्रमाण देते हैं कि, इसका पूजनविधान रातमें किया है कि, भाद्रपदमासकी रोहिणी सहिता कृष्णाष्टमी आधीरातके समय हो तो समाहित चित्तवाले पवित्र पुरुषको चाहिये कि, ऐसे समयमें पूजा करना भली भांति प्रारंभ करदे । व्रतमें केवल अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमीको सामान्यरूपसे ग्रहण किया है कि, अर्धरात्रव्यापिनी अवश्य होनी चाहिये । फिर इसीकी पुष्टिमें अर्धरात्रको पूजाविधान करनेवाला वचन रख दिया है । इससे प्रतीत होता है कि, केवल रात्रिके पूजनमात्रको दिखानेके लिये

ही वचन रख दिया है । बाकी उस वचनके पदार्थका साध्य अर्धरात्रव्यापिनीपनेमें कोई उपयोग नहीं है । यह जन्माष्टमीके व्रतकी सामान्यविवेचना है कि, और कुछ हो वा न हो पर निशीथव्यापिनी अष्टमी अवश्य होनी चाहिये ।। वैसीही दो दिन रहनेवाली अष्टमियोंमेंसे व्रताष्टमी कौनसी है ? इस बातके निर्णयके लिये लिखते हैं कि, यदि दो दिन अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी मिले तो परका ही ग्रहण होता है । दोनोंही दिन अर्धरात्रव्यापिनी न हो, तो भी पराकाही ग्रहण होता है । इसमें कारण तीन हैं–पहिला तो परा माननेसे प्रातःकाल व्रत संकल्पमें समय अष्टमी मिल जायगी । दूसरे रातदिन यह अष्टमी रहेगी । तीसरे ब्रह्मवैवर्तपुराणमें ऐसा कहा है कि सप्तमीके साथ रहनेवाली अष्टमीको प्रयत्नके साथ छोड़ दे । इन तीनों कारणोंसे दो दिन अर्धरात्रव्यापिनी होने या न होनेमें पराकाही ग्रहण करना चाहिये ।। पूर्वाका ग्रहण उस समय होता है जब कि, पहिले दिन अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी हो, दूसरे दिन रोहिणी नक्षत्रके साथ अष्टमी हो तो सही, पर निशीथका स्पर्श न करती हो, इसमें कारण यही है कि पूर्वामें अर्धरात्रके पूजनके समय अष्टमी बनी रहती है पर उत्तरामें नहीं रहती । विरोधपरिहार-तो केवल यही विचार करनेसे हो जाता है कि, दोनों दिन अर्धरात्रव्यापिनी नहो अथवा दोनों ही दिन हो तो पराका ग्रहण है, पर एक दिन अर्धरात्रमें व्याप्ति हो दूसरे दिन हो तो पूर्वाका ग्रहण होता है । यह परा और पूर्वाके ग्रहण करनेके हेतुओंमें भेद हो गया । इससे दोनों वाक्योंमें कोई विरोध नहीं दीखता है । योगविशेषका विचार करके तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि, योग विशेष फलके अतिशयके लिये है, खास नहीं है । यही बात नीचे सिद्ध करते हैं । सबसे पहिले रोहिणीके ही योगपर विचार करते हैं कि रोहिणी योग तो केवल फलका अतिशय दिखानेके लिये है जैसे कि नवमी और बुधके योग हैं उक्त नक्षत्रका योग किसी निर्णयके योग्य नहीं है । यदि ऐसा मानोगे तो यह जो पद्ममें लिखा मिलता है कि, " उन मनुष्योंने प्रेत योनिको प्राप्त हुए अपने पुरुषोंका प्रेतपना मिटा दिया जिन्होंने श्रावण (भाद्रपद) मासकी रोहिणी नक्षत्रके साथ रहनेवाली कृष्णा अष्टमीका व्रत किया है । यदि उस दिन बुधवार भी हो और सोमवारके उदयके साथ हो तो उसके विशेषफलका कहा ही क्या है । यदि ऐसी अष्टमी नवमीके साथ संयुक्त हो तो कोटि कुलोंकी मुक्ति देनेवाली है ।' इससे रोहिणीयुक्त अष्टमीको छोड़कर ऐसी ही बुध और नवमीसे युक्ता करनी चाहिये यह सिद्धान्त हो जायगा; इस कारण यह मानना ही चाहिये कि, रोहिणी आदिका योग, फलविशेषके लिये है, कोई खास बात नहीं है कि, ये आवश्यक ही हों ।। सोम-शब्द आया है, " सोमेनापि विशेषतः " इस पद्यके अन्दर, इसपर विचार होता है कि, इसका क्या अर्थ है ? किसीने इसका चन्द्रवार अर्थ किया है जो कि, निर्णयसिन्धुमें झलकता है कि, ऐसा बुधवार या चन्द्रवार हो पर इसका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि, विष्णुधर्ममें " तारापत्युदये सति " यानी तारापति चन्द्रमाके उदय होने पर, यह वाक्य पडा है, इससे चन्द्रोदयका लाभ हो जाता है कि, चन्द्रमाका उदय हो इसीके आधारपर सोमका " चन्द्रवार " अर्थ न कर चन्द्रोदय करना चाहिये यह मयूखमें लिखा है, इससे यह निश्चय हुआ कि, " सोमेन " का अर्थ चन्द्रोदयके साथ है सोमवारी नहीं है ।। परयुताका माहात्म्य–भी स्कान्दमें वर्णन किया है यक, उदयकालमें थोडे समय तो अष्टमी हो और बाकी सब नवमी हो. वह भी अष्टमी बुधवार और रोहिणी नक्षत्रसे युक्त हो तो अत्यन्त ही उत्तम है पर यह सौवर्षमें भी मिले या न मिले । उदय शब्द जो इसमें आया है, इसका निर्णयसिन्धुकारने सूर्य्योदय अर्थ किया है कि, कोई इसका चन्द्रोदय अर्थ करते हैं, पर यह कहना उनका ठीक नहीं, क्योंकि, चन्द्रोदयके सत्वमें सन्देह रहेगा, दूसरा वे हेतु देते हैं कि. ' नवमी सकला यदि ' सब नवमी हो यहां अयोग होनेसे यानी चन्द्रोदयकालमें कुछ अष्टमी रहनेपर संपूर्ण नवमीका वारमें योग हो नहीं सकता तथा दूसरा कोई प्रमाण भी नहीं है इस करण उदयका सूर्योदय अर्थ करना चाहिये ।। इस पर व्रत राजकार कहते हैं कि,यहां उदयशब्द चन्द्रोदयपरही है,सूर्य्यो नहीं है । यदि सूर्य्योदयपर मानोगे तो यह दोष होगा कि, पहिले दिन खाली अष्टमी निशीथव्यापिनी हो पर दूसरे दिन निशीथ कालका स्पर्श न करनेवाली अष्टमी रोहिणी युता होती हुई बुधयुता होगी तब ही उत्तरा ली जायगी इसके अभावमें नहीं ली जा सकती । क्योंकि, जितने वचन होते हैं वे सब मुखसेही कहे होते हैं, यानी जः [illegible] हो या विधान हो वो कहा हुआ होना चाहिये ऐसे स्थलमें उत्तराका ग्रहण नहीं देखा जाता, यही उदयको सूर्य्यके माननेमें दोष होगा । यदि यह कहो कि, विना भी बुधके रोहिणीके योगमात्रसे ही उत्त-

राका ग्रहण हो जायगा तो यह भी होना चाहिये कि, रोहिणीके योगके विना भी केवल बुधवारके ही योगसे उत्तराका ग्रहण हो जाना चाहिये क्योंकि, रोहिणी और बुधवार इन दोनोंका योगमेंसे एके न रहने पर भीयह वचन प्रवृत्त होता है यह स्वीकार किया है, दूसरे नक्षत्रके योगकी तरह वारका योग भी प्रशंसाका कारण होता है । इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि, " उदये " इससे चन्द्रकेही उदयका ग्रहण है सूर्यका नहीं. एक और बात है कि, जैसे पहिले दिन आधी रातके समय केवळाष्टमी हो और दूसरे दिन अर्धरात्रसे पहिले रोहिणी नक्षत्र और बुधका योग हो तब इस वचनसे दूसरे दिन व्रत होगा । इसी तरह पहिले दिन आधीरातके समय चन्द्रमाका उदय और रोहिणी नक्षत्र हो पर दूसरे दिन बुधकी अधिकतामें भी दूसरे दिन व्रत होना चाहिये । किन्तु ऐसा होता नहीं है इससे भी चन्द्रोदयही लेना चाहिये । यह जो विष्णुरहस्यमें लिखा हुआ है कि भाद्रपद कृष्णाष्टमी यदि रोहिणी नक्षत्र सहित एक मुहूर्त भी मिले तो उसमें व्रत करनेसे महाफल होता है इसमें जो मुहूर्तपद पड़ा हुआ है वो निशीथ नामके मुहूर्तसे तात्पर्य रखता है ऐसा कोई कहते हैं । पर यही इसका तात्पर्य है तो यह तात्पर्य अत्यन्त अशुद्ध है क्योंकि, ऐसा माननेसे वचनही व्यर्थ होगा जब कि, शुद्धा भी अष्टमी अर्धरात्रमें रहनेवाली ग्रहण की जाती है, यदि रोहिणी सहित मिल जाय तो अच्छी तरह ग्रहण करली जायगी वचनकी क्या आवश्यकता हैं । जिस अहोरात्रमें अष्टमी रोहिणी नक्षत्र मुहूर्तपर भी युक्त मिल जाय तो उस सुपुंण्यामें उपवास करे । यह विष्णुरहस्यमें दिनरात सम्बन्धि रोहिणी नक्षत्र युत अष्टमीकी किंचिन्मुहूर्त भी प्रतीति हो तो भी ग्रहण करले, यह स्पष्टही लिखा है, इससे यह बात परिस्फुट प्रतीति हो जाती है कि, पूर्वोदाहृत विष्णुरहस्यके वचनमें जो मुहूर्त पद है वह दिनरातमें किसी भी मुहूर्त हो यह अर्थ रखता है निशीथाख्य मुहूर्तपरक नहीं है । जो उसके मुहूर्तपदका निशीथका मुहूर्त अर्थ करते हैं कालतत्त्वमें उनसे विपरीत अर्थ किया है । यदि यह कहो यह क्यों रख दिया है तो यह भी नहीं कह सकते क्योंकि नक्षत्रके योगकी प्रशंसाके लिये वचनके होनेसे वाक्य सार्थक हो जाता हैं. एक और यह बात है कि, " मुहूर्तमपि " इस वचनमें अपिशब्द पडा हुआ है तथा दूसरे वचनमें भी इसी प्रकार अपिशब्द आया है इसका कोई स्वार्थमें तो तात्पर्य है नहीं. इससे नक्षत्रके योगकी स्तुति करनेवाला होनेके कारण प्रशंसांका बोधक माननाही उचित जान पड़ता है, जो फिर वहां हीं यह कहा है कि, कर्म (पूजादिकके) कालमें व्याप्ति (उपस्थिति) को विषयकरके कहनेवाले शास्त्रसे ही प्रधान भूत अष्टमीकाआधीरातमें रहनेके कारण उसे ग्राह्यत्व प्राप्त है यानी पूजाका समय जो आधी रात है उसमें अष्टमीके रहते उस अष्टमीमें व्रत होगा, ऐसा शास्त्र प्रतिपादन करता है । इसके विषयमें यह कहना है कि, " दिन या रात दोनों में रोहिणीका एक भी कहा नहीं है तो आधी रातको रहनेवाली चन्द्रोदय सहिता अष्टमीको व्रत करना चाहिये " इस वचनसे रोहिणी योगके प्रभावमें भी यह विशेष विधान किया है कि चन्द्रोदय सहिताको ही लेले इसी प्रकारही इस वाक्यका अर्थ है कि, दिन या रातमें एक कला भी रोहिणी न हो तो चन्द्रोदयके साथ आधी रातको पूजनके समय रहनेवाली अष्टमीही लेनी चहिये । यदि दो दिन हो पर दोनोंही दिन वैसी न हो तो जिस रातको ज्यादा देरतक अष्टमी रहे उसी उत्तरमें व्रत करना चाहिये । ऐसा कोई कहते हैं । पर ऐसा नहीं होना चाहिये,क्योंकि यह कर्मकालके शास्त्रका बाधक नहीं है इसका दूसरी तरह भी अर्थ हो सकता है । वही दिखाते है कि, दोनों दिन समानतासे अर्धरात्रव्यापिनी न हो तथा अहोरात्रभर रोहिणी नक्षत्रका योग न रहता हो तब विशेषकी अधिकतासे चन्द्रोदयके साथ रहनेवाली जो अर्धरात्रमें अधिक देर तक रहनेवाली अष्टमी हो उसका ग्रहण करना चाहिये । रोहिणीके योगमें तो अधिक रात्रतक रहने वाली अष्टमीको छोड़ छोड़कर थोड़ी भी अर्धरात्रके साथ योग रखनेवाली रोहिणीयुता अष्टमी ग्रहण करनी चाहिये । यह इसकी दूसरी व्याख्या आचार मयूखमें देखनी चाहिये ।। (निर्णयसिन्धु—सबके मतमें कृष्णाष्टमी पूर्वा और शुक्लाष्टमी परा ग्रहण की जाती है, व्रत मात्रमें कृष्णाष्टमी पूर्वा और शुक्लाष्टमी परा ली जाती है ऐसा माधवका मत है, दीपिकामें भी यही लिखा है कि, सप्तमीयुता कृष्णाष्टमी और नवमीयुता शुक्काष्टमी लेनी चाहिये यह अष्टमीके ग्रहणका सामान्य विचार है कि, व्रतमें कृष्णाष्टमी पूर्वा और शुक्लाष्टमी परा ली जाती है।शिव और शक्तिके उत्सवोंमें तो दोनोंही पक्षोंकी उत्तराका ही ग्रहण होता है यह विशेष है कि, शक्ति और शिव व्रतोंमें दोनों ही पक्षोंकी उत्तरा अष्टमी ली जाती है, जन्माष्टमी-भगवान् कृष्णको हुए पांच हजार सत्ताइसके लगभग वर्ष बीत गये । कल्पतरुमें ब्रह्म पुराणका प्रमाण दिया है कि ,अट्ठाईसवें कलियुगमें भाद्रपद कृष्णा

अष्टमीके दिन देवकीके पुत्र कृष्ण प्रकट हुए थे, । यह अष्टमी दो प्रकारकी है,एक तो केवल जन्माष्टमी और दूसरी जयन्ती । जयन्ती किसे कहते हैं ? अब हम इसीपर विचार करते हैं । रोहिणी सहिताको जयन्ती कहते हैं क्योंकि, बह्निपुराणमें लिखा हुआ है कि, भाद्रपद कृष्णा अष्टमी यदि रोहणी नक्षत्रसे युक्ता हो तो वह जयन्ती कहलाती है, उसमें प्रयत्नके साथ व्रत करना चाहिये । दूसरा प्रमाण विष्णु रहस्यका है कि, भाद्रपदमासमें कृष्ण पक्षकी अष्टमी रोहिणी नक्षत्रसे युक्ता हो तो वह जयन्ती कहाती है । इन दोनों प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो गया कि रोहिणीयुक्ता अष्टमी जयन्ती कहाती है । यह उत्तमा मध्यमा और अधमा इन भेदोंसे तीन तरहकी होती है । यदि अहोरात्र रोहिणीका योग हो तो उत्तमा, अर्धरात्रमात्रमें योग हो तो मध्यमा, तथा दिवस वा रात्रिमें थोडासा योग हो तो अधमा है । इन तीनोंके लिए वसिष्ठसंहिता विष्णुधर्म और तीसरोको किसी दूसरे पुराणमें रखा है । अर्धरात्रका रोहिणी योग भी चार प्रकारका होता है ।१– पहिले दिनही अथवा २–दूसरे दिन ही अथवा ३– दोनों दिन ही या ४– हो तो सही पर निशीथके समय न हो, इनमें चौथा योग भी तीन तरहका होता है ?– पहिले दिन अर्धरात्रमें अष्टमी हो और पर दिन रोहिणी हो, २– पर दिन अष्टमी हो और पहले दिन रोहिणी हो –३ दोनों दिन दोनोंका अर्धरात्रमें सम्बन्ध नहो ।

पारणा–तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी चाहिये, यही भृगुने कहा भी है कि, जन्माष्टमी दशरथललिता और शिवरात्रि इनको पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये तथा तिथि और नक्षत्रके समाप्त होनेपर ही पारणा करना चाहिये । व्रत तिथि–अष्टमीमें पारणाका निषेध भी ब्रह्मवैवर्तमें किया है कि, अष्टमी और रोहिणीमें कभी पारण न करे, क्योंकि ऐसा करनेसे पहिले पवित्र कर्म और उपवास से इकट्ठे किए फलको नष्ट कर डालता है । अठगुणा तिथि और चौगुना नक्षत्र अपनेमें पारणा किएसे नष्ट करते हैं इस कारण व्रत-तिथि और व्रत नक्षत्रके बीत जानेपर पारणा करे । इसमें भी दो पक्ष हैं, दिनमें व्रततिथि और नक्षत्रके बीत-जानेपर पारणा करे यह मुख्यपक्ष है, एकके बीतनेपर पारणा करनेका गौणपक्ष है जब कि, व्रततिथि या व्रत नक्षत्रमेंसे किसी का दिनमें ही अन्त हो जाय तब रातमें तो पारणाका निषेध है । पर किसीके भी अन्तमें पारणा-कर सकता है । इस प्रकारका विधान है, इससे दिनमेंही पारणा होनी चाहिये, चाहे नक्षत्रकी समाप्ति में की जाय चाहे व्रततिथिकी समाप्तिमें की जा रही हो । तबही अग्निपुराणमें लिखा है कि, हे भारत ! चाहे तो नक्षत्रके अन्तमें पारणा कर चाहे तिथिके बीत जानेपर पारणा करे पर दिनमें ही करना श्रेष्ठ है ।।

पारणा प्रत्येक व्रतके अन्तमें होती है । इस कारण पारणाका विचार करते हैं, व्रतके दूसरे दिन वैध, भोजनको पारणा कहते हैं, वह दूसरे दिन कब करनी चाहिये ? इस पर अब तक व्रतराजके विचार कहे गये थे । अब धर्मसिन्धुके विचार लिखते हैं– यदि केवल तिथिका उपवास हो तो उसके बीतनेपर तथा नक्षत्रयुक्त तिथिका उपवास हो तो दोनोंके अन्तमें पारणा करनी चाहिए, यदि ऐसा हो कि, व्रतके तिथिनक्षत्रोंमेंसे किसी एकका अन्त दिनमें मिलता हो पर दोनोंका अन्त रातमें ही मिले तो किसी भी एके अन्तमें दिनमें ही पारण कर लेना चाहिये । व्रतराज में दोनोंके अन्तमें दिनमें ही पारणा करे ऐसा लिखा है यदि व्रतके दूसरे दिन व्रततिथि और व्रतनक्षत्र दोनों काही अन्त मिल गया तो ठीक ही है, नहीं तो फिर तीसरे दिन जाके पारणा विधानका मुख्य सिद्धान्त समझना चाहिये । निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि, यदि व्रततिथि और व्रत नक्षत्र इन दोनों में से दिनमें किसी काभी अन्त न मिलता हो तो आधीरातसे पहिले एक किसीके अन्तमें अथवा तिथि और नक्षत्र दोनोंके ही अन्तमें पारणा कर लेनी चाहिये। यह कबतक करनी चाहिये इस पर निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि, निशीथके एक क्षण पहिले भी दोनों मेंसे किसी का वा दोनोंका अन्त हो तो पारणा निशीथमें भी कर लेनी चाहिये । ऐसे समय भोजन हो नहीं सके तो फलादिकसे ही पारणाकर लेनी चाहिये । अनुकल्पमें व्रतराजकार तो किसी एकके अभासमें पारणा मानते हुए भी रातमें पारणाका निषेध होनेसे दिनमें ही व्रत-तिथि या व्रतनक्षत्र किसी की भी समाप्ति होनेपर दिनमेंही पारणा चाहते हैं । निर्णयसिन्धुकार केचित्तु करके इस बातका खण्डन करते हैं कि,कोई तो ऐसा कहते है कि, अर्धरात्रमें पारणा न करनी चाहिये, किन्तु ऐसे बखे-ड़ेमें तीसरे दिन पारणा दिनही में हो किन्तु यह ठीक नहीं है, क्यों कि यदि असक्त हो तो बिना व्रततिथि और नक्षत्रकी समाप्ति हुए भी विना व्रतके दूसरे दिन प्रातःकाल देव पूजनादिकरके पारणा करलेनी चाहिये ।

निर्णयसिन्धुमें व्रतराजकी तरह ब्रह्मवैवर्तका वचन लिखा है, दूसरा हेमाद्रिका वचन रखा है कि, तिथि और नक्षत्रकी जतु समाप्ति हो अथवा नक्षत्र या तिथि की समाप्ति मिल जाय तो अर्धरात्रमें पारणा की जा सकती है, पीछे तो तीसरे दिन पारणा होगी इससे रात्रिके पारणा पक्ष को निर्णयसिन्धुकारने मुख्य माना है पर व्रतराजने रातिकी पारणाका निषेध किया है यह व्रतराज और निर्णयसिन्धुमें भेद है । ब्रह्मवैवर्तमें लिखा हुआ है कि; " सब उपवासोंमें दिनमें ही पारणा करना इष्ट है" यानी रातमें पारणा न करनी चाहिए। निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि. दूसरे दिन दिनमें ही व्रततिथि और व्रतनक्षत्र इन दोनोंकी समाप्ति तथा एककी समाप्ति मिल जाय तो दिनमें ही पारणा करे । धर्मसिन्धुकी तरह निर्णयसिन्धु भी निशीथके पूर्वपक्षतक दोनों वा किसी की समाप्तिमें पारणा मानता है । यदि दो दिन व्रत न कर सके तो उसके लिए उत्सवके अन्तमें अथवा नित्यकर्मसे निवृत्त होकर प्रातःकार ही पारणा करलेनी चाहिये । यह उसने सिद्धान्त किया है ।

अथ व्रत प्रयोग

व्रतपूर्वदिने दन्तधावनपूर्वकं कृतैकभक्तो व्रतदिने कृतनित्यक्रियो देवताः प्रार्थयेत्–सूर्यः सोमो यमः कालसन्ध्या भूतान्यहःक्षपा ।। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खेचरा नराः ।। ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पन्तामिह संनिधिम् ।। इत्युक्त्वा सफलं पुष्पाक्षतजलपूर्णं ताम्रपात्रमादाय मासपक्षाद्युल्लिख्य अमुक फलकामः पापक्षयकामो वा कृष्णप्रीतये कृष्णजन्माष्टमीव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य ।। वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये ।। उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् ।। अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रं सरोहिणीम् ।। अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि एनसो मोक्षकामोऽस्मि यद्गोविन्दवियोनिजम्।।[1] तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि पतितं शोकसागरे ।। आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।। तत्प्रणाशय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम ।। इत्युक्त्वा पात्रस्थं जलं निक्षिपेत् ।। ततः कदलीस्तंभवासोभिराम्रपल्लवयुतसजलपूर्णं कलशैर्दीपैः पुष्पमालाभिर्युतमगुरुधूपित–मग्निखड्गकृष्णच्छागरक्षमणिद्वारन्यस्तमुसलादियुतं मंगलोपेतं षष्ठ्या देव्याधिष्ठितं देवक्याः सूतिकागृहं विधाय तस्य समन्ताद्भित्तिषु कुसुमाञ्जलीन्देवगन्धर्वादीन् खड्गचर्मधरवसुदेवदेवकी नन्दयशोदागर्गगोपीगोपान्कंसनियुक्तान् गोधेनुकुञ्जरान्यमुनां तन्मध्ये कालियमन्यच्च तत्कालीनं गोकुलचरितं यथासंभवं लिखित्वा सूतिकागृहमध्ये प्रच्छदपटावृतं मञ्चकं स्थापयित्वा मध्याह्ने नद्यादौ तिलैः स्नात्वा अर्धरात्रे श्रीकृष्णं सपरिवारं सूपूजयेत् ।। अथ पूजाविधिः–येभ्यो मातैवार्पित्रे इति मन्त्रौ जपित्वा आगमार्थं त्विति घण्टानादं कृत्वा अपसर्पन्त्विति छोटिकामुद्रया भूतान्युत्सार्य तीक्ष्णदंष्ट्रेति क्षेत्रपालं संप्रार्थ्य आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मम सहकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यविजयाभयायुरारोग्यै-

---

१ यन्मे वियोनिजं विविधजन्मजं एन इति शेषः तन्मां मुञ्चतु इत्यन्वयः विभोजनमित्यपि पाठः तत्र यन्मे विभोजनमुपवासस्तन्मां मुञ्चतु मोचयन्वित्यर्थः

श्वर्याभिवृद्ध्यर्थं धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुर्विधपुरुषार्थं सिद्ध्यर्थं निशीथे सपरिवार श्रीकृष्णप्रीत्यर्थंच पुराणोक्तप्रकारेण पुरुषसूक्तविधानेन च यथासंभवनियमेन यथामिलितद्रव्यैर्जन्माष्टमीव्रताङ्गत्वेन परिवारसहित श्रीकृष्णपूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य कलशार्चनं शंखार्चनं च कुर्यात् । पुरुषसूक्तेन न्यासान्कुर्यात् ।। रङ्ग-वल्लीसमायुक्ते सर्वतोभद्रमण्डले ।। अव्रणं सजलं कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा ।। संस्थाप्य वस्त्रसंवीतं कण्ठदेशे सुशोभितम् ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं फलगन्धाक्षतैर्यु-तम् ।। सहिरण्यं समासाद्य ताम्रेण पटलेन वा ।। वंशमृन्मयपात्रेण यवपूर्वेन चैव हि ।। आच्छादयेच्च चैलेन लिखेदष्टदलं ततः ।। काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ।। वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैर्लिखिताथवा ।। इत्युक्तान्य-तमां प्रतिमां विधाय अग्न्युत्तारणं कृत्वा प्रतिमाकपोलौ स्पृष्ट्वा तद्देवतामूलमन्त्रं प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं नमोन्तं नाम ।। अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाश्चरन्तु च ।। अस्यै देवत्वमार्चायै मामहे ति च कश्चन ।। इति मन्त्रं च पठन् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।। अस्या इत्यस्य स्थाने तत्तद्देवतानाम ग्राह्यम् गायद्भिः किन्नराद्यैः सतत-परिवृता वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरवृतकरैः किंकरैः सेव्यमाना ।। पर्यंके स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी दिव्यरूपा ।। इति देवकीम् ।। मां चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तन-पायिनम् । श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम् ।। इति श्रीकृष्णं च ध्यात्वा ॐ देवक्यै नम इति देवकीम् । ॐ श्रीकृष्णाय नम इति तत्प्रतिमायां कृष्णमा-वाह्य ॐ नमो देव्यै श्रियै इति श्रियम् ।। वसुदेवाय नम इति वसुदेवम् । ॐ यशो-दायै नम इति यशोदाम् । ॐनन्दाय नम इति नन्दम् । ॐ बलदेवाय नम इति दलदेवम् । ॐचण्डिकायै नम इति चण्डिकां चावाह्य । ॐ सपरिवाराय कृष्णाय नम इति नाममन्त्रेण कृष्णं पूजयेत् ।। तद्यथा—ॐ सपरिवाराय कृष्णाय नमः आसनम् ।। ॐ सपरिवाराय कृष्णाय० पाद्यम् ।। ॐ सपरिवाराय कृष्णाय० नमः अर्घ्यम् ।। ॐ सपरिवाराय कृष्णाय० आचमनीयम् ।। योगेश्वराय देवाय योगिनां पतये विभो ।। योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमोनमः ।। स्नानम् ।। ॐ सप० कृष्णाय० वस्त्रम् ।। ॐ सप० कृष्णाय० यज्ञोपवीतम् ।। ॐ सप० कृष्णाय० चन्दनम् ।। स० कृ० पुष्पाणि० ।। अथाङ्गपूजा—गोविन्दाय० पादौ पूजयामि ।। माधवाय० जंघे पू० ।। मधुसूदनाय० कटी पू० ।। पद्मनाभाय० नाभि पू० ।। हृषीकेशाय० हृदयं पू० ।। संकर्षणाय० स्तनौ पू० ।। वामनाय० बाहू पू० ।। दैत्यसूदनाय० हस्तौ पू० ।। हरिकेशाय नमः कण्ठं पू० ।। चारुमुखाय० मुखं पू० ।। त्रिवित्तमाय० नासिकां पू० ।। पुण्डरीकाक्षाय० नेत्रे पू० ।। नृसिंहाय० श्रोत्रे पू०

उपेन्द्राय० ललाटं पू० ।। हरये न० शिरः पू० ।। श्रीकृष्णाय० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ।। यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः ।। भूपदीपौ ।। विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।। विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमोनमः ।। नैवेद्यम् ॐ स० कृ० आचमनीयम् करोद्वर्तनम् फलम् ताम्बूलम् दक्षिणाम् नीराजनन् पुष्पाञ्जलिम् ।। इति भविष्यपुराणोक्तः पूजाक्रमः । गारुडे तु-यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमोनम इति अर्घ्ये ।। सर्वेषां यज्ञपदानां स्थाने योगपदयुक्तोऽयमेव मन्त्रः स्नाने ।। तथैव विश्वपदयुक्तो नैवेद्ये ।। तथैव धर्मपदयुक्तः स्वाहान्तस्तिलहोमे ।। विश्वपदयुक्त एव शयने ।। सोमपदयुक्तश्चन्द्रपूजायां इति मन्त्रा उक्ताः ।। ततो गव्यघृतेनाग्नौ वसोर्धारा, क्वचिद्गुडघृतेनेति ।। ततो जातकर्मनालच्छेदषष्ठीपूजानामकरणकर्माणि संक्षेपेण कार्याणि ।। ततश्चन्द्रोदये रोहिणीयुतं चन्द्रं स्थण्डिले प्रतिमायां वा नाममन्त्रेण संपूज्य । शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम् ।। जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रा यार्घ्यं निवेदयेत् ।। क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ।। गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम ।। इति अर्घ्यम् ।। ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।। नमस्ते रोहिणीकान्त सुधावास नमोऽस्तु ते ।। नमो मण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटे ।। कलाभिर्वर्धमानाय नमश्चन्द्राय चारवे ।। इति प्रणमेत् । अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।। वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ।। वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ।। दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् । गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ।। अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्त कारणम् ।। अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।। नारायण चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ।। पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ।। श्रीवात्सांक जगत्सेतुं श्रीकृष्णं श्रीधरं हरिम् ।। शरणं त्वां प्रपद्येऽहं सर्वकामार्थसिद्धये ।। प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम् ।। इति मन्त्रैः प्रणम्य ।। त्राहि मां सर्वलोकेश हरे संसार-सागरात् ।। त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ।। सर्वलोकेश्वर त्राहि पतितं मां भवार्णवे ।। देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् ।। त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे ।। दुर्वृत्तात्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ।। सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् ।। पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं [1]मायाव्यज्ञानसागरे ।। त्राहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षिता ।। यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्धके ।। तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं हर हलायुध ।। इति मन्त्रैः प्रार्थयेत् ।। तत : स्तोत्रं पठन् पुराणश्रवणादिना जागरं कुर्यात् ।। द्वितीयेऽह्नि

---

१ मायाविज्ञानेत्यपि पाठः

प्रातःकाले स्नानादिनित्यकर्म कृत्वा पूर्ववद्देवं पूजयित्वा ब्राह्मणान् भोजयेत् ।। तेभ्यः सुवर्णधेनुवस्त्रादि दत्त्वा कृष्णो मे प्रीयतामिति वदेत् ।। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।। भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।। नमस्ते वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत् ।। इति प्रतिमामुद्वास्य तां ब्राह्मणाय दत्त्वा पारणं कृत्वा व्रतं समापयेत् ।। सर्वस्मै सर्वेश्वराय सर्वेषां पतये सर्वसंभवाय गोविन्दाय नमोनम इति पारणे ।। भूताय भूतपतये नम इति समापने मन्त्रः ।। इति पूजाविधिः ।।

व्रतप्रयोग–व्रतदिनसे पूर्वदिन दन्तधावनादि समस्त नैत्यिक नैमित्तिक कर्मकरके एकबार भोजन करे। दूसरे दिन मलमूत्रत्यागकर नित्यकर्तव्यकर्म्मसे निवृत्त होकर देवताओंकी प्रार्थना करके कि, सूर्य, चन्द्र, यम, काल दोनों सन्ध्या, प्रातःसन्ध्या, (सायंसन्ध्या), भूत (प्राणिमात्र), दिन रात्रि, वायु, दिक्पाल, पृथिवी, आकाश, नक्षत्र और मनुष्य ये सभी ब्रह्माजीकी आज्ञा लेकर यहां सन्निहित हों । इस प्रकार साञ्जलि प्रार्थना करनेके पीछे फल, पुष्प, अक्षत एवं जलसे पूर्ण तांबेके पात्रको हाथमें लेकर ' ओम तत्सत् ' इत्यादि वाक्य कल्पना करके देश काल और अपने गोत्र एवं नामका स्मरण करके जिस कामनासे व्रत करता हो उसको कहता हुआ अमुक फलकी अभिलाषावाला, या (यदि कामनासे नहीं किन्तु कर्त्तव्य भावनासे व्रत करता हो तो उसको कहता हुआ) पापोंके क्षयका अभिलाषी मैं श्रीकृष्ण भगवान्की प्रीतिके लिए जन्माष्टमीके व्रतको करूँगा, ऐसा संकल्प करे । पीछे भगवान्का साञ्जलि ध्यान करता हुआ प्रतिज्ञा करे कि, वासुदेव भगवान्की प्रसन्नतासे समस्त पापोंके क्षयके लिये आज मैं भाद्रपदकृष्णाष्टमीके दिन उपवास करूँगा, कृष्णाष्टमीतिथिकी अधिदेवता एवं रोहिणीसहित चन्द्रमाका आज उपवासपरायण हो पूजन करूंगा । दूसरे दिन भोजन करूंगा । हे गोविन्द ! मैं आपसे मोक्षपदकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करता हूं । मैंने अबतक दूसरी २ नीच योनियोंमें पाप किया है उसके दुःखसे मुझे निर्मुक्त कीजिये । आप मेरी रक्षा कीजिये । मैं शोकसमुद्रमें डूबा हुआ हूं । मैं जन्मसे अबतक इस जन्म में भी पापकर्म किये हैं हे गोविन्द ! उसे आप विनाशिये हे पुरुषोत्तम ! आप प्रसन्न हों । इस प्रकार कहे पीछे ताम्रपात्रके जलादियोंका भूमिपर या किसी जलपात्रमें डाले । फिर अनेक केलेके स्तम्भ तथा वस्त्र और आमके कोमल पत्रों सहित जलपूर्ण अनेक कलश, दीपक, एवं पुष्पमालाओंसे चारों ओरसे सजाया हुआ एवम् अगरको धूपसे सुगन्धित अग्नि, खड्ग, कृष्णच्छाग और रक्षासूत्रोंसे सुरक्षित, द्वारभागोंमें मुसलादिकोंसे सुशोभित, माङ्गलिक दर्पण आदिसहित षष्ठी देवीकी मूर्तिसे युक्त देवकीका सूतिकागृह बनावे उसके चारों ओर भित्तियोंमें कुसुमाञ्जलि लिए हुये देव गन्धर्व और यक्ष नागादिकोंके चित्र, खड्ग, चर्म खरक्षक, ढाल पाणि वसुदेवजी, देवकी नन्द, यशोदा, गर्गाचार्य, गोप और गोपिकाओंके चित्र, कंसकी आज्ञासे प्राप्त पूतनादि तथा इनके मरणादि सूचक चित्र एवं वृषभ, गौ, कुंजर यमुना, यमुनागत कालियके दशमावस्थाके चित्र और गोवर्धन धारणादि एवं उस बाल्यावस्थामें गोकुलके किये चरितोंके चित्रोंको यथासम्भव लिखकर सूतिकागृहके मध्यभागमें चारों ओर कपडेसे ढके हुए पर्यङ्कको विछावे मध्याह्नमें ही आप नद्यादि किसी पवित्र जलाशयपर तिल स्नान करे। अर्ध रात्रिके पर्य्यन्त भगवान्के ध्यानादि करता रहे। अर्धरात्रिके पीछे परिवार सहित श्रीकृष्णचन्द्रकी तथा देवकी आदिकों की प्रतिमाओंका पूजन करे । अब पूजन-विधि लिखते–" ओं येभ्यो माता मधुतम् पिन्वते । एवापित्रे विश्वदेवाय " इन दो मंत्रोंको जपकर ' ओम् आगमार्थं तु देवानाम् ' इस पूर्वव्याख्यातमंत्रको पढ़कर घण्टा बजावे । ओं अपसर्पन्तु भूतानि ' इस पूर्वोक्त मंत्रको पढ़ता हुआ चुटकी बजावे और चुटकी बजानेके मानो भूतपिशाचोंको यहांसे निकाल दिया है ऐसी मन और प्राणायाम करके देश कालको कह, कुटुम्ब सहित मेरी क्षेम, स्थैर्य्य विजय, अभय, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी अभिवृद्धि तथा धर्म, अर्थ, काम मोक्ष इन चारों तरहके पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लियेअर्धरात्रके समय बलदेवादि सब परिवारसहित श्रीकृष्ण भगवानकी प्रसन्नताके लिये पुराणोंकी कही हुई विधिके अनुसार तथा

पुरुष सूक्तके विधानसे जैसा होसके उसी नियमसे तथा जो प्राप्त हो जाय उसी द्रव्यसे जन्माष्टमीके व्रतके अङ्गरूपसे परिवार सहित श्रीकृष्णचन्द्रजीका पूजन करूंगा ऐसा संकल्पकरके कलश और शंखका पूजन करना चाहिये । रङ्गवल्ली सहित सर्वतोभद्र मण्डलपर तांबे या मिट्टीका पानीसे भराहुआ सावित कलश स्थापित करे, वह पूजाक्रमसे ढका हुआ कण्ठदेशमें सुशोभित पंचरत्नोंसे समायुक्त फल और अक्षतोंसे युक्त एवम् सोने सहित हो, उसे जौके भरे हुए तांबेके अथवा बांस या मिट्टीके पात्रसे ढक दे, पीछेसबकोकपडासे ढक दे उस-पर अष्टदल कमल लिखे, सोना, चांदी, तांबा, पीतल,मिट्टी काठ और मणि आदिमेंसे किसीकी भी नी हुई प्रतिमा अथवा चित्रपट तैयार कराके अग्न्युत्तारण करने योग्यका अग्निउत्तारण संस्कारकरके प्रतिमाके कपोलको छूता हुआ नामके आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः तथा नामको चतुर्थीका एक वचन करनेसेउसी देवताका मूलमंत्र बन जाता है । इसी प्रकार ' ओम् श्रीकृष्णाय नमः ' इस मूल मंत्रको एक सौ आठ बार जपे,फिर ' अस्यै ' इस मंत्रको बोलकर प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये । (प्राणप्रतिष्ठाका सामान्य विषय पीछे लिख चुके हैं इसविषयमें विशेष देखना हो तो पांचरात्र शास्त्र देख लेना चाहिये । मंत्रार्थ इस देवताके लिये प्राणप्रतिष्ठित हों, इस देवताके लिये प्राण संचार करें, इस देवताके लिये पूजनार्थ अथवा इस अर्चावतारके लियेकोई पूजनका अभिलाषी भक्त देवपनेको पूज्य प्रतिष्ठित करता है । " अस्यै" इसके स्थानमें उस उस देवताका नाम ग्रहण करना चाहिये ।" गायद्भिः " इस मंत्रसे देवकीजीका ध्यान करे । इसका यह अर्थ है कि, किन्नर, अप्सरा, यक्षादिगण, गान वेणु और वीणाकी ध्वनिसे जिसको प्रसन्न करते हैं , भृङ्गार (जलझारी) दर्पण और कलश हाथोंमें लेकर बहुतसे दासजन जिसकी सेवामें समाहित चित्त हों रहे हैं । सुन्दर शय्यास्तरणसे शोभित किये हुए पर्यंक पर आरुढ, प्रसन्नमुख श्रीकृष्णचन्द्र जिसके गोदमें विराजान हैं ऐसी दिव्य सौन्दर्य्य शालिनी, मन्द मुसकान करती हुई देवकी विजयको प्राप्त हो ।' वन्देऽहं ' इससे श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करे । इसका यह अर्थ है कि,पर्यङ्कपर शयन करके माताके स्तनपान करते हुए बालमूर्ति वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्नसे शोभायमान, शान्त, नीलकमलके दलके समान सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको में प्रणाम करता हूं–' ओं देवक्यै नमः ' देवकीके लिये नमस्कार इससे देवकीका । ' ओं श्रीकृष्णाय नमः " श्रीकृष्णके लिये नमस्कार इससे श्रीकृष्णकी प्रतिमामें श्रीकृष्णका आवाहन करके पीछे ' ओं नमो दैव्यैश्रियै ' इससे श्रीका, ' ओंवसुदेवाय नमः ' वसुदेवके लिये नमस्कार इससे वसुदेवका; ' ओं यशोदायै नमः ' यशोदाके लिये नमस्कार इससे यशोदाका; ' ओं नन्दाय नमः ' नन्दके लिये नमस्कार इससे नन्दका: ' ओं बलदेवाय नमः ' बलदेवके लिये नमस्कार इससे बलदेवका; ' ओं चण्डिकायै नमः ' चण्डिकाके लिये नमस्कार इससे चण्डिकाका आवाहन करके पीछे ' ओं सपरिवाराय कृष्णायनमः ' बलदेवादि परिवार सहित कृष्णके लिये नमस्कार इस नाम, मंत्रसे कृष्णका पूजन करना चाहिये । इसी मंत्रको पृथक् पृथक् बोलकर आसन, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय, समर्पण करना चाहिये, हे विभो । भक्तियोगसे भक्तोंके लिये प्रकट होनेवाले स्वः शाश्वत योगियोंके, अधिपति योगेश्वर देव गोविन्दको वारंवार नमस्कार है, इससे स्नान, फिर उसी पूजनके नाममंत्रसे क्रमशः वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन और पुष्प, समर्पण करना चाहिये ।। अंग पूजा–गोविन्द, पाद माधव, जंघा, मधुसूदन, कटी । पद्मनाभ, नाभि । हृषीकेश, हृदय । संकर्षण, स्तन । वामन, बाहू । दैत्यसूदन हस्त । हरिकेश, कंठ । चारुमुख, मुख । त्रिविक्रम, नासिका । पुण्डरीकाक्ष, नेत्र । नृसिंह, श्रोत्र । उपेन्द्र, ललाट । हरि, शिरः । श्रीकृष्ण, सर्वाङ्ग । ये ऊपर लिखे हुए ऊपर सोलह नाम तथा इनके साथ पाद आदि अंग तथा सोलहवां सर्वाङ्ग है, इनमें एक अंगको द्वितीयाका एक वचनान्त तथा दो होनेवाले जंघा आदिको द्वितीयाका द्विवचनान्त करके आये हुए भगवान्के नामका नाममंत्र बनाके सबसे पीछे " पूजयामि " लगाकर पुष्पोंसे पूजन करना चाहिये यानी एक एक बोलकर एक एक अंगपर फल चढ़ाने चाहिये । यज्ञसे प्रकट होनेवाले वा यज्ञोंको प्रकट करनेवाले यज्ञोंके अधिपति यज्ञेश्वर देव गोविन्दके लिये वारंवार नमस्कार हैं. इससे धूप, दीप देने चाहिये । विश्वके उत्पन्न करनेवाले विश्वके अधिपति सर्वरूप विश्वेश्वर तुझ गोविन्दकेलिये वारंवार नमस्कार है, इससे नैवेद्य, पहिले कहेहुए मूलमंत्र से आचमनीय, करोद्वर्तन, फल, ताम्बूल, दक्षिणा नीराजन और पुष्पांजलि समर्पण करना चाहिये । यह भविष्यपुराणका कहा हुआ पूजाका क्रम पूरा हुआ ।। गरुडपुराणमें तो–' ओं यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमोनमः '

यह मूलमंत्र रखा है । इसका अर्थ है कि, यज्ञसे प्रकट होनेवाले यज्ञपति, यज्ञरूप, गोविन्दके लिये वारंवार नमस्कार है इससे दोनों अर्घ्य दे । इस मंत्रके सब यज्ञ पदोंकी जगह योगपद करदेनेसे यह मंत्र स्नानका हो जायगा, विश्वपद कर देनेके नैवेद्यका होगा । तथा अन्तमें नमः की जगह स्वाहा तथा यज्ञकी जगह वर्वत्र धर्मपद करदेनेसे तिलहोममें प्रयुक्त हो जायगा । विश्वपदके लगानेसे शयनमें तथा सोमपदके लगानेसे चन्द्रमाकी पूजामें प्रयुक्त हो जायगा । ये पूजाके मंत्र कह दिये । रही अर्थकी बात, उसमें भी यज्ञशब्दकी जगह योग आदिक पद डालनेसे अर्थ भी प्रायः वैसाही हो जायगा । फिर गऊके घीकी धारा या गुडमिश्रित घृतकी धारा अग्निमें डालता हुआ वसोर्धारा करे । पीछे जातकर्म्म, नालच्छेदन, षष्ठीपूजन और नामकरण संस्कारोंको सूक्ष्म रीतिसे करे । चन्द्रोदयके समयमें भूमिपर रोहिणीसमेत चन्द्रमाका चित्र चावलोंसे लिखकर या प्रतिमामें पूजन करे । पीछे शङ्खमें पुष्प, कुश, चन्द और जल लेकर धरतीमें जाने टेककर रोहिणीसहित चन्द्रमाके लिये अर्घ्यादान करे । उसका ' क्षीरोदार्णव ' यह मन्त्र है । इसका यह अर्थ है कि, हे क्षीरसमुद्रसे अवतार धारणकरनेवाले हे अत्रिऋषिके गोत्रमें प्रकट होनेवाले ! हे शशाङ्क ! आप रोहिणी समेत इस मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करें । " ज्योत्स्नायाः " इत्यादि दो मन्त्रोंसे प्रणाम करे, अर्थ यह है कि, जोत्स्ना । (चाँदनी) रात्रिके नाथ, ज्योतियों (नक्षत्रों) के स्वामी रोहिणीके प्राणप्रिय और अमृतके निधान आप हैं आपके लिये प्रमाण है । गगनमण्डलमें प्रकाश करनेवाले दीपक स्वरूप, महेश्वरके शिरोभूषण, कलाओंसे बढ़नेवाले सुन्दर मूर्ति चन्द्रमाके लिये प्रणाम हैं । ' अनघं ' इत्यादि छः मूलमें ऊपर लिखे मन्त्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करे, इनका यह अर्थ है कि, निर्मल (अनघ), वामनावतार धारण करनेवाले या दैत्योंसे देवताओंकी निगीर्ण की हुई विभूतिको वापिस कराने वाले, शूरवंशमें अवतार धारण करनेवाले, वैकुण्ठके नाम, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह (यज्ञस्वरूप), पुण्डरीकाक्ष– श्वेतकमल सदृश नेत्रवाले, नृसिंह, दैत्योंके शत्रु, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द, अच्युत, दुष्टोंके दमन कारी । (कृष्ण), अनन्त अपराजित, अधोऽक्षज, त्रिभुवनके बीज (कारण) स्वरूप, उत्पत्ति, पालन और संहारके कारण, अजन्मा, अमर, सर्वव्यापी (विष्णु), त्रिलोकीनाथ, तीनों लोगोंको तीन पादोंसे आक्रान्त करनेवाले (त्रिविक्रम) नारायण (जलशायी) चतुर्भुज शंख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले पीताम्बरधारी, नित्य वनमालासे विभूषित, श्रीवत्सचिह्नसे शोभित वक्षःस्थलवाले, जगत्के मर्य्यादास्वरूप, श्रीकृष्ण (लक्ष्मीके मनको हरनेवाले), श्रीधर, हरि आप हैं, मैं अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये आपके शरण आया हूं । सदा क्रीडादि करनेवाले, जगदीश्वर वासुदेव जो आप हैं, आपको प्रणाम करता हूं ।" त्राहि मां " इत्यादि सार्ध पाँच मन्त्रोंको पढ़के श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थना करे । इनका यह अर्थ है कि, हे सब लोकोंके नाथ ! हे हरे ! आप संसारसागरसे मेरा उद्धार करें । हे समस्त पापोंके अन्तक ! हे प्रभो । आप दुःख और शोकोंके समुद्रसे मेरा उद्धार करें ।। हे सर्वलोकेश्वर ! संसारसमुद्रमें पड़ा हुआ, मुझको आप बचाइये । हे देवकीनन्दन ! हे लक्ष्मी पते ! (किश), हे हरे ! आप जन्ममरणरूप सागरसे मेरी रक्षा कीजिये, हे सब दुःखोंके नाशकारी ! हे हरे ! आप दुःख एवं शोकसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। हे विष्णो ! आपका जो स्मरण करते हैं उनकी सदैव बार बार पालना करते हो । हे देव ! मैं अत्यन्त दुराचारी हूं, आप शोकसागरसे मेरा उद्धार कीजिये । हे पुण्डरीकाक्ष ! मैं मायावी हूँ स्वयम् अज्ञानसमुद्रमें डूबा हुआ हूं, हे देव ! देवोंके भी नाथ ! आप मेरी रक्षा करें, आपसे इतर मेरा कोई रक्षक नहीं है । मैंने बाल्य, यौवन और बुढ़ापेकी अवस्थामें जो धर्म्माचरण किया है वह बढ़े, हे हलायुध ! जो मैंने पापाचरण किया है उसे नष्ट कीजिये । फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके स्तोत्र भागवतादि पुराण श्रवण करता हुआ जागरण करे । दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि नित्य कर्म करके पूर्वोक्त विधिसे भगवान्का पूजन करे, ब्राह्मणोंको भोजन करावे । उनको सुवर्ण, गौ और वस्त्रादि देकर, ' श्रीकृष्णो मे प्रीयताम् '। श्रीकृष्णचन्द्र मेरेपर प्रसन्न हों इस प्रकार कहे । देवकी देवीने वसुदेवसे, धारण करके जिस देवको भौम ब्रह्माकी रक्षा करनेके लिये प्रकट किया है । उस ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रके लिये नमस्कार है । गऊ और ब्राह्मणोंके हितकारी वासुदेवके लिये नमस्कार है । शन्ति हो, कल्याण हो ' यं देवं ' इसको पढ़कर मेरा, (श्रीकृष्ण चन्द्रका) विसर्जन करे इस प्रकार प्रतिमाके विस-

जंनकेपीछे उसे आचार्यको दे दे। पीछे सर्वस्म ' सर्वात्मा, सर्वेश्वर, सभीके रक्षक (पति) सभीसे सम्भव होनेवाले, गोविन्दके लिये बारबार प्रणाम है इतना कहके पारणा करे। "भूताय" (भूतात्मा) भूतपतिके लिये नमस्कार है इससे व्रत समाप्त करे। यह श्रीकृष्णाष्टमीके व्रतके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण पूजाविधि समाप्त हुई।

अथ कथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।। जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत ।। कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिः स्मृतः ।।१।। श्रीकृष्ण उवाच।।मल्लयुद्धे परावृत्ते शमिते कुकुरान्धके।।स्वजनैर्बन्धुभिः स्त्रीभिः समैः स्निग्धैः समावृते।२।हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर।।देवकी मां परिष्वज्य कृत्वोत्सङ्गे रुरोद ह ।।३।। वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह ।। समालिङ्ग्याश्रुवदनः पुत्रपुत्रेत्युवाच ह ।। ४ ।। सगद्गदस्वरो दीनो बाष्पपर्याकुलेक्षणः।। बलभद्रं च मां चैव परिष्वज्य मुदा पुनः ।। ५ ।। अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।। उभाभ्यामद्य पुत्राभ्यां समुद्भूतः समागमः ।। ६ ।। एवं हर्षेण दाम्पत्यं हृष्टं पुष्टं तदा ह्यभूत् ।। प्रणिपत्य जनाः सर्वे बभूवस्ते प्रहर्षिताः ।। ७ ।। एवं महोत्सवं दृष्ट्वा मामूचुर्मधु-सूदनम् ।। जना ऊचुः ।। प्रसादः क्रियतामस्य लोकस्यार्तस्य दुःखहन् ।। ८ ।। यस्मिन्दिने च प्रासूत देवकी त्वां जनार्दन ।। तद्दिनं देहि वैकुण्ठ कुर्मस्तत्र महो-त्सवम् ।। ९ ।। एवं स्तुतो जनोघेन वासुदेवो मयेक्षितः ।। विलोक्य बलभद्रं च मां च हृष्टतनूरुहः १० ।। उवाच स ममादेशाल्लोकाञ्जन्माष्टमीव्रतम् ।। मथुरायां ततः पश्चात्पार्थ सम्यक् प्रकाशितम् ।। ११ ।। कुर्वन्तु ब्राह्मणाः सर्वे व्रतं जन्मा-ष्टमी दिने ।। क्षत्रिया वैश्यजातीयाः शूद्रा येऽन्येऽपि धर्मिणः ।। १२ ।। युधिष्ठिरः उवाच ।। कीदृशं तद्व्रतं देवदेव सर्वैरनुष्ठितम् ।। जन्माष्टमीति संज्ञं च पवित्रं पापनाशनम् ।। १३ ।। येन त्वं पुष्टिमायासि कात्स्र्न्येन प्रभवाव्यय ।। एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि सविधानं सविस्तरम् ।। १४ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। मासि भाद्रपदे ऽष्टम्यां निशीथे कृष्णपक्षके ।। शशांके वृषराशिस्थे ऋक्षे रोहिणीसंज्ञके ।। १५ ।। योगेऽस्मिन्वसुदेवाद्धि देवकी मामजीजनत् ।। भगवत्याश्च तत्रैव क्रियते सुमहो-त्सवः ।। १६ ।। योगेऽस्मिन्कथितेऽष्टम्यां सिंहराशिगते रवौ ।। सप्तम्यां लघुभुक् कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ।। १७ ।। उपवासस्य नियमं रात्रौ स्वप्याज्जितेन्द्रियः ।। केवलेनोपवासेन तस्मिञ्जन्मदिने मम ।। १८ ।। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संयशः ।। उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासोगुणैः सह।। १९ ।। उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।। ततोऽष्टम्यां तिलैः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले ।। २० ।। सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ।। सितपीतैस्तथा रक्तैः कर्बुरैरितरै-रपि ।। २१ ।। वासोभिः शोभितं कृत्वा समन्तात्कलशैर्नवैः।। पुष्पैः फलैरनेकैश्च दीपालिभिरितस्ततः ।। २२ ।। पुष्पमालाविचित्रं च चन्दनागुरुधूपितम् ।। अति-

रम्यमनौपम्यं रक्षामणिविभूषितम् ।। २३ ।। हरिवंशस्य चरितं गोकुलं च विलेखयेत् ।। ततो वादित्रनिनदैर्वीणावेणुरवाकुलम् ।। २४ ।। नृत्यगीतक्रमोपेतं मङ्गलैश्च समन्ततः ।। वेष्टकारीं लोहखड्गं कृष्णछागं च यत्नतः ।। २५ ।। द्वारे विन्यस्य मुसलं रक्षितं रक्षपालकैः ।। षष्ठ्या देव्याधिष्ठिदं च तद्गृहं चोत्स-वैस्तथा ।। २६ ।। एवंविभवसारेण कृत्वा तत्सूतिकागृहम् ।। तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ।। २७ काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृत्मयी तथा ।। वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैर्लिखिता तथा ।। २८ ।। सर्वलक्षणसम्पूर्णा पर्यंके चाष्टशल्यके ।। प्रतप्तकाञ्चनाभासां महार्हां सुतपस्विनीम् ।।२९।। प्रसूतां च प्रसुप्तां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि ।। मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् ।। ३० ।। श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे ।। ३१ ।। तद्वच्च कल्पयेत् पार्थ प्रसूतां वरकन्यकाम् ।। तथैव मम पार्श्वस्थाः कृताञ्जलिपुटा नृप ।। ३२ ।। देवा ग्रहास्तथा नागा यक्षविद्याधरा-मराः ।। प्रणताः पुष्पमालाग्रचारुहस्ताः सुरासुराः ।। ३३ ।। सञ्चरन्त इवाकाश प्रहारैरुदितोदितैः ।। वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ।। ३४ ।। कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चैव देवकी ।। शेषो वै बलदेवोऽयं यशोदादितिरन्वभूत् ।। ३५ ।। नन्दः प्रजापतिर्दक्षोगर्गश्चापि चतुर्मुखः ।। गोप्यश्चाप्सरसश्चैव गोपाश्चापि दिवौकसः ।। ३६ ।। एषोऽवतारो राजेन्द्र कंसोऽयं कालनेमिजः ।। तत्र कंसनि-नियुक्ताश्च मोहिता योगनिद्रया ।। ३८ ।। गोधेनुकुञ्जराश्चैव दानवाः शस्त्र-पाणयः ।। नृत्यतश्चाप्सरोभिस्ते गन्धर्वा गीततत्पराः ।। ३८ ।। लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्लदे ।। इत्येत्रमादि यत्किंचिद्विद्यते चरितं मम ।। ३९ ।। लेख-यित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः ।। रम्यमेवं बीजपूरैः पुष्पमालादिशोभितम् ।। ४० ।। कालदेशोद्भवैः पुष्पैः फलैश्चापि युधिष्ठिर ।। पाद्यार्घ्यैः पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः सह ।। मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः ।। ४१ ।। गार्यद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरवृत करैः किंकरैः सेव्यमाना ।। पर्यंके स्वास्तृते यामुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देव-माता जयतु च ससुता देवकी कान्तरूपा ।। ४२ ।। पादावभ्यञ्जयन्ती श्रीर्देव-क्याश्चरणान्तिके ।। निषण्णा पंकजे पूज्या दिव्यगन्धानुलेपनैः ।। ४३ ।। पंकजैः पूजयेद्देवीं नमो देव्यै श्रिया इति ।। देववत्से नमस्तेऽस्तु कृष्णोत्पादनतत्परा ।। ४४ ।। पापक्षयकरा देवी तुष्टिं यातु मयार्चिता ।। प्रणवादिनमोऽन्तं च पृथङ्नामानु-कीर्तनम् ।। ४५ ।। कुर्यात्पूजा विधिज्ञश्च सर्वपापापनुत्तये ।। देवक्यै वसुदेवाय

१ देवकीमितिशेषः

वासुदेवाय चैव हि ।। ४६ ।। बलदेवाय नन्दाय यशोदायै पृथक् पृथक् ।। क्षीरादिस्नपनं कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत् ।। ४७ ।। विध्यन्तरमपीच्छन्ति केचिदत्रैव सूरयः ।। चन्द्रोदये शशांकाय अर्घ्यं दत्त्वा हरिं स्मरन् ।। ४८ ।। अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।। वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ।। ४९ ।। वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं ब्रह्मणः प्रियम् ।। समस्तस्यापि जगतः सृष्टिस्थित्यन्तकारकम् ।। ५० ।। अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् ।। नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ।। ५१ ।। पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ।। श्रीवत्सांकं जगत्सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ।। ५२ ।। [1]योगेश्वराय देवाय योगिनां पतये नमः ।। योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमोनमः ।। ५३ ।। [2]यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ।। यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः ।। ५४ ।। [3]विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।। विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमोनमः ।। ५५ ।। [4]जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन ।। जगदीशाय देवाय भूतानां पतये नमः ।। ५६ ।। धर्मेश्वराय धर्माय संभवाय जगत्पते ।। धर्मज्ञाय च देवाय गोविन्दाय नमोनमः ।। ५७ ।। एताभ्यां चैव मन्त्राभ्यां नैवेद्यं शयनं तथा ।। चन्द्रायार्घ्यं च मन्त्रेण अनेनैवाथ दापयेत् ।। ५८ ।। क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ।। गृहाणार्घ्यं शशांकेश रोहिण्या सहितो मम ।। ५९ ।। ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।। नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ।। ६० ।। स्थण्डिले स्थापयेद्देवं शशांकं रोहिणीयुतम् ।। देवक्या वसुदेवं च नन्दं चैव यशोदया ।। ६१ ।। बलदेवं मया सार्धं भक्त्या परमया नृप ।। संपूज्य विधिवद्देहि किं नाप्नोत्यतिदुर्लभम् ।।६२।। एकादशीनां विंशत्यःकोटयो याः प्रकीर्तिताः ।। ताभिः कृष्णाष्टमी तुल्या ततोऽनन्तचतुर्दशी ।।६३।। अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्द्रव्यसर्पिषा ।। ततो वर्धापयेन्नालं षष्ठीनामादिकं मम ।। ६४ ।। कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने । यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः ।। ६५ ।। ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। हिरण्यं मेदिनीं गावो वासांसि कुसुमानि च ।। ६६ ।। यद्यदिष्टतमं तत्तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ।। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।। ६७ ।। भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।। नमस्ते वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।। ६८ ।। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत् ।। ततो बन्धुजनौघं च दीनानाथांश्च भोजयेत् ।। ६९ ।। भोजयित्वा सुशान्तांस्तान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम् ।। ७० ।। प्रतिवर्षं विधानेन मद्भक्तो धर्मनन्दन ।। नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं लभते

---

१ स्नानमन्त्रमाह २ धूपदीपमन्त्रावाह ३ नैवेद्यमन्त्रमाह ४ केषांचिन्मतेन नैवेद्यशयनमन्त्रावाह

फलम् ॥ ७१ ॥ पुत्रसन्तानमारोग्यं सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥ इह धर्मरतिर्भूत्वा मृतो वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ तत्र देवविमानेन वर्षलक्षं युधिष्ठिर ॥ भोगान्नानाविधान् भुक्त्वा पुण्यशेषादिहागतः ॥ ७३ ॥ सर्वकामसमृद्धे च सर्वाशुभविवर्जिते ॥ कुले नृपतिशीलानां जायते हृच्छयोपमः ॥ ७४ ॥ यस्मिन् सदैव देशे तु लिखितं तु पटार्पितम् ॥ मम जन्मदिनं भक्त्या सर्वालंकारभूषितम् ॥ ७५ ॥ पूज्यते पाण्डवश्रेष्ठ जनैरुत्सवसंयुतैः ॥ परचक्रभयं तत्र न कदापि भवेत्पुनः ॥ ७६ ॥ पर्जन्यः कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भयं भवेत् ॥ गृहे वा पूज्यते यत्र देवक्याश्चरितं मम ॥ ७७ ॥ तत्र सर्वं समृद्धं स्यान्नोपसर्गादिकं भवेत् ॥ पशुभ्यो नकुलाद्व्यालात्पापरोगाच्च पातकात् ॥ ७८ ॥ राजतश्चोरतो वापि न कदाचिद्भयं भवेत् ॥ संसर्गेणापि यो भक्त्या व्रतं पश्येदनाकुलम् ॥ सोऽपि पापविनिर्मुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ ७९ ॥ जन्माष्टमीं जनमनोनयनाभिरामां पापापहां सपदि नन्दितनन्दगोपाम् ॥ यो देवकीं सुतयुतां च भजेद्धि भक्त्या पुत्रानवाप्य समुपैति पदं स विष्णोः ॥ ८० ॥ इति भविष्योत्तरे जन्माष्टमीव्रतकथा ॥

कथा–राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे अच्युत ! जन्माष्टमीके व्रतकी कथा आप विस्तृत रूपसे कहिये । इस व्रतका प्रचार किस समय हुआ है । इसका क्या फल है इसके करनेकी विधि क्या है ? ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे युधिष्ठिर ! जब मल्लयुद्धका भय निवृत्त होगया कुकुर एम् अन्धक (यादव विशेष) आनन्दित होगये अपने बान्धव, स्त्री बराबरवाले और सुहृज्जन परस्परमें मिल गये ॥ २ ॥ मथुरामें दुष्टात्मा कंस दैत्य मारदिया गया, ऐसे समय अत्यन्त आह्लादित हुई देवकी देवी मुझे छातीसे लगा, गोदमें बैठा मेरे शिर पर प्रेमसे अश्रुसेचन करती हुयी रोने लगी ॥ ३ ॥ वहांपर वसुदेवजीभी वत्सल तासे रोदन करने लगे, अश्रुपूर्ण मुख हो "हे पुत्र पुत्र" इस प्रकार कहके अपनी छातीसे मुझे लगा लिया ॥४॥ गद्गद स्वर एवं प्रेमाश्रुओंसे नेत्र डबडबागये हृदय भर आया, बलभद्रजी और मेरा प्रेमसे आलिंगन फिर करके आनन्द पूर्वक बोले कि ॥ ५ ॥ आज जन्म सफल हुआ, आजमेरा जीवन सुधरा है । क्योंकि आज तुम दोनों पुत्रोंसे मिला हूं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार वे दोनों स्त्री पति देवकीजी एवं वसुदेवजी उस समयमें हृष्ट होगये । अत्यन्त आनन्दित होते हुए सभी मथुरावासी लोग उस महोत्सवको देख मुझको प्रणाम कर पूछने लगे कि, हे सभी दुखित लोगोंके दुखोंको नष्ट करनेवाले हे कृष्ण ! आप अनुग्रह कीजिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे जनार्दन ! जिस दिन देवकीजीने तुम्हे जन्मा था हे वैकुण्ठ ! वह दिन फिर आप कीजिये, जिससे उस दिन आपके जन्मोत्सव मनानेका हमें अवसर मिले ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार बहुत जनोंने प्रार्थना की और वसुदेवने भी मेरी तरफ दृष्टि डाली यानी उस दिनको देखनेकी अभिलाषा प्रगट की तथा मुझे और बलरामको देखकर उनका शरीर रोमांचित होगया ॥ १० ॥ पीछे मेरे आदेशसे वसुदेवने लोगोंको जन्माष्टमीका व्रत बता दिया, हे पार्थ ! मथुरामें इस प्रकार होनेपर पीछे सर्वत्र भली भांति प्रकाशित हो गया ॥ ११ ॥ मैंने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! मेरे जन्माष्टमीके दिन तुम सभी क्षत्रिय, वैश्य शूद्र एवं गर्भवती स्त्रियां भी व्रतको करो ॥ १२ ॥ राजा युधिष्ठिरने पूछा कि, हे देव देव ! वह जन्माष्टमी नामक पवित्र पापोंको नष्ट करनेवाला व्रत किस प्रकार किया जाता है, जिसे सब मथुरावासी जन मिलके करते हैं ॥ १३ ॥ हे प्रभवाव्यय ! जिस व्रतके करनेसे आपकी प्रसन्नता होती है इससे आप इस जन्माष्टमीके व्रतकी विधि विस्तृत रूपसे कहिये ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, भाद्रपद

१ योदेवकींव्रतमिदं प्रकरोति भक्त्येत्यपि पाठः

मासके कृष्णपक्षमें अष्टमीको अर्द्धरात्रिके समय रोहिणीनक्षत्र और वृषका चन्द्रमा था ।। १५ ।। ऐसे योगके रहते वसुदेवजीसे देवकीने मुझे उत्पन्न किया था । अतः सब लोग उसी समय मेरे जन्मोत्सवको मनाते हैं । भगवती (देवकीजी या यशोदाजीके यहां प्रगट हुई कात्यायनी देवी) का महोत्सवभी वे इसी दिन मनाते हैं ।। १६ ।। यह योग जब सिंह राशिपर सूर्यनारायण हो, तब प्राप्त होता है । इसलिये व्रत करनेवाला उस अष्टमीसे पूर्व सप्तमीके दिन दन्तधावनादि नित्यकर्म्म करके भोजनके समय एक बार भी बहुत हलका भोजन करे, जिससे प्रमाद आलस्य, मद आदि न हों ।। १७ ।। दूसरे दिन (जन्माष्टमीके दिन) व्रत करनेका नियम करे । रात्रिमें व्रतके पूर्वदिन जितेन्द्रिय (ब्रह्मचर्य्यनिष्ठ) हो, शयन करे । स्त्रीसङ्गसे पराङ्मुख हो भूतलपर पवित्र देशमेंही शयन करे, न कि, पर्यंकपर और न स्त्रीके साथ मेरे जन्माष्टमीके दिन (दूसरे दिन) केवल उपवास करे इसे करनेसे ।। १८ ।। मनुष्य सप्तजन्मोंमें किये पापोंसे अवश्य निर्मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है "पापोंसे निवृत्त हुए पुरुषके, व्रताधिकारियोंके जो गुण बताये हैं उन गुणोंके साथ रहनेको उपवास कहते हैं, उसमें कोई भी भोग नहीं होता" सप्तमीकी रात्रि बीतनेपर, अष्टमीके दिन प्रातः कालही उठकर मलमूत्र त्यागादिसे निवृत्त हो नदी तलाव आदि किसीएक जलाशयके पवित्र जलमें तिल डालके स्नान करे ।। १९ ।। २० ।। अपने घर सुन्दर पवित्र देशमें एक मनोरम देवकीजीका सूतिकागृह बनावें । उस स्थानको चारों ओर सफेद, पीत, लाल, हरे और विविध रङ्गवाले ।। २१ ।। नवीन वस्त्रोंसे सजावे तथा नूतन अव्रण जलपूर्ण घट जहां तहां सब ओर (अर्थात् दरवाजे तथा कोणोंमें) रख दे । अनेक रंगके पुष्प अनेक तरहके फल सब जगह रखे । दीपकोंकी श्रेणि प्रज्वलित करके उसे चारों ओर सजाके ऊपरकी ओर रखे ।। २२ ।। विचित्र २ पुष्पोंकी मालाओंको इतस्ततः बांधें, चन्दनसे चर्चित करे, अगरकी धूपसे धूपित करे ।। सर्षप और रायी सुपारी एवं रक्तसूत्र इनकी पोटलियाँ (रक्षामणि) बांधकर उस सूतिकागृहको अत्यन्त अद्भुत सुन्दर बनावे ।। २३ ।। हरिवंशमें जो मेरे चरित वर्णन किये हैं, जो मैंने गोकुलमें गोवर्धन धारण नागमथनादि कर्म्म किये हैं इन सबके चित्र लिखे । फिर वीणा, वेणु, मृदंग, पटह गोमुख एवं शंखादिकोंके शब्दसे उसको गुंजित करे ।। २४ ।। नाच गान करे और करावे । स्वयं माङ्गलिक गान करे । उस स्थानके चारों ओर वेष्टकारी अर्थात् भूतबाधादिभयको दूर करनेवाली औषधि एम् लोहेकी तलवार और काले रंगका बकरा यातुधानादिके भयकी निवृत्तके लिये बांधे ।। २५ ।। द्वारपर मूसल रक्खे, द्वारपालोंको द्वारोंपर समाहित करके खडा करे ।। २६ ।। उस सूतिकागृहमें षष्ठीदेवीका स्थापन करे, नानाविध उत्सव करे । हे राजन् इस प्रकार अपनी सम्पत्तिके अनुसार उस सूतिकागृहको सजावे, उसके मध्यमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे । वह प्रतिमा आठ तरहकी होती है ।।२७।। १ सुवर्णमयी, २ राजतमयी, ३ ताम्रमयी, ४ पित्तलमयी, ५ मृन्मयी, ६ काष्ठमयी, ७ रत्नमयी और आठवीं रंगोंसे चित्रित की हुई ।। २८ ।। यह प्रतिमा ऐसी हो, जो मेरे लक्षण हैं वे सब जिसमें सुन्दर दिखाई दें । एक पर्यंक उस सूतिकागृहमें सजावे, उसके आठ भागोंमें भूतबाधाकी निवृत्तिके लिये आठ कीले लगावे उसपर शय्या विछावे । उसपर सुन्दर तपाये हुए सुवर्णके समान दिव्यकान्ति शालिनी, महाभागा, पतिव्रता ।। २९ ।। देवकीजीकी प्रतिमास्थापित करे । वह प्रतिमा ऐसी अवस्थावाली होनी चाहिये, मानों पुत्र उत्पन्न कर शयन कर रहीं हैं । कृष्ण उसी पर्य्यंकपर देवकीजीके मानों स्तनपान करते हैं ऐसी अत्यन्त बालक अवस्थाकी मेरी प्रतिमाको शयनावस्थाके रूपमें रखे ।। ३० ।। श्रीवत्सचिह्नसे चिह्नित वक्षःस्थलवाली, शान्ताकृति, नीलकमलके पत्रके समान कान्तिशालिनी वह प्रतिमा होनी चाहिये । (यद्यपि सुवर्णादि धातुओंसे कल्पि प्रतिमामें श्यामच्छवि हो नहीं सकती, तथापि कस्तूरी एवं हरिचन्दनासे वैसी वही बनाले यानी कस्तूरी या और किसी सुन्दर या सुगन्धित पदार्थ उसे ऐसी आच्छादित करे जिससे श्यामही प्रतीत हो । श्रीवत्सचिह्न तो सुवर्णाकार रोमोंकी दक्षिणकी ओर घुमेरीका है, या भक्तजन उस प्रतिमामें वैसेसी भावना करे) एक ओर उसी सूतिकागृहमें यशोदाजीकी सुवर्णादिकोंकी प्रतिमा या रङ्गकल्पितमूर्ति सुशोभित करे ।। ३१ ।। जैसे देवकीजीके समीपमें स्तनपान करती हुई भगवान्की सुप्तवस्थावाली प्रतिमा सजाई थी, वैसेसी यशोदाजीके पासमें सुन्दर कन्या मानों अभी जन्मी है ऐसी स्थित करे । मेरे पार्षदोंके चित्र या प्रतिमाएं खडी करे, इनका ऐसा स्वरूप होना चाहिये, मानों ये अञ्जलि बांधके स्तवन करते हैं

।। ३२ ।। ऐसेही नवसूर्यादिग्रह, शेष, वासुकिप्रभृति नाग, कुबेरादि यक्ष, चित्रकेतु प्रभृतिविद्याधर, इन्द्रादि देवता प्रणत होकर पुष्पमाला हाथोंमें लेकर गलेमें पहरानेके लिये खडे हुए हैं ऐसे स्वरूपमें स्थापित या चित्रित करे। ऐसेही और सभी देवता एवं दानवोंके ।। ३३ ।। चित्रादि हों कि, मानों आकाशमें वे प्रहार, रोदन एवं चिल्लाहट करते हैं। खड्ग एवं चर्म्म हाथमें लिये हुये वसुदेवजीका चित्रभी वहांपर सजावे ।। ३४ ।। वसुदेवजी कश्यप मुनि हैं, देवकीजी साक्षात् अदिति है, बलदेवजी शेषभगवान् हैं और यशोदा दिति है ।। ३५ ।। नन्दजी दक्षप्रजापति, चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा, गर्गाचार्य, गोपिका, अप्सरायें और गोप दूसरे दूसरे देवता हैं। व्रती ऐसी भावना रखे ।। ३६ ।। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर ! कंस कालनेमि दैत्यका अवतार है। इससे मुझे मारनेकी इच्छासे प्रसूतिका घरका बंदोबस्त, अपने वीर नोकरोंसे कराया था, पर वे उस समय यशोदाजीसे प्रगट हुई योग माया रूपा कन्याके प्रभावसे ऐसे निद्रित हुए कि, जिससे किसीको कुछ भी ज्ञान न रहा ।। ३७ ।। वृषभ, गऊ, हस्ती एवं दैत्योंको शस्त्रपाणि तथा अप्सरा और गन्धर्वोंको नृत्य गायन परायणसा लिखे ।। ३८ ।। एक यमुना ह्रदका चित्र लिखे, उसमें कालिनागका निवास लिखे। ऐसेही जो जो मैंने चरित किये हैं ।।३९।। उनके चित्र भी जहां तहां लिखने चाहिये। भक्तितत्पर हो पूजन करना चाहिये। सूतिकागृहके बीजपूर, एवं पुष्पमालादिकोंके वितानसे शोभायमान करे ।। ४० ।। हे युधिष्ठिर ! ऋतु और देशके अनुकूल उत्पन्न हुए पुष्प फल एवम् गन्ध और अक्षत मिले हुए पाद्य अर्घोंसे इस मन्त्रसे देवकीजीका पूजन करे ।। ४१ ।। "गायद्भिः" इस मूलोक्त पहिले कहे मन्त्रसे देवकीजीकी प्रार्थना करे ।। ४२ ।। वहांपरही लक्ष्मीजीका चित्र ऐसा स्थापित करे कि, देवकीजीके चरणोंके पास, अभ्यञ्जन करती हुई कमलपर विराजमान है। सुन्दर चन्दनसे चर्चित कर उन लक्ष्मीजीकाभी पूजन करना चाहिये ।। ४३ ।। कमल चढावे और 'ओं नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः' देवी महादेवी और शिवाके लिये निरंतर नमस्कार है, इस मन्त्रको पढता रहे। इसी मन्त्रसे और और भी उपचार करे। फिर प्रार्थना करे 'देववत्से' इस मन्त्रसे देवकीजीको प्रणाम करे कि, सब देवता जिसके बालक हैं ऐसी हे देवकि देवि ! आपके लिये नमस्कार है। आपही श्रीकृष्णचन्द्रको उत्पन्नकरनेवाली हो आपका पूजन कियाहै पापोंको नष्ट करनेवाली आप प्रसन्न होकर मेरे सब पापोंको क्षीण करें। प्रणव आदिमें और नमः अन्तमें हो ऐसे देवकी आदिका पूजन उनके नाम मन्त्रोंसे होना चाहिये ।। ४४ ।। ।। ४५ ।। इससे सब पाप नष्ट होते हैं यह पूजा, विधिको करनी चाहिये। देवकीके लिये, वसुदेवके लिये वासुदेवके लिये ।। ४६ ।। बलदेव, नंद, यशोदा इन सबको इनके नाम मन्त्रोंसे क्षीरादिका स्नान कराकर चन्दनका लेप करे ।। ४७ ।। (पूजाविधिवेत्ता उच्चारण करता रहे। ये नाममन्त्रही सब पापोंको नष्ट करनेवाले हैं। अतः इनकी नाममन्त्रोंसे सभीकी अलग अलग पूजा करके प्रार्थना करे कि, मैं अपने पापोंके विध्वंसके लिये पाद्य चढाता हूं। अर्घ्य दान करता हूं, श्रीकृष्ण आप नाममन्त्रोंमें नामोंको किस प्रकार चतुर्थ्यन्त रूपसे पढे ? इस आशंकामें "देवक्यै" इत्यादि एकश्लोकसे उन नामन्त्रोंका क्रम दिखाया है) यहां कुछ विद्वान् भगवज्जन पूजनकी दूसरी विधिभी चाहते हैं कि, चन्द्रमाके निर्मल प्रकाशमें रोहिणीसहित चन्द्रमाके लिये अर्घ देकर निम्न लिखित चार श्लोकोंसे भगवान्का स्मरण करे इनका अर्थ पूजन विधानमें कर चुके हैं ।। ४८–५२ ।। 'योगेश्वराय' इससे स्नान कराना चाहिये कि, योगसे प्रत्यक्ष होनेवाले नित्य एवम् योगियोंके अधिपति योगेश्वर गोविन्द कृष्णके लिये वारंवार नमस्कार है ।। ५३ ।। 'यज्ञेश्वराय' इससे धूप चढावे कि, (यज्ञसे प्रगट होनेवाले एवम् यज्ञोंको प्रकट करनेवाले) यज्ञपति यज्ञेश्वर गोविन्द देवके लिये वारंवार नमस्कार है ।। ५४ ।। 'विश्वेश्वराय' इससे दीपक दिखावे कि विश्वके उत्पन्न करनेवाले विश्वरूप विश्वपति विश्वेश्वर तुझ गोविन्दके लिये वारंवार नमस्कार है ।। ५५ ।। 'जगन्नाथ' इससे उन पदार्थोंको भोग लगावे जो कि, प्रसूतिके समय स्त्रियाँ खाया करती हैं कि, हे संसारके भयको नष्ट करनेवाले हे जगन्नाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है आप जगदीश एवं भूतोंके स्वामी हैं ।। ५६ ।। धर्मेश्वराय' इससे शयन करावे कि, धर्मके जाननेवाले धर्मके ईश्वर धर्मके उत्पन्न करनेवाले धर्मरूप देव गोविन्दके लिये वारंवार नमस्कार है। 'जगन्नाथ' इससे नैवेद्य तथा 'धर्मेश्वराय' इससे शयन कराना चाहिये। पीछे 'क्षीरोदार्णव इससे एक अर्घ्य दे तथा दूसरा 'ज्योत्स्नापते' इससे दे। पहिला–हे अत्रिगोत्री क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न होने–

वाले ! हे शशके चिह्नवाले नक्षत्र और रात्रिके ईश ! रोहिणीसहित आप मेरे अर्घको ग्रहण करिये । दूसरा-हे चाँदनीरातके स्वामी ! तेरे लिये नमस्कार है, हे नक्षत्रोंके अधिपति ! तेरे लिये नमस्कार है, हे रोहिणीके प्यारे ! तेरे लिये नमस्कार है, हमारे अर्घको ग्रहण करिये ।। ५७-६० स्थण्डिलपर रोहिणीसमेत चन्द्रमाकी स्थापना करे । देवकीसहित वसुदेवजीकी तथा यशोदासहित नन्दबालाकी तथा बलदेवसहित मेरी । हे राजन् ! परमभक्तिके साथ पूजा करे । इससे ऐसा कौनसा पदार्थ है जो नहीं मिल सकता ।। ६१ ६२ ।। अब जन्माष्टमीके उपवास एवं महोत्सव मनानेका माहात्म्य स्वयं श्रीमुखसे कहते हैं कि, बीस कोटिवार कियेहुए एकादशीव्रतोंके समान अकेला कृष्णजन्माष्टमीव्रत है, इसके समानही अनन्तचतुर्दशीका व्रत है ।। ६३ ।। निशीथकालमें घृतसे वसोर्धाराका सेचन करे । सात वसोर्धारा लिखके उनपर घृतकी धारा बहावे । फिर वर्धापन कर्म्म करावे, यानी जन्मदिनमें मार्कण्डेय आदिकोंके पूजनपूर्वक षष्ठीपूजनादि, नालच्छेदन, नामकरणादि सब कर्म्म मेरा ।। ६४ ।। कर्मकाण्डानुसार रात्रिमें करे दूसरे दिन प्रभातकालमें उठके जैसा महोत्सव मेरे जन्मकेनिमित्त किया था उसी प्रकार भगवती योगमायाके जन्मोत्सवके निमित्त भी करे ।। ६५ ।। फिर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराके उनको शक्तिके अनुसार दक्षिणा दान करे । सुवर्ण, पृथिवी, गऊ, वस्त्र और पुष्प, एवम् और और ।। ६६ ।। जो जो इस लोकमें अपनेको प्रिय मालूम हों वे सब दक्षिणाके स्वरूप, दे दे । या ब्राह्मणोंको शक्त्यनुसार दक्षिणा देकर व्रतीपुरुषको इस लोकमें जो सुवर्ण, पृथिवी, गऊ, वस्त्र पुष्प, आदि रुचिकर हों वे सब पदार्थ मेरे अर्पण करे । दक्षिणादान या मेरे समर्पणके समय किसी पदार्थके बदलेमें प्रार्थना न करे, किंतु 'कृष्णो मे प्रीयताम्' इससे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हों इतनाही कहे । जलको जमीनपर डाल मेरा विसर्जन करता हुआ 'यं देवं' यहांसे 'शिवं चास्तु' यहांतक मूलोक्त वाक्यको पढे । इनका अर्थ पूर्व लिखआये हैं । पीछे सब बान्धवों एवं दीन अनाथजनोंको भोजन करावे ।। ६७-६९ ।। इन सभी शान्त सज्जनोंको भोजन कराके आपभी भोजन करे, उस समय मौनी रहे । जो पुरुष देवकीदेवीका महोत्सव प्रतिवर्ष विधिवत् करता है । हे धर्म्मनन्दन ! वह मेरा भक्त है । इस महोत्सवका मनानेवाला पुरुष हो या स्त्री वह यथोक्त फलको प्राप्त करता है ।। ७० ।। ७१ ।। इस लोकमें ऐसे पुरुषकी धर्ममें निष्ठा होती है, और पुत्रोंकी सन्तान, आरोग्य और स्त्री हो तो अतुल सौभाग्य लाभ करती है । मरनेपर वैकुण्ठधाम प्राप्त होता है ।। ७२ ।। हे युधिष्ठिर ! वह वैकुण्ठमें जाकर विमानमें बैठ एक लक्षवर्षपर्यन्त विहार करताहुआ नानाप्रकारके दिव्य भोग भोगता है । पुण्यफलके भोगनेपर भी जब वैकुण्ठसे यहां आफिर आता है ।। ७३ ।। तबभी वह पुण्यात्मा महाराजाओंके समान समृद्धिमानोंके कुलमें जन्म लेता है, जिसमें कि, सब मनोऽभिलषित भोग्यपदार्थ हैं; अशुभ पापाचरण. या (प्रतिकूल) कार्य कोईभी नहीं है; आप कामदेवके सदृशअत्यन्त सुन्दर दिव्य शरीरवान् होता है ।। ७४ ।। जिस देशमें वस्त्रपर चित्रित मेरे जन्मोत्सवके दृश्यको सदैव प्रतिवर्ष सब आभूषणोंसे शोभायमान करके ।। ७५ ।। पूजन किया जाता है । हे पाण्डवश्रेष्ठ ! जिस देशमें मेरे जन्माष्टमीके दिन अत्यन्त आह्लादित महोत्सव मनाते हैं, उस देशमें दूसरे शत्रुराजाके आक्रमण करनेका उपद्रव या उसकी शासनाका कभी भी भय नहीं होता ।। ७६ ।। मेघगण उस देशवासियोंके इच्छानुकूलही समय समयपर वृष्टि किया करते हैं । और जिस घरमें मेरा पूजन तथा देवकीके यहां मेरे अवतारका महोत्सव मनाया जाता है ।। ७७ ।। उस घरमें सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ रहती हैं । महामारी आदि किसी उपद्रवकाभय नहीं होता । न किसी व्याघ्रसिंहादि पशुका, न बान्धवोंका, न सर्पोंका; न कुष्ठादि पापरोगोंका न पातकोंका ।। ७८ ।। न किसी राजदण्डका और न चोरका भय या कभी उपद्रव होताहै और जो किसीके संसर्गसे न कि अपनी स्वतन्त्रतासे इस सुन्दर महोत्सवको प्रेमसे देखताहै वह मनुष्यभी भायोंके भोगोंसे छूटके हरिमंदिरको प्राप्त होता है ।। ७९ ।। सब जनोंके मन एवं नेत्रोंको आह्लादित करनेवाली. पापोंको संहारिणी, नन्दएवं गोपगोपियोंके आनन्दसे सुन्दर इस जन्माष्टमीका महोत्सव तथा पुत्रसहित देवकीजीका जो मनुष्य भक्तिसे पूजन करता है, वह इस लोकमें पुत्रोंके सुखको प्राप्त करता है, अन्तमें विष्णुपदको प्राप्त होता है ।। ८० ।। कहीं पर इस श्लोकका तृतीय चरण-"यो देवकीव्रतमिदं प्रकरोति भक्त्या" इस प्रकार भी लिखा है । तदनुसार इसका यह अथ है कि, जोमनुष्य भक्तिपूर्वक इस देवकीजीके महोत्सवरूपजन्माष्टमीके व्रतको करता है ।

और अर्थ पूर्वके समानही है, यह सर्वतंत्रस्वतंत्र पं. माधवाचार्य विरचित भविष्योत्तरपुराणकी कही हुई जन्माष्टमी व्रत कथाकी भाषाटीका समाप्त हुई ।।

अथ शिष्टाचारप्राप्ता जन्माष्टमीव्रतकथा

व्यास उवाच ।। निवृत्ते भारते युद्धे कृतशौचो युधिष्ठिरः ।। उवाच वाक्यं धर्मात्मा कृष्णं देवकिनन्दनम् ।। १ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। त्वत्प्रसादात्तु गोविन्द निहताः शत्रवो रणे ।। कर्णश्च निहतः सैन्ये त्वत्प्रसादात्किरीटिना ।। २ ।। जेता को युधि भीष्मस्य यस्य मृत्युर्न विद्यते ।। अजेयोऽपि जितः सोऽपि त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ।। ३ ।। प्राप्तं निष्कण्टकं राज्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।। आचारो दण्डनीतिश्च राजधर्माः क्रियान्विताः ।। ४ ।। अधुना श्रोतुमिच्छामि शुभं जन्माष्टमीव्रतम् ।। जन्माष्टमी व्रतं ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत ।। ५ ।। कुतः काले समुत्पन्नं किंपुण्यं को विधिः स्मृतः ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ६ ।। यतः प्रभृति विख्यातं फलेन विधिनान्वितम् ।। राजवंशसमुत्पन्नैर्दैत्यानीकैः सुपीडिता ।। ७ ।। धरा भारसमाक्रान्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ ।। ज्ञात्वा तदा प्रभुर्ब्रह्मा भूमेर्भारं समाहितः ।। ८ ।। श्वेतदीपं समागत्य सर्वदेवसमन्वितः ।। समाहितमतिर्ब्रह्मा मां तुष्टाव विशांपते ।। ९ ।। स्तुत्या तयाहं संप्रीतस्तेषां दृग्गोचरोऽभवम् ।। दृष्ट्वा मां प्रणिपत्याशु भक्तिभावसमन्विताः ।। १० ।। ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा तुष्टाः सर्वे दिवौकसः ।। विजिज्ञपुर्महाराज भूमिभारापनुत्तये ।। ११ ।। उपधार्य तदा तेषां वचनं चान्वचिन्तयम् ।। केनोपायेन हन्तव्या दानवाः क्षत्रियोद्भवाः ।। १२ ।। स्वधर्मनिरताः सर्वे महाबलपराक्रमाः ।। ततो निश्चित्य मनसा ब्रह्माणमहमब्रुवम् ।। १३ ।। वसुदेवो देवकी च प्रजाकामौ पुरा नृप ।। भक्त्या मां भजमानौ तौ तप्तवन्तौ महत्तपः ।। १४ ।। तयोः प्रसन्नः सुप्रीतो याचतं वरमुत्तमम् ।। अब्रुवं तावपि ततो वरयामासतुः किल ।। १५ ।। यदि देव प्रसन्नोऽसि त्वादृशौ नौ भवेत्सुतः ।। तथेति च मया ताभ्यामुक्तं प्रीतेन चेतसा ।। १६ ।। तत्कामपूरणार्थाय संभविष्याम्यहं तयोः ।। दिवौगसोऽपि स्वांशेन संभवन्तु सुरस्त्रियः ।। १७ ।। योगमाया च नन्दस्य यशोदायां भविष्यति ।। देवक्या जठरे गर्भमनन्तं धाम मामकम् ।। १८ ।। सन्निकृष्य च सा तूर्णं रोहिण्या जठरं नयेत् ।। इति सन्दिश्य तान् सर्वानहमन्तर्हितोऽभवम् ।। १९ ।। ततो देवैः समं ब्रह्मा तां दिशं प्रणिपत्य च ।। आश्वास्य च महीं देवीं वरधाम्नि जगाम ह ।। २० ।। ततोऽहं देवकीगर्भमविशं स्वेन तेजसा ।। हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ।। कारागृहस्थितायाश्च वसुदेवेन वै

१ प्राप्ता इतिशेषः २ सार्वविभक्तिस्कतसिः कस्मिन्काले इत्यर्थः

सह ।। २१ ।। गतेऽर्धरात्रसमये सुप्ते सर्वजने निशि ।। भाद्रे मास्यसिते पक्षेऽष्टम्यां ब्रह्मर्क्षसंयुजि ।। २२ ।। सर्वग्रहशुभे काले प्रसन्नहृदयाशये ।। आविरासं निजेनैव रूपेण ह्यवनीपते ।। २३ ।। वसुदेवोऽपि मां दृष्ट्वा हर्षशोकसमन्वितः ।। भीतः कंसादतितरां तुष्टाव च कृताञ्जलिः ।। २४ ।। पुनः पुनः प्रणम्याथ प्रार्थयामास सादरम् ।। वसुदेव उवाच ।। अलौकिकमिदं रूपं दुर्दर्शं योगिनामपि ।। २५ ।। यत्तेजसारिष्टगृहमभवत्संप्रकाशितम् ।। उद्विजे भगवन्कंसाद्यो मे बालानघातयत् ।। २६ ।। उपसंहर तस्माच्च एतद्रूपमलौकिकम् ।। शंखचक्रगदापद्मलसत्कौस्तुभमालिनम् ।।२७।। किरीटहारमुकुटकेयूरवलयाङ्कितम् ।। तडिद्वसनसंवीत क्वणत्काञ्चनमेखलम् ।। २८ ।। स्फुरद्राजीवताम्राक्षं स्निग्धाञ्जनसमप्रभम् ।। महामरकतस्वच्छं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।। २९ ।। कृष्ण उवाच ।। एवं संप्रार्थितो राजन्वसुदेवेन वै तदा ।। तेनैव निजरूपेण भूत्वाहं प्राकृतः शिशुः ।। ३० ।। नय मां गोकुलमिति वसुदेवमचोदयम् ।। समादायागमत्सोऽपि नन्दगोकुलमञ्जसा ।। ३१ ।। द्वारण्यपाकृतान्यासन्मत्प्रभावात्स्वयं प्रभो ।। ददौ मार्गं च कालिन्दीजलकल्लोलमालिनी ।। ३२ ।। ततो यशोदाशयने न्यस्य माऽऽनकदुन्दुभिः ।। तत्पर्यंके स्थितां गृह्य दारिकामगमत्पुनः ।। ३३ ।। द्वाराणि पिहितान्यासन् पूर्ववन्निगडं ततः ।। विन्यस्य पादयोरास्ते शयने न्यस्य दारिकाम् ।।३४।। ततो रुरोद महता स्वरेणापूर्य सा दिशः ।। तस्या रुदितशब्देन उत्थिता रक्षका गृहात् ।। ३५।। कंसायागत्य चाचख्युः प्रसूता देवकीति च ।। सोऽपि तल्पात्समुत्थाय भयेनातीव विह्वलः ।। ३६ ।। जगाम सूतिकागेहं देवक्याः प्रस्खलन्पथि ।। दारिकां शयनाद् गृह्य रुदत्याश्चैव स्वस्वसुः ।। ३७ ।। अपोथयच्छिलापृष्ठे सापि तस्य कराच्च्युता ।। उवाच कंसमाभाष्य देवी ह्याकाशगा सती ।। ३८ ।। किं मया हतया मन्द जातः कुत्रापि ते रिपुः ।। प्रत्युक्तः सोऽप्यभूत्कंसः परमोद्विग्नमानसः ।। ३९ ।। आज्ञापयामास ततो बालानां कदनाय वै ।। दानवा अपि बालानां कदनं चक्रुरुद्यताः ।। ४० ।। वनेषूपवने चैव पुरग्रामव्रजेष्वपि ।। अहं च गोकुले स्थित्वा पूतनां बालघातिनीम् ।। ४१ ।। स्तनं दातुं प्रवृत्तां च प्राणैः सममशोषयम् ।। तृणावर्तबकारिष्टान् धेनुकं केशिनं तथा ।। ४२ ।। अन्यानपि खलान् हत्वा स्वप्रभावमदर्शयम् ।। ततश्च मथुरां गत्वा हत्वा कंसादिदानवान् ।। ४३ ।। ज्ञातीनां परमं हर्षं कृतवानास्मि सादरम् ।। देवकीवसुदेवौ च परिष्वज्य मुदा मम ।। ४४ ।। आनन्दजैर्जलैर्मूर्ध्नि सेचयामासतुर्नृप ।। तस्मिन् रङ्गवरे मल्लान् हत्वा चाणूरमुख्यकान् ।। ४५ ।। गजं कुवलयापीडं कंसभ्रातॄननेकशः ।। एवं हतेऽसुरे कंसे

---

१ मा इतिमाम् २ यामिका इतिप्रचुरः पाठः ३ मम मूर्ध्नीत्यन्वयः

सर्वलौकैककण्टके ।। ४६ ।। अन्येषु दुष्टदैत्येषु सर्वलोका भयंकरम् ।। लोकाः समुत्सुकाः सर्वे मांसमेत्योचुरादृताः ।। ४७ ।। कृष्ण कृष्ण महायोगिन् भक्तानामभयप्रद ।। प्रलयात्पाहि नो देव शरणागतवत्सल ।। ४८ ।। अनाथनाथ सर्वज्ञ सर्वभूतहिते रत ।। किंचिद्विज्ञाप्यतेऽस्माभिस्तन्नो वक्तुं त्वमर्हसि ।। ४९ ।। तव जन्मदिनं लोके न ज्ञातं केनचित्क्वचित् ।। ज्ञात्वा च तत्त्वतः सर्वे कुर्मो वर्धापनोत्सवम् ।। ५० ।। तेषां दृष्ट्वा तु तां भक्ति श्रद्धामपि च सौहृदम् ।। मया जन्मदिनं तेभ्यः ख्यातं निर्मलचेतसा ।। ५१ ।। श्रुत्वा तेऽपि तथा चक्रुर्विधिना येन तच्छृणु ।। पार्थ तद्दिवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् ।। ५२ ।। स्नात्वा पुण्यजले शुद्धे वाससी परिधाय च ।। निर्वर्त्यावश्यकं कर्म व्रतसंकल्पमाचरेत् ।। ५३ ।। अद्य स्थित्वा निराहारः श्वोभूते तु परेऽहनि ।। मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाव्यय ।। ५४ ।। गृहीत्वा नियमं चैव संपाद्यार्चनसाधनम् ।। मण्डपं शोभनं कृत्वा फलपुष्पादिभिर्युतम् ।। ५५ ।। तस्मिन्मां पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।। उपचारैः षोडशभिर्द्वादशाक्षरविद्यया ।। ५६ ।। सद्यःप्रसूतां जननीं वसुदेवं च मारिषः ।। बलदेवसमायुक्तां रोहिणीं गुणशोभिनीम् ।। ५७ ।। नन्दं यशोदां गोपीश्च गोपान् गाश्चैव सर्वशः ।। गोकुलं यमुनां चैव योगमायां च दारिकाम् ।। ५८ ।। यशोदाशयने सुप्तां सद्योजातां वरप्रभाम् ।। एवं संसूजयेत्सम्यङ्‌ नाममन्त्रैः पृथक्पृथक् ।। ५९ ।। सुवर्णरौप्यताम्रारमृदादिभिरलंकृताः ।। काष्ठपाषाणरचिताश्चित्रमय्योथ लेखिताः ।। ६० ।। प्रतिमा विविधाः प्रोक्तास्तासु चान्यतमां जयेत् ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतनृत्यादिभिः सह ।।६१।। पुराणैः स्तोत्रपाठैश्च जातनामादिसूत्सवैः ।। श्वभूते पारणं कुर्याद्द्विजान् संभोज्य यत्नतः ।। ६२ ।। एवं कृते महाराज व्रतानामुत्तमे व्रते ।। सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ।। ६३ ।। मोहान्न कुरुते यस्तु याति संसारगह्वरे ।। तस्मात्कुर्वन्प्रयत्नेन निष्पापो जायते नरः ।। ६४ ।। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।। अङ्गदेशोद्भवो राजा मित्रजिन्नाम नामतः ।। ६५ ।। तस्य पुत्रो महातेजाः सत्यजित्सत्पथे स्थितः ।। पालयामास धर्मज्ञो विधिवद्रञ्जयन्प्रजाः ।। ६६ ।। तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचिद्दैवयोगतः ।। पाषण्डैः सहसंवासो बभूव बहुवासरम् ।। ६७ ।। तत्संसर्गात्स नृपतिरधर्मनिरतोऽभवत् ।। वेदशास्त्रपुराणानि विनिन्द्य बहुशो नृप ।। ६८ ।। ब्राह्मणेषु तथा धर्मे विद्वेषं परमं गतः ।। एवं बहुतिथे काले गते भरतसत्तम ।। ६९ ।। कालेन निधनं प्राप्तो यमदूतवशं गतः ।। बद्ध्वा पाशैर्नीयमानो यमदूतैर्यमान्तिकम् ।।७०।। पीडितस्ताडयमानोऽसौ दुष्टसङ्गवशं गतः ।। नरके पतितः पापो यातनां बहु-

१ हत्वा अतिष्ठामिति शेषः २ तद्दिनमित्यपि पाठः ३ महासेन इत्यपि पाठः

वत्सरम् ।। ७१ ।। भुक्त्वा पापस्य शेषेण पैशाचीं योनिमास्थितः ।। तृषाक्षुधा- समाक्रान्तो भ्रमन्स मरुधन्वसु ।। ७२ ।। कस्यचित्त्वथ वैश्यस्य देहमाविश्य संस्थितः ।। सह तेनैव संप्राप्तो मथुरां पुण्यदां पुरीम् ।। ७३ ।। तत्रत्यैरक्षकैः सोऽथ तद्देहात्तु बहिष्कृतः ।। बभ्राम विपिने सोऽपि ऋषीणामाश्रमेष्वपि ।। ७४ ।। कदाचिद्दैवयोगेन मम जन्माष्टमीदिने ।। क्रियमाणां महापूजां व्रतिभिर्मुनिभि- र्द्विजैः ।। ७५ ।। रात्रौ जागरणं चैव नामसंकीर्तनादिभिः ।। ददर्श सर्वं विधिवच्छु- श्राव च हरेः कथाः ।। ७६ ।। निष्पापस्तत्क्षणादेव शुद्धनिर्मलमानसः ।। प्रेतदेहं समुत्सृज्य विष्णुलोकं विमानतः ।। ७७ ।। मम दूतैः समानीतो दिव्यभोगसम- न्वितः ।। मम सांनिध्यमापन्नो व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। ७८ ।। नित्यमेव व्रतं चैतत् पुराणे सार्वकालिकम् ।। गीयते विधिवत्सम्यङ्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।। ७९ ।। सार्वकालिकमेवैतत्कृत्वा कामानवाप्नुयात् ।। एतत्ते सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। मम सान्निध्यकृद्राजन्कि भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। ८० ।। इति भविष्ये जन्माष्टमीव्रतकथा ।। अथोद्यापनम्–युधिष्ठिर उवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि सर्वदेव दयानिधे ।। येन संपूर्णतां याति व्रतमेतदनुत्तमम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पूर्णां तिथिमनुप्राप्य वित्तचित्तादिसंयुतः ।। पूर्वेद्युरेकभक्ताशी स्वपेन्मां संस्मरन्हृदि । प्रातरुत्थाय संस्मृत्य पुण्यश्लोकान् समाहितः ।। निर्वर्त्यावश्यकं कर्म ब्राह्मणा- न्स्वस्ति वाचयेत् ।। गुरुमानीय धर्मज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ।। वृणुयादृत्विजश्चैव वस्त्रालंकरणादिभिः ।। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। शक्त्या वापि नृपश्रेष्ठ वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। सौवर्णीं प्रतिमां कुर्यात्पाद्यार्घ्याचमनीयकम् ।। पात्रं संपाद्य विधिवत्पूजोपकरणं तथा ।। गोचर्ममात्रं संलिप्य मध्ये मण्डलमाचरेत् ।। ब्रह्माद्या देवतास्तत्र स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ।। मण्डपं रचयेत्तत्र कदलीस्तम्भ- मण्डितम् ।। चतुर्द्वारसमोपेतं फलपुष्पादिशोभितम् ।। वितानं तत्र बध्नीयाद्विचित्रं चैव शोभनम् ।। मण्डले स्थापयेत्कुम्भं ताम्रं वा मृन्मयं शुचिम् ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं राजतं वैणवं तु वा ।। वाससाच्छाद्य कौन्तेय पूजयेत्तत्र मां बुधः ।। उपचारैः षोडशभिर्मन्त्रैरेतैः समाहितः ।। ध्यात्वावाह्यामृतीकृत्य स्वागतादि- भिरादरात् ।। ध्यायेच्चतुर्भुजं देवं शंखचक्रगदाधरम् ।। पीताम्बरयुगोपेतं लक्ष्मी- युक्तं विभूषितम् ।। ललत्कौस्तुभशोभाढ्यं मेघश्यामं सुलोचनम् ।। ध्यानम् ।। आगच्छ देवदेवेश जगद्योने रमापते ।। शुद्धेह्यस्मिन्नधिष्ठाने संनिधेहि कृपां कुरु ।। आवाह० ।। देवदेव जगन्नाथ गरुडासनसंस्थित ।। गृहाण चासनं दिव्यं जगद्धातर्न- मोऽस्तु ते ।। आसनम् ।। नानातीर्थाहृतं तोयं निर्मलं पुष्पमिश्रितम् ।। पाद्यं गृहाण देवेश विश्वरूप नमोस्तु ते ।। पाद्यम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो भक्त्यानीतं सुशीत-

लम् ।। गन्धपुष्पाक्षतोपेतं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। अर्घ्यम् ।। कृष्णावेणीसमद्भूतं कालिन्दी जलसंयुतम् ।। गृहाणाचमनं देव विश्वकाय नमोऽस्तु ते ।। आचमनम् ।। दधि क्षौद्रं घृतं शुद्धं कपिलायाः सुगन्धि यत् ।। सुस्वादु मधुरं शौर मधुपर्कं गृहाण मे ।। मधुपर्कम् ।। पुनराचमनम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं करिष्यामि सुरोत्तम ।। क्षीरोदधिनिवासाय लक्ष्मीकान्ताय ते नमः ।। पञ्चामृत० ।। मन्दाकिनी गौतमी च यमुना च सरस्वती ।। ताभ्यः स्नानार्थमानीतं गृहाण शिशिरं जलम् ।। स्नानम् ।। पुनराचमनम्।। शुद्धजाम्बूनदप्रख्ये तडिद्भासुररोचिषी।।मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।। वस्त्रयुग्मम्।।यज्ञोपवीतमिति यज्ञोपवीतम्।।किरीटकुण्डलादीनि काञ्चीवलययुग्मकम् ।। कौस्तुभं वनमालां च भूषणानि भजस्व मे ।। भूषणानि ।। मलयाचलसंभूतं घनसारं मनोहरम् ।। हृदयानन्दनं चारु चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। अक्षताश्च सुरश्रेष्ठेति कुंकुमाक्षतान् ।। मालतीचम्पदाकीनि यूथिकाबकुलानि च ।। तुलसीपत्रमिश्राणि गृहाण सुरसत्तम ।। पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा—अघनाशनाय० पादौ पू० । वामनाय० गुल्फौ० पू० । शौरये० जंघे पू० । वैकुण्ठवासिने० ऊरू पू० । पुरुषोत्तमाय० मेढ्रं पू० । वासुदेवाय० कटीं पू० । हृषीकेशाय० नाभिं पू० । माधवाय० हृदयं पू० । मधुसूदनाय० कण्ठं पू० । वराहाय० बाहू पू० । नृसिंहाय० हस्तौ पू० । दैत्यसूदनाय० मुखं पू० । दामोदराय० नासिकां पू० । पुण्डरीकाक्षाय० नेत्रे पू० । गरुडध्वजाय० श्रोत्रे पू० । गोविन्दाय० ललाटं पू० । अच्युताय० शिरः पू० । कृष्णाय० सर्वाङ्गं पू० ।। अथ परिवारदेवतापूजा—देवकीं वसुदेवं च रोहिणीं सबलां तथा ।। सात्यकिं चोद्धवाक्रूरावुग्रसेनादियादवान् ।। नन्दं यशोदां तत्कालप्रसूतां गोपगोपिकाः ।। कालिन्दीं कालियं चैव पूजयेन्नाममन्त्रतः ।। वनस्पतिरसोद्भूतं कालागुरुसमन्वितम् ।। धूपं गृहाण गोविन्द गुणसागर गोपते ।। धूपम् ।। साज्यं च वर्तिसंयुक्तम् ।। दीपम् ।। शाल्योदनं पायसं च सिताघृतविमिश्रितम् ।। नानापक्वान्नसंयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। उत्तरापोशनम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। पूगीफलमिति तांबूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजयेत्ततो भक्त्या मङ्गलं समुदीरयन् ।। जयमङ्गलनिर्घोषैर्देवदेवं समर्चयेत् ।। नीराजनम् ।। दत्त्वा पुष्पांजलिं चैव प्रदक्षिणपुरः सरम् ।। प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वः पुनः पुनः ।। स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रार्थयेत जगत्पतिम् ।। नमस्तुभ्यं जगन्नाथ देवकीतनय प्रभो । वसुदेवात्मजानन्त यशोदानन्दवर्द्धन ।। गोविन्द गोकुलाधार गोपीकान्त नमोऽस्तु

ते ।। ततस्तु दापयेदर्घ्यमिन्दोरुदयतः शुचिः ।। कृष्णाय प्रथमं दद्याद्देवकीसहिताय च । नालिकेरेण शुद्धेन मुक्तमर्घ्यं विचक्षण ।। कृष्णाय परया भक्त्या शंखे कृत्वा विधानतः ।। जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ।। कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ।। पाण्डवानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवकीसहितो हरे ।। कृष्णार्घ्यमन्त्रः ।। शंखे कृत्वा ततस्तोयं सपुष्पफलचन्दनम् ।। जानुभ्यामवनिं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ।। क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहित प्रभो ।। ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषांपते ।। नमस्ते रोहिणीकान्त गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। चन्द्रार्घ्यमन्त्रः ।। इत्थं संपूज्य देवेशं रात्रौ जागरणं चरेत् ।। गीतनृत्यादिना चैव पुराणश्रवणादिभिः ।। प्रत्यूषे विमले स्नात्वा पूजयित्वा जगद्गुरुम् ।। पायसेन तिलाज्यैश्च मूलमन्त्रेण भक्तितः ।। अष्टोत्तरशतं हुत्वा ततः पुरुषसूक्ततः ।। इदं विष्णुरिति प्रोक्त्वा जुहुयाद्वै घृताहुतीः ।। होमशेषं समाप्याथ पूर्णाहुतिपुरःसरम् ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या भूषणाच्छादनादिभिः ।। गामेकां कपिलां दद्याद्व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। पयस्विनीं सुशीलां च सवत्सां सगुणां तथा ।। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनिकायुताम् ।। रत्नपुच्छां ताम्रपृष्ठीं स्वर्णघण्टासमन्विताम् ।। वस्त्रच्छन्नां दक्षिणाढ्यामेवं सम्पूर्णतां व्रजेत् ।। कपिलाया अभावे तु गौरन्यापि प्रदीयते ।। ततो दद्याच्च ऋत्विग्भ्योऽन्येभ्यश्चैव यथाविधि ।। शय्यां सोपस्करां दद्याद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादष्टौ तेभ्यश्च दक्षिणाम् ।। कलशान्नसम्पूर्णान्दद्याच्चैव समाहितः ।। दीनान्धकृपणांश्चैव यथार्हं प्रतिपूजयेत् ।। प्राप्यानुज्ञां तथा तेभ्यो भुञ्जीत सह बन्धुभिः ।। एवंकृते महाराज व्रतोद्यापन– कर्मणि ।। निष्पापस्तत्क्षणादेव जायते विबुधोपमः ।। पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः ।। भुक्त्वा भोगांश्चिरं कालमन्ते मम पुरं व्रजेत् ।। इति श्रीभविष्य पुराणे कृष्णयुधिष्ठिरसंवादे जन्माष्टमीव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

व्यास भगवान् (सूतसे) बोले–जब महाभारतका युद्ध समाप्त होगया तब क्रियाओंसे निवृत्त हो पवित्रात्मा धर्ममूर्ति राजा युधिष्ठिर (अपने पार्श्वमें विराजमान) भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे बोले ।। १ ।। कि, हे गोविन्द ! आपके अनुग्रहके प्रतापसे हमने संग्राममें शत्रु मारदिये । किरीटी अर्जुनने कर्णका जो वध किया वह भी आपकीही कृपाका प्रताप है ।। २ ।। जिसको कोईभी वीर संग्राममें जीतनेवाला नहीं, जिसकी मृत्युभी नहीं थी, ऐसे सभीके अजेय महात्मा भीष्मजीको जो अर्जुनने विजय किया वहभी हे जनार्दन ! आपकाही प्रसाद है ।। ३ ।। अत्यन्त दुष्कर कर्म करके निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया । मैंने आपके मुखसे सदाचार सुने, दण्डनीति सुनी, राजधर्म तथा उनको निभाने चलानेकी व्यवस्थाके उपायभी सुने ।। ४ ।। अब मैं पवित्र जन्माष्टमीके व्रतको सुनना चाहता हूं । इसलिये हे अच्युत ! आप विस्तारसे जन्माष्टमीव्रतको कहिये ।। ५ ।। यह जन्माष्टमीका व्रत किस समयमें प्रथम प्रचलित किया गया इसका कौनसा फल है, इसके करनेका प्रकार क्या है ? सो कहिये । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजन् ! मैं सभी व्रतोंमें उत्तम जन्माष्टमी-

व्रतका निरूपण करूंगा, उसे आप सुने ।। ६ ।। यह जन्माष्टमीका व्रत जिस समयसे लोकमें विख्यात हुआ। इसका जो फल तथा जो विधि है वह सव कहता हूं, पहिले हमने जिन दैत्योंका वध किया था वे सभी दुरात्मा दैत्यगण राजवंशोंमें उत्पन्न हो, राजवेशको धारण करके पृथिवीपर बडी भारी पीडा उपस्थित करने लगे इससे अत्यंत पीडिता ।। ७ ।। यानी उन राजाओंके वेषसे जिन्होंने अपना स्वरूप ढक रक्खा था ऐसे दैत्योंके भारसे दबी हुई पृथिवी देवी (गऊका रूप धारण कर क्रन्दन करती हुई) ब्रह्माजीकीशरण प्राप्त हुई (अपना दुख निवेदन करनेलगी) उस समय ब्रह्माजीने अपने शरणागत भूमिके भारको समक्ष समाहित हो ।। ८ ।। उसके मिटानेका उपाय सोचा पर जब समझमें न आया, तव शरणागतवत्सल श्वेतद्वीपनिवासी भगवान् नारायणकी शरण गये, अपने साथमें सबदेवताओंकोभी ले गये । फिर ब्रह्माजी समाहित चित्त होकर हे विशाम्पते राजन् ! मेरी (कृष्णचन्द्रकी) स्तुति करने लगे ।। ९ ।। मैंने नारायण ब्रह्मादि देवताओंकी की हुई स्तुति सुन अत्यन्त प्रसन्न हो अपना दर्शन करादिया । वे सभी मेरे दर्शनकर भक्तिसे आह्लादित होकर मुझे प्रणाम करने लगे ।। १० ।। हे महाराज ! फिर सब प्रसन्न हो ब्रह्माजीको अग्रणीकर मेरी प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो ! पृथ्वीपर राजवेषधारी दुरात्मा दैत्योंका भार बहुत बढ़गया है सो आप उसको नष्ट कीजिये ।। ११ ।। मैं (श्वेतद्वीपवासी) नारायण उन देवताओंके वचनोंको सुन विचार करने लगा कि, क्या उपाय किया जाय ? जिससे क्षेत्रीय कुलमें छिपे हुए दैत्य मारे जायं ।। १२ ।। स्वधर्मनिष्ठ सभी राजालोगबचाये जायें वे बल तथा पराक्रमशाली कैसे हों ? इस प्रकारशोच कर उसका उपाय समझा फिर मैं (कृष्णचन्द्र) ब्रह्मासे बोला ।। १३ ।। कि वासुदेवजी एवं देवकीजीने सन्तानके लिए पहिले मेरा भक्तिसे पूजन करके घोर तप किया था ।। १४ ।। मैं उनपर प्रसन्न हुआ, वर देनेको कहा, तो उन्होंने मेरेसे बडे भारी वरकी याचना की ।। १५ ।। कि हे देव ! यदि आप प्रसन्न हुए हों तो आपके समान हमारे पुत्र हो । हे राजन् ! उनके तपसे प्रसन्न हुआ मैं बोला कि, अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसाही हो, मैं ही तुम्हारा पुत्र होऊँगा ।। १६ ।। इसलिये मैं अब उन वसुदेव देवकी की कामनाको पूर्ण करनेके लिये उनके पुत्ररूपसे प्रगट होऊँगा । अतः सभी देवता एवं देवाङ्गना अपने अपने अंशोंसे मथुराके आस पासमें ही उत्पन्न हों ।। १७ ।। मेरी योगमाया नन्दकी यशोदा स्त्रीमें प्रकट होगी । मेरा अनन्त एवं शयनका आश्रयरूप शेषभी देवकीके गर्भमें प्रवेश करेगा ।। १८ ।। मेरी योगमाया उन्हें देवकीके गर्भसे निकालके रोहिणीके गर्भमें प्रविष्ट करेगी । ब्रह्मादिदेवताओंको इतना सन्देश देकर मैं (श्वेतद्वीप निवासी विष्णु-कृष्णचन्द्र) अन्तर्हित हो गया ।। १९ ।। ब्रह्माजी और सब देवता जिस दिशामें मैंने उन्हें दर्शन दिया था उस दिशाकी ओर मुखकर मेरे लिए प्रणाम करते हुए गोरूप धारिणी पृथ्वीको आश्वासन देकर यानी भगवान् पुराणोत्तम आप तुम्हारेपर अपने चरणोंसे अह्लादित एवं पूर्णकाम करेंगे, तुम्हारे भारको शीघ्रही दूर करेंगे शोच चिन्ता मत करो, ऐसा कह सत्यलोकको चले गये ।। २० ।। मैं (अपने अंशरूप शेषसहित) अपने तेजसे देवकीके गर्भमें उस समय प्रविष्ट हुआ जब कि, कारागारमें वसुदेव देवकी उग्रसेनके पुत्र दुरात्मा कंसने कैद कर रखे थे, एवं उस कैदमें उनके पहिले उत्पन्न हुए छः पुत्रोंका बध कर दिया था ।। २१ ।। (फिर सप्तमगर्भको योगमाया देवकीके जठरसे निकालके रोहिणीके गर्भमें प्रवेश करके आप तो नन्दके यहां यशोदा के गर्भसे कन्यारूप हो प्रगट हुई, और मैं आठवीं बार देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हुआ) भाद्रपद कृष्णाष्टमीके दिन आधीरातको जब कि, प्रायः सभी लोग सो गए थे; रोहिणीनक्षत्र विद्यमान था ।। २२ ।। सूर्यादि सभी ग्रह अपने अपने उच्च या अनुगुणपदपर थे । हे अवनीपते ! और सभी सज्जनोंको चित्त स्वतः प्रसन्न हो गयाथा ऐसे पवित्र उत्तम समयमें मैं अपने दिव्यरूपसे ही प्रगट हुआ ।। २३ ।। वसुदेव और देवकी मेरे अवतारको देखकर प्रथम तो आह्लादित हुए, पर फिर कंसके भयको यादकरके शोकसे अत्यन्त म्लानमुख हो गए, हाथ जोडकर मेरी स्तुति करनेलगे ।। २४ ।। बारबार मुझे प्रणामकर प्रेम एवं सम्मानपूर्वक मेरी प्रार्थना करने लगे । वसुदेवजी बोले कि, हे प्रभो ! यह आपका स्वरूप अलौकिक है । इसे देखनेकी योगीजन सदा इच्छा रखते हैं, पर उन्हें भी इसके दर्शन नहीं होते ।। २५ ।। आपके तेजसे यह अन्धकारपूर्ण प्रसूतिकागृह भी दिनकी भांति प्रकाशमान हो रहा है । अब मैं उस दुरात्मा कंससे डरता हूं, जिसने हमारे सब बालक मार दिए हैं । ।। २६ ।। इसलिए इस अपने दिव्यस्वरूपको छिपाइये ।

आप शंख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित चार हाथों वाला, कौस्तुभमणिमालाकी दीप्तिसे शोभायमान मालाधारी ।। २७ ।। किरीटसे शोभिन मस्तकवाले मोतियोंके हारवाला मुकुट और कुण्डलोंको धारण किये हुए कंकणोंसे सुन्दर हाथवाले विद्युत्सदृश स्वच्छ पीतवस्त्रसे रुचिर, सोनेकी वजनी ताघडीसे वेष्टित नितम्ब-वाले ।। २८ ।। खिलते हुए लाल कमलके सदृश लालनेत्रोंसे मनोहर, स्निग्ध (मसृण) अञ्जनके समान श्याम, नीलमणिके समान स्वच्छ कोटिसूर्योंके बराबर दीप्यमान हूँ ।। २९ ।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजन् ! जब इस प्रकार कंसके भयसे उद्विग्न हुए वसुदेवजीने मेरी प्रार्थना की, तब मैंने भी उस अपने दिव्यस्वरूपको साधारण शिशु बना लिया ।। ३० ।। और कहा कि, आप मुझे यहांसे गोकुल (नन्दजीके यहां) पहुंचा दें। वसुदेवजी मेरी आज्ञा होते ही झट मुझे अपनी गोदमें लेकर नन्दके गोकुल पहुंचे ।। ३१ ।। उस समय हे प्रभो ! कैदखानेके द्वार मेरे प्रभावसे आपही आप खुल गये, जिसमें बडी २ तरंगे उठ रही थीं ऐसी यमुनाजीने भी आपही अपने बीचसे वसुदेवजीको गोकुल को जानेका रास्ता दे दिया ।। ३२ ।। आनकदुन्दुभि-वसु-देवजी यशोदाकी शय्यापर मुझे रखके उसके पलंगतर सोई हुयी कन्यारूपा योगमायाको गोदमें ले मथुराके उसी मकानमें आगये ।। ३३ ।। जैसे पहिले दरवाजे बंद थे वैसे ही फिर सभी दरवाजे आपही आप बंद होगए । वसुदेनजीने देवकीकी शय्यापर उस कन्याको रखके अपने चरणोंमें पहलेकी तरह बेडी पटक ली ।। ३४ ।। कन्याने सब दिशाओंको पूर्ण करनेवाले उच्चस्वरसे रोदन किया । उसको सुनकर पहरेदार खडे हुए ।। ३५ ।। उन्होंने तुरन्त जाकर कंसको खबर दी कि, देवकीकी बालक हुआ है । कंस उस समय सो गया था, पर इन बचनोंको सुन भयसे विह्वल हो खडा हुआ ।। ३६ ।। निद्रा एवं चिन्तासे रास्तेमें इतस्ततः पडता गिरता हुआ देवकीजीके सूतिकाघर आया, देवकीजी रोतीही रही, उनके पास सोती हुई कन्याको छीन ।। ३७ ।। जैसे किसी घडेको जब फोडना चाहते हैं उस समय उसे शिलापर जोरसे फेंकके मारते हैं उसी तरह उसे भी मारा । कन्या कंसके हाथसे निकल आकाशमें निराधार खडी हो बोली कि, रे दुष्ट कंस ! ।। ३८ ।। रे मूढ ! मुझे मारकर तू क्या चाहता है ? मेरे मारनेसे तेरे प्राण नहीं बच सकते । तुझे मारनेवाला तो जिस किसीभी स्थानमें उत्पन्न हो गया है । तब वह कंस भयसे औरभी अधिक उद्विग्न होगया ।। ३९ ।। बालकोंको मारनेके लिये अपने किंकरोंको आज्ञा दे दी । दानलोगभी वन (जङ्गल) उपवन (बगीचे), पुर (शहर), ग्राम (छोटीवस्ती) और व्रज (गोपालकोंके स्थान) इत्यादि सब जगह छोटे छोटे बच्चोंका कदन (कतल) करनेमें सभी प्रकारके उद्यम करनेलगे । मैं गोकुलमें रहकर बालघातिनी पूटनाको ।। ४० ।। ।।४१ ।। जो कि, मुझे स्तनपान करानेमें प्रवृत्त हुई थी, प्राणोंके साथ चूस गया । मैंने और भी जो तृणावर्त, बक, अरिष्ट, धेनक, केशी ।। ४२ ।। एवम् दूसरे भी बहुतसे खलोंको मार करके अपना प्रभाव दिखादिया । इसके पीछे मथुरा जा कंसादि दानवोंको मारकर ।। ४३ ।। अपने ज्ञातिबन्धुओंको आदर पूर्वक हर्ष किया, देवकी और वसु-देवने मुझे आनन्दसे हृदय लगाकर ।। ४४ ।। मेरे शिरपर आनन्दाश्रुओंका सिंचन किया । मैंने उस प्रसिद्ध रंगभूमिमें चाणूरादि मल्लोंको मारा ।। ४५ ।। कुवलयापीडा हाथी और बहुतसे कंसके भाई भी मुझसे मारे गये । सब लोकोंके एकमात्र कंटक कंसके इस प्रकार मारे जानेपर ।। ४६ ।। भी और बहुतसे बाकी थे; इस कारण सबको अभय देनेवाले मेरे पास वे लोग आये जो कि, उन दैत्योंको मृत्यु देखनेके उत्सुक थे ! मैंने उनका आदर किया वे मुझसे बोले कि ।। ४७ ।। हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे भक्तोंको अभय देनेवाले ! हे शरणागतवत्सल ! हे देव ! हमें प्रलयसे बचाइये ।। ४८ ।। हे अनाथोंके नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे सब प्राणियोंके हितकारी प्रभो ! आपसे हमारी कुछ प्रार्थना है, सुननेकी कृपा कीजिये ।। ४९ ।। आपका जन्म देवकीजीके यहां कब हुआ था ? यह वृत्तान्त आजतक किसीने कहीं भी न जाना न सुनाही है । यदि आप उसे बतानेकीदया करें हम आपके जन्म दिनका उत्सव करें ।। ५० ।। हे राजन् ! मैं उनकी भक्ति, श्रद्धा और प्रेमको देखके प्रसन्न हुआ । उन सबको अपना जन्म दिन बतादिया उन सबोंने उसे प्रसिद्ध कर दिया ।। ५१ । हे प्रार्थ ! फिर वेभी सब लोग मुझसे मेरे जन्मदिन सुन, विधिसे मेरा वर्धापनोत्सव करनेलगे उस विधानको आप सुनिये । जन्मदिन प्राप्त होनेपर मलत्यागादि दन्तशुद्धि आदि करके ।। ५२ ।। शुद्ध जलाशयपर जा स्नानकर शुद्ध वस्त्र और उपवस्त्र धार आवश्यक सन्ध्योपासनादि नैत्यिक कर्म करे । फिर व्रत करनेका

संकल्प करे ।। ५३ ।। आज निराहार रहूंगा, फिर दूसरे दिन भोजन करूंगा ।। हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अव्यय ! मेरी रक्षा करिये, मैं आपके आश्रित हूं ।।। ५४ ।। ऐसे नियम (संकल्प) को कर मेरी पूजाकी सामग्री इकट्ठी करे । पूजाके लिये सुन्दर एक मण्डल बनावे, उसमें फल, पुष्प, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानपात्रादि तथा गन्ध, धूप और दीपकादि उपस्कर अच्छी तरह उपस्थित करे ।। ५५ ।। फिर उस मण्डपके भीतर शास्त्रोक्त पूजनविधिके क्रमके अनुसार गन्धपुष्पादि षोडश उपचारोंसे 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रको पढता हुआ मेरा पूजन करे ।। ५६ ।। मानों अभी प्रसव किया है ऐसी अवस्थावाली देवकी, ज्ञानी वसुदेवजी, गुणवती रोहिणी और उसकी गोदमें बलदेवजी ।। ५७।। नन्द, यशोदागोपिका, सब गोप, गोकुलका (चित्र), यमुना और यशोदाकी शय्यापर सोती हुई, मानो इसी क्षण जन्म लिया है ऐसी सुन्दर तेजवाली कन्या मेरी रूपा योगमायाको स्थापित करके पहिले कहीहुई विधिसे नाममंत्रोंसे पृथक् २ अच्छी तरह पूजन करे ।। ५८ ।। ५९ ।। हे राजन् ! पूजामें प्रतिमा अनेक प्रकारकी हो सकती हैं, उनमें जिस समय जैसी उपस्थित हो या करसके उसीमें प्रेमसे पूज्यदेवताकी भावना करके पूजन करना चाहिये । प्रतिमा जैसे-सुवर्ण, रूपा, तामा, पीतल, मृत्तिका, काष्ठ और पाषाणादिकोंकी तथा रंगोंसे सजाके चित्रित लिखी हुई । पूजनके अन्तमें या पूजनसे पहिले भी पूजासे अवशिष्ट समयमें रात्रिमें मेरे उद्देशसे गान नाच कीर्तनादि करता हुआ जागरण करें । अवशिष्ट रात्रिको निद्रासे न गमावे ।। ६० ।। ६१ ।। पुराण और स्तोत्र पाठोंसे एवं जन्मके अनुरूप देवकीनन्दन वसुदेवनन्दन यदुनन्दनप्रभृति नाम दूसरे दूसरे सुन्दर उत्सवोंके प्रमोद आमोद मनाते हुएही बितावे । दूसरे दिन तब ब्राह्मणोंको प्रेमसे भोजन करा आपभी पारण करे ।। ६२ ।। हे महाराज ! इस प्रकार इस व्रतको करके सब कामना संपूर्ण होती हैं. अन्तमें वैकुण्ठधाममें विहार करता है ।। ६३ ।। जो मनुष्य मोहवश हो मेरे जन्मोत्सवको नहीं मनाता, वह जननमरणरूप संसारकी गुहाके भीतर अन्धकारमेंही पडा रहता है । इस कारण यदि अपने पापोंसे छूटकारा चाहे तो इस व्रतको और महोत्सवको करे, जिससे पापोंसे छूटके निर्म्मल होजाय ।। ६४ ।। इस प्रसङ्गमें महात्मा लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं । वह यह है कि अंगदेशमें एक मित्रजित् नाम राजा था ।। ६५ ।। उसके परमप्रताप शाली स्वधर्मपरायण सत्यजिन्नामका पुत्र हुआ । वह धर्मवेत्ता सत्यजित् अपनी प्रजाको पुत्रकी भाँति प्रसन्न करता हुआ राज्यकी रक्षा करने लगा ।। ६६।। वह राजा यद्यपि धर्मनिष्ठ धर्मवेत्ता था, पर उसके राज्यशासनकालमें कभी दैववश बहुत समयतक पाषण्डियोंका साथ होगया ।। ६७ ।। उन दुष्टोंके सहवाससे राजाकी बुद्धि धर्ममार्गसे डिग गयी, वह अधर्मपरायण होगया । हे राजन् ! फिर वह राजा वेद, धर्मशास्त्र औत पुराणोंकी बहुतसी निन्दा करके ।। ६८ ।। ब्राह्मण एवं धर्मसे द्वेष करने लगा । हे भरतसत्तम ! ऐसे उसका बहुतसमय बीतगया ।। ६९ ।। फिर कालने उसे आघेरा, यमदूतोंके वश हो गया, वे उसे गलेमें दृढपाशोंसे बांधकर घसीटतेहुए यमराजके समीप ले आये ।। ७० ।। दुष्ट पाषण्डियोंके संगसे धर्मविमुख हो जो जो पाप किये थे वे उनको भुगानेके लिये आज्ञा दी । यमकिंकरोंने उसे ताडनाएं दी वह पापी बहुत वर्षोंतक नरकमें गिरके नरककी यातनाओंको भोगता रहा ।। ७१ ।। ऐसे जब उसने प्रायः बहुतसे पापोंका फल नरकमें भोगलिया, कुछ पाप अवशिष्ट रहगया, तब पिशाचयोनिमें पडा । तृषा क्षुधासे पीडित हो मारवाडमें (जहां जल नहीं है ऐसे घोर निर्जल-देशमें) इधर उधर भटकने लगा ।। ७२ ।। फिर कभी वैश्यके शरीरमें प्रवेशकर उसके साथ पुण्य भूमि मथुरा (यमुनाजी) चलाआया ।। ७३ ।। पर मथुरावासी रक्षकोंने उसको वैश्यके शरीरसे निकालकर अलग करदिया । फिर वनमें गया, यहां ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमने लगा ।। ७४ ।। फिरकभी दैवयोगसे मेरे जन्माष्टमीके दिन जब कि मुनिजन और द्विजाति महान् उत्साहके साथ व्रत करके मेरी पूजा करते थे उसे उसने देखा ।। ७५ ।। एवं रात्रिमें मेरे नाम (भजन) कीर्तन जागरणादि सब देखे मेरी जो वहां विधिवत् कथा होरही थी, वेभी समाहित चित्तसे सुनीं ।। ७६ ।। इस प्रकार जन्माष्टमीके दिनकी मेरी महापूजादि देखने सुननेके पुण्यसे उसके सब पाप दग्ध होगये, वह प्रेत उसी क्षण शुद्ध एवं पवित्र अन्तःकरणका होगया । पीछे प्रेत शरीरको त्यागकर विमानमें बैठ विष्णुपदको प्राप्त होगया ।। ७७ ।। मेरे दूत उसे विमानपर बिठाके

वैकुण्ठ ले आये । इस प्रकार मेरे जन्माष्टमीवाले व्रतके प्रभावसे मेरे समीप पहुंच दिव्यभोग भोगने लगा ।। ७८ ।। पुराणोंमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने इस जन्माष्टमीके व्रतका प्रभाव ऐसाही सदा गाया है ।। ७९ ।। अतः जो नर जन्मभर प्रतिवर्ष विधिवत् इस व्रतको करेगा वह सर्वथा पूर्णकाम होगा । जो तुमने जन्माष्टमीके विषयमें प्रश्न किया था, वह सब हमने कहदिया । हे राजन् ! यह सब व्रतोंमें उत्तम व्रत है, इसके अनुष्ठानसे मेरे (विष्णुके) सन्निहित होता है । अब तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है उसे कहिये ।।८०।। यह श्रीभविष्यपुराणकीकही हुई शिष्टपरिग्रहीत जन्माष्टमीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।। उद्यापन-युधिष्ठिर बोले कि, हे सब देवताओंकी दयाके भण्डार ! उद्यापनकी विधि कहिये जिसके कियेसे यह उत्तम व्रत संपूर्णताको प्राप्त होजाय । श्रीकृष्ण बोले कि, वित्त चित्तसे संयुक्त पूर्णासंज्ञक तिथिमें उद्यापन करनेवाला नर पहिले दिन एकबार भोजन करके मुझे हृदयमें स्मरण करता हुआ सोये ।। प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो पुण्य श्लोकोंका स्मरण कर आवश्यक कामोंसे निवृत्त हो ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये ।। धर्मके जाननेवाले वेदवेदान्तोंके ज्ञाता गुरुको आचार्य्य बना, वस्त्र और अलंकारोंसे ऋत्विजोंका भी वरण करना चाहिये ।। हे नृपश्रेष्ठ ! एक पलकी आधेकी अथवा आधेसे भी आधेकी जैसी अपनी शक्ति हो धनका लोभ छोडकर सोनेकी प्रतिमा बनाये । पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय पात्रोंको विधिके साथ इकट्ठा करके पूजाका उपकरण इकट्ठा करे । गोचर्ममात्र भूमि लीपकर बीचमें मण्डल बनाये । ब्रह्मादिक देवताओंको वहां स्थापित करके उनकी पूजा करनी चाहिये । वहां केलाके स्तंभोंसे मण्डित एक मण्डप बनावे, उसमें चार द्वार हों एवं फल और पुष्पोंसे सुशोभित हों । उसमें रङ्ग विरंगे सुन्दर वितान बाँधे । उस मण्डलमें ताँबे या मिट्टीके पवित्र कुंभको स्थापित करे । उसके ऊपर चांदी या बाँसका पात्र रख दे । पीछे उसे कपडेसे ठककर हे कौन्तेय ! योग्य व्रती उसपर मुझे पूजे, सोलहों उपचार तथा उनके मन्त्रोंसे एकाग्रचित्त होकर पूजें ध्यान करे आवाहन करे; आदरपूर्वक स्वागतादिकोंसे अन्य विधि संपन्न करे । पांचरात्रके विधानसे अर्चाका (अर्चावतारका) अमृतीकरण करे इन मन्त्रोंसे ध्यानकरना चाहिये कि, चार भुजावाले. शंख चक्र गदा पद्मके धारण करनेवाले, दो पीतवसनवाले, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित, देदीप्यमान कौस्तुभकी शोभासे सुशोभित सुन्दर नयनोंवाले लक्ष्मीसहित श्रीविष्णुदेवका मैं ध्यान करता हूं । हे देवदेवोंके ईश ! हे संसारके कारण ! हे रमापते ! पधारिये । इस पवित्र बैठनेके स्थलमें विराजिये और कृपा करिये, इससे आवाहन; हे देवदेव ! हे जगके नाथ ! हे गरुडके आसनपर बैठनेवाले ! इस दिव्य आसनको ग्रहण करिये ! हे जगत्के धाता ! तेरे लिये नमस्कार है, इससे आसन, अनेक तीर्थोंसे लाया हुआ निर्मल पानी पुष्प मिलाकर रखा है । हे देवेश ! विश्वरूप ! पाद्य ग्रहणकर तेरे लिये नमस्कार है, इससे पाद्य, गंगादिक सब तीर्थोंसे भक्तिके साथ ठण्ढा पानी लाया हूँ । गन्ध पुष्प और अक्षत इसमें पडे हुए हैं, इस अर्घ्यको ग्रहण करिये, आपके लिये नमस्कार है, इससे अर्घ्य, जिसमें कृष्णा और वेणीका जल मुख्य है कालिन्दीका भी पानी मिला हुआ है, इस आचमनको स्वीकार करिये । हे विराट्पुरुष ! तेरे लिये नमस्कार है, इससे आचमन, हे शौरे ! मेरे स्वादिष्ट मधुपर्कको ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है' देख इसमें शहद और कपिलाके शुद्ध दधि घृत मिले हुए हैं, इससे मधुपर्क, फिर आचमन; क्षीरसमुद्रमें निवास करनेवाले लक्ष्मीकान्त ! आपके लिये नमस्कार है । हे सुरोत्तम ! मैं आपका स्नान पंचामृतसे कराऊँगा, इससे पंचामृत स्थान, मन्दाकिनी, गौतमी, यमुना और सरस्वती इन दिव्य नदियोंसे आपके स्नानके लिये शीतल पानी लाया हूं आप ग्रहण करिये, इससे स्नान, पुराचमन, शुद्ध सोनेकी तरह चमकीले बिजली और भासुरकी तरह चमकने वाले ये दो वस्त्र आपके लिये लाया हूं । आप ग्रहण करिये, इससे दो वस्त्र, " यज्ञोपवीतम् " इससे यज्ञोपवीत, किरीट कुण्डलादिक कांची और दो कडूले तथा कौस्तुभ और वनमाला ये आभूषण आपके लिये लाया हूं । आप ग्रहण करिये, इससे भूषण, " मलयाचल " इससे चन्दन, " अक्षतांश्च सुरश्रेष्ठ " इससे कुंकुम और अक्षत, मालती चंपकादिक, यूथिका, बकुल, इन पुष्पोंको तुलसीपत्रोंके साथ चढाता हूं । हे सुरसत्तम ! ग्रहण करिये, इससे पुष्प समर्पण करे ।। अङ्गपूजा-अघनाशनके लिये नमस्कार पादोंका पूजन करता हूं, वामनके लिये न० गुल्फोंका पू०, शौरिके लिये न० जंघाओंक पू०, वैंकुण्ठवासीके लिये न० ऊरुओंका पु०, पुरुषोत्तमके लिये न० मेढ्रका पू०, वासुदेवके लिए० कटीका पू०, हृषीकेशके लिए न० नाभिका पू०, माधवके

लिए न० हृदयका पू०, मधुसूदनके लिए न० कण्ठका पूजन करता हूं, वाराहके लिए न० बाहुओंका पू०, नृसिंहके लिए न ० हस्तोंका पू०; दैत्योंके मारनेवालेके लिये न० मुखका पू०ः दामोदरके लिये न० नासिकाका पू०, पुण्डरीकाक्षके लिये न० नेत्रोंका पू०; गरुडध्वजके लिये न० श्रोतोंका पू०; गोविन्दके लिये न० ललाटका पू०; अच्युतके लिये न० शिरका पू०; कृष्णके लिये न० सर्वाङ्गका पूजन करता हूं ।। परिवार देवताओंकी पूजा–वसुदेव, रोहिणी, बलदेव, सात्यकि, उद्धव, अक्रूर, उग्रसेनादिक यादव, नंद और उसी समय प्रसवमें हुई श्री यशोदाजी, गोप, गोपिका, कालिन्दी और कालिय इन सबकी नाम मंत्रोंसे पूजा होनी चाहिये ।" वनस्पति रसोद्भूत" इससे धूप; " साज्यं च वर्तिसंयुक्तं " इससे दीप! घी मिले हुए शाल्योदन, खीर और अनेक तरहके पक्वान्न इनके नैवेद्यको ग्रहण करिये. इससे नैवेद्य, उत्तरापोशन; " इदं फलम् " इससे फल; " पूगीफलं " इससे ताम्बूल ; " हिरण्यगर्भ " इससे दक्षिणा समर्पण करे । भक्तिपूर्वक मङ्गलानुशासन करता हुआ नीराजन करे, पीछे जय और मङ्गलके शब्दसे देवदेवका समर्चन करे, इससे नीराजन करना चाहिये, प्रदक्षिणाके साथ पुष्पांजलि देकर परम भक्तिके वेगसे गद्गद् हो वारंवार भूमिमें दण्डकी तरह प्रणाम करे । अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे जगत्पतिकी प्रार्थना करे । " जगत्के नाथ ! तेरे लिये नमस्कार है, देवकीके नन्दन ! हे प्रभो ! हे वसुदेवात्मज ! हे अनन्त ! हे यशोदाके आनन्दके बढ़ानेवाले ! हे गोविन्द ! हे गोकुलके आधार ! हे गोपियोंके प्यारे ! तेरे लिये नमस्कार है, इसके बाद पवित्रताके साथ चन्द्रमाके उदय होनेपर अर्घ्य देना चाहिये । देवकी सहित कृष्णके लिये पहिले अर्घ दे । बुद्धिमानको चाहिये कि शुद्ध नारियलके साथ अर्घ्य दे । पीछे परम भक्तिके साथ भगवान् कृष्णजीको शंखमें करके अर्घ्य दे कि कंसके मारने भूमिके भारको उतारने, कौरवोंका विनाश कराने और दैत्योंको मारने पाण्डवोंका कल्याण करने और धर्मकी स्थापना करनेके लिये आप प्रकट हुए थे । हे हरे ! आप देवकीजी समेत मेरे अर्घ्यको ग्रहण करिये, यह भगवान् कृष्णको अर्घ्य देनेका है । इसके पीछे पुष्प, फल और चन्दनके साथ शंखमें पानीभर. जानुटेक चन्द्रमाके लिये अर्घ्य दे कि हे क्षीर समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले ! हे अत्रिके नेत्र जात ! हे प्रभो ! रोहिणीके साथ मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करिये, हे चाँदनी रातके मालिक ! तेरे लिये नमस्कार है, हे नक्षत्रोंके स्वामि ! तेरे नलिये नमस्कार है । हे रोहिणीके कान्त ! तेरे लिये नमस्कार है, मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण कर : । ये चन्द्रमाके अर्घ्यके मन्त्र हैं । इस प्रकार देवेशकी पूजा करके रातको जागरण करना चाहिये, उसमें गीत बाजे और नाच तथा पुराणोंके श्रवणादिक होनें चाहिये, प्रातःकाल निर्मल पानीमें स्नान करके जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजीका पूजन करके तिल घी मिलीहुई खीरसे मूल मंत्रसे भक्तिपूर्वक १०८ आहुतियाँ देनी चाहिये, पीछे पुरुषसूक्तसे और " इदं विष्णु " इस मंत्रसे घृतकी आहुतियाँ देनी चाहिये । पूर्णाहुतिके साथ ही शेष पूरा करके भूषण और वस्त्रोंसे आचार्यका पूजन करना चाहिये । व्रतकी पूर्तिके लिये रस्सी सहित एक दूध देनेवाली सुशीला बछडेवाली कपिला गाय देनी चाहिये । सोनेकी सींग चाँदीके खुर काँसेकी दोहनी रत्नोंकी पूंछ ताँमेकी पीठ और सोनेका घण्टा देना चाहिये । देती वार वस्त्र उढाना चाहिये । साथमें दक्षिणा देनी चाहिये, जिससे कि व्रत पूरा हो जाय । यदि कपिला न हो तो दूसरी गायही दे देनी चाहिये इसके बाद दूसरे ऋत्विजोंको विधिपूर्वक दक्षिणा देनी चाहियें व्रतकी संपूर्तिके लिये उपस्कर सहित शय्याका दान करना चाहिये, आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा देणी चाहिये। एकाग्रचित्त हो अन्नके भरेहुए कलशोंका दान करे । दीन और कृपण जो जिस योग्य हो उसका उसी तरह सन्मान करे, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर बन्धुओंके साथ भोजन करे । हे महाराज ! इस प्रकार व्रतका उद्यापन पूरा करके उसी समय निष्पाप होकर देवताओंके समान हो जाता है । उसे यथेष्ठ पुत्र पौत्र धन धान्य मिल जाते हैं । यहांके उत्तम भोगोंको चिरकाल तक भोगकर अन्तमें मेरे पुरको चला जाता है । यह श्री भविष्यपुराणके श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरके संवादका जन्माष्टमीके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ ज्येष्ठाव्रतम्

भाद्रशुक्लाष्टम्यां ज्येष्ठर्क्षे ज्येष्ठाव्रतमुक्तं कालादर्शे—भाद्रे शुक्लाष्टमी ज्येष्ठानक्षत्रेण समन्विता ।। महती कीर्तिता तस्यां ज्येष्ठादेवीं प्रपूजयेत् ।। उपहारैर्बहुविधैरलक्ष्मीविनिवृत्तये ।। लिङ्गपुराणेपि—कन्यास्थार्काष्टमी शुक्ला ज्येष्ठां तत्र प्रपूजयेत् ।। इति ।। अत्र कन्यास्थार्कोक्तिः प्राशस्त्यार्था ।। इदं च ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वविद्धायां परविद्धायां वा कार्यम् ।। मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते ।। यस्मिन्कस्मिन्दिने वापि ज्येष्ठादेवीं प्रपूजयेदिति माधवीये स्कान्दोक्तेः ।। दिनद्वये नक्षत्रयोगे तु परदिने मध्याह्नदूर्ध्वं नक्षत्रसत्त्वे परा ग्राह्या ।। अन्यथा रात्रावपि नक्षत्रयोगे पूर्वैव ।। यस्मिन्दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नदूर्ध्वमप्यणुः ।। तस्मिन्नर्चादिव्यं पूजा च न्यूना चेत्पूर्ववासरे ।। नवमीसहिता कार्या अष्टमी नात्र संशयः ।। मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ।। रात्रिर्यस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनमिति स्कान्दात् ।। दिनद्वये ज्येष्ठायोगाभावे त्वष्टम्यामेवेदं कार्यं न तु तद्युक्ततिथ्यन्तरेऽपि ।। प्रत्याब्दिकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतं व्रतम् ।। प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि ।। तिथावेवाचरदाद्यं द्वितीयं केवलर्क्षतः ।। इति मत्स्यवचनात् ।। मदनरत्ने भविष्ये तु नक्षत्रमात्रे उक्तम्—मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत् ।। रात्रौ जागरणं कुर्यादेभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत् ।। इति ।। दक्षिणात्यास्त्वेवं एव कुर्वन्ति ।। एवं निर्णीतपूजादिनात्पूर्वदिनेऽनुराधायामावाहनमुत्तरदिने पूजनं मूले विसर्जनं कार्यम् ।। तथा च स्कान्दे—मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत् ।। मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम् ।। अथपूजा ।। तिथ्यादि संकीर्त्य मम मृतवन्ध्यात्वादिदोषपरिहारार्थं पुत्रप्रपौत्रादिवृद्धये दरिद्रनाशार्थं च यथामिलितोपचारैर्ज्येष्ठापूजनमहं करिष्ये ।। त्रिलोचनां शुक्लदन्तीं बिभ्रतीं काञ्चनीं तनुम् ।। विरक्तां रक्तनयनां ज्येष्ठां ध्यायामि सुन्दरीम् ।। ध्यानम् ।। एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ।। ज्येष्ठा त्वं सर्वदेवानां मत्समीपं गता भव ।। आवाह० ।। श्वेतसिंहासनस्था तु श्वेतवस्त्रैरलंकृता ।। वरदं पुस्तकं पाशं बिभ्रत्यै ते नमोनमः ।। आसनम् ।। ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपो निष्ठे धर्मिष्ठे सत्यवादिनि ।। समुद्रमथनोत्पन्ने पाद्यं गृहण नमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। श्रीखण्डकर्पूरयुतं तोयं पुष्पेण संयुतम् ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं ज्येष्ठादेवि नमोऽस्तु ते ।। अर्घ्यम् ।। ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमोनमः ।। ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि ।। आचम० ।। पयो दधि घृतं चैव क्षौद्रं शर्करयान्वितम् ।। पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं देवि गृह्यताम् ।। पंचामृ० ।। मन्दाकिन्याः समानीतं हेमाम्भो-

---

१ इदमर्घं सामान्यम्

रुहवासितम् ।। स्नानार्थं ते मयादत्तं तोयं स्नाहि जगन्मये ।। स्नानम् ।। सूक्ष्मतन्तुभवे श्वेते धौते निर्मलवारिणा ।। वारणे लोकलज्जाया वाससी प्रतिगृहृताम् ।। आचम० ।। हरिद्राकुंकुमं चैव कण्ठसूत्रं च ताडकम् ।। सिन्दूरं कज्जलं देवि षट्सौभाग्यानि गृह्ण भोः ।। सौभाग्यद्रव्याणि ।। श्रीखण्डं चन्दनम् ।। अक्षताश्च सुर० ।। अक्षतान् ।। नुपूरौ मेखला काञ्ची कंकणानि सुशोभने ।। नासिकायां मया दत्तमुक्तकाञ्चनसंयुता ।। अलंकारान् ।। माल्यादीनि सुगन्धीनि० ।। पुष्पाणि ।। वनस्पतिरसो० धूपम् ।। साज्यं चेति दीपम् ।। गोधूमपिष्टशाल्यादितण्डुलानां च कारिताः ।। स्वाद्यः प्रसृतिमात्रास्तु पूरिका घृत पाचिताः ।। शाल्योदनं सूपयुक्तं दधि दुग्धं घृतं तथा । नानाव्यञ्जनसंयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। उत्तरापो० । करोद्वर्तनम् ।। फलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजनम् ।। प्रदक्षिणाम् ।। नमस्कारान् ।। शार्ङ्गबाणाब्जखड्गारिप्रासतोमरमुद्गरैः ।। अन्यैरप्यायुधैर्युक्तां ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहम् ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। त्वं लक्ष्मीस्त्वं महादेवी त्वं ज्येष्ठे सर्वदामरैः ।। पूजतासि मया देवि वरदा भव मे सदा ।। प्रार्थनाम् ।। इति पूजाविधिः ।। अथ भविष्योक्तव्रतविधिः ।। युधिष्ठिरउवाच ।। मृतवन्ध्या तु या नारी काकवन्ध्या तथापरा ।। गर्भस्त्रवा तृतीया च नानादोषैस्तु दूषिता ।। निर्धनाश्च नरा ये वै दारिद्रेण हताश्च ये ।। कर्मणा केन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि जनार्दन ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठा यदा भवेत् ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।। एवं विधविधानेन एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत् ।। एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ।। ज्येष्ठा त्वं सर्वदेवानां मत्समीपं गता भव ।। श्वेतसिंहासनस्था तु श्वेतवस्त्रैरलंकृता ।। वरदं पुस्तकं पाशं बिभ्रत्यै ते नमोनमः ।। ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे धर्मिष्ठे सत्यवादिनि ।। समुद्रमथनोत्पन्ने ज्येष्ठायै ते नमोनमः ।। शार्ङ्गबाणाब्जखड्गारिप्रासातोमरमुद्गरैः ।। अन्यैरप्यायुधैर्युक्तां ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहम् ।। सुरासुरनरैर्वन्द्या यज्ञक्षकिन्नरपूजिता ।। पूजितासि मया देवि ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहम्।। विप्रप्रिये महामाये सुरासुरसुपूजिते ।। स्थूलसूक्ष्ममये देवि ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहम् ।। त्वं लक्ष्मीस्त्वमुमा देवी त्वं ज्येष्ठे सर्वदामरैः।।पूजितासि मया देवि वरदा भव मे सदा ।। पुत्रदारविवृद्धचर्थं लक्ष्म्यश्चैव विवृद्धये ।।अलक्ष्म्याश्च विनाशाय सर्वकालं भजेत ताम् ।। गुरुं संपूजयेद्भक्त्या वस्त्रैरापरणादिभिः ।। ततो द्वादशवर्षाणि पूजनीया प्रयत्नतः ।। यावज्जन्माथवा पूर्वविधिनानेन मानवैः ।। ददाति वित्तं पुत्राश्च अर्चनीया सदा स्त्रिया ।। अनेन विधिना युक्तो यो हि पूजयते नरः ।। नारी वा पूजयेज्ज्येष्ठां तस्या लक्ष्मीवि-

१ तण्डुलशब्देन तत्पिष्टम् २ अभयस्याप्युपलक्षणम्

वर्द्धते ।। वन्ध्या तु लभते पुत्रान्दुर्भगा सुभगा भवेत् ।। एवंविधिविधानेन ज्येष्ठा-देवीं समर्चयेत् ।। विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति यथाप्सु लवणं तथा ।। तथा ग्राह्यं कुरु-श्रेष्ठ ज्येष्ठायाः शोभनं व्रतम् ।। नीराजने कृते चैव दीपो ग्राह्यः सुभक्तितः ।। नैवेद्यं सुहितं प्राश्य व्रतिनाग्रे युधिष्ठिर ।। गुरुहस्तात् सदा ग्राह्यो दीपः प्रज्वलितो महान् ।। व्रतस्थे भक्तियुक्तश्च शुचिः प्रयतमानसः ।। अनेन विधिना चैव व्रतं कुर्याद्युधिष्ठिर ।। ज्येष्ठा नाम परा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।। यस्तां पूजयते राजंस्तस्मै सर्वं प्रयच्छति ।। इति भविष्ये ज्येष्ठाव्रतकथा ।। स्कन्दपुराणेऽपि—मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते ।। यस्मिन्कस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ।। तत्राष्टम्यां यदा वारो भानोर्ज्येष्ठर्क्षमेव च ।। नीलज्येष्ठेति सा प्रोक्ता दुर्लभा बहुकालिकी ।। कृतस्नानो नरः कुर्यात्तस्यामन्यत्र वा दिने ।। भक्ति-युक्तः शुचिः कुर्याज्ज्येष्ठादेव्यास्तु पूजनम् ।। जलाशयात्तु पूर्वेद्युरानयेत्पञ्च-शर्कराः ।। देवीरूपं च तत्रैव कृत्वा वा स्थापयेत्ततः ।। गोमयेनोपलिप्ते च हैमीं वा स्थापयेद्बुधः ।। स्थापयेद्राजतीं ताम्रीं लेख्यां वा पटकुडयोः ।। आवाहयेत्ततो देवीमथवा पुस्तकेऽपि वा ।। त्रिलोचनां शुक्लदन्तीं बिभ्रतीं राजतीं तनुम् ।। विरक्तां रक्तनयनां ज्येष्ठामावाहयाम्यहम् ।। इति मन्त्रेण तां देवीमावाह्य सुकृती व्रती ।। स्नानं दद्यात्तथा पाद्यं पादयोरुभयोर्द्विज ।। श्रीखण्डकर्पूरयुतं दद्यादर्घ्यं च भक्तितः ।। पञ्चामृतं तथा स्नानं निर्मलेन जलेन च ।। वस्त्रं गन्धं तथा पुष्पं धूपदीपादिकं च यत् ।। पूजयित्वा च सौभाग्यैर्द्रव्यैर्नानाविधैः शुभैः ।। गोधूमय-वशाल्यादिनानाद्रव्यैश्च निर्मितम् ।। कृत्वा प्रसृतिमात्रास्तु पूरिका घृतपाचिताः ।। निवेदनीया यत्किंचिद्दद्याद्देव्यै प्रयत्नतः ।। भक्त्या मया सुरेशानि यदत्रं दीयते तव ।। तद्गृहाण वै महादेवि ज्येष्ठे श्रेष्ठे नमोऽस्तु ते ।। ततः स्तुत्वा महादेवीं सर्वकाम फलप्रदाम् ।। ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमोनमः ।। ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे धर्मिष्ठे सत्यवादिनि ।। ततः क्षमाप्य तां देवीं स्तुवीत स्तवनोत्तमैः ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्सुवासिन्यस्तथा बहु ।। दास्यो दासाश्च संभोज्या दीनान्ध-कृपणास्तथा ।। देवीं विप्रमनुज्ञाप्य स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। भक्षयित्वा तथाचम्य देवीं नत्वा पुनः पुनः ।। शयीत ब्रह्मचर्येण कुर्यात्प्रातर्विसर्जनम् ।। एवमेव प्रकुर्याद्वै व्रतं तु परिवस्तरम् ।। ज्येष्ठाविसर्जनान्ते तु शर्करां वारिणि क्षिपेत् ।। दध्योदनं तथा शाकं देयं स्वस्य शुभाप्तये ।। ज्येष्ठे देवि नमस्तुभ्यमलक्ष्मीनाशहेतवे ।। पुनरेहि वत्सरान्ते मम गेहे शुभप्रदे ।। एवं संप्रार्थ्य तां देवीं गीतवाद्यपुरःसरम् ।। अपूपवटकान्दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्ततो द्विज ।। कुर्यादेवं प्रयत्ननेन सायं चाथ विसर्ज-येत् ।। विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां स्त्रीकामः स्त्रियमेव च ।। लक्ष्मीवाञ्जायते मर्त्यः

स्त्री तु मोदेत भर्तरि।। विनायकेन सहितं देव्याः कुर्याद्विसर्जनम् ।।((सौवर्णी राजतीं ताम्रीं मृन्मयीं वापि शक्तितः ।। व्रतं स्वयं च कृतवान् सिद्धं चाप्यकृतार्हणः।। देव्या महत्त्वं कथितं तवेदं विधिश्च मंत्रार्चनसंयुतस्तथा ।। मंत्रोऽपि सायुज्यकरो व्रतस्य तथा मया ते कथितं सदैव ।। इति स्कान्दोक्तो व्रतविधिः—अथाद्यापनम्—उद्यापने तु प्रतिमां सुवर्णपलसंमिताम् ।। कृत्वा चाष्टदले पद्मे स्थापयेत्कलशोपरि ।। तामग्निवर्णामिति च मंत्रेण कुर्वीतात्रणावाहवेद्व्रती ।। नाममन्त्रेण कुर्वीतासनं पाद्यमथोर्घ्यकम् ।। आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाश्चतसृभिः ।। अभिषेकं चाचमनं मधुपर्कं च कञ्चुकीम् ।। वस्त्रं गन्धाक्षतान्पुष्पधूपदीपान् प्रयत्नतः ।। नैवेद्याचमनीये च करोद्वर्तनकं शुभम् ।। ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा ततो नीराजयेच्च ताम् ।। यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रश्चापि महाबलः ।। ज्येष्ठामहमिमां देवीं प्रपद्ये शरणं शुभाम् ।। इति प्रार्थयेत् ।। स्थापितेऽग्नौ ततः पश्चाद्धोममष्टोत्तरं शतम् । द्रव्यैर्दधिमधुक्षीरघृतैः कुर्यात्प्रयत्नतः ।। तर्पणं च ततः कुर्यादेभिर्मंत्रैर्विचक्षणः ।। ज्येष्ठायै नमः ज्येष्ठां तर्पयामि ।। एवं सर्वत्र ।। श्रेष्ठायै० सत्यायै० कलिनाशिन्यै० विद्यायै० वैनायक्यै० तपोनिष्ठायै० श्रियै० कृष्णायै० ब्रह्मिष्ठायै नमः ज्येष्ठां तर्पयामि । विसृज्य च ततो देवीं ज्येष्ठायाः प्रतिमां शुभाम् ।। कृष्णवस्त्रेण संयुक्तामाचार्याय निवद्येत् ।। वस्त्राभरणमाल्यादिलेपनैः पूजितं द्विजम् ।। प्रणिपत्य ततः पश्चात्तस्मै सर्वं निवेदयेत् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। ब्राह्मणांश्च ततो नत्वा याचयेत्सर्वमङ्गलम् ।। एवं सुवासिन्यो भोज्याः पूज्याः सर्वसमृद्धये ।। एवं कृते व्रते सम्यक् सर्वशान्तिः प्रजायते ।। धनधान्यसमृद्धिश्च आरोग्यं भवति ध्रुवम् ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे ज्येष्ठादेवीव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

ज्येष्ठाव्रत—भाद्रपद शुक्ला अष्टमीमें ज्येष्ठा नक्षत्रके होनेपर ज्येष्ठाव्रत होता है । यह कालादर्शमें लिखा हुआ है कि, भाद्रपद शुक्लाअष्टमी ज्येष्ठानक्षत्रके साथ हो तो उसे बड़ी कहा है । उसमें ज्येष्ठा देवीका अनेकों उपचारोंसे पूजन करना चाहिये, जिससे कि दरिद्रका नाश हो । लिङ्गपुराणमें भी लिखा हुआ है कि कन्याके सूर्यमें भाद्रपद शुक्लाअष्टमी हो तो उसमें ज्येष्ठा देवीका पूजन करना चाहिये, इस वचनमें कन्याके सूर्यका कहना प्रशंसाके लिये है । यह व्रत ज्येष्ठाके योगसे पूर्वविद्धा और पर विद्धा दोनोंमें होता है । ऐसा ही माधवीय ग्रन्थमें स्कन्ध पुराणका प्रमाण रखा है कि भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त हो चाहे पहिले दिन हो चाहे दूसरे दिन हो जिस किसी भी दिन हो उसमें ज्येष्ठा देवीका पूजन करे । यदि दो दिन नक्षत्रका योग हो तो पर दिनमें मध्याह्नसे ऊपर ज्येष्ठा नक्षत्रका योग रहे तब दूसरे दिनही ज्येष्ठाका व्रत करना चाहिये । यदि ऐसा न हो यानी मध्याह्नसे ऊपर दूसरे दिन ज्येष्ठाका योग न हो तो, पूर्वामें रातकोभी यदि ज्येष्ठाका योग मिल जाय तो उसीमें ही व्रत करना चाहिये । जिस दिन ज्येष्ठा नक्षत्र मध्याह्नसे ऊपर अणु मात्र भी हो उसी दिन हविष्य और ज्येष्ठा देवीकी पूजा करे । यदि ऐसा न हो तो पहिले दिन ही

१ अयं श्लोकोऽत्रसंगत इवं भाति

व्रत और पूजा करनी चाहिये ।। ' नवमी सहिता कार्या अष्टमी नात्र संशयः नवमी, सहिता अष्टमीको करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है । ऐसाही वाक्य निर्णयसिन्धुमें रखा है कि नवम्या सह कार्य्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ' नवमीसहिता अष्टमीको करे इसमें सन्देह नहीं है इन दोनों का अर्थ भी एकसा है । इसे परके ग्रहणमें दिया है । तात्पर्य वही है जो लिख चके हैं । भाद्रपद शुक्लाअष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त रीतिमें हो तो उस दिन ज्येष्ठा देवीका पूजन करना चाहिये । यह स्कन्द पुराणमें लिखा हुआ है । यदि दोनों ही दिन ज्येष्ठाका योग न मिले तो, ज्येष्ठाका पूजन अष्टमीमेंही करना चाहिये । ज्येष्ठायुक्त दूसरी किसी तिथिमें ज्येष्ठाका पूजन न करना चाहिये; क्योंकि मात्स्यमें लिखा हुआ है कि, प्रतिवर्ष तिथिमें ज्येष्ठा देवताका व्रत कहा है तथा प्रतिवर्ष नक्षत्रमें ज्येष्ठाका व्रत कहा है । इनमें पहिले व्रतको तिथिमें तथा नक्षत्रके व्रतको केवल नक्षत्रमें करना चाहिये । मदनरत्नग्रन्थमें तो भविष्यके प्रमाणसे नक्षत्रामात्रमें यह व्रत कहा है कि भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें जब ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो रातमें जागरण और इन मंत्रोंसे पूजन करे । दाक्षिणात्य तो नक्षत्रमेंही पूजन करते हैं इस प्रकार निर्णय किये हुए दिनसे पहिले दिन अनुराधामें आवाहन ज्येष्ठामें दूसरे दिन पूजन और मूलमें विसर्जन करना चाहिये । यही स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है कि, अनुराधामें देवीका आवाहन ज्येष्ठामें पूजन और मूलमें विसर्जन करना चाहिये । इस प्रकार यह तीन दिनतक उत्तम व्रत होता है । पूजा--तिथि आदिको कहकर मेरे मृतवन्ध्यापन आदि दोषोंकी निवृत्तिके लिये एवम् पुत्र प्रपौत्र आदिकों की वृद्धिके लिये तथा दरिद्रके नाश करनेके लिये जो उपचार मिल रहे हैं उनसे ज्येष्ठाका पूजन मैं करूँगा । शुक्लदांतों और लाल तीन नेत्रों तथा सोनेके शरीरवाली विरक्ता सुन्दरी ज्येष्ठाका ध्यान करता हूं, इससे ध्यान; हे सुर और असुर दोनोंसे नमस्कृत हुई महाभागे ! आप आयें ! आप सब देवताओंमें ज्येष्ठा हैं । मेरे समीप आजायँ, उससे आवाहन; श्वेतसिंहासनपर बैठीहुई श्वेतवस्त्रोंको ही धारण किये हुए हैं, ऐसी वरद मुद्रा पुस्तक और नाशको धारण करनेवाली आपके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे आसन, हे समुद्रके मथनसे उत्पन्न होनेवाली सत्यवादिनी धर्मनिष्ठे ! श्रेष्ठ ज्येष्ठे ! पाद्य ग्रहणकर । तेरे लिये नमस्कार है, इससे पाद्य; श्रीखण्ड, और कपूर युत पुष्प पडा हुआ पानी उपस्थित है । हे ज्येष्ठा देवि ! इसका मैं अर्घ्य देता हूं । आप ग्रहण करें आपके लिये नमस्कार है इससे अर्घ्य; तुझ ज्येष्ठा के लिये नमस्कार तथा तुझ श्रेष्ठाके लिये वारंवार नमस्कार है । हे ज्येष्ठे ! हे श्रेष्ठे ! हे तपमें निष्ठा रखनेवाली । हे ब्रह्मिष्ठे हे सत्यवादिनि ! आचमनीय ग्रहण कर, इससे आचमनीय " पयोदधिघृतम् " इससे पंचामत स्नान; हे जगन्मये ! मन्दा किसीने लाया हूं इसमें सुवर्णके कमलकी सुगन्धि आ रही है ! यह पानी मैं आपके स्नानके लिये लाया हूं । आप इससे स्नानकरिये, इससे स्नान; ये दो पतले सफेद वस्त्र निर्मल पानीसे धोये हुए हैं लोक लज्जाके निवारक हैं । इन्हें आप ग्रहण करे, इससे दो वस्त्र, ' हरिद्रा कुकुंमम् ' इससे सौभाग्य द्रव्य, ' श्रीखण्डं चन्दनम् ' इससे चन्दन, अक्षताश्च इससे अक्षत, नूपुर मेखला कांची और कंकण एवम् नासिकाका मुक्ता जडा सेंठा आपके लिये लाया हूं आप ग्रहण करिये, इससे अलंकार, ' माल्यादीनि सुगन्धीनि ' इससे पुष्प, ' वनस्पति रसोद्भूत ' इससे धूप, ' साज्यं च वर्ति ' इससे दीप, गेहूँ शाली और तण्डुलोंके पिष्टसे बनाई हुई स्वादिष्ट प्रसृति भर घीकी पूरी शालीका भात दधि दुग्ध घृत और सूप और अनेक तरहके व्यंजन इनके नैवेद्य को ग्रहण करिये, इससे नैवेद्य उत्तरापोशन, करोद्वर्तन, फल, हिरण्यगर्भ ' इससे दक्षिणा, नमस्कार, शार्ङ्ग, वाण, अब्ज, खड्ग, भाला, तोमर और सुन्दर तथा और भी दूसरे २ आयुधोंको धारण करनेवाली जो आप ज्येष्ठा हैं आपका पूजन करता हूं, इससे पुष्पांज्जलि, आप लक्ष्मी हैं आप महादेवी हैं, आप ज्येष्ठा हैं, आप सदा अमरोंसे पूजित होती हैं मैंने भी आपका पूजन किया है आप सदा मुझे वर दें, इससे प्रार्थना समर्पण करनी चाहिये । यह पूजाकी विधि पूरी हुई ।। भविष्यपुराणकी कही हुई व्रतकी विधि कहते हैं-- युधिष्ठिर बोले कि, जिस स्त्रीके बालक मर जायँ तथा जिसके एक ही होकर रह जाय या जिसका गर्भ गिर जाय अथवा और भी अनेकों दोषोंसे दूषित हो वे मनुष्य निर्धन हो अथवा दारिद्रने जिससे दबालिया हो वे किस कर्मके करनेसे उस पापसे छुटे, हे जनार्दन ! यह मुझे सुना इये । श्रीकृष्णजी बोले कि भाद्रपद शुक्लपक्षमें जब ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो उस दिन रातको गाने बजानेके साथ जागरण करना चाहिये । इस विधानके साथ इन्हीं मंत्रोंसे ज्येष्ठाका पूजन करना चाहिये । पूजनके मंत्र " एहि एहि " यहांसे लेकर " भजेत ताम् ".

तक हैं। इनमें जिन मंत्रोंका पूजनके प्रकरण में अर्थ कर चुके हैं उनका अर्थ न करके जिनका अर्थ नहीं किया है उनका ही अर्थ करेंगे। हे ज्येष्ठ देवि ! सुर असुर और मनुष्य तेरी बन्दना करते हैं यक्ष और किन्नर पूजा करते रहते हैं मैंने आपका पहिले पूजन किया है अब भी पूजन करता हूं। हे ब्राह्मणोंकी प्यारी ! हे महामाये ! हे और असुरोंसे भली भांति पूजित हुई ! हे स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्वरूपोंवाली ज्येष्ठे देवि ! मैं तेरी अर्चा करता हूं। पुत्र दार और लक्ष्मीकी वृद्धिके लिये तथा अलक्ष्मीके नाश करनेके लिये उसे भजना चाहिये। वस्त्र और आभरणोंसे भक्तिपूर्वक गुरुको पूजे, इसके बाद बारह वर्षतक प्रयत्नसे पूजना चाहिये, या जबतक जीवित रहे पहिले कही हुई विधिसे मनुष्योंको पूजन करना चाहिये। यह वित्त और पुत्रोंको देती है इस कारण स्त्रियोंको सदा पूजना चाहिये। जो मनुष्य वा नारी इस विधिसे ज्येष्ठाका पूजन करते हैं उनकी लक्ष्मी खूब बढ़ती है वन्ध्याको पुत्र मिलजाते हैं दुर्भगा सुभगा हो जाती हैं। इस प्रकार विधिविधानसे ज्येष्ठा देवीकी पूजाकरेतो उसके विघ्न इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे पानीमें नमक विला जाता है। हे कुरुश्रेष्ठ ! जेष्ठाके इस सुन्दर व्रतको तैसेही ग्रहण करना चाहिये। नीराजन करके भक्तिपूर्वक दीपक करना चाहिये, हे युधिष्ठिर ! फायदा पहुँचानेवाले नैवेद्यका प्राशनकरके व्रतीको चाहिये कि, अगाडी गुरुके हाथसे ही जरते हुए बड़े दीपकको ग्रहण करे ! व्रतकारमें भक्तिपूर्वक संयमके साथ पवित्र रहे, हे युधिष्ठिर ! इसी विधिसे व्रत करे। हे राजन् ! ज्येष्ठा-नामकी देवी सबसे बड़ी है भुक्ति और मुक्तिकी देनेवाली है, जो उसकी पूजा करता है उसे वो सबकुछ देती है यह भविष्यपुराणकी कही हुई ज्येष्ठाके व्रतकी कथा पूरी हुई ॥ स्कन्दपुराणमें भी -- लिखा हुआ है कि भाद्र-पदके शुक्लपक्षमें जिस किसी दिन ज्येष्ठानक्षत्र हो उसी दिन ज्येष्ठाका पूजन करना चाहिये, इसमें अष्टमीको रविवार और ज्येष्ठानक्षत्र होतो इसे नीली ज्येष्ठा कहते हैं यह दुर्लभ है बहुत दिनबाद आती है। इसमें मनुष्य स्नानकर पवित्र होकर भक्तिभावसे ज्येष्ठादेवीका पूजनकरे अथवा दूसरे दिन करे। पहिले दिन तालावसे पांच शर्करा लाके वहांही उसकी देवी बनाकर पीछे स्थापित करे। इसकी जगह कहीं ऐसा पाठ है कि, पहिले दिन नदीकी शुद्धस्थलकी रेतीलाकर उसकी देवी बनावे। पहिले दिन नदीसे पांच शर्करालाके वहां देवीका पूजन करते हैं आचार देखा जाता है। अथवा शक्ति हो तो गोबरसे लीपकर सोनेकी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। अथवा ताँबेकी या चाँदीकीही बनाले अथवा चित्रपट या भीतपर काढले, अथवा पुस्तक मेंही देवीका आवाहन करे कि, देवीके तीन नेत्र हैं सफेद दांत हैं, चाँदीकेसे शरीरको धारण किये हुए हैं। लालनेत्रोंवाली विरक्ता है, ऐसी ज्येष्ठादेवीका में आवाहन करता हूं, इस मन्त्रसे सुकृतीव्रती आवाहन करके दोनों चरणोंको पाद्य दे, श्रीखण्ड और कर्पूरके साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य दे, पंचामृतसे स्नान तथा निर्मलजलसे स्नान करावे, वस्त्र, गन्ध, पुष्प और धूप दीपादिकका उपचार करे, अनेक तरहके शुभ सौभाग्यद्रव्योंसे पूजे पीछे गेहूं, जौ, शाली आदि अनेक द्रव्योंसे तयार किया हुआ नैवेद्य तथा गेहूं की एक प्रसृति भरकी घीकी पूली निवेदन करदे जो भी कुछ ही प्रयत्नके साथ देवीको निवेदन कर दे कि हे सुरेशानि ! मैंने भक्तिके साथ जो अर्घ्य तुझे दिया है उसे ग्रहण कर। हे महादेवि ! हे श्रेष्ठे ! हे ज्येष्ठे ! तेरे लिये नमस्कार हैइसके बाद सबकामोंके फलोंको देनेवाली महादेवी जेष्ठाकी प्रार्थना करे, कि तुझे ज्येष्ठाके लिये नमस्कार है तुझे श्रेष्ठाके लिये बारबार नमस्कार है हे ज्येष्ठे ! हे श्रेष्ठे ! हे तपमें निष्ठा रखनेवाली ! हे धर्ममें निष्ठा रखनेवाली ! हे सत्य बोलनेवाली ! तेरे लिये नमस्कार है। पीछे क्षमापन करके उत्तम स्तोत्रोंसे स्तवन करे पीछे ब्राह्मण भोजन तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन करावे दासी, दास, दीन, अन्ध और कृपणोंको भोजन करावे ! देवीको ब्राह्मणके लिये कहकर मौन हो भोजन करे, पीछे आचमन करके देवीको वारंवार नमस्कार करके ब्रह्मचर्य पूर्वक नींद ले, प्रातःकाल विसर्जन करे, इसप्रकार प्रतिवर्ष देवीका व्रत करे, ज्येष्ठाके विसर्जनके अन्तमें रेतीको पानीमें फेंक दे अपने शुभकी प्राप्तिके लिये उसके साथ दध्योदन भी दे, हे ज्येष्ठादेवि ! तेरे लिये नमस्कार है। हे शुभके देनेवाली ! मेरी अलक्ष्मीको नष्ट करनेके लिये एकवर्षके पीछे फिर मेरे घर चली आना। इस प्रकार गाने बजानेके साथ देवीकी प्रार्थना करके पूआ और वड़ोंको ब्राह्मणोंको दे। इसके पीछे हे द्विज ! इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक करके सायंकाल विसर्जन करदे, विद्या चाहनेवालेको विद्या, स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिल जाती है, मनुष्य लक्ष्मीवान् हो जाता

है, पतिमें स्त्री मुदित होती है, विनायकके साथ देवोंकी विसर्जन करे, (सोने चाँनी ताँबा और मिट्टीकी शक्तिके अनुसार होनी चाहिये)। कृतार्हणने इस सिद्ध व्रतको स्वयंही किया था। यह श्लोक असगतसा दीखता है। यह मैंने आपको ज्येष्ठा देवीका महत्त्व कह दिया मन्त्रोंसे पूजाके साथ विधि भी कह दी व्रतका मन्त्र भी सायुज्य करनेवाला है। यह मैंने आपके लिये कह दिया है। यह स्कन्द पुराणकी कही हुई पूजाकी विधि पूरी हुई ॥ उद्यापन–इसमें तो सो की एकपलकी प्रतिमा बनाकर अष्टदल कमलपर कलशके ऊपर स्थापित करे, " ताम-ग्निवर्णाम् " इससे आवाहन करे। नाम मन्त्रसे आसन पाद्य और अर्घ्यादिक निवेदन करे।" ओम् आपो हिष्ठा " इन तीनों ऋचाओंसे तथा " हिरण्यवर्णा " इत्यादि चार ऋचाओंसे अभिषेक आचमन, मधुपर्क और कंचुकी दे। वस्त्र, गंध, अक्षत, धूप और दीपोंको प्रयत्नके साथ दे, शुभ नैवेद्य, आचमननीय, करोद्वर्तन, ताम्बूल और दक्षिणा देकर पीछे नीराजन करे, जिसके रथमें महाबलशाली सिंह और व्याघ्र जुतते हैं ऐसी परमशुभ ज्येष्ठा देवीकी मैं शरण हूं इस प्रकार प्रार्थना करे। अग्निकी स्थापना करके दधि मधुक्षीर और घृत इन द्रव्योंकी सावधानी के साथ १०८ आहुति दे। पीछे बुद्धिमान को इन मंत्रोंसे तर्पण करना चाहिये, ज्येष्ठायै नमः– ज्येष्ठाके लिये नमस्कार है, ज्येष्ठां तर्पयामि – ज्येष्ठाको तृप्त करता हूं, यह पद हर एकके साथ लगाना चाहिये कि, अमुकीको नमस्कार ज्येष्ठाको तृप्त करता हूं, श्रेष्ठाके लिये०; सत्याके लिये नमस्कार०; कलिके नाश करनेवालीके लिये न०; विद्याके लिये न०; वैनायकीके लिये; तपमें निष्ठा रखनेवालीके लिये न० श्रीके लिये न०; कृष्णाके लिये न०; ब्रह्मिष्ठाके लिये नमस्कार ज्येष्ठाको तृप्त करता हूं, इसके बाद ज्येष्ठाका विसर्जन करके शुभ प्रतिमाको काले वस्त्रके साथ आचार्यके लिये देदे, वस्त्र आभरण एवम् माला आदि तथा लेपन आदि कोंसे पूजे हुए द्विज आचार्यके लिये प्रणाम करकं सब निवेदन करदेना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराके पीछे स्वयं भी मौनी हो भोजन करे। ब्राह्मणोंको दण्डवत् कराके सबके मङ्गलकी याचना करे। इसी प्रकार सभी समृद्धियोंके लिये सुवासिनी स्त्रियोंकी पूजा करनी चाहिये, भोजन करना चाहिये, इस व्रतको भली भाँति करलेनेसे सबकी शान्ति हो जाती है। धन, धान्य, समृद्धि और आरोग्य मिलता है। यह श्रीभविष्य पुराणका कहा हुआ ज्येष्ठा देवीके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ।

दूर्वाष्टमीव्रतम्

तत्रैव भाद्रशुक्लाष्टम्यां दूर्वाष्टमीव्रतं भविष्ये ॥ अत्र सा पूर्वा ग्राह्या– "श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वाष्टमिहुताशनी ॥ पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बले-र्दिनम् ॥" इति वृद्धयमवचनात् ॥ शुक्लाष्टमी तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत् ॥ दूर्वाष्टमीति विज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते ॥ इति हेमाद्रिधृतपुराणसमुच्चय-वचनात् ॥ यत्तु–मुहूर्ते रोहिणेऽष्टम्यां पूर्वा वा यदि वा परा ॥ दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठां मूलं च वर्जयेत् ॥ इति तत्रैव परा कार्येऽत्युक्तं तत्पूर्वत्र ज्येष्ठामूल-योगेकर्मकालव्याप्त्यभावे च द्रष्टव्यम् ॥ दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठामूलर्क्ष-संयुता ॥ तथा चप्राप्ते भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यां तु भारत ॥ दूर्वामभ्यर्चये-द्भक्त्या ज्येष्ठां मूलं च वर्जयेत् ॥ ऐन्द्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हन्त्यपत्यानि नान्यथा ॥ भर्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ इति तत्रैव व्रतनिषेधात् ॥ इदमग-स्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम् ॥ शुक्लभाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी ॥ सिंहार्क एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन ॥ सिंहस्थे सोत्तमा सूर्येऽनुदिते मुनि-सत्तमे इति मदनरत्ने स्कान्दोक्तेः ॥ अगस्त्य उदिते तात पूजेयदमृतोद्भवाम् ॥ वैधव्यं पुत्रशोकं च दशजन्मानि पंच च ॥ इति तत्रैव दोषोक्तेश्च ॥ यदा तु

भाद्रशुक्लाऽष्टम्यामगस्त्योदयस्तदा तत्पूर्वं कृष्णाष्टम्यां कार्यम् ।। शुक्लपक्षाभावेऽपि पौर्णिमान्तमासेन भाद्र पदमात्रलाभात् ।। यदा तु भाद्रपदोऽधिकस्तदा सिंहार्क एवेति उदाहृतवचनात् ।। अधिमासे तु संप्राप्ते नभस्य उदये मुनेः ।। अर्वागेव व्रतं कार्यं परतो न तु कुत्रचित् ।। इति निर्णयदीपके स्कान्दच्चाधिके एव कर्तव्यम् ।। इदं स्त्रीणां नित्यम् । या न पूजयते दूर्वां मोहादिह यथाविधि ।। त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः ।। तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः ।। इति पुराणसमुच्चयात् ।। यदा तु ज्येष्ठादिकं विनाष्टमी सर्वथा न लभ्यते सतदा तत्रैवोक्तम् ।। कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठामूलं यदा भवेत् ।। ज्येष्ठामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेदिति ।। इति भविष्योत्तरेऽनुकल्पेनानुष्ठानं नतु सर्वथा लोपः ।। अथ दूर्वाष्टमीव्रतं हेमाद्रौ भविष्ये–विष्णुरुवाच ।। ब्रह्मन्भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः ।। पूजयेच्छङ्करं भक्त्या यो नरः श्रद्धयान्वितः ।। स याति परमं स्थानं यत्र देवस्त्रिलोचनः ।। गणेशं पूजयेद्यस्तु दूर्वया सहितं मुने ।। गणेशः शिवः ।। फलानां सकलैर्दिव्यैर्गन्धपुष्पैर्विलेपनैः ।। दूर्वां पूज्य तथैशानं मुच्यते सर्वपातकैः ।। शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम ।। स्थाप्य लिङ्गं ततो गन्धैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ।। खर्जूरैर्नारिकेलैश्च मातुलिङ्गफलैस्तथा ।। पूजयेच्छङ्करं भक्त्या दूर्वायां विधिवद्द्विज ।। दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्त्रिलोचने ।। दूर्वाशमीभ्यां संपूज्य मानवः श्रद्धयान्वितः ।। स वै सुकृतजन्मा स्यात्सर्वदेवैस्तु वन्दितः ।। विद्यां प्राप्नोति विद्यार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।। धर्मानाप्नोति धर्मार्थी कन्यार्थी लभते च ताम् ।। मनसा यद्यदिच्छेत तत्तदाप्नोति मानवः ।। य एवं पूजयेद्दूर्वां भूतेशं मानवः फलैः ।। स सप्तजन्मपापौघैर्मुच्यते नात्र संशयः ।। कृतोपवासः सप्तम्यामष्टम्यां पूजयेच्छिवम् ।। दूर्वासमेतं विप्रेन्द्र दध्यक्षतफलैः शुभैः ।। दूर्वामंत्रः–त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरैरपि ।। सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ।। यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ।। तथा विस्तृतसन्तानं देहि त्वमजरामरे ।। तल्लिङ्गमन्त्रैरीशानमर्चयेत् प्रयतःशुचिः ।। ततः–संपूजयेद्विप्रान् फलैर्नानाविधैर्द्विज ।। अनग्निपक्वमश्नीयादन्नं दधि फलं तथा ।। अक्षारलवणं ब्रह्मन्नाश्नीयान्मधुनान्वितम् ।। दद्यात्फलानि विप्रेषु फलाहारः स्वयं भवेत् ।। प्रणम्य शिरसा दूर्वां शिवं शिवमुपाश्नुते ।। एवं यः कुरुते भक्त्या महादेवस्य पूजनम् ।। गणत्वं यात्यसौ ब्रह्मन्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।। एवं पुण्या पापहरा अष्टमी पूर्वसंज्ञिता ।। चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीजनानां विशेषतः ।। इति भविष्योक्तं दूर्वाष्टमीव्रतम् ।। अथादित्यपुराणोक्ते दूर्वाष्टमीव्रते ।। श्रीपूजनमुक्तम् ।। शुक्लाष्टम्यां तु संप्राप्ते मासि भाद्रपदे तथा ।। दूर्वाप्रतानं सुश्वेतमुत्तराशाभिगा-

मिनम् ।। पूजयेद् गृहमानीय गन्धमाल्यानुलेपनैः । फलैर्मूलैस्तथा धूपदीपैश्चाथ विसर्जयेत् ।। अनग्निपक्वं तत्सर्वं नैवेद्यं च कथंचन ।। भोक्तव्यं च तथा ब्रह्मन्नग्निपक्वविर्जितम् ।। दूर्वांकुरस्थां संपूज्य विधिना यौवनंश्रियम् ।। यौवनं स्थिरमाप्नोति यत्रयत्राभिजायते ।। भविष्योत्तरे तु विशेषः ।। अष्टम्यां फलपुष्पैश्च खर्जूरैर्नारिकेलकैः ।। द्राक्षमोदकपिष्टैश्च बदरैर्लकुचैस्तथा ।। नारिङ्गैर्जम्बुकैश्चैव बीजपूरैश्च दाडिमैः ।। दध्यक्षतैश्च स्रग्भिश्च धूपैर्नैवेद्यदीपकैः ।। मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शृणुष्वावहितो नृप ।। दत्त्वा पिष्टानि विप्रेभ्यः फलं च विविधं प्रभो ।। तिलपिष्टकगोधूमधान्यपिष्टानि पाण्डव ।। भोजयित्वा सुहृन्मित्रं स्वं बन्धुं स्वजनांस्तथा ।। ततो भुञ्जीत तच्छेषं स्वयं श्रद्धासमन्वितः ।। कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठा मूलं यदा भवेत् ।। दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेत् ।। पक्षे भाद्रपदस्यैवं शुक्लाष्टम्यां युधिष्ठिर ।। दूर्वाष्टमीव्रतं पुण्यं यः करोतीह मानवः ।। न तस्य क्षयमाप्नोति सन्ततिः साप्तपौरुषी ।। नन्दते वर्द्धते नित्यं यथा दूर्वा तथा कुलम् ।। इति दूर्वाष्टमीव्रतम् ।।

दूर्वाष्टमीव्रत–भाद्रपद शुक्लाष्टमीको भविष्यपुराणमें कहा गया है, इसे पूर्वा लेनी चाहिये क्योंकि वृद्ध यमने कहा है कि श्रावणी दुर्गानवमी, दूर्वाष्टमी, होली, शिवरात्री और बलि (दिवाली) का दिन ये सब पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये । हेमाद्रिमें रखा हुआ पुराणसमुच्चयका वचन है कि भाद्रपदमहीनामें जो शुक्लाष्टमी हो उसे दूर्वाष्टमी समझे यह उत्तरानहीं की जाती । जो यह लिखा हुआ है कि, अष्टमीमें रोहिण यानी प्रातःकालके मुहूर्तमें पूर्वा वा परा जो हो उसको दूर्वाष्टमी समझना चाहिये, इसमें यदि ज्येष्ठा और मूल हों तो न करना चाहिये, इनमें यह भी कह दिया गया है कि, रोहिण मुहूर्तमें परा जो हो तो उसको भी करनी चाहिये किन्तु पीछे पुराणसमुच्चयका वचन यह रखा हुआ है कि, उत्तरा ली नहीं जा सकती, तब इन दोनों परस्पर विरुद्ध वाक्योंका कैसे अन्वय होगा ? इसके लिये कहते हैं कि,यह कथनउस समयका समझना चाहिये जबकि, पहिले दिन ज्येष्ठा और मूलका योग हो तथा कर्मकालकी व्याप्ति न होतो परा ली जा सकेगी क्योंकि, वहीं यह लिखा हुआ है कि, ज्येष्ठा और मूलसे युक्त दूर्वाष्टमीको सदा छोड़ देना चाहिये । इसकी पुष्टिमें यह और लिखा है कि, हे भारत ! भाद्रपद शुक्लाष्टमीके दिन भक्तिसे दूर्वापूजन, करना चाहिये, पर ज्येष्ठा और मूलको छोड़ देना चाहिये । ज्येष्ठानक्षत्रमें दूर्वापूजन करनेसे अपत्योंका नाश करती है दूसरी तरह नहीं करती, मूलमें पूजनेसे पतिकी आयुको नष्ट करती है, इस कारण इसे छोड़ देना चाहिये । यह वहां व्रतका निषेध मिलता है । इसे अगस्त्यके उदयमें कन्याके सूर्यमें न करना चाहिये, क्योंकि मदनरत्नमें स्कान्दका प्रमाण दिया हुआ है कि, भाद्रपद शुक्लाष्टमीको दूर्वाष्टमी कहते हैं उसे सिंहके सूर्यमें ही करना चाहिये, कन्याके सूर्यमें न करे, क्योंकि यह अगस्त्यके उदय न होनेपर सिंहके सूर्यमें उत्तम होती है । अगस्त्यके उदयमें पूजनेसे क्या दोष होता है ? इसपर वहां ही लिखा है कि, हे तात ! जो अगस्त्यके उदयमें दूर्वाका पूजन करती है वह पंद्रह जन्मतक वैधव्य और पुत्रशोकको देखती है । यदि भाद्रपद शुक्लाष्टमीको अगस्त्यका उदय हो तो उससे पहिले कृष्णाष्टमीमें ही कर लेना चाहिये क्योंकि, शुक्लपक्षके अभावमें भी पौर्णिमान्त माससे भाद्रपद तो मिल ही जायगा जब दो भाद्रपद हों तो सिंहके सूर्य हों तब ही करना चाहिये ।। यह व्रत स्त्रियोंको अवश्य करना चाहिये, क्योंकि पुराणसमुच्चयमें लिखा हुआ है कि, जो स्त्री मोहसे यहां दूर्वा पूजन नहीं करती वो तीन जन्म विधवा होती है इसमें सन्देह नहीं है, इस कारण वधूजनोंको चाहिये कि प्रतिवर्ष दूर्वा पूजन करें । यदि ज्येष्ठादिकके विना किसी तरह

भी अष्टमी न मिले तो उसीमें पूजन करे, यह पुराण समुच्चयमें लिखा हुआ है कि, ज्येष्ठा और मूलके बिना अष्टमी न मिले तो एकभक्तवालेको चाहिये कि, विधिपूर्वक ज्येष्ठाका व्रत करे दिनको व्यर्थ न गमावे; यह वचन पुराणसमुच्चयमें भविष्योत्तरका है यह अनुकल्पविधिसे अनुष्ठान हैं ऐसा न हो कि, कर्मका लोप हो जाय व्रतप्रक्रिया दूर्वाष्टमीकी हेमाद्रिने भविष्यसे लिखी है विष्णु भगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! भाद्रपद शुक्लाष्टमीको व्रत किया हुआ जो पुरुष, श्रद्धापूर्वक भक्तिके साथ शंकरका पूजन करता है वह उस परा स्थानको चला जाता है जहाँ शिव भगवान् विराजते हैं। हे मुने ! जो दूर्वाके साथ गणेशका पूजन करता है, गणेशशिवको कहा है, सब पवित्र फलों और गन्ध पुष्प और अनुलेपनोंसे शिव और दूर्वाका पूजन करके सब पापोंसे छूट जाता है हे ब्राह्मणोत्तम ! पवित्रस्थलमें पैदा हुए दूर्वापर, लिंग, स्थापित करके गन्ध पुष्प और धूपसे पूजन करे । हे द्विज ! खजूर, नारिकेल, और मातुलिंगके फलोंसे विधिपूर्वक भक्तिके साथ दूर्वापर शंकरका पूजन करे, हे द्विजश्रेष्ठ ! दधि और अक्षतोंके साथ त्रिलोचनके लिये अर्घ्य दे । मनुष्य दूर्वा और शमीसे श्रद्धाके साथ पूजन करके सुकृतजन्मा हो जाता है वो सब देवोंसे वन्दना करने योग्य है । विद्यार्थीकोविद्या, धनार्थीको धन, पुत्रार्थीको पुत्र, धर्मार्थीको धर्म और कन्यार्थीको कन्या मिल जाती है, मनुष्य जो जो वस्तु मनसे चाहता है उसे वह सब मिल जाती है, जो मनुष्य फलोंसे शिव और दूर्वाका इस प्रकार पूजन करता है वह सातजन्मों के पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है । सप्तमीको उपवास करके अष्टमीको शिवका पूजन करे । हे विप्रेन्द्र ! दधि अक्षत और अच्छेफलोंसे दूर्वासमेतको पूजनाचाहिये । दूर्वाका मंत्र–हे दूर्वे तू अमृत जन्मा है, सुर और असुर दोनोंने तेरी वन्दना की है, मुझे सौभाग्य और सन्तति दे तथा सब कामोंके करनेवालीहो । हे अजर अमर दूर्वे ! जैसे तू शाखा और पर शाखाओंसे विस्तृत है उसी तरह मुझे भी खूब पुत्र पौत्रादिकोंसे बढ़ा । नियम पूर्वक पवित्रताके साथ शिवके मन्त्रोंसे शिवका पूजन करना चाहिये । हे द्विज ! इसके बाद अनेक तरहके फलोंसे ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये, अग्निके पकाये हुए को छोड़कर दूसरी तरह सिद्ध हुए अन्न दधि और फलोंका भोजन करे, क्षार और लवणको छोड़कर हे ब्रह्मन् ! मधुके साथ भोजन करे, ब्राह्मणोंको फल दे तथा स्वयंभी फलाहारही करे, शिरसे शिव और दूर्वाको प्रणाम करके कल्याणको पाता है, जो इस प्रकार भक्तिके साथ महादेवका पूजन करता है वह हे ब्रह्मन ! वो शिवका गण बन जाता है, एवं ब्रह्महत्या से भी निर्मुक्त होजाता है। इस प्रकार यह दूर्वाष्टमी पुण्या है तथा पापोंके नाश करनेवाली है, एकके ही लिए नहीं किन्तु चारों वर्णोंके लिए तथा विशेष करके स्त्रियोंके लिए पुण्यजनक और पापनाशिनी है। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ दूर्वाष्टमीका व्रत पूरा हुआ । आदित्य पुराणके कहे हुए दूर्वाष्टमीके व्रतमें श्रीपूजन कहा है कि, दूर्वाअष्टमीके दिन भाद्रपद मासमें उत्तर दिशामें फैली हुई दूर्वाकी लताको घर लाकर गंध, माल्य और अनुलेपन, धूप, दीप, फल और मूलोंसे पूजकर विसर्जन कर देना चाहिये। जो भी विना आगके पकी हुई हैं वे सबही नैवेद्य हैं, हे ब्रह्मन ! अग्निपक्वको छोडकर सब कुछ खालेना चाहिये। दूर्वांकुर में रहनेवाली यौवनश्रीका पूजन करके जिस २ जन्ममें उत्पन्न होता है स्थिर यौवनको पाता है । भविष्योत्तरमें विशेष कहा है कि, अष्टमीके दिन फल पुष्प खर्जूर, नारिकेल, द्राक्षा, मोदग, पिष्ट, बरद, लकुच, जम्बुक, बीजपूर, दाडिम, दधि, अक्षत, माला धूप, दीप, नैवेद्य, दीपक इनसे 'त्वं दूर्वे' इस मंत्रसे पूजन करे, हे राजन् ! सावधान होकर सुन हे प्रभो ! पिष्ट और अनेक तरहके फल ब्राह्मणोंके लिए दे, तथा हे पाण्डव । तिल, पिष्टक, गोधूम धान्य और पिष्ट दे। अपने सुहृद् मित्र, बंधु और स्वजन इनको भोजन कराके पीछे जो बचे उसका आप श्रद्धाकेसाथ भोजन करे। ज्येष्ठा और मूल हो तो एक भक्त करके व्रत करे। भक्तिके साथ दूर्वाका पूजन करे, समयको व्यर्थ न खोये। हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार भक्तिके साथ जो मनुष्य भाद्रपद शुक्लाष्टमीको दूर्वाव्रत करते हैं उनको सात पीढीतक सन्तति नष्ट नहीं होती। जैसे दूर्वा बढती है उसी तरह उसका कुल भी बढता है, एवं आनंदित रहता है। यह दूर्वाष्टमीका व्रत पूरा हुआ ।।

महालक्ष्मीव्रतम्

अथ भाद्रशुक्लाष्टमीमारभ्य षोडशदिनपर्यन्तं महालक्ष्मीव्रतम् ।। तच्चार्द्धरात्रमतिक्रम्य वर्तिन्यामष्टम्यां कार्यम् ।। तदुक्तं चन्द्रप्रकाशे स्मृत्यन्तरे– अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः ।। तदा तस्यां नरैः कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा।। अस्यां ज्येष्ठायुतायां प्रारम्भः कार्यः ।। तथा च स्कान्दे-मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठायुताष्टमी । प्रारब्धव्यं व्रतं तत्र महालक्ष्म्या यतात्मभिः ।। तदभावे केवलायामपि कार्यम् ।। समापनं तु कृष्णाष्टम्यां चन्द्रोदयव्यापिन्यां कार्यम्–"चन्द्रोदयव्रते चैव तिथिस्तात्कालिकी भवेत्" इत्युक्तेः ।। दिनद्वये चन्द्रोदये सत्त्वेऽसत्त्वे च "कृष्णपक्षेऽष्टमीचैव" इत्यादिवाक्यात्पूर्वे व अपरदिने चन्द्रोदयोत्तरं त्रिमुहूर्ता चेत्परैव ।। तदुक्तं मदनरत्ने पुराणसमुच्चये–पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा ।। त्रिमुहूर्तात्तु सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी ।। अथ पूजनम्–महालक्ष्मी समागच्छ पद्मनाभपदादिह ।। पञ्चोपचारपूजेयं त्वदर्थं देवि संभृता ।। आवाहनम् ।। आलयस्ते हि कथितः कमलं कमलालये ।। कमले कमले ह्यस्मिन् स्थितिं त्वं कृपया कुरु ।। स्थापनम् ।। कमले पाहि मे देवि स्वर्णसिंहासनं शुभम् ।। गृहाणेदं मया दत्तं भक्तियुक्तेन चेतसा ।। आसनम् ।। गङ्गादिसलिलाधारं तीर्थमन्त्राभिमन्त्रितम् ।। दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं मे प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यम् ।। तीर्थोदकैर्महादिव्यैः पापसंहारकारकैः ।। अर्घ्यं गृहाण देवेशि देवानामुषकारिणि ।। अर्घ्यम् ।। आचाम्यं जगदाधारे सिद्धि लक्ष्मि जगत्प्रिये ।। चपले देवि ते दत्तं तोयं गृह्ण नमोऽस्तु ते ।। आचमनम् पयो दधि घृन्त क्षौद्रं सितया च समन्वितम् ।। पञ्चामृतमनेनाद्य कुरु स्नानं [illegible]निधे ।। पञ्चामृतम् ।। तोयं तव महालक्ष्मि कर्पूरागुरुवासितम् ।। तीर्थेभ्यः सुसमानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। स्नानम् ।। सूक्ष्म तन्तुभवं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा ।। लोकलज्जाहरं देवि गृहाण सुरसत्तमे ।। वस्त्रम् ।। कञ्चुकीम् ।। नानासौभाग्यद्रव्यम् ।। मलयाचलसंभूतं नानापन्नगरक्षितम्।। शीतलं बहुलामोदं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। मिलत्परिमलामोदं मत्तालिकुलसंकुलम् ।। आनन्दि नन्दनोत्पन्नं पद्मायै कुसुमं नमः ।। पुष्पाणि ।। अथ नामपूजा ।। श्रियै न० लक्ष्म्यै० वरदायै० विष्णुपत्न्यै० क्षीरसागरवासिन्यै० हिरण्यरूपायै० सुवर्णमालिन्यै० पद्मवासिन्यै० पद्मप्रियायै० मुक्तालङ्कारिण्यै० सूर्यायै० चन्द्राननायै० विश्वमूर्त्यै० मुक्त्यै० मुक्तिदात्र्यै० ऋद्ध्यै० समृद्ध्यै० तुष्ट्यै०पुष्ट्यै०धनेश्वर्यै०श्रद्धायै०भोगिन्यै०भोगदायै०धात्र्यै०।।गन्धसंभारसन्नद्धकस्तूरीमोदसंभवम्।।सुरासुरनरानन्दं धूपं देवि गृहाण मे ।। धूपम् ।। मार्तण्डमण्डलाखण्डचन्द्रबिम्बाग्नितेजसाम् ।। निधानं देवि दीपोऽयं निर्मितस्तव भक्तितः ।। दीपम् ।। देवतालयपातालभूतलाधारधान्यजम् ।। षोडशाकारसंभारं नैवेद्यं

ते नमः सदा ।। नैवेद्यम् ।। स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिः प्रजायते ।। एतदाचमनीयं च महालक्ष्मि विधीयताम् ।। आचमनम् ।। करोद्वर्तनम् ।। पातालतलसंभूतं वदनाम्भोजभूषणम् ।। नानागुणसमाकीर्णं तांबूलं प्रतिगृह्यताम् ।। तांबूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजनं सुमंगल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।। चन्द्रार्कवह्निसदृशं महालक्ष्मि नमोस्तु ते ।। नीराजनम् ।। शारदेन्दुकलाकान्तिः स्निग्धनेत्रा चतुर्भुजा ।। पद्मयुग्मा चाभयदा वरव्यग्रकराम्बुजा ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। विष्णोर्वक्षसि पद्मे च शङ्खे चक्रे तथाम्बरे । लक्ष्मि देवि यथासि त्वं मयि नित्यं तथा भव। प्रार्थना।। उत्तार्य दोरकं बाहोर्लक्ष्मीपार्श्वे निवेदयेत् ।। लक्ष्मि देवि गहाण त्वं दोरकं यन्मया धृतम् ।। व्रतं संपूर्णतां यातु कृपा कार्या मयि त्वया ।। कथां श्रुत्वा सुवर्णं च दद्यादाचार्यदक्षिणाम् ।। एवं निवर्त्य विधिवत्पूजनं बटुकश्रियः ।। चातुर्वर्ण्यं च सम्भोज्य यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ।। दीपांश्च षोडशापूपान्गोधूमानां द्विजातये ।। दत्त्वा तत्संख्यया भुक्त्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ।। चन्द्रोदये च सञ्जाते दद्यादर्घ्यं ततो व्रती ।। मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र शंखेनाम्बुफलान्वितम् ।। नमोस्तु ते निशानाथ लक्ष्मीभ्रातर्नभोऽस्तु ते ।। व्रतं संपूर्णतां यातु गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। चन्द्रायार्घ्यम् ।। प्रातर्विसर्जयेद्देवीं मंत्रेणानेन सुव्रत ।। पङ्कजं देवि संत्यज्य मम वेश्मनि संविश ।। यथा सुपुत्रभृत्योऽहं सुखी स्यां त्वत्प्रसादतः ।। विसर्जनम् ।। इति पूजनम् ।। अथ कथा ।। स्कन्द उवाच ।, सौभाग्यजननं स्त्रीणां दौर्भाग्यपरिकृन्तनम् ।। परमैश्वर्यजनकं तद्व्रतं ब्रूहि शङ्कर ।। १ ।। ईश्वर उवाच ।। साधु साधु महाबाहो यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।। तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। २ ।। येन चीर्णेन न नरो दुर्गतिं याति कर्हिचित् ।। सुभगा दुर्भगा वापि स्त्रियो न विधवा गुह ।। ३ ।। अस्ति देव्या व्रतं पुण्यं महालक्ष्म्याः षडानन ।। नारीणां च नराणां च सर्वदुःखापहं तथा ।।४ ।। स्कन्द उवाच ।। देव्याश्चरितमाहात्म्यं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ।। विधानं कीदृशं ब्रूहि व्रतस्यास्य महाविभो ।। ५ ।। शङ्कर उवाच ।। देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ।। वृत्रे सुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ।। ६।। तत्र देवैर्महावीर्यैर्नारायणबलाश्रयात् ।। असुरा निर्जिताः सर्वे पातालतलमाययुः ।।७।। केचिल्लङ्कांगताः केचित्प्रविष्टा वरुणालयम्।। गिरिदुर्गं समाश्रित्य केचित्तस्थुर्महाबलाः ।। ८ ।। तत्र कोलासुरो नाम महावीर्यो महाबलः ।। गोमन्तं दुर्गमं दुर्गं गिरिमाश्रित्य निर्भयः ।। ९।। या राजकन्यका लोके रूपवत्यो महागुणाः ।। आनीय गिरिदुर्गस्थो रमयामास सर्वशः ।। १० ।। रमयित्वाक्षिपत्रत्तत्र कामरूपी विहङ्गमः ।। एतस्मिन्नेव काले तु आगतौ मुनिस-

१ दीपावन्षोडशापिडांश्चेति क्वचित्पाठ ।

त्तमौ।। ११ ।। श्रुतप्रभावसंपन्नौ पुलस्त्यो गौतम'स्तथा ।। तीर्थयात्राप्रसंगेन श्रुत्वा वाक्यंजनास्यतः ।। १२ ।। कोलासुरोत्पातजन्यं कन्याहेतोः शिखिध्वजः ।। तावूचतुर्जनं सर्वमगस्त्योऽस्ति महामुनिः ।। १३ ।। येन तोयनिधिः पीतो विन्ध्याद्रिश्च निपातितः ।। वातापील्वलनामानौ दैत्यौ येन विनाशितौ ।।१४ ।। तं गच्छामो वयं सर्वे कोलासुरवधाय च ।। इत्यामन्त्र्य जनाः सर्वे गत्वा तमभिवाद्य च ।।१५।। ऊचुःसर्वे यथावृत्तं कोलासुरविचेष्टितम् ।। तच्छ्रुत्वा भगवानाह मैत्रावरुणिरग्र्य धीः।। १६ ।। सृष्टिस्थितिविनाशानां कारणं भक्तवत्सलाः ।। रामस्याद्रौ तपस्यन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।। १७ ।। तिस्रः सन्ध्यामूर्तिमत्यस्तेषां शुश्रूषणे रताः । प्रविश्य ता महालक्ष्मीः शक्तिरूपेण संस्थिता ।। १८ ।। सर्वशक्तियुता देवी लोकानां हितकाम्यया ।। इत्यु'क्तास्त्वरितं गत्वा कोलासुरवधाप्तये ।। १९ ।। निवेद्य निखिलं तेभ्यस्तस्थुः प्राञ्जलयो जनाः ।। तच्छ्रुत्वा निखिलं तेभ्यो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरः ।। २०।। सन्ध्यात्रयं समाहूय वाचं प्रोचुर्जनेश्वराः ।। वन्दारुसुरवृन्देन्द्रमौलिमाणिक्यमण्डना ।। २१ ।। हरिष्यति महालक्ष्मीर्युद्धे कोलासुरं रिपुम् ।। भगवत्यो मूर्ति मत्यो दण्डशूलादिभिर्वरैः ।। २२ ।। आयुधैर्विविधैः कृत्वा जयमाप्स्यथ संयुगे ।। युष्माकं तु सहायेऽसौ युष्मत्क्रोधसमद्भवः ।। २३ ।। भूतना'थो भूतपूर्वो वः सहायो भविष्यति ।। इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा रुरुधः कोलराक्षसम् ।। २४ ।। निरुध्य च पुरीं देव्यो जगर्जुर्जलदस्वनाः ।। भिन्दन्त्यश्च दिशां वृन्दं वर्धयन्त्यश्च तत्क्रुधम् ।। २५ ।। कोलासुरोऽपि तच्छ्रुत्वा प्रोत्पपात महासनात् ।। रोषणः क्रोधताम्राक्षो मेरोरिव मृगान्तकः ।। २६ ।। हस्त्यश्वरथपादातचतुरङ्गबलान्वितः ।।निर्ययौ पत्तनाद्योद्धुं कालिकाया इवाशनिः ।।२७।। सकुण्डलशिरस्त्राणः कवची धृतबाणधिः । बद्धगोधांगुलीत्राणः क्रुद्धो वृत्र इवापरः ।। ।।२८।। ततो राक्षससैन्यं तद्भूतनाथेन संगतम् ।। देवतारिर्महोल्काभिर्युद्धं चक्रेऽतिभीषणम् ।। २९ ।। महारावैर्भीमघोषैर्बाणैः कैङ्कारनिःस्वनैः ।। गोखराणां निना'दश्च लोकः शब्दमयोऽभवत् ।। ३० ।। जहि भिन्धीति वदतां धावतामितरेतरम् ।। ववृधे समरं घोरं मुष्टामुष्टि कचाकचि ।। ३१ ।। उद्धते राक्षसबले भूतनाथो महाबलः ।। ममर्द राक्षसानीक शरवर्षेश्च दारुणैः ।।३२।। हतं दृष्ट्वासुरबलं क्रुद्धः कोलासुरो रणे ।। अभिद्रुत्य गदापाणिस्ताडयामास भैरवम् ।।३३।। ययौ मूर्च्छा मावीर्यस्तेनाभिहतमस्तकः ।। ततो देव्योऽतिवेगेन ह्यभिदुद्रुवुरुद्धतम् ।।३४ ।। त्रिशुलैरभिजघ्नुस्तं पट्टिशैश्च व्यघातयन् ।। मुष्टिभिस्ताडयामासुर्न-

---

१सहेत्यपिपाठः । २ तान्प्रतिगच्छत्युक्ताः । ३ भैरवः । ४ निःसाणनिनदैश्चैवेत्यपि क्वचित्पाठः ।

खरैश्च व्यदारयन् ।।३५। पादघातैः समाजघ्नुः सिंहः करिवरं यथा ।। सकुण्डल-शिर-स्त्राणो दष्टोष्ठो रक्तलोचनः ।। ३६ ।। कृतभ्रुकुटिवक्त्रोऽसौ राक्षसस्ता मुहुर्मुहुः ।। गदयाताडयामास शिरःकण्ठांसकुक्षिषु ।। ३७ ।। बभञ्जुस्तां गदां तास्तु हसन्त्यः संमदाकुलाः ।। ततो धनुर्धरो भूत्वा बाणजालमवाकिरत् ।। ३८ ।। तासां शरीरमर्माणि भिन्दञ्छरपुरोगमैः ।। ननाद बद्धवैरोऽसौ हृदयंचाभिन-च्छरैः ।। ३९ ।। ततः क्रुद्धतरास्तास्तु तं पादे जगृहुर्भृशम् ।। आकाशे भ्रामयित्वा तु चिक्षिपुर्गगने क्रुधा ।। ४० ।। कोलासुरोऽपि पतितो यावदुत्थातुमिच्छति ।। तावन्निर्मथ्य लक्ष्मीस्तं पादाभ्यां प्रत्यपीडयत् ।। ४१ ।। तत्पादपीडितो दैत्यो विवृत्य नयने भृशम् ।। मुक्तकण्ठस्वनं कृत्वा ततो मोहमुपेयिवान् ।। ४२ ।। ततो देवाः सगन्धर्वा मनुष्या ऋषयोऽस्तुवन् ।। देवनाथाश्च देव्यश्च ननृतुःसंमदाकुलाः ।। ४३ ।। देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह ।। दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुर्मन्द-स्थिरं जगत् ।। ४४ ।। सुरासुरशिरोरत्नापीडितांघ्रिसरोरुहाः ।। देव्यो दिव्येन यानेन यान्ति कोलापुरं प्रति ।। ४५ ।। आयान्तीं पद्मजां वीक्ष्य मुक्तपादाब्जशृ-ङ्खलः ।। तुष्टाव परया भक्त्या राजकन्यागणो मुदा ।। ४६ ।। राजकन्याः ऊचुः ।। वन्दारुवीरसुरवृन्दकिरीटरत्नरोचिश्छटानिकरकल्पितरत्नदीपम् ।। देवित्वदीय-चरणं शरणं जनानां सेवामहे सकलमङ्गलवर्धनाय ।। ४७ ।। उत्फुल्लकैरवदला-यलोचनायैं गण्डोल्लसच्चटुलकुण्डलमण्डितायै ।। राकाशशिप्रतिभटाननकोम-लायै तस्यै नमः कमललोचनवल्लभायै ।। ४८ ।। सद्भक्तकल्पलतिकां हरिकण्ठ-भूषां केयूरहेमकटकोज्ज्वलकङ्कणाङ्काम् ।। संसारसागरमुखे पततो ममाद्य देहि त्वदीयकरयष्टिमनङ्गमातः ।।४९ ।। दृष्ट्वा देवि जनास्त्वयापि विविधा ब्रह्माधिपत्यं गता विष्णुर्वक्षसि या चकार तरला लीलाब्जमालाभ्रमम् ।। क्लेशा-ग्निप्रहतं त्वदीयचरणद्वन्द्वाब्जसेवारतं कारुण्यामृतसारपूरितदृशं मामम्ब पाही-श्वरि ।। ५० ।। मल्लीप्रफुल्ल कुसुमोज्ज्वलमध्यभागधम्मिल्लभारजिततारक-चित्रिताभ्रा ।। उत्तप्तहेमनिकषोज्ज्वलकायकान्तिलक्ष्मीः स्वयं प्रणमतां श्रिय-मातनोतु ।। ५१।। इति स्तुता महालक्ष्मीर्भक्तानामिष्टदायिनी ।। योगिन्योद्य भविष्यध्वमिति तासा वरं ददौ ।। ५२ ।। दृष्ट्वा तास्तु मुदा देवी सारूप्यं तास्व-दापयत् ।। ताभिर्निषेविता देवी वरं वर्य ददौ मुदा ।। ५३ ।। राजकन्यास्ततः सर्वा मुक्ताः स्वपुरमाययुः ।। ततःप्रभृति लोकेषु पूज्यास्ताः सर्वकामदाः ।। ५४ ।। ताश्चतुःषष्टियोगिन्यो महालक्ष्मीपरिग्रहात् ।। नृत्यन्ति निवहैस्तत्र गीतवादित्रनिःस्वनैः ।। ५५ ।। पुरो देव्या महालक्ष्म्या करहाटपुरे निशि ।।

१ रत्नचञ्चत्पद महाबला इत्यपि पाठः ।

एवं प्रभावा सा देवी विष्णुरामा षडानन ।। ५६ ।। बभूव सर्वभूतेषु विख्याता कमलासना ।। प्रभावमस्या देव्याश्च नालं वक्तुं चतुर्मुखः ।।५७।। व्रतस्यास्य विधानं च शृणु मत्तो विधानतः ।। मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठायुताष्टमी ।। ५८ ।। प्रारब्धव्यं व्रतं तत्र महालक्ष्म्या यतात्मभिः ।। करिष्यामि व्रतं देवि त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ।। ५९ ।। तदविघ्नेन मे यातु समाप्तिं त्वत्प्रसादतः ।। इत्युच्चार्य ततो वद्ध्वा दोरकं दक्षिणे करे ।।६०।। षोडशग्रन्थिसहितं गुणैः षोडशभिर्युतम् ।। ततोऽन्वहं महालक्ष्मीं पूजयेन्नियतात्मवान् ।। ६१ ।। गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैर्यावत्कृष्णाष्टमीदिनम् । तस्मिन् दिने तु संप्राप्ते कुर्यादुद्यापनं व्रती ।। ६२ ।। वस्त्रमण्डपिकां कृत्वा माल्याभरणशोभिताम् ।। त्रिभूमिकां तां सुश्लक्ष्णां नानादीपैश्च शोभिताम् ।। ६३ ।। सतत्रः प्रतिमाः कृत्वा सौवर्णीस्तत्स्वरूपिणीः ।। स्नपनं कारयेत्तासां पञ्चामृतविधानतः ।। ६४ ।। शोडशैरुपचारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा । जागरणं तु कर्तव्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ।।६५।। ततो निशीथे सम्प्राप्तेभ्युदितेऽमृतदीधितौ ।। कृत्वा तु स्थण्डिले पद्मं सषडङ्गं प्रपूजयेत् ।। ६६ ।। दद्यादर्घ्यं च रागेण व्रती तस्मै समाहितः ।। क्षीरोदार्णवसम्भूत चन्द्र लक्ष्मीसहोदर ।। ६७।। पीयूषधाम रोहिण्या सहितोऽर्घ्यं गृहाण वै ।। श्रीसूक्तेन ततो वह्नौ पद्मानि जुहुयाच्छुचिः ।। ६८ ।। पायसंचैव बिल्वानि तदलाभे तथा घृतम् ।। ग्रहेभ्यश्चैव होतव्यं समिच्चरुतिलादिकम् ।। ६९ ।। जानुभ्यामवनिं गत्वा मन्त्रेण प्रार्थयेत्ततः ।। क्षीरोदार्णवसंभूते कमले कमलालये ।। ७० ।। प्रयच्छ सर्वकामान्मे विष्णुवक्षःस्थलालये ।। पुत्रान्देहि यशो देहि सौख्यं सौभाग्यमेव च ।। ७१।। कालि कालि महाकालि विकरालि नमोऽस्तु ते ।। त्रैलोक्यजननि त्राहि वरदे भक्तवत्सले ।। ७२ ।। एकनाथे जगन्नाथे जमदग्निप्रियेनघे[1] ।। रेणुके त्राहि मां देवि राममातः शिवं कुरु ।। ७३ ।। कुरु श्रियं महालक्ष्मि ह्यश्रियं त्वाशु नाशय।। मन्त्रैरेतैर्महालक्ष्मीं प्रार्थ्य श्रोत्रिय[2] योषिताम् ।।७४।। चन्दनं तालपत्रं च पुष्पमालादिकं तथा ।। नवे शरावे[3] भक्ष्याणि शिप्त्वा बहुविधानि च ।। ७५ ।। प्रत्येकं षोडशैतानि पूगपूर्णानि चैव हि ।।तामन्येन समाच्छाद्य व्रती दद्यात्समत्रकम् ।। ७६ ।। क्षीरोदार्णवसंभूता लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरी ।। व्रतेनानेन सन्तुष्टा प्रीयतां विष्णुवल्लभा ।। ७७ ।। इन्दिरा प्रतिगृह्णाति इन्दिरा वैददाति च ।। इन्दिरा तारिकोभाभ्यामिन्दिरायै नमोनमः ।।७८।। दत्वा ह्युपायनादीनि श्रोत्रियाणां च योषिताम् ।। चतस्रः प्रतिमास्तास्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। ७९।। एवं कृत्यं तु निर्वर्त्य व्रती भोजनमाचरेत् ।। स्कन्द उवाच ।। केनेदं स्वीकृदं पूर्वं कथम-

१ व्यये इत्यपि पा० । २ अस्य दद्यादिति तृतीयश्लोकस्थेनान्वय ३ नवे शूर्पे चेत्यपि पा४ शरावेण शूर्पेण वा ।

स्मिन्प्रकाशितम् ।।८० । ।ब्रूहि मे तत्त्वतो देव यद्यहं तव वल्लभः ।। शंकर उवाच ।। आसीद्राजा सार्वभौमो मङ्गलार्ण इति श्रुतः ।। ८१ ।। कुण्डिने नगरे रम्ये तस्य पद्मावती प्रिया ।। तमागतः कश्चिदेकः सेवको ब्राह्मणोत्तमः ।। ८२ ।। अज्ञात-नाम्नस्तस्यासौ नाम चक्रे नृपस्तदा ।। तवल्लक इति ख्यातो बभूव द्विजसत्तमः ।। ८३ ।। कदाचिन्मृगयासक्तो भूपालो वनमाविशत् ।। तत्र विद्धा वराहादीन्मृगा-न्हत्वा सहस्रशः ।। ८४ ।। क्षुत्तृट्परिगतः श्रान्तो वृक्षमूलमुपाश्रितः ।। उदका-न्वेषणे चारान्प्रेषयामास सर्वशः ।। ८५ ।। वने जलं तु नापश्यन्क्वचिच्छान्ताः प्रयत्नतः ।। ते गत्वा नृपतिं प्रोचुर्नात्राम्भ इति दुःखिताः ।। ८६ ।। तवल्लकोऽपि बभ्राम विपिनं तदतन्द्रितः ।। भ्रममाणस्तदापश्यत्कस्मिंश्चिद्वनगह्वरे ।। ८७ ।। रम्यं सरोवरं दिव्यं कुमुदोत्पलमण्डितम् ।। तत्रापश्यद्देवकन्या दिव्यरूपा मनोरमाः ।। ८८ ।। चार्वङ्गीश्चारुनयनाः पीनोन्नतपयोधराः ।। हारकंकणकेयूरनूपुरालं-कृताः शुभाः ।। ८९ ।। पूजयन्तीर्महालक्ष्मीव्रतरूपेण चादरात् ।। तवल्लकोऽपि पप्रच्छ किमिदं कथ्यतामिति ।। ९० ।। स्त्रिय ऊचुः ।। महालक्ष्मीव्रतमिदं सर्वकाम-फलप्रदम् ।। क्रियतेस्माभिरेकाग्रमनोभिस्त्वत्र भक्तितः ।। ९१ ।। तवल्लकोऽपि तच्छ्रुत्वा व्रतं जग्राह भक्तिमान् ।। तदनुज्ञां गृहीत्वा च जलमादाय सत्वरः ।।९२।। आजगाम जलं तस्मै दत्त्वा प्राञ्जलिरास ह ।। जलं पीत्वा नृपस्तस्य दृष्टवान्दोरकं करे ।। ९३ ।। किमिदं दोरकं विद्वन्किं व्रतं कृतवानसि ।। राज्ञा पृष्ठ स्तवल्लोऽपि कथयामास तद्व्रतम् ।। ९४ ।। तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो व्रतं जग्राह भक्तिमान् ।। तवल्लकेन सहितौ राजा स्वपुरमाययौ ।। ९५ ।। पद्मावत्या गृहं गत्वा तया रन्तुं गतो रहः ।। रममाणाथ सा देवी तेन राज्ञा प्रियेण वै ।। ९६ ।। तं दृष्ट्वा दोरकं हस्ते कुपिताऽत्यन्तकोपना ।। कया त्वं वञ्चितो ब्रूहि कया बद्धः सुदोरकः ।।९७ ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच च नराधिपः ।। मावादीर-न्यथा ह्येतल्लक्ष्मीव्रतमनुत्तमम् ।। ९८।। इत्युक्तापि प्रियेणासौ हस्ताच्चिच्छेद दोरकम् ।। ज्वालामालाकुले वह्नौ क्षिप्तवत्यपि कोपिता ।। ९९।। हाहा कष्ट-मिदं पापं कृतं मूढतया त्वया ।। इति निर्भर्त्स्य तां राजा तत्याज वनगह्वरे ।। ।। १०० ।। सा च हानिं ययौ पापा न च हानिं ययौ नृपः ।। महालक्ष्म्यपचारेण सारण्ये जलवर्जिते ।। १ ।। भ्रममाणा वने तस्मिन्न क्वचिद्गतिमाप सा ।। विच-रन्ती वने तत्र ऋषेः कस्यचिदाश्रमम् ।। २ ।। ददर्श मृगसङ्कीर्णं शान्तकृष्णमृगा-न्वितम् ।। तत्रापश्यद्वने रम्ये वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ।। ३ ।। ववन्दे चरणौतस्य विसंज्ञा दुःखकर्शिता ।। चिरं ध्यात्वा मुनिस्तस्या ज्ञातवान्दुःखकारणम् ।। ४ ।। महालक्ष्म्यपचारेण ज्ञातं विज्ञानचक्षुषा ।। न तद्व्रतं कारयामास तया दुःखोपशा-

न्तये ।।५।। तद्दुःखं तत्क्षणादेव विनष्टमभवत्तदा ।। पुनश्च मृगयासक्तो भूपालो वनमाविशत् ।। ६ ।। क्वचिन्मृगं समाविध्य बाणेनैकेन बाहुमान् ।। अन्वगच्छन्मृगपदं तस्या¹ भुवि यदागतः ।। ७ ।। वरं मुनिं ददर्शाग्रे वसिष्ठं वीतकल्मषम् ।। कृतातिथ्यक्रियो दृष्ट्वा चरन्तीं बहिरन्तिके ।। ८।। हावभावविलासाद्यैर्हरन्तीं हरिणेक्षणाम् ।। मदान्निर्गत्य नृपतिः प्रोवाच मधुरं वचः ।। ९ ।। रम्भोरु कासि कल्याणि किमर्थं चरसे वने ।। किन्नरी मानुषी वा त्वं यक्षिणी चारुहासिनी ।। १०।। किमत्र बहुनोक्तेन भजमानं भजस्व माम् ।। नृपेण तेन भक्त्योक्ता सस्मिता वाक्यमब्रवीत् ।। ११ ।। पुनर्भजामि चाहं त्वामवेहि महिषीं तव ।। महालक्ष्म्यपचारेण त्वया हीना वसाम्यहम् ।। १२।। मुनीन्द्रस्याश्रमे रम्ये तरुगुल्मोपशोभिते ।। ममोपरि कृपाविष्टो महालक्ष्मीव्रतोत्तमम् ।। १३ ।। कारयामास विधिवत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।। तयोक्तं वचनं श्रुत्वा स चोत्फुल्लविलोचनः ।। १४ ।। ऋषेरनुज्ञामादाय प्रियामादाय सत्वरः ।। हृष्टपुष्टजनैर्जुष्टं पताकाध्वजशोभितम् ।। १५ ।। प्र²विवेश तया सार्द्धं स पौरैरभिवन्दितः ।। महालक्ष्मीव्रतं भूयस्तया सह चकार ह ।। १६ ।। भुक्त्वेह भोगान्विपुलान्पुत्रपौत्रसमावृतः ।। भूपालः सार्वभौमोभूत्तवल्लोमात्यतां ययौ ।। १७ ।। महालक्ष्म्याः प्रसादेन सन्निधिः सर्वसम्पदाम् ।। एवंप्रभावा सा देवी नराणामिष्टदायिनी ।। १८ ।। सर्वपापहरा देवी सर्वदुःखापहारिणी ।। एवं षोडशवर्षं तु कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।। १९ ।। यः करिष्यति तं प्रीत्या स्वयं सिद्धिरुपासते ।। लोकपालाश्च तुष्यन्ति ददाति च मनोरथान् ।। १२० ।। नारी वा पुरुषः करिष्यति मुदा भक्त्या व्रतं यत्नतः सेवन्ते हरिरुद्रपद्मजसुराः कुर्वन्ति तस्य प्रियम् ।। तत्पादं परिरञ्जयन्ति मनुजा मौलिप्रभामण्डलैस्तस्मिन्नेव कुटुम्बिनी वसति सा लक्ष्मी स्वयं विष्णुना ।। २१ ।। सुभक्त्या वाप्यभक्त्या वा कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् । अन्तकाले च तान्विष्णुः संसारात्परिरक्षति ।। २२ ।। य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।। न सन्त्यजति तं लक्ष्मीरलक्ष्मीर्नैव जायते।। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।। २३ ।। इति स्कन्दपुराणोक्ता महालक्ष्मीव्रतकथा ।। अथ भविष्योक्ता कथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।। स्वस्थानलाभपुत्रायुः सर्वैश्वर्यसुखप्रदम् ।। व्रतमेकं समाचक्ष्व विचार्य पुरुषोत्तम ।। १ ।। कृष्ण उवाच ।। दुर्वारे चैव दैत्येन्द्रे परिव्याप्तत्रिविष्टपे ।। एतदेव कृतस्यादौ देवेन्द्रः प्राह नारदम् ।। २ ।। तस्य श्रुत्वा ततो वाक्यं स मुनिः प्रत्यभाषत ।। नारद उवाच ।। पुरन्दर पुरा पूर्वं पुरमासीत्सुशोभितम् ।। ३ ।। रत्नगर्भाभवद्भूमिर्यत्र रत्नाढ्यभूधराः ।। यत्राङ्गनाजनापाङ्गभृङ्गलोचनसायकैः ।। ४ ।। त्रैलोक्य स्ववशं चक्रे देवः कुसुमसायकः ।। चतुर्वर्गजनिर्यत्र यच्च विश्वस्य भूषणम् ।। ५ ।। विश्वकर्मापि यद्वीक्ष्य

१ वसिष्ठाश्रमभूमी । २ पुरमिति शेषः

कम्पयत्यनिशं शिरः ।। तत्राभवन्महीपालो मङ्गलो मङ्गलालयः ।। ६ ।। चिल्लदेवी प्रिया तस्य दुर्भगैका बभूव ह ।। अन्या तु चोलदेवी या महिषी सा यशस्विनी ।। ७ ।। कदाचिन्मङ्गलो राजा चोलदेवीसहायवान् ।। प्रासादशिखरारूढः स्थलीमेकामपश्यत ।। ८ ।। तामालोक्य महीपालः स्मरस्मेरमुखाम्बुजः ।। चोलदेवीं प्रति प्राह दन्तद्योतितदिङ्मुखः ।। ९ ।। चञ्चलाक्षि तवोद्यानं कान्तिनिन्दितनन्दनम् ।। कार[1]यामि तयोदृष्टिस्तत्रोद्यानमकरारयत् ।। १० ।। संपन्नं तु तदुद्यानं नानाद्रुमलतान्वितम् । नानाफलसमायुक्तं नानापक्षिसमावृतम् ।। ११ ।। तत्रागत्य महाक्रोडस्तनुन्यस्तनभस्तलः।।प्रावृट्कालघनश्यामश्चक्षुराक्षिप्तचञ्चलः ।। १२ ।। दंष्ट्रावकृष्टचन्द्रार्कः प्रलयाम्भोधरध्वनिः ।। उद्यानं भञ्जयामास नानाद्रुमलतान्वितम् ।। १३ ।। कांश्चिदुत्पाटयामास पादपान्पाण्डुनन्दन ।। कांश्चिद्दन्तप्रहारेण कांश्चिद्दन्तप्रघर्षणैः ।। १४ ।। जघान कांश्चित्पुरुषान्रक्षकानन्तकोपमः ।। तद्भुनक्तीति विज्ञाय संहत्योद्यानपालकाः ।। १५ ।। सभयास्तस्य वृत्तान्तमूचुश्च नृपतेः पुरः ।। तदाकार्ण्य ततो राजा क्रोधारुणितलोचनः ।। १६ ।। वधाय दंष्ट्रिणस्तस्य सन्दिदेशाखिलं बलम् ।। ततश्चचाल भूपालस्त्रिगण्डगलितैर्गजैः ।। १७ ।। आप्लावयन्महीं सर्वां वाजिवृन्दकृताम्बराम् ।। चालयन्सकलाञ्छैलान्स्यन्दनौघमरुज्जवैः ।। १८ ।। पत्तिव्रातमहाध्वानैः पूरयन्निखिला दिशः ।। ततो गाढं समावृत्य तदुद्या नं नरेश्वरः ।। १९ ।। उवाचोच्चैरतिध्यानैर्दिशो मुखरयन्दश ।।पथि यस्य वराहोऽयं प्रयात्युपवनान्तरम् ।। २० ।। तस्यावश्यं शिरच्छेदं विदधामि रिपोरिव ।। तस्य भूपस्य तद्वाक्यं समाकर्ण्य स सूकरः ।। २१ ।। जगामास्थैव मार्गेण प्राणिनां चेष्टितं यथा ।। ततः स[2] सूकरासक्तःकशयाऽश्वं प्रताड्य च ।। २२ ।। व्रीडाकलङ्कितास्येन्दुर्मार्गं तस्यैवस्मोऽगमत् ।। गत्वाथ विपिनं घोरं सिंहशार्दूलसंकुलम् ।। २३ ।। तमालतालींहतालशालार्जुनलतान्वितम् ।। झिल्लीझङ्कारसम्भारवाचाटितदिगन्तरम् ।। २४ ।। तत्रैकचेताः संपश्य वने बभ्राम भूपतिः ।। कोलो वेलामवाप्याथ सोऽभवद्राजसंमुखः ।। २५ ।। भल्लेन सोऽवधीत्कोलं वज्रेणाद्रिं यथा भवान् ।। अथ व्योम्नि विमानस्थः स्मरसुन्दरविग्रहः ।। २६ ।। क्रोडरूपं परित्यज्य सोऽब्रवीन्मङ्गलं नृपम् ।। गन्धर्व उवाच ।। स्वस्ति तेऽस्तु महीपाल त्वया मुक्तिः कृता मम ।। २७ ।। यमाकर्णय वृत्तान्तं येनाहं जात ईदृशः ।। एकदा देवतावृन्दैः संवृतः कमलासनः ।। २८ ।। चञ्चत्पुटादिभिस्तालैः षड्जाद्यैः सप्तभिः स्वरैः ।। मन्द्रादिभि स्त्रिभिर्मानैर्गीयमानं मया नृप

१ इत्युक्त्वेति शेषः । २ क्रुद्धो धराशक्र इत्यपि पाठः ।

।। २९ ।। नानास्थानगुणोपेतमश्रौषीद्गीतमुत्तमम् ।। गीयमानश्च्युतः स्थाना त्ततोऽहं कर्मणाऽमुना ।।३० । शप्तश्चित्ररथ स्तेन ब्रह्मणा सृष्टिकर्मणा ।। ब्रह्मोवाच ।। कोलो भव त्वं मेदिन्यां मुक्तिस्तेऽस्तु तदा यदा ।। ३१ ।। निर्जिताखिल भूपालो मङ्गलस्त्वां हनिष्यति ।। तदद्य घटितं सर्वं त्वत्प्रसादान्महीपते ।। ३२ ।। तद्गृहाण वरं भूप यद्देवस्यापि दुर्लभम् ।। महालक्ष्मीव्रतं दिव्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।। ३३ ।। लभस्व सार्वभौमत्वं गच्छ राज्यं निजं द्रुतम् ।। नारद उवाच।। चित्ररथोऽथ गन्धर्व उक्त्वेदं भूपतिं प्रति ।। ३४ ।। अन्तर्धानं गतस्तुष्टः शरत्काल इवाम्बुदः ।। अथ मङ्गलभूपालः पार्श्वस्थं द्विजमागतम् ।। ३५ ।। विलोक्य बटुकं कंचित्कक्षानिक्षिप्तशम्बलम् ।। उवाच मधुरां वाचं स्मितपूर्वा शुचिस्मितः ।। ३६ ।। देवस्त्वं दानवस्त्वं वा गन्धर्वो वाऽथ राक्षसः ।। सत्यं वद बटो कस्मात्किमर्थं त्वमिहागतः ।। ३७ ।। श्रुत्वेत्याशिष्य तं विप्रः प्राह त्वद्देशसम्भवः ।। अहं साद्धं त्वया यातस्तदादिश यथोचितम् ।। ३८ ।। राजाथ तमुवाचेदंत्वं बटो नूतनाह्वयः ।। अपल्याणं विधायाश्वं तूर्णं तोयं ममानय ।। ३९ ।। अथ विभ्राम्य भूपालं बटुको वटपादपे ।। तथाकृतं तुरङ्गं च समारुह्य महामतिः ।। ४० ।। जगाम पक्षिघोषेण यत्रास्ते सुन्दरं सरः ।। कमलैकनिवासेन रथाङ्गाभरणेन च ।। ।। ४१ ।। वनमालालयत्वेन दधन्नारायणीं तनुम् ।। भग्नवायुशतोद्योगमक्षारं विषवर्जितम् ।। ४२ ।। नाशितागस्तितृष्णार्तिप्रसन्नं सागराधिकम् ।। पङ्के मग्नोऽथ तत्राश्वः पृष्ठादुत्तीर्य तस्य सः ।। ४३ ।। चतुर्दिशं निरीक्ष्याथ तस्यैव सरसस्तस्टे ।। दिव्यवस्त्रपरीधानं दिव्याभरणभूषितम् ।। ४४ ।। कथयन्तं कथां दिव्यां स्त्रीणां सार्थमदृश्यत ।। उपसृत्याथ तं सार्थं स्ववृत्तान्तं निवेद्य च ।। ४५ ।। कृताञ्जलिरिति प्राह बटुर्मधुरया गिरा ।। बटुरुवाच ।। एतत्किं क्रियते सार्थ त्वया भक्तिपरेण वै ।। ।। ४६ ।। को विधिः किं फलं चास्य ब्रूहि तन्मे यथातथम् ।। श्रुत्वा च तमुवाचेदं सार्थः करुणया गिरा ।। ४७ ।। सार्थ उवाच ।। शृणु विप्रैकचित्तेन श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। या माया प्रकृतिः शक्तिस्त्रैलोक्येऽप्यभिधीयते ।। ४८ ।। व्रतमेतन्महालक्ष्म्यास्तस्याः सर्वफलप्रदम् ।। आकर्णय विधिं चास्य कथ्यमानं मया बटो ।।४९ ।। भाद्रे मासि सिताष्टम्यामारंभोऽस्य विधीयते। प्रातः षोडशकृत्वस्तु प्रक्षाल्याङ्घ्री करौ मुखम् ।। ५० ।। तं तु षोडशसंसिद्धं ग्रन्थिषोडशसंयुतम् ।। मालतीपुष्पकर्पूरचन्दनागुरुचर्चितम् ।। ५१ ।। लक्ष्म्यै नमोस्तु मन्त्रेण प्रतिग्रन्थ्यभिमन्त्रितम् ।। धनं धान्यं धरां धर्मं कीर्तिमायुर्यशः श्रियम् ।।५२।। तुरगान्दन्तिनः पुत्रान्महालक्ष्मि प्रयच्छ मे ।। मन्त्रेणानेन बद्ध्वाथ

---

१ अहमिति शेषः । २ पाथेयम् । ३ करोमि किमित्यपि पाठः । ४ विभ्रदित्यपि पाठः ।

दोरकं दक्षिणे करे ॥ ५३ ॥ काण्डानि षोडशादाय दूर्वायाश्चाक्षतानि च ॥ एकचित्तः कथां श्रुत्वा पूजयेत्तैश्च दोरकम् ॥ ५४ ॥ ततस्तु प्रातरारभ्य यावत्स्यादसिताष्टमी ॥ तावत्प्रक्षाल्य हस्तौ तु पादादीनि कथां तथा॥ ५५ ॥ शृणुयात्प्रत्यहं विप्र तत्संख्यैरक्षता[1]दिभिः ॥ अथ कृष्णाष्टमीं प्राप्य नक्तकाले जितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ स्नातः शुक्लाम्बरधरो व्रती पूजागृहं विशेत् ॥ तत्रोपविश्य पूर्वास्यश्चारुधौतासनोपरि ॥ ५७ ॥ श्वेतवस्त्रे लिखेदष्टदलं कमलमुत्तमम् ॥ ऐन्द्रयादिशक्तिसंयुक्तपार्श्वपत्रं सकेसरम् ॥ ५८ ॥ कर्णिकायां ततो लक्ष्मीं कर्पूरक्षोदपाण्डुराम् ॥ शुभ्रवस्त्रपरीधानां मुक्ताभरण भूषिताम् ॥ ५९ ॥ पङ्कजासनसंस्थानां स्मेराननसरोरुहाम् ॥ शारदेन्दुकलाकान्ति स्निग्धनेत्रां चतुर्भुजाम् ॥ ६० ॥ पद्मयुग्मामभयदां वरव्यग्रकराम्बुजाम् ॥ अभितो गजयुग्मेन सिच्यमानां करांबुना ॥ ६१ ॥ सञ्चित्यैवं लिखेद्देवीं कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ ततस्त्वावाहनं कुर्यान्मंत्रेणानेन सुव्रती ॥ ६२ ॥ महालक्ष्मि समागच्छ पद्मनाभपदादिह ॥ पञ्चोपचारपूजेयं त्वदर्थं देवि कल्पिता ॥६३॥ षोडशाब्दे तु सम्पूर्णे कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ विधिना येन विप्रेन्द्र शृणु श्रद्धासमन्वितः ॥ ६४ ॥ दातव्याधेनुरेका वै स्वर्णशृङ्गादिसंयुता ॥ श्रोत्रियाय सुवर्णं च तथान्नवसनादिकम् ॥ ६५ ॥ यथाशक्त्या सुवर्णं च दत्त्वा पूर्णम् भवेद्व्रतम् ॥ द्विजेभ्यः षोडशेभ्यश्च प्रदद्याद्वसनादिकम् ॥ ६६ ॥ सार्थ उवाच ॥ एतत्ते कथितं विप्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ तद्विधानादनायासाल्लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ६७ ॥ कृत्वा व्रतं परं विप्र त्वं राज्ञा-तच्चकारय ॥ व्रतमेतत्त्वया विप्र देयं श्रद्धावते परम् ॥ ६८ ॥ नास्तिकानां पुरस्तात्तु न प्रकाश्यं कथञ्चन ॥ नमस्कृत्वाथ तं सार्थं पङ्कादुत्थाप्य वाजिनम् ॥ ६९ ॥ सरसोऽम्भस्तथादाय पद्मिनीपत्रयन्त्रितम् ॥ आरुह्य तुरगं विप्रो राजान्तिकमुपागमत् ॥७०॥ निवेद्य तद्व्रतं विप्रो राजानं तदकारयत् ॥ नानाप्रकारं सम्भूतं शम्बलं बटुकस्य च ॥ ७१ ॥ व्रतप्रभावादभवत्सभूभृद्भूभृतां वरः ॥ अथारुह्य महीपालौ बटुपर्याणितं हयम् ॥ ७२ ॥ तद्व्रतस्य प्रभावेण तूर्णं स्वपुरमागतः ॥ तमायान्तं समालोक्य राजानं भूपुरन्दरम् ॥ ७३ ॥ उत्सवं चक्रिरे पौरास्तूर्यादिकपुरःसराः ॥ चलत्पताकदोर्मालं लसत्कलशमौलिकम् ॥ ७४ ॥ पुरं नृत्यदिवाभातिच्छत्रघण्टौघघर्घरैः ॥ अथोत्कलिकया काचिद्धावति स्म वराङ्गना ॥ ७५ ॥ स्खलन्मुक्तालताजालैश्चतुष्कमिव कुर्वती ॥ काचिद्विमुक्तकेशैव कृतैकनयनाञ्जना ॥ ७६ ॥ काचिन्नितम्बभारार्ता काचित्पीनपयोधरा ॥

१ अक्षतदूर्वाकाण्डादिभिः । २ यद्यप्येतद्वृत्तमालयस्तेहि कथित इति स्थापनमन्त्रप्रभृति पंकजं देवि संत्यज्येति विसर्जनमंत्रान्तो ग्रन्थो व्रतार्कप्रभृतिष्वधिक उपलभ्यते तथाप्येतद्ग्रन्थकृत्यतः प्रागेव पूजाप्रकारो लिखितस्तत्रैवैतन्मंत्राणां लिखितत्वादत्र न लिखितास्ते ॥

अथाविशन्महीपालो बटुना सहितो गृहम् ।। ७७ ।। पौर नारीजनक्षिप्तलाजैः पूरितविग्रहः ।। अथोत्तीर्य हयात्तस्माद्बटुबाह्ववलम्बितः ।।७८।। जगाम मङ्गलो राजा चोलदेवी तु यत्र वै ।। दृष्ट्वा तु चोलदेवी सा दोरकं राजबाहुके ।। ७९ ।। विमृश्य मनसा क्रुद्धा शङ्कां चक्रे नृपे त्विमाम् ।। आखेटकस्य व्याजेन गतोऽन्यां वल्लभां प्रति ।। ८० ।। सौभाग्याय तया बद्धो दोरको राजबाहुके ।। तथैव बटुकश्चायं द्रष्टुं मां प्रेषितो ध्रुवम् ।। ८१ ।। ततो दुर्दैवदुष्टात्मा कोपादाच्छिद्य दोरकम् ।। चिक्षेप च महीपृष्ठे स्वसौभाग्यसुखैः सह ।। ८२ ।। न बुबोध च तां राजा त्रोटयन्तीं च दोरकम् ।। सामन्तमन्त्रिभृत्याद्यैः कुर्वन्वार्तां वनोद्भवाम्।।८३।। चिल्लदेव्यास्तदा काचिद्दासी द्रष्टुं समागता ।। तया दोरकमादाय बटुमापृच्छ्य तद्व्रतम्।।८४।। तद्व्रतस्य विधानं च स्वस्वामिन्यै निवेदितम् ।। ततो नूतनमाहूय चिल्लदेव्यकरोद्व्रतम् ।। ८५ ।। अथ संवत्सरेऽतीते लक्ष्मीपूजादिने नृप ।। तौर्यत्रिकस्य निस्वानं चिल्लदेव्या गृहेऽशृणोत् ।।८६।। तदाकर्ण्य महीपालो नूतनं बटुमब्रवीत् ।। अहह्राद्य दिनं लक्ष्म्याः स व्रतस्य क्व दोरकः ।। ८७ ।। इति पृष्टो नृपं प्राह दोरकत्रोटनक्रमम् ।। तच्छ्रुत्वा मङ्गलो राजा चोलदेव्यै प्रकुप्य च ।।८८।। मयाद्य पूजनं कार्यं चिल्लदेवीगृहं प्रति ।। अथ मङ्गलभूपालो बटुबाह्ववलम्बितः ।। ८९ ।। चचाल कमलार्चायै चिल्लदेवीगृहं प्रति ।। ९० ।। अत्रान्तरे महालक्ष्मीवृद्धारूपं विधाय च ।। जिज्ञासार्थं गृहं तस्याश्चोलदेव्याः समागता ।। ९१ ।। गच्छ गच्छाद्य दुष्टे किमिहागत्य करोषि मे ।। तया दुराशयात्यर्थं लक्ष्मी साप्यवमानिता ।। ९२ ।। चोलदेवीं शशापाथ महालक्ष्मीरतिक्रुधा ।। कोलास्या भव दुष्टे त्वं यतोऽहमवमानिता ।। ९३।। चोलदेवी श्रियः शापात्कोलास्या तत्र साभवत् ।। कोलापुरमिति ख्यातं क्षितौ तन्मङ्गलं पुरम् ।। ९४ ।। अथायाता महालक्ष्मीश्चिल्लदेवीनिकेतनम् ।। बहुधा चिल्लदेव्या सा लक्ष्मीः संमानितार्चिता ।। ९५ ।। वृद्धारूपं परित्यज्य प्रत्यक्षा साभवत्तदा ।। पञ्चोपचारपूजाभिः श्रियं राज्ञी ततोऽर्चयत् ।। ९६ ।। अतितुष्टा ततो लक्ष्मीश्चिल्लदेवीमुवाच ह ।। लक्ष्मीरुवाच ।। अर्चनात्ते प्रसन्नास्मि चिल्लदेवि वरं वृणु ।। ९७ ।। वव्रे वरं ततो राज्ञी चिल्लदेवी शुभाशया ।। चिल्लदेव्युवाच ।। ये करिष्यन्ति ते देवि व्रतमेतत्सुरेश्वरि ।। ९८ ।। तद्वेश्मन त्वया त्याज्यं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।। अद्यारभ्य कथा ह्येषा भूपसंबन्धिनी तु या ।। ९९ ।। ख्यातिं यातु क्षितौ देवि भक्तिर्भवतु मे त्वयि ।। सद्भावेन कथामेतां ये शृण्वन्ति पठन्ति च ।।१००।। तेषां च वाञ्छितं सर्वं त्वया देयं सदैवहि ।। तथेत्युक्त्वा महालक्ष्मीस्तत्रैवान्तरधीयत ।। १०१ ।। अथ मङ्गलभूपालस्तत्रागत्य श्रियोऽर्चनम् ।। चक्रे परमया भक्त्या चिल्लदेव्या समन्वितः ।। २ ।। अथेर्ष्यया दुराचाराचिल्लदेवीगृहं प्रति ।। चोलदेवी समायात द्वारस्थैर्वारिता जनैः

॥ ३ ॥ ततो जगाम विपिनं यत्रासीदङ्गिरा मुनिः ॥ अथालोक्याद्भुताकारां ज्ञानदृष्ट्या विचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥ मुनिस्तु श्रीव्रतं दिव्यं चोलदेवीमकारयत् ॥ व्रते कृतेऽथ सञ्जाता चोलदेवी महायशाः ॥ ५ ॥ दाक्षिण्यकेलिलीलाभिर्लावण्यैकनिकेतनम् ॥ ततः कदाचिदागत्य वनमाखेटके नृपः ॥ ६ ॥ मुनेर्वेश्मनि राजा तां ददर्श वामलोचनाम् ॥ अथ राजा मुनिं प्राह केयं धन्येति कथ्यताम् ॥ ७ ॥ तत्वृत्तान्तं समाख्याय राज्ञे तां प्रददौ मुनिः । अथागत्य निजं राज्यं चोलदेवीसमन्वितः ॥ ८॥ चिल्लदेव्या च सहितो बुभुजे मङ्गलो नृपः ॥ चिल्लदेवी वरं चक्रे चोलदेवी समागमम् ॥ ९ ॥ समुद्रस्य यथा गङ्गायमुने सङ्गते सदा ॥ तथा मङ्गलभूपस्य जाते ते वामलोचने ॥ १० ॥ परस्पराधिके ते तु प्रिये राज्ञो बभूवतुः॥ चिल्लदेव्या समं सोऽथ चोलदेव्या सहाखिलाम् ॥ ११ ॥ सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं बुभुजे मङ्गलो नृपः ॥ व्रतस्यास्यैव सामर्थ्याद्वटुकः सोऽपि नूतनः ॥ १२ ॥ अभून्मङ्गलभूपस्य मन्त्री तव यथा गुरुः ॥ भुक्त्वाथ सकलान्भोगान् मङ्गलो भूभुजां वरः ॥ १३ ॥ स पुनः स्वर्गमेत्या भून्नक्षत्रं विष्णुदैवतम् ॥ नारद उवाच ॥ एतत्ते कथितं शक्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ १४ ॥ यत्कथाश्रवणेनापि लभते वाञ्छितं फलम् ॥ प्रयागमिव तीर्थेषुदेवेषु भगवानिव ॥ १५ ॥ नदीषु च यथा गङ्गा व्रतेष्वेतेषु तद्व्रतम् ॥ धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च यदि वाञ्छसि ॥ १६ ॥ तर्हीदं च व्रतं शक्र कुरु श्रद्धासमन्वितः ॥ धनं धान्यं धरां धर्मम् कीर्तिमायुर्यशः श्रियम् ॥ तुरङ्गान् दन्तिनः पुत्रान् महालक्ष्मीः प्रयच्छति ॥ १७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ व्रतमिदमथ चक्रे नारदेनोपदिष्टं सुरपतिरपि यस्माद्वाञ्छितार्थं स लेभे ॥ त्वमपि कुरु तथैतद्धर्मसूनो यथा स्यादभिमतफलसिद्धिः पुत्रपौत्राभिवृद्धिः ॥ ११८ ॥ इति श्रीभविष्योक्ता महालक्ष्मीव्रतकथा संपूर्णा[1] ॥

महालक्ष्मी व्रत—भाद्रपद शुक्लाष्टमीसे लेकर सोलह दिनतक यह होता है, यह व्रत आधीरातको अतिक्रमण करके वर्तनेवाली अष्टमीमें करना चाहिये, यह चन्द्रप्रकाश ग्रन्थमें दूसरी स्मृतियोंसे कहा गया है कि, उत्तरातिथि अर्ध रात्रिका अतिक्रमण करके वर्ते, उसमें मनुष्योंको चाहिये कि, महालक्ष्मी व्रत करें। ज्येष्ठानक्षत्रयुत अष्टमीमें प्रारंभ करना चाहिये, यही स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है—भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जब ज्येष्ठा नक्षत्रके साथ अष्टमी हो तो यतात्म पुरुषोंको उसमें प्रतका प्रारंभ कर देना चाहिये। यदि ज्येष्ठानक्षत्रके साथ अष्टमी न मिले तो केवलमें भी व्रत करदेना चाहिये और समाप्ति तो चन्द्रोदयव्यापिनीं कृष्णाष्टमीमें ही करनी चाहिये क्योंकि ऐसा कहा गया है कि, चन्द्रोदयके व्रतमें तात्कालिकी (चन्द्रोदयव्यापिनी) अष्टमीमें व्रत करना चाहिये। यदि दो दिन चन्द्रोदय व्यापिनी हो अथवा दोनोंही दिन चन्द्रोदय व्यापिनी न हो, "और कृष्णपक्षमें अष्टमी" इत्यादि वाक्योंसे पूर्वाकाही ग्रहणहोता है। अपर दिनमें यदि चन्द्रोदयके बाद तीन मुहूर्त हो तो परकाही ग्रहण होता है, यदि मदनरत्नने पुराणसमुच्चयसे कहा है कि, पूर्वा हो अथवा परविद्धा हो सदा

१ एतदुत्तरं सविस्तर उद्यापनविधिर्व्रतार्के उक्तस्तत एवावगंतव्यः ।

चन्द्रोदयके बाद तीन मुहूर्त हो, तो पूज्य है इससे और अधिक समय रहती हो तो और भी अच्छा है। पूजन–हे महालक्ष्मि ! पद्मनाभके पदोंसे यहां आ, हे देवि ! वह पञ्चोपचार पूजा तेरे लिये रखी है, इससे आवाहन; हे कमलालये ! तुम्हारा आलय कमल कहा गया है। हे कमले ! इस कमलपर आप कृपाकरके विराज जायँ, इससे स्थापन; हे कमले। मेरी रक्षाकर हे देवि ! मैंने परम भक्तिसे यह शुभ स्वर्णसिंहासन दिया है आप इसे ग्रहण करें। इससे आसन; गंगा आदिके पानीका आधार तीर्थ मन्त्रोंसे अभिमंत्रित दूरकी यात्राके श्रमको हरनेवाले मेरे पाद्यको ग्रहण करिये, इससे पाद्य, हे देवेशि ! हे देवताओं का उपकार करने-वाली ! पापोंके नष्ट करनेवाले महादिव्य तीर्थोंके पानीद्वारा संपादित अर्घको ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य; हे संसारकी प्यारी ! हे जगतकी आधार ! हे लक्ष्मि ! हे सिद्धि। हे चपले ! हे देवि ! तेरे लिये तोय दे दिया है इसे ग्रहणकर तेरे लिये नमस्कार है, इससे आचमन; "पयोदधि" इससे पंचामृतस्नान; हे महालक्ष्मि ! यह पानी कपूर और अगरसे सुगन्धित है तीर्थोंसे लाया गया है आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें, इससे स्नान; "सूक्ष्मतन्तु" इससे वस्त्र; कंचुकी, अनेक तरहके सौभाग्य द्रव्य, मलय गिरिपर पैदा हुआ अनेक तरहके सर्पोंसे रखाया अत्यन्त सुगन्धित एवं ठण्डे इस चन्दनको ग्रहण करिये, इससे चन्दन, संगम होते ही सुगन्धितसे तरकर देनेवाला जिसपर कि मत्त भौंरा गुंजार कर रहे हैं आनन्द करनेवाला नन्दनसे उत्पन्न हुआ यह फूल है, पद्माके लिये नमस्कार इसे ग्रहण करिये, इससे पुष्प समर्पण करना चाहिये ।। नाम पूजा–अब नामोंसे पूजा कहेंगे, नाममंत्र मूलमें दिये हैं पहिले 'ओं श्रिये न०' ऐसा लिखा है, बिन्दीका मतलब नमः से है यानी 'श्रिये नमः' श्रीके लिये नमस्कार इसी तरह जितने भी नाममंत्र हैं उनका भाषामें अर्थ करती बारके लिये 'नमस्कार' इतना और लगानेसे नाम मंत्रका अर्थ हो जायगा । श्री, लक्ष्मी, वरदा, विष्णुपत्नी, क्षीरसागरवासिनी, हिरण्यरूपा, सुवर्णमालिनी, पद्मवासिनी, पद्मप्रिया, मुक्तालङ्कारिणी, सूर्य्या, चन्द्रानना, विश्वमूर्ति, मुक्ति, मुक्तिदात्री, ऋद्धि, समृद्धि, तुष्टि, पुष्टि, धनेश्वरी, श्रद्धा, भोगिनी, भोगदा, धात्री ये लक्ष्मीजीके नाम हैं। ऊपर लिखे नाम मंत्रोंसे पुष्प चढ़ोनें चाहिये। गंधके संभारसे भरा हुआ जिसमें कि, कस्तूरीकी सुगन्धि आरही है जिससे कि, सुर असुर और मनुष्य सबको आनन्द पहुँचता है, हे देवि ! मेरे उस धूपको ग्रहणकर, इससे धूप; हे देवि ! आपकी भक्तिसे यह दीपक बनाया है। यह मार्तण्डके मण्डलके खण्ड तथा चन्द्रबिम्ब और अग्नि तथा तेज इनका निधान है, आप इसे ग्रहण करें, इससे दीप, देवालय, पाताल और भूतलपर होनेवाले धान्योंसे बनाया गया सोलह तरहका नैवेद्य है इसे ग्रहण करिये इससे नैवेद्य; स्नानादि करके भी जिससे शुद्धि होती है, हे महालक्ष्मि ! इस आचमनीयको आप करें, इससे आचमन; करोद्वर्तन; पातालके ऊपरसे पैदा हुआ जो मुखकमलका भूषण है ऐसे अनेक गुणोंसे व्याप्त इस ताम्बुलको ग्रहण करिये, इससे ताम्बूल; 'हिरण्य-गर्भ' इससे दक्षिणा; हे महालक्ष्मि ! तेरे लिये नमस्कार है। सुमंगलीक कर्पूरसे समान्वित एवं चन्द्र सूर्य और वायुके समान इस नीराजनको ग्रहण करिये, इससे नीराजन; शरद ऋतुके चन्द्रकलाकी-तरह कान्तिवाली प्रेमपूर्ण नयनोंवाली चतुर्भुजी तथा दो हस्तकमलोंसे कमल तथा एकमें अभय और एकहाथ वर देनेमें ही व्यक्त है, इससे पुष्पाञ्जलि; हे लक्ष्मि देवि ! जैसे आप विष्णुके वक्षस्थल, पद्म, शंख, चक्र और अंबरमें सदा विराजी रहती हो इसीतरह मेरेमें भी सदा रहो, इससे प्रार्थना समर्पण करनी चाहिये। डोरेको उतारकर लक्ष्मीके पास रखदे कि, हे देवि ! जो डोरा मैंने धारण किया था उसे तू ग्रहणकर, मुझपर कृपा करिये, मेरा व्रत पूरा होजाय। कथा सुनकर आचार्य्य दक्षिणामें सोना दे, इस प्रकार विधिके साथ व्रतको पूरा करके बटुक और सौभाग्यशालिनी स्त्रियोंका पूजन करके चारों वर्णोंके लोगोंको भोजन कराकर शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे सोलह सोलह दीपक और गेहूंके पूओंको ब्राह्मणके लिये दे। सोलही आप खाकर रातमें जागरण करे। व्रतको चाहिये कि चन्द्रोदयके समय अर्घ्य दे, हे विप्रेन्द्र ! शंखमें पानीभर उसमें फल डाल इस मंत्रसे दे कि, हे निशाके नाथ ! मेरे लिये नमस्कार है, हे लक्ष्मीके भ्रातः। तेरे लिये नमस्कार है, मेरा व्रत पूरा होजाय अर्घ्य

ग्रहण कर, इससे चन्द्रमाको अर्घ्य दे। हे सुव्रत ! देवीकी प्रतिमाका विसर्जन कर दे। उसका यह मंत्र है कि, हे देवि ! कमलको छोडकर मेरे घरमें प्रविष्ट होजा, जिससे में आपके प्रसादसे पुत्र भृत्योंके साथ सुखी रहूँ, इससे विसर्जन करना चाहिये। यह पूजन पूरा हुआ।। कथा-स्कन्द बोले कि, हे शंकर। सौभाग्यके कारण तथा स्त्रियोंके दौर्भाग्यको काटनेवाले एवं परमैश्वर्यके जनक किसी व्रतको कहिये।।१।। ईश्वर बोले कि, हे महाबाहो ! बहुत अच्छा है बहुत अच्छा है हे निष्पाप ! जो तुमने पूछा वह सर्वोत्तम है। मैं तुम्हे व्रतोंमेंसे एक उत्तम व्रतको कहता हूं।।२।। जिसके करनेसे मनुष्य किसी तरह कभी भी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता, दुर्भगा सुभगा होजाती है ! कभी विधवा ही नहीं होती।।३।। हे षडानन ! महालक्ष्मी देवीका पुण्यव्रत है वो स्त्री पुरुष दोनोंके सब दुखोंको नष्ट करता है।।४।। स्कन्द बोले कि, देवीके चरितका माहात्म्य मनुष्य लोकमें किसने प्रकाशित किया ? हे महाविभो ! इसका क्या विधान है ? यह कहिये।। ५।। शंकर बोले कि, पहिले सौत्रर्वतक देवासुर संग्राम हुआ था, लडाईमें असुरोंका अधिप वृत्र तथा देवोंका प्रधान इन्द्र था।।६।। उस युद्धमें नारायण भगवानके बलके आश्रयसे महाबली बने देवताओंने असुरोंको जीत लिया सब असुर पाताल तल चले गये।।७।। कुछ लंका चलेगये, कुछ वरुणके आलयमें प्रविष्ट हो गये, कोई बलवान् गिरीदुर्गका आश्रय लेकर बैठ गये।।८।। उनमें एक महाबली महा वीर्यवान् कोलासुरनामका असुर था, वो गोमन्तनामके दुर्गम गिरिदुर्गका आश्रय लेकर निर्भय हो गया।।९।। लोकमें जो राजकन्याएँ परम गुणवती तथा सुन्दरथीं सब ओरसे उन्हें अपने गिरि दुर्गमें लेकर रमण करने लगा।।१०।। वो कामरूपी आकाशका विचरनेवाला, राजकन्याओंसे रमण करके उन्हें दुर्गमें फेंक देता था, इसी समय दो श्रेष्ठ मुनि चले आए।।११।। ये वेदके प्रभावसे सम्पन्न थे एकका नाम पुलस्त्य तथा दूसरेका नाम गौतम था, इनका आना तीर्थयात्राके लिए था, इन्होंने मनुष्योंसे सब समाचार सुने।।१२।। कि, कोलासुर कन्याओंके लिए कितना उत्पात करता है, हे शिखिध्वज ! उनसे सब जनोंसे कहा कि, अगस्त्य महामुनि हैं।।१३।। जिन्होंने समुद्रको पिया था, विन्ध्याचल लिटा दिया था, वातापी और इल्वल नामके दो दैत्योंको भी उसने मारा था।।१४।। हस सब कोलासुरके वधके लिए उसके पास चलें इस प्रकार सलाहकरके सबने अगस्त्यजीके पास पहुंच उन्हें प्रणाम किया।।१५।। सबने कोलासुरके सब कोल कारनामें कह सुनाए उसे सुनकर परम बुद्धिमान अगस्त्यजी कहनेलगे।।१६।। कि, रचना, स्थिति और विनाशके कारण भक्तवत्सल ब्रह्मा विष्णु और महेशजी रामके पर्वतपर तपश्चर्या करते हैं।।१७।। तीनों सन्ध्यायें शरीर धारण करके उनकी सेवामें लगी हुई हैं, महालक्ष्मी उनमें प्रविष्ट होकर शक्तिरूपसे संस्थित है।।१८।। वो देवी सर्वशक्तिमती लोकोंके कल्याणके लिये ही ऐसा कर रही है। इतना करनेपर वे सब वहां शीघ्रही उपस्थित हो गये क्योंकि, ये तो कोलासुरकी मौत चाहते थे।।१९।। तीनों देवोंसे सब कुछ कहकर हाथ जोडकर खडे हो गये उस सब समाचारको सुन, ब्रह्मा विष्णु और महादेवजीने।।२०।। तीनों सन्ध्याओंको बुलाकर यह बचन कहा कि, नम्र सुरोंके समुदायों-के इन्द्रोंके मौलिके माणिक्योंका चरणोंका मण्डनवाली।।२१।। महालक्ष्मी युद्धमें कोलासुरको मारेगी। आप सब मूर्तिमतीही रह अच्छे दण्ड शूलादिक।।२२।। एवं अनेक तहरके आयुधोंको ले युद्धमें विजय प्राप्त करें, आपकी सहायतामें तो आपके क्रोधसे उत्पन्न हुआ।।२३।। पहिला भूतनाथ (भैरव) है यह होगा इसप्रकार कहनेपर शीघ्रही पहुंच कर कोलनामके राक्षसको घेर लिया।। २४।। देवी पुरीको रोककर बादलकी तरह गर्जना लगी जिससे दिशायें गूंज उठीं और उसका क्रोध बढने लगा।।२५।। कोलासुर उस शब्दको सुन क्रोधसे लालआँखें करके अपने बडे आसनसे इस प्रकार उठकर झपटा जैसे क्रोधके मारे लाल लाल नेत्र किए हुए बबर शेर मेरुसे झटपता हो।।२६।। वो हाथी घोडा और रथ के सवार तथा पदाति इन चारों प्रकारकी सेनाओंके साथ था, अपने नगरसे युद्धके लए इस प्रकार निकला जैसे काली मेघमालाओंसे वज्र निकलता हो।।२७।। यह कुण्डल और कवच

पहिने हुए था शिरपर शिरस्त्राण था निखङ्ग पीठपर था, तीर फेंकनेके समयकी हाथ और अंगुलियोंको बजानेवाली पट्टियां बांधे था वह ऐसा दीखता था मानों दूसरा वृत्रक्रुद्ध हो रहा हो ।।२८।। उसकी सेना भूतनायके साथ भिडगई, असुरसमूह आगकी बडी भारी उल्काओंको लेकर भीषण युद्ध करने लगा ।।२९।। बडे भारी रावोंसे, भयंकर घोषोंसे फेकारके शब्द करनेवाले बाणोंसे, गो और गदहोंके शब्दों से, लोक शब्दमय होगया ।।३०।। मार दो मार दो भेद दो भेद दो इस प्रकार कहते हुए एकपर एक झपटते थे, घूसा घुस्सी, बाल पकडा पकडीका घोर समर उत्तरोत्तर बढने लगा ।।३१।। महाबलशाली भूतनाथने जब यह देखा कि, राक्षसोंकी सेना कुछ उद्धत हो चली है तो बाणोंकी कठोर वर्षासे उसका मर्दनकर दिया ।।३२।। युद्धमें अपनी सेनाको मरता देख कोलासुरको बड़ा क्रोध आया झट भैरवके ऊपर झपटकर गदाका वार किया ।।३३।। उससे उसका माथा फूट गया जिससे भैरवको मूर्च्छा आगयी, देवियाँ यह देख उद्धत कोलासुर पर एकदम झपटीं ।।३४।। त्रिशूलोंसे उसे अभिहत किया पट्टिशोंसे उसका अभिघात किया मुक्कोंसे उसे खूब ताडना दी नाखूनोंसे खूब नोंचा ।।३५।। जैसे शेर अपने पञ्जोंसे बडे सारे हाथीकी दुरुस्ती करता है, इसी तरह लातोंसे खूब ठीक किया । तब तो असुर अपने होठोंको चबा आंखोंको लाल २ करके ।।३६।।मुंह और भ्रकुटियोंको चढा, देवियोंके शिर कण्ठ कन्धे और पेटपर बारबार गदा मारने लगा ।।३७।। युद्धमदसे हँसती हुई देवियोंने उस गदाको तोडडाला, इसके बाद वो धनुष लेकर बाण वर्षा करने लगा ।।३८।। उसने बडे २ तीरोंसे देवियोंके मर्म छेडदिए तथा वैसेहि तीरोंसे उनके हृदयको छेदकर अत्यन्त वैर माननेवाला यह हर्ष प्रकट करनेलगा ।।३९।। उसके इस हालसे देवियोंने क्रोधसे आकाश में घुमाकर फेंक दिया ।।४०।। जबतक कि, कोलासुर उठना चाहता है उसी आकाशमें लक्ष्मी उसे पैरोंसे मथकर दुःख पहुंचाती है ।।४१।। उसके चरणोंसे पीडित हुआ दैत्य अपनी आंखोंको एकदम खोलकर गला फाड चिंघाड मार कर मरगया ।।४२।। उसके इस प्रकार मर जानेपर मारे आनन्दके देवनाथ, मनुष्य, गन्धर्व और ऋषि स्तुति करने लगे, देवियाँ नाचने लगीं ।।४३।। देवता दुन्दुभि बजाने लगे पुष्पवृष्टि गिरने लगी, दिशाएँ प्रसन्न होगयीं, मन्द मन्द हवायें चलने लगीं, जगत स्थित होगया ।।४४।। सुर और असुरोंके शिरके रत्नोंसे पीडित हैं चरणकमल जिनके ऐसी देवियाँ दिव्य विमानसे कोलापुर गयीं ।।४५।। छूट गयी है पैरोंसे शृंखला जिसके ऐसा राजकन्याओंका गण लक्ष्मीको आता हुआ देखकर आनंदसे भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा ।।४६।। राजकन्याएं बोलीं कि, नमस्कार करनेको आये हुए विनम्र वीर देव समुदायके किरीटरत्नोंकी आभाके निकरसे बना दिया है रत्न दीप जिनका, ऐसे आपके युगल चरणोंको हम भजते हैं जो जनोंकी शरण हैं हम चाहतीं हैं कि, हमारे मंगल आपके चरणोंसे बढें ।।४७।। खिले हुए कमलकी तरह बडे २ हैं नेत्र जिनके गण्डस्थलपर लटकी, हुए हिल लहे हैं कुंडल जिसके चन्द्रमाके मुकाबिलेका है कोमल मुख जिसका ऐसी परम शोभामयी कमलनयनकी प्यारी कमलाके लिये नमस्कार है ।।४८।। अच्छे भक्तोंकी कल्पवृक्षकी लता, भगवान्के कंठकी अलंकृति, केयूर (कडूले) और हेमके कटक तथा उज्वल कंकणोंसे अच्छी तरह सुशोभित है लक्ष्मीदेवि ! संसाररूपी समुद्रके मुखमें गिरते हुए मुझे, हे प्रद्युम्नकी मा ! अपने हाथका अवलंब दे दे ।।४९।। हे देवि ! आपने भी अनेकों जनोंको देखाहै आपने ब्रह्माका तो आधिपत्य प्राप्त किया जिस चंचलने विष्णु भगवान्के वक्षस्थलमें खेलकी कमलमालाका भ्रम कर दिया । क्लेशरूपी अग्निसे जले हुए जो जन आपके दोनों चरणारविन्दोंकी सेवामें लगे हुए हैं, हे अम्बे ! हे ईश्वरि ! कारुण्य-रूपी अमृतके सारसे भरे हुए नेत्रोंसे ऐसे अपने जनोंकी रक्षा कर ।।५०।। मल्लीके खिले हुए फूलोंसे उज्ज्वल है, मध्यभाग जिसका ऐसे केश पाशके भारसे जीत लिया है तारे खिला हुआ अभ्र जिसने एवम् अच्छे तपाये हुए सोनेकी जांचके पत्थरपरकी लकीरकी परह शरीरकी उज्ज्वल कान्तिवाली लक्ष्मी देवी स्वयंही, प्रणाम करनेवाले जनोंको श्रीका विस्तार करे ।।५१। भक्तोंके इष्ट देनेवाली महालक्ष्मीकी, जब इस प्रकार प्रार्थनाकी गई तो उसने यह वरदिया कि, । जाओ अभी योगिनी हो

जाओ ॥५२॥ उन्हें देखकर देवीने आनन्दसे अपना सारूप्य दे दिया एवम् उनसे सेवित हुई उसने वरने योग्य वरभी आनन्दसे दे दिया ॥५३॥ राजकन्यायें छूटकर अपने घर चली आई, उसी दिनसे वे लोकमें पूजी जाने लगीं और सब कामनाओंकी देनेवाली हुईं ॥५४॥ वे चौंसठ योगिनी महालक्ष्मी के परिग्रहसे तहां गानेबजानेके निनादोंके साथ समुदायसे नाँचती हैं ॥ ५५ ॥ करहाटपुरमें रातको महालक्ष्मीजीके सामने, हे षडानन ! विष्णुकी प्यारी लक्ष्मीदेवीका यह प्रभाव है ॥५६॥ सब भूतोंमें लक्ष्मी प्रसिद्ध होगई इसके प्रभावको ब्रह्मा भी कहनेकी शक्ति नहीं रखता ॥ ५७ ॥ मैं इसके व्रतको विधानके साथ कहता हूं आप सुनें, भाद्रपदशुक्ला ज्येष्ठानक्षत्र सहिता अष्टमीके दिन ॥ ५८ ॥ नियम-वालों को महालक्ष्मीके व्रतका प्रारम्भ करना चाहिये कि, हे देवि ! में तेरा भक्त तेरेमें परायण होकर व्रत करूंगा ॥५९॥ आपकी कृपासे वहनिर्विघ्न समाप्त होजाय ऐसा कहकर दांये हाथमें डोला बाँधे ॥ ६० ॥ उसमें सोलह गांठ और इतनी ही लर होनी चाहिये । पीछे रोज समाहित चित्त होकर महालक्ष्मीकी पूजा करे ॥ ६१ ॥ गंध पुष्प और नैवेद्यसे जबतक कृष्णाष्टमी न आये तबतक रोज पूजाता रहे उसदिन तो व्रतीको उद्यापन करना चाहिये ॥ ६२ ॥ वस्त्रका एक छोटासा मण्डप बनाये उसे माला और आभरणोंसे सुशोभित करे अनेकों दीपक जलाके इसमें तीन भूमिकाए हों एवं सुन्दर हो ॥ ६३ ॥ लक्ष्मीकी चार सोनेकी प्रतिमा बनावे पञ्चामृतके विधानसे उन्हें स्नानकरावे ॥ ६४ ॥ सोलहों उपचार तथा धूपदीप आदिसे पूजन करे, गानेबजानेके साथ रातमें जागर करना बचाहिये ॥ ६५ ॥ जब आधीरातको चन्द्रमाका उदय होजाय तब स्थण्डिलपर पद्म बनाकर षडङ्गपूजन करना चाहिये ॥६६॥ एकाग्रचित्त होकर व्रतीको अर्घ्य देना चाहिए कि, हे क्षीर-समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले लक्ष्मीके भाई ! ॥६७॥ हे अमृतके घर ! रोहिणी सहित, अर्घ्य ग्रहण कर, इसके बाद पवित्र हो श्रीसूक्तसे आगमें कमलोंका हवन करे ॥६८॥ पायस और बिल्व तथा इनके अभावमें घृतको हवन करे । ग्रहोंके लिये समिध चरु और तिलकी आहुति दे ॥६९॥ जानु (घोंटू) को भूमिपर टेककर मंत्रसे प्रार्थना करे कि, क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हुई कमलके आसनपर विराजमान होनेवाली कमले ! ॥७०॥ हे विष्णुभगवानके वक्षस्थलको स्थल करनेवाली ! मुझे सब काम दे तथा यश, सौख्य, सौभाग्य और पुत्रोंको दे ॥७१॥ हे कालि ! कालि ! हे महाकालि । हे विकरालि तेरे लिये नमस्कार है । हे तीनों लोकोंकी जननी ! हे भक्तवत्सले ! हे वरोंके देनेवाली ! मेरी रक्षा कर ॥७२॥ हे एकही सर्वोपरि मालकिनि ! हे जगत्की मालकिनी ! हे जमदग्निकी प्यारी ! हे निष्पाप ! हे रेणुके! हे देवि ! मेरी रक्षाकर, हे रामकी माता ! कल्याण कर ॥७३॥ हे महालक्ष्मि ! आप श्री करें, अश्रीका शीघ्रही विनाश करें इन मंत्रोंसे महालक्ष्मीकी प्रार्थना करके वेद पाठियोंकी स्त्रियोंको ॥७४॥ चन्दन, तालपात्र, पुष्पमालादिक तथा नये शरावमें और भी अनेक तरहके भक्ष्य रख ॥ ७५ ॥ सुपारीसे भर दूसरे शराव (सकोरा) से ढकदे और उनमेंसे सोलह २ मंत्रसे देदे ॥७६॥ क्षीरसमुद्रसे पैदा हुई चन्द्रमाकी सहोदर वहिन विष्णुकी प्यारी लक्ष्मी इस व्रतसे सन्तुष्ट हो प्रसन्न हो ॥७७॥ इन्दिरा ही देती और इन्दिरा ही लेती है हम तुम देनेवाले और लेनेवाले दोनोंकी इन्दिरा ही तारक है, उस इन्दिराके लिये नमस्कार है ॥७८॥ श्रोत्रियोंकी स्त्रियोंको और भी अनेक तरहकी भेंटदे चारों प्रतिमाओंको ब्राह्मणके लिये देदे ॥७९॥ व्रती इस कृत्यको समाप्त करके भोजन करे, स्कन्द बोले कि, इस व्रतको सबसे पहिले किसने किया? किसने इसे प्रकाशित किया ॥८०॥ जो आप मुझसे प्यार रखते हैं तो इस वृत्तको यथार्थरूपसे कहिये, शंकर बोले कि, पहिले कोई मंगलार्ण नामका चक्रवर्ती राजा था यह हमने सुना है ॥८१॥ सुन्दर कुण्डन नगर उसकी राजधानी थी । उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था । उसके पास एक उत्तम ब्राह्मण नौकरी करने आया ॥८२॥ राजाने उसका नाम अज्ञात रख दिया, पीछे वो सुयोग्य द्विजवर्य्य तवल्लकके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥८३॥ किसी दिन राजा शिकार खेलनेमें आसक्त होकर वनमें चला गया । वहाँ उसने बहुतसे वराह घायल किये और अनेकों मृग

मारे ॥८४॥ पीछे भूख और प्याससे व्याकुल होकर एक पेडकी जडमें बैठगया और पानीको खोजनेके लिये चारों ओर नौकर दौडा दिये ॥८५॥ वे ढूंढते २ थकगये पर कहीं भी पानी नहीं मिला तब सब दुखी होकर राजासे बोले कि, महाराज, पानी नहीं मिला ॥८६॥ तवल्लक भी निरालस होकर वनमें घूमने लगा घूमते २ उसने किसी गह्वरमें देखा ॥८७॥ कि, कमलोंसे मण्डित एक सुन्दर दिव्य सरोवर है वहां उसने परमसुन्दरी मनोहारिणी देवकन्याएं देखी ॥८८॥ उनके सब अंग सुन्दर थे नयन भी परम रमणीय थे, ऊँचे उठे हुए मोटे २ स्तन थे। वे सब हार कंकण केयूर और नूपुर पहिने हुएँ थीं ॥८९॥ से सब व्रतरूपसे आदरके साथ महालक्ष्मीका पूजनकर रहीं थीं तवल्लकने भी पूछा कि, यह क्याकर रही हो कहो तो सही ॥९०॥ स्त्रियाँ बोलीं कि, वह सब कामनाओंका देनेवाला महालक्ष्मीका व्रत है। हम यहां एकाग्रचित्तसे भक्तिपूर्वक इस व्रतको कर रही हैं ॥९१॥ भक्तिमान तवल्लकने भी यह सुनकर उस व्रतको ग्रहण कर लिया। पीछे उन देवकन्याओं-की आज्ञासे शीघ्रही पानी लेकर ॥९२॥ चलदिया, राजाको जल देदिया और हाथ जोडकर बैठगया। राजाने पानी पीकर उसके हाथमें डोरा बँधा देखा ॥९३॥ तो पूछा कि, हे विद्वन्! यह हाथमें डोरा क्या है कोई व्रत किया है? तवल्लकने भी सब बातें कहदीं ॥९४॥ राजाने उस व्रतको सुन-कर ग्रहणकर लिया और तवल्लकके साथ अपनी नगरीमें चला आया ॥९५॥ घर जाकर एकान्तमें पद्मावतीके साथ रमण करने गया वो भी अपने प्यारे राजाके साथ रमण करने लगी ॥९६॥ वो कोपिनी थी ही हाथमें डोरा देखकर अत्यन्त नाराज हुई और बोली किस स्त्रीने तुमें ठग लिया? किसने आपके हाथमें डोरा बाँधदिया ॥९७॥ रानीके इन वचनोंको सुनकर राजा बोला कि और कुछ न कहें यह महालक्ष्मी महारानीका उत्तम व्रत है ॥९८॥ राजाके ऐसा कहनेपरभी उसने वो डोरा हाथसे तोड़ गुस्सेमें आकर, दगदगाती हुई आगमें फेंक दिया ॥९९॥ राजाने हा हा! मूर्खतासे तूने बडाभारी पाप किया ऐसा कहकर पीछे उसे डरा धमका वनके गह्वरमें छोड दिया ॥१००॥ पापिनी रानीकी ही हानि हुई, राजाकी हानि नहीं हुई, महालक्ष्मीके अपचारसे वो जलरहित अरण्यमें पहुँचगई ॥१०१॥ वनमें घूमते २ उसे कोई ठिकाना न मिला विचरते हुए उसने किसी ऋषिका आश्रम देखा ॥१०२॥ वो मृगोंसे संकीर्ण हो रहा था तथा शान्तकृष्णमृगोंसे घिरा हुआ था। उस रमणीक धनमें उसे वसिष्ठजीके दर्शन हुए ॥१०३॥ रानी उनके चरणोंमें पडकर दुखके मारे बेहोश होगई मुनीश्वरजीने बहुत समयतक ध्यान करके उसके दुखका कारण देख लिया ॥१०४॥ विज्ञानकी दृष्टिसे जान लिया कि, महालक्ष्मीके अपचारसे सब हुआ है पीछे उसके दुखोंको मिटानेके लिये उससे महालक्ष्मीका व्रत कराया ॥१०५॥ वो दुख क्षण मात्रमें विलागया फिर शिकार खेलनेके लिये राजा उसी वनमें चला आया ॥१०६॥ कहीं किसी मृगमें एकतीर मार दिया था उसको खाकर मृग भग आया राजा उसके पीछे २ उसभूमिमें चला आया ॥१०७॥ उसने निष्पाप मुनिवर वसिष्ठजीको अपने अगाडी देखा राजाका आतिथ्य किया गया पीछे बाहिर घूमती हुई ॥१०८॥ एक सुन्दरी मृगनयनी देखी जो अपने हावभावों और विलासोंसे मन हर रही थी मदसे बाहिर निकलकर उससे मीठी बानी ॥१०९॥ बोला कि, हे केलाके स्तम्भोंकेसे उरुवाली! हे कल्याणि! आप कौन हैं इसवनमें क्यों घूमरही हैं, ऐ सुन्दरी हसनेवाली आप किन्नरी हैं वा कोई यक्षिणी हैं? ॥११०॥ बहुतसी बातोंसे क्या पडा है मैं तुम्हें चाहता हूं तुम मुझे चाहो राजाने जब भक्तिके साथ यह बात कह दी तो वो मन्द मुसकान करती हुई बोली ॥१११॥ मैं तेरी महिषी हूं, मुझे पहिचानले अब फिर मैं तुझसे प्यार करती हूं मैंने महालक्ष्मीका अपचार किया था इससे परित्यक्ताकी दशामें यहां रहरही हूं जो कि, मुनीन्द्र वसिष्ठजी महाराजका सुन्दर तरु और गुल्मोंसे सुशोभित इस आश्रममें मुनिजीने मुझपर कृपा करके महालक्ष्मीके श्रेष्ठव्रतको ॥११३॥ मुझसे विधिके साथ कराया था जिससे कि, सब विघ्नोंकी शान्ति होजाय, उसके ऐसे वचनोंको सुनकर राजाकी आंखें कमलकी तरह खिलगईं ॥११४॥ ऋषिकी आज्ञाले अपनी प्यारीको साथ लेकर शीघ्रही हृष्टपुष्ट जनोंसे सेवित तथा ध्वजा पताकाओंसे शोभित ॥११५॥ अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ, नगर निवासी अभिनन्दन करते

हुए चलने लगे फिर उसके साथ महालक्ष्मीका व्रत किया ।।११६।। अनेक तरहके भोगोंको भोगा अनेकों बेटे नाती हुए राजाचक्रवर्ती हो गया और तवल्लक द्विज उनका प्रधान मंत्री बना ।।११७।। महालक्ष्मीकी कृपासे सब संपत्तियां घरमें रहती थी इष्टोंकी देनेवाली नारायणी लक्ष्मी देवीका ऐसा प्रभाव है यह सब पापोंके हरनेवाली तथा सब दुखोंको मिटानेवाली है ।।११८।। पर इस श्रेष्ठ व्रतको सोलह बरसतक करना चाहिये ।।११९।। जो इस व्रतको प्रेमपूर्वक करेगा उसकी सिद्धियां, स्वयं ही उपासना करेंगी लोकपाल भी प्रसन्न होकर इसके मनोरथोंको आप पूरा करेंगे ।।१२०।। जो कोई स्त्री हो या पुरुष हो आनन्दसे सावधानीके साथ इस व्रतको करेगा उसको ब्रह्मा विष्णु महेश सेवेंगे और उसके प्रियको करेंगे मनुष्य अपने शिरोरत्नोंसे उसके चरणोंको रंगेंगे लक्ष्मी देवी विष्णु भगवान् के साथ उसके कुटुम्बमें सदावास करेगी ।।१२१।। और तो क्या चाहें भक्ति हो या न हो जो इस श्रेष्ठ व्रतको करते हैं अन्त समयमें विष्णु भगवान् उसको संसार सागरसे पार कर देते हैं ।।१२२।। जो एकाग्रवृत्तिसे इसे सुनाता या सुनाता है उसे कभी लक्ष्मी नहीं छोडती अलक्ष्मी कभी नहीं आती वो सब पापोंसे छूटकर स्वर्गमें चला जाता है ।।२२३।। यह श्री स्कन्द पुराणकी कही हुई महालक्ष्मीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।। भविष्यपुराणकी कही हुई लक्ष्मीव्रतकी कथा-युधिष्ठिर बोले कि अपने स्थानका लाभ, पुत्र, आयु, सवैंश्वर्य और सुखके देनेवाले किसी एक व्रतको, हे पुरुषोत्तम ! विचार कर कहिये ।।१।। श्रीकृष्ण बोले कि, जब अजेय दैत्योंने इन्द्रकी नगरीपर पूर्णरूपसे अधिकार कर लिया तब इन्द्र नारदजीसे बोला ।।२।। कि, कोई इस समयका उपाय बतलाइये । नारद बोले कि, हे इन्द्र ! पहिले एक परम सुन्दर नगर था ।।३।। उसकी भूमि रत्नगर्भा थी रत्नोंसे भरे पर्वत थे जहांकी स्त्रियोंके अपाङ्ग भृङ्ग और नयनोंके बाणोंसे ।।४।। पुष्पोंके तीरोंवाले कामदेवने तीनों लोकोंको अपने वश करलिया, वहां चारों वर्णोंकी स्त्रियां विश्वका भूषण थीं ।।५।। विश्वकर्मा भी इसे देखकर रातदिन शिरही हिलाया करता था वहां एक मंगलका ही स्वयं स्थान मंगलनामका राजा हुआ था ।।६।। उसकी एक चिल्लदेवी नामकी दुर्भगा स्त्री थी दूसरीका नाम चोलदेवी था वो अच्छी थी ।।७।। एक दिन मंगल राजा चोलदेवीको साथ लेकर राजमहलके ऊपर चढगया ऊपरसे एक स्थली देखी ।।८।। उसे देखतेही राजाका मुख कमल कामके समान खिल गया दाँतोंकी चमकसे दिशाओंको चमकाता हुआ चोलदेवीसे बोला ।।९।। हे चंचलनयनोंवाली ! तेरा बाग अपनी शोभासे नन्दनबनको भी मात करनेवाला बना दूंगा, रानीने कहा कि कराइये, फिर वहां बाग बनवा दिया ।।१०।। वो बाग तयार होगया । अनेकों द्रुम और लताएँ लगाई गयीं । अनेकों फलवृक्ष लगाये गये जिसकी वहारपर अनेकों पक्षिगण उसे घेरेही रहते थे ।।११।। एकदिन उस बागमें एक बडा भारी सूकर चला आया । वो इतना बडा था कि मानो शरीरसे आकाशको फेंक रहा हो बरसातके मेघसा श्याम था चंचल आंखें फार रखी थीं ।।१२।। जब वो मुंह फाडता था तो ऐसा मालूम होता था कि ऊपर नीचेके कोलोंसे चाँद सूरजको खींच रहा है । प्रलयके मेघोंकी गर्जना के बराबर तो वो चिघाडही देता था । उसने अनेकों वृक्षोंके और लताओंके साथ बागको छिन्न भिन्नकर डाला ।।१३।। हे पाण्डुनन्दन ! कुछ पेड तो उसने उखाडकर फेंक दिये । बहुतसोंको दाँतोंके प्रहारसे तथा अनेकोंको दांतोंकी टक्करोंसे उखाड़ दिया ।।१४।। कालके समान उस सूकरने बहुतसे रक्षक पुरुषोंको मार दिया यह बागको उजाडे डालता है ऐसा जान सब रक्षक इकट्ठे हो ।।१५।। भयभीत हुए राजसभामें पहुंचे । वहां जाकर राजाके सामने सब निवेदन किया । यह सुनतेही राजाके नेत्रक्रोधसे लाल लाल हो गये ।।१६।। सारी सेनाको आज्ञा देती कि बागके सूकरको मार लाओ आप भी ऐसे मत्त हाथियोंके साथ चला जिनके कि गण्डस्थलोंसे मद चुचा रहा था ।।१७।। इनके मदसे भूमिको आलुप्त करता तथा घोडोंसे ढकता तथा रथ समुदायके पवन वेगसे पर्वतोंको हिलाता ।।१८।। एवम् सिपाहियोंके बडे रास्तेसे सारी दिशाओंको भरता हुआ बागको चारों ओरसें अच्छी तरह रुकवाकर ।।१९।। दशों दिशाओंको पूरता हुआ जोरसे बोला कि जिस रास्तेसे यह सूकर जंगलको भाग जाता

है मैं उसी मार्गमें अपने हाथसे इसका वैरीकी तरह शिर काटूंगा। सूकर राजाके इन वचनोंको सुनकर ॥२१॥ जैसी प्राणियोंकी चेष्टा होती है उसी तरह उसी रास्तेसे निकला। राजा चाबुकसे घोडेको ताडना देकर सूकरके मारनेमें आसक्त हो ॥२२॥ हा सूकर मुझसे निकला जाता है इस लज्जासे मुखचन्द्र कुछ कलंकित होगया है जिसका ऐसा आप उसके पीछे हो लिया और एक ऐसे वनमें पहुँचा जो कि परम भयानक था तथा शेर बवर शेरोंसे भरा पडा था ॥२३॥ जिसमें तमाल ताल हिन्ताल, शाल, अर्जुन और अनेक तरहकी लताएँ थीं, झिल्लियोंकी झंकारके संभालसे दिशाएँ गूंज रही थीं ॥२४॥ उसमें एकाग्र चित्तसे सूकरको खोजता हुआ घूमने लगा सूकर मौका देखकर राजाके सामने आगया ॥२५॥ उसने भालेसे उस सूकरको ऐसे मारा जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वत विदीर्ण करे। मरते ही कामदेवके समान सुन्दर ही विमानपर चढ दिव्य आकाशमें पहूँचा ॥२६॥ क्योंकि सूकरका शरीर छोडते ही उसका दिव्य देह होगया था। फिर मंगल राजासे बोला कि, हे राजन्! आपका कल्याण हो आपने मेरी मुक्ति करदी ॥२७॥ मेरे वृत्तान्तको सुनिये जिससे मैं ऐसा हो गया था, एकबार ब्रह्माजी देवताओंके बीचमें बैठे हुए थे ॥२८॥ मिलरही हैं पुर जिनकी ऐसी तालोंसे तथा षड्ज आदिक सातों स्वरोंसे, मंद्र आदिक तीनों मानोंसे ,हे राजन्! मैं गा रहा था ॥२९॥ ब्रह्माजी अनेक स्थानोंके गुणोंसे युक्त उस उत्तम गीतको सुनने लगे गाता २ मैं पीछे कुछ चूकगया ॥३०॥ इसीसे मुझ चित्ररथको सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने शाप दे दिया कि तू भूमण्डल पर सूकर होजा। तब तू इस योनिसे छुटेगा जब कि ॥३१॥ चक्रवर्ती मंगल महीपति तुझे अपने हाथसे मारेगा हे राजन्! वो सब अब आपकी कृपासे पूरा होगया ॥३२॥ हे नृपते! जो देवताओंको भी दुर्लभ है उस वरको ग्रहणकर। देख! महालक्ष्मी जीका व्रत है यह अर्थ धर्म काम और मोक्ष चारों पदार्थोंका देनेवाला है ॥३३॥ आप चक्रवर्ती राज्यको ले अपने स्थानपर शीघ्र ही चले जायें, नारदजी बोले कि चित्ररथ गन्धर्व राजासे ऐसा कहकर ॥३४॥ प्रसन्न होता हुआ अन्तर्धान होगया जैसे शरदऋतुमें मेघ विला जाते हैं। इसके बाद मंगलराजाने पास आये हुए ब्राह्मण ॥३५॥ ब्रह्मचारीको जिसने कि बगलमें टोसा लगा रखा था देखा। सुन्दरस्मितवाला राजा मन्दस्मित करता हुआ मीठा वचन बोला ॥३६॥ कि हे बटुक! आप देव दानव वा राक्षस इनमेंसे कौन हैं यहां किस लिये आये हैं ॥३७॥ यह सुन राजाको आशीर्वाद दे ब्राह्मण बोला कि मैं तो आपके ही साथ यहां आया था मेरे लिये जो काम हो कहिये ॥३८॥ राजा बोला कि हे बटो। आपका नूतन नाम है पहिले घोडेके पलानको खोलकर शीघ्रही पानी लें आओ ॥३९॥ बटुक वृक्षकी जडमें राजाको बिठाकर विना पलाडके घोडे पर सवार हो ॥४०॥ पक्षियोंकी आवाजके सहारे उस जगह पहुँच गया जहां कि सुन्दर तालाव था यह तालाव कमलके निवाससे रथाङ्गके आभरणसे वमनालाओंके आलयपनेसे नारायणकी शोभा धारण कर रहा है, यानी विष्णु भगवान् कमलाके निवास हैं तो यह कमलोंका निवास बना हुआ है। रथाङ्ग (चक्र) विष्णु भगवान्‌के हाथका भूषण है तो इसके (रथाङ्ग) चकवे भूषण बने हुए हैं ॥४१॥ भगवान् वनमालाओंको इतना पहिनते हैं कि उनका घर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है इसी तरह यह भी वनमाला (वनकी मालाओंको) चारों ओरसे पहिने, हुए हैं, यह इसकी और नारायणकी समता है वायुके सेकडों उद्योग इस पर भग्न होगये तथा न तो यह खारा था, न इसमें विष ही था ॥४२॥ जिसने अगस्त्यजीकी प्यास मिटादी है ऐसा समुद्रसे भी अधिक स्वच्छ जलका यह सर था। घोडा कीचमें मग्न होगया याने लेटनेलगा। ब्रह्मचारी पीठसे उतर पडा ॥४३॥ उसी तालावके किनारे चारों दिशाओंको देखकर दिव्यवस्त्रोंको पहिने हुआ दिव्य आभूषणोंसे भूषित दिव्य कथाओंको कहता हुआ एक स्त्रियोंका संग देखा। उस सार्थके पास पहुँच अपना वृत्तान्त कहा ॥४४॥४५॥ फिर हाथ जोडकर बोला कि आप सबका समुदाय भक्तिके साथ क्या कर रहा है ॥४६॥ इसकी विधि क्या है इसका फल क्या है यह मुझे यथार्थ रूपसे कहिये, यह सुन करुण वाणीसे वो सार्थ बोला कि ॥४७॥ हे भक्ति और श्रद्धासे युक्त हुए ब्राह्मण! चित्त लगाकर

पुन, जिसे तीनों लोकोंमें माया, प्रकृति और शक्ति कहते हैं ।।४८।। उसी महालक्ष्मीका सब का नाओंकी पूर्ति करनेवाला यह व्रत है। हे वटो ! हम कहतीं हैं आप इसकी विधि सुनें ।।४९।। भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको इसका प्रारंभ होता है। प्रातःकाल, सोलहवार हाथ पैर और मुख धोकर सोलह लरका एवं सोलह गांठोंका संसिद्ध डोरा बांधना चाहिये। मालती पुष्प कर्पूर चन्दन और अगुरुसे पूजना चाहिये ।।५०।।५१।। ओम् लक्ष्म्यै नमः–लक्ष्मीके लिये नमस्कार है इस मंत्रसे गाठोंको अभिमंत्रित करे और कहे कि, धन, धान्य, धरा, धर्म, कीर्ति, आयु यश, श्री घोडा हाथी और पुत्रोंको, हे महालक्ष्मि ! मुझे दे इस मंत्रसे दांये हाथमें डोरा बांधे ।।५२।। घोडा हाथी और पुत्रोंको, हे महालक्ष्मि ! मुझे दे इस मन्त्रसे दांये हाथमें डोरा बांधे ।।५३।। दूर्वाके सोलहकाण्ड और अक्षत लेकर एकचित्त हो कथा सुने और डोराको पूजे ।।५४।। इसके बाद जबतक कृष्णाष्टमी आये रोज प्रातःकाल हाथ और पावोंका प्रक्षालन करे और कथा ।।५५।। भी हे विप्र ! सोलह दूर्वाकाण्ड और अक्षतोंके साथ रोज सुने, कृष्णाष्टमीके दिन रातके समय जितेन्द्रिय हो ।।५६।। स्नानकर श्वेतवस्त्र पहिन पूजाके घरमें जाय। उसमें पूर्वकी ओर मुख करके बैठे ।।५७।। श्वेतवस्त्रपर अष्टदल कमल लिखे, पूर्वादि आठ दिशाओंमें उसके केशर सहित दलोंमें शक्तियोंकी स्थापना करे ।।५८।। कर्णिकामें कपूरकी कीचसे सफेद हुई श्वेत वस्त्रोंको पहिने हुई मुक्तामणियोंके आभरणोंसे विभूषित ।।५९।। कमलके आसनपर विराजमान अत्यन्त सुन्दर मुखकमलवाली शरद कालके चन्द्रमाके समान कान्तिवाली स्निग्ध नेत्रवाली एवं चारभुजावाली ।।६०।। कमल लिये हुए अभयके देनेवाली भक्तोंपर इतनी दयालु हो रही है कि करकमल भक्तोंको वर देनेमें ही व्यग्र हं ऐसी एवं दोनों ओर दो हाथी सूंडमें पानी भरकर अभिषेक कर रहे हैं ।।६१।। ऐसी महालक्ष्मीका इस प्रकार ध्यान करके देवीको कपूर अगरु और चन्दनसे लिखे। पीछे सुव्रतीको चाहिये कि इस मंत्रसेआवाहन करे ।।६२।। हे महालक्ष्मि ! पद्मनाभके स्थानसे यहां पधारिये। हे देवि ! आपके लिए पञ्चोपचारकी पूजा तयार की है ।।६३।। सोलह वर्ष पूरे हो जानेपर उद्यापन करे, हे विप्रेंद्र। श्रद्धाके साथ इस विधिसे उद्यापन करे ।।६४।। सोनेके सींगोंके साथ एक धेनु श्रोत्रियके लिये देनी चाहिये तथा अन्नवस्त्र भी दे ।।६५।। शक्तिके अनुसार सोना देनेसे व्रत पुरा हो जाता है। सोलह द्विजों को वसनादिक दे ।।६६।। सार्थ बोला कि, हे विप्र ! हमने तुम्हें इस व्रतको बता दिया है इसको विधिके साथ करनेसे अनायासही वांछित फल मिल जाता है ।।६७।। हे विप्र ! इस श्रेष्ठ व्रतको आप करके राजासे कराना और भी कोई श्रद्धालु जन हो उसे भी इस व्रतको कह देना ।।६८।। पर नास्तिकोंके सामने कभी भूलकरभी न कहना पीछे बटुक उस सार्थको प्रणामकर कीचसे घोडेको उठा ।।६९।। कमलके पत्रोंमें तालाबसे पानी ले घोडेपर सवार हो राजाके पास चला आया ।।७०।। ब्राह्मणने उस व्रतको राजासे कहकर कराया इस व्रतका प्रभावसे बटुकके बहुतसा टोसा हो गया ।।७१।। राजा व्रतके प्रभावसे सब राजोंमें श्रेष्ठ होगया, बटुकके लाये हुए घोडेपर चढकर ।।७२।। उस व्रतके प्रभावसे शीघ्रही अपने पुर चलाआया भूके इन्द्र उस राजाको आया हुआ देखकर ।।७३।। नगरके निवासी उत्सव करने लगे, बाजे बजने लगे, हर एकके हाथमें पताकायें हिलरहीं थीं दरवाजोंमें कलश रखे हुए थे ।।७४।। छत्रके घण्टोंके घर्घरोंसे नगर नाचते हुएकी तरह लगता था। कोई सुन्दरी विलास वैचित्रसे ऐसी भागी ।।७५।। मानों शिरके खुलेहुये बालोंके मोतियोंको टपकाकर मानिक मोतियोंका चौक पूर रही हो। किसीके इसी प्रकार शिरके बाल खुले हुए थे। पर आंखमें एक ही अञ्जन था ।।७६।। कोई नितम्बके भारसे दुखी था तो किसीके बडे २ मोटे स्तन थे। इधर यह सब हो रहा था उधर राजा बटुकके साथ घर चले जाते थे ।।७७।। कन्यायें आचारके खीलोंकी वर्षा कर रहीं थीं जिससे शरीर भरगया पीछे घोडेसे उतरकर बटुककी बाँह पकड ली ।।७८।। मंगल राजा वहां पहुँचा जहां चोल देवी थी। चोलदेवीने राजाके हाथमें डोरा बांधा देखा ।।७९।। मनमें विचारकर क्रोध हो राजापर यह शंका की कि, शिकारके बहाने किसी दूसरी प्यारीके

यहां वे गये थे ॥८०॥ अनें सौभाग्यके लिए उसने आपके हाथ में यह डोरा बांध दिया इसीतरह यह बटुकभी मुझे देखनेके लिए भेजा है ॥८१॥ इसके पीछे बुरे दिनोंके कारण भ्रष्टमनवाली चोलदेवीने क्रोधसे उस डोराको अपने सौभाग्यके सुखके साथ भूमिपर तोडकर गेर दिया ॥८२॥ डोरा तोडतीवार राजाको पताभी न चला क्योंकि, वे सामन्त और मंत्रियोंके साथ वनकी बातोंमें लगे हुए थे ॥८३॥ कोई दूसरी चिल्लदेवी नामकी देखनेको चली आई उस टुटे डोरेको हाथमें उठाकर बटुसे उस व्रतको ॥८४॥ और उसके विधानको पूछकर व्रतग्रहण किया। उस बटुने यह सब अपनी स्वामिनीको सुना दिया। उस चिल्लदेवीने नूतनको बुलाकर वह व्रत किया ॥८५॥ हे नृप ! एक साल लौटजानेपर लक्ष्मीकी पूजाके दिन चिल्लदेवीके घर गाने बजाने और नाचनेकी आवाज आने लगी ॥८६॥ इसे सुनकर राजा नूतन द्विजसे पूछने लगे कि, अहा हा मुझ व्रतीका लक्ष्मीका डोरा कहां है ॥८७॥ राजाके पूछनेपर नूतनने डोरेके टूटनेका सब हाल सिलसिलेवार कह दिया, यह सुन चोलदेवीपर बड़ा नाराज हुआ ॥८८॥ अब में चिल्लदेवीके घर जाकर पूजन करूंगा, ऐसा कह मङ्गलराजा बटुकका बांह पकडकर ॥८९॥ कमलाके पूजनके लिए चिल्लदेवीके घरको चला ॥९०॥ इसी बीचमें महालक्ष्मी बुड्ढी बनकर जाननेके लिए उस चोलदेवीके घर चली आयी ॥९१॥ तब चोलदेवी बोली कि, दुष्टे ! यहांसे अभी चली जा चली जा, यहां आकर तू मेरा क्या करती है। उस दुराशाने इस प्रकार लक्ष्मीकाभी अत्यन्त अपमान किया ॥९२॥ फिर महालक्ष्मीने भी क्रोधसे चोलदेवीको शाप दिया कि, हे दुष्टे ! तू सूकरके मुखवाली हो जिस मुखसे कि, तूने मेरा अपमान किया है ॥९३॥ चोलदेवी लक्ष्मीके शापसे सूकरमुखी हो गई जहां वो ऐसी हुई वो मंगलपुर कोलापुरके नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥९४॥ इसके बाद चिल्लदेवीके घर लक्ष्मी मां आयी उसने उसका अत्यन्त सन्मान दिया ॥९५॥ उस समय वो वृद्धाके रूपको छोडकर प्रत्यक्ष हो गयी, रानीने पंचोपचार पूजासे लक्ष्मी जीका पूजन किया ॥९६॥ उससे लक्ष्मीजी परम प्रसन्न होकर बोली कि, हे चिल्लदेवी मैं तेरी पूजासे प्रसन्न हूं तू वर मांग ॥९७॥ पवित्र हृदयवाली चिल्लदेवीने लक्ष्मीजी से वर मांगा कि, हे देवि ! हे सुरेश्वरी ! जो आपका व्रत करेंगे ॥९८॥ जबतक चांद और सूरज रहेंगे उनके घरको कभी मत छोडियेगा अबसे लेकर राजा और आपकी कथा ॥९९॥ भूमिपर प्रसिद्ध होजाय। मेरी आपमें भक्ति हो। इस कथाको सद्भावसे जो कहें या सुने ॥१००॥ उनके वांछित कामोंको आप सदाही पूरा करना, महालक्ष्मी 'एवमस्तु' ऐसाही हो, यह कहकर वहां ही अन्तर्धान हो गई ॥१०१॥ मंगलराजाने वहां आकर लक्ष्मीका पूजन चिल्लदेवीके साथ परम भक्तिसे किया ॥१०२॥ दुष्टा चोलदेवी ईर्ष्याके मारे चिल्लदेवीके घर जाने लगी। पर द्वारके पहरेदारोंने उसे भीतर नहीं जाने दिया ॥१०३॥ इसके बाद वो उस वनमें पहुंची जिसमें कि, अंगिरा ऋषि तप कर रहे थे उसकी निराली दशा देख कर वे ज्ञानदृष्टिसे जानगये ॥१०४॥ मुनिने चोलदेवीसे लक्ष्मीजीके दिव्य व्रतको काराया उस व्रतके करतेही चोलदेवीभी बड़ी सराहना योग्य बन गई ॥१०५॥ दाक्षिण्य केलि और लीलाओंसे लावण्यका एक स्थान बनीहुई थी, कभी राजा शिकार खेलता हुआ उस वनमें चला आया ॥१०६॥ मुनिके घरमें उस वाम लोचनाको देखा इसके बाद राजा मुनिसे बोला कि, यह धन्या कौन है यह बताइये ? ॥१०७॥ मुनिने उसके सब वृत्तान्तको कहकर उसे राजाको देदिया, इसके बाद वो चोलदेवीके साथ अपने राज्यमें चला आया ॥१०८॥ चिल्लदेवी और चोलदेवीके साथ राज भोगने लगा, चिल्लदेवीने चोलदेवीके साथ अच्छीतरह समागम किया ॥१०९॥ जैसे समुद्रमें गंगा और यमुना दोनों संगत हो जाती हैं उसी तरह मंगल राजामें वे दोनों संगत होगयीं ॥११०॥ राजाकी वे दोनों आपसमें अधिक प्यारी हुई राजा चिल्लदेवी और चोलदेवी दोनोंके साथ सारी ॥१११॥ सातद्वीपवाली पृथिवीको भोगने लगा इसी व्रतके सामर्थ्यसे नूतन नामका बटुक ॥११२॥ मंगल राजाका मंत्री हुआ जैसे कि, तुम्हारे बृहस्पतिजी मंत्री हैं। राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ भूमिके सब भोगोंको भोगकर ॥११३॥ स्वर्गमें जा विष्णुदेवताका नक्षत्र हुआ। नारद बोले कि, हे

शक्र! यह हमने व्रतोंका उत्तम व्रत सुना दिया है ।।११४।। इस व्रतकी कथा सुननेसे भी वाञ्छित-फल मिल जाता है। जैसे तीर्थोंमें प्रयाग और देवताओंमें आप ।।११५।। नदियोंमें गंगा है इसी तरह व्रतोंमें यह महालक्ष्मीका व्रत है जो आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको चाहते हों ।।११६।। तो हे शक्र! इस व्रतको श्रद्धाके साथ करें, इस व्रतके कियेसे धन, धान्य, धरा, धर्म, कीर्ति, आयु, यश, श्री, घोडा, हाथी और पुत्रोंको महालक्ष्मीजी देती हैं ।।११७।। भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि, नारदजीके उपदेशसे इन्द्रने जिसने इस व्रतको किया उसे इसके प्रभावसे सब मनोरथ मिलगये। हे धर्मराज! आप भी इस व्रतको करें जिससे आपके भी सब मनोकाम पूरे होजायँ और पुत्र पौत्रोंकी वृद्धिहो ।।११८।। यह श्रीभविष्यपुराणकी कही हुई महालक्ष्मीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथ महाष्टमी

आश्विनशुक्लाष्टमी ।। महाष्टमी ।। तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी ।। प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिर्वृता ।। इयं च सप्तमीविद्धा न कार्या ।। तदुक्तंदेवी पुराणे–सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी ।। पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत् ।। शरज्जन्माष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा ।। सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी ।। जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता च महाष्टमी ।। इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्यां दानवपुङ्गवः ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीसहिताष्टमी ।। वर्जनीया च सततं मनुष्यैः शुभकांक्षिभिः ।। सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी तथा ।। तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम् ।। पुत्रान्हन्ति पशून्हन्ति राष्ट्रं हन्ति सराजकम् ।। हन्ति जानपदांश्चापि सप्तमीसहिताष्टमी ।। शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ।। अत्र त्रिमुहूर्तन्यूनापि सप्तमी वर्जनप्रयोजिका न तु त्रिमुहूर्तैव–सप्तमीस्वल्पसंयुक्ता वर्जनीया सदाष्टमी ।। स्तोकापि सा तिथि[1]: पुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत् ।। नवमीयुक्ताया अलाभे तु सप्तमीयुतैव कार्या ।। उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत् ।। सप्तशत्यास्तु पाठेन तोषयेज्जगदम्बिकाम् ।।

महाष्टमी आश्विन शुक्ला अष्टमीको कहते हैं—इसी अष्टमीके दिन कोटि योगिनियोंके साथ दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाली परम भयंकर भद्रकाली प्रकट हुई थी। इसको सप्तमी विद्धा न न करनी चाहिये, यही देवी पुराणमें लिखा हुआ है कि, जिन्होंने सप्तमीविद्धा महाअष्टमीकी है वे पुत्र स्त्रीहीन हुए पिशाचोंकी तरह घूमेंगे। यह अष्टमी सदा नवमी विद्धाही करनी चाहिये। सप्तमी संयुता सदाही शोक सन्तापको करती है। जंभने सप्तमी युता महाष्टमीका पूजन किया था इसी कारण दानवशिरोमणि जंभको इन्द्रने मारा दिया था। इससे जो अपना भला चाहें उन्हें चाहिये कि, सप्तमीसहित अष्टमीको कभी पूजन न करें। जहां सप्तमी एक कलाके साथ भी अष्टमी युक्त हो तो उसे भालेकी नोक कहेंगे वो पुत्र और पौत्रोंके नाशको देने वाली है वो पुत्रोंको मारती है, पशुओंको मारती है तथा राजासहित राष्ट्रको नष्ट करती है, देशोंका नाश करती है, सप्तमी सहिता अष्टमी इतना कौतुक करती है। शुक्लपक्षकी अष्टमी तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशी इनको पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, पर संयुता करे। इसमें तीन मुहूर्तसे कमभी वर्जित की गई है यह बात नहीं है कि,

१ अष्टमी।

त्रिमुहूर्ताही वर्जी गई हो, सप्तमीसे थोडी संयुक्त अष्टमी भी हो तो उसे भी छोड दे चाहें थोडी भी हो पर सूर्योदय उसमें हो तो वो तिथि परम पुण्य शालिनी है। यदि नवमी युक्ता न मिले तो सप्तमीयुक्ताही करले। पुत्रवान्को चाहिये कि, महाष्टमीके दिन उपवास न करे पर सप्तशतीके पाठसे जगदम्बिकाको प्रसन्न करदे ॥

अशोकाष्टमीव्रतम् ॥ अथ आश्विनकृष्णोष्टम्यामशोकाष्टमीव्रतम् । हेमाद्रावादित्यपुराणे अष्टमीषु च सर्वासु पूजनीया ह्यशोकिका ॥ गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपैश्च सर्वदा ॥ तस्मिन्नहनि या भुङ्क्ते नक्तमिन्दुविवर्जिते ॥ भवत्यथ विशोका सा यत्र यत्राभिजायते ॥ अष्टमीषु च सर्वासु न चेच्छक्नोति वै मुने ॥ भाद्रपदामतीतायां भवेत्कृष्णाष्टमी तु या ॥ तत्र कार्यम् व्रतं त्वेतत्सर्व कामफलप्रदम् ॥ इत्यशोकाष्टमी ॥

अशोकाष्टमीव्रत-आश्विनकृष्णाष्टमीके दिन होता है। हेमाद्रिमें आदित्य पुराणसे लिखा है कि, सब अष्टमियोंमें अशोकिकाका सदा गंधमाल्य नमस्कार धूप और दीपोंसे पूजन करे। जो स्त्री इस दिन चन्द्रमाके बिना की रातमें भोजन करती है वो जहां जहां पैदा होती है वहां वहां विशोका होती है। हे मुने! जो सब अष्टमियोंमें व्रत न कर सके तो उसे चाहिये कि, भाद्रपदके बीत जानेपर जो कृष्णाअष्टमी आवे उसमें सब कामनाओंके देनेवाले इस व्रतको करे। यह अशोकाष्टमीके व्रतका विधान पूरा हुआ ॥

कालभैरवाष्टमी ॥ अथ मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी कालभैरवाष्टमी ॥ सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या ॥ मार्गशीर्षासिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ ॥ उपोष्य जागरं कुर्वन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति काशी खण्डाद्रात्रिव्रतत्वावगतेः ॥ रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्या सम्मुखी तिथिः । इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ॥ दिनद्वयेऽशतो रात्रिव्याप्तावुत्तरैव॥ भैरवोत्पत्तेः प्रदोषे कालीनत्वादिति केचित् ॥ तन्न । शिवरहस्ये मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात् ॥तथा च तत्रैव॥ नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ । इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेऽवज्ञाते उक्तम् -तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः ॥ आविरासीत्तदालोकान् भीषयन्नखिलानपि ॥ इति ॥ अत्र कालभैरवपूजोक्ता काशीखण्डे---कृत्वा च विविधां पूजां महासम्भारविस्तरैः ॥ नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत् ॥ तथा पितृतर्पणमपि तत्रैवोक्तम्-तीर्थे कालोदके स्नात्वा तर्पणं विधिपूर्वकम् ॥ विलोक्य कालराजानं निरयादुद्धरेत्पितॄन् ॥ अथ कृष्णाष्टमीव्रतकथा---सूत उवाच ॥ व्रतानि च प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥ तत्र कृष्णाष्टमी पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥ १ ॥ विष्णुत्वं प्राप्तवान्विष्णुः सुरेशत्वं शचीपतिः ॥ कुबेरो यक्षराजत्वं नियन्तृत्वं यमः स्वयम् ॥ २ ॥ चन्द्रश्चन्द्रत्वमापन्नो गणेशत्वं गणाधिपः । स्कन्दः सेनापतित्वं च तथा चान्यगणेश्वराः ॥ ३ ॥ कृत्वा चैश्वर्यमापन्नाः सौभाग्यं देव व॰ल्लभाः ॥ व्रतस्यास्य प्रभावेण लक्ष्म्याः पतिरभूद्धरिः ॥ ४ ॥ ययातिः सार्वभौमत्वं तथा चान्ये

१ दीपान्नसंपदा इत्यपि पाठः । २ अप्सरसः

नृपोत्तमाः ।। ऋषयो मुनयः सिद्धगन्धर्वाणां च कन्यका : ।। ५ ।। कृत्वा[1] वै परमां सिद्धिं प्राप्ताश्च मुनिपुङ्गवाः ।। नन्दीश्वरेण यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने ।। ६ ।। कृष्णाष्टमीव्रतं श्रेष्ठं सर्वकामफलप्रदम् ।। मेरोर्यद्दक्षिणं श्रृङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ।। ७ ।। तत्र नन्दीश्वरं दृष्ट्वा सर्वज्ञं शम्भुवल्लभम् ।। उपास्यमानं मुनिभिः स्तूयमानं मरुद्गणैः ।। ८ ।। सर्वानुग्रहकार्तारं स्तुत्वा तु विविधैः स्तवैः ।। अब्रवीत्प्रणिपत्याथ दण्डवन्नारदो मुनिः ।। ९ ।। नारद उवाच ।। भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ सर्वेषामभयप्रद ।। केन व्रतेन भगवंस्तपोवृद्धिः प्रजायते ।।१०।। सौभाग्यं कान्तिरैश्वर्यमपत्यं च यशस्तथा ।। शाश्वती मुक्तिरन्ते च कर्मपाशविमोचनी ।। ११ ।। भगवंस्तद्व्रतं ब्रूहि कारुण्याच्छङ्करप्रिय ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। कृष्णाष्टमीव्रतं श्रेष्ठमस्ति नारद तच्छृणु ।। १२ ।। गणेशत्वं मया लब्धं येन पुण्येन भो मुने ।। मासि मार्गशिरे प्राप्ते कृष्णाष्टम्यां जितेन्द्रियः ।। १३ ।। अश्वत्थस्य च काष्ठेन कृत्वा वै दन्तधावनम् ।। स्नानं कृत्वा तु विधिवत्तर्पणं चैव नारद ।। १४ ।। आगत्य भवनं चैव पूजयेच्छंकरं प्रभुम् ।। गोमूत्रं प्राश्य विधिवदुपवासी भवेन्निशि ।। १५ ।। अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं चाष्टगुणं लभेत् ।। सर्पिषः प्राशनं पौषे दन्तकाष्ठं च तत्स्मृतम्[2] ।।१६ ।। पूजयेच्छम्भुनामानं भगवन्तं महेश्वरम् ।। वाजपेयाष्टकं पुण्यं प्राप्नोति श्रद्धयान्वितः ।। १७ ।। माघे वटस्य काष्ठं च गोक्षीरप्राशनं स्मृतम् ।। महेश्वरं सुसंपूज्य गोमेधाष्टगुणं फलम् ।। १८ ।। फाल्गुने दन्तकाष्ठं [3]तत्सर्पिषः प्राशनं स्मृतम् ।। संपूजयेन्महादेवं राजसूयाष्टकं फलम् ।। १९ ।। काष्ठमौदुम्बरं चैत्रे प्राशने भर्जिता यवाः ।। पूजयेच्छम्भुनामानमश्वमेधफलं लभेत् ।। २० ।। शिवं[4] सम्पूज्य वैशाखे पीत्वा चैव कुशोदकम् ।। नरमेधाष्टकं पुण्यं प्राप्नोत्येव हि नारद ।।२१।। ज्येष्ठे प्लाक्षं भवेत्काष्ठं सम्पूज्य पशुपतिं विभुम् ।। गवां श्रृङ्गोदकं प्राश्य स्वपेद्देवस्य सन्निधौ ।।२२।। गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ।। आषाढे[5] चोग्रनामानमिष्ट्वा संप्राश्य गोमयम् ।। २३ ।। सौत्रामणेस्तु यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्।।पालाशं श्रावणे काष्ठं शर्वं संपूज्य नारद।।२४।।प्राशयित्वार्कपत्राणि कल्पं शिवपुरे वसेत् ।। मासे [6]भाद्रपदेऽष्टम्यां त्र्यम्बकं संप्रपूजयेत् ।।२५।। प्राशनं बिल्वपत्रस्य सर्वदीक्षाफलं लभेत् ।। आश्विने जम्बुवृक्षस्य दन्तकाष्ठमुदीरितम् ।। २६ ।। ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या प्राशयेत्तण्डुलोदकम् ।। पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ।। २७ ।। मासे तु [7]कार्तिकेऽष्टम्यामीशानाख्यं प्रपूजयेत् ।। पञ्चगव्यं सकृत्पीत्वा अग्निष्टोमफलं लभेत् ।। २८ ।। उद्यापनं च वर्षान्ते प्रकुर्याद्भक्तितत्परः ।। विरच्य लिङ्गतोभद्रं पूजयेत्सर्वदेवताः ।।२९।। वितानं तत्र बध्नीयात्पञ्चवर्णं सुशोभन ।। आचार्यं वरयित्वा च गौर्या रुद्रस्य संयुताम्

१ व्रतमिति शेषः । २ अश्वत्थकाष्ठम् । ३ वटसम्बन्धि । ४ दन्तकाष्ठं पूर्वोक्तमेव । ५ दन्तकाष्ठं तु प्लक्षमेव । ६ दन्तकाष्ठं पालाशमेव । ७ दन्तकाष्ठं जम्बूवृक्षस्य ।

।। ३० ।। सुवर्णप्रतिमां तत्र वृषभं रजतस्य च ।। कलशे पूजयित्वा च रात्रौ जागरमाचरेत् ।। ३१ ।। प्रभाते च पुनः पूज्य अग्निस्थापनमाचरेत् ।। हुनेदष्टशतं चैव तिलद्रव्यं घृतप्लुतम् ।।३२।। त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण गौर्याश्चैव पृथक्पृथक् ।। वर्षान्ते भोजयेद्विप्राञ्छिवभक्तिसमन्वितान् ।। ३३ ।। पायसं घृतसंयुक्तं मधुना च परिप्लुतम् ।। शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ।। ३४ ।। देवाय चापि दध्यन्नं वितानं ध्वजचामरम् ।। कृष्णां पयस्विनीं गां च सघण्टां वाससा युताम् ।। ३५ ।। सरत्नदोहकलशीमलंकृत्य च नारद ।। अलङ्कारं च वस्त्रं च दक्षिणां च स्वशक्तितः ।। ३६ ।। भक्त्या प्रणम्य विधिवदाचार्याय निवेदयेत् ।। करोत्येवं व्रतं पुण्यं वर्षमेकं निरन्तरम् ।। ३७ ।। महापातकनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।। कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते ।। ३८ ।। कृष्णाष्टमी व्रतं सम्यग्देवर्षे कथितं मया ।। यदुक्तं देवदेवेन देव्यै विश्वसृजा पुरा ।। ३९ ।। सूत उवाच ।। एवं नन्दीश्वराच्छ्रुत्वा नारदो मुनिपुङ्गवः। ।कृष्णाष्टमीव्रतं पुण्यं ययौ बदरिकाश्रमम् ।। ४० ।। व्रतस्यास्य प्रभावं यः पठेद्वा शृणुयादपि ।। स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ।। ४१ ।। इति श्री आदित्यपुराणे कृष्णाष्टमी व्रतं नाम एकादशोऽध्यायः ।। इत्यष्टमीव्रतानि ।।

कालभैरवाष्टमी–मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमीको कहते हैं। इसे रात्रिव्यापिनी लेनी चाहिये। मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमीमें काल भैरवके समीप उपवास करके जागरण करता हुआ सब पापोंसे छूट जाता है, इस काशीखण्डके वाक्यसे प्रतीत होता है कि, यह रात्रिव्रत है। ब्रह्मवैवर्तमें लिखा हुआ है सभी रुद्रव्रतोंमें संमुखी तिथि करनी चाहिये। यदि दो दिन अंशसे रात्रिमें व्याप्ति हो तो उत्तरा ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि भैरवकी उत्पत्ति प्रदोषके समयमें हुई थी ऐसा कोई कहतेहैं पर उनका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि शिवरहस्यमें मध्याह्नकालमें भैरवकी उत्पत्ति सुनी जाती है। ऐसा ही वहां लिखा हुआ है कि नित्य यात्रादिक करके मध्याह्नमें सूर्यके रहते यहांसे प्रारंभ करकर "ब्रह्माने जब रुद्रका अनादर किया" यह कहा है उस समय निष्पाप उग्ररूप शिवजीसे संपूर्ण लोकोंको डराते हुए श्रीकालभैरव प्रकट हुए। यहांही काशीखण्डमें कालभैरवकी पूजाभी कही है कि मनुष्य अगहन–कृष्ण पक्षकी अष्टमीके दिन महासंभारोंके विस्तारसे भैरवकी अनेक तरहकी पूजा करके अपने साल भरके विघ्नोंको छोड देता है। इसी तरह पितरोंका तर्पण भी इस दिन कहा है कि कालोदक तीर्थमें स्नान करके विधिपूर्वक तर्पण कर कालराजाको देखकर दुःखसे पितृगणोंका उद्धार करता है।। कृष्णाष्टमीव्रत कथा–सूतजी बोले की हे श्रेष्ठ मुनियो! सुनो में व्रतोंको कहूंगा उनमें उनमें सब पापोंके नाश करनेवाली कृष्णाष्टमी परमपवित्र है ।।१।। विष्णुको विष्णुपना सुरेशको सुरेशपना, कुबेरको यक्षोंका राजापना, यमको नियन्तृपना ।।२।। चन्द्रमाको चन्द्रपना, गणेशको गणपतिपना स्कंदको सेनापतिपना तथा दूसरे ऐश्वर्यशालियोंको ईश्वरपना ।।३।। इसके करनेसेही मिला है। इसी व्रतके प्रभावसे अप्सराओंको सौभाग्यमिला है। इसी व्रतके प्रभावसे भगवान् लक्ष्मीके पति बने ।।४।। इस व्रतको करके राजा उसी प्रकार चक्रवर्ती बन जाता है जैसे कि दूसरे चक्रवर्ती होते हैं। ऋषि मुनि तथा सिद्ध गन्धर्वोंकी कन्याएँ ।।५।। हे मुनिपुंगवो! इस व्रतको करके ही परम वृद्धिको प्राप्त हुई हैं जो नन्दीश्वरने महात्मा नारदके लिये ।।६।। सब कामनाओंका देनेवाला सर्वश्रेष्ठ कृष्णा-

ष्टमीका व्रत कहा था मेरुके दाहिने शृंगार जिसे सुर और असुर दोनों नमस्कार करते हैं ॥७॥ जिसे शिवजी अत्यन्त प्यारा मानते हैं जिसकी मुनिलोग उपासना कर रहे हैं जो सर्वज्ञ है जिसकी मरुद्गण स्तुति कर रहे हैं ॥ ८ ॥ जो सबपर कृपा करनेवाला है ऐसे नन्दिकेश्वरजीको स्तुति पूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके नारद मुनि बोले ॥९॥ भगवन् । आप सबके तत्त्वको जानते हो अभयके दाताहो। हे भगवन् ! जिस व्रतके करनेसे तपकी वृद्धि हो ॥१०॥ जिससे सौभाग्य, कान्ति, ऐश्वर्य, अपत्य ,यश, और अन्तमें सब कर्मबन्धनोंके नष्ट करनेवाली मुक्ति मिलजाय ॥११॥ हे शंकरके प्यारे ! कृपाकरके उस व्रतको कहिये नन्दिकेश्वर बोले कि, हे नारद ! ऐसा कृष्णाष्टमीका श्रेष्ठ व्रत है उसे सुन। हे मुने ? उसीके पुण्यसे मुझे गणेशपना मिला है ॥१२॥ मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको जितेन्द्रिय होकर ॥१३॥ अश्वत्थके काठसे दन्त धावन करके हे नारद ! विधिपूर्वक स्नान और तर्पण करके ॥१४॥ घर आकर शंकर प्रभुका पूजन करे। गोमूत्रका विधिपूर्वक प्राशन करके रातको उपवास रखे। ॥१५॥ इससे अति रात्र यज्ञका अठगुना फल मिलता है, पौषमें घीका प्राशन और अश्वत्थके काठकी दातुन कही है ॥१६॥ शंभुनामक भगवान् महेश्वरकी पूजा करे श्रद्धावालेको वाजपेय यज्ञका आठगुना फल मिलता है ॥१७॥ माघमें गोक्षीरका प्राशन और वटके काठकी दांतुन कही है। इसमें महेश्वरकी पूजा करके गोमेधका अठगुना फल मिलता है ॥१८॥ फाल्गुनमें वटके काठका दांतुन तथा सर्पिका प्राशन लिखा है इसमें महादेवकी पूजा करके आठ राजसूयों का फल मिलजाता है ॥१९॥ चैत्रमें उदुम्बरके काष्ठकी दांतुन तथा भुंजे हुए जौओंका प्राशन लिखा है इसमें शंभुनामा शिवका पूजन करके अश्वमेधका फल पाता है ॥२०॥ वैशाखमें शिवको पूज कुशके पानीको पी, हे नारद आठ नरमेधके पुण्यको पाता है ॥२१॥ ज्येष्ठमें पिलखनके काठकी तथा विभुपशुपतिकी पूजा करके गोशृंगोदक परिमाण मात्र पानी का प्राशन करके देवकेही समीप सोजाय ॥२२॥ कोटि गऊ देनेका जो पुण्य है वो उसे मिलता है। आषाढमें उग्रनामक शिवका पूजन और गोमयका प्राशन करे ॥२३॥ वो सौत्रामणी यज्ञके सौगुने फलको पाजाता है। हे नारद ! श्रावणमें पलाशके काष्ठ दांतुन और शर्वका पूजन करता है ॥२४॥ एवम् आकके पत्तोंका प्राशन करता है। वह एक कल्प शिवपुरमें रहता है। भाद्रपदमें अष्टमीके दिन त्र्यंबक भगवान्‌की पूजा करे ॥२५॥ बिल्वपत्रका प्राशन करे उसे सब दीक्षाओंका फल मिलता है। आश्विनमें जंबु वृक्षके काष्ठकी दांतुन कही है ॥२६॥ भक्तिपूर्वक ईश्वरकी पूजा कर चावलोंका पानी पीये पौंडरीक यज्ञके आठगुने फलको पाता है ॥२७॥ कार्तिक मासमें अष्टमीके दिन ईशान नामके शिवकी पूजा करनी चाहिये। एकबार पञ्चगव्यको पीकर अग्निष्टोमके फलको पाता है ॥२८॥ एक वर्षके बाद भक्तिसे साथ उद्यापन करना चाहिये लिंगतोभद्र मण्डल बनाकर सब देवताओंका पूजन करना चाहिये ॥२९॥ वहां पँचरंगा सुन्दर वितान बांधना चाहिये। आचार्य्यका वरण करे रुद्र सहित गौरीकी ॥३०॥ सोनेकी मूर्ति बनावे। चांदीका वृषभ बनावे इनका विधिके साथ कलशपर पूजन करके रातको जगारण करे। प्रभातमें फिर पूजन करके अग्नि स्थापन करे घृतसे ॥३१॥ भीगे हुए तिल द्रव्यकी एकसौ आठ आहुति दे ॥३२॥ "ओं त्र्यंबकं यजामहे" इस मन्त्रसे शिवको तथा गौरीके मंत्रसे गौरीको दे। वर्ष बीते शिव भक्तिके साथ ब्राह्मण भोजन कराये ॥३३॥ मधुसे परिलुप्त घृत सहित पायसको भोजन कराये। अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक उन ब्राह्मणोंको हिरण्य और वस्त्र दे ॥३४॥ देवके लिये दध्यन्न भोग लगाना चाहिये। वितान, ध्वज, चामर, घण्टा और वस्त्रसहित वृष देनेवाली काली गाय रत्नसहित सजाया हुआ दोहना और हे नारद ! अलंकार और शक्तिके अनुसार दक्षिणा ये सब ॥३६॥ भक्तिपूर्वक प्रणाम करके विधिके साथ आचार्य्यको निवेदन करदे। जो इस व्रतको एक वर्ष निरन्तर करता है ॥३७॥ वो महा पातकोंसे छूट जाता है। सब ऐश्वर्य उसे मिल जाते हैं। पूरे एकसौ कोटि कल्प शिवलोकमें सम्मानके साथ रहता है। ॥३८॥ हे देवर्षे ! मैंने कृष्णाष्टमीका पवित्र व्रत आपके लिये अच्छी तरह कह दिया है जैसा कि, सृष्टिकी रचना करनेवाले देवदेवने पहिले

देवीके लिये कहाया ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि; इस प्रकार मुनिपुङ्गव नारद नन्दीश्वरके मुखसे कृष्णाष्टमीके पवित्र व्रतको सुनकर बदरिकाश्रम चले गये ॥४०॥ जो इस व्रतके प्रभाव को कहता या सुनता है वह उस लोकको चला जाता है जहां शिवजी विराजते हैं ॥४१॥ यह श्री पुराण के कृष्णाष्टमी व्रतका ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ इसके साथ अष्टमीके व्रत भी पूरे हुए ॥

अथ नवमीव्रतानि लिख्यन्ते

रामनवमीव्रतम्

चैत्रशुक्लनवम्यां रामनवमीव्रतम् ॥ इदं च परविद्धायां मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम् ॥ तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम् ––चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि । सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥ दिनद्वये ऋक्षयोगे मध्याह्नव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पराऽन्यथा पूर्वा ॥ ततुक्तं तत्रैव––नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ॥ उपोषणं नवम्यां वै दशम्यां पारणं भवेत् ॥ तत्रैव—चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ॥ पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका ॥ केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसङ्ग्रहात् ॥ तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् ॥ तत्रैव–चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥ उदये गुरुगौरांशे स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ मेषं भूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ॥ आविरासीत्स कलया कौसल्यायां परः पुमान् ॥ प्राक्पक्षे शुक्लपक्षे ॥ उदये लग्ने ॥ गुरुगौरांशे गुरुनवमांशे ॥ अस्यामेवोपोषणपूर्वकं श्रीरामप्रतिमादानमुक्तं तत्रैव ॥ तस्य प्रयोगः – अष्टम्यां प्रातर्नित्यकृत्यं विधाय दन्तधावनपूर्वकं नद्यादौ स्नात्वा गृहमागत्य वेदशास्त्रपारगं रामभक्तं विप्रमाह्वानपूर्वकवस्त्रालङ्कारादिभिः संपूज्य-श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम ॥ तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव मे इति मन्त्रेण तं प्रार्थयेत् ॥ ततः – नवम्यामङ्गभूतेन एकभक्तेन राघव ॥ इक्ष्वाकुवंशतिलक प्रीतो भव भवप्रिय ॥ इत्येकभक्तं संकल्प्य साचार्यो हविष्यं भुक्त्वा रामकथाः शृण्वन् रात्रावधःशायी भवेत् ॥ ततः प्रातर्नित्यविध्यनन्तरं स्वगृहोत्तरभागे शङ्खचक्रहनुमद्युत प्राग्द्वारं गरुत्मच्छार्ङ्गबाणयुतदक्षिणद्वारं गदाखड्गाङ्गदयुतं पश्चिमद्वारं पद्मस्वस्तिकनीलयुतोत्तरद्वारं मध्ये हस्तचतुष्कविस्तारवेदिकायुतं सुवितानं सुतोरणं पूजामण्डपं विधायोपवाससंकल्पपूर्वकं प्रतिमादानम् ॥ उपोष्ये नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव ॥ तेन प्रीतो भव त्वं मे संसारात्त्राहि मां हरे ॥ अस्यां रामनवम्यां तु रामाराधनतत्परः ॥ उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि ॥ इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते ॥ प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि च ॥ अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्त्यपि इति मन्त्रैः सङ्कल्पयेत् ॥ ततो वेदिकामध्यलिखित-

सर्वतोभद्रे कलशप्रतिष्ठाविधिना पूर्णकुम्भं निधाय तदुपरि सौवर्णं राजतं वैणवं वा पीठं वस्त्राच्छन्नं निधाय तत्र सिंहासने रामप्रतिमामग्न्युत्तारणपूर्वकं संस्थाप्य पाद्यप्रभृतिपुष्पान्तोपचारैर्महापूजां कृत्वा ।। रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत् । अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते ।। इति मन्त्रेण कौसल्या मभ्यर्च्य ओं नमो दशरथायेति दशरथं सम्पूज्यावरणपूजाप्रभृतिपूजां समाप्य मध्याह्ने फलपुष्पाम्बुपूर्णमशोककुसुमरत्नतुलसीदलसंयुतं शङ्खं गृहीत्वा–दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।। दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ।। परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।। इति मन्त्रेणार्घ्यं दद्यात् ।। ततो यामचतुष्टयेऽपि श्रीरामं संपूज्य रात्रौ जागरणं विधाय दशम्यां नित्यपूजान्तं कृत्वा मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं साज्यपायसाहुतीर्हुत्वाऽऽचार्यं वस्त्रभूषणादिभिः संपूज्य तस्मै प्रतिमाम् ।। इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् ।। चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवात्मने ।। श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ।। इति मन्त्रेण दद्यात् ।। ततोऽन्येभ्योपि यथाशक्ति दक्षिणां दत्वा–तत्र प्रसादं स्वीकृत्य क्रियते पारणं मया ।। व्रतेनानेन सन्तुष्टःस्वामिन्भक्ति प्रयच्छ मे ।। इति संप्रार्थ्य पारणं कुर्यात् ।। अथ रामपूजा–आचम्य प्राणानायम्य मासपक्षाद्युल्लिख्य सकलपापक्षयकामः श्रीरामप्रीतये रामनवमीव्रतमहं करिष्ये तदङ्गत्वेन रामपूजां करिष्ये तथा राममंत्रेण षडङ्गन्यासान्कलशार्चनं च करिष्ये इति संकल्प्य फलपुष्पाक्षतसहितं जलपूर्णताम्रपात्रं गृहीत्वा–उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव ।। तेन प्रीतो भव त्वं भोः संसाराञ्राहि मां हरे ।। इति मंत्रेण पात्रस्थं जलं क्षिपेत् ।। ततः शक्तितो हैमीं रामप्रतिमां कृत्वा अग्न्युत्तारणपूर्वकं कपोलौ स्पृष्ट्वा मूलमंत्रं प्रणवादिचतुर्थ्यंतं नमोन्त ॐ रामाय नम इति ।। अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाश्चरन्तु च ।। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेतिच कश्चन ।। इति च मंत्रं पठन्प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।। ततः–कोमलाक्षं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम् ।। दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ।। पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् ।। पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ ।। अग्रेव्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकांक्षिणम् ।। इति ध्यात्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् ।। आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं प्रभुम् ।। कौशल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ।। सहस्रशीर्षेत्यावाहनम् ।। श्रीरामागच्छभगवन्रघुवीर नृपोत्तम ।। जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ।। रामचन्द्र महेष्वास रावणान्तक राघव ।। यावत्पूजां समाप्येऽहं तावत्त्वं सन्निधौ भव।। इति सन्निधापनम् ।। रघुनायक राजर्षे नमो राजीवलोचन ।। रघुनन्दन मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ।।

इति सन्मुखीकरणम् ।। राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते ।। रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ।। पुरुष एवेदमासनम् ।। त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक ।।पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन।। एतावानस्येति पाद्यम् ।। परिपूर्णपरानन्द नमो रामाय वेधसे ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन ।। त्रिपादूर्ध्व इत्यर्घ्यं ।। नमः सत्याय शुद्धाय नित्याय ज्ञानरूपिणे ।। गृहाणाचमनं नाथ सर्व लोकैकनायक ।। तस्माद्विराडित्याचमनीयम् ।। नमः श्रीवासदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे ।। मधुपर्कं गृहाणेदं जानकीपतये नमः ।। मधुपर्कं ।। पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु ।। शर्करा चेति तद्भक्त्या दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ।। पञ्चामृ० ।। पञ्चामृतस्नानाङ्गं शुद्धोदकेन स्नानम् ।। पुष्पं धूपं दीपं दीपं नैवेद्यं निवेद्य निर्माल्यं विसृज्य-ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन ।। स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं प्रसीद जनार्दन ।। यत्पुरुषेणेति स्नानम् ।। तप्तकाञ्चनसंकाशं पीताम्बरमिदं हरे ।। त्वं गृहाण जगन्नाथ रामचंद्र नमोस्तु ते ।। तं यज्ञमिति वस्त्रम् ।। श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्त राघव ।। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनन्दन ।। तस्माद्यज्ञात् इति यज्ञोपवीतम् ।। कुंकुमागुरुकस्तूरीकर्पूरोन्मिश्रचन्दनम् ।। तुभ्यं दास्यामि राजेन्द्र श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतेति गन्धम् ।। अक्षताः परमा दिव्याः कुंकु० अक्षतान् ।। तुलसीकुन्दमन्दारजाती पुन्नागचम्पकैः ।। कदम्बकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ।। नीलाम्बुजैर्बिल्वपत्रैः पुष्पमाल्यैश्च राघव ।। पूजयिष्याम्यहं भक्त्या गृहाण त्वं जनार्दन ।। तस्मादश्वेति पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा—श्रीरामचन्द्राय० पादौ पूजयामि ।। राजीवलोचनाय० गुल्फौ पूजयामि० ।। रावणान्तकाय० जानुनी पूजयामि ।। वाचस्पते० ऊरू पू० ।। विश्वरूपाय० जंघे पू० ।। लक्ष्मणाग्रजाय० कटी पू० ।। विश्वमूर्तये० मेढ्रं पू० ।। विश्वामित्रप्रियाय० नाभिं पू० ।। परमात्मने न ० हृदयं पू० ।। श्रीकण्ठाय० कण्ठं पूजयामि ।। सर्वास्त्रधारिणे न० बाहू पू० ।। रघूद्वहाय मुखं पू० ।। पद्मनाभाय० जिह्वां पू० ।। दामोदराय० दन्तान् पू० ।। सीतापतये० ललाटं पू० ।। ज्ञानगम्याय० शिरः पू० ।। सर्वात्मने न सर्वाङ्गं पूजयामि ।। वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।। रामचन्द्र महीपाल धूपो यं प्रतिगृह्यताम् ।। यत्पुरुषमिति धूपम् ।। ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामायऽवेधसे । गृहाण दीपकं चैव त्रैलोक्यतिमिरापहम् ।। ब्राह्मणोस्येति दीपम् ।। इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। रामचन्द्रेश नैवेद्यं सीतेश प्रतिगृह्यताम् ।। चन्द्रमा मनस इति नैवेद्यम् ।। तत आचमनीयम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् ।। ताम्बूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम्।।

इति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणाम् नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च पुराणपठनादिभिः ।। पूजोपचारैरखिलैः सन्तुष्टो भव राघव ।। मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे ।। संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोस्तु ते ।। नीराजनम् ।। नमो देवाधिदेवाय रघुनाथाय शार्ङ्गिणे ।। चिन्मयानन्तरूपाय सीतायाः पतये नमः।।यज्ञेन यज्ञमिति मन्त्रपुष्पाञ्जलिम् ।। यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।। तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ।। इति प्रदक्षिणाम् ।। अशोककुसुमैर्युक्तं रामायार्घ्यं निवेदयेत् ।। दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।। राक्षसानां वधार्थाय दैत्यानां निधनाय च ।। परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।। इत्यर्घ्यं ।। इति पूजनम् ।। अथ कथा –– अगस्त्य उवाच ।। रहस्यं कथयिष्यामि सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम ।। चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवापुण्ये पुनर्वसौ ।। १ ।। उदये गुरुगौरांशे स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ।। मेषं पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ।। २ ।। आविरासीत्स कलया कौसल्यायां परः पुमान् ।। तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा ।। ३ ।। तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपुरो भुवि।। भुवीति खट्वादिव्यावृत्त्यर्थम् ।। प्रतिमायां यथाशक्ति पूजा कार्या यथाविधि ।।४।। प्रातर्दशम्यां स्नात्वैव कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः ।। संपूज्य विधिवद्रामं भक्त्या वित्तानुसारतः ।। ५ ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्सम्यक् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।। गोभूतिलहिरण्याद्यैर्वस्त्रालङ्करणैस्तथा ।। ६ ।। रामभक्तान्प्रयत्नेन प्रीणयेत्परया मुदा ।। एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम् ।। ७ ।। अनेकजन्मसिद्धानि पापानि सुबहूनि च ।। भस्मीकृत्य व्रजत्येव तद्विष्णोः परमं पदम् ।। ८ ।। सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्येकसाधनः ।। अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् ।।९।। पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः ।। यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते सतु नराधमः ।। १० ।। कुम्भीपाकेषु घोरेषु गच्छत्येव न संशयः ।। अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ।। ११ ।। व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् ।। रहस्यकृतपापानि प्रख्यातानि बहून्यपि ।। १२ ।। महान्ति च प्रणश्यन्ति श्रीरामनवमीव्रतात् ।। एकामपि नरो भक्त्या श्रीरामनवमीं मुने ।। १३ ।। उपोष्य कृतकृत्यः स्यात्सर्वपापैः प्रमुच्यते।। नरो रामनवम्यां तु श्रीरामप्रतिमाप्रदः ।। १४ ।। विधा[1]नेन मुनिश्रेष्ठ स मुक्तो नात्र संशयः ।। सुतीक्ष्ण उवाच ।। श्रीरामप्रतिमादानविधानं वा कथं मुने ।। १५ ।। कथय त्वं हि रामेऽपि भक्तस्य मम विस्तरात् ।। अगस्त्य उवाच ।। कथयिष्यामि तद्विद्वन् प्रतिमादानमुत्तमम् ।। १६ ।। विधानं चापि यत्नेन यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः ।।

१ प्रतिमादानविधिना ।

अष्टम्यां चैत्रमासे तु शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः ।। १७ ।। दन्तधावनपूर्वं तु प्रातः स्नायाद्यथाविधि ।। नद्या तडागे कूपे वा ह्रदे प्रस्रवणेऽपि वा ।। १८ ।। ततः सन्ध्यादिकाः कार्याः संस्मरन् राघवं हृदि ।। गृहमासाद्य विप्रेन्द्र कुर्यादौपासनादिकम् ।। १९ ।। दान्तं कुटुम्बिनं विप्रं वेदशास्त्रपरं सदा ।। श्रीरामपूजानिरतं सुशीलं दम्भवर्जितम् ।। २० ।। विधिज्ञं राममन्त्राणां राममन्त्रैकसाधनम् ।। आहूय भक्त्या संपूज्य वृणुयात्प्रार्थयन्निति ।।२१।। श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम ।। तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च ।। २२ ।। इत्युक्त्वा पूज्य विप्रं तं स्नापयित्वा ततः परम् ।। तैलेनाभ्यज्य पयसा चिंतयन्राघवं हृदि ।। २३ ।। श्वेताम्बरधरः श्वेतगन्धमाल्यानि धारयेत् ।। अर्चितो भूषितश्चैव कृतमाध्याह्निकक्रियः ।। २४ ।। आचार्यं भोजयेद्भक्त्या सात्त्विकान्नैः सुविस्तरम् ।। भुञ्जीत स्वयमप्येवं हृदि राममनुस्मरन् ।। २५ ।। एकभक्तव्रती तत्र सहाचार्यो जितेन्द्रियः ।। शृण्वन्रामकथां दिव्यामहःशेषं नयेन्मुने ।। २६ ।। सायंसन्ध्यादिकाः कुर्यात्क्रिया राममनुस्मरन् ।। आचार्यसहितो रात्रावधःशायी जितेन्द्रियः ।। २७ ।। वसेत्स्वयं न चैकान्ते श्रीरामार्पितमानसः ।। ततः प्रातः समुत्थाय स्नात्वा सन्ध्यां यथाविधि ।। २८ ।। प्रातः सर्वाणि कर्माणि शीघ्रमेव समापयेत् ।। ततः स्वस्थमना भूत्वा विद्वद्भिः सहितोऽनघ ।। २९ ।। स्वगृहे चोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम् ।। स्वगृहे स्वगृहसमीपे ।। चतुर्द्वारं पताकाढ्यं सवितानं सतोरणम् ।। ३०।। मनोहरं महोत्सेधं पुष्पाद्यैः समलङ्कृतम् ।। शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलङ्कृतम् ।। ३१ ।। गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलङ्कृतम्।। गदाखड्गाङ्गदैश्चैव पश्चिमे च विभूषितम् ।। ३२ ।। पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेर्यां समलङ्कृतम् ।। मध्यहस्तचतुष्काढ्यवेदिकायुक्तमायतम् ।। ३३ ।। प्रविश्य गीतनृत्यैश्च वाद्यैश्चापि समन्वितम्।। पुण्याहं वाचयित्वा च विद्वद्भिः प्रीतमानसैः ।। ३४ ।। ततः सङ्कल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने ।। अस्यां रामनवम्यां तु रामाराधनतत्परः ।। ३५ ।। उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि ।। इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां तु प्रयत्नतः ।। ३६ ।। श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते ।। प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे ।। ३७ ।। अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च ।। विलिखेत्सर्वतोभद्रं वेदिकोपरि सुन्दरम् ।। ३८ ।। मध्ये तीर्थोदकैर्युक्तं पात्रं संस्थाप्य चार्चितम् ।। सौवर्णे राजते ताम्रे पात्रे षट्कोणमालिखेत् ।। ३९ ।। ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमात्रतः ।। निर्मितां द्विभुजां रम्यां वामाङ्कस्थितजानकीम् ।। ४० ।। बिभ्रतीं दक्षिणे हस्ते ज्ञानमुद्रां महामुने ।। वामेनाधःकरेणाराद्देवीमालिंग्य संस्थिताम् ।। ४१ ।। सिंहा-

१ कृतार्चनः ।

सने राजते च पलद्वयविनिर्मिते ।। पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवत्ततः ।। ४२ ।। मूलमन्त्रेण नियतो न्यासपूर्वमतन्द्रितः ।। दिवैवं विधिवत् कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः ।। ४३ ।। दिव्यां रामकथां श्रुत्वा रामभक्तिसमन्वितः ।। गीतनृत्यादिभिश्चैव रामस्तोत्रैरनेकधा ।। ४४ ।। रामाष्टकैश्च संस्तुत्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।। कर्पूरागुरुकस्तूरीकह्लाराद्यैरनेकधा ।। ४५ ।। संपूज्य विधिवद्भक्त्या दिवारात्रं नयेद्बुधः ।। ततः प्रातः समुत्थायस्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः ।। ४६ ।। समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ।। ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।। ४७ ।। पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः ।। लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं मुने ।। ४८ ।। साज्येन पायसेनैव स्मरन्राममनन्यधीः ।। ततो भक्त्यां सुसन्तोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने ।। ४९ ।। कुण्डलाभ्यां सरत्नाभ्यामङ्गुलीयैरनेकधा ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैर्विचित्रैस्तु मनोहरैः ।। ५० ।। ततो रामं स्मरन् दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।। इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् ।। ५१ ।। चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते ।। श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ।। ५२ ।। इति दत्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां ध्रुवम् ।। अन्नेभ्यश्च यथाशक्त्या गोहिरण्यादि भक्तितः ।। ५३ ।। दद्याद्वासोयुगं धान्यं तथालङ्कारणानि च।।एवं यः कुरुते रामप्रतिमादानमुत्तमम्।।५४।। ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। तुला पुरुषदानादिफलमाप्नोति सुव्रत ।। ५५ ।। अनेकजन्मसंसिद्धपापेभ्यो मुच्यते ध्रुवम् ।। बहुनात्र किमुक्तेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।। ।।५६।।कुरुक्षेत्रे महापुण्ये सूर्यपर्वण्य शेषतः ।। तुलापुरुषदानाद्यैः कृतैर्यल्लभतेफलम् ।।५७।। तत्फलं लभते मर्त्यो दानेनानेन सुव्रत ।। सुतीक्ष्ण उवाच ।। प्रायेण हि नराः सर्वे दरिद्राः कृपणा मुने ।। ५८ ।। कैः कर्तव्यं कथमिदं व्रतं ब्रूहि महामुने।। अगस्त्य उवाच ।। दरिद्रश्च महाभाग स्वस्य वित्तानुसारतः ।। ५९ ।। पलार्धेन तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। वित्तशाठ्यमकृत्वैव कुर्यादेवं व्रतं मुने ।। ६० ।। यदि घोरतरं दुष्टं पातकं नेहते क्वचित् ।। अकिञ्चनोपि यत्नेन उपोष्य नवमीदिने ।। ६१ ।। एकचित्तोऽपि विधिवत्सर्वं पापैः प्रमुच्यते ।। प्रातःस्नानं च विधिवत्कृत्वा संध्यादिकाः क्रियाः ।। ६२ ।। गोभूतिलहिरण्यादि दद्याद्वित्तानुसारतः ।। श्रीरामचन्द्रभक्तेभ्यो विद्वद्भ्यः श्रद्धयान्वितः ।। ६३ ।। पारणं त्वथ कुर्वीत ब्राह्मणैश्च स्वबन्धुभिः ।। एवं यः कुरुते भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ६४ ।। प्राप्ते श्रीरामनवमी दिने मर्त्यो विमूढधीः ।। उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ।। ६५ ।। यत्किंचिद्राममुद्दिश्य क्रियते न स्वशक्तितः रौरवे स तु मूढात्मा पच्यते नात्र संशयः ।।६६ ।। सु[1]तीक्ष्ण उवाच ।। यामाष्टके

---

१ सुतीक्ष्ण उवाच ।। यमाष्टकेत्वित्यादिर्यातिब्रह्मसनातनमित्यन्तो ग्रन्थो यद्यपि व्रतार्के च दृश्य तथाप्यस्य शोधने साधनभूतानि ग्रन्थान्तराणि नोपलब्धानीति तथैव स्थापितःस च सुधीभिर्विचारणीयः ।

तु पूजा वै तत्र चोक्ता महामुने ।।मूलमन्त्रेण संयुक्ता तां कथां वद सुव्रत ।।६७।। अगस्त्य उवाच ।। सर्वेषां राममन्त्राणां मन्त्रराजं षडक्षरम् ।। इदं तु स्कान्दे मोक्षखण्डे श्रीरामं प्रति रुद्रगीतायां रुद्रवाक्यम् ।। मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यान्ते अर्धोदकनिवासिनः ।। ६८ ।। अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकस्योपदेशतः।। श्रीराम राम रामेति एतत्तारकमुच्यते ।। ६९ ।। अतस्त्वं जानकीनाथ परं ब्रह्माभिधीयसे ।। तारकं ब्रह्म चेत्युक्तं तेन पूजा प्रशस्यते ।। ७० ।। पीठाङ्गदेवतानां तु आवृत्तीनां तथैव च ।। आदावेव प्रकुर्वीत देवस्य प्रीतमानस ।। ७१ ।। उपचारैः षोडशभिः पूजा कार्या यथाविधि ।। आवाहनं स्थापनं च सम्मुखीकरणं तथा ।। ७२ ।। एवं मुद्रां प्रार्थनां च पूजामुद्रां प्रयत्नतः ।। शङ्खपूजां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना ततः ।। ७३ ।। कलशं वामभागे च पूजाद्रव्याणि चादरात् ।। पीठे संपूज्य यत्नेन आत्मानं मन्त्रमुच्चरेत् ।। ७४ ।। पात्रासादनमप्येवं कुर्याद्यामेष्वतन्द्रितः ।। पीताम्बराणि देवाय प्रार्पयन्नर्चयेत्सुधीः ।। ७५ ।। स्वर्णयज्ञोपवीतानि दद्याद्देवाय भक्तितः ।। नानारत्नविचित्राणि दद्यादाभरणानि च ।। ७६ ।। हिमांबुघृष्टं रुचिरं घनसारमनोहरम् ।। क्रमात्तु मूलमन्त्रेण उपचारान्प्रकल्पयेत् ।। ७७ ।। कह्लारैः केतकैर्जात्यैः पुन्नागाद्यैः प्रपूजयेत् ।। चम्पकैः शतपत्रैश्च सुगन्धैः सुमनोहरैः ।। ७८ ।। पाद्यचन्दनधूपैश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।। भक्ष्यभोज्यादिकं भक्त्या देवाय विधिनार्पयेत् ।। ७९ ।। येन सोपस्करं देवं दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते ।। जन्मकोटिकृतैर्घोरैर्नानारूपैश्च दारुणैः ।। ८० ।। विमुक्तः स्यात्क्षणादेव राम एव भवेन्मुने ।। श्रद्दधानस्य दातव्यं श्रीरामनवमीव्रतम् ।। ८१ ।। सर्वलोकहितायेदं पवित्रं पापनाशनम् ।। लोहेन निर्मितं वापि शिलया दारुणापि वा ।। ८२ ।। एकेनैव प्रकारेण यस्मै कस्मै च वा मुने ।। कृतं सर्वं प्रयत्नेन यत्किंचिदपि भक्तितः ।। ८३ ।। जपेदेकान्तमासीनो यावत्स दशमीदिनम् ।। अनेन स्यात्पुनः पूजा दशम्यां भोजये द्विजान् ।। ८४ ।। भक्त्या भोज्यैर्बहुविधैर्दद्याद्भक्त्या च दक्षिणाम् ।। कृतकृत्यो भवेत्तेन सद्यो रामः प्रसीदति ।। ८५ ।। तूष्णीं तिष्ठन्नरो वापि पुनरावृत्तिवर्जितः । द्वादशाब्दे कृतेनापि यत्पापं चापि मुच्यते ।। ८६ ।। विलयं याति तत्सर्वं श्रीरामनवमीव्रतम् ।। जपञ्च राममन्त्राणां यो न जानाति तस्य वै ।। ८७ ।। उपोष्य संस्मरेद्रामं न्यासपूर्वमतन्द्रितः ।। गुरोर्लब्धमिमं मन्त्रं न्यसेन्न्यासपुरःसरम् ।।८८।। यामे यामे च विधिना कुर्यात्पूजां समाहितः ।।मुमुक्षुश्च सदा कुर्याच्छ्रीरामनवमीव्रतम् ।। मुच्यते सर्वपापेभ्यो याति ब्रह्मसनातनम् ।। ८९ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे अगस्त्यसंहितायामगस्तिसुतीक्ष्णसंवादे रामनवमीव्रतविधिः संपूर्णः ।।

अथ नवमीव्रतानि

अब नवमीके व्रत लिखे जाते हैं। इन व्रतोंमें चैत्रशुक्ला नवमीको रामनवमीका व्रत होता है, इस व्रतको मध्याह्न व्यापिनी दशमी विद्धा नवमीमें करना चाहिये। यह अगस्त्यसंहितामें कहा है कि यदि चैत्र शुक्ला नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और वही मध्याह्नके समयरहे तो बडे भारी पुण्यवाली होती है। यदि दो दिन नक्षत्र का योग और मध्याह्नव्याप्ति हो अथवा एक देश व्याप्ति हो यानी दोनों दिन तिथि या नक्षत्रमेंसे मध्याह्नके समय एक न एक रहे तो परा लेनी, नहीं तो पूर्वाही लेनी चाहिये यह भी अगस्त्य संहितामें कहा है कि, अष्टमी विद्धा नसमीको विष्णुभक्तोंको छोड़ देनी चाहिये वे नवमीमें व्रत तथा दशमीमें पारणा करें। (निर्णयसिंधुमें "दशम्यां चैव पारणम्" ऐसा पाठ रखा है) अगस्त्य संहितामें ही लिखा हुआ है कि–चैत्र मासकी नवमीके दिन स्वयं हरिने रामावतार लिया, वो पुनर्वसु नक्षत्रसे संयुक्त नवमी तिथि सब कामोंको देनेवाली है। यह रामनवमी एक कोटि सूर्य्य ग्रहणोंसे भी अधिक है। यह भी उसी संहिता में लिखा हुआ है कि—

---

१ निर्णय सिन्धुमें—'चैत्रे नवम्याम्' यहांसे लेकर 'कौसल्यायां परः पुमान्' यहाँतक का पाठ सबसे पहिले रखा हैं। फिर वे सब वाक्य आगये हैं जो व्रतराजने अगस्त्य संहिताके रखे हैं, गोविन्दार्चनचन्द्रिकाने अगस्त्यसंहिताके वचन हरिभक्ति विलासके नामसे रखे हैं। व्रतराजने यह लिखा है कि, वैष्णवोंको अष्टमी विद्धा नवमीका त्याग करदेना चाहिये। इसी विषयपर गोविन्दार्चनचन्द्रिकामें कुछ विशेष लिखाहै उसे भी लिखते हैं कि, नवमीके क्षयमें दशमीके दिन पारणाका निश्चय होनेसे वैष्णवोंकोभी निःसन्देह अष्टमीविद्धाही नवमी लेलेनी चाहिये। व्र. नि. गो. य तीनों 'सैव मध्याह्न योगेन'–वही मध्याह्न व्यापिनहो। इस वाक्यके आधारपर मध्याह्नव्यापिनी मानते हैं। यदि दो हों और पहिले दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तो व्रतराजके यहाँ "मध्याह्न योगेन" इसी वाक्यसे उसका ग्रहण होजायगा। गोविन्दार्चन० में तो पंक्ति रखते हैं कि, 'पूर्वेद्युरेव मध्याके योगे सत्त्वे सैव ग्राह्या'-पहिलेही दिन मध्याह्न योगिनी होतो उसीका ग्रहण करलो। नि. भी यही लिखते हैं पर "कर्मकालव्याप्तेः–कर्म पूजनादिकके कालमें नवमीके होनेसे" इस हेतुको अधिक देते हैं। 'दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वसु ऋक्षयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या इस वाक्यका और 'द्विनद्वये ऋक्षयोगे मध्याह्नव्याप्ती एकदेशव्याप्तौ वा परा अन्यथा पूर्वा' इसका हमें तो प्राय. एकसाही तात्पर्य्य दीखता हैं–पहिलेका यथाश्रुत शब्दार्थ यही हैं कि, दो दिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा उसका अभाव हो तो पूर्व दिननें होनेवाली पुनर्वसु नक्षत्र युक्ताको भी छोडकर पराही करनी चाहिये, व्रतराजकी पंक्तिका तात्पर्य्य पहिले लिखा जाचुका है। ऋक्षयुक्ता भी जो दो दिनकी व्याप्तिमें नि. ने त्याग कहा है उससे यह सुतरां विद्ध होगया कि, उनका त्याग दोनों दिनही नक्षत्रके योगमें हैं। यदि पहिलेही दिनके नक्षत्र योगमें भी त्याग होता तो पुनर्वसु युताकी जो इतनी प्रशंसा की है वो निरर्थक होजायगी। तथा–'पुनर्वसुऋक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्व कामदा' यह जो निर्णयसिन्धूमें कहा है इसकी कोई विशेषताही न रहजायगी। "तदभावे उसके अभावमें" यह जो कहां है इसमें एक देश व्याप्ति आजाती है। एक देश-माध्याह्नके किसी एक भागमें व्याप्ति होना–पर पूरे मध्याह्नमें न होता एक देश व्याप्ति हैं पूर्णव्याप्ति चाहनेवालोंके यहां यह नही के बराबरही हैं। गो० में भी कहा है–'द्विनद्वये मध्याह्नव्याप्तो अव्याप्तौ वा परा'-दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा न व्याप्त हो तो पराग्रहण करनी चाहिये। इसमें "अव्याप्तौ" यह पाठ व्रतराजसे अधिक है तथा "एकदेशव्याप्तौ" यह पाठ व्रतराजमें अधिक है तथा धर्मसिन्धुमेंभी एक देश व्याप्तिका ऐसाही प्रसंग आया है। परा माननेका हेतु सबमें एकही है कि, अष्टमी विद्धाका निषेध है इस कारण दशमी विद्धा लेलेनी चाहिये। गो० लिखते हैं कि–पूर्वेद्युरेव मध्याह्ने सत्वे सैव ग्राह्या–पहिले दिनही मध्याह्नव्यापिनी हो तो उसीका ग्रहण होता है यही निर्णयसिन्धुमें भी है तथा व्रतराजके—

नवमी शब्दका ग्रहण है, इस कारण हमेशा केवला नवमीको भी उतवास करे अतः पूरे मनसे सबको नवमीका व्रत करना चाहिये। यह भी वहां लिखा मिलता है कि—चैत्र पहिले पक्ष नवमीमें दिनके समय पवित्र पुनर्वसु नक्षत्रके योगमें उदयमें गुरुके गौरांशमें उच्चके पांच ग्रहोंमें सूर्य्यके मेष राशिपर रहते कर्कट लग्नमें पर पुमान् कलासे कौशल्यामें प्रकट हुए। प्रागूपक्ष—पहिले पक्षको कहते हैं, शुक्लपक्षसे मासका आरंभ माननेवालोंके यहां शुक्लपक्ष पहिला पक्ष होता है। उदय लग्नको कहते हैं, गुरु गौरांशका गुरुके नसमांशमें यह अर्थ होता है। इसी रामनवमीको व्रतपूर्वक भगवान् रामकी प्रतिमाकादान लिखा है। रामकी प्रतिमा देनेका प्रयोग—अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्म करके दन्त धावन पूर्वक नदीमें स्नानकर घरको आ वेद वेदाङ्गोंके पारंगत रामभक्त विप्रको बुला, वस्त्रालंकारसे उसका पूजन करके प्रार्थना करे कि हे द्विजोत्तम! मैं रामचन्द्रजीकी मूर्तिका दान करूंगा उसमें आप प्रसन्न होकर मेरे आचार्य होजायँ; क्योंकि, आप मेरे लिये रामही हैं, इसके पीछे संकल्प करे कि हे राघव! हे इक्ष्वाकुकुलतिलक! हे भवके प्यारे! नवमीव्रतके अंगभूत एक भक्तसे प्रसन्न

—विरुद्धभी नहीं है। मध्याह्नव्यापिनीके प्रकरणसे इतना विचार किया है फिर प्रकृतमेंहि आये जाते हैं। गो० कहते हैं कि, पुनर्वसु नक्षत्रसे युताभी मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी विद्धा पूर्वा नवमीको छोडकर दूसरे दिन तीन मुहूर्त भी हो तो उसी दिन विष्णु भक्तोंको उपवास करना चाहिये क्योंकि वैष्णवोंके यहां उदर व्यापिनी तिथिका ग्रहण होता हैं। अव वैष्णवोंके व्रतके विषयमें विशेष विचार करते हैं–गो. में जो तीन मुहूर्तभी दशमी विद्धाका ग्रहण किया हैं यह निराश्रय नहीं है, रामार्चनचन्द्रिकामें कहा है कि, अष्टमी विद्धाही यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो तो उसमें व्रत कैसे होगा क्योंकि अष्टमी विद्धाका निषेध सुना जाता है तथा रामजन्मकी नवमीका व्रत है यह नवमीका श्रवण होता है। दशमी आदिमें नवमी आदि वृद्धि हो तो वैष्णवोंको अष्टमी विद्धाका त्याग करना चाहिये। वैष्णवेतरोंको तो अष्टमी विद्धामेंही व्रत करना चाहिये, इस वाक्यमें दो बातें हैं पहिली यह है कि, दशमी आदिमें नवमी आदिकी वृद्धि हो तो अष्टमी विद्धाका वैष्णवोंको त्याग करना चाहिये यानी उदय कालमें नवमी तीन मुहूर्त भी हो बादमें दशमी लगजाती हो तथा सूर्योदयसे पहिले क्षय होनेके कारण समाप्त हो जाती हो तो ऐसी नवमी जो सूर्य्योदयसे तीन मुहूर्त हैं, वैष्णवोंके यहां उस दिन उपवासहो सकेगा; क्यों कि, वैष्णवोंके यहां नवमी व्रतकी पारण उस एकादशीमें हो सकेगी जो कि, सूर्य्योदयसे पहिले समाप्त हुई दशमीके बाद एकादशी आती है। तात्पर्य यह है कि, वैष्णवोंके यहां सूर्य्योदयके समयमें भी दशमी विद्धा एकादशीमें नवमीके व्रतकी पारण होती है; क्योंकि वे अरुणोदय कालमें भी दशमीसे वेध होजानेसे एकादशीका ग्रण नहीं करते। यदि दशमीकी वृद्धिका अभाव हो यानी एकादशी आनेवाले दिन सूर्य्योदयके तीन मुहूर्तके पहिलेही दशमी समाप्त होजाय तो भी वैष्णवोंको अष्टमी विद्धाही नवमीके दिन व्रत करना चाहिये; क्योंकि, तीन मुहूर्तसे कममें वैष्णवोंके यहां भी परामें व्रत करनेका विधान नहीं है, पर यह मध्याह्नव्यापिनी होनी चाहिये। यदि नवमीका क्षय हो यानी पहिले दिन सूर्य्योदयके तीन मुर्तह बाद कभीभी लगती हो एवं दूसरे दिन सूर्य्य निकलनेसे पहिले ही समाप्त होजाती हो तो वैष्णवोंको अष्टमी विद्धाही नवमी करनी चाहिये। ऐसे स्थलमें स्मार्त वैष्णवोंके यहां भी एकही दिन व्रत होता है सिद्धान्त यह हुआ कि, नवमीके जो गुण कहे हैं वे योगादिक शुद्धामें मिलें तो उसीमें उपवास करना चाहिये। सिवा उक्त कारणोंके अष्टमी विद्धामें व्रत न करना चाहिये। व्रतराजमें जो यह लिखा हुआ है कि, पर विद्धा (दशमीयुता) नवमीमें इस व्रतको करना चाहिये यह कोई प्रधान बात नहीं है। प्रायिक सिद्ध वचन हैं कि, यह व्रत विना किसी खास बातके पूर्वविद्धामें नहीं होता शुद्धा या प्रायः परविद्धा (दशमीयुतामें) होता है। उत्तरामें भी यदि तीन मुहूर्तसे कम नवमी होगी तो भी अष्टमी विद्धाही लीजायगी। यह गोविन्दार्चनचन्द्रिकामें लिखा हुआ है। व्रतराजने जब वैष्णवोंकी ओर कुछ संकेत करके कहदिया है तो उससे अवैष्णवोंके

होजाइये। पीछे आचार्यके साथ हविष्यान्न भोजन करके रामचन्द्रजीकी कथा सुनाता हुआ रातको भूमिपर शयन करें। पीछे प्रातःकाल, नित्यकर्मसे निवृत्त होकर अपने घरके उत्तर भागमें एक सुन्दर मंडप बनावे उसके पूरबके दरवाजेपर शंख चक्र और हनुमानजीकी स्थापना करे या काढे, गरुड और बाण सहित शार्ङ्ग धनुषको दक्षिणद्वारपर तथा गदा, खड्ग और अंगद इनको पश्चिम द्वारपर एवम् पद्म स्वस्तिक और नीलको उत्तर द्वार पर काढे या स्थापित करे। बीचमें चार हाथके विस्तार की वेदिका होनी चाहिये सुन्दर वितान हो तोरण भी अच्छे लगे हों इस प्रकार मण्डप तयार करके उपवासके संकल्पके साथ प्रतिमादान करे, उसकी विधि यह है हे राघव! आठों यामोंमें नवमीका उपवास करूंगा उससे आप प्रसन्न हों, हे हरे! संसारसे मेरी रक्षा करें, मैं रामके आराधनमें तत्पर हुआ इस राम नवमीके दिन आठों प्रहर उपवास कर विधिपूर्वक रामकी पूजा करके, सोनेकी रामचन्द्रजीकी मूर्तिको श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये बुद्धिमान रामभक्तके लिये दूंगा, अनेक जन्मोंसे संविद्ध तथा वारंवारके अभ्यस्त बडे २ भी बहुतसे पापोंको श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होतेही क्षणमात्रमें नष्टकर देते हैं, इस मंत्रसे संकल्प करे, वेदिकाके बीचमें सर्वतो भद्रमंडल लिखे उस में विधि पूर्वक कलशकी स्थापना करे, उसके उपर सोना चांदी बांस जैसी श्रद्धाहो उसका सिंहासन स्थापित करे वस्त्र बिछाये अग्न्युत्तारण आदि संस्कारोंसे संस्कृत हुई रामप्रतिमाको विधिपूर्वक स्थापित करे। पीछे पाद्यसे लेकर पुष्प समर्पण पर्य्यन्तके उपचारोंसे रामकी पूजा करे। आप रामकी जननी हैं यह सब जगत् रामात्मक है इस कारण मैं आप रामका पूजन करता हूं हे लोकमातः! तेरे लिये नमस्कार है, इस मंत्रसे कौसल्या माका पूजन करे। ओम् दशरथाय नमः दशरथके लिये नमस्कार इस नाम मंत्रसे दशरथजीका पूजन करे। आवरण पूजासे लेकर पूरी पूजा समाप्त करे। पीछे शंखमें पानी तुलसीदल और रत्न डालकर भगवान् रामको अर्घ्य देना चाहिये, कि रावणके मारनेके लिये धर्मकी स्थापनाके लिये दानवोंके विनाशके लिये दैत्योंके मारनेके लिये साधुओंकी रक्षाके लिये हरि स्वयं रामके रूपमें अवतरे थे। हे निष्पाप! भाइयोंके साथ अर्घ्य ग्रहण करिये, पीछे चारों पहरोंमेंभी रामकी पूजा करके रातको जागरण करके दशमीके दिन नित्य पूजातक सबकर्म समाप्त करके मूल मंत्रके द्वारा घी मिली हुई खीरसे १०८ आहुति देकर वस्त्र भूषण आदिसे आचार्य्यको पूजे, पीछे आचार्यको राम मूर्तिका मंत्रसे दान करे कि जिसे रंग विरंगे दो वस्त्र उठा रखे हैं जो कि सोनेकी बनी हुई है भली भांति गहने पहिनारखे हैं ऐसी रामकी प्रतिमाको, राघवरूप आपके लिये आज

—विधान जाननेकी आकांक्षा होती है। इस कारण उनके विधानपर भी विचार करते हैं कि, उनका रामनवमीका क्या व्रत दिन विधान है। वैष्णव शब्द के मुकाविले उन्हें स्मार्त शब्दसे याद करते है। यद्यपि वैष्णव और अवैष्णव दोनोंही स्मृतियोंको मानते हैं पर वैष्णव कहलानेवाले संप्रदायोंसे इतर स्मार्त नामसे भी बोले जाते हैं, पूर्व जो वचन गया था उसके एक अंशपर विचार करते हुएतो वैष्णवोंकी रामनवमीके व्रतकी व्यवस्थापर विचार करडाला। अब उसके तदन्येषाम् वैष्णवेतरोंके यह अर्थ जिसका किया है उसपर विचार करते हैं, शब्दका मतलब स्मार्तोंसे है यानी दशमीवाले दिन तीन मुहूर्त रहनेवाली नवमीको उपवास प्रारंभ करनेपर पारणावाले दूसरे दिन सूर्योदयसे पहिले दशमीका क्षय होनेसे सूर्योदयके समय एकादशी आजायगी। तब यहभी दिन स्मार्तोंके यहां उपवास-काही होगा। नवमीकी पारण बिना हुए नवमीव्रतके एक अंग पारणके विना हुए व्रतकी अपूर्णता रह जायगी, इस कारण ऐसे स्थलमें स्मार्तोंको अष्टमी विद्धाही करनी चाहिये जो दूसरे दिन पारणा करसकें। ऐसा करनेसे उन्हें नवमीके व्रतकी पारणाका समय एकादशीके व्रतसे पहिले मिल जायगा। अन्तर यहां यह होगा कि, स्मार्तोंके यहां पहिली और वैष्णवोंके यहां दूसरी होजायगी। यह हमने सबके मतोंको दृष्टिकोणमें रखकर सामान्य विचार किया है। अधिक वढानेसे अनावश्यक विस्तार बढता है।

रामके जन्मदिन रामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये देताहूं इसके बाद दूसरोंके लिये भी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। पीछे आपके प्रसादको स्वीकारकरके में पारणा करूंगा हे स्वामिन्! इस व्रतसे सन्तुष्ट हो मुझे अपनी भक्ति दे, इस मंत्रसे प्रार्थना करके पारणा करनी चाहिये। अथ रामपूजा–आचमन प्राणायाम करके मासपक्ष आदिका उल्लेख करके सब पापोंके नाशको चाहता हुआ में श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये रामनवमीका व्रत करूंगा तथा उसके अंगरूपसे रामकी पूजा भी करूंगा एवम् राम-मंत्रसे छः अंगन्यास और कलशका पूजन भी करूंगा, यह संकल्प करना चाहिये। फल, पुष्प और अक्षत चलसे भरे हुए पूर्ण पात्रको लेकर कहे कि हे राघव! में अब इस नवमीमें आठों पहर उपवास करूंगा, हे विभो! उससे आप परम प्रसन्न हो जाओ, हे हरे! संसारमे मेरी रक्षा करिये, पीछे उस पात्रके पानीको पानीमें छोड दे। इसके बाद शक्तिके अनुसार सोनेकी प्रतिमा बनवा अग्नि उत्तारण आदि प्राण प्रतिष्ठा प्रकरणके कहे हुए कर्म करके पीछे प्रतिमाके कपोलोंपर हाथ रखकर पहिले मूल मंत्रको पढे राम। इस शब्दको चतुर्थीका एक वचनान्त करके आदिमें ओम् और अन्तमें नमः लगानेसे मूल मंत्र ओम् रामय नमः यह बनजाता है। फिर अस्मं प्राणा इस मंत्रको जपे। (अस्मं प्राणाः इसका अर्थ २७५ पृष्टमें कर चुके हैं) भगवान् रामका ध्यान करना चाहिये कि–वडे २ कोमल नेत्रवाले इंद्रनील मणिके सम प्रभावाले भगवान् राम हैं, दाई और पुत्रको देखनेमें लगेहुए दशरथ उपस्थित हैं। पीछे छत्र लिये हुये लक्ष्मण खडे हुए हैं। अगलबगलभरत और शत्रुहन् तालका वींजना हाथमें लिये खडे हैं। आगाडीशान्त मूर्ति भगवान् मारुति खडे हुए हाथ जोडकर रामकी कृपाचाहरहे हैं। इस प्रकार यह ध्यान रामपंचायतनका होना चाहिये। इसके बाद षोडश उपचारोंसे पूजन करना चाहिये, में उस रामका आवाहन करता हूं जो विष्ण है प्रकृति भी परे है विश्वका स्वामी है जानकीका प्रिय तथा कौसल्याका प्यारा पुत्र है इस मंत्रसे तथा "सहस्रशीर्षा" इससे आवाहन करना चाहिये। हे राम! हे रघुवीर! हे भगवन्! आइये, हे राजेन्द्र! जानकीके साथ यहां सदा सुस्थिर हूजिये, हे वडे भारी धनुषके धारण करनेवाले! हे रावणके काल! हे राघव! जवतक में पूजा समाप्त न करूं तवतक आप मेरी सन्निधिमें रहिये, इन मंत्रोंसे रामको सन्निहित करना चाहिये। हे रघुनायक! हे राजर्षे! हे कमलकेसे नयनोंवाले! हे मेरे देव रघुनन्दन! हे श्रीराम! मेरे सामने हूजिये, इससे सामने करे। हे राजाधिराज! हे राजेन्द्र! हे राजारामचन्द्र! में आपको रत्नोंका सिंहासन देता हूं। हे प्रभो! उसे स्वीकार करीये इससे और "पुरुष एवेदम्" इससे आसन; हे तीनों लोकोंके पवित्र करनेवाले, हे अनन्त! रघुनायक! तेरे लिये नमस्कार है,- हे राजर्षे! पाद्य ग्रहण कर हे राजीवलोचन! तेरे लिये वारंवार नमस्कार है इससे और "एतावा नस्य" इससे पाद्य; हे परिपूर्णपरमानन्दस्वरूप! तुझ सृष्टिकर्ता रामके लिये नमस्कार है, हे कृष्ण! हे विष्णो! हे जनार्दन! मेरे दियेहुए अर्घ्यको ग्रहण कर, इससे और "त्रिपादूर्ध्व०" इससे अर्घ्य; ज्ञानही रूप जिसका ऐसे नित्य शुद्ध सत्यके लिये नमस्कार है, हे नाथ! सब लोकोंके एक नायक! आचमन ग्रहण करिये, इससे और "तस्माद् विराड्" इससे आचमन; तत्वज्ञानही है रूप जिसका ऐसे वासुदेवके लिये नमस्कार है, हे जानकीके पति! तेरे लिये नमस्कार है इस मधुपर्कको ग्रहण करिये, इससे मधपर्क; पय, दीप, घृत, मधु और शर्करा ये पांचों अमृत द्रव्य, भक्तिसे आपको दिये हैं आप ग्रहण करिये, इससे पंचामृतस्नान; पीछे पंचामृत स्नानका अंग शुद्ध जलका स्नान समर्पण करना चाहिये। पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। निर्माल्य भेंटकी वस्तुका विसर्जन करे, हे रघुनन्दन! ब्रह्मांडके सब तीर्थोंसे में भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ हे जनार्दन! प्रसन्न हूजिये इससे और "यत्पुरुषेण" इससे स्नान; हे हरे! यह तपेहुए सोनेके समान चमकता पीताम्वर है आप इसे ग्रहण करिये, हे जगन्नाथ राम। आपके लिये नमस्कार है, इससे और तं यज्ञम्' इससे वस्त्र; हे राम! हे अच्युत! यज्ञेश! हे श्रीधर! हे अनन्त! हे राघव! हे रघुनन्दन! उत्तरीय सपहत ब्रह्मसूत्र ग्रहण करिये इससे और "तस्माद्यज्ञात्" इससे यज्ञोपवीत; कुंकुम अगरु, कस्तूरी और कपूरसे मिले

हुये चन्दनको हे राजेन्द्र! आपको देताहूं हे श्रीराम! आप उसे स्वीकार करिये इससे और "तस्माद्यज्ञात्" इससेगन्ध; 'अक्षता परमा दिव्या' इससे अक्षत; तुलसी, कुन्द, मन्दार, जाती, पुन्नाग, चंपक, कदम्ब, करवीर, कुसुम, शतपत्र, नीलाम्बुज, बिल्वपत्र और पुष्प, माल्योंसे हे राघव! मैं भक्तिके साथ पूजूंगा। हे जनार्दन! आप ग्रहण करिये, इससे और "तस्मादश्वा" इससे पुष्प समर्पण करना चाहिये ॥ अङ्गपूजा-मूलमें नाममंत्र और अंग दोनोंही साथ लिख दिये हैं। अन्तर केवल इतनाही है कि, कहीं पूजयामि को जगह केवल पू० लिखकर अगाडी बिन्दी देदी है। इन नाम मंत्रोंको बोलकर उन उन अंगोंपर अक्षत चढाने चाहिये। श्रीरामचन्द्रके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजता हूं, राजीव लोचनके०गुल्फोंका पू०, रावणके मारनेवालेके० जानुओंका पू०, वाचस्पतिके लिये न० उरूको पू०, विश्वरूपके जंघाओंको पू०, लक्ष्मणके बडे भाईके लिये न० कटीको पू०, विश्वमूर्तिके लिये न० मेढ्को पू०, विश्वामित्रके लिये न० नाभिको पू०, परमात्माके लि० हृदयको पू०, श्रीकण्ठके लिये न० कण्ठकोपू०, सब अन्न धारण करनेवालेके लिये न०, बाहुओंको पू०, रघूद्वहके लिये न० मुखको पू० पद्मनाभके लिये न० जिह्वाको दामोदरके लि० दांतोंको पू०; सीताके पतिके लिये न० ललाटको पू० ज्ञानगम्यके लिये न० शिरको पू० सर्वात्माके लिये नमस्कार सर्वाङ्गको पूजता हूँ। वनस्पतिके रसका बनाहुआ गन्धाढ्य उत्तम गन्ध यह धूप है। हे राम महीपाल! इसे ग्रहण करिये, इससे और "यत्पुरुषम्" इससे धूप, ज्योतियोंके पति वेधा तुझ रामके लिये नमस्कार है। हे तीनों लोकोंके अन्धकारको नष्ट करनेवाले इस दीपकको ग्रहणकर, इससे और "ब्राह्मणोऽस्य" इससे दीपक, यह अमृतके समान स्वादिष्ट दिव्य अन्न छओं रसोंसे समन्वित है। हे सीताके ईश रामचन्द्र! इस नैवेद्यको ग्रहण करिये, इससे और "चन्द्रमा मनसो०" इससे नैवेद्य, इसके बाद आचमनीय, 'इदं फलम्' इससे फलः 'नागवल्लीदलैर्युक्तम्' इससे ताम्बूल, "हिरण्यगर्भ" इससे दक्षिणा, "नाभ्याआसीत्" इससे प्रदक्षिणा, नृत्य गीतवाद्य और पुराणोंके पठनोंसे तथा संपूर्ण पूजाके उपचारसे हे राघव! सन्तुष्ट हूजिये, हे महीपाल! हे हरे! यह नीराजन आपके मंगलके लिये किया है। हे जगन्नाथ राम! तेरे लिये नमस्कार है इसे ग्रहण करिये, इससे नीराजन. चिन्मय अनन्तरूप देवाधिदेव शार्ङ्ग धनुधारी सीता पति रामके लिये नमस्कार है। इससे और "यज्ञेन यज्ञम्" इससे मंत्रपुष्पांजलि, 'यानिकानि च पापानि इससे प्रदक्षिणा, अशोक के फूलोंके साथ रामको अर्घ्य निवेदन करे अर्घ्य देनेका मंत्र-'दशाननवधार्थाय' यह है इससे अर्घ्य समर्पण करना चाहिये। यह पूजन पूरा हुआ॥ कथा अगस्त्य बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! ऐसे दिव्य दिन भगवान् रामने रामावतार लिया। इस दिन सदाही उपवास व्रत करना चाहिये ॥१-३॥ (बाकीके श्लोकोंका रामनवमीके निर्णयमें पहिलेली अर्थकर चुके हैं) उस दिन रघुनाथ परायण होकर भूमिपर जागरण करना चाहिये। भुवि यह जो लिखा है यह खाट आदिकी निवृत्तिके लिये है यानी भूमिपरही ब्रह्मचर्य्यपूर्वक जागरण करे। प्रतिमामेंही शक्तिके अनुसार भगवान् रामकी पूजा करनी चाहिये ॥४॥ प्रातःकाल दशमीमें स्नान संध्यादिक करके भक्तिसे अपने धनके अनुसार विधिपूर्वक पूजन करके ॥५॥ ब्राह्मणोंको भलीभांति भोजन करा, पीछे दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये। गो, भूमि तिल, हिरण्यादिक वस्त्र और अलंकारोंसे ॥६॥ परम प्रसन्नताके साथ प्रयत्नपूर्वक रामभक्तोंको प्रसन्न करे। जो इस प्रकार श्रीरामनवमीका व्रत करता है ॥७॥ अनेक जन्मोंके किये हुए परिपूर्ण पापोंको भस्म करके ,जो विष्णु भगवानका परमपद है उसे प्राप्त होता है ॥८॥ सबका यही धर्म है, मुक्ति और भुक्ति दोनों का साधन है, अशुचि हो चाहें पापिष्ठ हो। इस उत्तम व्रतको करके ॥९॥ वो सब प्राणियोंका रामके समान पूज्य होजाता है। जो रामनवमीको भोजन करता है वो बडाही अधम मनुष्य है ॥१०॥ वो घोर कुंभीपाकोंमें जाता है इसमें सन्देह नहीं है। जो राम नौमीके व्रतको न करके ॥११॥ दूसरे व्रतोंको करता है उसका उसे फल नहीं मिलता।

जो एकान्तमें महापाप किये हैं जो कि बहुतसे हैं ॥१२॥ और बडे बडे हैं वे सब राम नवमीके व्रतसे नष्ट होजाते हैं ।हे मुने रामनवमीको भक्ति पूर्वक एक भी ॥१३॥ उपवास करले तो कृतकृत्य होजाता है । सब पापोंसे छूट जाता है । जो रामनवमीके दिन श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतिमाका दान करता है ॥१४॥ प्रतिमाके दानकी विधिसे वो मुक्त हो गया इसमें सन्देह नहीं है सुतीक्ष्ण बोले कि हे हे मुने! रामकी प्रतिमाका दान कैसे किया जाता है ॥१५॥ इसे मुझे रामके भक्तके लिये आप विस्तारके साथ कहें। अगस्त्य बोले कि हे विद्वन्! मैं आपको इस उत्तम प्रतिमादानको सुनाऊंगा ॥१६॥ विधान भी प्रयत्नके साथ कहुंगा क्योंकि आप श्रेष्ठ वैष्णव हैं चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन जितेन्द्रिय हो ॥१७॥ पहिले दांतुन करके पीछे विधिपूर्वक स्नान करे। वो नदी, तडाग, कूआ, ह्रद और झरना किसीपर होना चाहिये ॥१८॥ भगवान् रामचन्द्रका ध्यान करते हुए पीछे संध्या आदिक करने चाहिये । हे विप्रेन्द्र! घर आकर विधिपूर्वक उपासना आदिक करनी चाहिये ॥१९॥ सदा वेदशास्त्रोंके पाठ करनेवाले जितेन्द्रिय कुटुम्बी दंभरहित सुशील श्रीरामकी पूजामें लगे रहनेवाली ब्राह्मणको ॥२०॥ जो कि रामजीके मंत्रोंकी विधि जानता हो तथा राममंत्रोंका एकही साधन हो उसे बुलाकर भक्तिपूर्वक पूज प्रार्थना करके वर ले ॥२१॥ कहे कि, हे द्विजोत्तम! मैं रामचन्द्रजीकी मूर्तिका दान करूंगा। आप प्रसन्न होकर मेरे आचार्य हो जायें आप रामही हैं ॥२२॥ ऐसा कहकर आचार्य्यका पूजन करे। भगवान् रामको हृदयमें याद करते हुए तेल और दूधसे उबटना करके स्नान करावे ॥२३॥ आप भी श्वेतवस्त्र पहिनकर रहे तथा श्वेतही गन्ध माल्योंको उन्हें धारण करावे पूजन करे भूषण धारण करावे मध्याह्नकालकी क्रियाओंको समाप्त करके ॥२४॥ भक्ति के साथ विस्तारपूर्वक सात्विक अन्नोंसे आचार्यको भोजन करावे । हृदयमें भगवान् रामका स्मरण करता आपभी भोजन करे ॥२५॥ उसमें आचार्य्यके साथ जितेन्द्रिय रहकर एकावार भोजन करनेवाला व्रती हे मुने! रामचन्द्रकी दिव्य कथा सुनता हुआही वाकी दिन व्यतीत करे ॥२६॥ भगवान् रामका ही स्मरण करता हुआ सायंकालकी क्रियाओंको पूरा करे । रातमें जितेन्द्रिय रहकर आचार्यके साथ भूमिपर शयन करे ॥२७॥ भगवान् रामका ध्यान करता हुआ एकन्तमें रहे इसके वाद प्रातःकाल उठ स्नानकर विधि पूर्वक संध्याकरके ॥२८॥ प्रातःकालके सब कर्मोको शीघ्रही समाप्त कर दे । हे अनघ! इसके बाद स्वस्थ मनको कर विद्वानोंके साथ ॥२९॥ अपने घरके उत्तर देशमें दानका सुंदर मंडप वनवाये स्वगृहे–यानी अपने घरके समीपमें उत्तरकी तरफ उसके द्वार होने चाहिये, पताकाएं लगनी चाहिये तोरण सहित वितान बनाना चाहिये ॥३०॥ वो सुंदर तथा उचित ऊँचा चाहिये । उसका पूरबका दरवाजा शंख चक्र और हनूमानजीसे अलंकृत होना चाहिये ॥३१॥ दक्षिणका दरवाजा गरुड शार्ङ्ग और बाणोंसे अलंकृत हो पश्चिमकाद्वार गदा खड्ग और अंगदसे भूषित हो ॥३२॥ उत्तरका दरवाजा पद्म स्वस्तिक और नीलसे विभूषित हो वो बीचमें चार हाथकी वेदीसे युक्त चोडा होना चाहिये ॥३३॥ नृत्य गीत और बाजोंके साथ उसमें घुसकर प्रसन्न हुए विद्वानोंसे पुण्याह वाचन कराकर ॥३४॥ हे मुने । इसके पीछे रामका स्मरण करता हुआ इस प्रकार संकल्प करे कि रामके आराधन में तत्पर हुआ मैं इस रामनवमीके दिन ॥३५॥ आठ पहर उपवास करके विधि-पूर्वक रामको पूज प्रयत्नके साथ इस सोनेकी राम प्रतिमाको ॥३६॥ बुद्धिमान् रामभक्तके लिये दूंगा प्रसन्न हुए राम मेरे बहुतसे भी पापोंको शीघ्र नष्टकर देते हैं ॥२७॥ चाहे वो अनेकों जन्मोंके इकट्ठे किये हुए बारंबारके अभ्यस्त भी क्यों न हों । वेदिकाके ऊपर सब ओरसे सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे ॥३८॥ बीचमें तीर्थके पानीसे भरा हुआ पात्र संस्थापित करके उसका पूजन करना चाहिये । सोना चांदी तांबा इनमेंसे किसीके भी पात्रभर षट्कोण लिखे ॥३९॥ इसके बाद एकपल सोनेकी भगवान् रामकी द्विभुजी प्रतिमा बनावे । सुन्दर जानकी जीको वामाङ्कमें बिठावे ॥४०॥ हे महामुने! वे दांये हाथ में ज्ञानमुद्राको धारण किये हुए हो बांये नीचे हाथसें देवी का अलिङ्गन करके स्थित हों ॥४१॥ उनका दो पलके बने हुए चांदीके सिंहासनपर पंचामृतके स्नानपूर्वक विधि पूर्वक पूजन

करके ॥४२॥ निरालस हो नियम पूर्वक मूलमंत्रसे न्यास करके दिनमें ही इसी प्रकार विधिपूर्वक पूजनादि करके रातमें जागरण करे ॥४३॥ रामचन्द्रजी की भक्ति के साथ रामचन्द्रजीकी दिव्य कथाएँ सुनते हुए नृत्य गीतादिकों तथा अनेक तरहके रामचन्द्रजीके स्तोत्रों से ॥४४॥ एवम् रामचन्द्रके अष्टकोंसे रामचन्द्रजीकी स्तुति करके गन्ध पुष्प, अक्षत, कर्पूर, अगरु, कस्तूरी और कल्हार आदिकोंसे अनेक तरह ॥४५॥ भक्तिके साथ विधि पूर्वक पूजनमें ही दिनरात पूरे करे। फिर प्रातःकाल उठ स्नान सन्ध्या आदिक क्रियाओंको ॥४६॥ विधिपूर्वक पूरा करके पीछे विधिपूर्वक भगवान् राम का पूजन करे। फिर मंत्रवेत्ताको चाहिये कि मूलमंत्रसे विधिपूर्वक होम करे ॥ ४७ ॥ एकाग्र चित्त हो पहिले कहे हुए पद्मकुण्डमें या स्थण्डिलमें लौकिकाग्निमें हे मुने विधानके साथ एकसौ आठ ॥ ४८ ॥ घी मिली हुई खीरकी आहुति दे। एकाग्रमनसे रामका स्मरण करता हुआ, हे मुने! पीछे सन्तोषपूर्वक आचार्य्यका पूजन करे ॥४९॥ रत्नसमेत कुण्डल छाप तथा अनेक तरहके गन्ध पुष्प अक्षत तथा मनोहर विचित्र तरहके वस्त्र इससे होना चाहिये ॥५०॥ इसके बाद रामका स्मरण करता हुआ इस मंत्रको बोलकर प्रतिमाका दान करदे कि भली भांति सजाई हुई सोनेकी इस राम प्रतिमाको ॥५१॥ जो कि रंगे हुए दो वस्त्रोंसे ढकी हुई है उसे रामरूप मैं, श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये स्वयं रामजीरूप आपके लिये देता हूं इससे भगवान् राम मुझपर प्रसन्न हो जायें ॥५२॥ इस विधानसे प्रतिमा देकर उसकी दक्षिणा भी अवश्य ही देनी चाहिये। इसको भी अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक गो सोना ॥५३॥ दो वस्त्र धान्य और अलंकार दे इस प्रकार जो सर्वश्रेष्ठ रामचन्द्रजीकी प्रतिमाका दान करता है ।;५४॥ वो ब्रह्म-हत्या आदिक सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है, हे सुव्रत! वो तुला पुरुषके दान आदिकोंका फल पाता है न इसमें सन्देह है ॥५५॥ वो अनेक जन्मोंके लिये हुए पापोंसे छूट जाता है इसमें भी क्या सन्देह है, बहुत कहने में क्या है मुक्ति उनके हाथोंमें स्थित रहती है ॥५६॥ महापुण्यशाली कुरुक्षेत्र तीर्थमें सूर्यग्रहणके समय सारे तुला पुरुषदान आदिके करनेसे जो फल मिलता है ॥५७॥ हे सुव्रत! वो फल इस दिन रामजीकी प्रतिमाका दान करने से मिल जाता है। सुतीक्ष्ण बोले कि, हे मुने प्रायः करके सब मनुष्य दरिद्र और कृपण हैं ॥५८॥ हे महामुने। यह तो बताइये कि इस व्रतको किसे करना चाहिये। अगस्त्यजी बोले कि, हे महाभाग! दरिद्र भी अपने धनके अनुसार ॥५९॥ आधे पल अथवा आधेके आधे अथवा उसके भी आधे पलकी प्रतिमा बनवाले धनके लोभको छोडकर ही हे मुने! इस व्रतको करे ॥६०॥ यदि कोई घोर तर बुरा पाप किसी तरह भी नष्ट नहीं होता, उसको अकिंचन भी प्रयत्नके साथ नौमीके दिन उपवास करके नष्ट कर देता है तथा विधिपूर्वक एक चित्त होकर भी पूर्वोक्त विधानसे सब पापोंसे छूट जाता है। प्रातः स्नान करके विधिपूर्वक सन्ध्या आदिक क्रियाओंको कर ॥६१॥ ॥६२॥ गो, तिल, हिरण्य, अपने धनके अनुसार जो विद्वान रामचन्द्रजीके भक्त हो उन्हें श्रद्धापूर्वक देदेना चाहिये ॥६३॥ ब्राह्मण और बन्धुओंके साथ धारणा करे। जो इस प्रकार भक्तिके साथ इस व्रतको काता है वो सब पापोंसे छूट जाता है ॥६४॥ जो मूढ बुद्धिका मनुष्य रामनवमीके दिन व्रत नहीं करता वो कुंभीपाकमें पचता है ॥६५॥ जो अपनी शक्तिके अनुसार रामके लिये कुछ भी नहीं करता वो घोरा कुम्भीपाकमें पकाया जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६६ ॥ तीक्ष्ण बोले कि हे महामुने! जो आपने व्रतमें आठ पहर पूजा मूल मन्त्रके साथ कही है उसे आप विस्तारके साथ कहें ॥६७॥ अगस्त्यबोले कि, रामचन्द्रजीके सब मन्त्रोंमें षडक्षर मन्त्र राजाके समान है। यह तो स्कन्द पुराणके मोक्ष खण्डमें आई हुई रुद्र गीतामें रुद्रका वाक्य है—मणिकर्णिका घाटपर आधा पानीमें और आधा पानीके भीतर पडे हुए मरनेकी इच्छा वाले पुरुषको ॥६८॥ तारनेवाले तेरे मंत्रका उपदेश देता हूं "श्रीराम राम राम" इसको तारक कहते हैं ॥६९॥ इसी कारण हे जानकीनाथ! आप पर ब्रह्म कहाते हो क्योंकि तारकको ब्रह्म कहते हैं इस कारण आपकी पूजाकी प्रशंसा है ॥७०॥ देवके पूजनके आदिमें पीठके अङ्गदेवता

तथा आवरणोंके देवताओंका प्रसन्नचित्तके साथ पूजन करे ।। ७१ ।। फिर विधिके साथ सोलहों उपचारोंसे पूजाकरनी चाहिये । आवाहन, स्थापन, संमुखीकरण ।।७२।। इसीतरह प्रार्थनामुद्रा पूजामुद्रा इनको प्रयत्न के साथ करे । फिर पहिले कहीहुई विधिसे शंख पूजा करे ।७३।। बांये भागमें कलश और पूजाके द्रव्योंको आदरके साथ रखे । पीठपर प्रयत्नके साथ आत्मरूप भगवान् रामका पूजन करके मन्त्रका उच्चारण करे ।।७४।। इसी तरह निरालस होकर पात्रोंको इकट्ठा करे देवके लिये पीताम्बर समर्पण करता हुआ पूजन करे ।।७५।। भक्तिके साथ सोनेके उपवीत एवम् अनेक तरहके विचित्र रत्न तथा आभरणोंको दे ।।७६।। हिमके पानीसे घिसेहुएरुचिर मनोहर धन–सारको देवके लिये भेंट करे । एक चन्दनही नहीं किंतु क्रमके अनुसार मूलमन्त्रसे सब उपचारोंको करे ।।७७।। कह्लार, केतकी, जाति, पुन्नागादिक चंपक, शतपत्र, तथा और भी सुगन्धित मनोहर पुष्पोंसे पूजा करे ।।७८।। पाद्य चन्दन और धूपके मन्त्रोंसे पाद्य चन्दन और धूप दे । भक्ष्य भोज्य-आदि भक्तिपूर्वक विधिके साथ देवको अर्पण करे ।।७९।। क्योंकि उपस्कर सहित रामकी मूर्तिका दान करके सब पापोंसे छूट जाता है चाहे वे अनेक जन्मोंके किये परमभयंकर ही क्यों न हों ।।८०।। हे मुने ! एक क्षणमें ही मुक्त होकर रामही होजाता है जो श्रद्धालु हो उसे रामनवमी का व्रतदेना चाहिये ।।८१।। सब लोकोंके कल्याणके लिये यह है, पापका नाश करनेवाला एवं परमपवित्र है लोह (सोनेकी) बनी हुई या पत्थरकी बनी हुई अथवा काठकी बनी हुई प्रतिमाका दान करे ।।८२।। जिस किसी भी प्रकासे जिस किसीके भी लिये इस व्रतको करावे । जो भी कुछ प्रयत्नपूर्वक भक्तिके साथ करे वो सब सफल होता है ।। ८३ ।। अथवा जबतक दशमीका दिन आये तबतक एकान्तमें बैठकर मन्त्र जपकरता रहे । दशमीमें फिर पूजा करे ब्राह्मण भोजन करावे ।।८४।। भक्तिके साथ बहुतसे भोज्योंसे जिमा दक्षिणा दे । इससे वो कृतकृत्य होजाता है उसपर भगवान् राम शीघ्रही प्रसन्न होजाते हैं ।।८५।। यदि मनुष्य चुपचाप मुनिवृत्तिसे भी बैठा रहे तो फिर उसकी आवृत्ति नहीं होती । बारह वर्ष करले तो जो पाप हों उनसे भी छूट जाता है ।। ८६ ।। वे सब पाप रामनवमीके व्रतसेविलाजाते हैं, जो राममन्त्रोंका जप नहीं जानता वो ।।८७।। उपवासपूर्वक न्यासोंके साथ निरालस हो रामका स्मरण ही करे । यदि गुरुसे यह मन्त्र मिला हो तो न्यासोंके साथ इसका न्यास करे ।।८८।। एक एक पहरमें विधिके साथ एकाग्रचित्त हो पूजा करे । मुमुक्षुको चाहिये कि सदा रामननौमीका व्रत करे । वो सब पापोंसे छूटकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है ।।८९।। यह श्रीस्कन्दपुराणमें कही गई अगस्त्यसंहितामें आये हुए अगस्त्य और सुतीक्ष्णके संवादके श्रीरामनवमी व्रतकी विधि पूरी हुई ।।

अथ रामनामलेखनव्रतम्

तच्च रामनवमीमारभ्याथवा यस्मिन्कस्मिन्काले कार्यम् ।। आचम्य प्राणानायम्य मासपक्षाद्युल्लिख्य सकलपापक्षयकामो विष्णुलोकप्राप्तिकामो वा श्रीरामप्रीतये रामनामलेखनं करिष्ये इति संकल्प्य लिखितरामनामपूजा नाममंत्रेण षोडशोपचारैः कार्या ।। अथ कथोद्यापनं च––पार्वत्यु वाच ।। धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगत्प्रभो ।। विच्छिन्नो मेऽद्य संदेहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ।। १ ।। त्वन्मुखाद्गलितं रामकथामृतरसायनम् ।। पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ।। २ ।। श्रीरामस्यामृतं नाम श्रुतं संक्षेपतो मया ।। इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ।। ४ ।। श्रीमहादेव उवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।। प्राप्नोति परमां सिद्धि दीर्घायुः पुत्रसंपदम्

।। ४ ।। रामनाम लिखेद्यस्तु लक्षकोटिशतावधि ।। एकैकमक्षरं पुंसां महापातक-नाशनम् ।। ५ ।। सकामोऽपि लिखेद्यस्तु निष्कामो वा स पार्वति ।। इहैव सुखमाप्नोति अन्ते च परमं पदम् ।। ६ ।। आदावन्ते च मध्ये च व्रतस्योद्यापनं चरेत् ।। उद्यापनं विनानैव फलसिद्धिमवाप्नुयात् ।। ७ ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाम्न उद्यापनं कुरु ।। पार्वत्युवाच ।। नतास्मि देवदेवेश भक्तानुग्रहकारक ।। ८ ।। नाम्न उद्यापनं ब्रूहि विस्तरेण मम प्रभो ।। श्रीशिव उवाच ।। शृणु देवी प्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथाविधि ।। ९ ।। नाम्न उद्यापानं चात्र भक्त्या भवदनुग्रहाम् ।। सौवर्णी प्रतिमां कुर्याच्छ्रीरामस्य सलक्ष्मणाम् ।। १० ।। हनूमत्प्रतिमां तत्र चतुर्थांशेन हाटकैः ।। सुवर्णस्य प्रमाणं तु पलाष्टकमुदीरितम् ।। ११ ।। अशक्त श्चेत्पलेनैव तदर्धार्धेन वा पुनः ।। श्रीरामप्रतिमां कुर्वन्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। १२।। राजतं चासनं कुर्यान्माषैः षोडशसंमितैः ।। पीतवस्त्रेण संवेष्टच स्थापयेत्तण्डु-लोपरि ।। १३ ।। तण्डुलानां प्रमाणं तु भवेद्द्रोणचतुष्टयम् ।। शुचौ देशे गृहे तीर्थे मण्डपं कारयेत्सुधीः ।। १४ ।।तोरणानि चतुर्द्वारे बन्धयेदाम्रपल्लवैः ।। भूमौ गोमयलिप्तायां सर्वतोभद्रमण्डलम् ।। १५ ।। रचयेत्सप्तधान्यैश्च नानारङ्गैः सुशोभनम् ।। कुम्भानष्टौ च पूर्वादौ स्थापयेदव्रणाञ्छुभान् ।। १६ ।। कुम्भमेकं मध्यदेशे स्थापयेत्तण्डुलोपरि ।। शुद्धोदकेन संपूर्य पञ्चरत्नैः सपल्लवैः ।।१७ ।। नारिकेरफलान्यष्टावेकं रामाय दापयेत् ।। आचार्यं वरयेत्तत्र वेदशास्त्रविशा-रदम् ।। १८ ।। ब्रह्मादिऋत्विजां तत्र वरणं कारयेत्ततः ।। मधुपर्केण संपूज्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।। १९ ।। ऋत्विजः षोडशाष्टौ वा वरयेद्वेदपारगान् ।। स्नात्वा नित्यं विधायादौ पूजयेद्गणनायकम् ।। २० ।। पुण्याहं वाचयित्वा तु पूजयेद्रामचन्द्रकम् ।। ततोऽग्निं च प्रतिष्ठाप्य स्वशाखोक्तविधानतः ।। २१ ।। विष्णुसूक्तेन होतव्यं मूलमंत्रेण वा पुनः ।। नवग्रहांश्च दिक्पालान्मंत्रानुक्त्वा च होमयेत् ।। २२ ।। पुरुषसूक्तेन होतव्याः समिदाज्यं चरुस्तिलाः ।। अष्टोत्तर-सहस्रं तु राममंत्रेण होमयेत् ।। २३ ।। होमान्ते पूजनं कुर्याद्रामचन्द्रादिदेवताः पूजयित्वा ततो हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं तथा ।। २४ ।। श्रेयःसंपादनं कुर्यादभिषेकं समाचरेत् ।। रामं नत्वार्चयित्वा च प्रार्थयित्वा पुनःपुनः ।। २५ ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चात्सुवर्णैर्वस्त्रधेनुभिः।। प्रतिमां दानमंत्रेण आचार्याय निवेदयेत् ।।२६।। नतोऽस्मि देवदेवेश बहुबुद्धिमहात्मभिः ।। यश्चिन्त्यते कर्मपाशाद्धृदि नित्यं मुमु-क्षुभिः ।। २७ ।। मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवासि लुम्पसि ।। अतस्त्वत्पादभ-क्तेषु त्वद्भक्तिस्तु श्रियोऽधिका ।। २८ ।। भक्तिमेव हि वाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ।। अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तु मे ।। २९ ।। संसारामयत-

प्तानां भैषज्यं भक्तिरेव ते ।। सीतासौमित्रिहनुमद्भक्तियुक्तो नरेश्वरः ।। ३० ।। दानेनानेन मे राम भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ।। प्रतिमादानसिद्धयर्थं शक्त्या स्वर्णं तु दापयेत् ।। ३१ ।। दानं यद्दक्षिणाहीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।। ब्राह्मणाञ्छतसाहस्रं भोजयेन्मधुसर्पिषा ।।३२।। पक्वान्नैः पायसैः खाद्यैर्लड्डुकैःशर्करान्वितैः ।। ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्भूयसीं दक्षिणां ददेत् ।। ३३ ।। तदन्ते घृतपात्रं च तिलपात्रं च दापयेत् ।। शय्यां च रथदानानि दशदानानि शक्तितः ।। ३४ ।। अशक्तश्चेत् स्वर्णमेकं दत्त्वा रामं नमेत् पुनः ।। तिलकं कारयेत्पश्चादभिषिक्तः सुपल्लवैः ।। ३५ ।। द्विजेभ्य आशिषो गृह्य नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् ।। उमामहेश्वरौ पूज्यौ भोजयेद्वटुकं तथा ।। ३६ ।। कुमारीणां शतं भोज्यं योगिराजं च भोजयेत् ।। क्षेत्रपालबलिं दत्त्वा ध्यात्वा रामं सदा जपेत् ।। ३७ ।। ब्रह्मादिभिस्तु तत्पुण्यं वक्तुं शक्यं न किञ्चन ।। अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।। ३८ ।। एकेन रामनाम्ना तु तत्फलं लभते नरः ।। नारी वा पुरुषो वापि शूद्रो वाप्यधमो नरः ।। रामनाम्ना तु मुक्तास्ते सत्यंसत्यं वरानने ।। ३९ ।। मूलेकौल्पद्रुमस्याखिलमणिविलसद्रत्नसिंहानस्थं कोदण्डं धारयन्तं ललितकरयुगेनार्पितं लक्ष्मणेन ।। वामाङ्कन्यस्तसीतं भरतधृतमहामौक्तिकच्छत्रकान्तं प्रीत्या शत्रुघ्नहस्तोद्धृतचमरयुगं रामचन्द्रं भजेऽहम् ।। ४० ।। वन्देऽनिशं महेशानचण्डकोदण्डखण्डनम् ।। जानकीहृदयानन्दवर्धनं रघुनन्दनम् ।। ४१ ।। इति श्रीभ० उमामहेश्वरसंवादे० रामनामलेखनोद्यापनंसंपूर्णम् ।।

रामनाम लेखनव्रत–यह रामनवमीसे लेकर जिस किसी भी समय कर लेना चाहिये । आचमन प्राणायाम करके मास पक्ष आदिकोंको कह, सारे पापोंका नाश चाहनेवाला एवं विष्णुलोक मुझे मिले ऐसी इच्छावाला श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये रामनामको लिखूंगा ऐसा संकल्प करके लिखित रामनामकी पूजा नाममंत्रसे सोलहों उपचारोंसे करनी चाहिये ।। कथा और उद्यापन–पार्वती बोलीं कि, हे जगत्प्रभो ! मैं धन्य हूं आपने मुझपर पूर्ण कृपाकी है आपकी परिपूर्ण अनुकंपासे मेरी संदेहको गांठें आपही खुल गयी ।।१।। आपके मुखसे रामकी कथारूपीअमृत रसायन निकली । उस भवतापहारिणीको पीते २ मेरा मन तृप्त नहीं होता ।।२।। मैंने श्रीरामका अमृत–नाम संक्षेप से सुना है । इस समय मैं विस्तारके साथ खुलासा सुनाना चाहती हूं ।।३।। श्रीमहादेव बोले कि, हे देवि ! गुह्यसे भी परममहागुह्य कहूंगा आपसुनें, इसको सुननेसे परमसिद्धि दीर्घ आयु और पुत्र संपत्ति प्राप्त होती है ।।४।। जो रामनाम लिखेगा उसका एक एक अक्षर पुरुषोंके महापातकोंको लक्षकोटि शततक नष्ट करता है ।।५।। हे पार्वति ! सकाम हो या निष्काम हो जो रामनाम लिखता है वो यहां सुख पाता है तथा अन्तमें परमपदको पाजाता है ।।६।। आदि अन्त और मध्यमें व्रतका उद्यापन करना चाहिये । क्योंकि विना उद्यापनके फल सिद्धि नहीं होती ।।७।। इस कारण सारे प्रयत्नसे नामका उद्यापन कर । पार्वती बोलीं कि, हे देव देव ! हे भक्तोंपर दया करनेवाले ! हे देवदेवेश ! मैं आपको प्रणाम करती हूं ।।८।। हे प्रभो ! विस्तारके साथ नामका उद्यापन करिये । श्रीशिव बोले कि, हे देवि ! आप सावधान होकर सुनें ।।९।। मैं आपकी भक्ति और आपपर अनुग्रह होनेसे मैं नामका उद्यापन कहता हूं । लक्ष्मण सहित श्रीराम चन्द्रजीकी सोनेकी प्रतिमा बनवाये ।।१०।। उसके

चौथे हिस्से की हनुमान्‌जीकी प्रतिमा बनावे । श्रीरामकी प्रतिमामें ८ पल सुवर्ण होना चाहिये ।।११।। यदि सामर्थ्य न हो तो पलकी अथवा पलार्धकी ही बनवाले श्रीरामकी प्रतिमाको बनवातीबार कृपणता नहीं करनी चाहिये ।।१२।। सोलह माषका चांदीका आसन बनवावे, पीतवस्त्रसे वेष्टित-करके चावलोंके ऊपर रख दे ।।१३।। वे चार द्रोणतण्डुल होने चाहिये जिनपर कि, आसन रखाजाय। घरके पवित्र देशमें अथवा तीर्थमें मण्डप करना चाहिये ।।१४।। आमके पल्लवके तोरण बनाकर चारों द्वारोंपर बाँध दे । गोबरसे लिपीहुई भूमिमें सर्वतोभद्र बनावे ।।१५।। अनेक रङ्गोंसे रंगेहुए सात धानोंसे सुशोभन बनाये पूजादि दिशाओंमें आठ सावित शुभ कलशों की स्थापना करे ।।१६।। बीचमें एक कुम्भ चावलोंके ऊपर स्थापित करे । उसे शुद्ध पानीसे भरदे । पञ्चरत्न और पल्लव उसमें पटकदे ।।१७।। एक एक कलशपर एक एक नारियल स्थापित करे । एक नारियल रामचन्द्रजीको भेंट करे । सदांही वेदशास्त्रोंको जाननेवाले आचार्यका वरण करे ।।१८।। वहांही ब्रह्मासे लेकर बाकी सब ऋत्विजोंका वरण करे । इनकी पूजा मधुपर्क और वस्त्र अलंकरोंसे करे ।।१९।। वे ऋत्विज १६ वा आठ होने चाहिये, सब वेद शास्त्रके पारंगत हों । स्नान और नित्य कर्मकरके पहिले गणेशजीका पूजन करना ।।२०।। पुण्याहवाचन कराके रामचन्द्रजीकी पूजा करे पीछे अपने शाखाविधानके अनुसार अग्निका प्रतिष्ठापन करके ।।२१।। विष्णुसूक्तसे अथवा मूलमंत्रसे हवन करना चाहिए । नवग्रह और दिक्पालोंके मन्त्रोंको भी कहकर उनका हवन करे ।।२२।। पुरुषसूक्तसे समिद आज्य चरु और तिलोंका हवन करे । एक हजार आठ बार राममंत्रसे हवन करे ।। २३ ।। होमके बाद रामचन्द्रादि देवताओं-का पूजन करना चाहिये । पीछे पूर्णाहुति और बलि करनी चाहिए ।।२४।। पीछे श्रेयका संपादन और अभिषेकका आरम्भ करे । रामकी वारम्वार नमस्कार अर्चन और प्रार्थना करके ।।२५।। पीछे सुवर्ण वस्त्र और धेनुसे आचार्यका पूजन करे ! दानके मन्त्रसे आचार्यको देदे ।।२६।। हे देवदेवेश ! मैं आपके लिए प्रणाम करता हूं कर्मपाशोंको काटनेके लिए बड़ी बुद्धिवाले महात्मा जो कि, मोक्ष चाहते हैं वे सब आपकोही हृदयमें याद करते रहते हैं ।।२७।। आप गुणमयी मायासे उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करते हैं । इस कारण आपके चरणकमलोंके भक्तोंमें आपकी प्रीति लक्ष्मीजीसे भी अधिक है ।।२८।। सारको जाननेवाले आपके भक्त आपकी भक्तिही चाहते हैं । इसीप्रकार आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदाही भक्ति हो ।।२९।। संसारकी व्याधियोंसे तपे हुए पुरुषोंके लिए आपकी भक्तिही दवाई है । सीता लक्ष्मण और हनुमान् इनकी भक्तिके सहित आप नरेश्वर हैं ।।३०।। हे राम ! इस दानसे मुक्ति और भुक्ति देनेवाले हो जाओ । प्रतिमाके दानकी सिद्धिके लिए शक्तिके अनुसार सोना और दे ।।३१।। क्योंकि, जो दान दक्षिणासे हीन होता है वह भी निष्फल होता है । एक हजार एक सौ ब्राह्मणोंको मधु और घृतसे भोजन करावे ।।३२।। ईसमें पक्वान्न पायस खाद्य लड्डू और शर्करा रहनी चाहिए । ऋत्विजोंको दक्षिणा दे जहांतक हो उसके बहुतसी दक्षिणा होनी चाहिए ।।३३।। उसके अन्नमें तिलपात्र और घृतपात्र दे शय्या और रथदानादि दश दान करे ।।३४।। यदि शक्ति न हो तो सोनामात्रही देकर रामको नमस्कार करले । अच्छे पल्लवोंसे अभिषिक्त होकर तिलक करावे ।। ३५ ।। ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर नमस्कार स्तुति कहके विसर्जन कर देना चाहिए । उमा और महेश्वरकी पूजा करे, वटुकको भोजन करावे ।। ३६ ।। एक सौ कुमारी और योगिराजको भोजनकरावे, क्षेत्रपालको बलि देकर रामका ध्यान करके मन्त्रको जपता रहे ।।३७।। ब्रह्मादिक देव इस पुण्यको कह नहीं सकते । एक हजार अश्वमेध तथा एकसौ बाजपेयका जो फल है ।।३८।। वह मनुष्य एक इस रामनामसे ही प्राप्त कर लेता है। स्त्री हो या पुरुष हो अथवा शूद्र हो या और कोई अधम प्राणी हो हे वरानने ! मैं सत्य कहता हूँ वे सब रामनामसे ही मुक्त हो जाते हैं ।।३९।। मैं उन श्रीरामचन्द्र देवका ध्यान करता हूं जिनपर प्रेमसे शत्रुघ्न दोनों हाथोंसे चमर ढुला रहे हैं, भरतजी कीमती मौक्तिकोंका छत्र रख रहे हैं जिससे उनकी शोभा बढ़ गयी हैं, बाँयें अङ्गमें सीताजी—

बैठी हुई हैं, लक्ष्मणजी दोनों सुकुमार हाथोंसे धनुष धारण कर रहे हैं जिसे कि आप धारणकर रहे हैं। कल्पवृक्षके मूलमें ऐसे सिंहासनपर विराज रहे हैं, जिसमें सब तरहकी श्रेष्ठ मणि लगी हुई हैं तथा जिसका निर्माण रत्नोंसे ही हुआ है एवं गजबकी जिसकी चमक है ।।४०।। महेशके चण्ड धनुषको तोड़नेवाले जो जानकीके हृदयको आनन्द बढ़ा देनेवाले भगवान् राम हैं उनकी रात दिन बन्दना करता हूं ।।४१।। यह श्रीभविष्यपुराणके उमामहेशके संवादका रामनामके लिखनेका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथादुःखनवमीव्रतम्

भाद्रपदे शुक्लनवम्यां मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि परयुतायामदुःखनवमीव्रतम् ।। देशकालौ स्मृत्वा इह जन्मनि जन्मान्तरे च भर्त्रा सह चिरायुःसौभाग्यप्राप्तये सकलपातकदुःखनाशार्थं व्रतकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं श्रीगौरीदेवताप्रीत्यर्थमदुःखनवमीव्रताङ्गगौरीपूजनमहं करिष्ये ।। तत्रादौ निर्विघ्नातासिद्ध्यर्थं गणपति पूजनं च करिष्ये । इति संकल्प्य गोमयेनोपलिप्तभूमौ वेदिकां गुडलिप्तामिक्षुच्छादितामपूपपायसान्वितामुपरिमण्डपिकायुतां कृत्वा तत्र पीठे आसनादिकलशप्रतिष्ठान्तं कृत्वाग्न्युत्तारणपूर्वकं गौरीप्रतिमां संस्थाप्य गौरीर्मिममायेति नमोदेव्या इति वा मंत्रेण गौरीं गणपतिमिन्द्रादिलोकपालांश्चावाह्य संपूजयेत् ।। गौरीं दुःखहरां देवीं शिवस्यार्द्धाङ्गधारिणीम् ।। सुनीलवस्त्रसंयुक्तामुमामावाहयाम्यहम् ।। आवाहनम् ।। दिव्यपात्रधरां देवीं विभूतिं च त्रिलोचनीम् ।। दुग्धान्नदाननिरतां गौरीं त्वां चिन्तयाम्यहम् ।। ध्यानम् ।। प्रसन्नवदने मातर्नित्यं देवर्षिसंस्तुते ।। मया भावेन यद्दत्तं पीठं तत्प्रतिगृह्यताम् ।। आसनम् ।। सर्वतीर्थमयं दिव्यं सर्वभूतोपजीवनम् ।। मया दत्तं च पानीयं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो भक्त्यानीतं जलं शुचि ।। गन्धपुष्पाक्षतोपेतं गृहाणार्घ्यार्थमादरात् ।। अर्घ्यम् ।। मातः सर्वाणि तीर्थानि गङ्गाद्याश्च तथा नदाः ।। स्नानार्थं तव देवेशि मयानीताः सुशोभनाः ।।स्नानम्।।सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृ० ।। वस्त्रम् ।। श्रीखण्डमिति गन्धम् ।। माल्यादीनीति पुष्पाणि।।वनस्पतिरसोद्भूत इति धूपम् ।। साज्यं चेति दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधमिति नैवेद्यम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। यानि कानीति प्रदक्षिणाम् ।। नमो देव्या इति नमस्कारान् ।। चन्द्रादित्यौ च धरणीति नीराजनम् ।। मन्त्रपुष्पम् ।। अन्यथा शरणमिति प्रार्थनाम् ।। ततो नवपक्वान्नैः पूरितं वायनं दद्यात् ।। स्कन्दमातर्नमस्तुभ्यं दुःखव्याधिविनाशिनि ।। उत्तिष्ठ गच्छ भवनं वरदा भव पार्वति ।। विसर्जनम् ।। इति पूजा ।। अथ कथा --ऋषय ऊचुः ।। कदाचिन्नैमिषारण्ये व्यासं धर्मविदां वरम् ।। कथयन्तं कथा दिव्यामिदमूचुर्महर्षयः ।। १ ।। यज्ञधर्मविदां श्रेष्ठ व्रतानि विविधानि च ।। विपाकात् कर्मणां चैव प्राणिनां विविधा गतीः ।। २ ।। आकर्ण्य विस्मिताः

सर्वे कौतहलसमन्विताः ।। न तृप्तिमधिगच्छामो नाप्रियं च कथामृतम् ।। ३ ।। शृणुमश्च वयं सद्यो व्रतं दुःखहरं त्विदम् ।। येन चीर्णेन धर्मज्ञाज्ञानदुःखं न जायते ।। कृपां कुरु महाबुद्धे ब्रूहि दुःखहरं व्रतम् ।। ४ ।। व्यास उवाच ।। शृण्वन्तु पुरुषाः सर्वे शौनकाद्या महर्षयः ।। ये नराःपुण्यकर्माणो दम्भाहङ्कारवर्जिताः ।। ५ ।। श्रद्धया यमिनो नित्यमहिंसानिरताश्च ये ।। यथामिलितभोक्तारः सुखिनस्ते भवन्ति हि ।। ६ ।। गुह्यं चान्यत्तु वक्ष्यामि दुःखनाशनसूचकम् ।। येऽदुःखन-वमीं प्राप्य नराश्चैवाप्यपण्डिताः ।। ७ ।। शिवां गच्छन्ति शरण-मुत्पत्ति स्थितिकारिणीम् ।। जन्मान्तरशतेनापि न ते दुःखस्य भागिनः ।। ८ ।। ऋषयऊचुः ।। अदुःखनवमीनाम त्वया केयं निरूपिता ।। भविष्यति कदा चेयं यच्चकार्यं भविष्यति ।। ९ ।। पूजनीया कथं गौरी विधानं कीदृशं तथा ।। एतत्सर्वं यथावंत्त्वं वक्तुमर्हस्यशेषतः ।। १० ।। व्यास उवाच ।। एतद्गुह्यतमं पुण्यं शृणुध्वं गदतो मम ।। न देयं नास्तिकायैतदभक्ताय शठाय च ।। ११ ।। अहं वः श्रद्दधानेभ्यो विधि सर्वमशेषतः ।। समाहितमना वच्मि भूतिदं पुण्यदायकम् ।। १२ ।। सर्वस्याद्या महादेवी त्रिगुणा परमेश्वरी ।। नित्यानन्दमयी देवी तमः-पारे प्रतिष्ठति ।। १३ ।। ब्रह्माण्डजननी चेयमुत्पत्तिस्थिति कारिणी ।। पुरुषः प्रकृतिश्चेयमात्मानं बिभिदे द्विधा ।। १४ ।। यथा शिवस्तथा गौरी यथा गौरी तथा हरः ।। यथा गौरी तथा लक्ष्मीर्दुःखपापापहारिणी ।। १५ ।। तासां पूजा-विधानेन न कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ।। नभस्ये शुक्लनवमी या वा पूर्णा तिथिर्भवेत् ।। १६ ।। अस्तदोषादिरहिताः सर्वदुःखहरा परा ।। तस्यां प्रातर्नरः स्नात्वा कृत्वा नित्यविधिं ततः ।। १७ ।। मौनेन गृहमागत्य संयतस्तत्परायणः ।। अदुःखदायी भूत्वा च शुचिस्थानगतस्तथा ।। १८ ।। गोमयेन विलिप्तायां शुचौ मण्डपिकां शुभा[१]म् ।। सुकुम्भं स्थापयेत्तत्र कुंकुमाद्रिभिरङ्कितम् ।। १९ ।। आच्छादितं सुवस्त्रेण ह्युमामानन्ददायिनीम् ।। आचार्यानुज्ञया तस्मिञ्जगद्धात्रीं प्रपूजयेत् ।। २० ।। पूजयित्वोपचारैस्तां नत्वा नत्वा पुनः पुनः ।। बाणकं च दद्देत्तस्याः पक्वान्नफलसंयुतम् ।। २१ ।। शक्तश्चेदुपवासेन निशां च जागरैर्नयेत् ।। अशक्तेन च भोक्तव्यं पयः प्राश्यमथापि वा ।। २२ ।। फलं वापि प्रयत्नेन न हिंसारतचेतसा।। रात्रौ जागरणं कार्यं नृत्यगीतादिभिस्तथा ।। २३ ।। प्रभाते विमले जाते कृत्वा नित्यविधिं पुनः ।। ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या सपत्नीकाञ्छुचींस्तथा ।। २४ ।। देवीं विसर्जयेत् पश्चादाचार्यं पूजयेत्तथा ।। आचार्यस्तु स्वशाखोक्तो नववर्षाणि कारयेत् ।। २५ ।। सौवर्णैर्भूषणैर्वस्त्रैर्नत्वा तं च समर्पयेत् ।। पंचाभिर्नालिकेरैर्वा-

१ कृत्वेति शेष

युक्तमेतेन वायनम् ।। २६ ।। पक्वान्नैर्नवसंख्याकैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। पश्चाद्ब न्धुजनैः सार्द्धं भुञ्जीयान्नियतः शुचिः ।। २७ ।। श्रुत्वा कथां पुण्यतमां वाग्यत-स्तत्परो भवेत् ।। स कदाचिन्न दुःखेन युज्यते नात्र संशयः ।। २८ ।। भुक्त्वा भोगा-न्यथाकामं स याति परमं पदम् ।। अत्रैवोदारन्तीममितिहासं पुरातनम् ।। २९ ।। अरण्ये विषमे प्राप्ता शापदग्धाप्सराः किल ।। आसीज्जातिस्मरा काचित्तिर्य-ग्योनिं समागता ।। ३० ।। कुक्कुटी नामतो ह्यासीत् सदा दुःखेन पीडिता ।। तत्सखी मर्कटीनाम ते चोभे शोककर्शिते ।। ३१ ।। अथ तस्मिन् वनोद्देशे परस्पर-हिते रते ।। उभे अभूतां सहिते विचरन्त्यौ दिशो दश ।। ३२ ।। ततः कालेन महता वर्षान्ते चागता तिथिः ।। अदुःखनवमीनाम दुःखव्याधिविनाशिनी ।। ३३ ।। गत्वा तां कुक्कुटी प्राह मर्कटीं दैवयोगतः ।। अद्य किंचिन्न भोक्तव्यमावाभ्यां शृणु कारणम् ।। ३४ ।। तिर्यग्योनिगते चादौ पूर्वकर्मविपाकतः ।। दुःखापनुत्तये चाद्य न भोक्ष्येऽहं त्वया सह ।। ३५ ।। त्वं चेशं शरणं गत्वा नवमीं सुव्रतस्थिता ।। मव च त्वमशक्ता चेत्भुंक्ष्व शीर्णफलानि च ।। ३६ ।। महामायाप्रसादेन याहि भद्रमहिंसया ।। इत्युक्त्वा कुक्कुटी तूष्णींबभूवानश्नती तदा ।। ३७ ।। मर्कटचु-प्युररीकृत्य व्रतस्था सम्बभूवतुः ।। अथ सा मर्कटी नाम गत्वा पूर्ववनं प्रति ।। ३८ ।। स्थित्वा तद्दिनशेषं तु क्षुधिता पीडिता भृशम् ।। अजानाती तमेवार्थं पूर्वकर्म-विपाकतः ।। ३९ ।। निशान्ते तरसा गत्वा वनदेशे विचिन्वती ।। ददर्श बर्हिणोऽण्डानि अतीव क्षुधिता तदा ।। ४० ।। भक्षयित्वा मर्कटी सा मुखं प्रक्षाल्य वारिणा ।। पुनस्तदन्तिकं प्राप्ता दर्शयन्ती क्षुधोव्यथाम् ।। ४१ ।। कुपिता कुक्कुटी वाक्यमुवाच मर्कटीं प्रति । किञ्चिद्भुक्तं त्वया दुष्टे दृश्यसे हर्षसंयुता ।। ४२ ।। व्रतभ्रष्टासि वाचा त्वं वारितापि मया त्वघे[1] ।। नाकरोस्त्वं मम वचः प्राणाः किं न गतास्तव ।। ४३ ।। केदारं शरणं याहि मया स ह्यभयङ्करः ।। देहत्यागेन तत्रैव गच्छावः परमां गतिम् ।। ४४ ।। अथ ते निर्गते चोभे केदारं भूतभावनम् ।। गते मनः समाधाय कुक्कुटी मनसाऽस्मरत्[2] ।। ४५ ।।उत्पत्स्ये सत्कुले चाहं धनाढ्ये वेदपारगे ।। इति मत्वा स्वदेहं सा वह्निमध्ये न्यपातयत् ।। ४६ ।। भवेयं राजपत्नीति मत्वा सापि च मर्कटी ।। अकरोत् स्वतनुत्यागं तद्वा-क्येनैव बोधिता ।। ४७ ।। कुक्कुटी सा महादेव्याः प्रसादाद्विमले कुले ।। सा विप्रकन्याभूत्तस्य भर्ता विमलरत्नदः ।। ४८ ।। पुण्यवर्द्धनशीला सा निरता पतिसेवने ।। तथैव राजपत्नीत्वं प्राप्ता सापि च मर्कटी ।। ४९ ।। उभे जातिस्मरे

१ हे अघे पापरूपे । २ केदारमिति शेषः ।

जाते महादेव्याः प्रसादतः ।। अथ सा कुक्कुटी पञ्चपुत्राञ्जज्ञे पितुः समान् ।। ५० ।। बभूव धनसम्पन्ना रूपशीलगुणान्विता ।। मर्कटी पुत्रशोकार्ता बभूव व्यथिता भृशम् ।। ५१ ।। पूर्वकर्म स्मरन्ती सा कदाचिद्दैवयोगतः ।। अपश्यत् कुक्कुटी पुत्रान् पञ्चैव च पितुः समान् ।। ५२ ।। अमारयत् स्वभृत्यैस्तान् पुत्रान् सा मर्कटी तदा ।। तच्छिरांसि गृहीत्वा तु कुक्कुटचै बाणकं ददौ ।। ५३ ।। अदुःखनवमीं प्राप्य व्रतस्था च बभूव सा ।। गौरी कृपाविष्टमना जननी भक्तवत्सला ।। ५४ ।। शिरांस्यादाय सर्वेषां पुत्रकांस्तानजीवयत् ।। तद्वाणकं सुवर्णस्य शिरोभिः पर्यकल्पयत् ।। ५५ ।। कुक्कुटी पूजयाञ्चक्रे गौरीं दुःखविनाशिनीम् ।। मुदा समाप्य तां पूजां भोक्तुं गृहमगात्ततः ।। ५६ ।। तदा तद्वाणकं तत्र प्रेक्ष्य स्वर्णशिरोयुतम् । स्वभर्त्रे पुत्रयुक्ताय न्यवदेयत नन्दिनी ।। ५७ ।। मर्कटी जीवतस्तास्तु सा ददर्शालिपुत्रकान् ।। दृष्ट्वा पुनः पुनः साथ रुरोद भृशदुःखिता ।। ५८ ।। आत्मानं निन्दयामास मर्कटी विह्वला सती ।। आगत्य सख्या सदनमात्मानं बह्वनिन्दयत् ।। ५९ ।। पापिन्यहं दुराचारा दुर्भगाऽश्रुतपूर्वकम्।। बालहत्यात्मकं पापं च[1]रितं नात्र संशयः ।। ६० ।। इत्याकर्ण्य सखीवाक्यं कुक्कुटी विस्मिताभवत् ।। अपृच्छत् कारणं क्षिप्रं शोकसागरदायकम् ।। ६१ ।। इदं शीलं कथं भद्रे कस्माद्रोदिषि तद्वद ।। विभोगा राजपत्नी त्वं मान्या सर्वसखीष्वपि ।। ६२ ।। मर्कटी कुक्कुटी। वाक्यं श्रुत्वा वृत्तं न्यवेदयत् ।। तस्याश्च कुक्कुटीपुत्रैः प्रायश्चित्तमकारयत् ।। ।।६३।। स्मरन्ती च व्रतं देव्याः कुरु त्वं च यथाविधि ।। कुक्कुटचेति समादिष्टा व्रतं चक्रे यथाविधि ।। ६४ ।। मर्कटी तत्प्रभावेण सगर्भा संबभूवह ।। अथ देव्याः प्रसादेन मर्कटी सुषुवे सुतम् ।। ६५ ।। सुन्दरं सुन्दरं नाम पृथ्वीभारसहं वरम् ।। राजपत्नी विप्रपत्नी सुखिन्यौ सम्बभूवतुः ।। ६६ ।। इह लोके च विख्यातमदुःखनवमीव्रतम् ।। सीतया यत्कृतं चैतद्दमयन्त्या कृतं तथा ।। ६७ ।। अन्याभिर्बहुभिः स्त्रीभिर्व्रतमाचरितं सदा ।। या करोति व्रतमितदं शृणोति च कथामिमाम् ।। ६८ ।। सा दुःखभाङ्न भवति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।। सर्वदुःखहरं लोके किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।। ६९ ।। इति श्री स्कन्दपुराणे अदुःखनवमीव्रतकथा संपूर्णा ।।

अदुखनवमीव्रत—भाद्रपद शुक्ला नवमीमें, मुहूर्तमात्र होनेपर भी परयुतामें अदुःख नवमीका व्रत होता है । देश कालका स्मरण करके इस जन्म और जन्मान्तरमें भर्ताके साथ चिरायु और सौभाग्यकी प्राप्तिके लिए सकल पातक और दुखके नाशके लिए व्रतकल्पके कहे हुए फलकी प्राप्तिके लिए श्रीगौरीदेवताकी प्रसन्नताके लिए अदुःखनवमीव्रतके अङ्गके रूपमें गौरीका पूजन मैं करूंगी । उसके आदिमें निर्विघ्नताकी सिद्धिके

---

१ मयेति शेषः ।

लिए गणपतिका पूजन करूंगी; यह संकल्प करके गोबरसे लिपी हुयी भूमिमें बनी हुई वेदीको गुड़से लिपी, ईखसे ढकी, अपूप और पायससे युक्त ऊपर मण्डपिका करके तहां पीठपर आसनसे लेकर प्रतिमाको स्थापित करके; " ओं गौरीर्मिमाय " इस मन्त्रसे अथवा " ओं नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः" इत्यादि मन्त्रसे गौरीका आवाहन करके पूजन करे पहिला मन्त्र वैदिक तथा दूसरा पौराणिक है दूसरा प्रसिद्ध है सप्तशतीमें लिखा है ! वैदिक मन्त्रको यहीं लिखकर साथही अर्थ कहते हैं–" ओं गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमेव्योमन्।।" जब गौरी सृष्टि रचने लगी तो पहिले सलिलका निर्माण किया फिर वो एक प्रधानको बना एक पदी तथा दूसरे आदित्यको बना द्विपदी हो गयी, चारों दिशाओंके निर्माणके वाद चतुष्पदी तथा आठोंके बनानेके वाद अष्टापदी, नौओंसे नवपदी और दशोंसे दशपदी बन गयी । फिर वो अनेकों उदकोंवाली हो गयी । इस परम सृष्टिके निर्माणमें वो एक अनेक रूपसे हो गयी सबमें उसीका एक आत्मा है ।। यह टीका हमने भाष्यकार दुर्गाचार्य्यके अनुरोधसे की है, पर हमें कुछ और ही अभीष्ट है उसे ही लिखते हैं, गौरी–गौरी देवी, सलिलानि–भलीभांतिलयको प्राप्त हुए पदार्थजातोंको, तक्षती-रचती हुई एकपदी रचनाकी प्रथमावस्थाको प्राप्त, बभूबुषी-होजाती है, फिर वो द्विपदी–चिद् और अचिद् रूपमें होजाती है । फिर चतुष्पदी–कूटस्थ ब्रह्म जीव और ईशरूपमें होजाती है, फिर वो विवेकादि आठ रूपमें होती है जो सात रूपोंसे संसार और एकरूपसे मुक्त करती है । फिर दशपदी--दशदिशाओंके रूपमें भी वही होती है । इस मेरे अर्थमें प्रायःशांकरसिद्धान्तको छाया आगई है पर इसका अर्थ इतनेसे समाप्त नहीं है प्रत्येक दर्शनके अनुसार इसका अर्थ हो सकता है । गौरीके आवाहनमें इसका विनियोग प्रकृतमें किया है, इस कारण हमने भी और अर्थोंकी तरफ कम ध्यान देकर गौरीकेही कर्तृत्वपर इसका अर्थ किया है । इसीतरह मन्त्रोंसे गणेशजी और इन्द्रादिक लोकपालोंका आवाहन करे । शिवके अर्धाङ्गको धारण करनेवाली अच्छे नीलवस्त्रोंको पहिननेवाली दुःखोंके हरनेवाली गौरी उमादेवीका मैं आवाहन करता हूं, इससे आवाहन, दिव्य पात्रोंको धारण करनेवाली दुग्धदानमें लगीरहनेवाली तीन नयनोंवाली शुभ्र विभूतिरूपा गौरीका मैं स्मरण करता हूं इससे ध्यान हे देवर्षियोंसे सदाही प्रार्थितकी गई प्रसन्न मुखावाली मातः ! मैंने भावसे जो आसन देदिया है उसे ग्रहण करिये, इससे आसन सब तीर्थमय तथा सब भूतोंका उपजीवन यह पानी मैंने दिया है इसे पाद्यके लिये ग्रहण करिये, इससे पाद्यः गंगाआदि सब तीर्थोंसे भक्तिपूर्वक पवित्र जल लाया हूं इसमें गन्ध पुष्प अक्षत पडेहुए हैं । मैं इसे आदरसे देताहूं आप ग्रहण करिये, इससें अर्घ्यं; हे मातः ! गंगाआदिक सब अच्छे तीर्थ और नद में आपके स्नानके लिये लायाहूं हे देवेशि ! ग्रहण करिये, इससे स्नान "सर्वं भूषाधिके सौये" इससे वस्त्र; "श्रीखण्डम्" इससे गन्ध "माल्यादीनि" इससे पुष्प "वनस्पतिरसोद्भूत" इससे धूप "साज्यं च "इससे दीप, "अन्नं चतुर्विधम्" इससे निवेद्य, पूगीफलम्" इससे ताम्बूल, "हिरण्यगर्भ" इससे दक्षिणा; "यानि कानि च" इससे प्रदक्षिण, "नमो देव्यै" इससे नमस्कार "चन्द्रादित्यौ च धरणी" इससे नीराजन; मन्त्रपुष्प; "अन्यथा शरणम्" इससे प्रार्थना समर्पण करना चाहिये । इसके बाद नये पक्वान्नसे पूर्ण करके वायना दे । पीछे मन्त्रसे विर्जन कर दे कि, हे स्कन्दकी मातः । तेरे लिये नमस्कार है । हे दुख और व्याधिके नष्ट करनेवाली पार्वती ! हमें वर देनेवाली हो, भवन जा, यह पूजा पूरी हुई ।। कथा–ऋषि बोले कि, कभी नैमिषारण्यमें धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ व्यास देवजीको जो कि दिव्य कथा कहरहे थे ऋषि यह बोले ।।१।। कि हे यज्ञ धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! अनेकतरहके व्रत तथा कर्मोंके नतीजेसे प्राणियोंकी ऊंची नीची गति ।।२।। सुन हम सब कौतूहलके साथ विस्मित होगये हैं । हम तृप्त नहीं होते क्योंकि कथारूपी अमृत कभीभी अप्रिय नहीं होता है ।।३।। अब हम ऐसा व्रत आपसे एक सुनना चाहते हैं जो शीघ्रही दुखोंका नाश करता हो, हे धर्मज्ञ ! जिसके करनेपर अज्ञानजन्य दुख न हो । हे महाबुद्धे ! कृपाकर उस दुखहर व्रतको कहिये ।।४।। व्यासजी बोले कि, हे दंभ और अहंकारसे रहितो पुण्यकर्मोंके करनेवालो ! सब शौनकादिक महर्षि पुरुषो ! सुनो ।।५।। श्रद्धाके साथ यमसे रहनेवाले तथा जो सदा अहिंसामें रत रहते हैं

एवम् जो मिलगया उसीसे अपने भोजनका निर्वाह करलेते हैं वे सदा सुखी होते हैं ।।६।। मैं आपको दुखनाश करनेका गुप्त उपाय बताता हूँ--चाहे मूर्ख ही हो पर अदुख नवमीके दिन ।।७।। उत्पत्ति स्थिति प्रलयकी करनेवाली शिवाकी शरण जाते हों तो वे सौ जन्ममें भी दुख नहीं पाते ।।८।। ऋषि बोले कि, महाराज ! आप अदुखनवमीके नामसे क्या कहगये ? यह कब होगी ? जब कि वो कार्य हो ।।९।। गौरी कैसे पूजनी चाहियें उसका विधान कैसा है ? यथार्थ रूपसे यह सब पूरा समाचार कहियें ।।१०।। यह बडाही पुण्यदायक है मैं कहता हूं आप सुनें । इसे अभक्त शठ एवं नास्तिकके लिये न देना चाहिये ।।११।। मैं श्रद्धालु जन आपके लिये एकाग्रचित्त होकर भूतिकी देनेवाली पुण्य-दायक सब विधि कहूंगा जिसमें कि कुछ भी बाकी न रहेगा ।।१२।। सबकी आदि कारण रज तम सत्व मयी स्वभावसे नित्य आनन्दमयी परमेश्वरी देवी तमके पार प्रतिष्ठित हैं ।।१३।। यह ब्रह्माण्डकी जननी एवं उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय की करनेवाली है यह प्रकृति और पुरुष इस भेदसे अपनेको दोतरहका करती है ।।१४।। जैसे शिव वैसी ही गौरी एवं जैसी गौरी वैसेही शिव, जैसी गौरी वैसी लक्ष्मी दुःख और पापोंको नष्ट करनेवाली हैं ।।१५।। उनकी पूजाके विधानको करनेसे कोई भी दुख नहीं रह सकता, भाद्रपद महीनामें जो शुक्ल नवमी हो अथवा कोई भी पूर्णा तिथि हो ।।१६।। जिसमें अस्तदोष आदि न हों वो सब दुखोंको नितान्त हरनेवाली है । उस तिथिमें मनुष्य प्रातःस्नान करके पीछे नित्य विधिकर ।।१७।। मौन पूर्वक घर आ संयत हो व्रतमें लगजाय, किसीका दुखदायी न बने, पवित्रस्थानमें रहे ।।१८।। गोबरसे लिये हुए पवित्र देशमें शुभ मण्डपिका बनावे उस जगह कुंकुम आदिसे अंकित अच्छा कुंभ स्थापित करे ।।१९।। उसे अच्छे वस्त्रसे विधिपूर्वक ढक दे । उसपर विधिके साथ आचार्य्यसे आज्ञा लेकर संसारको धारण करने और पालनेवाली एवं आनन्दकी देनेवाली उमाका पूजन करे ।।२०।। उपचारोंसे पूजकर वारंवार प्रणाम करे फिर पक्वान्न और फलोंके साथ देवीका वायना दे ।।२१।। यदि उपवासमें समर्थ हो तो रातको जागरण करके ही वितावे जो शक्ति न हो तो भोजन कर लेना चाहिये या पानी पीले ।।२२।। अथवा सावधानीके साथ व्रतके खानेके फल खाले, चित्तमें कोई तरहकी हिंसा न हो । नाचगानके साथ रातमें जागरण करना चाहिये ।।२३।। स्वच्छ प्रभातके निकलनेपर अपनी नित्य क्रियाओंको करके शक्तिके अनुसार पवित्र सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।।२४।। पीछे देवीका विसर्जन और आचार्यका पूजन करना चाहिये । अपनी शाखाका यानी देवीके विधानोंको जाननेवाला आचार्य तो नौ वर्ष इसे कराये ।।२५।। सोनेक भूषण और वस्त्रोंके साथ उसे नमस्कार करके समर्पित कर दे पांच नारिकेलोंका इसके साथ वायना युक्त है ।।२६।। नौ संख्याके पक्वान्नके साथ ब्राह्मणको निवेदन कर दे पीछे यतात्म हो पवित्रतापूर्वक बन्धुजनोंके साँथ बैठकर भोजन करे ।।२७।। मौन होकर चित्तलगा परम पवित्र इस कथाको सुने वो कभी दुखी नहीं होता इसमें सन्देह नहीं है ।।२८।। इच्छानुसार भोगोंको भोगकर अन्तमें परम पदको चला जाता है । इसी विषयमें एक पुरातन इतिहास कहा करते हैं ।। २९ ।। कोई शापित हुई अप्सरा जो कि, जातिस्मर यानी अपने अनेक जन्मोंका हाल जानती थी तिर्य्यग् योनिमें हो वनको प्राप्त हुई ।।३०।। उसका उस समय कुक्कुटी नाम था वो सदा दुखसे पीडित रहती थी उसकी सखीका नाम मर्कटी था । ये दोनों सोच फिकरसे थकी हुई रहती थीं ।।३१।। पर दोनों उस वनमें एक दूसरीके भलेमें रहती थीं साथ ही रहती थीं साथ ही दशों दिशाओंमें विचरती थीं ।।३२।। बहुत समयके वीतनेपर वर्षके बाद अदुख नवमी नामकी तिथि आगई जो दुख और व्याधियोंके वनाश करनेवाली थी ।।३३।। दैव योगसे कुक्कुटी मर्कटीके पास जाकर बोली कि, आज अपनेको कुछ भी न खाना चाहिये । इसमें थोडासा कारण है उसे सुनिये ।।३४।। हम तुम दोनों पहिले कर्मोंके नतीजेसे अब तिर्यग् योनिमें पैदा हुई हैं । मैं अब अपने और तेरे दोनोंके दुखोंको लिये तेरे साथ उपवास करूंगी ।।३५।। तू ईशकी शरण जाकर नवमीका व्रत कर । यदि शक्ति न हो तो पककर स्वतः गिरेहुए फलोंका भोजन करले ।।३६।। महामायाके प्रसादसे तू अहिंसापूर्वक भद्रा को प्राप्त हो,

ऐसा कहकर कुक्कुटी उपवास करतीहुई मौन होगई ॥ ३७ ॥ मर्कटी भी उसके कथनको स्वीकार रके व्रती होगई । फिर मर्कटी पहिले वनमें जा ॥ ३८ ॥ बाकी दिन वहां रहकर एकदम भूखसे दुखी होगई । पहिले कर्मोंके विपाकसे वो व्रतका प्रयोजन उसे याद न रहा ॥३९॥ प्रातःकाल जलदीसे वनमें ढूंढती हुई मोरके अंडोंको पागई । वो उस समय अत्यन्त भूखी थी ॥४०॥ इस कारण उन्हें खा पानीसे मुंह धो वहानेके रूपमें भूखकी तकलीफ दिखाती हुई कुक्कुटीके पास आई ॥ ४१ ॥ नाराज होकर कुक्कुटी मर्कटीसे बोली कि, हे दुष्ट ! तूने कुछ खा लिया है इससे प्रसन्न दीख रही है ॥ ४२ ॥ तूने वाणीसे व्रत भ्रष्ट किया है. हे पापिनि ! मैंने तुझे कितना रोका था । तूने मेरी बात बात नहीं मानी ? क्या तेरे प्राण न निकले ? मरजाती थी क्या ? ॥ ४३ ॥ भयके मिटानेवाले केदारनाथके शरण मेरे साथ चल, वहां हम तुम दोनों देहका त्याग करके परम गतिको प्राप्त करेंगी ॥४४॥ फिर वे दोनों भूतभावन केदारको चलदी वहां एकाग्र मनसे कुक्कुटी केदारको याद करने लगी ॥४५॥ मैं वेदके जाननेवाले किसी धनाढच कुलमें जन्म लूंगी ऐसा मानकर कुक्कुटीने अपने शरीरको अग्निमें गिरादिया ॥४६॥ मैं राजाकी रानी बनूं ऐसा कुक्कुटीके ही वाक्यसेही बोधित हो मनमें कहकर मर्कटीने अपने शरीरका त्याग किया ॥४७॥ कुक्कुटी महादेवीकी प्रसन्नतासे पवित्र ब्राह्मण कुलमें किसी ब्राह्मणकी लडकी बनी उसका विमलरत्न नामके द्विजबालकके साथ विवाह हुआ ॥ ४८ ॥ उसका मन पुण्य बढानेमें था । वो पतिकी सेवामें सदा मन लगाये रहनेलगी । मर्कटी भी उसी तरह राजाकी रानी होगई ॥४९॥ महादेवीके प्रसादसे इस जन्ममें भी उन्हें अपने पहिले जन्मोंकी याद रही कुक्कुटीने पिताके ही समान पांच पुत्र पैदा किये ॥५०॥ वो रूप शील गुण और धनसे संपन्न हुई । पर मर्कटी पुत्रके शोकसे एकदम दुखी होगई ॥५१॥ पहिले कर्मको स्मरण करती हुई उसने कभी दैवयोगसे कुक्कुटीसे पांचों पुत्रोंको देखा जो पिताके समान ही थे ॥५२॥ उसने अपने नौकरोंसे उन पांचों लडकोंको मराडाला । एवम् उनके शिरोंका वायना कुक्कुटीको दिया ॥५३॥ कुक्कुटी अदुखनवमीके दिन व्रतमें बैठगई, स्वभावसेही कृपा करनेवाली भक्तवत्सला संसारकी जननी गौरीने ॥५४॥ उन शिरोंको लेकर पुत्रोंको जिलादिया । सोनेके शिरोंसे उनका वायना किया ॥५५॥ कुक्कुटीने दुखोंको मिटानेवाली गौरीकी पूजा की फिर पूजा पूरी करके भोजन करनेके लिये घर चली आई ॥५६॥ आनन्द करनेवाली वो सोनेकेशिरों साथ उसका वायना देखकर पुत्रयुक्त पतिके लिये देदिया ॥५७॥ मर्कटीने अपनी सहेलीके बेटे जीते देखे वो उन्हें वारंवार देख दुखी हो हो रोने लगी ॥५८॥ और विह्वल होकर अपनेको निन्दाकरने लगी सखीके घर आकर अपनी बहुतसी निन्दाकी ॥५९॥ कि, मैं पापिनी दुराचारिणी दुर्भगा हूं, मैंने अज्ञान पूर्वक बालहत्यारूप पाप किया है । इसमें सन्देह नहीं है ॥६०॥ सखीके ऐसे वाक्य सुनकर कुक्कुटीको बडा विस्मय हुआ ॥ शीघ्रही शोकके समुद्रोंको देनेवाला क्या कारण है यह पूछा ॥ ६१ ॥ कि तेरा ऐसा शील क्यों है ? ए भद्रे ! तू रोती क्यों है सो कह । तुझे सब कुछ है । राजाकी प्यारी रानी है, सब सखी तेरा मान करती हैं ॥ ६२ ॥ मर्कटीने कुक्कुटीके वाक्योंको सुनकर सव समाचार कह सुनाया । कुक्कुटीने उसके प्रायश्चित्तको अपने पुत्रोंसे कराया ॥ ६३ ॥ देवीके व्रतका स्मरण करती हुई मर्कटीसे बोली कि देवीका व्रत कर फिर उसने विधिके साथ देवीका व्रत किया ॥ ६४ ॥ उस व्रत के प्रभावसे मर्कटी गर्भवती हो गई एवं देवीकी कृपासे पुत्र पैदा किया ॥६५॥ वो पुत्र देखनेमें भी सुन्दर था । सुन्दर ही उसका नाम था । वो इतना श्रेष्ठ था कि पृथिवीके भारको धारण कर सकता था । अब राजपत्नी और विप्रपत्नी दोनोंही सुखी हो गई ॥ ६६ ॥ इस संसारमें यह व्रत प्रसिद्ध है इसे सीताने किया है दमयन्तीने इसे किया है ॥ ६७ ॥ और भी बहुतसी स्त्रियोंने इस व्रतको सदा किया था । जो इस व्रतको करती और इस कथाको सुनती है ॥६८॥ उसे कभी दुःख नहीं होता । यह मैं निःसन्देह सत्य कहता हूँ । यह संसारमें सब दुःखोंका हरने वाला है । अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ ६९ ॥ यह श्रीस्कन्द पुराणही की कही हुई अदुःखनवमीके व्रतकी कथा पूरी हुई ॥

भद्रकालीव्रतम्

अथाश्विनशुक्लनवम्यां भद्रकालीव्रतं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–राजोवाच ।। विधिना पूजयेत् केन भद्रकालीं नराधिप ।। नवम्यामाश्विने मासि शुक्लपक्षे नरोत्तम ।। पुष्कर उवाच ।। पूर्वोत्तरे तु दिग्भागे शिवे वास्तुमनोहरे ।। भद्राकाल्या गृहं कार्यं चित्रवस्त्रैरलङ्कृतम् ।। भद्रकालीं पटे कृत्वां तत्र संपूजयेद्द्विज ।। अष्टादशभुजा कार्या भद्रकाली मनोहर ।। आलीढस्थानसंस्थाना चतुःसिंहरथे स्थिता ।। अक्षमाला त्रिशूलं च खड्गश्चर्म च पार्थिव ।। बाणचापे च कर्तव्य शङ्खपद्मे तथैव च । स्रुक्स्रुवौ च तथा कार्यो तथा वेदिकमण्डलू ।। दन्तशक्ती च कर्तव्ये तथा पाशहुताशनौ ।। हस्तानां भद्रकाल्याश्च भवेत् कान्तिकरः परः ।। एकश्चैव महाभाग रत्नपात्रधरो भवेत् ।। आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां प्रयतः शुचिः ।। तत्र चायुधचर्माद्यं छत्रं वस्त्रं च पूजयेत् ।। राजलिङ्गानि सर्वाणि तथा शस्त्राणि पूजयेत् ।। पुष्पैर्मेध्यैः फलैर्भक्ष्यैर्भोज्यैश्च सुमनोहरैः ।। बलिभिश्च विचित्रैश्च प्रेक्ष्यादानस्तथैव च ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्तत्रैव वसुधाधिप ।। उपोषितो द्वितीयेऽह्नि पूजयेत् पुनरेव ताम् ।। आयुधाद्यं च सकलं पूजयेद्वसुधाधिप ।। एवं संपूजयेद्देवीं वरदां भक्तवत्सलाम् ।। कात्यायनीं कामगमां बहुरूपां वरप्रदाम् ।। पूजिता सर्वकामैः सा युनक्ति वसुधाधिप ।। एवं हि संपूज्य जगत्प्रधानां यात्रा तु कार्या वसुधाधिपेन ।। प्राप्नोति सिद्धिं परमां महेशो जनस्तथा न्योऽपि च वित्तशक्त्या ।। इति भद्रकालीव्रतम् ।।

भद्रकालीव्रत-आश्विन शुक्ला नवमीके दिन होता है । यह हेमाद्रिमें विष्णुधर्मसे लिखा है राजा बोले कि, हे नराधिप ! भद्रकालीका पूजन किस विधिसे करना चाहिये ? जब कि हे नरोत्तम ! आश्विन शुक्ला नवमी हो । पुष्कर बोले, कि, सुन्दर पूर्वोत्तर दिशामें जो कि वास्तु के लिये मनोहर हो उसमें भद्रकालीका रंगे वस्त्रोंसे अलंकृत घर बनाये । हे द्विज ! उसमें भद्रकालीकी पटपर बनी हुई मूर्तिको पूजे, यह अठारह भुजी सुन्दर होनी चाहिये । आलीढ नामके स्थानपर बैठी एवम् चार शेरों के रथवाली होनी चाहिये । हे पार्थिव ! अक्षमाला, त्रिशूल, खड्ग, चर्म बाण, चाप, शंख, पद्म, स्रुक् स्रुव, वेदी, कमण्डलु, दन्त, शक्ति, पाश और हुताशन, इन सबोंको अपने हाथों में धारण किये हुए हैं , सब हाथों में एक सुन्दर हाथ है जिसमें रत्नपात्र लिये हुए हैं । ये सब बातें चित्रपटमें होनी चाहिये । आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन नियमपूर्वक पवित्र होकर ढाल तलवार छत्र और वस्त्रों का पूजन करे । राजा के सब चिह्नोंको तथा शस्त्रोंको पूजे, पुष्प, मेध्य, फल और मनोहर भक्ष्य भोज्य एवं अनेक तरहकी बलि दे । हे वसुधाधिप रात में जागरण करे । दूसरे दिन उपवास पूर्वक फिरकाली का पूजन करे । हे वसुधाधिप ! आयुध आदिके सबकी पूजा करें । इस प्रकार वरके देनेवाली भक्तवत्सला वरदा बहुतसे रूपोंवाली कामनाओंको पूराकरनेवाली कात्यायनी देवीका पूजन करे । हे वसुधाधिप ! पूजित हुई काली सब कामोंको देती है । इस प्रकार जगत्की प्रधान कालीकी पूजा करके राजाको यात्रा करनी चाहिये । वो परम सिद्धि को पाता है और भी जो कोई अपने शक्ति के अनुसार कालीका पूजन करता है उसके भी सब मनोकाम पूरे होते हैं महादेवजी उसपर कृपा करते हैं । यह भद्र कालीका व्रत पूरा हुआ ।।

नवरात्रव्रतम्

अथ देवीपुराणोक्तं नवरात्रव्रतम्—ब्रह्मोवाच ।। शृणु शक्र प्रवक्ष्यामि यथा त्वं परिपृच्छसि ।। महासिद्धिप्रदं धन्यं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।। सर्वलोकोपकारार्थं पूजयेत् सर्ववृत्तिषु ।। क्रत्वर्थं ब्राह्मणाद्यैश्च क्षत्रियैर्भूमिपालने ।। गोधनार्थे वत्स वैश्यैः शूद्रैः पुत्रसुखार्थिभिः ।। सौभाग्यार्थं तथा स्त्रीभिर्धनार्थं धनकांक्षिभिः ।। महाव्रतं महापुण्यं शङ्कराद्यैरनुष्ठितम् ।। कर्तव्यं देवराजेन्द्र[1] देवीभक्तिसमन्वितैः ।। कन्यासंस्थे रवौ शक्तः शुक्लामारभ्य नन्दिकाम्[2] ।। नन्दिका प्रतिपत् ।। अयाची त्वथवैकाशी नक्ताशी त्वथवा पुनः ।। प्रातःस्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकालं शिवपूजकः ।। शिवश्च शिवा च शिवौ तयोः पूजकः ।। जपहोमसमासक्तः कन्यकां भोजयेत् सदा ।। अष्टम्यां नवगेहानि दारुजानि शुभानि च ।। एकं वा चित्तभावेन कारयेत् सुरसत्तम ।। तस्मिन् देवी प्रकर्तव्या हैमीवा राजती तुवा ।। मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गशूले च पूजयेत् ।। सर्वोपहारसंपन्नवस्त्ररत्नफलादिभिः ।। कारयेद्रथदोलादिपूजां च बलिदैविकीम् ।। बलिग्राहिणो देवा विनायकादयस्तत्संबन्धिनीं बलि दैविकीम्।।पुष्पैश्च द्रोणबिल्वाद्यैर्जातिपुन्नागचम्पकैः ।।द्रोणः कुरुवकः ।। विचित्रां रचयेत् पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ।। दुर्गाग्रतो जपेन्मन्त्रमेकचित्तः सुभावितः ।। तदर्द्धयामिनीशेषे विजयार्थं नृपोत्तमः ।। पञ्चाब्दं लक्षणोपेतं महिषं च सुपूजितम् ।। विधिवत् कालि कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् ।। तस्योत्थं रुधिरं मांसं गृहीत्वा पूजनादिषु ।। निर्ऋताय प्रदातव्यं महा[3]कौशिक मन्त्रितम् ।। तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं कृत्वा तु पिष्टजम् ।। खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात् स्कन्दविशाखयोः।। ततो देवीं पुनः प्रीतः क्षीरसर्पिर्जलादिभिः।।कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनैश्चार्च्य धूपयेत् ।। हेमादिपुष्परत्नानि वासांसि भूषणानि च ।। नैवेद्यं सुप्रभूतं तु देयं देव्याः सुभावितैः ।। देवीभक्तान् पूजयीत कन्यकाः प्रमदादिकाः ।। द्विजातीनन्धपाखण्डानन्नदानेन तोषयेत् ।। दुर्गाभक्तिपरा ये तु महाव्रतपराश्च ये ।। पूजयेत्तान्विशेषेण तद्रूपा चण्डिका यतः ।। मातणां चैव देवीनां पूजा कार्या तदा निशि ।। ध्वजच्छत्रपताकादीनुच्छ्रयेच्चण्डिकागृहे ।। रथयात्रां बलिक्षेपं पटुवाद्यरवाकुलम् ।। कारयेत्तुष्यते येन देवीशास्त्रविधानकैः ।। अश्वमेधमवाप्नोति भक्तितः सुरसत्तम ।। महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका ।। सर्वेषु वत्स वर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता।।कृत्वाऽऽप्नोति यशो राज्यं पुत्रायुर्धन—संपदः ।। इति देवीपुराणोक्तं नवरात्रव्रतम् ।।

---

१ हे महेन्द्र । २ नन्देति क्वचित्पाटः । ३ वस्तुविघातनैरिति क्वचित्पाठः ।

नवरात्रव्रत–देवी पुराणमें कहा हुआ है—ब्रह्मा बोले कि हे इन्द्र ! जो मुझे आप पूछते हैं उसे मैं कहता हूँ । यह महा सिद्धि देनेवाला है धन्य है, सभी वैरियोंका दमन करनेवाला है । सबके उपकारके लिये सभी वृत्तियोंमें इसे पूजे यज्ञके लिये ब्राह्मणको भूमि पालनके लिये क्षत्रियकी एवम् हे वत्स ! गोधनके लिये वैश्यको पुत्र सुख के लिये शूद्रोंको स्त्रियोंको सौभाग्यके लिये धनके चाहनेवाले को धनके लिये इसे करना चाहिये इस महापुण्यशाली बडे भारी व्रतको शिवजीने भी किया है, हे राजेन्द्र ! देवीकी भक्ति के साथ इसे अवश्य ही करना चाहिये, कन्याके सूर्य्यमें शुक्ला नन्दा से लेकर ।।नंदिका प्रतिपदाका नाम है । बिना माँगे फलाहारको करनेवाला अथवा एकवार करनेवाला या रातको करनेवाला बने,प्रातःकाल स्नान करे,क्रोध मोहादिको जीते, तीनवार शिवका पूजन करे । शिव और शिवाका एक शेष करके शिव रह जाता है । उन दोनोंको जो पूजे वो शिव पूंजक कहाता है यानी महादेव पार्वती दोनोंकाही पूजन करे । जप और होममें मन लगाये रहे, कन्याओंको सदा भोजन करावे । अष्टमीके दिन काठके बनायेहुए सुन्दर नये घरोंको अथवा धन न हो तो एक घर बनवाये, हे सुरसत्तम ! उसमें सोने चाँदी मिट्टी वा काठकी सब लक्षणों सहित देवी स्थापित करे, उसके साथ खड्ग और शूलकी भी पूजा करे । सब उपकारोंके साथ एवं वस्त्र रत्न और फलादिकों के सहित रथ और डोला आदिकी पूजा करे तथा जिन देवताओंको बलि दी जानेवाली है उनकी पूजा करे । पुष्प द्रोण बिल्व जाति पुन्नाग और चम्पकोंसे विचित्र पूजा रचे । द्रोण कुरुवकको कहते हैं । तथा अष्टमी के दिन उपवास भी करे । एक चित्त हो प्रसन्नताके साथ दुर्गाके सामने मंत्र जप करे उसकी आधीरात बाकी रह जानेपर राजाको चाहिये कि , जीतके लिये पाँचवर्षके सब लक्षणों सहित पूजा किये गये भैंसेको विधिके साथ "काली काली' ऐसे जपकर तलवारसे काट दे । हे इन्द्र! उसके जो खून मांस हों उन्हें मंत्रके साथ निर्ऋतको दे दे । उसके सामने राजाको स्नान करना चाहिये । पिष्टका वैरी बनाकर उसे खड्गसे काट उसे स्कन्द और विशाखाके लिये दे दे । इनके बाद प्रसन्न होकर क्षीर, सर्पि, जलादिक कुंकुम, अगरु, कर्पूर और चन्दनसे पूजा कर धूप दे । हेमादि, पुष्प, रत्न, वस्त्र, भूषण और बहुतसा नैवेद्य देवीकी भेंट करना चाहिये । देवीके भक्तोंका पूजन करे । कन्याएँ और प्रमदाएँ जो हों इनका भी पूजन करे । द्विजाति तथा आंधरे और पाखण्डियोंको अन्नदानसे प्रसन्न करे । जो दुर्गाकी भक्तिमें लगे रहते हों अथवा जो महाव्रतमें परायण हों उनका विशेष रूपसे पूजन करे; क्योंकि , वे तो चण्डिकाके स्वरूपही हैं । उसी रात को मातृका देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये । चण्डिकाके स्थानमें ध्वज, छत्र, और पताकाओंको भी लगाये, सुन्दर बाजोंके साथ रथ-यात्रा और बलि होनी चाहिये । ये सब इस तरह शास्त्र के विधानसे किये जायें कि, देवी प्रसन्न हो यह महानवमी में पूजा होती है सब कामोंको पूरा करनेवाली है । यह सब वर्णोंमें होती है । सबके ही कामोंको पूरा करती है । हे वत्स ! तेरी भक्तिसे मैंने तुझे कहदी है, इसे करके यश, राज्य, पुत्र, धन, संपत्ति सबकी प्राप्ति होती है । यह देवी पुराणका कहा हुआ नवरात्रका व्रत पूरा हुआ ।।

अथ महानवम्यां दुर्गापूजाविधिः– आश्वयुक्शुक्लपक्षस्य नवम्यां प्रयतात्मवान् । भक्त्या संपूजयेद्देवदेवीं संप्रार्थयेत्ततः ।। महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डामालिनि ।। द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि ।। देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ।। उमे ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे ।। कुमारीर्भोजयित्वा च दद्यादाच्छादनादिकम् ।। नव सप्ताष्ट पञ्चैव स्वस्य वित्तानुसारतः ।। शस्त्रं च यस्य यच्चैव स तद्यत्नेन पूजयेत् ।। यतः व स्त्रेषु सा देवी निवसत्येव सन्ततम् ।।शास्त्रमिति पाठः ।। शास्त्रं तत्पुस्तकम् ।। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देव्याः स्नपनादौ विशेषः –शिवरहस्ये –ये

मेरुमूर्धगतसङ्कृताभिषेकां पञ्चामृतैर्गिरिसुतामभिषेचयन्ति । ते दिव्यकल्पमनुभूय सुवेषरूपा राज्याभिषेकमतुलं पुनराप्नुवन्ति ।। देवी पुराणे-सुगन्धिपुष्पतोयेन स्नापयित्वा नरः शिवाम् ।। नागलोकं समासाद्य क्रीडते पन्नगैः सह ।। द्रोणपुष्पं बिल्वपत्रं करवीरोत्पलानि च ।। स्नानकाले प्रयोज्यानि देव्यै प्रीतिकराणि च ।। भगवत्यै नरो दत्वा विष्णुलोके महीयते ।। स्नापयित्वा नरो दुर्गां नवम्यां हेमवारिणा ।। सौवर्णयानमारूढो वसुभिः सह मोदते ।। रत्नोदकैर्विष्णुलोकं लभते बान्धवैः सह ।। घृतेन स्नापयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ।। दशपूर्वान्दशपरानात्मानं च विशेषतः ।। भवार्णवात्समुद्धृत्य दुर्गालोके महीयते।। क्षीरेण स्नापयेद्यस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। चण्डिकां विधिवद्वीर इन्द्रलोके महीयते ।। स्नापयेद्विधिना वीर दध्ना दुर्गां महीपते ।। राजतेन विमानेन शिवलोके महीयते ।। पञ्चगव्येन यो दुर्गां तथा च कुशवारिणा ।। स्नापयेद्विधिवन्मन्त्रैर्ब्रह्मस्नानं हि तत्स्मृतम् ।। एकाहेऽपि च यो दुर्गां पञ्चगव्येन चण्डिकाम् ।। स्नापयेन्नृपशार्दूल स गच्छेद्विष्णुसन्निधौ ।। तच्च चण्डीगायत्र्या ।। सा च —" नारायण्यै च विद्महे चण्डिकायैच धीमहि ।। तन्नश्चण्डी प्रचोदयात् " इति ।। कालिकापुराणे —कपिलापञ्चगव्येन दधिक्षीरघृतेन च ।। स्नानं शतगुणं प्रोक्तमितरेभ्यो नराधिप ।। भविष्ये—चण्डिकां स्नापयेद्यस्तु नर इक्षुरसेन च ।। गारुडेन स यानेन विष्णुना सह मोदते ।। पितृनुद्दिश्य यो दुर्गां मधुना पयसापि च ।। स्नापयेत्तस्य पितरस्तृप्ता वर्षसहस्रकम् ।। पौर्णमास्यां नवम्यां वा अष्टम्यां वा नराधिप ।। स्नापयित्वा तीर्थजलैर्वाजिमेधफलं लभेत् ।। स्नापयित्वा नदीतोयैर्गन्धचन्दनवारिणा ।। चन्द्रांशुनिर्मलः श्रीमांश्चन्द्रलोके महीयते ।। स्नापयेद्यस्तु वै देवीं नरः कर्पूरवारिणा ।। स गच्छति परं स्थानं यत्र सा चण्डिका स्थिता ।। चण्डिकां स्नापयित्वा तु श्रद्धयाऽगुरुवारिणा ।। इन्द्रलोकं समासाद्य क्रीडते सह किन्नरैः ।। वाराहीतन्त्रे—षडक्षरेण मन्त्रेण पाद्यादीनथ षोडश।।इतरैरुपचारैश्च पूर्वप्रोक्तैश्च भैरव।।अर्घ्याः-द्वादशाङ्गेन योऽर्घ्येण चण्डिकां पूजयेन्नरः ।। दशपद्मसहस्राणि वर्षाणां मोदते दिवि ।। आपः क्षीरं कुशाग्राणि अक्षता दधि तण्डुलाः ।। सहा सिद्धार्थका दूर्वा कुङ्कुमं रोचनं मधु ।। अर्घ्योऽयं कुरुशार्दूल द्वादशाङ्ग उदाहृतः ।। सहा सहदेवी ।। कुमारीमुपक्रम्य ।। अनेन पूजयेद्यस्तु स याति परमां गतिम् ।। अष्टाङ्गार्घ्यं समापूर्य देव्या मूर्ध्नि निवेदयेत् ।। दशवर्षसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ।। आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः ।। तिलाः सिद्धार्थकाश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घ्यः प्रकीर्तितः

१ तिलोदकैरित्यपि क्वचित्पाठः । २ सगच्छेत्सुरभीपुरमिति क्वचित्पाठः । ३ वर्षशतद्वयमिति क्वचित्पाठः ।

।। भविष्ये –रत्नबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाङ्कुशस्तिलैः ।। सामान्यः सर्वदेवानामर्घ्योऽयं परिकीर्तितः ।। अर्घ्यपात्रफलम्–मृत्पात्रेण नरो दत्त्वा वाजपेयफलं लभेत्।। ताम्रपात्रार्घ्यदानेन पौण्डरीकफलं लभेत् ।। दत्त्वा सौवर्णपात्रेण लभेद्बहुसुवर्णकम् ।। हेमपात्रेण सर्वाणि ईप्सितानि लभेद्भुवि ।। अर्घ्यं दत्त्वा तु रौप्येण आयू राज्यं फलं लभेत् । पलाश पद्मपत्राभ्यां गोसहस्रफलं लभेत् ।। रौप्यपात्रेण दुर्गायै विष्णुयागफलं लभेत् ।। चन्दनेन सुगन्धेन आर्यां यस्तु समालभेत् ।। कुङ्कुमेन च लिप्ताङ्गां गोसहस्रफलं लभेत् ।। विलिप्य कृष्णागुरुणा वाजपेयफलं लभेत् ।। मृगानुलेपनं कृत्वा ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ।। मृगः कस्तूरी ।। तथा– चन्दनागुरुकपूरैर्यस्तु दुर्गां विलेपयेत् ।। संवत्सरशतं दिव्यं शक्रलोके महीयते ।। देवीपुराणे चन्दनागुरुकपू रैः श्लक्ष्णपिष्टैः सकुङ्कुमैः ।। दुर्गामालिप्य विधिवत्कल्पकोटि वसेद्दिवि ।। चन्दनं मदकर्पू ररोचनं च चतुष्टयम् ।। एतेन लेपयेद्देवीं सर्वकामानवाप्नुयात् ।। पुष्पाणि––देवीपुराणे–मल्लिका उत्पलं पद्मं शमीपुन्नागचम्पकम् ।। अशोकंकर्णिकारं च द्रोणपुष्पं विशेषतः ।। करवीरं शमीपुष्पं कुसुम्भं नागकेसरम् ।। कुन्दश्च यूथिका मल्ली पुन्नागश्चम्पकं नवम् ।। जपा च केतकी मल्ली बृहती शतपत्रिका ।। तथा कुमुदकह्लार बिल्वपाटलमालति ।। यावनीबकुलाशोकरक्तनीलोत्पलानि च ।। दमनं मरुबकं चैवशतधा पुण्यवृद्धये ।। केतकी चातिमुक्तश्च बन्धूकं बकुलान्यपि ।। कुमुदं कर्णिकारं च सिन्दूराभं समृद्धये ।। बिल्वपत्रैरखण्डैश्च सकृद्देवीं प्रपूजयेत् ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोक महीयते ।। मणिमौक्तिकमालां च वितानं दुकुलं तथा ।। घण्टादि सर्वदा दत्त्वा हेमपुष्पं तु शक्तितः ।। तावद्भिश्च वृताः पुत्रैः पौत्रैश्चैव समन्ततः । श्रिया सहैवं युज्यन्ते हेमपुष्पैः शिवार्चनात् ।। भविष्ये–प्रत्येकमुक्तपुष्पेषु दशनिष्कफलं लभेत् ।। स्रग्बद्धेषु च तेष्वेव द्विगुणं काञ्चनस्य तु ।। करवीरस्रजाभिश्च पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् ।। सोऽग्निष्टोमफलं लब्ध्वा सूर्य लोके महीयते ।। पूजयित्वा नरो भक्त्या चण्डिकां पद्ममालया ।। ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य सूर्यलोके महीयते ।। शमीपुष्पस्रजाभिश्च आंर्या संपूज्य यत्नतः ।। गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।। पूजयित्वा तु राजेन्द्र श्रद्धया विधिवन्नृप ।। कुशपुष्पस्रजाभिस्तु पितृलोकमवाप्नुयात् ।। सुगन्धयुतपुष्पैस्तु पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् ।। मालाभिर्मालया वापि सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।। सुवर्णानां सुवर्णस्य शते दत्ते फलं लभेत् ।। मालया बिल्वपत्राणां नवम्यां गुग्गुलेन च ।। नीलोत्पलस्रजाभिश्च पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् ।। वाजपेयफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते ।। नीलोत्पलसहस्रेण यो वै मालां प्रयच्छति ।। वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ।। दुर्गानुचरतां यातो रुद्रलोके महीयते ।। तथा ––विलि-

प्तां पूजयेद्दुर्गां , दिव्यपुष्पाधिवासिताम् ।। तालवृन्तेन संवीज्य महासत्रफलं लभेत् ।। भविष्ये– सर्वेषामेव धूपानां दुर्गाया गुग्गुलुः प्रियः ।। मन्त्रस्तु–धूपोऽयं देवदेवेशि घृतगुग्गुलुयोजितः ।। गृहाण वरदे मातर्दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।। कृष्णागुरुं नरो दत्त्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।। माहिषाख्यघृताभ्यक्तं दत्त्वा बिल्वमथापि वा ।। वाजपेयफलं प्राप्य सूर्यलोके महीयते ।। सकृष्णागुरुधूपेन माहिषाख्येन मङ्गला ।। शोधयेत्पापकलिलं यथाग्निरिव काञ्चनम् ।। कृष्णागुरुं सकर्पूरं चन्दनं सिल्हकं तथा ।। तथा शब्दसमुच्चये ––भगवत्यै नरो धूपमिमं दत्त्वा नराधिप ।। इह कामानवाप्यन्ते दुर्गालोके महीयते ।। घृतदीपप्रदानेन चण्डिकां पूजयेन्नरः।। सो ऽश्वमेधफलं प्राप्य दुर्गायास्तु गणो भवेत् ।। तैलदीपप्रदानेन पूजयित्वा च चण्डिकाम् ।। वाजपेयफलं प्राप्य मोदते सह किन्नरैः ।। मन्त्रस्तु ––अग्निज्योती रविज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च ।। ज्योतिषामुत्तमो दुर्गे दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। शिवरहस्ये –देदीप्यते सकनकोज्ज्वलपद्मरागरत्नप्रभाभरणहेममये विमाने ।। दिव्याङ्गनापरिवृत्ते नयनाभिरामं प्रज्वाल्य दीपममलं भवने भवान्याः।।भविष्ये– घृतेन कुरुशार्दूल ह्यमावास्यां तु कार्तिके ।। विशेषतो नवम्यां तु भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।। यावन्तं दीपसंघातं घृतेनापूर्य बोधयेत् ।। तावत्कल्पसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ।। दीपप्रदानं यो दद्याद्देवेषु ब्राह्मणेषु च ।। तेन दीपप्रदानेन अक्षय्यां गतिमाप्नुयात् ।। गुडखण्डं घृतान्नं च तथा शर्करयापि च ।। घृतेन परिपक्वान्नं दत्वा च ब्रह्मणः पदम्।।स्यादितिशेषः ।।शाल्योदनं रसालां च पानं बदरजं तथा ।। यः प्रयच्छति दुर्गायै स गच्छति शिवालयम् ।। शिवा दुर्गा ।। रसाला सूपशास्त्रे–– इषदम्लदधिशर्करापयः साधितेन्दुमरिचैः सुगालिता ।। पित्तनाशमरुचिं च निहन्ति वै मोदनं च कुरुत्ते रसालिका ।। पानकं वैद्यके––गौडमम्लमनम्लं वा पानकं सुरभीकृतम् ।। तदेव खण्डमृद्वीकाशर्करासहितं पुनः ।। साम्लं सुतीक्ष्णं सुहित पानकं स्यान्निरत्ययं तत्कालम् ।।श्रद्धया[1] पायसं युक्तं शर्करासहितं नरः ।। यः प्रयच्छति दुर्गायै तस्य राज्यं करे स्थितम् ।। कालिकापुराणे ––आमिक्षां परमान्नं च दधि चापि सशर्करम् ।। महादेव्यै निवेद्यैव वाजपेयफलं लभेत् ।। दुर्गामुद्दिश्य पानीयं केतकी शशिवासितम् ।। यः प्रयच्छति राजेन्द्र स गणाधिपतिर्भवत् ।। आम्रं च नारिकेरं च खर्जूरं बीजपूरकम् ।। यः प्रयच्छति दुर्गायै सयाति परमं पदम् ।। फलं च वितरन् सर्वम् नाशुभं किञ्चिदाप्नुयात् ।। भक्ष्यादिपञ्चकैर्देवीदत्तैरेवाभितुष्यति ।। भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम् ।। परमान्नं

१ श्रद्धया युक्तं यथा स्यात्तथा

पिष्टकं च यावकं कृसरं तथा ।। मोदकं पृथुकादीनि देव्यै पक्वानि चोत्सृजेत् ।। दद्यादित्यर्थः ।। निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ।। क्षीरादीनि च गव्यानि माहिषाणि च सर्वशः ।। ताम्बूलानि च दत्त्वा तु गन्धर्वैः सह मोदते ।। विष्णुधर्मे—तन्तुसन्तानसन्नद्धं रञ्जितं रागवस्तुना ।। दुर्गेदेवि भजस्वेदं वासस्ते परिधीयताम् भविष्ये——वस्त्राणि तु विचित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च ।। यः प्रयच्छति दुर्गायै स गच्छति शिवालयम् ।। यावतस्तन्तवो वीर तेषु वस्त्रेषु संस्थिताः ।। तावद्वर्षसहस्राणि मोदते चण्डिकागृहे ।। अलङ्कारं तु यो दद्याद्विप्रायाथ सुराय वा ।। स गच्छेद्वारुणं लोकं नानाभूषणभूषितः ।। जातः पृथिव्यां कालेन ततो द्वीपपतिर्भवेत् ।। विष्णुधर्मे —— विभूषणप्रदानेन राजा भवति भूतले ।। सुवर्णतिलकं यस्तु भगवत्यै प्रयच्छति ।। स गच्छति परं स्थानं यत्र सा परमा कला ।। सौवर्णे राजते वापि अक्षिणी यः प्रयच्छति ।। गोसहस्रफलं प्राप्यं पूर्यलोके महीयते ।। श्रोणिसूत्रप्रदानेन मह्रीं सागरमेखलाम् ।। प्रशास्ति निहतामित्रो मित्रवृद्ध्या च मोदते ।। हेमनूपुरदानेन स्थानं सर्वत्र विन्दति ।। शिवरहस्ये—— देदीप्यते कनकदण्डविराजितैश्चसच्चामरैः प्रचलकुण्डलसुन्दरीभिः ।। दिव्याङ्गनास्तनविराजित भूषिताङ्गः कृत्वा तु चामरयुताम्बरवस्त्रपूजाम् ।। भविष्ये——गैरिकस्य तु पात्राणि दुर्गायै यः प्रयच्छति ।।तस्य पुण्यफलं प्रोक्तं तारागणपदं दिवि ।। गैरिकं सुवर्णम् ।। निष्ककोटिप्रदानाद्धिरजतस्य ततोऽधिकम् ।। हेमपात्राणि यद्दत्त्वापुण्यं स्याद्वेदपारगे ।। ताम्रपात्रप्रदानेन देव्यै शतगुणं भवेत् ।। तस्माच्छतगुणं प्रोक्तं दत्वा मृन्मयमादरात् ।। मृन्मयं करकादि ।। उपस्करप्रदानेन प्रियमाप्नोत्यनुत्तमम् ।। उपस्करः पूजार्थं धूपदीपादि पात्रघटादि ।। चंद्रांशुनिर्मलं स्वच्छं दर्पणं मणिभूषितम् ।। पद्मापशोभितं कृत्वा दिव्यमाल्यानुलेपनैः ।। दुर्गायाः पुरत : कृत्वा विष्णोर्वा शंकरस्य वा ।। राजसूयफलं प्राप्यं हंसलोके महीयते ।। हंस सूर्यः ।। शिवरहस्ये–दत्वा तु यः परमभक्तियुतो भवान्यै घण्टावितानमथ चामरमातपत्रम् ।। केयूरहारमणिकुण्डलभूषितोऽसौ रत्नाधिपो भवति भूतलचक्रवर्ती ।। भविष्ये–शंखकुन्देन्दुसंकाशं प्रवालमणिभूषितम् ।। हेमदण्डमयं छत्रं दुर्गायै यः प्रयच्छति ।। सच्छत्रेण विचित्रेण किंकिणीजालमालिना ।। धार्यमाणेन शिरसि शिवलोके महीयते ।। विष्णुधर्मे–यानं शय्यां मणिं छत्रं पादुके वाप्युपानहौ ।। वाहनं गां गृहं वापि त्रिदशायै प्रयच्छति ।। एकैकस्मादवाप्नोति वह्निनष्टोमफलं शुभम् ।। भविष्ये——ताम्रदण्डविचित्रं वै दुर्गायै यः प्रयच्छति ।। स गच्छति परं स्थानं मातृणां लोकपूजितम् ।। हेमदण्डं विचित्रं वै चामरं यः प्रयच्छति ।। वायुलोकं समासाद्य क्रीडते वायुना सह ।। आर्यायाश्चामरं दत्त्वा मणि-

दण्डविभूषितम् ।। सुवर्णरूप-चित्रं वा दुर्गालोके महीयते ।। मयूरपिच्छव्यजनं नानारत्नविभूषितम् ।। भगवत्यै नरो दत्त्वा लभेद्बहुसुवर्णकम् ।। तालवृन्तं महाबाहो चित्रकर्मोपशोभितम् ।। भगवत्यै नरो दत्त्वा वैष्णवस्य फलं लभेत् ।। वैष्णवो यज्ञः ।। घण्टां निवेदयेद्यस्तु लभते वाञ्छितं फलम् ।। हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।। सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ।। इति संपूज्य घण्टांनिवेदयेत् ।। अनः शकटमातरीति कोश : ।। आदित्यपुराणे––यः शय्यां तु प्रयच्छेत देवेषु च गुरुष्वपि ।। ज्ञानवृद्धेषु विप्रेषु दाता न नरकं व्रजेत् ।। भविष्ये–– त्नोपकरणैर्युक्तां सारदारुमयीं शुभाम् ।। शय्यां निवेदयेद्यस्तु भगवत्यै नराधिप ।। दुकूलवस्त्रतन्तूनां परिसंख्या तु यावती ।। तावद्वर्षसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ।। विष्णुधर्मे–पादुकासनदानेन भगवत्यै कृतेन तु ।। अग्निष्टोमफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।। यो गां पयस्विनीं शुद्धां तरुणीं शीलमण्डनाम् ।। भगवत्यै नरो दद्यादश्वमेधफलं लभेत् ।। वृषभं परिपूर्णाङ्गमुदासीनं शशिप्रभम् ।। यस्तु दद्यान्नरो भक्त्या भगवत्यै सकृन्नरः ।। यावन्ति रोमकूपाणिवृषदेहस्थितानि तु ।। तावत्कल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।। सुविनीतां स्त्रियां दासीं भृत्यकं वा नराधिप ।। प्रयच्छति च दुर्गायै राजसूयाश्च मेधभाक् ।। विष्णुधर्मे–प्रतिपाद्य तथा भक्त्या ध्वजं त्रिदशवेश्मनि ।। निर्दहत्याशु पापानि महापातकभागपि ।। भविष्ये––ध्वजं श्वेतपताकाढ्यमथवा पञ्चरङ्गिकम् ।। किंकिणीजालसंवीतं श्वेतपद्मोपशोभितम् ।। दत्त्वा देव्यै महाबाहो शक्रलोके महीयते ।। ध्वजमालाकुलं यस्तु कुर्याद्वै चण्डिकालयम् ।। महाध्वजाष्टकं चापि दिशासु विदिशासु च ।। कल्पानां तु शतं साग्रं दुर्गालोके महीयते ।। यावद्धनुःप्रमाणेन पताका प्रतिपादिता ।। तावद्वर्षसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ।। चतुर्हस्तं धनुः ।। कालिकापुराणे–प्रभूतबलिदानं च नवम्यां विधिवच्चरेत् ।। कूष्माण्डमिक्षुदण्डं च मद्यमांसानि चैव हि ।। एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमा मताः ।। भविष्ये–न तत्र देशे दुर्भिक्षं न च दुःखं प्रवर्तते ।। नाकाले म्रियते कश्चित् पूज्यते यत्र चण्डिका ।। शरत्काले महाष्टम्यां चण्डिकां यः प्रपूजयेत्।।विमानवरमारुह्य मोदते ब्रह्मणा सह ।। अथावरणपूजा–देव्या दक्षिणे सिंहं प्रपूज्य पूर्वादिक्रमेण ॐ ह्रीं जयन्त्यै नमः । ॐ ह्रीं मङ्गलायै नमः । ॐ ह्रीं काल्यै०।ॐ ह्रीं भद्रकाल्यै न०।ॐ ह्रीं कपालिन्यै० ।ॐ ह्रीं दुर्गायै०।ॐ ह्रींक्षमायै०।ओं ह्रीं शिवायै०ओं ह्रीं धात्र्यै०ओं ह्रीं स्वाहायै० इति प्रथमावरणम्।।ओं ह्रीं स्वधायै० १ओं ह्रीं उग्रचण्डिकायै०२ओं ह्रीं प्रचन्डायै० ३ ओं ह्रीं स्वाहायै०२ ओं ह्रीं प्रह्वायै०६ओं ह्रीं चण्डवत्यै०६ओं ह्रीं चण्डरूपायै० ७ ओं उग्रदंष्ट्रायै० ८ ॐ ह्रीं महादंष्ट्रायै० ९ ओं ह्रीं दंष्ट्राकरालायै० १०।।इति

द्वितीयावरणम् ।।ओं ह्रीं बहुरूपिण्यै०ओं ह्रीं ग्रामण्यै०ओं ह्रीं भीमसेनायै०ओं ह्रीं विशालाक्ष्यै० भ्रामर्यै० मङ्गलायै० नन्दिन्यै० लक्ष्म्यै० भोगदायै० इति तृतीयावरणम् ।। पृथिव्यै० मेधायै० साध्यायै० यशोवत्यै० शोभायै० बहुरूपायै० धृत्यै० आनंदायै० सुनंदायै० नन्दायै० इति चतुर्थावरणम् ।। अथ चतुःषष्ठि देव्यः– विजयायै० मङ्गलायै० महीधृत्यै० शिवायै० क्षमायै० सिद्धयै० तुष्टयै० जयायै० ऋद्धयै० रत्यै० दीप्त्यै० कान्त्यै० पद्मायै० लक्ष्म्यै० ईश्वर्यै० वृद्धिदायै० शक्त्यै० जयवन्यै० ब्राह्मयै० अपराजितायै० अजितायै० मानिन्यै० श्वेतायै० दित्यै० मायायै० मोहिन्यै० रतिप्रियायै० लालसायै० तारायै० विमलायै० कौमार्यै० शरण्यै० गोरूपिण्यै० क्षमायै० मत्यै० दुर्गायै० क्रियायै० अरुन्धत्यै० घण्टायै० करालायै० कपालिन्यै० रौद्र्यै० कालिकायै० त्रिनेत्रायै० सुरूपायै० बहुरूपायै० रिपुहन्त्र्यै० अंबिकायै० चर्चिकायै० देवपूजितायै० वैवस्वत्यै० कौमार्यै० माहेश्वर्यै० वैष्णव्यै० महालक्ष्म्यै० काल्यै० कौशिक्यै० शिवदूत्यै० चामुण्डायै० शिवप्रियायै० दुर्गायै० महिषमर्दिन्यै० ।। ६४ ।। अथ मातरः–ब्राह्म्यै० माहेश्वर्यै० कौमार्यै० वैष्णव्यै० वाराह्यै० इन्द्राण्यै०चामुण्डायै०मध्ये महालक्ष्म्यै० ।। ततः कालि कालि स्वाहा हृदयाय नमः ।। इत्यग्नीशाननिर्ऋतिवायव्यकोणेषु ।। कालि कालि लोहदण्डायै स्वा० ।। अस्त्राय फट्।। कालि कालि लोहदण्डायै स्वाहा नेत्रे पुरतः ।। अथ पञ्चवक्त्राणि ।। ईशानायै०शिरसि० कालि कालि तत्पुरुषायै०मुखे ।। वज्रेश्वरीघोरायै० हृदयं० लोहदण्डायै० वामदेवायै० पादयोः स्वाहा ।। सद्योजातायै० सर्वाङ्गे० अथ आयुधानि दक्षिणोर्ध्वकरादि० ।। त्रिशूलम् ।। खड्गम् ।। बाणम् ।। शक्तिम् ।। वामे खेटम् पाशम् ।। अंकुशम् ।। घण्टाम् ।। ततो वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहासनाय ओं हुं फट् नमः ।। इतिसिंहम् ।। महिषासनाय० नागपाशाय० इति नाममन्त्रैः पूजा कार्या ।। भविष्ये वर्षैः पद्मसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् ।। तत्सर्वं विलयं याति घृताभ्यङ्गेन वै नृप ।। घृतेन पयसा दध्ना स्नापयेच्चण्डिकां नृप ।। निम्बपत्रैश्च गन्धाढ्यैर्घर्षयेद्यत्नतस्ततः ।। इति दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां महानवमीदुर्गापूजाविधिः ।।

महानवमीमें दुर्गापूजा विधि–नियमवाला आवमी आश्विन शुक्ला नवमीके दिन भक्तिके साथ देवीका पूजन करके उसकी प्रार्थना करे कि–हे महिषासुरको मारनेवाली महामाये ! हे मुण्डोंकी माला पहिननेवाली चामुण्डे ! मुझे द्रव्य आरोग्य और विजय दे, हे देवि ! तेरे लिये नमस्कार है, हे महेश्वरि ! भूत प्रेत पिशाच और राक्षसोंसे एवम् देव और मनुष्योंसे होनेवाले सब तरहके भयों से मेरी सदा रक्षा कर, हे उमे ! हे ब्रह्माणि ! हे कौमारि ! हे विश्वरूपे ! मुझपर प्रसन्न हो, कुमारियों-

१ घैरर्चयेदिति पाठः ।

को भोजन कराकर पीछे वस्त्र और आच्छादन दे । वे नौ हों सात हों आठ हों वा पांच हों जैसी शक्ति हो वैसाही भोजन करावे, जो जिसका शस्त्र हो वो उसे ही प्रयत्नके साथ पूजे, क्योंकि देवी सदाही शस्त्रोंमें निवास करती है, कहीं शास्त्र ऐसा पाठ है । शास्त्र यानी देवी सम्बन्धी पुस्तक ।। दुर्गाभक्ति तरंगिणीमें कुछ देवीके स्थापनादिकोंमें शिव रहस्यमें विशेष लिखा है कि, मेरुके ऊपर रहनेवाले देवगणोंसे जिसका अभिषेक किया है उस गिरिसुताका पंचामृतसे अभिषेक करते हैं वे दिव्यकल्पतक दुर्गा एवं दिव्यलोकों का अनुभव करके सुवेष और भूषायुत होकर अतुल राज्याभिषेकको प्राप्त होते हैं । देवी पुराणमें लिखा हुआ हैं कि मनुष्य सुगन्धित पुष्प और पानीसे शिवाको स्नान कराकर अन्तमें नागलोकको पा पन्नगोंके साथ खेल करता है । द्रोण, बिल्वपत्र, करवीर और उत्पल इनका स्नान कालमें प्रयोग करे; क्योंकि ये देवीके प्रीति करनेवाले हैं, मनुष्य इन्हें भगवतीके लिये देकर विष्णुलोकमें पूजित होता है । मनुष्य नवमीके दिन सोनेके पानीसे दुर्गाको स्नान कराकर सोनेके विमानपर चढ वसुओंके साथ खेलता है । रत्नोदय या तिलोदकों से स्ना करा-कर बाँधवोंके साथ विष्णुलोकको प्राप्त होता है । जो घृतसे दुर्गाके स्नान करायें उसके पुण्यको सुन, दश पूर्वके और दशपरोंके पुरुषोंका और विशेष करके अपना संसार सागरसे उद्धार करके दुर्गाके लोक में प्रतिष्ठित करता है, जो श्रद्धा और भक्ति के साथ दूधसे दुर्गाका स्नान कराता है हे वीर ! वो इन्द्रलोकको जाता है हे वीर ! महीपते ! जो विधिके साथ दुर्गाको दधिसे नहलाता है वो चाँदीके विमान पर चढकर शिवलोकमें चला जाता है। जो पंचगव्य या कुशजलसे विधिपूर्वक मंत्रोंद्वारा दुर्गाको स्नान कराता है उसे ब्रह्मस्नान ही समझ, हे नृपशार्दूल ! जो एकदिन भी चण्डिका दुर्गाको पंचगव्यसे स्नान कराता है वो विष्णु भगवान् के पास चला जाता है । कहीं यह भी लिखा है कि वो सुरभी पुर चला जाता है ।। यह स्नान चण्डीगायत्रीसे होना चाहिये, वो यह है कि मैं नारायणी की उपासना उसी के लिये करता हूँ । चिण्डिकाका ध्यान करता हूँ । वो मेरी बुद्धि अपनी तरफ लगाये । कालिका पुराणमें लिखा हुआ है कि-कपिलाके दधि क्षीरके साथ पंचगव्यसे किये गये स्नान हे राजन् ! औरोंसे सौगुने होते हैं । भविष्य पुराणमें लिखा हुआ है कि–जो ईखके रससे चण्डिका देवीको स्नान कराता है वो गरुडवाहन सहित विष्णुके साथ आनन्द करता है । जो पितृयोंके उद्देशसे मधु और पयसे स्नान कराते हैं उनके पितर एक हजार वर्षतक तृप्त रहते हैं । हे राजन् ! पौर्णिमासी नवमी और अष्टमीके दिन तीर्थके जलोंसे दुर्गाको स्नान कराके वाजपेयके फलको पाता है ।गन्ध चन्दनके पानी के साथ नदीके पानीसे स्नान कराके चन्द्रलोक में प्रतिष्ठित होता है । जो कपूरके पानीसे चण्डिकाका स्नान कराता है वो परम स्थानको चला जाता है जहाँ कि, चंडिका विराजती है । जो चंडिकाको श्रद्धापूर्वक अगरुके पानीसे स्नान कराता है वो इन्द्रलोकमें पहुँचकर किन्नरोंके साथ क्रीडा करता है।।वाराही तंत्रमें लिखा हुआ है कि –भैरव ! छ अक्षरके मंत्रसे पहिले कहे हुए पाद्य आदि सोलह उपचारोंसे तथा द्वादशाङ्ग अर्घ्यसे चण्डिकाका पूजन करता है वो दश हजार पद्मवर्ष स्वर्गमें आनन्द करता है । द्वादशाङ्ग अर्घ्य-जल, दूध, कुशाग्र, अक्षत, दधि, सहदेवी, तण्डुल, यव, दूर्वा, कुंकुम, रोचन और मधु, हे गुरु शार्दूल ! इनके अर्घ्यको द्वादशाङ्ग अर्घ्य कहते हैं । १ कुमारीका प्रकरण लेकर, कहा है कि, जो इससे पूजन करता है वह परम गतिको पाता है, अष्टाङ्ग अर्घ्यकी समापूर्ति करके देवीके मूर्धापर निवेदन करे, वो दश हजार वर्ष दुर्गाके लोकमें निवास करता है । (अष्टाङ्ग अर्घ्य १६ पृष्ठमें गया) भविष्यमें, लिखा हुआ है कि –रत्न, बिल्व, अक्षत, पुष्प, दधि, दूर्वा, कुश, तिल, इनका अर्घ्य, सब देवोंका सामान्य कहा है ।। मनुष्य मिट्टीके पात्र में अर्घ्य देकर वाजपेयके फलको पाता है तामेंके पात्रमें देकर पौंडरीकके फलको पाता है, सुवर्णके पात्रमें कर बहुतसे सुवर्णको पाता है, हेमके पात्रसे सब मनोकामनाएँ पूरी होती है । चाँदीके पात्रमें अर्घ्य देकर आयु और राज्यफल मिलता है, पलाश और कमलके पत्तोंमें देकर एक हजार गऊ दानके फलको पाता है । रौप्य पात्र में दुर्गाके लिये देकर विष्णु-यागका फल पाता है । जो सुगन्धित चन्दनसे आर्य्या दुर्गाको छूता है कुंकुमसे लिप्त करके वो गोसहस्रके फलको पाता है । कृष्ण अगरुसे लीपकर वाजपेयके फलको पाता है । कस्तूरीको लगाकर ज्योतिष्टोमके फलको पाता है । मूलमें मृग है । ग्रन्थकार उसका कस्तूरी अर्थ करते है । जो चन्दन अगरु और कपूरको दुर्गाके लगाता है वो सौ दिव्य संवत्सर इन्द्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है ।। देवी पुराणमें लिखा हुआ है कि –चन्दन, अगरु

और कपूरको खूब पीसकर उसमें कुंकुम डाल उसे विधिपूर्वक दुर्गाके लगाकर कोटिकल्प दिवमें वसता है। चन्दन मद कर्पूर और रोचन इन चारोंको देवीके लगानेसे सब कामोंको पाजाता है। देवीपुराणमें पुष्प भी-कहे हैं कि मल्लिका, उत्पल, पद्म, शमी, पुन्नाग, चंपक, अशोक, कर्णिकार, और विशेष करिकें द्रोणं पुष्प, करवीर, शमी पुष्प, कुसुम, नागकेशर, कुन्द, यूथिका, मल्ली, पुन्नाग, नया चंपक, जपा, केतकी, मल्ली, बृहती, शतपत्रिका, कुमुद, कह्लार, बिल्व, पाटल, मालती, यावनी, बकुल, अशोक, रक्त और नील उत्पल, दमन, मरुवक इनसे अनेक तरह पुण्य वर्धनके लिये एवम् केतकी, अतिमुक्त, बन्धूक, बकुल, कुमुद, सिंदूरके रंगके कर्णिकार इसको समृद्धिके लिये और अखण्ड बिल्वपत्रों से एकवार देवीकी पूजा करे। सब पापोंसे छूटकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मणिमौक्तिककी माला, वितान, दुकूल और सदा घंटादिकोंको एवम् शक्ति के अनुसार हेम पुष्पोंको देता है जितने हेमके पुष्प दिये हों उतनेही उसे बेटे पोते मिल जाते हैं क्योंकि हेमके पुष्पोंसे शिवार्चन करनेसे श्रीके साथ युक्त होता है। भविष्य पुराणमें लिखा हुआ है कि जो पुष्प कहे हैं, उनमें से चढानेसे दश निष्कके फलको पाता है। यदि इन फूलोंकी माला बनाकर चढादे तो दूने सोनेके फलको पाता है। जो करवीरकी मालासे चण्डिकाका पूजन करता है। वो अग्निष्टोमके फलको लेकर सूर्य लोकमें प्रतिष्ठित होता है ।। मनुष्य भक्ति के साथ कमलकी मालाओंसे चंडिकाको पूजता है वो ज्योतिष्टो-मका फल पाकर सूर्यलोकमें प्राप्त होता है। शमीके फूलों से दुर्गाका प्रयत्नसे पूजन करके एक हजार गऊओंके दानका फल पाकर विष्णु लोकमें प्रतिष्ठित होता है। हे राजेन्द्र नृप ! कुश पुष्पोंकी मालासे श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक पूजकर पितृलोकको पाजाता है। सुगन्धित पुष्पोंसे चंडिकाका पूजन करता है अथवा एक माला वा बहुतसी मालाओंसे पूजता है वो अश्वमेधका फल पाता है। सोनोंके वा सोनेके सौके फलको पाता है जो बिल्वपत्रकी माला चढाता है नवमीके दिन गुग्गुलुसे और नीले कमलकी मालासे जो चंडिकाको पूजता है वो सौ वाजपेयका फल पाकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो एक हजार नीले कमलोंकी मालाको चढाता है वो कोटि सहस्र वर्ष गौर कोटि शत वर्ष दुर्गाका अनुचर होकर रुद्र लोकमें प्रतिष्ठित होता है। सुगन्धित द्रव्य लगा फूलों से खूब सुगन्धित करके जो दुर्गाको पूजता है तथा तालके वृन्तसे पंखा करता है वो महासत्रके फलको पाता है। भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है कि सब धूपों में दुर्गाको गूगलका धूप प्यारा है। धूपके मंत्र हे देवदेवेशि ! घृत और गूगलका बनाया हुआ यह धूप है। हे वरों के देनेवाली मातः ! इसे ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है। मनुष्य कृष्ण अगरुकी धूप देकर एक हजार गोदानका फलपाता है। माहिष नामक धूपको घीसे भिगोकर देनेसे एवम् बिल्वपत्र भेंट करने से वाजपेयके फलको पाकर सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। माहिष और कृष्ण अगरु इनकी धूपसे मंगला है पाप कलिलको ऐसे सोधती है जैसे अग्नि सोनेको सोधती है। कृष्णअगर, कपूर, चन्दन और सिह्लक इनकी धूप भी देनी चाहिये। शब्द समुच्चयमें लिखा हुआ है कि-हे नराधिप ! भगवतीको इस धूपको दे इस लोकमें मनोकामनाओंको पाकर अन्तमें दुर्गालोकमें प्रतिष्ठित होता है ।। जो घीका दीपक दे चंडिकाका पूजन करता है वो अश्वमेधका फल पाकर दुर्गाका गण बन जाता है, जो तेलका दीपक देकर चंडिकाका पूजन करता है वो वाजपेयका फल पाकर किन्नरोंके साथ आनन्द करता है। दीपका मन्त्र-अग्नि रवि और चन्द्र ये तीनों ज्योति ही हैं। हे दुर्गे ! यह दीपक ज्योतियोंमें उत्तम है। इसे आप ग्रहण करिये। शिवरहस्यमें लिखा हुआ है कि देखनेमें सुन्दर निर्मल दीपकको भगवतीके भवनमें जलाकर वो ऐसे विमानमें देदीप्यमान होता है जिसमें अनेकों सुन्दरियाँ बैठी हुई हों, कनकसहित पद्मरागमणि और रत्नोंकी प्रभा जिसका आभरण बनी हुई है जो कि हेमका बनाहुआ है। भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है कि हे कुरुशार्दूल ! कार्तिककी अमावस्याके दिन विशेष करके नवमीके दिन भक्ति और श्रद्धाके साथ जितने दीपक घीके भरे जलाता है उतनेही सहस्रकल्प दुर्गालोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो देव और ब्राह्म-णोंमें दीप देता है उसका वो उस दीपक दान अक्षय गतिको देता है। गुड, खांड, घृतका अन्न शर्करा और घीसे पकाया हुआ अन्न देकर ब्रह्मपद होता है। स्यात् और श्लोकमें लगता है जिसका " होता है " यह अर्थ है। शाल्योदन, रसाला, पानक और बदरज इनको जो दुर्गाके लिये देता है वो शिवके लोकको जाता है। शिवा यानी दुर्गा। सूप शास्त्रमें रसाला बताई है कि-कुछ खट्टे दही शर्करा और पयसे बनाई हुई जिसमें कि खूब

काली मिरच डाली गई हों वो रसाला कहाती है । यह पित्तका नाश करती है । अरुचिको मिटाती है चित्तको प्रसन्न करती है । वैद्यक में पानक लिखा है कि-गुडका बना हुआ खट्ठा मीठा जिस में मिलाहुआ सुगन्धित द्रव्य डाला हुआ पानक बनता है । वहीं खांड, दाख और शर्करा सहित हो खट्टा पडा हो तीखा हो तो हितकारी वो उसी समय पीनेकी वस्तु होगी । निरत्यय-तत्काल यानी उसी समय । जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पायस सहित शर्करा संयुक्त दुर्गाको देता है उसके राज्य हाथपर रखा हुआ । है । कालिकापुराणमें लिखा हुआ है कि-आमिक्षा परमान्न एवम् शर्करासहित दही महादेवीके निवेदन करके वाजपेयका फल पाता है । केतकी और कपूरसे सुगन्धित किये पानीको जो दुर्गाको देता है हे राजेन्द्र ! वो गणोंका अधिपति बनाता है । आम, नारिरल, खजूर और बिजोरा जो दुर्गाके लिये देता है वो परमपदको पाता है । सब फलोंको देता हुआ कुछ भी अशुभ नहीं पाता देवीको दिये हुए भक्ष्यादि पंचकोंसे हो प्रसन्न हो जाता है । भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और उष्ण ये पांच अन्न हैं परमान्न, पिष्टक, यावक, कृसर, मोदक और पृथक् इन पक्वान्नोंको देवीके लिये दे । महादेवीके लिये सब व्यंजन भेंट चढावे, क्षीराविक चाहें तो गायके हों चाहें भेंसके हो उन्हें तथा ताम्बूलोंको देकर गन्धर्वोंके साथ आनन्द करता है । विष्णु धर्ममें लिखा हुआ है कि-अच्छे तार लगे हुए एवम् रंगकी वस्तुसे रंगेहुए इस वस्त्रको हे दुर्गे देवि ! धारण करिये । भविष्य पुराणमें लिखाहुआ है कि रंगे हुए पतले कोमल वस्त्रोंको जो दुर्गाको देता है वो दुर्गाके लोकमें चला जाता है । हे वीर ! जितने तन्तु उन वस्त्रोंमें होते हैं उतनेही हजार वर्ष चण्डिकाके घरमें प्रसन्न होता है । जो ब्राह्मण और देवके लिये अलंकार देता है वो अनेक अलंकारोंसे भूषित होकर वरुण लोकको जाता है यदि वहांके भोगोंको भोगकर पृथिवीपर जन्म भी लेता है तो यहाँ द्वीपपति राजा होता है । विष्णुधर्ममें लिखा हुआ है कि-भूषणके दानसे भूतलपर राजा होता है ।जो सोनेका तिलक भगवतीको भेंट करता है वो उस परमस्थानको जाता है जहां परम कलारूप दुर्गा रहती है । सोने वा चाँदीको जो आँखें दुर्गाके यहाँ चढाता है वो एक हजार गोदानका फलपाकर सूर्य लोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो कमरकी कोंदनी देता है वह समुद्र है मेखला जिसकी ऐसी भूमिका शासन करता है । उसका वैरी कोई होता नहीं एवं मित्रों की वृद्धिसे प्रसन्न होता है । हेमके नूपुरों के दान करनेसे सब जगह स्थान प्राप्त करता है, शिवरहस्यमें लिखा हुआ है कि-जो चमरके साथ सुन्दर वस्त्रोंसे देवीकी पूजा करता है वह सोनेके दण्डे लगे हुए अच्छे चामरोंसे एवम् हिल रहे हैं कुण्डल जिनके ऐसी सुन्दरियों से देदीप्यमान होता है तथा उसका शरीर दिव्य अंगनाओंके शरीरमें रहनेवाले भूषणोंसे भूषित रहता है । भविष्यमें लिखा हुआ है कि-जो गैरिकके पात्र दुर्गाको देता है उसके पुण्यका फल यह है कि, उसे तारागणों का स्थान मिलता है । गैरिकसोनेको कहते हैं । राजत के कोटि निष्क देनेसे जो फल होता है वह हे वेदपारगे ! हेमपात्रोंके देनेसे होता है । तांबेके पात्र देनेसे सौगुना होता है, उससे भी सौगुना अधिक तब होता है जबकि मिट्टीकेही देता है पर देता है आदरके साथ । वे मिट्टीके पात्र करवे आदिक होने चाहिये । उपस्करके दानसे श्रेष्ठ इष्टको पाता है । पूजाके लिये धूप, दीप और घटपात्रादि हों उन्हें उपस्कर कहते हैं । चन्द्रमाकी किरणोंकी तरह निर्मल मणियों से विभूषित दर्पणको पद्मोंसे सुशोभित करके दिव्य माल्य और अनुलेपनों के साथ शिवके वा विष्णुको सामने रखकर हंसलोकमें प्रतिष्ठित होता है । हंस सूर्य्यको कहते हैं । शिव रहस्यमें लिखा हुआ है कि-जो भवानीके लिये घंटा, वितान, चामर और आतपत्र (छत्र) चढाता है वो कडूले हाल और मणि कुण्डलोंसे विभूषित होकर रत्नोंका मालिक एवं भूतलका चक्रवर्ती होता है । भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है कि-शंख, कुंद और इन्दुके समान एवम् प्रवाल और मणियोंसे विभूषित हेमके दण्डे पडे हुए छत्रको जो दुर्गाकी भेंट करता है वह किंकिणियोंके जालोंकी माला लगी हुई है जिस में ऐसे विचित्र शिरपर धारण किये सच्छत्रसे शिव लोकमें प्रतिष्ठित होता है । विष्णुधर्ममें भी लिखा हुआ है, यान, शय्या, मणि, छत्र उपानत्, पादुका, वाहन, गो और गृह इनमें जो एकभी देवको देता है वो उस एक के देनेसेही अग्निष्टोमका फल पाता है वो मातृकाओंके उस स्थानको प्राप्त होता है, जिसे लोक पूजता है । जो विचित्र हेम दण्ड और चामर देवताके लिये देता है वहवायुलोकमें पहुँचकर उसके साथ आनन्द करता है, जो दुर्गाको मणि दण्डसे विभूषित चामर देता है वो सुवर्णके समान सुन्दर दुर्गाके लोकमें प्रतिष्ठित होता है । मोर पंख के बीजने-

को अनेक रत्नों से सजा भगवतीके लिये दे बहुतसा सुवर्ण प्राप्त करता है। जो मनुष्य हे महाबाहो ! कसीदेका काम किया हुआ तालवृन्त भगवतीकी भेंट करता है वह बैष्णवके फलको पाता है। वैष्णव यज्ञको कहते हैं। जो देवीके घंटा चढाता है वो वांछित फल पाता है। जो स्वनसे जगतको पूरकर दैत्योंके तेजको नष्ट करती है वो घंटा पापोंसे हमारी इस प्रकार रक्षा करे जैसा मां बेटोंकी रक्षा करती है, इस मंत्रसे घंटा को पूजकर चढावे। अनस् शब्द , शकट और मातामें वर्तता है। आदित्य पुराणमें लिखा हुआ है कि– जो देव,गुरु, ब्राह्मण और ज्ञानवृद्धोंको शय्या देता है वो दाता नरक नहीं जाता। भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है कि, रत्नके उपकरणोंके साथ सार काठकी बनी हुई अच्छी शय्याको हे नराधिप ! जो भगवतीकी भेंट करता है जितनी दुकूलोंके वस्त्रोंके शत्रुओंकी संख्या है उतने हजार वर्ष दुर्गाके लोकमें विराजता है। विष्णुधर्ममें लिखा हुआ है कि, भगवतीके लिये पादुका और आसनके दान करने से अग्निष्टोमके फलको पाकर विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य दूध देनेवाली सुशील शुद्ध तरुणी गायको भगवतीके लिये देता है वह अश्वमेधके फलको पाता है। जो मनुष्य चाँदकी चाँदनीकी तरह सफेद भरे हुए उदासीन साँडको एक बार भी भगवतीके लिये देता है वह उतने हजार कल्प रुद्रके स्वर्गमें रहता हैं जितने कि, उस सांडके शरीरमें रोमकूप होते हैं। हैं ! हे राजन् जो भली भाँति नम्र हुई दासी स्त्रीको अथवा किसी दासको चण्डिकाके लिये देता है वो राजसूय और अश्वमेधके फलको पाता है। विष्णुधर्ममें लिखा हुआ है कि, चाहें महापातकीही क्यो न हो जो देवस्थानपर ध्वजा लगता है वह अपने पापोंको शीघ्रही नष्ट कर डालता है। भविष्यपुराणमें लिखा हुआकि है–सफेद वस्त्रकी वा पांचरंगकी ध्वजा जिसमें किंकिणी और सफेद कमल लगा हुआ है वह देवीके लिये देकर हे महाबाहो ! इन्द्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो ध्वजा और मालाओं से लदपद चंडिकाके मंदिरको करता है। अथवा आठों दिशाओंमें जो बडी बडी ध्वजाएँ चढाता है वह समग्र सौकल्प दुर्गाके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। धनुके प्रमाणकी जिसने पताका चढादी वह उतनेही हजार वर्ष दुर्गाके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। धनु चार हाथ का होता है। कालिका पुराणमें लिखा हुआ है कि नवमीके दिन विधिके साथ बहुतसा बलिदान करे। कुष्माण्ड, ईखके दण्डे और मद्य मांस ये बलिके बराबर है एवं तृप्तिमें छागके समान हैं। भविष्य पुराणमें लिखा है कि जिस देशमें चण्डिकाका पूजन होता है उस देशमें न तो कोई दुख होता है एव न अकालही पडता है न असमयमें किसीकी मौतही होती है। शरत्ऋतुमें महाअष्टमीके दिन जो चंडिकाका पूजन करता है, वो अच्छे विमान पर चढकर ब्रह्माके साथ आनन्द करता हैं। अथ आवरण पूजा-यह देवीके दक्षिणमें सिंहको पूजकर पूरबसे प्रारंभ करनी चाहिये। आवरणका अर्थ हम पहिले लिखचुके हैं। पहिले आवरणोंकी पूजा बीज युत नाममंत्रसे देखी जा रही है। मूलमें पहिला नाममंत्र पूरा दिया है। पीछे आगे चलकर नमः की जगह बिन्दुही रखा है, ओम् प्रणव तथा ह्रीं बीज है बाकी नमः लगा हुआ नाममंत्र है।जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा इनसे पहिलेकी, स्वधा, उग्रा, चण्डिका, प्रचण्डा, स्वाहा, प्रह्वा, चण्डवती, चण्डरूपा, उग्रदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा, दंष्ट्रा, कराला इनसे दूसरे की तथा बहुरूपिणी ग्रामिणी, भीमसेन, विशालाक्षी, भ्रामरी, मङ्गला, नंदिनी भद्रा, लक्ष्मी, भोगदा, इनसे तीसरे आवरणकी; पृथिवी मेधा, साध्या, यशोवती, शोभा, बरूहुपा, धृति, आनन्दा, सुनन्दा, नन्दा इनसे चौथे आवरणकी पूजा करनी चाहिये। चौथे आवरणके नाममन्त्रों से ओम् और ह्रीं बीज आदिमें नहीं लगाया है। उसे लगाना चाहिये। चोंसठ देवी-विजया, मंगला, महोषधि, शिवा, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, जया, पुष्टि, ऋद्धि, रति, दीप्ति, कान्ति, पद्मा, लक्ष्मी, ईश्वरी, वृद्धिदा, शक्ति, जयवती, ब्राह्मी, जयन्ती, अपराजिता, अजिता, मानिनी, श्वेता, दिति, माया, मोहिनी, रतिप्रिया, लालसा, तारा, विमला, कौमारी, शरणी, गोरूपिणी, क्षमा, मती, दुर्गा, क्रिया, अरुन्धती, घंटा, कराला, कपालिनी, रौद्री , कालिका, त्रिनेत्रा, सुरूपा; बहुरूपा, रिपुहंत्री, अंबिकी चर्चिका, देवपूजिता, वैवस्वती, कौमारी, माहेश्वरी, वैष्णवी, महालक्ष्मी, काली, कौशिकी, शिवदूती, चामुण्डा, शिवप्रिया, दुर्गा, महिषमर्दिनी, ये सब चतुर्थ्यन्त रखे हुए हैं। इन के अन्तमें नमः तथा आदिमें ओम् औरह्रीं लगाना चाहिये। मातरः–ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, और बीचमें महालक्ष्मीके लिये नमस्कार। हैं। इसके बाद हे काली ! हे काली ! तेरे लिए स्वाहा

है। हृदयके लिए नमस्कार इससे अग्नि,: ईशान और निर्ऋति और वायव्य कोणोंमें, हे कालि ! हे कालि ! तुझ लोहदण्डाके लिए स्वाहा है, अस्त्राय फट्, हे कालि ! हेकालि ! तुझ लोहदण्डाके लिए स्वाहा है, इससे नेत्रोंके सामने। अथ पांचवक्त्र–ईशानाके लिए नमः शिरपर कालि कालि तत्पु, इस मन्त्रसे मुखपर, वज्रेश्वरी घोराके लिए नमस्कार इससे हृदयमें लोहदंडाके लिए वामदेवाके लिए पदोंमें स्वाहा है "सद्योजातायै" इससे सर्वाङ्गमें, आयुध दाये और वायें आदि के कहे जाते हैं। त्रिशूल, खड्ग, वाणशक्ति को सीधे में एवं वायेंमें खेट पाश अंकुश और घण्टाको इसके बाद वज्र जैसे नख और दाढोंके आयुध वाली महासिंहपर बैठी हुयी भगवतीके लिये हुं फट् और नमः है इससे सिंहको, महिषासन लिये नागपाशके लिये इन दोनों नाम मंत्रों से पूजा करनी चाहिये। भविष्य में कहा है कि हेनृप ! पद्म सहस्त्रवर्ष जो पाप इकट्ठा किया है वो सब पाप घृतका अभ्यङ्ग करनेसे नष्ट हो जाता है। हे नृप ! घृतसे पयसे और दूधसे चण्डिकाको स्नान करावे। सुगन्धित निम्बपत्रोंसे र्चचित करे यह दुर्गा भक्ति१ तरंगिणीमें महानवमी विधि कही है।

अथ अक्षय्यनवमी

अथ कार्तिकशुक्लनवम्यां अक्षय्यनवमीव्रतकथा–वालखिल्या ऊचुः ।। कार्तिके शुक्लनवमी तत्राऽभूद्द्वापरं युगम् ।। पूर्वापराह्णगा ग्राह्या क्रमाद्दानोपवासयोः ।। १ ।।अत्रकूष्माण्डको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना।। तद्रोमभिः समुद्भूता वल्ल्यः कूष्माण्डसंभवाः ।। २ ।। तस्मात् कूष्माण्डदानेन फलमाप्नोति निश्चितम् ।। कूष्माडं पूजयेच्चैव गन्धपुष्पाक्षतादिना ।। ३ ।। पञ्चरत्नैः समायुक्तं गोघृतेन समन्वितम् ।। फलान्नदक्षिणायुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। ४ ।। कूष्माण्डं बहुबीजाढचं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।। दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितॄणां ताराणाय च ।। ५ ।। देवस्य त्वेति मन्त्रेण पितॄणां दत्तमक्षयम् ।। अस्यामेव तुलसीविवाहः–अस्यामेव नवम्यां तु कुर्यात् कृष्णे नभो नरः ।। ६ ।। स्वशाखोक्तेन विधिना तुलस्याः करपीडनम् ।। कन्यादानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ।। ७ ।। कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः ।। हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं शुभम् ।। ८ ।। पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् ।। एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ।। ९ ।। ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैव नवम्या अनुरोधतः ।। मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता ।। १० ।। धात्र्यश्वत्थौ च एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत् ।। न नश्यते तस्य पुण्यं कल्पकोटिशतैरपि ।।११।। अत्रैवोदाहरन्तीर्ममितिहासं पुरातनम् ।। बभूव विष्णुकाञ्च्यां तु क्षत्रियः कनकाभिधः ।। १२ ।। धनाढ्यो वैश्यवृत्तिश्च वैष्णवो राजपूजितः ।। बहुकालो गतस्तस्य विनापत्यं मुनीश्वराः ।। १३ ।। ततो नानाव्रतैर्जाता कन्या कमललोचना ।। सुरूपा लक्षणोपेता नानागुणसमन्विता ।। १४ ।। पिता तस्या नाम चक्रे किशोरीति च विश्रुतम् ।। एकदा तद्गृहं यातो जन्मपत्रनिरीक्षकः ।। १५ ।। दर्शयित्वा जन्मपत्रं कथं कन्या भवेदियम् ।। इति पृष्टः क्षणं ध्यात्वा कनक शृणु मे वचः।। १६ ।। यदि ब्रवीमि सत्यं चेत्तव दुःखं भविष्यति ।।

१ तांत्रिक विषय समझकर व्रतराजनेभी विशेष परिस्फुट नहीं लिखा है न हमारीही इच्छा है।

२ अब्रवीदिति शेषः ।

यद्यसत्यमहं ब्रूयां मिथ्यात्वं मम जायते ।। १७ ।। तस्मात् सत्यं वदिष्यामि रोचते यत्तथा कुरु ।। अस्याः करग्रहं कुर्याद्योऽसौ वज्रान्मरिष्यति ।। १८ ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा कनको दुःखितोऽभवत् ।। विवाहं न चकारास्याः सा च ब्राह्मणपूजने ।। १९ ।। नियुक्तान्यद्गृहं दत्त्वा नानेया मन्मुखाग्रतः ।। दृष्टेमां रूपसंपन्नां दुःखं मेऽद्धा भविष्यति ।। २० ।। स्थित्वान्यस्मिन् गृहे सा तु द्विजातिथ्यमचीकरत् ।। कदाचिद्दैवयोगेन तत्रागाद्द्विजपुङ्गवः ।। २१ ।। याथार्थं विष्णुकाञ्च्यां तु वैशाखे मासि शंकरः ।। कनको विप्रशुश्रूषी ज्ञात्वात्रैव समागतः ।। २२ ।। आगत्याङ्गणमध्ये तु उपविष्टो द्विजोत्तमः ।। २३ ।। किशोर्यागत्य चातिथ्यं शंकरस्य कृतं तदा ।। २४ ।। दृष्ट्वा तां तरुणीं नम्रां सुवेषां विनयान्विताम् ।। अजातकरपीडां च सखीं दृष्ट्वाभ्युवाच सः ।। २५ ।। शंकर उवाच ।। चन्दने वद शीघ्रं त्वं किशोरी न विवाहिता ।। किमत्र कारणं जाता तरुणी कामरूपिणी ।। २६ ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा चन्दना सर्वमब्रवीत् ।। तदा कृपालुना तेन तत्पित्रग्रे निवेदितम् ।। २७ ।। अस्यै मंत्रं प्रयच्छामि श्रीविष्णोर्द्वादशाक्षरम् ।। करोतु वर्षत्रितयं तपमस्य सुलोचना ।। २८ ।। प्रातः स्नानवती चास्तु तुलसीवनपालिका ।। कार्तिकस्य सिते पक्षे नवम्यां विष्णुना सह ।। २९ ।। सौवर्णेन तुलस्याश्च विवाहं कारयत्वियम् ।। तेन व्रतप्रभावेण विधवा न भविष्यति ।। ३० ।। तत्पित्रापि तथेत्युक्तं प्रायश्चित्तं स दत्तवान् ।। किशोर्यै वैष्णवं धर्मं समग्रं चादिदेश सः ।। ३१ ।। द्विजेन तेन यत्प्रोक्तं किशोर्यपि तथाकरोत् ।। वर्षत्रयं यथाशास्त्रं किशोर्या तद्व्रतं कृतम् ।।३२।। चतुर्थे कार्तिके मासि किशोरी स्नपनाय च ।। प्रातःकाले गता बाला तस्मिन्मार्गे सुलोचना ।। ३३ ।। क्षत्रियेण यदा दृष्टा प्राप मोहं जडात्मकः।। पृष्ठे तस्यास्तु संलग्नो भावयंस्तामनिन्दिताम् ।। ३४ ।। केचित्तां ददृशुर्दूरात् केचित् पश्यन्ति गुप्तितः ।। स्त्रियोऽपि तां प्रपश्यन्ति पुरुषाणान्तु का कथा ।। ३५ ।। यथा द्वितीयाचन्द्रस्य दर्शने चोत्सुका जनाः ।। तथा रात्रौ प्रतीक्षन्ति तद्द्वारे सकला जनाः ।। ३६ ।। निमेषमात्रमर्केण दृष्टा स्थित्वा तु बालिका।।अधिकं किं वर्णनीयं तत्सौन्दर्यं मुनीश्वराः ।। ३७ ।। केचिद्वदन्ति देवीयं नागकन्येति चापरे ।। रुद्रसंमोहनार्थाय जाता सा किल मोहिनी ।। ३८ ।। सा न पश्यति लोकांश्च न मार्गं न सखीगणम् ।। ध्यायन्ती हृदये विष्णुं तुलसीं देवरूपिणीम् ।। ३९ ।। तां गृहीतुं मनश्चक्रे विलेपी[1] द्रव्यवान् बली ।। नानाभेदाः कृतास्तेन न लेभे चान्तरं क्वचित् ।। ४० ।। मालाकारिगृहं गत्वा तस्यै द्रव्यमयच्छत ।। येन केन प्रकारेण किशोर्या सह सङ्गमः ।। ४१ ।। यथा स्यात्क्रियतां भद्रे देयमस्माच्चतुर्गुणम् ।। प्रतिमासं किशोर्या दीय-

---

१ विलेप्याख्येन ।

मानाद्राव्यादधिकं ददामीत्यर्थः ।। तया च विविधोपाया दृष्टास्तद्ग्रहणाय च ।। ४२ ।। न ददर्श तथोपायमवदत्सा विलेपिनम् ।। न दृश्यते मयोपायस्त्वया यत्प्रोच्यतेऽधुना ।। मया तदेव कर्तव्यं द्रव्यग्रहणसिद्धये ।। ४३ ।। विलेप्युवाच ।। तव कन्या तु भूत्वाहं नयामि कुसुमानि च ।। अग्रे यद्भावि भवतु गृहाणाह्नि शतं शतम् ।। ४४ ।। तयापि च तथेत्युक्ते सप्तम्यां निश्चयः कृतः ।। अष्टम्यां सा गता तत्र किशोरी तामुवाच ह ।। ४५ ।। मालाकारि श्वो नवमी तुलस्याः पाणिपीडनम् ।। वर्ततेऽतस्त्वयाऽऽनेया मुकुटाः पुष्पसम्भवाः ।। ४६ ।। मालिन्युवाच ।। मत्कन्या चागता ग्रामान्नानाकौतुककारिणी ।। यद्यत्प्रोक्तं त्वया बाले समानेष्यति सत्वरम् ।। ४७ ।। तयापि च तथेत्युक्ता मालिनी स्वगृहं ययौ ।। कथितः सर्ववृत्तान्तो विलेप्यग्रे ततोऽभवत् ।। ४८ ।। प्राप्ता मयेन्द्रपदवीत्येवं सुखमवाप सः ।। मालिन्या रचिता रात्रौ मुकुटा विविधास्तदा ।। ४९ ।। विष्णुकाञ्च्यां तदा राजा जयसेनो बभूव ह ।। तस्य पुत्रो मुकुन्दोऽभूत्सूर्यभक्तिपरायणः ।। ५० ।। किशोर्यास्तु श्रुता तेन वार्तेयमतिसुन्दरा ।। तदा तेन मुकुन्देन संकल्पः कृत एक हि ।। ५१ ।। किशोरी यदि भार्या मे भविष्यति दिवाकर ।। तदान्नमहमश्नामि अन्यथा स्यान्मृतिर्मम ।। ५२ ।। कृत्वेत्थं स तु संकल्पमुपवासान्प्रचक्रमे ।। सप्तमेऽहनि सूर्योऽसौ स्वप्ने वचनमब्रवीत् ।। ५३ ।। सूर्य उवाच ।। किशोर्या विधवायोगो वर्ततेऽसौ कथं भवेत् ।। सा ते पत्नी प्रदास्यामि त्वन्यां पद्मायतेक्षणाम् ।। ५४ ।। मुकुन्द उवाच ।। यदि देव प्रसन्नोऽसि विश्वं सृजसि त्वं प्रभो ।। बालवैधव्ययोगं च हन्तुं त्वं च क्षमा ह्यसि ।। ५५ ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा सान्त्वना बहुला कृता ।। न मन्यते मुकुन्दोऽसौ तथेत्युक्त्वा गतो रविः ।। ५६ ।। तुलसीव्रतमाहात्म्याद्वैधव्यं तु गमिष्यति ।। रात्रौ स्वप्नः किशोर्यास्तु तस्यामेवाभ्यजायत ।। ५७ ।। आगता कन्यका काचिद्भर्त्रा सह मुदान्विता ।। भर्तारं वदति स्वप्ने मम माता किशोरिका ।। ५८ ।। तद्भर्त्रापि तथेत्युक्तं प्रदास्ये बलिमुत्तमम् ।। एतद्धस्तेन पश्चात्तु विवाहोऽस्या भविष्यति ।। ५९ ।। श्रुत्वा बलिप्रदानं सा स्वप्ने चिन्तातुराभवत् ।। क्व द्वादशाक्षरी विद्या क्वेदं विष्णुसमर्चनम् ।। ६० ।। नरकद्वारमूलं क्व मद्धस्तात्पशुमारणम् ।। एवं सा तु समुत्थाय स्वप्नोऽयमिति निश्चितम् ।। ६१ ।। भावयित्वा समाहूय चन्दनां वाक्यमब्रवीत् ।। निवेद्य दृष्टं स्वप्नं तु कीदृगस्य फलं वद ।। ६२ ।। चन्दनोवाच ।। फलं तु सम्यक्कल्याणि नवामिष्टं विनंक्ष्यति ।। विवाहो भविता शीघ्रं तुलसीव्रतकारणात् ।। ६३ ।। इत्थं स्वप्न फलं श्रुत्वा ततः कुक्कुटशब्दितम् ।। श्रुत्वा सा सहसोत्थाय स्नानोद्योगमचीकरत् ।। ६४ ।। यावदायाति सा स्नानं कृत्वा गेहं किशोरिका ।। तावद्विलेपी मालिन्याः पुत्री भूत्वा-

ययौ ।। ६५ ।। कृत्वा केशांश्च गोपुच्छैः श्मश्रु चोत्पाटितं बलात् ।। इतरे शाटके गृह्य निबुभ्यां च स्तनौ कृतौ ।। ६६ ।। सर्वालंकारशोभाढ्या कटाक्षयति चापरान् ।। न ज्ञाता सा तु केनापि पुमान् स्त्रीरूपधारकः ।। ६७ ।। ध्यानं कृत्वा तया हस्तौ प्रसार्यते यदा तदा ।। दत्ते विलेपी पुष्पाणि विलोकयति सर्वतः ।। ६८ ।। कथमस्या मम स्पर्शो भविष्यतीति चिन्तयन् ।। एवं दिनत्रयं तस्य प्रयातं तु मुनीश्वराः ।। ६९ ।। तस्मिन्नहनि सञ्जातः कनकः शोकपीडितः ।। किं कार्यमधुनास्माभी राजपुत्रो वरिष्यति ।। ७० ।। एवं चिंतयतस्तस्य प्रातः कालो बभूव ह ।। राजलोकाः समायाता गृहीत्वा वस्त्रवाहनम् ।। ७१ ।। अभ्यन्तरे समागत्य मन्त्री वचनमब्रवीत् ।। गृहेऽस्ति तव कन्यैका मुकुन्दार्थे प्रदीयताम् ।। ७२ ।। मा विचारोऽस्तु भवतो नृपाज्ञा परिपाल्यताम् ।। कनकेनतथेत्युक्तं मम भाग्यमुपस्थितम् ।।७३।। महाराजकुमारस्य वधूः कन्या भविष्यति ।। ततः प्रोवाच मन्त्री तं द्वादश्यां लग्नमुत्तमम् ।। ७४ ।। रात्रौ तिष्ठति युग्माख्यं रविः षष्ठे विधुश्च खे ।। आये भौमो गुरुधर्मे पञ्चमे बुधभार्गवौ ।। ७५ ।। शनिस्तृतीये [1]रौराहुर्विवाहसमयः स तु ।। उभौ संभृतसंभारावुभावपि धनान्वितौ ।। ७६ ।। द्वादश्यामाय यौ सायं राजपुत्रः ससैनिकः ।। अब्रवीत्तत्र कनकं तेकी राजपुरोहितः ।। ७७ ।। तेक्युवाच ।। अथो निरोधः क्रियतां किशोर्याश्च नृपाज्ञया ।। भविष्यति महादेवी नो दृश्या पुरुषैः क्वचित्।।७८।।इति तद्वचनं श्रुत्वा पुरुषास्तु निराकृताः।।जायारूपो विलेपी तु दैवात्तत्रैव संस्थितः ।।७९।। ततोऽर्द्धरात्रवेलायां मुकुन्दोऽभ्यन्तरं ययौ ।। तुलस्यग्रे स्थिता बाला किशोरी त्वस्मरद्धरिम् ।। ८० ।। ततो घनघटाशब्दस्तुमुलः समपद्यत ।। महावायुर्ववौ तत्र प्रशान्ताः सर्वदीपकाः ।। ८१ ।। विद्युल्लताश्च स्फुरिता अन्धीभूतोऽखिलो जनः ।। मिथ्या न भास्करवचो मुकुन्दोऽचिन्तयद्धृदि ।। ८२ ।। अन्यैः प्रकीर्तितं लोकैर्वैधव्यस्य तु कारणम् ।। भीतो मुकुन्दो हृदये यावद्ध्यायति भास्करम् ।। ८३ ।। तस्यां सन्धौ धृतं तस्याः करपद्मं विलेपिना ।। तस्याःकरस्य संसर्गात् स्वर्गाद्वज्रं पपात ह ।। ८४ ।। नीतस्तेन विलेपी तु तत्कालं यममन्दिरम् बाह्य आसीत् कलकलो मुकुन्दोऽयं मृतस्तित्वति ।। ८५ ।। क्षणादेव ततो ज्ञातं मालाकारसुता मृता ।। ततस्तयोर्विवाहोऽभूद्राज्यं प्राप किशोरिका ।। ८६ ।। किशोर्याश्च समुत्पन्ना भ्रातरस्तुलसीव्रतात् ।। आदौ शास्त्रं सत्यमासीत्ततो देवो दिवाकरः ।। ८७ ।। तुलसीव्रतमहात्म्यात् कथं न स्युर्मनोरथाः ।। सौभाग्यार्थं धनार्थं च विद्यार्थं रुङ्गनिवृत्तये ।। सन्तत्यर्थं प्रकर्तव्यं तुलस्याः पाणिपीडनम् ।। ८८ ।। इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकशुक्लनवम्यां कूष्माण्डदानात्मकं व्रतं तुलसीविवाहव्रतं च सम्पूर्णम् ।। इति नवमीव्रतानि समाप्तानि ।।

---

१ पृष्ठस्थाने ।

अक्षय्यनवमी–कार्तिक शुक्ला नवमीको कहते हैं । अब उसके व्रतकी कथा लिखते हैं । कार्तिक महीनामें शुक्लानवमी आती है । इसी दिन द्वापरका प्रारम्भ हुआ था । वो दानमें पूर्वाह्ण व्यापिनी तथा उपवासमें अपराह्ण व्यापिनी लेनी चाहिये ।। १ ।। आज के दिन, विष्णु भगवान् ने कुष्माण्डक दैत्यको मारा था उसके रोमसे कुष्माण्डकी बेल हुयी ।। २ ।। इसकारण कुष्माण्डके दानसे उत्तम फलपाता है यह निश्चित है, इसमें गन्ध, पुष्प और अक्षतों से कुष्माण्डका पूजन करना चाहिये ।। ३ ।। पञ्चरत्न, गोघृतफल, अन्नऔरदक्षिणाके साथ उसे ब्राह्मणको देदे ।। ४ ।। बहुतसे बीजों के साथ ब्रह्माने कुष्माण्ड (काशीफल कोला) को इस लिए बनाया कि पितरोंके उद्धारके लिये विष्णुको दूंगा ।। ५ ।। " ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रवसेऽश्विनोर्माहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्, अग्नये जुष्टं गृह्णामि अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि " में सब के उत्पादक देवकी आज्ञामें चलता हुआ हे कुष्माण्ड ! अश्विनीकी बाहुओं तथा पूषाके हाथों से अग्निके जुष्ट (प्रीति विषय) तुझको ग्रहण करता हूँ अग्नि और सोमके लिए कागित तुझे ग्रहण करता हूँ । इस मंत्रसे दिया पितरोंके लिए अक्षय होता है । मनुष्यको चाहिए कि इसी नवमीके दिन कृष्णको नमस्कार करे ।। ६ ।। अपनी शाखाके विधानके अनुसार तुलसीका विवाह कराये । उसे कन्यादानका फल होता है इसमें सन्देह नहीं है ।। ७ ।। कार्तिक शुक्ला-नवमीके दिन जितेन्द्रिय होकर तुलसीसहित सोनेके भगवान् बनावे ।। ८ ।। पीछे भक्तिपूर्वक विधिके साथ तीन दिन तक पूजन करना चाहिए एवं विधिके साथ विवाहकी विधि करे ।। ९ ।। नवमीके अनुरोधसे यहाँ हो तीन रात्रि ग्रहण करनी चाहिये, इसमें अष्टमी विद्धा मध्याह्णव्यापिनी नवमी लेनी चाहिये ।। १० ।। धात्री और अश्वत्थको एक जगह पालकर उनका आपसमें विवाह करावे । उसका पुण्यफल सौ कोटि कल्पमें भी नष्ट नहीं होता ।। ११ ।। इस विषय में एक पुराना इतिसहास कहा करते हैं– विष्णुकांचीमें एक कनक नामका क्षत्रिय था ।। १२ ।। वो धनाढ्य था व्यापारादि करता था । राज में उसका मान था । वैष्णव था । हे मुनी-श्वरो ! विना सन्तानके उसे बहुतसमय हो गया ।। १३ ।। अनेकों व्रतोंके करने के बाद उसके एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुयी । वो सुन्दरी सब लक्षणों से युक्त एवम् सर्वगुणसम्पन्न थी ।। १४ ।। पिताने उसका नाम किशोरी रखा, एक दिन एक जन्मपत्री देखनेवाला चला आया ।। १५ ।। उसके पिताने उसे जन्मपत्र दिखा-कर पूछा कि ये लडकी कैसी होगी ? पीछे कुछ देर शोचकर वो बोला कि; हे कनक ! मेरे वचन सुन ।। १६ ।। यदि में सच्ची २ बात कह दूं तो तुझे दुःख होगा जो झूंठ बोलूँ तो मिथ्या भाषी हो जाऊँगा ।। १७ ।। इससे सच्ची कहूँगा पीछे जो तुझे दीखे सो करना । जिसके साथ इसका विवाह होगा वो इसका पाणिग्रहीता बिजली के गिरनेसे मरेगा ।। १८ ।। उसके ऐसे वचन सुनकर पिता दुखी हुए और उसका विवाहही न किया किन्तु उसे ब्राह्मणोंके पूजनमें ।। १९ ।। नियुक्त कर दिया उसे दूसरा घर दे दिया, और यह कहा कि रूप सम्पन्न इसे देखकर मुझे अवश्य दुख होगा इस कारण मेरे इसे सामने ही न आने दो ।। २० ।। वो दूसरे घरमें रहकर ब्राह्मणोंकी अतिथिचर्या करने लगी, किसी दिन दैव योगसे वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण चला आया ।। २१ ।। वो विष्णु काञ्चीमें वैशाखके महीनेमें आया था उसका नाम शंकर था । कनकको ब्राह्मणोंकी सेवा करनेका शौक था जानकर वहाँ पहुँचा ।। २२ ।। वो ब्राह्मण आंगणमें आकर बैठगया ।।२३।। उस समय किशोरीने आकर शङ्करका आतिथ्य किया ।। २४ ।। वो ब्राह्मण उस नम्र सुवेशवाली विनययुत अविवाहित तरुणीको देख-कर उस सखीसे बोला ।। २५ ।। शंकरजी बोले कि, हे चन्दने ! तू जलदी कह कि, किशोरीका क्यों नहीं विवाह किया गया कारण है कि, यह सुन्दरी इतनी जवान हो गई ।। २६ ।। शंकरके ये वचन सुनकर चन्दना ने सब कुछ बता दिया । उस समय उस दयालुने उसके पिताके सामने कहा कि ।। २७ ।। मैं आपकी अन्याको विष्णुभगवान्का बारह अक्षरका मंत्र बताता हूँ यह सुनयनी उसका तीन वर्ष जप करे ।। २८ ।। प्रातःकाल स्नान करके तुलसीके वनमें पानी लगाये और कार्तिक शुक्ला नवमीके दिन विष्णुभगवान् के साथ ।। २९ ।। जो कि विष्णु मूर्ति सोनेकी हो उसके साथ तुलसीका विवाह कराये उस व्रत के प्रभावसे यह विधवा नहीं होगी ।। ३० ।। उसके पिता ने स्वीकार किया और किशोरीसे प्रायश्चित कराकर संपूर्ण वैष्णव धर्म उसे बता दिया ।। ३१ ।। जो कुछ ब्राह्मण ने कहा था किशोरीने वही किया जैसा कि शास्त्रमें लिखा है उसी विधिसे तीन वर्षतक व्रत किया ।। ३२ ।। चौथे कार्तिकमें बाला सुलोचनी किशोरी स्नान करनेके लिये गयी उस मार्गमें

॥ ३३ ॥ उस समय क्षत्रियने देखो वो मूर्ख उसे देख मोहको प्राप्त होगया और उस निर्दोषकी भावना करता हुआ उसकी पीठसे लग गया ॥ ३४ ॥ कुछ उसे दूरसे देखते थे कुछ गुपचुप देखते थे और तो क्या स्त्रियां भी उसे देखती थीं पुरुषोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३५ ॥ जैसे दूजके चांदको देखनेके लिये लोग द्वारपर व्याकुल खडे प्रतीक्षा करते रहते हैं इसी तरह सब उसकी प्रतीक्षा करते रहते थे ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वरो ! उस सुन्दरताकी कहांतक प्रशंसा करें ? एक निमेष तो सूर्यने भी उसे खडे होकर देखा ॥ ३७ ॥ कोई उस देवकन्या कहते थे तो कोई उसे नागकन्या बताते थे । कोई कहते थे कि महादेवजीको मोहनेके लिये मोहिनीने अवतार लिया है ॥ ३८ ॥ न वो लोको को देखती थी न मार्गकों न सखी जनोंको । वो हृदयमें देवरूपिणी तुलसी और विष्णुका ध्यान करती थी ॥ ३९ ॥ धनवान् बली विलेपीने उसे लेनेका विचार किया बहुतसे भेद कियेपर उसे कोई मोका ही न मिला ॥ ४० ॥ वो मालिनिके घर पहुँचा उसे धन दिया कि किसी तरह किशोरीके साथ संगम ॥ ४१ ॥ कराये तो हे भद्रे ! इससे चौगुना दूंगा । यानी जो तुझे किशोरी देती है उससे अधिक दूंगा । उसने भी बहुतसे उपाय किये पर कोई उसके ग्रहण करनेके लिये पार न पड़ा ॥ ४२ ॥ जब उससे कोईभी उपाय पार न पडा तो वो विलेपीसे बोली कि मुझे तो कोई उपाय दीखता नहीं अब जो आप कहें सो करूं क्योंकि मैं धन लेनेके लिये वही उपाय करूंगी ॥ ४३ ॥ विलेपी बोला कि मैं तेरी लडकी बनूंगा और रोज फूल ले आया करूंगा तो सौ रोज लेले ॥ ४४ ॥ मालिनिने स्वीकार कर लिया । उस दिन सप्तमी थी । अष्टमीके दिन मालिन किशोरीके यहां पहुंची । उससे किशोरी बोली ॥ ४५ ॥ ए मालिन ! कलके दिन नवमी है । तुलसीका विवाह है, इस कारण फूलोंके मुकुट बनाकर लाना ॥ ४६ ॥ मालिन बोली कि मेरी लडकी अपनी ससुरालसे आगई है वो अनेक तरह के कौतुक करनेवाली है हे बाले ! जो तू उससे कहेगी वे सब शीघ्र ही ला देगी॥४७॥किशोरीने स्वीकार करलिया मालिनी अपने घर चली आई उसने सब हाल विलेपीके सामनेकह दिया॥४८॥विलेपीको तो वो आनन्द आया कि मानों इन्द्रासन ही मिल गया हो मालिनिने रातोंरात अनेक तरहके मुकुट बना दिये ॥ ४९ ॥ विष्णु कांचीमें उस समय जयसेन राजा था उसका लडका मुकुन्द सूर्यकी भक्तिमें तत्पर रहता था ॥५०॥ उसने किशोरीके सौन्दर्य की सोरत सुनी कि वो बडी सुन्दरी हैं तो उस मुकुन्दने भी संकल्प कर लिया कि ॥ ५१ ॥ हे दिवाकर ! यदि किशोरी मेरी स्त्री हो जाय तबही में भोजन करूंगा नहीं तो मैं निराहार रहकर प्राण देदूंगा ॥ ५२ ॥ पीछे उपवास करना प्रारम्भ कर दिया । सातवें दिन सूर्य भगवान् स्वप्न में आकर उससे बोले ॥५३॥ कि किशोरीका विधवा योग है उसके साथ तेरा कैसे व्याह करा दूं ? वो तेरी कैसी पत्नी हो ? मैंकिसी दूसरी कमलनयनीको तेरी पत्नी बनादूंगा ॥ ५४ ॥ मुकुन्द बोला कि, हे प्रभो ! आप विश्व की रचना करते हैं । यदि आप प्रसन्न हैं तो उसके बाल वैधव्य योगको नष्ट कर सकते हैं ॥ ५५ ॥ रविने बहुत कुछ समझाया पर जब मुकुन्द न माना तो "अच्छा" ऐसा ही हो" यह कहकर चले गये ॥५६॥ उसी रातमें किशोरीको स्वप्न हुआ कि तुलसी व्रतके माहात्म्यसे तेरा वैधव्य नष्टहो जायगा ॥ ५७ ॥ कोई कन्या आनन्दके साथ अपने पति से स्वप्नमें कह रही है कि मेरी किशोरी माता है ॥ ५८ ॥ इसका पति भी बोला कि ठीक है मैं उत्तम बलि दूंगा पीछे इसके हाथसे इसका विवाह होगा॥ ॥ ५९ ॥ स्वप्नमें बलिप्रदानकी बात सुनकर चिन्तित हुईकि कहां द्वादशाक्षरी विद्या एवम् कहां विष्णु भगवान्का पूजन ॥ ६० ॥ कहां यह नरक का द्वार स्वप्नमें हाथसे पशुका मारना इस प्रकार उठकर निश्चय कियाकि यशस्वप्नहै ॥ ६१ ॥ चन्दनाका बुला उसका आदर करके बोली कि मैंने ऐसा २ स्वप्न देखा है इसका क्या फल होगा यह कह ॥ ६२ ॥ चन्दना बोली कि, हे कल्याणि ! इसका बडा अच्छा फल है । आपके अनिष्टोंका निवारण होगा । तुलसी व्रतके प्रभावसे आपका शीघ्रही विवाह होगा ॥ ६३ ॥ इस प्रकार स्वप्न फल सुन मुरगेकी आवाजके साथ एकदम खडी हो स्नानका उद्योग करने लगी ॥ ६४ ॥ जबतक किशोरी स्नान करके अपने घर आई इतनेमें ही विलेपी मालिनकी लडकी बनकर चला आया ॥ ६५ ॥ उसने गऊकी पूछ शिरके बाल बनाये बलपूर्वक मूंछे नोंच डालीं किसीकी चोली और साडी ली, नींबूके स्तन लगाये ॥६६॥ सब जनाने जेवर पहिन लिये स्त्रियोंकी भांति खूब सजगया लोगोंकी तरफ सैन चलाने लगा उसे कोई भी न जान सका कि पुरुष स्त्री बना हुआ है ॥ ६७ ॥ जब वो ध्यान करके फूलोंके लिये हाथ फैलाती थी तो यह भी

उसके हाथोंमें फूल देदेता था । दिये पीछे विलेपी सब ओरसे फूलोंको देखता था ।। ६८ ।। कि,किस तरह इसमें मेरा स्पर्श हो, हे मुनीश्वरो ? इस तरह उसे तीन दिन बीत गये ।। ६९ ।। तीसरे दिन कनक बडा शोकित हुआ कि अब मैं क्या करूं । राजपुत्र इसके साथ व्याह करेगा ।। ७० ।। इस प्रकार चिन्ता करते २ प्रातःकाल होगया वस्त्र और वाहन लेकर राजसेवक चले आये ।। ७१ ।। इसी बीचमें मन्त्रीने आकर कनकसे कहा कि आपके यहां एक कन्या है उसे मुकुन्दके लिये देदीजिये ।।७२।। आप विचार न करें राजाकी आज्ञाका पालन करें, कनकने कहा कि, बहुत अच्छी बातहै यह तो मेरा भाग्य आज उपस्थित हुआ है ?।। ७३ ।। कि मेरी लडकी महाराजकुमारकी वधू होगी । तब वह मन्त्री बोला कि, द्वादशीका उत्तम लग्न है ।। ७४ ।। रातमें युग्मनामका लग्न है रवि और चन्द्र छठे स्थानमें हैं, आयमें भौम, धर्म स्थानमें गुरु, बुध और बृहस्पति पांचवे स्थानमें हैं ।। ७५ ।। तीसरे स्थानमें शनि और छठे स्थानमें राहु है । यह विवाहका समय समीप ही है । दोनोंही धनी थे दोनों जनोंने ही अपनी २ तयारी की ।। ७६ ।। द्वादशीके दिन सामको सैनिकों समेत राजपुत्र चला आया, कनकके पास आ, तेकी नामका राजपुरोहित बोला ।। ७७ ।। कि, राजाकी आज्ञासे किशोरीका विवाह कर दीजिये यह महारानी होगी इसे कोई देखभी कभी न सकेगा ।। ७८ ।। पुरोहितके इन वचनोंको सुन सब पुरुष हटादिये पर मालिनकी बेटी बनाहुआ विलेपी रहगया ।। ७९ ।। इसके बाद आधीरातके समय मुकुन्द भीतर चलागया बाला किशोरी तो तुलसीके सामने बैठी हुई भगवान्का स्मरण करही थी ।। ८० ।। इसके बाद घनघोर तुमुल शब्द होनेलगा, बडी भारी आंधी चलने लगी, वहांके सब दीपक बुझ गये ।। ८१ ।। बिजली चमकने लगी, किसीको कुछ नहीं दीखता था, मुकुन्द मनमें सोचने लगा कि, सूर्यकी बात झूठी नहीं है ।। ८२ ।। दूसरे लोगोंने भी तो वैधव्यके कारण कहे थे । इस प्रकार डरकर मुकुन्द हृदयमें सूर्यका ध्यान करता है इसी बीचमें विलेपीने उसका हाथ पकड लिया । उसके हाथके छूतेही स्वर्गसे उसके ऊपर वज्र पडा ।। ८४ ।। उससे विलेपी तो उसी समय मरगया । बाहिर यह हल्ला मच गया कि, मुकुन्द मरगया ।। ८५ ।। थोडी देरके बाद पता चलगया कि मालीकी छोरी मरगई । इसके बाद उन दोनोंका विवाह हुआ किशोरी राजरानी बनी ।। ८६ ।। तुलसी व्रतके प्रभावसे कई भाई उत्पन्न हुए सबसे पहिले शास्त्र सत्य हुआ इसके पीछे सूर्यदेव सत्य हुए ।। ८७ ।। तुलसीव्रतके माहात्म्यसे मनोरथ क्यों न हों ? सौभाग्यके अर्थ धनके लिये विद्या प्राप्ति और रोगनिवृत्तिके लिये और सन्तानके लिये तुलसीका विवाह कराये ।। ८८ ।। यह श्री सनत्कुमार संहिताके कार्तिक शुक्लानवमीके दिन कूष्माण्डके दानका और तुलसीके विवाहका व्रत संपूर्ण हुआ । इसके साथ नवमीके व्रत भी पूरे होते हैं ।।

अथ दशमीव्रतानि लिख्यन्ते

दशहरा–व्रतम्

अथ ज्येष्ठशुक्लदशम्यां दशहराख्यायां स्नानदानाद्यात्मकं व्रतम् ।। स्कान्दे ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी संवत्सरमुखी स्मृता ।। तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ।। यां कांचित्सरितं प्राप्य दद्यादर्घ्यं तिलोदकम् ।। मुच्यते दशभिः पापैः सुमहापातकोपमैः ।। ज्येष्ठशुक्लदशम्यां तु भवेद्भौमदिनं यदि ।। ज्ञेया हस्तर्क्ष-संयुक्ता सर्वपापहरा तिथिः ।। वराहपुराणे–दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठमासे बुधेऽहनि ।। अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा ।। हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ।। स्कान्दे–ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ।। गरानन्दे व्यतीपाते

१ अर्घ्यमितिपूजोपलक्षणम् । तिलोदकमिति तीर्थप्राप्तिनिमित्तकतर्पणानुवादः कौस्तुभे । २ कुजे इति क्वचित्पाठः ।

कन्याचन्द्रे वृषे रवौ । दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। भविष्ये-तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ।। यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः ।। सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्ययत्नतः ।। इति दशहरायां स्नानादिविधिः ।। अथ स्कान्दोक्तं दशहराख्यगङ्गास्तोत्रम् तत्पाठप्रकारश्च ।। चतु[१]र्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वावयवशोभिताम् ।। रत्नकुम्भसिताम्भोजवरदाभयसत्कराम् ।। श्वेतवस्त्रपरीधानां मुक्तामणिविभूषिताम् ।। एवं ध्यायेत्सुसौम्यां च चन्द्रायुतसमप्रभाम् ।। चामरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ।। सुप्रसन्नां च वरदां करुणार्द्रां निरन्तराम् ।। सुधाप्लावितभूपृष्ठां दिव्यगन्धानुलेपनाम् ।। त्रैलोक्यपूजितां गङ्गां सर्वदेवैरधिष्ठिताम् ।। दिव्यरत्नविभूषां च दिव्यमाल्यानुलेपनाम् । ध्यात्वा जलेऽथ मन्त्रेण कुर्यादर्चांच भक्तितः ।। ओं नमो भगवति हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा ।। अनेन मन्त्रणागमोक्तपञ्चोपचारान्पुष्पाञ्जलिं च श्रीगङ्गायै निवेदयेत् ।। एवं श्रीगङ्गाया ध्यानार्चने विधाय पश्चाज्जलमध्ये स्थित्वा अद्येत्यादिज्येष्ठमासे सिते पक्षे प्रतिपदमारभ्य दशमीपर्यन्तं प्रतिदिनं दशदश वारमेकोत्तरवृद्धया वा सर्वपापक्षयार्थं गङ्गास्तोत्रजपमहं करिष्ये इति संकल्प्य स्तोत्रं पठेत्।। ईश्वर उवाच।। ओं नमः शिवायै गंगायै शिवदाय नमो नमः ।। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते ।। १ ।। नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै ते नमो नमः ।। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये ।। २ ।। सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।। स्थास्नुजङ्गमसंभूतविषहर्त्र्यै नमोऽस्तु ते ।। ३ ।। संसार विषनाशिन्यै जीवनायै नमोस्तु ते ।। तापत्रितयसंहर्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः ।। ४ ।। शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये ।। सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये ।। ५ ।। भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः ।। भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तुते ।। ६ ।। मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः ।। नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिप[२]थायै नमो नमः ।। ७ ।। नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः ।। त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ।। नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधा[३]धारात्मने नमः ।। ८ ।। नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः ।। बृहत्यै च नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोस्तु ते ।। ९ ।। नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः ।। पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः ।। १० ।। परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः ।। पाशजालानिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोस्तु ते ।। ११ ।। शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः ।। उस्रायै सुखजग्ध्यै च सञ्जीविन्यै नमोऽस्तु ते ।। १२ ।। ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः ।।

---

१ चतुर्भुजामित्यारभ्य भक्तित इत्यन्तग्रन्थः काशीखण्डे केषुचित्स्थलेष्वन्यपाठयुक्तो दृश्यते । २ जगद्धात्र्यै नमोनमः इत्यपि पाठः कौ० । ३ नारायण्यै नमो नमः ।

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते ।। १३।। सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः ।। शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।। १४ ।। सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।। निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः ।। १५ ।। 'परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनि ।। गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः ।। १६ ।। गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः ।। आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे ।। १७ ।। त्वमेव मूलप्रकृति'स्त्वं पुमान्पर एव हि ।। गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे ।। १८ ।। य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयच्छ्रद्धयापि यः ।। दशधा मुच्यते पापैः कायवाक्चित्तसंभवैः ।। १९ ।। रोगस्थो मुच्यते रोगाद्विपद्भ्यश्च विपद्युतः ।। मुच्यते बन्धनाद्बद्धो भीतो भीतेः प्रमुच्यते ।। २० ।। सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्म'णि लीयते ।। दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिवीजितः ।। २१ ।। इमं स्वतं गृहे यस्तु लेखयित्वा विनिक्षिपेत् ।। नाग्निचोरभयं तस्य पापेभ्यो हि भयं न हि ।। २२ ।। ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ।। संहरेत्त्रिविधं पापं बुधवारेण संयुता ।। २३ ।।तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ।। यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः ।। २४ ।। सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः । पूर्वोक्तेन विधानेन यत्फलं संप्रकीर्तितम् ।। २५ ।। यथा गौरी तथा गङ्गा तस्माद्गौर्यास्तु पूजने ।। विधिर्यो विहितः सम्यक्सोऽपि गङ्गाप्रपूजने ।। २६ ।। यथा' शिवस्तथा विष्णुर्यथा लक्ष्मीस्तथा उमा ।। यथा उमा तथा गङ्गा चतूरूपं न भिद्यते ।। २७ ।। विष्णुरुद्रान्तरं यच्च श्रीगौर्यैरन्तरं तथा ।। गङ्गागौर्योरन्तरं च यो ब्रूते मूढधीस्तु सः ।। २८ ।। रौरवादिषु घोरेषु नरकेषु पतत्यधः ।। अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।। २९ ।। परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।। पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वतः ।। ३० ।। असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।। परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।। ३१ ।। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।। एतानि दशपापानि हर त्वमथ जाह्नवि ।। ३२।। दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ।। एतैर्दशविधैः पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः ।। ३३ ।। मुच्यते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं गदाधर ।। दशत्रिंशच्छतान्सर्वान्पितॄनथ पितामहान् ।। उद्धरत्येव संसारान्मंत्रेणानेन पूजिता ।। ३४ ।। "ॐ नमो भगवत्यै नारायण्यै दशपापहरायै शिवायै गंगायै विष्णुमुख्यायै क्षयायै रेवत्यै भागीरथ्यै नमोनमः ।।" ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ।। दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ३५ ।। सितमकर निषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां करधृतकलशोद्यत्सोत्प-

---

१ परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा । २ त्वं हि नारायणः परः । ३ चत्रिदिवं व्रजेत् इति च पाठः । ४ त्वं तथाहं तथा विष्णो यथा त्वं तथा ह्यहम् । इति पाठः काशीखंडे ।

लाभीत्यभीष्टाम् ।। विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां कलितसिदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ।। ३६ ।। आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।। भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ।। ३७ ।। इति [1]काशीखण्डे दशहरास्तोत्रं संपूर्णम् ।।

दशमी व्रतानि

ज्येष्ठ शुक्लादशमीको दशहरा कहते हैं । इसमें स्नान, दान रूपात्मक व्रत होता है । स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है कि, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी संवत्सरमुखी मानी गई है इसमें स्नान करे और दान तो विशेष करके करे । किसी भी नदीपर जाकर अर्घ्य (पूजाआदिक) एवम् तिलोदक (तीर्थ प्राप्ति निमित्तक तर्पण) अवश्य करे । वो महापातकोंके बराबरके दश पापोंसे छूट जाता है । यदि ज्येष्ठ शुक्ला दशमीके दिन मंगलवार रहता हो हस्तनक्षत्र युता तिथि हो यह सबपापोंके हरनेवाली होती है । वाराहपुराणमें लिखा हुआ है कि, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारीमें हस्तनक्षत्रमें श्रेष्ठ नदी स्वर्गसे अवतीर्ण हुई थी वो दश पापोंको नष्ट करती है इस कारण उस तिथिको दशहरा कहते हैं । ज्येष्ठ मास, शुक्लपक्ष, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गर, आनन्द, व्यतीपात, कन्याका चन्द्र, वृषके सूर्य इन दश योगोंमें मनुष्य स्नान करके सब पापोंसे छूट जाता है ।भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है कि, जो मनुष्य इस दशहराके दिन गंगाके पानीमें खडा होकर दशबार इस स्तोत्रको पढता है चाहे वो दरिद्र हो चाहे असमर्थ हो वह भी प्रयत्नपूर्वक गंगाको पूजकर उस फलको पाता है । यह दशहराके दिन स्नान करनेकी विधि पूरी हुई ।। स्कन्द पुराणका कहा हुआ दशहरा नामका गंगा स्तोत्र और उसके पढनेकी विधि–सब अवयवोंसे सुन्दर तीन नेत्रोंवाली चतुर्भुजी जिसके कि, चारों भुज, रत्नकुंभ, श्वेतकमल, वरव और अभयसे सुशोभित हैं, सफेद वस्त्र पहिने हुई है, मुक्ता मणियोंसे विभूषित है, सौम्य है, अयुत चन्द्रमाओंकी प्रभाके सम मुखवाली है जिसपर चामर डुलाये जारहे हैं, श्वेत छत्रसे भलीभांति शोभित है, अच्छीतरह प्रसन्न है, वरके देनेवाली है, निरन्तर करुणार्द्रचित्त है, भूपृष्ठको अमृतसे प्लावित कररही है, दिव्य गन्ध लगाये हुए है, त्रिलोकीसे पूजित है, सब देवोंसे अधिष्ठित है, दिव्य रत्नोंसे विभूषित है, दिव्यही माल्य और अनुलेपन है, ऐसी गंगाका पानीमें ध्यान करके भक्तिपूर्वक मंत्रसे अर्चा करे।'ओं नमो भगवति हिलि हिलि मिलि मिलि गंगे मां पावय पावय स्वाहा' यह गंगाजीका मंत्र है। इसका अर्थ है कि, हे भगवति गंगे! मुझे बारबार मिल, पवित्र कर पवित्र,कर,इससे गंगाजीके लिये पंचोपचार और पुष्पाञ्जलि समर्पणकरे । इस प्रकार गंगाका ध्यान और पूजन करके गंगाके पानीमें खडा होकर "ओं अद्य" इत्यादि वाक्यसे संकल्प करे कि, ऐसे ऐसे समय ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे लेकर दशमीतक रोज रोज एक वढाते हुए सब पापोंको नष्ट करनेके लिये गंगा स्तोत्रका जप करूंगा । पीछे स्तोत्र पढना चाहिये । ईश्वर बोले कि, आनन्दरूपिणी आनन्दके देनेवाली गंगाके लिये बारंबार नमस्कार है विष्णुरूपिणीके लिये और तुझ ब्रह्म मूर्तिके लिये बारंबार नमस्कार है ।। १ ।। तुझ रुद्ररूपिणीके लिये और शांकरीके लिये बारंबार नमस्कार है, भेषज मूर्ति सब देव स्वरूपिणी तेरे लिये नमस्कार हो ।। २ ।। सब व्याधियोंकी सब श्रेष्ठ वैद्या तेरे लिये नमस्कार, स्थावर और जंगमोंके विषयोंकी हरण करनेवाली आपको नमस्कार ।। ३ ।। संसाररूपी विषके नाश करनेवाली एवम् संतप्तोंको जिलानेवाली तुझ गंगाके लिये नमस्कार; तीनों तापोंके मिटानेवाली प्राणेशी तुझ गंगाको नमस्कार ।।४।। शान्तिकी वृद्धि करनेवाली शुद्ध मूर्ति तुझ गंगाके लिये नमस्कार, सबकी संशुद्धि करनेवाली पापोंको वैरीके समान नष्ट

---

१ काशीखण्डे तु नमः शिवायै इत्यारभ्य मूढधीस्तु स स इत्यन्तमेव स्तोत्रमस्ति । अग्रे रौरवादिष्वित्यादयो दृश्यन्ते इतताः श्लोकाः कौस्तुभे दृष्टाः ।। मन्त्रोऽपि काशीखण्डे भिन्न एवोपलभ्यते । काशीखंडमें तो नमः शिवायै इस प्रथम श्लोक से अट्ठाईसकी समाप्ति तक ही है । जो व्रतराजमें इससे अगाडीके श्लोक रखे हुए हैं ये सब कौस्तुभमें मिलते हैं । गंगाजीका मंत्र भी काशीखण्डमें दूसरी ही तरह मिलता है ।।

करनेवाली तुझ० ।। ५ ।। भुक्ति, मुक्ति, भद्र, भोग और उपभोगोंको देनेवाली भोगवती तुझ गंगाके० ।। ६ ।। तुझ मन्दाकिनीके लि० स्वर्ग देनेवालीके लिये वारंवार नमस्कार, तीनों लोकोंकी भूषण स्वरूपा तेरे लिये एवम् तीन पंथोंसे जानेवालीके लिये वारवार नमस्कार । कोई इस श्लोकमें "त्रिपथायै" इसके स्थानमें "जगद्धात्र्यै" ऐसा पाठ करते हैं । इसका अर्थ होता है कि, जगत्की धात्रीके लिये नमस्कार ।। ७ ।। तीन शुक्ल संस्थावालीको और क्षमावतीको वारंवार नमस्कार तीन अग्निकी संस्थावाली तेजोवतीके लिये नमस्कार है, लिंग धारिणी नन्दाके लिए नमस्कार, तथा अमृतकी धारारूपी आत्मावालीके लिए नमस्कार कोई " नारायण्यै नमोनमः" नारायणीके लिए नमस्कार है ऐसा पाठ करते हैं ।। ८ ।। संसारमें आप मुख्य हैं आपके लिये नमस्कार, रेवती रूप आपके लिये नमस्कार, तुझ बृहतीके लिए नमस्कार एवं तुझ लोकधात्रीके लिए नमः है ।। ९ ।। संसारकी मित्ररूपा तेरे लिए नमस्कार, तुझ नंदिनीके लिए नमस्कार, पृथ्वी शिवामृता और सुवृषाके लिए नमस्कार ।। १० ।। पर और अपर शतोंसे आढ्या तुझ ताराको बारबार नमस्कार हैं । फन्दोंके जालोंको काटनेवाली अभिन्ना तुझको नमस्कार ।। ११ ।। शान्ता, वरिष्ठा और वरदा जो आप हैं आपके लिए नमस्कार, उस्रा, सुखजग्धी और संजीविनी आपके लिए नमस्कार ।। १२ ।। ब्रह्मिष्ठा, ब्रह्मदा और दुरितोंको जाननेवालीतुझको बारबार नमस्कार प्रणत पुरुषोंके दुखोंको नाश करनेवाली जगतकी माता तेरे लिए बारबार नमस्कार ।। १३ ।। सब आपत्तियोंको नाश करनेवाली तुझ मङ्गलाके लिए नमस्कार । शरणमें आये हुए दीन आर्तजनोंके रक्षणमें लगे रहनेवाली ।। १४ ।। सबकी आर्तिको हरनेवाली तुझ नारायणी देवीके लिए नमस्कार है । सबसे निर्लेप रहनेवाली दुर्गोको मिटानेवाली तुझ दक्षाके लिए नमस्कार है ।। १५ ।। पर और अपरसेभी जो पर है उस निर्वाणके देनेवाली गंगाके लिए प्रणाम है । हे गंगे ! आप मेरे अगाडी हों आपही मेरे पीछे हों ।। १६ ।। मेरे अगलबगल हे गंगे ! तुही रह हे गंगे ! मेरी तेरेमेंही स्थिति हो । हे गंगे ! तू आदि मध्य और अन्त सबमें है सर्वगत हैं तुही आनन्द दायिनी है ।। १७ ।। तुही मूल प्रकृति है, तुही पर पुरुष है, हे गंगे ! तू परमात्मा शिवरूप है, हे शिवे ! तेरे लिए नमस्कार है ।। १८ ।। जो कोई इस स्तोत्रको श्रद्धाके साथ पढता या सुनता है वो वाणी शरीर और चित्तसे होनेवाले पापोंसेदश तरहसे मुक्त होता है ।। १९ ।। रोगी रोगसे, विपत्तिवाला विपत्तियोंसे, बद्ध बन्धनसे और डरसे डरा हुआ पुरुष छूट जाता है ।। २० ।। सब कामोंको पाता है मरकर ब्रह्ममें लय होता है । वो स्वर्गमें दिव्य विमानमें बैठकर जाता है । दिव्य स्त्री उसका पंखा करती रहती हैं ।। २१ ।। जो इस स्तोत्रको लिखकर घरमें रख छोडता है उसके घरमें अग्नि और चोरसे भय नहीं होता एवं न पापीही वहां सताते हैं ।। २२ ।। ज्येष्ठ शुक्ला हस्तसहिता बुधवारी दशमी तीनों तरहके पापोंको हरती है ।। २३ ।। उस दशमीके दिन जो कोई गंगाजलमें खडा हाकर इस स्तोत्रको दशवार पढता है जो दरिद्र हो वा असमर्थ हो ।। २४ ।। वो गंगाजीको प्रयत्नपूर्वक पूजता है तो उसे भी वही फल मिल जाता है जो कि पहिले विधानसे फल कहा है ।। २५ ।। जैसी गौरी है वैसीही गंगाजी है इस, कारण गौरीके पूजनमें जो विधि कही है वही विधि गंगाके पूजनमें भी होती है ।। २६ ।। जैसे शिव वैसेही विष्णु तथा जैसी लक्ष्मीजी वैसीही उमा एवं जैसी उमा वैसीही गंगाजी हैं इन चारोंमें कोई भेद नहीं है ।। २७ ।। विष्णु और शिवमें तथा श्री और गौरीमें तथा गंगा और गौरीमें जो भेद बताता है वो निरा मूर्ख है ।। २८ ।। वो रौरवादिक घोर नरकोंमें पडता है । अदत्तका उपादान, अविधानकी हिंसा ।। २९ ।। दूसरेकी स्त्रीके साथ रमण, ये तीन (कायिक) शारीरिक पाप। पारुष्य, अनृत और चारों ओरकी पिशुनता ।। ३० ।। असंबद्ध प्रलाप यहचार तरहका वाणीका पाप; दूसरेके धनकी चाह, मनसे किसीका बुरा चीतना ।। ३१ ।। मिथ्याका अभिनिवेश यह तीन तरहका मनका पाप, इन दशों तरहके पापोंको हे गंगे आप दूरकर दें ।। ३२ ।। ये दश पापोंको हरती है इस कारण इसे दशहरा भी कहते हैं, कोटि जन्मके होनेवाले इन दश तरहके पापोंसे ।। ३३ ।। छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है । हे गदाधर ! यह सत्य है सत्य है इसमें संयश नहीं है ! यदि इस मन्त्रसे गंगाका पूजन कर दिया तो तीनोंके दश तीस ओर सौ पितरोंको संसारसे उधारती है ।। ३४ ।। कि, "भगवती नारायणी दश पापोंको हरनेवाली शिवा गंगा विष्णुमुख्या पापनाशिनी रेवती भागीरथीके लिये नमस्कार है" । ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र गर, आनन्द, व्यतीपात, कन्याके चन्द्र, वृषके रवि इन दशोंके योगमें जो

मनुष्य गंगा स्नान करता है वो सब पापोंसे छूट जाता है ।। ३५ ।। मैं उस गंगादेवीको प्रणाम करता हूं जो सफेद मगर पर बैठीहुई श्वेतवर्णकी है तीन नेत्रोंवाली है, अपनी सुन्दर चारों भुजाओंमें कलश, खिला कमल, अभय और अभीष्ट लिये हुए है जो ब्रह्मा विष्णु शिवरूप है चांदसमेत अग्र भागसे जुष्ट सफेत दुकूल पहिने हुई जाह्नवी माताको मैं नमस्कार करता हूं ।। ३६।। जो सबसे पहिले तो ब्रह्माजीके कमण्डलुमें विराजती थी पीछे भगवान्के चरणोंका धोवन बनकर शिवजीको जटाओंमें रह जटाओंका भूषणबनी पीछे जन्हु महर्षिकी कन्या, बनी यही पापोंको नष्ट करनेवाली भगवती भागीरथी दीखती है ।। ३८ ।। यह श्रीकाशीखंडका कहा हुआ दशहरास्तोत्र पूरा हुआ ।।

आशादशमीव्रतम्

आषाढशुक्लदशमी मन्वादिः । सा पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । अथ यस्यां कस्यांचिच्छुक्लदशम्यामाशादशमीव्रतं हेमाद्रौ भविष्ये–युधिष्ठिर उवाच ।। कथमाशादशम्येषा गोविन्द क्रियते कदा ।। [1]दमयन्त्या नलस्यैव यया जातः समागमः ।। कृष्ण उवाच ।। राज्याशया राजपुत्रः कृष्यर्थं च कृषीवलः ।। वाणिज्यार्थं वणिक्पुत्रः पुत्रार्थं गुर्विणी तथा ।। धर्मकामार्थसंसिद्ध्यै लोकः कन्या वरार्थिनी ।। यष्टुकामो द्विजवरो योगी श्रेयोऽर्थमेव च ।। चिरप्रवसिते कान्ते बाले दन्तनिपीडिते ।। एतदन्येषु कर्तव्यमाशाव्रतमिदं तदा ।। यदा यस्य भवेदार्तिः कार्यं तेन तदा व्रतम् ।। शुक्लपक्षे दशम्यां तु स्नात्वा संपूज्य देवताः ।। नक्तमाशाः सुपूज्याः वै पुष्पालक्तकचन्दनैः ।। गृहाङ्गणे लेखयित्वा यवैः पिष्टातकेन वा ।। स्त्रीरूपाश्चाधिदेवस्य शस्त्रवाहनचिह्निताः ।। अधिदेवस्य तत्तद्दिक्पालस्येन्द्रास्तत्तच्छस्त्रैर्वाहनैश्च चिह्निता लेखयित्वेत्यर्थः ।। दत्त्वा घृताक्तं नैवेद्यं पृथग्दीपांश्च दापयेत् ।। फलानि कालजातानि ततः कार्यं निवेदयेत् ।। आशास्त्वाशाः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां मे मनोरथाः ।। भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति ।। एवं सम्पूज्य विधिवद्दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।। अनेन क्रमयोगेन मासि मासि समाचरेत् ।। [2]वर्षमेकं कुरुश्रेष्ठ ततः पश्चात्समु[3]द्यजेत् ।। अर्वाक् संवत्सरस्यापि सिद्ध्यर्थं वा समुद्यजेत् ।। सौवर्णीः कारयेदाशा रौप्याः पिष्टातकेन वा ।। ज्ञातिबन्धुजनैः सार्द्धं ततः सम्यगलंकृतः ।। पूजयेत्क्रमयोगेन मंत्रैरेभिर्गृहाङ्गणे ।। त्वयि सन्निहितः शक्रः सुरासुरनमस्कृतः ।। पूर्वा त्वं भुवनस्यास्य ऐन्द्रिदिग्देवते नमः ।। अग्नेः परिग्रहादाशे त्वमाग्नेयीति पठ्यसे ।। तेजोरूपा परा शक्तिराग्नेयि वरदा भव ।। धर्मराजं समाश्रित्य लोकान्संयमयस्यमून् ।। तेन संयमिनी चासि याम्ये सत्कामदा

१ हेमाद्रौ तु इतःपार्थ प्रथमं पथि इत्यारभ्य भर्त्रा सह समागम इत्यन्ता कथाऽधिकास्ति तां विहायानेन ग्रन्थकृता अग्रिमं विधिमात्रं लिखितम् ।। अत्र यद्यपि हेमाद्रौ बहुषु स्थलेषु पाठभेदो दृश्यते तथापि व्रतार्कानुरोधेनेदं लिखितमिति द्रष्टव्यम् । २ सर्व मेतत्समाचक्ष्व मासतिथ्यादि यादव इति पाठो हेमाद्रौ । ३ सम्यगुद्यापनं कुर्यादित्यर्थः ।।

भव ।। खड्गहस्तोऽतिविकृतो निर्ऋतिस्त्वामुपाश्रितः ।। तेन नैर्ऋतिनामासि त्वमाशां पूरयस्व मे ।। त्वय्यास्ते भुवनाधारो वरुणो यादसांपतिः ।। कामार्थं मम धर्मार्थं वारुणि प्रवणा भव ।। अधिष्ठितासि यस्मात्त्वं वायुना जगदायुना ।। वायवि त्वमतः शान्तिं नित्यं यच्छ ममालये ।। धनदेनाधिष्ठितासि प्रख्याता त्वमिहोत्तरा ।। निरुत्तरा भवास्माकं दत्त्वा सद्यो मनोरथम् ।। ऐशानि जगदीशेन शम्भुना त्वमलंकृता । पूरयस्वाशु मे देवि वाञ्छितानि नमो नमः ।। भुजङ्गाष्टकुलेन त्वं सेवितासि यतो ह्यधः ।। नागाङ्गनाभिः सहिता हिता भव ममाद्य वै ।। सर्वलोकोपरि मता सर्वदा त्वं शिवाय च ।। सनकाद्यैः परिवृता ब्राह्मि मां पाहि सर्वदा ।। नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहास्ताराःगणास्तथा ।। नक्षत्रमातरो याश्च भूतप्रेतविनायकाः ।। सर्वे ममेष्टसिद्ध्यर्थं भवन्तु प्रवणाः सदा ।। एभिर्मन्त्रैः समभ्यर्च्य पुष्पधूपादिना ततः ।। वासोभिरभिषेकाद्यैः फलानि विनिवेदयेत् ।। ततो वन्दिनिनादेन गीतवादित्रमङ्गलैः ।। नृत्यन्तीभिर्वरस्त्रीभिर्जागर्त्या च निशां नयेत् ।। कुंकुमाक्षत ताम्बूलदानमानादिभिः सुखम् ।। प्रभाते वेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। अनेन विधिना सर्वं क्षमाप्य प्रणिपत्य च । भुञ्जीत मित्रसहितः सुहृद्बन्धुजनेन च ।। एवं यः कुरुते पार्थ दशमीव्रतमादरात् ।। सर्वान्कामानवाप्नोति मनोभिलषितान्नरः ।। स्त्रीभिर्विशेषतः कार्यं व्रतमेतद्युधिष्ठिर ।। प्राणिवर्गे यतो नार्यः श्रद्धाकामपरायणाः ।। धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् ।। कथितं ते महाराज मया व्रतमनुत्तमम् ।। ये मानवा मनुजपुङ्गवकामकामाः सम्पूजयन्ति दशमीषु सदा दशाशाः ।। तेषां विशेषनिहितान् हृदयेऽपि कामानाशाः फलन्त्यलमलं बहुनोदितेन ।। इति श्रीभविष्योत्तरे आशादशमीव्रतम् ।।

आषाढ शुक्लादशमी यह मन्वन्तरके आदिकी तिथि है, इसे पूर्वाह्ण व्यापिनी लेना चाहिये क्योंकि पद्मपुराणमें लिखा हुआ है कि शुक्लपक्षकी मन्वादि तिथि पूर्वाह्ण व्यापिनी लेनी चाहिये । जो मन्वादि तिथियोंमें कृत्य होते हैं वे सब इसमें भी करने चाहिये ।। आशादशमीव्रत–किसी भी शुक्लपक्षकी दशमीके दिन होता है यह भविष्यपुराणसे लेकर हेमाद्रिने लिखा है । युधिष्ठिर बोले कि हे गोविन्द ! यह आशादशमी क्यों कहाती है कब की जाती है ? (हेमाद्रिमें तो इससे पहिले की "इतः प्रथमं पार्थ" यहांसे लेकर "भर्त्रा सह समागमः" यहांतककी कथा अधिक दी है पर व्रतराजके लेखकने उसे छोडकर केवल तिथिमात्रही अपने ग्रन्थमें ली है ।) जिस व्रतके करनेसे दमयन्तीका नलके साथ समागम होगया (हेमाद्रिमें इसके मूलकी जगह "सर्वमेतत्समाचक्ष्व मासतिथ्यादि यादव" यह पाठ कहा है । इसका अर्थ है कि, हे यादव ! मास तिथि आदि सब मुझसे कहा दीजिये ।।) श्रीकृष्ण बोले कि, राज्यकी आशासे राजकुमारोंको, इस व्रतको करना चाहिये, वाणिज्यके लिये वैश्य बालकको, पुत्र जननेके लिये गर्भिणीको, धर्म अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये लोकको, वर चाहनेवाली कन्याको, यज्ञ करनेके लिये द्विजको, श्रेयके लिये योगीको, जिसका पति बहुत दिनोंसे विदेश गया हो उस प्रोषित पतिकाको, दांतोंके निकालनेसे दुःखी बच्चेके अभिभावुकोंको इस आशाव्रतको करना चाहिये । जिस

१ तत्सर्वं प्रतिपादयेत् । इत्यपि पाठः ।

समय जिसे कष्ट हो उस समय उसे यह व्रत करना जाहिये। शुक्लपक्षकी दशमीके दिन देवताओंका पूजन करके रातमें पुष्प अलक्तके और चन्दनसे आशाका पूजन करना चाहिये, अधिदेवके शस्त्र और वाहनोंके साथ घरके आंगनमें स्त्री रूपी अभिदेवको चूनसे लिखे। अधिदेवका अर्थ उस दिशाके दिक्पालसे है उसके शस्त्र और वाहन साथ लिखे। घृतका सनाहुआ नैवेद्य और पृथक दीपक दे। इसके बाद ऋतुफलोंका निवेदन करे और कहे कि, मेरी आशा अच्छी आशा हो! मेरे मनोरथ सिद्ध हों, आपकी प्रसन्नतासे मेरा सदा कल्याण हो इस प्रकार विधिके साथ पूज, ब्राह्मणको दक्षिणा देकर इसी क्रमसे महीना २ में व्रत करे, हे कुरुश्रेष्ठ! एक वर्ष करके पीछे उद्यापन करे अथवा संवत्सरसेभी पहिले सिद्धिके लिये उद्यापन करडाले, आशा देवी सोनेकी बनानी चाहिये अथवा चाँदी या पिष्टातककी होनी चाहिये, भली भाँति सजकर बन्धुजनोंके साथ घरके आँगनमें क्रमसे मन्त्रोंद्वारा पूजन करे कि, सुर और असुरोंका पूज्य इन्द्र तेरेमें संनिहित रहता है तू इस भुवनकी पूर्वा है। हे ऐन्द्री दिग् देवते! तेरे लिये नमस्कार है, हे आशे! तू अग्निके परिग्रहसे आग्नेयी कहाती है, तेजो रूपा है, सबसे बडी शक्ति है, हे आग्नेयी! तू वरकी देनेवाली होजा। धर्मराजका आश्रय लेकर तू इन लोकोंका संयमन (नियंत्रण) करती है, इस कारण हे याम्ये! तुझे संयमिनी भी कहते हैं, तू मुझे सब कामोंके देने-वाली हो। हाथमें तलवार लिये हुए अत्यन्त विकृत निर्ऋति तुझे उपाश्रित होता है, इस कारण तुझे निर्ऋति भी कहते हैं तू मेरी आशाको पूरीकर, भुवनका आधार पानीका स्वामी वरुण तेरेमें रहता है। हे वारुणि! तू काम धर्मके लिये दयालु होजा, संसारकी आयुरूपवायुने तुझे आधार बना-या है, इस कारण तुझे वायवी कहते हैं। हे वायवि! तू मेरे आलयमें शान्ति दे। धनद कुबेरसे अभिष्ठित हुई उत्तराके नामसे प्रसिद्ध हुई, हमें शीघ्रही मनोरथ देकर निरुत्तर होजा। जगदीश शंभुने तुझे अलंकृत किया है इस कारण तुझे ईशानी भी कहते हैं, हे देवि! मेरे मनोरथोंको शीघ्रही पूराकर तेरे लिये नमस्कार है। भुजंगोंके अष्टकुलोंसे आप सेवित हैं इसकारण नागांगनाओंके साथ मेरी हिता हों। तू सब लोकोंके ऊपर है सनकादिकोंने शिवके लिये तुझे सदा स्वीकार किया है। हे ब्राह्मि! मेरी रक्षा कर, नक्षत्र नव ग्रहः तारागण, नक्षत्रमातृका, भूत, प्रेत, विनायक सब मेरी इष्ट विद्धिके लिये मुझपर सदा प्रवण रहें, इन मन्त्रोंसे पुष्प, धूप, वास अभिषकादि दीपादिकोंसे पूज, फलोंको भेंट करे। इसके वंदियोंके निनार और गाने बजानेके शब्दोंसे तथा अच्छी स्त्रियोंके नाचसे जागते हुए रात व्यतीत करे। कुंकुम, अक्षत, ताम्बूल, दान मान इनके साथ सुखपूर्वक वेदके जाननेवाले ब्राह्मणके लिये दे दे, कहीं "तत्सर्वं प्रतिपादयेत्" ऐसा भी पाठ है कि, उसे ब्राह्मणके लिये देदे। इस विधिसे सब करके पीछे क्षमापन करा प्रमाण करके सुहृद् और और बन्धुजनोंके साथ भोजन करे, हे पार्थ! इस प्रकार जो आदरके साथ दशमीका व्रत करता है वो मनके चाहे सब कामोंको पाजाता है। हे युधिष्ठिर! विशेष करके इस व्रतको स्त्रियोंको करना चाहिये, क्योंकि, प्राणिमात्रमें स्त्रियाँ श्रद्धालु हुआ करती हैं, हे महाराज! मैंने इस श्रेष्ठ व्रतको आपके सामने कहदिया है, यह धन्य है यशस्य है आयुका देनेवाला है सब कामोंका पूरक है, हे मनुजपुङ्गव! जो कामोंको चाहने-वाले मनुष्य दशमीके दिन दशों दिशाओंको पूजते हैं उनके मनके सव विशेष काम पूरे होते हैं सब आशाएं फलती हैं अधिक कहनेमें क्या है। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ आशादशमीका व्रत पूरा हुआ॥

अथ दशावतारव्रतम्

भाद्रपदशुक्लदशम्यां दशावतारव्रतं भविष्योत्तरे–युधिष्ठिर उवाच ॥ व्रतं दशावताराख्यं कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् ॥ समन्त्रं सरहस्यं च सर्वपापोपशान्ति-दम् ॥ कृष्ण उवाच ॥ दशम्यां शुक्लपक्षस्य मासे प्रौष्ठपदे शुचिः ॥ स्नात्वा जला-शये स्वच्छे पितृदेवादितर्पणम् ॥ कृत्वा कुरुकुलश्रेष्ठ गृहमागय मानव ॥ गृह्णीया द्धान्यचूर्णस्य स्वहस्तप्रसृतित्रयम्॥ क्रमेण पाचयेत्तत्तु पुंसंज्ञं घृतसंयुतम् ॥ वर्षे वर्षे

दिने तस्मिन्नेव वर्षाणि वै दश ।। प्रथमेऽपूपकान् वर्षे द्वितीये घृतपूरकान् ।। तृतीये पूपकासारांश्चतुर्थे मोदकाञ्छुभान् ।। सोहालिकान्पञ्चमेऽब्दे षष्ठेऽब्दे खण्डवेष्टकान् ।। सप्तमेऽब्दे कोकरसानर्कपुष्पांस्तथाष्टमे ।। नवमे कर्णवेष्टांश्च दशमे मण्डकाञ्छुभान् ।। दशात्मनो दश हरेर्दश विप्राय दापयेत् ।। क्रमेण भक्षयेद्दत्त्वा यथोक्तविधिना नृप ।। अर्धार्धं विष्णवे देयमर्धार्धं च द्विजातये ।। स्वत एवार्द्धम श्नीयाद्गत्वा रम्ये जलाशये ।। दशावतारानभ्यर्च्य पुष्पधूपविलेपनैः ।। मंत्रेणानेन मेधावी हरिमभ्युक्ष्य वारिणा ।। मत्स्यं कूर्मं वराहं च नारसिंहं च वामनम् ।। रामं रामं च कृष्णं च बौद्धं चैव सकल्किनम् ।। गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं विभुम् ।। प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ।। छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या प्रीतो जनार्दनः ।। श्वेतद्वीपं नयत्वस्मान् मयात्मा सन्निवेदितः ।। अत्र हैमीर्महार्हाश्च दशमूर्तीः सुलक्षणाः ।। गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैरर्चयेद्विधिपूर्वकम् ।। एवं यः कुरुते भक्त्या विधिनाऽनेन सुव्रत ।। व्रतं दशावताराख्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ।। श्रूयन्ते यास्त्विमा लोके पुरुषाणां दशा दश ।। तांश्छिनत्ति न सन्देहश्चक्रप्रहरणो विभुः ।। संसारसागराद्घोरात् समुद्धृत्य जगत्पतिः ।। श्वेतद्वीपं नयत्याशु व्रतेनानेन तोषितः ।। किं तस्य न भवेल्लोके यस्य तुष्टो जनार्दनः ।। यद्दुर्लभं यदप्राप्यं मनसो यन्न गोचरम् ।। तदप्यप्रार्थितं ध्यातो ददाति मधुसूदनः ।। सोऽहं जनार्दनः साक्षात् कालरूपधरोऽच्युतः ।। मर्त्यलोके स्वयं प्राप्तो भूभारोत्तारणाय च ।। या स्त्री व्रतमिदं पार्थ करिष्यति मयोदितम् ।। सा च लक्ष्म्या युता नित्यं पुत्रभक्तिसमन्विता ।। मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा विष्णुलोके महीयते ।। ये पूजयन्ति पुरुषाः पुरुषोत्तमस्य मत्स्यादिकांस्तु दशमीषु दशावतारान् ।। मान्य दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य ते यान्ति यानमधिरुह्य मुरारिलोकम् ।। इति भविष्ये भाद्रपदशुक्ल दशम्यां दशावतारव्रतम् ।।

दशावतार व्रत–भाद्रपद शुक्ला दशमीके दिन होता है, वह भविष्योत्तर पुराणमें लिखा है । युधिष्ठिर बोले कि, हे कृष्ण ! दशावतार नामके व्रतको विस्तार पूर्वक कहिये, मंत्र और रहस्यकोभी साथ कहना वो सब पापोंकी शान्ति करनेवाला है । कृष्ण बोले कि, भाद्रपद शुक्ला दशमीके दिन पवित्र हो अच्छे जलाशयमें स्नान करके पितृदेवादि, तर्पण करके हे कुरुकुलके श्रेष्ठ ! घर आ धान्यके चूनकी अपने हाथकी तीन प्रसृति लेकर क्रमसे उसे घीमें सिद्ध करे पुंलिङ्गनाम रखे प्रतिवर्ष इस व्रतको करे नौ या दशवर्ष, इस व्रतको करना चाहिये ! पहिले वर्ष अपूप, दूसरे वर्ष घृतपूरक, तीसरे वर्ष पूपकासार, चोथे वर्ष अच्छे मोदक पाँचवे वर्ष सोहालिका, छटे वर्ष खण्ड वेष्टक, सातवें वर्ष कोकरस,आठवे अर्कपुष्प, नौवें कर्णवेष्ट, दशमें वर्ष अच्छे मंडक हों इनमेंसे हरवार दश अपने लिये रखे, दश ब्राह्मणके लिये दे, फिर हे नृप ! विधिके साथ क्रमसे भोजन करे, आधेका आधा विष्णुको एवम् आधेका आधा ब्राह्मणके लिये दे दे । आप सुन्दर जलाशयके किनारे जाकर आधेका भोजन करे । हरिका पानीसे अभ्युक्षण करके पुष्प धूप और विलेपनोंसे इस मंत्रसे दश अवतारोंका पूजन करे । मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन राम, परशुराम, कृष्ण, बौध और कल्कि-

अवतारको धारण करने वाले व्यापक दुखोंके नष्ट करनेवाले नारायण देवकी में शरण हूं, जगन्नाथको प्रमाण करता हूं, मं उसके शरण हूं, भक्तिसे प्रसन्न हूआ जनार्दन वैष्णवीमायाको दूर करदें । मैंने अपनेको उसको दे दिया है वो मुझे श्वेतद्वीपको ले जाय । इसमें सोनेकी दश अवतारोंकी श्रेष्ठलाक्षण्य शालिनी दश मर्तियोंको गंध, पुष्प और नैवैद्योंसे विधि पूर्वक पूजे, हे सुव्रत ! इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक विधिके साथ इस व्रतको करता है उसके पुण्य फलको सुनो, मनुष्योंकी जो दश दशाएँ सुनी जाती है चक्रायुध भगवान् उन्हें काट देते हैं इसमें सन्देह नहीं है इस व्रतसे प्रसन्न हुए जगन्नाथ उसका संसार सागरसे उद्धार करके श्वेत-द्वीपका ले जाते हैं । संसारमें उसका क्या काम पूरा नहीं होजाता जिसपर कि भगवान् प्रसन्न होजाते हैं । जो दुर्लभ है जो अप्राप्य है जो मनके भी गोचर नहीं है उस वस्तुको विना ही मांगे भगवान् दे देते हैं । वो मैं जनार्दन साक्षात् कालरूपधारी अच्युत भूके भारको मिटानेके लिये स्वयं ही मर्त्यलोकमें प्राप्त हुआ हूं । जो स्त्री मेरे कहे हुए व्रतको करेगी वो सदा लक्ष्मीसे युक्त रहती है और पुत्रोंकी भक्तिसे समन्वित होती है वो ममुष्य लोकमें चिरकालतक रहकर अन्त में विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होती है । जो पुरुष दशमीके दिन मत्स्यादि दशों अवतारोंको पूजते है मैं ऐसा मानता हूं कि वे देशों दिशाओंमें सुखपूर्व्वक विचरकर अन्तमें विमानपर चढ मुरारिके लोकको चले जाते हैं । यह भाद्रपद शुक्ला दशमीके दिनका दशावतार व्रत पूरा

अथ विजयादशमी व्रतम्

आश्विनशुक्लदशम्यां विजयादशमी ।। सा च तारकोदयव्यापिनी ग्राह्या तदुक्तं चिन्तामणौ आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये ।। सकालो विजयो नाम सर्वकामार्थसाधकः ।। रत्नकोशे–ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदुद्भिन्न-तारकः ।। विजयो नाम कालोऽयं सर्वकामार्थ-साधकः ।। दिनद्वये तद्व्याप्ताव-व्याप्तौ वाअपराजितापूजायां पूर्वैव ।। तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्देदशम्यां तु नरैः सम्यक् पूजनीयाऽपराजिता ।। ईशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्ले प्रयत्नतः ।। या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता ।। क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः ।। नवमीशेषसंयुक्तदशम्यामपराजिता ।। ददाति विजयं देवी पूजिता जय-वर्द्धिनी ।। तथा–आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः ।। एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम् ।। यात्रा त्वेकादशमुहूर्ते कार्या ।। तथा च भृगुः––आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां सर्वराशिषु ।। सायंकाले शुभा यात्रा दिवा न विजये क्षणे ।। एकादशमुहूर्तो यो विजयः संप्रकीर्तितः ।। तस्मिन्सर्वैर्विधातव्या यात्रा विजय-कांक्षिभिः ।। दिनद्वये एकादशमुहूर्ते व्याप्तावव्याप्तौ वा श्रवणयुक्ता ग्राह्या ।। तथा च हेमाद्रौ मदनरत्ने कश्यपः–उदये दशमी किंचित् संपूर्णैकादशी यदि ।। श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ।। श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः ।। उल्लङ्घयेयुः सीमान्तं तद्दिनर्क्षे ततो नराः ।। अत्र कृत्यम् ।। भविष्ये–शमीं सुलक्षणोपेतामीशान्याशाप्रतिष्ठिताम् ।। संप्रार्थ्यर्थ तां च संपूज्य त्वीशानीसंमुखो भवेत् ।। तत्र मंत्र :––शमी शमयते पापं शमी शत्रुविनाशिनी ।। अर्जुनस्य धनुर्धारी रामस्य प्रियवादिनी ।। शमी शमयते पापं शमो लोहितक-

ण्टका ।। धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ।। करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया ।। तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ।। गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम् ।। गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत् स्वगृहं प्रति ।। ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत् स्वजनैः सह ।। शम्यभावे वनराजपूजा कार्या ।। तत्र मन्त्रः- आदिराज महाराज वनराज वनस्पते ।। इष्टदर्शन मिष्टाक्ं शत्रूणां च पराजयः ।। अथापराजितदशम्यां पूर्वोक्ते विजयामुहूर्ते उक्तं प्रास्थानिकमित्युपक्रम्य गोपथब्राह्मणे तदप्येते श्लोका :—अलङ्कृतो भूषितभृत्यवर्गः परिष्कृतोत्तुङ्गतुरङ्गनागः ।। वादित्रनादप्रतिनादिताशः सुमङ्गलाचारपरम्पराशीः ।। राजा निर्गत्य भवनात् पुरोहितपुरोगमः ।। प्रास्थानिकं विधिं कृत्वा प्रतिष्ठेत्पूर्वतो दिश ।। गत्वा नगरसीमान्तं वास्तुपूजां समाचरेत् ।। संपूज्य चाथ दिक्पालान् पूजयेत् पथि देवताः ।। मन्त्रैर्वैदिक पौराणैः पूजयेच्च शमीतरुम् ।। अमङ्गलानां [१]शमनीं सर्वसिद्धिकरीं शुभाम् ।। दुःस्वप्नशमनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ।। ततः कृताशीः पूर्वस्यां दिशि विष्णुक्रमात् क्रमेत् ।। शत्रोः प्रतिकृतिं कृत्वा [२]ध्यात्वा रामं तथार्थदम् ।। शरेण स्वर्णपुंखेन विध्येद्धृदयमर्मणि ।। दिशाविजयमन्त्राश्च पठितव्याः पुरोधसा ।। एकमेव विधिं कृत्वा दक्षिणादिभि[३]रर्चयेत् ।। पूज्याद्विजांश्च संपूज्य सांवत्सरपुरोहितौ ।। गजवाजिपदातीनां प्रेक्षाकौतुकमाचरेत् ।। जयमङ्गलशब्देन ततः स्वभवनं विशेत् ।। नीराजमानः पुण्याभिर्गणिकाभिः सुमङ्गलम् ।। य एवं कुरुते राजा वर्षे वर्षे सुमङ्गलम् ।। आयुरारोग्यमैश्वर्यं विजयं स च गच्छति ।। नाधयो व्याधयश्चैव न भवन्ति पराजयाः ।। श्रियं पुण्यमवाप्नोति विजयं च सदा भुवि । इति ।। प्रास्थानिकप्रकारश्चेत्थम्—आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां जनेषु गमिष्यत्सु पार्थिवश्च दुन्दुभीन्वीणाश्चोपवादयेत् ।। ततो घटोत्थापनान्तरं सुचारूवेषैः सुभूषितः संभारानुपकल्प्य एकादशमुहूर्ते श्रवणयोगं सीमान्तं गत्वा पश्चाद्गृहे जनैः सह सुवर्णसहितं ग्राममाविशेत् ।। योषिद्भिः कौतुकैश्च प्रज्वालितैर्दीपैर्नीराजानाञ्जनानुलेपनं कारयित्वा वासोगन्धस्रक्पुष्पैश्च पूजयित्वा हिरण्यरूपमिति मन्त्रेण सुवर्णपूजनं कृत्वा आशिषः प्रतिगृह्य लक्ष्मीं नमस्कुर्यात् ।। सर्वा भगिनीर्वस्त्रालंकारभूषणैः पूजयेद्ब्राह्मणांश्च गन्धपुष्पधूपदीपकैः ।। इति विजयादशमी ।। इति दशमीव्रतानि समाप्तानि ।।

विजयादशमी—आश्विन शुक्ल दशमीको कहते हैं उस तारोंके उदयकालमें व्याप्त रहनेवालीको लेना चाहिये, चिन्तामणि ग्रन्थमें यही कहा है कि, आश्विनशुक्ला दशमी के दिन तारोंके उदयमें जो समय है वो विजयका सम्बन्ध है । वो सारे काम और अर्थोंका सिद्ध करनेवाला है । रत्नकोशमें लिखा हुआ है कुछ सन्ध्याका आक्रमण करके कुछ तारे निकर आये हों उस समयका नाम विजय है वो सारे काम और

---

१ शमनी दुष्कृतस्य च । २ वा मनसाथ तम् । ३ दिशास्वपि ! इत्यपि पाठः ।

अर्थोंको पूरा करनेवाला है । यदि दो दिन तारोंके उदयमें व्यापक हो अथवा न हो तो अपराजिताकी पूजामें पूर्वाही लीजाती है, यही भविष्यपुराणसे लेकर हेमाद्रिने लिखा है कि दशमीके दिन तो मनुष्योंको अपराजिता भली भाँति प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये, अपराह्णके समयमें ईशानी दिशासे लेकर । जो दशमी नवमीसे युक्त हो उसमें क्षेम और विजयके लिये अपराजिताका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये । नवमीके शेषसे संयुक्त दशमीके दिन पूजी गई अपराजिता देवी विजय देती है, क्योंकि पूजित हुई अपराजिता जयको बढाने-वाली होती है, इसकी पुष्टिमें और भी प्रमाण देते हैं कि आश्विन शुक्ला दशमीको पूजना चाहिये, क्योंकि, एकादशीमें अपराजिताका पूजन न करना चाहिये, विजया दशमीके दिन यात्रा तो ग्यारहवें मुहूर्तमें करनी यही भृगुने कहा है--आश्विन शुक्ला दशमीके दिन सभी राशियोंनें सायंकालके समय विजय मुहूर्तमें यात्रा करना अच्छा है दिनमें नहीं । जो ग्यारहवां मुहूर्त है उसे विजय कहते हैं जो जीत चाहते हैं उन्हें उसीमें यात्रा करनी चाहिये । यदि दो दिन एकादश मुहूर्त व्यापिनी अथवा अव्यापिनी दशमी हो तो श्रवण युताका ग्रहण करना चाहिये । यही हेमाद्रिमें तथा मदनरत्नने कश्यपका प्रमाण रखा है कि उदय कालमें दशमी हो बाकी संपूर्ण एकादशी हो जब श्रवण नक्षत्र हो उस तिथिको विजया कहते हैं, पूर्णामें श्रवण नक्षत्रमें रामने प्रस्थान किया था इस कारण विजया थी । मनुष्य उसी दिन उसी नक्षत्रमें सीमाका अतिक्रमण करे उसमें क्यों करना चाहिये यह भविष्यमें लिखा हुआ है कि, सर्व लक्षणोपेत ईशान दिशाकी शमीकी पूजा करके प्रार्थना करे फिर ईशानी दिशाके सन्मुख हो जाय । यह प्रार्थनाका मन्त्र है कि, शमी पापोंको नष्ट करती है, शमी वैरियोंका विनाश करती है, अर्जुनकी धनुष्य धारिणी और रामकी प्यारा बोलनेवाली है, शमी पाँपोंको नष्ट करनेवाली है शमीके काटे लोहोके हतू अर्जुन केबाणोंको धारण करनेवाली हैं रामकी प्रियवादिनी है । मैं अपने मुहुर्तमें यात्रा करूंगा । हे श्रीरामपूजिते, उसमें तू निर्विघ्न करना अक्ष-तोंके साथ भीगी हुई शमीके मूलकी मिट्टी लेकर गाजेवाजेके साथ अपने घर ले आये । पीछे अपने स्वजनोंके साथ भूषण वस्त्रादि धारण करे शमी न मिले तो वनराजकी पूजा करे । उसका मंत्र--हे वनस्पते हे आदिराज ! हे महाराज ! हे वनराज ! इष्टका अन्नका दान और शत्रुओंका पराजय मुझे दीजिये ।। अपराजित दशमीके दिन पहिले कहे हुए विजया मुहूर्तमें प्रास्थानिक कृत्योंका उपक्रम लेकर गोपथब्राह्मणमें यद्यपि ये श्लोक कहे हैं कि--स्वयं अलंकार किये हुए हैं सब नोकरोंको सजादे बडे २ घोडे हाथी सिंगारे हुए हों नगाडे आदि बज रहे हों जिससे दिशाएँ गूँज रही हों सुमङ्गलाचारके साथ आशीर्वाद दी जारही हों । अगाडी २ पुरोहित हो इस प्रकार राजा अपने घरसे निकले, पहिले प्रस्थानकी सब विधि करके पूर्वसे लेकर दिशामें प्रतिष्ठित हो नगरकी सीमाके अन्ततक जा वास्तु पूजा करे दिगपाललों का पूजन करके मार्गमें देवताओंका पूजन करे, पुराण या वेदके मन्त्रोंसे शमीके वृक्षोंका पूजन करे । अमङ्गलोंके नष्ट अमङ्गलोंके नष्ट करनेवाली, सब सिद्धियोंके करनेवाली दुःस्वप्नोंके नष्ट करनेवाली शुभ धन्या शमीकी शरण प्राप्त हुआ हूँ (कहीं "शमनी दुष्कृतस्य च" सब दुष्कृतोंको नष्ट करनेवाली यह अन्तिम पाठ है इसके बाद आशीर्वाद होनेपर पूर्व दिशामें विष्णु क्रमसे जाय, शत्रुकी मूर्ति बना अर्थके देने वाले रामका ध्यान करके । "वा मनसाथ तं." मनसे उसे यह अर्धके अन्तका टुकडा है ।) स्वर्णपुंख शरसे हृदयके मर्ममें भेद दे, पुरोहितको चाहिये दिशाके विजयके मन्त्रों का स्वयं पाठ करे, इस प्रकार सब विधियोंको करके दक्षिणादिके साथ पूजे कही 'भिरर्चयेत्' की जगह 'दिशास्वपि' दक्षिणादिक दिशाओंमें भी पूजे यह भी पाठ है । पूज्य ब्राह्मणों और सांवत्सर एवं पुरोहितका पूजन करके जग घोडा और पदातियोंके दिखानेके कौतुक प्रारम्भ कर दे । पीछे जय और मङ्गलके शब्दोंसे अपने घरमें प्रवेश करे । अच्छी २ वेश्याएँ मङ्गलपूर्वक आरती करे । इस प्रकार जो राजा प्रतिवर्ष मङ्गल करे आयु आरोग्य ऐश्वर्य और विजय उसे मिलते हैं । न आधियाँ होती है एवम् न व्याधियाँ ही होती हैं न पराजय ही होती है पवित्र श्रीको पाता है भूमिपर सदाविजय होती है ।। प्रस्थानका प्रकार-आश्विनशुक्ला दशमीके दिन जब मनुष्य चलने लगे तब राजा नक्काडें और वीणा-ओंको बजाये, इसके बाद घटके उत्थापनके पीछे अच्छे वेषभूषासे भूषित होकर संभारोंकी कल्पना करके ग्यारहवें मुहूर्तमें श्रवणके योगमें सीमान्त जाकर पीछे घरके जनोंके साथ सुवर्णसहित गाममें घुस जाय ।

जिन्होंने कौतुकसे जले दीपक हाथमें लिये हुई स्त्रियोंसे नीराजन और अनुलेपन कराकर वास गन्धमाला और पुष्पोंसे पूज, 'हिरण्यरूपम्' इस मन्त्रसे सुवर्णका पूजन करके आशीर्वाद ले लक्ष्मीको नमस्कार करे, सब बहिनों को वस्त्र अलंकार और भूषणोंसे पूजे तथा गन्ध, पुष्प, धूप और दीपकोंसे ब्राह्मणोंका पूजन करे। यह विजयादशमी पूरी हुई। इसके साथ ही दशमीके व्रत भी पूरे होजाते हैं।

अथैकादशीव्रतानि

एकादशीनिर्णयः

तत्रोपवास एकादशीनिर्णयः। उपवासश्च निषेधपरिपालनात्मको व्रतरूपश्च ।। सा च द्विविधा। शुद्धा दशमीविद्धा च ।। वेधोऽपि द्विविधः ।। अरुणोदयदशमीसम्बन्धात् सूर्योदये च ।। तत्राद्यो वैष्णवैस्त्याज्यः। तथा च भविष्ये–अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ।। सा विद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम् ।। तथा–दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ।। नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैका[1]दशीव्रतम् ।। अरुणोदयस्वरूपं तु हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे दर्शितम्–निशिप्रान्ते तु यामार्द्धे देववादित्रनिःस्व[2]ने।। सारस्वतेऽनध्ययने अरुणोदय उच्यते ।। यामार्द्धम्। मुहूर्तद्वयलक्षकम् ।। अत एव सौरधर्मे–आदित्योदयवेलायां या मुहूर्तद्वयान्विता ।। सैकादशी तु संपूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता ।। यच्च माधवीये स्कान्दे–"उदयात्प्राक्चतस्त्रोस्तु घटिका अरुणोदयः इति। तदपि द्वात्रिंशद्धटिकारात्रिमानपक्षे मुहूर्तद्वयस्य तावत्परिमाणत्वा–दुक्तमिति द्वैतनिर्णये ।। येऽपि ब्रह्मवैवर्ते–चतस्रो घटिकाः प्रातरुणोदयनिश्चयः ।। चतुष्ट य विभागोऽत्र वेधादीनां किलोदितः ।। अरुणोदयवेधः स्यात् सार्द्धं तु घटिकात्रयम् ।। अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासन्दर्शनाद्रवेः ।। महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते ।। तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये सति ।। उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः ।। अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः ।। वैष्णव लक्षणं तु स्कान्दे–परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।। नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षा तु वैष्णवी ।। भविष्ये–यथा शुक्ला तथा कृष्णा तथा कृष्णा तथोत्तरा ।। तुल्ये ते मन्यते यस्तु स हि वैष्णव उच्यते ।। स्मार्तानां वेधः ।। अतिवेधादयः सर्वे ये वेधास्तिथिषु स्मृताः ।। सर्वेप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदयः स्मृतः ।। इति मदनरत्नधृतस्मृत्युक्तः सूर्योदयवेधः स्मार्तविषय एव ।। एकादशीभेदाः। तत्र शुद्धा विद्धा एकादशी चतुर्द्धा ।। एकादशीमात्राधिका ।। द्वादशीमात्राधिका ।। उभयाधिका ।। अनुभयाधिका च ।। परेद्युर्व्रतम्–तत्र शुद्धायामेकादश्याधिक्ये परेद्युरुपवासमाह नारद–सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादश्यां वृद्धिगामिनी ।। द्वादश्यां लङ्घनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। उपोषणम् वृद्ध-

१ तद्धि नैकादशीव्रतम् इत्यपि क्वचित्पाठः। २ वादने इत्यपि पाठः। बुधेरिति क्वचित्पाठः।

वसिष्ठः । एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत् ।। उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेच्च पराङ्गतिम् ।। भृगुः–संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।। तदोपोष्या द्वितीया तु परतोद्वादशी यदि ।। स्कान्दे–प्रथमेऽहनि संपूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता ।। द्वादश्यां तु यदा तात दृश्यते पुनरेव सा ।। पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो ।।मार्कण्डेयः–सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव च ।। पूर्वामुपवसेत् कामी निष्कामस्तु परां वसेत् ।। हेमाद्रौ–विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत् ।। अविद्धापि च विद्धा स्यात्परतो द्वादशी यदि ।। प्रचेताः–एकादशी विवृद्धा चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः ।। उत्तरां तु यतिः कुर्यात् पूर्वामुपवसेद्गृही ।। सनत्कुमार :–न करोति हि यो मूढ एकादश्यामुपोषणम् ।। स नरो नरकं याति रौरवे तमसावृते ।। यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् मुक्तिं चात्यन्तदुर्लभाम् ।। उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि ।। माधवेऽप्युक्तम्–एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्द्धते यदा ।। तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तेर्ग्राह्यं परं दिनम् ।। त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किञ्चन ।। उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रिता यदि ।। इति स्कान्दात् ।। हेमाद्रिमते एकादशीभेदाः–शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रिधा न्यूनसमाधिकैः ।। षट्प्रकाराः पुनस्त्रेधाद्वादश्यूनसमाधिकैः ।। इत्यष्टादशैकादशीभेदाः ।। विशेषः– ।। पाद्मे–सम्पूर्णेकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि ।। उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम् ।। पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत् ।। तदानीं द्वादशी विद्धा उपोष्यैकादशी तिथिः ।। बहुवाक्यविरोधेन संदेहो जायते यदा ।। द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति मार्कण्डेयः ।। कात्यायनः–अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः ।। एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि ।। भविष्ये–एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।। ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही ।। सधवायास्तु भर्त्राज्ञयाधिकारः ।। तथा च विष्णुः–पत्यौजीवति या नारी उपोष्यव्रतमाचरेत् ।। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ।। पाद्मे-शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ।। अत्र नान्या कृष्णेति न निषेधः ।। संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे ।। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात् पुत्रवान्गृही ।। इतिनारदवाक्यात् ।। आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।। पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ।। इति वचनान्तरानुरोधाच्च कृष्णैकादश्यामुपवासा प्राप्यभावात् ।। व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः–अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा ।। एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।। अथ

दशम्यांविधिः ।। तत्र दशम्यां विधिः । कौर्मे—कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदूषकान् ।। शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम् ।। तथा शाकं माषं मसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने ।। द्यूतमत्यम्बुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् ।। मदनरत्ने नारदीये—अक्षार-लवणाः सर्वे हविष्यान्निषेविणः ।। अवनीतल्पशयनाः प्रियासङ्गविवर्जिताः ।। व्रतघ्नान्याह हेमाद्रौ देवल :—असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् ।। उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ।। अशक्तौतु मदनरत्ने देवलः—अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति ।। अत्यये-कष्टे क्लेशवर्धनम् । विष्णु रहस्ये—गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् ।। व्रतस्थो वर्जयेत् सर्वं यच्चान्यच्च निराकृतम् ।। एषुप्रायश्चित्तमुक्तम् ऋग्विधाने-स्तेनाहिंसकयोःसख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम् ।। प्रायश्चितं व्रती कुर्याज्जपेन्नाम शतत्रयम् ।। मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोऽम्बुनिषेवणे ।। अष्टाक्षरं जपेन्मंत्रं शतमष्टोत्तरं शुचिः ।। ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरः ।। दन्तधावननिषेधः ।। हेमाद्रौ वसिष्ठः--उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् ।। करणे हानिः ।। दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ।। विशेषविधिः ।। एकादश्यां श्राद्धे प्राप्ते माधवीये कात्यायनः—उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।। उपवासं सदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ।। मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि ।। अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत् पितृसेवितम् ।। उपवासग्रहणविधिः ।। ब्रह्मवैवर्ते-प्राप्ते हरिदिने सम्यक् विधाय नियमं निशि ।। दशम्यामुपवासं च प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम् ।। तत्र एकादश्यां संकल्पः—गृहीत्वौदुम्वरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।। उपवासं तु गृह्णीयाद्यथासंकल्पयेद्बुधः ।। औदुम्बरम् ताम्रमयम् ।। मंत्रस्तु विष्णूक्तः ।। एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ।। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।। शैवादीनां तुहेमाद्रौ सौरपुराणे—सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत् ।। वाराहे —इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् ।। ततस्तज्जलं पिबेत्—अष्टाक्षरेण मंत्रेण त्रिजप्तेनाभिमन्त्रितम् ।। उपवासफलं प्रेप्सुःपिबेत्पात्रगतं जलम् ।। इति कात्यायनोक्तेः ।। रात्रौ संकल्पः—मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौ संकल्प इति माधवः ।। दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात् परेण तु ।। वर्जयेच्चतुरो यामान् संकल्पार्चनयोस्तदा ।। विद्धोपवासेऽनश्नंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः ।। रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च सदाचरेत् ।। इति नारदीयोक्तेः । तत्र पूजामभिधाय ।। जागरणम् ।। देवल :—देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती ।। द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन—अज्ञान-

१—मांसमित्यपि पाठः । २ यथाकामं फलमुल्लिखेदित्यर्थः । ३ शिवादिगायत्र्या । ४ संकल्प्येत्यर्थ. ।

तिमिरान्धस्य व्रतेमानेन केशव ।। प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।। द्वादश्यां वर्ज्यानाह बृहस्पति :—दिवा निद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।। क्षौद्रं कांस्यं[१] माषतैलं द्वादश्यामष्टवर्जयेत् ।। हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—पुनर्भोजनमध्यायो भार आयासमैथुने ।। उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चमी ।। शुद्धिः । विष्णुधर्मे—असंभाष्यान् हि संभाष्य तुलस्याश्चार्पितं दलम्[२] ।। आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुद्ध्यति ।। विष्णुः—भोजनान्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम् ।। भक्षणात् पापनिर्मुक्तिश्चान्द्रायणशताधिका ।। एतद्व्रतं सूतकेऽपि कार्यम् ।। सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ।। इति विष्णूक्तेः ।। तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम् ।। सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।। दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते ।। इति मात्स्योक्तेः स्त्रीभिस्तु रजोदर्शनेऽपि कार्यम् ।। एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि ।। इति पुलस्त्योक्तेः ।। द्वादश्यामुपवासः ।। यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्षं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीमुपवसेत्।। शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता ।। तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति नारदोक्तेः ।। अथाष्टौ महाद्वादश्यः ।। तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनी द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्द्धते चेत् सा वञ्जुली ।। वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा ।। अग्रे पर्वणः संपूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी ।। पुष्यर्क्षयुता जया ।। श्रवणयुता विजया ।। पुनर्वसुयुता जयन्ती ।। रोहिणीयुता पापनाशिनी ।। एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् ।। अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।। पारणासमयः ।। द्वादश्याः प्रथमपादमतिक्रम्य पारणं कार्यम् ।। द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः ।। तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः।। इति निर्णयामृते विष्णुधर्मोक्तेः ।। यदा भूयसी द्वादशी तदापि प्रातर्मुहूर्तत्रये पारणं कार्यम् ।। सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम् । इति वचनात् ।। इत्येकादशीनिर्णयः ।। अथ शुक्लकृष्णैकादश्युद्यापनम्—प्रबोधसमयेपार्थ कुर्यादुद्यापनक्रियाम् ।। मार्गशीर्षे विशेषेण माघे भीमतिथावपि ।। तद्विधिः—दशम्यामेकभुक्तं तु दन्तधावनपूर्वकम् ।। एकादश्यां शुचिर्भूत्वा आचार्यं वरयेत्ततः ।। तत्र संकल्पः—गणेशस्मरणपूर्वकं मासपक्षाद्युल्लिख्य मया आचरितस्याचरिष्यमाणस्य वा शुक्लकृष्णैकादशीव्रतस्य साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्त्यर्थं देशकालाद्यनुसारतो यथाज्ञानेन शुक्लकृष्णैकादशीव्रतोद्यापनमहं करिष्ये तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनमाचार्यवरणं च करिष्ये इति संकल्प्य, गणेशं षोडशोपचारैः पूजयित्वा पुण्याहं वाचयेत् ।। तद्यथा करिष्यमाण शुक्ल कृष्णैकादशीव्रतोद्यापनकर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ।

१ कांस्यामिषमितिपाठः । २ अर्पितं यत्तुलसीदलं तस्य भक्षणादित्यध्याहृत्यान्वयः ।

अस्तु पुण्याहम् ।। स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ।। आयुष्मते स्वस्ति ।। ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु । कर्म ऋध्यताम् ।। श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । अस्तु श्रीः ।। वर्षशतं पूर्णमस्तु ।। शिवं कर्मास्तु ।। गोत्राभिवृद्धिरस्तु प्रजापतिः प्रीयताम् ।। तत उद्यापन-कर्मणि आचार्यंवरयेत् ।। उपोष्य नियतो रात्रावाचार्यसहितो व्रती ।। कुर्यादाराधनं विष्णोर्यथाशक्त्या जगद्गुरोः ।। देवालये गवां गोष्ठे शुची देशेऽथवा गृहे ।। अष्टांगुलोच्छ्रितां वेदीं चतुरस्रां प्रकल्पयेत् ।। वितस्तिद्वयविस्तीर्णं तिलैः कृष्णैः प्रपूरयेत् ।। तस्यामष्टदलं रम्यं कमलं परिकल्पयेत् ।। तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं नवीनमव्रणं शुभम् ।। कृष्णैस्तिलैश्च संयुक्तं कृष्णवस्त्रोपशोभितम् ।। अश्वत्थ-पर्णयुग्मेन पञ्चरत्नैः समन्वितम् ।। समन्तादङ्कितं चैव संकर्षणादिनामभिः ।। उपचारैः षोडशभिः पूजयेत् प्रयतो नरः ।। आग्नेयादिचतुष्पत्रे पूजयेद्गण-मातृकाः ।। गणेशं मातृकाश्चैव दुर्गां क्षेत्राधिपं तथा ।। समाहितमनाः कोणेष्वाग्नेयादिषु विन्यसेत् ।। तथैव शुक्लैकादश्यां तिलैः शुक्लैश्च योजयेत् ।। शुक्ल-वस्त्रेण संवेष्टच पूजयेत्परया मुदा ।। समन्तादंकितं चैव नामभिः केशवादिभिः ।। ततो देवं च सौवर्णं स्नाप्य पञ्चामृतादिभिः ।। गन्धपुष्पाक्षतोपेतैरथ पुण्यजलैः शुभैः ।। संस्थाप्यावाहयेत्कुम्भे रमायुक्तं चतुर्भुजम् ।। पूर्ववत आचार्यः सर्वतो-भद्रमण्डलदेवताः संपूज्य तदुपरि स्थापिते कलशे देवतासान्निध्यार्थं कृताग्न्युत्ता-रणां विष्णुमूर्ति संस्थाप्य तत्र विष्णुमावाहयेत् ।। ओं नमो विष्णवे तुभ्यं भगवन् परमात्मने ।। कृष्णोऽसि देवकीपुत्र परमेश्वर उत्तम ।। अजोऽनादिश्च विश्वात्मा सर्वलोकपितामहः ।। क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विष्णुः श्रीमान्नारायणः परः ।। त्वमेव पुरुषः सत्योऽतीन्द्रियोऽसि जगत्पते ।। यत्तेजः परमं सूक्ष्मं तेनेमां वेदिकां विश ।। ओं भूः पुरुषमावाहयामि ।। ओं भुवः पुरुषमावाहयामि ।। ओं स्वः पुरुषमावाह-यामि ।। ओं भूर्भुवः स्वः पुरुषमावाहयामि ।। विष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ पूजां गृहाण सुप्रसन्नो वरदो भव इति ।। प्रत्येकं स्त्रीचतुःसहस्त्रीसहितां रुक्मिणीं जाम्ब-वतीं सत्यभामां कालिन्दीं च पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदलाभ्यन्तरेष्वावाह्य शङ्खं चक्रं गदां पद्मं चेशानादिष्वावाहयेत् ।। तद्बहिः पूर्वपत्रादिष्वष्टपत्रेष्वनुक्रमात् ।। विमलो १ त्कर्षिणी २ ज्ञाना ३ क्रिया ४ योगा ५ तथैव च ।। प्रह्वा ६ सत्या ७ तथेशाना ८ नुग्रहा पद्ममध्यगा ।। देवस्याग्रे ततः कृत्वा वेदिकायां खगेश्वरम् ।। गरुडं चावाह्य लोकपालानवस्थाप्य दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ।। ततः पूर्वादिक्रमेण केशवादीन् ।। केशवाय नमः, केशवमावाहयामि १, नारायणाय० २, माधवाय० ३, गोविन्दाय० ४, विष्णवे ०५, मधुसूदनाय० ६, त्रिविक्रमाय० ७, वामनाय० ८,

१ अर्थात्कलशमित्यर्थः । २ एताअवाह्य ।

श्रीधराय० ९, हृषीकेशाय० १० पद्मनाभाय० ११ दामोदराय० १२ एताञ्छु-क्लैकादश्याम् ।। एवमेव कृष्णैकादश्यां संकर्षणाय:० संकर्षणं आ० वासुदेवा० प्रद्युम्ना० अनिरुद्धा० पुरुषोत्तमा० अधोक्षजा० नारसिंहा० अच्युता० जनार्दना० उपेन्द्राय० हरये० श्रीकृष्णाय० १२ इत्येवं प्रकारेणावाह्य तदस्त्विति प्रतिष्ठाप्य च ओं अतो देवा इतिषोडशोपचारैर्विष्णुमावाहितदेवताश्च नाममंत्रेण पूजयेत् ।। प्रदद्यादासनं पाद्यमर्ध्यमाचनीयकम् ।। स्नानं वस्त्रं चोपवीतं गन्धपुष्पाणि वैततः।। धूपं दीपं च नैवेद्यं नीराजनप्रदक्षिणे ।। उभयैकादश्योर्यदा एक आचार्यस्तदाष्ट-दलेषु पूर्वादिक्रमेण एकत्र देवताः संस्थाप्य पूजयेत् ।। स्तवनं विष्णुसूक्तैश्च परि-चर्या च नामभिः ।। नमोन्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैस्तन्मूर्तौ पूजयेत् सुधीः ।। उपचारादिकं कुर्यान्नैव कार्यं विसर्जनम्।।गीतवाद्यैस्तथा नृत्यैरितिहासैर्मनोरमैः।।पुराणैः सत्कथा-भिश्च रात्रिशेषं नयेत् सुधीः ।। प्रभाते विमले स्नात्वा कृत्वा शौचादिकाः क्रियाः चतुर्विशतिसंख्याकान्विप्रानागमदर्शिनः ।। आकारयेत्ततः पश्चात् पूजयेच्च समा-गतान् ।। आचार्येण समं कुर्यादुपचारादिकं ततः ।। होमसंख्यानुसारेण स्थण्डिलं कारयेत्ततः ।। उल्लेखनादिकं कृत्वा प्रणीतास्थापनं ततः ।। अग्निध्यानान्तं कृत्वा ततोऽन्वाधानं कुर्यात् । क्रियमाणे शुक्लकृष्णैकादशीव्रतोद्यापनहोमे देवतापरिग्र-हार्थमन्वाधानं करिष्ये इति संकल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा । अत्र प्रधानम्-अग्निं इन्द्रं प्रजापतिं विश्वान्देवान् ब्रह्माणं, पुरुषं नारायणं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्येन । वासुदेवं बलदेवं श्रियं विष्णुम् अग्निवायुं सूर्यं प्रजापतिं एताः प्रधानदेवताः पायसद्रव्येण ।। केशवादिद्वादशदेवता आज्यमि-श्रितपायसद्रव्येण । विष्णुमष्टोत्तरशताहुत्या पायसद्रव्येण । प्रत्येकं स्त्रीचतुःसह-स्रसहितां रुक्मिणीं सत्यभामां जाम्बवतीं कालिन्दीं च शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गरुडं इन्द्राद्यष्टौ लोकपालान् विमलाद्या अनुग्रहान्ता देवता ब्रह्मादिदेवताश्च एकैकयाऽऽज्याहुत्या । शेषण स्विष्टकृतमित्यादिप्रणीताप्रणयतान्तं कृत्वा अन्वाधान-समिद्भिर्जुहुयात् ।। पायसं चरुं श्रपयित्वा ओं पवित्रं ते इति मन्त्रं जपन् प्रापण-मुद्धरेत् ।। पायसादुद्धृतं किञ्चित् प्रापणं तत्प्रकीर्तितम् ।। आज्यसंस्कारादिक-माज्यभागान्तं कृत्वा इदमुपकल्पितं हवनीयद्रव्यं यथादैवतमस्तु ।। पञ्च अनादे शाहुतीः सर्पिषा हुत्वा पुरुषं नारायणं पौरुषेण सूक्तेन प्रत्यृचं सर्पिषा ।। वासुदेवाय स्वाहा० बलदेवाय स्वाहा० श्रियै स्वा० विष्णवे० ओं विष्णोर्नु कम्० ॐ तदस्य-प्रियमभिपाथो० ओं प्रतिद्विष्णुः ओं परो मात्रया० ओं विचक्रमे० ओं त्रिर्देव इति मन्त्रैर्व्याहृतिभिश्च पायसेन हुत्वा शुक्लैकादश्यांकेशवादिद्वादशभ्यो नामभिः

कृष्णैकादश्यां सङ्कर्षणादिद्वादशभ्यः शुक्लकृष्णैकादश्योरेकाचार्येकस्थण्डिलपक्षे-चतुर्विंशतिभ्यो नामभिर्घृतमिश्रपायसेन जुहूयात् ।। ततो विष्णुं पायसेन अष्टोत्तर शतं हुत्वा प्रत्येकं स्त्रीचतुःसहस्रसहिता रुक्मिण्यादीः शङ्खादीन् लोकपाला न्विमलाद्या देवता ब्रह्मादिदेवताश्चैकैकयाऽऽज्या हुत्या जुहुयात् ।। ततः प्रापणार्थं भगवत्प्रार्थना—त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं नारायणं विश्वसृजं यजामः ।। मयैकभागो विहितो विधेयो गृहाण हव्यं जगतामधीश ।। इति प्रापणं निवेद्योपतिष्ठेत् ।। ततस्त्रिवारं चतुर्वा ध्रुवसूक्तं वा प्रदक्षिणमग्निं वेदिकां च परिक्रम्य भिन्धि विश्वा इति जानुनी निपात्य ध्रुवसूक्तं जपेत् पुरुषसूक्तं वा ।। ततोऽष्टौ पदानि प्रतिदिशमेतैर्मन्त्रैर्गच्छेत् ।। कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने । । शरण्यायाप्रमेयाय गोविन्दाय नमो नमः ।। नमः स्थूलाय सूक्ष्माय व्यापकायाव्ययायच ।। अनन्ताय जगद्धात्रे ब्रह्मणेऽनन्तमूर्तये ।। अव्यक्तायाखिलेशाय चिद्रूपाय गुणात्मने ।। नमो मूर्ताय सिद्धाय पराय परमात्मने ।। देवदेवाय वन्द्याय पराय परमेष्ठिने ।। कर्त्रे गोत्रे च विश्वस्यसंहर्त्रे च ते नमः।।अथ तन्निवेदितं प्रापणं मूर्ध्नि कृत्वा घोषयेत् ।के वैष्णवा इत्युच्चैर्वदेत् । वयं वैष्णवा वयं वैष्णवा इति समानाः प्रवदेयुः । तेभ्यः समानेभ्यो हविर्दत्त्वा ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति द्वादशाक्षरमन्त्रेण इदमहममृतं प्राश्नामि इति प्राश्य आचम्य यजमान आचार्यो वा सिद्धये स्वाहा इति आज्यं जुहुयात् ।। ततो यत इन्द्रभयामह इत्यात्मानमभिमन्त्र्य स्विष्टकृदादिहोमशेषं समापयेत् ।। उत्तरपूजां कृत्वा-ततो होमावसाने च गामरोगां पयस्विनीम् ।। सवत्सां कृष्णवर्णां च सवस्त्रां कांस्यदोहिनीम् ।। दद्याद्व्रतसमाप्त्यर्थमाचार्याय सदक्षिणाम् ।। भूषणानि विचित्राणि वासांसि विविधानि च ।। चतुर्विंशतिसंख्यानि पक्वान्नानि च दापयेत् ।। आचार्याय प्रदेयानि दक्षिणां भूयसीं तदा ।। यदीच्छेदात्मनः श्रेयो व्रतस्योद्यापनं चरेत् ।। विप्रान् द्वादशसंख्याकान्नामभिः पृथगर्चयेत् ।। उपवीतानि तेभ्यो वै दद्यात्कुम्भान् सदक्षिणान् ।। पक्वान्नफलसंयुक्तान् वस्त्र युक्तांस्तु दापयेत् ।। भोजयित्वा ततो विप्रान् पक्वान्नेन च भक्तितः ।। अन्यानपि यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेद्व्रती ।। व्रतं ममास्तु संपूर्णमित्युक्तैः पूजितैर्द्विजैः ।। अस्तु संपूर्णमित्युक्त्वा आचार्यसहितो व्रती ।। जप्त्वा वैष्णवसूक्तानि प्रणम्य च पुनः पुनः ।। ॐ भूःपुरुषमुद्वासयामीति क्रमेणोद्वासयेत् ।। ॐ इदं विष्णुः इति पीठमाचार्याय दत्त्वा ततो बन्धुजनैः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत ।। इति बौधायनोक्तं शुक्लं कृष्णैकादशीव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।। अथपूजाविधि ।। ब्राह्मे-एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः ।। स्नात्वा सम्यग्विधानेन सोपवासो जितेन्द्रियः । संपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः ।। गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः ।। उप-

चारैर्बहुविधैर्जपहोमैः प्रदक्षिणैः ।। स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ।। दण्डवत्प्रणिपातैश्च य'शब्दैस्तथोत्तमैः ।। ए'वं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम् ।। याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः ।। (पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् ।। द्वादश्यां पयसा स्नाप्य हरिसारूप्यमश्नुते) ।। इति पूजाविधिः ।। अथ पुराणोक्त उभयैकादश्युद्यापनविधिः । अर्जुन उवाच ।। कीदृग्व्रतविसर्गोऽत्र विधानं चात्र कीदृशम् ।। संपूर्णं हि भवेद्येन तन्मेवद कृपानिधे ।। श्रीकृष्ण उवाच- ।। शृणु पाण्डव यत्नेन प्रवक्ष्यामि तदव्ययम् ।। शक्तः स्वर्णसहस्रं तु अशक्तः काकिणीं तथा ।। ददाति श्रद्धया पार्थ समं स्यादुभयोरपि ।। शक्तश्चेद्द्विगुणं दद्याद्यथोक्ते मध्यमो विधिः ।। उक्तार्द्धमप्यशक्तस्य दानं पूर्णफलप्रदम् ।। तद्रूपविधिमप्येकं कथयामि तवाग्रतः ।। यानि कष्टेन चीर्णानि व्रतानि कुरुसत्तम ।। विफलान्येव सर्वाणि उद्यापनविधिं विना ।। प्रबोधसमये पार्थ कुर्यादुद्यापनक्रियाम् ।। मार्गशीर्षे विशेषेण माघे भीमतिथावपि ।। दशम्यां दिनशेषेण रात्रौ गुरुगृहं व्रजेत् ।। एकादशीदिने पार्थ गुरुमभ्यर्च्य शक्तितः ।। गृहीत्वा चरणौ मूर्ध्ना प्रार्थयीत विचक्षणः ।। पुण्यदेशोद्भवं विप्रं शान्तं सर्वगुणान्वितम् ।। सदाचाररतं पार्थ वेदवेदाङ्गपारगम् ।। अस्मदीयं व्रतं विप्र विष्णुवासरसम्भवम् ।। संपूर्णं तु भवेद्येन तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ।। तस्याग्रे नियमः कार्यो दन्तधावनपूर्वकम् ।। एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि ।। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।। एवं प्रभातसमये शुचिर्भूत्वा समाहितः ।। पाखण्डिनां च सर्वेषां पतितानां च सङ्गमम् ।। कामं दुरोदरं पार्थ दूरतः परिवर्जयेत्।। स्नानं कृत्वा मन्त्रपूर्वं नद्यादौ विमले जले ।। तर्पयित्वा पितॄन् देवान् पूजयेन्मधुसूदनम् ।। उपालिप्य शुचौ देशे कीटकेशास्थिवर्जिते ।। वर्णैश्च सर्वतोभद्रं नीलपीतसितासितैः ।। मण्डलं चोद्धरेद्भूप सर्वकर्मसु पूजितम् ।। अष्टाङ्गुलोच्छ्रितां वेदीं चतुरस्रां प्रकल्पयेत् ।। वितस्तिद्वयविस्तीर्णामक्षतैः परिपूरिताम् ।। तस्यामष्टदलं सम्यक् कमलं परिकल्पयेत् ।। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं नवीनं सुस्थिरं शुभम्।। अथवा तण्डुलानां च अष्टपत्राम्बुजं चरेत् ।। वारिपूर्णं घटं ताम्रं पात्रं रौप्यसमुद्भवम् ।। जातरूपमयं देवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्दनम् ।। साक्षतं सोपवीतं च सहिरण्यं सवाससम् ।। अक्षमालासमायुक्तं शङ्खचक्रगदाधरम् ।। शक्त्या सुवर्णपुष्पैश्च पूजयेत्पुष्टिवर्द्धनम् ।। अन्यैर्ऋतूद्भवैः पुष्पैरर्चयेद्विधिवन्नरः ।। नैवेद्यांश्च चतुर्विंशत्यथ दद्यादनुक्रमात् ।।भक्त्या चतुर्विंशतिषु तिथिष्वपि परन्तप ।। इच्छया वा तथा दद्याद्यदैवोद्यापनं भवेत् ।।मोदकान् गुडकांश्चूर्णान् घृतपूरकमण्डकान् ।। सोहा-

१ अत्रैवाग्र आह । २ एवं संपूज्य जागरं कुर्यादिति शेषः इति हेमाद्रौ ।

लिकादिकं सारसेवाः सक्तवएव च ।। वटकान् पायसं दुग्धं शालि दध्योदनं तथा ।। इण्डरीकान् पूरिकांश्चापूपान्गुडकमोदकान् । तिल पिष्टं कर्णवेष्टं शालिपिष्टं सशर्करम् ।। रम्भाफलं च सघृतं मुद्गचूर्णं गुडौदनम् ।। एवं क्रमेण नैवेद्यं पृथग्वा चरमेऽहनि ।। पूजानामानि–दामोदराय पादौ तु जानुनी माधवाय च ।। गुह्यं वै कामपतये कट्यां वामनमूर्तये ।। पद्मनाभाय नाभिं तु ह्युदरं विश्वमूर्तये ।। हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठं श्रीकण्ठसञ्ज्ञिने ।। सहस्रबाहवे बाहू चक्षुषी योगयोगिने ।। ललाटमुरुगायेति नासां नाकसुरेश्वरम् ।। श्रवणौ श्रवणेशाय शिखायां सर्वकामदम् ।। सहस्रशीर्षाय शिरः सर्वाङ्गं सर्वरूपिणे ।। शुभेन नारिकेरेण बीजपूरेण वा पुनः ।। हृदि ध्वात्वा जगन्नाथं दद्यादर्घ्यं विधानतः ।। साक्षतं च सपुष्पं च सजलं चन्दनान्वितम् ।। पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैश्च व्रतपूर्तिकरः सुधीः ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतशास्त्रविनोदतः ।। इष्टं दत्तं धरादानं पिण्डो दत्तो गयाशिरे ।। कृतं दानं कुरुक्षेत्रे यैः कृतं जागरं हरेः ।। नृत्यं गीतं प्रकुर्वन्ति वीणावाद्यं तथैव च ।। ये पठन्ति पुराणानि ते नराः कृष्णवल्लभाः ।। शास्त्रैर्वाप्यथवा भक्त्या शुचिर्वाप्यथवाऽशुचिः ।। कृत्वा जागरणं विष्णो मुच्यते पापकोटिभिः।।भुक्तो वाप्यथवाभुक्तो जागरे समुपस्थितः ।। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।। यावत्पदानि स्वगृहात् केशवायतनं प्रति ।। अश्वमेधसमानि स्युर्जागरार्थं प्रयच्छतः ।। पादयोः पांसुकणिका धरण्यां निपतन्ति याः ।। तावद्वर्षसहस्राणि जागरी वसते दिवि ।। बहून्यपि च पापानि कृतं जागरणं हरेः ।। निर्दहेन्मेरुतुल्यानि युगकोटिकृतान्यपि ।। मनसा संस्मरेद्देवं तां रात्रिमतिवाह्य च ।। प्रभाते विमले स्नात्वा विप्रानाकारयेत् सुधीः ।। चतुर्विंशतिसंख्याकान्निगमागमदर्शिनः ।। सर्वं कुर्याद्विधानेन जपहोमार्चनादिकम् ।। शतमष्टोत्तरं होमः सर्वत्रापि प्रशस्यते ।। इदं विष्णुर्द्विजातीनां होममन्त्रः प्रकीर्तितः ।। शूद्राणां चैव सर्वेषां मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः ।। विविधैरपि वस्त्रैश्च भाजनैरासनैः सह।। पादत्राणं नवाङ्गं च दद्यात्पार्थ पृथक् पृथक् ।। द्वादशैवाथ शक्त्या वा वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।। पूजयेत्पुष्पमालाभिः सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ।। कुम्भा द्वादश दातव्याः पक्वान्नजलपूरिताः ।। भोजयित्वा ततो विप्रान् भक्तितो विचरेद्बुधः ।। एका हि कपिला देया सर्वकामफलप्रदा ।। यथा स्वर्गश्च मोक्षश्च इह संपूर्णता व्रते ।। नमस्ते कपिले देवि संसारार्णवतारिणि।। मया दत्ता द्विजेन्द्राय प्रीयतां मे जनार्दनः।। सपत्नीको गुरुः पूज्यो मण्डले हरिसन्निधौ ।। भूषणाच्छादनैर्भोज्यैः प्रणामैः परितोषयेत् ।। समाप्य वैष्णवं धर्मं दद्यात्सर्वं धनञ्जय ।। इष्ट चन्यद्यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। जलदानं

१ खण्डपिष्टमिति पाठः । २ श्राद्धम् ।

विशेषेण भूमिदानमतः परम् ।। प्रार्थयेत् पुरुषाधीशं ततो भक्त्या कृताञ्जलिः ।। मयाद्यास्मिन् व्रते देव यदपूर्णं कृतं विभो ।। सर्वं भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ।। त्वयि भक्तिः सदैवास्तु मम दामोदर प्रभो ।। पुण्यबुद्धिः सतां सेवा सर्वधर्मफलं च मे ।। जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं व्रतकर्मणि ।। सर्वं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ।। प्रदक्षिणां ततः कृत्वा दण्डवत् प्रणि[1]पत्य च ।। मण्डलं मूर्तिसंयुक्तं सोपहारं सदक्षिणम् ।। प्रीयतां विष्णुरित्युक्त्वा आचार्याय निवेदयेत् ।। सर्वान् विसर्जयेत् पश्चात् संतोष्य परिभोज्य च ।। तदाज्ञया ततः कुर्यात् पारणं बन्धुभिः सह।। एकादशीव्रतं चैतद्यथाविधि कृतं पुरा ।। यौवनाश्वेन भूपेन कथितं पुरतस्तव ।। धनञ्जय तव प्रीत्या भक्त्यानुग्रहकारणात् ।। यः करोति नरो भक्त्या व्रतमेतद्भयापहम् ।। स याति वैष्णवं स्थानं दाहप्रलयवर्जितम् ।। उक्तमुद्यापनं चैवमुभयोः कुरुसत्तम ।। किमन्यैर्बहुभिर्वाक्यैः प्रशंसापरमैर्भुवि ।। एकादश्याः परतरं त्रैलोक्ये न हि विद्यते ।। अत्र दानं तु गोदानं भूमिदानमथापि वा ।। गोरोमबीजमूलानां समसंख्यायुगानि हि ।। दातारो विष्णुभवन एकादश्यांवसन्ति हि ।।ये पि शृण्वन्ति सततं कथ्यमानां कथामिमाम् ।। तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः स्वर्गं यान्ति न संशयः ।।इत्याकर्ण्यार्जुनो वाक्यं कृष्णस्य परमाद्भुतम् ।। आनन्दं परमं प्राप सौख्यं चापि निरन्तरम् ।। इति पुराणोक्तमुभयैकादशीव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

एकादशीव्रतानि ।

अब एकादशीके व्रत कहे जाते हैं, उनमें उपवासकी एकादशीका निर्णय किया जाता है—उपवास दो तरहका होता है। एक निषेध परिपालन रूपी, दूसरा व्रतरूपी (पहिला—;जैसे कि, दोनों पक्षोंकी एकादशीमें भोजन न करे, यहां जो भोजनका निषेध किया है इस निषेधके पालन करनेसे एकादशीके दिन निषेध मुखसे भोजनाभाव रूप उपवास आ उपस्थित होता है। दूसरा—जैसे कि, एकादशीके आनेपर दशमीके दिन ही उपवासका संकल्पकरके व्रत करे, ऐसे वाक्योंमें जो कि, एकादशीके दिन उपवासका विधान करते हैं उनमें व्रतरूपसे उपवास आ उपस्थित होताहै) एकादशी दो प्रकारकी होती है, शुद्धा और दशमीविद्धा शुद्धा जिसमें किसीका वेध न हो, जिस एकादशीके दिन भी दशमी किसी रूपसे आजाय वो दशमीविद्धा एकादशी कहाती है। वेध भी दो प्रकारका होता है, पहिले—अरुणोदयवध दूसरा सूर्योदयवेध, (अरुणोदयके समयमें दशमी का वेध एकादशीमें आये तो उसे अरुणोदयवेध कहेंगे) अरुणोदयवेध वैष्णवोंको न लेना चाहिये, यही भविष्य पुराणमें लिखा हुआ है कि—अरुणोदयके समयमें यदि दशमी दीखे तो उसे विद्धा कहेंगे, उसमें उपवास करना पापका कारण है। दूसरा एक वचन और भी है कि—दशमीके अशिष्टांशसे संयुक्त यदि अरुणोदय हो तो उस दिन वैष्णवको एकादशीके व्रतका उपवास नहीं करना चाहिये। अरुणोदयका स्वरूप—तो हेमाद्रिने स्मृत्यन्तरसे दिखाया है कि, रातके आखिरी हिस्सेमें आधेपहर जबकि देवताओंके नक्कारे बजते हैं, पढनेकी अनध्याय रहती है उसे अरुणोदय कहते हैं। इसमें आया हुआ यामार्धशब्द आधापहर यानी दो मुहूर्तसे मतलब रखता है, तबही सौर धर्ममें कहा है कि, आदित्यके उदरके समयमें जो पहिले दो मुहूर्त (चार घटिका) एकादशी रहे वो सम्पूर्ण है। बाकी सबको विद्धा समझना। जो यह माधवीयग्रन्थमें स्कान्दका प्रमाण लिखा है कि—सूर्योदयसे पहिले चारघडी अरुणोदयकाल रहता है, इसपर द्वैतनिर्णयमें लिखा है कि, चार घडीका अरुणोदय तो बत्तीस घडीकी रात होती है इस मानके पक्षमें दो मुहूर्तोंको चार घडीका होनेके कारण कहा है। ब्रह्मवैवर्तमें जो यह लिखा हुआ है कि, प्रातःकाल चार घडीका अरुणोदय

---

१ प्रणमेत्प्रभुमित्यपि पाठः।

होता है यह निश्चय है, यहां वेध के चार भाग कहे हैं। अरुणोदयवेध साढे तीन घडीका होता है, रविकी प्रभाके दीखनेसे पहिले दो घडीका अतिवेध होता है, इसमें अवशिष्टका महावेध होता है। यदि सूर्य्य न दीखें तबतक यह अरुणोदयके वेधोंमें आखिरीवेध होता है, इस समेत ये तीन अरुणोदरके भेद हैं। यह आखिरी साढे तीनसे अगाडी होता है, सूर्योदयके होनेपर जो वेध हो उसे चौथा वेध कहते हैं। यह व्रतराजके यहां दूसरी तरहका वेध है क्योंकि पहिले तो अरुणोदरमें आगये । ये वेध पूर्व उत्तरोत्तर दोषके अतिशयको दिखानेके लिये हैं यानी पूर्वके वेधसे उत्तरका वेध दोष अधिक होता है, इस बातको दिखानेके लिये किये गये हैं। यह मयूखग्रन्थमें लिखा हुआ है। साठ घटिकाका साधारण अहोरात्र होता है। यदि घटता है तो ६ घटिकातक घट जाता है यदि बढता है तो ५ बढ जाता है, साधारण मानकी दृष्टीसे बोल रहे हैं कि, पचपन-पर उषःकाल तथा ५७ पर अरुणोदय, अट्ठावनपर प्रातःकाल तथा शेषपर सूर्योदय होता है। वैष्णव लक्षण – स्कन्द पुराणमें कहे हैं कि, चाहे उसे परम आनन्द हो चाहे परम आपन्न हों जो एकादशीके व्रतका त्याग न करे एवं जो वैष्णवी दीक्षासे दीक्षित हो वो वैष्णव है। भविष्यमें कहा है कि, जैसी शुक्लावैसी ही कृष्णा एवं जैसी कृष्णा वैसीही शुक्ला दोनोंको बराबर माने वहीवैष्णव कहा जाता है। सूर्योदयके वेधकी प्रधानता–स्मार्तोंके यहाँ है उनके विषय का वाक्य मदनरत्नधृतस्मृतिमें है कि–जो अति वेधादिक सबवेध तिथियोंमें बताये हैं वे सब वेध नहीं हैं उन्हें अवेध समझना चाहिये, केवल सूर्योदय वेधही एक मात्र वेध है॥ एकादशीके भेद-दो तो पहिले करही आये हैं कि, पहिली शुद्धा और दूसरी दशमीविद्धा (या विद्धा) होती हैं। शुद्धा और विद्धा दोनों ही एकादशी चार चार तरहकी होती हैं। सबसे पहिले शुद्धाकेही भेदोंको दिखाते हैं १–एकादशीमात्राधिका, २–द्वादशीमात्राधिका, ३–उभयाधिका, ४– अनुभयाधिका, (जिसमें एकादशी ही अधिक हो यानी सूर्योदयके बाद अधिक रहे वो अधिक कहाती है। जैसे दशमी ५५ घडी हो, एकादशी ६० हो द्वादशीका क्षय होकर ५८ रह गया हो। जिसमें द्वादशी सूर्य्यके अनन्तर अधिक हो जैसे दशमी ५५ एकादशी ५८ और द्वादशी ६० घडीहो। जिसमें दोनों अधिकहो जैसे दशमी ५५ एकादशी ६० घडी एक पल तथा द्वादशी ६५ हो इसमें एक पल एकादशी तथा ५ घडी द्वादशी अधिक हुई। जिसमें दशमी ५५ एका-दशी ५७ और द्वादशी अटठावन हो इसमें एकादशी भी कम है और द्वादशी भी कम है) इसी तरह विद्धाके भी येही चार भेद होते हैं) जैसी दशमी ४ घड़ी अधिक हो, एकादशी २ हो एवम् द्वादशीका क्षय होकर ५८ रह गयी हो। दशमी २, एकादशी ३ और द्वादशी चार इसमें एकादशी और द्वादशी दोनोंही अधिक हैं। जिसमें दशमीकी एक घडी वृद्धि हो एकादशीका क्षय होकर ५८ रह गयी हो द्वादशीकी वृद्धि होकर वो ६० घडी १ पलकी हो गयी हों, यह हुई द्वादशीमात्रकी वृद्धिवाली विद्धा। एवम् दशमी २ एकादशीका क्षय होकर ५६ रह गयी हो तथा द्वादशी भी ५५ हो इसमें न तो एकादशी ही अधिक है, एवं न द्वादशी ही है) इनमें शुद्धामें एकादशी की अधिकतामें नारद दूसरे दिन उपवास कहते हैं कि –जिसमें पूरी एकादशी हो और द्वाद-शीवालेदिन बढती होतो द्वादशी में व्रत करके त्रयोदशी में पारणाकरनी चाहिये। वृद्धवसिष्ठने कहा है कि, जब एकादशीका लोपहो और आगाडी द्वादशी हो तो द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिये। यदि परम गतिका अभिलाषी हो तो। भगवान् भृगुनेभी यही कहा है कि; जिस दिन प्रभातकालमें एकादशी हो और दूसरे दिन भी वही हो तो द्वादशीका उपवास करना चाहिए। स्कन्द पुराण में–यदि पहले दिन अहोरात्रको मिलाकर सब एकादशी हो और द्वादशीके दिन भी वही हो तो गृहस्थियों को पहिली और यतिलोगोंको दूसरी करनी चाहिए। मार्कण्डेय पुराणमें कहा है–जिस दिन सम्पूर्ण एकादशी हो और दूसरे दिनभी प्रभातकालमें यदि एकादशी हो तो कामना रखनेवाला मनुष्य पहिली और निष्काम वैष्णव दूसरे दिनकी एकादशी करे। हेमाद्रिमें यदि दूसरे दिन द्वादशी न हो तो विद्धाभी अविद्धा और यदि दूसरे दिन द्वादशी हो तो अविद्धाभी एकादशी विद्धा मानी जाती है। प्रचेताने कहा है–शुक्लमें या कृष्णपक्षमें यदि एकादशी बढी हुयी हो भी दूसरीको यति और पहिलीको गृहस्थी करे। सनत्कुमारनेकहा है कि जो मूर्ख मनुष्य एकादशीका उपवास न करता हो वह अन्धकारपूर्ण रौरव नामके नरकमें जाता है। यदि विपुल भोगोंकी अभिलाषा हो और अत्यन्त दुर्लभा मुक्तिकी इच्छा हों तो दोनों पक्षोंकी एकादशीका अवश्यही उपवास करना चाहिये। तथा माधवमें भी स्कन्दसे कहा है कि–जिस दिन एकादशी और द्वादशी दोनों बढती हों तो उस दिन पहलीका त्याग तथा

दूसरी का स्मार्त लोगोंको ग्रहण करना चाहिए । त्रयोदशीके दिन यदि द्वादशी न हो तो उस दिन एकादशीका उपवास करना चाहिये, चाहे वह दशमी मिश्रित भी हो । हेमाद्रिके मतसे १८ प्रकारकी एकादशी होती हैं अर्थात्–शुद्धा, विद्धा, ये दोनों न्यून, सम, अधिक इन तीन भेदोंसे छः प्रकारकी हुयीं फिर भी ये छओं द्वादशीसे न्यून, सम, अधिक इन भेदोंसे तीन तीन प्रकारकी होकर १८ प्रकारकी होती हैं । पद्मपुराणमें कहा है कि, यदि दूसरे दिन द्वादशी हो तो संपूर्ण एकादशीको छोड देना चाहिये और वहाँ शुद्ध द्वादशीका ही उपवास करना चाहिये और उसी दिन पारणाभी करना चाहिये । यदि पारणाके दिन अंश मात्र भी द्वादशी न हो तो उस समय दशमी विद्धा एकादशी करनेका विधान है । यदि बहुतसे वाक्योंके विरोधसे सन्देह होता हो तो द्वादशीका ग्रहण करना चाहिये और त्रयोदशीको पारण करें ऐसा मार्कण्डेय ऋषिने कहा है । कात्यायनने कहा है कि –आठ वर्षकी अवस्थासे ऊपर ८० वर्षपर्यन्त मनुष्यको दोनों पक्षकी एकादशियां करनी चाहिए । भविष्यमें कहा है कि ब्रह्मचारी विधवा स्त्री दोनों एकादशी करें । गृहस्थी शुक्लपक्षकी ही एकादशी करें । तथा सौभाग्यवती स्त्रीको अपने पतिकी आज्ञासे करनेका अधिकार है–विष्णुवपुराणमें कहा है कि, पतिके जीते हुए जो उपवास करे तो वह अपने पतिको अल्पायु बनाकर नरकमें जाती है ।। पद्मपुराणमें कहा है कि, शयनी और बोधनीके बीचमें जो कृष्ण एकादशी हो वेही गृहस्थीके उपवास योग्य हैं, दूसरी न करे ।। "नान्या कृष्णा कदाचन" कभी भी दूसरी कृष्णामें व्रत न करे, यह जो निषेध है इसका कृष्ण एकादशीको गृहस्थोंके लिए व्रतका निषेध करना विषय नहीं है क्योंकि नारदजीका वचन है कि संक्रान्ति कृष्णा एकादशी चन्द्र और सूर्य ग्रहणके दिन पुत्र वान् गृहस्थको चाहिए कि व्रत न करे" यह विषय प्रायः किसी न किसी तरह सभी धर्म-शास्त्रकारोंने रखा है । व्रतराजने पहिले कुछ गृहस्थ के लिए कहकर पीछे पुत्रवान्गृहस्थके लिए निषेध किया है इन दोनों वाक्योंका मिलकर अर्थ होना चाहिए कि, पुत्रवान् ग्रहणको छोडकर बाकी गृहस्थोंको देवशयनी और देवबोधिनी एकादशियों के बीच की कृष्णा एकादशीभी कर लेनी चाहिए इसीमें इस वाक्य का तात्पर्य है । तथा निर्णयसिधुने इन वाक्योंको व्रतराजसे उलटा रखा भी है, इसी लिए उन दोनों का ऐसा ही सम्बन्ध है । इसी लिए वे रखे भी हैं इनसे पहिले यह कह चुके हैं कि, गृहस्थ शुक्ला एकादशीको व्रत करें, तब कृष्णाकी प्राप्तिके बिना निषेध भी कहाँ से होगा ? तब "नान्या कृष्णा कदाचन" यह निषेध भी कृष्णाके व्रतको गृहस्थोंके लिए न करनेको कहनेवाला भी न माना जायगा । अत एव व्रतराजकारने कहा कि, यहाँ "नान्या कृष्णा" और कृष्णाको न करे, यह निषेध नहीं लगता यह कहा है । "कृष्णा एकादशी रविवार संक्रान्ति चन्द्र और सूर्यका ग्रहण इन दिनों पारणा और उपवास बेटावाले गृहस्थको न करने चाहिये ' इत्यादि वचनोंके अनुरोधसे कृष्णा एकादशीमें उपवासकी प्राप्तिही नहीं है ।। प्रायश्चित्तव्रतके न करनेपर माधव ने कात्यायनके वचनसे कहा है कि, अर्कमें और दोनों पर्वों यानी अमावस और पूर्णिमामें रातको चतुर्थी और अष्टमी के दिनको तथा एकादशीके दिन अहोरात्रमें भोजन करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । अथ दशमीविधिः– कूर्म्म पुराणमें दशमीके सम्बन्धमें लिखा है कि, –दशमीको व्रत करनेवाला मनुष्य, कांसी, मांस; मसूर, चणे, कोदू आदि धान्य शाक, शहद या शराब तथा दूसरे घरका भोजन और स्त्री त्याग करे और नानाप्रकारके शाक, उडद, मसूर, दुबारा, भोजन, मैथुन, घृत तथा बहुत जलपानको दमशीके दिन वैष्णव न करे। मदनरत्नमें नारदीय वचन लिखा है कि, व्रती मनुष्य क्षार या लवणका भोजन करता हुआ केवल हविष्यान्नका भोजन करे, पृथ्वीमें शयन करे, स्त्री सङ्गका त्याग करे।।देवलने हेमाद्रिमें लिखा है–एकसे अधिकवार पानी पीनेसे या एकबार पान खानेसे दिनमें शयन करनेसे और मैथुनसे उपवास नष्ट हो जाता है । शक्तिरहित मनुष्य के वास्ते मदन-रत्नमें देवलकी उक्ति लिखी है कि–यदि शक्ति न हो तो अत्यय में जल पीलेनेसे उपवास नहीं नष्ट होता।। अत्यय कष्टको कहते हैं ! विष्णु रहस्यमें कहा है कि–शरीरमें या मस्तकमें तैल मलने, पान खाने , और उबटन आदिके लगाने तथा और और शास्त्रवर्जित वस्तुओंके व्रत करनेवाला मनुष्य छोड दे । इन पूर्वोक्त बातोंके लिए ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त कहा है–चोर या हिंसककी मित्रता करके चोरी या हिंसा करके व्रती मनुष्य प्रायश्चित्तमें गायत्रीका तीनसौ जप करे । झूठ बोलकर, दिनमें सोकर, बहुत पानी पीकर अष्टाक्षर मन्त्रको १०८ बार जपे । "ओं नमो नारायणाय" यह अष्टाक्षर मन्त्र है । हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहा है कि–

उपवासके दिन तथा श्राद्धके दिन दांतुन न करे क्योंकि काष्ठका दन्तस्पर्शही सात पीढीतक जला देता है। एकादशीके श्राद्धविधानमें कात्यायनने कहा है कि– नित्य उपवास में यदि नैमित्तिक श्राद्ध पडता हो तो उसदिन पितृसेवित भोजनको सूंघकर उपवास करे। मातापिताके क्षय दिनमें यदि एकादशी आवे तो पितरों और देवताओंकी पूजा करके पितृसेवित सूंघकर उपवास करे। ब्रह्मवैवर्त्तमें कहा है कि–एकादशीके प्राप्त होनेपर दशमीकी रातमें नियमपूर्वक रहकर एकादशीके दिन वैष्णव उपवास करे। और उस दिन उदुम्बर (ताम्बेका) बर्त्तन हाथमें लेकर उत्तर मुख हो जलसे उपवास करनेका संकल्प करे। इस समयमें मंत्र तो विष्णुने कहा है कि–एकादशीके दिन निराहार रहकर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा इसलिए हे पुण्डरीकाक्ष ! विष्णो ! मुझे आप शरणमें लीजिये ।। हेमाद्रिने सौर पुराणसे शैवोंके वास्ते कहा है कि–सावित्रीसे या शिवादि गायत्रीसे नामपूर्वक संकल्प करे। वराहसे कहा है कि –विद्वान् मनुष्य संकलपकरके पुष्पाञ्जलिका समर्पण करे। फिर उस जलको पीवे ।। पात्र के जलको तीन बार जपे हुए "ओं ननो नारायणाय" इस अष्टाक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके पान करे, जिसे पूरे फलकी इच्छा हो, यह कत्यायनका वचन है ।। माधवाचार्य्यने दशमी के वेध होनेपर रातमें वा मध्यरातमें अथवा उदयकालमें सङ्कल्प करे ऐसा कहा है। दशमीके सङ्ग दोषसे अर्ध रात्रिके आगे की चार प्रहरोंको बुद्धिमान मनुष्य संकल्प और पूजाके वास्ते छोड दे। विद्धा तिथीके उपवासमें भोजन कर दिनको छोड रातमें विष्णु भगवान्‌की पूजा करे और सङ्कल्प करे ऐसा नारदीय वचन है ।। पूजाको कहकर देवलने कहा है कि, भगवानके सम्मुख नियत होकर व्रती जागरण करे। कात्यायनने द्वादशीके दिन निवेदन करनेका मन्त्र कहा है कि , हे केशव ! अज्ञान रूपी अन्धकारसे अन्धे हुएके इस व्रत से सुमुख हो प्रसन्न हूजिये हे नाथ ! ज्ञान दृष्टिके देनेवाले हूजिये। त्याग-वृहस्पतिने द्वादशीके दिन निम्न लिखित बातोंका त्याग करने के लिये कहा है कि, अर्थात् दिन में सोना, दूसरे घरका भोजन, दूसरी बारका भोजन, मैथुन, कांसीकी वर्त्तन, शहद, उडद, तैल इन आठ चीजोंका त्याग करे ।। हेमाद्रि तथा ब्रह्माण्ड पुराणमें कहा है कि–फिरसे भोजन, स्वाध्याय, भार उठाना, परिश्रम करना, मैथुन और दिन में गाढी नींद सोना ये सब काम उपवासके फलको नष्ट करते हैं। विष्णुधर्ममें कहा है कि, उपवासके दिन असंभाष्यलोगोंसे बात करके भगवान्‌को अर्पित किया हुआ तुलसीदल या आँवलेको खाकर शुद्ध होता है ।। विष्णुपुराणमें कहा है कि, भोजनके बाद विष्णुको अर्पित किया हुआ तुलसीदल भक्षण करनेसे जो शुद्धि होती है वह एकसो चान्द्रायण व्रत करनेके फलसे भी अधिक है। इस व्रतको सूतकमें भी करना चाहिये क्योंकि विष्णुपुराणमें लिखा है कि, सूतकके होने और मृत्युके होनेपरभी द्वादशीके व्रतको न छोडना चाहिये। ऐसे अवसरपर त्यक्त दानादि कर्मको सूतक बीत जानेपर करे ।। मात्स्यपुराणमें कहा है कि, सूतकके समाप्त होनेपर मनुष्य स्नान करके भगवान् का पूजन कर, शास्त्रविधिसे दान देकर व्रतका फल पाता है। स्त्रियां रजोदर्शन होनेपर भी व्रत करें, क्योंकि पुलस्त्यने कहा है कि, स्त्री रजोदर्शन होनेके बादभी एकादशीको भोजन न करे। जब द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्र हो तो शुद्ध एकादशीका भी त्याग करके द्वादशीका उपवास करना चाहिये (त्याग काम्य विषय है) शुक्लपक्षकी हो या कृष्णपक्षकी, यदि द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्र हो तो दोनों दिन उपवास करके त्रयोदशीको पारणा करे ।। ऐसा नारदका वचन है। अब आठ महाद्वादशियोंको कहते हैं जो अधिक शुद्ध एकादशीसे संयुक्त हो वह उन्मीलिनी है वही शुद्ध द्वादशीके आधिक्यमें अंजुली होती है उनमें तीन वारोंतक सम्बन्धोंवाली उक्त त्रिस्पृशा, पर्वसे अधिक कालव्यापिनी होती हुई जो सम्पूर्णतया हो वही पक्षवर्धिनी, पुष्यनक्षत्रवाली जया, श्रवणयुक्ता विजया, पुनर्वसुयुक्ता जयन्ती, रोहिणीयुक्ता पापनाशिनी कहाती हैं। ये आठ महाद्वादशियाँ होती हैं। इन पूर्वोक्त द्वादशियोंमें पापक्षयके लिये और मुक्तिको इच्छासे उपवास करे। इसका मूल हेमाद्रिमें कहा गया है ।। द्वादशीके पहले पादको छोडकर पारण करना चाहिये। द्वादशीका पहला पाद "हरिवासर" होता है। इसलिये वैष्णव मनुष्य उस पादको बिता करही पारण करे। ऐसा निर्णयामृतमें विष्णुधर्मसे कहा है। यदि द्वादशी बहुत हो तोभी प्रातःकाल तीन मुहूर्त्त चले जानेपर पारण करना चाहिये। क्योंकि सब उपवासोंके लिये प्रातःकालही पारणका विधान है। यह एकादशीनिर्णय पूराहुआ ।। अब-शुक्लऔर कृष्णपक्षकी एकादशियोंका उद्यापन करनेकी विधि कहते हैं–हे अर्जुन ! देवताओंके प्रबोधसमयम

उद्यापन करे। विशेषकर मार्गशीर्षके महीनेमें माघमें या भीमतिथिके दिन उद्यापन करना चाहिये। उसकी विधि निम्नलिखित प्रकारसे है। दशमीके दिन एक समय भोजन करके दतुवन करे और इसप्रकार एकादशीको पवित्र होकर आचार्यका संवरण करे। संकल्प–गणेशजीका स्मरण करके मास पक्ष आदिको कहकर यदि किया हो तो किये हुए यदि न किया हो तो किये जानेवाले, शुक्ल हो तो शुक्ल एवं कृष्ण हो तो कृष्णा एकादशीके व्रतकी सांगतासिद्धिके लिए एवम् उसके संपूर्णफलकी प्राप्तिके लिए देश कालके अनुसार यथाज्ञान शुक्ल एकादशीके व्रतके उद्यापनको मैं करता हूँ उसका भंग होनेके कारण गणपतिपूजन, आचार्यवरण और पुण्याहवाचन भी करूं या कराऊँगा। इस संकल्पके पीछे षोडश उपचारों से गणेशपूजन करा पुण्याहवाचन करावे। यजमान–आप पुण्याह कहें, ब्राह्मण–हो पुण्याह, यजमान–आप स्वस्ति कहें, ब्राह्मण-तुम आयुष्यमानकी स्वस्ति हो, यजमान–आप ऋद्धि कहें, ब्राह्मण–कर्म ऋद्धिको प्राप्त हो, यजमान–श्री हो ऐसा आप कहें, ब्राह्मण हो श्री, यजमान–पूरे सौ वर्ष हों, ब्राह्मण–हों पूरे सौ, वर्ष, यजमान–शिव कर्म हो, ब्राह्मण–हो शिवकर्म, यजमान–गोत्रकी अभिवृद्धि हो, ब्राह्मण–हो गोत्रकी अभिवृद्धि, यजमान–प्रजापति प्रसन्न हो, ब्राह्मण–हो प्रजापति प्रसन्न। इसके बाद उद्यापनकर्ममें आचार्यका वरण करना चाहिये, रातको नियमपूर्वक उपवास करके आचार्यके साथ व्रती रहकर शक्तिके अनुसार जगद्गुरु विष्णुभगवान् का आराधन करे। गउओंके गोष्ठमें देवालयमें अथवा और किसी पवित्रजगहमें या घरमें चौरस आठ अंगुल ऊँची बेदी बनावे जो दो वितस्ति चौडी हो और उसपर काले तिल फैला दे। उसमें अष्टदलका सुन्दर कमल बनावे। और उसके बीच बहुत सुन्दर नीरन्ध्र नवीन कुम्भको स्थापित करे। काले तिलोंसे संयुक्त हो उसे काले वस्त्र से शोभित करे! उसमें दो पीपलके पत्ते रखकर पञ्चरत्न भी रखे और चारों तरफ संकर्षणादि नामोंको लिखि दे। फिर पवित्र होकर षोडशोपचारसे पूजन करे। आग्नेयादि चतुष्कोणमें गणमातृका आदिकी पूजनकरे। गणेश, मातृका, दुर्गा, क्षेत्रपाल आदिको चारोंकोणोंमें सावधान होकर रखे। उसी प्रकार शुक्लएकादशीके दिनभी वेदीको सफेद तिलोंसे पूरित करे। और सफेद वस्त्रसे वेष्टित कर बडी प्रसन्नताके साथ पूजन करे। चारों ओर केशव आदि नामोंसे वेदीको अङ्कित करे। सुवर्णके बने हुए भगवान्‌को पञ्चामृत से स्नान कराके स्थापित करे। गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे संयुक्त और पवित्रजलसे पूर्ण कुम्भपर स्थापित कर, चतुर्भुज भगवान् का लक्ष्मीजीके साथ आवाहन करे। पहले वरण किया हुआ आचार्य, सर्वतोभद्र मण्डलके देवताओंकी पूजा कर स्थापित किये हुए कलशपर देव सान्निध्यके वास्ते अग्निउत्तारणकी हुई विष्णुमूर्तिको स्थापित करके उसमें विष्णुका आवाहन करे, "ओं नमो" यहाँ से लेकर आवाहनके मन्त्र हैं कि –हे विष्णु भगवान् तेरे लिए नमस्कार है हे देवकीपुत्र! हे उत्तम परमेश्वर! तू कृष्ण है, तू अज है, अनादि है, विश्वात्मा है, सब लोकोंका पितामह है, क्षेत्रज्ञ है, त्रिकाल रहनेवाला है, विष्णु है, श्रीमान् पर नारायण है, तुम्ही सत्य पुरुष है। हे जगत्पते! तुम्ही अतीन्द्रिय है जो आपका सबसे प्रशस्त उत्कृष्ट सूक्ष्म तेज है उससे इस बेदीमें प्रविष्ट होजा। 'ओं भूः' यह व्याहृति है, पुरुषका आवाहन करता हूँ, हे विष्णो! यहाँ आ, यहाँ बैठ, पूजा ग्रहण कर, अच्छी तरह प्रसन्न होकर वरका देनेवाला हो जा।'ओं भुवः' पुरुषका आवाहन करता हूँ 'ओं स्वः' पुरुषका आवाहन करता हूँ (इन तीनों व्याहृतियोंका प्रसंग छान्दोग्योपनिषदमें आया है) प्रत्येक पश्चिम और उत्तर आदि दिशाओंके दलमें चार चार हजार स्त्रियों के सहित रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा और कालिन्दीका दक्षिण और पश्चिमोत्तर दलमें बीच में आवाहन कर; ईशानादि दिशाविभागमें शंख, चक्र, गदा और पद्मका आवाहन करे। उसके बाहर पूर्वपत्रोंमें अनुक्रमसे–विमला उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वा, सत्या; ईशाना आदि देवियोंको ग्रहोंके साथ पद्मके मध्यमें स्थापित करे। भगवान्‌के आगे वेदिकापर गरुडकी मूर्तिभी स्थापित करे। एवं उसका आवाहन कर पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे लोकपालोंको स्थापित करे। इसके बाद पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे नाममन्त्रोंसे केशवादिकों का आवाहन करेकि, केशवके लिए नमस्कार है, केशवका आवाहन करता हूँ। केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर इनबारहोंको शुक्ल एकादशीके दिन तथा संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, श्रीकृष्ण इन्हें कृष्ण एका-

दशीके दिन इसी प्रकार; आवाहन करके "तदस्तु" इससे उन्हें प्रतिष्ठित करके "अतो देवा" इस मंत्रसे विष्णुभगवान् तथा और बुलाये हुए देवताओंको नाम मंत्र से सोलहों उपचारों से पूजे आसन, पाद्य, अर्घ्य-आचमनीय, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती और प्रदक्षिणा दे। दोनोंही एकादशियों का एकही आचार्य्य हो, वो अष्टदल पद्मके दलोंमें पूर्वादिक्रम से एक जगह सब देवताओंको स्थापित करके पूजे। विष्णुसूक्तसे स्तुति करते हुए वैष्णव नाम मंत्रोंसे परिचर्य्या करे। अन्तमें नमः शब्द का प्रयोग करके वेदीके अन्दर प्रतिष्ठित भगवान् की मूर्तिकी पूजा करे। षोडशो-पाचारसे पूजा करते हुए मूर्तिको वहीं विराजमान रखे, विसर्जन न करे संगीतसे तथा नृत्यसे वा पुराणोंकी कथासे इतिहासोंसे जागरणकर रात्रिको समाप्त करे। प्रातःकाल स्नानादि कर्म करके शास्त्रवेत्ता चौबीस ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा करे। आचार्य्य के समान उनका उपचार करे। होम संख्याके अनुसार वेदी बनाकर उसपर प्रणीता स्थापन करे। अग्निके ध्यान आदि कर अन्वाधान करे। उसके लिये-कि शुक्ला वा कृष्णा एकादशीके व्रतके उद्यापन होममें देवता परिग्रहके लिये अन्यवाधान करूँगा ऐसा संकल्प कर " चक्षुषी आज्येन " यहाँ तक उच्चारण आदि कृत्य करे। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति विश्वेदेवा, ब्रह्मा पुरुष और नारायण इनको पुरुषसूक्तसे प्रत्येक ऋचान्तमें घृताहुति पूर्वक यजन करे। ऐसेही वासुदेव—बलदेव, श्री, विष्णु, अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति इन प्रधान देवताओंको खीरसे , केशववादि द्वादश देवताओंको घीमिश्रित खीरसे, विष्णुको खीरकी १०८ आहुति-से तथा प्रत्येक चार हजार स्त्री सहित रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती और कालिन्दीको; शंख , चक्र, गदा, पद्म, गरुडको; इन्द्रादि अष्टलोकपालोंको; विमलासे लेकर अनुग्रहा पर्यन्त देवताओंको तथा ब्रह्मादि देवता-ओंको एक एक आहुति दे। शेषसे स्विष्टकृतसे लेकर प्रणीताके प्रणयनतक कर्म करके अन्वाधानकी समिधोंसे हवन करे। पायस चरुकाश्रपण करके " पवित्रं ते" इस मंत्र से प्रापणका उद्धारण करना चाहिये। (स्विष्ट-कृत् हवनादिक पहिले कह चुके हैं। इस कारण विस्तारके साथ नहीं लिखते।)" ओं पवित्र ते विततं ब्रह्मण स्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतःअतप्ततनूनं तदानो अश्नुते शृताश इद्वहन्तस्तत्समासत ॥" सायण—हे मंत्रके स्वामी सोम ! आपका शोधक अंग सर्वत्र विस्तृत है तुम पीनेवालेके अंगोंको प्राप्त होते हो। पयोव्रत आदिसे जिनका शरीर सन्तप्त नहीं हुआ वे नहीं प्राप्त होते, परिपक्वही यागोंको करते हुए पवित्रको व्याप्त होते हैं ॥ यह मंत्र तप्तमुद्राधारणमें प्रमाण माना गया है। " मनासाका शास्त्रार्थ" इस नामके छोटे ट्राक्टमें हमने इसका अर्थ तप्तमुद्राके विषय में किया है। हे जगत् के अधिपति पुरुषोत्तम ! आपका सुदर्शन अङ्कन-द्वारा सब जगह फैला हुआ है आप सबके शरीरमें व्यापक हैं। शंखचक्रोंसे जिसका शरीर नहीं तपाया गया वो अपरिपक्व उसको नहीं पाते। जो तपायेगये हैं एवम् धारण करते हैं वे भगवान् के शरण होकर उत्तम पदको पाते हैं ॥ पायससे कुछ उद्धृत कर लिया जाय तो उसे प्रापण कहेंगे। आज्य संस्कार आदिक आज्य भागके अन्ततक करके यह उपकल्पित हवनीय द्रव्य देवताओंके अनुसार उपकल्पित हो, पांच अनादेशकी आहुतियोंको घीसे हवन करके नारायण पुरुषको पुरुषसूक्तकी एक एक ऋचासे घीकी आहुति देनी चाहिये। ओं वासुदेवके लिये " स्वाहा" यह आहुति है, बलदेवके लिये यह आहुति है,, श्री के लिये यह आहुति है, विष्णुके लिये यह आहुति है। (विष्णोर्नुक यह १०२ पेजमें कह चुके हैं)" ओं तदस्य प्रियमभिपाथो अस्याम् नरो यत्र देवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य सहि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥" हम उसके प्यारे अन्नको चारों ओरसे प्राप्त होते हैं जहाँ देवताओं से योग रखनेवाले मनुष्य आनन्दको प्राप्त होते हैं उसका सत्यही बन्धु है उसके परम पदमें आनन्दका मेघ बरसता रहता है। "ओम् प्रतद् विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः, यस्योरुषु विक्रमेषु अधिक्षियन्ति भवनानि विश्वा।" हे जगदीश। आप सिंहभी नहीं कहे जा सकते किन्तु आपका कुछ अंग सिंह जैसा होनेके कारण सिंहकी तरह भयंकर हो रहे हो मुष्टि लगतेही आप खंभसे निकल पडे सो क्या उसमें बैठे थे। आपने नाखूनों से ही उसे मार दिया आपने बुरीतरह उसे मारा, जिस तीनों बडे पालती आदिमें आज मैं मरे हुए असुर राजको देख रहा हूँ इसने मुझे बडा सताया था अथवा जब आप वामन अवतार लेकर तीन पैंड़से सब कुछ नापलेंगे तब फिर मैं आपको मनानेका यत्न करूँगा। "ओम् परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्व मन्व मन्वश्नुवन्ति उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देवत्वं

परमस्य वित्से ! " सबसे उत्कृष्ट आप शरीरकी मात्रा से बढे तुम्हारी महिमाको कोई नहीं पासकता आपके हम दोनों लोकों को जानते हैं । हे विष्णु ! हे देव ! आप इसका पर जानते हैं । 'ओम् विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्। ध्रुवासो अस्य कीरयो जानास उरुक्षितिं सुजनिमाचाकार ।" यह विष्णु इस पृथिवीको निवासके लिये वा आसनके लिये नाप गये । मैं ऐसा मानता हूँ कि, यह वामनका कार्य्य देवता और मनुष्यके कल्याणका था इसके स्तुति करनेवाले जन नित्य हो जाते हैं यानी दिव्य सूरियोंमें स्थान पाते हैं । इसने असुरोंका संहार करके अवतारादिक लेकर भूमिको दिव्य बनादिया ।। "ओम् त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतर्चं संमहित्वा, "प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ।" इस देवने इस पृथिवीको तीनवार पदाक्रान्त किया । वो महामहान् है । उनकी प्रार्थना करनेवाली अनेको ऋचाएं हैं । वो बलवानों का भी बलवान है । इस स्थविरका नामही बडा तेजस्वी है । इन मंत्रोंसे और व्याहृतियोंसे खीरसे हवन करके, यदि शुक्ला एका दशी हो तो केशव आदि द्वादश नामोंसे, एवं कृष्णा हो तो संकर्षण आदि द्वादश नामोंसे, यदि दोनोंका एक आचार्य और एकही स्थण्डिल हो इस पक्षमें २४ कोही ये नाममंत्रोंसे घी मिली हुई खीरसे हवन करना चाहिये पीछे विष्णु भगवान्को १०८ खीरकी आहुतियाँ देकर फिर चार चार हजार स्त्रियोंकी टोलियोंकी अधिपाओं रुक्मिणी आदियोंको एवम् शंख आदिकोंको लोकपालोंको तथा विमला आदिके देवताओं एवम् ब्रह्मादिक देवताओंको एक एक आहुति देनी चाहिये । इसके बाद प्रापणके लिये प्रार्थना करनी चाहिये–सृष्टिके रचनेवाले सबके पहिले पुराण पुरुष एक तुझ नारायणका यजन करते हैं, करनेके योग्य मैंने एक भाग किया है, हे जगत्के अधीश्वर ! हव्यको ग्रहण कर ।। इससे प्रापणका निवेदन करके उपस्थान करे ! पीछे तीनवार या चार वार प्रदक्षिणक्रमसे अग्निकी और वेदिकाकी प्रदक्षिणा करके "ओम् भिन्धि विश्वा अपद्विषः परिबाधो जही मृधः वसुस्पार्हं तदा भर" हमारे सारे वैरियों और वैरोंको बुरी तरह भेदिये, आप हमारी बाधाओंके बाधनेवाले हैं इस कारण युद्ध या युद्धकी बाधाओंको मिटा दीजिये जिस धनकी लोग चाह किया करते हैं उस धनको हमारे घरमें खूब भर दीजिये, इससे घोटू टेककर ध्रुवसूक्त या पुरुषसूक्तका जप करना चाहिये । पुरुषसूक्त तो हम पहिलेही कहचुके हैं । अब हम ध्रुवसूक्तको भी कहते हैं । ऋग्वेद अध्याय ८ का इकत्तीसवां सूक्त ध्रुवसूक्त है । श्रीमान् चतुर्थीलालजीने भी इसेही ध्रुव सूक्त करके माना है । इसमें छः मंत्र हैं । हम उनको यहांही लिखते हैं । " ओम् आत्वा हार्षमन्तरेऽधिध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिःविशस्त्वासर्वा वाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ।। १ ।। मैं तुझे सबके बीचमें प्राप्त करता हूं जो न चलायमान ही ऐसा ध्रुव बनकर विराजमानही तुझ सब प्रजा चाहे तेरे प्रकाशशील लोकका कभी पतन न हो ।। ओम् इहैवेधि मापच्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः । इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्र मुधारय ।।२।। तुम यही बढो इससे नीचे ऊपर मत जाना जैसे कि अचलपर्वत होता है ऐसेही अचल बनो. इंद्रियोंके अधिपति तथा–"इन्द्रमित्याचक्षते परोक्षप्रिया इव हि देवाः" उसे परोक्षसे प्यार करनेवाले देव इन्द्र कहते हैं यानी परमात्माकी तरह ध्रुव तू ठहर यहां ही प्रकाश शील तारोंको धारण कर । ओम इममिन्द्रोऽअदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा, तस्मै सोमोऽअधिब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ।। ३ ।। जिसका फल कभी न मिटे ऐसी जो हवि दी थी उसीसे परमात्माने ध्रुवको उतने ऊँचे स्थानपर पहुंचाया । सोमने भी उससे प्रेममयी बातें कीं । प्रसङ्गसे यहां नारदका बोध होता है । भगवान्ने भी उससे बातें कीं । यानी वेदके अधिपति भगवान्ने उसके मुखसे शंख लगाकर खूब स्तुति कराई ।। ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवापृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे, ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ।। ४ ।। द्यौ ध्रुवा है । पृथिवी ध्रुवा है । ये पर्वत ध्रुव हैं । यह सब संसारभी सदा ऐसाही चला आ रहा है इसलिए यह भी ध्रुवही है । बहुत समयतक राज्य करनेवाला राजा ध्रुव भी प्रजाका ध्रुवराज है ।। ओं ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः; ध्रुवंत इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रंधारयतां ध्रुवम् ।। ५ ।। आपका राजा ध्रुव वरुण है । देव बृहस्पति ध्रुव हैं आपके इन्द्रदेव अग्नि देवभी ध्रुव है । आप अपने राष्ट्रको नित्य धारण करिये ।। ओं ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽभिसोमं मृशामसि, अथोत इन्द्रः केवलीर्विशोबलिहृत स्करत् ।। ६ ।। हम ध्रुव हविसे ध्रुव सोमका अभिमर्षण करते हैं । इन्द्रने केवल प्रजाको बलि हरनेवाली बनाया ।।" पीछे

प्रत्येक दिशामें इन मन्त्रोंसे आठ आठ पेंड चले कि–कृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, शरण्य, अप्रमेय और गोविन्दके लिए बारबार नमस्कार है । स्थूल, सूक्ष्म, व्यापक, अव्यय, अनन्त, जगत्के धाता, ब्रह्म, अनन्तमूर्ति अव्यक्त अखिलेश, चिद्रूप, और गुणात्माके लिए नमस्कार है । मूर्त, सिद्ध, पर, परमात्मा, देवदेव, वन्द्य, पर, परमेष्ठी विश्वके कर्ता, गोप्ता उसके संहर्ता जो आपहैं आपके लिए नमस्कार है । पीछे निवेदित किये हुए प्रापणको शिरपर रखकर घोषणा करे कि, वैष्णव कौन हैं यह ऊंचे स्वरसे कहना चाहिये । वहां जो दूसरे वैष्णव बैठे हों उन्हें कहना चाहिये कि, हम वैष्णव हैं हम वैष्णव हैं । उन सबोंको हवि बांटकर, "ओं नमो भगवते वासुदेवाय भगवान् वासुदेवके लिए नमस्कार" इस मन्त्रसे इस अमृतका में प्राशन करता हूं ऐसा कहकर प्राशन और आचमन करके या तो आचार्य्य या यजमान–'सिद्धिके लिये स्वाहा (यह आहुति है) इससे आज्य हवन करना चाहिये । "ओं यत इन्द्र भयामहे ततो नोऽअभयं कृधि, मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतिर्भिविद्विषो विमृधो जहि । हे इन्द्र ! जिस ओरसे हम डरते हैं उसी ओरसे हमें अभय कर दीजिये । हे मघवन् ! हमें अपनी रक्षाओंसे बलवान् बना दो, एवम् वैरियोंके युद्ध द्वेष एवम् उनसे होनेवाले अनिष्टोंको हमारे समीप भी मत आने दीजिये, उन्हें नष्ट कर दीजिये । इस मंत्रसे अपनेको अभिमंत्रित करके स्विष्टकृत् आदिका होम शेष जो हो उसे पूरा करदे । उत्तर पूजा कर–होमान्तमें, दूध देनेवाली निरोगी बच्चेसहित–कालेरंगकी गौ कालेवस्त्रके साथ तथा कांसीके वर्त्तनकीदोहनी सहित दक्षिणापूर्वक व्रतकी समाप्तिके लिये आचार्यको दे । अनेक प्रकारके भूषण अनेक प्रकारके वस्त्र चौबीस प्रकार के पक्वान्नभी बडी दक्षिणाके साथ दे । यदि अपना भला करना हो तो व्रतका उद्यापन करे । बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रितकर प्रत्येक ब्राह्मणको नामलेकर पूजे तथा उन्हें यज्ञोपवीत दक्षिणासहित कलश, मिठाई फल और वस्त्र दे । फिर बडी भक्तिसे उन्हें पक्वान्नसे भोजन करावे । साथही दूसरोंको भी यथाशक्ति भोजन करावे । पीछे ब्राह्मणोंसे कहे कि, मेरा व्रत संपूर्ण हो । तब ब्राह्मण कहें कि, आपका व्रत पूरा हो जाय, पीछे आचार्यसहित व्रती वैष्णवसूक्तोंका जपकर तथा बारबार प्रणाम करके ओं भूः पुरुषमुद्वासयामि भूः यह तो व्याहृति है में पुरुषका उद्वासन (विसर्जन) करके "इदं विष्णुः" इससे पीठ आचार्य को देकर पीछे बन्धुजनोंके साथ स्वयं भोजन करे । यह बौधायनकी कही हुई शुक्ला और कृष्णा दोनों एकादशियोंकोके व्रतकी विधि पूरी हुई ।। पूजाविधि–ब्रह्मपुराणमें लिखी हुई है कि, दोनोंपक्षोंकी एकादशीको एकाग्रचित्त हो निराहार रहे । विधिसे स्नान करे तथा उपवासपूर्वक जितेंद्रिय रहे श्रद्धा भक्तिके साथ सावधान हो विधिपूर्वक विष्णुका पूजन करे । भक्तिके साथ सावधान हो विधिपूर्वक विष्णुका पूजन करे । पूजामें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि षोडशोपचारोंके प्रयोग करे । तथा जप होम प्रदक्षिणा, नानाप्रकारके स्तोत्र, सुंदर मनोहर सङ्गीत आदि दण्डवत् प्रणाम और उत्तम जय शब्दोंसे इस प्रकार वैध पूजनकर रात्रिमें जागरण करे तो मनुष्य निःसन्देह विष्णुलोकका अधिकारी होता है । अथोद्यापनविधिः–अर्जुन बोले; हे कृपानिधे ! व्रतका उद्यापन कैसा होना चाहिये और उसकी क्या विधि है ? उसको आप कृपाकरके मुझे उपदेश दें । श्रीकृष्ण बोले कि, हे अर्जुन ! में तुम्हें उसकी विधि बतलाता हूं । शक्तिमान् मनुष्य हजार सुवर्ण मुद्रा और असमर्थ एक कौडीभी यदि श्रद्धासे दें तो वे उन दोनोंका फल एक समान है, यदि शक्ति हो तो दुगुना दे जैसा मध्यमविधिमें (कहा है) जितना बतलाया है यदि उससे आधाभी अशक्त मनुष्य दे दे तो दानका पूरा फल पाता है । उसकी विधिको में कहता हूं । हे कौरवश्रेष्ठ ! उद्यापनके बिना, कष्टसे किये हुए व्रत भी निष्फल हैं । जब देवताओंके जागरणका समयहो उस समय उद्यापन विधि करे । मार्गशीर्षमें अथवा भीमतिथि पर दशमीतिथिके कुछ दिन शेष रहनेपर रातमें गुरुके घर जाय और एकादशीके दिन शक्तिपूर्वक गुरुकी पूजाकरे । एवं उसके चरणोंको शिरसे लगाकर प्रार्थना करे । गुरु पुण्यदेशमें उत्पन्न होनेवाला, शान्त; सर्वगुणसम्पन्न, सदाचारी, वेदवेदांगोंका जाननेवाला हो । उससे कहे कि, गुरु महाराज ! मेरा यह हरिवासरसे सम्बन्ध रखनेवाला व्रत जिस तरह संपूर्ण हो ऐसा उपाय कीजिये । दन्तधावनपूर्वक उसके आगे नियम करे कि; मैं एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीको भोजन करूंगा । हे पुण्डरीकाक्ष ! भगवान् ! मेरे आप शरणहों, हे पार्थ ! प्रातःकाल सावधानमनसे स्नान कर पाखंडी और पतित लोगोंका संगमदूरकरे । नदी आदिके शुद्ध जलमें मन्त्रपूर्वक स्नान कर पितरोंका तर्पण करे और विष्णु भगवानकी पूजाकरे । कीडे या बालअस्थि आदिसे वर्जित जगहपर गोबरसे लीप कर है

भूप ! अनेक रंगोंसे सर्वतोभद्र बनावे जो कि सब कर्मोंमें पूजित है आठ अंगुल ऊँची चौरस और दो बितस्ति चौडी वेदी करे, उसे अक्षतोंसे परिपूर्णकर अष्टदलकमल लिखे । उसपर नवीन, सुन्दर कलश स्थापित करे अथवा चावलोंकाही अष्टदल कमल बनावे । चांदी या ताम्बेका उसपर भरा हुआ कलश रखे । उसपर भगवान्‌की सुवर्णसे बनीहुई मूर्तिको लक्ष्मीजी सहित विराजमान करे । चावल यज्ञोपवीत सुवर्ण और वस्त्रसे संयुक्त तथा रुद्राक्षमाला, शंख, चक्र, गदा आदिसे विभूषितकर भगवान्‌की यथाशक्ति सुवर्ण पुष्पोंसे तथा ऋतुके पुष्पोंसे पूजा करे हे परंतप ! चौवीसों तिथियोंमें भक्तिपूर्वक क्रम क्रमसे २४ नैवेद्योंको अर्पण करे । हे परंतप ! चौवीसों तिथियोंमें भक्तिके साथ क्रमसे चौवीस नैवेद्य दे अथवा जब उद्यापन हो तबही इच्छानुसार मोदक, गुडक, चूर्ण, घृतके पूरे, मांडे, सोहालिकादिक, सारसेवा, सक्तु, बडे, पायस, दुग्ध, शालि, दध्योदन, इंडरीक, पूरी, अपूप, गुडके लड्डू, शर्करा सहित तिलपिष्ट, कर्णवेष्ट, शालिपिष्ट, रंभाफल, घृतसहित मूंगका सार, गुडभात इस नैवेद्यको क्रमसे दे अथवा अन्तिम दिनसबको बनावे । पूजाके नाम--चरणोंमें दामोदर-गोडोंमें माधव, गुह्यस्थानमें कामपति, कटिमें वामन, मूर्त्ति, नाभिमें पद्मनाभ, उदरमें विश्वमूर्त्ति, हृदयमें ज्ञानगम्य, कंठमें श्रीकण्ठसञ्ज्ञी, बाहुमें सहस्रबाहु, नेत्रोंमें योगयोगी, ललाटमें उरुगाय, नाकमें नाकसुरेश्वर, कानमें श्रवणेश, चोटीमें सर्व कामद, शिरमें सहस्रशीर्ष, सर्वाङ्गमें सर्वरूपी भगवान्, हृदयमें जगन्नाथका ध्यान करके, नारियलसे या बिजौरसे विधिपूर्वक चावल,फूल, जल, चन्दन आदिसे व्रतपूर्त्ति करनेवाले पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा अर्घ्य दे । रातमें जागरण करे और अनेक प्रकारके गायन वाद्यका आयोजन करे । उसने पृथ्वीका दान, गयामें पिण्डदान एवं कुरुक्षेत्रमें दानकर दिया जिसने हरिके आगे जागरण किया नाच, गाना वीणा आदि बाजोंको बजाते या पुराणश्रवण जो लोग करते हैं वे सब विष्णुके प्यारे हैं । शास्त्रसे अथवा भक्तिसे पवित्र या अपवित्र ही रहकर जो विष्णुका जागरण करनेवाले हैं वे सब करोडों पापोंसे मुक्त होते हैं । भोजन किए हुए या न किए हुए जो मनुष्य भगवान्‌के जागरणमें उपस्थित होता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है । भगवान्‌के मन्दिरमें जागरण करनेके लिए जो मनुष्य जितने कदम चलता है वह उतनेही अश्वमेध यज्ञ करता है । पैरोंकी धूलकी कण जागरण करनेवाले मनुष्यकी जो पृथ्वीमें गिरती हैं उतनेही वर्ष तक वह मनुष्य स्वर्गमें निवास करता है । कोटि कोटि युगोंसे किए हुए सुमेरु पर्वतके समान पापोंको भी हरिभगवान्‌का जागरण नष्ट कर देता है । उस रातमें हरिभगवान्‌को आवाहन करके मनसे स्मरण करे और प्रातःकाल होतेही स्नान करके ब्राह्मणोंको बुलावे । जो संख्यामें २४ और शास्त्रपारङ्गत हों, उनके द्वारा जप, होम, पूजा आदि विधिपूर्वक करे । "इदं विष्णु" इस मन्त्रकी १०८ आहुतिसे होम करना द्विजातियोंके लिए प्रशस्त मानागया है । तथा शूद्रोंके लिए अष्टाक्षर मन्त्रका विधान है । हे अर्जुन ! अनिमन्त्रित ब्राह्मणोंको अलग अलग अनेक प्रकारके वस्त्र, वर्त्तन, आसन, जूती आदि नवांग वस्तुओंको दे । अथवा यथा शक्ति द्वादश चीजोंको दे । उन सपत्नीक ब्राह्मणोंको पुष्पमाला आदिसे पूजकर पक्वान्न और जलसे संयुक्त १२ कलशोंको देकर भो जन करा भक्तिसे विचरे । सब इच्छाओंकी पूर्ण करनेवाली एक कपिला गौको स्वर्ग मोक्षकी सम्पूर्णताके लिए दे । जिसको देते समय "नमस्ते कपिले देवि" इस श्लोकका उच्चारण करे । इसका अर्थ यह है कि हे कपिले देवि ! तेरे लिए नमस्कार है । तू संसारसागरसे पार करनेवाली है । मैंने तुझे ब्राह्मणके लिए दे दिया है, इससे भगवान् मुझपर प्रसन्न होजायँ, सर्वतो भद्रमण्डलके और विष्णुभगवानके निकट सपत्नीक गुरुकी पूजा करे और उसको वस्त्र, भूषण, भोजन, प्रणाम आदिसे प्रसन्न और सन्तुष्ट करे । और भी उद्यापनको समाप्त करते हुए हे अर्जुन ! कृपणताको त्याग कर अनेक प्रकारकी इष्ट वस्तुओंको यथाशक्ति प्रदान करे । जलदान और भूमिका दान करे । फिर पुरुषोत्तम भगवान्‌के आगे हाथ जोडकर मयाद्यास्मिन् व्रतो" आदि श्लोकोंको "सर्वं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते" इस श्लोकतक उच्चारण करे । इन श्लोकोंका अर्थ यह है कि, हे विभो ! मैंने जो अपने व्रतमें अपूर्णता की वो अब आपकी कृपासे हे जनार्दन ! परिपूर्ण होजाय, मेरी भक्ति तेरेमें ही सदा रहे । हे दामोदर ! हे प्रभो ! मेरी पुण्यमें बुद्धि रहे, मैं सज्जनोंकी सेवा करता रहूं, यही धर्मफल हो, मेरे व्रतमें जो जप तपमें त्रुटि हो हे रमापते ! वो सब आपकी कृपासे संपूर्ण होजाय, पीछे प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे । इसके बाद विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न होजायें ऐसे बोलकर मूर्त्तिसहित

मण्डल, भेंट और दक्षिणा आचार्यको दे । एवं सब लोगोंको भोजन कराके सन्तुष्ट कर विसर्जित करे । और उनकी आज्ञासे अपने बन्धुओंके साथ पारण करे । इस एकादशीव्रतको यौवना श्वनामके राजाने जैसा पहिले किया था उसको मैंने यथाविधि तुमसे कहदिया है । हे अर्जुन ! यह तुम्हारी प्रीति है, एवं भक्ति तथा तुझपर कृपा है जिससे मैंने तुमको यह प्रकट किया । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस भयनाशक व्रतको करता है वह दाह प्रलयवर्जित विष्णुलोकको प्राप्त होता है । हे अर्जुन ! तुमको मैंने दोनों एकादशीके उद्यापनकी विधि बतला दी । इसकी अधिक प्रशंसा करके मैं तुम्हें क्या बताऊं ? समझलो कि, इस त्रिलोकीमें इससे अधिक और कोई उत्तम वस्तु नहीं है । इस उद्यापनके उपलक्ष्यमें गोदान या भूमिदान दिया जाय तो उसका फल गोरोमकी संख्याके बराबरके युगोंतक बना रहता है और दाता लोग तबतक विष्णुलोकमें एकादशीकी कथाका श्रवण करें वे भी निःसन्देह स्वर्गको जाते हैं । इस प्रकार निवास करते हैं जो लोग इस अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान्‌के परम अतद्भु वचनोंको सुनकर बडा सुखी और आनन्दित हुआ । उद्यापनकी विधि समाप्त हुई ।।

गोपद्मव्रतोद्यापनम्

अथाषाढशुक्लैकादश्यां गोपद्मव्रतोद्यापनविधिः ।। तत्र पूजाविधिः– चतुर्भुजं महाकायं जाम्बूनद समप्रभम् ।। शङ्खचक्रगदापद्मरमागरुडशोभितम् ।। सेवितं मुनिभिर्देवैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः।।एवं विधं हरिं ध्यात्वा ततो यजनमारभेत्।।ध्यानम्।। पुरुषोत्तम देवेश भक्तानामभयप्रद ।। संस्निग्धं वरदं शान्तंमनसावाहयाम्यहम् ।। आवाहनम् ।। सुवर्णमणिभिर्दिव्यैः खचिते देवनिर्मिते ।। दिव्यसिंहासने स्निग्धे प्रविश त्वं सुराधिप ।। आसनम् ।। गङ्गोदकं सुरश्रेष्ठ सुवर्णकलशस्थितम् ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं गृहाण रमया सह ।। पाद्यम् ।। अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रे स्थितं जलम् ।। अर्घ्यं गृहाण भो देव भक्तानामभयप्रद ।। अर्घ्यम् ।। देवदेव नमस्तुभ्यं पुराणपुरुषोत्तम ।। मया दत्तमिदं तोयं गृह्णीष्वाचमनं कुरु ।। आचमनम् ।। पयो दधि घृतं देव मधुशर्करया युतम् ।। पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। नदीनां चैव सरसां मयानीतं जलं शुभम् ।। अनेन कुरुभो स्नानं मंत्रैर्वारुणसंभवैः ।। स्नानम् ।। वस्त्रयुग्मं समानीतं पट्टसूत्रेण निर्मितम् ।। सूक्ष्मं कार्पासतन्तूनां सुवर्णेन विराजितम् ।। वस्त्रम् ।। नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ।। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम ।। यज्ञोपवीतम् ।। केयूरमुकुटैर्युक्तान् नूपुरैरङ्गुलीयकैः ।। मयाहृतानलङ्कारान् गृहाण मधुसूदन ।। आभारणानि ।। चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यगुरुसंयुतम् ।। कर्पूरेण च संमिश्रं स्वीकुरुष्वानुलेपनम् ।। चन्दनम् ।। शतपत्रैः कर्णिकारैश्चम्पकैर्मल्लिकादिभिः ।। पुष्पैर्नानाविधैश्चैव पूजयामि सुरेश्वर ।। पुष्पाणि ।। दशाङ्गो गुग्गुलद्भूतः सुगन्धिश्च मनोहरः ।। आघ्रेयो देवदेवेश धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। धूपम् ।। एकार्तिकं सुरश्रेष्ठ गोघृतेन सुवर्तिना ।। संयुक्तं तेजसा कृष्ण गृहाणादित्य दीपितम् ।। दीपम् ।। अन्नं च पायसं भक्ष्यं सितालेह्यसमन्वितम् ।। दधिक्षीरघृ-

तैर्युक्तं गृहाण सुरपूजित ।। नैवेद्यम् ।। नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् ।। कर्पूरखदिरैर्युक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् नीराजनं गृहाणेश पञ्चवर्तिभिरावृतम् ।। तेजोराशे मया दत्तं लोकानन्दकर प्रभो ।। नीराजनम् ।। अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि अर्पयामि जगत्पते ।। गृहाण सुमुखो भूत्वा जगदानन्ददायक ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। यानि कानीति प्रदक्षिणाम् ।। नमस्ते देवदेवेश नमस्ते गरुडध्वज ।। नमस्ते विष्णवे तुभ्यं व्रतस्य फलदायक ।।नमस्कारान्।। मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।। प्रार्थना ।। कृतस्य कर्मणः साङ्गता-सिद्धयर्थं वायनप्रदानं करिष्ये इति सङ्कल्प्य--परमान्नमिदं दिव्यं कांस्यपात्रेण संयुतम् । वाणकं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। वायनम् ।। इति पूजा समाप्ता ।। अथ कथा--व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।। पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तयोनिधिम् ।। १ ।। सूत उवाच ।। द्वापरे द्वारवत्यां च नारदः कृष्णदर्शनात् ।। उत्साहेनाभ्यगात्तत्र ददर्श यदुनन्दनम् ।। २ ।। पूजितश्चैव कृष्णेन विष्टरादिभिरादरात् ।। ततः प्रोवाच तं विष्णुर्नारदं लोकपूजितम् ।। ३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु लोकज्ञ देवर्षेभुवने विचरन् सदा ।। लोकान्तरेषु चरितं यद्विशेषं वदस्व मे ।। ४ ।। नारद उवाच ।। भगवन्देवदेवेश भक्तोऽस्मि तव चाङ्कितः ।। तत्राश्चर्यमिदं वक्ष्ये धर्मस्य सदसि स्थितम् ।। तत्र सर्वे समासीनाः सुरा इन्द्राश्चतुर्दश ।। ५ ।। तथैकादश रुद्राश्च आदित्या द्वादशापि च ।। वसवोऽष्टौ तथा नागा यक्षराक्षसपन्नगाः ।। ६ ।। ते सर्वे यमम्माहुश्च स्थितं सिंहासने शुभे ।। मानुष्यं दुन्दुभेश्चर्माच्छादनार्थं वदस्व नः ।। ७ ।। यम उवाच ।। चातुर्मास्यव्रतं चैकं संक्रान्तिव्रतमेव च ।। न कुर्वन्ति च या नार्य्यस्तासामाच्छादनं त्वचा ।। ८ ।। कुर्वन्तु दुन्दुभेश्चास्य विचरध्वं महाभटाः ।। ते तस्य वचनं श्रुत्वा भटाः प्रविविशुर्भुवम् ।। ९ ।। स्वामिन्निदं महाश्चर्यमतस्त्वां प्रवदामि च ।। तच्छ्रुत्वा त्वरितं कृष्णः प्राह लोकान् पुरः स्थितान् ।। १० ।। तथा कुर्वन्तु लोकाश्च नार्यः पुर्यं वसन्ति हि ।। तच्छ्रुत्वा चरितं कृष्ण नारीभिर्नगरेषु च ।। ११ ।। कृष्णाज्ञया कृष्णदूताः प्रोचुस्ते सर्वयोषितः ।। पुरः सराः प्रकुर्वन्त्यो नगरस्थाश्च योषितः ।। १२ ।। अन्यत्र यत्र कुत्रापि ऊचुस्ता यदुनन्दनम् ।। त्वत्सोदरीं विना स्वामिन्नान्या नार्योऽत्र स[1]न्ति हि ।। १३ ।। तच्छ्रुत्वा भयसंत्रस्तः सोदरीं प्रत्यभाषत ।। कृष्ण उवाच ।। सुभद्रे किं करोषीह आ[2]गता यमसेवकाः ।। १४ ।। व्रतं यन्न कृतं भद्रे चैकं पुण्योद्भवं पुरा ।। सुभद्रोवाच ।। सर्वव्रतान्यहं कृष्णाकार्षमत्र न संशयः ।। १५ ।। नोचेत्त्वत्सोदरी न स्यां योषि-

१ व्रतमकुर्वत्यइतिशेषः । २ आगता इति शेषः ।

च्चाप्यर्जुनस्य च ।। न स्यां माताऽभिमन्योर्वै यमदूताः कथं विभो ।। १६ ।। कृष्ण उवाच ।। कुरु त्वं भगिनी मेऽद्य व्रतमेकं शुभप्रदम् ।। १७ ।। गोपद्ममिति विख्यातं व्रतं लोकेषु विश्रुतम् ।। सूतेन कथितं पूर्वमृषीणां हितकाम्यया ।। नैमिषे हिमवत्पार्श्वे सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।। १८ ।। तत्र सूतोऽगमद्द्रष्टुं मुनीनां यज्ञमुत्तमम् ।। तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे हर्षिताश्च मुहुर्मुहुः ।। १९ ।। अर्चितश्च ततः सर्वैरर्घ्यादिभिर्यथाविधि ।। अभ्यर्च्य सूतं तं विप्रा ऊचुस्ते प्रीतिपूर्वकम् ।। २० ।। ऋषय ऊचुः ।। भवांल्लोकस्य धर्मज्ञो भक्तानां ज्ञानसाधनम् ।। समर्थं सर्वमुक्तीनां सर्वसौभाग्यकारकम् ।। २१ ।। कृपया मुनिशार्दूल कथयस्वोत्तमं व्रतम् ।। सूत उवाच ।। शृणुध्वमृषयः सर्वे व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। २२ ।। गोपद्ममितिविख्यातं सर्वपापहरं परम् ।। सर्वदुःखोपशमनं सर्व संपत्प्रदायकम् ।। २३ ।। यमस्य दण्डनं यस्माद्दूरीकृतमनुत्तमम् ।। सुवासिन्यास्तु सौभाग्यपुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ।। २४ ।। ऋषय ऊचुः ।। कस्मिन्मासि कथं कार्यं किं फलं कस्य पूजनम् ।। केन चीर्णं पुरा साधो तत्सर्वं कथयस्व नः ।। २५ ।। सूत उवाच ।। आषाढशुक्लपक्षस्य एकादश्यां विशेषतः ।। तदारभ्य कार्तिकस्य द्वादश्यन्तं व्रतं चरेत् ।। २६ ।। गोष्ठे च शुद्धे गोस्थाने गोमयेनोपलिप्य च ।। त्रयस्त्रिंशच्च पद्मानि कारयेद्व्रीहिपिष्टकैः ।। २७ ।। शोभयेत् पञ्चरङ्गैश्च गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ।। तत्संख्यया च कर्तव्या नमस्कारप्रदक्षिणाः ।। २८ ।। तत्संख्यया ह्यपूपांश्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। वायनं द्विजवर्याय प्रथमे वत्सरे शुभम् ।। २९ ।। द्वितीये वत्सरे दद्यात् पायसं सुविनिर्मितम्[3] ।। तृतीये मण्डकान्दद्याच्चतुर्थे गुडमिश्रितान् ।। ३० ।। पञ्चमे धारिकां दद्यात् पूर्णे उद्यापनं चरेत् ।। एकादश्यामुपवसेद्दन्तधावनपूर्वकम् ।। अभ्यङ्गं तु प्रकुर्वीत स्वार्चितैर्ब्राह्मणैः सह ।। ३१ ।। मण्डपं कारयेत्तत्र कदलीस्तम्भमण्डितम् ।। ३२ ।। नानापुष्पैश्च शोभाढ्यं मखरं तत्र कारयेत् ।। तन्मध्ये सर्वतोभद्रं पञ्चरङ्गैः समन्वितम् ।। ३३ ।। पुण्याहं वाचयित्वा तु प्रतिमायां यजेद्धरिम् ।। कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्धार्द्धेन वा पुनः ।। ३४ ।। माषमात्रसुवर्णेन वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। आचार्यंवरयित्वा च कलशं स्थापयेत्ततः ।। ३५ ।। लक्ष्मीनारायणं स्थाप्य सौवर्णेन प्रकल्पितम् ।। ब्रह्माद्यावाहनं तत्र पूजयेद्धूपदीपकैः ।। ३६ ।। द्वादशैव तु नामानि प्रत्येकं पूजयेद्व्रती ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।। ३७ ।। ततः प्रभाते उत्थाय स्नात्वा होमं तु कारयेत् ।। सतिलाज्यसमिद्द्रव्यं हुनेद्द्वादशनामभिः ।।३८।। पायसं च शतं चाष्टौ हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ।।

१ तथापि भगिनि त्वं हि व्रतमकं चरस्व हेति पाठः । २ मननशीलानां मध्ये श्रेष्ठ । ३ निर्मितायामिति शेषः ।

वत्सेन सहितां धेनुमाचार्याय निवेदयेत् ।। ३९ ।। विप्रान्पञ्चसपत्नीकान् भोजयेत्षड्रसैर्व्रती ।। भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धमेकाग्रकृतमानसः ।। ४० ।। अन्यानपि यथाशक्त्या ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।। कृत्वा चेदं व्रतं पुण्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।। ४१ ।। अन्ते स्वर्गपदं गच्छेत्सर्वपापविवर्जितः ।। ऋषय ऊचुः ।। त्वत्प्रसादात्कृतार्था भो गच्छामः स्वाश्रमान् वयम् ।।४२ ।। प्रणम्य मुनिभिः साकं सूतश्चान्तर्हितोऽभवत् ।। मुनिभिः सर्वलोकेषु कथितं व्रतमुत्तमम् ।। ४३ ।। नातः परतरंपुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।। कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा सुभद्रा तत्तथाऽकरोत् ।। ४४ ।। पञ्चाब्दं व्रतमन्ते ही रात्रौ यामचतुष्टयम् ।। अकरोज्जागरं प्रातर्जुहाव च हुताशनम् ।। ४५ ।। एवं व्रते कृते पश्चात्पुर्यां यमभटाविशन् ।। यमभटा ऊचुः ।। सुभद्रे तव देहस्य चर्मार्थं चागता वयम् ।। ४६ ।। लोकेऽस्मिंस्तु व्रतं येन न कृतं भक्तिपूर्वतः ।। तच्चर्मणापि नद्धव्यः पटहो यमशासनात् ।। ४७ ।। सुभद्रोवाच ।। भटाः पश्यत मे चीर्णं गोपद्मव्रतमुत्तमम् ।। दत्ता पुंवत्ससहिता धेनुर्विप्राय दक्षिणा ।। ४८ ।। गोष्ठे पद्मानि चान्यत्र सर्वे पश्यन्तु हे भटाः ।। अन्योन्यवादसमये विष्णुदूताः समागताः ।।४९।। तान्दृष्ट्वा ताडयामासुर्व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। पलायिता महाभीताः स्मरन्तो यमशासनम् ।। ५० ।। तान् दृष्ट्वा रक्त दिग्धाङ्गान्यमो भयसमन्वितः ।। कस्येदं कृत्यमिति च ज्ञात्वातीन्द्रियदर्शनात् ।। ५१ ।। उवाच दूताः शृणुत यत्र सम्पूज्यते हरिः ।। न गन्तव्यं भवद्भिश्च सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।। ५२ ।। प्राप्तवन्तो दैववशाद्विविशध्वं महाभटाः ।। इत्युक्त्वा धर्मराजोऽसौ शालायां च विवेश ह ।। ५३ ।।तेन देवर्षिणा मह्यं कथितं व्रतमीदृशम् ।। दमयन्त्या तथा बाले राज्यभ्रंशात्कृतं व्रतम् ।। ५४ ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण राज्यसौभाग्यसम्प्रदः । पुत्रपौत्रादिसौभाग्यं भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।। ५५ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे गोपद्मव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

अब आषाढ सुदी एकादशीके दिन गोपद्मव्रतके उद्यापनकी विधि कहते हैं । उसकी पूजाविधि इस प्रकार है—आरम्भमें चतुर्भुज महाकाय सुवर्णके समान प्रभावाले, रमायुत शंखचक्रगदापद्मधारी, गरुडपर विराजमान तथा देव, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नरोंसे सेवा किये जानेवाले हरिका ध्यान करके यज्ञारम्भ करे, इससे ध्यान; 'पुरुषोत्तम देवेश' इस श्लोकसे लेकर 'दिव्यसिंहासने' यहांतक उच्चारणकर आवाहन करे कि, हे पुरुषोत्तम ! हे देवेश ! हे भक्तोंको अभयदेनेवाले ! अत्यन्त प्रेमी वरकेदेनेवाले शान्तस्वरूपी तुमको मनसे मैं बुलाता हूं । हे सुराधिप ! जिसमें कि, दिव्य मणियोंका जडाव हो रहा है जिसे देवताओंने बनाया है ऐसे सुहावने दिव्य सिंहासनपर विराज जाइये, इससे आसन; हे सुरश्रेष्ठ ! यह गंगाजल सोनेके कलशमें रखा हुआ है, गन्ध, पुष्प और अक्षत इसमें पडेहुए हैं, आप रमाके साथ ग्रहण करें इससे पाद्य; सोनेके पात्रमें जल रखा हुआ है अष्टगन्ध इनमें मिली हुई है, हे भक्तोंके अभय देनेवाले देव ! इसे ग्रहण करिये, इस मे अर्घ्य; हे देवदेव ! हे पुराण पुरुषोत्तम ! तेरे लिये नमस्कार है मैंने यह पानी तुझे दिया है । आप आचमन करें, इससे आचमन; हे देव ! शर्कराके साथ पय, दधि, घृत और मधु हैं ये पांचों अमृत मैं लाया हूँ ग्रहण करिये इससे पंचामृत स्नान; 'नदीनाञ्चैव सरसां' इस श्लोकसे जलस्नान; वस्त्रयुग्मं समानीतं' इस श्लोकसे वस्त्र; 'नारायण नमस्तेऽस्तु

इस श्लोकसे यज्ञोपवीत; 'केयूरमुकुटैर्यु०' इस श्लोकसे आभरण; 'चन्दनंमलयोद्भूतम्' इस श्लोकसे चन्दन; 'शतपत्रैः कर्णिकारैः' इस श्लोकसे पुष्प; 'दशांगो गुग्गुलूद्भूत' इस श्लोकसे धूप; 'एकार्त्तिकं सुरश्रेष्ठ' इस श्लोकसे दीप; 'अन्नंच पायसं भक्ष्यं' इस श्लोकसे नैवेद्य; 'नागवल्लीदलैर्युक्तं' इस श्लोकसे ताम्बूल; 'हिरण्य-गर्भ' इस मन्त्रसे दक्षिणा; 'नीराजनं गृहाणेश !' इस श्लोकसे आरती; अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि' इस श्लोकसे पुष्पाञ्जलि; 'यानि कानि' इससे प्रदक्षिणा; 'नमस्ते' इस श्लोकसे नमस्कार! 'मन्त्रहीनं क्रियाहीनं' इस श्लोकसे प्रार्थना समर्पण करे । किये कर्मकी सांगतासिद्धिके लिये वायना दान करूंगा इस वचनसे संकल्प कर 'परमान्नामिदं दिव्यं' इस श्लोकसे ब्राह्मणको कांसीकी थालीमें उत्तम भोजन रखकर बायना दे । यह पूजा समाप्त हुई ।। अब कथा-जिसके आरम्भमें 'व्यासं वसिष्ठनप्तारं' इस श्लोकका पाठ करे कि, वसिष्ठजीके परपोते तथा शक्तिके पोते एवम् पराशर पुत्र तथा शुकके पिता तपके खजाने निष्पाप श्रीव्यासदेवजीको प्रणाम करता हूं ।। १ ।। (यह कहनेसे मंगलाचरण भी हो जाता है तथा व्यासदेवके गौरवका परिचय होजाता है कि, वो ऐसोंका बेटा नाती तथा शुक ऐसोंका पिता होता है इतनाही नहीं किन्तु आप भी निष्पाप है ।) सूतजी बोले–द्वापरयुगमें द्वारका नगरीके अन्दर भगवान्के दर्शनकी इच्छावाले नारदजी ऋषिने बडे उत्साहसे यदुनन्दन भगवान् कृष्णके दर्शन किये ।।२।। भगवान् लोकमान्य श्रीनारदजी ऋषिका पूजन कर बडे आदरसे आसनपर बिठाकर बोले ।। ३ ।। श्रीकृष्णजी कहते हैं कि, हे देवर्षि नारद ! आप सब भुवनमें विचरनके कारण उनका सब हाल जानते हैं इस लिये यदि वहां कोई विशेष बात हो तो आप मुझे कहें ।। ४ ।। नारदजी बोले–हे देवदेवेश ! आपसे माना हुआ मैं आपका भक्त हूं । धर्म्मसभाके अन्दर होनेवाली एक आश्चर्यजनक बात कहूंगा सो सुनिये । हे भगवन् ! एक समय धर्म्मराजकी धर्म्मसभाके अन्दर देवतागण १४ इन्द्र ।। ५ ।। ११ रुद्र १२ आदित्य ८ वसु तथा सर्पः यक्ष, राक्षस, पन्नग ये सब उपस्थित थे ।। ६ ।। उन्होंने सुन्दर सिंहासनपर विराजमान यमराजसे पूछा कि, महाराज ! कौनसे मनुष्यकी चर्म्मसे दुन्दुभिको मंढा जाय सो हमें बताइये ।। ७ ।। यमराज बोले कि, चौमासेमें एक व्रतको तथा संक्रान्तिके एक व्रतको जो स्त्रियां न करतीं हों उनकी चर्म्मसे दुन्दुभिको मंढो विचरो उसके इस वचनको सुनकर दूतगण पृथ्वीपर गये ।। ८ ।। ।। ९ ।। महाराज ! यह बडे आश्चर्यकी बात है इसलिये आपको कहता हूं । यह सुन महाराज कृष्णने अपने सम्मुखस्थित सब लोगोंको कहा कि ।। १० ।। हे लोगो ! तथा स्त्रियों ! जो यहां रहते हो तुम लोग भी वैसा ही करो जैसा कि, धर्म-राजने कहा है । यह वचन सुन भगवान्की पटरानियोंने और दूसरे नागरिकोंने किया ।। ११ ।। कृष्णके दूतोंने अपने नगरके अन्दर बसनेवाली सब स्त्रियोंको और बाहरकी रहनेवाली स्त्रियोंको सूचित किया । प्रधान स्त्रियोंने व्रतकरके ।। १२ ।। किसी दूसरी जगह भगवान् यदुनन्दनसे कहा कि, महाराज ! आपकी सोदरीको छोडकर और कोई ऐसी स्त्री नहीं है जिसने व्रत न किया हो ।। १३ ।। यह सुन भयसे सोदरीके प्रति बोले कि, हे सुभद्रे ! हे सोदरि ! तुम क्या कर रही हो ? क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि, यमराजके दूत यहां आयेहुये हैं ।। १४ ।। क्योंकि तुमने कोई पुण्यव्रत नहीं किया है । सुभद्रा बोली कि, हे कृष्ण महाराज ! मैंने बिना किसी सन्देहके सब व्रतोंको किया है ।। १५ ।। यदि असत्य होती तो आपकी सोदरी और अर्जुनकी स्त्री न होती तथा न मैं अभिमन्यु की माता होती । हे प्रभो ! बताइये यमके दूत कैसे आये ? ।। १६ ।। कृष्ण बोले कि, हे बहिन ! आज मेरे शुभफलको देनेवाले एक व्रतको तू कर ।। १७ ।। जो संसारमें गोपद्मके नामसे विख्यात है । जिसको ऋषियोंकी भलाईके लिये पहले सूतजीने कहा था । एक समय सूतजी महाराज हिमालयके निकट नैमिषारण्यके सिद्धाश्रममें मुनियोंके उत्तम यज्ञको देखनेके लिये गये । उनको देखकर सब मुनि लोग बडे प्रसन्न हुए ।। १८ ।। ।। १९ ।। यथाविधि अर्घ्यदानादिसे बडी प्रीतिपूर्वक पूजाकर सूतजीसे वे मुनिलोग बोले ।। २० ।। कि, महा-राज ! आप लोकमें धर्मके ज्ञाता हो भक्तोंको ज्ञान देनेवाले हो ।। २१ ।। इसलिये हे मुनिराज ! आप कृपा कर किसी उत्तम व्रतको सुनाइये । सूतजी बोले । हे ऋषियो ! आप सब पापनाशक गोपद्म नामके उत्तम व्रतको सुनिये । जो सब दुःखोंको भगानेवाला और सब सम्पत्तिको देनेवाला है ।। २२ ।। जिसने यमराजके दण्डको भी टाल दिया है । जो श्रेष्ठ, सुवासिनी गृहस्थकी स्त्रीके पुत्रपौत्रोंका बढानेवाला है ।। २४ ।। ऋषि बोले कि हे साधो ! उस व्रतको किस मासमें किस तरह करना चाहिये तथा उसका फल और पूजन क्या है

उसको पहिले किसने किया है ? सो कहिये ।।२५ ।। सूतजी बोले कि, आषाढ शुक्ला एकादशीसे कार्तिककी द्वादशीतक व्रत करना चाहिये ।। २६ ।। जिस स्थानमें गौवें रहती हों उस जगहको गोबरसे लीपकर चावलकी पीठीसे कमल बनावे ।। २७ ।। उसे पंचरंगोंसे सुशोभित करे गन्धपुष्पोंसे पूजा, करे, उसीकी संख्याके बराबर नमस्कार और प्रदक्षिणा करे ।। २८ ।। उतने अपूप ब्राह्मणोंके लिये दे, पहिले संवत्सरमें ब्राह्मणके लिये वायना दे दे ।। २९ ।। दूसरे वर्ष अच्छी खीर, तीसरे वर्ष मण्डक, चौथेवर्ष गुडके मंडक और पांचवें वर्ष घेवरका वायना देकर व्रत पूर्ण होतेही उद्यापन करे । दन्तधावन करके एकादशीके दिन उपवास करे । और अपने पूजे ब्राह्मणोंके साथ अभ्यंग करे ।। ३० ।। ३१ ।। केलोंके खम्भोंसे सजाया हुआ मण्डप तथा अनेक प्रकार के पुष्पोंसे अलंकृत वेदी बनावे । उसके अन्दर पांचरंगोंसे सर्वतोभद्रमण्डलकरे ।। ३२ ।। ३३ ।। पुण्याहवाचन कराके मूर्तिमें भगवान्‌की पूजा करे । कर्षभर सोने या आधभरीसे अथवा माषेभर सोनेसे कृपणताको छोडकर मूर्त्ति निर्माण हो आचार्यका वरणकर कलशकी स्थापना करे ।। ३४ ।। ३५ ।। सुवर्णकी बनायी हुई उस लक्ष्मीनारायण भगवान्‌की मूर्तिको स्थापित कर ब्रह्मादिकोंका आवाहन कर धूप दीपादि षोडशोपचारोंसे पूजा करे ।। ३६ ।। प्रत्येक में बारहनाम मन्त्रोंसे पूजे गाने बजाने आदिके आमोद-प्रमोदसे रातमें जागरण करे ।।३७।। प्रातःकाल उठ स्नान कर होम करे । तिल, घी, समिधासे द्वादश नामकी आहुति दे ।। ३८ ।। तथा १०८ खीरकी आहुति देकर पीछे पूर्णाहुति दे । बच्चे सहित गैया आचार्यकी भेंट करे ।।३९।। षड्रस भोजनसे सपत्नीक पांच ब्राह्मणों को भोजन करावे । एकाग्रचित्त होकर फिर स्वयं आप बन्धुओं सहित भोजन करे ।।४०।। तथा दूसरे ब्राह्मणों को भी शयाशक्ति भोजन करावे । इस प्रकार इस पुण्यव्रतका करनेवाला मनुष्य अपनी सब इच्छाओंको प्राप्त करता है ।। ४१ ।। अन्तमें निष्पाप हो स्वर्गका अधिकारी होता है । ऋषि बोले कि महाराज ! आज हम आपकी कृपासे सफल होकर अपने अपने आश्रमोंको विदा होते हैं । ।। ४२ ।। और इसके बाद सूतजी भी मुनियोंको प्रणामकर अन्तर्ध्यान होगये, इस उत्तम व्रतको मुनियोंने लोकहितार्थ कहा है इस लिये ।। ४३ ।। इससे अधिक और कोई उत्तम व्रत तीन लोकमें नहीं सुना है । इस प्रकार श्रीकृष्ण चन्द्रके वचनको सुनकर सुभद्राने भी वैसाही किया ।।४४।। पांचवर्ष लगातार व्रत करनेके बाद, अन्तमें रातमें चार प्रहरका जागरणकर प्रातःकाल हवन किया ।। ४५ ।। इस भांति व्रत समाप्त होनेके अनन्तर यमराजके दूतभी वहां पहुंचे । और बोले कि—हे सुभद्रे ! हम लोग तुम्हारे शरीर का चर्म लेनेको यहां आये हैं ।।४६।। जिसने संसारमें भक्तिपूर्वकव्रत न किया हो, उसकी चर्मसे ढोल मंढाजाना चाहिये यह यमराजकी आज्ञा है ।। ४७ ।। सुभद्रा बोली कि, हे दूतो ! तुम लोग देख लो कि, मैंने गोपद्मनामके उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया है । और बच्चेसहित गैयाभी ब्राह्मणको दक्षिणामें दी है ।। ४८ ।। इसलिये तुम लोग और कहीं तलाश करो । यह बात हो रही थी कि इतनेमें विष्णुके दूतभी वहां आ पहुंचे ।।४८।। उन्होंने इस व्रतके प्रभावसे यमदूतोंको पीटा । और ये लोग यमराजकी आज्ञाको स्मरण करते हुये वहांसे नौ दो ग्यारह हो गये ।। ५० ।। उन सब अपने दूतोंको खूनसे सरावोर देखकर भीत हुये यमराजने भी अपने दिव्यज्ञानसे समझ लिया कि, यह विष्णु भगवान्‌की कृपाका फल है ।। ५१ ।। यमने कहा कि, हे दूतो ! जिस जगह विष्णु भगवान्‌की पूजाकी जाती हो वहां आपको जाना न चाहिये यह हम सत्य कहते हैं ।।५२।। तुम लोग बडे भाग्यसे यहांतक पहुंच गये हो नहीं तो क्या जाने तुमारी वहां क्या दशा होती ? इतना कह यमराजभी अपने घरमें चले गए ।। ५३ ।। इस उत्तम व्रतको हे बाले ! राज्यसे भ्रष्ट हो जानेपर दमयन्तीने भी किया था, इसी कारण इस उत्तम व्रतका उपदेश देवर्षिने मुझे किया है, ।। ५४ ।। इस व्रतके प्रभावसे राज्य, सौभाग्य, सम्पत्ति, पुत्र, पौत्र, सौभाग्य आदिका सुखभोगकर मोक्ष प्राप्त करता है ।। ५५ ।। यह श्रीभविष्योत्तरपुराणके गोपद्मव्रतका उद्यापन ।।

अथ पुरुषोत्तममासस्यैकादशी

युधिष्ठिर उवा[1]च ।। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। सर्वपापहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।। १ ।। पुरुषोत्तममासस्य कथां ब्रूहि जनार्दन।।

१ अत्र प्रश्नप्रत्युत्तरयोर्वैपम्यं विचारणीयम् ।

को विधिः किं फलं तस्य को देवस्तत्र पूज्यते ।। २ ।। अधिमासे तु संप्राप्ते व्रतं ब्रूहि जनार्दन ।। कस्य दानस्य किं पुण्यं किं कर्तव्यं नृभिः प्रभो ।। ३ ।। कथं स्नानं च किं जप्यं कथं पूजाविधिः स्मृतः ।। किं भोज्यमुत्तमं चान्नं मासे वै पुरुषोत्तमे ।। ४ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेहकारणात् ।। अधिमासे तु संप्राप्ते भवेदेकादशी तु या ।।५ ।। कमलानाम नामेति तिथीनामुत्तमा तिथिः ।। तस्याश्चैव प्रभावेण कमलाभिमुखी भवेत् ।। ६ ।। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्मृत्वा तं पुरुषोत्तमम् ।। स्नात्वा चैव विधानेन व्रती नियमसाचरेत् ।। ७ ।। गृहेत्वेकगुणं जाप्यं नद्यां दशगुणं स्मृतम् ।। गवां गोष्ठे शतगुणमग्न्यागारे दशाधिकम् ।। ८ ।। शिवक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतानां च सन्निधौ ।। सहस्रशतकोटिनामनन्तं विष्णुसन्निधौ ।। ९ ।। अवन्त्यामभवद्विप्रः शिवधर्मेति नामतः ।। तस्य पञ्चस्वात्मजेषु कनिष्ठो दुष्टकर्मकृत् ।। १० ।। तदा पित्रा परित्यक्तस्त्यक्तः स्वजनबन्धुभिः ।। स्वकर्मणः प्रभावेण गतो दूरतरं वनम् ।। ११ ।। एकदा दैवयोगेन तीर्थराजं समागमत् ।। क्षुत्क्षामो दीनवदनस्त्रिवेण्यां स्नानमाचरत् ।। १२ ।। ऋषीणामाश्रमांस्तत्र विचिन्वन्क्षुधयार्ऽदितः ।। हरिमत्रिमुनेस्तत्र त्वाश्रमं च ददर्श ह ।। १३ ।। पुरुषोत्त[1]ममासे तु श्रद्धया कमला स्तुता।। एकादशी पुण्यतमा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।। १४ ।। पुरुषोत्तममासे तु जनानां च समागमे ।। तत्राश्रमे कथयतां कथां कल्मषनाशिनीम् ।। १५ ।। जपञ्छ्रमेण तां श्रुत्वा कमलां पापहारिणीम् ।। व्रतं कृत्वा च तैः सार्द्धं स्थितः शून्यालये तदा ।। १६ ।। निशीथे समनुप्राप्ते कमलात्र समागता ।। वरं ददामि भो विप्र कमलायाः प्रभावतः ।। १७ ।। विप्र उवाच ।। का त्वं कस्यासि रम्भोरु प्रसन्ना च कथं मम ।। ऐन्द्री त्वमिन्द्रदेवस्यभवानी शंकरस्य च ।। १८ ।। वधूर्वा चन्द्रसूर्यस्य गान्धर्वी किन्नरी तथा ।। त्वत्सदृशी न दृष्टा च न श्रुता च शुभानने ।। १९ ।। लक्ष्मीरुवाच ।। प्रसन्ना सांप्रत जाता वैकुण्ठादहमागता ।। प्रेरिता हरिदेवेन एकादश्याः प्रभावतः ।। २० ।। पुरुषोत्तममासस्य शुक्ले कृष्णे तु या भवेत् ।। कमला नाम सा प्रोक्ता , कमलां दातुमागता ।। २१ ।। पुरुषोत्तममासस्य या पक्षे प्रथमे भवेत् ।। तस्यां व्रतं त्वया चीर्णं प्रयागे मुनिसन्निधौ ।। २२ ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण वशगाहं न संशयः ।। तव वंशे भविष्यन्ति मानवा द्विजसत्तम ।। २३ ।। लभन्ते मत्प्रसादं तु सत्यं ते व्याहृतं मया ।। विप्र उवाच ।। प्रसन्ना यदि मे पद्मे व्रतं विस्तरतो वद ।। २४ ।।

---

१ तत्राश्रमे पुरुषोत्तममासस्य कल्मषनाशिनीं कथां कथयतां जनानां समागमे पुरुषोत्तममासाधिकरणिका भुक्तिनैमुक्ति प्रदायिनी पुण्यतमा कमलाख्या या एकादशी श्रद्धया स्तुता अर्थात्तैस्तां पापहारिणीं कमलां श्रुत्वा जपन् संस्तैर्जनैः सा व्रतं कृत्वा शून्यालय स्थित आसीदिति श्लोकत्रयान्वयः ।।

यत्कथासु प्रवर्तन्ते राजानो ये जगद्धिताः ।। लक्ष्मीरुवाच ।। श्रोतृणां परमं श्राव्यं श्रोतृणां परमं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम् ।। २५ ।। दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतस्ततः ।। उत्तमःश्रद्धया युक्तः श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ।। २६ ।। पठित्वा मुच्यते सद्यो महापातककोटिभिः ।। मासानां परमो मासः पक्षिणां गरुडो यथा ।। २७ ।। नदीनां च यथा गङ्गा तिथीनां द्वादशी तिथिः ।। तस्यामर्चन्ति विबुधा नारायणमनामयम् ।। २८ ।। ये यजन्ति सदा भक्त्या नारायणमनामयम् ।। तानर्चयन्ति सततं ब्रह्माद्या देवतागणाः ।। २९ ।। नारायणपरा ये च हरिकीर्तन-तत्पराः । परिप्रजागरा ये च कृतार्थास्ते कलौ युगे ।। ३० ।। शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् ।। गृहस्थानां च पूर्वा तु यतीनामुत्तरा स्मृता ।। ३१ ।। एकाद'शी द्वादंशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।। व्रते ऋतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पार-णम् ।। ३२ ।। एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ।। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।। ३३ ।। अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः ।। भक्ति-भावेन तुष्टात्मा चोपवासं समर्पयेत् ।। ३४ ।। देवदेवस्य पुरतो जागरं नियतो व्रती ।। गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ।। ३५ ।। ततः प्रातः समुत्थाय द्वादशी दिवसे व्रती ।। स्नात्वा विष्णुं समभ्यर्च्य विधिवत्प्रयतेन्द्रियः ।। ३६ ।। पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् ।। द्वादश्यां च पयःस्नानं हरेः सारू-प्यमश्नुते ।। ३७ ।। अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।। प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।। ३८ ।। एवं विज्ञाप्य देवेशं देवदेवं च चक्रिणम् ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। ३९ ।। ततः स्वबन्धुभिः सार्द्धं नारायणपरायणः ।। कृत्वा पञ्चमहायज्ञान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। ४० ।। एवं यः प्रयतः कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम् ।। स याति विष्णुभवनं पुनरा-वृत्तिदुर्लभम् ।। ४१ ।। इत्युक्त्वा कमला तस्मै प्रसन्ना तस्य वंशगा ।। सोऽपि विप्रो धनीभूत्वा पितुर्गेहं समाविशत् ।। ४२ ।। एवं यः कुरुते राजन् कमलाव्रतमुत्त-मम् ।। शृणुयाद्वासरे विष्णोः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ४३ ।। इति श्रीब्रह्माण्ड पुराणे पुरुषोत्तममासे कमलानामैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ।।

अथ पुरुषोत्तममासकी एकादशी—युधिष्ठिर बोले कि, हे भगवन् ! भुक्तिमुक्तिको देनेवाला पापनाशक उत्तम व्रतको मैं आपसे सुनना चाहता हूं ।। १ ।। तथा कृपाकर पुरुषोत्तममासकी कथाभी कहिये । उसकी क्या विधि है ? उसका फल क्या है ? किस देवकी पूजा होती है ? ।। २ ।। हे प्रभो ! अधिकमासके प्राप्त होनेपर किस दान पुण्यको करना या किस व्रतको करना चाहिये ? ।। ३ ।। कैसे स्नान व जप करना चाहिये, तथा उसकी पूजाकी विधि क्याहै । एवं किस उत्तम भोजनको करावे ? यह सब आप कृपा कर बतलाइये

१ इदंतु उपोष्या द्वादशी शुद्धेत्येतद्वचनसंवादि । २ कुर्यादिति शेषः । ३ दत्वेतिशेषः । ४ अभवदितिशेषः ।

।। ४ ।। श्रीकृष्णजी बोले कि–हे राजेंद्र ! अधिक मासके प्राप्त होनेपर जो एकादशी प्राप्त होती है उसको मैं तुम्हारे स्नेहके कारण कहता हूं ।। ५ ।। सब तिथियोंमें कमला नामकी उत्तमतिथिके प्रभावसे कमला अर्थात् लक्ष्मी संमुख होती है ।। ६ ।। उसके लिये व्रती मनुष्य प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान्‌का स्मरण करते हु ए विधिपूर्वक स्नान करके नियम करे ।। ७ ।। घरमें जपकरे तो एक गुणा, नदीमें दशगुणा, गोशालामें सौगुणा यज्ञालयमें सहस्रगुणित ।। ८ ।। शिवालय तीर्थ और देवालयोंमें विष्णुके निकट जप करने पर लक्ष कोटि, गुणानन्त फल मिलता है ।। ९ ।। अवन्ती नगरीमें एक शिवधर्म ब्राह्मणके पांच बेटोंमें छोटा लड़का बड़ा दुष्ट था ।। १० ।। जिसको उसके पिताने तथा उसकेभाई बन्धुओंने निकाल दिया था । वह अपने कर्मके प्रभावसे बहुत दूर जङ्गलोंमें चला गया, ।। ११ ।। वो दैवयोगसे एक बार तीर्थराजमें जा पहुंचा । उस भूखे दुर्बल दीन-मुख दुखी ब्राह्मण कुमारने त्रिवेणीमें स्नान किया ।।१२।। कुछ भोजन मिलनेकी आशासे ऋषियोंके आश्रममें प्रवेश किया और वहां हरिमित्र मुनिके आश्रममें जा पहुंचा ।।१३।। जहां पुरुषोत्तममासकी बडी पवित्र भुक्ति-मुक्तिको देनेवाली कमला एकादशीकी स्तुति हो रही थी ।। १४ ।। ऋषियोंके समुदायमें पापहारिणी उस कथाको जपता हुआ सुनकर उसने भी कमलानामकी एकादशीका व्रतकर उनके साथ शून्यालयमें निवास किया ।। १५ ।। १६ ।। जिसके प्रभावसे आधीरातमें कमलाने स्वयं आकर उस ब्राह्मणकुमारसे कहा कि, हे विप्र ! मैं तुम्हें वर देती हूं ।। १७ ।। ब्राह्मणने कहा कि, हे सुन्दरि ! तुम कौन हो, किस तरह तुम मुझपर प्रसन्न हो ? इन्द्रकी इन्द्राणी हो या शंकरकी भवानी हो ? ।। १८ ।। या चांद सूरजकी स्त्री हो वा गन्धर्व किन्नर की बहू हो । मैंने तुम्हारे समान और किसीको सुन्दर नहीं देखा और न सुना है ।। १९ ।। लक्ष्मीने कहा कि, मैं तुमपर प्रसन्न होकर वैकुण्ठसे आई हूं । मुझे तुमारी एकादशी फलसे प्रेरित होकर भगवान्‌ने यहां भेजा है ।।२०।। पुरुषोत्तममासके शुक्ल कृष्णपक्षमें जो कमला एकादशी होती है उसीके उपलक्ष्यमें मैं तुम्हें कमला देनी आई हूं ।। २१ ।। पुरुषोत्तम मासके पहले पक्षमें जो एकादशी होती है उसको तुमने प्रयाग तीर्थराजमें मुनियोंके निकट किया है ।। २२ ।। उसी व्रतके प्रभावके वश होकर हे ब्राह्मण ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि, तुम्हारे कुलमें जो मनुष्य उत्पन्न होंगे ।। २३ ।। उनपर मैं प्रसन्न रहूंगी इसमें कोई सन्देह नहीं है । ब्राह्मणने कहा कि, हे लक्ष्मि ! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो तो विस्तारपूर्वक उस व्रतको कहो ।। २४ ।। जिसको सुननेके लिये जगत् कल्याण-कारी राजालोग प्रवृत्त होते हैं । लक्ष्मी बोली कि, सबसे उत्तम सुनने योग्य सबसे अधिक पवित्र ।। २५ ।। दुःस्वप्ननाशक व्रतको तुम ध्यानसे सुनो । सबसे अच्छी बात तो यह है कि, श्रद्धासे युक्त होकर एक श्लोक वा आधा श्लोकभी ।। २६ ।। पढले तो वह कोटि कोटि पापोंसे छूट जाता है । जिस प्रकार पक्षियोंमें गरुड़ उत्तम है उसी प्रकार यह महीनोंमें अधिकमास उत्तम है और जिस प्रकार नदियोंमें गङ्गा उत्तम है द्वादशी तिथिभी वैसेही उत्तम है । जिस तिथिके अन्दर विद्वान् लोग आनन्दमय नारायणकी पूजा करते हैं जो लोग भक्तिपूर्वक उक्त नारायणकी पूजा करते हैं उनकी ब्रह्मादि देवतागणभी सदा पूजा करते रहते हैं । जो लोग सदा नारायणमें मन लगाये रहते हैं हरिकीर्तन करते हैं तथा जो जागरण करते हैं वे इस कलियुगमें धन्य हैं शुक्ल और कृष्ण पक्षमें जो दो एकादशी होती हैं उनमें गृहस्थियोंको पहली और यतियोंको दूसरी करनी चाहिये ।। २७–३१ ।। एकादशी या द्वादशी तथा रात्रिशेषमें त्रयोदशीका व्रतकर शतयज्ञके फलका भागी बन त्रयोदशीके दिन पारण करे ।। ३२ ।। हे पुण्डरीकाक्ष ! एकादशीके निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूंगा इसलिये आप मेरी शरणता स्वीकार कीजिये ।। ३३ ।। इस मन्त्रको उच्चारण कर भगवान्‌को भक्तिभावसे प्रसन्न हो अपने उपवासको समर्पित करे ।। ३४ ।। भगवानके आगे जितेन्द्रिय होकर गाने बजाने नाचने तथा पुराण पठनसे जागरण करे ।। ३५ ।। द्वादशीके दिन प्रातःकाल उठ स्नान कर जितेन्द्रियसे विधिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करे ।। ३६ ।। एकादशीके दिन भगवान्‌को पञ्चामृतसे स्नान करावे और द्वादशीके दिन जलस्नान करावे तो भक्त भगवान्‌के सारूप्यभावको प्राप्त होता है ।। ३७ ।। हे केशव ! हे नाथ ! अज्ञानरूपी अन्धकारसे भूला हुआ मुझ अन्धेपर इस व्रतसे आप प्रसन्न हों और ज्ञानरूपी दृष्टिका प्रदान करो ।। ३८ ।। इस प्रकार भगवान्‌के सम्मुख निवेदन कर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणादे ।। ३९ ।। फिर आपभी मौनी होकर अपने बन्धुओंके साथ पञ्च महायज्ञोंको करता हुआ भगवान्‌के स्मरणपूर्वक वेध ही भोजन करे ।। ४० ।। इस प्रकार जो इस पुण्य एकादशीके व्रतको करता है वह फिर भगवान्‌के उस लोकको प्राप्त होता है, जहांसे आना कठिन है

।। ४१ ।। इस प्रकार लक्ष्मी प्रसन्न होकर उसके वंशमें प्रविष्ट होगई और वह ब्राह्मणभी धनवान् होकर अपने पिताके घर चला गया ।। ४२ ।। हे राजन् इस प्रकार जो इस उत्तम कमलाव्रतको करता है अथवा एकादशीके दिन जो इसकी कथा सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।। ४३ ।। यह श्रीब्रह्माण्डपुराणकी पुरुषोत्तम-मासका कमलानामक एकादशीका माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ।।

श्रवणैकादश्यां वामनावतारः

भाद्रपदे श्रवणैका[1]दश्यां मध्याह्ने वामनावतारः । श्रवणयुक्तशुक्लैकादश्यलाभे तु दशमीविद्धापि श्रवणयुता ग्राह्या ।। तथा च मदनरत्ने वह्निपुराणे– दशम्येकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः ।। श्रवणेन तु संयुक्ता सोपोष्या सर्वकामदा ।। अथ कार्तिकशुक्लैकादश्यां प्रबोधविधिः ।। हेमाद्रौ ब्राह्मे-एकादश्यां तु शुक्लायां कार्तिके मासे केशवम् ।। प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। नृत्यैर्गीतैस्तथा वेदैर्ऋग्यजुःसाममङ्गलैः ।। वीणापणवशब्दैश्च पुराणश्रवणेन च ।। वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः ।। सुभाषितैरिन्द्रजालैर्भूरिशोभाभिरेव च ।। पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्दीपवृक्षैः सुशोभनैः ।। होमैर्भक्ष्यैरपूपैश्च फलैः शर्करपायसैः ।। इक्षोर्विकारैर्मधुरैर्द्राक्षाक्षौद्रैः सदाडिमैः ।। कुठेरकस्य मञ्जर्या मालत्या कम[2]लेन च ।। कुटेरकः– पर्णाशः, कृष्णतुलसीति केचित् ।। हृताभ्यां श्वेतरक्ताभ्यां चन्दनाभ्यां च सर्वदा ।। कुङ्कुमालक्तकाभ्यां च रक्तसूत्रैः सकङ्कणैः ।। तथा नानाविधैः पुष्पैर्द्रव्यैर्वीरक्रयाहृतैः ।। विक्रेत्रा प्रथमतोऽभिहितं मूल्यं दत्त्वा क्रियमाणाः क्रयो वीरक्रयः ।। तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां द्वादश्यामरुणोदये ।। आदौ घृतेनैक्षवेण मधुना स्नापयेत्ततः ।। दध्ना क्षीरेण च तथा पञ्चगव्येन शास्त्रवित् ।। उद्वर्तनं माषचूर्णं मधुरामलकानि च ।। सर्षपाश्च प्रियंगुश्च मातुलिंगरसस्तथा ।। सर्वौषध्यः सर्वगन्धाः सर्वबीजानि काञ्चनम् ।। मङ्गलानि यथाकामं रत्नानि च कुशोदकम् ।। एवं संशोध्य देवेशं दद्याद्गोरोचनं शुभम् ।। ततस्तु कलशान् स्थाप्य यथाप्राप्तांस्त्वलंकृतान् ।। जातीपल्लवसंयुक्तान्सफलांश्च सकाञ्चनान्।।पुण्याहवेदशब्देन वीणहवेणुरवेण च ।। एवं संस्नाप्य गोविन्दं स्वनुलिप्तं स्वलंकृतम् ।। सुवाससं तु संपूज्य सुमनोभिः सकुंकुमैः ।। धूपैर्दीपैर्मनोज्ञैश्च पायसेन च भूरिणा ।। हविष्यैश्चान्नदानैश्च होमैः पुष्पैः सदक्षिणैः ।। वासोभिर्भूषणैरन्यैर्गोभिरश्वैर्मनोजवैः ।। ब्राह्मणाः पूजनीयाश्च विष्णोरीड्याश्च मूर्तयः ।। यत्तु शिष्टामृतं पश्चाद्भोक्तव्यं ब्राह्मणैः सह ।। इति प्रबोधोत्सवविधिः ।।

भादवके महीने में श्रवणनक्षत्र युक्त द्वादशीके दिन मध्याह्नकाल में वामन भगवान् का अवतार हुआ है । श्रवणनक्षत्रयुक्त यदि शुक्ला एकादशी न मिले तो दशमी विद्धा

१ इदंद्वादश्या उपलक्षकम् । २ कट् फलेनेतिक्वचित्पाठः ।

एकादशीभी करनी चाहिये, यदि उसमें श्रवण हो । मदनरत्नसे वह्निपुराणसे कहा है कि, दशमीमें यदि एकादशी हो तो उँस दिन उपवास न करना चाहिये पर जिस दशमीमें श्रवण नक्षत्र होतो सब कामोंकी पूर्ण करनेवाली होनेके कारण उस एकादशीको अवश्य उपवास करे । प्रवोधविधि–हेमाद्रिने पद्मपुराणसे लिखी है कि, कार्तिकशुक्ला एकादशीके दिन श्रद्धाभक्तिसे युक्त होकर सोते हुए भगवान्को रातमें जगावे । नाचे, गावे, ऋक्, यजुः सामवेदका माङ्गलिक अध्ययन करे । बीणा मृदङ्गसे एवं पुराणोंकी कथाओंसे एवं अन्य वासुदेव भगवान्की कथाओंसे तथा विष्णुस्तोत्रसे अद्भुत तमाशोंसे बाइसकोप सिनेमा आदि इन्द्रजालसे धूपपुष्प नैवेद्यसे दीपक किये हुए वृक्षोंसे होमसे और अनेक भोजन पदार्थोंसे अनेक प्रकारके फलोंसे अनेक प्रकारकी मिठाई और दूधकी चीजोंसे ईखके मीठे विकारोंसे अंगूरोंसे मधुसे अनारोंसे काली तुलसीकी मंजरीसे और कमलोंसे, कुठरेक पर्णाशकी कहते हैं जिसे कोई काली तुलसी कहते हैं, लायेहुए लाल और सफेद चन्दनसे केशव और अलक्तकसे रक्तसूत्र (नाल) से और सुवर्णके कंकणसे नाना प्रकारके पुष्पोंसे और पहले कीमत दीहुई अनेक चीजोंसे भगवान्को उठावे । विक्रेताके पहिले कहेहुए मूल्यको प्रथम देकर खरीदी हुई वस्तु ऐसे क्रयको वीरक्रय कहते हैं उस रातके बीतजानेपर द्वादशीके अरुणोदयमें पहले घीसे शक्कर और मधुसे दही और दूधसे तथा पञ्चगव्यसे शास्त्रवेत्ता स्नान करावे । भगवान्को उबटना तथा उडदका आटा लगा कर निर्मल करे । तथा मीठे आँवलोंके फलोंसे सरसों और प्रियंगुसे बिजौरेके रससे सर्वौषधि और सब गन्धोंसे सब बीजों और सुवर्णसे यथाकाम अन्य माङ्गलिक रत्नोंको तथा हरिको कुशजलसे शोध गोरोचनको भगवान्के लिये दे । फलोंसे और सुवर्णसे जुही या मालती आदिके पल्लवोंसे सजे हुए घडोंको स्थापित करके पीछे पुण्याहवाचन और वेदध्वनिसे तथा मनोहारी सङ्गीतसे भगवान्को स्नान कराकर अलंकृत कर अनुलेप करे । केशरमिश्रित फूलोंसे अच्छे वस्त्र पहिने हुए भगवान्को वस्त्र धारण करावे बहुतसे धूप दीप तथा खीर आदिके हविष्यान्नदानसे होमसे तथा दक्षिणासहित फूलोंसे अनेक प्रकारके वस्त्र और भूषणसे गायें और वेगवान् कीमती घोडोंसे भगवान्के प्यारे ब्राह्मणोंकी पूजा करे क्योंकि ब्राह्मण भगवान्की पूज्य मूर्तिरूप हैं और बचे हुए अमृतको अन्य ब्राह्मणोंके साथ स्वयं भोजन करे । यह प्रबोधोत्सवविधि पूरी हुई ॥

भीष्मपञ्चकव्रतम्

अथ कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतं हेमाद्रौ नारदीये ॥ नारद उवाच ॥ यदेतदचलं पुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ कर्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम् ॥ १ ॥ विधानं तस्य विस्पष्टं फलं चापि ततो वरम् ॥ कथयस्व प्रसादेन मुनीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रत[1]विदां वर ॥ भीष्मेणैव च संप्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ ३ ॥ सकाशाद्वासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥ व्रतस्यास्य गुणान्वक्तुं कः शक्तः केशवादृते ॥ ४ ॥ व्रतं चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम् ॥ अतो वरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ ५ ॥ सनत्कुमारसंहितायाम्––वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ ॥ ६ ॥ शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना॥ राजधर्मा दानधर्मा मोक्षधर्मास्ततः परम् ॥ ७ ॥ कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनापि श्रुतास्तदा ॥ ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम् ॥ ८ ॥ धन्यधन्योऽसि भीष्म त्वं धर्माः संश्राविता-

---

[1] व्रतव तामित्यपि पाठः । २ एतदग्रिमं विघ्यादिकथनं सविस्तरं व्रतार्कादिवगन्तव्यम् ।

स्त्वया ।। एकादश्यां कार्तिकस्य याचितं च जलं त्वया ।। ९ ।। अर्जुनेन समानीतं गाङ्गं बाणस्य वेगतः ।। तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादेव दिनादिह ।। १० ।। पूर्णान्तं सर्वलोकास्त्वां तर्पयन्त्वर्घ्यदानतः ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम संतुष्टि-कारकम् ।। ११ ।। एतद्व्रतं प्रकुर्वन्तु भीष्मपञ्चकसंज्ञितम् ।। कार्तिकस्य व्रतं कृत्वा न कुर्याद्भीष्मपञ्चकम् ।। १२ ।। कार्तिकस्य व्रतं सर्वं वृथा तस्य भविष्य-ति ।। अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्तिके ।। १३ ।। भीष्मस्य पञ्चकं कृत्वा कार्तिकस्य फलं लभेत् ।। सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने ।। १४ ।। भीष्मा-यैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ।। सव्येनानेन मंत्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ।। १५ ।। व्रताङ्गत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः ।। अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपञ्चकम् ।। १६ ।। यः पुत्रार्थी व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपञ्चकम् ।। तं दत्त्वा पापपुरुषं वर्षमध्ये सुतं लभेत् ।। १७ ।। अवश्यमेव कर्तव्यं तस्माद्भीष्मस्य पञ्चकम् ।। विष्णुप्रीतिकरं प्रोक्तं मया भीष्मस्य पञ्चकम् ।। १८ ।। अत्रैव हि प्रकर्तव्यः प्रबोधस्तु हरेः खगः ।। हतः शङ्खासुरो दैत्यो नभसः शुक्लपक्षके ।। १९ ।। एकादश्यां ततो विष्णुश्चातुर्मास्ये प्रसुप्तवान् ।। क्षीरोदधौ जाग्रतोऽ-सावेकादश्यां तु कार्तिके ।। २० ।। अतः प्रबोधनं कार्यमेकादश्यां तु वैष्णवैः ।। प्रबोधमन्त्राः—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शङ्खघ्न उत्तिष्ठाम्भोधिचारक ।। कूर्मरूपधरोत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २१ ।।उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराह दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर ।। हिरण्याक्ष प्राणघातिंस्त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २२ ।। हिरण्यकशिपुघ्न त्वं प्रह्लादानन्ददायक ।। लक्ष्मीपते समुत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २३ ।। उत्तिष्ठ बलिदर्पघ्न देवेन्द्र-पददायका ।। उत्तिष्ठादितिपुत्र त्वं त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २४ ।। उत्तिष्ठ हैहया-धीशसमस्तकुलनाशन ।। रेणुकाघ्न त्वमुत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २५ ।। उत्तिष्ठ रक्षोदलन अयोध्यास्वर्गदायक ।। समुद्रसेतुकर्तस्त्वं त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २६ ।। उत्तिष्ठ कंसहरण मदाघूर्णितलोचन ।। उत्तिष्ठ हलपाणे त्वं त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २७ ।। उत्तिष्ठ त्वं गयावासिस्त्यक्त लौकिकवृत्तक ।। उत्तिष्ठ पद्मासनग त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २८ ।। उत्तिष्ठ म्लेच्छनिवहखड्गसंहार-कारक ।। अश्ववाह युगान्ते त्वं त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। २९ ।। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।। उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु ।। ३० ।। इत्युक्त्वा शङ्खभेर्यादि प्रातःकाले तु वादयेत् ।। वीणावेणुमृदङ्गादि गीतनृत्यादि कारयेत् ।। ३१ ।। तुलसीविवाहः—उत्थापयित्वा देवेशं पूजां तस्य विधाय च ।। सायंकाले प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहनो विधिः ।। ३२ ।। अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तु वैष्णवैः ।। विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि यथा साङ्गा क्रिया भवेत् ।। ३३ ।। विष्णोस्तु

प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम् ।। तदर्धार्धं तुलस्यास्तु यथाशक्त्या प्रकल्पयेत् ।। ३४ ।। प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्तु तुलसीविष्णुरूपयोः ।। ततः उत्थापयेद्देवं पूर्वोक्तैश्च स्तवादिभिः ।। ३५ ।। उपचारैः षोडशभिः पुरुषसूक्तेन पूजयेत् ।। देशकालौ ततः स्मृत्वा गणेशं तत्र पूजयेत् ।। ३६ ।। पुण्याहं वाचयित्वाथ नान्दीश्राद्धं समाचरेत् ।। वेदवाद्यादिनिर्घोषैर्विष्णुमूर्त्तिं समानयेत् ।। ३७ ।। तुलस्या निकटे सा तु स्वाप्या चान्तरिता पटैः ।। आगच्छ भगवन्देव अर्चयिष्यामि केशव ।। ३८ ।। तुभ्यं ददामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव ।। दद्यात्त्रिवारमर्घ्यं च पाद्यं विष्टरमेव च ।। ३९ ।। ततश्चाचमनीयं च त्रिरुक्त्वा च प्रदापयेत् ।। ततो दधि घृतं क्षौद्रं कांस्यपात्रपुटीकृतम् ।। ४० ।। मधुपर्कं गृहाण त्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ।। ततो ये स्वकुलाचाराः कर्तव्या विष्णुतुष्टये ।। ४१ ।। हरिद्रालेपनाभ्यङ्गकार्यं सर्वं विधाय च ।। गोधूलिसमये पूज्यौ तुलसीकेशवौ पुनः ।। ४२ ।। पृथक् पृथक् ततः कार्यौ सम्मुखौ मङ्गलं पठेत् ।।ईषद्दृष्टे भास्करे तु संकल्पं तु समाचरेत् ।। ४३ ।। स्वगोत्रप्रवरानुक्त्वा तथा त्रिपुरुषादिकम् ।। अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक ।। ४४ ।। इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर ।। पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम् ।। ४५ ।। अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ।। पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्धिता मया ।। ४६ ।। त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं दास्यामि त्वं गृहाण भोः ।। एवं दत्त्वा तु तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः ।। ४७ ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्कार्तिकव्रतसिद्धये ।। वालखिल्या ऊचुः ।। ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत् ।। ४८ ।। वह्निसस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया ।। पायसाज्यक्षौद्रतिलैर्हुनेदष्टोत्तरं शतम् ।। ४९ ।। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ।। आचार्यं च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत् ।। ५० ।। चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो यस्य यः कृतः ।। कथयित्वा द्विजेभ्यस्तं तथान्यत्परिपूजयेत् ।। ५१ ।। इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ।। न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ।। ५२ ।। रेवतीतुर्यचरणे द्वादशीसंयुते नरः ।। न कुर्यात् पारणं कुर्वन् व्रतं निष्फलतांव्रजेत् ।। ५३ ।। ततो येषां पदार्थानां वर्जनं तु कृतं भवेत् ।। चातुर्मास्येऽथवा चोर्जे ब्राह्मणेभ्यः समर्पयेत् ।। ५४ ।। तत सर्वं समश्नीयाद्यद्यत्त्यक्तं व्रते स्थितः ।। दम्पतिभ्यां सहैवात्र भोक्तव्यं वा द्विजैः सह ।। ५५ ।। ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च ।। तुलस्यास्तानि भुक्त्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ५६ ।। भोजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम् ।। तद्भक्षणात्पापमुक्तिश्चान्द्रायणशताधिका ।। ५७ ।। इक्षुखण्डं तथा धात्रीफलं च बदरी फलम् ।। भुक्त्वा तु भोजनस्यान्ते तस्योच्छिष्टं विन-

श्यति ।। ५८ ।। एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकैकमपि येन तु ।। ज्ञेय उच्छिष्ट आवर्षं । नरोऽसौ नात्र संशयः ।। ५९ ।। ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदण्डैश्च मण्डितौ । तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः ।। ६० ।। ततो विसर्जनं कुर्याद्दत्त्वा दायादिकं हरेः ।। वैकुण्ठं गच्छ भगवंस्तुलस्या सहितः प्रभो ।। ६१ ।। मत्कृतं पूजनं गृह्य सन्तुष्टो भव सर्वदा ।। गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।।६२ ।। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ जनार्दन ।। एवं विसृज्य देवेशमाचार्यायप्रदापयेत् ।। ६३ ।। मूर्त्यादिकं सर्वमेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ।। प्रति वर्षं करोत्येवं तुलस्युद्वहनं शुभम् ।। इह लोके परत्रापि विपुलं सद्यशो लभेत् ।। ४६ ।। प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम् ।। भक्तिमान् धनधान्यैश्च युक्तो भवति निश्चितम् ।। ६५ ।। इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतप्रबोधोत्सवतुलसीविवाहविधिः सम्पूर्णः ।।

अथ भीष्मपञ्चकव्रतम्

नारदीयसे लेकर हेमाद्रिने कहा है कि, नारदजी बोले कि, हे प्रजापते जो यह अचल पुण्य है व्रतोंका उत्तम व्रत है जो कार्तिकके महीनेमें भीष्मपञ्चक प्रयत्नके साथ किया जाता है ।। १ ।। उस कार्तिकमासकी शुक्ल एकादशीके सर्वोत्तम भीष्मपञ्चक व्रतकी विधि और उसके श्रेष्ठ फलको आप मुनियोंकी हितदृष्टिसे कृपाकर कहिये ।। २ ।। ब्रह्माजी बोले कि, हे व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ नारदजी ! मैं आपको पवित्र भीष्मपञ्चक व्रतको कहता हूं जिसे भीष्मजीने पाया था यह पांच दिनका है ।। ३ ।। भगवान्के पाससे पाया था इस कारण इसे भीष्मपंचक कहते हैं इसके गुणोंको भगवान्को छोड और कोई वर्णन नहीं करसकता है ।। ४ ।। यह व्रत बडा पवित्र और पातक नाशक है । इसलिये कष्ट उठाकरभी इसे करना चाहिये ।। ५ ।। सनत्कुमार संहितामें लिखा है कि, बालखिल्य बोले कि, कार्त्तिक महीनेकी शुक्लपक्षमें अच्छी प्रकारसे एकादशीके दिन स्नानकर भीष्मपञ्चक व्रतको धारण करे ।। ६ ।। शरशय्यापर सोते हुए भीष्मजी महाराजके कहेहुए राजधर्म्मोंको दानधर्म्म और मोक्ष धर्मोंको पाण्डवोंने और भगवान कृष्णसे सुना है ।। ७ ।। उनसे जिससे प्रसन्न होकर भगवान् वासुदेवने कहा ।। ८ ।। कि, हे भीष्म ! आप धन्य हैं आपने धर्मोंको खूब सुनाया, इसी एकादशीके दिन आपने जलकी याचना की ।। ९ ।। अर्जुनने आपको अपने बाणसे निकलेहुए गङ्गाजलको लाकर दिया इसी दिनसे यहां आपके अङ्ग सन्तुष्ट हुए हैं ।। १० ।। पूर्णान्त हुआ जान आपको उसदिन सब लोग अर्घ्यदान देते हैं इस लिये मेरे सन्तोषके देनेवाले ।। ११ ।। इस भीष्म पञ्चक नामके व्रतको करना चाहिये ।। जो मनुष्य कार्तिकके व्रतको करके भीष्मपञ्चक व्रतको न करे तो ।। १२ ।। उसका कार्त्तिकव्रत सब निष्फल होता है जो मनुष्य असमर्थ या अशक्त होनेके कारण कार्त्तिकके व्रतको न करसके ।।१३।। वो भीष्मपञ्चक व्रतको करके पूरे कार्तिकके व्रतोंका फल पाजाता है । परम पवित्र सत्यव्रत महात्मागांगेय ।। १४ ।। जो कि, जन्मपर्य्यन्त ब्रह्मचारी रहा है ऐस पितामह भीष्मके लिये इस अर्घ्यको देता हूं इस श्लोकसे सव्य होकर सब तर्पण करें यह सब वर्णोंके लिये है ।। १५ ।। व्रतांग होनेके कारण पूर्णिमा के दिन पाप पुरुषका दान करे । तथा पुत्रहीन मनुष्यको यह व्रत अवश्यही करना चाहिये।। १६।। जो पुत्रार्थी पुरुष स्त्री सहित इस व्रतको करता है उसे पाप पुरुष देकर एक वर्षके भीतर पुत्र पाजाता है ।। १७ ।। इस कारण इस भीष्मपञ्चक व्रतको अवश्य करना चाहिये - यह भीष्मपञ्चक व्रत विष्णुप्रीतिका करनेवाला है ।। १८ ।। हे खग ! इसी दिन भगवान्को जगाना चाहिये - श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन शंखासुर नामक दैत्यको मारा था ।। १९ ।। इस लिये भगवान् चौमासेमें एकादशीको क्षीरसमुद्रमें सोये कार्त्तिकी एकादशीके दिन उठे।। २० ।।इसी कारण वैष्णवोंको उस दिन प्रबोधो-

त्सव मनाना चाहिये, भगवान्‌को जगाते समय "उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शंखघ्न" इस श्लोकसे लेकर अर्थात् इक्कीसवें श्लोकके आरम्भ कर "उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु" इस तीसवें श्लोकतक पाठ करे। हे शंखासुरके मारनेवाले ! खडा हो खडा हो, हे समुद्रमें फिरनेवाले खडा हो हे कूर्मरूप धारण करनेवाले ! खड़ा हो उठकर तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ २१ ॥ हे वाराहबनकर दाढसे भूमिका उद्धार करनेवाले खडा होजा, आप हिरण्याक्ष के मारनेवाले हैं तीनों लोकोंमें मंगल करिये ॥ २२ ॥ आप हिरण्यकश्यपुको मारनेवाले हैं आप प्रह्लादको आनन्द देनेवाले हैं, हे लक्ष्मीके स्वामिन् ! खड़ा हो, तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ २३ ॥ हे बलिके दर्पको नष्ट करनेवाले ! हे इन्द्रको इन्द्रका स्थान दिलानेवाले ! हे अदितिके पुत्र ! खडा हो, तीनों लोकोंमें मंगलकार ॥ २४ ॥ हे सहस्रबाहुके सारे कुलको मारनेवाले खडा होजा, हे रेणुकाके मारनेवाले ! उठ तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ २५ ॥ हे राक्षसोंके मारनेवाले ! खड़ा होजा, हे अयोध्याको स्वर्ग देनेवाले समुद्रका पुल बाँधनेवाले तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ २६ ॥ हे कंसके मारनेवाले ! उठ बैठ, हे मदके घूमते हुए नेत्रोंवाले हलधर ! उठ तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ २७ ॥ लौकिकवृत्तियोंको छोड गयामें वास करनेवाले ! खड़ा होजा, हे पद्मासनपर चलनेवाले ! उठ तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ २८ ॥ युगान्तरमें घोडेपर चढकर म्लेच्छोंके तीनों लोकोंका मंगलकर ॥ २९ ॥ हे गोविन्द ! उठ उठ, हे गरुडध्वज ! उठ, हे कमलाके प्यारे ! उठ तीनों लोकोंमें मंगलकर ॥ ३० ॥ इस प्रकार कहकर प्रातःकाल शंख भेरी आदि बजावे वीणा वेणु और मृदङ्गादिक बजा नृत्य गीत करावे ॥ ३१ ॥ देवेशको उठाकर उनकी पूजा करनी चाहिये। सायंकालके समय तुलसीके विवाहकी विधि करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ वैष्णवोंको चाहिये कि, प्रतिवर्ष इस व्रतको अवश्य करे, मैं उस विधिको कहताहूँ जिससे पूरी क्रिया हो जाय ॥ ३३ ॥ एक पल सोनेकी विष्णु भगवानकी अच्छी प्रतिमा बनानी चाहिये, उसके आधेकी सोनेकी प्रतिमा बनावे अथवा जैसी अपनी शक्ति हो वैसी बना ले ॥ ३४ ॥ पीछे उन दोनोंकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। इसके पीछे पहिले कहे हुए स्तवोंसे भगवान्‌का उत्थापन करना चाहिये। सोलहों उपचारों और पुरुषसूक्तसे पूजन करना चाहिये। पीछे देशकालका स्मरण करके गणेशका पूजन करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पुण्याह वाचन कराकर नान्दीश्राद्ध कराये, वेद बाजोंके शब्दोंसे विष्णुमूर्तिको भली भाँति लावे ॥ ३७ ॥ तुलसीके समीपमें कपडा डालकर स्थापित कर दे कि, "हे देव केशव ! आज मैं तेरा पूजन करूंगा ॥ ३८ ॥ मैं तुझे तुलसी दूंगा तू मुझे इसके बदले में मेरे सब कामोंकी पूर्तिकर' तीन बार अर्घ्य दे और पाद्य विष्टर दे ॥ ३९ ॥ पीछे तीनवार आचमनीय कहकर आचमनीय दिलावे। इसके बाद दधि घृत और मधुको कांसेके पात्रमें रखकर ॥ ४० ॥ हे वासुदेव ! मधुपर्क ग्रहण करिये तेरे लिये नमस्कार है पीछे अपने कुलके जो आचार हों वे सब विष्णु भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करने चाहिये ॥ ४१ ॥ हलदी चढाना आदि सब विधि करके, गौधूलिके समय तुलसी और केशवका पूजन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ इसके बाद दोनोंको अलग २ सम्मुख बैठावे, जब सूर्य देव थोडेही दीखें तब संकल्प करे ॥ ४३ ॥ अपने तीन पुरुष तथा गोत्र और प्रवरोंको कहकर "हे-आदि मध्य और अन्तसे रहित ! हे तीनों लोकोंके पालन करनेवाले ईश्वर ! ॥ ४४ ॥ विवाहविधिसे तुलसीको ग्रहण कर, यह पार्वतीके बीजसे उत्पन्न हुई है। यह पहिले वृन्दाकी भस्ममें स्थित थी ॥ ४५ ॥ इसका आदि मध्य और अन्त यह कुछभी नही है। ऐसी तेरी बल्लभाको तुझे देता हूँ। मैंने पानीके घडे और अनेक तरहकी सेवाओंसे घरमें कन्याकी तरह यह बढाई है ॥ ४६ ॥ मैं तेरी प्यारी तुलसीको तुझे देता हूँ ग्रहण करें, इस प्रकार तुलसी देकर पीछे उसका पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ कार्तिककी व्रतकी सिद्धिके लिये रातको जागरण करना चाहिये। बालखिल्य बोले कि, इसके बाद प्रभातके समयमें तुलसी और विष्णु भगवान्‌का पूजन करे ॥ ४८ ॥ अग्निस्थापन करके द्वादशाक्षर मन्त्रसे पायस आज्य मधु और तिलोंसे एकसौ आठ आहुति दे ॥ ४९ ॥ पीछे स्विष्टकृत् हवन करके पूर्णाहुति देनी चाहिये, आचार्यकी पूजा करके होमके अवशिष्ट कृत्यको पूरा कर देना चाहिये ॥ ५० ॥ चार वर्ष या चार महीनेका जो जिसने नियमकर लियाहो उसे ब्राह्मणोंके सामने कहकर उसका और पूजन करे ॥ ५१ ॥ कि, देव ! हे प्रभो ! यह व्रत मैंने आपकी प्रसन्नताके लिये किया है। हे जनार्दन ! आपकी प्रसन्नतासे वो अपूर्ण भी पूरा हो जाय ॥ ५२ ॥ मनुष्यको चाहिये कि रेवतीके चौथे चरण सहित द्वादशीमें पारणा न करे। यदि इसमें पारणा करेगा तो उसका व्रत निष्फल

हो जायगा । चातुर्मास्य वा कार्त्तिकमें जिन पदार्थोंका निषेध कियागया हो उन्हें ब्राह्मणको देना चाहिये ।। ५३ ।। ५४ ।। जिसने इसके बाद व्रतकालमें जिन २ पदार्थोंका त्याग किया था उन २ सब पदार्थोंको ग्रहण करे अथवा सपत्नीक आपको ब्राह्मणोंके साथही खाना चाहिये ।। ५५ ।। भोजनके बाद स्वतः पडे तुलसीके पत्ते खाकर सब पापोंसे छूट जाता है ।। ५६ ।। भोजनके अन्नपर हरि अर्पित तुलसी दलके भक्षणसे चान्द्रायणसे ज्यादा पाप छूटते हैं ।।५७।। ईख, आंवले, या बेरको भोजनके अन्तमें खावे तो उसका उच्छिष्ट दोष नष्ट होता है ।।५८।। इन तीनों चीजोंमेंसे जिसने एकभी न खाई हो तो वह मनुष्य एक वर्षतक उच्छिष्ट गिना जाता है, इसमें संशय नहीं है ।। ५९ ।। तथा दूसरे दिनभी ईखके दण्डोंसे शोभित किए हुए भगवान्‌की और तुलसीकी सायंकाल फिर पूजा करे ।। ६० ।। भगवान्‌के दहेज आदिको देकर "वैकुण्ठं गच्छ भगवान्" इस मन्त्रसे आरम्भ कर 'गच्छ जनार्दन' ! तक पाठकहे । इसका अर्थ यह है कि, हे प्रभो ! हे भगवन् ! तुलसीके साथ वैकुण्ठ पधारिये ।। ६१ ।। मेरे किए हुए पूजनको ग्रहण करके सदा सन्तुष्ट रहिये, हे परमेश्वर ! हे सुरश्रेष्ठ ! अपने स्थान पर पधारिये ।। ६२ ।। जहां ब्रह्मादिक देवता विराजते हैं हे जनार्दन ! वहां पधारिये । इस प्रकार विसर्जन करके आचार्यके लिए दे दे ।। ६३ ।। जो मूर्ति तथा मूर्तिका उपकरण हो उसे देकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । जो प्रति वर्ष ऐसे ही तुलसीका विवाह करता है, उसको इस लोक और पललोकमें विपुल यश प्राप्त होता है ।। ६४ ।। यह श्रीसनत्कुमार संहितामें आई हुई कार्तिकशुक्ला एकादशीके दिन भीष्मपंचकव्रत और तुलसीप्रबोधकी विधि-पूरी हुई ।।

एकादश्युत्पत्तिकथा

अथ मार्गशीर्षकृष्णैकादशीव्रतम् ।। अर्जुन उवाच ।। ॐ नमो नारायणायाव्यक्तायात्मस्वरूपिणे ।। सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्रे च केशवाय नमोऽस्तु ते ।। १ ।। त्वमेव जगतां नाथअन्तर्यामी त्वमेव च ।। शास्त्राणां च कवीशश्च वक्ता त्वं च जगत्पते ।। २ ।। एकादशी कथं स्वामिन्नुत्पन्ना इति गीयते ।। एतं हि संशयं मेऽद्य च्छेत्तुमर्हसि त्वं प्रभो ।। ३ ।। ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ।। ममोपरि कृपां कृत्वा इदानीं वक्तुमर्हसि ।। ४ ।। मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। किं फलं को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।। ५ ।। कृता केन पुरा देव एतद्विस्तरतो वद ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पातकनाशिनीम् ।। ६ ।। पृष्टा च या त्वया रजाल्लोकानां हितकाम्यया ।। मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे चोत्पत्तिर्नाम नामतः ।। ७ ।। तस्यामुपोषणेनैव धार्मिको जायते नरः ।। धर्माद्भवति सत्यं वै लक्ष्मीः सत्यानुसारिणी ।। ८ ।। पुरा वै मुरनाशाय उत्पन्नां मम वल्लभाम् ।। ये कुर्वन्ति नराः राजंस्तेषां सौख्यं भवेद्ध्रुवम् ।। ९ ।। तथा पापानि नश्यन्ति तेन यान्ति यमालयम् ।। अर्जुन उवाच ।। उत्पन्ना सा कथं देव कथं पुण्याधिका शुभा ।। १० ।। कथं देव पवित्रावै कथं च देवताप्रिया ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पुरा कृतयुगे पार्थ मुरनामा हि दानवः ।। ११ ।। अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वलोकभयङ्करः ।। इन्द्र उच्छेदितस्तेन ह्याद्यो देवः पुरन्दरः ।। १२ ।। आदित्या वसवो ब्रह्मा वायुरग्निस्तथैव च ।। देवतानिर्जितास्तेन अत्युग्रेण तु पाण्डव ।। १३ ।। स्वर्गान्निराकृता देवा विचरन्ति महीतले ।। साशङ्का

भयभीतास्ते गतः सर्वे महेश्वरम् ।। १४ ।। इन्द्रेण कथितं सर्वमीश्वरस्यापि चाग्रतः ।। स्वर्गलोकं परित्यज्य विचरन्ति महीतले ।। १५ ।। मर्त्येषु संस्थित देवा न शोभते महेश्वर ।। उपायं ब्रूहि मे देव अमराणां तु का गतिः ।। १६ ।। शिव उवाच।। गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्रास्ति गरुडध्वजः ।। शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणः ।। १७ ।। ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा देवराजो महामतिः ।। त्रिदशैः सहितः सर्वैर्गतस्तत्र धनञ्जय ।। १८ ।। अप्सरोगणगन्धर्वैः।।सिद्धविद्याधरोरगैः यत्रैव स जगन्नाथः सुप्तोऽस्ति च जनार्दन ।। १९ ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ।। ॐ नमो देवदेवेश दैवानामपि वन्दित ।। २० ।। दैत्यारे पुण्डरीकाक्ष त्राहि मां मधुसूदन ।। नमस्ते स्थिति कर्त्रे च नमस्तेऽस्तु जगत्पते ।। २१ ।। नमो दैत्यविनाशाय त्राहि मां मधुसूदन ।। सुराः सर्वेसमायुक्ता भयभीतः समागताः ।। २२ ।। शरणं त्वां जगन्नाथ त्राहि मां भयविह्वलम् ।। त्राहि मां देवदेवेश त्राहि मां त्वं जनार्दन ।। २३ ।। त्राहि मां त्वं सुरानन्द दानवानां विनाशक ।। त्वं गतिस्त्वं मतिर्देव त्वं कर्ता त्वं परायणः ।। २४ ।। त्वं माता स्वर्वगोऽसि त्वं त्वमेव हि जगत्पिता ।। अत्युग्रेण तु दैत्येन निर्जितास्त्रिदशाः प्रभोः ।।२५ ।। स्वर्गम् त्यक्त्वा जगन्नाथ विचरन्ति महीतले ।। इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।। २६ ।। विष्णुरुवाच ।। कीदृशो वा भवेच्छत्रुः किन्नामा कीदृशं बलम् ।। किं स्थानं तस्य दुष्टस्य किं वीर्यं कः पराक्रमः ।। २७ ।। इन्द्र उवाच ।। बभूव पूर्वं देवेशासुरो ब्रह्मसमुद्भवः ।। तालजङ्घेतिनाम्ना च अत्युग्रोऽतिमहाबलः ।। २८ ।। तस्य पुत्रोऽतिविख्यातो मुरनामास्ति दानवः ।। उत्कटश्च महावीर्यो ब्रह्मलब्धवरो महान् ।। २९ ।। पुरी चन्द्रावतीनाम स्थानं तत्र वसत्यसौ ।। निर्जिता देवताः सर्वाः स्वर्गाच्चैव निराकृताः ।। ३० ।। इन्द्रोऽन्यश्च कृतस्तेन अन्यो देवो हुताशनः ।। चन्द्रसूर्यौ कृतौ चान्यौ यमो वरुण एव च ।। ३१ ।। सर्वमात्मीकृतं तेन सत्यं सत्यं जनार्दन ।। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपाविष्टो जगत्पतिः ।। ३२ ।। हनिष्ये दानवं दुष्टमित्याह भगवान् हरिः ।। त्रिदशैः सहितस्तत्र गतश्चन्द्रवतीं पुरीम् ।। ३३ ।। दृष्ट्वा देवान्स युयुधे दानवो बलदर्पितः।।असंख्यातैश्च शस्त्रास्त्रैर्दिव्यप्रहरणायुधः ।। ३४ ।। हन्यमानास्तु तैर्देवा असुरैश्च पुनः पुनः ।। त्रस्ता देवास्ततः सर्वे पलायन्त दिशो दश ।। ३५ ।। हरिं निरीक्ष्य तत्रस्थं तिष्ठ तिष्ठाब्रवीद्वचः ।। स तं निरीक्ष्य प्रोवाच असुरं मधुसूदनः ।। ३६ ।। रे दानव दुराचार मम बाहुं निरीक्ष्य च ।। चक्रं चैव परागच्छ यदि जीवितुमिच्छसि ।। ३७ ।। श्रुत्वैतद्भगवद्वाक्यं सक्रोधोरक्तलोचनः ।। सायुधैर्दानवैः साकं स दैत्यो योद्धुमाययौ ।। ३८ ।। ततस्ते सम्मुखाः सर्वे विष्णुना दानवा हताः ।। हतो बाणैः पुर्नर्दिव्यैर्बभूव सोऽति-

विह्वलः ।। ३९ ।। चक्रं मुक्तं तु कृष्णेन दैत्यसैन्ये च पाण्डव ।। तेनैव च्छिन्नशिरसो बहवो निधनं गताः ।। ४० ।। एकाङ्गे दानवे तत्र युध्यमाने मुहुर्मुहुः ।। नष्टाः सर्वे सुरास्तेन निर्जितो मधुसूदनः ।। ४१।। नि[1]र्जितेन च दैत्येन बाहुयुद्धं च याचितम् ।। बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।। ४२ ।। विष्णु पराजितस्तेन गतो बदरिकाश्रमम् ।। गु[2]हां सिंहवतीं नाम तत्र सुप्तो जनार्दनः ।। ४३ ।। दानवः पृष्ठतो लग्नाप्रविष्टस्तां गुहोत्तमा[3]म् ।। प्रसुप्तं तत्र मां दृष्ट्वा दानवेन तु भाषितम्।। ४४ ।। हनिष्यामि न सन्देहो दानवानां भयंकरम् ।। इत्येवमुक्ते वचने दैत्येनामित्रकर्षिणा ।। ४५ ।। निर्गता कन्यका चैका जनार्दनशरीरतः ।। मनोज्ञातिसुरूपाढ्या दिव्यप्रहरणायुधा ।। ४६ ।। विष्णुतेजः समुद्भूता महाबलपराक्रमा ।। रूपेण मोहितस्तस्या दानवो मुरनामकः ।। ४७ ।। सा कन्या युयुधे तेन सर्वयुद्धविशारदा ।। निहतो दानवस्तत्र तया देवः प्रबुद्धवान् ।। ४८ ।। पतितं दानवं दृष्ट्वा ततो विस्मयमागतः ।। केनेत्थं निहतो रौद्रो मम शत्रुर्भयंकरः ।। ४९ ।। न देवो न च गन्धर्वो न समोऽस्यास्ति भूतले ।। अकस्मादेव सोवाच वाचा दिव्यशरीरिणा ।। ५० ।। एकादश्युवाच ।। मया च निहतो दुष्टो देवानां च भयंकरः ।। जिता येन सुराः सर्वे स्वर्गाच्चैव निराकृताः ।। ५१ ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।। विष्णुरुवाच ।। उपकारः कृतो भद्रे मम कारुण्यभावतः ।। ५२ ।। दानवो निहतो दुष्टः सुराणां च भयंकरः ।। सो[4]ऽहं विनिर्जितो येन कंसो येन निपातितः ।। ५३ ।। विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा देवी वचनमब्रवीत्।। एकादश्यस्म्यहं विष्णो सर्वशत्रुविनाशिनी ।। ५४ ।। मया च निहतो दैत्यः सुराणां त्रासकारकः ।। इत्येतद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः ।। ५५ ।। प्राह तुष्टोऽस्मि भद्रं ते वरं वरय वाञ्छितम् ।। निहते दानवेन्द्रे च सन्तुष्टास्तत्र देवताः ।। ५६ ।। आनन्दस्त्रिषु लोकेषु मुनयो मुदमागताः ।। ददामि च न संदेहः सुराणामपि दुर्लभम् ।। ५७ ।। एकादश्युवाच ।। यदि तुष्टोऽसि मे देव सत्यमुक्तं जनार्दन ।। यदि देयो मम वरस्तिस्रो वाचो ददस्व मे ।। ५८ ।। श्रीभगवानुवाच ।। सत्यमेतन्मया प्रोक्तमवश्यं तव सुव्रते ।। तिस्रो वाचो मया दत्तास्तव वाक्यं भवेदिति ।। ५९ ।। एकादश्युवाच।। त्रैलोक्येषु च देवेश मन्वन्तरयुगेष्वपि ।। अहं च त्वत्प्रिया नित्यं यथा स्यां कुरु मे वरम् ।। ६० ।। सर्वतिथिप्रधाना च सर्वविघ्नविनाशिनी ।। सर्वपापहन्त्री च आयुर्बलविवर्द्धिनी ।। ६१ ।। उपोषयन्ति ये मर्त्या महाभक्त्या जनार्दन।। सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां यदि तुष्टोऽसि माधव ।। ६२ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। यत्त्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वंच भविष्यति ।। धर्मार्थकाममोक्षार्थं ये त्वय्युपवसन्ति च

---

१ दैत्येन कर्त्रा निर्जितेन विष्णुनेत्यर्थः । २ प्रविश्येति शेषः । ३ उत्तमा गुहा गुहोत्तमा ताम् । ४ येन मया कंसो निपातितः सोहं येन विनिर्जितः स दानवस्त्वया निहत इत्यन्वय :।

।। ६३ ।। मम भक्ताश्चये लोका ये च भक्तास्तवापि च ।। चतुर्युगेषु विख्याताः प्राप्स्यन्ति मम संनिधिम् ।। ६४ ।। सर्वतिथ्युत्तमा त्वं च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ।। एवमुक्ता ततः सा तु तत्रैवान्तरधीयत ।। ६५ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि पुरावृत्तं कथानकम् ।। पुरा कीकटदेशे वै कर्णीकनगरेशुभे ।। ६६ ।। कर्णसेनेति राजर्षिर्न्यवसदृद्धिमत्प्रजः ।। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैवानुमोदितः ।। ६७ ।। न दुर्भिक्षं न दारिद्र्यं तस्मिन्राज्ञि स्थितेऽर्जुन ।। नाकालवृष्टिर्न व्याधिर्नैव तस्करताषि च ।। ६८ ।। सम्पत्सन्ततिहीनश्च कोऽपि तत्र न विद्यते ।। पुत्रदुःखं पिता क्वापि न पश्यति च कुत्रचित् ।। ६९ ।। एतादृशे महाराज प्रशासति प्रजाः प्रभो ।। धनहीनो द्विजः कोपि क्षुत्क्षामो विपदं गतः ।। ७० ।। कुटुम्बभरणाशक्त आसीत्तदनुवर्तिनी ।। भर्त्तुः शुश्रूषणे सक्ता सदाचारा गृहे स्थिता ।। ७१ ।। सुदामानाम विप्रर्षिभार्या साध्वी च सत्तमा ।। रहोऽवदच्च भर्तारं श्लाघता वचनेन सा ।। ७२ ।। स्वामिन्पापकृते पूर्वं धर्महीनस्तु जायते ।। धर्महीने धनं नास्ति धनहीने क्रिया न हि ।। ७३ ।। तस्मात्केनाप्युपायेन धर्मस्य जननं कुरु ।। एतस्मिन्नन्तरे राजन्देवर्षिः समुपागतः ।। ७४ ।। उत्थाय दम्पती तौ तं सत्कृत्य मुनिमूचतुः ।। आसने तिष्ठ भो स्वामिन्नर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।। ७५ ।। अद्य नौ सफलं जन्म अद्य नौ सफलाः क्रियाः ।। अद्य नौ सफलं सर्वं भवतो दर्शनेन च ।। ७६ ।। अस्मिन्पुरे तु ये स्वामिन् सर्वे ते सुखिनो जनाः ।। आवां तु धनहीनत्वान्महादुःखेन पीडितौ ।।७७।। कथयस्व प्रसादेन धनाढ्यौ स्याव वै कथम्।। धनहीनस्य लोकेऽस्मिन्वृथा जन्मोमनोरथाः ।। ७८ ।। एवं श्रुत्वातु राजेन्द्र वचनं नारदोऽब्रवीत् ।। नारद उवाच ।। मार्गशीर्षसिते पक्षे उत्पत्तिर्नाम नामतः ।। ७९ ।। तस्यामुपोषणेनैव धनाढ्यो जायते ध्रुवम् ।। तथा पापानि नश्यन्ति एतत्सत्यं वदामि वाम् ।। ८० ।। सर्वसौख्यकरं नृणां हरिवासरमुत्तमम् ।। गते तु नारदे पश्चाच्चक्रतुर्यत्नतो व्रतम् ।। ८१ ।। तयोर्व्रतप्रभावेण सुप्रसन्नो जनार्दनः ।। स्वयमेवाश्रिता लक्ष्मीर्यत्रासीद्द्विजमन्दिरम् ।। ८२ ।। भोगान्सुविपुलान्भुक्त्वा गतौ वैकुण्ठसन्निधौ ।। एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यं हरिवासरम् ।। ८३ ।। अन्तरं नैव कर्तव्यं प्रशस्तव्रतकारिभिः ।। तिथिरेका भवेत्सर्वा पक्षयोरुभयोरपि ।। ८४ ।। एकादश्युदये स्वल्पा अन्ते चैव त्रयोदशी ।। मध्ये च द्वादशी पूर्णा त्रिःस्पृशा सा हरिप्रिया ।। ८५ ।। एका उपोषिता चैव सहस्रैकादशीफला ।। सहस्रगुणितं दानमेकादश्यां तु यत्कृतम् ।। ८६ ।। अष्टम्येकादशी षष्ठी तृतीया च चतुर्दशी ।। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ।।८७।। दशमीवेधसंयुक्ता हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।। एकादशी त्वहोरात्रं प्रभाते घटिका भवेत् ।।८८।। सा तिथिः परि-

हर्तव्या उपोष्या द्वादशीयुता ।। एवंविधा मया प्रोक्ता पक्षयोरुभयोरपि ।। ८९ ।। एकादश्यां प्रकुर्वीत उपवासं न संशयः ।। स याति परमं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः ।। ९० ।। धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुभक्तिपरायणाः ।। एकादश्याश्च माहात्म्यं पर्वकाले तु यः पठेत् ।। ९१ ।। गोसहस्रसमं तस्य पुण्यं भवति भारत ।। दिवा वा यदि वा रात्रौ यः शृणोतीह भक्तितः ।। ९२ ।। कुलकोटिसमायुक्तो विष्णुलोके वसेद्ध्रुवम् ।। एकादश्याश्च माहात्म्यं पठ्यमानं शृणोति यः ।। ९३ ।। ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ते नात्र संशयः ।। एकादशीसमा नास्ति सर्वपातकनाशिनी ।। ९४ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे मार्गशीर्षकृष्णैकादश्युत्पत्तिमाहात्म्यं संपूर्णम् ।।

मार्गशीर्षकी कृष्णा एकादशीका व्रत–अर्जुन बोले, हे–भगवन् ! आपको नमस्कार है, आप सृष्टि स्थिति और संहारको करनेवाले तथा अव्यक्त आत्मस्वरूप और नारायण हैं । इसलिए हे केशव ! आपको नमस्कार है ।। १ ।। हे जगत्के नाथ ! अन्तर्यामी शास्त्रों और कवियोंके ईश हो । वक्ता और जगत्पति हो, इसलिए ।। २ ।। हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! एकादशी किसप्रकार उत्पन्न हुई ! इस संदेहको आप दूर कीजिए ।। ३ ।। गुरु लोग अपने शिष्यको गुप्त रहस्य भी प्रकट करते हैं इसलिये आप मुझपर कृपाकर इसको इससमय कहें ।। ४ ।। मार्गशीर्ष महीनेकी कृष्णपक्षकी एकादशीका क्यानाम है ? उसका फल और विधि क्या है ? उसमें किस देवकी पूजाकी जाती है ।। ५ ।। तथा उसे पहले किसने किया है ? यह विस्तारसे कहिये । श्रीकृष्ण बोले कि, हे राजन् ! उस कथाकी जिसको तुमने लोगोंके हितकी दृष्टिसे पूछा है और जो पापोंको दूर करनेवाला है सुनों । मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें उसका नाम उत्पत्ति है ।। ६ ।। ७ ।। जो मनुष्य उस दिन उपवास करता है वह धार्मिक होता है और धर्मसे सत्य तथा सत्यसे लक्ष्मी होती है ।।८।। पहले मुरनामक दैत्यको नाश करनेके लिए उत्पन्ना नामकी मेरी प्रियाका जो लोग व्रत करते हैं उनको निश्चयही सुख प्राप्त होता है ।। ९ ।। इस प्रकार पाप नष्ट होते हैं कि, वे फिर यमराजके घर नहीं जाते अर्जुन बोले कि, महाराज ! उसका नाम उत्पन्ना कैसे हुआ ? वह क्यों अधिक देवताओंकी प्यारी पवित्र वा पुण्यमें अधिक मानीजाती है ? ।। १० ।। श्रीकृष्णजी बोले कि हे अर्जुन! पहले सतयुगमें एक मुरनामक दानव हुआ था।११।वह बडा प्रचण्ड लोगोंको भय पहुंचानेवाला था । उस महाबली दानवने सबसे पहिलेके इन्द्रको उखाडकर फेंक दिया, एवं हे पाण्डव ! उस उग्रने इन आदित्य, वसु, ब्रह्मा, वायु, अग्नि आदि देवताओंको जीत लिया । इस प्रकार स्वर्गसे फटकारे हुए ये देव डरके मारे पृथ्वीपर घूमने लगे । वे सब शंका और भयसे युक्त होकर महादेवजीके पास गये ।। १२–१४।। इन्द्रने ईश्वरके आगे यह सब हाल बतलाया–किस प्रकार हम लोग स्वर्गको छोडकर पृथ्वीमें घूमते हैं ।। १५ ।। महाराज ! पृथ्वीमें देवतागण मर्त्यलोक होनेके कारण शोभा नहीं पाते इसलिए इसका कोई रास्ता बताइये कि, देवताओंकी क्या व्यवस्था हो ।। १६ ।। शिवजी बोले हे इन्द्र ! तुम गरुडध्वज भगवान्के शरणमें जाओ । क्योंकि, वो शरणागत जो दीन और आर्तजन हैं उनकी रक्षामें रहनेवाले हैं ।। १७ ।। इस प्रकार उस बुद्धिमान् इन्द्रने ईश्वरके वचनोंको सुनकर देवता, अप्सरा, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और उरगोंके साथ हे धनंजय ! जहां भगवान् जगन्नाथ जनार्दन सो रहे थे ।। १८ ।। १९ ।। वहां जाकर हाथ जोड स्तोत्र कहा कि, हे देववन्दित देवदेवेश ! हे दैत्यारे हे पुण्डरीकाक्ष ! हे मधुसूदन ! आप मेरी रक्षा करिये । आपको नमस्कार है । हे जगत्पते ! आपको नमस्कार, स्थितिके करनेवाले आपको नमस्कार ।। २० ।। २१ ।। आप दैत्योंका विनाश करनेवाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार है । हे मधुसूदन ! मुझे बचाइये, हे जगन्नाथ ! आपकी शरणमें ये सब देवता भययुक्त होकर आये हैं, इसलिए आप इनकी और भयसे व्याकुल मेरी हे देवदेवेश ! हे जनार्दन ! आप रक्षा कीजिये ।। २२ ।। ।। २३ ।। आप देवताओं को आनन्द देनेवाले तथा दानवोंका नाश करनेवाले हैं । अतः

मेरी रक्षा करें, तुमही मेरी गति और मति हो और आपही कर्त्ताहर्त्ता और परायण हो ।। २४ ।। आपही माता और पिता हो । आपही जगत्के पिता हो, हे प्रभो ! हम सब उस बली दानवसे हार चुके हैं ।। २५ ।। स्वर्ग छोडकर पृथ्वीमें घूम रहे हैं । इस प्रकार इन्द्रके वचन सुनकर विष्णुभगवान् बोले ।। २६ ।। कि, आपका शत्रु कैसा है ? उसका कैसा बल और क्या नाम है तथा उस दुष्टका कौनसा स्थान है । बीर्य्य और पराक्रम उसमें कैसा है ? इन्द्र बोले कि, हे देवेश ! पूर्व समयमें अत्यन्त अपूक सत्व तालजंघ नामका अतिही उग्र और महा-बलशाली असुर ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ । उसका पुत्र मुरनामका दानव है जो ब्रह्मासे वर पानेके कारण बड़ा उत्कट बलवान् होगया है ।। २७–२९ ।। पहले यह चन्द्रवती नामके स्थानमें रहता था जहांसे सब देवताओंको जीतकर स्वर्गसे भी निकाल दिया ।। ३० ।। जिसने इन्द्रभी दूसरा बना लिया और अग्नि, चन्द्र, सूर्य, यम, वरुण आदिको भी दूसरे बनाकर ।। ३१ ।। सबको अपने अधीन कर लिया । महाराज यह बिलकुल सत्य है । उसके इन वचनोंको सुनकर जगन्नाथ भगवान् कुपित होगये ।। ३२ ।। और कहा कि, मैं उस दुष्टको मारूंगा । भगवान् चन्द्रवती पुरीमें देवताओंको साथ लेकर गये ।।३३।। वहां वह अभिमानी दानव सब देवोंको देखकर अपने असंख्य शस्त्र अस्त्रोंसे तथा दिव्य आयुधोंसे ।।३४।। देवोंको मारने लगा । असुरोंकी बारबारकी मारसे सब देव डरके मारे दिशाओंमें भागने लगे ।। ३५ ।। उसने भगवान्को वहां बैठा देख 'ठहर ठहर' का वचन कहा । भगवान्ने देखकर कहा ।। ३६ ।। कि, हे दुष्ट ! असुर ! मेरी बाहू देख, यदि तू जीना चाहता है तो पहले मेरे चक्रकी शरण जा ।। ३७ ।। इस प्रकार भगवान्के वचनको सुनकर वह क्रोधी असुर अपने दानवों के साथ सब आयुधोंको लेकर लडनेको आया ।। ३८ ।। भगवान्नने सम्मुखागत समस्त दानवोंको मार दिया फिर बहुतसे दिव्य बाण उस दैत्यके मारे जिनसे वो अत्यन्त विह्वल होगया ।। ३९ ।। भगवान्ने दैत्य सेनाके अन्दर अपना चक्र छोड दिया जिससे शिर कट कट कर बहुतसे दैत्य मृत्युको प्राप्त होगये ।।४०।। इस प्रकार जब सारे असुर नष्ट होगये, तब वो अकेलाही लडने लगा उसने बार बार लडकर भगवान्को जीत लिया ।।४१।। हारनेपर उस दैत्यसे भगवान्ने बाहु युद्ध करनेकी याचना की । कुश्ती लडते लडते उसने हजार वर्ष बिता दिये ।।४२।। भगवान् उससे पराजित होकर बदरिकाश्रम चले गये । वहां सिंहवती नामकी गुहामें जा कर सो रहे ।। ४३ ।। पीछे लगा हुआ वह दानव वहां भी जा पहुंचा । मुझे सोता हुआ देख कर कहने लगा कि, ।। ४४ ।। मैं दैत्योंके भय देनेवाले तुझे मारूँगा इसमें कोई सन्देह न कर । इस प्रकार उस अमित्रको खींचनेवाले दैत्यके ऐसा कहनेपर भगवान्के शरीरसे एक कन्या उत्पन्न हुई जो अत्यन्त सुन्दर और दिव्य आयुधोंसे युक्त थी ।। ४५ ।। ४६ ।। विष्णुके तेजसे उत्पन्न होनेवाली उस महा बलवती कन्याके रूपसे वह दानव मोहित हो गया ।। ४७ ।। युद्धविद्याकुशल उस कन्याने उस दैत्यसे युद्ध करके उसे मार दिया । और उससे विष्णु भगवान्की निद्रा भङ्ग हुई ।। ४८ ।। भगवान को उस दैत्यकी मृत्युसे बडा आश्चर्य हुआ और बोले कि मेरे इस भयंकर शत्रुको किसने मारा है ? ।। ४९ ।। इस भूतलपर मेरे समान न कोई देव है और न कोई गन्धर्व है इतना कहते ही दिव्य शरीर धारिणी उस कन्याने कहा ।।५०।।वो कन्यारूपा एकादशी ही थी कि, उस दुष्ट राक्षसको जिसने सब देवताओंकोस्वर्गसे निकाल कर भगा दिया है और जो देवताओंको भय पहुँचानेवाला है मैंनें मारा है ।। ५१ ।। उसके इस वचनको सुन विष्णुने कहा कि, हे भद्रे ! तुमने मुझपर कृपा कर बडा उपकार किया ।। ५२ ।। वह दानव आज मर गया जो देवताओंको भय पहुंचाता था । जिसने मुझे जीता और कंसको गिराया था ।। ५३ ।। विष्णुके इन वचनोंको सुनकर देवीने उत्तर दिया, हे विष्णो ! मैं सब शत्रुओंको विनाश करनेवाली एकादशी हूँ ।। ५४ ।। इसलिये मैंने ही उस देवताओंको भय पहुंचाने वाले दैत्यको मार दिया है । भगवान् इस वचनको सुनकर।।५५।। बोले कि, हे देवि ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ इसलिये तुम अपना इच्छित वर मांगो । उस दैत्यके मर जानेपर आज सब देवोंके घर हर्ष हो रहा है । ।।५५६।। तीनों लोकोंमें आनन्द हो रहा है मुनिगण प्रसन्न हैं । अतः मैं तुम्हें देव दुर्लभ वर देता हूँ ।। ५७ ।। एकादशीने कहा हे देवदेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप मुझे तीन वचन दीजिये ।।५८ ।। श्रीभगवान् बोले कि, हे देवि ! मैं तुम्हें सत्य वचन कहता हूँ कि,तुम्हारे माँगे हुए तीनों वचन वर तुमें देता हूँ ।। ५९ ।।एकादशीने कहा–महाराज ! पहला वर तो यह है कि, मैं आपकी तीनों लोकों में, मन्वन्तरोंमें, युगों में सदाही प्रिय

रहूँ ॥ ६० ॥ दूसरा वर यह है कि सब विघ्नोंको और पापोंको नाश करनेवाली मैं सब तिथियों में प्रधान तिथि एवं आयु और बलके बढानेवाली रहूँ ॥ ६१ ॥ तीसरा वर यह है कि, हे जनार्दन ! जो लोग मेरे व्रतको बडी भक्तिपूर्वक करें और उपवास करें तो उनकी सब प्रकारकी सिद्धि हों जो आप मुझपर प्रसन्न हों तो ॥६२॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे कल्याणि ! जो तुम कहती हो वह सब सत्य होगा । जो तेरे और मेरे भक्त धर्मार्थ काम मोक्षके वास्ते उपवास करेंगे वे चारों युगोंमें प्रसिद्ध होकर मेरे निकट पहुँचेंगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ और तुम मेरी प्रसन्नतासे सब तिथियोंमें उत्तम रहोगी ऐसा सुनकर वह वहाँही अन्तर्ध्यान होगई ॥ ६५ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, अब मैं और पुराना एक इतिहास सुनाता हूँ कि —कीकट देशके शुभ कर्णीक नगरमें ॥ ६६ ॥ कर्णसेन नामका राजर्षि था । जिसके राज्यमें सारी प्रजा प्रसन्न रहती थी । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब उसका अनुमोदन करते थे ॥ ६७ ॥ हे अर्जुन ! उस राजाके राज्यमें दुर्भिक्ष, दरिद्रता, अकालवृष्टि, बीमारी और चोरी कभी न हुई ॥ ६८ ॥ उसके राज्य में कहीं भी कोई गरीब और सन्तानहीन मनुष्य तथा कोई भी माँ बाप अपने पुत्रका दुःख न उठाता था ॥ ६९ ॥ ऐसे सुयोग्य राजाके समयमेंभी एक ऐसा ब्राह्मण थाजो अति गरीब और भूखसे दुबला हो रहा था ॥ ७० ॥ कुटुम्बका पालन करनेमें अशक्त था । उसकी स्त्री बडी सदाचारिणी तथा पतिसेवा परायण थी ॥७१॥ उस सुदामा नाम ब्रह्मर्षिकी सती स्त्रीने एकदिन अपने पतिसे उदास होकर एकान्तमें कहा ॥ ७२ ॥ कि , महाराज ! पहले पाप करने से मनुष्य धर्महीन होता है । धर्महीन होने पर धन नहीं होता तथा किसी प्रकारकी क्रिया भी नहीं होती ॥ ७३ ॥ इसलिये महाराज ! आप किसी उपायसे धर्म उत्पन्न होने का प्रयत्न कीजिये । इसी बीच हे राजन् ! देवर्षि भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ७४ ॥ उन दोनों स्त्री पुरुषोंने उठकर मुनिका सत्कार किया और आसनपर बिठाकर प्रार्थना की कि हे प्रभो ! हमारे दिये हुए अर्घ्यको स्वीकार कीजिये यह आपको हमारा नमस्कार है ॥ ७ ५ ॥ आज हमारा जन्म सफल है । आज हमारी क्रिया सफल हैं और आपके दर्शनसे हमारा सब कुछ सफल है ॥ ७६ ॥ महाराज ! इस नगर में सब मनुष्य सुखी हैं परन्तु हम दोनों बडे गरीब और दुःखी हैं ॥ ७७ ॥ इसलिये आप प्रसन्न होकर कहिये कि, हम किस प्रकार धनी हों । क्योंकि धनहीन मनुष्यका जन्म और मनोरथ सब व्यर्थ हैं। ।७८ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सुनकर नारदजी बोले कि, मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें उत्पत्ति नामकी एकादशी है ॥ ७९॥ उस दिन उपवास करनेसे मनुष्य निश्चयही धनी होता है । और उसके सब प्रकारके पाप नष्ट होते हैं। यह मैं तुम दोनों से सत्य कहता हूँ ॥ ८० यह हरिवासर मनुष्योंको सब सुखोंका देनेवाला है, नारदजीके चले जानेपर उन्होंने इस व्रतको बडे यत्नसे किया ॥८१॥उस व्रत के प्रभावसे भगवान् प्रसन्न हो गये और लक्ष्मी स्वयं उस ब्राह्मण के घर आकर विजराजमान हो गई ॥ ८२ ॥ वह सब प्रकार के महान् भोगोंको भोगकर वैकुण्ठमें चला गया । इसलिये हे राजन् ।! हरिवासर को अवश्य उपवास करना चाहिये ॥ ८३ ॥ उत्तम व्रत करनेवाले कभी इस व्रतको करनेमें अन्तर न करें । हे पार्थ ! दोनों पक्षोंमें यह सब एकही तिथि है ॥ ॥८४॥ उदयकालमें एकादशी और अन्त में कुछ त्रयोदशी हो मध्यमें पूर्ण द्वादशी हो तो वह भगवान्की प्यारी त्रिस्पृशा नामकी एकादशी होती है ॥ ८५ ॥ इसके दिन उपवास करनेसे हजार एकादशीका फल प्राप्त होता है और ऐसी एकादशीके दिन किया हुआ दान सहस्र गुणित होता है ॥ ८६ ॥ अष्टमी, एकादशी, षष्टी,तृतीया और चतुर्दशी पूर्वतिथिसे विद्ध हों तो न करनी चाहिये और आगेवाली तिथियोंसे युक्त हों तो करनी चाहिये।।८७।।दशमीके वेधसे युक्त एकादशी पूर्वकृत पुण्यको नष्ट करती है।जिस दिन रातमें एकादशी एक घडी प्रभातके समयमें हो तो ॥ ८८ ॥ उस तिथिका परित्याग करना चाहिये। द्वादशी युक्त एकादशीका उपवास करना चाहिये । यह मैंने दोनों पक्षोंकी एकादशीके लिये कह दिया है ॥ ८९ ॥ एकादशीका उपवास करनेवाला जन अवश्यही भगवान् के उस परमस्थानको जाता है जहाँ कि स्वयं भगवान् विराजते हैं ॥ ९० ॥ वे लोग लोकमें धन्य हैं जो विष्णुके भक्त हैं ।जो पर्वके समय एकादशीके माहात्म्यको कहें सुनें तो ॥ ९१ ॥ हे अर्जुन ! उन्हें सहस्र गोदानका फल प्राप्त है । दिनमें या रातमें जो एकादशीकी कथाको भक्तिसे सुनते हैं ॥ ९२ ॥ वे कोटिकुलपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करते हैं । एकादशीके पढते हुए माहात्म्यको जो मनुष्य सुनते हैं ॥९३॥ उनके ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं । हे अर्जुन ! इस एका-

दशीके समान समस्त पापनाशिनी और दूसरी कोई तिथि नहीं है । । ९४ ।। यह श्री भविष्योत्तरपुराणका मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीकी उत्पत्तिका माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ।।

अथ वैतरणीव्रतम्

मार्गशीर्षकृष्णैकादश्यां वैतरणीव्रतं हेमाद्रौ भविष्ये-कृष्ण उवाच ।। शरतल्पगतं भीष्मं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ।। व्रतेन येन पुण्येन यमलोको न दृश्यते ।। १ ।। नारी वा पुरुषो वापि शोकं चैव न विन्दति ।। तत्समाचक्ष्व धर्मज्ञ पितामह कृपां कुरु।।२।।भीष्म उवाच ।। एकादशी वैतरणी तां कृत्वा च सुखी भवेत्।। यमलोकं न पश्येच्च शोकं चैव न विन्दति ।। ३ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। केन तात विधानेन कर्तव्या सा महाफला ।। पितामह समाख्याहि तद्विधानं मम प्रभो ।। ४ ।। भीष्म उवाच ।। एकादशी तिथिः कृष्णा मार्गशीर्षगता नृप ।। तामासाद्य नरः सम्यग्गृह्णीयान्नियमं शुचिः ।। ५ ।। एकादशीतिथिः कृष्णा नाम्ना वैतरणी शुभा ।। सा व्रतेन त्वया कार्या वर्षं नक्तोपवासिना ।। ६ ।। मध्याह्ने तु नरः स्नात्वा नित्यनिर्वर्तितक्रियः ।। रात्रौ सुरभिमानीय कृष्णामर्चेद्यथाविधि ।। ७ ।। सा पूर्वाभिमुखी कार्या कृष्णा गौः कि[1]ल भूतले ।। अग्रपादात्समा[2]रभ्य पश्चात्पादद्वयावधि ।। ८ ।। गोपुच्छं तु समासाद्य कुर्याद्वै पितृतर्पणम् ।। ततः पूजा प्रकर्तव्या शास्त्रदृष्टविधानतः ।। ९ ।। गां चैव श्रद्धया युक्तश्चन्दनेनानुलेपयेत् ।। गन्धतोयेन चरणौ शृङ्गे प्रक्षाल्य शक्तितः ।। १० ।। ततोऽनु पूजयेद्भक्त्या पुष्पैर्गंधाधिवासितैः ।। मन्त्रैः पुराणसंप्रोक्तैर्यथास्थानं यथाविधि ।। ११ ।। तत्र पूजामन्त्राः –गोरग्रपादाभ्यां नमः ।। गोरा स्याय० ।। गोः शृङ्गाभ्यां० ।। गोः स्कन्धाभ्यां० ।। गोः पश्चात्पादाभ्यां० ।। गोः सर्वाङ्गेभ्यो नमः ।। स्थानेष्वेतेषु गन्धांश्च प्रक्षिपेच्छुद्धमानसः ।। पश्चात्प्रदापयेद्धूपं गौर्धूपः प्रतिगृह्यताम् ।।१२।। असिपत्रादिकं घोरं नदीं वैतरणीं तथा ।। प्रसादात्ते तरिष्यामि गौर्मातस्ते नमोनमः ।। १३ ।। सुखेन ती[3]र्यते यस्मान्नदी वैतरणी ध्रुवम् ।। तस्मादेकादशीं कृत्वा नाम्ना वैतरणी भवेत् ।। १४ ।। आनन्दकृत्सर्वलोके देवानां च सदा प्रिया।। गौस्त्वं पाहि जगन्नाथ दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। १५ ।। आच्छादनं गवे दद्यात्सम्यक् शुद्धं सुनिर्मलम् ।। सुरभिर्वस्त्रदानेन प्रीयतां परमेश्वरी ।। १६ ।। मार्गशीर्षादिके भक्तं यावन्मासचतुष्टयम् ।। अन्यन्मासचतुष्कं तु यावकाशनमेव च ।। १७ ।। श्रावणादिषु मासेषु चतुर्ष्वद्याच्च पायसम् ।। तदन्नस्य त्रयो भागा गोगुरुस्वार्थमेव च ।। १८ ।। नैवेद्यं हि मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम् ।। द्वितीयं गुरवे दद्यात्तृतीयं स्वयमेव च ।। १९ ।। मासि मासि प्रकुर्वीत मासद्वादशकं व्रतम्।।

१ गौर्लिप्तेति क्वचित् पा० । दितः पूज्येत्यपि क्व० पा० । ३ यस्मादर्थादिमामेकादशीं कृत्वा वैतरणी नदी तीर्यते नरेणेति शेषः अस्मादियं नाम्ना वैतरणी भवेदित्यन्वयः ।

उद्यापनं ततः कुर्यात्पूर्णे संवत्सरे तदा ।। २० ।। शय्या सतूलिका कार्या दम्पत्योः परिधानकम् ।। सवत्सा कृष्णवर्णा तु धेनुः कार्या पयस्विनी ।। २१ ।। सौवर्णी सुरभिं कृत्वा स्थापयेत्तूलिकोपरि ।। सुरभिं पूजयेन्मन्त्रैः पूर्वोक्तैर्भक्तिसंयुतः ।। २२ ।। ततस्तां गुरवे दद्यात्सर्वं तत्र क्षमापयेत् ।। भारो लोहस्य दातव्यः कार्यासद्द्रोणसंयुतः ।। २३ ।। वैतरिण्यां समाप्त्यर्थं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।। नारी वा पुरुषो वापि व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। राज्यं बहुदिनं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते ।। २४ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे मार्गशीर्षकृष्णैकादश्यां वैतरणीव्रतं सम्पूर्णम्

अथ वैतरणीव्रत –यह मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीके दिन होता है ऐसा हेमाद्रिमें भविष्यमें लिखा है । कृष्ण बोले कि, युधिष्ठिर महाराजने शरशय्यापर सोते हुए भीष्मजीसे पूछा कि, किस पवित्र व्रतको करनेसे मनुष्य यमलोकका दर्शन नहीं करता ।। १ ।। स्त्रियें और पुरुषोंको जिसके करनेसे कभी शोक न हो उस व्रतको हे धर्मज्ञ ! भीष्म ! कृपा करके बताइये ।। २ ।। भीष्मजी बोले कि, वैतरणी एकादशीको करने से मनुष्य सुखी होता है शोक को नहीं प्राप्त होता और यमलोकको नहीं देखता है ।। ३ ।। युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! उस महाफला एकादशीको किस विधानसे करें कृपा कर मुझे उपदेश दीजिये ।। ४ ।। भीष्मजी बोले कि, मार्गशीर्ष महीनेकी कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन पवित्र होकर हे राजन् ! नियम करे ।। ५ ।। उस शुभ एकादशीको जिसका नाम वैतरणी है वर्षभर पूर्वदिनसे ही रातमें उपवास करके विधिपूर्वक करे ।। ६ ।। मध्याह्नमें समस्त क्रियाओं से निवृत्त होकर स्नान करे । रातमें काली गौको लाकर यथाविधि उसकी पूजा करे ।। ७ ।। उस काली गौको निश्चयही भूमिपर पूर्वाभिमुख खडीकर आगेके पैरोंसे प्रारंभ करके पीछेके पैरों कोभी पूजा करे । इस श्लोकके 'किल भूतले' इस अन्तिम टुकडे के 'किल' जिसका कि, निश्चयही ऐसा अर्थ किया है इसके स्थानमें ('लिप्त ' ऐसा पाठभी कोई मानते हैं जिसका यह अर्थ हो जाता है कि, 'लिपी 'भूमिमें' अग्रपादात्समारम्भ' इस पाठके स्थानमें 'अग्रपादादितः पूज्या' ऐसा पाठ मानते हैं इसका यह अर्थ हो जाता है कि, सबसे पहिले आगाडीके पैरोंको पूजे पीछे पीछेके पूजने चाहिये ।। ८ ।। पितरोंका परिस्फुट तर्पण गौकी पूंछ पकड़कर करे । फिर शास्त्र विहित विधिसे पूजन करे ।। ९ ।। श्रद्धापूर्वक गायको चन्दनसे अलंकृत करे । चरणों और सींगोंको सुगन्धित पानीसे प्रक्षालित करे । ।१०।। गन्धाधिवासित पुष्पोंसे पुराणोक्त मन्त्रोंके द्वारा यथाविधि स्नान कराकर भक्तिपूर्वक पूजा करे ।। ११ ।। पूजाके मन्त्र–गोरग्रपादाभ्यां नमः गऊके आगाड़ीके पैरोंको नमस्कार। गोरास्याय नमः गऊके मुखके लिये नमस्कार है, गऊके सींगोंके लिये नमस्कार, गऊके स्कन्धोंके लिये नमस्कार, गऊकी पूंछके लिये नमस्कार, गऊके पीछेके लिये नमस्कार; गऊके सर्वांगके लिये नमस्कार । इन कहे हुए अंगोंमें इन मन्त्रोंसे शुद्ध मन के साथ गन्ध लगाना चाहिये, पीछे गऊको धूप देना चाहिये कि हे गो ! धूपको ग्रहणकर ।। १२ ।। हे मातः ! आपकी प्रसन्नतासे असिपत्रादि घोरनरकोंको तथा वैतरणी नदीको पार करूंगा इसलिये हे गो मातः। ! तुम्हें मेरी वारवार नमस्कार है ।।१३।। जिससे वैतरणी नदीको सुखसे निश्चय ही तैर सकता है इसलिये इस एकादशीका नाम वैतरणी हुआ है ।। १४ ।। 'आनन्द कृत्सर्वलोके ' इस मंत्र से दीपक करे कि तू सब लोकों में आनन्द करनेवाली है, देवों की सदा प्यारी है, हे गो ! रक्षा कर । हे जगन्नाथ ! दीपक को ग्रहण कर । तेरे लिये नमस्कार है ।। १५ ।। अच्छा शुद्ध निर्मल वस्त्र गौके लिये देना चाहिये कि परमेश्वरी सुरभि वस्त्रदानसे प्रसन्न होजाय ।। १६ ।। मार्गशीर्षसे फाल्गुनतक " भात " का तथा चैत्रसे आषाढतक यावकका भोजन करे

---

१ इदं च गुर्जरदेशे प्रसिद्धम् ।

।। १७ ।। श्रावणसे कार्तिकतक खीरका भोजन करे । और उस अन्नके तीनभाग करे अर्थात् एक गैयाका दूसरा गुरुका, तीसरा अपना ।। १८ ।। हे सुरभे ! में नैवेद्य देता हूँ ग्रहणकर, इससे गौको दे । इसी प्रकार दूसरा गुरुको और तीसरा भाग स्वयं ग्रहण करे । । १९ ।। इस १२ महीनेके व्रतको प्रत्येक महीने में करे । वर्ष समाप्त हो जाने पर उद्यापन करे ।। २० ।। शम्या और स्त्रीपुरुषके वस्त्र, बच्चेसहित कालेवर्णकी दूध देनेवाली गौ अपने गुरुको प्रदान करे । स्वच्छ बिछौनेपर सुवर्णमयी गौकी प्रतिमा स्थापित कर पूर्वोक्त पुराणोंके मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करे ।। २१ ।। २२ ।। और गौमाताको देकर अपने सब अपराधोंकी क्षमा करावे एवं साथही इसके एक भार लोहा भी एक द्रोण कपासके साथ ।। २३ ।। किसी कुटुम्बी ब्राह्मणको दे । वैतरणी नदीको यात्रा समाप्त करनेके उद्देश्यसे स्त्री या पुरुष हो इस व्रत के प्रभावसे अनेक दिन पृथ्वीमें राज्य भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त होता है । । २४ ।। यह वैतरणी व्रत संपूर्ण हुआ ।।

।। सूत उवाच ।। एवं प्रीत्या पुरा विप्राः श्रीकृष्णेन परं व्रतम् ।। माहात्म्यविधिसंयुक्तमुपदिष्टं विशेषतः ।। १ ।। उत्पत्तिं यः शृणोत्येवमेकादश्यां द्विजोत्तम ।। भुक्त्वा भोगाननेकांस्तु विष्णुलोकं प्रयाति सः ।। २ ।। पार्थ उवाच ।। उपवासस्य नक्तस्य एकभक्तस्य च प्रभो ।। किं पुण्यं किं विधानं हि ब्रूहि सर्वं जनार्दन ।। ३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। हेमन्ते चैव सम्प्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे ।। शुक्लपक्षे तथा पार्थ एकादश्यामुपोषयेत् ।। ४ ।। नक्तं दशम्यां कुर्यात्तु दन्तधावनपूर्वकम् ।। दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे ।। ५ ।। तत्र नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम् । ततः प्रभातसमये सङ्कल्पं नियतश्चरेत् ।। ६ ।। मध्याह्ने च तथा पार्थ शुचिः स्नातः समाहितः ।। नद्यां तडागे वाप्यां वा ह्युत्तमं मध्यमं त्वधः ।। ७ ।। क्रमाज्ज्ञेयं तथा कूपे तदभावे प्रशस्यत ।। अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।। ८ ।। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ।। त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम् ।। ९ ।। अनेन मृत्तिकास्नानं विदध्यातु व्रती नरः ।। नालपेत्पतितैश्चोरैस्तथा पाखण्डिभिः सह ।। १० ।। मिथ्यापवादिनो देववेदब्राह्मणनिन्दकान् ।। अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागामिनस्तथा ।। ११ ।। परद्रव्यापहर्तॄंश्च देवद्रव्यापहारिणः ।। न सम्भाषेत दृष्ट्वापि भास्करं चावलोकयेत् ।।१२ ।। ततो गोविन्दमभ्यर्च्य नैवेद्यादिभिरादरात् ।। दीपं दद्याद्गृहे चैव भक्तियुक्तेन चेतसा ।। १३ ।। तद्दिने वर्जयेत्पार्थ निद्रां मैथुनमेव च ।। गीतशास्त्रविनोदेन दिवारात्रं नयेद्व्रती ।। १४ ।।रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा।। विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।।१५।। यथा शुक्ला तथा कृष्णा मान्या वै धर्मतत्परैः ।। एकादश्योर्द्वयोराजन्विभेदं नैव कारयत् ।। १६ ।। एवं हि कुरुते यस्तु शृणु तस्यापि यत्फलम् ।। शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।। १७ ।। एकादश्युपवासस्य कलां नाप्नोति षोडशीम् ।। व्यतीपाते च

---

१ इदमन्येव कथा व्रतार्के मात्स्य त्वेनोक्ता ।

दानस्य लक्षमेकं फलं स्मृतम् ।। १८ ।। संक्रान्तिषु चतुर्लक्षं दानस्य च धनञ्जय ।। कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।। १९ ।। तत्सर्वं लभते यस्तु ह्येकादश्यामुपोषितः ।। अश्वमेधस्य यज्ञस्य करणाद्यत्फलं लभेत् ।। २० ।। ततः शतगुणं पुण्यमेकादश्युपवासतः ।। तपस्विनो गृहे नित्यं लक्षं यस्य च भुञ्जते ।। २१ ।। षष्टिवर्षसहस्राणि तस्य पुण्यं च यद्भवेत् ।। एकादश्युपवासेन फलं प्राप्नोति मानवः ।। २२ ।। गोसहस्रे च यत्पुण्यं दत्ते वेदाङ्गपारगे ।। तस्मात्पुण्यं दशगुणमेकादश्युपवासिनाम् ।। २३ ।। नित्यं च भुञ्जते यस्य गृहे दश द्विजोत्तमाः ।। यत्पुण्यं तद्दशगुणं भोजने ब्रह्मचारिणः ।। २४ ।। एतत्सहस्रं भूदाने कन्यादाने तु तत्स्मृतम् ।। तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं विद्यमाने तथैव च ।। २५ ।। विद्यादशगुणं चान्नं यो ददाति बुभुक्षिते ।। अन्नदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ।। २६ ।। तृप्तिमायान्ति कौन्तेय स्वर्गस्थाः पितृदेवताः ।। एकादश्या व्रतस्यापि पुण्यसंख्या न विद्यते ।। २७ ।। एतत्पुण्यप्रभावश्च यत्सुरैरपि दुर्लभः ।। नक्तस्यार्द्धफलं [1]तस्य एकभक्तस्य सत्तम ।। २८ ।। एकभक्तं न नक्तं च उपवासस्तथैव च ।। एतेष्वन्यतमं वापि व्रतं कुर्याद्धरेर्दिने ।। २९ ।। तावद्गर्जन्ति तीर्थानि दानानि नियमा यमाः ।। एकादशी न संप्राप्ता यावत्तावन्मखा अपि ।। ३० ।। तस्मादेकादशी सर्वैरुपोष्या भवभीरुभिः ।। न संखेन पिबेत्तोयं न खादेन्मत्स्यसूकरौ ।। ३१ ।। एकादश्यां न भुञ्जीत यन्मां त्वं पृच्छसेऽर्जुन ।। एतत्ते कथितं सर्वं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ३२ ।। एकादशीसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम् ।। अर्जुन उवाच ।। उक्ता त्वया कथं देव पुण्येयं सर्वतस्तिथिः ।। ३३ ।। सर्वेभ्योऽपि पवित्रेयं कथं ह्येकादशी तिथिः ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पुरा कृतयुगे पार्थ मुरनामा हि दानव ।। ३४ ।। अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेवभयंकरः ।। इन्द्रो विनिर्जितस्तेन ह्याद्यो देवः पुरन्दरः ।। ३५ ।। आदित्या वसवो ब्रह्मा वायुरग्निस्तथैव च ।। देवता निर्जितास्तेन अत्युग्रेण च पाण्डव ।। ३६ ।। इन्द्रेण कथितः सर्वो वृत्तान्तः शंकराय वै ।। स्वर्गलोकपरिभ्रष्टा विचरामो महीतले ।। ३७ ।। उपायं ब्रूहि मे देव अमराणां तु का गतिः ।। ईश्वर उवाच।।गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्रास्तिगरुडध्वजः ।।३८।। शर[2]ण्यश्च जगन्नाथः परित्राणपरायणः ।। ईशास्य वचनं श्रुत्वा देवराजो महामनाः ।। ३९ ।। त्रिदशैः सहितः सर्वैर्गतस्तत्र धनञ्जय ।। यत्र देवो जगन्नाथः प्रसुप्तो हि जनार्दनः ।। ४० ।। जलमध्ये प्रसुप्तं तु दृष्ट्वा देवं जगत्पतिम् ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयत् ।। ४१ ।। ओं नमो देवदेवाय देवदेवैः सुवन्दित ।। दैत्यारे पुण्डरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन ।। ४२ ।। दैत्यभीता इमे देवा मया

१ तस्य नक्तस्यार्धफलमेकभक्तस्येत्यर्थः । २ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायण । इति क्वचित्पाठः ।

सह समागताः ॥ शरणं त्वं जगन्नाथं त्वं कर्ता त्वं च कारकः ॥ ४३ ॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥ त्वं स्थितिस्त्वं तथोत्पत्तिस्त्वं च संहारकारकः ॥ ४४ ॥ सहायस्त्वं च देवानां त्वं च शान्तिकरः प्रभो ॥ त्वं धरा च त्वमाकाशः सर्वविश्वोपकारकः ॥ ४५ ॥ भवत्वं च स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्यप्रतिपालकः ॥ त्वं रविस्त्वं शशांकश्च त्वं च देवो हुताशनः ॥ ४६ ॥ हव्यं होमो हुतस्त्वं च मन्त्र-तन्त्रर्त्विजो जपः ॥ यजमानश्च यज्ञस्त्वं फलभोक्ता त्वमीश्वरः ॥ ४७ ॥ न त्वया रहितं किञ्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ भगवन्देवदेवेश शरणागतवत्सल ॥ ४८ ॥ त्राहि त्राहि महायोगिन्भीतानां शरणं भव ॥ दानवैर्विजिता देवाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो ॥ ४९ ॥ स्थाभ्रष्टा जगन्नाथ विचरन्ति महीतले ॥ इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कोऽसौ दैत्यौ महामायौ देवा येन विर्निर्जिताः ॥ किं स्थानं तस्य किं नाम किं बलं कस्तदाश्रयः ॥ ५१ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व मघवन्निर्भयो भव ॥ इन्द्र उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश भक्तानुग्रहकारक ॥ ५२ ॥ दैत्यः पूर्वं महानासीन्नाडीजंघ इति स्मृतः ॥ ब्रह्मवंशसमुद्भूतो महोग्रः सुरसूदनः ॥ ५३ ॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातो मुरनामा महासुरः ॥ तस्य चन्द्रवती-नाम नगरी च गरीयसी ॥ ५४ ॥ तस्यां वसन्स दुष्टात्मा विश्वं निर्जित्य वीर्यवान् ॥ सुरान्स्ववशमानित्ये निराकृत्य त्रिविष्टपात् ॥५५॥ इन्द्राग्नियमवाय्वीशसोमनि र्ऋतिपाशिनाम् ॥ पदेषु स्यमेवासीत्सूर्यो भूत्वा तपत्यपि ॥ ५६ ॥ पर्जन्यः स्वय-मेवासीदजेयः सर्वदैवतैः ॥ जहि तं दानवं विष्णो सुराणां जयमावह ॥ ५७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपाविष्टो जनार्दनः ॥ उवाच शत्रुं देवेन्द्र हनिष्ये तं महा-बलम् ॥ ५८ ॥ प्रयान्तु सहिताः सर्वे चन्द्रवत्यां महाबलाः ॥ इत्युक्ताः प्रययुः सर्वे पुरस्कृत्य हरिं सुराः ॥ ५९ ॥ दृष्टो देवैस्तु दैत्येन्द्रो गर्जमानस्तु दानवैः ॥ असंख्यातसहस्रैस्तु दिव्यप्रहरणायुधैः ॥६०॥ हन्यमानास्तदा देवा असुरैर्बाहु-शालिभिः ॥ संग्रामं ते समुत्सृज्य पलायन्त दिशो दश ॥ ६१ ॥ ततो दृष्ट्वा हृषीकेशं संग्रामे समुपस्थितम् ॥ अन्वधावन्नभिक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ॥ ६२ ॥ अथ तान्प्रद्रुतान्दृष्ट्वा शंखचक्रगदाधरः ॥ विव्याध सर्वगात्रेषु शरैराशीविषोपमैः ।६३ तेनाहतास्ते शतशो दानवा निधनं गताः ॥ एकाङ्गो दानवः स्थित्वा युध्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ६४ ॥ तस्योपरि हृषीकेशो यद्यदायुधमुत्सृजत् ॥ पुष्पवत्तत्समभ्येति कुण्ठितं तस्य तेजसा ॥ ६५ ॥ शस्त्रास्त्रैर्विध्यमानोऽपि यदा जेतुं न शक्यते ॥ युयोध च तदा क्रुद्धो बाहुभिः परिघोपमैः ॥ ६६ ॥ बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यवर्ष-सहस्रकम् ॥ तेन श्रान्तः स भगवान् गतो बदरिकाश्रमम् ॥ ६७ ॥ तत्र हैमवती नाम्नी गुहा परमशोभना ॥ तां प्राविशन्महायोगी शयनार्थं जगत्पतिः ॥ ६८ ॥

योजनद्वादशायामा एकद्वारा धनञ्जय ।। अहं तत्र प्रसुप्तोस्मि भयभीतो न संशयः ।। ६९ ।। महायुद्धेन तेनैव श्रान्तोऽहं पाण्डुनन्दन ।। दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविवेश स तां गुहाम् ।। ७० ।। प्रसुप्तं मां तदा दृष्ट्वाऽचिन्तयद्दानवो हृदि ।। हरिमेनं हनिष्येऽहं दानवानां क्षयावहम् ।। ७१ ।। एवं सुदुर्मतेतस्य व्यवसायं व्यवस्य च ।। समुद्भूता ममाङ्गेभ्यः कन्यका च महाप्रभा ।। ७२ ।। दिव्यप्रहरणा देवी युद्धाय समुपस्थिता ।। मुरेण दानवेन्द्रेण ईक्षिता पाण्डुनन्दन ।। ७३ ।। युद्धं समीरितं तेन स्त्रिया तत्र प्रयाचितम् ।। तेनायुध्यत सा नित्यं तां दृष्ट्वा विस्मयं गतः ।। ७४ ।। केनेयं निर्मिता रौद्रा अत्युग्राशनिपालिनी ।। इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ युयुधे कन्यया तया ।। ७५ ।। ततस्तया महादेव्या त्वरया दानवो बली ।। छित्त्वा सर्वाणि शस्त्राणि क्षणेन विरथः कृतः ।। ७६ ।। बाहुप्रहरणोपेतो धावमानो महाबलात् ।। तलेनाहत्यहृदये तया देव्या निपातितः ।। ७७ ।। पुनरुत्थाय सोऽधावत्कन्याहननकांक्षया ।। दानवं पुनरायान्तं रोषेणाहत्य तच्छिरः ।। ७८ ।। क्षणान्निपातयामास भूमौ तच्च समुज्ज्वलत् ।। दैत्यः कृत्तशिराः सोथ ययौ वैवस्वतालयम् ।। ७९ ।। शेषा भयार्दिता दीनाः पातालं विविशुर्द्विषः ।। ततः समुत्थितो देवः पुरो दृष्ट्वाऽसुरं हतम् ।। ८० ।। कन्यां पुरः स्थितां चापि कृताञ्जलिपुटां नताम् ।। विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रोवाच जगतां पतिः ।। ८१ ।। केनायं निहतः संख्ये दानवो दुष्टमानसः ।। येन देवाः सगन्धर्वाः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः ।। ८२ ।। सनागाःसहलोकेशा लीलयैव विनिर्जिताः । येनाहं निर्जितो भीतः श्रान्तः सुप्तो गुहामिमाम् ।। ८३ ।। केन कारुण्यभावेन रक्षितोऽहं पलायितः ।। कन्योवाच ।। मया विनिहतो दैत्यस्त्वदंशोभूतया प्रभो ।। ८४ ।। दृष्ट्वा सुप्तं हरे त्वां तु दैत्यो हन्तुं समुद्यतः ।। त्रैलोक्यकण्टकस्येत्यं व्यवसायं प्रबुध्य च ।। ८५ ।। हतो मया दुरात्माऽसौ देवता निर्भयाः कृताः ।। तवैवाहं महाशक्तिः सर्वशत्रुभयंकरी ।। ८६ ।। त्रैलोक्यरक्षणार्थाय हतो लोकभयंकरः ।। निहतं दानवं दृष्ट्वा किमाश्चर्यं वद प्रभो ।। ८७ ।। श्रीभगवानुवाच ।। निहते दानवेन्द्रेऽस्मिन्संतुष्टोऽहं त्वयानघे ।।हृष्टाः पुष्टाश्च वै देवा आनन्दः समजायत ।। ८८ ।। आनन्दस्त्रिषु लोकेषु देवानां यस्त्वया कृतः ।। प्रसन्नोस्म्यनघे तुभ्यं वरं वरय सुव्रते ।। ८९ ।। ददामि तत्र सन्देहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।। कन्योवाच ।। यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम ।। ९० ।। तारयेहं महापापादुपवासपरं नरम् ।। उपवासस्य यत्पुण्यं तस्यार्द्धं नक्तभोजने ।। ९१ ।। तदर्द्धं च भवेत्तस्य एकभुक्तं करोति यः ।। यः करोति व्रतं भक्त्या दिने मम जितेन्द्रियः ।। ९२ ।। स गत्वा वैष्णवं स्थानं कल्पकोटिशतानि च ।। भुञ्जानो विविधान्भोगानुपवासी जितेन्द्रियः ।। ९३ ।। भगवंस्त्वत्प्रसादेन भवत्वेष वरो मम ।।

उपवासं च नक्तं च एकभुक्तं करोति यः ।। ९४ ।। तस्य धर्मं च वित्तं च मोक्षं देहि जनार्दन ।। श्रीभगवानुवाच ।। यत्त्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति ।। ९५ ।। मम भक्ताश्च ये लोकास्तव भक्ताश्च ये नराः ।। त्रिषु लोकेषु विख्याताः प्राप्स्यन्ति मम सन्निधिम् ।। ९६ ।। एकादश्यां समुत्पन्ना मम शक्तिः परा यतः ।। अत एकादशीत्येवं तव नाम भविष्यति ।। ९७ ।। दग्ध्वा पापानि सर्वाणि दास्यामि पदमव्ययम् ।। तृतीया चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी ।। ९८ ।। एकादशी विशेषेण तिथयो मे महाप्रियाः । सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सर्वदानाधिकं फलम् ।। ९९ ।। सर्वव्रताधिकं चैव सत्यं सत्यं वदामि ते ।। एवं दत्त्वा वरं तस्यास्तत्रैवान्तरधीयत ।। १०० ।। हृष्टा तुष्टा तु सा जाता तदा एकादशीतिथिः ।। इमामेकादशीं पार्थ करिष्यन्ति नरास्तु ये ।। १ ।। तेषां शत्रुं हनिष्यामि दास्यामि परमां गतिम् ।। अन्येऽपि ये करिष्यन्ति एकादश्या महाव्रतम् ।। २ ।। हरामि तेषां विघ्नांश्च सर्वसिद्धिं ददामि च ।। एवमुक्ता समुत्पत्तिरेकादश्याः पृथासुत ।। ३ ।। इयमेकादशी नित्या सर्वपापक्षयंकरी ।। एकैव च महापुण्या सर्वपापनिषूदनी ।। ४ ।। उदिता सर्वलोकेषु सर्वसिद्धिकरी तिथिः ।। शुक्ला वाप्यथवा कृष्णा इति भेदं न कारयेत् ।। ५ ।। कर्तव्ये तु उभे पार्थ न तुल्या द्वादशीतिथिः ।। अन्तरं नैव कर्तव्यं समस्तैर्व्रतकारिभिः ।। ६ ।। तिथिरेका भवेत्सर्वा पक्षयोरुभयोरपि ।। ते यान्ति परमं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः ।। ७ ।। धन्यान्ते मानवा लोके विष्णुभक्तिपरायणाः ।। एकादश्यास्तु माहात्म्यं सर्वकालं तु यः पठेत् ।। ८ ।। अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तदाप्नोति न संशय ।। यः श्रृणोति दिवारात्रौ नरो विष्णुपरायणः ।। ९ ।। तद्भक्तमुखनिष्पन्नां कथां विष्णोः सुमङ्गलाम् ।। कुलकोटिसमायुक्तो विष्णुलोके महीयते ।। १० ।। एकादश्याश्च माहात्म्यं पादमेकं श्रृणोति यः ।। ब्रह्महत्यादिके पापं नश्यते नात्र संशयः ।। ११ ।। विष्णुधर्मः समो नास्ति गीतार्थेन धनञ्जय ।। एकादशी समं नास्ति व्रतं नाम सनातनम् ।। ११२ ।। इति श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मार्गशीर्षकृष्णैकादशीमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।।

सूतजी बोले कि, इस प्रकार हे ब्राह्मणो ! श्रीकृष्णजी महाराजने यह उत्तम व्रत एवम् विधि और माहात्म्यका पूर्व समयमें विशेष रूप से उपदेश दिया था ।। १ ।। इस प्रकार हे ब्राह्मणराज ! जो इस उत्पत्ति नामकी एकादशीकी कथा इसीके दिन सुनता है वह अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोक चला जाता है ।। २ ।। अर्जुन बोला कि, हे जनार्दन ! रात्रि के उपवास करनेका, एक समय भोजन करनेका हे प्रभो ! पुण्य और विधान क्या है ? उस सबको आप कहें ।। ३ ।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हेमन्त ऋतुके प्राप्त होनेपर मार्गशीर्षकेमहीने शुक्लपक्षमें हे अर्जुन ! एकादशीकेदिन उपवास करे ।। ४ ।। दशमीकीरात को दंतुवन करे ।। दिनके आठवें भागमें जब कि, सूर्यका प्रकाश मन्द पडजाता है ।। ५ ।। उस समय भोजन करना नक्त कहा जाता है, रात्रि भोजनकी नक्त संज्ञा नहीं है प्रभातकाल उठकर नियमपूर्वक संकल्प करे ।। ६ ।।

---

१ तस्येति शेषः ।

हे अर्जुन ! उस दिन मध्याह्न में नदी, तलाव या बावडीमें समाहित होकर स्नान करे । नदीका स्नान उत्तम तालावका मध्यम और बावडीका अधम होता है ।।७।। यदि बावडी भी न हो तो कूंवेपर स्नान करे, स्नान करते समय " हे अश्वसे आक्रान्तकी गई रथसे आक्रान्तकी गई हे वसुकी धारण करनेवाली ।।८।। मृत्तिके ! मैंने जो पहिले पाप संचित किए हें तू उन पापोंको हरले, जिससे में परमपदको चला जाऊँ ।। ९।। " इससे मनुष्य मृत्तिका स्नान करे पतित चोर और पाखंडियोंके साथ बिल्कुल बातें न करे ।। १०।। किसीको झूठा दोष लगानेवाले, देव और वेद ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले, अगम्योंके साथ गमन करनेवाले एवम् दूसरे दुराचारी ।।११।। और परद्रव्यको चोरनेवाले तथा देवद्रव्यको हडपनेवाले मनुष्योंको देखकर भी सूर्यभगवान्का दर्शन करे ।। १२।। भक्तियुक्त चित्तसे गोविन्द भगवान्‌की आदरसे पूजाकरे नैवेद्य तथा दीपकआदि षोडशोपचारसे पूजन करे ।। १३ ।। हे अर्जुन ! उस दिन मैथुन और निद्राका त्याग करे । संगीत आदि के द्वारा हरिकीर्तनसे व्रती मनुष्य उस रात्रिको जागरण करे ।। १४ ।। इस प्रकार रातमें जागरण कर भक्तिभावके साथ ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और उनको प्रणाम कर क्षमायाचना करे ।।१५।। हे राजन् ! धर्मात्माओंको शुक्ला और कृष्णा दोनों एकादशीएकसी हें इसकारण दोनोंको समानजानकर किसी प्रकारका भेद न करे ।। १६।। इस प्रकार जो करता है उसके भी पुण्यके फलको सुनिये, शंकोद्धारतीर्थमें स्नान करके भगवान्का दर्शन करे ।। १७।। कोई भी दूसरा व्रत इस एकादशीके उपवासकी षोडशीकलाको भी प्राप्त नहीं होता । व्यतीपातमें दान करनेसे लाखगुणा फल मिलता है ।। १८।। हे अर्जुन ! संक्रांतिमें दान करनेसे चार लाख गुणा फल मिलता है । तथा कुरुक्षेत्र में सूर्यचन्द्रके ग्रहण के समय दान करनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है । १९। वे सब फल एक साथही इस एकादशीके उपवाससे मिलते हैं । अश्वमेघ यज्ञके करनेसे जो फल होता है उससे सौगुना इस एकादशीके उपवास से फल मिलता है । २० ।। जिस तपस्वीके घर में नित्यही लाख आदमी साठ हजार वर्षपर्यन्त भोजन करते हें उससे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे भी अधिक पुण्य एकादशीके उपवाससे प्राप्त होता है ।। २१ ।। ।। २२ ।। वेदांगपारंगत किसी ब्राह्मणको हजार गौओंको देनेका जो फल होता है उससे दशगुणा पुण्य इस एकादशीके उपवाससे प्राप्त होता है ।। २३ ।। जिसके घरमें नित्यही दश उत्तम ब्राह्मण भोजन करते हें उससे दशगुना दशब्रह्मचारी ब्राह्मणोंके भोजन करानेमें हें ।। २४।। उससे हजारगुनाकन्यादान और भूदानमें है इनसे दशगुना, विद्या दानमें है ।। २५ ? विद्यादानसे दशगुना अधिक भूखोंको अन्नदानमें फल मिलता है ।। अन्नदानके समान और कोई दान न हुआ और न होगा ।। २६।। हे कौन्तेय ! जिससे स्वर्गस्थपितृगण तथा देवगण भी तृप्त होते हें उससे भी अधिक फल मिलता है । इस एकादशी व्रत के पुण्य फलकी कोई सीमाही नहीं है ।। २७।। हे अर्जुन ! एकादशीका पुण्यप्रभाव देवोंको भी दुर्लभ है, एकादशी के दिन जो नक्त व्रत या एक भक्त व्रत करता है वह आधा फलपाता है ।। २८।। एक भक्त नक्त उपवास इनमेंसे किसी को भी एकादशीके दिन करलेना चाहिये ।। २९।। तबतक ही तीर्थ, नियम और यम गर्जते हें जबतक कि एकादशी नहीं मिली यज्ञभी तबही तक हें ।। ३०।। ! जिन्हें संसारका डर हो उन सबको एकादशीका व्रत करना चाहिये ।। न तो शंख से पानी पीवे एवं न मत्स्य और सूकर खाय ।। ३१ ।। न एकादशीको भोजन करे , हे अर्जुन ! जो तू मुझे पूछता है ! यह मैंने तुमको सबसे उत्तम व्रत कहा है ।। ३२ ।। सहस्र यज्ञभी इस एकादशीके समान नहीं हें । अर्जुन बोले कि, महाराज ! आपने इस तिथिको सबसे अधिक पुण्यदेनेवाली क्यों बनायी ।। ३३ ।। तथा सबसे अधिक पवित्र क्यों हुई ? कृष्ण बोले–पहिले सतयुगमें मुरनामका दानव था । हे अर्जुन ! बहुत बडा अद्भुत तथा सब देवोंको भय पहुँचानेवाला था । जिसने आदि देव इन्द्रकोभी जीत लिया था ।। ३४।। ।। ३५ ।। हे पाण्डव ! उस उग्र दानवने आदित्य विश्व, वसु, ब्रह्मा, वायु, अग्नि आदिको भी पराजित कर दिया था ।। ३६ ।। अपने सारे वृत्तान्तको इन्द्रने भगवान् शङ्करसे निवेदन किया कि, महाराज ! हमलोग स्वर्गसे भ्रष्ट होकर इस पृथ्वीमें विचरण कर रहे हें ।। ३७ ।। इस लिए आप कोई उपाय देवताओंपर कृपा करके बतलाइये कि, अब देव क्या करें ! ईश्वर बोले, कि, हे देवराज ! तुम वहाँ जाओ जहाँ विष्णुभगवान् विराजते हें ।। ३८ ।। क्योंकि वे दुःखितोंकी रक्षा करनेवाले तथा शरणागतवत्सल हें । महामति देवराज शङ्करके इन बचनोंको सुनकर

।। ३९।। सब देवोंको साथ लेकर हे धनञ्जय ! विष्णुभगवान् के पास गया । जहाँ पर कि, भगवान् विष्णु सो रहे थे ।। ४०।। जगदीश भगवान्‌को जलके अन्दर सोता हुआ देखकर हाथ जोडकर इस स्तोत्रसे स्तुति करने लगा ।। ४१।। कि, हे देव देववन्दित देवेश ! आपको नमस्कार है, हे दैत्यारे ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हे मधुसूदन ! आप मेरी रक्षा कीजिये ।। ४२।। दैत्योंसे डरते हुए ये देव मेरे साथ आपके पास आये हैं । तुम करने और जगत्‌के करानेवाले हो इसलिए हे जगन्नाथ ! हम आपकी शरण हैं ।। ४३।। तुम सबलोगों की माता और जगत्‌के पिता हो । तुमही स्थिति उत्पत्ति तथा संहारके करनेवाले हो ।।४४।। तुमही देवताओंके सहायक तथा शांति करनेवाले हो और हे प्रभो ! आपही पृथ्वी और आकाश हो तथा विश्व के उपकारक हो ।। ४५ ।। आपही त्रिलोकीके रक्षा करनेवाले ब्रह्मा और महेश्वर हो ! तुमही रवि, चन्द्र, अग्नि ।।४६ ।। हव्य, होम, आहुति, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक् और जप हो । यजमान यज्ञ और फलभोक्ताभी आप ईश्वरही हो ।। ४७।। इस चराचर जगत्‌में तुमसे रहित कुछ भी नहीं है । हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! आप शरणागत-वत्सल हैं ।। ४८।। हे महायोगिन् ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । आप डरे हुओंके रक्षक एवं उपाय बनिये । हे प्रभो ! दानवोंसे सब देवताओंको जीत लिया और स्वर्गसे भी निकाल दिया है ।। ४९।। हे जगन्नाथ ! वे सब स्थानभ्रष्ट होकर इस पृथिवीमें विचरण कर रहे हैं । ऐसे इन्द्रके वचनोंको सुनकर विष्णु भगवान बोले ।। ५०।। कि, वह कौनसा दैत्य है ? जिसने सारे देवताओंको जीत लिया है, उसका नाम, धाम, शक्ति और आश्रय क्या है ! ।। ५१।। हे इन्द्र ! यह सब तुम कथन करो और निर्भय हो जाओ । इन्द्र बोले कि, हे देवदेवेश ! हे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवन् ! ।। ५२।। नाडीजंघ नामका एक अत्युग्र दैत्य ब्रह्माके वंशमें देवोंको दुःखदेनेवाला पहिले उत्पन्न हुआ था ।। ५३।। उसका अति विख्यात पुत्र मुरनामका महासुर उत्पन्न हुआहै, उसकी बडी विशाल चन्द्रवती नामकी नगरी है उसमें वह निवास करता हुआ भी स्वर्गमें सब देवताओंको निकालकर अपने वशमें कर लिया है और उस दुष्टात्माने इस प्रकार सारे जगत् को अपने आधीन बना लिया है ।। ५४ ।। ।। ५५।। इन्द्र,अग्नि, यम, वायु, ईश, सोम, निर्ऋति और वरुण आदि के स्थानोंमें स्वयं शासन करता है। एवं वह त्रिभुवन तापकारी सूर्य भी स्वयं होकर तपताभी है ।। ५६।। मेघभी वही है, देवताओंके लिए अजेय है, उस दानवका हे–विष्णो ! आप वध कीजिए और देवताओंको जय दीजिये ।। ५७ ।। इन्द्रके इन वचनोंको सुनकर क्रोधाकुल भगवान्‌ने कहा कि, हे देवेन्द्र ! मैं उस महाबली तुम्हारे शत्रुको स्वयंही मारूंगा ।।५८।। आप चन्द्रवती नगरीमें मेरे साथ सब मिलकर चलो । भगवान् के इस प्रकार कहनेपर सारे देवता भगवानको आगे करके चल दिए ।। ५९।। उस दैत्यने देवताओंको देखकर बडी गर्जना की और उसके साथ असंख्यात सहस्र दिव्यास्त्र शस्त्रधारी अन्य दानवोंने भी गर्जनाकी ।। ६०।। बाहुबली असुरों से आहत होनेवाले देवता उस संग्रामको छोडकर दशों दिशाओंमें भागने लगे ।। ६१।। अनेक प्रकार के शस्त्रधारी दानव उस संग्राममें अन्दर देवोंके भागजानेपर भी भगवानको उपस्थित देखकर उनपर दौडे ।। ६२।। शख चक्र गदाधारी भगवानने अपनी ओर भागते हुए असुरोंको देखकर अपने सर्पोंकी तरह भिन-भिनाते कालतुल्य वाणोंसे उनका वध कर दिया ।। ६३ ।। इस प्रकार जब सैकडों आहत हो दानव मर गये तब खडाहोकर वह अकेला ही वीर दानव भगवान् से बारबार युद्ध करनेलगा ।। ६४।। उस दानवके तेजसे भगवान् के छोडेहुए सब आयुध उसपर ऐसे मालूम होते थे जैसे फूल ।।६५।। वह दानव यों जब शस्त्रास्त्रोंसे जीता न जा सका तब क्रोधमें आकर भगवान् उससे बाहुयुद्ध करने लगे ।। ६६।। दिव्य हजार वर्षपर्यन्त बाहु युद्ध करनेके बाद भगवान् थककर बदरिकाश्रम चले गये ।। ६७।। वहाँ महायोगी जगदीश हैमवती नामकी परमसुन्दर गुहामें सोनेके वास्ते प्रविष्ट होगये ।। ६८।। हे अर्जुन ! वह गुहा १२ योजन चौडी थी और इसके एकही द्वार था । वहाँ पर मैं उस समय भयभीत होकर सोगया ।। ६९।। हे अर्जुन ! यद्यपि मैं उस युद्धसे श्रान्त हो गया था पर तोभी वह दानव मेरे पीछे पडकर उस गुहामें भी आही पहुँचा ।। ७०।। वहां मुझे सोता हुआ देखकर वह विचार करने लगा कि, दानवोंको नष्ट करनेवाले हरिको मारही डालूं ।।७१ ।। ऐसे उस दुर्बुद्धिके विचारको जानकर मेरे अङ्गसे एक महा प्रभावाली कन्या उत्पन्न हुई ।। ७२।। हे अर्जुन ! वह देवी नाना प्रकारके दिव्य आयुधोंसे युक्त समुपस्थित हुई थी, उसको उस बडे दानवने देखा ।। ७३।। उसने उससे

युद्ध की याचना की । उसने दानवसे नित्य युद्ध किया जिससे उस वीरको बडा आश्चर्य हुआ ।। ७४ ।। वह दानव यह कहता हुआ कि, किसने इस भयङ्कर स्त्रीको जो वज्रगिरानेवाली है पैदा किया है, युद्ध करता रहा ।। ७५ ।। उस महादेवीने बडी शीघ्रतासे उस बली दानवके सब शस्त्रोंको काटकर तुरन्तही रथहीन कर दिया ।।७६ ।। वह महाबली केवल अपनी महाभुजाओं हीसे जब मारने दौडा तब उस देवीने उसे छातीमें ठोकर मारके गिरा दिया ।। ७७ ।। फिर भी वह उस कन्याको मारनेके विचारसे उठा पर उस दिव्य देवीने उसे आता हुआ देखकर क्रोधसे शिर काटकर ।। ७८ ।। फौरनही पृथ्वीपर गिरा दिया । वह तेज भूमिमें देदीप्यमान होने लगा कटा शिर दैत्यराज, यमराजके घर भेज दिया ।। ७९ ।। शेष सब शत्रु डरकेमारे पातालमें प्रवेशकर गये । भगवान् की निद्राभङ्ग हुई और उन्होंने आगे असुरको मरा हुआ देखा ।। ८० ।। जगत्पति भगवान्ने अपने सम्मुख हाथ जोडकर प्रणाम करनेवाली उस प्रसन्न मुखी कन्याको देखकर कहा ।। ८१ ।। किसने इस दुष्टात्मा राक्षको मारा है जिससे सब देवता गन्धर्व इन्द्र और मरुद्गण ।। ८२ ।। नाग और लोकपाल पराजित हो चुके थे और जिससे डरकर तथा थककर इस गुहामें मैंने प्रवेश किया था ।। ८३ ।। किसने यह मुझे भागे हुयेपर करुणा की है जो मुझे बचाया कन्याने कहा कि , हे प्रभो ! आपके अंश से उत्पन्न होकर मैंने इस दानवका वध किया है ।। ८४ ।। आपको सोता हुआ देखकर उस त्रैलोक्य कण्टक राक्षसने आपके मारनेका विचारको जानकरही मैंने उसका वध कर दिया है ।। ८५ ।। आज उस दुष्टके मर जानेपर सब देवता निर्भय कर दिये गये हैं । महाराज मैं आपही की सब शत्रुओंको मारनेवाली महाशक्ति हूँ ।।८६।। त्रिलोककी रक्षा करनेके लिये उस दुष्ट एवं भयंकर राक्षसको मार दिया, उसे मराहुआ जानकर हे प्रभो ! आपको कैसे आश्चर्य हुआ ? यह कथन कीजिये ।।८७ ।। श्रीभगवान् बोले कि, हे निष्पापे ! उस दानवको मारदेनेसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । आज देवताओंके घर बड़ा आनन्द मङ्गल हुआ है ।।८८।। हे देवि ! तीनों लोक में जो तुमने आनन्द किया है इससे में तुमपर प्रसन्न हूँ हे सुव्रते ! तुम वर माँगो ।। ८९ ।। मैं तुम्हें देवदुर्लभ वरको दे दूंगा इसमें सन्देह मत करो ।। कन्याने कहा कि, महाराज ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मुझको आप वर देना चाहते हें तो यह वर दीजिये ।। ९० ।। कि, यदि मेरा कोई उपवास करे तो महापापीको भी अपने पाससे मुझद्वारा मुक्ति मिलजाय । उपवासमें जो पुण्य हो उसका आधा नक्त (दिनके आठवें भाग) में भोजन करने में हो ।। ९१ ।। उसका आधा एक भुक्त करनेवालेको हो । जो हमारे दिनमें भक्तिपूर्वक जितेन्द्रिय होकर व्रत करता है ।। ९२ ।। वह जितेन्द्रिय प्रवासी कल्पकोटिशतपर्यन्त अनेक भोगोंको भोगता हुआ वैष्णव लोकको प्राप्त होता है ।। ९३ ।। महाराज ! आपके प्रसादसे यह वर मुझे मिल जाय, जो मनुष्य उपवास करे एवं नक्तव्रत और एकभुक्तका नियम करे तो ।। ९४ ।। उसको आपकी कृपासे धर्म-धनकी प्राप्ति तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो, यही मैं वर माँगती हूँ । श्रीभगवान् बोले कि, हे कल्याणि ! जो तुम कहती हो वह सब सत्य होगा ।। ९५ ।। जो मेरे और तेरे भक्त इस लोकमें हैं वे तीनों लोगोंमें विख्यात होकर मेरे निकट रहनेके आनन्दका भोग करेंगे ।। ९६ ।। मेरी पराशक्ति आपके, एकादशीके दिन उत्पन्न होनेके कारण तुम्हारा नाम एकादशीही होगा ।। ९७ ।। मैं सब पापोंको दग्ध करके अव्यय पदको प्रयाण करूंगा । तृतीया, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी ।। ९८ ।। और विशेषकर एकादशी ये तिथियाँ मुझे बहुत प्यारी हैं । सब तीर्थों से अधिक पुण्य और सब दानोंसे अधिक फल होता है ।। ९९ ।। सब व्रतों से यह अधिक है, इसे तुम सत्य समझो। इस प्रकार भगवान् वर देकर अन्तर्धान हो गये।। १०० ।। इस समय एकादशी तिथि बडी हृष्ट तुष्ट हुई । हे अर्जुन ! जो लोग इस एकादशीको करेंगे ।। १०१ ।। उनके शत्रुओंका नाश करके मैं उन्हें परमगति प्रदान करूँगी । और भी जो दूसरे मनुष्य इस एकादशीके महाव्रतको करेंगे ।। १०२।। उनके सब विघ्नोंका नाश करके समस्त सिद्धियोंका वर दूंगी । हे अर्जुन ! इस प्रकार इस एकादशीकी उत्पत्ति वर्णन की ।। ३ ।। यही एकादशी नित्य सब पापोंका क्षय करनेवाली है और सब पापोंकी मिटानेवाली यह एकही बडे भारी पुण्य-भी है ।। ४ ।। सब लोकोंमें यह 'सर्वसिद्धि करी' तिथिके नामसे प्रसिद्ध है । चाहे वह शुक्लपक्षकी हो वा कृष्ण-पक्षकी इसका कोई भेद इसमें न करे ।।५।। इसलिये हे अर्जुन ! दोनों एकादशियाँ ही मनुष्यको करनी चाहिये द्वादशी तिथि तुल्य नहीं है एकही है । व्रत करनेवालोंको अन्तर न करना चाहिये यह द्वादशीका तात्पर्य एका-

दशीसे है ।। ६ ।। दोनों पक्षोंमें यह सब तिथि एक ही होती है जो इनका व्रत करते हैं वे उस स्थानको चले जाते हैं जहाँ कि, गरुडध्वज भगवान् निवास करते हैं ।। ७ ।। वे मनुष्य लोकमें धन्य हैं जो विष्णु भक्तिमें लगे हुए हैं, जो इस एकादशीके इस पवित्र माहात्म्यको सदा पढ़ेंगे।।८।।तो उन्हें अश्वमेधयज्ञका जो फल होता है वह प्राप्त होगा । इसमें सन्देह नहीं है जो मनुष्य दिनरात विष्णुभक्तिमें परायण होकर ।।९।। भगवान् के भक्तके मुखसे वर्णन की हुई इस मांगलिक कथा को सुनाता है, वह कोटि कुलके साथ विष्णु लोकमें उस कीर्तिको पाता है ।। १० ।। एकादशी माहात्म्यके कथाके चतुर्थांशको भी मनुष्य सुनता है उसके सुननेसे ब्रह्महत्यादिक सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ।। ११ ।। हे अर्जुन ! विष्णु धर्म के समान धर्म और एकादशीके समान कोई उत्तम व्रत संसार में नहीं है यह गीतार्थमें मालूम होता है ।। १२ ।। यह मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ।।

अथ मार्गशीर्षशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। वन्दे विष्णुं प्रभुं साक्षाल्लोकत्रयसुखप्रदम् ।। विश्वेशं विश्वकर्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।। १ ।। पृच्छामि देवदेवेश संशयोऽस्ति महान्मम ।। लोकानां तु हितार्थाय पापानां च क्षयाय च ।। २ ।। मार्गशीर्षे सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। कीदृशश्च विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।।३।। एतदाचक्ष्व मे स्वामिन्विस्तरेण यथातथम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् साधु ते विमला मतिः ।। ४ ।। कथयिष्यामि राजेन्द्र हरिवासरमुत्तमम् ।। उत्पन्ना सा सिते पक्षे द्वादशी* मम वल्लभा ।।५।। मार्गशीर्षे समुत्पन्ना मम देहान्नराधिप ।। मुरस्य च वधार्थाय प्रख्याता मम वल्लभा ।। ६ ।। कथिता सा मया चैव त्वदग्रे राजसत्तम ।। पूर्वमेकादशी राजन् त्रैलोक्ये सचराचरे ।। ७ ।। मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे चोत्पत्तिरिति नामतः ।। अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षसितां तथा ।। ८ ।। मोक्षानाम्नातिविख्यातां सर्वपापहरां पराम् ।। देवं दामोदरं तस्या पूजयेच्च प्रयत्नतः ।। ९ ।। गन्धपुष्पादिभिश्चैव गीतनृत्यैः समुङ्गलैः ।। शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ।।१०।। यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ।। अधोगतिं गता ये वे पितृमातृसुतादयः ।। ११ ।। अस्याः पुण्यप्रभावेण स्वर्गं यान्ति न संशयः ।। एतस्मात्कारणाद्राजन्महिमान शृणुष्व तम् ।। १२ ।। पुरा वै नगरे रम्ये गोकुले न्यवसन्नृपः ।। वैखानसेति राजर्षिः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ।। १३ ।। द्विजाश्च न्यवसंस्तत्र चतुर्वेदपरायणाः ।। एवं स राज्यं कुर्वाणो रात्रौ तु स्वप्नमध्यतः ।। १४ ।। ददर्श जनकं स्वं तु अधोयोनिगतं नृपः ।। एवं दृष्ट्वा तु तं तत्र विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।। १५ ।। कथयामास वृत्तान्तं द्विजाग्रे स्वप्नसंभवम् ।। राजोवाच ।। मया तु स्वपिता दृष्टो नरके पतितो द्विजाः ।। १६ ।। तारयस्वेति मां तात अधोयोनिगतं सुत ।। इति ब्रुवाणः स तदा मया दृष्टः पिता स्वयम्।। १७ ।। तदाप्रभृति भो विप्रा नाहं शर्म लभाम्यहो ।। एतद्राज्यं मम महदसह्यमसुखं तथा ।। १८ ।। अश्वा गजा रथाश्चैव न मां रोचन्ति सर्वथा ।। न कोशोऽपि सुखायालं न किंचित्सुखदं

* अत्र द्वादशीशब्देनैकादशी

मम ।।१९।। न दारा न सुता मह्यं रोचन्ते द्विजसत्तम ।। किं करोमि क्व गच्छामि शरीरं मे तु दह्यते ।।२०।। दानं व्रतं तपो योगो येनैव मम पूर्वजाः ।। मोक्षमायान्ति विप्रेन्द्रास्तदेव कथयन्तु मे ।। २१ ।। किं तेन जीवता लोके सुपुत्रेण बलीयसा ।। पिता तु यस्य नरके तस्य जन्म निरर्थकम् ।। २२ ।। ब्राह्मणा ऊचुः ।। पर्वतस्य मुनेरत्र आश्रमो निकटे नृप ।। गम्यतां राजशार्दूल भूतं भव्यं विजानतः ।। २३ ।। तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं विषण्णो राजसत्तमः ।। जगाम तत्र यत्रासौ आश्रमे पर्वतो मुनिः ।। २४ ।। ब्राह्मणैर्वेष्टितः शान्तैः प्रजाभिश्च समंततः । आश्रमो विपुलतस्य मुनिभिः सन्निषेवितः ।। २५ ।। ऋग्वेदिभिर्याजुषैश्च सामाथर्वणकोविदैः ।। वेष्टितो मुनिभिस्तत्र द्वितीय इव पद्मजः ।। २६ ।। दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा वैखानसस्तदा ।। जगाम चावनिं मूर्ध्ना दण्डवत् प्रणनाम च ।। २७ ।। पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वङ्गेष्वसौ मुनिः ।। राज्ये निष्कण्टकत्वं च राजसौख्यसमन्वितम् ।। २८ ।। राजोवाच ।। तव प्रसादात्कुशलमङ्गेषु मम सप्तसु ।। विभवेष्वनुकूलेषु कश्चिद्विघ्न उपस्थितः ।। २९ ।। एवं मे संशयं ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वामहमागतः ।। एवं श्रुत्वा नृप वचः पर्वतो मुनिसत्तमः ।। ३० ।। ध्यानस्तिमितनेत्रोऽसौ भूतं भव्यं व्यचिन्तयत् ।। मुहूर्तमेकं ध्यात्वा च प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ।। ३१ ।। मुनिरुवाच ।। जानेऽहं तव राजेन्द्र पितुः पापं विकर्मणः ।। पूर्वजन्मनि ते पित्रा स्वपत्नीद्वयमध्यतः ।। ३२ ।। कामासक्तेन चैकस्या ऋतुभङ्गः कृतः स्त्रियः ।। त्राहि देहीति जल्पन्त्या अन्यस्याश्च नराधिप ।। ३३ ।। कर्मणा तेन सततं नरके पतितो ह्ययम् ।। राजोवाच ।। केन व्रतेन दानेन मोक्षस्तस्य भवेन्मुने ।। ३४ ।। निरयात्पापसंयुक्तात्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।। मुनिरुवाच ।। मार्गशीर्षे सिते पक्षे मोक्षानाम्नी हरेस्तिथिः ।। ३५ ।। सर्वैस्तु तद्व्रतं कृत्वा पित्रे पुण्यं प्रदीयताम् ।। तस्य पुण्यप्रभावेण मोक्षस्तस्य भविष्यति ।। ३६ ।। मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा नृपः स्वगृहमागतः ।। आग्रहायणिको शुक्ला प्राप्ता भरतसत्तम ।। ३७ ।। अन्तःपुरचरैः सर्वैः पुत्रैर्दारैस्तदा नृपः ।। व्रतं कृत्वा विधानेन पित्रे पुण्यं ददौ नृपः ।। ३८ ।। तस्मिन्दत्ते तदा पुण्ये पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ।। वैखानसपिता तेन गतः स्वर्गं स्तुतो गणैः ।। ३९ ।। राजानमन्तरिक्षाच्च शुद्धां गिरमभाषत ।। स्वस्त्यस्तु ते पुत्र सदेत्यथ स त्रिदिवं गतः ।। ४० ।। एवं यः कुरुते राजन् मोक्षामेकादशीमिमाम् ।। तस्य पापं क्षयं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।। ४१ ।। नातः परतरा काचिन्मोक्षदा विमला शुभा ।। पुण्यसंख्यां तु तेषां वै न जानेऽहं तु यैः कृता ।। ४२ ।। पठनाच्छ्रवणाच्चास्या[1] वाजपेयफलं लभेत्।। चिन्तामणिसमा ह्येषा स्वर्गमोक्षप्रदायिनी ।। ४३ ।। इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे मार्गशीर्षे शुक्लैकादश्या मोक्षानाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ।।

---

१ अस्याः कथायाः ।

अथ मार्गशीर्ष शुक्लैकादशीकथा–युधिष्ठिर बोले कि, मैं तीनों लोकोंको सुख पहुँचानेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुको जो विश्वके मालिक विश्वके कर्ता एवं पुराणपुरुषोत्तम प्रभु हैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ।। १।। हे देवदेवेश ! मुझे संशय है इसलिये मैं पूछता हूँ कि, लोगों के कल्याण के लिये पापों के क्षयके लिये ।। २ ।। मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें कौनसी एकादशी होती है ? उसकी क्या विधि है और कौनसे देवताकी उसमें पूजा होती है ? ।। ३ ।। उसे हे स्वामी ! आप कृपाकर मुझे विस्तार के साथ जैसेका तैसा उपदेश दीजिये। श्रीकृष्ण भगवान् बोले–हे राजेन्द्र ! तुम्हारी बुद्धि बडी पवित्र है आपने यह उत्तम प्रश्न किया है ।। ४ ।। मैं अब हरिवासरको कहता हूँ तथा उसकी पूजा व कथाविधिको भी हे राजेन्द्र ! वर्णन करता हूँ। शुक्लपक्षमें मेरी प्रिया एकादशी उत्पन्न हुई ।। ५ ।। हे नराधिप ! मार्गशीर्षमें मेरे शरीरसे यह उत्पन्न हुई है और विशेष करके मुरके वधके वास्ते यह मेरी वल्लभा प्रसिद्ध हुई है ।। ६ ।। के राजन् ! इस चराचर जगत् में मैंने तुम्हारे ही सामने सर्व प्रथम इस एकादशीका वर्णन किया है ।। ७ ।। मार्गशीर्षके कृष्णपक्षमें उत्पत्ति एकादशी होती है और अब इसी महीनेके शुक्लपक्षकी एकादशीको कहता हूँ ।। ८ ।। उस एकादशीका ' मोक्षा ' नाम है जो सब पापोंकी नाश करनेवाली है उसमें भगवान् दामोदरको प्रयत्नके साथ पूजना चाहिये ।। ९ ।। गन्ध, पुष्प आदि षोडशोपचारसे तथा मांगलिक गायनवाद्योंसे पूजा करनी चाहिये । अब हे राजेन्द्र ! पुराणोक्त पवित्र कथाको मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।। १० ।। जिसके सुनने मात्र से ही वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है ।पिता माता या पुत्र आदि जिस किसी की कुलमें अधोगति हुई हो।। ११ । वे सब इसके पुण्यके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हो जाते हैं, इस कारण इसकी उस महिमाको सुन ।। १२ ।। प्राचीनसमयमें गोकुल नामक रम्य नगरमें एक राजा रहता था, उसका नाम वैखानस था, वो राजा अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन करता हुआ राज्य करता था ।।१३।। उस नगरमें बहुतसे ब्राह्मणभी वेदोंके जाननेवाले रहते थे । इस प्रकार राज्य करते हुए एकदिन उस राजाको अर्धरात्रिके समय स्वप्न हुआ कि ।। १४ ।। मेरे पिता अधोयोनिमें पडे हुए हैं इस आश्चर्यको देखकर उसकी आँखें चोडगई ।।१५।। उस वृत्तान्तको उसने किकी ब्राह्मण समूहसे निवेदन किया कि, हे ब्राह्मणो ! मैंने अपने पिताको नरकमें पडा हुआ आज देखा है कि ।। १६ ।। हे पुत्र ! तू मुझे इस दुर्गतिमें-से निकाल यह वो मुझे कहते थे मैंने यह अपनी आँखों से देखा है ।। १७ ।। उस समयसे मुझे कुछ शान्ति नहीं होती । यह राज्य मेरे लिये असह्य और दुखरूप हो गया है ।। १८ ।। हाथी घोडे और रथ कुछभी मुझे अच्छ नहीं मालूम होते । एवं स्त्री पुत्र आदि जो भी प्यारी वस्तु मेरे राज्य में हैं वे सब अच्छी नहीं मालूम होतीं इस समय मुझे सुखी करनेवाला कोई नहीं है ।। १९ ।। कहो ब्राह्मणो ! मैं क्या करूं और कहा जाऊँ ? मेरा शरीर जल रहा है, मुझे स्त्री पुत्रआदि, हे श्रेष्ठद्विजो ! कुछ नहीं सुहाते ।। २० ।। दान, तप या व्रत जिस किसी भी रीतिसे मेरे पिताका मोक्षहो मेरे पूर्वज कल्याण पावें वैसीही विधि आप लोग मुझसे कहो ।।।२१उस बलवान् सुपुत्रके जीवन से क्या लाभ जिसका पिता नरक में दुःख उठावे । मैं कहता हूँ कि, उस पुत्रका जन्म व्यर्थ है ।। २२ ।। ब्राह्मणने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! यहाँ से भूत भविष्यत् और वर्तमानके जाननेवा ले पर्वत मुनिका आश्रम निकट ही है । हे राजशार्दूल ! तुम यहाँ चले जाओ ।। २३ ।। उनके इन वचनोंको सुन-कर सुखी हुआ वो सुयोग्य राजा वहाँ पहुँचा जहाँकि, पर्वतका आश्रम था ।। २४ ।। वे मुनिराज उस समय शान्त ब्राह्मण और प्रजासे चारों ओरसे घिरे हुए थे वो उनका बडा आश्रम मुनियोंसे भली भाँति सेवित-था ।।२५।। वे मुनि ऋग्, साम, यजु और अथर्ववेदी थे, उसे घिरे हुए पर्वत मुनि दूसरे ब्रह्माकी तरह शोभाय-मान हो रहे थे ।।२६।। उस वैखानस राजाने उस मुनिशार्दूल पर्वत मुनिको देखकर मत्था टेककर दण्डवत् प्रणाम किया ।। २७ ।। मुनिने राजाके स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल, सुहृत् इन सातों अङ्गोंकी कुशल पूछी कि, तुम अपने राज्यमें सुखपूर्वक निष्कण्टक हो ना ? ।। २८ ।। राजा बोला कि, आपकी कृपासे मेरे राज्य के सातों अङ्गोंमें खुशी है, विभवोंके भी अनुकूल होने पर कुछ विघ्न उपस्थित हो गया है ।। २९ ।। मुझे सन्देह हुआ है उसीकी निवृत्तिके लिए मैं आपके पास आया हूँ ऐसे राजाके वचनोंको सुनकर पर्वत मुनिने ।। ३० ।। ध्यान में निश्चल नयन होकर भूत, भविष्यत् और वर्तमानका चिन्तन किया, एक मुहूर्त इसीप्रका-रह कर राजासे कहा ।। ३१ ।। कि हे राजेन्द्र मैं तेरे पिताके बुरे कर्मोंके पापको जानता हूँ, पहिले जन्ममें तेरे

पिताने दो पत्नियोंमें से कामासक्त होकर एकका ऋतुभंग किया था, जो कि एक यह पुकार रहीथी, कि मुझे बचा दे ॥ ३२ ॥ उस कर्मसे यह निरन्तर नरकमें गिर गया है । यह सुन राजा बोला कि, किस दान वा व्रतसे, हे मुने ! इसका मोक्ष हो ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ मेरा पिता पापयुक्ति निरयसे छूट जाय यह मुझे बताइये यह सुन मुनिबोले कि, मार्गशीर्ष सितपक्षमें मोक्षनामक एकादशी होती है ॥ ३५॥ तुम सब उस व्रतको करके पिताके लिए उसका पुण्य दे दीजिए उसके पुण्यके प्रभावसे उसका मोक्ष हो जायगा ॥ ३६ ॥ मुनिके वाक्य सुनकर पीछे राजा अपने घर चला आया, हे भरतसत्तम ! अगहनकी शुक्ला एकादशी आगई ॥ ३७ ॥ राजाने अन्तःपुरवासी सब पुत्र दार आदि के साथ विधिपूर्वक व्रत किया पीछे सबका पुण्य पिताके लिए दे दिय ॥३८॥ उसके पुण्य देनेपर स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा हुई, वैखानसका पिता उससे स्वर्ग चला गया, जातीवार गणोंसे स्तुतियाँ होती चली जाती थीं ॥ ३९ ॥ व्रत करनेवालेके पिताने अपने पुत्रसे स्वर्गसे शुद्ध वाणी बोली कि, हे पुत्र ! तेरा सदा कल्याण हो, इसके बाद वो त्रिदिव चला गया ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जो इस मोक्षा एकादशीको करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ इससे अधिक कोई भी शुद्ध शुभ मोक्षकी देनेवाली नहीं है, जिन्होंने इस एकादशीको किया है उनके पुण्यकी संख्यामें नहीं जान सकता कि, उनका पुण्य कितना बडा है ॥४२॥ इसके पढने और सुननेसे बाजपेय के फलकी प्राप्ति होती है, यह चिन्तामणिके बराबर है, स्वर्ग और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ४३ ॥ यह श्रीब्रह्माण्डपुराणका कहा हुआ मार्गशीर्षशुक्लाकी मोक्षनाम्नी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ॥

अथ पौषकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु द्वादशी या भवेत् प्रभो ॥ किंनाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥ १ ॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन्विस्तरेण जनार्दन ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेहकारणात् ॥ २ ॥ तथा तुष्टिर्न मे राजन् क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥ यथा तुष्टिर्भवन्मह्यमेकादश्या व्रतेन वै ॥ ३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो हरिवासरः ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु द्वादशी या भवेन्नृप ॥ ४ ॥ तस्याश्चैव च माहात्म्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ गदिताश्च वै राजन्नेकादश्यो भवन्ति हि ॥५॥ तासामपि हि सर्वासां विकल्पं नैव कारयेत् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पौषे कृष्णा हि द्वादशी ॥ ६ ॥ तस्या विधिं नृपश्रेष्ठ लोकानां हितकाम्यया ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे या सफलानाम नामतः ॥ ७ ॥ नारायणोऽधिदेवोऽस्याः पूजयेत्तं प्रयत्नः ॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्तव्यैकादशी जनः ॥ ८ ॥ नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुडो यथा ॥ यथाश्वमेधो यज्ञानां नदीनां जाह्नवी यथा ॥ ९ ॥ देवानां च यथाविष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ व्रतानां च तथा राजन् प्रवरैकादशी तिथिः ॥ १० ॥ ते जना भरतश्रेष्ठ मम पूज्याश्च सर्वशः ॥ हरिवासरसंसक्ता वर्तन्ते ये भृशं नृप ॥ ११ ॥ सफलानाम या प्रोक्ता तस्याः पूजाविधि शृणु ॥ फलैर्मां पूजयेत्तत्र कालदेशोद्भवैः शुभैः ॥ १२ ॥ नारिकेलफलैः शुद्धैस्तथा वै बीजपूरकैः ॥ जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा पूगफलैरपि ॥ १३ ॥ लवङ्गैर्विविधैश्चान्यैस्तथा चा*म्रफलादिभिः॥ पूजयेद्देवदेवेशं धूपैर्दीपैर्यथाक्रमम् ॥१४ सफलायां दीपदानं विशेषेण प्रकीर्तितम्* ॥ रात्रौ जागरणं तत्र कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ यावदुन्मिषते नेत्रं तावज्जागर्ति यो निशि ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा

* चामलकादिभिरित्यपि क्वचित्पाठः । * प्रदापयेदित्यपिपाठः ।

तस्य पुण्यफलं शृणु ।। १६ ।। तत्समो नास्ति वै यज्ञस्तीर्थं तत्सदृशं न हि ।। तत्समं न व्रतं किंचिदिह लोके नराधिप ।। १७ ।। पञ्चवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा च यत्फलम् ।। तत्फलं समवाप्नोति सफलाजागरेण वै ।। १८ ।। श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथानकम् ।। चम्पावतीति विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च ।। १९ ।। माहिष्मतस्य राजर्षेश्चत्वारश्चाभवन्सुताः ।। तेषां मध्ये तु यो ज्येष्ठः स महापापसंयुतः ।। २० ।। परदाराभिगामी च द्यूतवेश्यारतः सदा ।। पितुर्द्रव्यं स पापिष्ठो गमयामास सर्वशः ।। २१ ।। असद्वृत्तिरतो नित्यं देवताद्विजनिन्दकः ।। वैष्णवानां च देवानां नित्यं निन्दारतः स वै ।। २२ ।। ईदृग्विधं तदा दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः ।। राज्यान्निष्कासयामास लुम्पकं नाम नामतः ।।२३।। राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैवापि बन्धुभिः ।। परिवारजनैः सर्वैस्त्यक्तो राज्ञो भयात्तदा ।। २४ ।। लुम्पकोऽपि तदा त्यक्तश्चिन्तयामास चैकलः ।। मयात्र किं प्रकर्तव्यं त्यक्तेन पितृबान्धवैः ।। २५ ।। इति चिन्तापरो भूत्वा मतिं पापे तदाकरोत् ।। मया तु गमनं कार्यं वने त्यक्त्वा पुरं पितुः ।। २६ ।। तस्माद्वनात्पितुः सर्वं व्यापयिष्ये पुरं निशि ।। दिवा वने चरिष्यामि रात्रावपि पितुः पुरे ।। २७ ।। इत्येवं स मतिं कृत्वा लुम्पको दैवपातितः ।। निर्जगाम पुरात्तस्माद्गतोऽसौ गहनं वनम् ।।२८।। जीवघातकरो नित्यं नित्यं स्तेयपरायणः ।। सर्वं च नगरं तेन मुषितं पापकर्मणा ।। २९ ।। गृहीतश्च परित्यक्तो लोके राज्ञो भयात्तदा ।। जन्मान्तरीयपापेन राज्यभ्रष्टः स पापकृत् ।। ३० ।। आमिषाभिरतो नित्यं नित्यं वै फलभक्षकः ।। आश्रमस्तस्य दुष्टस्य वासुदेवस्य संमतः ।। ३१ ।। अश्वत्थो वर्तते तत्र जीर्णो बहुलवार्षिकः ।। देवत्वं तस्य वृक्षस्य वर्तते तद्वने महत ।। ३२ ।। तत्रैव न्यवसच्चासौ लुम्पकः पापबुद्धिमान् ।। एवं कालक्रमेणैव वसतस्तस्य पापिनः ।। ३३ ।। दुष्कर्मनिरतस्यास्य कुर्वतः कर्म निन्दितम् ।। पौषस्य कृष्णपक्षे तु पूर्वस्मिन् सफलादिनात् ।। ३४ ।। दशमीदिवसे राजन्निशायां शीतपीडितः ।। लुम्पको वस्त्रहीनो वै निश्चेष्टो ह्यभवत्तदा ।। ३५ ।। पीड्यमानस्तु शीतेन अश्वत्थस्य समीपगः ।। न निद्रा न सुखं तस्य गतप्राण इवाभवत् ।। ३६ ।। पीडयन्दशनैर्दन्तानेवं सोऽगमयन्निशाम् ।। भानूदयेऽपि तस्याथ न संज्ञा समजायत ।। ३७ ।। लुम्पको गतसंज्ञस्तु सफलादिवसे ततः ।। मध्याह्नसमये प्राप्ते संज्ञां लेभे स पार्थिव ।।३८।। प्राप्तसंज्ञो मुहूर्तेन चोत्थितोसौ तदासनात् ।। प्रस्खलंश्च पदन्यासैः पङ्गुवच्चलितो मुहुः ।। ३९ ।। वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्तृषापीडितोऽभवत् ।। न शक्तिजी विघातेऽस्य लुम्पकस्य दुरात्मनः ।। ४० ।। फलानि भूमौ पतितान्याहृत्य च स लुंपकः ।। यावत्स चागतस्तत्र तावदस्तमगाद्रविः ।। ४१ ।। किं भविष्यति तातेति विललापाति दुःखितः ।। फलानि तानि सर्वाणि वृक्षमूले निवेदयन् ।। ४२ ।। इत्युवाच फलैरेभिः प्रीयतां भगवान्

हरिः ।। उपविष्टो लुंपकश्च निद्रां लेभे न वै निशि ।। ४३ ।। तेन जागरणं मेने भगवान्मधुसूदनः ।। फलैश्च पूजनं मेने सफलायां तथानघ ।। ४४ ।। कृतमेवं लुंपकेन ह्यकस्माद्व्रतमुत्तमम् ।। तेन व्रतप्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।। ४५ ।। पुण्याङ्कुरोदयाद्राजन् यथाप्राप्तं तथा शृणु ।। रवेरुदयवेलायां दिव्योऽश्वश्चाजगाम ह ।। ४६ ।। दिव्यवस्तुपरीवारो लुंपकस्य समीपतः ।। तस्थौ स तुरगो राजन् वागुवाचाशरीरिणाम् ।। ४७ ।। प्राप्नुहि त्वं नृपसुत स्वराज्यं हतकण्टकम् ।। वासुदेवप्रसादेन सफलायाः प्रभावतः ।। ४८ ।। पितुः समीपं गच्छत्वं भुंक्ष्व राज्यमकण्टकम् ।। तथेत्युक्त्वा त्वसौ तत्र दिव्यरूपधरोऽभवत् ।। ४९ ।। कृष्णे मतिश्च तस्यासीत्परमा वैष्णवी तथा ।। दिव्याभरणशोभाढ्यस्तातं नत्वा स्थितो गृहे ।।५०।। वैष्णवाय ततो दत्तं पित्रा राज्यमकण्टकम् ।। कृतं राज्यं तु तेनैव वर्षाणि सुबहून्यपि ।। ५१ ।। हरिवासरसंलीनो विष्णुभक्तिरतः सदा ।। मनोज्ञास्त्वस्य पुत्राः स्युर्दाराः कृष्णप्रसादतः ।। ५२ ।। ततः स वार्द्धके प्राप्ते राज्यं पुत्रे निवेश्य च ।। वनं गतः संयतात्मा विष्णुभक्तिपरायणः ।। ५३ ।। साधयित्वा तथात्मानं विष्णुलोकं जगाम ह ।। एवं ये वै प्रकुर्वन्ति सफलैकादशीव्रतम् ।। ५४ ।। इह लोके यशः प्राप्य मोक्षं यास्यन्त्यसंशयम् ।। धन्यास्ते मानवा लोके सफलाव्रतकारिणः ।। ५५ ।। तस्मिञ्जन्मनि ते मोक्षं लभन्ते नात्र संशयः ।। सफलायाश्च माहात्म्यश्रवणाद्धि विशांपते ।। राजसूयफलं प्राप्य वसेत्स्वर्गे च मानवः ।। ५६ ।। इति पौषकृष्णैकादश्याः सफलानाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ।।

अब पौष कृष्ण एकादशी—युधिष्ठिर बोले कि, पौष महीनेकी कृष्णपक्षमें जो एकादशी है उसकी क्या विधि और क्या नाम है, कौनसे देवकी उसमें पूजा होती है ? ।। १ ।। इसको हे प्रभो ! आप कृपाकर विस्तारके साथ बताइये । भगवान् बोले कि, हे राजन् ! मैं तुम्हारे स्नेहके कारण इसे कहता हूँ ।। २ ।। मुझे उन यज्ञोंसे जिन में कि, खूब दक्षिणा दी गई हों कोई खुशी नहीं होती जितनी कि, इस एकादशीके व्रतसे होती है ।। ३ ।। इसलिए हर एक प्रकारसे एकादशीका व्रत करना चाहिये ।। हे राजन् ! पौषमासकी जो कृष्णा एकादशी होती है ।। ४ ।। उसके माहात्म्यको आप ध्यानपूर्वक सुनिये । हे राजन् ! जो कही हुई एकादशी हैं ।। ५ । उन सबोंमें विकल्प नहीं करना चाहिए, इसके बाद पौष कृष्ण एकादशीको कहता हूँ ।। ६ ।। संसारकी कल्याणकी कामनासे उसकी विधि भी कहूँगा, हे नृपश्रेष्ठ ! पौष कृष्ण एकादशीका नाम सफला है ।। ७ ।। नारायण उसके अधिष्ठाता देव हैं, उसमें उनका प्रयत्नके साथ पूजन होना चाहिये, हे राजन् ! पहिले कही हुई विधिसे एकादशी व्रत होना चाहिए ।। ८ ।। नागोंमें शेष, पक्षियोंमें गरुड, यज्ञोंमें अश्वमेध, नदियों में जाह्नवी ।। ९ ।। देवोंमें विष्णु और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी तरह सब व्रतोंमें यह एकादशी व्रत श्रेष्ठ है ।। १० ।। , भरत श्रेष्ठ ! जो मनुष्य सदा एकादशी करते हैं वे मेरे भी पूज्य हैं ।। ११ ।। विधि—अब इस सफला नामकी एकादशीकी पूजाविधि सुनिये । इसमें मुझे शुभ ऋतु फलोंसे पूजे ।। १२ ।। शुभ देशोत्पन्न नारियल, बिजौरे अनार, कमला नींबू, लौंग, सुपारी ।। १३ ।। तथा अनेक तरह के आम आदि उत्तम उत्तम फलोंको मेरी भेंट करे एवं धूप दीपादि षोडशोपचारसे मुझे देवदेवेश भगवान् की यथाक्रम पूजन करे ।। १४ ।। विशेषकर सफला एकादशीको दीप दान करना चाहिये । रात्रिमें प्रयत्नके साथ जागरण करे ।। १५ ।। उस

वि न जागरण करनेसे हे राजन् ! जो फल होता है, उसको एकाग्र मन हो सुनो पर जबतक नेत्रोन्मेष होता है तबतक जगता ही रहना होता है ।।१६।। हे राजन् ! उससे अधिक कोई यज्ञ, तीर्थ या उत्तम व्रत नहीं है, न उसके बराबरका ही कोई है ।। १७ ।। पाच हजार वर्षतक तप करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह इस एक सफलाके जागरणसे ही प्राप्त हो जाता है ।। १८ ।। हे राजश्रेष्ठ ! उस सफलाकी कथा सुनो । चम्पावती नामकी प्रसिद्धनगरी में माहिष्मत नामक राजाकी राजधानी थी ।। १९ ।। उस रार्जाषके चार पुत्र थे, जिसमें सबसे बडा लडका बडा भारी पापी था ।। २० ।। परस्त्रीगामी, ज्वारी तथा वेश्यासक्त था उस पापिष्ठन् अपने पिताके सब धनको नष्ट कर दिया था, ।।२१।। देवताओंकी ब्राह्मणोंकी निन्दा करना और कुसङ्गम रहना आदि उसका मुख्य काम था ।।२२।। माहिष्मत राजाने अपने ऐसे लडकेको देखकर जिसका कि नाम लुम्पक था, उसे राज्यसे बाहर निकाल दिया ।।२३।। उसको उसके पिताने तथा अन्य बन्धुओंने तथा राजाके डरसे उसके सब परिवारने भी अपनेसे बाहर कर दिया ।। २४ ।। सबसे परित्यक्त अकेला लुंपक भी सोचने लगा कि, मुझे सबने छोड दिया अब मैं क्या करूँ ? ।। २५ ।। इस प्रकार चिन्ता करके उस समय उसने अपनी बुद्धि पापमें की कि, मुझे पिताका पुर छोडकर वनमें गमनकरना चाहिये ।। २६ ।। मैं उस वनसे पिताके पुरमें घुस जाया करूँगा, इस प्रकार रातमें पुर और दिनमें जङ्गलमें रहूँगा ।। २७।। दैवसे गिराया गया लुंपक इस प्रकार विचार करके उस पुरसे गहन वनमें चला गया ।। २८ ।। वो रोज ही जीवहत्या और चोरी किया करता था, उस पापीने सारे शहरकी चोरी की ।। २९।। जन्मान्तरीय पापोंसे वो पापी राज्यसे भ्रष्ट तो होही गया था लोगोंने उसे चोरी करते पकडा पर राजाके डरसे छोड दिया ।।३०।। वो रोज फल और मांस खाकर गुजारा करता था पर उस दुष्ट का आश्रम जो था वह वासुदेवके संमत था ।।३१।। उसमें बहुत वर्षोंका पुराना एक जीर्ण अश्वत्थ था उस वनमें उस वृक्षको बड़ा देवत्व दीखता था ।।३२।। पापी लुम्पक इस प्रकार वहां रह रहा था इसी प्रकार रहते हुए उस पापीको ।।३३।। दुष्कर्मोंमें लगे हुए एवं निन्दितकर्म करते हुये पौष कृष्ण सफलाके पहिले दिन ।।३४।। हे राजन्, शीतने अत्यन्त बाधा दी, लुम्पक वस्त्र हीन था अतः सरदीका मारा बेहोश हो गया ।।३५।। वो शीतसे पडित हो अश्वत्थके समीप निष्प्राणसा हो गया उसे नींद का सुख तो था हीं कहां ।।३६।। दांतसे दांत बजते थे ऐसे ही उसने रात बितादी, सूर्य्यके निकलनेपर भी उसे चेतना नहीं हुई ।।३७।। होते होते हे राजन् ! उसे मध्याह्न का समय हो गया तब चेत नहीं हुआ, जिस दिन वो इस प्रकार बेहोश था उस दिन सफला एकादशी थी ।।३८।। एक मुहूर्तमें उसे संज्ञा हुई तब आसनसे उठा लडखडाता पाँगलेकी तरह बारबार चलने लगा ।।३९।। वनमें था ही भूख प्यासने व्याकुल किया पर उस दुरात्मा लुम्पकको इतनी भी शक्ति नहीं रही कि, जीव तो मारले ।।४०।। भूमिमें पड़े हुये फलोंको उठाकर जबतक आया तब तक सूर्य्यदेव छिपे गये. हा तात ! आज क्या होगा ? ऐसा कह कर दुखी हो रोने लगा. वे सब फल वृक्षकी जड़में रख दिया ।।४१।।।४२।। और कहा कि, इससे भगवान्प्रसन्न हों जायँ वहां ही बैठ गया उस रातको भी नींद न ले सका ।।४३।। भगवान् मधुसूदनने उसे अपने व्रतका जागरण माना एवं फलोंसे सफलाके व्रतका पूजन समझा ।।४४।। लुम्पकने अकस्मात् उत्तम व्रत कर दिया उसी व्रतके प्रभावसे उसे निष्कण्टक राज्य मिल गया ।।४५।। हे राजन् ! उसी पुण्यके अंकुरसे जैसे राज्यपाया उसे सुन, सूर्य्यके उदय होते ही एक दिव्य अश्व आ उपस्थित हुआ ।।४६।। उसका लवादमां सबही दिव्य था वो लुम्पकके समीप खड़ा हो गया, उसी समय आकाशबाणी हुई ।।४७।। कि, हे राजकुमार ! सफलाके प्रभावसे भगवान वासुदेवके प्रसन्न होनेसे आप अनेक राज्यके निष्कण्टक राजा बनें ।।४८।। तू अपने पिताके समीप जाकर निःसपत्न राज्यका भोग कर आकाशवाणीके इस प्रकार कहने के बाद वो लुम्पक दिव्य देहधारी हो गया ।।४९।। कृष्ण में भक्ति तथा परम वैष्णवी वुद्धि हो गई । अनेक प्रकारके अलंकारोंके साथ अपने पिताको प्रमाणकर अपने घरमें रहने लगा ।।५०।। पिताने भी उस वैष्णव पुत्रको राज्य दे दिया । इस प्रकार उसने अनेक वर्ष राज्य किया ।।५१।। हरिवासरमें उसकी सदा प्रीति रही तथा कृष्ण भगवानकी कृपासे उसके स्त्री, पुत्र भी बहुत सुन्दर थे ।।५२।। वह अपनी वृद्धावस्थाके प्राप्त होनेपर राज्य को पुत्रपर छोड़ यतात्मा विष्णुभक्ति परायण हो वनमें चला गया ।।५३।। स्वयं भी अन्तमें आत्माको सिद्ध करके विष्णु लोकमें गया ; इस प्रकार जो

लोग इस सफला नामकी एकादशीका व्रत या जागरण करते हैं ।।५४।। वे इस लोकमें यश पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं है और वे लोग धन्य हैं जो सफला व्रत करते हैं ।।५५।। वे लोग उस जन्ममें मोक्ष पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है । तथा हे राजन् ! इसके माहात्म्यको भी सुनकरके राजसूय यज्ञके फलको पाकर स्वर्गमें चले जाते हैं ।।५६।। यह पौष कृष्णाकी सफला नामकी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथपौषशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा ।। कथयस्व प्रसादेन शुक्ला पौषस्य या भवेत् ।। १ ।। किंनाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।। कस्मै तुष्टो हृषीकेश त्वमेव पुरुषोत्तम ।। २ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत् ।। तस्या विधिं महाराज लोकानां च हिताय वै ।। ३ ।। पूर्वेण विधिना राजन् कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ।। पुत्रदेति च नाम्नासौ सर्वपापहरा वरा ।। ४ ।। नारायणोऽधिदेवोऽस्याः कामदः सिद्धिदायकः ।। नातःपरतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ।। ५ ।। विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं करोत्यसौ ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ।। ६ ।। पुरी भद्रावती नाम्नी राजा तत्र सुकेतुमान् ।। तस्य राज्ञोऽथ राज्ञी च शैब्या नाम्नीति विश्रुता ।। ७ ।। पुत्रहीनेन राज्ञा च कालो नीतो मनोरथैः ।। नैवात्मजं नृपो लेभे वंशकर्तार-मेव च ।। ८ ।। तेनैव राज्ञा धर्मेण चिन्तितं बहुकालतः ।। किं करोमि क्व गच्छामि सुतप्राप्तिः कथं भवेत् ।। ९ ।। न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान् ।। शैब्यया कान्तया सार्द्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवत् ।। १० ।। तावुभौ दम्पती नित्यं चिन्ताशोकपरायणौ ।। पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते ।। राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्मान् संतर्पयिष्यति ।। ११ ।। इत्येवं संस्मरन्तोऽस्य पितरो दुःखिनो-भवन् ।। न बान्धवा न मित्राणि नामात्याः सुहृदस्तथा ।। १२ ।। रोचन्ते तस्य भूपस्य न गजाश्वपदातयः ।। नैराश्यं भूपतेस्तस्य मनस्येवमजायत ।। १३ ।। नरस्य पुत्रहीनस्य नास्ति वै जन्मनः फलम् ।। अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा ।। १४ ।। पितृदेवमनुष्याणां नानृणित्वं सुतं विना ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुत-मुत्पादयेन्नरः ।। १५ ।। इहलोके यशस्तेषां परलोके शुभा गतिः ।। येषां तु पुण्य-कर्तॄणां पुत्रजन्म गृहे भवेत् ।। १६ ।। आयुरारोग्यसंपत्तिस्तेषां गेहे प्रवर्तते ।। पुत्राः पौत्राश्च लोकाश्च भवेयुः पुण्यकर्मणाम् ।। १७ ।। पुण्यं विना न च प्राप्ति-र्विष्णुभक्ति विना तथा ।। पुत्राणां संपदो वापि विद्यायाश्चेति मे मतिः ।। १८ ।। एवं चिन्तयमानोऽसौ राजा शर्म न लब्धवान् ।। प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽ-चिन्तयत्तथा ।। १९ ।। ततश्चात्मविनाशं वै विचार्याथ सुकेतुमान् ।। आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः ।। २० ।। दृष्ट्वात्मदेहं प्रक्षीणमपुत्रत्वं तथैव च ।।

पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या ह्यात्मनो हितकारणम् ।। २१ ।। अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम् ।। पुरोहितादयः सर्वे न जानन्ति गतं नृपम् ।। २२ ।। गम्भीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते ।। विचचार तदा तस्मिन्वनवृक्षान्विलोकयन् ।। २३ ।। वटानश्वत्थबिल्वांश्च खर्जूरान्पनसांस्तथा ।। बकुलांश्च सदापर्णास्तिन्दुकांस्तिलकानपि ।। २४ ।। शालांस्तालांस्तमालांश्च ददर्श सरलान्नृपः ।। इङ्गुदीककुभांश्चैव श्लेष्मातकविभीतकान् ।। २५ ।। शल्लकीकरमर्दांश्च पाटलान् खदिरानपि ।। शाकांश्चैव पलाशांश्च शोभितान् ददृशे पुनः ।। २६ ।। मृगव्याघ्रवराहांश्च सिंहाञ्शाखामृगानपि।। गवयान् कृष्णसारांश्च सृगालाञ्शशकानपि ।। २७ ।। वनमार्जारकान् क्रूराञ्शल्लकांश्चमरानपि ।। ददर्श भुजगान् राजा वल्मीकादभिनिःसृतान् ।। २८ ।। तथा वनगजान्मत्तान्कलभैः सह संगतान् ।। यूथपांश्च चतुर्दन्तान्करिणीगणमध्यगान् ।। २९ ।। तान् दृष्ट्वा चिन्तयामास ह्यात्मनः स गजान्नृपः ।। तेषां स विचरन्मध्ये राजा शोभामवाप ह ।। ३० ।। महदाश्चर्यसंयुक्तं ददर्श विपिनंनृपः ।। क्वचिच्छिवारुतं शृण्वन्नुलूकविरुतं तथा ।। ३१ ।। तांस्तान्पक्षिमृगान् पश्यन्बभ्राम वनमध्यगः ।। एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यंगते रवौ ।। ३२ ।। क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति ।। चिन्तायामास नृपतिः संशुष्कगलकन्धरः ।। ३३ ।। मया तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम् ।। मया वै तोषिता देवा यज्ञैः पूजाभिरेव च ।। ३४ ।। तथैव ब्राह्मणा दानैस्तोषिता मृष्टभोजनैः ।। प्रजाश्चैव यथाकालं पुत्रवत्परिपालिताः ।। ३५ ।। कस्माद्दुःखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणं महत् ।। इति चिन्तापरो राजा जगामाथाग्रतो वनम् ।। ३६ ।। सुकृतस्य प्रभावेण सरो दृष्टं मनोरमम् ।। मानसेन स्पर्द्धमानं पद्मिनीपरिशोभितम् ।। ३७ ।। कारण्डवैश्चक्रवाकै राजहंसैश्च नादितम् ।। मकरैर्बहुभिर्मत्स्यैरन्यैर्जलचरैर्युतम् ।।३८।। समीपे सरसस्तत्र मुनीनामाश्रमान् बहून् ।। ददर्श राजा लक्ष्मीवान्निमित्तैः शुभशंसिभिः ।। ३९ ।। सव्यात्परतरं चक्षुरपसव्यस्तथा करः ।। प्रास्फुरन्नृपतेस्तस्य कथयञ्शोभनं फलम् ।। ४० ।। तस्य तीरे मुनीन् दृष्ट्वा कुर्वाणान्नैगमं जपम् ।। अवतीर्य हयात्तस्मान्मुनीनामग्रतः स्थितः ।। ४१ ।। पृथक् पृथग्ववन्दे स मुनींस्तान् संशितव्रतान् ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवच्च प्रणम्य सः ।। ४२ ।। हर्षेण महताविष्टो बभूव नृपसत्तमः ।। तमूचुस्तेऽपि मुनयः प्रसन्नाः स्मो वयं तव ।। ४३ ।। कथयस्वाद्य वै राजन्यत्ते मनसि वर्तते ।। राजोवाच ।। के यूयमुग्रतपसः का आख्या भवतामपि ।। ४४ ।। किमर्थं सङ्गता यूयं वदन्तु मम तत्त्वतः ।। मुनय ऊचुः ।। विश्वेदेवा वयं राजन् स्नानार्थमिह चागताः ।। ४५ ।। माघो निकटमायात एतस्मात्पञ्चमेऽहनि ।। अद्य ह्येकादशी

राजन् पुत्रदा नाम नामतः ।। ४६ ।। पुत्रं ददात्यसौ शुक्ला पुत्रदा पुत्रमिच्छताम् ।। राजोवाच ।। ममापि यत्नो मुनयः सुतस्योत्पादने महान् ।। ४७ ।। यदि तुष्टा भवन्तो मे पुत्रः वै दीयतां शुभः ।। मुनय ऊचुः ।। अस्मिन्नेव दिने राजन् पुत्रदा नाम वर्तते ।। ४८ ।। एकादशी तिथिः ख्याता क्रियतां व्रतमुत्तमम् ।। आशीर्वादेन चास्माकं केशवस्य प्रसादतः ।। ४९ ।। अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति ।। इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतं शुभम् ।। ५० ।। द्वादश्यां पारणं कृत्वा मुनीन्नत्वा पुनः पुनः ।। आजगाम गृहं राजा राज्ञी गर्भं समादधे ।। ५१ ।। मुनीनां वचनेनैव पुत्रदायाः प्रसादतः ।। पुत्रो जातस्तथा काले तेजस्वी पुण्यकर्मकृत् ।। ५२ ।। पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः ।। एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यं पुत्रदाव्रतम् ।।५३।। लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ।। एतद्व्रतं तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदाभिधम् ।। ५४ ।। पुत्रं प्राप्येह लोके तु मृतास्ते स्वर्गगामिनः ।। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ।। ५५ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे पौषशुक्लैकादश्याः पुत्रदानाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ।।

पौष शुक्ला एकादशी–युधिष्ठिर बोले कि, महाराज ! आपने बड़ी कृपाकरके सफलाकी कथा सुनाई । अब पौष शुक्ला एकादशीकी कथा और विधिको सुनाइये ।।१।। उसका नाम और विधि क्या है । कौनसे देवताका उसमें पूजन होता है । हे पुरुषोत्तम हृषीकेश ! इस व्रतके करनेसे आप किसपर प्रसन्न हुये थे ? ।।२।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजन् ! पौषकी जो एकादशी होती है हे महाराज ! संसारके कल्याणके लिये उसे और उसकी विधि भी साथ कहता हूं ।।३।। हे राजन् ! पहिले कही हुई विधिसे प्रयत्नके साथ यह करनी चाहिये, इसका नाम पुत्रदा है सब पापोंको हरनेवाली है ।।४।। इसके अधिष्ठाता देव कामनाको पूरी करनेवाले सिद्धिदायक भगवान् नारायण हैं । इस चराचर जगत्में इससे उत्तम और कोई एकादशी नहीं है ।।५।। यह विद्या, यश और लक्ष्मीवाला बनाती है । हे राजन् ! इसकी पापहारिणी कथाको सुनिये मैं, कहता हूं ।।६।। भद्रावती पुरीमें सुकेतुमान राजा था; उसकी शैव्यानामकी प्रसिद्ध रानी थी ।। ७ ।। उसके कोई सन्तान न थी । पुत्रहीन राजाने अपना बहुत समय मनोरथोंसे नष्ट कर दिया पर वंशकर्त्ता पुत्र उत्पन्न न हुआ ।।८।।उसने धर्मसे बहुत समयतक बड़ी चिन्ता की वे दोनों राजा रानी रात दिन इसी चिन्ता में निमग्न रहने लगे ।पितर लोग भी इसी चिन्तामें उसके दिये हुये जलका गुनगुना भोग करने लगे।।९।।कि, पितर लोग शोचने लगे कि,राजाके बाद और कोई नहीं है जो हमारा तर्पण करे,इस कारण इसका दिया हुआ गुनगुना पिया जा रहा है।।१०।। उस राजाको बन्धु, मित्र, मंत्री, हाथी, घोड़े आदि कुछ भी प्रिय नहीं मालूम होते थे । उस राजाके मनमें बड़ी निराशा उत्पन्न हुई ।।१३।। और विचार करने लगा कि, पुत्रहीन मनुष्यके जन्मका कोई फल नहीं है तथा उसका घर शून्य है हृदय सदाही दुःखी है।।१४।। पितर, देव, मनुष्योंका ऋण तबतक नहीं छूटता जबतक कि, पुत्र न हो; इस लिये पुत्र सब तरहसे उत्पन्न करना चाहिये ।।१५।। जिन पुण्यात्माओंके घरमें पुत्रका जन्म होता है उनको इस लोकमें यश और परलोक में शुभगति प्राप्त होती है ।।१६।। उसके घर में आयु, आरोग्य और सम्पत्ति नित्य रहती है । पुण्यवान् लोगोंकोही पुत्र पौत्रोंकी प्राप्ति होती है ।।१७।। विना पुण्य और विष्णुभक्तिके पुत्र सम्पत्ति और विद्या नहीं प्राप्त होती यह मेरा निश्चय है ।।१८।। इस प्रकार वह राजा रात दिन प्रातः तथा आधीरात जब देखो तब सुख न पा सका एवम्।।१९।। चिन्ता करता हुआ अपनी आत्माघातकी दुर्बुद्धि करने लगा पर आत्मघातमें उसे दुर्गति देखी।।२०।। अपने शरीरको दुर्बल तथा पुत्रहीन देखकर फिर बुद्धिसे अपने हितकी बात विचार।।२१।। घोड़ेपर चढ़ एक निर्जन

जंगलमें चला गया । इस बातकी खबर उसके किसी मंत्री पुरोहित आदिको भी न हुई ।।२२।। वह उस शून्य जंगलमें जिसमें कि, वन्य पशुसे भरे रहे हैं उन जंगली जानवरोंके अन्दर वनके वृक्षोंको देखता हुआ विचारने लगा ।।२३।। फिर अनेक प्रकारके वड, पीपल, बेल, खजूर, कटहल, मौलश्री, सदापर्ण, तिंदुक, तिलक।।२४।। शाल, ताल, तमाल, सरल, इंगुदी, शीशम, बहेडा, लिहसोढ़ा, विभीतक ।।२५।। शल्लकी, करोंदा, साँठी, खैर, शाल और पलाश आदिके सुन्दर वृक्षोंको उसने देखा ।।२६।। तथा मृग, व्याघ्र, सिंह, वराह,बन्दर, गवय, शृगाल, शशक ।।२७।। बनबिलाव एवं क्रूर शल्लक और चमर भी उसने देखे तथा बाँमीसे निकलते हुए साँप भी उसके देखनेमें आये ।।२८।। अपने छोटे छोटे बच्चोंके साथ उसने वनके हाथी तथा मत्त हाथी एवम् हथिनियोंके बीचमें उपस्थित चतुर्दन्त यूथनाथ भी देखे ।। २९।। उन्हें देख वो उन हाथियोंको और अपनेको शोचने लगा उनके बीचमें घूमते हुए उसने परमशोभा पाई ।।३०।। राजाने बड़े आश्चर्यके साथ उस वनको देखा, कभी गौंघुआओंकी हूहू सुनी तो कभी उल्लूकी घू घू सुनी ।।३१।। उन्हें देखता सुनता तथा उन पक्षि मृगोंको देखता वनमें घूमने लगा, राजा मध्याह्नतक इसी तरह वनको देखता रहा ।।३२।। इधर उधर घूमते फिरते भूखप्यास ज्यादा सताने लगीं, कंठ सूख गया ऐसी दशामें सोचनेलगा ।।३३।। कि, मैंने ऐसा कौनसा पाप किया था जिससे मुझे ऐसा दुःख मिला, मैंने यज्ञ और पूजासे देवता संतुष्ट किये थे।।३४।। उसी तरह ब्राह्मण भी मिष्टान्न भोजन और दक्षिणासे प्रसन्न किये थे और प्रजाका भी पुत्रकी तरह पालन किया है ।।३५।। मुझे यह इतना बड़ा भारी दुःख क्यों मिला ? यह चिन्ता करता हुआ वनमें और भी अगाड़ी चला ।।३६।। राजाने सुकृतके प्रभावसे एक सुन्दर सरोवर देखा, मानस सरोवरसे स्पर्धा करता हो इतना सुन्दर था कमलिनियोंसे सब ओरसे शोभित था ।।३७।। उसमें कारण्डव; चक्रवाक और राजहंस बोल रहे थे उसमें बहुतसे मगर मच्छ एवं दूसरे जलचर थे ।।३८।। उसके पासही बहुतसे ऋषि आश्रम भी दृष्टिगोचर हुए, वे सब शुभशंसी निमित्तोंके साथ लक्ष्मीवान् राजाने देखे ।।३९।। दाहिना नेत्र और हाथ फड़कने लगा, इनका स्फुरन अच्छा होता है।।४०।। उसके किनारे मुनिलोग गायत्री जप कर रहे थे, राजा घोड़ेसे उतरकर उनके अगाड़ी खड़ा हो गया ।।४१।। हाथ जोड़कर उन सब प्रशस्त व्रतवाले मुनियोंके चरणोंमें अलग अलग दण्डवत प्रणाम की ।।४२।। श्रेष्ठ राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और मुनि लोग भी राजाको देखकर प्रसन्न हो बोले कि, हम प्रसन्न हैं ।।४३।।जो तेरे मनमें हो वो अब मांग ले, यह सुन राजाने कहा कि, महाराज तपेश्वरी आप लोग भी कौन हो, क्या नाम है तथा यहां क्यों और किसलिये एकत्रित हुए हो । यह यथार्थरूपसे कहिये। मुनियोंने उत्तर दिया, हे राजन् ! हमलोग विश्वेदेवा हैं, स्नान के वास्ते यहां पर आना हुआ है।।४४।। ।।४५।। माघ निकट आ गया है और आजसे पांचवें दिन लग जायगा, आज पुत्रदा नामकी एकादशी है।।४६।। यह शुक्ला पुत्रकी इच्छा करनेवाले लोगोंको पुत्र प्रदान करती है । राजाने कहा कि, महाराज मुनिराज ! मेरे भी पुत्रके उत्पन्न करनेके लिये महान् प्रयत्न है ।।४७।। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे भी पुत्र दे दीजिये मुनि बोले कि, हे राजन् । आजही पुत्रदा एकादशी है इसलिये तुम्हारे घरमें इसके उत्तम व्रतके करनेसे भगवान्की कृपासे तथा हमारे आशीर्वादसे ।।४८।।४९।। अवश्य पुत्र उत्पन्न होगा । यह सुन राजाने उनके वचनोंसे सच्चा व्रत किया ।।५०।। द्वादशीके दिन राजाने पारणा की, पीछे मुनियोंको प्रणाम करके घर आया रानी गर्भवती हो गई ।।५१।। उस राजाके घरमें मुनियोंके वचनसे और इस पुत्रदा नामकी एकादशीकी कृपासे बड़ा तेजस्वी और पुण्यात्मा पुत्र समयपर उत्पन्न हुआ ।।५२।। उसने पितृगणोंका सन्तोषकर प्रजाकी पालना की । इसलिये हे राजन् ! पुत्रदाका व्रत करना चाहिये ।।५३।। मैंने तुम्हारे सामने लोकहितकी कामनासे इस पुत्रदानामकी एकादशीकी कथा वर्णन की है,जो मनुष्यइस पुत्रदानामका व्रत करते हैं वे इसके करनेवाले इस लोकमें पुत्र पाकर अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं । हे राजन् ! पढ़ने और सुननेसे अश्वमेघका फल प्राप्त होता है ।। ५४ ।। ५५ ।। यह भविष्योत्तरपुराणका कहा हुआ पौष शुक्ला एकादशीके व्रतका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ माघकृष्णैकादशीकथा

[1]दाल्भ्य उवाच ।। मर्त्यलोके तु संप्राप्ताः पापं कुर्वन्ति जन्तवः ।। ब्रह्महत्यादि-पापैश्च ह्यन्यैश्च विविधैर्युताः ।। १ ।। परद्रव्यापहर्तारः परव्यसनमोहिताः ।। कथं नायान्ति नरकान्ब्रह्मंस्तद्ब्रूहि तत्त्वतः ।। २ ।। अनायासेन भगवन् दानेनाल्पेन केनचित् ।। पापं प्रशममायाति येन तद्वक्तुमर्हसि ।। ३ ।। पुलस्त्य उवाच ।। साधु साधु महाभाग गुह्यमेतत्सुदुर्लभम् ।। यन्न कस्याचिदाख्यातं ब्रह्मविष्णिवन्द्रदैवतैः ।। ४ ।। तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम । पौषमासे तु संप्राप्ते शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ।। ५ ।। कामक्रोधाभिमानेर्ष्यालोभपैशुन्यवर्जितः ।। देवदेवं च संस्मृत्य पादौ प्रक्षाल्य वारिणा ।। ६ ।। पुष्यर्क्षेण तु संगृह्य गोमयं तत्र मानवः ।। तिलान्प्रक्षिप्य कार्पासं पिण्डकांश्चैव कारयेत् ।। ७ ।। अष्टोत्तरशतं होमो नात्र कार्या विचारणा ।। माघमासे तु संप्राप्ते ह्याषाढर्क्षं भवेद्यदि ।। ८ ।। मूलं वा कृष्ण-पक्षस्य द्वादशीं नियमं ततः ।। गृह्णीयात्पुण्यफलदं विधानं तस्य मे शृणु ।। ९ ।। देवदेवं समभ्यर्च्च सुस्नातः प्रयतः शुचिः ।। कृष्णनामानि संकीर्त्य एकादश्यामु पोषितः ।। १० ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्रात्रौ होमं च कारयेत् ।। अर्चयेद् देवदेवेशं द्वितीयेह्नि पुनर्हरिम् ।। ११ ।। चन्दनागुरुकर्पूरैर्नैवेद्यं [2]कृसरं तथा ।। संस्तुत्य नाम्ना तेनैव कृष्णाख्येन पुनः पुनः ।। १२ ।। कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः ।। सर्वाभावे तु विप्रेन्द्र शस्तपूगीफलैर्युतम् ।। १३ ।। अर्घ्यं दद्याद्विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम् ।। कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव ।। १४ ।। संसारार्णवमग्नानां प्रसीद परमेश्वर ।। नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।। १५ ।। सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ।। १६ ।। ततस्तु पूजयेयद्विप्रमुदकुम्भं प्रदापयेत् ।। छत्रोपानद्युगैः सार्धं कृष्णो मे प्रीयतामिति ।। १७ ।। कृष्णा धेनुः प्रदातव्या यथाशक्त्या द्विजोत्तम ।। तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठ दद्यात्तत्र विचक्षणः ।। १८ ।। स्नानप्राशनयोः शस्ताः श्वेताः कृष्णास्तिला मुने ।। तान्प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्त्या द्विजोत्तम ।। १९ ।। तिलप्ररोहजाः क्षेत्रे यावत्सं-ख्यास्तिला द्विज ।। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।। २० ।। तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ।। तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशकाः ।। २१ ।। इयमेव षट्तिलाख्या ।। नारद उवाच ।। कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते विश्वभावन ।। षट्तिलैकादशीभूतं कीदृशं फलमश्नुते ।। २२ ।। सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोसि यादव ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु ब्रह्मन् यथावृत्तं दृष्टं तत्कथ-यामि ते ।।२३।। मृत्युलोके पुरा ह्यासीद्ब्रह्मण्येका च नारद ।। व्रतचर्यारता नित्यं देवपूजारता सदा ।। २४ ।। मासोपवासनिरता मम भक्ता च सर्वदा ।। कृष्णोपवास-संयुक्ता मम पूजापरायणा ।। २५ ।। शरीरं क्लेशितं नित्यमुपवासैस्तया द्विज ।।

१ इत आरम्य षट्तिलाः पापनाशना इत्यन्तग्रन्थेन हेमाद्रयुतिलाद्वादशीतिलदाह्याख्यव्रतद्वयविधान योर्मिश्री करणेनकिंचिदधि कपूरणेन चैको विधिरनेन लिखित इति भाति । २ दद्यादिति शेषः ।।

दीनानां ब्राह्मणानांच कुमारीणां च भक्तितः ।। २६ ।। गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महामतिः ।। अतिकृच्छ्ररता सा तु सर्वकालेषु वै द्विजा ।। २७ ।। ब्राह्मणा नान्नदानेन तर्पिता देवता न च ।। ततःकालेन महता मया वै चिन्तितं द्विज ।। २८ ।। शुद्धमस्याः शरीरं हि व्रतैः कृच्छ्रैर्न संशयः ।। अर्जितो वैष्णवो लोकः कायक्लेशेन वै तया ।। २९ ।। न दत्तमन्नदानं हि येन तृप्तिः परा भवेत् ।। विचिन्त्यैवं मया ब्रह्मन् मृत्युलोकमुपेत्य च ।। ३० ।। कापालं रूपमास्थाय भिक्षां पात्रेण याचिता ।। ब्राह्मण्युवाच ।। कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन् वद सत्यं ममाग्रतः ।। ३१ ।। पुनरेव मयाप्रोक्तं देहि भिक्षां च सुन्दरि ।। तया कोपेन महता मृत्पिण्डस्ताम्रभाजने ।। ३२ ।। क्षिप्तो यावदहं ब्रह्मन् पुनः स्वर्गं गतो द्विज ।। ततः कालेन महता तापसी सुमहाव्रता ।।३३।। सदेहा स्वर्गमायाता व्रतचर्याप्रभावतः ।। मृत्पिण्डस्य प्रभावेण गृहं प्राप्तं मनोरमम् ।। ३४ ।। परं तच्चैव विप्रर्षे धान्यकोशविवर्जितम् ।। गृहं यावत्प्रविश्यैषा न किञ्चित्तत्र पश्यति ।। ३५ ।। तावद्गृहाद्विनिष्क्रम्य ममान्ते चागता द्विजा ।। क्रोधेन महताविष्टा इदं वचनमब्रवीत् ।। ३६ ।। मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च ह्युपवासैरनेकशः ।। पूजयाऽऽराधितो देवः सर्वलोकस्य भावनः ।। ३७ ।। न तत्र दृश्यते किञ्चिद्गृहे मम जनार्दन ।। ततश्चोक्ता मया सा तु गृहं गच्छ यथागतम् ।। ३८ ।। आगमिष्यन्ति सुतरां कौतूहलसमन्विताः ।। द्रष्टुं त्वां देवपत्न्यस्तु दिव्यं रूपसमन्विताः ।। ३९ ।। द्वारं नोद्धाटय विना षट्तिलापुण्यवाचनात् ।। एवमुक्ता गता सा तु यावद्वै मानुषी गृहम् ।। अत्रान्तरे समायाता देवपत्न्यश्च नारद ।। ४० ।। ताभिश्च कथितं तत्र त्वां द्रष्टुं हि समागताः ।। द्वारमुद्धाटय त्वं चपश्यामस्त्वां शुभानने ।। ४१ ।। मानुष्युवाच ।। यदि द्रष्टुं समायाताः सत्यं वाच्यं विशेषतः।। षट्तिलाया व्रतं पुण्यं द्वारोद्घाटनकारणात् ।। ४२ ।। एकापि नावदत्तत्र षट्तिलैकादशीव्रतम् ।। अन्यया कथितं तत्र द्रष्टव्या मानुषी मया ।। ४३ ।। ततो द्वारं समुद्घाट्य दृष्टा ताभिश्च मानुषी ।। न देवी न च गन्धर्वी नासुरी न च पन्नगी ।। ४४ ।। दृष्टा पूर्वं तथा नारी यादृशीयं द्विजर्षभ ।। देवीनामुपदेशेन षट्तिलाया व्रतं कृतम् ।। ४५ ।। मानुष्या सत्यव्रतया भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।। रूपकान्तिसमायुक्ता क्षणेन समवाप सा ।। ४६ ।। धनं धान्यं च वस्त्रादि सुवर्णं रौप्यमेव च ।। भवनं सर्वसंपन्नं षट्तिलायाः प्रसादतः ।। ४७ ।। अतितृष्णा न कर्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।। आत्मवित्तानुसारेण तिलान् वस्त्रादि दापयेत् ।। ४८ ।। लभते चैवमारोग्यं ततो जन्मनि जन्मनि ।। दारिद्र्यं न च कष्टं च न च दौर्भाग्यमेव च ।।४९।। न भवेद्वै द्विजश्रेष्ठ षट्तिलायामुपोषणात् ।। अनेन विधिना ब्रह्मंस्तिलदानान्न संशयः ।। ५० ।। मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ।। दानं च विधिना सम्यक् सर्वपापप्रणाशनम् ।। नानर्थः कश्चिन्नायासः शरीरे मुनिसत्तम ।। ५१ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे माघकृष्णैकादश्याः षट्तिलानाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ।।

अथ माघकृष्णा एकादशीकी कथा–दाल्भ्य बोले कि, मर्त्यलोकमें आये हुए जीव तो पाप करते हैं ब्रह्महत्यादि महापातक तथा दूसरे दूसरे और पापोंसे भी घिरे रहते हैं ॥१॥ चोरी और व्यभिचारमें लगे रहते हैं पर हे ब्रह्मन् नरकोंको क्यों नहीं आते । यह यथार्थरूपसे कहिये ॥२॥ जिस छोटेसे दानसे वा पुण्यसे पाप शान्त हो जाँय । हे भगवन् ! उसे मुझसे कहिये ॥३॥ पुलस्त्य बोले कि, बहुत अच्छा बहुत अच्छा, हे महाभाग ! यह बड़ा ही गोपनीय है और सुतरां दुर्लभ है यह ब्रह्मा विष्णु, महेश किसीने भी किसीसे नहीं कहा ॥४॥ उसे अब में आपको सुना दूंगा, आप सुनें, पौषका महीना आनेपर जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्र होकर स्नान करे ॥५॥ काम क्रोधादि विकारोंका परित्याग करे ईर्ष्या और पिशुनताका त्याग करे, भगवान्‌को स्मरण कर हाथ पाँवका प्रक्षालन करे ॥६॥ पुष्यनक्षत्रके साथ उसमें गोबर लेकर उसमें तिल और कपास मिला पिण्ड बनालेना चाहिये ॥७॥ १०८ होम हो इसमें विचार न करना चाहिये । माघ मासके आ जानेपर यदि आषाढ़ नक्षत्र हो ॥८॥ अथवा मूल हो, कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन नियम ग्रहण करे, उसके पुण्य-फलके देनेवाले विधानको मुझसे सुनो ॥९॥ यतात्मताके साथ स्नान करके पवित्र हो भगवान्‌का पूजन करे एकादशीमें उपवास कर भगवान्‌के नामोंका कीर्तन करता हुआ ॥१०॥ रातको जागरण करे एवं होम भी उसी समय करे; दूसरे दिन देवादेव भगवान्‌का फिर पूजन करे ॥११॥ वारवार कृष्ण नामसे स्तुति करके इन चन्दन अगरु और कर्पूरके साथ कृसरका नैवेद्य दे ॥१२॥ कूष्मांड और नारियलसे अथवा बिजोरेसे या सबके अभावमें तो हे विप्रेन्द्र बढ़िया सुपारीसे ॥१३॥ भगवान् जनार्दनकी पूजा कर अर्घ्यदान करे कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! आप कृपालु हैं अतः जिनकी कोई गति नहीं है उनकी गति बन जाइये ॥१४॥ हे परमेश्वर ! हम संसारसागरमें डूबे हुए हैं हमारा उद्धार कर दें । हे पुण्डरीकाक्ष ! तेरे लिये नमस्कार है, हे विश्वभावन ! तेरे लिये नमस्कार है ॥१५॥ हे महापुरुष सनातन ! तेरे लिये नमस्कार है, हे जगत्पते ! आप लक्ष्मीके साथ अर्घ्य ग्रहण करिये ॥१६॥ और अन्तमें ब्राह्मणकी पूजा कर उसको भरा हुआ घड़ा छत्र और जूती जोड़ा, देकर ' कृष्णों में प्रीयतां ' पदका उच्चारण करे ॥१७॥ हे द्विजोत्तम द्विजश्रेष्ठ ! बुद्धिमान्‌को चाहिए कि, साथ ही काली गौ तथा तिलका पात्र भी यथाशक्ति दे ॥१८॥ हे मुने ! स्नानमें और भोजनमें सफेद तिलोंका व्यवहार करना अच्छा है । हे द्विजोत्तम ! शक्ति के अनुसार उन्हींको दे भी ॥१९॥ तिलदान करनेवाला मनुष्य उतने हजारवर्ष पर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है, जितना कि, उन तिलोंसे उत्पन्न होनेवाले खेतोंमें तिल पैदा होते हों ॥२०॥ तिलोंसे स्नान उबटन और होम तिलोंका ही पानी तिल भोजन और तिलोंका ही दान करना । इस प्रकार तिलोंसे ये छः काम होनेके कारण यह षट्तिला नामकी एकादशी होती है । यह पापोंको दूर करनेवाली है ॥२१॥ नारदजी बोले कि, हे विशालबाहो कृष्ण ! आपको प्रणाम है । षट्तिला एकादशीको करनेवाला प्राणी कैसा फल पाता है ? ॥२२॥ इसको आप कथा सहत वर्णन कीजिए, यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो । श्रीकृष्णजी बोले कि, हे नारद ! जैसी मैंने देखी वैसीही इसकी कथा मैं तुम्हें वर्णन करता हूं इसे तुम सुनो ॥२३॥ हे नारद ! प्राचीनकालमें मर्त्यलोकके अन्दर एक ब्राह्मणी थी, वो सदा व्रतों और भगवान्‌की पूजा किया करती थी ॥२४॥ प्रत्येक मासके उपवासोंको करती थी, मेरी भक्तिसे मेरे उपवासोंको भी किया करती थी, मेरी पूजामें लगी रहती थी ॥२५॥ जिसने अपना शरीर नित्य ही उपवासोंके करनेसे, गरीब ब्राह्मणों और कुमारियोंकी भक्तिसे क्षीण कर लिया था ॥२६॥ वह परम बुद्धिमती अपने गृह आदि सभी वस्तुओंको प्रदान करती रहती थी । इस प्रकार हे नारद ! सदा वह कष्ट उठाती रहती थी ॥२७॥ उसने ब्राह्मणोंको अन्नदानसे प्रसन्न किया पर देवताओंको प्रसन्न नहीं किया । तब बहुत दिनके बीत जाने पर मैंने सोचा ॥२८॥ कि, इसका शरीर वास्तवमें कष्टोपवाससे शुद्ध हो गया है । इसमें संदेह नहीं है, इसने अपने कायक्लेशसे वैष्णवलोकको प्राप्तकर लिया है।२९।किन्तु इसने अन्नदान नहीं किया जिससे मेरी पूर्ण तृप्ति होती । हे ब्रह्मन् ! यह विचारकर मैं मर्त्यलोकको चल दिया ॥३०॥ एक कपालीका रूप धारण-कर पात्रसे भिक्षा मांगने गया । ब्राह्मणी बोली कि, ब्रह्मन् ! कैसे पधारना हुआ ? सो मेरे आगे सत्य सत्य बताइये ॥३१॥ मैंने फिर भी ' हे सुन्दरि ! भिक्षा दे यह वचन कहा, तब उसने बड़े क्रोधसे साथ एकतामें के बर्तनमें, मिट्टीका पिण्ड फेंका ॥३२॥ हे ब्रह्मन् ! इतनेमें मैं स्वर्ग चला गया इसके बाद वो महाव्रतवाली

तापसी बहुत समयके वीतजानेपर ।।३३।। देहसहित स्वर्ग लोक चली गई इसी व्रतचर्य्याके प्रभावसे । मिट्टीके पिण्डदानके फलसे वहां सुन्दर घर मिला ।।३४।। लेकिन उसका घर अन्नकोषसे खाली था । घरमें जाकर उसने जब कुछ न देखा ।।३५।। तब वह फिर मेरे पास आई । उसने क्रोधमें आकर यह वचन कहा कि ।।३६।। मैंने इतने कठिन अनेक उपवासोंसे व्रतोंसे और पूजासे सर्वलोक हितकारी जनार्दन भगवान्की पूजा की ।।३७।। तो भी मेरे घरमें हे जनार्दन ! कुछ नहीं मालूम होता । तब मैंने कहा कि तू फिर जैसे आई है वैसे ही अपने घर जा ।।३८।। तुमको देखनेके लिए दिव्यरूपधारिणी अनेक देवपत्नी कुतूहलके साथ आयेंगी ।।३९।। तुम उनको विना षट्तिलोंकी पुण्यकथाके अपना दरवाजा न खोलना, जितने समयके बाद वो तापसी मानुषी अपने घरपर आई, इसी बीचमें उसके घरपर उसके दर्शन करनेके लिए देवस्त्रियां आ उपस्थित हुईं ।।४०।। देवपत्नियोंने कहा कि, हम आपको देखनेके लिए आई हैं । हे शुभ मुखवाली ! द्वार खोल, तुझे देखना चाहती हैं ।।४१।। मानुषीने कहा–यदि तुम मुझे वास्तवमें ही देखने आई हो तो मैं अपना द्वार तब खोलूंगी जब कि, षट्तिला व्रतका पुण्य तुम मुझे करोगी ।।४२।। कोई न बोली कि, मैं षट्तिला एकादशीके व्रतको दूंगी पर उनमेंसे एकने कहा कि, मैं तो इसे अवश्य देखूंगी । ।।४३।। तब उन सबने द्वार खोलकर देखा कि उसके अन्दर एक मानुषी बैठी हुई है । जो न गन्धर्वी हैं न आसुरी और पन्नगी है ।।४४।। जैसे पहले एक मानुषी स्त्री देखी थी वही यह है । देवियोंके उपदेशसे उसने षट्तिलाका व्रत किया ।।४५।। यह मुक्ति भुक्तिका देनेवाला था, मानुषी सत्यव्रतवाली थी, रूप कान्तिसे युक्त होकर क्षणमात्रमें पा गयी ।।४६।। धन, धान्य, वस्त्रादि, सुवर्ण रौप्य इनसे घर भर गया यह सब षट्तिलाकाही प्रभाव था ?।४७।। न तो अत्यन्त तृष्णाही करे; और न कृपणताही करे । अपनी यथाशक्ति तिल व वस्त्र आदि दान करे ।।४८।। इसके प्रभावसे जन्म जन्ममें आरोग्य मिलेगा, न कभी दारिद्रच, कष्ट और दुःखही होगा ।।४९।। इस प्रकार विधिपूर्वक तिल दान करनेसे उसके सब पाप नष्ट होते हैं । इसमें जरा भी संदेह न करना चाहिए । हे द्विज ! इस षट्तिलाके उपवासके बरावर कोई श्रेष्ठ नहीं है ।।५०।।५१।। यह श्री भविष्योत्तर पुराणका कहा हुआ षट्तिलानामकी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ माघशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। कृष्ण कृष्णाप्रमोयात्मन्नादिदेव जगत्पते ।। स्वेदजा अण्डजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ।। १ ।। तेषां कर्ता विकर्ता त्वं पालकः क्षयकारकः ।। माघस्य कृष्णपक्षे तु षट्तिला कथित: त्वया ।। २ ।। शुक्ले यैकादशी तां च कथयस्व प्रसादतः ।। किंनामा कोविधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।। ३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयिष्यामि राजेन्द्र शुक्ले माघस्य या भवेत् ।। जयानाम्नीति विख्याता सर्वपापहरा परा ।। ४ ।। पवित्रा पापहन्त्री च कामदा मोक्षदा नृणाम् ।। ब्रह्महत्यापहन्त्री च पिशाचत्वविनाशिनी ।। नैव तस्या व्रते चीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम् ।। ५ ।। नातः परतरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी ।। एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्येयं प्रयत्नतः ।। ६ ।। श्रूयतां राजशार्दूल कथा पौराणिकी शुभा ।। पंकजाख्यपुराणेऽस्या महिमा कथितो मया ।। ७ ।। एकदा नाकलोके वै इन्द्रो राज्यं चकार ह ।। देवाश्च तत्र सौख्येन निवसन्ति मनोरमे ।। ८ ।। पीयूषपाननिरताह्यप्सरोगणसेविताः ।। नन्दनं तु वनं तत्र पारिजातोपशोभितम् ।। ९ ।। रमयन्ति रमन्त्यत्र ह्यप्सरोभिर्दिवौकसः ।। एकदा रममाणोऽसौ देवेन्द्रः स्वेच्छया नृप ।। १० ।। नर्तयामास हर्षात्स पञ्चाशत्कोटिनायिकाः ।। गन्धर्वास्तत्र गायन्ति

गन्धर्वः पुष्पदन्तकः ।। ११ ।। चित्रसैनश्च तत्रैव चित्रसेनसुता तथा ।। मालिनीति च नाम्ना तु चित्रसेनस्य कामिनी ।। १२ ।। मालिन्यां तु समुत्पन्नः पुष्पवानिति नामतः ।। तस्य पुष्पवतः पुत्रो माल्यवान्नाम नामतः ।। १३ ।। गन्धर्वी पुष्पवत्याख्या माल्यवत्यतिमोहिता ।। कामस्य च शरैस्तीक्ष्णैर्विद्धाङ्गी सा बभूव ह ।। १४ ।। तया भावकटाक्षैश्च माल्यवांस्तु वशीकृतः ।। लावण्यरूपसंपत्त्या तस्या रूपं नृप शृणु ।। १५ ।। बाहू तस्यास्तु कामेन कण्ठपाशौ कृताविव ।। चन्द्रवद्वदनं तस्या नयने श्रवणायते ।। १६ ।। कर्णौ तु शोभितौ तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम ।। कण्ठो ग्रैवेयसंयुक्तो दिव्याभरणभूषितः ।। १७ ।। पीनोन्नतौ कुचौ तस्यास्तौ हेमकलशाविव ।। अतिक्षामं तदुदरमुष्टिमात्रं च मध्यमम् ।। १८ ।। नितम्बौ विपुलौ तस्या विस्तीर्णं जघनस्थलम् ।। चरणौ शोभमानौ तौ रक्तोत्पलसमद्युती ।। १९ ।। ईदृश्यां पुष्पवत्यां स माल्यवानपि मोहितः ।। शक्रस्य परितोषाय नृत्यार्थं तौ समागतौ ।। २० ।। गायमानौ न तौ तत्रह्यप्सरोगणसङ्गतौ ।। न शुद्धगानं गायेतां चित्तभ्रमसमन्वितौ ।। २१ ।। बद्धदृष्टी तथान्योन्यं कामबाणवशं गतौ ।। ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः ।। २२ ।। कालक्रियाणां संलोपात्तथा गीतावभञ्जनात् ।। चिन्तयित्वा तु मघवानवज्ञानं तथात्मनः ।। २३ ।। कुपितश्च तयोरित्थं शापं दास्यन्निदं जगौ ।। धिग्वां पापगतौ मूढावाज्ञाभङ्गकरौ मम ।। २४ ।। युवां पिशाचौ भवतं दम्पतिरूपधारिणौ ।। मृत्युलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणः फलम् ।। २५ ।। एवं मघवता शप्तावुभौ दुःखितमानसौ ।। हिमवन्तमनुप्राप्ताविन्द्रशापविमोहितौ ।। २६ ।। उभौ पिशाचतां प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च ।। संतप्तमानसौ तत्र महाकृच्छ्रगतावुभौ ।। २७ ।। गन्धं रसं च स्पर्शं च न जानीतो विमोहितौ ।। पीडयमानौ तु दाहेन देहपातकरेण च ।। २८ ।। तौ न निद्रासुखं प्राप्तौ कर्मणा तेन पीडितौ ।। परस्परं खादमानौ चरेतुर्गिरिगह्वरम् ।। २९ ।। पीडयमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ ।। दन्तघर्षं प्रकुर्वाणौ रोमाञ्चितवपुर्धरौ ।। ३० ।। ऊचे पिशाचः शीतार्धः स्वपत्नीं तु पिशाचिकाम् ।। किमावाभ्यां कृतं पापमत्यन्तं दुःखदायकम् ।। ३१ ।। येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृतकर्मणा ।। नरकं दारुणं मन्ये पिशाचत्वं च गर्हितम् ।।३२।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैव समाचरेत् ।। इति चिन्तापरौ तत्र ह्यास्तां दुःखेन कर्शितौ ।। ३३ ।। दैवयोगात्तयोः प्राप्ता माघस्यैकादशी सिता ।। जया नाम्नीति विख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।। ३४ ।। तस्मिन्दिने तु संप्राप्ते तावाहारविवर्जितौ ।। आसाते तत्र नृपते जलपानविवर्जितौ ।। ३५ ।। न कृतो जीवघातश्च न पत्रफलभक्षणम् ।। अश्वत्थस्य समीपे तु पतितौ दुःखसंयुतौ ।। ३६ ।। रविरस्तंगतो राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः ।। प्राप्ता चैव निशा घोरा दारुणा शीतकारिणी ।। ३७ ।। वेप-

स्नानौ तु तौ तत्र हिमेन च जडीकृतौ ।। परस्परेण संलग्नौ गात्रयोर्भुजयोरपि ।। ३८ ।। न निद्रां न रतिं तत्र तौ सौख्यमविन्दताम् ।। एवं तौ राजशार्दूल शापेनेन्द्रस्य पीडितौ ।। ३९ ।। इत्थं तयोर्दुःखितयोर्निर्जगाम तदा निशा ।। जयायास्तु व्रते चीर्णे रात्रौ जागरणे कृते ।। ४० ।। तयोर्व्रतप्रभावेण तथा ह्यासीत्तथा शृणु ।। द्वादशीदिवसे प्राप्ते ताभ्यां चीर्णे जयाव्रते । ४१ ।। विष्णोः प्रभावान्नृपते पिशाचत्वं तयोर्गतम् ।। पुष्पवतीमाल्यवांश्च पूर्वरूपौ बभूवतुः ।। ४२ ।। पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालंकारसंयुतौ ।। विमानमधिरूढौ तावप्सरोगणसेवितौ ।। ४३ ।। स्तूयमानौ तु गन्धर्वैस्तुम्बुरुप्रमुखैस्तथा ।। हावभावसमायुक्तौ गतौ नाके मनोरमे ।। ४४ ।। देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रणामं चक्रतुर्मुदा ।। तथाविधौ तु तौ दृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत् ।। ४५ ।। इन्द्र उवाच ।। वदतं केन पुण्येन पिशाचत्वं विनिर्गतम् ।। मम शापवशं प्राप्तौ केन देवेन मोचितौ ।। ४६ ।। माल्यवानुवाच ।। वासुदेवप्रसादेन जयायाः सुव्रतेन च ।। पिशाचत्वं गतं स्वामिन्सत्यं भक्तिप्रभावतः ।। ४७ ।। इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्युवाच सुरेश्वरः ।। पवित्रौ पावनौ जातौ वन्दनीयौ ममापि च ।। ४८ ।। हरिवासरकर्तारौ विष्णुभक्तिपरायणौ ।। हरिभक्तिरता ये च शिवभक्तिरतास्तथा ।। ४९ ।। अस्माकमपि ते मर्त्याः पूज्या वन्द्या न संशयः ।। विहरस्व यथासौख्यं पुष्पवत्या सुरालये ।। ५० ।। एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्यो हरिवासरः ।। जया नामेति राजेन्द्र ब्रह्महत्यापहारकः ।।५१ ।। सर्वदानानि दत्तानि यज्ञास्तेन कृता नृप ।। सर्वतीर्थेषु सुस्नातः कृतं येन जयाव्रतम् ।। ५२ ।। य करोति नरो भक्त्या श्रद्धायुक्तो जयाव्रतम् ।। कल्पकोटिशतं यावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ।। ५३ ।। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ।। ५४ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे माघशुक्लैकादश्या जयाया माहात्म्यं सम्पूर्णम् ।।

अथ माघशुक्ला एकादशीकथा– युधिष्ठिरजी कहते हैं कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे आदिदेव ! हे जगत्पते ! आप स्वेदज, अण्डज, जरायुज और उद्भिज्ज इन चारों तरहोंके प्राणियोंके कर्त्ता, हर्त्ता और पालक आप हैं सब लोकोंके नाथ और आदि देव भी आप ही हैं, आपकी महिमा अचिन्त्य है अतुल प्रभाव है, इस लिये जिस प्रकार आपने माघ कृष्णपक्षकी 'षट्तिला' एकादशीका वर्णन किया उसी प्रकार शुक्लपक्षकी एकादशीका भी वर्णन कृपा करके कर दीजिये उसका नाम और पूजाविधि तथा उस दिन किस देवताकी पूजा होनी चाहिये ? यह भी कृपाकर बताइये ।।१–३।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हें माघ शुक्ला एकादशीका वर्णन करता हूं । हे युधिष्ठिर उस एकादशीका नाम 'जया' है । सब पापोंको नष्ट करनेवाली, सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली और मोक्षको देनेवाली है । यह बड़ी पवित्र है, ब्रह्महत्याके पापको मिटानेवाली और पिशाच गतिको रोकनेवाली है । इसका व्रत करनेसे कभी प्रेतयोनि नहीं प्राप्त होती ।।४।। ।५५।। इससे अधिक उत्तम पापनाशिनी और मोक्षदायिनी कोई भी एकादशी नहीं है । इस लिये हे राजन् ! बड़े यत्नसे इसे कर ।।६।। हे राजश्रेष्ठ ! इसकी पुराणोक्त शुभ कथाको श्रवण कीजिये । इसकी महिमा मैंने पंकज (पद्म) नामके पुराणमें वर्णन की है ।।७।। एक समय स्वर्गलोकमें इन्द्रदेव राज्य करते

थे । इसके शासनमें देवतागण सुन्दर स्वर्गमें बड़ा सुखभोग कर रहे थे ।।८।। सदा अमृतपान करना और अप्स राओंका भोग करना उनका प्रधान काम था । उस जगह पारिजात नामके स्वर्गीय वृक्षोंसे शोभित नन्दन वन भी था ।।९।। जहां देवता अप्सराओंके साथ रमण करते थे । हे राजन् ! एक समय यह इन्द्र जब कि अप्सरोंसे रमण कर रहा था, तब हर्षातिरेकसे उसने ।।१०।। पचास करोड़ वेश्याओंका नृत्य कराया, गन्धर्व लोगोंका गाना हुआ । प्रसिद्ध गायनाचार्य गन्धर्वराज पुष्पदन्त ।।११।। तथा चित्रसेना नामकी अपनी पुत्रीके साथ चित्रसेन भी वहीं उपस्थित थे । इस चित्रसेन गन्धर्वकी स्त्रीका नाम ' मालिनी ' था ।।१२।। जिससे पुष्पवान् नामका लड़का उत्पन्न हुआ इस पुष्पवान्के माल्यवान् पुत्र हुआ ।।१३।। इस माल्यवान पर एक पुष्पवती नामकी गन्धर्वी मोहित हो गई थी । उसके ही मारे काम देवके तीक्ष्ण बाणोंसे घायल हो गई । उसके भावपूर्ण कटाक्षोंसे एवं रूप लावण्यकी संपत्तिसे माल्यवान् भी उसके वशीभूत हो गया उसका लावण्य और रूप सौन्दर्य कैसा था ? इसको हे राजन् ! आप सुनिये ।।१४।।१५।। उसकी भुजाएं कामदेवके साक्षात् कंठपाश थे । मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर और आंखें कानोंतक लम्बी थीं ।।१६।। कान कुंडलोंसे सज रहे थे । गलेमें हार तथा दूसरे अनेक प्रकारके अलंकारोंसे उसकी सुन्दरता बढ़ रही थी । कंठ कंठभूषा और दिव्य आभारणोंसे सज रहा था ।।१७।। उसके पुष्ट और ऊपर उठे हुए स्तन स्वर्णकलश जैसे मालूम होते थे । उदर बहुत पतला तथा मध्यभाग मुष्टिप्रमाण था ।।१८।। विशाल नितम्ब और जघनस्थल बहुत विस्तृत था । उसके चरण रक्तकमल जैसे सुन्दर थे ।।१९।। ऐसी पुष्पवतीपर माल्यवान् भी मोहित हो गया । वे लोग इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये नाचने और गानेको आये थे ।।२०।। जिस समय वे दोनों अर्थात् माल्यवान् और पुष्पवती अप्सराओंके साथ गा रहे थे तब उनका कामोन्मादके कारण गाना शुद्ध नहीं हो पाता था ऐसा मालूम होता था मानो उन्हें कोई चित्तभ्रम हो गया हो ।।२१।। एक दूसरेको दृष्टि लगाकर देख रहे थे । दोनों कामबाणोंके वशीभूत हो चुके थे, इस समय इन्द्रने उनके मनके भावको जान लिया कि इनका मन मिल चुका है ।।२२।। और इसके कारण अपने अपमानसे तथा सामयिक क्रियाओंके लोपसे और गायन भङ्गसे ।।२३।। कुपित होकर यह शाप दिया कि, हे नालायको ! तुमने पाप गत हो मेरी आज्ञाको भंग किया है, जाओ चले जाओ, तुम्हें धिक्कार है । तुम दोनों स्त्री पुरुषके रूपसे ही मर्त्यलोकमें जाकर पिशाच योनिमें अपने कर्मोंका फल भोगो ।।२४।।२५।। इस प्रकार इन्द्रके शापसे दुःखी होकर वे दोनों शाप मोहित हो हिमवानके निकट गये ।।२६।। दोनों उस शापके प्रभावसे पिशाचयोनि और दारुण दुखोंको प्राप्त हो गये । दोनोंका हृदय संतप्त रहने लगा वे महाकष्ट पाने लगे ।।२७।। तमके बढ़ जानेके कारण गन्ध रस और स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो गया, देहान्त करनेवाले दाहसे पीडित हो गये ।।२८।। उन्हें कर्मके प्रभावसे कभी निद्राका सुख नहीं मिला किन्तु एक दूसरेको खाते हुए वे लोग पहाड़ोंके दर्रोंमें चले गये ।।२९।। जाड़ेके शीतसे पीडित हो दातोंको रगड़ते हुए रोमाञ्चित शरीरसे दिन बिताने लगे ।।३०।। उनमेंसे एक दिन पिशाचने अपनी पिशाची स्त्रीसे शीतके दुःखमें कहा कि, हमलोगोंने कौनसा ऐसा दुःखदायक कर्म किया है ? ।।३१।। जिस बुरे कर्मसे हमें यह नरकरूप पिशाचयोनिकी प्राप्ति हुई है । मैं इस निन्दित पिशाच योनिको दारुण नरक मानता हूं ।।३२।। इसलिये अब कभी हमें कोई पाप किसी तरह भी नहीं करना चाहिये वे इस चिन्तामें दुःखके सतायेहुए रहे आये ।।३३।। दैवयोगसे इसी अवसरमें माघ महीनेकी जया नामिका शुक्ला एकादशी भी आ पहुंची, जो तिथियोंमें सबसे उत्तम तिथि है ।।३४।। हे राजन् ! उस दिन उन्होंने निराहार व्रत किया, जलपान भी न किया इसी तरह रहे आये ।।३५।। वे दोनों एक अश्वत्थ वृक्षके नीचे पड़े रहकर उस एकादशीके दिन जीवहत्या और फल भक्षण का भी त्याग लिये दुःखी रहे आये ।।३६।। उन्हें इसी तरह रहते हुए सूर्य भी अस्त हो गये थे अत्यन्त घोर शीतकारिणी एवं दुःख पहुंचानेवाली रात भी वहीं आ गई ।।३७।। वे दोनों वहां सर्दीके मारे जड़ होकर कांपने लगे । एक दूसरेसे शरीरसे शरीर लिपटकर पड़े रहे ।।३८।। न उन्हें निद्रा मिली, न रति और सुख ही मिला, हे राजशार्दूल ! इन्द्रके शापसे उन्हें इस प्रकारका दुःख हुआ ।।३९।। हे राजन् ! इस प्रकार दुःखसे उनकी वह रात्रि समाप्त हुई जया एकादशीका व्रत भी साथ ही जागरण सहित पूरा हो गया ।।४०।। उस एकादशीके प्रभावसे जो फल हुआ उसे सुनो । द्वादशीके प्राप्तका होनेपर उन्होंने जया एकादशीके व्रतका पारण किया ।।४१।। हे राजन् ! इस व्रतके प्रभावसे भगवान् विष्णुकी कृपासे उनका पिशाचपना नष्ट हो गया ! वे दोनों पुष्प

स्त्री और माल्यवान् पहले के रूपको धारण करते हुए ।।४२।। अपने पुराने प्रेमसे युक्त हो अप्सराओंके साथ पुराने अलंकारोंसे अलंकृत होकर अप्सराओंसे सेवित हुए विमानपर सवार हो गये ।।४३।। तुंबुरु आदि गन्धर्व स्तुति करते थे बड़े हावभाव से युक्त हो इस प्रकार वे दोनों फिर उस सुन्दर स्वर्ग पहुँचे ।।४४।। उन्होंने वहाँ इन्द्रके आगे प्रसन्न होकर प्रणाम किया । इन्द्र भी उन्हें पूर्व रूपमें देखकर बड़ा विस्मित हुआ बोला ।।४५।। कि, हे गन्धर्वो ! यह बतलाओ कि, मेरे शापसे मिला तुमारा पिशाचत्व किस प्रकार दूर हुआ ? मेरे शापका मोचन किस देवताने किया ।।४६।। माल्यवान् बोला कि हे देवराज ! भगवान् वासुदेवके प्रभावसे और जया एकादशीके व्रतसे एवं भगवान्की कृपासे मेरी यह पिशाचयोनि नष्ट हुई है । ।४७।। यह बचन सुन इन्द्र ने उत्तर दिया कि, अब तो तुम लोग बड़े पवित्र तथा मेरे भी वन्दनीय हो गये हो ।।४८।। हरिवासरको करनेवाले विष्णुभक्तिमें लीन रहनेवाले तथा जो लोग सदा हरिभक्ति ही में अपना समय बिताते हैं और जो शिवभक्त हैं ।।४९।। वे सब हमीं लोगोंके भी पूजनीय,वन्दनीय हैं । इसलिये तुम अब पुष्पवतीके साथ स्वर्गमें आनन्दसे इच्छापूर्वक भोग करो ।।५०।। इसीलिये हे राजन् ! जया नामका हरिवासर अवश्य ही करना चाहिये । यह ब्रह्महत्याके दोषका भी नाश करनेवाला है ।।५१।। हे राजन् ! उसने सब दानोको दिया और सब यज्ञोंको किया है और सब तीर्थोंमें स्नान किया है जिसने इस जया एकादशी व्रत किया हो ।।५२।। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे जयाके व्रतको करता है वह कल्पकोटिपर्यन्त निश्चय करके वैकुण्ठमें आनन्द करता है ।।५३।। इसकी कथाको श्रवण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है । यह श्री भविष्योत्तर पुराणकी कही हुई माघ-शुक्ला जया एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ फाल्गुनकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। फाल्गुनस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। वासुदेव कृपासिन्धो कथयस्व प्रसादतः ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयिष्यामि राजेन्द्र कृष्णा या फाल्गुनी भवेत् ।। विजयेति च सा प्रोक्ता कर्तॄणां जयदा सदा ।। २ ।। तस्याश्च व्रतमाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ।। नारदः परिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमलासनम् ।। ३ ।। फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयानाम या तिथिः ।। तस्यां व्रतं सुरश्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ।। ४ ।। इति पृष्टो नारदेन प्रत्युवाच पितामहः ।। ब्रह्मोवाच ।। शृणु नारद वक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ।। ५ ।। पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम् ।। यन्न कस्यचिदाख्यातं मयैतद्विजयाव्रतम् ।। ६ ।। जयं ददाति विजया नृणां चैव न संशयः ।। रामस्तपोवनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश ।। ७ ।। न्यवसत्पञ्चवटयां तु ससीतश्च सलक्ष्मणः ।। तत्रैव वसतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।। ८ ।। रावणेन हृता भार्या सीतनाम्नी तपस्विनी ।। तेन दुःखेन रामोऽसौ मोहमभ्यागतस्तदा ।। ९ ।। भ्रमञ्जटायुषं तत्र ददर्श विगतायुषम् ।। कबन्धो निहतः पश्चाद्भ्रमतारण्यमध्यतः ।। १० ।। राज्ञे विज्ञाप्य तत्सर्वं सोऽपि मृत्युवशं गतः ।। सुग्रीवेण समं सख्यमजर्यं समजायत ।। ११ ।। वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि वै ।। ततो हनूमता दृष्टा लङ्कोद्याने तु जानकी ।। १२ ।। रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम् ।। समेत्य रामेण पुनः सर्वं तत्र निवेदितम् ।। १३ ।। अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यं चैव हनूमतः ।। सुग्रीवानुमतेनैव प्रस्थानं समरोचयत् ।। १४ ।। स गत्वा वानरैः सार्द्धं तीरं नदनदीपतेः ।। दृष्ट्वाब्धि

दुस्तरं रामो विस्मितोऽभूत्कपिप्रियः ।। १५ ।। प्रोत्फुल्ललोचनो भूत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।। सौमित्रे केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः ।। १६ ।। अगाधसलिलैः पूर्णो नक्रैर्भीमैः समाकुलः ।। उपायं नैव पश्यामि येनैव सुतरो भवेत् ।। १७ ।। लक्ष्मण उवाच ।। आदिदेवस्त्वमेवासि पुराणपुरुषोत्तम ।। बकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्तते द्वीपमध्यतः ।। १८ ।। अस्मात्स्थानाद्योजनार्द्धमाश्रमस्तस्य राघव ।। अनेन दृष्टा ब्रह्माणो बहवो रघुनन्दन ।। १९ ।। तं पृच्छ गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषिपुङ्गवम् ।। इति वाक्यं ततः श्रुत्वा लक्ष्मणस्यातिशोभनम् ।। २० ।। जगाम राघवो द्रष्टुं बकदाल्भ्यं महामुनिम् ।। प्रणनाम मुनिं मूर्ध्ना रामो विष्णुमिवामराः ।। २१ ।। मुनिर्ज्ञात्वा ततो रामं पुराणपुरुषोत्तमम् ।। केनापि कारणेनैव प्रविष्टं मानुषीं तनुम् ।।२२।। उवाच स ऋषिस्तत्र कुतोराम तवागमः ।। राम उवाच।।त्वत्प्रसादादहो विप्र वरुणालयसन्निधिम् ।। २३ ।। आगतोऽस्मि सैन्योऽत्र लङ्कां जेतुं सराक्षसाम् ।। भवतश्चानुकूल्येन तीर्यतेऽब्धिर्यथा मया ।। २४ ।। तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु सुव्रत ।। एतस्मात्कारणादेव द्रष्टुं त्वाहमुपागतः ।। २५ ।। मुनिरुवाच । कथयिष्याम्यहं राम व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति ।। २६ ।। लङ्कां जित्वा राक्षसांश्च दीर्घां कीर्तिमवाप्स्यसि ।। एकाग्रमानसो भूत्वा व्रतमेतत्समाचर ।। २७ ।। फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशी भवेत् ।। तस्याव्रते कृते राम विजयस्ते भविष्यति ।। २८ ।। निःसंशयं समुद्रं च तरिष्यसि सवानरः ।। विधिस्तु श्रूयतां राम व्रतस्यास्य फलप्रदः ।। २९ ।। दशमीदिवसे प्राप्ते कुम्भमेकं च कारयेत् ।। हैमं वा राजतं वापि ताम्रं वाप्यथ मृन्मयम् ।। ३० ।। स्थापयेत्स्थण्डिले कुम्भं जलपूर्णं सपल्लवम् ।। सप्तधान्यान्यधस्तस्य यवानुपरि विन्यसेत् ।। ३१ ।। तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं नारायणं प्रभुम् ।। एकादशीदिने प्राप्ते प्रातःस्नानं समाचरेत् ।। ३२ ।। निश्चले स्थापित कुम्भे गन्धमाल्यानुलेपिते ।। गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ।। ३३ ।। दाडिमैर्नालिकेरैश्च पूजयेच्च विशेषतः ।। कुम्भाग्रे तद्दिनं राम नेतव्यं भक्तिभावतः ।। ३४ ।। रात्रौ जागरणं तत्र तस्याग्रे कारयेद्बुधः ।। द्वादशीदिवसे प्राप्ते मार्तण्डस्योदये नृप ।। ३५ ।। नीत्वा कुम्भं जलोद्देशे नद्यां प्रस्रवणे तथा ।। तडागे स्थापयित्वा वा पूजयित्वा यथाविधि।।३६।। दद्यात्सदैवतं कुम्भं ब्राह्मणे वेदपारगे।। कुम्भेन सह राजेन्द्र महादानानि तापयेत्।।३७।।अनेन विधिनाराम यूथपैःसह सङ्गतः कुरु व्रतं प्रमत्नेन विजयस्ते भविष्यति ।।३८।। इति श्रुत्वा वचो रामो यथोक्तमकरोत्तथा ।। कृते व्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः ।। ३९ ।। अनेन विधिना राजन्ये

१ नारायणमिति शेषः ।

कुर्वन्ति नरा व्रतम् ।। इहलोके जयस्तेषां परलोकस्तथाऽक्षयः ।। ४० ।। एतस्मात्कारणात्पुत्र कर्तव्यं विजयाव्रतम् ।। विजयायाश्च माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशयनम् ।। पठनाच्छ्रवणात्तस्य वाजपेयफलं लभेत् ।। ४१ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे फाल्गुनकृष्णैकादश्या विजयानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ।।

अब फाल्गुन कृष्णा एकादशीकी कथा–युधिष्ठिर महाराज बोले कि, हे कृपासिन्धो ! हे वासुदेव ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें कौनसी एकादशी होती है इसको आप प्रसन्न होकर वर्णन कीजिये ।।१।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि हे राजेन्द्र ! फाल्गुन महीनेके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है उसका वर्णन मैं करता हूँ । उसका नाम ' विजया ' है क्योंकि उसके करनेवालोंकी सदा विजय होती है ।।२।। उसके व्रतका माहात्म्य सब पापोंको हरनेवाला है । कमलासन ब्रह्माजीसे नारदजीने पूछा था ।। ३ ।। कि, फाल्गुन महीनेके कृष्णपक्षमें विजया नामकी जो तिथि है उसका व्रत हे सुरश्रेष्ठ ! कृपाकर वर्णन कीजिये ।।४।। ब्रह्माजी बोले कि, हे नारद ! मैं तुम्हें उसकी पापहारिणी कथाका वर्णन करता हूं उसे श्रवण करो ।।५।। यह व्रत बहुत प्राचीन कालसे चला आता है और पापोंका नाश करनेवाला है । मैंने तुमको छोड़ अभी तक इसका रहस्य किसी दूसरेको नहीं बतलाया है ।।६।। यह विजया एकादशी अवश्य ही करनेवाले मनुष्योंको जय प्रदान करती है । इसमें संशय नहीं है । महाराज रामचन्द्रजी १४ वर्षतक सीताजी और लक्ष्मणजीके साथ तपोवनमें जाकर पञ्चवटीमें जब निवास कर रहे थे उस समय महात्मा रामचन्द्र महाराजकी ।।७।।८।। तपस्विनी भार्या सीतामाताको रावणने हर लिया था इस दुःखसे भगवान्‌को बड़ा मोह हुआ ।।९।। उन्होंने भ्रमण करते करते मरणासन्न जटायु को देखा और पीछे जंगलके अन्दर कबन्धका संहार किया ।।१०।। वह कबन्धमरते समय अपनी वैसी दशा होने आदिके सब वृतान्त रामचन्द्रजीको कहकर मृत्युके वशमें हो गया । इसके बाद सुग्रीवके साथ भगवान्‌की अमिट मित्रता हुई ।।११।। बन्दरोंकी सेना रामचन्द्रजीके लिये तय्यार की गई । पीछे हनूमानजीने लंकाकी अशोक वाटिकामें सीताजीको देखा ।।१२।। वहां रामचन्द्रजी महाराजका परिचय देकर बड़े भारी कामको पूरा किया और वापिस आकर सब समाचार भगवान्‌को निवेदन किया गया ।।१३।। इस प्रकार भगवान्‌ने हनुमान्‌जीके वचनोंको सुनकर सुग्रीवकी सलाहसे लंका जानेका विचार किया ।।१४।। बन्दरोंके प्यारे भगवान् राम वानरसेना के साथ नदनदीपति समुद्रके किनारे जाकर उसको दुस्तर देखकर बड़े विचारमें पड़ गये ।।१५।। भगवान्‌ने खिले नेत्रोंके साथ अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे पूछा कि, भैया यह जलनिधि किस प्रकार कौनसे पुण्यसे पार किया जा सकता है ? ।।१६।। इसमें अगाध जल है । बड़े बड़े भयंकर नाकू आदि जलचरोंसे भरा हुआ है । इसलिये कोई उपाय नहीं मालूम होता कि, इसको कैसे पार किया जावे ? ।।१७।। लक्ष्मणजी बोले कि, महाराज ! आदिदेव और पुराणपुरुषोत्तम तो आप ही हैं । पर तो भी इस द्वीपके अन्दर बकदाल्भ्य नामके मुनि ।।१८।। यहांसे दो कोशकी दूरीपर आश्रममें निवास करते हैं । हे महाराज ! इन्होंने अपने जीवनमें बहुतसे ब्रह्माओंको देखा है ।।१९।। इसलिये हे राजेन्द्र ! आप उनके पास चलकर उनसे पूछिये । वे पुराने श्रेष्ठ मुनि हैं, लक्ष्मणजीके इस सुन्दर वचनको सुनकर ।।२०।। भगवान् दाल्भ्य महामुनिको देखनेके लिए चल दिये । वहां रामचन्द्रजीने मुनिराजको वैसेही शिरसे प्रणाम किया, जैसे देव विष्णुको करते हैं ।।२१।। मुनिराजने भी पुराण पुरुषोत्तम भगवान्‌को मानुषी शरीर धारण करते देख ।।२२।। यह पूछा कि, महाराज ! आपका आज कहांसे पधारना हुआ ? भगवान् बोले कि, महाराज ! आपकी कृपासे मैं आज राक्षसोंकी लंकाको जीतनेके लिए इस समुद्रके किनारे आया हूं ।।२३।। मैं राक्षसोंसहित लंकाको जीत आपकी अनुकूलतासे जिस तरह इस समुद्रको पार कर सकूं ? ऐसा उपाय हे सुव्रत ! मुझे कृपाकर बतलाइये । इसलिये मैं आपका दर्शन करनेको यहां आया हूं ।।२४।।२५।। मुनिमहाराज बोले कि, हे राम ! मैं आपको बहुत उत्तम व्रतका उपदेश करूंगा । जिसको करनेसे एकदम तुम्हारी ही विजय होगी ।।२६।। लंकाको तथा उसके राक्षसोंको जीतकर तुम बड़ी कीर्ति प्राप्त करोगे । इस कारण एकाग्रमन होकर आप इस व्रतको कीजिए ।।२७।। हे राम ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें विजया नामकी एकादशी होती है, उसके

व्रतको करनेसे तुम्हारी अवश्य विजय होगी ।।२८।। निःसन्देह आप समुद्रको पार करेंगे तथा आपकी वानर सेनाभी उसे तैर सकेगी । इस फलके देनेवाले व्रतकी विधि सुन लीजिए ।। २९।। जब दशमीका दिन प्राप्त हो तब एक घड़ा सोनेका या चांदीका तांबेका या मिट्टीका बनावे ।।३०।। और घडेको वेदीपर जलसे भर और पत्ते लगाकर स्थापित करे । उसके ऊपर सप्त धान्योंको अथवा यवोंको गिरावे ।।३१।। उसके ऊपर नारायण भगवान्की सुवर्णकी बनी हुई मूर्ति स्थापित करे । एकादशीका दिन प्राप्त होनेपर प्रातःकाल स्नान करे ।।३२।। स्थापित किए हुये निश्चल कुम्भपर गन्ध माला धारण करावे तथा धूप दीप और अनेक तरहके नैवेद्य और नाना प्रकारके फलों और अनार नारियलसे उनकी पूजा विशेषरूपसे करे ।।३३।। हे राम ! सब दिन बड़ी भक्तिसे उस कुंभके आगे बितावे ।।३४।। उसीके आगे रातमें जागरण करे । हे राजन् ! द्वादशीके दिन सूर्य उदय होनेपर ।।३५।। उस कुम्भको किसी जलाशयके निकट नदी या झरनेके निकट लेजाकर यथा विधि पूजन करे ।।३६।। पीछे देवतासहित उस कुम्भको किसी वेदपारग ब्राह्मणको दान कर दे तथा और भी महादानोंको उसके साथ दे ।।३७।। इस प्रकारसे हे राम ! अपने सब सेनापतियोंके साथ मिलकर यत्नसे व्रतको पूर्ण करो; इससे तुम्हारी अवश्य विजय होगी ।।३८।। इस वचनको सुनकर भगवान् रामने यथाविधि उस व्रतका अनुष्ठान किया और इससे उनकी विजय हुई ।।३९।। हे राजन् ! इस विधिसे जो लोग इस उत्तम व्रतको करते हैं उनकी इस लोकमें जय और परलोकमें शुभगति प्राप्त होती है ।।४०।। इसलिए हे पुत्र ! विजया व्रतको अवश्य करना चाहिए उसका माहात्म्य सब पापोंको दूर करता है, पढ़ने और सुननेसे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है ।।४१।। यह श्रीस्कन्दपुराणकी कही हुई फाल्गुन कृष्णा विजयानामकी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ फाल्गुनशुक्लैकादशीकथा

मान्धातोवाच ।। वद ब्रह्मन्महाभाग येन श्रेयो भवेन्मम ।। कृपया तद्ब्रह्मयोने यद्यनुग्राह्यतो मयि ।। १ ।। सरहस्यं सेतिहासं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। वसिष्ठ उवाच ।। कथयाम्यधुना तुभ्यं सर्वव्रतफलप्रदम् ।। २ ।। आमलक्या व्रतं राजन् महापातकनाशनम् ।। मोक्षदं सर्वलोकानां गोसहस्रफलप्रदम् ।। ३ ।। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।। यथामुक्तिमनुप्राप्तो व्याधो हिंसासमन्वितः ।। ४ ।। वैदिशं नाम नगरं हृष्टपुष्टजनावृतम्।। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च समलङ्कृतम् ।। ५ ।। रुचिरं नृपशार्दूल ब्रह्मघोषनिनादितम् ।। न नास्तिको दुष्कृतिकस्तस्मिन्पुरवरे सदा ।। ६ ।। तत्र सोमान्वयो राजा विख्यातः शशिबिन्दवः ।। राजा चैत्ररथो नाम धर्मात्मासत्यसंगरः ।। ७ ।। नागायुतबलः श्रीमाञ्छस्त्रशास्त्रार्थपारगः ।। तस्मिञ्छासति धर्मज्ञे धर्मात्मनि धरां प्रभो ।। ८ ।। कृपणो नैव कुत्रापि दृश्यते नैव निर्धनः ।। सुकालः क्षेममारोग्यं न दुर्भिक्षं न चेतयः ।। ९ ।। विष्णुभक्तिरता लोकास्तस्मिन्पुरवरे सदा ।। हरिपूजारताश्चैव राजा चापि विशेषतः ।। १० ।। न शुक्लां नैव कृष्णां च द्वा[1]दशीं भुञ्जते जनाः।।सर्वधर्मान्परित्यज्य हरिभक्तिपरायणाः।। ११ ।।एवं संवत्सरा जग्मुर्बहवो राजसत्तम ।। जनस्य सौख्ययुक्तस्य हरिभक्तिरतस्य च ।। १२ ।। अथ कालेन संप्राप्ता द्वादशी पुण्यसंयुता ।। फाल्गुनस्य सिते पक्षे नाम्ना ह्यामलकी स्मृता ।। १३ ।। तामवाप्य

१ एकादशीमित्यर्थः ।

जनाः सर्वे बालकाः स्थविरा नृप ।। नियमं चोपवासं च सर्वे चक्रुर्नरा विभो ।। ।। १४ ।। महाफलं तत्तं ज्ञात्वा स्नानं कृत्वा नदीजले ।। तत्र देवालये राजा लोकयुक्तो महाप्रभुः ।। १५ ।। पूर्णकुम्भमवस्थाप्य छत्रोपानहसंयुतम् ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं दिव्यगन्धाधिवासितम् ।। १६ ।। दीपमालान्वितं चैव जामदग्न्यसमन्वितम् ।। पूजयामासुरव्यग्रा धात्रीं च मुनिभिर्जनाः ।। १७ ।। जामदग्न्य नमस्तेऽस्तु रेणुकानन्दवर्धन ।। आमलकीकृतच्छाय भुक्तिमुक्तिवरप्रद ।। १८ ।। धात्रि धातृसमुद्भूते सर्वपातकनाशिनि ।। आमलकिनमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्योदकं मम ।। १९ ।। धात्रि ब्रह्मस्वरूपासि त्वं तु रामेण पूजिता ।। प्रदक्षिणाविधानेन सर्वपापहरा भव ।। २० ।। तत्र जागरणं चक्रुर्जनाः सर्वे स्वभक्तितः ।। एतस्मिन्नेव काले तु व्याधस्तत्र समागतः ।। २१ ।। क्षुधाश्रमपरिव्याप्तो महाभारेण पीडितः ।। कुटुम्बार्थं जीवघाती सर्वधर्मबहिष्कृतः ।। २२ ।। जागरं तत्र सोऽपश्यदामलक्यां क्षुधान्वितः ।। दीपमालाकुलं दृष्ट्वा तत्रैव निषसाद सः ।। २३ ।। किमेतदिति सञ्चिन्त्य प्राप्तवान्विस्मयं भृशम् ।। ददर्श कुम्भं तत्रस्थं देवं दामोदरं तथा ।। ।। २४ ।। ददर्शामलकीवृक्षं तत्रस्थांश्चैव दीपकान् ।। वैष्णवं च तथाऽऽख्यानं शुश्राव पठतां नृणाम् ।। २५ ।। एकादश्याश्च माहात्म्यंशुश्राव क्षुधितोऽपिसन् ।। जाग्रतस्तस्य सा रात्रिर्गता विस्मितचेतसः ।। २६ ।। ततः प्रभातसमये विविशुर्नगरं जनाः ।। व्याधोऽपि गृहमागत्य बुभुजे प्रीतमानसः ।। २७ ।। ततः कालेन महता व्याधः पञ्चत्वमागतः ।। एकादश्याः प्रभावेण रात्रौ जागरणेन च ।। २८ ।। राज्यं प्रपेदे सुमहच्चतुरङ्गबलान्वितम् ।। जयन्तीनाम नगरी तत्र राजा विदूरथः ।। २९ ।। तस्मात्स तनयो जज्ञे नाम्ना वसुरथो बली ।। चतुरङ्गबलोपेतो धनधान्यसमन्विताः ।। ३० ।। दशायुतानि ग्रामाणां बुभुजे भयवर्जितः ।। तेजसादित्यसदृशः कान्त्या चन्द्रसमप्रभः ।। ३१ ।। पराक्रमे विष्णुसमः क्षमया पृथिवीसमः।। धार्मिकः सत्यवादी च विष्णुभक्तिपरायणः ।। ३२ ।। ब्रह्मज्ञः कर्मशीलश्च प्रजापालनतत्परः ।। यजते विविधान् यज्ञान् स राजा परदर्पहा ।। ३३ ।। दानानि विविधान्येव प्रददाति च सर्वदा ।। एकदा मृगयां यातो दैवान्मार्गपरिच्युतः ।। ३४ ।। न दिशो नैव विदिशो वेत्ति तत्र महीपतिः ।। उपधाय च दोर्मूलमेकाकी गहने वने ।। ३५ ।। श्रान्तश्च क्षुधितोऽत्यन्तं संविवेश महीपतिः ।। अत्रान्तरे म्लेच्छगणः पर्वतान्तरवासभाक् ।। ३६ ।। आययौ तत्र यत्रास्ते राजा परबलार्दनः।। कृतवैरास्तु ते राज्ञा सर्वदैवोपतापिताः ।। ३७ ।। परिवार्य ततस्तस्थू राजानं भूरिदक्षिणम् ।। हन्यतां हन्यतां चायं पूर्वं वैरविरुद्धधीः ।। ३८ ।। अनेन निहताः पूर्वं पितरौ भ्रातरः सुताः ।। पौत्राश्च भागिनेयाश्च मातुलाश्च निपातिताः

।। ३९ ।। निष्कासिताश्च स्वस्थानाद्विक्षिप्ताश्च दिशो दश ।। एतावदुक्त्वा ते सर्वे तत्रैनं हन्तुमुद्यताः ।। पाशैश्च पट्टिशैः खड्गैर्बाणैर्धनुषि संस्थितैः।। ४० ।। सर्वाणि शस्त्राणि समापतन्ति न वै शरीरे प्रविशन्ति तस्य ।। तेचापि सर्वे हतशस्त्रसंघा म्लेच्छा बभूवुर्गतजीवदेहाः।। ४१ ।। यदापि चलितुं तत्र न शेकुस्तेऽरयो भृशम् ।। शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुः सर्वेषां हतचेतसाम् ।। ४२ ।। दीना बभूवुस्ते सर्वे ये तं हन्तुं समागताः ।। एतस्मिन्नेव काले तु तस्य राज्ञः शरीरतः ।। ४३ ।। निःसृता प्रमदा ह्येका सर्वावयवशोभना ।। ४४ ।। दिव्यगन्धसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिता । दिव्यमाल्याम्बरधरा भृकुटीकुटिलानना ।। ४५ ।। स्फु१लिङ्गाभ्यां च नेत्राभ्यां पावकं वमती बहु ।। चक्रोद्यतकरा चैव कालरात्रिरिवापरा ।। ४६ ।। अभ्यधावत संक्रुद्धा म्लेच्छानत्यन्तदुःखितान् ।। निहताश्च यदा म्लेच्छास्ते विकर्मैरतास्तथा ।। ४७ ।। ततो राजा विबुद्धः सन् ददर्श महदद्भुतम् ।। हतान् म्लेच्छगणान् दृष्ट्वा राजा हर्षमवाप सः ।। ४८ ।। इह केन हता म्लेच्छा अत्यन्तं वैरिणो मम ।। केन चेदं महत्कर्म कृतमस्मद्धितार्थिना ।। ४९ ।। एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ।। तं स्थितं नृपतिं दृष्ट्वा निकामं विस्मयान्वितम् ।। ५० ।। शरणं केशवादन्यो नास्ति कोऽपि द्वितीयकः ।। इति श्रुत्वाकाशवाणीं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।। ५१ ।। वनात्तस्मात्स कुशली समायातः स भूमिभुक् ।। राज्यं चकार धर्मात्मा धरायां देवतेशवत् ।। ५२ ।। वसिष्ठ उवाच ।। तस्मादामलकीं राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।। ते यान्ति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा ।। ५३ ।। इति श्रीब्रह्माण्ड० आमलक्याफाल्गुनशुक्लैकादशीव्रतम् ।।

अथ फाल्गुन शुक्ला एकादशीकी कथा--मान्धाता बोले कि, हे ब्रह्माजीसे उत्पन्न होनेवाले वशिष्ठजी महाराज ! आप कृपाकर ऐसे उत्तम व्रतका उपदेश दीजिए, जिसके करनेसे मेरा कल्याण हो ।।१।। वशिष्ठजी बोले क, में तुम्हें रहस्य सहित इतिहासयुक्त व्रतोंके उत्तम व्रतको कहता हूं जो कि, समस्त व्रतोंके फलोंको देनेवाली है । वो महापापोंके नाश करनेवाली 'आमलकी' एकादशी है जो मोक्ष प्राप्त करनेवाली एवम् सहस्र गोदानके समान पुण्योंको देनेवाली है ।।२।।३।। यहां पर इसका एक पुरातन इतिहास कहा करते है कि, एक हिंसक व्याध इसके प्रभावसे मुक्त हुआ था ।।४।।हे राजन् ! वैदिश नामके हृष्टपुष्ट जनोंसे आवृत्त एवम् चारों वर्णोंसे अलंकृत नगरनें चन्द्रवंशी चैत्ररथ नामक राजा राज्य करते थे जिसके कि, नगरमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य लोग बड़े ही खुशी थे, हे नृपशार्दूल ! सदा वेदकी रुचिर ध्वनि हुआ करती थी । तथा कोई भी नास्तिक तथा पापी मनुष्य कभी भी इनके नगरमें निवास नहीं कर पाता था ।।५।।६।। चन्द्रवंशी शशविन्दुका वंशधर राजा चैत्ररथ अयुत हाथियोंका बल रखता था, तथा सत्यवादी सब शास्त्रोंका पारंगत था, उस धर्मात्माको राज करते हुए कोई भी गरीब रोगी या कृपण मनुष्य उसके नगरमें नहीं हुआ था, सदा सुभिक्ष होता था, कभी दुर्भिक्ष या और कोई उपद्रव नहीं होता था।।७--९।। उस नगरमें सब लोग विष्णु भगवान्‌के भक्त थे और राजा भी विशेष करके हरिपूजापरायण था।।१०।। कोई भी पुरवासी मनुष्य एकादशीके दिन भोजन नहीं करता था । सब धर्मोंको छोड़कर सभी लोग केवल भगवान्‌ही की भक्तिमें तत्पर थे ।।११।। हे राजसत्तम ! इस प्रकार जनोंको सुख देनेवाले हरिभक्तरत उस राजाको अनेक वर्ष हरिभक्तिमें लीन रहते हुए व्यतीत हो गये ।।१२।। समयसे पावन तिथि एकादशीभी आ पहुंची जो फाल्गुनके

१ स्फुलिङ्ग सदृशाभ्यां रक्ताभ्यामित्यर्थः ।

शुक्लपक्षमें आमलकीके नामसे विख्यात है ।। १३ ।।हे राजन्; उसके प्राप्त होनेपर वहांके बूढ़ों और बच्चों सबोंनेही नियमपूर्वक उपवास किया ।।१४।। राजाने भी इस व्रतको महाफलदायी समझकर नदीमें स्नान कर भगवान्के मन्दिरमें सब राजकीय लोगोंके साथ ।।१५।। एक पूर्ण कुम्भको दीपक, छत्र, जूती जोड़ा, पञ्च-रत्न, एवं इत्र आदि वस्तुओंसे वंध सजाकर तथा उसपर जामदग्न्यकी मूर्ति स्थापित कर पूजा की । और मनुष्योंने भी बड़ी सावधनीसे धात्रीकी पूजा की ।।१६।।१७।। हे रेणुकाके आनन्द बढ़ानेवाले ! हे आमल-की की छायाको धारण करनेवाले ! हे भुक्ति और मुक्तिको देनेवाले हे जामदग्न्य ! ।।१८।। हे सब पापोंको नाश करनेवाली धातासे उत्पन्न हुई आमलकि ! तुम्हें नमस्कार है । मेरे इस दिये हुये अर्घ्यको स्वीकार कर ।।१९।। हे धात्रि ! तुम ब्रह्मस्वरूपा हो, तुम्हारी पूजा रामचन्द्रजीने की है । इस लिये मेरी इस प्रदक्षिणासे सब पापोंको नष्ट कर ।।२०।। इस तरह सब लोगोंने सर्व स्वभक्तिसे रातके समय जागरण किया । इसी बीच वहां पर एक व्याध भी चला आया ।।२१।। जो भूख, थकावट और भारकी पीड़ासे कष्ट पा रहा था । कुटुम्बके वास्ते जीवोंका घात करता तथा सभी धर्मोंसे गिरा हुआ था ।।२२।। उस भूखे व्याधने आमलकीके निकट जागरण होता हुआ देखा । उस जगहकी दीपावलीसे प्रसन्न होकर उसी जगह बैठ गया ।। २३ ।। उसको नई बात शोचकर इकबारगीही बड़ा विस्मय हुआ । तथा कुम्भके ऊपर विराजमान भगवान् दामोदरकी मूर्तिका भी दर्शन किया ।।२४।। आमलेके वृक्षको और उस जगहकी दीपमालाको देखा । तथा वैष्णवोंकी कथाको ब्राह्मणोंके द्वारा कहते हुए सुना ।।२५।। भूखे रहते हुए भी उसने एकादशीके माहात्म्यको सुना । और इसी आश्चर्य में उसकी वह रात्रि जागते हुए समाप्त हो गयी ।।२६।। प्रातःकाल सब लोग नगरमें चले गये । और व्याधने भी प्रसन्न होकर घरमें आ भोजन किया।।२७।।तब कुछ समयके बाद वह व्याध मर गया किन्तु उस एकादशीके प्रभावसे तथा उस दिन रात्रिके जागरण से ।।२८।। जयंती नगरीमें राजा विदूरथ के नामसे वह बड़ा भारी राजा हुआ । उसने चतुरंगसेना और धनधान्यासे सम्पन्न राज्य पाया ।।२९।। उसने चतुरंग बलसे युक्त एवं धनधान्यसे समन्वित वसुरथ नामके पुत्रको उत्पन्न किया ।।३०।। उसने निर्भय होकर दश अयुत ग्रामोंका राज्य किया तेजमें सूर्यके और सुन्दरतामें चन्द्रमाके समान था ।।३१।। पराक्रममें विष्णुके और क्षमामें पृथिवीके समान था । बड़ा धर्मात्मा सत्यवादी और विष्णुभक्ति परायण था ।।३२।। ब्रह्मज्ञानी, कर्मवीर और प्रजाकी पालना करनेवाला होकर भी उसने अनेक प्रकारके यज्ञ किये ।।३३।। वह सदा अनेक प्रकारके दान करता रहाता था।एक समय शिकार खेलने गया दवयोगसे उसको रास्ता विस्मृत हो गया।।३४।। उसे दिशा और विदिशाका कुछ भी ज्ञान न रहा, उस गहन वनमें अकेलाही वृक्षके मूलमें ।।३५।। भूखा, प्यासा बैठ रहा इसी बीच उसी शत्रु नाशकारी राजाके पास वहांके पहाड़ी म्लेच्छ लोग ।।३६।। आये वैरि-योंकी शक्तिको चूर करनेवाला राजा जहां जाता था वे वहाँही उसके पीछे पीछे पहुंच जाते थे क्यों कि, राजाने उनकी दुष्टताके कारण सदा उन्हें दण्ड दिया था, इसी कारण उन्होंने उससे वैर कर रखा था ।।३७।। वे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले उस राजाको घेरकर खड़े हो गये, पहिले वैरसे बुद्धि तो उनकी विरुद्ध थी ही, इस कारण मारो मारो चिल्लाने लगे ।।३८।। पहिले इसने हमारे पिता भाई सुत पौत्र भागिनेय और मामा मारे हैं ।।३९।। इन विचारोंको घरसे निकाल दिया जो दशो दिशाओंमें मारे मारे फिर रहे हैं । वे सब ऐसे कहकर राजाको मारने लगे उनके पास पट्टिश, पाश, खाड़े और बाण धनुषपर चढ़े हुये थे ।।४०।। यद्यपि अनेक प्रका-रके सब शस्त्र उस राजाके शरीरपर गिरते थे पर शरीरके अन्दर प्रविष्ट नहीं होते थे । इस कारण म्लेच्छ लोग अपने शस्त्रअस्त्रोंके नष्ट हो जानेपर सबके सब प्राणहीन हो गये ।।४१।। जब उसके शत्रु चल भी न सके बेहोश उन सबके शस्त्र व्यर्थ हो गये ।।४२।। जो कि, उस राजाको मारने आये थे, वे सब गरीब बन गये । इसी समय उस राजाके शरीरसे ।।४३।। एक स्त्री उत्पन्न हुई । जो बड़ीही सर्वांगसुन्दरी थी ।।४४।। दिव्य-गन्धयुता और दिव्याभरणको धारण करनेवाली थी । माला भी दिव्य पहिने हुए थी, बड़ी सुन्दर पोशाक पहन कर भी अत्यन्त कुटिल नजरसे देख रही थी ।।४५।। अङ्गार जैसे नेत्रोंसे बहुतसी अग्नि उगलती । हाथमें चक्र लिये हुए दूसरी कालरात्रिके समान मालूम होती थी ।।४६।। वह अत्यन्त कुपित हो उन परमक्ले-शित म्लेच्छोंपर टूट पडी । और जब वे पापी म्लेच्छलोग मर गये ।।४७।। तब राजाको होश आया । उसने

अपने सामने यह आश्चर्य देखा। राजा अपने वैरी म्लेच्छोंको मरा हुआ पाकर बड़ा खुशी हुआ ॥४८॥ राजाने मनमें शोचा कि, ये मेरे अत्यन्त वैरी म्लेच्छलोग यहां कैसे एवं किससे मारे गये ? किसने मेरे हितकी दृष्टिसे यह गजबका काम किया है ॥४९॥ इसी समय उस राजाको बेहद विस्मयमें पड़ा हुआ देख आकाशवाणीने उत्तर दिया ॥५०॥ कि, हे राजन् ! केशव भगवान्‌को छोड़कर और कोई दूसरा शरणागतवत्सल नहीं है। इस वचनको सुनकर विस्मयसे आँखें चोर गयीं पीछे उस वनसे वो राजा अपने राज्यमें कुशलतापूर्वक चला आया ॥५१॥ और उस धर्मात्माने देवराजकी भांति पृथिवीपर राज्य किया ॥५२॥ वशिष्ठजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! इसलिये जो श्रेष्ठलोग आमलकी नामकी एकादशीका व्रत करते हैं वे लोग निश्चयही विष्णुलोकके अधिकारी होते हैं, इसमें किसी प्रकारका भी विचार न करना चाहिये ॥५३॥ यह श्रीब्रह्माण्डपुराणका कहा हुआ आमलकी नामवाली फाल्गुन शुक्ला एकादशीका माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ॥

अथ चैत्रकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे श्रुता साऽऽमलकी मया ॥ चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ को विधिः किं फलं तस्या ब्रूहि कृष्ण ममाग्रतः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि पापमोचनिकाव्रतम् ॥ २ ॥ यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥ मान्धातोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥ चैत्रमास्यसिते पक्षे किं नामैकादशी भवेत् ॥ को विधिः किं फलं तस्याः कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ लोमश उवाच ॥ चैत्रमास्यसिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी ॥ एकादशी समाख्याता पिशाचत्वविनाशिनी ॥ ५ ॥ शृणु तस्याः प्रवक्ष्यामि कामदां सिद्धिदां नृप ॥ कथां विचित्रां शुभदां पापघ्नीं धर्मदायिनीम् ॥ ६ ॥ पुरा चैत्ररथोद्देशे अप्सरोगणसेविते ॥ वसन्तसमये प्राप्ते पुष्पैराकुलिते वने ॥ ७ ॥ गन्धर्वकन्यास्तत्रैव रमन्ति सह किन्नरैः ॥ पाकशासनमुख्याश्च क्रीडन्ते च दिवौकसः ॥ ८ ॥ नापरं सुन्दरं किञ्चिद्वनाच्चैत्ररथाद्वनम् ॥ तस्मिन्वने तु मुनयस्तपन्ति बहुलं तपः ॥ ९ ॥ सहदेवैस्तु मघवा रमते मधुमाधवौ ॥ एको मुनिवरस्तत्र मेधावी नाम नामतः ॥ १० ॥ अप्सरास्तं मुनिवरं मोहनायोपचक्रमे ॥ मञ्जुघोषेति विख्याता भावं तस्य विचिन्वती ॥ ११ ॥ क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयदाश्रमसन्निधौ ॥ गायन्ती मधुरं साधु पीडयन्ती विपञ्चिकाम् ॥ १२ ॥ गायन्तीं [1]तामथालोक्य पुष्पचन्दनवेष्टिताम् ॥ कामोऽपि विजयाकांक्षी शिवभक्तं मुनीश्वरम् ॥ १३ ॥ तस्याः शरीरसंसर्गं शिववैरमनुस्मरन् ॥ कृत्वा भ्रुवौ धनुष्कोटी गुणं कृत्वा कटाक्षकम् ॥ १४ ॥ मार्गणौ नयने कृत्वा पक्षयुक्तौ यथाक्रमम् ॥ कुचौ कृत्वा पटकुटीं विजयायोपसंस्थितः ॥ १५ ॥ मञ्जुघोषाभवत्तत्र कमास्येव वरूथिनी ॥ मेधाविनं मुनिं दृष्ट्वा सापि कामेन —पीडिता ॥ १६ ॥ यौवनोद्भिन्नदेहोऽसौ मेधाव्यतिविराजते ॥ सितोपवीतसहितो दण्डी स्मर इवापरः ॥ १७ ॥ मञ्जुघोषा स्थिता

१ तां मञ्जुघोषामालोक्य विजयाकांक्षी कामोऽपि शिववैरमनुस्मरंस्तस्याः शरीरसंसर्गादिकं कृत्वा शिवभक्तं मुनीश्वरं प्रति विजयायोपसंस्थितः अभूदिति शेषः ।

तत्र दृष्ट्वा तं मुनिपुङ्गवम् ।। मदनस्य वशं प्राप्ता मन्दं मन्दमगायत ।। १८ ।। रणद्वलयसंयुक्तां शिञ्जन्नूपुरमेखलाम् ।। गायन्तीं भावसंयुक्तां विलोक्य मुनिपुङ्गवः ।। १९ ।। मदनेन ससैन्येन नीतो मोहवशं बलात् ।। मञ्जुघोषा समागम्य मुनिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।। २० ।। हावभावकटाक्षैस्तु मोहयामास चाङ्गना ।। अधः संस्थाप्य वीणां सा सस्वजे तं मुनीश्वरम् ।। २१ ।। वल्लीवाकुलिता वृक्षं वातवेगेन वेपिता ।। सोऽपि रेमे तया सार्द्धं मेधावी मुनिपुङ्गवः ।। २२ ।। तस्मिन्नेव वनोद्देशे दृष्टवा तद्देहमुत्तमम् ।। शिवतत्त्वं स विस्मृत्य कामतत्त्ववशं गतः ।। २३ ।। न निशां न दिनं सोऽपि रमञ्जानाति कामुकः ।। बहुलश्च गतः कालो मुनेराचारलोपकः ।। २४ ।। मञ्जुघोषा देवलोकगमनायोपचक्रमे ।। गच्छन्ती प्रत्युवाचाथ रमन्तं मुनिपुङ्गवम् ।। २५ ।। आदेशो दीयतां ब्रह्मन् स्वधामगमनाय मे ।। मेधाव्युवाच ।। अद्यैव त्वं समायाता प्रदोषादौ वरानने ।। २६ ।। यावत्प्रभातसंध्या स्यात्तावत्तिष्ठ ममान्तिके ।। इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भयभीता बभूव सा ।। २७ ।। पुनर्वै रमयामास तं मुनिं नृपसत्तम ।। मुनिशापभयाद्भीता बहुलान्परिवत्सरान् ।। २८ ।। वर्षाणि सप्तपञ्चाशन्नवमासान् दिनत्रयम् ।। सा रेमे मुनिना तस्य निशार्द्धमिव चाभवत् ।। २९ ।। सा तं पुनरुवाचाथ तस्मिन्काले गत मुनिम् ।। आदेशो दीयतां ब्रह्मन् गन्तव्यं स्वगृहे मया ।। ३० ।। मेधाव्युवाच ।। प्रातःकालोऽधुनैवास्ते श्रूयतां वचनं मम ।। कुर्वे संध्यां दिनं यावत्तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।। ३१ ।। इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा भयानन्दसमाकुलम् ।। स्मितं कृत्वा तु सा किञ्चित्प्रत्युवाच सुविस्मिता ।। ३२ ।। अप्सरा उवाच ।। कियत्प्रमाणा विप्रेन्द्र तव सन्ध्या गताः किल ।। मयि प्रसादं कृत्वा तु गतः कालो विचार्यताम् ।। ३३ ।। इति तस्या वचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।। स ध्यात्वा हृदि विप्रेन्द्रःप्रणाममकरोत्तदा ।। ३४ ।। समाश्च सप्तपंचाशद्गता मम तया सह ।। नेत्राभ्यां विस्फुलिङ्गान्स मुञ्चमानोऽतिकोपनः ।। ३५ ।। कालरूपां च तां दृष्ट्वा तपसः क्षयकारिणीम् ।। दुःखार्जितं मम तपो नीतं तदनया क्षयम् ।। ३६ ।। विचार्येत्थं स कम्पोष्ठो मुनिस्तु व्याकुलेन्द्रियः ।। तां शशाप च मेधावी त्वं पिचाशी भवेति हि ।। ३७ ।। धिक्त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये ।। तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनता स्थिता ।। ३८ ।। उवाच वचनं सुभ्रूः प्रसादं वाञ्छती मुनिम् ।। कृत्वा प्रसादं विप्रेन्द्र शापस्योपशमं कुरु ।। ३९ ।। सतां सङ्गेहि भवति मित्रत्वं सप्तमे पदे ।। त्वया सह मम ब्रह्मन् गताः सुबहवः समाः ।। ४० ।। एतस्मात्कारणात्स्वामिन् प्रसादं कुरु सुव्रत ।। मुनिरुवाच ।। शृणु मे वचनं भद्रे शापानुग्रहकारकम् ।। ४१ ।। किं करोमि त्वया पापे क्षयं नीतं मह-

त्तप: ।। चैत्रस्य कृष्णपक्षे या भवेदेकादशी शुभा ।। ४२ ।। पापमोचनिका नाम सर्वपापक्षयङ्करी ।। तस्या व्रते कृते सुभ्रु पिशाचत्वं प्रयास्यति ।। ४३ ।। इत्युक्त्वा स मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ।। तमागतं समालोक्य च्यवनः प्रत्युवाच ह ।। ४४ ।। किमेतद्विहितं पुत्र त्वया पुण्यक्षयः कृतः ।। मेधाव्युवाच ।। पापं कृतं महत्तात रमिता चाप्सरा मया ।। ४५ ।। प्रायश्चित्तं ब्रूहि मम येन पापक्षयो भवेत्।। च्यवन उवाच ।। चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी ।। ४६ ।। अस्या व्रते कृते पुत्र पापराशिः क्षयं व्रजेत् ।। इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम् ।। ।। ४७ ।। गतं पापं क्षयं तस्य पुण्ययुक्तो बभूव सः ।। साप्येवं मञ्जुघोषा च कृत्वा तद्व्रतमुत्तमम् ।। ४८ ।। पिशाचत्वविनिर्मुक्ता पापमोचनिकाव्रतात् ।। दिव्यरूपधरा भूत्वा गता नाकं वराप्सराः ।। ४९ ।। लोमश उवाच ।। इत्थं भूतप्रभावं हि पापमोचनिकाव्रतम् ।। पापमोचनिकां राजन् ये कुर्वन्तीह मानवाः ।। ५० ।। तेषां पापं च यत्किञ्चित्तत्सर्वं क्षीणतां व्रजेत् ।। पठनाच्छ्रवणादस्या गोसहस्रफलं लभेत् ।। ५१ ।। ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ।। व्रतस्य चास्य करणात् पापमुक्ता भवन्ति ते ।। बहुपुण्यप्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम् ।। ५२ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे पापमोचनिकाख्यचैत्रकृष्णैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ।।

अथ चैत्रकृष्ण एकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, फाल्गुन महीनेके कृष्णपक्षकी आमलकी एकादशीकी कथाका श्रवण किया । अब चैत्रके कृष्णा एकादशीका क्या नाम है ।।१।। उसकी विधि और उसका फल क्या है ? इसको आप कृपाकर कथन कीजिये । श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! सुनो मैं तुम्हें पापमोचनी एकादशी की कथा कहता हूं ।।२।। जिसको चक्रवर्ती राजा मान्धाताने लोमश ऋषिसे पूछी थी । मान्धाता बोले कि, महाराज ! मैं जगत्के कल्याणके लिये सुनना चाहता हूं ।। ३ ।। कि चैत्रमासके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम उसकी विधि और उसका फल क्या है ? यह सब कृपा करके वर्णन कीजिये ।।४।। लोमशजी बोले कि, हे राजन् ! चैत्रमासके कृष्णपक्षमें पापमोचनी एकादशी होती है ! वह पिशाचगतिको नाश करती है ।।५।। हे राजन् ! सुनो मैं तुम्हें उसकी पापनाशिनी, धर्मदायिनी, सिद्धिप्रदा, शुभ और विचित्र कथा का वर्णन करता हूं ।।६।। प्राचीनसमयमें अप्सरामण्डित चैत्ररथनामके स्थानमें वसन्तऋतुके अन्दर समस्त वनवृक्षोंके पुष्प विकसित हो गये ।।७।। उस स्थानपर गन्धर्वोंकी कन्यायें किन्नरोंके साथ रमण करती थीं, तथा इन्द्रप्रधान देवता भी वहीं आनन्द भोगकर रहे थे ।।८।। उस चैत्ररथसे अधिक सुन्दर और कोई दूसरा वन नहीं था, जहांपर मुनिगण अधिक अधिक तप करते हुए पाये जाते थे ।।९।। देवताओंके साथ इन्द्र वसन्त ऋतुके आनन्दको भोगता था उस जगह एक मेधावी नामके मुनिराज भी थे ।।१०।। जिनको मोहित करनेके लिये मंजुघोषा नामकी विख्यात अप्सराने बीड़ा उठाया, वह उनके भावको जानकर ।।११।। उनके भयदा नामके आश्रमके निकट एक कोशकी दूरीपर बड़े मीठे स्वरसे सुन्दर वाणीको सुस्वादु बजाने लगी ।।१२।। उस पुष्प और चन्दनसे लिपटी एवं गाती हुई मञ्जुघोषाको देखकर विजयाभिलाषी कामदेव भी शिवभक्त मुनीश्वरको ।। १३ ।। शिवजीके वैरका स्मरण करके उसके शरीरके साथ लिपटकर ध्रुवकी धनुषकोटि एवम् कटाक्षोंकी तीरफेंकनेकी रस्सी बना ।। १४ ।। पलकों समेत नयनोंके तीरकर उसके कुचोंका तंबू डेरा बना जीतनेके लिये चल दिया ।। १५ ।। मंजुघोषा साक्षात् कामदेवकी सेनाके समान थी पर वह भी मेधावी मूनिको देखकर कामपीडित हो गई ।। १६ ।। यौवनसे अपने तरुणांग समूहके द्वारा वे मेधावी मुनि शुक्ल यज्ञोपवीतके साथ दंडधारण कर दूसरे कामदेवके समान मालूम होते थे ।। १७ ।। मंजुघोषा

उस मुनिराजको देखकर कामके वशंगत हो गई थी इसलिये मंद मंद गाने लगी ।। १८ ।। मूनिराज भी उस मंजुघोषाको चूडियोंकी एवं वलयोंकी आवाजसे संयुक्त तथा बडते हुए नूपुरोंको पहिने हुए और उसको भावपूर्ण गायनको गाते हुए देख ।। १९ ।। सेनासहित कामदेवके वलपूर्वक मोहके वश कर दिये । मंजुघोषा भी मुनिको उस हालतमें देखकर ।। २० ।। अपने हावभावों और कटाक्षोंसे और भी अधिक मोहित करने लगी, एवं वीणाको नीचे रखकर उस मुनिराजको विशेष करके रिझाने लगी। तथा उनके शरीरसे लिपट गई ।। २१ ।। उस मेधावी मुनिराजने वातवेगसे हिलती हुई वेलके समान कँप कपाती हुई उस मंजुघोषासे रमण किया ।। २२ ।। वह मुनिराज उस वनके स्थानमें उसके उत्तम शरीरके मोहमें पड शिवतत्त्वको भूलकर कामतत्त्वके वशीभूत हो गये ।। २३ ।। मुनिको उससे भोग करते ए न दिन का ज्ञान रहा और न रातका । इस प्रकार उसका वहुतसा आचार नष्ट करनेवाला समय योंही बीत गया ।।२४।। मंजुघोषा देवलोक जाने लगी और जाती बार भोग करते हुए उस मुनिसे यह कहा कि ।।२५।। हे ब्रह्मन् ! मुझे अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा दीजिये । मेधावीने कहा कि, हे सुन्दरि ! तुम आज ही तो सन्ध्याके पहले आई हो ।।२६।। इसलिये प्रातः कालकी सन्ध्यातक तुम मेरे पास और ठहरो । इस प्रकार मुनिके ये वाक्य सुनकर वह मंजुघोषा डर गई ।।२७।। शापके डरके मारे वह फिर मुनिको प्रसन्न रखनेके लिये हे नृपसत्तम ! अनेक वर्षोंतक पूर्ववत् रमण कराती रही ।।२८।। ५७ वर्ष ९ महीने और तीन दिन उसको उसके साथ रमण करते बीत गये पर उनके लिये ऐसा मालूम हुआ जैसे आधीरात ।।२९।। उस मंजुघोषाने फिर मुनिसे यह नम्रतापूर्वक कहा कि, महाराज ! मुझे अपने स्थानपर जाने की आज्ञा दीजिये ।।३०।। मेधा-वीने उत्तर दिया कि, मेरी बात सुन, अभी तो प्रातःकालही हुआ है इसलिये मैं सन्ध्या कर लूं तबतक तुम यहां बैठो ।।३१।। इस प्रकार भय और आनन्दसे मुनिके वचन सुनकर कुछ हँसकर उसने जवाब दिया ?।।३२।। कि, महाराज ! आपको मुझपर कृपा करते हुए कितनीही सन्ध्या लुप्त हो गई हैं और कितना समय चला गया है यह आप विचार कीजिए ।।३३।। इस तरह उसकी बात सुनकर वह आंखें फाड़कर विचारने लगे । उसने हृदयमें ध्यानकर प्रणाम किया ।।३४।। उसे ज्ञात हुआ कि, मुझे इसके साथ रमण करते हुए ५७ वर्ष बीत गए और इसलिए क्रोधसे उसकी आंखोंसे आग निकलने लगी ।।३५।। मंजुघोषाको तपोभङ्ग करने-वाले कालके समान देखकर यह विचार किया, दुःखसे अर्जित किया हुआ मेरा इतना तप इससे व्यर्थ ही नष्ट हुआ ।। उसके होठ फड़कने लगे वो घबड़ा गया । पीछे उसको शाप दिया कि, तू पिशाची हो जा ।।३६।।३७।। और कहा कि, हे दुराचारिणी ! कुलटे ! पापिन ! तुमें धिक्कार है । यह वेचारी मंजुघोषा शापसे दग्ध होकर चुपचाप खड़ी हो गयी ।। ३८।। उस मंजुघोषाने मुनि महाराजकी कृपाके वास्ते एवं उस शाप को शान्त कर-नेंके लिए नम्रतापूर्वक कहा कि, महाराज ! शापको निवृत्त कीजिये ।।३९।। महात्माओंके साथ सत्संग कर-नेसे सप्तमपदमें मित्रता होती है । महाराज ! मुझे तो आपके साथ निवास करते अनेक वर्ष चले गये ।।४०।। इसलिए हे महाराज ! आप कृपाकर मुझको इस शापसे मुक्त कीजिए । मूनिजी बोले कि, हे भद्रे ! शापसे अनुग्रह करनेवाले मेरे वचन सुन ।।४१।। क्या करूं । तुमने मेरे बड़े भारी तपको इसी तरह नष्टकर दिया है पर तो भी मैं तुमपर कृपाकर शापमुक्त होनेका उपाय बतलाता हूं सुनो । चैत्रमासकी कृष्णपक्षवाली एका-दशी ।।४२।। सब पापोंको नाश करनेके कारण पापमोचनी नामसे विख्यात है । उसका व्रत करनेपर हे सुंदरी। तुम्हारी पिशाचयोनिका क्षय होगा ।।४३।। ऐसा बोलकर वे मुनि अपने पिताके आश्रममें चले गये उसको आते हुए देखकर च्यवन ऋषिने कहा ।।४४।। कि, हे पुत्र ! तुमने यह क्या किया, किस वास्ते अपने सारे पुण्यका क्षय कर डाला है । मेधावीने उत्तर दिया कि, महाराज ! मैंने बड़ा पाप कर लिया है । मैंने अप्सराका भोग किया है ।।४५।। इसलिए मुझे प्रायश्चित बतलाइये, जिससे इस पापका नाश हो । च्यवनजी बोले कि, चैत्रमास कृष्णपक्षमें पापमोचनी ।।४६।। एकादशीका व्रत करनेसे हे पुत्र ! पापराशिका क्षय होता है । पिताके ऐसे वचनोंको सुनकर उसने उस उत्तम व्रतको किया ।।४७।। उसका पाप नष्ट हो गया और फिरसे पूर्ववत् पुण्यवान् हो गया । उस मंजुघोषाने भी व्रत किया ।।४८।। उसके प्रभावसे वह भी पिशाचत्वसे निकलकर दिव्य रूप धारण करती हुई स्वर्गमें चली गयी ।।४९।। लोमशजी बोले कि, महाराज ! इस प्रकारकी पापमो-

चनी एकादशीका प्रभाव है। जो मनुष्य इस पापमोचनीके व्रत को करते हैं।।५०।।उनका सब पाप क्षीण हो जाता है तथा उसकी कथाको सुनने और पढ़नेसे गोसहस्रदानका फल मिलता है ।।५१।। ब्रह्महत्या, सुवर्ण-स्तेय, मद्यपान, गुरुदाराभिगमन तकका पाप भी इससे नष्ट होता है। एवं इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे असीम पुण्यका फल प्राप्त होता है ।।५२।। यह श्रीभविष्योत्तरपुराणकी कही हुयी पापमोचनिका नामकी चैत्रकृष्ण एकादशीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथ चैत्रशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। वासुदेव नमस्तुभ्यं कथयस्व ममाग्रतः ।। चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच । शृणुष्वैकमना राजन् कथामेकां पुरातनीम् ।। वसिष्ठो यामकथयत्प्राग्दिलीपाय पृच्छते ।। २ ।। दिलीप उवाच ।। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः । चैत्रे मासि सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। ३ ।। वसिष्ठ उवाच ।। साधु पृष्टं नृपश्रेष्ठ कथयामि तवाग्रतः ।। चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु कामदा नाम नामतः ।। ४ ।। एकादशी पुण्यतमा पापेन्धन-दवानलः ।। शृणु राजन् कथामेतां पापघ्नीं पुत्र²दायिनीम् ।। ५ ।। पुरा भोगिपुरे रम्ये हेमरत्नविभूषिते ।। पुण्डरीकमुखा नागा निवसन्ति मदोत्कटाः ।। ६ ।। तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं करोति च ।। गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव ह्यप्सरोभिः स सेव्यते ।। ७ ।। वराप्सरा तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा ।। उभौ रागेण संयुक्तौ दम्पती कामपीडितौ ।। ८ ।। रेमाते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते सदा ।। ललितायास्तु हृदये पतिर्वसति सर्वदा ।। ९ ।। हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी ।। एकदा पुण्डरीकाद्याः क्रीडन्तः सदसि स्थिताः ।। १० ।। गीतगानं प्रकुरुते ललितो दयितां विना ।। पदबन्धे स्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन् ।। ११ ।। मनोभावं विदित्वाऽस्य कर्कोटो नागसत्तमः ।। पदबन्धच्युतिं तस्य पुण्डरीके न्यवेदयत् ।। १२ ।। क्रोधसंरक्तनयनः पुण्डरीकोऽभवत्तदा ।। शशाप ललितं तत्र म¹दनातुर-चेतसम् ।। १३ ।। राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः ।। यतः पत्नीवशो जातो गायंश्चैव ममाग्रतः ।। १४ ।। वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षोरूपो बभूव ह ।। रौद्राननो विरूपाक्षो दृष्टमात्रो भयङ्करः ।। १५ ।। बाहू योजनविस्तीर्णौ मुखकन्दरसन्निभम् ।। चन्द्रसूर्यनिभे नेत्रे ग्रीवा पर्वतसन्निभा ।। १६ ।। नासारन्ध्रे तु विवरे चाधरौ योजनार्द्धकौ ।। शरीरं तस्य राजेन्द्र उत्थितं योजनाष्टकम् ।। १७ ।। ईदृशो राक्षसः सोऽभूद्भूञ्जानः कर्मणः फलम् ।। ललिता तमथालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम् ।। १८ ।। चिन्तयामास मनसा दुःखेन महतार्दिता ।। किं करोमि क्व गच्छामि पतिः शापेन पीडितः ।। १९ ।। इति संस्मृत्य मनसा न शर्म लभते तु सा ।। चचार पतिना सार्द्धं ललिता गहने वने ।। २० ।। बभ्राम विपिने दुर्गे कामरूपः स राक्षसः ।। निर्घृणः पापनिरतो विरूपः पुरुषादकः ।। २१ ।। न सुखं लभते रात्रौ न दिवा तापपीडितः ।। ललिता दुःखितातीव पतिं दृष्ट्वा

१ गायन्तं मदनातुरमित्यपि पाठः २ पुण्यवर्द्धिनीमित्यपि पाठः

तथाविधम् ।। २२ ।। भ्रमन्ती तेन सार्द्धं सा रुदती गहने वने ।। कदाचिदगमद्विन्ध्याशिखरे बहुकौतुके ।। २३ ।। ऋष्यशृङ्गमुनेस्तत्र दृष्ट्वाश्रमपदं शुभम् ।। शीघ्रं जगाम ललिता विनयावनता स्थिता ।। २४ ।। प्रत्युवाच मुनिर्दृष्ट्वा का त्वं कस्य सुता शुभम् ।। किमर्थं त्वमिहायाता सत्यं वद ममाग्रतः ।। २५ ।। ललितोवाच ।। वीरधन्वेति गन्धर्वः सुतां तस्य महात्मनः ।। ललितां नाम मां विद्धि पत्यर्थमिह चागताम् ।। २६ ।। भर्ता मे शापदोषेण राक्षसोऽभून्महामुने ।। रौद्ररूपो दुराचारस्तं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम् ।। २७ ।। सांप्रतं शाधि मां ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं करोमि तत् ।। येन पुण्येन मे भर्ता राक्षसत्वाद्विमुच्यते ।। २८ ।। ऋषिरुवाच ।। चैत्रमासस्य रम्भोरु शुक्लपक्षेऽस्ति सांप्रतम् ।। कामदैकादशी नाम्ना या कृता कामदा नृणाम् ।। २९ ।। कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् ।। तस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम् ।। ३० ।। दत्ते पुण्ये क्षणात्तस्य शापदोषः प्रशाम्यति ।। इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं ललिता हर्षिताभवत् ।। ३१ ।। उपोष्यैकादशीं राजन्द्वादशी दिवसे तदा ।। विप्रस्यैव समीपे तु वासुदेवाग्रतः स्थिता ।। ३२ ।। वाक्यमूचे तु ललिता स्वपत्युत्तारणाय वै ।। मया तु यद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम् ।।३३।। तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता ।। ललितावचनादेवं वर्तमानोपि तत्क्षणे ।। ३४ ।। गतपापः सललितो दिव्यदेहो बभूव ह ।। राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्तो गन्धर्वतां पुनः ।। ३५ ।। हेमरत्नसमाकीर्णो रेमे ललितया सह ।। तौ विमानं समारूढौ पूर्वरूपाधिकावुभौ ।। ३६ ।। दम्पती चापि शोभेतां कामदायाः प्रभावतः ।। इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ।। ३७ ।। लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ।। ब्रह्महत्यादिपापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी ।। ३८ ।। नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ।। पठनाच्छ्रवणाद्वापि वाजपेयफलं लभेत् ।। ३९ ।। इति श्रीवाराहपुराणे कामदानामचैत्रशुक्लैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथ चैत्रशुक्लैकादशी कथा– युधिष्ठिरजी बोले कि हे – वासुदेव ! आपको नमस्कार है । चैत्रमासकी शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम है, इसको आप कृपाकर बतलाइये । ।।१।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! एकमन होकर इस प्राचीन कथाको सुनो, जिसको वसिष्ठजीने दिलीपके वास्ते वर्णन किया था ।।२।। दिलीप बोले कि, महाराज । चैत्रमासके शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम है ? इसको आप प्रसन्न होकर मुझको वर्णन कीजिए ।।३।। वसिष्ठजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है इसको मैं प्रसन्न होकर कहता हूं कि, चैत्रमासकी शुक्लाएकादशीका नाम ' कामदा ' है ।। ४ ।। हे राजन् ! यह एकादशी बड़ी पवित्र है । ताप रूपी इन्धनके वास्ते दावानल है । इस पापहारिणी और पुत्रदायिनी कथाका श्रवण करो ।।५।। प्राचीन कालमें नानारत्नोंसे और सुवर्णोंसे भूषित भोगिपुर नामके नगरमें जिसमें कि, पुण्डरीक आदि बड़े बड़े मत्तहाथी निवास करते थे ।।६।। उस नगरमें पुण्डरीक नामके राजा

---

१ राक्षसरूपेण ।

राज्य करते थे। जिसकी सेवा गन्धर्व, किन्नर और अप्सरायें करती रहती थीं ।।७।। उस पुरमें ललिता नामकी अप्सरा और ललितनामक गन्धर्व दोनों कामके वशीभूत होकर बड़ी प्रीति रखते थे ।।८।। वे दोनों स्त्री-पुरुष अपने घन धान्यसम्पन्न घरमें आनन्दसे रमण करते थे । पतिके हृदयमें सदा ललिताका निवास था ।।९।। और ललिताके हृदयमें सदा पतिदेव निवास करते थे। एक समय यहांपर किसी सभामें पुंडरीक आदि राजा-लोक क्रीड़ा करते थे ।।१०।। और ललित अपनी प्रिया ललिताके विना गायन कर रहा था । उसका अपनी प्यारी स्त्रीके स्मरणसे गानेके समय जीभके लड़ खड़ा जानेके कारण पदभङ्ग होने लगा । कर्कोटक नागराजने उसके मनकी बात ताड़कर उस असंगत संगीतकी और उसके पद भंगकी पुंडरीक राजाके आगे चर्चा की ।।११।। १२।। तब उस राजा पुंडरीकके क्रोधसे रक्त नेत्र हो गये । और मदनांध ललितको शाप दे दिया ।।१३।। और कहा कि, हे दुर्बुद्धे ! तू राक्षस होगा । मांस और मनुष्यका भक्षण करेगा । क्योंकि तू मेरे आगे गाता हुआ कामांध हुआ है ।।१४।। उसके वचनसे वह गन्धर्व राक्षस हो गया । भयंकर आंखें और भयंकर मुख हो गया, जिसके कि– देखने ही से डर मालूम होता था ।।१५।। जिसका मुख कन्दराके समान और बाहू चार कोसके बराबर हो गई । चन्द्रमा और सूर्यके समान नेत्र बने । और ग्रीवा पर्वतके तुल्य हुई ।।१६।। नाकके छेद बड़े विवरके तुल्य थे और ओष्ठ दो कोसके थे । उसका सारा शरीर हे राजन् ३२ कोसका था ।।१७।। वह अपने कर्मोंके फलको भोगनेके लिये ऐसा राक्षस हुआ । ललिताने उस अपने बदसूरत पतिको देखा ।।१८।। उसको बड़ी चिन्ता हुई कि, अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? पतिदेव शापसे दुःखी हैं ।।१९।। यह शोचकर उसको दुःख हुआ, किंचित् भी सुख न पा सकी और वह भी अपने पतिके साथ ही साथ जंगलमें भ्रमण करने लगी ।।२०।। उस कामरूप राक्षसको घृणा शून्य मनसे पाप और नरभक्षण करते वनमें घूमते हुये ।।२१।। न रातमें सुख मिलता था और न दिनमें । इस प्रकार अपने पतिको देखकर ललिता बड़ी दुःखिनी हुई ।।२२।। उसके साथ घूमती रोती हुई कभी वह इसी तरह विन्ध्याचलके शिखरोंमें चली गई ।।२३।। वहां ऋष्यभृङ्ग मुनिका आश्रम जानकर शीघ्रही बड़े आदरके साथ उस जगह नम्रतासे नवी हुई आ उपस्थित हुई ।।२४।। मुनि-राजने उसको देखकर प्रश्न किया कि हे शुभे ! तू कौन है और किसकी लड़की है ? इस आश्रममें किसवास्ते आई है इसको मेरे सामने सत्यरूपसे वर्णन कर ?।।२५।। ललिता बोली कि, महाराज ! मैं वीर धन्वानामक गन्धर्वकी लड़की हूं, मेरा नाम ललिता है और इस जगह अपने पतिके लिये आई हूं ।।२६।। हे महामुने ! मेरा पति शापदोषसे राक्षस हो गया है । उसका रूप भयंकर है । उसका पतित आचार है, इसलिये उसे देख-कर मुझे कुछ सुख नहीं होता है ।।२७।। इसलिये महाराज ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि, मैं क्या प्रायश्चित करूं जिससे मेरा पति राक्षसकी गतिसे मुक्त हो जाय ।।२८।। ऋषिजी बोले कि, हे सुन्दरि ; इस समय चैत्रमासकी शुक्ला एकादशीका दिन है उसका नाम सब इच्छाओंको पूर्ण करनेके कारण 'कामदा' है ।।२९।। हे सुन्दरि ! तुम उस व्रतको मेरी कही हुई विधिके अनुसार करो और उस व्रतका पुण्य तुम अपने पतिको अर्पण कर दो ।।३०।। उसके देने मात्रसे पतिके शाप दोषकी शान्ति हो जायगी । इस वचनको सुनकर ललिता बड़ी प्रसन्न हुई ।।३१।। हे राजन् ! एकादशीका उपवास करके वह द्वादशीके दिन भगवान वासुदेव और ब्राह्म-णके निकट बैठकर ।।३२।। अपने पतिका उद्धार करनेके लिये ये वचन बोली कि, हे भगवन् ! मैंने जो यह व्रत किया है और कामदाका उपवास किया है वो पतिके उद्धारके लिये किया है ।।३३।। उसके पुण्यप्रभावसे मेरे पतिकी पिशाचताका दोष दूर हो । ललिताके ऐसे बोलतेही वह उसी समय ।।३४।। निष्पाप होकर राक्षस-तासे निर्मुक्त हो दिव्य रूप धारण करके फिरसे गन्धर्व हो गया ।।३५।। उसने फिर पूर्वकी भांति हेमरत्न आदिसे युक्त होकर ललिताके साथ रमण किया और पहलेसे भी अधिक सुन्दर रूप धारण करके वे दोनों विमानपर सवार हो गये ।।३६।। दोनों स्त्री पुरुष इस कामदाके प्रभावसे बड़े सुखी हुए । यह जानकर बड़े परिश्रम और कष्टसे इस व्रतको सम्पादित करे ।।३७।। यह ब्रह्महत्यादि पापोंको नाश करनेवाली तथा पिशाच-त्वको दूर करनेवाली इस एकादशीकी कथाका वर्णन लोक हितकी कामनासे तुम्हारे सामने किया है ।।३८।। चर और अचर सहित इस संसारमें इससे अधिक उत्तम और कोई दूसरी एकादशी नहीं है, इसके पढ़ने और सुननेसे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है ।।३९।। यह श्रीवाराहपुराणका कहा हुआ चैत्रशुक्ला कामदानामकी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।

अथ वैशाखकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। वैशाखस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। महिमान कथय मे वासुदेव नमोस्तु ते ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। सौभाग्यदायिनी राजन्निह लोके परत्र च ।। वैशाखकृष्णपक्षे तु नाम्ना चैव वरूथिनी ।। २ ।। वरूथिन्या व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा ।। पापहानिश्च भवति सौभाग्यप्राप्तिरेव च ।। ३ ।। दुर्भगा या करोत्येनां सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ।। लोकानां चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।। ४ ।। सर्वपापहरा नृणां गर्भवासनिकृन्तनी ।। वरूथिन्या व्रतेनैव मान्धाता स्वर्गतिं गतः ।। ५ ।। धुन्धुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा ।। ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान्भवः ।। ६ ।। दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः ।। तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतादपि ।। ७ ।। कुरुक्षेत्रे रविग्रहे स्वर्णभारं ददाति यः । तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतान्नरः ।। ८ ।। श्रद्धावान्यस्तु कुरुते वरूथिन्या व्रतं नरः ।। वाञ्छितं लभते सोपि इह लोके परत्र च ।। ९ ।। पवित्रा पावनी ह्येषा महापातकनाशिनी ।। भुक्तिमुक्तिप्रदा चापि कर्तॄणां नृपसत्तम ।। १० ।। अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते ।। गजदानाद्भूमिदानं तिलदानं ततोधिकम् ।। ११ ।। ततः सुवर्णदानं तु अन्नदानं ततोऽधिकम् ।। अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ।। १२ ।। पितृदेवमनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते ।। तत्समं कविभिः प्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम ।। १३ ।। धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान् स्वयम् ।। प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते ।। १४ ।। तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ।। कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ।। १५ ।। ते नरा नरकं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम् ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ।। १६ ।। यच्च गृह्णाति लोभेन कन्यां क्रीत्वा च तद्धनम् ।। सोऽन्यजन्मनि राजेन्द्र ओतुर्भवति निश्चितम् ।। १७ ।। कन्यां वित्तेन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलङ्कृताम् । तत्पुण्यसंख्यां कर्तुं हि चित्रगुप्तो न वेत्त्यलम् ।। १८ ।। तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ।। कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान् कोद्रवांस्तथा शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।। १९ ।। वैष्णवव्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ।। द्यूतक्रीडां च निद्रां च तांबूलं दन्तधावनम् ।। २० ।। परापवादं पैशुन्यं पतितैः सह भाषणम् ।। क्रोधं चैवानृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ।। २१ ।। कांस्यं मांसं मसूरांश्च क्षौद्रं वितथभाषणम् ।। व्यायामञ्च प्रयासं च पुनर्भोजनमैथुने ।। २२ ।। क्षौरं तैलं परान्नं च द्वादश्यां परिवर्जयेत् ।। अनेन विधिना राजन्विहिता यैर्वरूथिनी ।। सर्वपापक्षयं कृत्वा दद्यात्प्रान्तेऽक्षयां गतिम् ।।२३।। रात्रौ जागरणं कृत्वा पूजितो यैर्जनार्दनः ।। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ।। २४ ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः ।। [1]क्षपारितनयाद्भीतैर्नरदेव वरूथिनीम् ।। २५ ।। पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।। २६ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे वैशाखकृष्णैकादश्या वरूथिन्याख्याया माहात्म्यं समाप्तम् ।।

अब वैशाख कृष्णएकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी कहते हैं कि, हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है । वैशाखकृष्णकी एकादशीका क्या नाम है और उसकी क्या महिमा है ? इसको आप कृपाकर वर्णन कीजिये ।।१।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! इस लोक और परलोकमें सौभाग्य देनेवाली वैशाखकृष्णपक्षमें ' वरूथिनी ' नामकी एकादशी होती है ।।२।। वरूथिनीके व्रतप्रभावसे सदा सौख्य पापहानि और सौभाग्य सुखकी प्राप्ति होती है ।।३।। जो दुर्भगा स्त्री इस व्रतको करती है वह सौभाग्य को प्राप्त होती है यह एकादशी सब लोगोंको भुक्ति मुक्ति प्रदान करती है ।।४।। मनुष्योंका सब पाप हरण करती है और उनके गर्भवासका दुःख दूर करती है, यानी वह फिर गर्भमें नहीं आते । इस वरूथिनीहीके प्रभावसे मान्धाता स्वर्गमें गये थे ।।५।। और भी धुन्धुमार प्रभृति राजागण स्वर्गमें निवास करते हैं । वे सब इसी वरूथिनीके प्रभावसे करते हैं इसीसे भगवान् शंकर ब्रह्मकपालसे मुक्त हुए ।।६।। दश हजार वर्षतक जो मनुष्य तप करता है उससे मिलनेवाले फलके समान इसके व्रतका फल होता है ।।७।। कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहणके अन्दर सुवर्णके दान देनेसे जो फल मिलता है वही फल इसके व्रतसे मिलता है ।।८।। जो श्रद्धावान् मनुष्य इस वरूथिनीके व्रतको करता है वह इस लोकमें और परलोकमें अपनी इच्छाओंको पूर्ण करता है ।।९।। यह पवित्र और पावनी एवं महापापोंको नाश करने वाली है । हे नृपसत्तम ! करनेवालोंको भुक्ति और मुक्तिका प्रदान करती है ।।१०।। घोडेके दानसे हाथीका दान अच्छा है । हाथीके दानसे भूमिका दान उत्तम है और उससे उत्तम तिलका दान है ।।११।। उससे अधिक सुवर्णका दान और उससे भी अधिक उत्तम अन्नका दान होता है । अन्नदानसे अधिक उत्तम दान न अभीतक कभी हुआ है और न होगा ।।१२।। पितरोंकी और देवताओंकी तृप्ति अन्नसे ही होती है और उसीके समान पण्डित लोगोंने कन्यादान भी कहा है ।।१३।। उसीके समान गोदानको भी भगवान्ने उत्तम कहा है । इन सब कहे हुए दानोंसे भी अधिक उत्तम विद्याका दान है ।।१४।। उसी विद्यादानके समान फलको वरूथिनीका कर्त्ता प्राप्त करता है, जो विधिसे व्रत करता है,जो मूर्ख लोग कन्याके धनसे अपना जीवन निर्वाह करते हैं ।।१५।। वे प्रलयपर्यन्त नरकमें पड़े रहते हैं । इसलिए किसी भी तरहसे कन्याके धनको ग्रहण न करे ।।१६।। जो आदमी लोभसे कन्याको बेचकर धन ग्रहण करता है, हे राजन्! वह दूसरे जन्ममें निश्चयही बिलाव होताहै ।।१७।। जो मनुष्य कन्याको अपनी शक्तिके अनुसार अलंकृत करके दान देता है उसके पुण्यफलकी गणना चित्रगुप्त भी नहीं जानता ।।१८।। लेकिन वही फल इस वरूथिनीके व्रत करनेसे प्राप्त हो जाता है । दशमीके दिन वैष्णवव्रतको करनेवाला मनुष्य कांसी, मांस, मसूर, चणा, कोदू, शाक, शहद, दूसरेकाभोजन, दुबारा भोजन और मैथुन इन दश बातोंका त्याग करे । तथा जूआ खेलना, सोना, पान खाना, दन्तुन करना ।।१९।।२०।। दूसरेकी निन्दा बुराई और पतित लोगोंसे वातचीत , क्रोध और झूठ वचनोंका भी एकादशीके दिन छोड़ दे ।। २१ ।। कांसी, मांस, मसूर, शहद तथा झूठ भाषण, व्यायाम, परिश्रम, दुबारा भोजन, मैथुन ।।२२।। हजामत, तेलकी मालिश, दूसरेका अन्न इन सब चीजोंका उस दिनकी तरह द्वादशीके दिन भी त्याग करे । इस प्रकारसे हेराजन् ! जिन लोगोंने वरूथिनी की है उनका सब पाप नष्ट होकर अन्तमें अक्षयगति प्राप्त हुई है ।। २३ ।। रातमें जागरण कर जिन्होंने भगवानकी पूजा की है वे सब पापोंको धोकर परम गतिको प्राप्त हो गये हैं ।। २४ ।। इसलिए सब प्रकारसे पापसे डरनेवाले और यमराजसे डरनेवाले मनुष्य हे राजन्! सब प्रयत्नके साथ इस वरूथिनीको करें ।।२५।। उसके पढ़ने और सुननेसे हे राजन् ! सहस्र गोदानके समान पुण्य होता है । और वह सब पापों से मुक्त होकर अन्त में विष्णुलोकके आनन्द को उसीमें प्रतिष्ठित हो भोगता है ।।२६।। यह श्री भविष्योत्तरपुराणकी कही हुई वैशाखकृष्णावरूथिनी एकादशीके व्रतका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

---

१ क्षपारितनयात्–यमात् ।

अथ वैशाखशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। वैशाखशुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। किं फलं को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयामि कथामेतां शृणु त्वं धर्मनन्दन ।। वसिष्ठो यामकथयत्पुरा रामाय पृच्छते ।। २ ।। राम उवाच ।। भगवन् श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखनिकृन्तनम् ।। ३ ।। मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरहजानि वै ।। ततोऽहं भयभीतोऽस्मि पृच्छामि त्वां महामुने ।। ४ ।। वसिष्ठ उवाच ।। साधु पृष्टं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकी मतिः ।। त्वन्नामग्रहणेनैव पूतो भवति मानवः ।। ५ ।। तथापि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।। पवित्रं पावनानां च व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ६ ।। वैशाखस्य सिते पक्षे द्वादशी नाम या भवेत् ।। मोहिनीनाम सा प्रोक्ता सर्व पापहरा परा ।। ७ ।। मोहजालात्प्रमुच्येत पातकानां समहतः ।। अस्या व्रतप्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।। ८ ।। अतस्तु कारणाद्राम कर्तव्यैषा भवादृशैः ।। पातकानां क्षयकरी महादुःखविनाशिनी ।। ९ ।। शृणुष्वैकमना राम कथां पुण्यप्रदां शुभाम् ।। यस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ।। १० ।। सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा ।। द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै ।। ११ ।। सोमवंशोद्भवो राम धृतिमान्सत्यसंगरः ।। तत्र वैश्यो निवसति धनधान्यसमृद्धिमान् ।। १२ ।। धनपाल इति ख्यात पुण्यकर्मप्रवर्तकः ।। प्रपासत्राद्यायतनतडागारामकारकः ।। १३ ।। विष्णुभक्तिपरः शान्तस्तस्यासन्पञ्चपुत्रकाः ।। सुमना द्युतिमांश्चैव मेधावी सुकृती तथा ।। १४ ।। पञ्चमो धृष्टबुद्धिश्च महापापरतः सदा ।। वारस्त्रीसङ्गनिरतो विटगोष्ठीविशारदः ।। १५ ।। द्यूतादिव्यसनासक्तः परस्त्रीरतिलालसः ।। न देवांश्चातिथीन्वृद्धान्पितॄंश्चार्चेद्द्विजानपि ।। १६ ।। अन्यायकर्ता दुष्टात्मा पितृद्रव्यक्षयंकरः ।। अभक्ष्यभक्षकः पापः सुरापानरतः सदा ।। १७ ।। वेश्याकण्ठक्षिप्तबाहुर्भ्रमद्दृष्टिश्चतुष्पथे ।। पित्रा निकासितो गेहात्परित्यक्तश्च बान्धवैः ।। १८ ।। स्वदेहभूषणान्येवं क्षयं नीतानि तेन वै ।। गणिकाभिः परित्यक्तो निन्दितश्च धनक्षयात् ।। १९ ।। ततश्चिन्तापरो जातो वस्त्रहीनः क्षुधार्दितः ।। किं करोमि क्व गच्छामि केनोपायेन जीव्यते ।। २० ।। तस्करत्वं समारब्धं तत्रैव नगरे ततः ।। गृहीतो राजपुरुषैर्मुक्तश्च पितृगौरवात् ।। २१ ।। पुनर्बद्धः पुनर्मुक्तः पुनर्मुक्तः स वै भटैः । धृष्टबुद्धिर्दुराचारो निबद्धो निगडैर्दृढैः ।। २२ ।। कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः ।। न स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देशगोचरे ।। ।। २३ ।। एवमुक्त्वा ततो राज्ञा मोचितो दृढबन्धनात् ।। निर्जगाम भयात्तस्य गतोऽसौ गहनं वनम् ।। २४ ।। क्षुत्तृषापीडितश्चायमितश्चेतश्च धावति ।। सिंहवन्निजघानासौ मृगसूकरचित्तलान् ।। २५ ।। आमिषाहारनिरतो वने तिष्ठति

सर्वदा ।। शरासने शरं कृत्वा निषङ्गं पृष्ठसंगतम् ।। २६ ।। अरण्यचारिणो हन्ति दक्षिणश्च चतुष्पदान् ।। चकोरांश्च मयूरांश्च कंङ्कांस्तित्तिरिमूषकान् ।। २७ ।। एतानन्यान् हन्ति नित्यं धृष्टबुद्धिः स निर्घृणः ।। पूर्वजन्मकृतैः पापैर्निमग्नः पापकर्दमे ।। २८ ।। दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्तयन् सोऽप्यहर्निशम् ।। कौण्डिन्यस्याश्रमं प्राप्तः कस्माच्चित्पुण्यगौरवात् ।। २९ ।। माधवे मासि जाह्नव्यां कृतस्नानं तपोधनम् ।। आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः ।। ३० ।। तद्वस्त्रबिन्दुस्पर्शेन गतपाप्मा हताशुभः ।। कौण्डिन्यस्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।। ३१ ।। धृष्टबुद्धिरुवाच ।। प्रायश्चित्तं वद ब्रह्मन्विना वित्तेन यद्भवेत् ।। आजन्मकृतपापस्य नास्ति वित्तं ममाधुना ।। ३२ ।। ऋषिरुवाच ।। शृणुष्वैकमना भूत्वा येन पापक्षयस्तव ।। वैशाखस्य सिते पक्षे मोहिनी नाम नामतः ।।३३।। एकादशी व्रतं तस्याः कुरु मद्वाक्यनोदितः ।। मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं नयति देहिनाम् ।। ३४ ।। बहुजन्मार्जितान्येषा मोहिनी समुपोषिता ।। इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा धृष्टबुद्धिः प्रसन्नहृत् ।। ३५ ।। व्रतं चकार विधिवत्कौण्डिन्यस्योपदेशतः ।। कृते व्रत नृपश्रेष्ठ हतपापो बभूव सः ।। ३६ ।। दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः ।। जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ।। ३७ ।। इतीदृशं रामचन्द्र तमोमोहनिकृन्तनम् ।। नातः परतरं किञ्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ।। ३८ ।। यज्ञादितीर्थदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ।। ३९ ।। इति श्रीकूर्मपुराणे मोहिन्याख्यवैशाखशुक्लैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथ वैशाखशुक्ला एकादशीकी कथा—हे जनार्दन ! वैशाखके शुक्लपक्षमें किसनामकी एकादशी होती है और उसका फल तथाविधि क्या है ? इसको आप कृपाकर वर्णन कीजिए ।। १ ।। श्रीकृष्णजी महाराज कहते हैं कि, हे धर्मपुत्र ! मैं तुम्हें उस कथाका वर्णन करता हूँ जिसका भगवान् वसिष्ठने महाराज रामचन्द्रजीके वास्ते उपदेश दिया था ।। २ ।। भगवान् राम बोले कि, भगवन् ! मैं सब व्रतों में जो श्रेष्ठ व्रत हो उसे सुनना चाहता हूँ, जो सब पापोंको नष्ट करता एवम् सब दुखोंको काटता हो ।। ३ ।। हे महामुने ! मैंने सीताजीके विरहसे अनेक प्रकारके दुःख भोगे इसलिए मैं डरकर आपसे पूछना चाहता हूँ ।। ४ ।। वसिष्ठजी बोले कि, हे राम ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि, तुम्हारी यह आस्तिक बुद्धि है । तुम्हारे नामके लेनेहीसे मनुष्य पापरहित हो जाता है ।। ५ ।। तोभी लोकहितकी कामनासे पवित्रसे पवित्र और उत्तमसे उत्तम व्रतको तुम्हारे लिए मैं वर्णन करूँगा ।।६ ।। हे राम ! वैशाखके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है उसका नाम 'मोहिनी' है वह सब पापोंका संहार करती है ।। ७ ।। इस व्रतके प्रभावसे मैं सत्य और सत्य कहता हूँ कि, मनुष्य मोहजालसे और पापोंके समूहसे अवश्य मुक्त हो जाता है ।। ८ ।। इसी कारण हे राम ! आप जैसी आत्माओंके लिए पापनाशिनी और दुःखहारिणी एकादशीका व्रत अवश्य करना चाहिए ।। ९ ।। हे राम ! पुण्य प्रदान करनेवाली इसकी पवित्र कथाको भी आप एकाग्र चित्तके सुननेहीसे मनुष्यके पाप धुल जाते हैं ।। १० ।। सरस्वतीके सुन्दर तटपर एक भद्रावती नामकी सुन्दर पुरी थी । उसमें द्युतिमान् नामका राजा राज्य करता था ।। ११ ।। वह द्युतिमान् चन्द्रवंशी धृतिमान् और सत्य प्रतिज्ञ था । वहांपर एक धनधान्य सम्पन्न ।। १२ ।। धनपाल नामका पुण्यात्मा सेठ भी रहा करता था । जो सदा यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका करानेवाला तथा पानी शाला, तालाव, बगीचे, धर्मशाला आदि पुण्य स्थानोंको बनवाया करता था ।। १३ ।। वह बडा शान्त वैष्णव

था, उसके पांच लडके हुए । सुमना द्युतिमान, मेधावी, सुकृती और पांचवां धृष्टबुद्धि महापापी था, जो सदा वेश्याओंके पास रहता और बदमाशोंकी संगति करता था, जूआ खेलना और व्यभिचारों में रहना उसका मुख्य काम था, वह न कभी देवोंका पूजन करता था, तथा न कभी अतिथि और वृद्ध पितरकी और ब्राह्मणोंकी पूजा ही करता था ।। १४–१६ ।। अन्यायी, दुष्ट, पिताके द्रव्यको नष्ट करनेवाला अभक्ष्यभक्षी और शराबी था ।। १७ ।। सदा वारवधुओंके हाथ, द्विजोंको देखता हुआ भी गलबाँह डाले रहता था । वेश्यासंग करनेके-कारण ही उसके पिताने और उसके बान्धवोंने उसे घरसेनिकाल कर बाहर कर दिया था ।। १८ ।। उसने अपने भूषण नष्ट कर डाले एवं वेश्याओंने भी उसे निर्धन हो जानेके कारण निन्दाकर अलग कर दिया था ।। १९ ।। तब उसे बडी चिन्ता हुई । नंगा और भूखा रहने लगा । शोचने लगा कि, अब क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ।। २० ।। उसी नगर में उसने चोरी करना शुरू किया । पुलिसने उसे पकडा भी पर पिताके लिहाजसे छोडदिया ।। २१ ।। फिर पकडा गया, फिर छोडा गया और अन्तमें उसे फिर पकडकर हथकडी डाल ही दी गई ।। २२ ।। बेंत और चाबुकोंकी मार पडने लगी । कहा गया कि, हे दुष्ट ! तू हमारे देश मेंसे निकल जा ।। २३ ।। ऐसा सुनाकर उसे जेलसे निकाल दिया ।। इसी डरके मारे वह किसी गहन वनमें जा छिपा ।। २४ ।। भूख प्याससे व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगा । सिंहकी भाँति मृग सूअर और चीतोंको मारने लगा ।। २५ ।। मांस खाकर वनमें गुजर करने लगा । धनुषपर शर रख और तर्कसको पीठपर लाद जङ्गली जानवरोंको तथा चकोर, मयूर, कंक, तीतर, चहे ।। २६ ।। इनको और दूसरोंको भी घृणा रहित मार मारकर खाने लगा । पहले जन्मके लिये हुए पापोंसे पापरूपी कीचडमें फँस चुका था ।। २७ ।। ।।२८ ।। इस प्रकार सदा दुःख और शोकमें दिन काटता हुआ किसी पुण्य प्रभाव से वह कौण्डिन्य ऋषिके आश्रममें जा पहुँचा ।। २९ ।। वह धृष्टबुद्धि शोकके भारसे दुःखी होकर वैशाख महीने में गङ्गा स्नान कर आये हुए तपोधन ऋषिके पास आ उपस्थित हुआ उस आश्रमको उनके भागे हुए वस्त्रोंकी एक बूंद मात्र से वह पापी शुद्ध हो गया । सब पाप निवृत्त हो गये हाथ जोडते हुए कौण्डिन्यके आगे चलकर उसने प्रार्थना की कि, हें ऋषि महाराज ! आप मुझे प्रायश्चित्त बतलाइए जिससे कि मेरे जन्म भरके किये पाप नष्ट हो जो कि, धन के विना ही हो जाय क्योंकि, मेरे पास अब धन नहीं है ।। ३० –३२ ।। ऋषिजी बोले कि, हे धृष्टबुद्धे ! तुम एकदिल होकर सुनो जिससे कि, तेरे जन्मभरके पापोंका नाश हो । वैशाखके शुक्लपक्षमें मोहिनीनामकी एकादशी होती है । उसका व्रत तू मेरी आज्ञासे कर । उससे प्राणिमात्र के सुमेरु पर्वतके समान भी बडे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।। ३३ ।। ३४ ।। बहुत जन्मोंके पुण्यफलसे इस मोहिनीका उपवास किया जाता है । यह सुनकर वह पापी धृष्टबुद्धि बडा प्रसन्न हुआ ।। ३५ ।। कौण्डिन्यजीके उपदेशसे उसने विधिपूर्वक व्रत किया और उस व्रतके करनेपर हे नृपश्रेष्ठ वह पापहीन होगया ।। ३६ ।। दिव्य देह धारण कर गरुड पर चढ गया । निर्विघ्नतापूर्वक विष्णु भगवान् के शान्त स्थानमें जा पहुँचा ।। ३७ ।। इस प्रकार हे रामचन्द्रजी महाराज ! यह व्रत मोहको काटनेवाला है । इससे अधिक अच्छा इस विश्वमें दूसरा कोई भी व्रत नहीं है ।। ।। ३८ ।। यज्ञ आदि तथा तीर्थ दान इसकी षोडशी कलाको भी नहीं पा सकते और हे राजन् ! पढने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है ।। ३९ ।। यह श्रीकूर्मपुराणका कहा हुआ वैशाख शुक्लाकी मोहिनी नामकी एकादशीका माहात्म्य समाप्त हुआ ।।

अथ ज्येष्ठकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।।

श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं तद्वदस्व जनार्दन ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। साधु पृष्टं त्वया राजँल्लोकानां हितकाम्यया ।। बहुपुण्यप्रदा ह्येषा महापातकनाशिनी ।। २ ।। अपरा नाम राजेन्द्र अपारफलदायिनी ।। लोक प्रसिद्धतां याति अपरां यस्तु सेवते ।। ३ ।। ब्रह्महत्याभिपूतोऽपि गोत्रहा भ्रूणहा तथा ।। परापवादवादी च परस्त्रीरसिकोपि च ।। ४ ।। अपरासेवनाद्राजन्विपाप्मा भवति ध्रुवम् ।। कूटसाक्ष्यं मानकूटं तुलाकूटं करोति यः ।। ५ ।। कूटवेदं मठेद्विप्रः कूटशास्त्रं तथैव च ।। ज्योतिषी

कूटगणकः कूटायुर्वेदको भिषक् ।।६।।कूटसाक्षिसमा ह्येते विज्ञेया नरकौकसः ।। अपरासेवनाद्राजन् पापमुक्ता भवन्ति ते ।। ७ ।।क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते ।। स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः ।। ८ ।। अपरासेवनात्सोपि पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ।। विद्यामधीत्य यः शिष्यो गुरुनिन्दां करोति च ।। ९ ।। महापातकसंयुक्तो निरयं याति दारुणम् ।। अपरासेवनात्सोपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ।। १० ।। पुष्करत्रितये स्नात्वा कार्तिक्यां यत्फलं लभेत् ।। मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे यत्फलं नृणाम् ।। ११ ।। काश्यां यत्प्राप्यते पुण्यं शिवरात्रेरुपोषणात् ।। गयायां पिण्डदानेन यत्फलं प्राप्यते नृभिः ।। १२ ।। सिंहस्थिते देवगुरौ गौतमीस्नानतो नरः।। यत्फलं समवाप्नोति कुम्भे केदारदर्शनात्।।१३।।बदर्याश्रमयात्रायास्तत्तीर्थसेवनादपि ।। यत्फलंसमवाप्नोतिकुरुक्षेत्रे रविग्रहे।।१४।। गजाश्वहेमदाननेन यज्ञे कृत्स्नसुवर्णदः ।। तत्फलं समवाप्नोति अपराया व्रतान्नरः ।। १५ ।। अर्धप्रसूतां गां दत्त्वा सुवर्णवसुधां तथा।।नरो यत्फलमाप्नोति अपराया व्रतेन तत् ।। १६ ।। पापद्रुमकुठारोऽयं पापेन्धनदवानलः।।पापान्धकारसूर्योऽयं पापसारङ्गकेसरी ।। १७ ।। अपरैकादशी राजन् कर्तव्या पापभीरुभिः ।। बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ।। १८ ।। जायन्ते मरणायैव एकादश्या व्रतं विना ।। अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ।। १९ ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।। लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ।। पठनाच्छ्रवणाद्राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। २० ।। इति ब्रह्माण्डपुराणे ज्येष्ठकृष्णापराख्यैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथ ज्येष्ठकृष्णकादशीकी कथा—युधिष्ठिरजी बोलेकि, हे भगवन् ! ज्येष्ठके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? उसका माहात्म्य में आपसे सुनना चाहता हूं ।।१ ।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, महाराज ! आपने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि, आप प्राणियोंका भला करनेकी इच्छा रखते हो । यह बहुतसे पुण्यकी देनेवाली तथा महापातकोंको नाश करनेवाली है ।। २ ।। हे राजेन्द्र ! इसका नाम 'अपरा' है । यह अपार फलको देनेवाली है । जो मनुष्य इस अपराकाव्रत करता है वह लोकमें प्रसिद्ध होता है ।। ३ ।। ब्रह्महत्या करनेवाला गोत्रका नाश करनेवाला भ्रूणहत्याका पाप करनेवाला, दूसरोंकी निन्दा करनेवाला तथा व्यभिचारी भी ।। ४ ।। इसके व्रतके प्रभावसे हे राजन् ! पाप मुक्त हो जाता है । मिथ्या साक्षी देनेवाला, मिथ्याभिमान और तौल तौलनेवाला, वेदनिन्दा और मिथ्याशास्त्रका अभ्यास एवं ज्योतिषसे छलनेवाला मिथ्या चिकित्सा करनेवाला मनुष्य।।५।।६।।नारकी होता है क्योंकि ये सब काम झूठी गवाहीके बराबर हैं । लेकिन इस अपराके व्रतसे वेभी राजन् ! पापहीन हो जाते हैं ।।७।। जो क्षत्रिय क्षात्रधर्मको छोडकर युद्धसे भागता है वह अपने धर्मसे गिरकर घोरनरकमें जाता है ।। ८ ।। लेकिन वह भी इस अपराके व्रतसे पापमुक्त होकर स्वर्गमें चलाजाता है, जो शिष्यविद्या पढकर गुरुनिन्दा करता है ।। ९ ।। वह महापापी होकर घोर नरकमें जाता है लेकिन वहभी इसके प्रभावसे सद्गतिको प्राप्त होता है ।। १० ।। कार्त्तिककी पूर्णिमापर तीनों पुष्करपर स्नान करनेसे, मकरकी संक्रान्तिपर माघमें प्रयागमें स्नान करनेसे ।। ११ ।। तथा काशीमें शिवरात्रिके उपवाससे एवं गयामें पिंडदान देनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है ।। १२ ।। सिंह राशिपर बृहस्पतिके स्थित होतेहुए गौतमीनदीके स्नानसे कुंभमें केदारके दर्शनसे ।। १३ ।। बदरिकाश्रमकी तीर्थयात्रासे, कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय ।। १४ ।। हाथी घोडे और सुवर्णके दान देनेसे , यज्ञमें सुवर्णके ही सब

कार्योंमें सुवर्णकोही देनेसे ।। १५ ।। अर्धप्रसूता गौके तथा वर्ण और पृथ्वीके दान देनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है वह सब उस अपराके व्रतके करनेसे प्राप्त हो जाता है ।। १६ ।। पापरूपी वृक्षका कुठार, पापरूपी इंधनका दावानल, पापाधकारका सूर्य एवं पापरूपी मृगका सिंह ।। १७ ।। यह अपरा एकादशीका व्रत, पापसे डरनेवालोंको करना चाहिये ।। पानी में बुलबुलोंके समान और जानवरोंमें मक्खियोंके समान ।। १८ ।। मरनेके लिये ही उस मनुष्यका जन्म है जिसने एकादशीका व्रत एवं भगवान् का पूजन न किया हो ।। १९ ।। अपराका उपवास करके और भगवानकी पूजा करके मनुष्य सब पापोंसे छूटकर विष्णु लोकमें चला जाता है।। मैंने विश्वहितकी कामनासे तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है । इसके पढते और सुननेसे मनुष्य सब पापोसे मुक्त हो जाता है ।। २० ।। यह श्रीब्रह्माण्डपुराणका कहा हुआ ज्येष्ठकृष्णा अपरानामकी एकादशीमाहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ ज्येष्ठशुक्लैकादशीकथा

भीमसेन उवाच ।। पितामह महाबुद्धे शृणु मे परमं वचः ।। युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदन्दिनी ।। १ ।। अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च ।। एकादश्यां न भुञ्जन्ति कदाचिदपि सुव्रत ।। २ ।। ते मां ब्रुवन्ति वै नित्यं मा भुंक्ष्व त्वं वृकोदर ।। अहं तानब्रुवं तात बुभुक्षा दुःसहा मम ।। ३ ।। दानं दास्यामि विधिवत्पूजयिष्यामि केशवम् ।। विनोपवासं लभ्येत कथमेकादशीव्रतम् ।। ४ ।। भीमसेनवचः श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ।। व्यास उवाच ।। यदि स्वर्गोत्यभीष्टस्ते नरकोऽनिष्ट एव च ।। ५ ।। एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि ।। भीमसेन उवाच ।। पितामह महाबुद्धे कथयामि तवाग्रतः ।। ६ ।। एकभक्ते न शक्तोऽहमुपवासः कुतो मुने ।। वृको नामस्ति यो वह्निः स सदा जठरे मम ।। ७ ।। अतीवान्नं यदाश्नामि तदा समुपशाम्यति ।। एकं शक्तोस्म्यहं कर्तुं चोपवासं महामुने ।। ८ ।। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।। व्यास उवाच ।। श्रुतास्ते मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया ।। ९ ।। कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ।। सुखोपायं चाल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम् ।। १० ।। पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामि ते ।। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।। ११ ।। एकादश्यां न भुंक्ते यो न याति नरकं तु सः।।व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कंपितोऽश्वत्थपत्रवत्।।१२।।भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत।।भीमसेन उवाच।।पितामह न शक्तोऽहमुपवासे करोमि किम् ।।१३।। ततो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकं मम प्रभो।।व्यास उवाच।।वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के शुक्ला यैकादशी भवेत्।।१४।।ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता स्नाने चाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः।।१५।।उपयुञ्जीत नैवान्यद्व्रतभङ्गोऽन्यथा भवेत् ।। उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा जलं बुधः ।। १६ ।। अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ।। ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां स्नानमाचरेत् ।। १७ ।। जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्यो यथाविधि ।। भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी ।। १८ ।। एवं कृते तु यत्पुण्यं भीमसेन शृणुष्व तत् ।। संवत्सरस्य या मध्ये एकादश्यो भवन्ति वै ।। १९ ।। तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ।। इति मां केशवः प्राह

शंखचक्रगदाधरः ।। २० ।। एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठस्यौदकवर्जितम् ।। उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृतोदर ।। २१ ।। सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु[1]यत्फलम् ।। समवाप्नोति इमां कृत्वा वृकोदर ।। २२ ।। संवत्सरस्य यावन्त्यः शुक्लाः कृष्णा वृकोदर ।। उपोषितास्ताः सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः ।। २३ ।। धनधान्यवहाः पुण्याः पुत्रारोग्यफलप्रदाः ।। उपोषिता नरव्याघ्र इति सत्यं वदामि ते ।। २४ ।। यमदूता महाकाया करालाः कृष्णपिङ्गलाः ।। दण्डपाशधरा रौद्रा मरणे दृष्टिगोचरम् ।। २५ ।। न प्रयान्ति नरव्याघ्र एकादश्यामुपोषणात् ।। पीताम्बरधराः सौम्याश्चक्रहस्ता मनोजवाः ।। २६ ।। [2]अन्तकाले नयन्त्येव मानवं वैष्णवीं पुरीम् ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सोपोष्योदकवर्जिता ।।२७।। जलधेनुं ततो दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। इति श्रुत्वा तदा चक्रुः पाण्डवा जनमेजय ।। २८ ।। ततःप्रभृति भीमेन कृतेयं निर्जला शुभा ।। पाण्डवद्वादशीनाम्ना लोके ख्याता बभूव ह ।। २९ ।। तथा त्वमपि भूपाल सोपवासार्चनं हरेः ।। कुरु त्वं च प्रयत्नेन सर्वपापप्रशान्तये ।। ३० ।। करिष्याम्यद्य देवेश जलवर्जमुपोषणम् ।। भोक्ष्ये परेऽह्नि देवेश ह्यन्नं च तव वासरात् ।। ३१ ।। इत्युच्चार्य ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् ।। सर्वपापविनाशाय श्रद्धादमसमन्वितः ।। ३२ ।। मेरुमन्दरमानं तु स्त्रियाथ पुरुषस्य यत् ।। पापं तद्भस्मतां याति एकादश्याः प्रभावतः ।। ३३ ।। न शक्नोति न यो दातुं जलधेनुं नराधिप ।। सकाञ्चनो घटस्तेन देयो वस्त्रेण संवृतः ।। ३४ ।। तोयस्य नियमं योऽस्यां कुरुते वै स पुण्यभाक् ।। पलकोटिसुवर्णस्य यामेयामेऽश्नुते फलम् ।। ३५ ।। स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः ।। तत्सर्वं चाक्षयं प्रोक्तमेतत्कृष्णस्य भाषितम् ।। ३६ ।। किं वापरेण धर्मेण निर्जलैकादशीं नृप ।। उपोष्य च नरो भक्त्या वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।। ३७ ।। सुवर्णमन्नं वासांसि यदस्यां संप्रदीयते ।। तदस्य च कुरुश्रेष्ठ सर्वमप्यक्षयं भवेत् ।। ३८ ।। एकादशीदिने योऽन्नं भुंक्ते पापं भुनक्ति सः ।। इह लोके स चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ।। ३९ ।। ये प्रदास्यन्ति दानानि द्वादशीं समुपोष्य च ।। ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्स्यन्ति परमं पदम् ।। ४० ।। ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेष्टा सदाऽनृती ।। मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्निर्जला यैरुपोषिता ।। ४१ ।। विशेषं शृणु राजेन्द्र निर्जलैकादशीदिने ।। यत्कर्तव्यं नरैः स्त्रीभिः श्रद्धादमसमन्वितैः ।। ४२ ।। जलशायी तु संपूज्यो देया धेनुश्च तन्मयी ।। प्रत्यक्षा वा नृपश्रेष्ठ घृतधेनुरथापि वा ।। ४३ ।। दक्षिणाभिश्च श्रेष्ठाभिर्मिष्टान्नैश्च पृथग्विधैः ।। तोषणीया प्रयत्नेन द्विजा धर्यभृतां वर ।। ४४ ।। तुष्टो भवति वै क्षिप्रं तैस्तुष्टैर्मोक्षदो हरिः ।। आत्मद्रोहः कृतस्तैस्तु यैर्नेषा समुपोषिता ।। ४५ ।।

१ सर्वहोमेषु यत्पुण्यं तदस्याः समुपोषणात् । इति हेमाद्रौ च पाटः ।
२ अन्तकाले नयन्त्येनं वैष्णवा वैष्णवीं पुरीम् ।। इति हेमाद्रौ पाठः ।

पापात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते नात्र संशयः ।। कुलानां च शतं साग्रमनाचाररतं सदा ।। ४६ ।। आत्मना सह तैर्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम् ।। शान्तैर्दानपरैश्चैव अर्चद्भिश्च तथा हरिम् ।। ४७ ।। कुर्वद्भिर्जागरं रात्रौ यैरेषा समुपोषिता ।। अन्नं पानं तथा गावो वस्त्रं शय्यासनं शुभम् ।। ४८ ।। कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ।। उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे ।। ४९ ।। स सौवर्णेन यानेन स्वर्गलोक व्रजेद्ध्रुवम् ।। यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्तयेत् ।। ५० ।। उभौ तौ स्वर्गतौ स्यातां नात्र कार्या विचारणा ।। यत्फलं संनिहत्यायां[1] राहुग्रस्ते दिवाकरे ।। ५१ ।। कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्यस्तदस्याः श्रवणादपि ।। एवं यः कुरुते पुण्यां द्वादशीं पापनाशिनीम् ।। सर्वपापविनिर्युक्तः पदं गच्छत्यनामयम् ।। ५२ ।। इति श्रीभारतपद्मयोरुक्तं ज्येष्ठशुक्लनिर्जलैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम्, ।।

अथ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशीकी कथा-भीमसेन बोले कि, हे महाबुद्धे पितामह ! मेरे इस वचनको श्रवण कीजिये । युधिष्ठिर , कुन्ती तथा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदी, अर्जुन , नकुल तथा सहदेव हे सुव्रत ! ये एकादशीको कभी भी भोजन नहीं करते ।। १ ।। २।। और ये लोग मुझे भी सदा कहते हैं कि, हे भीमसेन ! तुमभी भोजन न करो । तो मैं उन्हें जवाब देता हूँ कि, भाई ! मुझे भूखा रहना सह्य नहीं है ।। ३ ।। दान दूंगा और विधिसे भगवान् की पूजाभी करूँगा । पर एकादशीका व्रत विनाही उपवास जिस प्रकार हो ऐसा उपाय बताइये ।। ४ ।। भीमसेनके इस वचनको सुनकर व्यासजीने कहा कि, हे भीमसेन ! यदि तुमको स्वर्ग प्यारा और नगर बुरा मालूम होता है ।। ५ ।। तो दोनों एकादशियोंके दिन तुम्हें भोजन न करना चाहिये । भीमसेन बोले कि, हे महाबुद्धिपितामह ! मैं आपके सामने उत्तर देताहूँ ।। ६ ।। महाराज ! मैं तो एक समय भोजन करके भी नहीं रह सकता तब उपवास तो कहाँ हो सकता है ? मेरे पेट में वृकनामका अग्नि रहता है ।। ७ ।। जब मैं बहुतसा अन्न भोजन करता हूँ तब ही उसकी शान्ति होती है हे महामुने ! मैं एक उपवास कर सकता हूँ ।। ८ ।। इससे आप मुझे कोई एक उपवास बतादें जिससे मेरा कल्याण हो जाय ।। व्यास बोले कि, हे भीमसेन ! तुमने मुनिके और वेदोंके कहे हुए धर्म सुने हैं ।। ९ ।। पर वे हे राजन् ! इस कलियुगमें नहीं हो सकते । सुखका उपाय जिसमें विशेष खर्च भी न हो न कोई दुख हो पर जिसका फल बडा हो ।। १० ।। यह सुन वह बोले कि, सब पुराणोंके जो सार रूप है उसे मैं तुम्हें कहता हूं, एकादशीके दिन दोनों पक्षोंमें कभी भी भोजन न करे ।। ११ ।। जो लोग एकादशीके दिन भोजन करते हैं वे नरकके यात्री होते हैं । इस प्रकार व्यासजीके वचन सुन भीमसेन अश्वत्थपत्रकी भाँति हिलने लगा ।।१२।। महाबाहु भीमसेन डरकर यह कहने लगा कि हे पितामह ! मैं उपवास करनेमें असमर्थ हूँ क्या करूं इसलिये ऐसा कोई एक व्रत बताइये जिसका बहुत फल हो । व्यासजी बोले कि, वृष या मकरकी संक्रान्तिपर जब कि शुक्ला एकादशी प्राप्त हो ।।१४।। तब ज्येष्ठमासमें बडे कष्ट से प्रयत्नके साथ एकादशीका निर्जल उपवास करे ।। १६ ।। स्नान और आचमनको छोडकर जलका व्यवहार न करे ।। १५ ।। क्योंकि उससे व्रतभंग होता है । उदयसे दूसरे दिनके उदयपर्यंत जलका परिहारही करे रहे ।। १६ ।। इस प्रकार विना परिश्रमके बाहर एकादशीका फल मिल जाता है ।। द्वादशीके दिन निर्मल प्रातः काल स्नान करे ।।१७।। विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको जल और सुवर्ण देकर सब कृत्यको समाप्त करके ब्राह्मणों केही साथ जितेन्द्रिय होकर भोजन करे ।। १८ ।। हे भीमसेन ! इस प्रकार करनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है उससे सुनो । वर्षभरके अन्दर जितनी एकादशी होती हैं ।।१९।। उन सबका फल एकहीसे प्राप्त होता जाता है । इसमें मुझे सन्देह नहीं है । इस प्रकार मुझको साक्षात् शंखचक्रगदाधारी केशव भगवान् ने कहा है ।। २० ।। एकादशीके दिन शुक्लपक्षमें ज्येष्ठमासमें पानीसे रहित उपवास करके जो फल मिलता है, हे भीमसेन ! उसे सुनो ।। २१ ।। सब तीर्थोंमें जो पुण्य और सब दानोंमें जो फल होता है, हे भीमसेन ! वह इससे मिलजाता है ।। २२ ।। हे वृकोदर ! वर्षमें जितनी शुक्ला एकादशी होती है, उन

---

१ संनिहत्यायाम् कुरुक्षेत्रे ।

सबका फल इस एकहीके व्रतसे मिल जाता है । हे नरश्रेष्ठ ! इसमें सन्देह नहीं है ।। २३ ।। धनधान्य देनेवाला पुत्र और आरोग्यको बढा देनेवाला, इस व्रतका उपवास होता है । यह में तुम्हेंसत्य वर्णन करताहूं ।। २४ ।। मरणके समय महाकाय, कराल, कृष्णपिंगल दण्डपाशधारी और भयंकर यमराजकके दूत दृष्टिगोचर नहीं होते ।। २५ ।। हे नरश्रेष्ठ ! एकादशीके उपवाससे, पीताम्बरधारी, सौम्य चक्रहस्त, मनकी भांति दौडनेवाले, ।।२६।। भगवान्के सुन्दर दूत विष्णुपुरीको उसे अन्तमें लेजाते हैं । इसलिये इसका उपवास जलसे रहित होकर सदाही करना चाहिये ।।२७।। इसके पीछे जलधेनु (ये शास्त्रीय संज्ञा है) का दानकरके सब पापोंसे मुक्त हो । यह सुनकर हे जनमेजय ! पाण्डवोंने उपवास किया ।।२८।। तबसे भीमसेननने भी इस निर्जलाका उपवास किया और इस लिये इसका नाम पाण्डव भीमसेन एकादशी विख्यात हुई है ।।२९।। इस लिये हे राजन् ! तुम भी सभी प्रयत्नोंके साथ उपवास हरिका पूजन करो जिससे तुम्हारेभी सब पापोंका क्षय हो जाय ।।३०।। हे देवेश ! आज में जलरहित एकादशीका उपवास करूंगा और आपके वासरसे दूसरे दिन भोजन करूंगा ।।३१।। ऐसा संकल्प कर उपवास करे । सब पापोंके नाश करनेके हेतु श्रद्धा और दमसे मुक्त होकर व्रत करे ।।३२।। इस प्रकार व्रत करनेसे स्त्री और पुरुषोंके मेरु पर्वतके समानभी पापराशि क्यों न हों क्षणमात्रमें भस्म होजाती है । यह इस एकादशीका प्रभाव है ।।३३।। जो धेनुकी जलद्दान वा जल धेनुका दान नहीं दे सके तो उसको सुवर्णसहित और वस्त्रसहित घटका दान करना चाहिए ।।३४।। जो घटदान देतेसमय जलका नियम करता है उसे एक एक प्रहरके अन्दर कोटि कोटि सुवर्ण दानका फल प्राप्त होता है ।।३५।। जो इस दिन स्नान, दान, जप और होम करता है वह सब अक्षय होजाता है । यह भगवान् कृष्णने वर्णन किया है ।।३६।। हे राजन् ! दूसरे धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ? निर्जला एकादशीकाही भक्तिसे उपवास करकेही मनुष्य विष्णुलोकमें जासकता है ।।३७।। सुवर्ण, अन्न और वस्त्र जो कुछ इस दिन दिया जाता है हे कुरुश्रेष्ठ ! वह सब अक्षय होजाता है ।।३८।। इस एकादशीके दिन जो मनुष्य भोजन करता है वह अपने पापोंको खाता है एवं इस लोकमें वह चांडाल और मरेपर दूसरे लोकमें दुर्गतिको प्राप्त होता है ।।३९।। जो लोग ज्येष्ठकी इस एकादशीके दिन उपवास कर दान देते हैं वे पुण्यात्मा परमपदको प्राप्त होते हैं ।।४०।।इस निर्जलाका उपवास करनेसे पाप मुक्त होजाता है चाहें वो मनुष्य ब्रह्महा, मद्यपायी, चोर और गुरुनिन्दक तथा सदा मिथ्यावादीही क्यों न हो ।।४१।। हे राजेन्द्र! इस निर्जला एकादशीके दिन विशेष रूपसे श्रद्धावाले सभी स्त्री पुरुषोंको क्या करना चाहिये इसका में वर्णन करता हूं ।।४२ ।। इसमें जलशायी भगवान्की पूजा करे; और तैसी ही जल धेनुका दान करे । प्रत्यक्ष गोका दान वा घृतगोका दान करे ।।४३।। हे धर्मज्ञ ! एवं धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ दक्षिणासे अनेक तरहके मिष्टान्न भोजनसे प्रयत्नके साथ ब्राह्मणोंको प्रसन्न करे ।।४४।। ऐसा करनेसे मोक्षदाता भगवान् हरि जलदी प्रसन्न होते हैं । जो लोग इस उपवासको नहीं करते वे अपनेही साथ द्वेष करते हैं ।।४५।। जो लोग शान्त और दानी होकर भगवान्की पूजा करते हुए रात्रिमें जागरण कर निर्जलाका उपवास करते हैं वे लोग चाहेंपापी या दुराचारी हों दुष्ट हों वे अपने अनाचारी सौ कुलके साथ भगवान्के धाममें पहुंचते हैं ।।४६।। ।।४७।। जिन्होंने कि, रातमें जागरण करते हुए इसका व्रत किया है इस निर्जलाके दिन वे अन्न, पान, गौ, वस्त्र, शय्या, आसन, कमंडलु, छत्र और जूती जोडे किसी उत्तम ब्राह्मणको अवश्य दें ।।४८।। ४९ ।। वह सुवर्णके विमानपर चढकर अवश्यही स्वर्गमें जाता है । जो इसे भक्तिसे सुनता है और कहता है ।।५०।। वे दोनोंही स्वर्गमें चले जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है । जो फल सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें दान देनेसे होता है ।।५१।। वही फल इसके करनेसे और इसकी कथा कहनेसेभी होता है ।। इस प्रकार जो इस पवित्र पापनाशिनी एकादशीको करता है वह सब पापोंसे निवृत्त होकर विष्णुलोकमें जाता है ।।५२।। यह श्रीमहाभारत और पद्मपुराणकी कहीहुई ज्येष्ठ शुक्ला निर्जला एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ आषाढकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। ज्येष्ठशुक्ले निर्जलाया माहात्म्यं वै श्रुतं मया ।। आषाढकृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। १ ।। कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधु-

सूदन ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। व्रतानामुत्तमं राजन्कथयामि तवाग्रतः ।। २ ।। सर्वपापक्षयकरं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।। आषाढस्यासिते पक्षे योगिनीनाम नामतः ।। ३ ।। एकादशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी ।। संसारार्णवमग्नानां पोतरूपा सनातनी ।। ४ ।। जगत्त्रये सारभूता योगिनीति नराधिप ।। कथयामि कथां तस्याः पौराणीं पापहारिणीम् ।। ५ ।। अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः ।। तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः ।। ६ ।। तस्य पत्नी सुरूपासीद्विशालाक्षीति नामतः ।। स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं गतः ।। ७ ।। मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः ।। पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः ।। ८ ।। कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् ।। मध्याह्नसमये राजन् पुष्पाणि प्रसमीक्षते ।। ९ ।। हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह ।। यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः ।। १० ।। कस्मान्नायाति पो यक्षा हेममाली दुरात्मवान् ।। निश्चयः क्रियतामस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ।। ११ ।। यक्षा उचुः ।। वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप ।। तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ।। १२ ।। आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम् ।। ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ।।१३।। आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः ।। तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ।। १४ ।। प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताधरः ।। धनद उवाच ।। रे पाप दुष्ट दुर्वृत्त कृतवान् देवहेलनम् ।। १५ ।। अतो भव शिवत्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सदा।। अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाधमम् ।। १६ ।। इत्युक्ते वचने तेन तस्मात्स्थानात्पपात सः ।। महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठपीडितविग्रहः ।। १७ ।। न वै तोयं न भक्ष्यं च वने रौद्रे लभत्यसौ ।। न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि ।। १८ ।। छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः ।। शिवपूजाप्रभावेण स्मृतिस्तस्य न गच्छति ।। १९ ।। पातकेनाभिभूतोऽपि कर्म पूर्वमनुस्मरन् ।। भ्रममाणस्ततोऽगच्छद्धिमाद्रि पर्वतोत्तमम् ।। २० ।। तत्रापश्यन्मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोधिनिम् ।। यस्यायुर्विद्यते राजन् ब्रह्मणो दिनसप्तकम् ।। २१ ।। आश्रमं स गतस्तस्य ऋषेर्ब्रह्मसदः समम् ।। ववन्दे चरणौ तस्य दूरतः पापकर्मकृत् ।। २२ ।। मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कुष्टिनं तदा ।। परोपकरणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ।। २३ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। कस्मात् कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरो ह्यसि ।। प्रत्युक्तः प्रत्युवाचाथ मार्कण्डेयेन धीमता ।। २४ ।। हेममाल्युवाच ।। यक्षराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः ।। मानसात्पुष्पनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ।। २५ ।। शिवपूजनवेलायां कुबेराय समर्पये ।। एकस्मिन् दिवसे काललोपश्च विहितो मया ।। २६ ।। पत्नी सौख्यप्रसक्तेन कामव्याकुलचेतसा ।। ततःक्रुद्धेन शप्तोऽहं राजराजेन वै मुने ।। २७ ।।

कुष्ठाभिभूतः संजातो वियुक्तः कान्तया सह ।। अधुना तव सान्निध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभकर्मणा ।। २८ ।। सतां स्वभावतश्चित्तं परोपकरणक्षमम् ।। इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठे शाधि मां च कृतैनसम् ।। २९ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। त्वया सत्यमिह प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः ।। अतो व्रतोपदेशं ते करिष्यामि शुभप्रदम् ।। ३० ।। आषाढे कृष्णपक्षे त्वं योगिनीव्रतमाचर ।। अस्य व्रतस्य पुण्येन कुष्ठात्त्वं मुच्यसे ध्रुवम् ।। ३१ ।। इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा दण्डवत्पतितो भुवि ।। उत्थापितश्च मुनिना बभूवातीव हर्षितः ।। ३२ ।। मार्कण्डेयोपदेशेन कृत तेन व्रतोत्तमम् ।। तद्व्रतस्य प्रभावेण देवरूपो बभूव सः ।। ३३ ।। संयोगं कान्तया लेभे बुभुजे सौख्यमुत्तमम् ।। ईदृग्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनीव्रतम् ।। ३४ ।। अष्टाशीतिसहस्राणि द्विजान् भोजयते तु यः ।। तत्फलं समवाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ।। ३५ ।। महापापप्रशमनी महापुण्यफलप्रदा ।। शुचिकृष्णैकादशी ते कथिता योगिनी नृप ।। ३६ ।। इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे आषाढकृष्णयोगिन्याख्यैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथाषाढ कृष्ण एकादशी---युधिष्ठिरजी बोले कि महाराज ! ज्येष्ठ शुक्ला निर्जला एकादशीका माहात्म्य श्रवण किया, अब आप आषाढकृष्ण एकादशीका क्या नाम होता है ? ।।१।। हे मधुसूदन ! यह आप प्रसन्न होकर मुझको वर्णन कीजिये । श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! व्रतोंमें उत्तम व्रतका वर्णन तुम्हारे सम्मुख कहताहूं ।।२।। सब पापोंको नाश करनेवाली मुक्ति और भुक्तिको देनेवाली आषाढके कृष्णपक्षमें 'योगिनी' नामकी एकादशी होती है ।।३।। हे राजश्रेष्ठ ! यह एकादशी संसाररूपी समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाजके समान और पापोंका नाश करनेवाली एवं सनातनी है ।।४।। हे नराधिप ! तीनों जगत्की साररूपा प्राचीन एवं पापहारिणी, इस योगिनी एकादशी कथाका में तुम्हें वर्णन करताहूं ।।५।। शिवपूजा करनेवाले अलका नगरीके स्वामी कुबेरके पास हेममाली नामका एक मालीका लडका था ।।६।। उसकी विशालाक्षी नामकी सुन्दर स्त्री थी । वह कामदेवके वशीभूत होकर उसमें बडा स्नेह रखता था ।।७।। वह एकदिन मानस सरोवरसे पुष्प लाकर अपनी पत्नीके प्रेमसे फँसकर घरपर ही रहगया और अपने स्वामी कुबेरके स्थानपर न गया ।।८।। हे राजन् ! कुबेर उस समय देवालयमें बैठकर शिवजीकी पूजा करता था । मध्याह्नका समय हो गया था, पर पुष्प नहीं आये थे । इस कारण उनको पूरी प्रतीक्षा थी ।।९।। हेममाली जिसको कि, पुष्प लानेके लिए कहा गया था, घरपर अपनी स्त्रीसे भोग कर रहा था । तब यक्षराजने कालातिक्रम होनेके कारण कुपित होकर यह कहा ।।१०।। कि, हे यक्षो ! वह दुष्ट हेममाली आज क्यों नहीं आया ! जाकर इसका निश्चय करो, यह एकही बार नहीं कई बार कहा ।।११।। यक्षोंने जवाब दिया कि, हे राजन् ! वह तो अपने घर अपनी कान्ताके संग स्वेच्छापूर्वक रमणकर रहा है ! उसने यह सुन कुपित होकर ।।१२।। उस फूल लानेवाले मालीके लडके हेममालीको तुरतही बुलाया और वहभी देरी हो जानेमे डरके मारे कांपने लगा ।।१३।। उसने आकर कुवेरसे प्रणाम किया और सामने बैठ गया । उसको देखकर कुबेरके क्रोधसे लाल नेत्र होगये ।।१४।। क्रोधावेशमें आने के कारण कांपने लगे और यह वचन कहे कि, हे दुष्ट ! बदमाश तूने देवापमान किया है ।।१५।। इसलिये जा, तुम्हें श्वेत कुष्ठ होकर सदा स्त्रीका वियोग होगा ।तू इस स्थानसे गिरकर अधमस्थानम चलाजा ।।१६।। ऐसा कहते ही वह उस स्थानसे गिरगया । बडा दुःखी हुआ और कुष्ठसे सारा शरीर बिगड़ गया ।।१७।। भयंकर वनमें न उसे पानी मिलता था और न भोजन । दिनमें न सुख मिलता था और न रातमें नींदही प्राप्त होती थी ।।१८।। छाया और धूपमें अत्यन्त कष्ट पानेपरभी शिवपूजाके प्रभावसे उसे अपनी पूर्वस्मृति लुप्त न हुयी ।।१९।। पापाभिभूत होकर भी उसे अपने पूर्वकर्मका स्मरण था । इसलिये भ्रमण करते करते वह पर्वतराज हिमालयमें

जा पहुंचा ।।२०।। वहां उसने तपोनिधि मुनिराज मार्कण्डेयजीको देखा ! जिसकी कि, आयु हे राजन् ! ब्रह्माके सात दिन पर्यन्त है ।।२१।। वह उस मुनिराजके उस आश्रमपर गया जो ब्रह्मसभाके समान था। उस पापीने दूरसेही उनके चरणोंमें प्रणाम किया ।।२२।। तब महाराज मार्कण्डेयजीने उसे दूरसेही देखकर परोपकार करनेकी इच्छासे बुलाकर यह कहा ।।२३।। कि, क्यों भाई ! तुम्हें यह कुष्ठ क्यों है और किस लिए तू अत्यन्त निन्दनीय हुआ है ? इसप्रकार उनके वचन सुनकर उसने उत्तर दिया ।।२४।। कि, महाराज ! मेरा नाम हेममाली है, मैं कुबेरका नौकर हूं । हे मुने ! मैं नित्य मानसरोवरसे पुष्प लाकर ।।२५।। शिवजी की पूजाके समय कुबेरको अर्पण किया करता था । लेकिन एक दिन मैंने देर करदी।।२६।। कामाकुल होकर स्त्रीसङ्ग करता रहा, उसका सुख लेता रहगया । तब स्वामीने कुपित होकर, हे मुने ! मुझे शाप दे दिया है ।।२७।। अब इसी कारण में कुष्ठसे कष्ट पारहाहूं और स्त्रीसे भी वियुक्त हूं । अब आपके निकट किसी शुभकर्मसे यहां आपके समीप आ उपस्थित हुआ हूं ।।२८।। सज्जनोंका स्वभावही परोपकार करनेका होता है, इसलिए आप मुझे ऐसा जान कर इस पापका प्रायश्चित बतलाइये ।।२९।। मार्कंडेयजी बोले कि, तुमने सत्य कहा; मिथ्याभाषण नहीं किया है । इसलिये मैं तुमें शुभके देनेवाले एक सुंदर व्रतका उपदेश करूंगा ।।३०।। आषाढ कृष्णपक्षमें तू योगिनीका व्रतकर । इस व्रतके पुण्यसे तुम कुष्ठमे मुक्त हो जाओगे इसमें सन्देह मत करना ।।३१।। मुनिके इन वचनोंको सुन उसने पृथिवीपर दण्डवत् प्रणाम किया मुनिने उसे उठाया तब उसे बडा हर्ष हुआ ।।३२।। मार्कण्डेयजीके उपदेशसे उसने यह उत्तम व्रत किया और उस व्रतके प्रभावसे उसको दिव्यरूप प्राप्त होगया ।।३३।। स्त्रीका संयोग उत्तम सुख प्राप्त हुआ, जिससे वह सुखी होगया । हे राजन् ! इस प्रकार योगिनीका उत्तम व्रत वर्णन किया ।।३४।। अस्सी हजार ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो फल मिलता है वही फल इस योगिनीके व्रतसे मिलता है ।।३५।। बडे बडे पापोंका नाश करनेवाली और बडा पुण्य फल देनेवाली है । हे राजन् ! इस प्रकार आपको यह आषाढ-कृष्ण एकादशी का वर्णन करदिया है ।।३६।। यह श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी कही हुई आषाढकृष्ण योगिनी-नामक एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथाषाढशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। आषाढस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। को देवः को विधिस्तस्या एतदाख्याहि केशव ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम् ।। कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महात्मने ।। २ ।। नारद उवाच ।। कथयस्व प्रसादेन विष्णोराराधनाय मे ।। आषाढशुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। ३ ।। ब्रह्मोवाच ।। वैष्णवोसिऽ मुनि श्रेष्ठ साधु पृष्टं कलिप्रिय ।। नातः परपरं लोके पवित्रं हरिवासरात् ।। ४ ।। कर्तव्यं तु प्रयत्नेन सर्वपापापनुत्तये ।। तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि शुक्ल एकादशीव्रतम् ।। ५ ।। एकादश्या व्रतं पुण्यं पापघ्नं सर्वकामदम् ।। न कृतं यैर्नरैर्लोके ते नरा निरयैषिणः ।। ६ ।। पद्मानामेति विख्याता शुचौ ह्येकादशी सिता ।। हृषीकेशप्रीतये तु कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।। ७ ।। कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं शुभाम् ।। यस्याः श्रवमात्रेण महापापं प्रणश्यति ।। ८ ।। मान्धाता नाम राजर्षिविवस्वद्वंशसम्भवः ।। बभूव चक्रवर्ती स सत्यसन्धः प्रतापवान् ।। ९ ।। धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।। न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ।। १० ।। निरातंकाः प्रजास्तस्य धनधान्यसमन्विताः ।। नान्यायोपार्जितं द्रव्यं कोशे तस्य महीपतेः ।। ११ ।। तस्यैवं कुर्वतो

राज्यं बहुवर्षगणो गतः ।। अथो कदाचित्संप्राप्ते विपाके पापकर्मणः ।। १२ ।। वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकः ।। तेनोद्विग्नाः प्रजास्तत्र बभूवुः क्षुधयार्दिताः ।। १३ ।। स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययनवर्जिताः ।। बभूवुर्विषयास्तस्य सस्या-भावेन पीडिताः ।। १४ ।। अथ प्रजाः समागत्य राजानमिदमब्रुवन् ।। श्रूयतां वचनं राजन् प्रजानां हितकारकम् ।। १५ ।। आपो नारा इति प्रोक्ताः पुराणेषु मनी-षिभिः ।। अयनं ता भवगतस्तेन नारायणः स्मृतः ।। १६ ।। पर्जन्यरूपो भगवा-न्विष्णुः सर्वगतः सदा ।। स एव कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।। १७ ।। तदभावेन नृपते क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः ।। तथा कुरु नृपश्रेष्ठ योगक्षेमो यथा भवेत् ।। १८ ।। राजोवाच ।। सत्यमुक्तं भवद्भिश्च न मिथ्याभिहितं वचः ।। अन्नं ब्रह्ममयं प्रोक्तमन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।। १९ ।। अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते ।। इत्येवं श्रूयते लोके पुराणे बहुविस्तरे ।। २० ।। नृपाणामपाचारेण प्रजानां पीडनं भवेत् ।। नाहं पश्याम्यात्मकृतं दोषं बुद्ध्या विचारयन् ।। २१ ।। तथापि प्रयतिष्यामि प्रजानां हितकाम्यया ।। इति कृत्वा मतिं राजा परिमेयबलान्वितः ।। २२ ।। नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं वनम् ।। चचारि मुनिमुख्यानामाश्रमांस्तपसैधितान् ।। २३ ।। ददशार्थ ब्रह्मसुतमृषिमङ्गिरसं नृपः ।। तेजसा द्योतितदिशं द्वितीयमिव पद्मजम् ।। २४ ।। तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा अवतीर्य च वाहनात् ।। नमश्चक्रेऽस्य चरणौ कृताञ्जलिपुटो वशी ।। २५ ।। मुनिस्तमभिनन्द्याथ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः ।। २६ ।। निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छाना-मयं नृपः ।। ततश्च मुनिना राजा पृष्टागमनकारणः ।। २७ ।। अब्रवीन्मुनिशार्दूलं स्वस्यागमनकारणम् ।। राजोवाच ।। भगवन् धर्मविधिना मम पालयतो महीम् ।। अनावृष्टिः संप्रवृत्ता नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ।। २८ ।। संशयच्छेदनार्थेऽत्र ह्यागतोऽहं तवान्तिकम् ।। योगक्षेमविधानेन प्रजानां निर्वृतिं कुरु ।। २९ ।। ऋषिरुवाच ।। एतत्कृतयुगं राजन् युगानामुत्तमं स्मृतम् ।। अत्र ब्रह्मोत्तरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः ।। ३० ।। अस्मिन्युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः ।। विषये तव राजेन्द्र वृषलो यत्तपस्यति ।। ३१ ।। अकार्यकरणात्तस्य न वर्षति बलाहकः ।। कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यप्ति ।। ३२ ।। राजोवाच ।। नाहमेनं वधिष्यामि तपस्य-न्तमनागसम् ।। धर्मोपदेशं कथय उपसर्गविनाशने ।। ३३ ।। ऋषिरुवाच ।। यद्येवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकादशीव्रतम् ।। शुचिमासे सिते पक्षे पद्मानामेति विश्रुता ।। ३४ ।। तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम् ।। सर्वसिद्धिप्रदा ह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी ।। ३५ ।। अस्या व्रतं कुरु नृप सप्रजः सपरिच्छदः ।। इति

वाक्यं मुनेः श्रुत्वा राजा स्वगृहमागतः ।। ३६ ।। आषाढमासे संप्राप्ते पद्माव्रतमथाकरोत् ।। प्रजाभिः सह सर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसमन्वितः ।। ३७ ।। एवं कृते व्रते राजन्प्रववर्ष बलाहकः । जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यमालिनी ।। ३८ ।। हृषीकेशप्रसादेन जनाः सौख्यं प्रपेदिरे ।। एतस्मात्कारणादेव कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।। ३९ ।। भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव लोकानां सुखदायकम् ।। पठनाच्छ्रवणादस्याः सर्व पापैःप्रमुच्यते ।। ४० ।। इति श्रीव्र० आषाढशुक्लपद्माख्यैकादशीव्रतमाहात्म्यम् ।। इयमेव शयन्याख्या ।। एतस्यां विष्णुशयनव्रत चातुर्मास्यव्रतग्रहणं चोक्तं भविष्ये ।। कृष्ण उवाच ।। इयमेकादशी राजञ्छयनीत्यभिधीयते ।। विष्णोः प्रसादसिद्धयर्थमस्यां च शयनव्रतम् ।। १ ।। कर्तव्यं राजशार्दूल जनैर्मोक्षेच्छुभिः सदा ।। चातुर्मास्यव्रतारम्भोऽप्यस्यामेव विधीयते ।। २ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कथं कृष्ण प्रकर्तव्यं श्रीविष्णोः शयनव्रतम् ।। तद्ब्रूहि कृपया देव चातुर्मास्यव्रतानि च ।। ३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्दशयनव्रतम् ।। चातुर्मास्ये च यान्युक्तान्यासंस्तानि व्रतानि च ।। ४ ।। कर्कराशिगते सूर्ये शुचौशुक्ले तु पक्षके ।। एकादश्यां जगन्नाथं स्वापयेन्मधुसूदनम् ।।५।। तुलाराशिस्थिते तस्मिन् पुनरुत्थापयेद्धरिम् ।। आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।। ६ ।। चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत नियमं ततः ।। स्थापयेत् प्रतिमां विष्णो शंखचक्रगदाधरम् ।। ७ ।। पीताम्बरधरां सौम्यां पर्यंके वै सिते शुभे ।। सितवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ।। ८ ।। इतिहासपुराणज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ।। स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रसिताजलैः ।। ९ ।। समालेप्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भूरिशः ।। पूजयेत्कुसुमैः शस्तैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव ।। १० ।। सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं चराचरम् ।। विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम् ।। ११ ।। एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा युधिष्ठिर ।। प्रभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटो नरः ।। १२ ।। चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ।। ग्रहीष्ये नियमाञ्छुद्धान्निर्विघ्नान्कुरु मे प्रभो ।। १३ ।। इति संप्रार्थ्य देवेशं प्रह्वः संशुद्धमानसः ।। स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं च धृतव्रतः ।। १४ ।। गृह्णीयान्नियमानेतान् दन्तधावनपूर्वकम् ।। व्रतप्रारम्भकालास्तु प्रोक्ताः पञ्चैव विष्णुना ।। १५ ।। एकादशी द्वादशी च पौर्णिमा च तथाष्टमी ।। कर्कटाख्या च संक्रान्तिस्तेषु कु'र्याद्यथाविधि ।। १६ ।। चतुर्धा गृह्य वै चीर्ण चातुर्मास्यव्रतं नरः ।। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ।। १७ ।। नगोशवे च मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः ।। खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः ।। १८ ।। अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदिवा

१ प्रारंभमिति शेषः ।

पुमान् ।। व्रतमेकं नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः।। १९ ।। प्रतिवर्षं तु यः कुर्याद्व्रतं वै संस्मरन् हरिम् ।। देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कतेजसा ।। २० ।। मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम् ।। तेषां फलानि वक्ष्यामि कर्तॄणां तु पृथक्पृथक् ।। २१ ।। देवतायतने नित्यं मार्जनं जलसेचनम् ।। प्रलेपनं गोमयेन रङ्गवल्ल्यादिकं तथा ।। २२ ।। यः करोति नरश्रेष्ठश्चातुर्मास्यमतन्द्रितः । समाप्तौ च यथाशक्त्या कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।। २३ ।। सप्तजन्मसु विप्रेन्द्रः सत्यधर्मपरो भवेत् ।। दध्ना क्षीरेण चाज्येन क्षौद्रेण सितया तथा ।। २४ ।। स्नापयेद्विधिना देवं चातुर्मास्ये जनाधिप ।। स याति विष्णुसारूप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते ।। २५ ।। नृपो भूमिं प्रदद्याद्यो यथाशक्त्या च काञ्चनम् ।। विप्राय देवमुद्दिश्य सफलं च सदक्षिणम् ।। २६ ।। अक्षयान् लभते भोगान् स्वर्ग इन्द्र इवापरः ।। लोकं स समवाप्नोति विष्णोरत्र न संशयः ।। २७ ।। देवाय हेमपद्मं तु दद्यान्नैवेद्यसंयुतम् ।। गन्धपुष्पाक्षताद्यैर्यो देवब्राह्मणयोरपि ।। २८ ।। पूजां यः कुरुते नित्यं चातुर्मास्ये व्रती नरः ।। अक्षयं सुखमाप्नोति पुरन्दरपुरं व्रजेत् ।। २९ ।। यस्तु वै चतुरो मासांस्तुलस्या हरिमर्चयेत् ।। तुलसीं काञ्चनीं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। ३० ।। काञ्चनेन विमानेन वैष्णवी लभते गतिम् ।। देवाय गुग्गुलुं यो वै दीपं चार्पयते नरः ।। ३१ ।। समाप्तौ धूपिकां दद्याद्दीपिकां च महामते ।। स भोगी जायते श्रीमांस्तथा सौभाग्यवानपि ।। ३२ ।। प्रदक्षिणास्तु यः कुर्यान्नमस्कारान्विशेषतः ।।। अश्वत्थस्याथवा विष्णोः कार्तिक्यवधि स ध्रुवम् ।। ३३ ।। विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।। संध्यादीपप्रदो यस्तु प्राङ्गणे द्विजदेवयोः ।। ३४ ।। समाप्तौ दीपिकां दद्याद्वस्त्रं चैकं च काञ्चनम् ।। वैकुण्ठं समवाप्नोति तेजस्वी स भवेदिह ।। ३५ ।। विष्णुपादोदकं यस्तु पिबेच्छ्राद्धासमन्वितः ।। विष्णोर्लोकमवाप्नोति न चास्मिञ्जायते नरः ।। ३६ ।। शतमष्टोत्तरं यस्तु गायत्रीजपमाचरेत् ।। त्रिकालं वैष्णवे हर्म्ये न स पापेन लिप्यते ।। ३७ ।। पुराणं शृणुयान्नित्यं धर्मशास्त्रनथापि वा ।। काञ्चनेन युतं वस्त्रं पुस्तकं च निवेदयेत् ।।३८।। पुण्यवान् धनवान्भोगी सत्यशौचपरायणः ।। ज्ञानवाँल्लोकविख्यातो बहुशिष्यः सुधार्मिकः[1] ।। ३९ ।। [2]नाममन्त्रव्रतपरः शम्भोर्वा केशवस्य च ।। समाप्तौ प्रतिमां दद्यात्तस्य देवस्य काञ्चनीम् ।। ४० ।। पुण्यवान् दोषनिर्मुक्तः स भवेच्च गुणालयः ।। कृतनित्यक्रियो भूत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।। ४१ ।। सूर्यमण्डलमध्यस्थं देवं ध्यात्वा जनार्दनम् ।। समाप्तौ काञ्चनं दद्याद्रक्तवस्त्रं च गां

१ भवतीति शेषः । २ चातुर्मास्येति शेषः ।

तथा ।। ४२ ।। आरोग्यं पूर्णमायुश्च कीर्ति लक्ष्मीं बलं लभेत् ।। तिलहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये दिनेदिने ।। ४३ ।। भक्त्या व्याहृतिभिर्मंत्रैर्गायत्र्या वा व्रतान्वितः ।। अष्टोत्तरशतं चाथ अष्टाविंशतिमेव वा ।। ४४ ।। तिलपात्रं समाप्तौ तु दद्याद्विप्राय धीमते ।। वाङ्मनःकायजनितैः पापैर्मुच्येत् सञ्चितैः ।। ४५ ।। न रोगैरभिभूयेत लभेत्संततिमुत्तमाम् ।। अन्नहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः ।। ४६ ।। समाप्तौ घृतकुम्भं तु दद्यात्सवस्त्रकाञ्चनम् ।। आरोग्यं कान्तिमतुलां पुत्रसौभाग्यसम्पदः ।। ४७ ।। शत्रुक्षयं च लभते ब्रह्मणा प्रतिमो भवेत् ।। अश्वत्थसेवां यः कुर्यात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ४८ ।। विष्णुभक्तो भवेत्पश्चादन्ते वस्त्रं प्रदापयेत् ।। सकाञ्चनं ब्राह्मणायाथ नैव रोगान् स विन्दते ।। ४९ ।। तुलसीं धारयेद्यस्तु विष्णुप्रीतिकरां शुभाम् ।। विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ५० ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्विष्णुमुद्दिश्य पाण्डव ।। यस्तु सुप्ते हृषीकेशे दूर्वामृतसंभवाम् ।। ५१ ।। सदा प्रातर्वहेन्मूर्ध्नि त्वं दूर्वे इति मंत्रतः ।। व्रतान्ते च कुरुश्रेष्ठ दूर्वां स्वर्णविनिर्मिताम् ।। ५२ ।। दद्याद् दक्षिणया सार्द्धं मंत्रेणानेन सुव्रत ।। यथाशाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ।। ५३ ।। तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम् ।। नाशुभं प्राप्नुयाज्जातु पापेभ्यः प्रविमुच्यते ।। ५४ ।। भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् स्वर्गलोके महीयते ।। गीतं तु देवदेवस्य केशवस्य शिवस्य वा ।। ५५ ।। करोति पुरतो नित्यं जागृतैः फलमाप्नुयात् ।। चातुर्मास्यव्रती दद्याद् घण्टां देवाय सुस्वराम् ।। ५६ ।। सरस्वति जगन्नाथे जगज्जाड्यापहारिणि ।। साक्षाद्ब्रह्मकलत्रं च विष्णुरुद्रादिभिः स्तुता ।। ५७ ।। गुरोरवज्ञया यच्चानध्यायेऽध्ययनं कृतम् ।। तन्ममाध्ययनोत्पन्नं जाड्यं हर वरानने ।। ५८ ।। घण्टादानेन तुष्टा त्वं ब्रह्माणी लोकपावनी ।। विप्रपादविनिर्मुक्तं तोयं यःप्रत्यहं पिबेत् ।। ५९ ।। चातुर्मास्ये नरो भक्त्या मद्रूपं ब्राह्मणं स्मरन् ।। मनोवाक्कायजनितैर्मुक्तो भवति किल्बिषैः ।। ६० ।। व्याधिभिर्नाभिभूयेत श्रीरायुस्तस्य वर्द्धते ।। समाप्तौ गोयुगं दद्याद्गामेकां वा पयस्विनीम् ।। ६१ ।। तत्राप्यशक्तौ राजेन्द्र दद्याद्वासोयुगं व्रती ।। ब्राह्मणं वन्दते यस्तु सर्वदेवमयं श्रुतम् ।। ६२ ।। कृतकृत्यो भवेत्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। समाप्तौ भोजयेद्विप्रानायुर्वित्तं च विन्दति ।। ६३ ।। संस्पृशेत्कपिलां यो वै नित्यं भक्तिसमन्वितः ।। तामेवालंकृतां दद्यात्सवत्सां दक्षिणायुताम् ।। ६४ ।। सार्वभौमो भवेद्राजा दीर्घायुश्च प्रतापवान् ।। स वसदिन्द्रवत्स्वर्गे वत्सरान् रोमसंमितान् ।। ६५ ।। नमस्करोति यः सूर्यं गणेशं वापि नित्यशः ।। आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते कान्तिमुत्तमाम् ।। ६६ ।। विघ्नराजप्रसादेन प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ।। सर्वत्र विजयं चैव नात्र कार्या विचारणा ।। ६७ ।। विघ्नेशार्कौ सुवर्णस्य सिन्दूरा

रुणसन्निभौ ।। निवेदयेद्ब्राह्मणाय सर्वकामार्थसिद्धये ।। ६८ ।। यस्तु रौप्यं शिवप्रीत्यै दद्याद्भक्त्या ऋतुद्वये ।। ताम्रं वा प्रत्यहं दद्यात्स्वशक्त्या शिवतुष्टये ।। ६९ ।। सुरूपाँल्लभते पुत्रान् रुद्रभक्तिपरायणान् ।। समाप्तौ मधुपूर्णं तु पात्रं राजतमुत्तमम् ।। ७० ।। प्रदद्यात्ताम्रदाने तु ताम्रपात्रं गुडान्वितम् ।। यस्तु सुप्ते हृषीकेश स्वर्णं दद्यात् स्वशक्तितः ।। ७१ ।। वस्त्रयुग्मतिलैः सार्द्धं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। इह भुक्त्वा महाभोगानन्ते शिवपुरं व्रजेत् ।। ७२ ।। वस्त्रदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये द्विजाये ।। अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्विष्णुर्मे प्रीयतामिति ।। ७३ ।। शय्यां दद्यात्समाप्तौ तु वासः काञ्चनपट्टिकाम् ।। अक्षय्यं सुखमाप्नोति धनं स धनदोपमम् ।। ७४ ।। यो गोपीचन्दनं दद्यान्नित्यं वर्षासु मानवः ।। श्रीपतिस्तस्य संतुष्टो भुक्ति मुक्ति ददाति च ।। ७५ ।। समाप्तावपि तद्दद्यात्तुलापरिमितं शुभम् ।। तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा सवस्त्रं च सदक्षिणम् ।। ७६ ।। यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु व्रतान्विततः ।। दद्याद् दक्षिणया सार्द्धं शर्करामथवा गुडम् ।। ७७ ।। एवं व्रते तु संपूर्णे कुर्वन्नुद्यापनं बुधः ।। प्रत्येकं ताम्रपात्राणि पलाष्टकमितानि तु ।। ७८ ।। वित्त शाठ्यमकुर्वाणश्चतुष्पलमितानि वा ।। अष्टचत्वारि चैकं वा शर्करापूरितानि च ।। ७९ ।। दक्षिणाफलवासोभिः प्रत्येकं संयुतानिच ।। सह धान्यानि विप्रेभ्यः श्रद्धया प्रतिपादयेत् ।। ८० ।। ताम्रपात्रं सवस्त्रं च शर्कराहेमसंयुतम् ।। सूर्यप्रीतिकरं यस्माद्रोगघ्नं पापनाशनम् ।। ८१ ।। पुष्टिदंकीर्तिदं नृणां नित्यं सन्तानकारकम् ।। सर्वकामप्रदं स्वर्ग्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ।। ८२ ।। तस्मादस्य प्रदानेन कीर्तिरस्तु सदा मम ।। एवं व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ।। ८३ ।। गन्धर्वविद्यासंपन्नः सर्वयोषित्प्रियो भवेत्।।राजापि लभते राज्यं पुत्रार्थी लभतेसुतान् ।। ।। ८४ ।। अर्थार्थी प्राप्नुयादर्थं निष्कामो मोक्षामाप्नुयात् ।। यस्तु वै चतुरो मासाञ्छाकमूलफलादिकम् ।। ८५ ।। नित्यं ददाति विप्रेभ्यः शक्त्या यत्संभवेन्नृप ।। व्रतान्ते वस्त्रयुग्मं च शक्त्या दद्यात्सदक्षिणम् ।। ८६ ।। सुखीभूत्वा चिरं कालं राजयोगी भवेन्नरः ।। सर्वदेवप्रियं यस्माच्छाकं तृप्तिकरं नृणाम् ।। ८७ ।। ददामि तेन देवाद्याः सदा कुर्वन्तु मङ्गलम् ।। यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु ऋतुद्वये ।। ८८ ।। दद्यात्कटुत्रयं मर्त्यो गृहपर्याप्तमादरात् ।। ब्राह्मणाय सुशीलाय दिनेशप्रीतयेऽनघ ।। ८९ ।। दक्षिणावस्त्रसहितं मन्त्रेणानेन सुव्रत ।। कटुत्रयमिदं यस्माद्रोगघ्नं सर्वदेहिनाम् ।। ९० ।। तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु भास्करः।। एवं कृत्वा व्रतं सम्यक्कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। ९१ ।। कृत्वा स्वर्णमयीं शुण्ठीं मरीचं मागधीमपि ।। सवस्त्रां दक्षिणायुक्तां दद्याद्विप्राय धीमते ।। ९२ ।। एवं व्रतं यः कुरुते स जीवेच्छरदां शतम् ।। प्राप्नुयादीप्सितानर्थानन्ते स्वर्गं व्रजेन्नृप ।। ९३ ।।

मुक्ताफलानि यो दद्यान्नित्यं विप्राय सन्मतिः ।। अन्नवान्कीर्तिमाञ्छ्रीमाञ्जायते वसुधाधिप ।। ९४ ।। ताम्बूलदानं यः कुर्याद्वर्जयेद्वा जितेन्द्रियः ।। रक्तवस्त्रद्वयं दद्यात्समाप्तौ च सदक्षिणम् ।। ९५ ।। महालावण्यमाप्नोति सर्वरोगविवर्जितः ।। मेधावी सुभगः प्राज्ञो रक्तकण्ठश्च जायते ।। ९६ ।। गन्धर्वत्वमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ।। ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।। ९७ ।। अस्य प्रदानाद्ब्रह्माद्याः श्रियं ददतु पुष्कलाम् ।। चातुर्मासे प्रतिदिनं सुवासिन्यै द्विजाय च ।। ९८ ।। नारीवा पुरुषो वापि हरिद्रां संप्रयच्छति ।। लक्ष्मीमुद्दिश्य गौरीं वा समाप्तौ राजतं नवम् ।। ९९ ।। हरिद्रापूरितं कृत्वा तत्पात्रं दक्षिणान्वितम् ।। प्रदद्याद्भक्तिसंयुक्तं देवी मे प्रीयतामिति ।। १००।। भर्त्रा सह सुखं भुंक्ते नारी नार्या तथा पुमान् ।। सौभाग्यमक्षयं धान्यं धनपुत्रसमुद्भवम् ।। १ ।। संप्राप्य रूपलावण्ये देवी लोके महीयते ।। उमामहेशमुद्दिश्य चातुर्मास्ये दिने दिने ।। २ ।। सम्पूज्य विप्रमिथुनं तस्मै यश्च स्वशक्तितः दद्यात् सदक्षिणं हेम उमेशः प्रीयतामिति ।। ३ ।। उमेशप्रतिमां हैमीं दद्यादुद्यापने बुधः ।। पञ्चोपचारैः सम्पूज्य धेन्वा च वृषभेण च ।। ४ ।। भोजयेदपि मिष्टान्नं तस्य पुण्यफलं शृणु ।। सम्पत्तिरक्षया कीर्तिर्जायते व्रतवैभवात् ।। ५ ।। इह भुक्त्वाखिलान्कामानन्ते शिवपुरं व्रजेत् ।। फलदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः ।। ६ ।। समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये ।। सर्वान्मनोरथान्प्राप्य संततिं चानपायिनीम् ।। ७ ।। फलदानस्य माहात्म्यान्मोदते नन्दने वने ।। पुष्पदानव्रते चापि स्वर्णपुष्पादि दापयेत् ।। ८ ।। स सौभाग्यं परं प्राप्य गन्धर्वपदमाप्नुयात् ।। वासुदेवे प्रसुप्ते तु चातुर्मास्य मतन्द्रितः ।। ९ ।। नित्यं वामनमुद्दिश्य दध्यन्नं स्वादु षड्रसैः ।। भोजयेदथवा दद्यादेकादश्यां न भोजयेत् ।। ११०।। दानमेव प्रकुर्वीत ग्रहणादौ तथैव च ।।अशक्तौ नित्यदाने तु कुर्यात्पञ्चसु पर्वसु ।। ११ ।। भूताष्टम्याममायां च पूर्णिमायां तथैव च ।। प्रत्यर्कवारमथवा प्रतिभार्गववासरम् ।। १२ ।। एवं कृत्वा समाप्तौ तु यथाशक्ति महीं ददेत् ।। अशक्तौ भूमिदाने तु धेनुं दद्यादलंकृताम् ।। १३ ।। तत्राप्यशक्तौ वासश्च सरुक्मे पादुके तथा ।। अक्षय्यमन्नमाप्नोति पुत्रपौत्रादिसम्पदम् ।। १४ ।। सुस्थिरां विष्णुभक्तिं च प्रयाति हरिमन्दिरम् ।। नित्यं पयस्विनीं दद्यात्सालङ्कारां शुभावहाम् ।। १५ ।। सवत्सां दक्षिणोपेतां स सर्वज्ञानवान् भवेत् ।। न परप्रेष्यतां याति ब्रह्मलोकं च गच्छति ।। १६ ।। अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभिः सहितो नरः ।। वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्राजापत्यं चरेन्नरः ।। १७ ।। समाप्तौ गोयुगं दत्त्वा कृत्वा ब्राह्मणभोजनम

।। सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ।। १८ ।। एकान्तरोपवासे तु सीराण्यष्टौ प्रदापयेत् ।। वस्त्रकाञ्चनयुक्तानि बलीवर्दयुतानि च ।। १९ ।। अनडुद्द्वयसंयुक्तं लाङ्गलं कर्षणक्षमम् ।। सर्वोपस्करसंयुक्तं ददामि प्रीतये हरेः ।। ।। १२० ।। शाकमूलफलैर्वापि चातुर्मास्यं नयेन्नरः ।। समाप्तौ गोप्रदानेन स गच्छेद्विष्णुमन्दिरम् ।। २१ ।। पयोव्रती तथाप्नोति ब्रह्मलोकं सनातनम् ।। व्रतान्ते च तथा दद्याद्गामेकां च पयस्विनीम् ।। २२ ।। नित्यं रम्भापलाशे च ये भुंक्ते तु ऋतुद्वये ।। वस्त्रयुग्मं च कांस्यं च शक्त्या दत्त्वा सुखी भवेत् ।। २३ ।। कांस्यं ब्रह्मा शिवो लक्ष्मीः कांस्यमेव विभावसुः ।। कांस्यं विष्णुमयं यस्मादतः शान्ति प्रयच्छ मे ।। २४ ।। नित्यं पलाशभोजी चेत्तैलाभ्यङ्गविवर्जितः ।। स निहन्त्यतिपापानि तूलराशिमिवानलः ।। २५ ।। ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च बालघातकरश्च यः । असत्यवादिनो ये च स्त्रीघातिव्रतघातकाः ।। २६ ।। अगम्यागामिनश्चैव विधवागामिनस्तथा ।। चाण्डालीगामिनश्चैव विप्रस्त्रीगामिनस्तथा ।। २७ ।। ते सर्वे पापनिर्मुक्ता भवन्त्येतद्व्रतेन च ।। समाप्तौ कांस्यपात्रं तु चतुःषष्टिपलैर्युतम् ।। २८ ।। सवत्सां गां च वैदद्यात्सालङ्कारां पयस्विनीम् ।। अलंकृताय विदुषे सुवस्त्राय सुवेषिणे ।। २९ ।। भूमौ विलीप्य यो भुंक्त देवं नारायणं स्मरन् ।। दद्याद्भूमिं यथाशक्ति [1]कृष्यां बहुजलान्विताम् ।। १३० ।। आरोग्य पुत्रसंपन्नो राजा भवति धार्मिकः ।। शत्रोर्भयं न लभते विष्णुलोकं स गच्छति ।। ।। ३१ ।। अयाचिते त्वनड्वाहं सहिरण्यं सचन्दनम् ।। षड्रसं भोजनं दद्यात्स याति परमां गतिम् ।। ३२ ।। यस्तुसुप्ते हृषीकेशे नक्तं च कुरुते व्रतम् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छिवलोके महीयते ।। ३३ ।। एकभक्तं नरः कृत्वा मिताशी च दृढव्रतः ।। योऽर्च्चयेच्चतुरो मासान्वासुदेवं स नाकभाक् ।। ३४ ।। समाप्तौ भोजयेद्विप्राञ्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।। यस्तु सुप्ते हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः ।। ३५ ।। शय्यां सोपस्करां दद्याच्छिवलोके महीयते ।। पादाभ्यङ्गं नरो यस्तु वर्जयेच्च ऋतुद्वये ।। ३६ ।। समाप्तौ च यथाशक्ति कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।। दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या स गच्छेद्विष्णुमन्दिरम् ।। ३७ ।। आषाढादिचतुर्मासान्वर्जयेन्नखकृन्तनम् ।। आरोग्यपुत्रसंपन्नो राजा भवति धार्मिकः ।। ३८ ।। पायसं लवणं चैव मधुसर्पिः फलानि च ।। चातुर्मास्ये वर्जयेद्यो गौरीशङ्करतुष्टये ।। ३९ ।। कार्तिक्यां च पुनस्तानि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। स रुद्रलोकमाप्नोति रुद्रव्रतनिषेवणात् ।। १४० ।। यवान्नं भक्षयेद्यस्तु शुभं शाल्यन्नमेव वा ।। पुत्रपौत्रादिभिः सार्द्धं शिवलोके महीयते ।। ४१ ।। तैलाभ्यङ्गपरित्यागी विष्णुभक्ताः

---

१ कृष्याम्—कृष्यै हिताम् ।

सदा व्रती ।। वर्षासु विष्णुमभ्यर्च्य वैष्णवीं लभते गतिम् ।। ४२ ।। समाप्तौ कांस्यपात्रं च सुवर्णेन समन्वितम् ।। तैलेन पूरितं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। ४३ ।। वार्षिकांश्चतुरो मासाञ्छाकानि परिवर्जयेत् ।। व्रतान्ते हरिमुद्दिश्य पात्रं राजतमेव हि ।।४४।। वस्त्रेण वेष्टितं *शाकं दशकेन प्रपूरितम् ।। समभ्यर्च्य यथाशक्त्या ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।। ४५ ।। तेभ्यो दद्याद्दक्षिणया व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः ।। ४६ ।। गोधूमवर्जनं कृत्वा भोजनव्रतमाचरेत् ।। कार्तिके स्वर्णगोधूमान् वस्त्रं दत्त्वाऽश्वमेधकृत् ।। ४७ ।। गोधूमाः सर्वजन्तूनां बलपुष्टिविवर्द्धनाः ।। मुख्याश्च हव्यकव्येषु तस्मान्मे ददतु श्रियम् ।। ४८ ।। आषाढादिचतुर्मासान्वृन्ताकं वर्जयेन्नरः ।। कारवेल्लफलं वापि तथालाबुं पटोलकम् ।। ४९ ।। यद्यत्फलं प्रियतरं तच्चापि परिवर्जयेत् ।। चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रौप्याण्येतानि कारयेत् ।। १५० ।। मध्ये विद्रुमयुक्तानि ह्यर्चयित्वा तु शक्तितः ।। दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं ब्राह्मणायातिभक्तितः ।। ५१ ।। अभिष्टं देवमुद्दिश्य देवो मे प्रीयतामिति ।। स दीर्घमायुरारोग्यं पुत्रपौत्रान्सुरूपताम् ।। ५२ ।। अक्षय्यां सन्ततिं कीर्तिं लब्ध्वा स्वर्गे महीयते ।। श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ।। ५३ ।। दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिक द्विदलं त्यजेत् ।। चत्वार्येतानि नित्यानि चातुराश्रमवर्तिनाम् ।। ५४ ।। कूष्माण्डंराजमाषांश्च मूलकं गृञ्जनं तथा ।। करमर्दं चेक्षुदण्डं चातुर्मास्ये त्यजन्नरः ।। ५५ ।। मसूरं बहुबीजं च वृन्ताकं चैव वर्जयेत् ।। नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ।। ५६ ।। विशेषाद्बदरीं धात्रीमलाबुं चिञ्चिणीं त्यजेत् ।। वार्षिकांश्चतुरो मासान्प्रसुप्ते च जनार्दने ।। ५७ ।। मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ।। अनृतौ वर्जयेद्भार्यामृतौ गच्छन्न दुष्यति ।।५८।। मधुवल्लीं च शिग्रुं च चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः ।। वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वोदुम्बरभिस्सटाः ।। ५९ ।। उदरे यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः ।। उपवासं तथा नक्तमेकभक्तमयाचितम् ।। १६० ।। अशक्तस्तु यथाकुर्यात्सायंप्रातरखण्डितम् ।। स्नानपूजादिकं यस्तु स नरो हरिलोकभाक् ।। ६१ ।। गीतवाद्यपरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात् ।। मधुत्यागी भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ।। ६२ ।। लभेच्च सन्ततिं दीर्घां पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम् ।। तैलस्य वर्जनाद्राजन् सुदर्शाङ्गः प्रजायते ।। ६३ ।। कौसुम्भतैलसन्त्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् ।। मधूकतैलत्यागाच्च सुसौभाग्यफलं लभेत् ।। ६४ ।। कटुतिक्ताम्लमधुरकषायलवणान् रसात् ।। वर्जयेत्स च वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयात्सदा ।। ६५ ।। पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत् ।। योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदवीमियात्

* मूलं पत्रं करीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम् । त्वक्पुष्पं कवच चेति शाकं दशविधं स्मृतम् ।।

।। ६६ ।। ताम्बूलवर्जनाद्रोगी सद्योमुक्तामयो भवेत् ।। पादाभ्यङ्गपरित्यागाच्छि-रोऽभ्यङ्गस्य पार्थिव ।। ६७ ।। दीप्तिमान्दीप्तकरणो यक्षद्रव्यपतिर्भवेत् ।। दधि-दुग्धपरित्यागी गोलोकं लभते नरः ।। ६८ ।। इन्द्रलोकमवाप्नोति स्थालीपाक-विवर्जनात्।। एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ।। ६९ ।। चतुरो वार्षिकान्मासा-सान्नखरोमाणि धारयेत् ।। कल्पस्थायी भवेद्राजन्स नरो नात्र संशयः ।। १७० ।। नमो नारायणायेति जपित्वानन्तकं फलम् ।। विष्णुपादाम्बुजस्पर्शात्कृत्यकृत्यो भवेन्नरः ।। ७१ ।। लक्षप्रदक्षिणाभिर्यः सेवते हरिमव्ययम् ।। हंसयुक्तविमानेन स याति वैष्णवीं पुरीम् ।। ७२ ।। त्रिरात्रभोजनत्यागान्मोदते दिवि देववत् ।। परान्नवर्जनाद्राजन्देवो वै मानुषो भवेत् ।। ७३ ।। प्राजापत्यं चरेद्यो वै चातुर्मा-स्ये व्रतं नरः ।। मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिरविधैर्नात्र संशयः ।। ७४ ।। तप्तकृच्छ्र ाति कृच्छ्राभ्यां यः क्षिपेच्छयनं हरेः ।। स याति परमं स्थानं पुनरावृत्ति वर्जितम् ।।७५।। चान्द्रायणेन यो राजन्क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ।। दिव्यदेहो भवेत्सोऽथ शिवलोकं च गच्छति ।। ७६ ।। चातुर्मास्ये नरो यो वै त्यजेदन्नादिभक्षणम् ।। स गच्छेद्धरि-सायुज्यं न भूयस्तु प्रजायते ।। ७७ ।। भिक्षाभोजी नरो यो हि स भवेद्वेदपारगः ।। पयोव्रतेन यो राजन्क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ।। ७८।। तस्य वंशसमुच्छेदः कदाचिन्नो-पपद्यते ।। पञ्चगव्याशनः पार्थ चान्द्रायणफलं लभेत् ।। ७९ ।। दिनत्रयं जलत्या-गान्न रोगैरभिभूयते ।। एवमादिव्रतैः पार्थ तुष्टिमायाति केशवः ।। १८० ।। दुग्धाब्धिवीचिशयने भगवाननन्तो यस्मिन्दिने स्वपिति चाथ विबुध्यते च ।। तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति च गतिं गरुडासनोऽसौ ।।१८१ ।। इति श्री भविष्यपुराणे विष्णोः शयन्येकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ।।

अथ आषाढ शुक्ला एकादशीकी कथा—युधिष्ठिरजी बोले कि, हे केशव ! आषाढ शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम और क्या विधि है ? उस दिन किस देवताकी पूजा होती है ! इसका आप वर्णन कीजिये ।।१।। कृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! ब्रह्माने महात्मा नारदको जिस आश्चर्यकारिणी कथाका उपदेश दिया था वही मैं आज तुम्हें कहताहूं ।।२।। नारदजी ब्रह्माजीसे बोले कि, विष्णुभगवान्के आराधनके लिये आषाढशुक्ला एकादशीका क्या नाम है ? इसका आप प्रसन्न होकर कथन कीजिये ।।३।। ब्रह्माजी बोले कि, हे—मुनिराज् ! आप वैष्णव हैं कलियुगमें प्राणियोंका हित करनेवाले हैं वा लडाई आपको ज्यादा प्यारी है इस लोकमें हरिवासरसे अधिक पवित्र और कोई दिन नहीं है ।।४।। सभी पापके नाश करनेके हेतु इसको प्रयत्नपूर्वक करें, इस कारण मैं तुम्हें शुक्लाएकादशीके व्रतका वर्णन करता हूं।।५।।एकादशीका व्रत पवित्र है पापनाशक और सब कामोंको पूर्ण करनेवाली है । जिन मनुष्योंने इसको नहीं किया वे सब नरकके जाने-वाले हैं ।।६।। आषाढकी इस एकादशीका नाम पद्मा है । इस उत्तम व्रतको भगवान्की प्राप्तिके वास्ते अवश्य करना चाहिये ।।७।। मैं तुम्हारे सामने इसकी पवित्र पौराणिक कथाको कहता हूं । जिसके सुनने मात्रसे महापाप नष्ट हो जाते हैं ।।८।। सूर्यवंशमें एक मान्धाता नामके राजर्षि उत्पन्न हुए थे । वे चक्रवर्ती सत्यप्रतिज्ञ और बडे प्रतापी थे ।।९।। उन्होंने अपनी प्रजाका औरस पुत्रोंकी भांति धर्मसे पालन किया था । उनके राज्यमें आधि व्याधि या दुर्भिक्ष कभी नहीं होता था ।।१०।। उसकी प्रजा निर्भय और धनधान्यसे

पूर्ण थी । उस राजाके कोषमें अन्यायसे उपार्जित किया हुआ द्रव्य नहीं था ।।११।। उसको इस प्रकार राज्य करते हुए अनेक वर्ष बीतगये परन्तु कभी पापकर्मके ककनेसे ।।१२।। उसके राज्यमें तीन वर्ष पर्यंत वृष्टि न हुई, इससे उसकी प्रजा भूख प्याससे व्याकुल होगई ।।१३।। धनधान्यके अभावसे उसकी प्रजा स्वाहा स्वधा और वषट्कार तथा वेदाध्ययनसे रहित हो रही थी ।।१४।। सब प्रजाने राजाके आगे जागर निवेदन किया और कहा कि, महाराज ! आप इस प्रजाहितकारी वचनको सुनिये ।। १५ ।। विद्वानलोग पुराणोंसे 'नारा' शब्दका अर्थ आप अर्थात् जल कहते हैं । जल भगवान्का स्थान है; इसलिये भगवान्का नाम 'नारा-यण' है ।। १६ ।। सर्वव्यापी भगवान् विष्णु पर्जन्य अर्थात् मेघरूप हैं । वही वृष्टि करते हैं । वृष्टिसे अन्न तथा अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है ।। १७ ।। उसके अभावसे प्रजाका विनाश होता है । इसलिये हे कुरुश्रेष्ठ ! ऐसा यत्न करो जिससे प्रजाका योगक्षेम हो ।। १८ ।। राजाने कहा कि, आप लोगोंने सत्य कहा है । मिथ्याभाषण नहीं किया । अन्न ब्रह्मका स्वरूप है और अन्नहीके अन्दर सब कुछ स्थिर होता है ।। १९ ।। अन्नसे भूत उत्पन्न होते हैं । अन्नहीसे सब जगत् रहता है । यह सब बात बडे बडे पुराणोंमें वर्णन की है ।। २० ।। राजाओंके दोषसे प्रजामें पीड़ा होती हैं पर मैं विचार करके भी अपने किये हुए दोषको नहीं जानता ।।२१।। तो भी प्रजाके हितके वास्ते यत्न करूंगा इस प्रकार विचार कर वह कुछ सेना ले ।। २२ ।। ब्राह्मणको नमस्कार कर जंगलमें चला गया और मुख्य मुख्य तपस्वी मुनियोंके आश्रममें भ्रमण करने लगा ।। २३ ।। उसने ब्रह्मपुत्र अंगिरस नामके ऋषिका दर्शन किया, जो दूसरे ब्रह्माकी भांति तेजसे सब दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ।। २४ ।। उनको देखकर राजा प्रसन्न हो घोडेसे उतर पडा । हाथ जोडकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया ।। २५ ।। मुनिजीने स्वस्तिवाचन पूर्वक उसका अभिनन्दन किया और राज्यके सप्तांगका कुशलक्षेम पूछा ।। २६ ।। राजाने अपना कुशल बताकर मुनिसे अनामय पूछा इसके बाद मुनिने राजाके आगमनका कारण पूछा ।। २७ ।। राजाने मुनिशार्दूलजीको अपने आनेका कारण निवेदन किया । राजाने कहा कि हे भगवन् ! धर्मविधिसे प्रजाका पालन करते हुए भी मेरे राज्यमें अनावृष्टिका दुःख है और इसका कारण कुछभी मेरी समझमें नहीं आता ।। २८ ।। महाराज ! इस संशयको दूर करनेके वास्ते मैं आप के निकट आया हूं । आप योगक्षेमके विधानसे प्रजाके इस दुःखकी शान्ति कीजिये ।। २९ ।। ऋषिजी बोले कि, हे राजन् ! यह सब युगोंसे उत्तम कृतयुग है । इसमें ब्राह्मण प्रधान वर्ण है । और चतुरपाद धर्म है ।। ३० ।। इस युगमें ब्राह्मणके अतिरिक्त और कोई तपस्या नहीं कर सकता पर तुम्हारे राज्यमें हे राजन् ! एक शूद्र तप करता है ।। ३१ ।। उसके इस अकर्मसे वर्षा नहीं होती । आप उसके वधका यत्न कीजिये जिससे दोष शान्त होजाय ।। ३२ ।। राजाने कहा कि, महाराज ! मैं उस निरपराध तप करते हुए व्यक्तिको नहीं मारना चाहता किन्तु इस दोषके नाशके वास्ते कोई धर्मका उचित उपदेश दीजिये ।। ३३ ।। ऋषिजी बोले कि, राजन् ! यदि ऐसीही बात है तो आप आषाढ शुक्लामें विख्यात 'पद्मा' नामकी एकादशीका व्रत कीजिये ।। ३४ ।। उसके व्रतके प्रभावसे आपके राज्यमें अवश्यही सुवृष्टि होगी । यह सब उपद्रवोंको नाश करनेवाली तथा सब सिद्धियोंको देनेवाली है ।। ३५ ।। हे राजन् ! इस दिन आप अपने सब परिवारके साथ अवश्य व्रत कीजिये । मुनिके इन वचनोंको सुनकर राजा अपने घर चला आया ।। ३६ ।। उसने अपनी सब प्रजाके और चारों वर्णोंके साथ आषाढ मासके प्राप्त होनेपर पद्मा नामकी एकादशीका व्रत किया ।। ३७ ।। हे राजन् ! इस प्रकार उस व्रतके करनेपर पृथ्वीपानीसे भरगई और सत्य सम्पन्न होगई ।। ३८ ।। भगवान्की कृपासे सब लोग सुखी होगये हे राजन् ! इसी कारणसे इस उत्तम व्रतको अवश्य करना चाहिये ।। ३९ ।। यह लोगोंको भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला है । इसके पढने तथा सुननेसे सभी पापोंसे मुक्त होजाता है ।। ४० ।। यह श्री ब्रह्माण्डपुराणकी कही हुई आषाढ शुक्ला 'पद्मा' एकादशीके व्रतके माहात्म्यकी कथा पूरी हुई ।।

शयनी–इसीको शयनी भी कहते हैं, उसी दिन विष्णु भगवान्के शयन करनेका व्रत तथा चातुर्मास्यके व्रतका ग्रहण लिया जाता है । यह भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है । कृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! यह एकादशी शयनी नामसे भी कही जाती है । विष्णुभगवान्को प्रसन्न करनेके हेतु इस दिन शयन व्रत किया जाता है ।।१।। हे राजन् ! इसी दिन मोक्षाभिलाषी मनुष्योंको चौमासेके व्रतका भी आरभ करना चाहिये ।। २ ।। युधिष्ठिर

जी बोले कि, हे श्रीकृष्णजी महाराज ! इस दिन आपके इस शयन व्रतको और चातुर्मास संबन्धी व्रतोंको किस प्रकार करना चाहिये ? यह आप कृपाकर वर्णन कीजिए ॥३॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे अर्जुन सुनो मैं तुम्हें गोविन्दशयनव्रतका तथा चातुर्मासमें किए जानेवाले दूसरे व्रतोंका भी उपदेश करता हूं ॥ ४ ॥ आषाढ मासके शुक्लपक्षमें जब कि, सूर्य कर्कराशिपर हों एकादशीके दिन भगवान् जगन्नाथको स्थापित करे ॥ ५ ॥ और सूर्यके तुलाराशिपर चले जानेके बाद विष्णुभगवान्‌के आषाढ शुक्ला एकादशीके दिन उपवास कर ॥६॥ चातुर्मास्यके व्रतोंको आरंभ करनेका नियम भी करे । शंख, चक्र, गदाधारी विष्णुकी प्रतिमाको विराजमान करे ॥ ७ ॥ हे युधिष्ठिर ! सुन्दर श्वेत पलंगपर पीताम्बर और सितवस्त्रधारी भगवान्‌की सुन्दर प्रतिमाको तकियोंके साथ विराजमान करे ॥ ८ ॥ इतिहास पुराण और वेदपारगामी ब्राह्मण दही, दूध, घी, शहद और मिश्रीके जलसे स्नान करावे ॥ ९ ॥ हे पांडव ! बढिया धूप, दीप और गन्धसे एवम् उत्तम पुष्पोंसे बारबार 'सुप्ते त्वयि' इस मन्त्रसे पूजनकरे कि, जगत्‌के स्वामी आपके सोनेपर यह संसार सोयासा होजाता है । यदि आप उठजाते हैं तो यह सब चर और अचर युत ससार प्रबुद्ध होजाता है॥१०॥११॥इस प्रकार हे युधिष्ठिर! उस प्रतिमाका पूजन कर उसके आगे हाथ जोड यह निवेदन करे ॥ १२ ॥ कि, हे प्रभो ! देव प्रबोधके चार महिनोंतक मैं पवित्र नियमोंका ग्रहण करूंगा, इसलिए आप उन्हें निर्विघ्न पूरा कर दीजिए ॥१३॥ इस प्रकार विनीत हो शुद्ध हृदयसे भगवान्‌की प्रार्थना करके मेरा भक्त चाहे स्त्री हो या पुरुष हो धर्मके वास्ते व्रतको धारण करे ॥ १४ ॥ दंतधावन करनेके बाद इस नियमोंको ग्रहण करे । भगवान् विष्णुने व्रत प्रारंभ करनेके पांच समय कहे हैं ॥ १५ ॥ एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा और अष्टमी तथा कर्ककी संक्रांति इन दिनोंके अन्दर यथाविधि पूजन करके व्रतका प्रारंभ करे ॥ १६ ॥ यह चार प्रकारके ग्रहण किया हुआ यह चातुर्मास व्रत कार्त्तिक शुक्ला द्वादशीके दिन समाप्त किया जाता है ॥ १७ ॥ चातुर्मास्यके व्रत प्रारम्भकी तिथिमें गुरुशुक्रके शैशव और मोढयका तथा तिथियोंके घटने बढनेका पहलेही विचार न कर लेना चाहिए ॥ १८ ॥ स्त्री या पुरुष पवित्र हो या अपवित्र एक भी व्रत करे तो वे सब पापोंसे मुक्त होजाते हैं ॥ १९ ॥ जो लोग प्रतिवर्ष हरिका स्मरण करके इस व्रतको करते हैं वे अन्तमें अत्यन्त तेजस्वी विमानके द्वारा ले जाये जाकर ॥ २० ॥ विष्णुलोकमें प्रलयपर्यंत आनन्द करते हैं । उन सब करनेवालोंके पृथक् पृथक् फलोंका श्रवण करो ॥ २१ ॥ जो उत्तम पुरुष देवालयमें सदाही जाकर उसकी शुद्धि, सिंचाई और गोबरसे लिपाई कर रंगवल्ली आदिसे सुन्दर श्रृंगार करता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार सावधानीसे जो चौमासे भर व्रतानुष्ठान करता रहता है, समाप्तिके दिन यथा शक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराता है ॥ २३ ॥ वह सात जन्मके अन्दर सत्यधर्मसेवी होता है ॥ दहीसे, दूधसे, घी, शहद और मिश्रीसे ॥ २४ ॥ विधिपूर्वक स्नान कराकर भगवान्‌की पूजा करे । इस प्रकार जो मनुष्य चातुर्मास्यके इस व्रतका, हे राजन् ! अनुष्ठान करता है वह विष्णुभगवान्‌के सारूप्यको पाकर अक्षय सुख भोग करता है ॥ २५ ॥ जो राजा अपनी यथा शक्ति भूमि और सुवर्णका दान देता है और ब्राह्मण के लिए और देवताके निमित्त फलमूलके साथ दक्षिणाभेंट करता है ॥ २६ ॥ वह स्वर्गमें दूसरे इन्द्रकी भांति- अक्षय भोग प्राप्त करता है और वह विष्णुके लोकमें निवास करता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ भगवान्‌को जो नैवेद्य संयुक्त सुवर्णका कमल अर्पण करे तथा जो गन्ध, पुष्प, अक्षतादिसे भगवान् और ब्राह्मण की पूजा करे ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य नित्य चातुर्मास्यके व्रतको कर भगवान्‌की पूजा करता है उसे अक्षय सुख मिलकर इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥ और जो चार महीनेतक तुलसीजीके दलको भगवान्‌के अर्पण करता है और सुवर्णकी तुलसी बनाकर ब्राह्मणके भेंट करता है ॥ ३० ॥ वह सुवर्णनिर्मित विमानसे विष्णुलोकमें निवास करता है और जो देवताके वास्ते गुग्गुलकी धूप तथा दीपक अर्पित करता है ॥ ३१ ॥ और समाप्तिमें धूपिया तथा दीपिया देता है वह हे महाबुद्धे । बडा श्रीमान्, सौभाग्यवान् और भोगवान् भी होता है ॥ ३२ ॥ जो विलशेष कर प्रदक्षिणा नमस्कार करता है तथा कार्त्तिककी एकादशीपर्यंत अश्वत्थ या विष्णु भगवान्‌के समीप इस प्रकार पूजा करता है वह निश्चय ॥ ३३ ॥ विष्णुलोकमें जाता है, यह सच है, इसमें सन्देह नहीं है, जो मनुष्य सन्ध्याके समय दीपकका दान करता है । यानी ब्राह्मण या भगवानके आंगनमें

उसे जगाकर रखता है ।। ३४ ।। समाप्तिमें दीपक और वस्त्र और सोना दान करता है वह निश्चयही विष्णु लोकको प्राप्त करताहै और यहां तेजस्वीहोता है ।। ३५ ।। जो मनुष्य श्रद्धाभक्तिके साथ विष्णुचरणामृत पान करता है उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती हैं । वो फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता ।। ३६ ।। जो मनुष्य १०८ गायत्रीका जप त्रिकालमें भगवान्के मंदिर में करता है उसे कभी पाप नहीं लगता ।। ३७ ।। जो मनुष्य नित्य पुराण कथाका श्रवण करताहै और जो धर्मशास्त्र सुनताहै सुवर्णके साथ पुस्तकका दान करता है ।। ३८ ।। वह मनुष्य, पुण्यवान्, धनवान्, भोगवान्, सच्चा, पवित्र, ज्ञानवान्,प्रसिद्ध, बहुतसे चेलोंवाला और धर्मात्मा होता है ।। ३९ ।। शिवजीका या विष्णुका नाममात्रके मन्त्रको धारणकर समाप्तिके समय सुवर्णकी बनीहुई भगवान्की मूर्तिका दान करता है ।। ४० ।। वह मनुष्य पुण्यवान् सच्चा और गुणी होता है, जो नित्यकर्मको करनेके बाद सूर्य भगवान्को अर्घ्य देता है ।। ४१ ।। और सूर्यमण्डलस्थित जनार्दन भगवान्का ध्यान करता है, समाप्तिके समय सुवर्ण, रक्तवस्त्र तथा गोदान करता है ।। ४२ ।। वह सदा आरोग्य, दीर्घायु, कीर्त्ति, लक्ष्मी और बल प्राप्त करता है, जो मनुष्य चातुर्मासके अन्दर प्रतिदिन भक्तिसे १०८ या २८ व्याहृति सहित गायत्रीके मन्त्रसे तिल होम करता है । एवं समाप्तिके समय जो बुद्धिमान् ब्राह्मणके लिये तिलपात्र प्रदान करता है वह मनुष्य मन, वचन और शरीरके संचित पापोंसे शीघ्रही मुक्त हो जाता है ।। ४३–४५ ।। जो मनुष्य बराबर चातुर्मास्यके अन्दर अन्नका होम करता है वह कभी रोगपीडित नहीं होता तथा उसे उत्तम सन्ततिका लाभ होता है ।। ४६ ।। समाप्तिके समय घृतका कुम्भ और सुवर्ण वस्त्रसहित प्रदान करे तो उसे आरोग्य, सौभाग्य और कान्तिका लाभ होता है ।। ४७ ।। उसके शत्रुका नाश होता है । सब पापोंका क्षय होता है जो मनुष्य अस्वत्थ वृक्षकी सेवा करता है ।। ४८ ।। जो विष्णुभक्त हो व्रतके अन्तमें वस्त्रदान करे तथा ब्राह्मणको सुवर्ण भेंट करे तो वह कभी रोगी नहीं होता ।। ४९ ।। जो मनुष्य विष्णुप्रीति करानेवाली पवित्र तुलसीको समर्पण करे तो उसके सब पापोंका नाश होकर विष्णु लोककी प्राप्ति होती है ।। ५० ।। हे पांडव ! विष्णुके हेतु ब्राह्मणोंको भोजन करावे । जो मनुष्य भगवान्के सो जाने पर अमृतोत्पन्ना दूर्वाको 'त्वं दूर्वे' इस मंत्रसे प्रातःकाल शिरमें धारण करता है तथा व्रतकी समाप्तिपर स्वर्ण निर्मित दूर्वाको ।। ५१ ।। ।। ५२ ।। दक्षिणाके साथ हे सुव्रत ! 'यथाशाखा' मंत्रसे दे (त्वंदूर्वे यह और यथाशाखा यह २९९ पृष्ठमें गये) उसका कुछ भी अशुभ नहीं होता एवं सब पापोंसे छूट जाता है ।। ५३ ।। ५४ ।। वह सब भोगोंको भोगकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो मनुष्य भगवान्के और शिवके गुणगानको ।। ५५ ।। प्रतिदिन उनके निकट करता है वह जागरणके फलका भागी होता है, चातुर्मास्यके व्रतीको चाहिये कि, भगवान्के लिये एक उत्तम घण्टा चढावे ।। ५६ ।। कि, हे जगत्की अधीश्वरि ! हे सरस्वती ! हे मूर्खताको मिटानेवाली ! हे साक्षात् ब्रह्माकी कलत्ररूपे ! आपकी स्तुतियाँ विष्णु और रुद्र करते रहते हैं ।। ५७ ।। हे सुन्दर मुखवाली ! गुरुकी अवज्ञासे तथा अनाध्यायोंके अध्यनसे एवम् मेरे अवंध अध्ययनसे जो जाड्य उत्पन्न हो उसे दूर करिये ।। ५८ ।। हे लोको पवित्र करनेवाली ब्रह्माणी ! तू घण्टाके दानसे प्रसन्न होती है । जो मनुष्य हररोज ब्राह्मणोंके चरणोंका चरणामृत लेता है ।।५९।।चातुर्मास्यमें ब्राह्मणको मेरा स्वरूप मानकर वो मन, वाणी और शरीरके किये हुए पापोंसे मुक्त होजाता है ।। ६० ।। जो मनुष्य समाप्तिपर एक जोडा गौ अथवा एकही दूध देनेवाली गौको दान करे, तो वह कभी व्याधिपीडित नहीं होता तथा उसकी लक्ष्मी और आयुकी वृद्धि होती है ।। ६१ ।। हे राजेन्द्र ! यदि इसको देनेमें भी असमर्थ हो तो उसको एक जोडा वस्त्रही देना चाहिये । जो मनुष्य सर्व देवतारूस्वप विद्वान् ब्राह्मणको प्रणाम करता है ।। ६२ ।। वह सफल होकर निष्पाप होजाता है । तथा जो समाप्तिपर ब्राह्मणोंको भोजन कराता है उसकी आयु और धन बढता है ।। ६३ ।। जो नित्य कपिला गौका स्पर्शकर बच्चेके साथ उसे ही भक्तिके साथ अलंकृत करके देदे तो ।। ६४ ।। वह मनुष्य सार्वभौम चक्रवर्त्ती राजा होता है, दीर्घायु और प्रतापी होता है । वह उस गौके बालोंकी संख्याके समान वर्षपर्यंत इन्द्रकी भांति स्वर्गमें निवास करता है ।। ६५ ।। जो नित्य सूर्य या गणेशको नमस्कार करता है तो उसको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और कान्ति प्राप्त होती है ।। ६६ ।। इसमें कभी सन्देह मत करो कि, वह गणेशजीकी कृपासे इच्छित फलको पाकर सर्वत्र विजयलाभ करता है ।। ६७ ।। सब कामोंका सिद्ध होनेके लिये सूर्यकी और गणेशजीकी सोनेकी सींदूरी

अरुण रंगकीसी चमकती मूर्तिको ब्राह्मणको अर्पण करे ।। ६८ ।। जो दो ऋतुओंके अन्दर शिवजीकी प्रसन्नताके लिये रोज चांदीका या ताम्रका दान करे ।। ६९ ।। तो वह शिवजीके भक्त एवं बडे सुन्दर पुत्रोंको पावेगा और समाप्तिपर उत्तम चांदीका पात्र शहदसे भरकर दे ।। ७० ।। तथा ताम्रका पात्र देना हो तो गुडसे भरकर दे । एवं भगवान्के सो जानेपर अपनी शक्तिके अनुसार एक जोडा वस्त्र और तिलके साथ सुवर्णका दान दे तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर इस जन्ममें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें शिवजीके धाममें पहुंचे ।। ७१ ।। ७२ ।। 'विष्णुर्मे प्रीयतामिति' मुझपर विष्णुभगवान् प्रसन्न हों, इस मंत्रसे गन्ध पुष्पादिसे र्चाचतकर ब्राह्मणको वस्त्र-दान चातुर्मास्यमें करे ।। ७३ ।। और समाप्तिपर शय्या, वस्त्र तथा सुवर्ण करे तो अक्षय सुख तथा कुबेरके समान धन प्राप्त करता है ।। ७४ ।। वर्षाऋतुमें नित्य जो मनुष्य गोपीचन्दन देता है, भगवान् उसपर प्रसन्न होकर भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं ।। ७५ ।। और समाप्तिपर तुलापरिमित करे अथवा उसका आधा या उससेभी आधा तुलादान करे । दक्षिणासहित वस्त्र दे ।। ७६ ।। जो व्रती पुरुष भगवान्के शयनकालमें दक्षिणा-सहित सक्कर और गुड दान करे ।। ७७ ।। तथा समाप्त होनेपर उद्यापन करे प्रत्येक ब्राह्मणको ताम्रका आठ आठ पलका एक एक पात्र दे ।। ७८ ।। अथवा कृपणता न कर पाव पाव भरकाही दे जो संख्यामें ४८ हों तथा शक्करसे पूर्ण हों ।। ७९ ।। प्रत्येक पात्रके साथ दक्षिणा और वस्त्र हों और उनके साथ श्रद्धासे दियाहुआ अन्न भी हो, यह सब श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको देना चाहिये ।। ८० ।। इसी प्रकार ताम्रका पात्रभी वस्त्र, शक्कर तथा सुवर्णके साथ दे तो वह सूर्यसे प्रीति करानेवाला रोग नाशक और पापप्रणाशक होता है ।। ८१ ।। यह सदा पुष्टिकीर्ति, सन्तान एवं समस्त इच्छाओंकी पूर्ति, स्वर्ग और आयुको अच्छा बढानेवाला है ।। ८२ ।। इसलिये इसके प्रदान करनेसे मेरी सदा कीर्ति हो, यह उच्चारणकर जो व्रतको करता है उसका पुण्यफल सुनो ।। ८३ ।। वह मनुष्य गन्धर्व विद्यायुक्त एवं कामिनी प्रिय होता है । राजा राज्यको और सन्तानार्थी सन्तानको पाता है ।। ८४ ।। धनार्थी धनको और निष्काम मोक्षको पाता है । जो चार मासतक शाक, मूल, फल आदि यथाशक्ति नित्य ब्राह्मणोंको देता रहे तथा व्रतके अन्तमें यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दो वस्त्र देता है वह चिर, काल सुखी राजयोगी होता है । सब देवोंके प्यारे एवं सभी मनुष्योंको तृप्ति करनेवाले शाकको देता हूं इससे देवादिक सदा मंगल करे । जो देव शयनकी दोनों ऋतुओंमें रोज ।। ८५–८७ ।। किसी सुशील ब्राह्मणके लिये सूर्यकी प्रीतिके निमित्त 'कटुत्रयमिदं' यानी ये तीनों कटुसब प्राणियोंके रोगोंको नष्ट करते हैं इस कारण इसके दानसे सूर्यदेव प्रसन्न होजाय, इस मन्त्रसे सोंठ, मरिच, पीपल इन तीनों चीजोंको दक्षिणा और वस्त्रके साथ देता है, एवं इसप्रकार व्रतकी समाप्तिमें उद्यापन करता है और उसमें सुवर्णकी सोंठ, मरिच, पीपल बनवाकर दक्षिणा और वस्त्रके साथ किसी बुद्धिमान् ब्राह्मणको दान करे ।। ८९–९२ ।। तो वह मनुष्य शतजीवी होकर सब इच्छाओंसे पूर्ण हो अंतमें स्वर्ग प्राप्त करता है ।। ९३ ।। जो नित्य ब्राह्मणके लिये सच्चे मोतीका दान करता है वह हे राजन् ! अन्नवान् कीर्त्तिमान् और श्रीमान् होता है ।। ९४।। जो जितेन्द्रिय स्वयं तांबूल छोडकर दूसरों को तांबूल दान करता है और समाप्तिपर दक्षिणासहित लालवस्त्रका दान करता है ।। ९५ ।। तो वह बडा सुन्दर एवं सर्वरोगरहित, बुद्धिमान, पण्डित और सुकण्ठ होता है ।। ९६ ।। गन्धर्वपनेको पाकर अन्तमें स्वर्ग जाता है, तांबूलं, लक्ष्मी करनेवाला तथा शुभ है । ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीका रूप है ।। ९७ ।। इसके देनेसे ब्रह्मादि देवता खूब लक्ष्मी दें । जो चातुर्मास्यमें प्रतिदिन ब्राह्मणके लिये या किसी सुवासिनी स्त्रीको पुरुष या स्त्री हलदीका दान करें तथा लक्ष्मीके उद्देश्यसे वा पार्वतीके उद्देश्यसे समाप्तिपर चांदीका नया हरिद्रासे भरा-हुआ पात्र दक्षिणासहित 'देवी मे प्रीयतां' देवी मुझपर राजी हो इसका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक दे तो ।। १०० ।। वह पुरुष वा स्त्री परस्परमें बडे सुखी रहते हैं । उनका अखंड सौभाग्य धनधान्य और पुत्रोन्नति होकर ।। १०१ ।। उत्तम रूप लावण्यको प्राप्तकर देवीके लोकमें प्रतिष्ठित होते हैं । जो शिवपार्वतीके उद्देश्यसे चौमासोंमें प्रतिदिन ।। १०२ ।। ब्राह्मणके जोडेको यथाशक्ति पूजकर 'उमेशः प्रीयतामिति' उमा और ईश प्रसन्न हों के उच्चारणसे दक्षिणासहित सुवर्णका दान करे ।। १०३ ।। भगवान् उमा शिवकी मूर्ति उद्यापन के समय सुवर्णकी बना कर पञ्चोपचारसे पूजनकर दे साथही गौ तथा बैलभी दे ।। १०४ ।। और ब्राह्मणादि को उत्तम भोजन करावे तो उसका पुण्यफल सुनिये । वह साधक इस व्रतके प्रभावसे कीर्त्ति और लक्ष्मीको

रक्षापूर्वक प्राप्त होता है सब सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवपुरमें चला जाता है । जो मनुष्य चौमासेमें निरालस होकर फलदान करे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ तथा समाप्तिके समय ब्राह्मणोंको चांदीका दानकर वह सब मनोरथोंको तथा उत्तम न मिटनेवाली सन्ततिको पाकर ॥ १०७ ॥ उस फलदानके माहात्म्यसे नंदनवनमें आनंद करता है । यदि किसीने पुष्पदान व्रत किया हो तो उसे सुवर्णपुष्पका दान करना चाहिये ॥ ८ ॥ वह सब सौभाग्य पाकर गंधर्व पदको प्राप्त करता है । भगवान्के शयन करनेपर चातुर्मास्यमें निरालस होकर ॥ ९ ॥ नित्य वामन भगवान्के उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दही, अन्न तथा स्वादिष्ट षडरस भोजन करावे अथवा उनको दे तथा एकादशीके दिन भोजन न करे ॥ १० ॥ ऐसे भोजनका दान करे तथा ग्रहण आदिमेंभी दान करे अपनी रोजके दान करनेकी सामर्थ्य न हो तो शक्तिके अनुसार पांच पर्वोंमें ॥ ११ ॥ यानी भूताष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, रविववार और शुक्रवार इनमें भोजनका दानकरे ॥ १२ ॥ और इस प्रकार करके समाप्तिमें यथाशक्ति भूमिका दान करे तथा भूमिदानकी अशक्तिमें सिंगरी हुई गौका दान करे ॥ १३ ॥ और उसकोभी असामर्थ्यमें वस्त्र या सुवर्णसहित पादुकाका दान करे तो अक्षय अन्न और पुत्र पौत्र आदि संपत्तिकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ उसे स्थिर भक्तिता लाभ होकर वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है ! जो मनुष्य नित्यही दूध देनेवाली अलंकृत सुन्दर गौका दान करे ॥ १६ ॥ बछडे तथा दक्षिणाके साथ तो वह सर्वज्ञानी होता है । वह किसी दूसरेका पराधीन न होकर ब्रह्मलोकमें चला जाता है ॥ १६ ॥ वह अपने पितरोंसहित अक्षय सुखको पाता है । जो मनुष्य वर्षमें चौमासेके अन्दर प्राजापत्य व्रतको करता है ॥ १७ ॥ तथा समाप्तिपर एक जोडा गौका दान करके ब्राह्मणोंको भोजन कराता है वह सब पापोंसे रहित होकर सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति करता है ॥ १८ ॥ एकांतरका उपवास करनेपर आठ हल, सुवर्ण वस्त्र सहित बैलोंसे दान करे ॥ १९ ॥ और मनमें भावना करे कि, चलाने योग्य हलको और सब सामग्री सहित दो बैलोंको भगवान्की प्रीतिके लिये दान करता हूं ॥ २० ॥ जो मनुष्द शाक, मूल फलसे चातुर्मास्यका व्रत करे और समाप्तिपर गौदान करे तो वह वैकुण्ठमें चला जाता है ॥ २१ ॥ केवल दूधमात्रसे व्रत करनेवाला मनुष्य भी सनातन ब्रह्मलोकको जाता है । तथा व्रतांतमें जो मनुष्य दूध देनेवाली गौको देता है ॥२२॥ रोज दोनों ऋतुओंमें केला और पलाश के पत्रमें भोजन करता है तथा वस्त्र और कांसीके पात्रोंका दान करता है वह सुखी होता है ॥ २३ ॥ और दान देती वार भावना करे कि, कांसी ब्रह्मा, कांसीशिव है, कांसी ही लक्ष्मी और सूर्य है और कांसीही विष्णु है; इसलिये वह मुझे शान्ति दें ॥ २४ ॥ जो मनुष्य नित्य ही तैलाभ्यंगको छोडकर पालाश पत्रमें भोजन करे वह रूईको अग्निकी भांति अपने पापोंको नष्ट करता है ॥ २५ ॥ ब्रह्महत्या करनेवाला, शराबी, बालहत्या करनेवाला, असत्यवादी, स्त्रीघाती, व्रतघाती ॥ २६ ॥ अगम्यागामी, विधवागामी, चांडालीगामी और ब्राह्मणस्त्रीगामी आदि ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ महापापी मनुष्य भी इस व्रतके प्रभावसे पापरहित होते हैं, समाप्तिपर चौंसठ पलका कांस्यपात्र सवत्सा शृंगार की हुई दूध देनेवाली गौ जो कोई विद्वान् ब्राह्मण को दे ॥ २९ ॥ एवं जो मनुष्य नारायणका स्मरण करके पृथ्वीको लीपकर भोजन करे और यथाशक्ति बहुजला उर्वरा भूमिका दान करे ॥ १३० ॥ वह आरोग्यवान, पुत्रवान् और धर्मात्मा राजा होता है । उसे शत्रुओंका भय नहीं होता तथा वैकुण्ठमें जाता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य, सुवर्ण, चन्दन, षड्रसभोजनसहित बैलका अयाचित दान करता है वह वैकुण्ठमें चला जाता है ॥ ३२ ॥ जो भगवान् के शयन करने पर रातमें व्रत करता है और अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन कराता है वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ३३ ॥ जो एक समयसे एक मात्रासे भोजन करके चातुर्मास्यमें भगवान् का पूजन करता है वह स्वर्गमें जाता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य समाप्तिपर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे और भगवान्के शयन करनेपर पृथ्वीपर शयनकरे ॥ ३५ ॥ और सब सामग्री सहित शय्याका दान करे वह शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ दो ऋतुओंके अन्दर पादाभ्यंगको छोडकर ॥ १३६ ॥ जो समाप्तिपर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराके दक्षिणाका दान करे तो वह वैकुण्ठलोकमें जाता है ॥ ३७ ॥ जो आषाढसे अश्विनतक नख आदिको नहीं कराता वह आरोग्यवान्, पुत्रवान् तथा धार्मिक राजा होता है ॥ ३८ ॥ गौरी शंकर भगवान्की प्रसन्नताके लिये जो मनुष्य चातुर्मास्यके अन्दर दूध, नमक, घी, शहद, तथा फलोंका त्याग करे ॥ ३९ ॥ फिर उन्हें कार्तिकी पूर्णिमापर ब्राह्मणोंकी भेंट करे वह शिवव्रतके प्रभावसे शिवलोकमें चला

जाता है ।। १४० ।। जो अच्छे जौ या चावलोंका भोजन करे वह पुत्र पौत्र आदिके साथ शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।। ४१ ।। तैलाभ्यंगको छोड जो विष्णुभक्त सदा व्रत करके वर्षामें विष्णु भगवानकी पूजा करे तो वह वैष्णवी गतिको प्राप्त करता है ।। ४२ ।। समाप्ति पर सुवर्ण सहित कांस्यपात्रको तेलसे भरकर ब्राह्मणको दान करे ।। ४३ ।। तथा वर्षमें चार मासतक शाकका त्याग करे । और व्रतांतमें हरिभगवान्के निमित्त दश शाकसहित एक चांदीका पात्र वस्त्रसे ढककर वेदपारग ब्राह्मणोंका यथाशक्ति पूजन कर व्रत सम्पूर्ण होनेके लिये दक्षिणासहित उनको दान करे तो वह शंकरकी कृपासे शिवसायुज्यको प्राप्त करता है ।। ४६ ।। जो गेहूँको छोड भोजन करे और कार्त्तिकी पूर्णिमापर सुवर्णके गेहूँ बनाकर वस्त्रके साथ दान करे तो उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ।। ४७ ।। सब प्राणियोंको गेहूँ बल, पुष्टि प्रदान करता है और हव्यकव्यमें मुख्य है इसलिये वे मुझे लक्ष्मी प्रदान करें यह दान करनेका मन्त्र है ।। ४८ ।। आषाढ आदि चार महीनेतक बैंगन, करेला, तूमा, परवल, इनका त्याग करे ।। ४९ ।। तथा और अप्रिय फलोंको छोड दे और चातुर्मास्यका व्रत करे एवं उसके समाप्त होनेपर उन छोडी हुई वस्तुको चांदीकी बनावे ।। १५० ।। बीचमें मूँगा रखे और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भक्तिपूर्वक पूजकर दक्षिणासहित दान करे ।। ५१ ।। तथा देतीवार अपने इष्टदेवका स्मरण कर देवो मे प्रीयताम् मेरा इष्टदेव मुझपर प्रसन्न हो' का उच्चारण करे तो वह दीर्घायु, आरोग्य, पुत्रपौत्र सौन्दर्य ।। ५२ ।। अक्षय कीर्त्ति और सन्तानको पाकर स्वर्गमें प्रतिष्ठित होता है ।। श्रावणमें शाक और भादोंमें दही ।। ५३ ।। आश्विनमें दूध, और कार्तिकमें दाल इन चारों चीजोंको नित्यही चारों आश्रमवालोंको छोडदेना चाहिये । तथा चातुर्मासमें कूष्मांड, उडद, मूली, गाजर, करौंदा, ईख मसूर, बैंगन इन सब चीजोंको हे राजेंद्र ! नित्यही छोड देनी चाहिये ।। ५४–५६ ।। विशेषकर भगवान्के चार मासके शयन कालमें बेर, तुरई, और इमलीको वर्षमें चार महीने तक त्याग करे ।। ५७ ।। भक्तिवान् मनुष्य खाट या पलंग आदिपर सोना छोड दे, ऋतुके सिवा स्त्रीका त्याग करे, ऋतुमें गमन करनेपर उसे कोई दोष नहीं लगता ।। ५८ ।। मधुवल्ली और सहजनका चौमासमें त्याग करे । जिसके पेटमें बैंगन, तरबूज, बील, गूलर, भिस्सटा जीर्ण होते हैं उससे हरि भगवान् दूर रहते हैं । उपवास रात्रि उपवास एकबार भोजन अथवा अयाचित भोजन ये करे ।। ५९ ।। १६० ।। यदि शक्ति न हो तो इनमेंसे किसी एकको यथाशक्ति करे ! तथा प्रातःकाल वा सायंकाल स्नान करके रोज पूजन करे ।। वह हरिलोकमें चला जाता है ।। ६१ ।। विष्णुके गीतवाद्यमें तत्पर रहकर गन्धर्व लोकमें जाताहै ! शहदको त्यागकर राजा होता है और गुडको त्यागकर पुत्रपौत्रादिवर्धिनी दीर्घायु सन्तानको पाता है ।। ६२ ।। हे–राजन् ! तेलका त्याग करनेसे सुंदर होता है ।। ६३ ।। कौसुंभतेलका त्याग करनेसे शत्रुनाश होता है । मधूकतेलकेत्याग से सौभाग्यफलका लाभ होता है ।। ६४ ।। कडवी, तिक्त, खट्टा, मीठा, कषाय और नमकीन रसोंको छोडकर कभी बदसूरती और दुर्गन्धिको नहीं प्राप्त करता ।। ६५ ।। पुष्प आदिके भोगत्यागसे स्वर्गमें विद्याधर होता है । योगाभ्यासी ब्रह्मपदवीको पाता है ।। ६६ ।। तांबूलका त्यागकरने पर रोगी रोगसे शीघ्रही मुक्त हो जाता है तथा हे राजन् ! पादाभ्यंग और शिरोभ्यंगके त्यागसे कान्तिमान् तेजस्वी और लक्ष्मीपति होता है । दही, दूधके त्यागसे गोलोक पाता है स्थालीपाकके त्यागसे इन्द्रलोक एवम् एकान्तरोपवाससे ब्रह्मलोक प्राप्त करता है ।। ६७–६९ ।। जो चातुर्मास्यमें नखरोमको धारण करता है हे राजन् ! वह कल्पर्यन्त जीवित रहता है इसमें सन्देह नहीं है ।। १७० ।। 'नमोनारायणाय' का जप करके अनन्त फल तथा विष्णुचरणांबुजका स्पर्श करके कृतकृत्यरूप सफलता प्राप्त करता है ।। ७१ ।। एकलक्ष प्रदक्षिणासे जो मनुष्य अव्यय हरि भगवान्की सेवा करता है वह हंसयुक्तविमानसे विष्णुलोकमें चला जाता है ।। ७२ ।। तीन रातका उपवास करनेसे स्वर्गमें देवताओंके समान आनंदित होता है और हे राजन् ! पराान्नत्यागसे मनुष्य देवतापदवीको पाजाता है ।। ७३ ।। जो मनुष्य चौमासेमें प्राजापत्य व्रतको करता है वह तीन प्रकारके पापोंसे निर्मुक्त होजाता है ।। ७४ ।। जो भगवान्के शयन कालको तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्रसे व्यतीत करता वह पुनरागमन वर्जित भगवान्के परधामको चला जाता है ।। ७५ ।। हे राजन् ! जो मनुष्य चौमासेको चांद्रायण व्रतसे व्यतीत करे वह दिव्यदेह धारणकरके शिवलोकमें चला जाता है ।। ८६ ।। हे नृप ! जो मनुष्य चौमासेमें अन्नादिका भोजन परित्याग करे. वह हरिसायुज्यकोपाकर फिरसे जन्म धारण नहीं करता ।। ७७ ।। जो मनुष्य भिक्षाभोगसे

चौमासेमें रहता है वह वेद पारग होता है एवं जो केवल दूधमात्रसे इन चारों महीनोंको निर्वाह करे ।। ७८ ।। उसके वंशका कभी नाशही नहीं होता । हे अर्जुन ! पञ्चगव्यका सेवन करनेसे चांद्रायणका फल मिलता है ।। ७९ ।। तीन दिन जलका त्याग करनेसे कभी रोगी नहीं होता । हे अर्जुन ! इस प्रकारके व्रतोंसे भगवान् केशव परम प्रसन्न होते हैं ।। १८० ।। दुग्ध समुद्रके अन्दर शयन करनेवाले अनन्त भगवान् जिस दिन सोते और उठते हैं उस दिन अनन्य भक्तिपूर्वक उपवास करनेवाले मनुष्योंको गरुडासन भगवान् शुभगति प्रदान करते हैं ।। ८१ ।। यह श्री भविष्यपुराणकी कही हुई विष्णुशयनी एकादशीके माहात्म्यकी कथा पूरी हुई ।।

अथ श्रावणकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। आषाढशुक्लपक्षे तु यद्देवशयनव्रतम् ।। तन्मया श्रुतपूर्वं हि पुराणे बहुविस्तरम् ।। १ ।। श्रावणे कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। एतत्कथय गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ।। २ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् ।। नारदाय पुरा राजन् पृच्छते च पितामहः ।। ३ ।। परं यदुक्तवांस्तात तदहं ते वदामि च ।। नारद उवाच ।। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहं कमलासन ।। ४ ।। श्रावणस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं कथय प्रभो ।। ५ ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।। ब्रह्मोवाच ।। शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया ।। ६ ।। श्रावणैकादशी कृष्णा कामिकेति च नामतः ।। तस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ।। ७।। तस्यां यः पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।। श्रीधराख्यं हरिं विष्णुं माधवं मधुसूदनम् ।। ८ ।। यजते ध्यायतेऽथो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ।। न गङ्गायां न काश्यां वै नैमिषे न च पुष्करे ।। ९ ।। तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं विष्णुपूजनात्।। केदारे च कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ।। १० ।। न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ।। गोदावर्यां गुरौ सिंहे व्यतीपाते च गण्डके ।। ११ ।। न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ।। ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम् ।। १२ ।। कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौ स्मृतौ ।। प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात्सोपस्करां नरः ।। १३ ।। तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रतकारकः ।। श्रावणे श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः ।। १४ ।। तेनैव पूजिता देवा गन्धर्वोरगपन्नगाः ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कामिकादिवसे हरिः ।। १५ ।। पूजनीयो यथाशक्त्या मनुष्यः पापभीरुभिः ।। संसारार्णवमग्ना ये पापपङ्कसमाकुलाः ।। १६ ।। तेषामुद्धरणार्थाय कामिकाव्रतमुत्तमम् ।। नातः परतरा काचित्पवित्रा पापहारिणी ।। १७ ।। एवं नारद जानीहि स्वयमाह पुरा हरिः ।। अध्यात्मविद्यानिरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः ।। १८ ।। ततो बहुतरं विद्धि कामिकाव्रतसेवनात् ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्कामिकाव्रतकृन्नरः ।। १९ ।। न पश्यति यमं रौद्रं नैव पश्यति दुर्गतिम् ।। न गच्छति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात् ।। २० ।। कामिकाया व्रतेनैव कैवल्यं योगिनो

गताः ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या नियतात्मभिः ।। २१ ।। तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम् ।। न वै स लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। २२ ।। सुवर्णभारमेकं तु रजतं च [1]चतुर्गुणम् ।। तत्फलं समवाप्नोति तुलसीदलपूजनात् ।। २३ ।। रत्नमौक्तिकवैदूर्यप्रवालादिभिरर्चितः ।। न तुष्यति तथा विष्णुस्तुलसीपूजनाद्यथा ।। २४ ।। तुलसीमञ्जरीभिस्तु पूजितो येन केशवः ।। आजन्मकृतपापस्य तेन संमार्जिता लिपिः ।। २५ ।। या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसिनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।। प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ।। ।। २६ ।। दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रौ हरेर्दिने ।। तस्य पुण्यस्य संख्यानं चित्रगुप्तोऽपि वेत्ति न ।। २७ ।। कृष्णाग्रे दीपको यस्य ज्वलदेकादशीदिने ।। पितरस्तस्य तृप्यन्ति अमृतेन दिवि स्थिताः ।। २८ ।। घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा[2] पुनः ।। प्रयाति सूर्यलोकेऽसौ दीपकोटिशतैर्वृतः ।। २९ ।। अयं तवाग्रे कथितः कामिकामहिमा मया ।। अतो नरैः प्रकर्तव्या सर्वपातकहारिणी ।। ३० ।। ब्रह्महत्यापहरणी भ्रूणहत्याविनाशिनी ।। त्रिदिवस्थानदात्री च महापुण्यफलप्रदा ।। ३१ ।। श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्या नरः श्रद्धासमन्वितः ।। विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ३२ ।। इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे श्रावणकृष्णैकादश्याः कामिकाया माहात्म्यं समाप्तम् ।।

श्रावणकृष्ण एकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, महाराज ! आषाढशुक्ला एकादशीके पुराणोक्त शयनव्रतका वर्णन मैंने विस्तारके साथ सुन लिया ।। १ ।। अब श्रावणके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? हे गोविन्द ! इसको आप वर्णन कीजिए । आपको नमस्कार है ।। २ ।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! सुनो में तुम्हें पापनाशक व्रतका वर्णन करता हूं, जिसको पहले ब्रह्माजीने पूछते हुए नारद ऋषिको उपदेश दिया था ।। ३ ।। नारदजी बोले कि, हे भगवन् कमलासन ! में आपसे सुनना चाहता हूं ।। ४ ।। हे प्रभो! श्रावणके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है उसकी विधि और पुण्यफल क्या होता है ! यह कथन कीजिए ।। ५ ।। उसके यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा कि, हे नारद ! लोकहितकी बुद्धिसे में तुम्हें कहता हूं ।। ६ ।। कि, श्रावणकी कृष्णएकादशीका नाम 'कामिका' है, जिसके सुननेसेही वाजपेयज्ञका फल मिलता है ।। ७ ।। उस दिन जो मनुष्य शंखचक्रगदाधारी भगवान् विष्णु, माधव, हरि, श्रीधर, मधुसूदनका ।। ८ ।। पूजन करे और यज्ञ करे, वा ध्यान करे तो उसका पुण्यफल श्रवण कीजिए ।। उसे न तो गंगामें होता है और न काशी में; न नैमिषमें होता है और न पुष्करमें ।। ९ ।। वह फल होता है, जो कृष्णकी पूजामें मिलता है ; केदारमें और कुरुक्षेत्रमें सूर्य ग्रहणके समय ।। १० ।। वह फल नहीं मिलता, जो कृष्ण पूजनसे मिलता है, गोदावरी नदीपर सिंहराशिके बृहस्पतिके समय व्यतीतव्यतीपातमें गण्डकमें ।। ११ ।। वह फल नहीं होता जो कृष्ण पूजनसे होता है, जो मनुष्य समुद्र और जंगलसहित पृथ्वीका दान करे ।। १२ ।। अथवा केवल 'कामिका' का व्रतमात्र करे तो दोनोंका समान फल होता है । जो सब सामग्री सहित बच्चादेनेवाली गौको दान करनसे होता है ।। १३ ।। कामिकाके व्रतसे वही फल मिलता है. जो उत्तम नर श्रावणमें श्रीधर भगवान्की पूजा

१ ददतो यत्फलं भवतीति शेषः । २ यो ददेत् इत्यपि पाठः ।

करे ।। १४ ।। तो उससे सब देवता, गंधर्व, नाग और किन्नर पूजित हो जाते हैं । इस लिये सब तरहसे इस दिन हरि भगवान्‌को ।। १५ ।। पापसे डरनेवाले सुपुरुषोंको यथाशक्ति पूजना चाहिये । संसार समुद्रमें पापरूपी कीचके अन्दर फंसनेवाले मनुष्योंका ।। १६ ।। उद्धार करनेमें इससे अधिक उत्तम पापहारिणी और कोई दूसरी पवित्र एकादशी नहीं है ।। १७ ।। इस प्रकार स्वयं भगवान् हरिने हे नारद ! इसका वर्णन पहले किया था, विशेषकर अध्यात्मविद्यामें रत रहनेवाले पंडितोंको जो फल मिलता है ।। १८ ।। इस कामिकाके व्रतसे उससेभी बहुत अधिक फल मिलजाता है ।। कामिकाके व्रतको करनेवाला मनुष्य रातमें जागरण करे ।। १९ ।। वह कभी भयंकर यमराजको वा दुर्गतिको नहीं देखता । और न कभी कुयोनिको पाता है ।। २० ।। इस कामिकाके व्रतसेही योगी लोग कैवल्य पा चुके हैं । इस लिये इसको बडे प्रयत्नसे करना चाहिये ।। २१ ।। जिस प्रकार कमलके पत्ते पानीसे लिप्त नहीं होते उसी प्रकार वह मनुष्य भी जो तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा करे कभी पापोंसे लिप्त नहीं होता ।। २२ ।। एक भार सोना और चार भार चाँदीके देनेसे जो फल होता है वही फल भगवान्‌पर तुलसीदल चढानेसे होता है ।। २३ ।। रत्नोंसे मोती, वैदूर्य और प्रवाल आदिसे पूजे जानेपर भगवान् उतने प्रसन्न नहीं होते जितने कि, तुलसीके दलके पूजनेसे होते हैं ।।२४।। जिसने भगवान्‌की तुलसी दलसे पूजा की उसने अपने जन्मकी पाप लिपिका संमार्जन कर लिया ।। २५ ।। जिसके दर्शनसे पाप नष्ट हों, स्पर्श करनेसे शरीरको पवित्र करे, नमस्कार करनेसे रोगोंका नाश करे, सींचनेपर यमराजको भगावे, लगानेपर भगवान्‌के निकट सम्बन्ध स्थापित करे और भगवान्‌के चरणोंमें रखनेपर मोक्षफलको दे; उस तुलसीको नमस्कार है ।। २६ ।। जो दिनरात भगवान्‌के समीप दीपक धरे उसके पुण्यकी संख्या तो चित्रगुप्तभी नहीं जानता ।। २७ ।। भगवान्‌के आगे जिसका दीपक एकादशीके दिन जलता हो तो उसके दिवमें रहनेवाले पितर लोग अमृतसे तृप्त होते हैं ।। २८ ।। घीसे वा तेलसे दीपक जलाकर जो दान करे वह सूर्य लोकमें कोटि कोटि दीपकोंके साथ जाता है ।। २९ ।। यह महिमा मैंने तुम्हारे सामने कामिकाके व्रतकी वर्णन की है । इस लिये इसको पापोंका नाश करनेके वास्ते सब मनुष्योंको करनी चाहिये ।। ३० ।। यह ब्रह्महत्या हरनेवाली, भ्रूणहत्याको नाश करनेवाली, स्वर्गमें स्थान देनेवाली और महापुण्य फलको देनेवाली है ।। ३१ ।। श्रद्धासहित मनुष्य इसके माहात्म्यको सुन करके विष्णुलोकमें चलाजाता है एवम् सब पापोंसे भी छूटजाता है ।। ३२ ।। यह श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणकी कही हुई श्रावणशुक्लाकी कामिका एकादशीकी कथा पूरी हुई ।।

अथ श्रावणशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। श्रावणस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम् ।। यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ।। २ ।। द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मतीपुरे ।। राजा महीजिदाख्यातो राज्यं पालयति स्वकम् ।। ३ ।। पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम् ।। अपुत्रस्य सुखं नास्ति इहलोके परत्र च ।। ४ ।। यततोऽस्य सुतप्राप्तौ कालो बहुतरो गतः ।। न प्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो नृणाम् ।। ५ ।। दृष्ट्वात्मानं प्रवयसं राजा चिन्तापरोऽभवत् ।। सदोगतः प्रजामध्य इदं वचनमब्रवीत् ।। ६ ।। इहजन्मनि भो लोका न मया पातकं कृतम् ।। अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोशे मया न हि ।। ७ ।। ब्रह्मस्वं देवद्रविणं न गृहीतं मया क्वचित् ।। न्यासापहारो न कृतः परस्य बहुपापदः ।। ८ ।। सुतवत्पालिता लोका धर्मेण विजिता मही । दुष्टेषु पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमेष्वपि ।। ।। ९ ।। शिष्टाः सुपूजिता लोका द्वेष्याश्चापि महाजनाः ।। इत्येवं व्रजते मार्गे

धर्मयुक्ते द्विजोत्तमाः ।। कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विचार्यताम् ।। १० ।। इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा समजाः सपुरोहिताः ।। मन्त्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम् ।। ११ ।। इतस्ततश्च पश्यन्तश्चाश्रमानृषिसेवितान् ।। नृपतेर्हितमिच्छन्तो ददृशुर्मुनिसत्तमम् ।। १२ ।। तप्य मानं तपो घोरं चिदानन्दं निरामयम् ।। निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सनातनम् ।। १३ ।। लोमशं धर्मतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ।। दीर्घायुषं महात्मानमनेकब्रह्मसंमितम् ।। १४ ।। कल्पे गते यस्यैकस्मिन्नेकं लोम विशीर्यते ।। अतो लोमशनामानं त्रिकालज्ञं महामुनिम् ।। ।। १५ ।। तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे आजग्मुस्तस्य सन्निधिम् ।। यथान्यायं यथार्हं ते नमश्चक्रुर्यथोदितम् ।। १६ ।। विनयावनता सर्वे ऊचुश्चैव परस्परम् ।। अस्मद्भाग्यवशादेव प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः ।। १७ ।। तांस्तथा प्रणतान्दृष्ट्वा ह्युवाच मुनिसत्तमः ।। लोमश उवाच ।। किमर्थमिह संप्राप्ताः कथयध्वं च कारणम् ।। १८ ।। मद्दर्शनाह्लादगिरा भवन्तः स्तुवते किमु ।। असंशयं करिष्यामि भवतां यद्धितं भवेत् ।। १९ ।। परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः ।। जना ऊचुः ।। श्रूयतामभिधास्यामो वयमागमकारणम् ।। २० ।। संशयच्छेदनार्थाय तव सन्निधिमागताः ।। पद्मयोनेः परतरस्त्वत्तः श्रेष्ठो न विद्यते ।। २१ ।। अतः कार्यवशात्प्राप्ताः समीपं भवतो वयम् ।। महीजिन्नाम राजासौ पुत्रहीनोऽस्ति सांप्रतम् ।। २२ ।। वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन् पुत्रवत्तेन पालिताः ।। तं पुत्ररहितं दृष्ट्वा तस्य दुःखेन दुःखिताः ।। २३ ।। तपः कर्तुमिहायाता मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम् ।। तस्य भाग्यवशादृष्टस्त्वमस्माभिर्द्विजोत्तम ।। २४ ।। महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।। उपदेशं वद मुने राज्ञः पुत्रो यथा भवेत् ।। २५ ।। इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।। प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म पुरातनम् ।। २६ ।। लोमश उवाच ।। पूर्वजन्मनि वैश्योऽयं धनहीनो नृशंसकृत् ।। वाणिज्यकर्मनिरतो ग्रामाद् ग्रामान्तरं भ्रमन् ।। २७ ।। ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादशीदिवसे तथा ।। मध्याह्ने द्युमणौ प्राप्ते ग्रामसीम्नि तृषाकुलः ।। २८ ।। रम्यं जलाशयं दृष्ट्वा जलपाने मनो दधौ ।। सद्यःसूता सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता ।। २९ ।। तृषातुरा निदाघार्ता तस्य चापः पपौ तु सा ।। पिबन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं स्वयं पपौ ।। ३० ।। कर्मणस्तस्य पाकेन पुत्रहीनो नृपोऽभवत् ।। पूर्वजन्मकृतात्पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।। ३१ ।। जना ऊचुः ।। पुण्यात्पापं क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने । पुण्योपदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ।। ३२ ।। यथा भवत्प्रसादेन पुत्रोऽस्य भविता तथा ।। लोमश उवाच ।। श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदानाम विश्रुता ।। ३३ ।। एकादशीतिथिश्चास्ति कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः ।। यथाविधि यथान्याय्यं यथोक्तं जागरान्वितम् ।। ३४ ।। तस्याः पुण्यं सुविमलं देयं नृपतये जनाः ।। एवं कृते सुनियतं राज्ञः पुत्रो भविष्यति ।। ३५ ।। श्रुत्वा तु लोमशवचस्तं प्रणम्य द्विजोत्तमम् ।।

प्रजग्मुः स्वगृहान् सर्वे हर्षोत्फुल्लविलोचनाः ।। श्रावणं तु समासाद्य स्मृत्वा लोमशभाषितम् ।। ३६ ।। राज्ञा सह व्रतं चक्रुः सर्वे श्रद्धासमन्विताः ।। द्वादशीदिवसे पुण्यं ददुर्नृपतये जनाः ।। ३७ ।। दत्ते पुण्ये तु सा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ।। प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ।। ३८ ।। एवमेषा नृपश्रेष्ठ पुत्रदानाम विश्रुता ।। कर्तव्या सुखमिच्छद्भिरिह लोके परत्र च ।। ३९ ।। श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिं लभेत् ।। ४० ।।

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे पुत्रदाख्यश्रावणशुक्लैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथ श्रावणशुक्ला एकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, हे मधुसूदन ! श्रावणके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? इसको आप प्रसन्नतासे कहिये ।। १ ।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे राजन् ! इसकी पापहारिणी कथाका श्रवण करो, जिसके सुननेहीसे बाजपेयज्ञका फल प्राप्त होता है ।। २ ।। द्वापरयुगमें माहिष्मतीपुरीके अंदर पहले महीजित् नामक राजा अपने राज्यकी पालना करता था ।। ३ ।। किन्तु उसका पुत्रहीन राज्य उसके लिये सुख नहीं था । क्योंकि, पुत्रहीन व्यक्तिको इस लोकमें और परलोकमें दोनों ही जगह सुख नहीं है ।।४।। इस राजाको पुत्र प्राप्तिके उद्योगमें बहुतसा समय व्यतीत होगया पर सर्वसुखको देनेवाला पुत्र उत्पन्न न हुआ ।। ५ ।। उस राजाने अपनेको बड़ी अवस्थामें देखकर चिन्ताके साथ सभामें बैठकर प्रजाके बीचमें यह वचन कहे ।। ६ ।। कि, हे लोगो ! मैंने इस जन्ममें कोई पाप नहीं किया तथा कोषमें कभी अन्यायका धन नहीं जमा किया ।। ७ ।। ब्राह्मणका माल तथा देवसम्पत्ति मैंने कभी नहीं ली । पाप फलको देनेवाली कभी अमानतमें खयानत भी नहीं की ।। ८ ।। पुत्रकी भांति प्रजाका पालन किया है धर्मके साथ पृथ्वीका विजय किया और पुत्रके समान प्यारे बन्धुओंको भी दुष्टता करनेपर दण्ड दिया है ।। ९ ।। शिष्टोंका आदर किया है । इस प्रकार धर्मपूर्वक अपने उचित रास्ते पर चलनेपर भी हे ब्राह्मणो ! मेरे घरमें पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न हुआ ? इसका विचार करो ।। १० ।। प्रजा और पुरोहितके साथ ब्राह्मणोंने राजाके इन वचनोंको सुन आपसमें सलाह करके गहनवनमें यात्रा की ।। ११ ।। राजाका भला चाहते हुए, उन्होंने इधर उधर ऋषियोंके आश्रमोंकी तलाश की । और नृपतिके हितके उद्देश्यसे प्रेरित हो एक मुनिराजको भी देखलिया ।। १२ ।। जो घोर तपश्चर्यामें मग्न था । चिदानन्द ब्रह्मका ध्यान करनेके कारण उसीमें लीन था, निरामय था, निराहार था. आत्माको उसने जीत रखा था । क्रोध भी उसके पास नही भटकने पाता था । सदा अक्षुण्ण स्थायी रहनेवाला था ।। १३ ।। उसका नाम लोमश था । तत्त्वके जाननेवाले थे, सब शास्त्रोंमें परमप्रवीण थे, महात्मा थे तथा अनेक ब्रह्माओंकी संमिलित आयुसे भी बडी इनकी आयु थी ।। १४ ।। एक कल्पमें इनका एकही लोम गिरता है, इसी कारण इनका लोमश नाम है । ये तीनों कालोंके जाननेवाले महामुनि थे । ।। १५ ।। उन्हें देखते ही सब प्रसन्न होकर उनके समीप चले आये, जैसे करनी चाहिए जिसके कि, वो योग्य थे, उसी तरह उनके लिए नमस्कार किया ।। १६ ।। विनीतभावसे झुककर सब लोगोंने परस्पर कहा कि, भाग्यहीसे इस मुनिराजका दर्शन हुआ ।। १७ ।। उनको उस प्रकार प्रणाम करते हुए देख, मुनिराजने कहा कि, तुम लोग यहां क्यों आये ? इसका कारण कहो ।। १८ ।। मेरे दर्शनके आनंदमें क्या तुम लोग स्तुति करते हो । मैं निःसन्देह तुम्हारा कल्याण करूंगा ।। १९ ।। मुझ जैसे मनुष्योंका जन्म परोपकारहीके लिए होता है । यह निःसन्देह बात है, लोगोंने कहा–सुनिये महाराज ! हम लोग अपने आनेका कारण कहते हैं ।। २० ।। हम आपके पास संशयको दूर करनेके वास्ते यहां आये हैं । क्योंकि, ब्रह्माके अतिरिक्त आपसे बढकर कोई दूसरा सर्व श्रेष्ठ नहीं है ।। २१ ।। इसलिए किसी कार्यवश आपके पास आना हुआ है । यहांपर इस समय महीजित नामके एक पुत्रहीन राजा हैं ।। २२ ।। हम लोग उसके पुत्रकी भांति पाली हुई प्रजा हैं, उसको पुत्ररहित देखकर उनके दुःखसे दुःखी हैं ।। २३ ।। हे मुनिराज ! हम लोग आस्तिकबुद्धिसे इस जगह तप करनेको आये हैं, किन्तु राजाके भाग्यवश, हे द्विजराज ! आपके हमें यहां दर्शन होगये ।। २४ ।। बडे आदमियोंके दर्शनहीसे कार्यसिद्धि होती

है, इसलिए महाराज ! आप ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे राजा पुत्रवान् हो ।। २५ ।। ऐसे उनके वचन सुनकर मुनिराजने ध्यानपूर्वक विचार किया और उसके पूर्वजन्मके हालको जानकर इस प्रकार वर्णन किया ।। २६ ।। लोमश बोले कि, पूर्वजन्ममें यह धनहीन वैश्य था, जो अत्याचार करता था । ग्रामग्राममें घूमकर वाणिज्य-वृत्ति करता रहता था ।। २७ ।। ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन मध्याह्नके समय वह प्यासा होकर किसी ग्रामकी सीमामें पहुँचा ।। २८ ।। उसने उस जगह किसी सुन्दर जलाशयको देखकर जल पीनेकी इच्छा की, वहाँ हालहीकी ब्याई हुई एक सवत्सा गौ भी आ पहुंची ।। २९ ।। वह गर्मीसे पीडित तथा प्याससे आकुल होकर उसके जलको पीने लगी । परंतु उसको पीते हुए देखकर उसे बन्द कर स्वयं उस जलको पीगया ।। ३० ।। उसी कर्मके फलसे राजा पुत्रहीन हुआ है और पूर्वजन्मके पुण्यसे अकंटक उसे राज्य मिला है ।। ३१ ।। लोगोंने कहा कि, महाराज ! पुराणोंमें सुना करते हैं कि, पुण्य करनेसे पापका क्षय होता है । इसलिए किसी पुण्यका उपदेश दीजिए, जिससे राजाके पापका नाश हो ।। ३२ ।। जिससे कि, महाराजकी कृपासे राजाके पुत्र उत्पन्न हो । लोमशने कहा कि, श्रावण शुक्लपक्षमें पुत्रदा नामकी एकादशी तिथि विख्यात है ।। ३३ ।। हे लोगो ! तुम लोग उसका विधिपूर्वक ठीक ठीक शास्त्रोक्त रीतिसे जागरणके साथ व्रत करो ।। ३४ ।। उसका उत्तम पुण्य तुम लोग राजाको देदो । ऐसा करनेपर निश्चयही राजाके पुत्र होगा ।। ३५ ।। मुनिराजके इन वचनोंको सुनकर हर्षसे उछलते हुए खिले नेत्रोंवाले वे लोग उन्हें प्रणामकरके अपने अपने घर चलेगये श्रावणके आजानेपर लोमशके वाक्योंको याद कर ।। ३६ ।। उन सब लोगोंने श्रद्धाके साथ राजासहित व्रत किया और उस एकादशीका पुण्यफल द्वादशीके दिन राजाको दे दिया ।। ३७ ।। पुण्यदान करनेपर उसी समय रानीको सुन्दर गर्भ हुआ और प्रसव कालके आनेपर उसने तेजस्वी पुत्र उत्पन्नकिया ।। ३८ ।। इसलिए हे राजन् ! इसका पुत्रदा नाम विख्यात है । दोनों लोकोंके वास्ते सुखाभिलाषी मनुष्योंको यह करनी ही चाहिए ।।३९।।इसका माहात्म्यसुन पापोंसे छूट जाता है,तथा इस जन्ममें पुत्रसुखको प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गको चलाजाता है।।४०।।यह श्री भविष्योत्तरपुराणका कहा हुआ पुत्रदा नामकी श्रावण शुक्ला एकादशीका माहात्म्यपूरा हुआ ।।

अथ भाद्रपदकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणुष्वैकमना राजन् कथयिष्यामि विस्तरात् ।। अजेति नाम्ना विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ।। २ ।। पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतं तस्याः करोति यः ।। पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि ।। ३ ।। नातः परतरा राजँल्लोकद्वयहितावहा ।। सत्यमुक्तं मया ह्येतन्नासत्यं * भाषितं मम ।।४।। हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ।। चक्रवर्ती सत्यसन्धः समस्ताया भुवः पतिः ।। ५ ।। कस्यापि कर्मणो योगाद्राज्यभ्रष्टो बभूव सः ।। विक्रीय वनितां पुत्रं स चकारात्मविक्रयम् ।। ६ ।। पुल्कसस्य च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् ।। सत्यमालम्ब्य राजेन्द्र मृतचैलापहारकः ।। ।। ७ ।। सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलित स्तथा ।। एवं गतस्य नृपतेर्बहवो वत्सरा गताः ।। ८ ।। ततश्चिन्तापरो राजा बभूवात्यन्तदुःखितः ।। किं करोमि क्व गच्छामि निष्कृतिर्मे कथं भवेत् ।। ९ ।। इति चिन्तयतस्तस्य मग्नस्य वृजिनार्णवे ।। आजगाम मुनिः [2]कश्चिज्ज्ञात्वा राजानमातुरम् ।। १० ।। परोपकरणार्थाय निर्मितो ब्रह्मणा द्विजः ।। स तं दृष्ट्वा द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः ।। ११ ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा गौतमस्याग्रतः स्थितः ।। कथयामास वृत्तान्तमात्मनो दुःखसं-

* नात्र मिथ्या किंचिन्नृपोत्तमेति पाठः । २ गौतमः ।

युतम्।। १२ ।। श्रुत्वा नृपतिवाक्यानि गौतमो विस्मयान्वितः ।। उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य मुनिर्ददौ ।। १३ ।। मासि भाद्रपदे राजन् कृष्णपक्षे तु शोभना ।। एकादशी समाख्याता आजानाम्नातिपुण्यदा ।। १४ ।। तस्याः कुरु व्रतं राजन्पापनाशो भविष्यति ।। तव भाग्यवशादेषा सप्तमेऽह्नि समागता ।। १५ ।। उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु ।। एवं तस्या व्रत चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् ।। १६ ।। तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम ।। इत्येवं कथयित्वातु मुनिरन्तरधीयत ।। १७ ।। मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम् ।। कृते तस्मिन्व्रते राज्ञः पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ।। १८ ।। श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च ।। यद्दुःखं बहुभिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयो भवेत् ।। १९ ।। निस्तीर्ण दुःखो राजासीद्व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। पत्न्या सह समायोगं पुत्रजीवनमाप सः ।। २० ।। देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षमभूद्दिवः ।। एकादश्याः प्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।। २१ ।। स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपुरः सपरिच्छदः।।ईदृग्विधं व्रतं राजन् ये कुर्वन्ति द्विजोत्तमाः।।२२।। सर्वपापविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति तं ध्रुवम्।।पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं भवेत्।।२३।। इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे भाद्रपदकृष्णाया अजानाम्न्या एकादश्या माहात्म्यं समाप्तम्।।

अथ भाद्रपद कृष्णा एकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् ! भाद्रपद कृष्णपक्षकी एकादशी का क्या नाम है ? में यह सुनना चाहता हूँ, इसका आप कृपा कर वर्णन कीजिए ।।१ ।। श्रीकृष्ण महाराज बोले कि, हे राजन् ! ध्यान देकर सुनो में विस्तारके साथ कहता हूँ। उस विख्यात एकादशीका नाम 'अजिता' है जो सब पापों का नाश करती है ।। २ ।। हरि भगवान्‌की पूजा करके वा इसकी कथाको सुनकर जो उसके व्रतको करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।। ३ ।। मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ कि, इससे बढकर इस जन्म और परजन्मके हित करनेके लिए और दूसरी कोई एकादशी नहीं है ।।४।। पहले हरिश्चन्द्र नामके विख्यात चक्रवर्ती समस्त पृथ्वीके अधिपति सत्य प्रतिज्ञ राजा थे ।। ५ ।। किसी कर्मके फलसे उसने राज्य भ्रष्ट होकर अपने स्त्री पुत्रका तथा अपने आपका विक्रय कर डाला ।। ६ ।। वह पुण्यात्मा राजा सत्यप्रतिज्ञ होने के कारण चांडालका दास होकर शववस्त्रको लेनेका काम करनेवाला ।। ७ ।। तो हुआ किन्तु वह सत्यसे विचलित नहीं हुआ और इस प्रकार सत्यको निभाते हुए उसे अनेक वर्ष बीतगये ।। ८ ।। तब उसे दुःखके कारण बडी चिन्ता उत्पन्न हुई और विचार किया कि, इसके प्रतीकारके लिये मुझे क्या करना और कहाँ जाना चाहिये ।। ९ ।। इस प्रकार चितासमुद्रमें डूबे हुए आतुर राजाको जानकर कोई मुनि उसके पास आया ।। १० ।। ब्रह्माने ब्राह्मणको परोपकारही के वास्ते बनाया है यहसमझकर उस राजाने उस श्रेष्ठ ब्राह्मण महाराजको प्रणाम किया ।। ११ ।। और उन गौतम महाराजके आगे हाथ जोड खडा होकर अपने दुःखको वर्णन किया ।। १२ ।। गौतमने बडे आश्चर्यसे राजाके इन वचनोंको सुन इस व्रतका उपदेश किया ।। १३ ।। हे राजन् ! भाद्रपद महीनेकी कृष्णपक्षकी पुण्यफलके देनेवाली अजिता एकादशी बडी विख्यात है ।। १४ ।। हे राजन् । आप उसका व्रत करें तो आपके पापोंका नाश होगा और तुम्हारे भाग्यसे यह आजसे सातवें दिन आनेवाली है ।। १५ ।। उपवास करके रातमें जागरण करना इस प्रकार इसका व्रत करनेसे तुम्हारे सब पापोंक नाश हो जायगा ।। १६ ।। मैं तुम्हारे पुण्यप्रभावसे यहाँ चला आया था, यह कहकर मुनि अंतर्ध्यान होगये ।। १७ ।। मुनिके इन वचनोंको सुन राजाने ज्योंही व्रत किया त्योंही उसके पापोंका तुरंतही अन्त हो गय ।। १८ ।। हे श्रेष्ठ राजन् ! इस व्रतका प्रभाव सुनिये । जो बहुत वर्षतक दुःखभोगा जाना चाहिये उसका जल्दी क्षय हो जाता है ।। १९ ।। इस व्रतके प्रभावसे राजा अपने दुःखसे छूट गया । पत्नीके साथ संयोग होकर पुत्रको

दीर्घायु हुई ।। २० ।। देवताओंके घर बाजे बजने लगे । स्वर्गसे पुष्पवृष्टी हुई, इस एकादशीके प्रभाव से उसे अकंटक राज्यकी प्राप्ति हुई ।। २१ ।। राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रजाके साथ सब सामग्रीसहित स्वर्गमें चला गया । इस प्रकारके व्रतको हे राजन् ! जो द्विजोत्तम करते हैं ।। २२ ।। वे सब पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें स्वर्गकी यात्रा करते हैं । तथा इसके पढने और सुननेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ।। २३ ।। यह श्रीब्रह्माण्डपुराणका कहा हुआ भाद्रपदकृष्ण 'अजा' नाम्नी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ भाद्रपदशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। नभस्य सितपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं च वदस्व नः ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम् ।। वामनैकादशीं राजन्सर्वपापहरां पराम् ।। ।। २ ।। इमामेव जयन्त्याख्यां प्राहुरेकादशीं नृप ।। यस्यां श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।। ३ ।। पापिनां पापशमनं जयन्तीव्रतमुत्तमम् ।। नातः परतरा राजन्न वै मोक्षप्रदायिनी ।। ४ ।। एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्या गतिमिच्छता ।। वैष्णवैर्मम भक्तैस्तु मनुजैर्मत्परायणैः ।। ५ ।। नमभस्ये वामनो यैस्तु पूजितस्तैर्जगत्त्रयम् ।। पूजितं नात्र सन्देहस्ते यान्ति हरिसन्निधिम् ।। ६ ।। वामनः पूजितो येन कमलैः कमलेक्षणः ।। नभस्यसितपक्षे तु जयन्त्येकादशीदिने ।। ७ ।। तेनार्चितं जगत्सर्वं त्रयो देवाः सनातनाः ।। एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यो हरिवासरः ।। ८ ।। अस्मिन्कृते न कर्तव्यं किञ्चिदस्ति जगत्त्रये ।। अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यङ्गपरिवर्तनम् ।। ९ ।। तस्मादेनां जनाः सर्वे वदन्ति परिवर्तिनीम् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। संशयोऽस्ति महान्मह्यं श्रूयतां च जनार्दन ।। १० ।। कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं यास्यङ्गवर्तनम् ।। किमर्थं देवदेवेश बलिर्बद्धस्त्वयासुरः ।। ११ ।। संतुष्टाः पृथिवीदेवाः किमकुर्वञ्जनार्दन ।। को विधिः किं व्रतं चैव चातुर्मास्यमुपासताम् ।। १२ ।। त्वयि सुप्ते जगन्नाथ किं कुर्वन्ति जनाः प्रभो ।। एतद्विस्तरतो ब्रूहि संशयं हर मे प्रभो ।। १३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। श्रूयतां राजशार्दूल कथां पापहरां पराम् ।। बलिर्वं दानवः पूर्वमासीत्त्रेतायुगे नृप।। १४ ।। अपूजयच्च मां नित्यं मद्भक्तो मत्परायणः ।। जपैस्तु विविधैः सूक्तैर्यजते मां स नित्यशः।। १५ ।। द्विजानां पूजको नित्यं यज्ञकर्मकृताशयः ।। परन्त्विन्द्रकृतद्वेषो देवलोकमजीजयत् ।। १६ ।। मद्दत्तमिह लोकश्च जितस्तेन महात्मना ।। विलोक्य च ततः सर्वे देवाः संहत्य मन्त्रयन् ।। १७ ।। सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यं देवं विज्ञापितुं प्रभुम् ।। ततश्च देवऋषिभिः साकमिन्द्रो गतः प्रभुम्[1] ।। १८ ।। शिरसा ह्यवनीं गत्वा स्तुत इन्द्रेण सूक्तिभिः ।। गुरुणा दैवतैः सार्धं बहुधा पूजितो ह्यहम् ।। १९ ।। ततो वामनरूपेण ह्यवतीर्णश्च पञ्चमः ।। अत्युग्ररूपेण तदा सर्वब्रह्माण्डरूपिणा ।। २० ।। बालकेन जितः सोऽथ सत्यमालम्ब्य तस्थिवान् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। त्वया वामनरूपेण सोऽसुरश्च जितः

१ मामिति शेषः ।

कथम् ।। २१ ।। एतत्कथय देवेश मह्यं भक्ताय विस्तरात् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। मयाऽलीकेन स बलिः प्रार्थितो बटुरूपिणा ।। २२ ।। पदत्रयमितां भूमिं देहि मे भुवनत्रयम् ।। दत्तं भवति ते राजन्नात्र कार्या विचारणा ।। २३ ।। इत्युक्तश्च मया राजा दत्तवांस्त्रिपदां भुवम् ।। संकल्पमात्राद्विवृधे देहस्त्रैविक्रमः परम् ।। २४ ।। भूलोके तु कृतौ पादौ भुवर्लोके तु जानुनी ।। स्वर्लोके तु कटिं न्यस्य महर्लोके तथोदरम् ।। २५ ।। जनलोके तु हृदयं तपोलोके च कण्ठकम् ।। सत्यलोके मुखं स्थाप्य उत्तमाङ्गं तथोर्ध्वतः[1] ।। २६ ।। चन्द्रसूर्यग्रहाश्चैव भगणो योगसंयुतः ।। सेन्द्राश्चैव तदा देवा नागाः शेषादयः परे ।। २७ ।। अस्तुवन्वेदसंभूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तु माम ।। करे गृहीत्वा तु बलिमब्रुवं वचनं तदा ।। २८ ।। एकेन पूरिता पृथ्वी द्वितीयेन त्रिविष्टपम् ।। तृतीयस्य तु पादस्य स्थानं देहि ममानघ ।। २९ ।। एवमुक्ते मया सोऽपि मस्तकं दत्तवान्बलिः ।। ततो वै मस्तके ह्येकं पदं दत्तं मया तदा ।। ३० ।। क्षिप्तो रसातले राजन्दानवो मम पूजकः ।। विनयावनतं दृष्ट्वा प्रसन्नोऽस्मि जनार्दनः ।। ३१ ।। बले वसामि सततं सन्निधौ तव मानद ।। इत्यवोचं महाभागं बलिं वैरोचनिं तदा ।। ३२ ।। नभस्यशुक्लपक्षे तु परिवर्तिनि वासरे ।। ममैका तत्र मूर्तिश्च बलिमाश्रित्य तिष्ठति ।।३३।। द्वितीया शेषपृष्ठे वै क्षीराब्धौ सागरोत्तमे।। सुप्ता भवति भो भूप यावच्चायाति कार्तिकी ।।३४।। एतस्मात्कारद्राणाजन्कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ।। एकादशी महापुण्या पवित्रा पापहारिणी ।। ३५ ।। अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यङ्गपरिवर्तनम् ।। एतस्यां पूजयेद्देवं त्रैलोक्यस्य पितामहम् ।। ३६ ।। दधिदानं प्रकर्तव्यं रौप्यतण्डुलसंयुतम् ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा मुक्तो भवति मानवः ।। ३७ ।। एवं यः कुरुते राजन्नेकादश्या व्रतं शुभम् ।। सर्वपापहरं चैव भुक्ति मुक्तिप्रदायकम् ।। ३८ ।। स देवलोकं संप्राप्य भ्राजते चन्द्रमा यथा ।। शृणुयाच्चैव यो मर्त्यः कथां पापहरां पराम् । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।३९।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे भाद्रपदशुक्लायाः परिवर्तिनीनामैकादश्या माहात्म्यं समाप्तम्।

अथ भाद्रशुक्ला एकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् ! भादवेके शुक्लपक्षमें आनेवाली एकादशीका क्या नाम उसका देवता और पुण्य क्या है तथा उसकी क्या विधि है ? इसको आप विस्तृत वर्णन कीजिये ।। १ ।। श्रीकृष्णजी महाराज बोले कि, हे युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें महापुण्य फलको देनेवाली वामन एकादशीकी स्वर्गमोक्ष दायिनी कथाका वर्णन करता हूँ ।। २ ।। हे राजन् ! इसी एकादशीको जयंतीभी कहते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे सब पापोंका क्षय होता है ।। ३ ।। पापियोंका पाप नाश करने और मोक्ष देनेमें इससे उत्तम कोई दूसरा व्रत नहीं है ।। ४ ।। इसलिये मेरेमें लगे रहनेवाले वैष्णव भक्तोंको शुभगति प्राप्त करनेके वास्ते यह व्रत करना चाहिये ।। ५ ।। भाद्रपदमें जिसने वामन भगवान् की पूजा की उसने तीनों जगत्की पूजा की और वे निःसन्देह वैकुंठमें चले जाते हैं ।। ६ ।। भादवेके शुक्लपक्षमें जिसने कमल नयन वामन भगवान्की कमलोंसे जयंती एकादशीके दिन पूजा की ।। ७ ।। उसके द्वारा तीनों जगत् तथा तीनों सनातन देवोंकी पूजा होती है, इसलिये इस एकादशीका व्रत अवश्य करना चाहिये ।। ८ ।। इसके करनेपर

---

१ कृतमिति शेषः ।

फिर कुछ करना बाकी नहीं रह जाता, क्योंकि इसदिन शयन करते हुए भगवान् अपनी करवट बदलते हैं ।। ९ ।। इसलिये इसको लोक परिवर्तिनीभी कहते हैं । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् जनार्दन ! मुझे बडा संशय है उसको सुनिये ।। १० ।। हे देवदेव ! आपने क्यों शयन किया और करवट बदली और क्यों आपने बलि असुरको पकडा है ? ।। ११ ।। चातुर्मास्यके व्रत करनेवालों को इसकी विधिका वर्णन करो । हे जनार्दन ! ब्राह्मणोंने संतुष्टहोकर क्या किया सोभी कहो ।। १२ ।। हे प्रभो ! आपके सोजानेपर मनुष्य क्या करते हैं ? इसको आप विस्तारसे कहकर मेरा संशय दूर करो ।। १३ ।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! आप इस पापहारिणी कथाका श्रवण करो, त्रेतायुगमें बलिनामक एक पवित्र दानव हुआ था ।।१४।। वह मेरा भक्त मेरी भक्तिमें परायण होकर अनेक जपतपोंसे मेरी नित्य अर्चना करता था ।। १५ ।। सदा ब्रह्मणोंका पूजन करनेवाला तथा नित्यही यज्ञकर्मको करनेवाला था । किंतु इन्द्रके द्वेषसे उसने देवलोकभी जीत लिया ।। १६ ।। जब उस महात्माने मेरे दिये हुए इस देवलोकको भी जीतलिया तब सब देवताओंने मिलकर सलाह की कि, ।। १७ ।। भगवान् के पास हम सब लोगोंको यह सूचित करनेके लिये जाना चाहिये । तब देव और ऋषियोंको साथ लेकर इन्द्र मुझ प्रभुके पास आया ।। १८ ।। उस पृथ्वीपर जाकर इन्द्रने शिरसे स्तुति की तथा बृहस्पति वा अन्य देवताओंके साथ मेरी अनेकबार पूजा की ।। १९ ।। तब मैंने पञ्चम वामन रूपसे अवतार लिया । जो बहुत भयंकर तथा ब्रह्मांडरूपीही था ।। २० ।। तबसे सत्यवादी उसको मुझ बालकने जीत लिया यह बात प्रसिद्ध हुई ।। युधिष्ठिरजी बोले कि महाराज ! आपने वामन रूप धरकर किस प्रकार उस असुरको जीता ।। २१ ।। हे देवेश ! इसको आप विस्तारसे मुझ भक्तको वर्णन करिये । श्रीकृष्णजी बोले कि, उस बलिसे मैंने बालकका रूप धारण करके यह मिथ्या प्रार्थना की ।। २२ ।। कि, हे राजन् ! आप बडे दानी हैं इस लिये आप मुझे तीनकदम भूमिका दान करो उससे तीनों लोक दिये हो जायेंगे इसमें विचार न करियेगा ।। २३ ।। इतना सुनकर उसने मुझे त्रिपदा भूमिका दान किया । मेरा त्रिविक्रम शरीर संकल्प मात्रहीसे बढने लगा ।। २४ ।। भूलोकमें चरण, भुवर्लोकमें गोडे और स्वर्लोकमें कटिको रखकर महर्लोकमें उदर धारण किया ।। २५ ।। जनलोक में हृदय, तपोलोकमें कंठ, सत्यलोकमें मुख, स्थापित कर ऊपरकी ओर शिर किया ।। ।। २६ ।। चाँद, सूर्य, सारे ग्रह, तारागण, इन्द्र, देव शेषादिक नाग ।। २७ ।। इन सबने अनेक प्रकारकी वैदिक स्तुतियोंसे मुझे भगवान्‌की अनेको प्रार्थनाएँ कीं । तब मैंने बलिका हाथ पकडकर यह कहा ।। २८ ।। कि, राजन् ! एक पैरसे मैंने पृथ्वी और दूसरेसे ऊपरके लोक रोकलिये । हे अनघ ! अब तुम तीसरी कदम भूमिके वास्ते मुझे और स्थान दो ।। २९ ।। यह सुन राजा बलिने मेरे तीसरे पैरकी भूमिकी जगह अपना मस्तक आगे कर दिया । तब मैंने उसके मस्तकपर एक पैर रक्खा ।। ३० ।। हे राजन् ! उस मेरे भक्त दानवको मैंने पातालमें फेंक दिया, तोभी उसे विनीत जानकर बहुत प्रसन्न हुआ ।। ३१ ।। तब उस मानके देनेवाले वैरोचनि बलिको मैंने कहा कि, हे बले ! मैं तुम्हारे निकट निवास करूंगा ।। ३२ ।। भाद्रशुक्ला एकादशीके करवट बदलनेके दिन मेरी एकमूर्ति बलिका आश्रय लेकर विराजमान होती है ?।। ३३ ।। दूसरी मूर्ति, क्षीरसमुद्रमें शेषके पृष्ठपर होती है । हे राजन् ! जो कार्त्तिकी पूर्णिमातक शयन करती हुई रहती है ।। ३४ ।। इसलिये हे राजन् ! महापुण्य पवित्रा और पापहारिणी इस एकादशीका व्रत करना चाहिये ।। ३५ ।। इस दिन सोते हुए भगवान् अपना अंगपरिवर्त्तन करते हैं, इस दिन त्रिलोकीपति भगवान्‌का पूजन करे ।। ३६ ।। चांदी और चावलके साथ दहीका दान करे,रातमें जागरण करें तो वह मनुष्य मुक्त हो जाता है ।। ३७ ।। इस प्रकार हे राजन् ! जो भोग और मोक्षकी देनेवाली तथा पापनाशिनी एकादशीको करता है ।। ३८ ।। वह देवलोकमें जाकर चन्द्रमाके समान शोभित होता है ।। और जो इसकी पापनाशिनी कथाका श्रवण करता है वह मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है ।। ३९ ।। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ भाद्रपद शुक्ला परिवर्तिनी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथाश्विनकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ।। आश्विन कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। आश्विनस्यासिते पक्षे

इन्दिरानाम नामतः ।। तस्या व्रतप्रभावेण महापापं प्रणश्यति ।। २ ।। अधोयोनिगतानां च पितॄणां गतिदायिनी ।। शृणुष्वावहितो राजन्कथां पापहरां पराम् ।। ३ ।। यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ।। पुरा कृतयुगे राजा बभूव रिपुसूदनः ।। ४ ।। इन्द्रसेन इति ख्यातः पुरीं माहिष्मतीं प्रति ।। सराज्यं पालयामास धर्मेण यशसान्वितः ।। ५ ।। पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः ।। माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णुभक्तिपरायणः ।। ६ ।। जपन् गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः ।। ध्यानेन कालं नयति नित्यमध्यात्मचिन्तकः ।। ७ ।। एकस्मिन् दिवसे राज्ञि सुखासीने सदोगते ।। अवतीर्यागमद्धीमानम्बरान्नारदो मुनिः ।। ८ ।। तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।। पूजयित्वार्घविधिना चासने संन्यवेशयत् ।। ९ ।। सुखोपविष्टः सः मुनिः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ।। कुशलं तव राजेन्द्रसप्तस्वङ्गेषु वर्तते ।। १० ।। धर्मे मतिर्वर्तते ते विष्णुभक्तिरतिस्तथा ।। इति वाक्यं तु देवर्षे श्रुत्वा राजा तमब्रवीत् ।। ११ ।। राजोवाच ।। त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र कुशलं मम ।। अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ।। १२ ।। प्रसादं कुरु विप्रर्षे ब्रूह्यागमनकारणम् ।। इति राज्ञो वचः श्रुत्वा देवर्षिर्वाक्यमब्रवीत् ।। १३ ।। नारद उवाच ।। श्रूयतां राजशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम् ।। ब्रह्मलोकादहं प्राप्तो यमलोकं द्विजोत्तम ।। १४ ।। शमनेनार्चितो भक्त्या उपविष्टो वरासने ।। धर्मशीलः सत्यवांस्तु भास्करिं समुपासते ।। १५ ।। बहुपुण्यप्रकर्ता च व्रत वैकल्यदोषतः ।। सभायां श्राद्धदेवस्य मया दृष्टः पिता तव ।। १६ ।। कथितस्तेन संदेशस्तं निबोध जनेश्वर ।। इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मतीप्रभुः ।। १७ ।। तस्याग्रे कथय ब्रह्मन्स्थितं मां यमसन्निधौ ।। केनापि चान्तरायेण पूर्वजन्मोद्भवेन वै ।।१८।। स्वर्गं प्रेषय मां पुत्र इन्दिराव्रतदानतः ।। इत्युक्तोऽहं समायातः समीपं तव पार्थिव ।। १९ ।। पितुः स्वर्गतये राजन्निन्दिराव्रतमाचर ।। तेन व्रतप्रभावेण स्वर्गं यास्यति ते पिता ।। २० ।। राजोवाच ।। कथयस्व प्रसादेन भगवन्निन्दिराव्रतम् ।। विधिना केन कर्तव्यं कस्मिन्पक्षे तिथौ तथा ।। २१ ।। नारद उवाच ।। शृणु राजन् हितं वच्मि व्रतस्यास्य विधिं शुभम् ।। आश्विनस्यासिते पक्षे दशमीदिवसे शुभे ।। २२ ।। प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धायुक्तेन चेतसा।।ततो मध्याह्नसमये स्नानं कृत्वा बहिर्जले ।। २३ । पितॄणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।। एकभक्तं ततः कृत्वा रात्रौ भूमौ शयीत च ।।२४।।प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशीदिने ।। मुखप्रक्षालनं कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ।। २५ ।। उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावतः । अद्य स्थित्वा निराहारः सर्व भोगविवर्जितः ।। २६ ।। श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।। इत्येवं नियमं कृत्वा मध्याह्नसमये तथा ।। २७ ।। शाल-

ग्रामशिलाग्रे तु श्राद्धं कृत्वा यथाविधि ।। भोजयित्वा द्विजाञ्छुद्धान्दक्षिणाभिः सुपूजितान् ।। २८ ।। पितृशेषं समाघ्राय गवे दद्याद्विचक्षणः ।। पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगंधादिभिस्तथा ।। २९ ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्केशवस्य समीपतः ।। ततः प्रभातसमये संप्राप्ते द्वादशीदिने ।। ३० ।। अर्चयित्वा हरिं भक्त्या भोजयित्वा द्विजानथ ।। बन्धुदौहित्रपुत्राद्यैः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। ३१ ।। अनेन विधिना राजन्कुरु व्रतमतन्द्रितः । विष्णुलोकं प्रयास्यन्ति पितरस्तव भूपते ।। ३२ ।। इत्युक्त्वा नृपतिं राजन् मुनिरन्तरधीयत ।। यथोक्तविधिना राजा चकार व्रत-मुत्तमम् ।। ३३ ।। अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः ।। कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ।। ३४ ।। तत्पिता गरुडारूढो जगाम हरिमन्दिरम् ।। इन्द्रसे-नोऽपि राजर्षिः कृत्वा राजमकण्टकम् ।। ३५ ।। राज्ये निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम् ।। इन्दिराव्रतमाहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया ।। ३६ ।। पठनाच्छ्रवणाच्चास्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। भुक्त्वेह निखिलान्भोगान्विष्णुलोके वसेच्चिरम् ।। ३७ ।। इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे आश्विनकृष्णैकादश्या इन्दिरानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथ आश्विन कृष्णा एकादशीकी कथा–युधिष्ठिर बोले कि, हे भगवन् मधुसूदन ! आश्विनमासके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम और विधि क्या है ? इसका मेरे आगे वर्णन करिये ।। १ ।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! आश्विनके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम इन्दिरा है जिसके व्रतसे महापापभी नष्ट होते हैं ।। २ ।। हे राजन् ! इसकी पापनाशिनी कथाको सावधान होकर सुनो, जिसके प्रभावसे अधोगतिको प्राप्त भी पितृगण शुभगति प्राप्त करते हैं ।। ३ ।। जिसके श्रवण मात्र से वाजपेययज्ञका फल मिलता है, पहले सतयुगमें रिपुओंका मारनेवाला एक राजा था ।। ४ ।। वह अपनी माहिष्मती पुरीमें इन्द्र-सेनके नामसे विख्यात था । वह अपने राज्यको धर्म और यशसे पालन करता था ।। ५ ।। वह माहिष्मती-पुरीका राजा पुत्र, पौत्र, धन धान्यसे सम्पन्न और विष्णु भक्तिमें लीन रहता था ।। ६ ।। हे राजन् ! वह भगवान के मुक्ति देनेवाले नामोंका जाप करते हुए अध्यात्मचिन्ताके ध्यानमें अपना समय बिताता था ।। ७ ।। एक दिन सभाके अंदर सुखसे बैठे हुए राजाके सम्मुख आकाशसे उतरकर मुनि नारदजी आ पधारे ।। ८ ।। उनके आनेपर राजाने उठ हाथ जोडकर अर्घ विधिसे पूजन कर आसनपर बिठा दिया ।। ९ ।। आरामसे बैठ जानेपर मुनिने राजासे पूछा कि, हे राजेन्द्र ! आपके सप्तांगमें कुशल तो है ।। १० ।। हे राजन् ! आपकी धर्ममें प्रीति और विष्णुमें भक्ति तो है ? नारदजीके ये वचन सुन, राजाने उत्तर दिया कि, हे देवर्षे ! आपकी कृपासे यहाँ सब कुशल हैं । आज आपके दर्शनसे मेरे समस्त यज्ञ सफल हो गये हैं ।। ११ –१२ ।। हे ऋषिराज ! आप अपने यहाँ पधारनेका कारण कृपाकरके बताइये, यह सुन देवर्षिने उत्तर दिया ।। १३ ।। नारदजी बोले कि, हे राजन् ! आप मेरी इस आश्चर्य करनेवाली बातको सुनिये कि, मैं ब्रह्मलोकको एक समय चला गया ।। १४ ।। धर्मराजका सत्कार पा करके मैं उत्तम आसनपर बैठा । धर्मशील सत्यवान् तो भास्करि यमकी उपासना करते हैं ।। १५ ।। उस धर्मराजकी सभामें मैंने तुम्हारे पुण्यवान् पिताको भी किसी व्रतको न करनेके दोषसे देखा ।। १६ ।। उसने जो सन्देश कहा है उसको सुनो । इन्द्रसेन नामका माहिष्मती नगरीका एक विख्यात राजा है ।। १७ ।। हे ब्रह्मन् ! उसके आगे जाकर कहना कि, किसी पूर्वजन्मके पापसे तुम्हारा पिता यमराजकी सभामें है ।। १८ ।। इसलिये हे पुत्र ! तुम मुझे इन्दि-

राका व्रत करके स्वर्गमें भेज दे । हे राजन् ऐसा सुनकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥१९॥ पिताकी शुभस्वर्ग-गतिके वास्ते हे राजन् ! आप इन्दिराके व्रतको करो, जिसके प्रभावसे तुम्हारे पिता स्वर्ग में चले जायेंगे ॥ २० ॥ राजाने कहा कि, हे भगवन् ! उस इन्दिरा व्रतको किस पक्षमें और तिथिमें करना चाहिये । ये सब बातें एवं उसकी विधि कृपाकर मुझसे वर्णन करिये ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! मैं इसकी शुभ विधिको तुम्हें कहता हूँ कि, आश्विन कृष्णपक्षको दशमीके दिन प्रातःकाल श्रद्धायुक्त मनसे स्नान करे । और मध्याह्न समयमें जलके बाहर स्नान करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रद्धाके साथ पितरोंका श्राद्ध करे ॥ एक समय भोजन कर रातमें भूमिपर शयन करे ॥ २४ ॥ दूसरे दिन एकादशीके प्रातःकालमें मुखधोकर दन्तधावन करे ॥ २५ ॥ भक्तिभावसे उपवास करनेका, नियम धारण करे कि, मैं आज निराहार रहकर सब भोगोंसे दूर रहूँगा ॥ २६ ॥ मैं कल भोजन करूँगा, इसलिये हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करो, मैं आपके शरण हूँ, ऐसा नियम करके मध्याह्न के समयमें ॥ २७ ॥ शालिग्रामकी शिलाके आगे विधिपूर्वक श्राद्ध करे; पूज्य ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर भोजन करावे ॥ २८ ॥ पितृशेषको सूंघकर गौको खिलावे । धूप, गन्ध आदिसे भगवान्‌की पूजा करे ॥ २९ ॥ रातमें भगवान् के समीप जागरण करे और द्वादशीके दिन प्रातःकाल ॥ ३० ॥ भक्ति से भगवान् का पूजन और ब्राह्मणोंको भोजन करावे । पीछे चुपहोकर बन्धुबान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ ३१ ॥ इस रीति से हे राजन् ! विधिपूर्वक इस व्रतको करनेसे तुम्हारे पितर लोग विष्णुलोकमें निवास करेंगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहकर मुनि अन्तर्ध्यान हो गये । राजाने बताई हुई विधिसे रानी और नौकर आदिके साथ उस उत्तम व्रतको किया । हे युधिष्ठिर ! इस व्रतके करनेपर उस राजापर स्वर्गसे पुष्पवृष्टि हुई ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसका पिता गरुडपर चढकर वैकुण्ठमें चला गया और राजा इन्द्रसेन भी धर्मसे निष्कंटक राज्यकर अपने राज्यभारको लडकेपर रख स्वयं भी स्वर्गमें चला गया । यह इन्दिराका माहात्म्य तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसके पढने और सुननेसे सब पापोंसे छूट जाता है । इस लोकमें सब भोगों को भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें चिरकालतक निवास करता है ॥ ३७ ॥ यह श्री ब्रह्मवैवर्तपुराणका कहा हुआ आश्विनकृष्णा इन्दिरा नामकी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ॥

अथ आश्विनशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवन् मधुसूदन ॥ इषस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ शुक्लपक्षे चाश्वयुजि भवेदकादशी तु या ॥ २ ॥ पाशाङ्कुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ पद्मनाभाभिधानं तु पूजयेत्तत्र मानवः ॥ ३ ॥ सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम् ॥ तपस्तप्त्वा नरस्तीव्रं चिरं सुनियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥ यत्फलं समवाप्नोति तं नत्वा गरुडध्वजम् ॥कृत्वापि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥ ५ ॥ न याति नरकं घोरं नत्वा पापहरं हरिम् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतदानि च ॥ ६ ॥ तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥ ७ ॥ न तेषां यमलोकश्च नृणां वै जायते क्वचित् ॥ उपोष्यैकादशीमेकां प्रसङ्गेनापि मानवाः ॥ ८ ॥ न यान्ति यातनां यामीं पापं कृत्वापि दारुणम् ॥ वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शिवनिन्दां करोति यः ॥ ९॥ यो निन्देद्वैष्णवं लोकं स याति नरकं ध्रुवम् ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ १० ॥ एकादुदश्युपवासस्य कलांनार्हन्ति

षोडशीम् ।। एकादशीसमं पुण्यं किंचिल्लोके न विद्यते ।। ११ ।। नेदृशं पावनं किंचित्रिषु लोकेषु विद्यते ।। यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ।। १२ ।। तावत्पापानि तिष्ठन्ति देहेऽस्मिन् मनुजाधिप ।। यावन्नोपोष्यते भक्त्या पद्मनाभदिनं शुभम् ।। व्याजेनोपोषितमपि न दर्शयति भास्करिम् ।। १३ ।। स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ।। सुकलत्रप्रदा ह्येषा धनधान्यप्रदायिनी ।। १४ ।। न गङ्गा न गया राजन्न काशी न च पुष्करम् ।। न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप हरेर्दिनात् ।। १५ ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम् ।। अनायासेन भूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम् ।। १६ ।। दश वै मातृके पक्षे दश राजेन्द्र पैतृके ।। प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ।। १७ ।। चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः ।। स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।। १८ ।। बालत्वे यौवने चैव वृद्धत्वेऽपि नृपोत्तम ।। उपोष्य द्वादशीं नूनं नैति पापोऽपि दुर्गतिम् ।। १९ ।। पाशाङ्कुशामुपोष्यैव आश्विने चासितेतरे ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं स गच्छति ।। २० ।। दत्त्वा हेमतिलान् भूमिं गामन्नमुदकं तथा ।। उपानद्वस्त्रच्छत्रादि न पश्यति यमं नरः ।। २१ ।। यस्य पुण्यविहीनानि दिनान्यपगतानि च ।। स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ।। २२ ।। अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दरिद्रोऽपि नृपोत्तम ।। समाचरन्यथाशक्ति स्नानदानादिकाः क्रियाः ।। २३ ।। तडागारामसौधानां सत्राणां पुण्यकर्मणाम् ।। कर्तारो नैव पश्यन्ति धीरास्तां यमयातनाम् ।। २४ ।। दीर्घायुषो धनाढ्याश्च कुलीना रोगवर्जिताः ।। दृश्यन्ते मानवा लोके पुण्यकर्त्तार ईदृशाः ।। २५ ।। किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् ।। आरोहन्ति दिवं धर्मैर्नात्र कार्या विचारणा ।। २६ ।। इति ते कथितं राजन् यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ।। पाशाङ्कुशाया माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। २७ ।। इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे आश्विनशुक्लैकादश्याः पाशाङ्कुशाख्याया माहात्म्यं सम्पूर्णम् ।।

अथ आश्विन शुक्ला एकादशीकी कथा—युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् ! आश्विन शुक्लपक्षककी एकादशीका क्या नाम और क्या विधि है ? इसको आप कृपाकर वर्णनकरिये ।। १ ।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजेन्द्र ! आश्विन शुक्लपक्षमें जो पापनाशिनी एकादशी होती है, उसके माहात्म्यको सुनिये ।। २ ।। उसका विख्यात 'पाशांकुशा' नाम है, जो सब पापोंको हरता है । उस दिन पद्मनाभ भगवान्‌की पूजा करे ।। ३ ।। उससे सब इच्छाओंकी पूर्ति होती है । तया स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है, जितेन्द्रिय नरको चिर घोर तपको करनेपर जो फल प्राप्त होता है वह फल भगवान्‌को नमस्कार करनेसे ही हो जाता है । भ्रमसे अनेक पापोंको करके भी ।। ४ ।। ५ ।। सब पापोंके नाशक भगवान् को नमस्कार करके घोर नरकमें नहीं जाता । पृथ्वीमें जितने तीर्थ वा पुण्यस्थान हैं ।। ६ ।। उन सबका फल भगवान्‌के नामकीर्त्तनसे होता है । जो लोग शार्ङ्गधनुवाले जनार्दन भगवान्‌की शरणमें हैं ।। ७ ।। उनको कभी यमराजके पास नहीं जाना पडता । प्रसंगसेभी जो मनुष्य एक एकादशीका उपवास करते हैं ।। ८ ।। वे दारुण पापकरके भी कभी यमराजकीयातना नहीं उठाते । जो मनुष्य वैष्णव होकर शिवनिन्दा करे तो ।।९।। या जो वैष्णवकी लोकमें बुराई करे. वे घोर नरकमें जाते हैं । एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाकोभी हजारों अश्वमेध और सैकडों राजसूय यज्ञ नहीं पासकते, इस एकादशीके समान पवित्र और कुछभी नहीं है ।। १० ।। ११ ?।।इसके सम पवित्र करने-

वाली वस्तु त्रिलोकीमें कोई नहीं है । जैसा कि, पद्मनाभ भगवान् का पापनाशक यह दिन है ।। १२ ।। हे राजन् ! पाप तब तक ही देहमें रह सकते हैं, जबतक कि, पद्मनाभक इस शुभदिन उपवास नहीं किया जा सकता । यदि भूलकर या कपटसे भी उपवास करलिया जाय तो फिर यमराजके दर्शन नहीं होते ।। १३ ।। यह स्वर्ग और मोक्षको देनेवाली शरीरके आरोग्यको बढानेवाली, सुन्दर स्त्री और धनधान्य को देनेवाली है ।। १४ ।। गंगा, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र और काशीतीर्थ भी इस हरिदिनके समान पवित्र नहीं है ।। १५ ।। हे राजन् ! हरिवासरको रातके समय जागरण उपवास करे, तो उसे सहजहीमें विष्णुलोककी प्राप्ति हो जाती है ।। १६ ।। माताके दश पीढीके और पिताके दश पीढीके तथा स्त्रीके दश पीढीके पुरुषोंका वह पापसे उद्धार करता है ।। १७ ।। वे लोग चतुर्भुजतथा दिव्यरूप धारण करके गरुडकी सवारीसे पीतांबर धारणकर हरिलोकमें चले जाते हैं ।। १८ ।। हे राजन् ! बाल्य, यौवन वा वार्धक्य किसी भी अवस्थामें इसका उपवास किया जाय तो पापीभी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता ।। १९ ।। आश्विन कृष्णपक्षकी पाशांकुशाका उपवास करके सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें चलाजाता है ।। २० ।। सुवर्णके तिल, भूमि, गौ , अन्न, जूती, वस्त्र और छत्र आदिका दान करके कभी यमराजको नहीं देखता ।। २१ ।। जिस मनुष्यको पाप करते हुए दिन बीतगये हैं वह लोहारकी धौंकनीके समान साँस लेकर व्यर्थही जीता है ।। २२ ।। स्नान, दान आदि पुण्य कर्मोंसे दरिद्रभी मनुष्य अपने दिनको सार्थक करे ।। २३ ।। तालाव, महल, धर्मशाला तथा यज्ञ आदि पुण्य कामोंके करनेवाले लोग कभी यमयातना नहीं पाते ।। २४ ।। ऐसे पुण्यके करनेवाले लोग दीर्घायु, धनी, कुलीन तथा नीरोग देखे जाते हैं ।। २५ ।। अधिक विस्तारसे क्या प्रयोजन है ? थोडेही में यह समझना चाहिये कि, धर्मसे स्वर्ग और पापसे नरकमें वसते हैं । इस बातमें किसी तरहके सन्देहका विचारही न करना चाहिये ।। २६ ।। हे राजन् ! तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैंने यह पाशांकुशाका माहात्म्य वर्णन किया है अब और क्या सुनना चाहते हो ।। २७ ।। यह श्रीब्रह्माण्डपुराणका कहा हुआ आश्विन शुक्ला पाशांकुशा नामकी एकादशीका माहात्म्य पूरा हुआ ।।

अथ कार्तिककृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। कथयस्व प्रसादेन मम स्नेहाज्जनार्दन ।। कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। श्रूयतां राजशार्दूल कथयामि तवाग्रतः ।। कार्तिके कृष्णपक्षे तु रमानाम्नी सुशोभना ।। २ ।। एकादशी समाख्याता महापापहरा परा ।। अस्याः प्रसङ्गतो राजन् माहात्म्यं प्रवदामि ते ।। ३ ।। मुचुकुन्द इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ।। देवेन्द्रेण समं यस्य मित्रत्वमभवन्नृप ।। ४ ।। यमेन वरुणेनैव कुबेरेण समं तथा ।। विभीषणेन चैतस्य सखित्वमभवत्सह ।। ५ ।। विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः सदा ।। तस्यैव शासतो राजन् राज्यं निहतकण्टकम् ।। ६ ।। बभूव दुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा ।। शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेनसुताय वै ।। ७ ।। स कदाचित्समायातः श्वशुरस्य गृहे नृप ।। एकादशीव्रतमिदं समायातं सुपुण्यदम् ।। ८ ।। समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिन्तयत् ।। किं भविष्यति देवेश मम भर्तातिदुर्बलः ।। ९।। क्षुधां सोढुं न शक्नोति पिता चैवोग्रशासनः ।। पटहस्ताड्यते यस्य संप्राप्ते दशमीदिने ।।१०।। न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ।। श्रुत्वा पटहनिर्घोषं शोभनस्त्वब्रवीत्प्रियाम् ।। ११ ।। किं कर्तव्यं मया कान्ते ब्रूह्युपायं सुशोभने ।। कृतेन येन मे सम्यग्जीवितं न विनश्यति ।। १२ ।। चन्द्रभागोवाच ।। मत्पितुर्वेश्मनि विभो

भोक्तव्यं नापि केनचित् ।। गजैरश्वैस्तथा चोष्ट्रैरन्यैः पशुभिरेव च ।। १३ ।। तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने ।। मानवैश्च कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे ।। १४ ।। यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गेहात्प्रयास्यताम् ।। एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसं कुरु ।। १५ ।। शोभन उवाच ।। सत्यमेतत्त्वया चोक्तं करिष्येऽहमुपोषणम् ।। दैवेन विहितं यद्वै तत्तथैव भविष्यति ।। १६ ।। इति दिष्टे मतिं कृत्वा चकार व्रतमुत्तमम् ।। क्षुत्तृषापीडिततनुः स बभूवातिदुःखितः ।। १७ ।। एवं व्याकुलित तस्मिन्नादित्योऽस्तमगाद्गिरिम् ।। वैष्णवानां नराणां सा निशा हर्षविवर्धिनी ।। १८ ।। हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम् ।। बभूव नृपशार्दूल शोभनस्यातिदुःसहा ।। १९ ।। रवेरुदयवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः ।। दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः ।। २० ।। चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पितृवारिता ।। कृत्वौर्ध्वदेहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि ।। २१ ।। शोभनेन नृपश्रेष्ठ रमाव्रतप्रभावतः ।। प्राप्तं देवपुरं रम्यं मन्दराचलसानुनि ।।२२ ।। अनुत्तममना धृष्यमसंख्येयगुणान्वितम् ।। हेमस्तम्भमयैः सौधैः रत्नवैदूर्यमण्डितैः ।। २३ ।। स्फाटिकैर्विविधाकारैर्विचित्रैरुपशोभितम् ।। सिंहासनसमारूढः सुश्वेतच्छत्रचामरः ।। २४ ।। किरीटकुण्डलयुतो हार केयूर भूषितः ।। स्तूयमानश्च गन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ।। २५ ।। शोभाः शोभते तत्र देवराडपरोयथा ।। सोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरे वसन् ।। २६ ।। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रमन् विप्रोददर्श तम् ।। नृपजामातरं ज्ञात्वा तत्समीपं जगाम सः ।। २७ ।। आसनादुत्थितः शीघ्रं नम श्चक्रे द्विजोत्तमम् ।। चकार कुशलप्रश्नंश्वशुरस्य नृपश्य च ।। कान्तायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च ।। २८ ।। सोमशर्मोवाच ।। कुशलं वर्तते राजञ्छ्वशुरस्य गृहे तव । चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे ।। २९ ।। स्ववृतं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं परमं मम ।। पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित्क्वचित् ।। ३० ।। एतदाचक्ष्व नृपते कुतः प्राप्तमिदं त्वया ।। शोभन उवाच ।। कार्तिकस्यासिते पक्ष्ये नाम्ना चैकादशी रमा ।। ३१ । तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्रपुरमध्रुवम् ।। ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ।। ३२ ।। द्विजेन्द्र उवाच ।। कथमध्रुवमेतद्धि कथं हि भवति ध्रुवम् ।। तत्त्वं कथय राजेन्द्र तत्करिष्यामि नान्यथा ।। ३३ ।। शोभन उवाच ।। मयैतद्विहितं विप्र श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम् ।। तेनेदमध्रुवं मन्ये [1]ध्रुवं भवति तच्छृणु ।। ३४ ।। मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना ।। तस्यै कथय वृत्तान्तं ध्रुवमेतद्भविष्यति ।। ३५ ।। तच्छ्रुत्वाथ द्विजवरस्तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ।। श्रुत्वाथ सा द्विजवचो विस्मयोत्फुल्ललोचना ।। ३६ ।। प्रत्यक्षमथवा स्वप्नस्त्वयैतत्कथ्यते द्विज ।। सोमश-

१ येनेति शेषः

र्मोवाच ।। प्रत्यक्षं पुत्रि ते कान्तो मया दृष्टो महावने ।। ३७ ।। देवतुल्यमनाधृष्यं दृष्टं तस्य पुरं मया ।। अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ।। ३८ ।। चन्द्रभागोवाच ।। तत्र मां नय विप्रर्षे पतिदर्शनलालसाम् ।। आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ।। ३९ ।। आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु ।। प्राप्यते हि महत्पुण्यं कृतं योगे विमुक्तयोः ।। ४० ।। इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम ह ।। आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचलसन्निधौ ।। ४१ ।। वामदेवोऽशृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः ।। अभ्यषिञ्चच्चन्द्रभागां वेदमन्त्रैरथोज्ज्वलाम् ।। ४२ ।। ऋषिमन्त्रप्रभावेण विष्णुवासरसेवनात् ।। दिव्यदेहा बभूवासौ दिव्यां गतिमवाप ह।। ४३।। पत्युः समीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना ।। सहर्षः शोभनोऽतीव दृष्ट्वा कान्तां समागताम् ।। ४४ ।। समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तां संन्यवेशयत् ।। सा चोवाच प्रियं हर्षाच्चन्द्रभागा प्रियं वचः ।। ४५ ।। शृणु कान्त हितं वाक्यं यत्पुण्यं विद्यते मयि।। अष्टवर्षाधिका जाता यदाहं पितृवेश्मनि ।। ४६ ।। मया ततः प्रभृति च कृतमेकादशीव्रतम् ।। यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ।। ४७ ।। तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम् ।। सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसंप्लवम् ।। ४८ ।। एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह ।।दिव्यभोगा दिव्यरूपा दिव्याभरणभूषिता।। ४९।। शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्यविग्रहः ।। रमाव्रतप्रभावेण मन्दराचलसानुनि ।। ५० ।। चिन्तामणिसमा ह्येषा कामधेनुसमाथवा।। रमाभिधाना नृपते तवाग्रे कथिता मया ।। ५१ ।। ईदृशं च व्रतं राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।। [1]ब्रह्महत्यादिपापानि नाशं यान्ति न संशयः ।। ५२ ।। एकादश्या रमाख्याया माहात्म्यं शृणुयान्नरः ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।। ५३ ।। इतिश्रीब्र० कार्तिककृष्णाया रमाख्याया माहात्म्यम् ।।

अथ कार्तिककृष्णा एकादशीकी कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् ! कार्तिक कृष्णपक्षमें कौनसी एकादशी होती है ? इसको आप मेरे स्नेहसे कृपाकरके कहिये ।। १ ।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजेन्द्र ! सुनो, कार्तिकके कृष्णपक्षकी सुशोभन एकादशीका नाम रमा है ।। २ ।। यह रमा एकादशी सब पापोंको हरनेवाली है; हे राजन् ! इसके प्रसंगागत माहात्म्यकोभी मैं तुम्हें कहता हूँ ।। ३ ।। पहले मुचुकुंदनामका एक इन्द्रसे मित्रता रखनेवाला राजा हुआ था ।। ४ ।। उसकी मित्रता न केवल इन्द्रसेही थी पर यम, वरुण, कुबेरके साथ भी थी । भक्त विभीषणके साथ भी उसका मैत्रीभाव था ।। ५ ।। वह राजा बडा वैष्णव तथा सत्यप्रतिज्ञ था, उसके शासनसे सब राज्य सुखी था उसे हे राजन् ! इस प्रकार निःसपत्न राज्य करते ।। ६ ।। उसके घरमें चंद्रभागा नामकी एक पुत्री हुई थी, जो नदीबनकर बह रही है, जिसको चन्द्रसेन नामके एक सुन्दर वरको दानकी थी ।। ७ ।। वह कभी अपने श्वशुरके घरमें आया । संयोगवश उस दिन पवित्र एकादशीका दिन था ।। ८ ।। व्रतके दिनके कारण चन्द्रभागाने चिन्ता की कि, हेभगवन् ! क्या होगा ? क्योंकि मेरे पति अति दुर्बल हैं ।। ९ ।। वह भूख सहन नहीं कर सकते, इधर पिताका शासन बहुत उग्र है । जिसके राज्यमें दशमीहीके दिन यह ढोल बजाया जाता है ।। १० ।। कि, कोई मनुष्य किसी तरह भी एकादशीके दिन भोजन न करने पावे ।। उस ढोलकी आवाजको सुन उसके पतिने अपनी स्त्रीसे कहा ।। ११ ।। हे सुशोभने ! हे प्रिये !

१ तेषमिति शेषः

मुझे क्या उपाय करना चाहिये !? जिससे मुझे दुःख न हो प्राणोंकी रक्षा हो जाय ।। १२ ।। चन्द्रभागाने उत्तर दिया कि, हे प्रभो ! मेरे पिताके घरमें किसीको भी भोजन नहीं करना चाहिये । यहाँ तक कि, मेरे पिताके राज्य में हाथी, घोडे, ऊंट तथा अन्यपशुओंकोभी ।। १३ ।। घास, अन्न , या पानी नहीं दिया जाता । तब हे पते ! मनुष्य तो कैसे इस एकादशीके दिन भोजन कर सकता है ? ।। १४ ।। यदि हे पते ।।! आज भोजन करनाही चाहते हैं तो घरसे बाहर चले जाइये । ऐसी बात शोचकर मनको दृढ कर लीजिये ।। १५ ।। शोभनने कहा कि, हे प्रिये ! तुमने जो कहा वह सब सुना, मैंभी आज उपवास करूँगा । जो होनहार हो वह होगा सो देखाजायगा ।। १६ ।। इस प्रकार भाग्यपर छोडकर उसने व्रत किया । भूख, प्याससे व्याकुल होकर वह बडा दुःखी हुआ ।। १७ ।। इस प्रकार घबडाते हुए उस दिन उसे सूर्य अस्त हो गया । वैष्णवोंके आनन्दको बढ़ानेवाली रातका आगम हुआ ।। १८ ।। वह रात हरिपूजनपरायण मनुष्योंको जागरण करनेमें आनन्द बढानेवाली थी पर उस शोभनके वास्ते दुःखकारिणीही साबित हुई ।। १९ ।। सूर्योदय होने के समयही उस शोभनकी मृत्यु होगई । राजाने राजकुमारके दाहयोग्य उत्तमकाष्ठसे उसका दाह करादिया ।। २० ।। चन्द्र-भागानेभी अपने पिताके मना करनेसे आत्मसमर्पण नहीं किया । पिताके घरमें उसका श्राद्धकर्म किया गया । चन्द्रभागा पिताकेही घरपर रही । पिताके अवरोधसे सती नहीं हुई ।। २१ ।। हे राजन् ! उस शोभनने उस रमाके व्रतके प्रभावसे मंदराचलके शिखरपर एक उत्तम देवनगर प्राप्त किया ।। २२ ।। जो बहुत बढिया किसीसे भी न दबायेजानेवाला असंख्य सुवर्णनिर्मित खंभोंसे बना हुआ अमित सौधोंवाला तथा रत्नोंसे जडा-हुआ एवं वैडूर्य्योंसे पूर्ण मंडित था ।। २३ ।। वहाँपर सफेद चँवरोंसे ढुलते हुए अनेक प्रकारकी स्फटिक मणि-योंसे बनेहुए सिंहासनपर जा बैठा, जिसपर श्वेतछत्र और चामर ढुल रहे थे ।। २४ ।। कानोंमें कुंडल और शिरपर मुकुट धारण किये था । गन्धर्वगण उसकी स्तुति करने लग रहे थे और अप्सरायें सेवा करती थीं ।।२५।। उस जगह वह शोभन राजा दूसरे इन्द्रकी तरह शोभा पाने लगा । एक सोमशर्माके नामसे विख्यात मुचुकुंद नामक नगरमें निवास करता था ।। २६ ।। एक दिन तीर्थयात्राके प्रसंगमें उस ब्राह्मणने उस राजाके जँवाईके वहीं दर्शन किये और उसको अपने राजाका जामाता जान समीप चलागया ।। २७ ।। उसने आसनसे शीघ्रही उठकर उस उत्तम ब्राह्मणके लिये नमस्कारकी अपने श्वसुर राजाके घरके कुशल प्रश्न किये तथा अपनी स्त्री चन्द्रभागा और नगरके भी राजी खुशीके समाचार पूछे ।। २८ ।। सोमशर्माने कहा कि, हे राजन् ! आपके श्वसुरके घरमें सब कुशल हैं । और आपकी पत्नी चन्द्रभागामभी आनंदमें हैं और नगरमेंभी सब तरहसे कुशल है ।। २९ ।। हे राजन् ! आप अपना समाचार कहिए मुझे बडा आश्चर्य है कि, ऐसी विचित्र और सुंदर नगरी कहीं किसीने भी नहीं देखी है ।। ३० ।। हे नृपते ! आप इसको कहिये कि, यह सब कहाँ से मिला है । शोभनने उत्तर दिया कि, हे द्विजेन्द्र ! कार्त्तिक कृष्णपक्षकी रमा नामकी एकादशीके उपवाससे मैंने यह विनाशी पुर प्राप्त किया है ।। और जिससे स्थिर पुण्यका भोग मिले वैसा यत्न करो ।। ३१–३२।। द्विजे-न्द्रने कहा कि, महाराज ! ध्रुव और अध्रुव किस प्रकार होता है ? इसका आप वर्णन करो । मैं उसी तरह करूँगा इसमें झूठ न होगा ।। ३३ ।। शोभनने कहा कि, मैंने यह व्रत विना श्रद्धाके किया जिससे अध्रुव फल मिला है ।। अब जिस कर्मसे ध्रुव फलकी प्राप्ति होती है उसको सुनो ।। ३४ ।। मुचुकुन्द राजाकी चन्द्रभागा सुशोभना पुत्री है । वह आप जानते ही हैं उसको जाकर यह सब वृत्तान्त कहो तो यह ध्रुव फल हो जायगा ।। ३५ ।। यह सुनकर उस ब्राह्मणने यह सब हाल उस चन्द्रभागाको कह दिया । उसने बडे विस्मयसे आँखें-फाडकर ब्राह्मणके वचन सुने और कहा कि ।। ३६ ।। हे ब्राह्मण ! आप सब ये प्रत्यक्ष की बात कहते हैं या कोई स्वप्न हैं ? सोमशर्माने उत्तर दिया कि, हेपुत्रि ! मैंने तुम्हारे पतिको महावनमें प्रत्यक्ष देखा है ।। ३७ ।। मैंने उसका बडा, सुंदर देवताओं का जैसा न डराये जानेवाला नगर देखा है परन्तु उसने यह अध्रुव बताकर स्थायी होनेका यह उपाय कहा है, सो तुमको करना चाहिए ।। ३८ ।। चन्द्रभागा बोली कि, हेमहाराज ! आप मुझे वहाँ ले चलिए; पतिके दर्शन करना चाहती हूँ । आपने व्रतके पुण्यसे पतिके उस वैभवको ध्रुव करूँगी ।। ३९ ।। महाराज ! हम दोनोंका जैसे संयोग हो ऐसा प्रयत्न करो । क्योंकि वियुक्त मनुष्योंके संयोग करानेवालोंको बडा पुण्य होता है । इससे आपकोभी बडा भारी पुण्य होगा ।। ४० ।। यह सुन सोमशर्मा उसके

साथ चल दिया । वह उसको मन्दराचलके निकट वामदेवके स्थान पर ले गया ।। ४१ ।। वामदेव ऋषिने उन दोनोंका हाल सुनकर उज्वल चन्द्रभागाका अपने पवित्र वेदमन्त्रोंके अभिमन्त्रित जलसे अभिषेक किया ।।४२।। ऋषिके मन्त्र प्रभावसे और एकादशीके उपवाससे वह दिव्यदेह धारण कर दिव्यगतिको प्राप्त हुई ।। ४३ ।। वह हर्षसे नेत्रोंको खिलाती हुयी अपने पतिके पास गयी और शोभनभी अपनी प्रेयसी कान्ताको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ।। ४४ ।। उसने अपने निकट बुलाकर'बाईंगोदमें बिठाया चन्द्रभागाने तब हर्षके मारे यह प्रियवचन उसको कहे ।। ४५ ।। कि, हे कान्त ! मेरे वचन सुनिए जो पुण्य मेरेमें है जब मैं पिताके घरमें आठ वर्षसे अधिक बडी हुई ।। ४६ ।। तबसे जो मैंने पुण्य किया है और जो मैंने एकादशीके व्रतविधिपूर्वक श्रद्धालु चित्तसे किये हैं ।। ४७ ।। उस श्रद्धा, भक्ति और पुण्यके प्रभावसे आपका यह नगर और उसकी सब प्रकारकी समृद्धि प्रलयपर्यंत स्थिर रहेगी।।४८।।हे राजशार्दूल ! इस प्रकार वह अपने पतिके साथ दिव्यरूप दिव्य भोग और दिव्य आभरणादि सामानसे नित्य रमण करने लगी ।। ४९ ।। शोभनभी रमाके व्रतके प्रभावसे दिव्यरूप धारण करके मन्दराचलके शिखरपर चन्द्रभागाके साथ आनन्द करता रहा ।। ५० ।। हे नृपते ! चिन्तामणि और कामधेनुके समान यह रमानामकी एकादशी है । इसका वर्णन तुम्हारे सामने मैंने कर दिया है ।। ५१ ।। हे राजन् ! ऐसे व्रतको जो उत्तम लोग करते हैं उनके ब्रह्महत्यादिक महापापभी नष्ट हो जाते हैं ।। ५२ ।। यह भी ब्रह्मवैवर्त पुराणका कहा हुआ कार्तिक कृष्णा रमा नामकी एकादशीका माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ।।

अथ कार्तिकशुक्लैकादशीकथा

ब्रह्मोवाच ।। प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ।। मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां शृणुष्व मुनिसत्तम ।। १ ।। तावद्गर्जति विप्रेन्द्र गङ्गा भागीरथी क्षितौ ।। यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी ।। २ ।। तावद्गर्जन्ति तीर्थानि ह्यासमुद्रं सरांसि च ।। यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिकी ।। ३ ।। अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ।। एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ।। ।। ४ ।। नारद उवाच ।। एकभक्ते च किं पुण्यं किं पुण्यं नक्तभोजने ।। उपवासे च किं पुण्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ।। ५ ।। ब्रह्मोवाच ।। एकभक्तेन जन्मोत्थं नक्तेन द्विजनुर्भवम् ।। सप्तजन्मभवं पापमुपवासेन नश्यति ।। ६ ।। यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्ये न तु गोचरम् ।। तदप्यप्रार्थितं पुत्रं ददाति हरिबोधिनी ।। ७ ।। मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युग्राणि यानि तु ।। एकेनैवोपवासेन दहते पापहारिणी ।। ८ ।। पूर्वजन्मसहस्रैस्तु यद्दुष्कर्म ह्युपार्जितम् ।। जागरस्तत्प्रबोधिन्यां दहते तूलराशिवत् ।। ९ ।। उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः ।। विधिवन्मुनिशार्दूल यथोक्तं लभते फलम्।।१०।।यथोक्तं सुकृतं यस्तु विधिवत्कुरुते नरः ।। स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ मेरुतुल्यं भवेच्च तत् ।। ११ ।। विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरुमात्रकम्।।अणुमात्रं न चाप्नोति फलं धर्मस्य नारद ।। १२ ।। ये ध्यायन्ति मनोवृत्त्या करिष्यामः प्रबोधिनीम् ।। तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ।। १३ ।। समतीतं भविष्यं च वर्तमानं कुलायतम् ।। विष्णुलोकं नयत्याशुप्रबोधिन्यां तु जागरात् ।। १४ ।। वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोकेत्यलंकृताः ।। विमुक्ता नारकैर्दुःखैः पूर्वकर्मसमु-

द्भुवैः ॥ १५ ॥ कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः ॥ कृत्वा तु जागरं विष्णोर्धौतपापो भवेन्मुने ॥ १६ ॥ दुष्प्राप्यं यत्फलं विप्रैरश्वमेधादिभिर्मखैः ॥ प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ १७ ॥ आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु दत्त्वा गाः काञ्चनं महीम् ॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं [1]हरेः ॥१८॥ [2]जातः स एवं सुकृती कुलं तेनैव पावितम् ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी ॥ १९ ॥ यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये संभवन्ति च ॥ तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधिनीम् ॥ २० ॥ सर्वकृत्यं परित्यज्य तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ उपोष्यैकादशीं रम्यां कार्तिके हरिबोधिनीम् ॥ २१ ॥ स ज्ञानी स च योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः ॥ विष्णुप्रियतरा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी ॥ २२ ॥ सकृदेनामुपोष्यैव मुक्तिभाक्च भवेन्नरः ॥ प्रबोधिनीमुपोषित्वा न गर्भं विशते नरः ॥ २३ ॥ कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम् ॥ तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ २४ ॥ स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम् ॥ नरैर्यत् क्रियते वत्स प्रबोधिन्यां तदक्षयम् ॥२५॥ व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम् ॥ विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति भवनं हरेः ॥ २६ ॥ बाल्ये यच्चार्जितं वत्स यौवने वार्धके तथा ॥ शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ २७ ॥ तत्क्षालयति गोविन्दो ह्यस्यामभ्यर्चितो मुने ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥ तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ २८ ॥ जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणासादितं भवेत् ॥ वृथा भवति तत्सर्वमकृते कार्तिकव्रते ॥ २९ ॥ अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः॥ जन्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं नाप्नोति नारद ॥३०॥ तस्मात्त्वया प्रयत्नेन देवदेवो जनार्दनः ॥ उपासनीयो विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदः ॥ ३१ ॥ परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णुतत्परः ॥ अवश्यं स नरो वत्स चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ ३२ ॥ न तथा तुष्यते यज्ञैर्न दानैर्मुनिसत्तम ॥ यथा शास्त्रकथालापैः कार्तिके मधुसूदनः ॥ ३३ ॥ ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्ये शृण्वन्ति समाहिताः ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा कार्तिके गोशतं फलम्॥३४॥श्रेयसे लोभबुद्ध्या वा यः करोति हरेः कथाम् ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ३५ ॥ नियमेन नरो यस्तु शृणुते वैष्णवीं कथाम् ॥ कार्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ॥३६ ॥ प्रबोधवासरे विष्णोः कुरुते यो हरेः कथाम् ॥ सप्तद्वीपवतीदानफलं स लभते मुने ॥ ३७ ॥ कृत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति कथाविदम् ॥ स्वशक्त्या मुनिशार्दूल तेषां लोकाः सनातनाः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रवीत् ॥ नारद उवाच ॥ विधानं ब्रूहि मे स्वामिन्नेकादश्याः सुरोत्तम ॥ ३९ ॥

[1] अर्थाज्जागरकर्तुः । [2] दिने इति शेषः ।

चीर्णेन येन भगवन्यादृशं फलमाप्नुयात् ।। नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।। ४० ।। ब्रह्मोवाच ।। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ह्येकादश्यां द्विजोत्तम ।। स्नानं चैव प्रकर्तव्यं दन्तधावनपूर्वकम् ।। ४१ ।। नद्यां तडागे कूपे वा वाप्यां गेहे तथैव च ।। नियमार्थे महाभाग इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।। ४२ ।। एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ।। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।। ४३ ।। गृहीत्वानेन नियमं देवदेवं च चक्रिणम् ।। संपूज्य भक्त्या तुष्टात्मा ह्युपवासं समाचरेत् ।। ४४ ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्देवदेवस्य सन्निधौ ।। गीतं नृत्यं च वाद्यं च तथा कृष्णकथा मुने ।। ४५ ।। बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुंकुमैः ।। हरेः पूजा विधातव्या कार्तिक्यां बोधवासरे ।। ४६ ।। वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे ।। फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः प्रबोधिन्यां तु भक्तितः ।। ४७ ।। शङ्खतोयं समादाय ह्यर्घो देयो जनार्दने ।। यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ।। ४८ ।। तत्फलं कोटिगुणितं दत्तेऽर्घ्ये बोधवासरे ।। अगस्त्य कुसुमैर्देवं पूजयेद्यो जनार्दनम् ।। ४९ ।। देवेन्द्रोऽपि तदग्रे च करोति करसंपुटम् ।। न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः ।। ५० ।। यत् करोति हृषीकेशो मुनिपुष्पैरलङ्कृतः ।। बिल्वपत्रैश्च ये कृष्णं कार्तिके कलिवर्द्धन ।। ५१ ।। पूजयन्ति महाभक्त्या मुक्तिस्तेषां मयोदिता ।। तुलसीदलपुष्पैर्ये पूजयन्ति जनार्दनम् ।। ५२ ।। कार्तिके स दहेत्तेषां पापं जन्मायुतोद्भवम् ।। दृष्टा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता ।। ५३ ।। रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ।। नवधा सेविता भक्त्या कार्तिके यैर्दिनेदिने ।। ५४ ।। युगकोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ।। रोपिता तुलसी यैस्तु वर्द्धते वसुधातले ।। ५५ ।। कुले तेषां तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः।। आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ।। ५६ ।। कदम्बकुसुमैर्देवं येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ।। तेषां यमालयो नैव प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।।५७।। दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं प्रीतो भवति केशवः ।। किं पुनः पूजितो विप्र सर्वकामप्रदो हरिः ।। ५८ ।। यःपुनः पाटलापुष्पैः कार्तिके गरुडध्वजम् ।। अर्चयेत्परया भक्त्या मुक्तिभागी भवेद्धिसः ।। ५९ ।। बकुलाशोककुसुमैर्येऽर्चयन्ति जगत्पतिम् ।। विशोकास्ते भविष्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।। ६० ।। येऽर्चयन्ति जगन्नाथं करवीरैः सितासितैः ।। तेषां सदा तु विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः ।। ६१ ।। मञ्जरीं सहकारस्य केशवोपरि ये नराः ।। यच्छन्ति ते महाभागा गोकोटिफलभागिनः ।। ६२ ।। दूर्वांकुरैर्हरेर्यस्तु पूजाकाले प्रयच्छति ।। पूजाफलं शतगुणं सम्यगाप्नोति मानवः ।। ६३ ।। शमीपत्रैस्तु ये देवं पूजयन्ति सुखप्रदम् ।। यममार्गो महाघोरो निस्तीर्णस्तैस्तु नारद ।। ६४ ।। वर्षाकाले तु देवेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः ।। ये ऽर्चयन्ति न ते मर्त्याः संसरेयुः पुनर्भवे

॥ ६५ ॥ सुवर्णकेतकीपुष्पं यो ददाति जनार्दने ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं दहते गरुडध्वजः ॥ ६६ ॥ कुंकुमारुणवर्णां च गन्धाढ्यां शतपत्रिकाम् ॥ यो ददाति जगन्नाथे श्वेतद्वीपालये वसेत् ॥ ६७ ॥ एवं संपूज्य रात्रौ च केशवं भुक्तिमुक्तिदम् प्रातरुत्थाय च ब्रह्मन् गत्वा तु सजलां नदीम् ॥ ६८ ॥ तत्र स्नात्वा जपित्वा च कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः ॥ गृहं गत्वा च संपूज्यः केशवो विधिवन्नरैः ॥ ६९ ॥ व्रतस्य पूरणार्थाय ब्राह्मणान्भोजयेत्सुधीः ॥ क्षमापयेत्सुवचसा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥७०॥ गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः ॥ दक्षिणा गौश्च दातव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ ७१ ॥ भूयसी चैव दातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ॥ नियमश्चैव सन्त्याज्यो ब्राह्मणाग्रे प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तु दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ नक्तभोजी नरो राजन् ब्राह्मणान् भोजयेच्छुभान् ॥७३॥ अयाचिते बलीवर्दं सहिरण्यं प्रदापयेत् ॥अमांसाशी नरो यस्तु प्रददेद्गां सदक्षिणाम् ॥ ७४ ॥ धात्रीस्नायी नरो दद्याद्दधि माक्षिकमेव च ॥ फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥ ७५ ॥ तैलस्थाने घृतं देयं घृतस्थाने पयः स्मृतम् ॥ धान्यानां नियमे राजन् दीयन्ते शालितण्डुलाः ॥ ७६ ॥ दद्याद्भूशयने शय्यां सतूलां सपरिच्छदाम् ॥ पत्रभोजी नरो दद्याद्भाजनं घृतसंयुतम् ॥ ७७॥ मौने घण्टां तिलांश्चैव सहिरण्यं प्रदापयेत् ॥ धारणे तु स्वकेशानामादर्शं दापयेद्बुधः ॥ ७८ ॥ उपानहौ प्रदातव्यावुपानत्परिवर्जनात् ॥ लवणस्य च सन्त्यागे शर्करां च प्रदापयेत् ॥ ७९ ॥ नित्यं दीपप्रदो यस्तु विष्णोर्वा विबुधालये ॥ सदीपं सघृतं ताम्रं काञ्चनं वा दशायुतम् ॥ ८० ॥ प्रदद्याद्विष्णुभक्ताय व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥ एकान्तरोपवासे तु कुम्भानष्टौ प्रदापयेत् ॥ ८१ ॥ सवस्त्रान्काञ्चनोपेतान् सर्वान् सालंकृताञ्छुभान् ॥ यथोक्तकरणे शक्तिर्यदि न स्यात्तदा मुने ॥ ८२ ॥ द्विजवाक्यं स्मृतं राजन् संपूर्णव्रतसिद्धिदम् ॥ नत्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् ॥ ८३ ॥ यत्त्यक्तं चतुरो मासान् समाप्ति तस्य चाचरेत् ॥ एवं य आचरेत्पार्थ सोऽनन्तफमाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरं व्रजेत् ॥ यश्चाविघ्नं समाप्यैवं चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥ ८५ ॥ स भवेत्कृतकृत्यस्तु न पुनर्मानुषो भवेत् ॥ एतत्कृत्वा महीपाल परिपूर्णं व्रतं भवेत् ॥ ८६ ॥ व्रतवैकल्यमासाद्य ह्यन्धः कुष्ठी प्रजायते ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि लभेद्गोदानजं फलम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कं० का० शु० प्रबो० मा० सं०

अथ कार्त्तिक शुक्लैकादशीकी कथा–ब्रह्माजी बोले–हे मुनिराज ! प्रबोधिनी एकादशीका पापनाशक पुण्यवर्द्धक तथा ज्ञानियोंको मुक्तिदायक माहात्म्य सुनो ॥ १ ॥ हे विप्रेन्द्र ! पृथिवीपर गंगा भागीरथीका गर्जन तबतकही है जब तक कि प्रबोधिनी एकादशी नहीं आती ॥ २ ॥ सरसे लेकर समुन्द्रपर्यन्त सारे तीर्थ

तब तक ही गर्जना करते हैं जब तक कि, कार्त्तिकमासकी पापनाशक विष्णुतिथि प्रबोधिनी नहीं आती। प्रबोधिनीके एकही उपवाससे उत्तम साधक को सहस्रों अश्वमेधका और सैंकडों राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है।।३।।४।।नारदजी बोले कि, एकभक्तमें क्या एवं नक्त भोजनमें क्या पुण्य है तथा उपवासमें क्या पुण्य है ?हे पितामह ! यह मुझे समझाकर कहिए ।।५।। ब्रह्माजी बोले कि, एक भक्तसे एक जन्मका एवम् नक्तसे दो जन्मका तथा उपवाससे सात जन्मका पाप नष्ट होता है ।। ६ ।। यह हरिबोधिनी एकादसी ऐसे पुत्रको देती है, जो दुर्लभ हो, जो किसी तरह भी न मिल सके, जो कि, तीनों लोकोंमें गोचर न हो ।। ७ ।। मेरु और मंदराचलके बराबर भी जो उग्र पाप हो वे सब एकही उपवाससे दग्ध हो जाते हैं ।। ८ ।। पहिले सहस्रों जन्मोंसे दुष्कर्म इकट्ठे किए हैं, प्रबोधिनीका जागरण तूलराशिकी तरह जला देता है ।। ९ ।। जो स्वभावसे ही प्रबोधिनीका विधिपूर्वक उपवास करता है । हे मुनिशार्दूल ! उसे यथोक्त फल मिलता है ।। १० ।। जो मनुष्य थोडा भी सुकृतविधिके साथ करता है, हे मुनिश्रेष्ठ ! उसको वह मेरुके बराबर हो जाता है ।। ११ ।। जो मनुष्य विधिके साथ मेरुके बराबर भी पुण्य करता है, हे नारद ! उस धर्मका वह अणुमात्र भी फल नहीं पाता ।। १२ ।। जो मनुष्य मनोवृत्तिद्वारा प्रबोधिनीके व्रत करनेको शोचते हैं, उनके पहिले सौ जन्मके किए, पाप नष्ट हो जाते हैं ।। १३ ।। प्रबोधिनीकी रातको जो मनुष्य जागरण करता है, वह भूत भविष्य और वर्तमान दश हजार कुलोंको शीघ्रही विष्णुलोकको ले जाता है ।। १४ ।। पहिले किए हुए कर्मोंसे प्राप्त हुए नारकीय दुःखोंसे मुक्त हुए एवं भूषणादिकोंसे सजे हुए पितरलोग प्रसन्नताके साथ विष्णुलोकमें चले जाते हैं ।। १५ ।। मनुष्य ब्रह्महत्या आदिके घोर पातकोंको भी करके हरिवासरमें जागरण करके हे मुने ! सब पापोंको भगवान्की कृपासे धो डालते हैं ।। १६ ।। जिस फलको ब्राह्मण अश्वमेध आदि यज्ञोंसे भी प्राप्त नहीं कर सकते वह प्रबोधिनी एकादशीके दिन जागरण मात्रसे सुखपूर्वक पा लिया जाता है ।। १७ ।। सब तीर्थों का स्नान और अनेकों गऊ तथा कांचन और मही का दान करनेसे फल नहीं मिल सकता जो कि, इस हरिदिवसमें जागरण करनेसे मिलता है ।। १८ ।। जिसने कार्तिक मासमें प्रबोधिनी एकादशीके दिन उपवास किया है, हे मुनिशार्दूल ! वही एक इस धरातलपर पुण्यात्मा उत्पन्न हुआ है, और उसनेंही अपना कुल पवित्र किया है । जो मनुष्य विधिवत् प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करता है । उसके घरमें त्रिलोकीभरके सब तीर्थ आकर निवास किया करते हैं ।। १९ ।। ।। २० ।। सब मनुष्योंका कर्त्तव्य है कि वे सब कर्त्तव्य कर्म्मोंका परित्याग करके चक्रपाणि भगवान्की प्रसन्नताके लिए कार्तिकमें हरिप्रबोधिनीके दिन उपवास करें, वही एक ज्ञानी योगी, तपस्वी और जितेन्द्रिय है, जिसने विष्णु भगवानकी परम प्रिया, धर्म्म के सार देनेवाली प्रबोधिनी एकादशीका व्रत किया है । जो मनुष्य जन्मभरमें एकबारभी प्रबोधिनी एकादशीके दिन उपवास करता है, वह मोक्षभाक् होता है, वह फिर कभीभी गर्भवासका क्लेशभाक् नहीं होता है ।। २१ ।।२३।।प्रबोधिनी एकादशीके दिन जागरण करनेसे गोविंद भगवान् मनुष्यके कायिक, मानसिक और वाचनिक समस्त पापोंको धोदेते हैं ।। २४ ।। हे वत्स ! जो मनुष्य भगवान् पुरुषोत्तम देवदेवकी प्रीतिका उद्देश लेकर प्रबोधिनी एकादशीके दिन स्नान, दान, जप और होम करते हैं, वह उनका किया हुआ सुकृत अक्षय होता है ।। २५ ।। इस व्रतके अनुष्ठानसे जनार्दन भगवान्को संतुष्ट करनेवाला मनुष्य समस्त दिशाओंको पुण्यतेजसे प्रकाशमान करता हुआ विष्णुधामको पधारता है ।। २६ ।। हे वत्स ! बाल्य, यौवन और वार्धक्य अवस्थाओं तथा सैंकडों जन्मोंमें स्वल्प या बहुत जो पाप किया हो हे मुने ! उन सब पापोंको प्रबोधिनी एकादशीके दिन गोविन्दभगवान् अपने पूजकके पूजनसे संतुष्ट होकर दूर करते हैं । चन्द्र या सूर्यग्रहणके समय काशी कुरुक्षेत्रादितीर्थोंमें दानादि करनेंसे जो पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उससे सहस्रगुणी प्रबोधिनी एकादशीके दिन जागरणसे फल प्राप्ति है ।। २७ ।। ।।२८।। और एक बारभी जिसने प्रबोधिनी एकादशीके दिन उपवास नहीं किया है, उसने जन्मसे मरणपर्यन्तभी जो पुण्य किये हैं ,वे सब व्यर्थ होते हैं ।। २९ ।। हे नारद ! कार्तिकमासमें विष्णु भगवान्का व्रतानुष्ठान न करनेसे जन्मभर किये पुण्योंका फलभाक् नहीं होता है ।। ३० ।। हे विप्रेन्द्र ! इसलिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप सब अभिलषित फलोंके देनेवाले देवदेव जनार्दनका पूजन अच्छीतरह अवश्य करनाचाहिए । अर्थात् भगवान्के पूजन करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।। ३१ ।। विष्णु भगवान्-

की सेवामें तत्पर रहता हुआ जो नर कार्तिकमासमें परान्नभक्षण नहीं करता है, उसको चान्द्रायण व्रत करनेका फल अवश्य प्राप्त हो जाता है ।। ३२ ।। हे मुनिसत्तम ! कार्तिकमासमें भगवान् मधुसूदनदेवकी कथाओंके श्रवण कीर्तनादिसे जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी प्रसन्नता न यज्ञोंसे और न दानोंसे ही होती है ।। ३३ ।। जो विद्वान् कार्तिकमासमें विष्णु भगवान्की कथाका कीर्तन करते हैं और जो श्रद्धालु भक्त समाहित होकर उस कथाका आधा श्लोक या एक श्लोक भी सुनते हैं उनको सौ गोदानका फल प्राप्त होता है ।। ३४ ।। और हे मुनिशार्दूल ! जो मनुष्य कार्तिक मासमें अपने स्वर्गादि सुखोंके लिए या धनादिकों के लोभके वशमें पडकर भी भगवान्की कथाका श्रवण कीर्तन करता है, वह अपने शत कुलोंका उद्धार करता है ।। ३५ ।। जो नर नियमपूर्वक एवं कार्त्तिकमासमें विशेषरूपसे भगवत्कथाका श्रवण करता है वह सहस्र गोदानका फलभागी होता है ।। ३६ ।। प्रबोधिनी एकादशीके दिन जो मनुष्य भगवान् की कथा करता है, हे मुने ! वह सप्तद्वीपा अर्थात् समस्त पृथिवीके दान करनेके फलको प्राप्त होता है ।। ३७ ।। हे मुनिशार्दूल ! जो मनुष्य भगवान्की कथाका श्रवण करके अपनी शक्तिके अनुसार कथा कहनेवाले कथावेत्ता विद्वान्का पूजन करते हैं, उनको अक्षय वैकुण्ठलोक-प्राप्त होते हैं ।। ३८ ।। ऐसे जब भगवान् ब्रह्माजीने कहा, तब ब्रह्माजीके इन वचनोंको सुनकर नारदमुनि फिर बोले कि, हे स्वामिन् ! हे सुरोत्तम ! एकादशीके दिन जिस प्रकारके व्रत करनेसे जैसाफल मिलता है, उस विधिका आप कथन करो । नारद मुनिने जब ऐसी प्रार्थना की, उसे सुनकर ब्रह्माजीने उत्तर दिया ।। ३९ ।। ।।४० ।। हे द्विजोत्तम ! एकादशीके दिन ब्राह्ममुहूर्तमें शय्यासे उठकर मलमूत्रादि क्रिया करे, फिर दन्तधावन करके नदी, तलाव, कूप, वापी या इनमें पूर्व पूर्वके अभावमें उत्तर उत्तरमें एव सबके अभावमें अपने घर पर ही शुद्ध जलसे स्नानकरे, व्रतकरनेकानियम पालन करनेके लिए " एकादश्यां" इस वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण करे ।। ४१ ।। ४२ ।। इसका यह अर्थ है कि, हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मैं आज एकादशीके दिन निराहार रहूँगा और दूसरे दिन भोजन करूँगा । अतः इस मेरे नियमको आप निभावें। क्योंकि, में आपकी शरण हूँ ।। ४३ ।। इस प्रकार नियम (सङकल्प) करके देवदेव चक्रपाणि भगवान्का भक्तिसे पूजन करे, फिर चित्तको प्रसन्न रखाता हुआ उपवास करे ।। ४४ ।। हे मुने ! भगवान् के स्थानमें रात्रिभर जागरण करे । गान, नाच, वाद्य तथा भगवत्कथाका कीर्तन करे ।। ४५ ।। कार्तिकमें प्रबोधिनी एकादशीके दिन भगवान्का पूजन, बहुतसे पुष्प फल, कपूर, अगर तथा केसर, चन्दन आदिसे करना चाहिये ।। किन्तु प्रबोधिनीके दिन भगवान् का पूजन जब करे, उस समयमें धन रहते हुए कृपणता न करे, अपने वैभवानुसार सामग्री मँगवाकर हरिका पूजन करे । इस परम पवित्र दिनमें भगवान् के नानाविध दिव्य फलोंका भोग भक्तिभावसे लगाना चाहिये ।। ४६ ।। ।।४७ ।। जब पूजन करे, तब शंखमें जल भरके भगवान् जनार्दनको अर्घदान करे । समस्त तीर्थोंके सेवनसे जो पुण्यफल उपार्जित किया हो, तथा जो जो दान करके फल लाभ किया है ।। ४८ ।। वह सब पुण्य प्रबोधिनी एकादशीके दिन अर्घदान करने से कोटि गुणा अधिक हो जाता है ।। जो मनुष्य अगस्त्यके पुष्पोंसे जनार्दन भगवान् का पूजन करे ।। ४९ ।। उसके सम्मुखमें साक्षात् देवराज भी अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करता है, अर्थात् अपना दासभाव स्वीकार करता है, अगस्त्य पुष्पोंसे पूजन करनेपर हृषीकेश भगवान् जो उपकार करते हैं, हे विप्रेन्द्र ! उस उपकारको तपश्चर्यासे प्रसन्न किये हुए भी नहीं करते हैं ।। हे कलिवर्द्धन ! (परस्परमें कलहको बढानेवाले) जो मनुष्य कार्तिकमासमें बिल्वपत्रोंसे परमप्रेमपूर्वक कृष्ण भगवान्का ।।५०।।५१।। पूजन करते हैं, उनको मोक्ष प्राप्त होता है, यह मेरा कहना है । कार्तिकमासमें जो नर तुलसीके दलोंसे तथा मञ्जरियों (एवं पुष्पों) से विष्णुका पूजन करते हैं, उनके अयुत जन्मोंके भी किये पापोंको विष्णुभगवान् दग्ध कर देते हैं । तुलसीका दर्शन, स्पर्शन, ध्यान कीर्तन, प्रणमन, स्तवन ।।५२।।५३।। आरोपण, सेचन तथा प्रतिदिन पूजन करना श्रेयस्कर होता है । जिन्होंने कार्तिकमासमें प्रतिदिन पूर्वोक्त दर्शनादि नौ रीतियोंसे भक्तिपूर्वक तुलसीका सेवन किया है ।। ५४ ।। भगवान्के वैकुण्ठधाममें हजार कोटियुग पर्यन्त वह निवास करते हैं, जिन्होंकी लगायी हुई तुलसी पृथिवीपर बढती है ।। ५५ ।। उन्होंने कुलमें जो अद्यावधि उत्पन्न हुए हैं, जो उत्पन्न होवेंगे उनका भगवान्के धाममें सहस्र कल्पकोटियुग पर्यन्त निवास होता है ।। ५६ ।। कदम्बके पुष्पोंसे जो मनुष्य जनार्दनदेवका पूजन करते हैं उन्हींका यमराजके

स्थानमें जाकर रहना, चक्रपाणि जनार्दनकी प्रसन्नतासे नहीं होता है ।। ५७ ।। कदम्बपुष्पको देखकर भी केशवदेव प्रसन्न होते हैं । फिर कदम्बके पुष्पोंसे पूजनपर प्रसन्नहुए हरि सब अभिलषितार्थ पूर्ण करे, इसमें सन्देह करना ही व्यर्थ है ।।५८।। मनुष्य पाटलाके पुष्पोंसे कार्तिकमें गरुडध्वजदेवकी परमभक्तिसे पूजा करता है, वह मुक्तिभागी होता है ही ।। ५९ ।। जो नर मौलसरी एवम् अशोकके पुष्पोंसे जगदीश्वरका पूजन करते हैं, वे चन्द्र सूर्य जबतक प्रकाश करेंगे, तबतक शोकभागी नहीं होते हैं ।। ६० ।। हे विप्रेन्द्र ! जो मनुष्य सुफेद या काले करवीरके पुष्पोंसे जगन्नाथभगवान्‌की आराधना करते हैं, उनके ऊपर केशव सदैव सन्तुष्ट रहते हैं ।। ६१ ।। जो नर सुगन्धिवाले आमकी मञ्जरीको भगवान्‌के ऊपर चढाते हैं, वे परमभाग्यशाली हैं और कोटिगोदानके फलभागी होते हैं ।। ६२ ।। जो मनुष्य पूजाके समय नारायणके ऊपर कोमल दूर्वाके अंकुर सर्मापित करता है, वह मनुष्य पूजन करनेके शतगुणित फलका ठीकठीक भागी होता है ।। ६३।। हे नारद ! जो मनुष्य शमीपत्रोंसे आनन्दकारी भगवान्‌का पूजन करते हैं, उन्होंने अत्यन्त भयङ्कर भी यमराजकी पुरीके जानेवाले रस्तेके भयसे छुटकारा पालिया ।। ६४ ।। और जो नित्य वर्षाकालमें देवाधिदेवका चम्पाके पुष्पोंसे पूजन करते हैं वे बारबार जन्मनेके जालमें फिर कभीभी नहीं पडते हैं ।। ६५ ।। जो मनुष्य जनार्दन भगवान् के ऊपर सुवर्णके समान उज्वल केतकीके पुष्पोंका समर्पण करता है, उसके कोटि जन्मोंमें भी किये पापोंको गरुडध्वज देव दग्ध कर देते हैं ।। ६६ ।। केसरके समान अरुण (लाल) आकारवाली सुगन्धित शतपत्रिका (कमलिनी) को जगन्नाथजी पर समर्पण करता है, वह श्वेतद्वीपवाले भगवान्‌के दिव्यधाममें निवास करता है ।।६७ ।। ऐसे प्रबोधिनी एकादशीके दिनरातमें भोग (साँसारिक सुखसम्पत्ति) और मुक्ति (पारमार्थिक सुखसम्पत्ति) के देनेवाले केशवका पूजन करते हैं, हे ब्रह्मन् ! दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर जलपूर्ण नदीके तटपर पहुँचकर ।। ६८ ।। जो उसके जलमें स्नान करते हैं, फिर स्नानोत्तर गायत्रीका जप करके पूर्वाह्णोचित दूसरे तर्पणादि कर्म्मोंको करते हैं, पीछे उनको अपने घरपर जाकर शास्त्रकी विधिके अनुसार भगवान् नारायणका पूजन करना चाहिये ।। ६९।। किये व्रतकी साङ्गतया पूर्णताके लिये विद्वानका कर्तव्य है कि, वह फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे । सुमधुर वचनों एवं भक्ति पूर्णचित्तसे उन् ब्राह्मणोंसे अपने पापोंकी निवृत्तिके लिये क्षमा प्रार्थना करे ।।७० ।। पीछे भोजन कराकर तथा वस्त्र आभूषणादिकों से सुसज्जित करके आचार्यका पूजन करे, चक्रपाणि भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये दक्षिणा और गौका प्रदान करे ।।७१।। फिर अभ्यागत एवं दूसरे दूसरे उस समयके उपस्थित ब्राह्मणोंको भूयसी दक्षिणा अवश्यही अपनी शक्तिके अनुरूप दे । फिर व्रत करने का जो नियम धारण किया था, उस नियमका ब्राह्मणोंके सम्मुख बैठकर विसर्जन करे ।।७२।। एवं कहे कि, मैंने जो व्रत करनेका नियम किया था वह अबतक निभाया, अब मैं उसका विसर्जन करना चाहता हूँ, फिर शक्तिके अनुरूप ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणा दे । हे राजन् ! नक्त भोजीको चाहिये कि, उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।। ७३ ।। ऐसी प्रतिज्ञावाले व्रती पुरुषका कर्त्तव्य है कि, वह बिना मांगे सुवर्ण और बैलका दान करे जो व्रती मांसभक्षी न हो वह गऊको दक्षिणा रूपसे आचार्यको प्रदान करे ।। ७४ ।। कार्तिकमासमें आंवलोंको घिसकर उनकी पीठी लगाकर स्नान करनेवाला दधि और मधुका दान करे । हे राजन् ! फल खाकर व्रत करनेवाला व्रती पुरुष मधुर मधुर फलोंको दे ।। ७५ ।। तैल खाना जिसने छोडा हो वह फिर यदि तैल खाना चाहे तो घृतका दान करे और जिसने घृत खाना छोडा हो वह दूध का दान करे, धान्यभोजी शाली (सुगन्धित) चावलोंका दान करे ।।७६।। पृथ्वीतलपर शयनके नियमके पालन करनेवाला सोड सोडिया एवं तकियासे परिष्कृत शय्याका दान करे । पत्तलमें भोजन करनेवाला व्रतीघृत पूर्ण भोजन पात्रको दे ।। ७७ ।। मौन व्रत धारण करनेवाला व्रतके अन्तमें घण्टा, तिल और सुवर्णका प्रदानकरे । अपने केशों को नहीं कटाऊँगा इस प्रकारका व्रती विद्वान् दर्पणको दे ।। ७८ ।। जूतियाँ पहिनना जिसने छोडा हो, वह जूतियों का जोडा दे । नमक खानेका त्याग करनेवाला शक्करका दान करे ।। ७९ ।। विष्णु या अन्य किसी देवताके मन्दिर में नित्य दीपक जलानेका नियमी जन घृत और बत्तीसे संयुक्त तामेका दीपपात्र सामर्थ्य विशेष हो तो सुवर्णका दीपपात्र ।। ८० ।। विष्णुभक्त ब्राह्मणके लिये अपने व्रतको पूरा करनेके लिये दे, मैं एक दिनके अन्तरसे भोजन करूँगा अर्थात् एक एक दिन छोडकर दूसरे दूसरे दिन एकबार भोजन करूँगा

इस प्रकारका व्रती व्रतके अन्तमें आठ कुंभों का दान करे ।। ८१ ।। और उनके साथ वस्त्र सुवर्ण और अलंकार भी देवे । हे मुने ! यदि यथोक्त दानादि करनेकी शक्ति न हो तो वह व्रतकी साङ्गतया पूर्तिके लिये ।। ८२ ।। ब्राह्मणसे कहावे, अर्थात् " तुम्हारा व्रत पूर्ण हो गया" ऐसे वचन ब्राह्मणसे बुलावे । क्योंकि, ऐसे समयमें ब्राह्मणके वचन ही (आशीर्वाद ही) सिद्धि करनेवाले होते हैं । फिर ब्राह्मणोंको प्रणाम करे, उन्हें विसर्जित करके आप भोजन करे ।। ८३ ।। जिसने आषाढ शुक्ला देवशयनी एकादशीसे कार्तिक शुक्ला एकादशीतक वर्षातके चारमहीने पर्यन्त वस्तु जो छोडी हो, उसकी समाप्ति इस प्रबोधिनीके ही दिन करे । हे पार्थ ! जो मनुष्य पूर्वोक्त रीतिसे व्रताचरण करता है उसको अनन्त फल मिलता है ।। ८४ ।। शरीर परित्याग करनेपर वैकुण्ठ लोक चला जाता है । हे राजन् जिसने चार मास पर्यन्त निर्विघ्न व्रत निभाया है । ।। ८५ ।। वह कृतकृत्य हो गया, उसे फिर किसी यज्ञादि करनेकी आवश्यकता नहीं ।वह फिर मनुष्य योनिमें नहीं आता है, किन्तु स्वर्गमें ही देवता होकर आनन्द भोगता है । हे महीपाल ! जो हमने विधि कही है उसके अनुसार व्रत करनेसे व्रत परिपूर्ण हो जाता हैं ।। ८६ ।। व्रतानुष्ठानकी विधिमें विकलता करनेसे अन्धा और कोढी होता है । हे राजन् ! जो तुमने यहाँ व्रतकी विधि पूछी थी, वह सब विधि मैंने तुम्हें कहदी इस विधिके भी पठन और श्रवणसे गौके देने का फल प्राप्त होता है ।। ८७ ।। यह श्रीस्कन्दपुराण का कहा हुआ कार्तिक शुक्ला एकादशीके व्रतका माहात्म्य समाप्त हुआ ।।

अथाधिकशुक्लैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। मलिम्लुचस्य मासस्य का वा एकादशी भवेत् ।। किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। मलमासस्य या पुण्या प्रोक्ता नाम्ना च पद्मिनी ।। सोपोषिता प्रयत्नेन पद्मनाभपुरं नयेत् ।।२।। मलमासे महापुण्या कीर्तिता कल्मषापहा ।। तस्याः फलं कथयितुं न शक्तश्चतुराननः ।। ३ ।। नारदाय पुरा प्रोक्तं विधिना व्रतमुत्तमम् ।। पद्मिन्याः पापराशिघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।। ४ ।। श्रुत्वा वाक्यं मुरारेस्तु प्रोवाचातिमुदान्वितः ।। युधिष्ठिरो जगन्नाथं विधिं पप्रच्छ धर्मवित् ।। ५ ।। श्रुत्वा राज्ञस्तु वचनमुवाच मधुसूदनः ।। शृणु [1]राजन्प्रवक्ष्यामि मुनीनामप्यगोचरम् ।। ६ ।। दशमीदिवसे प्राप्ते व्रतारम्भो विधीयते ।। कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ।। ७ ।। शाकं मधु परान्नं च दशम्यामष्ट वर्जयेत् ।। हविष्यान्नं च भुञ्जीत अक्षारलवणं तथा ।। ।।८।। भूमिशायी ब्रह्मचारी भवेच्च दशमीदिने ।। एकादशीदिनेप्राप्ते प्रातरुत्थाय सादरम् ।। ९ ।। विधाय चमलोत्सर्गं न कुर्याद्दन्तधावनम् ।। कृत्वा द्वादशगण्डूषाञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः ।। १० ।। सूर्योदये शुभे तीर्थे स्नानार्थं प्रव्रजेत्सुधीः ।। गोमयं मृत्तिकां गृह्य तिलान्दर्भाञ्छुचिस्तथा ।। ११ ।। चूर्णैरामलकीभूतैर्विधिना स्नानमाचरेत् ।। उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।। १२ ।। मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमन्त्रिता ।। हरिपूजनयोग्यं मां मृत्तिके कुरु ते नमः ।। १३ ।। सर्वौषधिसमुत्पन्नं गवोदरमधिष्ठितम् ।। पवित्रकरणं भूमेर्मां पावयतु गोमयम् ।। १४ ।। ब्रह्मष्ठीवनसंभूता धात्री भुवनपावनी ।। संस्पृष्टा पावयाङ्गं मे निर्मलं कुरु ते नमः

[1] विधिमिति शेषः ।

।। १५ ।। देवदेव जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर ।। देहि विष्णो ममानुज्ञां तव तीर्थावगाहने ।। १६ ।। वारुणांश्च जपेन्मन्त्रान् स्नानं कुर्याद्विधानतः ।। गङ्गादितीर्थं संस्मृत्य यत्र कुत्र जलाशये ।। १७ ।। पश्चात्संमार्जयेद्गात्रं विधिना नृपसत्तम ।। परिधायाहतं वासः शुक्लं शुचि ह्यखण्डितम् ।। १८ ।। सन्ध्यामुपास्य विधिना तर्पयित्वा पितृन्सुरान् ।। हरेर्मन्दिरमागम्य पूजयेत्कमलापतिम् ।। १९ ।। स्वर्णमाषकृतं देवं राधिकासहितं हरिम् ।। पार्वत्या सहितं शम्भुं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।। ।। २० ।। धान्योपरि न्यसेत्कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा ।। दिव्यवस्त्रसमायुक्तं दिव्यगन्धानुवासितम् ।।२१।। तस्योपरि न्यसेत् पात्रं ताम्रं रौप्यं हिरण्मयम् ।। तस्मिन्संस्थापयेद्देवं विधिना पूजयेत्ततः ।। २२ ।। संस्नाप्य सलिलैः श्रेष्ठैर्गन्धधूपाधिवासितैः ।। चन्दनागुरुकर्पूरैः पूजयेद्देवमीश्वरम् ।। २३ ।। नानाकुसुमकस्तूरीकुङ्कुमेन सिताम्बुजैः ।। तत्कालजातैः कुसुमैः पूजयेत्परमेश्वरम् ।। २४ ।। नैवेद्यैर्विविधैः शक्त्या तथा नीराजनादिभिः ।। धूपैर्दीपैः कर्पूरैः पूजयेत्केशवं शिवम् ।। २५ ।। नृत्यं गीतं तदग्रे तु कुर्याद्भक्तिपुरःसरम् ।। [1]नालपेत्पतितान्पापांस्तस्मिन्नहनि न स्पृशेत् ।। २६ ।। नानृतं हि वदेद्वाक्यं सत्यपूतं वचो वदेत् ।। रजस्वलां न स्पृशेच्च न निन्देद्ब्राह्मणं गुरुम् ।। २७ ।। पुराणं पुरतो विष्णोः शृणुयात्सह वैष्णवैः ।। निर्जला सा प्रकर्तव्या या च शुक्ले मलिम्लुचे ।। २८ ।। जलपानेन वा कुर्याद् दुग्धाहारेण नान्यथा ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रसंयुतम् ।। २९ ।। प्रहरे प्रहरे पूजा कार्या विष्णोः शिवस्य च ।। प्रथमे प्रहर दद्यान्नारिकेलार्घमुत्तमम् ।। ३० ।। द्वितीये श्रीफलैश्चैव तृतीये बीजपूरकैः ।। चतुर्थप्रहरे पूगैर्नारिङ्गैश्च विशेषतः ।। ३१ ।। प्रथमे प्रहरे पुण्यमग्निष्टोमस्य जायते ।। द्वितीये वाजपेयस्य तृतीये हयमेधजम् ।। ३२ ।। चतुर्थे राजसूयस्य जाग्रतो जायते फलम् ।। नातः परतरं पुण्यं नातः परतरा मखाः ।। ३३ ।। नातः परतरा विद्या नातः परतरं तपः ।। पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राण्यायतनानि च ।। ३४ ।। तेन स्नातानि दृष्टानि येनाकारि हरेर्व्रतम् ।। एवं जागरणं कुर्याद्यावत्सूर्योदयो भवेत् ।। ३५ ।। सूर्योदये शुभे तीर्थे गत्वा स्नानं समाचरेत् ।। स्नात्वा चागत्य भवनं पूजयेद्देवमीश्वरम् ।। ३६ ।। पूर्वोदितेन विधिना भोजयेद्ब्राह्मणाञ्छुभान् ।। कुम्भादिकं च यत्सर्वं प्रतिमां केशवस्य च ।। ३७ ।। पूजयित्वा विधानेन ब्राह्मणाय समर्पयेत् ।। एवंविधं व्रतं यो वै कुरुते भुवि मानवः ।। ३८ ।। सफलं जायते जन्म तस्य मुक्तिफलप्रदम्[2] ।। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।। ३९ ।। व्रतानि तेन चीर्णानि सर्वाणि नृपनन्दन ।। पद्मिन्याः प्रीतियुक्तो यः कुरुते व्रतमुत्त-

१ पतितैः सहेत्यर्थः । २ मुक्तिफलप्रदं व्रतमित्यन्वयः ।

मम् ।। ४० ।। अत्र ते कथयिष्यामि कथामेकां मनोरमाम् ।। नारदाय पुलस्त्येन विस्तरेण निवेदिताम् ।। ४१ ।। कार्तवीर्येण कारायां निक्षिप्तं वीक्ष्य रावणम् ।। विमोचितः पुलस्त्येन याचयित्वा महीपतिम् ।। ४२।। तदाश्चर्यं तदा श्रुत्वा नारदो दिव्यदर्शनः ।। पप्रच्छ च यथाभक्त्या पुलस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ।।४३।। नारद उवाच दशाननेन विजिताः सर्वे देवाः सवासवाः ।। कार्तवीर्येण विजिताः कथं रणविशारदः ।। ४४ ।। नारदस्य वचः श्रुत्वा पुलस्त्यो मुनिरब्रवीत् ।। पुलस्त्य उवाच ।। शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्यसमुद्भवम् ।। ४५ ।। पुरा त्रेतायुगे राजन्माहिष्मत्यां बृहत्तरः ।। हैहयानां कुले जातः कृतवीर्यो महीपतिः ।। ४६ ।। सहस्रं प्रमदास्तस्य नृपस्य प्राणवल्लभाः ।। न तासां तनयं काचिल्लेभे राज्यधुरन्धरम् ।। ४७ ।। यजन् देवान्पितृन्सिद्धान्प्रतिपूज्य महत्तरान् ।। कुर्वंस्तदुदितं सर्वं लब्धवांस्तनयं न सः ।। ४८ ।। सुतं विना तदा राज्यं न सुखाय महीपतेः ।। क्षुधितस्य यथा भोगा न भवन्ति सुखप्रदाः ।। ४९ ।। विचार्य चित्ते नृपतिस्तपस्तप्तुं मनो दधे ।। तपसैव सदा सिद्धिर्जायते मनसेप्सिता ।। ५० ।। इत्युक्त्वा स हि धर्मात्मा चीरवासा जटाधरः ।। तपस्तप्तुं गतः सद्यो गृहे न्यस्य सुमन्त्रिणम् ।। ५१ ।। निर्गतं नृपतिं वीक्ष्य पद्मिनी प्रमदोत्तमा ।। हरिश्चन्द्रस्य तनया तपस्तप्तुंकृतोद्यमम् ।। ५२ ।। भूषणादि परित्यज्य चीरमेकं समाश्रयत् ।। जगाम पतिना सार्द्धं पर्वते गन्धमादने ।। ५३ ।। गत्वा तत्र तपस्तेपे वर्षाणामयुतं नृपः ।। न लेभेऽथापि तनयं ध्यायन्देवं गदाधरम् ।। ५४ ।। अस्थिस्नायुमयं कान्तं दृष्ट्वा सा प्रमदोत्तमा ।। अनसूयां महासाध्वीं पप्रच्छ विनयान्विता ।। ५५ ।। भर्तुः प्रतपतः साध्वि वर्षाणामयुतं गतम् ।। तथापि न प्रसन्नोऽभूत्केशवः कष्टनाशनः ।। ५६ ।। व्रतं मम महाभागे कथयस्व यथातथम् ।। येन प्रसन्नो भगवान्भविष्यति सदा मयि ।। ५७।।येन जायेत मे पुत्रश्चक्रवर्त्ती महत्तरः ।। श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं पतिव्रतपरायणा ।। ५८ ।। तदा प्रोवाच संहृष्टा पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ।। मासो मलिम्लुचः सुभ्रु मासद्वादशकाधिकः ।। ५९ ।। द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैरायाति स शुभानने ।। तन्मध्ये द्वादशीयुग्मं पद्मिनी परमा तथा ।। ६० ।। उपोष्य तत्प्रकर्तव्यं विधिना जागरैः समम् ।। शीघ्रं प्रसन्नो भगवान् भविष्यति सुतप्रदः ।। ६१ ।। इत्युक्त्वाकथयत् सर्वं मया पूर्वोदितं नृप ।। विधिर्व्रतस्य विधिवत्प्रसन्ना कर्दमाङ्गजा ।। ६२ ।। श्रुत्वा व्रतविधिंसर्वं यथोक्तमनसूयया ।। चक्रे राज्ञी च तत्सर्वं पुत्रप्राप्तिमभीप्सती ।। ६३ ।। एकादश्यां निराहारा सदा जाता च निर्जला ।। जागरेण युता रात्रौ गीतनृत्यसमन्विता ।। ६४।। पूर्णे व्रते च वै शीघ्रं प्रसन्नः केशवः स्वयम् ।। बभाषे गरुडारूढो वरं वरयशोभने ।।६५।। श्रुत्वा वाक्यं जगद्धातुः स्तुत्वा प्रीत्या शुचिस्मिता ।। ययाचेऽद्य वरं देहि

मम भर्त्तुर्बृहत्तरम् ।। ६६ ।। पद्मिन्या स्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः ।। यथा मलिम्लुचो मासो नान्यो मे प्रीतिदायकः ।। ६७ ।। तन्मध्यैकादशी रम्या मम प्रीतिविवर्द्धनी ।। सा त्वयोपोषिता सुभ्रु यथोक्तविधिना शुभे ।। ६८ ।। तेन त्वया प्रसन्नोऽहं कृतोऽस्मि सुभगानने ।। तव भर्त्तुः प्रदास्यामि वरं यन्मनसेप्सितम् ।। ६९ ।। इत्युक्त्वा नृपतिं प्राह विष्णुर्विश्वार्तिनाशनः ।। वरं वरय राजेन्द्र यत्ते मनसि कांक्षितम् ।। ७० ।। सन्तोषितोऽहं प्रियया तव सिद्धिचिकीर्षया ।। श्रुत्वा तद्वचनं विष्णोः प्रसन्नो नृपसत्तमः ।। ७१ ।। वव्रे सुतं महाबाहुं सर्वलोकनमस्कृतम् ।। न देवैर्मानुषैर्नागैर्दैत्यदानवराक्षसैः ।। ७२ ।। जेतुं शक्यो जगन्नाथ विना त्वां मधुसूदन ।। इत्युक्तो भगवान् बाढमित्युक्त्वान्तरधीयत ।। ७३ ।। नृपोऽपि सुप्रसन्नात्मा हृष्टः पुष्टः प्रियायुतः ।। समायात् स्वपुरं रम्यं नरनारीमनोरमम् ।। ७४ ।। स पद्मिन्यां सुतं लेभे कार्तवीर्यं महाबलम् ।। न तेन सदृशः कश्चित्त्रिषु लोकेषु मानवः ।। ७५ ।। तस्मात्पराजितः संख्ये रावणो दशकन्धरः ।। न तं जेतुं समर्थोऽस्ति त्रिषु लोकेषु कश्चन ।।७६ ।।विना नारायणं देवं चक्रपाणिं गदाधरम् ।। न त्वया विस्मयः कार्यो रावणस्य पराजये ।। ७७ ।। मलिम्लुचप्रसादेन पद्मिन्याश्चाप्युपोषणात् ।। दत्तो देवाधिदेवेन कार्तवीर्यो महाबलः ।। ७८ ।। इत्युक्त्वा प्रययौ [1]विप्रः प्रसन्नेनान्तरात्मना ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। एतत्ते सर्वसमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।। ७९ ।। मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लाया व्रतमुत्तमम् ।। ये करिष्यन्ति मनुजास्ते यास्यन्ति हरेः पदम् ।। ८० ।। त्वमेवं कुरु राजेन्द्र यदि चेष्टमभीप्ससि ।। केशवस्य वचः श्रुत्वा धर्मराजोऽतिहर्षितः ।। ८१ ।। चक्रे व्रतं विधानेन बन्धुभिः परिवारितः ।। सूत उवाच ।। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं पुरा द्विज ।। पुण्यं पवित्रं परमं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। ८२ ।। एवंविधं येऽपि व्रतं मनुष्या भक्त्या करिष्यन्ति मलिम्लुचस्य ।। उपोष्य शुक्लामतिसौख्यदात्रीमेकादशीं ते भुवि धन्यधन्याः ।। ८३ ।। श्रोष्यन्ति ये तस्य विधिं समग्रं तेऽप्यशंभाजो मनुजा भवन्ति ।। ये वै पठिष्यन्ति कथां समग्रां ते वै गमिष्यन्ति हरेर्निवासम् ।। ८४ ।। इत्यधिकमासस्य शुक्लैकादशीकथा समाप्ता ।।

अब अधिकमासमें जो शुक्ला एकादशी आती है उसके व्रतकी कथाका निरूपण करते हैं–राजा युधिष्ठिरने श्री कृष्णचन्द्रसे पूछा कि, हे जनार्दन ! मलमासकी एकादशी का क्या नाम है और उसके व्रतकी क्या विधि है सो आप कहो ।। १ ।। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि, मलमासमें जो (शुक्ला) पद्मिनी एकादशी है, उस दिन विधिपूर्वक उपवास करनेसे पद्मनाभ भगवान्‌के धामकी प्राप्ति होती है ।। २ ।। अधिकमासमें पद्मिनी एकादशी महान् पुण्यको बढानेवाली तथा पापोंका विध्वंस करनेवाली है, इस दिन व्रत करनेका माहात्म्य साक्षात् चतुरानन ब्रह्माजी भी नहीं कह सकते ।। ३ ।। पद्मिनी एकादशीका व्रत पापपुञ्जको नष्ट करके भोग और मोक्षको देता है । इस प्रकार ब्रह्माजीने नारदमुनिको पद्मिनी एकादशीके व्रतका माहात्म्य पहिले कहा है ।। ४ ।। और ऐसे जब श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा, तब उनके वचनोंको सुनकर राजा युधिष्ठिर

[1] पुलस्त्यः ।

बहुत प्रसन्न हुये । उस धर्मज्ञ राजाने जगन्नाथ श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्से पद्मिनी एकादशीके व्रत करनेकी विधि पूछी ।। ५ ।। श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिठिरके वचनोंको सुनकर बोले कि, हे राजन् ! पद्मिनी एकादशीके अनुष्ठानकी विधि मुनियोंकोभी मालूम नहीं है पर तुम्हारे लिये आज उस गुप्त विधिका कथन करूँगा ।। ६ ।। दशमीके दिनही से व्रतारम्भ करना, कांस्य पात्रमें भोजनादि, मांसभक्षण, मसूर या चणोंकी दालके पदार्थ, कोद्रव (कोदू) ।। ७ ।। शाक, मधु (सहत, या मदिरापान) और दूसरेके घरका अन्न दशमीके दिनभी सेवन न करे केवल हविष्य अन्नके पदार्थ खाय, क्षार तथा लवण का सेवन न करे ।। ८ ।। दशमीके दिनभी भूमिपर शयन करे ब्रह्मचर्य्य रक्खे अर्थात् स्त्रीसङ्गादिका परित्याग करे, फिर एकादशीके दिन प्रातःकाल प्रसन्नतासे उठकर ।। ९ ।। मलत्याग करे., काष्ठ से दन्तधावन न करके केवल बाहर कुल्ले ही करे ऐसे पवित्र होकर चित्तकी वृत्तिको भगवान्के चरणोंमें लगाकर समाहित रखता हुआ ।।१०।। वह सुधी (बुद्धिमान्) स्नान करनेके लिये सूर्योदयके समय पवित्र तीर्थके तटपर पधारे ।। जानेके समय गोबर, शुद्धमृत्तिका, तिल, कुश ।। ११ ।। और आंवलोंका चूरा लेकर जाय । फिर आंवलोंके चूरेको तीर्थजलमें गेरकर विधिवत् स्नान करे, उस स्नानके पहिले अपने शरीरपर तीर्थकी पवित्र मृत्तिकाका लेप करे, उसका मन्त्र यह है कि, हे मृत्तिके ! शतभुजावाले श्रीवराहमूर्ति कृष्ण नारायणने तुम्हारा उद्धार ।। १२ ।। ब्रह्माजीने प्रदान एवं कश्यपनन्दन भगवान् वामदेवने अभिमन्त्रण किया है, इससे तुम मुझेभी भगवत्पूजन करनेका अधिकारी करो, मैं तुम्हारे लिये प्रणाम करता हूँ ।। १३ ।। फिर गोबरका लेप करे और "सर्वोषधि" इस मन्त्रको पढे । इसका यह अर्थ है कि, सब प्रकारकी दिव्य औषधियोंके सेवनसे उत्पन्न हुआ एवम् गौके गर्भमें रहा हुआ और पृथ्वीको पवित्र करनेवाला यह गोबर मुझे भी पवित्र करे ।। १४ ।। फिर आवले लगावे और " ब्रह्मष्ठीवन" इस मन्त्रको पढे, इसका यह अर्थ है कि, ब्रह्माजीके जीवनसे उत्पन्न होनेवाले समस्त जगत् के पवित्र करनेवाले आंवले अङ्गसे लगकर मुझे निर्मल एवं पवित्र करें । मेरा तुम्हारे लिए नमस्कार है ।।१५।। ऐसे आँवले लगाकर तीर्थ जलमें प्रवेश करनेके लिए भगवान्की प्रार्थना करे, हे—देवोंके भी देव ! हे जगन्नाथ। हे शवङ्चक्र एवं गदाके धारण करनेवाले हे विष्णो ! आप मुझे अपने तीर्थमें प्रवेश कर स्नान करनेकी आज्ञा प्रदान करो ।।१६।। फिर "हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये" इत्यादि वरुणके मन्त्रोंको पढकर विधिवत् स्नान करे । और हे नृपसत्तम ! जो कोई जिस किसी जलाशयमें जब स्नान करना चाहे, तब वह प्रथम उस जलाशयमें गङ्गादि तीर्थोंका स्मरण करे ।।१७।। पीछे हे नृपसत्तम ! विधिवत् अपने शरीरको सम्मार्जित करे ! स्नान करनेके पश्चात् अहत शुद्ध सफेद और अखण्डित वस्त्रको धारण करे ।।१८।। फिर विधिवत् सन्ध्मोपासन करे । तदनन्तर देवर्षि पितृजनोंका तर्पण करे, पीछे मंदिरमें आकर भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन करे ।।१९।। और एक मासेभर राधा और श्रीकृष्णचन्द्रकी तथा पार्वती और महादेवजीकी प्रतिमा बनवाकर विधिपूर्वक इनका पूजन करे ।।२०।। धान्यराशिपर ताम्र या मृत्तिकाके ही कलशका स्थापन करके उसके कण्ठभागको सुन्दर वस्त्रसे परिवेष्ठित करे । उसमें दिव्य सुगन्धित सर्वाषधि आदिको छोडकर।।२१।। उसके ऊपर तांबे का या चाँदीका अथवा सुवर्णका पात्र स्थापित करे । उस पात्रके ऊपर राधासहित श्रीकृष्ण चन्द्र, एवं पार्वतीसहित महादेवजीकी मूर्तिका स्थापन करे । फिर विधिवत् उनका पूजन करे ।।२२।। सुगन्धित शीतलजलसे स्नान कराकर, चन्दन चर्चित करे, धूप करे । चन्दनअगर कपूर, नानाविध पुष्प, कस्तूरी, केसर, सफेद कमल एवम् उस समयके दूसरे पुष्पोंसे परमेश्वरका पूजन करे ।।२३।। ।।२४।। और शक्त्यानुसार बहुत प्रकारके नैवेद्य चढावे और आरती आदि करे । ऐसे धूप, दीप और कपूरसे जो विष्णु और शंकरका भक्तिपूर्वक पूजन करे ।।२५।। भगवान्के सम्मुखमें नाच और गान करे उस दिन पतित, दुराचारी और पापियोंके साथ भाषण भी नहीं करना चाहिये और पद्मिनी एकादशीके दिन किसी भी दुराचारी पापीजनका स्तर्श न कियाकरे किन्तु उनसे अलगही रहे ।।२६।। झूठ वचन नहीं बोले, किन्तु सत्य पवित्र वचन बोले । रजस्वला स्त्रीका स्पर्श न करे, किसी भी ब्राह्मण एवं गुरुकी निन्दा न करे ।।२७।। वैष्णवोंके साथ मंदिरमें भगवान्की मूर्तिके सम्मुख कथाका श्रवण करे । मलमासके शुक्लपक्षमें जो पद्मिनी

एकादशीका व्रत है, वह निर्जल करे ॥२८॥ यदि तृषाके कारण पान किये विना रहा न जाय तो जल या दुग्धका पान करे, पर और किसीभी पदार्थका सेवन न करे । गान वाद्यवादनादि पूर्वक रात्रिमें जागरण करे ॥२९॥ एक एक प्रहर बीतनेपर विष्णु और शंकरका पूजन करना चाहिये । पहिले प्रहरकी पूजामें नारियलोंका अर्घदान करे ॥३०॥ दूसरे प्रहरकी पूजामें श्रीफलोंका अर्घदान करे तीसरे प्रहरकी पूजामें बिजोरोंका अर्घ दे, एवम् चतुर्थ प्रहरमें नारंगी या सुपारी विशेषरूपसे चढावे ॥३१॥ पहिले प्रहरमें अग्निष्टोम यज्ञका, दूसरे प्रहरमें वाजपेय यज्ञका, तृतीय प्रहरमें अश्वमेध यज्ञका ॥३२॥ और चतुर्थ प्रहरमें जागरण करनेसे राजसूययज्ञका फल मिलता है । इस पद्मिनी एकादशीके व्रतसे बढकर पवित्र न कोई पुण्यानुष्ठान है, न यज्ञ है ॥३३॥ न विद्या (ब्रह्मज्ञान) है, और न तपही है । पृथिवीपर जितने तीर्थ, क्षेत्र एवं दिव्य स्थान हैं उन सभी तीर्थोंमें ॥३४॥ उसने स्नान करलिये और उन क्षेत्रादिकोंका दर्शनभी उसमें करलिया जिसने विष्णुभगवान्की प्रसन्नता करनेवाले पद्मिनी एकादशीका व्रत किया है । ऐसे पद्मिनी एकादशीके दिन रात्रिमें प्रहर प्रहरपर राधाकृष्ण तथा गौरीशंकरका पूजन करता हुआ जबतक सूर्य्योदय न हो तबतक जागरण करे ॥३५॥ फिर सूर्योदय होनेपर पवित्र तीर्थके तटपर जाकर उसके जलमें विधिपूर्वक स्नान करे, पीछे अपने घरपर आकर परमेश्वरका पूजन करे ॥३६॥ पूर्वोक्त विधिसे सदाचारी ब्राह्मणोंको भोजन करावे, जो कलश आदि पूजाकी सामग्री एवं जो सुवर्णादिकों की मूर्ति है ॥३७॥ उसका पूजन करके ब्राह्मणके लिये विधिवत्प्रदान करे । जो मनुष्य भूमण्डलमें ऐसे व्रतका अनुष्ठान करता है ॥३८॥ उसकाही जन्म सफल है, उसेही मुक्ति मिलती है । हे अनघ ! जो तुमने मलमासमें शुक्लपक्षकी एकादशीके व्रतके विधानादि पूछे थे, वे सब मैंने कहदिये ॥३९॥ हे नृपनन्दन ! जो प्रेमपूर्वक पद्मिनी एकादशीका पवित्र व्रत करता है, उसने सब व्रत कर लिये ॥४०॥ इस प्रसङ्गमें मैं तुम्हारे लिये एक मनोहर कथा कहता हूं, वह पहिले पुलस्त्यजीने नारदमुनिको विस्तृतरूपसे सुनायी थी ॥४१॥ जब कार्तवीर्यने रावणको कारागारमें डालदिया था,तब पुलस्त्यजीने सहस्र बाहुसे माँग कर रावणका छुटकारा कराया था॥४२॥दिव्य,ज्ञानी नारदमुनि इस अद्भुत वृतान्तको सुनकर बडे आदरसे मुनिवर पुलस्त्यसे पूछने लगे ॥४३॥ कि, दशानन रावणने इन्द्रादि सहित सभी देवता जीत लिये थे, फिर ऐसे संग्राम विजयी रावणको कार्तवीर्यने कैसे जीता? ॥४४॥ नारदमुनिने जब ऐसा प्रश्न किया तब उस प्रश्नको सुनकर पुलस्त्य मुनिने उत्तर दिया कि, हे वत्स ! पहिले तुम कार्तवीर्य जैसे उत्पन्न हुआ है उस वृत्तान्तको सुनो ॥४५॥ पूर्व त्रेतायुगमें माहिष्मती नगरीका अत्यन्त प्रातापी राजा कृतवीर्य, हैहय नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न हुआ ॥४६॥ प्राणोंके समान पियारी एक हजार युवती रानियां थीं पर उनमें किसीभी रानीके गर्भसे एकभी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था जो राज्यके भारको धारण करता ॥४७॥ तब वह कृतवीर्य राजा देवताओंका यजन, एवं पितृ, सिद्ध और बडे बडे महात्माओंका विधिवत् पूजन तथा उनकी आज्ञानुसार सब प्रकारके और और दानादि पुण्यानुष्ठान करता रहा पर उसे पुत्रका लाभ न हुआ ॥४८॥ जैसे भूखे प्राणीको और और पदार्थ कैसेही उत्तम हों, पर भोजनके विना कोई भी मनोरम नहीं लगते, ऐसेही पुत्रके लिये लालायित उस कृतवीर्य राजाको पुत्रके मिले विना राज्यकी सब सुखसम्पत्ति रुचिकर नहीं हुई ॥४९॥ फिर उसने यही निश्चय किया कि, मैं तप करूं, क्योंकि केवल तपही ऐसा है, जिसके प्रभावसे मनोऽभिलषित सिद्धि मिलती है ऐसे अपने मनमें विचारकर तप करनेका मन किया ॥५०॥ वह अपने राजचिह्नोंको छोड मुनियोंके चिह्नोंको धारणकर राज्यका भार धर्मनिष्ठ विश्वासी उत्तम मन्त्रीके ऊपर छोडकर एवं उसे महलोंमेंही रहनेके लिए अनुमति दे झटपट तपश्चर्य्याके लिए चीर वस्त्र धारण कर जटा बढाकर बनमें चला गया ॥५१॥ जब वह राजा तप करनेसे लिए बनमें गया तब राजा हरिश्चन्द्रकी पुत्री, पद्मिनी रानीने भी अपने भूषणादि छोडकर एक चीर वस्त्र धारण करलिया और अपने पतिके साथ साथ गन्धमादनपर्वत पर पहुंची ॥५२-५३॥ फिर उस कृतवीर्य राजाने दशसहस्र वर्षपर्यन्त गदाधर भगवान्को ध्यानपूर्वक तपश्चर्या की, पर पुत्र लाभ नहीं किया ॥५४॥ तब उसने पतिके हड्डी और स्नायु मात्र अवशिष्ट शरीरको देखकर पतिव्रताओंमें मुख्य अनसूया देवीके समीप जाकर बहुत नम्रतासे प्रार्थना की॥५५॥ कि हे साध्वि ! मेरा पति अयुतवर्षोंसे तप कर रहा है, पर फिर भी

दूसरोंके कष्टोंको दूर करनेवाले दयानिधि नारायण प्रसन्न नहीं हुए ।।५६।। इसलिए हे महाभागे ! आप मेरे लिए किसी उत्तम व्रतका उपदेश करिये जिसके करनेसे मुझपर भगवान् अवश्यही प्रसन्न हो जाय ।।५७।। मेरे गर्भसे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो बडा प्रतापशाली चक्रवर्ती राजा बने ऐसे जब पद्मिनी रानीने प्रार्थना की, तब पतिव्रतके पालनमें परायणा अनुसूयाजी ।।५८।। प्रसन्न होकर कमलके समान विशाल नेत्रवाली पद्मिनीसे बोलीं कि, हे सुभ्रे ! हे सुमुखि ! प्रायः बत्तीस मास बीतनेपर बारह मासोंसे अधिक एक मास आया करता है, उसे मलमास कहते हैं ।।५९।। उस मासमें दो एकादशी आती हैं । एकका नाम पद्मिनी, दूसरीका नाम परमा है ।।६०।। उन दोनों एकादशियोंमें अपने नगरवासियोंके साथ विधिवत् उपवास करो, उससे तुम्हारे ऊपर नारायण बहुत जल्दी प्रसन्न हों जायेंगे । अभिलषित पुत्रका प्रदान करेंगे ।।६१।। हे नृप ! फिर मैंने जैसी विधि तुम्हारे लिए कही थी, वही कर्दमनन्दिनी अनसूयाजीने उस पद्मिनी रानीसे कही ।।६२।। पद्मिनी रानीने अनसूयाजीकी कही हुयी व्रत विधिको अच्छी तरह सुनकर पुत्रप्राप्तिके लिए व्रतानुष्ठान किया ।।६३।। एकादशीके दिन जलपान और अन्नाहार नहीं किया, रात्रिमें जागरण, गान और नृत्य किये ।।६४।। ऐसे जब उसका वह व्रत पूर्ण हुआ, तब नारायण आप प्रसन्न होकर गरुडपर चढ झट वहां आ पधारे और बोले कि, हे शोभने ! तुम वर मांगो ।।६५।। ऐसे जब प्रसन्न होकर जगद्विधाता नारायणने वर मागनेको कहा । तब प्रसन्न होकर स्तुति की, फिर उसने प्रसन्नतासे मंदहासके साथ प्रार्थना की कि, मेरे पतिकी जो बडीभारी अभिलाषा है उसे आप पूर्ण करें ।।६६।। जनार्दन भगवान् पद्मिनीके वचनोंको सुनकर बोले कि, जैसा मुझे अधिकमास प्रिय है, वैसा और कोई नहीं है, ।।६७।। उस मासमें भी पद्मिनी एकादशी मेरेको बहुत प्रिय है । हे सुभ्रु ! तुमने उस एकादशीका व्रतानुष्ठान शास्त्रोक्त विधिके अनुसार किया है ।।६८।। हे सुभगे सुंदरमुखि ! उस व्रतने मुझे प्रसन्न किया है, इससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं, जो तुम्हारे पतिके मनकी अभिलाषा है, उसे मैं पूर्ण करूंगा ।।६९।। जगत्के दुःखोंको शांत करनेवाले विष्णु भगवान् ऐसे कह कर राजा कृतवीर्यसे बोले कि, हे राजेंद्र ! जो तुम्हारे मनमें अभिलषित वर मांगना हो, उसको मांगो ।।७०।। क्योंकि, तुम्हारी रानीने तुम्हारी तपश्चर्याकी सिद्धिके लिए मुझे सन्तुष्ट कर दिया है ऐसे जब भगवानने कहा ।।७१।। तब नृपसत्तम कृतवीर्यने प्रसन्न होकर यही वर माँगा कि, मुझको ऐसा पुत्र दो, जिसकी लम्बी भुजा हों, सब लोग जिसको प्रणाम करें और हे जगन्नाथ ! हे मधुसूदन ! जिसको आपके विना न देवता, न मनुष्य, न नाग, न दैत्य न दानव और न राक्षसही जीतसकें । ऐसे जब कृतवीर्यने वर मांगा, तब भगवान "अच्छा ऐसाही हो तुम्हारे पुत्र होगा" ऐसा वर देकर अन्तर्हित हो गये ।।७२-७३।। फिर राजा कृतवीर्यभी अपनी रानीके साथ प्रसन्नतासे हृष्ट पुष्ट होकर नरनारियोंसे रमणीय अपनी माहिष्मती राजधानीमें चला आया ।।७४।। कृतवीर्यसे पद्मिनीमें महाबलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ, वह कार्तवीर्य ऐसा पराक्रमी हुआ कि, उसके समान तीनों लोकोंमें कोई भी नहीं था ।।७५।। इसीलिए संग्राममें उस कार्तवीर्यने रावणको पराजित किया त्रिलोकीमें उसे जीतनेके लिए एक चक्रपाणि गदाधर नारायणके सिवा दूसरा कोई समर्थ नहीं था । इस कारण आपको रावणके पराजय पर आश्चर्य न करना चाहिये ।७६-७७।। मलिम्लुच मलमासकी प्रसाद और पद्मिनी एकादशीके उपवाससे प्रसन्न होकर देवाधिदेव परमेश्वरने महाबली कार्तवीर्यको प्रदान किया था ।। ७८ ।। इतना कह कर अन्तःकरणमें उस प्रकार अपने पौत्रके पराजय परभी प्रसन्नता धारण करते हुए, पुलस्त्यजी चले गये । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अनघ ! जो तुमने पूछा था, वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हारे लिए कहा ।।७९।। जो मनुष्य मलिम्लुच मासमें शुक्लपक्षवाली पद्मिनी एकादशीके पवित्र व्रतको करेंगे, वे भगवान्के पदको प्राप्त होंगे ।।८०।। हे राजेंद्र ! यदि अपने मनोरथ पूर्तिके लिए उत्कण्ठा है, तो तुमभी इस व्रतको करो, सूतजी शौनकादिकोंसे कहरहे हैं कि, ऐसे जब श्रीकृष्ण चन्द्रजीने कहा तब धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।।८१।। एवं अपने बान्धवोंके साथ विधिपूर्वक पद्मिनी व्रत किया । सूतजी बोले कि, हे द्विज ! पहिले जो तुमने मुझसे पूछाथा, मैंने वह यह सब तुम्हें कह दिया । यह आख्यान पुण्य एवं परम पवित्र है । अब और तुम क्या सुनना चाहते हो, सो कहो ।।८२।। जो कोई भी भक्तजन ऐसे उत्तम अधिकमास सम्बन्धी शुक्लपक्षकी इस एकादशीके व्रतको भक्तिसे करेंगे, वे सब

उस महासौख्यदायिनी एकादशीके व्रतप्रभावसे मनुष्यलोकमें अत्यन्त धन्य धन्य होंगे ।।८३।। जो इस व्रतकी सम्पूर्ण विधिको सुनेंगे, वे भी उस व्रतके फलांशको प्राप्त होंगे । एवं जो इस सम्पूर्ण कथाको पढ़ेंगे, वे भगवान्‌के पदको प्राप्त होंगे ।।८४।। यह अधिक मासकी शुक्ला एकादशीके व्रतकी कथाका निरूपण समाप्त हुआ ।।

अथाधिकमासकृष्णैकादशीकथा

युधिष्ठिर उवाच ।। मलिम्लुचस्य मासस्य कृष्णा का कथ्यते विभो ।। किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जगत्पते ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। परमेति समाख्याता पवित्रा पापहारिका ।। भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां स्त्रीणां चापि युधिष्ठिर ।। २ ।। पूर्वोक्तविधिना कार्या कृष्णापि भुवि मानवैः ।। संपूज्य परया भक्त्या नाम्ना देवं नरोत्तम ।। ३ ।। अत्र ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ।। काम्पिल्यनगरे जातां मुनीनामग्रतः श्रुताम् ।। ४ ।। आसीद्द्विजवरः कश्चित्सुमेधानाम धार्मिकः ।। तस्य पत्नी पवित्राख्या पातिव्रत्यपरायणा ।। ५ ।। कर्मणा केनचिद्विप्रो धनधान्यविवर्जितः ।। न क्वापि लभते भिक्षां याचन्नपि नरान्बहून् ।। ६ ।। न भोज्यं लभते तादृङ्न वस्त्रं नैव मण्डनम् ।। [1]रूपयौवनमाधुर्या नारी शुश्रूषते पतिम् ।। ७।। अतिथिं भोजयित्वा सा क्षुधितापि स्वयं गृहे ।। तिष्ठत्येव विशालाक्षी ह्यम्लानमुखपङ्कजा ।। ८ ।। नभर्तारं क्वचिदपि नास्त्यन्नमिति भाषते ।। विलोक्य भार्यां सुदतीं कर्षतीं स्वकलेवरम् ।। ९ ।। विचार्य ब्राह्मणश्चित्ते भार्यायाः प्रेमबन्धनम् ।। निन्दन्भाग्यं स्वकं खिन्नः प्रोचे वाक्यं प्रियंवदाम् ।। १० ।। कान्ते करोमि किं कार्यं न मया लभ्यते धनम् ।। याचामि च नरान्भव्यान्न यच्छन्ति च मे धनम् ।। ११ ।। किं करोमि क्व गच्छामि तन्मे कथय शोभने ।। विना धनेन सुश्रोणि गृहकार्यं न सिद्ध्यति ।। १२।। देह्याज्ञां परदेशाय गच्छामि धनलब्धये ।। यस्मिन्देशे च यत्प्राप्यं भोग्यं तत्रैव लभ्यते ।। १३ ।। उद्यमेन विना सिद्धिः कर्मणां नोपलभ्यते ।। तस्माद्बुधाः प्रशंसन्ति सर्वथैव शुभोद्यमम् ।। १४ ।। श्रुत्वा कान्तस्य वचनं साश्रुनेत्रा विचलक्षणा ।। प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयानतकन्धरा ।। १५।। त्वत्तो नास्ति सुविज्ञाता त्वयाज्ञप्ता ब्रवीम्यहम् ।। हितैषिणो नरा ब्रूयुः शश्वत्साधु ह्यसाध्वपि ।। १६ ।। पूर्वदत्तं हि लभ्येत यत्र कुत्र महीतले ।। विना दानं न लभ्येत मेरौ कनकपर्वते ।। १७ ।। पूर्वदत्ता हि या विद्या पूर्वदत्तं हि यद्धनम् ।। पूर्वदत्ता हि या भूमिरिह जन्मनि लभ्यते ।। १८ ।। यद्धात्रा लिखितं भाले तत्तथैव हि लभ्यते ।। विना दानेन तु क्वापि लभ्यते नैव किञ्चन ।। १९ ।। पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र न मया न त्वया क्वचित् ।। सत्पात्राणां करे दत्तं स्वल्पं भूर्यपि सद्धनम् ।। २० ।। इह देशे परे वापि दत्तं सर्वत्र लभ्यते ।। अन्नमात्रं तु विश्वेशो विना दत्तेन यच्छति ।। २१ ।। तस्मादत्रैव विप्राग्र्य स्थातव्यं भवता मया ।। त्वां विनाहं न तिष्ठामि क्षणमात्रं

१ रूपयौवनमात्रेण माधुर्यं रम्यत्वं यस्याः सा ।

महामुने ।। २२ ।। न माता न पिता भ्राता न श्वश्रूः श्वशुरो जनः।। न सत्कुर्वन्ति केऽपि स्त्रीं स्वजनाश्च परे कुतः ।। २३ ।। भर्त्रा वियुक्तां निन्दन्ति दुर्भगेति वदन्ति च ।। तस्मादत्र स्थिरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ।। २४ भवतो भाग्ययोगेन प्राप्तिश्चात्र भविष्यति ।। श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं स्थितस्तत्र विचक्षणः ।। २५ ।। तावत्तत्र समायातः कौण्डिन्यो मुनिसत्तमः ।। दृष्ट्वा समागतं हृष्टः सुमेधा द्विजसत्तमः ।। २६ ।। सभार्यः सहसोत्थाय ननाम शिरसाऽसकृत् ।। धन्योऽप्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ।।२७।। यद्दृष्टोसि महाभाग्यादित्युवाच मुनीश्वरम् ।। दत्त्वा सुविष्टरं तस्मै पूजयामास तं द्विजम् ।। २८ ।। भोजयित्वा विधानेन पप्रच्छ प्रमदोत्तमा ।। विद्वन्केन प्रकारेण दारिन्द्र्यस्य क्षयो भवेत् ।। २९ ।। विना दत्तं कथं लभ्येद्धनं विद्या कुटुंबिनी ।। मां मे भर्ता परित्यज्य गन्तुकामोऽद्य वर्तते ।। ३०।। अन्यदेशं परॉल्लोकान्याचितुं परपत्तने ।। संप्रार्थ्य तु मया विद्वन् हेतुवाक्यैर्महत्तरैः ।। ३१ ।। नादत्तं लभ्यते किञ्चिदित्युक्त्वा स निवारितः ।। मम भाग्यान्मुनीन्द्राद्य त्वमत्रैव समागतः ।। ३२।। दारिद्रचं त्वत्प्रसादान्मे शीघ्रं नश्यत्यसंशयम् ।। केनोपायेन विपेन्द्र दारिन्द्र्यं नश्यति ध्रुवम् ।। ३३ ।। कथयस्व कृपासिन्धो व्रतं तीर्थं तपादिकम् ।। श्रुत्वा तस्याः सुशीलाया भाषितं मुनिपुङ्गवः ।। ३४ ।। प्रोवाच प्रवरं चित्ते विचार्य व्रतमुत्तमम् ।। सर्वपापौघशमनं दुःखदारिन्द्र्यनाशनम् ।। ३५ ।। परमानाम विख्याता विष्णोस्तिथिरनुत्तमा।। मलिम्लुचे तु या कृष्णा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।। ३६ ।। तस्यामुपोषणं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत् ।। विधिना जागरैः साकं गीतवादित्रसंयुतम् ।। ३७ ।। धनदेन यदाचीर्णं व्रतमेतत्सुशोभनम् ।। तदा हृष्टेन रुष्टेन धनानामधिपः कृतः ।। ३८ ।। हरिश्चन्द्रेण च कृतं पुरा क्रीतसुतेन वै ।। पुनः प्राप्ता प्रिया तेन राज्यं निहतकण्टकम् ।। ३९ ।। तस्मात्कुरु विशालाक्षि व्रतमेतत्सुशोभनम् ।। यथोक्तविधिना भद्रे समं जागरणेन च ।। ४० ।। इत्युक्त्वा तद्विधिं सर्वं कथयामास वाडवः ।। पुनः प्रोवाच तं विप्रं पञ्चरात्रिव्रतं शुभम् ।। ४१।। यस्यानुष्ठानमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च प्राप्यते ।। परमादिवसे प्रातः कृत्वा पौर्वाह्णिकं विधिम् ।। ४२ ।। कुर्यात् सुनियमाञ्छक्त्या पञ्चरात्रिव्रतादरात् ।। प्रातः स्नात्वा निराहारो यस्तिष्ठेद्दिनपञ्चकम् ।। ४३ ।। स गच्छेद्वैष्णवं स्थानं पितृमातृप्रियायुतः ।। एकाशनस्तु यो भूयाद्दिनानां पञ्चकं नरः ।। ४४ ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।। स्नात्वा यो भोजयेद्विप्रं दिनानां पञ्चकं नरः ।। ४५ ।। भोजितं तेन हि जगत्सदेवासुरमानुषम् ।। पूर्णं सुतोयेन कुम्भं यो ददाति द्विजातये ।। ४६ ।। दत्तं तेनैव सकलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।। तिलपात्रं तु यो दद्याद्ब्राह्मणाय विपश्चिते ।। ४७ ।। तिल संख्यासमाः साध्वि स वसेन्नाकमण्डले ।।

घृतपात्रं तु यो दद्यात्स्नात्वा पञ्चदिनं नरः ।। ४८ ।। स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्सूर्यलोके महीयते ।। ब्रह्मचर्येण यस्तिष्ठेद्दिनानां पञ्चकं नरः ।। ४९ ।। भुनक्ति स स्वर्गभोगान्स्ववेश्याभिः समं मुदा ।। एवंविधं व्रतं साध्वि कुरु त्वं पतिना शुभे ।। ५० ।। धनधान्ययुता भूत्वा स्वर्गं यास्यसि सुव्रते ।। इत्युक्ता सा व्रतं चक्रे कौण्डिन्येन यथोदितम् ।। ५१ ।। भर्त्रा समं भावयुता स्नात्वा मासि मलिम्लुचे ।। पञ्चरात्रव्रते पूर्वे परायाः प्रियसंयुता ।। ५२ ।। सापश्यद्राजभवनादायान्तं नृपनन्दनम् ।। स दत्त्वा नव्यभवनं भव्यवस्तुसमन्वितम् ।। ५३ ।। वासयामास विधिना विधिना प्रेरितः स्वयम् ।। दत्त्वा ग्रामं वृत्तिकरं ब्राह्मणाय सुमेधसे ।। ५४ ।। प्रसन्नस्तपसा राजा तं स्तुत्वा स्वगृहं ययौ ।। मलिम्लुचस्य मासस्य पराख्यायाः परादरात् ।। ५५।। उपोषणात्स कृष्णायाः पञ्चरात्रव्रतेन च ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसौख्यसमन्वितः ।। ५६ ।। भुक्त्वा भोगान्स्त्रिया सार्द्धमन्ते विष्णुपुरं ययौ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पञ्चरात्रभवं पुण्यं मया वक्तुं न शक्यते ।। ५७ ।। तथापि किञ्चिद्वक्ष्यामि येन चीर्णं परावतम् ।। स्नातानि पुष्कराद्यानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।। ५८ ।। धेनुमुख्यानि दानानि तेन चीर्णानि सर्वथा ।। गयाश्राद्धं कृतं तेन पितरः परितोषिताः ।। ५९ ।। व्रतानि तेन चीर्णानि व्रतखण्डोदितानि वै ।। द्विपदां ब्राह्मणः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुस्पदाम् ।। ६० ।। देवानां वासवः श्रेष्ठस्तथा मासो मलिम्लुचः ।। मलिम्लुचे पञ्चरात्रं महापापहरं स्मृतम् ।। ६१ ।। पञ्चरात्रे च परमा पद्मिनी पापशोषिणी ।। सैकाप्यशक्तैः कर्तव्याऽवश्यं भक्त्या विचक्षणैः ।।६२ ।। मानुषं जनुरासाद्य न स्नातो यैर्मलिम्लुचः ।। ते जन्मघातिनो नूनं नोपोष्य हरिवासरे ।। ६३ ।। योनीर्भ्रमद्भिश्चतुरशीतिलक्षाणि मानवैः ।। प्राप्यते मानुषं जन्म दुर्लभं पुण्यसञ्चयैः ।। ६४ ।। तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन परमाया व्रतं शुभम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।। ६५ ।। मलिम्लुचस्य मासस्य परमायाः शुभं व्रतम् ।। तत्सर्वं ते समाख्यातं कुरुष्वावहितो नृप ।। ६६ ।। ये त्वेवं भुवि परमा व्रतं चरन्ति सद्भक्त्या शुभविधिना मलिम्लुचे वै ।। ते भुक्त्वा दिवि विभवं सुरेन्द्रतुल्यं गच्छेयुस्त्रिभुवननन्दितस्य गेहम् ।। ६७ ।। इत्यधिककृष्णैकादश्याः परमाख्याया माहात्म्यं समाप्तम् ।।

अब मलिम्लुचमासकीकृष्णा एकादशीका व्रत माहात्म्य कहते हैं-राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे विभो ! हे जगत्पते ! मलमासकी कृष्णा एकादशीका क्या नाम है? क्या विधि है? सो आप कहो ।।१।। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, युधिष्ठिर ! इस एकादशीका नाम परमा है और यह पवित्र एवं पापोंका विध्वंसकरनेवाली तथा स्त्री और पुरुष इन सभी के लिए भोग व मोक्षकी देनेवाली है।।२।। हमने जो शुक्ला एकादशीके व्रतको करनेकी विधि पूर्व कही थी, वही इस कृष्णा एकादशीके व्रत करनेकी भी विधि है, इसलिए हे नरोत्तम ! उसी विधिसे पुराणपुरुषका पूजन परम प्रेमपूर्वक करना चाहिये । इस विषययें मैं तुमको काम्पिल्यनगरकी उस एक मनोरम कथाको श्रवण कराता हूं, जो मैंने मुनियोंके सम्मुख सुनी थी ।।३।।४।। एक सुमेधा नामक

स्वधर्मनिष्ठ द्विजोत्तम हुआ था, उसकी पत्नीका नाम पवित्रा था । वह परम पतिव्रता थी ॥५॥ पर उसका पति किसी दुष्टकर्मके कारण धन धान्यसे हीन होगया था । वह ब्राह्मण जब कभी भिक्षाके लिये जाता था, तब उसे बहुतसे पुरुषोंसे भिक्षा मांगनेपर भी कुछ नहीं मिलता था ॥६॥ न वैसा भोज्य पदार्थ ही मिलता था जिससे उनका उदरही भरे । न वस्त्र वैसा मिलता था, जिससे उन दोनोंके अङ्गोंका अच्छादन भी होसके । ऐसे जब अन्न वस्त्रकीही चिन्ता सदा रहती थी, तब आभूषणोंके मिलनेकी चर्चा ही कैसी? फिर भी रूप, यौवन और गुणोंके गौरवसे मधुरा पवित्रा नामकी ब्राह्मणी अपने पतिकी शुश्रूषा करती ही रहती थी ॥७॥ कोई उसके घरपर अतिथि आता था, तो आप उसे पहिले भोजन कराती थी । आप अन्नके अवशिष्ट न रहनेपर अपने घरमें भूखीही रहती, किन्तु वह विशालनेत्रा सुन्दरी जराभी अपने मुखकमलको म्लान न करती थी ॥८॥ पतिकोभी कभी ऐसे नहीं कहती थी कि, आज खानेके लिए घरमें कुछ अन्न नहीं है । सुधर्म्मा ब्राह्मण उस सुन्दर दन्तोंवालीस्त्रीको दुबलाती हुई देखकर ॥९॥ मनमें उसके प्रेमबन्धनकी ओर दृष्टि गेर फिर खिन्न होकर अपने मन्द भाग्यकी निन्दा कर प्रिय वचन बोलनेवाली ब्राह्मणीसे बोला कि, हे कान्ते ! मुझे क्या करना चाहिए? मैं अच्छे अच्छे लोगोंके यहां जाकर भिक्षावृत्तिभी करता हूं, पर वे भी मुझे कुछ नहीं देते ॥१०-११॥ अतः मुझको कहींसेभी कुछ नहीं मिलता । अब मैं क्या करूं, कहां जाऊं ? हे शोभने ! इससे जो कुछ उपाय तुझको उत्तम मालूम पडता हो, उसे मेरे लिए बता दो । हे सुश्रोणि ! बिना धनके घरका कोई भी कार्य नहीं चलता ॥१२॥ अतः आप मुझको धन कमाकर लानेके लिए परदेश जानेकी अनुमति दे दीजिए । जिसदेशमें जिसको जो मिलनेवाला होता है वह वहीं जानेपर उसी तरह मिलता है ॥१३॥ उद्यम किए बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता, इसलिए विद्वान् लोग शुभ उद्यमकोही सर्वथा प्रशंसा किया करते हैं, उसेही अच्छा बताया करते हैं ॥१४॥ पतिके कहे वचनोंको सुनतेही उसके नेत्रोंमें जलभर आया, नम्रतासे शिर नमा अञ्जलि जोडकर वह विशालनयनोंवाली बुद्धिमती ब्राह्मणी बोली कि, हे प्रभो ! आपसे अधिक मैं अच्छा जानती भी नहीं हूँ, फिर भी आपने मुझे आज्ञा दी है, इससे मैं कुछ कहती हूं । अच्छा हो या बुरा हो वह सब हितैषियोंको उसे अवश्य एवं सब कालोंमें भी कह देना चाहिए ॥१५॥ ॥१६॥ जो कोई जो कुछ पूर्वजन्ममें जिस किसीके लिए देता है, वह उतनाही उससे जिस किसी भी देशमें जानेपर दूसरे जन्ममें प्राप्त कर लेता है । यदि पूर्वजन्ममें कुछ दान न किया हो तो वह कदाचित् सुमेरु पर्वतपर भी पहुंच जाय, पर उसे वहांपर भी कुछ नहीं मिल सकता ॥१७॥ इसलिए पहिले जन्ममें जो विद्या दी है, जो धन दिया है, जो पृथिवी दी है, वही इस जन्ममें फिर उसे मिलती है ॥१८॥ विधाताने जो जिसके कुछ ललाटमें लिख दिया, उसीके अनुसार उसे मिलता है, पूर्वजन्ममें दिये बिना दूसरे जन्ममें कहींभी फिरे, उसे कुछ भी नहीं मिलता ॥१९॥ हे विप्रेन्द्र ! न मैंने और न आपने पूर्वजन्ममें सत्पात्रोंके हाथमें थोडा बहुत न्यायोपार्जित धन दिया है ॥२०॥ इस देशमें क्या? परदेशमें क्या? कहीं भी भटके, पर सभी जगह पूर्वदत्तही मिलता है । हाँ विश्वंभर भगवान्‌की यह दया है कि, वह पूर्वजन्ममें अन्नदान न देनेपर भी प्राणियोंको उदरपूर्तिके लिए अन्नतो देही देता है ॥२१॥ अतः हे विप्राग्रय ! आप यहीं रहें, हे महामुने ! आपके बिना मैं एक मुहूर्त भर भी न जीवित रहूंगी ॥२२॥ न माता, न पिता, न भाई न सासू, और न श्वशुर ऐसे कोई भी स्त्रीका आदर नहीं करते फिर अन्य अन्य बान्धवोंसे आदर पानेकी आशाही कैसी है? ॥२३॥ पतिके वियोगपर सभी जन स्त्रीको दुर्भगा कहकर पुकारते हैं । इससे आप यहांही धैर्य रखे, रहें, यहांही सुखसे विहार करें ॥२४॥ आपके भाग्यसे यहांही धनभी मिल जायगा, ऐसे जब प्रियाने कहा, तब वह सुमेधा वहांही रहगया ॥२५॥ फिर कुछही अर्शेपर मुनिवर कौण्डिन्य वहां आ पधारे, सुमेधा ब्राह्मण उनको आए देखतेही बहुत प्रसन्न होकर अपनी स्त्रीसहित खडा होगया, बारबार शिर नमाकर प्रणाम कर कहने लगा कि, मैं धन्य हूं, मैं अनुगृहीत हूं, आपने मुझे अपनी कृपाका पात्र बना लिया मेरा जीवन आज सफल होगया ॥२६-२७॥ क्योंकि, मुझे आपके दर्शन महाभाग्यसेही हुए हैं । इससे पीछे मुनीश्वरजीके विराजनेके लिए सुन्दर आसन बिछाया, और पूजन आतिथ्य किया ॥२८॥ सुमेधाकी साध्वी पवित्राने विधिवत् उन्हें भोजन कराय पीछे पूछा कि, हे विद्वन् ! ऐसा कौनसा उपाय है जिससे दरिद्रता क्षीण हो? ॥२९॥ मैंने

तो यही निश्चय कर रखा है कि, पूर्वजन्ममें दिये बिना धन. विद्या और स्त्री किसीभी तरह नहीं मिलती । आज मेरे पति मेरा परित्याग करके जानेको समुद्यत हैं ॥३०॥ उनका यह अभिप्राय है कि, मैं देशान्तरके किसी अच्छे शहरमें जाऊं, वहां उदार सज्जनोंसे धन माँगूं पर मैंने बहुत बडे बडे कारण बताकर यहीं रहनेकी प्रार्थना की है, इससे वे रुकगये हैं ॥३१॥ मैंने यही कहकर उन्हें रोका है कि, हे प्रभो ! बिना दिया द्रव्य कहींभी नहीं मिलता । हे मुनिराज ! अब आप मेरे अच्छे भाग्योंसे यहांही पधार आये हैं ॥३२॥ अतः मैं यही समझती हूं कि, आपकी प्रसन्नतासे मेरे घरकी दरिद्रता अवश्य जल्दीही नष्ट हो जायगी । हे विप्रेन्द्र ! आप उसे बतावें जिस उपायसे कि, दरिद्रता अवश्य नष्ट होती है ॥३३॥ हे कृपासिन्धो ! आप व्रत, तीर्थ और तप आदि कोई भी जो दारिद्रचका नाशक हो उसेही बतावें जिसको करूं । मुनिने सुन्दर स्वभाववाली पवित्रा नामक ब्राह्मणीके वचनोंको सुनकर ॥३४॥ अपने मनमें अच्छीतरह शोच विचारके समस्त पाप-पुण्यके शान्तकर एवं दुःख और दारिद्रचके अन्तक एक उत्तम व्रतका उपदेश किया ॥३५॥ कौण्डिन्य मुनिने कसा कि, मलिम्लुचमासमें कृष्णपक्षकी विष्णुतिथि एकादशी 'परमा' नामसे विख्यात है, वह इस लोकमें भोग एवं परलोकमें मोक्ष देती है ॥३६॥ उस दिन उपवास करनेसे मनुष्य धनधान्यसे सम्पन्न होता है । पहिले कुबेरने इसी परमा एकादशीके दिन विधिपूर्वक उपवास कर रात्रिमें गान, वाद्य और जागरण किया था, तब उसपर महादेवजीने प्रसन्न होकर उसे धनाध्यक्ष बना दिया ॥३७॥ ॥३८॥ जिसने प्रिया और पुत्रभी बेच दिया था उस राजा हरिश्चन्द्रनेभी यही व्रत किया था, इसके करनेपर फिर उसको स्त्री पुत्र और निष्कण्टक राज्य मिलगये ॥३९॥ इससे हे विशालाक्षि हे भद्रे ! तुमभी शास्त्रोक्त विधिसे जागरणपूर्वक इसी व्रतको करो॥४०॥ हे पाण्डव ! कौण्डिन्य मुनिने यह कहकर उस व्रतकी विधि भी बतादी पीछे उसे पाँच रात्रिका शुभ व्रतभी बतादिया ॥४१॥ जिसके केवल अनुष्ठानसे मनुष्योंको इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्राप्त होता है । परमा एकादशीके दिन प्रातःकाल पूर्वाह्णोचित स्नान सन्ध्योपासनादि कर्म करके ॥४२॥ पञ्चरात्र व्रतको करनेके लिये शक्तिके अनुसार उत्तम उत्तम नियम करे, जो प्रातःकाल स्नान करके निराहार पूर्वक पाँच दिनतक नियमसे रहे ॥४३॥ वह अपने पिता माता और प्रिया समेत वैकुण्ठपदको प्राप्त होता है जो एकादशीसे पूर्णिमातक पांचदिन एक दफेही भोजनकरके रहे तो ॥४४॥ वह सब पापोंसे छूटके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठालाभ करता है । जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःस्नान करता हुआ पांच दिन उत्तर कर्मनिष्ठ ब्राह्मणको भोजन करावे ॥ ४५ ॥ वह समस्त देव असुर दानव और मनुष्योंसे पूर्ण भुवनमण्डलको भोजन कराकर तृप्त करचुका । जिसने ब्राह्मणके लिये सुमधुर जलपूर्ण कलशका प्रदान किया है ॥४६॥ उसने समस्त चराचरोंसे पूर्ण ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करदिया । विद्वान् ब्राह्मणको तिलपूर्ण पात्रका जो दान करता है ॥४७॥ हे साध्वि ! वह जितने तिल हो उतनेही वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करेगा । पाँच दिनपर्यन्त प्रातःकाल नित्यस्नान करता हुआ जो मनुष्य घृतपूर्णकलश देता है ॥४८॥ वह नानाविध विपुलभोगोंको भोगकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठाका भागी होता है । जो मनुष्य पांच दिन तक ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा करता हुआ नियतात्मा रहे ॥४९॥ वह स्वर्गमें अप्सराओंके संग सानन्द दिव्यभोगोंको भोगता है हे साध्वि ! हे शोभने ! तुम अपने पतिके साथ पञ्चरात्रको करो ॥५०॥ जिससे हे सुव्रते ! तुम इस लोकमें धनधान्यकी सम्पत्तिके सुखको भोगकर स्वर्गको प्राप्त होंगी । इस प्रकार कौण्डिन्य-मुनिने कहा,पवित्रा ब्राह्मणीने अपने साथ बडे प्रेमसे अधिकमासमें प्रातःकालमें स्नान करके परमा एकादशीके दिनसे पञ्चरात्र व्रत किया फिर उस व्रतकी पूर्ति होतेही ॥५१॥ ॥५२॥ राजमहलसे अपने समीप आते हुए एक राजाको देखा, उस राजाने विधाताकी प्रेरणासे विना माँगेही आप उनको नानाविध सुन्दर भोग्य पदार्थोंसे पूर्ण नवीन मकान देकर उसमें निवास करा, सुमेधा ब्राह्मणको जीवन निर्वाह करानेवाले ग्रामका भी दान किया ॥५३॥ ॥५४॥ पीछे वह राजा प्रसन्न होकर उसके तपकी प्रशंसा करके अपने महलमें वापिस चला गया । मलमासमें कृष्णपक्षवाली परमा एकादशीके दिन परम आदर पूर्वक ॥५५-५६॥ उपवास तथा पञ्चरात्र व्रतानुष्ठानके करनेसे समस्तपापोंसे रहित और सब सुखसम्पन्न होकर वह सुमेधा अपनी प्रिया पवित्राके संग इस लोकमें नानाविध भोगोंको भोग अन्तमें मोक्षपदको प्राप्त होगया । श्रीकृष्णचन्द्र

राजा युधिष्ठिरसे बोले कि, मैं पञ्चरात्रतके पुण्यकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता ।।५७।। फिर भी कुछ कहता हूं, जिसने यह व्रत किया है उसने सब पुष्करादि तीर्थ, गङ्गादि दिव्यनदियोंमें स्नान कर लिये ।।५८।। गौ आदिकोंको दानभी सर्वथा उसने कर लिये, गयाश्राद्ध करके अपने पितृगणकी तृप्तिभी अच्छी तरहसे करली ।।५९।। व्रतखण्डमें व्रतोंके प्रसङ्गमें शास्त्रकारोंने जो जो व्रत कहे हैं वे सब व्रत भी उसने करलिये, अर्थात् इस पञ्चरात्र व्रतानुष्ठानसेही यह सब फल मिल जाता है । जैसे दो चरणवालोंमें ब्राह्मण, चारचरणोंवालोमें गौ ।।६०।। देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ है, वैसेही महीनोंमें अधिकमहीना भी श्रेष्ठ है । पंचरात्रके व्रतमें पद्मिनी पापोंकी परम नाशक है ।।६१।। पर जो चतुर अशक्त हो उन्हें इसे अवश्य करना चाहिये ।।६२।। मनुष्य जन्म लेकर जिन्होंने अधिकमासमें स्नान नहीं किया वे एकादशीके व्रतको न करके जन्म घाती हैं ।।६३।। चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमते भ्रमते पूर्वले पुण्योंसे बडी कठिनताके साथ मनुष्यदेह मिलता है ।।६४।। इस कारण प्रयत्नके साथ परमाका पवित्र व्रत करना चाहिए । श्रीकृष्ण भगावान् बोले कि, हे निष्पाप ! जो आपने मुझे पूछा था, वो सब मैंने तुम्हें कह दिया है ।।६५।। और मलमासकी परमा एकादशीका शुभ व्रत भी कहदिया है हे नृप ! एकाग्र चित्त होकर करिये ।।६६।। जो सच्ची भक्तिके साथ शुभ विधिसे परमाके शुभ व्रतको मलमासमें करते हैं वे स्वर्गमें इन्द्रके समान वैभवको भोगकर भगवान्के नित्य धामको चले जाते हैं ।। ६७ ।। यह अधिकमासकी कृष्ण परमा एकादशीके व्रतका माहात्म्य पूरा हुआ ।। इसके साथ एकादशीके माहात्म्यभी पूरे होते हैं ।।

अथ द्वादशीव्रतानि लिख्यन्ते ।।

दमनोत्सवः

तत्र चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः—द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ।। बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् ।। इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः ।। ऊर्जे व्रतं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपूजनम् ।। चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ।। इति तत्रैव पाद्मवचनाच्च ।। इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् ।। उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रं दमनार्पणम् ।। ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ।। कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयः ।। इति वृद्धगार्ग्यवचनात् ।। इति चैत्रशुक्लद्वादशी ।।

द्वादशीव्रतानि

अब द्वादशीके * व्रत कहे जाते हैं । दमनोत्सव इन द्वादशियों के व्रतोंमें चैत्र शुक्लाद्वादशीको दमनोत्सव *

* जैसे अन्य तिथियोंका साथही निर्णय किया है उस तरह द्वादशीका यहाँ निर्णय नहीं देखा जा रहा है इस कारण इसेभी करते हैं-युग्म वाक्यसे द्वादशी पूर्वाही लेनी चाहिये स्कन्दपुराणमें कहा है कि, हे प्रभो ! एकादशी युता द्वादशीको करना चाहिये ।

* दमनोत्सव क्यों और कब करना चाहिये । यह तो व्रतराजने लिखा है पर कैसे करना चाहिये इस विषयपर कुछ नहीं लिखा है । इसकारण उसे यहां लिखना आवश्यक समझते हैं । यद्यपि इसकी कारवाई एकादशीकी रातसेही प्रारंभ होजाती है पर वो एकादशीमें है द्वादशीके दिनसे उसका सम्बध नहीं है इस कारण रातके होनेवाले पूजनादिकके विषयको छोड़कर द्वादशी दिन होनेवाले कृत्योंका वर्णन करेंगे—द्वादशीके दिन प्रात:काल नित्य पूजादिसे निवृत्त हो पीछे इष्ट देवका पूजन कर अक्षत दूर्वा और गन्धके साथ अशोकके फूलोंको ले मूलमंत्रको पढकर, हे देव देव ! हे जगत्के स्वामी ! हे मनोकामनाओंके देनेवाले! हे कामेश्वरीके प्यारे ! मेरी मनोकामनाओंको पूर्ण कर हे देव! इस अशोकके फूलको ग्रहण करिये एवम् मुझपर कृपाकरके मेरीइस—

होता है ।। क्योंकि, रामार्चन चन्द्रिकामें लिखा हुआ है कि चैत्र शुक्ला द्वादशी के दिन दमनोत्सव प्रति वर्ष करना चाहिए । ऐसा बौधायनादिकोंने कहा है। (दमन या दमनक अशोकके फलका नाम है।) पद्मपुराणनें लिखा हुआ है कि, कार्त्तिकमें व्रत, चैत्रमें दोला और श्रावणमें तन्तुपूजन, (पवित्रारोपण) एवं चैत्रमें दमनोत्सव इनको न करके अधःपतन होता है। यह रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है । इसको शुक्रके अस्तादिकोंमें भी करना चाहिए, क्योंकि, वृद्ध गार्ग्यका वचन है कि---उपाकर्म (श्रावणी) उत्सर्जन (वेदका उत्सर्जन) पवित्रारोपण, दमनोत्सव, ईशानकी बलि, शयनी, परिवर्तिनी नको गुरु और शुक्रके अस्तादिकमें भी करना चाहिये, यह निश्चय है। इति चैत्रशुक्ला द्वादशीका विधान ।।

वैशाखशुक्लद्वादशी

वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ---पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।। पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिव्यतीपात इतीह योगः ।। अस्मिस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम् ।। सुरत्वमिन्द्रत्व-मनामयत्वंमर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ।। पञ्चाननः सिंहराशिः ।। पाशाभिधाना तिथिर्द्वादशी ।। करभो हस्तः ।। इति वैशाखशुक्लद्वादशी ।।

वैशाखशुक्ला द्वादशी---हेमाद्रिने इसमें योग विशेष कहा है कि, वैशाख शुक्ला द्वादशीके दिन सिंहके गुरु और मंगल हो मेषके रवि एवं पाशा हस्तनक्षत्रसे युक्त हो तो इसमें व्यतीपात योग होगा । इस योगमें गो, भूमि, सोना, वस्त्र इनका दान करनेसे सब पापोंको परित्याग करके मनुष्य देवपना, इन्द्रपना, निरोगता और राजापनेकीप्राप्ति करता है । पंचानन सिंहराशिको कहते हैं पाशानामकी तिथि द्वादशी है । करभनाम हस्तनक्षत्रका है । इति वैशाख शुक्ला द्वादशी ।।

आषाढशुक्लद्वादशी

आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कुर्यात् ।। तथा च हेमाद्रौ भविष्ये–आभाका सतपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ।। संगमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत् ।। अस्यार्थः---आषाढभाद्रकार्तिकशुक्लद्वादशीष्वनुराधाश्रव-

—पूजाको पूर्ण कर दीजिये । इस मंत्रके पीछे फिर मूलमंत्रसे देवपर चढा दे पीछे दूसरे गौणदेवोंके लिये उसे उसी देवताके अंगभूत हैं उन्हें उन्हींके मंत्रोंसे देकर प्रार्थना करे । पीछे मणि और विद्रुमोंकी मालाओं एवम् मन्दारके फूल आदिकोंसे यह आपकी संवत्सरमें होनेवाली पूजा की है हे गरुडध्वज ! आप इसे ग्रहण करिये, हे विष्णो ! जैसे वनमाला हृदयपर और कौस्तुभ आपके कण्ठमें पड़ी रहती है उसी तरह मेरी बनाई हुई यह अशोकके फूलोंकी माला गलेमें और मेरी पूजा हृदयमें रहनी चाहिये इसे जल्दी न भूलियेगा । ज्ञान अथवा अज्ञानसे जो आपका पूजन न किया गया हो वह सब हे रमापते ! आपकी प्रसन्नतासे पूरा होजाय, हे विश्वके उत्पादक पुण्डरीकाक्ष ! तेरी जय हो । हे महापुरुष ! सनातन हे हृषीकेश ! तेरे लिये नमस्कार है । (मंत्र हीनम्) इससे प्रार्थना कर फिर पंचोपचारसे पूजा आरती करके पारणाकर लेनी चाहिये जो उपवीतादिसे हीन हो वे नामसे ही समर्पण करें । विशेष–जिस द्वादशीको एकादशीकी पारणा हो उसीमें यह विधान है दूसरीमें नही क्यों कि, वहीं यह कहा है कि, पारणाके दिन द्वादशी घटिका मात्रभी न मिले तो पवित्र और दमनारोपणमें त्रयोदशी लेनी चाहिये यह है दमनारोपणका मुख्य काल, वहां ही इसका गौण कालभी कहा है कि, यदि चैत्रमें विघ्नके कारण अशोकके फूल भगवान् न चढाये जा सकें तो वैशाख या श्रावणमें उसी तिथिको चढाने चाहिये यह कृत श्रावणतक शुक्रास्तमेंभी कर लेना चाहिये ऐसा नारदका वाक्य है । यह भी पाठान्तर है। यह मलमासमें न करना चाहिये क्यों कि, कालादर्शमें लिखा है कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, पवित्र और दमनोत्सव ये सब मलमासमें निषेध किये हैं। किन्तु दो मासोंमेंसे पहिलेमें कर ले ।।

णरेवतीयोगे पारणं न कुर्यात् ।। अत्र यद्यप्येतावदेवोक्तं तथाप्यनुराधाप्रथमपाद एव वर्ज्यः ।। तदुक्तं विष्णुधर्मे—मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः 'पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति ।। श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यः ।। इत्याषाढशुक्लद्वादशी ।।

आषाढ शुक्लाद्वादशीके दिन पारणा हेमाद्रिने भविष्य पुराणसे लेकर लिखी है कि, अनुराधाके योगसे रहित आषाढ शुक्ला द्वादशीके दिन पारणा करनी चाहिए, इसका प्रमाण वाक्य यह है कि, आ. भा. का. इनके शुक्लपक्षोंमें मंत्र, श्रवण और रेवतीके संगममें भोजन न करना चाहिए, क्योंकि इसमें भोजन करनेसे बारह द्वादशियोंको नष्ट करता है। आ. भा. का.—ग्रन्थकार अर्थ करते हैं कि आषाढ, भाद्रपद और कार्त्तिककी शुक्ला द्वादशियोंमें क्रमसे अनुराधा, श्रवण और रेवतीके योगमें पारणा न करनी चाहिए। यद्यपि उक्त वचनमें इतनीही बात कही गयी है पर तो भी अनुराधाका प्रथम चरणही वर्जनीय है यह विष्णुधर्ममें लिखा हुआ है कि, अनुराधाके पहिले चरणमें विष्णु भगवान् सोते हैं तथा रेवतीके अन्तिम चरणमें जागते हैं। श्रवणके मध्यमें करवट बदलते हैं। इस कराण सोने जागने और करवट बदलनेके समयका ही भोजनमें निषेध है। दूसरे पादोंका नहीं है। (नि० कार० इसके वचनको निर्मूल मानते हैं) यह आषाढ शुक्ला द्वादशीके दिनकी पारणाका निर्णय समाप्त हुआ ।।

अथ श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतम्

अत्र तक्रादीनां त्वनिषेधः ।। तत्र दधिव्यवहाराभावात् ।। अत्रैव द्वादश्यां विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये—श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे ।। द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम् ।। द्वादश्यां श्रावणे वापि पञ्चम्यामथवा द्विज ।। अनुकूलेषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा ।। गौणकालमाह रामार्चनचन्द्रिकायाम् -पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भविष्यति ।। कार्तिक्यवधि शुक्लास्ते कर्तव्यमिति नारदः ।। हेमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः ।। कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ।। कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् ।। तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्टया सह शतैस्त्रिभिः ।। सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् ।। साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ।। साधारण-पवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् ।। उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् ।। कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात्षट्त्रिंशद्ग्रन्थिशोभितम् ।। षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद्द्वात्रिं-शैर्दिति केचन ।। चतुर्विंशद्द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः ।। शिवपवित्रं तु तत्रैव शैवागमे—एकाशीत्यथवा सूत्रैस्त्रिशता वाष्टयुक्तया ।। पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ।। द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि वा ।। लिङ्ग-विस्तार मानानि चतुरङ्गुलकानि वा ।। इति ।। एतच्च नित्यम् ।। न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः ।। तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ।। तस्मा-द्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः इति तत्रै-वोक्तेः ।। इति श्रावण शुक्लद्वादश्यां विष्णुपवित्रारोपणविधिः ।।

१ "पौषस्य रोहिण्यां मध्यमायां वाष्टकायामध्यायानुत्सृजेरन्" इतिगृह्योक्तंकर्म ।

दधिव्रत--श्रावणशुक्ला द्वादशीके दिन होता है इसमें तक्र आदिका निषेध नहीं है, क्योंकि, इसमें दहीका व्यवहार नहीं होता । पवित्रारोपणभी इसी द्वादशीके दिन विष्णुरहस्यमें कहा है जिसे कि, हेमाद्रिने उद्धृत किया है कि, श्रावण शुक्लपक्षमें कर्कटप्नर सूर्य्यकेरहते भगवान्के लिए पवित्रारोपणकहागया है, हे द्विज, ! श्रावणशुक्ला या श्रावणनक्षत्रयुकत द्वादशी वा पञ्चमीकेदिन अथवा पंद्रसकेदिन सबकेअनुकूल रहत पवित्रारोपण करना चाहिए । गौणकाल भी रामार्चन चन्द्रिकामें कहा है कि, यदि विघ्नोंके कारण पवित्रा-रोपण श्रावणमें न किया जा सके तो कार्तिकी तक शुक्रास्तमें भी कर देना चाहिए, ऐसा नारदजीका वचन है । सोने, चाँदी, तामें ,क्षौम, रेशम, पद्मज, कुश, काश, कपास इनके ब्राह्मणीके हाथसे तयार किये हुए सूतको तिल्लर करके फिर भी उसकी तीन लर करके शोधन करे, ३६० का उत्तम पवित्र होता है, २७० का मध्यम होता है, १८० का कनिष्ठ होता है एवं साधारण पवित्र तीन सूत्रोंका पवित्र होता है, इसी तरह सौ गाँठका उत्तम, पचासका मध्यम एवम् ३६ गाँठका कनिष्ठ होता है । कोई कोई मुनि ऐसा भी कहते हैं कि, छत्तीस चौबीस और बत्तीस या एवं चौबीस, बारह और आठ गाठोंकी संख्या होती है । शिव पवित्रतो तहां ही शैवागममें कहा है कि, इक्यासी, अडतीस अथवा पचासका बराबरकी गाठोंका तथा बराबरके बीचका करना चाहिये । यह बारह आठ वा चार अंगुल लंबा अथवा लिंगकी बराबर लंबा हो । यह पवित्रा-रोपण नित्य है क्योंकि वहीं यह कहा है कि जो विधिके साथ पवित्रारोपण नहीं करता, हे मुनिसत्तम ! उसकी सालभरकी पूजा व्यर्थ हो जाती है इस कारण विष्णुपरायण परम भक्तोंको उचित है कि प्रतिवर्ष भगवान्के ऊपर पवित्राको चढावें । यह श्रीश्रावणशुक्ला द्वादशीकी विष्णु भगवान् पर पवित्रा चढानेकी विधि पूरी हुई ॥

अथ भाद्रपदशुद्धद्वादशी

अस्यां द्वादश्यां दुग्धव्रतसंकल्पः ।। दुग्धव्रते तु पायसादिकं वर्ज्यम् ।। दधि-घृतादयो विकारास्तु ग्राह्या एव ।। नन्वेवं सन्धिन्यादिक्षीरनिषेधेऽपि दध्यादि ग्राह्यं स्यादितिचैन्न; तत्र वाचनिकनिषेधसत्त्वात् ।। तदाहापरार्के शङ्खः— क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ।। सप्तरात्रव्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समा-हितः ।। इति ।। व्रतम् —गोमूत्रयावकम् ।। भाद्रशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणंकुर्यात् ।। "आभाकासितपक्षेषु" इति दिवोदासोदाहृतवचनात् ।। उपोष्यै कादशीं मोहात्पारणं श्रवणे यदि ।। करोति हन्ति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम् ।। इति तत्रैव स्कान्दाच्च ।। अस्य तत्रैव प्रतिप्रसवः ।। मार्कण्डेयः— विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्द्धते यदि ।। तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लङ्घयेन्नहि।।यदा त्वपरिहार्यो योगस्तदा श्रवर्णर्क्षं त्रेधा विभज्य मध्यविंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा पारणं कार्यम्।। तदुक्तं विष्णुधर्मे—"श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति, 'सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्" इति ।। केचितु चतुर्धा विभज्य मध्य पादद्वयं वर्ज्यमित्याहुः ।। अत्रैव विष्णुप-रिवर्तनोत्सवं कुर्यात् ।। संध्यायां विष्णुं संपूज्य प्रार्थयेत् ।। मंत्रस्तु तिथितत्त्वे उक्तः —वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयंद्वादशी तव ।। पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहिमाधव ।। इति ।। अत्रैव शक्रस्योत्थापनमुक्तमपरार्के गर्गेण— द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रोष्ठपदे तथा ।। शक्रमुत्थापये-

द्राजा विश्वश्रवणवासरे ।। इहमेव श्रवणद्वादशी ।। तत्रैकादश्यां द्वादशीश्रवणयोगे सैवोपोष्या, विष्णुशृङ्खलविशेषयोगात् ।। द्वादशीश्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि ।। स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृङ्खलसंज्ञितः ।। तस्मिन्नुपोष्यविधिवन्नरः संक्षीणकल्मषः ।। प्राप्नोत्यनुत्तमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।। इतिमात्स्योक्तेः ।। विष्णुधर्मेऽपि—एकादशी द्वादशी च विष्णवृक्षमपि तत्र चेत् ।। तद्विष्णुशृङ्खलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत् ।। इति ।। संस्पृश्यैकादशीं राजन्द्वादशीं यदि संस्पृशेत् ।। श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठ ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।। इतिनारदीयाच्च ।। दिनद्वये द्वादशीश्रवणैयोगेपि पूर्वा ।। एकादश्यां श्रवणयोगाभावेपि तद्दिनावच्छेदेन श्रवणस्पृष्टद्वादशीयोगादेव विष्णुशृङ्खलम् इति हेमाद्रिमतम् ।। निर्णयामृते तु—श्रवणद्वादशीयोग एव विष्णुशृङ्खलं नान्यथेति यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणर्क्षं पदापि पूर्वेव । दिवोदासीये तु रात्रेः प्रथमयामे श्रवणयोगे पूर्वा अन्यथोत्तरेत्युक्तम् ।। इयं च बुधवासरेऽतिप्रशस्ता ।। यदा तु एकादशी श्रवणयुता न द्वादशी तदा एकादश्यामेव व्रतम् ।। अशक्तस्त्वेकादश्यां गौणोपवासं कृत्वा द्वादशीमुपवसेत् ।। इदं व्रतं काम्यमिति गौडाः ।। नित्यमिति दाक्षिणात्याः ।। पारणं तूभयान्ते अन्यतरान्ते वा कुर्यात् ।। अथ व्रतविधि ।। अग्निपुराणे -मैत्रेय उवाच ।। विधानं शृणु राजेन्द्र यथा दृष्टं मनीषिभिः ।। यथोक्तं नियमं कुर्यादेकादश्यामुपोषितः ।। [1]दन्तान् संशोध्य यत्नेन वाग्यतो नियतेन्द्रियः ।। श्रवणद्वादशीयोगे समुपोष्य जनार्दनम् ।। अर्चयित्वा विधानेन त्वहं भोक्ष्येयपरेऽहनि ।। नदीनां सङ्गमे स्नायादर्चयेदत्र वामनम् ।। सौवर्णं वस्त्रसंयुक्तं द्वादशाङ्गुलमुच्छितम् ।। पीतवस्त्रैः शुभैर्वेष्टच्य भृङ्गारं निर्व्रणं [2]नवम् ।। हिरण्मयेन पात्रेण अर्घ्यपात्रं प्रकल्पयेत् ।। दध्यक्षतफलैर्युक्तं सहिरण्यं सचन्दनम् ।। नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ।। तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे ।। नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ।। महाहवरिपुस्कन्धधृतचक्राय चक्रिणे ।। नमः शार्ङ्गासिशङ्खाब्जपाणये वामनाय च ।। यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञोपकरणाय च ।। यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमो नमः ।। देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ।। प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमो नमः ।। मत्स्यकूर्मवराहाय नारसिंहस्वरूपिणे ।। रामरामाय[3] रामाय वामनाय नमोनमः ।। श्रीधराय नमस्तेऽस्तु नमस्तु गरुडध्वज ।। चतुर्बाहो नमस्तेऽस्तुनमस्ते धरणीधर ।। एवं संपूज्य विधिवन्नरः स्त्रक्चन्दनादिभिः ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुरतो जलशायिनः ।। धृत्वा जलमयं रूपं देवदेवस्य चक्रिणः ।। ब्रह्माण्डमुदरे यस्य महद्भूतैरधिष्ठितम् ।। मायावी वामनः श्रीशःसोऽत्रायातु जगत्पतिः ।। एवं संस्तूय तं भक्त्या द्वादश्यामुदये रवेः ।। भृङ्गारसहितं तं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।

१ दन्तकाष्ठं प्रगृह्यादाविति पाठो हे. व्र. । २ कल्पयेदित्यनुपञ्जनीयम् ३ रामत्रयरूपाय ।

वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते ।। वामनं सर्वतो भद्रं द्विजाय प्रतिपादये ।। जलधेनुं तथा दद्याच्छत्रं चैव तु पादुके ।। सहिरण्यानि वस्त्राणि वृषं धेनुं तथा नृप ।। यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तदानन्त्याय कल्पते ।। श्रवणद्वादशीयोगे संपूज्य गरुडध्वजम् ।। दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो वियोगे* पारणं ततः ।। सिंहस्थिते तु मार्तण्डे श्रवणस्थे निशाकरे ।। श्रवणद्वादशी[2] ज्ञेया न स्याद्भाद्रपदादृते ।। दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः ।। श्रवणेन तु संयुक्ता सा शुभा सर्वकामदा ।। पारणं तिथिवृद्धौ तु द्वादश्यामुडुसंक्षयात् ।। वृद्धौ कुर्यात्त्रयोदश्यां तत्र दोषो न विद्यते ।। इत्येषा कथिता राजन् द्वादशी श्रवणेन या ।। कर्तव्या सा प्रयत्नेन इहामुत्र फलप्रदा ।। इत्यग्निपुराणोक्तं श्रवणद्वादशीव्रतम् ।। अथ विष्णुधर्मोक्तं विधानान्तरम् ।। परशुराम उवाच ।। उवपवासासमर्थानां किं स्यादेकमुपोषणम् महाफलं महादेव तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।। महादेव उवाच ।। या राम श्रवणोपेता द्वादशी महती तु सा ।। तस्यामुपोषितः स्नातः पूजयित्वा जनार्दनम् ।। प्राप्नोत्ययत्नाद्धर्मज्ञ द्वादशद्वादशीफलम् ।। दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे ।। वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च ।। न दुर्गतिमवाप्नोति गतिमग्र्यां च विन्दति ।। अक्षय्यं स्थानमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।। श्रवणद्वादशीयोगे बुधवारो भवेद्यदि अत्यन्तमहती नाम द्वादशी सा प्रकीर्तिता ।। स्नानं जप्यं तथा दानं होमः श्राद्धं सुरार्चनम् ।। सर्वमक्षय्यमाप्नोति तस्यां भृगुकुलोद्वह ।। तस्मिन्दिने तथा स्नातो यत्र क्वचन सङ्गमे ।। स गङ्गास्नानजं राम फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।। श्रवणे सङ्गमाः सर्वे परतुष्टिप्रदाः सदा।। विशेषाद्द्वादशीयुक्ता बुधयुक्ता विशेषतः ।। यथैव द्वादशी प्रोक्ता बुधश्रवणसंयुता ।। तृतीया च तथा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ।। तथा तृतीया धर्मज्ञ तथा पञ्चदशी शुभा ।। इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं विधानान्तरम् ।। अथ ब्रह्मवैवर्तोक्तं विधानम् ।। नभस्ये फाल्गुने मासि यदि वा द्वादशी भवेत् ।। शुद्धा श्रवणसंयुक्ता संगमे विजया स्मृता ।। वारिकुम्भं प्रदायास्यां दध्योदनसमायुतम् ।। प्रेतयोनौ नजायेत पूजयित्वात्र वामनम् ।। वंशः समुद्धृतस्तेन मुक्तः पितृऋणादसौ ।। नभस्ये सङ्गमे स्नात्वा वामनो येन पूजितः ।। स याति परमं स्थानं विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।। इति ब्रह्मवैवर्तोक्तं विधानान्तरम् ।। अथ भविष्योक्तं विधानान्तरम् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। उपवासासमर्थानां सदैव पुरुषोत्तम ।। एका या द्वादशी पुण्या तां वदस्व ममानघ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। मासे भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।। सर्वकामप्रदा पुण्या उपवासे महाफला।। सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादश्यां समुपोषितः ।। समग्रं समवाप्नोति द्वादशद्वादशी

---

* स्थितस्येति शेषः । २ श्रवणद्वादश्योरिति शेषः ।

फलम् ।। इति हेमाद्रौ भविष्योक्तं विधानान्तरम् ।। अथ विष्णुरहस्योक्तं विधानान्तरम् ।। द्वादश्यामुपवासोऽत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। निषिद्धमपि कर्तव्यमित्याज्ञा पारमेश्वरी ।। बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेद्द्वादशी भवेत् ।। अतीव महती तस्यां सर्वं कृतमिहाक्षयम् ।। द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति भारत ।। सङ्गमे सरितां स्नात्वा गङ्गादिस्नानजं फलम् ।। सोपवासःसमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।। जलपूर्णं तदा कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः ।। पञ्चरत्नसमोपेतं सोपवीतं [1]सवस्त्रकम् ।। [2]तस्योपरि स्थापयित्वा लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ।। यथाशक्त्या स्वर्णमयं शङ्खशार्ङ्गविभूषितम् ।। स्नापयित्वा विधानेन सितचन्दनर्चाचितम्।। सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।। ओं नमो वासुदेवाय शिरः संपूजयेत्ततः ।। श्रीधराय मुखं तद्वद् वैकुण्ठाय [3]हृदब्जकम् ।। नमः श्रीपतये [4]नेत्रे भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।। व्यापकाय नमः कुक्षी केशवायोदरं नमः ।। त्रैलोक्यजनकायेति मेढ्रं संपूजयेद्धरेः ।। सर्वाधिपतये जङ्घे पादौ सर्वात्मने नमः ।। अनेन विधिना राजन् पुष्पधूपैः समर्चयेत् ।। ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम् ।। मोदकांश्च नवान् कुम्भान्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।। एवं संपूज्य गोविन्दं जागरं तत्र कारयेत् ।। प्रभाते विमले स्नात्वा संपूज्य गरुडध्वजम् ।। पुष्पधूपादिनैवेद्यैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभनैः ।। पुष्पाञ्जलिं ततो दत्त्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।। नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ।। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।। अनन्तरं ब्राह्मणे तु वेदवेदाङ्गपारगे ।। पुराणज्ञे विशेषेण विधिवत्संप्रदापयेद् ।। प्रीयतां देवदेवेशो मम नित्यं जनार्दनः ।। अनेनैव विधानेन नद्यां स्त्री वा नरोत्तमः ।। सर्वं निर्वर्तयेत्सम्यगेकभक्तिरतोऽपि सन् ।। इति विष्णुरहस्योक्तं विधानान्तरम् ।। अथ कथा——श्रीकृष्ण उवाच ।। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।। महत्यरण्ये यद्वृत्तं भूमिपाल शृणुष्व तत् ।। १ ।। देशो [5]दाशार्णको नाम तस्य भागे तु पश्चिम ।। अस्ति राजन्मरुदेशः सर्वसत्त्वभयङ्करः ।। २ ।। सुतप्तसिकताभूमिर्यत्र कृष्णा महोरगाः ।। अल्पच्छायद्रुमाकीर्णा मृतप्राणिसमाकुला ।। ३ ।। शमीखदिरपालाशकरीरैश्च सपीलुभिः ।। यत्र भीमा द्रुमाः पार्थ कण्टकैरावृता दृढैः ।। ४ ।। गन्धप्राणिगणाकीर्णा यत्र भूर्दृश्यते क्वचित् ।। [6]अर्कप्रतापैः संतप्ता परुषा निस्तृणा मही ।। ५ ।। ज्वलिताग्निसमं चैव यत्किञ्चित्तत्र दृश्यते ।। तथापि जीवा जीवन्ति सर्वे कर्मनिबन्धनाः ।। ६ ।। नोदकं नोपला राजन्न स्युस्तत्र बलाहकाः ।। कदाचिदपि दृश्यन्ते प्लवमाना विहङ्गमाः ।। ७ ।। तत्कान्तारगताः केचित्तृषितैः शिशुभिः

१ सुर्चाचितम् २ तस्य स्कन्धे सुघटितं स्थापयित्वा जनार्दनम् इत्यपि पाठः । ३ दृशो नमः । ४ वक्त्रम् । ५ दशेरकः । ६ अर्कप्रतापविषमा भीषणाः पुरुषाः खरा इत्यपि पाठः ।

समम् ।। उत्क्रान्तजीविता राजन् दृश्यन्ते विहगोत्तमाः ।। ८ ।। उत्प्लुत्योत्प्लुत्य तरसा मृगा सैकतसङ्गताः ।। सैकतेष्वेव नश्यन्ति जलैः सैकतसेतुवत् ।। ९ ।। तस्मिंस्तथाविधे देशे कश्चिद्दैववशाद्वणिक् ।। हरिदत्त इति ख्यातो वणिक् धर्मोपजीवकः ।। १० ।। निजसार्थपरिभ्रष्टः प्रविष्टो मरुजाङ्गले ।। दृष्टवान्मलिनान् रूक्षान्निर्मांसान् भीमदर्शनान् ।। ११ ।। बभ्रामोभ्रान्तहृदयः क्षुत्तृषाश्रमकर्शितः ।। क्व ग्रामः क्व जनः क्वाहं क्व यास्यामि [1]किमाचरे ।। १२ ।। अथ प्रेतान् ददर्शासौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियान् ।। क्षुत्क्षामाल्लँम्बवृषणान्निर्मांसांश्च सकीकसान् ।। १३ ।। स्नायु बद्धास्थिचरणान्धावमानानितस्ततः ।। वणिक् सोऽपि तदाश्चर्यं दृष्ट्वा भयमुपागतः ।। १४ ।। भीतभीतस्तु तैः सार्द्धं जगाम पथि वञ्चयन् ।। ततो गत्वा पिशाचास्ते न्यग्रोधं महदाश्रयम् ।। १५ ।। शीतच्छायं सुविस्तीर्णं तत्र ते समुपाविशन् ।। निविष्टेषु ततस्तेषु एकदेशे स्थितो वणिक् ।। १६ ।। प्रेतस्कन्धसमारूढमेकं विकृतदर्शनम् ।। ददर्श बहुभिः प्रेतैः समन्तात्परिवारितम् ।। १७ ।। आगच्छमानमव्यग्रं स्तुतिशब्दपुरःसरम् ।। प्रेतस्कन्धान्महीं गत्वा तस्यान्तिकमुपागमत् ।। १८ ।। सोभिवाद्य वणिक्श्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ।। अस्मिन् घोरतम देशे प्रवेशो भवतः कथम् ।। १९ ।। तमुवाच वणिक् धीमान् सार्थभ्रष्टस्य मे वने ।। प्रवेशो दैवयोगेन पूर्वकर्मकृतेन तु ।। २० ।। तृषा मे बाधतेऽत्यर्थं क्षुद्भ्रमोऽयं भृशं तथा ।। प्राणाः कण्ठमनुप्राप्ता वचनं नश्यतीव मे ।। २१ ।। अत्रोपायं न पश्यामि जीवेयं येन केनचित् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। इत्येवमुक्तः प्रेतस्तु वणिजं वाक्यमब्रवीत् ।। २२ ।। पुन्नागमिममाश्रित्य प्रतीक्षस्व मुहूर्तकम् ।। कृतातिथ्यो मया पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् ।। २३ ।। एवमुक्तस्तथा चक्रे स वणिक् तृषयार्दितः ।। मध्याह्नसमये प्राप्ते ततस्तं देशमागता ।। २४ ।। पुन्नागवृक्षाच्छीतोदा वारिधानी मनोरमा ।। दध्योदनसुयुक्तेन वर्द्धमानेन संयुता ।। २५ ।। अवतीर्य ततः सोग्रं ददावतिथये तदा ।। दध्योदनं च तोयं च क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताय वै ।। २६ ।। दध्योदनेन तोयेन वणिक् तृप्तिमुपागतः ।। वितृष्णो विज्वरश्चापि क्षणेन समपद्यत ।। २७ ।। ततस्तु प्रेतसंघस्य तस्माद्भागं क्रमाद्ददौ ।। दध्योदनात्सपानीयात्प्रेतास्तृप्तिं परां गताः ।। २८ ।। अतिथिं तर्पयित्वा च प्रेतलोकं च सर्वशः ।। ततः स्वयं च बुभुजे भुक्तशेषं यथासुखम् ।। २९ ।। तस्य भुक्तवतस्त्वन्नं पानीयं च क्षयं ययौ ।। प्रेताधिपं ततस्तुष्टो वणिग्वचनमब्रवीत् ।। ३० ।। वणिगुवाच ।। आश्चर्यमेतत्परमं वनेऽस्मिन्प्रतिभाति मे।। अन्नपानस्य संप्राप्तिः परमस्य कुतस्तव ।। ३१ ।। स्तोकेन च तथान्नेन बिभर्षि सुबहून्वने ।। तृप्तिं गताः कथं त्वेते निर्मांसाः

---

१ इति चिन्तयन्बभ्रामेति शेषपूरणेनान्वयः ।

भीमकुक्षयः ।। ३२ ।। अपरं च कथं त्वेतदवाप्तं वा परिक्षयम् ।। हस्तावलम्बकः कस्त्वं संप्राप्तो निर्जले वने ।। ३३ ।। तृप्तश्चासि कथं ग्रासमात्रेणैव भवानपि ।। कथमस्यां सुघोरायां मरुभूम्यां सुशीतलः ।। ३४ ।। तदेतं संशयं छिन्धि परं कौतूहलं मम ।। एवमुक्तः सवणिजो प्रेतो वचनमब्रवीत् ।। ३५ ।। पिशाचपतिरुवाच ।। शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि दुष्कृतंकर्म चात्मनः ।। शाकलेनगरे रम्ये अहमासं सुदुर्मतिः ।।३६।। वणिक्छक्तः पुरा भद्रे कालोऽतीतोबहुर्मम।।शाकले नगरे रम्ये नास्तिकस्य दुरात्मनः ।। ३७ ।। धनलोभात्तथा तत्र कदाचित्प्रमदेरिता ।। न दत्ता भिक्षवे भिक्षा तृषार्तस्य जलं न च ।। ३८ ।। प्रातिवेश्यस्तु तत्रासीद्ब्राह्मणो गुणवान्मम ।। श्रवणद्वादशीयोगे मासि भाद्रपदे तथा ।। ३९ ।। स कदाचिन्मया सार्द्धं तापीं नाम नदीं ययौ ।। तस्यास्तु सङ्गमः पुण्यो यत्रासीच्चन्द्रभागया ।। ४० ।। चन्द्रभागा सोमसुता तापी चैवार्कनन्दिनी ।। तयोः शीतोष्णसलिले सङ्गमे सुमनोहरे ।। ४१ ।। तत्तीर्थवरमासाद्य प्रातिवेश्यः स मे द्विजः ।। श्रवणद्वादशी योगे [1]स्नातश्चैवोपवासकृत् ।। ४२ ।। चान्द्रभागस्य तोयस्य वारिधान्यो नवा दृढाः ।। दध्योदनयुतैः सार्द्धं संपूर्णेर्वर्द्धमानकैः ।। ४३ ।। छत्रोपानद्युगं वस्त्रं प्रतिमां विधिवद्धरेः ।। प्रददौ विप्रमुख्याय रहस्यज्ञो महामुनिः ।। ४४ ।। वित्तसंरक्षणार्थाय तस्यापि च ततो मया।। सोपवासेन दत्ता वै वारिधानी सुशोभना ।। ४५ ।। चन्द्रभागास्थविप्राय दध्योदनयुता तदा ।। एतत्कृत्वा गृहं प्राप्तस्ततः कालेन केनचित् ।। ४६ ।। पञ्चत्वमहमासाद्य नास्तिक्यात्प्रेततां गतः ।। अस्यामटव्यां घोरायां तच्च दृष्टं त्वयाऽनघ ।। ।। ४७ ।। श्रवणद्वादशीयोगे दत्ता या सा मया द्विजे ।। दध्योदनयुता तावद्वारिधानी मनोहरा ।। ४८ ।। सेयं मध्याह्नसमये दिवसे दिवसे मम ।। उपतिष्ठति वैश्येह यथादृष्टं त्वयाऽनघ ।। ४९ ।। उपवासफलेनैव जानिस्मरणमस्ति मे ।। दधिभक्तप्रदानेन जलान्नं चाक्षयं मम ।। ५० ।। ब्रह्मस्वहारिणस्त्वेते पापाः प्रेतत्वमागताः ।। परदाररताः केचित्स्वामिद्रोहरताः परे ।। ५१ ।। मित्रद्रोहरताः केचिद्देशेऽस्मिंस्तु सुदारुणे ।। ममैते भृत्यतां प्राप्ता अन्नपानकृतेऽनघ ।। ५२ ।। अक्षयो भगवान्विष्णुः परमात्मा सनातनः ।। यद्दीयते तमुद्दिश्य अक्षय्यं तत्प्रकीर्तितम् ।। ५३ ।। तेनाक्षय्येन चान्नेन तृप्ता एते पुनः पुनः ।। प्रेतभावाच्च दौर्बल्यं न मुञ्चन्ति कदाचन ।। ५४ ।। अहं च पूजयित्वा त्वामतिथिं समुपस्थितम् ।। प्रेतभावाद्विनिर्मुक्तो यास्यामि परमां गतिम् ।। ५५ ।। मया विहीनाः किन्वेते वनेऽस्मिन्भृशदारुणे ।। पीडामनुभविष्यन्ति दारुणां कर्मयोनिजाम् ।। ५६ ।। एतेषां तु महाभाग ममानुग्रहकाम्यया ।। अनेक नामगोत्राणि गृह्णीयास्त्वं खिलेन च ।। ५७ ।। अस्ति कक्षागता चैव तव संपुटिका शुभा ।। हिमवन्तमथासाद्य तत्र त्वं

१ स्नातश्चैव तथोषित इत्यपि पाठः ।

लप्स्यसे निधिम् ।। ५८ ।। गयाशीर्षं ततो गत्वा श्राद्धं कुरु महामते ।। एकमेकमथोद्दिश्यं प्रेतं प्रेतं यथासुखम् ।। ५९ ।। एवं संभाषमाणोऽसौ तप्तजाम्बूनदप्रभः ।। समारुह्य विमानं च स्वर्गलोकमितो गतः ।। ६० ।। स्वर्गते प्रेतनाथे वै प्रभावात्स वणिक्क्रमात् ।। नामगोत्राणि संगृह्य प्रयातः स हिमालयम् ।। ६१ ।। तत्र प्राप्य निधिं गत्वा विनिक्षिप्य स्वके गृहे ।। धनभारमुपादाय गयाशीर्षवटं ययौ ।। ६२ ।। प्रेतानां क्रमशस्तत्र चक्रे श्राद्धं दिनेदिने ।। यस्य यस्य यथा श्राद्धं स करोति दिने वणिक् ।। ६३ ।। स स तस्य तदा स्वप्ने दर्शयत्यात्मनस्तनुम् ।। ब्रवीति च महाभाग प्रसादेन तवा नघ ।। ६४ ।। प्रेतभावमिमं त्यक्त्वा प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।। ततस्तु ते विमानस्था ऊचुश्च वणिजं तथा ।। ६५ ।। त्वया हि तारिताः सर्वे किल्बिषाद्वणिगुत्तम ।। प्रयामः स्वर्गतिं सर्वे इदानीं त्वत्प्रसादतः ।। ६६ ।। साधुसङ्गो न हि वृथा कदाचिदपि जायते ।। एवमुक्त्वा गताः सर्वे विमानैः सूर्यसन्निभैः ।।६७।। दिव्यरूपधराः सर्वे द्योतयन्तो दिशो दिश ।। स कृत्वा धनलाभेन प्रेतानां सद्गतिं वणिक् ।। ६८ ।। जगाम स्वगृहं तत्र मासि भाद्रे युधिष्ठिर ।। श्रवणद्वादशी योगे पूजयित्वा जनार्दनम् ।। ६९ ।। दानं दत्त्वा च विप्रेभ्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ।। सङ्गमे च महानद्योः प्रतिवर्षमतन्द्रितः ।। ७० ।। चकार विधिवद्दानं ततो दृष्टान्तमागतः ।। अवापपरमं स्थानं दुर्लभं सर्वमानवैः ।। ७१ ।। यत्र कामफला वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः ।। शीतलामलपानीयाः पुष्करिण्यो मनोरमाः ।। ७२ ।। तद्देशमासाद्य वणिङ्महात्मा प्रतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गः ।। कल्पं समग्रं सुरसुन्दरीभिः स्वर्गे सुरेमे मुदितः सदैव ।। ७३ ।। बुधश्रवणसंयुक्ता द्वादशी सर्वकामदा[१] ।। दानं दध्योदनं शस्तमुपवासः परो विधिः ।। ७४ ।। सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना ।। एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कामदा द्वादशी कृता ।। ७५ ।। या द्वादशी बुधयुता श्रवणेन सार्द्धं सा वै जयेति कथिता मुनिभिर्नभस्ये ।। तामादरेण समुपोष्य नरो हि सम्यक् प्राप्नोति सिद्धिमणिमादिगुणोपपन्नाम् ।। ७६ ।। इति हेमाद्रौ भविष्योत्तरे [२]श्रवणद्वादशीकथा ।। अस्यामेव वामनजयन्तीव्रतम् ।। हेमाद्रौ भविष्ये-श्रीकृष्ण उवाच ।। द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर ।। सर्वपाप-

---

१ तस्यामिति शेषः २ श्रोणायां श्रवणद्वादश्या मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुरित्यादिना श्रीमद्भागवते श्रवण द्वादश्यामेव वामनोत्पत्तिश्रवणात् ।। यद्यत्यग्रे हेमाद्रावित्यादिना लिखितकथायां एकादशी यदा च स्याच्छ्रवणेन समन्वित्तेत्युपक्रम्य युधिठिरेत्युपसंहारानुरोधेननैकादश्यां वामनोत्पत्तिः प्रतीयते,तथापि कथारंभे द्व ादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिरेत्युपक्रम्यान्ते पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्वितेत्यादि कृता द्वादशीतिथिरित्यन्तेनोपसंहाराद्द्वादश्या एव मुख्यत्वं प्रतीयते। तथासति मध्यवर्त्येकादशी यदा च स्यादित्यादे दिश्यां श्रवणयोगाभावे श्रवणयुक्तैकादश्या ग्राह्यत्वमित्यनुकल्पपरत्वं वोध्यम् । इयं च व्यवस्था स्मृतिकौस्तुभकृता कृता । निर्णयसिन्धुकृता तु कल्पभेदपरत्वेन व्यवस्थेत्यभ्यधायि ।

प्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः ।। १ ।। एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता ।। विजया सा तिथिः प्रोक्ता: व्रतिनामभयप्रदा ।। २ ।। पुरा देवगणैः सर्वैः समवेतैर्वरार्थिभिः ।। वरदः प्रार्थितो विष्णुरिन्द्राग्न्यनिलसंयुतैः ।। ३ ।। बलवानजितो दैत्यो बलिर्नाम महाबलः ।। तेन देवगणाः सर्वे त्याजिताः सुरमन्दिरम् ।। ४ ।। त्वं गतिः सर्वदेवानां [1]शीघ्रं कष्टात्समुद्धर ।। दैत्यं जहि महाबाहो बलिं बलवतां वरम् ।। ५ ।। त्वा विष्णुस्तदा वाक्यं देवानां करुणोदयम् ।। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो देवानां हितकाम्यया ।। ६ ।। विष्णुरुवाच ।। जाने विरोचनसुतं बलिं त्रैलोक्य कण्टकम् ।। तपसा भावितात्मानं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ।। ७ ।।मद्भक्तं मद्गतप्राणं सत्यसन्धं महाबलम् ।। प्रजापतिसमं स्वात्मप्रजानां प्रियकारकम् ।। ८ ।। न गुणास्तस्य शक्यन्ते वक्तुं केनापि भूतले ।। अवश्यं तपसोपेतैर्भोक्तव्यं तपसः फलम् ।। ९ ।। तपसोऽन्तस्तु बहुना कालेनास्य भविष्यति ।। यदा विजयदं दैत्यं ज्ञास्ये कालेन केनचित् ।। १० ।। समाहृत्य श्रियं तस्य तदा दास्ये दिवौकसाम् ।। अदितिर्मां पुरा देवा अजयत्पुत्रगृद्धिनी ।। ११ ।। तस्या मनीषितं कार्यं मयावश्यं सुरोत्तमाः ।। तस्यां संभूय युष्माकं कार्यं संपादयाम्यहम् ।। १२ ।। कृष्ण उवाच ।। अथ काले बहुतिथे [2]सादितिर्गुर्विणीभवेत्[3] ।।सुषुवे नवमे मासि पुत्रं [4]सा वामनं हरिम् ।। १३ ।। ह्रस्वपादं ह्रस्वकायं महाशिरसमर्भकम् ।। पाणिपादोदरकृशं ह्रस्वजङ्घोरुकन्धरम् ।। १४ ।। दृष्टवा तु वामनं जातमदितिर्मोदमाप वै ।। भयं बभूव दैत्यानां देवतास्तोषमागमन् ।। १५ ।। जातकादीञ्छुभकरान्संस्कारान्स्वयमेव हि ।। चकार कश्यपो धीमान् प्रजापतिसमन्वितः ।। १६ ।। आबद्धमेखलो दण्डी जटी यज्ञोपवीतवान् ।। कुशचर्माजिनधरकमण्डलुविभूषितः ।। १७ ।। बलेर्बलवतो यज्ञं जगाम बहुविस्तरम् ।। दृष्ट्वा बलिं तु यज्वानं वामनस्तु जगादह ।। ।। १८ ।। अर्थी ह्यहं यज्ञपते दीयतां मम मेदिनी ।। पदत्रयप्रमाणा हि पठनार्थे स्थितो ह्यहम् ।। १९ ।। दत्ता दत्ता तव मया बलिः प्राह द्विजोत्तमम् ।। ततो वर्धितुमारब्धो वामनोऽनन्तविक्रमः ।। २० ।। पादौ भूमौ प्रतिष्ठाप्य शिरसावृत्य रोदसी ।। नाभ्यां स्वर्गादिकॉल्लोकॉल्ललाटे ब्रह्मणः पदम् ।।२१।। न तृतीयं पदं लेभे किं ददे मम तद्वद ।। तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सिद्धा देवर्षयस्तथा ।।२२।। साधु साध्विति देवेशं [5]प्रशंशंसुर्मुदान्विताः ।। ततो दैत्यगणान् सर्वाञ्जित्वा त्रिभुवनं वशी ।। २३ ।। बलिं प्राह च भो गच्छ पातालं सबलानुगः ।। तत्र त्वमीप्सितान् भोगान् भुक्त्वा मद्बाहुपालितः ।। २४ ।। अस्येन्द्रस्यावसाने तु त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि ।। एवमुक्तो बलिः प्रायान्नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ।। २५ ।। विसृज्य च बलिं

---

१ शीघ्रमस्मान् इत्यपि पाठः । २ गते इति शेषः । ३ अडभावआर्षः । ४ बालाकृतिमित्यपि पाठः । ५ ततो नेदुर्दिवौकस इत्यपि पाठः ।

देवो लोकपालानुवाच ह ।। स्वानि धिष्ण्यानि गच्छध्वं तिष्ठध्वं विगतज्वराः ।। ।। २६ ।। देवेनोक्ता गता देवाःप्रहृष्टाः पूज्य वामनम् ।। [1]देवः कृत्वा जगत्कार्यं तत्रैवान्तरधीयत ।। २७ ।। एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां नराधिप ।। तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः ।।२८।। एषैव फाल्गुनेमासि पुष्येण सहिता नृप।। विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा ।। २९ ।। एकादश्यां सोपवासो रात्रौ संपूजयेद्धरिम् ।। कुर्यात्पात्रं तु सौवर्णं रौप्यं वा दारुवंशजम् ।। ३० ।। सौवर्णं वामनं कुर्यात्स्ववित्तस्यानुसारतः ।। शिखाकमण्डलुधरं छत्रयज्ञोपवीतिनम् ।। ३१ ।। आच्छाद्य पात्रं वासोभिरहतैः फलसंयुतम् ।। मार्गेण चर्मणा नद्धं भक्त्या वा शक्त्यपेक्षया ।। ३२ ।। तिलाढकेन संपूर्णं प्रस्थेन कुडवेन वा ।। अलाभे यवगोधूमैः शुभैः शुक्लतिलैस्तथा ।। ३३ ।। तस्मिन् गन्धैःपुष्पफलैः कालोत्थैरर्चयेद्धरिम् ।। नानाविधैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैर्गुडोदनैः ।। ३४ ।। मत्स्यं कूर्मं वराहं च नारसिंहं च वामनम् ।। रामं रामं तथा कृष्णं बौद्धं कल्किं समर्चयेत् ।। ३५ ।। पादाद्यैकैकमङ्गेषु शीर्षान्तं पूजयेत्ततः ।। एभिर्मन्त्रपदैराजञ्छ्रद्धया गरुडध्वजम् ।। ३६ ।। उद्यापनं ततः कुर्याद्द्वादशैर्वत्सरैस्तथा ।। सौवर्णीं राजतीं ताम्रीं मूर्तिं कृत्वा चतुर्भुजाम् ।। ३७ ।। द्वादश्यास्तु दिने प्राप्ते गुरुमभ्यर्च्य शक्तितः ।। सदाचाररतं पार्थ वेदवेदाङ्गपारगम् ।। ३८ ।। अस्मदीयं व्रतं विप्र विष्णुवासरसंभवम् ।। संपूर्णं तु भवेद्येन तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ।। ३९ ।। तस्याग्रे नियमः कार्यो दन्तधावनपूर्वकम् स्नानं कृत्वा मन्त्रपूर्वं नद्यादौ विमले जले ।। ४० ।। तर्पयित्वा पि तृन्देवान्पूजये[2]न्मधुसूदनम् ।। देवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत् ।। ४१ ।। ततः प्रभातसमये स्नात्वाचार्यादिभिः सह।। वामनं पूजयेत्प्राग्वद्धोमं कुर्याद्विधानतः ।। ४२ ।। मन्त्रेणेदं विष्णुरिति समिदाज्यतिलौदनैः ।। प्रतिद्रव्यं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं हुनेत् ।। ४३ ।। ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु द्वादशाष्टव्रती नृप ।। प्रतिमां च तथा धेनुमाचार्याय निवेदयेत् ।। ४४ ।। एवं कृते तु राजेन्द्रः गाः कृष्णा द्वादशाष्ट वा ।। षट् चतस्रोऽथवा देया एकावापि पयस्विनी ।। ४५ ।। वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो वै ददाति च ।। वामनस्तारकोभाभ्यां वामनाय नमो नमः ।। ४६ ।। प्रत्येकं ब्राह्मणान्कुम्भैर्दक्षिणावस्त्रचन्दनैः ।। शक्त्या सम्पूजयेद्राजन्सर्वत्रैष विधिः स्मृतः ।। ४७ ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पूर्वं पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ।। एवं व्रते कृते ब्रह्मन्यत्पुण्यं तन्निबोध मे ।। ४८ ।। हस्त्यश्वरथपत्तीनां दाता भोक्ता विमत्सरी ।। रूपसौभाग्यसंपन्नो निष्पापो नीतिमान्भवेत् ।। ४९ ।। पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेत्स शरदां शतम् ।। एषा [3]व्युष्टिः समाख्याता एकादश्या मया तव ।। ५० ।। पूर्वमेव

१ एवमुक्त्वा जगत्कर्ता एव कृत्वेति च क्वचित्पाठः । २ आर्षःसन्धिः । ३व्युष्टि :–फलम् ।

समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ।। सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना ।। एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृता वै द्वादशी तिथिः ।। ५१ ।। इति श्रीहेमाद्रौ भविष्योत्तर-पुराणे वामनद्वादशीव्रतकथा सम्पूर्णा ।। अथ वामनपूजा ।। मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च कृतदोषप्रायश्चित्तार्थं पुत्रपौत्राद्यभिवृद्धचर्थं वामनजयन्तीव्रतमहं करिष्ये, तदङ्गतया विहितं षोडशोपचारैर्वामनपूजनं करिष्ये ।। धृत्वा जलमयं रूपं देवदेवस्य चक्रिणः ।। ब्रह्माण्डमुदरे यस्य महाभूतैरधिष्ठितम् ।। मायावी वामनः श्रीशः स आयातु जगत्पतिः ।। आवाहनम् ।। अजेयाय महेशाय जलजा-स्याय शंसिने ।। नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते ।। ध्यानम् ।। कमण्डलु-शिखाधारी कुब्जरूपोऽसि वामन ।। छत्रदण्डधरो देव पाद्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। सहस्रशीर्षा त्वं देव श्रवणर्क्षसमन्वितः ।। अर्घ्यं गृहाण देवेश रमया सहितो हरे ।। अर्घ्यम् ।। कमण्डलुस्थितं चारु शुद्धं गङ्गोदकं मया ।। देवेशाचमनार्थं तदाहृतं प्रतिगृह्यताम् ।। आचमनीयम् ।। ॐ जलजोपमदेहाय जलजास्याय शङ्खिने ।। जलराशिस्वरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम ।। स्नानम् ।। महाहवरिपुस्कन्ध-धृतचक्राय चक्रिणे ।। नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ।। वस्त्रम् ।। श्रीखण्ड-चन्दनं दि० । चन्दनम् ।। मल्लिकाशतपत्रं च जातीपुष्पं सुगन्धकम् ।। चम्पकं जलजं चैव पुष्पं गृह्ण नमोऽस्तु ते ।। पुष्पम् ।। अथाङ्गपूजा ।। मत्स्याय नमः पादौ पूजयामि ।। कूर्माय० जानुनी० ।। वराहाय० गुह्यम् ० । नृसिंहाय० नाभिम्० वामनाय० उरः० । रामाय० भुजौ० । परशुरामाय० कर्णौ० । कृष्णाय० मुखम्० बौद्धाय० नेत्रे० । कल्किने० शिरः पूज० । धूपोऽयं देव देवेश शङ्खचक्रगदाधर । अच्युतानन्त गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ।। धूपम् ।। त्वमेव पृथिवी ज्योतिर्वायुरा-काशमेव च ।। त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वा० नैवेद्यम् ।। आचमनम् ।। करोद्वर्तनम् ।। फलम् ।। ताम्बूलम् ।। दक्षिणाम् ।। नीराजनम् ।। मन्त्रपुष्पाञ्जलिम् ।। प्रदक्षिणाः ।। नमस्कारान् ।। प्रार्थना––जगदादिर्जगद्रूपो ह्यनादिर्जगदन्तकृत् ।। जलेशयो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः ।। अनेककर्मनिर्बन्धध्वंसिनं जलशायिनम् ।। नतोऽस्मि मथुरावासं माधवं मधुसूदनम् ।। नमो वामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।। नमस्ते बलिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ।। अथ शिक्यदानसंकल्पः–कृतवामनद्वादशीव्रताङ्गत्वेन विहितं श्रीवामनप्रीत्यर्थं दध्योदनवारिधानीछत्रोपानत्सहितं शिक्यदानं करिष्ये इति संकल्प्य ब्राह्मणपूजनं कृत्वा–दध्योदनयुतं शिक्यं वारिधानीयुतं विभो ।। छत्रोपानहसंयुक्तं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ।। इति मन्त्रमुक्त्वा इदं दध्योदनवारिधा-

नीछत्रोपानत्संयुक्तं शिक्यममुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे इति दद्यात् ॥ इति वायनम् ॥ इति वामनपूजा समाप्ता ॥

शुद्ध द्वादशी—भाद्रपदकी जो हो, दुग्धव्रत उसमें होता है उसमें ही दुग्धव्रतका संकल्प किया जाता है। दुग्धके व्रत (त्याग) में खीर आदि दुग्धके वे पदार्थ जिनमें कि दूधका वही रूप बना हो उनका तो त्याग कहा है, पर दधि घृत आदि उन विकारोंका तो ग्रहणही होता है जो कि प्रकृतिसे गुणान्तरमें परिणाम पा चुके हैं। इस पर शंका करते हैं कि यदि ऐसा मानोगे कि प्रकृतिके ग्रहणमें उसके गुणान्तरमें परिणत हुए विकार ग्र हण न होंगे तो ग्यावन गायके दूधके निषेधमें ऐसे दूधके आपके गृहीत विकार दधि आदिका ग्रहण हो जायगा, इ सका उत्तर देते हैं कि जैसे ग्यावन, गायके दूधका निषेध किया है उसी तरह उसके दूधके विकारोंका भी उसी वचनसे विषेध किया गया है इस कारण उसके विकारोंकाभी ग्रहण न होगा। यही अपरार्कमें शङ्खका वचन है कि, जिन दूधोंको अभक्ष्य कहा है उनके विकारोंके भक्षण कर लेनेपर प्रयत्न पूर्वक एकाग्र चित्त हो सात रात व्रत करना चाहिये। यहां गोमूत्रका पान और यावकान्नका भोजन व्रत कहाता है। भाद्रपद शुक्लाद्वादशीमें पारणा तो उसीमें करे जिसमेंकि श्रवणकायोग न हो, क्योंकि दिवोदासीयका वचन मिलता है कि जो आषाढ, भाद्रपद-कार्तिक इनके शुक्ल पक्षमें अनुराधा श्रवण और रेवतीके योगमें पारणा न करनी चाहिये। (इसका विशेष विचार आषाढकी द्वादशीमें किया है) यह वहांही स्कन्दपुराणमेंका वचन भी लिखा हुआ मिलता है कि जो एकादशीका व्रत करके श्रवणमें पारणा करता है वह बारह द्वादशियोंके पुण्योंको नष्टकर डालता है, इस वाक्यका अपवाद भी वहां ही लिखा हुआ है कि हे महीपाल ! यदि विशेष करके श्रवण बढता हो तो भी पारणाके लिए द्वादशीका लंघन न करना चाहिए। क्योंकि श्रवणके साथ द्वादशी भी चली गयी या पारणाका समय न रहेगा तो फिर भोजन नहीं किया जा सकता। इस कारण उसीमें भोजन करले यदि पूर्वोक्त स्थितिहो तो यह मार्कण्डेयका वचन है। कैसे श्रवण युतामें भी भोजन करले इसपर विशेष कहते हैं कि जब श्रवण योग न जानेवाला हो उस समय श्रवणके तीन भाग करके बीचकी २० घटिकाओंका त्याग करके पारणा कर लेनी चाहिए। यही विष्णुधर्ममें भी कहा है कि श्रवणके बीचमें तो करवट लेते हैं तथा सुप्तिप्रबोध और परिवर्तनका समयही त्याग करने योग्य है इससे श्रवणके प्रथमभागका निषेध नहीं हुआ (यही पक्ष व्रतराज कारको अभीष्ट है क्योंकि, इस पक्षपर वे निर्णय सिन्धुकी तरह 'केचित्तु' नहीं कहते) पर कोई तो श्रवणके चार भाग करके बीचके दो पादोंको वर्जनीय कहते हैं (यह पक्ष व्रतराजको अभीष्ट नहीं है इसीलिए ये केचित् करके इसे लिख रहे हैं यहां निर्णयकारने भी कह दिया है कि इसका मूल चिन्तनीय है।) विष्णुके परिवर्तनका उत्सव भी इसीमें होता है। सन्ध्याके समय विष्णु भगवान्की पूजा करके उनकी प्रार्थना करनी चाहिए। मन्त्र तो तिथितत्त्वमें कहा है कि, हे वासुदेव ! हे जगन्नाथ ! आपकी यह द्वादशी प्राप्त हो गयी। हे माधव। करवट बदलिए और सुखपूर्वक नींद लीजिए ॥ शक्र (या शक्रकी ध्वजाका उत्थापन भी इसी दिन होता है, ऐसा अपरार्कमें गर्गका वचन है कि भाद्रपद शुद्धा द्वादशीके दिन राजा इन्द्र (या उसकी-ध्वजा) का उत्थापन करे पर उस दिन श्रवणका पूरा योग होना चाहिए ॥ श्रवण द्वादशी भी—उसीको कहते हैं, एकादशीमें श्रवणयुक्ता द्वादशी हो तो उसीमें उपवास करना चाहिए, क्योंकि, यह विष्णुशृंखल-नामक एक योग विशेष है, यही मात्स्यपुराणमें लिखा हुआ है कि, श्रवणसे छूई हुई द्वादशी यदि एकादशीका योग करती है तो यह विष्णुशृंखलनामक वैष्णव योग होता है। इसमें उपवासकरनेसे मनुष्यनिष्पाप होजाता है। फिर वो ऐसी श्रेष्ठ सिद्धिको पाता है जिससे कि फिर आवृत्ति ही न हो। विष्णुधर्ममें भी कहा हुआ है कि, जिसदिन एकादशी हो और द्वादशी भी हो तथा श्रवण नक्षत्रभी हो इसका विष्णुशृंखल नाम है, यह विष्णु भगवान्का सायुज्य देनेवाला है। नारदीयमें भी लिखा है कि नक्षत्रोंका शिरोमणि श्रवण एकादशीका स्पर्श करके यदि द्वादशीका भी स्पर्श करले तो यह हेराजन् ! ब्रह्महत्याको भी धोडालता है दो दिन द्वादशी हो चाहे श्रवणकाभी योग हो तोभी पूर्वाकाही ग्रहणहोगा ॥ इस विष्णुशृंखल योगके विषयमें हेमाद्रिका तो यह मत है कि, एकादशीमें श्रवणका योग न होनेपर भी जिस द्वादशीमें श्रवण हो उस द्वादशीकेही योग मात्रसे

विष्णुश्रृंखल योग होजाता है । निर्णयामृतमें तो–श्रवण और द्वादशी दोनोंकाही एकादशीमें योग हो तो विष्णुश्रृंखल होता है अन्यथा नहीं होता । हेमाद्रि और निर्णयामृतके विष्णुश्रृंखल योगका विचार करके फिर पूर्वाके ग्रहणपर जाते हैं कि, आधीरातसे लेकर जबतक सूर्य्य भगवान् न निकलें तबतक दो कला मात्रभी श्रवण नक्षत्र हो तो भी, पूर्वाकाही ग्रहण होता है । दिवोदासीय ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि, रातके पहिले पहरमें श्रवण योग हो तो पूर्वा, नहीं तो उत्तराका ग्रहण करना चाहिये । यह योग बुधवारके दिन पडजाय तो अत्यान्तही श्रेष्ठ है, यदि एकादशी श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो द्वादशी न हो तो एकादशीके दिनही व्रत करना चाहिये । यदि शक्ति न हो तो एकादशीके दिन गौण उपवास करके द्वादशीमें उपवास करलेना चाहिये । गौड इसे काम्यव्रत बताते हैं किन्तु दाक्षिणात्य इसे नित्य मानते हैं । पारणा तो तिथि और नक्षत्र दोनोंके अन्तमें करनी चाहिये । नहीं तो एकमेकेही अन्तमें पारणा करले । व्रतविधि–अग्नि पुराणमें मैत्रेय जीका वचन है कि, हे राजेन्द्र ! जैसा कि, बुद्धिमानोंने समाधिमें देखा है उस विधानको ध्यानपूर्वक सुन, एकादशीके दिन उपवास करके कहे हुए नियम करे । सावधानीके साथ दाँतोंकी शुद्धि करके मौनी और जितेन्द्रिय श्रवण और द्वादशीके योगमें विधिपूर्वक उपवास करके जनार्दनका विधिपूर्वक देवपूजन कर दूसरे दिन भोजन करूंगा ऐसा संकल्प करे । नदियोंके संगममें स्नान करे, सोनेके बँध बने हुए सवस्त्र वामन भगवान्का पूजन करे । नवीन बारह अंगुल ऊँचे बिना फूटे स्वर्ण पात्रको वस्त्रोंसे संयुक्त कर पीत वस्त्रसे वेष्टित करदे, ोनेके पात्रसे अर्घ्यदान करे । दधि, चन्दन, अक्षत, फल और सुवर्णभी उसमें रहना चाहिये । हे पद्मनाभ ! तेरे लिये नमस्कार है, हे जलमें शयन करनेवाले ! तुझे नमः है । बाल वामन रूप धारण करनेवाले तुझे मैं अर्घ्यदान करता हूं । कमलकी पीली केशरकी तरहके स्वच्छ पीतवस्त्र धारण करनेवाले एवं बडे भारी वैरियोंकी गर्दनोंके लिये चक्रधारण करनेवाले चक्रीके लिये नमस्कार है । शार्ङ्गधनुष, नन्दन तलवार, पांचजन्य शंख और कमलको हाथमें लिये हुए वामनके लिये नमस्कार है । यज्ञरूप, यज्ञेश्वर, यज्ञके उपकरण रूप एवम् स्वयंही यज्ञके भोगनेवाले तथा फलके देनेवाले वामनके लिये वारंवार नमस्कार है । देवोंके अधिपति देव एवम् सब देवोंके उत्पादक तथा सबके स्वामी वामनदेवके लिये वारंवार नमस्कार है । मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, राम, परशुराम, बलराम, रूप धारण करनेवाले वामनके लिये नमस्कार है । तुझ श्रीधरके लिये एवम् गरुडध्वजके लिये नमस्कार है । हे चतुर्बाहो तेरे लिये नमस्कार है । हे भूमिके धारण करनेवाले ! तुझे नमः है । इस प्रकार मनुष्य विधिपूर्वक माला और वन्दनादिकोंसे पूजन करके जलशायी भगवान्के सामने रातको जागरण करना चाहिये । जलमय रूप धारण करके स्थित हुए देवदेव जिस चक्रीके उदरमें महद् भूतोंसे अधिष्ठित यह ब्रह्माण्ड है वो मायावी लक्ष्मीपति जगत्के स्वामी वामन यहां मेरी रक्षा करें । इस प्रकार भक्तिके साथ वामनकी स्तुति करके द्वादशीमेंही रविके उदयके समय श्रृंगार सहित वामनको ब्राह्मणके लिये दान करदे कि, वामनही ले रहा है और वामनही दे रहा है यह सब ओरसे आनन्द देनेवाले सवामनको ब्राह्मणके लिये देता हूं जलधेनु तथा छत्र और पादुकाभी दे । हे राजन् ! सोनेसमेत वस्त्र वृष और धेनुभी दे । वहां जो कुछ दिया जाता है उसका अनन्त फल हो जाता है । श्रवण और द्वादशीके योगमें गरुडध्वज भगवान्का पूजन करके ब्राह्मणोंको दान दे, उनकी समाप्तिमें पारणा करनी चाहिये । सिंह राशिपर सूर्य्य हो श्रवणपर हो चाँद उसे "श्रवण द्वादशी" समझना चाहिये । यह विना भाद्रपदके नहीं आती । दशमी और एकादशी जहां हों वो तिथि सब कामोंको देनेवाली है । तिथिकी वृद्धिमें द्वादशीमें नक्षत्रके बीत जानेपर परणा करे । वृद्धिमें तो त्रयोदशीमें पारणा करे । इसमें दोष नहीं है । हे राजन् ! यह मैंने श्रवण युक्ता द्वादशी कहदी है । इसे प्रयत्नपूर्वक करिये । यह इस लोक और परलोकमें परमफल देनेवाली है । यह अग्निपुराणका कहा हुआ श्रवण द्वादशीका व्रत पूरा हुआ ॥ विष्णु धर्मका कहा हुआ दूसरा विधान परशुरामजी बोले कि, हे महादेव ! जो उपवास करनेमें असमर्थ हों उनके लिये एक उपवास कह दीजिये यही मैं पूछरहा हूं । महादेवजी बोले कि, हे परशुराम ! जो द्वादशी श्रवणसे युक्त हो वह बडी हैं उसमें उपवास करके स्नान कर एव जनार्दनका पूजन करके हे धर्मज्ञ ! विनाही परिश्रमके द्वादश द्वादशियोंका फल पा जाता है इसमें दध्योदनके साथ पानीका

भरा हुआ घडा वस्त्रसे वेष्टित करके छतरी और जूतोंके साथ ब्राह्मणको दे दे । उसकी दुर्गति नहीं होती । वह श्रेष्ठ गतिको पाता है उसे अक्षय स्थान मिलता है इसमें विचार न करना चाहिये । श्रवण और बारहके योगमें यदि बुधवार भी पडा हुआ हो तो इसे बड़ी भारी बडी कहा गया है । हे भृगु वंशमें जन्म लेनेवाले ! इसमें किया हुआ स्नान, जप, होम, दान, देवपूजन सब अक्षय होजाता है । हे राम ! वो उस दिन किसी भी जगह् स्नानकरे उसे संगममें गंगास्नानका फल मिलता है इसमें संशय नहीं है । श्रवणमें जितने भी संगम हों व परम तुष्टिके देनेवाले हैं । विशेष करके श्रवण और द्वादशीका योग है यदि इनमें बुधका योग हो जाय तो और भी विशेष होजाता है । जैसे कि श्रवण और बुधसे युक्त द्वादशी कही है, उसी तरह तृतीया भी ऐसी सब कामोंके फलको देनेवाली कही है । हे धर्मज्ञ ! जैसी तृतीया कही है उसी तरह पंद्रस भी इन योगोंकी श्रेष्ठ है । यह श्री विष्णुधर्मोत्तरका कहा हुआ दूसरा विधान पूरा हुआ ।। ब्रह्मवैवर्तका कहा हुआ दूसरा विधान--भाद्रपद या फाल्गुनमें जो शुक्ला एवं श्रवणसे संयुक्ता द्वादशी हो वो संगममें विजया कही गयी है । इसमें दध्योदनके साथ वारिका कुंभ दे वामन भगवान्को पूज कभी भी प्रेत नहीं बनता उसके वंशका उद्धारकर लिया वह पितृऋणसे छूटगया जिसने भाद्रपदमें उक्त तिथि वार आदिको संगममें स्नान करके वामनका पूजन कर दिया, वो परम स्थानमें पहुंचकर विष्णु भगवान्का सायुज्य पाता है । यह ब्रह्मवैवर्तपुराणका कहा हुआ विधानान्तर पूरा हुआ ।। भविष्यपुराणका कहा हुआ विधानान्तर---युधिष्ठिरजी बोले, कि हे पुरुषोत्तम ! जो पुरुष उपवासके लिये न समर्थ हो उसके लिये जो सर्वश्रेष्ठ द्वादशी हो उसे कहिये । श्रीकृष्णजी बोले कि, भाद्रपद महीनाके शुक्ल पक्षमें श्रवणसे युक्त द्वादशी हो वह सब कामोंके देनेवाली परम पवित्र होती है उसके उपवासमें महाफल होता है। द्वादशीमें व्रतकर नदियोंके संगममें स्नान करके बारह द्वादशियोंका फल पाजाता है । यह भविष्यपुराणका कथित एवं हेमाद्रि संगृहीत विधानान्तर पूरा हुआ ।। विष्णु रहस्यका कहा हुआ विधानान्तर----द्वादशीमें उपवास और इसमें त्रयोदशीके दिन पारणा जो कि, निषिद्ध है वह भी करनी चाहिये, यह परमेश्वरकी आज्ञा है । यदि वही द्वादशी बुध और श्रवणसे संयुक्त हो तो अत्यन्त ही बडी है । उसमें जो कुछ दिया जाता है वह अक्षय है । हे भारत ! यदि श्रवणसे युक्त द्वादशी हो तो नदियोंके संगममें स्नान करके गङ्गास्नानका फल मिल जाता है । यदि उपवास किया हुआ हो, इस कथनमें विचारकी आवश्यकता नहीं है । बुद्धिमान् जलके भरे हुये कुंभको स्थापित करके उसमें पञ्चरत्न डाल वस्त्र और उपवीत रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक लक्ष्मीसहित जनार्दनकी स्थापना करके एवम् सोनेके ही शंख और शार्ङ्ग धनुषसे विभूषित करके विधिपूर्वक स्नान और चन्दन चढा सफेद वस्त्र उढा छत्र और खडाऊं चढा पीछे वासुदेव भगवान्को नमस्कार इससे शिर; श्रीधरके लियेन० इससे मुख; वैकुण्ठके लिये न० इससे हृदयकमल; श्रीपतिके लिये न० इससे नेत्र; संपूर्ण अस्त्र धारण करनेवालेके लिये न० इससे भुज; व्यापकके लिये न० इससे कुक्षि; केशवके लिये न० इससे उदर; त्रैलोक्यके जनकके लि० इससे भगवान्का गुप्त अंग; सबके अधिपतिके लि० इससे जंघा, सर्वात्माके लिये न० इससे पाद, हे राजन् ! पुष्प, धूप और दीपोंसे पूजने चाहिये । पीछे घीका बनाया हुआ नैवेद्य सामने रखना चाहिए । मोदक नये कुम्भ और शक्तिके अनुसार दक्षिणाभी देनी चाहिये। इस प्रकार पूजाकरके वहांही जागरण करावे प्रातः उठ स्नानादिसे निवृत्त हो गरुडध्वज भगवान्की पूजा करनी चाहिये । सुन्दर पुष्प धूपादिक, नैवेद्य फल और वस्त्रोंके पीछे पुष्पांजलि देकर इस मंत्रको बोलना चाहिये कि, हे बुधश्रवण नामवाले गोविन्द ! तेरे लिए वारंवार नमस्कार है । मेरे पापोंके समुदायोंको नष्ट करके सब सुखोंका देनेवाला होजा । इसके बाद वेदवेदान्तोंके जाननेवाले पुराणज्ञ ब्राह्मणको विशेष करके विधिपूर्वक दे कि, हे जनार्दन ! देवदेवेश ! मुझपर सदा प्रसन्न हो, इस विधानसे करे स्त्री हो वा पुरुष एक अनन्या भक्त हो तो भी सबका निवर्तन करे । यह श्रीविष्णुरहस्यका कहा हुआ विधानान्तर पूरा हुआ ।।

कथा---श्रीकृष्णजी बोले कि, इस विषयमें भी एक पुरातन इतिहास कहा करते हैं । हे भूमिपाल ! बडे भारी वनमें जो हुआ था उसे सुन ।। १ ।। एक दाशार्ण नामक देश है उसके पश्चिममें मरुस्थल है वह सभी प्राणियोंके लिये भयंकर है ।।२।। वहांकी भूमि गरम गरम रेतीसे भरी हुई है काले बडे बडे सांप हैं । ऐसे वहां वृक्ष हैं जिनकी छाया बहुत ही थोडी है, मरे हुए जीवोंके अस्थिपञ्जर वहां पडे रहते हैं ।।३।। शमी,

खदिर, पलाश, करीर और पीलु अथवा हे पार्थ ! बडे बडे दृढ काँटोंके वृक्ष हैं, उनसे वो ढका हुआ है॥४॥ जहां कहींही गन्धके प्राणियोंसे आकीर्ण भूमि दीखती है वह सूर्यके किरणोंसे संतप्त शुष्क और तृण रहित है ॥५॥ कहीं कहीं तो उसमें आग जलती हुई सी दीखती है, कर्मगति बड़ी बलवान है, इतने परभी उसमें जीव जीवित रहते हैं । ६॥ हे राजन् ! न वहां पानी एवं न उपल तथा न बादल ही हैं । आसमानमें पक्षी उडते तो कभी ही दीखते हैं ॥७॥ हे राजन् ! उसके गहन जंगलमें छोटे छोटे बच्चोंके साथ उत्तम उत्तम पक्षी प्यासके मारे मरणासन्न दीखते हैं॥८॥प्याससे मृग रेतीको पानी मान वेगसे उछलते कूदते हुए रेतीमें ही फिरते फिरते उसीमें नष्ट होजाते हैं जैसे–पानीसे रेतीका पुल नष्ट होजाता है ॥९॥ उस ऐसे देशमें दैवका मारा कोई वैश्य जिसका नाम हरिदत्त और वाणिज्यसे गुजारा करता था ॥१०॥ अपने साथसे बिछुडकर मरुजांगल देशमें प्रविष्ट होगया, वहां उसे सूखे रूखे बुरे मलिन जीव दीखे ॥११॥ हृदयमें भ्रान्ति होगयी भूख प्यासका सतायाहुआ इधर उधर घूमने लगा कि, यहां वस्ती कहां है, आदमी कहां हैं, मैं कहां हूं, कहां जाऊं, क्या करूं? ॥१२॥ वहां उसने उसी दशामें भूख प्याससे व्याकुल, एवं भूखसे दुबले, हड्डियां निकरी हुई, सूखे, बडे बडे वृषणोंवाले प्रेत देखे ॥१३॥ उनके पैरोंमें ताँतसे हड्डियां बंधी हुई थीं इधर उधर घूमते फिरते थे वो बनियाँ इस आश्चर्यको देखकर डर गया ॥१४॥ डरता डरता हुआ उनके साथ उनको वंचित करता हुआ चलने लगा वहांसे चलकर वे पिशाच एक बडे भारी न्यग्रोधके पास पहुंचे ॥१५॥ उसकी छाया शीतल थी वो विस्तृत था वे उसके नीचे बैठ गये वह बनियाँ भी एक ओर बैठ गया ॥१६॥ एक बडा विकराल प्रेत किसी प्रेतके कन्धे पर चढा हुआ जिसे कि, चारों ओरसे प्रेत घेरे हुए थे, देखा ॥१७॥ जो शान्तिपूर्वक आरहा था, स्तुतियां होती जाती थीं, प्रेतके कन्धेसे उतरकर उसके पास आया ॥१८॥ उसने उस श्रेष्ठ वैश्यका अभिवादन करके ये वचन कहे कि, आप इस घोर प्रदेशमें कैसे चले आये? ॥१९॥ वह बुद्धिमान् बनियाँ बोला कि, पहिले कर्मोंके कारण दैवयोगसे संगसे बिछुडकर इस वनमें चला आया ॥२०॥ मुझे प्यास सता रही है, भूखके मारे भ्रम हो रहा है, प्राण कण्ठमें आ रहे हैं,वाणी नष्ट हो रही है॥२१॥मैं ऐसा कोई उपाय नहीं देखता, जिससे मेरी जिन्दगी बचे । श्रीकृष्णजी बोले कि, इतना कहनेपर प्रेत बनियाँसे बोला कि ॥२२॥ इस पुन्नागका आश्रय लेकर एक मुहूर्त प्रतीक्षाकर मैं आतिथ्य करूंगा । पीछे सुखपूर्वक चले जाओगे ॥२३॥ वह प्यासका मारा इतना कहनेपर वैसेही करनेलगा मध्याह्नकालमें फिर वो उसी देशमें आगया ॥२४॥ पुन्नागवृक्षसे एक सुन्दर ठण्ड पानीको देनेवाली वारिधानी तथा दध्योदन समेत वर्धमानके साथ ॥२५॥ उतरकर जो कि, अतिथि बनियाँ भूखा प्यासा था । उसे दध्योदन और पानी देनेलगा ॥२६॥ दध्योदन और पानीसे बनियाँकी तृप्ति होगई, उसी समय प्यास गई, उद्वेग शान्त हुआ ॥२७॥ पीछे उससे क्रमपूर्वक उसमेंसे सबको भाग दिया । दध्योदन और पानीसे सब प्रेत परम तृप्त हो गये ॥२८॥ पहिले अतिथि और पीछे सब प्रेतोंको खिलाकर पीछे जो कुछ बचा वो उस प्रेतराजने सुखपूर्वक खाया॥२९॥ जब वह खाने लगा कि, न तो पानी रहा और न दध्योदन ही रहगया ॥३०॥ बनियाँ बोला कि, मुझे इस वनमें यह बडा भारी आश्चर्य हो रहा है कि, आपको यहां अच्छा अन्न कहांसे मिलजाता है ॥३१॥ आप थोडेसे ही अन्नसे सबको तृप्त कर देते हैं । ये बडे बडे पेटवाले सूखे सूखे कैसे तृप्त होगये? ॥३२॥ फिर यह आपके हाथमें आते कैसे समाप्त होगया? इस निर्जन वनमें हाथ पकडनेवाले आप मुझे कौन मिले? ॥३३॥ आप भी एक ग्रास मात्रसे कैसे तृप्त होगये? इस घोर मेरु भूमिमें यह शीतल कैसे है? ॥३४॥ आप इस मेरे सन्देहको दूर करें यह मुझे बडा भारी अचरज है । बनियाके इतने कहनेपर प्रेतराज बोला कि, ॥३५॥ हे सौम्य ! सुन, मैं अपने पापोंको कहता हूं मैं दुर्मति पहिले शाकलनगरमें था ॥३६॥ उसी नगरमें दुरात्मा मुझ समर्थ नास्तिक वैश्यका बहुतसा समय बुरे धन्धोंमें ही बीतगया ॥३७॥ स्त्रीके कहनेपर भी धनके लोभसे कभी भिक्षुकके लिये भिक्षा और प्यासेके लिये पानी नहीं दिया ॥३८॥ एक बडा गुणी ब्राह्मण मेरा द्वारपाल था । भाद्रपद मासके श्रवण द्वादशीके योगमें ॥३९॥ वह कभी मेरे साथ तापीनामक नदी-पर गया जहां कि, चन्द्रभागाके साथ उसका पवित्र संगम होता है ॥४०॥ चन्द्रभागा, रेवा, तापी और यमुना उनके ऐसे संगमपर जहां कि, ठंढे गरम पानीका सुमनोहर मेल है ॥४१॥ उस श्रेष्ठ तीर्थको देखकर मेरा-

द्वारपाल ब्राह्मण श्रवण और द्वादशीके योगमें स्नान करके नहाया।।४२।। दध्योदनसे भरे हुए सकोरोंके साथ चन्द्रभागाके पानीसे भरी हुई नई मजबूत वारिधानी ।।४३।। छत्र, जूती, जोडा, दो वस्त्र और भगवान्‌की प्रतिमा किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणके लियेदी क्योंकि, वो विचारशील एवं रहस्योंका जाननेवाला था ।।४४।। मैंनेभी उसके साथ व्रत किया था एवं उसके धनको बजानेके लिये कुछ तो उसकी थीं हीं कुछ अपने सुन्दरवारिधानी दे दीं ।।४५।। तथा चन्द्रभागाके ब्राह्मणके लिये दध्योदनके साथ सकोरा भी दिये । इस कामको करके कुछ समयके बाद घरको चले आये ।।४६।। मरकर नास्तिकताके कारण इस घोर वनमें प्रेत बन गया, जिसे कि, हे निष्पाप ! तुम देख रहे हो ।।४७।।श्रवण द्वादशीके योगमें जो मैंने ब्राह्मणको दध्योदनके सकोरोंके साथ सुन्दर वारिधानी दी थी ।।४८।। यह प्रतिदिन मध्याह्नके समय रोज मेरे लिये आजाती है जैसा कि, हे निष्पाप वैश्य ! तूने अभी देखा है ।। ४९।। उपवासके फलसे मुझे पूर्वजन्मका स्मरण है दधि अन्न और पानीके दानसे ये सभी मेरे अक्षय हैं ।।५०।। ये सब ब्राह्मणके धनको हरनेवाले पापी हैं इसी कारण प्रेत बने हैं इनमें कुछ परदाराके अभिचारी हैं तथा कुछ एक स्वामीके साथ निरंतर वैर करनेवाले हैं ।।५१।। कुछ निरंतर मित्रद्रोह करनेवाले हैं; ये सब इस घोर देशमें प्रेत बने हैं तथा अन्नकी खातिर मेरे दास बन गये हैं ।।५२।। सनातन परमात्मा विष्णु भगवान् अक्षय हैं उनका उद्देश लेकर जो दिया जाता है वह अक्षय होजाता है ।।५३।। उसी अक्षय अन्नसे ये वारंवार तृप्त किये जाते हैं इसीसे तृप्त रहते हैं पर प्रेतपनेके कारण इनका दुर्बलपना कभी नहीं जाता ।।५४।। मैं स्वयंही पधारे हुए तुझ अतिथिको । आज पूजकर प्रेतभावसे छूट गया अब परम गतिको जाता हूं।।५५।। किन्तु मेरे विना ये सब इस घोर वनमें कर्मप्राप्त प्रेतयोनिकी कठोर पीडाको अनुभव करेंगे ।।५६।। हे महाभाग मेरे अनुग्रहकी कामनासे या मुझपर कृपा करके आप इनमेंसे एक एकके नाम गोत्र मालूम करलें ।।५७।। ये बिचारे आपके पास सिलसिलेवार बैठे हैं । तुम हिमालयपर जाकर खजाना प्राप्त करोगे ।।५८।। हे महामते ! इसके बाद आप गयातीर्थ जाकर एक एकके उद्देशसे विधिपूर्वक बिना कष्ट उठाये श्राद्ध करें।।५९।।ऐसे कहता हुआ वो तपाये हुए सोनेके समान चमकने लगा, विमानपर बैठकर वहांसे स्वर्ग चला गया ।।६०।। प्रेतनाथके स्वर्ग चले जानेपर वैश्य उसके प्रभावसे एक एकके नाम गोत्र पूछकर हिमालय चला आया ।।६१।। वहांसे खजाना ला अपने घरमें पटक बहुतसा धन लेकर गयातीर्थके तटको पहुंचा ।।६२।। प्रतिदिन क्रमसे प्रेतोंका श्राद्ध करने लगा । जिस जिस दिन जिसजिस प्रेतका वह बनियां श्राद्ध करता था ।।६३।। वह वह उसी उसीदिन स्वप्नमें अपना शरीर दिखाकर कहता था कि, हे निष्पाप ! हे महाभाग ! तेरी कृपासे ।।६४।। मैं इस प्रेतभावको छोडकर परम गतिको प्राप्त होगयाहूं । जब उन सब प्रेतोंका श्राद्ध कर्म पूरा होगया तो वे सब विमानपर बैठकर बनियांसे बोले कि ।।६५।। हे श्रेष्ठ वैश्य ! तूने हम सबको पापसे तार दिया, इस समय हम सब तेरी कृपासे स्वर्गको चले जा रहे हैं ।।६६।। कभी भी महात्माओंका संग व्यर्थ नहीं होता, ऐसा कहकर वे सब सूरजकेसे चमकते विमानोंपर बैठ ।।६७।। दिव्यरूप धारण कर दशों दिशाओंको चमकाते हुए स्वर्ग चले गये । वह बनियां धनके मिलजानेपर प्रेतोंकी सग्दति करके ।।६८।। अपने घर चला आया । हे युधिष्ठिर ! भाद्रपद महीनाके आनेपर श्रवण और द्वादशीके योगमें जनार्दनको पूजे ।।६९।। ब्राह्मणोंके लिये दान दे । जितेन्द्रियतापूर्वक उपवासकर प्रतिवर्ष निरालस हो महानदियोंके संगमपर ।।७०।। विधिपूर्वक दान करके उसे उसका फल प्रत्यक्ष होगया जो कि, सब मनुष्योंके लिये दुर्लभ है । उस दुर्लभ स्थानको पा गया ।।७१।। जहां कि, इच्छा फल देनेवाले वृक्ष तथा खीरकी कीचवाली नदियां हैं, सुन्दर शीतल पानीवाली पुष्करिणियां हैं ।।७२।। तपाये हुए सोनेके समान चमकते शरीरवाला वह महात्मा वैश्य उस देशमें पहुंच, एक कल्पपर्य्यन्त देवाङ्गनाओंके साथ शोभन विलास करता रहा ।।७३।। श्रवण और बुधसे संयुक्त द्वादशी सब कामोंके देनेवाली है । इसमें दध्योदनका दान और उपवास करनेकी विधि है ।।७४।। सगर, राम धुन्धुमार और इन्होंने तथा हे राजेन्द्र ! दूसरोंनेभी इस कामदा द्वादशीका व्रत किया है ।।७५।। भाद्रपद शुक्ला श्रवण नक्षत्र सहिता बुधवारी द्वादशीको मुनियोंने जया कहा है । मनुष्य उसे आदरसे करके अणिमादि गुणोंसे युक्त सिद्धिको प्राप्त करता है ।।७६।। यह भविष्योत्तरसे हेमाद्रिकी संगृहीत श्रवण द्वादशीकी कथा पूरी हुई ।।

वामन जयन्तीव्रत—भी इसीमें होता है यह हेमाद्रिने भविष्योत्तरसे संगृहीत किया है । श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, हे युधिष्ठिर ! मैंने श्रवणयुता द्वादशीकी विधि तुझे कहदी, यह सब पापोंकी नाशक तथा सब सुखकी देनेवाली है ।।१।। जब एकादशी श्रवणसे युक्त हो तो उसे विजया कहते हैं यह व्रतियोंको अभय देनेवाली है ।।२।। पहिले वर चाहनेवाले इकट्ठे हुए सब इन्द्र, वायु, अग्नि, अनिल आदि देवोंने वर देनेवाले विष्णुसे प्रार्थना की ।।३।। कि, नहीं जीताजानेवाला, महाबली बलिनामक दैत्यने सभी देवगणोंसे देवोंके घर छुटा दिये हैं ।। ४ ।। आपही सब देवताओंकी गति हैं, अतः शीघ्रही कष्टसे उद्धार करिये, हे महाबाहो ! बलवानोंमें श्रेष्ठ जो बलि है उसे मार दो ।। ५ ।। विष्णु भगवान् करुणाके उत्पन्न करनेवाले देवोंके ऐसे वचन सुन उनका आशय समझ देवोंकी हितेच्छासे बोले ।। ६ ।। मैं तीनों लोकों के कंटक विरोचन सुत बलिको जानता हूँ वो परम तपस्वी शान्त दान्त, जितेन्द्रिय ।। ७ ।। मेरा भक्त, मेरेमें प्राणोंको धारण किये हुए, दृढप्रतिज्ञ, महाबलि, प्रजापातिके समान अपनी प्रजाका हितकारक है ।। ८ ।। भूतलपर उसके गुणोंको कोई नहीं कह सकता जो तपस्वी होता है उसे अवश्यही तपका फल मिलेगा ।। ९ ।। इसके तपका अन्त तो तो बहुत कालसे होगा; कुछ कालके बाद विजयके देनेवाले दैत्यको देखूँगा ।। १० ।। उस समय मैं उसकी श्रीको लेकर देवोंको देदूंगा पुत्र इच्छुकी अदितिने पहिले मेरा बडा यजन किया है ।। ११ ।। हे सुरश्रेष्ठो ! उसकी मनोकामना मुझे अवश्यही पूरी करनी है । उसमें होकर मैं आपके कार्य्यको करूँगा ।। १२ ।। इसके कुछ दिन बीते अदिति गर्भिणी हो गई, उसने नौवेंमास भगवान् वामनको पैदा किया ।। १३ ।। पाद, काय छोटे, पर शिरवडा, था, बालस्वरूप था हाथ पैर और उदर बहुतही छोटा था जंघा उरु और कन्धरा भी छोटी थीं ।। १४ ।। पैदा हुए वामनको देख अदितिको बडी प्रसन्नता हुई, दैत्य डरे और देवताओंको सन्तोष हुआ ।। १५ ।। ब्रह्माजीके साथ कश्यपजीने स्वयंही पवित्र जातकादिक संस्कार करादिये ।। १६ ।। संस्कारानन्तर वामन भगवान् मेखला बाँध, धारण कर जटा बना, यज्ञोपवीत कुश मृगचर्म धारण कर कमण्डलु हाथमें लिये ।। १७ ।। बलवान् बलिके बडे भारी यज्ञमें जा उपस्थित हुए, वामन वैध यज्ञ करनेवाले बलिको देखकर बोले ।। १८ ।। हे यजमान ! मैं याचक हूँ मुझे भूमि दीजिये, वो तीन मेरे पेंड हो मैं उसमें पढूंगा ।। ।। १९ ।। द्विजोत्तम वामनसे बलिबोला कि, आपको ,दे दी २ फिर जिसके विक्रमका अन्तही नहीं है ऐसा वह वामन बढने लगा ।। २० ।। पैर भूमिमें रख शिरसे रौदसीको ढक नाभिसे स्वर्गादि लोकोंको और ललाटसे ब्रह्माके पदको ।। २१ ।। रोका जब तीसरे पदको जगह न मिली तो बलि बोले कि, क्या दूं यह मुझे बताइये ? सिद्ध और देवर्षि इस बडे भारी आश्चर्यको देखा ।। २२ ।। प्रसन्न हो साधु ! साधु! ! इस प्रकार देवेशकी प्रशंसा करने लगे । इसके बाद वामन सब दैत्यगणोंको एवं तीनों भुवनोंको जीतकर ।। २३ ।। बलिसे बोले कि अपनी सेना और अनुयायियों के साथ पाताल चले जाओ, वहाँ मैं तेरी रक्षा करूँगा, वहीं तुम चाहे हुए भोगोंको भोगकर ।। २४ ।। इस इन्द्रके पीछे तुमही इन्द्र बनोगे ऐसा कहनेपर बलि वामनको नमस्कार करके चला गया ।। २५ ।। देव बलिको छोडकर लोकपालोंसे बोले कि, तुम शान्त होकर अपने२ स्थानोंको जाओ वहाँ सुखी रहो ।। २६ ।। भगवान्के ऐसा कहनेपर वामनको पूजप्रसन्न हुए देव अपने २ घर चले गये, वामन देवोंका कार्य करके अन्तर्धान हो गये ।। २७ ।। हे नराधिप ! यह सब एकादशीके दिन हुआ था इस कारण सब तरहसे वामन भगवानकी विजया तिथि प्यारी है ।।२८।। यही तिथि फाल्गुन मासमें पुष्यनक्षत्र से युक्त हो तो हे राजन् ! उसे सज्जन विजया कहते हैं । वह कोटि कोटि गुणों से श्रेष्ठ है ।। २९ ।। एकादशीमें उपवास करके रातमें वामन भगवानका पूजन करे, हो सके तो सोने या चाँदीके पात्र वा काठ या बांसके हों ।। ३० ।। अपने धनके अनुसार सोनेका वामन बनावे शिखा, कमंडलु, छत्र और उपवीत धारण करावे ।। ३१ ।। अहत वस्त्रोंसे आच्छादित करे, फलोंसे शोभित करे मृगचर्म उढाये ये सब काम भक्तिके अनुसार करने चाहिये ।। पात्रोंको तिलाढक से प्रस्थसेवा कुडवसे भर दे । अलाभमें अच्छे यव गोधूमोंसे अथवा श्वेत तिलोंसे भरे ।। ३२।। ।। ३३ ।। उस पात्र पर सामयिक गन्ध , पुष्प और फलोंसे भगवान्का पूजन करे तथा अनेक तरहके नैवेद्य, भक्ष, भोज्य और गुडौदनसे पूजे ।। ३४ ।। मत्स्य, कुर्म, वराह, नरसिंह, वामन , राम, परशुराम, कृष्ण बौद्ध और कल्किका पूजन करे ।। ३५ ।। पावोंसे लेकर शिरतक एक एक अंगको पूजे, हे राजन् ! गरुडध्वजको श्रद्धा-

पूर्वक पूजनेके येही नाम मंत्र होने चाहिये ।। ३६ ।। बारह बरसोंके पीछे उद्यापन करे । सोने, चान्दी या तांबेकी चतुर्भुजी मूर्ति बना ।। ३७ ।। द्वादशी का दिन आजानेपर शक्ति के अनुसार , हे पार्थ ! सदाचारमें लगे रहने-वाले वेदवेदाङ्गोंके जानकार गुरुका पूजन करे ।। ३८ ।। कि, हे विप्र ! विष्णुके वासरमें होनेवाला हमारा व्रत जिस तरह पूरा हो हे द्विजोत्तम ! वह करिये ।। ३९ ।। गुरुके ही आगे नियम करे, दाँतुन करके नदी आदिके विमल जलमें मंत्रोंसे स्नान कर ।। ४० ।। देव और पितरोंका तर्पण करके मधुसूदनका पूजन करे, देवकी विधिपूर्वक पूजा करके रातको जागरण करे ।। ४१ ।। प्रभात काल में आचार्योंके साथ स्नान करके वामन-को पूजे फिर विधिपूर्वक हवन करे ।। ४२ ।। "ओम् इदं विष्णु यह पूजनका मंत्र है । समिध, आज्य, तिल और ओदन ये हव्यद्रव्य हैं । प्रतिद्रव्य एक हजार या १०८ आहुतियाँ हों ।। ४३ ।। हे राजन् ! व्रती बारहया आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराके प्रतिमा और धेनु आचार्यके लिये दे ।। ४४ ।। हे राजेन्द्र ! इस विधिके करनेपर तो बारह आठ, छ वा चार कृष्ण गऊ देनी चाहिये ।। ४५ ।। वा एकही दूध देनेवाली गऊ हो वामनही लेता है एवं वामनही देता है हम तुम दोनोंका वामनही तारक है वामनके लिए बारबार नमस्कार है ।। ४६ ।। हे राजन् ! सब जगहकी यही विधि है कि, प्रत्येक ब्राह्मणको कुम्भ दक्षिणा वस्त्र और चन्दनसे शक्ति के अनुसार पूजन करे ।। ४७ ।। ब्राह्मणोंको भोजन कराके पीछे आप भी मौन हो भोजन करे । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार व्रत करने पर जो पुण्य होता है उसे जानो ।। ४८ ।। हाथी, घोडा, रथ, पदाति इनका दाता भोक्ता और मत्सर रहित होता है । रूप सौभाग्यसे सम्पन्न पापरहित नीतिमान् होता है ।। ४९ ।। पुत्र और पौत्रों-से घिरा हुआ सौ वर्ष तक जीता है । यह मैंने आपके लिए एकादशीका फल कहदिया ।। ५० ।। श्रवण युता द्वादशी पहले कह दी है । सागर, ककुत्स्थ, धुन्धुमार और गाधि तथा हे राजेन्द्र ? ! दूसरोंने भी यह द्वादशी-तिथि की है ।। ५१ ।। यह श्रीहेमाद्रिमें कही हुई भविष्यपुराणकी द्वादशीकी कथा पूरी हुई ।। पूजा—मेरे इस जन्म और जन्मान्तर के लिए दोषोंके प्रायश्चित के लिए तथा पुत्र और पौत्रोंकी वृद्धिके लिए वामन-जयन्तीका व्रत में करूँगा तथा उसके अङ्ग होनेके कारण कहे गए षोडशोपचारसे वामन का पूजन भी करूँगा। जिस देवदेव वक्रीके उदरमें जलमय रूप धरकर महाभूतों के द्वारा ब्रह्माण्ड स्थित है वो मायावी श्रीश एवं जगत्का स्वामी वामन यहाँ आ जाय; इससे आवाहन; अजेय, महेश, जलजास्य और शंसीके लिए नमस्कारहै, हे केशव ! हे अनंत ! हे वासुदेव ! तेरे लिए नमस्कार है, इससे ध्यान; हे वामन तुम कमण्डलु छत्र दण्ड और शिखाको धारण किए हुये बौने हो, हे देव ! पाद्य ग्रहण करिये, तेरे लिए नमस्कार है, इससे पाद्य; हे देव ! तुम अनेकों शिरवाले हो, आप श्रवण नक्षत्रसे समन्वित रहते हो, हे देवेश हरे ! रमाके साथ अर्घ्य ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य, ब्रह्मकमंडलुका अथवा कमण्डलुमें शुद्ध सुन्दर गंगोदक रखा हुआ है । हे देवेश ! मैं आपके आचमनके लिए लाया हूँ आप ग्रहण करिये, इससे आच-मन; हे पुरुषोत्तम ! जलजके समान देहवाले तथा जलजकेसे मुखवाले शङ्खधारी जलराशिस्वरूप तुम्हे नमस्कार है, इससे स्नान; बडे भारी युद्धमें वैरियायोंके कन्धपर चलानेवाले चक्रके धारण करनेवाले चक्रीके लिए नमस्कार है, जो कि कमलके किंजल्कके समान पीत वसन पहिनता है, इससे वस्त्र, श्रीखण्डचन्दन' 'मल्लिका' इससे पुष्प समर्पण करना चाहिये ।। अङ्गपूजा—ओम् यह प्रत्येक नाम मन्त्रके आदिमें होना चाहिए। जिस नाममन्त्रसे जिस अंगकी पूजा आये उससे उस अंगपर अक्षतादि चढा देना चाहिये । मत्स्यके लिये नमस्कार, पादोंको पूजता हूँ । कूर्मके लिये० जानुओंको, वराहके लि० गुह्यको; नृसिंहके लि० नाभिको; वामनके लि० उरको; रामके लि० भुजोंको; परशुरामके लि० कानोंको; कृष्णके लि० मुखको; बौद्धके लि० नेत्रोंको; कल्किके लि० शिरको पूजता हूँ । हे शङ्ख-चक्र गदा और पद्मके धारण करनेवाले ! हे देव देवेश ! हे अच्युत अनन्त गोविन्द और वासुदेव ! तेरे लिए नमस्कार ।यह धूप है इसे ग्रहण करिये, इससे धूप; तुमही पृथिवी, जल वायु, और आकाश हो तुमही ज्योतियोंकी भी ज्योति हो इस दीपकको ग्रहण करो, इससे दीप; अन्नचतुर्विधं' इससे नैवेद्य; आचमन; करोद्वर्तन; फल; ताम्बूल; दक्षिणा; नीराजन; मंत्र-पुष्पांजलि; प्रदक्षिणा और नमस्कार समर्पण करे ।। प्रार्थना—जो जनार्दन जगत्का आदि तथा जगत्का कारण जगद्रूप अनादि और जगत्का अन्त करनेवाला है, जलमेंही सोता है वो मुझपर प्रसन्न हो जाय ।

अनेकों कर्मोंके घोर बन्धनोंको काटनेवाले जलशायी मथुरावासी मधुसूदनको नमस्कार करता हूँ । हे त्रि-विक्रम। तुझे और तेरे वामनरूपको नमस्कार है । बलिके बांधनेवालोको नमस्कार है । हे वासुदेव ! तेरे लिए नमस्कार है । शिक्यदानसंकल्प—किए द्वादशीके व्रतके अङ्गके रूपमें कहे गये, श्रीवामनकी प्रतिके लिये दध्योदन वारिधानी छत्र और जूतोंके जोडोंके साथ शिक्यदान करूँगा; ऐसा संकल्पकर ब्राह्मण पूजन करे । पीछे हे विभो ! दध्योदन और वारिधानीके साथ तथा छत्र और जूतोंके साथ शिक्यको, ब्राह्मणके लिये देता हूँ, इस मंत्रको पढकर पीछे दध्योदन, वारिधानी छत्र और उपानहों के साथ इस शिक्यको अमुकनामके तुझ ब्राह्मणके लिए मैं देता हूँ यह कहकर दे दे । यह वायनेका देना पूरा हुआ । इसके साथ ही वामनकी पूजा समाप्त होती है ॥

सुरूपद्वादशीव्रतम्

अथ पौषकृष्णद्वादश्यां सुरूपद्वादशीव्रतम् । गुर्जरदेशे प्रसिद्धम् ॥ तत्कथा—उमोवाच ॥ [1]भगवन्प्रष्टुमिच्छामि प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ कथितव्यं प्रसादेन यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १ ॥ व्रतेन केन चीर्णेन विरूपत्वं प्रणश्यति ॥ सौभाग्यमतुलं चैव प्राप्यते कस्य [2]पूजनात् ॥ २ ॥ तन्मेकथय देवेश परमाभीष्टदायकम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ श्रूयतां परमं गुह्यं व्रतं पापहरं शुभम् ॥ ३ ॥ सुरूपाद्वादशी नाम महा-पातकनाशिनी ॥ सुरूपदायिनी चैव तथा सौभाग्यवर्धिनी ॥ ४ ॥ कुलवृद्धिकरी चैव सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥ तां शृणुष्व प्रयत्नेन कथ्यमानां मयाऽनघे ॥ ५ ॥ पुरा वै द्वापरस्यान्ते विष्णुर्दैत्यनिषूदनः ॥ अवतीर्णो मर्त्यलोके वसुदेवकुले किल ॥ ६ ॥ नेनोढा रुक्मिणी नाम भीष्मकस्य सुता पुरा ॥ अत्यन्तरूपसुभगा पतिव्रतपरा-यणा ॥ ७ ॥ न हि तस्या विना कृष्णः स्तोकमुद्वहते सुखम् ॥ श्वश्रूश्वशुरयोश्चापि पादवन्दनतत्परा ॥ ८ ॥ केनापि कर्मदोषेण कुपितां कृष्णमातरम् ॥ न प्रसादयति क्षिप्रमिति ज्ञात्वा तु देवकी ॥ ९ ॥ कृष्णं प्रोवाच कुपिता यदि ते जननी ह्यहम् ॥ ततस्त्वया हि वैवाह्या कुरूपा निर्गुणाधिका ॥ १० ॥ मद्वाक्यमन्यथा कर्तुं नार्हसि त्वं कुलोद्वह ॥ कृष्ण उवाच ॥ अपापां रुक्मिणीं त्यक्तुमुत्सहेऽहं कथं शुभाम् ॥ ११ ॥ यः परित्यजते भार्यामविक्लवशरीरिणीम् ॥ स प्राप्नोति हि [3]मन्दत्वं दौर्भाग्यं साप्तपौरुषम् ॥ १२ ॥ विरूपत्वमवाप्नोति न सुखं विन्दते क्वचित् ॥ व्याधिर्वा जायते लोके निन्दनीयः स देहिना ॥ १३ ॥ इत्यहं देवि जानामि कथं कुर्यां वचस्तव ॥ देवक्युवाच ॥ सर्वेषामेव देवानां तीर्थादीनामपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥ माता गुरुतरा पुत्र कस्तस्या वचनं त्यजेत् ॥ ममवाक्यस्य करणात्कथं पापिष्ठता भवेत् ॥ १५ ॥ जननी पूज्यते लोके न भार्या यदु नन्दन ॥ कृष्ण उवाच ॥ परित्य-जामि नो भीरुं प्रियां प्राणधनेश्वरीम् ॥ १६ ॥ इति तूष्णीं परं भूतां मातरं प्रेक्ष्य केशवः ॥ चिन्तामवाप परमां कथं सौख्यं भवेदिति ॥ १७ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः ॥ अभ्युज्जगाम सहसा विष्णुं संप्रेक्ष्य विस्मितम् ॥ १८ ॥

---

१ श्रोतुम् । २ सेवनादित्यपि पाठः । ३ मन्दात्मेति क्वचिपाठः । ४ मातरिति च पाठः ।

पूजितः परया भक्त्या अर्घ्यं जग्राह नारदः ।। उपविष्टो यथान्यायं पर्यपृच्छदनामयम् ।। १९ ।। नारद उवाच ।। किं त्वं खेदं करोषीत्थं किमुद्वेगस्य कारणम् ।। किं न सिद्ध्यति तेऽभीष्टं त्यजोद्वेगं यदूत्तम ।। २० ।। कृष्ण उवाच ।। मात्रा नियुक्तो देवर्षे परिणेतुं द्विजोत्तमा ।। कन्यामुद्वाहयिष्यामि कुरूपां कस्यचित्प्रभो ।। २१ ।। यथा मातुर्नियोगोऽत्र कृतो भवति सत्कृतिः ।। नारद उवाच ।। श्रूयतामभिधास्यामि पूर्ववृत्तान्तमादरात् ।। २२ ।। लक्ष्मीयुक्तः पुरा नाथ क्रीडमानो हि नन्दने ।। तत्रागमत्स भगवान्दुर्वासा ऋषिसत्तमः ।। २३ ।। [1]अभ्युत्थानादिविधिना सत्कृतं ज्ञानमूर्तिना । प्रेक्ष्यवीभत्सरूपं तं देव्या हास्यं कृतं तदा ।। २४ ।। स कोपेन महातेजा वैश्वानरसमप्रभः ।। शशाप लक्ष्मीं दुर्वासा मुनिः क्रोधेन संयुतः ।। २५ ।। हसितोऽहं त्वया मुग्धे आत्मनो रूपमीक्ष्य च ।। विरूपा भव दुर्वृत्ते किं न ज्ञातो ह्यहं त्वया ।। २६ ।। इत्युक्तया तया देव्या यथाशक्त्या प्रसादितः ।। प्रसन्नो जगदे वाक्यं मच्छापो नान्यथा भवेत् ।। २७ ।। जन्मान्तरेणास्य फलं भविष्यति विरूपता ।। सेयं मर्त्येऽवतीर्णा हि गोपकस्य गृहे शुभा ।। २८ ।। सत्यभामा विरूपाक्षी विरूपदशना तथा ।। कर्णनासातिविकृता संजाता तत्प्रभावतः ।। २९ ।। पाणिपादकटिग्रीवं सर्वं वैरूप्यलक्षणम् ।। तत्र गच्छ महाप्राज्ञ स ते कन्यां प्रदास्यति ।। ३० ।। कृष्ण उवाच ।। विरूपवदनां ब्रह्मन्कथं द्रक्ष्यामि नित्यशः ।। कां निर्वृतिं गमिष्यामि तां विवाह्य कुरुपिणीम् ।। ३१ ।। नारद उवाच ।। तस्या एव प्रसादेन रुक्मिण्या यदुनन्दन ।। उत्तमं प्राप्नुयाद्रूपं सौभाग्यं परमं सुखम् ।। ३२ ।। माता हि तावन्मान्या हि धर्मकामार्थमिच्छता ।। एवं भविष्यति तव सम्बन्धो विहितः सुरैः ।। ३३ ।। त्वया च नान्यथा कार्यं गुरुणां वचनं महत् ।। माता गुरुतरा भूमेरिति वेदेषु गीयते ।। ३४ ।। ईश्वर उवाच ।। एवमुक्त्वा महादेवि नारदस्त्रिदिवं गतः ।। कृष्णोऽपि मातरं प्राह वैवाह्यं हि विधीयताम् ।। ३५ ।। विवाहिता च सा तेन वेदोक्तविधिना ततः ।। आनीय स्वगृहं मातुर्दर्शयामास तां वधूम् ।। ३६ ।। पश्याद्यैव मया भामा परिणीता शुचिव्रता।।निर्वृतिं परमां गच्छ प्रसादसुमुखी भव ।।३७।। इत्युक्त्वा वीक्ष्य तां कृष्णः प्रणिपत्य च मातरम् ।। जगाम देवकार्याणां करणाय महाबलः ।। ३८ ।। तां दृष्ट्वा देवमाता च बभौ दुःखान्विता भृशम् ।। ईदृग्निरूपां विकृतां कथं कर्तास्मि गोपनम् ।। ३९ ।। चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसा ।। कस्यापि नाचचक्षे सावैरूप्यं तच्छरीरजम् [2]।। कस्मिंश्चिदथ काले तु रुक्मिणी तत्र भावतः ।। नमस्कृत्य ततः श्वश्रूं संस्पृश्य चरणौ तदा ।। ४१ ।।

---

१ सत्कृतश्च यथाज्ञानमभ्युत्थापनपूर्वकमित्यपि पाठः । २ अभूदिति शेषः ।

उवाच प्रस्तुतं वाक्यं भक्तियुक्तं शुभावहम् ।। [१]अम्बाहं द्रष्टुमिच्छामि सपत्नीं कृष्णवल्लभाम् ।। ४२ ।। मम दर्शय शीघ्रं तां प्रसादः सुविधीयताम् ।। देवक्युवाच ।। श्वश्रूर्ह्यहं ते सुभगे ममापि वचनं कुरु ।। ४३ ।। [२]पूर्वमाचरितं सुभ्रूः सुरूपाद्वादशीव्रतम् ।। [३]संप्रयच्छसि चेत्तस्यै दर्शनं ते भविष्यति ।। ४४ ।। रुक्मिण्युवाच ।। कष्टेन क्रियते धर्मो व्रतं चापि सुदुष्करम् ।। कथं तस्यै प्रयच्छामि फलं देवैः सुदुर्लभम् ।। ४५ ।। देवक्युवाच ।। अर्धं प्रदीयतामस्यै तदर्धमथवा पुनः ।। पञ्चमांशोथवा षष्ठः षोडशांशोऽथवा त्वया ।। ४६ ।। रुक्मिण्युवाच ।। सुरूपाद्वादशीपुण्यं तिलार्द्धमपि[४] नोत्सहे ।। किं पुनः षोडशान्तं तु सपत्न्यै दुष्टचेतसे ।। ४७ ।। एवमुक्त्वा जगामाशु मन्दिरं स्वं शुभेक्षणा ।। पुनः पप्रच्छ कृष्णं सा [१]प्रणिपातेन वै रुषा ।। ४८ ।। देवा पृच्छामि ते सर्वं ननु तुष्टोऽसि मे प्रभो ।। कथं पश्यामि तामद्य नवोढां कृष्णवल्लभाम् ।। ४९ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। दर्शयिष्ये ह्यहं सुभ्रू विरूपां तां सुमध्यमे ।। विरूपश्रवणाक्षीं तां कुरूपां विकृताननाम् ।।५०।। स्वदृष्टवैचित्र्यकृतं रूपाद्यत्र न संशयः ।। इत्युक्त्वा रुक्मिणीं कृष्णः सत्यभामां तदाब्रवीत् ।। ५१ ।। प्रार्थयाथ प्रियां सुभ्रू सुरूपाद्वादशी व्रतम् ।। तिलादपि हि षष्ठांशं देहि मे सेविकास्म्यहम् ।। ५२ ।। ईश्वर उवाच ।। सा गता तत्सकाशं तु पिधाय द्वारमादरात् ।। उवाच रुक्मिणीं सा तु सत्यभामा शुचिव्रता ।। ५३ ।। एकामप्याहुतिं देवी देहि भीष्मकनन्दिनि ।। अर्धाहुतिं वा मे देहि यद्यस्ति मयि सौहृदम् ।। ५४ ।। रुक्मिण्युवाच ।। कोऽयं [६]मतिभ्रमस्ते वै सुरूपाद्वादशीव्रते ।। तिलाहुतिं प्रयच्छामि उद्घाटय कपाटकम् ।। ५५ ।। इत्युक्त्वा त्वरितं स्नात्वा ददौ ह्येकां तिलाहुतिम् ।। तस्यां चैव प्रदत्तायां सा रूपेणाधिकाभवत् ।। ५६ ।। तां दृष्ट्वा विस्मयपरा पप्रच्छ दयिता हरेः ।। कथ्यतां मम का हि त्वं किमर्थमिह चागता ।। ५७ ।। सत्यभामोवाच ।। तवाहं भगिनीभद्रे कृष्णेनोढास्मि धर्मतः ।। सत्यभामेति मे नाम नमामि चरणौ तव ।। ५८ ।। इति श्रुत्वा तु वचनं विस्मयोत्फुल्ललोचना ।। नोवाच किञ्चिच्चार्वङ्गी ह्यत्यर्थं विस्मिताभवत् ।। ५९ ।। एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ।। तव दानप्रभावेण सत्यासीच्च सुरूपिणी ।। ६० ।। सुरूपाद्वादशीपुण्यं देवानामपि दुर्लभम् ।। उमोवाच ।। विधिना केन कर्तव्या किमाचारा वदस्व मे ।। ६१ ।। नियमं होमदानं च प्रसादः संविधीयताम् ।। ईश्वर उवाच ।। पौषमासे तु संप्राप्ते पुष्यऋक्षं यदा भवेत् ।। ६२ ।। तस्यां रात्रौ संयतात्मा ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् ।। श्वेता गौरेकवर्णा वा तस्या ग्राह्यं तु गोमयम् ।। ६३ ।। अन्तरिक्षात्तु

१ अद्याहमिति पाठः । २ त्वयेति शेषः । ३ तत्फलमिति शेषः । ४ दातुमिति शेषः । ५ वक्ष्यमाणतिलमिश्रगोमयपिण्डाहुतिसम्बन्धितएकाहुतिपुण्यम् । ६ दास्यामि वेत्येवंरूपः ।

पतितं 'शुचिमौनमवस्थितः ।। तस्य कृत्वाहुतीनां तु शतमष्टोत्तरं तिलैः ।। ६४ ।। प्रतीक्षेद्द्वादशीं कृष्णामुपवासपरायणः ।। स्नात्वा नद्यां तडागे वा विष्णुमेवाथ चिन्तयेत् ।। ६५ ।। सौवर्णं तु हरिं कृत्वा रौप्यं वापि स्वशक्तितः ।। तिलपात्रोपरि स्थाप्य कुम्भे विष्णुं प्रपूजयेत्।।६६।।इति संपूज्य विधिवत्पुष्पधूपैःसुदीपकैः।। नैवेद्यं सतिलं दद्यात्फलानि विविधानि च ।। ६७ ।। नमः परमशान्ताय विरूपाक्ष नमोऽस्तु ते ।। सर्वकल्मषनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। ६८ ।। एवं संपूज्य देवेशं कुर्याद्धोमं समाहितः ।। उद्दिश्य देवं लक्ष्मीशं होमयेद्गोमयाहुतीः ।। ६९ ।। शतमष्टाधिकं चैव तिलान्व्याहृतिसंयुतान् ।। सहस्रशीर्षामन्त्रेण हृदि ध्यात्वाजनार्दनम् ।। ७० ।। लक्ष्मीयुक्तं च मेघाभं शङ्खचक्रगदाधरम् ।। होमान्ते कारयेच्छ्राद्धं वैष्णवं द्विजसत्तमैः ।। ७१ ।। दत्त्वा च भोजनं तेभ्यः कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।। कथाश्रवणसंयुक्तं जागृयात्तु ततो निशि ।। ७२ ।। तं कुम्भं वैष्णवीं मूर्ति विप्राय प्रतिपादयेत् ।। मन्त्रहीनं, क्रियाहीनं सर्वं तत्र क्षमापयेत् ।।७३।। ईश्वर उवाच।। एवं यः कुरुते देवि सुरूपाद्वादशीव्रतम् ।। नरो वा यदि वा नारी तत्र पुण्यं शृणुष्व मे ।। ७४ ।। दौर्भाग्यं तस्य नश्येत अपि जन्मशतार्जितम् । अपि धूमस्य संपर्को जायते कारणान्तरात् ।। ७५ ।। तस्यापि न भवेद् दुःखं वैरूप्यं जन्मजन्मनि ।। पतिना न वियोगः स्यान्नेष्टैः सह वियोगिता ।। ७६ ।। जायते गोत्रवृद्धिश्च कीर्तिमान् जायते भुवि ।। जातिस्मरणमाप्नोति पदं निर्वाणमाप्नुयात् ।। ७७।। पठ्यमानमिदं भक्त्या यः शृणोति समाहितः ।। पुण्यमाप्नोति सततं स्वर्गलोके महीयते ।। ७८ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे सुरूपाद्वादशीव्रतकथा संपूर्णा ।। इति द्वादशीव्रतानि समाप्तानि ।।

सुरूपद्वादशी व्रत–पौष कृष्ण द्वादशीके दिन होता है, यह गुर्जर देशमें प्रसिद्ध है । कथा-उमा बोलीं कि, हे भगवन् । मैं पूछना चाहती हूँ कि; हे प्रभो ? मुझपर कृपा करिए, यदि आपका मुझमें प्रेम है तो प्रसन्नतासे कहिये ।। १ ।। कि, किस व्रतके करने से विरूपपना नष्ट हो जायगा, किसके पूजनसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति हो जायगी ? ?।। २ ।। हे देवेश ! उस परम अभीष्टके देनेवाले व्रत को मुझे कहिये । ईश्वर बोले कि, पापोंके नाश करनेवाले परम गुह्यव्रतको सुनो ।। ३ ।। महापापोंको नष्ट करनेवाली सुरूपा द्वादशी है, वह अच्छे रूपको देती है तथा सौभाग्यके बढानेवाली है ।। ४ ।। कुलको बढानेवाली तथा सब सुखोंको देनेवाली है। हे निष्पापे ! मैं कहताहूँ तू सावधान होकर सुन ।। ५ ।। द्वापरके अन्तमें भूमिपर वसुदेवके कुलमें दैत्यनाशक विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए थे ।। ६ ।। उसने अत्यन्त सुन्दर सुभग पतिव्रतमें परायण भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको विवाहा था ।। ७ ।। उसके विना कृष्णको थोडासा भी सुख नहीं होता था । वह सास ससुरोंके भी चरण वन्दनमें तत्पर रहा करतीथी ।। ८ ।। एकवार भैष्मीपर कृष्णकी माता देवकीजी अप्रसन्न हो गयीं पर किसीभी कर्मदोषके वशमें हो जानेके कारण उन्हें शीघ्रही नहीं मनाया ।। ९ ।। क्रोधित होकर कृष्णसे बोलीकि जो मैं तेरी मा हूँ तो तुम अब अधिक निर्गुण बदसूरतके साथ विवाह करो ।। १० ।। हे वंशके निर्वाहक ! तुम मेरे वचनको टाल नहीं सकते । कृष्ण बोले कि, इस अच्छी निष्पाप रुक्मिणीको मैं कैसे छोड दूं ।। ११ ।। जो

१ पतितं गोमयमन्तरिक्षाद्‌ग्राह्यमित्यर्थः ।

निष्पाप शरीरवाली अपनी स्त्रीका परित्याग कर देता है उसे मन्दपना मिलता है तथा सात पुरुषोंतक दुर्भाग्यभी उसे प्राप्त होता है । १२।। उसे कुरूप मिलता है कभीसुख नहीं मिलता । कोई बीमारी पैदा हो जाती है संसार में प्राण धारियोंके बीच उसकी बुराई होती है ।। १३ ।। हे देवि ! यह मैं जानता हूँ, फिर बता कि कैसे मैं तेरी कही मानूं ? यह सुन देवकीजी बोली कि, यह निश्चय समझ कि सभी देव और तीर्थोंमें ।। १४ ।। माता सबसे बडी है ऐसा कौन होगा जो हे पुत्र ! उसके वाक्य को न माने । मेरे वाक्यको पूरा करने में आप कैसे पापी हो जाओगे ।। १५ ।। हे यदुनन्दन ! माता पूजी जातीहै, स्त्रीकी पूजा नहीं होती, यह सुन कृष्णजी बोले कि मैं अपने प्राणोंसे भी प्यारी डरपोसिनी प्राणधनकी स्वामिनी रुक्मिणीको न छोड सकूंगा ।। १६ ।। इसके बाद माताको एकदम मौन साधे देख कृष्णको यह चिन्ता हुई कि यह कैसे सुखी हो ।। १७ ।। इसी अवसरपर भगवान् नारदऋषि एकदम चले आये एवं कृष्णको देख बडे ही विस्मित हुए ।। १८ ।। भगवान्ने बडी भक्ति से पूजा की, नारदजीने अर्घ्य ग्रहण किया जैसा बैठना चाहिए बैठकर कुशल पूछने लगे ।। १९ ।। कि, बताइये तो सही, आज इतने उद्विग्न क्यों हो, क्यों खिन्न हो आपका चाहा हुआ क्या सिद्ध नहीं होता ? हे यदूत्तम ! उद्वेग परित्यागकर ।। २० ।। हे द्विजोत्तम । हे देवर्षे ! माताने मुझे विवाहकी आज्ञा दी है, हे प्रभो ! मैं किसीकी कुरूपा कन्याको ब्याहूंगा ।। २१ ।। यहाँ माताका नियोग करके सत्कृती हो जाता है यह सुन नारदजी बोले कि एक पुराना इतिहास कहता हूँ आप आदर पूर्वक सुनें ।। २२।। आप पहिले लक्ष्मीजीको साथ लिए हुए बागमें खेल रहे थे वहाँ मुनिराज दुर्वासा चले आये ।। २३ ।। ज्ञान मूर्तिने उठने आदिसे दुर्वासाका सत्कारकर दिया पर उनका बुरा रूप देखकर देवीने हास्य किया ।।२४।। वो महा तेजस्वी क्रोधसे आगके समान जलने लगे और क्रोधके वेगसे लक्ष्मीजीको शाप दे डाला ।। २५ ।। कि ए मुग्धे ! तूने अपना रूप देखकर मेरी हँसी की है । ए दुवृत्ते ! कुरूपा हो क्या मैं तुझे मालूम नहीं हुआ ।। २६ ।। ऐसा कहने पर देवीने यथाशक्ति उन्हें प्रसन्न किया उससे प्रसन्न होकर दुर्वासाने कहा कि, मेरा शाप अन्यथा नहीं हो सकता ।। २७ ।। मेरे शापका फल विरूपता तुम्हें किसी दूसरे जन्ममें मिलेगी, वही लक्ष्मी अब इस मर्त्यलोकमें गोपकके घरमें अवतरी है ।। २८ ।। उसका नाम सत्यभामा है आँखें टेढक भेडी हैं देखनेमें भी सुन्दर नहीं है । नाक और कान भी विकृत हैं वह उस शापके प्रभावसे ऐसी हो ही गयी है ।। २९ ।। हाथ पैर, कमर, ग्रीवा सब कुरूप हैं । हे महाप्राज्ञ ! वहाँ जाओ वो आपको कन्या देगा ।। ३० ।। कृष्ण बोले कि, हे भगवन् ! मैं रोज कैसे उस कुरूपाको देख सकूंगा एवम् उस कुरूपाको व्याहकर मुझे क्या आनन्द आवेगा ? ।। ३१ ।। हे यदुनन्दन ! उसके ही रुक्मिणीके प्रसादसे उत्तम रूप सौभाग्य और परम सुख मिलेगा ।। ३२ ।। धर्म अर्थ और कामके चाहनेवालेको माता अवश्यही मान्य है, आपका संबंध देवताओंने इस प्रकार कहा है ।। ३३ ।। गुरुओंके आदरणीय वचनोंको अन्यथा न करिये, वेदोंमें कहा गया है कि, माता भूमिसे भी गुरु है ।। ३४ ।। शिवजी बोले कि,हे महादेवि ! ऐसे कहकर नारदजी त्रिदिव चलेगये । कृष्णने भी मातासे कहा कि, विवाह की तैयारी करिये ।।३५।। कृष्णने वैदिकविधिसे उसे ब्याह लिया अपने घर लाकर उस वधूको माताके लिये दिखा दिया ।। ३६ ।। कहा कि,मा देख ? अब मैंने सदाचारिणी ब्याहली आप आनन्द मानिये, कृपा करिये ।। ३७ ।। ऐसा कहकर माताको प्रणाम करके महाबलशालीली वह देवकार्य्य करनेके लिए चल दिये ।। ३८ ।। उसे देखकर देवमाता एकदम दुखी हो गयी कि, ऐसी विकृत विरूपको कैसेछिपाऊँगी ।। ३९ ।। चित्त उद्विग्न हो गया , बडी ही चिन्तित हुई पर बहूके शरीरके वैरूप्यको किसीसे भी नहीं कहा ।। ४० ।। किसी समय रुक्मिणीने सासुके भावके कारण उसे प्रणाम करके चरण छूये ।। ४१ ।। और भक्तिके साथ कल्याणकारी भक्तिसने वाक्य कहे । हे अम्ब ! मैं कृष्णकी प्यारी अपनी सौतको देखना चाहती हूँ ।। ४२ ।। मुझे शीघ्रही दिखादें, यह कृपा होनी चाहिये, यह सुन देवकीजी बोलीं कि, मैं तेरी सास होती हूँ मेरी भी कुछ मान ।। ४३ ।। हे सुभ्रु ! तूने पहिले सुरूपद्वादशीका व्रत किया था । अपने सौतको वह देदे तुम्हें दिखा दूंगी ।। ४४ ।। रुक्मिणीजी बोलीं कि, धर्म और दुष्कर व्रत कष्टसे किये जाते हैं जो फल देवोंको भी दुर्लभ है उसे कैसे देदूं ।। ४५ ।। देवकी बोली कि, आधा दीजिये, नहीं तो आधेकाही आधा देदीजिये अथवा पाँचवाँ छठाँ वा सोलहवाँ भागही देदीजिये ।। ४६ ।। रुक्मिणी बोली कि, सुरूपा द्वादशीके पुण्यमेंसे तिलके

आधे बराबर भी नहीं दे सकती, दुष्टचेता सपत्नीके लिये सोलहवां हिस्सा तो बडी बात है ।। ४७ ।। इस प्रकार कह कर वह अच्छे नयनोंवाली अपने मकान चली गई, फिर उसने नम्रताके साथ क्रोधपूर्वक कृष्णसे पूछा ।। ४८ ।। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे पूछती हूँ कि, मैं आपकी नयी प्यारीको कैसे देख सकूंगी ।। ४९ ।। श्रीकृष्ण बोले कि, हे सुन्दर भौंवाली अच्छी कमर की ! मैं उस कुरूपाको दिखा दूंगा, वो विरूपा है उसके कान आँख सब विरूप मुख विकृत है नितान्त कुरूप है ।। ५० ।। अपने अपने पापपुण्योंसे रूपादिकों की विचित्रता होती है इसमें सन्देह नहीं है । ऐसा रुक्मिणीको कहकर सत्यभामासे बोले कि ।। ५१ ।। मेरी प्यारी सुन्दरीसे सुरूपद्वादशी व्रतका तिलकाभी छटा भाग माँग ले । कि, मैं तेरी सेविका हूँ मुझे दे दे ।। ५२ ।। ईश्वर बोले कि, रुक्मिणी तो आदरपूर्वक सत्यभामाको देखने आयी पर दरवाजा बन्दकर लिया और कहा कि ।। ५३ ।। हे भीष्मकनन्दिनि ! हे देवि ! जो मुझपर प्रेम है तो आधी आहुतिकाही पुण्य दे दे ।। ५४ ।। रुक्मिणी बोली कि, तेरा सुरूपा द्वादशीके विषयमें क्या भ्रम हो गया है ? मैं तिलाहुति देती हूँ किवाड खोल दे ।। ५५ ।। ऐसा कह स्नान करके एक तिलकी आहुति देदी; उसके देतेही कुरूपा भामा अधिक सुन्दरी हो गयी ।। ५६ ।। उसे देखतेही रुक्मिणीको बडा विस्मय हुआ और सत्यासे पूछने लगीं कि, तू कौन और कैसे आई है ? ।। ५७ ।। सत्यभामा बोली कि, मैं तेरी वहिन हूँ, कृष्णने मुझे धर्मसे विवाहा है, सत्यभामा, मेरा नाम है, मैं तेरे चरणोंमें प्रणाम करती हूँ ।। ५८ ।। ये वचन सुनकर विस्मयके मारे रुक्मिणीकी आखें चोढ गयीं कुछभी न बोलसकी क्योंकि,वह अत्यन्त विस्मित हो गई थी।।५९।। उसी समय आकाशवाणी हुई कि, तेरेही दानके प्रभावसे सत्यासुरूपा हो गई है ।। ६० ।। सुरूपाद्वादशीका पुण्य देवताओंकोभी दुर्लभ है । उमा बोली कि, सुरूपाद्वादशी किस विधिसे कैसे करनी चाहिये ? यह कहिये ।। ६१ ।। नियम, होम-दान भी कहिये, यह कृपा मुझपर होनी चाहिये । ईश्वर बोले कि, पौषमासके आनेपर जब पुष्य नक्षत्र हो ।। ६२ ।। उस रातमें संयतात्मा रहकर विष्णुभगवान्का ध्यान करे, श्वेत गऊ या एक रंगकी हो उसका गोमय ले ।। ६३ ।। वह गोमय भूमिमें न गिर गया हो उसे मौन होकर ले उसमें तिल मिला उसके एकसौ आठ पिण्ड होने चाहिये ।। ६४ ।। कृष्णा द्वादशीकी प्रतीक्षा करे, उपवासपरायण हो, नदी वा तगडागमें स्नान करके विष्णुका ही चिन्तन करे ।। ६५ ।। शक्ति के अनुसार सोने वा चांदीकी भगवान्की मूर्ति, तिलपात्रपर रखकर कुम्भपर पूजन करे ।। ६६ ।। इस प्रकार विधिपूर्वक पुष्प धूप और दीपोंसे पूजे, तिल समेत नैवेद्य दे तथा अनेक तरहके फल भेंट चढावे ।। ६७ ।। हे विरूपाक्ष! परम शान्त तुझको नमस्कार है, सब कल्मषोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है ।। ६८ ।। इस प्रकार देवेशका पूजन करके एकाग्र-चित्तसे हवन करे । एवं लक्ष्मीश देवका उद्देश लेकर गोमयकी आहुति दे ।। ६९ ।। वह एक सौ आठ होनी चाहिये तिलभी हों, आहुतिके समय व्याहृतियोंका भी प्रयोग हो, 'ओं सहर्षशीर्षा' इससे हों, देतीवार हृदयमें भगवान्का ध्यान करे ।। ७० ।। कि, मेघके से श्याम हैं,शंख चक्र और गदाधारण किये हुये हैं,पासमें लक्ष्मीजी विराजमान् हैं, होमके अन्तमें ब्राह्मणों को चाहिये कि, वैष्णव श्राद्ध हो ।। ७१ ।। उनके लिये भोजन दे, प्रद-क्षिणा करके कथा सुनता हुआ रातमें जागरण करे ।। ७२ ।। उस कुम्भ और भगवान्की मूर्तिको ब्राह्मण के लिये देदे । उसमें मन्त्र हीन और क्रिया हीनकी क्षमा माँगे ।। ७३ ।। शिवजी बोले कि, हे देवि ! जो इस प्रकार सुरूपाद्वादशीका व्रत करते हैं चाहे वे स्त्री या पुरुष कोई भी क्यों न हो मुझसे उनके पुण्यको सुन ।। ।। ७४ ।। उसका दौर्भाग्य नष्ट हो जाता है चाहे वह सौ जन्मका ही क्यों न हो और तो क्या जिसके किसी कारणसे उसका धूँआ लगजाय ।। ७५ ।। उसे भी दुःख और विरूपता किसी भी जन्ममें नहीं मिलती, पति और प्यारोंके साथ उसका वियोग नहीं होता ।।७६।।गोत्रकी वृद्धि और कीर्तिमान् हो जाताहै । जाति (जन्मों) की उसे याद आती है निर्वाण पा जाता है ।। ७७ ।। जो इसकी कथाको भक्तिपूर्वक आदरके साथ एकाग्रचित्त सुनता है उससे निरंतर पुण्य मिलता है वो अंतमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।। ७८ ।। यह श्री भविष्यो-त्पुराणकी कही हुई सुरूपाद्वादशीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।। इसके साथही द्वादशीके व्रत भी पूरे होते हैं ।।

अथ त्रयोदशीव्रतानिलिख्यन्ते

जयापार्वतीव्रतम्

आषाढशुक्लत्रयोदश्यां जयापार्वतीव्रतं भविष्योत्तरपुराणे– श्रीलक्ष्मीरुवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ भुक्तिमुक्तिप्रदायक ॥ कथयस्व प्रसादेन लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥ नारीणां तु व्रतं देव अवैधव्यकरं शुभम् ॥ आचीर्णं यच्च नारीणामखण्ड-फलदं भवेत्॥२॥श्रीभगवानुवाच॥सत्यमुक्तं त्वया देवि न च मिथ्या त्वयोदितम् ॥ तद्व्रतं कथयिष्यामि नाख्यातं कस्यचित्पुरा ॥ ३ ॥ अकथ्यं परमं गुह्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ येन चीर्णेन नारीणामवैधव्यं प्रजायते ॥ ४ ॥ [1]आषाढे च प्रकर्तव्यं शुक्लपक्षे त्रयोदशी ॥ गृह्णीयान्नियमं तत्र दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ५ ॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वंनो देहि वनस्पते ॥ ६॥ दन्तधावनमन्त्रः ॥ नियमात्फलमाप्नोति निष्फलं नियमं विना ॥ तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन व्रतं नियमपूर्वकम् ॥ ७ ॥ एकभक्तं व्रतं चैव करिष्येऽहं मुदाधुना ॥ स्वादहीनेन धान्येन मम पापं व्यपोहतु ॥ ८ ॥ नियममन्त्रः ॥ उमामहेश्वरौ कार्यौ सुवर्णरजतादिभिः ॥ अथवा मृन्मयौ कार्यौ [2]वृष स्कन्धोपरि स्थितौ ॥ ९ ॥ गोष्ठे देवालये वापि तथा ब्राह्मणवेश्मनि ॥ स्थापयेद्वेदमन्त्रेण प्रतिष्ठां तत्र कारयेत् ॥ १० ॥ तद्दिने दन्तकाष्ठं हि यौथिकं च वरानने ॥ स्नानशुद्धिं ततः कृत्वा ततः पूजां प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥ कुङ्कुमागुरुकस्तूरीसिन्दूरैरष्टगन्धकैः ॥ चंपकैः शतपत्रैश्च यूथिकाभिर्ऋतूद्भवैः ॥ १२ ॥ ग्रीवासूत्रेण दूर्वाभिः पूजयित्वा विधानतः ॥ अर्घ्येण[3] वारिशुद्धेन उत्तरीययुगेन च ॥ १३ ॥ श्रीफलद्राक्षादाडिम्बैर्ऋतुजातफलेन च ॥ आद्ये देवि च शर्वाणि शङ्करस्य सदा प्रिय ॥ १४ ॥ अर्घ्यं गृहाण देवेशि ममोपरि कृपां कुरु ॥ कृत्वेति पूजा शृणुयात्कथां रम्यां द्विजोत्तमात् ॥ १५ ॥ श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ॥ अच्युताय नमस्तुभ्यं पुरुषायादिरूपिणे ॥ व्रताध्यक्षमहाप्राज्ञ त्वं वृद्धिक्षयकारकः ॥ १६ ॥ कथयस्व प्रसादेन व्रताना-मुत्तमं व्रतम् ॥ केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्यलोके कथं गतम् ॥ १७ ॥ एतत्सर्वं प्रयत्नेन ब्रूहि मे जगदीश्वर ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि पार्वत्याश्च कथामिमाम् ॥ १८ ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ आसीत्पुरा कृतयुगे कौण्डिन्ये नगरे वरे ॥ १९ ॥ ब्राह्मणो वेदतत्त्वज्ञः सत्यशौचपरायणः। गुणवाञ्छीलसंपन्नो वामनो नाम नामतः ॥ २० ॥ तस्यभार्या प्रिया सत्या रूप-लक्षणसंयुता ॥ धनाढ्ये वेदविदुषो गृहे वै सर्वसंपदः ॥ २१ ॥ पूर्वकर्मविपाकेन सन्तानरहितोऽभवत् ॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यं श्मशानसदृशं मतम् ॥ २२ ॥ दम्पती

१ आषाढे शुक्लपक्षे या त्रयोदशी तस्यां कर्तव्यमित्यर्थः । २सिंहदेहोपरि । ३ वातिशुभ्रेणेतिच कचित्पाठः ।

तेन दुःखेन क्षीणौ जातौ शरीरतः ।। एकदा शुभकाले तु नारदो गृहमागतः ।। २३ ।। अर्घ्यपाद्यादिकं कृत्वा कथां [१]चक्रेऽमुना सह ।। वामन उवाच ।। नारद त्वमृषिद्यश्रेष्ठः सर्वज्ञानपरायणः ।। २४ ।। कथयस्व प्रसादेन कथं दुःखं प्रशाम्यति ।। दानेन केन देवर्षे व्रतेन नियमेन च ।। २५ ।। तीर्थेन च मुनिश्रेष्ठ सन्तानं मे कथं भवेत् ।। नारद उवाच ।। शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि सन्तानं ते भविष्यति ।। २६ ।। वनस्य दक्षिणे पार्श्वे बिल्वयूथस्य मध्यतः ।। भवानीसहितः शूली लिङ्गरूपेण तिष्ठति ।। २७ ।। सपर्यां कुरु तस्याशु तुष्टो दास्यति सन्ततिम् ।। अपूज्यं लिङ्गमभ्यर्च्य सन्तति लभते नरः ।। २८ ।। इत्युक्त्वा नारदः स्वर्गे गतो वै मुनिपुङ्गवः ।। वनमध्ये गतौ द्वौ तु दम्पती पुत्रकांक्षिणौ ।।२९।। बिल्वमध्ये ततो दृष्ट्वा शिवलिङ्गं पुरातनम् ।। बिल्वपत्रैश्च जीर्णैश्च पिहितं सर्वतस्ततः ।। ३० ।। विहाय बिल्व पत्राणि संमार्गं चोपलेपनम् ।। पञ्चामृतेन प्रक्षाल्य पूजां चक्रे मनोरमाम् ।। ३१ ।। नित्यं नियम संयुक्तोऽपूजयत् परमेश्वरम् ।। पञ्चाब्दं पूजितस्तेन पार्वतीसहितो हरः ।। ३२ ।। एकदा तु गतः सोऽथ पुष्पार्थं ब्राह्मणोत्तमः ।। कुसुमं गृह्यते यावत्तावद्दृष्टः स पन्नगैः ।। ३३ ।। पतितस्तद्वने घोरे सिंहव्याघ्रसमाकुले ।। त्रिमुहूर्तं प्रतीक्ष्याथ तद्भार्याचिन्तयद्धृदि ।। ३४ ।। किं कारणं भवेदत्र कथं नायाति मे पतिः ।। रुदती शोकसंयुक्ता वनमध्ये सगता सती ।। ३५ ।। आगता तत्र यत्रास्ते भर्ता च पतितो भुवि ।। भर्तारं पतितं दृष्ट्वा तदा मोहमुपागमत् ।। ३६ ।। तत्पश्चाच्चेतनायुक्ता साऽस्मरद्वनदेवताम् ।। पार्वती तु समायाता यत्र तिष्ठति ब्राह्मणी ।। ३७ ।। आक्रन्दमानां तां दृष्ट्वा पार्वती वरदाभवत् ।। सुधां सुभगहस्तेन विप्रवक्त्रे विमुञ्चति ।। ३८ ।। उत्थितो ब्राह्मणस्तत्र निशीथे निद्रितो यथा ।। ततस्तच्चरणौ गृह्य दम्पती विनयान्वितौ ।। ३९ ।। पार्वत्याः पूजनं भक्त्या चक्रतुस्तौ मुदान्वितौ ।। पार्वत्युवाच ।। त्वत्पूजनादहं प्रीता वरं वरय सुव्रते ।। ४० ।। ब्राह्मण्युवाच ।। त्वत्प्रसादेन रुद्राणि मया लब्धं च वाञ्छितम् ।। सन्तानं चैव मे नास्ति एतद्दुःखं च मे हृदि ।। ४१ ।। पार्वत्युवाच ।। व्रतं कुरु विधानेन मम नाम्ना च विश्रुतम् ।। जयायुक्तेनासुभगे त्रैलोक्य पावनं परम् ।। ४२ ।। भक्त्या जयापार्वतीति आषाढे चारुलोचने ।। स्वादहीनेन चान्नेन लवणेन विना तथा ।। ४३ ।। दृढव्रतं च कर्तव्यं भोक्तव्यं दिनपञ्चकम् ।। त्रयोदश्यां व्रतारम्भस्तृतीयायां समापनम् ।। ४४ ।। शुक्लपक्षे व्रतारम्भः कृष्णपक्षे समापनम् ।। पञ्चाब्दं यावनालैस्तु व्रतं कार्यं प्रयत्नतः ।। ४५ ।। पञ्चाब्दं हि यवैश्चैव व्रतं तु लवणं विना ।।

१ अमुना नारदेन । २ कृत्वेति शेषः । ३ हे सुभगे चारुलोचने जयायुक्तेन मन्नाम्ना जयापार्वतीति त्रैलोक्ये विश्रुतं परंपावनं व्रतं आषाढे भक्त्या विधानेन कुर्वित्यन्वयः ।

पञ्चाब्दं तण्डुलैः कार्यमिक्षुरसविवर्जितम् ।। ४६ ।। मुद्गैः कार्यं पञ्चवर्षं यावद्धायनविंशतिः।।अब्दे तु विंशतितमे व्रतोद्यापनमाचरेत् ।।४७।।दम्पत्योः परिधानं हि दद्याद्भूषणपूर्वकम् ।। भोजनं च सुवासिन्यै तृतीयायां यथोदितम् ।। ४८ ।। विंशतिप्रथमाद्वर्षात्स्वस्य वित्तानुसारतः ।। पञ्चके पञ्चके देयं परिधानं च भोजनम् ।। ४९ ।। नानारसैः समायुक्तं घृतखण्डसमन्वितम् ।। सभर्तृकायै दातव्यं भोज्यं सौभाग्यहेतवे ।। ५० ।। कुङ्कुमं कज्जलं चैवमब्दे अब्दे स्वशक्तितः ।। रात्रौ जागरणं कुर्यादखण्डफलदं भवेत् ।। ५ ।। व्रतेन तु विना नारी विधवा जन्मजन्मनि ।। शोचन्ती दुःखसंयुक्ता न च सौभाग्यभाग्भवेत् ।। ५२ ।। नारी तु सुव्रतैर्दानैः पतिभक्त्याततः परम् ।। सौभाग्यमतुलं याति पतिसन्तोषदा यतः ।। ।। ५३ ।। एवमुक्त्वा व्रतमिदंतत्रैवान्तरधीयत ।। पश्चाद्गृहं समागत्य दम्पती च मुदान्वितौ ।। ५४ ।। पूर्वोक्तेन विधानेन कुर्वाते व्रतमुत्तमम् ।। तद्व्रतस्य प्रभावेण प्राप्तं पुत्रसुखं तयोः ।। ५५ ।। दम्पतिभ्यां विशेषण अवैधव्यपरं सुखम् ।। भुक्त्वा च विविधान्भोगानन्ते प्राप्तं शिवालयम् ।। ५६ ।। एवं व्रतं या कुरुते न सा भर्त्रा वियुज्यते ।। कुलत्रयं समुद्धृत्य संप्राप्य शिवमन्दिरम् ।। ५७ ।। सान्निध्यसुखमासाद्य शिवलोके महीयते ।। कथां श्रुत्वा विधानेन सर्वपापात्प्रमुच्यते ।। ५८ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे जयापार्वतीव्रतं संपूर्णम् ।। इदं तु गुजरदेशे गुर्जराचारप्राप्तम् ।।

त्रयोदशीव्रतानि

अब त्रयोदशीके व्रत लिखे जाते हैं । जयापार्वतीव्रत-आषाढ शुक्ला त्रयोदशीके दिन होता है, यह भविष्योत्तर पुराण में लिखा है । श्री लक्ष्मीजी बोलीं कि, हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भोग और मोक्षके दाता ! संसारके कल्याणके लिये प्रसन्न होकर कहिये ।। १ ।। हे देव ! स्त्रियोंको सदा सुहाग करनेवाला शुभ व्रत , जो करनेपर अखण्ड फल दे ।। २ ।। श्री भगवान् बोले कि, हेदेवि ! तुमने सत्य कहा है, झूठ नहीं कहा । मैं उस व्रतको कहूँगा जो कि, आजनक मैंने किसीको नहीं कहा है ।। ३ ।। वो परम गोपनीय किसीसे भी कहने लायक नहीं हैं, पवित्र है, पापोंका नष्ट करनेवाला है । जिसके करनेपर स्त्रियोंको कभी वैधव्यकी प्राप्ति नहीं होती ।।४।। इसे आषाढ शुक्ल त्रयोदशीके दिन करना चाहिये। दाँतुन करके नियमग्रहण करे ।।५।। 'आयुर्बलम् ' यह दांतुनका मन्त्र है ।।६।। नियमसे फल मिलता है, बिना नियमके निष्फल है, इस कारण नियमपूर्वक प्रयत्नके साथ व्रत करना चाहिये ।। ७ ।। मैं आनन्द के साथ स्वादहीन धानसे एकभक्त व्रत करूँगा । मेरे पापोंको नष्ट कर ।।८।। यह नियमका मन्त्र है । वृषके ऊपर बैठे हुए उमा महेश्वर, शक्तिकेअनुसार सोने चांदी या मिट्टीके बनावे ।।९।। गोष्ट, देवालय या ब्राह्मणके घरमें वेदमन्त्रसे स्थापित करे, वहाँही प्रतिष्ठा करे, या करावे ।।१०।। हे वरानने ! उस दिन यूथिकाकी दाँतुन करे, स्नानशुद्धि करके पूजा करे ।।११।। कुंकुम, अगरु, कस्तूरी, सिन्दूल, अष्टगन्ध, चंपक, शतपत्र, यूथिका, ऋतुके पुष्प ।।१२।। ग्रीवासूत्र, दूर्वा इनसे विधानके साथ पूजकर शुद्ध पानीसे एवं दो उत्तरीयोंसे ।।१३।। श्रीफल, द्राक्षा, दाडिम, ऋतुफल हों और कहे कि, 'हे सबकी प्रथमे ! हे देवि! हे शर्वाणि ! हे शंकरकी सदा प्यारी ! ।।१४।। हे देवेशि ! मेरेपर कृपाकर अर्घ्य ग्रहण करिये" पूजा करके योग्य ब्राह्मणसे सुन्दर कथाएं सुने ।।१५।। श्री महालक्ष्मीजी बोली कि, आदिरूपी पुरुष तुझ अच्युतके लिये नमस्कार है, हे व्रताध्यक्ष ! हे महाप्राज्ञ ! हे प्रभो ! आपही वृद्धि

और क्षयके करनेवाले हो ।।१६।। आप कृपा करके सब व्रतोंमें जो श्रेष्ठव्रत हो उसे कहिये, वो पहिले किसने किया मर्त्यलोकमें कैसे गया? ।।१७।। हे जगदीश्वर ! यह सब प्रयत्न पूर्वक मुझे कहिये । श्री भगवान् बोले कि, में पार्वतीकी इस कथाको कहताहूं ।।१८।। जिसको सुनकर असंशय सब पापोंसे मुक्त होजाता है । पहले कृतयुगमें एक सुन्दर कौडिन्यनगर था ।।१९।। उसमें वेदके तत्त्वका जाननेवाला ,सत्य और शौचमें रत रहनेवाला गुणवान् एवं शीलसंपन्न वामन नामका ब्राह्मण था ।।२०।। उसकी रूप और सबलक्षणोंसे युक्त सत्यानामकी प्यारी स्त्री थी, उस वेदवेत्ताके धनाढच घरमें सब सम्पत्तियां थीं ।।२१।। पर पहिले कर्मके फलसे कोई सन्तान नहीं थी, निपुत्रीका शून्य घर श्मशानके बराबर है ।।२२ इसी दुखसे व दोनों दुबले होगये । एक दिन अच्छे समयमें नारदजी घर चले आये ।।२३।। स्त्रीके साथ उसने नारदजीके अर्घ्य पाद्य आदिके किये पीछे बोला कि, हे नारद ! आप सब ज्ञानोंमें भरपूर श्रेष्ठ ऋषि हैं ।।२४।। कृपा करके कहिये, दुःखकी निवृत्ति कैसे हो ? हे देवर्षे ! वह दान, व्रत, नियम कौनसा है? ।।२५।। या कोई तीर्थ हो हे मुनिश्रेठ ! मेरे सन्तान कैसे हो? यह सुन नारदजी बोले कि, हे वि ! कहता हूँ तेरे सन्तान होगी ।।२६।। वनके दक्षिणी नाकेपर बिल्वके यूथके बीच भवानीके साथ शिवजी लिंगरूपसे विराजते हैं ।।२७।। उनकी सेवा कर वह जल्दीही प्रसन्न होकर सन्तान देदेंगे क्यों कि, अपूज्य लिंगकी भी पूजा करके मनुष्य सन्तति पालेता है ।।२८।। ऐसा कहकर मुनिपुंगव नारद स्वर्गको चले गये, वे दोनों पुत्र चाहनेवाले दंपति अपने घर चले आये ।।२९।। उक्त बिल्वके बीचमें उन्होंने एक प्राचीन शिवलिंग देखा. जो बिलसपत्रके सूखेपत्तोंसे चारों ओर ढका हुआ था ।।३०।। बिल्बपत्रोंको झाडी और शीपा, पंचामृतसे धोकर सुन्दर पूजा की ।।३१।। रोजहीं नियमपूर्वक शिवजीको पूजने लगा, पार्वती सहित शिवजीको पांच वरस पूजा की ।।३२।। एक दिन वह उत्तम ब्राह्मण पुष्प लेने गया, जबतक फूल तोडता था कि, इतनेमें ही सांपने काटलिया ।।३३।।वह उसी वनमें गिरगया जो सिह और वघेरोंसे घिरा हुआ न था । तीन मुहूर्ततक प्रतीक्षा करके उसकी भार्य्याने मनमें सोचा कि, क्या कारण हुआ मेरा पति क्यों नहीं आया, वह अत्यन्त शोकसे व्याकुल होकर रोती रोती उसी वनमें पहुंची ।।३४–३५।। वो वहांही पहुंची जहां कि, पति भूमिपर पडा हुआ था उसे पडाहुआ देखकर बेहोश होगई ।।३६।।इसके बाद जब उसे होशहुआ तो वनदेवताको याद किया जहां वो ब्राह्मणी थी वहांही वनदेवता पार्वतीजीचली आयीं ।।३७।। रोती हुई उसे देखकर पार्वतीजी वर देने लगीं तथा सुन्दर हाथसे ब्राह्मणके मुखमें अमृत डाल दिया ।।३८।। जैसे सोता आधीरातको तिलमिलाकर उठता है उसी तरह ब्राह्मण उठ बैठा । विनम्र दंपतिने पार्वतीजीके चरण पकडे एवं आनन्दमें परिप्लुत होकर ।।३९।। भक्तिपूर्वक पार्वतीजीका पूजन किया, पार्वतीजी बोलीं कि, हे सुव्रते ! वर मांग, मैं तेरे पूजनसे प्रसन्न हूं ।।४०।। ब्राह्मणी बोली कि, हेरुद्राणि! आपकी कृपासे मुझे वांछित मिलगया है । मेरे हृदयमें सिर्फ इतना ही दुख है कि, मेरे कोई सन्तान नहीं है ।।४१।। पार्वतीजी बोलीं कि, मेरे जया नामके प्रसिद्ध व्रतको विधानके साथ कर । हे सुभगे ! वो व्रत तीनों लोकोंमे परम पवित्र है ।।४२।। जया पार्वतीको कहते हैं । हे चारुलोचने ! यह आषाढमें होता है भक्ति भावके साथ विना नमकके स्वाद हीन अन्नसे ।।४३।। यह दृढ व्रत करना चाहिये । पांच दिन वही खाना चाहिये। त्रयोदशीके दिन व्रतका प्रारंभ करके तृतीयाके दिन पूरा कर देना चाहिये ।।४४।। शुक्लपक्षमें व्रतका प्रारंभ करके कृष्णपक्षमें समाप्ति करनी चाहिये यावनाल (एक भोज्य विशेषसे) प्रयत्न पूर्वक पांच वर्ष व्रत करना चाहिये ।।४५।। पांच वर्षतक विना नामकके यवोंसे व्रत करे । बिना मीठके चावलोंसे पांच वर्ष व्रत करे।।४६।।पांच वर्ष मूगोंसे व्रतकरे । इन बीस वर्षोंको इसी तरह बितावे बीसवें वर्षमें व्रतका उद्यापन करे ।।४७।। भूषणोंके साथ स्त्रीपुरुषोंके वस्त्र दे और सुवासिनीके लिये भोजनभी दे, यह सब तृतीयाके दिन होना चाहिये ।।४८।। बीसके पहिले वर्षसे अपने वित्तके अनसार पांच पाँचपर परिधान और भोजन देना चाहिये ।।४९।। वह अनेक रसोंसे युक्त हो घी और खांड मिली हुई हों अपने सौभाग्यके बढानेके लिये ये किसी सधवाको देना चाहिये ।।५०।। प्रतिवर्ष अपनी शक्तिके अनुसार कुंकुम और कज्जल दे । रातमें जागरण करे तो अखण्ड फलकी देनेवाली होती है ।।५१।। बिना व्रतके स्त्री जन्म जन्म में विधवा होती है

है वह दुखी होकर सोचती रहती है वह सौभाग्यवाली नहीं होती ॥५२॥ पतिकी भक्ति और उसे संतोष देनेसे एवं अच्छे व्रतोंसे और दानोंसे अतुल सौभाग्यको पालेती है ॥५३॥ इस व्रतको वहां कहकर वहांकी वहांही अन्तर्धान होगई । पीछे वे दोनों दंपती आनन्दके साथ अपने घर आये ॥५४॥ पूर्व कहे हुए विधानके साथ उत्तम व्रत किया इस व्रतके प्रभावसे पुत्रसुख मिला ॥५५॥ दोनों दंपतियोंको सुख एवं भार्य्याको सौभाग्य मिला अनेक तरहके भोगोंको भोगकर शिवलोक चलेगये ॥५६॥ इसप्रकार जो इस व्रतको करती है, वह पतिसे कभी भी वियुक्त नहीं होती, अपनेका पतिका और माताका तीनों कुलोंका उद्धार करके शिवलोकमें पहुंच ॥५७॥ सानिध्य और सुख प्राप्तकर उसीमें प्रतिष्ठित होजाती है । इस कथाको विधिपूर्वक सुनकर भी सब पापोंसे छूट जाता है ॥५८॥ यह श्री भविष्योत्तर पुराणका कहा हुआ जयापार्वतीका व्रत पूरा हुआ ॥ यह तो गुर्जर देशमें आचारसे प्राप्त है । वही इसका मूल है ॥

गोत्रिरात्रव्रतम्

अथ भाद्रपदशुक्लत्रयोदश्यां गोत्रिरात्रव्रत हेमाद्रौ[1] भविष्योत्तरे–युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन बहूनि सुव्रतानि मे ॥ श्रुतानि बहुपुण्यानि कृतानि मधुसूदन ॥ १ ॥ सर्वपापहराणि स्युः सर्वकामप्रदानिच ॥ सांप्रतं श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२॥ किञ्चिद्योग्यं व्रतं ब्रूहि यदि तुष्टोसि माधव॥यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो नरो नारी प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयामि नृपश्रेष्ठ व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ यन्न कस्यचिदाख्यातं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ४ ॥ यान्यान् कामान्वाञ्छयति लभत्तांस्तांस्तथैव च ॥ तत्क्षणादेव मुच्यन्ते नरा नार्यश्च सर्वशः ॥ ५ ॥ प्रभोर्भगवतो[2] राजन् कामधेनोः प्रसादतः ॥ सौभाग्यं सन्तति लक्ष्मीं प्राप्नोति सुखमुत्तमम् ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि भगवन् व्रतस्यास्य विधिं शुभम् ॥ ब्रूहि मे देवदेवेश करोमि त्वत्प्रसादतः ॥ ७ ॥ के मन्त्रा केनमस्कारा देवतार्थं प्रकीर्तिताः ॥ किं दानं मन्त्रमर्घ्यं च कथयस्वसुरोत्तमा । ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ नारदेन पुरा राजन् यदुक्तं सगरादिषु ॥ स्मारितं तत्त्वया राजञ्छृणुष्वैकमना व्रतम् ॥ ९ ॥ मासि भाद्रपदे शुक्ले त्रयोदश्यां समारभेत् ॥ त्रयोदश्यां प्रभाते तु समुत्थाय शुचिर्भवेत् ॥ १० ॥ गृह्णीयान्नियमं पूर्वं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ आचम्योदकमादाय इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ११ ॥ गोत्रिरात्र व्रतस्यास्योपवासकरणे मम ॥ शरणं भव देवि त्वं नमस्ते धेनुरूपिणि ॥ १२ ॥ प्रसीदतु महादेवो लक्ष्मीनारायणः प्रभुः ॥ लक्ष्मीनारायणं देवं सौवर्णं वा स्वशक्तितः ॥ १३ ॥ पञ्चामृतेन गव्येन स्नापयेत्कमलापतिम् ॥ स्थापयेत्सर्वतोभद्रे मण्डलेऽष्टदलेऽपि वा ॥ १४ ॥ गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः स्तुतिगीतादिनर्तनैः ॥ नारिकेलार्घ्यदानेन प्रीणयेद्गां हरिं तथा ॥ १५ ॥ लक्ष्मीकान्त जगन्नाथ गोत्रिरात्र व्रतं मम ॥ परिपूर्णं कुरुष्वेदं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ आर्तिक्यं च ततकुर्याद्भक्त्या कृष्णस्य तुष्टिदम् ॥ नवकुम्भं जलभृतं हविष्यान्नेन पूरितम् ॥ १७ ॥

---

१ अत्राग्रे लिखितकथापेक्षया वहुतरं वैलक्षण्यं दृश्यते । २ लक्ष्मीनारायणस्य ।

कृत्वा दिनत्रयं पार्थ प्रीतये विनिवेदयेत्[1] ।। धेनुपूजां ततः कुर्याज्जलधारां प्रदक्षिणाम् ।। १८ ।। पुरा दत्त्वा तु मुकुटं कुण्डलं कुङ्कुमं तथा ।। अन्नाच्छादनगन्धादिदिव्यदिव्यिपुष्पैः स दीपकैः ।। १९ ।। अहोरात्रभवं किञ्चिद्घृतदीपं दिनत्रयम् ।। अर्घ्यदानं ततः कुर्यान्नारिकेलादिभिः फलैः ।। २० ।। अर्घ्यमन्त्रः— पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ ।। तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः ।। २१ ।। प्रदक्षिणीकृता येन धेनुर्मार्गानुसारिणी ।। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा ।। २२ ।। गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।। गावा मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।। २३ ।। आरार्तिकं सनैवेद्यं गीतवाद्यमहोत्सवैः । कुङ्कुमं कलशं सूत्रं धेन्वै दद्याद्विचक्षणः ।। २४ ।। एवं संपूज्य तां धेनुं सम्यक् भक्त्या दिनत्रयम् ।। यवांश्च यवसं चैव चारयेत्पाययेदपः ।। २५ ।। [2]गोमयादागतैर्धौतैः कुर्यात्तैरेव [3]पारणम् ।। धेन्वग्रे जागरं कुर्यात्सर्वपापप्रणाशनम् ।। २६ ।। त्रिविधान्मुच्यते पापात्प्रहरार्धेन पाण्डव ।। तस्योत्तरं कृतात्पापात्प्रहरार्धेन मुच्यते ।। २७ ।। चत्वारि वेणुपात्राणि पूरयित्वा प्रदापयेत् । नारिकेलाम्रकदलीद्राक्षाखर्जूरदाडिमैः ।। २८ ।। शुभैर्विरूढैः सिंदूरैर्वस्त्रकुङ्कुमकज्जलैः ।। प्रथमे बीजपूराढ्यं द्वितीये दाडिमं शुभम् ।। २९ ।। तृतीये नारिकेलं च दद्यादर्घ्यं दिनत्रयम् ।। करकास्तु त्रयो देया हविष्यान्नेन पूरिताः ।। ३० ।। लक्ष्मीनारायणं देवं ब्राह्मणं भार्यया सह।।पूजयेत्कुसुमैर्वस्त्रैर्हेम सूत्रैर्युधिष्ठिर।।३१।।दंपत्योर्भोजनं देयं धेनुभक्त्या दिनत्रयम् ।। पारणे गौरिणीं[4] विप्रानिष्टान्बधूंश्च भोजयेत् ।। ३२ ।। गुरुरूपाय तां धेनुं द्विजाय प्रतिपादयेत् ।। सुकुङ्कुमां सवत्सां च घण्टामुकुटभूषिताम् ।। ३३ ।। गीतवादित्रनृत्यादिशान्तिपाठपुरःसरम् ।। यायाद्विप्रगृहं या वत्प्राप्तये तत्फलस्य वै ।। ३४ ।। एवं या कुरुते पार्थ गोत्रिरात्रं व्रतोत्तमम् ।। दुर्लभं तु सदा स्त्रीणां नराणां नृपसत्तम ।। ३५ ।। अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानिच कृत्वा यत्फलमाप्नोति गोत्रिरात्रव्रते कृते ।। ३६ ।। प्रभासे च कुरुक्षेत्रे चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।। हेमभारशतं दत्त्वा फलं तत्प्राप्नुयान्नृप ।। ३७ ।। धेनुदानं च यः कुर्यात्सवस्त्रं सर्वकामदम् ।। सागराम्बरसंयुक्ता दत्ता तेन वसुन्धरा ।। ३८ ।। एवं यः कुरुते पार्थ त्रिरात्रव्रतमुत्तमम् ।। भवान्तरकृतात्पापात्त्रिविधान्मुच्यते नरः ।। ३९ ।। स्त्री कथञ्चिन्न पश्येत भर्तृदुःखं नराधिप ।। पुत्रपौत्रसुखं तस्य भविष्यति न संशयः ।। ४० ।। जन्मान्तरेऽप्यसौ नारी वैधव्यं नैव पश्यति ।। अपुत्रा लभते पुत्रान् धनहीना धनं लभेत् ।। ४१ ।। कायेन मनसा चैव कर्मणा यदुपार्जितम् ।। तत्पापं विलयं याति गोत्रिरात्रव्रतेन वै ।। ४२ ।। इह भोगान्सुविपुलान्भुक्त्वायुः

१ अर्थात् ब्राह्मणाय । २ धान्यैरिति तु हेमाद्रिपाठः ३ यवैः । ४ सुवासिनीम् ।

पूर्णमेव च ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण गोलोके च महीयते ।। ४३ ।। कीर्तिदं धनदं चैव चैव सौभाग्यकरणं व्रतम् । आयुरारोग्यकरणं सर्वपापप्रणाशनम् ।। ४४ ।। एतस्मात्कारणाद्राजन् सभार्यस्त्वं कुरु व्रतम् ।। राज्यं वा यदि सत्कीर्ति नित्यं प्राप्तुमिहेच्छसि ।। ४५ ।। तच्छ्रुत्वा पाण्डवश्रेष्ठो व्रतं चक्रे समाहितः ।। व्रतस्यास्य प्रभावेण लब्धं राज्यमकण्टकम् ।। ४६ ।। इति हेमाद्रौ भविष्ये गोत्रिरात्र व्रतम् ।। इदं च स्कान्द आश्विनशुक्लत्रयोदश्यामुक्तम् ।।

गोत्रिरात्रव्रतम्—भाद्रपद शुक्लात्रयोदशीके दिन होता है । इसे हेमाद्रिमें भविष्य पुराणसे कहा है । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवान् ! मधुसूदन ! आपकी कृपासे बहुतसे अच्छे व्रत मैंने सुने हैं बहुतसे पुण्यशाली व्रतकिये भी हैं ।।१।। ये भलेही सब कामोंको देनेवाले तथा सब पापोंके हरनेवालेभी हों पर अब मैं सबव्रतोंमें जो श्रेष्ठव्रत हो उसे सुनना चाहता हूं ।।२।। हे माधव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो कोई योग्य व्रत कह दीजिये । जिसे करके स्त्री हो वा पुरुष हो, सब पापोंसे छूट जाय ।।३।। श्रीकृष्ण बोले कि, हे नृप श्रेष्ठ ! सब व्रतोंमेंसे श्रेष्ठ व्रतको कहता हूं । आजतक किसीसे भी नहीं कहागया उसे आप सुनें ।।४।। जिन जिन कामोंको चाहता है उन उन कामोंको उसी तरह पायेगा उसी समय स्त्री हो वा पुरुष हो सब पापोंसे छूट जाते हैं ।।५।। हे राजन् ! उन्हें कामोंको पूरा करनेवाले लक्ष्मीनारायण भगवान्की प्रसन्नतासे सौभाग्य उत्तम सुख, सन्तति और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ।।६।। युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो इस व्रतकी पवित्र विधि कहिये । हे देवदेवेश! मैंआपकी कृपासे इस व्रतको करूंगा ।।७।। उसके मन्त्र कौनसे हैं? तथा देवताके लिये कौनसी नमस्कार कहीगयी है? दान मन्त्र और अर्घ्य क्या है? हे सुरोत्तम ! कहिये ।।८।। श्रीकृष्णजी बोले कि, नारदजीने जो सगर आदिकोंको कहा था । आपने उसकी याद दिला दी । हे राजन् ! सावधान होकर उस व्रतको सुनो ।।९।। भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीके दिन इस व्रतका प्रारम्भ करे, उस दिन प्रातःकाल उठकर शुचि हो ।।१०।। दांतुन करके नियम ग्रहण करे, आचमन कर पानी लेकर इस मन्त्रको बोले ।।११।। कि इस गोत्रिरात्रव्रतको मेरे उपवास करनेमें मेरी शरण हो, हे धेनुरूपिणि देवि ! तेरे लिए नमस्कार है ।।१२।। महादेव लक्ष्मीनारायण प्रभु प्रसन्न हों, अपनी शक्तिके अनुसार लक्ष्मीनारायण सोनेके होने चाहिए।।१३।। पञ्चगव्यऔर पञ्चामतसे कमलापतिको स्नानकाराना चाहिए । सर्सतोभद्रमंडल वा अष्टबल कमलपर स्थापितकरे ।।१४।। गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, स्तुति, गीतआदिक नांच और नारिकेलके अर्घ्यदानसे गऊ और हरिको प्रसन्न करे ।।१५।। हे लक्ष्मीकान्त ! हे जगन्नाथ ! मेरे गोत्रिरात्रव्रतको परिपूर्ण करिये मेरे अर्घ्यको ग्रहण करिये तेरे लिए नमस्कार है, इसके पीछे भक्तिपूर्वक कृष्णकीतुष्टिकारक आरती करनी चाहिए, हविष्य अन्नसे भरे भये पानी भरे नये घडे ।।१६।। ।।१७।। हे पार्थ ! तीन दिन करके भगवान्की प्रसन्नताके लिए निवेदन कर दे, इसके बाद धेनुपूजा करे, जलधारा और प्रदक्षिणा करे ।।१८।। पहिले, मुकुट, कुंडल, कुंकुम, अन्न, आंच्छादन, गन्धादिक, दिव्य पुष्प, दीपक इन्हें देकर पीछे से दोनों कार्य होने चाहियें ।।१९।। तीन दिनतक बराबर किंचित् घीका दीपक जलते रहना चाहिए । नारियल आदिक फलोंसे अर्घ्यदान करना चाहिए ।।२०।। अर्घ्यदानमन्त्र—समुद्रके कथन करते समय पांच गायें उत्पन्न हुंई थीं, उनमें जो नन्दा गाय है, उसके लिए बारंबार नमस्कार है ।।२१।। मार्गानुसारिणी या मार्गपर चलती हुई धेनुको जिसने प्रदक्षिणा की है, उसने सातों दीपोंवाली भूमिकी प्रदक्षिणा करली ।।२२।। गऊ मेरे अगाडी तथा गऊएं मेरे पिछाडी हों, मेरे हृदयमें भी गऊएं रहें मैं गऊओंके बीचमें रहता हूं ।।२३।। बुद्धिमान्को चाहिए कि, गाने बजानेके बडे भारी उत्सवके साथ नैवेद्यपूर्वक आरती करे । धेनुके लिए कुंकुम कलश और सूत्र दे ।।२४।। इस प्रकार तीन दिन भली भांति धेनुको पूजकर यव और यवसको चरावे तथा पानी पिलावे ।।२५।। गोबरसे धोकर निकाले गये उन्हीं यवोंसे पारणा करे । धेनुके मासमें जागरण करे । इससे सब पाप नष्ट होजाते हैं ।।२६।। हे पाण्डव ! आधे पहर भी जागरण करके

तीनों पापोंसे मुक्त होजाता है । उससे अगाडी आधे पहरके जागरणमें सब पापोंसे छूट जाता है ।।२७। चार वांसके पात्र भरकर दे, नारियल, आम, कदली, द्राक्षा, खजूर, अनार ।।२८।। अच्छे, विरूढ, सिन्दूर, वस्त्र, कुंकुम, कज्जल इनसे भरे । पहिले दिन बीजपूर दूसरेदिन अच्छा दाडिम ।।२९।। और तीसरे दिन नारियलका अर्घ्य दे । हविष्यान्नसे भरे हुए तीन करवे देने चाहिए ।।३०।। हे युधिष्ठिर ! देव लक्ष्मीनारायणको अथवा सपत्नीक ब्राह्मणकोही लक्ष्मीनारायण मानकर फूल वस्त्र और सोनेके सूत्रोंसे पूजे ।।३१।। गोकी भक्तिसे दम्पतियोंको तीन दिन भोजन दे । पारणके दिन गौ, सुवासिनी ब्राह्मण और बन्धुगण सबको भोजन करावे ।।३२।। गुरु रूपी ब्राह्मणके लिए उस धेनुको देदे कुंकुम लगावे घंटा और मुकुटसे विभूषित करे, वह गो वछडा समेत होनी चाहिए ।।३३।। गीत, बाजे, नृत्य और शान्तिपाठ भी होना चाहिए । जबतक कि, वह ब्राह्मण घर जाय । इससे उसके फलकी प्राप्ति होती है ।।३४।। हे पार्थ ! जो कि, इस प्रकार उत्तम इस गोत्रिरात्रव्रतको करता है उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! यह स्त्री और पुरुषोंके पुरुषोंके लिए सदा दुर्लभ है ।।३५।। सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय करके जो फल पाता है वही गोत्रिरात्रव्रत करके पाजाता है ।।३६।। हे राजन् ! प्रभास क्षेत्र और कुरु क्षेत्रमें सूर्यके ग्रहणके समय सोनेके सौ भार देकर जो फल होता है, वह इस व्रतके करनेसे होता है ।।३७।। सब कामनाओंके देनेवाले सवस्त्र धेनुदानको जिसने किया है, उसने समुद्र सहित सारी भूमिका दान करदिया ।।३८।। हे पार्थ ! जो तीन राततक इस उत्तम व्रतको करता है वह दूसरे जन्मके किए हुये तीनों तरहके पापोंसे मुक्त होजाता है ।।३९।। हे नराधिप ! स्त्री कभीभी पतिके दुखको नहीं देखती, उसे बेटा नातियोंका सुख होता है । इसमें संशय नहीं है ।।४०।। वह स्त्री दूसरे जन्ममें भी वैधव्यको नहीं देखती, निपुत्रीको पुत्र तथा निधनको धन मिलता है ।।४१।। शरीर और मनके कर्मोंसे जो पाप इकट्ठे किए थे वे सब गोत्रिरात्रव्रतसे अवश्यही नष्ट होजाते हैं ।।४२।। यहां अनेक तरहके भोग और पूरी आयुको भोगकर इसी व्रतके प्रभावसे गोलोकमें चला जाता है ।।४३।। यह कीर्ति और धनका देनेवाला तथा सौभाग्यका कारण है । आयु आरोग्यका करनेवाला तथा सब पापोंको मिटानेवाला है ।।४४।। हे राजन् ! इस कारण आप स्त्रीसहित व्रत करिये । जो तुम्हारी यह इच्छा हो कि,मुझे राज्य और कीर्ति सदाके लिए मिल जायें ।।४५।। यह सुनकर उसश्रेष्ठ पाण्डवने एकाग्रचित्तसे व्रत किया । इस व्रतके प्रभाससे निष्कंटक राज्य मिलगया ।।४६।। यह भविष्यपुराणसे हेमाद्रिका संगृहीत गोत्रि रात्रिव्रत है । यही स्कन्द पुराणमें आश्विन शुक्ला त्रयोदशीमें कहा है ।।

अथ गुर्जराचारप्राप्तं गोत्रिरात्रव्रतम् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। येन लक्ष्मीश्च सकला नराणां भवने भवेत्।।सन्ततिर्वर्द्धते स्त्रीणांत द्व्रतं वद मे प्रभो ।।१।।श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। येन वै क्रियमाणेन सर्व पापक्षयो भवेत् ।। २।। गोत्रिरात्रमिति ख्यातं नृस्त्रीणां फलदायकम् ।। वाञ्छितं जायते तेषां येषां चेतसि वर्तते ।। ३ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कीदृशं तद्व्रतं देव विधानं तत्र कीदृशम् ।। कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्काले तु केशव ।। ४ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। पुरा कृतयुगे पार्थ मनुर्नाम्ना सुबुद्धिमान् ।। वैवस्वतकुले जातो बभूव पृथिवीपतिः ।। ५ ।। तदन्वये दिलीपश्च प्रसूतः [1]पतिरुत्तमः।। नृपाः सर्वे वशं तस्य संजाताः करदायकाः ।। ६ ।। नित्यं धर्मपरो राजा पूजनीयो मनीषिभिः ।। नाजायत सुसन्तानं तस्य नीतिमतः सदा ।। ७ ।। वाञ्छयंस्तनयं राजा दत्त्वा मन्त्रिषु कोस-

१ राजा ।

लान् ।। पुत्रार्थं च सपत्नीको वसिष्ठस्याश्रमं ययौ ।। ८ ।। पश्यन् हि पथि कल्याणं सारसैः कृततोरणम् ।। सरोऽरण्यान्यनेकानि मार्गेषु फलितानि वै ।। ९ ।। राजा महिष्या सहितो रथारूढः सवाहनः ।। संध्यायां योगिनस्तस्य महर्षेः प्रापदाश्रमम् ।। १० ।। सारथिं च समादिश्य वाहान्विश्रामयेत्यथ ।। रथादुत्तीर्य च मुनेराश्रमं भार्यया ययौ ।। ११ ।। स्थितं कर्मणि संध्यायां दिलीपो ददृशे गुरुम् ।। अरुन्धत्या सहासीनं सावित्र्येव पितामहम् ।। १२ ।। तौ प्रणम्य गुरुं तत्र मुनिपत्नीं विशेषतः।। स्थिते तस्य समीपे तु प्रीतावानन्द पूरितौ ।। १३ ।। दिलीपं च तदात्यर्थं धर्मज्ञं लोकपालकम् ।। पप्रच्छ कुशलं राज्ये वसुधायाश्च वै मुनिः ।। १४ ।। दिलीप उवाच ।। कुशलं मे सदा देव स्थिते त्वयि गुरौ सति ।। सुराणां च मनुष्याणां विपत्तौ रक्षिता भवान् ।। १५ ।। [1]विशयो मम कान्तायामपत्यं किं न जायते ।। किं नु कार्यं धरित्र्या मे निराशाः पितरो मम ।। १६ ।। तथा कुरु मुनिश्रेष्ठ पुत्रो भवति मे यथा ।। राज्ञां विपदि प्राप्तायां त्वदायत्तं सुखं, मुने ।। १७ ।। यदेति कथितं राज्ञा मुनये वै युधिष्ठिर ।। तदा मुनिः क्षणं तस्थौ ध्यानस्तिमितलोचनः ।। १८ ।। कारणं संतते राज्ञो मुनिर्दृष्ट्वा समाधिना ।। पश्चान्न्यवेदयत्तस्मै दिलीपाय प्रयत्नतः ।। १९ ।। वसिष्ठ उवाच ।। पूर्वं वृत्रारिमाराध्य वसुधां गच्छता त्वया ।। [2]कल्पमूले च तिष्ठन्ती कामधेनुर्न वन्दिता ।। २० ।। जातस्तस्यास्तदा कोपो दत्तस्ते शाप ईदृशः ।। न वन्दिताहं भवता साम्प्रतं [3]यदि भूमिप ।। २१ ।। भविष्यति न ते पुत्रस्तच्छापो न श्रुतस्त्वया ।। न पूजयेद्यः पूज्यानां वन्द्यानां यो न वन्दते ।। २२।। न जायते तु कल्याणं पातकैरेव लिप्यते ।। दिलीप उवाच ।। कृतो मयापराधोऽयं करोमि किमहं मुने ।।२३।। सन्ततिर्जायते येन तद्व्रतं वद मे प्रभो।।वसिष्ठ उवाच।।अन्यैर्नानाविधैः पुण्यैस्तपोभिर्नृप दुःसहैः।।२४।।न जायेत तु सन्तानं गोत्रिरात्रव्रतं विना।।सपत्नीकः सवत्सां मे धेनुं राजन् फलप्रदाम्।।२५।। आराधयैकाग्रमना गोत्रिरात्रव्रतं कुरु ।। यावदित्थं दिलीपस्य मुनिना कथितं व्रतम्। तावच्च नन्दिनी धेनुर्वनादाववृते शुभा ।। २६ ।। कुम्भोध्नी तिलकं सितं सुखफला दुग्धं शुचिर्बिभ्रती देवानां वरदा सुधोदधिभवा कामप्रदा पाटला ।। गीर्वाणाः सकलाः श्रुतौ वपुषि वै तिष्ठन्ति यस्याश्च ते संपूर्णाः शशिनः कलाश्च दधती श्रेयस्करी पूर्णिमा ।। २७ ।। भाद्रे मासि समायाते शुक्लपक्षे तु पार्थिव ।। प्रातः कुर्यात्त्रयोदश्यां नियमं तु सुभक्तितः ।। २८ ।। समुपोष्यगोत्रिरात्रं भक्त्या कृत्वा व्रतं तव ।। भोक्ष्येऽहनि चतुर्थेऽहं सौभाग्यं देहि गौर्मम ।। २९ ।। इति नियममंत्रः ।। ततः समर्चयेद्गां च मण्डले गन्धदीपकैः ।। तगरैः शतपत्रैश्च चम्पकाद्यैः शुभाननाम् ।।३०।। फलैर्नानाविधैः पुष्पैर्धूपैरपि स्वशक्तितः ।। ३१ ।। हविष्यान्नं

१ संदेहः । २ कल्पवृक्षमूले । ३ यतः ।

च नैवेद्यं कारयेद्य वसंयुतम् ।। पूजयित्वा प्रयत्नेन दद्यादर्घ्यं विधानतः ।। ३२ ।। गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।। ३३ ।। पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ ।। तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमोनमः ।। ३४ ।। इति पूजामंत्रः ।। सनारिकेलकूष्माण्ड-मातुलिङ्गं सदाडिमम् ।। गोत्रिरात्रव्रतार्थाय सफलं च करे धृतम् ।। सर्व कामप्रदे देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ३५ ।। इत्यर्घ्यमन्त्रः ।। वस्त्रयुग्मं विधानेन दद्याद्वासांसि दक्षिणाम् ।। सपत्नीकाय गुरवे स्वशक्त्या च व्रती नरः ।। ३६ ।। दिनानि व्रतिभिस्त्रीणि श्रोतव्या च कथा शुभा ।। जितक्रोधैस्ततः सर्वैः स्त्रीभिर्वा पुरुषैरपि ।। ३७ ।। एवं सम्पूज्य धेनुं वै लक्ष्मीयुक्तं तु केशवम् ।। चतुर्थे दिवसे प्राप्ते ततो धेनुं विसर्जयेत् ।। ३८ ।। ततो धेनुं सवत्सां तु मन्त्रेणानेन पार्थिव ।। दद्याद्विप्राय विदुषे शास्त्रज्ञाय च धर्मिणे ।। ३९ ।। परिपूर्णं व्रतं कृत्वा दत्त्वा कामानभीप्सितान् ।। विप्राय त्वं मया दत्ता मातर्गच्छ यथासुखम् ।। ४० ।। इति दमनमन्त्रः ।। सर्वदानानि देयानि स्वशक्त्या व्रतिभिर्नरैः ।। विविधेभ्यो द्विजेभ्यश्च दक्षिणां च स्वशक्तितः ।। ४१ ।। वित्तशाठ्यमकुर्वाणो दापयेच्च ततो नरः ।। गृहं याव द्व्रजेत्पृष्ठे गीतनृत्यपुरःसरम् ।। ४२ ।। गोपालानां च पाथेयं दद्याद्वै धेनुतुष्टये यवा ये चारिता नित्यं फ़लैर्नानाविधैः सह ।। ४३ ।। मुक्ता वै कामधेन्वा च सह वै गोमयेन तु ।। पारणं तैः प्रकर्तव्यं सर्वेरिष्टजनैः सह ।। ४४ ।। सपत्नीकाय गुरवे दद्याच्चान्नं सदक्षिणम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। भाद्रे मासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां नराधिप ।। ४५ ।। एवमाराधयन्धेनुं दिलीपो भक्तितत्परः ।। यथोक्तेन विधानेन प्रभाते सुरभिं पुनः ।। ४६ ।। सुपूजितां वनं गन्तुं मुमोच त्वरितं शुचिः ।। आसायं चारयित्वा तामाययौ पुनराश्रमे ।।४७।। सुदक्षिणाकृतार्चां तु विधिद्बलिपूर्वकम्।। मुमोचतां चारयितुं द्वितीयदिवसे पुनः ।। ४८ ।। अनुयातस्ततो धेनुं तृतीये दिवसे पुनः ।। जगतीं गोरूपधरामिवोदधिपयोधराम् ।। ४९ ।। लताभिश्च ततो राजा पुष्पैर्वर्धापितस्तदा ।। जयशब्दं प्रवदतः पक्षिणः सुन्दराननान् ।। ५० ।। दृष्ट्वा च वनदेवीभिर्गीयमानं तथा यशः ।। शुश्राव च ततोराजा भृशं मनसि हर्षितः ।। ५१ ।। चिरं शुभे वने तस्मिन्व्यक्तं भ्रमति भूमिपे ।। धेनुश्च शुशुभे राज्ञा राजा धेन्वा बभौ पुनः ।। ५२ ।। तद्दिने च मुनेर्धेनू राज्ञो भावं च पश्यती ।। विवेश गह्वरं तत्र पार्वत्याश्च पितुनृप ।। ५३ ।। कृत्रिमश्च कृतः सिंहो मुनिधेन्वा भयङ्करः ।। सिंहश्चददृशे राज्ञाधेनुं कर्षन् बलेन वै ।। ५४ ।। दृष्ट्वा राजा च तां धेनुं क्रन्दमानां स्वरोल्बणैः ।। ततो धनुर्धरः सोऽपि तां मोक्तुमुपचक्रमे ।। ५५ ।। वध्यसिंहवधार्थाय राजा बाणं करे दधौ ।। उत्पन्नशोकस्तु तदा कोपयुक्तो बभूव सः ।। ५६ ।।

धनुष्यारोपयन्बाणं चित्रन्यस्त इव स्थितः ।। हस्तस्य निश्चलत्वेन क्रोध स्तस्य व्यवर्धत ।। ५७ ।। विस्मयं प्रापयन् सिंहो राजानं वै युधिष्ठिर ।। मानवस्य गिरा प्राह दुष्टत्वेन गवि स्थितः ।। ५८ ।। सिंह उवाच ।। बाणः प्रयुक्तो भवता वृथा मयि भविष्यति ।। ततः कष्टेन महता श्रमं मा कुरु सर्वथा ।। ५९ ।। न[1] मारुतस्य वेगोऽपि पर्वतोन्मूलने क्षमः ।। ज्ञायते न महाराज केवलानोकहे किमु ।। ६० ।। महेश्वरस्य मां राजन्नाम्ना[2] कुम्भोदरेण तु ।। सेवकानां च सर्वेषां । मुख्यं जानीहि भूमिप ।। ६१ ।। विलोकयेमं पुरतो देवदारुमहाद्रुमम् ।। सिक्तः स्नेहेन भूपाल शिवया च सुतः कृतः ।। ६२ ।। कदाचिदागतो हस्ती भग्नेस्तेन महाद्रुमः ।। तस्य संरक्षणार्थाय नियुक्तोऽहं शिवेन तु ।। ६३ ।। कृत्वा शिवेन सिंहत्वमुक्तोऽहं[3] जीव-भोजने ।। तर्हीयं खलु गौ राजन्भक्ष्या मे समुपागता ।। ६४ ।। त्यक्त्वा लज्जां निवर्तस्व भक्तोऽस्ति गुरवे भवान् ।। आपत्काल इदं वृत्तं भवेच्छस्त्रभृतो यदि ।। ६५ ।। दोषो न जायते तस्य यशो राजन्न गच्छति ।। श्रुत्वा गिरं च सिंहस्य राजा चैनमुवाच ह ।। ६६ ।। ईश्वरेण समो वेत्ति गुरुः सिंह भवानपि ।। समीपाच्च कथं याति मम धेनुर्गुरोरियम् ।। ६७ ।। प्रसीदःभक्ष मे देहं धेनुं मुञ्च सवत्सकाम् ।। भविष्यति जनन्याश्च वत्सो मार्गं विलोकयन् ।। ६८ ।। सिंहेन तु दिलीपाय कथितं वै तदा पुनः ।। स्तोकेन हेतुना पार्थ कान्तं छत्रं च सत्कृतम् ।। ६९ ।। सर्वस्य जगतो राज्यं वपुरेतन्नवं वयः ।। त्यक्तुमिच्छसि वा राजन् मूर्खस्त्वमीदृशः कथम् ।। ७० ।। ददासि च कथं प्राणान्प्रजापालनतत्परः ।। जीवन्न किं महाराज मुनेः कोपमपास्यसि ।। ७१ ।। ततो रक्षय देहं स्वं राज्यं च कुरु भूमिप ।। यावच्चोवाच सिंहोऽसौ नगेनानुगतां[4] गिरम् ।। ७२ ।। दिलीपोऽपि तदा पार्थ वाणीमेतामुवाच ह ।। धेन्वा निरीक्षितश्चैव भूमिपो दीननेत्रया ।। ७३ ।। किं नो राज्येन मे सिंह विषये जीवनेन वा ।। यशोगतं च मे सर्वं यदि धेनुं ग्रसिष्यसि ।। ७४ ।। एवमुक्त्वा ततश्चाग्रे सिंहस्य पतितस्तदा ।। यावदित्थं च पतितो मांसस्य पिण्डवन्नृपः ।। ७५ ।। ताव-त्सिंहो रवं कृत्वा धावितश्च भयङ्करः ।। दृष्ट्वा सिंहनिपातं च चञ्चलो न बभूव ह ।। ७६ ।। तावत्तस्योपरिष्टाच्च पुष्पवृष्टिः पपात वै ।। उत्तिष्ठ वत्स भूपाल वाचमित्थं निशम्य सः ।। ७७ ।। उत्थितस्तु पुनश्चाग्रे गां ददर्श न वै हरिम् ।। सेवया च गुरोः पार्थ भक्त्या चाप विशेषतः ।। ७८ ।। प्रीता कामदुघो-वाच वरं वरय सुव्रत ।। योजयित्वा करौ राज्ञा ययाते तनयस्ततः ।। ७९ ।। वंशकर्ता महाप्राज्ञः शिवभक्तो निरन्तरम् ।। गौरुवाच ।। गोत्रिरात्रव्रतं राजन्यद्भक्त्या

१ हे महाराज पार्वतोन्मूलने क्षमोऽपि मारुतस्य वेगः केवलानोकहे न क्षम इति त्वया न ज्ञायते किमि-त्यन्वयः । २ प्रसिद्धमिति शेषः । ३ उक्त आज्ञप्तः । ४प्रतिध्वनियताम् ।

भवता कृतम् ।। ८० ।। भविष्यति च ते दक्षः पुत्रः पौरुषविग्रहः ।। अन्येऽपि ये करिष्यन्ति गोत्रिरात्रव्रतं मम ।। ८१ ।। तेषां कामं च दास्यामि मनसीष्टं न संशयः ।। इत्युक्त्वा चलिता धेनुर्वसिष्ठस्याश्रमं प्रति ।। ८२ ।। बलिं संगृह्य विधिवद्ययावाशु सुदक्षिणा ।। पूजां कृत्वा विधानेन राजपत्नी विशेषतः ।। ८३ ।। प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा चलिता वै युधिष्ठिर ।। आश्रमं च ततो गत्वा दिलीपोऽसौ पुनस्तदा ।। ।। ८४ ।। गुरोरग्रे च तत्सर्वं वृत्तान्तमवदत्पुनः ।। नन्दितौ च तदा पार्थ दम्पती तौ सुकोमलौ ।। ८५ ।। पारणं च ततः कृत्वा प्रस्थितौ नगरं प्रति ।। हुताशं च नमस्कृत्य होतारं गां तथैव च ।। ८६ ।। आगतश्च ततो राजा अयोध्यानगरं पुनः ।। राज्ञा तेन कृशाङ्गेनराज्यमारोपितं भुजे ।। ८७ ।। दिनैः कतिपयैरेव गोत्रिरात्रप्रभावतः ।। राज्यं च कुर्वतस्तस्य सुषुवे महिषी सुतम् ।। ८८ ।। प्रभाते सुमुहूर्ते च सुभगं रघुसंज्ञकम् ।। रम्यजातं तदा सर्वं सञ्जाता निर्मला दिशाः ।। ।। ८९ ।। राजा ददौ ब्राह्मणेभ्यो गाश्चैव वस्त्रसंयुताः ।। मृदङ्गस्य स्वनैर्दिव्यै रम्यं जातं पुरं महत् ।। ९० ।। प्रजाः सर्वास्तदा पार्थ वदन्ति स्म पुनः पुनः ।। गोत्रिरात्रप्रभावाच्च राज्ञः पुत्रो बभूव ह ।। ९१ ।। पुरन्दरस्य जेता च महाधर्मपरायणः ।। दिशां जेता च यज्ञस्य कर्ता सोऽपि युधिष्ठिर ।। ९२ ।। तदाप्रभृति लोकेस्मिँल्लोका कुर्वन्ति तद्व्रतम् ।। देवैः सर्वैः कृतं तत्तत्सर्वकामार्थसिद्धये ।। ९३ ।। सर्वाभिर्देवपत्नीभिः कृतं च व्रतमुत्तमम् ।। गोत्रिरात्रव्रतं पुण्यं विधानेन फलप्रदम् ।। ९४ ।। कुरुस्व त्वं महाराज भक्त्या चापि युधिष्ठिर ।। भाद्रपदे सवत्सां तु भक्त्या त्वाराधयस्व गाम् ।। ९५ ।। एवं यः कुरुते भक्त्या गोत्रिरात्रव्रतं पुनः ।। सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि सुखं चैव प्रवर्द्धते ।। ९६ ।। कर्तव्यं पुत्रकामेन गोत्रिरात्रव्रतं शुभम् ।। तपोभिर्दुष्करैः किञ्चिद्यज्ञैस्तीर्थैर्गयादिभिः ।। न भवेच्च फलं तादृग्यादृग्व्रतविधानतः ।। ९७ ।। कुर्वन्ति ये व्रतमिदं जगति प्रसिद्धं पापापहं सकलचिन्तितकामदं च ।। आरुह्य चैव तु विमानमनुत्तमं ते स्वर्गं प्रयान्ति यमतो हि भयं विहाय ।। ।। ९८ ।। इति गोत्रिरात्रव्रतम् ।। अथोद्यापानम् —युधिष्ठिर उवाच ।। कथयस्व महापुण्यं गोत्रिरात्रव्रतस्य वै ।। उद्यापनविधिं कृष्णं येन चीर्णेन तत्फलम् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। वर्षे चतुर्थे संप्राप्ते गोत्रिरात्रव्रतस्य वै ।। उद्यापनविधिं वक्ष्ये सर्वेषां व्रतसिद्धये ।। २ ।। तृतीये दिवसे स्नायान्मध्याह्ने विधिपूर्वकम् ।। देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य शुद्धे च स्वगृहे व्रती ।। ३ ।। रात्रौ च सर्वतोभद्रं गौरीतिलकमेव च ।। पूरयेत्पञ्चभिर्वर्णैः शोभमानं भवेद्यथा ।। ४ ।। ताम्रस्य कलशं कुर्यात्पूर्णपात्रसमन्वितम् ।। माषेण च सुवर्णेन लक्ष्मीनारायणं प्रभुम् ।। ५ ।। नूतनं वस्त्रयुग्मं तु सूक्ष्मं तत्र प्रकल्पयेत् ।। वंशपात्राणि कुर्वीत सौभाग्यद्रव्यसंयुतैः ।। ६ ।।

विरूढवस्त्रपक्वान्नैर्नारिकेलादिभिः [1]फलैः ।। विलेपनैश्च पुष्पैश्च धूपैर्दीपैस्तथोत्तमैः ।। पञ्चामृतैश्च नैवेद्यैः पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।। ७ ।। लक्ष्मीनारायणं देवं गां सवत्सां विशेषतः ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवादित्रनिःस्वनैः ।। ८ ।। ततः प्रभातसमये होमं कुर्याच्च [2]वैष्णवैः ।।आचार्यं वरयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगम् ।। ।। ९।। तदाज्ञया च कर्तव्यं साधुकर्म प्रयत्नतः ।। तिस्रो गावः प्रदातव्या एका वापि सवत्सका ।। १० ।। बहुदोग्ध्री सुशीला च [3]तरुणी च सुशोभना ।। दम्पती पूजयेच्चैव वस्त्रैराभरणैः शुभैः ।। ११ ।। शय्यां सोपस्करां दद्यात्पानपात्रं कमण्डलुम् ।। चामरं घृतपात्रं च तिलपात्रं सदक्षिणम् ।। १२ ।। पात्राणि च सुवर्णानि भोज्या गव्येन वै द्विजाः ।। एवं धेनुं च विप्राय दत्त्वा च पृष्ठतो व्रजेत् ।। १३ ।। पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।। अथान्यानि च दानानि दद्याद्विप्रेभ्य एव च ।। ।। १४ ।। भूयसीं दक्षिणां दद्याद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।। गोपालेभ्यः प्रदातव्यं शङ्कुल्यादि च कम्बलम् ।। ११५ ।। सर्वं क्षमापयित्वा तु पारणं च ततश्चरेत् ।। अनाथैर्व्याधियुक्तैश्च सीदद्भिश्च कुटुम्बकैः ।। १६ ।। गवा भक्षितमन्नं यद्दुग्धेन परिपाचितम् ।। तेनान्नेन प्रकर्तव्यं देहस्य परिपालनम् ।। १७ ।। शक्त्यभावे द्विजानुज्ञां गृह्णीयुर्व्रतिनः सदा ।। तया तत्पूर्णतामेति नान्यथापि कदाचन ।। १८ ।। एवमुद्यापनं कार्यं व्रतस्य फलमिच्छता ।। नारी वा पुरुषो वापि पुत्रवान् जायते ध्रुवम् ।। १९ ।। इहलोके सुखं भुक्त्वा अन्ते गोलोकमाप्नुयात् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। एतस्ते कथितं राजन्व्रतस्योद्यापनं शुभम् ।। २० ।। श्रोष्यन्ति ये पठिष्यन्ति तेषां सर्वे मनोरथाः ।। आशु सिद्धयन्त्यसन्देहं तेषां लोकाश्च शाश्वताः ।। २१ ।। इति श्रीभविष्य पुराणे गोत्रिरात्रव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

अब गुजरातियोंके आचारसे प्राप्त गोत्रिरात्रव्रत कहते हैं—युधिष्ठिरजी बोले कि, हे प्रभो ! जिसके कियेसे मनुष्योंके घरमें सदा लक्ष्मी रहे तथा स्त्रियोंके सन्तति बढ़े उस व्रतको मुझे कहिये ।।१।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! सुन, मैं सब व्रतोंसे श्रेष्ठ व्रतको कहता हूं । जिसके करनेमात्रसे सब पापोंका नाश होजायगा ।।२।। उसे गोत्रिरात्र कहते हैं । स्त्री पुरुष सबको ही फल देनेवाला है । जिनके वह चित्तमें रहता है उसके मन चाहे सब काम पूरे होजाते हैं ।।३।। युधिष्ठिरजी बोले कि, वह व्रत कैसा है उसका विधान क्या है, हे केशव ! किस समय कैसे उत्पन्न हुआ ? ।।४।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे पार्थ ! पहिले कृतयुगमें सूर्य्यवंशी परमबुद्धिमान् मनु नामका सुयोग्य राजा हुआ।।५।।उसके वंश में एक दिलीप राजा हुए, जिसको सब राजा कर दिया करते थे तथा वशमें थे ।।६।। बुद्धिमानोंका पूज्य वह राजा सदा धर्ममेंही रत रहा करता था पर उस नीतिवाले राजाके कोई सन्तान पैदा नहीं हुई थी ।।७।। पुत्रकी इच्छासे प्रेरित हो मंत्रियोंके जिम्मे राजकाज करके वसिष्ठजीके आश्रम में पहुंचा।।८।।रास्तेमें वह कल्याण देखता हुआ चला कि, सारसोंने तोरणकर रखा था । मार्गमें आये हुए अनेकों तालाव और वन समूह देखे ।।९।। रानीसहित राजा रथपर चढ़ा हुआ

१ पूरितानिति शेषः । २ मन्त्रैरिति शेषः । ३ तरुण्याभरणान्वितेति क्वचित्पाठः ।

रथ समेत परम योगी महर्षि वासिष्ठजीके आश्रममें सामके समय उपस्थित हुआ ॥१०॥ सारथिसे कहा कि, घोडोंको विश्राम करावो । आप रथसे उतरकर स्त्री समेत मुनिके आश्रममें चला गया ॥११॥ दिलीपने गुरुको अरुन्धतीके साथ सन्ध्यामें बैठा देखा । वे ऐसे शोभित होते थे जैसे सावित्रीके साथ ब्रह्माजी शोभित होते हों ॥१२॥ दिलीप और उनकी पत्नी दोनों गुरुको तथा विशेष करके अरुन्धतीको प्रणाम करके आनन्दसे भरे हुए की तरह प्रसन्न हो उसकेही समीप बैठ गये ॥१३॥ वसिष्ठजीने उस समय लोकोंके पालक धर्मके जाननेवाले दिलीपसे राज्य और वसुधाकी कुशल पूछी ॥१४॥ दिलीप बोले कि, हे देव ! जब आप गुरु मौजूद हैं तो मेरी सदाही कुशल है । सुर और मनुष्य दोनोंकोही विपत्ति (अनावृष्टि चोरी आदि) से बचानेवाले आप हैं ॥१५॥ मुझे यही सन्देह है कि, मेरी स्त्रीके पुत्र क्यों नहीं होता, मुझे भूमिसे क्या लेना है? जो मेरे पितरही निराश हैं तो ॥१६॥ हे मुने ! सूर्य्यवंशी विपन्न राजाओंका सुखी होना आपके हाथ है, हे मुनिश्रेष्ठ ! वो करिये जिसे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो ॥१७॥ हे युधिष्ठिर ! जब राजाने यह कहा तब मुनि एक क्षण ध्यानमें दृष्टि स्थिर करके बैठ गये ॥१८॥ मुनिने समाधिसे राजाकी सन्ततिका कारण देखा। पीछे प्रयत्नके साथ दिलीपको कहदिया ॥१९॥कि, पहिले इन्द्रकी आराधना करके आते हुए तूने कल्पवृक्षकी जडमें बैठी हुए कामधेनुकी वन्दना नहीं की ॥२०॥ उससमय उसे क्रोध हुआ तब उसने यह शाप दिया कि, 'तुमने मेरी वन्दना नहीं की इस कारण हे राजन् ! ॥२१॥ तेरे पुत्र न होगा' पर तुमने नहीं सुना, जो पूज्योंकी पूजा तथा वन्द्योंकी वन्दन नहीं करता ॥२२॥ उसका कल्याण नहीं होता किन्तु उलटा और पापोंसे लिप्त होता है । दिलीप बोले कि, हे मुने ! मैंने यह अपराध किया है पर अब मैं क्या करूं ॥२३॥ हे प्रभो ! जिससे सन्तान हो वो व्रत मुझे कहिये । वसिष्ठ बोले कि हे राजन् ! दूसरे अनेक तरहके पुण्योंसे तथा कठोर तपोंसे ॥२४॥ सन्तान नहीं पैदा होती बिना गोत्रिरात्र व्रतके हे राजन् ! सपत्नीक तुम शुभ फल देनेवाली बछडेवाली गौकी ॥२५॥ आराधना करो । इस कारण एकमन हो गोत्रिरात्रव्रतको करिये । जबतक दिलीपको वसिष्ठजीने व्रत बताया उतनेमें नन्दिनी बछडेके साथ वनसे आश्रम आई ॥२६॥ उसके एनरे कुंभके समान हैं, सफेद तिलक है सुभ फलको देनेवाली तथा स्वच्छ दूधको धारण करनेवाली है, देवोंको वर देनेवाली है, क्षीर समुद्रसे पैदा हुई है, कामोंकी देनेवाली है पाटलरंगकी है, सब देवता कान और शरीरमें विराजते हैं, संपूर्ण चन्द्रमाकी कलाओंको धारण करनेवाली कल्याणकारी पूर्णिमाही है ॥२७॥ हे राजन् ! भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें त्रयोदशीके दिन प्रातः भक्तिपूर्वक नियम करे ॥२८॥ हे गो ! मैं तेरे गोत्रिरात्र व्रतके तीनदिन उपवास करके चौथे दिन भोजन करूंगा मुझे सौभाग्य दे ॥२९॥ यह नियमका मंत्र है ॥ इसके बाद मण्डलपर शुभ मुखी गऊको गन्ध, दीप, तगर, शतपत्र, चंपक ॥३०॥ और अनेक तरहके फल तथा अपनी ही शक्तिके अनुसार पुष्प धूपोंसे भी पूज दे ॥३१॥ यव सहित हविष्यान्नका नैवेद्य करावे प्रयत्नके साथ पूजकर विधानसे अर्घ्य दे ॥३२॥ 'गावोमें' इससे तथा 'पञ्चगावः' इससे पूजाकरे ॥३३॥३४॥ गोत्रिरात्र व्रत के लिये नारिकेल, कूष्माण्ड, मातुलिङ्ग, अनार ,ये फलसहित हाथपर रखे हैं, हे सब कामोंको देनेवाली देवि ! अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है ॥३५॥ यह अर्घ्यका मंत्र है । शक्तिके अनुसार विधानसे दो वस्त्र, वस्त्र और दक्षिणा सपत्नीक गुरुके लिए व्रती पुरुषको देना चाहिए ॥३६॥ तीन दिनतक व्रतियोंको यह पवित्र कथा सुननी चाहिये वे स्त्री पुरुष शांत होने चाहिये ॥३७॥ इसप्रकार लक्ष्मीनारायण भगवान् और धेनुको पूजकर चौथे दिन धेनुका विसर्जन कर देना चाहिये ॥३८॥ हे पार्थिव ! इसके पीछे बछडे सहित गौको वेद शास्त्रोंको जाननेवाले धर्मात्मा ब्राह्मणको दे देनी चाहिये ॥३९॥ कि हे मातः ! मेरे व्रतको पूरा करके तथा मेरे चाहे कामोंको पूरा करके सुख पूर्वक पधार, मैंने तुझे ब्राह्मणको दे दिया है ॥४०॥ यह दानका मन्त्र है । व्रती पुरुषको अपनी शक्तिके अनुसार सर्वदा दान देना चाहिये । तथा अनेकों ब्राह्मणोंको दक्षिणाभी देनी चाहिये ॥४१॥ जबतक पीछे पीछे गाने बजाने होते हुए ब्राह्मण अपने घर पहुँचे उतने समय तक बराबर कृपणता छोडकर दान देना चाहिये ॥४२॥ धेनुकी प्रसन्नताके लिए गोपालोंको पाथेय देना चाहिये, जो जौ फलोंके साथ गऊको रोज चराये जांय ॥४३॥ उन्हें गोबरसे धोकर निकाल ले अपने इष्ट बन्धुओंके साथ उन्हींसे पारणा करले ॥४४॥ सपत्नीक गुरुके लिए दक्षिणा सहित अन्नदान करे ।

श्रीकृष्णजी बोले कि हे राजन् ! भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशीके दिन ।।४५।। भक्तिसे तत्पर होकर दिलीपने इस प्रकार गऊकी आराधना की । कहे हुए विधानके अनुसार फिर प्रातः कालके समय सुरभिको ।।४६।। पूजा-करके पवित्र हो वन जानेके लिए छोड दी, सामतक चराकर फिर आश्रममें ले आया ।।४७।। दूसरे दिन दिलीप की स्त्री सुदक्षिणाने गऊकी पूजा करके बलि दे वन चरनेको छोड दिया ।।४८।। तीसरे दिन फिर उसी तरह चारों सुंदर समुद्रोंके स्तनोंवाली गोरूप धारिणी भूमिकी तरह सुशोभित उस सुरभिके पीछे चले ।।४९।। वृक्षोंकी लताएं राजापर पुष्पवर्षा रहीं थी । जय शब्द उच्चारण करनेवाले पक्षियोंके सुन्दर मुखोंको ।।५०।। देखकर वनदेवियोंके मुखारविन्दसे गाया हुआ अपना यश सुना । इससे राजा एकदम प्रसन्न हो गया ।।५१।। उस सुन्दर वनमें चिरकाल तक, धेनुसे राजा और राजासे धेनु परम शोभाको पा रहे थे ।।५२।। उस दिन मुनिकी धेनु राजाके भावको देखनेके लिए हे राजन् ! हिमालयकी गुफामें प्रविष्ट होगा ।।५३।। मुनिधेनुने अपनी मायाका भयंकर सिंह बना लिया, राजाने देखा कि, सिंह धेनुको खींचे लिए जा रहा है ।।५४।। धेनु घोर विलाप करती जा रही है, धनुषधारी दिलीपने उसे छुटाना प्रारम्भ किया ।।५५।। राजाको शोक और क्रोध दोनों हुए बध्य सिंहके मारनेके लिए हाथोंमेंतीर लिया ।।५६।। धनुषपर तीरको चढा चित्र लिखेकी तरह रह गया हाथके निश्चल हो जानेके कारण उसका क्रोध बढनेलगा ।।५७।। हे युधिष्ठिर विस्मय प्राप्त करता हुआ वह सिंह दुष्ट भाववालेकी तरह गऊपर स्थित होकर मनुष्यकी बाणीसे राजासे बोला ।।५८।। कि, मुझपर छोडा हुआ आपका तीर व्यर्थ होगा, इस कारण आपको किसी तरहभी बडे भारी परिश्रमका कष्ट न करना चाहिए ।।५९।। चाहे कितने भी जोरसे हवा क्यों न चले पर पर्वतको जड उखाडकर नहीं फेंक सकती । हे महाराज ! आप मुझको ऐसाही न समझें ।।६०।। हे भूमिके पालनेवाले राजन् मुझे महादेवजीके सब सेवकोंने मुख्य कुम्भोदर समझिये ।।६१।। अपने सामने देवदारुके वृक्षको देखो इसे पार्वतीजीने प्रेमसे सींचा है तथा पुत्र बनाया है ।।६२।। एक दिन हाथी चला आया उसने इस बडे भारी वृक्षको तोड डाला, शिवने उससे इसकी रक्षा करनेके लिए मुझे नियुक्त कर दिया है ।।६३।। शिवने मुझे सिंह करके जीवभोजन की आज्ञा दे दी है हे राजन् ! यह गौ मेरा भक्ष्य है जो कि, यहां आपही चली आयी है ।।६४।। लज्जा छोडकर लौट जाओ आप गुरुके भक्त हैं । शास्त्रवेत्ताओंका यह आपत्तिकालका हाल है इसमें न तो दोष होगा न यश ही नष्ट होगा । सिंहकी बातें सुनकर राजा बोला कि ।।६५–६६।। हे सिंह ! आपभी गुरुको ईश्वरके समान मानते हो, मेरे गुरुकी यह गाय समीपसे कैसे जाती है ।।६७।। आप प्रसन्न हों । मेरी देहका भोजन करलें । इसे बच्छेवाली छोड दें, वत्स माका रास्ता देखता होगा ।।६८।। जब सिंहके लिए दिलीपने ऐसा कहा, तब सिंह बोला, हे राजन् ! थोडीसी बातके लिए सत्कृत सुन्दर छत्र ।।६९।। बडफोंके चक्रवर्ती राज्य और नवीन शरीरको छोडनेके लिए तयार होते हो, तुम कैसे मूर्ख हो ।।७०।। प्रजाके पालनमें लगे रहनेवाले आप प्राणोंको क्यों छोडते हो? क्या जिन्दे रहते मुनिके क्रोध भाजन बनोगे ।।७१।। हे भूमिप ! इस कारण अपने देहकी रक्षाकर । ये बात जबतक यह शेर प्रतिध्वनियुत गंभीर ध्वनिसे बोल रहा था ।।७२।। हे पार्थ ! दिलीपभी सिंहसे विनम्र बातें कर रहा था । उतने समयतक सुरभि करुणा दिखाने-वाले नेत्रोंसे राजाको देखरहीथी ।।७३।। दिलीप बोलेकि, हे सिंह ! राज्यविषय और जीवनका मैं क्या करूँगा ? जो मेरा यश जाता है, तो जब कि, तू मेरी इस गऊको खालेगा ।।७४।। ऐसा कहकर मांसके पिण्डके समान राजा शेरके सामने गिरगया ।।७५।। भयंकर शेर गर्जकर उसके ऊपर झपटा पर राजा शेरके निपातको देखकर रत्ती भर भी चंचल न हुआ ।।७६।। उतनेमें ही राजापर पुष्पवृष्टि होने लगी, हे वत्स राजन् ! उठ इस वाक्यको सुनकर ।।७७।। जो खडा हुआ तो सामने गऊ मिली शेर नहीं दिखा । हे पार्थ ! गुरुकी सेवासे विशेष करके ।।७८।। प्रसन्न हुई, कामधेनु बोली कि, हे सुव्रत ! वर मांगले, राजाने हाथ जोडकर उससे पुत्र माँगा ।।७९।। कि, वह वंशका करनेवाला परम बुद्धिमान् और निरंतर शिवभक्त हो, गो बोली कि, हे राजन् ! तुमने जो यह गोत्रिरात्रव्रत भक्तिके साथ पूरा किया है ।।८०।। तेरे दक्ष एवं पौरुष विग्रह युक्त सुयोग्य पुत्र होगा, जो कोई मेरे इस गोत्रिरात्रव्रतको करेंगे ।।८१।। उनको मन चाहे कामोंको दूंगी इसमें सन्देह नहीं है । ऐसा कहकर धेनु वसिष्ठजीके आश्रमकी ओर चल दी ।।८२।। सुदक्षिणा बलि लेकर जलदी

पहुंची विशेषताके साथ पूजा करके तीन प्रदक्षिणा कर हे युधिष्ठिर ! वह भी चलदी पीछे दिलीपने आश्रममें जाकर ॥८३-८४॥ गुरुके सामने सब कहानी कह सुनाई उस समय कोमलस्वभावके वे दंपती परम प्रसन्न हुए ॥८५॥ पारणा करके अपने नगरको अग्निहोता और गऊके नमस्कार करके चल दिये ॥८६॥ फिर अयोध्या नगर आगये, उस दुबले राजाने राज्य करना प्रारंभ करदिया ॥८७॥ राजाके शासन कार्यमें व्यस्त रहते हुए भी गोत्रिरात्रव्रतके प्रभावसे राजमहिषीने शोभन पुत्र जना ॥८८॥ उस समय सुन्दर प्रभात था, सब कुछ सुन्दरही दीखरहा था दिशाएं निर्मल हो रही थीं उस सुतका नाम रघु था ॥८९॥ राजाने भव्य-वस्त्रोंके साथ बहुतसी गऊएं ब्राह्मणोंको दीं मृदंगके सुरीले शब्दसे बडा सारा नगर सुन्दर लग रहा था ॥९०॥ हे पार्थ ! उस समय प्रजा आपसमें कहरही थी की, गोत्रिरात्रव्रतके प्रभावसे राजाके पुत्र हुआ है ॥९१॥ वह सदा धर्ममें लगा रहनेवाला इन्द्रके समान तेजस्वी हुआ, दिशाएं जीतीं एवं हे युधिष्ठिर उसने अनेकों यज्ञ किये ॥९२॥ उसी दिनसे लेकर सभी सुयोग्य लोग इस व्रतको करते हैं, सब काम और अर्थोंकी सिद्धिके लिये देवताओंनेभी इस व्रतकोकिया था ॥९३॥ सब देवपत्नियोंने उस उत्तम व्रतको किया है। पवित्र गोत्रिरात्रव्रत विधानके साथ करनेसे फलका देनेवाला होता है ॥९४॥ हे युधिष्ठिर महाराज ! आप भी भक्तिपूर्वक इस व्रतको करें। भाद्रपद मासमें बछरे सहित गऊकी आराधना कर ॥९५॥ जो इस प्रकार इस गोत्रिरात्रव्रतको करता है उसके सब काम सिद्ध होते हैं वह सुखको पाता है ॥९६॥ जिसे पुत्रकी इच्छा हो उसे गोत्रिरात्रव्रत करना चाहिये, जो दुष्कर तप तथा गया आदिक तीर्थ और यज्ञोंसे फल सिद्ध नहीं होता वह इस गोत्रिरात्रव्रतसे होजाता है ॥९७॥ पापोंके नाश करनेवाले मनोकामनाओंको पूरी करनेवाले इस प्रसिद्ध व्रतको जो मनुष्य करते हैं वे यमके भयको छोडकर विमानपर सवार हो उत्तम स्वर्गमें चले जाते हैं ॥९८॥ यह गोत्रिरात्र व्रत पूरा हुआ ॥ उद्यापन-युधिष्ठिरजी बोले कि, हे कृष्ण ! परम पुण्यके देनेवाली गोत्रिरात्र-व्रतकी उद्यापन विधि कहिये, जिसके विधिपूर्वक कियेसे उस व्रतका फल मिल जाता है ॥१॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, सब व्रतोंकी सिद्धिके लिये गोत्रिरात्रव्रतकी उद्यापन विधि कहता हूं, चौथे वर्षके आजानेपर गोत्रिरात्र व्रतके ॥२२॥ तीसरे दिन स्नान करे फिर मध्याह्नमें विधिके साथ देव और पितरोंका तर्पण करे व्रती अपने शुद्ध घरमें ॥३॥ रातको सर्वतोभद्र या गौरीतिलकको पांच रंगोंसे इसप्रकार भरे जिससे वह अच्छा लगे ॥४॥ पूर्णपात्रके साथ तांबेका कलश बनावे, एकमाष सुवर्णके लक्ष्मी नारायण बनावे ॥५॥ उन्हेंनये दो पतले कपडे उढावे पांच वांसके पात्र बनावे उन्हें सौभाग्य द्रव्योंके साथ ॥६॥ विरूढ वस्त्र, पके फल, अन्न और नारियल आदिक फल, उत्तम विलेपन, धूप, दीप, पंचामृत और नैवेद्योंसे विधिपूर्वक पूजे ॥७॥ लक्ष्मीनारायण भगवान् और बछडेवाली गऊको विशेषरूपसे पूजे, रातको जागरण करे उसमें गाने बजाने अवश्य होने चाहिये ॥८॥ प्रातःकाल वैष्णवोंके साथ या वैष्णव मंत्रोंसे होमकरे, वेदवेदांगोंके जाननेवाले आचार्यका वरण करे ॥९॥ उसकी आज्ञाके अनुसार प्रयत्नपूर्वक भली भांति कर्म करना चाहिये, तीन गऊ अथवा एक बछडेवाली गऊ देनी चाहिये ॥१०॥ जो बहुत दूध दे सुशील हो तरुणी हो। सुन्दर वस्त्र और आभरणोंके साथ दंपतियोंका पूजन करे ॥११॥ उपस्कर सहित शय्या, पीनेका पात्र कमंडलु, चामर, घृतपात्र और तिलपात्र ये दक्षिणा समेत दे ॥१२॥ सोनेके पात्रमें गव्यसे ब्राह्मण भोजन करावे, इस प्रकार गाय ब्राह्मणको देकर पीछे पीछे आप चले ॥१३॥ वह निश्चय करके पेंड पेंडपर अश्वमेधका फल पाता है तथा दूसरे दूसरे दान भी ब्राह्मणके लिये दे ॥१४॥ व्रतकी पूर्तिके लिये बहुतसी दक्षिणा दे, गोपालोंके लिये शष्कुली आदिक और कंबल दे ॥१५॥ सबकी क्षमा कराकर पीछे पारणा करे उसमें अनाथ रोगी और दुखी कुटुम्बियोंको भोजन करावे ॥१६॥ गऊके खाये हुए अन्नको गोवरसे निकलवाकर उसे दूधमें सिद्ध करवा उसी अन्नसे देहका परिपालन करना चाहिये ॥१७॥ यदि शक्ति न हो तो ब्राह्मणकी आज्ञाही लेले, उससे सह पूरा होजाता है, दूसरी तरह नहीं होता ॥१८॥ व्रतके फल चाहनेवालेको इस तरह उद्यापन करना चाहिये स्त्री हो वा पुरुष हो इसके करनेसे पुत्र पैदा होजाता है ॥१९॥ इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें गोलोक चला जाता है। श्रीकृष्ण बोले कि, हे राजन् ! यह मैंने गोत्रिरात्र व्रतका उद्यापन कह दिया ॥२०॥ जो इसे सुनेंगे या पढेंगे उनके सब मनोरथ शीघ्रही पूरे होजायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

उनको स्वर्गादिक लोक सदाके लिये हैं ॥२१॥ यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ गोत्रिरात्रव्रतका उद्यापन पूरा हुआ ॥

अशोकत्रिरात्रव्रतम्

अथ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामशोकत्रिरात्रव्रतं भविष्ये ॥ सा च पूर्वा ग्राह्या ॥ तत्र "त्रयोदशी तिथिः पूर्वा सिता" इति दीपिकोक्तेः ॥ अथ कथा ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजन्पुरावृत्तमयोध्यायां व्रतं शुभम् ॥ वसिष्ठेन मुनीन्द्रेण सीतायै यन्निवेदितम् ॥ १ ॥ विधाय रावणवधं यदा रामः पुरेऽभ्यगात् ॥ तदा देवी प्रणम्याथ वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ सीतोवाच ॥ भगवन्दण्डकारण्याद्रावणेन हृता पुरा ॥ न पश्यामि तदा कञ्चिदात्मीयं विकलेन्द्रिया ॥ ३ ॥ लङ्कायां प्रापिता तेन तत्र मासान्दशोषिता ॥ अशोक वृक्षप्रणता महाचिन्तापरायणा ॥ ४ ॥ उक्तं त्रिजटया तत्र वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥ अशोकस्य व्रतं कृत्वा विशोका त्वं भविष्यसि ॥ ५ ॥ तथेत्युक्तं मया ब्रह्मन्यथोक्तं त्रिजटावचः ॥ ततः प्रभृत्यहं शश्वदशोकव्रतमारभम् ॥ ६ ॥ तेन व्रतप्रभावेण हनूमान्पवनात्मजः ॥ शतयोजनविस्तीर्णं तीर्त्वा सागरमागतः॥७॥मया दृष्टःकपिश्रेष्ठः साभिज्ञानो महाबलः ॥ पुनश्च कुशली यातो दग्ध्वा लङ्कां महाबलः ॥ ८ ॥ ततो मे प्रत्ययो जातो व्रतस्यास्य महातरोः ॥ व्रतराजप्रभावेण नामयोऽभून्महाहरिः ॥ ९ ॥ ततः कैश्चिदहोरात्रैर्भर्ता मे राघवो बली ॥ निहत्य रावणं संख्ये मां विशुद्धां गृहीतवान् ॥ १० ॥ तदहं भगवन्विप्र पृच्छामि त्वां दृढव्रतम् ॥ अशोकस्य प्रभावं मे वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ११ ॥ व्रतस्य तस्य पुण्यं तु पुराणोक्तं महीतले ॥ अथवा सुरलोकेषु सुरनारीनिषेवि[1]तम् ॥ १२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ एवमेतज्जनकजे यथा वक्ष्यसि सुव्रते ॥ १३ ॥ अशोकस्य प्रभावेण रामो दृष्टः पुनस्त्वया ॥ शृणु चात्र महाख्यानं नन्दने दिव्यकानने ॥ बृहस्पतिमुखाच्छच्या यच्छ्रुतं परमाद्भुतम् ॥ १४ ॥ वृत्राभिभूतेनेन्द्रेण हतो दैवान्महासुरः ॥ निहत्य सर्वधर्माणां स्थापनं च चकार ह ॥ १५ ॥ ब्रह्महत्यामवाप्याथ देवेन्द्रो नष्टचेतनः ॥ त्रैलोक्यराज्यं त्यक्त्वाप्सु ममज्जारिभयार्दितः ॥ १६ ॥एतस्मिन्नन्तरे देवि नहुषनृपसत्तमः ॥ त्रैलोक्यराज्यं सकलं जहार फलदर्पितः ॥ १७ ॥ ततः शची प्रव्यथिता हृतं राज्यमवेक्ष्य सा ॥ नन्दनान्त[2]ं समासाद्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ १८ ॥ तां श्रुत्वा धर्मनिरतां बृहस्पतिरुदारधीः ॥ आगत्य नन्दनं देवीं वाक्यमाह महातपाः ॥ १९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किमर्थं तप्यते देवि तपः परमदुष्करम् ॥ त्वया किं प्रार्थ्यतेऽनेन तपसा ब्रूहि कारणम् ॥२०॥ शच्युवाच ॥ हत्याभिभूतं देवेन्द्र हतराज्यं हतद्विषम् ॥

१ स्तुतमित्यर्थः । २ नन्दनवनमध्यम् ।

क्वापि प्रनष्टं तं विप्र न जानेऽहं प्रियं पतिम् ।। २१ ।। एतस्मात् कारणाद्ब्रह्मंस्तप उग्रं समाश्रिता ।। यथापुनर्निजं राज्यं देवेन्द्रः प्राप्नुयादिति ।। २२ ।। क्व तिष्ठति मुने ब्रूहि सुरराट् शत्रुतापनः ।। प्रसादं कुरु मे देव संयोगं येन चाप्नुयाम् ।। २३ ।। वाचस्पतिरुवाच ।। शृणु पौलोमि देवेन्द्रो यथा नष्टो भयातुरः ।। मानसाम्भसि संभूतपङ्कजान्तरमाश्रित ।। २४ ।। वृत्रहत्याप्रभावेण उद्वेगं गुरुमाश्रितः ।। अभिभूतमि¹वापश्यत्ततोऽप्सु निलयंगतः ।। २५ ।। कामं तपःप्रसङ्गेन सर्वं प्राप्स्यसि सुव्रते ।। बहुकालेप्सितं यस्मात्तपसा लभ्यते फलम् ।। २६ ।। स्त्रीणां पुष्टिकरं ह्येकं व्रतं प्रोक्तं स्वयंभुवा ।। सावित्र्याः पृच्छमानायास्तत्त्वं कर्तुमिहार्हसि ।। २७ ।। अशोकव्रतमित्येवं नाम्ना ख्यातं त्रिविष्टपे ।। येन चीर्णेन वै सद्यो नारी दुःखं न संस्मरेत् ।। २८ ।। हरः स्वयं वसन्नस्मिन्वृक्षराजे तु नन्दने ।। अस्मिंस्तुष्टे हरस्तुष्ट इति जानामि निश्चितम् ।। २९ ।। शच्युवाच ।। पुन्नागनागबकुलचंपकाद्यान्महीरुहान् ।। परित्यज्य कथं चान्यान्हरोऽस्मिन्कृतसंनिधिः ।। ।। ३० ।। वाचस्पतिरुवाच ।। हरेण निर्मितः पूर्वमशोकोऽयं कृपालुना ।। लोकोपकारकरणे ततोऽयं शिववल्लभः ।। ३१ ।। वसिष्ठ उवाच ।। निर्माय वृक्षप्रवरं प्रणम्य भक्त्यार्चयित्वा विधिमस्य विप्रम् ।। पप्रच्छ देवी पुनराह विप्रो देवि शृणु त्वं विधिमस्य सर्वम् ।। ३२ ।। वाचस्पतिरुवाच ।। आरभ्य तद्व्रतं कार्यं त्रिरात्रं समुपोषणम् ।। त्रिरात्रं देवि विख्यातमशोकतरुमूलके ।। ३३ ।। कार्यं नारीभिरमलं मनोवाक्कायकर्मभिः ।। ततः प्रदक्षिणा देया अष्टोत्तरशतैः फलैः ।। ३४ ।। नालिकेरैश्च खर्जूरैर्गोस्तनीभिर्दिनेदिने ।। मंत्रेणानेन मनसा ध्यात्वा नित्य सदाशिवम् ।। ३५ ।। अशोक शोकापनुद सर्वकामफलप्रद ।। व्रतेनानेन चीर्णेन यथोक्तफलदो भव ।। ३६ ।। ततस्तृतीये दिवसे सम्यगभ्यर्च्य भामिनि ।। महादेवं वृषयुतं वंशपात्राणि कारयेत् ।। ३७ ।। अनेकनैव विधाननेन या कुर्याद्व्रतमुत्तमम् ।। वैधव्यं नाप्नुयान्नारी पुत्रसौख्ययुता भवेत् ।। ३८ ।। वसिष्ठ उवाच ।। बृहस्पतिमुखाच्छ्रुत्वा शची चक्रे व्रतं शुभम् ।। शास्त्रोक्तविधिना सीते भक्त्या देवः समागतः ।। ३९ ।। वृत्रहत्याविनिर्मुक्तो नात्र कार्या विचारणा ।। तथा त्वमपि वाञ्छार्थं व्रत मेतत्समाचर ।। ४० ।। व्रतं त्वया कृतं लोके ख्यातं देवि भविष्यति ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। वसिष्ठवचनं श्रुत्वा ह्यशोकव्रतमुत्तमम् ।। ४१ ।। रामाज्ञां समनुप्राप्य अयोध्यायां चकार सा ।। सीता व्रते कृते तस्मिन् दुःखहीना बभूव ह ।। ४२ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। अशोकस्य समाख्याता पूजा देव विधानतः ।। का देवता तत्र पूज्या नारीणां व्रतसिद्धये ।। ४३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।।

१ आत्मानमिति शेषः ।

अशोकवृक्षे तिष्ठन्ति सर्वे देवा युधिष्ठिर ।। पल्लवेषु च शाखासु शिवाद्याः सर्वदेवताः ।। ४४ ।। अशोकसन्निधौ रामः पूजनीयः सलक्ष्मणः ।। सीतया सहितो राजन्विष्णोरंशो यतो मत ।। ४५ ।। पृथङ्मन्त्रैः पृथग्वस्त्रैरशोकाख्या यथाक्रमम्।। पूज्याश्च भरत श्रेष्ठ पुराणोक्तविधानतः ।। ४६ ।। अशोकवृक्षानिहिताः शिवाद्या ये सुरोत्तमाः ।। अशोकपूजनेनाशु तुष्टास्ते मे भवन्त्विह ।। ४७ ।। गौर्या लक्ष्म्या तथेन्द्राण्या अरुन्धत्या च सीतया ।। त्वं समाराधितः पूर्वमशोक फलदो भव ।। ४८ ।। अशोकवाटिकामध्ये सीतया त्वं प्रसादितः ।। अशोक फलसंपन्न गृहाणार्घ्यं कृतं मया ।। ४९ ।। रावणस्य वधार्थाय उत्पन्नस्त्वं महीतले ।। विष्णोरंशोऽसि देवेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ५० ।। दशावतारग्रहणं करोषि त्वं प्रभावतः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सीतालक्ष्मणसंयुत ।। ५१ ।। तात भक्त्युन्मुखं वीरं वनं योऽनुययौ तदा ।। तं लक्ष्मीवर्द्धनं गौरं लक्ष्मणं पूजयाम्यहम् ।। ५२ ।। अवनी तलसंभूते सीते सर्वाङ्गसुन्दरि ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं पूजां जनकनन्दिनि ।। ५३ ।। लक्ष्मीस्त्वं सर्वदेवस्य [1]विष्णोरसि महीतले ।।अवतीर्णा मया दत्तं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ५४ ।। एवं संपूज्य विधिना सर्वशोकविनाशनम् ।। सर्वपाप प्रशमनं सर्वकीर्तिविर्द्धनम् ।। ५५ ।। अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले।। अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः ।। ५६ ।। जातकर्मादिकं तस्य ह्यशोकस्य महातरोः ।। कारितं विधिवत्तत्र तेन वृक्षो नगोत्तमः ।। ५७ ।। या व्रतं कुरुते नारी पुराणोक्तविधानतः ।। अशोकस्य प्रसादेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।। ५८ ।। अवैधव्ययुता सा तु लक्ष्मीसान्निध्यमाप्नुयात् ।। सर्वोपहारान्नजेन्द्र ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। ५९ ।। कथामपि समाकर्ण्य यः कुर्याद्द्विजतर्पणम् ।। व्रतस्य फलमाप्नोति सोऽव्रतोपि न संशयः ।। ६० ।। युधिष्ठिर उवाच ।। विशेषं ब्रूहि मे देव ह्यशोकतरुपूजने ।। येनार्चिते तरौ कृष्ण प्राप्यते सकलं फलम् ।।६१ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कथयामि कथां राजन् याभिर्व्रतमिदं कृतम् ।। मनुष्यदेवगन्धर्वनारीभिः पुत्रवृद्धये ।। ६२ ।। अनसूययाऽत्रिपत्न्या ह्यरुन्धत्या तथैव च ।। देवक्या सीतया चैन्द्र्या द्रौपद्या सत्यभामया ।। ६३ ।। दमयन्त्या च सावित्र्या कृतं तद्व्रतमुत्तमम् ।। अशोकः स पूजितः पूर्वं यथा तच्छृणु पार्थिव ।। ६४ ।। अशोकं राजतं चैव सौवर्णं च तथा शिवम् ।। तथैव कारयेन्सीतां सौवर्णो रामलक्ष्मणौ ।। ६५ ।। पूजयेद्विविधैर्मन्त्रैः पूर्वोक्तैर्नृपसत्तम ।। अशोकं पूजयेद्वृक्षं प्ररूढं शुभपल्लवैः ।। ।। ६६ ।। विरूढैः सप्तधान्यैश्च गुणकैर्मोदकैः शुभैः ।। कालोद्भवैः फलैर्दिव्यैर्नारिकेलैः सदाडिमैः ।। ६७ ।। पुष्पादिना तथा धूपैर्दीपैश्चैव मनोरमैः ।। नैवेद्यैः

१ रंशो इत्यपि पाठः ।

पाण्डव श्रेष्ठ शोको नश्यति तत्क्षणात् ।। ६८ ।। पितृमातृपतीनां वै श्वशुराणां तथैव च ।। अशोक त्वं शोकहरां भव सर्वत्र नः कुले ।। ६९ ।। अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति च हस्तभे ।। चैत्रे शुक्लत्रयोदश्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ।। ७० ।। त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भवम् ।। पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु ।। ७१ ।। हस्तर्क्षे च बुधोपेता चैत्रशुक्लत्रयोदशी ।। प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ।। इति श्रीभविष्ये अशोकत्रयोदशीव्रतम् ।।

अशोक त्रिरात्रव्रत–चैत्र शुक्लात्रयोदशीके दिन होता है, यह भविष्यपुराणमें लिखा हुआ है । इसे पूर्वा ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि, दीपिकाका कथन है कि, त्रयोदशी तिथि शुक्ला पूर्वा और कृष्णा उत्तरा ली जाती हैं । जहां दो त्रयोदशी हैं वहांहीका यह विचार है । अथ कथा–श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! पुरानी बात सुन । मुनीन्द्र वसिष्ठजीने जिस तरह इस व्रतको सीताजीके लिये कहा था ।।१।। रावणको मारकर जब राम घर आये उस समय सीताजीने प्रणाम करके वसिष्ठजीसे कहा ।।२।। कि, हे महाराज ! जब दण्डकारण्यसे मुझे रावणने हर लिया था उस समय व्याकुल हुई मुझे कोई अपना न दीखा ।।३।। मुझे रावण लंकामें लेगया वहांपर मैं दश महीने रही । बडी भारी चिन्तासे ग्रसीहुई अशोकवृक्षके नीचे पडी रहती थी ।।४।। वहां त्रिजटाने साध्य और हेतुके साथ कहा कि, अशोकके व्रतको करके आप शोक रहित होजायँगी ।।५।। जैसा त्रिजटाने कहा था हे महाराज, ! मैंने स्वीकार करलिया, उसी दिनसे लेकर मैंने व्रत करना प्रारंभ करदिया ।।६।। उसी व्रतके प्रभावसे पवनतनय हनुमान् सौ योजन लम्बे समुद्रको लांघकर चला आया ।।७।। उस महाबली कपि शिरोमणिको मैंने देखा, उसके पास रामकी मुद्रिका थी फिर वह लंकाको जलाकर कुशलतापूर्वक चला गया ।।८।। उस दिनसे मुझे अशोकव्रतका निश्चय होगया, इसी व्रतराजके प्रभावसे वह हनुमान् कष्टरहित हुआ एवं उसका भी बडा नाम हुआ ।।९।। इसके कुछ ही दिनोंके पीछे मेरे पति बलवान् रघुनन्दनने रावणको युद्धमें मारकर मुझे शुद्ध जान ग्रहणकर लिया ।।१०।। हे महाराज,! उसी श्रेष्ठ व्रतको मैं आपसे पूछना चाहती हूं । आप मुझे अशोकव्रतके सारे प्रभावको कह दीजिये ।।११।। इस व्रतका पुण्य भूतलपर पुराणोंने कहा है अथवा सुरलोकमें सुरस्त्रियोंने कहा है ।।१२।। वसिष्ठजी बोले कि, हे पतिव्रते जनक नन्दिनि ! जो तू कहती है सो ठीक है ।।१३।। अशोक व्रतके प्रभावसे फिर तुझे रामके दर्शन हुए, हे देवि ! सुन जो एक बात नन्दनवनमें हुई थी जो कि, परम अचरजकारी व्रत बृहस्पतिजीके मुखसे शचीने सुना था ।।१४।। वृत्रसे दबे हुए इन्द्रने दैवयोगसे वृत्रको मारलिया एवं सब धर्मोंकी स्थापना भी की ।।१५।। इसी झंझटमें इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी । जिससे उसकी चेतना नष्ट होगई । वैरीके भयसे दुखी हुआ वह तीनों लोकोंके राज्यको छोडकर पानीमें डूबगया ।।१६।। हे देवि ! इस बीचमें बलाभिमानी वीर राजशिरोमणि नहुषने तीनों लोकोंका सारा राज्य किया ।।१७।। हारे हुए अपने राज्यको देख दुखी हुई शचीने नन्दनवनमें पहुंच कर घोर तप करना प्रारंभ कर दिया ।।१८।। धर्ममें लगी हुई शचीको सुनकर दयालु तपस्वी बृहस्पतिने नन्दनवनमें आकर शचीसे कहा ।।१९।। कि, हे देवि ! किसलिये घोर तपकर रही हो ? इस तपसे आप क्या चाहती हो ? यह बताइये ।।२०।। शची बोली कि, हे विप्र ! यद्यपि वैरी तो मारदिया था पर हत्यासे अभिभूत होगये थे, इस कारण उनका राज्य भी दूसरोंने ले लिया, कहां क्या होगये यह नहीं जानती कि, मेरे प्यारे पति कहां है ? ।।२१।। हे ब्रह्मन् ! इसीलिये मैं घोर तप कररही हूं । जिससे कि, इन्द्र फिर अपने अधिकारको पाजाय ।।२२।। वैरियोंको तपानेवाला सुरराज कहां है ? यह बताइये हे देवेश ! ऐसी कृपा करिये जिससे इन्द्र फिर मुझे मिलजाय ।।२३।। बृहस्पति बोले कि, हे पुलोमाकी पुत्रि ! सुन, जैसे कि, इन्द्र डरकर खोगया है वह मानसरोवरके कमलोंके बीचमें छिप गया है ।।२४।। वृत्रकी हत्या जो उसे लगी है, इससे उसके दिलमें भारी उद्वेग रहता है । वह देखता है कि, मुझे दबाया, इस कारण

१ इत आरभ्य लभेदित्यंतं प्रासंगिकं ग्रन्थांतरोक्तमवधेयम् ।

पानीमें छिप गया है ।।२५।। हे पतिव्रते ! तू इच्छानुसार तप कर, बहुत समयका चाहा हुआ फल इस तपसेही मिलता है ।।२६।। स्त्रियोंके कार्योंको करनेवाला एक व्रत ब्रह्माजीने कहा था जब कि, इनसे सावित्रीने पूछा था क्या तू करना चाहती है ।।२७।। इसे स्वर्गमें अशोक व्रत कहा करते हैं, जिसके करनेसे स्त्री दुखोंका स्मरण भी नहीं करती ।।२८।। भगवान् शिव वृक्षराज इस अशोकपर रहा करते हैं जब यह प्रसन्न होजाता है, तो शिव प्रसन्न होजाते हैं । यह निश्चय बात है ।।२९।। शची बोली कि, पुन्नाग, नाग, बकुल और चम्पक आदिकोंको छोडकर शिवने अशोकमें ही क्यों सन्निधि की ? ।।३०।। बृहस्पति बोले कि, संसारके कल्याणके लिए दयालु शिवजीने इसे बनाया था इस कारण यह शिवजीका प्यारा है ।।३१।। वसिष्ठजी बोले कि, अशोकका वृक्ष लगवाकर उसे विधिपूर्वक प्रणामकर पूजन किया फिर शचीने इस व्रतकी विधि पूछी और बृहस्पतिजीने सब बता दी ।।३२।। कि, इस व्रतका आरम्भ करके तीन दिन उपवास करना चाहिए, इसे अशोकके मूलमें किया जाता है, इससे अशोकत्रिरात्र कहते हैं ।।३३।। इसे स्त्रियोंको इस शुद्ध व्रतको मन वाणी और अन्तः-करणसे करना चाहिए फिर प्रदक्षिणा कर लेनी चाहिए । एकसो आठ फलोंसे ।।३४।। एवं नारियल खजूर और दाखोंसे प्रतिदिन निम्न मन्त्रसे नित्य सदा शिवका ध्यान करे ।।३५।। कि, हे अशोक ! आप हमारे शोकको दूर करें, हे सब कामोंके देनेवाले ! आप इस व्रतके कर लेनेपर कहे हुए फलको देनेवाला होजाय ।।३६।। इसके बाद हे भामिनि ! तीसरे दिन वृषसमेत महादेवको भलीभांति पूजकर बांसके पात्र तैयार कराये ।।३७।। इस विधानसे इस श्रेष्ठ व्रतको करना चाहिये, इसको करनेवाली स्त्री विधवा नहीं होती तथा पुत्रोंके सुखको देखती है ।।३८।। वसिष्ठजी बोले कि, बृहस्पतिजीके मुखसे सुनकर शचीने शास्त्रकी कही हुई विधिसे इस शुभकारी व्रतको भक्तिसे किया । हे सीते ! उसे इन्द्र मिल गया ।।३९।। वह वृत्रहत्यासे भी छूट गया इसमें विचार न करना । इस कारण आपभी अपनी मनोकामनाकी पूर्तिके लिए व्रत कर ।।४०।। हे देवि ! तेरे करनेपर यह व्रत प्रसिद्ध होजायगा, श्रीकृष्णजी बोले कि, सीताजीने वसिष्ठजीके वचन सुनकर अशोकके श्रेष्ठ व्रतको ।।४१।। भगवान् रामकी आज्ञा लेकर अयोध्यामें किया । व्रतके करनेपर सीताजी दुखरहित होगई ।।४२।। युधिष्ठिरजी पूछने लगे कि, हे देव ! आपने अशोककी पूजा तो विधिपूर्वक कह दी । पर यह बताइये कि, व्रतकी संपूर्णताके लिए उसमें किस देवताकी पूजा स्त्रियां किया करती हैं ।।४३।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! अशोक वृक्षपर सब देवता विराजते हैं, उसके शाखा और पल्लवोंपर शिवसे लेकर सब देवता निवास करते हैं ।।४४।। भगवान् राम, विष्णु भगवान्के अंश हैं इस कारण अशोककी संनिधिमें सीता और लक्ष्मण सहित भगवान् रामको पूजना चाहिये ।।४५।। हे भरतश्रेष्ठ ! पृथक् मन्त्र और पृथक् वस्त्रोंसे पुराणके कहे हुए विधानके अनुसार क्रमपूर्वक अशोकपर रहनेवाले देवताओंका पूजन करना चाहिए ।।४६।। अशोकके वृक्षपर जो शिव आदिकसुरश्रेष्ठ विराजमान हैं वे यहां मेरे इस अशोक पूजनसे प्रसन्न होजायें ।।४७।। हे अशोक ! गौरी, लक्ष्मी, इन्द्राणी, अरुन्धती और सीताने तेरी पहिले आराधना की है, तुम फल देनेवाले होजाओ ।।४८।। अशोकवाटिकाके बीच तुझे सीताने प्रसन्न किया था, हे फलसंपन्न अशोक ! मेरे किये अर्घ्यको ग्रहण कर ।।४९।। रावणको मारनेके लिए तुम भूतलपर उत्पन्न हुए हो, विष्णुके अंश हो, हे देवेश ! अर्घ्य ग्रहण कर तेरे लिए नमस्कार है ।।५०।। तुम अपने प्रभावसे दश अवतारोंको ग्रहण करते हो, हे राम ! आप सीता और लक्ष्मणके साथ मेरे अर्घ्यको ग्रहण करो ।।५१।। पिताकी भक्तिमें लगे हुए वीर रामके पीछे जो वनमें गया उस गौराङ्ग लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणको मैं पूजता हूं ।।५२।। हे भूतलसे उत्पन्न होनेवाली सर्वाङ्गसुन्दरी जनक दुलारी सीते ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण कर ।।५३।। आप विष्णु भगवान्की लक्ष्मी हैं सीता रूपसे भूमिपर अवतार लिया है मेरे दिये अर्घ्यको ग्रहण करें ।।५४।। सब पापोंको नष्ट करनेवाले, सभी शोकोंका विनाशक, सभी कीर्तिको बढानेवाले अशोकको विधिपूर्वक पूजकर ।।५५।। हे पार्थ ! मन्दराचल पर्वतपर, जब कि, पार्वतीके कोई सन्तान नहीं थी । शोकोंके नष्ट करने-वाले अशोकको बेटा बनाया था ।।५६।। विधिपूर्वक इस महातरुके जातकर्म आदि भी अपने हाथसे कराये । इस कारण यह सब वृक्षोंमें श्रेष्ठ है ।।५७।। जो स्त्री पुराणकी कही हुई विधिके अनुसार इस व्रतको करती है वह अशोककी कृपासे सब कामोंको पाजाती है ।।५८।। वह सधवा रहकर लक्ष्मीके सान्निध्यको पाती है ।

हे राजेन्द्र ! सब उपहारोंको ब्राह्मणके लिए देदे ॥५९॥ जो विना व्रत रहा हुआ भी मनुष्य इस कथाको सुनकर ब्राह्मणोंकी तृप्ति करता है वह भी उसका फल पाजाता है । इसमें सन्देह नहीं है ॥६०॥ युधिष्ठिरजी बोले कि, हे देव । अशोकके पूजनके विषयमें विशेषताएं बताइये । हे कृष्ण ! जिस तरह पूजने पर सब फल मिलजाय ॥६१॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! मनुष्य, देव और गन्धर्वोंकी जिन स्त्रियोंने पुत्रोंकी वृद्धिके लिए यह व्रत किया है वह बताता हूं ॥६२॥ अत्रिकी पत्नी अनसूया, अरुन्धती, देवकी, सीता, शची, द्रौपदी, सत्यभामा ॥६३॥ दमयन्ती और सावित्रीने इस श्रेष्ठ व्रतको किया है । हे पार्थिव ! पहिले जैसे अशोक पूजा है उसे यथावत् सुनियें ॥६४॥ चांदीका अशोक तथा सोनेके शिव तथा राम लक्ष्मण और सीताजी सोनेको बनावे ॥६५॥ हे नृप रुत्तम ! पहिले कहे हुए अनेकों मन्त्रोंसे शुभ पल्लवोंसे बढे हुये अशोक वृक्षको पूजे ॥६६॥ निपजे बडे साबित सातों धानोंसे, अच्छे गुणक, मोदक, दिव्य ऋतुफल, अनार, नारियल ॥६७॥ तथा पुष्प आदिक एवं सुन्दर धूप, दीप और नैवेद्योंसे पूजे । हे पाण्डव ! उसीसमय शोक नष्ट होजाता है पिता, माता, पति और श्वशुर, इनके शोकोंको, हे अशोक आप दूर करें एवं हमारे कुलमें सर्वत्र हों ॥६८॥ ॥६९॥ चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको हस्त नक्षत्रमें जो आठ अशोककी कलियोंको पीते हैं वे शोक नहीं पाते ॥७०॥ हे शिवके प्यारे अशोक ! चैत्रमें उत्पन्न होनेवाले तुझे, शोक सन्तप्त में पिये जाता हूं सदा मुझे शोक रहित करना॥७१॥हस्त नक्षत्र और बुधवारी जो चैत्र शुक्लात्रयोदशी हो तो प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नानकरके वाजपेयके फलको पाता है ॥७२॥ यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ अशोक त्रयोदशीका व्रत पूराहुआ ॥

महावारुणीयोग:

अथ चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणी संज्ञको योगः ॥ तदुक्तं वाचस्पति-निबन्धे--वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य-ग्रहशतैः समा ॥ शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ॥ गङ्गायां यदि लभ्येत कोटि*सूर्यग्रहाधिका ॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ॥ महा-महेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ कल्पतरौ ब्राह्मे-मधौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषा यदि ॥ वारुणीति समाख्याता शुभ तु महती स्मृता ॥ इति वारुणी महावारुणी महामहावारुणी त्रयोदशी ॥

महावारुणी संज्ञक योग---भी चैत्र कृष्णा त्रयोदशीके दिन होता है, यही वाचस्पतिनिबन्धमें कहा गया है कि, शतभिषा नक्षत्रके साथ चैत्र कृष्णा त्रयोदशी गंगापर मिलजाय तो सौ सूर्य्यग्रहणके फलके समान है ॥ यदि इनमें शनिवारका योग और होजाय तो "महावारुणी" कहायेगी, यह गंगापर मिलजाय तो कोटि सूर्य्य-ग्रहणोंके फलोंसेभी अधिक है । शुभ योगोंके साथ यदि शनिवारके दिन शत भिषा और हो तो "महा महावारुणी' कहायेगी यह तीन कोटि कुलोंका उद्धार करती है । कल्पतरु ग्रन्थमें ब्राह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि, चैत्र कृष्णत्रयोदशीके दिन यदि शतभिषा नक्षत्र और शनिवार हो तो "वारुणी" कही जाती है एवं शुभमें महावारुणी होती है ॥ यह वारुणी, महावारुणी और महामहावारुणी त्रयोदशी पूरी हुई ॥

शनि प्रदोषव्रतम्

स्कन्दपुराणे-- (शनौ शुक्लत्रयोदश्यां कार्तिके श्रावणेऽथवा ॥ जया पूर्वा परा ग्राह्या व्याप्ता चेद्रजनीमुखम् (॥ लोमश उवाच ॥ पुरा वृत्रादिभि-र्दैत्यैर्वर्तमाने महाहवे ॥ हतः शक्रेण नमुचिरपां फेनेन वै बली ॥ १ ॥ दैत्यान्

* सूर्यग्रहशतः समेति च पाठः ।

पलायितान् दृष्ट्वा हन्यमानान्सुरैर्भृशम् ।। वृत्रःकोपरपराविष्टो देवान्योद्धुमथाययौ ।। २ ।। कालाग्निरूपसदृशं रूपं कृत्वा महाजवम् ।। व्यवर्द्धत् महातेजारोदसी पूरयन्निव ।। ३ ।। तं दृष्ट्वा भयवित्रस्ता देवाः शक्रपुरोगमाः ।। कर्तव्यं नाभ्यपद्यन्त तदा गुरुरुवाच ह।। ४ ।। गुरुरुवाच ।।तपसा सुमहोग्रेण व्रतेन नियमेनच।। अजेयोऽयं महातेजा वृत्रः शत्रुविनाशनः ।। ५ ।। आराधयति तं देवं पूज्यं शङ्करमव्ययम् ।। व्रतेन विधि युक्तेन वृत्रं जेष्यथ मा चिरम् ।।६।। देवा ऊचुः गुरो ।।केन विधानेन कीदृशेन व्रतेन च ।। आराधनीयो गौरीशो ह्यस्माभिर्जयकामुकैः ।। ७ ।। तद्वदस्व सुराचार्य त्वं हि नः परमा गतिः ।। गुरुरुवाच ।। कार्तिकादिषु मासेषु मन्दवारे त्रयोदशी ।। ८ ।। विशेषाच्छुक्लपक्षेषु सर्वकामकरी शुभा ।। तस्यां प्रदोषसमये लिङ्गरूपी सदाशिवः ।। ९ ।। पूजनीयो हि देवेन्द्र सर्वकामसमृद्धये ।। स्नात्वा मध्याह्न समये तिलामलकसंयुतम् ।। १० ।। शिवस्य चार्चनं कुर्याद्गन्धपुष्पफलादिभिः ।। पश्चात्प्रदोषसमये स्थावरं लिङ्गमर्चयेत् ।।११।। स्वयंभुस्थापितं वापि पौरुषेमयपौरुषम् ।। जने वा विजने वापि अरण्ये वा तपोवने ।। १२ ।। ग्रामाद्बहिः स्थितं लिङ्गं ग्राम्याच्छतगुणं स्मृतम् ।। बाह्याच्छतगुणं पुण्यमारण्यस्य च पूजने ।। १३ ।। वन्याच्छतगुणं पुण्यं लिङ्गं वै पर्वते स्थितम् ।। पर्वताच्चायुतं पुण्यं तपोवनसमाश्रितम् ।।१४।। काश्यादिसंस्थितं लिङ्गं पूजितं स्यादनन्तकम् ।। एवं विशेषं लिङ्गानां तीर्थानां निपुणो भृशम् ।। १५ ।। ज्ञात्वा च शिवपूजाया विधिं शम्भुं प्रपूजयेत् ।। कूपवापीतडागेषु देवखातनदीषु च ।।१६।। क्रमामाच्छतगुणं पुण्यं गङ्गायां स्यादनन्तकम् ।। पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि ।।१७।। ततः प्रदोषसमये स्नात्वा मौनं समाचरेत् ।। प्रदीपानां सहस्रेण दीपनीयः सदाशिवः ।। १८ ।। शतेनाप्यथवा देवो द्वात्रिंशद्दीप मलया ।। घृतेन दीपयेद्दीपाञ्छिवस्य परितुष्टये ।। १९ ।। तथा फलैश्च धूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ।। उपचारैः षोडशभिर्लिङ्गरूपी सदाशिवः ।। २० ।। पूज्यः प्रदोषसमये नृभिः सर्वार्थसिद्धये ।। नाम्नां शतेन रुद्रोऽसौ स्तोतव्यश्च स्तुतिप्रियः ।। २१ ।। नमो रुद्राय भीमाय नीलकण्ठाय वेधसे ।। कपर्दिने सरेशाय व्योमकेशाय वै नमः ।। २२ ।। वृषध्वजाय सोमाय सोमनाथाय वै नमः ।। दिगम्बराय भर्गाय उमाकान्त कपर्दिने ।। २३ ।। तपोमयाय व्यासाय शिपिविष्टाय वै नमः।। व्यालप्रियाय व्यालाय व्यालानांपतये नमः ।। २४ ।। महीधराय व्याघ्राय पशूनांपतये नमः ।। त्रिपुरान्तकाय सिंहाय शार्दूलाय झषाय च ।। २५ ।। मितायाऽमितनाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने ।। कामान्तकाय बुद्धाय बुद्धीनांपतये नमः ।। २६ ।। कपोताय विशि-

१ कामायेति पाठः क्वचित् ।

ष्टाय शिष्टाय परमात्मने ।। वेदगीताय गुप्ताय वेदगुह्याय वै नमः ।। २७ ।। दीर्घाय दीर्घरूपाय दीर्घार्थाय मृडाय च ।। नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः ।। २८ ।। गर्वकृत्सुमहादित्यै अन्धकार सुभेदिने ।। नीललोहित शुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च ।। २९ ।। भक्तिप्रियाय देवाय ज्ञाताऽज्ञाता व्ययाय च ।। महेशाय नमस्तुभ्यं महादेव हराय च ।। ३० ।। त्रिनेत्राय त्रिदेवाय वेदाङ्गाय नमो नमः ।। अर्थाय अर्थरूपाय परमार्थाय वै नमः ।। ३१ ।। विश्वरूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वे नमः ।। शङ्कराय च कालाय कालावयवरूपिणे ।। ३२ ।। अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मासूक्ष्माय वै नमः ।। श्मशानवासिने तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे ।। ३३ ।। शशाङ्कशेखरायैव रुद्रभूमिश्रयाय च ।। दुर्गाय दुर्गपाराय दुर्गावयवसाक्षिणे ।। ३४ ।। लिङ्गरूपाय लिङ्गाय लिङ्गानां पतये नमः ।। नमः प्रभावरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः ।। ३५ ।। नमो नमः कारण कारणाय मृत्युञ्जयायात्मभवस्वरूपिणे ।। त्रियंबकायासितकण्ठभर्गगौरीपते मङ्गलहेतवे नमः ।। ३६ ।। नाम्ना शतं महेशस्य उच्चार्यं व्रतिना सदा ।। प्रदक्षिणा नमस्कारा एतत्संख्याः प्रयत्नतः ।। ३७ ।। कार्या प्रदोषसमये तुष्टचर्थं शंकरस्य च ।। एतद्व्रतं मयादिष्टं तव शक्र महामते ।।३८।। शीघ्रं कुरु महाभाग पश्चाद्युद्धं कुरु प्रभो ।। शम्भोः प्रसादात्सर्वंते भविष्यति जयादिकम् ।। ३९ ।। शक्र उवाच ।। वृत्रः कदा महेशानं समाराधयदादरात् ।। कथं च स वरं प्राप्तः पुरा कश्चाभवद्द्विज ।। ४० ।। गुरुरुवाच ।। वृत्रो ह्ययं महातेजास्तपस्वी तपसा पुरा ।। शिवं प्रसादयामास पर्वते गन्धमादने ।। ४१।। नाम्ना चित्ररथो राजा वनं चित्ररथस्य तत् ।। एतज्जानीहि भो इन्द्र तव पुर्याः समीपतः ।। ४२ ।। यस्मिन्वने महाभागा वसन्ति च महर्षयः ।। तस्माच्चैत्ररथं नाम वनं परममङ्गलम् ।।४३।। तस्य दत्तं शिवेनैव यानं, च परमाद्भुतम् ।। कामदं किङ्किणीयुक्तं सिद्धचारणसंयुतम् ।। ४४ ।। गन्धर्वैरप्सरोयक्षैः किन्नरैरुपशोभितम् ।। ततस्तेनैव यानेन पृथिवीं पर्यटन्पुरा ।। ४५ ।। तथा गिरीन्समुद्रांश्च द्वीपाश्च विविधांस्तथा ।। एकदा पर्यटन्राजा नाम्ना चित्ररथो महान् ।। ४६ ।। कैलासमागतस्तत्र ददर्श परमाद्भुतम् ।। तथा सभां महेशस्य गणैश्चैव विराजिताम् ।। अर्धाङ्गलग्नया देव्या शोभितं च महेश्वरम् ।। ४७ ।। निरीक्ष्य देव्या सहितं सदाशिवं कर्पूरगौरं वरमम्बुजेक्षणम् ।। कपर्दिनं चन्द्रकलाविभूषितं गङ्गाधरं देववरं सभायाम् ।। ४८ ।। प्रहस्य राजा च तया गिरीश न्यायान्वितं वाक्यमिद बभाषे ।। वयं च शम्भो विषयान्विताश्च मर्त्यादयः स्त्रीविजितास्तथान्ये ।। न लोकमध्ये च मया विलोकिताश्चालिङ्ग्य कान्तां सदसि प्रविष्टाः ।। ४९ ।। एवं वाक्यं निशम्याथ गिरीशः प्रहसन्निव ।। उवाच न्यायसंयुक्तं सर्वेषामपि शृण्वताम्

।। ५० ।। शिव उवाच ।। [1]मम लोकापवादश्च सर्वेषां न भवेद्यथा ।। भक्षितं कालकूटं [2]मे सर्वेषामपि दुर्जयम् ।। ५१ ।।लोकातीतं च मे वृत्तं तथाप्युपहसत्यसौ ।। ततश्चित्ररथं देवी गिरिजा वाक्यमब्रवीत् ।। ५२ ।। [3]कथं दुरात्मनानेन शङ्करश्चोपहासितः ।। मया सहैव मन्दात्मन्नीक्षसे कर्मणः फलम् ।। ५३ ।। साधूनां समचित्तानामुपहासं करोति यः ।। देवो वाप्यथवा मर्त्यः स विज्ञेयोऽधमाधमः ।। ।। ५४ ।। एते मुनीन्द्राश्च महानुभावास्तथा ह्येते ऋषयो वेदगर्भाः ।। तथैव सर्वे सनकादयो ह्यमी अज्ञाननाशाच्छिवमर्चयन्ति ।। ५५ ।। रे मूढ सर्वेषु जनेष्वभिज्ञस्त्वमेव चैकोऽसि [4]परो न कश्चन।। [5]तस्मादतिप्रौढतरं नरं त्वां संशिक्षये नैव कुर्या यथा त्वम् ।। ५६ ।। अस्मात्पत विमानात्वं दैत्यो भूत्वासु दुर्मते ।। मम शापेन दग्धस्त्वं गच्छाद्य च महीतलम् ।। ५७ ।। एवं शप्तस्तदा देव्या भवान्या राजसत्तमः राजा चित्ररथः सद्यः पपात सहसा दिवः ।। ५८ ।। आसुरीं योनिमापन्नो वृत्रो नाम्नाऽभवत्तदा ।। तपसा परमेणैव त्वष्ट्रा संयोजितः क्रमात् ।। ५९ ।। तपसा ब्रह्मचर्येण शंभो राराधनेन च ।। व्रतेनानेन च बली जेतुं शक्यो न केनचित् ।। ।। ६० ।। आसुरेण हि भावेन व्यङ्गं चक्रे व्रतं यतः ।। तेन च्छिद्रेण चैवासौ पश्चाज्जेयो भविष्यति ।। ६१ ।। तस्मात्त्वमपि देवेन्द्र कृत्वा चेदं व्रतं शुभम् ।। हनिष्यसि महाबाहो वृत्रं नास्त्यत्र संशयः ।। ६२ ।। गुरोस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्युवाचाथ शतक्रतुः ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि प्रदोषस्य च मेऽधुना ।। ६३ ।। गुरुरुवाच ।। कार्तिके श्रावणे[6] प्राप्ते मन्दवारे त्रयोदशी ।। सम्पूर्णातु भवेद्या सा समग्रव्रतसिद्धये ।। ६४ ।। वृषभो राजतः कार्यः पृष्ठे तस्य सुपीठकम् ।। तस्योपरि न्यसेद्देवमुमाकान्तं त्रिलोचनम् ।। ६५ ।। पञ्चवक्त्रं दशभुजमर्धाङ्गे गिरिजां सतीम् ।। सौवर्णीं प्रतिमां कृत्वा ताम्रकुम्भं जलैर्युतम् ।। ६६ ।। पञ्चरत्नफलोपेतं पञ्चपल्लवशोभितम् ।। चन्दनेन सुगन्धेन मिश्रितं शोभितं तथा ।। ६७ ।। रौप्यपात्रं ततः कृत्वा कुम्भस्योपरि विन्यसेत् ।। अशक्तो मृन्मयं कुम्भं वंशपात्रमथापि वा ।। ६८ ।। पूर्णं शरावं संस्थाप्य सौवर्णीं प्रतिमां तथा ।। शक्त्या कृतां प्रतिष्ठाप्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः ।। ६९ ।। पूजयित्वा विधानेन रात्रौ जागरणं चरेत् ।। पुष्पमण्डपिकामादौ कृत्वा श्रद्धासमन्वितः ।। आवाहयेत्प्रथमतो मन्त्रेणानेन सुव्रत ।। ७० ।। एह्येहि त्वमुमाकान्त स्थाने चात्र स्थिरो भव ।। यावद्व्रतं समाप्येत कृपया दीनवत्सल ।। ७१ ।। आवाहनम् ।। आसनेऽस्मिन्नुमाकान्त सुखस्पर्शे सुनिर्मले ।। उपविश्य मृडेदानीं

---

१ सर्वेषां यथा लोकापवादो भवति तथा मम न भवेदित्यन्वयः । २ मयेत्यर्थः । ३ रेदुरात्मन्कथं त्वय्येति पाठः ४ परः न कश्चनेति काकुः ५ तस्मादत्तिस्तब्धमहं कृतं त्वाम् । इति च पाठः । ६ मासि संप्राप्ते इतिपाठः ।

सर्वशान्तिप्रदो भव ।। ७२ ।। आसनम् ।। पाद्यं च ते मया दत्तं पुष्पगन्धसमन्वितम् गृहाण देवदेवेश प्रसन्नो वरदो भव ।। ७३ ।। पाद्यम् ।। ताम्रपात्रस्थितं तोयं फल-गन्धादिसंयुतम् ।। अर्घ्यं गृहाण देवेश मया दत्तं हि भक्तितः ।। ७४ ।। अर्घ्यम् ।। शीतलं निर्मलं तोयं कर्पूरेण सुवासितम् ।। आचम्यतां सुरश्रेष्ठ मया दत्तं हि भक्तितः ।। ७५ ।। आचमनीयम् ।। पञ्चामृतेन स्नपनं तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ।। ७६ ।। गोक्षीरधामन्देवेश गोक्षीरेण मया कृतम् ।। स्नपनं देवदेवेश गृहाण परमेश्वर ।। ।। ७७ ।। दुग्धस्नानम् ।। दध्ना चैव मया देव स्वपनं क्रियते तव।। गृहाण भक्त्या दत्तं मे सुप्रसन्नो भवाव्यय ।। ७८ ।। दधिस्नानम् ।। सर्पिषा देवदेवेश स्नपनं क्रियते मया ।। उमाकान्त गृहाणेदं श्रद्धया सुरसत्तम ।। ७९ ।। घृतस्नानम् ।। इदं मधु मया दत्तं तव तुष्ट्यर्थमेव च गृहाण शम्भो त्वं भक्त्या मम शान्तिप्रदो भव ।। ८० ।। मधुस्नानम् ।। सितया देवदेवेश स्नपनं क्रियते मया ।। गृहाण शम्भो मे भक्त्या सुप्रसन्नो भव प्रभो ।। ८१ ।। शर्करास्नानम् ।। कावेरी नर्मदा वेणी तुङ्गभद्रा सरस्वती । गङ्गा च यमुना चैव ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ।। गृहाण त्वमुमाकान्त स्नानाय श्रद्धया जलम् ।। ८२ ।। स्नानम् ।। एतद्वासो मया दत्तं सोत्तरीयं सुशोभ-नम् ।। गृहाण त्वं सुरश्रेष्ठ मम वासःप्रदो भव ।। ८३ ।। वस्त्रम् ।। यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं च शङ्कर ।। गृहाण परया तुष्ट्या तुष्टिदो भव सर्वदा ।। ८४ ।। उपवीतम् ।। सुगन्धं चन्दनं दिव्यं मया दत्तं तव प्रभो ।। भक्त्या परमया शम्भो सुभगं कुरु मां भव ।। ८५ ।। चन्दनम् ।। मालती चम्पकादीनि कुमुदान्युत्पलानि च ।। बिल्बपत्राणि पूजार्थं स्वीकुरु त्वमुमापते ।। ८६ ।। पुष्पम् ।। धूपं विशिष्टं परमं सर्वौषधिविजृम्भितम् ।। गृहाण परमेशान ममोपरि दयां कुरु ।। ८७ ।। धूपम् ।। दीपं च परमं शम्भो घृतवर्तिसुयोजित। ।। दत्तं गृहाण देवेश ममज्ञानप्रदो भव ।। ८८ ।। दीपम्, ।। शाल्योदनघृतापायसादिमन्वतम् ।। नैवेद्यं विविधंदत्तं भक्त्या मे प्रतिगृह्यताम् ।। ८९ ।। नैवेद्यम् ।। नैवेद्यमध्ये पानीयं मया दत्तं हि भक्तितः ।। स्वीकुरुष्व महादेव ॱसन्नो भव सर्वदा ।। ९० ।। मध्ये पानीयम् ।। उत्तरापोशनार्थं वा आनीतं जलमुत्तमम् ।। गृहाण त्वमुमाकान्त सर्वदुःखनिवारक ।। उत्तरापोशनम् ।। ९१ ।। कर्पूरैलालवङ्गादिपूगीफलसमन्वितम् ।। ताम्बूलं कल्पितं भक्त्या गृहाण गिरिजाप्रिय ।। ९२ ।। तांबूलम् ।। इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।। तेन० ।। ९३ ।। फलम् ।। हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।। दक्षिणा काञ्चनी देव स्थापिता मे तवाग्रतः ।। ९४ ।। दक्षिणाम् ।। दीपावलीमया दत्ता सुवर्तिघृतसंयुता ।। आरार्तिकप्रदानेन मम तेजःप्रदो भव ।। ९५ ।। आरा-र्तिकम् ।। यानि कानि च पापानि० ।।९६ ।। प्रदक्षिणाम् मृत्युञ्जयाय रुद्राय

नीलकण्ठाय शम्भवे ।। अमृतेशायशर्वाय महादेवाय ते नमः ।। ९७ ।। नमस्कारान् सेवंतिकाबकुलचंपकपाटलाब्जैः पुन्नागजातिकरवीररसालपुष्पैः ।। बिल्वप्रवाल-तुलसीदलमालतीभिस्त्वां पूजयामि जगदीश्वर मे प्रसीद ।। ९८ ।। मंत्रपुष्पम् ।। निपत्य दण्डवद्भूमौ प्रणम्य च पुनः पुनः ।। क्षमापयित्वा देवेशं रात्रौ जागरणं चरेत् ।।९९।। गीतवादित्रनृत्याद्यैर्गृहे वा देवतालये ।। वितानमण्डपं* कुर्यान्नाना-वर्णैः समन्वितम् ।। १०० ।। प्रभातायां तु शर्वर्यां नद्यादौ विमले जले ।। स्नात्वा पुनःसमभ्यर्च्य जुहुयात्पायसेन च ।। १ ।।(उमया सहितं रुद्रं पृथगष्टोत्तरं हुनेत् ।। गौरीर्मिमायमंत्रेण त्र्यंबकेण च शंकरम् ।। (आचार्यं च सपत्नीकं वस्त्रालङ्कार-चन्दनैः ।। तोषयित्वा शुचिं दान्तं गां दद्याच्च पयस्विनीम् ।। २ ।। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद्दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ।। दीनानाथांश्च संतर्प्य ह्यच्छिद्रं वाचयेत्ततः ।। ३ ।। लब्ध्वानुज्ञां ब्राह्मणेभ्यो बन्धुभिः सहितः शुचिः ।। हृदि स्मरञ्छिवं भक्त्या भुञ्जीत नियतो व्रती ।। ४ ।। अनेनैव विधानेन कुर्यादुद्यापने विधिम् ।। एवं यः कुरुते भक्त्या प्रदोषव्रतमुत्तमम् ।। ५ ।। शनिवारेण संयुक्तं सोद्यापनविधिं नरः ।। [2]आयुरारोग्यमैश्वर्यंपुत्रपौत्रसमन्वितः ।। ६ ।। शत्रून् विजयते नित्य प्रसादाच्छंकरस्य च ।। तस्मात्त्वमपि देवेन्द्र पूजयस्व सदाशिवम् ।। एवं प्रदो-षविधिना युद्धे वृत्रं विजेष्यसि ।। ७ ।। एवं निशम्य गुरुणा कथितं तदानीमिन्द्रोप्य-नेन विधिना गिरिशं प्रपूज्य ।। लोकं ग्रसन्तमिव दैत्यपतिं प्रवृद्धं तं तत्क्षणादगमय-त्क्षयमीशतुष्ट्या ।। १०८ ।। इति स्कन्दपुराणे केदारखण्डे शनिप्रदोषव्रतकथा संपूर्णा।। मदनरत्ने स्कान्दे प्रकारान्तरम् ।। देव्युवाच ।। देव केन विधानेन प्रदोष-व्रतमुत्तमम् ।। विधातव्यं नरैः स्त्रीभिः सन्तानफलसिद्धये ।। ईश्वर उवाच ।। यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता ।। आरब्धव्यं व्रतं तत्र सन्तानफलसिद्धये ।। ऋणनिर्मोचमार्थाय [3]भौमवारेण संयुता।। सौभाग्यस्त्रीसमृद्ध्यर्थं शुक्रवारेण संयुता।। आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं भानुवारेण संयुता ।। एकवत्सरपर्यन्तं प्रतिपक्षं [4]त्रयोदशी ।। प्रदोषे शिवमभ्यर्च्य नक्तं भोक्ष्यामि शङ्कर ।। प्रातश्चानेन मंत्रेण व्रतसंकल्पमा-चरेत् ।। ततस्तु लोहिते भानौ स्नात्वा सनियमो व्रती ।। पूजास्थानं ततो गत्वा प्रदोषे शिवमर्चयेत् ।। पूजामंत्राः —ॐ भवाय नमः[5]। महादेवाय० रुद्राय० नील-कण्ठाय० शशिमौलिने० उग्राय० उमाकान्ताय० ईशानाय० विश्वेश्वराय०

---

* अयं मण्डपो होमार्थः । २ लभते इति शेषः । ३ यदा शुक्ला त्रयोदशी भौमवारेण युता तदा ऋणनि-र्मोचनार्थाय व्रतमारब्धव्यमित्यन्वयः । एवमुत्तरत्रापि बोध्यम् । ४ त्रयोदश्यामित्यर्थः । छान्दसो विभक्तिलुक् । ५ व्रतार्के तु भवाय रुद्राय नीलकंठाय शशिमौलिने उग्राय भीमाय ईशानाय ।। भवाद्यैः षोडशोपचारः पूजामष्टप्रदक्षिणानमस्कारांश्च कुर्यात् ।। सयावकं च नैवेद्यं साज्यं सफलशर्करमित्यग्रे दत्त्वेत्यादि वर्तते ।

त्र्यंबकाय० त्रिपुरुषाय० त्रिपुरान्तकाय० त्रिकाग्निकालाय० कालाग्निरुद्राय० नीलकण्ठाय० सर्वेश्वराय नमः ।। १६ ।। पञ्चामृतेन 'स्नपनमभिर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।। दधिभक्तेन नैवेद्यं पक्वान्नैर्घृतसंयुतम् ।। दत्त्वा सुमुखवासं च तांबूलं क्रमुकादिकम् ।। समर्पयेदष्टदिक्षु दीपानाज्यसमन्वितान् ।। यथा भवान्समस्तानां पशूनां पापमोचकः ।। तथा व्रतेन संतुष्टः पुत्रं देहि सुलक्षणम् ।। ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः ।। भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरान्तानि यानि च ।। अण्डमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्रदोषे गोवृषस्य तु ।। स्पृष्ट्वा तु वृषणौ तस्य शृङ्गमध्ये विलोक्य च ।। पुच्छं च ककुदं चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। निवेद्यं कर्मजातं च दद्याद्वित्तानुसारतः ।। दक्षिणा ब्राह्मणेभ्यश्च ततो मौनं विसर्जयेत् ।। एवं संवत्सरं कुर्यात्त्रयोदश्यामिदं व्रतम् ।। अथवा मन्दवारेण युक्ता एवं त्रयोदशी ।। यश्चतुर्विंशतिं कुर्याद्यथोक्तफलमाप्नुयात् ।। इति मदनरत्नोक्तं प्रकारान्तरम् ।।

शनिप्रदोष व्रत--स्कन्दपुराणमें कहा गया है (कार्तिक या श्रावणकी शनिवारी त्रयोदशीके दिन क्रमशः पूर्वा परा जया ग्रहण करनी चाहिये । यदि उसकी प्रदोष व्याप्ति हो तो) लोमश बोले कि, पहिले वृत्रादिक दैत्योंके साथ महायुद्ध होते हुए इन्द्रने, पानीके फेनसे बली नमुचिको मार दिया ।।१।। देवोंकी मारसे भगेहुए दैत्योंको देखकर वृत्र अत्यन्त क्रोधित होकर युद्ध करनेके लिये मैदानमें आया ।।२।। उस समय उस परम तेजस्वीने कालकी अग्निके समान परम वेगवान् अपने रूपको करके मौन आसमानको पूरते हुए बढाना प्रारंभ किया ।।३।। उसे देख इन्द्रादिक सब देव अत्यन्त भयभीत होकर किंकर्तव्य विमूढ होगये तब उनसे बृहस्पतिजी बोले ।।४।। कि, वैरियोंका नाश करनेवाला तेजस्वी वीर वृत्र, उग्रतप और नियमव्रतोंसे किसीभी तरह जीता नहीं जासकता ।।५।। उसने विधिपूर्वक शिवकी आराधना की है, तुम परम पूज्य अव्यय शंकर भगवान्‌की विधिपूर्वक व्रतसे आराधना करो थोडेही समयमें वृत्रको जीत लोगे ।।६।। देव बोले कि, हे गुरो ! किस विधानसे एवं कैसे व्रतसे । जय चाहनेवाले हमें गौरीशकी आराधना करनी चाहिये ? हे सुराचार्य्य ! यह हमें बता दीजिये क्योंकि ,आपही ।।७।। हमारी परमगति हैं यह सुन गुरु बोले कि, कार्तिकादिक मासोंमें शनिवारी त्रयोदशी हो ।।८।। वहभी विशेष करके शुक्लपक्षमें हो तो सब कामोंके करनेवाली एवं परम शुभ है । उसमें प्रदोषके समय शिव लिंग ।।९।। पूजना चाहिये, हे इन्द्र इससे सब काम पूरे होते हैं मध्याह्नके समय तिल और आमलेके साथ स्नान करके ।।१०।। गन्ध पुष्प और फलोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये, पीछे प्रदोषके समय स्थावरलिंग पूजना चाहिये ।।११।। वह स्वयंभुक्ता स्थापित किया हुआ अथवा किसी पुरुषका स्थयपित या अपौरुषेय हो। चाहे जन विजन अरण्य और तपोवन कहीं भी हो ।।१२।। ग्रामसे बाहिरके लिङ्गका माहात्म्य ग्रामसे सौगुना अधिक होता है, बाहिरसे सौगुना अधिक पुण्य वनके पूजनमें होता है ।।१३।। वनके पूजनेसे पर्वतके लिंगपूजनमें सौगुना अधिक पुण्य है । पर्वतकेसे अयुतगुणा तपोवनके लिङ्गपूजनमें है ।।१४।। काशी आदि पवित्र तीर्थ स्थानोंमें शिवलिङ्गके पूजनेसे अनन्त फल होता है । निपुण पुरुष इस प्रकार तीर्थ और लिंगोंका विशेष ।।१५।। तथा शिव पूजाकी विधि जानकर शंभुका पूजन करे । कूप, वापी, तडाग, देवखात, नदी इनपर ।।१६।। क्रमसे सौगुणा अधिक पुण्य है, एवं गंगापर अनन्त पुण्य है । बिना पांच पिण्डोंके उठाये दूसरेके पानीमें स्नान न करे ।।१७।। इसके बाद प्रदोषके समयमें स्नान करके मौन हो जाय श्रीसदाशिवको एक हजार दीपक घीके देने चाहिये ।।१८।। शक्ति न हो

१ कृत्वेति शेषः ।

तो सौ वा बत्तीसही दीपक दे, महादेवजीके संतोषके लिये ये दीपक घीके होने चाहिये ।।१९।। अनेक तरहके फल, धूप नैवेद्य एवं सोलहों उपचारोंसे लिंगरूपी सदाशिव ।।२०।। प्रदोषके समय मनुष्योंको, सारे कामोंकी सिद्धिके लिये पूजने चाहिये । जिसे कि, स्तुतियां अति ही प्यारी हैं वह रुद्र सौ नामोंसे स्तुति करने योग्य है ।।२१।। रुद्र, भीम, नीलकंठ, वेधा, कपर्दी, सुरेश, व्योमकेश ।।२२।। वृषध्वज, सोम, सोमनाथ, दिगम्बर, भर्ग, उमाकान्त, कर्पादि ।।२३।। तपोमय, व्यास, शिपिविष्ट, व्यालप्रिय, व्याल, व्यालपति, महीधर, व्याघ्र, पशुपति, त्रिपुरान्तक, सिंह, शार्दूल, ऋष ।।२४–२५।। मित, अमित, नाथ, सिद्ध, परमेष्ठी, कामान्तक, बुद्ध, बुद्धिपति ।।२६।। कपोत, विशिष्ट, परमात्मा, वेदगीत, गुप्त, वेदगुह्य ।।२७।। दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्य, मृड, जगत्प्रतिष्ठ, व्योमरूप, ।।२८।। गर्वकृत, सुमह, आदित्य, अन्धकारसुभेदी, नीललोहित, शुक्ल, चण्ड, मुण्डप्रिय ।।२९।। भक्तिप्रिय,देव, ज्ञात अज्ञात, अव्यय, महेश,महादेव, हर।।३०।।त्रिनेत्र, त्रिमेव,वेदाङ्ग, अर्थ, अर्थरूप, परमार्थ ।।३१।। विश्वरूप, विश्व, विश्वनाथ, शंकर काल, कालावयव रूपी, ।।३२।। अरूप, विरूप, सूक्ष्मासूक्ष्म, श्मशानवासी, कृत्तिवासा ।।३३।। शशाङ्कशेखर, रुद्रभूमिश्रय, दुर्ग, दुर्गपर, दुर्गावयव, साक्षी ।।३४।। लिंगरूप, लिंग, लिंगपति, प्रभारूप, प्रणवार्थ ।।३५।। कारण कारण, मृत्युञ्जय, आत्मभवस्वरूपी, त्रियंबक, असितकंठ, भर्ग, गौरीपति, मंगल हेतु ।।३६।। ये शिवजीके सौ नाम हैं । एक एक नामके साथ 'के लिये नमस्कार' लगा देना चाहिये । जैसे रुद्रनाम है इसके साथ उक्त वाक्य लगा देनेसे रुद्रके लिये नमस्कार ऐसा होजाता है । (इनमेंसे बहुतसे नामोंका निर्वचन कोश आदिने किया है । अधिक लिखनेसे अनावश्यक विस्तार बढता है ।) इन सौ नामोंको सदा करना चाहिये ।एवम् सावधानीके साथ प्रदक्षिणा भी सौही होनी चाहिये ।।३७।। ये शिवकी प्रसन्नताके लिये प्रदोषके समय होनी चाहिये । हे परमबुद्धिमान इन्द्र ! यह व्रत मैंने तुमें बतादिया है ।।३८।। हे महाभाग ! पहिले इस व्रतको करके पीछे युद्ध कर, भगवान शिवके प्रसादसे तेरी जीत आदि सब होजायेंगी ।।३९।। इन्द्र बोला कि, वृत्रने शिवकी आराधना कैसे की, कैसे वरदान मिला एवं पहिले वो कौन था ? ।।४०।। गुरु बोले कि, परम तपस्वी यह वृत्र पहिले तपसे गन्धमादन पर्वतपर शिवको प्रसन्न करने लगा ।।४१।। यह पहिले चित्ररथ नामका राजा था । चित्ररथका वन जो कि, हे इन्द्र ! तेरीपुरीके समीप है, ऐसा तू समझ ।।४२।। इस वनमें परम तेजस्वी महाभाग महर्षि रहते हैं । इस कारण परम मंगलोंका देनेवाला वो वन चैत्ररथके नामसे प्रसिद्ध है।।४३।। उसे शिवजीने सिद्ध और चारणोंसे संयुक्त किंकिणी लगी हुई इच्छानुसार गमन करनेवाला आश्चर्यकारी एक विमान दिया था ।।४४।। जो गन्धर्व,अप्सर, यक्ष और किन्नरोंसे सुशोभित था कुछ दिन बाद उसी विमानसे पृथिवी परिक्रमा करता हुआ ।।४५।। अनेक तरहके पर्वत, समुद्र और द्वीपोंके ऊपर विचरता हुआ वो महान् चित्ररथ राजा ।।४६।। कैलास चला आया वहां उसने बडा आश्चर्य देखा कि, शिवजीकी सभामें सब गण बैठे हुए हैं तथा पार्वतीजी आधे शरीरमें लगी हुई हैं, ऐसी हालतमें शिवजी भी बैठे हुए हैं ।।४७।। राजाने उस सभामें कपूरके समान श्वेत, कमलकेसे नेत्रोंवाले, जटाधारी, चन्द्रमाकी कलासे विभूषित, शिरपर गंगा धारण किये हुए शिवजीको, देवीसे आधे अंगको शोभित हुए देखा ।।४८।। राजा हँसकर शिवजीसे न्यायपूर्वक बोला कि, हे शिव ! हम मनुष्यादिक तो विषयोंमें लगेहुए स्त्रियोंके जीते हुए हैं ही, तथा दूसरोंका भी यही हाल है पर लोकमें मैंने ऐसा नहीं देखा कि, स्त्रीका आलिंगन करतेहुए ही सभामें बैठें ।।४९।। इन वचनोंको सुन सबके सुनते हुए महादेवजीने हँसते हुए कहा ।।५०।। कि, जैसा सबका लोकापवाद होता है, ऐसा मेरा नहीं होता. जिसे कोई नहीं खा सकता था वह कालकूट मैंने खाया था ।।५१।। मेरी बात दुनियाँसे निराली है, तो भी मेरी यह हँसी करता है । इसके पीछे चित्ररथसे पार्वतीजी बोलीं कि ।।५२।।इस दुष्टने मेरे साथ शिवजीकी क्यों हँसी की? हे मन्द ! तू अब ही अपनी करनीका फल पायेगा ।।५३।। समचित्तवाले साधुओंकी जो हँसी करता है चाहें वह देव हो, चाहें मनुष्य हो, वह अधर्मोकाभी अधम है ।।५४।। ये महानुभाव मुनीन्द्र तथा ये वेदगर्भ ऋषिगण और सनकादिक, अज्ञान नाश होजानेके कारण शिवजीकोही पूजा किया करते हैं ।।५५।। ए

मूर्ख ! सबोंमें तुम्ही एक बुद्धिमान है, दूसरा कोई नहीं है, इस कारण अत्यन्त चतुर तुझे मैं वह सिखाऊंगी जिससे फिर कभी ऐसा न करें ।।५६।। हे दुर्मते ! तू मेरे शापसे दग्ध होकर इस विमानसे गिर, दैत्य हो भूमिपर जा ।।५७।। इस प्रकार चित्ररथको दुर्गाका शाप हुआ, वह तपस्वी एकदम दिवसे गिरा ।।५८।। आसुरी योनिको प्राप्त होकर वृत्र होगया, क्रमशः परम तपसे उसे त्वष्टाने संयुक्त किया है ।।५९।। तप ब्रह्मचर्य्य और शिवजीकी आराधनासे वह बली जीता जा सकता है, दूसरी तरह नहीं ।।६०।। आसुर भावके कारण उसने अंगशून्य व्रतको किया है, इसकारण पीछे जीता जा सकेगा ।।६१।। इस कारण हे महाबाहो इन्द्र । इस पवित्र व्रतको करके वृत्रको मारलेगे इसमें सन्देह नहीं है ।।६२।। गुरुके वचन सुनकर इन्द्र बोलाकि, हे गुरो । इस प्रदोषव्रतकी मुझे उद्यापन विधि कहिए ।।६३।। गुरु बोले कि, कार्त्तिक या श्रावणकी शनिवारी त्रयोदशी संपूर्ण हो तो वह सारे व्रतकी विद्धिके लिए उपयुक्त है ।।६४।। चांदीका वृष बनाये, उसकी जीनभी चांदीकी हो, उसपर उमापति तीन नेत्रोंवाले देवको स्थापित करे ।।६५।। पाँच मुख हों, दश भुजाएँ हों, आधेअंग में गिरिजादेवी सुशोभित हों, प्रतिमा सोनेकी हो, तांबेके कुम्भ जलसें शोभित हों ।।६६।। वह कुम्भ पञ्चरत्न और फशोंके साथ हो, पांच पल्लवोंसे शोभित हो, सुगंधित चन्दनसे मिश्रित और शोभित हो।।६७।।चांदीका पात्र कुम्भपर रखना चाहि ये, यदि शक्ति न होतो मिट्टीकाकुम्भ और वांसका पात्र होना चाहिए ।।६८।। भरे हुए सकोरे को रख शक्तिके अनुसार बनाई हुई सोने की प्रतिमाको उसपर वंध प्रतिष्ठित करके वस्त्रमाला और आभूषणोंसे भूषित करके ।।६९।। विधिपूर्वक पूजकर रातमें जागरण करे, पहिले श्रद्धाके साथ फूलोंकी मंडपिका बनाकरके हे सुव्रत ! पहिले इस मन्त्रसे आवाहन करे ।।७०।। हे उमाकान्त ! हे दीनोंपर प्यार करनेवाले ! जब तक यह व्रत पूरा हो तबतक इस स्थानपर स्थिर हो जा ।।७१।। यह आवाहन हुआ । हे उमाकान्त ! बैठते ही आनंद देनेवाले निर्मल इस आसनपर विराज जाइये, हे-आनंदरूप ! इस समय सब शान्तियोंके देनेवाले होजाओ ।।७२।। इससे आसन दे मैंने गन्ध पुष्पोंके साथ भक्तिपूर्वक पाद्य दिया है, हे देवदेवेश ! ग्रहण करिए और प्रसन्न हूजिये ।।७३।। इससे पाद्य दे । फल और गन्धसे युक्त, ताम्बेके पात्रमें पानी रखा है । हे देवेश ! मैंने भक्तिसे अर्घ दिया है ग्रहण करिये ।।७४।। इससे अर्घ्य दे । हे सुरश्रेष्ठ ! कपूरसे सुगंधित किया शीतल निर्मल नीर मैंने भक्तिसे रख दिया है आचमन कीजिए ।।७५।। इससे आचमन करावे । भिन्न भिन्न विधानके मन्त्रोंसे पञ्चामृतसे स्नान करावे ।।७६।। वे मन्त्र ये हैं कि हे गोक्षीरधामन् देवेश । गौके क्षीरसे मैंने आपके स्नानकी तैयारी की है, हे परमेश्वर ? आप स्नान करें, इस मन्त्रसे दूधसे स्नान करावे ।।७७।। मैं आपका भक्तिसे दहीसे स्नान कराता हूं, अव्यय आप इसे ग्रहण करें एवं प्रसन्न हों ।।७८।। इससे दहीका स्नान करावे । हे सुरश्रेष्ठ उमाकान्त ? मैं श्रद्धा भक्तिसे आपको घीसे न्हवाता हूं आप ग्रहण करिये ।।७९।। इससे घृतस्नान करावे । हे प्रभो ! आपकी तुष्टिके लिए यह मधु मैंने दिया है हे शंभो ! इसे आप ग्रहण करके मुझे शान्ति देनेवाले हों ।।८०।। इस मन्त्रसे मधुस्नान इस मन्त्रसे मधु, सिताया शर्करा स्नान करावे ।।८१।। कावेरी, नर्मदा, वेणी, तुङ्गभद्रा, सरस्वती, गङ्गा और यमुना इनसे स्नानके लिए श्रद्धासे लाया हुआ जल, हे हमाकान्त ! स्नानको ग्रहण करिये ।।८२।।इससे स्नान करावे। सुन्दर उत्तरीय और वस्त्र मैंने आपके लिए दिये हैं, इन्हें ग्रहण करिये एवं मुझे वस्त्र देनेवाले बन जाइये ।।८३।। इससे वस्त्र दे । हे शंकर ! मैंने सोनेका उपवीत दिया है । आप परम प्रसन्नताके साथ ग्रहण करिये । मुझे प्रसन्नता देनेवाले बन जाइये ।।८४।। इससे उपवीत दे । हे प्रभो ! सुभगदिव्यचन्दन मैंने आपको परमभक्तिसे दिया है, हे-शम्भो ! मुझे सुभग करिये ।।८५।। इससे चन्दन दे । हे-उमापते ! मालती और चंपकादिक, उत्पल, कुमुद तथा विल्वपत्र पूजाके लिए लाया हूं आप स्वीकार करें ।।८६।। उससे पुष्प समर्पण करे । यह साधारण धूप नहीं है इसमें औषधियां मिली हुई हैं । हे परमेश्वर ! मेरे ऊपर कृपाकरके इसे स्वीकार करिए ।।८७।। इससे धूप चढावे । हे शम्भो ! घीवत्ती पडा हुआ यह श्रेष्ठ दीपक है, मैंने आपको दिया है आप ग्रहण करिये, हे देवेश ! मुझे ज्ञान देनेवाले हो जाओ ।।८८।। इससे दीप चढावे, शाल्योदन, घृतके अनूप और पायस आदिके साथ अनेक तरहका नैवेद्य मैंने भक्तिसे आपको दिया है, ग्रहण करिये ।।८९।। इससे नैवेद्य चढावे । हे महादेव ! नैवेद्यके बीचमें मैं भक्ति पूर्वक पानी दे रहा हूं आप स्वीकार कीजिए और सदा प्रसन्न

होइये ।।९०।। इससे बीचमें पानीय दे । पीछे पीने के लिए उत्तम पानी लाया गया है, हे सब दुखोंके निवारण करनेवाले उमाकान्त । ग्रहण करिए ।।९१।। इससे उत्तरापोशन करावे । कपूर, एला, लवङ्ग और सुपारी जिसमें पडी हुई हैं, ऐसा पान मैंने भक्तिसे तयार किया है हे गिरिजाप्रिय ! ग्रहण करिये ।।९२।। इससे पान दे । 'इदं फलं ।।९३।।' इससे फल दे । 'हिरण्यगर्भ ।।९४।।" इससे दक्षिणा दे । अच्छी बत्ती और घी जिनमें पडाहुआ है, ऐसी दीपवाली मैंने दी है । इस आरतीके प्रदानसे मुझे तेज देनेवाले होजाओ ।।९५।। इससे आर्तिक्य देना चाहिये । 'यानि कानि च ।।९६।।' इससे प्रदक्षिणाकरे तुम्र मृत्युंजय, रुद्र, नीलकंठ, शम्भु, अमृतेशान, शर्व, महा देवके लिए नमस्कार है ।।९७।। इससे नमस्कार समर्पणकरे । सेवन्तिका, बकुल, चंपक पाटल, कमल, पुंनाग, जाती, करवीर, रसाल, बिल्व, प्रबाल, तुलसीदल और मालतीसे मैं तुम्हें पूजता हूं हे जगदीश्वर ! मुझपर प्रसन्न होजा ।।९८।। इससे मंत्रपुष्प समर्पण करना चाहिये । दण्डकी तरह भूमिमें वारबार गिरकर देवेशसे क्षमापन कराकर रातमें जागरण करना प्रारंभ करदे ।।९९।। वा घरमें वा देवमंदिरमें गाने वजाने और नाचनेके साथ होना चाहिये, होमके लिये मंडप बनावे उसका अनेक वर्णोंका बितान होना चाहिये ।।१००।। एकदम प्रातः नदी आदिके निर्मल पानीमें स्नान करके पूजा करे खीरसे हवन करे ।१०१।। उमासहित रुद्रको १०८ आहुति दे "गौरीर्मिमाय" इससे उमाको एवं "ओं त्र्यम्बकेण" इससे शंकरको दे, सुचिदान्त सपत्नीक आचार्य्यको वस्त्र अलंकार और चन्दनसे तुष्ट करके दूध देनेवाली गऊ दे ।।१०२।। पीछे ब्राह्मण भोजन करा दक्षिणासे प्रसन्न करे, दीन और अनाथोंको तृप्त करके व्रत पूरा हो ऐसा कहलाये ।।१०३।। ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर पवित्र हो भाइयोंके साथ हृदयमें शंकरका भक्तिपूर्वक ध्यान करता हुआ व्रती नियमपूर्वक भोजन करे ।।१०४।। इसी विधिसे उद्यापन करना चाहिये । जो इस प्रकार भक्तिके साथ उत्तम प्रदोष व्रत करता है ।।०५।। जिसमेंकी शनिवार हो तथा उसीमें उद्यापन विधि करता है वह आयुआरोग्य, पुत्र और पौत्रोंसे रामन्वित होकर।।१०६।।शिवजीकी कृपासे सदाही वैरियोंपर विजय हासिल करता है । इस कारण हे देवेन्द्र ! तुम भी सदाशिवका पूजन करो इस प्रकार आप प्रदोषकी व्रत विधिके कार्य करनेसे युद्धमें वृत्रको जीत लोगे ।।१०७।। गुरुने इस प्रकार प्रदोषव्रत कहा इन्द्रने इसे करके विधिसे शिवजीका पूजन किया । जो ऐसा मालूम होता था कि, लोकोंको ग्रस जायगा ऐसे बढे हुए वृत्रको क्षण मात्रमें मार दिया यह शिवजीकाही प्रसाद था ।।१०८।। यह स्कन्दपुराणके केदारखण्डकी कही हुई शनिप्रदोषके व्रतकी कथा पूरी हुई ।। प्रकारान्तरसे प्रदोषव्रत—स्कन्दपुराणसे मदनरत्नने लिखा है । देवी बोली कि, हे देव ! सन्तानकी वृद्धिके लिये स्त्री पुरुषोंको श्रेष्ठ प्रदोष व्रत किस विधानसे करना चाहिये ? शिवजी बोले कि, जब शुक्ला त्रयोदशी शनिवारी हो सन्तानफलकी वृद्धिके लिये उसमें व्रत करना चाहिये । ऋण मोचनके लिये मंगलवारी करनी चाहिये । सौभाग्य स्त्री और समृद्धिके लिये शुक्रवारी करनी चाहिये । आरोग्यताके लिये रविवारी करनी चाहिये । हे शंकर ! एक वर्षतक प्रत्येक पक्षकी त्रयोदशीके दिन प्रदोषमें शिवपूजन करके भोजन करूंगा, प्रातःकाल इस मंत्रसे व्रत संकल्प करना चाहिये । जब सूर्य्य लाल होने लगे उस समय स्नान नियम किया हुआ व्रती, पूजा स्थानमें जाकर प्रदोषके समय शिवजी की पूजा करे । पूजामंत्र–भव, महादेव, रुद्र, नीलकंठ, शशिमौलि ,उग्र, उमाकान्त, ईशान, विश्वेश्वर, त्र्यम्बक, त्रिपुरुघ, त्रिपुरान्तक, त्रिकाग्निकार, कापोग्निरुद्र, नीलकंठ सर्वेश्वर ये सोलह नाम हैं, प्रत्येकके साथ 'के लिये नमस्कार है' यह लगानेसे इनके मूलके नाममंत्रका अर्थ होजाता है । नाममंत्र मूलमें लिखे हुए हैं उन सबके आदिमें 'ओम्' लगाना चाहिये । इन मंत्रोंसे शिवजीको पंचामृतसे स्नान करावे । दधिभक्त और घीका पका हुआ नैवेद्य होना चाहिये । मुखकी शुद्धीके लिये सुपारी और पान दे । आठों दिशाओंमें घीके दीये दे । जैसे आप सब पशु (अज्ञानी जीवोंके) पापोंको नष्ट करनेवाले हैं उसी तरह इस व्रतसे प्रसन्न होकर एक सुयोग्य पुत्र दीजिये ।। मेरे, ऋण, रोगादि, दारिद्रच, पाप, क्षुत् अपमृत्यु, भय, शोक और मनस्ताप सदा नष्ट हों । सागरसे लेकर जितने तीर्थ इस पृथिवीपर हैं वे सब प्रदोषके समय गोवृषके अण्डकोशोंमें रहा करते हैं इस कारण उसके वृषण छू शृंगके बीच पुच्छ और गर्दनको देखकर सब पापोंसे छूट जाता है । कर्म मात्रका निवेदन करके वित्तके अनुसार ब्राह्मणको दक्षिणा दे । इसके

बाद मौनको छोड दे । इस प्रकार एक सालतक इस व्रतको करे अथवा जिस दिन शनिवार त्रयोदशी हो । इस प्रकार जो चौबीस व्रत करे उसे कहा हुआ फल मिलता है । यह मदनरत्नका कहा हुआ प्रकारान्तरसे शनि प्रदोष व्रत पूरा हुआ ।।

अथ [1]प्रदोषव्रतम्

सूत उवाच ।। काचिच्च विप्रवनिता सपुत्रा दुःखकर्शिता ।। शाण्डिल्यस्य मुखाच्छ्रुत्वा प्रदोषे शिवपूजनम् ।। १ ।। तं प्रणम्याथ पप्रच्छ शिवपूजाविधिं क्रमात् ।। २ ।। शाण्डिल्य उवाच ।। पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्दिवा ।। घटित्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् ।। ३ ।। शुक्लाम्बरधरो भूत्वावाग्यतो नियमान्वितः ।। कृतसन्ध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत् ।। ४ ।। देवस्य पुरतः सम्यगुपलिप्यनवाम्भसा ।। विधाय मण्डपं रम्यं धौतवस्त्रादिभिर्वृतम् ।। ।। ५ ।। वितानाद्यैरलंकृत्य फलपुष्पनवाङकुरैः ।। विचित्रं पद्ममुल्लिख्य वर्णपञ्चकसंयुतम् ।। ६ ।। तत्रोपविश्य तु शुभे सूपविष्टः स्थिरासने।। सम्यक्सम्पादिताशेषपूजोपकरणः शुचिः ।। ७ ।। आगमोक्तेन मन्त्रेण पीठमामन्त्रयेत्सुधीः ।। ततः कृत्वात्मशुद्धिं च भूतशुद्ध्यादिकं क्रमात् ।। ८ ।। प्राणायाम त्रयं कुर्याद्बीजमन्त्रैः सबिन्दुकैः।।मातृका न्यस्य विधिवद्ध्यात्वा तां देवतां पराम् ।। ९ ।।वामभागे गुरुं नत्वा दक्षिणे गणपं जयेत् ।। अंसोरुयुग्मे धर्मादीन्न्यस्य नाभौ च पार्श्वयोः ।। १० ।।अधर्मादीननन्तादीन् हृदि पीठमनुं न्यसेत् ।। आधारशक्तिमारभ्य ज्ञानात्मानमनुक्रमात् ।। ११ ।। उक्तक्रमेण विन्यस्य हृदये साधुभाविते ।। नवशक्तिमये रम्ये ध्यायेद्देवमुमापतिम् ।। १२ ।। चन्द्रकोटिप्रतीकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम् ।। आपिङ्गलजटाजूटं रत्नमौलिविराजितम् ।। १३।। नीलग्रीवमुदाराङ्गं नानाहारोपशोभितम् ।। वरदाभयहस्तं च हरिणं च परशवधम् ।। १४ ।। दधानं नागवलयं केयूराङ्गदभूषणम् ।। व्याघ्रचर्मपरीधानं रत्नसिंहासने स्थितम् ।। १५ ।। ध्यात्वा तद्वाम भागे च गिरिजां भक्तवत्सलाम् ।। भास्वज्जपाप्रसूनाभामुदयार्कसमप्रभाम् ।। १६ ।। विद्युत्कञ्जनिभां तन्वीं मनोनयननन्दिनीम् ।। बालेन्दुशेखरां स्निग्धां नीलाकुञ्चितकुन्तलाम् ।।१७।। भृङ्गसंघातरुचिरनीलालकविराजिताम् ।। मणिकुण्डलविद्योतमुखमण्डलविभ्रमाम् ।। ।। १८ ।। नवकुंकुमपङकाभां कपोलतलदर्पणाम् ।। मधुरस्मितविभ्राजदरुणाधरपल्लवाम् ।। १९ ।। कम्बुकण्ठीं शिवामुद्यत्कुचपङकजकुड्मलाम् ।। पाशांकुशाभयाभीष्टविलसन्तीं चतुर्भुजाम् ।। २० ।। अनेक रत्नविलसत्कङकणाङ्गदशोभिताम् ।। वलित्रयेण विलसद्धेमकाञ्चीगुणान्विताम् ।। २१ ।। रक्तमाल्याम्बरधरां दिव्यचन्दनचर्चिताम् ।। दिक्पालवनितामौलिसन्नद्धांघ्रिसरोरुहाम् ।। २२ ।।

[1] इदं व्रतं प्रतार्कादावदृष्टत्वादन्याधाराभावाच्च यथैव स्थापितम् ।

रत्नसिंहासनारूढां सर्पराजपरिच्छदाम् ।। एवं ध्यात्वा महादेवं देवीं च गिरिजां शुभाम् ।। २३ ।। न्यासक्रमेण सम्पूज्य देवं गन्धादिभिः क्रमात् ।। पञ्चभिर्ब्रह्मभिः कुर्यात्प्रोक्तस्थानेषु वा हृदि ।। २४ ।। पृथक् पुष्पाञ्जलिं देहे मूलेन च हृदि त्रयम् ।। पुनः स्वयं शिवो भूत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ।। २५ ।। ततः सम्पूजयेद्देवं बाह्यपीठे पुनः क्रमात् ।। सङ्कल्पं प्रवदेत्तत्र पूजारम्भे समाहितः ।। २६ ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयेद्धृदि शङ्करम् ।। ऋणपातकदौर्भाग्यदारिद्र्यविनिवृत्तये ।। २७ ।। अशेषाघविनाशाय प्रसीद मम शंकर ।। दुःखशोकाग्निसंतप्तं संसारभयपीडितम् ।। २८ ।। बहुरोगाकुलं दीनं त्राहि मां वृषवाहन ।। आगच्छ देवदेवेश महादेवाभयंकर ।। २९ ।। गृहाण सह पार्वत्या त्वं च पूजां मया कृताम् ।। इति संकल्प्य विधिवद्बाह्यपूजांसमाचरेत् ।। ३० ।। गुरुं गणपतिं चैव यजेत्सव्यापसव्ययोः । क्षेत्रेशमीशकोणे तु यजेद्वास्तोष्पतिं क्रमात् ।। ३१ ।। वाग्देवीं च यजेत्तत्र ततः कात्यायनीं यजेत् ।। धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं च नमोऽन्तकैः ।। ३२ ।। स्वरैरीशादिकोणेषु पीठपादेष्वनुक्रमात् ।। आभ्यां बिन्दुविसर्गाभ्यामधर्मादीन्प्रपूजयेत् ।। ३३ ।। गात्ररूपां चतुर्दिक्षु मध्येऽनन्तं सतारकम् । सत्वादित्रिगुणांस्तन्तुरूपान् पीठे तु विन्यसेत् ।। ३४ ।। अत ऊर्ध्वच्छदेमायालक्ष्म्यौ देव्या शिवेन च ।। तदन्ते चाम्बुजं भूयः सकलं मण्डलोत्तमम् ।। ३५।। यत्र केसरकिञ्चल्कव्याप्त तत्राक्षरैः क्रमात् ।। आत्मत्रयमथाभ्यर्च्य मध्ये मण्डपमादरात् ।।३६।। वामां ज्येष्ठां च गौरीं च भावार्थे दिक्षु पूजयेत् ।। वामाद्या नवशक्तीश्च नवस्वरयुता यजेत् ।। ३७ ।। हृदि बीजत्रयाद्यैश्च पीठमन्त्रेण चार्चयेत् ।। आवृत्तिः प्रथमाङ्गैस्तु पञ्चभिर्मूर्तिपंक्तिभिः ।। ३८ ।। त्रिंशद्भिर्मूर्तिभिश्चाङ्गैर्निधिद्वयसमन्वितैः ।। अनन्ताद्यैः पराद्यान्यामातृभिश्च वृषादिभिः ।। ३९ ।। सिद्धिभिश्चाणिमाद्याभिरिन्द्राद्यैश्च तदायुधैः ।। वृषभक्षेत्रचण्डेश दुर्गाश्च स्कन्दनन्दिनौ ।। ४० ।। गणेशसैन्यपौ चैव स्वस्वलक्षणलक्षितौ ।। अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।। ४१ ।। ईशित्वं च वशित्वं च प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ।। अष्टैश्वर्याणि चोक्तानि तेजोरूपाणि केवलम् ।। ४२ ।। पञ्चभिर्ब्रह्मभिः पूर्वं हल्लेखाद्यादिभिः क्रमात् ।। अङ्गैरुमाद्यैरिन्द्राद्यैः पूर्वोक्तैर्मुनिभिः स्तुतैः ।। ४३ ।। उमां चण्डेश्वरादींश्च पूजयेदुत्तरादितः ।। एवमावरणैर्युक्तं तेजोरूपं सदाशिवम् ।। ४४ ।। उमया सहितं देवमुपचारैः प्रपूजयेत् ।। सुप्रतिष्ठितशङ्खस्य तीर्थैः पञ्चामृतैरपि ।। ४५ ।। अभिषिच्य महादेवं रुद्रसूक्तैः समाहितः ।। कल्पयेद्वैदिकैर्मन्त्रैरासनाद्युपचारवान् ।। ४६ ।। आसनं कल्पयेद्धैमं दिव्यवस्त्रसमन्वितम् ।। अर्घ्यमष्टगुणोपेतं पाद्यं शुद्धोदकेन च ।। ४७ ।। तेनैवाचमनं दद्यान्मधुपर्कं मधूत्तमम् ।।

पुनराचमनं दत्त्वा स्नानमन्त्रैः प्रकल्पयेत् ॥४८॥ वासान्ते चोपवीतं च भूषणानि निवेदयेत् ॥ गन्धमष्टाङ्गसंयुक्तं सुपूतं विनिवेदयेत् ॥ ४९ ॥ ततश्च बिल्वमन्दारकह्लारसरसीरुहम् ॥ धत्तूरं कर्णिकारं च द्रोणपुष्पं च मल्लिकाम् ॥ ५० ॥ अपामार्गं च तुलसीमाधवीचम्पकादिकम् ॥ बृहतीकरवीराणि यथालब्धानि भामिनि ॥ ५१ ॥ निवेदयेत्सुगन्धीनि माल्यानि विविधानि च धूपं कालागुरूत्पन्नं दीपं च विमलं शुभम् ॥ ५२ ॥ अथ पायसनैवेद्यं सवृतं सोपदंशकम् ॥ मोदकापूपसंयुक्तं शर्करागुडसंयुतम् ॥ ५३ ॥ मधुरान्नं दधियुतं जलपानसमन्वितम् ॥ तेनैव हविषा वह्नौ जुहुयान्मन्त्रभाविते ॥ ५४ ॥ आगमोक्तेन विधिना गुरुवाक्यनियन्त्रितः ॥ नैवेद्यं शम्भवे भूयो दत्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् ॥ ॥५५॥ फलं नीराजनं दिव्यं छत्रं दर्पणमुत्तमम् ॥ समर्पयित्वा विधिवन्मन्त्रै र्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ ५६ ॥ यद्यशक्तः स्वयं निःस्वोयथाविभवमर्चयेत् ॥ भक्त्या दत्तेन गौरीशः पुष्पमात्रेण तुष्यति ॥ ५७ ॥ अथाङ्गभूतान्सकलान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ॥ स्तवैर्नानाविधैः स्तुत्वा साष्टाङ्गं प्रणमेद्‌बुधः ॥ ५८ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य वृषचण्डेश्वरादिकान् ॥ पूजां समर्प्य विधिवत्प्रार्थयेद्‌गिरिजापतिम् ॥५९ ॥ जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत ॥ जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित॥६०॥ जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ॥ जय नित्य निराधार जय विश्वंभराव्यय ॥ जय विश्वैकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण ॥ ६१ ॥ जय गौरीपते शम्भो जय नित्य निरञ्जन ॥ जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन ॥ ६२ ॥ जय दुस्तारसंसारसागरोत्तारण प्रभो ॥ प्रसीद मे महादेव संसारादद्य खिद्यत ॥ ६३ ॥ सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर ॥ महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च ॥ ६४ ॥ महाशोकनिविष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥ ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ॥ ६५ ॥ ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर ॥ दरिद्रः प्रार्थयेद्देवं पूजान्ते गिरिजापतिम् ॥ ६६ ॥ अभाग्यो वापि राजा वा प्रार्थयेद्देवमीश्वरम् ॥ दीर्घमायुः सदारोग्यं कोशवृद्धिर्बलोन्नतिः ॥ ६७ ॥ ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर ॥ शत्रवश्च क्षयं यान्तु प्रसीदन्तु ममप्रजाः ॥ ६८ ॥ नश्यन्तु दस्यवो राज्ये जनाः सन्तु निरापदः ॥ दुर्भिक्षमारिसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ॥ ६९ ॥ सर्वसस्यसमृद्धिश्च भूयात्सुखमया दिशः ॥ एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् ॥ ७० ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥ सर्वपापक्षयकरी सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ ७१ ॥ शिवपूजेयमाख्याता सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ महापातकसङ्घातमधिकं चोपपातकम् ॥ शिवद्रव्यापहरणात्सर्वमन्य-

द्विनाशयेत् ॥ ७२ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥ प्रायश्चित्तानि दृष्टानि शिवद्रव्यहारिणाम् ॥ ७३ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन श्लोकार्धेन ब्रवीम्यहम् ॥ ब्रह्महत्याशतं वापि शिवपूजा विनाशयेत् ॥ ७४ ॥ मया कथितमेतत्ते प्रदोषे शिवपूजनम् ॥ रहस्यं सर्वजन्तूनामत्रास्त्येव न संशयः ॥ ७५ ॥ एताभ्यामपि पुत्राभ्यां शिवपूजा विधीयताम् ॥ अतः संवत्सरादेव परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ॥ ७६ ॥ इति शाण्डिल्यवचनमाकर्ण्य द्विजभामिनी ॥ ताभ्यां तु सह बालाभ्यां प्रणनाम मुनेः पदे ॥७७॥ स्त्र्युवाच ॥ अहमद्य कृतार्थास्मि तव दर्शनमात्रतः ॥ एतौ कुमारौ भगवंस्त्वामेव शरणं गतौ ॥ ७८ ॥ एष मे तनयो ब्रह्मञ्छुचिव्रत इतीरितः ॥ एव राजसुतो नाम्ना धर्मपुत्रः कृतो मया ॥ ७९ ॥ एतावहं च भगवन्भवच्चरणकिङ्कराः ॥ समुद्धरास्मिन् पतितान् घोरे दारिद्र्य सागरे ॥ ८० ॥ इति प्रपन्ना शरणं द्विजाङ्गना तस्याथ वाक्यैरमृतोपमानैः ॥ उपादिदेशापि तयाः कुमारयोर्मुनिः शिवाराधनमन्त्रविद्याम् ॥ ८१ ॥ अथोपदिष्टौ मुनिना कुमारौ ब्राह्मणी च सा ॥ तं प्रणम्य समामन्त्र्य जगमुस्ते शिवमन्दिरात् ॥ ८२ ॥ ततः प्रभृति तौ बालौ मुनिवर्योपदेशतः ॥ प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजां चक्रतुरञ्जसा ॥ ८३ ॥ एवं पूजयतोर्देवं द्विजराजकुमारयोः ॥ सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥ ८४ ॥ कदाचिद्राजपुत्रेण विनासौ द्विजनन्दनः ॥ स्नातुं गतो नदीतीरे चचार बहुलीलया ॥ ८५ ॥ तत्र निर्झरनिष्पातनिर्भिन्ने वप्रकर्दमे ॥ निधानकलशं स्थूलं प्रस्फुरन्तं ददर्श ह ॥ ८६ ॥ तं दृष्ट्वा सहसागत्य हर्षकौतुकविह्वलः ॥ दैवोपपन्नं मन्वानो गृहीत्वा शिरसा दधौ ॥ ८७ ॥ ससंभ्रमं समानीय निधानकलशं बलात् ॥ निधाय भवनस्यान्तर्मातरं समभाषत ॥ ८८ ॥ मातमातरिमं पश्य प्रसादं गिरिजापतेः ॥ निधानं कुम्भरूपेण दर्शितं करुणात्मना ॥ अथ सा विस्मिता साध्वी समाहूय नृपात्मजम् ॥ ८९ ॥ स्वपुत्रं प्रतिनन्द्याह मानयन्ती शिवार्चनम् ॥ शृणुतां मे वचः पुत्रौ निधानकलशीमिमाम् ॥ समं विभज्य गृह्णीतं मम शासनगौरवाद् ॥ ९० ॥ इति मातृवचः श्रुत्वा तुतोष द्विजनन्दनः ॥ प्रत्याह राजपुत्रस्तां विश्रब्धः शङ्करार्चने ॥ ९१ ॥ मातस्तव सुतस्यैव सुकृतेन समागतम् ॥ नाहं ग्रहीतुमिच्छामि विभक्तं धनसञ्चयम् ॥ ९२ ॥ आत्मनः सुकृताल्लब्धं स्वत्रमेव भुनक्त्यसौ ॥ स एव भगवानीशः करिष्यति कृपां मयि ॥९३॥ एवमभ्यर्चतो शम्भुं भूयोऽपि परया मुदा ॥ संवत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव गृहे तयोः॥ ९४॥ अथैकदा राजसूनुः सह तेन द्विजन्मना ॥ वसन्तसमये प्राप्ते विजहार वनान्तरे ॥ ९५ ॥ अथ दूरं गतौ क्वापि वने द्विजनृपात्मजौ ॥ गन्धर्वकन्याः क्रीडन्तीः शतशस्तावपश्यताम् ॥ ९६ ॥ ताः सर्वाश्चारुसर्वाङ्गीर्विहरन्तीर्मनोहरम् ॥

दृष्ट्वा द्विजात्मजो दूरादुवाच नृपनन्दनम् ।। ९७ ।। इतः परं न गन्तव्यं विहरन्त्यग्रतः स्त्रियः ।। स्त्रीसंविधानं विबुधास्त्यजन्ति विमलाशयाः ।। ९८ ।। एताः कैतवधारिण्यो धनयौवनदुर्मदाः ।। मोहयन्त्यो जनं दृष्ट्वा वाचानुनयकोविदाः ।। ।। ९९ ।। अतः परित्यजेत्स्त्रीणां सन्निधिं सहभाषणम् ।। निजधर्मरतो विद्वान् ब्रह्मचारी विशेषतः ।। १०० ।। अतोऽहं नोत्सहे गन्तुं क्रीडास्थानं मृगीदृशाम्।। इत्युक्त्वा द्विजपुत्रस्तु निवृत्तो दूरतः स्थितः ।। १ ।। अथासौ राजपुत्रस्तु कौतुकाविष्टमानसः ।। तासां विहारपदवीमेक एवाभयो ययौ ।। २ ।। तत्र गन्धर्वकन्यानां मध्ये त्वेका वराङ्गना ।। दृष्ट्वायान्तं राजपुत्रं चिन्तयामास चेतसा ।। ३ ।। अहो कोयमुदाराङ्गो युवा सर्वाङ्गसुन्दरः ।। मत्तमातङ्गगमनो लावण्यामृतवारिधिः ।। ४ ।। लीलालोलाविशालाक्षो मधुरस्मितपेशलः ।। मदनोपमरूपश्रीः सुकुमाराङ्गलक्षणः ।। ५ ।। इत्याश्चर्ययुता बाला दूराद्दृष्ट्वा नृपात्मजम् ।। सर्वाः सखीः समालोक्य वचनं चेदमब्रवीत् ।। ६ ।। इतोऽप्यदूरे हे सख्यो वनमस्त्येकमुत्तमम् ।। विचित्र चंपकाशोकपुन्नागबकुलैर्युतम् ।। ७ ।। तत्र गत्वा तरून्सर्वान्प्रसिच्य कुसुमोत्तरान् ।। भवन्त्यः पुनरायान्तु तावत्तिष्ठाम्यहं त्विह ।। ८ ।। इत्यादिष्टः सखीवर्गो जगामापि वनान्तरम् ।। सापि गन्धर्वजा तस्थौ न्यस्तदृष्टिनृपात्मजे ।। ९ ।। तां समालोक्य तन्वङ्गीं नवयौवनशालिनीम् ।। बालां स्वरूपसंपत्त्या परिभूततिलोत्तमाम् ।।११०।। राजपुत्रः समागम्यकौतुकोत्फुल्ललोचनः।। अवाप दैवयोगेन मदनस्य शरव्यथाम् ।। ११ ।। गन्धर्वतनया सापि प्राप्ताय नृपसूनवे ।। उत्थाय तरसा तस्मै प्रददौ पल्लवासनम् ।। १२ ।। कृतोपचारमासीनं तमासाद्य सुमध्यमा ।। पप्रच्छ तद्रूपगुणैर्ध्वस्तवीर्याकुलेन्द्रिया ।। १३ ।। कस्त्वं कमलपत्राक्ष कस्माद्देशादिहागतः ।। कस्य पुत्र इति प्रेम्णा पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ।।१४।। विदर्भ राजतनयं विध्वस्तपितृमातृकम् ।। शत्रुभिश्च हृतस्थानमात्मानं परया गिरा ।। १५ ।। सर्वभावेन भूयस्तां पप्रच्छ नृपनन्दनः ।। का त्वं वामोरु किं चात्र कार्यं ते कस्य चात्मजा ।। १६ ।। किमिव ध्यायसिहृदि किंवा वक्तुमिहेच्छसि ।। इत्युक्ता सा पुनः प्राह शृणु राजेन्द्रसत्तम ।। १७ ।। आस्ते विद्रविको नाम गन्धर्वाणां कुलाग्रणीः ।। तस्याहस्मि तनया नाम्ना चांशुमती शुभा ।। १८ ।। त्वामायान्तं विलोक्याहं त्वत्संभाषणलालसा ।। त्यक्त्वा सखीजनं सर्वमेकैवास्मि महामते ।। १९ ।। सर्वसङ्गीत*विद्यासु न मत्तोऽन्यास्ति काचन ।। मम गानेन, तुष्यन्ति सर्वा अपि सुरस्त्रियः ।। १२० ।। साहं सर्वकलाभिज्ञा ज्ञातसर्वजनेङ्गिता ।। ततोहमीप्सितं वेद्मि मयि ते सङ्गतं मनः ।। २१ ।। तथा ममापि ते सौख्यं दैवेन प्रतिपादितम् ।। आवयोः स्नेहभेदोऽत्र नाभिभूयादितः परम् ।।२२।।

---

* निपुणेति शेषः ।

इति संभाष्य तेनाशु प्रेम्णा गन्धर्वकन्यका ।। मुक्ताहारं ददौ तस्मै स्वकुचान्तर भूषणम् ।। २३ ।। तमादायाद्भुतं हारं स तस्याः परमाकुलः ।।गूढहर्षपरासिक्तामिदमाह नृपात्मजः ।। २४ ।। सत्यमुक्तं त्वया भीरु तथाप्येकं वदाम्यहम् ।। त्यक्तराज्यस्य निःस्वस्य कथं भे भवसि प्रिया ।। २५ ।। या त्वं पितृमती बाला विलंघ्य पितृशासनम् ।। स्वच्छन्दा चरणं कर्तुं मूढे त्वं कथमर्हसि ।।२६।। इति तस्य वचः श्रुत्वा तं प्रत्याह शुचिस्मिता ।। अस्तु नाम तथैवाहंकरिष्ये पश्य कौतुकम् ।। २७।। गच्छस्व भवनं कान्त परश्वः प्रातरेव तु ।। आगच्छ पुनरत्रैव कार्यमस्ति च नो मृषा ।।२८।। इत्युक्त्वा तं नृपं कान्तं सा सङ्गतसखीजना ।। अपाक्रमत चार्वङ्गीस चापि नृपनन्दनः ।। २९ ।। स समभ्येत्य हर्षेण द्विजपुत्रस्य सन्निधिम् ।। सर्वमाख्याय तेनैव सार्धं स्वभवनं ययौ ।। ३० ।। तां च विप्रसतीं भूयो हर्षयित्वा नृपात्मजः ।। परश्वो द्विजपुत्रेण सार्धं तस्मिन्वने ययौ ।। ३१ ।। स तया पूर्वनिर्दिष्टं स्थानं प्राप्य नृपात्मजः ।। गन्धर्वराजमद्राक्षीद्दुहित्रा च समन्वितम् ।। ३२ ।। स गन्धर्वपतिः प्राप्तावभिनन्द्य कुमारकौ ।। उपवेश्यासने रम्ये राजपुत्रमभाषत ।। ३३ ।। गन्धर्व उवाच ।। राजेन्द्रपुत्र पूर्वेद्युः कैलासं गतवानहम् ।।तत्रापश्यं महादेवं पार्वत्या सहितं विभुम् ।।३४।। आहूय मां स देवेशः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्।। सन्निधावाह भगवान् करुणामृतवारिधिः ।। ३५ ।। धर्मगुप्ताह्वयः कश्चिद्राजपुत्रोऽस्ति भूतले ।। अकिञ्चनो भ्रष्टराज्यो हतबन्धुश्च शत्रुभिः ।। ३६ ।। स बालो गुरुवाक्येन मदर्चायां रतः सदा ।। अद्य तत्पितरः सर्वे मां प्राप्तास्तत्प्रभावतः ।। ३७ ।। तस्य त्वमपि साहाय्यं कुरु गन्धर्व सत्तम ।। यथा स निजराज्यस्थो हत शत्रुर्भविष्यति ।। ३८ ।। इत्याज्ञप्तोहऽमीशेन संप्राप्य निजमन्दिरम् ।। अनया च दुहित्रा च बहुशोऽभ्यर्थितस्तथा ।। ३९ ।। ज्ञात्वेमं सकलं शम्भोर्नियोगं करुणात्मनः ।। आदायेमां दुहितरं प्राप्तोस्मीदं वनान्तरम् ।। ४० ।। अत एनां प्रयच्छामि कन्यामंशुमतीं तव ।। हत्वा शत्रून्स्वराष्ट्रे त्वां स्थापयामि शिवाज्ञया ।। ४१ ।। तस्मिन् पुरे त्वमनया भुक्त्वा भोगान्यथोचितान् ।। दशवर्षसहस्रान्ते गन्तासि गिरिशालयम् ।। ४२।। तत्रापि मम कन्येयं त्वमेव प्रतिपत्स्यते ।। अनेनैव स्वदेहेन दिव्येन शिवसन्निधौ ।। ४३ ।। इति गन्धर्वराजस्तमाभाष्य नृपनन्दनम् ।। तस्मिन्वने स्वदुहितुः पाणिग्राहमकारयत् ।। ४४ ।। पारिबर्हमदात्तस्मै रत्नभारान्महोज्ज्वलान् ।। चूडामणिं चन्द्रनिभं मुक्ताहारांश्च भास्वरान् ।। ४५ ।। दिव्यालङ्कारवासांसि कार्तस्वरपरिच्छदान् ।। गजानामयुतं भूयो नियुतं नीलवाजिनाम् ।। ४६ ।। स्यन्दनानां सहस्राणि सौवर्णानि महान्ति च ।।पुनरेकं रथं दिव्यं धनुश्चक्रायुधैर्युतम् ।। ४७ ।। मन्त्रास्त्राणां सहस्राणि तूणौ चाक्षय्यसायकौ ।।

अभेद्यां सर्वजन्तूनां शक्तिं च रिपुमर्दिनीम् ।। ४८ ।। दुहितुः परिचर्यार्थं दासीनां च सहस्रकम् ।। ददौ प्रीतमनास्तस्मै धनानि विविधानि च ।। ४९ ।। गन्धर्वसैन्यमत्युग्रं चतुरङ्गसमन्वितम् ।। पुनश्च तत्सहायार्थं गन्धर्वाधिपतिर्ददौ ।। ५० ।। इत्थं राजेन्द्रतनयः संप्राप्य श्रियमुत्तमाम् ।। अभीष्टजायासहितो मुमुदे निजसम्पदा ।। ५१ ।। कारयित्वा स्वदुहितुर्विवाहं समयोचितम् ।। ययौ विमानमारुह्य गन्धर्वाधिपतिर्दिवम् ।। ५२ ।। धर्मगुप्तः कृतोद्वाहः सह गन्धर्वसेनया ।। निःशेषितारातिबलः प्रविवेश निजं पुरम् ।। ५३ ।। ततोऽभिषिक्तः सचिवैर्ब्राह्मणैश्च महोत्तमैः ।। रत्नसिंहासनारुढश्चक्रे राज्यमकण्टकम् ।। ५४ ।। या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् ।। सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ।। ५५ ।। गन्धर्वतनया जाया विदर्भविषयेश्वरः।। आराध्य देवं गिरिशं धर्मगुप्तो नृपोऽभवत् ।। ५६ ।। एवमन्ये समाराध्य प्रदोषे गिरिजापतिम् ।। लभन्तेऽभीप्सितान् कामान्देहान्ते तु परां गतिम् ।। ५७ ।। सूत उवाच ।। एतन्महाव्रतं पुण्यं प्रदोषे शङ्करार्चनम् ।। धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेतत्साधनं परम् ।। ५८ ।। एतच्छृणुयान्नित्यमाख्यानं परमाद्भुतम् ।। प्रदोषे शिवपूजान्ते कथयेद्वा समाहितः ।। ५९ ।। न भवेत्तस्य दारिद्र्यं जन्मान्तर शतेष्वपि ।। ज्ञानैश्वर्यसमायुक्तः सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ।। १६० ।। ये प्राप्य दुर्लभमिदं मनुजाः शरीरं कुर्वन्त्यहोऽत्र परमेश्वरपादपूजाम्, ।। धन्यास्त एव निजपुण्यजितत्रिलोकास्तेषां पदाम्बुजरजो भुवनं पुनाति ।। ६१ ।। अस्योद्यापनं शनिप्रदोषवत् ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे सोद्यापनं पक्षप्रदोषव्रतम् ।।

प्रदोषव्रत—सूतजी बोले कि, कोई बेटेवाली ब्राह्मणी बडी दुखी थी । उसने शण्डिल्यके मुखसे प्रदोषमें शिव पूजन सुनकर ।।१।। पीछे उन्हें प्रणाम करके शिवको क्रमसे पूजनेकी विधि पूछी ।।२।। शाण्डिल्य बोले कि, दोनों पक्षोंकी त्रयोदशीके दिन दिनमें निराहर रहे जब अस्त होनेमें तीन घडी रहजायं तो फिर स्नान करे ।।३।। नियत हो श्वेतवस्त्र पहिनकर सन्ध्या जप आदि करके शिवपूजा प्रारंभ करदे ।।४।। देवके सामने ताजे पानीसे भली भांति लीपकर सुन्दर मंडप बना धौत वस्त्रादिकोंसे ढक दे ।।५।। बितान आदिक पुष्प फल और नये अंकुरोंसे सजाकर उस जगह पांच रंगोंसे विचित्र पद्मलिखे ।।६।। उसपर अच्छा आसन डालकर बैठजाय (शिवपूजनमें दक्षिण दिशाको अपना मुख न करना चाहिये ।) पूजाके सब उपकरण समीप रखले ।।७।। तंत्रमंत्र[1] शास्त्रमें जो जो पीठ विषयक मंत्र लिखे हैं उनसे पीठका आमंत्रण करे विधिपूर्वक आसनपर बैठकर ।।८।। ओं हंसः सोऽहं इस मंत्रसे तथा विन्दु समेत जो लं, इत्यादिक मंत्र हैं उनसे तीन प्राणायाम यानी कुंभक पूरक और रेचक मंत्र शास्त्रके क्रमसे आत्मशुद्धि, भूतशुद्धि और पापपुरुषका जलाना आदि कृत्य करे । फिर परा देवता प्राण शक्तिका ध्यान करे अपने शरीर में अपने इष्टदेवके प्राणोंकी अपनसेही प्रतिष्ठा करे । पीछे अन्तर्मातृका तथा बहिर्मातृओंका न्यास करे ।।९।। वाम भागमें गुरुको नमस्कार करके बाँई

१ इस प्रदोष व्रतके आठवें श्लोक से लेकर ४८ वें श्लोकतक ऐसा प्रकरण आया है जिसके भीतर आज के मंत्र शास्त्रकार रहस्य यथेष्ट रूपसे आगया है एवम् विना मंत्र शास्त्रपर ध्यान दिये इसका तात्पर्य्य भी छिपासा ही रहता है।यद्यपि अथर्ववेदमें जो विधान हमें देखने को मिलते हैं उन्हें देखकर हमें यही निश्चयहोता है—

—कि पुराणग्रन्थोंमें वही पल्लवित हुआ है किन्तु अव यह इतने भिन्नरूपमें हो गया है कि,इसका पहिचानना भी सर्व साधारणके लिये कठिनसा हो गया है । प्रचलित मंत्रशास्त्रके भी अनेकों ग्रन्थ और अनेकों आचार्य हैं आजके उपासकोंको सिवा इनके दूसरा कोई देवोपासनाका पथ ही नहीं है । इच्छा तो इसके साथ अथर्वके भी आसनादि विधानों को यहां उद्धृत करनेकी थी पर विस्तार भयसे उनको यहां न लिखकर केवल मंत्र शास्त्र के ही विधानोंको लिखते हैं–देवाराधन करनेवालेको चाहिये कि, प्रातःकाल उठ गुरुका ध्यान करे, वधस्नानकरे पीछे नित्य कृत्य सन्ध्या आदिकों को शान्त चित्तसे करे । जिस जगह देव पूजन करना हो वहांके द्वारकी पूजा एवम् द्वारके गणपतिको पूजे द्वारपर पूजेजानेवाले दूसरोंकी भी पूजा करके अर्चन मंदिरमें आवे । क्षेत्र कीलन करे, इसका प्रकार भी मंत्रमहोदधि आदि में लिखा हुआ है । ? 'अपवित्रः पवित्रो वा' इससे मंडपकी शुद्धि करे जहाँ आसन विछावे वहाँ कूर्म शोधन करे कूर्म के मुखपर वैध आसन विछावे, पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके आसनपर वैठ जाय ।' पृथ्वी त्वया' इस मंत्र से आसनको शुद्ध करे क्षेत्र कीलनसे लेकर आसन शोधन तक सारे कृत्य पीठके आमंत्रणमें आगये ।। २।। भूतशुद्धि -कुंभक प्राणायाममें भावनासे कुंडलिनीको जगा प्रदीपकलिका जैसे जीवको सुपुम्नानाडीसे ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचाकर 'हंसः सोऽहम्' इस मंत्रसे जीवको ब्रह्ममें मिलादे । पादाग्रसे जानुतक चतुष्कोण एवं वज्रसे लांछित सोनेकेसे, रंगका पृथ्वी मण्डल है इसका 'ओम् लं' यह वीज वै इसका स्मरण करे । जानुसे लेकर नाभितक अर्धचन्द्राकार श्वेतवर्णका दो पद्मोंसे अंकित पानीका स्थान सोम मण्डल है उसका 'ओम् वं' यह वीज है । नाभिसे लेकर हृदयतक त्रिकोण एवं स्वस्तिकसे अंकित लालरंगका अग्नि मंडल है इसका 'ओम् रं' यह वीज है । हृदयसे लेकर भ्रूतक छः विन्दुओंसे लाञ्छित, धूयेकेसे रंगका वायु मण्डल है इसका 'ओम् यं' यह वीज है । भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रक फैला हुआ स्वच्छ मनोहर आकाश मंडल है इसका 'ओम् हं' यह वीज है। इन सवोंका स्मरण करना चाहिये । फिर पाँचों मण्डलोंमें आठ २ के क्रमसे चालीस पदार्थोंको और याद करना चाहिये । भूमंडलमें–पादेन्द्रिय, गगन, घ्राण, गन्ध, ब्रह्मा, निवृत्ति, समान, गन्तव्य देश, जल मण्डलमें–हस्तेन्द्रिय, ग्रहण,ग्राह्य, रसना, रस, विष्णु, प्रतिष्ठ, दाव, तेजो मण्डलमें–वायु, विसर्ग, सिवर्जनीय, चक्षु, रुप, शिव विद्या, ध्यान, वायु मण्डलमें–उपस्थ, आनन्द, स्त्री, स्पर्शन, स्पर्श ईशान, शान्ति, पान , आकाश मण्डलमें– वाक्, वक्तव्य, वदन, श्रोत्र, शब्द, सदाशिव, शान्ति अतीत, प्राण, ये पदार्थ याद करने चाहियें । इसके पीछे पहिले २ कार्यका उत्तर २ कारणमें लय करना चाहिये । पृथिवी अप् तेज वायु, आकाश इनमें से पाँच गुणवाली भूमिको 'ओम् लंफट्' इस मंत्रसे पानीमें, चार गुणवाले पानीको 'ओम् ं हुं फट्' इसमे तेजमें; तीन गुणवाले तेजको 'ओम् रं हुं फट्' इससे वायुमें; दोगुणवाले वायुको 'ओम् यं हुं फट्' इससे आकाशमें; एक शब्द गुणवाले आकाशको 'ओम् हं हुं फट्' इससे अहंकारमें; अहंकारको महतत्त्वमें; महत्तत्वको प्रकृतिमें; मायाको आत्मामें लय कर दे ।। इह प्रकार शुद्ध सच्चिन्मय होकर पाप पुरुषको याद करे कि, काला अँगूठेके वरावर है जिसका शिर ब्रह्महत्याका है सोनेकी चोरी भुजाएँ हैं, मदिरा पीना हृदय है गुरुकी स्त्रीके साथ गमन ही उसकी कटि है, इन तीनों काम करनेवालों का साथही उसके पैर है, उपपातकही उसका माथा है, ढाल तलवार लिये हुए, है, नीचेको मुख है यह असह्य है । 'ओंयम्, इस वायुवीजको वत्तीस या सोलहवार पढकर पूरक प्राणायाम करता हुआ पाप पुरुषको शोधे । 'ओम् रं' इस अग्निके बीजको चौंसठवार या बत्तीसवार पढकर उस आगसे उसे जला दे । 'ओम् यं' इस वायुबीजको सोलह या वाईस वार जप कर दक्षिणनाडीसे उस पाप पुरुषकी भस्म बाहिर फेंद दे । पाप पुरुपके साथ जो अपने शरीरको भी भस्म किया था उसे 'ओम् वं' इस सुधावीजसे निकले हुए अमृतको अपने शरीरकी भस्मपर छिड़क दे 'ओम् लं' इस भूवीजसे उस भस्मको पिण्डके रूपमें करके कनक काण्डकी तरह भावना करे । 'ओम् हं' इस आकाश वीजको जपते हुए पहिले उसे दर्पणाकार मानकर उसी पिण्डको शिरसे लेकर नाखूनों तक अवयवोंकी भावना करे फिर सृष्टि क्रमसे आकाशादिक भतोंकी उत्पत्तिका स्मरण करे जैसा कि सांख्य शास्त्रमें लिखा हुआ है उसी प्रक्रियासे पूरा शरीर वना फिर 'ओम् हंसः सोऽहम्' इस मंत्रसे ब्रह्मके साथ एक हुए जीवको भिन्न करके हृदयमें स्थापित करे । कुंडलीका स्मरण करे । पीछे प्राण शक्तिका ध्यान करे। यह भूतिशुद्धि पूरी हुई । इसीके साथ शरीशुद्धिभी हो जाती है । आत्मबुद्धि भी इसीमें होलेती हैं । इसी तरह जहाँ जहाँ न्यास आये हैं तहाँ तहाँ प्रायः मंत्रमहोदधि और मंत्रमहार्णवका लंवा एक विषय ही है इस तरह लिखनेसे विस्तार वहुत वढता है जिन्हें इस विपयकी विशेष जिज्ञासा हो वो उक्त दोनों ग्रन्थों को देखलें ।

ओर गणपतिजीका यजन करे । अंस और ऊरु युगमोंपर धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य आदिका न्यास करके नाभि और पाश्वमें ॥१०॥ अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य्य आदिका तथा अनन्त पृथिवी आदिका न्यास करे । हृदयपर पीठ मन्त्रोंसे न्यास करना चाहिये आधारशक्तिसे लेकर मंत्रशास्त्रके विधानके अनुसार क्रमसे ज्ञानात्मातक न्यासहोना चाहिये । पीछे मंत्र शास्त्रके विधानप्रयुक्त भावनाओंसे भावित किये जया आदि नव शक्ति युक्त हृदयमें उमापति देवका ध्यान करना चाहिये ॥११॥ ॥१२॥ कि, कोटि चन्द्रमाके समान चमकने त्रिनेत्रधारी चांदके भूषणवाले पिङ्गलरंगके जटाजूट एसम् माथेमें रत्न धारण किये हुए ॥१३॥ नीलकण्ठ ,सुन्दर शरीरवाले अनेक हारोंसे सुशोभित, वरद और अभय हस्त, हरिण, परशु धारण किये हुए ॥१४॥ नागोंके कड़ूले पहिने, केयूर और अंगदोंसे सुशोभित, व्याघ्रकी चर्म धारण किये हुए और रत्नोंके सिंहासनपर बैठे हुए हैं ॥१५॥ इस प्रकार शिवका ध्यानकर लेनेके बाद उनके वाम भागमें भक्त-वत्सला गिरिजाका ध्यान करे कि, चमकते जपाके फूलके बराबर चमकनेवाली, उदयकालीन सूर्यकीसी प्रभावली ॥१६॥ बिजली और कंजके समान प्रकाशमान तन्वी, जिसे कि, देखतेही मन और नयन प्रसन्न होजाय । बाल चन्द्रमा जिसके शेखरमें है, प्रेममयी, नीले मुडे हुए बालोंवाली ॥१७॥ जिसके नीले बालपर सुन्दर भौंरे बैठे हुए हैं । उसका मणिमय कुंडलोंसे चमकते हुए मुखमण्डलका विभ्रम है ॥१८॥ नए कंकुमको कीचके समान चमकना, जिसका कपोल तर है । जिसका लाल अधर पल्लव मीठेस्मित्तसे शोभायमान है ॥१९॥ शंखकेसे कण्ठवाली जिसकी कुचरूपी कमलकी कली उठी हुई हैं, जो शिवा है, जिसके कि चारों हाथ पाश, अंकुश, अभय और अभीष्ट से सुशोभित हैं ॥२०॥ जिनमें अनेकों रत्न जडेहुए हैं, ऐसे कंकण और अंगदोंसे सुशोभित होरही है । त्रिवलीसे शोभायमान, सोनेकी कांची गांठ है ॥२१॥ माला और वस्त्र लाल पहिने हुई है, दिव्य चन्दनसे चर्चित है, जिसके चरण कमल दिक्पालोंकी स्त्रियोंकी मस्तिष्क चोटिसे सुशोभित है ॥२२॥ रत्नोंके सिंहासनपर बैठी है, सर्पोंके राजाके वस्त्रओढे हैं, इस प्रकार शुभ कारिणी महादेवी गिरिजाका ध्यान करे ॥२३॥ पीठके न्यास क्रमसे गन्धादि उपचारोंसे पूजे कहे हुए स्थानोंमें अथवा हृदयमें पांच मंत्रोंसे, पृथक् पृथक पुष्पांजलि करे देहमें मूलमंत्रसे करे एवं हृदयमें तीनोंसे करे । फिर इस प्रकार साधक शिव होकर ॥२४-२५॥ पीछे बाहिर सिंहासनपर क्रमसे देवकी पूजा करे पूजाके प्रारंभमें एकाग्र चित्त होकर संकल्प करे ॥२६॥ हाथ जोडकर हृदयमें शंकरका ध्यान करे । ससे इउसके ऋण, पातक, दौर्भाग्य और दारिद्र्यकी निवृत्ति होजाती है ॥२७॥ हे शंकर ! मेरे संपूर्ण पापोंको नष्ट करनेके लिए प्रसन्न होजाइये, दुख सोचरूपी अग्निसे तपे हुए संसारके भयसे दुखी ॥२८॥ एवं बहुतसे रोगोंसे आकुल दीन मुझे, हे नादियापर चढनेवाले ! मेरी रक्षाकरिये । हे अभयके करनेवाले देवदेवोंके स्वामी महादेव ! पधारिये ॥२९॥ आप पार्वतीके साथ की हुई पूजाको ग्रहण करिये इस संकल्पको करके बाह्यपूजा प्रारंभ करदे ॥३०॥ गुरु और गणपतिका पूजन क्रमशः सव्य और अपसव्यमें करना चाहिए क्षेत्रमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे इन्द्रादिका, क्रमसे पूजन करे ॥३१॥ इसके बाद वाग्देवीकी पूजा करके कात्यायनीकी पूजा करे । धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इनके बीजसमेत नाममन्त्रोंसे ईशानादिक कोणोंके पीठपादोंपर अनुक्रमसे पूजे इन्हीं बिन्दुबीज आदिमें लगा और विसर्गनमः अन्तमें लगा अधर्मादिकोंका ॥३२-३३॥ चारों दिशाओंमें पूजे एवम् बीचमें प्रवण समेत अनन्तको तथा तन्तुरूपसत्वादि तीनोंगुणोंको पीठपर पूजे ॥३४॥ इसके बाद ऊपरके छदपर मायालक्ष्मी देवीके साथ शिवजी उसका अन्तमें कमलको संपूर्णउत्तम मण्डलको जहां केसर और किंजल्कसे व्याप्त तहां अक्षरोंसे क्रमसे मंडपके बीच आदरसे तीनों आत्माओंका पूजन करे॥ ३५-॥३६॥ वामा ज्येष्ठा और गौरी भावके लिए दिशाओंमें पूजन करे, वामा आदिक नौ शक्ति, नौ स्वरोंके साथ पूजी जायँ ॥३७॥ हृदरमें बीज त्रयादिकोंसे और पीठ मन्त्रसे पूजे, प्रथमांगोसे आवृत्ति तथा पांच मूर्ति पंक्तियोंसे ॥३८॥ और तीस मूर्तियोंसे दूसरे दो निधियोंके साथ अनन्त आदिकोंसे परआदिक दूसरी मातृकादि और वृषादिकोंसे ॥३९॥ अणिमादिक सिद्धियों इन्द्रादिक और उनके आयुधोंके साथ, वृषभ क्षेत्र चण्डेश, दुर्गा, स्कन्द, नन्दिकेश्वर, गणेश, सेनानी ये अपने अपने लक्षणोंसे लक्षित होने चाहिए । अणिमा महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य, ये केवल तेजोरूप आठ ऐश्वर्य हैं, हृल्लेखा

आदिक पांच मन्त्रोंसे पहले मुनियोंसे स्तुत इन्द्रादिक उमादिक अङ्गोंसे युक्त उत्तरस लेकार उमा चण्डीश्वर आदिको पूजे । इस प्रकार आवरणसेयुक्त तेजोरूप सदाशिवका पूजन करे ।।४०-४४-।। उमासहित शिवजीकी पूजा उपचारोंसे करे, सुप्रतिष्ठित शंखके पञ्चामृत तीर्थसे ।।४५।। रुद्र सूक्तोंसे अभिषेक करे ! एकाग्रचित्त होकर वैदिक मन्त्रोंसे आसन आदि उपचारोंको करे ।।४६।। दिव्य वस्त्रोंके साथ सोनेका आसन कल्पित करे, आठ गुणोंवाला अर्घ्य तथा शुद्ध पानीसे पाद्य करे ।।४७।। उसीसे आचमन करावे उत्तम मधुपर्क दे । फिर आचमन देकर मन्त्रोंसे स्नान करावे ।।४८।। वस्त्रोंके पीछे उपवीत एवं भूषण दे परम सुगन्धित अष्टाङ्ग गन्ध दे ।।४९।। बिल्वपत्र, मन्दार, कह्लार, कमल, धत्तूर, कर्णिकार, कपूर, द्रोणपुष्प, चमेली ।।५०।। अपामार्ग तुलसी, माधवी, चंपक, बृहती, करवीर इनमेंसे जो मिल जाय उसे चढावे ।।५१।। अनेक तरहकी माल्यादिक सुगन्धियोंको चढावे कालै अगरुकी धूप तथा निर्मल दीपक होना चाहिए ।।५२।। खीरका नैवेद्य जिसमें घी और चीनी पडी हुई हो, जिसमें लड्डू, पूआ, शक्कर और गुड होना चाहिए ।।५३।। जलपान और दहिके साथ मीठा अन्न हो उसी हविसे मन्त्र भावित अग्निमें हवन करे ।।५४।। शास्त्रकी कही हुई विधिसे गुरुके वाक्योंसे नियंत्रित हुआ शम्भुके लिए नैवेद्य दे । उत्तम पान ।।५५।। फल, आरती, दिव्यछत्र, उत्तम दर्पण, विधिपूर्वक वैदिक और तांत्रिक मन्त्रोंसे दे ।।५६।। यदि अशक्त हो धन पास न हो तो जो अपनी शक्ति हो, उसके अनुसार पूजा करे क्योंकि, भक्तिपूर्वक एकफूल चढानेसे भी शिवजी प्रसन्न होजाते हैं इसके बाद अंगभूत गजेश आदिका पूजन करे । अनेकों स्तोत्रोंसे स्तुति करके साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये ।।५७।। ।।५८।। इसके बाद प्रदक्षिणा करे । वृष और चण्डेश्वर आदिकी विधिपूर्वक पूजाकरके गिरिजापतिकी प्रार्थना करनी चाहिए ।।५९।। हे जगत्के नाथ देव ! तेरी जय हो, हे शाश्वत शंकर ! तेरी जय हो । हे सभी सुरोंके आराध्य ! तेरी जय हो, हे सब सुरोंके पूज्य ! तेरी जय हो ।।६०।। हे सब गुणोंसे अतीत ! तेरी जय हो, हे सब वरोंके देनेवाले ! तेरी जय हो, हे नागोंके भूषणवाले विश्ववन्द्य ईश ! तेरी जय हो ।।६१।। गौरीपतिम्श भोहे ! तेरी जय हो, हे नित्य निरंजन ! तेरी जय हो, हे कृपासिन्धो ! तेरी जय हो, हे भक्तोंके दुखोंको मिटानेवाले ! तेरी जय हो ।।६२।। हे कठिनतासे तरनेवाले संसारके तारक ! तेरी जय हो, मैं संसारसे दुःखो हूं । आप मुझपर प्रसन्न होजाइये ।।६३।। हे परमेश्वर ! सब पापोंको नष्ट करके मेरी रक्षा करिये, महादारिद्रमें डूबे हुए तथा महापापोंमें लगे हुए ।।६४।। महारोगोंसे आतुर तथा महाशोकित कर्जके भारसे दबे हुए, अपने कर्मोंसे चलते हुए ।।६५।। ग्रहोंसे दुखी हुए मुझपर हे शंकर ! प्रसन्न होजाइये, दरिद्र पूजाके अन्तमें शिवकी प्रार्थना करे ।।६६।। अभाग्य हो चाहें राजा हो वह भी देवकी प्रार्थना करे, बडी उमर, सदा आरोग्य, कोशकी वृद्धि, बलकी उन्नति मागें ।।६७।। हे शंकर ! आपकी कृपासे मुझे हमेशा ही आनन्द हों मेरी प्रजा प्रसन्न हों वैरी मौतके मुंहमें जायें ।।६८।। राज्यके चोर मिटजायें, मनुष्य सुखी हो जायें । दुर्भिक्ष मारी, महामारी, और सन्ताप भूमिपर शान्त हो जायें ।।६९।। सब सस्योंकी समृद्धि और दिशाएँ सुखमय हों, इस प्रकार गिरिजापति देवकी आराधना करे ।।७०।। ब्राह्मण भोजन करावे और दक्षिणा दे, यह सब पापोंको नष्ट करनेवाली सभी दरिद्रोंको मिटानेवाली ।।७१।। शिवजीकी पूजा है, सब अभीष्टोंको देनेवाली है, महापापोंके संघात एवं अधिक उपपातक सब नष्ट होजाते हैं ! एक शिव निर्माल्यको छोडकर ।।७२।। ब्रह्महत्याआदिक पापोंको प्रायश्चित्त पुराण और स्मृतियोंमें देखेजाते हैं, पर शिवके द्रव्यको चोरनेवालोंके प्रायश्चित्त नहीं देखेजाते हैं ।।७३।। अधिक कहनेमें क्या है ? मैं आधे श्लोकमें ही कहेदेता हूं । सौ ब्रह्महत्या-ओंको भी शिवपूजा नष्ट करदेती है ।।७४।। मैंने तुमें प्रदोषका शिवपूजन कहदिया है । यह सब प्राणियोंसे छिपाहुआ है, इसमें सन्देह नहीं है ।।७५।। इन दोनों पुत्रोंसे शिवपूजा करा, आजसे एक सालबाद तुझे सिद्धि मिलजायगी ।।७६।। ब्राह्मणीने महर्षि शाण्डिल्यके वचन सुनकर उन बालकोंके साथ मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया ।।७७।। बोली कि, मैं आज आपके दर्शनसे कृतार्थ होगई हूँ । ये मेरे दोनों कुमार आपकी शरण हैं ।।७८।। हे ब्रह्मन् ! यह शुचिव्रत मेरा लडका है, यह राजसुत मेरा धर्मपुत्र है ।।७९।। ये दोनों मेरे पुत्र तथा मैं आपकेही सेवक हैं, हम घोर दारिद्र्यमें पडेहुए हैं, हमारा उद्धार करिये ।।८०।। इस प्रकार ब्राह्मणीको अपनी शरण जान मुनिने अमृतकेसे मीठे वचनोंसे दोनों कुमारोंको भी शिवजी आराधना बतादिया ।।८१।। वे ईशदिष्ट दोनों बालक और ब्राह्मणी मुनिको प्रणामकर सलाह करके शिव मंदिर चलदिये ।।८२।। उस दिनसे वे दोनों कुमार मुनिके उपदेशके अनुसार प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा करने लगे ।।८३।। पूजा करते उन्हें चार मास सुख पूर्वक बीत गये ।।८४।। एकदिन राजसुतके विना शुचिव्रत स्नान करने गया एवम् नदी

किनारे बहुतसे खेल खेलने लगा ।।८५।। प्रवाहके पतनसे भिन्न हुई सी कीचमें बडा सारा धनका कलश चमकता हुआ दीखा उसे देख आनन्द और कौतुकसे आविष्ट हो उसके पास आ, देवदत्त मान, शिरपर उठाकर एकदम घर ले आया एवं घरके भीतर रखकर मासे बोला ।।८७।।८८।। कि, हे मातः ! इस महादेवजीके प्रसादको देख, कृपालुने घटके रूपमें खजाना दिखा दिया है ब्राह्मणी देखकर विस्मित हुई एवं राजसुतको बुलाया ।।८९।। शिव पूजाकी प्रशंसा करती हुई अपने पुत्रकी प्रशंसा करके बोली कि, ए बेटो ! मेरे वचनोंको सुनो । मेरी आज्ञाका मान करते हुए बाँटकर लेलो ।।९०।। माताके वचन सुन शुचिव्रत परा प्रसन्न हुआ, पर शंकरकी पूजामें विश्वासी राजसुत बोला ।।९१।। कि हे माँ । यह तो तेरे पुत्रके सुकृतसे उसे मिला है मैं हिस्सा लेना नहीं चाहता ।।९२।। क्योंकि जो अपने सुकृतसे पाता है उसे आपही भोगता है कभी शिवजी मुझपर भी अवश्यही कृपा करेंगे ।।९३।। इस प्रकार भी शिवजीको वैसेही पूजते हुए उसी घरमें उन्हें एकवर्ष बीत गया ।।९४।। एकदिन राजकुमार ब्राह्मणके पुत्रके साथ वसन्तके दिनोंमें वनमें घूमने गया ।।९५।। वे जब वनमें दूर पहुंचे तो उन्हें सैकडोंही गन्धर्व कन्याएं खेलती हुई मिलीं ।।९६।। ब्राह्मण कुमार किसी सुन्दरीको सुन्दर विहार करते हुए दूसरसे देखकर राजकुमारसे बोला ।।९७।। कि इसे अगाडी स्त्रियाँ खेल रहीं हैं, पवित्र पुरुष स्त्रियोंके बीचमें नहीं चरते ।।९८।। ये धन यौवनकी मस्तानी कपटिन रंगीली बातें बनानेवाली हैं, मनुष्योंको शीघ्रही मोह लेती हैं ।।९९।। इस कारण अपने धर्ममें लगा रहनेवाला सुयोग्य पुरुष स्त्रियोंके साथ भाषण और सहवास छोड़ दे ब्रह्मचारीको तो विशेष करके त्यागना चाहिये ।।१००।। मैं तो इन मृगनयनियोंके खेलकी जगहमें न जाऊंगा ऐसा कहकर शुचिव्रत तो दूर हो रह गया ।।१०१।। उनके तमासेको देखनेकी इच्छावाला राजकुमार उनके खेलकी जगह अकेलाही निर्भय होकर चला गया ।।१०२।। उन सबी गन्धर्व कन्याओंके बीच एक प्रधान सुन्दरी उस राजकुमारको देखकर मनमें सोचने लगी ।।१०३।। कि यह मत्तमतंगकीसी चालवाला लावण्यरूपी अमृतका खजाना सर्वांग सुन्दर ।।१०४।। बड़ी-बड़ी आखोंसे लीला पूर्वक देखनेवाला, मन्द हाससे शोभित, कामके समरूप शोभावाला सुकुमार कौन है ।।१०५।। ऐसे अचरजके साथ वह बाला दूरसेही राजकुमारको देख, सब सखियोंकी ओर देखकर बोली कि ।।१०६।। यहांसे थोडी दूरपर एक वन है । उसमें चंपक, अशोक, पुन्नाग और बकुल अच्छे खिले हुए हैं ।।१०७।। वहां आप जाकर उनके सब फूलोंको तोड़कर आजायं तवतक मैं यहां बैठी हूं ।। १०८ ।। सखी वर्गको आज्ञा मिलते ही दूसरे बनमें चलागया वह अलबेली गन्धर्व कन्या राजकुमारपर दृष्टि लगाकर बैठगई ।।१०९।। जिसने अपनी सुन्दरतासे तिलोत्तमाको भी परास्त कर दिया है ऐसी कृशाङ्गी नये यौवनवाली कमसिन को देखकर ।।११०।। आश्चर्यके मारे आखें खोड गई उसके पास चला आया एवं दैव योगसे कामके तीर लगनेके कष्टका अनुभव करने लगा ।।१११।। गन्धर्वकन्या स्वतः प्राप्त हुए राजकुमारको देखकर एकदम उठी और बैठनेके लिए पल्लवोंका आसन दे दिया ।।११२।। उपचारपूर्वक बिठाया । इतने ही समयमें इस राजकुमारके रूप और गुणोंसे उसका वीर्य ध्वस्त होचुका था इंद्रियां उसके सहवासको अकुला उठी थीं ऐसी वह पातली कमरवाली उसे पा पूछने लगी ।।११३।। कि, हे कमल दलसे बडे बडे नेत्रवाले ! आप किस देशसे यहां कैसे आये हैं किसके कुमार हैं ? राजकुमारने भी बडीही प्रीतिके साथ कहदिया ।।११४।। कि मैं विदर्भराजाका पुत्र हूं मेरे मां बाप वैकुण्ठ पधार गये वैरियोंने मेरा राज्य ले लिया ।।११५।। फिर राजकुमारने सब भावसे उसे पूछा कि हे वामोरु ! आप कौन किसकी लडकी और किस कामको यहां आयीं हैं ।।११६।। आप दिलमें क्या चाह रही हैं ? क्या कहना चाहती हैं ? इतना सुनकर वह बोली कि, हे राजेन्द्रसत्तम ! सुन ।।११७।। एक विद्रविक नामक, गन्धर्व शिरमोर है मैं उसकी लडकी अंशुमती हूं।।११८।।मुझे तुम्हें आता हुआ देखकर तुमसे बातें करनेकी इच्छा हुई आप चतुर हैं जानलें, मैं आपसे बातें करनेके लिए सखियोंको छोडकर अकेली रह गयी हूं ।।१९।। मेरे बराबर सभी सङ्गीत विद्यामें कोई चतुर नहीं है, मेरे गानसे सभी देवस्त्रियाँ तृप्त हो जाती हैं ।।१२०।। मैं सब कलायें और सभी मनुष्योंके भावोंके अच्छी तरह जानती हूं, आपके भी मनकी बात मैं जान गयी हूं, मेरा मन तेरेमें लगगया है ।।१२१।। ईश्वरने हमें तुम्हें दोनोंही जनोंको आनन्द दिया है, अबसे लेकर मेरा आपका कभीभी प्रेम जुदा न हो ।।२२।। इस प्रकार उस गन्धर्व कन्याने राजकुमारसे बातें करके, जोकि उसकी छातीपर लहरता हुआ कुचोंपर झुला करता था उस मुक्त हारको प्रेमसे भिगोकर एवं स्वयं भी वैसाही भीग कर गलेमें डाल दिया ।।२३।। उसके हारको पहिनतेही वह उसके

लिये घबरा उठा, यह देख वह भीतरही भीतर आनंदसे और भी भीगगई तब वह राजकुमार बोला कि ।।२४।। ए भीरु ! तुमने सत्य कहा है तो भी में तुमसे एक बात कहता हूं कि, न मेरे पास राज्य है एवं न धन है, आप मेरी प्राणप्यारी कैसे बनेंगी ? ।।२५।। आपके पिता हैं उनकी आज्ञा न मान ए मूर्खे ! कैसे स्वच्छन्द चलनेको तयार होती है ।।२६।। राजकुमारके वचन सुन मन्दहास करती हुई बोली कि, हो, तो भी में करूंगी मेरे कारनामें देखना ।।२७।। हे प्यारे ? अब आप अपने घरजायें परसों प्रातःकाल आना यहां आपकी आवश्यकता है मेरी बात झूठ न समझना ।।२८।। ऐसा उस राजकुमारको कहकर वह अपनी सहेलियोंमें इकट्ठी हो गयी, वह राजकुमार भी ।।२९।। शुचिव्रतके पास पहुंच गया उसे अपने सब हाल बता दिए, पीछे दोनों घर चले आये ।।३०।। अपना सब समाचार उस सती ब्राह्मणीसे कहकर उसे प्रसन्न किया फिर उस दिनके परसों द्विजकुमारको लेकर फिर उसीवन में पहुंचा ।।३१।। जो इसने स्थान बताया था वह वहीं पहुंचा तो क्या देखता है कि, उसी पुत्रीको साथ लेकर गन्धर्वराज स्वयं उपस्थित हैं ।।३२।। उन्होंने दोनों कुमारोंका अभिनन्दन करके सुन्दर आसनपर बिठा राजकुमारों से कहा ।।३३।। कि, हे राजकुमार ! मैंने परसों कैलास जाकर गौरीशंकरके दर्शन किये थे ।।३४।। करुणारूपी सुधाके सागर शिवजी महाराजने सब देवताओंके देखते देखते मुझको अपने पास बुलाकर कहा कि, ।।३५।। भूतलपर कोई धर्मगुप्त नामका अकिञ्चन राजभ्रष्ट राजकुमार है जिसके परिवारको भी वैरियोंने समाप्त करदिया है ।।३६।। वह बालक गुरुके वाक्यसे मेरी सेवामें सदाही लगारहता है, आपही आप उसके सभी पूर्वज उसके प्रभावसे मुझे प्राप्त हो गए ।।३७।। हे गन्धर्वराज ! तुमभी उसकी सहायता करो जिससे वह वैरियोंको मारकर राजले ले ।।३८।। शिवजीकी आज्ञा पा में अपने घर चला आया वहां इसने मेरी बहुतसी प्रार्थनाएँ की ।।३९।। शिवजीकी आज्ञा और इसके मनकी बात जान इस बनमें आया हूँ ।।४०।। इस अंशुमतीको तुम्हें देता हूं एवं वैरियोंको मारकर आपके राज्यपरभी आपको बिठा दूंगा ।।४१।। वहां तुम इसके साथ दश हजारवर्ष भोगोंको भोगकर अन्तमें शिवलोक चले जाओगे ।।४२।। वहांभी मेरी यह लडकी इसी अपने देहसे आपके साथही रहेगी ।।४३।। ऐसा कहकर अपनी लडकीका व्याह कर दिया ।।४४।। बहेजमें वडे बडे स्वच्छ रत्नोंके अनेकों भार, चन्द्रमाके समान चूडामणि, चमकते हार ।।४५।। दिव्य अलङ्कार वस्त्र, सोनेकके लवादमेके साथ अयुत हाथी नियुत घोडे ।।४६।। और हजारोंही सोनेके वडे बडे रथ दिए, चारों ओर चलमेवाले आयुधोंके साथ एक दिव्य धनुष्य ।।४७।। जिसके कि, तीर खलास न हों ऐसा तूणीर सहस्त्रों मंत्रास्त्र एवम् जिसे कोई काट न सके ऐसी वैरियोंके नाश करनेवाली शक्ति दी ।।४८।। लडकीकी सेवाके लिये हजारोंही दासियां दीं । तथा प्रसन्न होकर और भी बहुतसा धन दिया ।।४९।। फिर भी राजकुमाकी सहायताके लिये गन्धर्वोंकी चतुरंग सेना दी ।।५०।। इस प्रकार वह राजकुमार उत्तम श्रीको पा मनचाही स्त्रीके साथ अपनी संपत्तिसे प्रसन्न होने लगा ।।५१।। लडकीका समयोचित विवाह कर विमान में बैठकर अपने लोक चला गया ।।५२।। विवाहित धर्मगुप्तने गन्धर्वोंकी सेनाके साथ पहिले तो वेरियोंको मारा पीछे ससैन्य नगर पहुँचा ।।५३।। सुयोग्य ब्राह्मण और मंत्रियोंने अभिषेक कर दिया रत्न सिंहासनपर बैठकर अकंटक राज्य किया ।।५४।। जिस ब्राह्मणीने इसका पुत्रकी तरह पालन किया था, उसे ही राजमाता बनाया तथा वह द्विजकुमारही उसका छोटा भाई रहा ।।५५।। गन्धर्वराजकी पुत्रीही पटरानी रही । आप विदर्भका राजा रहा । शिवकी आराधना कर धर्मगुप्त इस प्रकार राजा होगया ।।५६।। इसी तरह दूसरे भी प्रदोषमें शिवकी आराधना करके अपने मनचीते कामोंका पाकर अन्तमें परमपदको पालते हैं ।।५८।। सूतजी बोले कि, प्रदोषकारमें शिवजीका पूजन परम-पुण्यका देनेवाला है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका यही परम साधान है ।।५८।। जो मनुष्य रोजही इस अद्भुत आख्यानको सुनता है वा प्रदोषकालमें शिवार्चनके पीछे एकाग्रचित्त होकर कहता है ।।५९।। वह कभी सौ जन्मोंमेंभी दरिद्री नहीं होता एवं ज्ञान और ऐश्वर्यसे युक्त होकर अन्तमें शिवलोक चलाजाता है ।।६०।। जो मनुष्य इस दुर्लभ मनुष्य शरीरको पाकर यहां शिव पूजन करते हैं वे ही धन्य हैं उन्होंनेही अपने पुण्यसे तीनों लोकोंको जीत लिया, उनके चरणोंकी धूल तीनों लोकोंको पवित्र करती है ।।६१।। इसका उद्यापन शनिप्रदोषकी तरह होता है । यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ पक्षप्रदोषव्रत पूरा हुआ ।।

अनङ्गत्रयोदशीव्रतम्

अथ मार्गशीर्षशुक्लत्रयोदश्यामनङ्गत्रयोदशीव्रतम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु पार्थ व्रतं श्रेष्ठं नाम्नानङ्गत्रयोदशी । या शिवायै पुरा प्रोक्ता प्रसन्नेनेन्दु-मौलिना ।। गौर्युवाच ।। पुरा सौभाग्यकरणी ख्यातानङ्गत्रयोदशी ।। तस्या व्रतं महादेव ममापि कथय प्रभो ।। कस्मिन्मासे प्रकर्तव्यं संपूर्णं च कथं भवेत् ।।! पूज्यानि कानि नामानि विधिना केन वै मृड ।। दुर्भगानां च नारीणां सौभाग्यकरणं प्रभो ।। वन्ध्यानां पुत्रजनकं धनधान्यविवर्धनम् । एतद्व्रतं महादेव प्रसादाद्वक्तुमर्हसि।। ईश्वर उवाच ।। कथयामि न सन्देहो महापुण्यं महाफलम् ।। चीर्णेन येन देवेशि सर्वं संपद्यते सुखम्।।नारीभिश्च नृभिश्चैव विधातव्यं प्रयत्नतः।। हेमन्ते हि ऋतौ प्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे ।। शुक्लपक्षे त्रयोदश्यामुपवासं तु कारयेत् ।। अश्वत्थ-दन्तकाष्ठं च पूजा च मरु[1]वेण तु ।। नारिङ्गेणार्घ्यदानं च नैवेद्ये फेणिकास्तथा ।। गन्धपुष्पैस्तथा धूपैरर्चयेच्च यथाविधि ।। अक्षतैश्च फलैश्चैव एकाग्रहृदयः स्थितः ।। सम्यक् जितेन्द्रियो भूत्वा ह्यनङ्गं हृदि कल्पयेत् ।। पश्चात् प्रदक्षिणां कृत्वा अर्घ्यं चैव निवेदयेत् ।। नमस्कुर्यादनङ्गं च मन्त्रेणानेन भामिनि ।। नमोऽस्त्वनङ्गदेवाय सर्वसंघनिवासिने ।। हृदयस्थाय नित्याय सूक्ष्माय परमेष्ठिने ।। स्वर्गे चैव तु पाताले मर्त्यलोके तथैव च ।। सर्वव्यापिन्ननङ्ग त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। पूजयेत्स्वस्थचित्तेन प्राशयेन्मधु वै निशि ।। रम्भातुल्या भवेन्नारी सौभाग्यमतुलं लभेत् ।। नश्यन्ति सर्वपापानि ह्यन्यजन्मकृतानि च ।। लावण्यम-तुलं चैव रूपैश्वर्यसमन्वितम् ।। अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । पौ[2]षे शुक्लत्रयोदश्यामौदुम्बरं दन्तधावनम् ।। जातिपुष्पैः पूजनं स्याद्दाडिमोना-र्घ्यमेव च ।। अशोकवर्तिकाः स्निग्धा नैवेद्यं च प्रकल्पयेत् ।। उपोष्य पूजयेद्देवं भक्त्या नाटचेश्वरं प्रिये ।। नाटचेश्वराय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः ।। नमस्ते भुवनेशाय गृहाणार्घ्यं नमो नमः ।। इत्यर्घ्यम् ।। व्रतस्थः स्वस्थचित्तेन चन्दन प्राशयेन्निशि ।। सर्वपापविशुद्धात्मा सौभाग्यमतुलं लभेत् ।। माघशुक्लत्रयोदश्या मुपवासं च कारयेत् ।। न्यग्रोधदन्तकाष्ठेन दन्तान् संशोधयेच्छुचिः ।। कुन्दपुष्पैः समभ्यर्च्य अर्घ्यं च बीजपूरकैः ।। नैवेद्ये शर्करां दद्याद्देवो योगेश्वरस्तथा ।। योगे-श्वराय देवाय योग[3]जम्बूनिवासिने।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं योगेश्वर नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। [4]माक्तिकं प्राशयेद्रात्रौ वाजपेयफलं लभेत् ।। फाल्गुनस्य सिते पक्षे बादरं दन्तधावनम् ।। जपापुष्पैः पूजनं स्यादर्घ्यं कंकोलकेन च ।। अपूपैश्चैव नैवेद्यं वीरेशंनाम पूजयेत् ।। वीरेश्वर वीरभद्र उमाकान्त सुरेश्वर ।। हिममध्यनिवा-सिस्त्वं गृहाणार्घ्यं महेश्वर ।। सीतातुल्या भवेन्नारी कंकोलं प्राशयेद्धिशि ।। चैत्र शुक्लत्रयोदश्यांमल्लिकादन्तधावनम् ।। दमनेनार्चयेद्देवं द्राक्षायार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।।

१ मरुवकपुष्पेण । २ पौपस्यैव तु मासस्येति पाठः । ३ स्थानविशेषः । ४ मौक्तिकोटकमित्यर्थः ।

नैवेद्य वटकाः प्रोक्ता विश्वरूपं तु पूजयेत् ।। नमस्ते विश्वरूपाय स्वरूपाय महात्मने ।। गृहाणार्घ्यं मया देवं विश्वरूप नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। उमातुल्या भवेन्नारी कर्पूरं प्राशयेन्निशि ।। वैशाखशुक्लपक्षे त्वपामार्गं दन्तधावनम् ।। पूजा च मल्लिकापुष्पैः खर्जूरार्घ्यं तु दापयेत् ।। नैवेद्यै सक्तवः प्रोक्ता महारूपं तु पूजयेत् ।। महारूपाय नमस्ते सर्वविज्ञानरूपिणे ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं महारूप नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। प्राशयेद्रात्रिसमये जातीफलमनुत्तमम् ।। ज्येष्ठे शुक्लत्रयोदश्यां निर्गुण्डीदन्तधावनम् ।। पूजा बकुलपुष्पैश्च श्रीफलेनार्घ्यकल्पना ।। नैवेद्ये मण्डकान्दद्याल्लवङ्गं प्राशयेन्निशि ।। प्रद्युम्नं पूजयेद्देवं सर्वपापप्रणाशनम् ।। नमस्ते पशुपतये प्रद्युम्न[1]भवनेश्वर ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रद्युम्नं परमेश्वर ।। इत्यर्घ्यम् ।। सुवर्णशतदानस्य फलमष्टगुणं लभेत् ।। शुचिशुक्ले त्रयोदश्यां नारिङ्गं दन्तधावनम् ।। कदम्बैः पूजयेद्देवं नारिकेलार्घ्यकल्पना ।। नैवेद्यं दधिभक्तं च पूजयेच्च उमापतिम् ।। स्वस्थेन मनसा तत्र तिलतोय पिबेन्निशि।। उमापते महाबाहो कामदाहक ते नमः ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं चन्द्रमौलै नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।। श्रावणस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां शुभव्रतः ।। कारञ्जं दन्तकाष्ठं च पद्मपुष्पैस्तु पूजनम् ।। रम्भाफलेनार्घ्यदानं कुर्यात्प्रह्वेण चेतसा ।। नैवेद्यं पायसं दद्याच्छूलपाणिं तु पूजयेत् ।। प्राशयेद्गन्धतोयं च रात्रौ जागरणं चरेत् ।। नमस्ते गिरिजानाथ नमस्ते भक्तिभावन ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं शूलापाणे नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ।। भाद्रे शुक्लत्रयोदश्यां कंकोलं दन्तधावनम् ।। अर्चयेच्चम्पकैः पुष्पैर्नैवेद्यं घृतपूरिकाः ।। अर्घ्ये पूगीफलं दद्यात् सद्योजातं तु पूजयेत् ।। ततः स्वस्थमना भूत्वा अगुरुं प्राशयेन्निशि ।। त्रिदशेशाय देवाय सद्योजाताय वै नमः ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सद्योजात नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। दशानामश्वमेधानां फलमाप्नोति मानवः ।। आश्विने च त्रयोदश्यां कंकतीदन्तधावनम् ।। अर्चयेत्करवीरैस्तु अर्घ्यं कर्कटिकाफलम् ।। त्रिदशाधिपतिः पूज्यो नैवेद्ये शुभ्रमण्डकान् ।। प्राशयेत्काञ्चनं तोयं निशि देवं प्रपूज्य च ।। त्रिदशाधिप देवेश उमाकान्त महेश्वर ।। त्रिधारूपमयस्त्वं हि अर्घ्योऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। इत्यर्घ्यम् ।। चातुर्मास्यस्य यज्ञस्य फलं दशगुणं लभेत् ।। कार्तिके च त्रयोदश्यांकादम्बं दन्तधावनम् ।। रक्तोत्पलैः पूजनं च कूष्माण्डार्घ्यं प्रदापयेत् ।। नैवेद्यै पूरिका दद्यात् पूजयेज्जगदीश्वरम् ।। प्राशयेन्मदनफलं निशि चैवं समाहितः ।। नमस्ते जगदीशाय तापिने शूलपाणये ।। गृहणार्घ्यं महेशान जगदीश नमोऽस्तु ते ।। इत्यर्घ्यम् ।। पूजान्ते जागरं कुर्याद्गीतवाद्यमहोत्सवैः ।। अर्धनारीश्वं कुर्यात्सौवर्णं रौप्यमेव वा ।। वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य शय्यायां विनिवेशयेत् ।। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सवत्सां गां पय-

१ प्रकृष्टं यत् द्युम्नंधनं तद्भवनेश्वरः ।

स्विनीम् ।। श्वेतवस्त्रपरीधानां घण्टाभरणभूषिताम् ।। सुसूक्ष्मवस्त्रयुगलामाचार्याय निवेदयेत् ।। तथैव दक्षिणां दद्यादासनं चैव पादुके ।। छत्रं च मुद्रिकां चैव कंकणं भूषणं शुभम् ।। शय्या दिव्या प्रदेया तु तूलाच्छादनसंयुता ।। गृहोपस्कर संयुक्ता भक्तिसंयुक्तचेतसा ।।तत्रोपवेश्य चाचार्यमुपवासव्रती ततः ।। हस्तौ मूर्ध्नि समारोप्य प्रणिपत्य वचो वदेत् ।। भगवंस्त्वत्प्रसादेन व्रतसम्पूर्णता मम ।। एवमस्त्विति स ब्रूयात्तव तुष्टोऽस्तु शंकरः ।। ईश्वर उवाच ।। एवं कृत्वा प्रयत्नेन दम्पती चैव पूजयेत् ।। तयोश्च भोजनं दद्याद् दम्पत्योः पारितोषिकम् ।। अनेन विधिना तुष्याम्यहं युक्तस्त्ववानघे ।। तेभ्यो दत्तं च यत्किञ्चिदक्षयं नात्र संशयः।। आचार्यमग्रतः कृत्वा*तस्यादेशं तु कारयेत् ।। न ह्याचार्यसमं तीर्थं न ह्याचार्यसमं तपः ।। तस्याहं कायमास्थाय सर्वसिद्धि नयेध्रुवम् ।। तेनैवाचार्यदानेनसर्वं भवतिचाक्षयम् ।। एतद्व्रतं मम श्रेष्ठं गुह्याद्गुह्यतरं परम्।। राज्यमर्थान् सुतान्सिद्धिमवैधव्यं प्रयच्छति ।। रूपं धनं धान्यमायुरारोग्यं च प्रदापयेत् ।। इष्टलाभं च सौभाग्यं वर्धयेच्च वरानने ।। त्रयोदशीव्रतान्नास्ति सौभाग्यकरणं परम् ।। इति भविष्ये अनङ्गत्रयोदशीव्रतं संपूर्णम् ।। इति त्रयोदशीव्रतानि समाप्तानि ।।

अनंगत्रयोदशीव्रत—श्रीकृष्णजी बोले कि, हे अर्जुन ! मैं एक श्रेष्ठ व्रत कहता हूं उसका नाम अनंतत्रयोदशी व्रत है । जिसे शिवजीने प्रसन्न होकर गिरिजासे कहा था, गौरी बोली कि, हे शिव ! पहिले आपने सौभाग्य करनेवाली अनंगत्रयोदशी कही थी, हे महादेव ! उसके व्रतको मुझे बताइये, उसे किस मासमें प्रारंभ करके कब पूरा करे, उसमें कौनकौनसे नाम पूज्य हैं शिवका पूजन कैसे करना चाहिये ? यह व्रत दुर्भगा स्त्रियोंका सौभाग्य करनेवाला तथा वन्ध्याओंको बेटा देनेवाला धन धान्यका बढानेवाला है । हे महादेव ! कृपा करके इस व्रतको कहिये । शिवजी बोले कि, कहता हूं यह महापुण्य फलवाला है इसमें क्या सन्देह है इसके कियेसे सब सुख प्राप्त होजाते हैं । इसे स्त्रियों और पुरुषोंको प्रयत्नके साथ करना चाहिये । हेमन्तऋतुके मार्गशिर महीनेमें शुक्ला त्रयोदशीके दिन उपवास करे । अश्वत्थकी दांतुन और मरुएके फूलोंसे पूजा, नारंगीका अर्घ्य तथा फेणीका नैवेद्य होना चाहिये । एकाग्रचित्त हो अक्षत , फल, गन्ध, पुष्प और धूपसे विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए । जितेन्द्रिय होकर अनंगकी हृदयमें कल्पना करे, पीछे प्रदक्षिणा करके अर्घ्य निवेदन करे । हे भामिनि ! इस मन्त्रसे अनंगको प्रणाम करे कि, सब संघोंमें वसनेवाले हृदयके निवासी अनंगके लिए नमस्कार है जो अत्यन्त सूक्ष्म और परमेष्ठी है । हे अनङ्ग ! आप स्वर्ग पाताल तथा मर्त्यलोकमें सबमें व्यापक हो आपके लिए नमस्कार है । अर्घ ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य दे । स्वस्थ चित्तसे पूजन करे, रातमें मधु प्राशन करावे, वह स्त्री रंभाके बराबर हो जाती है, उसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है । उसके दूसरे जन्मके किए पापभी नष्ट हो जाते हैं, रूप और ऐश्वर्यके साथ अतुल लावण्य मिलता है । वह मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल पा जाता है । पौष शुक्ला त्रयोदशीके दिन उदुम्बरकी दातुन जातीके फूलोंसे पूजन तथा दाडिमका अर्घ्य होना चाहिये । तथा हरी अशोककी मंजरियोंका नैवेद्य होता है । हे प्रिये ! उपवास करके नाटयेश्वरकी पूजा करे । नाटयेश्वर, शर्व, ईश्वर, भुवनेशके लिए पृथक पृथक नमस्कार है, अर्घ्य ग्रहण करिये, इससे अर्घ दे । व्रती पुरुष स्वस्थ चित्तसे रातमें चन्दनका प्राशन करे वह सबपापोंसे रहित होकर अतुल सौभाग्यको पाता है । माघशुक्ला त्रयोदशीके दिन जो उपवास करता है, एवम् न्यग्रोधकी दातुन से दांतोंको शुद्धकरता है, कुन्दके पुष्पोंसे पूजन तथा बीजपूरका अर्घ्य तथा शर्कराका नैवेद्य दे, देव योगेश्वरके लिए, योगस्थानमें जम्बूपर निवास करनेवाले तेरे रिए नमस्कार है, अर्घ्य ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य दे । रातमें मौक्तिकके पानीका प्राशन करनेसे वाजपेयका फल पाता है । फाल्गुनके शुक्लपक्षमें बेरका दांतुन एवं जपाके फूलोंसे पूजन तथा कङ्कोलका अर्घ होना चाहिए । अपूपका नैवेद्य तथा वीरेशकीपूजाकरे हेवीरभद्र ! हेउमा-

* आदेशमाज्ञाम् ।

कांत ! हे सुरेश्वर ! हे हिमालय ! बीचमें निवास करनेवाले ! अर्घ्य ग्रहणकर तेरे लिये नमस्कार है, हे महेश्वर ! अर्घ्य ग्रहण करिये । वह स्त्री सीताके समान होजाती है पर रातमें कंकोलका प्राशन करना चाहिये । चैत्रशुक्लामें मल्लिकाकी दाँतुन दमनसे पूजा तथा दाखका अर्घ्य देना चाहिये, बडोंका नैवेद्य तथा विश्वरूपकी पूजा करनी चाहिए । स्वरूप महात्मा विश्वरूपके लिए नमस्कार है, हे विश्वरूप ! तुझे नमस्कार है, मेरे दिए हुए अर्घ्य को ग्रहण करिए । इससे अर्घ दे, वह स्त्री उमा जैसी होजाती है रातमें कपूरका प्राशन करना चाहिए । वैशाख शुक्लामें अपामार्गकी दाँतुन, मल्लिकाके फूलोंसे पूजा तथा खर्जूरका अर्घ्य दे । सक्तुओंका नैवेद्य तथा महारूपका पूजन कहा है, सर्व विज्ञानरूपी महारूपके लिए नमस्कार है, अर्घ्य ग्रहण करिये, हे महारूप ! तेरे लिए नमस्कार है । यह अर्घ्य मन्त्र है, रातमें जातीफलका प्राशन करना चाहिए । ज्येष्ठशुक्ला त्रयोदशीके दिन निगुंडीका दांतुन करे बकुलके फूलोंसे पूजा तथा श्रीफलकी अर्घ्य कल्पना करनी चाहिए । मण्डकोंका नैवेद्य तथा रातमें लवङ्गोंका प्राशन होता है, सब पापोंसे नाशक प्रद्युम्नदेवकी पूजा होती है । हे अधिकधनवाले घरके स्वामिन् ! तुझ पशुपतिके लिए नमस्कार है । हे प्रद्युम्न परमेष्वर ! मेरे दिए हुए अर्घ्यको ग्रहण करिये । इससे अर्घ्य दे । सौ सुवर्णके दानका अठगुना फल होता है । ज्येष्ठशुक्ला त्रयोदशीके दिन नारंगीकी दांतुन कदम्बके फूल और नारियलका अर्घ्यतथा दधिभक्तका नैवेद्य एवं उमापतिकी पूजा करे । स्वास्थमनसे तिलका पानी पीना चाहिए । हे उमापते ! हे महाबाहो ! हे कामदाहक ! तेरे लिए नमस्कार है । मेरे दिए हुए अर्घ्य को ग्रहण कर, हे चन्द्रमौले ! तेरे लिए नमस्कार है । इससे अर्घ्य देना चाहिये । वह मनुष्य बाजपेययज्ञका फल पा जाता है । श्रावणशुक्ला त्रयोदशीको करञ्जकी दांतुन, कमलोंसे पूजन तथा केलेका अर्घ्य एवं नम्रचित्तसे पायसका नैवेद्य दे शूलपाणिकी पूजा करे । गन्ध तोयका प्राशन तथा रातको जागरण करना चाहिये । हे गिरिजानाथ ! हे भक्तिभावन ! तेरे लिए नमस्कार है, हे शूलपाणि ! अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिए नमस्कार है, इससे अर्घ्य देना चाहिये ।। उसे सौत्रामणियज्ञसे अठगुना फल होता है । भाद्रपद शुक्लात्रयोदशीके दिन कंकोलकी दांतुन करे; इसमें चम्पकके फलोंसे पूजा तथा घृतकी पूरियोंका नैवेद्य होना चाहिए । पूगीफलका अर्घ तथा सद्योजातकी पूजा होनी चाहिए । पीछे स्वस्थमनहोकर रातको अगरुकाप्राशनकरना चाहिये । त्रिदिवेश सद्योजातके लिये नमस्कार है मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करिये । हे सद्योजात ! तेरे लिये नमस्कार है, इससे अर्घ्य दे । वह दश अश्वमेधोंका फल पाजाता है । आश्विन त्रयोदशीमें कंकतीका दांतुन करवीरके फूलोंसे पूजा, कर्कटिका फलोंका अर्घ्य दे । त्रिदशाधिपतिका पूजन तथा धोले मांडोंका नैवेद्य होता है, देवको पूजा कर रातमें सोनेके पानीको पीना चाहिये । हे देवेश त्रिदशाधिप हे उमाकान्त ! हे महेश्वर ! आप तीन तरहसे रूपवाले हो, उस अर्घ्यको ग्रहण करो । इससे अर्घ्य दे तो चातुर्मास्य यज्ञका जो फल होता है, उससे उसे दश गुना अधिक फल मिलता है । कार्तिक त्रयोदशीके दिन कदंबकी दाँतुन है लालकमलोंसे पूजन तथा कूष्माण्डका अर्घ्य देना चाहियें । पूरियोंका नैवेद्य दे, जगदीश्वरकी पूजा करनी चाहिये । एकाग्रचित्त हो, रातमें मदनफलका प्राशन होता है । तुझे पाती शूलपाणि जगदीशके लिये नमस्कार है, हे महेशान जगदीश ! तेरे लिये नमस्कार है, अर्घ्य ग्रहण करिये । इससे अर्घ्य दे । पूजाके अन्तमें गाने बजाने आदिके महोत्सवोंके साथ जगारण करना चाहिये । सोनेके वा चाँदीके अर्धनारी आधेमें पुरुष, ऐसी शिवजीकी मूर्ति बनानी चाहिये इस देवेशको बना शोभाकर देनी चाहिये । श्वेतचन्दनसे र्चाचत-करके श्वेतपुष्पोंसे पूज दे । धूप दीप और नैवेद्यसे पूजे, दूध देनेवाली बछडासहित गायको श्वेतवस्त्र उढा गलेमें घंटाडाल आभरण पहिना सूक्ष्म वस्त्रोंके साथ आचार्यको दे दे । तैसेही दक्षिणा आसन और पादुका दे । छत्र, मूंदरी, कंकण और भूषण दे, रुईके वस्त्रोंके साथ अच्छी खाट दे, घरके समानके साथ भक्ति-युक्त चित्तसे उसपर आचार्यको बिठाशिरपर हाथ रख प्रणाम करके कहे कि, आपकी कृपासे मेरा व्रत पूरा होजाय । आचार्य कहे कि, तुमपर शिवजी प्रसन्न हों। शिवजी कहते हैं कि,इस प्रकार करके दंपतियोंका पूजन करे, पीछे उन्हें तृप्तिकारक भोजन दे । हे निष्पाप ! ऐसा करनेसे उसपर मैं तेरे में प्रसन्न होजाताहूं । जो कुछ उन्हें दियाजाता है, वह अक्षय होता है, इसमें सन्देह नहीं है । आचार्यको अगाडी करके कहे कि, तप और तीर्थ आचार्यके बराबर नहीं है, उसकी देहमें बैठकर मैं सब सिद्धि देता हूं । इसी कारण आचार्यके दानसे सब अक्षय होजाता है । यह मेरा उत्तम व्रत अत्यन्त गोपनीय है, यह राज्य, अर्थ, सिद्धि और सौभाग्य देता है । रूप, धन, धान्य और आरोग्य दिलाता है । हे वरानने ! इष्टलाभ औरससौभाग्यको बढाता है । त्रयोदशीके व्रतसे अधिक दूसरा कोई करनेवाला नहीं है । यह श्री भविष्यपुराणका कहाहुआ अनङ्ग त्रयोदशीका व्रत पूरा हुआ, इसके साथही त्रयोदशीके व्रतभी पूरे होजाते हैं ।।

अथ चतुर्दशी व्रतानि लिख्यन्ते

चैत्र शुक्ल चतुर्दशी

चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या; ।। निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः ।। अतस्तत्र चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत् ।। इति ब्रह्मवैवर्तात् ।। मधोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी ।। सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन ।। इति हेमाद्रौ वौधायानोक्तेश्च ।। अस्यामेवचतुर्दश्यां विशेषः स्मर्यते पृथ्वीचन्द्रोदये । पुलस्त्यः-चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ ।। न प्रेतत्वमवाप्नोति गङ्गायान्तु विशेषतः ।। इति चैत्रशुक्लचतुर्दशी ।।

चतुर्दशीव्रतानि

चतुर्दशीके व्रत लिखे जाते हैं । (इससे पहिले चतुर्दशीके विषयमें कुछ निर्णय भी कहते हैं । जब एक हो तो उसके विषयमें तो कोई बखेडा ही नहीं होसकता, किन्तु जब दो हों उनमें इतना अवश्य विचारना पड़ता है कि, कौनसीको व्रत किया जाय, इसपर कहते हैं कि, कृष्णा पूर्वा शुक्ला उत्तरा ली जाती है । उपवासमें तोदोनों पक्षोंकी पराही लीजाती हैं ऐसा मदनरत्नने कहा है) इसपर व्रतराजकार कहते हैं कि, चैत्र शुक्ला चतुर्दशी तो पूर्वा लेना चाहिये । इसपर वह प्रमाण देते हैं कि,ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि,रातमें भूत और शक्तियोंके साथ शिवजी विचरते रहते हैं । इस कारण रातमें चतुर्दशीके रहतेही उनका पूजन हो सकेगा । परामें रातको पूजनके समय चौदस नही मिलसकती, इस कारण पूर्वाकाही ग्रहण होगा । हेमाद्रिमें महर्षि बौधायनकाभी वाक्य है कि, चैत्र और श्रावणकी शुक्ला चौदस रात्रव्यापिनीका ग्रहण होता है । दूसरी शुक्लाका ग्रहण नहीं होता, इस विषयमें निर्णयसिन्धु और इन दोनोंका एकही सिद्धान्त है । पृथ्वीचन्द्रोदयग्रन्थमें पुलस्त्यके वाक्यसे इसमें कुछ विशेष याद किया है कि, चैत्र शुक्ला चौदशको शिवके समीप, विशेषकरके गंगा किनारे शिवके समीप स्नानकरके प्रेत नहीं बनता । यह चैत्रशुक्ला चतुर्दशीके कृत्य पूरे हुए ।।

नृसिहचतुर्दशीव्रतम्

अथ वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां नृसिंहचतुर्दशीव्रतम् ।। तच्च प्रदोषव्यापिन्यां कार्यम् ।। तदुक्तं नृसिंहपुराणे हेमाद्रौ-वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे ।। मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।। वर्षे वर्षे च कर्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम् ।। इति ।। स्कान्देऽपि-वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारऽनिलर्क्षके ।। अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः ।। इति।।अनिलर्क्षम्-स्वाती ।। दिनद्वये तद्व्याप्तांशतः ।। समव्याप्तौ च परा ।। अनङ्गेन समायुक्ता न सोपोष्या चतुर्दशी ।। धनापत्यैर्वियुज्येत तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।। इति तत्रैव निषेधात् ।। विषमव्याप्तौ त्वधिकव्याप्तिमती ।। दिनद्वयेऽप्यव्याप्तौ परा परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात्पूर्वदिने च तदभावात् ।। अस्यां च संकल्परूपव्रतोपक्रमो मध्याह्न एव कर्तव्यः ।। ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ स्नानमाचरेत् ।। परिधाय ततो वासो व्रतकर्म समारभेत् ।। इति नृसिंहपुराणोक्तेः तथेयमेव योगविशेषणातिप्रशस्ता ।। तदुक्तं तत्र-स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे महव्रतम् ।। सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ।। पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः ।। एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ।। सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते।।इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं

कास्यं च ।। विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लंघयेत्पापकृन्नरः ।। स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।। इति स्कान्दे उक्तत्वात् ।। मम सन्तुष्टिकारणम् इति फलश्रवणाच्च ।। इति व्रतनिर्णयः ।। अथ कथा—सूत उवाच ।। हिरण्यकशिपुं हत्वा देवदेवं जगद्गुरुम् ।। सुखासीनं च नृहरिं शान्तकोपं रमापतिम् ।। १ ।। प्रह्लादो ज्ञानिनां श्रेष्ठः पालयन् राज्यमुत्तमम् ।। एकाकी च तदुत्सङ्गे प्रियं वचनमब्रवीत् ।।२।। प्रह्लाद उवाच ।। नमस्ते भगवन्विष्णो नृसिंहरूपिणे नमः ।। त्वद्भक्तोऽहं सुरेशैकं त्वां पृच्छामि तु तत्त्वतः ।।३।। स्वामिंस्त्वयि*ममाभिन्ना भक्तिर्जाता त्वनेकधा ।। कथं च ते प्रियो जातः कारणं मे वद प्रभो ।। ४ ।। नृसिंह उवाच ।। कथयामि महाप्राज्ञ शृणुष्वैकाग्रमानसः ।। भक्तेर्यत्कारणं वत्स प्रियत्वस्य च कारणम् ।। ५ ।। पुजा काले ह्यभूद्विप्रः किञ्चित्त्वं नाप्यधीतवान् ।। नाम्ना त्वं वासुदेवो हि वेश्यासंसक्तमानसः ।।६।। तस्मिञ्जातु[2] न चैव त्वं चकर्थ सुकृतं कियत्।। कृतवान्मद्व्रतं चैकं वेश्यासङ्गतिलालसः ।।७।। मद्व्रतस्य प्रभावेण भक्तिर्जाता तवानघ ।। प्रह्लाद उवाच ।। श्रीनृसिंहोच्यतां तावत्कस्य पुत्रश्च किं व्रतम् ।। ८ ।। वेश्यायां वर्तमानेन कथं तच्च कृतं मया ।। येन त्वत्प्रीतिमापन्नो वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।। ९ ।। नृसिंह उवाच ।। पुराऽवन्तीपुरे ह्यासीद्ब्राह्मणो वेदपारगः ।।तस्य नाम सुशर्मेति बहुलोकेषु विश्रुतः ।। १० ।। नित्यहोमक्रियां चैव विदधाति द्विजोत्तमः ।। ब्राह्मक्रियासु नियतं सर्वासु किल तत्परः ।। ११ ।। अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टाः सर्वे सुरोत्तमाः ।। तस्य भार्या सुशीलाभूद्विख्याता भुवनत्रये ।। १२ ।। पतिव्रता सदाचारा पतिभक्तिपरायणा ।। जज्ञिरेऽस्यां सुताः पञ्च तस्माद्द्विजवरात्तथा ।। १३ ।। सदाचारेषु विद्वांसः पितृभक्तिपरायणाः ।। तेषां मध्ये कनिष्ठस्त्वं वेश्यासङ्गतितत्परः ।। १४ ।। तया निषेध्यमानेन सुरापानं त्वया कृतम् ।। सुवर्णं चाप्यपहृतं चौरैः सार्धं त्वया बहू ।। १५ ।। विलासिन्या समं चैव त्वया चीर्णमघं बहु ।। एकदा तद्गृहे चासीन्म मन्कलिस्त्वया सह ।। १६ ।। तेन कलहभावेन व्रतमेतत्त्वया[3] कृतम् ।। अज्ञानान्मद्व्रतं [4]जातं व्रतानामुत्तमं हि [5]तत् ।।१७।। तस्यां विहारगयोगेन रात्रौ जागरणं कृतम्।।वेश्याया वल्लभं[6] चिकित्प्रजातं न त्वया सह ।। १८ ।। रात्रौ जागरणं[7] चीर्णं त्यक्तं भाग्यमनेकधा ।। व्रतेनानेन चीर्णेन मोदन्ति विदि देवताः।। १९ ।। सृष्ट्यर्थे च पुरा ब्रह्मा चक्रे ह्येतदनुत्तमम् ।। मद्व्रतस्य प्रभावेण निर्मितं सचराचरम् ।। २० ।। ईश्वरेण पुरा चीर्णं वधार्थं त्रिपुरस्य च ।। माहात्म्येन व्रतस्याशु त्रिपुरस्तु निपातितः ।। २१ ।। अन्यैश्च बहुभिर्देवैर्ऋषिभिश्च पुरानघ ।। राजभिश्च महाप्राज्ञैर्विदितं व्रतमुत्तमम् ।। २२ ।। एतद्व्रतप्रभावेण सर्वे

* १ मित्रे । २ जन्मनि नैव । इति पाठः । ३ भोजनं न त्वया । ४ चक्रे । ५ व्रतम् इत्यपि पाठः । ६ प्रियमिष्टमित्यर्थः । ७ तयेति शेषः ।

सिद्धिमुपागताः ।। वेश्यापि मत्प्रिया जाता त्रैलोक्ये सुखचारिणी ।। २३ ।। ईदृशं मद्व्रतं वत्स त्रैलोक्ये तु सुविश्रुतम्[1] ।। कलहेन विलासिन्या व्रतमेतदुपस्थितम् ।। २४ ।। प्रह्लाद तेन ते भक्तिर्मयि जाता ह्यनुत्तमा ।। धूर्तया च विलासिन्या ज्ञात्वा व्रतदिनं मम ।।२५।। कलहश्च कृतो येन मद्व्रतं च कृतं भवेत् ।। सा वेश्या त्वप्सरा जाता भुक्त्वा भोगाननेकशः ।। २६ ।। मुक्ता कर्मविलीना तु त्वं प्रहलाद विशस्व[2] माम् ।। कार्यार्थं च भवानास्ते मच्छरीरपृथक्तया ।। २७ ।। विधाय सर्वकार्याणि शीघ्रं चैव गमिष्यसि ।। इदं व्रतमवश्यं ये प्रकरिष्यन्ति मानवाः ।। २८ ।। न तेषां पुनरावृत्तिर्मत्तः कल्पशतैरपि ।। अपुत्रो लभते पुत्रान्मद्भक्तश्च सुवर्चसः[3] ।। २९ ।। दरिद्रो लभते लक्ष्मीं धनदस्य च यादृशी ।। तेजःकामो लभेत्तेजो राज्येच्छू राज्यमुत्तमम् ।। ३० ।। आयुःकामो लभेदायुर्यादृशं च शिवस्य हि ।। स्त्रीणां व्रतमिदं साधुपुत्रदं भाग्यदं तथा ।। ३१ ।। अवैधव्यकरं तासां पुत्रशोक-विनाशनम् ।। धनधान्यकरं चैव जातिश्रैष्ठ्यकरं शुभम् ।। ३२ ।। सार्वभौमसुखं तासां दिव्यं सौख्यं भवेत्ततः ।। स्त्रियो वा पुरुषाश्चापि कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ।। ३३ ।। तेभ्योऽहं प्रददे सौख्यं भुक्तिमुक्तिसमन्वितम् ।। बहुनोक्तेन किं वत्स व्रतस्यास्य फलं महत् ।।३४।। मद्व्रतस्य फलं वक्तुं नाहं शक्तो न शंकरः ।। ब्रह्मा चतुर्भिर्वक्त्रैश्च न लभेन्महिमावधिम् ।। ३५ ।। प्रह्लाद उवाच ।। भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुतं व्रतमनुत्तमम् ।। व्रतस्यास्य फलं साधु त्वयि मे भक्तिकारणम् ।। ३६ ।। स्वामिञ्जातं विशेषेण त्वत्तः पापनिकृन्तनम् ।। अधुना श्रोतुमिच्छामि व्रतस्यास्य विधिं परम् ।। ३७ ।। कस्मिन्मासे भवेदेतत्कस्मिन्वा तिथिवासरे[4] ।।एतद्विस्तरतो देव वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।। ३८ ।। विधिना येन वै स्वामिन् समग्रफलभुग्भवेत् ।। ममोपरि कृपां कृत्वा ब्रूहि त्वं सकलं प्रभो ।। ३९ ।। नृसिंह उवाच ।। साधुसाधु महाभाग व्रतस्यास्य विधिं परम् ।। सर्वं कथयतो मेऽद्य त्वमेकाग्रमनाः शृणु ।। ४० ।। वैशाखशुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां समाचरेत् ।। मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।। ४१ ।। वर्षेवर्षे तु कर्तव्यं मम संतुष्टिकारकम् ।। महापुण्यमिदं श्रेष्ठं मानुषैर्भवभीरुभिः ।। ४२ ।। तेनैव क्रियमाणेन सहस्रद्वादशीफलम् ।। जायते तद्व्रते वच्मि मानुषाणां महात्मनाम् ।। ४३ ।। स्वाती नक्षत्रयोगेन शनि-वारेण संयुते ।। सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ।। ४४ ।। पुण्यसौभाग्य-योगेन लभ्यते दैवयोगतः ।। सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम् ।। ४५ ।। एतदन्यतरे योगे तद्दिनं पापनाशनम् ।। केवलेऽपि च कर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ।।४६।। अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।। यथा यथा प्रवृत्तिः स्यात्पात-

१ सुविस्मयइत्यपि पाठः । २ आर्षमिदम् । ३ कस्मिश्च वासरे तिथौ । ४ गुप्तमित्यपि पाठः ।

कस्य कलौ युगे ।। ४७ ।। तथा तथा प्रणश्यन्ति सर्वे धर्मा न संशयः ।। एतद्व्रत-प्रभावेण मद्भक्तिः स्याद्दुरात्मनाम् ।। ४८ ।। विचार्येत्थं प्रकर्तव्यं माधवे मासि तद्व्रतम् ।। नियमश्च प्रकर्तव्यो दन्तधावनपूर्वकम् ।।४९।। श्रीनृसिंह महोग्रस्त्वं दयां कृत्वा ममोपरि ।। अद्याहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय ।। ५० ।। इति नियममन्त्रः ।। व्रतस्थेन न कर्त्तव्या सङ्गतिः पापिभिः सह ।। मिथ्यालापो न कर्तव्यः समग्रफलकांक्षिणा ।। ५१ ।। स्त्रीभिर्दुष्टैश्च आलापान्व्रतस्थो नैव कार-येत् ।। स्मर्तव्यं च महारूपं मद्दिने सकलं शुभे ।। ५२ ।। ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले ।। गृहे वा देवखाते वा तडागे विमले शुभे ।। ५३ ।। वैदिकेन च मंत्रेण स्नानं कृत्वा विचक्षणः ।। मृत्तिकागोमयेनैव तथा धात्रीफलेन च ।। ५४ ।। तिलैश्च सर्वपापघ्नैः स्नानं कृत्वा महात्मभिः ।। परिधाय शुचिर्वासो नित्यकर्म समाचरेत् ।। ५५ ।। ततो गृहं समागत्य स्मरन् मां भक्तियोगतः ।। गोमयेन प्रलि-प्याथ कुर्यादष्टदलं शुभम् ।। ५६ ।। कलशं तत्र संस्थाप्य ताम्रं रत्नसमन्वितम् ।। तस्योपरि न्यसेत् पात्रं वंशजं व्रीहिपूरितम् ।। ५७ ।। हैमी तत्र च मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्यास्तथैव च ।। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। ५८ ।। यथाशक्त्याथवा कार्या वित्तशाठ्यविवर्जितैः ।। पञ्चामृतेन संस्नाप्य पूजनं तु समाचरेत् ।। ५९ ।। ततो ब्राह्मणमाहूय तमाचार्यमलोलुपम् ।। सदाचारसमायुक्तं शान्तं दान्तं जिते-न्द्रियम् ।। ६० ।। आचार्यवचनाद्धीमान् पूजां कुर्याद्यथाविधि ।। मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्पस्तबकशोभितम् ।। ६१ ।। ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पू*जयेत्स्वस्थमानसः ।। उपचारैः[२] षोडशभिर्मंत्रैर्वेदोद्भवैस्तथा ।। ६२ ।। शुभैः पौराणिकैर्मन्त्रैः पूजनीयो यथाविधि ।। चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुङ्कुमिश्रितम् ।। ददामि तव तुष्ट्यर्थं नृसिंह परमेश्वर ।। ६३ ।। चन्दनम् ।। कालोद्भवानि पुष्पाणि तुलस्यादीनिवै प्रभो । सम्यक् गृहाण देवेश लक्ष्म्या सह नमोस्तु ते ।। ६४ ।। पुष्पाणि ।। कृष्णागुरुवं धूपं श्रीनृसिंह जगत्पते ।। तव तुष्ट्यै प्रदास्यामि सर्वदेव नमोस्तु ते ।। ६५ ।। धूपम् ।। [३]सर्वतेजोद्भवं तेजस्तस्माद्दीपं ददामि ते ।। श्रीनृसिंह महाबाहो तिमिरं मे विनाशय ।। ६६ ।। दीपम् ।। नैवेद्यं सौख्यदं चारु भक्ष्य-भोज्यसमन्वितम् ।। ददामि ते रमाकान्त सर्वपापक्षयं कुरु ।। ६७ ।। नैवेद्यम् ।। नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते ।। अनेनार्घ्यप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ।। ६८ ।। अर्घ्यम् ।। पीताम्बर महाबाहो प्रह्लादभयनाशन ।। यथाभूतेनार्चनेन यथोक्तफलदो भव ।। ६९ ।। इति प्रार्थना ।। रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवादित्रनिः-

---

* पूजयेद्यत । २ मन्मन्त्रैर्नामभिः।। इत्यपिपाठः । ३ दीपः पापहरः प्रोक्तस्तमोराशिविनाशनः । दीपेन लभ्यते तेजस्तस्माद्दीपं ददामि ते ।। इतिपुस्तकान्तरे ।

स्वनैः ।। पुराण श्रवणाद्यैश्च श्रोतव्याश्च कथाः शुभाः ।। ७० ।। ततः प्रभात-समये स्नानं कृत्वा जितेन्द्रियः ।। पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेन्मां प्रयत्नतः ।। ७१ ।। वैष्णवान्प्रजपेन्मंत्रान् मदग्रे स्वस्थमानसः ।। ततो दानानि देयानि वक्ष्यमाणानि चानघ ।। ७२ ।। पात्रेभ्यस्तु द्विजेभ्यो हि लोकद्वयजिगीषया ।। सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः ।। ७३ ।। गोभूतिलहिरण्यानि देयानि च फलेप्सुभिः ।। शय्या सधूलिका देया सप्तधान्यसमन्विता ।।७४।। अन्यानि च यथाशक्त्या देयानि मम तुष्टये ।। वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यथोक्तफलकांक्षया ।। ७५ ।। ब्राह्मणान्भोजये-द्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। निर्धनेनापि कर्तव्यं देय शक्त्यनुसारतः ।। ७६ ।। सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते ।। मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्य मत्परायणैः ।।७७।। तद्वंशे न भवेद्दुःखं न दोषो मत्प्रसादतः ।। मद्वंशे ये नरा जाता ये निष्पत्तिपरायणाः ।। ७८ ।। तान् समुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ।। पातकार्ण-वमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुवासिभिः ।। ७९ ।। जीवैस्तु परिभूतस्य मोहदुःखगतस्य मे ।। करावलम्बनं देहि शेषशायिञ्जगत्पते ।। ८० ।। श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ।। क्षीराम्बुनिधिवासिस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन ।। ८१ ।। व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रतो भव ।। एवं प्रार्थ्य ततो देवं विसृज्य च यथाविधि ।। ८२ ।। उप-हारादिकं सर्वमाचार्याय निवेदयेत् ।। दक्षिणाभिस्तु संतोष्य ब्राह्मणांस्तु विस-र्जयेत् ।।८३।। मध्याह्ने तु सुसंयत्तो भुञ्जीत सह बन्धुभिः ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या व्रतं पापप्रणाशनम् ।। तस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ।। ८४ ।। पवित्रं परमं गुह्यं कीर्तयेद्यस्तु मानवः ।। सर्वान् कामानवाप्नोति व्रतस्यास्य फलं लभेत् ।। इति हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे नृसिंहचतुर्दशीव्रतकथा समाप्ता ।।

नृसिंहचतुर्दशीव्रत—वैशाख शुक्ला चतुर्दशीके दिन होता है, जब चतुर्दशी प्रदोषकालव्यापिनी हो तब इस व्रतको करना चाहिये । यही नृसिंहपुराणसे हेमाद्रिने कहा है कि, वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको, प्रदोषकालमें मेरे जन्मका होनेवाला पवित्र व्रत पापोंका नाश करनेवाला है । यह मेरी तुष्टि करनेवाला है इसे प्रतिवर्ष करना चाहिये, इससे मेरी तुष्टि होती है । स्कन्दपुराणमें भी कहा है कि, वैशाख (शुक्ला) सोमवारी चौदसके दिन अनिल ऋक्षमें प्रदोषके समय नृसिंहका अवतार हुआ था । अनिलऋक्ष स्वातीका नाम है । यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो अथवा दोनोंही दिन दोनोंही पूरी प्रदोषकी व्यापिनी न होकर अंशसे एक बराबर व्याप्त हों तो पराका ग्रहण होता है । जो चतुर्दशी (अनंग त्रयोदशी) से युक्त हो उसका, उपवास न करना चाहिये । क्योंकि, उसके करनेसे धन सन्तानका नाश होता है । इस कारण उसे छोड दे यह वहीं निषेध करदिया है । इस कारण पराका ही ग्रहण होता है, पर इसमें प्रदोष व्याप्ति मुख्य है । यदि कम ज्यादा प्रदोष व्याप्ति हो तो जौनसी अधिक प्रदोष व्यापिनी हो उसीका ग्रहण होता है । यदि दोनोंही दिन प्रदोषव्यपिनी न हो तो भी पराकाही ग्रहण होता है । क्योंकि, पर दिनमें गौणकाश व्याप्ति तो है ही किन्तु पूर्वदिनमें उसका अभाव है । इसमें व्रतका संकल्प रूप उपक्रम मध्याह्नके समय ही करना चाहिये क्योंकि, यह नृसिंहपुराणमें लिखा हुआ है कि, इसके पीछे मध्याह्न कालमें नदी आदिकमें स्नान करे, पीछे वस्त्र पहिनकर व्रतके कार्य करे । योगविशेषोंमें इसका अत्यन्त प्रशंसा कीगई है यह भी वहीं कहा गया है स्वाती नक्षत्र शनिवार सिद्धयोग और वणिज करणके योगमें जो यह महाव्रत दैवयोगसे जीवोंके सौभाग्य योगसे

मिलजाय तो परम प्रशंसनीय है । इन योगोंके विना भी मेरा व्रत पापनाशक है मेरे व्रतमें सभी वर्णोंके लोगोंका अधिकार है । संयोग पृथक्त्व न्यायसे यह व्रत नित्य भी है और काम्य भी है क्योंकि स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है कि जो मेरे दिनको जानकरभी उसे लाँघता है उपवास नहीं करता वह पापी जबतक चाँद सूरज हैं तबतक नरकमें जाता है । इस वाक्यसे नित्य प्रतीत होता है तथा यह व्रत मेरी तुष्टिको करनेवाला है यह फलभी सुना जारहा है कि, उसपर मैं नृसिंह प्रसन्न होजाता हूं । कथा--सूतजी बोले ककि, हिरण्यकश्यपुको मार क्रोधसे शान्त होजानेपर विराजमान हुए जगद्‌गुरु परमगति रमापति ।।१।। नृसिंह भगवान्‌को-उनकी गोदमें अकेला बैठा ज्ञानियोंका शिरोमणि प्रह्लाद बोला कि ।।२।। हे भगवान् विष्णो ! तुझ नृसिंह रूपीके लिये नमस्कार है । हे सुरेश ! मैं आपाका भक्त हूं मैं एक आपको हो तत्व पूछता हूं ।।३।। हे स्वामिन् ! आपमें मेरी अनेकरतरहसे अभिन्न भक्ति हुई है, मैं आपका प्यारा कैसे हो गया ? हे प्रभो ! इसका कारण कहिये ।।४।। नृसिंहजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ ! मैं कहता हूं तू एकाग्रमनसे सुन । जो कि, भक्ति और प्रियत्वका कारण है ।।५।। पहिले तुम वासुदेवनामके ब्राह्मण वेश्यागामी और अनक्षर थे ।।६।। उस जन्ममें तुमने और तो कोई व्रत नहीं किया था पर किसी वेश्याकी संगतिकी इच्छासे मेरा एकव्रत किया था ।।७।। हे निष्पाप उसी वृतके प्रभावसे तेरी मुझमें भक्ति हो गई, यह सुन प्रह्लाद बोला कि, हे श्रीनृसिंह ! बताइये मेरे बापका नाम क्या है वह व्रत क्या कैसा है ? ।।८।। वेश्यागामीपनेमें वह व्रत कैसे किया जिससे आपकीकृपाका भाजन बनगया ? यह आप मुझे बताइये ।।९।। नृसिंह बोले कि पहिले अवन्तीनगरीमें एक वेद वेदान्तोंका जाननेवाला जगत् प्रसिद्ध सुशर्म्मा नामका ब्राह्मण था ।।१०।। वह प्रतिदिन अग्निहोत्र करता था, ब्राह्मणोंकी सभी क्रियाओंमें तत्पर था ।।११।। उसने अग्निष्टोम आदिकोंसे सब सुरोंका यजन किया था उस जैसी ही प्रसिद्ध उसकी सुशील स्त्री थी ।।१२।। वह पतिव्रता सदाचारिणी और पतिकी भक्तिमें लगी रहनेवाली थी, उसमें उसने पांच पुत्र पैदा किए ।।१३।। चार तो सदाचारी और विद्वान् थे पर तुम सबसे छोटे थे वेश्यागामी थे ।।१४।। उस वेश्याके मने करनेपरभी तुम शराब पीते थे, चोरोंके साथ तुमने बहुत सोना चोरा था ।।१५।। विलासिनीके साथ तुमने बडे बडे पाप किए, एकबार उसीके घरमें तुम्हारी उसकी बडी लडाई हुई ।।१६।। उसी लढाईके प्रभावसे तुमने यह व्रत किया, किया अज्ञानसे था पर मेरा वह उत्तम व्रत किया गया पूरा ।।१७।। जब वह तुम्हें रातको न मिली तो जागरणभी किया, इस व्रतके प्रभावसे तेरे समान उसका दूसरा प्यारा नहीं हुआ ।।१८।। उसने भी अनेकों भोगोंको छोडकर रातमें जागरण किया । इस व्रतसे स्वर्गवासी देवताभी प्रसन्न होजाते हैं उसकी तो चलाई ही क्या ? ।।१९।। सृष्टिके लिए पहिले ब्रह्माने यह श्रेष्ठव्रत किया इसीके प्रभावसे वह चराचर रचसका ।।२०।। त्रिपुरके मारनेके लिए शिवने इस किया, इसीके माहात्म्यसे वह त्रिपुरको मारसके ।।२१।। हे निपपाप ! और भी बहुतसे ऋषियों और राजाओंने इस व्रतको किया है ।।२२।। इसी व्रतके प्रभावसे वे सब सिद्धि पागये वह वेश्याभी मेरी प्यारी हुयी तीनों लोकोंमें सुखपूर्वक विचरी ।।२३।। इस प्रकार यह मेरा व्रत संसारमें प्रसिद्ध है यही व्रत लडाईके कारण विलासिनीसे होगया ।।२४।। हे प्रह्लाद ! उसीसे मेरेमें तेरी यह अपूर्व भक्ति हुयी । धूर्ता विलासिनीने मेरे व्रतका दिन जान ।।२५।। लडाई करली उसीसे मेरा व्रतकर दिया वह वेश्या तो अनकों भोगोंको भोगकर अप्सरा होगयी ।।२६।। कर्मबन्धसे छूटगयी अन्तमें मुझमें लय हो गयी । आप मेरे शरीरसे पृथक् होकर कार्यके लिए रहते हैं ।२७।। आप अपना काम खतम करके जल्दी ही मुझमें मिल जायँगे । जो मनुष्य इस व्रतको अवश्य करेंगे ।।२८।। उनकी सौ कल्पमें हो फिर दुबारा जन्म नहीं होगा, मेरा निपुत्री भक्त तेजस्वी पुत्रोंको पाता है ।।२९।। निर्धन कुबेरके समान धनी राज्य मिलता है ।।३०।। आयु चाहनेवाला शिवकी सी आयुपाता है, स्त्रियोंको यह व्रत सुयोग्य पुत्र और सौभाग्य देता है ।।३१।। वे कभी विधवा नहीं होती, न कभी पुत्र शोकही देखती हैं । यह धनधान्य देता है, जन्म को उत्तम बनाता है ।।३२।। उन्हें पहिले चक्रवर्तीका सुख होकर पीछे दिव्य सुख होता है । जो स्त्री पुरुष इस उत्तम व्रतको करते हैं ।।३३।। मैं उन्हें भुक्तिमुक्तिके साथ उत्तम सुख देता हूं, हे वत्स ! इस व्रतके बहुतसा फल कहनेमें क्या है ।।३४।। मेरे व्रतके फलको कहनेकी न मुझमें शक्ति है न शिवही कह सकते हैं, चारों मुखोंसे ब्रह्माभी कहनेलग जाये तो भी वह महिमाकी अवधि नहीं

पासकता । प्रह्लाद बोला कि, हे भगवन् ! आपकी कृपासे ॥३५॥ यह उत्तम व्रत सुनलिया इसी व्रतसे मेरी आपमें भक्ति हुई है ॥३६॥ इसीसे बढी है । हे स्वामिन् ! अब मैं इस व्रतकी सर्व श्रेष्ठ विधि सुनना चाहता हूं ॥३७॥ हे देव ! यह विस्तारके साथ बताइये कि, यह कौनसे मास तिथि और वारमें होता है ॥३८॥ जिस तरह समग्र फल मिल जाय हे प्रभो ! मेरेपर कृपा करके उन सारी विधियोंको बतादीजिए ॥३९॥ नृसिंह बोले कि, हे महाभाग ! तुम ठीक कहते हो मैं इस व्रतकी एक श्रेष्ठ विधि कहता हूं तुम सावधान होकर सुनो ॥४०॥ वैशाख शुक्ल चौदशके दिन करे । मेरे जन्मका होनेवाला व्रत सब पापोंका नाशक है ॥४१॥ भावभीरु मनुष्योंको परम पवित्र यह व्रत प्रतिवर्ष करना चाहिए । इसमें मेरी तुष्टि होती है ॥४२॥ जिसके किएसे महात्मा मनुष्योंको एक हजार द्वादशीका फल प्राप्त होता है उसे मैं कहता हूं॥४३॥ स्वाती नक्षत्र, शनिवार, सिद्ध योग, वणिज करण इनके योगमें, पुण्य सौभाग्यके योगसे दैवयोगसे मिलता है । इन सबके योगमें कोटि हत्याओंको नष्ट करता है ॥४४–४५॥ इनमेंसे किसीकाभी योग होतो भी पापनाशक है । केवल भी मेरे दिनमें इस उत्तम व्रतको कर लेना चाहिये ॥४६॥ विना किए जबतक चाँद सूरज रहते हैं तबतक नरक जाता है "जो जो कलियुगमें पापकी प्रवृत्ति बढेगी तो तो सभी धर्म नष्ट होते चले जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है" पर इस व्रतके प्रभावसे दुष्टोंके हृदयमें भी भक्ति होजायगी ॥४७–४८॥ ऐसा विचारकर माधव मासमें तो अवश्य करना चाहिए एवं दाँतुन करके नियमकरना चाहिये ॥ ४९ ॥ हे नृसिंह ! आप बडे उग्रहैं । मेरें पर कृपा कररिये, अब मैं आपका व्रत करताहूं । उसे निर्विघ्नता के साथ पूरा कराइये॥५०॥ यह नियमका मंत्र है । समग्र फल चाहनेवाले व्रतीको पापियोंका साथ न करना चाहिये । न झूठी बातही बनानी चाहिये ॥५१॥ स्त्री और दुष्टोंसे बाते न करनी चाहिये । इस मेरे पवित्र दिनमें केवल मेरेही रूपको याद आनी चाहिये ॥५२॥ इसके पीछे मध्याह्नके समय नदी आदिके निर्मलपानीमें गृहमें अथवा देवखात बावडीमें ॥५३॥ वैदिक मंत्रोंसे स्नान करके मृत्तिका, गोमय और आंवलोंसे ॥५४॥ रनलोंसे सब पापोंके नाशक महात्माओंके साथ स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिनकर नित्य कर्म करने लजगाय ॥५५॥ पीछे घर आ भक्तियोंगसे मुझे धार कर गोबरसे लीपकर अष्टदल कमल बनावे ॥५६॥ तांबेके कलशको वहां रख रत्न डाल उसपर (व्रीहि) गेहुओंका भरा बासका पात्र रख दे ॥५७॥ उसपर विधिपूर्वक सोनेकी मूर्ति लक्ष्मीजीके साथ स्थापित करे । एक पल आधे वा आधेके आधेकी ॥५८॥ अपनी शक्तिके अनुसाल कृपणता छोडकर बनवानी चाहिये । पंचामृतसे स्नान कराकर पूजन करे ॥५९॥ सदाचारी जितेन्द्रिय शान्त दान्त निर्लोभ ब्राह्मणको बुला उसे आचार्य्य बनावे ॥६०॥ उसीके कथानुसार विधिपूर्वक पूजा करे ! एक मण्डप बनाकर उसे फूलोंके गुच्छोंसे सुशोभित करना चाहिये ॥६१॥ स्वस्थ चित्तसे ऋतुकालके फूलोंसे पूजे वेद-मंत्रोंसे सोलहों उपचारोंसे पूजन करे ॥६२॥ पवित्र पौराणिक मंत्रोंसेभी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये, हेनृसिंह परमेश्वर ! आपकी प्रसन्नताके लिये कुंकुम मिरा हुआ दिव्य शीतल चंदन देता हूं, इससे चन्दन दे ॥६३॥ हे प्रभो ! कालके पुष्प तथा तुलसी अदिश देता हूं, हे देवेश ! लक्ष्मीके साथ ग्रहणकर तेरे लिये नमस्कार है, इससे पुष्प दे ॥६४॥ हे जगत्पते ! श्रीनृसिंह ! काले अगुरु मिली हुई धूप आपकी तुष्टिके लिये देता हूं, हे सर्व देवमय ! तेरे लिये नमस्कार है ॥६५॥ इससे धूप देनी चाहिये । जिससे सब तेज पैदा हुए हैं वो आप हैं इस कारण आपको दीप देता हूं, हे महाबाहो नृसिंह ! मेरे अन्धकारको नष्ट कर दे ॥६६॥ इससे दीप दे । भक्ष्य और भोज्यसहित सुखदाता नैवेद्य है, हे रमाकान्त ! मेरे सब पापोंको नष्ट करिये ॥६७॥ इससे नैवेद्य दे । हे नृसिंह ! हे अच्युत ! हे देवेश ! हे लक्ष्मीकान्त ! हे जगत्पते ! इस अर्घ्य दानसे मेरे मनोरथ सफल होजायें ॥६८॥ इससे अर्घ्य दे । हे पीताम्बरके धारक ! हे महाबाहो ! हे प्रह्लादके भयको नष्ट करनेवाले यथा भूत पूजनसे कहे हुए फलको देनेवाला होजा ॥६९॥ इससे प्रार्थना करे ॥ गाने-बजानोंकी झनकारके साथ रातको जागरण करना चाहिये । पुराणोंकी पवित्र कथाओंका श्रवण होना चाहिये ॥७०॥ प्रातःकाल स्नान करके जितेन्द्रियतापूर्वक कहे हुए विधानसे प्रयत्नपूर्वक मेरी पूजा करे ॥७१॥ स्वस्थचित्तसे मेरे सामने वैष्णव मंत्रोंका जप करे, हे निष्पाप ! फिर कहे हुए दान दे ॥७२॥ दोनों लोकोंको जीतनेकी इच्छासे सुपात्र ब्राह्मणोंको मुझ सन्तोष करनेवाला सोनेका सिंह देना चाहिये ॥७३॥ फल चाहने-

वालोंको गो भू तिल और सोना देना चाहिये । सप्तधान्य और रुईके वस्त्रोंसहित शय्या देनी चाहिये ।।७४।। शक्तिके अनुसार और भी चीजें देनी चाहिये । कहे हुए फलको लेनेकी इच्छा हो तो कृपणता न करनी चाहिये ।।७५।। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये, निर्धन भी व्रत करे । पर दान शक्तिके अनुसार दे ।।७६।। मेरे व्रतमें सभी वर्णोंका अधिकार है, मेरे उन अनन्य भक्तोंको जो मेरेमें लगे हुए हैं । उन्हें यह व्रत अवश्य करना चाहिये ।।७७।। मेरी कृपासे उनके वंशमें कोई दोष नहीं होगा मेरे वंशमें जो मनुष्य आगये वे तत्त्व प्राप्तिमें लग जायें ।।७८।। हे देवेशे ! आप उनका संसार सागरसे उद्धारकर देना, पातकोंके समुद्रमें डूबे हुए व्याधि दुखरूपी पानीके बीचमें बसनेवाले ।।७९।। जीवोंसे दबायेगये मोह और दुखको प्राप्त हुये मुझे हे शेषशायिन् ! हे जगत्के स्वामिन् । अपने हाथका अवलंब देदीजिये ।।८०।। हे श्रीनृसिंह ! हे रमाकान्त ! हे भक्तोंके भयोंको नष्ट करनेवाले ! हे क्षीरसागरमें बसनेवाले ! हे हाथमें चक्रवाले ! हे जनार्दन ! ।।८१।। हे देवेश ! इस व्रतसे भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला होजा । इसप्रकार प्रार्थनाकर विधिपूर्वक देवका विर्जन कर दे ।।८२।। आचार्यके लिये सभी उपहार आदिक देदे, दक्षिणासे सन्तुष्ट करके ब्राह्मणोंका सिसर्जन कर देना चाहिये ।।८३।। मध्याह्नकालमें संयुत होकर बन्धुओंके साथ भोजन करे । जो भक्तिपूर्वक पापनाशक इस व्रतको सुनता है तो उसकी ब्रह्महत्या इसके सुननेसेही दूर होजाती है ।।८४।। जो मनुष्य इस पवित्र परम गोपनीय व्रतका श्रवण करता है, वो सब कामोंको प्राप्त होजाता है, इस व्रतका उसे फल मिलजाता है । यह नृसिंह पुराणमें हेमाद्रिकी संग्रह की हुई चतुर्दशीके व्रतकी कथा पूरी हुई ।।

अथ अनन्त चतुर्दशीव्रत

सा परा कार्या पूजनकालव्यापित्वात् ।। अनन्तं पूजयेद्यस्तु प्रातःकाले समाहितः ।। अनन्तां लभते सिद्धिं चक्रपाणेः प्रसादतः ।। इति ब्रह्मपुराणात् ।। तदभावे पूर्वा ।। उभयदिने सूर्योदयव्यापित्वे पूर्णायुक्तत्वेन परैव ग्राह्या ।। भाद्रे सिते चतुर्दश्यामनन्तं पूजयेत्सुधीः ।। ह्रासेन सर्वकर्माणि प्रातरेव हि पूजनम् ।। शुक्लापि भाद्रपदस्था अनन्ताख्या चतुर्दशी ।। उदयव्यापिनी ग्राह्या घटिकैकापि या भवेत् ।। इति हेमाद्रिः ।। तस्मात्परैवेति सर्वसंमतम् ।। अथ अनन्तव्रतविधि :— प्रातर्नद्यादिके स्नात्वा नित्यकर्म समाप्य च ।। अनन्तं हृदये कृत्वा शुचिस्तत्र समाहितः ।। मण्डलं सर्वतोभद्रं कृत्वा कुम्भं तु विन्यसेत् ।। तत्र चाष्टदले पद्मे पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ।। कृत्वा दर्भमयं शेषं फणासप्तकमण्डितम् ।। अनन्तमच्युतं कृष्णमनिरुद्धं तु पद्मजम् ।। दैत्यारिं पुण्डरीकाक्षं गोविन्दं गरुडध्वजम् ।। कूर्मं जलनिधिं विष्णुं वामनं जलशायिनम् ।। प्रतिवर्षं क्रमेणैवं नामानि च चतुर्दश ।। तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुङ्कुमाक्तं सुशोभनम् ।। चतुर्दशग्रन्थियुतमुपस्थाप्य प्रपूजयेत् ।। ततस्तु मूलमन्त्रेण नमस्कृत्य चतुर्भुजम् ।। नवाम्रपल्लवाभासं पिङ्गभ्रश्यश्रुलोचनम् ।। पीताम्बर धरं देवं शंखचक्रगदाधरम् ।। प्रसन्नवदनं विष्णुं विश्वरूपं विचिन्तयेत् ।। इति ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य मम सकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यायुरारोग्यचतुर्विध पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं मया आचरितस्य आचार्यमाणस्य च व्रतस्य सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं श्रीमनन्तपूजनमहं करिष्ये ।। तथा चासनादिकलशाराधनादि करिष्ये ।। इति संकल्प्य । कलशस्य० सर्वे समुद्राः सिता सिते० कलशे वरुणं सम्पूज्य ।। ततः शंख घण्टां च पूजयेत् ।। अपवित्रः पवित्रो वा० पूजाद्रव्याणि आत्मानं च प्रोक्ष्य यमुनां

पूजयेत् ।। श्रीमदनव्रताङ्गत्वेन श्रीयमुनापूजनं करिष्ये ।। तद्यथा—लोकपालस्तुतां देवीमन्द्रनीलसमुद्भवाम् ।। यमुने त्वामहं ध्याये सर्वकामार्थसिद्धये ।। ध्यानम् ।। सरस्वति नमस्तुभ्यं सर्वकामप्रदायिनि ।। आगच्छ देवि यमुने व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। इमं मे गङ्गे० इत्यावाह्य।। सिंहासनसमारूढे देवशक्तिसमन्विते ।। सर्वलक्षणसंपूर्णे यमुनायै नमोस्तु ते ।। आसनम् ।। रुद्रपादे नमस्तुभ्यं सर्वलोकहितप्रिये ।। सर्वपापप्रशमनि तरङ्गिण्यै नमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। गरुडपादे नमस्तुभ्यं शंकरप्रियभामिनि ।। सर्वकामप्रदे देवि यमुने ते नमो नमः ।। अर्घ्यम् ।। विष्णुपादोद्भवे देवि सर्वाभरणभूषिते ।। कृष्णमूर्ते महादेवि कृष्णावेण्यै नमोनमः ।। आचमनम् ।। सर्वपापहरे देवि विश्वस्य प्रियदर्शने ।।सौभाग्यं यमुने देहियमुनायै नमोस्तु ते ।। मधुपर्कम् ।। नन्दिपादे महादेवि शंकरार्धशरीरिणि ।। सर्वलोकहित देवि भीमरथ्यै नमोस्तु ते ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। सिंहपादोत्तमे देवि नारसिंहसमप्रभे ।। सर्वलक्षणसंपूर्णे भवनाशिनि ते नमः ।। शुद्धोदकस्नानम् ।। विष्णुपादाब्जसंभूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।। सर्वपापहरे देवि भागीरथ्यै नमोस्तु ते ।। श्वेतवस्त्रम् ।। त्र्यंबकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि ।। सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोस्तु ते ।। कञ्चुकीम् ।। माणिक्यमुक्तावलिकौस्तुभांश्च गोमेदवैदूर्यमपुष्परागैः ।। वज्रैश्च नीलैश्च सुशोभितानि गृहाण सर्वाभरणानि देवि ।। आभरणानि ।। चन्दनागुरुकस्तूरीरोचनं कुकुमं तथा ।। कर्पूरेण समायुक्तं गन्धं दद्मि च भक्तितः ।। गन्धम् ।। श्वेतांश्च चन्द्रवर्णाभान् हरिद्रारागरञ्जितान् ।। अक्षतांश्च सुरश्रेष्ठ ददामि यमुने शुभे ।। अक्षतान् ।। मन्दारमालतीजातीकेतकीपाटलैः शुभैः ।। पूजयामि च देवेशि यमुने भक्तवत्सलायै० कटी पू० ।। हरायै० नाभि पू० ।। मन्मथवासिन्यै० गुह्यं पू० ।। अज्ञानवासिन्यै० हृदयं पू० ।। भद्रायै० स्तनौ पू० ।। अघहन्त्र्यै० भुजौ पू० ।। रक्तकण्ठयै० कण्ठं पू० ।। भवहृत्यै० मुखं पू० ।। गौर्यै० नेत्रे पू० ।। भागीरथ्यै० ललाटं पू० ।। यमुनायै० शिर० पू० ।। सरस्वत्यै० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। अथ नामपूजा—यमुनायै नमः ।। सीतायै० ।। कमलायै० ।। उत्पलायै० अभीष्टप्रदायै० ।। धात्र्यै० ।। हरिहररूपिण्यै० ।। गङ्गायै० ।। नर्मदायै० ।। गौर्यै० । भागीरथ्यै० ।। तुङ्गायै० ।। भद्रायै० ।। कृष्णावेण्यै० ।। भवनाशिन्यै० ।। सरस्वत्यै० ।। कावेर्यै० ।। सिन्धवे० ।। गौतम्यै० ।। गोमत्यै० ।। गायत्र्यै० ।। गरुडायै० ।। गिरिजायै० ।। चन्द्रचूडायै० सर्वेश्वर्यै० ।। महालक्ष्म्यै नमः ।। सर्वपापहरे देवि सर्वोपद्रवनाशिनि ।। सर्वसंपत्प्रदे देवि यमुनायै नमोस्तु ते ।। इति नामपूजा ।। दशाङ्गो गुग्गुलोद्भुतश्चन्दनागुरुसंयुतः ।। कपिलाघृतसंयुक्तो धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। धूपम् ।। कृतवर्तिसमायुक्तं वह्निना योजितं मया ।। गृहाण

दीपकं देवि सर्वैश्वर्यप्रदायिनि ।। दीपम् ।। शर्करामधुसंयुक्तं दधिक्षीराज्यसंयुतम् ।। पक्वमन्नं मया दत्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। पानीयं पावनं श्रेष्ठं गङ्गादिसारदुद्भवम् ।। हस्तप्रक्षालनं देवि गृहाण मुखशोधनम् ।। हस्तप्रक्षालनम् ।। मुखप्रक्षालनम् ।। कर्पूरेण समायुक्तं यमुने चारु चन्दनम् ।। समर्पितं मया तुभ्यं करोद्वर्तनकं कुरु ।। करोद्वर्तनार्थे चन्दनम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। त्रैलोक्यपावने गङ्गे अन्धकारविनाशिनि ।। पञ्चार्तिक्यं गृहाणेनदं विश्वप्रीत्ये नमोस्तु ते ।। आर्तिक्यम् ।। केतकीजातिकुसुमैर्मल्लिकामालतीभवैः ।। पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तस्तव प्रीत्यै नमोस्तु ते ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। यानि कानिचेति प्रदक्षिणाम् ।। अन्यथा शरणं नास्तीति नमस्कारम् ।। सुरासुरेन्द्रादिकिरीटमौक्तिकैर्युक्तं सदा यत्तव पादपंकजम् ।। परावरं पातु वरं सुमङ्गलं नमामि भक्त्या तव कामसिद्धये ।। भवानि च महालक्ष्मि सर्वकामप्रदायिनि ।। व्रतं संपूर्णतां यातु यमुनायै नमोऽस्तु ते ।। इति प्रार्थना।। इति यमुनापूजा समाप्ता ।। यमुनाकलशोपरि पूर्णपात्रं निधायास्योपरि सप्तफणायुक्तं शेषं संस्थाप्य पूजयेत् ।। अथ ध्यानम्—ब्रह्माण्डाधारभूतं च यमुनान्तरवासिनम् ।। फणासप्तसमायुक्तं ध्यायेऽनन्तं हरिप्रियम् ।। ध्यायामि ।। शेषं सप्तफणायुक्तं कालपन्नगनायकम् ।। अनन्तशयनार्थं त्वां भक्त्या ह्यावाहयाम्यहम् ।। आवाहनम् ।। नवनागकुलाधीश शेषोद्धारक काश्यप ।। नानारत्नसमायुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ।। आसनम् ।। अनन्तप्रिय शेषेश जगदाधारविग्रह ।। पाद्यं गृहाण भक्त्या त्वं काद्रवेय नमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। कश्यपानन्दजनक मुनिवन्दित भो प्रभो ।। अर्घ्यं गृहाण सर्वज्ञ सादरं शंकरप्रिय ।। अर्घ्यम् ।। सहस्रफण रूपेण वसुधोद्धारक प्रभो ।। गृहाणाचमनं देव पावनं च सुशीतलम् ।। आचमनम् ।। कुमाररूपिणे तुभ्यं दधिमध्वाज्यसंयुतम् ।। मधुपर्कं प्रदास्यामि सर्पराज नमोऽस्तु ते ।। मधुपर्कम् ।। ततः पञ्चामृतस्नानम् ।। गङ्गादि पुण्यतीर्थस्त्वामभिषिञ्चेयमादरात् ।। बलभद्रावतारेश नन्ददः श्रीपतेः सखे ।। स्नानम् ।। कौशेययुग्मं देवेश प्रीत्या तव मयार्पितम् ।। गृहाण पन्नगाधीश तार्क्ष्यशत्रो नमोऽस्तु ते ।। वस्त्रम् ।। सुवर्णनिर्मितं सूत्रं ग्रंथितं कण्ठहारकम् ।। अनेकरत्नैः खचितं सर्पराज नमोऽस्तु ते ।। यज्ञोपवीतम् ।। अनेकरत्नान्वितहेमकुण्डले माणिक्यसंकाशितकंकणद्वयम् ।। हेमांगुलीयं कृतरत्नमुद्रिकं हैमं किरीटं फणिराजतोर्पितम् ।। सर्वाभरणम् ।। श्रीखण्डचं० चन्दनम् ।। अक्षताश्च सु० ।। अक्षतान् ।। करवीरैर्जातिकुसुमैश्चं० ।। पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा—सहस्रपादाय० पादौ पू० ।। गूढगुल्फाय० गुल्फौ पू० ।। हेमजंघाय न० जंघे पू० ।। मन्दगतये० जानुनी पू० ।। पीताम्बरधराय न० कटी पू० ।।

गम्भीरनाभाय न० नाभिं पूज० ।। पवनाशनाय० उदरं पू० ।। उरगाय० हस्तौ पू० ।। कालियाय० भुजौ पूजयामि ।। कम्बुकण्ठाय न० कण्ठं पूजयामि ।। विषवक्त्राय न० वक्त्रं पूजयामि ।। फणाभूषणाय० ललाटं पू० ।। लक्ष्मणाय० शिरः पूजयामि ।। अनन्तप्रियाय० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। इत्यङ्गपूजा ।। वनस्पति० धूपम् ।। साज्यं ।। साज्यं च वर्ति० ।। दीपम् ।। नैवेद्य गृ० नैवेद्यम् ।। मध्ये पानीयम् ।। करोद्वर्तनार्थे चन्दनम् ।। पूगीफलं० ताम्बूलम् ।। इदं फलमति फलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। श्रियेजात इति नीराज० ।। नानाकुसुमसंयुक्तं पुष्पाञ्जलिमिमं प्रभो ।। कश्यपानन्दजनक सर्पेश प्रतिगृह्यताम् ।। मन्त्रपुष्पम् ।। यानि० प्रदक्षिणाम् ।। नमोऽस्त्वनन्ताय० ।। नमस्कारान् ।। अनन्तकल्पोक्तफलं देहि मे त्वं महीधर ।। त्वंपूजारहितश्चार्द्धं फलं प्राप्नोति मानवः ।। प्रार्थनाम् ।। इति शेषपूजा ।। प्राग्द्वारे ।। द्वारश्रियै० नन्दायै० सुनन्दायै० धात्र्यै विधात्र्यै न० चिच्छक्त्यै० शंखनिधये न० ।। पद्मनिधये ।। दक्षिणद्वारे ।। द्वारश्रियै० चंडायै० प्रचंडायै० धात्र्यै न० चिच्छक्त्यै० मायाशक्त्यै० शंखनिधये० ।। पद्मनिधये नमः पश्चिमद्वारे ।। द्वारश्रियै० बलायै न० प्रबलायै० धात्र्यै० विद्यायै० चिच्छक्त्यै न० मायाशक्त्यै० शंखनिधये० पद्मनिधये० ।। उत्तरद्वारे ।। द्वारश्रियै० महाबलायै० प्रबलायै नमः ।। धात्र्यै विधात्र्यै० चिच्छक्त्यै० मायाशक्त्यै० शंखनिधये० पद्मनिधये० ।। अथ पीठपूजा–मध्ये वास्तुपुरुषाय न० मण्डूकाय० कालाग्निरुद्राय न० आधारशक्त्यै न० कूर्माय न० पृथिव्यै० अमृतार्णवाय० श्वेतद्वीपाय० कल्पवृक्षेभ्यो० मणिमन्दिराय न० हेमपीठाय० धर्माय० अधर्माय० ज्ञानाय० वैराग्याय० ऐश्वर्याय० अनैश्वर्याय० सहस्रफणान्वितायानन्ताय० सर्वसत्त्वाय० पद्माय० आनन्दकन्दाय० संविन्नालाय० विकारमयकेसरेभ्यो० प्रकृतिमयपत्रेभ्यो० सूर्यमण्डलाय० चन्द्रमण्डलाय० वह्निमण्डलाय० संसत्त्वाय० रंरजसे० तंतमसे० आत्मने न० परमात्मने न० अन्तरात्मने न० ज्ञानात्मने० प्राणात्मने० कालात्मने न० विद्यात्मने न० पूर्वादिदिक्षु ।। जयायै नमः विजयायै नमः अजितायै नमः अपराजितायै० नित्यायै० विनाशिन्यै० दोग्ध्र्यैनमः अघोरायै नमः मङ्गलायै नमः अपारशक्तिमलासनायै नमः ।। इति पीठपूजा ।। अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ।। ऋग्यजुःसामाथर्वाणि छन्दांसि ।। परा प्राणशक्तिर्देवता ।।आं बीजम् ।। ह्रीं शक्तिः ।। क्रौं कीलकम् ।। श्रीमदनन्तस्य प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः ।। ॐ आंह्रींक्रौंअंयंरंलंवंशंषंसंहंळंक्षं अः क्रौंह्रीं आं अनन्तस्य प्राणा इह प्राणाः ।।ॐ आंह्रीं० अनन्तस्य जीव इह स्थितः ।।ॐ आंह्रींक्रौंअं अनन्तस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानीहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।। असुनीते० चत्वारिवाक्० गर्भाधानादिसंस्कार

सिद्धयर्थं पञ्चदशप्रणवावृत्तीः करिष्ये ॥ ॐ ॐ ॥ १५ ॥ रक्ताम्भोधिस्थपो० परा नः ॥ अथानन्तपूजा—ततस्तु मूलमन्त्रेण नमस्कृत्य जनार्तनम् ॥ नवाम्र-पल्लवाभासं पिङ्गलश्मश्रुलोचनम् ॥ पीताम्बरधरं देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥ अलंकृतं* समुद्रस्थं विश्वरूपं विचिन्तये ॥ ध्यायामि॥आगच्छानन्त देवेश तेजो-राशे जगत्पते ॥ [२]इमां मया कृतां पूजां गृहाण पुरुषोत्तम ॥ सहस्रशीर्षेत्यावाहनम् ॥ नानारत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ आसनं देवदेवेश गृहाण पुरुषोत्तम ॥ पुरुषएवेदमित्यासनम् ॥ गङ्गादिसर्व तीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ॥ तोयमेत-त्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतावानस्येति पाद्यम् ॥ अनन्तानन्त देवेश अनन्तफलदायक ॥ अनन्तानन्तरूपोऽसि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ त्रिपादूर्ध्वमि-त्यर्घ्यम्॥गङ्गोदकं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम्॥ आचम्यतां हृषीकेश प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ तस्माद्विराळेत्याचमनीयम् ॥ अनन्तगुणरूपाय विश्वरूपधराय च ॥ नमो महात्मदेवाय अनन्ताय नमोनमः ॥ यत्पुरुषेणेति स्नानम् ॥ ततः पञ्चामृत-स्नानम् ॥ सुरभेस्तु समुत्पन्नं देवानामपि दुर्लभम् ॥ पयो ददामि देवेश स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ आप्यायस्वेति पयः स्नानम् ॥ चन्द्रमण्डलसंकाशं सर्वदेवप्रियं हि यत् ॥ ददामि दधि देवेश स्नानार्थं प्रति गृह्यताम् ॥ दधिक्राव्णो अकारिषम् ॥ इति दधिस्नानम् ॥ आज्यं सुराणामाहार आज्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ आज्यं पवित्रं परमं स्नानार्थं० ॥ घृतं मिमिक्षे इति घृतस्नानम् ॥ सर्वोषधिसमुत्पन्नं पीयूष-सदृशं मधु ॥ स्नानाय ते मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ मधुवातेति मधु० ॥ इक्षु दण्डात्समुद्भूतां शर्करां मधुरां शुभाम् ॥ स्नानाय ते मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ स्वादुः पवस्वेति शर्करास्नानम् ॥ शुद्धोदकस्नानं नाममन्त्रैः ॥ पुरुषसूक्तेन अभि-षेकः ॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभं कौशेयं च सुनिर्मितम् ॥ वस्त्रं गृहाण देवेश लक्ष्मी-युक्त नमोऽस्तु ते ॥ तं यज्ञमिति वस्त्रम् ॥ वस्त्रानन्तरमाचमनीयम् ॥ दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ॥ ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम ॥ यज्ञो-पवीतं परमं प० ॥ तस्माद्यज्ञादित्युपवीतानन्तरं आचमनीयम् ॥ श्रीखंड चन्दनं दि० तस्ताद्यज्ञात्सर्वहु० चन्दनम् ॥ अक्षताश्च सु० ॥ अक्षतान् ॥ माल्यादीनि० तस्मादश्वेति पुष्पम् ॥ अथ ग्रन्थिपूजा—श्रियै नमः ॥ मोहिन्यै० पद्मिन्यै० महा-बलायै० अजायै० मङ्गलायै० वरदायै० शुभायै० जयायै० विजयायै० जयन्त्यै० पापनाशिन्यै० विश्वरूपायै० सर्वमङ्गलायै० ॥ १४ ॥ इति ग्रन्थिपूजा ॥ अथाङ्ग-पूजा—मत्स्याय नमः पादौ पूजयामि ॥ कूर्माय० गुल्फौ पू० । वराहय० जानुनी पू० । नारसिंहाय० ऊरू पू० । वामनाय० कटी पू० । रामाय० उदरं पू० ।

---

* प्रसन्नवदनं विष्णुम् । २ क्रियमाणां मयेतिच पाठः ।

श्रीरामाय० हृदयं पू० । कृष्णाय० मुखं पू० । सहस्रशिरसे न० शिरः पू० ।। श्रीमदनन्ताय० सर्वाङ्गं पू० ।। अथावरणपूजा—अनन्तस्य दक्षिणपार्श्वे रमायै० ।। वामपार्श्वे भूम्यै० ।। इति प्रथमावरणम् ।। आवरणदेवतामावाह्य हस्तं प्रक्षाल्य गन्धपुष्पं तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैर्धृत्वा मध्ये शंखोदकं गृहीत्वा मन्त्रान्ते शंखोदकं भूमौ निक्षिप्य पुष्पं देवोपरि क्षिपेत् ।। दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।। इति मन्त्रमुच्चार्य जलं त्यक्त्वा पुष्पं देवोपरि न्यसेदिति ।। १ ।। पूर्वादिक्रमेण ।। क्रुद्धोल्काय० महोल्काय० शतोल्काय० सहस्रोल्काय० दयाब्धे त्राहि० ।। इति द्वितीयावरणार्चनम् ।। २ ।। तथैव वासुदेवाय० संकर्षणाय० प्रद्युम्नाय० अनिरुद्धाय० दयाब्धे त्राहि० तृतीयावरणार्चनम् ।। ३ ।। प्राच्यादिक्रमेण ।। केशवाय० नारायणाय० माधवाय० गोविन्दाय० विष्णवे० मधुसूदनाय० त्रिविक्रमाय० वामनाय० श्रीधराय० हृषीकेशाय० पद्मनाभाय० दामोदराय० ।। दयाब्धे त्राहि० टतुर्थावरणार्चनम् ।। ४ ।। पूर्वादिक्रमेण ।। मत्स्याय० कूर्माय० वराहाय० नारसिंहाय० वामनाय० रामाय० श्रीरामाय० कृष्णाय० बौद्धाय० कल्किने० अनन्ताय० विश्वरूपिणे० ।। दयाब्धे त्राहि० पञ्चमावरणार्चनम् ।। ५ ।। पूर्वस्यां अनन्तायनमः दक्षिणस्यां ब्रह्मणे न० पश्चिमायां वायवे० उत्तरस्यां ईशानाय० आग्नेय्यां वारुण्यै० नैर्ऋत्यां गायत्र्यै० वायव्यां० भारत्यै० ईशान्यां गिरिजायै० अग्रे गरुडाय० वामे सुपुण्याय० दक्षिणे ।। दयाब्धे त्राहि० षष्ठं ह्यावरणार्चनम् ।। ६ ।। पूर्वादिक्रमेण इन्द्राय० अग्नये० यमाय० निर्ऋतये० वरुणाय० वायवे० सोमाय० ईशानाय० ।। दयाब्धे त्रा० सप्तमावरणार्चनम् ।। ७ ।। आग्नेय्यां शेषाय० नैर्ऋत्यां विष्णवे० वायव्यां विधये० ईशान्यां प्रजापतये० दयाब्धे त्राहि० अष्टमावरणार्चनम् ।। ८ ।। आग्नेय्यां गणपतये० नैऋत्यां सप्तमातृभ्यो० वायव्यां दुर्गायै० ईशान्यां क्षेत्राधिपतये० ।। दयाब्धे त्राहि० नवमावरणार्चनम् ।। ९ ।। मध्ये ब्रह्मणे न० भास्कराय० शेषाय० सर्वव्यापिने० ईश्वराय० विश्वरूपा० महाकायाय० सृष्टिकर्त्रे० कृष्णाय० हरये० शिवाय० स्थितिकारकाय० अन्तकाय० ।। दयाब्धे त्राहि० दशमावरणार्चनम् ।। १० ।। शौरये० वैकुण्ठाय० महाबलाय० पुरुषोत्तमाय० अजाय० पद्मनाभाय० मङ्गलाय० हृषीकेशाय अनन्ताय० कपिलाय० शेषाय० संकर्षणाय० हलायुधाय० तारकाय० सीरपाणये० बलभद्राय० ।। दयाब्धे त्राहि० एकादशावरणार्चनम् ।। ११ ।। माधवाय० मधुसूदनाय० अच्युताय० अनन्ताय० गोविन्दाय० विजयाय० अपराजिताय० कृष्णाय० ।। दयाब्धे त्राहि० द्वादशावरणार्चनम् ।। १२ ।। क्षीराब्धिशायिने० अच्युताय० भूम्याधाराय० लोकनाथाय० फणामणि-

विभूषणाय० सहस्रमूर्ध्ने० सहस्रार्चिषे० ।। दयाब्धे त्राहि० त्रयोदशावरणार्चनम् ।। १३ ।। केशवादिचतुर्विंशतिनामभिः संपूज्य ।। दयाब्धे त्राहि० चतुर्दशावरणार्चनम् ।। १४ ।। अथ पत्रपूजा—कृष्णाय० पलाशपत्रं समर्पयामि । विष्णवे० औदुम्बरप० । हरये० अश्वत्थप० । शम्भवे० भृङ्गराजप० । ब्रह्मणे० जटाधारप० । भास्कराय० अशोकप० । शेषाय० कपित्थप० । सर्वव्यापिने० वटपत्रम् । ईश्वराय आम्रप० । विश्वरूपिणे० कदलीप० । महाकायाय० अपामार्गप० सृष्टिकर्त्रे० करवीरप० । स्थितिकर्त्रे० पुन्नागप० । अनन्ताय नागवल्लीप० ।। १४ ।। अथ पुष्पपूजा—ॐ अनन्ताय० पद्मपुष्पं समर्पयामि । विष्णवे जातीपु० । केशवाय० चम्पकपु० । अव्यक्ताय० कह्लारपु० । सहस्रजिते० केतकीपु० । अनन्तरूपिणे० बकुलपु० । इष्टाय० शतपु० । विशिष्टाय० पुन्नागपुष्पं० । शिष्टेष्टाय० करवीरपु० । शिखंडिने० धत्तूरपु० । नहुषाय ७ कुन्दपु० । विश्वबाहवे० मल्लिकापु० । महीधराय० मालतीपु० । अच्युताय० । गिरिकर्णिकापु० ।। १४ ।। अथाष्टोत्तरशतनामाभिः पूजयेत् ।। अनन्तायनमः । अच्युताय० अद्भुतकर्मणे न० । अमितविक्रमाय० अपराजिताय० अखण्डाय० अग्निनेत्राय० अग्निवपुषे० अदृश्याय० अत्रिपुत्राय० ।। १० ।। अनुकूलाय० अनशिने० अनघाय० अप्सुनिलयाय० अहरहाय० अष्टमूर्तये० अनिरुद्धाय० अनिर्विष्टाय० अचञ्चलाय० अब्दादिकाय० ।। २० ।। अचलरूपाय० अखिलधराय० अव्यक्ताय० अनुरूपाय० अभयंकराय० अक्षताय० अवपुषे० अयोनिजाय० अरविन्दाक्षाय० अशनवर्जिताय० ।। ३० ।। अधोक्षजाय० अदितिपुत्राय० अम्बिकापतिपूर्वजाय० अपस्मारनाशिने० अन्यायाय अनादिने न० अप्रमेयाय० अघशत्रवे० अमरारिघ्नाय० अनीश्वराय० ।। ४० ।। अजाय० अघोराय० अनादिनिधनाय० अमरप्रभवे० अग्राह्याय० अक्रूराय० अनुत्तमाय० अरूपाय० अर्हे न० अमोघादिपतये० ।।५०।। अजाय० अक्षमाय० अमृताय० अघोरवीर्याय० अव्यङ्गाय० अविघ्नाय० अतीन्द्रियाय० अमिततेजसे० अमितये० अष्टमूर्तये० ।। ६० ।। अनिलाय० अवशाय० अणोरणीयसे० अशोकाय० अरविन्दाय० अधिष्ठानाय० अमितयनाय० अरण्यवासिने० अप्रमत्ताय० अनन्तरूपाय० ।। ७० ।। अनलाय० अनिमिषाय० अस्त्ररूपाय० अग्रगण्याय० अप्रमेयाय० अन्तकाय० अचिन्त्याय० अपांनिधये० अतिसुन्दराय० अमरप्रियाय० ।। ८० ।। अष्टसिद्धिप्रदाय० अरविन्दप्रियाय० अरविन्दोद्भवाय० अनयाय० अर्थाय अक्षोभ्याय० अर्चिष्मते० अनेकमूर्तये० अनन्त ब्रह्माण्डपतये० अनन्तशयनाय० ।। ९० ।। अमराधिपतये० अनाधाराय० अनन्तनाम्ने० अनन्तश्रिये० अक्षराय० अमायाय० आद्यमस्थाय० आश्रमातीताय० अन्नादाय० आत्म-

योनये० ।। १०० ।। अवनीपतये० अवनीधराय० अनादिने ० आदित्याय० अमृताय० अपवर्गप्रदाय० अव्यक्ताय० अनन्ताय० ।। १०८ ।। इत्यष्टोत्तरशतनाम-पूजा ।। दशाङ्गं गुग्गुलूद्भूते चन्दनागुरुसंयुतम् ।। सर्वेषामुत्तमं धूपं गृहाण सुर-पूजित ।। यत्पुरुषंव्यदधुरिति धूपम् । साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ।। ब्राह्मणोऽस्येति दीपम् ।। अत्र चतुर्विधं स्वादु पयोदधिघृतैर्युतम् ।। नानाव्यञ्जनशोभाढ्यं नैवेद्यं प्रतिगृ० ।। चन्द्रमामन० नैवेद्यम् ।। नैवेद्यमध्ये पानीयम् ।। उत्तरापोशनार्थं ते दद्मि तोयं सुवासितम् ।। गृहाण सुमुखो भूत्वा अनन्ताय नमोनमः ।। उत्तरापोशनम् ।। मुखप्र० हस्तप्र० करोद्वर्त्तनकं देव मया दत्तं हि भक्तितः ।। चारुचन्द्रप्रभं दिव्यं गृहाण जगदीश्वर ।। करोद्वर्तनम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। पूगीफलं महद्दिव्यं ।। ताम्बूलम् ।। हिरण्य-गर्भेति दक्षिणां० यानि कानीति० ।। नाभ्याआसी० प्रदक्षिणां० ।। नमस्ते भग-वन्भूयो नमस्ते धरणीधर । नमस्ते सर्वनागेन्द्र नमस्ते मधुसूदन ।। सप्तास्येति नमस्कारम् ।। नमस्ते देवदेवेश नमस्ते गरुडध्वज ।। नमस्ते कमलाकान्त अनन्ताय नमोनमः ।। यज्ञेनयज्ञमिति मन्त्रपुष्पम् ।। अथ दोरकप्रार्थना—अनन्ताय नमस्तुभ्यं सहस्रशिरसे नमः ।। नमोऽस्तु पद्मनाभाय नागानां पतये नमः ।। अनन्तः कामदः कामानन्तो मे प्रयच्छतु ।। अनन्तो दोररूपेण पुत्रपौत्रान्प्रवर्धतु ।। इति प्रार्थ्य दोरकं गृहीत्वा ।। अथ दोरकबन्धनमन्त्रः—अनन्त संसारमहासमुद्रमग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ।। अनन्तरूपे विनियोजस्व ह्यनन्तसूत्राय नमो नमस्ते ।। इति बध्नीयात् अथ जीर्णदोरकविसर्जनमन्त्रः—नमः सर्वहितार्थाय जगदानन्दकारक ।। जीर्णदोर-ममुं देव विसृजेऽहं त्वदाज्ञया ।। इति विसृजेत् ।। अथ वायनमन्त्रः—गृहाणेदं द्विज-श्रेष्ठ वायनं दक्षिणायुतम् ।। त्वत्प्रसादा दहंदेव मुच्येयं कर्मबन्धनात् ।। प्रतिगृह्ण द्विजश्रेष्ठ अनन्तफलदायक ।। पक्वान्नफलसंयुक्तं दक्षिणाघृतसंयुतम् ।। वायनं द्विजवर्याय दास्यामि व्रतपूर्तये ।। इति वायनदानम् ।। अथ जीर्णनारकदानमन्त्र :—अनन्तः प्रतिगृह्णाति अनन्तो वै ददाति च ।। अनन्तस्तारकोभाभ्यामनन्ताय नमोनमः इति दद्यात् ।। ततो यथाशक्ति ब्राह्मणान्भोजयेत् ।। अनेन कृतपूजनेन श्रीमदनन्तः प्रीयताम् ।। इति पूजाविधिः ।। अथ कथा—सूत उवाच ।। पुरा तु जाह्नवीतीरे धर्मो धर्मपरायणः ।। जरासन्धवधार्थाय राजसूयमुपाक्रमत् ।। १ ।। कृष्णेन सह धर्मोऽसौ भीमार्जुनसमन्वितः ।। यज्ञशालां प्रकु*र्वीत नानारत्नोप-शोभिताम् ।। मुक्ताफलसमाकीर्णामिन्द्रालयसमप्रभाम् ।। २ ।। यज्ञार्थं भूपतीन्स-र्वान्समानीय प्रयत्नतः ।। ३ ।। गान्धारीतनयो राजा तदानीं नृपनन्दनः ।। दुर्यो-

* प्राकरोदित्यर्थः ।

धन इति ख्यातः समागच्छन्मखालयम् ।। ४ ।। दृष्ट्वा दुर्योधनस्तत्र प्राङ्गणं जलसन्निभम् ।। ऊर्ध्वं कृत्वा तु वस्त्राणि तत्रागच्छच्छनैः शनैः ।। ५ ।। स्मितवक्त्राश्च तं दृष्ट्वा द्रौपद्यादिवराङ्गनाः ।। दुर्योधनस्ततोगच्छञ्जलमध्ये पपात ह ।।६।। पुनः सर्वे नृपाश्चैव ऋषयश्च तपोधनाः ।। उप*हासं च चक्रुस्ता द्रौपद्यादिसुलोचनाः ।। ७ ।। महाराजाधिराजोऽसौ महाक्रोधपरायणः ।। विनिर्गतः स्वकं राष्ट्रं भातुलेन वृतो नृपः ।। ८ ।। तस्मिन्काले तु शकुनिः प्रोवाच मधुरं वचः ।। मुञ्च राजन्महारोषं पुरतः कार्य गौरवात् ।। ९ ।। द्यूतोपक्रमणेनैव सर्वं राज्यमवाप्स्यसि ।। गन्तुमुत्तिष्ठ राजेन्द्र सत्रस्य सदनं प्रति ।। १० ।। तथेत्युक्त्वा महाराजः समागच्छन्मखालयम् ।। विनिवृत्य मखं जग्मुनृपाः सर्वे स्वकं पुरम् ।। ११ ।। ततो दुर्योधनो राजा समागत्य गजाह्वयम् ।। आनीय पाण्डुपुत्रांश्च धर्मभीमार्जुनान्वरान् ।। १२ ।। द्यूतारम्भं चाकुरुत स्वराज्यं प्राप्तवांस्ततः ।। द्यूतेनैव जिताः सर्वे पाण्डवा वीतकल्मषाः ।। १३ ।। ततोऽरण्यान्तरे गत्वा वर्तन्ते वनचारिणः ।। ततो वृत्तान्तमाकर्ण्य भ्रातृभिः सह पाण्डवम् ।। १४ ।। युधिष्ठिरं द्रष्टुमनाः कृष्णोऽगाज्जगदीश्वरः ।। सूत उवाच ।। अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवा दुःखकर्शिताः ।। १५ ।। कृष्णं दृष्ट्वा महात्मानं प्रणिपत्य तमब्रुवन् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। अहं दुःखोह सञ्जातो भ्रातृभिः परिवारितः ।। १६ ।। कथं मुक्तिर्वदास्माकमनन्तादद्दुःखसागरात् ।। कं देवं पूजयिष्यामि राज्यं प्राप्स्याम्यनुत्तमम् ।। १७ ।। अथवा किं व्रतं कुर्यां त्वत्प्रसादाद्भवेद्धितम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। अनन्तव्रतमस्त्येकं सर्वपापहरं शुभम् ।।१८।। सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ।। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे भवेत् ।। १९ ।। तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वं पापं व्यपोहति ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कृष्ण कोऽयमनन्तेति प्रोच्यते यस्त्वया विभो ।। २० ।। किं शेषनाग आहोस्विदनन्तस्तक्षकः स्मृतः ।। परमात्माऽथवानन्त उताहो ब्रह्म गीयते ।। २१ ।। क एषोऽनन्तसंज्ञो वै तथ्यं मे ब्रूहि केशव ।। कृष्ण उवाच ।। अनन्त इत्यहं पार्थ मम रूपं निबोध तत् ।। २२ ।। आदित्यादिग्रहात्मासौ यः काल इति पठ्यते ।। कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् ।। २३ ।। पक्षमासर्तुवर्षादियुगकालव्यवस्थया ।। योऽयं कालो मयाख्यातः सोऽनन्त इति कीर्त्यते ।। २४ ।। सोऽहं कृष्णोऽवतीर्णोऽत्र भूभारोत्तारणाय च ।। दानवानां वधार्थाय वसुदेवकुलोद्भवम् ।। २५ ।। मां विद्धि सततं पार्थ साधूनां पालनाय च ।। अनादिमध्यनिधनं कृष्णं विष्णुं हरिं शिवम् ।। २६ ।। वैकुण्ठं भास्करं सोमं सर्वव्यापिनमी-

---

* द्रौपद्याद्याः स्त्रियः सर्वाः स्मितवक्त्राः सुलोचनाः । इत्यपिपाठः । २ गन्तुमितिशेषः । ३ पुनर्वयं वै प्राप्स्यामो राज्यमुत्तमम् । ४ आदित्यप्रचचारेण यः । इत्यपिपाठः ।

श्वरम् ।। विश्वरूपं महाकालं सृष्टिसंहारकारकम् ।। २७ ।। प्रत्ययार्थं मया रूपं फाल्गुनाय प्रदर्शितम् ।। पूर्वमेव महाबाहो योगिध्येयमनुत्तमम् ।। २८ ।। विश्वरूपमनन्तं च यस्मिन्निन्द्राश्चतुर्दश ।। वसवो द्वादशादित्या रुद्रा एकादश स्मृताः ।। २९ ।। सप्तर्षयः समुद्राश्च पर्वताः सरितो द्रुमाः ।। नक्षत्राणि दिशो भूमिः पातालं भूभुवादिकम् ।। ३० ।। मा कुरुष्वात्र सन्देहं स्नेहं पार्थ न संशयः ।। युधिष्ठिर उवाच ।। अनन्तव्रतमाहात्म्यं विधिं वद विदां वर ।। ३१ ।। किं पुण्यं किं फलं चास्य किं दानं कस्य पूजनम् ।। केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ।।३२।। एवं सविस्तरं सर्वं* ब्रूह्यनन्तव्रतं मम ।। कृष्ण उवाच ।। आसीत्पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वै द्विजः ।। ३३ ।। वसिष्ठगोत्रसंभूतः सुरूपां स भृगोः सुताम् ।। दीक्षानाम्नीं चोपयेमे वेदोक्तविधिना नृप ।। ३४ ।। तस्याःकालेन सञ्जाता दुहितानन्तलक्षणा ।। शीलानाम्नी सुशीला सा वर्धते पितृवेश्मनि ।। ३५ ।। माताच तस्या कालेन ज्वरदाहेन पीडिता ।। विनष्टा सा नदीतीरे ययौ स्वर्गं पतिव्रता ।। सुमन्तुस्तु ततोऽन्यां वै धर्मपुंसः सुतां पुनः ।। ३६ ।। उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः ।। ३७ ।। दुःशीलां कर्कशां चण्डीं नित्यं कलहकारिणीम् ।। सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनपरा बभौ ।। ३८ ।। कुडयस्तम्भबहिर्द्वारदेहलीतोरणादिषु ।। वर्णं कैश्चित्रमकरोन्नीलपीतसितासितैः ।। ३९ ।। स्वस्तिकैः शङ्खपद्मैश्च अर्चयन्ती पुनः पुनः ।। ततः काले बहुगते कौमारवशवर्तिनी ।।४०।। एवं सा वर्धते शीला पितृवेश्मनि मङ्गला ।। पित्रा दृष्टा तदा तेन स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता ।। ४१ ।। तां दृष्ट्वा चिन्तयामास वराननुगुणान् भुवि ।। कस्मै देया मया कन्या विचार्येति सुदुःखितः ।। ४२ ।। एतस्मिन्नेव काले तु मुनिर्वेदविदां वरः ।। कन्यार्थी चागतः श्रीमान्कौण्डिन्यो मुनिसत्तमः ।। ४३ ।। उवाच रूपसम्पन्नां त्वदीयां तनयां वृणे ।। पिता ददौ द्विजेन्द्राय कौण्डिन्याय शुभे दिने ।। ४४ ।। गृह्योक्तविधिना पार्थ विवाहमकरोत्तदा ।। मङ्गलाचारनिर्घोषं तत्र कुर्वन्ति योषितः ।। ४५ ।। ब्राह्मणाः स्वस्तिवचनं जयघोषं च वन्दिनः ।। निर्वर्त्योद्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान्कर्कशां द्विजः ।। ४६ ।। सुमन्तुरुवाच ।। किञ्चिद्दायादिकं देयं जामातुः पारितोषिकम् ।। तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोत्सार्य गृहमण्डनम् ।। ४७ ।। पेटके सुस्थिरं बद्ध्वा स्वगृहं गम्यतामिति ।। भोज्यावशिष्टचूर्णेन पाथेयं च चकार सा ।। ४८ ।। उवाच वित्तं नैवास्ति गृहे पश्य यदि स्थितम् ।। तच्छ्रुत्वा विमनाः पार्थ संयतात्मा मुनिस्तदा ।। ४९ ।। कौण्डिन्योऽपि विवाह्यैनां पथि गच्छञ्छनैः शनैः ।। शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ।। ५० ।। ददर्श यमुनां पुण्यां तामुत्तीर्य तटे

* कृष्ण । २ नन्ददायिनीत्यपि पाठः ।

रथम् ।। संस्थाप्यावश्यकं कर्तुं गतः शिष्यान्नियुज्य वै ।। ५१ ।। मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे ।। ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ।। ५२ ।। चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं जनार्दनम् ।। उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ।। ५३ आर्याः किमेतन्मे ब्रूत किंनाम व्रतमीदृशम् ।। ता ऊचुर्योषितस्तां तु शीलां शीलविभूषणाम् ।। ५४ ।। अनन्तव्रतमेताद्धिव्रतेऽनन्तस्तु पूज्यते ।। साऽब्रवीदहमप्येतत्करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।। ५५ ।। विधानं कीदृशं तत्र किं दानं कोऽत्र पूज्य ते ।। स्त्रियऊचुः ।। शीले सदन्नप्रस्थस्य पुन्नाम्ना संस्कृतस्य च ।। ५६ ।। अर्थं विप्राय दातव्यमर्धमात्मनि भोजनम् ।। शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। ५७ ।। कर्तव्यं च सरित्तीरे सदानन्तस्य पूजनम् ।। शेषं कुशमयं कृत्वा वंशपात्रे निधाय च ।। ५८ ।। स्नात्वानन्तं समभ्यर्च्य मण्डले दीपगन्धकैः ।। पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्नानापक्वान्नसंयुतैः ।। ५९ ।। तस्याग्रतो दृढं न्यस्य कुंकुमाक्तं सुदोरकम् ।। चतुर्दशग्रन्थियुतं गन्धाद्यैरर्चयेच्छुभैः ।। ६० ।। ततस्तु दक्षिणे पुंसां स्त्रीणां वामे करे न्यसेत् ।। ६१ ।। अनन्त संसारमहासमुद्रमग्नं समभ्युद्धर वासुदेव । अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तसूत्राय नमो नमस्ते ।।६२।। अनेन दोरकं बद्ध्वा कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ।। ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूपिणम् ।। ६३ ।। भुक्त्वा चान्ते व्रजेद्वेश्म भद्रे प्रोक्तं व्रतं तव ।। कृष्ण उवाच ।। एवमाकर्ण्य राजेन्द्र प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।। ६४ ।। सापि चक्रेव्रतं शीला करे बद्ध्वा सुदोरकम् ।। पाथेयमर्थं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा स्वयं ततः ।। ६५ ।। पुनर्जगाम संहृष्टा गोरथेन स्वकं गृहम् ।। भर्त्रा सहैव शनकैः प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ।। ६६ ।। तेनानन्तव्रतेनास्य बभौ गोधनसंकुलम् ।। गृहाश्रमं श्रिया जुष्टं धनधान्यसमन्वितम् ।। ६७ ।। आकुलं व्याकुलं रम्यं सर्वदातिथिपूजनैः ।। सापि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारैर्विभूषिता ।। ६८ ।। देवाङ्गनेव सम्पन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत् ।। (विचचार गृहे भर्तुः समीपे सुखरूपिणी।।) कदाचिदुपविष्टाया दृष्टो बद्धः सुदोरकः ।। ६९।। शीलाया हस्तमूले तु भर्त्रा तस्या द्विजन्मना ।। किमिदं दोरकं शीले मम वश्यामकल्पितम् ।। ७० ।। धृतं सुदोरकं त्वेतत्किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ।। शीलोवाच ।। यस्य प्रसादात्सकला धनधान्यादिसम्पदः ।। ७१ ।। लभ्यन्ते मानवैश्चापि सोऽनन्तोऽयं मया धृतः ।। शीलायास्तद्वचः श्रुत्वा भर्त्रा तेन द्विजन्मना ।। ७२ ।। श्रीमदान्धेन कौरव्य

१ कौस्तुभे-तु-स्त्रिय ऊचुः ।। कुर्यात्पूजां सरित्तीरे सदानन्तस्य तूत्तमाम् ।। गोचर्ममात्रं संलिप्य मण्डलं कारयेच्छुभम् ।। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भमव्रणं धातुमृन्मयम् ।। तत्र पात्रं न्यसेद्धैमं राजतं ताम्रवंशजम् ।। पूजयेत्तत्र देवेशं सदानन्तफलप्रदम् ।। सूत्रैरात्ममितैर्दोरैश्चतुर्दशभिरावृतम् ।। चतुर्दशग्रन्थिभिस्तु सव्यवृत्तैः सुनिर्मितम् ।। कुंकुमादिभिरक्तं च गन्धाद्यैरर्चयेच्छुभैः ।। ततः प्रस्थस्य पक्वान्नं सुपुन्नाम सघृतं च तत् ।। अर्धं विप्राय दातव्यमर्धमात्मनि भोजनम् ।। ततस्तद्दक्षिणे पुंसां स्त्रीणां वामे करे न्यसेत् ।।

साक्षेपं त्रोटितस्तदा ।। कोऽनन्त इति मूढेन जल्पता पापकारिणा ।। ७३ ।। क्षिप्तो ज्वालाकुले वह्नौ हाहाकृत्वा प्रधावती ।। शीला गृहीत्वा तत्सूत्रं क्षीरमध्ये समाक्षिपत् ।। ७४ ।। तेन कर्मविपाकेन सा श्रीस्तस्य क्षयं गता ।। गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं दग्धं धनं गतम् ।। ७५ ।। यद्यथैवागतं गेहे तत्तथैव पुनर्गतम् ।। स्वजनैः कलहो नित्यं [1]बन्धुभिस्ताडनं तथा ।। ७६ ।। अनन्ताक्षेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ।। न कश्चिद्वदते लोकस्तेन सार्थं युधिष्ठिर ।। ७७ ।। शरीरेणातिसन्तप्तो मनसाप्यतिदुःखितः ।। निर्वेदं परमं प्राप्तः कौण्डिन्यः प्राह तां प्रियाम् ।। ७८ ।। कौण्डिन्य उवाच ।। शीले ममेदमुत्पन्नं सहसा शोककारणम् ।। येनातिदुःखमस्माकं जातः सर्व धनक्षयः ।। ७९ ।। स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभाषते ।। शरीरे नित्यसन्तापः खेदश्चेतसि दारुणः ।। ८० ।। जानासि दुर्नयः कोऽत्र किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ।। प्रत्युवाचाथं तं शीला सुशीला शीलमण्डना ।। ८१ ।। शीलोवाच ।। प्रायोऽनन्तकृताक्षेपपापसंभवजं फलम् ।। भविष्यति महाभागतदर्थं यत्नमाचर ।। ८२ ।। एवमुक्तः स विप्रर्षिर्जगाम मनसा हरिम् ।। निर्वेदान्निजगामाथ कौण्डिन्यः प्रयतो वनम् ।। ८३ ।। तपसे कृतसङ्कल्पो वायुभक्षो द्विजोत्तमः ।। मनसा ध्याय चानन्तं क्व द्रक्ष्यामि च तं विभुम् ।। ८४ ।। यस्य प्रसादात्सञ्जातमाक्षेपान्निधनं गतम् ।। धनादिकं ममातीव सुखदुःख प्रदायकम् ।। ८५ ।। एवं सञ्चिन्तयन्सोथ बभ्राम गहने वने।।तत्रापश्यन्महाचूतं पुष्पितं फलितं द्रुमम्।।८६।।वर्जितं पक्षिसंघातैः कोटि कोटिसमावृतम् ।। [2]तमपृच्छद्द्विजोनन्तः क्वचिदृष्टो महातरो ।। ८७ ।। ब्रूहि सौम्य ममातीव दुखं चेतसि वर्तते ।। सोऽब्रवीद्रुद्र नानन्तः क्वचिद्दृष्टो मया द्विज ।। ८८ ।। एवं निराकृतस्तेन स जगामाथ दुःखितः ।। क्व द्रक्ष्यामीति गच्छन् स गामपश्यत्सवत्सकाम् ।। ८९ ।। वनमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव ।। सो ऽब्रवीद्धेनुके ब्रूहि यद्यनन्तस्त्व येक्षितः ।। ९० ।। गौरुवाचाथ कौण्डिन्य नानन्तं-वेद्म्यहं द्विज ।। ततो व्रजन्ददर्शाग्रे वृषभं शाद्वले स्थितम् ।। ९१ ।। दृष्टवा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननन्तो वीक्षितास्त्वया ।। वृषभस्तमुवाचेदं नानन्तो वीक्षितो मया ।।९२। ततो व्रजन् ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम् ।। अन्योन्यजल कल्लोलैर्वीचि पर्यन्तसङ्गतम् ।। ९३ ।। छत्रं कमलकल्हारैः कुमुदोत्पलमण्डितम् ।। सेवितं भ्रमरै हंसैश्चक्रैः कारण्डवैर्बकैः ।। ९४ ।। ते अपृच्छद्द्विजोऽनन्तो युवाभ्यामुपलक्षितः ।। ऊचतुस्ते पुष्करिण्यौ नानन्तो वीक्षितो द्विज ।। ९५ ।। ततो व्रजन्ददर्शाग्रे गर्दभं कुञ्जरं तथा ।। तावप्युक्तो द्विजेनेत्थं नेति ताभ्यां निवेदितम् ।। ९६ ।। एवं स

१ स्तर्जनमित्यपि पाठः । २ त्वयेत्यपि पाठः ।

पृच्छन्नष्टाशस्तत्रैव निषसाद ह ।। कौण्डिन्यो विह्वलीभूतो निराशो जीविते नृप ।। ९७ ।। दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पपाते भुवि भारत ।। प्राप्य संज्ञामनन्तेति जल्पन्नुत्थाय स द्विजः ।। ९८ ।। नूनं त्यक्ष्याम्यहं प्राणानिति संकल्प्य चेतसि ।। यावदुद्बन्धनं वृक्षे चक्रे तावद्युधिष्ठिर ।। ९९ ।। कृपयानन्तदेवोऽस्य प्रत्यक्षं समजायत ।। वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच तम् ।। १०० ।। प्रगृह्य दक्षिणे पाणौ गुहायां प्रविवेश तम् ।। स्वां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युताम् ।। १ ।। तस्यां निविष्टमात्मानं दिव्यसिंहासने शुभे ।। पार्श्वस्थशंखचक्राब्जगदागरुडशोभितम् ।। २ ।। दर्शयामास विप्राय विश्वरूपमनन्तकम् ।। विभूतिभेदैश्चानन्तं राजन्तममितौजसम् ।। ३ ।। कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाविभूषितम् ।। तं दृष्ट्वा देवदेवेशमनन्तमपराजितम् ।। ४ ।। *वन्दमानोजगादोच्चैर्जयशब्दपुरःसरम् ।। पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।। ५ ।। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ।। अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।। ६ ।। यत्तवाङ्घ्र्यब्जयुगले मन्मूर्धा भ्रमरायते ।। तच्छ्रुत्वानन्तदेवेशः प्राह सुस्निग्धया गिरा ।। ७ ।। मा भैस्त्वं ब्रूहि विप्रेन्द्र यत्ते मनसि वर्तते ।। कौण्डिन्य उवाच ।। मायाभूत्यवलिप्तेन त्रोटितोऽनन्तदोरकः ।। ८ ।। तेन पापविपाकेन भूतिर्मे प्रलयं गता ।। स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभाषते ।। ९ ।। निर्वेदादुद्गमितोऽरण्ये तव दर्शनकाङ्क्षया । कृपया देवदेवेश त्वयात्मा संप्रदर्शितः ।। ११० ।। तस्य पापस्य मे मे शान्ति कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। तच्छ्रुत्वानन्तदेवेश उवाच द्विजसत्तमम् ।। ११ ।। भक्त्या सन्तोषितो देव. किं न दद्याद्युधिष्ठिर ।। अनन्त उवाच ।। स्वगृहं गच्छ कौण्डिन्य मा विलम्बं कुरु द्विज ।। १२ ।। चरानन्तव्रतं भक्त्या नव वर्षाणि पञ्च च ।। सर्वपापविशुद्धात्मा प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम् ।। ।।१३।। पुत्रपौत्रान्समुत्पाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।। अन्ते मत्स्मरणं[2] प्राप्य मामुपैष्यस्यसंशयम् ।। १४ ।। अन्यं च ते वरं दद्मि सर्वलोकोपकारकम् ।। इदमाख्यानकवरं शीलानन्तव्रतादिकम् ।। १५ ।। करिष्यति नरो यस्तु कुर्वन्व्रतमिदं शुभम् ।। सोऽचिरात्पापनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम् ।। १६ ।। गच्छ विप्र गृहं शीघ्रं यथा येन गतो ह्यसि ।। कौण्डिन्य उवाच ।। स्वामिन्पृच्छामि ते ब्रूहि किञ्चित्कौतूहलं मया ।। १७ ।। अरण्ये भ्रमता दृष्टं तद्वदस्व जगद्गुरो ।। यश्चूतवृक्षः कस्तत्र का गौः को वृषभस्तथा ।। १८ ।। कमलोत्पलकह्लारैः शोभितं सुमनोहरम् ।। मया दृष्टं महारण्ये किं तत्पुष्करिणीद्वयम् ।। १९ ।। कः खरः कुञ्जरः कोऽसौ

---

* वेपमानः । २ यतमरणम् इत्यापि पाठः ।

कोऽसौ वृद्धो द्विजोत्तमः ।। अनन्त उवाच ।। स चूतवृक्षो विप्रोऽसौ विद्यावेदविशारद ।। १२० ।। विद्या न दत्ता शिष्येभ्यस्तेनासौ तरुतां गतः ।। या गौर्वसुन्धरा दृष्टा पूर्वं सा बीजहारिणी ।। २१ ।। वृषो धर्मस्त्वया दृष्टः शाद्वले यः समास्थितः ।। *धर्माधर्मव्यवस्थानंतच्च पुष्करिणीद्वयम्[२] ।।२२।। ब्राह्मण्यौ केचिदप्यास्तां भगिन्यौ ते परस्परम् ।। धर्माधर्मादि यत्किञ्चित्ते निवेदयतो मिथः ।। २३ ।। विप्राय न क्वचिद्दत्तमतिथौ दुर्बलेऽपि वा ।। भिक्षा दत्ता न चार्थिभ्यस्तेन पापेन कर्मणा ।। २४ ।। वीचिकल्लोलमालाभिर्गच्छतस्ते परस्परम् ।। खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुञ्जरो मद उच्यते ।। २५ ।। ब्राह्मणोऽसावनन्तोऽहं गुहा संसारगह्वरम् ।। इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।। २६ ।। स्वप्नप्रायं तु तद्दृष्ट्वा ततः स्वगृहमागतः ।। कृत्वानन्तव्रतं सम्यक् नव वर्षाणि पञ्च च ।। २७ ।। भुक्त्वा सर्वमनन्तेन यथोक्तं पाण्डुनन्दन।। अन्ते च स्मरणं प्राप्य गतोऽनन्तपुरे द्विजः ।। २८ ।। तथा त्वमपि राजर्षे कथां श्रृण्वन् व्रतं कुरु ।। प्राप्स्यसे चिन्तितं सर्वमनन्तस्य वचो यथा ।। २९ ।। यद्वै चतुर्दशे वर्षे फलं प्राप्तं द्विजन्मना ।। वर्षेकेन तदाप्नोति कृत्वा साख्यानकं व्रतम् ।। १३० ।। एतत्ते कथितं भूप व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। ३१ ।। येऽपि श्रृण्वन्ति सततं पठ्यमानं पठन्ति ये ।। तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः प्राप्स्यन्ति च हरेः पदम् ।। ३२ ।। संसारगह्वरगुहासु सुखं विहर्तुं वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भव शुद्धसत्त्वाः ।। संपूज्य च त्रिभुवनेशमनन्तदेवं बध्नन्ति दक्षिणकरे वरदोरकं ते ।। ३३ ।। इति अनन्तव्रतकथा समाप्ता ।।

अथानन्तव्रतोद्यापनम् :– युधिष्ठिर उवाच ।। त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं कृष्ण मयानन्तव्रतं शुभम् ।। इदानीं ब्रूहि मेऽनन्तव्रतोद्यापनमुत्तमम् ।। कृष्ण उवाच ।। श्रृणु पाण्डव वक्ष्यामि व्रतोद्यापनमुत्तमम् ।। कृतेन येन सफलं व्रतं भवति निश्चितम् ।। आदौ मध्ये तथा चान्ते व्रतस्योद्यापनं चरेत् ।। यदा वित्तस्य चित्तस्य संपत्तिः शुभकालता।। तदा चोद्यापनं कुर्याच्छुभलग्ने शुभे दिने ।। चतुर्दशे तु वर्षे च मुख्यमुद्यापनं मतम् ।। कायशुद्धिं त्रयोदश्यामेकभुक्तादिना चरेत् ।। ततः प्रातश्चतुर्दश्यां स्नात्वा देशे शुचौ शुचिः ।। संकल्पयेदुपवासं देशकालावनुस्मरन् ।। ततो नद्यां तडागे वा गत्वा सर्वौषधैस्तथा ।। तिलकल्केनामलकैः स्नायान्मार्जनपूर्वकम् ।। तीरे मण्डपिकां कृत्वा गृहे वापि सुशोभनाम् ।। तन्मध्ये ह्युपविश्याथ देशकालौ स्मरेत्ततः ।। गणेशं पूजयित्वाथ पुण्याहं वाचयेद्द्विजैः ।। आचार्यं च सपत्नीकं वरयेद्वेदपारगम् ।। ब्रह्माणं च सदस्यं च ऋत्विजश्चचतुर्दश ।। सर्वान् वस्त्रैरलङ्कारैर्जलपात्रादिनार्चयेत् ।। विरच्य सर्वतोभद्रं मण्डपान्तस्तु मध्यगम् ।। ब्रह्मादिदेवतास्तस्मिन्नावाह्यापि

* यद्धर्माधर्मयोः परस्पर करणे सति व्यवस्थानं फलरूपेण व्यवस्थितिस्तत्रेत्यर्थः । २ पुष्करिण्या

च पूजयेत् ।। तन्मध्ये पङ्कजे धान्यं यथाशक्ति क्षिपेत्ततः ।। सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं वापि मृन्मयम् ।। त*स्योपरि न्यसेत्कुम्भमव्रणं सुनवं दृढम् ।। तस्मिञ्जलं गन्धपुष्पफलपल्लवमृत्तिकाः ।। क्षित्वा रत्नं हिरण्यं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं मृन्मयं वंशजं तथा ।। पात्रं तदुपरि न्यस्य पट्टकूलादिकं शुभम्।। प्रसार्य तदुपर्यष्टदलं सुचन्दनेन च ।। पद्मं विरच्य तन्मध्येऽनन्तमूर्ति विधाय च ।। पलेन वा तदर्धेन माषकेणापि वा कृताम् ।। सौवर्णीं रमया युक्तां शङ्खचक्रगदाब्जकाम् ।। आवाहनाद्युपचारैः पूजयेत्सुसमाहितः ।। पञ्चामृतेन स्नपयेत्ततश्च वसनद्वयम् ।। पट्टकूलादिकं पीतमर्पयित्वार्चयेद्व्रती ।। गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैश्च फलादिभिः ।। पुष्पैः संपूजयेदङ्गान्यनन्तस्य च नामभिः ।। अनन्ताय नमः पादौ गुल्फौ संकर्षणाय च ।। कालात्मने जानुनी च जघनं विश्वरूपिणे ।। कटी वै विश्वनेत्राय: मेढ्रं वै विश्वसाक्षिणे ।। नाभिं तु पद्मनाभाय हृदयं परमात्मने ।। कण्ठं श्रीकण्ठनाथाय बाहू सर्वास्त्रधारिणे ।। मुखं तु वाचस्पतये चक्षुषी कपिलाय च ।। ललाटे केशवायेति शिरः सर्वात्मने तथा । नमः पादौ पूजयामीत्येवमादि प्रपूजयेत् ।। एवं संपूज्य विधिना रात्रौ जागरणं चरेत् ।। गीतवादित्रनृत्यादिपुराणश्रवणान्वितम् ।। ततः प्रभातसमये स्नात्वाचार्यादिभिः सह ।। अनन्तं पूजयेत्प्राग्वज्जुहुया२त्पश्चिमे ततः ।। कुण्डे वा स्थण्डिले कुर्यादग्निस्थापनपूर्वकम् ।। आज्यभागान्तमाचार्यः स्वगृह्योक्तविधानतः ।। ततोऽश्वत्थसमिद्भिस्तदलाभेऽन्याभिरेव वा ।। दधिमध्वाज्यदुग्धाक्तैस्तिलैर्वा पायसेन च ।। आज्येन च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।। अष्टोत्तरशतं वाष्टविंशतिं जुहुयात्क्रमात् ।। अतोऽदेवेति मंत्रेण स्त्रीणां वै नाममन्त्रतः ।। प्रणवादिचतुर्थ्यन्तनमोन्तानन्तनामतः ।। नाममंत्रैश्च जुहुयाच्चतुर्दशभिरादरात् ।। ॐ अनन्ताय स्वाहा । ॐ कपिलाय० ॐ शेषाय० ॐ कालात्मने० ॐ अहोरात्राय० ॐ मासाय० ॐ अर्धमासाय० ॐ षड्तुभ्यः ॐ संवत्सराय० ॐ परिवत्सराय० ॐ उषसे ० ॐ कलायै० ॐ काष्ठाये ॐ मुहूर्ताय स्वाहा।। समिदादिभिरेवं च प्रत्येकं जुहुयात्क्रमात् ।। ततः स्विष्टकृदादाय पूर्णपात्रान्तमाचरेत् ।। जपेत्पुरुषसूक्तं तु स्मृत्वानन्तं सुरोत्तमम् ।। पूर्णाहुतिं च जुहुयाद्धोमान्ते विश्वमित्यृचा ।। होमशेषं समाप्याथ कृत्वा त्र्यायुषमेव च ।। पूजयित्वा हरिं देवमाचार्यं पूजयेत्ततः ।। वस्त्रालंकार भूषाद्यैस्ततो धेनुं समर्चयेत् ।। पयस्विनीं सुशीलां च वस्त्रालंकारभूषिताम् ।। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां ताम्रपृष्ठां सुशोभनाम्।। कांस्यदोहां रत्नपुच्छां निष्ककण्ठीं सवत्सकाम् ।। गवा मंत्रेण संपूज्य ह्याचार्याय निवेदयेत् ।। गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।। यस्मात्तस्माच्छुभं मे

* धान्यस्योपरि । २ मंडपस्य पश्चिमे भागे इत्यर्थः ।

स्यादिह लोके परत्र च ।। गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।। मन्त्रमेतं समुच्चार्य वस्त्रालंकारभूषणैः ।। तत्पत्नीं पूजयित्वाथ ब्रह्माणं तोषयेत्ततः ।। ऋत्विजः पूजयित्वाथ तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। चतुर्दशैव कुम्भांश्च पक्वान्नपरिपूरितान् ।। वस्त्रोपवीते दद्याच्च अनन्तः प्रीयतामिति ।। आचार्यादीन्भोजयित्वा पूर्णतां वाचयेत्ततः ।। अथानन्तं विसृज्यापि गृह्णीयादाशिषस्ततः ।। भक्तियुक्तो नमस्कृत्य ब्राह्मणांस्तान्विसर्जयेत् ।। ततो हृष्टो बन्धुयुतो भुञ्जीयात्सुसमाहितः ।। एवं कृतेऽनन्तफलदातानन्तो भवेन्नृणाम् ।। इति श्रीभविष्ये अनन्तव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।। अथ नष्टदोरकविधिः–युधिष्ठिर उवाच ।। अनन्तव्रतमाहात्म्यं कृत्स्नं कृष्ण त्वयोदितम् ।। भगवन्दोररूपेण भाग्यदोऽसि महात्मनाम् ।। दोरं प्रमादतो नष्टं यदि स्याद्विदितं जनैः ।। तदा किं करणीयं स्याद्व्रतं त्रैलोक्यपावनम् ।। कृष्ण उवाच ।। साधु पृष्टं त्वया राजन् वक्ष्यामि व्रतनिष्कृतिम् ।। दोरे नष्टे महान्दोषः प्रभवेद्व्रतिनामिह ।। तस्मात्तद्दोषनाशार्थं प्रायश्चित्तं विधीयते ।। गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य समाहितः ।। विज्ञाप्य दोरनाशं च कृत्वा दोरं व्रती ततः ।। हव्यवाहं प्रतिष्ठाप्य तस्मिन्ध्यात्वाहरिं परम् ।। आज्यमग्नावधिश्रित्य दद्याद्विप्राय चासनम् ।। अष्टोत्तरशतं हु*त्वा मूलममंत्रेण वैष्णवम् ।। नाममंत्रेण तत्कृत्वा द्वादशाक्षरसंयुतम् ।। केशवादिसकृद्धुत्वा प्रायश्चित्तं तु शक्तितः ।। पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।। व्रतच्छिद्रं जपच्छिद्रं यच्छिद्रव्रतकर्मणि ।। वचनाद्भूमिदेवानां सर्वं संपूर्णतां व्रजेत् ।। मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।। आचार्यपूजनं कार्यं दक्षिणाद्यैर्नृपोत्तम ।। एवं शान्तिविधिं कृत्वा पूर्ववद्व्रतमाचरेत् ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रायश्चित्तं चरेत्सुधीः ।। इति भविष्ये नष्टदोरकविधिः ।।

अनन्तचतुर्दशीका व्रत––कहते हैं, इसे परा लेना चाहिये क्योंकि, पराही पूजनके समय रहेगी, क्योंकि, ब्रह्म पुराणमें लिखाहुआ है कि, जो एकाग्रचित्तसे प्रातःकाल अनन्तका पूजन करता है वह भगवान्की कृपासे अनन्त सिद्धिको पाता है । इस वचनसे यह सिद्ध होगया कि, पूजाका मुख्य समय प्रातःकाल है, उस समय रहनेवालीमें व्रत करना चाहिये । यदि प्रातःकालमें चतुर्दशी न मिले तो पूर्वाही ग्रहण करलेनी चाहिये । (निर्णयसिन्धुकार "मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्-मध्याह्नकालमें भोजनके समय" इस ५२ के कथाके श्लोकसे तथा पूजा और व्रतमें मध्याह्नव्यापिनीतिथि ली जाती है । इस माधवीयवचनसे ' मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये' इस दिवोदासीयके वचनसे तथा प्रताप मार्तण्डके सहयोगसे यहां भी मध्याह्नव्यापिनी ही चतुर्दशीका ग्रहण करते हैं, पर ये व्रतराजकार प्रातःकाल पूजनसे समय रहनेवाली कार्यकालव्याप्त पराकाही ग्रहण करते हैं इसकारण निव्के औचित्यपर विचार करते हैं कथाके जिस वचनका प्रमाण निर्णयकारने रखा है उसके स्थूल विचारसे उक्त ग्रन्थकारने मध्याह्नही पूजाका समय मानकर कार्य्य पूजाके मध्याह्न कालमें रहनेवाली तिथि लेडाली है । पर प्रातःकालकी व्याप्तिही उचित है, क्योंकि, प्रातःकालसे पूजन प्रारंभ होकर पूजनादि कार्य्योंमें मध्याह्न हो सकता है । वहां यह तो लिखा मिलता ही नहीं कि, उस समय उन्होंने

* हविरिति शेषः

पूजन प्रारंभ किया था, केवल पूजती मिली । इतनाही मिलता है, पर ब्रह्मवर्तके उदाहृतवचनमें साक्षात् प्रातःकालका उल्लेख मिलता है कि 'प्रातःकाले समाहितः' इस कारण कार्य्यकाल प्रातर्व्यापिनी चतुर्दशीका ग्रहणही युक्त है ।) पहिले दिन सूर्योदयव्यापिनी न होगी तो दूसरे दिन विना सूर्योदय व्याप्तिके उसकी घडियाँ पूरी न होगी यदि पूरा ऐसी न हो पूर्वा हो तो उसमें व्रत हो, दोनोंही न हो तो पूर्वामें हो । (निर्णय सिन्धुकार कहते हैं कि, यदि दोनोंहीं दिन उदयकालमें तिथि रहे तो पूर्वाकाही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि इनमें पूर्वा मध्याह्नकालव्यापिनी मिल सकेगी उत्तरा न मिल सकेगी किन्तु प्रातःकालही इस व्रतका कार्य्य-काल माननेवाले व्रतराजके यहां पराही उपयुक्त है । उसीका ग्रहण होगा कि, दोनों दिन सूर्योदयव्यापिनी हो तो पराका ग्रहण करना चाहिये । इसमें दूसरा हेतु देते हैं कि, वह पूर्णिमासे युक्त होगी । इस कारण पराका ही ग्रहण करिये । यह क्यों कहा ? इसपर विचार करते भविष्यका वचन सामने आता है कि, पूर्णमासीके योगमें अनन्त व्रत करे, निर्णय०कारभीकार्य काल व्यापिनी तिथिके विषयमें लिखगये हैं कि, दो दिन तिथि कार्यकालमें हो तो युग्मवाक्यसे निर्णय करले । उसमें लिखा ही है कि, चतुर्दशी और पूर्णिमाका योग हो तो वह तिथि लेलेनी चाहिये ।) पराके ग्रहणमें दूसरोंकी भी संमति दिखाते हैं । कि, भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन अनन्तको पूजे । ह्रासमें भी सर्व काम करे, पर पूजन प्रातःकाल होना चाहिये । भाद्रपद शुक्ला चौदशको अनन्त चतुर्दशी कहते हैं । चाहे एक घडीभी हो पर उदयकालव्यापिनी लेना चाहिये यह हेमाद्रिने लिखा है । इस कारण पराही सर्व संमत है । (माधव और हेमाद्रि दोनोंकी संमति अपने साथ दिखा दी हैं । माधवको तो नि०कारने भ्रान्त कहा है ? पर हेमाद्रिने इस विषयमें जिक्र भी नहीं किया है । दूसरे इस व्रतको न तो वे पुराणोंमें मानते हैं, न निबन्धोंमें ही मानते है, किन्तु अपने निबन्धमें दूसरे निबन्धोंका उल्लेख देकर वे लिख रहे हैं) अनन्त व्रतविधि–प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर नित्यकर्म समाप्त करके पवित्र एकाग्र हो, हृदयमें अनन्तका ध्यान करना चाहिये । सर्वतोभद्रमंडल बना उसपर कलश रख दे. वहां अष्टदल कमलपर विष्णु भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये, सात फनोंका दर्भका शेष बनाना चाहिये, अनन्त, अच्युत, कृष्ण, अनिरुद्ध, पद्मज, दैत्यारि, पुण्डरीकाक्ष, गोविन्द, गरुडध्वज, कूर्म, जलनिधि, विष्णु, वामन, जलशायी इन चौदहों नामोंमेंसे प्रतिवर्ष क्रमसे पूजे । उसके आगे कुंकुमसे रंगाहुआ मजबूत दोरा बाँधना चाहिये । उसमें चौदह गाँठ हों, उसे सामने रखकर पूजे । इसके पीछे मूलमन्त्रसे चतुर्भुजको नमस्कार करके, नये आमके पल्लवी तरह चमकते, पिंगल भ्रू मूंछ और नेत्रोंवाले, शंखचक्र गदा हाथमें लियेहुए पीतवस्त्रधारी प्रसन्न-मुखी विश्वरूप विष्णु भगवान्‌का ध्यान करे । मासपक्ष आदि कहकर मेरे कुटुम्बकी क्षेम, स्थैर्य, आयु, आरोग्य, चारों तरहके पुरुषार्थोंके फलकी प्राप्तिके लिये में जिन्हें कररहाहूं तथा जो मैंने किये हैं उन सभी व्रतोंके पूरे फल पानेके लिये श्रीमान् अनन्तका पूजन में करताहूं तथा आसन आदिक कलशआराधनादिक सब करूंगा । यह संकल्प करके "कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रा समाश्रितः । मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः । कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा । ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः । अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।। कलशके मुखमें विष्णु, कण्ठमें रुद्र, मूलमें ब्रह्मा मध्यमें मातृगण, कुक्षिमें सात समुद्र सातोंद्वीपोंवाली पृथिवी विराजती है । ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्व ये सब अंगोंके साथ कलशमें विराजते हैं । सर्वे समुद्राः सरिताः तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।। यजमानके पापोंको नष्ट करनेवाले, सभी समुद्र नदियाँ तीर्थ जलदेनेवाले, नद इस कलशमें आजायें ।। और 'सतासिते' इससे कलशका स्थापनादिकरके उसपर वरुणकी पूजाकर पीछे शंख और घण्टाकी पूजा करके, 'अपवित्रः-पवित्रो वा' इससे पूजाकी चीजें और अपना प्रोक्षण करके यमुनाका पूजन करे । श्रीमान् अनन्तव्रतके अंगरूपमें श्रीयमुनाजीका पूजन में करूंगा ।। जिसकी लोकपाल प्रार्थना करते रहते हैं, जिसका उद्भव इन्द्र नील है । ऐसी तुझे हे यमुने ! सभी अर्थकामोंकी सिद्धिके लिये याद करताहूं इससे ध्यान; हे सबकामोंके देनेवाली सरस्वति ! तेरे लिये नमस्कार है, हे यमुनेदेवि ! व्रतकी सम्पूर्तिके लिये आजा, इससे तथा "ओं इमं मे गङ्गे इससे आवाहन; हे देवशक्तियोंसे युक्त सिंहासनपर विराजमान सभी लक्षणोंमें परिपूर्ण ! तुझ यमुनाके लिये नमस्कार हैं, इससे आसन; हे रुद्रपादे ! हे सबके हितको चाहनेवाली ! हे सब पापोंके नाश करने-

वाली ! तुझे तरंगवालीके लिये नमस्कार है, इससे पाद्य; हे गरुडपादे ! हे शंकरकी प्यारी भामिनी ! हे सब कामोंका देनेवाली यमुने ! तेरे लिये नमस्कार है, इससे अर्घ्य, हे विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न होनेवाली सभीआभरणोंसे लदी हुई कृष्णमूर्ते महादेवी ! तुझ कृष्णवेणीके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे आचमनः हे सबके पापोंकी हरनेवाली एवं सभीको प्रिय दीखनेवाली यमुने ! सौभाग्य दे, तुझे वारंवार नमस्कार है, इससे मधुपर्क; हे नन्दिपादे ! हे महादेवि ! हे शंकरके आधे शरीरवाली ! हे सब लोकोंको हितकारिणी ! हे देवि ! तुझे भीमरथीके लिये नमस्कार है, इससे पंचामृतस्नान; हे सिंहपादासन देवि ! हे नरसिंहके समान चमकनेवाली ! हे सभी लक्षणोंसे संपूर्ण ! हे भवको नष्ट करनेवाली तेरेलिये नमस्कार है, इससे शुद्ध पानीसे स्नान; हे विष्णुभगवान्के चरणोंसे पैदा होनेवाली तीन रास्तोंसे जानेवाली गंगे ! हे सब पापोंके हरनेवाली ! तुझे भागीरथीके लिए नमस्कार है, इससे श्वेतवस्त्र; हे शिवकी जटाओंसे पैदा होनेवाली ! हे गौतमके पापोंकी नाशक ! हे सात समुद्रोंसे जानेवाली अथवा सप्त स्रोत होकर समुद्रको जानेवाली गोदावरि ! तेरे लिए नमस्कार है. इससे कंचुकी; हे देवि । माणिक्यमुक्तावरि, और कौस्तुभको एवं गोमेद, वैदूर्य, सुपुष्पराग, वज्र और नील मणिसे सुशोभित सुंदर आभरणोंको ग्रहण करिये इससे आभरण; चन्दन अगरु, कस्तुरी, रोचन, कुंकुम और कपूरसे मिली हुई सुगंधिको भक्तिसे देता हूं इससे गन्ध,, चन्द्रमा जैसे सफेद हल्दीसे रंगे हुए अक्षतोंको, हे सुर श्रेष्ठे शुभे यमुने तुझेदेता हूं ग्रहण करिये, इससे अक्षत; शुभ मन्दार, मालती, जाति, केतकी, पाटलइन फूलोंसे हे देवेशि ! भक्तवत्सले यमुने ! तेरा पूजन करता हूं, इससे पुष्प सममंण करे । अंगपूजा--चपलाके लिये नमस्कार जानुओंको पूजता हूं । भक्तवत्सलाके लिये नमस्कार कटीको पूजता हूं, हराके लिए नमस्कार नाभिको पूजता हूं, । मन्मथवासिनीके लियेनमस्कार गुह्यको पूजता हूं, अज्ञानवासिनीके० हृदयको पू०; भद्राके० स्तनोंको पूजता०, पापनाशिनीके भुजोंको पू०; रक्त कण्ठीके० कण्ठको पू० भवनाशिनीके० भवनाशिनीके० मुखको पू०; गौरीके० नेत्रोंको पू०; भागीरथीके० ललाटको०; यमुनाके०; शिरको पू०; सरस्वतीके लिए नमस्कार सर्वांगको पूजता हूं ।। नामपूजा--यहां यमुनाजीके नाम चतुर्थीके एकवचनान्त रखे हैं, सबके आदिमें 'ओम्' और अन्तमें 'नमः' लगाना चाहिए, प्रत्येक नाममंत्रसे अक्षतादिक चढाते जाना चाहिये । यमुनाके लिए नमस्कार, सीताके०; कमलाके०; उत्पलाके०; अभीष्टोंको देनेवालीके०, धात्रीके०; हरिहररूपिणीके०; गङ्गाके०; नर्मदाके०; गौरीके०; भागीरथीके०; तुङ्गाके०; कृष्णावेणीके०; भवनाशिनीके० नीके०; सरस्वतीके०; कावेरीके०; सिन्धुके०; गौतमीके०; गोमतीके०; गायत्रीके०; गरुडाके०; गिरिजाके०; चन्द्रचूडाके०; सर्वेश्वरीके०; महालक्ष्मीके० लिए नमस्कार है, हे सभीउपद्रव औल पापोंको नाशनेवाली ! हे सब संपत्तियोंके देनेवाली देवि ! तुझ यमुनाके लिए नमस्कार है । यह नामपूजा पूरी हुई ।। दशाङ्गो गुग्गुलोद्भूत०' इससे धूप; 'घृतवर्ति समयुक्तम्' इससे दीप; 'शर्करामधु०' इससे नैवेद्य; 'पानीयं पावनम्' इससे हस्तप्रक्षालन; मुखप्रक्षालन; 'कर्पूरेण' इससे करोद्वर्तनके लिए चन्दन; 'इदं फलम्० इससे फल, 'पूगीफलम्०' इससे ताम्बूल; 'हिरण्यगर्भ०' इससे दक्षिणा; 'त्रैलोक्य पावने' इससे आरती; 'केतकीजातिकुसुमैः' इससे पुष्पांजलि; 'यानि; कानि०' इससे प्रदक्षिणा; 'अन्यथा शरणम्' इससे नमस्कार; सुर असुर आदिके राजाओंके मुकुटोंकी मुक्तामणियोंसे युक्त तो सदा आपके चरणकमल रहा करते हैं पर और अवर तथा श्रेष्ठ रक्षक उच्च मंगलरूप जो आपके वे चरणारविन्दहैं उनको,सभी कामोंकी सिद्धिके वास्ते नमस्कार करता हूं हे सब कामोंको पूजा करनेवाली भवानि ! महालक्ष्मी ! तुझे यमुनाके लिए नमस्कार है, मेरा वह व्रत पूरा होजाय, इससे प्रार्थना समर्पण करना चाहिये । यह श्री यमुनाजीकी पूजा समाप्त हुई अनन्तपूजा--यमुनाजीके कलशपर पूर्णपात्र रखकर उसपर सातफनोंका शेषनाग स्थापित करके पूजे । ध्यान--ब्रह्मांडका आधारभूत यमुनाके बीच बसनेवाले सातफनोंके भगवान्के प्यारे अनन्तका ध्यान करता हूं, इससे ध्यान; हे अनन्त ! कालरूपी पन्नगोंके स्वामी सात फनोंके तुझे शेषको भक्तिभासे शयनके लिए बुलाता हूं इससे आवाहन; हे नागोंके नौ कुलोंके अधीश्वर ! हे उद्धारक काश्यप शेष ! अनेक रत्नोंका जडाऊआसन ग्रहण कर, इससे आसन; हे जगत्के आधारका रूपवाले प्यारे शेष स्वामी अनन्त ! पाद्य ग्रहण करिये; हे काद्रवेय ! मैं भक्तिभाससे तेरे लिए नमस्कार करता हूं, इससे पाद्य, हे मुनि लोगोंसे वन्दित!

हे कश्यपको आनन्द देनेवाले ! हे सर्वज्ञ शंकरके प्यारे प्रभो ! अर्घ्यसादर ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य; हे एक हजार फनवाले होकर वसुधाको धारणकरनेवाले प्रभो ! हे देव ! सुशीतल पवित्र आचमनको ग्रहण करिये, इससे आचमन; हे सर्पराज ! तेरे लिए नमस्कार है, कुमाररूपी तुझे दधि मधु और आज्यके संयुक्त मधुपर्क देता हूं, इससे मधुपर्क; इसके पीछे पञ्चामृतसे स्नान; गङ्गा आदिक सभी पुण्यतीर्थोंसे तेरा आदरपूर्वक अभिषेक करताहूं हे बलभद्रके अवतारमें श्रीपतिके सखा बननेवाले आनन्द दाता ! प्रसन्न हूजिए, इससे स्नान; हे देवेश ! ये दोकौशेय वस्त्र में प्रीतिसे देता हूं हे पन्नगाधीश गरुडके वैरी ! तेरे लिए नमस्कार है, इससे वस्त्र; गुथा हुआ सोनेका बनाहुआ सूत्र तथा अनेक रत्नोंका जडाऊ कंठ हार तयार है, हे सर्पराज ! तेरे लिए नमस्कार है, इसे यज्ञोपवीत; अनेकोंरत्नोंके जडाऊ ये दोनों कुण्डल हैं ये दोनों कंकण भी मणियोंसे जड रहे हैं, रत्नोंकी मुद्राडाली हुई सोनेकी अँगूठी है, सोनेका मुकुट है जिसमें सर्पोंके मुक्ता लगे हुए हैं, इससे सब आभरण; 'श्रीखण्डम्' इससे चन्दन; 'अक्षताश्च' इससे अक्षत; 'करवीर०' इससे पुष्प समर्पण करे ॥ अंगपूजा–यह नाम मंत्रोंसे की गई है वे सब नाम चतुर्थीके एकवचनान्त करके रखे हैं । एक अंगको एक तथा अधिकको द्वितीयाका अधिक वचनान्त करके रखा गया है, सबके आदिमें 'ओम' और अन्तमें 'नमः' लगाना चाहिये । सहस्रपादके लिये नमस्कार चरणोंको पूजता हूं, गूढ गुल्फवालेके० गुल्फोंको पू०; हेमके जंघावाले-कोलजंघाओंको पू०, मन्द चरनेवालेको० जानुओंको पू०; पीत वस्त्रपहिनेवालेके० कटीओ पू०; गंभीर नाभिवालेको० नाभिको० पू०; पवनका भोजन करनेवालेको० उदरको पू०; उरगके हाथोंको पू०; कलि-के भुजोंके पू०; कम्बुकण्ठके० कण्ठको पू०; मुखमें विषवालेके० मुखको पू० । फनोंके आभूषणवालेके० ललाटको० पू० लक्ष्मणके० शिरको पू०; अनन्तके प्यारेके लिये नमस्कार सर्वांगको पूजता हूं । यह अंगपूजा पूरी हुई ॥ वनस्पति० इससे धूप, 'साज्यं च वर्त्ति०' इससे दीप; 'नैवेद्य गृह्य०' इससे नैवेद्य; मध्यमें पानीय; करोद्वर्दनके लिये चन्दन; 'पूगीफलम्०' इससे सुपारी; ताम्बूल; 'इदं फलम्' इससे फल; ताम्बूल; 'इदं फलम्' इससे फल, 'हिरण्यगर्भ०' इससे दक्षिणा; श्रियैजातः' इससे आरती; हे प्रभो ! अनेकों फूलोवाली यह पुष्पांजलि है, हे कश्यपको आनन्द देनेवाले इसे ग्रहण कर, इससे मन्त्र पुष्प; 'यानि कानि' इससे प्रदक्षिणा; 'नमोऽस्त्वनन्ताय' इससे नमस्कार; हे महीधर ! तू अनन्त कल्पके कहे हुए फलको दे, क्योंकि, आपकी विना पूजा किये मनुष्य आधाही फल पाता है, इससे प्रार्थना समर्पण करे । यह शेषजीकी पूजा पूरी हुई ॥ पूर्वके द्वारा पर–द्वारश्री, नन्दा, सुनन्दा, धात्री, विधात्री, चिच्छक्ति, शङ्खनिधि पद्मनिधि इन सबके लिये पृथक् पृथक् नमस्कार है । दक्षिणद्वारपर–द्वारश्री, चण्डा, प्रचण्डा, धात्री, चिच्छक्ति, मायाशक्ति शंखनिधि, पद्मनिधि, इन सबके लिये पृथक् पृथक नमस्कार है । पश्चिमद्वारपर–द्वारश्री, बला, प्रबला, धात्री, विद्या, चिच्छक्ति; मायाशक्ति, शंखनिधि, पद्मनिधि, इन सबको पृथक् पृथक् नमस्कार है । उत्तरद्वारपर–द्वारश्री,महावरा, प्रबला, धात्री, विधात्री, चिच्छक्ति, मायाशक्ति, शंखनिधि, पद्मनिधि इन सबको पृथक् पृथक् नमस्कार है । इन सबोंका मंडपके द्वारोंपर पूजन होता है ॥ यह द्वारपाल आदिका पूजन है । पीठके मध्यमें वास्तु पुरुषके लिये नमस्कार, मंडूकके०; कालाग्निरुद्रके; आधार शक्तिके०; कूर्मके०; पृथिवीके०; अमृतार्णवके०; श्वेतदीपके; कल्पवृक्षोंके०; मणि मंदिरके०; हेम पीठके लिये नमस्कार । (अग्निकोणमें) धर्मके०; (पूर्वमें) अधर्मके०; (नैर्ऋत्य०) ज्ञानके०; (वाय०) वैराग्यके (ई०) ऐश्वर्यके; (उत्तरमें) अनैश्वर्य्यके लिये नमस्कार है । (फिर मध्यमें) सहस्र फणोंसे युक्त अनन्तके लिये०सर्वसत्वके०; पद्मके; आनन्दकन्दके०, संविन्नालके; विकारमय केसरके०, प्रकृतिमय पत्रोंके०; सूर्यमंडलके०; चन्द्रमण्डलके०; वह्निमण्डलके०; संसत्वके०; रं रजसके०; तं तमसके०; पूर्वादि दिशाओंमें क्रमसे आत्माके०; परमात्माके०; अन्तरात्माके०; ज्ञानात्माके०; प्राणात्माके०; कालात्माके; विद्यात्माके लिये नमस्कार है । इससे पूजा करे (मंत्रमहोदधि और मंत्रमहार्णवमें इनके साथ बीज; लगाये हैं एवम् मंडूकसे लेकर परतत्त्व तक चालीस आये हैं पर यहां वे पूरे नहीं दिये हैं) जयाके; विजयाके; ; अजिताके; अपराजिताके; नित्याके; विनाशिनीके; दोरध्रीके; अघोराके मंगलाके; अपार शक्ति कमला-सनाके लिये नमस्कार है । यह पीठपूजा पूरी हुई ॥ ("अस्य श्री" यहांसे लेकर " परा न;" यहांतकका

विषय प्राण प्रतिष्ठा आदिमें कह चुके हैं) अनन्तपूजा – इसके बाद मूलमंत्रसे जनार्दनको नमस्कार करे, नये आम्र पल्लवकी तरह चमकनेवाले, पिंगल रंगके नेत्र और मूर्छवाले पीताम्बर धारी हाथोंमें शंखचक्र गदा लिये हुए आभूषण पाहिने समुद्रमें विराजमान विश्वरूप भगवान्‌को याद करता हूं, इससे ध्यान; हे देवेशि ! हे तेजोराश ! हे जगत्के स्वामिन् ! पधारिये, हे पुरुषोत्तम ! मेरी इस पूजाको ग्रहण करिये, इससे "ओम् सहस्र शीर्षा" इससे आवाहन; 'नानारत्न समायुक्तम्' इससे "ओम् पुरुष एवेदम्" इससे आसन; 'गंगादि सर्वं' इससे "होम् एतवानस्य" इससे पाद्य; हे अनन्त फलके देनेवाले देवेश अनन्त ! आप अनन्त रूप हैं, अर्घ्य ग्रहण करिये, आपके लिये नमस्कार है । इससे "ओम् त्रिपादूर्ध्व" इससे अर्घ्य 'गंगोदक' इससे "ओम् तस्माद्विराड्०" इससे आचमन । अनन्त गुण और रूपवाले, विराट् महात्म देव श्री अनन्तके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे "ओम् यत्पुरुषेण" इससे स्नान समर्पण करे । इसके पीछे पंचामृत स्नान--हे देवेश ! यह देवताओंको भी दुर्लभ है । सुरभिसे उत्पन्न हुआ है आपके स्नानके लिये दूध देता हूं, इनसे तथा "ओम् आप्यायस्व" इससे दूधसे स्नान चन्द्रमाके मंडलके समान धोला जो कि सभी देवताओंको प्यारा लगता है ऐसा दधि देता हूं । हे देवेश ! स्नानके लिये ग्रहण करिये, इससे "ओम् दधि क्राब्णो अकारिषम्" इससे दधिस्नान; आज्य,घी) देवताओंका आहार है ! आज्य यज्ञमें प्रतिष्ठित है आज्य परम पवित्र है । हे देवेश ! इसे स्नानके लिए ग्रहण करिये, इससे "ओम् घृतं मिमिक्षे" इससे घृतस्नान; सब ओषधियोंसे पैदा हुआ सुधाके समान मीठा है, हे परमेश्वर ! आपके स्नानके लिये मैंने दिया है इसे ग्रहण कीजिये, इससे "ओम् मधुवाता" इससे मधुस्नान; ईखके जाडेसे पैदा हुई शुभ मीठी सक्कर है, आपके नहानेके लिए देता हूं हे परमेश्वर ! आप ग्रहण करिये; इससे "स्वादुः पवसु" इससे शर्करास्नान; नाममन्त्रोंसे शुद्ध पानीसे स्नान करावे पुरुष सूक्तसे अभिषेक करे ।। हे लक्ष्मीजीके साथ विराजने वाले देवेश ! तेरे लिए नमस्कार है यह तपाये हुए सोनेके समान चमकनेवाला अच्छा बनाया हुआ रेशमका कपडा है आप इसे ग्रहण करिये, इससे "तं यज्ञं" इससे वस्त्र; आचमन; हे दामोदर ! तेरे लिये नमस्कार है मुझे भवसागरसे बचा; हे पुरुषोत्तम ! उत्तरीय सहित ब्रह्मसूत्र ग्रहणकर, इससे "यज्ञोपवीतं परमं" इससे "तस्माद्यज्ञात्" इससे उपवीत; आचमन; श्रीखण्ड चन्दनम्' इससे "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः" इससे चन्दन; 'अक्षताश्च' इससे अक्षत; 'माल्यादीनि' इससे "तस्मादश्वा" इससे पुष्प समर्पण करे ।। ग्रन्थिपूजा--श्री मोहिनी, पद्मिनी, महाबला, अजा, मङ्गला, वरदा, शुभा, जरा, विजया, जयंती, पापनाशिनी, विश्वरूपा, सर्वमङ्गला, इन सबोंके लिये पृथक् पृथक् नमस्कार है, इन चौदहों नाम मंत्रोंसे ग्रन्थिका पूजन करना चाहिये । यह गांठकी पूजा पूरी हुई । अङ्ग पूजा--मत्स्यके लिए नमस्कार चरणोंका पूजन करता हूं, कूर्मके० गुल्फोंके पु०; वराहके० जानुओंको; नारसिंहके० उरुओंको पू०; वामनके० कटीको पू०; रामके० उदरको पू०; श्रीरामके० हृदयको पू० कृष्णके० मुखको पू०; अनेकों शिरवालेके० शिरको पू०, श्रीमान् अनन्तके० सर्वाङ्गको पूजता हूं ।। आवरण-पूजा--अनन्तके दक्षिण पार्श्वमें रमाके लिये नमस्कार । वाम पार्श्वमें, भूमिके लिये नमस्कार, इनसे पहिले आवरणकी पूजाकरे । आवरण देवताका आवाहनकर हाथ धो, गन्ध पुष्प तर्जनी मध्यमा और अँगूठोंसे धरकर बीचमें शंखका पानी ले मंत्रके अन्तमें शंखके पानीको भूमिपर पटक्कर पुष्पोंको देवपर चढा दे । हे दयाब्धे ! मुझ शरणागतको संसारसागरसे बचाइये; मैं भक्तिपूर्वक आपको, पहिले आवरणका पूजन समर्पित करता हूं । इस मंत्रको बोल जलको छोड फूलको देवताके ऊपर छोड दे । पूर्व आदिके क्रमसे आवरणोंका पूजम करना चाहिये । ऋद्धोल्कके ;महोल्कके शतोल्कके, सहस्त्रोल्कके लिये नमस्कार । 'दयाब्धे' इनसे दूसरे आवरणकी पूजा करे । वासुदेवके०; संकर्षणके०; प्रद्युम्नके०; अनिरुद्धके०; 'दयाब्धे' त्राहि' इससे तीसरे आवरणकी पूजा करे । प्राची आदिकके क्रमसे केशव; नारायण; माधव; गोविन्द, विष्णु; मधुसूदन; त्रिविक्रम; वामन श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाम; दामोदरके लिये नमस्कार है । 'दयाब्धे त्राहि' इससे चौथे आवरणकी पूजा करनी चाहिएं । पूर्वादिके क्रमसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, राम, श्रीराम कृष्ण, बौद्ध, कल्कि, अनन्त, विश्वरूपोंके लिये नमस्कार 'दयाब्धे' इनसे पांचवे आवरणकी पूजा करनी चाहिए पूर्वमें अनन्तके लिए; दक्षिणमें ब्रह्माके लिए; पश्चिममें वायुके लिए; उत्तरमें ईशानके लिए; आग्निकोणमें

वारुणीके लिए; नैर्ऋत्यमें गायत्रीके लिए; वायव्यमें भारतीके लिए; ईशानमें गिरिजाके लिए; अगाडी गरुड़के लिए; वाममें सुपुण्यके लिए नमस्कार है । दक्षिणमें दयाब्धे त्राहि इससे छठें आवरणकी पूजा होती है । पूर्व आदिक दिशाओंके क्रमसे—इन्द्रके; अग्निके; यमके; निर्ऋतिके; वरुणके; वायुके, सोमके, ईशानके, लिए नमस्कार है 'दयाब्धे' इनसे सातवें आवरणकी पूजा करनी चाहिये । अग्निकोणमें शेष; नैर्ऋत्यकोणमें विष्णु, वायव्यकोणमें विधु, ईशानमें प्रजापतिके लिए नमस्कार है । 'दयाब्धे' इससे आठवें आवरणकी पूजा करनी चाहिये । अग्निमें गणपतिके, नैर्ऋत्य कोणमें सप्त मातृकाओंके लिए, वायव्य कोणमें दुर्गाके लिए, ईशान कोणमें क्षेत्राधिपतिके लिए नमस्कार हैं, 'दयाब्धे' इससे नौवें आवरणकी पूजा करनी चाहिए मध्यमें ब्रह्मके, भास्करके, शेषके, सर्व व्यापीके, ईश्वरके, विश्वरूपके, महाकायके, सृष्टि-कर्ताके ,कृष्णके, हरिके, शिवके, स्थिति और संहार करनेवालेके, अन्तकके लिए नमस्कार है, 'दयाब्धे' इनसे दशवें आवरणकी पूजा करनी चाहिये । शौरी, वैकुण्ठ, महावर, पुरुषोत्तम, अज, पद्मनाभ, मंगल, हृषीकेश, अनन्त, कपिल, शेष, संकर्षण, हलायुध तारक, सीरपणि, बलभद्रके लिए नमस्कार ' दयाब्धे ' इनसे ग्यारहवें आवरणकी पूजा करनी चाहिये । माधव, मधुसूदन, अच्युत, अनन्त, गोविन्द विजय, अपराजित कृष्णके लिए नमस्कार, 'दयाब्धे' इससे बारहवें आवरणकी पूजा होती है । क्षीर सागरमें सोनेवाले, अच्युत, भूमिके आधार, लोकनाथ, फनकी मणियोंसे विभूषित, एक हजार शिखावाले, उतनीही ज्वालावालेके लिए नमस्कार, 'दयाब्धे' इनसे तेरहवें आवरणकी पूजा करनी चाहिए । जैसे आवरणोंके नाम मंत्रोंसे पूजा कह आये हैं प्रत्येक नाम मंत्रको लिखकर उसके साथ अन्तमें 'के लिए' नमस्कार' वस लगाया है तो कि प्रत्येक नामके साथ अन्वित होता है जैसे माधवके लिए नमस्कार इत्यादि । इसी तरह केशव आदि चौबीस नामोंसे पृथक् पृथक् पूजे । पीछे 'दयाब्धे' इस मंत्रसे पूजा करे । यह चौदहवें आवरणकी पूजा पूरी हुई ।। मंत्रपूजा-मूलमें सब चतुर्थीविभक्तिके एकवचनान्त कृष्णाय' ऐसे रूपमें नाम रखे हुए हैं । जिन चीजोंके पत्ते उनसे चढाये जाते हैं । वे द्वितीयाके एकवचनान्त 'पलाश पत्रम्' ऐसे रूपमें रखे हुए हैं 'समर्पयामि' समर्पण करता हूं, यह साथ लगा हुआ है । इस सबका मिलकर अर्थ होता है कि श्रीकृष्णके लिये नमस्कार, पलाशके पत्ते समर्पण करता हूं । इसी तरह दूसरे वाक्योंका भी अर्थ होता है वोभी ऐसेही समझना चाहिये, विष्णुके लये नमस्कार, उदुम्बरके पत्ते चढाताहूं । हरिके० अश्वत्थके पत्ते, शंभुके० भृङ्ग राजके० ब्रह्मके० जटाधारके भास्करके; अशोकके; शेषके० कपित्थके०; सर्वव्यापीके० बडके; ईश्वरके० आमके; विश्वरूपीके० कदलीके०, महाकायके० अपामार्गके० सृष्टिकर्ताके० करवीरके०; स्थितिकर्ताके० पुन्नागके० अनन्तके० नागवल्लीके पत्तोंको समर्पण करता हूँ या चढाता हूं ।। पुष्प पूजा—इसी तरह पुष्प पूजा भी है । अनन्तके लिये नमस्कार, पद्मके फूलोंको समर्पण करता हूं विष्णुके० जातिके० केशवके० चंपकके०; अव्यक्तके० कह्लारके० सहस्रजितके० केतकीके; अनन्तरूपके० बकुलके०; इष्टके० शतके०; विशिष्टके० पुन्नागके, शिष्टोंके प्यारके० करवीरके० शिखण्डीके० धत्तूरके०; नहुषके० कुन्दके०; विश्वबाहुके० मल्लिकाके०; महीधरके० मालतीके०; अच्युतके लिये गिरिकर्णिकाके फल चढ़ाता हूं ।। एसी आठ नामोंसे पूजन—मूलमें एकसौ आठ भगवान्के नाम चतुर्थीके एकवचनान्त जैसे अच्युत यह 'अच्युताय' इस जैसे रूपमें रखे हुए हैं इन सबके अन्तमें 'नमः' और आदिमें ओम्' लगाना चाहिये । प्रत्येक (एकएक) को बोलकर अक्षतादि चढाते जाना चाहिये । जितने नाममंत्र आये हैं उनके हर एकके साथके लिये नमस्कार इतना लगानेसे उसका अर्थ होजाता है, इस कारण नामही नाम लिखते हैं । अनन्त, अच्युत, अद्भुतकर्मा, अमित विक्रम, अपराजित, अखण्ड, अग्निनेत्र, अग्नि, वापुः, अदृश्य, अत्रिपुत्र, अनुकूल, अनाशी, अनघ, पानीके निवासी अहरह, अष्टमूर्ति, अनिरुद्ध, अर्निविष्ट, अचंचल अब्दादिक, अचलरूप, अखिलधर, अव्यक्त, अनुरूप-अभयंकर अक्षत, वपु, अयोनिज, अरविन्दाक्ष, अशनवर्जित, अधोक्षज, अदितिपुत्र, शिवके पहिले, मृगी रोगके नाशक अन्याय अनादि, अप्रमेय, अघशत्रु, अमरारिघ्न, अनीश्वर अज, अघोर, अनादिनिधन, अमरप्रभु, अग्राह्य, अक्रूर, अनुत्तम, अरूप, अहन्, अमोघादिपति, अज, अक्षय, अनृत, अघोरवीर्य, अव्यंग, अविघ्न, अतीन्द्रिय, अमिततेजा, अमिति, अष्टमूर्ति, ह्यनिल, अवश, अणोरणीय, अशोक, अरविन्द, अधिष्ठान, अमितनयन, अरण्यवासी, अप्रमत्त, अनन्तरूप, अनाल, अमिनिष, अस्त्ररूप, अग्रगण्य, अप्रमेय, अन्तक; अचिन्त्य, अपानिधि,

अतिसुन्दर, अमरप्रिय, अष्टसिद्धिमद, अरविन्दप्रिय, अरविन्दोद्भव, अनय, अर्य अक्षोभ्य, अचिष्मान् अनेकमूर्ति, अनन्तब्रह्माण्डपति, अनन्तशयन, अमराधिपति, अनाधार, अनन्त नाम, अनन्तश्री, अक्षर, अमाय, आश्रमस्थ; आश्रमातीत, अन्नाद, आत्मयोनि, अवनीपति, अवनीधर, अनादि, आदित्य, अमृत, अपवर्गप्रद, अव्यक्त, अनन्त, ये एकसौ आठ भगवान्‌के नाम हैं इनमेंसे हरएकके साथ 'के लिये नमस्कार' लगा देना चाहिये, मूलका अर्थ हो जायगा। यह पहिले ही कह चुके हैं एवं कितनी ही जगह कहा जा चुका है। यह एकसौ आठ नाम मंत्रोंसे पूजा समाप्त हुई ।। दशांगं गुग्गुलूद्भुतम्' इससे "ओं यत्पुरुषं व्यदधः" इससे धुप; "साज्यं च" इससे "ओं ब्राह्मणोऽस्य" इससे दीप; 'अन्नं चतुर्विधम्' इससे "चन्द्रमा मनसः" इससे नैवेद्य; बीचमें पानीय; उत्तरापोशनके लिये सुगन्धित पानी देता हूं, सुमुख होकर ग्रहण करिये । हे अनन्त ! आपके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे उत्तरापोशन; मुखप्रक्षालन; हस्तप्रक्षालन; करोद्वर्तनकं" इससे करोद्वर्तन; "इदं फलम्' इससे फल; 'पूगीफलम्' इससे सुपारी पान; 'हिरण्यगर्भ०' इससे दक्षिणा; 'यानिकानि' तथा "ओम् नाभ्या आसीत्" इससे प्रदक्षिणा; हे भगवान् ! आपको वारंवार नमस्कार है । हे धरणीधर तेरे लिये नमस्कार है, हे सर्वनागेन्द्र ! हे मधुसूदन ! तुझको नमस्कार है, इससे "ओम् सप्तास्यासन्" इससे नमस्कार; 'नमस्ते देव' इससे "ओम् यज्ञेन यज्ञम्" इससे मंत्रपुष्पसमर्पण करना चाहिये ।। डोरेकी प्रार्थना-तुझ अनन्तके लिये तथा सहस्र शिरोंवाले तेरे लिये नमस्कार है, पद्मनाभके लिये न० । तथा नागोंके स्वामीके लिये नमस्कार है । अनन्तकामोंका दाता है वह मुझे काम दे, अनन्त डोरा रूपसे पुत्र पौत्रोंको बढावे, ऐसी प्रार्थना करके डोरा बांधना चाहिये डोरा बांधनेका मंत्र-जिसका अन्त नहीं ऐसे संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मुझे हे वासुदेव ! बचा, अपने अनन्तरूपमें लगा दे, अनन्तसूत्रके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे बाँधना चाहिये । पुराने डोरेके विसर्जन करनेका मंत्र-हे संसारको आनन्द करनेवाले ! सबके हितैषी तेरे लिये नमस्कार है, हे देव ! मैं आपकी आज्ञासे इस पुराने डोरेका विसर्जन करता हूं, इस मंत्रसे विसर्जन कर दे । वायनमंत्र-हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! दक्षिणासहित इस वायनेको ग्रहण करिये हे देव ! आपकी कृपासे में कर्मबन्धनसे छूट जाऊँ । हे अनन्त फलके देनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण ! स्वीकारकर, यह घीके पक्वान्न और फलों एवं दक्षिणाके साथ दिया है आप श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं । इससे मेरे व्रतकी पूर्ति होजायगी । यह वायने देनेका मंत्र है । पुराने डोरेके दानका मंत्र-अनन्तही देता लेता है हमारा तुम्हारा दोनोंका अनन्त ही तारक है, अनन्तके लिए वारंवार नमस्कार है, इससे दे । इसके पीछे यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे । इस किये हुए पूजनसे श्रीमान् अनन्त भगवान् प्रसन्न हों । यह पूजाविधि पूरी हुई ।। कथा-सूतजी बोले कि, पहिले गंगाकिनारे धर्ममें तत्पर रहनेवाले धर्मराजने जरासन्धके मारनेके लिये राजसूय यज्ञका प्रारंभ करदिया ।।१।। अपने चारों भाई और श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिरजीने अनेक रत्नोंसे सुशोभित यज्ञशाला बनाई । अनेकों मुक्ता लगाये उनसे वह इन्द्रके घर जैसी प्रतीत होती थी ।।२।। बडे प्रयत्नसे यज्ञके लिये राजाओंको इकट्ठा किया ।।३।। हे राजन् ! उस समय गान्धारीका लडका दुर्योधन यज्ञशालाको जाता ।।४।। देखने लगा कि, आँगनमें पानी भरा है । अब उसमें कपडे ऊंचे करके धीरे धीरे चलने लगा ।।५।। द्रौपदी आदिक सुन्दरियाँ यह देखकर हँसने लगीं वहांसे चलकर पानीको खुस्कीजान वह पानीमें गिरगया ।।६।। इससे राजा ऋषि मुनि एवम् द्रौपदी आदिक सुन्दरियोंने उसकी हँसी की ।।७।। दुर्योधनभी सामान्य नहीं था राजनपति राज था इससे नाराजहोकर मामाके साथ अपने राज्यको चलने लगा ।।८।। उस समय उससे शकुनि मीठे मीठे वचन बोला कि, हे राजन् ! क्रोध छोड, अगाडी बडा कार्य करना है ।।९। आप जूआसे सब राज्य जीत लेंगे यज्ञशाला चलें ।।१०।। शकुनिके इस प्रकार कहनेपर यज्ञशाला चला आया यज्ञके पूरा होतेही जब सब राजा अपने अपने राज्यमें चले आये दुर्योधनभी चलागया ।।११।। पीछे दुर्योधनने हस्तिनापुरमें आकर पाण्डवोंको बुला ।।१२।। जूआ खेलना प्रारंभ किया, सब राज्य पाया, निष्पाप पाण्डव जूआसे जीते गये ।।१३।। इसके बाद वे वनमें भटकने लगे, इस वृत्तान्तको जान, चारों भाइयोंके साथ पाण्डव ।।१४।। युधिष्ठिरको देखनेकी इच्छासे जगदीश्वर कृष्ण आ उपस्थित हुए । सूतजी बोले कि, वन वासी दुखोंके सताये पाण्डवोंने ।।१५।। महाप्रभू श्रीकृष्णको देख उनके चरणोंमें शिर टेका; पीछे धर्मराज बोले कि, मैं भाइयोंके साथ दुखी हूं ।।१६।। इस अनन्त दुख

सागरसे हम कैसे छूटें, किस देवको पूजनेसे अपने श्रेष्ठ राज्यको पासकूंगा ? ॥ १७ ॥ क्या मैं कोई व्रत करूं जो आपकी कृपासे कल्याण हो जाय ? यह सुन श्रीकृष्ण बोले कि, सब पापोंका नाशक पवित्र एक अनन्त व्रत है ॥१८॥ हे युधिष्ठिर ! वह स्त्री और पुरुषोंके सब कामोंको पूरा करनेवाला है, वह भाद्रपदशुक्ला चौदसके दिन होता है ॥१९॥ उसके करने मात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, यह सुन युधिष्ठिरजी बोले कि, हे विभो ! आपने अनन्त यह क्या कहा ॥२०॥ क्या वह शेषनाग है अथवा तक्षक है, परमात्मा है या वह साक्षत् ब्रह्म है ॥२१॥ किसका अनन्त नाम है, हे केशव ! यह सत्य बताइये । यह सुन कृष्णजी बोले कि, हे पार्थ ! मैं अनन्त हूं आप मेरे उस रूपको समझें ॥२२॥ जो काल आदित्य आदि ग्रहरूप है जिसके कि, कलाकाष्ठ मुहूर्त्त दिन और राति शरीर है ॥२३॥ पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष और युग आदिकी जिसकी व्यवस्था है वही काश है, उसीको अनन्त मैंने कहा है ॥२४॥ वही काल रूप कृष्ण मैं भूमिके भारको उतारने और दैत्यको मारनेके लिये प्रकट हुआ हूं, सज्जनोंके पालनके लिये वसुदेवके कुलमें पैदाहुए मुझे, आदि मध्य और अन्त रहित कृष्ण विष्णु हरि, शिव ॥२५-२६॥ वैकुण्ठ, भास्कर, सोम सर्वव्यापी, ईश्वर, विश्वरूप, महाकाल और सृष्टि संहार और पालन करनेवाला जान ॥२७॥ पहिले विश्वासके लिये मैंने अर्जुनको वह रूप दिखाया था, जो योगियोंके ध्यान करने योग्य सर्व श्रेष्ठ है ॥२८॥ जो कि, विश्वरूप अनन्त है, जिसमें चौदह इन्द्र, वसु, बारहों आदित्य और ग्यारहों रुद्र हैं ॥२९॥ सातों ऋषि, समुद्र, पर्वत, सरित, द्रुम, नक्षत्र, दिशा, भूमि, पाताल और भूर्भूव आदिक हैं ॥३०॥ हे युधिष्ठिर ! इसमें सन्देह न करिये, यह करने लायक है । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे श्रेष्ठ जानकर ! अनन्तके व्रतका माहात्म्य और विधि कहिये ॥३१॥ इसका पुण्य फल, दान और पूजन कौन है, पहले किसने किया, इस मनुष्य लोकमें कैसे आया ? ॥३२॥ यह सब अनन्तव्रतका विषय विस्तारके साथ कहिये । श्रीकृष्ण बोले कि, पहिले कृतयुगमें एक सुमन्त नामका वसिष्ठ गोत्री ब्राह्मण था हे राजन् ! उसने भृगुकी दीक्षा नामक लडकीके साथ विवाह किया था ॥३३॥३४॥ उस स्त्रीसे उसके एक अमित उच्च लक्षणोंवाली सुशीला नामकी लडकी पैदा हो उसके ही घरपर बडी होने लगी ॥३५॥ कुछ काल बाद लडकीकी मा ज्वरके दाहसे पीडित होकर नदीके ही किनारे अमर हो स्वर्ग चली गई क्योंकि वह प्रतिव्रता थी ॥३६॥ पीछे सुमन्तके धर्म पुंसकी लडकी कर्कशाके साथ विधि पूर्वक दूसरा व्याह कर लिया ॥३७॥ उसके चरित्र अच्छे नहीं थे कर्कशा चण्डी थी, नित्य ही लडाई करती थी वह और शीला दोनों घरके काम करने लग गयीं ॥३८॥ भीति, खम्भ, दरवाजेके बांहिर एवं तोरण आदिमें नीले पीले काले धौले रंगोंसे चित्र काढ दिये ॥३९॥ कुमारावस्थाके खेलोंके वशमें होकर उसने वारंवार शंखपद्म और स्वतिक बनाये ॥४०॥ मंगल रूपा वह इस प्रकार पिताके घरमें बढने लगी, कुछ दिन बाद पिताने उसे देखा कि शरीर पर यौवनके चिह्नोंका प्रादुर्भाव होगया है ॥४१॥ उन्हें देखकर पिताने उसके योग्यवर देख मैं इसे किसेदूं ? ऐसा विचार कर वह एकदम दुखी होगये ॥४२॥ उसी समय परम वैदिक एवं धनी श्रीमान् मुनिराज कौडिन्य वहां चले आये ॥४३॥ और बोले कि, परम सुन्दरी तेरी कन्याके साथ मैं शादी करना चाहता हूं, सुशीलाके पिताने अच्छे दिन उसके साथ व्याहदी ॥४४॥ हे राजन् ! गृह्यसूत्रके अनुसार व्याह किया, स्त्रियाँ मंगल गाने लगीं ॥४५॥ ब्राह्मण स्वस्तिपाठ और वन्दीगण जय जयकार करने लगे । विवाह करके ब्राह्मणने कर्कशासे कहा ॥४६॥ कि, जमाईको सुन्दर दहेज देना चाहिए, इतना सुनतेही कर्कशाको इतना क्रोध आया कि, घरसे माडया भी उखाड डाला ॥४७॥ अच्छी तरह पेटियोंको बाँधकर कहदिया कि, खर जाओ तयाभोजनसे बचे चूनका रास्तेके लिए टोंसा कर दिया ॥४८॥ बोली कि, हमारे घर धन नहीं है, जो है उसे देख लीजिए । यह सुन हे पार्थ ! संयतमुनि सुमन्तु कुछ उदास होगये ॥४९॥ कौंडिन्य भी व्याहकर वैरोंके रथमें व्याहुली सुशीलाको चढा धीरे धीरे रास्ता चलते चलते ॥५०॥ पवित्र यमुनाजी भी देखीं, रथको रोक नित्यकर्म करने उतर पडे ,रथपर, शिष्योंको नियुक्तकर दिया ॥५१॥ मध्याह्न कालमें भोजनके समय नदीकिनारे उतर, शीलाने लाल कपडेवाली स्त्रियोंका समुदाय देखा ॥५२॥ वह अनन्त, चतुर्दशीके दिन भक्तिभावके साथ जनार्दन देवकी पूजाकर रहा था, उसके पास जा शीलाने धीरसे पूछा ॥५३॥ कि, हे सुयोग्यो ! यह

मुझे बताइये कि, ऐसा यह कौनसा व्रत है ? वे बस शील भूषणा शीलासे बोलीं ।।५४।। कि, अनन्तव्रत है, इससें अनन्तकी पूजा होती है, शीला बोली कि, मैं भी इस उत्तम व्रतको करूंगी ।।५५।। इसका विधान दान क्या है, किसकी पूजा होती है ? स्त्रियाँ बोलीं कि, हे शीले ! कि एक प्रस्थ अच्छा अन्न होना चाहिये, जो उसकी वस्तु बने इसका पुंरिंगका नाम हो, जैसा कि, मोदक नाम है।।५६।।आधा ब्राह्मणको निर्लोभ हो दी हुई दक्षिणा के साथ दे दे तथा आधा अपने खानेके लिए रखलें ।।५७।। नदीके किनारे दान सहित इसका पूजन करना चाहिये, कुशाओंका शेष बना बांसके पात्रपर रखना चाहिये ।।५८।। स्नानकर मंडलपर दीप गन्धोंसे तथा पुष्प धूप एवं अनेक तरहके पक्वानोंके साथ तयार किये नैवेद्यसे अनन्तकी पूजा करनी चाहिये ।।५९।। उसके आगे कुंकुमका रँगा हुआ चौदह गांठोंका डोरा रखकर पवित्र गन्ध आदिकसे उसकी पूजा करे । इसके पीछे पुरुषके दांये तथा स्त्रीके बांये हाथमें उसे बाँधना चाहिए ।।६०-६१।। 'अनन्त संसार' इससे उस डोराको हाथोंमें बाँधकर भगवान्की इस कथाको सुन, विश्वरूप नारायण अनन्त भगवान्का ध्यान करके ।।६२-६३।। भोजन आचमन करे पीछे अपने घर चला जाय, हे भद्रे ! मैंने तुम्हें यह व्रत कह दिया । श्रीकृष्ण बोले कि, हे राजन् ! प्रसन्न चित्तके साथ यह सुन ।।६४।। शीलाने भी हाथमें डोरा बांधकर व्रत किया जो पाथेव लाई थी उसमेंसे आधा ब्राह्मणके लिए दिया था आधा अपने खाया ।।६५।। पीछे बैलोंके रथमें बैठकर प्रसन्नताके साथ मयपतिके अपने घर चली आई । उसे थोडेही समयमें पतिके साथमेंही व्रतपर विश्वास होगया ।।६६।। इसी अनन्त व्रतके प्रभावसे उसके घरमें बडा भारी गोधन होगया । धनधान्यके साथ गृहाश्रम लक्ष्मीसे भरपूर होगया ।।६७।। वह अतिथि पूजनमें आकुल व्याकुल हुई अच्छी लगती थी । एवं मुक्ता मानिक जडी हुई कोंदनी तथा मुक्ताहारोंसे विभूषित रहा करती थी ।।६८।। देवाङ्गनाकी तरह संपन्न तथा सावित्रिकी तरह सुशोभित हो रही थी । घरमें पतिके समीपही सुखरूपा होकर विचरा करती थी । एक दिन बैठी हुईके हाथमें बँधा हुआ डोरा उस ब्राह्मणने देखा । यह देख वह बोला कि, क्या यह मुझको वशमें करनेके लिये बाँधा है ? यह डोरा क्यों धारण किया है ? यह सत्य बताइये । शीला बोली कि, जिसकी कृपासे धन धान्य आदिक सभी संपत्तियाँ ।।६९-७१।। मनुष्य पाते हैं वही अनन्त मैंने धारणकर रखा है, शीलाके इस वचनोंको सुन धन मदान्ध उस ब्राह्मणने, हे कौरव्य ! निन्दापूर्वक कहा कि, क्या अनन्त अनन्त लगा रखा है ? अनन्त क्या होता है ? पीछे मूर्खताके वश हो उसे तोड डाला ।।७२-७३।। एवं उस पापीने उसे धगधगाती आगमें डारदिया, शीला हाय हाय कहकर भगी एवं उस सूत्रको उठा दूधमें डार दिया ।। ७४ ।। उसी कर्म विपाकसे वह दरिद्री होगया । गऊएं डोर ले गये । घर जल गया । धन चला गया ।। ७५ ।। जैसे घरमें आया था, वैसेही अनायास चला गया ! स्वजनोंसे कलह तथा भाईयोंसे फटकार मिलने लगी ।। ७६ ।। अनन्तकी निन्दा करनेके कारण घरमें दारिद्रय आगया हे युधिष्ठिर ! अब उसके साथ कोई बातेंभी नहीं करता था ।।७७।। शरीरसे सन्तप्त और मनसे दुखी रहा करता था । परम वैराग्यको प्राप्त हो वह अपनी प्यारीसे बोला ।।७८।। कि हे शीले ! एकदम यह शोकका कारण कहांसे पैदा होगया, जिससे हमें दुख और सब धनका नाश होगया है ।।७९।। स्वजनोंसे घरमें कलह रहता है । मुझसे कोई बातेंभी नहीं करता । शरीरमें सन्ताप एवं चित्तमें दारुण खेद रहता है ।।८०।। न जाने क्या पाप हुआ, क्या करें, जिससे कल्याण हो यह सुन शीलही जिसका भूषण है ऐसी सुशीला बोली ।।८१।। कि, अनन्तकी उपेक्षा करनेके कारण ऐसा हुआ है ; फिर सबकुछ हो जायगा । यदि प्रयत्न करोगे तो ।।८२।। इतना कहतेही मन को भगवान्के चरणोंमें लग गया वैराग्य थाही कौण्डिन्य वनको चल दिये ।।८३।। वायु-वायुभोजी हो तपका निश्चय करलिया । मनमें यही एक बात थी कि, मैं भगवान् महाप्रभु अनन्तको कब देखूंगा ।।८४।। जिवकी कृपासे हुए एवं जिसकी निन्दा करनेसे सब धन चला गया, वही मुझे सुख और दुख दोनों देनेवाला है ।।८५।। ऐसा ध्यान करते हुए वनमें विचरने लगे वहां पर एक बडा भारी आमका पेड देखा जिसपर सुन्दर फल और फूल आरहे थे ।।८६।। पर उसपर कोईभी पक्षी नहीं बैठता था, हजारों कीडोंसे लदवदा रहा था, उससे कौण्डिन्यने पूछा कि, हे महातरो । तुमने अनन्त देखा है ? ।।८७।। हे सौम्य ! कह, मेरे हृदयमें बड़ा भारी कष्ट है । वह वृक्ष बोला कि, ए श्रेष्ठ द्विज ! मैंने कोई अनन्त नहीं देखा ।।८८।। वृक्षसे इस प्रकार निराकरण होनेसे अत्यन्त दुखी हो चलदिया, आगाडी एक बछडा समेत गऊ मिली ।।८९।।

हे पाण्डव ! वह वनमें इधर उधर भग रही थी, कौंडिन्यने पूछा कि, हे धेनुके ! कहडाल, क्या तुझे अनन्त भगवान्‌के कभी दर्शन हुए हैं ? ॥९०॥ गौ बोली कि हे कौण्डिन्य ! मैं अनन्तको नहीं जानती, इससे अगाडी चलनेपर हरी हरी घासमें एक वृषभ देखा ॥९१॥ उससे पूछाकि कि हे गौओंके स्वामी ! क्या तुमने अनन्त देखा है ? वृषभने उत्तर दिया कि मैंने अनन्त नहीं देखा ॥९२॥ अगाडी दो सुन्दर पुष्करिणी मिली, उन दोनोंकी लहरें आपसमें मिल रहीं थीं ॥९३॥ कमल और कह्लारोंका उसपर छत्र बना हुआ था । कुमुद और उत्पलसे सुशोभित था उसमें चक्र, हंस, भ्रमर, कारंडव, बक थे ॥९४॥ उनसे कौण्डिन्यने पूछा कि तुमने अनन्त देखा था क्या ? वे बोलीं कि, हमने नहीं देखा ॥९५॥ चलते चलते अगाडी हाथी और गदहा मिला, उनसे पूछा उन्होंने भी इनकार करदिया ॥९६॥ पूछते पूछते निरास हो वहीं बैठगया हे नृप ! उस समय कौंडिन्य जीवनसे निराश होगया था ॥९७॥ लंबा गरम श्वास लेकर भूमिपर गिरगया । जब होश आया तो अनन्त अनन्त कहता ही उठा ॥९८॥ और विचार किया कि अब मैं प्राण देदूंगा हे युधिष्ठिर जबतक उसने गलेमें फांसी लटकाई तबतक कृपालु अनन्त देव प्रत्यक्ष होगये । वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें उससे बोले कि, यहांसे आओ ॥९९॥ ॥१००॥ दायाँ हाथ पकडकर गुफामें ले गये, दिव्य स्त्री पुरुषवाली अपनी पुरी उसे दिखादी ॥१॥ उसमें घुसे हुए दिव्यसिंहासनपर विराजमान शंख, चक्र, गदा, पद्म और गरुडसे सुशोभित ॥२॥ विश्वरूप अनन्तको दिखादिया जो कि, अनन्त विभूतियोंके भेदसे विराजमान अमित मान अमित बलशाली ॥३॥ कौस्तुभसे सुशोभित एवं वनमालासे विभूषित इन देवेश अपराजित अनन्तको देख ॥४॥ वन्दना करता हुआ जोरसे जयजयकार करके कहने लगा कि, "मैं पापी हूं । पापकर्म करनेवाला हूं । पापरूप एवं पापसेही पैदा हुआ हूं ॥१०५॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! मेरी रक्षा कर, मेरे सब पापोंका हरनेवाला बनजा" आज मेरा जन्म सफल होगया । जीवन सुजीवन होगया ॥१०६॥ आज आपके चरणोंमें मेरा माथा भौंरा बन गया है । यह सुन अनन्त देव प्रेममयी वाणीसे बोले ॥७॥ कि हे ब्राह्मण देव ! डरो न जो मनमें हो सो कहडाल, कौण्डिन्य बोला कि, माया और भूतिके अभिमानमें आकर मैंने आपका डोरा छोड डाला था ॥८॥ उसी पापके कारण मेरी विभूति नष्ट होगई । स्वजनोंके साथ घरमें लडाई रहती है, मेरे साथ कोई बातमी नहीं करता ॥९॥ इसी दुखसे मैं वनमें आपको देखनेके लिये चला आया । आपने कृपा करके अपने दर्शन दे दिये ॥११०॥ वह जो आपके डोरा तोडनेका मुझसे पाप हुआ है उसकी शान्ति मुझे बता दीजिये । श्रीकृष्णजी बोले यह सुन अनन्त देव कौण्डिन्यसे बोले ॥११॥ क्योंकि , हे युधिष्ठिर ! भक्तिसे प्रसन्न किये हुए देव क्या नहीं दे सकते हैं ? अनन्त बोले कि, हे द्विज ! आप अपने घर जायँ देर न करें ॥१२॥ वहां भक्तिके साथ चौदह वर्षतक अनन्तका व्रत करें, सब पापोंको मिटाकर उत्तम सिद्धि प्राप्त कर सकोगे ॥१३॥ बेटा नाती पैदाकर चाहे हुए भोगोंको भोग अन्तकालमें मेरा स्मरण करके निश्चयही मुझे पाजाओगे ॥१४॥ एक और मैं तुम्हें सब लोगोंके कल्याणके लिये वर देता हूं, इस कथाको और शीलाकी व्रतकी बातोंको ॥१५॥ जो मनुष्य इस शुभ व्रतको करता हुआ करेगा वह मनुष्य पापोंसे छूटकर परम गतिको पाजायगा ॥१६॥ हे विप्र ! जिस शीघ्रतासे तुन घरसे आये थे, उसी तरह चले जाओ, यह सुन कौण्डिन्य बोला कि, हे स्वामिन् ! मैं पूछता हूं मुझे उसी बातका बडा आश्चर्य है ॥१७॥ जो कि, हे जगत्‌के गुरु ! मैंने वनमें घूमते हुए देखा था वह आम, गौ, वृषभ ॥१८॥ एवं कमल उत्पल और कह्लोरोंसे सुशोभित मनोहर वे दो पुष्करिणी कौन थीं ॥१९॥ खर हाथी और वह वृद्ध ब्राह्मण कौन थे ? अनन्त देव बोले कि, जो आम बना हुआ खडा था वह एक वेदवेत्ता ब्राह्मण था ॥१२०॥ इसने शिष्योंको विद्या नहीं दी, इस कारण यह तरु बन गया है । जो चुगते हुए गऊ देखी थी वही वसुधा थी ॥२१॥ हरी हरी घासमें खडा धर्म देखा था । वे दोनों तलाई धर्म और अधर्मको व्यवस्थाएं कहनेवाली कोई दो जातिकी ब्राह्मणी बहिन बहिन थीं, आपसमें एक दूसरीसे धर्म अधर्मकी व्यवस्था करती रहती थीं।२२।२३।न कभी उन्होंने किसी ब्राह्मणको कुछ दिया, एवं न कभी दुर्बल अतिथिको कभी भोजन कराया, और तो क्या भिखारीके लिये कभी भीख भी नहीं दी ॥२४॥ वे ये तलाई बनी हैं, एवं तरंगोंकी परंपरासे आपसमें मिलती रहती हैं, क्रोध ही गदहा एवं मद हाथी था ॥२५॥ मैं अनन्तही ब्राह्मण बनकर आया था, संसारही गुफा थी, ऐसा कहकर भगवान् वहांही अन्तर्धान

होगये ।।२६।। यह सब उस ब्राह्मणके लिये स्वप्नसा होगया सब कुछ देख अपने घर चला आया, उसने उतनेही वर्ष अनन्तके व्रतसे बिताए ।।२७।। जैसी अनन्त भगवान्की आज्ञा थी उन्हें सब बातोंको भोगकर हे पाण्डुनन्दन ! अन्तमें मेरे स्मरणको प्राप्त होकर अनन्तके पुरमें चलागया ।।२८।। हे राजर्षे ! आपभी कथा सुनते हुए व्रत करिये, आपकी इच्छा पूरी होजायेंगी जैसा कि, अनन्त महाराजका वचन है ।।२९।। जो फल उस ब्राह्मणको चौदह वर्षोंमें मिला था वही फल कथासहित व्रतके करनेसे एक वर्षमें मिल जाता है ।।१३०।। हे राजन् । मैंने तुम्हें यह सर्वश्रेष्ठ व्रत सुना दिया है, इस व्रतके करनेसे सब पापोंसे मुक्त होजाता हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।। ३१।। जो कथा कहती हुईको सुनते तथा पढते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर भगवान्के पदको पहुंच जाते हैं ।।३२।। जो शुद्ध बुद्धिवाले मनुष्य संसाररूपी गहन गुफामें सुखपूर्वक विचरना चाहते हैं वे तीनों शोकोंके अधिपति अनन्तदेवको पूजकर दायें हाथमें अनन्तका डोरा बाँधते हैं ।।३३।। यह श्री अनन्त भगवान्के व्रतकी कथा पूरी हुई ।। अनन्तके व्रतका उद्यापन कहते हैं–युधिष्ठिर बोले कि, हे कृष्ण ! आपकी कृपासे मैंने अनन्तका व्रत सुन लिया । अब आप मुझे अनन्तके व्रतका उद्यापन बताइये । श्रीकृष्णजी बोले कि, हे पाण्डव ! सुन, मैं अनन्तके व्रतके उत्तम उद्यापनको कहता हूं जिसके कियेसे व्रत निश्चयही सफल हो जाय । आदि मध्य और अनन्तमें व्रतका उद्यापन होता है । जब चित्त वृत्ति और अच्छा-अच्छासमय हो उस समय दिन औरलग्न अच्छी रहते उद्यापन करे । चौदहवें वर्षमें तो मुख्य उद्यापन होता है । त्रयोदशीके दिन एक भुक्त आदिसे शरीर शुद्धि करे, इसके पीछे प्रातःकाल चतुर्दशीके दिन स्नान करके अच्छे देशमेंपवित्रही देश ओंकारका स्मरण कर उपवासका संकल्प करे, इसके बाद नदीतडागपर जा सब औषधि, तिल कल्क और आमलोंसे मार्जनके साथ स्नान करे । किनारे या घरपर एक छोटासा सुन्दर मंडप बानके उसमें विधिपूर्वक बैठकर देशकारका स्मरण करे । गणेशका पूजन करके ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करावे । वेदके जाननेवाले सपत्नीक आचार्य्यका वरण करें, ब्रह्मा सदस्य और चौदह ऋत्विज होने चाहिये । इन सबका वस्त्र अलंकार और जलपात्रोंसे पूजन करना चाहिये । मंडपके बीच सर्वतोभद्र बना उसपर ब्रह्मादिक देवताओंका आवाहन करके उन्हें पूजना चाहिये । उसके बीचके कमलमें यथाशक्ति धान्य रखदे, उसपर सोने चांदी तांबे या मिट्टीके मजबूत साबित नये घडेको स्थापित करे, उसमें पानी भरदे, गन्ध, पुष्प, फल,पल्लव और मृत्तिकाको विधिपूर्वक डाले रत्न और सोना डालकर दो वस्त्रोंसे वेष्टित करदे,सोने चांदी तांबे मिट्टी या बांसके पात्रको उस पर रखकर उसपर अच्छा ऊनी कपडा रख दे, उसपर अष्टदलकमल चन्दनसे बनाकर उसपर मूर्ति विराजमान कर देना चाहिये, वह एक या आधे पल अथवा एक माषकी होनी चाहिये, सोनेकी लक्ष्मी होनी चाहिये भगवान्की मूर्ति शंख चक्र गदा और पद्म धारण किए हुए होनी चाहिये । उसको आवाहन आदिक उपचारोंसे एकाग्रचित्त होकर पूजन करना चाहिए । पञ्चामृतसे स्नान पीले पट्ट कूल आदि दो वस्त्र तथा गन्ध ,पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, पुष्प आदिसे विधिपूर्वक पूजे अनन्तके नामोंसे अंगोंका पूजन करे । अनन्तके लिए नमस्कार चरणोंको पूजता हूं । इसी तरह संकर्षणके० गुल्फोंको०; कालात्माके० जानुओंको०; विश्वरूपीके० जघनोंको०; विश्वनेत्रके० कटीको; विश्वसाक्षीके० मेढ्रको०; पद्मनाभके० नाभिको; परमात्माके० हृदयको० श्रीकंठनाथके० कंठको०; सब अस्त्रोंके धारण करनेवालेके० बाहुओंको०; वाचस्पतिके० मुखको०; कपिलके० नेत्रोंको०; केशवके० ललाटको०; सर्वात्माके लिए नमस्कार "शिरको पूजता हूं ।" पादौपूजयामि चरणोंको पूजता हूं यहांसे लेकर शिरतक पूजे तथा बाकी अंगोंकाभी इसीतरह विधिसे पूजन करे । रातको जागरण होना चाहिये । उसमें गीत, बाजे, नृत्य आदि पुराणोंका श्रवण आदिक होना चाहिये, प्रातःकाल स्नान करके आचार्य्य आदिके साथ अनन्तका पूजन करे पीछे पहिलेकी तरह मण्डलके पश्चिममें हवन करे । कुंडमें वा स्थंडिलपर अग्निस्थापन करके विधिपूर्वक करे । अपने गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार आचार्य, आज्यभागान्त कर्म करावे, इसके पीछे अश्वत्थकी समिधसे तथा उनके अभावमें दूसरी समिधोंसे दधि, मधु, आज्य और दुग्धसे भीगे हुए तिलोंसे अथवा खीरसे अथवा आज्यसेएकएक द्रव्यसे प्रतिएकहजार आठएकसौ आठ अथवा अट्ठाईसही क्रमसे हवन करे । "ओम् अतो देवा" इस मंत्रसे तथा स्त्रियोंके लिए उन्हींके नाम मंत्रोंसे हवन करे । अनन्तसे लेकर मुहूर्ततक नाममंत्र है ।

प्रत्येकसे पृथक पृथक् हवन करना चाहिये । अनन्त, कपिल, शेष, कालात्मा, अहोरात्र, मास, अर्धमास, षड्तु, संवत्सर, परिवत्सर, उषस्, कला, काष्ठा, मुहूर्त ये नाम हैं । हवनमें इन्हींके नाम मंत्रसे आते हैं । इसके बाद स्विष्टकृत्से लेकर पूर्णपात्रतक सब काम करने चाहिये, भगवान् अनन्तका स्मरण करके पुरुष-सूक्तका जप करना चाहिये । होमके अन्तमें "ओम् विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति वृत्रहा सामे पीतये ।" 'सबही सोमरस निकाल लिया है वृत्रका मारनेवाले इन्द्र सोमरस पीनेके लिए एवं तृप्त होनेके लिए आगये हैं" । होम शेषकी समाप्ति करके त्र्यायुष करे । भगवान्को पूज आचार्य्यको वस्त्र अलंकार और भूषणोंसे पूजे । धेनुकोभी वस्त्र और अलंकारोंसे सुशोभित सुशीला दूधवाली सोनेकी सींगकी चांदीके खुर तांबेकीपीठ कांसेकी दोहनी रत्नोंकी पूंछ कंठमें निष्क एवं बछडेवाली गऊके गौके मंत्रोंसे पूजकर आचार्यके लिए दे दे । गउओंके अंगोंमें चौदह भुवन रहते हैं । इससे और उससे इस लोक और परलोकमें मेरा कल्याण हो, (गावोमे-कहचुके) इस मंत्रको कहकर वस्त्र अलंकार भूषणोंसे उनकी पत्नीको पूजकर ब्राह्मणको सन्तुष्ट करे । ऋत्विजोंको पूजकर उन्हें दक्षिणा दे । पक्वान्नसे भरेहुए चौदह कुंभ वस्त्र और उपवीत दे, कि अनन्त भगवान् प्रसन्न हों, आचार्य आदिकोंको भोजन कराकर पूर्णताका वाचन करावे, अनन्तका विसर्जन कर आशीर्वाद ग्रहण करे, भक्तिभावके साथ ब्राह्मणोंको नमस्कार करके उनका विसर्जन कर दे, इसके बाद प्रसन्न होकर बन्धु भाइयोंके साथ भोजन करे । इस प्रकार अनन्तका व्रत करनेसे अनन्त भगवान् मनुष्यों-का फल देनेवाले होजाते हैं । यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ अनन्तके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।। नष्ट दोरक विधि-युधिष्ठिरजी बोले कि, हे कृष्ण ! अनन्तके व्रतका माहात्म्य आपने मुझे सुना दिया । आप डोराके रूपमें सज्जनोंके सौभाग्य देनेवाले हैं, यदि मनुष्यको मालूम होजाय कि, डोरा प्रमादसे नष्ट होगया है तो उस समय तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला कौनसा व्रत करना चाहिये ? श्रीकृष्ण बोले कि, हे राजन् ! तुमने अच्छा पूछा, मैं उसका प्रायश्चित बताता हूं, व्रतियोंको महादोष लगता है डोराके नष्ट हो जानेपर इस कारण उस दोषकी शान्तिकेलिये प्रायश्चित करते हैं, गुरुकी प्रदक्षिणा नमस्कार कर एकाग्र चित्तहो मेरा डोरा टूट गया है यह बता दूसरा तयारकर अग्निकी प्रतिष्ठा करके उसमें भगवान्का ध्यान करके अग्निमें आज्यका अधिश्रयण करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे, मूलमंत्रसे वैष्णव हविकी १०८ आहुति देकर फिर वैष्णव हविको द्वादश अक्षरवाले मंत्रसे अभिमंत्रित कर नाम मंत्रसे हवन करे फिर केशवादिकोंसे एकवार हवन करे, शक्तिके अनुसार प्रायश्चित करे, पूर्णाहुति करके हवनको समाप्त करे फिर प्रार्थना करे कि, जो मेरे व्रतकर्ममें जो व्रत और जपके छिद्र हों, वे सब भूदेवोंके वचनोंसे पूरे होजायें हे जनार्दन ! मैंने जो मंत्र क्रिया और भक्तिसे हीन आपका पूजन किया है, हे देव ! आपकी कृपासे वो परिपूर्ण होजाय । हे नृपोत्तम ! इसके पीछे दक्षिणाआदिसे आचार्य्यका पूजन करना चाहिये, इस प्रकार शान्तिविधि करके फिर पहिलेकी तरह व्रत करना प्रारंभ कर दे, प्रायश्चित्तके पीछे व्रतकरे । इस कारण सब प्रयत्नसे प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये । यह श्री भविष्यपुराणकी नष्ट डोरेकी विधि पूरी हुई ।।

कदली व्रत निधि:

अथ भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां कार्तिक्यां वा माघ्यां वा वैशाख्यां वा कदलीव्रतं हेमाद्रौ भविष्योत्तरे ।। सा पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या ।। अथ[1] रंभारोपणविधिः रंभावृक्षं रोपयित्वा स्वहस्तेन च तं पुनः ।। वर्षमेकं तु संपूज्य उदकुम्भेन सेचयेत् ।। यावत्प्रसवपर्यन्तं पूजयेच्च यथाविधि ।। पूर्वस्य प्रसवः सम्यगुत्तरस्यां तथैव च ।। दक्षिणे पश्चिमे हानी रम्भाप्रसवलक्षणम् ।। अथ कथा ।। कृष्ण उवाच ।। अस्मिन्नेव दिने पार्थ शृणु ब्रह्मसभातले ।। देवलेन पुरा गीतं देवर्षिगणसंनिधौ ।। कृपया परया सम्यक्कदलीव्रतमुत्तमम् ।। तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि लोकानुग्रहकारकम् ।। नाकपृष्ठे पुरा देवैर्गन्धर्वैर्यक्षकिन्नरैः ।। अप्सरोऽमरकन्याभिर्नागकन्याभिरर्चिता ।। संसा-

१ अयं च हेमाद्र्यादिषु नोपलभ्यते ।

रासारतां ज्ञात्वा कदली नन्दने स्थिता ।। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे नृप ।। देयमर्घ्यं वरस्त्रीभिः फलैर्नानाविधैस्तथा ।। विरूढैः सप्तधान्यैश्च दीपालीरक्तचन्दनैः ।। दधिदूर्वाक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ।। जातीफलैः पूगफलैर्लवङ्गकदलीफलैः ।। तस्मिन्नहनि दातव्यं स्त्रीभी रम्याभिरप्यलम् ।। मन्त्रेणानेन चवार्घ्यं तच्छृणुष्व नराधिप ।। चिन्तये त्वां च कदलि कन्दलैः कामदायिनि ।। शरीरारोग्यलावण्ये देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। इत्थं यः पूजयेद्रम्भां पुरुषो भक्तिमान्नृप ।।नारी वानग्निपाकान्ना वर्णाश्च चतुरोऽपि वा ।। तस्मिन्कुले न हि भवेत्काचिन्नारी कुलाटनी ।। दुर्गता दुर्भगा व्यङ्गी स्वैरिणी पापचारिणी ।। विलासिनी वा वृषली पुनर्भूः पुनरेव सा ।। गणिका फेरवारावा छलकर्मकरी खला ।। भर्तृव्रताच्च चलिता न कदाचित्प्रजायते ।। भवेत्सौभाग्यसौख्याढ्या पुत्रपौत्रश्रियावृता ।। आयुष्मती कीर्तिमती जीवेद्वर्षशतं भुवि ।। एतद्व्रतं पुरा चीर्णं गायत्र्या स्वर्गसंस्थया ।। तथा गौर्या च कैलासे पौलोम्या नन्दने वने ।। श्वेतद्वीपे तथा लक्ष्म्या राधया भुवि मण्डले ।। अरुन्धत्या दारुवने स्वाहया मेरुपर्वते ।। सीतया चित्रकूटे च वेदवत्या हिमालये ।। भानुमत्या कृतं पार्थ नगरे नागसाह्वये ।। श्रेष्ठव्रतमिदं भद्र भद्रं भाद्रपदे सिते ।। या करोति न सा दुःखैः कदाचिदभिभूयते ।। उद्भिन्नकन्दलदलां कदलीं मनोज्ञां ये पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।। तेषां गृहेषु न भवन्ति कदाचिदेव नार्यो ह्यनार्यचरिता विधवा विरूपाः ।। इति भविष्योक्तं कदलीव्रतम्।। गुर्जराचारप्राप्तमुमामहेश्वरसहितकदलीपूजनम् ।। अथ गुर्जराचारप्राप्तं कार्तिक्यां माघ्यां वैशाख्यां वा कदलीव्रतम् ।। तत्र कदलीपूजनम् ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य मम पापनिर्मुक्त्युत्तमसिद्धिपुत्रपौत्रावैधव्येप्सितभोगधनधान्यप्राप्तये उमामहेश्वरसहितकदलीपूजनमहं करिष्ये, तथा कलशाद्यर्चनं च करिष्ये ।। कदल्यागच्छ हे देवि सौभाग्यफलदायिनि ।। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि सुनिश्चितम् ।। आगच्छ वरदे देवि शङ्करेण महेश्वरि ।। करिष्यमाणां पूजां मे गृहाणानुग्रहं कुरु ।। आवाहनम् ।। कार्तस्वरमयं दिव्यं नानामणिगणान्वितम् ।। अधितिष्ठ महादेवि शिवेन सह पार्वति ।। आसनम् ।। दूर्वाक्षतादिभिर्युक्तं स्वर्णपात्रे स्थितं जलम् ।। पाद्यार्थं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। पाद्यम् ।। अर्घ्यपात्रे स्थितं तोयं फलपुष्पसमन्वितम् ।। अर्घ्यं गृहाण मे देवि भक्त्या दत्तं शिवप्रिये ।। अर्घ्यम् ।। कर्पूरोशीरसुरभि शीतलं विमलं जलम् ।। गङ्गायास्तु समानीतं गृहाणाचमनीयकम् ।। आचमनीयम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यस्तोयं प्रार्थनया हृतम् ।। स्नानार्थं ते मया देवि गृहाणेदं सुरेश्वरि ।। स्नानम् ।। यथारम्भे विवृद्धिस्ते शाखादीनां सदा भवेत् ।। तथा वर्धय मां देवि सेचनात्पार्वतीप्रिये ।। सेचनम् ।। वस्त्रं शुभ्रमिदं दिव्यं

कुङ्कुमाक्तं सुशोभनम् ।। गृहाणाच्छादनं देवि तथाच्छादय मां सदा ।। वस्त्रम् ।। उपवीतम् ।। कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नैः समन्वितम् ।। गृहाण त्वं मया दत्तं पार्वत्यै च नमोऽस्तु ते ।। कञ्चुकीम् ।। उपवस्त्रम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मयानीतं सुनिर्मलम् ।। तोयमेतत्सुखस्पर्शं गृहाणाचमनीयकम् ।। अचामनीयम् ।। श्रीखंण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।। विलेपनं गृहाणेदं रुद्राणीप्रियवल्लभे ।। चन्दनम् ।। अक्षताश्च सुर०।। अक्षतान् ।। हरिद्राकुङ्कुमम् ।। सौभाग्यद्रव्याणि।। मालतीचम्पकादीनि शतपत्रादिकानि च ।। सुगन्धीनि गृहाण त्वं पूजार्थं सुमनांसि च ।। पुष्पाणि ।। अगुरुं गुग्गुलुं धूपं दशाङ्गं सुमनोहरम् ।। गृहाणेमं तृप्तिकरं घ्राणस्य दयितं परम् ।। धूपम् ।। चक्षुर्दं सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम् ।। आर्तिक्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरी ।। दीपम् ।। नानापक्वान्नसंयुक्तं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। नैवेद्यं विविधं भक्त्या कल्पितं त्वं गृहाण मे ।। नैवेद्यम् कर्पूरैलालवङ्गादिनागवल्लीदलान्वितम् ।। पूगीफलसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजयामि देवेशि भक्तानां भयनाशिनि ।। देहि मे सर्वसौभाग्यं शिवेन सहितेऽनघे ।। नीराजनम् ।। यानि कानि चेति प्रदक्षिणाम् ।। आश्रये देवपत्नीनां पूजिते च श्रिया स्वयम् ।। सौभाग्यारोग्यमायुश्च देहि रम्भे नमोऽस्तु ते ।। नमस्कारम् ।। त्वमिन्द्राण्याः प्रिया नित्यं शङ्करस्यातिवल्लभा ।। सतीनां कामदा पूज्या कामान्मे परिपूरय ।। प्रार्थनाम् ।। कदल्यै कामदायिन्यै मेधायै ते नमोनमः ।। रम्भायै भूति सारायै सर्वसौख्यप्रदे नमः ।। यथा यथा ते प्रसवो वर्धते कदलि ध्रुवम् ।। तथा मनोरथानां मे प्रभवो वर्धते स्वयम् ।। कदलीदानमन्त्रः ।। इति पूजनम् ।। अथ कथाः–युधिष्ठिर उवाच ।। कृष्ण कृष्ण महाबाहो सर्वविद्याविशारद ।। अनाथनाथ विश्वात्मन्दीनदैन्यनिकृन्तन ।। १ ।। त्वमस्माकं परो बन्धुस्त्वमस्माकं परः सखा ।। त्वयाऽभिरक्षिता नित्यं विचरामोऽत्र निर्भयाः ।। २ ।। किञ्चित्पृच्छामि देवेश कृपां कुरु वदस्व मे ।। यद्गुह्यं सर्वधर्मेषु कृते यस्मिन्महत् फलम् ।। ३ ।। सौभाग्यारोग्यदं पुण्यं धनधान्यविवर्धनम् ।। अन्नाच्छादनपुत्रादिवर्धनं श्रीनिकेतनम् ।। ४ ।। तन्ममाचक्ष्व भगवँल्लोकानामुपकारकम् ।। श्रीकृष्ण उवाच।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ५ ।। यत्कृत्वा सर्वदुःखेभ्यो नारी मुच्येत संकटात् ।। वस्त्रान्न पानविच्छित्तिर्न भवेत्तु कदाचन ।। ६ ।। पुरा मामेत्य चैकान्ते रुक्मिणी प्राणवल्लभा ।। प्रणिपत्याब्रवीद्दीना सर्वकामाप्तये शुभा ।। सौभाग्यं मे कथं देव भवेज्जन्मनिजन्मनि ।। ७ ।। सपत्नीनां श्रियं वीक्ष्य स्पृहा मे जायते प्रभो ।। ८ ।। इति प्रियाया वचनं श्रुत्वा हं तां समब्रुवम् ।। रम्भाव्रतं

कुरुष्वाशु सौभाग्यावाप्तये शुभम् ।। ९ ।। कृते यस्मिन्व्रते देवि परं सौभाग्यमाप्स्यसि ।। इति श्रुत्वा वचो देवी रुक्मिणी मामभाषत ।। १० ।। रम्भाव्रतं भवेत्कीदृक् को विधिः कस्य पूजनम् ।। केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ।। ११।। रुक्मिण्या भाषितं श्रुत्वा पुनरेवाहमब्रुवम् ।। रम्भाव्रतविधिं वक्ष्ये शृणु देवि यथोदितम् ।। १२ ।। गोचर्ममात्रं संलिप्य सर्वतोभद्रमण्डलम् ।। लिखेत्सम्यक् पञ्चवर्णैर्नीलपीतैः सितासितैः ।।१३।। ब्रह्माद्या देवतास्तत्र स्थापयित्वा प्रपूजयेत्।। कलशोपरि संस्थाप्य वैणवं पटलं शुभम् ।। १४ ।। उमामहेश्वरौ तत्र मूलमंत्रेण पूजयेत् ।। अथवा स्वस्तिकं कृत्वा पद्ममष्टदलं तु वै ।। १५ ।। ततः साग्रां सपर्णां च सम्यग्वृत्तां सुशोभनाम् ।। समूलां कदलीं स्थाप्य पूजयेत्तां यथाविधि ।। १६ ।। उत्तमोदकमानीय सेचयेत्तां समाहितः ।। यथा रम्भे विवृद्धिस्ते शाखादीनां सदा भवेत् ।। १७ ।। तथा वर्धय मां देवि सेचनात्पार्वतीप्रिये ।। सदा यथा ते प्रसवो वर्धते कदलि ध्रुवम् ।। १८ ।। तथा मनोरथानां मे प्रभवो भवतु स्वयम् ।। एवं संपूज्य विधिवद्भक्तियुक्तेन चेतसा ।। १९ ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिस्वनैः ।। एवं या कुरुतेनारी व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। २० ।। भुक्त्वा तु विविधान्भोगान्सौभाग्यं विन्दते ध्रुवम् ।। तस्मात्कुरु विधानेन यथोक्तफलमाप्स्यसि ।। २१ ।। इति श्रुत्वा विधानेन चकार व्रतमुत्तमम् ।। अवाप सकलं कामं मनसा यदभीप्सितम् ।। २२ ।। अन्यच्च शृणु राजेन्द्र व्रतस्य फलमुत्तमम् ।। अत्याश्चर्यकरं पुसां शृणुष्वावहितो भवान् ।।२३।। द्यूते यदा जिता पूर्वं कृष्णानीता सभां प्रति।। दुःशासनेन दुष्टेन द्रौपदी मुक्तमूर्धजा ।। २४ ।। आकृष्यमाणे वस्त्रे तु चित्ते मामस्मरेत्तदा ।। तूर्णं तत्रागतो राजन् द्रौपदीरक्षणाय वै ।। २५ ।। अदृश्योऽहं तु कृष्णायै व्रतं समुपदिष्टवान् ।। तदा कर्तुमशक्ये तु व्रतेऽस्मिन्राजसत्तम ।। २६ ।। रुक्मिण्याचरितं पूर्वं यदेतद्व्रतमुत्तमम् ।। तस्य पुण्यफलं दत्तं कृष्णायै राजसत्तम ।। २७ ।। तत्कालमेव वस्त्राणां समृद्धिरभवत्पुरा ।। दुःशासनेन दुष्टेन आक्षिप्तेष्वंशुकेषु च ।। २८ ।। प्रादुर्भूतानि वस्त्राणि नानावर्णानि भारत ।। खिन्नो दुःशासनः पापो विररामांशुकग्रहात् ।। २९ ।। तावद्बभूवुर्वस्त्राणि कदलीगर्भवन्नृप ।। इत्थं व्रतप्रभावोऽयं गुह्योऽपि कथितो मया ।। कारयस्व विधानेन पूर्णकामो भविष्यसि ।। ३० ।। इति कदलीव्रतकथा समाप्ता ।। अथोद्यापनम्—युधिष्ठिर उवाच ।। कस्मिन्मासे तिथौ कस्यामाचरेद्व्रतमुत्तमम् ।। कदल्यभावे किं कार्यं तन्ममाचक्ष्व तन्ममाचक्ष्व केशव ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कार्तिके माघमासे वा वैशाखे चैत्तरे तथा ।। पुण्ये मासि प्रकुर्वीत पौर्णमास्यां शुभे दिने ।। तिथिक्षयं वर्जयीत शुभायां सुसमाहितः ।। यस्मिन्देशे न लभ्येत कदली राजसत्तम ।। सुवर्णस्य शुभां कृत्वा

तत्र पूजां समाचरेत् ।। यदि लभ्येत कदली तामारोप्य प्रपूजयेत् ।। यावत्तस्यां फलं तावत्सिञ्चेन्नीरेण भूपते ।। फले सुपक्व[1]जातेषु पश्चाद्विप्रान् समाह्वयेत् । प्रभाते विमले स्नात्वा नद्यादौ विमले जले ।। अहते वाससी गृह्य कृत्वा सन्ध्यादिकर्म च ।। अरत्निमात्रं कृत्वा तु स्थण्डिलं वाग्यतः शुचिः ।। अग्निं संस्थाप्य विधिवत्तत्र होमं समाचरेत् ।। शतमष्टोत्तरं विद्वान्तिलाज्याहुतिभिस्तथा ।। एकाग्रचित्तः संहृष्टः कृती व्याहृतिभिः पृथक् ।। ब्रह्मादिदेवताभ्यश्च नाममन्त्रैः पृथक्पृथक् ।। आचार्यं च सपत्नीकं वस्त्राद्यैः पूजयेत्ततः ।। धेनुं पयस्विनीं वत्स[2]वस्त्रालङ्कार भूषिताम्।।स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनिकायुताम्।।ताम्रपृष्ठीं रत्नपुच्छांनिष्क कण्ठीं सघण्टिकाम् ।। अभ्यर्च्य वेद विदुषे आचार्याय नवेदयेत् ।। पादुकोपानहौ छत्र-मलङ्कारा ह्यनेकशः ।। यथाशक्ति प्रदेया वै व्रतस्य परिपूर्तये ।। दद्यात्ततश्च कदलीं मन्त्रेणानेन भूमिप ।। कदल्यै कामदायिन्यै मेधायै ते निमोनमः ।। रम्भायै भूतिसारायै सर्वसौख्यप्रदे नमः ।। इति कदलीदानमन्त्रः ।। चतुर्विंशत्षोडश वा युग्मान्याहूय संयतः ।। वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैः पूजयित्वा तु भोजयेत् ।। वायनानि च देयानि वंशपात्रैस्तु शक्तितः ।। दद्याच्च दक्षिणां सम्यग्यथाविभवसारतः ।। अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति दद्यादन्नं सुसंस्कृतम् ।। क्षमापयित्वा तान्राजन्व्रतस्य परि-पूर्णताम् ।। वाचयित्वा यथान्यायमच्छिद्रत्वं च भाषयेत् ।। दीनानाथान्प्रतर्प्याथ स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। एवं यः कुरुते राजन् कदलीव्रतमुत्तमम् ।। भुक्त्वा च विविधान्भोगान्सौभाग्यं विन्दते ध्रुवम् ।। तस्मात्कुरु विधानेन यथोक्तफलमाप्स्य-सि ।। एवं नारी नरो वापि यः कुर्यात्कदलीव्रतम् ।। सर्वान्कामान वाप्नोति स्वर्ग-लोके महीयते ।। इति श्रीभविष्योत्तरे कदलीव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

कदलीव्रत—भाद्रपद, कार्तिक, माघ, वैशाख इन महीनोंकी शुक्ला चौदसके दिन होता है यह हेमाद्रिने भविष्योत्तरसे लिखा है । इसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेना चाहिये । रंभाके आरोपण करनेकी विधि–अपने हाथसे केलाके वृक्षको लगा एक वर्षतक पूजन करके फिर उसे पानीके घडेसे सींचे । जबतक उसपर फूलफल न आयें तबतक बराबर पूजता रहे, इसमें पहिले पूरब उत्तरकी ओरसे फलफूल लगना अच्छा है । दक्षिण या पश्चिमसे आयें तो हानि होती हैं । यह केलाओंके फलने फूलनेके लक्षण हैं । कथा—भगवान् कृष्ण बोले कि, हे पार्थ ! इसी दिन ब्रह्माजीकी सभामें देवर्षिगणोंके सामने देवलने परम कृपासे उत्तम यह कदलीव्रत कहा था, संसारके कल्याणके लिये इसे मैं आपके लिये कहता हूं इसे पहिले स्वर्गलोकमें देव कन्धर्व किन्नर अप्सरा और देवकन्या-ओंने पूजा की, संसारकी असारताको जानकर कदली नन्दनमें स्थित हुई । स्त्रियोंको चाहिये कि, भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन अनेकों भांतिके फलोंसे अर्घ्य देना चाहिये, विरूढ सप्तधान्य, दीपकोंकी पंक्ति, रक्त-चन्दन, दधि, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र घीका नैवेद्य, जातीफल, पूगीफल और कदलीफलोंसे अर्घ्य देना चाहिये । उस दिन सुयोग्य स्त्रियोंको इन चीजोंको देनाभी चाहिये । जिस मंत्रसे अर्घ्य दिया जाता है उस मंत्रको कहता हूं–हे कदलि ! कन्दलोंसे मैं तुझे याद करता हूं तू इच्छाको पूरा करनेवाली है हे देवि ! तेरेलिये नमस्कार है । शरीर आरोग्य और लावण्य दे । हे राजन् ! जो इस प्रकार भक्तिके साथ रंभाका पूजन करता है चाहे

१ पक्त्रिमेण्वस्याः । २ युतां रत्नैः स्वलंकृताम् इत्यपि पाठः ।

यह स्त्री पुरुष संन्यासी चारों वर्णोंका कोईभी हो उसके कुलमें कोईभी व्यभिचारिणी नहीं होती । एवं दुर्गता, दुर्भगा, व्यङ्गी, स्वैरिणी, पापचारिणी, बिलासिनी, वृषली, पुनर्भू, गणिका, फेरवारावा, छलके कामोंकी करनेवाली, दुष्टा, भर्ताके व्रतसे विचलित ये कभीभी नहीं होती । सौभाग्य और सौख्यसे संपन्न पुत्र पौत्रोंकी शोभा आयु और कीर्तिवाली होकर सौवर्षतक जीती है यह व्रत ब्रह्मलोकमें गायत्रीने, कैलासपर गौरीने नन्दनवनमें पुलोमीने, श्वेतद्वीपपर लक्ष्मीने, भूमण्डलपर राधाने, दारुवनमेंअरुन्धतीने,मेरु पर्वतपर स्वाहानेचित्रकूटपर सीताने, हिमालयपर वेदवतीने और भानुमतीने हस्तिनापुरमें किया था । भाद्रपद शुक्ला चौदसके दिन जो इस व्रतको करती है वह कभी दुखसे अभिभूत नहीं होती जिसमें सुन्दर केले फूट रहे हैं ऐसी मनोज्ञ कदलीको जो कुसुम अक्षत धूप और दीपोंसे पूजते हैं उनके घरमें कभी स्त्रियां विधवा कुरूपा और दुश्चरित्रा नहीं होतीं । यह भी भविष्यपुराणका कहा हुआ कदलीव्रत पूरा हुआ ॥ गुजरातियोंके आचारसे होनेवाला कदलीव्रत—कार्तिकी माघी व वैशाखीमें होता है, उसमें केलेका पूजन–सबसे पहिले मास पक्ष आदिका उल्लेख करके कहना चाहिये कि, अपने सब पापोंको नष्ट करने सिद्धि, पुत्र, पौत्रअवैधव्य, चाहेहुए भोग और धन धान्यकी प्राप्तिके लिये उमा और महेश्वरसहित कदलीका पूजन में करता हूँ । हे सौभाग्य–फलके देनेवाली कदली देवि ! आज मुझे अवश्यही रूप, जय और यश दे । हे महेश्वरी देवी ! शिवजी के साथ आज; मेरी की हुई पूजाको ग्रहण कर मुझपर कृपाकर । इनसे आवाहन 'कार्तस्वरमयं इससे आसन; 'दूर्वाक्षतादिभि; इस मंत्रसे पाद्य; 'अर्घ्यपात्रे' इस मंत्रसे अर्घ्य, कर्पूरोशरी०' इससे आचमन; गंगादि सर्व निर्लेप्य;' इससे स्नान, हे रंभे ! जैसे तेरी शाखा आदिक बढती है ऐसेही हे पार्वतीकी प्यारी ! इस पानीके लगानेसे मुझे भी बढा इससे सेचन, वह कुंकुमसे भीजा हुआ दिव्य सफेद वस्त्र है, ऐसे ही हे देवि ! आच्छादन ग्रहणकर उसी तरह मुझे भी ढक, इससे वस्त्र, उपवीत, 'कुंचुकीमुपवस्त्र इससे कंचुकी; उपवस्त्र; 'गंगादि सर्व' इस मंत्रसे आचमनीय,; 'श्रीखण्ड चन्दनम्' इस मंत्रसे चन्दन; 'अक्षताश्च' इससे अक्षत; हरिद्रा कुंकुमम्' इससे सौभाग्य द्रव्य; 'मालती चंपकदीनि' इससे पुष्प; 'अगरुं गुग्गुलुम्' इससे धूप; 'चक्षुर्दं सर्वलोकानाम्' इससे दीप; 'नानापक्वान्न संयुक्तम्' इससे नैवेद्य; 'कर्पूरेला' इससे ताम्बूल; 'इदं फलं' इससे फल; 'हिरण्यगर्भ' इससे दक्षिणा; 'नीराजयानि' इससे नीराजन; 'यानि कानि' प्रदक्षिणा; हे देवपत्नियोंके आश्रये ! हे स्वयं लक्ष्मीजीसे पूजित हुई । हे देवि ! तेरे लिये नमस्कार है, मुझे सौभाग्य, आरोग्य और आयु दे, इससे नमस्कार; तू सतियोंके कामोंको देनेवाली मेरे कामोंको पूराकर, इससे प्रार्थना; हे कदलि ! तुझ कामोंके देनेवाली मेघाके लिये नमस्कार है, हे सब सौख्योंके देनेवाली ! तुझ भूमिसारा रंभाके लिये नमस्कार है । हे कदलि ! जैसे जैसे तेरे कुला फूटते हैं उसी उसीतरहमेरेमनोरथभी बढते रहें, इससे कदलीका दान समर्पण करना चाहिये । (पूजनमें जहाँ जहाँ यह (:) चिह्न लगाया है वहां सर्वत्र समर्पण० जोड लेना चाहिये ।) कथा–युधिष्ठिरजी बोले कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे सब विद्याओंके जाननेवाले ! हे महाबाहो ! हे अनाथोंके नाथ ! हे विश्वात्मन् ! हे दीनोंके दैन्योंको मिटानेवाले ॥१॥ आपही हमारे एकबन्धु एवं सखा हो, हम आपके रखाये हुए निर्भय विचर रहे हैं ॥२॥ में कुछ पूछना चाहता हूं आप कृपा करके बताएं जिसे कोई नहीं जानता एवं जिसके कियेसे बडा भारी फल होता है ॥३॥ जो सौभाग्य आरोग्यका दाता, धन, धान्य, अन्न, आच्छादन और पुत्रादिकोंका बढानेवाला है, श्रीका तो उसमें निवास ही है ॥४॥ संसारका उसमें बडा कल्याण है, हे भगवन् ! उसे मुझे बतादीजिये । कृष्णजी बोले, कि, मैं उस श्रेष्ठ व्रतको कहता हूं हे राजन् ! सुनिये ॥५॥ जिसको करके स्त्री सभी दुःखोंके संकटोंसे छूटजाती है, उसे कभी वस्त्र, अन्न, पान इनका कभी अभाव नहीं होता ॥६॥ पहिले मेरी प्यारी रुक्मिणी मेरे पास रहस्यमें आ, मेरा अभिवादन कर सब कामोंकी प्राप्तिके लिये मुझसे बोली कि, हे देव ! मुझे जन्म जन्ममें सौभाग्य कैसे मिले ॥७॥ हे प्रभो ! सपत्नियोंकी श्रीको देखकर मुझे ईर्ष्या होती है ॥८॥ प्यारीके ऐसे वचन सुनकर उससे बोले कि, सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये रंभाव्रत अच्छा है उसे करिये ॥९॥ उस व्रतके करनेके बाद परम सौभाग्यको प्राप्त

होजाओगी, यह सुनकर देवी रुक्मिणी मुझसे बोली ।।१०।। कि, रंभाव्रत कैसे होता है, उसकी क्या विधि है, कैसे पूजन होता है, पहिले किसने किया है, मर्त्यलोकमें किसनें प्रकाशित किया ।।११।। रुक्मिणीके वचन सुनकर मैं फिर बोला कि, मैं रंभाव्रतकी विधि कहता हूं, आप मेरी कथाको यथावत् सुनें ।।१२।। गोचर्म मात्र (इसे पीछे बताते हैं) भूमि लीपकर सर्वतो भद्र मण्डल नील पीत काला धोला इत्यादि पांच रंगोंसे बनावे ।।१३।। ब्रह्मादिक देवताओं को सर्वतोभद्रमंडलपर स्थापित करके पूजे, विधिपूर्वक स्थापित किये हुए कलश स्थापित करके उसपर विधिपूर्वक अच्छा बांसका पटल रखे ।।१४।। उसपर मूलमंत्रसे उमा-महेश्वर का पूजन करे अथवा स्वस्तिक बना अष्टदल पद्म काढगर अच्छी सावित सुन्दर पत्तों और जड समेत केलाको स्थापित करके उसे विधिपूर्वक पूजे ।। १५।। १६ ।। एकाग्र चित्त हो उत्तम पानीसे उसे सींचे, फिर 'यथारंभे यहांसे, भवतुस्वयम्' यहांतक बोले इस प्रकार भक्तिभावके साथ विधिपूर्वक पूजकर ।।१७-१९।। गानेबजाने आदिके साथ रातमें जागरण करे । इस प्रकार जो स्त्रियाँ इस व्रतको करती हैं ।।२०।। वे अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर सौभाग्यको प्राप्त होती हैं इस कारण हे रुक्मिणी ! विधानके साथ उस व्रतको कर, कहे हुए फलको पाजांयगी ।।२१।। रुक्मिणीने भगवान् कृष्णसे सुनकर उत्तम व्रत किया इसी व्रतके प्रभावसे वह सब मन चाहे कामोंको पागई ।।२२।। हे राजेन्द्र ! इस व्रतका और दूसराभी उत्तम फल सुनलें जिसे सुनकर मनुष्योंको आश्चर्य होजाय, आप एकाग्र हैं इस कारण मैं कहता हूं ।।२३।। जब द्रौपदी जूआमें जीत लीगई तो सभामें लाई गई वहां दुष्ट दुःशासनने उसके बाल छोडे नहीं थे तो बाल पकडकरही लाई गईथी शिरके बार खुल गये थे ।।२४।। जब वस्त्र खींचा जानेलगा तो मनसे मेरा स्मरण किया । मैं शीघ्रही हे राजन् ! द्रौपदीको बचाने पहुंच गया ।।२५।। पर मैं वहां किसीको दीखता नहीं था मैंने द्रौपदीको यह व्रत बताया था हे राजसत्तम ! जब वह न कर सकी ।।२६।। तब रुक्मिणीने अपने किए व्रतकोद्रौपदीको देदिया था ।।२७।। उसी समय दुष्ट दुःशासन वस्त्र खींचता जाता था, तथा वस्त्र बढते जाते थे ।।२८।। हे भारत ! अनेक रंगके वस्त्र वहाँ स्वतः उसी जगह आपही उत्पन्न होगये थे, पापी दुःशासन हार, वस्त्र खींचना छोड बैठ गया ।।२९।। हे राजन् ! जबतक वह थक न गया तबतक जैसे केलेसे केला निकलता चलता है उसी तरह कपडेके भीतरसे कपडा निकलता चलता था, ऐसा इस व्रतका प्रभाव है, यद्यपि कहने लायक नहीं है तो भी मैंने कहदिया है, आपभी विधिपूर्वक करायें । आपकेभी सब काम पूरे होजायेंगे, यह श्रीकदली-व्रतकी कथा पूरी हुई ।। कदलीव्रतका उद्यापन—युधिष्ठिरजी पूछने लगे कि, हे केशव ! यह मुझे बताइये कि, इस उत्तम व्रतको कौनसे तिथि मासोंमें करना चाहिये एवं कदलीके अभावमें क्या करना चाहिये श्रीकृष्ण बोले कि, कार्तिक माघ, वैशाख अथवा दूसरे किसी पवित्र महीनामें पूर्णिमाके पवित्र दिन तिथि-क्षयको छोड शुभ योगोंमें एकाग्र चित्त हो करे । हे राजसत्तम ! जिस देशमें कदली न मिले वहां सोनेकी अच्छी कदली बनाकर पूजा प्रारंभ करदे, यदि कदली मिलजाय तो उसे लगाकर पूजा प्रारंभ करदे । जबतक उसके फल न पकें तबतक, हे राजन् ! पवित्र पानीसे सींचता रहे जब फल पकजायं तब ब्राह्मणोंको बुलावे निर्मल प्रभातमें नदी आदिके निर्मल जलमें स्नानकर अहत वस्त्र धारण करके सन्ध्यावन्दन आदिक करे अरत्निमात्र स्थंडिल बना मौन हो पवित्रताके साथ अग्निकी स्थापना करके होमका विधिपूर्वक प्रारंभ । करदे । तिल और घीकी एकसौ आठ आहुति दे इसको एकाग्र चित्तवाला प्रसन्नात्मा कर्ता व्याहृतियोंसे करे । ब्रह्मा आदिक देवताओंको नाममंत्रसे पृथक् पृथक् दे, सपत्नीक आचार्य्यका वस्त्र आदिकोंसे पूजन करना चाहिये । वस्त्र और अलंकारोंसे विभूषित दूध देनेवाली गऊ देनी चाहिये, उसके सोनेके सींग, चांदीके खुर कांसेकी दोहनी, तांबेकी पीठ रत्नोंकी पूंछ, निष्क सोना, कंठमेंहो तथा घंटावाली गऊकापूजनकरके वेदवेत्ता आचार्य्यको दे देनी चाहिये । इसके साथ जूती; छत्र तथा अनेकों अलंकार व्रतकी पूर्तिके लिए यथाशक्ति देने चाहिये । हे राजन् ! इसके पीछे कदली इस मंत्रसे देनी चाहिये कि, तुझ कामोंके देनेवाली मेधारूप कदलीके लिए वारंवार नमस्कार है । सभी सुखोंके देनेवाली भूतिसार तुझ रंभाकेलिए भी वारंवार नमस्कार है । यह कदलीके दानका मंत्र है । चौबीस वा सोलह युग्मोंको बुलाकर उनका वस्त्र अलंकार गंध आदिसे पूजन करके भोजन करावे । बांसके पात्रमें रखकर वायना दे । जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार दक्षिणा

भी दे, दूसरोंके लिएभी शक्तिके अनुसार अन्न और दक्षिणा दे, क्षमापन करा व्रतकी परिपूर्णता कहलवा न्यायके अनुसार अच्छिद्रत्वपनेकी भावना करे, दीन और अनाथोंको तृप्त करके स्वयं पवित्र एवं मौनी होकर भोजन करे, हे राजन् ! जो इस प्रकार इस उत्तम कदली व्रतको करता है वह अनेकों भोगोंको भोगकर सौभाग्यको प्राप्त होता है, इस कारण विधानपूर्वक करिये, कहा हुआ फल अवश्य मिलेगा। जो कोई स्त्री वा पुरुष इस प्रकार कदली व्रत करते हैं वे सब कामोंको प्राप्त होकर सौभाग्यको प्राप्त होते हैं। यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ कदलीव्रतका उद्यापन पूरा हुआ ॥

नरकचतुर्दशी व्रतम्

अथ पौर्णिमान्तमासेन कार्तिककृष्णचतुर्दशी नरकचतुर्दशी ॥ तस्यां तिलतैलेन स्नानमुक्तं भविष्ये--कार्तिकस्यासिते पक्षे चतुर्दश्यां विधूदये ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥ दिनद्वये विधूदये चतुर्दशीसत्त्वे–पूर्वविद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सितेतरे ॥ पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ इति निर्णयदीपिकोक्तः पूर्वदिने अभ्यङ्गः कार्यः । परदिन एवेत्यन्ये ॥ दिनद्वय चतुर्दश्यभावे तु चतुर्दश्यां चतुर्थयामे स्नानमिति दिवोदासनिबन्धे ॥ स्मृतिदर्पणेऽपि–चतुर्दशी याश्वयुजस्य कृष्णा स्वात्यृक्षयुक्ता हि भवेत्प्रभाते ॥ स्नानं समभ्यर्च्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन च विप्रयुक्तैः ॥ तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम् ॥ प्राप्नोति शेषः ॥ प्रातः स्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यतीति ब्रह्मोक्तेः ॥ तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा ॥ यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते ॥ मृगाङ्कोदय वेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् ॥ दर्शे वा मङ्गलं स्नानं दुःखशोकभयप्रदम् ॥ इति कालादर्शे त्रयोदशीनिषेधाच्च ॥ त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी ॥ रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाभ्यङ्गं त्रयोदशी ॥ इति चतुर्थमासे स्नानमुक्तम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदोऽपि–इषासिते चतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि ॥ ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् ॥ अत्र स्नाने विशेष उक्तो मदनरत्ने ब्राह्मे-अपामार्गमथो तुम्बीं प्रपुन्नाटमथापरम् ॥ भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥ अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि ॥ ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः ॥ अमावस्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः ॥ यममार्गान्धकारेभ्यो मुच्यते कार्तिके नरः ॥ तथा ब्राह्मे –ततः प्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोरमान् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मठेषु भवनेषु च ॥ प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च ॥ मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥ विशेषान्तरं लैङ्गे–ततः प्रेतचतुर्दश्यां भोजयित्वा तपोधनान् ॥ शैवान् विप्रांस्त्वथ पराञ्छिवलोके महीयते ॥ दानं दत्त्वा तु तेभ्यश्च यमलोकं न गच्छति ॥ तथा नक्तभोजनमप्युक्तं तत्रैव-नक्तं प्रेतचतुर्दश्यां यः कुर्याच्छिवतुष्टये ॥ ततः क्रतुशतेनापि नाप्यते पुण्यमीदृशम् ॥ शिवरात्रौ तथा तस्यां लिङ्गस्यापि प्रपूजया ॥ अक्षयाल्लँभते भोगाञ्छिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ अथ सनत्कुमारसंहितोक्तं नरक-

चतुर्दश्यादिदिनत्रयविधानम् ।। वालखिल्या ऊचुः ।। पूर्वविद्धचतुर्दश्यामाश्विनस्य सितेतरे ।। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ।। अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः ।। तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः ।। तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा ।। यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते ।। यदा चतुर्दशी न स्याद्द्विदिने चेद्विधूदये ।। दिनद्वये भवेद्वापि तदा पूर्वैव गृह्यते ।। बलात्काराद्धठाद्वापि शिष्टत्वान्न करोति चेत् ।। तैलाभ्यङ्गं चतुर्दश्यां रौरवं नरकं व्रजेत् ।। तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम् ।। अपामार्गमथो तुम्बीं प्रपुन्नाटमथापरम् ।। भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ।। दिनत्रयं त्रिवारं च पठित्वा मन्त्रमुत्तमम् ।। सितालोष्ठसमायुक्तं सकण्टकदलान्वितम् ।। हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनःपुनः ।। इष्टबन्धुजनैः सार्धमेवं स्नानं समाचरेत् ।। ततो मङ्गलवासांसि परिधायात्मभूषणम् ।। कृत्वा च तिलकं दत्त्वा कार्तिकस्नानमाचरेत् ।। स्नानांगतर्पणं कृत्वा यमं सन्तर्पयेत्ततः ।। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।। औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ।। चतुर्दशैते मंत्राः स्युः प्रत्येकं च नमोऽन्वितः ।। एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यास्त्रीनुदकाञ्जलीन् ।। यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिना तथा[1]।। देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता ।। जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ।। नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः ।। अत्रैव लक्ष्मीकामस्य विधिः स्नाने मयोच्यते ।। इषे भूते च दर्शे च कार्तिकप्रथमे दिने ।। यदा स्वाती तदाभ्यङ्गस्नानं कुर्याद्विधूदये ।। ऊर्जशुक्लद्वितीयायां यदि[2] स्वाती भवेत्तदा ।। मानवो मंगलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते ।। दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता ।। इन्दुक्षयेऽपि संक्रान्तौ रवौपाते दिनक्षये।। अत्राभ्यंगो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये ।। माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तस्मिन्दिने नरः ।। प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि ।। ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावलिर्भवेत् ।। कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सव दिनत्रयम् ।। आश्विनस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यादिषु त्रिषु ।। क्रमात्पादैस्त्रिभिर्विष्णुरग्रहीद्भुवनत्रयम् ।। महाराजो बलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा ततः ।। परं याचस्व भद्रं ते यद्यन्मनसि वर्तते ।। इति विष्णुवचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत्।। आत्मार्थे[3] न च याचेऽहं सर्वं दत्तं मया तव ।। लोकार्थं याचयिष्यामि शक्तश्चेद्देहि मे प्रभो ।। मया या ते धरा दत्ता वामनच्छद्मरूपिणे ।। त्रिभिः पादैस्त्रिदिवसैः सा चाक्रान्ता यतस्त्वया ।। तस्मादेतद्बले राज्यमस्तु घस्रत्रयं हरे ।। मद्राज्ये दीप-

---

१ अथवेति पाठः । २ तिथौ च स्वातियुग्मके । ३ आत्मार्थं किं याचनीयम् । इत्यपि पाठः ।।

दानं ये भुवि कुर्वन्ति मानवाः ।। तेषां गृहे तव स्त्रीयं सदा तिष्ठतु सुस्थिरा ।। मम राज्ये गृहे येषामन्धकारः पतिष्यति ।। अलक्ष्मीसहितस्तेषामन्धकारोऽस्तु[1]सर्वदा ।। चतुर्दश्यां तु ये दीपान्नरकाय ददन्ति च ।। तेषां पितृगणाः सर्वे नरके निवसन्ति न ।। बलिराज्यं समासाद्य यैर्न दीपावलिः कृता ।। तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्ति केशव ।। बलिराज्ये तु ये लोका लोकानुत्साहकारिणः ।। तेषां गृहे सदा शोकः पतेदिति न संशयः ।। चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्वित्ययोजयत् ।। पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम् ।। ददावतिथिरिन्द्राय बलिं पातालवासिनम् ।। कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तं हरिणा तद्दिन त्रयम् ।। तस्मान्महोत्सवं चात्र सर्वथैव हि कारयेत् ।। महारात्रिः समुत्पन्ना चतुर्दश्यां मुनीश्वराः ।। अतस्तदुत्सवः कार्यः शक्तिपूजापरायणैः।। बलिराज्यं समासाद्य यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।। औषध्यश्च पिशाचाश्च मन्त्राश्च मणयस्तथा ।। सर्व एव प्रहृष्यन्ति नृत्यन्ति च निशामुखे ।। तत्तन्मन्त्राश्च सिद्ध्यन्ति बलिराज्ये न संशयः ।। बलिराज्यं समासाद्य यथा लोकाः सुहर्षिताः ।। तथा तद्दिनमध्येऽपि जनाः स्युर्हर्षिता भृशम् ।। तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतहर्षयोः ।। उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ।। नरकस्थास्तु ये प्रेतास्तेऽपि मार्गं व्रतात्सदा ।। पश्यन्त्ये व न सन्देहः कार्योऽत्र मुनिपुङ्गवाः ।। आश्विनस्यासिते पक्षे भूतादितिथयस्त्रयः ।। दीपदानादिकार्येषु ग्राह्या माध्याह्नकालिकाः ।। यदि स्युः सङ्गवादर्वागेते च तिथयस्त्रयः ।। दीपदानादिकार्येषु कर्तव्याः पूर्वसंयुताः ।। इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये नरकचतुर्दश्यादिदिनत्रयविधानं संपूर्णम् ।। इति नरकचतुर्दशी ।।

नरकचतुर्दशी–पौर्णिमान्त मासके हिसाबसे कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको कहते हैं । भविष्यपुराणने कहा है कि,उसमें तिलके तैलसे स्नान करे । कार्तिककृष्णा चतुर्दशीके दिन चंद्रमाके उदयमें नरकसे डरने वालों को अवश्यही तिलके तेलसे स्नान करना चाहिये! यदि दो दिन चन्द्रोदयके समय चतुर्दशी रहे तो कार्तिक शुक्ला पूर्वविद्धा चतुर्दशीके दिन प्रयत्नपूर्वक प्रत्यूषके समय स्नान करना चाहिये,इस निर्णयदीपिकाके कथनसे पूर्व दिनही उबटन करना चाहिए । परद्दिनही अभ्यङ्ग करना चाहिए । ऐसाभी कोई कहते हैं । इसमें व्रतराजकी संमति नहीं मालूम होती । यदि दोनोंही दिन चन्द्रोदयमें चतुर्दशी न हो तो चतुर्दशीके चौथे पहरमें स्नान करना चाहिए. यह दिवोदासके निबन्धमें लिखा हुआ है । एवं स्मृतिदर्पणमें भी लिखा है । क्वार कृष्णा चतुर्दशी स्वातिनक्षत्रसे युक्तहो तो मनुष्योंको स्नान उबटन करना चाहिए तथा सुगन्धित तैल लगाने चाहिये। दीपावलीकी चतुर्दशीको प्राप्त हो तैलमें लक्ष्मी तथा जलमें गंगाजी रहती है, क्योंकि, मूलमें 'चतुर्दशीम्' यह द्वितीयान्त पाठ है उसका प्राप्यके साथ संबन्ध है । जो मनुष्य प्रातःस्नान करताहै वहयमलोककोनहीं देखता यह ब्रह्मपुराणमेंलिखा हुआ है । आश्विनकृष्णा चतुर्दशीको सूर्य्योदयसे पहिले रातके पिछले पहरमें उबटन होना चाहिये त्रयोदशीमें अथवा अमावसमें चन्द्रोदयके समय मंगलस्नान हो तो वह दुख शोक और भयका देनेवाला है, यह कालादर्शमें त्रयोदशीके स्नानका निषेध किया है । प्रातःकाल त्रयोदशी हो चतुर्दशीका क्षय हो रात्रिके शेषमें अमावास्या हो तो त्रयोदशीमें तेलका मर्दन और स्नान होना चाहिये, यह दिवोदासीयने चौथे पहरमें स्नान कहा है । ज्योतिर्निबन्धमें नारदजीका वाक्य है कि, क्वारकृष्णचतुर्दशीके दिन चन्द्रमाके

१ लक्ष्मीसन्तानान्धकारः सदा पततु तद्गृहे इत्यपि पाठः ।

क्षयतिथिमें भी कार्तिकमें इनमें स्वातीनक्षत्रका योग हो तो उस समय दीपावली होती है । (अमान्त मानका पहिले मासका कृष्णपक्ष पूर्णिमान्त मानके दूसरे मासका होता है इस हिसावसे आश्विन कृष्णको कार्तिक कृष्ण समझना चाहिये । इस तरह नरक चतुर्दशीके उदाहृत वाक्योंमें सर्वत्र आश्विनके स्थानमें पौर्णिमान्त मासमानका कार्तिक समझना चाहिये ।) मदनरत्नने ब्रह्मपुराणसे लेकर इसमें स्नान विशेष कहा है कि, नरकनाशके लिये अपामार्ग, तुम्बी, प्रपुन्नाट इनको स्नानके बीचमें फिराना चाहिये । शिरके ऊपर अपामार्गके पत्ते फिराना चाहिये, इसके पीछे तर्पण धर्मराजके नामसे करना चाहिये, कार्तिककी अमावास्या और चौदशके दिन प्रदोषके समय दीपदान करनेसे यमके मार्गके अन्धकारसे मुक्त होजाता है । यही ब्रह्मपुराणमें लिखा हुआ है कि, इसके बाद प्रदोषके समय ब्रह्माविष्णु और शिवजीके मंदिरमें एवं घरोंमें प्राकार, बाग वापी गली, घरके बगीचे घोडे हाथी बंधनकी जगह इन सवमें दीपक जलाने चाहिये । लिंगपुराणमें विशेषता लिखी हुई है कि प्रेतचतुर्दशीके दिन तपोधन शीव वा दूसरोंको भोजन करा शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है उन्हें दान देकर यमलोक नहीं जाता । इसमें रातको भोजनभी कहा है कि, शिवकी प्रसन्नताके लिये जो नरक चतुर्दशीके दिन नक्त भोजन करता है उसे वह पुण्य मिलता है जो सौ यज्ञों से भी न मिलसके, शिवारातिके दिन लिंगपूजा करके अक्षय भोगोंको प्राप्त होकर शिवजीके सायुज्यको पाता है । नरकचतुर्दशी आदि तीन दिनके विधान सनत्कुमारसंहिताके कहे हुए कहे जाते हैं---वालखिल्य वोले कि, आश्विन (कार्तिक) कृष्ण चतुर्दशीके दिन प्रत्यूषमें प्रयत्नके साथ स्नान करे । अरुणोदयसे अतिरिक्त रिक्तामें जो मनुष्य स्नान करता है उसका एक सालका किया धर्म नष्ट होजाता है इसमें सन्देह नहीं है । आश्विन कृष्ण चौदशके दिन सूर्य्योदयसे पहिले एवं रातके पिछले पहरमें तेलका उबटन होना चाहिये यदि दो दिन भी चन्द्रोदयके समय चतुर्दशी न हो अथवा दोनोंही दिन हो तो पूर्वाकाही ग्रहण होता है, जबरदस्ती हठसे वा बडप्पनसे जो चतुर्दशीके उक्त समयमें तैलका उबटन नहीं करता वह रौरवनरकमें जाता है, दिवालीकी चतुर्दशी की प्राप्ती होजानेपर तैलमें लक्ष्मी जलमें गंगाजी निवास करती है । अपामार्ग, तुम्बी, प्रपुन्नाट (फुआड) इनको स्नानके बीचमें फिराले इससे नरकका नाश होता है । तीनदिन उत्तम मंत्रको बोलता हुआ, कंकडी ढेले समेत एवं काँटेदार पत्तोंके साथ हे अपामार्ग ! तुम वारंवार फिराये हुए मेरे पापोंको हरो ,इष्ट और बन्धुओंके साथ इस प्रकार स्नान करे । इसके पीछे मांगलीक वस्त्र भूषण पहिन कर, तिलक करके कार्तिकका स्नान करें, स्नानका अंगरूप तर्पण करके पीछे यमका तर्पण करना चाहिये । तुम्र यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्व भूतक्षय औदुम्बर, दघ्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्तके लिये नमस्कार, है, ये कथित चौदह नामोंके नाम मंत्र हैं, प्रत्येकको चतुर्थीविभक्तिका एकवचनान्त करके आदिमें ओम् और अंतमें नमः लगाना चाहिये । एक एक नाममंत्रसे तिलोदकको तीन तीन अंजिलियाँ देनी चाहिये । यज्ञोपवीती तथाप्राचीना वीती होकर करना चाहिये, क्योंकि यमदेव देव भी हैं और पितर भी यम हैं दोनोंही रूप हैं, जिसका पिता जिंदा हो उसको भी यम और भीष्मका तर्पण करना चाहिये । देवताओंका पूजन करके नरकके लिये दीपक देना चाहिये, इसीमें लक्ष्मी चाहनेवाले स्नानकी विधि में कहता हूँ आश्विन (कार्तिक) कृष्णचौदश अमावस और शुक्ला प्रतिपत् इनमें जब स्वाती नक्षत्र हो तव ही अभ्यङ्ग स्नान करना चाहिये, यदि कार्तिक शुक्ला द्वितीयाके दिन भी उक्त मंगलस्नान करनेवाला कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होता, यहां दीपोंसे नीराजन होनेसे दीपावलि कहते हैं, चन्द्रमाके क्षय (अमावस्या,) संक्रान्ति, रविवार, व्यतीपात, दिनक्षय, इनमें उबटन करना दोषकेलिये वहींकि तुसभी पापोंके नासकरनेके लियेहोता है, उसदिन (प्रेतनामक चौदसके दिन) माषके पत्तोंका साग खाकर सभी पापोंसे छूटजाता है क्वार चतुर्दशीके दिन, चन्द्रमाकी क्षयतिथिमें भी कार्तिक स्वातिनक्षत्रमें दीपावलि होती है । सो इन दिनोंमें लगातार दीपोत्सव होना चाहिये, आश्विन कृष्ण से पक्षमें त्रयोदशी आदिक तिथियोंमें क्रमसेतीन पेंडोंसे तीनों भुवन ग्रहणकर लिये थे । प्रसन्न हुए हरिने बलि कहा था कि, जो तेरे मनमें भद्र है वह तथा दूसरे तेरे सब भद्र हों, ऐसे विष्णु भगवान्के वचन सुनकर बलिबोले मेंने जो कुछ आपको दिया है उसे अपने लिये तो न मांगूगा पर संसारके उपकारके लिये मांगूंगा यदि देनेकी आपकी शक्ति है तो देदीजिये । मेंने कपटरूपी वामन बने हुए आपके लिये भूमि देदी, जो कि, तीन पवोंसे

आपने इन नपाली इस कारण ,तीन दिनोंमें मुझ बलिका राज्य हो मेरे राज्यमें तीन दिन जो मनुष्य दीपक करेंगे उनके घरमें आपकी स्त्रीलक्ष्मी सदा स्थिर रहे । मेरे राज्यमें जिनके घर अन्धकार रहेगा, अलक्ष्मीके साथ उनके घरमें सदा अन्धकार रहे । जो चतुर्दशीके दिन नरकके लिये दीपोंका दान करेंगे उनके सभी पितर लोग कभी नरकमें न रहेंगे,बलिके राज्यको पा जिन्होंने दीपावलि नहीं की, हे केशव ! उनके न घरमें दीपक कैसे जलेंगे ? तीन दिनबलिके राजमें जो मनुष्य उत्साह नहीं करते उनके घरमें सदा शोक रहता है इसमें सन्देह नहीं है । इन तीनदिन बलिका राज्य रहे । पहिले जो अतिथि वामनरूपसे बलिसे मांगकर इस भूमिको इन्द्रके लिये दे दियाबलिको पातालमें वसाकर भगवान्‌के येतीन दिन दिये हैं, इस कारण इनमें अवश्यही महोत्सव करना चाहिये । हे मुनिश्वरो ! चतुर्दशी महारात्रि है इसमें शक्तिके उपासकोंको शक्तिकी पूजा करनी चाहिये, बलिके राज्यके दिनोंमें औषधि , पिशाच, मंत्र, मणि ये सबही प्रदोषके समय राजी हो हो नाचने लगते हैं । उन उनके मंत्रभी सिद्ध हो जाता है इसमें भी सन्देह नहीं है । बलिके राज्यको देख जैसे लोक हर्षित एहु थे उसी तरह इसे माननेवाले भी हर्षित होते हैं । सूर्य्यके तुला राशिपर रहते, चौदश अमावसके दिन प्रदोष कालमें हाथमें जलती मसाल लेनेसे पितरोंको मार्ग दीखता है। हे मुनिपुंगवो! जो प्रेत नरकमें भी पडे हुए हैं वेभीइस दिनके व्रत विधानसे अपना मार्ग देख लेते हैं इसमें सन्देह नहीं ।आश्विनकृष्णपक्षकी चौदससे लेकरतीन तिथियाँ, दीपदान आदि कार्य्योंमें मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये । यदि संवग (सूर्योदयके छःघडीकेपीछे बारह घडीतक) कालसे पहिले ये तिथियाँ हों तो दीपदान कार्योंमें आदिपूर्वसंयुक्त करनी चाहिये । श्रीसनत्कुमारसंहिताके कहे हुए कार्तिक महात्म्यमें नरकचतुर्दशी आदिके तीन दिनों का विधान पूरा हुआ ।। तथा नरक चतुर्दशी भी पूरी हुई ।।

वैकुंठचतुर्दशी

अथ कार्तिकशुक्लचतुर्दश्यां वैकुण्ठचतुर्दशीव्रतम् ।। सा चारुणोदयवती ग्राह्या ।। उपवासस्तु पूर्वदिने ।। वर्षे वै हेमलम्बाख्ये मासि श्रीमति कार्तिके ।। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणोदयसम्भवे ।। महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके ।। स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत् ।। संक्षेप ज्योतिषस्तस्य प्रतिष्ठाख्यं तदाकरोत् ।। स्वयमेव तदात्मानं चरन्पाशुपतव्रतम् ।। ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् ।। दण्डपाणेर्महानाम्नि वनेऽस्मिन्कृतपारणः ।। श्रीमद्भवानीसदनं प्रविश्येदमनुत्तमम् ।। इति सनत्कुमारसंहितोक्तेः ।। अथ कथा—वालखिल्या ऊचुः ।। कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां समागमत ।। वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठाद्वाराणस्यां कृते युगे ।। १ ।। रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वाऽसौ मणिकर्णिके ।। गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रं वै ततोऽव्रजत् ।। २ ।। अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितं शिवम् ।। विधाय पूजां वैश्वेशीं ततः पद्मैरपूजयत् ।। ३ ।। सहस्रसंख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम् ।। आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत ।। ४ ।। एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलीयात्तं हरेण तु ।। ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनं कमलं त्वभूत् ।। ५ ।। इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित् ।। कमलेषु भ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः ।। ।। ६ ।। क्षणं विचार्य स हरिर्न मे नामभ्रमोऽभवत् ।। पद्मेष्वेव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनः पुनः ।। ७ ।। सहस्रपद्मसंकल्पः पूजार्थं तु कृतो मया ।। अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया ।। ८ ।। पद्मानेतुं गमिष्यामि भङ्गः स्यादासनस्य तु ।। अतः परं किं विधेयं चिन्तोद्विग्नो हरिस्तदा ।। ९ ।। एको विचार उत्पन्नो हृदयेऽस्य मुनी-

श्वराः ।। पुण्डरीकाक्ष इत्येवं मां वदन्ति मुनीश्वराः ।। १० ।। नेत्रं मे पद्मसदृशं पद्मार्थे त्वर्पयाम्यहम् ।।इति निश्चित्य मनसि दत्त्वा तर्जनिकां स तु ।।११।। नेत्रमध्यात्तदुत्पाटच महादेवस्तु पूजितः ।। ततो महेश्वरस्तुष्टो वाक्यमेतदुवाच ह ।। १२ ।। महादेव उवाच ।। त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।। राज्यं दत्तं त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः ।। १३ ।। अन्यद्वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम् ।। अवश्यमेव दास्यामि नात्र कार्या विचारणा ।। १४ ।। मद्भक्ति तु समालम्ब्य ये द्विष्यन्ति जनार्दनम् ।। ते मद्द्वेष्या नरा विष्णो व्रजेयुर्नरकं ध्रुवम् ।। १५ ।। विष्णुरुवाच ।। त्रैलोक्यरक्षाकरणं ममादिष्टं महेश्वर ।। दुर्मदाश्च महासत्त्वा दैत्या मार्याः कथं मया ।। १६ ।। शिव उवाच ।। एतत्सुदर्शनं चक्रं सर्वदैत्यनिकृन्तनम् ।। गृहाण भगवन्विष्णो मया तुभ्यं निवेदितम् ।। १७ ।। अनेन सर्वदैत्यानां भगवन् कदनं कुरु ।। एवं चक्रं हरेर्दत्त्वा ततो वचनमब्रवीत् ।। १८ ।। वर्षे च हेमलंबाख्ये मासि श्रीमति कार्तिके ।। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ।। १९ ।। महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके ।। स्नात्वा वैश्वेश्वरं लिङ्गं वैकुण्ठादेत्य पूजितम् ।। २० ।। सहस्रकमलैस्तस्माद्भविष्यति मम प्रिया ।। विख्याता सर्वलोकेषु वैकुण्ठाख्या चतुर्दशी ।। २१ ।। अन्यं वरं प्रदास्यामि शृणु विष्णो वचो मम ।। पूर्वरात्रे तु ते पूजा कर्तव्या सर्वजातिभिः ।। २२ ।। उपवासं दिवा कुर्यात्सायंकाले तवार्चनम् ।। पश्चान्ममार्चनं कार्यमन्यथा निष्फलं भवेत् ।। २३ ।। ग्राह्या तु हरिपूजायां रात्रिव्याप्ता चतुर्दशी ।। अरुणोदयवेलायां शिवपूजां समाचरेत् ।। २४ ।। सहस्रकमलैर्विष्णुरादौ यैः पूजितो नरैः ।। पश्चाच्छिवः पूजितश्चेज्जीवन्मुक्तास्त एव हि ।। २५ ।। सायं स्नात्वा पञ्चनदे बिन्दुमाधवमर्चयेत् ।। सहस्रनामभिर्विष्णुः कमलैः सुमनोहरैः ।। २६ ।। मणिकर्ण्यां ततः स्नात्वाविश्वेश्वरमथार्चयेत् ।। सहस्रनामभिः पुष्पैर्जीवन्मुक्तास्त एवहि ।।२७।। स्नात्वा यो विष्णुकाञ्च्यां चानन्तमेनं समर्चयेत् ।।रुद्रकाञ्च्यां ततः स्नात्वा प्रणवेशं समर्चयेत् ।। २८ ।। पृथिव्यांच श्रुता ये ये धर्माः प्रोक्ता महर्षिभिः ।। सर्वेषां फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।। २९ ।। आदौ स्नात्वा वह्नितीर्थे यजेन्नारायणं ततः ।। रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशं समर्चयेत् ।। ३० ।। इहैवार्थवतां नाथो भवेन्नास्त्यत्र संशयः ।। स्थलपद्मैस्त्वत्रपूजा कर्तव्या जलजक्षयात् ।। ३१ ।। आदौ स्नात्वा सूर्यपुत्र्यां वेणीमाधवमर्चयेत् ।। जाह्नव्यां च ततः स्नात्वा सङ्गमेशं प्रपूजयेत् ।। ३२ ।। रक्तपद्मैः श्वेतपद्मैर्हरिं रुद्रं क्रमेणतु ।। सर्वाः स्त्रियस्तस्य वश्याः सत्यं विष्णो मयोदितम् ।। ३३ ।। मोक्षार्थं काशिकामध्ये तिष्ठतः शुभदायकौ ।। बिन्दुमाधव-

---

१ म इत्यपि पाठः ।

विश्वेशौ जगदानन्ददायकौ ।। ३४ ।। न लभेत्पूजयित्वा किं मोक्षं विश्वेश्वरं हरिम् ।। विना यो हरिपूजां तु कुर्याद्रुद्रस्य चार्चनम् ।। ३५ ।। वृथा तस्य भवेत्पूजा सत्य मेतद्वचो मम ।। एवं तस्मै वरं दत्त्वाथान्तर्धानं ययौ शिवः ।। ३६ ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यो हरिहरावुभौ ।। प्राप्ते कलयुगे घोरे शौचाचारविवर्जिते ।। ३७ ।। ।। ३७ ।। तत्त्वसंख्येर्वर्षशतैर्गतैर्देवो महेश्वरः ।। वाराणसीस्थलिङ्गानि पाताले स हि नेष्यति ।। ३८ ।। ततो द्विगुणवर्षैस्तु गङ्गा वाराणसी तथा ।। भविष्यति च सादृश्यात्त[1]तो वै सुमुनीश्वराः ।। ३९ ।। अन्तर्हिता यदा काशी भविष्यति तदा मुने ।। नाशस्तु लिङ्गचिह्नानां निष्प्रभाः सकला जनाः ।। ४० ।। चतुर्दशाब्दं दुर्भिक्षं महामारीसमुद्भवः ।। गोवधश्चापि सर्वत्र मृत्तिका भस्मसन्निभा ।। ४१ ।। गङ्गोत्तर्यां तु या धारा पतेद्भगीरथाश्रमे ।। हरिद्वाराच्च वायव्ये तस्या लोपो भविष्यति ।। ४२ ।। भागीरथ्यां गतायां तु मर्कटीतन्तुसन्निभाः ।। भविष्यन्ति जले कीटास्तोयं नीलीनिभं तथा ।। ४३ ।। चतुर्वर्षसहस्रैस्तु शैलस्थाः सर्वदेवताः।। सत्त्वं त्यक्त्वा गमिष्यन्ति मानसं च सरोवरम् ।। ४४ ।। गतेषु सर्वदेवेषु राजानो धैर्यविच्युताः ।। पापिष्ठाश्च दुराचारा अनीतिपरिपीडिताः ।। ४५ ।। कलेरयुतवर्षाणि भविष्यन्ति यदा खग ।। श्रौतमार्गस्य लोपो हि भविष्यति न संशयः ।। ४६ ।।तदा लोका भविष्यन्ति मद्यपानपरायणाः ।। स्वल्पायुषः स्वल्पभाग्या नानारोगैश्च पीडिताः ।। ४७ ।। द्वित्रास्तु दक्षिणे देशे वेदज्ञाः संभवन्ति च ।। आनीय ताञ्छाककर्ता धर्मं संस्थापयिष्यति ।। ४८ ।। इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये वैकुण्ठचतुर्दशीकथा समाप्ता ।।

वैकुण्ठचतुर्दशीव्रतम्---कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको होता है, इसे अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये । (निर्णय सिन्धुकारने कहा है कि, इसे विष्णुपूजामें रात्रिव्यापिनी लेना चाहिये । यदि दो दिन ऐसीही हो तो प्रदोषसे निशीथतक रहनेवाली लेनी चाहिये । यदि विश्वेश्वर भगवान्की प्रसन्नताके लिये उपवास आदि किये जायं तो अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये ।) उपवास तो पहिले दिन करना चाहिये क्योंकि सनत्कुमारसंहितामें लिखा हुआ है कि, हेमलम्बनामक वर्षके कार्तिकमासकी शुक्ला चतुर्दशीमें अरुणोदयके समय महादेवजीकी तिथिमें मणिकर्णिकाके घाटपर विश्वेश्वर विष्णुने स्नान करके देवीसहित विश्वेश्वरका पूजन किया था, उस समय आपने आत्मस्वरूप पाशुपति व्रतकरते हुए ज्योतिके संक्षेपके रूपमें उसकी प्रतिष्ठा भी की थी, इसके पीछे प्रभातकालमें परम अद्भुत पूजाकी तथा दण्डपाणिके इस परम अद्भुत महावनमें पारणाभी की, श्रीभवानीके मंदिरमें प्रविष्ट होकर उत्तम व्रतकोभी किया था । कथा-बालखिल्य बोले कि, कृतयुग कार्तिकशुक्ला चतुर्दशीके दिन. वैकुण्ठके अधिपति वैकुण्ठसे वाराणसीमें आये ।।१।। जब रातका चौथाप्रहर कुछही बाकी रह गया तब मणिकर्णिकापर स्नान करके एक हजार कमल लेकर परम भक्तिसे शिवजीके पूजन करनेके लिये चलदिये, शिवजीकी पूजा करनेके पीछे कमलोंसे पूजन किया ।।२-३।। कमलोंकी एक हजार गिनकर नामसे एकहजार कमल चढाना प्रारंभ किया । उसमें शिवजीने उनकी भक्ति देखनी चाही ।।४।। शिवने उन कमलोंमेंसे एक कमल छिपा दिया विष्णु पूजने लगे पर अन्तमें उन्हें एक कमल न मिला इधर उधर बहुत ढूंढा पर पद्मका पता न चला, यह विचारने लगे कि मैं कमलोंमेंही भूला हूं या नाम गिनते

१ तत्परं तु इत्यपि पाठः ।

गिनते भूल गया हूं ।।६।। कभी यह सोचते कि नामही भूल गया हूं कभी विचारते कि, कमलोंमेंही भूला हूं अन्तमें यही सोचा कि मैं नाम नहीं भूला ।।७।। मनमें कहने लगे कि, मैंने एक सहस्र कमलोंसे पूजनेका संकल्प किया था कि फिर मैं एक कम एक हजारसे कैसे पूजूं ।।८।। यदि मैं लेने जाता हूं तो आसनका भंग होता है इस प्रकार उद्विग्न होकर विचारने लगे कि, अब मैं क्या करूं ।।९।। हे मुनिश्वरो ! उनके मनमें एक विचार आया कि, मुझे मननशील जन पुण्डरी काक्ष कहते हैं ।।१०।। मेरे नेत्र कमलके समान हैं इनमेंसे एक कमलके बदले चढा दूंगा ऐसा विचार तर्जनिका दे ।।११।। नेत्र उखाडा पीछे महादेवजी पर चढा दिया इससे शिव प्रसन्न होकर बोले कि ।।१२।। इन चर अचरवाले तीनों लोकोंमें तेरे समान मेरा दूसरा कोई भक्त नहीं है, मैंने आपको तीनों लोकोंका राज्य देदिया आप लोकके पालक हो जाओ ।।१३।। आपका कल्याण हो । और जो आपके मनमें हो उसेभी मांग लीजिये । मैं अवश्यही देदूंगा इसमें विचार करनेकी जरूरत नहीं है ।।१४।। मेरी भक्तिको लेकर जो विष्णुसे वैर करते हैं वे मेरे भी द्वेषी हैं वे जन निश्चयही नरक जायेंगे ।।१५।। विष्णु भगवान् बोले कि, मुझे आपने तीनों लोकोंकी रक्षाकरनेका आदेश दिया है, हे महेश्वर ! दुर्मद महासत्व दैत्योंको मैं कैसे मारूंगा ? ।।१६।। शिव बोले कि, यह सुदर्शनचक्र है सब दैत्योंको काट डालेगा हे भगवन् विष्णो ! मैं आपको वह देता हूं आप इसे ग्रहण करिये ।।१७।। इसीसे आप सब दैत्योंका कतल करें । सुदर्शन चक्रको भगवान्के लिये देकर फिर शिवजी बोले ।।१८।। हेमलम्ब वर्ष कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीके अरुणोदयके समय ।।१९।। महादेवजीकी तिथिके ब्राह्ममुहूर्तमें काशीमें मणिकर्णिका घाटपर स्नान करके वैकुण्ठसे आ विश्वेश्वर लिंगका एकहजार कमलोंसे पूजा था । इस कारण यह तिथि मेरी प्यारी होगी सब लोकोंमें इसका नाम वैकुण्ठचतुर्दशी होगा ।।२०–२१।। हे विष्णो ! मेरे वचन सुन और वर भी देता हूं सबको पहिली रात्रिमें आपकी पूजा करनी चाहिये उपवासके दिन सायंकालको आपका अर्चन करना चाहिये, मेरा अर्चन इसके पीछे नहीं हो तो उसका मुझे पूजनाही व्यर्थ है ।।२२–२३।। आपकी पूजामें रात्रिव्यापिनी चतुर्दशी लेनी चाहिये एवं अरुणोदयके समयमें शिवपूजा करनी चाहिये ।।२४।। एक हजार कमलोंसे विष्णुका पूजनकरके जिन्होंने शिवार्चन किया है वे मनुष्य जीवन्मुक्त हैं ।।२५।। सायंकालके समय पंचनदमें स्नान करके बिन्दुमाधव का पूजन करना चाहिये । वे विष्णु बिन्दु माधव सुन्दर एक हजार कमलोंसे सहस्र नामसे पूजने चाहिये ।।२६।। मणिकर्णिकामें स्नान करके सहस्रनामोंसे पुष्पोंसे विशपूजन होना चाहिये । ऐसा करनेवाले जीवन्मुक्त होते हैं ।।२७।। विष्णुकांचीमें स्नानकरके इस अनंत तथा रुद्रकांचीमें स्नान करके प्रणवेशका पूजन करना चाहिये ।।२८।। पृथिवीमें जितने धर्म सुनेजाते हैं जो भी कुछधर्म महर्षियोंने कहे हैं उन सबका फल पाजाता है इसमें विचार न करना चाहिये ।।२९।। पहले वह्नितीर्थमें स्नान करके नारायणका पूजन करना चाहिये, रेतोदकमें स्नान करके केदारेशका अर्चन करना चाहिये ।।३०।। यहां ही प्रयोजनवालोंका प्रयोजन हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं है ।यदि जलपद्म न मिलें तो स्थलपद्मोंसे पूजन होना चाहिये ।।३१।। यमुनामें स्नान करके वेणीमाधवको पूजे । पीछे जाह्नवीमें स्नान करके संगमेश्वरको पूजना चाहिये ।।३२।। रक्तपद्मोंसे हरि तथा श्वेतपद्मोंसे शिवको पूजे, हे विष्णो मैं सत्य कहता हूं । उसके वशमें सभी स्त्रियां होजाती हैं ।।३३।। शुभके देनेवाले संसारके आनन्ददायक बिन्दुमाधव और विश्वेश काशीके बीच विराजते हैं ।।३४।। विश्वेश्वर और विष्णुके पूजनसे अवश्य मोक्ष मिलता है, जो विना हरिके पूजे रुद्रको पूजता है ।।३५।। उसका पूजना व्यर्थ है यह मैं सत्य कहता हूं, इस प्रकार विष्णु भगवान्को वर दे, शिव अन्तर्धान होगये ।।३६।। इस कारण सभी प्रयत्नोंसे हर और हरि दोनोंकाही पूजन करना चाहिये । शौच और आचारसे रहित घोर कलियुगके आजानेपर ।।३७।। पच्चीससौ वर्ष बीते शिवजी महाराज काशीके लिंगोंको लेकर पातालमें चले जायँगे ।। ३८ ।। पाँच हजार वर्षोंके बाद गंगा और वाराणशी समान होजायेंगी, हे मुनीश्वरो ! इसके पीछे ।। ३९ ।। जब काशी अन्तर्धान हो जायगी एवं लिंगके चिह्नोंका नाश हो जायेगा सभी जन निस्तेज हो जायेंगे ।। ४० ।। चौदहवर्ष अकाल और माहामारी होगी, जगह २ गौएँ कटने लगेंगी मट्टी भस्म जैसी होजायगी ।। ४१ ।। गंगोत्तरीमें जो धारा भगीरथके आश्रमपर पडती है, हरिद्वारसे लेकर वायव्य कोणमें उसका भी लोप होजायगा ।।४२।। जब गंगाका तत्त्वही चलाजायगा तब

मर्कटीके तन्तुओंके बराबर गंगाजीमें कीडे पड़ जायंगे पानी नीला होजायगा ।।४३।। चार हजार वर्ष पीछे पर्वतोंके सब देव सत्त्वछोड कर मानसरोवरपर चलेजायंगे ।। ४४ ।। सब देवोंके चलेजानेपर राजालोग धर्म हीन होजायंगे ।। वे पापी दुराचारी और अनीतिकरनेवाले होंगे ।। ४५ ।। जब कलियुगको दशहजार वर्ष वीत जायंगे उस समय हे गरुड ! श्रौत मार्गका लोप हो जायगा, इसमें सन्देहही नहीं है ।। ४६ ।। उस समय मनुष्य शराबी होजायँगे, छोटे भाग्य तथा थोडी आयु एवं अनेकों रोगोंसे पीडित होंगे ।। ४७ ।। उस समय दो तीन ब्राह्मण दक्षिण देशमें वेदके जाननेवाले रहेंगे । शाककर्ता उन्हें लाकर धर्मकी स्थापना करेगा ।। ४८ ।। यह श्रीसनत्कुमारसंहितामें कहे हुए कार्तिकमाहात्म्यमें वैकुण्ठ चतुर्दशीकी कथा पूरी हुई ।।

शिवरात्रि व्रतम्

अथ अमान्तमासेन माघकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतम् ।। तच्चार्धरात्रव्यापिन्यां कार्यम् ।। तदुक्तं नारदसंहितायाम् –अर्धरात्रयुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी ।। शिव[1]रात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।। ईशान संहितायामपि-माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि ।। शिव[2]लिंगमभूत्तत्र कोटिसूर्यसमप्रभम् ।। तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः ।। माघकृष्णत्वं चात्रामान्तमासपरत्वेन ।। अत एव चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुने शिवपूजनम् ।। तामुपोष्य प्रयत्नेन विषयान्परिवर्जयेत् ।। इति सुमन्तुवचने पौर्णिमान्तमासोऽप्युक्तः ।। महानिशा । च -महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः ।। इति देवलोक्तेर्निशीथरूपैव ।। एवं चार्धरात्रशब्दोऽपि तत्पर एव ।। दिनद्वये निशीथव्याप्तावव्याप्तौ वा परैव प्रदोषव्याप्तिलाभात् ।। निशाद्वये चतुर्दश्यां पूर्वा त्याज्या परा शुभा ।। आदित्यास्तमये काले अस्ति चेद्या चतुर्दशी ।। तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा ।। ।। इति ।। त्रयोदशी यदा देवि दिन[3]भुक्तिप्रमाणतः ।। जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशिपूर्णा चतुर्दशी ।। प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रे चतुर्दशी ।। रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ।। अहोरात्रव्रतं यच्च एकमेकतिथौ गतम् ।। तस्यामुभययोगिन्यामाचरेत्तद्व्रतं व्रती ।। इति कामिकाशिवरात्रिः ।। शिवरहस्ये स्मृत्यन्तरादिवचनाच्च ।। न च पूर्वदिनऽधिकव्याप्तिवशात् पूर्वेवेति शङ्कयम् ।। एतस्य " भूयसांस्यात्सधर्मत्वम् " इति न्यायमात्रत्वेन वचनबाधकत्वायोगात् ।। प्रत्युत निरुक्तवचनैरेव तद्बाधाच्च ।। पूर्वदिने निशीथे परदिने प्रदोषे तदा पूर्वेव ।। अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् ।। पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रिया ।। इति पाद्मे जयायोगस्य विहितत्वात् ।। महतामपि पापानां दृष्ट्वा वै निष्कृतिः पुरा ।। न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम् ।। इति स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च ।। यत्तु कालतत्त्वविवेचने नव्यैर्दिनद्वये निशीथव्याप्तावेव पूर्वविद्धाविधायकान्युत्तरविद्धानिषेधकानि वचनानि सावकाशानीत्युक्त्वा पूर्वैव

---

१ यः कुर्यादिति शेषः । २ शिवलि...रूपोऽभूदित्यर्थः ३ अस्तमयइत्यर्थः ।

ग्राह्येत्युक्तम्, तन्न समञ्जसम् । निशाद्वये चतुर्दश्यां पूर्वा त्याज्या परा शुभा ।। इति माधवाद्युदाहृतकामिकवचनविरोधात् ।। न च पूर्वविद्धाविधायकानामुत्तर-विद्धानिषेधकानां विषयालाभ इति शङ्क्यम् ।। प्रदोष व्याप्तिलाभाच्च ।। माघासिते भूतदिनं हि राजन्मुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः ।। जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य ।। इति हेमाद्रिमाधवाद्युदाहृतपुराण-वचनादपि परैव ।। अस्मिन् व्रते उपवास जागरणपूजानां फलसम्बन्धात् त्रयमपि प्रधानम् ।। तथा च नागरखण्डेउपवासप्रभावेण बलादपि च जागरात् ।। शिवरात्रे-स्तथा तस्या लिंगस्यापि प्रपूजया ।। अक्षयाल्लँभते कामाञ्छिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। इति ।। इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च ।। परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परा ।। न पूजयति भक्तेशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ।। जन्तुर्जन्मसहस्रेषु युज्यते नात्र संशयः ।। इति स्कान्दे अकरणे प्रत्यवायश्रुतेर्नित्यम् ।। शिवं च पूजयित्वा यो जागर्ति च चतुर्दशीम् ।। मातुः पयोधररसं न पिबेच्च कदाचन ।। इति तत्रैव फलश्रुतेः काम्यमिति ।। पारणं चैत्रद्व्रते स्कान्दे तिथिमध्ये तदन्ते चोक्तम् ।। उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् ।। कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते यदि वा न वा ।। ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै ।। संस्थितानि भव-न्तीह भूतायां पारणे कृते ।। तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् ।। तथा-कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिस्तथैव च ।। एताःपूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ।। इतिं ।। अनयोर्विरुद्धवचनयोर्व्यवस्थैवं माधवेनोक्ता यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणम् ।। इति वचनाद्यामत्रयमध्ये चतुर्दशीसमाप्तौ तिथ्यन्ते तदु-त्तरगामित्वे तु प्रातस्तिथिमध्ये एवेति तिथिमध्यकालो मुख्यस्तदन्त्यकालो गौणः ।। उत्तरभावित्वादित्याहुः ।। केचित्तु, शक्तस्तिथ्यन्ते अशक्तस्तिथिमध्ये एवेत्यूचुः ।। शिवरात्रिग्रहणं तु पूर्वविद्धाविधानार्थमिति ।। वस्तुतस्तु-सा त्वस्तमयपर्यन्त-व्यापिनी चेत्परेऽहनि ।। दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक् ।। इति शिवरात्रि-प्रकरणपठितकालादर्शादिलिखितवचनाद्दिवातिथिसमाप्तौ तिथ्यन्तेऽन्यथा तन्मध्य एवेति निर्णयः ।। अथ व्रतविधिः —मासपक्षाद्युल्लिख्य मम पापक्षयार्थमक्षय-मोक्षभोगप्राप्त्यर्थं शिवरात्रिव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य षोडशोपचारैः शिवपूजां कुर्यात् ।। तत्र पूजा—आगच्छ देवदेवेश मर्त्यलोकहितेच्छया ।। पूजयामि विधानेन प्रसन्नः सुमुखो भव ।। सहस्रशीर्षेत्यावाहनम् ।। सदासनं कुरु प्राज्ञ निर्मलं स्वर्णनि-र्मितम् ।। भूषितं विविधै रत्नैः कुरु त्वं पादुकासनम् ।। पुरुष एवेदमित्यासनम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ।। तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्य-ताम् ।। एतानवानस्येति पाद्यम् ।। गन्धोदकेन पुष्पेण चन्दनेन सुगन्धिना ।। अर्घ्यं

गृहाण देवेश भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।। त्रिपादूर्ध्वेत्यर्घ्यम् ।। कर्पूरोशीरसुरभि शीतलं विमलं जलम् ।। गङ्गायास्तु समानीतं गृहाणाचमनीयकम् ।। तस्माद्विराळेत्याचमनीयम् ।। मन्दाकिन्याः समानीतं हेमाम्भोरुहवासितम् ।। स्नानाय ते मया भक्त्या नीरं स्वीक्रियतां विभो ।। यत्पुरुषेणेति स्नानम् ।। वस्त्रं सूक्ष्मं दुकूलं च देवानामपि दुर्लभम् ।। गृहाण त्वमुमाकान्त प्रसन्नो भव सर्वदा ।। तं यज्ञमिति वस्त्रम् ।। यज्ञोपवीतं सहजं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।। आयुष्यं ब्रह्मवर्चस्कमुपवीतं गृहाण मे ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वेत्युपवीतम् ।। श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यम्० ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋ० ।। गन्धम् ।। माल्यादीनि० ।। तस्मादश्वेति पुष्पम् ।। वनस्पतिरसोद्भूतो० ।। यत्पुरुषम् ० ।। धूपम् ।। साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ।। ब्राह्मणोस्येति दीपम् ।। नैवेद्यं गृह्यताम्० ।। चन्द्रमा मनस इति नैवेद्यम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। चक्षुर्दं सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम् ।। आर्तिक्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।। नीराजनम् ।। फलेन फलितम्० ।। फलम् ।। यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।। तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे ।। नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणाम् ।। मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।। सप्तास्यासन्निति नमस्कारम् ।। सद्योजातमिति वामदेवायेति वा ।। यज्ञेन यज्ञमिति मन्त्रपुष्पाञ्जलिम् ।। यस्य स्मृत्येति प्रार्थना ।। अथ कालोत्तरे पूजाविधानम्—स्कन्द उवाच ।। एवं विधानं भूतेश श्रुतं बहुविधं मया ।। पूजां मन्त्रविधानेन कथयस्व पदेपदे ।। शिव उवाच ।। श्रूयतां धर्मसर्वस्वं शिवरात्रौ शिवार्चनम् ।। व्रते येन विधानेन स्वर्गः पुण्येन कर्मणा ।। कृत्वा स्नानं शुचिर्भूत्वा धौतवस्त्रसमन्वितः ।। स्थापयेद्देव देवेशं मन्त्रैर्वेदसमुद्भवैः।। ततः पूजा प्रकर्तव्या पूर्वोक्तविधिना ततः ।। नमो यज्ञ जगन्नाथ नमस्तेस्त्रिदशेश्वर ।। पूजां गृहाण मद्दत्तां महेश प्रथमां पदे ।। प्रथमप्रहरपूजा ।। पूर्वे नन्दीमहाकालौ शृङ्गी भृङ्गी च दक्षिणे ।। वृषस्कन्दौ पश्चिमे च देशकालौ तथोत्तरे ।। गङ्गा च यमुना चैव पार्श्वे चैव व्यवस्थिते ।। नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय नमस्ते त्रिपुरान्तक ।। पूजां गृहाण देवेश यथाशक्त्योपपादिताम् ।। द्वितीयप्रहरे ।। बद्धोऽहं विविधैः पाशैः संसारभयबन्धनैः ।। पतितं मोहजाले मां त्वं समुद्धर शङ्कर ।। तृतीये ।। चतुर्थे प्रहरे आद्यवत् ।। नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।। शिवरात्रौ मया दत्तं गृहाणार्घ्यं प्रसीद मे ।। प्रथमे प्रहरेऽर्घ्यमंत्रः ।। मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शंकर ।। गृहाणार्घ्यमुमाकान्त शिवरात्रौ प्रसीद मे ।। द्वितीये ।। दुःखदारिद्र्यभा-

१ यामेयामे इत्यर्थः ।

वैश्च दग्धोऽहं पार्वतीपते ।। मां वै त्राहि महादेव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। तृतीये ।। किं न जानासि देवेश तावद्भक्ति प्रयच्छ मे।। स्वपादाग्रतले देव दास्यं देहि जगत्पते।। चतुर्थे ।। इति कालोत्तरे शिवपूजा समाप्ता ।। अथ कथा–सूत उवाच ।। कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।। पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ।। १ ।। पिनाकशोभितकरं खड्गखेटकधारिणम् ।। कपालखट्वांगधरं नीलकण्ठसुशोभितम् ।। २ ।। भस्माङ्गं व्यालशोभाढ्यमस्थिमालाविभूषितम् ।। नीलजीमूतसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।। ३ ।। क्रीडन्तं च शिवं तत्र गणैश्च परिवारितम् ।। विसृज्य देवताः सर्वास्तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।। ४ ।। तं दृष्ट्वा देवदेवेशं प्रहस्योत्फुल्ललोचनम् ।। पार्वती परिपप्रच्छ विनयावनता स्थिता ।। ५ ।। पार्वत्युवाच ।। कथयस्व प्रसादेन यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम् ।। श्रुतास्त्वयोक्ता देवेश व्रतानां निर्णयाः शुभाः ।। ६ ।। तथा वै दानधर्माश्च तीर्थधर्मास्त्वयोदिताः ।। नास्ति मे निश्चयो देव भ्रान्ताहं च पुनः पुनः ।। ७ ।। तस्माद्वदस्व मे देव ह्येकं निःसंशयं व्रतम् ।। व्रतानामुत्तमं देव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।। ८ ।। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व मम प्रभो ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु देवि [1]प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ९ ।। यन्न कस्यचिदाख्यातं रहस्यं मुक्तिदायकम् ।। येनैव कथ्यमानेन यमोऽपि विलयं व्रजेत् ।। १० ।। तदहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ।। [2]माघमासे कृष्णपक्षे अमायुक्ता चतुर्दशी।।११।।शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया सर्वयज्ञोत्तमोत्तमा।। दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्चव्रतैश्च विविधैरपि ।।१२।। न तीर्थैस्तद्भवेत्पुण्यं यत्पुण्यं शिवरात्रितः।।शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। १३ ।। ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृत्वा मोक्षमवाप्नुयात्।। मृतास्ते निरयं यान्ति यैरेषा न कृता क्वचित् ।। १४ ।। कृता यैर्निरयं त्यक्त्वा गतास्ते शिवसन्निधौ ।। सर्वमङ्गलशीला च सर्वामंगलनाशिनी ।। १५ ।। भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सत्यं सत्यं वरानने ।। देव्युवाच ।। कथं यमपुरं त्यक्त्वा शिवलोके व्रजेन्नरः ।। १६ ।। एतन्मे महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं कुरु शङ्कर ।। शङ्कर उवाच ।। शृणु देवि यथावृत्तां कथां पौराणिकीं शुभाम् ।। १७ ।। यमशासनहन्त्रीं च शिवस्थानप्रदायिनीम् ।। कश्चिदासीत्पुरा देवि नि[3]षादो जीवघातकः ।।१८ ।। प्रत्यन्तदेशवासी च भूधरासन्नकेतनः ।। सीमान्ते स सदा तिष्ठन्कुटुम्बपरिपालकः ।। १९ ।। तन्वा पीनो धनुर्धारी श्यामांगः कृष्णकञ्चुकः ।। बद्धगोधांगुलित्राणः सदैव मृगयारतः ।। २० ।। एवंविधो निषादोऽसौ चतुर्दश्या दिने शुभे ।। व्यवहारिकैश्च द्रव्यार्थं देवागारे प्ररोधितः ।। २१ ।। तेनापि देवता दृष्टा जनानां वचनं श्रुतम् ।। उपवासव्रतीनां च जल्पतां शिवशिवेति च ।। २२ ।। दिनान्ते तैस्तदा मुक्तः

१ परं गुह्यम् । २ माघांते कृष्णपक्षेतु अविद्धा या चतुर्दशी । ३ निषादस्त्वामिषप्रियः । इत्यपि पाठः ।

प्रातर्द्रव्यं प्रदीयताम् ।। ततोऽसौ धनुरादाय दक्षिणेन गतः स्वयम् ।। २३ ।। आगच्छन्स वनोद्देशे जनहासं चकार सः ।। शिवशिव किमेतद्वै कुर्वन्ति नगरे जनाः ।। २४ ।। वनेचरान्निरीक्षं स्तु चतुर्दिक्षु इतस्ततः ।। पदं च पदमार्गं च अन्विष्यन्सूकरान्मृगान् ।। २५ ।। इतश्चेतश्च धावन्वै आमिषे लुब्धमानसः ।। वनं च पर्वतान्सर्वान्भ्रमित्वा गिरिकन्दराः ।।२६।। संप्राप्तं तेन नो किञ्चिन्मृगसूक¹रचित्तलम् ।। निराशो लुब्धको यावत्तावदस्तं गतो रविः ।। २७ ।। चिन्तयित्वा जलोपान्ते जा²गरं जीवघातनम् ।। संविधास्याम्यहं रात्रौ निश्चितं मम जीवनम् ।। २८ ।। तडागसंन्निधौ गत्वा तत्तीरे जालिमध्यतः ।। आश्रमं कर्तुमारेभे आत्मनो गुप्तिकारणात् ।। २९ ।। जालिमध्ये महालिंगं स्थितं स्वायंभुवं शुभम् ।। बिल्ववृक्षो महान्दिव्यो जालिमध्ये च संस्थितः ।। ३० ।। गृहीत्वा तस्य पर्णानि मार्गशुद्धयर्थमक्षिपत् ।। क्षिप्तानि दक्षिणे भागे निपेतुर्लिंगमूर्धनि ।। ३१ ।। तस्य गन्धं समासाद्य लुब्धकस्य वरानने ।। न तिष्ठन्ति मृगाः सर्वे शरघातभयात्तदा ।। ३२ ।। न दिवा भोजनं जातं संरोधस्य प्रभावतः ।। मृगान्निरीक्षतो रात्रौ निद्रानाशोऽप्यजायत ।। ३३।। जालिमध्ये गतस्यास्य प्रथमः प्रहरो गतः ।। ततो जलार्थमायाता हरिणी गर्भसंयुता ।। ३४ ।। यौवनस्था सुरूपा चस्तनपीना सुशोभना ।। निरीक्षन्ती दिशः सर्वा भृशमुत्फुल्ललोचना ।। ३५ ।। लुब्धकेनापि सा दृष्टा बाणगोचरमागता ।। कृतं च बाणसन्धानं तेनैकाग्रेण चेतसा ।। ३६ ।। त्रोटयित्वाथ पत्राणि प्रक्षिप्तानि शिवोपरि ।। शिवेति संस्मरन्वादं शीतेन परिपीडितः ।। ३७ ।। एतस्मिन्नन्तरे दृष्टो हरिण्या लुब्धकस्तदा ।। लुब्धकस्तु स्वरूपेण कृन्तान्त इव तिष्ठति ।। ३८ ।। दृष्ट्वा तु तस्य सन्धानं यमदंष्टासमप्रभम् ।। मृगी सा दिव्यया वाचा लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ।। ३९ ।। मृग्युवाच ।। स्थिरो भव महाब्याध सर्वजीवनिकृन्तन ।। कथयस्व महाबाहो किमर्थं मांहनिष्यसि ।। ४० ।। शिव उवाच ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धकः प्राह तां मृगीम् ।। लुब्धक उवाच ।। समातृकं कुटुंबं मेक्षुधया पीडचते भृशम् ।। ४१ ।। धनं वै मद्गृहे नास्ति तेन त्वां हन्मि शोभने ।। सूत उवाच ।। या³मपूजाप्रभावेण जागरोपोषणेन च ।। ४२ ।। चतुर्थांशेन पापानां विमुक्तो लुब्धकस्तदा ।। लुब्धकस्तु ततो दृष्ट्वा मृगीं मानुषभाषिणीम् ।। ४३ ।। उवाच वचनं तां वै धर्मयुक्तमसंशयम् ।। लुब्धक उवाच ।। मया हि घातिता जीवा उत्तमाधममध्यमाः ।। ४४ ।। न श्रुता ईदृशी वाणी श्वापदानां कथञ्चन ।। कस्मिन् देशे त्वमुत्पन्ना कस्मात्स्थानादिहागता ।। ४५ ।। कथयस्व प्रयत्नेन परं कौतहलं हि मे ।। मृग्युवाच ।। शृणु त्वं लुब्धकश्रेष्ठ कथयामि तवाखिलम्

१ तित्तिरमित्यपि पाठः । २ जागर निंतायित्वेन्वयः । ३ जानेत्यपि पाठः ।

।। ४६ ।। आसं पूर्वमहं रम्भा स्वर्गे शक्रस्य चाप्सराः ।। अनन्तरूपलावण्या सौभाग्येनचगर्विता ।।४७।। सौभाग्यमदपुष्टाङ्गो दानवो बलगर्वितः ।। मयैव च वृतो भर्ता हिरण्याक्षो महासुरः ।। ४८ ।। तेन सार्धं मया भुक्तं चिरकालं यथेप्सितम् ।। एवं कालो गतो व्याध क्रीडन्त्या मेऽसुरेण च ।। ४९ ।। एकदा प्रेक्षितुं नृत्यं शङ्करस्य गताग्रतः।। यावद्गच्छाम्यहं तत्र तावन्मां शङ्करोऽब्रवीत् ।। ५० ।। क्व गता त्वं वरारोहे केन वा सङ्गता शुभे ।। किं वा सौभाग्यगर्वेण नायाता मम मन्दिरम् ।। ५१ ।। सत्यं कथय शीघ्रं त्वं नो वा शापं ददामि ते ।। शापभीत्या मया तत्र सत्यमुक्तं शिवाग्रतः ।। ५२ ।। शृणुदेव प्रवक्ष्यामि शापानुग्रहकारक ।। ममास्ति भर्ता विश्वेश दानवेन्द्रो महाबलः ।। ५३ ।। तेन सार्धं मया देव क्रीडितं निजमन्दिरे।। तेनाहं नागमं शीघ्रं सृष्टिसंहारकारक ।। ५४ ।। रुद्रस्तद्वचनं श्रुत्वा सकोपो वाक्यमब्रवीत् ।। मृगः कामातुरो नित्यं हिरण्याक्षो भविष्यति ।। ५५ ।। त्वं मृगी तस्य भार्या वै भविष्यसि न संशयः ।। त्यक्त्वा स्वर्गं तथा देवान्दानवं भोक्तुमिच्छसि ।। ५६ ।। तस्मात्त्वं निर्जले देशे तृणाहारा भविष्यसि ।। द्वादशाब्दानि भो भद्रे भविता शाप एष ते ।। ५७ ।। परस्परस्य शोकेन शापान्तोऽपि भविष्यति ।। अनुग्रहः पुनस्त्वेष शङ्करेण कृतः स्वयम् ।। ५८ ।। कदाचिद्धि व्याधवरो मम सान्निध्यमाश्रितः ।। बाणाग्रे तस्य संप्राप्ता पूर्वजन्म स्मरिष्यसि ।। ५९ ।। शङ्करस्य तदा रूपं दृष्ट्वा मोक्षमवाप्स्यसि ।। शङ्करो न मया दृष्टो वसन्त्यस्मिन्महावने ।। ६० ।। तेन दुःखमनुप्राप्ता मांसमेदोविवर्जिता ।। गर्भाक्रान्ता विशेषेण न वध्या चेति निश्चितम् ।। ६१ ।। सकुटुम्बस्य ते नूनं भोजनं न भविष्यति ।। आयास्यति मृगी त्वन्या मार्गेणानेन लुब्धक ।।६२।। पीना यौवनसंपन्ना बहुमांसा मदोद्धता ।। भोजनं सकुटुम्बस्य तया सद्यो भविष्यति ।। ६३ ।। अथवान्यो मृगो व्याध पानार्थं तु जलाशये ।। आगमिष्यति प्रत्यूषे क्षुधार्तस्य न संशयः ।। ६४ ।। गर्भं त्यक्त्वा पुनः प्रातर्बालान्सन्दिश्य बन्धुषु ।। शपथैरागमिष्यामि संदिश्य च सखीजनम् ।। ६५ ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः ।। क्षणमेकं तथा स्थित्वा व्याधो वचनमब्रवीत् ।।६६।। नागमिष्यति चेदन्यो जीव स्त्वमपि गच्छसि।। क्षुधया पीडितोऽहं वै कुटुम्बं च विशेषतः ।। ६७ ।। प्रातस्त्वया मम गृहमागन्तव्यं यथायथम् ।। शपथैश्च व्रज त्वं हि यथा मे प्रत्ययो भवेत् ।। ६८ ।। पृथिवी वायुरादित्यः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः ।। पालनीयं ततः सत्यं लोकद्वयमभीप्सुभिः ।। ६९ ।। तस्मात्सत्येन गन्तव्यं भवत्या स्वगृहं प्रति ।। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गर्भार्ता सा मृगी तदा ।। ७० ।। चक्रे सत्यप्रतिज्ञां वै व्याधस्याग्रे पुनः पुनः ।। मृग्युवाच ।। द्विजो

१ यत इति शेषः । २ तव बाणस्य गोचरे इत्यपि पाठः । ३ मृग इत्यपि पाठः ।

भूत्वा तु यो व्याध वेदभ्रष्टोऽभिजायते ।। ७१ ।। स्वाध्यायसंध्यारहितः सत्यशौचविवर्जितः ।। अविक्रेयाणां विक्रेता अयाज्यानां च याजकः ।। ७२ ।। 'तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमं पुनः ।। दुष्टबुद्धौ तु यत्पापं धूर्ते वा ग्रामकण्टके ।। ।। ७३ ।। नास्तिके च विशीले च परदारते तथा ।। वेदविक्रयणे चैव शवसूतकभोजने ।।७४।। तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमं पुनः ।। मृतशय्याप्रतिग्राहे माता पित्रोरपालके ।। ७५ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि तेऽन्तिकम् ।। दानं दातुं प्रवृत्तस्य योऽन्तरायकरो नरः ।। ७६ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं हरेत्तु यः ।।७७।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। दीपं दीपेन यः कुर्यात्पादं पादेन धावयेत् ।। ७८ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। भर्तारं स्वामिनं मित्रमात्मानं बालमेव च ।। ७९ ।। गां विप्रं च गुरुं नारीं यो मारयति दुर्मतिः ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। ८० ।। अवैष्णवेचयत्पापं यत्पापं दाम्भिके जने ।। अजितेन्द्रियेषु यत्पापं परदोषानुकीर्तने ।। ८१ ।। कृतघ्ने च कदर्ये च परदाररते तथा ।। सदाचारविहीने च परपीडाप्रदायके ।। ८२ ।। परपैशुन्ययुक्ते च कन्याविक्रयकारके ।। हैतुके बकवृत्तौ च कूटसाक्ष्यप्रदे तथा ।। ८३ ।। एतेषां पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ।। यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधे तथा ।। ८४ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। यत्पापं लुब्धकानां च यत्पापं गरदायिनाम् ।। ८५ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। द्विभार्यः पुरुषो यस्तु समदृष्टया न पश्यति ।। ८६ ।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। सकृद्दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीयाय प्रयच्छति ।। ८७ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। कथायां कथ्यमानायामन्तरं कुरुते नरः ।।८८।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। पतिनिन्दापरो नित्यं वेदनिन्दापरो हि यः ।। ८९ ।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। यस्य संग्रहणी भार्या ब्राह्मणी च विशेषतः ।। ९० ।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। प्रेतश्राद्धे तु यो भुङक्ते पतिते बहुयाजके ।। ९१ ।। असच्छास्त्रार्थनिपुणज्ञपुराणार्थविवर्जिते ।। मूर्खे पाखण्डनिरते क्रयविक्रयिके द्वये ।। ९२ ।। एतेषां पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ।। एकाकी मिष्टमश्नाति भार्यापुत्रविवर्जितः ।। ९३ ।। आत्मजां गुणसंपन्नां समाने सदृशे वरे ।। न प्रयच्छति यः कन्यां नरो वै ज्ञानदुर्बलः ।। ९४ ।। तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। मृगीवाक्यं ततः श्रुत्वा लुब्धको हृष्टमानसः ।। ९५ ।। संहृत्य बाणं संधानान्मुमोच हरिणीं तदा ।।

१ तस्य यत्पापमिति शेषः । एवमेवाग्रेऽपि।

तस्या मुक्तिप्रभावेण लिङ्गस्यापि प्रपूजनात् ।। ९६ ।। मुक्तोऽसौ पातकैः सर्वै स्तत्क्षणान्नात्र संशयः ।। द्वितीये प्रहरे प्राप्ते मध्यरात्रे वरानने ।। ९७ ।। तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ता कामार्ता मृगसुन्दरी ।। संत्रस्ता भयसंविग्ना पतिमन्वेष्यतीमुहुः ।। ९८ ।। जालिमध्ये स्थितेनाथ दृष्टा सा लुब्धकेन तु ।। पुनर्वृक्षस्य पत्राणि त्रोटयित्वा करेण तु ।। ९९ ।। क्षिप्तानि दक्षिणे भागे लिङ्गोपरिदिदृक्षया ।। तस्या वधार्थं तेनाथो बाणो धनुषि सन्धितः ।। १०० ।। तिष्ठंस्तत्रैकचित्तेन कुटुम्बार्थं जिघांसया ।। निरीक्ष्य लुब्धको यावद्बाणं तस्यां विमुञ्चति ।। १ ।। तावन्मृग्या स सन्दृष्टो दृष्ट्वा तं विह्वलाभवत् ।। अद्यैव भगिनी मे हि लुब्धकेन विनाशिता ।। २ ।। मम किं जीवितव्येन तस्या दुःखेन पीडिता । वरो मृत्युर्न शोको वै दृष्ट्वा व्याधं विशेषतः ।। ३ ।। एवं सञ्चिन्त्य हरिणी लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ।। हरिण्युवाच ।। धनुर्धरवर व्याध सर्वजीवनिकृन्तन ।। ४ ।। देहि मे वचनं चैकं पश्चात्त्वं मां निपातय ।। आयाता हरिणी चैका मार्गेणानेन लुब्धक ।। ५ ।। समायाताथ वा नैव सत्यं कथय सुव्रत ।। तच्छ्रुत्वा लुब्धकस्तत्र विस्मितः क्षणमैक्षत ।।६।। तस्यास्तु यादृशी वाणी अस्याश्चैव तु तादृशी ।। सैवेयमागता नूनं प्रतिज्ञापालनाय च ।। ७ ।। अथवान्या समायाता या तया कथिता पुरा ।। एवं सञ्चिन्त्य मनसा लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ।। ८ ।। लुब्धक उवाच ।। शृणु त्वं मृगि मे वाक्यं गता सा निजमन्दिरम् ।। त्वां दत्त्वा मम नूनं हि सा भवेत्सत्यवागपि ।। ९ ।। अहोरात्रं कृतं कष्टं कुटुम्बार्थे मया मृगि ।। अधुना त्वां हनिष्यामि देवतास्मरणं कुरु ।। ११०।। व्याधोक्तं वचनं श्रुत्वा हरिणी दुःखिता भृशम् ।। व्याधं प्राह रुदित्वा वै मा मां व्याध निपातय ।। ११ ।। तेजो बलं तथा सर्वं निर्दग्धं विरहाग्निना ।। अहं च दुर्बला नूनं मेदो मांसविवर्जिता ।। १२ ।। केवलं पापभाक् त्वं हि मम प्राणविमोचकः ।। अहं प्राणैर्वियुज्यामि भोजनं ते न जायते ।। १३ ।। बलवांश्च महातेजा मेदोमांससमन्वितः ।। अन्यश्च पीनगौराङ्गो मृगो ह्यत्रागमिष्यति ।। १४ ।। तं हत्वा ते कुटुम्बस्य तृप्तिर्नूनं भविष्यति ।। अथवा त्वद्गृहं प्रातरागमिष्यामि लुब्धक ।। तयोक्तं लुब्धकः श्रुत्वा किं करोमीत्यचिन्तयत् ।।सञ्चिन्त्य लुब्धकः प्राह मृगीं शोकातुरां कृशाम् ।। १५ ।। सत्यं वद महाभागे प्रत्ययो मे यथा भवेत् तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरिणी दुःखकर्शिता ।। १६ ।। चक्रे सत्यप्रतिज्ञां तु व्याधस्याग्रे पुनः पुनः ।। मृग्युवाच ।। क्षत्रियस्तु रणं दृष्ट्वा तस्माद्यो विनिवर्तते ।। १७ ।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। भेदयन्ति तडागानि वापीश्चाथ गवामपि ।। १८ ।। मार्गं स्थानं च ये घ्नन्ति सर्वसत्त्वभयङ्कराः ।। तेषां वै पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ।।१९।। एतच्छ्रुत्वा तु व्याधेन सापि मुक्ता मृगी

तदा ।। जलं पीत्वा तु बहुशो गता सद्यो यथागतम् ।। १२० ।। जालिमध्ये स्थितस्यास्य द्वितीयः प्रहरो गतः ।। त्रोटित्वा बिल्वपत्राणि पुनर्देवे न्ययोजयत् ।। २१ ।। पीडितोऽतीव शीतेन क्षुधया गृहचिन्तया ।। शिवशिवेति जल्पन्वै न निद्रामुपलब्धवान् ।। २२ ।। कृतं शिवार्चनं तेन तृतीये प्रहरेऽपि च ।। वीक्षते स्म दिशः सर्वा जीवनार्थं वरानने ।। २३ ।। लुब्धकेनाथ दृष्टोऽसौ हरिणश्चञ्चलेक्षणः।। विलोकयन्दिशः सर्वा मार्गमाणो मृगीपदम् ।। २४ ।। सौभाग्यबलदर्पाढ्यो मदनोन्मत्तपीवरः ।। तं दृष्ट्वा बाणमाकृष्य ह्याकर्णं तुष्टमानसः ।। २५ ।। बाणं मुञ्चति यावद्वै तावदृष्टो मृगेण तु ।। कालरूपं तु तं दृष्ट्वा मृगश्चिन्तितवान् भृशम् ।। २६ ।। निश्चितं भविता मृत्युर्गोचरेऽस्य गतो यतः ।। भार्या प्राणसमा मेऽद्य व्याधेनेह निपातिता ।। २७ ।। तया विरहितस्याद्य नूनं मृत्युर्भविष्यति ।। हा हा कालकृतं पापं यद्भार्यादुःखमागता ।। २८ ।। भार्यया न समं सौख्यं गृहेपि च वनेपि च ।। तया विना न धर्मोस्ति नार्थकामौ विशेषतः ।। २९ ।। वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद्गृहम् ।। प्रासादोऽपि तया हीनः कान्तारादतिरिच्यते ।। ।।१३०।। धर्मकामार्थकार्येषु भार्या पुंसः सहायिनी ।। विदेशे च गतस्यापि सैव विश्वासकारिणी ।। ३१ ।। नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमं सुखम् ।। नास्ति भार्यासमं लोके नरस्यार्तस्य भेषजम् ।। ३२ ।। यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी ।। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।। ३३ ।। एका प्राणसमा मेऽभूद्द्वितीया प्राणदा मम ।। भार्याविरहितस्याद्य जीवितं मम निष्फलम् ।। ३४ ।। इत्येवं चिन्तयित्वा तु लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ।। मृग उवाच ।। शृणु व्याध नरश्रेष्ठ ह्यामिषाहारभोजन ।। ३५ ।। यत्ते पृच्छाम्यहं वीर तत्सत्यं वद मे प्रभो ।। आगतं हरिणीयुग्मं केन मार्गेण तद्गतम् ।। ३६ ।। त्वया विनाशितं वाथ सत्यं कथय मेऽधुना ।। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धको विस्मयं गतः ।। ३७।। असावपि न सामान्यो देवता काप्यनुत्तम ।। उवाच लुब्धकः सद्यस्तस्याग्रे वाक्यमुत्तमम् ।। ३८ ।।लुब्धक उवाच ।। ते गतेनेन मार्गेण सत्यं कृत्वा ममाग्रतः।। ताभ्यां दत्तोऽसि भुक्त्यर्थं मम त्वमधुनाऽनघ।। ३९ ।। संप्रति त्वं हनिष्यामि नैव मोक्ष्यामि कर्हिचित् ।। व्याधोक्तं हि वचः श्रुत्वा हरिणः प्राह सत्वरम् ।। १४० ।। मृग उवाच ।। तत्सत्यं कीदृशं ताभ्यां वाक्यमुक्तं तवाग्रतः ।। येन ते प्रत्ययो जातो मुक्तं तद्धरिणीद्वयम् ।।४१ ।। ते गते केन मार्गेण ये मुक्ते व्याध तेऽधुना ।। व्याध उवाच ।। ते गतेऽनेन मार्गेण स्वमाश्रमपदं प्रति ।। ४२ ।। व्याधेन कथितास्ताभ्यां शपथा ये कृतास्तदा ।। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिणो हृष्टमानसः ।।४३ ।। व्याधं प्राह ततः शीघ्रं वचनं धर्मसंहितम् ।। मृग उवाच ।। ताभ्यां व्याध यदुक्तं च

तत्करोमि न चान्यथा ।। ४४ ।। प्रभाते त्वद्गृहं नूनमागमिष्यामि निश्चतम् ।। भार्या ऋतुमती मेऽद्य कामार्ताप्यधुना भृशम् ।। ४५ ।। गत्वा गृहेऽथ भुक्त्वा तामापृच्छ्य च सुहृज्जनान् ।। शपथैरागमिष्यामि गृहं ते नात्र संशयः ।। ४६ ।। न मद्देहेऽस्त्य सुङ्मांसं यत्त्वं भोक्तुमभीप्ससि ।। तद्वृथा मरणं मेऽस्माद्यदि मां त्वं हनिष्यसि ।। ४७ ।। तन्मृगस्य वचः श्रुत्वा व्याधो वचनमब्रवीत् ।। लुब्धक उवाच ।। असत्यं भाषसे धूर्त प्रतारयसि मां वृथा ।। ४८ ।। ज्ञातो मृत्युः स्फुटं यत्र तत्र गच्छति कोऽल्पधीः ।। व्याधस्य वचनं श्रुत्वा हरिणो वाक्यमब्रवीत् ।। ४९ ।। शपथै-रागमिष्यामि यथा ते प्रत्ययो भवेत् ।। व्याध उवाच ।। मृग त्वं शपथान्ब्रूहि विश्वासो मे भवेद्यथा ।। १५ ।। यथा हि प्रेषयामि त्वां स्वगृहं प्रति कामुक ।। मृग उवाच ।। भर्तारं वञ्चयेद्या स्त्री स्वामिनं वञ्चयेन्नरः ।।५१ ।। मित्रं च वञ्चयेद्यस्तु गुरुद्रोहं करोति यः ।। विषमं तु[1] रसं दद्यात्प्रेमभेदं करोति यः ।। ५२ ।। भेदयेद्यस्तडागानि प्रासादं पातयेत्तथा ।। प्रवासशीलो यो विप्रः क्रयविक्रयकारकः ।। ५३ ।। सन्ध्या-स्नानविहीनश्च वेदशास्त्रविवर्जितः ।। मद्यपाः स्त्रीषु रक्ता ये परनिन्दारताश्च ये ।। ५४ ।। परस्त्री सेवका विप्राः परपैशून्यसूचकाः ।। शूद्रान्नभोजिनो ये च भार्यापुत्रांस्त्यजन्ति ये ।। ५५ ।। वेदनिन्दापरा ये च वेदशास्त्रार्थनिन्दकाः ।। तेषां वै पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ।। ५६ ।। भार्या संग्रहणी यस्य व्रतशौंच-विवर्जिता ।। सर्वाशी सर्वविक्रेता द्विजानामपि निन्दकः ।। ५७ ।। त्रिषु वर्णेषु शुश्रूषां यः शूद्रो न करोति वै ।। विप्रवाक्यं परित्यज्य पाखण्डाभिरतः सदा ।। ५८ ।। ब्रह्मचर्यरताः शूद्रा ये च पाखण्डसंश्रिताः ।। तेषां वै पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ।। ५९ ।। तिलांस्तैलं घृतं क्षौद्रं लवणं सगुडं तथा ।। लोहं लाक्षादिकं सर्वं रङ्गान्नानाविधानपि ।। १६० ।। मद्यं मांसं विषं दुग्धं नीलं च वृषभं तथा ।। मीनं क्षीरं सर्पकूटं चित्रातकफलानि च ।। ६१ ।। विक्रीणीते द्विजो यस्तु तस्य पापं भवेन्मम ।। आदित्यं विष्णुमीशानं गणाध्यक्षं तु पार्वतीम् ।। ६२ ।। एतांस्त्यक्त्वा गृहे मूढोयोऽन्यं पूजयते नरः ।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। ६३।। यो गां स्पृशति पादेन ह्युदितेऽर्के च सुप्यति ।। एकाकी मिष्टमश्नाति तस्य पापस्य भागहम् ।। ६४ ।। मातापित्रोरपोष्टा च क्रिया[2]मुद्दिश्य पाचकः ।। कन्याशुल्को-पजीवी च देवब्राह्मणनिन्दकः ।। ६५ ।। गोग्रासं हन्तकारं च अतिथीनां च पूजनम् ।। ये न कुर्वन्ति गृहिणस्तेषां पापं भवेन्मम ।। ६६ ।। वृन्ताकं च पटोलं च कलिङ्गं तुम्बिकाफलम् ।। मूलकं लशुनं कन्दं कुसुम्भं कालशाककम् ।। ६७ ।। एतानि भक्षयेद्यस्तु नरो वै ज्ञानदुर्बलः ।। न यस्य जायते शुद्धिश्चान्द्रायणशतैरपि ।।६८।।

१ एकपंक्तौ भोजने इत्यर्थः । २ आत्मोद्देशेनैव भुजिनियामित्यर्थः ।

एतस्य पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ।। यः पठेत्स्वरहीनं च लक्षणेन विवर्जितम् ।। ६९ ।। रथ्यां पर्यटमानस्तु वेदानुद्गिरयेत्तु यः ।। विप्रस्य पठतो यस्य शृणोति यदि चान्त्यजः ।। १७० ।। वेदोपजीवको विप्रोऽतिलोभाच्छूद्रभोजनः ।। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम्।। ७१ ।। शूद्रान्नेषु च ये सक्ताः शूद्रसंपर्कदूषिताः ।। तेषां पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। ७२ ।। लेखकश्चित्रकर्ता च वैद्यो नक्षत्रसूचकः ।। कूटकर्ता द्विजो यश्च तस्य पापस्य भागहम् ।। ७३ ।। कूटसाक्षी मृषावादी परद्रव्यस्य तस्करः ।। परदाराभिगामी च तथा विश्वासघातकः ।। ७४ ।। द्रव्ये द्रव्यं विनिक्षिप्य पानकूटं समाश्रितः ।। वेश्यारताः सदा ये च दानदातुर्निवारकाः ।। ७५ ।। भर्तारमर्थहीनं च कुरूपं व्याधिपीडितम् ।। या न पूजयते नारी रूपयौवनगर्विता ।। ७६ ।। एकादशीं तथा माघे कृष्णे शिवचतुर्दशीम्।। पूर्वविद्धां प्रकुर्वन्ति तेषां पापस्य भागहम् ।। ७७ ।। अथ किं बहुनोक्तेन भो लुब्धक तवाग्रतः ।। यदि नायामि ते गेहं ममासत्यं भवेत्तदा ।। ७८ ।। तेन वाक्येन संतुष्टो व्याधो वै वीतकल्मषः ।। संहृत्य धनुषो बाणं मृगो मुक्तो गृहं प्रति ।। ७९ ।। जलं पीत्वा तु हरिणः प्रविष्टो गहनं प्रति ।। गतोऽसौ तेन मार्गेण गतं येन मृगीद्वयम् ।। १८० ।। लुब्धकेन तदा तत्र जालिमध्ये स्थितेन हि ।। प्रत्यूषे बिल्वपत्राणि त्रोटयित्वोज्झितानि वै ।। ८१ ।। शिवशिवेति जल्पन्वै ह्याशु यातो निजाश्रमम् ।। अथोदिते सूर्यबिम्बे अकामाज्जागरे कृते ।। ८२ ।। पापान्मुक्तोप्यसौ सद्यः शिवपूजाप्रभावतः।। यावद्दिशो निरीक्षेत निराशो भोजनं प्रति।।८३।। तावच्छिशुवृता चान्या मृगी तत्र समागता ।। दृष्ट्वा मृगीं तदा व्याधो बाणं धनुषि योजयन् ।। ८४ ।। यावन्मुञ्चत्यसौ बाणं तावत्प्रोवाच तं मृगी ।। मा बाणान्मुञ्च धर्मात्मन्धर्मं मा मुञ्च सुव्रत ।। ८५ ।। अहं न वध्या सर्वेषामिति शास्त्रविनिश्चयः ।। शयानो मैथुनासक्तः स्तनपो व्याधिपीडितः ।। ८६ ।। न हन्तव्यो मृगो राज्ञा मृगी च शिशुना वृता ।। अथवा धर्ममुत्सृज्य मां हनिष्यसि मानद ।।८७ ।। बालकं स्वगृहे मुक्त्वा सखीनां च निवेद्य वै ।। शपथैरागमिष्यामि शृणु व्याध वचो मम ।। ८८।। या स्वभर्तारमुत्सृज्य परे पुंसि रता सदा ।। तस्याः पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।। ८९ ।। मद्यं मांसं विषं दुग्धं नीलीं कुम्भफलानि च ।। एतानि विक्रयेद्यस्तु नरो मोहसमन्वितः ।। १९० ।। तेषां पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ।।ये कृताः शपथाः पूर्वं तवाग्रे व्याधसत्तम ।। ९१ ।। ते सर्वे मम सन्त्यत्र यदि नायाम्यहं पुनः ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागमत् ।। ९२ ।। ततो व्याधेन सा युक्ता गता वै निजमन्दिरम् ।। व्याधोऽपि तत्स्थलं त्यक्त्वा जगाम

मुक्त इत्यस्य तेनेति गृहं प्रतीत्यस्य गमनायेति च शेषः ।

स्वगृहं प्रति ।। ९३ ।। सर्वेषां वचनं ध्यायन्मृगाणां सत्यवादिनाम् ।। एतेषां घातको नित्यमहं यास्यामि कां गतिम् ।। ९४ ।। एवं चिन्तयता गेहे दृष्टाः क्षुधितबालकाः।। नान्नं मांसं गृहे तस्य भोजनं येन जायते ।। ९५ ।। निरामिषं तु तं दृष्ट्वा निराशास्तेऽभवंस्तदा ।। व्याधोपि च तदा तत्र तेषां वाक्यानि संस्मरन् ।। ९६ ।। न भोजनं न निद्रां च लभते विस्मयान्वितः ।। आगमिष्यन्ति ते नूनं शपथैरतियन्त्रिताः ।। ।। ९७ ।। न तानहं वधिष्यामि सतां व्रतमनुस्मरन् ।। लुब्धकेन तदा मुक्तो हरिणः शपथैः कृतैः ।। ९८ ।। स्वमाश्रमं तु संप्राप्तो यत्र तद्धरिणीद्वयम् ।। सद्यः प्रसूता सा चैका द्वितीया रतिलालसा ।। ९९ ।। तृतीयापि समायाता बालकैर्बहुभिर्वृता ।। सर्वाः समेता एकत्र मरणे कृतनिश्चयाः ।। २०० ।। परस्परं प्रजल्पन्त्यो लुब्धकस्य विचेष्टितम् ।। सार्तवां हरिणीं भुक्त्वा रूपाढ्यां रतिलालसाम् ।। १ ।। कृतकृत्योऽभवत्ताभिस्ततो वाक्यमथाब्रवीत् ।। युष्माभिरिह संस्थेयं कर्तव्यं प्राणरक्षणम् ।। २ ।। व्याघ्राद्द्विपाल्लुब्धकेभ्यो बालकानां प्रयत्नतः ।। अहमत्र समायातः शपथैरतियन्त्रितः ।। ३ ।। अस्या ऋतुप्रदानाय पुनः सन्तानहेतवे ।। ऋतुमतीं तु यो भार्यां न भुङक्ते मोहसंवृतः ।। ४ ।। भ्रूणहा संतु विज्ञेयस्तस्य जन्म निरकर्थम्।। सन्तानात् स्वर्गमाप्नोति इह कीर्ति च शाश्वतीम् ।। ५ ।। सन्ततिर्यत्नतः पाल्या स्वर्गसौख्यप्रदायिका ।। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इह लोके परत्र च ।। ६ ।। येन केनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयेत्पुमान् ।। मया च तत्र गन्तव्यं यत्र व्याधस्य मन्दिरम् ।। ७ ।। सत्यं तु पालनीयं स्यात्सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।। एतच्छ्रुत्वा तु ता नार्यो वाक्यमूचुः सुदुःखिताः ।। ८ ।। वयमप्यागमिष्यामस्त्वया सार्धं मृगोत्तम ।। तथा ते विप्रियं कान्त न स्मरामः कदाचन ।। ९ ।। पुष्पितेषु वनान्तेषु नदीनां सङ्गमेषु च ।। कन्दरेषु च शैलानां भवता रमिता वयम् ।। २१०।। न कार्यमप्यतः कान्त जीवितेन त्वया विना ।। नारीणां पतिहीनानां जीवितैः किं प्रयोजनम् ।। ११ ।। मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।। अमितस्य हिदातारं भर्तारं का न पूजयेत ।। १२ ।। अपि द्रव्ययुता नारी बहुपुत्रसुहृद्वृता ।। सा शोच्या बन्धुवर्गस्य पतिहीन कुलाङ्गना ।। १३ ।। वैधव्यसदृशं दुःखं स्त्रीणामन्यन्न विद्यते ।। धन्यास्ता योषितो यास्तु म्रियन्ते भर्तुरग्रतः ।। १४ ।। नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो भ्रमते रथः ।। नापतिः सुखमाप्नोति नारी पुत्रशतैर्वृता ।। १५ ।। नास्ति भर्तृसमो धर्मो नास्ति धर्मसमः सुहृत् ।। नास्ति भर्तृसमो नाथः स्त्रीणां भर्ता परा गतिः ।। १६ ।। एवं विलिप्य ताः सर्वा मरणे कृतनिश्चयाः ।। बालकैस्तैः समायुक्ता भर्तृशोकेन दुःखिताः ।। १७ ।। मृगस्तासां वचः श्रुत्वा हृदि चिन्तापरोऽभवत् ।। गन्तव्य

किं न गन्तव्यं मया व्याधस्य मन्दिरम् ।। १८।। एकतस्तु कृतं र'क्षन्कुटुम्बस्य क्षयो भवेत् ।। तदन्तिकं न चेद्यामि मम सत्यं क्षयं व्रजेत् ।। १९ ।। वरं पुत्रस्य मरणं भार्याया आत्मनस्तथा ।। सत्ये त्यक्ते नरो नित्यमाकल्पं रौरवं व्रजेत् ।। २२० ।। तस्मात्सत्यं पालनीयं नरैः श्रेयोर्थिभिः सदा ।। सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।। २१ ।। सत्येन वायवो वान्ति सत्येन वर्धते परम् ।। एवं सञ्चिन्त्य हरिणी धर्मान् हृदि मनोरमान् ।। २२ ।। ताभिः सहैव शनकैः क्षणात्तस्याश्रमं ययौ ।। तस्मिन्सरसि स स्नात्वा कर्मन्यासं चकार ह ।। २३ ।। तल्लिङ्गं प्रणिपत्याशु हृदि ध्यायन्सदाशिवम् ।। भक्ष्यं पानं परित्यज्य मैथुनं भोगमेव च ।। २४ ।। कामं क्रोधं तथा लोभं मायां मोक्षविनाशिनीम् ।। व'न्दयित्वा तु तं देवं लुब्धकाभिमुखं ययौ ।। २५ ।। तस्य भार्याश्च पुत्राश्च मरणे कृतनिश्चयाः ।। अनशनं व्रतं गृह्य पृष्ठलग्नाः समाययुः ।। २६ ।। भार्यापुत्रैः परिवृतो मृगस्तं देशमागमत् ।। क्षुधितैर्बालकैर्युक्तो लुब्धको यत्र तिष्ठति ।। २७ ।। मृगस्तं देशमागत्य कुटुम्बेन समन्वितः ।। पालयन्सर्ववाक्यानि' लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ।। २८ ।। मृग उवाच ।। हन्या मां प्रथमं व्याध पश्चाद्भार्याः क्रमेण तु ।। बालकानि ततः पश्चाद्धन्यतां मा विलम्बय ।। २९ ।। लुब्धकैस्तु मृगा भक्ष्या नास्ति दोषः कदाचन ।। वयं यास्याम स्वर्लोकं सत्यपूता न संशयः ।। २३० ।। तवापि सकुटुम्बस्य प्राणपुष्टिर्भविष्यति ।। एतच्छ्रुत्वा तु वचनं मृगोक्तं लुब्धकस्तदा।। आत्मानं निन्दयित्वा तु हरिणं वाक्यमब्रवीत् ।। ३१ ।। व्याध उवाच ।। अहो मृग महासत्त्व गच्छ गच्छ स्वमाश्रमम् ।। आमिषेण न मे कार्यं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ।। ३२ ।। जीवानां घातने पापं बन्धने तर्जने तथा ।। नैव पापं करिष्यामि कुटुम्बार्थे कदाचन ।। ३३ ।। त्वं गुरुर्मम धर्माणामुपदेष्टामृगोत्तम ।। गच्छ गच्छ मृगश्रेष्ठ कुटुम्बेन समन्वितः ।। ३४ ।। मया त्यक्तानि शस्त्राणि सत्यधर्मः समाश्रितः ।। तद्व्याधवचनं श्रुत्वा हरिणः प्राह तं पुनः ।। ३५ ।। मृग उवाच ।। कर्मन्यासमहं कृत्वा त्वत्सकाशमिहागतः ।। हन्यतां हन्यतां शीघ्र न ते पापं भविष्यति ।। ३६ ।। मया दत्ता पुरा वाक्यं तया बद्धो न याम्यहम् ।। मया मम कुटुम्बेन त्यक्तो लोभं स्वजीवने।।३७।। एतच्छ्रुत्वा तु वचनं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ।। लुब्धक उवाच ।। त्वं बन्धुस्त्वं गुरुस्त्राता त्वं मे माता पिता सुहृत् ।। ३८ मया त्यक्तानि शस्त्राणि त्यक्तं मायादिकं बलम् ।। कस्य भार्या सुताः कस्य कुटुम्बं कस्य तन्मृग ।। ३९ ।। तैः स्वकर्म च भोक्तव्यं मृग गच्छ यथासुखम् ।। इत्युक्त्वा स तदा तूर्णं बभञ्ज सशरं धनुः ।। २४० ।। मृगं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य क्षमापयत् ।। एतस्मिन्नन्तरे नेदुर्देवदुन्दुभयो दिवि

१ गमिष्यामि चेदिति शेषः । २ खाद्यपेयादिकं चैवेत्यपि पाठः । ३ पूर्वोक्तानीत्यर्थः

।। ४१ ।। आकाशात्पुष्पवृष्टिस्तु पपात सुमनोहरा ।। तदा दूतः समायातो विमानं गृह्य शोभनम् ।। ४२ ।। देवदूत उवाच ।। अहो व्याध महासत्त्व सर्वसत्त्वक्षयङ्कर ।। विमानमिदमारुह्य सदेहः स्वर्गमाविश ।। ४३ ।। शिवरात्रिप्रभावेण पातकं ते क्षयं गतम् ।। उपवासस्तु सञ्जातो निशि जागरणं कृतम् ।। ४४ ।। यामे यामे कृता पूजा अज्ञानेन शिवस्य च ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छ त्वं रुद्रमन्दिरम् ।। ४५ ।। विमानं च समारुह्य सद्यः शिवपदं व्रज ।। मृगराज महासत्व भार्यापुत्रसमन्वितः ।। ४६ ।। भार्यात्रितयसंयुक्तो नक्षत्रपदमाप्नुहि ।। तव नाम्ना तुतद्वृक्षं लोके ख्यातं भविष्यति ।।४७।। एत च्छ्रुत्वा तु वचनं लुब्धकोऽथ मृगस्तथा ।। विमानानि समारुह्य नाक्षत्रं पदमागताः ।। ४८ ।। हरिणीद्वयमन्वेनं पृष्ठतो मृगमेव च।। तारात्रितयसंयुक्तं मृगशीर्षं तदुच्यते।।४९।।बालक द्वितयं तृतीया पृष्ठतो मृगी ।। पृष्ठतस्तत्र संप्राप्ता मृगशीर्षस्य सन्निधौ ।। २५० ।। मृगराड् दृश्यतेऽद्यापि ऋक्षं व्योमगमुत्तमम् ।। उपवासं करिष्यन्ति जागरेण समन्वितम् ।। ५१ ।। यथोक्तशास्त्रमार्गेण तेषां मोक्षो न संशयः ।। शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं पापक्षयावहम् ।। यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।।५२ ।। अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।। प्राप्नोति तत्फलं सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।। ।। २५२।। इति श्रीलिङ्गपुरा० उमाम० संवादे शिवरात्रिव्रतकथा ।। अथोद्यापनम् स्कन्द उवाच ।। व्रतस्योद्यापनं कर्म कथं कार्यं च मानवैः ।। को विधिः कानि द्रव्याणि कथयस्व मम प्रभो ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु षण्मुख यत्नेन लोकानां हितकाम्यया ।। उद्यापनविधिं चैव कथयामि तवाग्रतः ।। यदा सञ्जायते चित्तं भक्तिश्रद्धासमन्वितम् ।। स एव व्रतकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ।। चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ।। एक भक्तं त्रयोदश्यो चतुर्दश्यामुपोषणम् ।। संपाद्य सर्वसम्भारान्मण्डपं तत्र कारयेत् ।। वस्त्रैः पुष्पैः समाच्छन्नपट्टवस्त्रैश्च शोभितम् ।। तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिङ्गतोभद्रमण्डलम् ।। अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् ।। शोभोपशोभासंयुक्तो दीपैः सर्वत्र सोज्ज्वलम् ।। अनुज्ञातश्च तैर्विप्रैः शिवपूजां समारभेत् ।। रुद्रनाम्ना नमोऽन्तेन ब्राह्मणानपि पूजयेत् ।। तण्डुलैस्तु प्रकर्तव्यं कैलासो द्रोणसंख्यया ।। अव्रणं सजलं कुम्भं तस्योपरि तु विन्यसेत् ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं मृन्मयं वा नवं दृढम् ।। वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य बिल्वपत्रैः प्रपूरयेत् ।। कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् ।। सौवर्णमथवा रौप्यं वृषभं निर्मितं शुभम् ।। रत्नालङ्कारणैर्हैमैरलंकृत्य प्रपूजयेत् ।। पलेन वा तदर्धे[1]न तदर्धार्धेन वा पुनः ।। उमामहेश्वरीं मूर्तिं पूजयेद्वृषभे स्थिताम् ।। सोमं च

१ निर्मितामिति शेषः ।

सगणं चैव पूजयित्वा महेश्वरम् ।। पुराणस्तौत्रपाठैश्च रात्रिशेषं नयेद्बुधः ।। ततः प्रभातसमये कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः ।। पुनः पूजां प्रकुर्वीत ततो होमं समाचरेत्।। तिलव्रीहियवैश्चैव पायसान्नेन भक्तितः ।। त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण नमः शम्भवे चेति च ।। गौरीमिमायमन्त्रेण शतमष्टोत्तरं पृथक् ।। होमं कुर्याच्च मतिमान्बिल्वपत्रैस्तु नामभिः ।। अजैकपादहिर्बुध्न्यो भवः शर्व उमापतिः ।। रुद्रः पशुपति : शम्भुर्वरदः शिव ईश्वरः ।। महादेवो हरो भीमो नामान्येवं चतुर्दश।। एतैर्होमः प्रकर्तव्यः कुम्भदानेऽपि तान् स्मरेत् ।। पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा कर्मशेषं समापयेत् ।। भोज्यं क्षमापयेद्देवमेभिर्नामपदैः पृथक् ।। प्रतिमां कुम्भसहितामाचार्यायाय निवेदयेत् ।। शम्भौ प्रसीद देवेश सर्वशोकेश्वर प्रभो ।। तव रूपप्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।। सवस्त्रां गां ततो दद्याद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।। अन्येभ्योऽपि यथाशक्त्या ब्राह्मणेभ्यो हि दक्षिणाम् ।। चतुर्दश प्रदातव्या विप्रेभ्यो जलपूरिताः ।। कुम्भा यज्ञोपवीतानि वस्त्राणि च पृथक् पृथक् ।। सुसूक्ष्माणि च वस्त्राणि शय्यां सोपस्करां तथा ।। द्वादशैव तु गा दद्यात्परिधानादिकं तथा ।। अथवा दक्षिणामेव प्रदद्यात्तुष्टये द्विजान् ।। व्रतमेतत्कृतं यन्मे पूर्णं वापूर्णमेव चं ।। सर्वं सम्पूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम ।। इति संप्रार्थ्य तान्विप्रान्प्रणम्य च पुनः पुनः ।। ततश्च स्वजनैः सार्धं स्वयं भुञ्जीत सुव्रती ।। इति श्रीस्कंदपुराणे कालोत्तरे शिवरात्रिव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।। इति चतुर्दशी व्रतानि समाप्तानि ।।

शिवरात्रिव्रत-अमान्तमानसे माघकृष्णा चतुर्दशी तथा पूर्णिमान्त मानसे फाल्गुनकृष्णा चतुर्दशीके दिन होता है । इसे अर्धरात्रव्यापिनी चौदशमें करना चाहिये । चाहें ऐसे पूर्वा हो चाहें परा हो जो अर्धरात्र व्यापिनी हो उसेही लेना चाहिये । यही नारदसंहितामें कहागया है कि, जिसदिनमाघ (फाल्गुन) कृष्णा चतुर्दशी आधीरातके साथ योग रखती हो उस दिन जो शिवरात्रव्रत करताहै वह अनन्त फलकोपाता है ।

(इसमें तीन पक्ष हैं एक तो चतुर्दशीको प्रदोषव्यापिनी दूसरा निशीथ व्यापिनी एवं तीसरी उभय व्यापिनी लेता है । इनमें व्रतराजकारका मुख्य पक्ष निशीथव्यापिनीको ही ग्रहण करनेका है यही निर्णयसिन्धु की टीका धर्मसिन्धुकाभी मत है । पर यदि दोनोंही दिन प्रदोषव्यापिनी मिले या दोनोंही दिन न मिले तब प्रदोषव्याप्ति वाली पराका ग्रहण करते हैं. इस तरह इनके मतमें पराके ग्रहण करनेमें प्रदोष व्याप्तिका उपयोग होता है । तब निशीथ व्याप्तिमें तो निशीथ है ही अव्याप्तिमें प्रदोषव्याप्ति ले रहे हैं । इससे यह व्यक्त होता है कि, निशीथव्याप्ति मुख्य तथा प्रदोषव्याप्ति गौण है । क्योंकि, ये निशीथ व्याप्तिके अभावमें प्रदोष व्याप्ति ले रहे हैं । यदि निशीथव्याप्ति होकर प्रदोषव्याप्ति हो तो व्याप्ति होगई अधिक उत्तम है पर इसके विसर नहीं हैं । हेमाद्रि दो दिन निशीथव्याप्तिमें पूर्वाग्रहण करते हैं इसका भी निराकरण होजाता है, कारण एसी पूर्वामें पहिले दिन प्रदोषव्याप्ति नहीं मिलसकती किन्तु परामें प्रदोष व्याप्ति अधिक मिलजाती है । पर दिनमें निशीथके एक अंशमें व्याप्ति हो तथा पहिले दिन पूरे निशीथमें व्याप्ति हो तो पूर्वा तथा पूर्व दिन निशीथके एक देश तथा दूसरे दिन पूरेमें व्याप्ति हो तो पराका ग्रहण होता है । ऐसा धर्मसिन्धुका मत है

किन्तु व्रतराजकार इस स्थितिमें भी यानी पूर्वाके दिन अधिक प्रदोषव्याप्ति रहतेभी पराकाही ग्रहण करते अपनी पुष्टिमें स्कन्दपुराणके प्रमाणभी दिये हैं.)

ईशानसंहितामेंभी लिखा हुआ है कि, माघ (फाल्गुन) कृष्ण चतुर्दशीके दिन आदिदेव महादेव महा रातमें कोटि सूर्य्यके समान प्रकाशवाले शिवलिंगरूपी हो गये थे । इस कारण शिवरात्रके व्रतकी तिथि उस समय व्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये माघकृष्ण अमान्तमासके हिसाबसे लिखा है जिसका पूर्णिमातक मास माननेवालोंके यहां फाल्गुनकृष्णा चतुर्दशी होजाता है इसलिये ही लिखा है । कि, फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीके दिन शिवपूजन होता है इसका व्रत करके विषयोंका त्याग करे सुमन्तुके इस वचनमें पौर्णिमान्तमासका भी हिसाब कहा है । महानिशा तो रातके बिचले पहरकी दो घटिका जो निशीथ (अर्धरात्र) कहा जाता है वही है । इसी कारण अर्धरात्रशब्दका भी वही अर्थ है यानी दूसरे पहरकी अन्त्यकी एक घडी तथा तीसरे पहरके आदिकी एक घडी ये दोनों मिलकर निशीथ कहलातीं हैं । यदि दो दिन निशीथव्यापिनी हो वा दोनोंही दिन न हो तो (वा एक देश वा कात्स्न्र्यसे ऐसी हो) तो पराही लीजायगी क्योंकि पराकीदी प्रदोष व्याप्ति मिलेगी, पूर्वाकी नहीं मिल सकती (पर हेमाद्रि यहां पूर्वाका ग्रहण करते हैं सो निर्मूल है) क्योंकि यदि दोनों निशाओंमें चतुर्दशी हो तो पूर्वाका त्याग होना चाहिये पर शुभ है। यदि आदित्यके अस्तमयकालमें जो चतुर्दशी हो तो उस रातको शिवरात्र कहते हैं वही सर्वश्रेष्ठ है । जब त्रयोदशी सूर्य्यास्तके लगभग रहे पीछे चतुर्दशी आजाय जागरणके लिये रातमें पूरी चतुर्दशी हो वह शिवरात्र है । शिवरात्रमें चतुर्दशी प्रदोषनि० ने व्यापिनी लेनी चाहिये. क्योंकि, रातमें जागरण होता है इसी कारण उसमें उपोषण होता है । (यहां उस प्रदोषको रातका उपलक्षण माना है) जो कि, अहोरात्रका व्रत एक तिथिमें गया है व्रतीको उभय योगिनी उस तिथिमें उस व्रतको करना चाहिये । यह कामिका शिवरात्रि है, ऐसा शिव रहस्यमें स्मृत्यन्तर आदिके वचनोंसे लिखा है । पहिले दिन अधिक व्याप्तिसे पहिलेही दिन शिवरात्रि हो, यह शंका नहीं करसकते यानी पहिले दिन अधिक व्याप्तिके कारण पूर्वाही ग्रहण हो ऐसी शंका नहीं करसकते क्योंकि, इसकोभी "बहुतोंका सधर्मीपना होगा" इस न्यायसे पर दिनके विधायक वाक्य बाधे नहीं जासकते, प्रत्युत निर्वचन किये हुए वचनोंसे इस पूर्वाके विधायक न्यायवचनकाही बाध होजायगा । पूर्वदिन निशीथ तथा पर दिन प्रदोषमें हो तो पूर्वाकाही ग्रहण होगा. क्योंकि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, अर्धरात्रसे पहिले जया (त्रयोदशीका) योग हो तो शिवकी प्यारी शिवरात्रि पूर्व विद्धाही करनी चाहिये । स्कन्दपुराणमें भी लिखा है कि, बडेसे बडे पापोंकीभी निष्कृति पूर्वविद्धा है पर अमावस युक्ता शिवरात्र करनेमें नहीं देखी जाती, यह अमावस्याके योगकी निन्दा की है । कालतत्वविवेचनमें जो यह नवीनोंसे कहागया है कि, दो दिन निशीथव्याप्तिमेंही पूर्वविद्धाके विधायक, उत्तर विद्धाके निषेधक वाक्य सावकाश हैं इस कारण ऐसे स्थलमेंही पूर्वाका ग्रहण करना चाहिये. यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि, माधवने जो कामिकका वचन रखा है कि, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो पूर्वा त्यागमें लायक तथा परा शुभ है, इसके साथ विरोध होगा । यदि यह कहो कि, फिर तो पूर्वविद्धा विधायक तथा उत्तर विद्धाके निषेधक वाक्योंको अवकाशही न रहेगा यहभी नहीं कहसकते. क्योंकि, प्रदोष और निशीथके विरोधमें निशीथकी ग्राह्यताके उपोद्वलक (पोषक) रूपसे विषयलाभ समीपही कहदिया है दूसरे प्रदोषकी व्याप्तिका लाभभी होजाता है । हेमाद्रि और माधवने एक पुराणका वचन रखा है कि, माघ (फाल्गुन) कृष्णा चौदसके दिन यदि अमावसका योग होजाय तो शिवका प्यारा करनेवाला कभीभी त्रयोदशीके योगवाली शिवरात्रि न करे । इससेभी पराकाही ग्रहण होता है । इस व्रतमें उपवास पूजा और जागरण तीनोंकाही फल सुना जाता है, इस कारण तीनोंही प्रधान हैं । यही नागरखण्डमेंभी लिखा है कि, शिवरात्रिके उपवासके प्रभावसे बलपूर्वकभी जागरण होनेसे उसमें लिंगकी पूजा करनेसे अक्षय कामोंको प्राप्त होता है, एवं शिवके सायुज्यको पाजाता है । यह व्रत संयोग पृथक्त्व न्यायसे नित्यभी है और काम्यभी है । स्कन्द पुराणमें लिखा है कि, परसे और कोई पर नहीं है शिवरात्रि परसेभी पर है, जो भक्तोंके ईश्वर तीनों भुवनोंके स्वामी रुद्रको नहीं पूजता वह जन्तु सहस्रों जन्मोंको पाता है इसमें सन्देह नहीं है बिना किये प्रायश्चित्त सुनाजाता है इस

कारण नित्यभी है । कि जो शिवका पूजन करके चतुर्दशीको जागरण करता है वो माताके दूधका रस फिर कभीभी नहीं लेता यह फल सुना जाता है इस कारण काम्य भी है ।। पारण तो इस व्रतमें तिथिके बीच और तिथिके अन्तमें कहा है, स्कन्दने चतुर्दशीमें उपवास और चतुर्दशीमेंही पारणा किये हुए लाखों सुकृतोंसे मिल जाय तो मिलजाय । ब्रह्माण्डके भीतर जितने तीर्थ हैं वे सब चौदसमें पारणा कियेसे होजाते हैं शिव चतुर्दशीको छोडकर तिथिके अन्तमें पारणा करनी चाहिये । कृष्णाष्टमी, स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रि इनको तब करे जब किए पूर्वयुता हो तिथिके अन्तमें पारणा होनी चाहिये । ये दोनों स्कन्दपुराणकेही परस्पर विरुद्ध वचन हैं । माधवने इन वचनोंकी यह व्यवस्था की है कि, तीन पहरसे अधिक समयतक रहे तो प्रातःकाल पारणा करनी चाहिये इस वचनसे तीन पहरके बीचमेंही चतुर्दशी पूरी होजाय तो उसके अन्तमें तथा इनसे अधिक समयतक जाय तो तिथिके बीच प्रातःकालही पारणा करनी चाहिये । तिथिके बीचमें पारणाका काल मुख्य तथा अन्त्यका काल गौण है, क्योंकि, उत्तरभावी है, ऐसा कहते हैं । कोई समर्थ हो तो तिथिके अन्तमें तथा असमर्थ हो तो बीचमें पारणा कर ले ऐसा कहते हैं । अन्तमें पारणा करनेवाले वाक्यमें शिवरात्रिकाग्रहण तो पूर्वविद्धाके विधानके लिए है । वास्तविक सिद्धान्त तो यह है कि, वह चतुर्दशी अस्तमयपर्यन्त व्यापिनी हो तो दूसरे दिन दिनमेंही पारणा करे तो वह दोषी नहीं होता । शिवरात्रिके प्रकरणमें कहे हुए कालादर्शादिके उल्लिखित वचनोंसे दिनमें तिथिकी समाप्ति हो सो अन्तमें, नहीं तो उसके बीचमेंही पारणा होनी चाहिये यह पारणाका निर्णय है । (निर्णयसिन्धु तो तिथिके मध्यमें पारणा करना उत्तम मानते हैं एवं ऐसाही शिष्टाचार बताते हैं, पर माधवादि तीन पहरसे पूर्व समाप्ति हो तो अन्तमें तथा अधिक हो तो तिथिके बीचमें पारणा करने कहते हैं, धर्मसिन्धुकार यहां यह कहते हैं कि, चतुर्दशी इतनी हो कि, नित्यकर्म आदि पारणा होसके तो उसीमेंकरे पर जिसे दर्शआदि श्राद्ध करना हो वह तिथिके अन्तमें पारणा करे संकट हो तो जलसे पारणा करलेनी चाहिए । व्रतराजका सिद्धान्त ऊपर कहाही जाचुका है) व्रतविधि–मासपक्ष आदिका उल्लेख करके कहे कि, मेरे पाप नाश और अक्षय मोक्ष और भोगोंकी प्राप्तिके लिए शिवरात्रिकाव्रतमेंकरता हूं ऐसा संकल्प करके षोडश उपचारोंसे शिवपूजा करे । पूजा–हे देवदेवश ! मर्त्यलोकके हितकी इच्छासे आजाइये मैं विधानसे पूजूंगा सुमुख हूजिए, इससे तथा 'सहस्र शीर्षा" इससे आवाहन समर्पण करे, हे प्राज्ञ ! अनेक रत्नोंसे भूषित निर्मल सोनेका अच्छा आसन ग्रहण करिये आपपादुकासनकरे, इससे "पुरुष एवेदम्" इससे आसन; 'गंगादिसर्व-तीर्थेभ्यः' इससे "एतावानस्य" इससे पाद्य; 'गंधोदकेन' इससे "त्रिपादूर्ध्व" इससे अर्घ्य; 'कर्पूरोशीर' इससे "तस्माद्विराड्" इससे आचमन; 'मन्दाकिन्याः समानीतम्' इससे "यत्पुरुषेण" इससे स्नान; 'वस्त्रसु-सूक्ष्मम्' इससे "तं यज्ञम्" इससे वस्त्र; 'यज्ञोतवीतम्' इससे "तस्माद्यज्ञात्" इससे उपवीत; 'श्रीखंड चन्दनम्' इससे "तस्माद्यज्ञात्" इससे गन्ध, 'माल्यादीनि' इससे "तस्मादश्वा" इससे पुष्प, 'वनस्पतिरसो द्भूत' इससे "यत्पुरुषम्" इससे धूप, 'साज्यं च वर्ति' इस मंत्रसे "ब्राह्मणोऽस्य" इससे दीप, 'नैवेद्यं गृह्यताम्' इससे "चन्द्रमा मन सः" इससे नैवेद्य, 'पूगीफलम्' इससे पान; "हिरण्यगर्भ" इससे दक्षिणा "चक्षुर्द सर्वलोकानाम्' इससे नीराजन, 'फलेन सहितम्' इससे फल, 'यायनि कानि' इससे "नाभ्या आसी" इससे प्रदक्षिणा, 'मंत्रहीनं क्रिया-हीनम्' इससे "सप्तास्यासन्" इससे नमस्कार, 'सद्योजातम्' इससे 'वामदेवाय' इससे "यज्ञेन यज्ञम्" इससे मंत्रपुष्पांजलि, 'यस्यस्मृत्या' इस मंत्रसे प्रार्थना समर्पण करे ।। उत्तरकालमें पूजाविधान–स्कन्द बोले कि, हे भूतेश ! इस प्रकारके तो मैंने आपसे बहुतसे विधान सुने हैं अब आप पहर पहरकी अपनी पूजाका विधान बताएं । शिवजी बोले कि, जो धर्मसर्वस्व शिवरात्रिमें शिवजीका पूजन है उसे सुनिए व्रतोंमें इसी पुण्यकर्मरूपी विधान करनेसे स्वर्ग होजाता है । स्नानकरके पवित्र हो धौतवस्त्र पहिने देव समुद्भव मन्त्रोंसे देवदेवकी स्थापना करे, फिर पहिले कहीहुई विधिसे पूजा करे । हे यज्ञ ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिभुवनके ईश्वर ! हे महेश ! मेरी पहिले पहरकी दी हुई पूजाको ग्रहण करिये, यह पहिले पहरकी पूजा पूरी हुई ।। पूर्वमें नन्दी और महा-काल, दक्षिणमें शृंगी और भृंगी, पश्चिममें वृष और स्कन्द तथा उत्तरमें देश और काल, गंगा यमुना पार्श्वमें व्यवस्थित हों । हे त्रिपुरके नाशक ! हे अव्यक्तरूप ! तुझ सूक्ष्मके लिए नमस्कार है, हे देवेश ! मैंने अपनी

शक्तिके अनुसार पूजा इकट्ठी की है आपग्रहण करिये, यह दूसरे पहरकी पूजा हुई ।। हे शंकर! मैं संसारके भयबन्धनरूप अनेकों पाशोंसे बन्धा हुआ हूं, मोहजालमेंपडेहुए ऐसे मेरा उद्धार करिये, यह तीसरे पहरकी पूजा पूरीहुई ।। चौथे पहरकी पूजा पहिले पहरकी तरह होती है ।। सब पापोंके हरनेवाले शान्तशिवके लिए नमस्कार है । शिवरात्रिमें मैं अर्घ्य देरहाहूँ, आप ग्रहणकरिये, यह पहिले प्रकारका अर्घ्यमंत्र है । हे पार्वतीके पते! दुख और दारिद्र्यके भावसे मैं जलरहा हूं । हे महादेव ! मेरीरक्षाकर अर्घ्य ग्रहण करियेतेरे लिए नमस्कार है, यह दूसरे पहरका अर्घ्य मंत्र हुआ । हे देवेश ! आप क्या नहीं जानते ? आप अपनी भक्ति और अपने चरणोंका दास्य दे दें, यह तीसरे पहरका अर्घ्य मंत्र है । पहिलेके जैसाही चौथा है । यह उत्तरकालकी शिवपूजा पूरी हुई ।। कथा–सूतजी बोले कि कैलासके शिखरपर देवदेव जगद्गुरु शिवजी विराजमान थे वे कैसे बैठे थे ? इसपर कहते हैं कि, पांचमुख, दशभुज, तीन नेत्र शूलपाणि ।। १ ।। हाथमें पिनाक धनुषलिये हुए खड्ग और खेटक धारण कियेहुए कपाल और खट्वाङ्ग लियेहुए नीलेकंठवाले सब ओरसे सुन्दर ।। २ ।। शिरमें भस्म सर्पोंके आभूषण नीलेबहुलकेसे शरीरवाले कोटिसूर्य्यके समानप्रकाशमान एवं अपने गणोंसे घिरे खेलते हुए तथा सब देवताओंको छोडकर अकेले बैठेहुए परमेश्वर ।। ३ ।। ४ ।। देव देवेश कमलकीतरह खिलेनेत्रोंवाले शिवको देखकर अत्यन्त नम्रताके साथ बैठीहुई पार्वतीने पूछा ।। ५ ।। कि, हे महाराज कृपाकरके कोई उत्तम गोप्यव्रत कह दीजिये हे देवेश ! आपके कहेहुए मैंने व्रतोंके अच्छे निर्णय सुने ।। ६ ।। उसी तरह तीर्थ और दानोंके धर्म भी सुनादिये, हे देव ;! मुझे अबतक निश्चय नहीं है, मैं बारंबार भ्रान्त रहती हूं ।। ७ ।। इस कारण हे देव ! मुझे एक ऐसा व्रत कहिये जिसमें सन्देह हीन हो जो सबमें उत्तम तथा भुक्तिमुक्तिका देनेवाला हो ।। ८ ।। हे प्रभो ! मुझे कहिये मैं उसे सुनना चाहती हूं । शिवजी बोले कि, देवि ! मैं तुझे व्रतोंका उत्तम व्रत कहता हूं ।। ९ ।। जो मुक्तिका दाता है, उसे आजतक मैंने किसी सेभी नहीं कहा जिसके कहनेपर यमकाभी विलय होजाता ।। १० ।। हे प्रिये ! एकाग्रचित्त होकर सुन । माघ (फाल्गुन) मासके कृष्णाअमायुक्ता चतुर्दशी ।। ११ ।। हो वह शिवरात्र है सब यज्ञोंसे उत्तम है । दान, यज्ञ, तप और अनेकतरहके व्रत ।। १२ ।। और तीर्थोंसे भी वह पुण्य नहीं हो सकता जो कि, शिवरातसे होता है । शिवरातके बराबर कोई भी व्रतोंमें उत्तमव्रत नहीं है ।। १३ ।। ज्ञान वा अज्ञान किसी तरह भी करले तो मोक्ष पाजाता है । जिन्होंने शिवरात्रिका व्रत नहीं किया वे मरकर निश्चयही निरयजाते हैं ।। १४ ।। जिन्होंने इसे करलिया वे निरयको त्यागकर शिवके समीप चलेगये, यह सबी अमंगलोंकी नाशक एवं सर्व मंगशीला है ।। १५ ।। यह भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली है, हे वरानने ! मैं सत्यकहता हूं इसमें सन्देह नहीं है । देवी बोली कि, यमपुरको छोडकर मनुष्य शिवलोकमें कैसे जाता है ? ।। १६ ।। यह मेरे मनमें भारी अचरज है इसे आप सिद्ध करदीजिये । शिवजी बोले कि, मैं एक पुरानी कथा सुनाता हूं । हे देवि ! सावधान होकर सुन ।। १७ ।। यह यमके शासनके मिटानेवाली तथा शिवके स्थानको देनेवाली है । पहिले कोई एक जीवघाती निषाद था ।। १८ ।। वह पर्वतकी तराईमें रहता तथा उसका घर उसी पर्वतसे मिला हुआ था वह सदा सीमाके अन्तमें रहकर कुटुम्बका पालन किया करता था।। १९ । वह मोटा काला कालेबालों एवं धनुषको धारण करनेवाला था हाथमें हस्त रक्षकबांधे हुए सदा शिकार करनेमें ही लगा रहता था ।। २० ।। ऐसा वह निषाद इस चौदसके पवित्रदिन पावनेदारोंसे धनके लिये देव मंदिरमें रोकलिया गया ।। २१ ।। इसनेभी देवता देखे तथा मनुष्योंके वचन सुनेये जो कि उपवासके व्रतीपुरुष शिव २ कहरहे थे, वह सब सुनताथा ।। २२ ।। जब सायंकालहुआ तो छोड दिया कि, प्रातःधन दे देना, इसके पीछे वह धनुषलेकर दक्षिणमें शिकार खेलने गया ।।२३।। जब वह वनमें आया तो मनुष्योंकी हँसीकरने लगा कि, क्या ये नगरमें शिव २ कर रहे थे ।। २४ ।। वह वनचरोंको देखते देखते इधर उधर दृष्टि दौडाते चरण तथा चरणोंका मार्ग और सूकर मृगोंको ढूंढता इधर उधर भगने लगा क्योंकि उसका मन मांसमें लगाहुआ था, वन पर्वत और गिरिकन्दरा सबमें घूमता फिरा ।। २५ ।। २६ ।। पर उसे उस दिन मृग सूकर और तीतर कुछ न मिला, वह निराश होगया क्योंकि सूर्य छिप चुके थे ।। २७ ।। जलके किनारे जगकर रातको जीव मारूंगा रातको अवश्य कुछ हाथ लग जायगा ऐसा विचार करके ।। २८ ।। तडागके समीप जा उसके किनारे जालिके

मध्यसे आश्रम करना प्रारंभ किया जिससे कि, वह अपनेको छिपा सके ।। २९ ।। जालके बीच एक पवित्र शिवलिंग आगया था एवं एक बडा दिव्य बिल्ववृक्ष भी उसीके बीचमें था ।। ३० ।। उसने रास्ता साफ करनेके के लिये बिल्वके पत्ते उठाये तथा दक्षिण भागमें पटके वे सब लिंगके ऊपर पडे ।। ३१ ।। हे वरानने ! उसकी सुगन्धिको भी जो कोई सूंघलें तो शरघातके भयसे वह मृग खडा नहीं रहता था ।। ३२ ।। दिनभर तो रुका रहा इस कारण भोजन न हुआ मृगोंको देखते २ रातको नींदभी नहीं आयी ।। ३३ ।। इसका पहला पहर तो जालिके बीचमें बीत गया । उस समय एक गर्भिणी हिरणी पानीके लिये आयी ।। ३४ ।। वह सुन्दरी युवती मोटे २ स्तनोंवाली चारों दिशाओंको देख रही थी नेत्र खुले हुए थे ।। ३५ ।। लुब्धकने देखा कि, यह मेरे निशानेके नीचे आगई है उसने एकाग्र चित्तसे बाण सन्धान किया ।। ३६ ।। उसने पत्ते तोडकर शिवपर फेंके थे शीतसे नींद न लेकर शिव २ कहकर लोगोंकी हंसी की थी ।। ३७ ।। इसी बीचमें हिरणीने शिकारीको देखा कि, मेरे कालकी तरह ठहरा हुआ है ।। ३८ ।। उसका तोर सन्धान यमदंष्ट्राकी तरह चमकता था, मृगी दिव्यवाणीसे लुब्धकसे बोली ।। ३९ ।। कि, हे सब जीवोंके मारनेवाले महाव्याघ ! स्थिर हो जा, यह तो बता कि, हे महाबाहो ! मुझे मारेगा क्यों ।। ४० ।। शिवजी बोले कि, मृगीके वचनसुनकर लुब्धक उससे बोला कि, माता सहित मेरा कुटुम्ब एकदम भूखसे दुखी होरहा है ।। ४१ ।। मेरे घरमें धन है नहीं । हे शोभने ! इस कारण में तुझे मारता हूं । सूतजी बोले कि, यामकी पूजाके प्रभाव तथा जागरण और उपोषणसे ।। ४२ ।। वह पापी लुब्धक अपने चौथाई पापोंसे छूट गया था । उसने देखा कि, मृगी मनुष्यकी तरह बोलती है ।। ४३ ।। तब वह लुब्धक उससे निसंदेह धर्मके वचन बोला कि, मैंने उत्तम मध्यम और अधम सभीतरहके जीव मारे हैं ।। ४४ ।। पर श्वापदोंकी ऐसी वाणी कभी नहीं सुनी, तू कौनसे देशमें उत्पन्न हुई है ? कहांसे यहां आई है ? ।। ४५ ।। यह प्रयत्नके साथ सुना दे यह मेरे मनमें बडा आश्चर्य है । मृगी बोली कि, हे लुब्धक ! तू श्रेष्ठ है मैं तुझे सब सुनाती हूं ।। ४६ ।। पहिले मैं स्वर्गमें इन्द्रकी रंभा नामक अप्सरा थी । मेरे रूप और लावण्यका ठिकानाही नहीं था । अपने सौभाग्यसे सदा गर्वित रहा करती थी ।। ४७ ।। मैंने सौभाग्यके मदसे चूर हुआ बलके गर्वीले दानव हिरण्याक्षको अपना पति बनाया था ।। ४८ ।। मैंने उसके साथ यथेष्टा भोग भोगे, इस तरह उस असुरके साथ खेल करते २ मेरा बहुतसा समय बीत गया ।। ४९ ।। मैं दिन एक नाच देखनेके लिए शिवजीके सामनेसे चली गयी मेरे फिर वहां पहुँचतेही शिवजीने मुझसे पूछा कि, ।। ५० ।। हे वरारोहे ! तू कहां चली गई, किससे जाकर मिली थी, क्या सौभाग्यके घमंडसे मेरे मंदिरमें नहीं आई ? ।। ५१ ।। सत्य कह दे नहीं तो तुझे शाप दे डालूंगा, शापके डरसे मैंने शिवजीके आगे सत्य २ कहा ।। ५२ ।। कि हे देव ! हे शाप और अनुग्रह करनेवाले ! सुन मैं सत्यकहती हूं । हे विश्वेश ! मेरा पति महाबली दानवेन्द्र है ।। ५३ ।। मैं उसके साथ अपनेघर खेलती रह गई । हे सृष्टिके संहार करनेवाले ! इसीसे मैं वहां जल्दी नहीं आ सकी थी ।। ५४ ।। ये वचन सुन शिवजी क्रोधित होकर बोले कि, वह हिरण्याक्ष कामातुर मृग होजाय ।। ५५ ।। तू मृगी बनकर उसकी स्त्री हो इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि, तू स्वर्ग छोडकर दानवोंके भोगनेकी इच्छा करती है ।। ५६ ।। इस कारण तू निर्लज देशमें तिनकोंका आहार करेगी । ए भद्रे ! तुम्हें बारह वर्षतक मेरा यह शाप रहेगा ।। ५७ ।। आपसके शोकसे तुम्हें सन्ताप भी होगा । यह शाप देकर फिर कृपा भी की ।। ५८ ।। कि कभी एक व्याधवर मेरे सान्निध्यका आश्रय किया हुआ मिलेगा, उसके निशानेके नीचे आकर पूर्वजन्मका स्मरण होगा ।। ५९ ।। पीछे शंकरका दर्शन करके शापसे छूट जायगी । मैंने इस महावनमें रहते हुए भी कभी शिवजी के दर्शन नहीं किए ।। ६० ।। इस कारण दुःखको प्राप्त हुई मांस और मेदासे हीन मैं गर्भिणी मारनेके लायक नहीं हूं ।। ६१ ।। पर तुझ और तेरे कुटुम्बका भोजन नहीं सकेगा । हे लुब्धक ! इसमार्गसे और कोई मृगी आजायगी ।। ६२ ।। जो मोटी, युवती बहुतसे मांस मेदावाली होगी, उससे मयकुटुम्बके तेरा शीघ्रही भोजन हो जायगा ।। ६३ ।। अथवा हे व्याध ! कोई और मृगही शुबह पानी पीनेके लिए चला आयगा इसमें सन्देह नहीं है ।। ६४ ।। अथवा मैं अपने गर्भको छोड बच्चोंको कुटुम्बियोंको सौंप सखियोंसे कहकर चली आऊंगी ।। ६५ ।। उसके ये वचन सुनकर व्याधको बडा आश्चर्य हुआ वह एक क्षण चुप रहकर बोला ।। ६६ ।। कि,

यदि कोई जीव न आया और तू भी जाती है तो मेरे भूखे कुटुंबकी क्यागति होगी ? ।। ६७ ।। प्रातः तुझे मेरे घर आनाहोगा अब तू सौगन्द खाकर जा जिससे मुझे विश्वास होजाय ।।६८।। पृथवि वायु और आदित्य सत्यसे ठहरे रहते हैं दोनों लोकोंके चाहनेवालेको सत्यका पालन करना चाहिए ।। ६९ ।। इस कारण आप सत्यसे अपने घर जा सकती हैं उसके उनवचनोंको सुनकर गर्भार्त वह मृगी ।।७०।। व्याधके आगे बारंबार प्रतिज्ञा करके बोली कि जो ब्राह्मण वेदविहीन होकर ।। ७१ ।। स्वाध्याय सन्ध्या और शौचसे रहित होता है तथा बेचनेके योग्योंको बेचता तथा यज्ञबहिष्कृतोंको यज्ञ कराता है मैं उसके पापसे लिप्त होऊं जो फिर वापिस न आऊं तो दुष्ट बुद्धि धूर्त और ग्राम कंटकमें जो पाप होता है ।। ७२ ।। ।। ७३ ।। नास्तिक, दुराचारी, व्यभिचारी, वेद बेचनेवाले और शवके सूतकमें भोजन करनेवालेको जो पाप होता है ।। ७४ ।। उसपापसे लिप्त होऊं जो फिर मैं वापिस न आऊं तो । मृतककी शय्याके लेने तथा माता पिताकी पालना न करनेमें जो पाप होता है उस पापसे लिप्त होऊं जो फिर न आऊं तो जो दान देनेवालेके बीचमें अन्तरायकरता है ।। ७५ ।। ७६ ।। मैं उसके पापसे लिप्त होऊं जो न पासआऊं तो । देव गुरुब्रह्म इनके द्रव्यको जो हरता है ।। ७७ ।। उसके पापसे लिप्त होऊं जो तेरे घर न आऊं तो । जो दीपकसे दीपक जोरता और पैरोंसे पैरोंको धोता है ।। ७८ ।। उस पापसे लिप्त होऊं जो तेरे घर न आऊं तो । भर्ता, स्वामी, मित्र आत्मा, बालक ।। ७९ ।। गऊ, विप्र, गुरु, स्त्री इनको जो मारता है मैं उस पापसे लिप्त होऊं जो तेरे घर न आऊं तो ।। ८० ।। अवैष्णव, दंभी, कामी, परनिन्दक ।। ८१ ।। कृतघ्न कदर्य, परदाररत, सदाचारहीन, दूसरेको दुख देनेवाले ।। ८२ ।। परपिशुनी, कन्यावेचा, हेतुसे बगुलाकी वृत्ति रखनेवाले, कूटसाक्ष्य करनेवाले ।। ८३ ।। इनमें जो पाप होता है वही पाप मुझे हो यदि मैं तेरे घर न आऊं तो । ब्रह्महत्यामें जो पाप तथा मातापिताके मारनेमें जो होता है ।। ८४ ।। उस पापसे लिप्त होउं जो तेरे घर न आऊं तो, जिसके दो स्त्रियाँ हों किन्तु उनमें विषय दृष्टि करे ।। ८५ ।। ८६ ।। उस पापसे लिप्त होऊं जो तेरे घर न आऊँ तो, एक बार कन्याकी किसीके साथ सगाई करके फिर दूसरे के साथ विवाह दे उस पापसे लिप्त होऊं जो तेरे घर न आऊँ, तो, कथा बँचतेमें जो अन्तर करता है मैं उस पापसे लिप्त होऊँ जो तेरे घर न आऊँ तो, जो पति और वेदकी रोज निन्दा करे ।। ८७–८९ ।। उस पाप लिप्त होऊं जो न आऊँ तो । जो घरीकरे विशेष करके ब्राह्मणीको घरी व्याहे ।। ९० ।। उस पापसे लिप्त होऊँ जो तेरे घर न आऊं तो, प्रेतश्राद्धके खानेवाले बहुयाजक पतित ।। ९१ ।। असत्के शास्त्रार्थमें निपुण पुराणोंके अर्थोंसे रहित, मूर्ख, पाखण्डी, असद् व्यापारी ब्राह्मण, इनको जो पाप होता है वह मुझे हो यदि न, आऊँ तो, जो स्त्री और पुत्रोंको छोडकर अकेला मीठा खाता है ।। ९२ ।। ९३ ।। एवं जो मूर्ख अपनी अच्छी लडकीको योग्यवरके लिये नहीं देता ।। ९४ ।। उस पापसे लिप्त होऊँ जो तेरे घर न आऊँ तो । मृगीके इन वचनोंको सुनकर लुब्धक परम प्रसन्नहुआ ।। ९५ ।। बाण सन्धानको छोडकर हरिणीको छोडदिया उसके छोड़ने और लिंगके पूजनेसे वह पापोंसे छूटगया इसमें सन्देह न करना । हे वरानने दूसरे पहर ।। ९६ ।। ९७ ।। उसी समय एक कामसे व्याकुल हुई सुन्दर मृगी आगई, वह डरती हुई उद्विग्न होकर अपने पतिको देखरही थी ।। ९८ ।। जालीके बीचमें खडे हुए उस व्याधने उसे देखलिया, फिर उसके विल्वके पत्ते हाथसे तोडकर ।। ९९ ।। अपने दक्षिण भागमें पटके, वे सब शिवलिंगपर जा पडे इतनेमें दूसरी मृगी आपहुंची उसके मारनेके लिये उसने धनुषपर तीर चढाया ।। १०० ।। क्योंकि, वह परिवारके लिये शिकार करनेको खडाही था निशाना लगा जब वह बाण छोडना ही चाहता था ।। १०१ ।। कि मृगीने देख लिया जिससे मृगी व्याकुल हो गई कि, अभी मेरी बहिन इस व्याधने मारडाली ।। १०२ ।। अब मेरे जीनेसे क्या है जो कि, मैं उसके दुखसे दुखी हूं, व्याधको देखकर शोचनेलगी कि, शोकसे मौत अच्छी ।। १०३ ।। यह सोच मृगी व्याधसे बोली कि, हे सब जीवोंके मारनेवाले श्रेष्ठधनुषधारी व्याध ! ।। १०४ ।। मुझे एक वचन दे, पीछे मुझे मारडालना, हे लुब्धक । क्या इस रस्तेसे एक हिरणी आई थी ।। १०५ ।। हे सुव्रत ! आई वा नहीं सत्य कह दे । यह देख व्याध एक क्षण भर विस्मित हो देखनेलगा ।। १०६ ।। कि, जैसी इसकी वाणी है वैसी ही उसकी भी वाणी थी वही यह प्रतिज्ञा पालनके लिये चली आई है ।। १०७ ।। अथवा उसकी कही हुई कोई दूसरी चली आई है ऐसा विचार करके वह बोला ।। १०८ ।। कि, हे मृगी ! मेरा वाक्य सुन, वह अपने स्थान चली गई है तुझको मुझे देकरके इस

कारण वह सच्ची भी है ।। १०९ ।। हे मृगी मैंने आज परिवारके लिये दिनभर कष्ट उठाया था, अब मैं तुझे मारूंगा तू अपने देवताओंका स्मरण कर ।। ११० ।। व्याधके वचन सुनकर हरिणी एकदम दुखी होगई और रोकर व्याधसे बोली कि, हे व्याध ! मुझे मारदे ।। १११ ।। विरहकी अग्निने मेरा तेज और बल नष्ट कर दिया है, न मुझमें मांसरहा है न मेदाही रह गया है ।। ११२ ।। मुझे मारकर खाली आप पापी ही होंगे, मैं जानसे जाऊंगी आपका भोजनभी न होगा ।। ११३ ।। परमतेजस्वी बलवान् मोटा ताजा गौराङ्ग मृग यहां आयगा ।। ११४ ।। उसे मारनेसे तुम्हारे कुटुम्बकी तृप्ति हो जायगी, अथवा मैं ही तेरे घर प्रातःकाल आजाऊंगी उसकी बात सुनकर लुब्धक विचारनेलगा कि क्या करूं ? पीछे उस दुबली शोकातुरा मृगीसे बोला ।। ११५ ।। कि, हे महाभागे ! सत्य कह जिससे मुझे विश्वास हो जाय दुखकी सताई मृगीने उसके वचन सुनकर ।। ११६ ।। व्याधके आगे बार २ सत्यप्रतिज्ञा की कि, जो क्षत्रिय होकर जंगेमैदानसे भागे ।। ११७ ।। उस पापसे लिप्त होऊं जो मैं तेरे घर न आऊं तो, जो वापी तडागोंको तोडडालें ।। ११८ ।। जो सब गौओंकी बला रूप मार्ग और स्थानको तोडडालें उन्हें जो पाप होता है वो मुझे हो यदि मैं तेरे घर न आऊं तो ।। ११९ ।। यह सुनकर व्याधने मृगी छोड दी, वह बहुतसा पानी पीकर जिधरसे आई थी उधरको चलदी ।। १२० ।। जालिके बीचमें रहते दूसरा पहर बीत गया फिर उसने बिल्वपत्र तोडकर उसीतरह देवपर चढ़ादिये ।। १२१ ।। वो व्याध शीत और भूखसे पीडित था, घरकी चिन्तालगी हुई थी, शिवशिवजपते हुए नींद न आई ।। १२२ ।। तीसरे पहरभी इसतरह शिवार्चन करदिया, जीविकाके लिये सब दिशाओंको देखने लगा ।। १२३ ।। उसने फिर चंचल-नयनोंका हरिण देखा जो कि, मृगीका रास्ता देखरहा था, वो चारों ओर मृगीका मार्गदेख रहा था ।। १२४ ।। उसे सौभाग्य और बलका अभिमान चढा हुआ था। कामका उन्मानी खासामोटा था व्याध देखकर बडा प्रसन्न हुआ और कानतक धनुष ताना ।। २५ ।। बाण छोडनाही चाहता था कि, मृगने देख लिया उसे अपना काल जान सोचने लगा ।। २६ ।। कि, अवश्यही मैं इसके हाथसे मारा जाऊंगा, मेरी प्राणप्रिया भार्या व्याधके हाथसे मारी गई ।। २७ ।। उसका विरही मैं अवश्यही मरूंगा. हाहा समयके पाप, मेरी स्त्री दुख पाई ।। २८ ।। भार्याके बराबर न घरमेंही सुख है, एवं न वनमेंही सुख है । उसके विना धर्म अर्थ और काम कुछ भी नहीं होते ।। २९ ।। चाहें स्त्री पेडकी जडमें भी बैठ जाय वही घर है, विना जायाके महल भी वनके बराबर है ।। १३० ।। धर्म अर्थ और कामके कार्योंमें मनुष्यकी सहाय स्त्री ही हुआ करती है । विदेशमें गये हुए का वही विश्वास करनेवाली है ।। ३१ ।। भार्याके बराबर कोई बन्धु नहीं है, न सुखही है, दुखी मनुष्यकी दवा स्त्रीके बराबर कोई भी नहीं है ।। ३२ ।। जिसके घर प्रियवादिनी साध्वी स्त्री नहीं है, उसे वनमें चलेजाना चाहिये क्योंकि, उसे जैसा वन वैसाही घर है ।। ३३ ।। एक मेरे प्राणके बराबर थी तो दूसरी प्राणदाता थी, स्त्री विरही मेरा, जीनाही निष्फल है ।। ३४ ।। इस प्रकार सोचकर लुब्धकसे बोला कि, ए मांस भोगी सुयोग्य व्याध ! ।। ३५ ।। जो मैं तुझे पूछूं वो मुझे सत्य बतादे, दो हरिणी आई थीं, वे कौनसे रस्तेसे गई हैं ? ।। ३६ ।। अथवा आपने मारडालीं मुझे सत्य बता दीजिये । उसके बचनोंको सुनकर लुब्धकको बडा विस्मय हुआ ।। ३७ ।। कि, यह भी सामान्य नहीं कोई उत्तम देवता है । यह सोच लुब्धक उससे श्रेष्ठ वचन बोला ।। ३८ ।। कि वे दोनों तो इस मार्गसे मेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करके गईं उन्होंने मेरे भोजनक लिये, ए निष्पाप ! तुझे दिया है ।। ३९ ।। मैं तुझे मारूंगा किसी तरह भी न छोडूंगा. व्याधके ये वचन सुनकर हरिण शीघ्र ही कह उठा ।। १४० ।। कि, आपके सामने उन्होंने कैसे सत्य प्रतिज्ञाकी थी ? जिससे तुम्हें विश्वास होगया और उन्हें छोड दिया ।। ४१ ।। वे दोनों तुमसे छूटकर कौनसे रास्तेसे गई हैं ? व्याध बोला कि, वे इस रास्तेसे अपने आश्रमको गई हैं । ।।४२।। व्याधने वे शपथें भी सुनादीं जो उन्होंने खायीं थीं । उन्हें सुन हरिण बडा ही प्रसन्न हुआ ।। ४३ ।। व्याधसे शीघ्र ही धर्मयुक्त वचन बोला कि, जो उन्होंने कहा है वह मैं सत्य करूंगा इसमें कुछ भी झूठ नहीं है ।। ४४ ।। मैं प्रातःकाल तेरे घरपर निश्चय ही चला आऊंगा क्योंकि इस समय मेरी स्त्री ऋतुमती एकदम कामार्त है ।। ४५ ।। मैं घर जाकर उसे भोग स्वजनोंकी राजी खुशी पूछ इन सौगन्दोंसे बंधा हुआ तेरे घर आजाऊंगा इसमें सन्देह नहीं है ।। ४६ ।। मेरे देहमें मांस और लोहू नहीं है जिसे तू खाना चाहता है, यदि मारोगे तो मेरा

मरना व्यर्थही होगा ।। ४७ ।। मृगके वचन सुनकर व्याध बोला कि, हे धूर्त ! तू झूठ बोलता है मेरी वृथा प्र तारणा करता है ।। ४८ ।। जहां यह पता हो कि, मारा जाऊँगा, वहाँ कौन मूर्ख जायगा ? व्याधके इन वचनोंको सुनकर हरिण बोला ।। ४९ ।। मैं उन शपथोंसे आजाऊंगा, जिनसे कि, तुमें विश्वास होजाय । यह सुन व्याध बोला कि, आप उन शपथोंको करें । जिनसे मुझे विश्वास होजाय ।। १५० ।। हे कामुक ! मुझे विश्वास हो जायगा, तो मैं तुम्हें तुम्हारे घर भेजदूंगा । मृग बोला कि, जो स्त्री भर्ताकी बंचना करे एवं जो मनुष्य स्वामीकी बंचना करे ।। ५१ ।। जो कि मित्रकी बंचना तथा गुरुसे द्रोह करता है, एकपंक्तिमें विषम परोसता है, किसीके प्रेमको तुडाता है ।। ५२ ।। तड़ागको भेदता तथा प्रासादको गिराता है, जो ब्राह्मण वाहिर रहकर क्रय विक्रय करता है ।। ५३ ।। सन्ध्या और स्नानसे रहित, वेदशास्त्रसे विहीन, शराबी स्त्रियोंके प्रेमी दूसरेकी बुराई करनेवाले ।। ५४ ।। दूसरेकी स्त्रियोंकी सेवा करनेवाले ब्राह्मण, दूसरेकी स्त्रियोंकी बुराई करनेवाले, शूद्रके अन्नको खानेवाले, स्त्री और पुत्रके त्यागी ।। १५५ ।। वेद वेदशास्त्रके अर्थ इनके निन्दक, इन सबको जो पाप होता है, वह पाप मुझे हो यदि मैं तेरे घर न आऊं तो ।। ५६ ।। जिसके घरमें घरी स्त्री तथा जो शौच और व्रतसे विहीन हों, सर्वान्न भोजी सबका बेचनेवाला ब्राह्मणोंका निन्दक ।। ५७ ।। जो शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवा न करे, ब्राह्मणोंके वचनोंको छोड पाखण्डमें लगा रहे ।। ५८ ।। जो शूद्र ब्रह्मचर्यमें रत तथा पाखण्डमें लगे रहें इन्हें जो पाप होता है, वह पाप मुझे हो, जो तेरे घर न आऊं तो ।। ५९ ।। तिल, तैल, घृत, शहद, लवण, गुड, सव लोह, लाक्षा आदिक अनेक तरहके रंग ।। १६० ।। मद्य, मांस, विष, दुग्ध, नील, वृषभ, मीन, क्षीर, सर्पकूट, चित्रातक फल ।। ६१ ।। इनको जो ब्राह्मण बेचता है, उसे जो पाप होता, वह मुझे हो जो मैं तेरे घर न आऊं तो ! आदित्य, विष्णु, ईशान, गणाध्यक्ष, पार्वती ।। ६२ ।। उन्हें छोड जो मूर्ख दूसरेको पूजता है, उसके पापसे लिप्त होऊं जो मैं तेरे घर न आऊँ ।। ६३ ।। जो गोको पैरसे छूए तथा सूर्योदयमें सोवे अकेला मीठा खावे, मैं उसके पापका भागी होऊँ ।। ६४ ।। माता पिताका पोषण न करनेवाला तथा अपने लिए भोजन बनानेवाला कन्याके धनसे जीविका करनेवाला, देव और ब्राह्मणोंका निन्दक ।। ६५ ।। गोग्रास, हन्तकार, अतिथि पूजन जो गृहस्थी नहीं, करते, सवका पाप मुझे हो ।। ६६ ।। वृन्ताक, पटोल, कलिंग, तुम्बी, मूलक, लशुन, कन्द, कुसुंभ, कालशाक ।। ६७ ।। जो मूर्ख इनको खाता है, जिसकी कि, शुद्धि सौ चान्द्रायणोंसे भी नहीं हो सकती ।। ६८ ।। उसका पाप मुझे लगे यदि मैं तेरे घर न आऊं तो । जो स्वरहीन लक्षणहीन वेद पढता है ।। ६९ ।। एवं गलियोंमें फिरता हुआ वेद बोलता है, जो ब्राह्मण हो वेद पाठ करे तथा उसके वेदको अन्त्यज सुने ।। ७० ।। वेदसे जीविका तथा आर्तलोभसे शूद्रके यहां भोजन करे, मैं उसके पापसे लिप्त होऊं जो तेरे घर न आऊं तो ।। ७१ ।। जो शूद्रान्नमें संसक्त तथा शूद्रके संपर्कसे दूषित हैं, मैं उनके पापसे लिप्त होजाऊँ जो तेरे घर न आऊं तो ।। ७२ ।। जो ब्राह्मण लेखक, चित्रकार, वैद्य और नक्षत्रोंका बतानेवाला और कूटकर्ता है, मैं उसके पापका भागी होऊँ ।। ७३ ।। झूठी गवाही देनेवाला, झूठा, चोर, व्यभिचारी, विश्वासघाती ।। ७४ ।। द्रव्यपर द्रव्यको रखकर कूटपान (शराब) पीवे, वेश्यागामी, देतेहुए दानको रोकनेवाला ।। ७५ ।। जो निर्धन, कुरूप, रोगी, पतिको रूप यौवनके अभिमानसे न पूजे ।। ७६ ।। माघकृष्ण एकादशी शिव चतुर्दशी इनको जो पूर्वविद्धा करते हैं । इन सबका पाप मुझे हो ।। ७७ ।। हे लुब्धक ! विशेश तो तेरे आगे क्या कहूं यदि मैं तेरे घर न आऊं तो, मुझे सदाही असत्य हो ।। ७८ ।। इस प्रतिज्ञासे व्याध सन्तुष्ट होगया, पाप उसके मिटही चुके थे । धनुषसे बाण उठाकर मृगको घरके लिए मुक्त कर दिया ।। ७९ ।। हरिण पानी पीकर गहन वनमें घुस गयी वह उसी मार्गसे गया जिससे उसकी दोनों हिरणियां गई थीं ।। ८० ।। जालिके बीचमें खडे हुए शिकारीने प्रत्यूषमें बिल्वपत्र तोडे और शिवपर पटक दिये ।।८१।। पीछे शिव शिव कहता हुआ अपने घर चला गया इस समय सूर्यदेव उदय होगये थे । अनिच्छासे जागरण किया था ।। ८२ ।। वह भी शिवजीकी पूजाके प्रभावसे शीघ्रही पापोंसे छूटगया, जब दिशाओंके दर्शन किए तो भोजनसे निराश होगया ।।८४।। इतनेमेंही बच्चोंसे घिरी हुई एक मृगी वहां आपहुंची उसे देखतेही धनुषपर तीर चढाया ।। ८४ ।। तीर छोडनाही चाहता था कि, मृगी बोली कि, हे धर्मात्मन् ! बाण न छोड, हे सुव्रत ! अपने धर्मका त्याग न कर ।। ८५ ।। मुझे किसीको भी न मारना चाहिये यह शास्त्रोंका निश्चय है । क्योंकि, सोता, मैथुनमें लगा, बच्चोंको दूध पिलाने-

वाला, रोगी ।। ८६ ।। इनको न मारना चाहिये और तो क्या बच्चोंसे घिरीहुई मृगीभी मारने योग्य नहीं है यदि धर्मका त्यागकरके मुझे मारनाही चाहते हो तो ए मानके देनेवाले ।। ८७ ।। बालकको अपनी सखियोंके पास अपने घरपर छोडकर प्रतिज्ञासे फिर आजाऊँगी ए व्याध ! मेरे वचन सुन ।। ८८ ।। जो अपने पतिको छोड पर पतिमें सदा रत रहे, मैं उसके पापसे लिप्त होऊँ जो तेरे घर न आऊं तो ।। ८९ ।। जो मनुष्य मोहमें फँसकर मद्य, मांस, विष, दुग्ध, नीली, कुंभफल इनको बेचे ।। १९० ।। उनके पापसे लिप्त होऊँ जो तेरे घर न आऊं तो, हे श्रेष्ठ व्याध ! जो तुम्हारे सामने पहिले सौगन्द की थीं ।। ९१ ।। वह सब अबभी हैं जो मैं न आऊं तो । उसके इन वचनोंको सुनकर व्याधको बडा विस्मय हुआ ।। ९२ ।। वह मृगी व्याधसे छूट कर अपने घर आई तथा व्याध भी उस वनको छोडकर घरको चल दिया ।। ९३ ।। सत्यवादी सब मृगजनोंके वचनोंको याद करता हुआ कहने लगा कि, मैं इनके मारनेवाला किस गतिको जाऊंगा।।९४।।इधर यह चिन्ता थी घरमें बालक भूखे बैठे रहे थे । उनके खानेके लिये घरमें अन्न मांस कुछभी नहीं था ।। ९५ ।। ने उसे विना मांस लिये आयाहुआ देखकर सब निराश होगये व्याधभी उनके वाक्योंको याद करके।।९६।।न तो नींदही लेसका एवं न भोजनही करसका अचरजमें घिरा रहा कि, वे सब प्रतिज्ञामें बँधेहुए अवश्य आयेंगे ।। ९७ ।। मैं सज्जनोंके भलाई याद करके उन्हें कभी न मारूँगा । इधर हिरण प्रतिज्ञा करके लुब्धकसे छूटकर ।। ९८ ।। अपने उस आश्रममें आया जहां कि, उसकी दो हिरणियाँ थीं एकने तो हालही बच्चे दिये थे तथा दूसरी सहवास चाह रही थीं ।। ९९ ।। तीसरीभी बहुतसे बालकोंको लिये हुए आपहुंची सब एक जगह इकट्ठी हुईं सबने मरनेका निश्चय किया ।। २०० ।। वे सब आपसमें शिकारीकी बातें कर रहीं थीं । सहवासकी इच्छुकी सुरूपा, ऋतुप्राप्त हिरणीको भोग ।। १ ।। हिरण कृतकृत्य होगया और बोला कि, आप यहां रहकर अपने प्राणोंकी रक्षा करना ।। २ ।। सावधानीके साथ व्याघ्र गज और शिकारियोंसे बच्चोंको बचाना, मैं तो यहां सौगन्दोंसे बन्धाहुआ आया हूं ।। ३ ।। कि, चलकर ऋतुदान दे आऊं जिससे फिर सन्तान हो । क्योंकि, जो मूर्ख अपनी ऋतुमती स्त्रीसे भोग नहीं करता ।। ४ ।। वह भ्रूणहा है उसका जीनाही वृथा है । सन्तानसे स्वर्ग और यहां सदा कीर्ति पाता है ।। ५ ।। ऐसी स्वर्गसौख्य देनेवाली सन्ततिको यत्नसे पालना चाहिये क्यों कि, निपुत्रकी इस और परलोक दोनोंमेंही गति नहीं है ।। ६ ।। इस कारण किसीभी उपायसे पुत्र पैदा करे, मैं तो वहां पहुंचूंगा जहां कि, व्याधका घर है ।। ७ ।। सत्यका पालन करना चाहिये क्योंकि, सत्यमें धर्म रहता है । यह सुन उसकी स्त्रियाँ दुखी होकर बोलीं ।। ८ ।। कि, हे श्रेष्ठ मृग ; हमभी तेरे साथ आवेंगी हे प्यारे ! हम आपका कोईभी विप्रिय याद नहीं करतीं ।। ९ ।। आपने हमें विकसित पुष्पोंवाले वनोंमें, नदियोंके संगमपर, पर्वतोंकी कन्दराओंमें येथेष्ट रमण कराया है ।। २१० ।। आपके बिना हमारा जीनाभी व्यर्थ है क्योंकि, पतिहीन स्त्रियोंके जीनेमें क्या फायदा है ।। ११ ।। भ्राता, सुत, पिता, माता ये मित आनन्दके देनेवाले हैं किन्तु पति अमित आनन्दके देनेवाला है, ऐसे पतिको कौन नहीं पूजेगी ।। १२ ।। चाहें धनी हो बहुतसे बेटे भाई हों किन्तु पतिहीन कुलांगना बन्धुवर्गकी केवल चिन्ताका विषयही है ।। १३ ।। वैधव्यके बराबर स्त्रियोंको और कोई दुख नहीं है । वे स्त्रिय और कोई दुख नहीं है । वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो पतिके अगाडी मरजाती हैं ।। १४ ।। बिना तारोंकी सितार नहीं बजती बिना पहियेके रथ नहीं चलता, चाहें सौ बेटे हो पर बिना पतिके सुख नहीं मिल सकता ।। १५ ।। पतिके सम धर्म तथा धर्मके समान मित्र नहीं है, भर्ताके बराबर नाथ नहीं है, स्त्रियोंकी भर्ताही परमगति है ।। १६ ।। ऐसे उन सबोंने रो, मरनेके लिये निश्चय कर लिया । बालकभी उसके साथ थे पतिके शोकसे एकदम दुखी होगयीं ।। १७ ।। मृग उनके वचन सुन चिन्तित हुआ कि, मैं व्याधके घर जाऊं वा न जाऊं ।। १८ ।। यदि जाता हूं तो कुटुम्बका नाश होता है यदि नहीं जाता तो मेरा सत्य जाता है ।। १९ ।। पुत्र भार्य्या और अपना मरना अच्छा है सत्यको छोडकर मनुष्य एक कल्प नरकमें रहता है ।। २२० ।। इस कारण कल्याण चाहनेवाले जनको सदाही सत्यका पालन करना चाहिये सत्यसे पृथ्वी धारण करती है, सत्यसे रवि प्रकाश करता है ।। २१ ।। सत्यसेही हवा चल रही है । सत्यसेही पर वृद्धि होती है इस प्रकार सुन्दर धर्मोंको याद करके ।। २२ ।। उनके साथ क्षणभरमें अपने आश्रमसे चल दिया,

उस सरमें स्नान करके कर्म्मोंका त्याग किया । यानी संन्यास ले लिया ।। २३ ।। उस लिंगको प्रणाम और हृदयमें शिवका ध्यान करके भक्ष्य, पान, मैथुन, भोग, काम क्रोध, लोभ, एवं मोक्षका नाश करनेवाली माया इनका त्यागकर देवकी वन्दना करके लुब्धकके पास गया ।। २४ ।। २५ उसके स्त्री-पुत्र मरनेका निश्चय करके अनशन व्रत ले, उसकी पीठसे लगे चले आये ।। २६ ।। भार्य्या और पुत्रोंके साथ मृग उस देशमें आया जहां भूखे बालबच्चोंके साथ लुब्ध रहता था ।। २७ ।। धर्मके वाक्योंका पालन करता हुआ स्त्री बच्चोंके साथ व्याधके पास आ बोला कि ।। २८ ।। हे व्याध ! पहिले मुझे मार पीछे मेरी स्त्रियोंको मारना इसके पीछे बालकोंको मारना इसमें देर न कर ।। २९ ।। क्यों कि, तुम्हारे तो मृग भक्ष्य हैं तुम्हें इसमें क्या दोष है, हम सत्यसे पवित्र होकर स्वर्ग चले जायँगे इसमें सन्देह नहीं है ।। २३० ।। कुटुम्ब सहित तेरे प्राणोंका पालन होगा । इन वचनोंको सुन लुब्धक अपनी बुराई करके हिरणसे बोला ।। ३१ ।। कि, ओ महासत्त्व मृग ! अपने आश्रम जा, मुझे मांसकी आवश्यकता नहीं है, जो होना होगा सो होगा ।। ३२ ।। जीवोंके मारने बाँधने और डरानेमें पापही पाप है मैं परिवारके लिये कभी पाप न करूंगा ।।३३।। हे मृगोत्तम ! आपने मुझे उत्तम धर्मोका उपदेश दिया है, इस कारण तू मेरा गुरु है । हे मृगश्रेष्ठ ! आप अपने कुटुम्बके साथ अपने स्थानपर पधारें ।।३४।। सत्य धर्मका आश्रय लिया है अस्त्रोंका त्याग करदिया, व्याधके वचन सुनकर हिरन फिर बोला कि, ।।३५।। मैं तो कर्म्मोंका त्याग करके तेरे पास आया हूं मुझे शीघ्रही मारदे तुझे पाप न होगा ।।२३६।। मैंने पहिले तुझे वचन दिये थे उनसे बँधाहुआ आया हूं, मैंने और मेरे कुटुम्बने अपने जीवनका लोभ छोड दिया है ।।२३७।। ये वचन सुन लुब्धक बोला कि, तू मेरा भाई, गुरु, रक्षक, माता, पिता और सुहृत् सब कुछ है ।।२३८।। मैंने अस्त्र और माया आदिक बल दोनोंका त्याग करदिया है, हे मृग ! किसकी स्त्री, किसके बेटे, किसका कुटुम्ब है ।।२३९।। अपने कर्म आप भोगने पडते हैं, हे मृग ! तू सुखसे चलाजा, यह कहकर उसने एकदम धनुषके टूककरडाले, तीर तोड डाले ।।२४०।। मृगकी प्रदक्षिणा नमस्कार करके क्षमा माँगी इसी बीचमें आकाशमें दुन्दुभि बजनेलगे ।।२४१।। आकाशसे सुन्दर पुष्प वृष्टि होने लगी उस समय एक देवदूत सुन्दर विमान लेकर चला आया ।।४२।। कि, हे जगके लिये भयंकर बने हुए महासत्व व्याध ! इस विमानपर बैठकर देह समेत स्वर्ग चला जा ।।२४३।। शिवरातिके प्रभावसे तेरे पातक मिट गये, उपवासभी अपने आप होगया, रातमें जागरण भी तूने कर लिया ।२४४।। पहर पहर की पूजा तूने अज्ञान पूर्वक की तू सब पापोंसे छूट गया है अब शिवके स्थान चला जा ।।२४५।। इस विमानपर बैठ शिवलोक पहुंच । हे महासत्त्व मृगराज ! अपने स्त्री पुत्रोंके साथ ।।२४६।। तीनों स्त्रियोंसहित नक्षत्रके पदको पाजा तेरेही नामसे वह नक्षत्र संसारमें प्रसिद्ध होगा ।।२४७।। मृग और व्याध इन वचनोंको सुन अपने अपने विमानपर बैठगये और नक्षत्रकी पदवी पाई ।।२४८।। इस मृगके पीछे दोनों मृगी लगीहुई हैं इन तीनोंसे युक्त मृगशीर्ष बोला जाता है ।।२४९।। दो बालक अगाडी तथा पीछे तीसरी मृगी मृगके समीप लगी हुई है ।।२५०।। वह मृगराट् आकाशमें उत्तम नक्षत्र बना दिख रहा है । जो मनुष्य शास्त्रकी बताई हुई रीतिसे जागरणके साथ उपवास करते हैं तो उनको अवश्य मोक्ष होगा इसमें सन्देहही क्या है । शिवरात्रिके बराबर कोई दूसरा पापनाशक व्रत नहीं है इस व्रतको करके सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह ही नहीं है ।।१५१-२५२।। इस व्रतके करनेसे एक हजार अश्वमेध तथा एकमें सौ वाजपेयके फलको पाजाता है इसमें संदेह ही क्या है । न विचार करनेकी आवश्यकता ही है ।।२५३।। यह श्री लिंगपुराणके उमापार्वतीके संवादके शिवरात्रिके व्रतकी कथा पूरी हुई ।। उद्यापन-स्कन्द बोले कि, मनुष्योंको इस व्रतका उद्यापन कार्य कैसा करना चाहिये ? उसकी विधि क्या और द्रव्य कौनसे हैं ? हे प्रभो ! वह मुझे बताइये ! शिव बोले कि, हे स्वामिकार्तिक ! सावधान होकर सुन, मैं संसारके कल्याणके लिये तेरे आगे उद्यापनकी विधि कहताहूं । जब चित्तमें भक्ति उत्पन्न होजाय, वही व्रतकाल है, क्योंकि, जीवनअनित्य है । चौदह वर्षतक शिवरात्रिव्रत करना चाहिये त्रयोदशीको एकभक्त तथा चतुर्दशीको उपवास होता है, सब सामान इकट्ठा करके मण्डप बनाना चाहिये उसे वस्त्र और पुष्पोंसे खूब सजाना चाहिये, एवं पट्टवस्त्रोंसे सुशोभित करना चाहिये, उसके भीतर बीचमें लिंगतोभद्र मण्डल या सर्वतोभद्रमण्डल बनाना चाहिये, उसे शोभा और उपशोभासे युक्त एवं दीपकोंसे

सर्वत्र उज्वल करे, पीछे विधिपूर्वक पवित्र आचार्य और ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये, वे ब्राह्मण शिवरूप हैं, उनका भी चन्दन और पुष्पोंसे पूजन करना चाहिये, उनही ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर नाममन्त्रसे शिवपूजा और ब्राह्मणोंकी पूजा करे । एक द्रोण तण्डुलोंका कैलास बनावे, उसके ऊपर साबित कलश पानीसे भरके रखे, वह मजबूत एवं सोने, चाँदी, ताँबा या मिट्टीका होना चाहिये, उसे दो वस्त्र लपेटकर बिल्व पत्रोंसे पूज देना चाहिये, कुंभके ऊपर उमासहित शिवजीको स्थापित करे, सोनेका अथवा चाँदीका सुन्दर वृषभ बनावे, सोने चाँदीके अलंकारोंसे अलंकृत करके पूजे, पल आधे पल वा आधेके आधे पलकी मूर्ति बनी होनी चाहिये, वह उमामहेश्वरकी हो, उसे वृषभपर विराजमान करे, गण और उमासहित महेश्वरको पूज कर पुराण और स्तोत्र पाठोंसे रात्रि पूरी करे, प्रभातसे समय सन्ध्यावन्दन करके पूजा करे पीछे होम प्रारंभ करे । भक्तिपूर्वक तिल, व्रीहि और यव तथा खीरका शाकल्य हो, "त्र्यम्बकं" इस मन्त्रसे तथा "नमः शंभवे" इस मंत्रसे तथा "गौरी मिमाय" इस मन्त्रसे पृथक् एक सौ आठ आहुति दे, नाम मन्त्रोंसे बिल्वपत्रोंसे हवन करे । आज एकपाद, अहिर्बुध्न्य, भव, शर्व, उमापति, रुद्र, पशुपति, शंभु, वरद, शिव, ईश्वर,, महादेव, हर, भीम ये चौदह नाम हैं, इनसे होम करे । कुम्भदानमें भी इनका स्मरण करे । इसके बाद पूर्णाहुति देकर कर्मशेषको पूरा करे । इन नाम पदोंसे पृथक् पृथक् देससे भोज्यका क्षमापन करावे । कुंभसहित प्रतिमाको आचार्यके लिए दे दे । हे देवेश ! हे सर्वलोकेश ! हे प्रभो ! आप प्रसन्न हों, आपका रूप देनेसे मेरे मनोरथ पूरे होजायँ । वस्त्र, अलंकार और आभूषणोंसे आचार्य्यका पूजन करे । व्रतकी पूर्तिके लिए वस्त्र उढाकर गाय दे, दूसरे ब्राह्मणोंको भी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे । चौदह पानीके भरे घडे उपवीत और वस्त्र पृथक् पृथक् ब्राह्मणोंको देने चाहिए, महीन कपडे और मय सामानके शय्या दे, बारह गाय और परिधान आदिके दे, अथवा ब्राह्मणोंकी तुष्टिके लिए दक्षिणाही दे और कहे कि, यह मेरा व्रत पूरा हो वा अधूरा हो वा सब आपकी कृपासे पूरा होजाय, ऐसी प्रार्थना करे एवं उन्हें बारंबार प्रणाम करे । पीछे स्वजनोंके साथ आप भोजन करे । यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ उत्तर कालका उद्यापन पूरा हुआ ।। इसके साथही चौदसके व्रत भी पुरे होते हैं ।।

अथ पूर्णिमाव्रतानिलिख्यन्ते

पूर्णिमानिर्णयः

चैत्री पौर्णमासी सामान्यनिर्णयात्परैव ।। अत्र विशेषो निर्णयामृते विष्णुस्मृतौ, चैत्री चित्रायुता चेत्स्याच्चित्रवस्त्रप्रदानेनसौभाग्यमाप्नोतीति ब्राह्मे–मन्देऽर्के वा गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका ।। तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्भवेत् ।। अत्र सर्वदेवानां दमनपूजा वायवीयेसंवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाखिलान्सुरान् ।। दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषण सदाशिवम् ।। इयं मन्वादिरपि।। इति चैत्रीपूर्णिमा ।। वैशाखपौर्णमास्यां विशेषः स्मर्यते भविष्ये–वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः ।। स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ।।

पूर्णिमाव्रतानि

अब पूर्णिमाके व्रत लिखे जाते हैं। चैत्री पूर्णिमा *सामान्य निर्णयसे पराही ली जाती हैं । इस व्रतमें निर्णयामृतमें विष्णु स्मृतिके वाक्योंसे कुछ विशेष लिखा है, कि, चैत्री पूर्णिमा चित्रानक्षत्रसे युक्त हो तो

* सामान्य साधारणको कहते हैं यानी पूर्णिमाके विषयमें जो साधारण निर्णय किया है कि सावित्रीके व्रतकोछोड़कर पौर्णिमा और अमावस्य पराही लीजाती हैं । यही पूर्णिमाके विषयमें निर्णय है इसीको लेकर ग्रन्थकारने सामान्य निर्णय शब्द का प्रयोग किया है ।

रंगे वस्त्र देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है । ब्राह्मपुराणमें लिखा है कि, यदि चैत्रिका, शनि, रवि और गुरुवारी हो तो उसमें स्नान श्राद्ध करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है । इसमें वायवीयने सब देवोंकी पूजा दमनकसे लिखी है—कि साल भरकी की हुई पूजाकी सफलताके लिए सब देवोंको दमनसे पूजे तथा शिवजीकी तो विशेषकरके दमनकसे पूजा होनी चाहिये । यह मन्वादि तिथि है जो मन्वादि तिथियोंमें विशेषता कही गई है वह सब इसमें भी समझलेनी चाहिए । यह चैत्रकी पूर्णिमापूरी हुई ।। वैशाखीपूर्णिमा—के विषयमें भविष्यमें कुछ विशेष कहा है कि, वैशाखी, कार्तिकी और माघी ये पूर्णिमा तिथि अत्यंत श्रेष्ठ हैं हे पांडुनंदन इन्हें स्नान दानसे रहित न जाने दे । (क्या दान करे इसमें जाबालिका वचन अपरार्कका दिया हुआ निर्णयमें रखा है कि बनाया हुआ अन्न और पानी भरे घडे वैशाखीमें धर्मराजके उद्देशसे देनेसे गोदानका फल पाता है उन घडोंपर सोनेके तिल रखकर जो पांच वा सात ब्राह्मणोंको देता है उसकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है)

वटसावित्रीव्रतम्

अथ ज्येष्ठशुक्लपौर्णमास्याममायां वा वटसावित्रीव्रतमुक्तम् ।। अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये ।। भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा ।। वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम् ।। इति ब्रह्मवैवर्तात् ।। ज्येष्ठे मासि सितेपक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम् ।। चीर्णं व्रतं महाभक्त्या कथितं ते मयानघे ।। इति स्कान्दभविष्ययोः ।। दाक्षिणात्याश्चैतदेवाचरन्ति। । पाश्चात्यादयस्तु अमावास्यायामाचरन्ति ।। तच्चोक्तं निर्णयामृते भविष्ये-अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासतीम्[1] ।। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ।। अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया ।। अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम् ।। इति ।। हेमान्द्यादिभिस्तु भाद्रपदपौर्णमास्यामिदमुक्तम् ।। तत्तु नेदानीं प्रचरति ।। यदा त्वष्टादश घटिका चतुर्दशी तदा परैव—पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशी तिथिः ।। नाड्योऽष्टादश भूतस्य तत्र कुर्यात्परेऽहनि ।। इति माधवोक्तेः ।। वस्तुतस्तु भूतविद्धानिषेध एव भूतोष्टादशनाडीभिरिति वाक्यं नियमविधया प्रवर्तते लाघवात् । अन्यथा सावित्रीव्रतेऽष्टादशनाडीवेधदोषकल्पनायां निषेधान्तरकल्पनागौरवं स्यात् ।। अथ व्रतविधिः ।। भविष्ये-ज्येष्ठे मासि त्रयोदश्यां दन्तधावनपूर्वकम् ।। दन्तकाष्ठं समं शुभ्रं जातीयं चतुरंगुलम् ।। भक्षयेत्कायशुद्ध्यर्थं व्रतविघ्नविनाशनम् ।। नित्यं स्नायान्महानद्यां तडागे निर्झरेऽपि वा ।। विशेषतः पौर्णमास्यां स्नानं सर्षपमृज्जलैः ।। तिलामलककल्केन केशान्संशोध्य यत्नतः ।। स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वटं सिञ्चेद्वहूदकैः ।। सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ।। नमो वैवस्वतायेति कुर्याच्चैव प्रदक्षिणाम् ।। वृद्धिक्षये तथा रोगे ऋतुमत्यां तथैव च ।। कारयेद्विप्रहस्तेन सर्वं सम्पद्यते शुभम् ।। इदं च त्रयोदशीमारभ्य पौर्णिमान्तं कर्तव्यम् ।। तथा च स्कान्दभविष्ययो :– ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे।। व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य तस्यां रात्रौ स्थिरा भवेत् ।। इत्युपक्रम्यान्ते उपसंहृतम्—ज्येष्ठे

[1] सावित्रीम् ।

मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम् ।। चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मयानघ ।। इति ।। सधवा विधवा वापि सपुत्रा पुत्रवर्जिता ।। भर्तुरायुर्विवृद्ध्यर्थं कुर्याद्व्रतमिदं शुभम् ।। ज्येष्ठे मासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यां पतिव्रता ।। स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा नियमं कारयेत्ततः ।। अथ पूजाविधिः ।। वटसमीपे गत्वा आचम्य मासपक्षाद्यु-ल्लिख्य मम भर्तुः पुत्राणां चायुरारोग्यप्राप्तये जन्मजन्मनि अवैधव्यप्राप्तये च सावित्रीव्रतमहं करिष्ये इति संकल्प्य-वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः ।। वटाग्रे तु शिवो देवः सावित्री वटसंश्रिता । वट सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः ।। सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ।। नमो वटाय सावित्र्यै भ्रामयेच्च प्रदक्षिणम् ।। सावित्रीं च वटं सम्यगेभिर्मंत्रैः प्रपूजयेत् ।। एवं विधिं बहिः कृत्वा सम्यग्वै गृहमागता ।। हरिद्राचन्दनेनैव गृहमध्ये लिखेद्वटम् ।। तत्रोपविश्य सङ्कल्प्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ।। इति वटं संपूज्य सावित्रीपूजा कार्या ।। तिथ्यादि संकीर्त्य मम जन्मजन्मनि अवैधव्यप्राप्तये भर्तुश्चिरायुरारोग्यसंपदादिकामनया सावित्री-व्रतमहं करिष्ये इति संकल्प्य नियमं कुर्यात् ।। नियममन्त्रः त्रिरात्रं लंघयित्वा तु चतुर्थे दिवसे त्वहम् ।। चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा तु तां सतीम् ।। मिष्टान्नानि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।। भोक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे ।। इति ।। अथ पूजा—ततो भूमिं स्पृष्ट्वा कलशं निधाय पञ्चपल्लवसप्त-मृत्तिकाहिरण्ययवान्कुम्भे निक्षिप्य तदुपरि वंशपात्रं निधाय तस्योपरि सप्तधान्यानि पृथक्स्थाप्यानि ।। ततुपरि वस्त्रं वस्त्रोपरि द्वात्रिंशड्ढब्बूकपरिमितां वालुका-प्रतिमां ब्रह्मणा सह संस्थाप्य पूजयेत् ।। पद्मपत्रासनस्थश्च ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः ।। सावित्री तस्य कर्तव्या वामोत्सङ्गगता तथा ।। आदित्यवर्णा धर्मज्ञा साक्षमालाकरा तथा ।। ध्यानम् ।। ब्रह्मणा सहितां देवीं सावित्रीं लोकमातरम् ।। सत्यव्रतं च सावित्रीं यमं चावाहयाम्यहम् ।। आवाहनम् ।। ब्रह्मणा सह सावित्रि सत्यवत्सहित प्रिये ।। हेमासनं गृह्यतां तु धर्मराज सुरेश्वर ।। आसनम् ।। गङ्गाजलं समानीतं पाद्यार्कं ब्रह्मणः प्रिये ।। भक्त्या दत्तं धर्मराज सावित्रि प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यम् ।। भक्त्या समाहृतं तोयं फलपुष्पसमन्वितम् ।। अर्घ्यं गृहाण सावित्रि मम सत्यव्रत-प्रिये ।। अर्घ्यम्।। सुगन्धि सह कर्पूरं सुरभि स्वादु शीतलम् ।। ब्रह्मणा सह सावित्रि कुरुष्वाचमनीयकम् ।। आचमनीयम् ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतं मया दत्तं स्नानार्थं देवि गृह्यताम् ।। पञ्चामृतानि ।। मन्दाकिन्याः समानीतमुदकं ब्रह्मणः प्रिये ।। सावित्रि धर्मराजेन स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। स्नानम् ।। सूक्ष्मतन्तुमयं वस्त्रयुग्मं कार्पाससंभवम् ।। सावित्रि सत्यवत्कान्ते

भक्त्या दत्तं प्रगृह्यताम् ।। वस्त्रम् ।। सावित्रि सत्यवत्कान्ते धर्मराज सुरेश्वर ।। सावित्री ब्रह्मणा सार्धमुपवीतं प्रगृह्यताम् ।। उपवीतम् ।। भूषणानि च दिव्यानि मुक्ताहारयुतानि च ।। त्वदर्थमुपक्लृप्तानि गृहाण शुभलोचने ।। भूषणानि ।। कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीरोचनायुतम् ।। चन्दनं ते मया दत्तं सावित्रि प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। अक्षताश्च सुरश्रेष्ठे कुकुंमाक्ताः सुशोभनाः ।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। अक्षतान् ।। हरिद्राकुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं सावित्रि प्रतिगृह्यताम् ।। सौभाग्यद्रव्यम् ।। माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।। मयाहृतानि पु० ।। पुष्पाणि ।। अथाङ्गपूजा[1]– सावित्र्यै नमः पादौ पूजयामि ।। प्रसावित्र्यै० जंघे पू० ।। कमलपत्राक्ष्यै० कटी पू० ।। भूतधारिण्यै० उदरं पू० गायत्र्यै० कण्ठं पू० ।। ब्रह्मणः प्रियायै० मुखं पू० ।। सौभाग्यदात्र्यै० शिरः पू० ।। अथ ब्रह्मसत्यपूजा– धात्रे नमः पादौ पू० ।। विधात्रे० जंघे पू० । स्रष्टे न० ऊरू पू० । प्रजापतये० मेढ्रं पू० । परमेष्ठिने० कटी पू० । अग्निरूपाय० नाभिं पू० ।। पद्मनाभाय० हृदयं पूजयामि । वेधसे न० बाहू पू० । विधये० कण्ठं पू० ।। हिरण्यगर्भाय० मुखं पू० ।। ब्रह्मणे न० शिर०ः पू० । विष्णवे न० सर्वाङ्गं पू० । देवद्रुमरसोद्भूतः कालागुरुसमन्वितः ।। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। धूपम् ।। चक्षुर्दं सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम् ।। आर्तिक्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। मध्य पानीयम् ।। उत्तरापोशनम् ।। मुखप्रक्षालनम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। सावित्रि च प्रसावित्रि सततं ब्रह्मणः प्रिये ।। पूजितासि द्विजैः सर्वैः स्त्रीभिर्मुनिगणैस्तथा ।। त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दनीया सुशोभने ।। मया दत्ता च पूजेयं त्वं गृहाण नमोस्तु ते ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। ततोर्घ्यत्रयं दद्यात् ।। ॐकारपूर्विके देवि सर्वदुःखनिवारिणी ।। वेदमातर्नमस्तुभ्यं सौभाग्यं च प्रयच्छ मे ।। इदमर्घ्यम् ।। पतिव्रते महाभागे ब्रह्माणि च शुचिस्मिते ।। दृढव्रते दृढमते भर्तुश्च प्रियवादिनि ।। अर्घ्यम् ।। अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते ।। पुत्रान्पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।। अर्घ्यम् ।। सावित्री ब्रह्मगायत्री सर्वदा प्रियभाषिणी ।। तेन सत्येन मां पाहि दुःखसंसारसागरात् ।। त्वं गौरी त्वं शची लक्ष्मीस्त्वं प्रभा चन्द्रमण्डले ।। त्वमेव च जगन्मातस्त्वमुद्धर वरानने ।। यन्मया दुष्कृतं सर्वं कृतं जन्मशतैरपि ।। भस्मीभवतु तत्सर्वमवैधव्यं च देहि मे ।। अवियोगो यथा देवि सावित्र्या सहितस्य ते ।। अवियोग

[1] हेमाद्र्युक्तश्लोकनिबद्धा...पूजाया एतस्याश्च परस्परं विसंवादः ।

स्तथाऽस्माकं भूयाज्जन्मनि जन्मनि ।। इति प्रार्थना ।। सुवासिन्यस्ततः पूज्य दिवसे दिवसे गते ।। सिन्दूरं कुङ्कुमं चैव ताम्बूलं च पवित्रकम् ।। तथा दद्याच्च शूर्पाणि भक्ष्यं भोज्यादिकं सदा ।। माहात्म्यं चैव सावित्र्याः श्रोतव्यं मुनिसत्तम ।। पुराणश्रवणं कार्यं सतीनां चरितं शुभम् ।। ततो व्रतपूजासाङ्गतासिद्धचर्थं ब्राह्मणाय वायनप्रदानमहं करिष्ये ।। फलं वस्त्रसमायुक्तं सौभाग्यद्रव्यसंयुतम् ।। वंशपात्रे निधायादौ ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। उपायनमिदं तुभ्यं व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। वायनं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। इति वायनम् ।। इति वटसावित्रीपूजनं समाप्तम् ।। अथ कथा ।। सनत्कुमार उवाच ।। कुलस्त्रीणां व्रतं देव महाभाग्यं तथैव च ।। अवैधव्यकरं स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रदायकम् ।। १ ।। ईश्वर उवाच ।। आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा ज्ञानी परमधार्मिकः ।। नाम्ना चाश्वपतिर्वीरो वेदवेदाङ्ग पारगः ।।२।। ।। २ ।। अनपत्यो महाबाहुः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।। सपत्नीकस्तपस्तेपे समाराधयते नृपः ।। ३ ।। सावित्रीं च प्रसावित्रीं जपन्नास्ते महामनाः ।। जुहोति चैव सावित्रीं भक्त्या परमया युतः ।। ततस्तुष्टा तु सावित्री सा देवी द्विजसत्तम् ।। सविग्रहवती देवी तस्य दर्शनमागता ।। ५ ।। भूर्भुवः*स्वरवन्त्येषा साक्षसूत्र, कमण्डलुः।।तं तु दृष्ट्वा जगद्वन्द्यां सावित्रीं च द्विजोत्तम ।। ६ ।। प्रणिपत्य नृपो भक्त्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।। त्वं दृष्ट्वा पतितं भूमौ तुष्टा देवी जगाद ह ।। ७ ।। सावित्र्युवाच ।। तुष्टाऽहं तव राजेन्द्र वरं वरय सुव्रत ।। एवमुक्तस्तया राजा प्रसन्नां तामुवाच ह ।। ।। ८ ।। अनपत्यो ह्यहं देवि पुत्रमिच्छामि शोभनम् ।। नान्यं वृणोमि सावित्रि पुत्रमेव जगन्मये ।। ९ ।। अन्यदस्ति समग्रं मे क्षितौ यच्चापि दुर्लभम् ।। प्रसादात्तव देवेशि तत्सर्वं विद्यते गृहे ।। १० ।। एवमुक्ता तु सा देवी प्रत्युवाच नराधिपम् ।। सावित्र्युवाच ।। पुत्रस्ते नास्ति राजेन्द्र कन्यैका ते भविष्यति ।। ११ ।। कुलद्वयं तु सा राजन्नुद्धरिष्यति भामिनी ।। मन्नाम्ना राजशार्दूल तस्या नाम भविष्यति ।। ।। १२ ।। इत्युक्त्वा तं मुनि श्रेष्ठ राजानं ब्रह्मणः प्रिया ।। अन्तर्धानं गता देवी सन्तुष्टोसौ महीपतिः ।। १३ ।। ततः कतिपयाहोभिस्तस्य राज्ञी महीभुजः ।। ससत्त्वा समजायेत पूर्णे काले सुषाव ह ।। १४ ।। सावित्र्या तुष्टया दत्ता सावित्र्या जप्तया तथा ।। सावित्री तेन वरदा तस्या नाम बभूव ह ।। १५ ।। राजते देवगर्भाभा कन्या कमललोचना ।। ववृधे सा मुनिश्रेष्ठ चन्द्रलेखेव चाम्बरे ।। १६ ।। सावित्री ब्रह्मणो वै सा श्रीरिवायतलोचना ।। तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां राजा चिन्तामुपेयिवान् ।। १७ ।। अयाच्यमानां च वरै रूपेणाप्रतिमां भुवि ।। तस्या रूपेण ते सर्वे सन्निरुद्धा महीभुजः ।। १८ ।। ततः स राजा चाहूय उवाच कमलेक्षणाम् ।। पुत्रि प्रदान-

* स्वःअवन्तीतिच्छेदः । २ स्थित इतिशेषः।

कालस्ते न च याचन्ति केचन ।। १९ ।। स्वयं वरय हृद्यं ते पतिं गुणसमन्वितम् ।। मनः प्रह्लादनकरं शीलेनाभिजनेन च ।। २० ।। इत्युक्त्वा तां च राजेन्द्रो वृद्धामात्यैः सहैव च ।। वस्त्रालङ्कारसहितां धनरत्नैः समन्विताम् ।। २१ ।। विसृज्य च क्षणं तत्र यावत्तिष्ठति भूमिपः ।। तावत्तत्र समागच्छन्नारदो भगवानृषिः ।। २२ ।। अपूजयत्ततो राजा अर्घ्यपाद्येन तं मुनिम् ।। आसने च सुखासीनः पूजितस्तेन भूभुजा ।। २३ ।।पूजयित्वा मुनिं राजा प्रोवाचेदं द्विजोत्तमम् ।। पावितोऽहं त्वया विप्र दर्शनेनाद्य नारद ।। २४ ।। यावदेवं वदेद्राजा तावत्सा कमलेक्षणा ।। आश्रमादागता देवी वृद्धामात्यैः समन्विता ।। २५ ।। अभिवाद्य पितुः पादौ ववन्दे सा मुनिं ततः ।। नारदेन तु दृष्टा सा दृष्ट्वा प्रोवाच भूमिपम् ।। २६ ।। कन्यां च देवगर्भाभां किमर्थं न प्रयच्छसि ।। वराय त्वं महाबाहो वरयोग्या हि सुन्दरीम् ।। ।। २७ ।। एवमुक्तस्तदा तेन मुनिना नृपसत्तम ।। उवाच तं मुनिं वाक्यमनेनार्थेन प्रेषिता ।। २८ ।। आगतेयं विशालाक्षी मया संप्रेषिता सती ।। अनया च वृतो भर्ता पृच्छ त्वं मुनिसत्तम ।। २९ ।। सा पृष्टा तेन मुनिना तस्मै चाचष्ट भामिनी ।। सावित्र्युवाच ।। आश्रमे सत्यवान्नाम द्युमत्सेनसुतो मुने ।। ३० ।। भर्तृत्वेन मया विप्रवृतोऽसौ राजनन्दनः ।। नारद उवाच ।। कष्टं कृतं महाराज दुहित्रा तव सुव्रत ।। ३१ ।। अजानन्त्या वृतो भर्ता गुणवानिति विश्रुतः ।। सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते ।। ३२ ।। स्वयं सत्यं प्रभाषेत सत्यवानिति तेन सः ।। तथा चाश्वाः प्रियास्तस्य अश्वैः क्रीडति मृन्मयैः ।। ३३ ।। चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्वस्तेन चोच्यते ।। रूपवान्गुणवांश्चैव सर्वशास्त्रविशारदः ।। ३४ ।। न तस्य सदृशो लोके विद्यते चेह मानवः ।। सर्वगुणैश्च संपन्नो रत्नैरिव महार्णवः ।। ।। ३५ ।। एको दोषो महानस्य गुणानावृत्य तिष्ठति ।। संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति ।। ३६ ।। अश्वपतिरुवाच ।। अन्यं वरय भद्रं ते वरं सावित्रि गम्यताम् ।। विवाहस्य तु कालोऽयं वर्तते शुभलोचने ।। ३७ ।। सावित्र्युवाच ।। नान्यमिच्छाम्यहं तात मनसापि वरं प्रभो ।। यो मया च वृतो भर्ता स मे नान्यो भविष्यति ।। ३८ ।। विचिन्त्य मनसा पूर्वं वाचा पश्चात्समुच्चरेत् ।। क्रियते च ततः पश्चाच्छुभंवायदि वाशुभम् ।। तस्मात्पुमांसं मनसा कथं चान्यं वृणोम्यहम् ।। ।। ३९ ।। सकृज्जल्पन्ति राजनसकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ।। सकृत्कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ।। ४० ।। इति मत्वा न मे बुद्धिर्विचलेच्च कथंचन ।। सगुणानिर्गुणो वापि मूर्खः पण्डित एव च ।। ४१ ।। दीर्घायु रथवाऽल्पाय स वै भर्ता मम प्रभो ।। नान्यं वृणोमि भर्तारं यदि वा स्याच्छचीपतिः ।। ४२ ।। इति

मत्वा त्वया तात यत्कर्तव्यं वदस्व तत् ।। नारद उवाच ।। स्थिरा बुद्धिश्च राजेन्द्र सावित्र्याः सत्यवान्प्रति[1] ।। ४३ ।। त्वरयस्व विवाहाय भर्त्रा सह कुरु त्विमाम् ।। ईश्वर उवाच ।। निश्चितां तु मतिं ज्ञात्वा स्थिरां बुद्धिं च निश्चलाम् ।। ४४ ।। सावित्र्याश्च महाराजः प्रतस्थेऽसौ वनं प्रति ।। गृहीत्वा तु धनं राजा द्युमत्सेनस्य सन्निधौ ।। ४५ ।। स्वल्पानुगो माहाराजो वृद्धा मात्यैः समन्वितः ।। नारदस्तु ततः खे वै तत्रैवान्तरधीयत ।। ४६ ।। स गत्वा राजशार्दूलो द्युमत्सेनेन संगतः ।। वृद्धश्चान्धश्च राजासौ वृक्षमूलमुपाश्रितः ।। ४७ ।। सावित्र्यश्वपती राजा पादौ जग्राह वीर्यवान् ।। स्वनाम च समुच्चार्य तस्थौ तस्य समीपतः ।। ४८ ।। उवाच राजा तं भूपं किमागमनकारणम् ।। पूजयित्वार्घ्यदानेन वन्यमूलफलैश्चसः ।।४९।। ततः पप्रच्छ कुशलं स राजा मुनिसत्तम ।। अश्वपतिरुवाच ।। कुशलं दर्शनेनाद्य तव राजन्ममाद्य वै ।। ।। ५० ।। दुहिता मम सावित्री तव पुत्रमभीप्सति ।। भर्तारं राजशार्दूल प्राप्नोत्वियमनिन्दिता ।। ५१ ।। मनसा कांक्षितं[2] पूर्वं भर्तारमनया विभो ।। आवयोश्चैव सम्बन्धो भवत्वद्य ममेप्सितः ।। ५२ ।। द्युमत्सेन उवाच ।। वृद्धश्चान्धश्च राजेन्द्र फलमूलाशनो नृप ।। राज्याच्च्युतश्च मे पुत्रो वन्येनाद्य च जीवति ।। ५३ ।। सा कथं सहते दुःखं दुहिता तव कानने ।। अनभिज्ञा च दुःखानामित्यहं नाभिकांक्षये ।। ५४ ।। अश्वपतिरुवाच ।। अनया च वृतो भर्ता जानन्त्या राजसत्तम ।। अनेन सहवासस्ते तव पुत्रेण मानद ।। ५५ ।। स्वर्गतुल्यो महाराज भविष्यति न संशयः ।। एव मुक्तस्तदा तेन राज्ञा राजर्षिसत्तमः ।। ५६ ।। तथेति स प्रतिज्ञाय चकारोद्वाहमुत्तमम् ।। कृत्वा विवाहं राजेन्द्रं संपूज्य विविधैर्धनैः ।। ।। ५७ ।। अभिवाद्य द्युमत्सेनं जगाम नगरं प्रति ।। सावित्री तु पतिं लब्ध्वा इन्द्रं प्राप्य शची यथा ।। ५८ ।। सत्यवानपि ब्रह्मर्षे तया पत्न्याभिनन्दितः ।। क्रीडते तद्वनोद्देशे पौलोम्या मघवानिव ।। ५९ ।। नारदस्य च तद्वाक्यं हृदये तु मनस्विनी ।। वहन्ती नियमं चक्रे व्रतस्यास्य च भामिनी ।। ६० ।। गणयिन्ती[3] दिनान्येव न लेभे हर्षमुत्तमम् ।। अस्मिन्दिने च मर्तव्यमिति सत्यवता मुने ।। ६१ ।। ज्ञात्वा तं दिवसं विप्र भर्तुर्मरणकारणम् ।। व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रौ स्थिराभवत् ।। ६२ ।। ततस्त्रिरात्रं निर्वर्त्य संतर्प्य पितृदेवताः ।। श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्दे चारुहासिनी ।।६३।। कुठारं परिगृह्याथ कठिनं चैव सुव्रत ।।प्रतस्थे स वनायैव सावित्री वाक्यमब्रवीत् ।। ६४ ।। न गन्तव्यं वनं त्वद्य मम वाक्येन मानद ।। अथवा गम्यते साधो मया सह वनं व्रज ।। ६५ ।। संवत्सरं भवेत्पूर्णमाश्रमेऽस्मिन्मम प्रभो ।।

---

१ सत्यवन्तं प्रतीत्यर्थः । २ अनया पूर्वं कांक्षिते भर्तारिमियं प्राप्नोत्वित्यन्वयः । ३ कदा नियमं चक्रे इत्या कांक्षायामाह—गणयन्तीति ।

तद्वनं द्रष्टुमिच्छामि प्रसादं कुरु मे प्रभो ।। ६६ ।। सत्यवानुवाच ।। नाहं स्वतन्त्रः सुश्रोणि पृच्छस्व पितरौ मम ।। ताभ्यां प्रस्थापिता गच्छ मया सह शुचिस्मिते ।। ६७ ।। एवमुक्ता तदा तेन भर्त्रा सा कमलेक्षणा ।। श्वश्रूश्वशुरयोः पादावभिवाद्येदमब्रवीत् ।। ६८ ।। वनं द्रष्टुमभीच्छेयमाज्ञा मह्यं प्रदीयताम् ।। भर्त्रा सह वनं गन्तुमेतत्त्वरयते मनः ।। ६९ ।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा द्युमत्सेनोऽब्रवीदिदम् ।। व्रतं कृतं त्वया भद्रे पारणं कुरु सुव्रते ।। ७० ।। पारणान्ते ततो भीरु वनं गन्तुं त्वमर्हसि ।। सावित्र्युवाच ।। नियमश्च कृतोऽस्मा[1]भी रात्रौ चन्द्रोदये सति ।। ।। ७१ ।। जाते मया प्रकर्तव्यम् भोजनं तात मे शृणु ।। वनदर्शनकामोऽस्ति भर्त्रा सह ममाद्यवै ।। ७२ ।। न मे तत्र भवेद्ग्लानि भर्त्रा सह नराधिप ।। इत्युक्तस्तु तया राजा द्युमत्सेनो महीपतिः ।। ७३ ।। यत्तेऽभिलषितं पुत्रि तत्कुरुष्व सुमध्यमे ।। नमस्कृत्वा तु सावित्री श्वश्रूं च श्वशुरं तथा ।। ७४ ।। सहिता सा जगामाथ तेन सत्यव्रता मुने ।। वि[2]लोकयन्ती भर्तारं प्राप्तकालं मनस्विनी ।।७५।। वनं च फलितं दृष्ट्वा पुष्पितद्रुमसंकुलम् ।। द्रुमाणां चैव नामानि मृगाणां चैव भा[3]मिनी ।। ७६ ।। पश्यन्ती मृगयूथानि हृदयेन प्रवेपती ।। तत्र गत्वा सत्यवान्वै फलान्यादाय सत्वरम् ।। ७७ ।। काष्ठानि च समादाय बबन्ध भारकं तदा ।। कठिनं पूरयामास कृत्वा वृक्षालवम्बनम् ।। ७८ ।। वट[4]वृक्षस्य सा साध्वी उपविष्टा महासती ।। काष्ठं पाटयतस्तस्य जाता शिरसि वेदना ।। ७९ ।। ग्लानिश्च महती जाता गात्राणां वेपथुस्तदा ।। आगत्य वृक्षसामीप्यं सावित्रीमिदमब्रवीत् ।। ८० ।। मम गात्रेऽतिकम्पश्च जाता शिरसि वेदना ।। कण्टकैर्भिद्यते भद्रे शिरो मे शूलसंमितैः ।। ८१ ।। उत्सङ्गे तव सुश्रोणि स्वप्तुमिच्छामि सुव्रते ।। अभिज्ञा सा विशालाक्षी तस्य मृत्योर्मनस्विनी ।। ८२ ।। प्राप्तं कालं मन्यमाना तस्थौ तत्रैव भामिनी ।। सत्यवानपि सुप्तस्तु कृत्वोत्सङ्गे शिरस्तदा ।। ८३ ।। तावत्तत्र समागच्छत्पुरुषः कृष्णपिङ्गलः।। जाज्वल्यमानो वपुषा ददर्शामुं च भामिनी ।। ८४ ।। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञा कस्त्वं लोकभयंकरः ।। नाहं धर्षयितुं शक्या पुरुषेणापि केनचित् ।। ८५ ।। इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं यमो लोकभयंकरः ।। यम उवाच ।। क्षीणायुस्तु वरारोहे भर्ता तव मनस्विनी ।। ८६ ।। (नेष्या[5]म्येनमहं बद्ध्वा ह्येतन्मे च चिकीर्षितम् ।। सावित्र्युवाच।। श्रूयते भगवन् दूतास्तवागच्छन्ति मानवान् ।।८७ ।। नेतुं किल भवान् कस्मादाग-

---

१ व्यत्ययेन बहुवचनं मयेत्यर्थः । २ इत आरम्य प्रवेपतीत्यान्तानि सेत्यस्य विशेपणानि । ३ पृच्छतीति शेपः । ४ तलेइतिशेपः । ५ नेष्याम्मेनमित्यारम्यसार्धमवाप्स्यतीत्यन्तो ग्रन्थो भारतांतर्गतः । पूर्वापरग्रंथस्तु व्रतार्ककौस्तुभानुरोधीत्यवगन्तव्यम् ।

तोऽसि स्वयं प्रभो ।। इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान्स्वचिकीर्षितम् ।। ८८ ।। यथावत्सर्वमाख्यातुं तत्प्रियार्थं प्रचक्रमे ।। अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान् गुणसागरः ।। ८९ ।। नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः ।। ततः सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशंगतम् ।। ९० ।। अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ।। ततः समुद्धृतप्राणं गतश्वासं हतप्रभम् ।। ९१ ।। निर्विचेष्टं शरीरं तद्बभूवाप्रियदर्शनम् ।। यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः ।।९२।। सावित्री चापि दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत ।। नियमव्रतसंसिद्धा महाभाग पतिव्रता ।। ९३ ।। यम उवाच ।। निवर्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौर्ध्वदेहिकम् ।। कृतं भर्तुस्त्वयानृण्यं यावद्गम्यं गतं त्वया ।।९४।। सावित्र्युवाच ।। यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।। मयापि तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ।। ९५ ।। तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुस्नेहाद्व्रतेन च ।। तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ।। ९६ ।। प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः ।। मित्रतां च पुरस्कृत्य किञ्चिद्वक्ष्यामि तच्छृणु।। ९७ ।। ना[1]नात्मवन्तस्तु वने चरन्ति धर्मं च वा[2]सं च परिश्र[3]मं च ।। विज्ञा[4]नतो धर्ममुदाहरन्ति तस्मात्सन्तो धर्ममाहुःप्रधानम् ।। ९८ ।। एक[5]स्य धर्मेण सतां मतेन सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः।। मा वै द्वितीयं मा तृतीयं च वाञ्छे तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम् ।। ९९ ।। यम उवाच ।। निवर्त तुष्टोऽस्मि तवानया गिरा स्वराक्षरव्यञ्जनहेतु युक्तया ।। वरं वृणीष्वेह विनास्य जीवितं ददानि ते सर्वमनिन्दिते वरम् ।। १०० ।। सावित्र्युवाच ।। च्युतः स्वराज्याद्वनवासमाश्रितो विनष्टचक्षुः श्वशुरो ममाश्रमे ।। स लब्धचक्षुर्बलवान्भवेन्नृपस्तव प्रसादाज्ज्वलनार्कसन्निभः ।। १ ।। यम उवाच ।। ददामि तेऽहं तमनिन्दिते वरं यथा त्वयोक्तं भविता च तत्तथा ।। तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ।। २ ।। सावित्र्युवाच ।। कुतः श्रमो भर्तृसमीपतो हि मे यतो हि भर्त्रा मम सा गतिर्ध्रुवा ।। यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे ।। ३ ।। सतां सकृत्सङ्गतमीप्सितं परं ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते ।। न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं ततः सतां संनिवसेत्समागमे ।। ४ ।। यम उवाच ।। मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनं त्वया यदुक्तं वचनं हिता[6]श्रयम् ।। विना पुनः सत्यवतो हि जीवितं वरं द्वितीयं वरयस्व भामिनि ।।५।। सावित्र्युवाच ।। हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः ।। जह्यात्स्वधर्मांश्च च मे गुरु[7]र्यथा द्वितीयमेतद्वरयामि ते वरम् ।। ६ यमउवाच ।। स्वमेव राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरान्न च स्वधर्मात्परिहास्यते नृपः ।। कृतेन कामेन

१ अजितेन्द्रियाः वनेधर्मनाचरन्तीत्यन्वयः । २ गुरुकुलवासंब्रह्मचर्यम् ।। ३ परित्यागरूपामाश्रमं संन्यासम् । ४ विज्ञानाय । ५ चतुर्णां मध्येएकस्याश्रमस्यधर्मेण वसर्वेवयं ज्ञानमार्गप्राप्ताः स्मः अतोमत्सदृशोद्वितीयंगुरुकुलवासंतृतीयंसंन्यासंनवांछे । ६ युक्त्यनुकूलम् । ७ श्वशुरः

मया नृपात्मजे निवर्त गच्छत्व न ते श्रमो भवेत् ।। ७ ।। सावित्र्युवाच ।। प्रजास्त्वयैता नियमेन[1] संयता नियम्य चैता नयसे[2] निकामया[3] ।। ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं निबोध चेमां गिरमीरितां मया ।। ८ ।। अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।। अनाग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ।। ९ ।। एवं प्रायश्चं लोकोऽयं मनुष्याशक्तिपेशलाः[4] ।। सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु[5] दयां प्राप्तेषु कुर्वते ।। ११० ।। यम उवाच ।। पिपासितस्येव भवेद्यथा पयस्तथा त्वया वाक्यमिदं[6] समीरितम् ।। विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं वरं वृणीष्वेह शुभे यदीच्छसि ।। ११ ।। सावित्र्युवाच ।। ममानपत्यः पृथिवीपतिःपिता भवेत्पितुः पुत्रशतं तथौरसम् ।। कुलस्य सन्तानकरं च यद्भवेत्तृतीयमेतद्वरयामि ते वरम् ।। १२ ।। यम उवाच ।। कुलस्य सन्तानकरं सुवर्चसं शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे ।। कृतेन कामेन नराधिपात्मजे निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ।। १३ ।। सावित्र्युवाच ।। न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ मनो हि मे दूरतरं प्रधावति ।। अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां[7] मयोच्यमानां शृणु भूय एव च ।। १४ ।। विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवांस्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः ।। समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजास्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता ।। १५ ।। आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सुयः ।। तस्मात्सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति ।। १६ ।। सौहृदात्सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते ।। तस्मात्सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः ।। १७ ।। यम उवाच ।। उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने शुभं न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया ।। अनेन तुष्टोऽस्मि विनास्य जीवितं वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च ।। १८ ।। सावित्र्युवाच ।। ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं भवेदुभाभ्यामिह यत्कुलोद्भवम् ।। शतं सुतानां बलवीर्यशालिनामिमं चतुर्थं वरयामि ते वरम् ।। १९ ।। यम उवाच ।। शतं सुतानां बलवीर्यशालिनां भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले ।। परिश्रमस्ते न भवेन्नृपात्मजे निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ।। १२० ।। सावित्र्युवाच ।। सतां[8] सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः[9] सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति ।। सतां सद्भिर्नाफलः सङ्गमोऽस्ति सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः ।। २१ ।। सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति ।। सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन् सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः ।। २२ ।। आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।। सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते परस्परम् ।। २३ ।। न च प्रसादः

---

१ नियमनेन । २ संयोजयसि । ३ कामितेनार्थेन । ४ अशक्तिपेशलाः शक्तिकौशलहीनाः सन्धिरार्षः । ५ सन्तस्त्वमित्रेष्वपि प्राप्तेषु शरणागतेषु दयां कुर्वन्ति किमुत मादृशेषुदीनेष्विति भावः । ६ तृप्तिकरमिति शेषः । ७ उपस्थिताम् । ८ सतां मादृशानां स्त्रीणाम् । ९ शाश्वतधर्मे पत्युः सकाशादेवापत्योत्पादने वृत्तिः । १० वरं दत्त्वासंतो न व्यथन्ति नापि सीदन्ति किंतु उक्तं निवसंत्येवेत्यर्थः ।।

सत्पुरुषेषु मोघो न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः ।। यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं तस्मात्सन्तो रक्षितारो भवन्ति ।। २४ ।। यम उवाच ।। यथा यथा भाषसि धर्मसंहितं मनोऽनुकूलं सुपदं महार्थवत् ।। तथातथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते ।। २५।। सावित्र्युवाच ।। न [1]तेऽपवर्गः सुकृताद्विना कृतस्तथा [2]यथान्येषु वरेषु मानद ।। वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना ।। २६ ।। न कामये भर्तृविनाकृता सुखं न कामये भर्तृविनाकृता दिवम् ।। न कामये भर्तृविना कृता श्रियं न भर्तृहीना व्यवसा[3]मि जीवितुम् ।।२७ ।। वरातिसर्गः शतपुत्रता मम त्वयैव दत्तो, ह्रियते च मे पतिः ।। वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं तवैव सत्यं वचनं भविष्यति ।। २८ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यम ।। धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत् ।।२९ ।। एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि ।। अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थं स भविष्यति ।। ।। १३० ।। चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यसि) ।। सा गता वटसामीप्यं कृत्वोत्सङ्गे शिरस्ततः ।। ३१ ।। प्रबुद्धस्तु ततो ब्रह्मन् सत्यवानिदमब्रवीत् ।। मया स्वप्नो वरारोहे दृष्टोऽद्यैव च भामिनि ।। ३२ ।। तत्सर्वं कथितं तस्या यद्वृत्तं सर्वमेव तत् ।। तया च कथितः सर्वः संवादश्च यमेन हि ।। ३३ ।। अस्तंगते ततः सूर्ये द्युमत्सेनो महीपतिः ।। पुत्रस्यागमनाकांक्षी इतश्चेतश्च धावति ।। ३४ ।। आश्रमादाश्रमं गच्छन्पुत्रदर्शनकांक्षया ।।आवयोरन्धयोर्यष्टिः क्व गतोऽसि विना[4]वयोः ।। ३५ ।। एवं स विविधं क्रोशन्सपत्नीको महीपतिः ।। चकार दुःखं संतप्तः पुत्रपुत्रेति चासकृत् ।।३६।। अकस्मादेव राजेन्द्रो लब्धचक्षुर्बभूव ह ।। तद्दृष्ट्वा परमाश्चर्यं चक्षुःप्राप्तिं द्विजोत्तमाः ।। ३७ ।। सान्त्वपूर्वं तदा वाक्यमूचचुस्ते तापसा भृशम् ।। चक्षुःप्राप्त्या महाराज सूचितं ते महीपते ।। ३८ ।। पुत्रेण च समं योगं प्राप्स्यसे नृपसत्तम ।। ईश्वर उवाच ।। यावदेवं वदन्त्येते तापसा द्विजसत्तमाः ।। ३९ ।। सावित्रीसहितः प्राप्तः सत्यवान् द्विजसत्तम ।। नमस्कृत्य द्विजान् सर्वान् मातरं पितरं तथा[5] ।। १४०।। सावित्री च ततो ब्रह्मन् ववन्दे चरणौ मुदा ।। श्वश्रूश्वशुरयोस्तां तु पप्रच्छुर्मुनयस्तदा ।। ४१ ।। मुनय ऊचुः ।। वद सावित्रि

---

१ ते त्वत्तः । २ अपवर्गः पुत्रफलप्राप्तिः सुकृताद्विना समीचीनाद्दांपत्ययोगादृते क्षेत्रजादिषु पुत्रार्पणेन न कृतो भवति यथा अन्येषु वरेषु भर्तृषु मदयन्त्यां वसिष्ठस्येव नतद्वत्यस्मादेवं तस्माद्वरं वृणे । ३ शक्नोमि । ४ आवांविनेत्यर्थः । ५ स्थित इतिशेषः ।

जानासि कारणं वरवर्णिनि ।। वृद्धस्य चक्षुषः प्राप्तेः श्वशुरस्य शुभानने ।। ४२ ।। सावित्र्युवाच ।। न जानामि मुनिश्रेष्ठाश्चक्षुषः प्राप्तिकारणम् ।। चिरं सुप्तस्तु मे भर्ता तेन कालव्यतिक्रमः ।। ४३ ।। सत्यवानुवाच ।। अस्याः प्रभावात्संजातं दृश्यते कारणं न च ।। तत्सर्वं विद्यते विप्राः सावित्र्यास्तपसः फलम् ।। ४४ ।। व्रतस्यैव तु माहात्म्यं दृष्टमेतन्मयाऽधुना ।। ईश्वर उवाच ।। एवं तु वदतस्तस्य तदा सत्यव्रतो मुने ।। ४५ ।। पौराः समागतास्तस्य ह्याचख्युर्नृपतेर्हितम् ।। पौरा-ऊचुः ।। येन राज्यं बलाद्राजन् हृतं क्रूरेण मंत्रिण ।। ४६ ।। अमात्येन हतः सोऽपि इतीव वयमागताः ।। उत्तिष्ठ राजशार्दूल स्वं राज्यं पालय प्रभो ।। ४७ ।। अभिषिच्यस्व राजेन्द्र पुरे मन्त्रिपुरोहितैः ।। ईश्वर उवाच ।। तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलः स्वपुरं जनसंवृतः ।। ४८ ।। पितृपैताअहं राज्यं संप्राप्य मुदमन्वभूत् ।। सावित्री सत्यवांश्चैव परां मुदमवापतुः ।। ४९ ।। जनयामास पुत्राणां शतं सा बाहुशालिनाम् व्रतस्यैव तु माहात्म्यात्तस्याः पितुरजायत ।। १५०।। पुत्राणां च शतं ब्रह्मन् प्रसन्नाच्च यमात्तथा ।। एतत्ते कथितं सर्वं व्रतमाहात्म्यमुत्तमम् ।। ५१ ।। क्षीणा-युर्जीवते भर्ता व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। कर्तव्यं सर्वनारीभिरवैधव्यफलप्रदम् ।। ।। ५२ ।। सनत्कुमार उवाच ।। विधानं ब्रूहि देवेश व्रतस्यास्य च त्र्यंबक ।। क्रियते विधिना केन स्त्रीभिस्त्रिपुरसूदन ।। ५३ ।। ईश्वर उवाच ।। वर्षेकं नियमं कृत्वा एकभक्तेन मानद ।। नक्ताहारेण वा विप्र भुक्तिं त्यक्त्वा द्विजर्षभ ।। ५४ ।। त्रिदिनं लंघयित्वा च चतुर्थे दिवसे शुभे ।। चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा सुवा-सिनीम् ।। ५५ ।। सावित्रीं च प्रसावित्रीं गन्धपुष्पैः प्रपूज्य च ।। मिथुनानि यथा-शक्त्या भोजयित्वा यथासुखम् ।। ५६ ।। भोक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे ।। दिनंदिनं प्रतिश्रेष्ठं कुर्यान्न्यग्रोधसेनचनम् ।। ५७ ।। कृत्वा वंशमये पात्रे वालुकाप्रस्थमेव च ।। सप्तधान्यभृतं पात्रं प्रस्थैकेन द्विजोत्तम ।। ५८ ।। कारयेन्मु-निशार्दूल वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ।। ५९ ।। प्रस्थम्—द्वात्रिंशड्ढब्बुकपरिमितम् ।। तस्योपरिन्यसेद्देवीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह ।। सावित्री सत्यवांश्चैव कार्यौ स्वर्णमयौ शुभौ ।। १६० ।। पिटकञ्च कुठारं च कृत्वा रौप्यमयं द्विज ।। फलैः कालोद्भवै-र्देवीं पूजयेद्ब्रह्मणः प्रियाम् ।। ६१ ।। हरिद्रारञ्जितैश्चैव कण्ठसूत्रैः समर्चयेत् ।। सतीनां कण्ठसूत्राणि त्रिदिनं प्रतिदापयेत् ।। ६२ ।। पक्वान्नानि च देयानि नित्यमेव द्विजोत्तम ।। माहात्म्यं चैव सावित्र्याः श्रोतव्यं मुनिसत्तम ।। ६३ ।। पुराणश्रवणं कार्यं सतीनां चरितं तथा ।। पूजयेच्च तथा नित्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत ।। ६४ ।। सावित्री च प्रसावित्री सततं ब्रह्मणः प्रिया ।। पूज्यसे हूयसे देवि द्विजैर्मुनिगणैः

१ शृणुयादिति पाठेपः ।

सदा ।। ६५ ।। त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दिता त्वं जगन्मये ।। मया दत्तामिमां पूजां प्रतिगृह्ण नमोऽस्तु ते ।। ६६ ।। सावित्री त्वं प्रसावित्री द्विधाभूतासि शोभने ।। जगत्रयस्थिता देवि त्रिसन्ध्यं च तथानघ ।। ६७ ।। श्रेष्ठे देवि त्रिलोके च त्रेताग्नौ त्वं महेश्वरि ।। व्यापितः सकलो लोकश्चातो मां पाहि सर्वदा ।। ६८ ।। रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शुभे ।। पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वदा जन्मजन्मसु ।। ६९।। यथा तेन वियोगोस्ति भर्त्रा सह सुरेश्वरि ।। तथा मम महाभागे कुरु त्वं जन्मजन्मनि ।। १७० ।। एवं संपूजयेद्देवीं कमलासनसंस्थिताम् ।। एवं दिनत्रयं नीत्वा चतुर्थेहनि सत्तम ।। ७१ ।। मिथुनानि च संभोज्य षोडशैव द्विजोत्तम ।। पूजयेद्वस्त्रदानैश्च भूषणैश्च द्विजोत्तम ।। ७२ ।। अर्चयित्वा तथाचार्यं सपत्नीकं सुसंमतम् ।। तस्मै संकल्पितं सर्वं हेमसावित्रिसंयुतम् ।। ७३ ।। मन्त्रेणानेन दातव्यं द्विजमुख्याय सुव्रत ।। सावित्रीं कल्पविदुषे प्रणिपत्य तथा मुने ।। ७४ ।। सावित्री जगतां माता सावित्री जगतः पिता ।। मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ।। ७५ ।। अवैधव्यं च मे नित्यं भूयाज्जन्मनिजन्मनि ।। मृता च वसते लोके ब्रह्मणः पतिना सह ।। तत्रैव च चिरं कालं भुंक्ते भोगाननुत्तमान् ।। १७६ ।। इति वटसावित्रीकथा।। अथाब्दसाध्यं व्रतम् ।। हेमाद्रौ स्कान्दे ।। धर्मराजवरदानानन्तरम् ।। सावित्र्युवाच।। या मदीयं व्रतं देव भक्त्या नारी करिष्यति ।। भर्त्रा सा सहिता साध्वी समस्त-सुखभाग्भवेत् ।। धर्मराज उवाच ।। गौरी प्रमुग्धा मुग्धा वा अपुत्रा पतिवर्जिता ।। सभर्तृयुक्ता सपुत्रा वा कुर्याद्व्रतमिदं शुभम् ।। ज्येष्ठे मासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यां पतिव्रता ।। स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वटं सिञ्च्य बहूदकैः ।। सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ।। नमो वैवस्वतायेति भ्रामयन्ती प्रदक्षिणाम्।। रात्रौ कुर्वीत नक्तं च ह्यब्दमेकं समाहिता ।। तथैव वटवृक्षं च पक्षेपक्षे प्रपूजयेत् ।। अनेनैव विधानेन कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।। सर्वान्मनोरथान्प्राप्य ह्यन्ते रुद्रेण मोदते ।। इति श्रीस्कन्दपुराणेवटसावित्रीव्रतम् ।। अथोद्यापनम्—संप्राप्ते तु पुनर्ज्येष्ठ नक्तभुक् द्वादशीं नयेत् ।। दन्तधावनपूर्वं च स्नात्वा नियममाचरेत् ।। त्रिरात्रं लंघयित्वा तु चतुर्थे दिवसे त्वहम् ।। चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा तु तां सतीम् ।। मिष्टान्नानि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।। भोक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे ।। नियममन्त्रः ।। कृत्वा वंशमये पात्रे वालुकाप्रस्थमेव च ।। सप्तधान्ययुतं पात्रं प्रस्थैकेन द्विजोत्तम ।। वस्त्रद्वयोपरि स्थाप्य सावित्रीं ब्रह्मणा सह ।। हैमीं कृत्वा तयोर्मूर्ति त्रिरात्रव्रतमाचरेत् ।। न्यग्रोधस्य तले तिष्ठेद्यावच्चैव दिनत्रयम् ।। सौवर्णीं चैव सावित्रीं सत्येन सह कारयेत् ।। रौप्यपर्यङ्कमारोप्य रथोपरि निवेश-

१ मुपवासयेदित्यपि पाठः ।

येत् ।। पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या रथं रौप्यमयं शुभम् ।। काष्ठभारं कुठारं च पिटं चैव सुविस्तृतम् ।। धर्मराजं नारदं च तत्रैव परिकल्पयेत् ।। वटमूले प्रकुर्वीत मण्डलं गोमयेन हि ।। संस्थाप्य तत्र सावित्रीं चतुष्कोपरि शोधनाम् ।। एवं च मिथुने कृत्वा पूजयेद्गतमत्सरा ।। पञ्चामृतेन स्नपनं गन्धपुष्पोदकेन च ।। चन्दनागुरु-कर्पूरमाल्यवस्त्रविभूषणैः ।। पीतपिष्टेन पद्मं च चन्दनेनाथवा लिखेत् ।। देवीं सम्पूजयेत्तत्र मन्त्रैरेभिर्विधानतः ।। नमः सावित्र्यै पादौ तु प्रसावित्र्यै तु जानुनी ।। कटिं कमलपत्राक्ष्यै उदरं भूतधारिण्यै[1] ।। गायत्र्यै च नमः कण्ठे शिरसि ब्रह्मणः प्रिये ।। अथ ब्रह्मसत्यवतोः ।। पादौ धात्रे नमः पूज्यावूरू ज्येष्ठाय वै नमः ।। परमेष्ठिने च वै मेढ्रमग्निरूपाय वै कटी ।। वेधसे चोदरं पूज्य पद्मनाभाय वै हृदि।। कण्ठं तु विधये पूज्य हेमगर्भाय वै मुखम् ।। ब्रह्मणे वै शिरः पूज्य सर्वाङ्गं विष्णवे नमः ।। अभ्यर्च्यैवं क्रमेणैव शास्त्रोक्तविधिना शुभम् ।। ततो रजतपात्रेण अर्घ्यं दद्याद्द्वयोरपि ।। सावित्र्यर्घ्यमन्त्रः — ओङ्कारपूर्वके देवि वीणापुस्तकधारिणी ।। देवमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे।।पतिव्रते महाभागे वह्निजाते शुचिस्मिते ।। दृढव्रते दृढमते भर्तुश्च प्रियवादिनि ।। अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते ।। पुत्रान्पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमो नमः ।। अथ ब्रह्मसत्यवतोरर्घ्यमन्त्रः– त्वया सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।। सत्यव्रतधरो देव ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ।। अथ यमस्यार्घ्यमन्त्रः–त्वं कर्मसाक्षी लोकानां शुभाशुभविवेककृत् ।। वैवस्वत गृहाणार्घ्यं धर्मराज नमोऽस्तु ते ।। धर्मराजः पितृपतिः साक्षीभूतोऽसि जन्तुषु ।। कालरूप गृहाणार्घ्यमवैधव्यं च देहि मे ।। गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैः फलैः कर्पूरदीपकैः ।। रक्तवस्त्रैरलङ्कारैः पूजयेद्गतमत्सरा ।। सावित्रीप्रार्थना–सावित्री ब्रह्मगायत्री सर्वदा प्रियभाषिणी ।। तेन सत्येन मां पाहि दुःखसंसारसागरात् ।। त्वं गौरी त्वं शची लक्ष्मीस्त्वं प्रभा चन्द्रमण्डले ।। त्वमेव च जगन्माता मामुद्धर वरानने ।। सौभाग्यं कुलवृद्धिं च देहि त्वं मम सुव्रते ।। यन्मया दुष्कृतं सर्वं कृतं जन्मशतैरपि ।। भस्मीभवतु तत्सर्वमवैधव्यं च देहि मे ।। अथ ब्रह्मसत्यवतोः प्रार्थना–अवियोगो यथा देव सावित्र्या सहितस्तव ।। अवियोगस्तथास्माकं भूयाज्जन्मनि जन्मनि ।। यमप्रार्थना–कर्मसाक्षिञ्जगत्पूज्य सर्ववन्द्य प्रसीद मे ।। संवत्सरं व्रतं सर्वं परिपूर्णं तदस्तु मे ।। सावित्रीप्रार्थना–सावित्रि त्वं यथा देवि चतुर्वर्षशतायुषम् ।। पति प्राप्तासि गुणिनं मम देवि तथा कुरु ।। सावित्री च प्रसावित्री सततं ब्रह्मणः प्रिये ।। पूजितासि द्विजैः सर्वस्त्रीभिर्मुनिगणैस्तथा ।। त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दनीयासि सुव्रते ।। मया दत्ता च पूजेयं त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते ।। जागरं तत्र

[1] आर्षः ।

कुर्वीत गीतवादित्रमङ्गलैः ।। सुवासिन्यस्ततः पूज्या दिवसे दिवसे शुभः ।। सिन्दूरं कुंकुमं चैव ताम्बूलं च सुपूगकम् ।। तथा दद्याच्च शूर्पाणि भक्ष्यं सौभाग्यमष्टकम् ।। संतिष्ठेच्च दिवारात्रौ कामक्रोधविवर्जिता ।। दिनत्रयेऽपि कर्तव्यमेवमर्घ्यादिपूजनम् ।। ततश्चतुर्थदिवसे यत्कार्यं तच्छृणुष्व मे ।। मिथुनानि चतुर्विंशत्षोडश द्वादशाष्ट वा ।। पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्भूषणाच्छादनासनैः ।। अथवा गुरुमेकं च व्रतस्य विधिकारकम् ।। सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ।। वेदविद्याव्रतस्नातं शान्तं च विजितेन्द्रियम् ।। सपत्नीकं समभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारवेष्टनैः ।। शय्यां सोपस्करां दद्याद्गृहं चैवातिशोधनम् ।। अशक्तस्तु यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं च कल्पयेत् ।। सौवर्णी प्रतिमां तत्र पतिनासह दापयेत् ।। दानमन्त्रः–सावित्रि त्वं यथा देवि चतुर्वर्षशतायुषम् ।। सत्यवन्तं पतिं प्राप्ता मया दत्ता तथा कुरु।। सावित्री जगतां माता सावित्री जगतः पिता ।। मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम्।। प्रतिग्रहमन्त्रः।। मया गृहीता सावित्री त्वया दत्ता सुशोभने ।। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च सह भर्त्रा सुखी भव ।। गुरुं च गुरुपत्नीं च ततो भक्त्या क्षमापयेत् ।। यन्मया कृतवैकल्यं व्रतेऽस्मिन्दुरधिष्ठितम् ।। तत्सर्वं पूर्णतां यातु युवयोरर्चनेन तु ।। वटसेचनमन्त्रः– धर्मराजो यमो धाता नीलः कालान्तकोऽव्ययः ।। वैवस्वतश्चित्रगुप्तो दध्नो मृत्युः क्षयो वटः ।। मासि मासि स तथा ह्येतैर्नामभिः सेचयेद्वटम् ।। न्यग्रोधेऽहं वसाम्येव तस्माद्यत्नेन सेचयेत् ।। न्यग्रोधस्य समीपे तु गृहे वा स्थण्डिलेऽपि वा ।। सावित्र्याश्चैव मन्त्रेण घृतहोमं तु कारयेत् ।। पायसं जुहुयाद्भक्त्या घृतेन सह भामिनि ।। व्याहृत्या चैव मन्त्रेण तिलव्रीहियवांस्तथा ।। होमान्ते दक्षिणां दद्यादृत्विजश्च क्षमापयेत् ।। भुञ्जीत वासरान्ते तु नक्ते शान्ता तपस्विनी ।। अर्घ्यं दद्यादरुन्धत्यै दृष्ट्वा चैव प्रणम्य च ।। अरुन्धति नमस्तेऽस्तु वसिष्ठस्य प्रिये शुभे ।। सर्वदेवनमस्कार्ये पतिव्रते नमोऽस्तु ते ।। अर्घ्यमेतन्मया दत्तं फलपुष्पसमन्वितम् ।। पुत्रान्देहि सुखं देहि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। सखिभिर्ब्राह्मणैः सार्धं भुञ्जीत विजितेन्द्रिया ।। एवं करोति या नारी व्रतमेतदनुत्तमम् ।। भ्रातरः पितरौ पुत्रा श्वशुरौ स्वजनास्तथा ।। चिरायुषस्तथाऽरोगा[1] भवन्ति च न संशयः ।। भर्त्रा च सहिता साध्वी ब्रह्मलोके महीयते ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे सावित्रीव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

वटसावित्री व्रत—ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा या अमावस्याके दिन होता है इसमें पूर्णिमा और अमावस्या पूर्वविद्धा ग्रहणकरनी चाहिये, क्योंकि, ब्रह्मवैवर्तमें लिखा हुआ है कि, अमा और पूर्णिमा ये दोनों एक उत्तम सावित्रीव्रतको छोडकर, हे मुने ! पूर्वविद्धा न करनी चाहिए । स्कंद और भविष्यमें लिखा है कि, ज्येष्ठ-

१ आरोगाः स्युश्च जन्मशतत्रयमित्यपि पाठः ।

शुक्ला पूर्णिमाके दिन यह व्रत भक्तिपूर्वक पूरा किया, हे निष्पाप ! यह मैंने तुम्हें सुना भी दिया है । दक्षिण देशके वासी तो ऐसाकरते भी हैं किन्तु पश्चिम आदिदेशके वासी जन अमामें इस व्रतको करते हैं । यही निर्णयामृतमें भविष्य पुराणको लेकर कहाभी है कि, ज्येष्ठ अमामें वडके मूलमें महासती सावित्रीको तीन रात उपवास करके इस विधिसे पूजे । यदि तीन-दिन उपवास करनेकी शक्ति न हो तो जितेन्द्रिय होकर त्रयोदशीको नक्त, चतुर्दशीको अयाचित तया अमामें उपवास करले । हेमाद्रि आदिने तो इसे भाद्रपद पूर्णिमाके दिन कहा है । उसका इस समय प्रचार नहीं है जब अठारह घटिका चतुर्दशी हो तब पराही ली जाती है, क्योंकि माधवने कहा है कि सावित्रीके व्रतमें पञ्चदशीतिथि पूर्वविद्धा लेनी चाहिये, यदि अठारह घडी चतुर्दशी हो तो पर दिन व्रत करे । वास्तवमें देखो तो चतुर्दशीविद्धाका निषेधही है, क्योंकि "चतुर्दशी अठारह घटिकाओंसे अगिली तिथिको दूषितकर देती है" यह वाक्य लाघवसे विधिरूपसे ही प्रवृत्त होता है । यदि ऐसा न मानोगे तो सावित्रीके व्रतमें अठारहनाडीके वेधदोषकी कल्पना करनेमें दूसरे निषेधोंकी कल्पना करनेका गौरवही होगा । व्रतविधि—भविष्यपुराणमें लिखो है कि, ज्येष्ठकी त्रयोदशीके दिनदांतुनके समयदांतुनकरे वह सीधा सफेद चारअंगुलका जाती का होना चाहिए इसके कियेसे व्रतके विघ्न दूर हो जाते हैं, इससे सदा महानदी झरना वा तडागमें स्नान करना चाहिए, विशेष करके पूर्णिमामें सरसों मृत्तिका और जलसे स्नान करे, तिल और आंवलोंकी पानी मिली चूरीसे सावधानीके साथ बालोंको साफ करे, स्नान शौचपूर्वक बहुतसे पानीसे वटको सींचें, भक्ति पूर्वक सूत्रसे वेष्टित करे, शुभगन्ध पुष्प और अक्षतोंसे पूजे "वैवस्वतके लिए नमस्कार" इनसे प्रदक्षिणा करे, वृद्धिमें, क्षयमें, रोगमें, ऋतुमती होनेमें, ब्राह्मणके हाथसे करानेमें ही अच्छा होता है । इस व्रतको त्रयोदशीसे आरंभ करके पूर्णिमापर्यन्त करना चाहिए । यही स्कन्द और भविष्य पुराणमें लिखा हुआहै कि, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीके प्रदोषकालमें तीन रातके व्रतके उद्देश्यसे उस रातमें स्थिर होजाय, यहांसे प्रारंभ करके अन्तमें उपसंहार किया है कि, ज्येष्ठशुक्ला पूर्णिमाके दिन यह व्रत भक्तिपूर्वक पूरा किया, हे निष्पाप ! यह मैंने तुम्हें सुना दिया है । सधवा विधवा अपुत्रा अथवा सपुत्रा कोई भी हो, भर्ताकी आयुकी वृद्धिके लिये इस पवित्र व्रतको करे, ज्येष्ठपूर्णिमाके दिन पतिव्रताको चाहिये कि स्नान करके पवित्र होकर पीछे नियम करे ।। पूजाविधि–वटके समीप जा आचमन करे मासपक्ष आदिको कहे पीछे बोले कि मेरे पति और पुत्रोंकी आयु आरोग्य प्राप्तिके लिये एवं जन्मजन्ममें सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये सावित्रीव्रत मैं करती हूं । ऐसा संकल्प करना चाहिये । वटके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें जनार्दन, अग्रभागपर शिवदेव तथा सावित्री वटके आश्रित है । हे वट ! मैं तेरी जडमें सुधाके समान पानी लगाती हूं, भक्तिपूर्वक सूत्रसे वेष्टित तथा गंध पुष्प और अक्षतोंसे पूजेंगी । वट और सावित्रीके लिये नमस्कार, इससे प्रदक्षिणा करनी चाहिये । इन मंत्रोंसे वट और सावित्री दोनोंका भली भांति पूजन कर दे । इस प्रकार बाहिर विधि करके घर आजाय, घरमें हलदी और चन्दनसे वट लिखे वहां बैठकर सावधानीसे पूजा करे, वटको पूजकर सावित्रीकी पूजा करे । तिथि आदिक कहकर मेरे प्रत्येक जन्ममें अवैधव्य प्राप्तिके लिये एवं भर्ताकी आयु आरोग्य और संपत्ति आदि कामनाके लिये मैं सावित्रीव्रत करती हूं ऐसा संकल्प करके नियम करे । नियम मंत्र—तीन रात लंघन करके चौथे दिन चन्द्रमाको अर्घ दे एवं तुझ सतीको पूजकर मिष्टान्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करा पीछे भोजन करूंगी । हे जगत्की धात्री ! इस मेरे कार्य्यको निर्विघ्न कर । पूजा–विधिपूर्वक भूमिका स्पर्श कर कलश स्थापित करे । पंच पल्लव, सात मृत्तिकाएं सोना और यह कुंभमें डाले, उसके ऊपर वांसका पात्र रखे । उसके ऊपर पृथक् पृथक् सात धान रखे, उसके ऊपर वस्त्र बिछावे, उसपर तीस ढब्बूक भर वालूकी प्रतिमा ब्रह्माके साथ स्थापित करके पूजे, ब्रह्मा कमलके आसनपर बैठा हुआ चार मुंहका होना चाहिये । उसके बाँयें अंगमें गोदीमें बैठी हुई सावित्री बनानी चाहिये । सूर्य्यकी चमकती, धर्मकी जानने-वाली एवं रुद्राक्ष हाथमें लियेहुए है, इससे ध्यान समर्पण करे, ब्रह्मा सहित लोकमाता सावित्री देवी तथा सत्यव्रत और यमसहित राजकुमारी सावित्री इनका आवाहन करती हूं, इससे आवाहन; हे ब्रह्मासहित लोक माता सावित्री तथा यम और सत्यवान् सहित राजकुमारी सावित्री ! पधारिये आसन ग्रहण करिये, इससे आसन; हे ब्रह्माकी प्यारी । हे धर्मराज ! हे सावित्रि ! मैं गंगाजीसे आपके पाद्यके लिये पानी लाई

हूं तथा भक्तिसे देरही हूं आप ग्रहण करिये, इससे पाद्य; मैं भक्तिसे लाई हूं इस पानीमें फल पुष्प मिले हुए हैं, हे सत्यव्रतकी प्यारी सावित्री ! इस अर्घ्यको ग्रहण करिये, इससे अर्घ्य; चित्तको प्रसन्न करदेनेवाली सुगन्धि इसमें मिलीहुई है तथा स्वभावसेभी शीतल और सुगन्धित है । हे सावित्री ! ब्रह्माके साथ आचमन करिये, इससे आचमन; "पयो दधि घृतम्" इससे पंचामृत स्नान; मैं पानी लायी हूं । हे ब्रह्माकी प्यारी सावित्री ! तथा हे सत्यवान् और उनके साथ विराजती हुई राजकुमारी सावित्री ! मैं मन्दाकिनीका पानी लाई हूं इसे स्नानके लिये ग्रहण कलिये, इससे स्नान; कपासके बनेहुए दो महीन कपडे हैं । हे सत्यवान्की प्यारी सावित्री ! मैं भक्तिके साथ दे रहीं हूं आप ग्रहण कलिये, इससे वस्त्र; हे सत्यव्रतकी पत्नि सावित्री ! हे साथ विराजी हुई ब्रह्मपत्नी सावित्री ! हे सुरेश्वर धर्मराज ! आप उपवीत ग्रहण करें, इससे उपवीत; मुक्ताहार सहित दिव्य भूषण आपके लिये, हे शुभ लोचने ! आपके लिये तयार किये हैं, इससे भूषण; 'कुंकुमागरु' इससे सावित्रीके नाम पूर्वक चन्दन; 'अक्षताश्च' इससे अक्षत; हरिद्राकुकुंमम्' इससे सौभाग्य द्रव्य; 'माल्यादीनि सुगन्धीनि' इससे पुष्प समर्पण करना चाहिये ।। अंगपूजा-सावित्रीके लिये नमस्कार चरणोंको पूजती हूं ; प्रसावित्रीके, जंघोंकोपू०; कमलके पत्तेकेसे नेत्रवालीके० कटीको पू०, भूतधारिणीके० उदरको पू०; गायत्रीके कंठगो पू०; ब्रह्माकी प्यारीके० मुखको पू०; सौभाग्यके देनेवालीके० शिरको पूजती हूं ।। ब्रह्मा और सत्यवान्की पूजा-धाताके लिये नमस्कार चरणोंको पूजती हूं; विधाताके० जंघोंको पू०; त्वष्टाके० ऊरूको पू०: प्रजापतिके० मेढ्को पू०, परमेष्ठीके० कटीको पू०, अग्निरूपके० नाभिको पू०; पद्मनाभके० हृदयको पू०; वेधाके० बाहुओंको पू०; विधिके० कंठोंको पू०; हिरण्यगर्भके० मुखको पू०; ब्रह्माके० शिरको पू०; विष्णुके० सर्वांगको पूजती हूं; 'देवद्रुम' इससे धूप; 'चक्षुर्दं सर्वलोकनाम्' इससे दीप; 'अन्नं चतुर्विधम्' इससे नैवेद्य; मध्यमें पानीय, उत्तरापोशन; मुखप्रक्षालन; 'इदं फलम्' इससे फल; 'पूगीफलम्' इससे ताम्बूल; 'हिरण्यगर्भ' इससे दक्षिणा; हे ब्रह्माजीकी सदाही प्रिय रहनेवाली प्रसाविती सावित्री ! सभी द्विज मुनिगण तथा स्त्रियोंने आपको पूजा है, हे सुशोभने देवि ! तू तीनों सन्ध्याओंमें सभी प्राणियोंकी वन्दनीय है, मैंने आपकी यह पूजा की है इसे ग्रहण करें, आपके लिये नमस्कार हो, इससे पुष्पांजलि समर्पण करे । हे देवि ! आपकी जीभमें ओंकार रहता है आप सब दुःखोंके मिटानेवाली हैं, हे वेदमातः ! तेरे लिये नमस्कार है । मुझे सौभाग्य दें, एक अर्घ्य इस मंत्रसे दे, हे शुचिव्रते पतिव्रते महाभागे ब्रह्माणि ! हे पतिकी मधुर बोलनेवाली ! हे दृढव्रते ! हे दृढमते ! अर्घ्य ग्रहणकर, इससे दूसरा अर्घ्य दे । हे सुव्रते ! मुझे सुहाग, पुत्र, पौत्र और सौख्य दे, इसे अर्घ्यको ग्रहण कर तेरे लिये नमस्कार है, इससे तीसरा अर्घ्य दे । आप सदा प्रियभाषिणी ब्रह्मभार्या सावित्री हैं । इस कारण सत्यद्वारा दुःखरूपी संसारसागरमें मेरी रक्षा करें । आप गौरी लक्ष्मी और शर्वाणी हैं, चन्द्र मंडलमें प्रभासी आपही बनीहुई हैं । जगत्की माताभी आपही हैं आप सुन्दर मुखवाली हैं मेरा उद्धार करें । जो मैंने सौ जन्ममें दुष्कृत किये थे वे सब भस्म होजायं मुझे सुहाग दीजिये । जैसे आप और सावित्रीका पतिके साथ वियोग नहीं होता इसीतरह मेराभी किसी जन्ममें पतिसे वियोग न हो, यह प्रार्थना पूरीहुई । दिवसके बीत जानेपर सुवासिनियों कोपूजे, सिन्दूर, कुंकुम, ताम्बूल, पवित्र, सूर्प, भक्ष्य और भोज्य दे, हे मुनिसत्तम ! सावित्रीका माहात्म्य सुनना चाहिये सतियोंके प्राचीन पवित्र चरित्र सुनने चाहियें । इसके पीछे व्रतकी पूजा सिद्धिके लिये ब्राह्मणको वायनेका दान मैं करूंगा ऐसा संकल्प करके, फल वस्त्र और सौभाग्य द्रव्य बांसके पात्रमें रखकर ब्राह्मणके लिये देदे, कि, मैं तुझ श्रेष्ठ ब्राह्मणको व्रतपूर्तिके लिये सोनेसहित यह वायना देता हूं इससेवायना दे । यह वटसावित्रीका पूजन समाप्त हुआ ।। कथा---सनत्कुमार बोले कि, हे शिव ! कोई कुलस्त्रियोंके करने लायक व्रत जो सुहाग, महाभाग्य तथा पुत्रपौत्रोंका देनेवाला हो सो बताइये ? ।।१।। शिव बोले कि, मद्रदेशमें ज्ञानी धर्मा क्षमावीर एवं वेद-वेदाङ्गोंका जाननेवाला एक अश्वपतिनामका राजा था ।।२।। वह परम बलवान् सर्वैश्वर्य्यवाला होकरभी सन्तान रहित था । इस कारण सपत्नीक तप आराधना करने लगा ।।३।। वह परम मनस्वी प्रसावित्री सावित्रीका जप करता था । एवं परम भक्तिके साथ सावित्रीकोही आहुति

देता था ॥४॥ हे द्विजसत्तम ! इससे सावित्री देवी प्रसन्न हो, रूपधारण कर उसके दृष्टिगोचर हुई ॥५॥ भूः भुवः और स्वः के तेजवाली अक्ष सूत्र और कमण्डलु लियेहुए अथवा इन तीनों चीजें महाव्याहृतियोंकी उक्त तीनों लेकर तीनोंको दिखानेवाली थीं, राजाने उस जगद्वन्द्य सावित्रीको देखकर ॥६॥ प्रसन्न चित्तके साथ भक्तिभावसे प्रणाम किया, राजाको दण्डकी तरह भूमिपर पडा देखकर देवी प्रसन्न होकर बोली ॥७॥ कि, हे राजेन्द्र ! मैं परम प्रसन्न हूं वर मांगिये यह सुन राजा प्रसन्न हो बोला ॥८॥ कि, हे देवि ! मेरे कोई सन्तति नहीं है अच्छा पुत्र चाहता हूं । हे जगन्मये सावित्री ! मैं सिवा पुत्रके और कुछ नहीं माँगता ॥९॥ जो भूमिपर दुर्लभ पदार्थ है वह सब मेरे घरमें हैं । हे देवेशि ! आपकी कृपासे मेरे घरमें सब मौजूद है ॥१०॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर देवी राजासे बोली कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र नहीं है एक कन्या होजायगी ॥११॥ वह अपने और अपने पति दोनोंके कुलोंका उद्धार करदेगी । जो मेरा नाम है हे राजशार्दूल ! उसकाभी वही नाम होगा ॥ १२ ॥ हे मनिश्रेष्ठ तना कहकर देवी अन्तर्धान होगई ।राजा परम प्रसन्न होगया ॥१३॥ कुछ दिन बीतनेपर रानी गर्भवती होगई पूरे दिन बीत जानेपर प्रसव किया ॥१४॥ सावित्री जपी थी, प्रसन्न हो सावित्रीने वर दिया था । इस कारण नवजात कन्याका नाम सावित्री ही रखागया ॥१५॥ वह कमलनयनी देवी जैसी चमकती थी । जैसे अम्बरमें प्रतिदिन चाँदकी कलाएँ बढती हैं, उसी तरह बढनी थी ॥१६॥ वह ब्रह्माकी सावित्री थी, बडे बडे नयनोंवाली लक्ष्मी हीथी, हेमगर्भकीसी उसकी चमक देखकर राजाको बडी चिन्ता हुई ॥१७॥ उसके समान कोई सुन्दर नहीं था । उसके तेजके आगे उसके मांगनेका कोई साहस नहीं करता था । उसके रूप और तेजके मारे सब राजा रुकगये थे ॥१८॥ एक दिन राजाने बुलाकर उस कमलनयनी लडकीसे कहा कि, हे पुत्रिके ! तेरे विवाहका समय आगया, पर तुझे कोई माँग नहीं रहा है ॥१९॥ जो तुझे अच्छा गुणी वर दीखे उसे तू आप व्याह ले, जिसके परिवार और शीलसे तुझे आनन्द मिले ॥२०॥ ऐसा कहकर बूढे मंत्रियोंके साथ वस्त्र अलंकार और धनके साथ भेजदिया । एकदिन आप एक क्षणमात्रही बैठा था कि, इतनेमें वहां अपने आप नारदजी आ उपस्थित हुए ॥२१-२२॥ राजाने अर्घ्यपाद्यसे मुनिराजका पूजन करके आसनपर विराजमान किया ॥२३॥ पूजा कृत्य समाप्त करके मुनिराजसे राजा बोला कि, हे नारद आपके दर्शनसे मैं पवित्र होगया हूं । आपने मुझे पवित्र कर दिया ॥२४॥ राजा यह कह ही रहे थे कि, उनही बुड्ढे मंत्रियोंके साथ आश्रमसे कमलनयनी सावित्री आ उपस्थित हुई ॥२५॥ पहिले उसने पिताकीचरण वन्दना की, पीछे मुनिराजको प्रणाम किया, नारदजी उसे देखकर बोले ॥२६॥ कि, हे राजन् ! देवगर्भकीसी चमकवाली सुन्दरी विवाह योग्य कन्याको किसी योग्य वरके लिए क्यों नहीं दे रहे हो ? ॥२७॥ मुनिराजके कहतेही राजाने उत्तर दिया कि, हे मुनिसत्तम ! कि, मैंने इसे इसी लिए भेजा था ॥२८॥ अब यह वापिस आगई है । इसने अपना पति आपही चुन लिया है, इससे पूछ लीजिए ॥२९॥ मुनिके पूछनेपर सावित्रीने उत्तर दिया कि, हे मुनिराज ! आश्रममें द्युमत्सेनका पुत्र सत्यवान् है ॥३०॥ हे विप्र ! मैंने उसे पतिके लिए चुना है, नारद बोले कि, हे सुव्रत महाराज ! आपकी पुत्रीने बडी बुरी बात की ॥३१॥ इसने विना जाने वर लिया यद्यपि वह गुणवान् है, प्रसिद्ध है, उसके मां बाप सत्य बोलते हैं ॥३२॥ वह आप भी सत्यही बोलता है, इस कारण उसे सत्यवान् कहते हैं, उसे घोडे प्यारे लगते हैं वह मिट्टीके घोडोंसे ही खेल करता है ॥३३॥ चित्र भी घोडेके ही काढता है । इस कारण उसे चित्राश्व भी कहते हैं, वह रूपवान है, गुणवान् है, सभी शास्त्रोंका ज्ञाता है ॥३४॥ उसके बराबर कोई मनुष्य नहीं है, वह सब गुणोंसे संपन्न है । जैसे कि, रत्नोंसे महासमुद्र रहा करता है ॥३५॥ पर एकही उसका दोष सब गुणोंको ढक देता है कि, एक सालमें उसकी आयु नष्ट होजायगी । जिससे वह देहत्याग कर देगा ॥३६॥ यह सुन, अश्वपति बोला कि, हे सावित्री ! तेरा कल्याण हो किसी दूसरे वरको वर ले जा, हे शुभलोचने ! यही तेरे विवाहका समय है ॥३७॥ हे तात ! मैं मनसे भी किसीको नहीं चाहती जो मैंने वरा है, वही मेरा पति होगा ॥३८॥ पहिले मनसे विचारकर पीछे कहे, चाहे शुभ हो, वा अशुभ हो, पीछे करता है । इस कारण मैं मनसे भी किसी दूसरे पुरुषको नहीं वर सकती ॥३९॥ राजा और पंडित एक बारही कहा करते हैं, एकही बार कन्या दी जाती है, सज्जनोंकी ये तीनों बातें एक बारही होती हैं ॥४०॥ यह जानकर मेरी बुद्धि किसी

तरह भी विचलित नहीं होगी । सगुण, निर्गुण, मूर्ख, पंडित ॥४१॥ दीर्घायु अथवा अल्पायु चाहे कुछ भी हो पर वही मेरा पति होगा । चाहे इन्द्रही क्यों न मिले पर मैं दूसरेको न वरूंगी ॥४२॥ यह जानकर आप जो करना चाहो, सो कीजिए कहिए । नारदजी बोले कि, हे राजेन्द्र ! सत्यवान्के प्रति सावित्रीकी स्थिरमति है ॥४३॥ आप इसका विवाह करके इसे शीघ्रही पतिके साथ कर दें शिवजी बोले कि, स्थिर निश्चल बुद्धि-वाली अचल उसे जानकर ॥४४॥ राजा धन और सावित्रीको साथ लेकर वनमें द्युमत्सेनके पास पहुचा एवं मिला साथ कुछ अनुयायी और बुड्ढे मंत्री थे नारद् तो वहीं अन्तर्धान होगये वह वृद्ध एवं अंधा था पेडकी जडमें बैठा हुआ था ॥४५-४७॥ सावित्री और अश्वपतिने उसका चरण स्पर्श किया, वे अपना नाम बोलकर समीप खडे होगये ॥४८॥ द्युमत्सेनने आने का कारण पूछा, एवं वनके मूल फलोंसे अर्घ्यदान दिया ॥४९॥ जब अश्वपतिसे कुशल समाचार पूछे तब अश्वपतिने कहा कि, आपके दर्शनमात्रसे मेरा कुशल होगया है ॥५०॥ मेरी सावित्री नमाकी पुत्री आपके पुत्रको चाहती है, यह निष्पाप आपके पुत्रको अपना पति बनाले ॥५१॥ इसने अपनेसे आपके पुत्रको अपना पति बनाया है । मेरा आपका संबन्ध हो, यह मैं चाहता हूं ॥५२॥ द्युमत्सेन बोला कि, मैं बूढा और नेत्र हीन हूँ, हे राजन् ! मेरा भोजन फल मूल है, राज्यसे च्युत हूं, मेरा पुत्रभी बनकी वस्तुओंसे ही निर्वाह करता है ॥५३॥ आपकी पुत्री वनके कष्टोंको कैसे उठावेगी ? यह दुःखोंको क्या जाने ? इस कारण मैं नहीं चाहता ॥५४॥ अश्वपति बोले कि, मेरी पुत्रीने यह सब जान इसे वरा है, हे मानके देनेवाले ! आपके पुत्रका सहवास ॥५५॥ इसे स्वर्गके समान होगा, इसमें सन्देह नहीं है । राजाके ऐसा कहनेपर उस राजर्षिने ॥५६॥ कहा कि, अच्छी बात है, पीछे उन दोनोंका विवाह करा दिया एवं अनेक प्रकारका धन दिया, पीछे ॥५७॥ अश्वपति द्युमत्सेनका अभिवादनकरके अपनी राजधानी चला आया । सत्यवान को पा सावित्री उसी तरह प्रसन्न हुई, जैसे कि, इन्द्रको पाकर शची प्रसन्न होती है ॥५८॥ हे ब्रह्मर्षे ! सत्यवान् भी उसे पत्नीके रूपमें पा परम प्रसन्न हुआ, वह वनमें इस प्रकार विहार करता था, जैसे नन्दनवनमें शचीके साथ इन्द्र विहार किया करता है ॥५९॥ सावित्रीके मनमें नारदके वचन समाये हुए थे, इस कारण उसने इस वटसावित्री व्रतका नियम लिया ॥६०॥ वह दिनोंको गिनती हुई सत्यवान्का समय समीप जानकर आनन्द न ले सकी ॥६१॥ भर्ताके मरनेका दिन जानकर इस तीन दिनके व्रतमें दिनरात स्थिर होगई ॥६२॥ तीन रात पूरी करके पितर देवताओंका तर्पण किया, सास श्वशुरोंके चरणोंमें वन्दना की । सुव्रत सत्यवान् एक मजबूत कुठार हाथमें लेकर ॥६३॥ वन जानेके लिये तयार हुआ, उससे सावित्री बोली कि, ॥६४॥ आप इस समय वन न जायें, यदि जाना ही चाहते हैं, तो मुझे साथ लेकर चलें ॥६५॥ इस आश्रममें आज एक वर्ष होगया मैंने आजतक वन नहीं देखा, मैं वन देखना चाहती हूं । हे स्वामिन् ! कृपा करिये ॥६६॥ सत्यवान् बोला कि, हे सुश्रोणि ! मैं स्वतंत्र नहीं हूं, मेरे माबापोंसे पूछ, यदि ये भेजदें तो हे सुन्दर मन्द हास करनेवाली ! मेरे साथ चली आ ॥६७॥ पतिके ऐसा कहनेपर सासु श्वशुरोंके चरणोंमें प्रणाम करके बोली ॥६८॥ कि, मैं वन देखना चाहती हूं, मुझे आज्ञा मिलनी चाहिये, मेरा मन भर्ताके साथ वन देखनेकी जल्दी कर रहा है ॥६९॥ यह सुन द्युमत्सेन बोला कि, हे कल्याणि ! आपने व्रत किया है, उसकी पारणा करिये ॥७०॥ इसके पीछे वन चली जाना । सावित्री बोली कि, मैंने यह नियमकर लिया है कि, चन्द्रोदयके पीछे भोजन करूंगी इस समय तो मेरी पतिके साथ वन देखनेकी इच्छा है ॥७१॥ ॥७२॥ मुझे हे राजन् ! पतिके साथ कोई कष्ट न होगा, यह सुन द्युमत्सेनने उत्तर दिया कि ॥७३॥ जो आपको अच्छा लगे उसे प्रसन्नताके साथ करें । सावित्री सासु ससुरकी चरण-वन्दना कर ॥७४॥ सत्यव्रतके साथ वन चलीगई पतिके कालका वक्त था । वे उसेही देखती ॥७५॥ वनमें फूल खिलेहुए थे, सुन्दर हिरण इधर उधर भगे फिरते थे, वह सत्यवान्से मृगों और वृक्षकों नाम पूछती मृग समूहोंको देखती हुई जाती थीं पर हृदय काँप रहा था सत्यवान्ने शीघ्रताके साथ फल तोडे, काठ इकट्ठा करके उसकी मजबूत गाँठ बांधी, वृक्षका अवलंब लेकर कठिनको पूरा किया ॥७६-७८॥ साध्वी महासती सावित्री वटवृक्षके मूलमें बैठी हुई थी, काठका बोझ उठाते समय सत्यवान्के शिरमें दर्द होगया ॥७९॥

उससे बडी भारी ग्लानि उत्पन्न हुई । शरीर कांपने लगा, वृक्षके पास आकर सावित्रीसे बोला ॥८०॥ कि, मेरा शरीर कांप रहा है, मेरे शिरमें दर्द है । हे कल्याणि ! मेरे शिरमें शूलकेसे कांटे चुभ रहे हैं ॥८१॥ हे सुव्रते सुश्रोणि ! मैं तेरी गोदमें सोना चाहताहूं, वह अपने पर भरोसा रखनेवाली उसके मौतके समयको जानती थी ॥८२॥ जान गई कि, मौत आ पहुंची, वहीं बैठगई । सत्यवान् भी उसकी गोदीमें शिर रखकर सोगया ॥८३॥ उस समय वहां एक कृष्ण पिंगल पुरुष आ उपस्थित हुआ, उसका शरीर तेजसे प्रकाशमान हो रहा था । सावित्रीसे कहने लगा कि, इसे छोड दे ॥८४॥ वाक्यका मतलब समझनेवाली सावित्री उससे बोली कि, आप दुनियांको डरा देनेवाले कौन हैं ? मुझे कोई भी पुरुष नहीं डरा सकता ॥८५॥ यह सुन लोकभयंकर यम बोला कि, हे वरारोहे ! तेरे पतिकी आयु समाप्त होगई ॥८६॥ मैं इसे बांधकर लेजाऊँ, यह मेरी इच्छा है । यह सुन सावित्री बोली कि, मैंने तो यह सुना है कि, आपके दूत लेनेको आते हैं ॥८७॥ हे प्रभो ! आप इसे लेनेके लिये कैसे आये ? यम अपनी चेष्टा कहनेलगा ॥८८॥ कि, यह सत्यवान् धर्मात्मा रूपवान और गुणोंका खजाना है ॥८९॥ वह मेरे पुरुषोंका लेजाने लायक नहीं है । इस कारण मैं स्वयम् ही आगया हुं । इसके पीछे सत्यवान्के शरीरसे पाशोंसे बँधे इस कारणवशमें आये हुए अंगुष्टमात्र पुरुषको यमने बलपूर्वक खींच लिया ॥९०॥ ॥९१॥ इसके पीछे निष्प्राण निःश्वास, प्रभारहित, बुरा चेष्टा रहित शरीर होगया, यम उसे बाँधकर दक्षिण दिशाको चला दिया ॥९२॥ दुखी सावित्रीभी यमके पीछे चली, क्यों कि, वह नियम और व्रतोंसे सिद्ध पदवी पाचुकी थी दूसरे महाभाग पतिव्रता थी ॥९३॥ यम उसे पीछे आतीहुई देखकर बोला कि, जा इसका अन्त्येष्टि संस्कार कर, तूने पतिके प्रति जो अपना कर्तव्य था वह पूरा किया, जहांतक जाया जासकता है तहांतक गई ॥९४॥ सावित्री बोली कि, जहां जो मेरे पतिको लेजाय वा जहां मेरा पति स्वयं जाय, मैं भी वहां जाऊं यह सनातन धर्म है ॥९५॥ तप, गुरुभक्ति पतिप्रेम और आपकी कृपासे मैं कहीं रुक नहीं सकती ॥९६॥ तत्वके जाननेवाले विद्वानोंने सात पैंडपर मित्रता कही है मैं उस मैत्रीको दृष्टिमें रख कर कुछ कहती हूं सुन ॥९७॥ लोलुप वनमें रहकर धर्मका आचरण नहीं करसकते, न ब्रह्मचारी और संन्यासीही हो सकते हैं, विज्ञानके लिये धर्मको कारण कहा करते हैं, इस कारण सज्जन धर्मकोही प्रधान मानते हैं ॥९८॥ सज्जनोंके माने हुए एकही धर्मसे हम दोनों उस मार्गको पागये हैं इस कारण मैं गुरुकुल वास और सन्यास नहीं चाहती, इस गार्हस्थ्य धर्मकोही सज्जन प्रधान कहा करते हैं ॥९९॥ यम बोले कि, आपके इन वाक्योंके एक एक वर्ण तथा स्वरोंमें व्यंग्य पदार्थ भराहुआ है, मैं इससे परम प्रसन्न हुआ हूं, बिना इसके जीवनदानके जो तेरी राजी हो सो वर मांग ले, के अनिन्दिते ! जो मांगेगी सोई दूंगा ॥१००॥ सावित्री बोली कि, मेरा श्वशुर स्वराज्यसे च्युत होकर वनवासी हुआ आश्रममें रहरहा है, उसके नेत्र रहे नहीं हैं, वह आपकी कृपासे नेत्र पाकर बलवान् होजाय एवं सूर्य्यके समान तेजस्वी हो ॥१॥ यम बोला कि, हे अनिन्दिते ! जो तू माँगती है वही मैं देता हूं, जो तू चाहती है वही होगा, आपको मार्गका श्रम देख रहा हूं, आप अपने आश्रम पधारें ॥२॥ सावित्री बोली कि, पतिके समीप मुझे परिश्रमही क्या है, जहां मेरा पति है वहीं मैं हूं, आप जहां मेरे पतिको ले चलेंगे वहीं मैं चलूंगी इसमें मुझे कुछभी परिश्रम नहीं होगा, आप मेरी बात जान लें ॥३॥ सज्जनोंके साथकी सबही इच्छा किया करते हैं, इससे अगाडी मित्र ऐसा कहते हैं, सज्जनोंका साथ निष्फल नहीं होता, इस कारण सदाही सज्जनोंका साथ करना चाहिये ॥४॥ यम बोला कि, मेरे मनके अनुकूल बुद्धि और बलका बढानेवाला हितकारी आपका वचन है, हे भामिनि ! विना सत्यवान्के जीवनके दूसरा जो चाहे सो वर मांगले ॥५॥ सावित्री बोली कि, मेरे श्वशुरका छीना हुआ राज्य फिर उन्हें मिलजाय तथा मेरा श्वशुर ,अपने धर्मकाभीत्याग न करे, यह मेरा दूसरा वरदान है ॥६॥ यम बोला कि, आपका श्वशुर थोडेही समयमें अपना राज्य पाजायगा वह न कभी धर्मही छोडेगा जो चाहती थी वह तुझे मिलगया, अब अपने घर जा, व्यर्थ श्रम क्यों करती है ॥७॥ सावित्री बोली आपने प्रजाको नियममें बाँध रखा, है, इस कारण आपको यम कहते हैं यह मैं जानती हूं, जो मैं कहती हूं उस बातको आप सुनें ॥८॥ मन बाणी अन्तःकरणसे किसीके साथ वैर न करना, दान देना, आग्रहका परित्याग करना यह सज्जनोंका सनातन धर्म है ॥९॥ ऐसाही यह लोक है, इसमें शक्तिशाली सज्जन मनुष्य वैरियोंपरभी

दया करते देखे जाते हैं ।।११०।। यम बोला--जैसे प्यासेको पानी, उसी तरह आपके वचन मुझे लगते हैं, सत्यवान्‌को जीवनके विना जो अच्छा लगे सो माँग ले ।।११।। सावित्री बोली कि, मेरे निपुत्री पिताके सौ औरस कुलवर्धक पुत्र हों, यह मेरा तीसरा वर है ।।१२।। यह सुन यम बोले कि, तुम्हारे पिताके कुल वर्धक शुभ लक्षणवाले सौ पुत्र हों, हे नृपनन्दिनि ! जो चाहती थी वह मिलगया अब वापिस जा, क्योंकि, बहुत दूर आगई हैं ।।१३।। सावित्री बोली कि, पतिके सामने तो मुझे कुछभी दूर नहीं है, क्योंकि, मेरा मन तो पतिके पास बहुत दूरतक पहुंचता है चलते चलते मुझे कुछ बात याद आगई है उसेभी सुन लीजिये ।।१४।। आप आदित्यके प्रतापी पुत्र हैं, इस कारण आपको विद्वान् पुरुष वैवस्वत कहते हैं, आपका वर्त्ताव प्रजाके साथ समान भावसे है, इस कारण आपको धर्मराज कहते हैं ।।१५।। जैसा अपनेपरभी विश्वास नहीं होता जैसा कि, सज्जनोंमें हुआ करता है, इस कारण सज्जनोंपर सबका प्रेम होता है ।।१६।। सब प्राणी प्रेमसे विश्वास करते हैं इस कारण सज्जनोंमें विश्वास होजाता है ।।१७।। यम बोला कि, हे अंगने ! जो तुमने सुनाया है ऐसा मैंने कभी नहीं सुना, मैं इस तेरे वचनसे प्रसन्न हुआ हूं विना इसके जीवनके जो चाहे सो माँग ले ।।१८।। सावित्री बोली कि, मेरे पुत्र सत्यवान्‌सेही औरस पुत्र हो, दोनोंसे बलवीर्य्यशाली सौ सुतोंका परिवार हो यह मैं चौथा वर मांगती हूं ।।१९।। यम बोला कि, हे अबले ! तुझसे और सत्यवान्‌से सौ औरस पुत्रोंका प्रीतिकर कुल होगा, आप दूर आगई हैं वापिस जायं, क्यों परिश्रम करती है ? ।।१२०।। सावित्री बोली कि, सज्जनोंकी सदा धर्ममें ही वृद्धि रहती है; न तो उसमें सज्जन दुखी होते हैं एवं न सीदते ही हैं, सज्जनोंका सज्जनोंसे साथ कभी व्यर्थ नहीं होता न उन्हें उनसे भय ही होता है ।।२१।। सन्तही सत्यसे सूर्यको चला रहे है, तपसे पृथ्वीको धारण कर रहे हैं, हे राजन् ! सत्यही भूत भव्यकी गति है, सज्जनोंकेबीच सज्जन दुखी नहीं होते ।।२२।। सज्जनोंका यह सदाकाही व्यवहार है, सज्जन दूसरेका प्रयोजन करते हुए परस्परकी अपेक्षा नहीं रखते ।।२३।। सज्जनोंकी कृपा कभी व्यर्थ नहीं जाती, न उनके साथमें धनही नष्ट होता है न मानही जाता है, ये बात सज्जनोंमें सदा रहती हैं इस कारण सज्जन रक्षक होते हैं ।।२४।। यम बोला कि, ज्यों ज्यों तू मेरे मनको अच्छे लगनेवाले अर्थयुक्त सुन्दर धर्मानुकूल वचन बोलती है त्यों त्यों मेरी तुझमें अधिकाधिक भक्ति होती जाती है, अतः हे पतिव्रते ! और वर मांग ।।२५।। सावित्री बोली कि, मैंने आपसे पुत्र दाम्पत्य योगके विनाके नहीं मांगे हैं, न मैंने यही मांगा है कि, किसी दूसरी रीतिसे पुत्र होजांय इस कारण आप मुझे यही वरदान दें कि, मेरा पतिजी जाय, क्योंकि, पतिके विना मैं मरी हुई हूं ।।२६।। पतिके विना की गई सुख, स्वर्ग, श्री और जीवन कुछभी नहीं चाहती ।।२७।। आपने मुझे सौ पुत्रोंका वर दिया है, आपही मेरे पतिका हरण करते हैं तब कैसे आपके वाक्य सत्य होंगे ? मैं वर मांगती हूंकि, सत्यवान्‌जी जायें, इसके जीनेपर आपकेही वचन सत्य होंगे ।।२८।। मार्कण्डेयजी बोले कि, यमने ऐसाही हो, यह कहकर उसे पाशसे छोड दिया, पीछे प्रसन्न होकर बोला कि, हे कुलनन्दिनि ! मैंने आपके पतिको छोड दिया है यह निरोग और सिद्धार्थ होगा आप इसे लेजायें ।।२९।। ।।१३०।। यह आपके साथ चार सौ वर्षकी आयुको प्राप्त होगा, सावित्री वटके पास चली आई सत्यवान्‌का शिर गोदीमें रखकर बैठ गई ।।३१।। हे ब्रह्मन् ! सत्यवान् चैतन्य होकर बोला कि, हे वरारोहे ! हे भामिनि ! मैंने अभी एक स्वप्न देखा ।।३२।। इसके बाद जो हुआ था वह सब सत्यवान्‌ने कह सुनाया, सावित्रीनेभी जो यमसे बात हुई थीं वे सब कह सुनाई ।।३३।। सायंकाल होतेही पुत्रके आगमनकी प्रतीक्षा करनेवाला राजा द्युमत्सेन इधर उधर भागने लगा ।।३४।। पुत्रके देखनेकी इच्छासे एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जानेलगा और रो रो कर कहने लगा कि, हम दोनों अन्धोंकी लकडी चित्राश्व कहाँ चला गया ? एवं पुत्रपुत्र वारंवार कहकर दुःखी होनेलगा ।।१३५।। ।।१३६।। राजाकी अचानक आँखें खुल गईं, इस आश्चर्य्यको देखकर आश्रमवासी द्विजवर्य्य कहने लगे ।।३७।। कि, हे राजन् ! आपके तपसे आपको नेत्र मिलगये हैं, हे राजन् ! नेत्र प्राप्तिने बता दिया है कि ।।३८।। अभी आपको पुत्र मिल जाता है । शिव बोले कि, जबतक वे तपस्वी द्विजवर्य्य आपसमें ये बातें बतला रहे थे ।।३९।। तबतक सावित्रीके साथ सत्यवान् आ उपस्थित हुआ, सभी ब्राह्मणों और मा बापोंके लिए नमस्कार की ।।१४०।। सावित्रीने सास ससुर दोनोंकी चरणवन्दना की, उस समयमुनिगण पूछनेलगे ।।४१।। कि हे वरवर्णिनि ! हे शुभानने सावित्री ! आप अपने वृद्ध ससुरके नेत्रोंकी प्राप्तिका कारण जानती हो ?

।।४२।। सावित्री बोली कि, हे श्रेष्ठ मुनियो ! मैं चक्षुप्राप्तिके वास्तविक कारणको नहीं जानती, मेरे पति चिरकालके लिए सोगये थे इस कारण देर होगई ।।४३।। सत्यवान् बोला कि, हे विप्रो ! इस सावित्रीके प्रभावसे सब होगया और कोई कारण नहीं दीखता, यह सब सावित्रीके तपकाही फल है ।।४४।। मैंने सावित्रीके व्रतकाही यह माहात्म्य देखा है । शिवजी कहने लगे कि, सत्यवान् यह कहही रहा था कि, इतनेंमें उसकी राजधानीके प्रधान पुरुष आकर बोले कि, जिस दुष्ट मंत्रीने आपका राज्य बल पूर्वक छीन लिया था ।।१४५–१४६।। वह भी अपने मंत्रीके हाथसे मारागया इसकारण हमआपके पासआये हैं कि, हे राजशार्दूल ! अपने राज्यकी पालन करें चलें ।।४७।। हे राजेन्द्र ! आप मंत्री और पुरोहितोंके द्वारा राज्याभिषेक करायें, राजा यह सुन उन लोगोंके साथ अपने नगरमें पहुंचा ।।४८।। अपने कुलक्रमानुगत राज्यको पाकर परम प्रसन्न हुआ, सावित्री सत्यवान भी परम प्रसन्न हुए ।।४९।। इसी व्रतके माहात्म्यसे उसने सौ बलवान् पुत्र पैदा किये एवं उसके पिताके ही परम बलशाली सौपुत्र उत्पन्न हुए, जैसा कि उसने यमराजसे वरपाया था । हे ब्रह्मन् ! यह हमने इस व्रतका उत्तम माहात्म्य सुना दिया ।।१५०–१५१।। इस व्रतके प्रभावसे बीती आयुका पति भी जीवित रहा आता है, इस सौभाग्य देनेवाले व्रतको सभी स्त्रियोंको करना चाहिये ।।५२।। यह सुन सनत्कुमार बोले कि, हे देवेश त्र्यंबक ! इस व्रतका विधान बताइये कि, हे पुरसूदन ! स्त्रियोंको यह व्रत किस विधिसे करना चाहिये ? ।।५३।। ईश्वर बोले कि, हे मानद ! एक भक्तसे वा नक्ताहारसे या मुक्तिके त्यागसे एक साल नियम करके ।।५४।। तीन दिन लंघन करे पवित्र चौथे दिनमें चन्द्रको अर्घ्य दे, सुवासिनियोंको पूजे ।।५५।। सावित्री प्रसावित्रीको गन्ध पुष्पोंसे पूजे, मिथुनोंको शक्तिके अनुसार भोजन कराकर ।।५६।। सुखपूर्वक भोजन करे । व्रत करतीबार ऐसा संकल्प करे कि, हे जगत्की धात्रि ! कथित कामोंको करके मैं भोजन करूंगी । हे शुभे ! मेरे उन कामोंको निर्विघ्न पूरे करिये । प्रतिदिन न्यग्रोधमें पानी लगावे ।।५७।। एक बांसका पात्र बना उसमें एक प्रस्थ वालू भर दे, हे द्विजोत्तम ! सप्त धान्याका पात्र भी एक प्रस्थका होना चाहिये ।।५८।। उसे फिर दो वस्त्रोंसे वेष्टित करदे ।।५९।। बत्तीस ढब्बूक भरका एक प्रस्थ होता है ।। उसपर ब्रह्माके साथ सावित्री देवीको विराजमान करे, सोनेंके सावित्री सत्यवान् बनावे ।।१६०।। पिटक और कुठार चाँदीके हो, ब्रह्माकी प्यारी सावित्री देवीको ऋतुफलोंसे पूजे ।।६१।। हरिद्रासे रँगे हुए कंठसूत्रोंसे पूजे, सतियोंके कंठसूत्र तीन दिनतक देता रहे ।।६२।। प्रति दिन पक्कान्न देना चाहिये, हे मुनिसत्तम । सावित्रीका माहात्म्य सुनना चाहिये, पुराण और सतियोंके चरित्र सुनने चाहियें, हे सुव्रत ! हमेशा इस मंत्रसे पूजना चाहिये ।।६३।। ।।६४।। हे सदा ब्रह्माजीकी प्यारी रहनेवाली प्रसावित्री सावित्री ! आप द्विजों और मुनिगणोंसे पूजी जाती है आपके लियेही हवन होता है ।।६५।। हे जगन्मये देवि ! तीनों सन्ध्याओंमें तुझे सब प्राणी पूजते हैं, मेरी इस पूजाको ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है ।।६६।। हे शोभने ! आपके 'सावित्री और प्रसावित्री ' ये दो रूप हैं । हे देवि ! आप तीनों सन्ध्याओं तथा तीनों जगतोंमें स्थित हैं ।।६७।। तीनों लोकोंमें तुही श्रेष्ठ है ! हे महेश्वरी ! तू त्रेता अग्निमें भी है, तू सब लोकमें व्याप्त है । इस कारण मेरी सदा सर्वत्र रक्षा कर ।।६८।। हे शुभे ! मुझे रूप, यश और सौभाग्य दे, तथा प्रत्येक जन्ममें धन और पुत्र दे ।।६९।। हे सुरश्वेरी ! जैसे आपका आपके पतिके साथ कभी वियोग नहीं होता, उसी तरह हे महाभागे ! मेरा भी किसी जन्ममें पतिसे वियोग न हो ।।१७०।। कमलके आसनपर बैठी हुई देवीको इस प्रकार पूजकर तीन दिन पूरे करके चौथे दिन ।।७१।। हे द्विजोत्तम ! सोलह मिथुनोंको वस्त्रदान और भूषणोंसे पूजे ।।७२।। सुयोग्य सपत्नीक आचार्य्यका पूजन करके उसके लिये सोनेकी सावित्रीके साथ संकल्प किये हुए सब वस्तुजातको ।।७३।। इस मन्त्रसे देना चाहिये, वह सावित्री कल्पका ज्ञाता हो उसे प्रणाम करके दे ।।७४।। सावित्री ही जगतकी माता पिता है । हे ब्राह्मण ! मेरी दी हुई सावित्रीको ग्रहण कर ।।७५।। मैं किसी जन्ममें विधवा न होऊँ वह मरकर ब्रह्मके लोकमें पतिके साथ रहती है, चिरकालतक उत्तम भोगोंको भोगती है ।।७६।। यह वटसावित्रीकी कथा पूरी हुई ।। सालभरमें होनेवाला व्रत—हेमाद्रिने

भविष्यपुराणको लेकर लिखा है । धर्मराजसे वर लेनेके पीछे सावित्री बोली कि, हे देव ! जो स्त्री मेरे व्रतको भक्तिसे करे, वह साध्वी पतिके साथ स्वर्ग भोगे । धर्मराज बोले कि, गौरी, मुग्धा, प्रमुग्धा, अपुत्रा और पतिरहिता, सधवा, सपुत्रा जो भी कोई स्त्री ही इस पवित्र व्रतको करे, ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन जो पतिव्रता स्नान कर पवित्र हो बहुतसे पानीसे वटको सींचे भक्तिपूर्वक अच्छे गन्ध पुष्प और अक्षतोंसे पूज सूत्र लपेटे, तथा "वैवस्वत यमके लिये नमस्कार" इससे प्रदक्षिणा करे, रातमें नक्त करे, एकवर्ष तक एकाग्र होकर करे, प्रतिपक्ष वटकी पूजा करे । इसी विधानसे इस उत्तम व्रतको करना चाहिये । इससे सब मनोरथोंकी प्राप्ति होकर अन्तमें रुद्रके साथ प्रसन्न होती है । यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ वटसावित्रीका व्रत पूरा हुआ ।। अथ उद्यापन—फिर ज्येष्ठ मासमें द्वादशीके दिन नक्त भोजन करे, दाँतुन करके स्नान करे, पीछे नियम करे कि, तीन रात पूरीकर चौथी रातको चन्द्रमाको अर्घ्य देकर सावित्रीकी पूजा करके यथाशक्ति मिष्टान्नसे ब्राह्मणोंको भोजन करा भोजन करूंगा, हे शुभे ! संसारके धारण करनेवाली ! उस मेरे व्रतको निर्विघ्न पूरा करदीजिये, यह नियमका मंत्र है । बांसके पात्रमें एक प्रस्थ वालू भरे । एक प्रस्थका सप्तधान्यमय वंशपात्र होना चाहिये । दो वस्त्रोंके ऊपर ब्रह्माके साथ सावित्रीको विराजमान करे, उन दोनोंकी सुवर्णकी मूर्ति बनवाये । तीन रात व्रत करे । जब तक तीन दिन पूरे न हों न्यग्रोधके नीचे रहना चाहिये । सोनेकी सावित्री सत्यवान्‌के साथ बनावे, सोनेके पलंगपर आरोपित करके रथपर बिठावे । वह रथ अपनी शक्तिके अनुसार एक पल चांदीका होना चाहिये । काठका भार, कुठार, एक बडी पिट, धर्मराज और नारद वहाँही बनावे, वटके मूलमें एक मंडल गोमयका बनावे । चौकपर सुन्दर सावित्रीको विराजमान करे । इस प्रकार उन दोनोंको साथ करके मत्सररहित होकर पूजे । पंचामृतसे स्नान करावे । गन्ध, पुष्प, उदक, चन्दन, अगरु, कर्पूर, माल्य, वस्त्र, विभूषण इनसे पूजे । पीले पिष्ट अथवा चन्दनसे पद्म, लिखे, इन मंत्रोंसे विधिपूर्वक देवीको पूजे । सावित्रीके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजती हूं; प्रसावित्रीके० जानुओंको पू०; कमलपत्राक्षीके० कटिको पू०; भूतधारिणीके० उदरको पू०; गायत्रीके० उदरको०; गायत्रीके कंठका पू०; ब्रह्माकी प्यारीके० शिरको पूजती हूं । ब्रह्मा और सत्यवान्‌का पूजन–धाताके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजती हूं; ज्येष्ठके लिये नमस्कार, उरुओंको पूजती हूं; परमेष्ठीके० मेढ्को पू०; अग्निरूपके० कटिको पू०; वेधाके० उदरको पू०; पद्मनाभके० हृदयको पू०; विधिके० कंठको पू०; हेमगर्भके० मुखको पू०; ब्रह्माके० शिरकोपू०; विष्णुके लिये नमस्कार, सर्वांगको पूजती हूं । इस प्रकार शास्त्रकी कहीहुई विधिसे पूजे । इसके पीछे दोनोंको चाँदीके पात्रसे अर्घ्य दे । सावित्रीको अर्घ्य देनेका मन्त्र–जिसके सबसे पहिले ओंकार है, जो वीणा और पुस्तक धारण कर रही है, ऐसी हे वेदमातः ! तेरे लिये नमस्कार है; मुझे अवैधव्य दे । हे अग्निसे पैदा हुई पवित्रव्रतवाली ! हे महाभागे ! हे पतिव्रते ! दृढ व्रत और मतिवाली ! हे पतिकी प्रियवादिनी ! हे सुव्रते ! मुझे सुहाग और सौभाग्य दे, एवं पुत्र, पौत्र और सौख्य दे, अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है । ब्रह्मा और सत्यवान् दोनोंके अर्घ्यदानका मन्त्र–आपने देव असुर मानुष सभी संसारको रचा है । हे ब्रह्मरूप सत्यव्रतधारी देव । आपके लिये नमस्कार है। यमके अर्घ्यका मन्त्र—शुभ और अशुभका विवेचन करनेवाले आप लोकोंके कर्मके साक्षी हैं, हे वैवस्वत धर्मराज ! अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है । आप धर्मराज हैं, पितरोंके पति तथा सबके साक्षी हैं, हे कालरूप ! इस अर्घ्यको ग्रहणकर मुझे सुहाग दे मत्सरका त्याग करके गन्ध, पुष्प, नैवेद्य; फल, कपूर, दीपक रक्तवस्त्र और अलंकारोंसे पूजे । सावित्रीकी प्रार्थना—सावित्री आप ब्रह्मगायत्री सदा प्यारा भाषण करनेवाली हैं इस कारण सत्यद्वारा मेरी दुखरूपी संसार सागरमें रक्षा करें। आप गौरी, शची, लक्ष्मी और चन्द्रमण्डलकी प्रभा है जगत्‌की माता आप हैं, हे वरानने मेरा उद्धार कर । हे सुव्रते ! मुझे सौभाग्य और कुलकी वृद्धि दे, जो मेरे सौ जन्मका भी पाप हो वह सम भस्म होजाय, मुझे अवैधव्यका दान कर ब्रह्मा और सत्यवान्‌की प्रार्थना—हे देव ! जैसे आपका सावित्रीक साथ कभी वियोग नहीं होता, ऐसेही मेरा भी जन्मजन्ममें मेरे पतिके साथ अवियोग हो । यम प्रार्थना—हे यम ! कर्मके साक्षी एवं संसारके पूज्य और वन्द्य हैं, सालभरका कियाहुआ मेरा व्रत परिपूर्ण होजाय, सावित्रीकी—हे प्रार्थना

देवि सावित्री ! जैसे आप चार सौ वर्षकी आयेवाले गुणी पतिको प्राप्त हुई हैं, उसी तरह मुझे भी मेरे पतिको कर दें । (सावित्री इन दोनों श्लोकोंका अर्थ करचुके) । मंगलीक गानों बजानोंके साथ वहां जागरण करना चाहिये प्रतिदिन पवित्र सुवासिनियोंका पूजन होना चाहिये । सिन्दूर, कुंकुम, पान, सुपारी, सूप, भक्ष्य और सौभाग्याष्टक दे । रातदिन कामक्रोधका त्याग करके रही आवे, तीनों दिन इसी प्रकार अर्घ्यं पूजा आदिक करनी चाहिए । इसके बाद चौथे दिनका जो भी कुछ कृत्य है, उसे सुनिये, चौवीस, सोलह वा बारह अथवा आठ मिथुनोंका पूजन करे । अथवा व्रतकी विधि करनेवाले, सर्व लक्षण संपन्न, सब शास्त्रोंके जाननेवाले, विधिपूर्वकावेद पढे हुए, जितेन्द्रिय, शान्त, सपत्नीक आचार्य्यको वस्त्र अलंकार और शिरोवेष्टनसे पूजे । उपकरण सहित शय्या और सुन्दरघर दे, यदि सामर्थ्य न हो तो जैसा वन सके वैसा करलेः सोनेकी प्रतिमाका दान पतिके साथ करे । प्रतिमाके दानका मन्त्र—हे सावित्री ! जैसे आप चारसौ वर्षकी आयुवाले सत्यवान्को प्राप्त हुई है, उसी तरह आप मुझे भी कर दे । जगतकी माँ बाप तुम्ही सावित्री है, हे ब्राह्मण मेरी दीहुई सावित्रीको ग्रहण कर । प्रतिग्रहका मन्त्र—सुशोभने ! आपने सावित्री दी और मैंने सावित्री ले ली जबतक ये चांद सूरज हैं तबतक पतिके साथ सुखी हो । इसके पीछे गुरुपत्नी तथा गुरुका क्षमापन करना चाहिये कि, जो इस व्रतमें मुझसे कोई त्रुटि होगई हो वह आपके पूजनसे पूरी होजाय । वटसेचन मन्त्र—धर्मराज, यम, धाता, नील, कालान्तक, अव्यय, वैवस्वत, चित्रगुप्त, दध्न, मृत्यु, क्षय, वट इन बारह नामोंमेंसे प्रतिमास एक एकसे वट सींचना चाहिये, मैं न्यग्रोधरपर रहता हूं । इस कारण उसे प्रयत्नसे सींचे, न्यग्रोधके समीप अथवा घरपर स्थण्डिलमें सावित्रीके मन्त्रसे घृत होम करे ।। हे भामिनि ! घृतके साथभक्तिपूर्वक पायसका मन्त्रोंसे तिल, व्रीही और यवोंका हवन होना चाहिये, होमके अन्तमें दक्षिणा दे ऋत्विजोंसे क्षमापन करावे व्रत करनेवाली तपस्विनी शान्तिपूर्वक वासरके बीत जानेपर नक्तभोजन करे, अरुन्धतीको देखकर अर्घ्य दे ,प्रणाम करे कि, हे वसिष्ठजीकी प्यारी शुभ अरुन्धति ! तेरे लिये नमस्कार है, सब देवोंके नमस्कार करनेयोग्य पतिव्रते ! तेरे लिये वारंवार नमस्कार है, यह मैंने फल पुष्पके साथ तुझ अर्घ्य दिया है । इसे ग्रहण करिये, मुझे पुत्र दीजिये, आपके लिये वारंवार नमस्कार है । पीछे अपनी सखियों और ब्राह्मणोंके साथ मौन हो जितेन्द्रयतापूर्वक भोजन करे । जो इस प्रकार इस उत्तम व्रतको करती है, उसके मा बाप, सास ससुर, भाई बहिन, स्वजन सभी चिरायु होते हैं, किसीको भी बीमारी नहीं होती, वह साध्वी पतिके साथ ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होती है । यह श्रीस्कन्दपुराणका कहाहुआ सावित्रीव्रतका उद्यापनं पूरा ॥

गोपद्मव्रतम्

अथाषाढपौर्णमास्यां गोपद्मव्रतम् ॥ तत्र पूजा–चतुर्भुजं महाकायं जाम्बूनदसमप्रभम् ॥ शङ्कचक्रगदापद्मरमागरुडशोभितम् ॥ सेवितं मुनिभिर्देवैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ एवं विधं हरिं ध्वात्वा ततो यजनमारभेत् ॥ ध्यानम् ॥ आवाहयामि देवेशं भक्तानामभयप्रदम् ॥ स्निग्धकोमलकेशं च मनसावाहयेद्धरिम् ॥ सहस्त्र शीर्षेत्यावाहनम् ॥ सुवर्णमणिभिर्दिव्यै रचिते देवनिर्मिते ॥ दिव्यसिंहासने कृष्ण उपविश्य प्रसीद मे ॥ पुरुष एवेदमित्यासनम् । । पादोदकं सुरश्रेष्ठ सुवर्णकलशे स्थितम् ॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं पाद्यं मे प्रतिगृह्यताम् ॥ एतावानस्येति पाद्यम् ॥ अष्टद्रव्यसमायुक्तं स्वर्णपात्रोदकं शुभम् ॥ अभयङ्करं भक्तानां गृहाणार्घ्यं जगत्पते ॥ त्रिपादूर्ध्वं इत्यर्घ्यम् ॥ कर्पूरेण समायुक्तमुशीरेण सुवासितम् ॥ दत्तमाचमनीयार्थं नीरं स्वीक्रियतां विभो॥ तस्माद्विराळेत्याचमनीयम् ॥ गङ्गा गोदावरी चैव यमुना च सरस्वती ॥ नर्मदा सिन्धुकावेरी ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ॥

मया सुशीतलं तोयं गृहाण पुरुषोत्तम ।। यत्पुरुषेणेति स्नानम् ।। वस्त्रयुग्मं समानीतं पट्टसूत्रेण निर्मितम् ।। सुवर्णखचितं दिव्यं गृहाण त्वं सुरेश्वर ।। तंयज्ञमिति वस्त्रम् ।। कार्पासतन्तुभिर्युक्तं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।। अनेकरत्नखचितमुपवीतं गृहाण भोः ।। तस्माद्यज्ञादिति यज्ञोपवीतम् ।। चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यगुरु संयुतम् ।। कर्पूरेण च संयुक्तं स्वीकुरुष्वानुलेपनम् ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतमिति-गन्धम् । शतपत्रैश्च कह्लारैश्चम्पकैर्मल्लिकादिभिः ।। तुलस्या युक्तपुष्पैश्च ह्यर्चये पुरुषोत्तम ।। तस्मादश्वेति पुष्पम् ।। दशाङ्गं गुग्गुलोद्भूतं सुगन्धि च मनोहरम् ।। कृष्णागुरुसमायुक्तं धूपं देव गृहाण मे ।। यत्पुरुषं व्यदधुरिति धूपम् ।। साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरा-पह ।। ब्राह्मणोस्येति दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधम्० चन्द्रमा मनसेति नवेद्यम् ।। आचमनीयं करोद्वर्तनम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्य-गर्भेति दक्षिणाम् ।। यानि कानि च० नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणा । नमोऽस्त्वनन्ताय स० सप्तास्यासन्निति नमस्कारान् ।। देवदेव जगन्नाथ गोपालप्रतिपालक ।। गोपदैः कृतसन्त्राण गृहाण कुसुमाञ्जलिम् ।। यज्ञेनयज्ञमिति पुष्पाञ्जलिम् ।। तत्तद्वर्षोक्तं वायनम् ।। परमान्नमिदं दत्तं कांस्यपात्रेण संयुतम् ।। त्वत्प्रसादादहं विप्र व्रतस्य फलमाप्नुयाम् ।। वायनमन्त्रः ।। मन्त्रहीनं क्रियाहीनमिति प्रार्थना ।। इति गोपद्मपूजा ।। अथ कथा—सनत्कुमार उवाच ।। नाथैकं त्वां हि पृच्छामि चतुर्वर्ग फलप्रदम् ।। सर्वरोगप्रशमनं विष्णुसारूप्यमुक्तिदम् ।। १ ।। नारीणामथवा पुंसां भुक्तिमुक्ति फलप्रदम् ।। ब्रूहि चेदस्ति देवर्षे कृपां कृत्वा ममोपरि ।। २ ।। नारद उवाच ।। भगवन्सर्वमाख्यास्ये यत्पृष्टं विदुषा त्वया ।। गोपद्मकं व्रतं ह्येत-द्व्रतानां व्रतमुत्तमम् ।। ३ ।। कर्तुः सिद्धिकरं दिव्यं विख्यातं भुवनत्रये ।। सनत्कुमार उवाच ।। भगवन्भूतभव्येश सर्वशास्त्रविशारद ।। ४ ।। तद्व्रतं ब्रूहि मे ब्रह्मन्कथ-मुद्यापनं भवेत् ।। पुरेदं केन वा चीर्णं देवर्षे कथय व्रतम् ।। ५ ।। नारद उवाच ।। आषाढपौर्णमास्यां वा तथाष्टम्यां हरेर्दिने ।। प्रारभेद्व्रतमेतच्च कार्तिकावधि[1] तत्तिथौ ।। ६ ।। तिलामलककल्केन स्नानं नित्यं विधाय च ।। नदीतीरेऽथवा गोष्ठे शिवागारे हरे गृहे ।। ७ ।। वृन्दावने वापि लिखेद्गोपद्मकपदं शुभम् ।। त्रयस्त्रिंशत्तु पद्मानि कुर्याद्भक्त्या दिने दिने ।। ८।। तत्संख्यया प्रकर्तव्या अर्घ्यप्रदक्षिणानतीः ।। बालकृष्णं समुद्दिश्य लक्ष्म्या सह जगद्गुरुम् ।। ९ ।। गन्धाद्यैरुपचारैस्तु यथाशक्त्या प्रपूजयेत् ।। ब्राह्मणास्तु ततः पूज्या पद्मसंख्यान्नमुत्सृजेत् ।। ।। १० ।। प्रथमाब्देऽथ वटकैर्द्वितीयेऽपूपकैर्व्रती ।। तृतीये शालिपिष्टान्नैश्चतुर्थे

१ पूर्वोक्ततिथौ कर्तव्यमिति शेषः ।

पूरिकादिभिः ।। ११ ।। पञ्चमे परमान्नैस्तु सम्यग्वै पूजयेद्व्रती ।। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।।१२।। ऋषीणां पृच्छमानानां सूतेनोक्तं मयाश्रुतम् ।। ऋषय ऊचुः ।। केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ।। १३ ।। कथामुद्यापने तस्य किं फलं सूत कथ्यताम् ।। सूत उवाच ।।पुरा शक्रोऽमरावत्यां देवदानवकिन्नरैः ।। १४ ।। रुद्रैरादित्ययक्षाद्यैर्गन्धर्वैर्वसुभिः सह ।। रम्भा नृत्यं समारेभे क्रीडालोभेन विह्वला ।। १५ ।। एवं नृत्ये क्रियमाणे त्रुटितं वाद्यमण्डलम् ।। क्षणमात्रं विचार्याथ धर्मराजस्तमुक्तवान् ।। १६ ।। यम उवाच ।। जन्ममध्ये व्रतं यैश्च न कृतं प्राणिभिः क्वचित् ।। तच्चर्मस्नायुभिः शक्र कर्तव्यं छादनं ढके ।। १७ ।। नारदेन श्रुतं तच्च जगाद यदुनन्दनम् ।। स्वर्चयित्वा तु तं कृष्णो वचनं चेदमब्रवीत् ।। १८।। कृष्ण उवाच ।। सर्वलोकज्ञ देवर्षे भुवनेषु चरन् सदा ।। आश्चर्यं वद देवर्षे यद्यस्ति शुभदायकम् ।। १९ ।। नारद उवाच ।। श्रुतं मयाऽमरावत्यामाश्चर्यं धर्मसंसदि ।। तत्र सर्वे समायाताः सुरा इन्द्राश्चतुर्दश ।। २० ।। रुद्रा एकादश तथा आदित्या द्वादशापि च ।। वसवोऽष्टौ तथा नागा यक्षराक्षसपन्नगाः ।। २१ ।। रम्भया च समारब्धे नृत्यं शक्रस्य पश्यतः ।। त्रुटितं चर्म पाद्यानामब्रुवंस्तस्य साधनम् ।। ।। २२ ।। यमः प्राह तथा दूतान्सुभद्रा ह्यव्रतास्ति भोः ।। तामानयध्वं तच्चर्म वाद्ययोग्यं सदास्त्विति ।। २३ ।। तच्छ्रुत्वा तु मया भीत्या सर्वं त्वयि निर्वेदितम् ।। सूत उवाच ।। इति नारदवाक्यं तु श्रुत्वा कृष्णस्त्वरान्वितः ।। २४ ।। सुभद्राया गृहं गत्वा पूजितस्तामुवाच ह ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। किञ्चिद्व्रतं त्वया भद्रे कृतं वा नेति संशयः ।। २५।। सुभद्रोवाच ।। सर्वव्रतानि भोः कृष्ण कृतान्येव न संशयः ।। नोचेत्त्वद्भगिनी चाहंन स्यामर्जुनवल्लभा ।। २६ ।। पुत्रोऽभिमन्युश्च कथं कथयस्व जगत्पते ।। कृष्ण उवाच ।। तथापि त्वं महाभागे व्रतमेकं समाचर ।। २७ ।। गोपद्मेति च विख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।। इति कृष्णवचः श्रुत्वा सुभद्रा तत्तदाकरोत् ।। २८ ।। कृष्णोपदिष्टविधिना सत्वरं च समापितम् ।। सोद्यापने व्रते चीर्णे काले यमभटा ययुः ।। २९ ।। दूता ऊचुः ।। सुभद्रे तव देहस्य चर्मार्थे ह्यागता वयम्।।त्वच्चर्म सुरवाद्यार्थं यमेन च प्रकल्पितम्।।३०।।इति दूतवाचः श्रुत्वा सव्रतास्मीति साब्रवीत् ।। ततो भटाः सर्व एव ददृशुः सादरास्तदा ।। ३१ ।। पद्मानां निचयं तस्या गृहे गां च सवत्सकाम् ।। स्थण्डिले हस्तमात्रे तु सुसमिद्धं हुताशनम् ।। ३२ ।। कृष्णोपदिष्टं वीक्ष्यैवं दूता जग्मुर्यमान्तिकम् ।। प्रतिपेदे प्रभावेण सुभद्रा पदमच्युतम् ।। ३३ ।। नारद उवाच ।। इति सूतवचः श्रुत्वा ऋषय-

श्चक्रिरे व्रतम् ।। सनत्कुमार उवाच ।। भो भो नारद देवर्षे सर्वशास्त्र¹विशारद।। ।। ३४ ।। शीघ्रं ब्रूहि सखे पद्मव्रतस्योद्यापने विधिम् ।। नारद उवाच ।। पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे व्रतस्योद्यापनं भवेत् ।। ३५ ।। श्रीकृष्णप्रतिमा कार्या सुवर्णस्य पलेन वै ।। पुष्पमण्डपिका कार्या चतुर्द्वारसुशोभनां ।। ३६ ।। तन्मध्ये पूजयेद्भक्त्या रमया सहितं हरिम् ।। त्रयस्त्रिंशत्ततो विप्रान् वृत्वा होमं समाचरेत् ।। ३७ ।। अतो देवेतिमन्त्रेण जुहुयात्तिलपायसम् ।। रक्तवस्त्रयुतां धेनुमाचार्याय निवेदयेत् ।। ३८ ।। ब्राह्मणांश्च सपत्नीकान् भोजयेत्पूजयेत्तथा ।। एवं यः कुरुते विप्र तस्य श्रीरचला भवेत् ।। ३९ ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।। अन्ते विष्णुपदं गच्छेत्सर्वपापविवर्जितः ।। ४० ।। इति भविष्योत्तरपुराणे गोपद्मव्रत-कथोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

गोपद्मव्रत--आषाढपूर्णिमाके दिन होता है । पूजा--तपाये हुए सोने कीसी चमकवाले, शंक चक्र गदा पद्म लिये हुए महाकाय, चतुर्भुज, गरुडके ऊपर विराजान, देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, मुनिगण इनसे सुशोभित हुए भगवान् का ध्यान करके यजन करना चाहिये, इससे ध्यान, भक्तोंके अभय देनेवाले देवेशको बुलाता हूं जो कि, चिकने कोमल बालोंवाले हैं, इससे "सहस्रशीर्षा" इससे आवाहन; 'सुवर्णमणिभिः' इससे "पुरुष एवेदं" इससे आसन; 'पादोदक' इससे "एतावानस्य" इससे पाद्य; आठ द्रव्योंके साथ सोनेके पात्रमें अच्छा पानी रखा हुआ है, हे भक्तोंके अभय करनेवाले हे जगत्पते ! अर्घ्य ग्रहण कलिये तेरे लिए नमस्कार है इससे "त्रिपादूर्ध्व" इससे अर्घ्य; 'कर्पूरेण समायुक्तम्' इससे "तस्माद् विराड्" इससे आचमनीय; 'गंगा गोदावरी' इससे "यत्पुरुषेण" इससे स्नान; 'वस्त्रयुग्मं समानीतम्' इससे "तं यज्ञं" इससे वस्त्र; कार्पासतन्तुभिः इससे "तस्माद्यज्ञात्" इससे यज्ञोपवीत; 'चन्दनं मलयोद्भूतम्' इससे "तस्माद्यज्ञात्" इससे गन्ध; शतपत्रैश्च' इससे "तस्मादश्वा" इससे पुष्प; 'दशाङ्गम्' इससे "यत्पुरुषं" इससे धूप; 'साज्य च वर्तिसंयुक्तम् इससे "ब्राह्मणोऽस्य" इससे दीप; 'अन्नं चतुर्विधम्' इससे "चन्द्रमा मनसः" इससे नैवेद्य; आचमनीय; करोद्वर्तन; 'इदं फलम्' इससे फल; 'पूगी फलम्' इससे ताम्बूल; 'हिरण्यगर्भ' इससे दक्षिणा; 'यानि कानि' इससे "नाभ्या आसीत्" प्रदक्षिणा; ' नमोस्त्वनन्ताय' इससे "सप्तास्यासन्" इससे नमस्कार; हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे प्रतिज्ञाके परिपालन करनेवाले ! हे गोपदोंसे रक्षा करनेवाले ! कुसुमोंकी अंजलि ग्रहण कर, इससे "यज्ञेन यज्ञम्" इससे पुष्पांजलि; प्रतिवर्षके कहे हुए वायनेके मंत्रसे वायन, (जैसे कि, यह परमान्न कांसके पात्रके साथ दिया है, हे विप्र ! आपकी कृपासे व्रतके फलको पाजाऊँ) एवं 'मंत्रहीनम्' इससे प्रार्थना समर्पण करे । यह गोपद्मव्रतकी पूजा पूरी हुई ।। कथा--सनत्कुमार बोले कि, हे नाथ ! मैं आपसे चारों वर्गोंके फलोंके देनेवाले सब रोगोंके नाशक, विष्णुसारूप्य और मुक्तिके दाता किसी एक सुन्दर व्रतको पूछता हूं ।।१।। जो स्त्री पुरुष दोनोंकोही भुक्ति मुक्तिका देनेवाला हो, हे देवर्षे ! यदि मुझपर आपकी कृपा है तो कह दीजिये ।।२।। सबके जानने वाले आपने जो पूछा है हे भगवन् ! उसे मैं आपको अवश्य सुनाऊँगा, वह सब व्रतोंमें श्रेष्ठ 'गोपद्मव्रत ' है ।।३।। वह करनेवालेको सिद्धि करनेवाला दिव्य तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है । सनत्कुमार वाले कि, हे भगवन् ! आप भूत भव्यके ईश हैं सब शास्त्रोंके जाननेवाले हैं ।।४।। वह व्रत और उसका उद्यापन दोनों कहिये, पहिले किसने किया ? हे देवर्षे ! यह बताइये ।।५।। नारद बोले कि, आषाढके पूर्णिमा, अष्टमी, एकादशी इनमेंसे किसीको प्रारंभ करके कार्तिकको इन्ही तिथियोंतक इस व्रतको करे ।।६।। तिल और आमलेके भीगे चूर्णसे रोज स्नान करे नदीतीर, गोष्ठ, शिव वा हरिके मंदिर ।।७।। अथवा वृन्दावनमें अच्छे गोपद्मके लिए ।।८।। भक्तिपूर्वक प्रति दिन तेतीस पद्म लिखे, उतनेही

१ ज्ञानसुधानिधे ।

अर्घ्य प्रदक्षिणा और प्रणाम करना चाहिये, लक्ष्मीसमेत, जगत्के गुरु बालकृष्णका उद्देश लेकर –॥९॥ गन्ध आदिक उपचारोंसे शक्तिके अनुसार पूजे, इसके पीछे ब्राह्मणोंको पूजे, कमलोंकी संख्याके बराबर अन्नका दान करे ॥१०॥ पहिले वर्ष बडे, दूसरे वर्ष पूआ, तीसरे वर्ष शालिका पिसा अन्न, चौथे वर्ष पूरी ॥११॥ पांचवे वर्ष खीरसे पूजे । इसी विषयमें एक पुराना इतिहास कहा करते हैं ॥१२॥ सब ऋषियोंने सूतजीसे पूछा था वहां मैं भी बैठा था सूतजीने कहा मैंने भी सुना ऋषि बोले कि, इसे किसने किया मृत्युलोकमें किस तरह प्रकट हुआ है ? ॥१३॥ इसका उद्यापन कैसे तथा क्या फल होता है ? सूत बोले कि–पहिले इन्द्र अपनी अमरावतीपुरीमें देव, दानव, किन्नर ॥१४॥ रुद्र, आदित्य, यक्षादिक, गन्धर्व, किन्नर, वसु इनके साथ विराजमान था, रंभाने नाचना आरम्भ किया, किन्तु क्रीडाके लोभसे विह्वल होगई ॥१५॥ ॥१५॥ इस प्रकार नाचनेपर बाजा फट गया, थोडी देर शोचकर धर्मराज बोला ॥१६॥ जिसने उपने जन्ममें व्रत न किया हो हे शक्र ! उसकी चामसे ढोलकको मढना चाहिये ॥१७॥ नारदजीने सुन लिया, झट कृष्णसे कह दिया कृष्णजीने नारदजीकी पूजा करके कहा कि ॥१८॥ हे देवर्षे ! आप सब लोकोंका हाल जानते हैं, आपने तीनों लोकोंमें भ्रमण करके जो आश्चर्य देखा हो उसे मुझे बतादीजिए जो कि, शुभदायक हो ॥१९॥ नारद बोले कि, मैंने अमरावतीमें धर्मसभामें आश्चर्य सुना है वहां सब देवता आये थे, वहां चौदहों इन्द्रथे ॥२०॥ ग्यारहों रुद्र, बारहों आदित्य, आठों वसु, नाग, यक्ष, राक्षस, पन्नग, सब उपस्थित थे ॥२१॥ रंभा नाच रही थी उसके नाचते नाचते बाजे फट गये उस समय उसका साधन यह कहा ॥२२॥ यम बोला कि, हे दूतो ! सुभद्राने कोई व्रत नहीं किया है उसे लाओ उसकी चामसे वाजे मढे जायंगे ॥२३॥ इसी डरसे मैंने आपके पास आकर सब कहदिया है । सूतजी बोले कि, नारदजीके वचन सुनकर कृष्ण शीघ्रही ॥२४॥ सुभद्राके घर पहुंचे, सुभद्राने पूजा की, पीछे आप उससे बोले कि, हे भद्रे ! मुझे यह सन्देह है कि, आपने कोई व्रत किया वा नहीं ॥२५॥–सुभद्रा बोली कि, हे कृष्ण ! मैंनें सभी व्रत किये हैं इसमें सन्देह नहीं है, नहीं तो मैं आपकी बहिन तथा अर्जुनकी स्त्री कभी नहीं होती ॥२६॥ हे जगतके स्वामी कृष्ण ! यह तो बता कि, मुझे अभिमन्यु जैसा पुत्र कैसे मिला ? श्रीकृष्ण बोले कि, तो भी हे माहभागे ! तू एक व्रत तो कर ही डाल ॥२७॥ उसे गोपद्म कहते हैं वह जगत्प्रसिद्ध है, श्रीकृष्ण भागवान्के वचन सुनकर सुभद्राने वह व्रत करडाला ॥२८॥ जैसे कृष्णजीने बताया था, उसी रीतिसे उद्यापन समेत व्रत करडाला, इसके पीछे यमदूत आये ॥२९॥ बोले कि, हे भद्रे ! आपके चर्मसे अमरावतीके बाजोंको मँढानेके लिये यमने आज्ञा दी है अतएव उसे लेने हम आये हैं ॥३०॥ दूतोंके वचन सुन सुभद्रा बोली कि, मैंने व्रत किया है, वे दूत उसके घरको सादर देखने लगे ॥३१॥ कि, घरमें कमलोंका ढेर लगाहुआ है, बछडावाली गऊ मौजूद है, हाथभरके स्थंडिलपर अग्नि देदीप्यमान हो रहा है ॥३२॥ कृष्णके उपदेशके ये सब कौतुक जान दूत यमके पास पहुंचे, इस व्रतकेही प्रभावसे सुभद्राको अच्युत पद मिलगया ॥३३॥ नारदजी सनत्कुमारजीसे बोले कि, सूतजीके ये वचन सुनकर ऋषियोंने व्रत कराडाला, सन्त्कुमार बोलु कि, हे सब शास्त्रोंमें परम प्रवीण देवर्षे नारद ! ॥३३॥ हे सखे ! गोपद्म व्रतकी उद्यापन विधिभी शीघ्रही सुना दीजिये । नारद बोले कि, पाँच वर्ष पूरे हूएपर उद्यापन होता है ॥३५॥ एकपर सोनेकी प्रतिमा बनानी चाहिये, चार दरवाजेवाली फूलोंकी मंडपिका बनावे ॥३६॥ उसके बीचमें लक्ष्मी समेत भगवान्का पूजा करना चाहिये । तैंतीस ब्राह्मणोंका वरण करके हवन करे, "अतो देवा" इस मंत्रसे तिलपायसका हवन करे, गौको लाल वस्त्र उढाकर आचार्य्यके लिये देदे ॥३८॥ सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पूजे, के प्रिय ! इस प्रकार जो करता है उसकी लक्ष्मी अचल होजाती है ॥३९॥ जो जो बात चाहता है वे सब बातें उन्हें मिल जाती हैं सब पापोंसे रहित होकर अन्तमें विष्णुपदको पाजाता है ॥४०॥ ये श्रीभविष्य पुराणके कहे हुए गोपद्म व्रत उसके उद्यापन पूरे हुए ॥

कोकिलाव्रतम्

अथ आषाढशुक्लपौर्णमास्यां कोकिलाव्रतम् ॥ यदा आषाढाधिकमासस्तदा कोकिलाव्रतानुष्ठानं कार्यम् ॥ तद्विधिः ॥ आचम्य प्राणानायम्य मासपक्षाद्यु-

ल्लिख्य ममेहजन्मजन्मान्तरस्य सर्वपापक्षयार्थं पुत्रपौत्रलक्ष्मीवृद्धये सौभाग्य वृद्धिद्वारा अवैधव्यसपत्नीनाशाय कोकिलारूपगौरी प्रीत्यर्थं कोकिलाव्रतं करिष्ये ।। इति संकल्प्य ।। आषाढपौर्णमास्यां तु संध्याकाले ह्युपस्थिते ।। संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ।। स्नानं करिष्ये नियमाद्ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ।। भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ।। इत्युक्त्वा–स्नानं करोमि देवेशि कोकिले प्राप्तये तव ।। जलेऽस्मिन्पावने पुण्ये सर्वदेवजलाशये ।। इति मन्त्रेण ।। तिलामलकल्केन सर्वौषधिजलेन च ।। वचापिष्टेन वा चाष्टावष्टौ दिनानि प्रत्येकं तिलामलकपिष्टेन सर्वोषधि युक्तेन च षट्दिनान्येवं क्रमेण मासावधि स्नायात् ।। एवं प्रतिदिनं स्नात्वा रविं ध्यात्वा ।। आदित्य भास्कर रवे अर्क सूर्य दिवाकर ।। प्रभाकर नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। इति मन्त्रेण तस्मा अर्घ्यं दद्यात् ।। ततः स्वर्णपक्षां रौप्यपादां मौक्तिकनेत्रां प्रवालमुखीं रत्नपृष्ठां चूतचम्पकवृक्षस्थां पक्षिरूपिणीं कोकिलां कृत्वा पूजयेत् ।। तद्यथा–स्वर्णपक्षां रक्तनेत्रं प्रवालमुखपङ्कजाम् ।। कस्तूरीवर्णसंयुक्तामुत्पन्नां नन्दने वने ।। चूतचम्पकवृक्षस्थां पुष्टस्वरसमन्विताम् ।। चिन्तयेत्पार्वतीं देवीं कोकिलारूपधारिणीम्। ध्यानम् ।। आगच्छ कोकिले देवि देहि मे वाञ्छितं फलम् ।। चम्पकद्रुममारूढा क्रीडन्ती नन्दने वने ।। आवाहनम् ।। आसनं क्षौमवस्त्रेण निर्मितं ह्यनघे तव ।। गृहाणेदं मया दत्तं कोकिले प्रियवर्धिनि ।। आसनम् ।। तिलस्नेहे तिलमुखे तिलसौख्ये तिलप्रिये ।। सौभाग्यं धनपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः ।। तिलपुष्पफलैर्युक्तं पाद्यं मे प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यम् ।। रत्नचम्पकपुष्पैश्च पीतचन्दनसंयुतम् ।। हेमपात्रे स्थितं तोयं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। अर्घ्यम् ।। निर्मलं सलिलं गाङ्गं कोकिले पक्षिरूपिणि ।। वासितं च सुगन्धेन गृहाणाचमनीयकम् ।। आचमनीयम् ।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् ।। पञ्चामृतं तु स्नानार्थं दत्तं स्वीकुरु कोकिले।। पञ्चामृतस्नानम् ।। मन्दाकिनीजलं पुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम् ।। स्नानार्थं ते मया दत्तं कोकिले गृह्यतां नमः ।। स्नानम् ।। सूक्ष्मतन्तुमयं वस्त्रयुग्मं कार्पाससम्भवम् ।। पीतवर्णं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ।। वस्त्रम् ।। कञ्चुकं च मया दत्तं नाना वर्णविचित्रितम् ।। कोकिले गृह्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरी ।। कञ्चुकम् ।। हरिद्रारञ्जितं देवि कण्ठसूत्रं समर्पितम् ।। कोकिले सुभगे देवि वरदा भव चाम्बिके ।। कण्ठसूत्रम् ।। यानि रत्नानि सर्वाणि गन्धर्वेषूरगेषु च ।। तैर्युक्तं भूषणं हैमं कोकिले प्रतिगृह्यताम् ।। भूषणानि ।। श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं० । चन्दनम् ।। अक्षतांश्चः० अक्षतान् ।। कुङ्कुमालक्तकं दिव्यं कामिनीभूषणास्पदम् ।। सौभाग्यदं गृहाणेदं

प्रसीद हरवल्लभे ।। अलक्तकम् ।। हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरी ।। सौभाग्यद्रव्यम् ।। करवीरैर्जातिकुसुमै० पुष्पाणि ।। वनस्पतिरसो० धूपम् ।। साज्यं चेति दीपम् ।। शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च ।। आहारार्थं मया दत्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नैवेद्यम् ।। पाटलोशीरकर्पूरसुरभि स्वादु शीतलम् ।। तोयमेतत्सुखस्पर्शं कोकिले प्रतिगृह्यताम् ।। आचमनीयम् ।। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकेशरान्वितम् ।। करोद्वर्तनकं देवि गृह्यतां हरवल्लभे ।। करोद्वर्तनम् ।। कूष्माण्डं नारिकेरं च पनसं कदलीफलम् ।। जम्बीरं मातुलिङ्गं च फलं गृह्ण नमोऽस्तु ते ।। पूगीफलमिति तांबूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। कोकिले कृष्णवर्णे त्वं सदा वससि कानने ।। भवानि हरकान्तासि कोकिलायै नमो नमः ।। नीराजनम् ।। पूजिता परया भक्त्या कोकिला गिरिशप्रिया ।। पुष्पैर्नानाविधैः श्रेष्ठैर्वरदास्तु सदा मम ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। यानि कानि च० प्रदक्षिणाम् ।। नमो देव्यै० नमस्कारम् ।। कोकिलारूपधारिण्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते ।। शरणागतदीनांश्च त्राहि देवि सदाम्बिके ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं तोयं हेमफलान्वितम् ।। अर्घ्यं गृहाण देवेशि वाञ्छितार्थं प्रयच्छ मे ।। आषाढस्य सिते पक्षे मेघवर्णे हरिप्रिये ।। कोकिले त्वं जगन्मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। पुनरर्घ्यम् ।। तिलस्नेहे० ।। रूपं देहि जयं० प्रार्थना ।। व्रतान्ते हैमीं तिलपिष्टजां कोकिलां कृत्वा विप्राय दद्यात् ।। देवि चैत्ररथोत्पन्ने विन्ध्यपर्वतवासिनि ।। अर्चिता पूजितासि त्वं कोकिले हरवल्लभे ।। कोकिले कलकण्ठासि माधवे मधुरस्वर ।। वसन्ते देवि गच्छ त्वं देवानां नन्दने वने ।। इति विसर्जनम् ।। इति कोकिलापूजा ।। अथकथा :—युधिष्ठिर उवाच ।। स्वभर्त्रा सह संयोगः स्नेहः सौभाग्यमेव च ।। भवेद्यथा कुलस्त्रीणां तद्व्रतं ब्रूहि केशव ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। यमुनायास्तटे रम्ये मथुरानगरी शुभा ।। तस्यां शत्रुघ्ननामाभूद्राजा राघववंशजः ।। २ ।। तस्य भार्या कीर्तिमाला नाम्नासीत् प्रथिता भुवि।।प्रणम्य भगवा*न्पृष्टो वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।। ३ ।। कीर्तिमालोवाच ।। वद मे त्वं मुनिश्रेष्ठ सौभाग्यप्राप्तिदं व्रतम् ।। पूज्यः कथं च भगवाञ्छिवः केन व्रतेन च ।। ४ ।। वसिष्ठ उवाच ।। यदि पृच्छसि त्वं हि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। तारणं सर्वपापानां कथयामि निबोध तत् ।। ५ ।। दक्षप्रजापतेर्यज्ञे पुरा देवाः समागताः ।। ऋषयश्च तथा सर्वे विद्याधरगणास्तथा ।। ।। ६ ।। ब्रह्मा विष्णुश्च वायुश्च देवराजस्तथैव च ।। वरुणोऽग्निर्ग्रहाश्चैव ये चान्ये च दिवौकसः ।। ७ ।। गार्ग्यो वसिष्ठो वाल्मीकिर्विश्वामित्रो महानृषिः ।। एते चान्ये च ऋषयः सर्वे यज्ञार्थमागताः ।। ८ ।। अपश्यन्नारदस्तत्र सन्ति केऽत्रागता

* तथेति शेषः ।

इति ।। ईश्वरेण विना सम्यग् दृष्ट्वा सर्वान्समागतान् ।। ९ ।। शिखां संस्पृश्य पाणिभ्यां ननर्त कलहप्रियः ।। ज्ञात्वा कलहमूलं च ततः कैलासमाययौ ।। १० ।। सर्वाघनाशनं स्थान कैलासशिखरे स्थितम् ।। तत्र दृष्ट्वा समासीनं गौरीसहितशङ्करम् ।। ११ ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य मुनिः स्थितः ।। ईश्वरस्तमुवाचाथ निःश्वसन्तमनेकधा ।। १२ ।। किमागमनकृत्यं ते मदीयसदनं प्रति ।। श्वासोच्छ्वासेन संयुक्तस्तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ।। १३ ।। ईश्वरस्य वचः श्रुत्व शिखां संस्पृश्य पाणिना ।। दुःखयुक्त इवोवाच नारदः कलहप्रियः ।। १४ ।। नारद उवाच ।। यन्निमित्तं महादेव मर्त्यलोकात्समागतः ।। त्वदन्तिकं दुःखयुक्तस्तच्छृणुष्व जगत्पते ।। १५ ।। दक्षयज्ञमहं द्रष्टुमद्यदैवात्समागतः ।। तत्र यज्ञे स्थिताः सर्वे दक्ष जामातरः प्रभो ।। १६ ।। दृष्ट्वा तांश्च न तन्मध्ये दृष्टस्त्रिभुवनेश्वरः ।। तवावज्ञा कृता तेन दक्षेणापुण्यकर्मणा ।। १७ ।। तेन निःश्वाससंयुक्त आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ।। ईश्वरेण विना किञ्चिद्धर्मकार्यं न सिद्धयति ।। १८ ।। अतोऽस्य विफलः सर्वः प्रयासः स्वमखं प्रति ।। तस्य तद्भाषितं श्रुत्व न तन्मिथ्येत्यचिन्तयत् ।। १९ ।। सक्रोधस्तु तदा जात ईश्वरो जगदीश्वरः ।। गौर्या च प्रार्थितो देव श्रुत्वा तन्नारदेरितम् ।। २० ।। तस्य यज्ञस्य घातार्थं देव तत्र व्रजाम्यहम् ।। इत्युक्त्वा चलिता रोषादीश्वरेण निवारिता ।। २१ ।। जगदीश नमस्तुभ्यं व्रजामि पितृवेश्मनि ।। नारदेनाथ सहिता गणेशेन च संयुता ।। २२ ।। यज्ञार्थमागता चैव दक्षद्वारे शिवप्रिया ।। वह्नौ दृष्ट्वा वसोर्धारां लज्जिता च शिवप्रिया ।।२३।। तिष्ठन्तीं द्वारि तां दक्षो न ददर्श महासतीम्। क्षणमेकं च तिष्ठन्तीं यदा दक्षो न पश्यति ।। २४ ।। तदैवं चिन्तितं गौर्या जीवितव्यं मया कथम् ।। धाविता कुण्डनिकटे हाहाकृत्वा च सा ततः ।। २५ ।। क्षिप्तं वह्नौ वपुर्गौर्या शापं दत्त्वा च दारुणम् ।। दृष्ट्वा तच्च गणेशन पाशः परशुरुद्यतः ।। ।।२६।। क्षुब्धो ह्यसौ तदात्यर्थं गौर्यर्थे च गणाधिपः ।। पाशेन बद्ध्वा कतिचित्कोपान्निहतवान् सुरान् ।। २७ ।। दक्षेण नोदिता देवाः सर्वे युद्धाय निर्ययुः ।। महद्युद्धमभूद्भूयः सह देवैर्गणेशितुः ।।२८।। तद्दृष्ट्वा नारदः शीघ्रं पुनःकैलासमाययौ ।। निवेदयामास च तमुदन्तं सर्वमीश्वरम् ।। २९।। तच्छ्रुत्वास्फालयामास जटां कोपादुमापतिः ।। ततो जातोऽतिविकटः पुरुषो रक्तलोचनः ।। ३० ।। स बभाषे महादेवं स्वामिन्नाज्ञां च देहि मे ।। वीरभद्रेति नामास्य कृत्वा चाज्ञां समर्पयेत् ।। ३१ ।। दक्षयज्ञविघातार्थं गच्छ वीराति सत्वरम् ।। श्रुत्वा तदीश्वरवचः सर्वप्रमथसंवृतः ।। ३२ ।। आययौ यज्ञसदनमसृग्वह्निषु न्यक्षिपत् ।। तत इन्द्रादयो

देवास्तद्वधाय विनिर्ययुः ।। ३३ ।। क्षणात्पराजितास्तेन विद्रुताश्च दिशो दश ।। अनुद्रुतश्च तान्सोऽपि पूष्णो दन्तानपातयत् ।। ३४ ।। भगस्य नेत्रे नासां च सरस्वत्या न्यु कृन्तयत् ।। एवं विद्राव्य तान्सर्वाञ्छिरो दक्षस्य चिच्छिदे ।। ३५ ।। कृत्वैवं यज्ञघातं स आजगाम शिवान्तिकम् ।। नमस्कृत्य पुरस्तस्थौ कृतं कार्यमिति ब्रुवन् ।। ३६ ।। तथाप्यशान्तः कोपोऽस्य ज्ञात्वेति ज्ञानचक्षुषा ।। प्रसादयितुमीशानं ब्रह्मविष्णू समीयतुः ।। ३७ ।। नमस्कृतस्ततस्ताभ्यां प्रसन्नोऽभूत्सदाशिवः ।। नारदस्तुम्बुरुश्चैव गीतैः शिवमतोषयत् ।। ३८ ।। प्रसन्नं वीक्ष्य तं विप्रः शिखां संस्पृश्य पाणिना ।। ननर्त नारदस्तत्र तोषयन्नधिकं शिवम् ।। ३९ ।। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विष्णुश्च प्रमथाधिपम् ।। व्यजिज्ञपत्तं दक्षादीन् कृपादृष्टया विलोकय ।। ४० ।। कृत्ताङ्गान्कुरु पूर्णाङ्गान्मृतान्सञ्जीवय प्रभो ।। विलोकितास्ते देवेन कृपादृष्टया च वै तदा ।। ४१ ।। पूषादयश्च साङ्गा वै अभूवंस्तत्प्रसादतः ।। उत्थितः पादयोर्मूलं ययौ दक्षः पिनाकिना ।। ४२ ।। अपराधं क्षमस्वेति पुनः पुनरुवाच ह ।। उत्थापितः करेणासौ ततो दक्षः पिनाकिना ।। ४३ ।। उक्तश्च मा पुनः कार्षीरेवमीशावमाननम् ।। विचरस्व सुखेनेति भूयस्तं कोप आविशत् ।। ४४ ।। शशाप च तदा गौरीं यज्ञविघ्नकरीं शिवः ।। मखे विघ्नं कृतवती दक्षस्यैषा ततोऽचिरात् ।। ४५ ।। तिर्यग्योनिसमापन्ना विचरिष्यसि भूतले ।। ततो गौरी बभाषे तं प्रणिपत्य सदाशिवम् ।। ४६ ।। कथं यास्यामि तिर्यक्त्वं भूतले च स्थितिः कथम् ।। अन्यथा नैव भविता शाप एष त्वयोदितः ।। ४७ ।। कोकिला मधुरालापा भवेयं नन्दने वने ।। कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पति[१]व्रतम् ।। ४८ ।। विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ।। अचिरादेव च पुनः कुले महति जन्म मे ।। ४९ ।। भूयास्त्वमेव भर्ता च न वियोगश्च मे मतः ।। वरयेत्कुलजां प्राज्ञः कुरूपामपि कन्यकाम् ।। ५० ।। दुष्टे कुले समुत्पन्ना भर्तुः पातयते कुलम् ।। नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम् ।। ५१ ।। नदीनां चैवनारीणां स्वच्छन्दं ललिता गतिः ।। ततस्तुष्टो महादेवश्चक्रे शापविमोचनम् ।। ५२ ।। दशवर्षसहस्राणि कोकिलारूपधारिणी ।। नन्दने देवविपिने चरिष्यसि ततः परम् ।। ५३ ।। हिमाचलसुता भूत्वा मत्प्रियात्वमुपैष्यसि ।। देवानां तु यथा विष्णुः सहकारो महीरुहाम् ।। ५४ ।। गङ्गा च सर्वतीर्थानां तथा तिर्यक्षु कोकिला ।। आषाढौ द्वौ यदा स्यातां कोलिलायास्तदार्चनम् ।। ५५ ।। तदा या कुरुते नारी न सा वैधव्यमाप्नुयात् ।। वसिष्ठ उवाच ।। एतद्वाक्यावसाने तु गौरी सा कोलिलाभवत् ।। ५६ ।। तदारभ्य शुचि ह्येतत्प्रथितं कोकिलाव्रतम् ।। या नारी नैव कुरुतेमोहात्सा

१ पातिव्रत्यमित्यर्थः ।

विधवा भवेत् ।। ५७ ।। कुरु त्वमेतत्कल्याणि कीर्तिमाले व्रतोत्तमम् ।। कीर्तिमालोवाच ।। कथमाराध्यते देवी कोकिलारूपधारिणी ।। ५८ ।। विधानं ब्रूहि तद्विप्र त्वत्प्रसादात्करोम्यहम् ।। वसिष्ठ उवाच ।। कोकिलाव्रतमाहात्म्यं विधानं च वदामि ते ।। ५९ ।। शृणु देवि प्रयत्नेन मंत्रैः पौराणिकैर्युतम् ।। मलमासे त्वतिक्रान्ते शुद्धाषाढे समागते ।।६०।। आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु संध्याकाले ह्युपस्थिते ।। संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणप्रभृति ह्यहम्।।६१।।स्नानं करिष्ये नित्यंच ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ।। भोक्ष्ये नक्तं च भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ।। ६२ ।। सौभाग्यधनधान्यादिप्राप्तये शिवतुष्टये ।। इति संकल्प्य विप्राग्रे नारी विप्रेभ्य एव च ।। ।। ६३ ।। प्राप्यानुज्ञां तु संपाद्य सामग्रीं सकलामपि ।। प्रत्यूषे च प्रतिदिनं दन्तधावनपूर्वकम् ।। ६४ ।। नद्यां गत्वाथवा वाप्यां तडागे गिरिनिर्झरे ।। स्नानं करोमि देवेशि कोकिले प्रीतये तव ।। ६५ ।। जलेऽस्मिन् पावने पुण्ये सर्वदेवकुलाश्रये ।। नानं कृत्वा व्रती देवि सुगन्धामलकैस्तिलैः ।। ६६ ।। दिनाष्टकं ततः पश्चात्सर्वौषध्या पुनः पृथक् ।। वचापिष्टेन च स्नानं दिनान्यष्टौ समाचरेत् ।। ६७ ।। तिलामलकपिष्टेन सर्वौषधियुतेन च ।। षट् दिनानि ततः स्नानं संपूर्णफललिप्सया ।। स्नात्वा ध्यात्वा रविं तस्मै दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः ।। ६८ ।। आदित्य भास्कर रवे अर्क सूर्य दिवाकर ।। प्रभाकर नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ६९ ।। सूर्यार्घ्यमन्त्रः ।। कारयेत्कोकिलां देवीं सौवर्णीं सर्वकामदाम् ।। रौप्यं चरणयोश्चैव नेत्रयोश्चापि मौक्तिके ।। ७० ।। रत्नानि पञ्च षष्ठे तु चूतवृक्षसमाश्रिताम् ।। अथवा तिलपिष्टेन कोकिलां पक्षिरूपिणीम् ।। ७१ ।। निधाय ताम्रपात्रे तां पूजयेत्सुसमाहितः ।। उपचारैः षोडशभिर्यथावित्तं निबोध मे ।। ७२ ।। आवाहयामि तां देवीं कोकिलारूपधारिणीम् ।। अवतारं कुरुष्वात्र प्रसादं कुरु सु व्रते ।। ७३ ।। आवाहनमन्त्रः ।। आगच्छ कोकिले देवि देहि मे वांछितं फलम् ।। चूतवृक्षं समारुह्य रमसे नन्दने वने ।। ७४ ।। आसनमन्त्रः ।। तिर्यग्योनिसमुद्भूते कोकिले कलकण्ठिके।। शङ्करस्य प्रिये देवि पाद्यं संप्रतिगृह्यताम् ।। ७५ ।। पाद्यमन्त्रः ।। कलकण्ठे महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ।। तिलपुष्पाक्षतैरर्घ्यं गृहाण त्वं नमोऽस्तु ते ।। ७६।। अर्घ्यं मन्त्रः ।। आषाढस्यासिते पक्षे मेघवर्णस्वरूपिणि।। कोकिले नाम देवि त्वं स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ।। ७७ ।। भिन्नानि कण्ठसूत्राणि दद्याच्चापि दिनेदिने ।। कुंकुमं पुष्पताम्बूलमक्षता धूपदीपकौ ।। ७८ ।। कुर्यादेवंविधां पूजां श्रावण्यन्तं च पूजयेत् ।। विसर्जयेश्च्च पश्चात्तां सौवर्णीं कोकिलां शुभाम् ।। ७९ ।। यदा च तिलपिष्टस्य कोकिला क्रियते तदा ।। कुर्यात्प्रत्यहमाह्वानं भिन्नायास्तु विसर्जनम् ।। ८० ।। रम्यं वनं समागत्य शृणुयात्कोकिलास्वनम् ।। यदा न श्रूयते शब्द

उपवासस्तु तद्दिने ।। ८१ ।। कोकिले कृष्णवर्णे त्वं सदा वासो वनेषु ते ।। सौभाग्य-मतुलं देहि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। ८२ ।। वसन्ते च समुत्पन्ने विन्ध्यपर्वतवासिनि ।। गच्छगच्छ महादुर्गे स्वस्थाने नन्दने वने ।। ८३ ।। विसर्जनमन्त्रः ।। रूपं देहि धनं देहि सर्वसौख्यं च देहि मे ।। पुत्रान् देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि संपदः ।। ८४ ।। इत्युक्त्वा च ततः पश्चाद्धविष्यान्नेन सुव्रती ।। नक्तभोजी भवेद्राज्ञि यावन्मासः समाप्यते ।। ८५ ।। मासान्ते ताम्रपात्रे तु कोकिलां स्वर्णनिर्मिताम् ।। वस्त्रधान्यगुडैर्युक्तां श्रावण्यां वै सकुण्डलाम् ।। ८६ ।। दद्यात्सदक्षिणां चापि दैवज्ञे वा पुरोहिते ।। एवमाषाढमासस्य द्वैविध्ये समुपस्थिते ।। ८७ ।। सधवा विधवा वापि या नारी कोकिलाव्रतम् ।। करोति सप्तजन्मानि सौभाग्यं लभते तु सा ।। ८८।। मृता गौरीपुरं याति विमानेनार्कतेजसा ।। श्रीभगवानुवाच ।। एतद्व्रतं वसिष्ठेन मुनिना कथितं पुरा ।। ८९ ।। तथा कृतं तु तत्पार्थ समस्तं कीर्तिमालया ।। तस्याश्च सर्वं निष्पन्नं वसिष्ठवचनं यथा ।। ९० ।। एवमन्यापि कौन्तेय कोकिलाव्रतमुत्तमम् ।। करिष्यति तदा तस्याः सौभाग्यं च भविष्यति ।। ९१ ।। न करोति यदा नारी व्याली भवति कानने ।। एकतः सर्वदानानि कोकिलाव्रतमेकतः ।। ९२ ।। कृतं पुराप्सरोभिश्च ऋषिपत्नीभिरादरात् ।। अहल्यया च सा पूर्वमर्चिता शाप-मुक्तये ।। ९३ ।। अरुन्धत्यापि सा स्नात्वा पूजिता कोकिला नृप ।। सीतया पूजिता सापि सर्वकामार्थसिद्धये ।। ९४ ।। गौतम्यां दण्डकारण्ये स्नानं कृत्वा यथाविधि ।। नलान्वेषणकामेन दमयन्त्या च पूजिता ।। ९५ ।। रुक्मिण्या च तथा स्नात्वा पूजिता कोकिला शिवा ।। विष्णोः पत्युरवाप्त्यर्थं तच्च जातं न संशयः ।। ९६ ।। कुचैला मलिना दीना परकर्मरता तथा ।। एवं वन्ध्या काकवन्ध्या विवत्सा मृतवत्सका ।। ९७ ।। सर्वास्ताः फलभाजः स्युर्व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। आयुरारोग्य-मैश्वर्यं सुखं वृद्धि यशः प्रजाम् ।। ९८ ।। सौभाग्यं सुन्दरं रूपं नारी प्राप्नोति नान्यथा ।। एतद्व्रतं मयाख्यातं कार्यं वारत्रयं नृप ।। ९९ ।। तृतीयान्ते च विधिवत्कार्य-मुद्यापनं शुभम् ।। एकस्माज्जायते द्रव्यं द्वितीयाल्लभते सुतान् ।। तृतीयाच्चापि सौभाग्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।। १०० ।। इति वराहपुराणे कोकिलाव्रतम् ।। अथोद्यापनम् ।। *उद्यापनविधिं ब्रूहि व्रतस्यास्य मम प्रभो ।।येन विज्ञातमात्रेण सौभाग्यं च भविष्यति –श्रा२वणे पौर्णमास्यां तु शुक्लपक्षे विशेषतः ।। द्वितीयाया-

---

* अग्रे उत्तरकथने नारदेत्यादिसम्बोधनादयं प्रश्नो नारदस्येति गम्यते उत्तरं तु कस्येति न ज्ञायते । व्रतार्कादि ष्वेवमेव पाठो दृश्यते परन्तु ततो न निर्णयः । २ व्रतपरायणा विशेषतः श्रावणे पौर्णमास्यां उपवासस्य नियमं कृत्वा मध्याह्ने शुचौ देशे उपलिप्येत्याद्यन्वयः । तस्यामसम्भवे कालान्तरमाह-द्वितीयायामिति । श्रावणशुक्लद्वितीयायां दन्तधावनपूर्वकमेकभक्तं कृत्वा समुपोषिता तृतीया यतः, पुण्यफलदा अतस्तस्या मध्याह्न इत्यन्वयः तदेव व्रतार्ककारैः श्रावणे शुक्लद्वितीयायामेकभक्तं कृत्वाय तृतीयायामुपोषयेदति पौर्ण-मासी तत्कालंकालान्तरे इतिव्याख्यातम्

मेकभक्तं दन्तधावनपूर्वकम् ।। उपवासस्य नियमं कृत्वा व्रतपरायणा ।। तृतीया पुण्यफलदा मध्याह्ने समुपोषिता ।। उपलिप्य शुचौ देशे मण्डलं तत्र कारयेत् ।। अष्टदलं लिखेत्पद्मं चतुष्कोणं च भद्रकम् ।। कलशं वारिपूर्णं च पञ्चरत्नसमन्वितम् ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं शूर्पबन्धैकविंशति ।। प्रत्येकं सप्तधान्यानां प्रस्थेनैकेन पूरयेत् ।। तदभावे तदर्धेन कुडवेनाथ नारद ।। ऊर्णापट्टयुगं कृष्णवर्णं दद्याच्च शक्तितः ।। तस्योपरि न्यसेद्देवीं कोकिलाप्रतिमां तथा ।। अत्र गन्धप्रदानं च धूपदीपप्रदानकम् ।। नैवेद्यं मोदकान्दद्यात्पक्वान्नं घृतसंयुतम् ।। अर्घ्यं चैव प्रदातव्यं ताम्बूलं फलमुत्तमम् ।। रात्रौ जागरणं कार्यं वाद्यनृत्यप्रभूतकम् ।। पूजयित्वैकचित्तेन फलं प्राप्नोति चाक्षयम् ।। प्रभाते विमले तीर्थे स्नानं कृत्वा विधानतः ।। पूजयेद्विधिवद्देवीं होमं कुर्यात्तथा द्विज ।। तिलचम्पकपुष्पैश्च तण्डुलैर्घृतपायसैः ।। अष्टोत्तरशतं हुत्वा दुर्गामन्त्रैश्च वादकैः ।। कोकिलाप्रीतये* ब्रह्मन्व्याहृतीनां शतत्रयम् × ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्सपत्नीकांश्च पञ्च च ।। अशक्तो ह्येकयुग्मं च भोजयेच्च तथा गुरुम् ।। त्रिस्त्रीभ्यश्च प्रदातव्यं घारिका पञ्चकं तथा ।। मोदकांश्च ससूत्रांश्च वंशपात्रसमन्वितान् ।। कृष्णवस्त्रसमायुक्तान्पक्वान्नेन प्रपूरितान् ।। सर्वोपस्करसंयुक्तांस्त्रिस्त्रीभ्यश्च प्रदापयेत् ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या गां कृष्णां च सवत्सकाम् ।। उपानहौ तथा शय्यां चामरं छत्रमेव च ।। मुद्रीकां कर्णवेष्टे च चन्दनं कुसुमानि च ।। सर्वं दद्याद्द्विजेन्द्राय सपत्नीकाय नारद।। दापयेद्विधिवत्सर्वं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।। व्रतोपदिष्टदानं च भोजनं च सदक्षिणम् ।। ततो भुञ्जीत नैवेद्यं पुत्रपौत्रैः समन्विता ।। देवि चैत्ररथोत्पत्रे विन्ध्यपर्वतवासिनि कोकिले पूजिते गच्छ विधिवत्सर्वकामदे ।। कारयेत्कोकिलां देवीं सौवर्णीं सर्वकामदाम् ।। रौप्यैश्चरणचञ्चुभिरन्वितां नेत्रमौक्तिकाम् ।। पञ्चरत्नयुतां पृष्ठे चूतवृक्षसमाश्रिताम् । एवं या कुरुते राजन्कोकिलाव्रतमुत्तमम् ।। सर्वं प्राप्नोति सौभाग्यं पुत्रधान्यधनानि च ।। महाफलमवाप्नोति महामायाप्रसादतः ।। इति वराहपुराणे卐 कोकिलाव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

कोकिलाव्रत—आषाढ शुक्ला पूर्णिमाके दिन होता है, जब आषाढका अधिक मास हो उस दिन कोकिला व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये । विधि—आचमन प्राणायाम करके मास पक्ष आदिका उल्लेख करके कहे कि मेरे इस जन्म और दूसरे जन्मोंके सभी पापोंके नाश करनेके लिये एवं पुत्र पौत्र भाई आदिकी वृद्धिके लिये तथा लक्ष्मी और सौभाग्यकी वृद्धिके लिये तथा अवैधव्य और सपत्नीयोंके नाशके लिये एवं कोकिला रूप श्रीगौरीकी प्रसन्नताके लिये कोकिलाव्रतको करूंगी, इस प्रकार संकल्प करना चाहिये । आषाढ पूर्णमाकी सामको संकल्प करे कि, श्रावणके पूरे महीने प्रतिदिन ब्रह्मचारिणी रहकर स्नान किया करूंगी नक्तभोजन प्राणियोंपर दया तथा भूमिपर सोया करूंगी । इस पावन पुण्य सर्व देव जलाशयमें हे देवेशि कोकिले ! आपकी प्राप्तके लिये स्नान करती हूं, इस मंत्रसे तिल और आमलेके भीगे चूर्णसे सब औषधियोंके

---

* विल्वपत्राणिचेत्यपि पाठः । × त्रिभिः शतत्रैरित्यपि पाठः । 卐 नारदीये इति व्रतार्के पाठः

पानीसे बचके पिष्टसे आठ आठ दिनमें प्रत्येकसे तिल और आमलेके भीगे चूर्णसे जिसमेंकी सब औषधि पडीहुई हो उससे ६ दिन, इस प्रकार एक मासतक स्नान करे, इस प्रकार प्रतिदिन स्नान करके सूर्य्यका ध्यान करे, हे आदित्य ! हे भास्कर ! हे रवे ! हे अर्क ! हे दिवाकर ! हे प्रभाकर ! आपके लिये नमस्कार है, इस मंत्रसे प्रतिदिन अर्घ्य देना चाहिये । इसके बाद सोनेके पंख, चांदीके पैर मोतीके नेत्र, प्रवालका मुख और रत्नोंकी पीठवाली आम या चंपकपर बैठी हुई, पुष्टस्वरवाली कोकिलारूपधारिणी पार्वतीका ध्यान करे, इससे ध्यान; हे कोकिले देवि ! आजा वांछित फल दे, आप नन्दनवनके चंपक द्रुमपर बैठी हुई खेलती हैं, इससे आवाहन, हे निष्पाप ! आपका आसन क्षौम वस्त्रसे बना हुआ है । हे प्रियवर्धिनी कोकिले ! मेरे दिये हुए आसनको ग्रहणकर, इससे आसन; हे तिलस्नेहे ! हे तिलमुखे ! हे तिलसौख्ये ! हे तिलप्रिये ! सौभाग्य और धन और पुत्रोंको दे तेरे लिये नमस्कार है, हे प्रियवर्धिनि कोकिले ! तेरे लिये नमस्कार है, तिलपुष्प मिला हुआ पाद्य ग्रहण कर, इससे पाद्य; रत्न और चंपकके फूलों और पीले चन्दन मिला हुआ पानी सोनेके पात्रमें रखा है, आप ग्रहण करें, इससे अर्घ्य ; हे पक्षिरूपिणी कोकिले ! उत्तम सुगन्धिसे सुगन्धित गंगाका निर्मल पानी रखा हुआ है, इस आचमनीयको ग्रहण करिये, इससे आचमनीय; हे कोकिले ! पय, दधि, मधु, शर्करा और घृत ये पांचों अमृत स्नानके लिये रखे हुए हैं, आप स्वीकार करें, इससे पंचामृत स्नान; 'मन्दाकिनीजलम्' इससे स्नान; 'सूक्ष्मं तन्तुमयम्' इससे वस्त्र; 'कंचुकं च' इससे कंचुक; हरिद्रा रंजितम्' इससे कंठसूत्र; 'यानि रत्नानि' इससे भूषण; 'श्रीखण्डम्' इससे चन्दन; 'अक्षतांश्च' इससे अक्षत; कुंकुमालक्तकम्' इससे अलक्तक; 'हरिद्रां कुंकुमम्' इससे सौभाग्य द्रव्यं; 'करवीरैः' इससे पुष्प; 'वनस्पतिरसो०' इससे धूप; 'साज्यं च' इससे दीप; शर्कराखण्ड' इससे नैवेद्य; 'पाटलोशील' इससे आचमनीय; 'चन्दनागुरु' इससे करोद्वर्तन; 'कूष्माण्डम्' इससे फल; 'पूगीफलम्' इससे ताम्बूल; 'हिरण्यगर्भ' इससे दक्षिणा; हे कालेरंगकी कोयल ! आप सदा वनमें वसती हैं । आप शिवकी प्यारी पत्नी भवानी हैं । ऐसी तुझ कोकिलाके लिये नमस्कार है, इससे नीराजन; मैंने शिवकी प्यारी कोकिलाका पूजन भक्तिपूर्वक अनेक तरहके श्रेष्ठ फूलोंसे किया है, वह कोकिला मुझे वरदान देनेवाली होजाय, इससे पुष्पांजलि 'यानि कानि' इससे प्रदक्षिणा; 'नमो देव्यै' इससे नमस्कार 'कोकिलारूपधारिण्यै' इससे, ' गंध पुष्पाक्षतैर्यकक्तम्' इससे, 'आषाढस्य सिते पक्षे' इन मंत्रोंसे फिर अर्घ्य, 'तिल स्नेहे' इससे, रूपं देहि' इससे प्रार्थना समर्पण करना चाहिये । व्रतके अन्तमें सोने अथवा तिलके चूनकी कोयल बनाके ब्राह्मणके लिये दान करे । हे चित्ररथमें उत्पन्न होनेवाली हे विन्ध्यपर्वतपर बसनेवाली हे हरकी प्यारी कोयल ! तेरा अर्चन पूजन यथेष्ट किया गया है । हे मीठे स्वरवाली वैशाखमें कलकंठी कोयल ! हे देवि ! वसंतका समय है तू देवोंके नन्दन वनमें चली जा । इससे कोकिलाका पूजन हुआ ॥ कथा—युधिष्ठिर बोले कि, अपने भर्ताके साथ संयोग स्नेह और सौभाग्य जिस तरह हो ऐसा कोई व्रत हो तो हे कृष्ण ! कहिये जिसे कि, कुलस्त्रियां कर सकें ॥१॥ यमुनाके किनारे एक मथुरापुरी है । उसमें शत्रुघ्ननामक रघुवंशी राजा था ॥२॥ इसकी कीर्तिमाला नामकी स्त्री अपने शुभाचरणोंके खातिर परम प्रसिद्ध थी । उसने प्रणामकरके वसिष्ठजीसे पूछा ॥३॥ हे मुनिराज ! मुझे कोई सौभाग्य देनेवाला श्रेष्ठव्रत कहिये, भगवान शिव किस व्रतसे कैसे पूजे जाते हैं ॥४॥ वसिष्ठ बोले कि, आप मुझे सब व्रतोंमें उत्तम व्रत पूछती हैं जो सब पापोंका तारण है उसे मैं आपके आगे कहता हूं ॥५॥ पहिले दक्षप्रजापतिके यज्ञमें सब देव आये थे, ऋषि, विद्याधर ॥६॥ ब्रह्मा, विष्णु, वायु, देवराज, वरुण, अग्नि, ग्रह तथा दूसरे दूसरे देवता ॥७॥ वसिष्ठ, वाल्मीकि, गार्ग्य, महान् ऋषि विश्वामित्र तथा दूसरे ऋषि सब यज्ञके लिये आये थे ॥८॥ नारदने देखा कि, विना शिवके सब देवता आगये हैं ॥९॥ हाथसे चोटी छूकर नाचने लगे क्यों कि, यहां इन्हें लडाईका समान मिलगया था, झट कैलासपर चले आये ॥१०॥ उसकी शिखरपर बैठे हुए सभी पापोंके नाशक गौरीसमेत शिवको बैठा देख॥११॥ हाथ जोड प्रणाम करके बैठगये । शिवने देखा कि, नारद गरम गरम श्वास ले रहा है तो पूछा ॥१२॥ कि, हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार कैसे आये जो कि आहें ले रहे हो ? ॥१३॥ शिवके वचन सुन फिर चोटीसे हाथ लगाया लड़ाईके प्रेमी नारद आन्तर्वेदना वालेकी तरह बोले ॥१४॥ हे जगके स्वामिन् महादेव ! जिस कारण मैं दुःखी होकर आपके

पास आया हूं । उसे सुनिये ॥१५॥ मैं दैवात् दक्षका यज्ञ देखने चला गया उस यज्ञमें दक्षके सब जमाई बैठे थे ॥१६॥ पर वहां आप मुझे देखनेको न मिले उसपापीने यह आपका अनादर किया है ॥१७॥ उसीको देख आहें लेता हुआ आपके पास आया हूं क्योंकि, विना ईश्वरके कोई भी धर्मकार्य पूरा नहीं होता ॥१८॥ उसका यज्ञश्रम व्यर्थही है । नारदके वचन सुन रुद्रने विचारा कि, इसका कथन मिथ्या नहीं है ॥१९॥ उस समय जगदीश्वर ईश्वरको क्रोध होगया नारदके वचन सुन गौरीने प्रार्थना की कि, ॥२०॥ हे देव ! उसके यज्ञको विध्वंस करनेके लिए मैं जाऊँगी यद्यपि शिवजीने मनें की पर क्रोधसे चलदीं ॥२१॥ कि, हे जगदीश ! आपको नमस्कार है नारदजीके साथ गणपतिको संग लेकर पिताके घर जाती हूं ॥२२॥ यज्ञके लिए पार्वती दक्षके द्वारे आई पर अग्निमें वसोर्धारा देखकर लज्जित होगई ॥२३॥ द्वारपर खडी दक्षकी दृष्टिमें न आई महासती पार्वतीको खडे कुछ समय वीत गया पर दक्षने न देखा ॥२४॥ तो विचारा कि, मेरी जिन्दगी व्यर्थ है, झटपट कुंडके पास भगी एवं घोर शाप देकर अग्निमें गिरगई; गणेशने यह देखा पाश और परशु संभाला ॥२५॥ अत्यन्त क्रोधित होकर कुछ तो पाशसे बांध लिए कुछ एक देवगण परसासे काटडाले ॥२६-२७॥ दक्षके कहनेपर सब देवता युद्धके लिए चले, गणपति और देवताओंमें घोर युद्ध होने लगा ॥२८॥ यह देख नारदने कैलास आ शिवजीसे सब हाल कह दिया ॥२९॥ शिवजीने क्रोधसे जटाएँ फटकारी जिससे लाल लाल नेत्रोंका बडा विकट एक पुरुष उत्पन्न होगया ॥१३०॥ वह हाथ जोडकर शिवजीसे बोला कि, हे स्वामिन् ! आज्ञा दीजिए उसका नाम वीरभद्र रखकर आज्ञा दी कि ॥३१॥ हे वीर ! दक्षकी यज्ञका विध्वंस करनेकेलिए शीघ्रही चला जा । वीरभद्र शिवजीकी आज्ञा पा सब प्रमथोंको साथ लेकर ॥३२॥ यज्ञ भूमि आया । ऋत्विजोंको अग्निमें पटक दिया जब इन्द्रादिक देव उसे मारनेके लिए आये ॥३३॥ तो उसने क्षणमात्रमें सबकोजीतलिया जिससे वे चारों दिशाओंमें भाग गये । पूषा नहीं भागा । उसके दांत तोड डाले गये ॥३४॥ भगके नेत्र एवं सरस्वतीकी नाक उडादी, इस प्रकार सबको भगाकर दक्षकाशिर काट डाला ॥३५॥ वीरभद्र यज्ञ विध्वंस करके शिवजीके पास आकर बोला कि, महाराज दक्षका यज्ञ, विध्वंस करके आगया हूं ॥३६॥ फिर भी जब शिवजीका क्रोध शांत न हूआ तो उन्हें प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्माविष्णु चलेआये॥३७॥उनके नमस्कार करनेपर प्रसन्न होगये नारद और तुम्बुरुने गीतोंसे प्रसन्न किया ॥३८॥ शिवको प्रसन्न देख नारद चोटीको छूकर नाच नाच और अधिक शिवजीको प्रसन्न करने लगे ॥३९॥ इसी बीचमें ब्रह्मादिक देव बोले कि, दक्षादिकोंको कृपादृष्टिसे देखिये ॥४०॥ जिनके अंगभंग हुए हैं, उन्हें पूरे करिये । जो मरे हैं उन्हें जिला दीजिए, जब उनको कृपादृष्टिसे देखा तो ॥४१॥ उनकी कृपामात्रसे पूषा आदिक अच्छे होगये । दक्ष उठकर शिवजीके चरणोंमें गिरगया ॥४२॥ बोला कि, मेरे अपराध क्षमा कर दिये जाँय । शिवने दक्षको अपने हाथसे उठाया ॥४३॥ कहा कि, इस प्रकार फिर ईश्वरोंका अपमान न करना जा, सुख पूर्वक विचर । इसके वाद फिर शिवजीको क्रोध आया ॥४४॥ यज्ञविघ्न करी गौरीको शाप दिया कि, तुमने दक्षको यज्ञमें विघ्नकिया है इस कारण वहुत दिनोंतक ॥४५॥ तिर्यग् योनि पाकर भूतलपर विचर, गौरी चरणोंमें पडकर शिवजीसे बोली ॥४६॥ मैं कैसे तिर्य्यग् योनिमें जाऊँ, कैसे भूतलपर रहूं ? आपका शाप अन्यथा नहीं हो सकता ॥४७॥ मैं नन्दन वनमें मीठा बोलनेवाली कोयल बनूंगी क्योंकि कोयलोंका स्वर रूप तथा स्त्रियोंका पवित्र रूप है ॥४८॥ कुरूपोंका विद्या तथा तपस्वियोंका क्षमा रूप है । थोडेही समयमें मेरा किसी अच्छे कुलमें जन्म हो ॥४९॥ आपही मेरे पति हों फिर आपके साथ वियोग कभीभी न हो । बुद्धिमानकुरूपी भी कुलाङ्गनाके साथ विवाह करले ॥५०॥ क्योंकि, दुष्टकुलमें पैदा हुई पतिके कुलको भी गिराती है क्योंकि, नदी किनारे और स्त्री कुलको गिराया करती है ॥५१॥ क्योंकि, नदी और ऐसी स्त्रियां स्वच्छन्द चला करती हैं । यह सुन महादेवने प्रसन्न होकर शापका विमोचन कर दिया ॥५२॥ कि, दश हजार वर्ष कोयल बनकर नन्दन वनमें विचरोगी । इसके पीछे ॥५३॥ हिमाचलकी लडकी होकर मेरी प्यारी बन जाओगी, जैसे देवोंमें विष्णु वृक्षोंमें आम ॥५४॥ तीर्थोंमें गंगा है, वैसेही तिर्यगोंमें कोयल है । जब दो आषाढ पडेंगे तब कोयलका पूजन होगा ॥५५॥ इसे जो स्त्री करेगी वह कभीभी विधवा नहीं होगी । वसिष्ठजी बोले कि, इस वाक्यके पीछे सती कोयल होगई ॥५६॥ उसी दिनसे लेकर इस कोकिल-

व्रतका प्रचार हुआ । मोहके वश होकर जो स्त्री इसे नहीं करती वह विधवा होजाती है ।।५७।। हे कल्याणि कीर्तिमाले ! तुम भी इस व्रतको करो ? कीर्तिमाला बोली कि, कोकिलारूपधारिणी देवीकी कैसे आराधना होती है ?।।५८।।आप उसका विधान कहिये । आपकी कृपासे मैं इस व्रतको पूरा करूंगी । यह सुन वसिष्ठजी बोले कि, कोकिलाव्रतका माहात्म्य और विधान मैं कहूंगा ।।५९।। हे देवि ! पौराणिकमन्त्रोंके साथ सुन, मलमासके बीत जानेपर शुद्ध आषाढके आते ही ।।६०।। आषाढ पौर्णमासीके सामके समय संकल्प करे कि मैं पूरे सावनमास ।।६१।।स्नान करूंगी ब्रह्मचारिणी रहूंगी, नक्तभोजन भूशयन और प्राणियोंपर दया करूंगी ।।६२।। इससे शिवजी प्रसन्न होकर मुझे सौभाग्य, धन और धान्य देंगे । इस प्रकार ब्राह्मणोंके आगे संकल्प करके ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर सब सामग्री इकट्ठी करके प्रति दिन दांतून करके ।।६३-६४।। पर्वतका झरना, तडाग, बापी या नदीमें हे देवेशि कोकिले ! तेरी प्रसन्नताके लिये स्नान करती हूं ।।६५।। स्नानविधि–पूर्वोक्त पवित्रपानीमें तिल और आमलोंके भीगे चूनसे उबटना करके आठ दिनतक सर्वौषधिसे, आठ दिन तक बचाके पिष्टसे छः दिन सब औषधि मिले तिल और आमलेके भीगे चूनसे उबटन करके स्नान करे । यदि यह इच्छा हो कि, पूरा फल मिले । रविकाध्यान करके उसको अर्घ्य देना चाहिये ।।६६-६८।। हे आदित्य ! हे भास्कर ! हे रवे ! हे अर्क ! हे सूर्य्य ! हे दिवाकर ! हे प्रभाकर ! तेरे लिये नमस्कार; अर्घ्य ग्रहण करिये ।।६९।। यह सूर्य्यको अर्घ्य नेनेका मंत्र है । सोनेकी कोयल हो, जिसके चरण चांदीके नेत्र, मोतियोंके ।।७०।। पूछमें पाँच रत्न तथा आमके पेडपर बैठी हुई बनावे अथवा तिलकी पिठीकी बना डाले ।।७१।। उसे तांबेके पात्रमें रखकर पूज ले । अपने धनके अनुसार सोलहों उपचारोंसे पूजे उन्हेंभी बतात हूं ।।७२।। कोकिलारूप धारिणी देवीका आवाहन करती हूं । यहां आ; हे सुव्रते ! मुझपर कृपाकर ।।७३।। इससे आवाहन; आप आमपर बैठी नन्दन वनमें विचरती हैं । हे कोकिले देवि ! आइये, मुझे वाञ्छित दीजिये ।।७४।। इससे आसनः हे तिर्यग्योनिमें हुई कलकंठी शंकरकी प्यारी कोयल ! पाद्य ग्रहण कर ।।७५।। इससे पाद्य; हे भुक्तिमुक्तिको देनेवाली कलकंठी महादेवी शिवे ! तिल पुष्प और अक्षत मिला हुआ अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिये नमस्कार है ।।७६।। इससे अर्घ्य; हे मेघकेसे रंगकी कोकिले देवि ! आषाढ शुक्लामें मैं स्नानीय पानी दे रहा हूं, आप ग्रहण करें ।।७७।। इससे स्नानीय समर्पण करें । प्रतिदिन एक कंठसूत्र दे, कुंकुम, पुष्प ताम्बूल, अक्षत, धूप, दीप, ।।७८।। इस प्रकार श्रावणीतक पूजा करे पीछे शुभ सोनेकी कोकिलाका विसर्जन करदे ।।७९।। यदि तिलकी पिठीकी कोयल बनाई हो तो प्रतिदिन आह्वान करे । जब वह खण्डित होजाय, तबही बीचमेंभी विसर्जन करदेना चाहिये ।।८०।। प्रतिदिन सुन्दर बागमें जाकर कोयलकी वाणी सुने । जिसदिन न सुननेमें आवे उसीदिन उपवास करे ।।८१।। हे कोकिले ! तू काले रंगकी है तेरा वास वनमें रहा है । मुझे अतुल सौभाग्य दे । हे देवि ! तेरे लिये नमस्कार है ।।८२।। (वसन्ते च कह चुके हैं) ।।८३।। इनसे विसर्जन करे । पीछे–रूप, धन, सर्व सौख्य, यश, सौभाग्य और संपत्ति दे तेरे लिये नमस्कार है, ऐसा कह कर जबतक मास पूरा न हो तबतक हविष्य अन्नकाही नक्त भोजन करे ।।८४-८५।। मासके पूरे पूरे होतेही वस्त्र धान्य और गुडके साथ सोनेकी कोयलको कुण्डल पहिनाके तांबेके पात्रमें रखदे ।।८६।। ज्योतिषी वा पुरोहितको दक्षिणासमेत दे । इस प्रकार दो आषाढोंके होनेपर ।।८७।। जो स्त्री सधवा हो वा विधवा इस प्रकार व्रत करती है वह सौजन्म सौभाग्य पाती है ।।८८।। सूर्य्यकेसे चमकते विमानपर चढकर स्वर्ग चली जाती है । श्रीभगवान् बोले कि, यह व्रत पहलि वसिष्ठ मुनिने कहा था ।।८९।। हे पार्थ ! कीर्तिमालाने उसी प्रकार किया था, जैसा वसिष्ठजीने कहा था वह सब होगया ।।९०।। हे कौन्तेय ! जो कोई इस प्रकार कोकिलाव्रतको करेगी उसेभी सौभाग्यकी प्राप्ति होगी ।।९१।। जो स्त्री इस व्रतको नहीं करती वह वनमें सर्पिणी होती है । एक ओर सब दान तथा कोकिला व्रत एक ओर हो अकेलाही सबके बराबर है ।।९२।। अप्सरा और ऋषिपत्नियोंने इसे आदरके साथ किया था । अहल्यानेभी अपने शापकी निवृत्तिके लिये पहिले इसीका पूजन किया था ।।९३।। अरुन्धतीनेभी स्नान करके कोकिला पूजी थी । सब काम और अर्थोंकी सिद्धिके लिये सीतानेभी ।।९४।। दण्डकारण्यमें गोदावरीमें स्नान करके विधिपूर्वक कोकिला पूजी थी ।

नलके ढूंढनेके लिये दमयन्तीनेभी पूजा था ।।९५।। रुक्मिणीने भी स्नान करके शिवा कोकिलाका पूजन किया था । इस व्रतके प्रभावसे उसे विष्णु पति मिलगये । इस बातमें सन्देह नहीं है ।।९६।। कुचेला, मलिना, दीना, दूसरेका काम करनेवाली, वन्ध्या, काकवन्धाविवत्सा, मृतवत्सा९७ये सब इस व्रतके प्रभावसे उत्तम फल पाजाती आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य्य, सुख, वृद्धि, यश, प्रजा ।।९८।। हे नृप ! इस व्रतको तीन वार करे ।।९९।। तीसरेके अन्तमें वैध उद्यापन करे, एकसे द्रव्य दूसरेसे पुत्र तीसरेसे निश्चयही सौभाग्य पाता है सौभाग्य, सुन्दर रूप ये सब पदार्थ स्त्रियोंको मिलजाता हैं ।।१००।। यह वाराहपुराणका कहा हुआ कोकिलाव्रत पूरा हुआ ।। उद्यापन–हे प्रभो ! उद्यापनकी विधि कहिये जिसके जानने मात्रसे सौभाग्य प्राप्त होजाता है । व्रतपरायण विशेष करके पूर्णमासके दिन उपवासका निरम करके मध्याह्नके समय पवित्र जगहमें लीपकर मण्डप बनावे । अथवा उसमें न करसके तो द्वितीयाके दिन एकभक्त करके दन्तधावनपूर्वक पुण्यफल देनी वाली तृतीयाको ये सब काम करे, विधिपूर्वक अष्टदल कमल और चतुष्कोणभद्र लिखे, पांचो रत्न डालकर पानीका भरा कडा रखे उसपर विधिपूर्वक पात्र रखे, इक्कीस सूप एक एक प्रस्थ सप्तधान्यसे भरकर रखे, अभावमें हे नारद ! आधा प्रस्थ वा कुडप कुडुप उनमें रखें, शक्तिके अनुसार ऊर्णाके दो पट्टवस्त्र काले रंगके दे, उसके ऊपर कोकिला देवीकी प्रतिमा विराजमान करे, गन्ध, धूप, दीप दे । मोदकोंका नैवेद्य घृतके पक्कान्नके साथ दे, उत्तम पानका अर्घ्य दे, रातमें बहुतसे गानों बजानोंके साथ जागरण होना चाहिये, एकाग्रचित्तसे पूजकर अक्षय फल पाता है, फिर निर्मल प्रभातमें स्नान करके देवीका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये, हवन हो, पांच सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करावे, यदि शक्ति न हो तो दो को ही जिमा दे, कृष्णवस्त्र, मोदक, सूत्र और पक्कान्नके भरे वेश पात्रोंके साथ तीन स्त्रियोंको पांच पांच घारिका देनी चाहिये और भी सब सामान हो, आचार्य्यका भक्तिपूर्वक पूजन करे । सवत्सा कृष्णा गाय, जूती, शय्या, चामर, छत्र, मुद्रिका, दो कर्णवेष्टन, चन्दन कुसुम ये सब सपत्नीक आचार्य्यको दे, उन्हें व्रतका उपदिष्ट दान देकर भोजन करावे, दक्षिणा दे, पीछे आप भी पुत्रपौत्रोंके साथ नैवेद्य भोजन करे, के विन्ध्यवासिनि ! हे चैत्ररथोत्पन्ने ! हे सब कामोंको देनेवाली ! हे कोकिले ! देवि ! मैंने आपकी विधिपूर्वक पूजा करदी है अब आप पधारे, (कारयेत् इनका अर्थ कर चुके ऐसी ऐसी कोकिला बनावे) जो इस प्रकार इस उत्तम व्रत को करती हैं वो पुत्र, धान्य, धन और सर्व सौभाग्य प्राप्त करलेती है तथा महामायाकी कृपासे उसे महाफल मिलता है । यह श्रीवराहपुराणका कहा हुआ कोकिला-व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

रक्षाबन्धनविधि

अथ श्रावणपौर्णमास्यां रक्षा बन्धनं तच्चोक्तं *हेमाद्रौ भविष्ये।।युधिष्ठिर उवाच ।। रक्षाबन्धविधानं मे किञ्चित्कथय केशव ।। दुष्टप्रेतपिशाचानां येना-धृष्यो भवेन्नरः ।। १ ।। सर्वरोगोपशमनं सर्वाशुभविनाशनम् ।। सकृत्कृतेनाब्दमेकं येन रक्षा कृता भवेत् ।। २ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु पाण्डवशार्दूल इतिहासं पुरातनम् ।। इन्द्राण्या यत्कृतं पूर्वं शक्रस्य जयवृद्धये ।। ३ ।। देवासुरमभूद्युद्धं पुरा द्वादशवार्षिकम् ।। तत्रासुरैर्जितः शक्रः सह सर्वैः सुरोत्तमैः ।। ४ ।। बृहस्पतिमु-पामन्त्र्य इदं वचनमब्रवीत् ।। न स्थातुं चैव शक्नोमि न गन्तुं तैरभिद्रुतः ।। ५ ।। सर्वथा योद्धुमिच्छामि यद्भाव्यं तद्भविष्यति ।। श्रुत्वा सुरपतेर्वाक्यं बृहस्पतिरथा-ब्रवीत् ।। ६ ।। बृहस्पतिरुवाच ।। न कालो विक्रमस्याद्य त्यज कोपं पुरन्दर ।। देशकालविहीनानि कार्याणि विपरीतवत् ।। ७ ।। क्रियमाणानि दुष्यन्ति सोऽनर्थः

* हेमाद्री व्रतखण्डे तु एतदपेक्षया श्लोकाधिक्यामानुपूर्वी भेदश्चोपलभ्यते ।

सुमहान् भवेत् ।। तयोः संवदतोरेवं शची प्राह सुरेश्वरम् ।। ८ ।। अद्य भूतदिनं देव प्रातः पर्व भविष्यति ।। अहं रक्षां विधास्यामि येनाजेयो भविष्यसि ।। ९ ।। इत्युक्त्वा पौर्णमास्यां सा पौलोमी कृतमङ्गला ।। बबन्ध दक्षिणे पाणौ रक्षापोटलिकां ततः ।। १० ।। बद्धरक्षस्ततः शक्रः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।। आरुह्यैरावतं नागं निर्जगाम सुरारिहा ।। ११ ।। दुद्राव दानवानीकं क्षणात्काल इव प्रजाः ।। शक्रस्तु विजयीभूत्वा पुनरेव जगत्त्रये ।। १२ ।। एष प्रभावो रक्षायाः कथितस्ते युधिष्ठिर ।। जयदः सुखदश्चैव पुत्रारोग्यधनप्रदः ।। १३ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। क्रियते केन विधिना रक्षाबन्धः सुरोत्तमः ।। कस्मिंस्तिथौ कदा देव ह्येतन्मे वक्तुमर्हसि ।। १४ ।। यथाहि भगवन्देव विचित्राणि प्रभाषसे ।। तथा तथा न मे तृप्तिर्बह्वर्थाः शृण्वतः कथाः ।। १५ ।। कृष्ण उवाच ।। संप्राप्ते श्रावणे मासि पौर्णमास्यां दिनोदये ।। स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्छ्रुतिस्मृतिविधानतः ।। १६ ।। ततो देवान्पितॄंश्चैव तर्पयेत्परमाम्भसा ।। उपाकर्मादि चैवोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् ।। १७ ।। कुर्वीत ब्राह्मणैः सार्धं वेदानुद्दिश्य शक्तितः ।। शूद्राणां मन्त्ररहित स्नानं दानं च शस्यते ।। १८ ।। ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम् ।। कारयेच्चाक्षतैस्तद्वत्सिद्धार्थैर्हेमर्चाचितेः* ।।१९।।कार्पासैः क्षौमवस्त्रैर्वाविचित्रैर्मलर्वाजितैः ।। विचित्रतन्तुग्रथितां स्थापयेद्भाजनोपरि।। २० ।। कार्या गृहस्य रक्षा गोमयरचितैः सुवृत्तमण्डलकैः ।। दूर्वावर्णकसहितैश्चित्रैर्दुरितोपशमनाय ।। २१ ।। उपलिप्ते गृहदेशे दत्तचतुष्के न्यसेत्कुम्भम् ।। पीठस्योपरि निविशेद्राजामात्यैर्युतश्च सुमुहूर्ते ।। २२ ।। वेश्याजनेन सहितो मङ्गलशब्दैः समुच्छ्रितैश्चिह्नैः ।। रक्षाबन्धः कार्यः प्रशान्तिदः सर्वविघ्नानाम् ।। २३ ।। देवद्विजातिशस्तान्वस्त्रैरक्षाभिरर्चयेत्प्रथमम्।। तदनु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नीत मन्त्रेण ।। २४ ।। येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।। तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल ।। २५ ।। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः ।। कर्तव्यो रक्षिकाबन्धो द्विजान्सम्पूज्य भक्तितः ।। ।। २६ ।। अनेन विधिना यस्तु रक्षाबन्धं समाचरेत् ।। स सर्वदोषरहितः सुखी संवत्सरं भवेत् ।। २७ ।। अयं रक्षा बन्धो भद्रायां न कार्यः ।। भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।। श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ।। इतिवचनात्। इति भविष्योत्तरपुराणे रक्षाबन्धनपौर्णमासीव्रतम् ।।

---

* भूषितामित्यपि पाठः ।

*रक्षाबन्धन—श्रावणकी पौर्णिमासीका रक्षाबन्धन होता है यह हेमाद्रिने भविष्यसे लेकर लिखा है। युधिष्ठिर जीने पूछा कि, हे केशव ! मुझे रक्षाविधान बताइये, जिसके करनेसे मनुष्य भूत प्रेत और पिशाचोंसे निडर होजाता है ॥१॥ वह सब रोगोंका नाशक तथा सब अशुभोंका नष्ट करनेवाला है, जिसे एकवार कर लेनेसे एकवर्षतक रक्षा रहती है ॥२॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे पाण्डवशार्दूल ! एक पुराना इतिहास कहता हूँ जो कि, इन्द्रकी जीतके लिये इन्द्राणीने किया था ॥३॥ पहिले बारह वर्षतक देव और असुरोंमें संग्राम हुआ। उसमें असुरोंने देवताओंके साथ इन्द्रको जीत लिया था ॥४॥ बृहस्पतिजीको बुलाकर इन्द्र बोला कि उसने आक्रान्त हुआ मैं न तो भागही सकता हूं एवं न ठहरही सकता हूं ॥५॥ मेरी यह गति है कि, युद्ध करूं पीछे जो होना है सो होगा। यह सुन बृहस्पतिजी बोले कि ॥६॥ हे इन्द्र ! क्रोधका त्याग कर, यह समय युद्धका नहीं है, क्योंकि देश कालसे विहीन कार्य्य सफल नहीं होते ॥७॥ वे किए दूषित होकर अनर्थ पैदा करते हैं, वे दोनों बातेंही कर रहे थे कि शची इन्द्रसे बोली ॥८॥ कि हे देव ! आज भूत (चतुर्दशी) दिन है, प्रातः पर्व होगा मैं रक्षाविधानकरूंगी जिससे आपकी जीत होगी ॥९॥ ऐसा कि पूर्णिमाके दिन शचीने मंगल करके दक्षिण हाथमें रक्षा पोटली बांधी। इन्द्रने रक्षाबन्धन किया। ब्राह्मणोंने मंगलाचरण किया। पीछे ऐरावतहाथीपर चढकर युद्धके लिए चलदिया॥१०-११॥ दानवोंकी सेना उसे देखकर ऐसे डरी जैसे कालसे प्रजा डरती है। इन्द्र दोनों लोकोंका विजयी हुआ ॥१२॥ हे युधिष्ठिर ! ऐसा रक्षाका प्रभाव है यह मैंने तुम्हें सुना दिया है। जय, सुख, पुत्र, पौत्र, धन और आरोग्यका देनेवाला है ॥१३॥ युधिष्ठिरजी बोले कि, किस विधानसे रक्षाबन्धन कियाजाय, किस तिथिमें और कब हो ? यह मुझे बताइये ॥१४॥ हे भगवन् ! ज्यों ज्यों आप विचित्र विचित्र सुनाते हैं त्यों त्यों मेरी तृप्ति नहीं होती इच्छा बढतीही चली जाती है ॥१५॥ कृष्ण बोले कि, श्रावणकी पौर्णिमाके प्रातःकाल सूर्योदयके समय श्रुति और स्मृतियोंके

---

१ अपराह्णके समय रक्षाबन्धन विधान है। इस कारण इसमें पूर्णिमा अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये। यदि दो दिन अपराह्णव्यापिनी हो वा दोनोंहि दिन न हो तो पूर्वाका ग्रहण होता है। स्मृतिकौस्तुभने तो 'पूर्णमास्यां दिनोदये–पौर्णमासीमें सूर्य्यको उदय होनेपर' इस कथाके वचनको लेकर उदयकाल व्यापिनी तिथिका ग्रहण किया है पर इस पक्षमें जयसिंहकल्पद्रुमकी संमति नहीं है क्योंकि, मुख्य कर्म रक्षाबन्धनका तो अपराह्ण काल है कर्मकालकी व्याप्ति चाहिये। यदि पहले दिनभद्रा हो तो दूसरे दिन करना चाहिये। निर्णयसिन्धुकार पहले दिन उपाकर्म किया जानेवाला होनेपरभी पूर्व दिन में रक्षाबन्धन मानते हैं। तथा भद्राको छोडकर तथा ग्रहणमें राहुदर्शनका समय छोडकर सभी समयोंमें रक्षाबन्धन करते हैं, रक्षाबन्धनके कार्यमें इनके यहाँ सूतक नहीं होता। धर्मसिन्धुकारने भद्रारहित तीन मुहूर्तसे अधिक उदयकाल व्यापिनी पूर्णिमाके अपराह्ण वा प्रदोषकालमें रक्षाबन्धन होता है यदि तीन मुहूर्तसे कम हो तो पहिले दिन ऐसेही समय अवश्य करे यहाँ तक कि, ग्रहण और संक्रान्तिका समय भी न छोडे, यह कहा है।

विधानके अनुसार स्नान करना चाहिये ।।१६।। अच्छे पानीसे देव और पितरोंका तर्पण करे, उपाकर्म*आदि करके ऋषियोंका तर्पण कर ।।१७।। ये कर्म ब्राह्मणोंके साथ वेदका उद्देश लेकर शक्तिके अनुसार करने चाहिये । शूद्र स्नान दान विनामन्त्रके करें क्योंकि, वेही उन्हें अच्छे हैं ।।१८।। इसके बाद अपराह्णके समय अच्छी रक्षा पोटली बनवावे, उसमें अक्षत सफेद सरसों और सोना होना चाहिये ।।१९।। सूती वा ऊनी रंगे साफ वस्त्रमें रंगे डोरेसे गूंथी हुईको वस्त्रपर रख दे ।।२०।। गोबरके बनाये अच्छे मण्डलसे घरकी रक्षा करे, उसमें चित्र, दूर्वा, वर्णक सामिल होने चाहिये, इससे दुरितका नाश होता है ।।२१।। लिपे घरमें चौकपर घट स्थापित करे मंत्रियोंके साथ राजा अच्छे मुहूर्त्तमें चौकपर बैठजाय ।।२२।।वेश्याएं पास बैठी हो ध्वजाएं लहरा रही हो, मंगलके शब्द का उच्चारण होरहा हो, उस समयपर सब विघ्नोंको शान्त करनेवाला रक्षा बन्धन करे, पहिले सम्माननीय भूदेवोंको वस्त्रोंसे पूजे इसके पीछे पुरोहित मन्त्रसे रक्षाबन्धन करे ।।२३–२४।। रक्षाबन्धनका मन्त्र—जिस रक्षासे महाबली दानवेन्द्र बली राजा बांधा था तुझे मैं उसीसे बांधता हूँ । रक्षे ! तुम हर तरह अचल रहना ।।२५।। ब्राह्मणोंको पूजकर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा दूसरे लोग रक्षाबन्धन करें ।।२६।। जो इस विधिसे रक्षाबन्धन करता है वह एक वर्ष भर निर्दोष सुखी रहता है ।।२७।। रक्षाबन्धनका निषिद्धकाल भद्रा है । इसमें रक्षाबन्धन न होना चाहिये । क्योंकि, संग्रह ग्रन्थमें लिखा है कि, भद्रामें श्रावणी और फाल्गुनी ये दोनों न होनी चाहिये ; भद्रा श्रावणी किए जानेपर राजाको मारती है, होली गामको जलाती है यह भविष्यपुराणका कहा हुआ रक्षाबन्धन और पौर्णमासी का व्रत पूरा हुआ ।

उमामहेश्वरव्रतकथा

भाद्रपदपौर्णमास्याम् उमामहेश्वरव्रतं शिवरहस्ये ।। राजोवाच ।। भगवन्मुनिशार्दूल व्रतमेकं वदस्व मे ।। साङ्गं यस्मिन्व्रते चीर्णे सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।। ।। १ ।। गौतम उवाच ।। उमामहेश्वरं नाम व्रतमस्ति व्रतोत्तमम् ।। मासि भाद्रपदे

* उपाकर्म–विधिपूर्वक वेदाध्यनयके प्रारंभका नाम है, विधिपूर्व क छोडा आ वेदका अध्ययन इसी अवसर शुरु कियाजाता है, जिन दिनोंमें वेदाध्ययनका त्याग रहता है उन दिनों में वेदके अंग पढ़ाये जाया करते है । यह कब करना चाहिये इस पर गृह्य सूत्रोंकी भिन्न भिन्न व्यवस्थाएँ हैं, श्रीरत्नाकर दीक्षित, कमलाकर भट्ट और काशीनाथोपाध्यायने उनकी कुछ कुछ व्यवस्थाएँ अपने अपने ग्रन्थोंमेंकी हैं । उन्होंके सारको हम यहां उद्धृत करते हैं । यद्यपि हमारी इच्छा तो यह थी, कि, उपलब्ध गृह्यसूत्रोंके इस विषयके सूत्र रखकर उनका स्वयं समन्वय करते किन्तु विस्तारके भयसे उसका सारही रख रहे हैं । उपाकर्मका मुख्य काल-ऋग्वेदियोंके यहाँ श्रावण शुक्लाका श्रवण नक्षत्र, साम वेदियोंके यहाँ भाद्रपद शुक्लाका हस्त नक्षत्रवाला कोई दिन, यजुर्वेदियो के और अथर्ववेदियोंके यहाँ श्रवणकी पूर्णिमा है । कृष्ण यजुर्वेदियों के हिरण्यकेशीय मुख्य हैं । महर्षि बोधायनके यहां श्रवण नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमाही मुख्य है । महर्षि बोधायनके यहाँ श्रवण नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमाही मुख्य काल है किन्तु काण्व कात्यायन और माध्यान्दिनोंके यहाँ श्रावणकी श्रवण युता पूर्णिमा वा केवल पूर्णिमा हस्त नक्षत्रयुग पंचमी वा केवल पंचमी है । समन्वय–श्रावण शुक्लाका श्रवण, नक्षत्र प्रायः पूर्णिमाकेही दिन आता है । इस तरह ऋग्वेद, यजुर्वेदी, अथर्ववेदी, कृष्णयजजुर्वेदियोंमें से हिरण्यकेशीय, आपस्तम्ब, महर्षि बोधायन, काण्व, कात्यायन और माध्यान्दिनीय सबके ही यहाँ श्रावणकी पूर्णिमा मुख्यकाल है, बाकी और जो मुख्यकाल है सो अपने अपने हैं ही, यदि कारण वश संक्रान्ति आदि दोष उपस्थित हो जायें तो ऋग्वेदी श्रावण शुक्ला हस्त युता पंचमी वा केवल पंचमी-श्रावणका हस्त नक्षत्रवाला दिन या पूर्णिमा, यजुर्वदियोंके यहां प्रोष्ठपद युता भाद्रपदकी पूर्णिमा, एवं जिनके यहां आषाढीमें होसकता है उनके यहां आषाढी, हिरण्यकेशीयोंके यहाँ श्रावणका हस्त नक्षत्र तथा श्रावण शुक्ला पंचमी या भाद्रपदकेमी ये दोनों दिन, आपस्तम्ब, भाद्रपदकी पूर्णिमा, बोधायन–आषाढकी पूर्णिमा, काण्व कात्यायन और माध्यन्दिन-भाद्रपदकी पूर्णिमा वा पंचमी, ये गौणकाल हैं ।।

शुक्ले पौर्णमास्यां प्रयत्नतः ।। २ ।। तद्व्रतं कार्यमनघैर्ब्राह्मणाद्यैर्विधानतः ।। भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां प्रातः स्नात्वा विधानतः ।। ३ ।। शिवं संपूज्य विधिवच्छैवान-प्यतियत्नतः ।। शिवं ध्यात्वा जगद्वन्द्यं सोमं सोमार्धशेखरम् ।। ४ ।। कृताञ्जलि-पुटो भूत्वा मन्त्रमेतं पठेन्नरः ।। श्वः करिष्ये व्रतं यत्नादुमामाहेश्वराभिधम् ।। ।। ५ ।। आज्ञां देहि महादेव सोम सोमार्धशेखर ।। इति विज्ञाप्य वै देवं पुनः सम्पूज्य यत्नतः ।। ६ ।। मध्याह्नेऽपि महादेवमर्चयेन्नियतो व्रती ।। ततो देवानृषीन्सर्वान-भ्यर्च्य विधिवन्नृप ।। ७ ।। हविष्याशी शिवं सायं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।। निद्रां कार्या यथायोगं महादेवस्य सन्निधौ ।। ८ ।। उत्थाय पश्चिमे यामे महादेवं ततः स्मरेत् ।। ततः शौचारिकं सर्वं निर्वर्त्य प्रीतमानसः ।। ९ ।। स्नानं कुर्याद्यथायोगं यथाशास्त्रं यथाक्रमम् ।। परिधाय ततो वस्त्रं क्षालितं शुभमक्षतम् ।। १० ।। उद्धूलनं ततः कार्यं त्रिपुण्ड्रं च यथाक्रमम् ।। रुद्राक्षधारणं कार्यं सन्ध्या कार्या ततः परम् ।। ११ ।। ततः शिवार्चनं कार्यं बिल्वपत्रादिभिर्नरैः ।। ततो होमोऽपि कर्तव्यः शिवप्रीत्यर्थमादरात् ।। १२ ।। ततः परंनियमनं प्रणमेत्सोममव्ययम् ।। सग्रन्थि-कुशपिञ्जूलं ततः संपाद्यमादरात् ।। १३ ।।एवं पञ्चदशग्रन्थिदोरकं कुंकुमान्वितम् ।। सम्पादनीयं यत्नेन व्रतनिष्ठैरनाकुलैः ।। १४ ।। उमामहेश्वरं चैव सौवर्णं प्रति-माद्वयम् ।। सम्पादनीयं यत्नेन राजतं वा मनोहरम् ।। १५ ।। पलाद्नूं न कर्तव्यं प्रतिमाद्वयमुत्तमम् ।। अधिकं चेद्यथाशक्ति कर्तव्यमतियत्नतः ।। १६ ।। सौवर्णे राजतो वापि ताम्रो वा मृन्मयो*नवः ।। सप्पादनीयो यत्नेन प्रयतैर्व्रततत्परैः ।। ।। १७ ।। ततः सदर्भपिञ्जूले वस्त्रयुग्मार्चिते शुभे ।। पृथक्पृथक् स्थापनीयं कलशे प्रतिमाद्वयम् ।। १८ ।। आपो हिष्ठादिभिर्मन्त्रैस्तथा त्र्यम्बककैरपि ।। अभिषिच्य प्रयत्नेन पूजयेत्प्रतिमाद्वयम् ।। १९ ।। शिवस्थानं ततोगच्छेत्तोरणाद्यैरलंकृतम्[२] ।। ततः षोडशके पद्मे बहिरन्तश्चतुर्गुणे ।। २० ।। अलंकृते स्वस्तिकाद्यैः स्थापयेत्कलशं नवम् ।। ध्यायेत्ततो महादेवमुमादेहार्धधारिणम् ।। २१ ।। मुक्तामालापरीताङ्गं दुकूलपरिवेष्टितम् ।। पञ्चाननमुमाकान्तमनलेन्दुरविप्रभम् ।। २२ ।। चन्द्रार्ध-शेखरं नित्यं जटामुकुटमण्डितम् ।। त्रिपुण्ड्रलेखाविलसद्भालभागमनामयम् ।। ।। २३ ।। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं रुद्राक्षाभरणान्वितम् ।। मन्दस्मितमनाधार-माधारं जगतां प्रभुम् ।। २४ ।। देवैरनन्तैरनिशं स्तूयमानमनेकधा ।। देवात्मकं देववन्द्यं विष्णुब्रह्मादिवन्दितम् ।। २५ ।। विष्णुनेत्रान्विता रक्तपादपङ्कजमुत्त-मम् ।। अप्रतिद्वन्द्वमद्वन्द्वं सर्ववृन्दारकार्चितम् ।। २६ ।। सर्वोत्तममनाद्यन्तं सर्वदेवनिवेदितम् ।। सत्यं शुद्धं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।। २७ ।।

---

* कलश इति शेषः । २ इयं च पूजा शिवालये कर्तव्येत्याहः शिवेति ।

ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं विश्वरूपं चिदात्मकम् ।। निष्कलं निर्गुणं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।। २८ ।। अप्रमेयं जगत्सृष्टिस्थिति संहारकारणम् ।। विश्वबाहुं विश्वपादं विश्वासं विश्वसंभवम् ।। २९ ।। विश्वं दारायणाराध्यमक्षरं परमं पदम् ।। विश्वतः परमं नित्यं विश्वस्येशमनामयम् ।।३० ।। एवं ध्वात्वा महादेवं सर्वदेवोत्तमोत्तमम् ।। ध्यायेत्ततःपरं गौरीमादिविद्यामनामयाम् ।। ३१ ।। लक्ष्मीसेवितपादाब्जां शचीसेवितपादुकाम् ।। सरस्वत्यादिभिर्नित्यं स्तूयमानपदाम्बुजाम् ।। ३२ ।। अधरोष्ठाधरीभूतपक्वबिम्बफलामुमाम् ।। मुखकान्तिकलोपेतां पूर्णचन्द्रामनामयाम् ।। ३३ ।। तिरस्कृतालिमालां तामलकावलिभिः सदा ।। पीनवक्षोजनिर्धूतचक्रवाकवराङ्गनाम् ।। ३४ ।। नित्यं तिरस्कृताम्भोजां नयनाभ्यामनिन्दिताम् ।। सीमन्तधिक्कृताशेषकाममल्लामहर्निशम् ।। ३५ ।। भ्रुकुटीधिक्कृताशेषशरावापामनाकुलाम्। वाहुनालकरोद्भूतहेमपद्मां विलासिनीम् ।। ३६ ।। रोमावलीतिरोभूतभ्रमद्भ्रमरनालिकाम् ।। नाभिरन्ध्रतिरोभूतजलावर्तासुवर्तुलाम् ।। ३७ ।। उत्तमोरुतिरोभूतरम्भास्तम्भां शुभावहाम् ।। पादयुग्मप्रभाकान्तिनिर्जितारुणपङ्कजाम् ।। ३८ ।। ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रजननीं महेशार्धाङ्गभागिनीम् ।। महेशाश्लिष्टवामाङ्गां वरदाभयदां सदा ।। ३९ ।। प्रसन्नवदनां शान्तां स्मितपूर्वाभिभाषिणीम् ।। पूर्णचन्द्रदुकूलाढ्यां नानाभरणभूषिताम् ।। ४० ।। स्तूयमानां सदा देवैर्यज्ञैर्दानैश्च कोटिशः ।। एवं ध्यात्वा नतः सम्यगुपचारान्प्रकल्पयेत् ।। ४१ ।। ततः पुष्पाणि संगृह्य शिवमावाहयेच्छिवाम् ।। महादेवदयासिन्धो विष्णुब्रह्मादिवन्दिता ।। आवाहयामि देवं त्वां प्रसीद परमेश्वरि ।। ४२ ।। लक्ष्म्यादिदेववनितापरिसेवितपादुके ।। अवाहयामि देवि त्वां प्रसीद परमेश्वरि ।। ४३ ।। गृहाण सोम विश्वात्मन्नासनं रत्ननिर्मितम् ।। अनन्तासन विश्वेश करुणासागर प्रभो ।। ४४ ।। उमे सोमवराश्लिष्टे सोमार्धकृतशेखरे ।। नानारत्नसमाकीर्णमासनं प्रतिगृह्यताम् ।। ४५ ।। पाद्यं गृहाण गौरीश हेमपात्रस्थितं नवम् ।। गृहाण देवदेवेशि वेदवेदान्तसंस्तुते ।। ४६ ।। अर्घ्यं गृहाण देवेश सपुष्पं गन्धसंयुतम् ।। शिवानन्तगुणग्राम सर्वाभीष्टप्रदायक ।। ४७ ।। गृहाणार्घ्यं शिवे नित्ये सर्वावयवशोभिनि ।। शिवप्रिये शिवाकारे नित्यं भक्तवरप्रदे ।। ४८ ।। गृहाणाचमनं शम्भो शुचिर्भूत शुचिप्रिय ।। गृहाणाचमनं देवि शुचिर्भूते शुचिप्रिये ।। ४९ ।। मधुपर्कं गृहाणेश सर्वदा मधुपर्कद।। मधुपर्कप्रदानेन प्रीतो भव महेश्वर ।।५०।। मधुपर्कमिमं देवि स्वीकुरु प्रियशङ्करे।। मधुपर्कप्रदानने प्रीता भव सुशोभने ।। ५१ ।। शम्भो पञ्चामृतस्नानस्वीकुरुष्व कृपानिधे ।। सर्वतीर्थमयं स्नानं नित्यशासनपावन ।। ५२ ।। शिव पञ्चामृतस्नान स्वीकुरुष्व कृपानिधे ।। सर्वतीर्थोत्तमं शुद्धे तीर्थं राजनिषेविते ।। ५३ ।। शम्भो

शुद्धोदकस्नान स्वीकुरुष्व सुरोत्तम ।।प्रसीद परमं भक्तं पाहि मां करुणानिधे ।। ५४।। शिव शुद्धोदकस्नानं स्वीकुरुष्व शिवप्रिये ।। प्रसीद देवि दीनं त्वं पाहि मां शरणागतम् ।। ५५ ।। सोत्तरीये गृहाणेश दुकूलमिदमुत्तमम् ।। पाहि मां च कृपासिन्धो करुणाकर शङ्कर ।। ५६ ।। सोत्तरीय गृहाणेदं दुकूलं शङ्करप्रिये ।। प्रसीद पाहि मां दीनमनन्यशरणं शिवे ।। ५७ ।। उपवीतं गृहाणेश शम्भो सर्वामरोत्तम ।। उपवीत गृहाणाम्ब शिवसंश्लिष्टविग्रहे ।।५८ ।। गृहाण चन्दनं दिव्यं गन्धाढेचन विराजितम् ।। प्रसीद पार्वतीनाथ शरणागतवत्सल ।। ५९ ।। गृहाण चन्दन देवि चन्द्रभागविराजितम् ।। विश्व विश्वात्मिके पाहि विश्वनाथप्रिय सदा ।। ६० ।। गृहाणाभरणानीशं त्वं सर्वनिगमाश्रय ।। विश्वाभरण विश्वेशरत्नाभरणभूषित ।। ६१ ।। गृहाणाभरणान्यम्ब सर्वाभरणभूषित ।। सर्वप्रिये जगद्वन्द्य जगदानन्ददे शिवे ।। ६२ ।। गृहाण बिल्वपत्राणि सपुष्पाणि महेश्वर ।। सुगन्धीनि भवानीश शिव त्वं कुसु मप्रिये ।। ६३ ।। गृहाण बिल्वपत्राणि सामोदानि शिवप्रिये ।। सुगन्धबिल्वमन्दारमालिकासमलंकृते ।। ६४ ।। दशाङ्गं गुग्गुलुं धूपं सगोघृतमनुत्तमम् ।। गृहाण पार्वतीनाथ घ्राणतर्पणमादरात् ।। ६५ ।। दशाङ्गं गुग्गुलु धूपं सगोघृतमनुत्तमम् ।। गृहाण भक्तवरदे लक्ष्मीदवादिसेविते ।। ६६ ।। साज्यं त्रिवर्तिसंयुक्त दीपं शर्व शिवापते ।। गृहाणानन्तसूर्याग्निचन्द्रप्रभु नमोऽस्तु ते ।। ६७ ।। साज्य त्रिवर्तिसंयुक्तं दीपमीशानवल्लभे ।। गृहाण चन्द्रसूर्याग्निमण्डलाधिकसुप्रभे ।।६८।। शम्भो गोघृतसंयुक्तं परमान्नं मनोहरम् ।। सशर्करं गृहाणाम्ब परमान्नप्रदायिनी ।। ६९ ।। शम्भो गृहाण गन्धाढ्यमिदमाचमनीयकम् ।। कृताचमनं देवेश स्वतः शुद्ध शिवापते ।। ७० ।। शिव गृहाण गन्धाढ्यमिदमाचमनीयकम् ।। शुद्ध शुद्धिप्रदे देवि शिवभूषितविग्रह ।। ७१ ।। नीरांजनं गृहाणेश बहुदीपविराजितम् ।। स्वप्रकाशप्रकाशात्मन् प्रकाशितदिगन्तर ।। ७२ ।। नीराजनं गृहाणाम्ब सूर्यनीराजितप्रभे ।। प्रभापूरितसर्वाङ्गे मङ्गले मङ्गलास्पदे ।। ७३ ।। शम्भो गृहाण ताम्बूलमेलाकर्पूरसंयुतम् ।। प्रसीद भगवञ्छम्भो सर्वज्ञामितविक्रम ।। ७४ ।। शिवे गृहाण ताम्बूलमेलाकर्पूपरसंयुतम् ।। प्रसोद सस्मिते देवि सोमालिङ्गितविग्रहे ।। ७५ ।। गृहाण परमेशान सरत्ने छत्रचामरं ।। दर्पणं व्यजनं त्वीश सर्वदुःखविनाशक ।। ७६ ।। गृहाणोमे सुराराध्ये सरत्ने छत्रचामरे ।। दर्पणं व्यजनं चाद्ये विद्याधरे नमोऽस्तु ते ।। ७७ ।। प्रदक्षिणानमस्करान् गृहाण परमेश्वर ।। नर्तनं च महादेवि शिवनाट्यप्रिये शिवे ।।७८।। एवं प्रयत्नतः कार्यं* शिवयोः पूजन शिवम्।। नमः सोमेतिमन्त्रेण पूर्वोक्तमपि पूजनम् ।। ७९ ।। उक्त मन्त्र समुच्चार्य यथापूर्वं

* कुर्यादितिशेषः ।

यथाक्रमम् ।। आवहन्तीति मन्त्रस्तु भवान्याः परिकीर्तितः ।। ८० ।। अथाङ्गपूजा-कपर्दिने नमः कपर्दं पूजयामि ।। भाललोचनाय० भालं पू० ।। सोमसूर्याग्निलोचनाय० नेत्रत्रयं० ।। सुश्रोत्राय० श्रोत्रे पू०। घ्राणगन्धाय० घ्राणं पू० ।। स्मृतिदन्ताय० दन्तान्पू० । श्रुतिजिह्वाय० जिह्वां पू० ।। सुकपोलाय० कपोलौ पू० । ज्ञानोष्ठाय० ओष्ठौ पू० । नीलकण्ठाय० कण्ठं। भूरि वक्षसे वक्षः० । हरिण्यबाहवे० बाहू० । विश्वोदराय० उदरं० । विश्वोरवे० ऊरू० । विश्वजङ्घाय० जङ्घे पू० विश्वपादाय० पादौ पू० । विश्वनखाय० नखान् पू० । सर्वात्मकाय० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। अथ शक्त्यङ्गपूजा–शिवायै० शिरः पू० । पृथुवेण्यै० वेणीं पू० । सीमन्तराजितायै० सीमन्तं पू० ।। कुङ्कुमभालायै० भालं पू० । सोमसूर्याग्नि लोचनायै० नेत्रे पू०। श्रुति श्रोत्रायै० श्रोत्रे पू० । गन्धप्रियायै० घ्राणं पू० । सुभगकपोलायै० कपोलौ पू० । कुड्मलदन्तायै० दन्तान् पू० । विद्याजिह्वायै० जिह्वां पू० । बिम्बोष्ठायै० ओष्ठौ पू० । वृत्तकण्ठायै० कण्ठं० पू० । पृथुलकुचायै० कुचौ पू० विश्वगर्भा यै० उदरं पू० । शुभकट्यै० कटी पू० । दिव्योरुदेशायै० ऊरू पू० । वृत्त जंघायै० जंघे पू० ।। लक्ष्मीसेवित पादुकायै० ।। पादौ पू० । महेश्वरप्रियायै० नखान्पू० । शोभनविग्रहायै० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। अङ्गपूजां समाप्यैवं दोरकं चैव पूजयेत् ।। प्रत्येकं ग्रन्थिषु स्वच्छैः स्वच्छैर्बिल्वदलादिभिः ।। ८१ ।। प्रथमग्रन्थिमारभ्य नमः सोमेतिमन्त्रतः ।। यथाक्रमेण संपूज्य ततो धार्यं हि दोरकम् ।। ८२ ।। तत्रोपचाराः सर्वेऽपि तेन मन्त्रेण सादरम् ।। व्रतिभिर्यत्नतः कार्याः कुङ्माङ्कितदोरके ।। ८३।। ततः पञ्चदशप्रस्था गोधूमास्तण्डुलाश्च वा ।। उपायनार्थमानेयाः शुद्धाः कीटाविवर्जिताः ।। ८४ ।। यद्वा पञ्चदशाज्याक्ता गोधूमापूपमण्डकाः ।। ततः शिवेकशरणाः शैवाः शिवव्रतप्रियाः ।। ८५ ।। पूजनीयाः प्रयत्नेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।। ततः सवस्त्रकलशं शिवयोः प्रतिमाद्वयम् ।। ८६ ।। शैवाय देयं यत्नेन सुवर्णफलसंयुतम् ।। आदावुपायनं दत्त्वा देयं ह्येतदतः परम् ।। ८७ ।। उपायनस्य मंत्रोऽपि वक्ष्यतेऽत्र विशेषतः ।। उमेशः प्रतिगृह्णाति उमेशो वै ददाति च।। ८८ ।। उमेशस्तारकोभाभ्यामुमेशाय नमोनमः ।। अमुं मंत्रं समुच्चार्य दत्त्वा दानं निवेदयेत् ।। ८९ ।। ततः शैवाः प्रयत्नेन भोजनीया विशेषतः ।। सुवासिन्योऽपि यत्नेन भोजनीयाः ।। शिवप्रियाः शैवानेवं भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।।९०।। अतिथीनपि संतर्प्य द्वारदेशस्थितान्नृप ।। एवं प्रयत्नतः कार्यं प्रतिवत्सरमादरात् ।।९१।। नियमेनैव विधिवदुक्तरीत्या यथाक्रमम् ।। ब्राह्मणाद्यैरिदं कार्यं व्रतमाहितमानसैः ।। ९२ ।। सर्वाभीष्टप्रदं पुण्यं व्रतमेतच्छिवात्मकम् ।। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे कार्यमुद्यापनं नृप ।। ९३ ।। उद्यापनविधानं च वक्ष्ये शृणु यथाक्रमम् ।। पौर्णमास्यां भाद्रपद्यां व्रतोद्यापनमादरात ।। ९४ ।। कर्तव्यमतियत्नेन द्रव्यं संपाद्य सादरम् ।।

हैमी कार्या सार्धषड्भिः प्रतिमा च पलैः शुभा ।। ९५।। तदर्धेनाथवा कार्या तदर्धेनाथवा नृप ।। रजतेनाथवा कार्या यथोक्तपलमानतः ।। ९६ ।। संपादनीयाः कुम्भाश्चहैमाः पञ्चदशोत्तमाः ।। अथवा राजताः कार्या यद्वा ताम्रमया नृप ।। ।। ९७ ।। भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां शैवा ब्राह्मणपुङ्गवाः ।। निमंत्रणीया यत्नेन प्रातः सप्तदशोत्तमाः ।। ९८ ।। ततो गृहं वितानाद्यैरलंकृत्य प्रयत्नतः ।। स्वस्तिकाद्यैरलंकुर्याच्छिवस्थानं शुभावहम् ।। ९९ ।। ततः सायं प्रयत्नेन तस्मिन्छङ्कर-मन्दिरे ।। पूजनीयाः प्रयत्नेन शिवयोःप्रतिमाः शुभाः ।। १०० ।। पूर्वोक्तेन विधानेन मन्त्रैस्तैरेव साधनैः ।। रात्रौ जागरणं कार्यं सोपवासं प्रयत्नतः ।। १ ।। ऋत्विग्भिः सह सोत्साहं पयोमात्राशनेन वा ।। रात्रौ शिवकथाः श्राव्या*श्रोतव्या यत्नतो नृप ।। २ ।। कर्तव्या यत्नतो रात्रौ पूजा यामचतुष्टये ।। ततः स्थेयं प्रयत्नेन स्नात्वा शङ्करसंनिधौ ।। ३ ।। पूजनीयः प्रयत्नेन शिवोशिवशिखामणिः ।। चतुरस्रं ततः कार्यं कुण्डमष्टदलान्वितम् ।। ४ ।। कटिदघ्नं प्रान्तदेशे हस्तद्वयसमन्वितम् ।। तत्र वह्निंप्रतिष्ठाप्य विधिवद्गृह्यमार्गतः ।। ५ ।। साज्येन परमान्नेन होमः कार्यस्ततः परम् ।। पञ्चविंशति साहस्र नमः सोमेति मन्त्रतः ।। ६ ।। कार्यो वा यत्नतो राजन्नमः पूर्वं स्वमन्त्रतः ।। ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा शैवान्सम्पूजयेत्ततः ।। ७ ।। बिल्वपत्रैः पुष्पमाल्यैर्भस्मना च यथाक्रमम् ।। एकैकस्मै प्रदातव्यं शिवयोः प्रतिमाद्वयम् ।। ८ ।। कलशोऽपि प्रदातव्यस्ततो वस्त्रद्वयान्वितः ।। आचार्याय प्रदातव्यं सुवर्णशतमादरात् ।। ९ ।। ततो यत्नेन शैवेन्द्रा भोजनीयाः कृतव्रतैः ।। सुवासिन्योऽपि शैवानां भोजनीयाः प्रयत्नतः ।। ११० ।। ततो देयाः स्वशक्त्या च भोजितेभ्यश्च दक्षिणाः ।। ततश्च स्वकृतं कर्म शिवाय विनिवेदयेत् ।। ११ ।। उद्यापनं कृतं शम्भो मयैतदधुना प्रभो ।। इदं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।। १२ ।। मन्त्रहीनं भक्तिहीनं शक्तिहीनमुमापते ।। कृतं कर्म भवत्वद्य त्वत्प्रसादात्फलप्रदम् ।। १३ ।। प्रायश्चित्तं वैदिकानां व्यङ्गानामपि कर्मणाम् ।। शिवास्मरणमेवेति श्रुतिरप्यस्ति शाङ्करी ।। १४ ।। अतः कृतमिदं श्रौतं कर्मव्यंगमपि प्रभो ।। सांगं भवतु विश्वेश तवैव स्मरणात्प्रभो ।। १५ ।। इति सम्प्रार्थ्य देवेशं साम्बं सर्वसुरोत्तमम् ।। भुञ्जीयाद्बन्धुभिः सार्धं समौनं तैलवर्जितम् ।। १६ ।। एवंयः करुते सम्यगुमामाहेश्वरं व्रतम् ।। स सर्वभोगान् भुक्त्वान्ते मोक्षमाप्नोति सर्वथा ।। १७ ।।राजोवाच ।। गौतमेदं व्रतं चीर्णं पुरा केन वदस्व मे ।। कस्य का समभूत्सिद्धिर्व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। १८ ।। गौतम उवाच ।। पुरा शैववरो राजन् दुर्वासाख्यो मुनीश्वरः ।। कदाचित्सञ्चरँल्लोकान् ददर्श कमलापतिम् ।। १९ ।। ततः समागतं

* श्रवणयोग्याः ।

दृष्ट्वा दुर्वासा मुनिसत्तमः ।। विल्वमालां ददौ तस्मै शङ्करेण समर्पिताम् ।। ।। १२० ।। गृहीत्वा बिल्वमालां तां हरिर्गमनसंभ्रमात् ।। शिरसा पूजनीयां तां गरुडे स विनिक्षिपत् ।। २१ ।। ततस्तं तादृशं दृष्ट्वा दुर्वासा क्रोध मूर्च्छितः ।। हरिं शशाप बहुधा धिग्जन्मेति च संवदन् ।। २२ ।। मया शिवार्पिता दत्ताः माला तुभ्यमघापहा ।। सा कथं गरुडस्कन्धे विनिक्षिप्ता त्वया हरे ।। २३ ।। गर्वस्य मूलभूतेयं लक्ष्मीस्तव विनश्यतु ।। लक्ष्मीः पततु दुग्धाब्धौ गरुडोऽपि विनश्यतु ।। २४ ।। वैकुण्ठस्याधिकारोपि तव यातु ममाज्ञया ।। निस्तेजस्कोऽवनीपृष्ठे सञ्चराद्यावधि ध्रुवम् ।। २५ ।। इत्युक्त्वा स तु दुर्वासा ययौ लोकान्तरं नृप ।। ततः पपात दुग्धाब्धौ लक्ष्मीर्विष्णुमनोहरा ।। २६ ।। ततोऽतिदुःखितो विष्णुः प्रलपन्वनमाश्रितः ।। उवास विपिने घोरे स्वकृतं कर्म संस्मरन् ।। २७ ।। ततः कदाचिद्भूपा मया तत्र गतं पुरा ।। तदा ममागतं दृष्ट्वा पूजयामास मां हरिः ।। ।। २८ ।। ततोश्रुपूर्णनयनः कृताञ्जलिपुटो हरिः ।। जगाद पूर्ववृत्तान्तं स्वलक्ष्मी-नाशकारणम् ।। २९ ।। ततोऽतिक्लान्तचित्ताय विष्णवे व्रतमुत्तमम् ।। तत्पृष्टेन मया भूप कथितं सादरं शिवम् ।। १३० ।। ततोऽविलम्बं विधिवच्चकार श्रद्धया-न्वितः ।। ततः प्रसन्नो भगवान्हरये पार्वतीपतिः ।। ३१ ।। ददौ लक्ष्मीं सगरुडां करुणानिधिरव्ययः ।। इदमेव व्रतं चीर्णमिन्द्रेणापि हतौजसा ।। ३२ ।। तेन प्राप्त-स्ततः स्वर्गः स्वर्गभोगश्च शाश्वतः ।। ब्रह्मणापि पुरा चीर्णमिदमेव व्रतं नृप ।। ३३।। नष्टा वागीश्वरी तेन संप्राप्ता दुर्लभापि सा ।। मुनिभिश्च पुरा चीर्णं व्रतमेत-न्मुमुक्षुभिः ।। ३४ ।। अस्य व्रतस्याचरणान्मुक्तिः प्राप्ता मुनीश्वरैः ।। इदं व्रतं प्रयत्नेन यः करिष्यति भक्तितः ।। ३५ ।। तस्य सौभाग्यसम्पत्तिर्भविष्यत्येव सर्वथा ।। यस्यास्त्यैश्वर्यभोगेच्छा मोक्षेच्छाप्यनपायिनी ।। ३६ ।। यस्य सर्वाधि-पत्येच्छा तेन कार्यामिदं व्रतम् ।। शारदो नाम विप्रोऽभूत्पुरा वेदान्तपारगः ।। ।। ३७ ।। मोक्षार्थमतियत्नेन तेन चीर्णमिदं व्रतम् ।। वैद्युतेनापि विप्रेण मोक्षार्थ-मतियत्नतः ।। ३८ ।। कृतमेतद्व्रतं पूर्वं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।। मुक्तिः प्राप्ता च तेनापि व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। ३९ ।। यं यं कामं समुद्दिश्य व्रतमेतदनुत्तमम् ।। यः करिष्यति तं कामं स समाप्नोति निर्मलम् ।। १४० ।। इदं व्रतं महेशेन समाख्यात-मुमां प्रति ।। कुमाराय समाख्यातमुमयैतद्व्रतं शुभम् ।। ४१ ।। नन्दिकेशाय कथितं मया चैतद्व्रतं शुभम् ।। नन्दिकेशेन कथितं दुर्वासमुनये ततः ।। ४२ ।। दुर्वाससापि कथितमगस्त्याय व्रतोत्तमम् ।। व्रतं च सागरे मह्यमगस्त्येन महात्मना ।। ४३ ।। मयातिक्लिन्नचित्ताय विष्णवे कथितं पुरा ।।तेन चीर्णं व्रतमिदं सर्वसौभाग्यदायकम् ।। ४४ ।। ब्रह्मणे कथितं पूर्वमिदमेव व्रतं मया ।। तेन चीर्णं

व्रतं साङ्गं वाणीप्राप्त्यर्थमादरात् ।। ४५ ।। सूर्यायेन्द्राय चन्द्राय मयैतत्कथितं व्रतम् ।। तैश्च चीर्णं व्रतमिदं सर्वसौभाग्यदायकम् ।। ४६ ।। कश्यपादिमुनिभ्यश्च कथितं व्रतमुत्तमम् ।। तैश्च चीर्णं व्रतं सम्यग्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।। ४७ ।। भूप- व्रतानि सन्त्येव बहूनि विविधानि च ।। तथाप्येतद्व्रतसमं व्रतं नास्त्येव सर्वथा ।। ४८ ।। भवानपि कुरु प्रीत्या भूपाल व्रतमुत्तमम् ।। इदं व्रतं शिवक्षेत्रे यः करि- ष्यतिः भक्तितः ।। ४९ ।। तस्य सर्वार्थसम्पत्तिर्भवत्येव न संशयः ।। शिव उवाच ।। इत्येद्वचनं श्रुत्वा स राजा प्रीतमानसः ।। ५० ।। सपुत्रः पूजयामास गौतमं शैव- पुङ्गवम् ।। ततो धर्मव्रतं चैवमुपदिश्य स गौतमः ।। ५१ ।। पुनः सम्पूजितो राज्ञा स्वाश्रमं प्रति संययौ ।। राजा सपुत्रस्तद्वाक्यादिदं माहेश्वराभिधम् ।। व्रतं चकार विधिवद्यथाक्रममतन्द्रितः ।। ५२ ।। ये मामनन्यहृदयाः सकलामरेशं सम्पूजयन्ति सततं धृतभस्मपूताः ।। ते मामुपेत्य विगताखिलदुःखबन्धा मद्रूपमेत्य सुखिनो निव- सन्ति नित्यम् ।।१५३।। इति शिवरहस्ये उमामहेश्वरव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।। इदं कर्नाटके प्रसिद्धम् ।।

उमामहेश्वरव्रत--भाद्रपद पूर्णिमाके दिन होता है, इसे शिवरहस्यमें कहा है, राजा बोला कि, आप सब मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं, मैं एक ऐसा व्रत पूछना चाहता हूं जिस एकके साङ्ग करलेनेपर सब कामोंको पाजा- है ।।१।। गौतम बोले कि, उमामहेश्वर नामका एक उत्तम व्रत है उसे भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमाके दिन प्रयत्नपूर्वक ।।२।। निष्पाप ब्राह्मणोंसे विधानके साथ करावे भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करके ।।३।। विधिपूर्वक प्रयत्नके साथ शिवका पूजन करके प्रयत्नके साथ जगद्वन्द्य उमा और सोमार्धशेखरयुत शिवका ध्यान करे ।।४।। पीछे हाथ जोडकर इस मंत्रको पढे कि, यत्नके साथ उमा- महेश्वर नामक व्रतको कल करूँगा ।।५।। हे सोमके अर्ध शेखरवाले महादेव ! मुझे आज्ञा दीजिए इस प्रकार विज्ञापन करके फिर प्रयत्नके साथ पूजे, मध्याह्नके समयमें भी व्रती महादेवका पूजन करे, इसके बाद देव और ऋषियोंका विधिपूर्वक पूजन करे ।।६-७।। हविष्यान्नका भोजन करके विधिपूर्वक सायंकालमें पूजे, शिवके समीप विधिपूर्वक नींद ले ।।८।। रातके पश्चिमी पहरमें उठकर फिर महादेवको याद करे इसके बाद प्रसन्न होकर शौच आदि करे ।।९।। जिस क्रमसे जैसे स्नान करना चाहिये वैसेही करे, पीछे धुले हुए विना फटे शुभ वस्त्र पहिने ।।१०।। इसके बाद उद्धूलन करे पीछे त्रिपुंड् लागावे, रुद्राक्ष पहिनकर सन्ध्या करे ।।११।। पीछे विल्वपत्र आदिसे शिवार्चन करे, शिवजीकी प्रसन्नताके लिये आदर पूर्वक हवन करे, नियमपूर्वक अव्यय शिवको प्रणाम करे, गांठ लगा हुआ कुशाओंका संकुल तयार करे ।।१२-१३।। पन्द्रह गांठ लगा हुआ फूलोंका डोरा बनावे, ।।१४।। सोनेकी महादेव और पार्वतीजीकी प्रतिमा बनावे अथवा चांदीकीही सुन्दर प्रतिमाएँ बनाले ।।१५।। दोनों प्रतिमाओंको पलसे कमकी न होनेदे, यदि शक्ति हो तो प्रयत्नके साथ अधिककीही बनावे ।।१६।। सोने, चाँदी, ताँबा या मिट्टीका नवा कलश बनाना चाहिये ।।१७।। दर्भोंके मुट्ठेपर दो वस्त्र बिछा उसे कलशपर रखकर जुदी जुदी दोनों प्रतिमाओंको स्थापित कर दे ।।१८।। "आपोहिष्ठा" इत्यादि मंत्र तथा शिवके मंत्रोंसे प्रयत्नके साथ अभिषेक करके ।।१९।।तोरण आदिसे सजाये हुए शिवालयमें जाय, बाहिर भीतरसे चौगुने सोलहके पद्मपर ।।२०।। स्वतिक आदिसे अलंकृत करके कलश स्थापन करे । पीछे अर्धनारी महेश्वर भगवानका ध्यान करे ।।२१।। मुक्ताओंकी माला पहिने दुकूल ओढे हुए, माथेपर चन्द्रमा धारण किये, पांच मुखवाले, अग्नि, चाँद, और रविके समान चमकने ।।२२।। तेज शेखरमें अर्धचन्द्रको धारण किये हुए, जटा और मुकुटसे मंडित माथेमें त्रिपुंड् लगाये, सर्वाङ्गमें भस्म,

रुद्राक्षकी माला पहिने, मन्द मन्द हंसते रहनेवाले, स्वयं आधाररहित एवं सब जगत्के आधार, जिसकी देवता रोजही स्तुतियां करते रहते हैं, सब देव जिसकी आत्मा हैं, जो देवोंकाभी वन्दनीय हैं, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि वन्दना किया करते हैं ।।२४।। ।।२५।। जिसके कि, लाल चरण कमलोंपर विष्णु भगवान्के नेत्र शोभा बढा रहा है, ऐसे सब द्वन्द्वोंसे रहित, जिसके बराबरका कोई नहीं है जिसकी देवता वन्दना करते रहते हैं ।।२६।। एवं सबसे उत्तम, आदि–अन्त रहित, सब देवोंसे पूजित, सत्य, शुद्ध, परब्रह्म, कृष्णापिंगल रंगके पुरुष ।।२७।। ऊंचे केशोंवाले, विरूपाक्ष, विश्वरूप, चिदात्मक, निष्कल, शान्त, निरवद्य, निरंजन ।।२८।। अप्रमेय, संसारकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करनेवाले, सब और बाहु पाद और अक्षवाले, विश्वके कर्ता, विश्व, नारायणके आराध्य, अक्षर, परमपद, विश्वसे परम, विश्वके स्वामी, आमयरहित ।।२९।। ।।३०।। शिवजी हैं । इस प्रकार शिवजीका ध्यान करके पीछे आदिविद्या अनामया गौरीका ध्यान करना चाहिये ।।३१।। जिनके लक्ष्मी चरण और शची पादुका सेवन करती है तथा सरस्वती चरणोंकी स्तुती करती रहती है ।।३२।। पकेहुए बिम्बाफलकी तरह जिसका नीचेका अधर ओष्ठ रहता है, जिसकी मुख कान्तिके सामने पूर्णचन्द्र परास्त होता है, जहां कोई व्याधि नहीं है ।।३३।। घुंघराले काले काले बालोंने काले काले भारोंकी कतारको भी मात करदिया है, उरोजोंसे चक्रवाकको भी परास्त कर दिया है, परम सुन्दरी ।।३४।। सदाही कमलको मात देनेवाली दृष्टि युता, सीमान्तसे कामके भालोंको धिक्कारनेवाली, जिसने भृकुटिसे कामके सारे तीर हरादिये हैं, हाथोंके नालसे सुवर्ण कमलको परास्त करनेवाली विलासिनी ।।३५।।३६।। रोमावलीसे घूमतेहुए भ्रमरकी नालीको मात देनेवाली ।।३७।। उत्तम जांघोंसे केलाके स्तंबको मात देनेवाली दोनों चरणोंकी कान्तिसे अरुणको परास्त करनेवाली ।।३८।। ब्रह्मा इन्द्र और उपेन्द्रोंकी जननी, महेशके अर्धभागकी भागीदार, महेशके बांये अंगसे लगकर विराजती हुई सदा वर और अभयके देनेवाली ।।३९।। प्रसन्नवदना, स्मितपूर्वक बोलनेवाली, पूर्णचन्द्रके दुकूलसे सुरम्य, अनेकों आभरणोंसे भूषित ।।४०।। देवता जिसकी स्तुतियां करते रहते हैं, कोटिन यज्ञ दानोंसे जिसका यजन होता रहता है, ऐसी गौरी महारानी है । इस प्रकार ध्यान करके उपचारोंकी कल्पना करे ।।४१।। पुष्प लेकर शिव और शिवका आवाहन करे कि, हे महादेव ! हे दयासिन्धो ! हे ब्रह्मा और विष्णु आदिके वंदित ! हेदेवेश ! प्रसन्न हुजिये । मैं आपका आवाहन करता हूं ।।४२।। आपके चरणपादुकाओंको लक्ष्मी आदिक देवस्त्रियां सेवन करती रहती हैं । हे देवी ! मैं तेरा आवाहन करता हूं ! मुझपर प्रसन्न हूजिये ।।४३।। हे विश्वात्मन् ! हे उमासहित शिव ! यह रत्नोंका बना आसन है, हे अनन्त आसनवाले विश्वेश ! हे करुणाके सागर ! हे प्रभो ! इसे ग्रहण करिये ।।४४।। हे उमासहित रहनेवाले वरसे लगीहूई उमे ! हे अर्धचन्द्रसे शेखर करनेवाले ! अनेक रत्न लगे आसनको ग्रहण करिये ।।४५।। हे गौरीश ! सोनेके पात्रमें रखाहुआ ताजा पानी है । हे वेदवेदान्तोंसे प्रार्थना कियेगये देव और देवेशि ! इसे पाद्यके लिये ग्रहण करिये ।।४६।। हे देवेश ! हे शिव ! हे अनन्तगुण समूहवाले ! हे सब अभिष्टोंके देनेवाले ! गन्ध, पुष्प और अक्षतोंके साथ अर्घ्य ग्रहण करिये ।।४७।। हे रोजही भक्तोंके वर देनेवाली ! हे सुन्दर शरीरवाली शिवकी प्यारी ! हे सर्वाङ्गसुन्दरी ! हे नित्ये शिवे ! अर्घ्य ग्रहण करिये ।।४८।। हे भूत और पवित्रोंके प्यारे शम्भो ! हे परम पवित्र एवं परम पवित्रों-पर प्रेम करनेवाली देवि । आप दोनों आचमन ग्रहण करिये ।।४९।। हे सब समय मधुपर्क देनेवाले ! मधुपर्क ग्रहण करिये, इससे आप प्रसन्न होजाइये ।।५०।। हे प्रिय शंकरे देवि ! इस मधुपर्कको ग्रहण करिये । हे परम सुन्दरि ! इस मधुपर्कके वियेसे प्रसन्न होजाइये ।।५१।। हे शंभो ! हे कृपानिधे ! हे शंभो ! हे नित्य शासनसे पवित्र आपके स्नानके लिए सब तीर्थोंका पानी लाया हूं, पञ्चामृत स्नानस्वीकार कीजिए ।।५२।। हे शिवे ! हे कृपाकी कोशरूपिणि ! हे सब तीर्थोंसे उत्तम ! हे तीर्थलाजोंसे सेई गई ! पञ्चामृत स्नान स्वीकार करिये ।।५३।। हे शंभो ! हे सुरोत्तम ! शुद्धपानीका स्नान स्वीकार करिये । प्रसन्न हूजिए, हे करुणाके खजाने ! मुझ परम भक्तकी रक्षा करिये ।।५४।। हे शिवकी प्यारी शिवे ! शुद्ध पानीका स्नान स्वीकारकरिये, हे देवि ! प्रसन्न हो मुझ दीन शरणागतकी रक्षा करिये ।।५५।। हे ईश ! उत्तरीयसहित इस उत्तम दुकूलको ग्रहण करिये । हे करुणाकी खानि, कृपाके समुद्र शंकर ! मेरी रक्षा करिये ।।५६।। हे शंकरकी प्यारी ! इस उत्तरीय

सहित दुकूलको ग्रहण करिये । मैं सिवा आपके दूसरेकी शरण नहीं हूं, हे शिवे ! मेरी रक्षा, करिये, प्रसन्न हूजिए ॥५७॥ हे सब अमरोंसे उत्तम शंभो ! उपवीत ग्रहण करिये, हे शिवसे लगे हुए शरीरवाली शिवे ! उपवीत ग्रहण करिए ॥५८॥ इस सुगन्धित मिले हुए दिव्य चन्दनको ग्रहण करिए । हे पार्वतीनाथ ! हे शरणागतोंपर प्यार करनेवाले ! प्रसन्न होजाइये ॥५९॥ हे देवि ! चन्द्रभागसे शोभायमान चन्दनको ग्रहण करिये, हे विश्वनाथकी प्यारी विश्वात्मिके ! विश्वकी रक्षा कर ॥६०॥ हे ईश ! आप विश्वके आभरण हैं, आप सदा रत्नोंसे भूषित रहनेवाले हैं आप सब निगमोंके आश्रय हैं, हे विश्वके आभरण ! इन आभरणोंको ग्रहण करिये ॥६१॥ हे सबकी प्यारी सभी आभूषणोंसे सजीहुई संसारको आनन्द देनेवाली सबकी वन्दनीय अंबे ! आभरण ग्रहण करिये ॥६२॥ हे महेश्वर ! बिलवपत्र पुष्प समेत ग्रहण करिये, हे भवानीके ईश ! ये बडे खुशबूदार हैं एवं आपको खुशबूदार कुसुमावलि प्यारी है ॥६३॥ हे शिवकी प्यारी ! सुगन्धित पुष्पोंको ग्रहण करिये क्योंकि आप तो सुगंधित बिल्व और मन्दारकी मालाओंसे सिंगरी रहती हो ॥६४॥ 'दशाङ्गम्' ॥६५॥ इससे शिवको तथा 'दशाङ्गम्' ॥६६॥ इससे पार्वतीको धूप दे, 'साज्यम्' इससे शिव तथा 'साज्यम्' ॥ इससे शिवाको दीपक समर्पण करे ॥६८॥ हे शंभो ! गऊके घृतमें सक्कर पडा हुआ यह श्रेष्ठ परमान्न तयार है हे परमान्नके देनेवाली ग्रहण करिये ॥६९॥ हे शंभो ! सुगंधित आचमनीय ग्रहण करिये, शिवापते ! आप तो स्वतः शुद्ध एवं आचमन किए हुए हैं ॥७०॥ हे शिवे ! इस सुगंधित आचमनीयको ग्रहण करिये, आप शुद्ध हैं एवं शुद्धिकी देनेवाली हैं आपका विग्रह शिवजीसे भूषित है ॥७१॥ हे देव ! बहुतसे दीपोंसे विराजमान इस नीराजनको ग्रहण करिये । आप स्वप्रकाश हैं प्रकाश ही आप की आत्मा है ॥७२॥ अपनी प्रभासे सूर्यको प्रकाशित करनेवाली हे अंबे ! नीराजन ग्रहण कर । आपका सब शरीरही प्रभासे परिपूर्ण है सब मंगलोंकी स्थान तथा सर्वमंगल दाता है ॥७३॥ हे शंभो ! एला कपूर और सुपारी पडा हूआ पान ग्रहण करिये । हे सर्वज्ञ ! हे अमित पुरुषार्थवाले ! हे भगवान् शंभो ! प्रसन्न होजाइये ॥७४॥ हे शिवे ! इलायची सुपारी और कपूर पडा हुआ पान ग्रहण करिये । हे सोमसे संश्लिष्ट विग्रहवाली हंसमुखी देवि ! प्रसन्न हूजिए ॥७५॥ हे परमेशान ! हे सब दुःखोंके नाशक ईश ! रत्नोंवाले छत्र चामर दर्पण और बीजनाको ग्रहण करिये ॥७६॥ हेसुरोंकी आराध्ये ! मेरे दिये हुए रत्नोंवाले छत्र चामर दर्पण और बीजना ग्रहण करिये । हे सबसे पहिले होनेवाली ! हे सभी विद्याओंकी आधार ! तेरे लिए नमस्कार है ॥७७॥ हे परमेश्वर ! प्रदक्षिणा और नमस्कारोंको ग्रहण कलिये । हे नाचको प्रिय माननेवाली शिवे ! प्रदक्षिणा नमस्कार और नाचको ग्रहण करिये ॥७८॥ इस प्रकार सावधानीसे पार्वती शंकरका पूजन करे 'ओम् नमः सोमाय' इस मंत्रसे पूर्वोक्त भी पूजन करना चाहिये यथापूर्व यथाक्रम इस मंत्रको बोलना चाहिये । तथा ॥७९॥ 'आवहन्ती' यह मंत्र भवानीका कहा है ॥८०॥ "ओम् आवहन्ती पोष्या वार्य्याणि चित्रं केतु कृणुते चेकिताना ईयुषीणामेपमा शाश्वतीनां विभातीनां प्रथमो व्यश्वैत ॥ अत्यन्त वर मांगने योग्य वस्तुओंको भगवती प्रसन्न होकर स्वतः देती है । आप सबसे अधिक ज्ञानवाली हैं, इस कारण चाहने योग्य ज्ञान दे देती हैं, सदा सर्वत्र प्राप्त होनेवाली मायाही इसकी यत्कथंचित् उपमा हो सकती है, तेजस्वी देवोंमें जो स्वयं प्रकाश सबसे पहिले हुई है ॥" अंगपूजा—कपर्दीके लिए नमस्कार कपर्दको पूजता हूं, भाललोचनके लिए नमस्कार भालको पूजता हूं; इसी तरह सब हैं कि, सोमसूर्य्य और अग्निके नेत्रवालेके तीनों नेत्रोंको पू०; सुश्रोत्रके श्रोत्रोंको पू०; घ्राण गन्धके० घ्राणको पू०; स्मृतिदन्तके दांतोंको पू०; श्रुति जिह्वाको पू०; जिह्वाको पू०; सुकपोलके कपोलोंको पू०; ज्ञानोष्ठके ओष्ठोंको पू०; नीलकण्ठके० कण्ठको०; भूरिवक्षाके० वक्षको; हिरण्यबाहुके० बाहुओंको, विश्वेश्वरके० उदरको पू०; विश्वोरुके० ऊरुओंको; विश्वजंघाके० जाँघोंको; विश्वपादके० पादोंको; विश्वनखोंके० नखोंको पू०; सर्वात्मकके० सर्वांगको पूजता हूं ॥ शक्तिके अंगोंकी पूजा—शिवाके शिरको०; मोटी वेणीवालीके वेणीको०; केशपाशके शोभायमानके० सीमन्तको०; माथेपर कुंकुम लगायेहुएके० भालको०; सोम (चांद) सूर्य और अग्निनेत्रोंवालीके० नेत्रोंको०; श्रुतिश्रोत्रके० श्रोत्रोंको०; जिसेगन्ध प्यारा है उसके घ्राणको०; सुन्दर कपोलोंवालीके० कपोलोंको०; चमेलीकी कलीकेसे दातोंवालीके० दांतोंको०; विद्याजिह्वाके० जिह्वाको; बिंबकेसे होठोंवालीके० होठोंको वृत्तकंठके० कंठको०;

मोटे कुचोंवालीके० कुचोंको; विश्वगर्भाके० उदरको० शुभ कटिवालीके० कटिको दिव्य ऊरु देशवालीके० उरुको०; मिलीजाघोंवालीके जांघोंको०; जिसकी जूती लक्ष्मीजी सेती हैं उसके० चरणोंको०; महेश्वरकी प्यारीके० नखोंको० । सुन्दर विग्रहवालीके लिये नमस्कार सर्वांगको पूजता हूं ।। अंग पूजाको समाप्त करके डोरेको पूजे प्रत्येक ग्रन्थिपर स्वच्छ स्वच्छ दलोंसे पूजा करे ।।८१।। नमः सौमाय इस मंत्रसे पहिली ग्रन्थसे प्रारंभ करे, यथाक्रम पूजकर पीछे डोरा धारण करना चाहिये, ।।८२।। इसके बाद इसी मंत्रसे सब उपचार कुंकुमसे रंगे डोरेपर व्रतियोंको सावधानताके साथ करनेचाहिये ।।८३।। कीटादिरहित शुद्ध पांच प्रस्थ गोधूम वा तण्डुल उपायनके लिये लावे अथवा गेहूंके १५ पू आमाडे घीके चुचेमा लावे, इसके बाद शिव-व्रतके प्यारे अनन्यभक्त शैवोंका गन्ध्य पुष्पादिसे क्रमसे पूजन करे, वस्त्र कलश सहित शिवजी दोनों प्रतिमा ।।८४–८६।। प्रयत्नपूर्वक सुवर्णके फलके साथ किसी शेवको दे दे, पहिले भेंट देकर पीछे ये दे ।।८७।। उपायनका मंत्रभी कहते हैं "शिव और उमाही देते लेते हैं वेही हम तुम दोनोंके दोनों जगतोंके तारक हैं, उन दोनोंकेही लिये वारंवार नमस्कार है" इस मंत्रको बोलकर दान दे ।।८८–८९।। इसके पीछे शिवभक्त शैव और सुवासिनियोंको सावधानीसे भोजन करावे, पीछे आप मौन हो भोजन करे ।।९०।। जो आये हुए अतिथि दरवाजेपर पहुंचे हुए हों उनको भी भोजन करावे इस प्रकार इस व्रतको हरसाल करे ।।९१।। सावधान ब्राह्मणोंसे कहे हुए क्रमसे विधिपूर्वक नियमके साथ इस व्रतको करावे ।।९२।। हे राजन् ! यह व्रत परम् पवित्र सब अभीष्ठोंका देनेवाला साक्षात् शिवरूपही है ।। इस प्रकार सोलह वर्ष बीतजानेपर उद्यापन करे ।।९३।। उद्यापनकी विधि क्रमसे कहता हूं सुनो, भाद्रपद पूर्णिमाके दिन प्रेमसे अतियत्नके साथ व्रतका उद्यापन करना चाहिये करनेसे पहिले धन इकट्ठा करले, साडे छःपलकी सोनेकीप्रतिमा बनावे ।।९४।।९५।। शक्ति न हो तो सवातीन वा इसके भी आधेकी बनाले सोनेकी न बनसके तो चाँदीकी ही बनाले ।।९६।। हे राजन् ! पंद्रह सोने चाँदी ताँबा वा मिट्टीके कुंभ बनवा ले ।।९७।। भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके प्रातःकाल, प्रयत्नके साथ सत्रह ब्राह्मण श्रेष्ठ शैव न्योतने चाहिये ।।९८।। वितान आदिसे घर तथा स्वस्तिक वन्दनवार वगैरह इसे आनन्ददायक शिवस्थानको सुशोभित करे ।।९९।। इसके बाद सायंकालके समय भगवान् शंकरके मंदिरमें प्रयत्नके साथ उन्हें पूजे, तथा उमा पार्वतीकी सुन्दर मूर्तिको ।।१००।। पहिले कहे विधानके साथ इन्हीं मन्त्रोंसे पूजे, उपवास पूर्वक सावधानीके साथ रातको जागरण करे ।।१।। अथवा ऋत्विजोंके साथ केवल दूध पीकर जागरण करे तथा शिवजीकी कथा सुने और सुनावे ।।२।। रातमें प्रयत्नके साथ चार पहर पूजा करे पीछे स्नान करके शंकरके पास प्रयत्नके साथ बैठे ।।३।। सब देवोंमें परम प्रतिष्ठित जो शिव हैं उनका प्रयत्नके साथ पूजन करे, अष्टदलसहितचौकोर कुण्ड बनावे ।।४।। वह कटिमात्र हो प्रान्त देशमें दो हाथ हो गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार वहां अग्नि स्थापित करके ।।५।। घी मिले हुए परमान्नसे 'ओम् नमः सोमाय स्वाहा' इस मन्त्रसे पच्चीस हजार आहुति दे ।।६।। अथवा हे राजन् ! नमः पूर्वक अपने इस मन्त्रसे हवन करे । पूर्णाहुति देकर शैवोंका मान करे ।।७।। बिल्वपत्र, पुष्पमाल्य और भस्मके साथ एक एक शैवको शिवजी और पार्वतीजीकी जुदी जुदी मूर्ति देनी चाहिये ।।८।। दो वस्त्रोंके साथ कलश भी दे, आचार्य्यके लिये आदरसे सौसुवर्ण देने चाहिये ।।९।। इसके पीछे सुयोग्य शैव और उनकी सुवासिनियोंको जिमावे ।।११०।। भोजन किये हुओंको शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे, पीछे अपने किये कर्मको शिवजीकी भेंट कर दे ।।११।। कि, हे शिव ! मैंने यह आपके व्रतका उद्यापन किया है, हे महेश्वर ! आपकी कृपासे यह पूरा होजाय ।।१२।। हे उमापते ! जो मैंने मन्त्र, भक्ति और शक्तिसे रहितभीकर्मकिया है, वह आपकी कृपासे मुझे पूरा फल देनेवाला होजाय ।।१३।। शांकरी श्रुति कहती है कि, वैदिक व्यंग कर्मोंका भी प्रायश्चित शिवजीका स्मरण ही है ।।१४।। हे विश्वेश ! यह अपूर्ण श्रौतकर्म आपके स्मरणसे पूरा होजाओ ।।१५।। इस प्रकार देवेश साम्ब शिवकी प्रार्थना करके भाइयोंके साथ मौन हो अपर्शके साथ भोजन करे ।।१६।। जो इस प्रकार भलीभांति उमामहेश्वरव्रतको करता है वह सब भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष पाजाता है ।।१७।। राजा पूछनेलगे कि, हे गौतम ! पहिले यह व्रत किसने किया था ? यह मुझे बताइये इस व्रतके प्रभावसे किसे सिद्धि हुई ? ।।१८।। गौतम बोले कि, पहिले परम शैव, दुर्वासा नामके ऋषिश्वर कभी घूमते घूमते भगवान्के

पास पहुंचे ॥१९॥ भगवान्‌के दर्शन करके शंकरकी दीहुई एक बिल्वमाला उनके भेंट कर दी ॥१२०॥ भगवान्‌को कहीं जरूरी जाना था । इस कारण शिरसे पूजनीय मालाको गरुडपर डाल दिया ॥२१॥ ऐसा देख दुर्वासा क्रोधसे मूर्च्छित होगये, तुम्हारे जन्मको धिक्कार है ऐसी बहुतसी बातें कहकर शाप देदिया ॥२२॥ मैंने तुम्हें पापोंके नाश करनेवाली माला दी थी, हे हरे ! यह तो बता कि, तूने अपनी सवारी गरुडके ऊपर कैसे डालदी ॥२३॥ इस अभिमानका कारण लक्ष्मी है, सो नष्ट होजाय, वह क्षीरसमुद्रमें गिरे, तथा गरुडभी इधर उधर होजाय ॥२४॥ आपका वैकुण्ठका अधिकार भी चलाजाय, आजसे तू निस्तेज हो वन वन भटकता फिर ॥२५॥ हे राजन् ! ऐसा शाप देकर दुर्वासा तो दूसरे लोकमें चले गये । उसी समय विष्णु भगवान्‌की सुन्दर लक्ष्मी, क्षीर सागरमें गिरगई ॥२६॥ इसके बाद विष्णु भी रोतेहुए वनमें चले गये एवम् अपने कर्मोंको याद करतेहुए वनमें वसने लगे ॥२७॥ कभी वह वहाँ मुझे मिलगये उन्होंने मेरा पूजन सत्कार किया ॥२८॥ मेरे आगे आखोंमें आसूं भरकर हाथ जोडकर अपनी लक्ष्मीके नाश होनेका कारण कहा ॥२९॥ हे राजन् ! जब उन्होंने मुझसे पूछा तो मैंने दुःखी हुए विष्णुके लिये इस शिव व्रतको आदर पूर्वक कहदिया ॥१३०॥ उन्होंने शीघ्रही श्रद्धापूर्वक इसे कर डाला । इससे पार्वतीपति भगवान् शिव प्रसन्न होगये॥३१॥ उस करुणाके खजानेने न नष्ट होनेवाली लक्ष्मी और गरुड हरिको देदिया । निस्तेज हुए इन्द्रनेभी इस व्रतको किया था ॥३२॥ इससे उसे सदाके लिये स्वर्ग मिल गया हे राजन् ! इस व्रतको ब्रह्माजीने भी किया था ॥३३॥ इससे उसे नष्ट हुई दुर्लभा वागीश्वरी मिलगई, मोक्षके इच्छुक मुनियोंने भी पहिले इसी व्रतको किया था ॥३४॥ इसीके कियेसे मुनीश्वरोंको मुक्ति मिल गई । जो इस व्रतको प्रयत्नके साथ करता है वा करेगा ॥३५॥ उसे सौभाग्य संपत्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है–जिसे यह इच्छा हो कि, मुझे नष्ट होनेवाले ऐश्वर्य, भोग और मोक्ष मिलें ॥३६॥ जो सर्वाधिपत्य चाहे उसे इस व्रतको करना चाहिये । पहिले एक वेद वेदान्तोंको ज्ञाता शारद नामका ब्राह्मण था ॥३७॥ उसने और वैद्युत नामके ब्राह्मणने मोक्षके लिये इस व्रतको प्रयत्नके साथ किया था ॥३८॥ जो कि, यह व्रत सब फलोंको देता है । इसके प्रभावसे उसे मोक्ष मिलगया ॥३९॥ जिस जिस कामके उद्देशको लेकर इस श्रेष्ठ व्रतको कियाजाता है, वह वह उसे विशुद्ध रूपसे मिलजाता है ॥१४०॥ इस व्रतको शिवने उमाको ,उमाने कुमारको ॥४१॥ कुमारने नन्दिकेश्वरको, नन्दिकेश्वरने दुर्वासाको ॥४२॥ दुर्वासाने अगस्त्यको; अगस्त्यने समुद्रपर मुझको; मैंने खिन्न चित्त विष्णुको इसेही कहा था । सब सौभाग्योंके देनेवाले इस व्रतको विष्णुने किया था ॥४३॥४४॥ मैंने ब्रह्माजीको कहा था, उन्होंने भी वाणीकी प्राप्तिके लिये आदरके साथ किया था ॥४५॥ सूर्य्य, चन्द्र, और इन्द्रके लिये भी मैंने इसे कहा । उन्होंने भी सब सौभाग्यके देनेवाले इस व्रतको किया था ॥४६॥ मैंने कश्यप आदि मुनियोंको लिये भी इसे कहा था उन्होंने भी इसे किया ॥४७॥ हे राजन् ! यद्यपि दुनियांमें बहुतसे व्रत हैं किन्तु इस व्रत जैसा कोई भी व्रत नहीं है ॥४८॥ इस कारण हे राजन् ! आप भी इसे प्रेमके साथ करें । जो कोई शिवक्षेत्रमें भक्तिसे करेगा ॥४९॥ उसके सब अर्थोंकी सिद्धि होगी, इसमें सन्देह नहीं है ।शिव बोले कि, यह सुन राजा परम प्रसन्न हुआ ॥१५०॥ परम शैव गौतम और उनके पुत्र दोनोंकी पूजा की इसके बाद इस धर्मव्रतका उपदेश दे ॥५१॥ राजासे सत्कृत होकर अपने आश्रमको चलेगये, उस राजाने अपने बेटेके साथ निरालस हो इस शिव व्रतको विधिके साथ किया ॥५२॥ मेरे शरणागत देवेश देव मुझको भस्म धारणकर पवित्र हो पूजेंगे वे सब दुखोंसे रहित हो मेरे रूपको प्राप्त होकर मेरे लोकमें सुखपूर्वक सदा निवास करेंगे ॥५३॥ यह शिवरहस्यका कहाहुआ उद्यापनसहित उमामहेश्वरका व्रत पूरा हुआ ॥ यह व्रत कर्नाटक देशमें प्रसिद्ध है ॥

कोजागरव्रतम्

अथाश्विनपौर्णमास्यां कोजागरव्रतम् ॥ अश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या ॥ "सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमापौर्णमास्यौ परे" इति दीपिकोक्ते: ॥ आश्वयुजीकर्मणि पूर्वाह्णव्यापिनी देवकर्मत्वाद्ग्राह्या ॥ अत्र कोजागरव्रते रात्रौ लक्ष्मी-

पूजनाक्षक्रीडाप्रधानत्वाद्रात्रिव्यापिन्येव कार्या ।। स्कान्देऽस्ति कोजागरं नाम व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। यत्कृत्वा समवाप्नोति जन्तुर्लोकाननुत्तमान् ।। पूर्णिमाश्वयुजि मासे कौमुदी परिकीर्तिता ।। अथ कथा– ऋषय ऊचुः ।। कार्तिकस्य उपाङ्गानि व्रतानि कथयन्तु नः ।। कृतेषु येषु भवति संपूर्णं कार्तिकव्रतम् ।। १ ।। वालखिल्या ऊचुः ।।आश्विने शुक्लपक्षे तु भवेद्या चैव पूर्णिमा।।तद्रात्रौ पूजनं कुर्याच्छ्रियो जागृतिपूर्वकम् ।। २ ।। नारिकेरोदकं पीत्वा ह्यक्षक्रीडां समारभेत् ।। निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी ।। ३ ।। जगति भ्रमते तस्यां लोकचेष्टावलोकिनी ।। तस्मै वित्तं प्रयच्छामि यो जागर्ति महीतले ।। ४ ।। सर्वथैव प्रकर्तव्यं व्रतं दारिन्द्र्यभीरुभिः ।। एतद्व्रतप्रभावेण वलितोप्यभवद्धनी ।। ५ ।। ऋषय ऊचुः ।। वलितः प्रोच्यते कोऽसौ लब्धवान्स कुतो व्रतम् ।। एतद्विस्तरतो ब्रूत वालखिल्यास्तपोधनाः ।। ६ ।। वालखिल्या ऊचुः ।। ब्राह्मणा वलितो नाम मागधः कुशसंभवः ।। नानाविद्याप्रवीणोऽसौ सन्ध्यास्नानपरायणः ।। ७ ।। याचनं मरणं तुल्यं मन्यतेऽसौ द्विजोत्तमः ।। गृहागतं स गृह्णाति नान्यद्याचयते क्वचित् ।। ८ ।। तस्य भार्या महाचण्डी नित्यं कलहकारिणी ।। मङ्गिन्यः स्वर्णरौप्यालङ्कारादिविभूषिताः ।। ९ ।। नानामाल्याम्बरधरा दृश्या देवाङ्गना इव ।। अहं दरिद्रस्य गृहे पतितास्मि दुरात्मनः ।। १० ।। लज्जा मां वाधतेऽत्यन्तं ज्ञातीनां मुखदर्शने ।। धिगस्तु चैतद्विद्याया निर्धनस्य कुलस्य च ।। ११ ।। एवं वदति लोके तु न करोति पतीरितम् ।। सङ्कल्पं कृतवानेकं यद्यभर्ता वदिष्यति ।। १२ ।। विपरीतं करिष्यामि यावल्लक्ष्मीः प्रसीदति ।। भर्तः पाषाणबुद्धे त्वं चौर्यं कुरु नृपालये ।। १३ ।। आनीयतां धनं भूरि नो चेत्सन्ताडयाम्यहम् ।। क्षणं रोदिति नाश्नाति कदाचिद्वहु खादति ।। १४ ।। सा कपालं ताडयतीत्येवं क्लेशयते पतिम् ।। सोढ्वा तस्यास्तु चरितं याचनादुःखभीतितः ।। १५ ।। नोवाच वचनं किञ्चिद्यथालाभेन तोषितः ।। एकस्मिञ्छ्राद्धपक्षे तु ह्युद्विग्नोभूद्द्विजोत्तमः । ।। १६ ।। एतस्मिन्वत्सरे सर्वं श्राद्धसामग्रिकं गृहे ।। वर्तत्ते गृहिणी चेयं न करिष्यति किञ्चन ।। १७ ।। इत्युद्विग्नमना विप्रो भाषते न किञ्चन ।। चिन्तयाविष्टमेवं तमाययौ मित्रमुत्तमम् ।। १८ ।। नाम्ना गणपतिख्यातं तस्मिन्नभ्यागते सति ।। नोवाच पूर्ववद्वार्तां मित्रं वचनमब्रवीत् ।। १९ :।। भो भो वलित चित्तं ते किमर्थं चिन्तयान्वितम् ।। अवश्यं स्वधिया कृत्वाचिन्तां ते निर्हराम्यम् ।।२०।। वलित उवाच ।। अधुना पितृपक्षे तु पितुः श्राद्धं समागतम् ।। सामग्रिकं चास्ति गृहे विपरीतकरी प्रिया ।। २१ ।। कथं सम्पाद्यते श्राद्धमिति चिन्तायुतोऽस्म्यहम् ।। गणपतिरुवाच ।। धन्योऽसिकृतकृत्योऽसि भार्या यस्येदृशी गृहे ।। २२ ।। ब्रूहि त्वं

वैपरीत्येन भार्या कार्यं करिष्यति ।। वलितस्तु तथेत्युक्त्वा सायं भार्यामभाषत ।। २३ ।। अनर्थकारके चण्डि परश्वः श्राद्धकं पितुः ।। न स्थापितं धनं यस्मान्मदर्थं तैस्तु पापिभिः ।। २४ ।। तस्मान्न शीघ्रं पाकं त्वं कुरु दुष्टे करोषि चेत् ।। ब्राह्मणा ये द्यूतकराः शौचाचारविवर्जिताः ।। २५ ।। निमन्त्र्यास्ते त्वया भद्रे नोत्तमास्तु कदाचन ।। इति भर्तृवचः श्रुत्वा संभारस्तु महान्कृतः ।।२६।। निमंत्रितास्तु सद्विप्राः काले पाकः कृतस्तया ।। विपरीतैरेव वाक्यैः श्राद्धं संपादितं तथा ।। २७ ।। पिण्डदानं ततः कृत्वा भार्यां वचनमब्रवीत् ।। विस्मृत्य पिण्डान्नीत्वा त्वं क्षिप गङ्गाजले शुभे ।। २८ ।। पिण्डान्नीतांस्तथेत्युक्त्वा शौचकूपेव्यचिक्षिपत् ।। तज्ज्ञात्वा वलितो दुःखी बभूवाकुलिताननः ।।२९।। क्रोधाद्विनिर्ययौ गेहात्संकल्पं कृतवानिति ।। लक्ष्मीर्यदि प्रसन्ना स्यात्तदान्नं भक्षयाम्यहम् ।। ३० ।। तावत्कन्दफलाहारो वनमध्ये ऽसाम्यहम् ।। इति संकल्प्य विप्रः स गहने निर्जने वने ।। ३१ ।। एको धर्मनदीतीरे वृक्षवल्कलधारकः ।। [1]त्रिंशद्दिनानि न्यवसदागता त्विषपूर्णिमा ।। ३२ ।। कालीयवंशसम्भूता नागकन्याः सुलोचनाः ।। निवसन्त्यो वने तस्मिन्व्रतं चक्रू रमाप्तये ।। ३३ ।। श्वेतीकृतं तु सुधया गृहं चन्द्रगृहोपमम् ।। मण्डलानि विचित्राणि नानापिष्टैः कृतानि च ।। ३४ ।। पञ्चामृतानि रत्नानि दर्पणाच्छादनानि च ।। स्थापयित्वेन्दिरापूजा कृता ताभिः प्रयत्नतः ।। ३५ ।। एवं तु प्रथमो यामो बालाभिर्नीत एवहि ।। प्रारब्धं च ततो द्यूतं तुर्यं तास्तु न लेभिरे ।। ३६ ।। चतुर्भिस्तु विनाक्षाणां क्रीडनं नैव जायते ।। तस्मान्मृग्यस्तुरीयस्तु विचार्यैवं विनिर्गता ।। ३७ ।। कन्यका तु नदीतीरे ददर्श वलितं द्विजम् ।। ज्ञात्वा तं साधुचरितं सचिन्तं च मुखाकृते ।। ३८ ।। उवाच वचनं चारु द्विजः कोऽसि समागतः ।। याह्यद्य क्रीडितं द्यूतं लक्ष्म्याः प्रीतिकरं परम् ।। ३९ ।। इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा वलितो वाक्यमब्रवीत् ।। वलित उवाच ।। द्यूतेन क्षीयते लक्ष्मीर्द्यूताद्धर्मो विनश्यति ।। ४० ।। मुग्धवत्त्वं वदसि किं कथं लक्ष्मीः प्रसीदति ।। कन्योवाच ।। भाषसे त्वं पण्डितवत् कर्म तेऽस्त्यतिमूर्खवत् ।। ४१ ।। इषस्य शुक्लपूर्णायां द्यूताल्लक्ष्मीः प्रसीदति ।। द्यूतक्रीडां तु कृत्वैवं कौतुकं पश्य चैन्दिरम् ।। ४२ ।। इत्युक्त्वासौ तया नीतः क्रीडार्थं स्वस्य मन्दिरे ।। दत्त्वा तस्मै नारिकेरजलं भक्ष्यादिकं तथा ।। ४३ ।। आरब्धंच ततो द्यूतं श्रीलक्ष्मीः प्रीयतामिति ।। लापितानि च रत्नानि कन्याभिर्ब्राह्मणेन तु ।। ४४ ।। कौपीनं लापितं स्वीयं ताभिर्निर्जितमेव तत् ।। ब्राह्मणः क्रोधसंयुक्तः किं कर्तव्यं मयाऽधुना ।। ४५ ।। उपवीतं लापयित्वा

१ विंशद्दिनानीत्यपि पाठः ।

ततः स्वीयं कलेवरम् ।। लापयिष्ये विनिश्चित्य ह्यु पवीतं ललाप सः ।। ४६ ।। ताभिर्जितं च तदपि शरीरं लापितं स्वकम् ।। ततोऽर्धरात्रे सञ्जाते लक्ष्मीनारायणावुभौ ।। ४७ ।। आगतौ लोकचरितं द्रष्टुं विप्रददर्शतुः ।। व्युपवीतं विकौपीनं चिन्तया विवशीकृतम् ।। ४८ ।। उवाच वचनं विष्णुः शृणु त्वं पद्मलोचने ।। तव व्रतकरो विप्रः कथं जातः सचिन्तकः ।। ४९ ।। तस्मादेनं कुरु क्षिप्रं लक्ष्मीवन्तं सुखान्वितम् ।। इति विष्णुवचः श्रुत्वा पद्मायासौ कटाक्षितः ।। ५० ।। बालाचित्तहरो जातस्तत्कालं मदनोपमः ।। ततः कामेन संविद्धास्तास्तिस्रो नागकन्यकाः ।। ५१ ।। विप्राय वचनं प्रोचुः शृणु विप्र तपोधन ।। यद्यस्माभिर्जितस्त्वञ्चेद्भर्तास्माकं वचाऽनुगः ।। ५२ ।। वयं त्वया निर्जिताश्चेद्यथेच्छसि तथा कुरु ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा तथा मेने स च द्विजः ।। ५३ ।। क्रीडनात्ताजिता : कन्या गान्धर्वेण विवाहिताः ।। तासां रत्नानि ताश्चापि गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ।। ५४ ।। प्राप्तं चण्डी तिरस्कारान्मयेदं भाग्यमुत्तमम् ।। तस्मात्संमानिता चण्डी सापि प्रीता बभूव ह ।। ५५ ।। चकार स्वामिनश्चाज्ञामित्थं लक्ष्मीव्रतं त्विदम् ।। बहुरात्रिव्यापिनी या सात्र पूर्णा विशिष्यते ।।५६ ।। [1]तत्राराध्य महालक्ष्मीमिन्द्रञ्चैरावतस्थितम् ।। उपवासं प्रकुर्वीत दीपान्दद्याच्च भक्तितः ।। ५७ ।। लक्षं तदर्धमयुतं सहस्रं शतमेव वा ।। घृतेन दीपयेद्दीपान् तिलतैलेन वा व्रती ।। ५८ ।। रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतपुरः सरम् ।। यथाविभवतोदेयाः पुरवीथिषु दीपकाः ।। ५९ ।। देवतायतने चैव आरामेषु गृहेषु च ।। ततः प्रभाते सुस्नातः सम्पूज्य च शतक्रतुम् ।।६०।। ब्राह्मणान्भोजयेत्क्षीरघृतशर्करपायसैः ।। वासोभिर्दक्षिणाभिश्च सवस्त्रान्पूजयेद्द्विजान् ।। ६१ ।। यथाशक्ति च दातव्या दीपाः स्वर्णविनिर्मिताः।। एवं विधिं विनिर्वर्त्य ततः पारणमाचरेत् ।। ६२ ।। व्रतस्यास्यप्रभावेणकल्पान्वै दीपसंख्यकान् ।। अप्सरोभिः परवृतः स्वर्गलोके महीयते ।। ६३ ।। इह चायुष्यमारोग्यं पुत्रपौत्रादिसम्पदः ।। एवं लक्ष्मीव्रतं कृत्वा न दरिद्रो न दुःखभाक् ।। कथां श्रुत्वा विधानेन व्रतस्यापि फलं लभेत् ।। ६४ ।। इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिककोजागरव्रतं सम्पूर्णम् ।।

कोजागरव्रत—आश्विन पूर्णिमाके दिन होता है, यदि दो हों तो इसमें आश्विन पूर्णमासी परा लेनी चाहिये । क्यों कि, दीपिकामें कहा है कि, सावित्रीव्रतको छोडकर अमा और पूर्णिमा परही लीजाती हैं । अश्वलायन शाखावालोंके यहां इस दिन आश्वयुजी कर्म होता है यह विकृतिकृत्य है इसमें पूर्वाह्ण व्यापिनी पूर्णिमालेनी चाहिये । क्यों कि, यह आश्वयुजी कर्म देवकर्म है । इस कोजागरव्रतमें रातके समय होनेवाला

---

१ इत आरम्य पौत्रादिसंपद इत्यन्तस्तथा प्रथमतः स्कान्दे इत्यारम्य परिकीर्तित इत्यन्तः सार्धश्लोकश्च व्रतार्कानुरोधी शेपग्रन्थस्तु सनत्कुमारोक्तकार्तिक माहात्म्यान्तर्गत इति ज्ञेयम् । तत्रापि व्रतोंके परिकीर्तित इत्यग्रे अयं ग्रन्थोऽस्तीति ज्ञेयम् ।

लक्ष्मीपूजन और पाशोंका खेल प्रधान है इस कारण इसमें रात्रि व्यापिनीही करनी चाहिये । (व्रतराजने सामान्य रूपसे कहदिया कि, रात्रिव्यापिनी होनी चाहिये; कैसी रात्रिव्यापिनी हो इसके विषयमें जयसिंह कल्पद्रुमने लिखा है कि, प्रदोष और निशीथ दोनोंमें व्याप्त रहनेवाली यानी प्रदोष (सायंकाल) तथा आधी-रातके समय मौजूद रहनेवाली हो । ये सब बातें रात्रि व्यापिनीके पेटमें आजाती हैं । धर्मसिन्धुमें लिखा है कि, यह निशीथव्यापिनी हो यदि पहिले दिन मिले तो उसी दिन यदि दूसरे दिन मिले तो दूसरे दिन करना चाहिये । यदि दोनोंही दिन निशीथव्यापिनी अथवा दोनोंही दिन न हो तो पराकाही ग्रहण होगा । ज० कु० द्रु०का० कहते हैं पहिले दिनकी निशीथव्याप्तिको छोडकर प्रदोषव्याप्तिकी पराही लेलीजाती है, यह कथित अक्षरोंकी व्यंजना लिखते हैं किन्तु धर्मसिन्धुकारने केचित्तु' कहकर इस पक्षसे अरुचि दिखाई है ।। जिन हेतुओंसे व्र० ने आश्विन पूर्णिमा परालेली है उन्हीं हेतुओंसे निर्णयसिन्धुकारने भी पराही ली है औरोनें पराके ग्रहणकी परिस्थितिका विचार करडाला है) स्कन्दपुराणमें लिखा हुआ है कि, एक सर्व श्रेष्ठ व्रत कोजागर है जिसको करके साधारण प्राणीभी उत्तम लोकोंको पाजाता है । आश्विनमासकी पूर्णिमाको कौमुदी कहते हैं । कथा---ऋषिगण बोले कि, कार्तिकके उपाङ्गव्रतोंको कहिये जिनके कियेसे कार्तिकका व्रत पूरा होजाता है ।।१।। वालखिल्य बोले कि, आश्विनके शुक्लपक्षमें जो पूर्णिमा हो उस रातमें जागरणके साथ लक्ष्मीजीका पूजन करना चाहिये ।।२।। नारियलके पानीको पीकर पासोंका खेल खेलना चाहिये, रातमें वर देनेके लिये लक्ष्मी ढूंढती है कि, कौन जागता है ।।३।। वह संसारमें मनुष्योंकी चेष्टा देखती हुई घूमती है कि, जो जग रहा हो उसे धन दूं ।।४।। दरिद्रसे डरनेवाले सभी लोग इस व्रतको करें, इस व्रतके प्रभावसे वलितभी ज्यादा धनी होगया था ।।५।। ऋषि बोले कि, कौन वलित, उसे कहांसे धन मिला ? तपोधनोवालखिल्यो ! इसे विस्तारके साथ कहो ।।६।। वालखिल्य बोले कि, कुशसंभव मगध देशका एक वलितनामका ब्राह्मण था, वह अनेक विद्याओंमें प्रवीण तथा सन्ध्यास्नानमें तत्पर रहता था ।।७।। वह मांगना तो मौत समझता था, जो घर आकर कोई देजाय तो लेले नहीं तो नहीं ।।८।। उसकी स्त्री महाचण्डी रोजही कलह करती रहती थी कि, मेरी बहिन तो सोने चांदीके आभूषणोंसे सिंगरी रहती है ।।९।। वह माला पहिनकर देवी जैसी दीखती है । पर मैं इस दुष्ट दरिद्रीके घर पटक दीगई ।।१०।। मुझे बडी शरम आती है कि, घरकोंको कैसे मुंह दिखाऊं, इस निर्धनके कुल और विद्या दोनोंकोही धिक्कार है ।। ११।। लोगोंमें ऐसा कहती फिरती थी, पर पतिके कहे को नहीं करती थी, उसने संकल्प किया कि, जो पति कहेंगे ।।१२।। जबतक धन न लावेंगे विपरीतही करूंगी । एकदिन बोली कि,हे पत्थरकीसी मोटी बुद्धिवाले पति देव ! राजाके घर जाकर चोरी करो ।।१३।। या तो बहुतसा धन चोर लाना, नहीं तो ठोकूंगी क्षणमात्रमें रोने लगजाती तथा कभी तो खातीही नहीं कभी खाने लगती तो बहुतसा खाजाती ।।१४।। कभी शिर ठोंकने लगती, इस तरह पतिको बडा क्लेश देती । मांगनेके दुखसे डरकर उस ब्राह्मणने उसके सभी स्त्रीचरित्र सहलिये ।।१५।। कुछभी नहीं कहा किन्तु जो मिलजाता था, उसीसे प्रसन्न रहता था, पर एकवार वह श्राद्धपक्षमें अत्यन्त उद्विग्न हुआ ।।१६।। कि, इस साल घरमें सब सामग्री है । परन्तु यह मेरी स्त्री कुछ न करेगी ।।१७।। इसी चिन्तासे उद्विग्न रहकर किसीसे नहीं बोला । इतनेमें एक मित्र आगया ।।१८।। वह बोला कि, हे वलित ! आज चित्तमें चिन्ता क्यों है ? यदि मुझे बता दे तो मैं अपनी बुद्धि बलसे तेरी चिन्ता हटा दूंगा ।।१९।।२०।। वह बोला कि, इस पितृपक्षमें मेरे पिताका श्राद्ध आगया है, घरमें सामानभी है, पर स्त्री उलटा करती है ।।२१।। मैं कैसे श्राद्ध करूं, मुझे यह चिन्ता है । गणपति बोला कि, धन्य है, तेरा कौनसा काम गटकेगा ? जब कि, तेरे घरमें ऐसी स्त्री है, तू उलटा कह वह सब कर डालेगी । वलितने कहा कि, बहुत अच्छा ऐसेही स्त्रीसे काम लूंगा सब उलटाही कहूंगा पीछे सायंकालके समय स्त्रीसे बोला ।।२२।।२३।। कि, हे चण्डि ! परसों पिताका श्राद्ध है, पर उन पापियोंने मेरे लिये कुछ धन तो छोडाही नहीं ।।२४।। इस कारण पाक जलदी तयार न करना । ए दुष्टे ! यदि करे भी तो शौचाचारसे विहीन ज्वारी ब्राह्मणोंको ।।२५।। निमंत्रण देना । हे भद्रे ! उत्तम ब्राह्मणोंको तो कभी मत न्योंतना । पतिके ये वचन सुनकर उसने बडी भारी तयारी की ।।२६।। अच्छे अच्छे ब्राह्मणोंको न्योता एवं समयपर पाक तयार किया जो उलटा उससे कहा गया उसने

वह सब सीधा किया; इस तरह श्राद्ध संपन्न होगया ।।२७।। पिण्डदान करके स्त्रीसे बोला कि, आप पिण्डोंको भूल गई इन्हें गंगाजीमें पटक आइये ।।२८।। बलिताकी स्त्रीने पिण्डोंको उठाकर शौचके कूपमें पटकदिया यह जान, वलितको वडा कष्ट हुआ ।।२९।। क्रोधमें आ घरसे निकलकर इस संकल्पसे चला कि, अब मैं लक्ष्मीके प्रसन्न होजानेपरही भोजन करूंगा ।।३०।। तबतक कन्द मूल खाकर वनमेंही रहूंगा, वह गहन निर्जन वनमें ।।३१।। अकेला वृक्षकी वल्कल पहिनकर धर्मनदीके किनारे तीस दिन रहा उसे इषकी पूर्णिमा आगई ।।३२।। वहां कालीयके वंशकी सुनयनी नाग कन्याएं उसी वनमें रहकर लक्ष्मीके लिए व्रत कर रहीं थीं ।।३३।। अच्छे कपडे पहिनकर चन्द्रमाकी तरह घरको सफेद बना रखा था ।।३४।। पञ्चामृत, रत्न, दर्पण, आच्छादनकर उन्होंने सावधानीके साथ लक्ष्मीकी पूजा की ।।३५।। पहिला पहरतो पूजामें बिता दिया फिर जूआ खेलना प्रारंभ किया किन्तु उन्हें चौथा खिलाडी न मिला ।।३६।। चारके बिना जूआ नहीं होता इसकारण सोच विचार कर चौथेको ढूंढने चल दीं ।।३७।। उन कन्याओंने नदीके किनारे वलित ब्राह्मणको देखा मुखकी आकृतिसे जान लिया कि, यह सज्जन है ।।३८।। उसे देख कन्याओंने पूछा कि, आप कौन हैं ? आवें लक्ष्मीको परम प्रसन्न करनेवाले जूएको खेलें ।।३९।। इस प्रकार उनके वचनोंको सुनकर वलित बोला कि, द्यूतसे लक्ष्मी क्षय और धर्मका नाश होता है ।।४०।। क्या मुग्धोंकी तरह बोलती है कि, लक्ष्मी प्रसन्न होती, कन्या बोली कि, बोलते पंडितोंकी तरह तथा कर्म आपके मूर्खोंकेसे हैं ।।४१।। इस मासकी पूर्णिमाके दिन जूएसे लक्ष्मी प्रसन्न होती जूआ खेलकर लक्ष्मीके तमासे देखना ।।४२।।ऐसा कहकर उसे वह खेलनेके लिए अपने मंदिर लेगई भक्ष्य आदि तथा नारियलका पानी देकर ।।४३।। लक्ष्मी प्रसन्न हो यह कहकर जूआ प्रारंभ किया, कन्याओंने रत्न लगाये ब्राह्मणने ।।४४।। दावपर अपनी कौपीन लगादी, उन्होंने उसे जीत लिया, ब्राह्मण गुस्सेमेंआकर सोचने लगा कि, क्याकरूं ।।४५।। अपना जनेऊ लगाकर पीछे अपने शरीरको लगा दूंगा ऐसा शोच जनेऊ लगा दिया ।।४६।। जब उन्होंने जनेऊ जीतलिया तो अपना शरीर लगा दिया । इसके बाद आधीरातके समय लक्ष्मी नारायण दोनों ।।४७।। संसारके चरित्रको देखने आये, उन्होंने ब्राह्मणको देखा कि, कौपीन और उपवीत विहीन है, चिन्ताने अपने वशमें कर रखा है ।।४८।। विष्णु भगवान् लक्ष्मीजीसे बोले कि, हे पद्मलोचने ! सुनो कि, आपका व्रत करनेवाला वह ब्राह्मण चिन्ता क्यों कर रहा है ।।४९।। इस कारण इसे धनी और सुखी बना दे, यह सुनकर लक्ष्मीजीने इसपर कृपा कटाक्ष किया ।।५०।। वह उसी समय कामके समान स्त्रियोंका मन हरण होगया, उसे देख कामसे बिंधी हुई वे नागकन्याएं बोली कि, ।।५१।। हे तपोधन विप्र ! सुन, हमने तुम्हें जीता है इसकारण तुम हमारे पति बनकर हमारे अनुकूल चलो ।।५२।। क्योंकि तूने भी हमें जीत लिया है जो चाहे सोकर उनके वचन ब्राह्मणने मान लिए ।।५३।। सब कन्याएं गन्धर्वविवाहसे व्याह लीं, उन्हें और उनके रत्नोंको लेकर घर पहुंचा ।।५४।। मैंने चण्डीके तिरस्कारसे यह उत्तम भाग्य पाया है, इस कारण चण्डीका सन्मान किया वह भी प्रसन्न होगई ।।५५।। उसने भी पतिकी आज्ञा पालन किया, यह लक्ष्मी व्रत ऐसा है । इस व्रतमें रातको अधिकसमयतक रहनेवाली पूर्णिमा लेनी चाहिये ।।५६।। इसमें ऐसा व्रत हाथीपर विराजमान हुई महालक्ष्मीकी आराधना करनी चाहिये, उपवास करे, भक्तिके साथ दीपक दे ।।५७।। लाख आधे लाख, अयुत सहस्र वा सौ घीके वा तिलके दीपक जलावे ।।५८।। नाच गानके साथ रातमें जागरण करे, जैसी शक्ति हो उसके अनुसार नगरकी गलियोंमें भी दीपक जलावे ।।५९।। देवालय बाग और घरमें दीपक जलायेजायें, प्रातःकाल स्नान करके इन्द्रकी पूजा हो ।।६०।। क्षीर घी सक्करसे ब्राह्मणोंको जिमावे, सहस्र ब्राह्मणोंको वस्त्र और दक्षिणासे पूजे ।।६१।। यथाशक्ति सोनेके दीपक दे इस प्रकार करके पारणा करे ।।६२।। जितने दीप दिये हैं उतनेही कल्प इस व्रतके प्रभावसे अप्सराओंसे घिरा हुआ स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।।६३।। इस जन्म और दूसरे जन्ममें आरोग्य तथा पुत्र पौत्रादि संपत्तियां होती है । इस लक्ष्मीव्रतके किएसे दरिद्र और दुःखी नहीं होता, विधानसे कथा सुनकर व्रतका भी फल पाजाता है ।।६४।। यह श्रीसनत्कुमार संहिताका कहा हुआ कोजागरव्रत पूआ हुआ ।।

त्रिपुरोत्सव

अथ कार्तिकपौर्णमास्यां त्रिपुरोत्सवः ।। स च प्रदोषव्यापिन्यां कार्यः ।। अथ कथा–वालखिल्या ऊचुः ।। कार्तिक्यां पौर्णिमायां तु कुर्यात्त्रिपुरमुत्सवम् ।। दीपो देयोऽवश्यमेव सायंकाले शिवालये ।। १ ।। त्रिपुरो नाम दैत्येन्द्रः प्रयागे तप आस्थितः ।। लक्षवर्षं ततस्तप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।। २ ।। तत्तपस्तेजसा दग्धुमारब्धे भुवनत्रये ।। नानादेवाङ्गना देवैः प्रेषितास्तं विमोहितुम् ।। ३ ।। न तासां वशगः सोऽभूद्धर्षणैश्चापि धर्षितः ।। न क्रोधमोहलोभानां वशो दैत्योऽभ्यजायत ।। ४ ।। वरं दातुं ययौ ब्रह्मा नारदादिभिरन्वितः ।। ब्रह्मोवाच ।। वरं वरय भद्रं ते सन्तुष्टोऽहं पितामहः ।। ५ ।। तपसस्तु फले सिद्धे कःक्लेशं कुरुते जनः ।। त्रिपुर उवाच ।। अमरं कुरु मां ब्रह्मन्करोमि ह्यन्यथा तपः ।। ६ ।। दातुं शक्तोऽसि चेद्ब्रह्मन्नन्यथा गच्छ सत्वरम् ।। ब्रह्मोवाच।।मयापि बाल मर्तव्यमितरेषां तु का कथा ।। ७ ।। अवश्यं देहिनां मृत्युः संभाव्यं याचयस्व मे ।। त्रिपुर उवाच ।। न मे मृत्युर्देवताभ्यो मनुष्येभ्यो निशाचरात् ।। ८ ।। न स्त्रीभ्यो न च रोगेण देह्येनं वरमुत्तमम् ।। ब्रह्मापि च तथेत्युक्त्वा सत्यलोकं जगाम सः ।। ९ ।। एनं लब्धं वरं ज्ञात्वा नानादैत्याः समाययुः ।। तान्दैत्यानागतान्दृष्ट्वा आज्ञापयत दानवान्।।१०।।अस्मद्विरोधिनो देवा हन्त[1]व्याः सर्व एव हि।।नो चेद्यानि च रत्नानि देवतानां समीपतः ।। ११ ।। गृहीत्वा तानि सर्वाणि कुर्वन्तूपायनं मम ।। इत्याज्ञां तस्य शिरसि कृत्वा ते सर्वराक्षसाः ।। १२ ।। देवान्नागांश्च यक्षांश्च धृत्वास्याग्रे न्यवेदयन् ।। प्रणम्य सर्वदेवास्ते त्रिपुरं च व्यजिज्ञपन् ।। १३ ।। गृह्यतां दैत्यराजेन्द्र यदस्माकं भविष्यति ।। वयं कृत्वा तु ते सेवां जीविष्यामो यथा तथा ।। १४ ।। इति श्रुत्वा वचस्तेषामधिकाराच्च्युताः कृताः ।। तेषां स्त्रियः समानीय चक्रे वश्याः सहस्रशः ।। १५ ।। एवं भास्करमुत्सृज्य सर्वे देवास्तदाज्ञया ।। चक्रुर्यथोक्तं दैत्यस्य द्वारस्थाः सर्व एव हि ।। १६ ।। सूर्यस्य निकटेऽप्युक्ते मद्द्वारे स्थीयतां सदा ।। तेनापि च तथेत्युक्त्वा तद्द्वारे संस्थितं क्षणम् ।। १७ ।। ददाह भुवनं सर्वं स्वकरैः क्षणमात्रतः ।। आदिष्टश्च ततस्तेन स्वेच्छया गम्यतामिति ।। १८ ।। ततो गतो ऽसौ भगवान्भुवनानि विभावयन् ।। चक्रुर्देवास्तदाज्ञां च द्वारे तिष्ठन्ति वारिताः ।। १९ ।। कदाचित्तस्य गेहे तु नारदः समुपाययौ ।। तेनापि पूजितो भक्त्या पप्रच्छ स्वं पराक्रमम् ।। २० ।। नारद उवाच ।। ईदृशो जयघोषस्तु केनापि न कृतो भुवि ।। अस्मिन्देशे तु दैत्येन्द्र किमिदानीं निगद्यताम् ।। २१ ।। त्रिपुर उवाच ।। सर्वस्थानेषु मे कीर्तिर्न गता किं नु नारद ।। मया प्रस्थापिता

---

[1] धर्तव्या इत्यपि पाठः।

दैत्याः सर्व एव इतस्ततः ।। २२ ।। नारद उवाच ।। यो यत्र च गतो दैत्यो जातस्तत्र विभुः स हि ।। तव नाम न गृह्णाति वक्ति च स्वपराक्रमम् ।। २३ ।। इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं सद्य एव हि दारुणः ।। क्रोधस्तस्य महाञ्जातः किं कर्तव्यं मयाधुना ।। २४ ।। विश्वकर्माणमाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ।। शीघ्रं कुरु त्रिधातूनां विश्वकर्मन् पुरत्रयम् ।। २५ ।। विमानतुल्यं यत्रेच्छा तत्र तच्च गमिष्यति ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा त्वष्टापि च तथाकरोत् ।। २६ ।। रूपत्रयं समास्थाय त्रिपुरेषु समाश्रितः ।। नारदस्य तु वाक्येन दैत्या बन्दीकृतास्तदा ।। २७ ।। पुरेणैकेन पाताले भ्रमते त्रिपुरासुरः ।। स्वर्गे चापि पुरैकेन धरण्याव्यटते पुरा ।।२८।। कांश्चित्सन्ताडयत्येवं संमारयति कानपि ।। ददाति केषां स्वामित्वं स्वेच्छाचारी महाबलः ।। २९ ।। तेनेत्थं पञ्चलक्षाणि सर्वलोका उपद्रुताः ।। तदा देवान्समागम्य नारदो वाक्यमब्रवीत् ।। ३० ।। नारद उवाच ।। पराक्रमं तु ते धिग्भो देवेन्द्र क्व गतास्ति धीः ।। विचारयन्तु भो देवा वधाय त्रिपुरस्य च ।। ३१ ।। इत्थं मुनिवचः श्रुत्वा सलज्जोऽभूदधोमुखः ।। पुनस्तं नारदः प्राह ब्रह्माणं शरणं व्रज ।। ३२ ।। तत उत्थाय देवेन्द्रो गूढो देवगणैः सह ।। नारदेन समायुक्तः सत्यलोकं जगाम स ।। ३३ ।। तत्रापश्यत्स धातारमुवाच करुणं वचः ।। इन्द्र उवाच ।। धातरस्मद्गतिर्नास्ति हननीयास्त्वया वयम् ।। ३४ ।। नासाग्रसंथिताः प्राणास्त्रिपुरस्य तु शासनात् ।। इतीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा सेन्द्रो मुनीश्वरैः ।। ३५ ।। युक्तो वैकुण्ठमगमद्यत्रास्ते मधुसूदनः ।। तत्र गत्वा महाविष्णु प्रणिपत्य स्थिताः सुराः ।। ३६ ।। अनुगृहीता दृक्पातात्तं ब्रह्मा वाक्यमब्रवीत् ।। ब्रह्मोवाच ।। भगवन्देवदेवेश देवापत्तिविनाशन ।। ३७ ।। त्रिपुरासुरनिर्दग्धान् किं देवांस्त्वमुपेक्षसे ।। विष्णुरुवाच ।। त्वयैव नाशितं ब्रह्मन् दत्ता नानाविधा वराः ।। ३८ ।। देवादिभ्यः कथं तस्य मृत्युः सम्भाव्यतेऽधुना ।। न भासते विचारो मे तस्य मृत्योः सुरेश्वराः ।। ३९ ।। अस्ति कश्चिद्यद्युपायः कथं वै करवाण्यहम् ।। इति श्रुत्वा वचो विष्णोः सर्वे बुद्धया तु कुण्ठिताः ।। ४० ।। यदा नोचुर्वचः किञ्चिन्नारदो वाक्यमब्रवीत् ।। नारद उवाच ।। देवाः कुरुत मा खेदमुपायः कथ्यते मया ।। ४१ ।। एको दृष्टः सृष्टिमध्ये न देवो न च मानुषः ।। न राक्षसो नैव दैत्यो न भूतो न पिशाचकः ।। ४२ ।। नासौ पुमान्न च स्त्री स न जडो न च पण्डितः ।। नास्य तातो न वा माता न भ्राता भगिनी न च ।। ४३ ।। न चैव यस्य सन्तानं स एनं मारयिष्यति ।। ब्रह्मोवाच ।। एतादृशः क्व दृष्टोऽसौ सत्यं वाऽलीकमेव वा ।। ४४ ।। इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा प्रोवाच जगदीश्वरः ।। विष्णुरुवाच ।। अहो त्रैलोक्यकर्ता यो महादेवो वृषध्वजः ।। ४५ ।। ब्रह्मन्कथं विस्मृतोऽसौ स नः कार्यं करिष्यति ।। इत्युक्त्वा सर्व एवैते शंकरंशरणं

ययुः ।। ४६ ।। देवदेव महादेव दुष्टदैत्यनिबर्हण ।।त्वामेव शरणं प्राप्तास्त्रिपुरेण प्रपीडिताः ।।४७।। शिव उवाच ।। ब्रह्मंस्त्वया वरो दत्तो ह्युन्मत्तो सोभवत्ततः ।। प्रददासि वरं कस्मात्पुनर्मारयसे कुतः ।। ४८ ।। मदीयं नाशितं नैव कस्माद्वध्यो महासुरः ।। इति रुद्रवचः श्रुत्वा हताशास्ते सुरास्तदा ।। ४९ ।। विषण्णांस्तान् सुरान् दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।। विष्णुरुवाच ।। त्वया प्रतिज्ञा लोकानां पालनाय सदाशिव ।। ५० ।। कृतातस्त्वां समायाताः शरणं सर्वदेवताः ।। मया नानाविधं दुःखं क्लियते तु सदाशिव ।। ५१ ।। एतद्दुःखं मया शक्यमपनेतुं यतो न हि ।। अतस्त्वां याचयाम्यद्य देवान्बन्धाद्विमोचय ।। ५२ ।। शिव उवाच ।। तव वाक्यं करिष्यामि सामग्री नास्ति मे हरे ।। ममापराधरहितं हनिष्यामि न दानवम् ।। ५३ ।। विष्णुरुवाच ।। सामग्रीं हि करिष्यामि संग्रामार्थं सदाशिव ।। करिष्यति कथं दैत्यः शम्भोरन्यायमेव सः ।। ५४ ।। इति विष्णुवचः श्रुत्वा हा कष्टमिति चाब्रुवन् ।। अत्रागतांश्च सोस्मान्हि शृणुयात्रिपुरासुरः ।। ५५ ।। न विलम्बं मृतौ कुर्यात्किमिदानीं विधीयताम् ।। सुरान्म्लानमुखकृन् दृष्ट्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ।। ५६ ।। नारद उवाच ।।सामग्री क्रियतां शीघ्रमायाति त्रिपुरा-।। सुरः ।। विष्णुं पलायितं ज्ञात्वा क्व रुद्रोऽस्तीति लोकयन् ।। ५७ ।। शिव उवाच ।। मया न नाशितं तस्य यदि यास्यति मत्स्थले ।। योद्धुं तदावश्यमेव मया मार्यः सुदुर्मदः ।। ५८ ।। इति रुद्रवचः श्रुत्वा समाश्वस्तास्तु देवतः ।। सामग्रीं विष्णुरकरोद्युद्धार्थे स तु धूर्जटेः ।। ५९ ।। बाणः स्वयं बभूवास्य वह्निः शल्यं बभूव ह ।। वायुस्तु पुंखरूपोऽभून्मैनाकश्च धनुस्ततः ।। ६० ।। स्यन्दनो धरणी जाता वेदा जाता हयोत्तमाः ।। विधाता सारथिर्जातः पताका च दिवाकरः ।। ६१ ।। आतपत्रं च चन्द्रोऽभूद्गणेशाद्याः पदातयः ।। ततो वेगात्समुत्पत्य नारदस्त्रिपुरं ययौ ।। ६२ ।। दृष्ट्वा नारदमायान्तं सत्कारैरर्चयच्च तम् ।। मुने पुराणि मे पश्य ह्यजेयानि सुरासुरैः ।। ६३ ।। त्रैलोक्ये चाधुना जातं त्वत्कृपातो यशो मम ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा ललाटं कुट्टयन्मुनिः ।। ६४ ।। तूष्णीमासीद्धसित्वैतदवलोक्यासुरोऽब्रवीत् ।। त्रिपुर उवाच ।। किमर्थमीदृशी चेष्टा मुने चाद्य कृता त्वया ।। ६५ ।। मद्भाग्यसमभाग्य श्चेदस्ति कश्चिन्निगद्यताम् ।। नारद उवाच ।। कैलासे तु गतश्चाहं दैत्येन्द्र शृणु वैभवम् ।। ६६ ।। महेश्वरस्य किं वाच्यं तल्लक्षांशोपि न त्वयि ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्तु विसर्जितः ।। ६७ ।। गृहीत्वा दैत्यसंघान्सः कैलासं त्रिपुरो ययौ ।। तत्र देवैर्महद्युद्धं जातं तस्य दिनत्रयम् ।। ६८ ।। पश्चाद्धरेण निहतस्त्रिपुरश्चैकबाणतः ।। कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तु सर्वे देवाः प्रतुष्टुवुः ।। ६९ ।। तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च ।। सर्वथैव प्रदेयोऽस्यां दीपस्तु हरतुष्टये

।। ७० ।। विंशतिसप्तशतकर्सहिता दीपवर्तयः ।। ददद्दीपं पौर्णमास्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ७१ ।। पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रैपुरोत्सवः ।। दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ।। ७२ ।। कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।। दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः ।। ७३ ।। कार्यस्तस्मात्पौर्णिमायां त्रिपुरस्य महोत्सवः ।। कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् ।। ७४ ।। सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ।। कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ।। शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ।। ७५ ।। इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिक पौर्णमास्यां त्रिपुरोत्सवदीपदानं संपूर्णम् ।।

त्रिपुरोत्सव—कार्तिक पौर्णिमासीके दिन होता है, इसमें पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये क्योंकि इस उत्सवका विधान सायंकालके समयमें है और कार्य्यकालव्यापिनी तिथि ग्रहण करनेका सिद्धान्त है। कथा—वालखिल्य बोले कि, कार्तिककी पूर्णिमाके दिन त्रिपुरोत्वस करे, सायंकालमें शिवजीके मन्दिरमें दीपक जोडे ।।१।। त्रिपुरनामक दैत्य प्रयागमें तप करता था, उसने एक लाख वर्ष तप किया जिससे तीनों लोक तपकर उसके तेजसे जलने लगे, उसे मोहनके लिये देवोंने अनेको देवांगनाएं भेजीं ।।२।।३।। न उसके वशमें हुआ एवं न डरायेसे डरा, न क्रोध मोह और लोभके ही वशमें आया ।।४।। नारदादिकोंके साथ ब्रह्माजी उसे वर देने पहुंचे, बोले कि, में ब्रह्मा तेरे तपसे प्रसन्न होगयाहूं वर मांग ।।५।। तपके फलकी सिद्धि मिलजानेपर कौन क्लेश करता है, वह सुन त्रिपुर बोला कि, मुझे अमर कर दीजिये नहीं तो फिर भी तप करना शुरू करता हूं ।।६।। यदि देनेकी शक्ति है तो यह वर दो नहीं तो जल्दी ही यहांसे चले जाओ। ब्रह्माजी बोले कि, हे बालक ! एक दिन में भी मर जाऊँगा दूसरोंकी तो बात ही क्या है।।७।। शरीरधारी सब एक न एक दिन अवश्य मरते हैं, उचित वर मांग, त्रिपुर बोला कि, मेरी मौत देवता, मनुष्य, निशाचर ।।८।। स्त्री और रोग किसीसे भी न हो, ऐसा ही होगा; यह वर देकर ब्रह्माजी सत्यलोकको चले गये ।।९।। जब दैत्योंको इस बातका पता लगा तो सब इसके पास आगये, उनको त्रिपुरने आज्ञा दी ।।१०।। कि, हमारे विरोधी सब देवगण मार दियेजायें ,यदि ऐसा न हो तो देवोंके पास जो रत्न हो ।।११।। उन्हें उनसे छीनकर मेरी भेंटकर दो, उसकी आज्ञा मान वे राक्षस ।।१२।। देव, नाग और यक्षोंको अगाडी धरकर त्रिपुरके पास लेआये, देव सब हाथ जोडकर बोले कि ।।१३।। हे राजन् ! जो हमारे पास है उसे आप लेलें, हम तो आपकी सेवा करके जिन्दे रहे आवेंगे ।।१४।। उनके इन वचनोंको सुनकर वे सब अधिकारसे च्युत कर दिये, एवं उनकी स्त्रियोंको लेकर उनकी हजारोंही वेश्या बनाडाली सूर्य्यको छोड सब देव द्वारपर बैठे उसका हुक्म बजाया करते थे ।।१५।।१६।। सूर्यसेभी बोला कि, मेरे द्वारपर बैठो, सूर्य्यनेभी जी हां ? कहा तथा वहभी द्वारपर खडा हुआ ।।१७।। क्षणमात्रमें संसारमें हाहाकार मच गया, यह देख त्रिपुरने कहदिया कि, आप यथेष्ट विचरें ।।१८।। भगवान् सूर्य्यदेव तो भुवनोंको प्रकाशित करते हुए विचरने लगे पर और सब देव द्वारपर खडे होकर उसका हुक्म बजाने लगे ।।१९।। एक दिन वहां नारदजी चले आये, उसने उनका भक्तिपूर्वक पूजन करके अपना पराक्रम पूछा ।।२०।। नारद बोले कि, ऐसा जयजयकार तो इस देशमें किसीनेभी नहीं किया है दैत्येन्द्र ! क्या कहूं ।।२१।। यह सुन त्रिपुर बोला कि, हे नारद ! मेरी कीर्ति सब जगह नहीं पहुँची, मैंने दैत्य चारों ओर दौडाए हैं ।।२२।। नारद बोले कि, जो दैत्य जहा गया वह वहाँ विभु बनकर बैठ गया, आपका तो नामभी नहीं लेता केवल अपना पराक्रम बखान करता है ।।२३।। मुनिके वचन सुन उसे बडा भारी क्रोध आगया यह मनमें सोचने लगा कि, मैं क्या करूं ।।२४।। विश्वकर्माको बुलाकर उससे कहा कि, हे विश्वकर्मन् ! शीघ्रही तीन धातुओंका पुरत्रय बना ।।२५।। वह विमानके समान जहां इच्छा हो वहां

चला जाय, त्वष्टाने वैसेही तीन पुर बनादिये ।।२६।। वह तीन रूप धर कर तीनों पुरोंमें रहने लगा, नारदके वचनके अनुसार उसने सब दैत्योंको कैद करदिया ।।२७।। वह एक पुरसे पाताल, एकसे स्वर्ग तथा एकसे भूमिपर विचरता था ।।२८।। वह स्वेच्छाचारी महाबली किसीको डराता धमकाता तो किसीको मारता एवं किसीको राज दे देता था ।।२९।। इस प्रक र पाँच लाख वर्ष उसने सब लोकोंको तबाह किया, उस समय देवोंके पास आ नारदजीने कहा ।।३०।। कि, तुम्हारे पराक्रमको धिक्कार है तुम्हारी बुद्धि कहां गई ? अरे देवो ! त्रिपुरके मार डालनेकी सोचो ।।३१।। इन्द्र यह सुन लज्जाके मारे नीचा मुखकर बैठ गया; तब फिर नारद बोले कि, ब्रह्माजीकी शरण जाओ ।।३२।। इन्द्र उठ चुपचाप देवगणोंके साथ नारदजीको साथ ले सत्यलोक चल दिया ।।३३।। वहां ब्रह्माको देखतेही करुण शब्दोंमें बोला कि, हे ब्रह्मन् ! अब हमारी कोई गति नहीं है, आप हमें मारडालिये ।।३४।। त्रिपुरके शासनसे नाकके आगे जान अगाई है, इन्द्रके वचन सुन ब्रह्माजी इन्द्र और मुनीश्वरोंको साथ ले ।।३५।। वैकुण्ठ पहुंचे जहां कि, मधुसूदन विराजा करते हैं, वहां पहुंच सब देवोंने भगवान्को दण्डवत्की भगवान्ने कृपादृष्टिसे उन्हें देखा, पीछे ब्रह्माजी बोले कि, हे भगवन् ! आप देवदेवोंके ईश हो, आपही हमारी विपत्तियोंके नाशक हो ।।३६-३७।। त्रिपुरके जलाये हुए देवताओंकी आप क्या उपेक्षा करते हैं ? विष्णुभगवान् बोले कि, तुमनेही देवोंका सत्यानाश किया है, अनेक तरहके वर दे डालते हो ।।३८।। वह देवोंसे कैसे मर कसता है, मेरे मनमें उसकी मौतका विचार नहीं आता ।।३९।। कोई उपाय हो तो, कैसे करूं, विष्णु भगवान्के वचन सुनकर सबकी बुद्धि कुण्ठित होगई ।।४०।। जब वे कुछ न बोल सके तो नारदबाबा बोले कि, मैं उपाय बताता हूं दुखी न हों उसे करें।।४१।। मैंने सृष्टिके बीच एक ऐसा देखा है जो न तो देव है और न मनुष्यही है । न वह राक्षस, दैत्य, भूत, पिशाच ।।४२।। न स्त्री, पुरुष, जड पंडित ही है, न उसके तात, मात, भगिनी और भ्राता ही हैं ।।४३।। न उसके सन्तान ही है, यहही इसे मार देगा । ब्रह्माजी बोल उठे कि, कोई ऐसा है यह सत्य कहते हो वा झूठ कह रहे हो ।।४४।। ब्रह्माके वचन सुनकर भगवान् बोले कि, वह तीनोंलोकोंका कर्ता वृषध्वज महादेव है ।।४५।। हे ब्रह्मन् ! उसे कैसे भूल गये, वह तुम्हारा कार्य करेगा । ऐसा कहनेपर वे सब शिवजीकी शरण पहुंचे ।।४६।। हे देवदेव ! हे महादेव ! हे दुष्टदैत्योंके मारनेवाले ! हम त्रिपुरके सताये हुए आपकी शरण आये हैं ।।४७।। शिवजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आपने उसे वर दे दिया इससे वह उन्मत्त होगया है, पहिले तो वर दे देते हो, फिर मारनेकी चिन्ता करते हो सो क्यों ? ।।४८।। क्या मेरा उसने बिगाडा है जो मैं उसे मारूँ ? रुद्रके इन वचनोंको सुनकर सब देव हताश होगये ।।४९।। उन सुरोंको दुखी देख विष्णु बोले कि, हे सदाशिव ! आपने लोकोंके पालनेकी प्रतिज्ञा ।।५०।। की थी । इस कारण ये सब देवगण आपकी शरण आये हैं, हे सदाशिव ! मैं इनके अनेक तहरके दुखोंको मिटाता रहता हूं ।।५१।। पर यह दुख मेरे मिटानेका नहीं है । इस कारण आपकी याचना करताहूं कि, देवोंको बन्दिसे छुटा दीजिए ।।५२।। शिव बोले कि, मैं आपकी बातको तो पूरी करूं पर मेरे पास सामग्री नहीं है । दूसरे मेरे निरपराधको मैं मारूं भी कैसे ? ।।५३।। विष्णु भगवान् बोले कि, मैं सब सामग्री इकट्ठी कर दूंगा वह दैत्य इसी तरह कैसे अन्याय करेगा ।।५४।। विष्णुके वचन सुनकर देव बोले कि, बडे कष्टका समय है । यदि त्रिपुरासुरको हमारा पता होगया तो ।।५५।। वह हमारे मारनेमें देर न करेगा, हम क्या करें, सूखे मुख हुए देवताओंके ये वचन सुनकर नारदजी बोले ।।५६।। कि, जल्दी तयारी कीजिए त्रिपुरासुर आ रहा है विष्णुको भगा देख कहेगा कि, रुद्र कहां हैं ? ।।५७।। शिव बोले कि, मैंने उसका क्या बिगाडा है ? जो मेरे यहां आयेगा और मुझसे युद्ध करेगा । यदि वह ऐसा करेगा, तो मैं युद्ध करके उसे अवश्य मार डालूंगा ।।५८।। रुद्रके वचन सुनकर विष्णुने देवोंको आश्वासन देकर महादेवके लिए युद्धका सामान करदिया ।।५९।। बाण स्वयं बने तथा अग्नि, नोक वायु पुंख एवं मैनाक धनुष बना, रथ भूमि एवं वेद घोडे बन गये, विधाता सारथि और सूर्य पताका, छत्र चन्द्र एवम् गणेश आदि पबचर बने । अनंतर नारद वहांसे चलकर त्रिपुरके पास पहुंचे ।।६०—६२।। नारदजीका सत्कार कर पूछने लगा कि, हे मुनिराज ! मेरे पुरोंको देखिए इन्हें सुर असुर कोई नहीं जीत सकता ।।६३।। आपकी कृपासे अब मेरा तीनों लोकोंमें यश होगया है । नारद इतना सुनतेही शिर ठोकने लगे ।।६४।। पीछे चुप होगये यह देख त्रिपुर

बोला कि, आपने इस समय ऐसा क्यों किया ? ।।६५।। यदि मेरे भाग्यके बराबर किसीका भाग्य हो तो बतादीजिए, नारद बोले कि, हे दैत्येन्द्र ! मैं कैलास पहुंचा ,वहांका वैभव सुन ।।६६।। मैं महादेवके ऐश्वर्यको क्या कहूं ? उसका सौवां क्या लाखवां भाग भी तेरा भाग्योदय नहीं है, नारदके वचन सुन उन्हें तो विदा किया।।६७।।आप असुरोंकी सेना लेकर कैलासपर चढ दिया,तीनदिनतक देवोंके साथ घोर युद्ध किया।।६८।। पीछे शिवजीने एकही बाणसे त्रिपुरको मारदिया, कार्तिककी पूर्णमासीके दिन जब देवोंने शिवकी प्रार्थना कीथी ।।६९।। उसी दिन देवोंने शिवके लिए दीपक दिये थे । इस कारण इस दिन शिवजीकी प्रसन्नताके लिए अवश्य दीपदान करे ।।७०।। जो शिवजीके लिए सातसौ बीस बत्तीका दीपक देता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ।।७१।। पूर्णमासीके सामके समय त्रिपुरोत्सव करना चाहिए । देव मंदिरपर इस मन्त्रसे दीपें दे ।।७२।। कीट, पतंग, मशक,वृक्ष, जलचर, थलचर ये सब दीपकको देखकर फिर दुबारा जन्म नहीं लेते तथा श्वपच भी ब्राह्मण बन जाते हैं ।।७३।। इस कारण पूर्णिमाको त्रिपुरका उत्सव करना चाहिये । स्वामि-कार्तिकके दर्शन–जो कार्तिककी कृत्तिकाके योगमें करता है ।।७४।। वह सात जन्मतक वेदका जाननेवाला धनाढच ब्राह्मण बन जाता है । वृषोत्सर्ग – जो कार्तिकमें करता है, नक्त व्रत करता है । वह शिवपद पाता है क्योंकि ,यह शिवव्रत है ।।७५।। यह श्री सनत्कुमारसंहिताका कहा हुआ पौर्णिमासीके दिन त्रिपुरोत्सव और दीपदान पूरा हुआ ।।

अथ कार्तिकमासोद्यापनम्

वालखिल्या ऊचुः ।। अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनमिहोच्यते ।। कृत उद्यापने साङ्गं व्रतं भवति निश्चितम् ।। ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ।। तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम् ।। तुलसीमूलदेशे तु सर्वतोभद्रमेव च ।। तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।। पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।। ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ।। त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या विनिमन्त्रयेत् ।। अतोदेवा इति द्वाभ्यां होमयेत्तिलपायसम् ।। ततो गां कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ।। एवमुद्यापनं कृत्वा सम्यग्व्रतफलं लभेत् ।। [1]परा तु पौर्णमास्यत्र यात्रायां पुष्करस्य च ।। व[2]रान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः।। तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्य-फलं स्मृतम् ।। कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु विष्णुं नीराजयेत्सदा ।। प्रदोषसमये राजन्न स दारिद्र्यमाप्नुयात् ।। कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् ।। सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ।। एतानि कार्तिक मासि नरः कुर्याद्व्रतानि च ।। इह लोके शरीरं स्वं क्लेशयित्वा फलं लभेत् ।। न कार्तिकसमो मासो विष्णुसंतु-ष्टिकारकः ।। स्वल्पक्लेशैर्विष्णुलोकप्राप्तिकृन्नापरो भवेत् ।। सनत्कुमार उवाच ।। इत्थं तैर्नैमिषारण्ये वालखिल्यै[3]रुदाहृतम् ।। भास्करस्य मुखाच्छ्रुत्वा ततस्नान-भिवाद्य च ।। ययुः सूर्यस्य निकटे गायन्तो भास्करस्तुतिम् ।। इत्येतत्सर्वमाख्यातं कार्तिकस्य व्रतोत्तमम् ।। यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।। इति-सनत्कुमारोक्तकार्तिकमाहा० कार्तिकमासोद्यापनम् ।।

१ इहलोके पुष्करस्ययात्रायांपौर्णमासीपराश्रेष्ठा । २ पौर्णमास्यै इत्यर्थः ।३ ऋषीन्प्रतीतिशेषः ।

कार्तिकमासका उद्यापन--बालखिल्य बोले कि, अब कार्तिकमासके व्रतियोंको उद्यापन कहते हैं उद्यापन करलेनेसे व्रत पूरा होजाता है। कार्तिक शुक्ला चौथको उद्यापन करे, तुलसीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनावे, उसके मूलदेशमें एक सर्वतोभद्र लिखें, उसके ऊपर विधिपूर्वक कलश स्थापित करे, उसमें पंचरत्न डाले, उसपर सोनेके भगवान्‌को गुरुकी आज्ञा लेकर पूजे, मांगलिकगाने बजानेके साथ रातको जागरण करे, पूर्णमासीके दिन सपत्नीक तीस या एक ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार न्योता दे। "अतोदेवा, इंदविष्णु" इन दो मंत्रोंसे तिल खीरका हवन करे, कपिलागऊ दे, गुरुको विधिपूर्वक पूजे, इस प्रकार उद्यापन करके व्रतका फल पाजाता है। इस पूर्णमासीमें पुष्करकी यात्रा सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि, इस पूर्णिमाको वर देकर भगवान् मत्स्य बनगये थे, उसमें दिया दान हवन जप सब अक्षय होजाता है, कार्तिककी पूर्णमासी दिन प्रदोष कालमें विष्णुका नीराजन करे, हे राजन् ! वह दरिद्री नहीं होता जो कार्तिकमें कृत्तिकानक्षत्रमें स्वामिकार्तिकके दर्शन करलेता है वह वेदवेदान्तके जाननेवाला धनी ब्राह्मण बन जाता है। कार्तिकके महीनामें इन व्रतोंको करे, इस लोकमें अपने शरीरको क्लेश देकर उत्तम फलका भागी होजाता है। विष्णु भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेवाला कार्तिकके बराबर कोई भी मास नहीं है, क्योंकि थोडे क्लेशसे विष्णुलोककी प्राप्ति कोई दूसरा नहीं करासकता। सनत्कुमार बोले कि, इस प्रकार नैमिषारण्यमें बालखिल्योंने सूर्यके मुखसे सुनकर ऋषियोंके लिये वह व्रत कहा ऋषिलोक बालखिल्योंका अभिवादन करके सूर्यकी स्तुतियाँ गातेहुए सूर्यके पास चले गये। यह सब कार्तिकका उत्तम व्रत कह दियागया है, जिसके कियेसे उसी समय मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। यह श्रीसनत्कुमारसंहिताका कहा हुआ कार्तिक माहात्म्यमें कार्तिक मासका उद्यापन पूरा हुआ ॥

अथ द्वात्रिंशीपौर्णिमाव्रतम्

एतच्च लोके बत्तिशीपौर्णिमेत्युच्यते ॥ मार्गशीर्षसिते पक्षे पौर्णमास्यां शुचिव्रता ॥ प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा परिधायाम्बरं सती ॥ पूजासम्भारमासाद्य पिष्टदीपं विधाय च ॥ पुत्रसौभाग्यप्राप्त्यर्थं मध्याह्ने पूजयेच्छिवम् ॥ सा च मार्गशीर्षपौर्णिमा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ तिथ्यादि संकीर्त्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे च अखण्ड सौभाग्यपुत्रपौत्रप्राप्त्यर्थं द्वात्रिंशीपौर्णिमा व्रतं करिष्ये॥ तत्र निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं कलशाराधनं च करिष्ये ॥ पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च जटाखण्डेन्दुमण्डितम् ॥ व्यालयज्ञोपवीतं च भक्तानां वरदं शिवम् ॥ ध्यायामि ॥ आगच्छ भगवञ्छम्भो सर्वालंकारभूषित ॥ यावद्व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधौ भव ॥ आवाहनम् ॥ सिंहासनं स्वर्णपीठं नानारत्नोपशोभितम् ॥ अनेकशक्तिसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥ आसनम् ॥ त्रिपुरान्तक देवेश सृष्टिसंहारकारक ॥ पाद्यं गृहाण देवेश मया दत्तं हि भक्तितः॥ पाद्यम्॥ चन्दनाक्षतसंयुक्तं नानापुष्पसमन्वितम् ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तमीश्वर प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्घ्यम् ॥ तोयमेतत्सुखस्पर्शं कर्पूरेण समन्वितम् ॥ शम्भो शंकर सर्वेश गृहाणाचमनीयकम् ॥ आचमनीयम् ॥ पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करया युतम् ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं करिष्ये भक्तवत्सल ॥ पञ्चामृतस्नानम् ॥ मयानीतानि तोयानि गङ्गादीनां च यानि वै ॥ स्नानं तैः कुरु देवेश मम शान्तिर्विधीयताम् ॥ स्नानम् ॥ श्वेताम्बरयुगं देव सर्वकामार्थसिद्धये ॥ अम्बिकाकान्त देवेश मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥ वस्त्रम् ॥

कुंकुमाक्तं सुरश्रेष्ठ क्षौमसूत्रविनिर्मितम् ।। उपवीतं मया देव भक्त्या दत्तं प्रगृह्यताम् ।। उपवीतम् ।। काश्मीरजेन संयुक्तं कर्पूरागुरुमिश्रितम् ।। कस्तूरिकासमायुक्तं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। चन्दनम् ।। प्रक्षालिताश्च धौताश्च तण्डुलाश्च शिवप्रियाः ।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण जगदीश्वर ।। अक्षतान् ।। कमलैर्मालतीपुष्पैश्चम्पकैर्जातिसम्भवैः ।। बिल्वपत्रैर्महादेव करिष्ये तव पूजनम् ।। पुष्पाणि ।। दशाङ्गो गुग्गुलूद्भूतः सुगन्धिश्च मनोहरः ।। आघ्रेयतामयं धूपो देवदेव दयानिधे ।। धूपम् ।। कार्पासवर्तिभिर्युक्तं घृताक्तं तिमिरापहम् ।। भक्त्या समाहृतं दीपं गृहाण करुणानिधे ।। दीपम् ।। नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्ति मे ह्यचलां कुरु ।। ईप्सितं च वरं देहि परत्र च परां गतिम् ।। नैवेद्यम् ।। नैवेद्यमध्ये पानीयम् ।। उत्तरापोशनम् ।। मुखप्रक्षालनम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। इदं फलमिति फलम् ।। ततो वक्ष्यमाणषोडशनामभिः पूजयेत् ।। शंकराय त्रिनेत्राय कालरूपाय शम्भवे ।। महादेवाय रुद्राय शर्वाय च मृडाय च ।। ईश्वराय शिवायेति भूतेशाय कपर्दिने ।। मृत्युञ्जयाय चोग्राय शितिकण्ठायशूलिने ।। तेजोमयं सलक्ष्मीकं देवानामपि दुर्लभम् ।। हिरण्यं पार्वतीनाथ मया दत्तं प्रगृह्यताम् ।। दक्षिणाम् ।। प्रसीद देवदेवेश चराचरजगद्गुरो ।। वृषध्वज महादेव त्रिनेत्राय नमो नमः ।। नीराजनम् ।। यानि कानि च पापानीति प्रदक्षिणाः ।। इमानि बिल्वपत्राणि पुष्पाणि विविधानि च ।। मया दत्तानि विश्वेश गृहाण वरदो भव ।। पुष्पाञ्जलिम् ।। नमोस्त्वनन्ताय सहस्रम्० नमस्कारम् ।। भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमते ।। रुद्राय नीलकण्ठाय शर्वाय च नमो नमः ।। ईशानाय नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः ।। गुणत्रयात्मने तुभ्यं गुणातीताय ते नमः ।। नमः प्रसीद देवेश सर्वकामांश्च देहि मे ।। त्वमेव शरणं नाथ क्षमस्व मयि शंकर ।। प्रार्थनाम् ।। वायनं तु—उपायनमिदं तुभ्यं व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। वायनं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। वायनम् ।। अस्य व्रतस्य सिद्ध्यर्थं हिरण्यं पापनाशनम् ।। ददामि तुभ्यं विप्रेन्द्र प्रणतोऽस्मि प्रगृह्यताम् ।। दक्षिणाम् ।। महात्मन्गच्छ कैलासं वृषारूढो गणैर्युतः ।। आहूतस्तत्क्षमस्व त्वं प्रसीद सुमुखो भव ।। विसर्जनम् ।। इति पूजाविधिः ।। अथ कथायशोदोवाच ।। कृष्णत्वं सर्वदेवानां स्थितिसंहारकारकः ।। अवैधव्यकरं स्त्रीणां यथार्थं वद तद्व्रतम् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। यशोदे साधु पृष्टोहं सौभाग्यप्राप्तये स्त्रियाः ।। द्वात्रिंशीनाम विख्यातं पौर्णमासीव्रतं भवेत् ।। २ ।। तद्व्रतस्य प्रभावेण स्त्रीणां सौभाग्यसंपदः।।अवैधव्यकरं चैतच्छिवप्रीतिकरं मत् ।।३।। यशोदोवाच ।। केन चीर्णं व्रतमिदं मृत्युलोके कदा वद ।। विधानं कीदृशं देव येन शम्भुः प्रसीदति ।। ४ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कान्तिका नाम नगरी प्रसिद्धा भूमिमण्डले ।। अनेकरत्नसम्पूर्णा

चन्द्रहासेन पालिता ॥ ५ ॥ तत्रैवासीद्द्विजः कश्चिद्धनेश्वरेति नामतः ॥ तस्य भार्या शुभाचारा नाम्ना रूपवती सती ॥ ६ ॥ अनपत्यौ महाभागावुभौ तौ दुःखितौ सदा ॥ तन्नगर्यां द्विजः कश्चिद्योगारूढो द्विजो जटी ॥ ७ ॥ भिक्षां चकार सर्वज्ञतद्गृहं चाप्यवर्जयत् ॥ तद्गृहे नैव भिक्षां स रूपवत्या *समर्पिताम् ॥ ८॥ ययौ तटाकतीरं स भिक्षां प्रक्षालयत्सदा ॥ धनेश्वरेण तद्दृष्टं योगिना यत्कृतं ततः ॥ ९ ॥ स्वभिक्षानादरात्खिन्नो योगिनं तमुवाच ह ॥ धनेश्वर उवाच ॥ भिक्षां गृह्णासि सर्वेषां गृहस्थानां द्विजोत्तम ॥ १० ॥ कदापि मद्गृहे विप्र नायासि वद कारणम् ॥ योग्युवाच ॥ अपुत्रस्य गृहस्थस्य यदन्नमुपभुज्यते ॥ ११ ॥ पतितान्न-समं तत्तु न भोक्तव्यं कदाचन ॥ धनेश्वरश्च श्रुत्वैतदात्मानं गर्हयन्बहु ॥ १२ ॥ उवाच प्राञ्जलिर्ब्रूहि त्वमुपायं सुताप्तये ॥ धनधान्यसमृद्धश्च पुत्रहीनस्त्वहं प्रभो ॥ ॥ १३ ॥ इत्युक्तोऽसौजटी प्राह गच्छाराधय चण्डिकाम् ॥ तस्य तद्वचनं गेहे भार्यायै विनिवेद्य च ॥ १४ ॥ तपसे निर्जगामासौ चण्ड्याराधनमाचरत् ॥ उपवासैः षोडशभिः स्वप्ने चैवाह चण्डिका ॥ १५ ॥ भो धनेश्वर गच्छ त्वं तव पुत्रो भविष्यति ॥ स्वसामर्थ्यवशाद्देया दीपा वै पिष्टसंभवाः ॥ १६ ॥ एकैक-वृद्ध्या दातव्याः षोडशद्वयपौर्णिमाः ॥ इदं व्रतं स्वपत्न्यै त्वं कथयस्व यथास्थितम् ॥ १७ ॥ आरोहाशु त्वमाम्रं वै फलमादाय सत्वरम् ॥ स्वगृहं गच्छ भार्यायै देहि गर्भो भविष्यति ॥ १८ ॥ ततः प्रभातसमये सहकारमपश्यत ॥ आरोढुं नैव शक्तः स चिन्ताव्याकुलमानसः ॥ १९ ॥ स्तुतिं चक्रे गणेशस्य दयां कुरु दया-निधे ॥ मनोरथो ममैवास्तु त्वत्प्रसादाद्दया निधे ॥ २० ॥ इति स्तुत्वा गणेशं स तत्प्रभावाद्धनेश्वरः ॥ शीघ्रं फलमुपादातुमाम्रमारुरुहे ततः ॥ २१ ॥ त्रिवारमथ यत्नेन फलमेकं ददर्श सः ॥ वराल्लब्धं तदेवासीन्नान्यत्स्यादेष निश्चयः ॥ २२ ॥ आगत्य कथयित्वा तद्भार्यायै दत्तवान्फलम् ॥ यदा तदा रूपवत्या भक्षितं गर्भ-मादधे ॥ २३ ॥ तदा देव्याः प्रसादेन रूपौदार्यगुणान्वितः ॥ तस्या समभवत्पुत्रो देवदासेति नामतः ॥ २४ ॥ व्रतबन्धं ततश्चक्रे विवाहं नाकरोच्च सः ॥ मात्रा चाग्रहतः पृष्टः सोऽवदत्सर्वचेष्टितम् ॥ २५ ॥ ततस्तु दैवयोगेन काश्यां नेयो मया शिशुः ॥ इतिबुद्धिस्तस्य जाता तथा चक्रे धनेश्वरः ॥ २६ ॥ तं प्रेषयत्सहाश्वेन मातुलेन सहैव च ॥ कियन्ति समतीतानि दिनानि पथि गच्छतः ॥ २७ ॥ गच्छ-न्काशीं पुरीं प्राप्तो भागिनेयेन संवृतः ॥ कस्यचित्त्वथ विप्रस्य गृहे वै प्राप्त-वान्निशि ॥ २८ ॥ तस्मिन्दिने गृहस्वामी कन्यामुद्वाहयन्कृती ॥ तैलादिरोपणं चक्रे कृत्वा वरनिवेशनम् ॥ २९ ॥ लग्नस्य समये प्राप्ते धनुर्वातयुतो वरः ॥ तदा

* न जग्राहेति शेषः । २ तैलादिरोपणं कृत्वा वरनिवेशनं चक्र इत्यन्वयः ।

वरपिता स्वीयैर्विचार्य च पुनः पुनः ।। ३० ।। असौ कार्पटिको बालः सुन्दरो मे सुतो यथा ।। सार्धं त्वनेन लग्नं वै करिष्यामि क्रमेण तु ।। ३१ ।। इति निर्धार्य मनसा प्रार्थयामास मातुलम् ।। घटिकाद्वयपर्यन्तं देहि त्वं भगिनीसुतम् ।। ३२ ।। मातुल उवाच ।। मधुपर्के तथा कन्यादाने यद्यत्प्रदीयते ।। तदस्माकं यदि भवेत्तर्ह्यसौ भवतां वरः ।। ३३ ।। तथा भवतु तेनोक्ते विधिर्वैवाहिकोभवत् ।। पाणिं स ग्राहयामास वरेण च यथाविधि ।। ३४ ।। वध्वा सार्धं तया भोक्तुं नोत्सेहे सततः शिशुः ।। तत उत्थाय सञ्चिन्त्य कस्य भार्या भवेदियम् ।। ३५ ।। एकान्ते विजने स्थित्वा निःश्वासान्मुमुचे बहून् ।। सा वधूस्तं समागत्य पप्रच्छ किमिदं त्विति ।। ३६ ।। कथयामास संकेतं वरपित्रा कृतं तु सः ।। साब्रवीत् कथमेतत्स्यादन्यथा ब्रह्मसूत्रतः ।। ३७ ।। त्वं मे पतिरहं पत्नी देवाग्निद्विजसन्निधौ ।।सोऽब्रवीत् मा कुरुष्वेदं ममायुः स्वल्पमेव च ।। ३८ ।। तच्छ्रुत्वा दृढसंकल्पा साब्रवीत्तं पुनः पुनः ।। यथा तेऽपि गतिर्भूयात्सैव मह्यं भवेदिति ।। ३९ ।। उत्तिष्ठ भुंक्ष्व मे नाथ क्षुधितोऽसि न संशयः ।। ततः प्रीतस्तया सार्धं भुक्तवान्स द्विजस्तया ।।४०।। अंगुलीयं ददौ तस्याः स्थानत्रयविभूषितम् ।। ऊचे रत्नमयीं मुद्रां गृहीत्वाप्यंशुकं तथा ।। ४१ ।। इति संकेतकं कृत्वा स्थिरचित्ता भव प्रिये ।। मृतिसञ्जीवने ज्ञातं कुरु जात्यादिवाटिकाम् ।। ४२ ।। मनोरमाः पुष्पजातीसुगन्धिनवमल्लिकाः ।। सिञ्चसिञ्च प्रतिदिनं क्रीडां कुरु यथासुखम् ।। ४३ ।। यस्मिन् दिनेतु मत्प्राणवियोगस्तु भविष्यति ।। तदा सपुष्पजातीनां प्राण×त्यागो भविष्यति ।। ४४ ।। पुनः सञ्जीवितास्तास्तु यदाहं जीवितस्तदा ।। इति जानीहि भद्रे त्वमित्युक्त्वा गन्तुमुद्यतः ।। ४५ ।। ततो ब्राह्मे मुहूर्ते तु निर्जगाम वरः पथि ।। अथ प्रभातसमये वाद्यनादो बभूव ह ।। ४६ ।। आकारिता च सा कन्याऽब्रवीन्नायं पतिर्मम ।। यदि चायं पतिस्तात ब्रूयादेष ममार्पितम् ।। ४७ ।। मधुपर्के तथा कन्यादाने यद्भूषणादिकम् ।। कथयच्चावयोर्वृत्तमेकान्ते रात्रिभाषितम् ।। ४८ ।। इति कन्यावचः श्रुत्वा उवाच स वरस्तदा ।। नैव जानामि तद्वक्तुं व्रीडितो निर्जगाम ह ।। ४९ ।। कृष्ण उवाच ।। ततस्तु बालकः काशीमध्येतुं सङ्गतः सुधीः ।। दिनानि कतिचिज्जग्मुः कालस्य वशमागतः ।। ५० ।। तं तु कृष्णो महानागो रात्रौ भक्षितुमागतः ।। परितः शयनं तस्य विषज्वालाभिरावृतम् ।। ५१ ।। नैवशक्तस्तमत्तुं वै व्रतराज प्रभावतः ।। द्वात्रिंशीनाम तन्मात्रा पूर्णिमायां व्रतं कृतम् ।। ५२ ।। ततो मध्याह्नसमये काल एवागमत्स्वयम् ।। ततस्तु कालसंविद्धस्त्वर्घोदकनियुञ्जितः ।। ५३ ।।

× म्लानिरित्यर्थः।

अत्रान्तरेऽगमत्तत्र भवान्या सह शंकरः ।। भवानी प्रार्थयामास दृष्ट्वावस्थां तु तस्य ताम् ।। ५४ ।। अस्य मात्रा कृतं पूर्वं द्वात्रिंशीव्रतमुत्तमम् ।। तस्य प्रभावतो नाथो बालोऽयं जीवतां प्रभो ।। ५५ ।। तथैव कृतवांस्तत्र भवानीप्रेमवत्सलः ।। तद्व्रतस्य प्रभावेण मृत्युनापि निराकृतः ।। ५६ ।। इतः कालं प्रतीक्षन्ती वधूस्तस्य सविस्मया ।। जात्यादिवाटिकां पूर्वं पत्रपुष्पविवर्जिताम् ।। ५७ ।। पुनः सज्जीवितां दृष्ट्वा पितरं हर्षिताऽब्रवीत् ।। भर्तुर्यत्नं कुरुष्व त्वं जीवितस्य गवेषणे ।। ५८ ।। गवेषितुं प्रववृत्ते तत्तातो यावदेव तम् ।। बालोऽपि जीवितस्तावत्काशीतो निरगात्तु सः ।। ५९ ।। पुनस्तत्रैव संयातो यत्रोद्वाहोऽभवत्पुरा ।। ज्ञात्वा च परमप्रीत्या देवदत्तोऽनयद्गृहम् ।। ६० ।। ततो जनपदाः सर्वे इति ब्रूयुः परस्परम् ।। जामाता देवदत्तस्य अयमेव न संशयः ।। ६१ ।। बालया च तथा ज्ञातः सोऽयं संकेततो गतः ।। प्रीत्या ऊचुस्ततः सर्वे साधुसाधु समन्वितम् ।। ६२ ।। उत्साहो ह्यभवत्तत्र निर्जगामाथ तत्पुरात् ।। श्वशुरेण तथा वध्वा मातुलेन समन्वितः ।। ६३ ।। तावूचतुस्तत्पितरौ भवत्पुत्रः समागतः ।। तावूचतुः कुतोऽस्माकं दुर्भगानां तु पुत्रकः ।। ६४ ।। कथितोत्यैरपि जनैस्ततः संहृष्टमानसौ ।। सुहृद्भिर्बान्धवैः सर्वेरानयामासतुच्च तम् ।। ६५ ।। ततो महोत्सवं कृत्वा ददतुर्बहुदक्षिणाम् ।। एवं स पुत्रवाञ्जातो द्वात्रिंशीव्रतसेवया ।। ६६ ।। याः कुर्वन्ति व्रतमिवं विधवा न भवन्ति ताः ।। जन्मजन्मनि सौभाग्यं प्राप्स्यन्ति च वचो मम ।। ६७ ।। एतत्ते कथितं सर्वं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।। ६८ ।। यशोदोवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि पूर्णिमायाः सुरेश्वर ।। भक्तितः श्रोतुमिच्छामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। ६९ ।। कृष्ण उवाच ।। पूर्णिमा मार्गशीर्षस्य माघवैशाखयोस्तथा ।। व्रतं प्रारम्भयेत्तस्यां पौषं भाद्रं तु वर्जयेत् ।। ७० ।। उमया सहितो देवः पूजनीयो वृषध्वजः ।। उपचारैः षोडशभिरागमोक्तविधानतः ।।७१।। ×एकैकं दीपकं कृत्वा मासिमासि च दापयेत् ।। एवं सार्धद्वयं वर्षं द्विमासाधिकमाचरेत् ।। ७२ ।। ज्येष्ठस्य पूर्णिमायां च कुर्यादुद्यापनं ततः ।। अथवा शुभमासस्य पूर्णि मायांसमाचरेत् ।। ७३ ।। चतुर्दश्यामुपवसेद्रात्रौ पूजनमाचरेत् ।। अष्टहस्तप्रमाणेन मण्डपं कारयेत्ततः ।। ७४ ।। तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भमव्रणं मृन्मयं नवम् ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं वैणवं वस्त्रवेष्टितम् ।। ७५ ।। माषमात्रसुवर्णेन प्रतिमां कारयेत्सुधीः ।। तदर्धार्धेन वा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। ७६ ।। कृत्वा रूपं प्रयत्नेन पार्वत्याश्च हरस्य च ।। तत्पात्रे प्रतिमे स्थाप्य वृषभेण समन्विते ।। ७७ ।। पूर्वोक्तेन विधानेन सुपुष्पैश्चैव पूजयेत् ।। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः

× प्रथममेकैकवृद्धया दीपदानमुक्तं तत्तु सति सामर्थ्ये ज्ञेयम् ।

फलैश्च विविधैः शुभैः ।। ७८ ।। एवं पूजा प्रकर्तव्या रात्रौ जागरणं चरेत् ।। गीतनृत्यादिसंयुक्तं कथाश्रवणसंयुतम् ।। ७९ ।। ततः प्रभातसमये कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ।। पूर्ववदर्चयेद्देवं पश्चाद्धोमं प्रकल्पयेत् ।। ८० ।। स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं बुधः ।। प्रारभेच्च ततो होमं पञ्चोक्षरमनुः स्मृतः ।। ८१ ।। तिलैर्यवैस्तथाज्येन पृथगष्टोत्तरं शतम् ।। नमः शिवाय मन्त्रेण उमाया इति नामतः ।। ८२ ।। एवं समाप्य होमं आचार्यादीन्प्रपूजयेत् ।। द्वात्रिंशद्वंन्धनैर्युक्तं वंशपात्रं मनोरमम् ।।८३।। द्वात्रिंशद्भिर्महादीपैर्द्वात्रिंशद्भिर्महाफलैः ।। मातुलिङ्गैर्नारिकेलैर्जम्बीरैः खर्जुरीफलैः ।। ८४ ।। अक्रोडैर्दाडिमैराम्रैर्नारङ्गादिभिरेव च ।। कर्कटचादिभिरन्यैश्च ऋतुकालोद्भवैः शुभैः ।। ८५ ।। द्वात्रिंशद्भिः फलैर्युक्तं सन्दीपं वस्त्रवेष्टितम् ।। व्रीहीणामुपरि स्थाप्य आचार्याय शुचिष्मते ।। वाणकं तव तुष्टयर्थं ददामि गिरिजापते ।। ८६ ।। दानमन्त्रः ।। महेशः प्रतिगृह्णाति महेशो वै ददाति च ।। महेशस्तारकोभाभ्यां महेशाय नमोनमः ।। ८७ ।। प्रतिग्रहमन्त्रः ।। द्वात्रिंशद्ब्राह्मणांश्चैव द्वात्रिंशद्योषितस्तथा ।। अन्यानपि ब्राह्मणांश्च भोजयेत् षड्रसैः सह ।। ८८ ।। पुंवत्सेन युतं धेनुमाचार्याय निवेदयेत् ।। पश्चात्पूर्णाहुतिं कृत्वा होमशेषं समापयेत् ।। ८९ ।। पश्चाद्भुञ्जीत तच्छेषं यद्देवब्राह्मणार्पितम् ।। इत्येवं पूर्णिमायास्तु उद्यापनविधिः स्मृतः ।। ९० ।। इत्येतत्कथितं सर्वं व्रतस्योद्यापने मया ।। याः कुर्वन्ति व्रतमिदं विधवा न भवन्ति ताः ।। ९१ ।। इह भुक्त्वा तु विपुलान्कामान्सर्वान् मनोगतान् ।। स्वर्गमन्ते गमिष्यन्ति कुलकोटिशतैरपि ।। ९२ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे कृष्णयशोदासंवादे द्वात्रिंशीपूर्णिमाव्रतकथा सम्पूर्णा ।।

बत्तीसी पूर्णिमा व्रत—इसे लोकमें बत्तिसी पूर्णिमा भी कहते हैं, मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमाके दिन पवित्र व्रतवाली प्रातःशुक्ला तिलोंसे स्नान करके वस्त्र पहिन, पूजाका सामान इकट्ठा करके चूनका दीपक जलावे । पुत्र और सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये मध्याह्नमें शिवका पूजन करे, यह पूर्णिमा मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये । तिथि आदि कहकर मेरे इस जन्म और दुसरे जन्मोंमें अखण्ड सौभाग्य तथा पुत्र पौत्रोंकी प्राप्तिके लिये द्वात्रिंशी पूर्णिमाका व्रत मैं करूंगा, वहां निर्विघ्नताकी सिद्धिके लिये गणपति पूजन और कलश का आराधन भी करूंगा ऐसा संकल्प करे । पांच मुंह और तीन आखोंवालेजिसकी जटाओंमें खण्ड चन्द्रमा लगाहुआ, व्यालोंका जनेऊ पहिने, ऐसे भक्तोंको वर देनेवाले शिवका ध्यान करता हूं, इससे ध्यान; हे सब अलंकारोंसे सजेहुए भगवान् शिव ! पधारिये । जबतक व्रत न पूरा हो तबतक अपनी सन्निधि दीजिये; इससे आवाहन; 'सिंहासनं स्वर्णपीठम्' इससे आसन; 'त्रिपुरान्तक' इससे पाद्य; 'चन्दनाक्षत' इससे अर्घ्य; 'तोयमेतत्' इससे आचमनीय; 'पयोदधि' इससे पंचामृत स्नान; 'मयानीतानि' इससे स्नान; 'श्वेताम्बरयुगम्' इससे वस्त्र, 'कुंकुमाक्तम्' इससे उपवीत; 'काश्मीरजेन' इससे चन्दन; 'प्रक्षालिताश्च' इससे अक्षत; 'कमलैर्मालती' इससे पुष्प; 'दशाङ्गो गुग्गुलूद्भूतः' इससे धूप; 'कार्पासम्' इससे दीपक; 'नैवेद्यं गृह्यताम्'

१ होमे इति शेषः ।

इससे नैवेद्य; नैवेद्यके बीचमें पानीय; मुखप्रक्षालन; 'पूगीफलम्' इससे ताम्बूल; 'इदं फलम्' इससे फल समर्पण करे ।। सोलह नामोंसे पूजा-शंकर' त्रिनेत्र, कालरूप, शंभु, महादेव, रुद्र, शर्व, मृड, ईश्वर, शिव, भूतेश, कपर्दी, मृत्यंजय, उग्र, शितिकंठ, शूली, ये सोलहनाम हैं । इनमेंसे प्रत्येकके साथ 'के लिये नमस्कार, इतना लगा देनेसे मूलके सब पदोंका अर्थ होजाता है प्रत्येकसे शंकरपर अक्षतादि चढाने चाहिये ।। शोभायुक्त तेजोमय जो कि, देवताओंकोभी दुर्लभ है, हे पार्वतीनाथ ! वह हिरण्य मैंने दिया है आप ग्रहण करें, इससे दक्षिणा; 'प्रसीद देवदेवेश' इससे नीराजन; 'यानि कानि च' इससे प्रदक्षिणा; 'इमानि बिल्वपत्राणि' इ ससे पुष्पांजलि, नमोस्त्वनन्ताय' इससे नमस्कार; भवके नाशक भवके लिये नमस्कार, धीमान् महादेवको नमस्कार तथा रुद्र, नीलकंठ शर्व एवं पशुपति ईशानके लिये वारंवार नमस्कार है, त्रिगुणात्मक एवं तीनों गुणोंसे अतीत तुझ महादेवके लिये नमस्कार है । हे देवेश ! प्रसन्न हुजिये । मुझे सब काम दीजिये । मैं आपकी शरण हूं । मुझे क्षमा करिये इससे प्रार्थना; 'वायन' इससे वायना; इस व्रतकी सिद्धिके लिये पापनाशक सोनेको हे विप्रेन्द्र ! आपको देता हूं ग्रहण करिये, इससे दक्षिणा; हे महात्मन् ! अपने बूढे नांदियापर चढकर कैलास पधारिये हमने बुलालिया सो क्षमा करना, प्रसन्न हो सुसुख होना, इससे विसर्जन समर्पण करे । यह पूजाकी विधि पूरी हुई ।। कथा—यशोदाजी बोली कि, हे कृष्ण ! तुम सब देवोंके स्थिति और संहारके करनेवाले हो कोई वास्तविक रूपसे स्त्रियोंके लिये अवैधव्य करनेवाला व्रत हो उसे मुझे कहिये ।।१।। श्रीकृष्ण बोले कि, ठीक पूछा, स्त्रियोंको सौभाग्य प्राप्तिके लिये द्वात्रिंशी पूर्णिमाका व्रत करना चाहिये ।।२।। इस व्रतके प्रभावसे स्त्रियोंको सौभाग्य संपत्तिमिलजाती है, यह सुहाग करनेवाला तथा शिवजीकी प्रीतिका कारण है ।।३।। यशोदाजी बोले कि, कब और किसने इसे मृत्युलोकमें किया था, उसका विधान क्या है जिससे शिवजी प्रसन्न हो जायें ? ।।४।। श्रीकृष्ण बोले कि, भूमिमण्डलपर परम प्रसिद्ध एक चन्द्रहाससे पालित अनेक तरहके रत्नोंसे परिपूर्ण कांतिका नामकी नगरी थी ।।५।। वहा एक धनेश्वर नामक ब्राह्मण बसता था, उसकी सदाचारिणी रूपवती नामकी स्त्री थी ।।६।। उन दोनोंके कोई सन्तान नहीं थी । इससे वे अत्यन्त दुखी थे । उनकी नगरीमें एक दिन कोई जटी योगी आगया ।।७।। वह सर्वज्ञ उस घरको छोडकर भिक्षा करता था, उसने रूपवतीकी दीहुई भीख नहीं ली ।।८।। पीछे गंगा किनारे जाकर भिक्षान्नको पानीमें धोकर खालिया एक दिन योगीका यह सब कार्य्य धनेश्वरने देख लिया ।।९।। अपनी भिक्षाके अनादरसे खिन्न हुआ वह योगीसे बोला कि, हे द्विजोत्तम ! आप सब गृहस्थोंकी भिक्षा लेते हैं ।।१०।। पर मेरे घरकी कभीभी नहीं लेते इसका कारण क्या है ? यह सुन योगी बोला कि, जो निपुत्रीके घरकी भीख लेता है वह पतितोंके अन्नके बराबरकी वस्तु लेता है क्योंकि, उसे कभी न खाना चाहिये । धनेश्वरने यह सुन अपनी बडी निन्दा की ।।११।।१२।। हाथ जोडकर बोला कि, आप पुत्रप्राप्तिका उपाय बतावें । मैं धन धान्यसे समृद्ध हूं परन्तु मेरे घर पुत्र नहीं है ।।१३।। यह सुन जटी बोला कि, जा चण्डिकाका आराधन कर, उसने आकर अपनी स्त्रीसे कहा ।।१४।। पीछे तपके लिये वन चलागया । वहां चण्डीकी आराधना की, सोलह उपवासोंके बाद स्वप्नमें चण्डी आकर बोली ।।१५।। कि, हे धनेश्वर ! जा तेरे पुत्र होजायगा । जितनी तेरी ताकत हो चूनके दीये जलाना ।।१६।। रोज एक बढाते जाना पूर्णिमाको बत्तीस होजाने चाहिये ।इस व्रतको तुम अपनी स्त्रीसे कहना ।।१७।। आमपर चढकर फल ले जल्दी घर चले जाओ स्त्रीको दे दो गर्भ होजायगा ।।१८।। प्रातःकाल उसने आम देखा जब आमपर न चढ सका तो चिन्तित हुआ ।।१९।। गणेशकी प्रार्थना करने लगा कि हे दयानिधे ! दयाकर आपकी कृपासे मेरा मनोरथ पूरा होजाय ।।२०।। इस प्रकार गणेशकी प्रार्थना करनेपर उसके प्रभावसे धनेश्वर आमपर चढगया, तीनवार प्रयत्न करनेपर एक फल देखा, उसने विचारा कि, जो वरसे मिला था वही है और नहीं है ।।२१।।२२।। आकर स्त्रीको सब बता, वह फल स्त्रीके लिये देदिया, जिसके खातेही वह गर्भवती होगई ।।२३।। देवीकी कृपासे रूपवान् गुणी देवदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।२४।। इसके बाद उसने व्रतकर लिया । उसका विवाह नहीं किया । माताके आग्रह पूर्वक पूछनेपर उसने सब कहदिया ।।२५।। दैवयोगसे धनश्वेरकी यह बुद्धि हुई कि, इसे काशी विद्या पढने भेजूं झट काशी भेजनेका प्रबंध किया ।।२६।। उसे घोडेपर चढा मामाके साथ काशी भेज दिया, मार्गमें

कितनेही दिन बीतगये, भागिनेयके साथ मातुल काशी पहुंचगया, रात होगई । किसी ब्राह्मणके घर पहुंचकर विश्राम किया ॥२७॥२८॥ उसदिन घरका स्वामि लडकीका विवाह करनेवाला था, तैल आदि चढाकर वर निवेशन 'माडया' बनाया ॥२९॥ लग्नके समय वरको वनुर्वात होगया, तब वरके पिताने अपने परिवारवालोंसे विचार किया ॥३०॥ अन्तमें उसने निश्चय किया कि, यह कार्पटिक बालक मेरे पुत्र जैसा ही सुन्दर है मैं इसके साथही लग्न कराऊंगा ॥३१॥ उसके मामासे बोला कि, दो घडीके लिये अपने भानजेको मुझे देदो ॥३२॥ मामा बोला कि, जो मधुपर्क और कन्यादानमें दियाजाय वह हमें मिलजाय तो मेरा भानजा आपकी बरातका दुलहा बन जायगा ॥३३॥ वरके पिताके स्वीकार कर लेनेपर उसने अपना भानजा वर बनानेको देदिया उसके साथ विधिपूर्वक विवाह कृत्य पूरा हुआ ॥३४॥ वह पत्नीके साथ भोजन न करसका एवं वारंवार विचारने लगा कि, यह किसकी वधू होगी ॥३५॥ एकान्त निर्जन देशमें बैठकर गरम श्वास छोडने लगा, उस वधूने आकर उससे पूछा कि, यह क्या बात है ॥३६॥ उसने सब बातें उस लडकीको बतादीं जो वरके पिता और उसके मामामें हुई थीं । कन्या बोली कि, यह ब्राह्मविवाहके विपरीत कैसे होगा ॥३७॥ देव द्विज और अग्निके साम ने में पत्नी और आप पति बने थे इसकारण में आपकी ही पत्नी रहूंगी॥ वह बोला कि, ऐसा न करिये क्यों कि मेरी उमर बहुतही थोडी है ॥३८॥ वह दृढ विचारवाली वधू बोली कि, जो आपकी गति है वही मेरी भी होगी ॥३९॥ हे मेरे स्वामिन् ! उठिये भोजन करिये आप निश्चयही भूखे हैं, इसके बाद उस द्विजने उसके साथ भोजन किया ॥४०॥ पीछे रत्नोंकी जडाऊ तीन स्थानोंमें विभूषित एक अंगूठी उसे दी । तया एकवस्त्र दिया ॥४१॥ और बोला कि, इसे ले संकेत समझकर स्थिर चित्त होजा, मेरा मरण और जीवन जाननेके लिये एक पुष्पवाटिका बनाले ॥४२॥ उसमें फूलकी जाती, सुगन्धिवाली नवमल्लिका लगाले, उनमें रोज पानीलगा और आनन्दके साथ खेल कूद ॥४३॥ जिसदिन जब मैं मरूंगा तबही वे फूल सूख जायेंगे ॥ ४४ ॥ जब मैं जीजाऊंगा तबही वे हरे होजायेंगे यह निश्चय जानले, ऐसा कहकर जानेको तयार हुआ ॥४५॥ ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर चलदिया । प्रातःकालके समय वहाँ बाजे बजने लगे ॥४६॥ वह कन्या अपने पितासे बोली यह मेरा पति नहीं है यदि है बतावे कि, मैंने इसे क्या दिया है ॥४७॥ मधुपर्क और कन्यादानमें जो मैंने भूषणादिक दिये हैं वे दिखावे तथा रातमें मैंने इससे क्या गुप्त बातें कीं उन्हें भी बतादे ॥४८॥ कन्याके वचन सुनकर वर बोला कि, मैं नहीं जानता, पीछे लज्जित होकर कहीं चला गया ॥४९॥ श्रीकृष्ण बोले कि, वह बालक काशीमें पढने चला गया, कुछ दिन बीतनेपर कालके वशीभूत हुआ ॥५०॥ रातको काला नाग उसे खानेके लिये आया । उसके सोनेकी जगह चारों ओरसे विषकी ज्वालासे ढकगई ॥५१॥ पर व्रतराजके प्रभावसे उसे खा न सका, क्योंकि उसकी माँने पहिले द्वात्रिंशी पूर्णिमाका व्रत कररखा था ॥५२॥ इसके पीछे मध्याह्नके समय स्वयं काल आया पीछे कालका बाँधा वह अर्घोदक (आधेपानी) में नियुक्त किया ॥५३॥ इसी बीच वहां पार्वतीजीके साथ शिवजी पहुंच गये । उसकी यह दशा देख पार्वतीजी शिवसे बोलीं कि॥५४॥इसकी माने पहिले द्वात्रिंशी पूर्णिमा व्रत किया था हे प्रभो! इसके प्रभावसे आप उस अनाथको जिलादें ॥५५॥ भवानीके प्रेमसे वत्सल शिवने उसे जिलादिया, इस व्रतके प्रभावसे उसका पीछा मौतने भी छोड दिया ॥५६॥ उसकी वधू उसके कालकी प्रतीक्षा किया करतीथी । उसने देखाकि, उस वाटिकामें पत्र पुष्प कुछ भी नहीं रहे हैं जिससे उसे बडा विस्मय हुआ॥५७॥ जब वह फिर वैसी ही होगई तो जानगई कि, वह जीगया । इसे देख प्रसन्न हो पितासे बोली कि, मेरा पति जीवित है आप उसे ढूढंनेका कोशिश करिये ॥५८॥ जब उसका बाप ढूंढने चला कि, बालकभी काशीसे चलदिया ॥५९॥ वह फिर वहीं पहुंचगया जहां कि, विवाह हुआ था उसे आया जान देवदत्त प्रसन्न हो अपने घर ले आया॥६०॥सब नगरनिवासी इकट्ठे होकर आपसमें बोलने लगे कि, देवदत्तका निश्चय वही जमाई है ॥६१॥ उस बालिकाने भी पहिचान लिया कि, वह वही है जो संकेत करके गया था । इसके बाद सब कहने लगे कि, अच्छा हुआ आगया ॥६२॥ लोकोंने आनन्द मनाया, पीछे मामा और श्वशुरके साथ घर विदा हुआ ॥६३॥ उन दोनोंने जाकर उसके माबापोंसे कहा कि, आपका लडका आगया वह सुन वे बोले कि, हम दुर्भाग्योंको यहां पुत्र कहां है ॥६४॥ जब और लोगोंने भी कहा तो परम प्रसन्न हो

भाईबन्धुओं लेकर उन्हें लेने चलदिये ।।६५।। उन्होंने पुत्र आनेका बडा भारी उत्सव किया, बहुतसी दक्षिणाए ब्राह्मणोंको दीं । इस प्रकार धनंजय द्वात्रिंके व्रतके प्रभावसे पुत्रवान् होगया ।।६६।। जो इस व्रतको करती हैं वे विधवा नहीं होतीं वह जन्म जन्म सौभाग्य पाती है यह मेरा वचन है ।।६७।। यह पुत्र पौत्रोंका बढानेवाला है, इस व्रतके करनेसे जिस जिस वस्तुकी चाह होती है वह वस्तु उसे मिलजाती है यह निश्चित है ।।६८।। यह द्वात्रिंशी पूर्णिमाके व्रतका विधान पूरा हुआ ।। उद्यापन विधि—यशोदाजी श्रीकृष्णजीसे बोली कि, हे सुरेश्वर ! पूर्णिमाके उद्यापनकी विधि कहिये मैं व्रतकी संपूर्णताके लिये भक्तिके साथ सुनना कहती हूं ।।६९।। श्रीकृष्ण बोले कि, मार्गशीर्ष, माघ और वैशाखकी पूर्णिमाके दिन व्रतका प्रारंभ करे पर भाद्रपद और पौषको छोड दे ।।७०।। उमा सहित वृषध्वजको पूजे, शास्त्रकी कहीहुई विधिके साथ सोलहों उपचारोंसे पूजे ।।७१।। एक दीपक महीना महीनामें बढाता चले, इस प्रकार दो वर्ष आध महीना करे ।।७२।। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको उद्यापन करे, अथवा किसीभी पवित्र महीनाकी पूर्णिमाको करे ।।७३।। चतुर्दशीमें उपवास करे रातमें पूजन करे, आठ हाथका मंडप बनावे ।।७४।। उसके बीचमें मिट्टीका वेध कलश रखे, उसपर बांसका पात्र रखकर उसे वस्त्र से ढक दे ।।७५।। अपनी शक्तिके अनुसार एक या आधे पल सोनेकी प्रतिमा बनावे ।।७६।। उसमें गौरी शंकरकी छवि पूरी आजानी चाहिये । वृषभ सहित उस प्रतिमाको उस पात्रपर स्थापित करदे ।।७७।। पहिली कहीहुई विधिके अनुसार अच्छे पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य अनेक तरहके फल इनसे पूजा करे ।।७८।। रातमें गाने बजाने और कथा सुननेके साथ जागरण करे ।।७९।। प्रातःकाल स्नानादि नित्य कर्मसे निवृत्त हो पूजन करके हवन करे ।।८०।। अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्नि स्थापन करे, पीछे पंचाक्षर मंत्रसे होम करे ।।८१।। तिल यव और घीका शाकल्य एकसौ आठ आहुति दे, ओम् नमःशिवाय–शिवके लिये नमस्कार ,ओम् उमायै नमः—उमाके लिये नमस्कार, इन मंत्रोंसे आहुति दें ।।८२।। इस प्रकार होम समाप्त करके आचार्य्योंका पूजन करे । बत्तीस बन्धनोंका सुन्दर बांसका पात्र होना चाहिये ।।८३।। बत्तीस बडे बडे दीपक, महाफल, मातुलिंग, नारिकेल, जंबीर, खर्जूरीफल ।।८४।। अक्रोड दाडिम आम, नारंगी एवम् और भी कर्कटी आदि शुभ ऋतुफल हों ।। ८५ ।। बत्तीस फलोंके साथ वस्त्रसे वेष्टित हुए दीपकको व्रीहियोंके ऊपर रखकर तेजस्वी आचार्यके लिये दे कि, हे गिरिजापते ! आपकी तुष्टिके लिये वायना देता हूं । यह दानका मन्त्र है ।।८६।। महादेव ही देतेलेते हैं । दोनोंके तारक भी महादेवही है । महादेवके लिये वारंवार नमस्कार है ।८७।। यह प्रतिग्रहका मन्त्र है । बत्तीस ब्राह्मण बत्तीसही स्त्रियोंके और भी दूसरे ब्राह्मणोंको छओं रसोंसे भोजन करावे ।।८८।। बछडेके साथ गाय आचार्यको दे, पीछे पूर्णाहूति करके होमकी समाप्ति करे ।।८९।। देव ब्राह्मणोंसे बचे हुएको आप भोजन करे । यह पूर्णिमाके उद्यापनकी विधि है ।।९०।। यह मैंने आपको सुनादी जो इस व्रतको करती हैं वे विधवा नहीं होतीं ।।९१।। तथा अनेकों बडे बडे कामोंको भोग तथा सब मनोकामनाओंको पा सौ कोटि कुलोंके साथ अन्तमें स्वर्ग चली जाती हैं ।।९२।। यह श्रीभविष्य पुराणका कहाहुआ कृष्ण यशोदाके संवादका द्वात्रिंशी पूर्णिमाके व्रतका विधान पूरा हुआ ।।

होलिकोत्सव

अथ फाल्गुन पौर्णमास्यां होलिकोत्सवः ।। युधिष्ठिरकृत प्रश्नेन कृष्णेन इतिहासे रघुं प्रति वसिष्ठवचो भविष्ये ।। वसिष्ठ उवाच ।। अथ पञ्चदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप ।। अभयं चैव लोकानां दीयतां पुरुषर्षभ।।यथा ह्यशङ्किनो लोका रमन्तु च हसन्तु च।।दारुजानि च खण्डानि गृहीत्वातु समुत्सुकाः ।। योधा इव विनिर्यान्तु शिशवः संप्रहर्षिताः ।। सञ्चयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत्[1]।।

---

१ शुष्कगोमयपिंडानाम् ।

तत्राग्निं विधिवद्दत्त्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः ।। ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोहरैः ।। तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ।। जल्पन्तु स्वेच्छया लोका निःशंका यस्य यन्मतम् ।।तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता ।। अट्टाट्टहासैर्डिम्भानां राक्षसी क्षयमेष्यति ।। ढुण्ढाख्या राक्षसी । तत्रैव युधिष्ठिरं प्रति कृष्णवचनम् ।। सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तये ।। क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका मृता ।। तत्र पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी भद्रारहिता ग्राह्या—तपस्यपौर्णमास्यां तु राजन्यां होलिकोत्सवः ।। न कर्तव्यो दिवा विष्ट्यां रिक्तायां प्रतिपत्स्वपि ।। इति दुर्वासोवचनात् ।।तथाप्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा ।। संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम् ।। प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा ।। तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होली निशामुखे ।। इति नारदवचनात् निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा जनैः ।। न दिवा पूजयेड्ढुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत् ।। इति दिवोदासीयवचनाच्च ।। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ तु परैव ।। भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै ।। नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।। इति वचनेन पूर्वोक्तदूर्वासः प्रभृतिवचनैश्च भद्रायां होलिकादीपननिषेधात् ।। यदा परदिने च प्रदोषस्पर्शाभावतो पूर्वदिने च प्रदोषे भद्रासहिता पौर्णमासी तदा निशीथपर्यन्तं भद्रावसानसम्भवे पूर्वदिन एव तदवसाने होलिकादीपनं कार्यम् ।। निशीथोत्तरं भद्रासमाप्तौ तु भद्रामुखं त्यक्त्वा भद्रायामेव प्रदोषे कार्यम् ।। दिनार्धात्परतो या स्यात्फाल्गुनी पौर्णिमा यदि ।। रात्रौ भद्रावसाने तु होलिकां तत्र दापयेत् ।। राका यामद्वयादूर्ध्वं चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।। होलां भद्रावसाने तु निशीथान्तेऽपि दीपयेत् ।। इति पुराणसमुच्चयादिवचनात् ।। भद्रायां विहितं कार्यं होलिकायाः प्रपूजनम् ।। गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्दक्षिणाफलैः ।। होलां तु नाममन्त्रेण पूजयेच्च यथाविधि ।। योनिनाम्ना च मन्त्रेण महाशब्दं तु कारयेत् ।। तत्र किलकिलाशब्दैरन्योन्यमुच्चरेत्ततः ।। योषितानां भ्रमं कुर्याद्योनिमन्त्रणपूर्वकम् ।। योनिनामैव मन्त्रं तु यो नरः पठते सदा ।। न भवेच्च तस्य पीडा आवर्षं तु सुखी भवेत् ।। यदा तु पूर्वरात्रौ प्रदोषव्याप्त्यभावस्तत्सत्त्वे वा भद्रारहितः कालो न लभ्यते उत्तर दिने च प्रदोषे पूर्णिमाभावस्तदा पुच्छे कार्यम् ।। तथा च लल्लः—पृथिव्यां यानि कार्याणि शुभानि ह्यशुभानि च ।। तानि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः ।। यदा विष्टिपुच्छं मध्यरात्रोत्तरं तदा प्रदोष एव दीपनम्—मध्यरात्रिमतिक्रम्य विष्टिपुच्छं यदा भवेत् ।। प्रदोषे ज्वालयेद्वह्निं सुखसौभाग्यदायिनम् ।। प्रदोषान्मध्यरात्र्यन्तं होलिकापूजनं शुभम् ।। इति वचनात् ।। यदा तु

१ अग्निप्रदीपनानन्तरं पत्र पूजाद्रव्यप्रक्षेपः २ भद्रायामित्यारभ्य सुखीभवेदित्यन्तो ग्रन्थो हेमाद्र्यादिष्वनुपलम्बादलब्धमूलोप्यनेन लिखितत्वात्तथैव स्थापितः ।

उत्तरादिने पूर्णिमा सार्धयामत्रयमिता ततोऽधिका वा प्रतिपदश्च वृद्धिस्तदा पूर्णिमोत्तरं प्रतिपदि होलिका कार्या, न तु पूर्वेद्युर्विष्टिपुच्छे—सार्धयामत्रयं पूर्णा द्वितीयादिवसे यदा ।। प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका मृता ।। इति भविष्योक्तेः ।। यदा तूत्तरदिने प्रदोषैकदेशव्यापिन्यस्ति पूर्वरात्रौ च भद्रारहित नैव लभ्यते तदोत्तरैव । यदा पूर्वरात्रौ भद्रा व्याप्ता उत्तरे प्रदोषे च चन्द्रग्रहणं तदा तत्रैव स्नात्वा कार्या—सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत सूतकान्नं विवर्जयेत् ।। फाल्गुनो मलमासश्चेच्छुद्धे मासि च होलिका ।। पूजामन्त्रस्तु—असृक्पाभयसन्त्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः ।। अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव ।। इति होलिकानिर्णयः ।। इति पूर्णिमाव्रतानि समाप्तानि ।।

होलीका उत्सव—फाल्गुनकी पूर्णिमाको होता है । भविष्यपुराणमें युधिष्ठिरजीके प्रश्नपर श्रीकृष्णचन्द्रजीने रघुके प्रति जो वसिष्ठजीके वचन हैं उनका उदाहरण दिया है । वसिष्ठजी बोले कि, हे राजन् ! फाल्गुन शुक्ला पन्द्रसके दिन सब ममुष्योंको अभय दे दीजिये । जिससे मनुष्य निःशंक होकर हंसें और विचरें, उछलते कूदते हुए बालक योधाओंकी तरह काठके टुकडे लेकर चलेजायें । सूखा काठ और उपलोंका ऊंचा ढेर बनाया जाय, उसमें बहुतसे रक्षोघ्न मंत्रोंसे विधिके साथ अग्नि दीजाय ।

रक्षोघ्न मन्त्र—यज्ञादिक कृत्य तथा कर्मकाण्ड एवम् गृह्यकर्ममें प्राय; आते हैं पद्धतिकारोंने अपनी अपनी पद्धतिमें उल्लेख भी किया है किन्तु उनकी संख्या पर्याप्त नहीं मिली, वे वहां पांच सात ही रखे मिलतें हैं किन्तु यहां 'मन्त्रविस्तरं", यह लिखा मिलता है, इस कारण हम रक्षोघ्न मन्त्रोंका कुछ उल्लेख करते हैं—

ओम् रक्षोहणं वाजिनमाजिघर्मि, मित्रं प्रथिष्ठ मुपयामिशर्म । शिशानोऽग्निः ऋतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ।। १ ।।

बढनेवाले बलवान् राक्षसोंगे मारनेवाले, परम प्रसिद्ध मित्र अग्निको प्रदीप्त करता हूं इससे मुझे आनन्द मिलेगा । यज्ञोंसे प्रदीप्त कियाहुआ हथियार पैनाये खडा हुआ अग्नि रात दिन हमारी हर प्रकारके आघातोंसे रक्षा करे ।।१।।

ओम् अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुपस्पृश जातवेदः समिद्धः । आजिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापिधत्स्वासन् ।। २ ।।

हे जातवेदः ! आपकी डाढे लोहेकी हैं आप प्रतीप्त हाकर अपनी ज्वालोंसे यातुधानोंसे भुरसा ओ, अभिचार कर्म करनेवालोंको अपनी कराल जिह्वासे अच्छी तरह भुरसाओ, जो कच्चे मासके खानेवाले राक्षस हैं उन्हें डराकर अपने मुखमें गुम करदो ।।२।।

ओम् उभोभयाविन्नुपधेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानो वरं परं च । उतान्तरिक्षे परियाह्यग्ने जम्भैः सन्धेहि अभि यातुधानान् ।। ३ ।।

हे दोनोंसे राक्षसोंको पकड़नेवाले ! आप यातुधानोंके मारनेकी इच्छासे हथियार पैनाकर तयार हो । आप दोनों डाढोंको तयार किये रहो, उनमें ही उन्हें फसालों, अन्तरिक्षमें भी आप हमारी रक्षा करें तथा यातुधानोंका अभिसन्धान दाँत दाढोंसे कर डालिये ।।३।।

ओम् अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि, हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् । प्रपर्वाणि जातवेदः शृणोहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्विचिनोत्वेनम् ।। ४ ।।

हे अग्ने ! आप यातुधानकी त्वचा भेद डालें, हिंसक अशनि अपनी ज्वालासे इसे मारडाले, हे जातवेद ! इसके पर्वोको काटडाल, ढरावने आप इन्हें डरादें तथा उनके टुकडे टुकडे उडादें ।।४।।

ओम् यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदः तिष्ठन्त मग्न उत वा चरन्तम् । उतान्त-रिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ताविध्य शर्वा शिशान ।। ५ ।।

हे जातवेद ! इस समय जिस जिस यातुधानको बैठा विचरता एसम् आकाशमें उडता हुआ आप देखें उसे फेंक दीजिये, वींध दीजिये तथा आप, पैने हथियारवाले हैं ही मार डालिये ।।५।।

ओम् यज्ञैरिषूः संनममाना अग्ने, वाचा शल्यां अशनिर्भिर्दिहानः । ताभि-र्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीची बाहून् प्रतिभङ्ध्येषाम् ।। ६ ।।

हे अग्ने ! यज्ञसे इषु तथा वेदमन्त्रोंसे उनके शल्योंको सीधा करतेहुए अशनियोंसे जलाते हुए उनके हृदयोंको उसीसे छेद डालो, तथा इन राक्षसोंके सीधेहाथोंकोकाटदो ।।

ओम् उतारब्धान् स्पृणुहि जातवेदः, उतारेभाणां ऋष्टिभिर्यातुधानान् । अग्ने पूर्वो निजहि शोशुचान आमादः क्ष्विंकास्तमदन्तु-ऐनीः ।। ७ ।।

हे प्रतिप्त हुए देव ! जो छोडनेकी प्रार्थना करने लगे हो एवं जो करचुके हों उन सब यातुधानोंको अपनी लपटोंसे जला दे, पहिले उन्हें मारडाल फिर कच्चे मांसको खानेवाली चितकबरी क्ष्विङ्क उन्हें खाजांय ।।७।।

ओम् इह प्रब्रूहि यतमःसोऽअग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति । तमारभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ।। ८ ।।

हे अग्ने ! यहां बतादे जो वह हैं जोकि ,यातुधान यहकरता है, हे समिधसे बढेहुए ! उसे तू मथ डाल, मनुष्योंपर अनुकंपा करनेकी दृष्टिसे इसे मार दो ।।८।।

ओम् तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्रणय प्रचेतः । हिंस्रं रक्षांस्यभिशोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ।। ९ ।।

हे अग्ने ! तीक्ष्ण चक्षुसे सामनेकी यज्ञकी रक्षा कर, हे प्रकृष्ट ज्ञानवाले ! इसे वसुदेवोंके लिए प्राप्त कर, राक्षसोंके मारनेवाले प्रदीप्त हुए तुझे, मनुष्योंको खानेके लिए खोजते फिरनेवाले यातुधान राक्षस न डरायें ।।९।।

ओम् नृचक्षा रक्षः परिपश्य विक्षुतस्य त्रीणि प्रतिश्रृणी ह्यग्ना तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा श्रृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ।। १० ।।

जो प्रजाओं और दिशाओंमें मनुष्योंको देखता फिरता है उसे आपअच्छी तरह देखलें । हे अग्ने ! उसके तीन टुकडे करडालें, उसकी पीठको अपनी ज्वालासे फूंक दे, उसकी जडके तीन टुकडे उडादें ।।१०।। ये रक्षोहाग्निके दोवर्ण समाप्त हुए । ये मन्त्र ऋग्वेदके आठवें अष्टकके चौथे अध्यायमें आये हैं । ये अथर्ववेदके आठवें काण्डमें भी आये हैं तथा सौदाससे सौ पुत्र मारे जानेपर वसिष्ठजीने भी रक्षोघ्नसूत्र देखे हैं, पर विस्तारके भयसे नहीं लिखते । हमने इनका अर्थ करती बार भाष्यसे सहायता नहीं ली है, संभव है कि, कहीं भाष्यसे भिन्न अर्थकोभी झलक आजाये । चतुर्थीलालजीने प्रतिष्ठाप्रकाशमें ऋग्वेद अष्टक ३ अध्याय ४ का तेईसवां वर्ग दिया है, जो कि चतुर्वेदके तेरहवें अध्यायमें आया है ।।

ओम् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन । पृथ्वीमनुप्र-सितिं द्रुणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।।

हे अग्ने ! आप यातुधानोंके हटानेवाले हो, जैसे राजा अपने मंत्रियोंके साथ सेना ले हाथीपर चढकर अपने वैरियोंपर चढजाता है उसी तरह आपभी अपनी बडी बडी ज्वमालाओंको तीखीबनाकर पुरुषार्थ दिखा दो एवम् अत्यन्त तपानेवाले तोरोंसे राक्षसोंके बींध दो ।।

ओम् तव भ्रमास आशुया पतन्ति अनुस्पृश धृषता शोशुचानः । तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गा नसंदितो विसृज विष्वगुल्काः ।।

हे अग्ने ! शीघ्रताके साथ चारों ओर घूमनेवाली आपकी ज्वाला राक्षसोंपर गिर रही है । आप स्त्रुवासे प्रदीप्त होचुके हो, राक्षसोंको जला डालो । उडकर तपानेवाले राक्षसोंको जलाओ और डराओ, सब ओर अपनी लटोंको छोडो ।।

ओम् प्रतिस्पृशो विसृज, तूर्णितमो भवापायुर्विशोऽस्याऽअदब्धः । यो नो दूरेऽअघशंसो योऽअन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ।।

प्रतिस्पर्धा करनेवाले को अपनी लटोंसे जलाकर दूर फेंक दो जल्दी करो । हमारी इस प्रजाका रक्षण करो किसीसे दबो मत, जो निन्दक दूर या जो समीप उपस्थित है, वह कोई भी तकलीफ देकर न डरासके ।।

ओम् उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२ऽओषतात्तिग्महेते । यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचान् धक्ष्यतसन्न शुष्कम् ।।

हे अग्ने ! सावधान हूजिए, अपनी ज्वालाका विस्तार करिये ,हे पैने हरियारवाले ! वैरियोंको जला दे, हे प्रदीप्त हुए अग्निदेव ! जो हमारे दानका निषेध करता है, उस नीचको सूखे काठकी तरह जलादे ।।

ओम् ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ।।

हे अग्निदेव ! ऊँचे हों, जो वैरी हमारे ऊपर आरहे हैं उन्हें बांध डाले दिव्य पुरुषार्थोंको प्रकट करें यातुधानोंके चढे तीरोंको उलटाकर दें । दबाये या बिना दबाये किसी भी प्रकारके वैरीको मार दें ।।

इसके बाद ताल शब्द और सुन्दर किलकिला शब्दसे तीन परिक्रमा करके गायें और हँसे मनुष्य निःशंक होकर बोले जो जिसके मनमें हो । उसशब्दसे तथा होमसेउसका निराकरण होगा, एवं डिम्भोंके अट्टहाससे राक्षसी नाशको प्राप्त होजायगी, वह पापिनी ढुंढा नामकी राक्षसी थी । उसी जगह युधिष्ठिरजीसे कृष्णने कहाथा कि अग्नि, जलानेकेबाद उसमें पूजाके प्रव्यका प्रक्षेप सब रोगोंको शान्त करता है, दुष्टोंको नाश करता है, इसीलिए किया जाता है । हे पार्थ ! इसीलिए इसे होलिका कहते हैं । होलिकानिर्णय--इसमें यह भद्रा-रहित प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, क्योंकि, दुर्वासाने कहा है कि, फाल्गुन पौर्णिमासीके दिन रातको होलीका उत्सव होता है । उसे दिवा विष्टी (भद्रा) रिक्ता और प्रतिपदामें न करना चाहिये । नारदजीकाभी कथन है कि, प्रतिपत् चौदश और भद्राके दिन, होलिकाका पूजन होनेसे वह सालभरतक राष्ट्रको जलाती रहती है, सदा फलगुनकी पूर्णिमाको प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये । इसमें भद्राके मुखको छोडकर प्रदोषमें होलीका पूजन हो । दिवोदासीयमें भी लिखा है कि सदा होलिकाका पूजन निशाके आगममें हो होता है ढुंढा दिनमें नहीं पूजी जाती, पूजनेपर दुख देती है । दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो पराकाही ग्रहण करना चाहिये । भद्रामें होली जलानेपर राष्ट्रका भंग करती है । नगरको भी इष्ट नहीं है । इसकारण भद्रका त्याग होना चाहिये, इस वचन तथा दुर्वासा आदिके वचनोंसे भद्रामें होलीको प्रदीप्त न करना चाहिये । यदि पर दिनमें प्रदोषके समय न हो तथा पूर्व दिनमें प्रदोषके समय भद्रा सहित पूर्णिमा हो तो उस दिन यदि निशीथ अर्धरात्रीतक भद्राका असवान मिल जाय तो पहिलेही दिन भद्राके अवसानमें होलीमें आग देनी चहिए । यदि निशीथके बाद भद्राकी समाप्ति होती हो तो भद्राके मुखको छोडकर भद्रामेंही प्रदोषके समय आग देदे, क्योंकि, दिनार्धसे उपरि यदि फाल्गुनकी पूर्णिमा हो तब रातको भद्राके अवसानमें होली जलावे । चतुर्दशीमें भी दो पहरसे

अगाडी राका हो तो भद्राके अवसानमें निशीथके अन्तमें भी होली जला दे, यह पुराण समुच्चयमें लिखा हु आ है । कहे हुए होलीके पूजनको भद्रामें भी करे । गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा और फलोंमें नाममंत्रसे होलीका विधिपूर्वक पूजन करे । योनि नामके मंत्रसे जोरसे पूजन करे, किलकिल शब्दोंसे आपसमें उच्चारण करे, योनिके मंत्रणके साथ स्त्रियोंको भ्रम पैदा कर दे, जो मनुष्य योनि नामके मंत्रको बोलता है उसे एक सालतक कोई पीडानहीं होती, सुखी रहता है । यदि पूर्व दिन प्रदोषकालमें पूर्णिमा न रहती हो अथवा उसके रहनेपर भद्राविना समय न मिलेएवम् दूसरेदिन प्रतोषकालमें पूर्णिमा न हो तो भद्राकोपुच्छमें होलीमें आगदेनी चाहिये । यहीलल्लने कहा है कि, पृथ्वीके जितने भी शुभ और अशुभ समय हैं वे सब भद्राकी पूंछमें होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है । यदि भद्राकी पूंछ मध्यरात्रके भी पीछे आये तो प्रदोषमेंही होली जलानी चाहिये. क्योंकि—लिखा हुआ है कि, यदि मध्यरात्रसे भी अगाडी यदि भद्रा पुच्छ हो तो प्रदोषमें होलीमें आग दे इससे सुख सौभाग्यकी प्राप्ति होती है । प्र दोषसे मध्यरात्रतक होलिकाका पूजन शुभ है यह लिखा है । जब पूर्णिमा परदिन साढेतीन पहर या इससे भी अधिक हो एवं प्रतिपदाकी वृद्धि हो तो पूर्णिमाके उत्तर प्रतिपदामें होलिका होनी चाहिये, किन्तु पहिले दिन भद्राकी पूंछमें न होनि चाहिये । यदि दूसरे दिन साढे तीन प्रहर पूर्णिमा हो प्रतिपदाकी वृद्धि हो तब होलिका होती है । यह भविष्य पुराणमें लिखा हुआ है । यदि उत्तरदिन प्रदोषके एकदेशमें व्याप्तिहो और पूर्वरात्रिमें भद्रारहित नमिले तब उत्तराकाही ग्रहण होता है, यदि पूर्वरात्रिमें भद्रा व्याप्त हो उत्तर दिन प्रदोषमें चन्द्रग्रहण हो तब उसीमें स्नान करके होली करे क्योंकि सब वर्णोंको राहुके दर्शनमें सूतक है । स्नान करके कर्म करे । सूतकके अन्नका त्याग करे । फाल्गुन मलमासहो तो शुद्ध मास होनेपर होली होती है ।। पूजा मंत्र—हे होलिके ! खूब पीनेवाली राक्षसीके भयसे डरे हुए बालकोंसे तू कीगई है, इस कारण मैं तुझे पूजता हूं । हे भूते ! तू भूति देनेवाली होजा । यह होलीका निर्णय पूरा हुआ ।। इसीके साथ पूर्णिमाके व्रत भी पूरे होते हैं ।।

अथामावास्याव्रतानि लिख्यन्ते

तत्र भाद्रपदामावास्यायां कुशग्रहणम् हेमाद्रौ उक्तं हारीतेन—मासे नभमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः ।। अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याश्च पुनः पुनः ।। नभ :—श्रावणः ।। दर्शान्तपक्षेणेदम् ।। मदनरत्ने तु—मासे नभस्येऽमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः ।। इति स्पष्टमेवोक्तम् ।।

इति कुशग्रहणी अमा ।।

---

१ होलीमें पूरे प्रदोषकालमें रहनेवाली पूर्णिमाका ग्रहण होता है, यानी सूर्य्यास्तसे लेकर जो तीन वा गौडोंके मतसे दो घड़ीका जो प्रदोष कार है उसमें बनी रहे । तीनके भीतर दो आजाते हैं । इस कारण तीन घड़ीतक बराबर उस समय रहनेवाली हो लेली जायगी । यदि दो दिन प्रबोष व्यापिनी हो अथवा पर दिन प्रदोषके एकदेशमें हो तो पराकाही ग्रहण होगा । पूर्णिमाके पूर्वार्धमें भद्रा रहा करती है जितना पूर्वार्धकाल होता है वह सब भद्राका काल होता है, इस भद्रा कालको चार भागोंमें विभक्त कर देनेके तीसरे चणके अन्तकी तीन घडियाँ, भद्राकी पूंछ कहाती है तथा चौथे चरणके आदिकी पाँच घडियाँ मुख कहलाती हैं ।इसमें भद्राका त्याग करना चाहिये यदि पूर्णिमामें आधीराततक भद्रोंकी अवसान मिल जाय तो भलेही आधी राततक होली का दहन हो पर भद्रामें न हो । यदि ऐसा असंभव होतो भद्राके मुखका परित्याग करे पूंछका किसी तरह ग्रहण हो जाता है । जितने भी पक्षान्तर कहे हैं वे सब भद्राको बचानेके लिये कहे हैं । सर्वथा असंभव हो तो विशेष परिस्थितिमें भद्रामें भी किये गये होलिकादहनको निर्दोप मानते हैं । ये सब विचार टीकामें दिखाये जा चुके हैं ।

अमावास्याव्रतानि

अमावसके व्रत लिखे जाते हैं । कुश ग्रहण---भाद्रपदकी अमावसके दिन होता है । यह हेमाद्रिने हारीतके वचनोंसे कहा है कि, श्रावण 'भाद्रपद की अमावस्याके दिन कुशोंको चयन होता है अर्थात् उसमें कुश लेने चाहिये, वे कुश पर्युषित दोषको प्राप्तनहीं होते हैं, तथा वारंवार वैदिक कार्योंमें लिए जासकते भी हैं, दर्शान्त मानको लेकर श्रावण रखदिया है जिसका पौर्णिमान्त मानमें भाद्रपद अर्थ होता है । मदरत्नने तो भाद्रपद मासकी अमावसके दिन कुशोंका चयन होता है यह स्पष्टहीकहा है । वह कुशोंको ग्रहण करनेकी अमावस पूरी हुई ॥

पिठोरीव्रतम्

अत्रैव अमावास्यायां पिठोरीव्रतम् ॥ मध्यदेशे तु पोला इति प्रसिद्धम् । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ॥ यदा पूर्वरात्रौ प्रदोषव्याप्त्यभावस्तदा परा कार्या ॥ अथ व्रतविधिः प्रातः कृत्यं निर्वर्त्य मास पक्षाद्युल्लिख्य मम इह जन्मनि जन्मान्तरे वा सौभाग्यपुत्र पौत्रफलावाप्त्यर्थं पिठोरीव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य सन्ध्याकाले स्नात्वा प्रदोषसमये देवीं संपूज्य षोडशोपचारैः ब्राह्मणं सुवासिनीं संभोज्य पश्चात्स्वयं भुञ्जीत ॥ इति विधिः ॥ नमो देव्यै इति मंत्रेण षोडशोपचारैः पूजनं कुर्यात् ॥ अथ कथा—इन्द्राण्युवाच ॥ अपुत्रा लभते पुत्रं परत्र च महत्फलम् ॥ व्रतानां परमं श्रेष्ठं कथय त्वं हि पार्वति ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच ॥ प्राचीनः श्रीधरो विप्रो ह्यष्टपुत्रो धनेश्वरः ॥ तस्य भार्या सुमित्रा च गृहधर्मेण वर्तते ॥ २ ॥ श्रीधरस्य सुतो ज्येष्ठः शंकरो नाम नामतः ॥ तस्य भार्या विदेहा च मृतापत्याभवत्सदा ॥ ३ ॥ श्रीधरस्य पितुः श्राद्धदिने सा च प्रसूयते ॥ दुःखयुक्ता सुमित्रा च विदेहां पर्यतर्जयत् ॥ ४ ॥ तर्त्तजिता तु सा शीघ्रं विदेहा निर्गता गृहात् ॥ गृहीत्वा तं मृतं बालमपश्यन्ती गतिं क्वचित् ॥ ५ ॥ दुःखयुक्ता वनं प्राप्ता मठमेकं ददर्श सा ॥ सरिच्च प्रबला यत्र विदेहा तत्र सा गता ॥ ६ ॥ मठमध्ये स्थिता नारी पश्यन्ती च पुनः पुनः ॥ कुत्रेयमधुना प्राप्ता लक्षणान्वित सुन्दरी ॥ ७ ॥ मठाधिपा विचार्येवं विदेहामाह सत्वरम् ॥ झोटिङ्गैर्यक्षवेतालैरनेकैः स्थायते शुभैः ॥ ८ ॥ त्वां ग्रसिष्यन्ति सकला गच्छ शीघ्रं यथागतम् ॥ विदेहोवाच ॥ दुःखयुक्तां च मामत्र भ्रमन्तीं च वनान्तरे ॥ ९ ॥ मा ग्रसेयुश्च पिङ्गाक्षि क्षेमं मम भवेत्कथम् ॥ तच्छ्रुत्वा सदयोवाच मठनारी च तां प्रति ॥ १० ॥ मठनार्युवाच ॥ योगिन्यश्च चतुःषष्टिर्दिव्ययोग्यादयस्तित्वह ॥ पूजनार्थं समायान्ति निशामध्ये शुभास्तु ताः ॥ ११ ॥ तव कामं करिष्यन्ति जीवयिष्यन्ति बालकान् ॥ बिल्वपत्रेषु गुप्ता त्वमधुना भव भामिनि ॥ १२ ॥ यदास्त्यत्रातिथिः कश्चिदिति ता ब्रूयुरङ्गने ॥ तदा त्वमहमस्मीति चोक्त्वाशु प्रकटा भव ॥ १३ ॥ मठनारीवचः श्रुत्वा विश्वासं परमं गता ॥ गुप्ता तत्र विदेहा च बिल्वपत्रेषु

संस्थिता ।। १४ ।। क्षणेनैकेन झोटिङ्गा मठमध्ये समागताः ।। ज्ञात्वा मनुष्यगन्धं च मठनारीमथाब्रुवन् ।। १५ ।। कुतो मनुष्यगन्धश्च मठगेहं समाश्रितः ।। एवं वदत्सु झोटिङ्गेष्वथाकस्माच्छुचिस्मिताः ।। १६ ।। निशामध्ये चतुःषष्टिर्देव्यस्तत्र समागताः ।। अनेकैश्च महारत्नैः फलैर्नानाविधैरपि ।। १७ ।। निविष्टां मठदेवीं तामर्चयन्ति स्म भक्तितः ।। श्रावणस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे कुहूतिथौ ।। १८ ।। पूजान्तेऽतिथिरत्रास्ति कोऽपीति ब्रुवते स्म हि ।। तदाहमस्मीत्युक्त्वा सा विदेहा प्रकटाभवत् ।। १९ ।। न्यवेदयत्ततो दुःखं योगिनीभ्यः स्वमाशु सा ।। ममाशुचित्वमापन्नं मातरो बालको मृतः ।।२०।। युष्मदग्रे तमादाय स्थितास्म्येवं हि बालकाः ।। जाताजाता मृता सप्त तेनाहमतिदुःखिता ।। २१ ।। भाग्येन सङ्गता यूयं याचे युष्मत्प्रसादतः ।। मम गर्भाश्च योगिन्यः सजीवा हि भवन्त्वितः ।। २२ ।।तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा करुणापूर्णमानसाः।। तत्र स्थितं च नैवेद्यं विदेहायै वितीर्य ता।।:२३।।चतुषष्टिस्ततस्तुष्टा ददुस्तस्यै शुभं वरम् ।। श्रीधरस्य स्नुषे त्वं हि शंकरस्य च वल्लभे ।। २४ ।। पुत्रपौत्रयुता सौख्यमिह भुक्त्वा सुरालये ।। पूज्या भविष्यसि शुभे त्वमस्मद्वरदानतः ।। २५ ।। आश्वष्टपुत्रा जीवन्तु विदहे गम्यतां पुरम् ।। आगता येन मार्गेण तेनैव पुनरेवं हि ।। २६ ।। इति दत्त्वा वरं तस्यै योगिन्योऽन्तर्हितास्तदा ।। अष्टौ पुत्राः समायाता विदेहायाः पुरस्ततः ।। २७ ।। मठान्निर्गत्य सा हृष्टा ध्यायन्ती योगिनीगणम् ।। आगत्य स्वपुरं रम्यं प्रविवेश स्वमन्दिरम् ।। २८ ।। श्रीधरश्च सुमित्रा च शंकरो बान्धवैः सह ।। दृष्ट्वा तामष्टभिः पुत्रैर्युतां सन्मङ्गलोत्सवैः ।। २९ ।। सत्कृत्यापुर्मुदं ते वै देवीनां च प्रसादतः ।। विदेहाप्येकदा प्राप्ते पिठोराख्यकुहूतिथौ ।। ३० ।। द्विजमन्त्रादिनिर्घोषैर्दुन्दुभीपटहस्वनैः ।। मृगाक्षीमङ्गलाचारैर्मृदङ्गैर्नृत्यगीतकैः ।। ३१ ।। अपूजयच्चतुःषष्टियोगिनीर्भक्तिसंयुता ।। यासां स्मरणमात्रेण पुत्रपौत्रधनान्विता ।। ३२ ।। नारी भवति चेन्द्राणी तासां नामानि मे शृणु ।। दिव्ययोगी महायोगी सिद्धयोगी गणेश्वरी ।। ३३ ।। प्रेताक्षी डाकिनी काली कालरात्रिर्निशाचरी ।। झंकारी रौद्रवेताली भूतली भूतडम्बरी ।। ३४ ।। ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षी शुष्काङ्गी नरभोजनी ।। भट्टारी वीरभद्रा च धूम्राक्षी कलहप्रिया ।। ३५ ।। राक्षसी घोररक्ताक्षी विश्वरूपा भयंकरी ।। चण्डिका वीरकौमारी वाराही मुण्डधारिणी ।। ३६ ।। सासुरी रौद्रझंकारभाषिणी त्रिपुरान्तका ।। भैरवध्वंसिनी क्रोधदुर्मुखी प्रेतवाहिनी ।। ३७ ।। खट्वाङ्गी दीर्घलम्बोष्ठी मालिनी मन्त्रयोगिनी ।। कालाग्निग्रहणी चक्री कंकाली भुवनेश्वरी ।। ३८ ।। कटकी कोटिनी रौद्री यमदूती करालिनी ।। घोराक्षी कार्मुकी चैव काकदृष्टिरधोमुखी ।। ३९ ।। मुण्डाग्रधारिणी व्याघ्रा किंकिणी प्रेतभाषिणी ।। कालरूपा च कामाख्या उष्ट्रिणी योगपीठिका

।। ४० ।। महालक्ष्मी एकवीरा कालरात्री च पीठिका ।। संपूज्य नामभिश्चैतैः प्रार्थयेद्भक्तितत्परा ।। ४१ ।। नमोऽस्तु वश्चतुः षष्टिदेवीभ्यः शरणंव्रजे ।। पुत्र श्रीवृद्धिकामाहं भक्त्या वः पूजिताः शुभाः ।।४२।।एवमिन्द्राणि कथितं पिठोराख्यं महाव्रतम् ।। भक्त्या कुर्वन्ति या नार्यः कृत-कृत्या भवन्ति ताः ।। सुखसौभाग्यसंयुक्ताश्चतुःषष्टिप्रसादतः ।। ४३ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे पिठोरीव्रतम् ।।

पिठोरीव्रत---इसी अमासवके दिन होता है, यह मध्यदेशमें पोलानामसे प्रसिद्ध है, इसे प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये । यदि पहिले प्रदोषव्याप्त न मिले तो दूसरे दिन करना । व्रतविधि---प्रात:काल नित्यकर्म करके मासपक्ष आदिका उल्लेख करके कहे कि, मेरे इस जन्म और दूसरे जन्मोंमें सौभाग्य, पुत्र, पौत्ररूप फलकी प्राप्तिके लिए मैं पिठोरीव्रत करूंगा, ऐसा संकल्प करके सन्ध्याके समय स्नान करके प्रदोषके समय देवीका पूजन षोडशोपचारसे करके, ब्राह्मण और सुवासिनीको भोजन कराकर पीछे आप भोजन करे यह व्रतकी विधि पूरी हुई ।। नमो देव्यै इस मंत्रसे षोडश उपचारोंसे पूजन करे । कथा---इन्द्राणीने पूछा कि, पार्वतीजी ! जिस परम श्रेष्ठ व्रतके कियेसे निपुत्रीको पुत्र तथा इस और पर लोकमें बडा भारी फल मिले उसे कहिये ।।१।। पार्वतीजी बोलीं कि, पहिले श्रीधर नामका एक धनी ब्राह्मण था उसके आठ पुत्र थे । उसकी सुमित्रा नामवाली स्त्री गृहधर्मसे सुयुक्त रहा करती थी ।।२।। उसके बडे लडकेका नाम शंकर था, उसकी वधूके सन्तान होतेही मरजाती थी ।। ३ ।। एकवार श्रीधरके पिताके श्राद्धके दिन वह प्रसूता हुई उसकी मा सुमित्राने उसकी स्त्री विदेहाको बहुत डाटा ।।४।। इससे वह झटपट वन चलती बनी वह इस मृतक बालकको लेकर चली थीं, ठिकाना कोई था नहीं दुखी हो वन पहुंच गई, वहीं एक मठ देखा; वहां एक बडी नदी थी ।।५।।६।। वह मठमें बैठ गई वहांके लोग उसे बार बार देखने लगे कि, यह सभी लक्षणोंवाली सुन्दरी कहांसे आई ।।७।। मठके मालिकोंने आपसमें विचार करके जलदीही विदेहासे कह दिया कि, यहां बडे बडे विकराल यक्ष वेताल रहते हैं ।८।।वे सब तुझे खाजायँगे नहीं तो तू यहांसे चली जा, यह सुन विदेहा बोली कि, मैं दुखोंकी मारी वनवन भटकती फिरतीहूं ।।९।। हे पिङ्गाक्षि ! वेभी तुझे क्यों खायें मेरा कल्याण कैसे हो, यह सुन मठकी स्त्री दयालु होकर बोली कि ।।१०।। यहां चौसठ योगिणी औरदिव्य योगी आदिक रहते हैं वे सब पूजनेके लिए यहां आते हैं, यदि उनसे प्रार्थना करोगी तो ।।११।। वे तेरे कामको पूरा करदेंगे । तेरे बालकोंको जिला देंगे इस समय तुम बेलपत्रोंमें छिप जाओ।।१२।।जब वे पूछें कि, कोई अतिथि है तब "हैं" वह कहकर प्रकट होजाना ।।१३।। मठनारीके वचन सुनकर विदेहाको परम विश्वास होगया एवं विल्वपत्रोंमें छिपकर बैठ रही ।।१४।। थोडेही समयमें वे सब झोंटिंग मठके बीच आगये मनुष्यकी गन्ध पहिचानकर बोले ।।१५।। घरमें मनुष्यकी गन्ध कहांसे आरही है ? वह इस प्रकार कहही रहे थे कि, सुन्दर मन्दहासवाली ।।१६।। चौसठ योगिनी मध्यरात्रमें वहां आ उपस्थित हुईं, वे अनेकों महारत्न एवं तरह तरहके फलोंसे ।।१७।। बैठी हुई मठदेवीको भक्तिपूर्वक पूजने लगी, उस दिन श्रावण (भाद्रपद) कृष्णा अमावस थी ।।१८।। पूजाके पीछे बोली कि, कोई अतिथि है क्या ? यह सुनकर "मैं हूं" यह कह विदेहा प्रकट होगई ।।१९।। योगिनियोंसे अपना दुख निवेदन किया कि, ए माताओ ! मैं दुरीवन गई मेरा बालक मरगया ।।२०।। मैं उस बालकको लेकर आपके सामने स्थित हूं इसी तरह मेरे सात बालक पैदा हुए और मरगये इस कारण अत्यन्त दुखी हूं ।।२१।। आज आप मुझे मेरे बडे भाग्योंसे मिलगई हैं । आपकी कृपासे मेरे बालक जिन्दे होजाय तथा होनेवाले न मरें।।२२।।उसके ये वचन सुनकर उन्हें बडी दया आई, वहां जो नैवेद्य रखा था वह उसे देदिया ।।२३।। चौसठ योगिनी उससे प्रसन्न होकर बोली कि, हे श्रीधरकी पुत्रवधू ! शंकरकी प्राणप्यारी ! ।।२४।। बेटा नातियोंके साथ यहां सुख भोगकर स्वर्गमें पूज्य होगी यह हमारा वरदान है ।।२५। तेरे आठों बेटे जिन्दे होकर तेरे पास अभी आजायें, आप जिस मार्गसे आयी हो उसीसे वापिस चली जाओ

।।२६।। ऐसा वर दे योगिनी अलक्ष्य होगई; उसी समय आठों बेटे उसके पास आगये ।।२७।। योगिनियोंका ध्यान करती हुई अपने नगर आ घर चली गई ।।२८।। श्रीधर, सुमित्रा और शंकर भाई लोगोंके साथ, आठ पुत्रोंसहित उसे आते देख, मंगल उत्सवोंके साथ ।।२९।। उसका सत्कार कर परम प्रसन्नहुए, विदेहाने एक साथ पिठोरी अमावसके दिन।।३०।।ब्राह्मणोंके मंत्रपाठ, ढोलक और नक्काडेकी आवाज मृदंगकी झनकार नाच गान और अनेक तरहके मंगलाचारके साथ ।।३१।। भक्तिपूर्वक चौसठों योगिनियोंका पूजन किया । जिनके स्मरण मात्रसे स्त्री, पुत्र पौत्र और धन पाजाती है तथा इन्द्राणीके बराबर सुखी होजाती है । उनके नामोंको सुन, दिव्ययोगी, महायोगी, सिद्धयोगी, गणेश्वरी ।।३२।।।३३।। प्रेताक्षी, डाकिनी, काली, कालरात्रि, निशाचरी, झंकारी, रौद्रवेताली, भूत्तली, भूतडंबरी ।।३४।। ऊर्ध्वकेशी, विरूपाक्षी, शुष्काङ्गी, नरभोजिनी, भट्टारी, वीरभद्रा, धूम्राक्षी, कलहप्रिया ।३५।।राक्षसी, घोरक्ताक्षी, विश्वरूपा, भयंकरी, चंडिका वीरकौमारी, वाराही, मुंडधारिणी ।।३६।। सासुरी, रौद्रग्रहणी, चक्री, कंकाली, भुवनेश्वरी, ।।३७।। खट्वांगी, दीर्घलंबोष्ठी, मालिनी मंत्रयोगिनी, कालाग्निहणी, चित्रिणी, कंकाली, भूवनेश्वरी ।।३८।। कटकी, कीटिनी, रौद्री, यमदूती, गरालिनी, कोराक्षी, कार्मुकी, काकदृष्टि, अधोमुखी ।।१९।। मुंडाग्रधारिणी, व्याघ्री, किंकिनी, प्रेतभाषिणी, कालरूपा, कामाक्षी उष्ट्रिणी, योगपीठिका ।।४०।। महालक्ष्मी, एकवीरा कालरात्री, पीठिका ये चौसठ योगिनियां हैं इन्हीं नामोंसे भक्तिभावके साथ इनका पूजन करना चाहिये ।।४१।। मैं आप चौसठ देवियोंकी शरणको प्राप्त हुई हूं, मैंने पुत्र और लक्ष्मीकी वृद्धिकी इच्छासे भक्तिपूर्वक आपका पूजन किया है ।।४२।। हे इन्द्राणि ! यह पिठोरी नामका महाव्रत आपको सुना दिया है जो स्त्रियाँ इसे भक्तिपूर्वक करेंगी वे कृतकृत्य होजायँगी एवं चौसठ योगिनियोंके प्रभावसे वे पुत्र पौत्रोंसे युक्त होजायँगी ।।४।। यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ पिठोरीव्रत पूरा हुआ ।।

गजच्छाया

अथाश्विनकृष्णामायां गजच्छायापर्व ।। अपरार्के यमः—हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता ।। सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् हंसे—सूर्ये ।। करे--हस्ते स्थित, सति ।। अत्र स्नान श्रद्धदानादि कुर्यात्।।इति गजच्छाया।।

गजच्छायापर्व—आश्विन कृष्णा अमावसके दिन होता है । अपरार्क ग्रन्थमें यमका वचन है कि, बोधायनने ऐसा कहा है कि, हंसके करस्थित होनेपर जो करयुता अमावस्या है उसे गजच्छाया पर्व समझना चाहिये । हंस सूर्य तथा कर हस्त नक्षत्रका नाम है, यानी सूर्य हस्त नक्षत्रपर हो तब हस्त नक्षत्रवाली अमावसको गजच्छाया योग होता है । (धर्मसिन्धुने कहा है, कि हस्त नक्षत्रपर सूर्य हो तथा चान्द्र हस्त नक्षत्रसेही अमायेक्त हो तो गजच्छाया योग होता है) यह गजच्छाया पुरी हुई ।।

लक्ष्मीव्रतम्

अथ कार्तिकामावास्यायां लक्ष्मीव्रतं बलिराज्योत्सवश्च ।। *वालखिल्या ऊचुः ।। एवं प्रभातसमये अमायां च मुनीश्वराः ।। स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च ।। १ ।। कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ।। भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान् भोजयित्वा क्षमापयेत् ।। २ ।। दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बाला-

* अत्र प्रथमं एवं प्रभातसमये इत्यारभ्य वालातुराज्जनादित्यंतेन विहितं निवर्त्य ततस्ततोऽपराह्णसमये इत्यारम्यद्वागाण्युक्तान्यतस्त्यजेदित्यन्तेनाभिहितं कृत्यं निर्वर्त्य ततस्तः प्रदोषसमये इत्यारम्य नववस्त्रोपशोभिनेत्यन्तेन विहितानि कृत्यान्यनुष्ठाय ततस्ततोर्धरात्रसमये इत्यारम्य स्वगृहांगणादित्यनेन विहितं कृत्यं कुर्यादित्येवं क्रमोर्थक्रमानुरोधादृष्टव्यः । हेमाद्रयादिनिवन्धेष्वेवमेव दर्शनाम् —

तुराज्जनात् ।। ततः प्रदोषसमये पूजयेदिन्दिरां शुभाम् ।। ३ ।। कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैः स्वच्छं लक्ष्म्याश्च मण्डपम् ।। नानापुष्पैः पल्लवैश्च चित्रैश्चापि विचित्रितम् ।। ४ ।। तत्र संपूजयेल्लक्ष्मीं देवांश्चापि प्रपूजयेत् ।। सम्पूज्या देवनार्योऽपि बहुभिश्चोपचारकैः ।। ५ ।। पादसंवाहनं कुर्याल्लक्ष्म्यादीनां तु भक्तितः ।। अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिताः पुरा ।। ६ ।। बलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चापि विमोचिता ।। लक्ष्म्या सार्धं ततो देवा नीताः क्षीरोदधौ पुनः ।। ७ ।। प्रसुप्ता बहुआलं ते सुखं तस्मान्मुनीश्वराः ।। रचनीया सूत्रगर्भाः पर्यंकाश्च सतूलिकाः ।। ८ ।। दुग्ध फेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम् ।। स्वापयेत्तान्सुराल्लँक्ष्मीं वेदघोषसमन्वितः ।। ९ ।। लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्ताम्बुजोदरे ।। अतश्च विधिवत्कार्या तुष्टचै तु सुखसुप्तिका ।।१०।। तदह्नि पद्मशय्यां यः पद्मासौख्यविवृद्धये ।। कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा क्वापि न व्रजेत् ।। ११ ।। न कुर्वन्ति नरा इन्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम् ।। धनचिन्ताविहीनास्ते कथं रात्रौ स्वपन्ति हि ।। १२ ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लक्ष्मीं सुस्वापयेन्नरः ।। दुःखदारिद्यनिर्मुक्तः स्वजातौ स्यात् प्रतिष्ठितः ।। १३ ।। जातीपत्रलवङ्गैलाफलकर्पूरसंयुतम् ।। पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम् ।। १४ ।। लड्डूकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्म्यै समर्पयेत् ।। अन्यच्चतुर्विधं भक्ष्यं देशकालादिसंभवम् ।। १५ ।। सर्वं निवेदयेल्लक्ष्म्यै मम श्रीः प्रीयतामिति ।। दीपदानं ततः कुर्यात् प्रदोषे च ततोल्मुकम् ।। १६ ।। भ्रामयेत्स्वस्य शिरसि सर्वारिष्टनिवारणम् ।। दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहादिषु ।। १७ ।। चतुष्पथे श्मशाने च नदीपर्वतवेश्मसु ।। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषु च ।। १८ ।। वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्या राजमार्गस्य भूमयः ।। गृहेषु स्थापयेन्नानापक्वान्नानि फलानि च ।। १९ ।। नागवल्लीन्दलादीनि रचयित्वा च निक्षिपेत् ।। शोभां कुर्याद्राजमार्गे कमलैश्च विशेषतः ।। २० ।। तदभावे वरादीनां कृत्वा तानि च शोभयेत् ।। एवं पुरमलंकृत्य प्रदोषे तदनन्तरम् ।। २१ ।। ब्राह्मणान्भोजयित्वादौ सम्भोज्य च बुभुक्षितान् ।। लड्डूका पूपमण्डाद्यैः शष्कुलीपूरिकादिकैः ।। २२ ।। अलंकृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना ।। ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृप ।। २३ ।। अद्य राज्यं बलेर्लोका यथेच्छं क्रीडयतमिति ।। यथेच्छं क्रीडयतां बाला इत्यादेश्य नृपेण तु ।। २४ ।। विलोक्य बालकक्रीडा नानासामग्रिसंयुताः ।। तेभ्यो दद्यात्क्रीडनकं ततः पश्येच्छुभाशुभम् ।। २५ ।। तैश्चेत्प्रदीपितो वह्निर्न ज्वालां मुञ्चते यदा ।। महामारीभयं घोरं

---

* मालादिरूपेणेत्यर्थः ।

दुर्भिक्षं वाथ जायते ॥२६॥ *बालशोके राजशोकस्तेषां तुष्टौ नृपे सुखम् ॥ बालयुद्धे राजयुद्धं रोदने बालकैः कृते ॥ २७ ॥ अवश्यमेव भवति वर्षंद्राष्ट्रविनाशनम् ॥ यष्टिकादिकृतानश्वान् यदारोहन्ति बालकाः ॥ २८ ॥ तदा राज्ञो जयो वाच्यः परराष्ट्रविमर्दनम् ॥ यदा क्रीडन्ति बालास्ते लिङ्गं धृत्वा करादिषु ॥ २९ ॥ तदा प्रसिद्धनारीणां व्यभिचारः प्रजायते ॥ अन्नं यदा गोपयन्ति क्रीडने बालका जलम् ॥ ३० ॥ दुर्भिक्षं वृष्टयभावश्च शीघ्रमेव प्रजायते ॥ एवं बालकृतां चेष्टां बुद्ध्वा चास्य फलं वदेत् ॥३१॥ २लोकस्यापि पुरे रम्ये सुधाधवलिताजिरे ॥ गीतवादित्रसंजुष्टे प्रज्वालितसुदीपके ॥ ३२ ॥ अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ते दत्ते तालनके जने ॥ ताम्बूलहृष्टहृदये कुङ्कुमाक्षतर्चाचिते ॥ ३३ ॥ दुकूल पट्टवसननेपथ्यादिविभूषिते ॥ मित्रस्व जनसम्बन्धिस्वगोत्रज्ञातिपूजिते ॥३४॥ बलिराज्ये प्रकर्तव्यं यद्यन्मनसि वर्तते ॥ आत्मनो यत्र सौख्यार्थः परदुःखकरं च यत् ॥ ३५ ॥ वाराङ्गनादिगमनं स्पृष्टास्पृष्टादभक्षणम् ॥ अन्याम्बरधृतिश्चापि द्यूताद्यं च न दुष्यति ॥ ३६ ॥ एवं तु सर्वथा कार्यो बलिराज्ये महोत्सवः ॥ जीवहिंसासुरापानमगम्यागमनं तथा ॥ ३७ ॥ चौर्यं विश्वासघातश्च पञ्चैतानि मुनीश्वराः ॥ बलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तान्यतस्त्यजेत् ॥ ३८ ॥ ततोऽर्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् ॥ अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैः शनैः ॥ ३९ ॥ महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः ॥ हर्म्यशोभां सुखं पश्यन् कृतरक्षैः स्वकैर्नरैः ॥ ४० ॥ बलिराज्यप्रमोदं च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत् ॥ एवं गते निशीथे च जने निद्रार्धलोचने ॥ ४१ ॥ तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः ॥ निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात् ॥ ४२ ॥ (दण्डकैरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि ॥ तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका ॥) ये वैष्णवावैष्णवा वा बलिराज्योत्सवं नराः ॥ न कुर्वन्ति वृथा तेषां धर्माः स्युर्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥ इति सनत्कुमारसंहितायां लक्ष्मीव्रतम् बलिराज्योत्सवश्च सम्पूर्णः ॥

लक्ष्मीव्रत और बलिके राज्यका उत्सव ॥ कार्तिककी अमावस्याके दिन होता है, वालखिल्य बोले कि, हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार अमावसके दिन प्रातःकाल स्नान करके देव और पितरोंको भक्तिके साथ पूज, प्रणाम करके ॥ १ ॥ दधि क्षीर और घीसे पार्वण श्राद्ध करके, अनेक तरहके भोज्य पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर क्षमापन करावे ॥ २ ॥ इसमें बालक और आतुरोंको छोडकर दिनमें भोजन न करना चाहिये, प्रदोषकालमें लक्ष्मी पूजन करे ॥ ३ ॥ अनेकों अच्छे वस्त्रोंसे लक्ष्मीका मंडप बनावे, उसे अनेक तरहके पुष्प पलव और चित्रोंसे चित्र विचित्र कर दे ॥४॥ उसमें लक्ष्मी तथा दूसरे देवताओंका पूजन करे, अनेकों उपचारोंसे देवस्त्रियोंका भी पूजन करे ॥५॥ लक्ष्मी आदिके भक्तिके साथ चरणभी दावे। इस दिन विष्णु भगवान् बालक जेलखानसे सब देव और लक्ष्मीको छुटा क्षीरसागरपर ले आये थे॥६॥७॥हे मुनीश्वरो ! उसमें वे बहुत समयतक सोते रहे,सूतके

---

* वालातुष्टावित्यपि पाठः । २ लोकस्यापि फलं वदेदित्यन्वयः ।

वढिया पँलग बना उनपर सफेद वस्त्र बिछा यथायोग्य सबदेवोंको उसपर सुलादे वेदपाठ होता चला जाय ॥८॥९॥ लक्ष्मी दैत्योंके भयसे छुटकारा पाकर कमलमें सुखपूर्वक सोई थीं। इस कारण सबको विधिपूर्वक शयन करना चाहिये ॥१०॥ उस दिन जो लक्ष्मीके सुखके लिये कमलोंकी शय्या बनाता है, उसके घरको छोड़कर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती ॥११॥ जो इस प्रकार लक्ष्मीजी सुख सेज नहीं बिछाते वे पुरुष कभी धनकी चिन्ता विना नहीं सोते ॥१२॥ इस कारण सब तरहसे कोशिश करके लक्ष्मीजीको अवश्य ही सुखसेजपर पौढावे, वह दुख दारिद्रसे छूटकर अपनी जातिमें प्रतिष्ठित हो जाता है ॥१३॥ जातीपत्र, लवंग, एकाफल और कपूर इनको गऊके दूधमें डालकर खोआ बनाले, उसमें खांड मिलादे ॥१४॥ उनके लड्डू बनाकर लक्ष्मीको भेंटकरे और भी देशकालके अनुसार चारों प्रकारके भक्ष्यादि ॥१५॥ लक्ष्मीको भेंट करे और कहे कि, लक्ष्मीजी मुझपर प्रसन्न हो जायँ, इसके बाद दीपदान करे उसके बाद जलती हुई मसालको ॥१६॥ अपने शिरके ऊपर फिरावे इससे सभी अरिष्टोंका निवारण होता है। अपनी शक्तिके अनुसार देवालयोंमें दीपकके वृक्ष बनावे ॥१७॥ चौराहे, श्मशान, नदी, पर्वत, घर, वृक्षमूल, गोष्ठ, चबूतरा, गृह इन सबमें दीपक जलाने चाहियें ॥१८॥ राजमार्गकी भूमियोंको वस्त्र और पुष्पोंसे सुशोभित करना चाहिये। घरोंमें अनेक तरहके पक्वान्न और फलरखे ॥१९॥ नागवल्लीके दलोंकी माला बनाकर रखे, राजमार्गमें विशेष करके कमलोंकी शोभा करे ॥२०॥ इसके अभावमें घर आदिकोंकी शोभा करे। इस प्रकार नगरको सजावे। इसके बाद प्रदोषके समय ॥२१॥ लड्डू पूरी जलेबी अपूप और मंडोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करा भूखोंको जिमाना चाहिये ॥२२॥ आप अपना शृङ्गार करके भोजन करे। न्ये वस्त्र धारण करे, अपराह्नके समय नगरमें विघोषित करे कि ॥२३॥ आज वलिका राज्य है हे मनुष्यो! हे बालको! खूब खेलो, यह बलिने आज्ञादेदी है॥२४॥ अनेकों सामग्रियोंके साथ बालकोंके खेलको देख उन्हें खेलनेका सामान देकर शुभ-अशुभ देखे॥२५॥ उनके जलाये हुए दीपक या अग्नि ज्वालाको न त्यागें तो महामारीका भय अथवा घोर अकाल होगा ॥२६॥ बालकोंके शोकमें राजशोक हो, उनके प्रसन्न होनेपर मनुष्यको सुख होता है। बालकोंकी लड़ाई हो तो राजयुद्ध हो। यदि बच्चे रोवें तो ॥२७॥ अवश्यही वर्षसे राष्ट्रका विनाश होगा, यदि बालक लकडीका घोड़ा बनाकर उसपर चढ़े तो ॥२८॥ पर राष्ट्रका नाश एवं अपने राज्य की जीत होगी। यदि बालक लिंगको हाथमें लेकर खेलें तो ॥२९॥ प्रसिद्ध कुलोंकी स्त्रियोंका व्यभिचार होगा। यदि खेलते हुए बालक अन्नको पानीमें छिपावें तो ॥३०॥ दुर्भिक्ष्य और वर्षाका अभाव शीघ्रही हो जाता है, इस प्रकार बालकोंकी की हुई चेष्टाको देखकर इसका फल मनुष्योंसे कहे जिसमें आंगन सुधासे सफेद हो रहे हैं, गाने बजाने हो रहे हैं दीपक जल रहे हैं ऐसे सुन्दर नगरमें ॥३१॥३२॥ जिसमें मनुष्य आपसमें प्रेम कर रहे हैं,तालनक द रहे हैं, पान चबाकर प्रफुल्लित हृदय हो रहे हैं, माथेमें कुंकुम और अक्षत लगाये हुए हैं, जो कि दुकूल पट्टवस्त्र और नैपथ्य आदिसे सुशोभित हैं, मित्र स्वजन सम्बन्धित गोत्र और ज्ञातिसे पूजित हैं ॥३३॥३४॥ जो जो मनमें हो सो बलिके राज्यमें करे जिससे अपनेको सुख हो तथा दूसरे किसीको दुख न हो ॥३५॥ वेश्या आदिका गमन, छूताछूत, भोजन, दूसरेके कपडोंका पहिनना और जूआ आदिके ये इसदिन उनके लिये वर्जित नहीं है जिनके कि यहां चलते हैं ॥३६॥ इस प्रकार सब तरह बलिके राज्यमें महोत्सव मनावे, जीवहिंसा, सुरापान, अगम्यागमन ॥३७॥ चौर्य्य, विश्वासघात इन पांच कामोंको न करे क्योंकि हे मुनीश्वरो! ये पांचों नरकके द्वार कहे हैं, इस कारण इन्हें छोड़ दे ॥३८॥ आधीरातको राजा नगर में जाय आप स्वयं धीरे धीरे पैरोंसे चलकर नगरकी रमणीयता देखें ॥३९॥ साथमें बाजे बज रहे हों हाथोंमें मंसाल आदि लेकर लोग साथ चल रहे हों, साथमें निजी आदमी रक्षा कर रहे हों सुख पूर्वक हवेलोंकी शोभा देखता हूआ ॥४०॥ बलिके राज्यका आनन्द देखकर अपने घर आजाय, इस प्रकार निशीथ बीतजानेपर आखोंमें नींदका लटका आजानेसे आधी खुली आधी मिची आखोंके हो जाने पर ॥४१॥ प्रहृष्ट स्त्रियोंके सूर्प और डोंडीके बजानेके साथ अलक्ष्मीको घरके आंगनसे निकाल देनेपर ॥४२॥ (एक दण्ड रजनीके योगमें पर दिनमें दर्श होता है, उसे छोड़कर पहिले दिन सुखरात्रिका होती है)जो वैष्णव वा अवैष्णव हों, बलिराज्यका उत्सव नहीं मनाते, उनके किए हुए धर्म व्यर्थ

हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।।४३।। यह श्री सनत्कुमार संहिताका कहा हुआ लक्ष्मीव्रत और बलिराज्यका उत्सव संपूर्ण हुआ ।

गौरीव्रतम्

अथ मार्गशीर्षअमावास्यायां गौरीतपोव्रतम् ।। सूत उवाच ।। इन्द्राणी प्राञ्जलिर्भूत्वा स्वपतिं वाक्यमब्रवीत् ।। एकं व्रतं समाचक्ष्व पुत्रपौत्रसुखप्रदम् ।। १ ।। इति वाक्यं तदा श्रुत्वा हृचुवाच वचनं शचीम् ।। शृणु चार्वङ्गि सकलं यन्मया सुकृतं कृतम् ।।२।। बृहस्पतेस्तु जनकः पृष्टः प्राहाङ्गिराः सुधीः ।। यद्व्रतं कथयाम्यद्य सद्यः सुखकरं परम् ।। पतिपुत्रसुखावाप्तिर्जायते जगति स्थिरा ।।३।। गौरीप्रीत्यर्थमेवादौ स्त्रीभिर्यत्क्रियते तपः ।। गौरीतप इति ख्यातं तस्मात्तद्व्रत-मुत्तमम् ।। ४ ।। तस्मास्त्त्रिया तपोभिश्च तोषणीया शिवप्रिया ।। आदौ मार्गशिरे मासि ह्यमावास्यादिने शुभे ।। ५ ।। गृह्णीयान्नियमं तत्र दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नक्तस्य गौरीशप्रीतये मुदा ।। ६ ।। ईशार्धाङ्गस्थिते देवि करिष्येऽहं व्रतं तव ।। पति पुत्रसुखावाप्तिं देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। ७ ।। नियममन्त्रः– ततो मध्याह्नसमये स्नात्वा नद्यादिषु व्रती ।। सूर्यायार्घ्यं ततो दत्त्वा ध्यात्वा गौरीश्वरं हरम् ।। ८ ।। अहं देव व्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् ।। तवाज्ञया महादेव तत्र निर्वहणं कुरु ।। ९ ।। उक्त्वैवं नियमं गृह्णन्वर्षाण्येव तु षोडश ।। गृहमागत्य पूजार्थमुपचारान् प्रकल्पयेत् ।। १० ।। शिवालयं ततो गत्वा शिवं संपूजयेत्सुधीः ।। गौरीमभ्यर्चयेत्पश्चाद्विधिना येन तं शृणु ।। ११ ।। पार्वती तु ततः पादौ जान्वोर्हैमवतीति च ।। जंघयोरम्बिकेत्येवं गुह्यं गिरिशवल्लभा ।। १२ ।। नाभिं गम्भीरनाभीति अपर्णेत्युदरं पुनः ।। महादेवीति हृदये कण्ठे श्रीकण्ठकामिनी ।। १३ ।। मुखे षण्मुखमातेति ललाटे लोकमोहिनी ।। मेनकाकुक्षिरत्नेति शिरस्य-भ्यर्चयेत्तमः ।। १४ ।। दक्षिणे गणपः पूज्यो वामे स्कन्दः सवाहनः ।। धूपदीपादि-नैवेद्यं दत्त्वा नत्वा प्रद*क्षिणाम् ।।१५।। फलेनार्घ्यं ततो दत्त्वा ध्यात्वा देवीं महे-श्वरीम् ।। कृत्वा ताम्रमयं पात्रं मृण्मयं वैणवं तथा ।। १६ ।। अष्टतन्तुमयीं वर्तिं तस्मिन्पात्रे निवेशयेत् ।। घृतेनापूर्य गव्येन तत्पात्रं विमलेन च ।। १७ ।। दीप-मुज्ज्वालयेत्पश्चाद्यावत्सूर्योदयो भवेत् ।। एवं संक्षिप्य तां रात्रिं जागरेण सम-न्विताम् ।। १८ ।। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पूजयेद्द्विजदम्पती ।। ततो दौर्भाग्यदलनं पापाग्निशमनं तदा ।। १९ ।। पक्वान्नेन गुडान्नाद्यैः पूर्णं पूर्णफलप्रदम् ।। ऋतूद्भवैः फलैश्चैव पूरिकातिलतण्डुलैः ।। २० ।। सौभाग्याष्टकसंयुक्तं पात्रं कुर्यात्त्रिधातु-

* कृत्वेति शेषः ।

कम् ।। तस्योपरि स्थितं दीपं पूजयेत्तिथिनामतः ।। २१ ।। सुवासिनीवचो गृह्य दीपं सूर्याय दर्शयेत् ।। यावत्कलकलाशब्दं कुर्वते बककाककाः ।। २२ ।। तावत्पुरस्तात्कर्तव्यमिदमेवा*दरात्प्रभो ।। उत्तिष्ठन्ते यदि नगाद्विहङ्गाश्चारुलोचने ।। २३।। तदाकर्णनमात्रेण सौभाग्यं व्रजति स्त्रियाः ।। अत एतद्व्रते नारी पश्चादुत्थापयेच्च तान् ।। २४ ।। तिथिमेकां समाप्यैवं दंपतीः भोज्य शक्तितः ।। परिधाप्य स्वलंकृत्य वासोभिभूषणाञ्जनैः ।। २५ ।। माल्यौः सुगन्धैर्विविधै फलसिन्दूरकुंकुमैः ।। सन्तोष्य समनुज्ञाप्य स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।। २६ ।। एवं द्वितीये वर्षे च नन्दाद्याश्चाचरेत्तिथीः ।। वर्षेवर्षे क्रमादेवं द्वितीयादिषु चाचरेत् ।।२७।। एवं षोडषवर्षाणि कृत्वैतद्व्रतमुत्तमम् ।। पश्चादुद्यापनं कुर्याद्व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। २८ ।। मार्गशीर्षेऽथ संप्राप्ते मासे गौरीश्वरप्रिये ।। पौर्णमास्यां दिने रम्ये निमंत्र्य व्द्यष्टदम्पतीन् ।। २९ ।। मध्याह्नेऽष्टदले पद्मे गौरीं नारीं समर्चयेत् ।। यथोक्तेन विधानेन पुष्पधूपादिभिस्तथा ।। ३० ।। सोहलीभिश्च कासारैः पूपापूपैश्च भामिनी ।। पायसेन घृतेनापि शर्करामोदकैस्तथा ।। ३१ ।। पूरयित्वा व्द्यष्टसंख्यान् धातुमृन्मयसंपुटान् ।। युग्मानि भोजयित्वा तु तेभ्यो दद्याद्यथाविधि ।। ३२ ।। अलंकृत्य यथाशक्त्या गौरी मे प्रीयतामिति ।। गुरवे दक्षिणोपेतां गौरीं कनकनिर्मिताम् ।। ३३ ।। दद्याद्धेनुं सवत्सां च दक्षिणां वस्त्रसंयुताम् ।। अन्यान्यपि यथाशक्त्या दद्याद्दानानि भामिनि ।। ३४ ।। यद्यदिष्टतमं लोके तत्तद्देयं द्विजन्मने ।। चापल्यमायुषि ज्ञात्वा संपत्स्वपि च सुन्दरि ।। ३५ ।। षोडशाब्दव्रतमिदं कुर्याद्वर्षेण भक्तितः ।। गौरीतपोव्रतमिदं या करोतीह भामिनि ।। ३६ ।। बाल्ये यौवनकाले वा वार्धके वा हरिप्रिये ।। तस्याः सौभाग्यमतुलं धनधान्यसुतान्वितम् ।। ३७ ।। भवेदव्याहतैश्वर्यं भर्तृसौख्यं न संशयः ।। दुर्लभं मानुषं जन्म तत्रापि द्विजजन्मता ।। ३८ ।। सदाचारपरत्वं च तत्रापि तु विशिष्यते ।। एवं वारत्रयं या स्त्री कुरुते व्रतमुत्तमम् ।। ३९ ।। मातापित्रोः प्रियस्यापि प्राप्नुयाच्छुद्धवंशताम् ।। नैर्मल्यं जन्मनो वापि मनसच्चापि संपदः ।। ४० ।। लभते शुभतेजश्च पतिपुत्रसमन्विता ।। इह भोगान्यथाकामं भुक्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।। ४१ ।। इत्यङ्गिरोवचनमा[२]प्य शची पुराणं गौरीतपोव्रतमिदं विदधे यथेच्छम् ।। तस्य प्रभाववशतः सुलभं हि लेभे स्वाराज्यसौख्यमतुलं पतिपुत्रयुक्तम् ।। ४२ ।। इति गौ[३]रीतपोव्रतम् ।।

---

* समर्थे इति इन्द्राणीसम्बोधनम् । २ इन्द्रमुखाच्छुत्वेत्यर्थः । ३ अस्य मूलभूतपुराणादिकं नोपलब्धम् ।

गौरीतपोव्रत–मार्गशीर्षकी अमावस्याके दिन होता है, सूतजी बोले कि, इन्द्राणी हाथ जोड़कर अपने पतिसे बोली कि, कोई पुत्र और पौत्रोंके सुखको देनेवाले श्रेष्ठ व्रतको कहिये ।।१।। उसके ऐसे वचन सुन, इन्द्र बोला कि, हे सुन्दरि ! जो मैंने सुकृत किये हैं, उन सबोंको सुन ।।२।। बृहस्पतिके पूछनेपर उसके पिता अंगिराने जो व्रत कहा था उसी परमसुखकारक व्रतको मैं तुम्हें कहता हूं । जिससे संसारमें पतिपुत्रकी प्राप्ति स्थिर हो जाती है ।।३।। जिसे गौरीकी प्रसन्नताके लिए स्त्रियां करती हैं, इस कारण उसे गौरीतप करते हैं यह परम उत्तम व्रत है ।।४।। इस कारण तपद्वारा स्त्रियोंको शिवकी प्राणप्यारीको प्रसन्न करना चाहिए, मार्गशिर अमावस्याके पवित्र दिन ।।५।। दांतुन करके उपवास और नक्तका गौरीशकी प्रसन्नताके लिए नियम ग्रहण करे ।।६।। कि, हे भगवन् शिवके आधे शरीरमें विराजनेवाली ! मैं तेरा व्रत करूँगी । उससे मुझे पति पुत्रोंका सुख दे, तेरे लिए नमस्कार है ।।७।। यह नियम मन्त्र है, इसके पीछे मध्याह्नके समय नदी आदि-पवित्र स्थलोंमें स्नान करके सूर्य्यको अर्घ्य दे, गौरीशंकरका ध्यान करूँगी ।।८।। हे महादेव ! आपकी आज्ञासे मैं इस सनातनव्रतको करना चाहती हूं, आप उसका निर्वाह करिये ।।९।। इस प्रकार कहकर सोलह-वर्षके लिए नियम ग्रहण करके घर आकर उपचार तयार करे ।।१०।। शिवमंदिरमें जाकर शिव पूजन करे, जिस विधिसे गौरीपूजन होता है, उस विधिको सुनिये ।।११।। पार्वतीके लिए नमस्कार, चरणोंको पूजती हूं, हेमवतीके० जानुओंको पू०; अम्बिकाके० जंघाओंको; गिरिशवल्लभाके० गुह्यको ।।१२।। गहरी नाभि-वालीके० नाभिको; अपर्णाके० उदरको; महादेवीके० हृदयको०, श्रीकंठकी कामिनीके० कंठको० स्वामि कार्तिककी माताके० ।।१३।। मुखको० ; लोकमोहिनीके० ललाटको० ; मेनका माताकी कुक्षिके रत्नके लिए नम-स्कार, शिरको पूजती हूं ।। दक्षिणमें गणेश तथा बायीं तरफ वाहन सहित स्कन्दको पूजे, धूप, दीप आदि तथा नैवेद्य दे, प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे ।।१४।।१५।। फलका अर्घ्य देकर महेश्वरी देवीका ध्यान करे । तांबा, मिट्टी या बांसके पात्रमें आठ लरकी बत्ती डालकर उसे गौके शुद्ध घीसे भर दे, सूर्य्योदय तक दीपक जलावे, उस रात्रिको जागरण भी करे ।।१६–१८।। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर द्विजदंपतियोंका पूजन करे, इसके पीछे दुर्भा-गका दलन एवं पापाग्निका शामन करनेवाला ।।१९।। पक्वान्न और गुडान्नसे भरा हुआ, पूरे फलको देनेवाला, ऋतुफल, पूरी, तिल, तंडुल ।।२०।। और सौभाग्याष्टक ये तीन धातुके बने हुए पात्रमें रखकर उसपर दीपक स्थापित करके तिथिनामसे पूजे ।।२१।। सुवासिनीके वचनोंके अनुसार दीपकको सूर्य्यके लिएदिखा दे, जब-तक बक काक रव करना न प्रारंभ करें ।।२२।। उससे पहिले आदरके साथ इस कार्य्यको पूरा करले, हे सुलो-चने ! यदि वृक्षसे पक्षी उठ ठाडे हों ।।२३।। तो उनके शब्दमात्रसे स्त्रियां सौभाग्यको प्राप्त हो जाती हैं, इस-कारण स्त्री इनको पीछे उठावे यानी इनके उठनेसे पहिले अपना कार्य करले ।।२४।। इस प्रकार एक तिथिको समाप्त करके शक्तिके अनुसार दंपतियोंको भोजन करा वस्त्र पहिन उत्तम वस्त्र, भूषण और अंजनसे सज-सजकर ।।२५।। अनेक तरहकी मालाएं सुगन्धियां, फल, सिन्दूर, कुंकुम इससे सन्तुष्टकर बिदा दे, बन्धुवर्गोंके साथ आप भोजन करे ।।२६।। इसी प्रकार दूसरे वर्ष करे, नन्दासे प्रारंभ करे, प्रतिवर्ष क्रमसे द्वितीया आदि-कमें करे ।।२७।। इस प्रकार सोलह वर्षतक इस व्रतको करके पीछे व्रतकी संपूर्तिके लिए उद्यापन करे ।।२८।। शिव पार्वतीके प्यारे मार्गशीर्ष मासके आजाने पर पूर्णमासीके रम्य दिनमें सोलह दंपतियोंको निमंत्रण देकर ।।२९।। मध्याह्नके समय अष्टदल पद्मपर शिवपत्नी गौरीको पूजे, जैसी विधि कही है उसी विधिसे पत्र, पुष्प, धूप आदिसे पूजे ।।३०।। हे भामिनि । सुहाली, कासार, पूप, अपूप, पायस, घृत, सर्करा, मोदक ।।३१।। इनसे धातु, मिट्टी आदिके बने हुए सोलह पात्रोंको भरकर दम्पतियोंको जिमा उन्हें विधिपूर्वक दक्षिणा दे ।।३२।। शक्तिके अनुसार अलंकार करके 'मुझपर गौरीप्रसन्न हो' यह कहके दक्षिणाके साथ सौनेकी गौरीको गुरुको लिये दे दे ।।३३।। दक्षिणा और वस्त्रके साथ बच्छासहित धेनु दे । हे भामिनि ! जैसी शक्ति हो उसके अनु-सार दूसरे दान भी दे ।।३४।। आयु और संपत्तियां चंचल हैं, यह समझ कर जो ब्राह्मण चाहें वह उन्हें दे दे ।।३५।। प्रतिवर्ष सोलह वर्षतक इस व्रतको करे । हे भामिनि ! जो इस गौरीतपोव्रतको करती है ।।३६।। बाल्य यौवन वा वृद्धापेमें कभी भी करे, उसे धनधान्य और सुतोंके साथ अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है ।।३७।।

उसका ऐश्वर्य निर्बाध तथा भर्तृ तसौख्य होता है । इसमें संशय नहीं है । मनुष्य जन्म दुर्लभ है, उसमें भी द्विज होना महाकठिन है ।। ३८ ।। उसमें भी सदाचारी होना कठिन है । ऐसे जो स्त्री इस उत्तम व्रतको करती है ।।३९।। वह माता पिता और पतिकी शुद्ध वंशता प्राप्तकर लेती है । मन जन्म और संपत्तियोंकी निर्मलता मिल जाती है ।।४०।। शुभपति पुत्रवाली होकर शुभ तेजको प्राप्त करती है, इच्छानुसार यहांके भोगोंको भोगकर अन्तमें स्वर्ग प्राप्त करती है ।।४१।। इस प्रकार बृहस्पतिजीसे सुनकर शचीने सनातन गौरीतपोव्रतको किया । वह इस व्रतके प्रभावसे पति पुत्रके साथ अतुल सौख्य और सुलभ सुराज्य पा गई ।।४२?। यह गौरीतपोव्रत पूरा हुआ ।।

महाव्रतम्

इदमेव महाव्रतापरनामक मुक्तं हेमाद्रौ कालिकापुराणे ।। निलाद उवाच ।। महा[1]व्रतमथौ वक्ष्ये येनारोहति तत्पदम् ।। सुरासुरमुनीनां च दुर्लभं तद्विधिं शृणु।। पर्वण्याश्वयुजस्यान्ते पायसं च घृतप्लुतम् ।। नक्तं भुञ्जीत शुद्धात्मा ओदनं चैक्षवान्वितम् ।। आश्वयुजस्यान्ते कार्तिके पर्वणिअमावस्यायाम् ।। कार्तिकान्ते-दर्शे इत्यर्थः ।। ऐक्षवम्-इक्षुरसः ।। शर्वर्यन्ते शुचिर्भूत्वा बिल्वजं दन्तधावनम् ।। भुक्त्वा चैतन्महादेवं नत्वा भक्तियुतो व्रती ।। अहं देव व्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् ।। तवाज्ञया महादेव तत्र निर्वहणं कुरु ।। उक्त्वैवं नियमं गृह्णन्वर्षा ण्येव तु षोडश ।। तिथीः प्रतिपदाद्यास्तु पारयिष्याम्यनुत्तमाः ।। ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि ।। उपवसेद्गुरुं पृष्ट्वा महादेवं स्मरन्मुहुः ।। महादेवर-तान्विप्रान् भस्मसञ्छन्नविग्रहान् ।। षोडशाष्टौ तदर्धं वा दम्पतीनां निमन्त्रयेत् ।। देवं च नक्तमासाद्य दीपान्प्रज्वाल्य षोडश ।। पशुनाथं महादेवं भक्त्या नत्वा निवेदयेत् ।। आमन्त्र्य च गृहं गत्वा महादेवं स्मरन्क्षितौ ।। शुचिवस्त्रास्तृतीयां तु निराहारो निशि स्वपेत् ।। अथोदये सहस्रांशोः स्नात्वा चादाय दीपकान् ।। नैवेद्यं स्नपनाद्यं च गृह्य गच्छेच्छिवालयम् ।। गत्वा वितानकं तत्र वस्त्रयुग्मं च घण्टिकाम् ।। धूपोत्क्षेपं पताकाश्च दत्त्वा स्नानं तु कारयेत् ।। स्नापयेत्पञ्चगव्येन घृतेन तदनन्तरम् ।। मधुना च तथा दध्ना भूयश्च पयसा तथा ।। रसेन वाथ खण्डेन फलै[2]श्च स्नापयेत्पुनः ।। तिलाम्बुना ततः स्नाप्य पश्चादुष्णेन वारिणा ।। लेपये-त्सुघनं पश्चात्कर्पूरागुरुचन्दनैः ।। एवं संपूज्य तं भक्त्या हेमं न्यस्य व्रजेद्गृहम् ।। हेम सुवर्णपुष्पं भुजोपरि न्यस्येत्यर्थ इति हेमाद्रिः ।। नानाफलैश्च संपूज्य दद्यान्नै-वेद्यमेव हि ।। गृहं गत्वा यथान्यायं हिरण्यरेतसं विभुम् ।। जातवेदसमाधाय तर्पये-त्तिलसर्पिषा ।। व्रतिनश्च तथाचार्यं मिथुनानि च भोजयेत् ।। हेमवस्त्रादिदानानि यथाशक्त्या तु दापयेत् ।। एवं विसृज्य तान्सर्वान् सार्धं बन्धुजनैः स्वयम् ।। पीत्वादौ

---

१ गौरीतपोव्रतं वक्ष्ये इत्यपि पाठ इति व्रतार्ते । २ पलैरित्यपि पाठः । पलप्रमाणै पूर्वोक्तद्रव्यै रित्यर्थः ।

पञ्चगव्यं च हृष्टो भुञ्जीत वाग्यतः ।। 'यत्किञ्चिदेतदुद्दिष्टं महादेवमुदीरयेत् ।। प्रारभेयं विधिं कुर्याद्दरिद्रो वाप्यथेश्वरः ।। वित्तसामर्थ्यतश्चैव प्रतिमासं च तं चरेत् ।। स्वल्पवित्तोऽथवा कश्चित्पौषादौ कार्तिकावधि ।। नक्तं कृत्वा त्वमावास्यां प्रागुक्त विधिना ततः ।। प्रतिपदामुपोष्यैवं पञ्चगव्यं पिबेच्छुचिः ।। महादेवं स्मरन्साधं भक्त्या भुञ्जीत लिङ्गिभिः ।। मासस्य कार्तिकस्यान्ते कृत्स्नं प्राग्विधिमाचरेत् ।। प्रतिपदा द्वितीया च द्वे तिथी समुपोषयेत् ।। एवं पौषे तु संप्राप्ते प्रतिपन्नक्तमाचरेत् ।। द्वितीयाब्दे द्वितीयां तूपवसेत् कार्तिकावधि ।। आददीत तिथिं चैकां मार्गमासे तथा परम् ।। पूर्ववत्सन्त्यजेत्पौषे प्रत्यब्दं चैवमाचरेत्[2] ।। कृत्वैवं षोडशे वर्षे पौर्णमास्यां समुद्गमे ।। कार्तिक्यामुदये इत्यर्थः ।। पूर्ववद्देवमभ्यर्च्य कृशानुं धाम्नि तर्पयतेत् ।। [3]महादेवाय गां दयाद्दीक्षिताय द्विजाय च ।। हेमश्रृगीं सवत्सां च सघण्टां कांस्यदोहनाम् ।। शिवव्रतधरान् विप्रात्सहाचार्यांश्च षोडश ।। सम्पूज्य हेमवस्त्राद्यैर्यथाशक्त्या तु दक्षिणाम् ।। छत्रोपानहकुम्भांश्च दद्यात्तेभ्यः पृथक् पृथक् ।। भोजयेत्तान्विसृज्यैवं मिथुनानि च षोडश ।। ब्राह्मणांश्च यथाशक्त्या भोजयेद्वेदपारगान् ।। एवं महाव्रतं चैतद्ब्रह्मघ्नोऽप्यघमर्षणम् ।। धन्यमायुः प्रदं नित्यं रूपसौभाग्यदं परम् ।। स्त्रीपुंसयोश्च निर्दिष्टं व्रतमेतत्पुरातनम् ।। विधवयापि कर्तव्यं भवेदविधवा च या ।। उपोष्य प्रतिमासं तु भुञ्जीत व्रतिभिः सह ।। एकद्वित्रिचतुर्भिर्वा सर्वेष्वब्देषु शक्तितः ।। अन्ते चान्ते च वर्षाणां प्रारम्भविधिमाचरेत् ।। अथारब्धे व्रते कश्चिदसमाप्ते मृतो भवेत् ।। सोऽपि तत्फलमाप्नोति व्रतारम्भ प्रभावतः ।। वाचकाः श्रावकाश्चैव श्रोतारो व्रतिनश्च ये ।। भवन्ति पुण्यसंयुक्तास्तद्व्रताभिमुखाश्च ये ।। इति श्रीहेमाद्रौ कालिकापुराणे महाव्रतापरपर्यायं गौरीतपोव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

महाव्रत–इसीका दूसरा नाम है । यह हेमाद्रिने कालिकापुराणसे कहा है । निलाद बोला कि, मैं महाव्रत करूंगा जिससे उसके पदको पा जाता है, यह सुर असुर और मुनियोंको दुर्लभ है इसकी विधि सुनिये । आश्वयुजके अन्तमें आनेवाले मास कार्तिकके पर्वमें घीसे सनी हुई पायसको नक्तमें भोजन करे, ईखकी मिठाई पडा हुआ ओदन खाय । आश्वयुजस्यान्ते-कार्तिक मासके, पर्वणि–अमावस्याके दिन यानी अमान्त मासके कार्तिकके अन्तमें यानी दर्शमें जिसका पौर्णिमान्त मासका मार्गशीर्ष अमावस हो गया । ऐक्षवईखका रस । ये ग्रन्थकारके अर्थ हैं । रात्रिके अन्तमें पवित्र होकर बिल्वकी दांतुन करे, भक्तिभावके साथ महादेवको नमस्कार करके कहे कि, हे महादेव ! आपकी आज्ञासे मैं इस सनातन व्रतको करना चाहती हूं । आप उसका निर्वाह

---

१ यत्किचिदेतत्सर्वं महादेवमुद्दिश्य उद्दिष्टं दत्तमित्यदीरयेदित्यर्थः । २ अमावास्यायां नक्त प्रतिपद्युपवास इति प्रथमे वर्षे ।। अमावास्याया नक्तं प्रतिपदि द्वितीयायां चोपवासः।। शेषेषु प्रतिपदि नक्त द्वितीयायानुपवास इति द्वितीये ।। प्रतिपदि नक्तं द्वितीयातृतीययोरुपवासः ।। शेषेषु द्वितीयायां नक्तं तृतीयाया मुपवास इति तृतीये ।।एवं शेषेषु वर्षेषु चरेदित्यन्तग्रन्थस्य फलितोऽर्थो हेमाद्रौ । ३ महादेवमुद्दिश्येत्यर्थः ।

कर दीजिये, मैं सोलह वर्षतक इस नियमको ग्रहण करके श्रेष्ठ प्रतिपदा आदिको पारणा करूंगी । पीछे मार्गशीर्ष मासमें अमावस्याके दिन महादेवका स्मरण करके गुरुको पूछकर उपवास करे । शिव भक्त भस्म लगानेवाले सोलह वा आठ ब्राह्मण दंपत्तियोंको निमंत्रण दे देवे । और नक्त कालको प्राप्त होकर सोलह दीपक जलावे, वे सब भक्तिपूर्वक पशुनाथ महादेवके कर दे । पीछे घर आ पवित्र वस्त्रोंको भूमिपर बिछाकर निराहार रहकर उसी पर शयन करे, सूर्य्यके उदय होते ही स्नानकर दीपकोंको ले, नैवेद्य और स्नानका सामान लेकर शिवमंदिरमें जाय, मंडप बनावे, दो वस्त्र, घंटिका, धूप, ध्वजा ये सब देकर स्थान करावे, पलभर पंचगव्य, घृत, मधु, दधि, पय, रस और खांड इनसे क्रमशः स्नान करावे, तिलके पानीसे स्नान कराकर पीछे गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये, पीछे कपूर, अगरु और चन्दनका हवन लेप करना चाहिये, इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करके हेम रख, घरको चला जाय यानी सोनेके फूलको भुजोंपर रखकर चला जाय ऐसा हेमाद्रि कहते हैं । अनेक फलोंसे पूजकर नैवेद्य दे दे, घर जाकर विधिके साथ अग्निस्थापन करके तिल घीका हवन करे । व्रतीको उचित है कि जोड़े और आचार्य्यको भोजन करावें, शक्तिके अनुसार सोना और वस्त्रोंका दान दे इस प्रकार आचार्य्यादि सबका विसर्जन करके बन्धुजनोंकेसाथ पहिले पंचगव्य पीकर मौनपूर्वक प्रसन्न हो भोजन करे । जो कुछ दिया है, वह सब महादेवका उद्देश लेकरही दिया जाता है । दरिद्र निर्धन सबको प्रारंभमें यही विधि करनी चाहिये, धनकी स्थितिके अनुसार प्रतिमास इस व्रतको करे, यदि कोई मामूली आदमी हो तो शेषके आदिमें कार्तिकतक करे । अमावस्याके दिन नक्त करके कही हुई विधिके अनुसार प्रतिपदामें उपवास करके पंचगव्य पीवे । महादेवका स्मरण करता हुआ शिवभक्तोंके साथ भोजन करके । कार्तिकमासके अन्तके मासमें पहिले कही हुई पूरी विधि करे, प्रतिपदा और द्वितीया दो दिन उपवास करे । इस प्रकार पौषके आजाने पर प्रतिपदासे नक्त प्रारंभ करदे, दूसरे वर्ष कार्तिकतक द्वितीयाका उपवास करे, मार्गमासमें एक तिथि लेले, पहिलेकी, तरह पौषमें छोड़ दे, प्रति वर्ष इसी तरह करे । इस प्रकार सोलहवें वर्षमें पौर्णमासी कार्तिकी समुद्गममें, यानी कार्तिकीके उदयमें पहिलेकी तरह देवको पूज पूर्णाहुतितकरकर अग्निको अपने आत्मतेजमें समारोपितकरे महादेवजी उद्देशसे दीक्षित ब्राह्मणके लिये, सोनेके सींग, कांसेकी दोहनी घण्टासमेत बछड़ेवाली गौ दे, मय आचार्यके परम शैव सोलह ब्राह्मणोंको शक्तिके अनुसार वस्त्र सोने आदिसे भलीभांति पूजकर प्रत्येकको छाता जूती और कुंभ दे । उनका विसर्जन करके सोलह दंपतियोंको तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शक्तिके अनुसार भोजन करावे । इस प्रकार किया गया यह महाव्रत ब्रह्महत्यारेके पापका भी नाश करता है, वह धन्य आयुका देनेवाला तथा रूप और सौभाग्यका निरंतर दाता है । यह प्राचीन व्रत स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये कहा है, विधवा और सुहागिन दोनोंको यह व्रत करना चाहिये । प्रतिमास उपोषण करके व्रतियोंके साथ भोजन करे । इस प्रकार एक-दो-तीन-चार वा सब वर्षोंमें शक्तिके अनुसार अन्तअन्तमें प्रारंभकी विधि करे, यदि व्रतके आरंभ करके बिना समाप्त किये मर जाय, तो वह भी इसके फलको व्रतके आरंभके प्रभावसे पा जाता है, वाचक, श्रावक, श्रोता, व्रतभक्त और व्रती सभीको पुण्य मिलता है, यह श्री हेमाद्रिसंगृहीत एवं कालिका पुराणका कहा हुआ उद्यापन समेत गोरीतपोव्रत पूरा हुआ ।।

अथ सोमवत्यमावास्याव्रतम्

शंखः—अमासोमसमायोगो यत्र यत्र हि लभ्यते ।। तीर्थे कपिलधारं च गङ्गा च पुष्करं तथा ।। दिव्यान्तरिक्षभौमानि यानि तीर्थानि सर्वशः ।। तानि तत्र वसिष्यन्ति दर्शे सोमदिनान्विते ।। अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह ।। चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ।। चतस्रस्तिथय स्त्वेताः सूर्यग्रहणसन्निभाः ।। स्नानं दानं तथा श्राद्धं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ।। तिथि[1]वासरयोर्योगो यथाकाले भवे-

१ इदं वचनं निर्णयसिन्ध्वादिषु नोपलभ्यते ।

र्घादि ।। भान्वन्तेऽवाथ मध्याह्ने पुण्यकालः स नान्यथा ।। अत्रैवाश्वत्थमूले विष्णुपूजनम् ।। तत्र संकल्पः–तिथ्यादि संकीर्त्य अस्यां सोमवत्यमायां सकलपापक्षयार्थ पुत्रपौत्राद्यभिवृद्धचर्थं जन्मजन्मन्यवैधव्यसन्ततिचिरजीवित परमसौभाग्य प्राप्ति कामोऽहमश्वत्थमूले लक्ष्मीसहितविष्णुपूजां तदङ्गतया विहितमश्वत्थपूजनं च करिष्ये ।। इति संकल्प्य अश्वत्थमुदक सेचनपूर्वकं सूत्रेण वेष्टयित्वा तन्मूले विष्णुं पूजयेत् ।। शान्ताकारमिरि ध्यानम् ।। विश्वव्यापक विश्वेश कृपया दीनवत्सल ।। मयोपपादितां पूजां गृहाणेमां हि माधव ।। सहस्रशीर्षेत्यावाहनम् ।। सूर्यकोटिप्रभानाथ सर्वव्यापिन् रमापते ।। आसनं कल्पितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ।। पुरुषएवेदमित्यासनम् ।। नारायण जगद्व्यापिञ्जगदानन्दकारक ।। विष्णुक्रान्तादिसंयुक्तं गृह्ण पाद्यं मयार्पितम् ।। एतावानस्येति पाद्यम् ।। फलगन्धाक्षतैर्युक्तं पुष्पपूगसमन्वितम् ।। अर्घ्यं गृहाण भगवन् विष्णो सर्वफलप्रद ।। त्रिपादूर्ध्वं इत्यर्घ्यम् ।। कर्पूरैलालवङ्गाढचं शीतलं सलिलं प्रभो ।। रमारमण कृष्ण त्वमाचाम्यं प्रतिगृह्यताम् । तस्माद्विराळेत्याचमनीयम् ।। पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि कृतं मधु ।। शर्करागुडसंयुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। गङ्गा कृष्णा गौतमी च कावेरी च शतह्रदा ।। ताभ्य आनीतमुदकं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। यत्पुरुषेणेति स्नानम् ।। पीतवासस्त्वयि विभो मया यत्समुपाहृतम् ।। वासः प्रीत्या गृहाणेदं पुरुषोत्तम केशव ।। तं यज्ञमिति वस्त्रम् ।। उपवीतं सोत्तरीयं मया दत्तं सुशोभनम् ।। विश्वमूर्ते गृहाणेदं नारायण जगत्पते ।। तस्माद्यज्ञेत्युपवीतम् ।। भूषणानि महार्हाणि मुक्ताहारयुतानि च ।। ददामि हर मे पापं नारायण नमोऽस्तु ते ।। अलंकारान् ।। मलयाचलसंभूतं घनसारं मनोहरम् ।। विलेपनं सुर श्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत इति गन्धम् ।। अक्षतांश्च सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः ।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।। अक्षतान् ।। तुलसीजातिकमलमल्लिकाचम्पकानि च ।। पुष्पाणि हर गोविन्द गृहाण परमेश्वर ।। तस्मादश्वेति पुष्पम् ।। वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढचो गन्ध उत्तमः ।। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। यत्पुरुषमिति धूपम् ।। चक्षुर्दं सर्वदेवानां तिमिरस्य निवारणम् ।। आर्तिक्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण जगदीश्वर ।। ब्राह्मणोस्येति दीपम् ।। भक्ष्यभोज्यलेह्यपेयचोष्यखाद्यं मयाहृतम् ।। प्रीतये परमेशस्य दत्तं मे स्वीकुरु प्रभो ।। चन्द्रमा मनस इति नैवेद्यम् ।। मध्ये पानीयम् ।। उत्तरापोशनम् ।। इदं फलं मया देवेति फलम् ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। त्वद्भासा भासते लोकः कोटिसूर्यसमप्रभ ।।

नीराजयिष्ये त्वां विष्णो कृपां कुरु मम प्रभो ।। नीराजनम् ।। मया कायेन मनसा वाचा जन्मशतार्जितम् ।। पापं प्रशमय श्रीश प्रदक्षिणपदेपदे ।। नाभ्या आसीदिति प्रदक्षिणाम् ।। व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ।। आदिमध्यान्तरहित विष्टर श्रवसे नमः ।। सप्तास्येति नमस्कारम् ।। आदिमध्यान्तरहित भक्ताना मिष्टदायक ।। पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण सुरपूजित ।। यज्ञेन यज्ञमिति पुष्पाञ्जलिम् ।। ततः अमायै नमः सोमायै नमः इति नाममन्त्राभ्याममासोमयोः पूजेति शिष्टाचारः ।। ततः—अश्वत्थ हुतभुग्वास गोविन्दस्य सदाप्रिय ।। अशेषं हर मे पापं वृक्षराज नमोऽस्तु ते ।। इति मन्त्रेणाश्वत्थं सम्पूज्य ।। अमासोमव्रतस्यास्य संपूर्णफलहेतवे ।। वायनं द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ।। इति मन्त्रेण वायनं दत्वा ।। यन्मया मनसा वाचा नियमात्पूजनं कृतम् ।। सर्वं सम्पूर्णतां यातु तद्विष्णोश्च प्रसादतः ।। इति प्रार्थयेत् ।। ततो मूलतो ब्र० नमोनमः ।। इति मन्त्रेण प्रतिप्रदक्षिणमेकैकफलाद्यर्पणपूर्वकमष्टोत्तरशतं (१०८) प्रदक्षिणाः कार्याः ।। अथ कथा—सूत उवाच ।। शरतल्पगतं भीष्ममुपगम्य युधिष्ठिरः ।। कृतप्रणामो धर्मात्मा हितं वचनमब्रवीत् ।। १ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। हतेषु कुलमुख्येषु भीमसेनेन कोपिना ।। तथापरेषु भूपेषु हतेषु युधि जिष्णुना ।। २ ।। दुर्योधनकुमन्त्रेण जातोऽस्माकं कुलक्षयः ।। न सन्ति भुवि भूपाला बालवृद्धातुरादृते ।। ३ ।। अवशिष्टा वयं पञ्च वंशे भारतसंज्ञके ।। एकातपत्रमपि च राज्यं मह्यं न रोचते ।।४ ।। जीवितेऽपि जुगुप्सा मे न चाङ्गेषु रतिः क्वचित् ।। दृष्ट्वा सन्ततिविच्छेदं सन्तापो हृदयेऽनिशम् ।। ५ ।। अश्वत्थामास्त्रनिर्दग्धो ह्युत्तरागर्भसंभवः ।। अतो मे द्विगुणं दुःखं पिण्डविच्छेददर्शनात् ।। ६ ।। किंकरोमि क्व गच्छामि पितामह वदाधुना ।। येन सम्पद्यते सद्यः सन्ततिश्चिरजीविनी ।। ७ ।। भीष्म उवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। यस्याचरणमात्रेण सन्ततिश्चिरजीविनी ।।८।। अमावास्या यदा पार्थ सोमवारयुता भवेत् ।। तस्यामश्वत्थमागत्य पूजयेच्च जनार्दनम् ।। ९ ।। अष्टोत्तरशतं कुर्यात्तस्मिन्वृक्षे प्रदक्षिणाः ।। तावत्संख्यान्युपादाय रत्नधातुफलानि च ।। १० ।। व्रतराजमिमं राजन्विष्णोः प्रीतिकरं शुभम् ।। उत्तरां कारय प्राज्ञ गर्भो जीवमवाप्स्यति ।। ११ ।। भविष्यति गुणी पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।। श्रुत्वा पितामहवचः प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।। १२ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। तद्व्रतं व्रतराजाख्यं विस्तरेण प्रकाशय ।। केन प्रकाशितं मर्त्ये केनेदं विहितं विभो ।। १३ ।। भीष्म उवाच ।। आस्ते या सर्वविख्याता काञ्चीसंज्ञा महापुरी ।। रजताचलसंकाशसौधसंघैर्विराजिता ।। १४ ।। सर्वेषैर्नागरजनैर्नारीभिरुपशोभिता ।। ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः स्वस्वकर्मरतैर्वृता ।। १५ ।। रूपचातुर्यवर्याभिर्वे-

श्याभिः समलंकृता ।। अलकेव कुबेरस्य शक्रस्येवामरावती ।। १६ ।। तेजोवतीव रत्नाढ्या पावकस्य महापुरी ।। तत्र राजा रत्नसेनो बभूवामितविक्रमः ।। १७ ।। तस्य राज्ये वसद्विप्रो देवस्वामीति विश्रुतः ।। तस्य श्री रूपसंपन्ना नाम्ना धनवती शुभा ।। १८ ।। यथार्थनामधेया सा लक्ष्मीरिव सविग्रहा ।। तस्यां सञ्जनयामास सप्तपुत्रान् गुणान्विताम् ।। १९ ।। एकां दुहितरं रम्यां नाम्ना गुणवतीं नृप ।। कृतदाराश्च ते पुत्रा विहरन्ति यथासुखम् ।। २० ।। कन्या कुमारिका चासीदनुरूप-प्रियार्थिनी ।। अत्रान्तरे द्विजः कश्चिद्भिक्षार्थं समुपागतः ।। २१ ।। दीप्यमानः स्वतेजोभिर्मूर्तिमानिव पावकः ।। द्वारदेशमुपागत्य प्रयुयोजाशिषं तदा ।। २२ ।। देवस्वामिस्नुषाः सप्त समुत्थाय ससंभ्रमम् ।। भिक्षां प्रत्येकमानिन्युर्ददुस्तस्मै द्विजन्मने ।। २३ ।। अवैधव्याशिषः प्रादात्ताभ्यः सौभाग्यसंपदम् ।। ततो गुणवती मात्रा प्रहिता सह भिक्षया ।। २४ ।। विप्राय भिक्षां प्रददौ कृत्वा पादाभिवन्द-नम् ।। आशिषं च ददौ विप्रः शुभे धर्मवती भव ।। २५ ।। सा विलक्षा गुणवती श्रुत्वा प्रत्याययौ गृहम् ।। मात्रे निवेदयामास आशिषं तेन योजिताम् ।। २६ ।। श्रुत्वा धनवती पुत्रीं करे धृत्वा समाययौ ।। प्रणतिं कारयामास पुनस्तस्मै द्विज-न्मने ।। २७ ।। तथैवाशिषमुच्चार्य विप्रस्तामभ्यनन्दयत् ।। श्रुत्वाशिषं धनवती सचिन्ता प्रत्युवाच ह ।। २८ ।। धनवत्युवाच ।। प्रसीद भगवन्विप्र वचनं मेऽवधा-रय ।। स्नुषाभ्यः प्रणताभ्यो मे त्वया दत्ता वराशिषः ।। २९ ।। अवैधव्यकराः पुत्र सुतसौभाग्यसाधकः ।। सुतायां प्रणतायां मे विपरीतं त्वयोदितम् ।। ३० ।। भद्रे धर्मवती भूया इत्युदीर्य पुनः पुनः ।। आशीः प्रयुक्ता विप्रर्षे कारणं वद तत्त्वतः ।। ३१ ।। द्विज उवाच ।। धन्यासि त्वं धनवति प्रख्यातचरिता भुवि ।। यथायोग्या प्रयुक्तेयं मयाशीर्दुहितुस्तव ।। ३२ ।। इयं सप्तपदीमध्ये विधवात्वम-वाप्स्यति ।। धर्माचरणमत्यर्थं कर्तव्यमनया शुभे ।। ३३ ।। अतो मयाशीर्दत्तेयं शुभे धर्मवती भव ।। श्रुत्वा धनवतीवाक्यं चिन्ताकुलित-चेतना ।। ३४ ।। उवाच वचनं दीनं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।। धनवत्युवाच ।। उपायं वेत्सि विप्रेन्द्र वद शीघ्रं दयां कुरु ।। ३५ ।। द्विज उवाच ।। यदागता भवेत्सोमा गृहे वे तव सुन्दरि ।। तस्याः पूजनमात्रेण भवेद्वैधव्यनाशनम् ।। ३६ ।। धनवत्युवाच ।। का सा सोमा त्वया प्रोक्ता का जातिः कुत्र संस्थितिः ।।३७।। * यस्यागमनमात्रेण भवेद्वैधव्यभञ्जनम् ।। तस्या वद महाभाग न कालो विस्तरस्य मे ।। द्विज उवाच ।। सोमा सा रजकी जातिः स्थितिस्तस्याश्च सिंहले ।। ३८ ।। सा चेनायाति ते वेश्म

---

* यस्या आगमनमात्रेण च्छेदः आर्षः सन्धिः ।

तदा वैधव्यभञ्जनम् ।। इत्युक्त्वाब्राह्मणोऽन्यत्र गतो भिक्षाप्रतीक्षया ।। ३९ ।। धनवत्यपि पुत्रेभ्यः प्रोवाच वचनं तदा।।धनवत्युवाच।।इयं दुर्ललिता पुत्रा स्वसा गुणवती शुभा।।४०।।सोमागमनमात्रेण भवेद्वैधव्यभञ्जनम्।।अस्ति यस्य पितुर्भक्तिर्मातुर्वचनगौरवम् ।। ४१ ।। स प्रयातु सह स्वस्रा सोमामानयितुं द्रुतम् ।। पुत्रा ऊचुः ।। ज्ञातं मातस्तव स्वान्तं पुत्रीस्नेहवशं गतम् ।। ४२ ।। यतो देशान्तरं पुत्रान्प्रस्थापयसि दुर्गमम् ।। अन्तरे दुस्तरः सिन्धुः शतयोजनविस्तरः ।। ४३ ।। अशक्यं गमनं तत्र न क्षमा गमने वयम् ।। देवस्वाम्युवाच ।। अपुत्रः सप्तभिः पुत्रैरहं यास्यामि सिंहलम् ।। ४४ ।। आनयिष्यामि तां सोमां पुत्रीवैधव्यनाशिनीम् ।। एवं वादिनि सक्रोधे देवस्वामिनि तत्क्षणे ।। ४५ ।। शिवस्वामी कनिष्ठस्तु पुत्रः प्रोवाच संमतः ।। तात मा वद चैवं त्वं रोषावेशवशं गतः ।। ४६ ।। मयि तिष्ठति कः शक्तो गन्तुं द्वीपं हि सिंहलम् ।।गच्छाम्यहं सह स्वस्रा द्वीपं सिंहलसंज्ञितम्।।४७।। इत्युक्त्वा सहसोत्थाय प्रणम्य शिरसा मुदा।।प्रतस्थे सहितः स्वस्राद्वीपं सिंहलसंज्ञितम् ।।४८।। कियद्भिर्दिनैर्गत्वा तीरं प्राप सरित्पतेः ।। तर्तुं तमम्बुधिं तत्र प्रयत्नमकरोद्द्विजः ।। ४९ ।। स ददर्श सुविस्तीर्णं न्यग्रोधद्रुममन्तिके ।। तत्कोटरे सुखासीना गृध्नराजस्य बालकः ।। ५० ।। तत्पादपतले स्थित्वा ताभ्यां नीतं तु तद्दिनम्।। शावकानां कृते गृध्रो गृहीत्वा शिशुभोजनम् ।। ५१ ।। शावकास्तु न वै गृध्राद्भोजनं जग्धिरे भृशम् ।। पप्रच्छ बालकान् गृध्रश्चिन्ताकुलितमानसान् ।। ५२ ।। गृध्रराज उवाच ।। कथं न भुञ्जते पुत्रा भवन्तः क्षुधिता अपि ।। आनीतं कोमलं मांसं भवद्योग्यमिदं मया ।। ५३ ।। शावका ऊचुः ।। एतद्वृक्षत्तले तात मानवावत्र तिष्ठतः ।। अस्वीकृतं *तयोस्तात कथं भुञ्जामहेवयम् ।।५४।। एतच्छ्रुत्वा स गृध्रस्तु करुणाहृतचेतनः ।। तयोरन्तिकमागत्य वचनं समभाषत ।। ५५ ।। गृध्रराज उवाच ।। जातस्तु युवयोः कामो वक्तव्योऽत्र मया द्विज ।। क्रियते सर्वथा विप्र भोजनं कर्तुमर्हसि ।। ५६ ।। द्विज उवाच ।। सिंहले गन्तुकामोऽहं जलधेः पारमद्य वै ।। सोमागमनमिच्छामि स्वसृवैधव्यनाशनम् ।। ५७ ।। गृध्रराज उवाच ।। पारमुत्तारयिष्यामि जलधेः प्रातरेव हि ।। सोमागृहमपि तव दर्शयिष्यामि सिंहले ।। ५८ ।। ततो रात्र्यां व्यतीतायामुदिते तु दिवाकरे ।। पारमुत्तारितौ तौ तु

---

* तयोरित्यस्यताभ्यामित्यर्थः

गृध्रराजेन वेगिना ।। ५९ ।। सिंहलद्वीपमागत्य स्थितो सोमागृहान्तिके ।। ततः प्रत्यूषसमये संमृज्याङ्गणमण्डलम् ।। ६० ।। लेपनं चक्रतुस्तस्या दिवसे दिवसे शुभम् ।। एवं विदधतोस्तत्र पूर्णः संवत्सरो गतः ।। ६१ ।। स्नुषाः पुत्रान् समाहूय सोमा पप्रच्छ विस्मिता ।। मार्जनं लेपनं कोऽत्र करोति मम कथ्यताम् ।। ६२ ।। एकदैवाथ जगदुःसर्वे *कृतमिदं न हि ।। ततः कदाचिद्रजकी निभृता संस्थिता निशि ।। ददर्श ब्राह्मणीं कन्यां मार्जयन्तीं गृहाङ्गणम् ।। ६३ ।। लिम्पन्तमङ्गणं प्रातर्भ्रातरं च शुचिव्रतम् ।। सोमा पप्रच्छ तौ गत्वा कौ युवां कथ्यतां मम ।। ६४ ।। ऊचतुस्तौ तदा सोमामावां ब्राह्मणपुत्रकौ ।। सोमोवाच ।। दग्धास्मि बत नष्टास्मि ब्राह्मणौ गृहमार्जकौ ।। ६५ ।। कां गतिं बत यास्यामि पापादस्मादसंशयम् ।। पापजातिरहं ख्याता रजकी सर्वथा द्विज ।। ६६ ।। कथं त्वं ब्राह्मणोभूत्वा विरुद्धं मे चिकीर्षसि ।। शिवस्वाम्युवाच ।। एषा गुणवती नाम स्वसा मम सुमध्यमा ।। ६७ ।। अस्याः सप्तपदीमध्ये वैधव्यं संप्रपत्स्यते ।। तव सान्निध्यमात्रेण भवेद्वै-धव्यभञ्जनम् ।। ६८ ।। अतो हेतोः सह स्वस्रा दासकर्म करोमि ते ।। सोमोवाच ।। अतः परं न कर्तव्यं यास्यामि तव शासनात् ।। ६९ ।। इत्युक्त्वा गृहमागत्य स्नुषाभ्यः प्रत्युवाच ह ।। यः कश्चिन्मम राज्येऽस्मिन्म्रियते मानवः क्वचित् ।। ७० ।। तथैव रक्षणीयोऽसौ यावदागम्यते मया ।। कस्यचिद्वचनात्कोऽपि न दग्धव्यः कथञ्चन ।। ७१ ।। तथेत्युत्वा स्नुषाभिः सा सोमा याता महाम्बुधिम् ।। पारमुत्तारयामास क्षणेन द्विजपुत्रकौ ।। ७२ ।। स्वयमाकाशमार्गेण सोत्ततार महार्णवम् ।। प्राप्ताः काञ्चीपुरीं सर्वे निमेषोत्तत्प्रभावतः ।। ७३ ।। सोमां दृष्ट्वा धनवती हृष्टा पूजामथाकरोत् ।। अत्रान्तरे शिवस्वामी तदा देशान्तरात्स्वसुः ।। ७४ ।। सदृशं वरमानेतुं जगामोज्जयिनीं प्रति ।। आनिनाय वरं तत्र देवशर्मसुतं सुधीः ।। ७५ ।। ब्राह्मणं रुद्रशर्माणं गुणिनं सदृशं स्वसुः ।। ततः सा रजकी सोमा वैवाहिकमकारयत् ।। ७६ ।। सुलग्ने च सुनक्षत्रे देवस्वामी तु कन्यकाम् ।। ददौ तस्मै गुणवतीं गुणिने रुद्रशर्मणे ।। ७७ ।। ततो वैवाहिकैर्मन्त्रैर्हूयमाने हुताशने ।। ततः सप्तपदीमध्ये रुद्रशर्मा मृतस्तदा ।। ७८ ।। रुरुदुर्बान्धवाः सर्वे स्थिता सोमा निराकुला ।। आक्रन्दश्च महानासील्लोकानां तत्र पश्यताम् ।। ७९ ।। गुणवत्यै च सा तूर्णं व्रतराजप्रभावतः ।। पुण्यं संकल्प विधिवद्ददौ मृत्युविनाशनम् ।। ८० ।। रुद्राशर्मापि तस्माच्च व्रतराजप्रभावतः।।आससाद तदा जीवं सुप्तवत्सहसोत्थितः ।। ८१ ।। एवं विवाहं निर्वर्त्य व्रतराजं निवेद्य च ।। आमन्त्र्य तां धनवतीं सोमा प्रायाद्गृहं प्रति ।। ८२ ।। एवं सा रजकी सोमा जीवयित्वा मृतं द्विजम् ।। चचाल

* अस्माभिरिति शेषः ।

हर्षसंपूर्णा पूर्णकामा स्वमन्दिरम् ।। ८३ ।। अत्रान्तरे गृहे तस्याः प्रथमं तनया मृताः ।। पुनः स्वामी मृतस्तस्या जामाता च ततो मृतः ।। ८४ ।। आगच्छन्त्यास्तदा तस्याः सोमवारान्विता तिथिः ।। अमावास्या बभूवाथ मृतसंजीवनी तिथिः ।। ८५ ।। सा ददर्श जलोपान्ते वृद्धां काञ्चित्स्त्रियं तदा ।। तूलभारभराक्रान्तां क्रन्दमानां सुदुःखिताम् ।। ८६ ।। वृद्धोवाच ।। अवतारय मे पुत्रि तूलभारं शिरःस्थितम् ।। एतद्भारभराक्रान्तां क्रन्दमानां सुदुःखिताम् ।। ८७ ।। सोमोवाच ।। अमावास्याद्य हे वृद्धे सोमवारयुता तिथिः ।। तूलकं न स्पृशाम्यद्य नियमोऽयं मया कृतः ।। ८८ ।। पुनर्ददर्श यान्ती सा मूलभारवतीं स्त्रियम् ।। साप्युवाच ततः पुत्रि मूलभारो महानिति ।। ८९ ।। अवतीर्य क्षणं तिष्ठ सङ्गे यास्याम्यहं तव ।। सोमोवाच ।। अद्य मूलं तथा तूलं न स्पृशामि कदाचन ।।९०।। *ततोऽश्वत्थतरुं प्राप्य नदीतीरभवं शुभम् ।। स्नात्वा विष्णुं समभ्यर्च्य शर्कराभिः प्रदक्षिणाम् ।। ९१ ।। सा चकार महाभागा तदैवाष्टोत्तरं शतम् ।। भीष्म उवाच ।। यदा प्रदक्षिणावर्तं कृतं शर्करहस्तया ।। ९२ ।। तदा जीवितवन्तस्ते जामातृपतिपुत्रकाः ।। नगरं श्रीसमाकीर्णं तद्गृहं च विशेषतः ।। ९३ ।। अथ याता महाभागा सोमा स्वभवनं प्रति ।। जीवितं वीक्ष्य भर्तारं पुत्राञ्जामातरं तथा ।। ९४ ।। अभिज्ञातान्समासाद्य जनाश्च कृतकृत्यताम् ।। प्रणिपत्य स्नुषाः सर्वाः पप्रच्छुस्तां तपस्विनीम् ।। ९५ ।। स्नुषा ऊचुः ।। मृतास्ते तनया देवि पतिजामातृबान्धवाः ।। जीवितास्ते कथं देवि मृतास्ते च कथं वद ।। ९६ ।। सोमोवाच ।। गुणवत्यै मया दत्तं व्रतराजस्य पुण्यकम् ।। मृतास्ते तद्विपाकेन पतिजामातृपुत्रकाः ।। ९७ ।। तूलकं न मया स्पृष्टं मूलकं च तथा स्नुषाः ।। अश्वत्थे विष्णुमभ्यर्च्य कृतास्तत्र प्रदक्षिणाः ।। ९८ ।। शर्कराहस्तया तत्र कृतमष्टोत्तरं शतम् ।। जीवितास्तत्प्रभावेण पतिजामातृपुत्रकाः ।। ९९ ।। सर्वाभिः क्रियतामद्य व्रतराजो विधानतः ।। भविष्यति न वैधव्यं सौभाग्यं संभविष्यति ।। १०० ।। स्नुषास्ताः कारयामास तथा सोमा व्रतेश्वरम् ।। भुक्त्वा भोगान्बहूंस्तत्र पुत्रपौत्रादिभिः सह ।। १ ।। तैश्च सर्वैः परिवृता विष्णुलोकमवाप सा ।। इत्येतत्कथितं पार्थ विस्तरेण मया तव ।। २ ।। युधिष्ठिर उवाच ।। माहात्म्यं व्रतराजस्य को विधिर्वद विस्तरात् ।। कर्तव्यं केन भीष्मेदं नारीभिः पुरुषेण वा ।। ३ ।। भीष्मउवाच ।। अमावास्या यदा पार्थ सोमवारान्विता भवेत् ।। तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः ।। ४ ।। प्रातरुत्थाय व्रतिना स्नानं कार्यं जलाशये ।। स्नात्वा मौनेन कौशेयं परिधाय व्रती ततः ।। ५ ।। गत्वा अश्वत्थवृक्षस्य समीपं कुरुनन्दन ।। अश्वत्थमूले कर्तव्या विष्णुपूजा समन्त्रका ।। ६ ।। व्यक्ता-

* प्रायादश्वत्थेत्यपि पाठः ।

व्यक्तस्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ।। आदिमध्यान्तहीनाय विष्टरश्रवसे नमः ।। ७ ।। इति विष्णुपूजामंत्रः ।। एवं संपूज्य गोविन्दं पीतवस्त्राक्षतैः फलैः ।। कुसुमैर्विविधैश्चैव भक्ष्यभोज्यैस्तथाविधैः ।। ८ ।। अश्वत्थपूजनं कार्यं प्रोक्तमन्त्रेण पाण्डव ।। अश्वत्थ हुतभुग्वास गोविन्दस्य सदाश्रय ।। अशेषं हर मे पापं वृक्षराज नमोऽस्तु ते ।। ९ ।। अश्वत्थपूजामंत्रः ।। मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।। अग्रत शिवरूपाय अश्वत्थाय नमोनमः ।। ११० ।। प्रदक्षिणामन्त्रः ।। एवं पूजाविधिं कृत्वा ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाः ।। मौक्तिकैः काञ्चनै रौप्यैर्हीरकैर्मणिभिस्तथा ।। ११ ।। कांस्यपात्रैस्ताम्रपात्रैर्भक्ष्यपूर्णैः पृथक्पृथक् ।। गृहीत्वा भ्रमणं कार्यं प्रादक्षिण्येन पिप्पले ।।१२।। तावत्प्रदक्षिणं कार्यं यावदष्टोत्तरं शतम् ।। *समर्पितं च यद्द्रव्यमर्पयेद्गुरवे शुभम् ।। १३ ।। सुवासिन्यश्च संपूज्याः सोमासन्तुष्टि-हेतवे ।। दत्त्वा चान्नं तु विप्रेभ्यः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। १४ ।। एष ते कथितो भूप व्रतराजविधिर्मया ।। द्रौपदीं च सुभद्रां च कारयस्व तथोत्तराम् ।। १५ ।। उत्तरागर्भसंस्थस्तु जीवितं लप्स्यतेऽचिरात् ।। युधिष्ठिर उवाच ।। या स्वल्प-विभवा नारी काञ्चनाद्यैर्विना कृता ।। १६ ।। सा कथं लभते पूर्णं व्रतराजफलं वद ।। भीष्म उवाच ।। फलैः पुष्पैस्तथाभक्ष्यैर्वस्त्राद्यैरपि पाण्डव ।। कुर्यात्प्रदक्षिणा-वर्तं सापि पूर्णं लभेत्फलम् ।।१७।। व्रतमिदमखिलं नरेन्द्र विष्णोः श्रुतमनया हि [2]पराक्रमस्त्वयापि ।। पतिसुतधनमिच्छती पुरन्ध्या सपदि करोतु नचात्र [3]चित्रमस्ति ।। १८ ।। भीष्म उवाच ।। शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामिह्युद्यापनविधिं शुभम् ।। यं विना पूर्णता न स्याद्व्रतराजस्य वै नृप ।।१९।। कारयेत्सर्वतोभद्रं तन्मध्ये कुम्भमुत्तमम् । वृक्षराजः सुवर्णस्य पञ्चरत्नस्य वेदिका ।। १२० ।। तन्मूले प्रतिमां विष्णोः सौवर्णी च चतुर्भुजाम् ।। लक्ष्मीवाहनसंयुक्तामामाषाच्च पलावधि ।। २१ ।। उपचारैरने-कैश्च यथाविभवविस्तरैः ।। नैवेद्यैः पुष्पधूपैश्च दीपैश्च परितः स्थितैः ।। २२ ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रभाते होममाचरेत् ।। समिद्भिः पैप्पलीभिश्च पायसेन तिलै-स्तथा ।। २३ ।। इदं विष्णुर्विचक्रमे मन्त्रेण हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ।। आचार्यं पूजये-त्पश्चाद्गां च दद्यात् पयस्विनीम् ।। २४ ।। ब्राह्मणं वस्त्रभूषाद्यैः सदस्यं च प्रपूज-येत् ।। ऋत्विजो द्वादशा पूज्या घृतपायसभोजनैः ।। २५ ।। उपवीतानि वस्त्राणि तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ प्रार्थयित्वा विसर्जयेत् ।। २६ ।। एवं द्वादशवर्षे वा मध्ये वादौ समाचरेत् ।। कृत्वा ह्युद्यापनं सम्यग्व्रतराजफलं लभेत् ।। २७ ।। सर्वं निवेदयेत्पीठमाचार्याय सदक्षिणम् ।। अच्छिद्रं वाचयेत्प-

---

* तद्वस्तुजातं विप्राय पुरन्ध्रीभ्यः प्रदापयेत् । ततो निरामिषाहारं कुर्यान्नारीजनैः सह ।। इति व्रतार्के ।।२ व्रतप्रभावः । ३ चित्रं मनोविनोदनं नास्ति किन्तु सत्यमित्यर्थः ।

श्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। १२८ ।। इतिश्रीभविष्योत्तरपुराणे सोमवत्यमावास्याव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

सोमवती अमावसका व्रत–सोमवारी अमावसके व्रतको कहते हैं, यही शंख कहते हैं कि, अमावस और सोमवारका योग जहाँ–जहाँ मिल जाय वहाँ ही वहाँ श्रेष्ठ है क्योंकि, तीर्थ, कपिलधार, गंगा, पुष्कर, एवं दिव्य अन्तरिक्ष और भूमिके जो सब तीर्थ हैं, सोमवारी दर्श (अमावस) के दिन वहां ही रहते हैं ? सोमवारी अमावस, रविवारी सप्तमी, मंगलावारी चतुर्थी, बुधवारी अष्टमी ये चार तिथियाँ सूर्यग्रहणके बराबर कही गई हैं, जो उसमें स्नान दान और श्राद्ध किया जाता वह सब अक्षय होता है तिथि और वासरका योग यथाकाल मिल जाय, भानुके अन्त वा मध्याह्नमें वही पुण्यकाल है, अन्यथा नहीं है । यहीं अश्वत्थके मूलमें विष्णुके पूजनका मन्त्र है । इसका संकल्प-तिथि आदिको कहकर इस सोमवती अमावसके दिन सब पापोंके नष्ट करने तथा पुत्र पौत्र आदिक अभिजनोंकी वृद्धिके लिये तथा जन्या जन्म अवैधव्य, सन्तान, चिरजीव, परमसौभाग्य उनकी प्राप्तिकी कामनावाला मैं पीपलके मूलमें लक्ष्मीसहित विष्णुकी पूजा तथा उसके अंगरूपसे अश्वत्थपूजन करूंगा, ऐसा संकल्प करके पीपलमें पानी लगा उसे सूत्रसे वेष्टित करके उसके मूलमें विष्णुका पूजन करे, 'शान्ताकारम्' इससे ध्यान; हे विश्वव्यापक ! हे विश्वेश ! हे कृपाकरके दीनोंपर वात्सल्य लानेवाले ! हे माधव ! मेरी की हुई पूजाको आप ग्रहण करिये, इससे तथा, " सहस्रशीर्षा" इससे आवाहन; हे कोटिसूर्यकी प्रभाके नाथ ! हे सर्वव्यापिन् ! हे लक्ष्मीके स्वामी ! मैं भक्तिपूर्वक आसन दे रहा हूं, हे पुरुषोत्तम ! आप ग्रहण करें, इससे " पुरुष एवेदम् " इससे आसन; हे संसारके आनन्द देनेवाले ! हे जगत्के व्यापक नारायण ! विष्णुक्रान्तासहित पाद्य ग्रहण करिये, इससे " एतावानस्य " इससे पाद्य; फल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, पूग ये इसमें मिले हुए हैं ऐसे अर्घ्यको दे सब फलोंके देनेवाले हे भगवन् विष्णो ! अर्घ्य ग्रहण करिये, इससे 'त्रिपादूर्ध्व " इससे अर्घ्य; कर्पूर, एला और लवंग पडे हुए ठण्डे आचमनके योग्य पानीको हे रमारमण कृष्ण ! ग्रहण करिये, इससे " तस्माद्विराड" इससे आचमनीय; पंचामृतम् ' इससे पंचामृतस्नान; ' गङ्गा कृष्णा ' इससे " यत्पुरुषेण " इससे स्नान; ' पीतलास :' इससे " तं यज्ञम् !" इससे वस्त्र ' उपवीतं सोत्तरीयम् ' इससे ' तस्माद् यज्ञात् ' इससे उपवीत; ' भूषणानि' इससे अलंकार । 'मलयाचल' इससे "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः" इससे गन्ध; अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ ' इससे अक्षतः; " तुलसी जाति ' इससे" तस्मा दश्वा " इससे पुष्प; ' वनस्पतिरसोद्भूत ' इससे " यत्पुरुषम् " इससे धूप; ' चक्षुर्द सर्वलोकानाम् ' इस " ब्राह्मणोऽस्य " दीपः ' भक्ष्यभोज्य ' इससे " चन्द्रमा मनसः " इससे नैवेद्य; मध्यमें पानीय; उत्तरापोशन; ' इदं फलं मया देव ' इससे फल; ' पूगीफलम् " इससे ताम्बूल; ' हिरण्यगर्भ ' इससे दक्षिणा; ' त्वद्भासा भासते लोकः ' इससे नीराजन; ' मया कायेन वाचा ' इससे "नाभ्याआसीत् " इससे प्रदक्षिणा; ' व्यक्ताव्यक्त' इससे " सप्तास्या " इससे नमस्कारः ' आदिमध्यान्तरहित' इससे " यज्ञेन यज्ञम् " इससे पुष्पांजलि समर्पण करे । इसके पीछे अमावस्याके लिये नमस्कार तथा सोमवारके लिये नमस्कार इन दोनों नाममन्त्रोंसे अमावस और सोमकी पूजा होनी चाहिये ऐसा शिष्टाचार है । इसके पीछे हे पीपल ! हे अग्निके वासस्थान ! हे भगवान्के प्यारे ! मेरे सारे पापोंको नष्ट कर, हे वृक्षराज ! तेरे लिए नमस्कार है, इस मन्त्रसे पीपलकी पूजा करनी चाहिये । सोमवती अमावसके व्रतकी संपूर्तिके लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणको सोनासहित वायना देता हूँ, इस मन्त्रसे वायना देकर ' यन्मयामसा वाचा ' इससे प्रार्थना करे, पीछे जो मूलसे ब्रह्मरूप, मध्यसे विष्णुरूप और अग्नसे रुद्ररूप है, उस तुझ वृक्षराजके लिए वारंवार नमस्कार है, इस मन्त्रसे पीपलकी एक सौ आठ प्रदक्षिणा करे तथा हर एक प्रदक्षिणापर फल आदिका चढ़ाता जाय । कथा-शरशय्यापर पौढे हुए पितामह भीष्मजीको प्रणाम करके धर्मात्मा युधिष्ठिर हितकारी वचन बोला ।।१।। कि, हे महाराज ; क्रोधी भीमसेनने दुर्योधन और उसके सबभाई मारडाले तथा दूसरे राजाओंको अर्जुनने युद्धमें मार डाला ।।२।। दुर्योधनकी बुरी सलाहोंसे हमारे परिवारका नाश हो गया, बालक बूढ़े और दुखियोंको छोड़कर राजा तो कोई बाकी रहाही नहीं गया ।३।। भारत वंशमें हम पांच बांकी रह गये हैं इस कारण यह एक छत्र राज्य मुझे अच्छा नहीं लगता।

।।४।। मुझे जीनाभी बुरा लगता है, बलकोश आदिमें मेरी प्रीति नहीं है, वंशका नाश देखकर मेरे हृदयमें रात-दिन सन्ताप रहता है ।।५।। उत्तराकेगर्भसे पैदाहोनेवाला अश्वत्थामाके अस्त्रसे जल गया इस पिण्ड विच्छेदको देखकर मुझे दूना दुख हो रहा है ।।६।। हे पितामह ! बताइये कि, मैं क्या करूं कहां जाऊँ जिससे चिरजीवि संतति मिल जाय ? ।।७।। भीष्मजी बोले कि, हे राजन् ! सुन मैं एक सर्वोत्तम व्रत बताता हूं, जिसके करनेसे चिरजीविनी सन्तान मिल जायगी ।।८।। जब अमावस सोमवारी हो उसदिन अश्वत्यके पास आकर जनार्दनका पूजन करे ।।९।। अश्वत्थकी एक सौ आठ प्रदक्षिणायें करनी चाहियें । उतनेही रत्न, धातु, फल लेले ।।१०।। हे राजन् ! इस भगवान्के प्यारे व्रतराजको उत्तरासे कराइये । उसका गर्भ जी जायगा ।।११।। एवं जगत्प्रसिद्ध गुणी पुत्र होगा । पितामहके वचन सुनकर युधिष्ठिरजी बोले ।।१२।। उस व्रतराजको विस्तारके साथ कहिये; हे विभो ! किसने मृत्युलोकमें प्रकाशित किया एवं किसने कहा ।।१३।। भीष्मजी बोले कि, एक भुवन प्रसिद्ध कांची नामकी महापुरी है जो चाँदीके पर्वत जैसे ऊंचे ऊंचे बड़े बड़े विशाल महलोंसे सुशोभित है ।।१४।। सजेहुए नगरनिवासी स्त्री-पुरुषोंसे सुशोभित है । उसमें चारों वर्ण अपने अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं ।।१५।। रूप और चातुरीमें प्रवीण जो वेश्याए हैं उनसे शोभित है जैसी कि कुबेरकी अलका, इन्द्रकी अमरावती ।।१६।। अग्निकी तेजोवती पुरी है । उसी तरह यह रत्नोंसे भरी हुई परम पुरुषार्थी रत्नसेनकी सुन्दर पुरी थी ।।१७।। उसके राज्यमें एक देवस्वामी नामका विद्वान ब्राह्मण रहता, उसकी रुपलावण्यवती धनवती नामकी स्त्री थी ।।१८।। जैसा नाम था वैसाही गुण था । वह शरीर धारिणी लक्ष्मीही थी । उसके सात सात सुयोग्य बेटे थे।।१९।।गुणवती नामकी एक बेटी थी, सब लड़कोंके विवाह कर दिये गये । वे सब आनन्दसे विचरने लगे ।।२०।। गुणवती सुन्दर और पति लायक कुमारी लड़की थी, इसी बीचमें एक ब्राह्मण भिक्षाके लिये आया ।।२१।। वह अपने तेजसे ऐसा तप रहा था, मानो अग्निही हों दरवाजेपर आकर आशीर्वाद देने लगा ।।२२।। देवस्वामीकी सातों पुत्रवधू संसभ्रम उठीं एवं प्रत्येकने उसे अलग भिक्षा दी ।।२३।। उसने सबको सौभाग्य संपत्तिके साथ अचल सुहागणी आशीर्वाददी । मांने गुणवती को भी द्वारपर उसे भिक्षा देने भेजा ।।२४।। उसने चरण छूकर भिक्षा दी, उसने भी आशीर्वाद दिया कि, हे पवित्रे ! आप धर्मात्मा हो ।। २५ ।। यह कुछ बुरा आशीर्वाद था, गुणवती उसे गहरी निगाहसे देखकर अपने घर चली आई । जो उसने आशीर्वाद दिये थे वे सब माको सुना दिये ।।२६।। धनवती सुन बेटीका हाथ पकड़कर उस तपस्वीके पास आई फिर उसको प्रणाम उससे कराई ।।२७।। उसने उसी तरह आशीर्वाद देकर उसका अभिनन्दन किया फिर धनवती चिन्तित हो बोली ।।२८।। कि, हे विप्रवर ! प्रसन्न हूजिये मेरी बात समझिये, मेरी पुत्रवधुओंको तो तुमने अच्छे अच्छे आशीर्वाद दिये ।।२९।। वे सुहाग तथा पुत्र सुख सौभाग्यके करनेवाले थे, किन्तु प्रणाम करती हुई मेरी बेटीसेही क्यों विपरीत कहा ।।३०।। कि भद्रे ! धर्मवाली हो, हे विप्रर्षे ! क्या कारण है, जिससे आपने ऐसे आशीर्वाद दियें सो यथार्थ बताइये ।।३१।। यह सुन द्विज बोला कि, हे धनवति ! तू धन्य है, तेरा उत्तम चरित्र भूमंडलमें प्रसिद्ध हैं मैं जो आशिष दी हैं वह यथायोग्य ही दी हैं ।।३२।। यह सप्तदीपमें विधवा हो जायगी, इस कारण इसे धर्माचरणही करना चाहिये ।।३३।। इसी कारण मैंने इसे आशीर्वाद दिये थे कि, हे शुभे ! धर्मवाली हो, यह सुन धनवती चिन्तासे व्याकुल हो गई ।।३४।। वारंवार चरणोंमें पड़कर कहने लगी कि, हे विप्रेन्द्र ! यदि आपके पास कोई उपाय है तो जल्दी बता दीजिये, क्षमा करिये ।।३५।। ब्राह्मण बोला कि, यदि आपके घर सोमा आजाय तो उसके पूजन मात्रसे इसका वैधव्य मिट जाय ।।३६।। धनवती बोली कि, सोमा कौन, किस जातिकी तथा कहां रहती है ।।३७।। जिसके आने मात्रसे इसका दुहाग मिट जायगा, उसे सूक्ष्मसेही कहिये, विस्तारका समय नहीं है । द्विज बोला कि, सोमा धोबिनी सिंहल द्वीपमें रहती हैं ।।३८।। यदि वह आपके घर आ जाय तो वैधव्यका नाश हो जायगा, यह कहकर ब्राह्मण दूसरी जगह भीख लेके चलदिया ।।३९।। धनवती भी अपने बेटोंसे बोली कि, ए पुत्रो! तुम्हारीगुणवती बहिनके भाग्यमें वैधव्य है ।।४०।। पर सोमाके आने मात्रसे इसका वैधव्य मिट जायगा, जिसको मेरी बातका गौरव और पिताकी भक्ति हो वह ।।४१।। अपनी बहिनको साथ लेकर सोमा लेने चला जाय । बेटा बोले कि, मां ! तेरी बात जानली, तेरा हृदय बेटीके प्रेममें फंस गया है ।।४२।। इसी कारण बेटोंको दुर्गम देश भेज रही है, पर बीचमें चारसौ कोशके

दुस्तर समुद्र पड़ता है ।।४३।। वहां जाना कठिन है, हम वहां नहीं जा सकते । देवस्वामी बोला कि, यद्यपि मेरे सात पुत्र हैं, तो भी मैं विना बेटेवाला ही हूं । मैं सिंहल जाऊंगा ।।४४।। पुत्रीके वैधव्यको मिटानेवाली सोमाको मैं वहांसे लाऊंगा । इस प्रकार देवस्वामी तो क्रोधमें आकर कह रहा था कि, उसी समय ।।४५।। छोटा लड़का शिवस्वामी बोला कि, मैं बहिनको लेकर सिंहलद्वीप जाऊंगा, आप क्रोधमें आकर इतना क्यों कह उठे ।।४६।। मैं बैठा हूं तबतक आप क्यों जायेंगे । दूसरेकी किसकी शक्ति है, मैं बहिनको लेकर सिंहलद्वीप जाता हूं ।।४७।। ऐसा कह बहिनको साथ ले पिताको प्रणामकर आनन्दके साथ सिंहलद्वीप चल दिया ।।४८।। वह कुछ ही दिनोंमें समुद्रके किनारे पहुंच गया, समुद्रको पार करनेका प्रयत्न किया ।।४९।। पास एक बड़ा न्यग्रोधका वृक्ष देखा उसके कोटरमें गृद्धराजके बालक सुखपूर्वक रह रहे थे ।।५०।। उन दोनोंने उस वृक्षके नीचे वह दिन बिताया । सामको बालकोंके लिये भोजन लेकर गृद्ध आया ।।५१।। पर बालकोंने उससे भोजन न लिया । गृद्ध चिन्तित हो बालकोंसे पूछने लगा ।। ५२ ।। कि ए बेटो ! तुम भूखे होकर भी भोजन नहीं कर रहे हो ? क्या बात है ? मैं आपके लायक कोमल मांस लाया हूं ।।५३।। बालक बोले कि, इस वृक्ष के नीचे दो मनुष्य बैठे हुए हैं । बिना उन्हें जिमाये हम कैसे खालें ? ।।५४।। यह सुन दयार्द्र हो गृध्र उनके पास पहुंचकर बोला ।।५५।। कि आपका काम पूरा होगा, आप मुझे बता दें, मैं हर तरह करूंगा पर आप भोजन करें ।।५६।। ब्राह्मण बोला कि, मैं सिंहल जाना चाहता हूं कि, वहां जाकर सोमाको ले आऊं जिससे बहिनका वैधव्य नष्ट हो जाय, पर वह समुद्रके पार है ।।५७।। गृध्रराज बोला कि, मैं प्रातःकालही तुम्हें समुद्रके पार उतार दूंगा एवं सिंहलद्वीपमें सोमाका घर भी दिखा दूंगा ।।५८।। इसके बाद रातबीते, सूर्य्य देवके उदय होने पर, वेगवान् गृध्रराजने वे दोनों बहन भाई पार उतार दिये ।।५९।। और सिंहलद्वीपमें जाकर सोमाके घरके पास गृध्रराज ठहर गया । वे दोनों प्रत्यूषके समय आँगनके मण्डलको साफ करके ।।६०।।प्रतिदिन लीप दिया करते थे, ऐसे उन्हें एक वर्ष बीत गया ।।६१।। बेटा तथा बेटाओंकी स्त्रियोंको बुलाकर चकित हो सोमाने पूछा कि, इस मार्जन लेपनको कौन करता है ? यह मुझे बतादो ।।६२।। सबने एक साथ कह दिया कि, हमारा किया नहीं है कभी सोमाने रातमें सुचित हो बैठकर देखा कि, ब्राह्मणकी लड़की घरके आंगनको साफ कर रही है ।।६३।। पवित्र सोमाने आकर पूछा कि, आप कौन हैं ? यह हमें बताइये ।।६४।। वे बोले हम ब्राह्मण बालक हैं । सोमा बोली कि, आप मेरे घरका मार्जन करते हैं इससे मैं तो जल गई नष्ट हो गई ।।६५।। इस पापसे न जाने मेरी कौनसी गति होगी ? क्योंकि, हे द्विज ! मैं बुरी जाती हूं, आखिर धोबिन ही तो हूं ।।६६।। आप ब्राह्मण होकर यह उलटा क्यों करते हैं ? शिवस्वामी बोला कि, मेरी यह गुणवती बहिन है ।।६७।। यह सप्तपदीमें विधवा होगी वह तेरे सान्निध्यमात्रसे मिट जायगा ।।६८।। इस कारण बहिनके साथ तेरा दासकर्म करता हूं । सोमा बोली कि, इसके आगाडी न करना, क्योंकि मैं तो आपके हुक्ममात्रसे चली चलूंगी ।।६९।। ऐसा कह घर आ बहुओंसे बोली कि–" मेरे इस राज्यमें जो (मेरे घर भरका) मनुष्य मर जाय, जबतक मैं न जाऊं उसे उसी तरह रहने देना, किसीके कहनेसे किसीको किसी तरह भी मत जलाने देना " ।।७०।।७१।। पुत्रवधुओंके स्वीकार कर लेनेपर सोमा समुद्रके किनारे आई एवं क्षणमात्रमें दोनोंको पार उतार दिया ।।७२।। स्वयं भी उसने आकाश मार्गसे समुद्रको पार किया था । उसके प्रभावसे सब निमेषमात्रमें कांची आगये ।।७३।। धनवतीने सोमाको देखते ही प्रसन्न होकर उसकी पूजा की, इसी बीचमें शिवस्वामी उसकी आज्ञासे बराबरका वर देशदेशान्तरोंसे ढूंढकर लानेके लिये चल दिया ।।७४।। और उज्जयिनी पहुंचा और वहांसे गुणी रुद्रशर्म्मांके गुणवतीका दान देनेको लाया यह देवशर्म्माका बेटा था ।।७५।। ब्राह्मण रुद्रशर्म्मा वर, बहिन जैसा गुणी था, उस रजकी सोमाने उनका विवाह करा दिया ।।७६।। अच्छे लग्न नक्षत्रोंमें देवस्वामीने गुणवतीको गुणी रुद्रशर्म्माके लिये दे दिया ।।७७।। विवाहके मन्त्रोंसे अग्निहोत्र हो रहा था । सप्तपदीके बीचमें रुद्रशर्म्मा मर गया ।।७८।। सब बान्धव रोने लगे पर सोमा शान्त बैठी थी । देखनेवाले मनुष्योंका बड़ा भारी रोना पीटना होने लगा ।।७९।। उसने शीघ्रही व्रतराजके प्रभावसे होनेवाला मृत्यु निवारण पुण्य विधिपूर्वक संकल्प करके गुणवतीको दे दिया ।।८०।। रुद्रशर्म्मा भी उस व्रतराजके प्रभावसे जी गया, एवं जैसे सोता उठ बैठता है, वैसे ही उठ बैठा ।।८१।। इस प्रकार विवाह पूरा करा, सोमवतीका व्रत बता, धनवतीसे सलाह करके सोमा घर

घर चली आई ।।८२।। इस तरह सोमा धोबिन मृत ब्राह्मणको जिला पूर्ण काम प्रसन्न चित्त हो अपने मन्दिर चल दी ।।८३।। इसी बीचमें सोमाके घरपर पहिले लड़की, दूसरा स्वामी और तीसरा जमाई मर गया।।८४।। आते हुए उसे मृतकोंको जिलाने वाली सोमवती अमावस्या उस समय हो गई ।।८५।। जलके पास किसी बुड्ढी स्त्रीको देखा, वह तूलके भार बोझसे दबी हुई दुखी रो रह थी ।।८६।। वृद्धा बोली कि, बेटी ! मेरे शिरसे इस तूल भारको उतार, मैं इस भार के बोझसे दबीहुई दुख पाकर रो रही हूं ।।८७।। सोमा बोली कि, आज सोमवती अमावस है । मेरा नियम है कि, मैं तूलको नहीं छूती ।।८८।। ये सब व्रत विघ्न थे वास्तवमें कुछ नहीं था । अगाडी सोमाको मूल भारसे दबी बुड्ढी मिली, वह भी बोली कि हे पुत्रि ! मेरे शिरपर मूलका बड़ा भारी बोझ है ।।८९।। थोड़ी देर ठहर मेरे शिरसे उतार दे, मैं भी तेरे साथ चलूंगी । सोमा बोली कि, मैं मूल और तूलको आज कदापि नहीं छू सकती ।।९०।। इसके बाद नदी किनारे पीपलके वृक्षके पास पहुंच गई, स्नानकर विष्णुकी पूजा करके ।।९१।। उस महाभागाने शर्करासे एक सौ आठ प्रदक्षिणाएं कीं । भीष्मपितामह बोले कि जब उसने शर्करा हाथमें लिये लिये एक सौ आठवीं प्रदक्षिणा पूरी की उसी समय वहां उसके भर्ता, पुत्र और जमाई तीनों जी गये । नगर शोभासे पूर्ण तथा उसका घर तो विशेष रूपसे हो गया ।।९२।।९३।। सोमा घर आई उसे भर्ता, पुत्र, जमाई सब जीवित मिले ।।९४।। वह जानकार थी ही उन्हें पा कृतकृत्य हो गई उस तपस्विनीको सब बहुएं प्रणाम करके पूंछने लगीं ।।९५।। कि, हे देवि ! आपके बेटे, पति और जमाई कैसे मर गये और कैसे जी गये ? यह बताइये ।।९६।। सोमा बोली कि, मैंने सोमवती अमावसका पुण्य गुणवतीको दे दिया था । इस विपाकसे ये सब मर गये थे ।।९७।। हे बहुमते ! न मैंने तूलक छूआ और न मूलक ही छूआ । अश्वत्थके नीचे विष्णुको पूजकर वहां हाथमें शर्करा ले एक सौ आठ प्रदक्षिणाएं कीं उसके प्रभावसे पति जमाई और पुत्र तीनों जी गये ।।९८।।९९।। अभीसे तुम सब इस व्रतराजको विधिपूर्वक करो, इससे कभी वैधव्य न होगा सदा सुहाग रहेगा ।।१००।। इस व्रतराजको सोमाने बहुओंसे कराया, पुत्रपौत्रोंके साथ बहुतसे भोगोंको भोगा ।।१।। उन सबके साथ सोमा विष्णुलोकको चली गई । हे पार्थ ! यह मैंने विस्तारके साथ तुम्हें सुनादिया ।।२।। युधिष्ठिरजी पूछने लगे कि, इसकी विधि और माहात्म्य क्या है ? हे भीष्म ! इसे स्त्री–पुरुष किसको करना चाहिये ? यह विस्तारके साथ सुना दीजिये ।।३।। भीष्म बोले कि हे पार्थ ! जब अमावस सोमवारी हो, यह पुण्यकाल देवताओंको भी दुर्लभ है ।।४।। व्रती प्रातः उठ जलाशयमें मौन हो स्नान करें कौशेय वस्त्र पहिने ।।५।। हे कुरुनन्दन ! अश्वत्थके पास जाय उसके मूलमें मंत्रोंसे विष्णुपूजा करे ।।६।। व्यक्त और अव्यक्त स्वरूपवाले सृष्टि स्थिति और संसारके कर्ता आदि मध्य और अन्तसे हीन विष्टरश्रवाके लिये नमस्कार है ।।७।। यह विष्णु भगवान्की पूजाका मंत्र है । पीपवस्त्र, अक्षत, फल, अनेक तरहके फूल, तैसेही भक्ष्य भोज्य इससे गोविन्दका पूजन करके ।।८।। हे पाण्डव ! 'अश्वत्थ हुतभुग्' इससे पीपलका पूजन करना चाहिये ।।९।। यह अश्वत्थकी पूजाका मंत्र है । मूल तो ब्रह्मरूपाय' इससे प्रदक्षिणा करे ।।११०।। पूजा करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये । मुक्ता, कांचन, रौप्य, हीरा, मणि ।।११।। कांस्यपात्र, ताम्रपात्र इन्हें भक्ष्यसे भरकर अलग अलग हाथमें लेकर पीपलकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।।१२।। जबतक एक सौ आठ न हों तबतक करता रहे । चढ़ायेके द्रव्यको गुरुके लिये दे दे ।।१३।। सोमाकी सन्तुष्टिके लिये सुवासिनियोंको पूजे, ब्राह्मणोंको अन्न देकर मौन हो भोजन करे ।।१४।। हे राजन् ! यह मैंने व्रतराजकी विधि कह दी, द्रौपदी सुभद्रा और उत्तरासे इसे कराओ ।।१५।। उत्तराके गर्भका बालक थोडेही समयमें जी जायगा । युधिष्ठिरजी बोले कि; जिसके पास वैभवकी कमी है सुवर्ण जिसके पास है नहीं वो कैसे करे ।।१६।। उसे कैसे इसका पूरा फल मिले ? यह बताइये । भीष्म पितामह बोले कि, हे पाण्डव ! वह फल, पुष्प, भक्ष्य, वस्त्रादिक इनसे प्रदक्षिणा करले पूरे फलको पाजायेगी ।।१७।। हे राजन् ! तुमने इस व्रतको पूरा सुना है इस कारण यथाश्रवणके प्रभावसे आपमें भी पूरा प्रभाव आगया है । यह आश्चर्य नहीं है । पति पुत्र चाहनेवाली सुन्दरी इसे कर उसे भी पूरा फल अवश्य मिलेगा ।।१८।। भीष्म पितामह बोले कि, मैं उद्यापनकी विधि कहता हूं । हे राजन् ! इसके किये बिना व्रतराज पूरा नहीं होता ।।१९।। सर्वतोभद्र बनावे उसके बीचमें कलशस्थापन करे, सोनेका अश्वत्थ और पांच रत्नोंकी वेदी बनावे

॥१२०॥ उसके मूलमें सोनेकी चतुर्भुजी लक्ष्मी और गरुडके साथ माषसे लेकर पलतककी भगवान्की मूर्ति बनाले । २१॥ जैसा विभव हो उसके अनुसार अनेकों उपचारोंसे तथा चारों ओर रखे हुए पुष्प धूप दीप और नैवेद्योंसे पूजे ॥२२॥ रातमें जागरण तथा प्रभातमें हवन करे । उसमें पीपलकी समिध पायस और तिल हव्य द्रव्य होना चाहिये, " इदं विष्णु" इस मंत्रसे हवन करके पूर्णाहुति करे, आचार्य्यको पूजकर उसे दूध देनेवाली गाय दे ॥२३॥२४॥ ब्राह्मण सदस्योंको भी वस्त्र भूषण आदिसे पूजा हो, बारहों ऋत्विजोंको जिमावे घी-खीरका भोजन करावे ॥२५॥ उन्हें उपवीत औ वस्त्र दक्षिणाके साथ दे दण्डकी तरह भूमिमें प्रणाम करके प्रार्थना कर विसर्जन कर दे॥२६॥इस प्रकार बारह वर्षमें अथवा आदिमें वा मध्यमें उसद्यापन करे, इसे अच्छी तरह करके ही व्रतराजका फल मिलता है ॥२७॥ दक्षिणासमेत सब पीठ आचार्यको देदे, अच्छिद्रका वाचन कराके पीछे मौन होकर भोजन करे ॥ १२८ ॥ यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ उद्यापनसहितसोमवती अमा वस्याका व्रत पूरा हुआ ॥

अर्धोदयव्रतम्

अथ पौषामावास्यायामर्धोदयव्रतम् ॥ अमार्कपात्रश्रवणैर्युक्ता 'चेत्पौषमाघयोः ॥ अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ॥ दिवैव योगः शस्तोऽयं नतु रात्रौ कदाचन ॥ इति मदनरत्नोदाहृतमहाभारतवचनात् ॥ अथ कथा–हेमाद्रौ स्कन्दपुराणे ॥ अगस्त्य उवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुतोयं व्रतविस्तरः ॥ अर्धोदयं तु मे ब्रूहि दुर्लभं स चराचरे ॥ १ ॥ जीवितं प्राणिनां पुण्यं यदि चेद्वदसि प्रभो ॥ कथं कार्यं कृते किंस्यात्फलं कथय षण्मुख ॥ २ ॥ स्कन्द उवाच ॥ श्रूयतां पुण्ययोगोऽयं दुर्लभोऽर्धोदयाह्वयः ॥ तिर्यङ्मनुष्यदेवानां दुष्प्राप्यः सर्वकामदः ॥ ३ ॥ माघामायां[2] व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते ॥ अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम् ॥ ४ ॥ पुरा कृतं वसिष्ठेन जामदग्न्येन सुव्रत ॥ सनकाद्यैर्मनुष्यैश्च बहुभिर्बहुविद्युतैः ॥ ५ ॥ अन्यैः सहस्रैश्च कृतं भुवि श्रेष्ठं तु कुम्भज ॥ दानानां यज्ञतीर्थानां फलं येन कृतं भवेत् ॥६॥ ससागरा धरा तेन सप्तद्वीपपसमन्विता ॥ दत्ता स्यात्सर्वभावेन येन त्वर्धोदयं कृतम् ॥ ७ ॥ गङ्गागयाप्रयागेषु पुष्कराणां त्रयं तथा ॥ मानसादिषु यत्पुण्यं तीर्थेषु स्नानदानतः ॥ ८ ॥ तत्सर्वं प्राप्यते विप्र व्रतेनानेन कुम्भज ॥ अश्वमेधायुत चेष्टमिष्टापूर्तं च तैः कृतम् ॥ ९ ॥ अर्धोदयं कृतं यैस्तु विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ वाचि सत्यं गृहे लक्ष्मीः सन्तति श्चानपायिनी ॥ १० ॥ आयुर्यशोऽतिविपुलं व्रतकर्ता फलं लभेत् ॥ इन्द्राग्नियमलोकेषु नैर्ऋतानामपांपतेः ॥ ११ ॥ वायोः कुबेरस्येशस्य लोकेषु सुकृती प्रभुः ॥ वसेच्चन्द्रार्कलोके च लोकपालैश्च सेवितः ॥ १२ ॥ गोकोटिदानजं पुण्यं सर्वतीर्थनिवासजम् ॥ अर्धोदयस्य पुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥१३॥ भूर्लोकाधिपतिश्चैव भुवर्लोकाधिपस्तु सः ॥ स्वर्लोकेशो जनानां च तपोलोकस्य चेश्वरः ॥ १४ ॥ महर्लोके वसेन्नित्यं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ततो हिरण्यगर्भस्य पुरुषो व्रतकारकः

१ पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनीत्यर्थ इत्येके । अमान्तमासे पौषस्य पूर्णिमान्तमासे माघस्य चेत्यर्थ इत्यपरे । सर्वथा पौषपौर्णिमास्युत्तरामावास्येत्यर्थः । २ पूर्णिमान्तमानेनेत्यर्थः । ३ तस्योति शेषः ।

।। १५ ।। सत्यलोकाधिपः साक्षी लोकानां पुरुषोऽव्ययः ।। अर्धोदयप्रसादेनब्रह्मलोके वसेत्तु सः ।। १६ ।। तथा मानेन विष्णुत्वं ब्रह्मा रुद्रास्ततो भवेत् ।। शिवलोके गणैः पूज्यो देवराजसमन्वितः ।। १७ ।। वसेच्छक्रेण मानेन व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। ततो विष्णुस्वरूपेण त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् ।। १८ ।। शंखचक्रगदाधारी वनमाली हरिः स्वयम् ।। व्रतप्रभावाल्लक्ष्मीशो देवो नारायणो भवेत् ।। १९।। अगस्त्य उवाच ।। स्कन्द केन विधानेन कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।। अर्धोदयं मनुष्याणां जीवितं दुर्लभं भुवि ।। २० ।। स्कन्द उवाच ।। कृते कृतं वसिष्ठेन त्रेतायां रघुणा कृतम् ।। द्वापरे धर्मराजेन कलौ पूर्णोदरेण च ।। २१ ।। अन्यैर्देवमनुष्यैश्च दैत्यैश्च मुनिसत्तम ।। कृतमर्धोदयं सम्यक् सर्वकामफलप्रदम् ।। २२ ।। माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने ।। वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे ।। २३ ।। पूर्वाह्णे सङ्गमे स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ।। सर्वपापविशुद्ध्यर्थंनियमस्थो भवेन्नरः ।। २४ ।। त्रिदैवत्यं व्रतं देवाः करिष्ये मुक्तिदं परम् ।। भवन्तु सन्निधौ मेऽद्य त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः ।। २५ ।। इति नियममंत्रः ।। ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णपलसंख्यया।।कर्तव्यार्चा तदर्धेन तदर्धेन द्विजोत्तम।।२६।।सार्धं शतत्रयं शम्भोर्द्रोणानां तिलपर्वतः ।। कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसंख्यया ।। २७ ।। शंभुरत्र ब्रह्मा ।। शय्यात्रयं ततःकुर्यादुपस्करसमन्वितम् ।। देवतात्रमुद्दिश्य कर्तव्यं भक्तिशक्तितः ।।२८।। ब्रह्मविष्णुशिवप्रीत्यै दातव्यं तु गवां त्रयम् ।। हिरण्य भूमिधान्यादिदानं विभवसारतः ।। २९ ।। दातव्यं श्रद्धयोपेतं ब्राह्मणेभ्यस्तु यत्नतः ।। मध्याह्ने तु नरःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ।। तिलपर्वतमध्यस्थं पूजयेद्देवतात्रयम् ।। ३० ।। तत्रादौ ब्रह्मपूजा-नमो विश्वसृजे तुभ्यं सत्याय परमेष्ठिने ।। देवाय देवपतये यज्ञानां पतये नमः ।।३१।। ॐ ×ब्रह्मणे नमः पादौ पूजयामि ।। ॐ हिरण्यगर्भाय० ऊरू पू० । ॐ धात्रे नमः जानुनी० । ॐ परमेष्ठिने नमः जंघे पू० । ॐ वेधसे नमः गुह्यं पू० । ॐ पद्मोद्भवाय० नाभि पू० । ॐ हंसवाहनाय० कटिं पू० । ॐ शतानन्दाय० वक्षःस्थलं पू० । ॐ सावित्रीपतये० बाहू पू० । ॐ ऋग्वेदाय० पूर्ववक्त्रं पू० । ॐ यजुर्वेदाय०दक्षिणवक्त्रं पू० । ॐ सामवेदाय० पश्चिमवक्त्रं पू० । ॐ अथर्ववेदाय० उत्तरवक्त्रं पू० । ॐ कपिलाय० कपोलौ पू० । ॐ चतुर्वक्त्राय० शिरः पूजयामि । ततःकार्या लोकपालपूजा विप्रैः स्वमन्त्रतः ।। हिरण्यगर्भ पुरुषप्रधाना व्यक्तरूपक ।। प्रसीद सुमुखो भूत्वा पूजां गृह्ण नमोऽस्तुते ते ।। ३२ ।। इति ब्रह्मप्रार्थना ।। नारायण जगन्नाथ नमस्ते गरुडध्वज ।। पीताम्बर नमस्तुभ्यं जनार्दन नमोऽस्तु ते ।। ३३ ।। ॐ अनन्ताय० पादौ पू० विश्वरूपाय० ऊरू पू० ।

× हे० व्रता० चैतत्पूजात्रयं श्लोकरूपेण लिखितम् ।

मुकुन्दाय० जानुनी पू० । गोविन्दाय० जंघे पू० । प्रद्युम्नाय० गुह्यं पू० । पद्मनाभाय० नाभिं पू० । भुवनोदराय० उदरं पू० । कौस्तुभवक्षसे० वक्षः पू० । चतुर्भुजाय० बाहू पू० । विश्वतोमुखाय० मुखं पू० । सहस्रशिरसे देवायानन्ताय० शिरः पू० । आदित्यचन्द्रनयन दिग्बाहो दैत्यसूदनं । ।। पूजां दत्तां मया भक्त्या गृहाण करुणाकर ।। ३४ ।। इति विष्णुप्रार्थना ।। महेश्वर महेशान नमस्ते त्रिपुरान्तक ।। जीमूत केशाय नमो नमस्ते वृषभध्वज ।। ३५ ।। ॐ। ईशानाय० पादौ पू०। चन्द्रशेखराय० जंघे पू० । पशुपतये० जानूनी पू० । शंकराय० ऊरू पू० । उमाकान्ताय० गुह्यं पू० । नीललोहिताय० नाभि पू० । कृत्तिवाससे० उदरं पू० । नागयज्ञोपवीतिने० हृदयं० पू० । [1]भुजङ्गभूषणाय० बाहू पू० । नीलकण्ठाय० कण्ठं पू० । पञ्चवक्त्राय० मुखं पू० । कपर्दिने० शिरः पूजयामि ।। अन्धकारेऽप्रमेयात्मन्नमो लोकान्तकाय च ।। पूजामत्र कृतां भक्त्या गृहाण वृषभध्वज ।। ३६ ।। इति महेश्वरप्रार्थना ।। इति पूजाक्रमः प्रोक्तो मंत्रैरेतैः प्रयत्नतः ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रोलंकारभूषणैः ।। ३७ ।। हस्तमात्रा कर्णमात्रा पीठं छत्रं कमण्डलुः ।। श्वेतवस्त्रयुगं देयं ब्रह्मणे सर्वमूर्तये ।। ३८ ।।पीतवस्त्रयुगं विष्णोर्लोहितं शंकरस्य च ।। पञ्चामृतेन स्नपनं पूजनं कुसुमैः स्वकैः ।। ३९ ।। कमलैस्तुलसीपत्रैर्बिल्वपत्रैरखण्डितैः ।। तत्कालसम्भवैर्दिव्यैः पूज्या देवा यथाक्रमम् ।।४०।। यथाशक्त्या प्रकर्तव्यं व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।। जीवितं प्राणिनामेतदनित्यं निश्चितं यतः ।। ४१ ।। अथ व्रताङ्गहोमस्य विधानं शृणु यत्नतः ।। देवतात्रयमुद्दिश्य शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।। ४२ ।। [2]ब्रह्मणे विष्णुरूपाय शिवरूपाय ते नमः ।। अनेनैव च मन्त्रेण वह्निंसंस्थाप्य भक्तितः ।। ४३ ।। ततो होमं प्रकुर्वीत सहस्रत्रय संमितम् ।। तिलाज्यशर्कराश्चैव होमद्रव्यं पृथक्पृथक्।।४४।।ब्रह्मजज्ञानमंत्रेण ब्रह्मणे च तिलान् हुनेत् ।। [3]आज्यं चैव इदं विष्णुस्त्र्यंबकं शर्करां हुनेत् ।। ४५ ।। अथ होमावसाने तु गां च दद्यात्पयस्विनीम् ।। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां घण्टाभरणभूषिताम् ।। ४६ ।। ताम्रपृष्ठीं कांस्यदोहां सर्वोपस्करसंयुताम् ।। सदक्षिणां सुशीलां च आचार्याय निवेदयेत् ।। ४७ ।। तेन दत्तं हुतं जप्तमिष्टं यज्ञैः सहस्रधा ।। कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। ४८ ।। एवं तव मयाख्यातं दुर्लभं व्रतमुत्तमम् ।। अर्धोदयं

१ व्र० हे० च भोगरूपायेति पाठः ।

२ हेमाद्रौ तु प्रजापतये विष्णुरूपाय रुद्राय ननो नम इति वह्निस्थापनमंत्र उक्तः । ततः अग्नये प्रजापटये स्वाहा अग्नये विष्णवे स्वाहा अग्नये रुद्राय स्वाहा । इति मन्त्रत्रयेण चर्वाहुतित्रयं प्रजापतये न त्वं इदं विष्णुः त्र्यम्बकं यजामहे इति मन्त्रत्रयेण प्रत्येकमाज्यहोम उक्तः ।। कौस्तुभकारेण भाष्यं तदनुसृत्य प्रयोग रूपेण सर्वमुक्त्वा अन्तेऽर्थप्राप्तं प्रतिमासहितपर्वतदानमुक्तम् । ३ इदं विष्णुरितिमंत्रेण विष्णवे आज्यं त्र्यंबकमितिमन्त्रेण त्र्यंबकाय शर्करामित्यर्थः ।।

यथादृष्टं किमन्यन्परिपृच्छसि ।। ४९ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे अर्धोदयव्रतं संपूर्णम् ।।
इत्यमावास्याव्रतानि समाप्तानि ।।

अर्धोदयव्रत–पौष अमावसको होता है, इस विषयमें मदनरत्नने महाभारतका वचन दिया है कि, पौष माघकी अमावस, रविवार, व्यतीपात और श्रवणसे युक्त हो तो उसे अर्धोदय समझना । वह समय कोटि सूर्य्यग्रहणके पुण्यकालके बराबर है । यह योग दिनमेंही अच्छा है रातमें कभी भी अच्छा नहीं है ।। कथा-हेमाद्रिने स्कन्द पुराणके वचन दिये हैं ।। अगस्त्यजी बोले कि, मैंने आपकी कृपासे बहुतसे व्रत सुने मुझे अर्धोदयको सुनाइये जो कि, चराचरमें दुर्लभ है ।।१।। यदि आप उसे कह देंगे तो प्राणियोंका पुण्य जीवित हो गया समझूंगा कैसे करे ? कियेसे क्या फल होता है ? हे षण्मुख ! यह बताइये ।।२।। स्कन्दजी बोले कि, सुनिये, यह अर्धोदयनामका पुण्य योग है, यह सब कामनाओंका देनेवाला तथा तिर्यग् मनुष्य और देवोंको मिलना कठिन है ।।३।। माघकी अमावसको व्यतीप्रात रविवार और विष्णु दैवत्य नक्षत्र हो तो अर्धोदय कहाता है, वो कोटिसूर्यग्रहणके पुण्यकालोंके बराबर है ।।४।। हे सुव्रत ! इसे पहिले वसिष्ठ, जामदग्न्य और सनकादिकोंने किया था, सनकादिक तथा और भी बड़े-बड़े सुयोग्य विज्ञ पुरुषोंने इसे किया है ।।५।। हे कुंभज ! और भी बड़े-बड़े हजारोंही पुरुषोंने इसे किया है । इसके कियेसे दान यज्ञ और तीर्थोंका फल मिल जाता है ।।६।। जिसने अर्धोदय कर लिया उसने समुद्रोंसहित सातोंद्वीपवाली पृथ्वी सब भावसे दे दी ।।७।। गंगा, गया, प्रयाग, तीनों पुष्कर, मानसादिक पुण्य तीर्थोंके स्नानदानमें जो पुण्य हैं ।।८।। वह सब फल इस व्रतके कियेसे मिल जाता है, उसने अयुत अश्वमेध तथा इष्टापूर्त कर लिया ।।९।। जिसने पूरी विधिसे अर्धोदय कर लिया । उसकी वाणीमें सत्य, घरमें लक्ष्मी तथा सन्तान चिरंजीविनी होती है ।।१०।। उसे आयु और यश बड़ा भारी होता है । ये फल व्रतको करनेवालेके लिये होते हैं । इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य वरुण, वायु, कुबेर, ईश इनके लोकोंमें बसता है तथा लोकपालोंका पूज्य होकर चांद सूरजके लोकमें बसता है ।।११।। ।।१२।। कोटि गऊके दान और सब तीर्थोंके सेवन, अर्धोदयके पुण्यकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पा सकते ।।१३।। वह भू, भुवः, स्वः, जन, तप, इन सबोंका ईश्वर है ।।१४।। जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं वह महर्लोकमें रहता है, इसके बाद व्रतकर्ता पुरुष, हिरण्यगर्भके सत्यलोकका स्वामी लोकोंका साक्षी। अव्यय पुरुष, बनकर अर्धोदयके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें रहता है ।।१५।।१६।। नियमके अनुसार ब्रह्मा विष्णु महेश होता है । शिवलोकमें शिवके गण उसे पूजते तथा देवराज पासही पड़ा रहता है ।।१७।। इस व्रतके प्रभावसे शाक्र मानसे बसता है पीछे विष्णुकी सरूपता पाकर तीनों लोकोंका अधिपति हो जाता है ।।१८।। शंख, चक्र, गदा और वनमाला धारण करता है इस व्रतके प्रभावसे स्वयं लक्ष्मीश लक्ष्मीनारायण देव हो जाता है (यह माहात्म्य श्रवण है इसका बडाईमें तात्पर्य है) ।।१९।। अगस्त्यजी पूछने लगे कि, हे स्कन्द ! किस विधिसे इस उत्तम व्रतको करे ? क्योंकि मनुष्योंको जीवित अर्धोदय बड़ाही कठिन है ।।२०।। स्कन्द बोले कि, कृतयुगमें वसिष्ठजीने, त्रेतामें रघुने, द्वापरमें धर्मराजने एवं कलियुगमें इस व्रतको पूर्णोदरने किया था ।।२१।। हे मुनिसत्तम ! दूसरे -दूसरे भी देव मनुष्य और दैत्योंने सभी कामनाओंकी पूर्तिरूपी फल देनेवाले इस अर्धोदयको किया था ।।२२।।माघ कृष्णा पंचदशी रविवार वैष्णव (श्रवण) नक्षत्र व्यतीपात इनमें ।।२३।। पूर्वाह्णके समय संगमपर स्नान करके पवित्र एकाग्र हो, सब पापोंकी शुद्धिके लिये नियम करे ।।२४।। हे देवो ! मैं परम मुक्तिके देनेवाले एवं तीन देवताओंके व्रतको करता हूं ।।२५।। यह नियमका मंत्र है । ब्रह्मा विष्णु महेशकी सुवर्णके पलकी आधे वा उसके भी आधेकी मूर्ति बनावे ।।२६।। साढे तीन-तीन सौ द्रोण तिलके ब्रह्मा, विष्णु और महेशके पर्वत बनाने चाहियें, इस श्लोकमें-पहिले शंभ आकर फिर रुद्र आया है इस कारण व्रतराज कारने इसका ब्रह्मा अर्थ किया है ।।२७।। तीनों देवता ओंके लिये भक्तिभावके साथ शय्या बनावे । उसका सब सामान भी तयार करे ।।२८।। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तीन गायें देनी चाहियें तथा अपने वैभवके अनुसार हिरण्य भूमि और धान्य है ।।२९।। श्रद्धाके साथ प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको दे । मध्याह्नमें स्नान कर पवित्रताके साथ एकाग्र चित्त हो तिल-पर्वतके बीचमें विराजमान तीनों देवताओंका पूजन करे ।।३०।। सबसे पहिले ब्रह्माजीकी पूजा कही जाती है-

तुझ सत्य, परमेष्ठी, विश्वके रचनेवाले यज्ञ और देवोंके पति देवके लिये नमस्कार है ।।३१।। ओम् ब्रह्माके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजता हूं; हिरण्यगर्भके० ऊरुओंको पू०; धाताके० जानुओंको पू०; परमष्ठीके० जंघाओंको पू०; वेधाके० गुह्यको पू०; पद्मोद्भवके० नाभिको पू०; हंसवाहनके० कटीको पू०; शतानन्दके० वक्षस्थलको पू०; सावित्रीके पतिके० बाहुओंको पू०; ऋग्वेदके० पूर्वके मुखको पू०; यजुर्वेदके० दक्षिण मुखको पू०, सामवेदके० पश्चिम मुखको पू०; अथर्ववेदके ० उत्तर मुखको पू०; कपिलके० कपोलोंको पू०; चतुर्वक्त्रके० शिरको पूजता हूं । इसके बाद ब्राह्मणोंको लोकपालोंकी पूजा उन्हीके मंत्रोंसे करनी चाहिये । हे हिरण्यगर्भ ! हे पुरुषप्रधान ! व्यक्तरूपक ! प्रसन्न हो पूजा ग्रहण करिये ! ह्मापके यलये नमस्कार है ।।३२।। यह ब्रह्माकी प्रार्थना पूरी हुई ।। विष्णुपूजा–हे नारायण ! हे जगन्नाथ ! हे गरुडध्वज ! हे पीले वस्त्र -धारण करनेवाले ! तेरे लिये नमस्कार है, हे जनार्दन ! तेरे लिये नमस्कार है ।।३३।। अनन्तके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजता हूं; विश्वरूपके० ऊरुओंको पू०; मुकुन्दके० जानुओंको पू०; गोविन्दके० जंघोंको पू०; प्रद्युम्नके० गुह्यको पू०; पद्मनाभके० नाभिको पू०; भवनोदरके० उदरको पू०; वक्षमें कौस्तुभवालेके० वक्षको पू०; चतुर्भुजके बाहुओंको पू०; विश्वतोमुखके० पू०; सहस्रों शिरोंवाले अनन्त देवके लिये नमस्कार शिरको पूजता हूं । सूर्य चाँदके नयनवाले । दिशाओंकी बाहुओंवाले ! दैत्योंके मारनेवाले ! हे करुणाकर ! मेरी भक्तिपूर्वक पहिली दी हुई पूजाको ग्रहण कर ।।३४।। यह विष्णुकी प्रार्थना है ।। रुद्रपूजा–हे महेश्वर ! हे महेशान ! हे त्रिपुरान्तक ! तेरे लिये नमस्कार है । हे वृषध्वज ! तुझ जीमूतके शवालेके लिये नमस्कार है ।।३५।। ईशानके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजता हूं; चन्द्रलेखरके० जंघोंको पू०; पशुपतिके० जानुओंको पू०; शंकरके० ऊरुओंको पू०; उमाकान्तके ० गुह्यको पू०; नीललोहितके० नाभिको पू०; कृत्तिवासाके० उदरको पू०; नागके यज्ञोपवीतवालेके० हृदयको पू०; भुजंगभूषणके० बाहुओंको पू०; नीलकंठके० कंठको पू०; पंचवक्त्रके० मुखको पू०; कपर्दीके लिये नमस्कार शिरको पूजता हूं । हे अन्धकारे ! हे अप्रमेयात्मन् ! तुझ लोकान्तके लिये नमस्कार है : ।हे वृषभध्वज ! मेरी भक्तिभावसे की गई पूजाको ग्रहण करिये ।।३६।। यह महेश्वरकी प्रार्थना हुई ।। यह पूजाक्रम कहा गया है । इन मन्त्रोंसे प्रयत्नके साथ करना चाहिये। पीछे वस्त्र अलंकार और आभूषणोंसे भक्तिभावके साथ आचार्य्यको पूजना चाहिये ।।३७।। हस्तमात्रा, कर्णमात्रा, छत्र, पीठ, कमण्डलु, दो श्वेतवस्त्र, सर्व मूर्ति ब्रह्माको देने चाहिये ।।३८।। विष्णुको दो पीतवस्त्र, शंभुको लाल; दे, सबका पंचामृतसे स्नान एवम् जो जिसका फूल हो उससे उसका पूजन करे ।।३९।। कमल तुलसीपत्र और साबित विल्वपत्र एवं उस समय होनेवाले द्रव्योंसे क्रमपूर्वक पूजन करे ।।४०।। इस दुर्लभ व्रतको शक्तिके अनुसार करे । यह निश्चित बात है कि, मनुष्योंका जीवन सदा नहीं रहता । इस कारण जो उत्तम कर्म बने सो कर डाले ।।४१।। अब सावधानीके साथ व्रताङ्गहोमका विधान सुनिये, शास्त्रकी विधिके अनुसार तीनों देवोंका उद्देश लेकर करे ।।४२।। विष्णुरूप और शिवरूप तुझ ब्रह्माके लिये नमस्कार है इस मंत्रसे भक्तिके साथ अग्निस्थापन करे ।।४३।। इसके बाद तीन हजार आहुति तिल आज्य और शर्करासे दे । तीनों देवोंके लिये वस्तुभेदसे भिन्न-भिन्न देनी चाहिये ।।४४।। "ब्रह्म जज्ञानम्" इस मंत्रसे ब्रह्माके लिये तिलों का हवन करे, " इदं विष्णु: ' इस मंत्रसे आज्य विष्णुके लिये तथा त्र्यम्बकम् " इस मंत्रसे शर्करा शिवके लिये हवन करे ।।४५।। होमके अन्तमें दूध देनेवाली गाय दें । उसके साथ सोनेके सींग चाँदीके खुर हों तथा घण्टा और आभरणोंसे भूषित हो ।।४६।। ताम्बेकी पीठ कांसेकी दोहनी तथा सभी उपस्करके साथ दे । वह सुशीला हो इसके साथ दक्षिणाभी दे । यह सब आचार्य्यको देना चाहिये ।।४७।। इससे हजारोंही उत्तम दान दे दिये हवन कर लिये, तप कर लिये, यज्ञ कर लिये और तो क्या इस व्रतके प्रभावसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । ।।४८।। इस दुर्लभ उत्तम व्रतको मैंने तुम्हें सुना दिया है, जैसा कि, मैंने शास्त्रमें देखा था । और क्या पूछना चाहते हो ।।४९।। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ अर्धोदय व्रत पूरा हुआ ।। इसके साथ ही अमावस्याके व्रत भी पूरे होते हैं ।।

अथ मलमासव्रतानि लिख्यन्ते

श्रीरुवाच ।। देवदेव जगन्नाथ भुक्तिमुक्तिप्रदायक ।। कथयस्व प्रसादेन लोकानां हितकाम्यया ।। कथयन्ति मुनिश्रेष्ठाः कृष्णद्वैपायनादयः ।। अदत्तं नैव लभ्येत दत्तमेवोपतिष्ठते ।। यथा वन्ध्या गृहस्थस्य पतिवंशविनाशिनी ।। तथा दानविहीनस्य जन्म सर्वनिरर्थकम् ।। तथापि कथयन्तीह दैवज्ञाः शास्त्रकोविदाः ।। क्षौरं मौञ्जी विवाहश्च व्रतं काम्योपवासकम् ।। मलिम्लुचे सदा त्याज्यं गृहस्थेन विशेषतः ।। अधिमासे च संप्राप्ते किं कार्यं व्रतमुत्तमम् ।। कस्योद्देशेन दातव्यं किं परत्र प्रदायकम् ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु देवि महाभागे सर्वलोकस्य हेतवे ।। स्वयं दाता स्वयं भोक्ता यो ददाति द्विजातये ।। नान्यो दाता न भोक्ता च इह लोके परत्र च ।। असंक्रान्ते च मासे वै मामुद्दिश्य व्रतं चरेत् ।। अधिमासस्य देवोऽहं पुरुषोत्तमसंज्ञकः ।। स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।। देवार्चनमथान्यच्च ये कुर्वन्ति मनुष्यजाः ।। अक्षयं तद्भवेत् सर्वं ममोद्देशेन यत्कृतम् ।। मलमासो गतः शून्यो येषां देवि प्रमादतः ।। दारिन्द्यं पुत्रशोकं च पापपङ्कविगर्हितम् ।। मर्त्यलोके भवेज्जन्म तेषां देवि न संशयः ।। सुखं प्रदासि देवि त्वं येऽर्चयन्ति द्विजोत्तमान् ।। यदा मलिम्लुचो मासः प्राप्यते मानवैः प्रिये ।। महोत्सवस्तदा कार्य आत्मनो हितकांक्षिभिः ।। कृष्णपक्षे चतुर्दश्यांनवम्यां वा सुरेश्वरि ।। अष्टम्यां वाथ कर्तव्यं व्रतं शोकविनाशनम् ।। यथालाभोपचारेण मासे चास्मिन्मलिम्लुचे।।पुण्येऽह्नि प्रातरुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकी क्रियाम् ।।गृह्णीयान्नियमं पश्चाद्वासुदेवं हृदि स्मरन् ।। उपवासस्य नक्तस्य एकभक्तस्य भामिनि ।। एकस्य निश्चयं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ।। सपत्नीकान् सदाचारान् सुरूपान् सुरवेषकान् ।। श्रुताध्ययनसम्पन्नान् कुलीनाञ्ज्ञातिसंभवान् ।। ततो मध्याह्न समये लक्ष्मीयुक्तं सनातनम् ।। स्थापयेदव्रणे कुम्भे वेदमंत्रैर्द्विजोत्तमैः ।। पूजयेत्परया भक्त्या गोत्रिभिः सपितामहम् ।। गन्धतोयेन संस्नाप्य शुभैः पञ्चामृतैस्तथा ।। चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पैर्नानाविधैः प्रिये ।। मिष्टान्नैर्नवनैवेद्यैर्धूपदीपादिभिस्तथा ।। अच्छादयेत्सुवस्त्रैश्च पीतवस्त्रैर्विशेषतः ।। घण्टामृदङ्गनिर्घोषशङ्खध्वनिसमन्वितम् ।। आरार्तिकं व्रती कुर्यात्कर्पूरागुरुचन्दनैः ।। अलाभे तूल्मुकेनापि फलानन्त्यस्य सिद्धये ।। ताम्रपात्रस्थितं तोयं चन्दनाक्षतपुष्पकैः ।। अर्घ्यं दद्यात्सपत्नीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।। नारङ्गैर्नालिकेरैश्च फलैर्नानाविधैः शुभैः ।। पञ्चरत्नैः समायुक्तं जानुनी कृत्य भूतले ।। आरोप्य भाले हस्ताभ्यां श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। मंत्रेणानेन देवेशि ब्रह्मणा सह मां स्मरन् ।। देवदेव महादेव प्रलयोत्पत्तिकारक ।।

गृहाणार्घ्यमिमं देवा कृपां कृत्वा ममोपरि ।। अर्घ्यदानमंत्रः ।। स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमितेजसे ।। नमोऽस्तु ते श्रियानन्त दयां कुरु ममोपरि ।। एवं संप्रार्थ्य गोविन्दं पूजयेद्ब्रह्मणांस्ततः ।। सपत्नीकाञ्छुचीन् स्नातॉल्लक्ष्मीनारायणौ स्मरन् ।। परिधाप्य यथाशक्त्या वस्त्रैर्भूषणकुंकुमैः ।। अलंकृत्य विधानेन भोजये-द्घृतपायसैः ।। द्राक्षाभिश्च कपित्थैश्च पनसैः कदलीफलैः ।। नारिकेलैश्च नारिङ्गैः कूष्माण्डैर्दाडिमीफलैः ।। घृतपक्वान्नगोधूमैः शुभैः सोहालिकैर्वटैः ।। शार्करैर्वृत-पूरैश्च फणितैः खण्डमण्डकैः ।। वृन्ताककर्कटीशाकैः शृङ्गवेरैः समूलकैः ।। अन्यैश्च विविधैः शाकै रम्यपाकैः पृथक्पृथक् ।। भक्ष्यैर्भोज्यैश्चळेह्यैश्च चोष्यैः पानीयकैस्तथा ।। तत्र चावसरं प्राप्य परिविष्य मृदु ब्रुवन् ।। इदं स्वादु इदं भोज्यं भवदर्थं निवेदितम् ।। याच्यतां रोचते यच्च यन्मया पाचितं ततः ।। धन्योऽस्म्य-नुगृहीतोऽस्मि पावितं मम मन्दिरम् ।। इति प्रार्थ्य ततो विप्रान् दत्त्वा ताम्बूलद-क्षिणाम् ।। अन्यान्यपि च दानानि देयानि विविधानि च ।। वित्तशाठ्यं न कुर्वीर-न्निच्छन्तः श्रेय मात्मनः ।। विसर्जयेत् सपत्नीकान् हस्ते दत्त्वा च मोदकान् ।। आसीमान्तमनुव्रज्य भुञ्जीत बन्धुभिः सह ।। असंक्रान्तव्रतं नारी या करोति मम प्रिये ।। दारिद्र्यं पुत्रशोकं च वैधव्यं न लभेच्च सा ।। पुरुषोऽप्येवंविधो देवि यदि कुर्यान्मलिम्लुचम् ।। मलिम्लुचं प्राप्य न पूजितो यैः श्रीनाथदेवः परयेह भक्त्या ।। तेषां कथं स्यात्तु सुखं च संपत्पुत्रः सुहृत्स्वजनश्चापि भार्या ।। इति भविष्यपुराणे मलमासव्रतम् ।। अथेतिहाससहितं व्रतान्तरम् ।। तत्रैव ।। युधिष्ठिर उवाच ।। अधिमासस्य माहात्म्यं मार्कण्डेय मुने वद ।। जपयज्ञादिकं पुण्यं वक्तव्यमृषिसत्तम ।। १ ।। किं कर्तव्यं च विप्रेन्द्र गङ्गास्नानं च दुर्लभम् ।। कथयस्व महाप्राज्ञ कृपया द्विजपुङ्गव ।। २ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। मलमासस्तुमासानां मलिनः पापसंभव ।। तस्य पापविशुद्ध्यर्थं मलमासव्रतं कुरु ।। ३ ।। प्रतिपत्तिथिमारभ्य अमावस्याव-धिर्भवेत् ।। उपवासेन नक्तेन ह्येकभक्तेन वा नृप ।। ४ ।। एकस्य नियमं कृत्वा दानं दद्याद्दिनेदिने ।। दानं कुर्यादपूपानां दक्षिणावृतसंयुतम् ।। ५ ।। अन्ते चोद्यापनं कुर्यात्संपूज्य मधुसूदनम्।। उपोष्य च चतुर्दश्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६।। दरिद्रेण व्यतीपातेऽप्यथवा द्वादशीदिने ।। पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां नवम्यां वा नृपोत्तम ।। ।। ७ ।। अष्टम्यां वाथ कर्तव्यं व्रतं शोकविनाशनम् ।। यथालाभोपचारेण मासे चास्मिन्मलिम्लुचे ।। ८ ।। त्रयस्त्रिंशदपूपांश्च प्रदद्याद् घृतसंयुतान् ।। श्रीसूर्यप्रीतये राजन् सर्वपापविमुक्तये ।। ९ ।। पात्रे जनार्दनप्रीत्या दानं तत्सफलं भवेत् ।। मलमासे तु संप्राप्ते कार्तिके श्रावणेऽपि वा ।। १० ।। युधिष्ठिर उवाच ।। मलमासः कथं ज्ञेयः सर्वज्ञ मुनिसत्तम ।। तद्ब्रूहि सकलं विप्र विस्तरेण यथातथम्

।। ११ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। यस्मिन्मासे न संक्रान्ति संक्रान्तिद्वयमेव वा ।। मलमासक्षयौ ज्ञेयौ सर्वधर्मविवर्जितौ ।। १२ ।। एवं संज्ञौ यदामासावेकस्मिन्वत्सरे क्वचित् ।। उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि दक्षिणे ।। १३ ।। मलमासे तु संप्राप्ते संध्योपासनतर्पणे ।। नित्यं हि सफलं श्राद्धदानादिनियमव्रतम् ।। १४ ।। ब्रह्मह-त्यादिपापानि नश्यन्ते तद्व्रतेन हि ।। मार्कण्डेय उवाच।। शृणु धर्मभृतां श्रेष्ठ कौशिको नाम वै द्विजः ।। १५ ।। महातपा ध्यानरतः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।। विष्णुभक्त सदा विप्रो वेदधर्मपरायणः ।। १६ ।। तस्य सूनुर्महाक्रूरो द्विजो मैत्रेय-नामकः ।। कामान्धःस्वजनत्रासी साधुद्वेषकरोऽधमः ।। १७ ।। अधर्मिष्ठः पापरतिः शिवश्रीविष्णुनिन्दकः ।। गोत्रपीडाकरः पापो राहोरिव दिवाकरे ।। १८ ।। दारुणो दारुणाचारः सर्वभूतविहिंसकः ।। मद्यपानरतो मूढो दस्युभिः सह सङ्गतः ।। १९ ।। गते बहुतरे काले स तु राजन्यसत्तम ।। एकदा हयमारुह्य प्रयातो विपिनं प्रति ।। २० ।। व्यवसायिस्वरूपेण सौराष्ट्रं नगरोत्तमम् ।। भृत्यैश्च सहितो विप्र-वधं कृत्वा स्वहस्ततः ।। २१ ।। शस्त्रास्त्रकर्मभिर्घोरैर्धनं च हृतवान्बहु ।। हाहा-कारो महाञ्जातः सौराष्ट्रनगरे ततः ।। २२ ।। सर्वैर्नागरिकैः पापो लोकैर्विनिहतो नृप ।। इत्थं स कृतवान्पापो मूढो विप्रकुलाधमः ।। २३ ।। प्रतिषिद्धं च यत्कर्म कृतं तत्पापसञ्चयात् ।। भस्मीभूतं च तद्राष्ट्रं ब्राह्मणस्य विघानतः ।। २४ ।। मैत्रेयाः स्वजनैः सार्धं 'ब्रह्महत्यादिदोषभाक्'[1] ।। तत्पापं च महच्छ्रुत्वा चागता यमङ्किकराः ।। २५ ।। छिन्धि भिन्धि वचो घोरं ब्रुवाणा दण्डमुद्गरैः अताडयंश्च तं मूढं तालवृक्षशिलातले ।। २६ ।। इत्थं चानेकदण्डांश्च कृत्वा पश्चा-द्यमालयम् ।। तैर्नीतोऽसौ पापरूपी यदा कौशिकनन्दनः ।।२७।। घोरे वै कृमिकुण्डे च मैत्रेयः स निपातितः ।। यमाज्ञया ततः पापं पञ्चद्वयसहस्रकम् ।। २८ ।। भुञ्जन्वै विप्रहत्योत्थं ज्वलितस्तीव्रवह्निना ।। इत्थं भुंक्ते स्म मैत्रेयोऽनेकशः सर्वयातनाः ।। २९ ।। तद्दृष्ट्वा नारदोऽभ्येत्य कौशिकं चाब्रवीदिदम् ।। लाञ्छनं ब्रह्महत्यानां त्वत्कुले मुनिसत्तम ।। ३० ।। तत्पापपरिहारार्थं व्रतं चेदं महोत्तमम् ।। श्रुतिशा-स्त्रेषुसंशोध्य ऋषिभिः कथितं कुरु ।।३१।।तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्राह पुत्रोद्धरणहेतुना। कौशिक उवाच ।।तद्व्रतं ब्रूहि मे प्राज्ञ ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ।। ३२ ।। मद्वंशलाञ्छनं येन शीघ्रं नश्येन्महासते ।। नारद उवाच ।। शृणु कौशिक सर्वज्ञ मलमासव्रतं शुभम् ।।३३।। प्रवक्ष्यामीह ते सर्वलोकानुग्रहकाम्यया ।। ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।। ३४ ।। कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणाद्व्रतयोगतः ।। प्रण-श्यति न सन्देहो यथा कृष्णपदार्चनात् ।। ३५ ।। तेन कौशिक विप्रेन्द्र ब्रह्महत्यां तरिष्यसि ।। मार्कण्येय उवाच ।। तच्छ्रुत्वा कौशिको वाक्यं नारदस्य महात्मनः ।।

---

१ अभूदिति शेषः ।

।। ३६ ।। स तदा मलमासस्य व्रतं चक्रे यथाविधि।। ब्रह्महत्याविनाशाय मलमास-व्रतोद्भवम् ।। ३७ ।। दत्तं पुण्यं ततस्तेन कौशिकेन सुताय तत् ।। [२]दिव्यदेहस्तदा जातो ब्रह्मादीनामगोचरः ।। ३८ ।। मैत्रेयस्य महाराज व्रतस्यास्य प्रसादतः ।। निष्पापश्च सुतो दृष्टः कौशिकेन द्विजन्मना ।। ३९ ।। प्रसादाच्च हरेः साक्षात्ततो धर्मभृतां वर ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कथं चाचरितं ब्रह्मन्मलमासव्रतं त्विदम् ।। ४० ।। तत्सर्वं ब्रूहि मे विप्र सर्वलोकहिताय च ।। मार्कण्डेय उवाच ।। अधिमासे तु सम्प्राप्ते शुभे सूर्याधिदैवते ।। ४१ ।। पुण्येऽह्नि प्रातरुत्थाय कुर्यात्पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।। गृहीत्वा नियमं पश्चाद्वासुदेवं हृदि स्मरन् ।।४२।। प्रतिपत्तिथिमारभ्य मासमेकं जनार्दनम् ।। अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः पायसेन सर्पिषा ।। ४३ ।। विप्रांस्तु भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।।एवं व्रतं मासमेकं कुर्याद्दानैर्विचित्रकैः ।।४४।। अन्ते भूतदिने प्राप्ते उपोष्य सुसमाहितः ।। त्रिंशद्धर्मनिरतांस्ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ।। ४५ ।। सपत्नीकान्सदाचारान् सुरूपांश्च सुविद्यकान् ।। वेदाध्ययन-सम्पन्नान् कुलीनाञ्ज्ञातिसम्भवान् ।। ४६ ।। ततो मध्याह्नवेलायां कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा विचित्रैस्तोरणादिभिः ।। ४७ ।। तस्मिन् सुशोभिते रम्ये मण्डपे तूर्यनादिते ।। सुलक्षणं लिखेत्सम्यक्सर्वतोभद्रमण्डलम् ।। ।। ४८ ।। स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं देवं तत्र प्रपूजयेत् ।। ४९ ।। आदौ स्वस्त्ययनं कृत्वा पूजां तत्र समारभेत् ।। प्राणानायम्य विधिवन्मनःसंकल्पपूर्वकम् ।।५०।। उपचारैःषोडशभिः पूजयेच्च जनार्दनम्।। गन्धतोयेन संस्नाप्य शुभैः पञ्चामृतैस्तथा ।। ५१ ।। त्रयस्त्रिंशच्च नामानि समुच्चार्य यथाविधिः ।। जिष्णुं विष्णुं महाविष्णुं हरिं कृष्णमधोक्षजम् ।। ५२ ।। केशवं माधवं राममच्युतं पुरुषोत्तमम् ।। गोविन्दं वामनं श्रीशं श्रीकण्ठं विश्वसाक्षिणम् ।। ५३ ।। नारायणं मधुरिपुमनिरुद्धं त्रिविक्रमम् ।। वासुदेवं जगद्योनिं शेषतल्पगतं तथा ।। ५४ ।। संकर्षणं च प्रद्युम्नं दैत्यारिं विश्वतोमुखम् ।। जनार्दनं धराधारं श्रीधरं गरुडध्वजम् ।। ५५ ।। हृषीकेशं पद्मनाभं पूजयेद्भक्तितो व्रती आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन पीतेन च यथाविधि ।। ५६ ।। विष्णवे च ततो दद्यादुपवीते च शोभने ।। चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पैर्नानाविधैर्नृप ।। ५७ ।। धूपैर्नानाविधैर्दीपैः पूजयेच्च यथाविधि ।। मिष्टान्नैश्चैव नैवेद्यैर्नागवल्लीदलान्वितैः ।। ५८ ।। घण्टा-मृदङ्गनिर्घोषैः शङ्खध्वनिसमन्वितैः ।। आरार्तिकं प्रकुर्वीत कर्पूरागुरुचन्दनैः ।। ।। ५९ ।। प्रदक्षिणानमस्कारान्मंत्रपुष्पं यथाविधि ।। ताम्रपात्रस्थितैस्तोयैश्चन्दनाक्षतपुष्पकैः ।। ६० ।। अर्घ्यं दद्यात्सपत्नीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।। नारि-

२ दिव्यो देहः इति च पाठः ।

ङ्गैर्नारिकेरैश्च फलैर्नानाविधैः शुभैः ।। ६१ ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं जानुनी स्थाप्य भूतले ।। आरोप्य भाले हस्तौ च श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। ६२ ।। देवदेव महादेव प्रलयोत्पत्तिकारक ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपां कृत्वा ममोपरि ।। ६३ ।। स्वयंभुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे ।। नमो ऽस्तु ते प्रियानन्त ब्राह्मणानां दयां कुरु ।। ६४ ।। एवमेव जगन्नाथं गन्धपुष्पोपहारकैः ।। पूजयेत्परया भक्त्या चतुर्षु प्रहरेषु च ।। ६५ ।। तथा जागरणं कुर्यात्कीर्तनश्रवणादिभिः ।। ततः प्रभातसमये अमावास्यादिने नृप ।। ६६ ।। विष्णुं च पूजयेद्भक्त्या पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।। समित्तिलाज्यचरुणा पायसेन हुनेन्नृप ।। ६७ ।। अतोदेवेति षट्केन अयुतं वा सहस्रकम् ।। पूर्णाहुतिं ततः कृत्वा होमशेषं समापयेत् ।। ६८ ।। गुरोः पूजां ततः कुर्याद्वसुभिः सप्तधान्यकैः ।। प्रदद्याद्धेनुसहितां प्रतिमां च तथा नृप ।। ६९ ।। त्रयस्त्रिंशदपूपांश्च कांस्यपात्रसमन्वितान् ।। प्रदद्याद्गुरवे राजन्घृतशर्करया सह ।। ७०।। अधिमासे तु सम्प्राप्ते शुभे सूर्याधिदैवते ।। त्रयस्त्रिंशदपूपांश्च दानार्हांश्च दिनेदिने ।। ७१ ।। सुवर्णगुडसंयुक्तान् कांस्यपात्रे निधाय च ।। विष्णुप्रीत्यै प्रदद्याच्च पृथ्वीदानफलं लभेत् ।। ७२ ।। नरकोत्तारणायैव घृतशर्करया युताः ।। त्रयस्त्रिंशदपूपाश्च सुवर्णेनापि संयुताः ।।७३।। सदक्षिणा मया तुभ्यं कांस्यपात्राणि दापिताः ।। दाता दिवाकरो देवो गृहीता च दिवाकरः ।। ७४ ।। दानेनानेन विप्रेन्द्र सूर्यो मे प्रीयतामिति ।। प्रीयन्तां देवदेवेशाब्रह्मशम्भुजनार्दनाः ।। ७५ ।। तेषां प्रसादात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ।। गृहाण परमान्नेन कांस्यपात्रं प्रपूरितम् ।। ७६ ।। सघृतं दीपसंयुक्तं प्रीतो भव दिवाकर ।। त्वया दत्तमिदं पात्रं परमान्नेन पूरितम् ।। ७७ ।। सघृतं परिगृह्णामि प्रीयतां मे दिवाकरः ।। ऋत्विग्भ्यो वाससी दद्यात्त्रयस्त्रिंशच्च कुम्भकान् ।। ७८ ।। कांस्यपात्रसमायुक्तानपूपान्घृतसंयुतान् ।। वटकैः सह राजेन्द्र यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ।। ७९ ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छर्कराघृतपायसैः ।। नत्वा तु वाचयेत्तांस्तु सफलं चास्तु मे व्रतम् ।। ८० ।। मलमासे तु सम्प्राप्ते त्रयस्त्रिंशदपूपकाः ।। द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा क्षये पाते शुभेऽह्नि वा ।। ८१ ।। निष्किञ्चनेन दातव्या घृतशर्करया सह ।। मासानां मलमासोऽयं मलिनः पापसम्भवः ।। ८२ ।। तस्य पापस्य शान्त्यर्थमपूपान्नं ददाति यः ।। यावन्ति चैव च्छिद्राणि तेष्वपूपेषु पाण्डव ।। ८३ ।। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।। मलमासव्रतं नारी या करोतीह भारत ।। ८४ ।। दारिद्र्यं पुत्रशोकं तु न वैधव्यं लभेत सा ।। य इदं धर्मसर्वस्वं कुर्याल्लोके पुरा कृतम् ।। ८५ ।। ब्रह्महत्यादिपापघ्नं प्राप्नुयाद्वैष्णवं पदम् ।। कदाचिन्न कृतं पापैर्मलमासव्रतं नरैः ।। तेषां पापिष्ठता नित्यं ब्रह्महत्या पदेपदे ।। ८६ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। एतत्ते कथितं पार्थ गुह्याद्-

गुह्यतरं परम् ।। वाजपेयायुतफलं श्रोता वक्ता लभेद्ध्रुवम् ।। ८७ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे मलसासव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

मलमासव्रतानि

मलमासके व्रत लिखे जाते हैं– लक्ष्मीजी बोली कि, हे देव-देव ! हे जगन्नाथ ! हे भुक्तिमुक्तिके देनेवाले ! कृपा करके कहिये । कृष्णद्वैपायन (व्यास) आदि मुनि कहते हैं कि, बिना दिया नहीं मिलता सर्वत्र दिया हुआ ही मिलता है । जैसे गृहस्थकी वन्ध्या पतिके वंशका ही नाश करती है उसी तरह दानहीनका जन्म व्यर्थही है, तो भी शास्त्रके जाननेवाले जोतिषी कहा करते हैं कि, क्षौर मुण्डन मौजी (जनेऊ) विवाह व्रत और काम्य उपवास ये सब मलमासमें गृहस्थको छोड़ देने चाहिये । तब अधिक मासमें किस उत्तम व्रतको करना चाहिये ? किसके उद्देशसे, दे जो दूसरे जन्ममें काम आवे ? श्रीकृष्ण बोले कि, हे देवि ! सुन, हे महाभागे ! मैं सबके कल्याणके लिये कहता हूं । जो ब्राह्मणोंको देता है वह आपही दाता तथा आपही भोक्ता है । इस लोक वा परलोकमें दूसरा कोई दाता भोक्ता नहीं है, मासके असंक्रान्त होनेपर मेरा उद्देश लेकर व्रत करे । मैं पुरुषोत्तम नामक ही अधिमासका देव ही हूं, जो इस मासमें मेरे उद्देशसे स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, देवार्चन तथा और शुभ कर्म जो मनुष्य करते हैं, वह सब अक्षय होता है । हे देवि ! जिन्होंने प्रमादसे मलमासको खाली बिता दिया, उनको मनुष्यलोकमें दारिद्रय पुत्रशोक तथा पापकी कीचसे निन्दित जीवन होता है । इसमें सन्देह नहीं है । देवि ! जो इसमें ब्राह्मणोंका पूजन करते हैं तू उन्हें सुख देती है । जब मनुष्योंको मलमास मिले तो अपना हित चाहनेवालोंको इसमें उत्सव मनाना चाहिये । हे सुरेश्वरि ! कृष्णपक्षकी चौदसनवमी वा अष्टमीको यह शोकनाशक व्रत करना चाहिये । इस मलमासमें जैसे उपचार मिल जायँ, उनसे पुण्य दिनमें प्रातःकाल उठकर प्रातःकालकी क्रिया करे पीछे भगवान्‌का हृदयमें स्मरण करके उपवास नक्त या एक भक्तका नियम ग्रहण करे, एकका निश्चय करके पीछे ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे । वे सपत्नीक हों, सदाचारी, सुन्दर, देवोंका वेष रखनेवाले श्रुत और अध्ययनसे संपन्न, कुलीन और ज्ञातिमें प्रतिष्ठित हों । पीछे मध्याह्नके समय लक्ष्मीसहित सनातन भगवानको लाक्षणिक कुंभपर स्थापित करके परम भक्तिपूर्वक सगोत्रिय ब्राह्मणोंके साथ उत्तम मन्त्रोंसे मय भीष्म पितां महको पूजे । सुगन्धित चन्दन अनेक तरहके पुष्प, मिष्टान्न नैवेद्य, धूप, दीपआदिक इनसे पूजे । अच्छे वस्त्रोंको उढावे । विशेषकरके वे पीतवस्त्र हों । घंटा मृदंग और शंखकी ध्वनिके साथ कपूर अगरु और चन्दनसे आरती करे । यदि ये न हों तो रुईकी बत्तीसे ही आरती करले इससे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है, चन्दन अक्षत और पुष्पोंके साथ ताँबेके पात्रमें पानी रखकर भक्तिसे अर्घ्य दे, अर्घ्य देतीबार ब्रह्माके साथ मेरा स्मरण करके इस मन्त्रको बोले कि, हे देवदेव । हे महादेव ! हे प्रलय और उत्पत्ति करनेवाले ! हे देव ! मेरे पर कृपाकरके इस अर्घ्यको ग्रहण करिये, यह अर्घ्यदानका मन्त्र है । तुझ स्वयंभूके लिए नमस्कार तथा तुझ अमिततेज ब्रह्माके लिए नमस्कार । हे अनन्त ! लक्ष्मीजीके साथ आप मुझ पर कृपा करें । इस प्रकार प्रार्थना करके गोविन्दको पूजे । पीछे लक्ष्मीनारायणका स्मरण करता हुआ पवित्र सपत्नीक ब्राह्मणोंका पूजन करे, उन्हें भक्तिके अनुसार वस्त्र, भूषण और कुंकुम देकर घी खीरका भोजन करावे, तथा द्राक्षा, कपित्थ, पनस, कदलीफल, नारिकेल, नारिंग, कूष्माण्ड, अनार, घी की बनी गेहूंकी चीज, सुहाली, बड़े, शर्करा, घृत, पूर, फाणित, खण्ड, मण्डक, बेंगन, ककडीका साग, जड़ समेत शृंगबेर एवं और भी अनेक तरहके शाक तथा सुन्दर पाक एवं अलग-अलग भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य, पानीयल ये वस्तु भी ब्राह्मण भोजनमें होनी चाहिये । उसीमें मोका देखकर परोसता हुआ मधुस्वरसे कहे कि, यह स्वादिष्ट भोजन मैंने आपके लिये तयार किया है मैंने इसी लियेही बनाया है जो अच्छा लगे सो मांग लीजिए । आज मैं धन्य हो गया । आपने मुझपर बड़ी कृपाकी । मेरा घर पवित्र कर दिया । इस प्रकार प्रार्थना करके उन्हें पान और दक्षिणा दे और भी अनेक तरहके दान दे । यदि अपना कल्याण चाहे तो धनका लोभ न करे, हाथमें लड्डू देकर सपत्नीक ब्राह्मणोंका विसर्जन करे । अपनी सीमातक उन्हें विदा करके भाइयोंके साथ भोजन करे । संक्रांति रहित मलमास का व्रत जो स्त्री करती है, हे प्रिये । उसे दारिद्रय और पुत्रशोक और वैधव्य नहीं होता । हे देवि ! यदि पुरुष

भी इस तरह मलमासका व्रत करता है तो उसे भी दारिद्रय और पुत्र शोकादि नहीं देखने पड़ते । मलमासमें जिन्होंने परमभक्तिके साथ श्रीनाथ देवका पूजन नहीं किया, उन्हें सुख, संपत्ति, पुत्र, सुहृत्, स्वजन और स्त्री कैसे हों ? यह भविष्य पुराणका कहा हुआ मलमासका व्रत पूरा हुआ ।। वहां ही इतिहाससहित भी मलमासका व्रत लिखा है उसे भी कहते हैं । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे मुने मार्कण्डेय ! अधिमासका माहात्म्य कहिये जो उसमें जप यज्ञादिक पुण्य होते हों । हे ऋषिसत्तम ! उन्हें भी कहिये ।।१।। हे विप्रेन्द्र ! क्या करना चाहिये ? क्या दुर्लभ गङ्गास्नान करे ? हे महाप्राज्ञ ! कृपाकरके बतादीजिए ।। २ ।। मार्कण्डेय बोले कि, मलमास तो मासोंमें मलिन है, पापसे उत्पन्न है, उसके पापकी शुद्धिके लिए मलमासका व्रत करिये ।।३।। वह प्रतिपदासे लेकर अमावस तक होता है उपवास नक्त या भक्तका ।।४।। नियम करके प्रतिदिन दान दे, दक्षिणा और घीके साथ अपूपोंका दान करे ।।५।। अन्तमें उद्यापन करे । भगवान् को पूजे, चतुर्दशीके दिन उपवास करे, सब पापोंसे छूट जाता है ।।६।। यदि दरिद्र हो तो व्यतीपात, द्वादशी, पौर्णमासी, चतुर्दशी, नवमी वा अष्टमीके दिन शोकविनाशक इस व्रतको करना चाहिये, जो उपचार मिल जाय उनसे ही करले ।।७।।८।। श्री सूर्य्यकी प्रसन्नताके लिए घीके तेतीस अपूप दे, वह सब पापोंसे छूट जाता है । ।।९।। जनार्दनकी प्रसन्नताके लिए कार्तिक या श्रावणके मलमासके आजानेपर ।।१०।। पात्रमें रखकर दे तो वह दान सफल हो जाता है । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे सर्वज्ञ मुनिसत्तम ! मलमास कैसे जाना जाय हे विप्र ! उस सारेको विस्तारके साथ यथार्थरूपसे कहिये ।।११।। मार्कण्डेय बोले कि, जिस मासमें संक्रांति न हो अथवा दो संक्रांति हों उन्हें मलमास और क्षयमास समझिये नि० सि० कारने सिद्धान्त शिरोमणिका वाक्य रखा है कि, ' प्रायशोऽयं कुबेरेन्दु-वर्षैः क्वचिद् गोकुभिश्च ' इससे अधिमास जलदी जलदी किन्तु क्षयमास १४१ वर्षोंमें आता है वे सब धर्मोंसे रहित हैं ।।१२।। यदि मल मास और क्षयमास एकही संवत्सरमें आजायें तो उत्तर में देव कार्य तथा दक्षिणनें पितृकार्य्य करे।।१३।। मलमासमें सन्ध्योपासन तर्पण श्राद्धदान नियमव्रत ये सब सफल होते हैं।।१४।। इसके व्रतसे ब्रह्महत्यादिक सब पाप नष्ट हो जाते हैं । मार्कण्डेय बोले कि, हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! एक कौशिक नामक ब्राह्मण था । वह तप और स्वाध्यायमें रत, सत्यवादी जितेन्द्रिय, विष्णुभक्त और वैदिकधर्ममें लगा रहनेवाला था ।।१५।।१६।। उसका मैत्रेय नामक पुत्र बड़ाही क्रूर था । वह कामान्ध, अपने जनोंको दुख देनेवाला, साधुओंसे द्वेष करनेवाला अधम ।।१७।। अधर्ममें लगा रहनेवाला, पापका प्रेमी, शिव श्री और विष्णुका निंदक था गोत्रको पीडित करनेवाला तो ऐसा था जैसे कि, सूर्यको पापी राहु हो ।। १८ ।। कठोर, कठोर ही करनेवाला, सब प्राणियोंका हिंसक, शराबी, मूर्ख एवं चोरोंका साथ करनेवाला था । इन कामोंको करते हुए उसे बहुतसे दिन बीत गये । एक दिन घोड़ेपर चढ़कर वनको चल दिया । व्यवसायीके रूपमें नौकरोंके साथ सौराष्ट्रनगर पहुंचा । वहां अपने हाथसे घोरशस्त्र अस्त्रोंसे ब्राह्मणका वध किया । इससे उसके हाथ बहुत साधन लगा, पर सौराष्ट्रनगरमें महा हाहाकार मच गया ।।१९-२२।। सब नगरके निवासियोंने मिलकर उसे मार दिया ब्राह्मण कुलके अधम उसने इस प्रकार पाप किए थे ।।२३।। पर तो भी जिस कर्मका निषेध है वह भी कर्म नगरवासियोंने वहां किया था । इस पाप संचयरूप ब्राह्मणके विघातसे वह राष्ट्र भस्म हो गया।।२४।।मैत्रेय भी अपने जनोंके साथ ब्रह्महत्याका दोषी हुआ, उसके बड़े भारी पापको सुनकर यमके नौकर चले आये ।।२५।। छेद दो, भेद दो, ये घोर वचन बोलते हुए उस मूर्खको ताल वृक्ष और शिला तलपर पटककर ।।२६।। मुद्गर मारने लगे । लगे । इस प्रकार अनेकों दण्ड उस पापरूपी कौशिक कुमारको देकर यमके स्थानमें ले आये ।।२७।। वहां उसे यमकी आज्ञासे बावन हजार वर्षके लिये घोर कृमिकुण्डमें पटक दिया गया ।।२८।। ब्रह्महत्याके पापोंको भोगता हुआ वह तीव्र आगसे पकाया गया । मैत्रेय इस प्रकारकी अनेकों यातनाओंको भोग रहा था ।।२९।। इ से नारद देखकर कौशिकसे बोले कि हे मुनिसत्तम ! आपके कुलमें ब्रह्महत्याका लाञ्छन है ।।३०।। उसके परिहारके लिये इस महोत्तम व्रतको जो कि, ऋषियोंनेश्रुति और शास्त्रोंसे संशुद्ध करके कहा है, आप करें।।३१।। यह सुन पुत्रकेउद्धारकी इच्छासे कौशिक बोला कि, हे प्राज्ञ ! उस ब्रह्म हत्याके नाशक व्रतको मुझे कहिये ।।३२।। हे महामते ! जिसके कियेसे मेरे वंशका लांछन शीघ्र ही मिट जाय ? नारदजी बोले कि, हे कौशिक ! आप सब कुछ जानते हैं, वह मलमासका व्रत है ।।३३।। मैं संसारके कल्याणकी कामनासे उस व्रतको आपके

लिये कहता हूं । ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, गुरुपत्नीके साथ गमन ॥३४॥ तथा और भी कोटि जन्मके इकट्ठे किये पापोंको व्रतके योगसे उसी समय नष्ट कर डालता है । उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । इसमें सन्देह नहीं है । ऐसेही कृष्णकी चरण सेवासे भी सब पाप मिट जाते हैं ॥३५॥ हे विप्रेन्द्र कौशिक ! उसीसे आप ब्रह्महत्याको तर जायेंगे । मार्कण्डेयजी बोले कि, कौशिक महत्माने नारजीके वाक्योंको सुनकर ॥ ३६ ॥ विधिके साथ मलमासका व्रत किया, एवं उस व्रतका पुण्य ब्रह्म हत्याके नाशके लिये पुत्रको देदिया जिससे वह दिव्य देह वाला हो गया । जिसे कि, ब्रह्मादिक भी नहीं देख सकते थे ॥३७॥३८॥ इस व्रतराज के प्रभावसे कौशिकने अपने पुत्र मैत्रेयको निष्पाप देखा ॥३९॥ हे युधिष्ठिर ! साक्षात् भगवान्‌की कृपासे वह ऐसा हुआ था । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! उसने मलमासका व्रत कैसे किया ॥४०॥ संसारके कल्याणके लिये यह मुझे बता दीजिये, मार्कण्डेय बोले कि, सूर्य्य अधिदेववाले शुभ अधिमासके आनेपर ॥४१॥ पवित्र दिनमें प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्णमें होनेवाली क्रियाओंको करे । पीछे वासुदेवका स्मरण करके नियम ग्रहण करे॥४२॥ प्रतिपदा तिथिसे लेकर एकमासतक गंध पुष्प आदिकोंसे भगवान्‌का पूजन करे खीर और घीसे ॥४३॥ ब्राह्मण भोजन करावे । दक्षिणासे सन्तुष्ट करे । एक मासतक विचित्र दानोंके साथ व्रत करे । अन्तकी चौदसके दिन उपवास करके एकाग्र चित्त हो तेतीस धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥४४॥४५॥ वे सपत्नीक, सदाचारी, सुरूप, सुविज्ञ, वेदवेत्ता, कुलीन और ज्ञातिमें प्रतिष्ठित होने चाहिये ॥४६॥ मध्याह्नके समय मध्याह्नकी क्रियाएं करके विचित्र तोरणोंसे फूलोंका मंडप बनावे॥४७॥ उस सुशोभित रम्य मण्डपपर बाजोंके शब्दोंके साथ सुन्दर सर्वतोभद्रमंडल लिखना चाहिये ॥४८॥ उसपर वैध कलश स्थापित करे, उसमें पंचरत्न डाले, उसपर पात्र रखकर उसीपर देवका पूजन करे ॥४९॥ पहिले स्वस्त्ययनकरके पूजाका प्रारंभ करे, मनके संकल्पोंके साथ प्राणोंको भी रोके ॥५०॥ सोलहों उपचारोंसे जनार्दनका पूजन करे, गन्धके पानी और पंचामृतसे स्नान करावे ॥५१॥ पूजा करती बार भगवान्‌के तेतीस नामोंका उच्चारण करे। जिष्णु विष्णु, महाविष्णु, हरि, कृष्ण, अधोक्षज, केशव, माधव, राम, अच्युत, पुरुषोत्तम, गोविन्द, वामन, श्रीश, श्रीकन्ठ, विश्वसाक्षी ॥५२॥५३॥ नारायण, मधुरिपु, अनिरुद्ध, त्रिविक्रम, वासुदेव, जगत्‌के कारण, शेषशायी, संकर्षण, प्रद्युम्न, दैत्यारि, विश्वतोमुख, जनार्दन, धराधार, श्रीधर, गरुडध्वज, हृषिकेश, पद्मनाभ ये तेतीस नाम हैं । इन्हें बोलता हुआ ही भक्तिपूर्वक दो पीत वस्त्र उढादे ॥५४–५६॥ विष्णु भगवान्‌के लिये दो सुन्दर उपवीत दे, सुगन्धित चन्दन एवं अनेक तरहके फूल ॥५७॥ अनेक तरहके धूप दीप हों, इनसे विधिपूर्वक पूजे, पान समेत मिष्टान्न नैवेद्यसे पूजे।॥५८॥शंख घंटा और मृदङ्गके साथ कपूर अगुरु और चन्दनसे आरती करे ॥५९॥ विधिपूर्वक प्रदक्षिणा नमस्कार और मंत्र पुष्प होने चाहिये, तांबेके पात्रमें पानी रख उसमें चन्दन, अक्षत और पुष्प मिला ॥६०॥ प्रसन्न चित्त हो मय पत्नीके अर्घ्य दे, उसमें नारिंग, नारिकेल तथा और सब तरहके शुभ फल तथा पंचरत्न होने चाहिये । जानुओंको भूमिपर टेक तथा दोनों जुड़े हाथोंको माथेपर रखकर कहे कि, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे प्रलय और उत्पत्तिके करनेवाले ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करिये एवं मुझपर कृपा करिये ॥६१–६३॥ अमित तेजवाले तुझ स्वयंभू ब्रह्माके लिये नमस्कार है । हे ब्राह्मणोंके प्यारे अनन्त ! तेरे लिये नमस्कार है, तू मुझपर दयाकर ॥६४॥ इसी तरह गन्ध पुष्प और उपहारोंसे परमभक्तिके साथ चारों पहरोंमें पूजे ॥६५॥ कीर्तन श्रवण आदिसे रातमें जागरण करे । इसके बाद प्रभातकालमें अमावास्याके दिन भक्तिके साथ विष्णु भगवान्‌का पूजन करे, पीछे होम करे । समित्, तिल, आज्य, चरु और पायसका हवन करे ॥६६।६७॥ वह "अतो देवा" इन छः मन्त्रोंसे अयुत वा हजार होना चाहिये । इसके बाद पूर्णाहुति देकर होमशेषकी समाप्ति करे ॥६८॥ पीछे गुरु पूजन करे, वसुओं '(आठ)' वा सप्त धान्योंसे युक्त प्रतिमा सहित गऊ दे ॥६९॥ तेतीस पूआ कांसेके पात्रमें घी और सक्कर रखकर गुरुको दे ॥७०॥ सूर्य्य देवतावाला अधिमास आजानेपर दानके योग्य तेतीस अपूपोंको ॥७१॥ सुवर्ण और गुड़के साथ कांसेके पात्रमें रखकर विष्णुभगवान्‌की प्रीतिके लिये दे । इसका पृथ्वीके दानके बराबर फल होता है ॥७२॥ देतीवार कहे कि, नरकसेपार करनेके लिये घी शक्कर और सोनेके साथ तेतीस अपूपमय दक्षिणाके कांसेके पात्रमें रखकर आपको देदिये हैं । दाता और प्रतिगृहीता दिवाकरही है ॥७३॥७४॥ हे विप्रेन्द्र ! इस दानसे मुझपर सूर्य्य

देव प्रसन्न हो जायें तथा देवदेवेश जो ब्रह्मा शिव और विष्णुभगवान् हैं वे भी प्रसन्न हो जायें ।।७५।। उनकी कृपासे मेरे सब मनोरथ सफल हो जायें, परमान्नसे भरेहुए कांसेके पात्रको ग्रहणकर ।।७६।। घृतसहित दीप संयुक्त है । हे दिवाकर ! प्रसन्न हो । आपने यह परमान्नसे भराहुआ पात्र दिया है ।।७७।। सघृत्त ग्रहण करता हूं । हे दिवाकर ! मुझपर प्रसन्न होजा, यह दान लेनेका मंत्र है । ऋत्विजोंके लिये दो दो वस्त्र दे, तथा तेंतीस कुंभ ।।७८।। कांस्यपात्र, अपूप, घृत और बड़ों सहित दे तथा शक्तिके अनुसार दक्षिणाभी दे ।।७९।। घृत शर्करा और पायससे ब्राह्मण भोजन करावे । उन्हें नमस्कार करके अपने व्रतकी सफलता कहलवावे ।।८०।। चाहे उसके पास कुछ भी न हो तो भी मलमासमें द्वादशी, पौर्णमासी, क्षय व्यतीपात तथा और दूसरे भी पवित्र दिन तेंतीस अपूप घी सक्करके साथ देने चाहिये क्योंकि, यह मासोंके मलका मास है उसी पापरूप मलसे यह बना है ।।८१।।८२।। उस पापकी शान्तिकी लिये जो तेंतीस अपूप देता है, हे पाण्डव ! उन अपूपोंमें जितने छिद्र होते हैं ।।८३।। उतनें हजार वर्ष स्वर्ग लोकमें रहता है, हे भारत ! जो स्त्री मलमासका व्रत करती है ।।८४।। वह दारिद्रय पुत्रशोक और वैधव्यको कभी नहीं पाती, जो कोई इस प्राचीन धर्म सर्वस्व उत्तम व्रतको करता है वह ब्रह्महत्या आदिके नष्ट करनेवाले वैष्णवपदको पाता है । जिन पापी मनुष्योंने मलमासका व्रत नहीं किया वे सदाही पापी तथा उन्हें पद-पद पर ब्रह्महत्या है ।।८५।।८६।। मार्कण्डेय बोले कि, हे पार्थ ! यह परम गुह्य व्रत मैंने आपको सुना दिया है, इसके श्रोता वक्ता दोनोंको अयुत वाजपेयका फल मिलता है ।।८७।। यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ उद्यापनसहित मलमासका व्रत पूरा हुआ ।।

अथ स्वस्तिकव्रतम्

तच्च आषाढपूर्णिमामारभ्य कार्तिकपूर्णिमावधि ।। अथ कथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।। सर्वासां च तिथीनां च कथितानि व्रतानि भोः ।। तथा च स्वस्तिकं नाम यत्त्वया कथितं प्रभो ।। १ ।। नैव तस्य विधानं तु कथितं च सुरेश्वर ।। को विधिर्देवता का च किं दानं पूजनं कथम् ।। २ ।। केनेदं हि पुरा चीर्णं किं फलं स्वस्तिकव्रते ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। साधु पृष्टं महाभाग लोकानां हितकाम्यया ।। ३ ।। येन चीर्णेन राजेन्द्र भूमिभुक् जायते नरः ।। स्वस्तिकस्य विधिं राजञ्छृणु ह्येकाग्रमानसः ।। ४ ।। स्वस्तिकानि लिखित्वादौ रङ्गवल्ल्यादिभिः शुभैः ।। रमया सहितं देवं पूजयेत्प्रत्यहं त्वहम् ।। ५ ।। इति संकल्प्य मेधावी स्वस्तिकं कर्म कारयेत् ।। अष्टोत्तरं× स्वस्तिकनि प्रत्यहं विष्णवे पुनः ।।६।। रङ्गवल्ल्यालंकृतानि यो हि भक्त्या समर्पयेत् ।। शतन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति तत्क्षणात् ।। ७ ।। गोमूत्रं गोमयं राजन् स्थण्डिले संविलिप्य च ।। [2]नीलपीतसितै रक्तैरङ्गैः स्वस्तिकधारणम् ।। ८ ।। यो हि कुर्याद्विशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ।। पञ्चवर्णैस्तु नीलाद्यैर्यदि स्वस्तिकमण्डलम् ।।९।। नारी वा पुरुषो वापि प्रसुप्ते च जनार्दने ।। विष्णवालये शिवद्वारे गवां गोष्ठे शुचिस्थले ।। विष्णुप्रीतिकरं कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ।। १० ।। स्वस्तिकैः शोभयेद्यस्तु विष्णोःस्थानं सुमङ्गलम् ।। अशुभं तत्कुले नैव साद्वं विष्णुप्रसादतः ।। ११ ।। सहस्रं स्वस्तिकानां तु येन भक्त्या समर्पितम् ।। पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदमानः पुनः पुनः ।। १२ ।। चिरवासी भवेत्स्वर्गे धनवान्

× शतं सहस्रं वेत्यर्थः । २ तत्रेति शेषः ।

भूमिपो भवेत् ।। तत्कुलेऽपि दरिद्रत्वं नैव जायेत कर्हिचित् ।। १३ ।।प्रयुतं स्वस्तिकानां तु विष्णवे ह्यर्पयेद्यदि ।। पुत्रपौत्रादिकं तस्य स्वस्तिमज्जायते ध्रुवम् ।।१४।। न रोगार्तिर्भवत्येव गोपालस्य प्रसादतः ।। नारी चेद्विधवा नैव पुरुषो विधुरो न हि ।। १५ ।। जायापत्यसमायुक्तो नात्र कार्या विचारणा ।। नारयोऽभिभवन्त्येन स्वस्तिकैः पूजकं नरम् ।। १६ ।। अथ स्वस्तिकलक्षं तुयदि कुर्याद्विचक्षणः ।। तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ।। १७ ।। आषाढे मासि राजेन्द्र प्रथमाचरणं भवेत् ।। आश्विने तु समाप्तिर्वै कर्तव्या स्वस्तिकारिणी ।। १८ ।। धनिना तु व्रतं विप्र गोदानादिपुरःसरम् ।। कर्तव्यं फलसिद्ध्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ।। ।। १९ ।। कृतं यदि दरिद्रेण शुभं स्वस्तिकलक्षकम् ।। कम्बलाद्यासनं दद्याद्व्रतसाद्गुण्यसिद्धये ।। २० ।। विभवे सति राजेन्द्र हेम्ना रौप्येण वा कृतम् ।। स्वस्तिकं त्वासनं दद्याद्व्रतसंपूर्तिसिद्धये ।। २१ ।। आदिताग्नेस्तु होमः स्यात्तदभावे द्विजार्चनम् ।। द्विजसन्तर्पणादेतत्सम्पूर्णं जायते नृप ।। २२ ।। शुभकारीणि राजेन्द्र स्वस्तिकानि विधाय× च ।। ब्राह्मणेभ्यः प्रदेयानि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।।२३।। यथा वर्तिविधानेन गदितं पुण्यमुत्तमम् ।। तथैव स्वस्तिपुण्यानीत्याहुर्वै वेदवादिनः ।।२४।। अथ होमं प्रवक्ष्यामि लक्षस्वस्तिकसिद्धये ।।पायसेन घृताक्तेन स्वसूत्रोक्तविधानतः ।। २५ ।। दशांशेन तु होमः स्यात्तद्दशांशेन तर्पणम् ।। स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमीति च मन्त्रतः ।। २६ ।। आहिताग्नेर्वैदिकस्तु मन्त्रः स्याद्धोमसिद्धये ।। मन्त्रो ह्यनाहिताग्नेर्वै प्रोक्तस्तन्त्रविचक्षणैः ।। २७ ।। तं मंत्रं कथयिष्यामि फलानन्त्यस्य सिद्धये ।। स्वस्तिनाम परं दैवं स्वस्तिकारणकारणम् ।। २८ ।। पायसं घृतसंयुक्तमग्नये स्वाहया युत ।। दत्तं तुभ्यं महादेव तृप्तो भव महामते ।। २९ ।। स्वस्ति कुरु महादेव स्वाहया संयुतः शिखिन् ।। एवं दशांशतो होमं कुर्याद्विष्णोश्च तुष्टये ।। ३० ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्तद्दशांशेन वै बुधः ।। अथासनानि देयानि पञ्चरङ्गयुतानि च ।। ३१ ।। ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यः फलानन्त्यस्य सिद्धये ।। और्णानि चापि देयानि दर्भजान्यथवा पुनः ।। ३२ ।। तत्पूजाविधिसिद्ध्यर्थमाचार्यं वरयेत्सुधीः ।। इदं विष्णुर्विचक्रमे इति मन्त्रेण ²तमेव पूजयेद्बुधः ।। ३३ ।। पञ्चामृतैः स्नापयित्वा पूजयेद्भक्तिसंयुतः ।। अपूपैर्भक्ष्यभोज्यैश्च नैवेद्यं परिकल्पयेत् ।। ३४ ।। ताम्बूलैर्धूपदीपैश्च कुसुमैश्च ऋतूद्भवैः ।। शतपत्रैश्च कह्लारैरर्चयेत्परमेश्वरम् ।। ३५ ।। नमस्कारैस्तथा दिव्यैः स्तोत्रपाठैर्विशेषतः ।। प्रदक्षिणां ततः कृत्वा भागवतः संयतेन्द्रियः ।। ३६ ।। ततो गोमिथुनं दद्याद्व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। तदभावे शावकानां द्रोणमात्रं प्रदीयते ।। ३७ ।। अथवा ह्याढकीनां तु आढकं परिकीर्ति-

× स्वर्णरजतादिनेति शेषः । २ विष्णुमेवेत्यर्थः ।

तम् ।। पूरिकामोदकाद्यैश्च भोजयेद्द्विजसत्तमान् ।। ३८ ।। आचार्याय तु तां शुद्धां प्रतिमां दापयेत्सुधीः ।। हस्तमात्राकर्णमात्राकटिसूत्रादिभिः पुनः ।। ३९ ।। पीतांबरैश्च संपूज्य कोटियज्ञफलं लभेत् ।। यथाशक्त्या तु कर्तव्यं व्रतमेतच्छुभावहम् ।। ४० ।। वित्तशाठ्यमकृत्वा तु कोटियज्ञफलप्रदम् ।। तस्मादादौ प्रकर्तव्यं धर्मकामार्थसिद्धये ।। ४१ ।। राजानो मित्रतां यान्ति शत्रवो यान्ति दासताम् ।। य एवं कुरुते भक्त्या विष्णुभक्तिपुरस्सरः ।। ४२ ।। तस्यानन्तफलं राजन् गदितं वेदपारगैः ।। स्वस्तिकव्रतमेतत्तु गङ्गास्नानफलप्रदम् ।। ४३ ।। रोगा नाभिभवन्त्येव स्वस्तिकव्रतचारिणम् ।। स्त्रीभिरेव च कर्तव्यं सर्वसौभाग्यसिद्धये ।। ४४ ।। शाण्डिल्या कृतमेवं तु व्रतं विष्णुप्रतुष्टये ।। सगरेण दिलीपेन दमयन्त्या तथैव च ।। ४५ ।। आदौ मासि प्रकर्तव्यमन्ते चापि तथैव च ।। मासत्रये समाप्तिः स्याच्चतुर्भिर्वा तथैव च ।। ४६ ।। एकस्मिन्नपि मासे तु समाप्तिः कोटिपुण्यदा ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या तस्यापि फलदं भवेत् ।। ४७ ।। नेदं कस्यापि व्याख्येयं यदीच्छेद्विपुलं धनम् ।। भक्तिश्रद्धाविहीनाय यज्ञघातकराय च ।। ४८ ।। विकल्पहतचित्ताय नास्ति काय शठाय च ।। न देयं व्रतमेतत्तु स्वस्तिकारणमुत्तमम् ।। ४९ ।। देयं पुत्राय शिष्याय फलानन्त्यस्य सिद्धये ।। एवं ज्ञात्वा तु तत्सर्वं चकारैव युधिष्ठिरः ।। ५० ।। इति श्रीभविष्यपुराणे स्वस्तिकव्रतं संपूर्णम् ।।

स्वस्तिकव्रत—आषाढ पौर्णमासीसे लेकर कार्तिककी पौर्णमासीतक होता है ।। कथा-युधिष्ठिरजी बोले कि, आपने सब तिथियोंके व्रत कहे तथा स्वस्तिकव्रत भी आपने कहा ।।१।। पर हे सुरेश्वर । आपने उसका विधान नहीं बताया उसकी कौनसी विधि कौन देवता तथा क्या दान और कैसे पूजन होता है ? ।।२।। इसे पहिले किसने किया ? तथा इसके करनेपर उन्हें क्या फल मिला ? श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाभाग ! आपने संसारके कल्याणके लिये ठीक पुछा ।।३।। हे राजेन्द्र ! इसके कियेसे मनुष्य भूमिका भोगनेवाला हो जाता है, हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर स्वस्तिकव्रतकी विधि सुन ।।४।। मैं रंगवल्ली आदिसे प्रतिदिन स्वस्तिक लिखकर रमाके साथ देवको पूजूंगा ।।५।। यह संकल्प करके स्वस्तिककर्म करावे । एक सौ आठ वा एकसहस्र स्वस्तिक प्रतिदिन बनावे । प्रतिदिन उन्हें विष्णु भगवान्के ।।६।। भेंट, रंगवल्लीसे अलंकृत करके भक्तिभावसे करदे । उसी समय उसका सौ जन्मका किया पाप नष्ट हो जाता है ।७।। हे राजन्! गोमूत्र और गोमय स्थण्डिलपर लीपकर उसपर नील, पीत, कृष्ण, लाल रंगसे स्वस्तिक बनावे ।।८।। जो पवित्रात्मा इस प्रकार करता है वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि नील आदिक पांच वर्णोंसे स्वस्तिकमण्डल, जनार्दनके शयनके दिनोंमें विष्णुमन्दिर, शिवद्वार, गऊओंके गोष्ठ अथवा पवित्र जगहोंमें बनावे तो वह विष्णुको प्रसन्न करनेका कार्य्य कर रहा है उसका अनन्त पुण्य है ।।९।।१०।। जो स्वस्तिकोंसे मांगलिक विष्णुके स्थानको सुशोभित करता है, उसके कुलमें भगवान् विष्णुकी कृपासे कभी अशुभ नहीं होता ।।११।। जिसने एक हजार स्वस्तिक भक्तिभावके साथ विष्णुभगवान्की भेट कर दिये हैं, वह बेटा नातियोंसे संपन्न होकर बारबार प्रसन्न होता है ।।१२।। वह चिर कालतक स्वर्गमें रहता है, धनवान् राजा होता है उसके कुलमें कभी दारिद्रय नहीं होता ।।१३।। जिसने प्रयुत स्वस्तिक विष्णुभगवान्के भेंट कर दिये, उससे पुत्र पौत्र निश्चय ही स्वस्तिवान् होते हैं ।।१४।। गोपालकी कृपासे उसके यहां रोग और आर्ति नहीं होती । यदि स्त्री विधवा और पुरुष

रंडुआ न हो तो बेटे बेटोंकी बहू होती हैं, इसमें विचार न करना चाहिये। न इसे वैरी जीत सकते हैं ।।१५।। १६।। यदि एक लाख स्वस्तिक दे दे जो उसके पुण्यके फलको भूमण्डलपर कोई भी नहीं कह सकता ।।१७।। आषाढ़मासकी प्रतिपदासे लेकर आश्विन कृष्ण पक्षमें समाप्ति कर देनी चाहिये ।।१८।। धनियोंको तो यह ब्राह्मणोंको गोदान देने आदिके साथ करना चाहिये। इससे फल सिद्ध होता है। इसमें विचार न करना चाहिये ।।१९।। यदि दरिद्रने एक लाख स्वस्तिक बना दिये हों तो उस व्रतकी सगुणताकी सिद्धिके लिए कम्बल आदिका आसन दे ।।२०।। हे राजेन्द्र ! यदि विभव हो तो सोने वा चांदीका स्वस्तिक बना आसनके साथ उसे दे। इससे व्रतकी पूर्ति हो जाती है ।।२१।। यदि आहिताग्नि हो तो होम करे, इसके अभावमें ब्राह्मणोंकी पूजा करे, हे राजन् ब्राह्मणोंके तृप्त कियेसे व्रत संपूर्ण हो जाता है ।।२२।। सोने चांदीके स्वस्तिक बनाकर व्रतकी संपूर्तिके लिए ब्राह्मणोंके लिए दे दे ।।२३।। जैसे वर्ति विधानसे उत्तम पुण्य कहा है। उसी तरह वेदके जाननेवाले स्वस्तिकका पुण्य कहते हैं ।।२४।। लक्ष स्वस्तिकोंकी सिद्धिके लिए होम कहता हूं, घीसे सने हुए पायससे अपने सूत्रके कहे हुए विधानके अनुसार ।।२५।। दशांशसे होम तथा दशांशसे तर्पण होता है " स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यम् " इस मन्त्रसे हवन होता है ।।२६।। आहिताग्निके लिये होमका वैदिक मन्त्र होता है तथा जो आहिताग्नि नहीं है उसे तांत्रिक मन्त्रसे कहना चाहिये ।।२७।। मैं फलके आनन्त्यके लिए उस मन्त्रको कहता हूं। वह स्वस्तिनामका पर देव तथा स्वस्तिके कारणोंका भी कारण हो ।।२८।। घी सहित पायस, 'अग्नये स्वाहा' इसको अन्तमें साथ लगा 'दत्तं तुभ्यं' यहांसे 'शिखिन्' तक हवन मन्त्र है कि, हे महादेव ! यह तुम्हें देते हैं, हे महामते ! इससे आप तृप्त हो जायें। हे महादेव ! स्वस्ति करिये, हे शिखिन् ! आप स्वाहाके साथ संयुक्त रहते हो। ।इस प्रकार विष्णुकी तुष्टिके लिए दशांश होम करे ।।२९।।३०।। होमका दशांश ब्राह्मण भोजन करावे। उन्हें पांच रंगके पांच आसन दे ।।३१।। वे खास ब्राह्मण हों। इससे अनन्तफलकी प्राप्ति होती है। वे आसन उनके वा कुशके होने चाहिये ।।३२।। उनकी पूजाकी विधि पूरी होनेके लिए आचार्य्यका वरण करे।' इदं विष्णुः " इस मन्त्रसे उसी विष्णुको पूजे ।।३३।। पञ्चामृतसे स्नान करावे, भक्तिभावसे पूजे, अपूप भक्ष्य और भोज्यका नैवेद्य बनावे ।।३४।। पान, धूप, दीप, ऋतुके फूल, शतपत्र, कल्हार इनसे परमेश्वरका पूजन करे ।।३५।। नमस्कार तथा विशेष करके दिव्य स्तोत्रोंके पाठ करे इसके बाद मौनी और जितेन्द्रिय होकर प्रदक्षिणा करे ।।३६।। फिर व्रतकी पूर्तिके लिए तो गऊ दे, यदि गऊ न हों तो एक द्रोण यावक अन्न दे दे ।।३७।। अथवा आढ़कीका एक आढ़क दे, पूरी लड्डूओंसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।।३८।। उस शुद्धप्रतिमाको आचार्य्यके लिए दे। हस्तमात्रा, कर्णमात्रा, कटिसूत्र आदिक और पीताम्बरोंसे भलीभांति पूजकर कोटि यज्ञका फल पाता है। इस उत्तम फलदायक व्रतको अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये ।।३९।।४०।। कृपणताको छोड़कर करनेसे तो कोटि यज्ञका फल होता है। इस कारण धर्म अर्थ और कामकी सिद्धिके लिए इसे पहिले करे। इसके कियेसे राजा उसके मित्र बन जाते हैं। वैरी दास हो जाते हैं। जो कि, इसे विष्णुभक्तिके साथ इस तरह करता है ।।४१।।४२।। हे राजन् ! वेदके जाननेवालोंमे उसका अनन्त फल कहा है। यह स्वस्तिकव्रत गंगा स्नानके फलको देता है ।।४३।। स्वस्तिक व्रतको करनेवालों को रोग नहीं दबा सकते। सर्व सौभाग्यकी सिद्धिके लिए इस व्रतको स्त्रियोंको भी अवश्य करना चाहिये ।।४४।। इस व्रतको विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए शांडिली, सगर, दिलीप और दमयन्तीने किया था ।।४५।। यह कृत्य पहिले तथा अन्तके मासमें करना चाहिये। तीसरे वा चौथे मासमें तो समाप्ति हो जायगी ।।४६।। एक मासमें भी की गई इसकी समाप्ति कोटिपुण्योंके देनेवाली है। जो इसे भक्तिके साथ सुने उसको भी फल देनेवाली होती है ।।४७।। यदि बहुतसा धन चाहे तो भी इसे किसीसे न कहे। श्रद्धा और भक्तिसे हीन, यज्ञोंका घात करनेवाले ।।४८।। विकल्पसे नष्ट हुए चित्तवाले, नास्तिक, शठ, इनको यह व्रत न दे। क्योंकि, यह उत्तम स्वस्तिका कारण है ।।४९।। यह अनन्त फल सिद्धिके लिये पुत्र वा शिष्यके लिये दे। यह सब जानकर युधिष्ठिरजीने सब किया था ।।५०।। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ स्वस्तिक व्रत पूरा हुआ।

अथ वारव्रतानि लिख्यन्ते

रविवारे सूर्यव्रतम्

तत्रादौ रविवारेऽनुष्ठेयं सूर्यव्रतं मदनरत्ने सौरधर्मे ।। अथपूजा मासपक्षाद्युल्लिख्य मम समस्त रोगनिरासार्थमायुष्यवृद्ध्यादिसकलकामनासिद्ध्यर्थं श्रीसूर्यनारायणप्रीत्यर्थं सूर्यव्रताङ्गत्वेन विहितं सूर्यपूजनमहं करिष्ये ।। गणपति स्मरणपूर्वकं कलशादिपूजनं च करिष्ये ।। ताम्रपात्रे रक्तचन्दनेनाष्टदलं कृत्वा तत्र देवं पूजयेत् ।। तेजोरूपं सहस्रांशुं सप्ताश्वरथगं वरम् ।। द्विभुजं वरदं पद्मलाञ्छनं सर्वकामदम् ।। ध्यानम् ।। आगच्छ भगवन्सूर्य मण्डले च स्थिरो भव ।। यावत् पूजा समाप्यैत तावत्त्वं सन्निधौ भव ।। आवाहनम् ।। हेमासनं महादिव्यं नानारत्नविभूषितम् ।। दत्तं मे गृह्यतां देव दिवाकर नमोऽस्तु ते ।। आसनम् ।। गङ्गाजलं समानीतं परमं पावनं महत् ।। पाद्यं गृहाण देवेश धामरूपनमोऽस्तु ते ।। पाद्यम् ।। भो भोः सूर्य महाभूत ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे ।। अर्घ्यमञ्जलिना दत्तं गृहाण परमेश्वर ।। अर्घ्यम् ।। गङ्गादितीर्थजं तोयं जातीपुष्पैश्च वासितम् ।। ताम्रपात्रे स्थितं दिव्यं गृहाणाचमनीयकम् ।। आचमनीयम् ।। जाह्नवीजलमत्यन्तं पवित्रकरणं परम् ।। स्नानार्थं च मया नीतं स्नानं कुरु जगत्पते ।। मलापकर्षस्ना० ।। पयोदधिघृतैश्चैव शर्करामधुसंयुतैः ।। कृतं मया च स्नपनं प्रीयतां परमेश्वर ।। पञ्चामृत० ।। गङ्गा गोदावरी चैव यमुना च सरस्वती ।। नर्मदा सिंधुकावेरी ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ।। स्नानम् ।। आचमनीयम् ।। रक्तपट्टयुगं देव सूक्ष्मतन्तुविनिर्मितम् ।। शुद्धं चैव मया दत्तं गृहाण कमलाकर ।। वस्त्रम् ।। नमः कमलहस्ताय विश्वरूपाय ते नमः ।। उपवीतं मया दत्तं तद्गृहाण दिवाकर ।। उपवीतम् ।। कुङ्कुमागरुकस्तूरीसुगन्धैश्चन्दनादिभिः ।। रक्तचन्दनयुक्तं तु गन्धं गृह्ण प्रभाकर ।। गन्धम् ।। जपाकदम्बकुसु मरक्तोत्पलयुतानि च ।। पुष्पाणि गृह्यतां देव सर्वकामप्रदो भव ।। पुष्पाणि ।। रक्तचन्दनसंमिश्रा अक्षताश्च सुशोभनाः ।। मया दत्ता गृहाण त्वं वरदो भव भास्कर ।। आर्द्राक्षतान् प्रगृह्य अङ्गपूजां कुर्यात् ।। ॐ मित्राय० पादौ पू० । रवये० जंघे पू० । सूर्याय० जानुनी पू० । खगाय० ऊरू पू० । पूष्णे० गुह्यं पू० । हिरण्यगर्भाय० कटी पू० । मरीचये० नाभिं पू० । आदित्याय० जठरं पू० सवित्रे० हृदयं पू० । अर्काय० स्तनौ पू० । भास्कराय० कण्ठं पू० । अर्यम्णे० स्कधौ पू० । प्रभाकराय० हस्तो० पू० । अहस्कराय० मुखं पू० । प्रध्नाय० नासिकां पू० । जगदेकचक्षुषे न० नेत्रे पू० । सवित्रे० कर्णौ पू० । त्रिगुणात्मधारिणे न० ललाटं पू० । विरिञ्च-

नारायणशङ्करात्मने० शिरः पू० । तिमिरनाशिने० सर्वाङ्गं पू० । दशाङ्गो गुग्गुलोद्भूतः कालागुरुसमन्वितः ।। आघ्नेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। धूपम् ।। कार्पासवर्तिकायुक्तं गोघृतेन समन्वितम् ।। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ।। दीपम् ।। पायसं घृतसंयुक्तं नानापक्वान्नसंयुतम् ।। नैवेद्यं च मया दत्तं शान्ति कुरु जगत्पते ।। नैवेद्यम् ।। कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् ।। आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः ।। आचमनम् ।। मलयाचलसंभूतं कर्पूरेण समन्वितम् ।। करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगतः पते ।। करोद्वर्तनम् ।। इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ।। फलम् ।। एलालवङ्गकर्पूरखदिरैश्च सपूगकैः ।। नागवल्लीदलैर्युक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् ।। दक्षिणां काञ्चनीं देव स्थापितां च तवाग्रतः ।। गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।। दक्षिणाम् । पञ्चवर्तिसमायुक्तं सर्वमङ्गलदायकम् । नीराजनं गृहाणेदं सर्वसौख्यकरो भव ।। नीराजनम् ।। यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।। विलयं यान्ति तानीह प्रदक्षिणपदेपदे ।। प्रदक्षिणाः ।। नमः पङ्कजहस्ताय नमः पङ्कजमालिने ।। नमः पङ्कजनेत्राय भास्कराय नमोनमः ।। नमस्कारान् ।। तण्डुलैः पूरितं पात्रं हिरण्येन समन्वितम् ।। रक्तवस्त्रयुगं चैव ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। वायनम् ।। यस्योदये स्याज्जगतः प्रबोधो यः कर्मसाक्षी भुवनस्य गोप्ता ।। कुष्ठादिकव्याधिविनाशको यः स भास्करो मे दुरितं निहन्यात् ।। इति प्रार्थना ।। अथ कथा—मान्धातोवाच ।। भगवञ्ज्ञानिनां श्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ।। त्वद्वक्त्राच्छ्रोतुमिच्छामि व्रतं पापप्रणाशनम् ।। १ ।। सर्वकामप्रदं चैव सर्वामङ्गलनाशनम् ।। पूजार्घ्यदानसहितं नैवेद्यं प्राशनान्वितम् ।। २ ।। एतत्कथय सर्वं त्वं प्रसन्नोऽसि यदि द्विज ।। वसिष्ठ उवाच ।। शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यद्गुह्यं व्रतमुत्तमम् ।। ३ ।। सर्वकामप्रदं पुसां कुष्ठादिव्याधिनाशनम् ।। भानोस्तुष्टिकरं राजन् भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।। ४ ।। यस्योदये सुरगणा मुनिसंघाः सचारणाः ।। देवदानवयक्षाश्च कुर्वन्ति सततार्चनम् ।। ५ ।। यस्योदये तु सर्वेषां प्रबोधो नृपसत्तम ।। तस्य देवस्य वक्ष्यामि व्रतं राजन् सविस्तरम् ।। ६ ।। पूजार्घ्यं प्राशनं दानं नैवेद्यं शृणु तत्त्वतः ।। सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।। ७ ।। सर्वदानेन तपसा यत्पुण्यं समवाप्यते।। प्रातः स्नानेन यत्पुण्यं तत्पुण्यं रविवासरे ।।८।। मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वपि भूपते ।। सूर्यव्रतं करिष्यामि यावद्वर्षं दिवाकर ।। व्रतं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादात्प्रभाकर ।। ९ ।। नियममंत्रः ।। ततः प्रातः समुत्थाय नद्यादौ विमले जले ।। स्नात्वा संमर्पयेद्देवान्पितृश्च वसुधाधिप ।। १० ।। उपलिप्य शुचौ देशे सूर्यं तत्र समर्चयेत् ।।

विलिखेत्तत्र पद्मं तु द्वादशारं सकर्णिकम् ।। ११ ।। ताम्रपात्रे तथा पद्मं रक्तचन्दन-वारिणा ।। तत्र संपूजयेद्देवं दिननाथं सुरेश्वरम् ।। १२ ।। मासे मासे च ये राजन्विशेषास्ताञ्छृणुष्व वै ।। मार्गशीर्षे यजेन्मित्रं नारिकेरार्घ्यमुत्तमम् ।। १३ ।। नैवेद्यैस्तण्डुला देयाः साज्याश्च गुडसंयुताः ।। पत्र त्रयं तुलस्यास्तु प्राश्य तिष्ठेज्जितेन्द्रियः ।। १४ ।। दद्याद्विप्राय भोज्यं तु दक्षिणासहितं नृप ।। पौषे विष्णुं समभ्यर्च्य नैवेद्ये कृसरं तथा ।। १५ ।। बीजपूरेण चैवार्घ्यं घृतं प्राश्यं पलत्रयम् ।। दद्याद्घृतं तु विप्राय भोजनेन समन्वितम् ।। १६ ।। माघे वरुणनामानं संपूज्य सतिलं गुडम् ।। भोजनं दक्षिणां दद्यान्नैवेद्यं कदलीफलम् ।। १७ ।। अर्घ्यं तेनैव दत्त्वा तु प्राश्या मुष्टित्रयं तिलाः ।। फाल्गुने सूर्यमभ्यर्च्य नैवेद्यं सघृतं दधि ।। १८ ।। अर्घ्यं जंबीर-सहितं दधि प्राश्यं पलत्रयम् ।। दधितण्डुलदानं च भोजने समुदाहृतम् ।। १९ ।। चैत्रे भानु च संपूज्य नैवेद्ये घृतपूरिकाः ।। दाडिमीफलमर्घ्ये च प्राश्यं दुग्धं पलत्रयम् ।। २० ।। विप्राय भोजनं दद्यान्मिष्टान्नं तु सदक्षिणम् ।। वैशाखे तपनः प्रोक्तो माषान्नं सघृतं स्मृतम् ।। २१ ।। अर्घ्यं दद्यात्तु द्राक्षाभिः प्राशने गोमयं स्मृतम् ।। कुर्यान्माषान्नदानं च सघृतं वै सदक्षिणम् ।। २२ ।।इन्द्र ज्येष्ठे यजेद्राजन्नैवेद्ये तु के*रम्भकम् ।। अर्घ्यं च सहकारेण प्राश्यं जलाञ्जलित्रयम् ।।२३।। दध्योदन-समायुक्तं भोजनं ब्राह्मणस्य तु ।। आषाढे रविमभ्यर्च्य जातीचिपिट[२]कं तथा ।।२४।। विप्राय भोजनं दद्यात्प्राशयेन्मरिचत्रयम् ।। गभस्ति श्रावणेऽभ्यर्च्य नैवेद्ये सक्तु-पूरिकाः ।। २५ ।। अर्घ्यदाने च हि प्रोक्तं त्रपुसीफलमेव च ।। मुष्टित्रयं च सक्तूनां प्राशने समुदाहृतम् ।। २६ ।। विप्राय भोजनं दद्याद्दक्षिणासहितं नृप ।। यमो भाद्रपदे पूज्यः कूष्मा[३]ण्डं साज्यमोदनम् ।। २७ ।। गोमूत्रं प्राशने ह्यु[४]क्तं ब्रा[५]ह्मणा-न्भोजयेत्तथा ।। हिरण्यरेता आश्विने च नैवेद्ये शर्करा स्मृता ।। २८ ।। दाडिमेना-र्घ्यदानं तु प्राश्यं खण्डपलत्रयम् ।। विप्राय परया भक्त्या भोजनं शालिशर्कराः ।। २९ ।। दिवाकरः कार्तिके च रम्भायाः फलमेव च ।। पायसं चैव नैवेद्ये पायसं प्राशने स्मृतम् ।। ३० ।। पायसैर्भोजयेद्विप्रान् दद्यात्ताम्बूलदक्षिणे ।। एवं व्रतं समाप्यैतत्तत उद्यापनं चरेत् ।। ३१ ।। ततो गुरुगृहं गत्वा गृह्णीयाच्चरणाम्बुजे ।। उद्यापनं करिष्येऽहमागच्छ मम वेश्मनि ।। ३२ ।। माषकेण सुवर्णेन प्रतिमां कार-येद्रवेः ।। रथो रौप्यमयः कार्यः सर्वोपस्करसंयुतः ।। ३३ ।। कृत्वा द्वादशपत्रं तु कमलं रक्ततण्डुलैः ।। स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।। ३४ ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं तण्डुलपूरितम् ।। रक्तवस्त्रसमाच्छन्नं पुष्पमालादिवेष्टितम्

---

* दधिसक्तवः ।२ अर्घ्येजातीफलं चिपिटकं नैवेद्य तेनैव ब्राह्मणभोजनमित्यर्थः ।३ कूष्माण्ड-मध्ये नैवेद्ये साज्यमोदन मित्यर्थः ।४ ब्राह्मणभोजनं यथेच्छमित्यर्थः । ५ इत्याचार्यं प्रार्थयेदित्यर्थः ।

।। ३५ ।। पञ्चामृतेन स्नपयेदग्न्युत्तारणपूर्वकम् ।। प्रतिष्ठां च ततः कृत्वा पूजां देवस्य कारयेत् ।। ३६ ।। चन्दनैः कुसुमै रम्यैर्विविधैः कालसंभवैः ।। अखण्डपट्ट-वस्त्रैश्च कमण्डलुमुपानहौ ।। ३७ ।। वर्धनीत्रितयं तत्र स्थापयेद्देवसन्निधौ ।। संज्ञाया वस्त्रयुग्मं च कौसुम्भं तु महीपते ।। ३८ ।। प्रतिपत्रेषु संपूज्यः ससूर्यो द्वादशनामभिः।। मित्रो विष्णुः सवरुणः सूर्यो भानुस्तथैव च ।। ३९ ।। तपनेन्द्रौ रविः पूज्यो गभस्तिः शमजुस्तथा ।। हिरण्यरेता दिनकृत्पूज्या एते प्रयत्नतः ।। ४० ।। मध्ये सहस्र-किरणः संपूज्य संज्ञया सह ।। पूगीफलैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्वस्त्रसंयुतैः ।। ४१ ।। नारिकेरेण चैवार्घ्यं दद्याद्देवाय भक्तितः ।। मंत्रेणानेन राजेन्द्र व्रतस्य परिपूर्तये ।। ४२ ।। नमः सहस्रकिरण सर्वव्याधिविनाशन ।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सहितो रवे ।। ४३ ।। आरार्तिकं ततः कुर्यान्नमस्कारप्रदक्षिणाः ।। संकल्प्य च ततः श्राद्धं कार्यं वै सूर्यदैवतम् ।। ४४ ।। ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या मिष्टान्नैर्द्वादश प्रभो ।। दम्पत्योर्भोजनं देयं परमान्नसमन्वितम् ।। ४५ ।। ततस्तु दक्षिणा देया समभ्यर्च्य स्रगादिभिः ।। उपहारादि तत्सर्वं गुरवे प्रतिपादयेत् ।। ४६ ।। गुरुं तत्रैव सन्तोष्य ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् ।। मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं च यत्कृतम् ।। ४७ ।। तत्सर्वं पूर्णतां यातु भूमिदेवप्रसादतः ।। अनुव्रज्य गुरुन् विप्रान् भोजनं तु समाचरेत् ।। ४८ ।। वृद्धैश्च बन्धुभिः सार्धं नत्वा देवं दिवाकरम् ।। एवं यः कुरुते मर्त्यो वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। ४९ ।। सूर्यव्रतं महाराज तस्य पुण्यफलं शृणु ।। ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो राज्यमाप्नुयात् ।। ५० ।। वैश्यः समृद्धिं विपुलां शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।। अपुत्रो लभते पुत्रं कुमारी लभते पतिम् ।। ५१ ।। रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।।यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति वै ध्रुवम् ।। ५२ ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या ह्येकचित्तेन वै नृप ।। सर्वान् कामानवाप्नोति प्रसादाद्भास्करस्य वै ।। ५३ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे रविवारेऽनुष्ठेयं सूर्यव्रतं समाप्तम् ।।

वारव्रतानि

वारोंके व्रत कहे जाते हैं ।। उनमें सबसे पहिले रविवारको किया जानेवाला सूर्य्यव्रत मदनरत्नने सौरधर्मसे कहा है ।। पूजा-मास पक्ष आदि कहकर मेरे सारे रोगोंके निवारणके लिये आयुकी वृद्धि तथा सब कामनाओंकी सिद्धिके लिये तथा श्रीसूर्य्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये सूर्य्यव्रतके अंगरूपसे कहा गया श्री-सूर्य्यदेवका पूजन मैं करूंगा तथा गणपतिके स्मरणके साथ-साथ कलश आदिका पूजन भी करूंगा यह संकल्प करे । ताम्बेके पात्रमें रक्तचन्दनसे अष्टदल कमल लिखकर उसपर सूर्य्य भगवान्का पूजन करे कि, तेजोरूप, सहस्रों किरणोंवाले, सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले, दो भुजावाले, कमलसे लांछित, सब कामोंके देनेवाले भगवान् सूर्य्य देव हैं । इससे ध्यान; हे भगवन् ! सूर्य्य ! आईये मण्डलपर स्थिर हो जायें । जबतक पूजा पूरी हो, तबतक आप सन्निधि दें, इससे आवाहन; 'हेमासनम्' इससे आसन; 'गंगाजलम्' इससे पाद्य; हे महाभूत सूर्य्य ! तुझ ब्रह्मा विष्णु और शिवके रूपवालेके लिये अंजलिसे अर्घ्य दे दिया है । हे परमेश्वर ! दिये हुए को

ग्रहण कर । इससे पाद्य; 'गंगादिसर्वतीर्थेभ्यः' इससे आचमनीय; गंगाजल अत्यन्तही परम पवित्रताका कारण है मैं आपके स्नानके लिये लाया हूं हे जगत्पते ! आप स्नान करें । इससे स्नान, आचमनीय; 'पयोदधिघृतैः' इ ससे पंचामृत स्नान; 'गंगागोदावरी' इससे पयस्नान; आचमननीय, 'रक्तपट्टयुगं' इससे वस्त्र; हे कमल को हाथमें रखनेवाले विश्वरूप । तेरे लिये नमस्कार है, मैं आपको उपवीत दे रहा हूं । हे दिवाकर ! ग्रहण करिये । इससे उपवीत; 'कुंकुमागरु' इससे गन्ध; रक्तोत्पलके साथ जपा, कदंब और कुसुमके फल हैं । हे देव ! इन्हें ग्रहण करिये तथा सब कामोंके देनेवाले हो जाइये । इससे पुष्प; लालचन्दन मिलेहुएं सुन्दर अक्षत रखे हुए हैं । मैं दे रहा हूं । हे दिवाकर ! आप ग्रहण करिये । हे भास्कर ! वर दीजिये । इससे अक्षत समर्पण करे । अंगपूजा–भीगेहुए अक्षत लेकर अंगपूजा करे । मित्रके लिये नमस्कार चरणोंको पूजता हूं । रविके० जंघोंको पू०; सूर्य्यके० जानुओंको पू०; खगके० ऊरुओंको पू०; पूषाके ० गुह्यको पू०; हिरण्यगर्भके ० कटिको पू०; मरीचिके० नाभिको पू०; आदित्यके ० जठरको पू०; सविताके० हृदयको पू०; अर्कके० स्तनोंको पू०; भास्करके कण्ठको पू०; अर्य्यमाके० स्कन्धोंको पू०; प्रभाकरके० हाँथोंको पू०; अहस्करके० मुखको पू०; ब्रध्नके० नासिकाको पू०; संसारके एकमात्र नेत्रके० नेत्रोंको पू०; सविताके कानोंको पू०; तीनों तीनों गुणोंके आत्मावाले एवं तीनों गुणोंके धारकके० ललाटको पू०; ब्रह्मा विष्णु शंकरकी आत्माके० शिरको पू०; अन्धकारके नाशकके लिये नमस्कार, सर्वाङ्गको पूजता हूं । दशाङ्गो गुग्गुलो ' इससे धूप; 'कार्पासवर्तिका' इससे दीप; 'पायसं घृतसंयुक्तम्' इससे नैवेद्य; 'कर्पूरवासितम्' इससे आचमन्; 'मलयाचल' इससे करोद्वर्तनक; 'इदं फलम्' इससे फल; 'एलालवंग' इससे ताम्बूल; 'दक्षिणां काञ्चनीम्' इससे दक्षिणा; कमल हाथमें रखनेवाले कमलोंकी माला पहिननेवाले कमलनयन, भास्करके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे नमस्कार; चावलोंसे भरे हुए पात्रको ऊपर सोना रखकर दो लाल वस्त्रोंके साथ ब्राह्मणको दे दे, इससे वायना; जिसके उदय होनेसे संसारको प्रबोध हो जाता है, जो सबके कर्म्मोंका साक्षी तथा संसारका रक्षक है, जो कुष्ट आदिक व्याधियोंको भी नष्ट कर देता है, वह आदित्य मेरे दुरितोंको नष्ट करे, इसे प्रार्थना समर्पण करदे ।। कथा–मान्धाता बोले कि, हे भगवन् ! आप सब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं आप कृपाकर कहें । मैं आपके मुखसे पापनाशक व्रत सुनना चाहता हूं ।।१।। जो सब कामोंका दाता एवं सभी अमंगलोंका नाशक हो । उसमें पूजा और अर्घ्यदान नैवेद्य और प्राशनभी हों ।।२।। हे द्विज ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह कह डालें । वसिष्ठ बोले कि, हे राजन् ! सुन, मैं परम गोप्य उत्तम व्रत करता हूं ।।३।। जो मनुष्योंकी सब कामोंका देनेवाला तथा कुष्ठ आदि व्याधियोंका नाशक है । हे राजन् ! सूर्य्यको प्रसन्न करनेवाला तथा भुक्ति मुक्तिका देनेवाला है ।।४।। जिसके उदय होते ही सुरगण, मुनिसंघ, चारण, देव, दानव, यक्ष, जिसका रातदिन पूजन करते रहते हैं ।।५।। हे श्रेष्ठ राजन् ! जिसके उदय होनेपर सबको प्रबोध होता है मैं उसी देवके व्रतको विस्तारके साथ कहूंगा ।।६।। पूजा, अर्घ्य प्राशन, नैवेद्य, यथार्थरूपसे सुन । जो सब तीर्थोंमें पुण्य तथा तथा सब यज्ञोंमें फल होता है ।।७।। जो पुण्य सब दान और तपसे पाया जाता है, जो प्रातःस्नाननें पुण्य है वह सब रविवारके व्रतमें है ।।८।। मार्गशीर्ष आदि बारहों मासोंमें भी जो पुण्य हैं वह सब इसमे हैं । 'हे दिवाकर ! मैं एक वर्ष सूर्य्यव्रत करूंगा, हे प्रभाकर ! वह आपकी कृपासे पूरा हो जाय" ।।९।। यह नियमकः नंत्र है । इसके बाद प्रातः उठकर नदी आदिके विमल जलमें स्नान करके देव पितरोंका तर्पण करे ।।१०।। अच्छी जगहमें लीपकर वहां सूर्य्यका पूजन करे । वहां बारह दलका कर्णिका समेत पद्म बनावे । तैसाही रक्तचन्दन और पानीसे तांबेके पात्रमें कमल बनावे । उसपर बिननाथ सुरेश्वरदेवको पूजे ।।११।। ।।१२।। हे राजन् ! जो प्रतिमासके विशेष होते हैं उन्हें सुनिये, मार्गशीर्षमें मित्रको पूजे, नारिकेलका अर्घ्य दे, गुड घी मिले हुए तण्डुलका नैवेद्य दे । तुलसीके तीन पत्र प्राशन करके जितेन्द्रियताके साथ खड़ा हो जाय ।।१३।।१४।। ब्राह्मणको दक्षिणासहित भोजन दे, पौषमें विष्णुकी पूजा, कृसरका नैवेद्य ।।१५।। बीजपूरका अर्घ्य, तीन पल घीका प्राशन हो, ब्राह्मणको भोजनके साथ घी दे ।।१६।। माघमें वरुणकी पूजा, कदली फलका नैवेद्य, उसीका अर्घ्य, गुडतिलका भोजन ब्राह्मणको दे । एवं तीन मुठ्ठी तिलोंका प्राशन होता है, फाल्गुनमें सूर्य्यकी पूजा घी समेत दधिका नैवेद्य ।।१७।।१८।। जंभीरका अर्घ्य तीन पल दधिका प्राशन हो, ब्राह्मणको भोजनमें दही और तण्डुल दे ।।१९।।

चैत्रमें भानुकी पूजा घीकी पूरियोंका नैवेद्य; अनारका अर्घ्य तथा तीन पर दूधका प्राशन हो ।।२०।। ब्राह्मणको दक्षिणासमेत मिष्टान्नका भोजन हो, वैशाखमें तपनकी पूजा घृत समेत माषके अन्नका नैवेद्य, ।।२१।। दाखोंका अर्घ्य, गोमयका प्राशन हो, दक्षिणा और घी समेत माषोंके अन्नका दान हो ।।२२।। ज्येष्ठमें इन्द्रकी पूजा, दधि सक्तुका नैवेद्य, सहकार (अति सुगन्धित आम) का अर्घ्य तथा तीन अंजलि पानीका प्राशन होता है ।।२३।। वघ्योदनसे ब्राह्मण भोजन हो, आषाढमें रविकी पूजा जातीफलका अर्घ्य, चिपिटकका नैवेद्य ।।२४।। उसकी ब्राह्मण भोजन एवम् तीन मिरचोंका प्राशन होता है । श्रावणमें गभस्तिकी पूजा, सतुआ पूरीका नैवेद्य ।।२५।। त्रपुसी फलका अर्घ्यदान, तथा तीन मुठ्ठी सत्तुओंका प्राशन होता है ।।२६।। ब्राह्मणको दक्षिणा सहित भोजन दे, भाद्रपदमें यमकी पूजा, कूष्माण्डका अर्घ्य, घीसमेत ओदनका नैवेद्य ।।२७।। गोमूत्रका प्राशन और ब्राह्मण भोजन होता है, आश्विनमें हिरण्यरेताकी पूजा, शर्कराका नैवेद्य ।।२८।। अनारका अर्घ्य तथा तीन पल खांडका प्राशन और परम भक्तिके साथ शाली शर्कराका ब्राह्मण भोजन होता है ।।२९।। कार्तिकमें दिवाकरका पूजन रंभा फलका अर्घ्य, पायसका नैवेद्य और प्राशन हो ।।३०।। पायससे ब्राह्मण भोजन तथा पान और दक्षिणा दे, इस प्रकार व्रतकी समाप्ति करे ।। उद्यापन पीछे करे ।।३१।। आचार्य्यके घर जाकर उनके चरण पकड़कर कहे कि, मैं उद्यापन करूंगा मेरे घर आप अवश्य पधारियेगा ।।३२।। एक माष सोनेकी सूर्य्य प्रतिमा बनवावे, सभी सामानोंके साथ चांदीका रथ हो ।।३३।। बारह दलोंका लाल तण्डुलोंका कवल बनावे उसपर साबित कलश विधिपूर्वक रखे, उसमें पंचरत्न डाले, उसपर तांबेका पात्र तण्डुलोंसे भरकर रखे उसे लाल वस्त्रसे ढक दे, तथा पुष्प मालादिकोंसे वेष्टित करे ।।३४।।३५।। अग्न्युत्तारण करके प्राणप्रतिष्ठा करे, पंचामृतसे स्नान करावे और पूजा करे ।।३६।। ऋतुकालके अनेक तरहके रम्य कुसुम चन्दन और अखण्ड पट्ट वस्त्र ये पूजामें हों, कमण्डलु खडाऊँ ।।३७।। तथा तीन बर्धनीदेवके पास स्थापित करे । संज्ञाके लिये कुसुंभके रंगे हुए दो वस्त्र दे ।।३८।। हरएक पत्रपर सूर्य्य भगवान्को द्वादश नामोंसे क्रमश पूजना चाहिये, मित्र, विष्णु, वरुण, सूर्य्य भानु ।।३९।। तपन, इन्द्र, रवि, गभस्ति, शमन, हिरण्यरेता, दिवाकर, इन बारहोंको इन्हींके नाम मन्त्रोंसे प्रयत्नके साथ पत्रोंपर पूजे ।।४०।। बीचमें संज्ञाके साथ सहस्त्र किरणका पूजन करे, वह पूजन पूगीफल, धूप, दीप, नैवेद्य और वस्त्रोंसे हो ।।४१।। हे राजेन्द्र ! भक्तिभावके इस मंत्रसे नारिकेलका अर्घ्य व्रतकी पूर्तिके लिए दे ।।४२।। 'हे सहस्रकिरण ! सब व्याधियोंके नष्ट करनेवाले ! हे रवे ! संज्ञासहित मेरे दिये अर्घ्यको ग्रहण करिये ।।४३।। पीछे आरती नमस्कार और प्रदक्षिणा करनी चाहिये । संकल्प करके सूर्य्यके उद्देशसे श्रद्धाके साथ कर्म करे ।।४४।। मिष्टान्नसे भक्तिपूर्वक बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे । दंपतियोंको परमान्नके साथ भोजन दे ।।४५।। माला आदिसे पूजन करके दक्षिणा दे, सब उपहारादिकोंको आचार्य्यको दे दे ।।४६।। गुरुको सन्तुष्ट करके ब्राह्मणोंका विसर्जन कर दे । "मन्त्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन जो भी कुछ किया हो वह सब भूदेवोंकी कृपासे पूरा हो जाय" अपनी सीमातक उनके पीछे-पीछे जाकर पीछे भोजन करे ।।४७।।४८।। उसमें वृद्ध और बान्धवोंको भी साथ बिठावे, जो मनुष्य इस प्रकार निर्लोभ होकर इस व्रतको करता है ।।४९।। हे राजन् ! उसके फलको सुन, ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय राज्य ।।५०।। वैश्य विपुल समृद्धि और शूद्र सुख पाता है तथा अपुत्रको पुत्र और कुमारीको पति मिल जाता है ।।५१।। रोगसे व्यथित रोगसे, बद्ध बन्धनसे छूट जाता है, जिस -जिस पदार्थको चाहे वह-वह उसे निश्चय ही मिल जाता है ।।५२।। हे राजन् ! जो इसे एकाग्रचित्तसे भक्तिके साथ सुनता है वह भगवान् भास्करकी कृपासे सब कामोंको पाजाता है ।।५३।। यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ रविवारको किया जानेवाला सूर्य्यका व्रत समाप्त हुआ ।।

आशादित्यव्रतम्

अथ आश्विनादिरविवारेषु, आशादित्यव्रतम् ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य मम समस्तरोगनिरासार्थम् आयुवृद्धयादिसकलकामनासिद्धयर्थं द्वादशवर्षपर्यन्तं एकवर्षपर्यन्तं वा श्रीसूर्यनारायणप्रीत्यर्थं आशादित्यव्रतं करिष्ये इति सङ्कल्प्य ।।

कलशाराधनमासनविध्यादि कृत्वा सूर्यं पूजयेत् ।। ताम्रेण कारयेत्पीठं रथं रौप्यमयं तथा ।। भास्करं पूजयेत्तत्र सुवर्णेन तु कारितम् ।। अथ कथा—ऋषिरुवाच।। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। सर्वरोगप्रशमनमाशादित्याभिधं शुभम् ।। १ ।। स्कन्द उवाच -शृणु विप्रेन्द्र गुह्यं तदादित्याराधनं परम् ।। यत्कृत्वा सर्वकामानां संपूर्तिफलमाप्नुयात् ।। २ ।। समुद्रतीरे विप्रेन्द्र पुरी द्वारावती शुभा ।। वासुदेवे यदुश्रेष्ठे पुरा राज्यं प्रशासति ।। ३ ।। दुर्वासाः शङ्करस्यांश आजगामावलोककः ।। कृष्णेन पूजितः सोऽपि ह्यर्घ्यपाद्यासनादिभिः ।। ४ ।। भोजनं तस्य वै दत्तं यथाभिलषितं मुनेः ।। संपूजितः स कृष्णेन यावद्गच्छत्यसौ मुनिः ।। ५ ।। साम्बेन हसितस्तस्य सुतेन सहसा किल ।। क्रुद्धोऽपि मुनिशार्दूलः कोपं संहृतवान्स्वयम् ।। ६ ।। पूजितेन मयेदानीं मन्युं कर्तुं कथं क्षमम् ।। स गत्वा नारदं प्राह साम्बेन हसितोऽस्मि भोः ।। ७ ।। प्रहासं चरतः कार्यं तस्य शिक्षापनं त्वया ।। इत्युक्तो नारदः प्रायाद्द्वारकां कृष्ण*सन्निधौ ।।८।। स्वकं सैन्यं दर्शयस्व मम देवकिनन्दन ।। देवयात्रामिषं कृत्वा हस्त्यश्वरथसंकुलम् ।। ९ ।। नारदेनैवमुक्तस्तु तथैव कृतवान्विभुः ।। दर्शिते तु बले प्राह[२] नात्र साम्बः प्रदृश्यते ।। १० ।। मयैवानीयते शीघ्रं द्वारवात्यास्तवान्तिकम् ।। गत्वैवमुक्तो मुनिना श्रेष्ठो जाम्बवतीसुतः ।। ११ ।। सश्रृङ्गारस्तथानीतो मकरध्वजदर्शनः ।। गत्वालिङ्ग्य चुचुम्बुस्तं गोप्यः कृष्णपरिग्रहाः ।। १२ ।। नारदःप्राह कृष्णं तद्दुश्चरित्रं तथानघ ।। क्रुद्धेन शौरिणा प्रोक्तः कुष्ठी भव नराधम ।। १३ ।। एवमुक्तस्तेन पुत्रः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् ।। साम्बःप्रणम्याह पितः किमर्थं शापितस्त्वया ।। १४ ।। स्वशक्तिज्ञानदृष्ट्या तु विचार्य सुविनिश्चितम् ।। ध्यानाद्दूर्वाससो ज्ञात्वा विक्रिया ह्यत्र कारणम् ।।१५।। अनुग्रहो मया पुत्र कार्यस्त्वय्यनघे शुचौ ।। आदित्यस्य व्रतं चैव कुरु कुष्ठविनाशनम् ।। १६ ।। साम्ब उवाच ।। कथं तात मया कार्यं व्रतं सर्वफलप्रदम् ।। किंवा विधानं तु के मन्त्राः किं दानं कस्य पूजनम् ।। १७ ।। कृष्ण उवाच ।। मासमाश्वयुजं प्राप्य यदा रविदिनं भवेत् ।। तदा व्रतमिदं ग्राह्यं नरैः स्त्रीभिर्विशेषतः ।। १८ ।। यावत्संवत्सरस्तावद्विधिनानेन पुत्रक ।। गोमयेन क्षितौ कुर्यान्मण्डलं वर्तुलं पुनः ।। १९ ।। रक्तचन्दनपुष्पैश्च युक्तं तत्र सहाक्षतम् ।। मन्त्रेणानेन साम्ब त्वमर्घ्यं देहि रविं

---

* प्राह चेति शेषः ।२ नारद इति शेषः ।तदाह-नात्रेति । यतोऽत्र सांबो न दृश्यतेऽतो मया शीघ्रं गत्वा द्वारवत्य सकाशात्तवान्तिघं प्रत्यानीयते । एवमुक्त्वा मूनिना नारदेन श्रेष्ठस्तथा सश्रृंगारो मकरध्वज-जांबवतीसुतः आनीतस्ततो नारदः कृष्णपरिग्रहा गोप्यो गोपीवदनुरागशालिन्यः स्त्रियस्तमालिग्य चुचुम्बुरिति गत्वावगत्य तत्तथा दुश्चरिताभास कृष्णं प्रति प्राहेति त्रयाणामन्वयः । स्त्री भिरालिंगनादिकं तु वात्सल्यात्कृतं शापस्तु दुर्वाससो मनोविकारप्रयुक्तमोहमूलको ज्ञेयः । ३ कृष्ण इति शेषः ।

प्रति ।। २० ।। यथाशा विमलाः सर्वाः सूर्यभास्करभानुभिः ।। तथाशाः सफला मह्यं कुरु नित्यं ममार्घ्यतः ।। २१ ।। अर्घ्यमन्त्रः एवं तमर्चयेत्तावद्यावद्वर्षं समाप्यते ।। समाप्ते तु व्रते वत्स कुर्यादुद्यापनं शुभम् ।। २२ ।। गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ मण्डलमालिखेत् ।। रक्तचन्दनरेखाभिः कुंकुमेन विशेषतः ।। २३ ।। तन्मध्ये कारयेत्पद्मं द्वादशारं सकर्णिकम् ।। सिन्दूरपूरितदलं जपाकुसुमशोभितम् ।। २४ ।। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं प्रवालांकुरसंयुतम् ।। शालितण्डुलसम्पूर्णं शर्कराचन्दनान्वितम् ।। ।। २५ ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं शक्त्या विनिर्मितम् ।। सौवर्णं भास्करं कृत्वा पञ्चहस्तं स्वशक्तितः ।। २६ ।। रक्तवस्त्रयुगोपेतं पात्रोपरि निवेशयेत् ।। पञ्चामृतेन संस्नाप्य रक्तचन्दनपुष्पकैः ।। २७ ।। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः फलैः कालोद्भवैस्तथा ।। पूजयेज्जगतामीशं यथाविभवसारतः ।। २८ ।। अथाङ्गपूजा--ॐ सूर्याय नमः पादौ पूजयामि ।। वारुणाय० जङ्घे पू० । माधवाय० जानुनी पू० । धात्रे नमः ऊरू पू० । हरये० कटी पू० । भगाय० गुह्यं पू० ।। सुवर्णरेतसे० नाभिं पू० । अर्यम्णे० जठरं पू० । दिवाकराय० हृदयं पू० । तपाय० कण्ठं पू० । भानवे० स्कन्धौ पू० । हंसाय० हस्तौ पू० । मित्राय० मुखं पू० । रवये० नासिकां पू० । खगाय० नेत्रे पू० । कृष्णाय० कर्णौ पू० । हिरण्यगर्भाय० ललाटं पू० । आदित्याय० शिरः पू० । भास्कराय० सर्वाङ्गं पू० । नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय ।। सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधातर्भवाब्धिपोताय नमः सवित्रे ।। २९ ।। इति प्रार्थना ।। एवं सम्पूजयेद्भानुं नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ।। आचार्यं पूजयित्वा तु वस्त्रैराभरणैः शुभैः ।। ३० । तस्मै तां प्रतिमां कुम्भं सहिरण्यं च दापयेत् ।। प्रीयतां भगवान्देवो मम संसारतारकः ।। ३१ ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादपूपैः पायसैः सह ।। तेभ्यस्तु कलशान्दद्याद्यथाशक्त्या तु दक्षिणाम् ।। ३२ ।। एवं यः कुरुते सम्यग् व्रतमेतदनुत्तमम् ।। आशादित्यमिति ख्यातं तस्य पुण्यफलं महत् ।। ३३ ।। निर्व्याधिश्च स तेजस्वी पुत्रपौत्रसमन्वितः ।। भुक्त्वा च भोगान्विपुलानमरैरपि दुर्लभान् ।। ३४ ।। देहान्ते रविसायुज्यं प्राप्नुयादुत्तमोत्तमम् ।। प्राप्यते परमामृद्धिं विमुक्तः कुष्ठरोगतः ।। ३५ ।। आशाभङ्गो न तस्य स्यात्कदाचिज्जन्मजन्मनि ।। एतस्मात्कारणाद्वत्स कुरुष्व व्रतमुत्तमम् ।। ।।३६।। एतच्छ्रुत्वा वचः साम्बः पित्रा कृष्णेन भाषितम् । व्रतं चरित्वा सम्प्राप्तः सर्वसिद्धिं सुदुर्लभाम् ।। ३७ ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।। तावुभौ पुण्यकर्माणौ रविलोकमवाप्नुतः ।। ३८ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे आशादित्यव्रतं सम्पूर्णम् ।।

आशादित्यव्रत–यह आश्विनमासके पहिले रविवारसे प्रारंभ किया जाता है। मास पक्ष आदि कह-कर मेरे समस्त रोगोंके नाशके लिए आयुकी वृद्धि आदि सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिए बारहबरस या एक बरसतक श्रीसूर्य्य नारायणकी प्रसन्नताके लिये आशादित्यव्रतको मैं करूँगा, यह संकल्प होना चाहिये, पीछे कलशका आराधन और आसनकी विधि आदि करके सूर्य्यकी पूजा करे। तांबेका सिंहासन चांदीका रथ और सोनेके सूर्यनारायण हों, भास्करका पूजन करे। कथा-ऋषि बोले कि, हे भगवन्! सब व्रतोंके उत्तम व्रतको सुनना चाहता हूं वह सब रोगोंका शामक आशादित्यका व्रत हो ॥१॥ स्कन्द बोले कि, हे विप्रेन्द्र। वह परम गोप्य है आदित्यका परम आराधन है जिसे करके मनुष्य सब कामनाओंकी संपूर्तिके फलको पा जाता है॥२॥ समुद्रके किनारेसे पहली तरफ द्वारिका नामकी पुरी थी, उसका प्रबन्ध यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण करते थे ॥३॥ वहां शंकरके अंशभूत दुर्वासा ऋषि देखनेको आ पहुंचे, भगवान् कृष्णने उनकी पाद्यअर्घ्य आदिसे पूजा की ॥४॥ उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया भगवान्से पूजित होकर जबतक वह जाते ही थे ॥५॥ कि, उनका पुत्र साम्ब उन्हें देख एकदम हँस पड़ा, यह देख क्रोध आनेपर भी दुर्वासाने अपने क्रोधको रोक लिया ॥६॥ कि मेरी इन्होंने पूजा कर दी अब मैं इनपर क्रोध कैसे करूं? पर नारदजीसे आकर साम्बके हँसनेकी शिकायत कर दी ॥७॥ और कहा कि, आप उसे शिक्षा दिलाना, यह सुन नारदजी द्वारकामें कृष्णजीके पास आये ॥८॥ श्रीकृष्णजीसे बोले कि, हे देवकीनन्दन! देवयात्राके बहाने मुझे अपने बहुतसे घोडे तथा रथ समेत सारी सेना दिखा दे ॥९॥ भगवान्ने देवर्षिके कथनानुसार अपनी सारी सेना दिखा दी, देखनेके बाद नारजी बोले कि, साम्ब क्यों नहीं दीख रहा है ॥१०॥ मैं अभी द्वारकासे उसे यहां लाता हूं ऐसा कहकर नारजीने, शृङ्गार करके कामके समान चमकनेवाला जाम्बवतीका सुयोग्य पुत्र साम्ब ला दिया, जिस समय वह लेने गये थे उस समय कृष्णपर गोपी-योंकी तरह भक्तिभावके साथ परमात्मा मानकर परमप्रेम करनेवाली रानियां कृष्ण जैसेही कृष्णके योग्य-पुत्र साम्बको देखकर वात्सल्यसे ओतप्रोत हो उसका आलिङ्गन और चुम्बन कर रही थीं। साम्ब भी छोटे बच्चेकी तरह उनके पास उपस्थित था। पर नारद इस पराभक्तिके रहस्यको न समझ सके इस कारण उन्होंने साम्बकी सब बातें श्रीकृष्ण चन्द्रसेकहदीं, भगवान् कृष्णनेदुर्वासाके क्रोधसेप्रेरित होकर दुर्वाक्यबोलकर कुष्ठी होनेका शाप दे दिया ॥११।१३॥ कहते ही साम्ब कुष्ठी हो गया, हाथ जोड़ प्रणामकर पिता श्रीकृष्णसे बोला कि, हे तात! मुझे शाप क्यों दिया ॥१४॥ भगवान्ने दिव्य दृष्टिसे निश्चय कर लिया था कि, इसका दोष नहीं, दुर्वासाका क्रोधही कारण है। और कुछ बात नहीं है उसीसे मेरे मुखसे ऐसा वचन निकला है ॥१५॥ साम्बसे कह दिया कि, तुझ निष्पाप पवित्र पुत्रपर मुझे अवश्य कृपा करनी चाहिये, तू सूर्य देवका व्रत कर, इससे तेरा कुष्ठ शीघ्रही नष्ट हो जायगा ॥१६॥ साम्बने श्रीकृष्णजीसे पूछा कि, हे पितः! मैं उस व्रतको कैसे करूँ, जो वह फल दे, विधि क्या, मन्त्र कौन और दान क्या तथा किसका पूजन होता है? ॥१७॥ श्री-कृष्णजी बोले कि, आश्वयुज मासमें जब रविवार आवे तब इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये स्त्रियां तो विशेष करके इस व्रतको करें ॥१८॥ ए बेटे! जबतक साल पूरा न हो तबतक इसी विधिसे करते रहना, गोबरसे भूमिपर एक गोल मंडल बनावे, रक्तचन्दन पुष्प और अक्षत मिला हुआ अर्घ्य, हे साम्ब! तुम इस मंत्रसे सूर्यको देना ॥१९॥ ॥२०॥ हे सूर्य! हे भास्कर! जैसे सब दिशाएँ आपके किरणोंसे निर्मल रहती हैं, उसी तरह आप इस मेरे अर्घ्यसे सबआशाओंको सफल कर दें मुझे निर्मल करें ॥२१॥ यह अर्घ्यका मंत्र है। जबतक वर्ष न पूरा हो तबतक इसी तरह पूजन करता रहे, व्रतके पूरा होते ही उद्यापन करे ॥२२॥ गोबरसे भूमिको लीपकर मंडल बनावे उसकी रेखाएँ रक्तचन्दन और कुंकुमकी होनी चाहिये ॥२३॥ उसपर बारह दलका कर्णिका सहित कमल बनावे॥ उन्हें सिन्दूरसे भरे तथा जपाके फूलोंसे शोभित करे ॥२४॥ उसके बीचमें प्रवालके अंकुरोंके साथ कुम्भ स्थापित करे। उसपर शालितण्डुलोंसे भरा शर्करा और चन्दनसे अन्वित ताम्बेका पात्र रखे, उसपर शक्तिके अनुसार बनाये हुए हाथमेंकमललिये सोनेके सूर्य्य देव स्थापित करे, दो लाल वस्त्र उढावे, पंचामृतसे स्नान करावे। रक्त चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ऋतुफल इनसे अपने वैभवके अनुसार पूजन करे ॥२५–२८॥ अंगपूजा सूर्य्यके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजता हूं; वरुणके लिये नमस्कार, जांघोंको पूजता हूं; माधवके० जानुओंको पू०; धाताके० ऊरुओंको पू०; हरिके० कटीको पू०; भगके० गुह्यको पू०;

सुवर्णरेताके० नाभिको पू०; अर्यमाके ० जठरको पू०; दिवाकरके० हृदयको पू०; तपनके० कंठको पू०; भानुके० स्कन्धोंको पू०; हंसके० हाथोंको पू०; मित्रके ० मुखको पू०; रविके ० नासिकाको पू०; खगके ० नेत्रोंको पू० श्रीकृष्णके० कानोंको पू०; हिरण्यगर्भके ललाटको पू०; आदित्यके शिरको पू०; भास्करके लिये नमस्कार सर्वाङ्गको पूजता हूं ।। पापनाशके लिये वारंवार नमस्कार है । सात घोड़े जुते रथमें चलनेवाले विश्वात्माके लिये नमस्कार है, हे विधातः । तुझ सामः ऋग्, यजुके तेजके खजाने भव सागरके जहाज, सविताके लिये नमस्कार है ।।२९।। यह सूर्य्यकी प्रार्थना है । इस प्रकार सूर्य्यको पूजकर नक्त भोजन करे, वस्त्र आभरणोंसे आचार्य्यका पूजन करे ।।३०।। कुंभ सोने समेत इस प्रतिमाको आचार्यको भेंट करदे कि संसारके दुखोंसे पार करनेवाले भगवान् शिव प्रसन्न हो जायें ।।३१।। पीछे अपूप और पायससे ब्राह्मण भोजन करावे, शक्तिके अनुसार दक्षिणाके साथ उन्हें कुंभ दे ।।३२।। जो कोई भलीभांति इस उत्तम व्रतको करता है, उसे बड़ा भारी पुण्य होता है ।।३३।। उसके कोई रोग नहीं रहता और परम तेजस्वी तथा बेटे नातीवाला होता है यहां देव दुर्लभ भोगोंको भोगकर ।।३४।। शरीरके अन्तमें उत्तम पद पाता है एवं इस लोकमें कुष्ठ जैसे रोगोंसे भी छूटकर परम सिद्धिको पा जाता है ।।३५।। किसी भी जन्ममें उसकी आशाका भंग नहीं होता, हे वत्स ! इस कारण तुम इस उत्तम व्रतको अवश्य करो ।।३६।। साम्ब पिता कृष्णसे कहे हुए इन उत्तम वचनोंको सुन व्रत करके उत्तम सिद्धिको पागया ।।३७।। जो कोई इस व्रतको भक्तिपूर्वक सुनता या सुनाता है वे पवित्र दोनों कर्म करनेवाले सूर्य्य लोकको प्राप्त करते हैं ।।३८।। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ आशादित्यव्रत पूरा हुआ।।

दानफलव्रतम्

अथाश्विनशुक्लान्त्यभानुवासरमारभ्य माघशुक्लसप्तम्यवधि दानफलव्रतम् ।। तत्र पूजा—ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।। केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ।। इति ध्यानम् ।। जगन्नाथायः० आवाहयामि । पद्मासनाय० आसनं० । ग्रहपतये० पाद्यं० । त्रैलोक्यान्धतमोहर्त्रे० अर्घ्यं:० । मित्राय० आचमनीयं० । विश्वतेजसे० पञ्चामृतं० । सवित्रे० शुद्धोदकं० । जगत्पतये० वस्त्रं० । त्रिमूर्तये० यज्ञोपवीतं० । हरये० गन्धं० । सूर्याय० अक्षतान्० । भास्कराय० पुष्पं० । अहर्पतये० धूपं० । अज्ञाननाशिने० दीपं० । लोकेशाय० नैवेद्यं० ।। रवये० तांबूलं० । भानवे० दक्षिणां। पूष्णे० फलं० । खगाय० नीराजनं० । भास्कराय० पुष्पाञ्जलिं० । सर्वात्मने० प्रदक्षिणां० ।। नमस्ते देवदेवेश नमस्ते वेदमूर्तये ।। नमः कमलहस्ताय आदित्याय नमोनमः ।। प्रार्थनानमस्कारौ ।। दिवाकर नमस्तुभ्यं पापं नाशय भास्कर ।। त्रयीमयार्क विश्वात्मन् गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। अनेन द्वादशार्घ्यान् दद्यात् ।। पूजनम् ।। इति पूजा ।। अथ कथा—पितुर्गृहे वर्तमाना कुन्ती व्यासंददर्शह ।। नमस्कृत्वा तु तं भक्त्या पाद्यार्घ्याचमनीयकम् ।। १ ।। दत्त्वा संप्रार्थयामास कुन्ती मुकुलिताञ्जलिः ।। पतिपुत्रान्नमोक्षार्थं व्रतं ब्रूहि महामुने ।। २ ।। व्यास उवाच ;।। शृणु दानफलं नाम वच्मि सर्वव्रतोत्तमम् ।। कैलासशिखरे रम्ये पार्वती शिवमब्रवीत् ।। ३ ।। व्रतानां सर्वदानानामुत्तमं ब्रूहि तत्त्वतः ।। शङ्कर उवाच ।। साधु पृष्टं त्वया देवि ह्युच्यते सर्वतः शुभम् ।। ४ ।। भूमौ तु

भारते वर्षे पुण्ये च यमुनातटे ।। ऋषिपत्नीसमूहश्च व्रतं कर्तुं समागतः ।। ५ ।। तत्र गत्वा देवि शृणु प्रवदिष्यन्ति ताः शुभम् ।। शम्भोरनुज्ञया देवी कैलासादागता भुवि ।। ६ ।। यमुनां गन्तुकामा सा ददर्श कुसुमावतीम् ।। काञ्चिन्मार्गेऽतिदुःखेन क्लिश्यन्तीं च विपुत्रिकाम् ।। ७ ।। विदेहवासिनीं दीनां पतिभ्रष्टां सुदुःखिताम् ।। कुसुमावतीं तदा देवी ह्युवाच मधुरं वचः ।। ८ ।। आगच्छ त्वं मया सार्धं करिष्यावः शुभं व्रतम् ।। पत्या च सह संयोगः पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति ।। ९ ।। धनप्राप्तिश्च बहुला कृते दानफलव्रत।। तया सह व्रतं ह्येतत्कर्तुं प्राप्ता शुचिस्मिता ।। १० ।। तथैव च पतिभ्रष्टा पुत्रहीनास्मि दुःखिता ।। इत्यन्या ह्यवदद्देवीं मया सह व्रतं कुरु ।। ११ ।। तच्छ्रुत्वा तां गृहीत्वा तु ताभ्यां सार्धं जगाम ह ।। पुण्यां च यमुनां गत्वा पूर्वाह्णे भानुवासरे ।। १२ ।। तत्र दृष्ट्वा तु सा देवी पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ।। इदं व्रतं किमेतन्मे वक्तव्यं तु ऋषिस्त्रियः ।। १३ ।। स्त्रिय ऊचुः ।। पुण्यं व्रतमिदं देवि सौरं पापप्रणाशनम् ।। सर्वसम्पत्करं स्त्रीणां पतिपुत्रान्नमोक्षदम् ।। १४ ।। धर्मार्थकाममोक्षादीन्ददातीदं व्रतं नृणाम् ।। कन्यादानसहस्रेभ्यो गोदानेभ्यस्त्रिलक्षतः ।। १५ ।। भूहिरण्यतिलादीनां दानेभ्योऽप्यधिकं शिवम् ।। सर्वदानस्य फलदं तस्माद्दानफलव्रतम् ।। १६ ।। तच्छ्रुत्वा पार्वती प्राह करिष्यामो वयं व्रतम् ।। दानफलव्रतं ब्रूहि कालद्रव्यविशेषतः ।। १७ ।। स्त्रिय ऊचुः ।। पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।। सप्ताश्वरथसंयुक्तो द्विभुजश्च सदा रविः ।। १८ ।। ध्येयः सदासवितृम० चक्रः ।। १९ ।। एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यग् भास्करं वेदरूपिणम् ।। आवाहयेज्जगन्नाथं भास्करं वेदरूपिणम् ।। २० ।। नमः पद्मासनायेति दद्यादासनमुत्तमम् ।। पाद्यं ग्रहपते तुभ्यं मित्रायाचमनं तथा ।। २१ ।। त्रैलोक्यान्धतमोहर्त्रे अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नतः ।। पञ्चामृतविधानेन स्नापयेद्विश्वतेजसम् ।। २२ ।। शुद्धोदकं च दद्याद्वै सवित्रे चैव पार्वति ।। जगत्पतये वस्त्रं च ह्युपवीतं त्रिमूर्तये ।।२३।। रक्तगन्धन्तु हरये दद्यात्सूर्याय चाक्षतान् ।। दद्यात्पुष्पं भास्कराय करवीरादिकं शुभम् ।। २४ ।। अहर्पतये वै धूपं दीपमज्ञाननाशिने ।। लोकेशाय च नैवेद्यं ताम्बूलं रवये तथा ।। २५ ।। दक्षिणां भानवे दद्यात्पञ्चार्तिक्यं खगाय च ।। फलं च पूष्णे दद्याद्वै सर्वकामार्थसिद्धये ।। २६ ।। पुष्पाञ्जलिं भास्कराय दद्याद्वै परया मुदा ।। सर्वात्मने च दद्याद्वै प्रदक्षिणाः पुनः पुनः ।। २७ ।। नमस्ते देवदेवेश नमस्ते वेदमूर्तये ।। नमः कमलहस्ताय आदित्याय नमो नमः ।। २८ ।। नमस्कुर्यादनेनैव प्रार्थयेद्विश्वतेजसम् ।। रक्तगन्धाक्षतैस्ताम्रपात्रेणार्घ्यं समन्त्रकम् ।। २९ ।। दद्यादनेन मंत्रेण व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। दिवाकर नमस्तुभ्यं पापं नाशय भास्कर ।। ३० ।। त्रयीमयार्क विश्वात्मन्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।।एवं द्वादशवारं च व्रती दद्यात्समन्त्र-

कम् ।। ३१ ।। तैलाम्ललवणक्षारं वर्जयित्वा तु भोजने ।। बहुबीजफलं वर्ज्यं शेषं चैव तु भोजयेत् ।। ३२ ।। कन्दमूलफलाहारो विशेषेण फलप्रदः ।। नीवारधान्य-दध्यादिभोजनं वा व्रते स्मृतम् ।। ३३ ।। एवं कुर्याद्व्रतं सम्यक् प्रत्येकं भानुवासरे ।। माघमासे शुक्लपक्षे सप्तम्या यावदन्तिकम् ।। ३४ ।। षष्ठ्यामुपोष्य विधिवत्स-प्तम्यामुदये रवेः ।। रवेरभ्यर्च्य विधिवत्प्रतिमां वस्त्रसंयुताम् ।। ३५ ।। आचार्येणा-ग्निमाधाय गोमयेनोपलेपिते ।। सघृतं परमान्नं च होमयेत्सौरमन्त्रतः।। ३६ ।। पायसं प्रतिमां वस्त्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। एवं कुर्यात् पञ्चवर्षं पञ्चधान्यं समर्पयेत् ।। ३७ ।। पञ्चप्रस्थप्रमाणं च प्रथमे व्रीहिमेव च ।। गोधूमांश्च द्वितीये ऽब्दे तृतीये चणकांस्तथा ।। ३८ ।। चतुर्थे तिलदानं च पञ्चमे माषकांस्तथा ।। सफलां दक्षिणां दद्याद्विप्रान्द्वादश भोजयेत् ।। ३९ ।। एवं कुर्याद्व्रतं सम्यक्संपूर्ण-फलमाप्नुयात् ।। तच्छ्रुत्वा ता गृहीत्वाथ चक्रिरे व्रतमुत्तमम् ।। ४० ।। पद्मावती पतिं प्राप दमयन्ती यथा नलम् ।।सुमित्रा प्राप पुत्रं च मानयन्ती ह्युमां बहु ।।४१।। सर्वभाग्ययुता गौरी स्वर्णमाधूफलं तथा ।। तद्गृहीत्वा गता मार्गे ददर्श ब्राह्मणो-त्तमम् ।। ४२ ।। विप्राय तत्फलं दत्त्वा ततः शिवपुरं ययौ ।। ततः स सफलो विप्रो गृहं गत्वा सविस्मयः ।। ४३ ।। धनधान्यसमृद्धं तु बहुगोधनसंकुलम् ।। सर्व-रत्नमयं दृष्ट्वा भार्या वचनमब्रवीत् ।। ४४ ।। सर्वसंपत्प्रदं चाद्य किं कृतं हि त्वया शुभम् ।। साब्रवीद्भगवन्स्वामिन् भवद्भिः फलमाहृतम् ।। ४५ ।। स्वर्णमाधूफलं तच्च केन दत्तं वद प्रभो ।। इति पृष्टस्तया विप्रो भार्यां वचनमब्रवीत् ।। ४६ ।। महादेव्या फलं दत्तं पार्वत्या कृपया मम ।। इति तस्य वचः श्रुत्वाभार्या वचनमब्रवीत् ।। ४७ ।। गन्तव्यमाशु कैलासं मया सार्धं त्वया प्रभो ।। ततः शिवपुरं प्राप्तो भार्यया संयुतो द्विजः ।। ४८ ।। नमस्कृत्य यथा भक्त्या पप्रच्छैवं शिवां द्विजः ।। तत्फलं कथ्यतां देवि कथं प्राप्तं त्वया शुभम् ।। ४९ ।। ततो देव्या च तत्सर्वमुक्तं दानफलव्रतम् ।। श्रुत्वागत्य कृतं सर्वं तेन दानफलव्रतम् ।। ५० ।। कुन्ति त्वयापि कर्तव्यमिदं दानफलव्रतम् ।। ये पठन्तीदमाख्यानं शृण्वन्ति श्रद्धयान्विताः ।।ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ।। ५१ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे दानफलव्रतं सम्पूर्णम् ।।

दानफलव्रत– आश्विन शुक्लाके अन्तिम रविवारको आरंभ करके माघशुक्ला सप्तमीतक होता है । पूजा-सदा सूर्य्यमण्डलमें सूर्यके अन्तर्यामीरूपसे विराजमान रहनेवाले जिसे कि, छा० " ओं हिरण्यश्मश्रु " कह-कर याद करते हैं उस कमलके आसनपर विराजमान हुए नारायणका ध्यान करना चाहिये कि, केयूर और मकराकृति कुण्डल धारण किये किरीट पहिने हुए सबके मनोहारी तेजोमय शरीरवाले तथा शंख चक्र धारण किये हुए हैं, इससे ध्यान; जगन्नाथके लिये नमस्कार, जगन्नाथका आवाहन करता हूं, इससे आवाहन; पद्मासनके लिये नमस्कार, आसन; ग्रहोंके पतिके लिये नमस्कार, पाद्य, तीनों लोकोंके गाढ़ अन्धकारको नष्ट करने-

वालेके० अर्घ्य; मित्रके० आचमननीय; विश्वतेजाके० पंचामृतस्नान; सविताके० शुद्धपानीका स्नान; जगत्के पतिके० वस्त्र; त्रिमूर्तिके० यज्ञोपवीत; हरिके० गन्ध; सूर्यके० अक्षत; भास्करके० पुष्प; अहर्पतिके० धूप; अज्ञानके नष्ट करनेवालेके० दीप; लोकेशके० नैवेद्य; रविके० ताम्बूल; भानुके० दक्षिणा, पूषाके० फल; खगके० नीराजन; भास्करके० पुष्पांजलि; सर्वात्माके० प्रदक्षिणा; हे देवदेवेश! तुझ वेदमूर्तिके लिये नमस्कार, एवं कमल हाथमें लिये हुए तुझ आदित्यके लिये वारंवार नमस्कार है, इससे प्रार्थना और नमस्कार; हे दिवाकर ! तेरे लिये नमस्कार है, हे भास्कर ! पापोंको नष्टकर, हे त्रयीमय ! हे अर्क !

हे विश्वात्मन् ! अर्घ्य ग्रहण कर, तेरे लिये बारबार नमस्कार है, इससे बारह अर्घ्य समर्पण करे । इसके पीछे ब्राह्मणोंका पूजन करे । यह पूजा पूरी हुई । कथा-पिताके घरमें रहती हुई कुन्तीने व्यास देवको देख भक्तिभावके साथ नमस्कार कर पाद्य अर्घ्य आचमनीय ।।१।। दे उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना कि की, हे महामुने ! पति, पुत्र, अन्न और मोक्षके लिये कोई व्रत कहिये ।।२।। व्यास बोले कि, सुनिये दान फल नामक एक सर्वोत्तम व्रत है । कैलासके शिखरपर पार्वतीजीने शिवजीसे कहा कि ।।३।। हे महाराज ! जो सब व्रतोंमें उत्तम हो उस व्रतको आप मुझे सुनावें, शिव बोले कि, अच्छा पूछा, में सर्वश्रेष्ठ व्रतको पानेकी विधि कहता हूं ।।४।। पुण्यभूमि भारतवर्षमें ऋषिपत्नियोंका समूह यमुना किनारे व्रत करनेके लिये आया है ।।५।। हे देवि ! वहां जाकर सुन वह उसे कहेंगी, शिवकी आज्ञासे देवी कैलाससे भारत वर्षके लिये ।।६।। आई यमुना किनारे आनेकी इच्छासे चली, मार्गमें उन्हें अत्यन्त क्लेशसे रोती हुई निपुत्री कुसुमावती मिली ।।७।। वह विदेशमें रहती थी, दीन थी पतिसे भ्रष्टा थी ।। अतएव अत्यन्त दुखी थी उसे देख देवी मीठे वचन बोली कि ।।८।। तू मेरे साथ आजा, हम तुम दोनों पवित्र व्रत करेंगी । तेरा पतिके साथ संयोग और पुत्रप्राप्ति हो जायगी ।।९।। दानफलव्रतके करनेपर बहुतसी धन प्राप्ति होगी । तेरे साथ व्रत करनेको हे शुचिस्मिते ! में आई हूं ।।१०।। इसीकी ही तरह में भी पतिभ्रष्ट , पुत्र हीन और दुखी हुं यह सुन कोई दूसरी बोली कि, आप मेरे साथ ही व्रत करें ।।११।। यह सुन उसे भी साथ लिया और उन दोनोंके साथ रविवारके दिन पूर्वाह्णमें यमुना किनारे पहुंच गईं ।।१२।। वहां स्त्री समुदायको देख देवीने उनसे पूछा कि, हे ऋषि पत्नियो ! आप किस व्रतको कर रही हो ? यह मुझ बतादो ।।१३।। ऋषिपत्नी बोली कि, यह पापनाशक सूर्य्यव्रत है । सभी संपत्तियोंका करनेवाला है तथा स्त्रियोंको पति पुत्र अन्न और मोक्षका देनेवाला है ।।१४।। यह व्रत धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका देनेवाला है । एक हजार कन्यादान तीन लाख गोदान ।।१५।। भू, हिरण्य और तिल दानसे भी अधिक आनन्ददायक है, सब दानोंका फल देनेवाला है । इस कारण इसे दानफलव्रत कहते हैं ।।१६।। यह सुन पार्वती बोली कि, हम इस व्रतको करेंगी आप काल द्रव्यकी विशेषताके साथ दानफलव्रत कहिये ।।१७।। स्त्रियां बोली कि, कमलके आसनवाले, पद्म हाथमें लिये हुए, पद्मगर्भके समान द्युतिवाले, रथमें सात घोडा जुते हुए हैं, ऐसे दो भुजाओंवाले रवि भगवान् हैं ।। १८ ।। (ध्येय : सदा इस १९ के श्लोकसे लेकर ३१ श्लोक तकके पूजा विधानके श्लोक पूजा प्रकरणमें कह दिये हैं । इस कारण अब इनकी यहां व्याख्या नहीं करते) तेल, अम्ल, लवण, क्षार और अनार फल इन वस्तुओंको छोड़कर बाकी वस्तुओंका भोजन करे ।।३२।। यदि कन्द मूल फल खाय तो विशेष रूपसे फल देनेवाला है, नीवार, धान्य और दधि आदिकका फलाहार करे ।।३३।। इस व्रतको प्रत्येक रविवारको करे, माघमासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीके दिन समाप्त कर दे ।।३४।। समाप्तिकी सप्तमीके पहिले की छठके दिन विधिपूर्वक उपवास करके सप्तमीके दिन सूर्य्यके उदय होते ही विधिपूर्वक सूर्य्यकी सवस्त्र प्रतिमाका पूजन करके ।।३५।। गोबरसे लिपे स्थलपर आचार्यसे अग्न्याधान कराकर वेद सूर्य्यके मन्त्रसे घीसहित परमान्नका हवन करे ।।३६।। पायस प्रतिमा और वस्त्र आचार्यको भेंट कर दे, इस तरह पांच वर्ष करे तथा पांच धान्य समर्पित करे ।।३७।। प्रथममें पांच प्रस्थ व्रीहि, दूसरेमें गोधूम और तीसरे वर्षमें चने।।३८।।चौथेमें तिल तथा पांचवें वर्षमें इतनेही प्रस्थ माष देने चाहिये । फलसमेत दक्षिणा तथा बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।।३९।। इस प्रकार व्रत करके सम्पूर्ण फलको पाजाता है । उसे सुन इन्होंने ग्रहण कर लिया तथा किया ।।४०।। जैसे दयमन्तीको नल मिला था उसी तरह पद्मावतीको भी उत्तम पति

मिल गया। उमाका मान करती हुई सुमित्राको उत्तम पुत्र मिल गया ॥४१॥ सब भाग्यवाली गौरी स्वर्ण माधूफल हाथमें लेकर आई, मार्गमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण मिल गया ॥४२॥ ब्राह्मणको वह फल देकर शिवपुर कैलासको चल दी। वह ब्राह्मण फलसहित घर आकर बड़े विस्मयमें पड़ा ॥४३॥ क्योंकि उसका घर उस समय धनधान्यसे समृद्ध बहुतसी गौओंसे समावृत्त एवं सब रत्नोंसे भरा हुआ था वह देख अपनी स्त्रीसे बोला ॥४४॥ कि, तुमने सब संपत्तियोंका देनेवाला कौनसा उत्तम कर्म किया है ? यह सुन वह बोली कि, हे स्वामिन् ! आप जो फल लाये थे ॥४५॥ वह स्वर्ण माधूफल हैं। यह आपको किसने दिया ? यह तो बताइये, यह सुन ब्राह्मण कहने लगा ॥४६॥ कि, महादेवी पार्वतीने कृपा करके यह फल मुझे दिया है, स्त्री बोलि कि ॥४७॥ शीघ्रही आप मेरे साथ कैलास चलें ब्राह्मण स्त्रीके साथ कैलास चला आया ॥४८॥ वहां भक्तिपूर्वक पार्वतीजोको प्रणाम करके पूछने लगा कि, हे देवि ! आपको यह फल कैसे मिला बतादीजिये ॥४९॥ यह सुन देवीने सब दानफलव्रत सुना दिया, सुनकर ब्राह्मणने घर आ वह व्रत किया ॥५०॥ हे कुन्ति ! आपको भी यह दानफलव्रत करना चाहिये, जो इस आख्यानको पढ़ते वा श्रद्धाके साथ सुनते हैं वे सब पापोंसे छूटकर परम गतिको पा जाते हैं ॥५१॥ यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ दान फलव्रत पूरा हुआ ॥

सोमवार पूजाविधि

येभ्यो मातेति जप्त्वा ॥ आगमार्थं तु देवानामिति घण्टानादं कृत्वा ॥ अपसर्पन्त्विति छोटिकामुद्रां कृत्वा तीक्ष्णदंष्ट्रेति क्षेपत्रालं सम्प्रार्थ्य ॥ आचम्य तिथ्यादि संकीर्त्य ॥ मम सकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यविजयायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धये उमामहेश्वरप्रीत्यर्थं चतुर्दशवर्षपर्यन्तं सोमवारव्रतं करिष्ये । तदङ्गत्वेन षोडशो पचारैरुमामहेश्वरपूजनं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य ॥ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥ पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्र कृत्ति वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥इतिध्यात्वाॐनमः शिवायेति मन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयेत्॥ अथ कथा–ईश्वर उवाच ॥ नित्यानन्दमयं शान्तं निर्विकल्पं निरामयम् ॥ शिवतत्त्वमनाद्यन्तं ये विदुस्ते परं गताः ॥ १ ॥ विरक्ताः कामभोगेभ्यो ये च कुर्वन्त्यहैतुकीम् ॥ भक्ति परां शिवे धीरास्तेषां मुक्तिर्न संशयः ॥ २ ॥ विषयानभिसंधाय ये कुर्वन्ति शिवे रतिम् ॥ विषयैर्नाभिभूयन्ते भुञ्जानास्तत्फलान्यपि ॥ ३ ॥ येन केनापि भावेन शिवभक्तियुतो नरः ॥ न विनश्यति यात्येव कालेनापि परां गतिम् ॥४॥ आरुरुक्षुः परं स्थानं विषयांस्त्यक्तुमक्षमः ॥ पूजयेत्क*र्मणा शम्भुं भोगान्ते शिवमाप्नुयात् ॥ ५ ॥ नरा अशक्ता उत्स्रष्टुं प्रायो विषयवासनाम् ॥ अतः कर्ममयी तूक्ता कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ६ ॥ मायामयेऽपि संसारे ये विहृत्य चिरं सुखम् ॥ मुक्तिमिच्छन्ति देहान्ते तेषां धर्मोऽयमीरितः ॥ ७ ॥ शिवपूजा सदा लोके हेतुः स्वर्गापवर्गयोः ॥ सोमवारे विशेषेण प्रदोषे च गुणान्विते ॥ ८ ॥ श्रावणे चैत्रवैशाखे ऊर्जे वा मार्गशीर्षके ॥ प्रथमे सोमवारे तद्गृह्णीयाद्व्रतमुत्तमम् ॥ ९ ॥ केवलं चापि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम् ॥ न तेषां विद्यते किंचिदिहा-

* कायिकव्यापारेण ।

मुत्रच दुर्लभम् ।। १० ।। उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः ।। वैदिकैर्लौकिकैर्मंत्रैर्विधिवत्पूजयेच्छिवम् ।। ११ ।। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्यावापि सभर्तृका विधवा वापि संपूज्य लभते वरमीप्सितम् ।। १२ ।। अत्रापि कथयिष्यामि कथां श्रोतृमनोहराम् ।। श्रुत्वा मुक्तिं प्रयात्येव भक्तिर्भवति शाम्भवी ।। १३ ।। आर्यावर्त्ते नृपः कश्चिदासीद्धर्मभृतां वरः ।। चित्रवर्मेति विख्यातो धर्मराजो दुरात्मनाम् ।। १४ ।। स गोप्ता धर्मसेतूनां शास्ता दुष्पथगामिनाम् ।। यष्टा समस्तयज्ञानां त्राता शरणमिच्छताम् ।। १५ ।। कर्ता सकलपुण्यानां दाता सकलसंपदाम् ।। जेता सपत्नवृन्दानां भक्तः शिवमुकुन्दयोः ।। १६ ।। सोऽनुकलासु पत्नीषु पुत्रमेकं न लब्धवान् ।। चिरेण प्रार्थयँल्लेभे कन्यामेकां वराननाम् ।। १७ ।। सलब्ध्वा तनयां मेने हिमवानिव पार्वतीम् ।। आत्मानं देवसदृशं संपूर्णं च मनोरथम् ।। १८ ।। स एकदा जातकलक्षणज्ञानाहूय सर्वान्द्विजवृन्दमुख्यान् ।। कौतूहलेनाभिनिविष्टचेताः पप्रच्छ कन्याजनने फलानि ।। १९ ।। अथ तत्राब्रवीदेको बहुज्ञो द्विजसत्तमः ।। एषा सीमन्तिनी नाम्ना कन्या तव महीपते ।। २० ।। उमेव माङ्गल्यवती दमयन्तीव रूपिणी ।। भारतीव कलाभिज्ञा लक्ष्मीरिव महागुणा ।। २१ ।। सप्रजा देवमातेव जानकीव धृतव्रता ।। रविप्रभेव सत्कान्तिश्चन्द्रिकेव मनोरमा ।। २२ ।। दशवर्षसहस्राणि सह भर्त्रा प्रमोदते ।। प्रसूय तनयानष्टौ परं सुखमवाप्स्यति ।। २३ ।। इत्युक्तवन्तं नृपतिर्धनैः संपूज्य तं द्विजम् ।। अवाप परमां प्रीतिं तद्वागमृतसेवया ।। २४ ।। अथान्योऽपि द्विजः प्राह धैर्यवानविशंकितः ।। एषा चतुर्दशे वर्षे वैधव्यं प्रतिपत्स्यति ।। २५ ।। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य वज्रनिर्घातनिष्ठुरम् ।। मुहूर्तमभवद्राजा चिन्ताव्याकुल मानसः ।। २६ ।। अथ सर्वान् समुत्सृज्य ब्राह्मणान्ब्रह्मवत्सलः ।। सर्वं दैवकृतं मत्वा निश्चिन्तः पार्थिवोऽभवत् ।। २७ ।। सापि सीमन्तिनी बाला क्रमेण गतशैशवा ।। वैधव्यमात्मनो भावि शुश्रावात्मसखीमुखात् ।। २८ ।। परं निर्वेदमापन्ना चिन्तयामास बालिका ।। याज्ञवल्क्यमुनेः पत्नीं मैत्रेयीं पर्यपृच्छत ।। २९ ।। मातस्त्वच्चरणाम्भोजं प्रपन्नास्मि भयाकुला ।। सौभाग्यवर्धनकरं मम शंसितुमर्हसि ।। ३० ।। इति प्रपन्नां नृपतेः कन्यां प्राह मुनेः सती ।। शरणं व्रज तन्वङ्गि पार्वतीं शिवसंयुताम् ।। ३१ ।। सोमवारे शिवं गौरीं पूजयस्व समाहिता ।। उपोषिता च सुस्नाता विरजाम्बरधारिणी ।। ३२ ।। मित वाङ्निश्चलमतिः पूजां कृत्वायथोचिताम् ।। अब्दमेकं व्रतं कुर्याद्व्रतोद्यापनमाचर ।। ३३ ।। उमया सहितं रुद्रं सुवर्णेन च कारयेत् ।। रौप्येण वृषभं कृत्वा कलशोपरि विन्यसेत् ।। ३४ ।। तस्याग्रे लिङ्गतोभद्रं ब्रह्मादिस्थापनं तथा ।। स्वशाखोक्तेन विधिना हुनेद्घृततिलौदनम् ।। ३५ ।।

पृथक् शिवशिवामन्त्रैरष्टोत्तरशतद्वयम्।।उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् ।। ३६ ।। ब्राह्मणान्भोजयित्वाथ शिवं सम्यक् प्रसादय ।। पापक्षयोऽभिषेकेण साम्राज्यं पीठपूजनात् ।। ३७ ।। गन्धदानाच्च सौभाग्यमायुरक्षतदानतः ।। भूपदानेन सौगन्ध्यं कान्तिर्दीपप्रदानतः ।। ३८ ।। नैवेद्येन महाभोगो लक्ष्मीस्ताम्बूलदानतः ।। धर्मार्थकाममोक्षाश्च नमस्कार प्रभावतः ।। ३९ ।। अष्टैश्वर्यादिसिद्धीनां जप एव हि कारणम् ।। होमेन सर्वसौख्यानां समृद्धिरुपजायते ।। ४० ।। सर्वेषामेव देवानां तुष्टिः संयमिभोजनात्।। इत्थमाराधय शिवं सोमवारे शिवामपि ।। ४१ ।। अत्यापदमपि प्राप्तां निस्तीर्य सुभगा भव ।। शिवपूजाप्रभावेण तरिष्यसि महाभयात् ।। ४२ ।। इत्थं सीमन्तिनीं सम्यगनुशास्य मुनः सती ।। ययौ सापि वरारोहा राजपुत्री तथाकरोत् ।। ४३ ।। दमयन्त्यां नलस्यासीदिन्द्रसेनाह्वयः सुतः ।। तस्य चन्द्राङ्गदो नाम पुत्रोऽभूच्चन्द्रसंनिभः ।। ४४ ।।चित्रवर्मा नृपश्रेष्ठः समाहूय नृपात्मजम् ।। कन्यां सीमन्तिनीं तस्मै प्रायच्छद्गुर्वनुज्ञया ।। ४५ ।। अभून्महोत्सवस्तत्र तस्या ह्युद्वाहकर्मणि ।। यत्र सर्वमहीशानां समुदायो महानभूत् ।। ४६ ।। तस्याः पाणिग्रहं काले कृत्वा चन्द्राङ्गदः कृती ।। उवास कत्तिचिन्मासांस्तत्रैव श्वशुरालये ।। ४७ ।। एकदा यमुनां तर्तु स राजतनयो ययौ ।। ममज्ज सह कैवर्तैरावर्ताभिहता तरी ।। ४८ ।। हाहेति शब्दः सुमहानासीत्तस्यास्तटद्वये ।। पश्यतां सर्वसैन्यानां प्रलापो दिवमस्पृशत् ।। ४९ ।। तच्च सीमन्तिनी श्रुत्वा पपात भुवि मूर्च्छिता ।। इन्द्रसेनोऽपि राजेन्द्रः पुत्रवार्तां सुदुःसहाम्[1] ।।५०।। आबालवृद्धवनिताश्चुक्रुशुः शोकविह्वलाः ।। सा च सीमन्तिनी साध्वी भर्तृलोकं यियासती ।। ५१ ।। पित्रा निषिद्धा स्नेहेन वैधव्यं प्रत्यपद्यत ।। मुनिपत्न्योपदिष्टं यत्सोमवारव्रतं शुभम् ।। ५२ ।। न तत्याज शुभाचारा वैधव्यं प्राप्तवत्यपि ।। एवं चतुर्दशे वर्षे दुःखं प्राप्य सुदारुणम् ।। ५३ ।। ध्यायन्त्याः शिवपादाब्जं वत्सरत्रयमत्यगात् ।। चन्द्राङ्गदोऽपि तद्भर्ता निमग्नो यमुनाजले ।। ५४ ।। अधोधो मज्जमानोऽसौ ददर्शोरगकामिनीः ।। जलक्रीडानुरक्तास्ता दृष्ट्वा राजकुमारकम् ।। ५५ ।। विस्मितास्तमधो निन्युः पातालं पन्नगालयम् ।। स नीयमानस्तरसा पन्नगीभिर्नृपात्मजः ।। ५६ ।। तक्षकस्य पुरं रम्यं विशवे परमाद्भुतम् ।। सोऽपश्यद्राजतनयो महेन्द्रभवनोपमम् ।। ५७ ।। नागकन्यासहस्रेण समन्तात्परिवारितम् ।। दृष्ट्वा राजसुतो धीरः प्रणिपत्य सभास्थले ।। ५८ ।। उत्थितः प्राञ्जलिस्तस्थ तेजसाक्षिप्तलोचनः ।। नागराजोपि तं दृष्ट्वा राजपुत्रं-मनोरमम् ।। ५९ ।। अथ पृष्टो राजपुत्रस्तक्षकेन महात्मना ।। कस्यासीत्तनयः कस्त्वं

१ श्रुत्वा मूर्च्छित इत्यावृत्त्यान्वयः ।

को देशः कथमागतः ।। ६० ।। राजपुत्र उवाच ।। अस्ति भूमण्डले कश्चिद्देशो निषधसंज्ञकः ।। तस्याधिपोभवद्राजा नलो नाम महायशाः ।। ६१ ।। स पुण्यकीर्तिः क्षितिपो दमयन्त्याः पतिः प्रभुः ।। तस्यासीदिन्द्रसेनाख्यः पुत्रस्तस्य महात्मनः ।। ६२ ।। चन्द्राङ्गदोऽस्मि नाम्नाहं नवोढः श्वशुरालये ।। विहरन्यमुनातोये विमग्नो दैवचोदितः ।। ६३ ।। एताभिः पन्नगस्त्रीभिरानीतोऽस्मि तवान्तिकम् ।। दृष्ट्वाहं तव पादाब्जं पुण्यैर्जन्मान्तरार्जितैः ।। ६४ ।।अद्य धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि कृतार्थौ पितरौ मम ।। तक्षक उवाच ।। भो भो नरेन्द्रदायाद माभैषीर्धीरतां व्रज ।। ६५ ।। सर्वदेवेषु को देवो युष्माभिः पूज्यते सदा ।। राजपुत्र उवाच ।। यो देवः सर्वदेवेषु महादेव इति स्मृतः ।। ६६ ।। पूज्यते स हि विश्वात्मा शिवोऽस्माभिरुमापतिः ।। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षकः प्रीतमानसः ।। ६७ ।। जातभक्तिर्महादेवे राजपुत्रमभाषत ।। तक्षक उवाच ।। परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते तव राजेन्द्रनन्दन ।। ६८ ।। इत्युक्त्वा बहुरत्नानि दिव्यान्याभरणानि च ।। वाहनाय ददावश्वं राक्षसं पन्नगेश्वरः ।। ६९ ।। तत्सहायार्थमेकं च तथा स्वीयं कुमारकम्।। नियुज्य तक्षकः प्रीत्या गच्छेति विससर्ज तम् ।। ७० ।। ततश्चन्द्राङ्गदः सर्वं संगृह्य विविधं धनम् ।। अश्वं कामगमारुह्य ताभ्यां सह विनिर्ययौ ।। ७१ ।। ततो मुहूर्तेनोन्मज्ज्य तस्मादेव नदीजलात् ।। विजहार तटे रम्ये दिव्यमारुह्य वाजिनम् ।। ७२ ।। अथास्मिन्समये तन्वी साच सीमन्तिनी सती ।। स्नातुं समाययौ तत्र सखीभिः परिवारिता ।। ७३ ।। सा ददर्श नदीतीरे विहरन्तं नृपात्मजम् ।। रक्षसा नररूपेण नागपुत्रेण चान्वितम् ।। ७४ ।। 'दृष्ट्वाऽवरुह्य तुरगादुपविष्टः सरित्तटे ।। चन्द्राङ्गदो वरारोहामुपवेश्येदमब्रवीत् ।। ७५ ।। का त्वं कस्य कलत्रं वा कस्यासीस्तनया सति ।। किमीदृशं गता बाल्ये दुःसहं शोकलक्षणम् ।। ७६ ।। इति स्नेहेन संपृष्टा सा वधूरश्रुलोचना ।। लज्जिता स्वयमाख्यातुं तत्सखी सर्वमब्रवीत् ।। ७७ ।। इयं सीमन्तिनी नाम्ना स्नुषा निषधभूपतेः ।। चन्द्राङ्गदस्य महिषी तनया चित्रवर्मणः ।। ७८ ।। अस्याः पतिर्दैवयोगान्निमग्नोऽस्मिन्महाजले ।। तेनेयं प्राप्तवैधव्या बाला दुःखेन पीडिता ।। ७९ ।। एवं वर्षत्रयं नीतं शोकेनापि बलीयसा ।। अद्येन्दुवासरे प्राप्ते स्नातुमत्र समागता ।। ८० ।। श्रुत्वा चन्द्राङ्गदः सर्वं प्रियायाः शोककारणम् ।। अथाश्वास्य प्रियां तन्वीं विविधैर्वचनैर्नृपः ।। ८१ ।। क्वापि लोके मया दृष्टस्तव भर्ता वरानने ।। त्वं व्रताचरणाच्छ्रान्ता सद्य एवागमिष्यति ।। ८२ ।। नाशयिष्यति ते शोकं द्वित्रैरेव ध्रुवं दिनैः ।। एतच्छंसितुमायातस्तव भर्तुः सखास्म्यहम् ।। ८३ ।।

---

१ तामिति शेषः ।

अत्र कार्यो न सन्देहः शपामि शिवपादयोः ।। तावत्त्वया हृदि स्थाप्यं प्रकाश्यं न च कुत्रचित् ।। ८४ ।। लज्जानम्रमुखीं कर्णे शशंसान्यत्प्रयोजनम् ।। इमं वृत्तान्तमाख्याहि त्वत्पित्रोः शोकतप्तयोः ।। ८५ ।। इत्युक्त्वाश्वं समारुह्य जगाम च नलं प्रति ।। सापि तद्वचनं श्रुत्वा सुभाधाराशताधिकम् ।। ८६ ।। एष एव पतिर्मे स्याद्ध्रुवं नान्यो भविष्यति ।। परलोकादिहायातः कथमेष स्वरूपधृक् ।। ८७ ।। मुनिपत्न्या यदुक्तं मे परमापद्गतापि च ।। व्रतमेतत्कुरुष्वेति तस्य वा फलमद्य मे ।। ८८ ।। नूनं तस्या वचः सत्यं को विद्यादीश्वरेहितम् ।। निमित्तानि च दृश्यन्ते मङ्गलानि दिनेदिने ।। ८९ ।। प्रसन्ने पार्वतीनाथे किमसाध्यं शरीरिणाम् ।। इत्थं विमृश्य बहुधा सा पुनर्मुक्तसंशया ।। ९० ।। एवं चन्द्राङ्गदः पत्नीमवाप समये शुभे ।। ययौ स्वनगरीं भूयः श्वशुरेणानुमोदितः ।। ९१ ।। इन्द्रसेनोऽपि नृपती राज्ये स्थाप्य स्वमात्मजम् ।। तपसा शिवमाराध्य लेभे संयमिनां गतिम् ।। ९२ ।। दशवर्षसहस्राणि सीमन्तिन्या स्वभार्यया ।। सार्धं चन्द्राङ्गदो राजा बुभुजे विषयान्बहून् ।। ९३ ।। प्रासूत तनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम् ।। पतिं सीमन्तिनी लेभे पूजयन्ती महेश्वरम् ।। ९४ ।। शिवलोकं ततो गत्वा शिवेन सह मोदते ।। विचित्रमिदमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ।। यः पठेच्छृणुयाद्भक्त्या प्राप्नोति परमां गतिम् ।। ९५ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे सोमवारव्रतकथा समाप्ता ।। अथोद्यापनम् स्कन्द उवाच ।। व्रतस्योद्यापनं कर्म कथं कार्यं च मानवैः ।। को विधिः कानि द्रव्याणि कथयस्व मम प्रभो ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु षण्मुख यत्नेन लोकानां हितकाम्यया ।। उद्यापनविधिं चैव कथयामि तवाग्रतः ।। यदा सञ्जायते वित्तं भक्तिः श्रद्धासमन्विता ।। स एव व्रतकालश्च यतोऽनित्यं हि जीवितम् ।। चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं सोमवार व्रतं शुभम् ।। श्रावणे कार्तिके ज्येष्ठे वैशाखे मार्गशीर्षके ।। सुस्नातश्च शुचिर्भूत्वा शुक्लाम्बरधरो नरः ।। कामक्रोधाद्यहंकारद्वेषपैशुन्यवर्जितः ।। संपाद्य सर्वसंभारान् मण्डलं कारयेच्छुभम् ।। वस्त्रैः पुष्पैः समाच्छन्नं पट्टवस्त्रैश्च शोभितम् ।। शोभोपशोभासंयुक्तं दीपैः सर्वत्र सोज्ज्वलम् ।। तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिङ्गतोभद्रमण्डलम् ।। अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् ।। अव्रणं सजलं कुम्भं तस्योपरि तु विन्यसेत् ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं मृत्मयं वापि कारयेत् ।।आचार्यं वरयेत्तत्र ऋत्विग्भिः सहितं शुचिः ।। शिवरूपाश्च ते विप्राः पूज्याश्चन्दनपुष्पकैः ।। अनुज्ञातश्च तैर्विप्रैः शिवपूजां समारभेत् ।। रुद्रनाम्ना नमोऽन्तेन ब्राह्मणानपि पूजयेत् ।। कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् ।। सौवर्णेऽप्यथवा रौप्यवृषभे संस्थितं शुभम् ।। उमामाहेश्वरीं मूर्त्तिं पूजयेत्सुसमाहितः ।। वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत् ।। स्वगृह्योक्तेन विधिना कृत्वाग्निस्थापनं ततः ।। ततो होमं

च तन्त्रेण त्र्यम्बकेण च कारयेत् ।। गौरीमिमायमन्त्रेण अष्टोत्तरशतद्वयम् ।। पलाशानां समिद्भिश्च यवव्रीहि तिलाज्यकैः ।। पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्कृत्वा स्विष्टकृदादिकम् ।। होमान्ते च गुरुं पूज्य सपत्नीकं समाहितः ।। प्रतिमां कुम्भसहिताचार्याय निवेदयेत् ।। शम्भो प्रसीद देवेश सर्वलोकेश्वर प्रभो ।। तव रूपप्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः ।। प्रतिमादानमन्त्रः ।। यद्भक्त्या देवदेवेश मया व्रतमिदं कृतम् ।। न्यूनं वाथ क्रियाहीनं परिपूर्णं तदस्तु मे ।। भुञ्जीत सह धर्मात्मा शिष्टैरिष्टै स्वबन्धुभिः ।। अनेनैव विधानेन य इदं व्रतमाचरेत् ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।। इह लोके सुखी भूयाद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।। इति सोमवारव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।। अथ प्रकारान्तरेण सोमवारव्रतं लिख्यते ।। गन्धर्व उवाच ।। कथं सोमव्रतं कार्यं विधानं तत्र कीदृशम् ।। कस्मिन्काले तु कर्तव्यं सर्वं विस्तरतो वद ।। गोभृङ्ग उवाच ।। साधुसाधु महाप्राज्ञ सर्वभूतोपकारक ।। यन्न कस्यचिदाख्यातं तदद्य कथयामि ते ।। सर्वरोगहरं दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। सोमवारव्रतं नाम सर्वभूतोपकारकम् ।। सर्वसिद्धिकरं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ।। सर्वेषामेव विज्ञेयं वर्णानां शुभकारकम् ।। नारीनरैः सदा कार्यं दृष्टादृष्टैफलोदयम्।। ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैः कृतमेतन्महाव्रतम् ।। कृतं च सोमराजेन दक्षशापहतेन च ।। अभिमानयुतेनापि शम्भुभक्तिपरेण तु ।। ततस्तुष्टो महादेवः सोमराजस्य भक्तितः । तोनोक्तं यदि तुष्टोऽसि तिष्ठात्रस्थो निरन्तरम् ।। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठन्ति भूधराः ।। तावन्मे स्थापितं लिङ्गमुमया सह तिष्ठतु ।। रोहिण्याः पतिरेवं तु प्रार्थयित्वा महेश्वरम् ।। ततः शुद्धशरीरोऽसौ गगनस्थो विराजते ।। ततःप्रभृति ये केचित्कुर्वन्ति भुवि मानवाः ।। तेऽपि तत्पदमायान्ति विमलाङ्गाश्च सोमवत् ।। अत्र किम्बहुनोक्तेन विधानं तस्य कीर्तये ।। यस्मिन्कस्मिश्चिन्मासे च शुक्ले सोमो भवेद्यदा ।। दन्तशुद्धि बीजपूरैः कृत्वा स्नानं समाचरेत् ।। स्वधर्मविहितं कर्म कृत्वा स्थाने मनोरमे ।। अव्रणाभिनवं शुद्धं न्यसेत्कुम्भं सुशोभनम् ।। चूतपल्लवविन्यासे चन्दनेन विर्चाचिते ।। श्वेतवस्त्रपरीधाने सर्वाभरणभूषिते ।। कुम्भे पात्रं च विन्यस्य ह्याधारशक्तिसंयुतम् ।। पञ्चाक्षरेण मन्त्रेणानन्तं संस्थापयेच्छिवम् ।। ततो देवं श्वेतवस्त्रैः श्वेतपुष्पैः प्रपूजयेत् ।। विविधं भक्ष्यभोज्यं च फलं वै बीजपूरकम् ।। दत्त्वा तु चन्दनं रात्रौ स्वयं प्राश्य स्वपेन्नरः ।। दर्भशय्यां समारूढो ध्यायेत्सोमेश्वरं हरम् ।। एवं कृते तु प्रथमे कुष्ठानां नाशनं भवेत् ।। द्वितीये सोमवारे तु करञ्जं दन्तधावनम् ।। देवं सम्पूजयेत् सूक्ष्मं ज्येष्ठाशक्तिसमन्वितम् ।। शतपत्रैः पूजयित्वा मधु प्राश्यं यथाविधि ।। नारिङ्गं तु फलं दद्यान्नैवेद्ये शुक्लपूरिकाः ।। एवं कृते द्वितीयेऽथ गोलक्षफलमाप्नुयात् ।। सोमवारे तृतीयोऽथ वटजं दन्तधावनम् ।। शिवं

चात्र यजेद्देवं रौद्रीशक्तिसमन्वितम् ।। पूजयेज्जातिपुष्पैश्च गोमूत्रं प्राशयेन्निशि ।। नैवेद्यं शुभ्रभक्ष्यं च फलं दाडिममेव च ।। एवं कृते तृतीये तु कोटिकन्याप्रदो भवेत् ।। चतुर्थे सोमवारे तु अपामार्गसमुद्भवम् ।। दन्तकाष्ठं [1]सैकशक्तिमुत्तमं चम्पकैर्यजेत् ।। कदलीफलसंयुक्ता नैवेद्ये क्षीरशर्करा ।। दध्नस्तु प्राशनं कृत्वा दर्भस्थो जागृयान्निशि ।। एवं कृते चतुर्थे तु यज्ञायुतफलं लभेत् ।। पञ्चमे सोमवारे तु वृक्षाश्वत्थसमुद्भवम् ।। दन्तकाष्ठं त्रिमूर्ति च सोमं[2] पद्मैः प्रपूजयेत् ।। नैवेद्ये दधिभक्तं स्यात्कूष्माण्डीफलसंयुतम् ।। घृतं प्राश्य शिवं ध्यायंस्तां निशामतिवाहयेत् ।। एवं कृते पञ्चमे तु सप्तजन्मसमुद्भवैः ।। ब्रह्महत्यादिभिः सर्वैर्मुच्यते पापराशिभि।। सोमवारे पुनः षष्ठे जम्बूजं दन्तधावनम् ।। त्रिमूर्तिसहितं[3] रुद्रमर्चयेत्करवीरकैः ।। नैवेद्यं च सखर्जुरीफलपायसमण्डकैः ।। कुशोदकं तु सम्प्राश्य गीतैर्नृत्यैस्तु जागृयात् ।। एवं कृते ततः षष्ठे षडब्दस्य फलं लभेत् ।। सप्तमे सोमवारे च प्लक्षजं दन्तधावनम् ।। श्रीकण्ठं पूजयेद्देवं पुष्पैर्बकुलसम्भवैः ।। बलप्रमथिनीयुक्तं नैवेद्यं पायसात्मकम् ।। अर्पयेत्परया भक्त्या नारिकेरसमन्वितम् ।। दुग्धं वै प्राशयेद्रात्रौ शेषं पूर्ववदाचरेत् ।। सप्तसागरसंयुक्तभूदानस्य च यत्फलम् ।। सोमवारे सप्तमे तु कृते तत्फलमाप्नुयात् ।। अष्टमे सोमवारेऽथ खादिरं दन्तधावनम् ।। सर्वभूतदमं नाथं पूजयेद्वै शिखण्डिनम् ।। सुगन्धकुसुमैश्चैव फलैर्नानाविधैरपि ।। नानाप्रकारं नैवेद्यं भक्ष्यं भोज्यं प्रदापयेत् ।। गोमयं प्राशयेद्रात्रौ जागरं तत्र कारयेत् ।। एवं कृतेऽष्टमे सोमे सर्वदानफलं लभेत् ।। दशभारसहस्राणि कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ।। विप्राय वेदविदुषे यद्दत्त्वा फलमाप्नुयात् ।। तत्पुण्यं कोटिगुणितं सोमवारव्रते कृते ।। गुग्गुलैर्धूपितं [4]कृत्वा कोटिशो यत्फलं भवेत् ।। तत्फलं तु भवेत्सम्यक् सोमवारव्रते कृते ।। सर्वैश्वर्यसमायुक्तः शिवतुल्यपराक्रमः ।। रुद्रलोके वसेद्दीर्घं ब्रह्मणा सह मोदते ।। सम्प्राप्ते नवमे वारे कुर्यादुद्यापनं शुभम् ।। यथा विधेयं गन्धर्व तथा वक्ष्यामि तेऽधुना ।। मण्डपं कारयेद्दिव्यं चतुर्द्वारोपशोभितम् ।। तन्मध्ये वेदिकामष्टादशाङ्गुलप्रमाणिकाम् ।। अष्टांगुलोच्छ्रितां कृत्वा[4] चतुरस्रां तदन्तरे ।। विरच्य लिङ्गतोभद्रं ततो वेद्याः समन्ततः।।पञ्चवर्णैरष्टदिक्षु पद्मानि रचयेद्बुधः।। ब्रह्मादिदेवता वेद्यामावाह्य कलशं न्यसेत् ।। सपात्रं सजलं तस्मिन् रुक्मशय्यां प्रकल्पयेत् ।। पञ्चाक्षरेण मंत्रेण सोमेशं तत्र विन्यसेत् ।। सर्वशक्तियुतं हैमं ततो वेद्याः समन्ततः ।। स्थापितेष्वष्टकुम्भेषु पूर्वादिदिगनुक्रमात् ।। आवाहयेदनन्तं च सूक्ष्मं चापि शिवोत्तमौ ।। त्रिमूर्तिरुद्रश्रीकण्ठान्पूजयेच्च शिखण्डिनम् ।। गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यफलदक्षिणाः ।। ताम्बूलादर्शछत्रादीन्देवतायै समर्पयेत् ।। पञ्च-

---

१ एकशक्तिसहितम् । २ उमाशक्तिसहितम् । ३ त्रिमूर्तिशक्तियुक्तम् । ४ देवमिति शेषः ।

गव्यं स्वयं प्राश्य पुराणपठनादिना ।। रात्रिं निनीय देवेशं प्रातः संपूजयेत्पुनः ।। स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य होमं कुर्याद्यथाविधि ।। पालाशीभिः समिद्भिश्च सर्पिषा पायसेन च ।। तिलव्रीहियवैश्चैव मधुदूर्वाभिरेव च ।। प्रतिद्रव्यं च सोमेशं शतेनाष्टाधिकेन च ।। यजेत् त्र्यम्बकमन्त्रेण चाप्यायस्वेति मंत्रतः ।। नमः शिवायेति तथा तमीशानं तथैव च ।। अभित्वा देव इति च कद्रुद्रायेति मंत्रतः ।। तत्पुरुषेतिमन्त्रेण ऋतं सत्यमिति क्रमात् ।। एवं यजेन्नाममंत्रैरष्टौ देवाननुक्रमात् ।। प्रतिद्रव्यमनन्तादींस्तैरेवाष्टाष्टसंख्यया ।। निर्वत्तिते होमतन्त्रे ह्याचार्यं भूषणादिभिः ।। संपूज्य दत्त्वा गां पीठं व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। तथाष्टौ ब्राह्मणानन्यान् वस्त्रालंकारचन्दनैः ।। संपूज्य कलशानष्टौ पक्वान्नपरिपूरितान् ।। दक्षिणासहितान्दद्यान्मन्त्रेण तु पृथक्पृथक् ।। पक्वान्नपूरितं कुम्भं दक्षिणादिसमन्वितम् ।। गृहाण त्वं द्विजश्रेष्ठ व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। एवं कृते व्रते सम्यग्लभते पुण्यमक्षयम् ।। धनधान्यसमायुक्तः पुत्रदारैः समन्वितः ।। न कुले जायते तस्य दरिद्रो दुःखितोऽपि वा ।। अपुत्रो लभते पुत्रं वन्ध्या पुत्रवती भवेत् ।। काकवन्ध्या च या नारी मृतपुत्रा च दुर्भगा ।। कन्याप्रसूस्तया कार्यं रोगिभिश्च विशेषतः ।। एवं कृते विधाने तु देहपाते शिवं व्रजेत् ।। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।। भुंक्तेऽसौ विपुलान्भोगान् यावदाभूतसंप्लवम् ।। इत्येतत्कथितं सर्वं सोमवारव्रतं क्रमात् ।। इति श्रीस्कन्दपुरा० अष्टसोमवारव्रतं संपूर्णम् ।।

सोमवारके व्रत कहे जाते हैं ? सोमवारकी पूजाविधि-" येभ्यो माता" इसे जपकर ' आगमार्थन्तु देवानाम् ' इससे घण्टानाद करके . अपसर्पन्तु ' इससे छोटिका मुद्रा कर अपसत्त्वोंका अपसारण करके 'तीक्ष्णदंष्ट्रा ' इससे क्षेत्रपालकी प्रार्थना करके आचमन प्राणायाम करे । तिथि आदि कहकर, मेरे सारे कुटुम्ब और क्षेम, स्थैर्य्य, विजय, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी वृद्धिके लिये तथा उमामहेश्वरकी प्रीतिके लिये मैं चौदह वर्षतक सोमवारका व्रत करूंगा तथा उसके अंगरूपसे सोलह उपचारोंसे उमामहेश्वरका पूजन करूंगा ऐसा संकल्प करे । सारे भयोंके मिटानेवाले, शिवपर चांदका भूषण किये हुए पांच मुखवाले, तीन नेत्रधारी, चांदीके पर्वत किसी स्वच्छ चमकवाले, यत्नोंके आभूषण पहिने हुए जिसके कि, चारों हाथ परशु, मृग तथा वर और अभयमुद्रासे सुशोभित हैं परम प्रसन्न, व्याघ्रचर्म पहिने, पद्मासीन, जिन्हें कि, चारों ओरसे श्रेष्ठ देव, दासोंकी तरह घेरकर स्तुति कर रहे हैं, जो विश्वका वन्दनीय तथा आदि हैं, सबके भयोंको नष्ट करनेवाले हैं; ऐसे शिव भगवान्का ध्यान करे ! यह शिवजीके ध्यानका मंत्र है । पीछे सोलहों उपचारोंसे पूजन करे ।। (वेदके मंत्रोंसे तो आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, उपवीत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रदक्षिणा, नमस्कार और पुष्पांजलि ये सोलह देखे जा रहे हैं इन उपचारों तथा ४४ पृष्ठमें आये सोलहों उपचारोंमें विशेष अन्तर है) कथा-ईश्वर बोले कि, वे पुरुष परंगत हैं जिन्होंने कि, निर्विकल्प, निरामय, नित्यानन्दमय, शान्त, आदिअन्तरहित शिवतत्वको जान लिया है ।।१।। जो काम भोगोंसे विरक्त होकर परतत्त्व शिवमें अहैतुकी भक्ति करते हैं उनकी मुक्ति हो गई इसमें संशय नहीं है ।।२।। जो विषयोंके संकल्पसे शिवमें प्रीति करते हैं वे विषयोंको भोगते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होते ।।३।। किसी भी भावसे शिवभक्ति करें वह नष्ट नहीं होता, कालान्तरमें परमपदको पा जाता है ।।४।। जो परस्थान तो जाना चाहता हो पर विषयोंको नहीं छोड़ सकता हो वह शरीरसे शिव पूजन करता रहे, वह भोगके अन्तमें शिवको पा जाता है ।।५।। प्रायः मनुष्य

विषयवासनाका त्याग नहीं कर सकते इसी कारण उनके लिये शिवके पवित्र कर्म करनाही काम धेनु है ।।६।। जो मायामय संसारमें भी चिर सुखभोग देहके अन्तमें मुक्ति चाहते हैं उनको यही धर्म कहा है ।।७।। लोकमें शिवपूजा सदा स्वर्ग और अपवर्गका हेतु है विशेष करके सोमवार और श्रेष्ठ प्रदोषमें विशेष है ।।८।। श्रावण, चैत्र, वैशाख, कार्तिक और मार्गशीर्षमें पहिले सोमवारसे इस व्रतको उत्तम ग्रहण करना चाहिये ।। ९ ।। जो केवल सोमवारको भी शिवार्चन करते हैं उन्हें इस लोक और पर लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।।१०।। शुचिता और संयमके साथ सोमवारके दिन उपवास करके वैदिक वा लौकिक मंत्रोंसे विधिके साथ शिवका पूजन करे ।। ११ ।। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या, भर्तृमती, विधवा कोई भी पूजकर अभीष्ट वर पा सकता है ।।१२।। इस विषययें एक श्रवण सुन्दर कथा कहूंगा जिसे सुनतेही शिवभक्ति और मुक्ति हो जाती है ।।१३।। आर्य्यावर्तमें एक धर्मात्मा चित्र वर्मा नामक एक राजा था, वह दुष्टोंके लिये साक्षात् धर्मराजही था ।।१४।। जो धर्मकी मर्य्यादाओंका रक्षक और उच्छंखलोंका शासक सब यज्ञोंका याजक और शरणागतोंका पूरा रक्षक था ।।१५।। सभी पुण्योंका कर्ता सब संपत्तियोंका दाता वैरियोंके समुदायका जीतनेवाला तथा शिव और मुकुन्दका भक्त था ।।१६।। उसकी सभी पत्नी योग्य थीं पर किसी के भी पुत्र न हुआ चिरकाल, तक चाहनेके बाद एक सुन्दर कन्या मिली ।।१७।। उसे वह कन्या ऐसे मिली मानों हिमवान्को पार्वती मिली हो । अपनेको देव तथा अपने सारे मनोरथ पूरे हुए मानने लगा ।।१८।। एक दिन चुनेहुए ज्योतिषियों मेंभीचुनीदां जातकके जाननेवालोंको बुलाकर कौतुकसे कन्याके शुभाशुभको पूछने लगा ।।१९।। उन सबमें जो एक विशेषज्ञ था, वह बोला कि, हे राजन् ! आपकी कन्याका सीमन्तिनी नाम है ।।२०।। उमाकी तरह मांगलिक तथा दमयन्तीकी सी रूपवती है भारती कीसी कलाओंके जाननेवाली, लक्ष्मीकी तरह महागुणवाली है ।।२१।। देवमाताकी तरह उत्तम सन्ततिवाली, जानकीकी तरह पविव्रता है रविकी प्रभाकी तरह अच्छी कांतिवाली तथा चाँदनीकी तरह मनोहर है ।।२२।। दश हजार वर्ष पतिके साथ जीवेगी, आठ सुयोग्य पुत्रोंको पैदा करके परम सुख पावेगी ।।२३।। उसका यह कथन राजाको अमृतसा लगा यथेष्ट धनसे उसका आदर करके आप परम प्रसन्न हुआ ।।२४।। एक निर्भय धीर विद्वान् यह भी बोला कि, यह चौदहवें वर्षमें विधवा हो जायगी ।।२५।। उसके वज्र जैसे कठोर वचनसुनकर दो घड़ी तो राजा चिन्तासे व्याकुल रहा आया ।।२६।। पीछे ब्रह्मवत्सलने ब्राह्मणोंका तो विसर्जन किया और भगवान्की जो इच्छा होती है सो होता है यह सोचकर निश्चिन्त होगया ।।२७।। वह बालिका सीमंतिनी भी क्रमसे शैशवको पारकर गई अपनी सखीके मुखसे होनेवाले वैधव्यको उसनेसुनलिया ।।२८।। जिससे एकदम दुखी होकर विचारने लगी कि क्या करूँ? पीछे याज्ञवल्क्यजीकी पत्नी मैत्रेयीसे पूछा ।।२९।। कि, हे मां ! मैं भयभीत होकर तेरे चरणोंमें आई हूं । मुझे सौभाग्य करनेवाला कुछ उपाय बता दे ।।३०।। इस प्रकार शरण आई हुई उस राजकन्यासे मुनिपत्नी बोली कि, शिवसहित भवानीके शरण जा ।।३१।। सोमवारके दिन एकाग्रमनसे शिवगौरीका पूजन कर, उस दिन उपवास करना भलीभांति स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहिनना ।।३२।। मितभाषिणी और निश्चल मति हो यथोचित पूजा करे । एक सालतक इस व्रतको करके उद्यापन करे ।।३३।। उमा शिवकी सोनेकी मूर्ति बनावे चांदीका वृषभ बनावे विधिपूर्वक कलशपर स्थापित करे ।।३४।। उसके आगे लिंगतोभद्र मण्डल बनाकर उसपर ब्रह्मादि देवोंकी स्थापनाकरे, अपनी शाखाके विधानके अनुसार घृततिल और ओदनका हवन करे ।।३५।। पृथक् शिव और शिवाके मन्त्रोंसे दो सौ आठ आहुति दे । जो व्रत बिना उद्यापनके किया जाता है वह निष्फल होता है इस कारण उद्यापन अवश्य करे, ब्राह्मण भोजन कराकर शिवको अच्छी तरह प्रसन्न करे क्योंकि, अभिषेकसे पापोंका नाश तथा पीठपूजनसें साम्राज्य होता है ।।३६।।३७।। गन्धदानसे सौभाग्य और अक्षतदानसे आयु, धूपदानसे सौभागन्ध्य, दीपदानसे कांति ।।३८।। नैवेद्यसे महाभोग, ताम्बूलसे लक्ष्मी, नमस्कारसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।।३९।। एवं आठ ऐश्वर्य आदि सिद्धियोंका जप ही कारण है, होमसे सब सौख्योंकी समृद्धि होजाती है ।।४०।। संयम पूर्वक भोजनसे सब देवोंकी तुष्टि होजाती है, इस तरह सोमवारको शिव और शिवाकी आराधना होनी चाहिये ।।४१।। इससे आई हुई अत्यन्त आपत्तिको

भी पार करके सुभगा हो जा, शिवपूजाके प्रभावसे महाभयसे पार होजायगी ।।४२।। मैत्रेयी इसप्रकार सीमंत्तिनीको समझाकर चली गई । राजपुत्रीने वैसाही किया ।।४३।। नलकी दमयन्तीमें इन्द्रसेना नामकी कन्या पैदा हुई थी उसका चन्द्रके समान चन्द्राङ्गद पुत्र हुआ था ।।४४।। गुरुकी आज्ञासे चित्रवर्माने चन्द्राङ्गद को बुला सीमंतिनीको उसे दे दिया ।।४५।। उस विवाहमें बड़ाभारी उत्सव हुआ, वहां सब राजाओंका बडा भारी समुदाय इकट्ठा होगया ।।४६।। राजकुमार उस समय पाणिग्रहण करके कईमास ससुरालमें रहा ।।४७।। एक दिन यमुना किनारेकी शैरकरनेके लिए नावमें बैठकर चला, नाव भँवरमें आगई इस-कारण मल्लाह समेत डूब गयी ।।४८।। दोनों किनारोंपर हाहाकार मच गया, सभी सेनाओंके देखते देखते प्रलाप, आकाशको गुंजारने लगा ।।४९।। यह सीमंतिनी सुन भूमिमें मूर्च्छित हो गिरगई । राजा इन्द्रसेन भी दुःसह बातको सुनकर मूर्च्छित होगया ।।५०।। बालकसे लेकर वृद्धतक सभी स्त्रियां शोकसे व्याकुल हो होकर रो रही थीं, साध्वी सीमंतिनीने भी पतिलोक जानेकी इच्छा की ।।५१।। पिताने प्रेमसे रोक दिया अतः विधवा होकर बैठगई, पर मुनिपत्नीने जो सोमवारके व्रतका उपदेश दे रखा था ।।५२।। विधवा होने-परभी उस व्रतको नहीं छोडा, इस प्रकार ज्योतिषीके कहे चौदहवें वर्ष में घोर क्लेश पाकर भी ।। ५३ ।। शिव-चरणोंका ध्यान करते करते तीन वर्ष बीत गये, उसका पति चन्द्राङ्गद यमूनामें डूब चुका था जलक्रीडामें लगीहुई नागकन्याने नीचे डूबकर बहता हुआ वह राजकुमार देखा ।।५४।।५५।। जिसे देख उन्हें बडा आश्चर्य हुआ । वह उसे नीचेही नीचे पाताल ले गयीं, नागकन्या करके ले जाया गया वह राजकुमार ।।५६।। तक्षकके अद्भुत रमणीकपुरमें पहुंच गया, उसने देखा कि, यह तो दूसरा इन्द्रभवनही है ।।४७।। सहस्रों नागकन्याओंने चारोंओरसे घेर रखा था, राजकुमारने उसे देखकर सभास्थलमेंही प्रणाम किया ।।५८।। हाथ जोडकर सामने खडा होगया, तेजके मारे आंखें चोंडगईं । महात्मा नागराज तक्षक भी उस सुन्दर राजपुत्रको देखकर पूछने लगा कि, तुम किसके लडके एवं कौन हो किस देशसे आये हो ।।५९।।६०।। राजपुत्र बोला कि, भूमण्डल-पर एक निषध देश, उसमें बडे भारी यशस्वी एक नल नामक राजा हुए थे ।।६१।। उसका बडा भारी यश है । वह पतिव्रता दमयन्तीका पति था, उसका इन्द्रसेन नामक पुत्र था । मैं उस महात्मा इन्द्रसेनका ।६२।। चन्द्राङ्गद नामक लडका हूं । मैंने अभी विवाह किया है, मैं अपनी ससुरालमें यमुनाके पानीमें शैर करता हुआ दैवसे डूब गया ।।६३।। इन नागकन्याओंने आपके पास ला दिया है । पूर्वके किये पुण्योंसे आपके दर्शन हो गये ।।६४।। मैं आज अनेकवार धन्य हूं मेरे मा बाप कृतार्थ होगये । तक्षक बोला कि, राजकुमार ! डर न धीरताको धारण कर ।।६५।। तुम सब देवोंमें सदा कौनसे देवकी पूजा किया करते हो ? राजकुमार बोला कि, जो देव सब देवोंमें महादेव है ।।६६।। उसी विश्वात्मा उमापतिकी मैं पूजा किया करता हूं । यह सुन तक्षक बडा प्रसन्न हुआ ।।६७।। महादेवमें भक्ति पैदा होगई । झट राजपुत्रसे बोल उठा कि, हे राजेन्द्रकुमार ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हुआ हूं तेरा कल्याण हो ।।६८।। ऐसा कहकर बहुतसे रत्न और दिव्य आभरण दिये, चढनेके लिये घोडा और एक राक्षस दिया ।।६९।। एवं उसकी सहायताके लिये अपना एक कुमार दिया । फिर प्रसन्न होकर उसका विसर्जन कर दिया कि, जाओ अपने घर जाओ ।।७०।। चन्द्राङ्गद अनेक तरहके धनोंको लेकर इच्छानुसार चरनेवाले अश्वपर चढ राक्षस और तक्षक कुमारको साथ ले, चलदिया ।।७१।। दो घडीमें जहां डूबा था वहीं निकलकर घोडेपर चढा हुआ सुन्दर किनारोंकी शैर करने लगा ।।७२।। इसी समय सुन्दरी सीमन्तिनी अपनी सहेलियोंके साथ स्नान करने आई ।।७३।। उसने किनारेपर विहार करते हुए राजकुमारको देखा, साथ राक्षस और तक्षककुमार मनुष्य रूपसे विचर रहे थे ।।७४।। उसे देख चन्द्राङ्गद घोडेसे उतरकर नदी किनारे बैठगया पीछे उसे बिठाकर बोला ।।७५।। कि, आप किसकी पत्नी तथा किसकी लडकी हैं ? आपका बाल्यकालमें ऐसे दुःसह शोकका लक्षण क्यों प्राप्त होगया यानी आप विधवा कैसे होगई हो ।।७६।। इस प्रकार प्रेमपूर्वक पूछतेही सीमन्तिनीकी आखोंमें आँसू आगये, शर्मसे आप तो न कह सकी सखीने सब सुना दिया ।।७७।। कि, यह निषधराजाकी पुत्रवधू सीमन्तिनी है, चन्द्राङ्गदकी पत्नी तथा चित्र-वर्माकी लडकी है ।।७८।। दैवयोगसे इसका पति यहीं यमुनाजीमें डूब गया था इस कारण यह विधवा होकर दुःखी हो रही है ।।७९।। इसने बडे भारी शोकसे तीन वर्ष बिता दिये । आज सोमवारके दिन स्नान करनेके

लिये आई थी ॥८०॥ चन्द्राङ्गद प्यारीके शोकका कारण सुनकर उसे अनेक तरहके वचनोंसे आश्वासन दिया ॥८१॥ और बोला कि, ए सुन्दरि ! मैंने कहीं तेरा पति देखा अवश्य है, आप व्रत करते करते थकगयीं हैं। इस कारण शीघ्रही आजायगा ॥८२॥ यह निश्चय है कि, वह तेरा शोकको दोही दिनमें मिटा देगा, मैं तेरे पतिका मित्र हूं यही कहनेके लिये तेरे पास आया हूं ॥८३॥ इसमें सन्देह न करना मैं शिवके चरणोंकी शपथ खाता हूं, पर इस बातको तबतक तुम हृदयमें रखना कहना नहीं ॥८४॥ लज्जासे नमेहुये मुखवालीके कानमें और कुछ प्रयोजन कहा कि वृत्तान्तको तुम शोकसन्तप्त अपने माता पितासे कहना ॥८५॥ वह कह आप घोडेपर चढकर तलके प्रतिचला वह भी सैंकडों अमृतकी धारासे अधिक उसके वचन सुनकर ॥८६॥ विचारने लगी कि, यही मेरा स्वामी है दूसरा नहीं हो सकता, पर ऐसा रूपधारण करके परलोकसे कैसे चला आया ॥८७॥ मुनिपत्नीने जो मुझसे कहा था कि, घोर आपत्तिमें भी इस व्रतको करते रहना उत्तम फल मिलेगा आज मैंने उसका फल पालिया ॥८८॥ कदाचिद् उसके वचन सत्यही होजायँ क्योंकि, उसकी मर्जीको कौन जानता है। मैं रोज रोज मंगलके निमित्त तो देखती हूं ॥८९॥ पार्वतीनाथके प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको असाध्य क्या है ? इस तरह बहुतसे सोच विचार करके निसंदेह हो गई ॥ ९० ॥ चन्द्राङ्गद अच्छे समयमें पत्नीको पाकर श्वसुरसे अनुमोदित होकर अपनी नगरीको चलदिया ॥९१॥ राजा इन्द्रसेन भी राज्यपर अपने लडकेको बिठाकर तपसे शिवको आराधना करके संयमियोंकी गतिको पा गया ॥९२॥ सीमन्तिनी भार्य्याके साथ चन्द्राङ्गद राजाने दशहजार वर्षतक भोग भोगे ॥९३॥ आठ पुत्र और एक सुन्दर कन्या हुई इस तरह शिवपूजन करके सीमन्तिनीको पति मिलगया। पीछे शिव लोक जा शिवका साक्षात् नित्यानुभव करने लगी। इस विचित्र आख्यानको मैंने सुनादिया है। जो इसे भक्तिके साथ पढेगा वा सुनेगा वह परम गतिको पावेगा ॥९४॥९५॥ यह श्रीस्कन्दपुराणकी कही हुई सोमवारके व्रतकी कथा पूरी हुई ॥

उद्यापन—स्कन्द बोले कि, मनुष्योंको व्रतका उद्यापन कैसे करना चाहिये ? हे प्रभो ! बताइये कि, क्या विधि तथा कौन द्रव्य हैं ? ईश्वर बोले कि, हे षण्मुख ! सावधान हो कर सुन। मैं संसारके कल्याणके लिये तुम्हें उद्यापन की विधि सुनाता हूं। जब धन, श्रद्धा और भक्ति हो वही इसका व्रतकाल है क्योंकि, इस जीवनका क्या भरोसा है ? चौदह वर्षतक इस सोमवारके व्रतको करे। श्रावण, कार्तिक, ज्येष्ठ वैशाख और मार्गशीर्षमें स्नान ध्यानकर पवित्र होकर श्वेत वस्त्र धारण करे। काम, क्रोध, अहंकार, द्वेश और पैशुन्यसे रहित होकर सब संभारोंको इकट्ठा करके सुन्दर मंडल बनावे, उसे वस्त्र पुष्पोंसे आच्छादित करके पट्टवस्त्रोंसेसुशोभित करे। उसमें शोभाऔरउपशोभाकरे दीपकोंसे उज्ज्वल करे, उसके बीच दिव्य लिङ्गतोभद्र लिखे, अथवा सर्वतोभद्र मंडल बनावे। उसके ऊपर साबितघडा रखे, वह सोना चांदी ताम्बा या मिट्टीका हो, ऋत्विज और आचार्यका वरण करे, चन्दनके फूलोंसे उनका पूजन शिवरूप समझ कर करे, उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा होनेपर शिवपूजाका प्रारंभ करे। 'नमः' अन्तमें लगे हुये रुद्रके नाममन्त्रसे ब्राह्मणोंका भी पूजन करे। कुंभपर उमासहित शिवकी स्थापना करे, उन्हें सोने वा चांदीके वृषभपर बिठा दे, फिर उन्हें एकाग्र चित्तसे पूजे। दो वस्त्रोंसे वेंष्टित कर दे, बिल्वपत्रोंसे पूजन करे, अपने गृह्यसूत्रके कहेहुए विधानके अनुसार अग्निस्थापन करे। पीछे "त्र्यम्बकम्" इस मन्त्रसे तथा "गौरीर्मिमाय" इस मन्त्रसे दो सौ आठ आहुति दे, पलाशोंकी समिध तथा यव, व्रीहि, तिल, आज्यकी आहुतियां हों, पूर्णाहुति और स्विष्टकृत आदिककरे होमके अन्तमें सपत्नीक गुरुको पूजे, कुंभ समेत प्रतिमाको आचार्य्यकी भेंट कर दे कि, हे सब लोकोंके ईश्वर ! दे देवेश ! हे शंभो ! प्रसन्न हूजिए, आपकी प्रतिमाके देनेसे मेरे मनोरथ पूरे होजायँ। यह प्रतिमाके दानका मन्त्र है। हे देवेश ! जो मैंने भक्तिसे आपका यह व्रत किया है वह न्यून हो वा क्रियाहीन हो आपकी कृपासे पूरा होजाय। इष्ट मित्र भाई लोगोंके साथ भोजन करे, जो इस विधिसे इस व्रतको करता है वह जो चाहता है, सो पाजाता है, इच्छित भोगोंको भोग इस लोकमें सुखी होता है। यह सोमवारके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ॥ प्रकारान्तरसे सोमवारव्रत—गन्धर्व बोला कि, सोमवारका व्रत कैसे किया जाय ? उसका विधान कैसा है ? किस समय किया जाय ? यह विस्तारके साथ सुनाइये, गोभृंग बोला कि, हे महाप्राज्ञ ! हे सब भूतोंके उपकार करनेवाले ! अच्छा पूछा, यह मैंने आजतक किसीके लिए भी नहीं कहा है वह अब तुझे कहता हूं। वह दिव्य, सब रोगोंका

नासक एवं सब सिद्धियोंका देनेवाला है, उसका नाम सोमवारव्रत है वह सब प्राणियोंका उपकारक है, मनुष्योंको सब सिद्धि करनेवाला तथा सब कामोंका देनेवाला है उसे सभी वर्णोंको जानना चाहिये। शुभ करनेवाला है। वह दृष्ट और अदृष्ट फलका देनेवाला है। उसे सभी स्त्री पुरुषोंको करना चाहिये। ब्रह्मा विष्णु आदिक देवोंने इस महाव्रतको किया है। दक्षके शापसे दबे हुए अभिमानी शिवभक्त सोमने भी इसे किया था, जिससे शिव सोमराजपर प्रसन्न हुए। तब सोमने कहा कि, यदि आप प्रसन्न हैं तो यहां निरन्तर ठहरें, जबतक चांद सूरज और पर्वत ठहरे हुए हैं, तबतक मेरा स्थापित किया लिङ्ग उमाके साथ विराज रहे, चन्द्रमा इस प्रकार प्रार्थना करके शुद्ध शरीर हो, आकाशमें विराजने लगे। उस दिनसे लेकर जो कोई भूमण्डलपर इस व्रतको करते हैं वे भी उस पदको पाजाते हैं और शुद्ध शरीरवाले होजाते हैं। इस विषयमें विशेष क्या कहें ? उसका विधान कहते हैं—जिस किसी भी मासके शुक्लपक्षमें सोमसार हो बीजपूरोंसे दन्तशुद्धि करके स्नान करे, अपने धर्मके कहेहुए कर्म कर, फिर सुन्दर स्थानमें सूराकरहित नये सुन्दर कलशको स्थापित गरे, उसपर आमका पल्लव रखे, चन्दन चढावे, श्वेत वस्त्र उढावे, सब आभरणोंसे विभूषित करे, उसपर विधिपूर्वक पात्र रखे, उसपर आधार शक्तिके साथ 'अनन्त' शिवको पञ्चाक्षर मन्त्रसे स्थापित करे, श्वेत पुष्प और वस्त्रोंसे पूजे, अनेक तरहका भक्ष्य, भोज्य, फल, वीजपूर दे, रातको चन्दनका प्राशन करके सोवे, दर्भकी शय्या हो उसपर शिव जीका ध्यान करे,पहिले सोमवारको ऐसा करनेसे कुष्ठनष्ट होजाते हैं दूसरे सोमवारके दिन करंजकी दांतुन करे, सूक्ष्म ज्येष्ठा शक्तिके साथ सूक्ष्म देवका पूजन करे, तीसरे सोमवारको वटकी दांतुन करे, जातीके फूलोंसे रौद्री शक्तिके साथ 'शिव' का पूजन करे, रातको गोमूत्रका प्राशन करे, शुभ्रभक्ष्य और अनार फल हो नैवेद्य इस प्रकार तीसरे सोमवारको करनेसे कोटिकन्याओंका देनेवाला होजाता है। चौथे सोमवारको अपामार्गकी दांतुन, एक शक्तियुत शिवकी कमलोंसे पूजा, कदली फलके साथ क्षीर और शर्कराका नैवेद्य हो, दधिका प्राशन और दर्भके आसनपर बैठकर रातको जागरण करे, इस प्रकार चौथे सोमवारको करनेपर अयुत यज्ञका फल होता है। पांचवें सोमवारको अश्वत्थ वृक्षकी दांतुन, उमा शक्तिसहित 'शिव' की कमलोंसे पूजा, कूष्माण्डीके फलके साथ दधिभक्त नैवेद्य, रातको घृतका प्राशन करे, केवल शिवका ध्यान करके उस रातको पार करे। इस प्रकार पांचवें सोमवारके करनेपर सात जन्मके किये ब्रह्महत्यादिक सब पापसमुदायोंसे छूट जाता है। छठे सोमवारके दिन जामुनकी दांतुन ,करवीरके फूलोंसे त्रिमूर्ति शक्तिसहित 'रुद्र' का पूजन, खर्जूरीफल, पायस और मण्डकोंका नैवेद्य करे। रातको कुशोदका प्राशन और नृत्य गीत आदिसे जागरण करे, इस प्रकार करनेपर छः वर्षके किये सोमवारका फल होता है। सातवें सोमवारके दिन प्लक्षकी दांतुन, बकुलके पुष्पोंसे 'श्रीकण्ठ' का पूजन, नारियल और बलप्रमथिनीके साथ पायसका नैवेद्य करे, रातमें दूधका प्राशन करे। बाकी पहिलेकी तरह करे। इसके कियेसे सातों समुद्रसहित भूमिदान करनेसे जोफल मिलता है वही मिलजाता है। आठवें सोमवारको खैरकी दांतुन, अनेक तरहके फूल फलोंसे सबभूतोंके दमन, 'शिखंडी नाथकी पूजा, अनेक तरहके भक्ष्य भोज्य सहित नैवेद्य रातमें गोमयका प्राशन और जागरण करे, इस प्रकार आठवां सोमवारकर लेनेपर सबदानोंका फल होजाता है। रविके ग्रहणमें दशहजार भार सोना वेदवेत्ता ब्राह्मणके दियेसे जो पुण्य होता है उससे कोटिगुना अधिक सोमवारके व्रत करनेसे होता है। गूगलकी कोटिन धूप दियेसे जो फल होता है वही फल भलीभांति सोमवारका व्रतकरनेसे होता है। वह सब ऐश्वर्य और शिवके समान पराक्रमी हो चिरकारतक रुद्रलोकमें रहताहै फिर ब्रह्माके साथ आनन्द करता है। नौवेंवर्षमें उद्यापन करे। हे गन्धर्व ! वह कैसे करना चाहिये, सो तुम्हें सुनाता हूं। चार द्वारोंसे सुशोभित मंडप बनाना चाहिये। उसके बीचमें अठारह अंगुलकी वेदी बनावे। वह आठ अंगुल ऊँची चौकोनी हो, उसपर लिंगतोभद्र लिखकर वेदीके चारों ओर आठों दिशाओंमें पांच रंगोंसे कमल बनावे, वेदीपर ब्रह्मादिक देवताओंका आवाहन करके कलश स्थापन करे। उसमें पानी भरे पात्र रखे, उसपर सोनेकी शय्या बिछावे। पञ्चाक्षर मंत्रसे सोमेशको वहाँ स्थापित करे। सब शक्तियां साथ हो, सोनेके हों, वेदीके चारों ओर पूर्वादिक दिशाओंमें स्थापित किये आठों कुम्भोंपर क्रमसे अनन्त, सूक्ष्म, शिव, उत्तम, सोम, रुद्र, श्रीकण्ठ, शिखण्डी इन आठोंका

आवाहन करे, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, दक्षिणा, ताम्बूल, दर्पण, छत्र इत्यादिक वस्तुओंको देवताकी भेंट करे। रातको पञ्चगव्यका प्राशन और पुराणोंके पठनादिकोंसे रात पूरी करके प्रातःकाल देवेशकी फिर पूजा करे। स्थण्डिलपर अग्निस्थापन करके विधिपूर्वक हवन करे, पलाशकी समिध सर्पि, पायस, तिल, व्रीहि, यव, मधु, दूर्वा, आठों द्रव्योंसे क्रमशः सोमेशको एकसौ आठ आहुति दे, द्रव्योंके आठही मन्त्र हैं "त्र्यम्बकम्" एक "आप्यायस्व" दूसरा "नमःशिवाय" तीसरा "तमीशानम्" चौथा "अभित्वादेव" पांचवाँ "कद्रुद्राय" छठा "तत्पुरुषाय" सातवाँ "ऋतं सत्यम्" आठवाँ ये आहुति देनेके मन्त्र हैं। इसी तरह नाममंत्रसे आठों देवोंमेंसे प्रत्येकको एकसौ आठ आहुति दे। होमकी समाप्तिपर भूषण आदिसे, आचार्य्यका पूजन करे तथा व्रतकी पूर्तिके लिए गाय दे, इसी तरह आठ ब्राह्मणोंको वस्त्रअलंकार और चन्दनसे पूजकर दक्षिणा समेत आठ कलश पकवानके भरेहुए जुदे जुदे मन्त्रसे दे कि व्रतकी पूर्तिके लिए पकवानसे भरे हुए घडेको दक्षिणा, समेत आपको देता हूं। हे श्रेष्ठ द्विज ! ग्रहण करिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मौन हो भोजन करे। इस तरह भली भांति व्रत करके अक्षय पुण्य पाजाता है, वह धन धान्यवाला तथा पुत्र दारोंसे युक्त होजाता है, उसके कुलमें कोई भी दरिद्री और दुखी नहीं होता, निपुत्रीको पुत्र तथा बन्ध्या पुत्रवाली होजाती है, जो स्त्री काकवन्ध्या, मृतपुत्रा, दुर्भगा और कन्याप्रसू हो वा रोगिणी हो उसे विशेष करके करना चाहिये। इस प्रकार विधानसे करनेपर देहपात होनेपर शिवको प्राप्त होजाता है, सहस्र कोटिकल्प तथा सौ कोटि महाकल्प वहाँ भोग भोगता है। महाप्रलयतक महाभोग भोग करता है यह हमने क्रमपूर्वक सोमवारका व्रत कह दिया ।। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ अष्ट सोमवारका व्रत संपूर्ण हुआ ।।

अथ एकभुक्तसोमवारव्रतं लिख्यते

नारद उवाच ।। अथान्यदपि मे ब्रूहि येनाहं प्राप्नुयां पदम् ।। अव्यक्तं च शिवे भक्तिपुत्रसौभाग्यसंपदः ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। सोमवारव्रतं पुण्यं कथ्यमानं निबोध मे ।। श्रावणे चैत्रवैशाखे ज्येष्ठे वा मार्गशीर्षके ।। प्रथमे सोमवारे च गृह्णीयाद्व्रतमुत्तमम् ।। यदा श्रद्धा भवेत्कर्तुः सोमवारव्रतं प्रति ।। तदाचार्यं पुरस्कृत्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। सुस्नातश्च शुचिर्भूत्वा शुक्लाम्बरधरो नरः ।। कामक्रोधाद्यहंकारद्वेषपैशुन्यवर्जितः ।। आहरेच्छ्वेतपुष्पाणि मालतीकुसुमानि च श्वेतपद्मानि दिव्यानि चम्पकानि च तैस्तथा ।। कुन्दमन्दारजः पुष्प पुन्नागशतपत्रकैः ।। अर्चयेदुमया सार्धं शंकर लोकशंकरम् ।। मलयाद्रिजधूपेन धूपयेत्पार्वतीपतिम् ।। कामिकेनापि मन्त्रेणाव्यापकेन महेश्वरम् ।। पूजयेन्मूलमन्त्रेण त्र्यम्बकेणाथवा पुनः ।। भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमते ।। उग्राय चोग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ।। रुद्राय नीलकण्ठाय शिवाय भवहारिणे ।। ईशानाय नमस्तुभ्यं सर्वकामप्रदाय च ।। नमो देवाधिदेवाय पादयोः पूजयेद्विभुम् ।। शंकराय नमो जंघे शिवायेति च जानुनी ।। शूलपाणे नमो गुल्फं कट्यां शम्भुं प्रपूजयेत् ।। गुह्ये स्वयम्भूनामानं पूजयेत्पार्वतीपतिम् ।। महादेवाय इति च पूजयेन्नाभिमण्डले ।। उदरे विश्वकर्तारं पार्श्वयोः सर्वतोमुखम् ।। स्थाणुं स्तने च सम्पूज्य नीलकण्ठं तु कण्ठके ।। मुखं संपूजयेन्नित्यं शिवनाम्ने महात्मने ।। त्रिनेत्राय नमो नेत्रे मुकुटे शशिभूषणम् ।। नमो देवाधिदेवाय सर्वाङ्गे पूजयेद्विभुम् ।। एवं यः पूजयेद्देवमुपहारैर्मनोरमैः ।। यथावित्तानुसारेण तस्य पुण्यफलं श्रृणु ।। सोमवारे यजन्ते ये

पार्वत्या सह शंकरम् ।। ते लभन्ते ऽक्षयाँल्लोकान् पुनरावृत्तिदुर्लभान् ।। एक-भक्तस्य यत्पुण्यं कथयामि समासतः ।। सप्तजन्मार्जितं पापमभेद्यं देवदानवैः ।। विनश्यत्येकभक्तेन नात्र कार्या विचारणा ।। एवं संवत्सरं यावद्भक्त्या व्रतमिदं चरेत् ।। यस्मिन्मासे प्रारभते तस्मिन्मासि समापयेत् ।। उपवासेन चैवेदं समाचरति मानवः ।। अखण्डं तत्प्रकुर्वीत कृतं संपूर्णतां नयेत् ।। खण्डव्रतप्रभावेण तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।यदा चित्तं च वित्तं च जायते पुरुषस्य वै ।। तदैवोद्यापनं कुर्याद्व्रत-सम्पूर्तिहेतवे ।। चलं वित्तं चलं चित्तं चल जीवितमेव च ।। एवं ज्ञात्वा प्रयत्नेन व्रतस्योद्यापनं चरेत् ।। उमामहेश्वरौ हैमौ वृषभेण समन्वितौ ।। यथाशक्त्या प्रकर्तव्यौ वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। मण्डलं कारयेद्दिव्यं यत्तु लिङ्गोद्भवं शुभम् ।। कलशं पयसा पूर्णं श्वेतवस्त्रसमन्वितम् ।। ताम्रपात्रं वेणुमयं कुम्भस्योपरि विन्यसेत् ।। स्थापयेन्मण्डले दिव्ये पञ्चपल्लवशोभितम् ।। तस्योपरि न्यसेद्देवं पूर्वमन्त्रैर्विधानतः ।। नानापुष्पैः फलैर्दिव्यैर्नानारत्नैः सुशोभनैः ।। श्वेतवस्त्रयुगेनैव पूजयेत्परमेश्वरम् ।। उपवीतं सोत्तरीयं भक्ष्याणि विविधानि च ।। धान्यानि यान्यभीष्टानि तानि तानि प्रकल्पयेत् ।। शय्यां सतूलमादर्शं देवस्याग्रे प्रकल्पयेत् ।। अथ श्वेतानि पुष्पाणि देवस्योपरि विन्यसेत्।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनि-स्वनैः ।। स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं व्रती ।। ततो होमं प्रकुर्वीत शिवमन्त्रेण वै व्रती ।। पालाशीभिः समिद्भिश्च जुहुयाच्छतमष्टकम् ।। आप्याय-स्वेति मन्त्रेण पृषदाज्याहुतीः शुभाः ।। यवव्रीहितिलाज्येन हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ।। होमान्ते च गुरुं पूज्य सपत्नीकं समाहितः।। वस्त्रैराभरणैश्चापि गृहोपकरणादिभिः।। श्वेता गौः कपिला वापि सुशीला च पयस्विनी ।। सवस्त्रा रत्नपुच्छा च घण्टाभरण-भूषिता ।। दक्षिणासहिता देया शिवो मे प्रीयतामिति ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्प-श्चात्त्रयोदश सुशोभनान् ।। त्रयोदशघटा देया वंशपात्रसमन्विताः ।। पक्वान्न-फलसंयुक्ता नानाभक्ष्यसमन्विताः ।। पूजितं तु ततो देवं देवोपकरणानि च ।। आचार्याय व्रती दद्यात्प्रणिपत्य पुनः पुनः ।। इदं पीठं गृहाण त्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ।। व्रतं मे परिपूर्णं स्याच्छिवो मे प्रीयतामिति ।। गृह्णामि देवदेवेशं त्रयाणां जगतां गुरुम् ।। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु व्रतस्याविकलं फलम् ।। प्रतिग्रहमन्त्रः ।। यद्भक्त्या देवदेवेश मया व्रतमिदं कृतम् ।। न्यूनं वाथ क्रियाहीनं परिपूर्णं तदस्तु मे ।। इति संप्रार्थयेद्देवं द्विजं चैव पुनः पुनः।।भुञ्जीयात् सह धर्मात्मा शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः।। अनेनैव विधानेन य इदं व्रतमाचरेत् ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।। दाता सुखी च तेजस्वी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।। विमानवरमारुह्य सोमलोके मही-यते ।। मनूनां च शतं यावत्तावत्तत्रैव मोदते ।। कृष्णेनाचरितं पूर्वं सोमवार व्रतं

शुभम् ।। नृपैः श्रेष्ठैः पुरा चीर्णमास्तिकैर्धर्मतत्परैः ।। इति पठति रहस्यं यः शृणोतीह नित्यं त्वनुवदति हि मर्त्यः श्रद्धयान्यस्य यो वै ।। सकलकलुषहीनो वन्द्यमानो गणाद्यैः शिवविमलविमानैर्याति शैवं पुरं सः ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे एकभुक्तसोमवारव्रतं सपूर्णम् ।। अथ तदेव प्रकारान्तरेणोक्तम् ।। भविष्ये—कैलासस्थं महादेवमपर्णासहितं शिवम् ।। पप्रच्छ प्रणतो भूत्वा किञ्चिद्गुह्यतमं गुहः ।। महेशाखिलदेवेश सर्वभूतात्मक प्रभो ।। त्वत्प्रसादान्मया पूर्वं विज्ञातं धर्मसाधनम् ।। किञ्चिज्ज्ञातव्यमस्त्यन्यत्त्वत्त एव मया प्रभो ।। यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।। किं दानं किं तपस्तीर्थं किं व्रतं वा महाफलम् ।। यस्मिन्कृते महाप्रीतिर्युवयोः स्यादुमेशयोः ।। तन्मे त्वं पुत्रवात्सल्यात्सर्वलोकहिताय च ।। विशेषं ब्रूहि देवेश यज्ज्ञात्वा स्यान्महत्सुखम् ।। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य प्रसन्नवदनो हरः ।। परिष्वज्य सुतं प्रीत्या प्रोवाचेदं वचस्तदा ।। शंकर उवाच ।। सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स प्रीतोऽस्मि वचसा तव ।। अस्ति किञ्चिद्व्रतं पुण्यं तन्मे कथयतः शृणु।।वेदशास्त्रपुराणानां यद्रहस्यं व्रतं महत् ।। यदद्य कथनीयं ते त्वत्तः को मम वै प्रियः ।। सोमवारव्रतं नाम सर्वव्रतफलाधिकम् ।। यस्मिन्कृते परा प्रीतिरावयोः स्यादुमेशयोः ।। निशम्यैतद्व्रतं स्कन्दः प्रोवाच वदतां वरः।।कीदृशं तद्व्रतं देव विधानं तस्य कीदृशम्।। कदाग्राह्यं कथं कार्यं किं दानं कस्य पूजनम्।।उद्यापनविधानं च विस्तरेण वदस्व मे।। शिव उवाच ।। मधौ मास्यष्टमी शुद्धा शिवेन्दु*दिनसंयुता ।। तदा ग्राह्यं व्रतं चैतददेन विधिना शुभम् ।। प्रातः कृष्णतिलैः स्नात्वा आचार्यसहितो व्रती ।। विधिनानेन गृह्णीयाद्व्रतं संकल्पपूर्वकम् ।। गृह्णामि भवरोगार्तः सोमवारव्रतौषधम् ।। व्रतेनानेन मे प्रीतौ भवेतां पार्वतीश्वरौ ।। पूर्वाह्णे विधिवत् कार्यमुमाशंकरपूजनम् ।। ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि ।। विसर्जनं ततः कुर्यादाचार्यं पूजयेत्ततः ।। शिष्टैरिष्टैः परिवृतो भोजनं कारयेत्ततः ।। अहःशेषं ततो नीत्वा सत्कथाश्रवणादिभिः ।। शयीताधस्ततो रात्रावभुक्तो ब्रह्मचर्यवान् ।। अनेन विधिना वत्स मदीये वासरे तु यः ।। कुर्याद्व्रतमवाप्नोति मद्भावं नात्र संशयः ।। अस्मिन्दिने कृतं किञ्चिद्दानं होमो जपस्तथा ।। व्रतं वा प्रीतिदं स्कन्दह्युमया सहितस्य मे ।। अतः सोमाह्वयो बारः प्रशस्तोऽयं मम प्रियः ।। एवं सोमाष्टकं कृत्वा व्रतस्योद्यापनं शुभम् ।। माघाद्ये पञ्चके कार्यं शुक्लपक्षे विशेषतः ।। शिवर्क्षतिथियोगानामेकैकेनापि संयुते ।। सोमवारे विधातव्यं तथा चन्द्रबलान्विते ।। विधाय रदनोल्लेखं प्रातः स्नात्वा विधानतः ।। आचार्यं वरयेदेकं विधिज्ञं श्रुतिपारगम् ।। पुराणस्मृतिधर्मज्ञं निगमागमवेदिनम् ।। उपोष्य सोमवारं च सायं

* शिवम्:आर्द्रानक्षत्रम् ।

सन्ध्यामुपास्य च ।। शिवालये हरेर्वापि शुचौ देशेऽथवा गृहे ।। अष्टांगुलोच्छ्रितां वेदिं वितस्तिद्वयसम्मिताम् ।। विचित्ररचनोपेतां पताकाद्युतशोभिताम् ।। विचित्रां विविधैर्वर्णैः फलराजिविराजिताम् ।। एवं प्रकल्पयेद् विद्वांश्चतुरस्रां समन्ततः ।। तस्यामष्टदलं पद्मं तण्डुलैः परिकल्पयेत् ।। पद्ममध्ये नवीनं च धवलं स्थापयेद्घटम् ।। वाससा वेष्टितं पूर्णमक्षतैः परिपूरितम् ।। ततः कनकसंभूतं मद्रूपमुमयान्वितम् ।। पञ्चामृतोदकैः स्नाप्य गन्धपुष्पाक्षतैर्जलैः ।। गृहीत्वा स्थापयेत्कुम्भे ध्यायेन्मद्रूपमीदृशम् ।। गणेशं मातृकाश्चापि दुर्गां क्षेत्राधिपं तथा ।। समाहितमनाः कोणेष्वाग्नेयादिषु विन्यसेत् ।। आचार्येण समं कुर्यान्मदाराधनमादरात् ।। सोमेश्वर प्रभृतिभिर्नामभिश्च व्रती क्रमात् ।। त्र्यम्बकं च तथा गौरीमिमायेति जपेत् सुधीः ।। पञ्चाक्षरं तथा मन्त्रं पूर्वादिषु दलेष्वपि ।। मूर्तयोऽष्टौ मदीयाश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ।। अनन्तसूक्ष्मौ च शिवोत्तमौ च त्रिमूर्तिरुद्रौ च तथैव पूज्यौ ।। क्रमेण श्रीकण्ठशिखण्डिनौ च भक्त्या शिवाराधनतत्परेण ।। तद्बहिर्लोकपालाश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ।। विष्टराद्युपचाराश्च दातव्या नाममन्त्रतः ।। बिल्वपत्राक्षतैः पुष्पैर्धूपदीपैःसमर्चयेत् ।। मनोरमा विधातव्या पूजा वित्तानुसारतः ।। ततो वेदैरधोभूमौ सर्वतोभद्रमण्डले ।। ब्रह्माद्या देवताः सर्वाः पूजनीयाः प्रयत्नतः ।। ततो जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।। पुराणैरितिहासैश्च रात्रिशेषं नयेद्व्रती ।। अपरेद्युः कृतस्नानः प्रातः सन्ध्यामुपास्य च ।। पुनर्यागगृहं गत्वाह्यु पचारान्प्रकल्पयेत् ।। हवनार्थे विधातव्यमुपलेपादिकं ततः ।। प्रतिष्ठाप्यानलं सर्वमन्वाधानादि पूर्ववत् ।। स्वगृह्यविधिना कार्यमाज्यभागान्तमेव च ।। अनादेशाहुतीर्हुत्वा महा*व्याहृतिसंज्ञकाः ।। होतव्याःसर्पिषा चैव पायसं सघृतं सुधीः।।त्वं सोमासीति मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतत् ।। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।। ततो होमावसाने च गामरोगां पयस्विनीम् ।। सवत्सां धवलां साध्वीं सवस्त्रां कांस्यदोहनाम् ।। दद्याद्व्रतसमृद्ध्यर्थमाचार्याय सदक्षिणाम् ।। वस्त्रैराभरणैरन्यैराचार्यं परितोषयेत् ।। ततः षोडशसंख्याकान् भोज्यैर्नानाविधैस्तथा ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चादर्चयन्नामभिः क्रमात् ।। सोमेश्वरस्तथेशानः शंकरो गिरिजाधवः ।। महेशः सर्वभूतेशः स्मरारिस्त्रिपुरान्तकः ।। शिवः पशुपतिःशम्भुस्त्र्यम्बकः शशिशेखरः ।। गङ्गाधरो महादेवो वामदेव इति क्रमात्।।वस्त्राणि कुण्डलादीनि चन्दनैरुपलेप्य च । उपवीतानि तेभ्योऽथ दद्यात्कुम्भान्फलान्वितान् ।। शक्त्या च दक्षिणा देया दम्पती पूजयेत्ततः ।। अन्यानपि यथाशक्ति ब्राह्मणान्परितोषयेत् ।। व्रतं ममास्तु सम्पूर्णमित्युक्त्वा तान्प्रपूजयेत् ।। अस्तु सम्पूर्णमित्युक्ते ततो यागभवं व्रजेत् ।। उपचारादिकं कृत्वा स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः ।। विसर्जनं विधायाथ शिष्टैरिष्टैः समन्वितः ।।

* भूरग्नये चेत्याद्याः ।

भुञ्जीयाद्यज्ञशेषं तद्वाग्यतो नियतः शुचिः ।। एवं कृते महापुण्ये व्रतस्योद्यापने शुभे।।नारी वा पुरुषो वापि महेशस्य परं प*दम्।। अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनवान्भवेत् ।। अविद्यो लभते विद्यामिति धर्मविदो विदुः ।। पृथिव्यां यानि तीर्थानि व्रतान्यन्यानि यानि तु ।। सोमवारव्रतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। इति श्रीभविष्यपुराणे एकभुक्तसोमवारव्रतं संपूर्णम् ।।

एकभुक्त सोमवारका व्रत—नारद बोले कि, दूसराभी मुझे कहिये जिससे मैं पद पाजाऊँ तथा शिवमें भक्ति हो एवम् दुसरोंकोभी सौभाग्य संपत्ति मिले । नन्दिकेश्वर बोले कि, मैं पवित्र सोमवारके व्रतको कहता हूं आप सुनें । श्रावण चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और मार्गशीषमें पहिले सोमवारको इस उत्तम व्रतको ग्रहण करे जब सोमवारके व्रत करनेकी श्रद्धा हो तबही श्रद्धा भक्तिके साथ आचार्य्यको अगाडी करके स्नान करे । पवित्र होय, श्वेतवस्त्र धारण करे । काम, क्रोध, अहंकार, द्वेष और पैशुन्य दूर कर दे । श्वेतपुष्प, लावे, मालतीके फूल दिव्यश्वेत पद्म, चंपक, कुन्द, मन्दार, पुन्नाग, शतपत्र इनके फूल चढावें । संसारके आनन्द देनेवाले शंकरको पार्वतीके साथ पूजे । मलयाचलके धूपसे पार्वतीपतिको धूप दे । अव्यापक कामिक मंत्रसे वा मूलमन्त्र या 'त्र्यंबकम्' इस मन्त्रसे शिवार्चन करे ।। भवके नाश करनेवाले भवके लिये नमस्कार धीमान् महादेवको नमस्कार, उग्रके नाशक उग्रके लिये नमस्कार, शशि को मौलिमें रखनेवाले, नीलकंठ रुद्र तथा भवहारी शिवके लिये नमस्कार, सब कामोंके देनेवाले तुझ ईशानके लिये नमस्कार है । अंगपूजा—देवाधिदेवके लिये नमस्कार, चरणोंको पूजता हूं; शंकरके लिये नमस्कार जांघोंको पूजता हूं; शिवके० जानुओंको; शूलपाणिके० गुल्फको०; शंभुके० कटीको०; स्वयंभूके० गुह्यको०; महादेवके० नाभिमण्डल को०; विश्वभर्ताके० उदरको०; सर्वतोमुखके० पार्श्वोंको०; स्थाणुके० स्तनोंको०; नीलकंठके० कंठको; त्रिनेत्रके० नेत्रको०: शशिभूषणके० मुकुटको०; देवाधिदेवके लिये नमस्कार, सर्वाङ्गको पूजाता हूं ।। इस प्रकार मनोहर उपहारोंसे अपनी शक्तिके अनुसार पूजा । इनके पुण्य फलको सुनो, जो सोमवारके दिन पार्वतीके साथ शिवका पूजन करते हैं वह मोक्षसेभी दुर्लभ अक्षय लोकोंको पाजाते हैं । एकभक्त सोमवारका जो फल है वह मैं तुम्हारे आगे कहता हूं कि, जिस पापको कोई भी देवदानव नष्ट न करसके ऐसा सात जन्मकाभी पाप क्यों न हो वह सब एकभक्तसे नष्ट होजाता है इसमें विचार न करना चाहिये । इस प्रकार एक सालतक इस व्रतको करे । जिस मासमें प्रारंभ करे, उसी मासमें समाप्त करदे । जो मनुष्य उपवासके साथ इस व्रतको करता है उसे अखंड करना चाहिये तथा करके संपूर्ण करना चाहिये । क्योंकि, व्रतको खंडित करनेसे सब निष्फल हो जाता है । उद्यापन जब मनुष्यका चित्त और वित्त दोनों हो तब उसे करना चाहिये इससे व्रतकी पूर्ति होजाती है, धन चित्त और जीवन सब चलायमान हैं । यह जान प्रयत्नके साथ व्रतका उद्यापन करना चाहिये । वृषभपर चढेहुए सोनेके उमामहेश्वर बनावे, यह शक्तिके अनुसार करे । कृपणता न होनी चाहिये । दिव्य लिङ्गतोभद्रमण्डल बनावे, पानीसे भरा हुआ श्वेत वस्त्र युत कलश स्थापन करे, उसपर ताम्बे या बाँसका पात्र रखे, उस कलशको दिव्य मण्डलपर रखे, पंचपल्लव डाले, उसपर देवको विराजमान करे, पहिले मंत्रोंसे विधिपूर्वक अनेक तरहके पुष्प, फल दिव्य सुन्दर रत्न, दो श्वेत वस्त्र इनसे परमेश्वरको पूजे, उत्तरीय समेत उपवीत और अनेक तरहके भक्ष्य तथा जो चाहते धान्य वा दूसरे सामान हों इन सबोंको तयार करे । रुईके गदलोंसे सजीहुई शय्या देवके आगे रखे, देवपर श्वेत पुष्प रखे, गानेबजानेके शब्दके साथ रातमें जागरण करे । अपने गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार अग्निकी स्थापना करे । पीछे व्रती शिवमंत्रसे हवन करे । पलाशकी समिधसे "अध्यायस्व" इस मंत्रसे श्वेत गौके घीकी आहुती दे, यव व्रीहि तिल और आज्यका हवन करके पूर्णाहुति करे । होमके अन्तमें सपत्नीक गुरुका पूजन करे । उन्हें वस्त्र आभरण और गृहोपकरण दे, चाहे श्वेत गौ हो चाहे कपिला हो वह सुशीलादूध देनेवाली हो, उसे वस्त्र चढावे, रत्नोंको

* प्राप्नुयादिति शेषः ।

पूछ तथा घंटा और आभरणसे विभूषित करे । उसे 'शिव मुझपर प्रसन्न हो' यह कहकर दक्षिणा समेत दे । पीछे सुयोग्य तेरह ब्राह्मणोंको भोजन करावे । प्रत्येकको एक एक घटभी वांसके पात्रके साथ दे । पक्वान्न फल और भक्ष्य दे । पूजित देव तथा उसके उपकरणोंको आचार्य्यको प्रमाण करके दे। कि, आप उपकरणोंके साथ इस पीठको लेलें, मेरा व्रत पूरा हो शिव मुझपर प्रसन्न हो जाय । आचार्य लेती-वार कहे । कि, मैं तीनों जगतोंके गुरुदेव देवेशको लेता हूं शान्ति हो कल्याण हो, व्रतका पूरा फल मिले । हे देवदेवेश ! जो मैंने यह व्रत भक्तिके साथ किया है । वह न्यून या क्रियाहीनभी है पर आपकी कृपासे पूरा होजाय । यह प्रार्थना देव और आचार्य दोनोंसे करनी चाहिये । योग्य पुरुष और बान्धवोंके साथ भोजन करे । जो कोई इस विधिसे इस व्रतको करता है वह जो चाहता है सो पाजाता है । देनेवाला सुखी तेजस्वी और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो जाता है । वह विमानपर चढकर चन्द्रलोकमें चला जाता है। वहाँ सौ मनुतक रहता है । इस पवित्र व्रतको पहिले कृष्णजीने किया था, और फिर अनेकों श्रेष्ठ राजाओं तथा धर्मात्माओंने इसे किया है जो श्रद्धाके साथ इस रहस्यको रोज सुनता पढता और अनुवाद करता है वह निष्पाप तथा गणादिकोंसे वन्दनीय हो शिवके निर्मल विमानपर चढकर शिवलोक चला जाता है यह श्री-स्कन्दपुराणका कहा हुआ एक भक्त सोमवारका व्रत पूरा हुआ ।। प्रकारान्तरसे यही व्रत—भविष्यमें कहा है । कैलासमें पार्वतीसहित शिव विराजमान थे । गुहने नमस्कार प्रणाम करके कुछ गुप्तबातें कीं कि, हे महेश, हे सारे देवोंके स्वामी ! हे सब भूतोंकी आत्मावाले ! आपकी कृपासे मैंने अनेक धर्मसाधन जान लिये । पर आपसे अभी और जानना बाकी है । जो मैंने न तो सुना हो और न देखा हो वह मुझे सुनादें । ऐसा कौनसा दान, तप तीर्थ या महाफल है जिसके कियेसे मेरी आपके चरणोंमें प्रीति होजाय ? हे देवेश ! आप पुत्र प्रेममें ओत प्रोत हो संसारके कल्याणके लिये कह दीजिये जिससे मुझे सुख हो । पुत्रके ऐसे वचन सुनकर शिवने प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन करके कहना प्रारंभ किया कि, हे पुत्र ! तुमने अच्छा पूछा । तुम्हारे वचनोंसे मैं परम सन्तुष्ट हुआ हूं । मैं एक पुण्य व्रतको कहता हूं । तुम सुनो, व शास्त्र और पुराण सबका रहस्य है । भला तुमसे मेरा क्या गोपनीय है, तथा कौन ज्यादा प्यारा है वह सोमवारका व्रत है, उसका फल सब व्रतोंसे अधिक है, जिसके कियेसे हम दोनों उमा और शिवमें परम प्रेम हो जायगा । उच्च-कोटिके वक्ता स्कन्द यह सुनकर बोले कि हे देव ! वह व्रत कैसा तथा उसका विधान क्या है ? कब ग्रहण किया जाय कब किया जाय क्या दान और क्या पूजन है ? मुझे उद्यापनका विधान भी विस्तारके, साथ कहिये । शिव बोले कि, चैत्र शुद्धा अष्टमी सोमवार आर्द्रा नक्षत्रके दिन इस विधिसे इस व्रतको करना चाहिये । व्रती मय आचार्यके प्रातःकाल काले तिलोंसे स्नान करके संकल्पके साथ इस व्रतको ग्रहण करे कि, संसाररूपी रोगसे दुःखी हुआ मैं औषध रूपी सोमवारके व्रतको ग्रहण करता हूं इससे पार्वती शिव प्रसन्न होजाय । पूर्वा-ह्णमें विधिपूर्वक उमामहेश्वरका पूजन करना चाहिये, इसके बाद पुष्पांजलि देकर दण्डकी तरह प्रणाम करे , विसर्जन करे, आचार्यका पूजन करे । शिष्ट इष्टजनोंको अपने साथ बिठाकर भोजन करे, बाकी समयको अच्छी कथाओंके श्रवणमें वितावे । रातको विना भोजन किये ब्रह्मचर्यके साथ भूमिपर शयन करे, हे वत्स इस विधिके साथ जो मेरे दिन व्रत करता है, वह मेरे भावको प्राप्त होता है । इसमें सन्देह नहीं है, इस दिन जो दान होम व्रत और जप किया जाता है, वह मेरी और उमाकी प्रसन्नताका कारण बनता है । इसी कारण मेरा प्यारा सोमवार प्रसंसनीय है उस प्रकार सोमाष्टक करके, व्रतका उद्यापन माघके पहिले पंचकमें करे । विशेष करके शुक्लपक्षमें कियाजाय, शिवके नक्षत्र आर्द्रा और तिथि इनमेंसे किसीसे भी संयुक्त सोमवारके दिन करे । तैसेही चन्द्रबल भी देखले, दाँतुन करके स्नान करे । वेद श्रुति शास्त्रके जाननेवाले आचार्यका वरण करे । वह पुराण स्मृति और नियमोंका भी जाननेवाला हो, सोमवारका व्रत और सायंकालकी सन्ध्या करके शिव वा विष्णुमंदिरमें या किसी पवित्र जगह या घरमें आठ अंगुल ऊँची दो बिलांयदकी वेदी बनावे, वह विचित्र रचनासे युक्त तथा पताका आदिकोंसे शोभित हो । अनेकों रंगोंसे चित्र विचित्र कोगई तथा फलोंकी

लंनसे शोभित तथा चौकोर हो, उसपर तण्डुलोंसे अष्टदल कमल लिखे उसपर नवीन श्वेतघट स्थापित करे वह वस्त्रसे वेष्टित भरा तथा अक्षतोंसे परिपूर्ण हो । उसपर सोनेकी मेरी मूर्ति स्थापित करे । पंचामृत और पानीसे स्नान करावे, गन्ध, पुष्प, अक्षत, पानीके साथ ऐसे मेरे रूपको स्थापित करे । गणेश, मातृका, दुर्गा, क्षेत्राधिप इसको अग्निकोणसे लेकर कोनोंमेंही स्थापित करदे । आचार्यके साथ सोमेश्वर आदिक-नामोंसे क्रमशः मेरा आराधना आदरपूर्वक करे । "त्र्यम्बकम्" और गौरीर्मिमाय" इन्हें तथा पंचाक्षर मन्त्रको आदरके साथ जपे, पूर्वादिक दलोंमें मेरी आठों मूर्तियोंका क्रमसे पूजन करे, ये आठों अनन्त, सूक्ष्म, शिव, उत्तम, त्रिमूर्ति, रुद्र, श्रीकण्ठ, शिखण्डी ये हैं । इन्हें शिवके आराधनमें तत्पर होकर भक्तिके साथ पूजे । उसके बाहिर लोकपालोंको सावधानीके साथ पूजे, विष्टर आदिक उपचार नाममन्त्रसे दे । बिल्वपत्र, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप इनसे पूजे । धनके अनुसार सुन्दर पूजा करे । इसके बाद नीचेकी भूमिमें सर्वतोभद्रमंडलपर वेदोंके मन्त्रोंसे सावधानीके साथ ब्रह्मादिक देवोंका पूजन करे । गाने बजानेके साथ जागरण करे । बाकी रातको पुराणोंके श्रवण आदिमें बितावे । दूसरे दिन स्नान सन्ध्या करके फिर यागघरमें जाकर उपचारोंको करे, हवनके लिये उपलेप आदिक तयार करे, अन्वाधान आदिके साथ अग्निस्थापन करे, अपने गृह्यसूत्रके अनुसार आज्यभागान्त कर्म करे, महाव्याहृतिनामक अनादेशकी आहुति दे । ये आहुति सर्पी (घी) की हैं । घृतसहित पायसकी आहुति दे वे "त्वं सोमासि" इस मन्त्रसे एकसौ आठ दे । "ओम् त्वं सोमासिधारयुपद्र ओयजष्ठो अध्वरे । त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान् मत्सरिन्तमः ।। हे उमासहित शिव ! आप स्वयं सदा प्रसन्न एवं अपने भक्तोंको प्रसन्न करनेवाले बलवान् तथा बलवान् बनानेवाले एवम् धारण करनेवाले हो आपको यज्ञमें आहुति दिये पीछे देनेवाले मनुष्यको प्रसन्न करते हो पुष्ट करते हो । आपको पाकर मनुष्य सब दुखोंसे छूट कर निरतिशय प्रसन्न होजाता है ।।" पीछे स्विष्टकृत् हवन करके होम शेषको समाप्त करे । होमके अन्तमें वृष देनेवाली गाय आचार्यको दे । वह बछडेवाली धोली हो, वस्त्र दे । काँसीकी दोहनी दे, साथमें दक्षिणा भी दे औरभी वस्त्र आभरणोंसे आचार्यको सन्तुष्ट करे । पीछे सोलह ब्राह्मणोंको अनेक तहरके भोज्य पदार्थोंसे भोजन करावे । पीछे उन्हें इन नामोंसे पूजे । सोमेश्वर, ईशान, शंकर, गिरिजाधव, महेश, सर्वभूतेश, स्मरारि, त्रिपुरान्तक, शिव, पशुपति, शंभु, त्र्यंबक, शशिशेखर, गंगाधर, महादेव, वामदेव ये सोलह नाम हैं । इनसे क्रमसे पूजे वस्त्रादि दे, कुण्डलादि पहिनावे; चन्दनका लेप करे, उन्हें कुंभ फलोंके साथ उपवीत दे, शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे, दंपतियोंका पूजन करे, शक्तिके अनुसार दूसरे भी दंपतियोंको पूजे, मेरा व्रत पूरा हो यह कहकर पूजे, तथा वे ब्राह्मण भी पीछे कहें कि, पूरा होगया । पीछे यज्ञ भूमिमें आवे । उपचारादि करके स्केति नमस्कार करके उनका विसर्जन करे । फिर प्यारे और शिष्टोंके साथ जो बचगया हो उसका भोजन करे । इस प्रकार इस व्रतके पुण्यदायी उद्यापनके कियेपर स्त्री हो वा पुरुष शिवके परम पदको पाजाता है । निपुत्रीको पुत्र तथा निर्धनको धन मिलजाता है । अविद्यको विद्या मिलजाती है, ऐसा धर्मवेत्ता जानते हैं, पृथिवीपर जितनेभी तीर्थ हैं और जितने व्रत हैं, सब इस सोमवारके व्रतकी सोलहवीं कलाकोभी नहीं पासकते । यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ एकभुक्त सोमवारका व्रत पूरा हुआ ।।

अथ मंगलवारव्रतम्

भौमवारे अरुणोदयवेलायामपामार्गेण दन्तधावनं विधाय तिलामलकचूर्णेन नद्यादौ गृहे वा स्नात्वा धौतमारक्तवस्त्रं परिधाय रक्तोत्तरीयं च परिदध्यात् ।। ततस्ताम्रपात्रे रक्ताक्षतरक्तपुष्परक्तचन्दनानि निक्षिप्य अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतार्घ्यान्दद्यात् ।। तधो गृहमागत्य गोमयेन भूमिं विलिप्य शुद्धदेशे पुत्रार्थी धनार्थी च पत्न्या सह मङ्गलपूजामारभेत् ।। तत्रविधिः ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य ऋणव्याधिविनाशार्थं पुत्रधनप्राप्तये च भौमव्रतं करिष्ये तदङ्गत्वेन भौमपूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य प्रार्थयेत् ।। अद्य देवेश ते भक्त्या करिष्ये व्रतमुत्तमम्।।

ऋणव्याधिविनाशाय धनसन्तानहेतवे ।। यन्त्रोपरिस्थं भौमं पूजयेत् ।। तत्र यन्त्र-प्रकार उक्तः संग्रहे–त्रिकोणं पूर्वमुद्धत्य पञ्चधा विभजेत्ततः ।। तृतीयरेखां चिह्ना-भ्यां लाञ्छयेत्समभागतः ।। आद्यरेखाग्रयुगलं तृतीयाचिह्नयोर्न्यसेत् ।। द्वितीयाग्रे समाकृष्य तृतीयाचिह्नयोर्न्यसेत् ।। तृतीयरेखामध्ये तु चिह्नयेत् समभागतः ।। तुर्यां चिह्नद्वयेनाथ त्रिभिश्चिह्नैस्तु पञ्चमीम् ।। तृतीयाग्रे प्रकुर्वीत पञ्चम्या-मध्यचिह्नगे ।। तुर्याग्रे योजयेत्सम्यक् पञ्चम्याश्चिह्नयोर्द्वयोः ।। तृतीयरेखा मध्यकात्पंचयाश्चिह्नयोर्द्वयोः ।। एवमेकाधिकं सम्यक्कोणानां विंशतिर्भवेत् ।। तृतीयातुर्ययोर्मध्यत्रिकोणे तु समर्चयेत् ।। देवं तदग्रतो मन्त्री त्रिकोणे दक्षिण-क्रमात् ।। मङ्गलाद्यांस्तारपूर्वान्नमोन्तानेकविंशतिः ।। एकविंशतिकोष्ठेषु नाम-मन्त्रान्समालिखेत् ।। ततः पूजा प्रकर्तव्या पुत्रसम्पत्तिहेतवे ।। पूजाप्रकारः ।। तत्रादौ न्यासाः ।।ॐ ह्रांअंगुष्ठाभ्यां नमः ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां० ॐ ह्रूं मध्य-माभ्यां० ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां० ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां० ॐ ह्रः करतलकर-पृष्ठाभ्यां०ॐ ह्रां हृदयाय०ॐ ह्रीं शिरसे०ॐ ह्रू शिखायै० ॐ ह्रैं कवचाय हुं ।। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्।।ॐ ह्रः अस्त्राय० फट् ।। ॐ खंखः इति दिग्बन्धः ।। रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः ।। चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः ।। ध्यानम् ।। एह्येहि भगवन्भौम अङ्गारक महाप्रभो ।। त्वयि सर्वं समायातं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।। भौममावाहयिष्यामि तेजोमूर्ति दुरासदम् ।।रुद्ररूपमनिर्देश्यवक्त्रं च रुधिरप्रभम् ।। अग्निर्मूर्धाङ्गिरसो विरूपोङ्गारको गायत्री । मङ्गलावाहने विनियोगः ।। ॐ अग्निर्मूर्धा० ।। ॐ नमो भगवते धनसमृद्धिदाय मङ्गलाय नमः ।। मङ्गलमावाहयामि इत्यावाह्य अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण मङ्गलगायत्र्या वा आसनादि-पुष्पान्तं पूजयित्वा यन्त्रस्यैकविंशतिकोष्ठेष्वङ्गान्येकविंशतिनामभिः पूजयेत् ।। तद्यथा मङ्गलाय नमः पादौ पूजयामि ।। भूमिपुत्राय० गुल्फौ० । ऋणहर्त्रे० जंघे० । धनप्रदाय० जानुनी० । स्थिरासनाय० ऊरू० । महाकाया० कटी० । सर्वकर्मा-वरोधकाय० नाभिं० । लोहिताय० उदरं० । लोहिताक्षाय० हृदयं० । सामगानां-कृपाकराय० करौ० । धरात्मजाय० बाहू० । कुजाय० स्कन्धौ ० । भौमाय० कण्ठं० । भूतिदाय०हनुं० । भूमिनन्दनाय०मुखं० । अङ्गारकाय० नासिके० । यमाय० कर्णौ० । सर्वरोगापहारकाय० चक्षुषी० । वृष्टिकर्त्रे० ललाटं० । वृष्टि-हर्त्रे० मूर्धानं० । सर्वकामफलप्रदाय० शिखाम् ।। ततो धूपादिपुष्पाञ्जल्यन्तं कृत्वा एतैरेव नामभिरेकविंशत्यर्घ्यान्दद्यात् ।। ततो वक्ष्यमाणं कवचं पठेत् ।। मङ्गलकवचम् ।। शिखायां मङ्गलः पातु भूमिपुत्रश्च मूर्धनि ।। ललाटे ऋणहर्ता च चक्षुषोश्च धनप्रदः ।। स्थिरासनः श्रोत्रयोश्च महाकायश्च नासिके ।। आस्य-

दन्तौष्ठजिह्वासु सर्वकर्मावरोधकः ।। हनौ मे लोहितः पातु लोहिताक्षश्च कण्ठके ।। स्कन्धयोरुभयो रक्षेत्सामगानां कृपाकरः ।। धरात्मजो भुजौ पातु कुजो रक्षेत्कर-द्वयम् ।। भौमो मे हृदयं पातु भूतिदस्तु तथोदरे ।। भूमिनन्दनो नाभौ तु गुह्येत्व-ङ्गारकोऽवतु ।। ऊरू मम यमो रक्षेज्जान्वो रोगापहारकः।।जंघयोर्वृष्टिकर्ता च अपहर्त्ता च गुल्फयोः ।। पादांगुष्ठौ च गुल्फौ च सर्वकामफलप्रदः ।। शक्तिर्मे पूर्वतो रक्षेच्छूलं रक्षेच्च दक्षिणे ।। पश्चिमे च धनुः पातु उत्तरे च शरस्तथा ।। ऊर्ध्वं पिण्डाननः पातु अधस्तात्पृथिवी मम ।। एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेद्भूमि-नन्दनम् ।। इति कवचं जपित्वा जपं कुर्यात्।।तदङ्गतया "असृजमरुणवर्णं रक्त-माल्याङ्गरागं कनककमलमालामालिनं विश्ववन्द्यम् ।। अतिललितकराभ्यां बिभ्रतं शक्तिशूले भजत धरणिसूनुं मङ्गलं मङ्गलानाम्" इति ध्यात्वा अग्निर्मूर्धा इति मन्त्रष्टोत्तरशतं जपेत् ।। अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि । तन्नो भौमः प्रचोदयात् ।। इति गायत्रीं पठित्वा ततः स्तोत्रं पठेत् ।। मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः ।। स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः ।। लोहितो लोहिता-क्षश्च सामगानां कृपाकरः ।। धरात्मजः कुजो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः ।। अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः ।। वृष्टिकर्ताऽपहर्ता च सर्वकामफलप्रदः ।। एतानि कुजनामानि नित्यं यः प्रयतः पठेत् ।। ऋणं न जायते तस्य सन्तानं वर्धते सदा ।। एकविंशतिनामानि पठित्वा तु दिनान्तके ।। रूपवान् धनवांश्चैव जायते नात्र संशयः ।। एककालं द्विकालं वा यः पठेत्सुसमाहितः ।। एवं कृते न सन्देहो ऋणं हित्वा सुखी भवेत् ।। इति स्तोत्रं पठेत् ।। धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्ति-समप्रभम् ।। कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ।। इति नमस्कारः ।। खदिरांगारेण रेखात्रयं कृत्वा ।। अंगारक महीपुत्र भगवन्भक्तवत्सल ।। त्वां नम-स्यामि मेऽशेषे ऋणमाशु विनाशय ।। ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुद्रापमृत्यवः।। भवक्लेशमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।। ऋणदुःखविनाशाय पुत्रसन्तानहेतवे ।। मार्जयाम्यसिता रेखास्तिस्रो जन्मसमुद्भवाः ।। दुःखदौर्भाग्यनाशाय सुखसन्तान-हेतवे ।। कृतं रेखात्रयं वामपादेन मार्जयाम्यहम् ।। इति मन्त्रैस्तामार्जयेत् ।। ततः प्रार्थना–ऋणहर्त्रे नमस्तेऽस्तु दुःखदारिद्रनाशक ।। सुखसौभाग्यधनदो भव मे धरणीसुत ।। ग्रहराज नमस्तेऽस्तु सर्वकल्याणकारक ।। प्रसादात्तव देवेश सदा कल्याणभाजन ।। देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ।। प्राप्नुवन्ति शिवं सर्वे सदा पूर्णमनोरथाः ।। प्रसादं कुरु मे भौम सौभाग्यं मंगलप्रद ।। बालः कुमारको यस्तु स भौमः प्रार्थितो मया ।। उज्जयिन्यां समुत्पन्न नमो भौम चतुर्भुज ।। भरद्वाज-कुले जात शूलशक्तिगदाधर ।। इति प्राथ्र्य पुनः स्तोत्रं पठेत् ।। ततो वायनदानम् ।।

तिलगुडमिश्रितैनैकविंशतिलड्डूकान् गोधूमभवान्फलदक्षिणासहितान्वेदविदे दद्यात् । दानमन्त्रः—मङ्गलाय नमस्तुभ्यं सर्वमङ्गलदायक ।। वायनेन च सन्तुष्टः कुरु मे त्वं मनोरथान् ।। देवस्यत्वेति मन्त्रेण मङ्गलः प्रीयतामिति दद्यात् ।। आवाहनं न जानामि० इति पूजनम् ।। अथ कथा—सूत उवाच ।। पूजितो देवदैत्यैस्तु मङ्गलो मङ्गलप्रदः ।। गौतमेन पुरा पृष्टो लोहितांगो महाग्रहः ।। ११ ।। गौतम उवाच ।। कथयस्व महाभाग गुह्यं पूजनमुत्तमम् ।। मन्त्रमाराधनं दानं सर्वपापप्रणाशनम् ।। २ ।। रूपं सुवर्णसंकाशं वाहनायुधसंयुतम् ।। येन पूजितमात्रेण जायते सुखमुत्तमम् ।। ३ ।। धर्मार्थकाममोक्षाणां कालेनैव फलप्रदम् ।। सर्वपापप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ।। ४ ।। सर्वसौभाग्यदं देवं धातुः पातकनाशनम् ।। सर्वयज्ञफलं येन सर्वकामफलप्रदम् ।।५।। तपसां जपदानानां फलं चैव तु लभ्यते ।। तद्व्रतं ब्रूहि देव लोहितांग महाग्रह ।। ६ ।। यस्मिन्नाराधिते मर्त्यः सर्वसौभाग्यवान्भवेत् ।। मङ्गल उवाच ।।शृणुविप्र महाभाग सर्वज्ञ ऋषिसत्तम ।। ७ ।। व्रतं च पूजनं दानं प्रख्यातं भुवनत्रये ।। आसीत् पूर्वं हि सर्वज्ञो नन्दको ब्राह्मणोत्तमः ।। ८ ।। तस्य भार्या सुनन्दा च नाम्ना ख्याता सुलोचना ।। तस्यापत्यं च सञ्जातं वृद्धत्वान्न कदाचन ।। ९ ।। तेनान्यस्य सुता पुण्या गृहीत्वा पोषिता ध्रुवम् ।। ब्राह्मणस्य कुले जाता सुरूपा गुणसंयुता ।। १० ।। सर्वलक्षणसम्पन्ना प्रयत्नेनैव गौतम ।। पुरा जनौ तया चाहमेकभावेन पूजितः ।। ११ ।। सा पुत्री स्वगृहे नीत्वा ब्राह्मणेनैव पालिता ।। नित्यं हि स्रवते तस्या अष्टाङ्गं कनकं बहु ।। १२ ।। तत्सुवर्णेन विप्रोऽसौ धनाढ्यो मदर्गवितः ।। कोटिकोटीश्वरो जातो राजते भूमिमण्डले ।। १३ ।। दृष्टानन्दकविप्रेण दशवर्षा वरार्थिनी ।। विवाहार्थं च विप्राय दत्ता सोमेश्वराय च ।। १४ ।। वेदोक्तविधिना तस्या विवाहमकरोत्तदा ।। वर्षैः कतिपयैर्वि[1]प्रः स्वां पत्नीं प्रौढयौवनाम् ।। १५ ।। आदाय श्वशुरगृहान्निर्गतः शुभवासरे ।। स्वदेशमार्गेण ततो व्रजन् प्राप्तस्त्वहर्निशम् ।। १६ ।। निशान्ते दुर्गमे घोरेऽरण्ये पर्वतमध्यगे ।। नन्दकोऽपि वने तस्मिन्महालोभेन भावितः ।।१७।। प्रच्छन्नश्चोर रूपेण घातितुं विट्पतिं स्वकम् ।। भ्रमञ्जघान विजनं दृष्ट्वा निष्करुणो भृशम् ।। १८ ।। तं पतिं मृतमालोक्य सा नारी शोकपीडिता ।। पतिना सह विप्रेन्द्र मरणे कृतनिश्चया ।। १९ ।। स्वपतिं तन्मयं विश्वं चिन्तयंती पदे-पदे ।। पतिं प्रदक्षिणीकृत्य चितायाश्च समीपतः ।। २० ।। प्राप्य यावत्प्रविशति पतिलोकमभीप्सती ।। तस्मिन्क्षणे च तुष्टोऽहं वरार्थं तामचोदयम् ।। २१ ।। वरं ब्रूहि महाभागे यत्ते मनसि वर्तते ।। इति श्रुत्वा ततो वव्रे सा नारी पतिमानसा ।। २२ ।। ब्राह्मण्यु-

---

१ सोमेश्वरः ।

वाच ।। यदि तुष्टोऽसि मे देव तर्हि जीवतु मे पतिः ।। मङ्गल उवाच ।। अजरोऽप्यमरः प्राज्ञस्तव भर्ता भविष्यति ।। २३ ।। अन्यं याच महासाध्वि वरं त्रिभुवनोत्तमम् ।। ब्राह्मण्युवाच ।। यदि तुष्टोऽसि मे देव ग्रहाणामधिपेश्वर ।। २४ ।। ये त्वां स्मरन्ति देवेशं रक्तचन्दनर्चाचितम् ।। रक्तपुष्पैश्च संपूज्य प्रत्यूषेभौमवासरे ।। २५ ।। बन्धनं व्याधिरोगाश्च कदाचिन्नोपजायताम् ।। न च सर्पाग्निशत्रुभ्यो भयं च स्वजनैः सह ।। २६ ।। न वियोगो महीपुत्र भक्तानां सौख्यदो भव ।। मङ्गल उवाच ।। एकविंशतिभौमांश्च यो मद्भक्तो जितेन्द्रियः ।। २७ ।। एकाहारं सितान्नेन चतुर्दीपान्विते गृहे ।। अर्घ्यैश्च मङ्गलैर्मन्त्रैर्वेदपौराणिकोद्भवैः ।। २८ ।। युवानं रक्तमनड्वाहं सर्वोपस्करसंयुतम् ।। स्वशक्त्या भोजयेद्विप्रान् दातव्यं च हिरण्यकम् ।। २९ ।। तस्य वै ग्रहपीडा च न भवेत्तु कदाचन ।। भूतवेतालशाकिन्यो न भवन्ति च हिंसकाः ।। ३० ।। दारिद्र्य नश्यते तस्य पुत्रपौत्रैश्च वर्धते ।। एवमुक्त्वा च तत्रैव मङ्गलोऽपि दिवं गतः ।। ३१ ।। एवं व्रतं समाख्यातं सर्वसौख्यप्रदायकम् ।। इदं व्रतं करिष्यन्ति तेषां पीड़ा न जायते ।। ३२ ।। स्त्रीभिर्व्रतं प्रकर्त्तव्यं पुरुषैश्च विशेषतः ।। तेषां मुक्तिर्भवत्येव स्वर्गवासो न संशयः ।। ३३ ।। इति श्रीपद्मपुराणे भौमवारव्रतकथा संपूर्णा ।। अथोद्यापनम् ।। गौतम उवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि मम सम्यग्ग्रहेश्वर ।। येन ज्ञातेन जगतो ह्युपकारो महान्भवेत् ।। मङ्गल उवाच ।। विधेयो मण्डपः सम्यगष्टहस्तप्रमाणतः ।। स्थण्डिलं मध्यतः कार्यं हतैकेन प्रमाणतः ।। मण्डलं तु प्रकर्तव्यं मामकं रक्ततण्डुलैः ।। पूर्वोक्तानि च नामानि मण्डले पूजयेत्ततः ।। एकविंशतिकोष्ठेषु चतुर्दीपान्वितेषु च ।। एकविंशतिकुम्भांश्च स्थापयित्वा मदग्रतः ।। सौवर्णी प्रतिमां तत्र स्थापयेत्कलशोपरि ।। रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य पूजयेत्कुसुमैः शुभैः ।। अग्निर्मुर्धेतिमंत्रेण होमं खादिरसंभवैः[2] ।। अष्टोत्तरशतं हुत्वा दिक्पालांश्च हुनेत्ततः ।। अङ्गपूजा प्रकर्तव्या नामभिर्मम सर्वदा ।। मङ्गलाय च पादौ तु भूमिपुत्रेति गुह्यके ।। ऋणहर्त्रे तु नाभौ च महाकालाय वक्षसि ।। सर्वकामप्रदात्रे च मम बाहू प्रपूजयेत् ।। लोहितो हस्तयोश्चैव लोहिताक्षश्च कण्ठके ।। आस्ये संपूजयेन्मां च सामगानां कृपाकरम् ।। धरात्मजं नासिकायां कुजं च नयनद्वये ।। भौमं ललाटपट्टे च भूमिजाय भुवोस्तथा ।। भूमिनन्दननामानं मूर्ध्नि संपूजयेत्तथा ।। अङ्गारकं शिखायां तु यमं तु कवचे सदा ।। सर्वरोगापहर्तारमस्त्रदेशे प्रपूजयेत् ।। आकाशे वृष्टिकर्तारं प्रहर्तारमधस्तथा ।। सर्वांगे च प्रपूज्योऽस्मि सर्वकामफलप्रदः ।। एवं संपूज्य चाङ्गेषु

१ जितेन्द्रियो मद्भक्तः सितान्नेन एकाहार : सन्चतुर्दीपान्विते मंजले अर्घ्यैः एकविंशति भौमवारान् कुर्यादित्यन्वयः । २ समिद्भिरिति शेषः ।

पश्चाद्गन्धादिनार्चयेत् ।। भोज्यैर्कविंशतिं विप्रान्दद्यात्कुम्भान्सवस्त्रकान् ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दत्त्वा धेनुं सवत्सकाम् ।। सर्वं निवेदयेत्पीठं गुरवे च शुचिस्मितः ।। अच्छिद्रं याचयेत्तेभ्यः सर्वे ब्रूयुर्व्रतं शुभम् ।। दत्त्वा दीनान्धकृपणान्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। इति श्रीपद्मपुराणे मङ्गलव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

मंगलवारव्रतम्

अब मंगलवारका व्रत कहाजाता है । मंगलवारको अरुणोदयके समय अपामार्गकी दांतुनकरके तिल और आमलेकी पिठीसे नदी आदि वा घरमें स्नान करके धुलेहुए लालवस्त्र पहिनले उपरना भी लालहो । इसके बाद तांबेके पात्रमें रक्त, अक्षत, पुष्प, चन्दन डांलकर "अग्निर्मूर्धा" इस मन्त्रसे १०८ अर्घ्य दे । पीछे घर आ, शुद्ध देशमें गोबरसे भूमि लीपकर पुत्रार्थी और धनार्थीको चाहिये कि, वे पत्नीके साथ मंगलकी पूजा करें । विधि-मास पक्ष आदिका उल्लेख करके ऋण और व्याधिके नाशके लिये तथा पुत्र और धनकी प्राप्तिके लिए मंगलवारका व्रत करूँगा । उसके अङ्गरूपसे मंगलका पूजनभी करूँगा, यह संकल्प करके प्रार्थना करे कि, हे देवेश ! अब में भक्तिके साथ आपका उत्तमव्रत करूँगा जिससे ऋण व्याधि दूर हों तथा धन और सन्तानकी वृद्धि हो, यन्त्रके ऊपर भौमका पूजन करे ।। यन्त्रका आकार-संग्रह ग्रन्थमें कहा है कि, सबसे पहिले त्रिकोण यन्त्र बनावे । फिर उसमें चार लकीर खींचे जिससे उस त्रिकोण यन्त्रके पांच भाग हो जायेंगे तीसरी रेखामें समभागके दो चिह्नकर दे जिससे उस रेखाके तीन भाग हो जायेंगे । पहिली रेखाके दोनों किनारोंसे लेकर दो रेखाएँ बनावे । व बाई ओरकी बाई ओरकी तृतीयाके चिह्नमें तथा दूसरी दाईं ओरकी रेखाको बांयी ओरके तृतीयाके चिह्नमें मिलादे । इसी तरह द्वितीयाके भी दोनों नोकोंकी दो रेखाओंको तृतीयाके उसी स्थलमें लगावे । फिर तृतीयाके बीचमें एक चिह्न करे । दो चिह्न चौथी रेखामें करे तथा पांचवींमें तीनचिह्न करे, तथातीसरीके दोनों नोकोंकी दोरेखाएँपांचवीं रेखाके बीचमें मिलजायँ तथाचौथी लकीरके नोक, भिन्न भिन्न दो रेखाओंके पांचवी रेखाके अलग बगलके दो चिह्नोंसे मिलायी जाँय तृतीय रेखाके बीचसे दोरेखाएँ जाकर पांचवीं रेखाके दोनों चिन्होंसे मिल जायें । तब ये इक्कीस कोष्टक तयार-होजायेंगे । तीसरी और चौथी रेखाके बीचके त्रिकोणमें पूजा करे, या वहां मंगलकी पूजा करे, मंगलादिक इक्कीस नाम मंत्र आदिमें और अन्तमें नमः लगाकर क्रमसे प्रत्येक कोठेमें लिख दे, पीछे पुत्रसंपत्तिके लिये यंत्रकी पूजा करनी चाहिये । यद्यपि हमने ग्रन्थमें लिखी हुई मंगल यंत्रके बनानेकी विधिको जितनाभी स्पष्ट करके लिख सकते हैं लिख चुके हैं किन्तु फिर भी कुछ संदिग्ध विषय समझकर उस यंत्रकोही यहाँ लिखे देते हैं एवम् जिन जिन कोष्ठकोंमें मंगलके इक्कीस नाम जिस जिस क्रमसे लिखे जायेंगे वे क्रमके अंकभी यंत्रमें लिख देते हैं पर नाममन्त्रोंको यंत्रमें न लिखकर यंत्रकेही कोष्टकोंके क्रमसे लिखेंगे, मङ्गल यन्त्र—
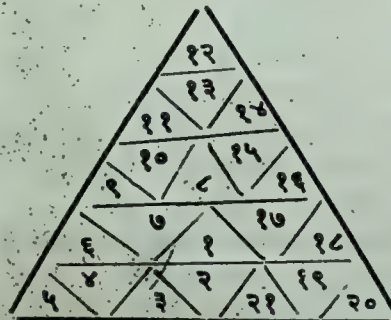
१ ओम् मङ्गलायनमः २ भूमिपुत्रायनमः ३ ओम् ऋणहर्त्रे नमः ४ ओम् धनप्रदाय नमः ५ ओम् स्थिराशनाय नमः । ६ ओम् महाकायायनमः ७ ओम् सर्वकामविरोधकाय नमः ८ ओम् लोहिताय नमः ९ ओम् लोहितांगाय नमः १० ओम् सामगानां कृपा कराय नमः ११ ओम् धरात्मजाय नमः १२ ओम् कुजा५ नमः १३ ओम् रक्ताय नमः १४ ओम् भूमिपुत्राय नमः १५ ओम् भूमिदाय नमः १६ ओम् अंगायकायनमः १७ ओम् यमाय नमः १८ ओम् सर्वरोगप्रहारिणे नमः १९ ओम् सृष्टिकर्त्रे नमः २० ओम् प्रहर्त्रे नमः २१ ओम् सर्व कामफल-प्रदाय नमः । यंत्रके अंक और नाम मंत्रोंके लिखनेका क्रम एकही है इन्हीं अंकोंके कोष्टकोंमें क्रमशः ये नाम-मंत्र लिखने चाहिये । पूजा—सबसे पहिले न्यास करे यानी मूलमें जो न्यासके मंत्र लिखे हैं उन मंत्रोंको बोलता जाय और उन उन अङ्गोंको छूता जाय जो कि, मूलमें मंत्रोंमेंही लिखे हैं । हाथकी पांचों उंगलियोंका नाम संस्कृतमें क्रमसे अंगुष्ट अंगूठा, तर्जनी अंगूठेके पासकी उँगली मध्यमा बिचली, अनामिका चौथी उँगली कनिष्ठिका सबसे छोटी अंगुली कही जाती है करतल हतेरे तथा पृष्ठहाथकी पीठ कही जाती है । हृदय—छाती, शिर—खोपडी, शिखा—चोटी, कवच—भुजाएँ, नेत्रत्रय तीन नेत्र कहे जाते हैं इन संस्कृतके शब्दों वालेपदोंसे इनका स्पर्श होता है । ये दोनों करन्यास और अङ्गन्यास कहाते हैं । 'अस्त्राय फट्' कहकर अपने दोनों ओर हाथ घुमा ताली बजावे तथा ओम् खंखः कहकर चुटकी बजावे यह दिग्बन्ध होगया । रक्तमाला पहिने शक्तिशूल और गदा हाथमें लिए हुए चतुर्भुजी तथा मेंढेकी सवारी रखनेवाले धरान्दन वर दिया करते हैं, इससे ध्यान; हे अंगारक महाप्रभो भौम ! पधारिये, आपके आनेसे चराचरसमेत तीनों लोक आगये; लोहू जैसा लाल लाल मुख अनिर्देश्य रुद्ररूपी तेजोवर्ति दुरासद मंगलका आवाहन करता हूं, 'अग्निर्मूर्धा' इस मंत्रके आगिरस विरूप ऋषि है मंगल देवता है गायत्री छन्द है मंगलके आवाहनमें विनियोग होता है । ओम् अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ।। यह पृथिवीका पुत्र भौम दिवका मूर्धा तथा सबका अग्रणी है । सबका पालक तथा सबसे श्रेष्ठ है, वही पानीके सारोंको पुष्ट करता या व्यापकोंको बल देता है । इस मंत्रसे अथवा धन समृद्धि देनेवाले भगवान् मंगलके लिये नमस्कार । मंगलका आवाहन करता हूं, इससे आवाहन करे । "अग्निर्मूर्धा" इस मंत्रसे तथा "ओम् अङ्गारकाय विघ्नेशक्तिहस्ताय धीमहि तन्नो भौमः प्रचोदयात्" इस मंगलगायत्रीसे आसनसे लेकर पुष्पसमर्पण तककी पूजा करे । यंत्रके जिस कोष्ठमेंजो नाम मंत्रलिखे जाते हैं उन्हीं इक्कीस नाममंत्रोंसे उन उन कोष्ठोंमें क्रमशः अंगोंका पूजन करना चाहिये । अङ्गपूजा—मंगलके लिये नमस्कार चरणोंको पूजाता हूं; भूमिपुत्रके० गुल्फोंको पू०; ऋण हर्ताके० जंघाओंको० ; धन देनेवालेके० जानुओंको० : स्थिरासनके० उरूओंको० ; महाकायके० कटीको० ; सब कामोंके अवराधकके० नाभिको० ; लोहितके० उदरको० ; लोहिताक्षके० ; हृदयको० ; सामके जाननेवालोंपर कृपा करनेवालेके० हाथोंको० ; धरात्मजके० बाहुओंको० ; कुजके० स्कन्धोंको० ; भौमके० कंठको० ; भूतिके देनेवालेके० हनुको० ; भूमिनन्दनके० मुखको० ; अंगारकके०० नासिकाओंको० ; यमके० कर्णोंको० ; सब रोगोंके नष्ट करनेवालेके० नेत्रोंको० ; वृष्टिके करनेवालेके० ललाटको० ; वृष्टिके हर्ताके० मूर्धाको०, सब कर्मोंके फ देनेवालेके लिये नमस्कार शिखाको पूजता हूं ।। इसके बाद धूपसे लेकर पुष्पांजलितक करके इक्कीस रामम‍त्रोंसे इक्कीस अर्घ्य दे । इसके बाद इस नीचे लिखेहुए कवचको पढना चाहिये । कवच—शिखा मंगल रक्षा करे । भूमिपुत्र मूर्धाकी; ऋणहर्ता ललाटकी; धनप्रद नेत्रोंकी; स्थिरासन श्रोत्रोंकी; नासिकाओंकी महाकाय; सर्व कर्मावरोधक मुख, दंत, ओष्ठ और जिह्वाकी; लोहित हनुकी; लोहिताक्ष कंठकी; सामगोंपर कृपा करनेवाला दोनों स्कन्धोंकी; धरात्मज भुजोंकी; कुज दोनों हाथोंकी, भौम हृदयकी; भूतिद उदरकी भूमिनन्दन नाभिकी; अङ्गारक गुह्यकी; यम उरुओंकी; रोगापहारक जानुओंकी; वृष्टिकर्ता जांघोंकी; अपहर्ता गुल्फोंकी; सर्वकामफलप्रद, पाद अंगुष्ठ और गुल्फोंकी; रक्षा करे । शक्ति मेरी पूर्वसे रक्षा करे दक्षिणमें शूल रक्षा करे । पश्चिममें धनुष रक्षा करे । उत्तरमें शर रक्षा करे, ऊपर पिण्डानन तथा नीचे पृथ्वी रक्षा करे, इस प्रकार शरीरमें न्यास (या रक्षाके लिये इन रूपोंको वहां बिठा) कर मंगलका ध्यान करे । ये न्यास कहेहुए अंगोंपर रक्षाके लिये किये जाते हैं इस कारण हमने सीधा

रक्षा करे यह अर्थ कर दिया है । इस प्रकार कवच करके जप करे, उसीके अङ्गरूपसे—"अरुण रंगके, लाल माला पहिनेहुए, लालही अंगराग दियेहुए, कनक कमलकी मालाएं पहिने हुए विश्वके वन्दनीय, अत्यन्त कोमल हाथोंमें शक्ति और शूल लियेहुए, मंगलोंके कारण ऐसे भूमिनन्दनको भजो" इससे मंगलका ध्यान करे, "अग्निर्मूर्धा" इस मंत्रसे एकसौ आठ जप करे । भौम गायत्री पहिले कहचुके हैं । उसको पढकर स्तोत्र पढे । मंगलस्तोत्र–मंगल, भूमिपुत्र, ऋणहर्ता, धनप्रद, स्थिरासन; महाकार्य, सर्व कर्मावरोधक, लोहित, लोहिताक्ष, सामगानां कृपाकर, धरात्मज, कुज, भौम, भूतिद, भूमिनन्दन, अंगारक, यम, सर्व रोगापहारक, वृष्टिकर्ता, वृष्टि, अपहर्ता 'सर्वकामफलप्रद, ये मंगलके नाम हैं । जो रोज सावधानीके साथ इन्हें पढता है उसपर कष्ट नहीं होता, सदा सन्तानकी वृद्धि होती है । सामके समय इन इक्कीस नामोंको पढकर रूप और धनवाला होजाता है । इसमें सन्देह नहीं है ।। एकवार वा दो वार एकाग्र चित्त हो पढे इस प्रकार करनेपर ऋणको चुका सुखी होजाता है । इस स्तोत्रको पढे । भूमिके गर्भसे होनेवाले बिजलीकी कान्तिके समान प्रभा-वाले शक्ति हाथमें लिये हुए कुमार मंगलको वारंवार प्रणाम करता हूं, इससे नमस्कार करे । खैरके अंगारसे तीन रेखा करके, हे भगवन अंगारक ! हे महीपुत्र ! हे भक्तवत्सल ! मैं आपको नमस्कार करता हूं, मेरा समस्त ऋण नष्ट करिये, ऋण रोगादि, दारिद्रच, पाप, क्षुद्र, अपमृत्यु, भयके क्लेश, मनके ताप ये मेरे सदा नष्ट हों, ऋणके दुखको नष्ट करने तथा पुत्र और सन्तानके लिये जन्मसे होनेवाली तीनों असित रेखाओंका मार्जन करता हूं । जिससे दुःख और दौर्भाग्यका नाश तथा सुख और सन्तान हो, की हुई तीनों रेखाओंका वायें पैरसे मार्जन कराता हूं, इन मंत्रोंसे रेखाओंका मार्जन करे । प्रार्थना पीछे करे कि हे दुख और दारिद्रयके नाश करनेवाले तुझ ऋणनाशकके लिये नमस्कार है, हे धरणीके पुत्र ! मुझे सुख और सौभाग्यका देनेवाला बनजा, हे सबके कल्याणके करनेवाले तुझ ग्रहराजके लिये नमस्कार है, हे देवेश ! आपकी कृपासे सदा कल्याण हो क्योंकि, आप सदाही कल्याणके भाजन हैं, देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग ये सब सदाही पूर्ण मनोरथ होकर कल्याणको पाते हैं; हे भौम ! मुझपर कृपा करिये, हे मंगलके देनेवाले ! सौभाग्य दे, जो चतुर्भुज वालकुमार उज्जयनीमें उत्पन्न हुआ है उसीसे मैं प्रार्थना कर रहा हूं । उसीके लिये मेरी ये नमस्कारें भी हैं । वह भरद्वाजके कुलमें पैदा हुआ है । शक्ति शूल और गदा धारण करनेवाला है, यह प्रार्थना करके फिर स्तोत्र पढना चाहिये । वायनदान-तिल गुड मिले हुए गेंहूके इक्कीस लड्डू फल और दक्षिणाके साथ वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको दे, सब मंगलोंके देनेवाले तुझ मंगलके लिये नमस्कार है । इस वायनेसे सन्तुष्ट होकर मेरे मनोरथोंको पूरा करिये, "देवस्य त्वा" इस मंत्रको बोलकर कहे कि, इस दानसे मंगल देव प्रसन्न हों पीछे देदे । यह वायनेके दानका मंत्र है । आवाहनं न जानामि' क्षमा प्रार्थना करे । यह मंगलकी पूजा पूरी हुई ।। कथा—सूतजी बोले कि मंगलके देनेवाले मंगलकी जब देव और दैत्योंने पूजा करली तो उस लोहिताङ्ग महाग्रहसे गौतमने पूछा ।।१।। कि, हे महाभाग ! गुह्य उत्तम पूजन, मंत्र, आराधना और सब पापोंका नाश करनेवाला दान कहिये । सोनेके समान रूप वाहन और आयुधोंसहित, जिसके कि पूजन मात्रसे उत्तम सुख पैदा होजाय ।।२।।३।। सब पापोंका नाशक सब व्याधियोंके विनाशक एवं धर्म अर्थ काम और मोक्षका थोडे समयमेंही फल देनेवाला हो । ४।। सभी सौभाग्योंको देनेवाला तथा ध्याताको सभी पातकोंको नष्ट करनेवाला जिससे सब यज्ञोंका फल हो जो सब कामरूपी फल देनेवाला हो ।।५।। तप जप दानोंका फलभी उससे मिल जाय हे लोहिताङ्ग महाग्रह ! उस व्रतको मुझे सुना दीजिये ।।६।। जिसकी आराधना किये मनुष्य सभी सौभाग्योंको पाजाय । मंगलदेव बोले कि, हे श्रेष्ठ ऋषे ! हे सर्वज्ञ ! हे महाभाग ! मैं कहताहूँ तू सावधानीके साथ सुन ।।७।। जो कि व्रत पूजन और दान तीनों भुवनोंमें प्रसिद्ध है ।। पहिले सब कुछ जानने-वाला एक नन्दक नामक उत्तम ब्राह्मण था ।।८।। उसकी सुनयनी सुनन्दा नामकी स्त्री थी । वह बूढा होगया पर कोई सन्तान न हुई ।।९।। इस कारण किसी दूसरेकी लडकी लेकर ईन्होंने अपने घर पाली । वह लडकी ब्राह्मणके कुलमें पैदा हुई थी सुन्दर और गुणवती थी ।।१०।। एवं सभी उत्तम लक्षण उसमें थे । हे गौतम ! पहिले जन्ममें उसने मुझे प्रयत्नके साथ एकभावसे पूजा था ।।११।। वह पुत्री ब्राह्मणने अपने घरमें पाली,

उसका अष्टाङ्ग रोज ही बहुतसा सोना दिया करता था ।।१२।। उस सोनेसे वह ब्राह्मण धनाढ्य होगया जिससे उसे बडा भारी मद और अभिमान होगया । वह कोटि कोटीश्वर होकर भूमण्डलपर राजाकी तरह रहने लगा ।।१३।। नन्दकने उसे दश वर्षकी होजानेके बाद देखा कि, लडकी व्याहके योग्य होगई है । तब उसने सोमेश्वर ब्राह्मणके लिये दे दी ।।१४।। वेदकी कही हुई विधिसे उसका विवाह करदिया । कुछ वर्षोंके बाद जब वह पूरी जवान होगई तो ।।१५।। सोमेश्वर उसे ससुरालसे शुभ दिनमें अपने घरको लेकर चल दिया । अपने देशके रास्तेमें जाते जाते उसे रात होगई ।।१६।। घोर काली रातमें पर्वतके बीचके बनमें पहुंचे । वहा नन्दन भी महालोभसे उपस्थित था ।।१७।। अपने जमाईको मारनेके लिये चोर बनकर छिपा-हुआ था । उस निर्दयने इधर उधर घूम उसे अकेला देखकर एकदम मार दिया ।।१८।। पतिको मरा देख उसकी स्त्री शोकसे दुखी होगई । हे विप्रेन्द्र ! उसने पतिके साथ मरनेका निश्चय किया ।।१९।। अपने पति तथा पतिमय विश्वको पद पद पर याद करके पतिकी प्रदक्षिणाएँ की और चिताके बिलकुल समीप आ।।२०।। उसमें प्रवेश करना चाहती ही थी कि, इससे मैं पतिके लोकको चली जाऊँगी । उसी समय प्रसन्न हुआ मैं वर देनेको उपस्थित हो उसे वर मांगनेके लिये प्रेरित करने लगा ।।२१।। कि, हे महाभागे ! जो तेरे मनमें हो सो वर मांगले, यह सुन उस स्त्रीने मनसे पति मांगा ।।२२।। कि, हे देव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह मेरा पति जीवित होजाय । यह सुन मंगलदेव बोले कि, तेरा पति अजर अमर और परम विद्वान होजायगा ।।२३।। इसमें तो बात ही क्या ? हे साध्वि ! और जो कोई तीनों लोकोंमें उत्तम वर हो उसे मांग । वह सुन ब्राह्मणी बोली कि, हे ग्रहोंके स्वामी ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो ।।२४।। जो रक्तचन्दनसे चर्चित किये तुझे लालफूलोंसे मंगलवारके प्रातःकालके समय पूजकर स्मरण करें ।।२५।। उन्हें बन्धन रोग और व्याधि कभी भी न पैदा हो । वह तथा उसके स्वजनोंको सर्प अग्नि और वैरियोंसे भय न हो । हे महीपुत्र ! उनका कभी स्वजनोंसे वियोग भी न हो तथा आप अपने भक्तोंके लिये सुखके देनेवाले हों यही वर मुझे दीजिये । मंगल बोले कि, जो मेरा भक्त जितेन्द्रय होकर वितअन्नसे एकवार भोजन करके चार दीपक युक्त मण्डलपर अर्घ्योंके साथ वेद और पुराणोंके मंगलमंत्रों सहित इक्कीस मंगलवार करे ।।२६–२८।। तथा सब उपस्करके साथ लालरंगका युवा (अनड्वान्) बैल सोनेसमेत दे तथा शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे।।२९।। उसे कभी ग्रहपीडा नहीं होगी । उसे भूत प्रेत बेताल और शाकिनी कभी नहीं मार सकती ।।३०।। उसका दारिद्र्य नष्ट होजाता है और बेटा नातियोंके साथ बढता है ! वहां ही यह कहकर मंगलदेव दिव चले गये ।।३१।।यह सब सुखोंका देनेवाला व्रत मैंने कह दिया है । जो इस व्रतको करेंगे उन्हें कभी भी दरिद्रकी पीडा नहीं होगी ।।३२।। इस व्रतको स्त्रियोंको करना चाहिये । विशेष करके पुरुष भी इसी व्रतको करें । उनकी मुक्ति और स्वर्गवास होगा इसमें सन्देह नहीं है ।।३३।। यह श्रीपद्मपुराणकी कही हुई भौमवारके व्रतकी कथा पुरी हुई ।। उद्यापन—गौतम बोले कि, हे महेश्वर ! मुझे उद्यापनकी विधि सुनाइये । यदि मैं इसे जान जाऊँगा तो संसारका बडा उपकार होगा । मंगल बोला कि, आठ हाथका मंडप बनाना चाहिए। उसपर एकहाथका स्थण्डिल बनावे, उसपर चावलोंसे मेरा मण्डल बनावे । उसपर इक्कीस कोठोंमें मेरे पहिले इक्कीसों नाममन्त्रोंकी पूजा करे । उसके चारों ओर चार दीपक रखे । वहां इक्कीस घट रखे । कलशके ऊपर सोनेकीप्रतिमा स्थापित करे । उसे लालवस्त्रोंसे वेष्टित करके पवित्र फूलोंसे पूजे, "अग्निर्मूर्धा" इस मन्त्रसे आहुति दे, खैरकी समिध हो । एकसौ आठ आहुति देकर दिक्पालोंको आहुति दे । मेरे नाम मंत्रोंसे अंगपूजा करे । अंग पूजा—मंगलके लिए नमस्कार चरणोंको पूजता हूं । भूमि पुत्रके० गुह्यको०; ऋण हर्ताके० नाभिको०; महाकालके० वक्षको०, सब कामोंके देनेवालेके० बाहुओंको पू०; लोहितके० हाथोंको०; लोहिताक्षके० कंठको०: सामके गानेवालोंपर कृपा करनेवालेके० मुखको; धरात्मजके० नासिकाको०; कुजके० दोनों नयनोंको०; भौमके० ललाटपट्टको०; भूमिजके० भ्रुकुटियोंको०: भूमिनन्दनके लिए नमस्कार मूर्धाको पूजता हूं ।। अंगारके० शिखाको०; यमके० कवचको०; सब रोगोंके नाश करनेवालेके० अस्त्र देशको०; आकाशमें वृष्टिकर्ताको०; नीचे प्रहर्ताको० सर्वाङ्गमें सब कामोंके देनेवालेको पूजता हूं इन श्लोकोंके देखनेसे तो हम विशेष विचारके साथ इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि जिस तरह मंगलकी अंगपूजा

हैं उसी तरह मंत्रीको भी अंगन्यास और दिग्बन्धदि इन्हींसे हो जाते हैं अथवा इसके दो भाग हैं एक भाग तो "मम बाहू प्रपूजयेत्" यहां खतम होता है तथा दूसरा भाग "एवं संपूज्य चांगेषु" यहां पूरा होता है) इस प्रकार अङ्गोंपर पूजकर पीछे गन्धादिकसे चर्चित करे ।२१। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वस्त्रसहित कुंभ दे । पीछे आचार्यको पूजे बछडेवाली गऊ दे सब पीठ गुरुको देदे । उनसे अच्छिद्र माँगे वे सब अछिद्र कहदें कि, आपका व्रत निर्दोष पूरा हुआ । दीन आंधरे और कृपणोंको देकर आपमौन होकर भोजन करे ।यह श्रीपद्मपुराणका कहा हुआ मंगलके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अत्र व्रतराजग्रन्थकारेण बुधबृहस्पतिवारयोर्व्रतानि न लिखितानि; तथापि प्रकरणवशाज्जयसिंह कल्पद्रुमोक्तानीह लिख्यन्ते । तत्रादौ बुधवारव्रतम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टि पुष्टिः कान्तिश्च जायते ।। विशाखासु बुधं गृह्य सप्त नक्तान्यथाचरेत् । बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ।। शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनम् । गुडोदनोपहारन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। बुध त्वं बोधजनो बोधदः सर्वदा नृणाम् । तत्त्वावबोधं कुरु ते सोमपुत्र नमोनमः ।। होमं घृततिलैः कुर्य्याद्बुधनाम्ना च मन्त्रवित् । समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा । होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।। बुधशान्तिरिति प्रोक्ता बुधवैकृतनाशनम् । बुधदोषेषु कर्तव्ये बुधशान्तिक पौष्टिके ।।

अब मैं एक उत्तम रहस्य कहता हूं जिससे लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि और कांति होजाती हैं । विशाखा नक्षत्र बुधवारको ग्रहण करके सात नक्तव्रत करे । सोनेका बुध बनाकर कांसेके पात्रमें रखे । दो सफेद वस्त्र पहिनावे तथा श्वेत माला और अनुलेपनभी श्वेतको । गुडोदनका उपहार ब्राह्मणके निवेदन करदे । हे बुध ! आप बुद्धिके पैदा करनेवाले तथा मनुष्योंको बोध देनेवाले हो, हे सोमपुत्र ! आप तत्वका अवबोध करते हैं । इस कारण आपके लिए वारंवार नमस्कार है । बुधके नामवाले "उद्बुध्यस्व" इस मंत्रसे घृत तिल पायससे होम करावे, अपामार्गकी एकसौ आठ या अट्ठाईस समिधा होनी चाहिये । मधु सर्पी, दधि और घृतके साथ हवन करना चाहिये । यह बुधकी शांति कही गई है । यह बुधकी विकृतताको नष्ट करती है । बुधके दोषोंमें बुधके शांतिके और पौष्टिक कर्म करने चाहिये । "ओम् उद्बुध्यास्वाग्ने" यह बुधका वैदिक मंत्र है । तथा ओम् ब्रां ब्रीं ब्रौ सः यह तांत्रिक यंत्र है । वैदिक मन्त्रसे हवन होना चाहिये ।।

बृहस्पतिवारव्रतम्

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिः कान्तिश्च जायते ।। गुरुं चैवानुराधासु पूजयेद्भक्तितो नरः । पूर्वोक्तविधियोगेन सप्तनक्तान्यथाचरेत् ।। हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा बृहस्पतिम् । पीताम्बरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतकम् ।। पादुकोपानहच्छत्रं कमण्डलुविभूषितम् । भूषितं पीतकुसुमैः कुंकुमेन विलेपितम् ।। धूपदीपादिभिर्दिव्यैः फलैश्चन्दनतण्डुलैः । खण्डखाद्योपहारैश्च गुरोरग्रे निवेदयेत् ।। धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग । विबुधार्तिहराचिन्त्य देवाचार्य्य नमोऽस्तु ते ।। होमं घृततिलैः कुर्य्याद्गुरुनाम्ना च मन्त्रवित्।समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा।।होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।। पिप्पल्यः समिधो ज्ञेयाः शास्त्रान्तरसवादतः ।। एतद्व्रतं महापुण्यं–

सर्वपापहरं शिवम् । तुष्टिपुष्टिकरं नणां गुरुवैकृतनाशनम् । विषमस्थे गुरौ कार्य्या जीवशान्तिरियं नृभिः ।।

अब हम एक उत्तम रहस्य कहते हैं, जिससे लक्ष्मी धृति पुष्टि, तुष्टि और कांति हो जाती है ।। बृहस्पति अनुराधा नक्षत्रमें भक्तिके साथ गुरुकी पूजा करे । पहिले कहे हुए योगमें सात मासतक करे ।। सोनेके पात्रमें सोनेके बृहस्पतिजीको स्थापित करके दो पीताम्बर उढावें । पीलाही उपवीत पहिनावे ।: पादुका, उपानह, छत्र और कमण्डलुसे सुशोभित करे ।। पीत फूलोंसे सुशोभित करके कुंकुमका लेप कर, तथा दिव्य धूप, दीप, फल, चन्दन, तण्डुल, खण्ड , खाद्य, उपहार इनमेंसे पूजनेकी वस्तुसे पूजकर अगाडी रखनेकी वस्तुको अगाडी रख दे ।। हे धर्मशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले ! हे ज्ञान और विज्ञानके पारदर्शी ! हे देवताओंकी आर्तिको नष्ट करनेवाले ! हे अचिन्त्य ! हे देवोंके आचार्य्य ! आपको नमस्कार हो ।। मंत्रके जाननेवाला गुरुके नामसे धृततिलोंसे हवन करे । एक सौ आठ समिध, या अठ्ठाईस समिध होनी चाहिये वे मधु-सर्पीके साथ या दही या घीके साथ हवन करनी चाहिये, सब शास्त्रोंके प्रमाणके पीपपलकी समिधसमझना चाहिये । यह व्रत महापुण्य दायक सब पापोंका हरनेवाला कल्याणकारी है, मनुष्योंको तुष्टि पुष्टि करनेवाला तथा गुरुके दोषको शान्त करनेवाला है । जब गुरु विषम ('खषट्त्र्याद्यैः' इत्यादिमें) हो तो मनुष्योंको बृहस्पतिकी शांति करनी चाहिये । 'ओम् बृहस्पतेऽअतियदर्य्योऽअर्हाद्द्युमद्विभाति ऋतुमज्जनेषु, यद्दीदयँछवसऽऋत प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।' यह वैदिकमंत्र है तथा बृहस्पतयेनमः यह तांत्रिक यंत्र है । कहीं कहीं नवग्रह विधानपद्धतिसे इसका पाठभेद हो गया है ।।

बृहस्पति स्तोत्रम्

बृहस्पतिः सुराचार्य्यो दयावाञ्छुभलक्षणः । लोकत्रयगुरुः श्रीमान् सर्वतः सर्वदो विभुः ।। सर्वेशः सर्वदा तुष्टः सर्वगः सर्वपूजितः । अक्रोधनो मुनि श्रेष्ठो नीतिकर्ता जगत्प्रियः ।। विश्वात्मा विश्वकर्ता च विश्वयोनिरयोनिजः । भूर्भुवःस्वः पिता चैव भर्ता जीवो महाबलः ।। पंचविंशति नामानि पुण्यानि शुभदानि च । प्रातरुत्थाय यो नित्यं कीर्तयेत् सुसमाहितः ।। विपरीतोऽपि भगवान् प्रीतस्तत्र बृहस्पतिः । नन्दगोपगृहे यच्च विष्णुना परिकीर्तितम् ।। यः पठेत्तु गुरुस्तोत्रं चिरंजीवी न संशयः । गोसहस्रफलं पुण्यं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।। बृहस्पतिः सुराचार्य्यः सुरासुरसुपूजितः । अभीष्टफलदः श्रीमान् शुभग्रह नमोस्तु ते ।।

बृहस्पति, सुराचार्य्य, दयावान्, शुभलक्षण, लोकत्रयगुरु, श्रीमान्, सब ओरसे सब देनेवाले, विभु, सर्वेश, सर्वदा, तुष्ट, सर्वाङ्ग, सर्व पूजित, अक्रोधन, मुनिश्रेष्ठ, नीतिकर्ता, जगत्प्रिय, विश्वात्मा, विश्वकर्ता, विश्वयोनि, अयोनिज, भूः, भुवः स्वः, पिता, भर्ता, जीव, महाबल, ये पच्चीस नाम पुण्यकेदेनेवाले एवं शुभकारी हैं जो एकाग्र चित्तसे प्रातःकाल उठकर कहेगा उसपर विपरीत हुए भी बृहस्पति महाराज प्रसन्न हो जायेंगे । नंदगोपके घरमें जो स्तोत्र विष्णुभगवान्ने कहा था जो उस गुरुस्तोत्रको पढ़ेगा वह चिरंजीवी होगा इसमें सन्देह नहीं है । विष्णुभगवान्ने यह भी कहा है कि, उसे एक हजार गऊओंके दानका पुण्य होता है । बृहस्पति भगवान् देवोंके आचार्य्य तथा सुर और असुरोंसे पूजित होते हैं । अभीष्ट फलके देनेवाले हैं श्रीमान् हैं । हे शुभग्रह ! तेरे लिए नमस्कार है ।।)

शुक्रवारे वरलक्ष्मीव्रतम्

अथ श्रावणे शुक्रवारे वरलक्ष्मीव्रतम् ।। तत्र पूजाविधिः ।। क्षीरसागर संभूतां क्षीरवर्णसमप्रभाम् ।। क्षीरवर्णसमं वस्त्रं दधानां हरिवल्लभाम् ।। ध्यानम् ।। ब्राह्मी हंससमारूढा धारिण्यक्षकमण्डलू ।। विष्णुतेजोऽधिका देवी सा मां पातु

वरप्रदा ।। आवाहनम् ।। महेश्वरी महादेवि आसनं ते ददाम्यहम् ।। महैश्वर्य-समायुक्तं ब्रह्माणि ब्रह्मणः प्रिये ।। आसनम् ।। कुमारशक्तिसंपन्ने कौमारि शिखिवाहने ।। पाद्यं ददाम्यहं देवि वरदे वरलक्षणे ।। पाद्यम् ।। तीर्थोदकैर्महद्दिव्यैः पापसंहारकारकैः ।। अर्घ्यं गृहाण भो लक्ष्मि देवानामुपकारिणि ।। अर्घ्यम् ।। वैष्णवि विष्णुसंयुक्ते असंख्यायुधधारिणि ।। आचम्यतां देवपूज्ये वरदेऽसुरमर्दिनी ।। आचमनम् ।। पद्मे पञ्चामृतैः शुद्धैः स्नपयिष्ये हरिप्रिये ।। वरदे शक्तिसंभूते वरदेवि वरप्रिये ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। गंगाजलं समानीतं सुगन्धिद्रव्य-संयुतम् ।। स्नानार्थं ते मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ।। स्नानम् ।। रजताद्रिसमं दिव्यं क्षीरसागरसन्निभम् ।। चन्द्रप्रभासमं देवि वस्त्रं ते प्रददाम्यहम् ।। वस्त्रम् ।। मांगल्यमणिसंयुक्तं मुक्ताफलसमन्वितम् ।। दत्तं मंगलसूत्रं ते गृहाण सुरवल्लभे ।। कण्ठसूत्रम् ।। सुवर्णभूषितं दिव्यं नानारत्नसुशोभितम् ।। त्रैलोक्यभूषिते देवि गृहाणाभरणं शुभम् ।। आभरणानि ।। रक्तगन्धं सुगन्धाढ्यमष्टगन्धसमन्वितम् ।। दास्यामि देवि वरदे लक्ष्मीर्देवि प्रसीद मे ।। गन्धम् ।। हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ।। सौभाग्य द्रव्यम् ।। नानाविधानि पुष्पाणि नाना वर्णयुतानि च ।। पुष्पाणि ते प्रयच्छामि भक्त्या देवि वरप्रदे ।। पुष्पाणि अथाङ्गपूजा—वरलक्ष्म्यै० पादौ पू० । कमल-वासिन्यै० गुल्फौ पू० । पद्मालयायै० जंघे पू० । श्रियै० जानुनी पू० । इन्दिरायै० ऊरू पू० । हरिप्रियायै० नाभि पू० । लोकधात्र्यै० तनौ पू० । विधात्र्यै० कण्ठं पू० धात्र्यै० नासां पू० । सरस्वत्यै० मुखं पू० । पद्मनिधये ० नेत्रे पू० । माङ्गल्यायै० कर्णौ पू० । क्षीरसागरजायै० ललाटं पू० । श्रीमहालक्ष्म्यै० शिरः पू० । श्रीमहा-काल्यै० सर्वांगं पूजयामि ।। धूपं दास्यामि ते देवि गोघृतेन समन्वितम्।। प्रतिगृह्ण महादेवि भक्तानां वरदप्रिये ।। धूपम् ।। साज्यं च वर्ति० सादीपम्० ।। नैवेद्यं परमं दिव्यं दृष्टिप्रीतिकरं शुभम् ।। भक्ष्यभोज्यादिसंयुक्तं परमान्नादिसंयुतम् ।। नैवेद्यम् ।। नागवल्लीदलैर्युक्तं चूर्णक्रमुकसंयुतम् ।। वरलक्ष्मीर्गृहाण त्वं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। ताम्बूलम् ।। सुवर्णं सर्वधातूनां श्रेष्ठं देवि च तत्सदा ।। भक्त्या ददामि वरदे स्वर्णवृष्टिं च देहि मे ।। दक्षिणाम् ।। नीराजनं सुमङ्गल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।। चन्द्रार्कवह्निसदृशं गृह्ण देवि नमोऽस्तु ते ।। नीराजनम् ।। सर्व-मङ्गलमाङ्गल्ये सर्वपापप्रणाशिनि ।। दोरकं प्रतिगृह्णामि सुप्रीता हरिवल्लभे ।। दोरकग्रहणम् ।। करिष्यामि व्रतं देवि त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ।। श्रियं देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शुभे ।। दोरकबन्धनम् ।। क्षीरार्णवसुते लक्ष्मीश्चन्द्रस्य च सहोदरि ।। गृहाणार्घ्यं महालक्ष्मीर्देवि तुभ्यं नमोऽस्तु ते ।। पुनरर्घ्यम् ।। श्रीवृक्षस्य

दलं देवि महादेवप्रियं सदा ।। बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुनिर्मलम् ।। बिल्वपत्रम् ।। इह जन्मनि यत्पापं मम जन्मान्तरेषु च ।। निवारय महादेवि लक्ष्मीर्नारायणप्रिये ।। प्रदक्षिणाः ।। कामोदरि नमस्तेऽस्तु नमस्त्रैलोक्यनायिके ।। हरिकान्ते नमस्तेऽस्तु त्राहि मां दुःखसागरात् ।। नमस्कारः ।। क्षीरार्णवसमुद्भूते कमले कमलालये ।। प्रयच्छ सर्वकामांश्च विष्णु वक्षःस्थलालये ।। व्रतसमर्पणम् ।। छत्रं चामरमान्दोल्लं दत्त्वा व्यजनदर्पणे ।। गीतवादित्रनृत्यैश्च राजसम्माननैस्तथा ।। क्षमापये सूपचारैः समभ्यर्च्य महेश्वरी ।। क्षमापनम् ।।वरलक्ष्मीर्महादेवि सर्वकामप्रदायिनि।। यन्मया च कृतं देवि परिपूर्णं कुरुष्व तत् । प्रार्थना ।। एकविंशतिपक्वान्नशर्कराघृतसंयुतम् ।। वायनं ते प्रयच्छामि इन्दिरा प्रीयतामिति ।। इन्दिरा प्रतिगृह्णाति इन्दिरा वै दादाति च।।इन्दिरा तारकोभाभ्यामिन्दिरायै नमोनमः ।।इति वायनमन्त्रः ।। पञ्च वायनकानेवं दद्याद्दक्षिणया युतान् ।। विप्राय चाथ यतये देव्यै तु ब्रह्मचारिणे ।। सुवासिन्यै ततस्त्वेकं दापयेच्च यथाविधि । इति पूजा । अथ कथा–सूत उवाच ।। कैलासशिखरे रम्ये सर्वदेवनिषेविते ।। गौर्या सह महादेवो दीव्यन्नक्षैर्विनोदतः ।। १ ।।जितोऽसि त्वं मया चाह पार्वती परमेश्वरम् ।। सोपि त्वं च जितेत्याह सुविवादस्तयोरभूत् ।। २ ।। चित्रनेमिस्तदा पृष्टो मृषावादमभाषत ।। तदा कोपसमाविष्टा गौरी शापं ददौ ततः ।। ३ ।। कुष्ठी भव मृषावादिन् चित्रनेमिर्हतप्रभः ।। नानृतेन समं पापं क्वापि दृष्टं श्रुतं मया ।। ४ ।। चित्रनेमिर्महाप्राज्ञः सत्यं वदति नो मृषा ।। प्रसादः क्रियतां देवि देवीमाह वृषध्वजः ।। ५ ।। प्रसादसुमुखी तस्मै विशापं च जगाद सा ।। यदा सरोवरे रम्ये करिष्यन्ति शुचिव्रतम् ।। ६ ।। ततः स्वर्गणिकाः सर्वं यक्ष्यन्ति त्वां समाहिताः ।। तदा तव विशापः स्यादित्युक्तः स पपात ह ।।७।। ततः कतिपयाहोभिश्चित्रनेमिः सरोवरे ।। कुष्ठीभूत्वा वसंस्तत्र ददर्श स्वर्विलासिनीः।।८।। देवतापूजनासक्ताः पप्रच्छ प्रणिपत्यताः ।। किमेतद्भो महाभागाः किं पूजा किं च वाञ्छितम् ।।९।। किं मया च ह्यनुष्ठेयमिहामुत्र फलप्रदम् ।। इति व्रतं चित्रनेमिः पप्रच्छ स्वर्विलासिनीः ।। १० ।। येनाहे गिरिजाशापान्मोक्ष्यामि चिरदुःखतः ।। ता ऊचुः क्रियतामद्य त्वया चैतदनुत्तमम् ।। ११ ।। वरलक्ष्मीव्रतं दिव्यं सर्वकामसमृद्धिदम् ।। यदा रवौ कुलीरस्थे मासे च श्रावणे तथा ।। १२ ।। गङ्गायमुनयोर्योगे तुङ्गभद्रासरित्तटे ।। तस्मिन्वै श्रावणे मासि शुक्लपक्षे भृगोर्दिने ।। १३ ।। प्रारब्धव्यं व्रतं तत्र महालक्ष्म्या यतात्मभिः ।। सुवर्णप्रतिमां कुर्याच्चतुर्भुजसमन्विताम् ।। १४ ।। पूर्वं गृहमलंकृत्य तोरणै रङ्गवल्लिभिः ।। गृहस्य पूर्वदिग्भागे ईशान्यां च विशेषतः ।। १५ ।। प्रस्थमितांस्तण्डुलांश्च भूमौ निक्षिप्य पद्मके ।। संस्थाप्य कलशं तत्र

तीर्थतोयैः प्रपूरयेत् ।। १६ ।। फलानि च विनिक्षिप्य सुवर्णं प्रक्षिपेत्ततः ।। पल्लवांश्च विनिक्षिप्य वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः ।। १७ ।। प्रतिमां स्थापयेत्तत्र पूजयेच्च यथाविधि ।। अग्न्युत्तारणपूर्वं तु शुद्धस्नानं यथाक्रमम् ।।१८।। पञ्चामृतेन स्नपनं कारयेन्मन्त्रतः सुधीः ।। अभिषेकं ततः कृत्वा देवीसूक्तेन वै ततः ।। १९ ।। अष्टगन्धैः समभ्यर्च्य पल्लवैश्च समर्चयेत् ।। अश्वत्थवटबिल्वाम्रमालतीदाडिमास्तथा ।। २० ।। एतेषां पत्राण्यादाय एकविंशतिसंख्यया ।। नामाविधैस्तथा पुष्पैर्मालत्यादिसमुद्भवैः ।। २१ ।। धूपदीपैर्महालक्ष्मीं पूजयेत् सर्वकामदाम् ।। पायसैर्भक्ष्यभोज्यैश्च नानाव्यञ्जनसंयुतैः ।। २२ ।। एकविंशतिसंख्याकैरपूपैः पूजयेच्छिवाम् ।। निवेद्य सर्वदेव्यै तु वरं स वृणुयात्ततः ।। २३ ।। नृत्यगीतादिसहितो देवीं संप्रार्थयेच्छ्रियम् ।। रमां सरस्वतीं ध्यायच्छचीं च प्रियवादिनीम् ।। २४ ।। एवं व्रतविधिं तस्मै कथयित्वा विधानतः ।। पञ्चवायनकान् दत्त्वा कथां शृण्वीत यत्नतः ।। २५ ।। तथा मौनं गृहीत्वा तु पञ्चार्तिक्येन पूजयेत् ।। व्रतं च कुर्वता गृह्य एकं पूगफलं तथा ।। २६ ।। पर्णकं चूर्णरहितं चर्वणीयं प्रयत्नतः ।। चैलखण्डे दृढं बद्ध्वा प्रातः पश्येद्विचक्षणः।।२७।।आरक्तं यदि जायेत कुर्याद्व्रतमनुत्तमम् ।। नोचेन्न तद्व्रतं कार्यं सर्वथा भूतिमिच्छता ।। २८ ।। अनेनैव विधानेन व्रतंगृह्णीत यत्नतः ।। अप्सरोभिः कृतं सम्यग्व्रतं सर्वसमृद्धिदम् ।। २९ ।। पूजावसानपर्यन्तं चित्रनेमिरलोकयत् ।। धूपधूमं समाघ्राय घृतदीपप्रभावतः ।। ३० ।। गतकुष्ठः स्वर्णतेजाः शुचिस्तद्गतमानसः ।। अहं यत्नात् करिष्यामि व्रतं सर्वसमृद्धिदम् ।। ३१ ।। इत्युक्त्वा सर्वदेवीस्तु कारयामास तत्क्षणात् ।।सुवर्णनिर्मितां देवीं वस्त्रालङ्कारसंयुताम् ।। ३२ ।। पूर्वोक्तेन विधानेन पूजां कृत्वा प्रयत्नतः ।। ततो वैणवपात्राणि फलान्नैश्च सदक्षिणैः ।। ३३ ।। एकविंशतिपक्वान्नैः पूरितानि विधाय च ।। पञ्चवायनकान्येवं कृत्वादात्तु यथाक्रमम् ।। ३४ ।। विप्राय चाथ यतये देव्यै तु ब्रह्मचारिणे ।। सुवासिन्यै ततस्त्वेकमर्पितं चित्रनेमिना ।। ३५ ।। एवं सम्यक् क्रमेणैतद्दत्त्वा वायनपञ्चकम् ।। ततो गृहं गतः सोऽथ देवीं नत्वा यथाक्रमम् ।। ३६ ।। नागवल्लीदलं त्वेकं क्रमुकं चूर्णवर्जितम् ।। भक्षयित्वा तु चैलान्ते बद्ध्वा प्रातर्निरैक्षत ।।३७।। आरक्ते च ततो जाते व्रतं चक्रे स भक्तितः।। अद्याहं गतपापोऽस्मि देवीदर्शनयोगतः ।। ३८ ।। एतत्सम्यग्व्रतं चीर्णं भक्तिभावेन यन्मया।। चित्रनेमिर्व्रतं कृत्वा कैलासं शङ्करालयम् ।। ३९ ।। गत्वा प्रणम्य देवेशं देवीमादरपूर्वकम् [1]।। पार्वती च तदा प्राह चित्रनेमे स्वपुत्रवत् ।।४०।। पालनीयो मया त्वं च सत्यमित्यवधार्यताम् ।। चित्रनेमिस्तदा प्राहः पार्वतीं हरवल्लभे ।। ४१ ।।

---

१ स्थित इतिशेषः

तव पादाम्बुजं दृष्टं वरलक्ष्मीप्रसादतः ।। महादेवस्ततः प्राह चित्रनेमिं शुचिव्रतम् ।। ४२ ।। अद्यप्रभृति कैलासे भुंक्ष्व भोगान् यथेप्सितान् ।। पश्चाद्गन्तासि वैकुण्ठं वरस्यास्य प्रसादतः ।। ४३ ।। पार्वत्यापि कृतं पूर्वं पुत्रलाभार्थमेवच ।। लब्धश्च षण्मुखो देव्या व्रतराजप्रसादतः ।। ४४ ।। नन्दश्च विक्रमादित्यो राज्यं प्राप्तौ महाव्रतौ ।। नन्दश्च कान्तया हीनः कान्तां लेभे सुलक्षणाम् ।। ४५ ।। तयाच-तद्व्रतं कृत्स्नं कृतं वै पुत्रहेतवे ।। पुत्रं प्रसुषुवे सा च त्रैलोक्यभरणक्षमम् ।। ४६ ।। इह भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्वै सुमनोहरान् ।। तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् वरलक्ष्मी व्रतं [1]शुभम् ।।४७।। व्रतं करोति या नारी नरो वापि शुचिव्रतः ।। भुक्त्वा भोगांश्च विपुलानन्ते शिवपुरं व्रजेत् ।। ४८ ।। इत्याख्यातं मया विप्रा वरलक्ष्मीव्रतं शुभम् ।। य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।। ४९।। धनं धान्यमवाप्नोति वरलक्ष्मीप्रसादतः ।। ५० ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे श्रावणशुक्रवारे वरलक्ष्मीव्रतं संपूर्णम् ।।

वरलक्ष्मीव्रतम्

वरलक्ष्मीव्रत--श्रावणके शुक्रवारके दिन होता है पहिले उसकी पूजाविधि-कहते हैं, क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हुई क्षीरके वर्णके समान प्रभावाली क्षीरके वर्णके समान वस्त्र पहिने हुई हरिकी प्यारी लक्ष्मीका ध्यान करता हूं, इससे ध्यान; ब्राह्मी, हंसपर चढीहुई अक्ष और कमण्डलु लिये हुई, विष्णुके तेजसे भी अधिका जो वर देनेवाली देवी है वह मेरी सदा रक्षा करे इससे आवाहन; हे महेश्वरी ! हे महादेवि ! मैं तुझे आसन देता हूं, आपका बड़ा भारी ऐश्वर्य है आप ब्राह्मणी तथा ब्रह्माकी प्यारी हो इससे आससन; हे कुमारशक्तिसंपन्ने ! हे कौमारि ! हे मोरपर चढ़नेवाली ! हे वरलक्षणे ! हे वरके देनेवाली ! पाद्य देता हूं, इससे पाद्य; पापके संहारकरनेवाले महादिव्य तीर्थके पानियोंके अर्घ्यको, हे देवोंके उपकार करनेवाली ! ग्रहण कर, इससे अर्घ्य; हे असुरोंके मारनेवाली ! हे वरोंके देनेवाली ! हे देवपूज्ये देवि ! हे असंख्य आयुधोंको हाथोंमें रखनेवाली ! हे विष्णुको साथ रखनेवाली वैष्णवि ! आचमन कीजिये; इससे आचमन; हे भगवान्‌की प्यारी पद्मे ! हे वरदे ! हे शक्तिसंभूते ! हे वरप्रिये ! शुद्ध पंचामृतसे स्नान कराता हूं, इससे पंचामृतस्नान, 'गंगाजलम्' इससे स्नान; चांदीके पर्वतके समान दिव्य तथा क्षीरसागरकीसी चमकवाला चाँदकी चांदनी जैसा वस्त्र, हे देवि ! तुझे देता हूं, इससे वस्त्र; 'मांगल्यमणि' इससे मंगलसूत्र; 'सुवर्णभूषितम्' इससे आभरण; 'रक्त-गन्धम्' इससे गन्ध; 'हरिद्रां कुंकुमम्' इससे सौभाग्यद्रव्य; 'नानाविधानि' इससे पुष्प समर्पण करे। अंग-पूजा--वरद लक्ष्मीके लिये नमस्कार चरणोंको पूजता हूं; कमलवासिनीके० गुल्फोंको०; पद्मालयाके० जाङ्घोंको०; श्रीके० जाणुओंको०; इन्दिराके० ऊरुओंको; हरिकी प्यारीके० नाभिको०; लोकधात्रीके० स्तनोंको०; विधात्रीके० कंठको०; धात्रीके० नासिकाको०; सरस्वतीके० मुखको; पद्मनिधिके० नेत्रोंको०; मांगल्याके० कानोंको०; क्षीरसागरसे पैदा होनेवाके० ललाटको०; श्रीमहालक्ष्मीके० शिरको०; श्रीमहा-कालीके लिये नमस्कार सर्वाङ्गको पूजता हूँ ।। 'धूपं दास्यामि ते' इससे धूप, 'साज्यं च वर्ति०' इससे दीप; 'नैवेद्यं परमम्' इससे नैवेद्य; 'नागवल्लीदलैः' इससे ताम्बूल, 'सुवर्णं सर्वधातूनाम्' इससे दक्षिणा; 'नीरा-जनं सुमंगल्यम्' इससे नीरा जन समर्पण करे ।। 'सर्वमंगल मांगल्ये' इससे डोरा बांधे हे क्षीर सागरकी बेटी चाँदनी सहोदरी लक्ष्मी ! तेरे लिये नमस्कार है, अर्घ्य ग्रहण करिये, इससे फिर अर्घ्य दे। 'श्रीवृक्षस्य' इस मंत्रसे बिल्वपत्र चढ़ावे। 'इह जन्मनि यत्पापम्' इससे प्रदक्षिणा करे।' दामोदरि नमस्ते स्तु' इससे नम-स्कार करे। 'क्षीरार्णवसुते' इससे व्रत समर्पण करे 'छत्रं चामर' इस क्षमापन करे। हे वरलक्ष्मी ! हे

१ ख्यातमिति शेषः ।

महादेवि ! हे सब कामोंके देनेवाली । जो मैंने व्रत किया है वह आपकी कृपासे पूरा हो जाय, इससे प्रार्थना करे । घी सक्करके इक्कीस पकवानोंके साथ तुझे वायना देता हूं । इससे इन्दिरा मुझपर प्रसन्न हो जाय; इन्दिराही देती और लेती है, हम तुम दोनोंको इस लोक और परलोककी इन्दिराही तारक है, इन्दिराके लिये नमस्कार है, यह वायनेका मंत्र है । ऐसे पांच वायने दक्षिणाके साथ, ब्राह्मण यति, देवी ब्रह्मचारी और सुवासिनी इनको विधिपूर्वक दे । यह पूजा पूरी हुई ।। कथा–सब देवोंसे सेवित कैलासके शिखरपर महादेव गौरीके साथ पाशोंसे खेल रहे थे।।१।। वे दोनों एक दूसरेसे कहने लगे कि, मैंने तुम्हें जीत लिया, यहउनका एक विवाद हो गया ।।२।। चित्रनेमिसे पूछा तो वह झूठ बोला कि; शिवजीने । इससे गौरीने क्रोधमें आकर शाप दे डाला कि ।।३।। हे झूठे ! तू कुष्टी होजा । चित्रनेमि हतप्रभ हो गया । पीछे शिव बोले कि, मैंने झूठके बराबर कहीं भी पाप देखा सुना नहीं है परम बुद्धिमान् चित्रनेमि कभी झूठ नहीं बोलता सत्य कहता है, हे देवि ! आप इसपर कृपा करें ।।४।।५।। दयालु होकर उससे शाप मोह कहा कि, जब सुन्दर सरोवरपर पवित्र व्रत अप्तसराएं करेंगी तथा एकाग्रमनसे तुझे सब कुछ कहेंगी उस समय तुम शापसे मुक्त हो जाओगे ! इतना कहतेही चित्रनेमि वहांसे उसी समय गिर गया ।।६।।७।। उस सरोवरपर चित्रनेमि कोढी होकर रहने लगा । वहां उसने स्वर्गकी विलासिनियोंको देखा ।।७।। वे सब देवपूजनमें लगी हुई थी, उन्हें प्रणाम करके पूछने लगा कि, हे महाभागो ! किसकी पूजा करती हो और क्या चाहती हो ।।९।। में क्या करूं जिसका यहां और वहां दोनों जगह फल हो आप ऐसा कोई व्रत कहें, ऐसा चित्रनेमीने विलासिनियोंसे पूछा।।१०।। कि जिसके कियेसे में बहुत दिनोंके दुखदायी गिरिजाके शापसे छूट जाऊं । वे बोली कि, तुम इस श्रेष्ठ व्रतको करो ।।११।। वह सब काम और समृद्धि देनेवाला दिव्य वरलक्ष्मीव्रत है, जब सूर्य्य कर्क्कट राशिपर हो तथा श्रावणमास हो ।।१२।। गंगा और यमुनाके योगमें या तुंगभद्रा नदीके किनारे उसी श्रावण मासके शुक्लपक्षके शुक्रवारके दिन संयमी पुरुषोंको महालक्ष्मीका व्रत करना चाहिये । चतुर्भुज सोनेकी प्रतिमा बनावे ।।१३।।१४।। रंगवल्ली और तोरणोंसे घरको सजाकर घरके पूर्वभागमें विशेष करके ईशानी दिशामें एक प्रस्थ तण्डुल भूमिपर रखे । पद्मपर कलश रखे उसमें तीर्थका पानी भरे ।।१५।।१६।। उसपर फल रखकर सोना दोर एवं पंच पल्लव डालकर वस्त्रसे ढक दे ।।१७।। अग्न्युत्तारण आदि संस्कारकी हुई प्रतिमाको विधिपूर्वअ उसपर स्थापित करके पूजे । क्रमशः शुद्ध स्नान ।।१८।। तथा मंत्रोंसे पंचामृतसे स्नान करावे, देवीसूक्तसे अभिषेक करे ।।१९।। अष्टगन्धसे पूजकर पल्लवोंसे पूजे । अश्वत्थ, वट, बिल्व, आम्र, मालती और अनार ।।२०।। इनके इक्कीस पत्ते ले और भी अनेक तरहके मालती आदिके पुष्प ।।२१।। एवं धूपदीपोंसे सब कामोंके देनेवाली महालक्ष्मीको पूजे । अनेक व्यंजनोंके साथ भक्ष्य भोज्य और पायस ।।२२।। इक्कीस अपूप इनसे शिवाका पूजन करे, नैवेद्य चढावे, पीछे वर मांगे ।।२३।। सरस्वती और प्यारा बोलनेवाली शचीका ध्यान करते हुए नाच गानादिके साथ श्रीकी प्रार्थना करे ।।२४।। उन स्वर्गकी विलासिनियोंने उसे इस प्रकार व्रतविधि कही कि, यह करके विधिसे पांच वायने दे और यत्नके साथ कथा सुने ।।२५।। मौनसे पांच आरतियोंसे पूजे । व्रत करनेवाला एक सुपारी लेकर चूर्णरहित एक पत्तेको सावधानीसे चढ़ावे, कपड़ेके टुकडेमें मजबूत बांधकर प्रातःकाल देखे ।।२६।।२७।। यदि वे अच्छी तरह लाल हो जायं तो व्रत करे ।। नहीं तो भूमि चाहनेवालेको यह व्रत किसी सूरत भी न करना चाहिये ।।२८।। इसी विधानसे व्रतग्रहण करे, सब समृद्धियोंके देनेवाले इस व्रतको अप्सराओंने अच्छी तरह किया ।।२९।। वे पूजाके अन्तमें चित्रनेमिको देखने लगी कि, वह धूपके धूंआको सूंघ घृतके दीपकके प्रभावसे ।। ३० ।। कुष्ठरहित हो, शुचि एवं सोनेसा दीप रहा है एवं उसका मन उस व्रतमें लगा हुआ है मैं इस सब सिद्धिदाता व्रतको यत्नसे करूंगा ।। ३१ ।। ऐसा चित्रनेजिने सब देवियोंसे कहा । उसी समय उसने वस्त्र अलंकारसे भूषित सोनेकी देवी बनवाई ।।३२।। पहिले कहे हुए विधानके अनुसार पूजा की । वेणुके पात्रदक्षिणा समेत फल और अन्नसे तथा इक्कीस पक्कानोंसे भरकर बँध पांच वायने दिये ।। ३३ ।।३४।। विप्र, यति, देवी, ब्रह्मचारी और सुवासिनीको चित्रनेमिने एक २ दिया ।।३५।। इस प्रकार क्रमसे पांच वायने देकर क्रमपूर्वक देवीको नमस्कार करके घर चला गया ।।३६।। चूर्णरहित नागवल्लीका एक दल तथा सुपारी खाकर कपडेमें बांध प्रातःकाल देखा ।। ३७ ।। जब वह लाल हो गया तो भक्तिके साथ व्रत किया आज मैं देवीके दर्शन कियेसे शाप रहित होगया ।। ३८ ।। मैंने इस व्रतको भक्ति भावसे किया है । चित्रनेमि व्रतकरके शंकरके स्थान कैलासपर पहुंचा

।। ३९ ।। वहां आदरके साथ देवेश और देवीको प्रणाम किया । पार्वती चित्रनेमिसेबोली कि, हे चित्रनेमे ! अपने पुत्रकी तरह तू मेरा पालनीय है । यह तू सत्य समझ, चित्रनेमी बोला कि, हे हर-वल्लभे ।।४०।।४१।। वरलक्ष्मीकी कृपासे तेरे चरण देख सका हूं, पवित्र व्रतवाले चित्रनेमिसे महादेवजी बोले कि ।।४२।। आजसे आप इस कैलासपर यथेष्ट भोग भोगें पीछे इस व्रतके प्रभावसे वैकुण्ठ चले जाओगे ।।४३।। पुत्रके लिये पहिले पार्वतीनें भी इस व्रतको किया था, इसके प्रभावसे उन्हें स्वामिकार्तिक पुत्र मिला ।। ४४ ।। नन्द और विक्रमादित्य इससे राज्य पा गये तथा स्त्री रहित नन्दको सुलक्षण स्त्री मिल गई ।।४५।। उसने भी इस व्रतको पुत्रसन्तानके लिये किया था । इससे उसने ऐसे पुत्रको पैदा किया जो कि, तीनों लोकोंका पालन कर सके ।।४६।। तथा यहां बडे-बडे सुन्दर भोगभोगे, उस दिनसे यह लक्ष्मीव्रत प्रचलित हुआ ।।४७।। उस दिनसे जो कोई स्त्री वा पुरुष इस उत्तम व्रतको करता है वह बड़े-बड़े भोगों को भोगकर उन्तमें शिवपुर चला जाता है ।।४८।। हे विप्रो ! यह मैंने वर लक्ष्मीका व्रत सुनादिया है । जो कोई इसे एकाग्र होकर सुनेगा और सुनावेगा ।।४९।। वह वरलक्ष्मीकी कृपासे शिवपुर चला जायगा ।।५०।। यह भविष्यपुराणका कहा हुआ श्रावण शुक्रवारकेदिन होनेवाला वरलक्ष्मीव्रत पूरा हुआ ।

शनिवारे शनैश्चरव्रतम्

अथ श्रावणमन्दवारे शनैश्चरव्रतम् ।। अश्वत्थमूले वेदिकां कृत्वा तत्र धनुराकारं मण्डलं विलिख्य तत्र कृष्णायसनिर्मितां महिषासनां द्विभुजां दण्डपाशधरां शनैश्चरमूर्तिं स्थापयित्वा पूजयेत् ।। तत्र संकल्प :—अद्येत्यादि मम समस्तरोगपरिहारार्थं दृष्टचु[1]दरलत्तागतशनैश्चरपीडानिरासार्थं शनैश्चरपूजनं करिष्ये ।। निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं कलशाराधनं च करिष्ये ।। इति संकल्प्य गणपत्यादि पूजनं कृत्वा शनैश्चरंपूजयेत् ।। तद्यथा—कृष्णाङ्गाय० आवाहयामि । नीलाय० आसनं० । श्वेतकण्ठाय० पाद्यं० । नीलमयूखाय० अर्घ्यं० । नीलोत्पल० आचम० । नीलदेहाय० स्नानं० कुब्जाय० पंचामृतस्नानम्० । शनैश्चराय० शुद्धोदकस्नान० । दीप्यमानजटाधराय० वस्त्रं० । पुरुष गात्राय० यज्ञोपवीतं० । स्थूलरोम्णे० अलंकारान्० । नित्याय० गन्धं० । नित्यधूर्ताय० अक्षतान० । सदातृप्ताय० पुष्पम्० । मन्दाय० धूपम० । निस्पृहाय० दीपम्० । तामसाय० नैवेद्यम्० । नीलोत्पलाय० आचमनम्० कृष्णवपुषे० करोद्वर्तनम्० । दीर्घदेहाय० ताम्बूलम्० मन्दगतये० दक्षिणाम् ० । ज्ञाननेत्राय० प्रदक्षिणाम्० । सूर्यपुत्राय० नमस्कारम् ।। कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णोरौद्रोऽन्तको यमः ।। सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ।। एतानि शनिनामानि जपेदश्वत्थसन्निधौ ।। शनैश्चरकृता पीडा न कदाचिद्भविष्यति ।। इति जपित्वा ।। मूलतो ब्र० नमः । इत्यश्वत्थाय सप्त प्रदक्षिणाः सप्त नमस्कारान् कुर्यात् ।। इतिपूजा ।। अथ कथा-ईश्वर उवाच ।। रघुवंशेऽतिविख्यातो राजा दशरथः प्रभुः ।। बभूव चक्रवर्ती च सप्तद्वीपाधिपो बली ।। १ ।। कृत्तिकान्ते शनिर्यातो दैवज्ञैर्ज्ञापितोहि सः ।। ।। रोहिणीं भेदयित्वा तु शनिर्यास्यति सांप्रतम् ।। २ ।। शकटे भेदिते तेन सर्वलोकभयङ्करम् ।। द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं भविष्यति सुदारुणम् ।। ३ ।। इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं मंत्रिभिः

---

१ आर्किर्द्वादशे दृष्टावुदरे जन्मसमम्भवे । द्वितीये चरणयोर्गत्वा तृतीयेनिवृत्तिः शनिः ।।

सह पार्थिवः ।। मंत्रयामास किमिदं भयङ्करमुपस्थितम् ।। ४ ।। देशाश्च नगरग्रामा भयभीतास्तदाभवन् ।। अब्रुवन्सर्वलोकाश्च क्षय एष समागतः ।। ५ ।। आकुलं च जगद्दृष्ट्वा पौरजानपदादिकम् ।। प्रपच्छ प्रयतो राजा वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ।। ६ ।। संविधानं किमस्यास्ति वद मां द्विजसत्तम ।। वसिष्ठ उवाच ।। दूरे प्रजानां रक्षा च तस्मिन्भिन्ने कुतः प्रजाः ।। ७ ।। प्राजापत्यं स नक्षत्रं शनिर्यास्यति सांप्रतम् ।। मन्ये योगमसाध्यं तु ब्रह्मशक्रादिभिः सुरैः ।। ८ ।। ततः संचिन्त्य मनसा साहसं कृतवान्नृपः ।। समादाय धनुर्दिव्यं दिव्यायुधसमन्वितम् ।। ९ ।। रथमारुह्य वेगेन गतो नक्षत्रमण्डलम् ।। रोहिणीं पृष्ठतः कृत्वा राजा दशरथस्तदा ।। १० ।। रथे च काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते ।। हंसवर्णैर्हयैर्युक्ते महाकेतुसमन्विते ।। ११ ।। दीप्यमानो महारत्नैः केयूरमुकुटोज्ज्वलः ।। व्यराजत महाकाशे द्वितीय इव भास्करः ।। १२ ।। आकर्णपूरिते चापे संहारास्त्रं न्ययोजयत् ।। कृत्तिकान्ते शनिः स्थित्वा प्रविशन्किल रोहिणीम् ।। १३ ।। दृष्ट्वा दशरथं चाग्रे सरोषं भ्रुकुटीमुखम् ।। संहारास्त्रं च तद्दृष्ट्वा सुरासुरभयङ्करम् ।। १४ ।। हसित्वा तद्भयात्सौरिरिदं वचनमब्रवीत् ।। पौरुषं तव राजेन्द्र परं रिपुभयंकरम् ।। १५ ।। देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ।। मया विलोकिता राजन् भस्मसाच्च भवन्ति ते ।। १६ ।। तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र तपसा पौरुषेण च ।। वरं ब्रूहि प्रदास्यामि यथेष्टं रघुनन्दन ।। १७ ।। सरितः सागरा यावच्चन्द्रार्कौ मेदिनी तथा ।। रोहिणीं भेदयित्वा तु न गन्तव्यं त्वया शने ।। १८ ।। याचितं तु मया सौरे नान्यमिच्छाम्यहं वरम् ।। एवमस्तु शनिः प्राह कृतकृत्योऽभवन्नृपः ।। १९ ।। द्वादशाब्दं न दुर्भिक्षं भविष्यति कदाचन ।। कीर्तिरेषा मदीया च त्रैलोक्ये तु भविष्यति ।। २० ।। ततो वरं च संप्राप्य हृष्टरोमा तु पार्थिवः ।। उपतस्थे धनुस्त्यक्त्वा भूत्वा चैव कृताञ्जलिः ।। २१ ।। भक्त्या दशरथः स्तोत्रं सौरेरिदमथाकरोत् ।। दशरथ उवाच ।। नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च ।। २२ ।। नमः पुरुषगात्राय स्थूलरोम्णे नमोनमः ।। नमो नीलमणिग्रीव नीलोत्पलनिभाय च ।। २३ ।। नमो नित्यं क्षुधार्ताय ह्यतृप्ताय नमोनमः ।। नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय नमोनमः ।। २४ ।। नमो घोराय रौद्राय भीषणाय करालिने ।। नमस्ते सर्वभक्षाय बलीमुख नमोऽस्तु ते ।। २५ ।। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु काश्यपाय नमो नमः ।। नमो मन्दगते तुभ्यं कृष्णवर्ण नमोऽस्तु ते ।। २६ ।। तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च ।। ज्ञाननेत्र नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे ।। २७ ।। तुष्टो ददासि राज्यं च रुष्टो हिरसि तत् क्षणात् ।। देवासुरमनुष्याश्च पशुपक्षिमहोरगाः ।। २८ ।। त्वया विलोकताः सर्वे दैन्यमाशु व्रजन्ति ते ।। शक्रादयः सुराः सर्वे मुनयः सप्ततारकाः ।। २९ ।। स्थानभ्रष्टा भवन्त्येते त्वया दृष्टिविलोकिताः ।। देशाश्च नगरग्रामा द्वीपाश्चैव

द्रुमास्तथा ।। ३० ।। त्वया विलोकिताश्चैव विनाशं यान्ति मूलतः ।। प्रसादं कुरु मे सौरे वरार्थं त्वामुपागतः ।। ३१ ।। एवं स्तुतस्तदा सौरिर्ग्रहराजो महाबलः ।। अब्रवीच्च शुभं वाक्यं हृष्टरोमा स भास्करिः ।। ३२ ।। शनिरुवाच ।। तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र स्तवेनानेन सुव्रत ।। दास्यामि ते वरं भद्रं निश्चयाद्रघुवंशज ।। ३३ ।। दशरथ उवाच ।। अद्यप्रभृति पिंगाक्ष पीडा कार्या न ते मम ।। जगत्त्रये त्वया नाथ पीडिते दुःखितो जनः ।। ३४ ।। तस्माज्जगत्त्रयं देव रक्षणीयं त्वयानघ ।। शनिरुवाच ।। ग्रहाणामहमेको हि मदधीना ग्रहाः सदा ।। ३५ ।। स्तवेन तव तुष्टोऽहं पीडां न च करोम्यहम् ।। जगत्त्रयं महाराज दुःखितं न भवेत्सदा ।। ३६ ।। दशरथ उवाच ।। भगवन्केन विधिना त्वदीयाराधनं भवेत् ।। येन तुष्यसि पिङ्गाक्ष तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।। ३७ ।। शनैश्चर उवाच ।। श्रावणे मन्दवारेषु दन्तधावनपूर्वकम् ।। स्नानं सुगन्धतैलेन[1] नित्यकर्म समाचरेत् ।। ३८ ।। शुचिर्भूत्वा शमीवृक्षं गत्वा तत्रैव पूजयेत् ।। तदभावेऽथ राजेन्द्र गत्वाश्वत्थं प्रपूजयेत् ।। ३९ ।। तत्र संपूज्य मां राजन् गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बुलप्रार्थनादिभिः ।। ४० ।। वेष्टयेत्सप्तसूत्रैश्च नमस्कारांस्तथैव च ।। सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा श्रुत्वापुण्यकथामिमाम् ।। ४१ ।। एवंविधांस्त्रयस्त्रिंशन्मन्दवारान् कुरुष्व मे ।। ततोऽन्यशनिवारे च कुर्यादुद्यापनं शुभम् ।। ४२।। आचार्यं वरयेत्तत्र श्रोत्रियं वेदपारगम् ।। सुवर्णस्य शमीवृक्षं तदभावे तुपिप्पलम् ।। ४३ ।। मदीयां प्रतिमां कुर्याल्लौहीं महिषसंयुताम् ।। द्विभुजां दीर्घदेहां च दण्डपाशधरां तथा ।। ४४ ।। पिङ्गाक्षीं स्थूलदेहां च श्वेतग्रीवां ततोऽर्चयेत् ।। रुक्मपत्रे[2] तथा सप्त कृष्णवस्त्राणि वेष्टयेत् ।। ४५ ।। उपवीतादिभिर्द्रव्यैः पूर्ववद्देवमर्चयेत् ।। शमग्निरिति मन्त्रेण हुनेदष्टाधिकं शतम् ।। ।। ४६ ।। कृसरान्नं तदन्ते च तेनैव बलिमुद्धरेत् ।। कृष्णधेनुं सवत्सां च दद्यादथ पयस्विनीम् ।। ४७ ।। सप्त विप्रान् समभ्यर्च्य गन्धपुष्पफलादिभिः ।। वस्त्राणि दक्षिणां चैव यथाशक्त्या प्रदापयेत् ।। ४८ ।। तिलमाषविमिश्रान्नैर्भोजयेद्द्विजसत्तमान् ।। तेषां गृह्याशिषं पश्चाद्भुञ्जीयाद्बन्धुभिः सह ।। ४९ ।। सवस्त्रां प्रतिमां चैव आचार्याय निवेदयेत् ।। एवं कृतेऽथ राजेन्द्र सर्वाभीष्टं ददाम्यहम् ।। ५० ।। त्वया कृतं पठेत्स्तोत्रं भक्त्या चैव कृताञ्जलिः ।। सप्तजन्मसु राजेन्द्र तस्यैश्वर्यं भविष्यति ।। ५१ ।। पुत्रपौत्रयुतो नित्यं ततो मोक्षमवाप्स्यति ।। तुष्टोऽहं तस्य राजेन्द्र पीडां न च करोम्यहम् ।। ५२ ।। गोचरे वाष्टवर्गे वा विषमे वा स्थितोऽप्यहम् ।। तुष्टौ राज्यप्रदः सद्यः क्रुद्धो राज्यपहारकः ।। ५३ ।। जन्मस्थो द्वादशस्थो वा अष्टमस्थोऽपि कुत्रचित् ।। श्रावणे मन्दवारेषु पूजितोऽहं सुखप्रदः ।।५४।।

---

१ कृत्वेति शेषः । २ स्वर्णमयशमीपत्रेऽश्वत्थपत्रे वा

ब्रह्मा शिवो हरिश्चैव मुनयः सनकादयः ।। लक्ष्मी रुमा च सावित्री मुनिपत्न्यश्च वै शुभाः ।। ५५ ।। नृपा अन्ये मया सर्वे स्थानभ्रष्टाश्च पीडिताः ।। देशाश्च नगरग्रामा गजोष्ट्रावथ वाजिनः ।। ५६ ।। रौद्रदृष्टया मया दृष्टा नाशमायान्ति तत्क्षणात् ।। ततो मया पीडितानां मनुष्याणां नराधिप ।।५७ ।।* परिहर्तुं न शक्ताश्च ब्रह्म विष्णुमहेश्वराः ।। एतच्छ्रुत्वा शनैर्वाक्यं राजा परमहर्षितः ।। ।। ५८ ।। नत्वा प्रदक्षिणी कृत्य वरं प्राप्य पुरं ययौ ।। गत्वा स्वनगरं राज्ञा पूजितो वै शनैश्चरः ।। ५९ ।। श्रावणादिषु वारेषु प्रसन्नोऽभूच्छनैश्चरः ।। पृथ्वीपतिरभूद्राजा ग्रहराजप्रसादतः ।। ६० ।। य इमं प्रातरुत्थाय सौरिवारे सदार्चयेत् ।। तस्याभीष्टप्रदो मन्दो भविष्यति न संशयः ।। ६१ ।। स्त्रिया वा पुरुषेणापि कृतं येन शनिव्रतम् ।। स मुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वाभीष्टं लभेत्क्षणात् ।। ६२ ।। ब्राह्मणो वदसम्पूर्णः क्षत्रियो राज्यमाप्नुयात् ।। वैश्यस्तु लभते वित्तं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।। ६३ ।। कन्यार्थी लभते कामान् मोक्षार्थी लभते गतिम् ।। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ग्रहलोकं स गच्छति ।। ६४ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे शनिवारव्रतकथा समाप्ता ।। इति वारव्रतानि ।।

शनैश्चरव्रत–श्रावण शनिवारको होता है, अश्वत्थकेमूलमें वेदी बनाकर उसपर धनुषाकार मण्डल लिखकर उस पर लोहेकी बनी हुई भैंसेपर चढ़ी हाथोंमें दण्ड और पाश लिए हुए चुभुजी शनैश्चरकी मूर्ति स्थापित करके पूजे । पूजाका संकल्प –आज ऐसे-ऐसे समय एवं ऐसे-ऐसे स्थल आदिमें मेरे सारे रोगोंके परिहारके लिये, दृष्टि, उवर और पैरमें आई हुश शनैश्चरकी पीडाको मिटानेके लिये शनैश्चरका पूजन में करूँगा। निर्विघ्नताकी सिद्धिके लिये गणपतिका पूजन और कलशका आराधना आदि भी करूँगा, यह संकल्प करके गणपति आदिकी पूजा करके शनैश्चरकी पूजा करे । पूजाकृष्णाङ्गके लिये नमस्कार कृष्णाङ्गका आवाहन करता हूं, हे कृष्णाङ्ग ! यहां आ; यहां बैठ इसी तरह सब समझना । पीछे लिख चुके हैं । नीलके लिये नमस्कार, आसन समर्पण करता हूं, श्वेत कंठके० चरणोंको पाद्य; नील मुखके० अर्घ्यः नीलोत्पलदलके ० मुखशुद्धिके० आचमन; नील देहके ० शरीर की शुद्धिके० स्नान, कुब्जके ० पंचामृत स्नान; शनैश्चरके लिये नमस्कार शुद्ध पानीका स्नान समर्पण करता हूं । दीप्यमान जटाघर के ० वस्त्र उढाता हूं; पुरुषात्रके ० यज्ञोपवीत पहिनाता हूं; स्थूलरोमाके० अलंकार धारण कराता हूं; नित्यके लिए गंध सुंघाता हूं; नित्यधूर्तके अक्षत०; सदातृप्तके० पुष्प; मंदके भूत०; निस्पृहके० दीप० तामसके० नैवेद्य, नीलोत्पलके० आचमन०; कृष्णवपुके० करोद्वर्तन० दीर्घदेहके० ताम्बूल०; मंदगतिके० दक्षिणा०; ज्ञाननेत्रके० प्रदक्षिणा; सूर्य्यपुत्रके नमस्कार, नमस्कारोंका समर्पण करता हूं । ऐसे स्थलमें (दीपं दर्शयामि) ऐसे टुकड़े लगा दिया करते हैं हम कई जगह दिखा चुके हैं । सबका अर्पणमेंही तात्पर्य है । कोणस्थ, पिंगल, बभ्रु, कृष्ण, रौद्र, अन्तक, यम, सौरि, शनैश्चर, मन्द, पिप्पलादसंस्तुत, शनिदेवके इन नामोंको पीपलके पास जपे । उसे कभी भी शनैश्चरकी पीड़ा न होगी । इन्हें जपके । पीछे ' मूलतो ब्रह्म ' इस मंत्रको बोल सात सात प्रदक्षिणा और नमस्कार करे । यह पूजा पूरी हुई । ।कथा-ईश्वर बोले कि, रघुवंशमें एक परम प्रसिद्ध दशरथ नामका राजा हुआ है । वह चक्रवर्ती सातों द्वीपोंका स्वामी था ।।१।। जब शनि कृत्तिकाके अन्तमें आया तो ज्योतिषियोंने बता दिया कि, अब अब शनि रोहिणीको भेदकर जायगा ।।२।। शकटके भेद करदेने पर बड़ा घोर बारह वर्षका दुर्भिक्ष होगा ।।३।। राजाने सुनकर मंत्रियोंके साथ विचार किया कि, यह क्या भयंकर काण्ड उपस्थित हो गया ।।४।। देश नगर और ग्राम सब डरकर कहने लगे कि, यह क्या प्रलय आ रही है ।।५।। पौर जानपद आदि सबको व्याकुल देख-

* पीडामिति शेषः ।

कर राजाने वसिष्ठजीसे पूछा।।६।। हे ऋषिराज ! इस समयका क्या कर्तव्य है ? वह मुझे बताइये । दूर रहनेसेही प्रजाओंकी रक्षा रह सकती है । यदि वह टूट जायगा तो प्रजा कहां है ।।७।। अब शनि रोहिणीनक्षत्रपर जायगा । इस योगको मैं ब्रह्मा इन्द्र आदि देवोंसे भी असाध्य समझता हूं ।।८।। राजाने सोच विचारकर साहस किया । दिव्य धनु और दिव्य आयुध लेकर ।।९।। वेगवान् रथपर बैठकर नक्षत्र मण्डलमें पहुंचा । राजा दशरथने रोहिणी अपने पीछे करली ।।१०।। उस समय राजा मणिरत्नोंसे जडे हुए जिसमें हंसके रंगके घोडे जुते हुए एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाएं जिसपर उडरही हैं, ऐसे दिव्य सोनेके रथमें बैठे हुए थे ।।११।। उज्वल केयूर और मुकुट पहिने हुए थे, महारत्नोंसे दीप रहे थे, महाकाशमें दूसरे सूर्य्य जैसे विराजमान हो रहे थे ।।१२।। धनुष कानतक खींच रखा था । उसपर संहारास्त्र चढ़ा रखा था । कृत्तिकाके अन्तमें शनि ठहरकर रोहिणीमें प्रविष्ट हुआ ।।१३।। तो क्या देखता है कि, क्रोधसे आखें चढ़ाये हुए वीरवर दशरथ अगाडीही रास्तेमें खड़े हुए हैं एवम् उनके धनुषपर देव असुर दोनोंके लिए भयंकर संहारास्त्र चढ़ा हुआ देखा ।।१४।। उसके भयसे हँसकर शनि देव बोले कि , हे राजेन्द्र ! तेरा पुरुषार्थ एकदम वैरियोंका डरा देनेवाला है ।।१५।। हे राजन् ! देव, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर, उरग ये सब मेरे देखनेमात्रसे भस्म हो जाते हैं ।।१६।। पर हे राजेन्द्र ! मैं तेरे इस तप और पौरुषसे परम प्रसन्न हुआ हूं । हे रघुनन्दन ! मैं वर दूंगा जो इच्छा हो तो मांग ले ।।१७।। यह सुन दशरथजी बोले कि, जबतक नदी, समुद्र, चांद, सूरज और जमीन हैं हे शने ! तबतक तुम रोहिणीको भेदकर न जाना ।।१८।। हे सूर्य्यपुत्र ! मैं यही वर चाहता हूं, इस वरके सिवा दूसरा नहीं मांगता । जब शनिने स्वीकार कर लिया कि, ऐसाही होगा तो राजा कृतकृत्य हो गया ।।१९।। कि, अब कभी बारह वर्षका दुर्भिक्ष्य न होगा एवं यह मेरा यश तीनों लोगोंमें सदा होता रहेगा ।।२०।। राजा वर पा परम हर्षित हुआ रोमावली खड़ी हो गई । धनुष रख हाथ जोड़कर उपस्थान करने लगा ।।२१।। भक्तिपूर्वक शनैश्चरजीका यह स्तोत्र दशरथजीने किया था । दशरथकृत स्तोत्र-कृष्णके लिये नमस्कार; शितिकंठ निभके लिये नमस्कार ।।२२।। पुरुषगात्रके०; स्थूलरोमाके०; नीलमणि है ग्रीवामें जिसके उसके०; नीले उत्पलकी तरह चमकवालेके०; सदा भूखसे आर्त रहनेवाले०; सदा अतृप्त रहनेवालेके०; कालाग्निरूपके०; घोरके०; रौद्रके०; भीषणके० करालीके०; सबका भक्षण करनेवालेके०; तुझ बलीमुखके लिये नमस्कार ।।२३-२५।। हे सूर्य्यपूत्र ! तेरे लिये नमस्कार हो, काश्यपके०; हे मन्दगते! तेरे लिये नमस्कार; हे कृष्णवर्ण ! तेरे लिये नमस्कार है ।।२६।। तपसे दग्ध देहवालेके०; सदा योगमें लगे रहनेवालेके०; हे ज्ञाननेत्र ! तेरे लिये नमस्कार, काश्यपके पुत्रके पुत्र तेरे लिये नमस्कार ।।२७।। प्रसन्न हो उसी समय राज्य देते तथा रुष्ट होकर उसी समय हर लेते हो, देव, असुर मनुष्य, पशु, पक्षी और बड़े-बड़े सांप ।।२८।। आपके देखने मात्रसेही सब जल्दी ही दीन बन जाते हैं, आप अपनी वक्रदृष्टिसे देखते हैं तो उसी समय इन्द्रादिक सब देव सप्तऋषि और तारे भ्रष्ट हो जाते हैं । देश, नगर, ग्राम, द्वीप, द्रुम आपके देखते ही जड़से मिट जाते हैं, हे सूर्य्यदेव ! मुझपर कृपाकर, मैं वर मांगने आया हूं ।।२९-३१।। इस प्रकार राजाके स्तुति करनेपर महाबली ग्रहराज सूर्य्यपुत्र परम प्रसन्न होकर शुभ वाक्य बोला कि ।।३२।। हे राजेन्द्र ! हे सुव्रत ! मैं तेरे स्तवसे परम प्रसन्न हुआ हूं मैं अपने निश्चयसे हे रघुवंशराज और एक वर देता हूं ।।३३।। दशरथ बोले कि हे पिङ्गलाक्ष ! आजसे आप मेरे तीनों लोकोंमें पीड़ा न करना, क्योंकि, हे नाथ ! इससे जीव बड़े दुखी होते हैं ।।३४।। हे अनघ ! आपको तीनों जगतोंको रक्षा करनी चाहिये, शनि बोले कि ग्रहोंमें मैं एकही हूं सब ग्रह मेरे अधीन हैं ।।३५।। मैं तुम्हारे स्तवसे प्रसन्न हूं पीडा न करूंगा, हे महाराज ! इससे तीन जगत् कभी दुखी न होंगे ।। ३६ ।। दशरथ बोले कि, हे भगवन् ! आपका वह आराधन किस विधिसे हो हे पिंगाक्ष ! जिससे आप प्रसन्न होते हैं, वह सब बता दें ।।३७।। शनैश्चरजी बोले कि, श्रावण शनिवारके दिन दांतुन करे ! सुगंधित तेलसे स्नान करके नित्यकर्म करे ।।३८।। पवित्र हो जहां शमीवृक्ष हो वहीं जाकर उसका पूजन करे; हे राजेन्द्र ! यदि शमी न हो तो अश्वत्थकाही पूजन कर दे ।।३९।। हे राजन् ! वहीं गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल और प्रार्थना इनसे मेरी पूजा करे ।।४०।। पीपलको सात सूत्रोंसे लपेट दे, सात नमस्कार करे, सात प्रदक्षिणा करें, इस पवित्र कथाकोसुने।।४१।। ऐसेही मेरे तेतीस शनिवार करे अन्तके शनिवारके दिन उद्यापन करे ।।४२।। श्रोत्रिय वेदवेत्ता आचार्य्यका

वरण करें। सोनेका शमीवृक्ष हो उसके अभावमें पीपलका हो ॥४३॥ लोहेकी भैंसेपर चढ़ी हुई मेरी प्रतिमा बनावे, वह द्विभुजी लम्बी और पाशदण्ड हाथोंमें हो, आंखें पिंगवर्णकी हों, मोटी हो, ग्रीवा श्वेत हो सोनेके अश्वत्थ या शमीके पत्तोंपर सात काले वस्त्र लपेटे, उपवीतादिक द्रव्योंसे पहिलेही तरह पूजे "शमग्नि" इस मंत्रसे एक सौ आठ आहुति दे ॥४४–४६॥ ओम् शमग्निरग्निभिः करत्, शंनस्तपतु सूर्य्यः शंवातो वात्परपाऽअपस्त्रिधः। सबके अग्रणी शनिदेव दूसरे श्रेष्ठ देवोंके साथ मेरा कल्याण करें, मेरे लिए सूर्य्य सुखरूप तपें, मेरे लिए वायुभी शुद्ध एवं रोगोंका दूर करनेवाला चले ॥ अन्तमें कृसरान्नकी आहुति दे, उसीसे बलि करे। दूध देनेवाली काली बच्छेवाली गऊ दे ।४७॥ सात ब्राह्मणोंको गन्ध, पुष्प, और फल आदिसे पूजकर शक्तिके अनुसार वस्त्र और दक्षिणा दे ॥४८॥ तिल और उडद मिले हुए अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उनकी आशिष लेकर भाई बन्धुओंके साथ भोजन करे ॥४९॥ वस्त्रों समेत प्रतिमाको आचार्य्यके लिए देदे, हे राजेन्द्र ! इस प्रकार करनेपर मैं सब अभीष्टोंको देता हूं ॥५०॥ हाथ जोड़कर आपके किए स्तोत्रको पढ़े, हे राजेन्द्र ! उसे सात जन्मतक दरिद्रता नहीं होती ऐश्वर्यही होता है ॥५१॥ बेटा नाती होते हैं पीछे मोक्ष पा जाता है। मैं उसपर प्रसन्न होकर गोचर, अष्टवर्ग अथवा विषम रहता हुआ भी पीड़ा नहीं करता, राजी होकर राज्य देता तथा क्रुद्ध हो तो शीघ्रही राज्य को हर लेता हूं ॥५२॥५३॥ मैं जन्मस्थ, द्वादशस्थ और अष्टमस्थानमें भी होऊं तो भी श्रावण शनिवारके दिन पूजाकर देनेसे सुख देनेवालाही होता हूं ॥५४॥ ब्रह्मा, शिव, हरि, मुनि, सनकादिक, लक्ष्मी, उमा, सावित्री और पवित्र मुनिपत्नियां ॥५५॥ तथा और भी दूसरे दूसरे राजा सब मैंने स्थानभ्रष्ट कर दिये, दुखी, किए, देश, नगर, ग्राम, गज, ऊँट और घोड़े मेरी क्रूर दृष्टिके देखनेमात्रसे उसी समय नाशको प्राप्त हो जाते हैं। हे राजन् ! इस कारण मेरे सताये हुओंको ॥५६॥५७॥ ब्रह्मा विष्णु और महेश भी नहीं बचा सकते। शनि देवके वे वचन सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ॥५८॥नमस्कार प्रदक्षिणा कर वरदान पा, अयोध्याको चल दिया। वहां आकर शनिदेवकी पूजा की ॥५९॥श्रावणादिकके शनिवारको विधिपूर्वक पूजनेसे शनिदेव प्रसन्न हुए वह ग्रहराजकी कृपासे पृथ्वीपति राजा हुआ ॥६०॥ जो प्रातः शनिवारके दिन इसकी अर्चना करेगा मैं उसे अभीष्ट दूंगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥६१॥ स्त्री वा पुरुष कोई भी शनिवारको व्रतको करके सब पापोंसे उसी समय छूटकर अपने अभीष्टको पा जाता है ॥६२॥ ब्राह्मण वेदका पूर्णज्ञान तथा क्षत्रियको राज्य मिल जाता है, वैश्यको धन एवं शूद्रको सुख मिलता है ॥६३॥ कन्याके चाहनेवालेको कन्या तथा पुत्रार्थीको पुत्र, कामार्थीको काम एवं मोक्षके चाहनेवालेको उत्तम गति मिलती है एवं वह सब पापोंसे छूटकर शनिके लोकमें चला जाता है ॥६४॥ यह श्रीस्कन्दपुराणकी कही हुई शनिवारके व्रतकी कथा पूरी हुई ॥

अथ व्यतीपातव्रतं लिख्यते

युधिष्ठिर उवाच ॥ श्रुतानि त्वन्मुखाद्देव व्रतानि सकलान्यपि ॥ व्यतीपातव्रतं ब्रूहि सोद्यापनफलान्वितम् ॥ १ ॥ कृष्ण उवाच ॥ पुरा व्यासेन कथितं शुकाय वंशवृद्धये ॥ तद्व्रतं कथयिष्यामि शृणु राजन्यसत्तम ॥ २ ॥ शुक उवाच ॥ कथं योगः स्मृतः पूज्यो व्यतीपातो महामुने ॥ पूजिते किं फलं तात विधिं मे ब्रूहि विस्तरात् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ इममर्थं पुरा पृष्टो धरण्या च जगद्गुरुः ॥ व्यतीपातव्रतं सर्वं यत्समाख्यातवान्प्रभुः ॥ ४ ॥ तद्व्रतं कथयिष्यामि परलोकहिताय च ॥ धरण्युवाच ॥ यस्त्वयोक्तो व्यतीपातः कीदृशः स स्वरूपतः ॥ ५ ॥ कस्य पुत्रः कथं पूज्यः पूजिते चात्र किं फलम् ॥ श्रीवराह उवाच ॥ यदा बृहस्पतेर्भार्यां तारां जग्राह शीतगुः ॥ ६ ॥ मित्रत्वात्प्राह तं सूर्यस्त्वज दारान् बृहस्पते ॥

तदा सोमोऽतिरुष्टश्च रविं क्रूरं व्यलोकयत् ।। ७ ।। आदित्योऽपि तदा रुष्टः क्रुधा सोमं व्यलोकयम् ।। उभयोर्दृष्टिसंपातात् क्रुद्धयोः सोमसूर्ययोः ।। ८ ।। उद्यतास्योऽभवद्घोरः पुरुषः पिङ्गलेक्षणः ।। दष्टौष्ठो दीर्घ दशनो भ्रुकुटीकुटिलाननः ।। ९ ।। पिङ्गलश्मश्रुकेशान्तो लम्बभ्रूश्च कृशोदरः ।। करालो दीर्घजिह्वश्च सूर्याग्नियमसन्निभः ।। १०।। अष्टनेत्रश्चतुर्वक्त्रो भुजैरष्टादशैर्युतः ।। त्रैलोक्यं भवितुं प्राप्तो रवीन्दुभ्यां निवारितः।। ११ ।। सोऽपृच्छदथ सूर्येन्दू क्षुधितो भक्षयामि किम् ।। त्रैलोक्यं भोक्तुकामोऽहं भवद्भ्यां विनिवारितः।। १२ ।। क्रोधक्षुधौ मां बाधेते पात्ये ते कुत्र ते मया ।। सोमसूर्या ऊचतुः ।। कोपदृष्टेर्नौ विविधादतिपाताद्भवानभूत् ।। १३ ।। व्यतीपातस्ततो नाम्ना भवान् भुवि भविष्यति ।। सर्वेषामपि योगानां पतिस्त्वं भविता सदा ।। १४ ।। तेषां मध्ये पुण्यतमो भविष्यसि न संशयः ।। यस्मिन्काले त्वदुत्पत्तिः शुभं कर्म न कारयेत् ।। १५ ।। स्नानदानादिकं किंचित् कृतं चैवाक्षयं भवेत् ।। इति ताभ्यां वरो दत्तस्ततः प्रभृति योगराट् ।। १६ ।। त्रिषु लोकेषु विख्यातोबहुपुण्यफलप्रदः ।। व्यतीपात महावीर त्रैलोक्यव्यापक प्रभो ।। १७ ।। त्वयिप्राप्ते नरैः किंचिद्दातव्यं शुभकांक्षिभिः ।। तद्दत्तं क्षुधितो भुंक्ष्व नो चेत्कोपो निपात्यताम् ।। १८ ।। व्यतीपात उवाच ।। नमो वां पितरौ मेऽस्तु क्रोधपातः सभोजनः ।। दत्तो भवद्भ्यामधुना प्रसादः क्रियतां मम ।। १९ ।। रवीन्दू ऊचतुः ।। स्नानदानजपहोम[1]पूर्वकं यस्त्वदीयसमये समाचरेत् ।। तस्य पुण्यमिह ते प्रसादतोऽनन्तमस्तु सुत नो ह्यनुग्रहात् ।। २० ।। तत्काले तव विदधाति पूजनं यस्तस्येष्टं भवतु भवेत्स भद्ररूपः।। पुत्रायुर्धनसुखकीर्तिपुष्टिरूपारोग्याद्यं गुणिजनवल्लभत्वपूर्वम् ।। २१ ।। धरण्युवाच ।। अस्यार्चनविधिं ब्रूहि विस्तरेण जगद्गुरो ।। कृते तस्मिन्व्रते देव किं फलं प्राप्यते नरैः ।। २२ ।। वराह उवाच ।। यस्माच्च कारणाद्भूमे व्यतीपातः स उच्चते।। अर्चिते यत्फलं तस्मिस्तदुक्तं च समासतः ।। २३ ।। विस्तरेणार्चनफलं कथितुं केन शक्यते ।। येनार्च्यते व्यतिपातः स विधिः श्रूयतामिह ।। २४ ।। शुभे व्यतीपातदिनेऽवगाहयेत्सुपञ्चगव्येन महानदीजलम् ।। उपावसेद्वै पवमानजापको जपेच्च मंत्रं व्यतिपात ते नमः ।। २५ ।। छादिते ताम्रपात्रेण शर्करापूरिते घटे ।। काञ्चनाब्जे प्रतिष्ठाप्य हैममष्टभुजं नरम्[2] ।। २६ ।। अष्टभुजमष्टादशभुजम्, उत्पत्तिवाक्ये व्यतीपातमूर्त्तेरष्टादशभुजश्रवणादुत्पत्तिवाक्यानुसारित्वाच्च, नियोभवाक्यंयथा भगवद्गीतासु "चत्वारो मनवस्तया" इति चत्वारश्चतुर्दशेत्यर्थः ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपवस्त्रानिवेदनैः ।। भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैश्चित्रैर्मासि मार्गशिरेऽर्चयेत् ।। २७ ।।

१ कर्मेति शेषः । २ नराकारम्

नमस्तेऽस्तु व्यतीपात सोमसूर्यसुत प्रभो ।। यद्दानादि कृतं किंचित्तदनन्तमिहास्तु मे ।। २८ ।। इत्युक्त्वा पञ्चरत्नाढचं सुपुष्पाक्षतमञ्जलिम् ।। प्रक्षिपेत्तत्क्षणादेव सर्वपापक्षयो भवेत् ।। २९ ।। यदि द्वितीये च दिने व्यतीपातो भवेन्नहि ।। तदा पूर्वोपवासस्तु तद्दद्यात्सकलं गुरोः ।।३०।। पारणं व्यतिपातान्तेत्रैवा कुर्यात्संप्राश्य गोमयम् ।। अथैकस्मिन्दिने धात्रि व्यतीपातो भवेद्यदि ।। ३१ ।। तत्रेवाह्नितदा दत्त्वा उपवासं समाचरेत् ।। कुर्यादेवं मासि मासि व्यतीपातांस्त्रयोदश ।।३२।। चतुर्दशे तु संप्राप्ते कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। व्यतीपाताय स्वाहेति क्षीरवृक्षसमिच्छतम् ।। ३३ ।। आज्यक्षीरतिलानां च होतव्यं वै शतं शतम् ।। शर्करापूर्णकुम्भेनसह चोपस्करैर्युताम् ।। प्रतिमां काञ्चनीं भक्त्या प्रदद्याद्व्रतदेशिने ।। ३४।। कन्दे व्यतीपातमहं महान्तं रवीन्दुसूनुं सकलेष्टलब्ध्यै ।। समस्तपापस्य मम क्षयो ऽस्तु पुण्यस्य चानन्तफलं ममास्तु ।। ३५ ।। इति समीर्य गुरुं परिपूज्य तं कटककुण्डम कण्ठविभूषणैः ।। सकलमेव समाप्य यथोचितं तदुपलभ्य फलं लभते महि ।। ३६ ।। गां वै पयस्विनीं दद्यात्सुवर्णवरदक्षिणाम् ।। तस्मै शय्यां प्रदद्याच्च सारदारुमयीं दृढाम् ।। ३७ ।। दन्तपत्रवितानाढचां हेमपट्टैरलंकृताम् ।। हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानकाम् ।। ३८ ।। प्रच्छादनपटीयुक्तां धूपगन्धाधिवासिताम् ।। ताम्बूलं कुंकुमक्षोदं कर्पूरागुरुचन्दनम् ।। ३९ ।। दीपकोपानहौ छत्रं प्रदद्याच्चामरासने ।। देहान्ते सूर्यलोकाय विमानै रत्नसन्निभैः ।। ४० ।। अप्सरोगणसंभोगैर्गीतनृत्यविलासिभिः ।। गत्वा कल्पार्बुदशतं मोदते त्रिदशार्चितः ।। ४१ ।। तदन्ते राजराजः स्याद्रूपसौभाग्यभाग्भवेत् ।। कीर्त्याढचो गुणपुत्रायुरारोग्यधनधान्यवान् ।। ४२ ।। प्रतापादिमहैश्वर्ययुक्तो भोगी बहुश्रुतः ।। जनसौभाग्यसंपन्नो यावज्जन्माष्टकायुतम् ।। ४३ ।। दर्शे दशगुणं दानं तच्छतघ्नं दिनक्षये ।। शतघ्नं तच्च संक्रान्तौ शतघ्नं विषुवे ततः।।४४।। युगादौ तच्छतगुणमयने तच्छताहतम् ।। सोमग्रहे तच्छतघ्नं तच्छतघ्नं रविग्रहे ।। असंख्येयं व्यतीपाते दानं वेदविदो विदुः ।। ४५ ।। उत्पत्तौ लक्षगुणं कोटिगुणं भ्रमणनाडिकायां तु ।। अर्बुदगुणितं पतने जपदानाद्यक्षयं पतिते ।। ४६ ।। जन्मद्वाविंशतिर्नाडीभ्रमणं त्वेकविंशतिम् ।। व्यतीपातस्य पतनं दशसप्तस्थितिं विदुः ।।४७ ।। समर्पितं यद्व्यतिपातकाले पुनः पुनस्तद्रविशीतरश्मी ।। प्रयच्छतः कल्पशतार्बुदानि विवर्धमानं न हि हीयते तत् ।। ४८ ।। तस्मान्महि त्वं व्यतिपातपूजां कुरुष्व चेत् पुण्यमनन्तमिष्टम् ।। यदि स्थिरत्वं सततं तवेष्ट समस्तधारित्वमभीप्सितं च ।। ४९ ।। गणयित्वा व्यतीपातकालं वा वेत्ति यो नरः ।। सर्वपापहरौ तस्य भवतो भानुभेश्वरौ ।। ५० ।। पठति लिखति

---

१ दानादीविशेप २ नाडय इत्यर्थं

यः शृणोति वैतत्कथयति पश्यति कारयत्यवश्यम् ।। रविशशिदिवमाप्य सोऽपि देवैश्चिरसमयं परिपूज्यमान आस्ते ।। ५१ ।। इति वराहपुराणोक्तं व्यतीपातव्रतम्।।

व्यतीपातव्रत–युधिष्ठिरजी बोले कि, हे देव ! आपके मुखसे मैंने बहुतसे व्रत सुने, अब आप उद्यापन और फलके साथ व्यतीपातका व्रत कहिये ।।१।। कृष्णजी बोले कि, पहिले व्यास देवजीने अपने वंशके चढ़ानेवाले शुकके लिए जो व्रत कहा था उसे मैं कहता हूं, हे राजसत्तम ! सुनिये ।।२।। शुक बोले कि हे तात ! व्यतीपातको पूज्य लोग क्यों कहते हैं हे महामुने ! उसके कियेसे क्या फल होता है ? यह विस्तारके साथ कहिये ।।३।। व्यास बोले कि, पहिले भूमिने वाराहभगवान्से पूछा था उन्होंने व्यतीपातका सारा व्रत सुनाया था ।।४।। परलोकके हितके लिए उस व्रतको मैं कहता हूं।धरणी बोली कि, जो आपने व्यतीपात कहा है उसका स्वरूप क्या है, ।।५।। वह किसका पुत्र है क्यों पूज्य है पूजनेसे क्या फल होता है ? श्रीवराह बोले कि, जब बृहस्पतिकी पत्नी *ताराको चन्द्रमानें पकड़ लिया ।।६।। मित्रभावसे सूर्य्यने कहा कि, बृहस्पतिकी ताराको छोड़ दे उस समय चन्द्रमाने कुपित होकर सूर्यको देखा ।।७।। उस समय रविने भी क्रुद्ध होकर सोमको देखा । क्रुद्ध सोम सूर्य्यके आपसके दृष्टिपातसे ।।८।। मुख फाडा हुआ घोर पिंगल नयनोंका पुरुष उत्पन्न हुआ । वह ओष्ट चबा रहा था, दांत बड़े-बड़े थे । भौंए और मुख टेढा था ।।९।। पिंगल रंगकी मूछें और बालोंकी नौके थीं लंबी भौंए एवम् पेट कृश था, वह कराल बड़ी जीभका तथा सूर्य्य अग्नि और यमके बराबर था ।।१०।। आठ

* पुराणोंमें ऐसी रहस्यमयी कथाएं प्रायः आजाया करती हैं, उनके प्रचलित अर्थ नहीं तो अनर्थकाही कार्यकर डालते हैं यही कारण है कि लोग उनके यथार्थ तात्पर्य्यको, न समझकर व्यर्थ ही पुराणों पर-आक्षेप करके अपनी कुत्सित मनोवृत्तिका परिचय दिया करते हैं । इस व्रतराजमें भी कई स्थलोंमें ऐसे प्रकरण आये हैं जिनका वहांही वास्तविक तात्पर्य हमें वेदसे मिला मिश्रअर्थ करके समझाना आवश्यकथापर सर्वत्र हम ऐसा विस्तारके भयसे नहीं कर सकने हैं इस प्रकरणमें ताराका सोमसे हरण तथा उनके लिये सूर्यचंद्रमाका विवाद देख रहां हूं जो प्रचलित अर्थको देख पुराणोंपर आक्षेप करते हुए वैदिक बनते हैं उन्हें हम यही प्रकरण वेदमें भी दिखा देते है कि, अथर्ववेद अनुवाक चार सूक्त १७ के अठारह मंत्रोंमें इसका प्रकरण आया है – तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्म किल्बिषे कूपारः सलिलो मातरिश्वा, बीडुर्हरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथम जा ऋतस्य ।।१।। सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजयां पुनः प्रायच्छहृदृणीयमानः । ।ब्राह्मणके अपराधमें आदित्य वरुण वायु अग्नि, और सोम आपसमें झगडने लगे । क्योंकि सोमराज (चन्द्रमा) में निर्लज्ज हो ताराको पकड़ लिया था, ब्रह्मजायाका तारासेही तात्पर्य है क्योंकि " यामाहुस्तारकेषा, जिसे तारा कहते हैं । "तेन जायामन्वविन्दत् बृहस्पतिः सोमेनतीतां जुह्वं न देवाः " इस प्रयत्नसे सोमकी ली हुई बृहस्पतिकी जाया बृहस्पतिको इस तरह मिलगयी जैसे विधिपूर्वक किया होम देवोंको मिल जाता है इस तरह बुधकी उत्पत्ति आदि तथा चन्द्रवंशका उद्भव सब इससे सिद्ध हो जाता है जिसकिसीको इस विषयका विस्तार देखना तो हो हमारी इसी विषयकी पुस्तकादिकोंमें मिल सकता है यद्यपि पहिले हमारी ऐसी धारणा थी कि जहां कहीं संदिग्ध विषय आवें वहांकी वेदसे मिलाकर मिश्र वास्तविक अर्थ किया जाय पर हमारे वृद्ध पियूषपाणि प० परमान्दजीने हमें यही समझाया था कि ऐसा करनेसे सबका विस्तार बढ़ाना है एक भागवतका ही समन्वय उस रीतिसे कर दीजिये सबका दिग्दर्शन हो जायगा । इलाहाबादसे प्रकाशित होनेवाली आधुनिक किसी बीसवीं सदीके ऋषिके मतके अनुयायियोंकी टीकामें इस प्रकरणको ब्रह्मविद्यापर लगाया है उसके लिये यहां उनसे विवाद न कर यहां कहते हैं कि, उनके लिये भी मार्ग खुला हुआ हैं वो भले ही यहां भी उसी तरह लगाकर अपना सन्तोष कर सकते हैं इसी तरह "वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभोर्हरतीं मनः " इस भागवतके प्रकरणको साथ मिलाकर समझ लेना चाहिये । विना पूरा समझे चाँदपर व्यभिचारका दोष तथा ब्रह्माजीपर अन्य पतित आक्षेप करना कहीं की, समझदारी नहीं है व्रतराजके भी ऐसे प्रकरणोंको रहस्य मय समझना चाहिये बिना वेदकी तरफ दृष्टि पात किये सहसा ध्यानमें नहीं आ सकते हैं न हमही विस्तारके भयसे उनपर पूरा विचारकर सके हैं प्रचलित प्रथापरही विशेष रूपसे ध्यान दिया है ।

आंखें, चार मुंह तथा अठारह भुजाओंवाला था, वह तीनों लोकोंको खाने दौड़ा किन्तु सूर्य्य चन्द्रमाने रोक दया ।।११।। उसने उन दोनोंसे पूछा कि, मैं भूखा हूं क्या खाऊँ, मैं तीनों लोकोंको खा डालना चाहता था, आपने रोक दिया ।।१२।। मुझे क्रोध और भूख सता रही हैं, उन्हें मैं कहां पटके ? यह सुन सोम सूर्य्य बोले कि, आप हम दोनोंकी अनेक तरहकी क्रोध दृष्टिसे हुए हो ।।१३।। इस कारण आपका नाम व्यतीपात होगा, आप सदा सब योगोंके पति होंगे ।।१४।। तथा सब योगोंमें अत्यन्त पुण्यरूप होंगे इसमें सन्देह नहीं है जिस समय आपकी उत्पत्ति है उस समय मंगलकार्य न करे।।१५।। किन्तु उस समय जो कुछ स्नान आदि किया जाता है वह सब अक्षय हो जाता है " जो पवित्र कर्म करते हैं हे व्यतिपात ! वह तुझ व्यतीपातके लिए अच्छा है । तथा जो तेरेमें पाप करते हैं उनके अन्नको सफाचट कर जा । वहांही तेरा क्रोध पड़ना चाहिये, इसी आशयका पाठ जयसिंह कल्पद्रुममें रखा है " यह वर उसे मिल गया उसी दिनसे यह योगोंका राजा व्यतीपात ।। १६ ।। बहुतसे पुण्यफल देनेवाला प्रसिद्ध हो गया, हे व्यतीपात ! हे महावीर! प्रभों! हे तीनों लोगोंमें व्यापक ! ।।१७।। जब तू मनुष्योंको मिले तो तुझमें कल्याण चाहनेवालोंको कुछ दान अवश्य देना चाहिये । उनके दिये हुए दानको प्रसन्न होकर खा, नहीं तो अपना क्रोध उनपर पटक ।।१८।। व्यतीपात बोला कि, मैं अपने दोनों पिताओंको नमस्कार करता हूं । आपने मुझे क्रोधके डालनेकी जगह और भोजनदे दिया है अब और भी कुछ कृपा करिये ।।१९।। सूर्य्य चांद बोले कि, स्नान, दान, जप, होम, इनके साथ जो तेरा आराधन करे, हे सुत ! यह हमारा तुझे वर है कि, तेरी कृपासे उनका अनन्त फल हो जाय ।।२०।। जो आपका उस समय पूजन करेगा वह कल्याणरूप ही हो जायगा । उसे पुत्र आयु, सुख, कीर्ति, पुष्टि, रूप, आरोग्य और गुणीजनोंका प्यार आदि अनेक भव्य गुण हो जायंगे ।।२१।। धरणी बोली कि, हे जगद्गुरो ! इसके पूजनकी विधि कहिये, इस व्रतके करनेसे मनुष्योंको क्या फल मिलता है ? ।।२२।। वराह बोले कि, हे भूमे ! जिस कारणसे वह व्यतीपात कहा जाता है जो उसके पूजनसे फल होता है वह भी कह दिया गया है ।।२३।। विस्तारसे इसके पूरे अर्चन फलको कौन कह सकता है पर जिस विधिसे व्यतीपातकी पूजा होती है उसे सुनिये ।।२४।। व्यतीपातके शुभदिनमें पंचगव्य शिरमें लगाकर पीछे बड़ी नदीमें स्नान करना चाहिये । पवमानसूक्तका जपने वाला उपवास करे, तथा हे व्यतीपात ! तेरे लिये नमस्कार है ।।२५।। तांबेके पात्रसे ढके हुए सक्करके भरे घटपर सोनेके कमलके ऊपर सोनेकी अष्टभुज नरके आकारकी मूर्ति स्थापित करे ।।२६।। अष्टाभुजका तात्पर्य अष्टादश भुजसे है क्योंकि व्यतीपातकी अष्टादश (१८) भुजाओंको उत्पत्तिके समय कहा है । बाकी नियोग वाक्य उत्पत्तिके वाक्यके अनुसारही लगाने चाहिये । जैसे कि, भगवद्गीतामें " चत्वारो मनवस्तथा " इससे आयेहुए चत्वार चारका चतुर्दश-चौदह, यह अर्थ होता है । मार्गशिर मासमें गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, वस्त्र, नैवेद्य, भक्ष्य और भोज्य तथा अनेक तरहके फल इनसे पूजे ।।२७।। हे सोम और सूर्य दोनोंके पुत्र व्यतीपात ! तेरे लिये नमस्कार है जो आपमें मैं दान आदि करूं वह सब अनन्त हो जाय ।।२८।। यह कह कर पांचरत्नों समेत पुष्प और अक्षतोंकी अंजलिका प्रक्षेप करे तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।।२९।। हे महि ! यदि दूसरे दिन व्यतीपात हो तो पहिले दिनउपवास करे वह सब गुरुको दे ।।३०।। व्यतीपातके अन्तमें गोमयका प्राशन करके पारणा करे । हे धात्रि ! यदि एकही दिन व्यतीपात हो तो उसी दिन दान और उपवास होना चाहिये । इस प्रकार हरएक मासमें व्रत करता हुआ तेरह व्यतीपात करे ।।३१।।३२।। चौदहवें व्यतीपातमें उद्यापन करे, " ओम् व्यतीपाताय स्वाहा " इस मंत्रसे दूधके वृक्ष (आक) की समिध तथा ।।३३।। आज्य क्षीर और तिलोंसे एक सौ आहुति दे । शर्कराके भरे कुंभ तथा सब उपकरणके साथ व्रत बताने वालेके लिये भक्तिपूर्वक सोनेकी प्रतिमा दे ।।३४।। मैं सब कामनाओंकी प्राप्तिके लिये सूर्य सोमका सुत जो सब योगोंमें श्रेष्ठ व्यती–पात है उसकी बन्दना करता हूं । मेरे सब पाप नष्ट हों तथा पुण्यका अनंत फल हो ।।३५।। यह कह कटक कुण्डल और कानोंके भूषणोंसे गुरुका सत्कार करके यथोचित सबको समाप्त करके उसे प्राप्त हो फल उपलब्ध करता है ।।३६।। अच्छे सोनेकी दक्षिणाके साथ दूध देनेवाली गाय दे । मजबूत काठकी बनी सुन्दर शय्या दे ।।३७।। वह दंतपत्रोंके वितानसे सजी एवम् हेमपदोंसे अलंकृत हो । हंस तूलीसे प्रतिच्छन्न तथा अच्छे अच्छे तकिये हों ।।३८।। चद्दर तथा मच्छरदानीसे सजी हुई धूप गन्धसे सुगन्धित हो ताम्बूल और कुंकुमका क्षोद (चूर्ण)

कपूर, अगरु और चन्दन उपस्थित हों ।।३९।। दीपक, उपानह, छत्र चामर, आसन दे, देहके अन्तमें सूर्य । लोकके लिये रत्नजडे चमकीले विमानोंपर बैठकर ।।४०।। अप्सराओंके संभोगके साथ नृत्य देखता एवं गानेबजाने सुनता हुआ वहां पहुंचता है,देव उसकी सेवाएं करते हैं तथा वहां एकसौ अर्बुद कल्प रहता है।।४१।। उसके अन्तमें राजराज एवं रूप सौभाग्यवाला होता है । यशस्वी एवं गुण, पुत्र, आयु आरोग्य, धन और धान्यवाला होता है ।।४२।। प्रतापी, महाऐश्वर्यशाली, भोगी और बहुश्रुत होता है । जन और सौभाग्यसे संपन्न होता है, जबतक कि, वह आठ जन्मनहीं भोग लेता ।।४३।। दान तारतम्य दर्शमें सौगुना दान तथा उसका सौगुना दिनक्षयमें उसका सौगुना संक्रान्तिके दिन उसका सौगुना विषुवत उसका सौगुना युगादिमें तथा उसका सौगुना अयनमें उसका भी सौगुना चन्द्रग्रहणमें उसका सौगुना रविग्रहणमें दान देनेसे फल होता है पर व्यतीपातमें दान देनेसे तो अनन्त संख्या दानकी होती है। ऐसा दानके तारतम्य जाननेवाले वेदवेत्ता कहा करते हैं ।।४४।। ।।४५।। व्यतीपातके विभाग उत्पत्तिके समय लाख गुना, भ्रमणमें कोटि गुणा एवं पतनकारमें दान करनेसे अरब गुना फल होता है तथा पतितपर जपदान अक्षय हो जाता है ।।४६।। बाईस घड़ी जन्मकाल है तथा इसके पीछे २१ घड़ी भ्रमणकाल है एवं सत्रह घडीसे दशका पतन तथा ७ का पतितकाल है ।।४७।। जो व्यतीपातके समय दान किया जाता है उसे वारंवार रविसूर्य देते रहते हैं । वह सौअरब कल्प बढ़ता रहता है है घटता नहीं ।।४८।। इस कारण हे महि ! तू व्यतीपातकी पूजा कर । जो तुझे अनन्त पुण्यकी इच्छा हो तो, जो तू यह चाहती हो कि, मैं स्थिर और सबके धारण करनेवाली बनी रहूं तो ।।४९।। जो व्यतीपातके कालको गिनकर जानते हैं, उनके सब पापोंको भानुचन्द्र नष्ट करते रहते हैं ।।५०।। जो कोई इस व्यतीपातको लिखते पढ़ते सुनते कहते कराते और देखते हैं, वे सूर्य चन्द्रके लोक पहुंच चिरकालतक देवोंसे पूजित होकर रहते हैं ।।५१।। यह वराह पुराणका कहा हुआ व्यतीपातका व्रत पूरा हुआ ।।

अथ नारदीये व्यतीपातव्रतम्

युधिष्ठिर उवाच ।। येन व्रतेन चीर्णेन न पश्येद्यमशासनम् ।। परिपृच्छाम्यहं विप्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ।। १ ।। तद्व्रतं ब्रूहि विप्रर्षे कृत्वा जगति वै कृपाम् ।। मार्कण्डेय उवाच ।। शृणु राजन् व्रतमिदं हर्यश्वेन पुराकृतम् ।। २ ।। तेन राज्ञा तु तद्दत्तं सूकराय च दुःखिने ।। कदाचिन्मृगयां कर्तुं हर्यश्वो राजसत्तमः ।। ३ ।। वनमध्ये चरन् राजा दृष्ट्वा तत्रैव सूकरम् ।। दग्धपादकटिं चैव दग्धकण्ठमुखोदरम् ।। ४।। दृष्ट्वा तथाविधं तं तु कृपां चक्रे नृपोत्तमः ।। केन कर्मविपाकेन ह्यवस्थां प्राप्तवानयम् ।। ५ ।। अहो कष्टमहोकष्टं सूकरेणोपभुज्यते ।। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।। ६ ।। इत्येवं मनसि ध्यात्वा राजा तं प्राह सूकरम् ।। ईदृशी किमवस्था ते तन्मे ब्रूहि च सूकर ।।७।। तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं निःश्वसन्सूकरो मुहुः ।। स्मृत्वा पुरा कृतं कर्म प्रत्युवाच नृपं प्रति ।। ८ ।। शृणु राजन्नहं पूर्वं वैश्यो धनबलान्वितः ।। आशाकृद्रूचो न दत्तं हि आश्रितेभ्यश्च किञ्चन ।। ९ ।। श्रुताश्च बहवो धर्माः पुराणश्रुतिचोदिताः ।। तथापि पापबुद्ध्या मे न कृतं चात्मनो हितम् ।। १० ।। आशापाशमनुप्राप्तः शुभशास्त्रविवर्जितः ।। कृतवान्पापमेवाहं न किञ्चित् सुकृतं कृतम् ।। ११।। एकदा तु द्विजः कश्चिद्व्यतीपाते गृहं मम ।। आगतो याचयन्मां च न किञ्चिद्दत्तवानहम् ।। १२ ।। मया निराकृतोऽत्यन्तं वचोभिर्निष्ठुरैस्तथा ।। व्यतीपातोऽद्य रे वैश्य किञ्चिद्देह्यर्थिते

खल ।। १३ ।। तन्मेरुरूपं भवति प्राप्स्यसे त्वन्यजन्मनि ।। कुपितेन मया तस्मै निष्ठुरा वाक् समीरिता ।। १४ ।। ततश्च कुपितो विप्रो मम शापमथाददत् ।। आशाग्निर्दहते यद्वन्ममाङ्गानि पृथक् पृथक् ।। १५ ।। तथैव तु तवाङ्गानि दावाग्निः पुरुषाधम ।। अरण्ये निर्जले देशे निर्जने द्रुमवर्जिते ।। १६ ।। तत्र सूकरयोनौ त्वमुत्पन्नो दुःखमाप्नुहि ।। प्रसादितो मया पश्चात्पुनरप्युक्तवां स्तदा ।। १७ ।। उद्धरिष्यति राजात्वां सूकरत्वे दयापरः ।। इत्युक्त्वा च जगामाथ अन्यवैश्यगृहं प्रति ।। १८ ।। तेन शापेन वै राजन् सूरकरत्वमवाप्तवान् ।। अहं दुःखी च सञ्जातो विजने निर्जले वने ।। १९ ।। राजोवाच ।। केन त्वं मुच्यसे पापान्ममाचक्ष्वेह सूकर ।। येन शक्नोम्यहं कर्तुं तव शापस्य संक्षयम् ।। २० ।। वराह उवाच ।। श्रूयतां मम राजेन्द्र मुक्तिः स्याद्येन कर्मणा ।। व्यतीपातव्रतं नाम कृतं राजंस्त्वया पुरा ।। २१ ।। यथा माता सुतस्येह सर्वत्र सुखकारिणी ।। तथा व्रतमिदं राजन्निह लोके परत्र च ।। २२ ।। यथैवाभ्युदितः सूर्यो ह्यशेषं च तमो दहेत् ।। व्यतीपातस्तथैवेह सर्वपापं व्यपोहति ।।२३।। *यथा विष्णुर्ददातीह नृणां परमनिर्वृतिम् ।। ददात्येवं न सन्देहस्तथा व्रतमिदं शुभम् ।। २४ ।। शतमिन्दुक्षये दानं सहस्रं तु नु दिनक्षये ।। विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपाते त्वनन्तकम् ।।२५।।द्वाविंशतिः समुत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः ।। पतने दश नाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः।।२६।।यत्फलं लक्षमुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते ।।पतने दशकोट्यस्तु पतिते दत्तमक्षयम्।।२७।।([2]आकृतिर्मूर्च्छना काष्ठा शैलतुल्याश्च नाडिकाः।। लक्षकोट्यर्बुदगुणमनन्तं स्याद्यथाक्रमम् ।। व्यतीपातविभागेषु दानमुक्तं नृपोत्तम ।।) अमा पिता च विज्ञेयो माता मन्वादयस्तथा ।। भगिनी द्वादशी ज्ञेया व्यतीपातस्तु सोदरः ।। २८ ।। पितर्युक्तं शतगुणं सहस्रं मातरि स्मृतम् ।। भगिन्यां दशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षय् ।। २९ ।। विधानं व्यतिपातस्य शृणु राजन् प्रयत्नतः ।। माघे वा फाल्गुने मार्गे वैशाखे श्रावणेऽथवा ।।३०।। व्यतीपातो दिने यस्मिन्नारभेतद्व्रत मुत्तमम् ।। व्यतीपातव्रते तिष्ठञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः ।। ३१ ।। पञ्चगव्यतिलैर्धात्रीफलैः स्नायात्समाहितः ।। ततः संकल्पयेदेतद्व्रतं सर्वार्थसाधकम् ।। ३२ ।। न वारो न च नक्षत्रं न तिथिर्न च चन्द्रमाः ।। यदा वै जायते भक्तिस्तदा ग्राह्यमिदं व्रतम् ।। ३३ ।। किं व्रतैर्बहुभिश्चीर्णैः किं दानैर्बहुभिः कृतैः ।। सर्वेषां फलमाप्नोति व्यतीपातव्रतेन वै ।। ३४ ।। इति निश्चित्य मनसा व्यतीपातव्रतं चर ।। सर्वपापविशुद्ध्यर्थं यावत्संवत्सरो भवेत्।।३५।। [3]आमन्त्र्य तद्दिने विप्रं वेदवेदांगपारगम्।। तिलः पूर्णशरावं च सगुडं गुरवेऽर्पयेत् ।।३६।। एवं द्वितीये दातव्यं तृतीयेऽपि तथैव च ।। सघृतं पायसं चैव दातव्यं चोत्तरोत्तरम् ।। ३७ ।। उत्तरोत्तरं चतुर्थादा-

---

* सकृत्स्मृतो यथाविष्णुर्नृणामित्यपि पाठः । २ इदमधिकं ग्रन्थान्तरस्थामिति ३ इदं प्रतिव्यतीपापं कुर्यादित्यर्थः

वित्यर्थः ।। एवं संवत्सरस्यान्ते *देवस्यार्चां तु कारयेत् ।।३८।। शंखचक्रगदापाणिं पद्महस्तं हिरण्मयम्।।वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य पूजयेद्गरुडध्वजम् ।।३९।। हेमदानंततः कुर्याद्यथाविभवसारतः ।। मंत्रेणानेन विधिवत्करे धृत्वा सुवर्णकम् ।।४०।। नमस्तेऽस्तु व्यतीपात सोमसूर्यसुत प्रभो ।। दास्यामि दानं यत्किञ्चित्तदक्षय्यमिहास्तु मे ।। ४१ ।। गुञ्जामात्रमपि स्वल्पं हेमं विप्रकरेऽर्पितम् ।। हेमाद्रिशिखराकारमनन्तफलदं भवेत् ।। ४२ ।। इदं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं साक्षान्नारायणो द्विजः ।। सुवर्णस्य च दानेन प्रीतो भूयाज्जनार्दनः ।। ४३ ।। तव हस्तो व्यतीपातो वैधृतिश्चरणौ स्मृतौ ।। संक्रान्तिर्हृदयस्थानममा वै नाभिरुच्यते ।। ४४ ।। पृष्ठं च पूर्णिमा पञ्च पर्वाण्यङ्गानि पञ्च ते ।। व्यतीपातदिने देव किञ्चिद्विप्रे समर्पितम् ।। भवत्वनन्तफलदं मम जन्मनि जन्मनि ।। ४५ ।। एवं प्रार्थ्य हृषीकेशं नत्वा चैव पुनः पुनः ।। तत्सर्वं गुरवे दद्याच्छ्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।। ४६ ।। व्रतोपदेष्ट्रेविप्राय पुराणज्ञाय भक्तितः ।। ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु व्रतमेतत्समापयेत् ।। ४७ ।। सूकरउवाच ।। इदं व्रतं त्वया [2]देव गृहीतं पूर्वजन्मनि ।। स्वर्गापवर्गदं नृणामनन्तफलदं शुभम् ।। ४८ ।। तेनैवमुक्तो हर्यश्वः सूकरं वाक्यमब्रवीत् ।। मया कृतमिदं सर्वं तत्फलं ते ददाम्यहम् ।। ४९ ।। एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठः सूकराय फलं ददौ ।। तत्क्षणात्तेन पुण्येन सूकरो मुक्तकिल्बिषः ।। ५० ।। मुक्तः सूकरदेहाच्च सर्वाभरणभूषितः ।। दिव्यं विमानं संप्राप्य गतः स्वर्गं च सूकरः ।। ५१ ।। न जानन्ति द्विजाः सर्वे व्यतीपातव्रतोत्तमम् ।। इहलोके च सुखदं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।। ५२ ।। मार्कण्डेय उवाच ।। अतस्त्वं कुरु राजेन्द्र व्यतीपातव्रतोत्तमम् ।। सर्वपापक्षयकरं नृणां भवति सर्वदा ।। ५३ ।। इदं यः कुरुते मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।। ५४ ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या विष्णुलोके महीयते ।। ज्ञानावान्धनवाञ्छ्रीमानिह चैव सुखी भवेत् ।। ५५ ।। इति नारदपुराणे व्यतीपातव्रतम् ।। अथ प्रकारान्तरेणोद्यापनम् ।। कुर्यादेवं मासि मासि व्यतीपातांस्त्रयोदश ।। चतुर्दशे तु संप्राप्ते कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। आदौ मध्ये तथा चान्ते यथाशक्ति समाचरेत् ।। निष्कत्रयेण चार्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। व्यतीपातस्वरूपं हि कुर्यादष्टभुजं नरः ।। गणेशपूजनं कार्यं स्वस्तिवाचनमाचरेत् ।। नान्दीमुखांस्ततोऽभ्यर्च्य आचार्यं वरयेत्सुधीः।।वरयेच्च ततो विप्रानृत्विजश्च त्रयोदश ।। देवागारे तथा गोष्ठे शुद्धे च स्वीय मन्दिरे ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पट्टकूलादिवेष्टिताम् ।। तन्मध्ये सर्वतोभद्रं रचयेल्लक्षणान्वितम् ।। तत्पूर्वे स्थापयेत्कुम्भं शर्करापूरितं शुभम् । तस्योपरि न्यसेत्पात्रंताम्रं वैणवमृन्मयम् ।। निष्कत्रयेण प्रतिमां सुवर्णेन विनिर्मिताम् ।। स्वशक्त्या कारयेद्रम्यां लक्ष्मीनारायणस्य च ।। वैदिकेन तु मन्त्रेण व्यतीपातसमन्विताम् ।। तां

---

* विष्णो : । २ हे राजन् ।

स्थापयेत्तत्र कुर्याद्ब्रह्माद्यावाहनं ततः ।। ततः पूजां विनिर्वर्त्य महासंभारविस्तरैः ।। अर्घ्यं चापि ततो देयं सुगन्धैः कुसुमैर्जलैः ।। गृहाणार्घ्यं व्यतीपात सोमसूर्यसुत प्रभो ।। सप्तजन्मकृतं पापं त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु ।। मंत्रेणानेन देवाय दद्यादर्घ्यं समाहितः ।। ऋचा सोमो धेनुमिति होमं सोमाय कारयेत् ।। आकृष्णेनेति मन्त्रेण सूर्याय विधिवन्नरः ।। अश्वत्थार्कसमिद्भिश्च शतमष्टोत्तरं तथा ।। इदं विष्णुरिति मन्त्रेण होमः स्यात्पायसेन च ।। व्याहृतीनां फलैर्होमं कुर्यादष्टोत्तरं शतम् ।। त्रयोदश ब्राह्मणांश्च भोजयेल्लड्डुपायसैः।। एवमाराधितान्विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्गां च दद्यात्पयस्विनीम् ।। इत्थं व्रतं तु यः कुर्यान्नरो भक्तिसमन्वितः ।। कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।। अस्मिन्कृते व्रते राजन्वैधव्यं स्त्री न नाप्नुयात् ।। अकालमृत्युर्दारिद्रं शोको दुःखं न जायते ।। सर्वसौख्यमवाप्नोति व्यतीपातप्रसादतः ।। इति प्रकारान्तरेण व्यतीपातव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

नारदपुराणका कहा हुआ व्यतीपातका व्रत-युधिष्ठिरजी बोले कि, हे महाराज ! जिस व्रतके कियेसे नरक न देखे, हे विप्र ! ऐसा उत्तम व्रत आपसे पूछता हूं ।।१।। हेविप्रर्षे ! सौ संसारपर कृपा करके उस व्रतको सुना दीजिये । मार्कण्डेय बोले कि, हे राजन् ! सुन, यह व्रत पहिले हर्य्यश्वने किया था ।।२।। उस राजाने इस व्रतको दुखी सूकरकेलिये दे दिया एक दिन राजा शिकार खेलने गया ।।३।। वनमें घूमते हुए वहीं एक सूकर देखा उसके पैर कटि कंठ मुख और उदर जल गये थे ।।४।। उसे वैसा देखकर राजाने कृपा की और विचारा कि, यह किस कर्मसे ऐसा हो गया है ? ।।५।। बड़े कष्टकी बात है यह सूकर बड़ी तकलीफ भोग रहा है अपने किये अच्छे बुरे कर्म सबको भोगने पड़ते हैं ।।६।। इस प्रकार मनमें विचार कर राजाने उस सूकरसे कहा कि, तेरा यह हाल क्यों हुआ ? ऐ सूकर ! यह बता ।।७।। राजाके वचन सुनतेही सूकर आहें लेने लगा । पहिले किये कर्मोंको याद करके राजासे बोला कि ।।८।। हे राजन् ! मैं पहिले जन्ममें धन बलवाला वैश्य था । मैंने आशामेषी और आश्रितोंको कभी कुछ नहीं दिया ।।९।। पुराण और श्रुतियोंके कहे बहुतसे धर्म सुने तो भी मुझ पापीसे कुछ भी अपना भला न हुआ ।।१०।। मैं आशामें बंधा हुआ सदाही शुभ शास्त्रसे रहित रहा आता था । मैंने सदा पापही पाप किया, कभी पुण्यतो कियाही नहीं ।।११।। एक दिन एक ब्राह्मण व्यतीपातके दिन मेरे घर आया । उसने मांगा पर मैंने कुछ न दिया ।।१२।। यही नहीं किन्तु मैंने उसका बड़ेही निष्ठुर वचनोंसे निराकरण किया । वह बोला कि, अरे खल ! आज व्यतीपात है कुछ भी दे दे ।।१३।। वह मेरुके बराबर तुझे अगले जन्ममें मिलेगा, मैंने क्रोधमें आकर उससे कठोर वचन कहे ।।१४।। इससे नाराज होकर ब्राह्मणने शाप दे दिया कि, जैसे मेरे अंगोंको आशाग्नि अलग-अलग जला रही है ।।१५।। उसी तरह तेरे भी अंग दावानलसे जलेंगे । जलहीन निर्जन उजाड़ अरण्यमें ।।१६।। तुम सूकरकी योनिमें उत्पन्न होकर दुख पाओगे, जब मैंने उसे राजी किया तो फिर वह बोला कि ।।१७।। सूकरयोनिमें दयालु राजा तेरा उद्धार करेगा यह कहकर वह दूसरे वैश्यके घर चला गया ।।१८।। हे राजन् ! मैं उसके शापसे सूकर बन गया हूं, इस निर्जल बीहड़में वैसा ही दुखी होगया हूं ।।१९।। राजा बोला कि तू किस तरह पापसे छूटे ? ए सूकर ! यह मुझे बतादे जिससे कि, मैं तेरे शापका नाश कर सकूं ।।२०।। वराह बोला कि हे राजेन्द्र ! सुन, जिस कर्मसे मेरी मुक्ति होगी वह कर्म यह है कि, यदि आपने पहिले व्यतीपात कर रखा हो तो ।।२१।। जैसे मा पुत्रको सब जगह सुख करती है उसी तरह यह व्रत भी सब जगह सुख पहुंचाता है ।।२२।। जैसे सूर्य्य उदय होते ही सब अन्धकारको नष्ट कर देते हैं उसी तरह यह व्रत भी सब पापोंको नष्ट कर देता है ।।२३।। जैसे विष्णु भगवान् मनुष्योंको परम आनन्द देते हैं उसी तरह यह व्रत भी देता है इसमें सन्देह नहीं है ।।२४।। इन्दुके क्षय (अमावास्या) में दिया हुआ

दान सौगुना तथा दिनक्षय (संध्या) में हजार गुना एवं विषुवमें लाख गुना तथा व्यतीपातमें अनन्त गुना होता है, ।।२५।। बाईस घड़ीका उत्पत्ति, इक्कीसका भ्रमण, दशका पतन तथा ७ घडीका पतित काल होता है ।।२६।। लाख गुना उत्पत्तिमें करोड़ गुना भ्रमणमें, दस करोड़ गुना पतनमें तथा पतितमें अक्षय होता है ।।२७।। (कोई वाईस घड़ीकी आकृति इक्कीस घड़ीकी मूर्छना दशकी काष्ठा सातही शैल तुल्य हैं । इनमें दिया दान क्रमसे लाख कोटि अरब और अनन्त गुना होता है) अमा पिता तथा मन्वादिक माताए हैं । बहिन द्वादशी हैं उनका भाई व्यतीपात है ।।२८।। पितामें सौगुना, मातामें सहस्र गुना, बहिनमें दस हजार गुना एवं भाईमें दिया दान अक्षय होता है ।।२९।। हे राजन् । प्रयत्नके साथ व्यतीपातका विधान सुन । माघ, फाल्गुन मार्गशीर्ष, वैशाख और श्रावण इन महीनोंमें ।।३०।। जिस व्यतीपातके दिन इस उत्तम व्रतको करे उस दिन एकाग्रचित्त हो पवित्र होकर व्यतीपातके व्रतमें बैठे ।।३१।। पंचगव्य, दिल और आवलोंसे एकाग्र चित्त हो स्नान करे पीछे सब अर्थोंके साधनेवाले इस व्यतीपात व्रतका संकल्प करे ।।३२।। वार नक्षत्र तिथि और चन्द्रमा कुछ न देखे । जब श्रद्धा हो तबही व्यतीपातका व्रत करने लग जाय ।।३३।। बहुतसे व्रत एवं अनेकों दानोंसे क्या प्रयोजन है ? व्यतीपातके व्रतके सबका फल पा जाता है ।।३४।। मनसे यह निश्चय करके व्यतीपातका व्रत एक वर्ष तक करे इससे सब पाप निवृत्त हो जायँगे ।।३५।। उस दिन वेद वेदाङ्गोंके जाननेवाले ब्राह्मणको बुला तिलों और गुडसे भरे हुए चौडे मूँहके पात्रको गुरुके लिये दे दे ।।३६।। उसी तरह दूसरे और तीसरे व्यतीपातके दिन करना चाहिये, चौथे व्यतीपातसे लेकर सब व्यतीपातको घृतसहित पायस देना चाहिये ।।३७।। क्योंकि उत्तरोत्तरका तात्पर्य चौथेसे अगा डीके सभी व्यतीपातोंसे है । इस प्रकार एक वर्ष, व्रत करके विष्णुभगवान्की पूजा करे ।।३८।। सोनेकी मूर्ति हो, शंखचक्र गदा पद्म हाथमें लिए हुए हों, उन्हें दो वस्त्र उढ़ा दे ।।३९।। पीछे अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका दान करे । सुवर्णको हाथमें धरकर इस मंत्रसे प्रार्थना करे कि ।।४०।। हे व्यतीपात ! तेरे लिए नमस्कार है, आप चांद सूर्य दोनोंके पुत्र हैं जो मैं कुछ दान दे रहा हूं वह सब अक्षय हो जाय ।।४१।। कमसे कम रत्ती भर भी सोना ब्राह्मणको दियेसे सुमेरुके शिखरके बराबर अनन्तफल देनेवाला हो जाता है ।।४२।। यह क्षेत्र कुरुक्षेत्र है । यह ब्राह्मणही नारायण है । इस सोनेके दानसे जनार्दन प्रसन्न हो जाय।।४३।। हे भगवन् ! आपका हाथ व्यतीपात, वैधृति चरण, संक्रांति हृदय और अमावास्या नाभि है ।।४४।। पूर्णिमा पीठ इस तरह तेरे पांच अङ्ग हैं । जो व्यतीपातके दिन ब्राह्मणको कुछ भी दिया है उसका मुझे जन्म जन्ममें अनन्त फल मिले ।।४५।। इस प्रकार प्रार्थना करके हृषीकेशको बारंबार नमस्कार कर वह सब वेदपाठी कुटुम्बी गुरुके लिए दे दे ।।४६।। जो कि पुराणोंके जाननेवाले व्रतका उपदेष्टा हो, पीछे ब्राह्मण भोजन कराकर इस व्रतको पूरा कर दे । सूकर बोला कि, हे राजन् ! यह व्रत आपने पहिले जन्ममें किया था, यह स्वर्ग और अपवर्ग देनेवाला तथा अनन्त फल देनेवाला है ।।४७।। ।।४८।। उसके इतने कहने पर हर्य्यश्वसूकरसे बोला कि मैंने जो व्यतीपातका व्रत किया था उसका फल तुझे देता हूं ।।४९।। यह कहकर राजाने सूकरको फल दे दिया, उसी समय उस पुण्यके प्रतापसे वह पापोंसे छूट गया ।।५०।। सूकरकी योनिसे छूटकारा पा गया । सब आभरणोंसे भूषित हो गया । एवं दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्ग चला गया ।।५१।। इस लोकमें सुख देनेवाले एवं स्वर्ग और मोक्षके दाता व्यतीपातको कोई भी ब्राह्मण नहीं जानता ।।५२।। मार्कण्डेय बोले कि, हे राजन् ! इस कारण आप व्यतीपातका व्रत करें । वह मनुष्योंके सभी पापोंको नष्ट किया करता है ।।५३।। जो मनुष्य श्रद्धा भक्तिके साथ इस उत्तम व्यतीपातके व्रतको करता है वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के सायुज्य को पाता है ।।५४।। जो इसे भक्तिके साथ सुनता है वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है वह यहीं ज्ञानवान् धनवान् और श्रीमान् होता है तथा सुखी रहता है ।।५५।। यह श्रीनारायका कहा हुआ व्यतीपात व्रतपूरा हुआ ।।प्रकारान्तरसे उद्यापन–महीना-महीना व्यतीपात व्रत करे, इस तरह तेरह व्यतीपात करने चाहिए। चौदहवें व्यतीपातमें उद्यापन करे। आदि मध्य तथा अन्तमें शक्तिके अनुसार उद्यापन करे, तीन ढेढ़ वा पौन निष्क सोनेका अष्टभुजी नराकृति व्यतीपातका स्वरूप बनावे, स्वस्तिवाचनके साथ गणेशका पूजन करे । नान्दीमुखोंको अर्चन करके आचार्य वतेरह ऋत्विजोंका वरण करे । देवागार, गोष्ठ, अपने शुद्ध मंदिर, इनमें पुष्पकी मंडपिका बनावे । उसे पट्टकूलसे वेष्टित करे, उसमें सुन्दर सर्वतो-

गार, गोष्ठ, अपने शुद्ध मंदिर, इनमें पुष्पकी मंडपिका बनावे। उसे पट्टकूलसे वेष्टित करे, उसमें सुन्दर सर्वतोभद्रमंडल बनावे। उसके पूर्वमें शर्करासे भरे हुए घटकी स्थापना करे। उसपर तांबे बांस या मिट्टीके पात्रको स्थापित करे। भक्तिसे शक्तिके अनुसार तीननिष्क सोनेकी लक्ष्मीनारायण की सुन्दर प्रतिमा व्यतीपातके साथ स्थापित करे वैदिक मंत्रोंसे ब्रह्मादिकोंका आवाहन करे। पीछे बड़े-बड़े संभारोंसे पूजा पूरी करे ; सुगंधित फूल मिले हुए, पासीनेसे अर्घ्य देना चाहिये कि, हे सोम पूर्यके पुत्र व्यतीपात ! अर्घ्य ग्रहण करिये तेरे लिए नमस्कार है, तेरी कृपासे मेरे सात जन्मके किए पाप नष्ट हो जायें। इस मंत्रसे एकाग्र चित्त हो देवके लिए अर्घ्य दे " ओम्सोमोधेनुं सोमोऽअर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददातिसादन्यंदिवथ्यं सभेयंपितृश्रवणं यो ददाशदस्मै।। " जोकि सोमकोही दे सोमउसे धेनु, शीघ्रगामी घोडा कर्म करनेवाला वीर गृह कार्यमें कुशल यज्ञ करनेवाला सभाके योग्य पिताका आज्ञाकारी पुत्रदेता है। इस मंत्रसे सोमके लिए हवन करे। आकृष्णेन इससे विधिपूर्वक सूर्यके लिए आक और पीपलकी समिधोंसे एक सौ आठ आहुतियां दी जायें " इदंविष्णु " इस मंत्रसे पायसका होम हो, व्याहृतियोंसे एक सौ आठ आहुति फलोंकी दे, लड्डू खीरसे तेरह ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इस प्रकार आराधित ब्राह्मणोंको दक्षिणासे प्रसन्न करे, आचार्यकी पूजा करे। उन्हें दूध देनेवाली गाय दे, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रकार उद्यापन करता है उसके कोटिजन्मके किए पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो स्त्री इस व्रतको कर लेती है वह कभी विधवा नहीं होती। इस व्रतके करनेवालेको अकाल मृत्यु दारिद्रय और शोकनहीं होता। वह व्यतीपातकी कृपासे सब सुख पा जाता है। प्रकारान्तरसे कहे गये व्यतीपातके व्रतका उद्यापन पूरा हुआ।

मासोपवासव्रतम्

अथ आश्विनशुक्लैकादशीमारभ्य कार्तिकशुक्लैकादशीपर्यन्तं मासोपवासव्रतं लिख्यते ।। हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये–नारद उवाच ।। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमस्य च ।। विधिं मासोपवासस्य फलं चास्य यथोदितम् ।। तथाविधा नरैः कार्या व्रतचर्या यथा भवेत् ।। आरभ्यते यथापूर्वं समाप्य च यथाविधि ।। यावत्संख्यं च कर्तव्यं तद्ब्रवीहि पितामह ।। व्रतमेतत्सुर श्रेष्ठ विस्तरेण ममानघ ।। ब्रह्मोवाच ।। साधु नारद पृष्टं हि सर्वेषां हितकारकम् ।। यादृङ्मतिमतां श्रेष्ठ तच्छृणुष्व ब्रवीमि ते ।। सुराणां च यथा विष्णुस्तपतां च यथा रविः ।। मेरुः शिखरिणां यद्वद्वैनतेयस्तु पक्षिणाम् ।। तीर्थानां तु यथा गङ्गा प्रजानां तु यथा द्विजः ।। श्रेष्ठं सर्वव्रतानां हि तद्वन्मासोपवासकम् ।। सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यद्भवेत् ।। सर्वदानोद्भवं वापि लभेन्मासोपवासकृत् ।। अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विधिवत्भूरिदक्षिणैः ।। न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलंघनात् ।। तेन दत्तं हुतं जप्तं तपस्तप्तं स्वधा कृतम् ।। यः करोति विधानेन नरो मासमुपोषणम् ।। प्रविश्य वैष्णवं यज्ञं पूजयेच्च जनार्दनम् ।। गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासकम् ।। वैष्णवानि तथोक्तानि कृत्वा चैव व्रतानि तु ।। द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपावसेत् ।। अतिकृच्छ्रं पराकं च कृत्वा चान्द्रायणं तथा ।। मासोपवासं कुर्वीत ज्ञात्वा देहबलाबलम् ।। वानप्रस्थो यतिर्वापि नारी वा विधवा मुने ।। मासोपवासं कुर्वीत गुरु-

विप्राज्ञया ततः ।। आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।। व्रतमेतत्तु गृह्णीया-द्यावत्रिंशद्दिनावधि ।। वासुदेवं समुद्दिश्य कार्तिकं सकलं नरः ।। मासं चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत् ।। अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुसुमैः शुभैः ।। मालती-न्दीवरैः पद्मैः कमलैस्तु सुगन्धिभिः ।। कुङ्कुमागुरुकर्पूरैर्विलिप्य च सुगन्धकैः ।। नैवेद्यैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेत्तु जनार्दनम् ।। मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्गरुडध्वजम् ।। कुर्यान्नरस्त्रिषवणं महाभक्त्या जितेन्द्रियः ।। नाम्नामेव तथालापं विष्णोः कुर्यादह-र्निशम् ।। भक्त्या विष्णोः स्तुतिर्वाच्या मृषावादं विवर्जयेत् ।। सर्वसत्त्वदयायुक्तः शान्तवृत्तिरहिंसकः । सुप्तो वा आसनस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्तयेत् ।। स्मृत्यालोकन-गन्धादिस्वाद्वन्नपरिकीर्तनम् ।। अन्नस्य वर्जयेत्सर्वं ग्रासानां चाभिकांक्षणम् ।। गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं च विलेपनम् ।। व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम् ।। व्रतस्थो न स्पृहेत्किंचिद्विकर्मस्थान्न चालपेत् ।। देवतायतने तिष्ठेन्न गृहस्थश्चरेद्व्रतम् ।। कृत्वा मासोपवासं तु संयतात्मा जितेन्द्रियः ।। ततोऽर्चयेन्महा-भक्त्या द्वादश्यां गरुडध्वजम् ।। पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः ।। वस्त्रालंकार-वाद्यैश्च तोषयेदच्युतं नरः ।। स्नापयेत्तु हरिं भक्त्या तीर्थचन्दनवारिभिः ।। चन्दनेनानुलिप्ताङ्गान् पुष्पधूपैरनेकशः ।। वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयेच्च द्विजोत्त-मान् ।। दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यस्ताम्बूलादि च दापयेत् ।। क्षमापयित्वा विप्रांश्च विसृजेन्नियतो व्रती ।। एवं वित्तानुसारेण भक्तियुक्तेन चेतसा ।। कृत्वा मासोपवासं तु समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।। भोजयित्वा द्विजांश्चैव विष्णुलोके महीयते ।। कृत्वा मासोपवासांस्तु सम्यक् त्रिंशदहानि च ।। निर्वापयेत्ततस्तान्वै विधना येन तच्छृणु ।। कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ।। पूजयित्वा च देवेशमाचार्यानुज्ञया हरिम् ।। अर्चयित्वा हरिं भक्त्या अभिवाद्य गुरुं तथा ।। ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति यथाविधि ।। विशुद्धकुलचारित्रान्विष्णुपूजनतत्परान् ।। पूजयित्वा द्विजान् सम्यक् त्रिंशद्वै भोजितान्सुधीः ।। तावन्ति वस्त्रयुग्मानि आसनादिकमण्डलून् ।। योग-पट्टानि शुभ्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि ।। दद्याच्चैव द्विजाग्र्येभ्यः पूजयित्वा प्रणम्य च ।। ततोऽनुकल्पयेच्छय्यां शस्तास्तरणसंस्कृताम् ।। वितानसंयुतां श्रेष्ठां सोपधाना-मलङ्कृताम् ।। विष्णोस्तु कारयेन्मूर्ति काञ्चनीं तु स्वशक्तितः ।। न्यसेत्तस्यां तु शय्यायामर्चयित्वा स्रगादिभिः ;।। आसनं पातुके छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ ।। पवित्राणि च पुष्पाणि शय्यायामुपकल्पयेत् ।। एवं शय्यां तु संकल्प प्रणिपत्य च तान् द्विजान् ।। प्रार्थयेच्चानुमोदार्थं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम् ।। एवमभ्यर्चिता विप्रा ददेयुर्व्रतिनं तदा ।। व्रज व्रज नरश्रेष्ठ विष्णोः स्थानमनामयम् ।। विमानं वैष्णवं

दिव्यं सुशय्यापरिकल्पितम् ।। तेन विष्णुपदं याहि सदानन्दमनामयम् ।। ततो विसर्जयेद्विप्रान्प्रणिपत्यानुगम्य च ।। ततस्तु पूजयेद्भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायकम् ।। तां शय्यां कल्पितां सम्यक् गुरुं व्रतसमापकम् ।। प्रणम्य शिरसा शान्तस्तस्मै च प्रतिपादयेत् ।। एवं पूज्य हरिं विप्रान् गुरुं ज्ञानप्रकाशकम् ।। कृत्वा मासोपवासांश्च नरो विष्णुतनुं विशेत् ।। कृत्वा मासोपवासं वा निर्वाप्य विधिवन्मुने ।। कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।। नरो मासोपवासानां कर्ता पुण्यकृतां वरः ।। पितृमातृकुलाभ्यां च समं विष्णुपुरं व्रजेत् ।। नारी या विधवा जाता तथोक्तव्रतचारिणी ।। कृत्वा मासोपवासं च व्रजेद्विष्णुं सनातनम् ।। नारद उवाच ।। सुदुष्करमिदं देव मूर्च्छाग्लानिकरं परम् ।। व्रतं मासोपवासाख्यं भक्ति जनयतेऽच्युते ।। पीडितस्य भृशं देव मुमूर्षोर्व्रतिनस्तदा ।। त्यागो वातुग्रहो वाथ किं तु कार्यं पितामह ।। ब्रह्मोवाच ।।व्रतस्थं कर्शितं दृष्ट्वा मुमूर्षुं वा तपोधनम् ।। कृपया ब्राह्मणास्तस्य कुर्युः सम्यगनुग्रहम् ।। अमृतं पाययेत्क्षीरमिच्छमानंसकृन्निशि ।। यथेह न वियुज्येत प्राणैः क्षुत्पीडितो व्रती ।। अतिमूर्च्छान्वितं क्षीणं मुमूर्षुं क्षुत्प्रपीडितम्।। पाययित्वा शृतं क्षीरं रक्षेद्दत्त्वा फलानि च ।। अहोरात्रं च यो नित्यं व्रतस्थं परि पालयेत् ।। पयो मूलं फलं दत्त्वा विष्णुलोकं व्रजेच्च सः ।। एवं मासोपवासस्थमारूढं प्राणसंशये ।। अव्रतघ्नगुणैर्दिव्यैः परीप्सेद्ब्राह्मणाज्ञया ।। नैते व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्विप्रानुमोदितम् ।। क्षीरौषधं गुरोराज्ञा ह्यापो मूलं फलानि च ।। एवं कृत्वापि व्रतं विष्णुर्दाता विष्णुर्व्रती तथा ।। सर्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा व्रतस्थं क्षीणमुद्धरेत् ।। यदा मुमूर्षुर्निश्चेष्टः परिग्लानोऽतिमूर्च्छितः ।। तदा समुद्धरेत् क्षीणमिच्छन्तं विमुखं स्थितम् ।। परिपाल्य व्रती देहं व्रतशेषं समापयेत् ।। यथोक्तं द्विगुणं तस्य फलं विप्रमुखोदितम् ।। इन्द्रियार्थेष्वसंसक्तः सदैव विमला मतिः ।। परितोषयते विष्णुं नोपवासोऽजितात्मनाम् ।। किं तस्य बहुभिस्तीर्थैः स्नानहोमजपव्रतैः ।। येनेन्द्रियगणो घोरो निर्जितो हि स्वचेतसा ।। जितेन्द्रियः सदा शान्तः सर्वभूतहिते रतः ।। वासुदेवपरो नित्यं न क्लेशं कर्तुमर्हति ।। कृत्वा व्रतं यथोक्तं तु वैष्णवं पदमव्ययम् ।। प्राप्नोति पुरुषो नित्यं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।। ये स्मरन्ति सदा विष्णुं विशुद्धेनान्तरात्मना ।। ते प्रयान्ति भयं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम् ।। प्रभाते चार्धरात्रे च मध्याह्ने दिवसक्षये ।। कीर्तयन्त्यच्युतं ये वै ते तरन्ति भवार्णवम् ।। आनन्दितोऽथ दुःखार्तः क्रुद्धः शान्तोऽथवा हरिम् ।। एवं यः कीर्तयेद्भक्त्या स गच्छेद्वैष्णवीं पुरीम् ।। गर्भजन्मजरारोग दुःख संसारबन्धनैः ।। न बाध्यते नरो नित्यं वासुदेवमनुस्मरन् ।। जङ्गमे सत्त्वे स्थूले सूक्ष्मे शुभाशुभे ।। विष्णुं पश्यति सर्वत्र यः स विष्णुःस्वयं

नरः ।। सर्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा त्रैलोक्यं सचराचरम् ।। यस्य शान्ता मतिस्तेन पूजितो गरुडध्वजः ।। विष्णुलोकमवाप्नोति चक्रपाणेः प्रसादतः ।। विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्तितः ।। सुतस्नेहान्मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकहिताय च ।। कृत्वा विष्णवर्चनं भक्त्या नरो विष्णुपरीं व्रजेत् ।। नाभक्ताय प्रदातव्यं न देयं दुष्टचेतसे इति श्रीविष्णुरहस्योक्तं मासोपवासव्रतं सम्पूर्णम् ।।

मासोपवासव्रत–आश्विन शुक्लाएकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशी तक होता है । इसे हेमाद्रिने विष्णुरहस्यसे लेकर लिखा है । नारदजी बोले कि, हे भगवन् ! मैं सब व्रतोंमें उत्तम मासोपवासव्रतकी विधि सुनना चाहता हूं । इसको किस रीतिसे प्रारंभ करना चाहिये जिस रीतिसे कि, पार पड़ जाय जैसे पहिले प्रारम्भ करे जिस विधिसे समाप्त करे, जितना कि, करना चाहिये पितामह ! वह सब बताइये ! हे निष्पाप, हे सुरश्रेष्ठ ! इस व्रतको विस्तारके साथ कहिये ! ब्रह्मा बोले कि, हे नारद ! अच्छा सबका हित करनेवाला पूछा जैसा वह है सुनिये, मैं कहता हूं– जैसे देवोंमें विष्णु, तपनेवाले रवि, पर्वतोंमें मेरु, पक्षियोंमें गरुड, तीर्थोंमें गंगा, प्रजाओंमें ब्राह्मण होता है उसी तरह सब व्रतोंमें यह मासोपवास श्रेष्ठ है, तब व्रतोंमें जो पुण्य तथा सब तीर्थोंमें जो फल है तथा सब दानोंमें जो पुण्य है वह मासोपवाससे मिल जाता है । विधिपूर्वक किये गये बहुतसी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादिक यज्ञोंसे वह पुण्य नहीं मिलता जो इस मास भरके उसपवाससे मिल जाता है । जिसने विधिके साथ मासका उपवास किया है दान हवन तप और श्राद्ध सब कर लिये । वैष्णवयज्ञमें प्रविष्ट होकर जनार्दनका पूजन करे, पीछे गुरुकी आज्ञा लेकर जनार्दनको पूजे । कहेके मुताबिक वैष्णव द्वादशी आदिके व्रतोंको करके पीछे मासोपवास करे, अतिकृच्छ्र और पराक करके चान्द्रायण करे, देहका बल और अबल जानकर मासोपवास करे, वानप्रस्थ यति नारी और विधवा गुरु और ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मासोपवास करें । आश्विन शुक्ला एकादशीके दिन उपवास करके इस व्रतको तीस दिनके लिये ग्रहण करना चाहिये । वासुदेवके उद्देशसे जो एक मासतक उपवास करे वह मुक्तिका अधिकारी होता है । भगवान्के मंदिरमें भक्तिके साथ तीनों कालमें शुभ सुगन्धित मालती इन्दीवर पद्म और कमलोंसे सुगन्धित कुंकुम अगर और कपूरके लेपसे नैवेद्य, धूप, दीप आदिसे जनार्दनको मन वाणी और अन्तःकरणसे पूजे । महाभक्तिके साथ जीतेन्द्रिय रहकर तीनवार स्नान करे, रातदिन भगवान्के नामोंकाही कीर्तन करे । भक्तिपूर्वक भगवान्की स्तुति करे । गप्पें न उडावे सब प्राणियोंपर दया करे । किसीको न मारे, शांत चित्त रहे, सोते वा जागते सन जगह भगवान्को याद करे । अन्नका स्मरण, देखना, गन्ध, स्वाद, कथन, ग्रासोंकी इच्छा इन सबका त्याग करना चाहिये, उवटन, शिरमें तेलकी मालिस, पान, विलेपन तथा दूसरी भी छोड़ी हुई चीजें इनमेंसे किसी की भी इच्छा न करे, न कुकर्मी पुरुषोंसे बातें ही करे, यदि गृहस्थ इस व्रतको करे तो देव मंदिरमेंही रहे, जितेन्द्रियताके साथ मासका उपवास पूरा करके द्वादशीके दिन भगवान्का पूजन करे, पुष्पमाला, गन्ध, धूप, विलेपन, वस्त्र और अलंकारोंसे अच्युतको तुष्ट कर दे, चन्दनके पानीसे भक्तिपूर्वक स्नान करावे, ब्राह्मण भोजन करावे, चन्दन लगावे, गन्ध धूप और विलेपन दे, पान और दक्षिणा दे, ब्राह्मणोंसे क्षमापन कराकर उन्हें विदाकरे इस तरह धनके अनुसार भक्तिपूर्वक मासोपवास करके भगवान्को पूज ब्राह्मण भोजन कराकर विष्णुलोक पाता है । तीस दिनतक मासोपवास करके जिस विधिसे निर्वापन समाप्त करना चाहिये, उसे सुन , एकादशीके दिन आचार्यकी आज्ञाके अनुसार वैष्णव यज्ञ करे तथा भगवान्का भक्तिपूर्वक पूजन करके गुरुका अभिवादन करे पीछे शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे, वे ब्राह्मण अच्छे कुल और चरित्रके हों तथा विष्णूपूजामें लगे रहते हों ऐसे तीसको भोजन कराकर पूजे, प्रणाम करे, सुन्दर बिछानेके साथ शय्या तयार करे, वह मच्छरदानी तथा ताकिया आदिसे अलंकृत हो, अपनी शक्तिके अनुसार विष्णुभगवान्की सोनेकी मूर्ति बनाकर उस उस पलंगपर रख दे । फिर माला आदिसे पूजे, आसान, पादुका, छत्र, वस्त्र, उपानह, एवं पवित्र पुष्प ये सब चीजें शय्यापर रखे, ऐसी शय्याके दानका संकल्प ब्राह्मणके लिये करके उन्हें प्रणाम करे एवं उनकी प्रसन्नताके

लिये प्रार्थना करे कि, मैं विष्णुलोकको जाता हूं । पूजित ब्राह्मण कहे कि, हे नरश्रेष्ठ ! जाओ जाओ विष्णु भगवान्के अनामय स्थानको जाओ, यह जो आपने सुशय्या बनाई है, यही विष्णुका विमान है । इससे सदानन्दमय अनामय विष्णुपदको चला जा । पीछे व्रती ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उनका विसर्जन कर दे । अपनी सीमातक उनके पीछे-पीछे जाय, पीछे ज्ञानदायक गुरुका पूजन करे । उस शय्याको शान्त हो व्रत समापक गुरुको शिरसे प्रणाम करके दे दे । इस गुरुकी पूजा तथा मासोपवास करके मनुष्य विष्णुके शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है । मासोपवास कर तथा विधिके साथ उसे पूरा करके सौ कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकको चल जाता है । वह करनेवाला पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ पिता और माताके कुलके साथ विष्णुपुरको चला जाता है, जो स्त्री विधवा होकर विधिके साथ ब्रह्मचारिणी रही हो, वह मासोपवास करके सनातन विष्णुको पा जाती है, नारदजी बोले कि, हे देव ! यह बड़ा कठिन है । मूर्च्छा तथा ग्लानि पैदा करनेवाला है यह मासोपवास व्रत भगवान्की भक्ति पैदा करता है : हे पितामह ! जो एकदम दुखी हो गया हो अथवा मरनेकी हालतमें आ गया हो उसपर त्याग वा अनुग्रह क्या करना चाहिये ? ब्रह्माजी बोले कि, व्रतीको एकदम दुखी वा तपोधनको मरणासन्न देखें तो उसपर ब्राह्मण कृपा करें, यदि वह रातमें अमृत तुल्य दूध चाहे तो एकबार कच्चा ताजा दूध पिलादें जिससे वह न मरें, जिस भूखे व्रतीको मूर्च्छा आ गई हो तथा मरणासन्न हो गया हो तो उसे औटा हुआ दूध पिलावें और फल दें, जो आप मूल और फल देकर दिन रात पालन करे वह विष्णुलोकको जाता है, इसी तरह मासोपवासका व्रती प्राण संशयमें आजाय तो उसे ब्राह्मणोंकी आज्ञासे व्रतके नष्ट न करनेवाले गुणोंसे पाले, क्योंकि, ब्राह्मणोंके बनाये क्षीर, औषध आप, मूल, फल ये हविरूप हैं । व्रतको नष्ट नहीं करते, इसे गुड़की क्षीर देकर भी बतावे, दूध और पानी भी पिलावे, पीछे व्रतकी समाप्ति करा दे । यह विष्णुका व्रत है । दाता विष्णु तथा व्रती भी विष्णु है । सब कुछ विष्णुमय जानकर व्रतमें नियेक्त हुए क्षीण पुरुषको अवश्य बचावे । यदि वह मरणासन्न मूर्च्छित तथा अच्छी तरह ग्लानिको पा जाय क्षीण हो जाय तथा सबसे विमुख हो हर तरह व्रत पूरा ही करना चाहता हो भी उस व्रतीकी देहका पालन होना चाहिये । तथा शेष व्रतकी समाप्ति करा देनी चाहिये, उसे ब्राह्मणोंके मुखसे कहलवानेसे दूना फल होता है । जो इन्द्रियोंमें संसक्त नहीं हैं, तथा सदाही बुद्धि पवित्र है जो सदाही विष्णुभगवान्को प्रसन्न करते रहते हैं, उन जितेन्द्रियोंको उपवासकी विशेष अवश्यकता ही नहीं हैं । उन्हें बहुतसे तीर्थ स्नान होम और जपतपसे क्या लेना है, जिन्होंने अपने हृदयसे आपही घोर इन्द्रियगणको जीत लिया है, जो जितेन्द्रिय सदा शान्त एवं सभी प्राणियोंके कल्याणमें लगा हुआ है । तथा भगवान्का निरन्तर भक्त है । उसे क्यों कष्ट करना चाहिये ? जो विधिके साथ व्रत करता है, वह उस अव्यय विष्णुपदको पा जाता है, जहांसे कि, फिर आनाही नहीं होता । जो शुद्ध चित्तसे विष्णुभगवान्का स्मरण करते हैं, वे भयको छोड़कर अनामय विष्णुलोकको चले जाते हैं । जो प्रभात अर्धरात्र मध्याह्न और सायंकालमें भगवान्का कीर्तन करते हैं वे भवसागर को पार कर जाते हैं । आनन्दित, दुखी, क्रुद्ध, शान्त कोई भी हो जो भक्तिके साथ भगवान्का कीर्तन करता है, वह वैष्णवपुरीको चला जाता है, वासुदेवको याद करता हुआ मनुष्य कभी गर्भ, जन्म, रोग, दुख और संसारके बन्धनोंसे नहीं बंधता । स्थावर, जंगम, स्थूल, सूक्ष्म, शुभ और अशुभ सबमें विष्णुभगवान्को देखता है । वह चराचर समेत तीनों लोकोंको विष्णुनय जानकर स्वयं विष्णु बन जाता है । जिसकी बुद्धि शान्त है, जिसने कि भगवान्की पूजा की है, वह भगवान्की कृपासे भगवान्के लोक चला जाता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने उपसासकी विधि सब लोकोंके कल्याणके लिये जैसी थी वैसी ही कह दी है । इस विधिसे विष्णुपूजन करके मनुष्य विष्णुकी पुरीको चला जाता है, यह अभक्त और दुष्टचेताके लिये कभी न देना चाहिये ।। यह श्रीविष्णु रहस्यका कहा हुआ मासोपवासका व्रत पूरा हुआ ।।

धारणापारणाव्रतम्

अथ आषाढशुक्लैकादशीमारभ्य कार्तिकशुक्लैकादशीपर्यन्तं धारणापारणाव्रतम् ।। कृष्णउवाच ।। शृणु कौन्तेय वक्ष्यामि धारणापारणाव्रतम् ।। बान्धवादिव-

धोत्पन्नंदोषघ्नं च सुखप्रदम् ।। कुलवृद्धिकं चैव सर्वेन्द्रियनियामकम् ।। चातुर्मास्ये तथा चादौ मासि कौन्तेय सुव्रतः ।। पुण्याहं कारयेत्पूर्वमेकादश्यां शुभे दिने ।। पश्चात्संकल्प्य राजेन्द्र तदारभ्य व्रतं चरेत् ।।आदौ मासि तथा चान्ते चातुर्मासेष्वथापि वा ।। एकस्मिन्धारणं कार्यं पारणं च तथापरे ।। उपवासो धारणं स्यात्पारणं भोजनं भवेत् ।। पारणस्य दिने प्राप्ते मन्त्रमष्टाक्षरं जपेत् ।। अष्टोत्तरशतं दद्यादर्घ्यान् देवाय तन्मनाः ।। समाप्ते मासि राजेन्द्र कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। चातुर्मास्यव्रते चाथ मासे मासे तु कारयेत् ।। उपवासदिने प्राप्ते पुण्याहं कारयेत्पुरा ।। आचार्यं वरयेत्पश्चादृत्विजस्तु ततः परम् ।। कृत्वा तु प्रतिमां शुद्धां लक्ष्मीनारायस्य वै ।। स्थापयेदव्रणे कुम्भे पूजयेदुपचारकैः ।। पञ्चामृतैस्तथा पुष्पैस्तुलसीदलचम्पकैः ।। मालतीकेतकीभिश्च मल्लिकाकुसुमैस्तथा ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणपठनादिभिः ।। प्रातःकाले समायाते ब्राह्मणांस्तु निमन्त्रयेत् ।। मासे मासे पञ्चदश युधिष्ठिर शुचिव्रतान् ।। पश्चात्स्नानादिकं कृत्वा देवपूजां समाचरेत् । पश्चादग्निसमाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि।।निषुसीदेति मन्त्रेण जुहुयाच्च तिलौदनम् । अरायिकाणेमन्त्रेण जुहुयाच्च घृतौदनम्।।अष्टाक्षरेण मन्त्रेण पायसं जुहुयात्ततः ।। पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा होमशेषं समापयेत्।।ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादाचार्यं पूजयेत्ततः ।। एवं कृत्वा महाभाग ब्रह्महत्यादिपातकैः ।। मुच्यते नात्र सन्देहस्तस्मात्कुरु महाव्रतम् ।। सुग्रीवस्तु पुरा राजन् हत्वा वालिनमाहवे ।। रामादिष्टं ततः कृत्वा धारणापारणाव्रतम् ।। विमुक्तः स तदा दोषान्नानापातकसञ्चयात् ।।नारदेन तथा राजपूर्वस्मिन् शूद्रजन्मनि ।। द्विजानामुपदेशाच्च धारणापारणा कृता ।। होमादिकं विधायाथ तस्य पुण्यप्रभावतः ।। जितेन्द्रियस्ततो जातो ब्रह्मलोकादिकांश्चरन् ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्धारणपारणम् ।।इन्द्रियाणां वशार्थाय सर्वपापापनुत्तये ।। तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कुरुष्व व्रतमुत्तमम् ।। किं दानैस्तपसा किं वा नियमैश्च व्रतैर्यमैः ।। धारणापारणं कुर्याद्व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।।सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत् फलम् ।। तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा धारणपारणम् ।। इदं व्रतं महापुण्यं तपासमुत्तमं तपः ।। तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कुर्विदं विधिपूर्वकम् ।। बान्धवादिवधाद्दोषान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः ।। इति तं संप्रदिश्याथ विष्णुः स्वां च पुरीं ययौ ।। वन्द्यमानः पौरजनैः समस्तैः पाण्डुनन्दनैः ।। युधिष्ठिरोऽपि राजर्षिश्चकारेदं महाव्रतम् ।। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो वंशवृद्धिस्ततोऽभवत् ।। इति श्रीभविष्यपुराणे धारणापारणाव्रतं समाप्तम् ।।

धारणापारणाव्रत–आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशीतक होता है । श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि, हे कौन्तेय ! धारणापारणाव्रत कहता हूं । यह भाई आदिकोंके मारनेके दोषका नाश करनेवाला तथा सुखका देनेवाला है । कुलकी वृद्धि तथा सभी इन्द्रियोंको रोकनेवाला है । हे कौन्तेय ! आषाढ़में सुव्रत शुक्ला एकादशीके दिन पुण्याह वाचन करावे । पीछे संकल्प करके व्रत करना प्रारंभ कर दे । चातुर्मास्यके आदिमासमें तथा अन्तमें धारण तथा पारण होता है एकमें धारण तथा दूसरेमें पारण होता है । उपवासको धारण तथा भोजनको पारण कहते हैं । पारणके दिन अष्टाक्षर मंत्रका जप होना चाहिये । देव मेंही मन लगाकर एक सौ आठ अर्घ्य दे । महीनाकी समाप्तिमें हे राजेन्द्र ! उद्यापन करे । चातुर्मास्यके व्रतमें महीना महीनामें करावे, उपवासका दिन आजानेपर पहिले पुण्याहवाचन करावे, आचार्य्यका वरण करे । पीछे ऋत्विजोंका वरण करे । लक्ष्मीनारायणकी शुद्ध प्रतिमा कर विधिपूर्वक कुंभपर स्थापित करके उपचारोंसे पूजे । पंचामृत, पुष्प तुलसीदल, चंपक, मालती, केतकी, मल्लिका इनसे भी पूजे पुराणोंके सुनने आदिसे रातको जागरण करे । प्रातःकाल ब्राह्मणोंको मिमंत्रण दे इसी तरह प्रत्येक मासमें पवित्र व्रतोंवाले पंद्रह ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे । पीछे स्नान आदिक करके देवपूजा प्रारंभ कर दे । अग्नि स्थापित करके विधिपूर्वक हवन करे, " निषु सीद " इस मंत्रसे और ओदनका हवन करे ।' ओम् निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् । नऽऋते त्वत्क्रियते किंचनारे महामर्कं मघवन् चित्रमर्च ' हे गुणोंके अधिपति विष्णुदेव ! आप अपने गणोंमें अच्छी तरह विराजें, आपको क्रान्तदर्शियोंमें भी अत्यन्त मेधावी कहा करते हैं, मनुष्योंमें आपके बिना कुछ भी कर्म नहीं किया जा सकता । हे अधिप ! चाहके योग्य बड़े भारी पूज्य धनको हमें दे ।। " ओम् अरायिकाणे विकटे गिरिं गच्छे सदान्वे, शिरिंविठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ।।" हे न देनेवाली ! हे दुर्भिक्ष करनेवाली अलक्ष्मी ! अथवा हे धनाभावसे आखोंकी ज्योतिको मलिन करनेवाली ! हे भयंकरे । हे हाय हाय करानेवाली ! मैं तुझे भक्तोंपर सदा दया करनेवाले शौरिके तत्त्वसे नष्ट किये देता हूं अथवा शिरिंविठ ऋषिके इस नाम मंत्रसे तुझे नष्ट किये देते हैं । इस मंत्रसे घृतोदनका हवन करना चाहिये, अष्टाक्षर मंत्रसे पायसका हवन करे, पूर्णाहुति करके होमको समाप्त करे । ब्राह्मणोंको भोजन कराके आचार्य्यको भोजन करावे । हे हे महाभाग ! इस प्रकार करके ब्रह्महत्यादिकोंसे छूट जायगा इसमें सन्देह नहीं है । इस कारण इस महाव्रतको करना चाहिए । हे राजन् ! सुग्रीवने भाई वालिको मार रामके उपदेशसे यही धारणा पारणा व्रत किया था, वह उसी समय अनेक पातकोंके दोषसे छूट गया । नारदने भी पहिले शूद्र जन्ममें ब्राह्मणोंके उपदेशसे धारणापारणा की थी, होमादिक करके उसीके पुण्यप्रभावसे जितेन्द्रिय हो गया । ब्रह्मलोकादिकोंमें विचरने लगा, इस कारण सब प्रयत्न से तू धारणापारणा व्रत कर, इसके किएसे इन्द्रिय वशमें तथा सभी पाप राशियां नष्ट होती हैं । इस कारण हे राजेन्द्र ! इस व्रतको आप करें और दान, तप, नियम, व्रत और यमोंमें क्या है सब व्रतोंमें उत्तम इस धारणा पारणा व्रतको करें । सभी यज्ञ दान और तीर्थोंमें जो फल है वह फल इस धारणापारणाव्रतके किएसे मिल जाता है । तब उनके किएसे क्या है इसी एक धारणापारणाव्रतको करो । यह व्रत महापुण्यकारी तथा तपोंका भी उत्तम तप है । हे राजन् ! आप इसे विधिपूर्वक करें । बान्धवादिकोंके वधदोषसे छूट जायेंगे । इसमें सन्देह नहीं है । विष्णुभगवान् यह कहकर अपनी पुरीको चले । सब पाण्डवों और नगरनिवासियोंने उन्हें वंदनापूर्वक बिदा किया । इस व्रतको महाराज युधिष्ठिरने किया । वह सब पापोंसे छूट गये और उनके वंशकी भी खूब वृद्धि हुई।। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ धारणापारणाव्रत पूरा हुआ।।

अथ संक्रान्ति व्रतानि लिख्यन्ते

धान्यसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रादौ धान्यसंक्रान्तिव्रतम् ।। हेमाद्रौ स्कान्दे-नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथाहं संप्रवक्ष्यामि धान्यव्रतमनुत्तमम् ।। यत्कृत्वेह नरो राजन् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।।

अयने विषुवे चैव स्नानं कृत्वा यथाविधि ।। व्रतस्य नियमं कुर्याद्ध्यात्वा देवं दिवाकरम् ।। करिष्यामि व्रतं देव त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ।। तत्र निघ्नो न मे भूयात्तव देव प्रसादतः ।। इत्युच्चार्य लिखेत्पद्मं कुंकुमेनाष्टपत्रकम् ।। भास्करं पूर्वपत्रेषु आग्नेये च तथा रविम् ।। विवस्वन्तं तथा याम्ये नैर्ऋत्ये पूषणं तथा ।। आदित्यं वारुणे पत्रे वायव्ये तपनं तथा ।। मार्तण्डमिति कौबेर ऐशान्ये भानुमेव च ।। एवं च क्रमशोऽभ्यर्च्य विश्वात्मा मध्यदेशतः ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा अर्घ्यं दद्यात्समन्त्रकम् ।। कालात्मा सर्वदेवात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः ।। व्याधिमृत्युजराशोकसंसारभयनाशनः ।। इत्यर्घ्यमन्त्रः ।। पुष्पैर्धूपैः समभ्यर्च्य शिरसा प्रणिपत्य च ।। रविं ध्यात्वा ततो दद्याद्धान्यप्रस्थं द्विजातये ।। प्रतिमासं पुनस्तद्वत्पूज्यो देवः सहस्रपात् ।। एवं सदा प्रदातव्यं धान्यप्रस्थं द्विजातये।।एवं संवत्सरे पूर्णे कुर्यादुद्यापनक्रियाम्।। अर्घ्यपात्रं हि सौवर्णं कारयेन्मण्डलं शुभम् ।। द्विभुजं पूजयेद्भानुं रक्तवस्त्रयुगान्वितम् ।। धान्यद्रोणेन सहितं तदर्धेन स्वशक्तितः ।। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं कांस्यदोहां पयस्विनीम् ।। रविरूपं द्विजं ध्यात्वा तस्मै वेदविदे तथा ।। विद्यापात्राय विप्राय तत्सर्वं विनिवेदयेत् ।। अग्निष्टोमसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।। सप्तजन्मसहस्राणि धनधान्यसमन्वितः ।। निर्व्याधिर्नीरुजो धीमान् रूपवानभिजायते ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे धान्यसंक्रान्तिव्रतं सम्पूर्णम् ।।

संक्रान्तिव्रतानि

अब संक्रांतिके व्रत लिखे जाते हैं । उनमें सबसे पहिले धान्य संक्रातिका व्रत लिखते हैं । इसे हेमाद्रिने स्कन्दपुराणसे लिखा है । नंदिकेश्वर बोले कि, मैं अब आपको धान्य संक्रांतिका व्रत कहता हूं। हे राजन्! जिसके किएसे मनुष्य सब कामोंको पा जाता है । विषुव मेष और तुलाके संक्रांतिके अयनमें विधिपूर्वक स्नान करके सूर्यदेवका ध्यान करके व्रतका नियम करना चाहिये । मैं आपका भक्त आपहीमें मन लगाकर धान्य संक्रांतिका व्रत करूँगा । आपकी कृपासे मुझे कोई विघ्न न हो, यह कहकर कुंकुमसे आठ पत्रका पद्म लिखे । पूर्वपत्रपर भास्कर, आग्नेयपर रवि, दक्षिणपर विवस्वान्, नैर्ऋत्य कोणपर पूषण, पश्चिम कोण पर आदित्य, वायव्यपर तपन, उत्तरपर मार्तण्ड, ईशानपर भानुको पूजे । तथा कमलके बीचमें विश्वात्माका पूजन करे । हाथ जोड़कर मन्त्रसे अर्घ्य दे कि, जिसकी काल आत्मा है जो कि, सब देवोंकी आत्मा है, जिसके अनन्त मुख हैं, जो कि, व्याधि मृत्यु शोक और संसारके भयके नष्ट करने वाले हैं, यह अर्घ्यका मन्त्र है । पुष्प धूपसे पूजे तथा शिरसे प्रणाम करें । रविका ध्यान करके ब्राह्मणको एक प्रस्थधान्य दे दे, इसी तरह प्रतिमास सूर्यकी पूजा होनी चाहिये । एवं इसी तरह ब्राह्मणोंको धान्य प्रस्थ देता रहे, इस तरह संवत्सरके पूरे हो जानेपर उद्यापन करे । अर्घ्य पात्र और सोनेका मण्डल बनावे, रक्तवस्त्र उढावे, एवं दो भुजावाले सूर्य्य देवकी पूजा करे, अपनी शक्तिसे अनुसार धान्यका द्रोण वा आधाद्रोण एवं सोनेके सींग चांदीके खुर कांसेकी दोहनी इनके साथ दूध देनेवाली गऊको विद्या पढ़े हुए वेदवेत्ता सुयोग्य ब्राह्मणोंको दे दे । उसमें भगवान् सूर्य्यका अनुसन्धान करके दे दे । वह सहस्रों अग्निष्टोमोंका फल पाता है एवं सात हजार जन्म धनधान्यसे युक्त रहता है उसे कोई व्याधि-रोग नहीं होता बुद्धिमान् और रूपवान् होता है, यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ धान्य संक्रांतिका व्रत पूरा हुआ।।

---

१ अर्घ्यंइति शेषः ।

अथ लवणसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथातः संप्रवक्ष्यामि लवण संक्रान्तिमुत्तमाम् ।। संक्रान्तिवासरं प्राप्य स्नानं कृत्वा शुभे जले ।। वस्त्रालंकारसंवीतो भक्तिभावसमन्वितः ।। कुंकुमेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।। भास्करं पूजयेद्भक्त्या यथोक्तक्रमयोगतः ।। तदग्रे लवणं पात्रं सगुडं स्थापयेत्ततः ।। पूजितस्त्वं यथाशक्त्या प्रसीद मम भास्कर ।। लवणं सगुडं पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। एवं संवत्सरे पूर्णे भानुं कुर्याद्धिरण्मयम् ।। रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं रक्तचन्दनचर्चितम् ।। कमलं लवणं पात्रं धेन्वा सार्धं द्विजातये ।। प्रदद्याद्भानुमुद्दिश्य विश्वात्मा प्रीयतामिति ।। एवं कृत्वा तु यत्पुण्यं प्राप्यते भुवि मानवैः ।। तत्केन गदितुं शक्यं वर्षकोटिशतैरपि ।। लवणाचलदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।। सर्वकामसमृद्धात्मा विमानवरमध्यगः । सूर्यलोके वसेत् कल्पं पूज्यमानः सुरासुरैः ।। इति स्कन्दपुराणे लवणसंक्रान्तिव्रतम् ।।

लवणसंक्रांति व्रत- भी वहीं लिखा है । नंदिकेश्वर बोले कि, अब मैं उत्तम लवण संक्रांति कहता हूं । संक्रांतिके दिन अच्छे पानीमें स्नान करे । वस्त्र अलंकार धारण करे । कुंकुमसे कर्णिका सहित आठ पत्तोंका पत्र लिखे तथा भक्ति भावसे ही यथाक्रम आदित्यका पूजन करे । उसके अगाड़ी लोनका पात्र गुडसमेत रख दे और कहे कि, हे भास्कर ! मैंने अपनी शक्तिके अनुसार तेरा पूजन किया है, यह गुड और लवणसे भरा पात्र ब्राह्मणको देता हूं, इस तरह एक वर्ष करके सोनेका सूर्य बनावे, दो लालवस्त्र पहिना लालचन्दनसे चर्चित करे, धेनुके साथ कमललवण और पात्र ब्राह्मणको सूर्यके उद्देशसे दे कि, इससे भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हो जायँ । इस प्रकार करके जो पुण्य मनुष्योंको मिलता है, उसे कोई कोटिवर्षमें भी नहीं कह सकता वह लवणके पर्वतके दानका फल पाता है । यह सब कामोंमें समृद्ध रहता है । सुर और असुर उसकी सेवा करते रहते हैं । श्रेष्ठ विमानमें बैठा चिरकालतक सूर्य्यलोकमें बसता है । यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ लवण संक्रांतिका व्रत पूरा हुआ ।।

अथ भोगसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। वक्ष्येऽहं भोगसंक्रान्तिं सर्वलोकविवर्धनीम् ।। संक्रान्तिदिवसं प्राप्य योषितस्तु समाह्वयेत् ।। कुङ्कुमं कज्जलं चैव सिन्दूरं कुसुमानि च ।। सुगन्धीनि च द्रव्याणि ताम्बूलं शशिसंयुतम् ।। तण्डुलान् फलसंयुक्तांस्ताभ्यो दद्याद्विचक्षणः ।। अन्यान्यपि हि वस्तूनि भोगसाधनकानि च ।। दद्यात्प्रहृष्टमनसा मिथुनेभ्यो यथाविधि ।। भोजयित्वा यथाशक्त्या वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् ।। एवं संवत्सरस्यान्ते रविं संपूज्य पूर्ववत् ।। धेनुं सदक्षिणां दद्यात् सपत्नीकद्विजाय च ।। एवं यः कुरुते भक्त्या भोगसंक्रान्तिमादरात् ।। स्यात्सुखी सर्वमर्त्येषु भोगी जन्मनि जन्मनि ।। इति भोगसंक्रान्तिव्रतम् ।।

भोगसंक्रान्ति व्रत–भी वहीं लिखा हुआ है । नन्दिकेश्वर बोले कि, मैं भोगसंक्रान्तिको कहता हूं, जो कि, सब लोकोंको बढ़ानेवाली है, संक्रान्तिके दिन स्त्रियोंको बुलावे, कुंकुम, कज्जल, सिन्दूर, फूल तथा दूसरी सुगन्धित चीजें, पान, कपूर, फल और तण्डुल उन्हें दे, भोग की साधक दूसरी भी वस्तु प्रसन्नताके साथ दे दे । युगल जोडोंको विधिपूर्वक भोजन कराकर दो दो वस्त्र दे । संवत्सरके अन्तमें सूर्यका पूजन करके सपत्नीक आचार्यके लिये दक्षिणा समेत गाय दे । जो इस प्रकार भोग संक्रान्तिको आदरके साथ करता है, वह सब मनुष्योंमें जन्म-जन्म सुखी रहता है । यह भोगसंक्रान्तिका व्रत पूरा हुआ ।

अथ रूपसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नंदिकेश्वर उवाच ।। अथान्यदपि ते वच्मि रूपसंक्रान्तिमुत्तमाम् ।। संक्रान्तिवासरे स्नानं कुर्यात्तैलेन वै सुधीः ।। हेम[1]पात्रे घृतयुते हिरण्येन समन्विते ।। स्वरूपं वीक्ष्य तत् पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। एकभक्तं ततः कृत्वा पूजयित्वा रविं व्रती ।। व्रतान्ते काञ्चनं दद्याद् घृतधेनुसमन्वितम् ।। अश्वमेधसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः ।। रूपयौवनसंपत्त्या आयुरारोग्यसंपदा ।। लक्ष्मीं च विपुलान् भोगान् लभते नात्र संशयः ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकं च गच्छति ।। इति रूपसंक्रान्तिः ।।

रूपसंक्रान्तिव्रत–भी वहीं लिखा है । नन्दिकेश्वर बोले कि, अब मैं रूप संक्रान्तिके उत्तम व्रतको कहता हूं । इस दिन तेलसे स्नान करे, पात्रमें घी और सोना डालकर अपना रूप देखकर पात्र ब्राह्मणको दे दे, एक भक्त[1] करके सूर्यका पूजन करे । व्रतके अन्तमें [2]घृत धेनुके साथ सोना दे वह सौ अश्वमेधोंका फल पा जाता है । रूप, यौवन संपत्ति आयु, आरोग्य, लक्ष्मी और अनेक तरहके भोग मिलते हैं । एवं सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्ग चला जाता है यह रूप संक्रान्तिका व्रत पूरा हुआ ।।

---

१ पात्रे घृतं कृत्वेतिपाठः ।

१ दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन तत् । एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्याद्दिवैव हि । दिनके आधे समय बीजनानेपर जो नियमपूर्वक भोजन किया जाता है, उसे एकभक्त कहते हैं । इस कारण यह दिनमें ही होना चाहिये । इसके भोजनका मुख्य समय सूर्योदयसे लेकर सोलह वा सत्रह दण्ड है । सूर्यास्ततका समय गौण है । यह स्वतंत्र एकभक्तका निर्णय है, यदि किसी उपसासका अंग वा प्रतिनिधि होतो उसके अनुसार निर्णय होता है । स्वतन्त्रमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ली जाती है । एक भक्त या एक भुक्तका तात्पर्य दिनके एक वार भोजनसे है ।

२-४३१ वें पृष्ठमें हमने जल धेनुके प्रकरणमें इतना दिखा दिया था 'ये शास्त्रीय संज्ञा है' किन्तु विस्तारके साथ इनका लक्षण नहीं लिख था । अब यहां भी घृतधेनुका प्रकरण देखकर इनका लक्षण कर देन आवश्यक समझा है । जयसि० में लिखा है कि, एक हजार पलकाकुंभ हो, कोई-कोई एक सौ बारह पलका कुम्भ मानते हैं, उस कुम्भको गोके सर्पीसे भरे उसमें सोना और मणि विद्रुम और मोती डाले, काँसेके पात्रसे ढके, दो सफेद वस्त्र उढ़ावे, ईखके गोडे तथा जौके पाद चांदीके खुर, सोनेकी आँख, अगरू काष्ठके शींग बनावे । यहां सुवर्णआदिकी संख्या नहीं कही है । इस कारण जैसी शक्ति हो वैसा करले । सप्त धान्यके पार्श्व, तुरुष्क एक गन्ध द्रव्य तथा कपूरकी घ्राण, फलोंके स्तन, क्षौमसूत्रकी पूंछ, सफेद सरसोंके रोम और ताँबेकी पीठ करे, यह घृत धेनुका स्वरूप होगा । ऐसा ही उसका बछडा होता है किन्तु घृत धेनुमें जो जो वस्तु रखी हैं, वे सब–

अथ तेजःसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथान्यां संप्रवक्ष्यामि तेजःसंक्रान्तिमुत्त-माम् ।। संक्रान्तिवासरं प्राप्य स्नानं कृत्वा विचक्षणः ।। शालितण्डुलसंयुक्तं करकं कारयेच्छुभम् ।। दीपं संस्थाप्य तन्मध्ये ज्वलितं तु स्वतेजसा ।। तन्मुखे मोदकं स्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। रविं संपूज्य यत्नेन अर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ।। एक-भक्तं च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं भवेत् ।। संवत्सरे तु संपूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। शोभनं दीपकं कार्यं सुवर्णेन तु नारद ।। ताम्रस्य करकं कुर्याद्दीपं न्यस्य तथोपरि ।। कपिला सह दातव्या करकेण द्विजातये ।। सुवर्णकोटिदानस्य फलं वै प्राप्यते-ऽनघ ।। तेजसादित्यसंकाशो वायोर्बलमवाप्नुयात् ।। इति तेजःसंक्रान्तिः ।।

तेजः संक्रान्तिव्रत–भी वहीं लिखा हुआ है, नन्दिकेश्वर बोले कि, मैं अब उत्तम तेज संक्रान्तिको कहता हूं, संक्रान्तिके दिन स्नान करे, करुओंमें शालीके तण्डुल रखे, उसके बीचमें दीपक रखे, अपने तेजसे जलावे, उसके मुखमें लड्डू रखकर ब्राह्मणको दे दे। (करकका कितनी जगह हमने खांडके ओले अर्थ किया है। तथा कितनी ही जगह करुए अर्थ किया है। प्रकरण और रुचिके अनुसार समझना चाहिये) सूर्यकी पूजा करके अर्घ्य दे, जबतक वर्ष पूरा न हो, प्रत्येकको एक भक्त करना चाहिये, पीछे उद्यापन करे। हे नारद ! सोनेका सुन्दर दीपक बनावे। तांबेका करुआ बनाकर उसपर दीपक रख दे। करुएके साथ कपिला ब्राह्मणको दे। वह कोटि सुवर्ण दानका फल सूर्यकासा तेज तथा वायुका बल पाता है। यह तेजःसंक्रान्ति पूरी हुई ।।

अथ सौभाग्यसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथान्यां संप्रवक्ष्यामि सौभाग्यसंक्रान्ति-मुत्तमाम् ।। शृणु नारद यत्नेन धनैश्वर्यप्रदायिनीम् ।। संक्रान्तिवासरे प्राप्ते स्नात्वा चैव शुचिव्रतः ।। पूर्ववद्भानुमभ्यर्च्य तथैव च सुवासिनीम् ।। सौभाग्याष्टकसंयुक्तं वस्त्रयुग्मं सयोषिते ।। विप्राय वेदविदुषे भक्त्या तत्प्रतिपादयेत् ।।एवं संवत्सरे पूर्णे कुर्याद्ब्राह्मणपूजनम् ।। पर्वतं लावणं कृत्वा यथाविभवसारतः ।।काञ्चनं कमलं कृत्वा भास्करं चैव कारयेत् ।। गन्धपुष्पादिना पूज्य विप्राय प्रतिपादयेत् ।। ऐक्षवं

–चौथे हिस्सेकी होनी चाहियें।। जलधेनु-पानीका सुन्दर घडा भरकर रखे, सारे ग्राम्य धान्य रखे, दो सफेद वस्त्रोंके ढक दे, दूर्वाके पल्लवसे शोभित करे, कुष्ठ, मांसी, मुरा, शीर, बालक, आमलक, प्रियंगपत्र, सफेद जनेऊ, छत्र उपासनह तथा दर्भका विष्टर ये चीजें हों। चार तिलके पात्र चारों ओर रखे हुए हों, मुखके स्थानमें स्थानमें घृत और मधुके साथ दहीका पात्र रखा हो, इस जलधेनुकी तरह ही उसका बछड़ा बनावे। यहां कुम्भ सोने वां चांदीके खुर, सोनेके सींग तांबेके तिल पात्र और कांसेका दधिपात्र हो, धान्य दोनों पार्श्वोंमें, कुष्ठा-दिकोंको घ्राण देशमें, प्रियंगुके पत्ते श्रवणमें, यज्ञोपवीत शिरके स्थानमें स्थापित करे। वत्स भी इसकी चौथा-ईका बनाना चाहिये ।। गुडधुने-चार भारकी गुडधेनु तथा एक भारका बछड़ा हो, यह उत्तम है। दो भारकी धेनु तथा आधे भार गुड का बछड़ा यह मध्यमादि करे। सौ पलकी एक तुला तथा वीस तुलाक एक भार होता है। धेनुओंके दानकी विधि भी भिन्न है यह धर्मशाला के ग्रन्थोंमें विस्तारसे मिलेगी हम विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखते ।।

तृणराजं च निष्पावाश्च सुशोभनाः ।। धान्यकं जीरकं चैव कौसुम्भं कुङ्कुमं तथा ।। लवणं चाष्टमं तद्वत्सौभाग्याष्टकमुच्यते ।। पुष्करे च कुरुक्षेत्रे गोसहस्रफलं लभेत् ।। सा प्रिया मर्त्यलोकेषु या करोति व्रतं त्विदम् ।। शंकरस्य यथा गौरी विष्णोर्लक्ष्मीर्यथा दिवि ।। मर्त्यलोके तथा सापि प्रियेण सह मोदते ।। इति सौभाग्यसंक्रान्तिः ।।

सौभाग्यसंक्रांतिव्रत–भी वहीं कहा है । नंदिकेश्वर बोले कि अब हम उत्तम सौभाग्यसंक्रांतिको कहते हैं । हे नारद, सावधान हो सुन । यह धन ऐश्वर्य देनेवाली है । संक्रांतिके दिन स्नान करके पवित्र हो पहिलेकी तरह सूर्यकी पूजा करे, सुहागिनि स्त्रीको दो वस्त्रोंके साथ सौभाग्यष्टक देकर सब दान वेदवेत्ता ब्राह्मणको दे, ऐक्षव, तृणराज, निष्पाप, धान्यक, जीरक, कौसुंभ, कुंकुम और लवण ये सब सौभाग्याष्टक कहाते हैं । पुष्कर और कुरुक्षेत्रमें देनेसे एक हजार गोदानका पुण्य होता है । मनुष्यलोकमें वही प्यारी होती है । जो इस व्रतको करती है, जैसे अपने-अपने दिव्य लोकमें शंकरकी गौरी तथा विष्णुको लक्ष्मी अपने पति उन्हींके साथ आनन्द करती हैं, इसे तरह मृत्युलोकमें वह पतिके साथ आनन्द करती है । यह सौभाग्यसंक्रांतिका व्रत पुरा हुआ ।

अथ ताम्बूलसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथान्यां संप्रवक्ष्यामि ताम्बूलाख्यामनुत्तमाम् ।। विधानं पूर्ववत्कुर्याद्धान्यसंक्रान्तिवच्च तत् ।। ताम्बूलं चन्दनाद्यं च दद्याच्चैव द्विजन्मने ।। एवं संवत्सरं पूर्णं रात्रौ रात्रौ ततः परम् ।। ताम्बूलं भक्षयेद्विप्रैः कारयेच्चैव नान्तरम् ।। वत्सरान्ते तु कमलं कृत्वा चैव तु काञ्चनम् ।। पर्णकोशं प्रकुर्वीत तथा पूगफलालयम् ।। पूर्णभाण्डं प्रकुर्वीत पूगप्रस्फोटनं तथा ।। मुखवासादिचूर्णानां भाण्डानि विविधानि च ।। द्विजदाम्पत्यमावाह्य सर्वोपस्करसंयुतैः ।। द्रव्यैस्तु पूजयेद्भक्त्या षड्रसैर्भोजयेद्द्विजान् ।। उपकल्पितं तु यत्किंचिद्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। एवं करोति या नारी ताम्बूलाख्यं व्रतोत्तमम् ।। भर्त्रापुत्रैश्च पौत्रैश्च मोदते स्वगृहे सदा ।। इति ताम्बूलसंक्रान्तिः ।।

ताम्बूलसंक्रांतिव्रत–भी वहीं लिखा हुआ है । नन्दिकेश्वर बोले कि, अब मैं उत्तम ताम्बूल संक्रान्तिको कहता हूं इसका विधान सौभाग्यसंक्रान्ति और धान्यसंक्रान्तिकी ही तरह है, ताम्बूल और चंदनादिक ब्राह्मणको दे । इस तरह एक साल तक ब्राह्मणोको रातमें ताम्बूल दे अन्तर न करे; सालके बाद सोनेका कमल बनावे; पर्णकोश और पूगफलका आलय बनावे, चूर्णका भाण्ड तथा पूगका फोडनेका साधन एवं मुख वास आदिके चूर्णके भाण्ड बनवावे । द्विज दंपत्तियोंको बुलाकर सब उपस्करके साथ इन द्रव्योंसे उन्हें पूजे, षड्रसोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे, जो कुछ तयार किया हो उस सबको ब्राह्मणको लिये दे दे, जो स्त्री इस तरह इस ताम्बूलसंक्रान्तिका व्रत करती है, वह भर्त्ता पुत्र और पोतोंके साथ सदा अपने घरमें प्रसन्न रहती है । यह ताम्बूलसंक्रान्ति पूरी हुई ।

अथ मनोरथसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अतःपरं प्रवक्ष्यामि संक्रान्तिं च मनोरथाम् ।। गुडेन पूर्णं कुम्भं च सवस्त्रं च स्वशक्तितः ।।संक्रान्तिवासरे दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बने ।। शेषं धान्यसंक्रान्तिवत् ।। एवं संवत्सरे पूर्णे कुर्यादुद्यापनं शुभम् ।। गुडस्य

पर्वतं कृत्वा वस्त्रै रत्नैश्च भूषितम् ।। अयने चोत्तरे दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।। इति मनोरथसंक्रान्तिव्रतम् ।।

मनोरथसंक्रान्तिव्रत–भी वहीं लिखा हुआ है । नन्दिकेश्वर बोले कि, अब मैं मनोरथसंक्रान्तिको कहता हूं । अपनी शक्तिके अनुसार गुड़का भरा घड़ा वस्त्रके साथ संक्रान्तिके दिन कुटुम्बी ब्राह्मणको दे, बाकी सब कृत्य धान्यसंक्रान्तिकी तरह होना चाहिये। सालके पीछेउद्यापन करे, कृपणता न करे, गुड़का पर्वत बना वस्त्र रत्नोंसे विभूषित करके उत्तरायणमें दान करे । वह जो -जो चाहता है उसे वह सब मिल जाता है ।। एवं सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है । यह श्रीमनोरथसंक्रान्तिका व्रत पूरा हुआ ।।

अथाशोकसंक्रान्तिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अतःपरं प्रवक्ष्याम्यशोकसंक्रान्तिमुत्तमाम् ।। अयने विषुवे चैव व्यतीपातो भवेद्यदि ।। एकभुक्तं नरः कुर्यात्तिलैः स्नानं तु कारयेत् ।। काञ्चनं भास्करं कृत्वा यथाविभवशक्तितः ।। स्नापयेत्पञ्चगव्येन गन्धपुष्पैस्तु पूजयेत् ।। सञ्छाद्य रक्तवस्त्राभ्यां ताम्रपात्रे विधाय च ।। 'भास्कराय नमः पादौ पूजयामि । रवये न० जंघे पू० । आदित्याय० जानुनी पू० । दिवाकराय० ऊरू पू० । अर्यम्णे० कटी पू० । भानवे० उदरं० पू० । पूष्णे० बाहू पू० । मित्राय० स्तनौ पू० । विवस्वते० कण्ठं पू० । सहस्रांशवे० मुखं पू० । तमोहन्त्रे० नेत्रे पू० तेजोराशये० शिरः पू० । अरुणसारथये० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। अर्घ्यं च पूर्ववत्कार्यं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। एवं संवत्सरे पूर्णे काञ्चनेन दिवाकरम् ।। संपूज्य पद्मकुसुमैर्यथाविभवसारतः ।। धूपदीपैश्च नैवेद्यै रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ।। ततो होमं प्रकुर्वीत रविमन्त्रेण नारद ।। द्वादश कपिला देया वस्त्रालंकारसंयुताः ।। अशक्तः कपिलामेकां वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। आयुरारोग्यमैश्वर्यं भार्यापुत्रसमन्वितः ।। इति अशोकसंक्रान्तिः ।।

अशोकसंक्रान्तिव्रत भी वहीं कहा है । नन्दिकेश्वर बोले कि, इसके आगे अब अशोकसंक्रान्तिके व्रतको कहता हूं, यदि विषुव अयनमें व्यतीपात हो तो मनुष्य एक भुक्तकरे तथा तिलोंसे स्नान करे अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका सूर्य बनावे, उसे पंचगव्यसे नहवाकर गन्ध पुष्पोंसे पूजे दो रक्त वस्त्र उढ़ाकर ताम्बेके पात्रमें रख दे, पीछे पूजन करे । अंगपूजा–भास्करके लिये नमस्कार चरणोंको पूजता हूं; रविके० जंघोंको०; आदित्यके० जानुओंको०; दिवाकरके० ऊरुओंको०; अर्यमाके० कटीको०; भानुके० उदरको०; पूषाके० बाहुओंको०; मित्रके स्तनोंको०; विवस्वान्के० कंठको०; सहस्रांशुके० मुखको० पू०; तमोहन्ताके० नेत्रोंको पू०; तेजोराशिके० शिरको पू०; अरुण सारथिवालेके लिये नमस्कार सर्वाङ्गको पूजता हूं ।। पहिलेकी तरह अर्घ्य देकर ब्राह्मणके लिये दे दे । इस तरह साल पूरा हो जानेपर सोनेसे सूर्यको पूजे यानी अपने वैभवके अनु-

१ इयम् पूजा श्लोकरूपेण कथिता सौकर्याय विभज्य दर्शिता । प्राप्नोतीति शेषः ।

सार बनाकर पद्म कुसुम, धूप, दीप और नैवेद्यसे पूजे । लालवस्त्र उढावे सूर्यके मंत्रसे होम करे, वस्त्र और अलंकारके साथ बारह कपिला गऊ दान करे ।यदि सामर्थ्य न हो तो एक कपिला दे धनका लोभ न करे, भार्या पुत्रके साथ आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य होता है । यह अशोकसंक्रान्तिव्रत पूरा हुआ ।।

अथ आयुः संक्रांतिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथान्यां च प्रवक्ष्यामि आयुःसंक्रान्तिमुत्तमाम् ।। संक्रान्तिदिवसे स्नात्वा पूजयेच्च दिवाकरम् ।। कांस्ये क्षीरं घृतं दद्यात्सहिरण्यं स्वशक्तितः ।।मन्त्रश्चैव पृथग्दाने पूजा सैव[1] प्रकीर्तिता ।। सुक्षीर सुरभीजात पीयूषसम सर्पियुक् ।। आयुरारोग्यमैश्वर्यमतो देहि द्विजार्पितम् ।। अनेन विधिना वर्षं सर्वं दद्यादतन्द्रितः।।उद्यापनादिकं सर्वं धान्यसंक्रान्तिवद्भवेत्।।एवं कृते तु यत्पुण्यं शक्यं नेदं मयोदितम् ।। निर्व्याधिश्चैव दीर्घायुस्तेजस्वी कीर्तिमांस्तथा ।। अपमृत्युभयं नास्ति जीवेच्च शरदां शतम् ।। इति आयुःसंक्रान्तिः ।।

आयुसंक्रान्तिव्रत—भी वहीं निरूपण किया है । नन्दिकेश्वर बोले कि, मैं आयुसंक्रान्तिके उत्तम व्रतको कहता हूं, संक्रान्तिके दिन स्नान करके सूर्यको पूजे, कांसेके पात्रमें क्षीर और घृत भरकर अपनी शक्तिके अनुसार सोना डालकर दे, दानका मंत्र अगिला है तथा पूजा पहिलेकी तरहही करे । दानमंत्र-अच्छी क्षीर सुरभिसे उत्पन्न, सुधासम, सर्पीसे मिलाहुआ है, तू ब्राह्मणको दिये पीछे आयु आरोग्य और ऐश्वर्य दे । इसी तरह निरालस होकर वर्षभर दे, इसके उद्यापन आदिक सब धान्यसंक्रान्तिकी तरह होता है, इस प्रकार करनेपर जो पुण्य होता है उसे मैं कहनेकी शक्ति नहीं रखता, वह व्याधिरहित बडी उम्रका तेजस्वी और कीर्तिवाला होता है, उसे अपमृत्युका डर नहीं रहता सौवर्ष जीता है । यह आयुसंक्रान्तिका व्रत पूरा हुआ ।।

धनसंक्रांतिव्रतम्

तत्रैव ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। धनसंक्रान्तिमाहात्म्यं शृणु स्कन्द विधानतः ।। यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। संक्रांतिदिवसं प्राप्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ।। कलशं निर्व्रणं गृह्य वारिपूर्णं निधापयेत् ।। सुवर्णयुक्तं तं कृत्वा प्रतिमासं तु दापयेत् ।। विधानानेन वर्षान्ते प्रीयतां मे दिवाकरः ।। पूजाविधानं सर्वत्र धान्यसंक्रान्तिवद्भवेत् ।। सौवर्णं कमलं कृत्वा सूर्यं चोपरि विन्यसेत् ।। हस्ते सुवर्णघटितं पंकजं विनिवेशयेत् ।। गोदानं तत्र दातव्यमेवं संपूर्णतां व्रजेत् ।। जन्मनां शतसाहस्रं धनयुक्तो भवेन्नरः ।। आयुरारोग्यसंपन्नः सूर्यलोके महीयते ।। इति धनसंक्रान्तिः

धन संक्रांतिका व्रत—भी वहीं कहा है । नन्दिकेश्वर बोले कि, हे स्कन्ध ! धनसंक्रांतिका माहात्म्य सुन, जिसे विधिको साथ करके सब पापोंसे छूट जाता है। इसमें सन्देह नहीं है । संक्रांतिके दिन स्नान ध्यान कर एकाग्रचित्त हो निर्व्रण कलश लेकर पानीसे भरे, उसमें सोना डालकर प्रतिमास देता रहे, कि मुझपर सूर्य भगवान् प्रसन्न होजायें इस तरह एक साल तक दे, इसका पूजाविधान सब जगह धान्य संक्रांतिकी ही तरह है, सोनेका कमल बनाकर उसपर सूर्य भगवान्को बिठावे, सोनेके पङ्कजको हाथमें दे, गौ दान दे, इस तरह व्रत पूरा होता है, वह मनुष्य सौ हजार जन्मतक धनवान् होता है; आयु और आरोग्यसे संपन्न होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।। यहाँ धनसंक्रांति पूरी हुई ।।

---

१ पूर्वोक्तैव

अथ सर्वसंक्रान्त्युद्यापनं लिख्यते

हेमाद्रौ मत्स्ये ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रात्युद्यापनं मुने ।। विषुवे चायने चैव संक्रान्तिव्रतमाचरेत्।। पूर्वेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् ।। संक्रान्तिवासरे प्राप्ते तिलैः स्नानं समाचरेत् ।। रविसंक्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् ।। पद्मं सकर्णिकं कुर्यात् तस्मिन्नावहायेद्रविम् ।। कर्णिकायां न्यसेद्देवमादित्यं पूर्वतस्ततः[1] ।। नमः सोमार्चिषे याम्ये नमो ऋङ्मण्डलाय च ।। नमः सवित्रे नैर्ऋत्ये वारुणे तपनं बुधः ।। वायव्ये मित्रनामानं विन्यसेत्तु यथाक्रमम् ।। मार्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशान्ये पुजयेत्क्रमात् ।। द्विजाय सोदकं कुम्भं तिलपात्रं हिरण्मयम् ।। कमलं तु यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत् ।। चन्दनोदकपुष्पैश्च देवायार्घ्यं निवेदयेत् ।। विश्वाय विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयम्भुवे ।। नमोऽनन्त नमो धात्रे ऋक्साम यजुषां पते ।। अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ।। वत्सरान्ते तथा कुर्यात् सूर्यं[2] द्वादशधा नरः ।। संवत्सरान्ते घृतपायसेन सन्तर्प्य वह्निं द्विजपुङ्गवान् वै ।। कुम्भान् पुनर्द्वादशधेनु युक्तान् सद्रत्नहैरण्मयपद्मगर्भान् ।। पयस्विनीः शीलवतीश्च दद्यात्ताम्राः स्वरूपेण सुवस्त्रयुक्ताः ।। गावोऽथ वा सप्त च कांस्यदोह माल्याम्बराढ्याश्चतुरोऽप्यशक्तः।। तत्राप्यशक्तः कपिलामथैकां निवेदयेद्ब्राह्मणपुङ्गवाय ।। हैमीं च दद्यात्पृथिवीमशेषां कृत्वाथ रौप्यामथवा सुताम्रीम् ।। पैष्टीमशक्तोऽथ तिलैर्विधाय सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यात् ।। न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात्कुर्वन्नधो याति न संशयोऽत्र ।। यावन्महेन्द्रप्रमुखा नगेन्द्राः पृथ्वी च सप्ताब्धियुतेह तिष्ठेत् ।। तावत्स गन्धर्वगणैरशेषैः सम्पूज्यते नारद नाकपृष्ठे ।। ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सोऽथ द्वीपाधिपः स्यात्कुलशीलयुक्तः ।। सृष्टेर्मुखे तुङ्गवपुः सभार्यः प्रभूतपुत्रो रिपुवन्दिताङ्घ्रिः ।। इति सर्वसंक्रान्त्युद्यापनम् ।।

सब संक्रांतियोंका उद्यापन–विषुव अयनमें संक्रांतिव्रत करे,पहिले दिन एक भक्त करे,संक्रांतिके दिन दांतुन करके तिलोंसे स्नान करे, रविके संक्रमणके समय भूमिमें कर्णिकासहित अष्टदल कमल लिखकर उसपर सूर्यका आवाहन करे, पहिलेकी तरह सूर्य देवको कर्णिकाओंमें स्थापित करे, आग्नेय कोणसे पूजा प्रारंभ करे, आग्नेयमें सोमार्चिके लिये नमस्कार, याम्यमें ऋग् मंगलके लिये नमस्कार, नैऋत्यमें सविताके लिये नमस्कार; वारुणमें तपनके लिये नमस्कार, वायव्यमें मित्रके लिये नमस्कार, उत्तरमें मार्तण्डके लिये नमस्कार, ईशानमें विष्णुके लिए नमस्कार । इसमें जिस दिशामें जिस नाममन्त्रसे जिसकी पूजा होती है वा एकसाथ दिखा दिया है जैसे आग्नेयकोणमें सोमार्चिका न्यासकरके सोमार्चिके लिए नमस्कार इसनाम मंत्रसे पूजना चाहिये, ब्राह्मणको शक्तिके अनुसार, पानीका भराघडा तिलपात्र और सोनेकाकमल बनवाकर, दे, चन्दन, उदक और पुष्पोंके साथ सूर्यको अर्घ्य दे,विश्व, विश्वरूप, विश्वधाम्न तथा स्वयंभूके लिए नमस्कार हे अनन्त ! तुझ धाताके लिए नमस्कार है, हे ऋक् साम और यजुर्वेदके स्वामिन् ! आपके लिए वारंवार

---

१ आग्नेये इतिशेषः । २ सर्वमिति क्वचित्पाठः ।

नमस्कार है । इसविधिसे प्रत्येक * महीनामें सब करे, वत्सरके अन्तमें मनुष्य सूर्वकी द्वादशमूर्ति बनावे संवत्सरके अन्तमें घी खीरसे अग्नि और ब्राह्मणोंको तृप्तकरे, रत्न और सोनेके पद्म पडे हुए बारह कुंभ तथा बारह गायें दे, वे दूध देनेवाली सुशील हो, उनके साथ सोनेके सींग चांदीके खुर तांबेकी पीठ और वस्त्र दे, यदि शक्ति न हो तो सात अथवा चार कांसेकी दोहनी और माल्यांबरके साथ दे । यदि यहभी न होसके तो एक कपिला गाय ही किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको दे । शेष सहित सोने चांदी मिट्टी या तांबेकी पृथ्वी बनाकर तिल और सोनेके सूर्यके साथ ब्राह्मणको दे दे । इसमें धनका लोभ न करे, क्योंकि किएसे निरय होता है इसमें सन्देह नहीं है । जबतक महेन्द्र आदि देव मेरु आदि पर्वत तथा सप्तद्वीपवती पृथिवी रहेगी उतने समयतक हे नारद ! वह सारे गन्धर्वगणोंसे, नाकलोकपर पूजा जाता है । वहांसे कर्मक्षय होनेपर द्वीपपति दानदानी सुयोग्य राजा होता है, सृष्टिके मुखमें ऊँचे शरीरका, सपत्नीक तथा बहुतसे पुत्रोंवाला होता है, वैरी उसके चरणोंको छूते रहते हैं । यह सब संक्रांतिके व्रतोंका उद्यापन पूरा हुआ ।।

(उद्यापन और धान्यसंक्रांतिको देखकर हम इस निश्चयपर पहुंचे हैं कि विषुवकी ही संक्रांतियोंमें संक्रांति व्रतका प्रारंभ करके, वर्षबाद इसीमें उद्यापन किया जाता है । इसी कारण इसमेंही किया जाता भी है क्योंकि वर्ष यहीं पूरा होता है, धान्य लवण आदि संक्रांतियोंका व्रत इन्हींसे प्रारंभ होता है । ये दानादि विशेषोंके कारण संज्ञाए करदी गयीं हैं ; वास्तविक विभाजक नहीं हैं । सम् उपसर्ग पूर्वक 'क्रमुपादविक्षेपे' धातुसे क्तिन् प्रत्यय और धातुको दीर्घ होकर संक्रांति पद बनता है यानी पहिली राशिको जिस पर कि, सूर्य्य हो उसे छोडकर जब वो दूसरी राशिपर पहुंच जाता है तब संक्रांति कहाती है । जब कि, वह राशी छोडकर चलता है तब अयन (गमन) कहाता है जिस राशिपर सूर्यकी संक्रांति होती है वह उसीके नाम से बोली जाती है बारह राशियां हैं । उनके नामको बारहही संक्रांति होती हैं । मेषकी संक्रांतिमें पहिले और पीछेकी १५ घडी; वृषकीमें पहिलीं १६; मिथुनकीमें पहली सोलह; कर्ककीमें पहिलीं ३०; सिंहकीमें पहिली १६; कन्याकीमें पहली १६; तुलाकीमें पीछेकी १६; वृश्चिकमें पहिली १६: धनकीमें पहली १६; मकरकीमें परली ४०; कुंभकीमें पहिली १६; मीनकी संक्रांतिमें परली सोलह घडी पुण्यकाल है । इसी तरह इनके अन्य, भी पुण्यकालोंके भेद नि० सि०; धर्म० सि०; हेमाद्रि; जयसिं० आदि धर्मशास्त्रके ग्रन्थोंमे लिखे हुए हैं । विस्तार भयसे उन्हें हम यहां नहीं रखते तथा इनके दान भी भिन्न भिन्न लिखे हैं । मेष और तुलाको विषुव, वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ इनको विष्णुपद तथा मिथुन, कन्या धन, मीन इनकी संक्रांतियोंको अशीति कहते हैं । मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधाराने संक्रांति प्रकरणमें इनपर अच्छा विचार किया है ।।)

अथ धनुःसंक्रमणे विशेषः

रवौ धनुषि सम्प्राप्ते स्नानं कृत्वारुणोदये ।। सर्वं नित्यं च सम्पाद्य 'मुहूर्तं न गतो रविः ।। कृसरान्नेन विप्रान्वै भोजयेद्घृतपायसैः ।। दक्षिणाभिश्च सन्तोष्य स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। एवं निरन्तरं² कुर्यादशक्तो भानुवासरे ।। इह भुक्त्वा तु भोगान्वै सूर्यलोकं स गच्छति ।। इति धनुर्मासे विशेषः ।।

धनुसंक्रमणमें विशेष—धनुपर रविके आजानेपर अरुणोदयमें स्नान करे । जबतक कि, दो महूर्त न पूरे हो उतनेही समयमें सब नित्यकृत्य पूरा करले, घी पायस औरकृसरान्नसे ब्राह्मणभोजन करावे, दक्षिणाओंसे सबको सन्तुष्टकरके मौन हो भोजन करे । यदि अशक्त होतो एक मासतक प्रति रविवारको यही विधि करे, वह यहां दिव्य भोगोंको भोगकर सूर्य्य लोकमें चला जाता है । यह धनुर्मासका विशेष पूरा हुआ।।

---

*इसपर तीन पक्ष हैं, कोई महीना-महीना तथा किसीके संवत्सरके बीचमें एकदिन तथा कोई संवत्सरके अन्तमें एकदिन कहनेको कहते हैं ।

१ यावन्मुहूर्तं रविर्न गतस्तावदित्यर्थः २ मासपर्यन्तमित्यर्थः ।

अथ रवेर्घृतस्नापनम्

हेमाद्रौ भविष्ये–उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतप्रस्थेन यो रविम् ।। स्नापयित्वा ब्राह्मणेभ्यो यः प्रयच्छति मानवः ।। घृतधेनुं तथा दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके चिरं वसेत् ।। ततो भवति भूपालः प्रजानन्दविवर्धनः ।। इति उदगयने घृतस्नापनम् ।।

रविका घृतस्नान–हेमाद्रिमें भविष्यपुराणसे लेकर कहा है कि, उत्तरायणके आजानेपर यानीमकर संक्रांतिमें एकप्रस्थ घीसे सूर्य्यको स्नान करावे । पीछे उसे ब्राह्मणोंको दे दे, कुटुम्बी ब्राह्मणके लिए घृतधेनुक, दान करे, वह सब पापोंसे छूटकर सूर्य्यलोकको जाकर बहुत समयतक रहता है । वहांसे आकर प्रजाको आनन्द देनेवाला राजा होता है । वह उत्तरायणमें सूर्य्यका घृतस्नान पूरा हुआ ।।

अथ मकरसंक्रान्तौ घृतकम्बलदानमहिमा

शिवरहस्ये–माघे मासि महादेवे यः कुर्याद्घृतकम्बलम् ।। स भुक्त्वा सकलान्भोगानन्ते मोक्षं च विन्दति ।। नरा भूपतयो जाता घृतकम्बलदानतः।। जातिस्मराश्च ते जाता मुक्ताश्चान्ते शिवार्चकाः ।। पुरा सुनागसं विप्रं जाबालिं श्रुतिपारगम् ।। पप्रच्छ शूलकर्णाङ्गो धर्मं दारिद्रनाशकम् ।। सुनागा उवाच ।। असितायाः सिताया वा धेनोर्घृतमनुत्तमम् ।। सम्पादनीयं यत्नेन घनीभूतं च शोभनम् ।। तद्घृतं तुलयोत्तीर्णं प्रस्थसार्धशतत्रयम् ।। महाकम्बलमेतद्धि घृतस्य परिकीर्तितम् ।। तदर्धं वा तदर्धं वा सायं नेयं शिवालये ।। घृतनान्येन देवेशमभिषिच्य महेश्वरम् ।। ततो घृतं घनीभूतमर्पयेच्छिवमस्तके ।। ततस्तिलैः सर्षपैश्च बिल्वपत्रैश्च कोमलैः ।। हेमपद्मैश्च देवेशः पूजनीयो महेश्वरः ।। धूपदीपादिकं देयं महानैवेद्यमादरात् ।। ततो नीरांजनं दत्त्वा देयः पुष्पाञ्जलिस्ततः ।। प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा च तदनन्तरम् ।। शैवं पञ्चाक्षरं जप्त्वा शिवायै तन्निवेदयेत् ।। ततो जागरणं कुर्याच्छिवस्मरणपूर्वकम् ।। ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा स्नानादिकं पुनः ।। पूजनीयो महादेवो घृतसेचनपूर्वकम् ।। भोजनीयास्तथा शैवा भक्ष्यैर्भोज्यैश्च यत्नतः ।। ततः स्वयं च भोक्तव्यं बन्धुभिः सह सादरम् ।। अनेन तव दारिद्रं नाशमेष्यति सर्वथा ।। भोगांश्च विपुलान्भुक्त्वा शिवलोकं गमिष्यसि ।। इति मकरसंक्रान्तौ घृतकम्बलदानं सम्पूर्णम् ।।

मकरसंक्रांतिमें घृतकंबल दानकी महिमा—शिवरहस्यमें कही है कि, माघमासमें जो घृतकंबल करता है, वह अनेकों भोगोकों भोगकर अन्तमें मोक्ष पाजाता है, घृतकंबल देनेसे मनुष्य राजा होगये, वे शिव पूज जातिस्मर और मुक्त होगये, पहिले शूलकर्णाङ्गने वेदवेत्ता जाबालि सुनाग विप्रको दारिद्रचके नष्ट करनेवाला धर्म पूछा । सुनाग बोला कि, असिता (कृष्णा) वा सिता (शुक्ला) गायके उत्तम घीको लाकर उसे ढिप्पा बँधजाने दे । वह घृत तोलमें साढे तीन सेर होना चाहिये । वही घृतका महाकंबल कहा जाता है । इसका आधा, आधेकाआधा, सामको शिवमंदिरमें लेजाय, पहिले किसी दूसरे घीसे स्नान करावे । पीछे इस ढिप्पा बँधे घीको शिवजीके माथेपर रख दे । पीछे तिल सरसों, कोमल बिल्वपत्र और हेमपद्मोंसे शिवजीका

पूजन करे, आदरके साथ धूप, दीप, और नैवेद्य दे, पीछे आरती करके पुष्पांजलि समर्पण करे, प्रदक्षिणा नमस्कार करके शिवके पञ्चाक्षरमंत्रका जप करके शिवके निवेदन करदे, शिवका स्मरकेण करते हुए रातको जागरण करे, प्रातःकाल उठे, स्नान आदि करे, घृतसे सींचकर शिवजीका पूजन करे, भक्ष्य भोज्योंके साथ शैवोंको भोजन करावे पीछे अपने बन्धुओंके साथ आदरसे भोजन करे, इससे तेरा दारिद्रय नष्ट होजायगा अनेकों भोगोंको भोगकर शिवलोकमें चला जायगा । यह मगर संक्रांतिके दिन घृतकंबलदानकी विधि पूरी हुई ।।

अथ मकरसंक्रमणे: दधिमन्थमदानम्

तद्विधिः ।। मासपक्षाद्युल्लिख्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे च अखण्डित सौभाग्यपुत्रपौत्रधनधान्याभिवृद्धचर्थं श्रीसवितृसूर्यनारायणस्वरूपिणे ब्राह्मणाय दधिमन्थनदानं करिष्ये इति संकल्प्य तिलोद्वर्तनपूर्वकं स्नात्वा शुचिवस्त्रं परिधाय भाण्डे यशोदाकृष्णयोः सुवर्णप्रतिमां संपूज्य प्रार्थयेत्—यशोदे त्वं महाभागे सुतं देहि मनोरमम् ।। पूजतासि मया देवि दधिमन्थनभाजने ।। श्रीकृष्ण परमानन्द संसारार्णवतारक ।। पुत्रं देहि मनोज्ञं च ऋणत्रयविमोक्षणम् ।। दानमन्त्रः—गृहाण त्वं द्विजश्रेष्ठ दधिमन्थनभाजनम् ।। नवनीतेन सहितं यशोदा सहितं हरिम् ।। प्रसादः क्रियतां मह्यं सूर्यरूप नमोस्तु ते ।। इदं च ब्रह्माण्डपुराणेरङ्गदानमाहात्म्ये कृपीं प्रतीतिहासपूर्वकं दुर्वाससोपदिष्टम् ।। तथाहि—कृप्युवाच ।। पीडिताहं दरिद्रेण अपुत्रा च तपोधन ।। तपसो भङ्गभीत्या च यत्नं नाचरते पतिः ।। मम सर्वस्वमेका गौः स्वल्पदोहा वयो महत् ।। जीवनं मम तक्रेण धर्मवार्ता गरीयसी ।। केनोपायेन भो ब्रह्मंस्तन्मे ब्रूहि सुखं मम ।। दुर्वासा उवाच ।। देहि दानं च सुभगे येन पूर्णमनोरथा ।। नन्दजाया सुतं लेभे ब्रह्माद्यैः पूजितं महत् ।। श्रीकृष्णाख्यं परं तत्त्वं योगिभिश्च दुरासदम् ।। दधिमन्थनदानं च पुत्रप्राप्तिकरं परम् ।। नान्यदस्ति दरिद्राणां दानादस्मात् कथञ्चन ।। तस्मात्त्वयापि देयं मे क्षुधिताय तपस्विने ।। भविष्यति तव सुतश्चिरञ्जीवी शुचिव्रतः ।। विरच्य स्वस्तिकं पूर्वमनुलिप्य महीतलम् ।। द्रोणमानं धान्यपुञ्जं गोधूमानां विशेषतः ।। विधाय पूरितं तत्र दध्ना शुभ्रेण भक्तितः ।। दध्यमत्रकमासाद्य कृष्णलीलां मुहुर्मुहुः ।। स्मरन्ती मन्थयेत्तावद्यावत्सारोदयो भवेत् ।। संसिद्धमथने तस्मिन्सौवर्णौ प्रतिमां ततः ।। स्थापयित्वा यशोदायाः कृष्णस्य च सुशोभनाम् ।। संकल्पादि विधायाशु संपूज्य च यथाविधि ।। हरिद्राकुङकुमाद्यैश्च दधिभाण्डं विलेपयेत् ।। रक्तसूत्रेण संवीतं रक्तवस्त्रेण वेष्टयेत् ।। माल्यैरन्यैश्च संयोज्य देवीमावाहयेत्तथा ।। सूर्यं चावाहयेद्दण्डे दीपानष्टौ प्रदीपयेत् ।। लड्डुकान् पृथुकान् लाजानिक्षुखण्डानि वै तथा।।नानाविधानि खाद्यानि समन्तात् स्थापयेत्ततः ।। क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पञ्च सुभ्रूः ।। रज्ज्वाकर्षश्रम भुजचलत्कंकणौ कुण्डले च स्विन्नं

वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ।। परिधीवस्त्रमासाद्य ययाचे जननीं हरिः ।। गृहित्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ।। नानाखाद्यैर्वारितोऽपि न च मुञ्चति माधवः ।। अंकमारुह्य तत्स्तन्यं पिबन्मुखं व्यलोकयत् ।। एवं यशोदां कृष्णं च ध्यायन्ती भक्तितत्परा ।। विचित्रैः पट्टकूलैश्च गन्धमाल्यैर्विशेषतः ।। पूजयित्वा प्रार्थयीत यशोदां पुत्रसंयुताम् ।। यशोदे त्वं महाभागे सुतं देहि मनोरमम् ।। पूजितासि मया देवि दधिमन्थनभाजने ।। श्रीकृष्ण परमानन्द संसारार्णवतारक ।। पुत्रं देहि मनोज्ञं मे ऋणत्रयविमोक्षणम् ।। ब्राह्मणं वेदवेत्तारमुपवेश्य सुखावने ।। गन्धमाल्यैश्च संपूज्य दानं तस्मै निवेदयेत् ।। गृहाण त्वं द्विजश्रेष्ठ दधिमन्थनभाजनम् ।। नवनीतेन सहितं यशोदासहितं हरिम् ।। प्रसादः क्रियतां मह्यं सूर्यरूप नमोऽस्तु ते ।। कृष्णप्रीतिकरं ह्येतद्धनधान्यसमृद्धिदम् ।। दुर्वाससोपदिष्टा सा द्रोणभार्या सुलोचना ।। मकरस्थे यदा सूर्ये तिलोद्वर्तनपूर्वकम् ।। स्नात्वा च जाह्नवीतोये संप्रार्थ्य मुनिपुङ्गवम् ।। पूजयित्वा तु तस्मै वा अददद्दधिमन्थनम् ।। अश्वत्थामानं च सुतं दधिमन्थनदानतः ।। कृपी लेभे सुयशसमृणत्रयविमोक्षणम् ।। मुक्ता दारिद्रत्सा बुभुजे भोगमुत्तमम् ।। एवं पूर्वं कृपी कृत्वा आनन्दं समपद्यत ।। एवं या कुरुते नारी वित्तशाठ्यविवर्जिता ।। सर्वान्कामनवाप्नोति सूर्यलोके महीयते ।। इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे मकरसंक्रान्तौ दधिमन्थनदानं संपूर्णम् ।।

मकर संक्रांतिके दिन दधि मन्थनका दान--मास पक्ष आदिका उल्लेख करके कहे कि, मेरे इस जन्म और जन्मान्तरके दारिद्रयके नष्ट होजानेके लिये तथा अखण्डित सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, धन और धान्यकी वृद्धिके लिये श्रीसूर्य्यनारायणके स्वरूपवाले ब्राह्मणको दधिमन्थन दान करता हूं, इस संकल्पको करके तिलके उद्वर्तनके साथ स्नान करके, पवित्र वस्त्र पहिनकर भाण्डपर यशोदाकृष्णकी सोनेकी मूर्तिको पूजकर उसकी प्रार्थना करे ।। हे महाभागे यशोदे ! तू मुझे अच्छा पुत्र दे, हे देवि ! मैंने तेरा दधीके मथनेके वर्तनपर पूजन किया है, हे श्रीकृष्ण ! हे परमानन्द स्वरूप ! हे संसाररूपी समुद्रके पार करनेवाले ! मुझे सुन्दर पुत्र दे तथा तीनों ऋणोंको दूर कर ।। दानमंत्र--हे श्रेष्ठ द्विज ! आप दहीके मथनेका पात्र ग्रहण करें, यह नवनीत तथा यशोदा कृष्णसहित है, हे सूर्य्य ! मुझपर कृपाकर तेरे लिये नमस्कार है ।। यह ब्रह्माण्डपुराणमें रंग दानके माहात्म्यमें कृपीके लिये इतिहासके साथ दुर्वासाका उपदेश है ।। कृपी बोली कि, हे तपोधन ! मैं निपुत्री दारिद्रयसे पीडित हूं मेरा पति तप भंगके डरसे प्रयत्नभी नहीं करता, मेरी एक बूढी थोडा दूध देनेवाली गऊही सर्वस्व है मैं उसके मठासे जिन्दी रहती हूं धर्मकर्मकी बात तो बहुत दूर है ।। दुर्वासा बोले कि, हे सुभगे ! दान दे, जिससे तेरा मनोरथ पूरा हो, दधिमन्थनदान अत्यन्तही पुत्र प्राप्ति करनेवाला है । इस दानके प्रभावसे यशोदाने, ब्रह्मादिकोंसे पूजित योगियोंको कठितनासे मिलनेवाला श्रीकृष्ण नामका परतत्व पुत्रके रूपमें प्राप्त किया था । दरिद्रोंके लिये इस दानसे कोई अच्छी चीज नहीं है । इस कारण तुमभी मुझ भूखे तपस्वी ब्राह्मणको यही दान दे । इससे शुचिव्रत चिरंजीवी पुत्र पैदा होगा । पृथ्वीको लीपकर स्वस्तिक बनावे । गोधूमोंका द्रोण भर धान्य पुंज वना शुभ्र दहीसे भरेहुए दधिमन्थनको वहां रखकर भगवान् कृष्णजी की लीलाओंका स्मरण करे । जबतक सार ऊपर न चमकने लगे, उतने ममयतक मथती हुई भगवान्का स्मरण करे । मथजानेपर कृष्ण यशोदाकी सोनेकी प्रतिमा उसपर स्थापित कर संकल्पादि करके पूजे, हरिद्रा और कुंकुमसे दधिके पात्रको लीपे । रक्त सूत्रसे बांधकर, रक्त वस्त्रसे वेष्टित करके माला आदिक दूसरी दूसरी पूजनकी

चीजें उसपर डालकर देवीका आवाहन करे। दण्डपर सूर्यका आवाहन करे आठ दीपक जलावे। लड्डू, पृथुक, लाज और ईखके टुकडे तथा अनेक तरहके खाद्य पदार्थ चारों ओर रख दे। अच्छी भ्रुकुटिवाली यशोदाजी सूत्रसे बंधे हुए क्षौमवस्त्रको मोटे कटितट पर धारण कर रही हैं पुत्र स्नेहसे जिनसे दूध चुचा रहा है ऐसे स्तन, मथनेके लिये हाथ चलानेसे हाल लहे हैं। रज्जूके सींचनेके श्रमसे भुजाओंके कंकण और कुंडल हिल रहे हैं मुखपर पसीना आगया है कवरीसे नीचे गिरती हुई मालतीकी मालाको बांध रहीं हैं, परिधीका वस्त्र पकडकर भगवान्ने मासे याचना की, प्रेम करती हुई माने दधिकी मथनी पकडकर उसे रोक दिया, अनेक तहरके खाद्य देकर बैलाने परभी नहीं मानता, गोदीमें बैठे स्तन पीते हुए मुख देखने और लगा, इसी तरह भक्तिमें तत्पर हो यशोदा कृष्णका ध्यान करती हुई ऐसी ही पुत्रसहिता यशोदाको विचित्र पट्टकूल और गन्ध माल्यसे पूजकर प्रार्थना करे कि, हे महाभाग यशोदे! मुझे सुन्दर पुत्र दे। हे देवि! मैं दहीके मथनेके बर्तनपर तेरा पूजन करूंगी; (श्रीकृष्ण यहांसे विमोक्षणतक इसका अर्थ करचुके) वेद-वेत्ता ब्राह्मणको आसनपर बिठाकर गन्ध माल्यसे पूज वह दान उसे दे दे। (हे गृहाणत्वं यह कहचुके) यह कृष्ण भागवान्को प्रसन्न करनेवाला तथा धनधान्य और समृद्धिका देनेवाला है। सुनयनी द्रोणपत्नी को दुर्वासा ऋषिने उपदेश देदिया। मकरके सूर्यमें तिलोंके उबटनके साथ गंगामें स्नान किया। मुनिराजकी प्रार्थना करके दधिमन्थन इन्हें देदिया इससे उसे यशस्वी तीनों ऋणांसे छूटनेवाला अश्वत्थामा पुत्र मिला वह दारिद्रयके दुखसे मुक्त होगई तथा उसने बडे बडे उत्तम भोगोंको भोगा, जैसे पहिले कृपी इस व्रतको आनन्द पागई, उसी तरह जो स्त्री निर्लोभ होकर इस व्रतको करेगी वह सब कामनाओंको पाकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होगी। यह श्रीब्रह्माण्ड पुराणका कहा हुआ मकर संक्रांतिमें दधि मंथनका दान पूराहुआ॥

अथ तांबूलदानव्रतम्, तदुद्यापनम् च

युधिष्ठिर उवाच॥ ताम्बूलदानमाहात्म्यं कथयस्व मम प्रभो॥ उद्यापन-विधिं तस्य सर्वकामार्थसिद्धये॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ सर्वेषामेव दानानां ताम्बूलं चोत्तमं स्मृतम्॥ आनन्दो दीर्घमायुष्यं सौमनस्यं च पुष्टितः॥ सौभाग्यं च धना-दिभ्यो विद्यालाभस्तथैव च॥ एतत्तु पञ्चकं राजन् ताम्बूलाल्लभ्यते नरैः॥ द्वात्रिंशत्पत्रकैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम्॥ एलालवङ्गकर्पूरैर्युक्तं ताम्बूलमुच्यते॥ यथालाभं भवेद्वापि देयं द्विजवराय च॥ द्विजाभावे सुवासिन्यै तदभावे 'कुमारिकाम्। उद्यापनं प्रकर्तव्यं यथाविभवसारतः॥ शुभेऽह्नि मासे कर्तव्यमृक्षे वैवाहिके ततः॥ पञ्च' सप्त च सद्विप्रान् सपत्नीकान्प्रपूजयेत्॥ पूर्वरात्रौ च संपूज्य लक्ष्मीनारा-यणावुभौ॥ उमामहेश्वरौ पूज्यौ सावित्रीं ब्रह्मणा सह॥ रतिं च पञ्चबाणं च पूजयेच्च यथाविधि॥ ऋद्धिं सिद्धिं विघ्नराजं लोकपालांश्च पूजयेत्॥ ताम्बूलो-पस्करांस्तत्र देवतोत्तरतो न्यसेत्॥ पुरुषोत्तमाय शार्ङ्गपाणये० गरुडध्वजाय० अनन्ताय० यज्ञपुरुषाय० पुण्डरीकाक्षाय० नित्याय० वेदगर्भाय० गोवर्धनाय० सुब्रह्मण्याय० शौरिणे न० ईश्वराय०॥ एतानि द्वादशनामानि पूजने हवने तथा॥ घृतं वा पायसं वापि पञ्चामृततिलौदनम्॥ तत्तन्मन्त्रैश्च होतव्यमष्टाविंशति-संख्यया। पर्णस्थापनपात्रं च चूर्णपात्रं तथैव च॥ स्वर्णं रौप्यमयं वापि पैत्तलं सीस-

---

१ कुमार्यै इत्यर्थः। २ द्वादशेत्यर्थः।

संभवम् ।। सर्वशोभासमायुक्ता लोहजा पूगभाजिका ।। तेषां पूजा प्रकर्तव्या गन्ध-पुष्पादिभिस्तथा ।। पूर्णाहुतिं ततः कुर्याद्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।। ताम्बूलं सुष्ठु यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्योऽतिभक्तितः ।। मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ।। फलेन तृप्यते ब्रह्मा पत्रेण भगवान् हरिः ।। चूर्णमीश्वरतृप्त्यर्थं खदिरः कामतृप्तये ।। कर्पूरैलालवङ्गादिजातीपत्रफलैस्तथा ।। इन्द्राद्या लोकपालाश्च सन्तुष्टाश्च भवन्ति हि ।। वारिदः सुखमाप्नोति राज्यं प्राप्नोति चान्नदः ।। दीपदश्चक्षुराप्नोति त्रयं ताम्बूलदानतः ।। एवं कृते विधानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।। इति वायुपुराणे ताम्बूलदानव्रतं तदुद्यापनं च ।।

ताम्बूलदान व्रत और उसका उद्यापन—युधिष्ठिरजी बोले कि, हे प्रभो ! मुझे ताम्बूलके दानका माहात्म्य कहिये तथा उसकी उद्यापन विधि भी कहिये, जिससे सब काम और अर्थकी सिद्धि हो। श्रीकृष्णजी बोले कि, सब दानोंमें ताम्बूलका दान सबसे उत्तम है । आनन्द, दीर्घ आयुष्य पुष्टिसे सौमनस्य, धनादिसे सौभाग्य और विद्यालाभ ये पांचों ताम्बूलसे प्राप्त होजाते हैं। सुपारी सहित बत्तीस पत्तोंके साथ एवं एला लवंग और कपूरसे युक्त ताम्बूल कहा है अथवा जैसा उपस्थित हो ब्राह्मणको देदे । ब्राह्मण न हो तो सुवासिनीको तथा इसके भी अभावमें कुमारीको दे । अपने विभवके अनुसार उद्यापन करे, विवाहके नक्षत्रमें अच्छे दिनमें करे, बारह सपत्नीक ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे, पूर्व रात्रिमें लक्ष्मीनारायण, उमा महेश्वर, सावित्री ब्रह्मा, रति काम, ऋद्धि सिद्धि सहित विघ्नराज और लोकपालोंको पूजे, ताम्बूल और उपस्कर देवताके उत्तर स्थापित करे । पुरुषोत्तम, शार्ङ्गपाणि, गरुडध्वज, अनन्त, यज्ञपुरुष, पुंडरीकाक्ष, नित्य, वेदगर्भ, गोवर्धन, सुब्रह्मण्य, शौरि और ईश्वर ये बारह नाम हैं । इन कहे नाममन्त्रोंसे पूजा और हवन होना चाहिये । घृत पायस अमृत (बिना गरम किया दूध) तिलोदन इन चीजोंको प्रत्येकके मंत्रसे लिए प्रत्येकके अट्ठाईस अट्ठाईस आहुति दे । पर्ण स्थापनपात्र और चूर्णपात्र सोने चांदी पित्तल अथवा सीसेका होना चाहिये। सभी शोभाओंसे युक्त लोहेकी सरोती बनावे । गन्ध पुष्प आदिकसे उनकी पूजा करे । पूर्णाहुति करके ब्राह्मण भोजन करावे। जो भक्तिके साथ अच्छा ताम्बूल ब्राह्मणोंको देता है वह बुद्धि मान् सुभग प्राज्ञ और देखने योग्य हो जाता है। फलसे ब्रह्मा, पत्रसे भगवान् हरि, चूर्णसे ईश्वर तथा खैरसे कामदेव तृप्त होजाता है । कपूर, एला, लवंग जातीपत्र और फल इनसे इन्द्रादिक लोकपाल प्रसन्न होजाते हैं। पानीका देनेवाला सुख, अन्नका दाता राज्य, दीपका दाता चक्षु तथा ताम्बूलका दाता तीनोंको पाता है। इस प्रकार विधिके साथकर-नेसे सब कामोंको पाजाता है । यह श्रीवायुपुराणका कहा हुआ ताम्बूल दानव्रत और उसका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ मौनव्रतम्, तदुद्यापनंच

नारद उवाच ।। ब्रह्मन् ब्रूहि मम त्वं वै मौनव्रतमनुत्तमम् ।। फलं किमस्य दानं वा कथमुद्यापनं भवेत् ।। ब्रह्मोवाच ।। शृणु नारद यत्नेन सावधानेन चेतसा ।। चातुर्मास्ये व्रतं कुर्यान्मौनाख्यं मुनिसत्तम ।। यस्याचरणमात्रेण गम्यते विष्णु-मन्दिरम् ।। विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि शृणु नारद मन्मुखात् ।। व्रतमध्ये व्रतस्यान्ते व्रतादौ वा यथाविधि ।। उद्यापनं प्रकुर्वीत व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा कुर्यात्संकल्पमादृतः ।। सर्वतोभद्रमालिख्य तत्र विष्णुं प्रपूजयेत् ।। लक्ष्म्या युतं तु देवेशं ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।। द्वारदेशे तु संपूज्यौ पुण्यशीलसुशीलकौ ।।

जयं च विजयं चैव गदादीन्यायुधानि च ।। मण्डपं तोरणैर्युक्तं पट्टवस्त्रेण भूषितम् ।। सुवर्णप्रतिमां कृत्वा घण्टां गरुडलाञ्छिताम् ।। उपचारैः षोडशभिरर्चयित्वा रमापतिम् ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।। घृतेनाष्टोत्तरशतं पावके हवनं चरेत् ।। अतोदेवेति मन्त्रेण ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।। पीठदानं ततः कुर्याद्घण्टादानं तथैव च ।। घण्टादानस्य माहात्म्यं वक्तुं केन हि शक्यते ।। दीपदानं ततः कुर्याद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे।।इदं व्रतं मया पूर्वं कृतमुत्पत्तिहेतवे।।तेन व्रतप्रभावेण सृष्टयुत्पत्तिर्मया कृता ।। कर्तव्यं तु प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।। य इदं कुरुते वत्स स साक्षान्मामकी तनुः ।। इति श्रीब्र० पुराणे ब्रह्मनारदसंवादे मौनव्रतं तदुद्यापनंच्च ।।

अथ मौनव्रत तथा उसका उद्यापन--नारद बोले कि, हे ब्रह्मन ! मुझे उत्तम मौनव्रत कहिये एवं फलदान और उसका उद्यापनभी बता दीजिए । ब्रह्मा बोले कि, हे नारद् ! सावधान होकर सुन, हे मुनिरासत्तम ! इस मौनव्रतको चातुर्मास्यमें करे, जिसके करनेसे विष्णु मंदिर मिलजाता है उसकी विधि कहता हूं मेरे मुखसे सुन, व्रतके मध्य आदि और अन्तमें उद्यापन---करे, इससे व्रतकी पूर्ति होती है । स्नान और नित्य नियम करके आदरके साथ संकल्प करे, सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसपर विष्णुकी पूजा करे । उस पर लक्ष्मीसहित नारायण तथा ब्रह्मा आदिक देवताओंका पूजन करे । द्वारपर पुण्यशील, सुशील जय और विजयको पूजे गदादिक आयुधोंकी पूजा करे । तोरण सहित मण्डप बनावे, उसे पट्ट वस्त्रोंसे सुशोभित करदे, गरुडसे युक्त घंटा और सोनेकी प्रतिमा बनावे सोलहोंउपचारोंसे रमापतिकी पूजाकरे । गाने बजानेकेसाथ रातकोजागरण करे । घीसे एकसौ आठ आहुति "अतोदेवा" इसमन्त्रसे दे । पीछे ब्राह्मणभोजन करावे, पीठ और घंटाकादान करे, घंटादानके माहात्म्यको कौन कह सकता है ? व्रतकी पूर्तिके लिए दीपदानकरे, मैंने यह व्रत पहिले सृष्टिकी उत्पत्तिके लिए किया था । उसके प्रभावसे मैंने सृष्टिकी उत्पत्ति करडाली । इसे धर्म अर्थ और कामकी सिद्धिके लिए प्रयत्नके साथ करना चाहिये । जो इस व्रतको करता है, वह साक्षात् मेरा शरीर है । यह श्री ब्रह्मपुराणका कहाहुआ ब्रह्मा और नारदके संवादका मौनव्रत और उसका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ प्रपादानविधानम्

युधिष्ठिर उवाच ।। कथं कृष्ण तरन्त्यत्र संसारगह्वरान्नराः ।। स्वल्पेनैव तु कालेन तथा दानेन मे वद ।। कृष्ण उवाच ।। विधानमेकमतुलं सामान्यं नरसेविताम् ।। प्रपादानस्य राजेन्द्र कथ्यमानं शृणुष्व तत् ।। यस्मिन्पथि जलं नास्ति नास्ति ग्रामः समीपगः ।।प्रपा तत्र प्रकर्तव्या सर्वे कामेप्सुभिर्नरैः ।। माघमासेऽसिते पक्षे शिवरात्रौ विशेषतः ।। कृत्वा तु मण्डपं रम्यं चतुर्द्वारं सुशोभितम् ।। छायाशीतमयी कार्या दृढैः स्तम्भैर्विशेषतः ।। एकवक्त्रा द्विवक्त्रा वा पूर्वोत्तरमुखा शुभा ।। मार्गाणां यत्र बाहुल्यं तत्र कार्या विचक्षणैः ।। दृढांस्ताम्रमयान् रम्यान्मृन्मयान्वा समाहितः ।। प्रावृडायाति यावद्वै जलैः कुम्भान् प्रपूरयेत् ।। यवागूं तक्रसंयुक्तां व्यञ्जनैस्तु समन्विताम् ।। अन्यैश्च बहुभिर्द्रव्यैः शर्करापानकैर्युताम् ।। तक्रं लवणसंयुक्तं ताम्बूलं च यथाविधि ।। प्रपायां स्थापयेच्छक्त्या जलं वा केवलं शुभम् ।। ब्राह्मणार्थं पृथक पात्रं ब्रह्मचिह्नेन लक्षितम् ।। स्वस्तिवाचनपूर्वं तु सर्वमेतत्प्र-

कल्पयेत् ।। एवंविधा प्रपा प्रोक्ता विद्वद्भिर्धर्मकोविदैः ।। शिशूनां जननी यद्वत् क्षुत्तृडाहरणे क्षमा ।। सर्वेषामपि वर्णानां प्रपा वै पोषणे क्षमा ।। नन्दन्ति पितरस्तस्य तुष्यन्ति कुलदेवताः ।। स्तुवन्ति मनुजास्तं तु येनाध्वनि कृता प्रपा ।। क्रतुकोटिशतैर्यत्तु तत्पुण्यं लभते नरः ।। उद्यापनविधिं कुर्यात् प्रपादानमनुत्तमम् ।। तस्याः सर्वाणि पात्राणि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। भोजयेच्च यथाशक्त्या ब्राह्मणांस्तोषयेत्ततः ।। प्रपामन्दिरदानेन कृतकृत्यो भवेन्नरः ।। दुर्भिक्षे ग्रासमात्रान्नं ग्रीष्मे बिन्दुसमं जलम् ।। तत्तुल्यं क्रतुलक्षेण द्वयमेतत्ततोऽधिकम् ।। एवंविधा प्रपा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।। राजन् वरा लघुर्वापि सर्वकामविवर्धिनी ।। इति श्रीभविष्यपुराणे प्रपादानं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

प्रपादान--युधिष्ठिरजी बोले कि, इस संसाररूपी गुहासे थोडे समयमें दानसे मनुष्य कैसे पार होजाते हैं ? यह मुझे बताइये । कृष्ण बोले कि, एक सामान्यसा अपूर्व विधान है । मैं प्रपादानका फल कहता हूं, हे राजेन्द्र ! सुन, जिस मार्गमें जल न हो तथा ग्राम भी नजदीक न हो, वहां सब कामनाओंके चाहनेवाले मनुष्योंको प्याऊ लगानी चाहिये । माघमासके कृष्णपक्षमें विशेष करके शिवरात्रके दिन चार द्वारका एक सुन्दर मण्डप बनावे । दृढ स्तम्भोंसे शीतलमयी छाया करे । एक मुख या दो मुख हों, जहां मार्गोंका बाहुल्य यानी बहुतसे मार्ग मिलते या फूटते हो, वहां बनानी चाहिये । मजबूत मिट्टी वा तांबेके सुन्दर बडे बडे घट हों, जबतक वर्षात न आये तबतक उन घडोंको कभी खाली न होने दे, यवागूतक व्यंजन शर्करापानक तथा दूसरे भी बहुत कुछ हों उनसे सजी रखे तथा लवणयुक्त तक्र और ताम्बूल ये वस्तु भी अपनी शक्तिके अनुसार रखे, नहीं तो केवल पानी ही रखे । ब्रह्म चिह्नसे लक्षित ब्राह्मणोंका पात्र अलग रखे । पहिले स्वस्तिवाचन कराकर पीछे सब तयार करे । धर्मके जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह प्रपा कही है जैसे मा बालककी भूखको हर लेती है, उसी तरह प्रपा भी सब वर्णोंके पोषणमें समर्थ रहती है । उसके पितर प्रसन्न तथा कुलदेवता तुष्ट होजाते हैं, उसकी मनुष्य प्रशंसा करते हैं । जिसने मार्गोंमें प्रपा बना दी, वह मनुष्य कोटि यज्ञका फल पाजाता है । यह अतिश्रेष्ठ प्रपादान है ।। उद्यापनकी विधि---करे प्रपा (प्याऊ) के सब बर्तनोंको ब्राह्मणोंके लिए दे दे तथा शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे । प्रपा मंदिरके दानसे मनुष्य कृतकृत्य होजाता है । दुर्भिक्षमें ग्रास मात्र अन्न, ग्रीष्ममें बिन्दुके बराबर पानीके देनेमें जो पुण्य होता है, वह दो लाख यज्ञोंसेभी अधिक है । तत्त्वदर्शी मुनियोंने ऐसी प्रपा बताई है । हे राजन् ! छोटी हो वा बडी सब कामोंके बढानेवाली है । यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ प्रपादान उद्यापन समेत पूरा हुआ ।।

अथ लक्षपद्मविधिः

ब्रूहि कृष्ण व्रतं श्रेष्ठं मुक्तिदं दुःखनाशनम् ।। पुत्रपौत्रप्रदं चैव कृपया मधुसूदन ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामधिकं व्रतम् ।। सर्वदुःखहरं स्त्रीणां सर्वकामफलप्रदम् ।। लक्षपद्म रङ्गवल्ल्या शुभे मासि समारभेत् ।। गुरुशुक्रास्तरहिते शुक्लपक्षे तु यत्नतः ।। तण्डुलैः पूजयेच्छ्वेतैः सूर्यस्थं जगदीश्वरम् ।। उद्यापनं समाप्तौ च कुर्याद्यत्नेन सिद्धये ।। सम्पूर्णं जायते येन तच्छृणुष्व प्रयत्नतः ।। सूर्यस्य प्रतिमां कुर्यात्सुवर्णेन स्वशक्तितः ।। वेदिकायां प्रकर्तव्यं स्वस्तिकं पद्मसंयुतम् ।। तन्मध्ये कलशं स्थाप्य रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ।। पञ्चामृतेन संस्नाप्य देवं तत्र प्रपूजयेत् ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्दिव्यैर्धूपदीपादिभिः शुभैः ।। सुवर्ण-

निर्मितं पद्मं देवाय विनिवेदयेत् ।। आचार्यं वरयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगम् ।। ततो होमः प्रकर्तव्यस्तिलाज्यैः पायसैस्तथा ।। अष्टोत्तरसहस्त्रं वा शतत्रयमथापि वा ।। गायत्रीमन्त्रतो राजन्मूलमन्त्रेण वा ततः ।। गोदानं च प्रकर्तव्यं सूर्यस्थहरितुष्टये ।। ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या शर्कराकृतपायसैः ।। तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। प्रतिमां कलशं चैव पद्मं पूजादिकं तथा ।। अतोदेवेतिमन्त्रेण आचार्याय निवेदयेत् ।। प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्यान्मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।। श्रीकृष्ण उवाच एतत्ते व्रतमाख्यातं स्त्रीणां कामफलाप्तये ।। पुत्रपौत्रादिसन्तानवृद्ध्यर्थं कुरुनन्दन ।। या नारी कुरुते भक्त्या हरिस्तस्याः प्रसीदति ।। इति श्रीसौरपुराणे लक्षपद्मव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

लक्षपद्मविधि—हे कृष्ण ! कृपा करके मुक्तिदायक तथा दुःखनाशक पुत्र पौत्रोंका देनेवाला कोई श्रेष्ठ व्रत कहिये । श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! सबव्रतोंसे बडे व्रतको कहताहूं । वह स्त्रियोंके सबदुःखोंके हरनेवाला तथा सब कामोंको देनेवाला है । गुरु और शुक्रके अस्तसेरहित अच्छे महीनेके शुक्लपक्षसे प्रयत्नकेसाथ रङ्गवल्लीसे लक्षपद्म लिखना आरंभ कर दे, श्वेत तण्डुलोंसे सूर्यमें रहनेवाले जगदीश्वरका पूजन करे । व्रतकी पूर्तिके फलके लिए समाप्तिमें उद्यापन—करे । जिससे कि, व्रत पूरा होजाता है, इसे सावधानीके साथ सुन । सोनेकी सूर्यकी प्रतिमा बनावे, वेदीमें पद्मसहित स्वस्तिक बनावे । उसपर कलशस्थापित करके रक्तवस्त्रसे वेष्टित कर दे । पञ्चामृतसे स्नान कराके देवकी दिव्य गन्ध, पुष्प, अक्षत और धूप दीपोंसे पूजा करे, सोनेका बनाया हुआ पद्म देवको भेंट करे । वेदवेदाङ्गोंके जाननेवाले आचार्यका वरण करे । तिल आज्य और पायससे होम करे । गायत्रीमन्त्र या मूलमन्त्रसे एक हजार आठ वा तीनसौ आहुति दे । सूर्यमें हिरण्मय पुरुष होकर रहनेवाले भगवानकी प्रसन्नताके लिए गोदान करे । ब्राह्मणोंको शर्करा घी और पायससे जिमावे, धनके लोभको छोडकर उन्हें दक्षिण दे । प्रतिमा कलश, पद्म और दूसरा सबपूजाका सामान "अतो देवाः" इस मन्त्रसे आचार्य्यको देदे, शिरपर अंजलि करके प्रदक्षिणा और नमस्कार करे । श्रीकृष्ण बोले कि, यह मैंने स्त्रियोंको उत्तम फल पानेके लिए व्रत कहदिया है, हे कुरुनन्दन ! इससे पुत्र पौत्रादि सन्तानकी वृद्धि होती है । जो स्त्री इसे भक्तिके साथ करती है, भगवान् उसपर प्रसन्न होते हैं । यह श्रीसौरपुराणका कहा हुआ लक्षपद्मव्रत उद्यापनके साथ पूरा हुआ ।

अथ लक्षादिदीपदानविधिः

स्कन्द उवाच ।। रुद्रसंख्यान् शिवस्याग्रे दीपान्प्रत्यहमर्पयेत् ।। वर्षमेकं तदर्धं वा वर्षद्वयमथापि वा ।। लक्षसंख्यांस्तदर्धान् वा द्विलक्षान्वा स्वशक्तितः ।। दीपमालां यथाशक्त्या कार्तिके श्रद्धयान्वितः ।। घृतेन ये प्रकुर्वन्ति तेषां पुण्यं वदामि ते ।। यावत्कालं प्रज्वलन्ति दीपास्तस्य शिवाग्रतः ।। तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।। कौसुम्भेन च तैलेन दीपान् दद्याच्छिवालये ।। तेन पुण्येन कैलासे वसते शिवसन्निधौ ।। अतसीतैलसंयुक्तान्दीपान् दद्याच्छिवालये ।। दशपूर्वैर्दशपरैर्युक्तो गच्छेच्छिवालये ।। ज्ञानिनो हि भविष्यन्ति दीपदानप्रभावतः ।। आर्तिक्यं च सकर्पूरं ये कुर्वन्ति दिनेदिने ।। तिलतैलेन ये दीपान्ददते च शिवालये ।। तेजस्विनो महाभागाः कुलेन च शतेन वै ।। ते प्राप्नुवन्ति सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा । लक्षादिदीपदानस्य कार्यमुद्यापनं बुधैः ।। उपवासं प्रकुर्वीत पूर्वस्मिन्दिवसे मुदा ।।

कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। प्रतिमां शंकरस्याथ उमया सहितस्य च ।। आचार्यं वरयेत्तत्र अभिज्ञं वेदपारगम् ।। कलशं स्थापयेद्रात्रौ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।। उमामहेश्वरं हैमं स्थापयेत् कलशोपरि ।। उपचारैः षोडशभिः पूजयेच्च पृथक् पृथक् ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ।। प्रातःस्नानं विधायाथ होमकर्म समारभेत् ।। तिलसर्षपयवैश्चापि चरुणा बिल्वपत्रकैः ।। आज्यप्लुतैश्च प्रत्येकं सद्योजातादिमन्त्रतः ।। शतमष्टोत्तरं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।। उमामहेश्वरं देवं पूजयेत्तु पुनर्व्रती ।। प्रतिमां वस्त्रसहितातााचार्याय निवेदयेत् ।। सहिरण्यां सवत्सां चा धेनुं दद्यात्प्रयत्नतः ।। अनेन विधिना यस्तु व्रतमेतत्समाचरेत् ।। स भुक्त्वा विपुलान्भोगान् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्वस्त्रालंकारभूषणैः ।। गुरोराज्ञां गृहीत्वा तु भुञ्जीयाद्बन्धुभिः सह ।। एवं यः कुरुते मर्त्यो लक्षदीपादिदीपनम् ।। नरो वाप्यथवा नारी सोऽश्नुते पदमव्यम् ।। ज्ञानमुत्पद्यते तस्य संसारभयनाशनम् ।। सर्वपापक्षयं याति जन्मजन्मार्जितं च यत् ।। बाल्ये वयसि यत्पापं यौवने वापि यत्कृतम् ।। वार्धकेऽपि कृतं पापं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो भुक्त्वा भोगान्महीतले ।। सर्वान्कामानवाप्यार्थ सोऽश्नुते पदमव्ययम् ।। इति श्रीस्करदपुराणे लक्षादिदीपदानोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

लक्षादिदीपदानविधि—स्कंद बोले कि, शिवके सामने इक्कोस दीपक रोज दो एक या आधे वर्षतक जलावे । कार्तिकमें शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक दो एक या आधीलाख दीपकोंकी माला बनावे । जो घृतके दीपक करते हैं उनके पुण्य सुनो । जितने समयतक उनके दीपक महादेवजीके सामने जलते हैं उतने हजारयुग वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है, कुसुंभाके तेलके शिवालयमें दीपक दे तो वह उस पुण्यसे कैलासमें शिवके समीप रहता है । जो अलसीके तेलके दीपक शिवमंदिरमें देता है वह दशपूर्व तथादशपरोंके साथ शिवमंदिरमें पहुंचता है । दीपदानके प्रभावसे यहां ज्ञानी होते हैं । जो रोज कपूरकी आरती करते हैं तथा तिलके तेलके शिवालयमें दीपक देते हैं वे तेजस्वी महाभागहो सौकुलोंके साथ शिवकासायुज्य पाते हैं । इसमें विचार न करना चाहिये । लक्षादि दीपदानका उद्यापन—करना चाहिये । पहिले दिन प्रसन्नताके साथ उपवास करे, एक वा आधे कर्ष सोनेकी गौरी शंकरकी प्रतिमा बनाये सुयोग्य वेदवेत्ता आचार्य्यका वरण करे, स्वस्तिवाचन के साथ रातमें कलश स्थापन करे,उमा महेश्वरको कलश पर स्थापित करे, पृथक् पृथक् सोलहों उपचारोंसे पूजे, पुराणश्रवण आदिसे रातको जागरण करे। प्रातः स्नानकरके होम करे, "सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः" इस मंत्रसे घीसे भीगे हुए तिल सर्षप चरु और बिल्वपत्रोंकी एकसौ आठ आहुति देकर होमशेषको पूराकरे । उमा शिवका फिर पूजन करे, वस्त्रसहित प्रतिमा आचार्य्यके लिए दे दे, बछडा और सोनासमेत गौ दे । जो इस विधिसे इसव्रतको करता है वह विपुल भोगोंको भोगकर शिवसायुज्य पाजाता है । वस्त्र अलंकार और भूषणोंके साथ ब्राह्मण भोजन करावे । गुरुकी आज्ञा लेकर पीछे भाइयोंके साथ भोजन करे । जो कोई स्त्री वा पुरुष लक्षदीपक जलाता है वह अव्यय पदको पाता है । संसारके भयका नष्ट करनेवाला ज्ञान उसे होजाता है जोभीकुछ अनेक जन्मोंका पाप है वहभी सब नष्टहोजाता है । बाल्य यौवन और वृद्धावस्थामें भी जो कुछ पाप किए हों वे सब नष्टहो जाते हैं, वह निष्पाप हो महीतलके भोगोंका भाग सब कामोंका प्राप्त हो अव्ययपदको प्राप्त होता है ।। यह श्रीस्कंदपुराणका कहा हुआ लक्षादिदीपदानका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ [1]लक्षदूर्वापूजनविधिः

(शूरसेन उवाच ।। लक्ष पूजाविधिं सम्यक् कथयस्व ममाग्रतः ।। यं कृत्वा प्राणिनः सर्वे भवन्ति सुखभागिनः ।। इन्द्र उवाच ।। श्रावणे च चतुर्थ्यां तु भौमवारो यदा भवेत् ।। शुभेऽह्नि वासरे वापि पूजाकर्म समारभेत् ।।) अथ दूर्वामाहात्म्यं गणेशपुराणे उपासनाखण्डे-कौण्डिन्य उवाच ।। कस्मिंश्चित्समये देवि सुखासीनं गजाननम् ।। नारदो मुनिरभ्यागाद्द्रष्टुं तं बहुवासरैः ।। १ ।। साष्टाङ्गं प्रणिपत्यैनं प्राह नः सार्थकं जनुः ।। यत्पुण्यनिचयैर्जातं दर्शनं ते गजानन ।। २ ।। इत्युक्त्वा स्वाञ्जलिं बद्ध्वा तस्थौ तत्पुरतो मुनिः ।। धृत्वा करेण तत्पाणिमुपवेशयदासने ।। ३ ।। गजाननो महाभागो महाभागं महामुनिम् ।। नारदो भगवांस्तेन सन्तुष्टो मुनिपुङ्गवः ।। ४ ।। उवाच तं गणाधीशमाश्चर्यं हृदि मेऽस्ति यत् ।। तन्निवेदितुमायातो नत्वा त्वां पुनराव्रजे ।। ५ ।। गजानन उवाच ।। किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं हृदि किं तेऽभिवर्तते ।। वद सर्वं विशेषेण ततो व्रज निजाश्रमम् ।। ६ ।। नारद उवाच ।। मैथिले विषये देव जनको राजसत्तमः ।। अतिमानी वदान्यश्च वेदवेदाङ्गपारगः ।। ७ ।। अन्नदानरतो नित्यं ब्राह्मणान् पूजयत्यसौ ।। नानालंकारवासोभिर्दक्षिणाभिरनेकशः ।। ८ ।। दीनान्धकृपणेभ्यश्च बहुद्रव्यं ददात्यसौ ।। याचकैर्याचितं यद्यत्तत्तेन प्रदीयते ।। ९ ।। तथापि न व्ययं याति द्रव्यं तस्य महात्मनः ।। गजाननस्य सन्तुष्ट्या द्रव्यं तद्वर्धते नु किम् । १० ।। इत्याश्चर्यं महद्द्रष्टुं प्रयातस्तद्गृहानहम् ।। ब्रह्मा ज्ञानाभिमानेन उपहासं ममाकरोत् ।। ११ ।। अहं च तमुवाचेत्थं धन्योऽसि नृपसत्तम ।। चिन्तितं तेऽपि भक्त्यायं प्रयच्छति गजाननः ।। १२ ।। स तु गर्वादुवाचेत्थमहमीशो जगत्त्रये ।। अहं दाता च भोक्ता च पाता दापयिता तथा ।। १३ ।। मत्स्वरूपं विना नान्यद्विद्यते भुवनत्रये ।। कर्ता च कारणं चाहं करणं मुनिसत्तम ।। १४ ।। नारद उवाच ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनाहं जगाद तम् ।। ईश्वराज्जगतः कर्ता नान्यः कश्चन विद्यते ।। १५ ।। त्वं तु धर्ममिमं राजन् दम्भेनैव करोषि किम् ।। दर्शयिष्ये साक्ष्यमस्य स्वल्पकालेन तेऽनघ ।। १६ ।। इत्युक्त्वा तमहं यातस्त्वदन्तिकमिभानन ।। कौण्डिन्य उवाच ।। आकर्ण्येत्थं मुनेर्वाक्यं पूजयामास तं विभुः ।। १७ ।। अर्घ्यादिभिरलंकारैर्दिव्यैः पुष्पैः सचन्दनैः ।। मुनिराज्ञां प्रगृह्यैव वैकुण्ठं विष्णुमभ्यगात् ।। १८ ।। गजाननोऽपि

---

[1] अयं लक्षदूर्वापूजाविधित्वेन गणेशपुराने नोक्तः परंतु दूर्वामाहात्म्यं कथयितुमग्रिमः कथाभागउतः परन्तु स न्यून इति कृत्वा कौंडिन्य उवाचेत्यादिगृहे चेदस्ति दीयतामित्यन्तः पूरितः । तस्य सन्दर्भस्तु प्रथम शूरसेनेन्द्रसंवादावान्तर्गतो ब्रह्मकृतवीर्यपितृसंवादस्तदन्तर्गतो गणनां योगिनां च संवादस्तदन्तर्गतः कौंडिन्यस्य त्पत्न्या आश्रयायाश्च संवादः ग्रन्थकृता शूरसेन उवाचेत्यादिश्लोकद्वयमन्ते च लक्षसंख्याकदूर्वाभिरित्याद्यर्थं तथोद्यापनविधिश्च छत्यो लिखित इति समूलो नोपलभ्यते ।

मिथिलां राजभक्तिं परीक्षितुम् ।। कुत्सितं वेषमादाय सर्वज्ञोऽपि समाययौ ।। १९ ।। अनेकक्षतसंयुक्तं स्रवद्रक्तममङ्गलम् ।। मक्षिकानिचयाक्रान्तं रदहीनमिवातुरम् ।। २० ।। गच्छन्तं तादृशं दृष्ट्वा नरा नासानिरोधनम् ।। कुर्वन्ति वाससा केचित् ष्ठीवनं च यथा तथा ।। २१ ।। स्खलन्मूर्छन् पतन् गच्छन्नर्भकावलिसंयुतः ।। नृपद्वारं समागम्य द्वारपालानुवाच सः ।। २२ ।। राज्ञे निवेद्यतां दूता अतिथिं मां समागतम् ।। ब्राह्मणं क्षुधितं वृद्धमिच्छाभोजनकांक्षिणम् ।। २३ ।। ते तद्वाक्यं तथाचख्युर्गत्वा तं जनकं नृपम् ।। आनीयतामिति प्राह दूता द्रष्टुं तु कौतुकम् ।। २४ ।। असृक्स्वन्तं वृद्धं तं ब्राह्मणं श्रमवारिणम् ।। तर्कयामास जनक ईश्वरो रूपधृक् नु किम् ।। २५ ।। छलितुं मां समायातो यदि पुण्यं भवेन्मम ।। समाधास्ये मनो ह्यस्य भविष्यं नान्यथा भवेत् ।। २६ ।। इत्येवं चिन्तयत्येव जनके नृपसत्तमे ।। प्रवेशितो द्वारपालैर्ब्राह्मणः पर्यदृश्यत ।। २७ ।। ब्राह्मण उवाच ।। चन्द्रांशुधवलां कीर्तिं श्रुत्वा तेऽहं समागतः ।। देहि मे भोजनं राजन् क्षुधितस्य चिराद्भृशम् ।। ।। २८ ।। मम तृप्तिर्भवेद्यावत्तावदन्नं प्रदीयताम् ।। तव क्रतुशतं पुण्यं भविष्यति नरेश्वर ।। २९ ।। कौण्डिन्य उवाच ।। इति वाचं निशम्यासौ गृहमध्ये निनाय तम् । संपूज्य विधिवच्चैनं स्वाद्वन्नमुपवेषयत् ।। ३० ।। एकग्रासेन सर्वं स जग्रास द्विजसत्तमः ।। यावदन्नं स्थितं सिद्धं पर्याप्तमयुतस्य यत् ।। ३१ ।। तद्दत्तं पुरतस्तस्यऽभक्षत तत्क्षणेन सः ।। असंख्यातेषु पात्रेषु पक्तुं क्षिप्ताः सुतण्डुलाः ।। ३२ ।। आनीयतास्य पुरतोऽत्र सिद्धश्चोदनोऽभवत् ।। स भक्षयति सर्वं तं तत ऊचे जनो नृपम् ।। ३३ ।। राक्षसोऽयं भवेत्प्रायः किमर्थं नीयते बहु ।। राक्षसेभ्यः प्रदानेन न किञ्चित्पुण्यमाप्यते ।। ३४ ।। केचिदूचुस्त्रिभुवने भक्षितेऽप्यस्य नो भवेत् ।। तृप्तिः परमिका राजन्धान्यमस्मै प्रदीयताम् ।। ३५ ।। ततो धान्यानि सर्वाणि गृहे भूमौ स्थितानि च ।। आनीय चिक्षिपुस्तस्य पुरो ग्रामगतानि च ।। ३६ ।। पुंसोऽस्य द्विजरूपस्य सर्वभक्षस्य चातिथेः ।। न तृप्तिमगमत्सोऽथ भक्षितेषु च तेषु च ।। ३७ ।। ततो दूता नृपं प्रोचुर्धान्यं क्वापि न लभ्यते ।। इति दूतवचः श्रुत्वा जनकेऽधोमुख स्थिते ।। ३८ ।। स्वस्तीत्युक्त्वागमद्विप्रो न तृप्तोऽसौ गृहं गृहम् ।। दीयतामन्नमित्याह ते जनास्तं जगुस्तदा ।। ३९ ।। सर्वेषां गृहगं धान्यं सर्वं राज्ञा समाहृतम् ।। जग्धं त्वयाखिलं ब्रह्मन् गम्यतां यत्र ते रुचिः ।। ४० ।। द्विज उवाच ।। कीर्तिरस्य श्रुता लोकान्न दाता जनकात्परः ।। तृप्तिकामः समायातो ह्यतृप्तोऽहं कथं व्रजे ।। ४१ ।। तूष्णींभूतेषु लोकेषु बम्भ्रमन् स ददर्श ह ।। विरोचनात्रिशिरसोर्मन्दिरं द्विजयोर्वरम् ।। ४२ ।। तन्मध्यं प्राविशत् सोऽपि गृहस्वामी वसत्तया ।।

सर्वोपस्कररहितं धातुपात्रविर्जितम् ।। ४३ ।। इति श्रीगणेशपुराणे उत्तरखण्डे अध्यायः ।। ६५ ।। कौण्डिन्य उवाच ।। धरामात्रासनौ तौ तु नभः प्रावार संयुतौ ।। दिगम्बरौ सर्वधातुसंस्पर्शवर्जितावुभौ ।। १ ।। अयाचितभुजौ नित्यं जलेनैवाखिलाः क्रियाः ।। द्विजरूपधरोऽपश्यत् कुर्वाणौ सत्त्वशुद्धये ।। २ ।। गृहं च मक्षिकापुञ्जैर्मशकैरभितो वृत्तम् ।। मूर्ति च गणनाथस्य पूजितां पुष्पपल्लवैः ।। ३ ।। अनन्यभक्त्या ताभ्यां यत्तत्पराभ्यां ददर्श सः ।। तावूचे श्रूयतां वाक्यं यन्मया प्रोच्यतेऽनघौ ।। ४ ।। मिथिलाधिपतेः कीर्ति श्रुत्वाहं क्षुधितो भृशम् ।। तृप्तिकामः समायातो न स तृप्ति समाकरोत् ।। ५ ।। कर्मणा दाम्भिकेनैव सत्त्वं न परिरक्ष्यते ।। मम तृप्तिकरं किञ्चिद्गृहे चेदस्ति दीयताम् ।। ६ ।। दम्पती ऊचतुः ।। चक्रवर्ती नृपो योऽसौ तेन तृप्तिर्न ते कृता ।। आवाभ्यां तु दरिद्राभ्यां किं देयं तृप्तिकारकम् ।। ७ ।। नदीनदजलैर्योऽब्धिरसंख्यैर्नापि पूर्यते ।। बिन्दुमात्रेण सहसा स कथं पूर्यते वद ।। ८ ।। द्विज उवाच ।। भक्त्या दत्तं स्वल्पमपि बहुतृप्तिकरं मम ।। अभक्त्या यच्च दम्भेन बहुदत्तं वृथा भवेत् ।। ९ ।। दम्पती ऊचतुः ।। आवयोर्न गृहे किंचिच्छपथस्ते द्विजोत्तम ।। पूजायै गणनाथस्य प्रातर्दूर्वाङ्कुराहृताः ।। १० ।। पूजितो गणनाथस्तैस्तत एकोऽवशिष्यते ।। द्विज उवाच ।। भक्त्या दत्तः स एकोऽपि तृप्तये स्यात्प्रदीयताम् ।। ११ ।। कौण्डिन्य उवाच ।। विरोचना ददौ तस्मै श्रुत्वा वाक्यं तदीरितम् ।। एकं दूर्वाङ्कुरं भक्त्या तेन तृप्तोऽभवद्द्विजः ।। १२ ।। शाल्यन्नं पायसान्नं च नानापक्वान्नमेव च ।। व्यञ्जनानि च सर्वाणि लेह्यचोष्याण्यनेकधा ।। १३ ।। भक्त्या विरोचनादत्ते जातं दूर्वाङ्कुरेऽखिलम् ।। गृहीत्वा ब्राह्मणस्तं तु बभक्ष परया मुदा ।। १४ ।। तस्मिन् दूर्वाङ्कुरे भक्त्या दत्तं तेनाथ भक्षिते ।। प्रशशाम द्विजस्यास्य तत्क्षणाज्जठरानलः ।। १५ ।। तृप्तिश्च परमा तेन प्राप्ता तत्क्षणमात्रतः ।। आलिलिङ्ग त्रिशिरसं तृप्तो हर्षाद्द्विजस्तदा ।। १६ ।। तत्याज कुत्सितं रूपं प्रकटोऽभूद्गजाननः ।। चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षः शुण्डादण्डविराजितः ।। १७ ।। कमलं परशुं मालां दन्तं करतले दधत् ।। महार्हमुकुटो राजन् कर्णकुण्डलमण्डितः ।। १८ ।। दिव्यवस्त्रपरीधानो दिव्यगन्धानुलेपनः ।। उवाच तौ प्रसन्नात्मा दम्पती स गजाननः ।। १९ ।। वृणीतं तं वरं शीघ्रं मनसा यं यमिच्छथः ।। तावूचतुः ।। जन्मनी यत्र नौ स्यातां तत्र ते दृढभक्तिता ।। २० ।। मुक्तिर्वा दीयतां देव दुस्तराद्भवसागरात् ।। न याच्यं किञ्चिदन्यद्धि पादपद्मादिभानन ।। २१ ।। कौण्डिन्य उवाच ।। इति तद्वाक्यमाकर्ण्य तथेत्युक्त्वा गजाननः ।। पुनरालिङ्ग्य पिदधे भक्तं त्रिशिरसं मुदा ।। २२ ।। एतस्मात्कारणाद्दूर्वाभारोऽस्मै दीयते मया ।। असंख्यभक्षणाद्यो न तृप्ति देवः समाययौ ।। २३ ।। दूर्वाङ्कुरेण चैकेन स तृप्ति

परमां ययौ ।। इति ते कथितः सम्यगाश्रये महिमा शुभः ।। २४ ।। दूर्वासमर्पणभवः श्रवणात् सर्वकामदः ।। इतिहासमिमं भक्त्या शृणुते श्रावयेच्च यः ।। २५ ।। स पुत्रधनकामाढ्यः परत्रेह च मोदते।। गजानने लभेद्भक्ति निष्कामो मुक्तिमाप्नुयात् ।।२६।। ग[1]णा ऊचुः ।।श्रुत्वापीत्थमितिहासमाश्रया संशयं पुनः ।। प्रपेदे हृदि तं ज्ञात्वा कौण्डिन्यो मुनिरब्रवीत् ।। २७।। आश्रये शृणु मे वाक्यं संशयस्यापनुत्तये ।। यद्वदामि हृदिस्थस्य मया ज्ञातस्य तेऽनघे ।। २८ ।। एकं दूर्वांकुरं गृह्य गच्छ शीघ्रं बिडौजसम् ।। वदाशीर्वचनं पूर्वं पश्चाद्याचस्व काञ्चनम् ।। २९ ।। दूर्वांकुरेण तुलितं गृहीत्वा तदिहानय ।। न न्यूनं नाधिकं ग्राह्यं तस्य भाराच्छुभानने ।। ३० ।। इति श्रीगणेशपुराणे षट्षष्टितमोऽध्यायः ।। ६६ ।। आज्ञप्ता तेन मुनिना स्वामिप्रेतार्थसिद्धये ।। एकं दूर्वांकुरं गृह्य शक्रसन्निधिमाययौ ।। १ ।। तमुवाचाश्रया शक्र देहि मे काञ्चनं शुभम् ।। याचितुं त्वां समायाता भर्तृवाक्यात्सुरेश्वर ।। २ ।। इन्द्र उवाच ।। किमर्थं त्वमिहायाता यद्याज्ञा प्रेषिता भवेत् ।। मया संप्रेषितं स्यात्ते जातरूपं स्वशक्तितः ।। ३ ।। आश्रयोवाच ।। दूर्वांकुरस्य तुलया यद्भवेत् काञ्चनं सुर ।। तद्गृहीष्ये शचीभर्तर्न न्यूनं न च वाधिकम् ।। ४ ।। इन्द्र उवाच ।। दूतैनां नय शीघ्रं त्वं कुबेरभवनं प्रति ।। स दास्यति सुवर्णं च दूर्वांकुरमितं शुभम् ।। ५ ।। गणा ऊचुः ।। आज्ञया देवराजस्य देवदूतस्तया सह ।। प्रायात्कुबेरभवनं शक्रस्य वचनात्तदा ।। ६ ।। अस्यै दूर्वांकुरमितं जातरूपं प्रदीयताम् ।। इन्द्रेण प्रेषिता साध्वी मुनिपत्नी मया सह ।। ७ ।। प्रापिता भवनं तेऽद्य यामि देव नमोऽस्तु ते।। कुबेर उवाच ।। अत्याश्चर्यमहं मन्ये मुनिः शक्रस्तथाश्रया ।। ८ ।। मोहाविष्टा न जानन्ति दूर्वांकुरमितं कियत् ।। काञ्चनं तेन किं वा स्याद्बहुलं किं न याचितम् ।। ९ ।। गणा ऊचुः ।। एवमेव ददौ तस्यै बहुलं काञ्चनं तु सः ।। न जग्राह भयाद्भर्तुर्न्यूनाधिकविशंकया ।। १० ।। स्वर्णकारतुलायां तं दूर्वांकुरमधारयत् ।। नाभवत्तुलया तस्य पर्याप्तं तत्तु हाटकम् ।। ११ ।। वणिक्तुला समानीता तत्रापि नाभवत्समम् । तैलकारतुलायां तु दूर्वांकुरसमं न च ।।१२।। घटो बद्धस्ततस्तत्र हाटकं दत्तमेकतः ।। दूर्वांकुरोऽपरत्रापि याति पत्रमधस्तदा ।। १३ ।। अन्यदन्यद्दधौ तत्र कुबेरः काञ्चनं बहु ।। तच्चापि नाभवत्तेन सम्नं दूर्वांकुरेण च ।। १४ ।। सर्वं कोशगतं द्रव्यं दत्तं तेन गिरीन्द्रवत् ।। तथापि नाभवत्तुल्यं तेन दूर्वांकुरेण तत् ।। १५ ।। पत्नीमाहूय तां प्राह कुबेरः कौतुकान्वितः ।। कुरु मद्वाक्यतः सुभ्रू धंटारोहणमग्रतः ।। १६ ।। न समं चेत्स मारोक्ष्ये निजसत्त्वरिरक्षया ।। पतिव्रताऽज्ञया

---

१ गणा योगिनः प्रत्यूचुः ।

तस्य धटमारुरुहे तदा ।। १७ ।। न समा सापि तेनासीत्ततः सर्वां पुरीं ददौ ।। धटमध्ये कुबेरोऽसौ न चोर्ध्वं जायतेऽकुरः ।। १८ ।। श्रुत्वा दूतमुखादिन्द्रो गजारूढः समाययौ ।। स्वकीयद्रव्यसहितो धटमारुरुहे स्वयम् ।। १९ ।। दूर्वांकुरो न चोर्ध्वं स तथापि समजायत ।। अधोमुखो गतश्चिंन्तां किमेतदिति चिन्तयन् ।। २० ।। विष्णुं हरं च सस्मार तत्रारोहणकाम्यया ।। तत्रागतौ सनगरौ धटमारुहतां तदा ।। २१ ।। तथापि नोर्ध्वमगमत्तदा दूर्वांकुरः स्फुटम् ।। ततस्ते तत उत्तेरुः शिवविष्णुधनेश्वराः ।। २२ ।। वरुणेन्द्राग्निमरुतो कौण्डिन्यमभितो ययुः ।। देवा देवर्षयश्चापि सिद्धविद्याधरोरगाः ।। २३ ।। दिनान्ते समनुप्राप्ते स्वं नीडमिव पक्षिणः ।। नमस्कृत्य मुनिं सर्वे प्रोचुरुद्विग्नचेतसः ।। २४ ।। सर्वे ऊचुः ।। वृजिनं विलयं यात दर्शनात्तव भो मुने ।। पूर्वपुण्यभवादग्रे कल्याणं नो भविष्यति ।। २५ ।। तव पत्न्याहृतं सत्त्वं सर्वेषामद्य नः स्फुटम् ।। महिमानं न जानीमो दूर्वांकुरसमुद्भवम् ।। २६ ।। एकदूर्वांकुरतलां त्रैलोक्यमपि नालभत् ।।गजाननशिरस्थस्य त्वया भक्त्यार्पितस्य च ।। २७ ।। जानीयान्महिमानं कः सम्यक्दूर्वांकुरस्य हि ।। गजाननैकभक्तस्य जपतस्तपतो भृशम् ।। २८ ।। तवापि महिमान को जानीयात्सर्वदेहिनाम् ।। एवमुक्त्वा मुनिं सर्वे पूर्वं पूज्य गजाननम्।। सर्वे सभार्यं पुपूजुस्तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ।। २९ ।। न ब्रह्मा न हरिः शिवेन्द्रमरुतौ नाग्निर्विवस्वान् यमः शेषोऽशेषकलानिधिश्च वरुणो नो चन्द्रमा नाश्विनौ ।। नो वाचामधिपो न चैव गरुडो नो यक्षराण्नाङ्गिरा माहात्म्यं परिवेद देव निगमैरज्ञातरूपस्य ते ।। ३० ।। एवं संतोष्य सर्वे ते देवदेवं गजाननम् ।। मुनिं च समनुज्ञाप्य ध्युः स्वं स्वं निकेतनम् ।। ३१ ।। आश्रयापि ततो ज्ञात्वा दूर्वामाहात्म्यमुत्तमम् ।। विश्वस्ता भर्तृ वाक्ये सा दूर्वाभिः पर्यपूजयत् ।। ३२ ।। विघ्नेश्वरं सर्वदेवं सर्वैर्दूर्वाभिरर्चितम् ।। प्रणनाम च कौण्डिन्यं भर्तारं सत्यवादिनम् ।। ३३ ।। उवाच सुप्रसन्ना सा स्वात्मानं निन्दती भृशम् ।। मादृशी नैव दुष्टास्ति या ते वाक्ये ससंशया ।। ३४ ।। विशेषविदुषां स्वामिन् विशेषविदुषा त्वया ।। सम्यक् कृतं मम विभो सर्वभूतदयावता ।। ३५ ।। तत्क्षमस्वापराधं मे त्वामहं शरणागता ।। ततः प्रातः समुत्थाय दूर्वा आदाय सत्वरौ ।। ३६ ।। स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य दूर्वार्पणमकुर्वताम् ।। अनन्यभक्त्वा ज्ञात्वा तौ दूर्वामाहात्म्यमुत्तमम् ।। ३७ ।। सायं प्रातर्देवदेवं पूजयन्तौ निरन्तरम् ।। त्यक्त्वा यज्ञं व्रतं दानं ज्ञात्वा देवो गजाननः ।। ३८ ।। कृपया परया विष्टः स्वधाम प्रत्यपादयत् ।। गणा ऊचुः ।। अगाधं वर्णितं दूर्वामाहात्म्यमिदमुत्तमम् ।। ३९ ।। अशेषवर्णने शेषो नेशो नेशो हरीश्वरौ ।। त्रैलोक्यं तुलया ह्यस्याः पत्रे नैव समं भवेत् ।।४०।। दूर्वेति

स्मरणात्पापं त्रिविधं विलयं व्रजेत् ।। तत्स्मृतौ स्मर्यते देवो यतः सोऽपि गजाननः ।। ४१ ।। इति चिन्तामणेः क्षेत्रे महिमा वर्णितः स्फुटम् ।। श्रवणात् कीर्तनाद्ध्याना-द्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।। ४२ ।। एतस्मात् कारणाद्यानं त्रयाणां प्रेषितं शुभम् ।। रास[1]भस्य मुखाद्दूर्वा गता देवे वृषस्य च ।। ४३ ।। चाण्डाल्या शीतनाशाय त्वानीता तृणभारतः ।। वायुना प्रेरिता सापि गता दूर्वा गजानने ।। ४४ ।। यतस्तस्य प्रिया दूर्वा सन्तुष्टोऽसौ विनायकः ।। निष्पापत्वत्रयाणां च सान्निध्यं दत्तवान्निजम् ।। ४५ ।। गन्धामात्रेण दूर्वायाः सन्तुष्टो जायते विभुः ।। प्रसङ्गेन तु भावाच्च किंपुनर्मस्तकार्पणात् ।। ४६ ।। ब्रह्मोवाच ।। इति दूतमुखाद्राज्ञा संश्रुतो महिमा तदा ।। दूर्वाया मुनिभिः सर्वैर्न दृष्टो न च संश्रुतः ।। ४७ ।। स्नात्वा दूर्वाङ्कुरान् गृह्य पुपूजुस्तं विनायकम् ।। सेवकाश्चापि दूर्वाभिरानर्चुः श्रीगजाननम् ।। ४८ ।। आसन् सर्वे दिव्यदेहास्तेजसा सूर्यवर्चसः ।। शृण्वन्ता दिव्यवाद्यानां नानारावान् समंततः ।। ४९ ।। विमानवरमारूढा दिव्यवस्त्रानुलेपनाः ।। याता वैनायकं धाम केचिद्रूपं च धारिणः ।। ५० ।। नरा नागरिकाः केचिदागतास्तं महोत्सवम् ।। द्रष्टुं दूर्वाभिरानर्चुरेकविंशतिभिः पृथक् ।। ५१ ।। भुक्त्वा भोगांश्च ते सर्वे गाणेशं स्थानमागमन् ।। विमानमपि चलितमूर्ध्वं तत्पुण्यपुञ्जतः ।। ५२ ।। तस्माद्गणेश-भक्तेन कार्यं दूर्वाभिरर्चनम् ।। न करोति नरो यस्तु प्रमादात्ताभिरर्चनम् ।। ५३ ।। चाण्डालः स तु विज्ञेयो नरकान्प्राप्नुयाद्बहून् ।। न तन्मुखं निरीक्षेत कदाचिदपि मानवः ।। ५४ ।। यस्तु दूर्वाभिरर्चेत्तं देवदेवं गजाननम् ।। तस्य दर्शनतोऽन्योपि पापी शुद्धिमवाप्नुयात् ।। ५५ ।। अलाभे बहुदूर्वाणामेकयैवाभिपूजयेत् ।। (लक्ष-संख्याक दूर्वाभिः पूजयेद्यो गजानम्) ।। तेनापि कोटिगुणिता कृता पूजा न संशयः ।। ५६ ।। ब्रह्मोवाच ।। इति नानाविधो राजन् महिमा कथित स्तव ।। सेतिहासस्तु दूर्वाणां श्रवणात्पापनाशनः ।। ५७ ।। नाख्येयो दुष्टबुद्धेस्तु प्रिये पुत्रे निवेदयेत् ।। इन्द्रं उवाच ।। इति ब्रह्ममुखाच्छ त्वा परमाख्यानमुत्तमम् ।। ५८ ।। ननन्द परम-प्रीतो ननाम कमलासनम् ।। [2]तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं विस्मयान्वितः ।। ५९ ।। इति श्रीगणेश पुराणे उपासनाखण्डे दूर्वामाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।। अ० ।। ६७ ।। अथोद्यापनम्—उद्यापनं च कुर्यात्तु देशकालानुसारतः ।। माघे वा कार्तिके भाद्रआषाढे श्रावणेऽपि वा ।। अन्येषु पुण्यमासेषु व्रतमेतत्समाचरेत् ।। प्रातः स्नानं विधायाथ दन्तधावनपूर्वकम् ।। धौतवस्त्रधरो भूत्वा नित्यकर्म समाचरेत् ।। देवपूजागृहं वापि देवालयमथापि वा ।। गोमयेनानुलिप्याशु [3]धातुना मृन्मयेन वा ।। पञ्चभि-

१ रासभवृषभचाडालीवृत्तांतस्तु प्रथममेव दूर्वामाहात्म्यप्रसंगे सविस्तरों गणेशपुराणेवर्णितः संतु विस्तरभयादत्र न पूरित इति बोधम् । २ कृतवीर्यपिता । ३ गैरिकादिना मृन्मयेन मृद्विकारेण वा ।

ब्राह्मणैः सार्धं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ।। नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत लक्षपूजाविधौ द्विजः ।। प्राणायामत्रयं कृत्वा देशकालौ स्मरेत्सुधीः ।। गजाननं चतुर्बाहुमेकदन्तविपाटितम् ।। विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेम पीठासनस्थितम् ।। तथा हेममयीं दूर्वां तदाधारार्थमादरात् ।। संस्थाप्य विघ्नहर्तारं कलशे ताम्रभाजने ।। वेष्टितं रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले ।। पूजयेदुक्तकुसुमैः शमीदूर्वाभिरर्चयेत् ।। गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यमोदकैः ।। पश्चाद्गन्धाढ्यदूर्वाभिरर्चयेद्गणनायकम् ।। भक्त्या नामसहस्रेण अथवा शतनामभिः ।। ससंख्या सफला पूजा संख्याहीना तु निष्फला ।। एवं संपूज्य विधिवत्पूजान्ते होममारभेत् ।। आचार्यं वरयेत्पूर्वमृत्विजश्चैकविंशतिः ।। गणानां त्वेति मन्त्रेण अयुतं होममाचरेत् ।। अथवा दूर्वामन्त्रेण अयुतं तु समाचरेत् ।। दूर्वामन्त्रः—त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः ।। सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ।। यथाशाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ।। तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम् ।। सहस्रनामभिर्होमं स्वाहाकारसमन्वितैः ।। मधुमिश्रैस्तिलैर्लाजैः पृथुकैरिक्षुखण्डकैः ।। लड्डुकैः पायसान्नेन सकृतेन च कारयेत् ।। पूर्णाहुतिं ततः कृत्वा बलिदानं ततश्चरेत् ।। होमशेषं समाप्याथ ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालंकारभूषणैः ।। एवं मे ब्रह्मणादिष्टं व्रतं लोकोपकारकम् ।। तदेतत्कथितं तेऽद्य कुरु पुत्रार्थमादरात् ।। य इदं शृणुयाद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ।। इति लक्षदूर्वापूजनोद्यापनं संपूर्णम् ।।

लाख दूर्वासे पूजनेको विधि—शूरसेन बोले कि, लाख दूर्वोसे पूजने की विधि कहिये, जिससे सब मनुष्य सुखभागी होजाते हैं । इन्द्र बोला कि, श्रावणकी चौथ जब मंगलवारी हो इस पवित्र दिनमें पूजा—कर्मका प्रारंभ करे । दूर्वा माहात्म्य—गणेशपुराणके उपासना खंडमें कहा है । कौण्डिन्य बोले कि, हे देवि ! किसी समय सुखपूर्वक विराजे हुए गणेशजीको बहुत दिनों पीछे नारदजी देखने चले आये ।।१।। प्रणाम करके कहा कि, आज हमारा जन्म सार्थक है । जिससे पूर्वके पुण्योंसे हे गजानन ! तेरा दर्शन हो गया ।।२।। यह कहकर मुनि हाथ जोडकर सामने खडे हो गये । गणेशजीने हाथसे हाथ पकडकर उन्हें अपने आसनपर बिठा लिया ।।२।।३।। जब महाभाग गजाननने महाभाग महामुनिको बिठा लिया तब मुनिपुंगव नारद भगवान् इससे सन्तुष्ट होगये ।।४।। नारदजी गणेशजीसे बोले कि, मेरे दिलमें एक आश्चर्य है । उसे कहने आया हूं । मैं पीछे प्रणाम करके वापिस चलाजाऊंगा ।।५।। ऐसा सुन गणेशजी बोले कि, आपने क्या आश्चर्य देखा आपके दिलमें क्या है ? पूरा सब बताकर फिर अपने आश्रमको चले जावो ।।६।। नारद बोले कि हे देव ! मैथिल देशमें एक जनक राजा है । वह वेद वेदाङ्गोंका पारंगत अत्यन्त दानी तथा वदान्य है ।।७।। रोज अन्नदानमें लगा रहता है ब्राह्मणोंको पूजता है; उन्हें अनेक तरहके वस्त्र अलंकार और दक्षिणा देता है ।।८।। दीन आंधरे और कृपाणोंको बहुत द्रव्य देता है, जो याचक मांगता है वह सब उसे देता है ।।९।। तो भी उस महात्माका धन नष्ट नहीं होता, क्या गजाननकी प्रसन्नतासे वह द्रव्य बढ रहा है । ।।१०।। इस भारी आश्चर्यको देखनेके लिये मैं उनके घर गया ब्रह्मज्ञानके अभिमानमें उसने मेरी हँसी की ।।११।। मैंने तो उससे यही कहा कि, हे नृपसत्तम ! तू धन्य है; आपकी चाही हुई वस्तुको गणेशजी आप ही भक्तिके वश हो दे देते हैं ।।१२।। पर फिर भी वह अभिमानसे यही बोला कि, मैं ही तीनों लोगोंमें ईश दाता भोक्ता तथा दिलानेवाला हूं ।।१३।। मेरे स्वरूपके विना संसारमें और कुछ नहीं है : हे मुनिसत्तम ! मैं ही कर्ता कारण और करण

हूं ।।१४।। नारद बोले कि, उनकी ऐसी बातें सुनकर मैं कुपित हो बोला कि; ईश्वरके शिवा और कोई कर्ता नहीं है ।।१५।। हे राजन् ! तू तो यह धर्म कपटसे करता है यह मैं थोड़े ही समयमें प्रत्यक्ष दिखा दूंगा ।।१६।। हे इभानन ! इतना कहकर मैं तेरे पास चला आया हूं । कौंडिन्य बोले कि, मुनिके ऐसे वचन सुनकर गणेशजीने मुनिका सत्कार किया ।।१७।। अर्घ्य आदिक, दिव्य अलंकार, पुष्प और चन्दनसे पूजन किया । पीछे मुनि आज्ञा लेकर विष्णुके वैकुंठलोकमें चले गये ।।१८।। सर्वज्ञ गजानन भी राजाकी भक्ति देखनेके लिये मिथिला चल दिये ।।१९।। उस समय गणेशजीने जो रूप धरा वह बड़ा ही दयनीय था; शरीरमें अनेकों घाव थे । जगह जगह दुरे राधिलोहु निकल रहे थे, मक्खियां भिन-भिना रही थीं दांत मुखमें एक नहीं था और आतुरता दीख पड़ता था ।।२०।। उन्हें जाता हुआ देखकर मनुष्य श्वास रोकते थे । कोई कपड़ेसे नाक ढकते थे तो कोई देखकर थूकने लग जाते थे ।।२१।। गिरते-पड़ते मूर्छित होते हुए चलते-चलते राजाके दरवाजेपर पहुँचे । लड़कोंकी लैन पीछे लगी हुई थी । वहां जाकर द्वारपालोंसे बोले ।।२२।। कि; हे दूतो! आये हुए मुझ अतिथिको राजासे कहो कि, एक भूखा, खानेको इच्छा भोजन चाहनेवाला वृद्ध ब्राह्मण आ गया है ।।२३।। दूतोंने कौतुक देखनेके लिये सब समाचार जनकको जा सुनाया । जनकने कह दिया कि, लाओ ।।२४।। लोहू और पसीना चुचाते हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको देखकर जनकने विचार किया कि, ऐसा रूप धारण करके ईश्वरही चले आये क्या ? ।।२५।। मुझे छलनेके लिये आये हैं । यदि मेरा पुण्य हुआ तो मैं इनका समाधान कर दूंगा । होनहार तो टलतीही नहीं ।।२६।। नृपश्रेष्ठ जनक तो इस विचारमेंही रहे कि, इतनेमें द्वारपालोंसे प्रविष्ट किया गया ब्राह्मण दीखा ।।२७।। ब्राह्मण बोला कि, तेरी चन्द्रमाकी किरणों जैसी विशुद्ध कीर्ति सुनकर मैं तेरे यहां चला आया हूं । हे राजन् ! मैं भूखा हूं । मुझे शीघ्रही एकदम भोजन दे ।।२८।। मैं जितनेसे तृप्त होऊं उतना अन्न दे दीजिये, हे नरेश्वर ! तुझे सौ यज्ञोंका फल होगा ।।२९।। कौडिन्य बोले कि; यह सुन वह उसे अपने घर ले आये विधिपूर्वक पूजा करके स्वादिष्ट अन्न परोस दिया ।।३०।। वह ब्राह्मण सबको एकही ग्रासमें चटकर गया । उनके यहां दश हजारका अन्न तयार था । वह सब जैसे-जैसे उसके सामने आया वैसे-वैसे उसी समय चट करता गया । अगणित पात्रोंमें तण्डुल सिद्ध होने रख दिये ।।३१।।३२।। जो-जो सिद्ध होता जाता था; सब परोस जाते थे, वह सब खाता जाता था । यह देख लोगबाग राजासे कहने लगे कि ।।३३।। बहुधा संभव है कि, यह राक्षस हो । क्यों इसे दे रहे हो ? राक्षसके दियेसे क्या पुण्य होता है ? ।।३४।। वे बोले कि, तीनों लोकोंके खानेपर भी इसकी परम तृप्ति न होगी इसे धान्य दीजिए।।३५।। घर और भूमिमें जो सैकड़ों ग्रामके धान थे वे सब लालाकर उनके सामने पटक दिये ।।३६।।पर द्विजरूपी सर्वभक्षी अतिथिकी तृप्ति सबके खानेनेपर भी नहीं हुई ।।३७।। नौकरोंने आकर कहा कि, महाराज ! अब धान भी कहीं नहीं मिलता, यह सुन जनक नीचा मुख करके बैठ गये ।।३८।। वह ब्राह्मण भी "स्वस्ति" यह कहकर घर-घर फिरने लगा कि, अन्न दो । तब मनुष्योंने उससे कहा कि ।।३९।। सबके घरका धान राजाने मंगा लिया उन सबको तो तुम खा गये फिर भी भूखे हो अस्तु जहां आपकी रुचि हो वहां जाओ।।४०।।ब्राह्मण बोला कि, मैंने संसारमें कीर्ति सुनी थी, कि जनकसे ज्यादा कोई अन्नदान करनेवाला नहीं है, मैं तृप्त होनेके लिए आया था । अब बिना तृप्त हुए कैसे चला जाऊँ ।।४१।। यह सुनकर मनुष्य चुप हो गये, तब वह घूमते-घूमते विरोचना और त्रिशिरके सुन्दर घरपर पहुंचा ।।४२।। वह उस घरमें प्रविष्ट होगये जहां घरका स्वामी रहता था वहां कुछ भी उपस्कर नहीं था न कोई धातुका वर्तनही था ।।४३।। यह श्रीगणेशपुराण उपासना खंडका ६५ सां अध्याय पूरा हुआ ।। कौंडिन्य बोले कि, उस घरमें वह ब्राह्मण क्या देखताहै कि,भूमिपात्रही जिनका आसन,आकाश ऊपरका वस्त्र,किसी भी धातुको न छूनेवाले दिगंबर, बिना मांगे जो मिल जाय उसीसे गुजारा करलेने वाले, अपनी सत्त्वशुद्धिके लिए पानीसे ही सब क्रियाओंको कर्ता युगल दंपती उपस्थित हैं, घरमें मच्छर और मक्खियां भरी पड़ी हैं पुष्पपल्लवसे पूजी हुई गणपतिकी मूर्ति रखी हुई है । वे दोनों अनन्यभक्तिसे उसके पूजनमें लगे रहने वाले हैं । उन्हें देख विप्ररूपधारी गणपतिजी बोले कि, हे निष्पापो ! जो मैं कहूं उसे सुनो ।।१-४।। मैं भूखा मिथिलाके राजा जनककी कीर्ति सुनकर तृप्ति करनेके लिये आया था, पर वहां मेरी तृप्ति नहीं हुई ।।५।। क्यों कि, कप-

टके कर्मसे सत्त्वकी रक्षा नहीं होती, मेरी तृप्ति करनेवाला कुछ आपके घर है, वह मुझे दे दीजिए ।।६।। दंपती बोले कि, जब चक्रवर्ती राजा आपकी तृप्ति न कर सके हम दरिद्रोंके पास क्या तृप्तिका सामान है ? ।।७।। यह तो बताइये कि, जो समुद्र अनेकों नद नदियोंसे तृप्त नहीं होता वह एकदम एक बूंद पानीसे कैसे भर जायगा बता ? ।।८।। द्विज बोला कि, भक्तिके साथ थोड़ा सा भी मुझे दे दिया जाय तो उससे मेरी बहुतसी तृप्ति हो जाती है एवं बिना भक्तिके कपटसे मुझे बहुत भी देना नहीं के बराबरही है ।।९।। वे दोनों बोले कि, हे ब्राह्मण ! तेरी शपथ है हमारे घर कुछ नहीं है । प्रातःकाल गणपतिकी पूजाके लिये दूर्वांकुर लाये थे ?।।१०।।गणपति-की पूजा कर दी उससे एक वाकी बचा है ।। द्विज बोला कि भक्तिसे दिया हुआ वह दूबका अंकुर भी मेरी तृप्तिके लिए होगा उसे ही दे दीजिए ।।११।। ब्राह्मणके वचन सुनकर विरोचनाने भक्तिभावसे वह एक दूर्वां-कुर उठाकर उन्हें दे दिया उससे वह ब्राह्मण तृप्त हो गया ।।१२।। शालीका अन्न पायसका अन्न पक्वान्न तथा अनेक तरहके व्यंजन लेह्य और चोष्य ।।१३।। भक्तिपूर्वक दिये उस एक दुर्वांकुरमें सब हो गये, ब्राह्मणने उसे लेकर बड़े ही प्रेमसे खाया ।।१४।। जब उसने वह भक्तिके साथ दिया हुआ दूर्वांकुर खा लिया तो उससे प्रदीप्त हुआ जठरानल एकदम शान्त हो गया ।।१५।। उसी क्षण उससे परम तृप्ति हो गई । तृप्त द्विजने प्रसन्नताके साथ त्रिशिरसका आलिंगन किया ।।१६।। उस समय गणेशजीने वह कुत्सितरूप तो छोड़ दिया और चतु-र्भुजी कमलनयन सूंडके दण्डसे सुशोभित ।।१७।। कमल परशु माला और दंत हाथमें लिये हुए सुन्दर रूपसे प्रकट हुए । हे राजन् ! शिरपर बेकीमती मुकुट रखा हुआ था; कान कुंडलसे शोभायमान थे ।।१८।। दिव्य वस्त्र पहिने दिव्य गन्ध लगाये हुए थे, परम प्रसन्न ही दोनों दम्पतियोंसे बोले ।।१९।। कि जो-जो आप मनसे चाह रहे हों वह वह सब मांगलो, वे बोले कि, हम जिस जन्ममें हों वहां आपकी दृढ़ भक्ति बनी रहे ।।२०।। अयवा इस दुस्तर संसारसागरसे मुक्ति दे दीजिये, आपके चरण कालोंके सिवा हे इभानन ! और कुछ हमें कहना नहीं है ।।२१।। कौंडिन्य बोले कि, गणेशजीने उनके ऐसे वचन सुनींकर " तथास्तु" कहा । फिर भक्त त्रिशिरसका आलिंगन करके अन्तर्धान हो गये ।।२२।। इस कारण मैं इसे दूर्वा भार दिया करता हूं " जो असंख्य भोजनसे भी तृप्त नहीं हुआ ।।२३।। वह इनके अंकुरसे परम तृप्त हुआ था " हे आश्रये ! जो उत्तम महिमा है वह मैंने तुम्हें सुना दी ।।२४।। यह तबके समर्पणसे होनेवाली एवं सब कामोंके देनेवाली है । जो इस इतिहासको सुनते और सुनाते हें ।।२५।। वे पुत्र धन और काम पाते हें परलोकमें भी आनन्द करते हें । निष्काम गणपतिमें भक्ति प्राप्तकरके मुक्ति पा जाता है ।।२६।। योगी फिर बोले कि, इस प्रकारके इतिहासको सुनकर भी आश्र-याके हृदयमें संशय हुआ । उसे देख कौंडिन्य मुनि बोले कि ।।२७।। हे अनघे आश्रये ! अपने संशयको नाश करनेके लिये मेरे वाक्य सुन जो कि, मैंने तेरे मनका संदेह जान लिया है ।।२८।। एक दूबका अंकुर लेकर जल्दी इन्द्रके पास जा, पहिले आशीर्वाद कहकर पीछे सोमा मांगना ।।२९।। दूबके अंकुरके बराबर तुलवा कर यहां लेआ हे शुभानने ! इसके बोझसे कम ज्यादा न लाना ।।३०।। यह श्री गणेशपुराणका कहा हुआ उपासना खण्डका ६६ वा अध्याय पूरा हुआ ।। मुनिकी आज्ञा होनेपर आश्रया अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये एक दूर्वांकुर लेकर इन्द्रके समीप आई ।।१।। हे शक्र ! मुझे अच्छा सोना दे, हे सुरेश्वर ! मैं पतिकी आज्ञासे तेरे पास मांगने आई हूं ।।२।। इन्द्र बोला कि, आप क्यों आईं, यदि हुक्म भेज दिया होता मैं अपनी शक्तिके अनु-सार वहीं सोना भेज देता ।।३।। आश्रया बोली कि, हे देव ! मैं इस दूबके अंकुरके बराबर सोना लूंगी न ज्यादा लेना है न कमही ग्रहण करना है ।।४।। इन्द्र बोला कि हे दूतो ! इसे शीघ्रही कुबेरके घर ले जाओ वह इस दूबके अंकुरके बराबर सोना तोल देगा ।।५।। गण बोले कि, देवराजकी आज्ञासे दूत उसे कुबेरके घर ले आये ।।६।। कुबेरसे बोले कि, इस पतिव्रताको इन्द्रने मेरे साथ आपके पास भेजा है इस अंकुरके बराबर सोना दे दो ।।७।। हे देव ! मैंने आपके घर पहुंचा दिया, अब मैं जाता हूं आपके लिये नमस्कार है ।। कुबेर बोला कि, बड़े आश्चर्यकी बात है मुनि और आश्रया और इन्द्र ।।८।। मोहके वश हुए यह नहीं जानते कि, दूबपर कितना चढ़ सकता है ।। उस सोनेसे क्या होगा बहुतसा क्यों न मांग लिया ।।९।। ऐसा कहकर कुबेर बहुतसा सुवर्ण देने लगा पर कम ज्यादाकी शंकासे पतिके भयसे न लेसकी ।।१०।। सोने तोलनेके सुनारके कांटेपर दूर्वाङ्कुर रखकर दूसरी ओर अन्दाजका सोना रख दिया पर बराबर न हुआ ।।११।। बनियाकी तराजूपर तोला तो भी

बराबर न हुआ, तेलीकी तराजूपर तोलनेसे भी पूरा न पड़ा ।।१२।। घट बांध उसपर सोना रखा तथा एक ओर दूबका अंकुर रखा तो भी बराबर न हुआ पत्र नीचेही रहा ।।१३।। दूसरी - दूसरी तरह भी उसके बराबर सोना तोला पर दूर्वांकुरके बराबर न हो सका ।।१४।। बड़े पर्वतकी तरह सब खजानेका द्रव्य उसके मुकाबिलेमें चढ़ा दिया पर वह भी उस दूर्वांकुरके बराबर न हुआ ।।१५।। पत्नीको बुला कुबेर कौतुकके साथ बोला कि, आप अगाड़ी घटारोहण करें।।१६।।यदि बराबर न होगा तो मैं अपनें सत्त्वकी रक्षाकेलिये स्वयं चढ़ जाऊंगा पतिव्रता उसकी आज्ञासे घट पर चढ़ गई ।।१७।। जब बराबर न हुआ तो अपनी पुरी लगा दी, आप भी लग गया पर बराबर न हुआ अंकुर ऊंचा न उठा।।१८।।इन्द्र दूतके मुखसे सुन हाथीपर चढ़कर आप चला आया अपने द्रव्यके साथ पलड़ेपर चढ़ गया पर अंकुर ऊंचा न हुआ । झट यह क्या है ?इस चिन्तामें नीचा मुखकर लिया ।।१९।।२०।। उसने तुलापर चढ़ानेके लिये विष्णुभगवान् और शिवको याद किया । वे भी अपन-अपने अपने-अपने नगरके साथ आकर तुलापर चढ़ गये ।।२१।। पर फिर भी वह दूर्वांकुर परिस्फुट ऊंचा न हुआ । यह देख वे सब उससे उतर आये ।।२२।। वरुण, इन्द्र, अग्नि, मरुत्, देव देवर्षिगण, सिद्ध, विद्याधर और नाग सब इस तरह चारों ओरसे कौंडिन्यके पास पहुँचे जैसे सामको पक्षी अपने घोंसलोंपर पहुंचते हैं । उद्विग्न हुए ये सब मुनिको नमस्कार करके बोले कि, ।।२३।।२४।। आपके दर्शनसे हमारे पाप नष्ट हो गये यह हमारे पुण्योंकाही फल है जो आपके दर्शन हुए, अब आपके दर्शनोंसे आगाड़ी भी कल्याण ही होगा ।।२५।। आपकी पत्नीने हम सबका सत्त्व हर लिया, यह प्रत्यक्ष बात है । हम दूर्वांकुरकी महिमा नहीं जानते ।।२६।। एक दूर्वांकुरके बराबर त्रिलोकीको भी नहीं देखते जो कि, आपने भक्तिभावके साथ गणेशजीके शिरपर चढ़ाई थी ।।२७।। भलीभांति दूर्वांकुरकी महिमाको कौन जानता है ? गजाननके ऐकान्तिक भक्त जपी तपी ।।२८।। आपकी महिमाको कौन प्राणी जान सकता है ? मुनिसे ऐसे कहकर गणपतिको पूजा । पीछे सपत्नीकमुनिकी पूजा और स्तुति की पीछे सभी नाचने और गाने लगे ।।२९।। हे देव ! निगमोंसे अज्ञातरूप आपका माहात्म्य ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मरुत्, अग्नि, विवस्वान्, यम, अशेष, कलानिधि, शेष वरुण, चन्द्रमा, आस्विनी कुमार वागीश, गरुड, कुबेर और अंगिरा ये कोई भी विशेष ज्ञानवाले नहीं जानते ।।३०।। वे सब इस प्रकार गजाननको संतुष्ट करके मुनिकी आज्ञा लेकर अपने-अपने घर चले गये ।।३१।। आश्रयाने भी दुर्वांकुरका उत्तम माहात्म्य जान लिया उसे पतिके वाक्योंमें विश्वास हो गया, सह भी दूर्वांकुरोंसे पूजने लगी ।।३२।। सब दूबोंसे सर्व विघ्नेश्वरको पूजकर सत्यवादी पति कौंडिन्यके लिये भी प्रणाम किया ।।३३।। प्रसन्न हो, अपनी निन्दा करती हुई बोली कि, मेरी बराबर कोई दुष्टा स्त्री न होगी, जो मैं आपके वाक्यमें भी संशयमें ही रही।।३४। हे विशेषज्ञोंके स्वामिन् हे विभो ! सब प्राणीमात्रपर दया करनेवाले आपने यह ठीक ही किया ।।३५।। हे प्रभो ! मेरे अपराधको क्षमा करिये, मैं आपकी शरण हूं इसके पीछे प्रातःकाल उठ शीघ्रही दूर्वांकुर लाकर ।।३६।। दोनोंने स्नान किये, पीछे देवकी पूजा करके उनपर दूबके अंकुर चड़ा दिये, वे दोनों दूबका उत्तम माहात्म्य जानकर ।।३७।। सुबह साम निरन्तर गणेशजीपर दूर्वा चढ़ाने लगे और यज्ञ दान तप छोड़ दिये । गजानन देवने यह जानकर ।।३८।। परम कृपासे आविष्ट हो, उन्हें अपना धाम दे दिया । गणे बोले कि, दूर्वाका अगाध माहात्म्य वर्णन कर दिया है ।।३९।। सारेको तो शिव हरिशेष कोई भी नहीं कह सकता क्योंकि, जिसके एक पत्तेके बराबर तीनों लोक नहीं हो सके उसका पूरा माहात्म्य कौन कह सकता है ? ।।४०।। दूर्वा इस स्मरण से ही तीनों तरह के पाप नष्ट हो जाते हैं क्योंकि उसके स्मरण से गणपतिदेवका स्मरण हो जाता है । यह चिन्तामणि क्षेत्रमें स्फुटमहिमा कही है यह श्रवण कीर्तन और ध्यानसे भुक्तिमुक्तिका देनेवाली है ।।४१।।४२।। इसी कारण तीनोंको शुभ यान भेजा था । रासभ और वृषके मुखसे दूब देवपर गई, चाण्डाली शीत मिटानेके लिए तृण भार लाई थी, उससे हवासे उड़कर गणेशजीपर गिर गई ।।४३।। ।।४४।। गणेशजीको दूर्वा प्यारी है ही झट आप सन्तुष्ट हो गये तीनों को निष्पाप करके अपनी सन्निधि दे दी ।।४५।। दूर्वाकी गन्धमात्रसे गणेशजी प्रसन्न हो जाते हैं, प्रसंगसे तो भाव मात्रसेही, फिर शिरपर चढ़ानेकी तो बातही क्या है ? ।।४६।। ब्रह्मा बोले कि न देखी सुनी दूर्वाकी महिमा राजाने दूतके मुखसे सुनी ।।४७।। तब वे स्नानकर दूर्वांकुर लेकर गणेशजीको पूजने लगे, सेवक लोग भी दूर्वासे श्री गणेशजीको पूजने लगे ।।४८।। वे सब सूर्य्यके तेजस्वी दिव्य देह वाले हो गये, दिव्य बाजोंकी अनेक तरहकी ध्वनियोंको सुनते

हुए ।।४९।। दिव्य वस्त्र और अनुलेप किए श्रेष्ठ विमानपर चढ़ गये एवं चिद्रूपधारी हो विनायकके धाममें रहने लगे ।।५०।। नगरनिवासी जन भी उस उत्सवको देखने आये वे भी इक्कीस दूर्वासे पृथक्-पृथक् गणेशजीको पूजकर ।।५१।। अनेक भोगोंको भोग गणेशजीके लोक चले गये । उनके पुण्यपुंजसे विमान भी ऊपरको चला गया ।।५२।। इस कारण गणेशभक्तको दूर्वाओंसे गणेशजीका पूजन करना चाहिये । जो मनुष्य प्रमादवश हो दूर्वाओं से गणेशपूजन नहीं करता ।।५३।। उसे चाण्डाल समझिए । वह बहुतसे नरकोंको पाता है । मनुष्योंको कभी उसका मुख भी न देखना चाहिए ।।५४।। जो दूर्वासे देवदेव गजाननको पूजता है उसके दर्शनसे दूसरे पापी भी शुद्धि पा जाते हैं ।।५५।। (यह फलश्रुति है, तथा बड़ाईमें और विधानमें तात्पर्य्य है । जिन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थोंका अर्थ वाद देखा है उन्हें इससे कोई आश्चर्य नहीं हो सकता) यदि बहुतसी दूब न न मिळे तो एकसे ही पूज दे (जो एक लाख दूबसे गणपतिको पूज दे तो) उसने कोटी गुनी पूजा करदी इसमें सन्देह नहीं है ।।५६।। ब्रह्मा बोला कि, हे राजन् ! मैंने दूबकी महिमा इतिसाहके साथ सुनादी जिसके कि, सुननेसे सब पापोंका नाश हो जाता है ।।५७।। इसे दुष्टबुद्धिको न कहना प्यारे पुत्रको देना । इन्द्र बोला कि, ब्रह्माके मुखसे इस परम उत्तम व्याख्यानको सुनकर परम प्रसन्न होकर आनन्द मानने लगा तथा ब्रह्माजीको प्रणाम की चकित कृतवीर्य्यका पिता ब्रह्माजीकी आज्ञा ले अपने स्थान चला गया ।।५८।।५९।। यह श्रीगणेश पुराणके उपासनाखण्डका दूर्वामाहात्म्य पूरा हुआ इसके साथ पुराणका ६७ वा अध्याय भी पूरा हुआ ।। उद्यापन-देश-कालके अनुसार उद्यापन करे । माघ, कार्तिक, भाद्र, आषाढ़, श्रावण वा दूसरे पवित्र मासोंमें इस व्रतका प्रारंभ करे । दांतुनकरके प्रातःस्नान करे । धौतवस्त्र पहिनकर नित्यकर्म करे, देवपूजागृह अथवा देवालयको गोबरगेरू और मिट्टीसे विधिके साथ लीपकर पांच ब्राह्मणोंके साथ स्वस्तिवाचन करे, सोनेके गणपति सोनेके आसनपर विराजमान करे । उसके आधारके लिये सोनेकी दूर्वा होनी चाहिये । ऐसे गणपतिदेवको ताम्बेके कलशपर स्थापित करे । लाल कपड़ा उढ़ावे, सर्वतोभद्रमंडलपर पूजे, बताये हुए फूल शमी और दूर्वा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मोदक इनस अर्चन करे । पीछे गन्धसे सनी हुई दूर्वासे गणपतिका अर्चन भक्तिके साथ सहस्र वा सौ नामोंसे करे । क्योंकि, संख्यासहित पूजा सफल तथा बिना संख्याकी पूजा निष्फल हुआ करती है । इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके अन्तमें होम करे । आचार्य्यको पहिले तथा पीछे इक्कीस ऋत्विजोंका वरण करे, " गणानांत्वा " इस मंत्रसे दश हजार आहुति दे, अथवा दूर्वा मन्त्रसे दे दे । 'त्वं दूर्वे' यहांसे 'देहित्वमजरामरम्' यहांतक गणपतिके व्रतोंमें कहे गये दूर्वाके मन्त्र हैं ।। स्वाहा अन्तमें लगे सहस्र नाम मन्त्रोंसे, मधु मिश्रित, तिल,लाज, पृथुक, ईखके टुकडे लड्डु, पायस और घृतसे होम हो । पूर्णाहुति करके बलि दान करे, होमशेषको समाप्त करके पीछे ब्राह्मण भोजन करावे, वस्त्र अलंकार और भूषणोंके साथ आचार्य्य को भोजन करावे । इस प्रकार यह लोकोपकारक व्रत ब्रह्माजीने मुझे बताया था ।। मैंने आपको बता दिया, आप पुत्रके लिये सन्मानके साथ करें, जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता है वह वाजपेयके फल पा जाता है, यह लाख दूर्वाओंसे पूजावाले व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ शिवलक्षप्रदक्षिणाविधिः

पुरा तु ऋषयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ।। शौनकाद्या महात्मानः सर्वशास्त्रविशारदाः ।। १ ।। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गङ्गाद्वारमुपागमन् ।। तत्र स्नाताः कृतजपा विधिवद्दत्तदक्षिणाः ।। २ ।। यावत् सुखोपविष्टास्ते हर्षनिर्भरमानसाः ।। तावत्ते ददृशुस्तत्र सूतं शास्त्रार्थकोविदम् ।। ३ ।। ददर्श सोऽपि तांस्तत्र ऋषीन्विगतकल्मषान् ।। ननाम दण्डवद्भक्त्या तैश्चापि प्रतिपूजितः ।। ४ ।। ते चक्रुः परमातिथ्यं कुशलप्रश्नमेव च ।। सुखापविष्टं तं सूतं पप्रच्छुरिदमादरात् ।। ५ ।। ऋषय ऊचुः ।। सूतसूत महाप्राज्ञ चिरं दृष्टोऽसि सुव्रत ।। कस्मिंस्तीर्थेऽथवा देशे कालोऽतिवाहितस्त्वया ।। ६ ।। त्वद्दर्शनेन सौख्यं तु जातं नः परमाद्भुतम् ।। यं विधि

ज्ञातुमिच्छामस्तच्छृणुष्व महामते ।। ७ ।। त्वयोक्ता विविधा धर्मास्तथा नानाविधाः कथाः ।। व्रतानि च विचित्राणि मनोरथकराणि च ।। ८ ।। इदानीं वद देवस्य व्रतं परमपावनम् ।। यत्कृत्वा सर्वसिद्धिः स्यान्नराणां वाञ्छितप्रदा ।। ९ ।। सूत उवाच ।। सम्यक् पृष्टमृषिगणा व्रतं देवस्य चाद्भुतम् ।। ममापि कथितुं हर्षो जायते नात्र संशयः ।। १० ।। कृष्णेन धर्मराजाय कथितं तद्वदामि वः ।। युधिष्ठिर उवाच ।। धर्मा बहुविधाः प्रोक्तास्त्वयानन्तफलप्रदाः ।।११।। इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्रतसंपत्करं शुभम् ।।श्रीकृष्ण उवाच।। शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शिवस्य व्रतमुत्तमम्।।१२।। लक्षप्रदक्षिणानाम यच्च लोके सुदुर्लभम् ।। ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य गुरुदाराव-मर्शिनः ।। १३ ।। अपात्रीकरणान्येवं संकरी (ली) करणानि च ।। प्रकीर्णकानिं चरतोमलिनीकरणानि च ।। १४ ।। भ्रातृपत्नीसुतादीनां गामिनः काममोहतः ।। गुरौ विश्वासहीनस्य व्रतभ्रष्टस्य पापिनः ।। १५ ।। सन्ध्याकर्मविहीनस्य जगद्-ध्रुङ्मार्गवर्तिनः ।। दासीवेश्यासङ्गिनश्च चाण्डालीगामिनस्तथा ।। १६ ।। पर-स्वहारिणश्चापि देवद्रव्यापहारिणः ।। ब्राह्मणद्वेषिणश्चापि वृत्तिच्छेदकरस्य च ।। १७ ।। रहस्यभेदकस्यापि रहस्यकृतपापिनः ।। ब्रह्मयज्ञविहीनस्य दुःशास्त्रनिर-तस्य च ।। १८ ।। गुरुनिन्दादिश्रोतुश्च गुरुद्रव्यापहारिणः ।। सद्यः शुद्धिकरं ह्येतज्जानीहि त्वं युधिष्ठिर ।। १९ ।। ब्रह्महत्यादि पापानां प्रायश्चित्तं यदीच्छसि ।। लक्ष प्रदक्षिणानाम व्रतं कुर्यान्महीपते ।। २० ।। वर्धनं सर्वभूतीनां सदा विजय-कारणम् ।। किमेभिर्बहुभिर्वाक्यैः कथितैश्च पुनः पुनः २१ ।। दारिद्रनाशनं पुण्यं सर्वैश्वर्यप्रदं शिवम् ।। दुर्लभं सर्वमर्त्यानां पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।। २२ ।। यो यान् प्रार्थयते कामान्स तानाप्नोति मानवः ।। ऋषय ऊचुः ।। सूतसूत महाभाग वेद-विद्याविशारद ।। २३ ।। यथा प्रदक्षिणाः कार्या मनुजैस्तद्विधिं वद ।। सूत उवाच ।। एकमेव पुरा पृष्टो भगवान् शिवया शिवः ।।२४।। यमब्रवीन्मुनिश्रेष्ठाः शृण्वन्तु विधिमुत्तमम् ।। देव्युवाच ।। भगवन् देवदेवेश प्रदक्षिणविधिं वद ।। २५ ।। कृतेन येन मनुजो निष्पापः पुण्यवान् भवेत् ।। श्रीमहादेव उवाच ।। श्रावणे माधवे वोर्जे माघे नियमपूर्वकम् ।। २६ ।। लिंगप्रदक्षिणाः कुर्याच्छ्रद्धया विधिपूर्विकाः ।। श्रीदेव्युवाच ।। प्रदक्षिणासु लिंगस्य नियमाः के भवन्ति तान् ।। २७ ।। वदस्व देवदेवेश विश्वनाथ कृपानिधे ।। शिव उवाच ।। प्रतिग्रहं परान्नं च परदारा-भिभाषणम् ।। २८ ।। परस्वग्रहणं स्नेहादसद्वार्तां च वर्जयेत् ।। असतां पापिनां संगं न कुर्यात्प्रयतो नरः ।। २९ ।। असत्समागमात्सर्वं निष्फलं जायते नृणाम् ।। मम द्रोहकरैः साकं न व्रजेद्विष्णुनिन्दकैः ।। ३० ।। परापवादं नो कुर्यात्परद्रोहं न

कारयेत् ।। निन्दां च गुरुशास्त्राणां शिवधर्मरतात्मनाम् ।। ३१ ।। तीर्थलिंगतपोनिन्दां न कुर्यात्तु कदाचन ।। ब्रह्महत्यादिपापानां प्रायश्चित्तमिदं परम् ।। ३२ ।। शिवलिंगे महादेवि ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणाः ।। अनन्तकोटिगुणितं तेषां पुण्यं न संशयः ।। ३३ ।। शिवापतेः प्रत्यहं च पूजा कार्या प्रयत्नतः ।। उमे सम्यक्पूजनेन सिद्धिर्भवति नान्यथा ।। ३४ ।। एवं यः कुरुते मर्त्यो व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।। ३५ ।। लक्षं समाप्य पश्चात्तु कुर्यादुद्यापनं व्रती ।। व्रतपूर्त्यै तु विधिवच्छुभे मासे शुभे दिने ।। ३६ ।। देव्युवाच ।। व्रतस्योद्यापनं कर्म कथं कार्यं च मानवैः ।। को विधिः कानि द्रव्याणि कथयस्व मम प्रभो ।। ३७ ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु भद्रे प्रयत्नेन लोकानां हितकाम्यया ।। उद्यापनविधिं चैव कथयामि तवाग्रतः ।। ३८ ।। यदा संजायते वित्तं भक्तिः श्रद्धासमन्विता ।। स एव व्रतकालश्च यतोऽनित्यं हि जीवितम् ।। ३९ ।। कामक्रोधाहंकारद्वेषपैशुन्यवर्जितः ।। संपाद्य सर्वसंभारान्मण्डपं कारयेच्छुभम् ।। ४० ।। प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुर्वन्नुद्यापनं बुधः ।। मासं तिथ्यादि संकीर्त्य संकल्पं कारयेत्ततः ।। ४१ ।। पुण्याहवाचनं कृत्वा वेदवेदाङ्गपारगम् ।। आचार्यं वरयेत्पूर्वमृत्विग्भी रुद्रसंख्यकैः ।। ४२ ।। देवागारे तथा गोष्ठे शुद्धे वा स्वीयमन्दिरे ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पट्टकूलादिवेष्टिताम् ।। ४३ ।। तन्मध्ये लिङ्गतोभद्रं रचयेल्लक्षणान्वितम् ।। अव्रणं सजलं कुम्भं तस्योपरि तु विन्यसेत् ।। ४४ ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं मृन्मयं वा स्वशक्तितः ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं वैणवमृन्मयम् ।। ४५ ।। कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् ।। तयोर्मूर्तिं स्वर्णमयीं विधाय वृषभे स्थिताम् ।। ४६ ।। ब्राह्मणं दक्षिणे भागे सावित्र्या सह सुप्रभम् ।। कौबेर्यां स्थापयेद्विष्णुं लक्ष्म्या सह गरुत्मता ।। ४७ ।। महेशं स्थापयेन्मध्ये शिवावृषसमन्वितम् ।। ततः पूजां विनिर्वर्त्य महासंभारविस्तरैः ।। ४८ ।। परमान्नं च नैवेद्यं भक्त्या देवाय दापयेत् ।। उपोष्य जागरं कुर्याद्रात्रौ सत्कथया मुदा ।। ४९ ।। ततः प्रभातसमये स्नात्वा शुद्धे जले शुचिः ।। मृदा च स्थण्डिलं कार्यं कुर्यादग्निमुखं ततः ।। ५० ।। प्रदक्षिणादशांशेन हवनं कारयेद्व्रती ।। हवनस्य दशांशेन तर्पणं कारयेत्ततः ।। ५१ ।। तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कारयेत्ततः ।। प्रदक्षिणाशतांशेन ब्राह्मणान्भोजयेत्सुधीः ।। ५२ ।। स्वशाखोक्तेन विधिना होमयेद्रुद्रमन्त्रकैः ।। मूलमन्त्रेण गायत्र्या शम्भोः सहस्रनामभिः ।। ५३ ।। पलाशस्य समिद्भिश्च यवव्रीहितिलाज्यकैः ।। पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्कृत्वा स्विष्टकृदादिकम् ।। ५४ ।। होमान्ते च गुरुं पूज्य सपत्नीकं समाहितः ।। प्रतिमां कुम्भसहितामाचार्याय निवेदयेत् ।। ५५ ।। शम्भो प्रसीद देवेश सर्वलोकेश्वर प्रभो ।। तव रूपप्रदानेन मम सन्तु

मनोरथाः ।। ५६ ।। यद्भक्त्या देवदेवेश मया व्रतमिदं कृतम् ।। न्यूनं वाथ क्रियाहीनं परिपूर्णं तदस्तु मे ।। ५७ ।। अनेनैव विधानेन य इदं व्रतमाचरेत् ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।। ५८ ।। इह लोके सुखीभूत्वा भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।। अन्ते विमानमारुह्य शिवलोकं स गच्छति ।। ५९ ।। सूत उवाच ।। इति वः कथितं विप्राः शिवोक्तं व्रतमुत्तमम् ।। प्रदक्षिणात्मकं सम्यक्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छत ।। ६० ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे शिवप्रदक्षिणाव्रतोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

शिवजीकी लाख प्रदक्षिणाओंकी विधि—पहिले नैमिषारण्यमें रहनेवाले सब शौनकादिक ऋषि तथा सभी शास्त्रोंके जाननेवाले महात्मा तीर्थयात्राके प्रसंगसे गंगाद्वारपर पहुंचे वहां विधिके साथ स्नान जप करके दक्षिणादी ।।१।।२।। जबतक वे अपने कृत्यसे निवृत्त होकर आनन्दके साथ थोड़े बैठे थे कि, इतनेमें सभी शास्त्रोंके पंडित सूतजी उनकी दृष्टिमें आ गये ।।३।। उन्होंने भी वहां निष्पाप शान्त ऋषि मंडलीको देखा, दण्डकी तरह भूमिमें प्रणाम की ऋषियोंने भी सूतजीका आदर सत्कार किया ।।४।। ऋषियोंने सूतजीका बड़ा भारी आतिथ्य किया तथा राजीखुशीकी पूछी पीछे सुखपूर्वक बिठा सन्मानके साथ पूछने लगे ।।५।। ऋषि बोले कि, हे सुव्रत ! महाभाग सूत ! बहुत दिनोंमें दीख पड़े; कौनसे देशमें या किस पुण्यतीर्थपर आपने इतना समय व्यतीत किया ।।६।। आपके देखतेही अद्भुत आनन्द तो हमें हो गया है, पर हे महामते ! हम जिस विधिको जानना चाहते हैं उसे सुनाइये ।।७।। आपने अनेक तरहके धर्म तथा अनेक तरहकी कथाएं कही हैं, मनोरथोंको पूरी करनेवाली बड़ी-बड़ी विचित्र व्रतचर्य्या भी कही हैं ।।८।। इस समय देवदेवका परम पवित्र व्रत कहिये, जिसके कियेसे मनुष्योंको सब मनोकामना मिल जाती हैं ।।९।। सूतजी बोले कि, हे ऋषि गणो ! अच्छा शिवजी महाराजका उत्तम व्रत पूछा, मुझे भी कहनेके लिये हर्ष हो रहा है इसमें संदेह नहीं है ।।१०।। कृष्णजीने जो धर्मराजके लिये कहा था उसे मैं आप लोगोंको सुनता हूं । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे कृष्ण ! आपने अनन्त फलके देनेवाले बहुतसे धर्म कहे हैं ।।११।। इस समय सब संपत्तियोंके करनेवाले शुभ व्रतको सुनना चाहता हूं । श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! सुनो, मैं शिवका उत्तम व्रत कहता हूं ।।१२।। उसका लक्ष प्रदक्षिणा नाम है । यह संसारमें कठिन है, ब्रह्महत्यारा, शराबी, गुरुपत्नी गामी ।।१३।। अपात्रीकरण, संकरीकरण, प्रकीर्ण, चरतोमलिनीकरण (रास्तेमें चलती हुई स्त्री आदिको बिगाड़ना) इस पापोंके पापी ।।१४।। काम मोहसे भ्राताकी पत्नी तथा सुखादिकोंके साथ गमन करनेवाले, गुरुमें विश्वासविहीन, व्रतभ्रष्ट, पापी ।।१५।। कर्महीन, संसारसे वैर करनेवाले, दासी और वेश्याओंके साथ सहवास करनेवाले, चंडालीके साथ गमन करनेवाले ।।१६।। दूसरेके धनका हरण करनेवाले, देव द्रव्यको हरनेवाले ब्राह्मणोंके साथ वैर करनेवाले, वृत्तिका छेद करनेवाले ।।१७।। रहस्यका भेदकरनेवाले, छिपकर पाप करनेवाले, ब्रह्मयज्ञके विघ्नमें लगे रहनेवाले, बुरे शास्त्रोंमें लगे रहनेवाले ।।१८।। गुरुकी निन्दा आदि सुननेवाले, गुरुका द्रव्य हरनेवाले, इन सब पापियोंको हे युधिष्ठिर ! यह व्रत शीघ्रही शुद्ध कर देता है ।।१९।। ब्रह्महत्यादिक पापोंका यदि आप प्रायश्चित करना चाहते हो तो यह लक्ष प्रदक्षिणा व्रत कर डालिये ।।२०।। यह सब विभूतियोंका बढ़ानेवाला तथा सदाही जीतका कारण है । इन बहुतसे वाक्योंके वारंवार कहनेसे भी क्या प्रयोजन है ? ।।२१।। यह दारिद्रय नाशक, पवित्र, सभी ऐश्वर्य्योंका देनेवाला कल्याणकारी पुत्रपौत्रोंका बढ़ानेवाला है । सभी मनुष्योंको मिलना कठिन है ।।२२।। जो मनुष्य जिस कामको चाहता है वह काम उसे मिल जाता है । ऋषि बोले कि, हे सूत-सूत ! हे महाभाग ! हे ब्रह्मविद्याके जाननेवाले ! ।।२३।। जिस तरह मनुष्योंको प्रदक्षिणा करनी चाहिये उस विधिको कहो । सूत जी बोले कि, पहिले इसी तरह पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा था ।।२४।। जिस विधिको शिवजीने कहा था हे मुनिश्रेष्ठो ! उस उत्तम विधिको सुनो । देवी बोली कि, हे देवदेवेश भगवन् ! प्रदक्षिणाकी विधि कहिये ।।२५।। जिसके कियेसे मनुष्य निष्पाप और पुण्यवान् हो जाता

है । श्रीमहादेव बोले कि, श्रावण, वैशाख, कार्तिक और माघमें नियमके साथ ।।२६।। श्रद्धा और विधिसे लिंगकी प्रदक्षिणा करे, श्री देवी बोली कि लिंगकी प्रदक्षिणामें कौन-कौन से नियम होते हैं उन्हें ।।२७।। हे देवेश ! हे दयानिधे ! हे विश्वनाथ ! मुझे सुना दीजिये ! शिव बोले कि, प्रतिग्रह, परान्न, दूसरेकी स्त्रीके साथ भाषण ।।२८।। दूसरेका धन लेना, प्रेममें झूठी बातें बोलना, असज्जन, और पापियोंका संग इन कामोंको न करे ।।२९।। क्योंकि बुरे साथोंसे मनुष्योंको सब निष्फल हो जाता है । मेरे और विष्णुके निन्दक वैर करनेवालोंके साथ न जाय ।।३०।। परापवाद और दूसरेकी बुराई न करे शिवके धर्मोंमें लगे हुए गुरु और शास्त्रोंकी निन्दा न करे, ।।३१।। तीर्थके लिंग और तपकी निन्दा कभी न करे यह ब्रह्महत्या आदि पापोंका सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ।।३२।। हे महादेवि ! शिवलिंगमें जो प्रदक्षिणा करता है, उन्हें अनन्त कोटि गुना पुण्य होता है । इसमें सन्देह नहीं है ।।३३।। शिवजीकी पूजा प्रयत्नके साथ करे । हे उमे ! अच्छी तरह पूजा करनेसे ही सिद्धि होती है । दूसरी तरह नहीं होती ।।३४।। जो मनुष्य इस प्रकार इस दुर्लभ व्रतको करता है उसे निश्चयही वे काम मिल जाते हैं जो उन्हें चाहता है ।।३५।। लक्षकी समाप्ति करके पीछे शुभ मास और शुभदिन में विधिपूर्वक उद्यापन करे शुभ व्रतकी पूर्तिके लिये करे ।।३६।। देवी पूछने लगी कि, मनुष्योंको व्रतका उद्यापन कैसे करना चाहिये, उसकी विधि क्या है ? द्रव्य कौन हैं ?।।३७।। ईश्वर बोले कि, हे भद्रे ! प्रयत्नके साथ सुन संसारकी हितकामनाके लिये मैं सुनाता हूं मैं उद्यापनकी विधि करता हूं ।।३८।। जब श्रद्धा भक्ति और धन हो वही उद्यापनका समय है क्योंकि जीवनका क्या भरोसा है ? ।।३९।। काम क्रोधादिक अहंकार , द्वेष और पैशुन्य इनको छोड़ सब सामानको इकट्ठा करके मंडप बनवावे ।।४०।। प्रातःस्नान करे । पवित्र हो उद्यापन करे । मास तिथि आदि कहकर संकल्प करे ।।४१।। पुण्याहवाचन करावे वेद-वेदान्तके जाननेवाले आचार्यका वरण करे तथा ग्यारह ऋत्विजोंको भी वरे ।।४२।। देवागार शुद्ध गोष्ट अथवा अपने मंदिरमें फूलोंकी मंडपिका बनावे । उसे पट्टकूलसे वेष्टित करे ।।४३।। उसमें लाक्षणिक लिंगतो भद्रमण्डल बनावे, उसपर अव्रण कलश स्थापित करे।।४४।।वह सोने, चांदी, तांबा या मिट्टीका हो, उसपर मिट्टी या बांसका पात्र रखे ।।४५।। कुंभपर उमासहित शिवकी स्थापना करे सोनेकी मूर्ति वृषभपर बैठी हुई हो ।।४६।। दक्षिणमें सावित्रीसहित ब्रह्मा तथा उत्तरमें लक्ष्मी और गरुड़के साथ विष्णु भगवान्, बीचमें शिवा और वृषके साथ महेशको स्थापित करे । पीछे बहुतसे संभारोंके विस्तारसे पूजा करे ।।४७।।४८।। भक्तिपूर्वक परमान्नका नैवेद्य देवको दे, उपवास करे । रातको अच्छी कथाओंके साथ आनन्दके साथ जागरण करे ।।४९।। प्रभातमें शुद्धपानीमें स्नान करके पवित्र होजाय, मिट्टीका स्थंडिल बनाकर अग्निमुख करे ।।५०।। प्रदक्षिणाका दशवां हिस्सा हवन करावे, हवनका दशवां हिस्सा तर्पण करे, तर्पणका दशवां हिस्सा मार्जन करना चाहिये । प्रदक्षिणाका सौवां हिस्सा ब्राह्मण भोजन करावे ।।५१।।५२।। रुद्रके मन्त्रोंसे अपनी शाखाके विधानके अनुसार हवन करे । वह मन्त्र चाहे मूलमन्त्र या शिवगायत्री वा शिवसहस्रनाम हो ।।५३।। पलाशकी समिध, यव, व्रीहि, तिल और आज्यका हव्य हो पूर्णाहुति और स्विष्टकृत् आदि करे ।।५४।। होमके अन्तमें समाहित हो, सपत्नीक गुरुका पूजन करे । कुंभसहित प्रतिमा आचार्यको दे दे ।।५५।। हे शंभो ! हे देवेश ! हे सब लोकोंके ईश्वर ! प्रसन्न हो जा । आपकी प्रतिमा देनेसे मेरे सब मनोरथ पूरे हो जायें ।।५६।। हे देव ! जो मैंने यह भक्तिके साथ व्रत किया है, यह पूर्ण अपूर्ण कैसा भी हुआ हो पूरा हो जाय ।।५७।। जो इस विधिसे इस व्रतको करता है, वह जो चाहता है, वह पा जाता है ।।२८।। यहां मन चाहे भोगोंको भोग, अन्तमें विमानपर बैठकर शिवलोकको चला जाता है ।।५९।। सूत बोले कि, हे विप्रो ! मैंने शिवका कहा हुआ उत्तम लक्ष प्रदक्षिणाव्रत आपको सुन दिया है अब आप दूसरा क्या सुनना चाहते हो ? ।।६०।। यह श्री स्कन्दपुराणका कहा हुआ शिव प्रदक्षिणा व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।

अथाश्वत्थप्रदक्षिणाविधिः

पिप्पलाद्युवाच ।। भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।। स्त्रीणां पुत्रविहीनानां नराणां सुखसंपदाम् ।। उपायं चैव मे ब्रूहि सुतसिद्धिः कथं भवेत् ।। अथर्वण उवाच ।। पुरा ब्रह्मादयो देवाः सर्वे विष्णुं समाश्रिताः ।। अपृच्छन्देवदेवशं राक्षसैः पीडिता वयम् ।। कथं भवेच्च तच्छान्तिरस्माकं वद निश्चितम् ।। विष्णुरुवाच ।। अहमश्वत्थरूपेण संभवामि च भूतले ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुरुध्वं तरुसेवनम् ।। तेन सर्वाणि भद्राणि भविष्यन्ति न संशयः ।। अथर्वण उवाच ।। विष्णुर्यदुक्तवांस्तेभ्यस्तद्व्रतं ते वदाम्यहम् ।। न दानैर्न तपोभिश्च नाध्वरैर्भूरिदक्षिणैः ।। अश्वत्थसेवनादन्यत् कलौ नास्त्यपरा क्रिया ।। तद्विधानं निमित्तानि संख्याक्लृप्तिश्च पूजनम् ।। हवनं तर्पणं विप्रभोजनं नियमं तथा ।। व्रताधिकारिणस्तत्र विधानं च विशेषतः ।। एतत्सर्वं पिप्पलादिन् वक्ष्यामि तव सुव्रत ।। दारुणो विविधोत्पातो दिव्यभौमान्तरिक्षजः ।। परचक्रभयं देशविप्लवो देशविग्रहः ।। दुस्वप्नो दुर्निमित्तं च संग्रामोऽद्भुतदर्शनः ।। मारीभयं राजभयं तथा चौराग्निजं भयम् ।। क्षयापस्मारकुष्ठाद्याः प्रमेहो विषमज्वरः ।। उदरं मूत्रकृच्छ्रं च ग्रहपीडास्तथैव च ।। अन्ये चानुक्तरोगा ये व्रणरोगास्तथैव च ।। एतेषां च विनाशाय कुर्यादश्वत्थसेवनम् ।। प्रातरुत्थाय नद्यादौ स्नात्वा सम्यक्कृतक्रियः ।। अश्वत्थदेशमाश्रित्य गोमयनोपलेपयेत् ।। तमश्वत्थलंकृत्य सूत्रेण गैरिकादिना ।। पूजाद्रव्याणि सम्पाद्य पुण्याहं वाचयेत्तथा ।। ऋत्विजां वरणं कृत्वा ततः पूजां समाचरेत् ।। आदावाराधयेद्विष्णुं ध्यानावाहनपूर्वकम् ।। तथैव पिप्पलतरुं नारायणमयं द्विज ।। श्वेतगन्धाक्षतैः पुष्पैर्धूपदीपैर्निवेदनैः ।। अर्चयेत्पुरुषसूक्तेन तथैव ध्यानपूर्वकम् ।। तेनैव हवनं कुर्यात्तर्पणं वा नमस्क्रियाम् ।। श्वेतवस्त्रं सलक्ष्मीकं चिन्तयेत्पुरुषोत्तमम् ।। ततोऽश्वत्थमभिमन्त्र्य ।। आरात्त इत्यस्याग्निकाण्डान्तःपातित्वादग्निर्ऋषिः । वनस्पतिर्देवता ।। अनुष्टुप्छन्दः । वनस्पत्यभिमन्त्रणे विनियोगः ।। आरात्ते अग्निरस्तुत्वारात्परशुरस्तु ते ।। निवाते त्वामिवर्षन्तु स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते ।। अक्षिस्पन्दं भुजस्पन्दं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।। शत्रूणां च समुत्पन्नमश्वत्थ शमयस्व मे ।। ततः प्रदक्षिणा : कुर्यात्तत्सर्वं सफलं भवेत् ।। लक्षमेकं द्विलक्षं वा त्रिचतुःपञ्चलक्षकम् ।। कार्यस्व गौरवं ज्ञात्वा द्वादशान्तं समाचरेत् ।। ब्रह्मचारी हविष्याशी ह्यधःशायी जितेन्द्रियः ।। मौनी ध्यानपरो भूत्वा पिप्पलस्य स्तुतिं पठेत् ।। विष्णोर्नामसहस्रं च पौरुषं वैष्णवं तथा ।। एवं

१ इतआरभ्य रामयस्व मे इत्यन्तो ग्रन्थ एकस्मिन्व्रतार्के वर्तते । २ शत्रुसम्बन्धिसमुत्पन्नं भयमित्यर्थः । ३ व्रतार्कपुस्तकेषु एतदग्रे वेदत्रयस्य पुण्यानि सूक्तानि च पठेत्पुनः ।। ततो लक्षदशांशेन सघृतं पायसं चरुम् ।। जुहुयात्प्रत्यूचं वह्नौ स्वगृह्योक्तविधानतः ।। तत्संख्य तर्पणं च कुर्याद्यत्नेन वारिणा ।। उक्तैः षोडशऋत्विग्भिरित्येतावानेव पाठो दृश्यते ।। एवमित्यारभ्य तत्परइत्यन्तो ग्रन्थस्तु नोपलभ्यते ।

सम्पाद्यविधिवच्छुभे मासे शुभे दिने ।। प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। गणेशपूजनं स्वस्तिवाच्य नान्दीं च कारयेत् ।। आचार्यं वरयेत्पश्चात्सर्व-लक्षणसंयुतम् ।। देवागारे तथा गोष्ठे अश्वत्थे स्वीयमन्दिरे ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पट्टकूलादिवेष्टिताम् ।। तन्मध्ये सर्वतोभद्रं रचयेल्लक्षणान्वितम् ।। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं सजलं वस्त्रसंयुतम् ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रमृन्मयवैणवम् ।। अष्टपत्रान्वितं पद्मं कर्णिकाभिः समन्वितम् ।। पञ्चकृष्णलकादूर्ध्वं सुवर्णपरि-निर्मिताम् ।। लक्ष्मीनारायणीं मूर्त्तिमश्वत्थेन समन्विताम् ।। स्थापयेत्पद्ममध्ये तु ब्रह्माद्यावाहनं ततः ।। ततः पूजां विनिर्वर्त्य महासम्भारविस्तरैः ।। परमान्नं च नैवेद्यं भक्त्या देवाय दापयेत् ।। उपोष्य जागरं कुर्याद्रात्रौ सत्कथया मुदा ।। ततः प्रभातसमये स्नात्वा शुद्धे जले शुचिः ।। मृदा च स्थण्डिलं कार्यं कुर्यादग्निमुखं ततः । कृतलक्षदशांशेन हवनं कारयेद्व्रती । हवनस्य दशांशेन तर्पणं कारयेत्ततः ।। पुरुषसूक्तेन समितस्तिलाज्यं पायसं तथा ।। स्वशाखोक्तेन विधिना जुहुया-द्विष्णुतत्परः ।। उक्तैः षोडशऋत्विग्भिः कुर्याद्धोमं यथाविधि ।। हवनस्य दशांशेन मिष्टान्नं भोजयेद्द्विजान् ।। ब्रा[1]ह्मणानां स्वयं कुर्याद्यथोक्तं नियमं तथा ।। असा-मर्थ्ये स्वयं कर्तुं सर्वमन्येन कारयेत् ।। उक्तप्रमाणादधिकं फलं दशगुणं भवेत् ।। ततश्च[2]तुर्गुणं पीठं राजतं चतुरस्रकम् ।। उपरि द्रोणमर्धं वा तिलान् परिवनिः क्षिपेत् ।। श्वेतवस्त्रेण सञ्छाद्य पूर्ववत्पूजयेत्तरुम् ।। दरिद्राय सुशीलाय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।। उदङ्मुखाय विप्राय स्वयं पूर्वमुखस्थितः ।। सुवर्णवृक्षराजं च मन्त्रेण प्रतिपादयेत् ।। इह जन्मनि वान्यस्मिन्बाल्ययौवनवार्धके ।। मनोवाक्कायजैर्दोषै-र्मुच्यते नात्र संशयः ।। एवं कृत्वा व्रती सम्यग्व्रतस्य परिपूर्तये ।। हेमाश्वत्थतरुं दद्याच्छुक्लां गां च पयस्विनीम् ।। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। हेम्नाश्व-त्थतरुं कुर्यात्स्कन्धशाखासमन्वितम् ।। अश्वत्थ वृक्षराजेन्द्र ह्यग्निगर्भस्त्वमेव हि ।। प्रभुर्वनस्पतीनां च पूर्वजन्मनि मत्कृतम् ।। अघौघं नाशयः क्षिप्रं तव रूपप्रदानतः ।। अमुं तरुं गृहाण त्वं विष्णुरूप द्विजोत्तम ।। स्वीकृत्य दुष्करं घोरं क्षिप्रं शान्तिं प्रयच्छ मे ।। एवं व्रतं यः कुरुते पुत्रपौत्रप्रवर्धकम् ।। भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान्विष्णुसा-युज्यमाप्नुयात् ।। इत्यद्भुतसारे अश्वत्थप्रदक्षिणाव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।। अथ प्रसङ्गात् विष्णोरश्वत्थरूपेणाविर्भावकारणमश्वत्थस्य लक्षप्रदक्षिणादिकरणं विधानं च कार्तिकमाहात्म्ये—ऋषय ऊचुः ।। पलाशत्वं कथं जातं ब्रह्मणः शंकरस्य च ।। वटत्वं च तथा विष्णोः पिप्पलत्वं ब्रुवन्तु तत् ।। १ ।। वालखिल्या ऊचुः ।। ब्रह्मणा

---

१ ब्राह्मणैर्यथोक्तं नियमं स्वयं कुर्यादित्यर्थः । २ अश्वत्थापेक्षया ।

तु पुरा सृष्टाः सर्वे देवाः सवासवाः ।। मिलित्वा सर्व एवैते ब्रह्माणं वाक्यमब्रुवन् ।। २ ।। ब्रह्मन्सर्वाधिको रुद्रः सर्ववेदेषु पठ्यते ।। कर्तुं तद्दर्शनं देव गच्छामो भवता सह ।। ३ ।। इतीन्द्रादिवचः श्रुत्वा सर्वदेवपुरोगमः ।। ब्रह्मा कैलासमगमन्नाना-देवसमावृतः ।। ४ ।। शिवद्वारं समासाद्य देवाः सर्वेऽपि संस्थिताः ।। न दृश्यते द्वारपालः शिवश्चाभ्यन्तरे स्थितः ।। ५ ।। गन्तव्यं वा न गन्तव्यमस्माभिः शिव-संनिधौ ।। परावृत्याथ वा स्वस्य स्थानं गन्तव्यमेव वा ।। ६ ।। एवं चिन्तयमानै-नैस्तैनारदो मुनिसत्तमः ।। पुरो दृष्टो देववृन्दैस्तमूचु प्रणताश्च ते ।। ७ ।। देवा ऊचुः ।। मुने वेदविदां श्रेष्ठ ब्रूहि प्रश्नं सुशोभनम् ।। किं करोति महादेवो गन्तव्यं वा न वान्तरे ।। ८ ।। नारद उवाच ।। चन्द्रनाशदशायां तु देवाः संप्रस्थिता गृहात् ।। तस्मात्कश्चिन्महाविघ्नो भवतां संभविष्यति ।। ९ ।। किं करोति शिव-श्चेति प्रश्नो ह्यन्ते तथा विधोः ।। तस्मात्संभोगकार्ये च वर्तते त्रिपुरान्तकः ।। १० ।। इन्द्र उवाच ।। सर्वेषामेव दुःखानां नाशकर्ता दिवस्पतिः ।। मय्यागते कथं नाशो देवतानां भविष्यति ।। ११ ।। विभीषणाय देवानां वल्गनं कुरुते मुनिः ।। इतीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा व्याकुलोऽभून्मुनिस्तदा ।। १२ ।। कथं मद्वचनं सत्यं भविष्य-त्यद्य वज्रिणि ।। अद्य मद्वचनं सत्यं यदि शीघ्रं भविष्यति ।। १३ ।। राधादामोदर-मुदे करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।। एवं सञ्चिन्त्य मनसा तूष्णींभूतो मुनीश्वरः ।। १४ ।। इन्द्रो विचारयन्देवैः किमिदानीं विधीयताम् ।। ततो वज्री ह्युवाचेदं वह्ने मद्वचनं शृणु ।। १५ ।। गृहीत्वा विप्ररूपं त्वं शिवस्याभ्यन्तरं विश ।। यदि प्रसङ्गोऽस्त्य-स्माकं तदा वार्ता निगद्यताम् ।। १६ ।। यदि नास्ति प्रसङ्गश्चेद्याचकत्वेन याचहि ।। अवध्यत्वादताड्यत्वाद्भिक्षुकत्वेन तद्व्रज ।। १७ ।। इति देवेन्द्रवचनं श्रुत्वा वह्नि-स्तथाकरोत् ।। अभ्यन्तरे ददर्शेशं शिवया सह संगतम् ।। १८ ।। शिवयापि च दृष्टः स लज्जिता भोगमत्यजत् ।। कोऽसि कोऽसीति संपृष्टो भिक्षुकोऽहं क्षुदा युतः ।। १९ ।। वृद्धोऽस्म्यन्धोऽस्मि दीनोऽस्मि भोजनं मम दीयताम् ।। तेनादृष्टमिति ज्ञात्वा पार्वती तमभोजयत् ।। २० ।। सोऽपि भुक्त्वा समाचार वक्तुं संप्रस्थितो बहिः ।। तस्मिन्नेव क्षणे गुप्तो नारदः पार्वतीं ययौ ।। २१ ।। शिरो निधाय पार्वत्याः-पादयोः स रुरोद ह ।। अहो बालक किं जातं तच्छीघ्रं मेऽभिधीयताम् ।। २२ ।। करोमि निष्कृतिं तस्य साध्यासाध्यस्य नान्यथा ।। मातर्वक्तुं न शक्नोमि ह्युपहा-सस्य कारणम् ।। २३ ।। कृतं तथेन्द्रादिदेवैस्तथा कोऽन्यः करिष्यति ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः पुनरपृच्छत ।। २४ ।। मुद्रयित्वा ततो नेत्रे कराभ्यां स मुनीश्वरः ।। उवाच वचनं नीचमुखोऽसौ गद्गदाक्षरम् ।। २५ ।। नारद उवाच ।। इन्द्रोऽयं युवयोर्भोगं देवताभ्यो ह्यदर्शयत् ।। युवयोश्च कृता निन्दा तां श्रुत्वा दुःखितोऽ-

स्म्यहम् ।। २६ ।। भोगविच्छित्तये वह्निः प्रेषितो द्विजरूपकः।। अथवा किमनेनापि कथनेन ममाम्बिके ।। २७ ।। जगन्मातासि देवि त्वं का ते स्यादुपहास्यता ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा पार्वती क्रुद्धमानसा ।। २८ ।। स्फुरदोष्ठा रक्तनेत्रा दृष्ट्वा तां नारदो ययौ ।। गत्वा देवानुवाचेदं सम्भोगाद्विरतो हरः ।। २९ ।। आगम्यतां दर्शनार्थं 'दूरतोऽसौविलोकितः ।। वह्नेर्मुनेर्वचः श्रुत्वा देवेन्द्रः सगणो ययौ ।। ३० ।। प्रणिपत्य महादेवं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ।। दृष्टा तथाविधं शक्रं पार्वती वाक्यमब्रवीत ।। ३१ ।। अहल्याजार दुष्टात्मन् सहस्रभग वासव ।। उपहासः कृतो मेऽद्य फलं तस्यमवाप्नुहि ।। ३२ ।। यावन्त्यः सन्ति देवानां ज्ञातयः सर्व एव ते ।। अजातस्तः स्त्रीसुखानि शाखिनः सन्तु सस्त्रियः ।। ३३ ।। इति देवीवचः श्रुत्वा कम्पिताः सर्वदेवताः ।। ब्रह्माविष्णुमहेशाद्यास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ।। ३४ ।। ततो देवी प्रसन्नाभद्देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ।। देवा मद्वचनं मिथ्या त्रिकालेऽपि न जायते ।। ३५ ।। तस्मादेकांशतो वृक्ष यूयं सर्वे भवन्तु वै ।। इति देव्या वचः श्रुत्वा जाता देवास्तु पादपाः ।। ३६ ।। अश्वत्थरूपी भगवान्वटरूपी सदाशिवः ।। पलाशोऽभूद्विधाता च वज्री शक्रो बभूव ह ।। ३७ ।। इन्द्राणी सा लता जाता देवनार्यो लतास्तथा ।। मालत्याद्याः पुष्पयुक्ता उर्वश्याद्यप्सरोऽभवन् ।। ३८ ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वदाश्वत्थमर्चयेत् ।। नारी वा पुरुषो वापि लक्षं कुर्यात्प्रदक्षिणाः ।। ३९ ।। राधादामोदरौ पूज्यौ मन्दवारे च तत्तले ।। दम्पती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ ।। ४० ।। भावयित्वा सपत्नीकान् पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यता ।। वन्ध्यापि लभते पुत्रमितरासां तु का कथा ।। ४१ ।। मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।। अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमोनमः ।। ४२ ।। विष्णोश्च प्रतिमाभावे कीर्तनं जगदीशितुः ।। अश्वत्थमूले कर्तव्यं विष्णोराराधनं परम् ।। ४३ ।। सदा सन्निहितो विष्णुर्द्विपात्सु ब्राह्मणे तथा ।। पादपेषु च बोधिद्रौ शालग्रामशिलासु च ।। ४४ ।। अश्वत्थपूजास्पर्शेन कर्तव्या शनिवासरे ।। अन्यवारेऽश्वत्थसङ्गाद्दरिद्रो जायते नरः ।। ४५ ।। इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये विष्णोरश्वत्थत्वप्राप्तिकारणमश्वत्थलक्षप्रदक्षिणाविधानं च समाप्तम् ।।

पीपलकी प्रदक्षिणाओंकी विधि—पिप्पलादी बोले कि, हे महाराज ! आप सब शास्त्रोंको जानते हैं । पुत्ररहित स्त्रियोंको तथा ममुष्योंको सुख संपत्ति प्राप्त होनेका उपाय बताइये कि, पुत्रकी सिद्धि कैसे, हो ? अथर्वण बोले कि, पहिले ब्रह्मादिक सबदेवता विष्णुकी शरण पहुँचे कि, हम राक्षसोंके सताये हुए हैं । उस दुखकी शान्ति कैसे हो ! यह हमें बताइये, विष्णु बोले कि, मैं पीपलके रूपसे भूमिपर होता हूं इस कारण सभी प्रयत्नोंसे अश्वत्यका सेवन करो, उससे आपका कल्याण होगा, इसमेंसन्देह नही है, अथर्वण बोले कि, विष्णुने जो व्रत देवोंको बताया था उसे में तुम्हें बताये देता हूं । दान, तप एवं बडी बडी दक्षिणाओं-

---

१ शिवो मया विलोकित इत्यन्वयः ।

वाली यज्ञोंसे क्या है ? सिवा अश्वत्थके सेवनके कलियुगमें कोई दूसरी क्रियाही नहीं है । उसका विधान, संख्याकी व्यवस्था, पूजन, हवन, तर्पण, विप्रभोजन, नियम, व्रतके द्वधिकारी एवं दूसरे दूसरे विशेष विधान, हे पिप्पलादिन ! हे सुव्रत ! यह सब मैं तुम्हें सुनाये देता हूं । दिवके भूमिके अन्तरिक्षके अनेक तरहके घोर उत्पात, दुसरेके चक्रका फल, देशविप्लव, देशविग्रह, बुरे स्वप्न, बुरे निमित्त, संग्राम, अद्भु त दर्शन, मारी राज चोर और अग्निका भय, क्षयी मृगी और कुष्ठ आदिक, प्रमेह, विषमज्वर, उदरव्याधि, मूत्रकृच्छ्र, ग्रहपीडा, तथा जो रोग नहीं कहे गये हैं, वे एवं व्रणके रोगे उन सबके विनाशके लिये अश्वत्थका सेवन करे, प्रातः नदी आदिमें स्नान करे, नित्य नियम करके अश्वत्थकी जगह आकर गोबरसे लिपे, सूत्र और गेरूसे अश्वत्थको सुशोभित करे, पूजाके द्रव्योंको इकट्ठा करके पुण्याह वाचन करावे, ऋत्विजोंका वरण करके पूजा प्रारंभ करदे । ध्यान और आवाहनके साथ विष्णुकी आराधना करे, हे द्विज ! उसी तरह नारायणमय वृक्ष जो पीपल है उसे श्वेतगन्ध, अक्षत्, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, इनसे ध्यानके साथ पुरुषसूक्तसे पूजे, उसीमें हवन तर्पण और नमस्कार करे, श्वेतवस्त्री लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तमका चिन्तन करे पीछे अश्वत्थका अभिमंत्रण करे, 'आरात्त' यह अग्निकाण्डके भीतर पडा हुआ होनेके कारण इसके अग्नि ऋषि हं वनस्पति देवता है अनुष्टुप छन्द है वनस्पतिके अभिमंत्रणमें इसका विनियोग होता है । "तेरी अग्नि हमसे दूर रहे तथा तेरा परशु हमसे दूरही रहे, वायु रहित देशकालमें तेरे लिये चारों ओरसे वर्षाहो । हे वनस्पते ! तेरी स्वस्ति हो हे अश्वत्थ ! मेरे आंखके और बाहु फरकने बुरेस्वप्न, बुरी चिन्ताएं तथा वैरियोंके भयकी शान्त कर दे !" पीछे प्रदक्षिणा करे वह सब सफल होजाता है, एक दो तीन चार वा पांच लाखतक कार्यका गौरव देखकर प्रदक्षिणा करे, बारह प्रदक्षिणाओंसे तो कम होना ही न चाहिये, ब्रह्मचारी, हविष्यान्नका भोजन करनेवाला भूमिपर सोनेवाला, जितेन्द्रिय, मौनी एवं ध्यानसे मन लगकर पीपलकी स्तुति पढे । विष्णुके सहस्रनाम पुरुषसूक्त और विष्णूसूक्त पढे, पवित्र दिन आदिमें इस प्रकार सब कुछ करे, प्रातः स्नान और पवित्र होकर उद्यापन करे । गणेशपूजन स्वस्तिवाचन और नान्दीश्राद्ध करावे । सब लक्षणोंवाले आचार्यका वरण करे देवमन्दिर, गोष्ट, अश्वत्थके नीचे अपने घर फूलोंकी छोटीसी मण्डपी बना उसे पट्टकूल आदिसे वेष्टित कर दे । उसपर सुन्दर सर्वतोभद्र मंडल बनावे, उसपर विधिपूर्वक जल और सस्त्रोंके साथ पूर्णकलश स्थापित करे । उसपर मिट्टीका वा बांसका पात्र रखे । उसपर अष्टपत्र पद्म कर्णिकाके साथ चित्रित करे । उसपर बीचमें पांचकृष्णलके अधिककी सोनेकी बनी मूर्ति अश्वत्थके साथ स्थापित करे । पीछे ब्रह्मादिकोंका आवाहन करे ।। बडी भारी तयारीके साथ पूजा पूरी करके भक्तिके साथ परमान्नका नैवेद्य देवकी भेंट करे । उपवास-पूर्वक प्रसन्नताके साथ कथा सुनते हुए जागरण करना चाहिये । प्रातःकाल शुद्ध जलमें स्नान करके मिट्टीका स्थण्डिल बना अग्निमुख करे । की हुई लक्ष प्रदक्षिणाका दशांश हवन तथा इसका दशवां हिस्सा तर्पण करावे । विष्णुका ध्यान करके पुरुषसूक्तसे समिध, तिल, आज्य और पायसका अपनी शाखाके विधानके अनुसार हवन करे । कही हुई सोलह ऋचाओंसे विधिपूर्वक हवन करे । हवनके क्रमका दशवां हिस्सा ब्राह्मण भोजन मिष्टान्नसे करावे । ब्राह्मणोंके कहे हुएं नियमसे आप ही करे । यदि अपनी शक्ति न हो तो दूसरोंसे करावे । यानी एक लाख प्रदक्षिणा इसका दशांश दश हजार वहन एक हजार तर्पण करे १०० ब्राह्मण भोजन करावे । कहे हुए प्रमाणसे अधिक दश गुनाफल होता है । अश्वत्थसे चौगूना चाँदिका चौकुठा सिंहासन हो, ऊपर द्रोण वा आधेद्रोण तिल रखे, श्वेत वस्त्रसे ढककर तरुको पूजे, ब्राह्मणको उत्तरमुख तथा आप पूर्व मुखकरके मन्त्रसे सोनेके पीपलको दरिद्र सुशील श्रोत्रिय कुटुम्बी ब्राह्मणको दे दे । इस जन्म वा दूसरे जन्ममें बाल्य यौवन और वृद्धावस्थामें जो मन वाणी और अन्तःकरणसे जो दोष किये हों उनसे छूट जाता है । इसमें सन्देह नहीं है, व्रती इसके व्रतकी पूर्तिके लिये करे । सोनेके अश्वत्थके साथ दूध देनेवाली गाय दे, वृक्ष एक आधे वा आधेके आधे पलका जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार बनाले, उसमें स्कन्ध शाखा आदि सभी हों । हे अश्वत्थ ! हे वृक्षराज ! आपही अग्निगर्भ हैं एवं वनस्पतियोंके स्वामी हैं । मैंने जो पहिले जन्ममें पापकिये हों वे सब आपकी प्रतिमा दियेसे नष्ट होजायें । हे विष्णुरूप द्विजोत्तम ! इस वृक्षको ग्रहण करिये तथा घोर दुष्करको स्वीकार करके शीघ्रही शान्ति दे दीजिये । जो इस प्रकार पुत्र पौत्रोके बढानेवाले उत्तम व्रतको करता है,

वह अनेक तरहके भोगोंको भोगकर विष्णु भगवान्‌का सायुज्य पाता है यह अद्भुतसारका कहा हुआ प्रदक्षिणा व्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ।।

अश्वत्थरूपसे विष्णुका वट रूपसे शिवका तथा पलाश रूपसे ब्रह्मका आविर्भाव--ऋषि बोले कि, ब्रह्मा पलाश, शंकर वट और विष्णु अश्वत्थ कैसे हुए ? यह हमें बता दीजिये ।।१।। बालखिल्य बोले कि, ब्रह्माके रचे सब इन्द्रादिक देव पहिले इकट्ठे हो ब्रह्माके पास गये ।।२।। कि, हे ब्रह्मन् ! वेदोंमें सब देवोंसे अधिक महादेव पढे जाते हैं । हम आपके साथ उनके दर्शन करना चाहते हैं ।।३।। इन्द्रादिकोंके वचन सुन सब देवताओंके साथ अग्रणी हो कैलास चलदिये ।।४।। शिवके दरवाजेपर जाकर सब खडे होगये क्योंकि, द्वारपाल दीख नहीं रहा था । शिव भीतर बैठे थे । ५।। हम शिवके पासजायें या वा न जायें वापिस अपने स्थान चले जायें ।।६।। देव ऐसा विचार कर रहे थे कि, मुनिश्रेष्ठ नारद दीख पडे । देव प्रणामकरके नारदजीसे बोले ।।७।। कि, हे वेदवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ मुनिराज ! एक प्रश्न बाताइये कि, भीतर महादेव क्या करते हैं, हम भीतर जायें वा नहीं ? ।।८।। नारद बोले कि, आप चन्द्रक्षयकी दशामें घरसे चले हो इस कारण आपको कोई भारी विघ्न होगा ।।९।। आपका यह प्रश्न भी कि, शिव क्या करते हैं ? यह भी उस चन्द्रसे ही हुआ है । इस कारण इस समय त्रिपुरान्तक संभोगकार्यमें लगे हुए हैं ।।१०।। इन्द्र बोला कि; दिवका स्वामी सभी विघ्नोंका नाशक है । मुझ इन्द्रके आनेपर विघ्न कैसे होगा ? ।।११।। देवोंके डरानेके लिये मुनि हंसी करते हैं । इन्द्रके ये वचन सुनकर मुनि व्याकुल होगये ।।१२।। कि, इन्द्रमें मेरे वचन कैसे सत्य हों जो मेरे वचन जल्दी ही सत्य होजायें तो ।।१३।। राधादामोदरकी प्रसन्नताके लिये मैं उत्तम व्रत करूंगा मनमें यह विचारकर मुनि चुप होगये ।।१४।। इन्द्रने देवोंसे विचार किया कि, अब क्या किया जाय ? पीछे इन्द्र अग्निसे बोला कि, हे वह्ने ! मेरे वचन सुन ।।१५।। तू ब्राह्मणका रूप धरकर भीतर चला जा । यदि प्रसङ्ग हो तो हमारा भी सब समाचार उन्हें दे देना ।।१६।। यदि प्रसंग न देखे तो भिखारी बनकर मांगना क्योंकि भिक्षुक न तो ताडा जाता है एवं न माराही जाता है । इस कारण भिखारी बनकर घुस ।।१७।। वह्निने देवेन्द्रके वचन सुनकर वैसाही किया । भीतर जाकर क्या देखता है कि, ईश शिवाके साथ संगत हैं ।।१८।। शिवानें उसे देख लिया जिससे लज्जित होकर भोग छोड दिया । तुम कौन हो ? इसके उत्तरमें कहा कि, मैं भूखा भिखारी ब्राह्मण हूं ।।१९।। तथा बूढा अँधरा और दीन हूं । मुझे भोजन दीजिये । इसमे मुझे नहीं देखा ऐसा जानकर पार्वतीनें उसे भोजन कराया ।।२०।। वह भी खा पी समाचार कहनेके लिये बाहिर चलदिया, उसी समय नारदजी छिपकर पार्वतीजीके पास आये ।।२१।। और उनके चरणोंमें शिर रखकर रोने लगे । पार्वतीजी बोलीं कि, ए बालक ! क्या हुआ बतातो सही ।।२२।। भलाबुरा जैसा हो तैसा बता, मैं उसका प्रतीकार करूंगी । नारद बोले कि, हंसीकी बात है । मैं न बता सकूंगा ।।२३।। इन्द्रादि देवोंने किया और तो कौन करेगा, नारदके ये वचन सुन गौरीने फिर पूछा ।।२४।। तबदोनों हाथोंसे आंख मींचकर गद्‌गदवाणीसे नारदजी बोले कि, ।।२५।। आप दोनोंका भोग देवताओंने देखलिया । पीछे उन्होंने बुराईकी, इससे मैं दुखी हूं ।।२६।। भोगके विच्छेद करनेके लिये अग्नि भेजा था जो कि, भूखा ब्राह्मण बनके अभी गया है, हे अम्बिके ! और विशेष कहनेसे क्या है ? ।।२७।। आप जगत्‌की माता हैं आपकी हँसी क्या है ? उसके ये वचन सुनकर पार्वती कुपित होगई ।।२८।। ओठ फडकने लगे आखें लाल होगई यह देख नारद वहांसे चल दिये और देवताओंसे कह दिया कि, शिव संभोगसे विरत होगये ।।२९।। मैंने तो दूरसेही शिवको देखाया आओ दर्शनोंके लिये । वन्हि और मुनिकेवचन सुनकर इन्द्र देवोंके साथ भीतर चल दिया ।।३०।। महादेवजीको प्रणाम करके हाथ जोडकर खडा होगया ।इस तरह खडे हुए इन्द्रको देख उससे पार्वतीजी बोलीं ।।३१।। कि, हे दुष्टात्मन् ! हे अहिल्याके जार । हे हजार भगोंवाले ! वासव ! जो तूने मेरा उपहास किया था उसका फल ले ।।३२।। जितनी भी देवोंकी जातियां हैं वे सब स्त्रीसहित स्त्रीसुखसे रहित वृक्ष होजायं ।।३३।। देवीके ऐसे वचन सुनतेही सब देव कांप गये, ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक शापित देव, स्तुतियाँ करने-लगे ।।३४।। इससे देवी प्रसन्न हो इन्द्रसे बोली कि, हे देवो ! मेरा वचन त्रिकालमें भी असत्य होनेवाला नहीं है।।३५।।आप सब एक अंशसे अवश्य ही वृक्ष होंगे, देवीके ये वचन सुनतेही देव एकएक अंशसे वृक्ष बन गये,।।३६।।भगवान् विष्णु अश्वत्थ, सदाशिव वट तथा ब्रह्मा पलाश बने इन्द्र अर्जुन वृक्षवन।।३७।।वह इन्द्राणी

और दूसरी दूसरी देव पत्नियां लता होगईं, उर्वशी आदिक अप्सराएं मालती आदिक पुष्पद्रुम वनीं ।।३८।। इस कारण सभी प्रयत्नके साथ अश्वत्थकी पूजा करें । स्त्री हो वा पुरुष हो लक्ष प्रदक्षिणा करे ।।३९।। पीपलके नीचे शनिवारके दिन राधामाधवकी पूजा करे ।राधा और दामोदरका स्वरूपमानकर दंपतियोंको भोजन करावे । पीछे अपमौन हो भोजन करे । इससे वन्ध्याभी पुत्र पाजाती है, दूसरोंकी तो बातही क्या है ।।४०।।४१।। ('मूलतो' यह कहचुके ।।४२।।) विष्णुकी मूर्तिके अभावमें अश्वत्थके मूलमें कीर्तनकरना-चाहिये । यही विष्णुका परम आराधना है ।।४३।। दो पैरवालोंमेंसे ब्राह्मणोमें, वृक्षोमेंसे पीपलमें तथा शिलाओंमेंसे शालिग्राममें भगवान् सदा विराजते हैं ।।४४।। अश्वत्थकी पूजा और स्पर्श शनिवारकेही दिन करे । दूसरे वारको अश्वत्थके छूनेसे मनुष्य दरिद्र होता है ।।४५।। यह सनत्कुमार संहिताके कार्तिक माहात्म्यका विष्णुभगवान्को अश्वत्थ होनेका कारण तथा उसकी लाख प्रदक्षिणाओंका विधान पूरा हुआ ।।

अथ विष्णुलक्षप्रदक्षिणाविधिः

युधिष्ठिर उवाच ।। भगवन् देवदेवेड्य सर्वविद्याविशारद ।। किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि वक्तुमर्हस्यशेषतः ।। अज्ञानादथवा ज्ञानात्प्रमादाच्च कृतानि भोः ।। दायादवधपूर्वाणि कथं यान्ति क्षयं विभो ।। नारद उवाच ।। ये लोकाः पापसंयुक्ता धर्माधर्मविवर्जिताः ।। व्रतहीना व्रतभ्रष्टा दुराचाराश्च कुत्सिताः ।। अग्निकार्येण रहिताः शास्त्रधर्मबहिष्कृताः ।। नास्तिका भिन्नमर्यादा हैतुकाः कितवाः शठाः ।। मातापित्रोर्विरुद्धाश्च गुरुश्वशुरद्रोहकाः ।। एतेषां निष्कृतिं तात कृपया वद मेऽधुना ।। अज्ञानामिह जीवानां साधीनां त्वं सुहृत्स्मृतः ।। अनाथनाथ देवेश ह्यनाथास्तादृशा जनाः ।। एतच्छ्रुत्वा ततो ब्रह्मा हर्षादुत्फुल्ललोचनः ।। साधसाध्विति देवेशो वचनं चेदमब्रवीत् ।। ब्रह्मोवाच ।। किं वर्णयामि साधूनां माहात्म्यं च भवादृशाम् ।। हरेर्लोकैकनाथस्य करुणा मुक्तिदायिनी ।। ब्रह्महत्यादिपापेषु संकरीकरणेषु च ।। जातिभ्रंशकरेष्वेवमभक्ष्यभक्षणेषु च ।। हरिणा निर्मितं पूर्वं व्रतं लक्षप्रदक्षिणम् ।। सर्वेषामपि पापानां मूलादुत्कृन्तनं परम् ।। पापान्धकारनाशाय पापेन्धनदवानलम् ।। नारायणे जगन्नाथे योगनिद्रामुपेयुषि ।। प्रारभेत व्रतमिदं कुर्याद्यावत्प्रबोधिनम् ।। द्वादश्यां वा चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ।। स्नानं कृत्वा नदीतोये नित्यकर्म समाप्य च ।। पश्चात्प्रदक्षिणावर्तः कर्तव्यो हरिरीश्वरः ।। अनन्ताव्यय विष्णो श्रीलक्ष्मीनारायण प्रभो ।। जगदीश नमस्तुभ्यं प्रदक्षिणपदे पदे ।। इति मन्त्रं समुच्चार्य कुर्यादावर्तमादरात् ।। प्रदक्षिणाः प्रकर्तव्या दिवसे दिवसे विभोः ।। यावत्प्रदक्षिणावर्तस्तावन्मणिं विनिक्षिपेत् ।। आवाहनादिभिः सम्यक् धूपदीपादिभिस्तथा ।। नैवेद्येन पायसेन ताम्बूलदक्षिणादिभिः ।। प्रत्यहं पूजयेद्भक्त्या सर्वपापहरं हरिम् ।। भोजयेच्च यथाशक्त्या विप्रान् सर्वफलप्रदान् ।। सर्वपापविनाशार्थं नारीभिः पुरुषैरपि ।। प्रदक्षिणाः प्रकर्तव्या यावदुद्बोधिनी भवेत् ।। लक्षप्रदक्षिणाः कृत्वा अन्ते चोद्यापनं चरेत् ।।

उपवासः प्रकर्तव्यो ह्यधिवासनवासरे ।। सौवर्णीं प्रतिमां कृत्वा विष्णोरमिततेजसः ।। गरुडेन समायुक्तां स्थापयेत्कलशोपरि ।। आचार्यं वरयित्वा तु ऋत्विजश्च निमन्त्रयेत् ।। ततश्च विष्णुगायत्र्या तद्दशांशेन वाग्यतः ।। पायसं जुहुयात्तद्वदयुतं तिलसर्पिषा ।। हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चाद्दद्याद्दानान्यनेकशः ।। कार्पासं लवणं चैव गामेकां च पयस्विनीम् ।। आचार्याय सपीठां तां प्रतिमां च निवेदयेत् ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पञ्चविंशतिसंख्यकान् ।। इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा नारदस्तु तथाकरोत् ।। राजन् कुरु त्वमप्येतन्मुच्यसे सर्वपातकैः ।। सूत उवाच ।। धर्मेण च कृतं सर्वं मुनेश्च वचनाद्व्रतम् ।। तेनासावभवन्मुक्तो दायादवधपापतः ।। इति श्रीभविष्यपुराणे विष्णुलक्षप्रदक्षिणाव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

विष्णुभगवान्‌की लाख प्रदक्षिणाओंकी विधि––युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन् ! हे देवदेवेड्य ! हे सब विद्याओंके जाननेवाले ! मैं कुछ जानना चाहता हूँ आप सब सुनावें । ज्ञान अथवा अज्ञानसे की गई हिस्सेदारोंकी हत्याका पाप कैसे नष्ट हो ? इसमें पाप बहुत है हे श्रेष्ठ मुनि ! यह मुझे सुनाइये । व्यास बोले कि, नारदजीने यही ब्रह्माजीसे पूछा था वही मैं तुम्हें सुनाता हूं, हे प्रभो ! जो लाख बार प्रदक्षिणा करनेकी विधि है उसे सुनिये । नारद बोले कि, जो मनुष्य पापी, धर्म अधर्मसे रहित, व्रतहीन, व्रतभ्रष्ट, दुराचारी, क्रूरे, अग्निकार्यसे रहित, शास्त्रधर्मसे बहिष्कृत, नास्तिक, मर्यादानष्ट करनेवाले, हैतुक कपटी, शठ, मावापके विरुद्ध गुरु और ससुरसे वैरकरनेवाले हैं, उनके लिये कोई अच्छा प्रायश्चित्त कृपा करके बता दें । क्योंकि, बुद्धिमान् अज्ञ मनुष्योंके आप सुहृदय कहे जाते हैं, आप अनाथोंके नाथ और देवेश हो वैसे प्राणी अनाथ नहीं तो क्या है ? इतना सुनते ही प्रसन्नताके मारे ब्रह्माके नेत्र खुलगये । अच्छा अच्छा कहकर ब्रह्माजी बोले कि, आप जैसे महात्माओंका क्या माहात्म्य वर्णन करें ? लोकनाथ भगवान्‌की करुणाही मुक्ति देनेवाली है । ब्रह्महत्यादिक पाप, संकलीकरण, जाति भ्रंशकर और अभक्ष्यभक्षणपापका प्रायश्चित्त लक्ष प्रदक्षिणाएँही हैं, वह सब पापोंको जडसे काटनेवाली हैं तथा पापरूपी अन्धकारके लिये तो पापके इंधनका दावानल ही हैं । जब भगवान् योगनिद्रा लें उसदिनसे इस व्रतको प्रारंभ करे पथा प्रबोधिनी एकादशीतक इस व्रतको करे, द्वादशी चतुर्दशी वा पौर्णमासीके दिन नदीके पानीमें स्नान करे । नित्यकर्म समाप्त करे । पीछे भगवान्‌की प्रदक्षिणा करे । हे अनन्त ! हे अव्यय ! हे विष्णो ! हे श्रीलक्ष्मीनारायण प्रभो ! हे जगदीश ! तेरे लिये प्रदक्षिणाके पदपदपर नमस्कार है । इस मंत्रको बोलता हुआ आदरके साथ प्रदक्षिणा करे । प्रतिदिन जितनी करे उतनीही मणि इकट्ठी करता जाय । आवाहनादिक, धूप, दीप, नैवेद्य, पायस, ताम्बूल, दक्षिणा इनसे सब पापोंके हरनेवाले हरिकी रोज पूजा करे, शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे, इससे सब फलोंकी प्राप्ति होती है । स्त्री हो चाहे पुरुष सभीको सब पापोंके बता करनेके प्रबोधिनी (देव उठनी) एकादशीतक प्रदक्षिणा करनी चाहिये, लाख प्रदक्षिणा करके अन्तमें उद्यापन करे, अधिवासनके दिन हो उसमें गरुड सहित सोनेकी भगवान्‌की मूर्ति हो, उसे विधिपूर्वक कलशपर स्थापित करे, आचार्यका वरण करे । ऋत्विजोंको निमंत्रित करे । विष्णुगायत्रीसे प्रदक्षिणा दशांश आहुति मौन हो, पायस तिल और सर्पिसे हवन करे, स्विष्टकृत् हवन करके पीछे अनेकों दान दे, कपास, नमक, दुधारी गया तथा आसनसहित मूर्ति आचार्यको दे । पचीस ब्राह्मणोंको भोजन करावे, ब्रह्माके वचन सुनकर नारदने वैसाही किया । हे राजन् ! तुमभी करो, सब पापोंसे छूट जाओगे । सूतजी बोले कि, धर्मराजने मुनि महाराजके वचनसे सब व्रतादिक किये इसीसे वह कौरवोंकी हत्यासे मुक्त होगये ; यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ विष्णु भगवान्‌की लाख प्रदक्षिणाका व्रत उद्यापनसहित पूरा होगया ।।

अथ तुलसीलक्षप्रदक्षिणाविधिः

नारद उवाच ।। रोप्यते येन विधिना तुलसी पूज्यते सदा ।। तदाचक्ष्व महादेव ममानुग्रहकारणात् ।। महादेव उवाच ।। शुभे पक्षे शुभे वारे शुभे ऋक्षे [1]शुभोदये ।। सर्वथा केशवार्थं तु रोपयेत्तुलसीं मुने ।। गृहस्याङ्गणमध्ये वा गृहस्योपवनेऽपि वा ।। शुचौ देशे च तुलसीमर्चयेद्बुद्धिमान्नरः ।। मूले च वेदिकां कुर्यादालवालसमन्विताम् ।। प्रातः सन्ध्याविधिं कृत्वा स्नानपूर्वं दिनेदिने ।। गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा तुलसीं पूजयेत्ततः ।। [2]प्राङमुखोदङमुखो वापि स्थित्वा प्रयतमानसः ।। तत्रपूजा क्रम :—ध्यायेच्च तुलसीं देवीं श्यामां कमललोचनाम् ।। प्रसन्नपद्मवदनां वराभयचतुर्भुजाम् ।। किरीटहारकेयूरकुण्डलादिविभूषणाम् ।। धवलांशूकसंयुक्तां पद्मासननिषेधिताम् ।। ध्यानम् ।। देवि त्रैलोक्यजननि सर्वलोकैकपावनि ।। आगच्छ भगवत्यत्र प्रसीद तुलसि प्रिये ।। आवाहनम् ।। सर्वदेवमये देवि सर्वदा विष्णुवल्लभे ।। रम्यं स्वर्णमयं दिव्यं गृहाणासनमव्यये ।। आसनम् ।। सर्वदेवमये देवि सर्वदेवनमस्कृते ।। दत्तं पाद्यं गृहाणेदं तुलसि त्वं प्रसीद मे ।। पाद्यम् ।। सर्वतीर्थमयाकारे सर्वागमनिषेविते ।। इदमर्घ्यं गृहाण त्वं देवि दैत्यान्तकप्रिये ।। अर्घ्यम् ।। सर्वलोकस्य रक्षार्थं विष्णु सन्निधिकारिणी ।। गृहाण तुलसि प्रीत्या इदमाचमनीयकम् ।। आचमनीयम् ।। गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मयानीतं शुभं जलम् ।। स्नानार्थं तुलसि स्वच्छं प्रीत्या तत्प्रतिगृह्यताम् ।।स्नानम् ।। क्षीरोदमथनोद्भूतचन्द्रलक्ष्मीसहोदरे ।। गृह्यतां परिधानार्थमिदं क्षौमाम्बरं शुभे ।। वस्त्रम् ।। कञ्चुकीम् ।। आचमनीयम् ।। गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।। ताम्बूलं दक्षिणां चैव मन्त्रपुष्पं च नामतः ।। प्रसाद मम देवेशे कृपया परया मुदा ।। अभीष्टफलसिद्धिं च कुरु मे माधवप्रिये ।। देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः ।। नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ।। तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ।। केशवार्थार्पिता भक्त्या वरदा भव शोभने ।। इति प्रार्थना ।। इत्येवमर्चयेन्नित्यं प्रातरेव शुचिर्नरः ।। मध्याह्ने वाथ सायाह्ने पूजयेत्प्रयतो नरः ।। एवं कुर्याद्वृद्धिकामः सर्वकामः सदैव तु ।। वैशाखे कार्तिके माघे चातुर्मास्ये विशेषतः ।। पूजयेत्तुलसीं देवीमपूपफलपायसैः ।। अन्यद्गुह्यतमं किञ्चित्कथयामि तवाग्रहः ।। प्रदक्षिणाफलं चैव नमस्कारफलं तथा ।। [3]पञ्चाशद्भिर्भवेल्लक्ष्मीः शतैश्च विजयः स्मृतः ।। विद्यावाप्तिः सहस्रेणारयुतेन सर्वसम्पदः ।। लक्षेण सर्वसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति सर्वशः ।। भुक्त्वा यथेप्सि-

१ शुभे लग्ने । २ आर्पमेतत् । ३ प्रदक्षिणाभिर्नमस्कारैर्वा ।

तान् भोगानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।। लक्षसंख्याश्च कृत्वा वै तुलस्याश्च प्रदक्षिणाः ।। अन्ते चोद्यापनं कुर्यात्तेन सम्यक् फलं भवेत् ।। उद्यापनं विना विप्र फलं नैव भवेत्क्वचित् ।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन उद्यापनविधिं शृणु ।। सौवर्णीं प्रतिमां विष्णोः शंखचक्रगदान्विताम् ।। तुलस्यायतनं चैव कुर्यात्स्वर्णविनिर्मितम् ।। हेमादिनिर्मिते कुम्भे पूर्णपात्रसमन्विते ।। पुण्योदकैः पञ्चरत्नैः कुशदूर्वाप्रपूरिते ।। न्यसेद्विष्णुं तुलस्या च लक्ष्म्या चैव समन्वितम् ।। पूजां पुरुषसूक्तेन कुर्यात्सर्वप्रयत्नतः ।। उपचारैः षोडशभिर्भक्तिभावसमन्वितः ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणवेदपाठनैः ।। वैष्णवैश्च प्रबन्धैश्च नृत्यैर्वाद्यैस्तथैव च ।। ततः प्रातः समुत्थाय होमं कुर्याद्विधानतः ।। वैष्णवेन तु मन्त्रेण तिलाज्येन विशेषतः ।। पायसेन घृताक्तेन अष्टोत्तरसहस्रकम् ।। आचार्याय सवत्सां गां दक्षिणावस्त्रसंयुताम् ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्सहस्रं वाथ शक्तितः ।। शतं वा भोजयेद्धीमानष्टाविंशतिमेव वा । तेभ्योपि दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। एवं यः कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।। अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेशतस्य च ।। यत्पुण्यं तल्लभेन्मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ।। इदं रहस्यं परमं न वाच्यं यस्य कस्यचित् ।। विष्णुप्रीतिकरं यस्मात्तस्मात्सर्वं व्रताधिकम् ।। तुलसीप्रदक्षिणानां तु माहात्म्यं शृणुयान्नरः ।। सकृद्वा पठते यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।। इति श्रीभविष्यपुराणे लक्षतुलसीप्रदक्षिणाव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

तुलसीकी लाख प्रदक्षिणाओंकी विधि नारदजी बोले कि, जिस विधिसे तुलसी रोपी जाती है । हे महादेव ! मेरे पर कृपा होनेके कारण वह सब सुना दें । शुभ पक्ष, शुभ वार नक्षत्र और लग्नमें सब तरह भगवान्‌के लिये घरके आंगन अथवा गृहके उपवनके पवित्र स्थलमें तुलसी लगा, उसे पूर्व या उत्तरको मुख करके पूजे, मूलमें आलवालके साथ वेदी बनावे । पूजाक्रम—सोलह वर्षकी आयुवाली, कमलनयनी, कमलकी तरह खिलेहुए मुखवाली वर और अभय मुद्रा युक्त चतुर्भुज, किरीट, हार, केयूर और कुण्डलादिकोंसे सुशोभित, श्वेतवस्त्र धारण किये हुई, पद्मके आसनपर विराजी हुई देवि तुलसीका ध्यान करना चाहिये । इससे ध्यान; 'देवि त्रैलोक्यजननी' इससे आवाहन, 'सर्वदेवमये इससे आसन; 'सर्वदेवमये देवि, सर्वदेव' इससे पाद्य, 'सर्वतीर्थ' इससे अर्घ्य; 'सर्वलोकस्य' इससे आचमनीय 'गंगादिसर्वतीर्थेभ्यः' इससे स्नान; 'क्षीरोदमथनो' इससे वस्त्र; कंचुकी; आचमनीय समर्पण करे । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बुल, दक्षिणा और मंत्रपुष्प ये सब नाममंत्रसे दे । हे देवेशि ! परम कृपा करके आनन्दके साथ मुझपर प्रसन्न होजा । हे माधवकी प्यारी! मुझे अभीष्टकी सिद्धि कर, तेरा पहिले देवोंने निर्माण तथा मुनीश्वरोंने पूजन किया था । हे भगवान्‌की प्यारी तुलसी ! मेरे पापोंको दूर कर । हे तुलसी ? तू अमृत जन्मा है तू सदाही केशवकी प्यारी है भक्तिभावके साथ भगवान्‌पर चढाई गई तू वर देनेवाली हो, इससे प्रार्थना करे । इस प्रकार पवित्र हो प्रातः रोज पूजे । अथवा नियमके साथ मध्याह्न और सायंकालमें पूजे । वृद्धिकी चाहवाला ऐसेही करे सब चाहनेवाला तो सदाही करे । वैशाख, कार्तिक, माघ और चातुर्मास्यमें अपूप फल और पायससे तुलसी देवीको पूजे और भी कुछ गुप्तवात तेरे आगे कहता हूं । प्रदक्षिणाका फल और नमस्कारका फल बताता हूं । पचाससे लक्ष्मी सौसे विजय हजारसे विद्याकी प्राप्ति दश हजारसे सब संपत्ति और लाख करनेसे सब सिद्धियां

होजाती हैं । इसमें विचार करनेकी बात नहीं है । वह जिस जिस कामको चाहता है वह उसे मिल जाता है, यथेष्ट भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष पाजाता है । एक लाख तुलसीकी प्रदक्षिणा करके अन्तमें उद्यापन करे जिससे अच्छा फल हो । क्योंकि, हे विप्र ! उद्यापनके बिना कभी भी फल नहीं होता इस कारण सर्व प्रयत्नके साथ उद्यापनकी विधि सुन । शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुए सोनेकी विष्णुभगवानकी प्रतिमा तथा तुलसीका आयतजभी सोनेका हो, सोने आदिके बने पूर्णपात्रयुत कुंभपर जो कि, पुण्य पानी, पञ्चरत्न कुश और दूर्वासे प्रपूरित हो, तुलसी और लक्ष्मीके साथ विष्णु भगवान्‌को विराजमान करे । पुरुषसूक्तसे प्रयत्नके साथ पूजा करे । भक्तिभावसे सोलहों उपचारोंसे पूजा करे, पुराण और वेदपाठके साथ रातमें जगारण करे, वैष्णव प्रबन्ध तथा नाच वाद्यभी हों । प्रातःकाल उठकर विधिसे होम करे । विष्णुमंत्रसे घीसे सने तिल आज्य और पायसकी एक हजार आठ आहुति दे । वस्त्र और दक्षिणाके साथ आचार्य्यको बछड़ावाली दुधारी गाय दे । पीछे अपनी शक्तिके अनुसार हजार सौ वा अट्ठाईस ब्राह्मणोंको भोजन करावे । धनका लोभ न करे, उन्हें शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे । इसप्रकावजो मनुष्य करता है उसके पुण्यका फल सुनिये । एक हजार अश्वमेध और सौ वाजपेयसे जो पुण्य होता है वही मिल जाता है । इसमें विचार न करना चाहिये इस परम रहस्यको किसीसे न कहना चाहिये । यह विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला है । इस कारण सभी व्रतोंसे अधिक है । जो कोई मनुष्य तुलसीप्रदक्षिणा माहात्म्यसुने वा एकवार पढे वह वैष्णव पदको चला जाता है । वह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ तुलसीका लक्षप्रदक्षिणा व्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ॥

अथ गोब्राह्मणाग्निहनुमल्लक्षप्रदक्षिणाविधिः

युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवन् ज्ञानिनां श्रेष्ठ सर्वविद्याविशारद ॥ किञ्चिद्वि- ज्ञप्तुमिच्छामि वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानात्प्रमादाद्वा कृतानि हि ॥ पापानि सुबहून्यत्र विलयं यान्ति तद्वद ॥ व्यास उवाच ॥ लक्षप्रदक्षिणाः कार्या गोऽग्निद्विजहनूमताम् ॥ पृच्छते नारदायेति प्राह ब्रह्मा शृणुष्व तत् ॥ नारद उवाच ॥ ये च पापरता नित्यं धर्माधर्मविवर्जिताः ॥ व्रतहीना दुराचारा ज्ञान- हीनाश्च जन्तवः ॥ तेषां पापविनाशार्थं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं वर्णयामि साधूनां माहात्म्यं च भवादृशाम् ॥ साधुसाधु च विप्रेन्द्र वच्मि ते व्रतमुत्तमम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापेषु संकलीकरणेषु च ॥ जातिभ्रंशकरे वापि अभक्ष्य- भक्षणे तथा ॥ विष्णुना निर्मितं पूर्वं व्रतं लक्षप्रदक्षिणम् ॥ सर्वेषामपि पापानां नाशकं परमं शुभम् ॥ आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां विशेषतः ॥ द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा प्रारभेद्व्रतमुत्तमम् ॥ देशकालौ तु संकीर्त्य नत्वा गुरुविनायकौ ॥ लक्षप्रदक्षिणाः कुर्यात्त्रीनग्नींश्च शुचिव्रत ॥ जितेन्द्रियो जितप्राणो मुखेन मनु- मुच्चरेत् ॥ नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाग्नये ॥ नम आहवनीयाय महावेद्यौ नमोनमः ॥ गवां प्रदक्षिणाः कार्या लक्षसंख्या यथाविधि ॥ पूर्वं पूज्य च गामेकां दत्त्वा नैवेद्यमुत्तमम् ॥ पश्चात्प्रदक्षिणाः कार्या नत्वा ताञ्च पुनः पुनः । गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ॥ यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ एवं प्रदक्षिणाः कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ कर्मनिष्ठं शुचिं विप्रं पूजयेद्विधिवद्बुधः ॥

ततः प्रदक्षिणाः कार्या यावल्लक्षं भवेद्व्रती ।। भूमिदेव नमस्तुभ्यं नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ।। पूजितो देवदैत्यैस्त्वमतः शांतिं प्रयच्छ मे ।। एवं हनूमते कार्या भूतप्रेतविनाशिने ।। षोडशैरुपचारैश्च पूजयेद्वायुनन्दनम् ।। ततः प्रदक्षिणाः कुर्यादात्मकार्यार्थसिद्धये ।। मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।। वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।। एवं प्रदक्षिणावर्तं कुर्यादेवं प्रयत्नतः ।। भूतप्रेतपिशाचाद्या विनश्यन्ति न संशयः ।। आदित्यादिग्रहाः सर्वे शान्ति यान्ति शिवाज्ञया ।। उद्यापनं च सर्वासां कुर्यात्पूर्णफलाप्तये ।। उद्यापनविधानादौ पुण्याहं वाचयेत्ततः ।। आचार्यं वरयित्वा च प्रतिमाः स्वर्णसंभवाः ।। अव्रणं कलशं पूर्णं स्थापयेन्मण्डले शुभे ।। विरच्य लिङ्गतोभद्रं पूजयेद्देवमञ्जसा ।। पायसं जुहुयात्तत्र तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः ।। अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रायश्चित्तं चरेच्छुभम् ।। मण्डलं दक्षिणायुक्तमाचार्याय निवेदयेत् ।। ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ।। ये कुर्वन्ति व्रतमिदं पापमुक्ता भवन्ति ते ।। भुक्त्वा यथेप्सितान् भोगानन्ते सायुज्यमाप्नुयुः ।। इति श्रीभविष्ये पुराणे विप्राग्निगोहनुमल्लक्षप्रदक्षिणाव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

गो ब्राह्मण अग्नि और हनुमान्‌जीकी लाख प्रदक्षिणाओंकी विधि—युधिष्ठिरजी बोले कि, हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! हे सब विद्याओंके जाननेवाले ! मैं कुछ जानना चाहता हूं । वह आप मुझे बतावें, ज्ञान अज्ञान किसी तरहभी किये गये अनेकों पाप कैसे नष्ट हों ? यह बताइये । व्यासजी बोले कि, गौ, अग्निद्विज और हनुमान्‌जीकी लाख प्रदक्षिणा करिये । ब्रह्माजीने नारदजीके प्रश्नपर जो उत्तर दिया था, उसे सुनिये । नारदजी बोले कि, जो सदा, पापोंमेंही लगे रहते हैं अधर्म और धर्मके भेदभावसे हीन हैं व्रत ज्ञान और आचारसे विहीन हैं उन जन्तुओंके पापोंको नष्ट करनेका कौनसा प्रायश्चित्त हो ? ब्रह्माजी बोले कि, आप जैसे साधुओंके माहात्म्यका कैसे वर्णन करूं ? बहुत अच्छा अच्छा अब मैं तुम्हें उत्तमव्रत सुनाता हूं ।÷ ब्रह्महत्यादिक

÷ब्रह्महत्या सुरापान गुरुतल्पग स्वर्णकी चोरी तथा इनके पापियोंका साथ ब्राह्मणको हाथदण्ड आदिसे पीडा न सूंघनेकी वस्तु और मद्यका सूंघना, कुटिलता और पुरुषसे मैथुन ये पाप जाति शंकर हैं । गधा, घोडा, ऊंट, मृग, हाथी, बकरा, मेढा, मच्छ, सर्प, महिष इनकी हत्या ये पाप संकर करनेवाले हैं । जिनसे दान न लेना चाहिये उनसे दान लेना, अयुक्त, वाणिज्य, और शुद्र सेसा, झूठ बोलना ये सब पाप अपात्रीकरण यानी अयोग्य बनानेवाले हैं । कृमि कीट और पक्षियोंको मारना, शरावके साथ आये हुए शाक आदिका भोजन, फल, लकड़ी और फूलोंकी चोरी, अधैर्य्य ये पाप मलिनीकरण यानी मलिन करनेवाले हैं । अपने उत्कर्षके लिये झूठा दोष लगाकर दण्ड दिलाना गुरुकी झूठी बुराई करना ये सब पाप ब्रह्महत्याके बराबर हैं । वेदको पढ़कर अभ्याससे भुला देना, वेदकी निन्दा करना, झूठी गवाई देना, मित्रको मारना, निन्दित एवं अभक्ष्यका खाना ये छओं शराब पीनेके बराबर हैं । किसीकी धरोहरको मार लेना नर, अश्व, रजत भूमि, वज्र और मणियोंका हरलेना सोनेकी चोरीके बराबर हैं । अपनी सदोहर बहिन कुमारी और अन्त्यजामें वीर्य्यसेक तथा मित्र और पुत्रकी स्त्रीसे सहवास यह गुरुपत्नीके सहवासके बराबर है । उपपातक-गोवध, जाति लथा कर्मसे दुष्टोंका योजन, योजन,परस्त्रीगमन,अपनेको बेचना,मातापिता ओर गुरुकी सेवा न करना,ब्रह्म यज्ञका त्याग, वेदका भुलाना—

१ प्रदक्षिणा इति शेषः ।

पाप, संकरीकरण, जाति भ्रंशकर, अभक्ष्यभक्ष्यण इन सब पापोंका विष्णुभगवान्ने एकही प्रायश्चित्त बताया है। वह लक्ष प्रदक्षिणा है। यह सब पापोंको नष्ट करनेवाला है। एवं कल्याण कारक है। विशेष करके आषाढ़ शुक्ला एकादशीके दिन द्वादशी या पौर्णिमाको इस व्रतका प्रारंभ करना चाहिये। गुरु और गणेशको प्रणाम करके देशकालको कह संकल्प करे, पीछे तीनों अग्नियोंको प्रमाण करके लक्ष प्रदक्षिणा करे, प्राण और इन्द्रियोंको जीतकर मुखमें मन्त्र कहे कि, गार्हपत्यके लिए नमस्कार, दक्षिणाग्निके लिये नमस्कार, आहवनीयके लिये नमस्कार तथा महावेदीके लिये नमस्कार है।। गऊकी प्रदक्षिणा—भी एक लाख करनी चाहिये, विधिके साथ पहिले गऊकी पूज उसे उत्तम नैवेद्य दे, तथा वारंवार नमस्कार करता हुआ प्रदक्षिणा करे कि, गऊओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन रहते हैं, इस कारण मेरा इस लोक और परलोक दोनोंमें कल्याण हो, इस प्रकार प्रदक्षिणा करे, सब पापोंसे छूट जाता है। विप्रप्रदक्षिणा—कर्मेष्ठी ब्राह्मणको विधिपूर्वक पूजे, पीछे एक लाख प्रदक्षिणा करे, हे भूदेव! तेरे लिये नमस्कार है, हे ब्रह्मरूप! तेरे लिये वारंवार नमस्कार है, देव आदि सभीने पूजा है इस कारण मैं भी पूज रहा हूं, मुझे भी शान्ति दीजिये भूत प्रेतविनाशी हनुमान्जीकी लक्ष प्रदक्षिणा – भी इसी तरह होनी चाहिये, सोलहों उपचारोंसे पूजे, अपने कार्य्यकी सिद्धिके लिये लाख प्रदक्षिणा मंत्र बोलता हुआ करे कि, मनकेसे जववाले, वायुकेसे वेगवान् जितेन्द्रिय, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, वायुपुत्र, वानरोंके यूथपोंमें मुख्य, श्रीरामचन्द्रजीके दूतकी शरण में हूं।। उद्यापन – सबकाही करे, क्योंकि, उद्यापनेसही फलकी प्राप्ति होती है, उद्यापन विधानमें सबसे पहिले पुण्याहवाचन हो, आचार्य्यका वरण करे, सोनेकी प्रतिमा बनावे, सर्वतोभद्रमंडल बनावे, उसपर अव्रण (सोरी विनाका) कलश स्थापन करे, उसपर देवको विराजमान करे, जिसका उद्यापन हो उसीके मंत्रसे पायसकी आहुति एक हजार आठ दे, उसपर देवको विराजमान करे, जिसका उद्यापन हो उसीके मंत्रसे पायसकी आहुति एक हजार आठ दे, दक्षिणा समेत मंडल आचार्य्यके लिये दे दे।। धनका लोभ छोडकर शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे, जो इस व्रतको करते हैं वे निष्पाप होजाते हैं वह यथेष्ट भागोंको भोगकर अन्तमें सायुज्य पाजाता है।। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ विप्र अग्नि गौ और हनुमानकी लाख प्रदक्षिणाका व्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ।।

अथ लक्षबिल्वपत्रपूजा

व्यास[1] उवाच ।। पूर्वजन्मनिभिल्लोऽसौ क आसीद्राक्षसोऽपि कः ।। किं शीलः किं समाचारस्तन्ममाचक्ष्व नाभिज ।। १ ।। किंनामा स कथं प्राप्तः सालोक्यं

—श्रौत स्मार्त अग्नियोंका त्याग बेटेका संस्कार न करना, छोटे बेटेका पहिले विवाह कर लेना (उसमें विवाह करानेवाले ऋत्विज तथा कन्या देनेवाले पुरुष भी पापी होते हैं) कन्याको दूषित करना; ब्याज खाना, व्रतका लोप करना, तडाग, आराम, दार और अपत्यको बेचदा, व्रात्यपना, भाईबन्दोंको छोड़ना, नौकरी लेकर पढ़ाना, वेतनसे पढ़ना, न वेचनेकी वस्तु वेचना, सुवर्ण आदिकी उत्पत्तिके स्थानपर राजाकी आज्ञासे अधिकार करलेना, उचित स्थलके प्रवाहोंका रोकना, औषधियोंकी हिंसा, स्त्रियोंसे व्यभिचार कराकर अपनीजीविका करना, मारणादिक अभिचार कर्म जलानके लिये हरे पेढोंका कटाना, अपने लिये क्रिया करना, बुरे अन्नको खाना, अग्नि न रखना, चोरी, कर्ज न चुकाना असत् शास्त्रोंका पढ़ाना, नटकर्मसे जीविका करना, धान्य कुप्य और पशुकी चोरी, शराब पी हुई स्त्रीसे सहवास करना, स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियका वध, नस्तिकता ये सब उपपातक कहे हैं यानी इनमेंसे प्रत्येक की उपपातक संज्ञा है।।

१ कदाचिदरण्ये मृगयार्थं संचरन्तं भिल्लं कश्चिद्राक्षस आगत्य जग्धु प्रववृते। तं च दृष्वा तद्भयाद्भिल्लो विल्ववृक्षमारुहोह आरोहणसंभ्रमवशात्ततः पतितानि विल्वपत्राण्यधोविराजमाने शिवलिंगेन्यपतन् तावन्मात्रेण संतुष्टः पार्वती पतिर्भिल्लराक्षसयोर्दिव्यं देहं दत्त्वा स्वर्लोकं निनायेत्येवंरूपां कथां बिल्वमाहात्म्यकथनप्रसंगेनोक्तवान्ब्रह्मा व्यासं प्रति ततो व्यासस्यायं प्रश्न इत्यग्निमप्रश्नोत्तराभ्यामनुमीमते।

तद्वदस्व मे ।। ब्रह्मोवाच ।। परेषां दोषकथने दोषो यद्यपि वर्तते ।। २ ।। प्रश्ने कृते प्रवक्तव्यं याथार्थ्यं न तु मत्सरात् ।। विदर्भ देशे नगरं मोदाशाख्यं बभूव ह ।। ३ ।। विख्यातं त्रिषु लोकेषु कुबेरनगरोपमम् ।।भीमो नामाभवद्व्याधो नगरे मांसविक्रयी ।। ४ ।। स राज्यकार्यं कुरुते स्वयं भुंक्ते वराङ्गनाः ।। राष्ट्रे शृणोति यां रामां रम्यां सपतिकामपि ।। ५ ।। बलादानीय भुंक्तोऽसौ क्रन्दतीं रुदतीमपि ।। वराङ्गनानां कुरुते वेषं विषयलम्पटः ।।६।। तयोक्तं कुरुते नारी या तद्दृष्टिपथं गता ।। तामालिंगत्यसौ कामी चुम्बत्येवं भजत्यपि ।। ७ ।। परद्रव्याणि गृह्णाति धनानि स बलात्पुनः ।। सोऽपि तादृग्गुणो राजा दुष्टबुद्धिरघे रतः ।। ८ ।। एवं दुराचाररतो न कन्यां न च मातरम् ।। न वर्जयति संभोगे भगिनीमपि निर्घृणः ।। ९ ।। न ब्रह्महत्यां मनुते न स्त्रीबालवधं तथा । एवं पापसमाचारौ पापस्य पर्वताविव ।। १० ।। आस्तामुभौ दुष्टबुद्धी राजामात्यौ सुदुःसहौ ।। न ब्राह्मणो न सन्यासी तद्गृहे याति भिक्षितुम् ।।११।। नराष्ट्रेऽसन्नाम[1] तयोगृह्णातिप्राक्त-तोऽपि च ।। एकदा मृगयार्थं तौ यातौ च गहनं वनम् ।। १२ ।। हतानि मृगयूथानि पक्षियूथान्यनेकशः ।। तानि प्रापय्य नगरे अश्वारूढौ स्वयं पुनः ।। १३ ।। शिवस्य च महास्थानं पथि तौ पश्यतः स्म ह ।। यस्मिन्विराजते मूर्तिः शक्त्या सह शिवस्य च ।। १४।। स्थापिता रामपित्रा[2] सा पुत्रार्थं कुर्वता तपः ।। भक्त्या साक्षात्कृतो यत्र देवदेवो ह्यु मापति : ।। १५ ।। पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण ध्यायता बहुवासरम् ।। दत्त्वा तस्मै वरान् देवः प्रपेदे वाञ्छितान्यपि ।। १६ ।। ततो वसिष्ठहस्तेन तेनेयं स्थापिता दृढा ।। उमामहेश्वरी मूर्तिः प्रासादसहिता मुने ।। १७ ।। यस्या दर्शनतो नृणां पुरुषार्थाश्चतुर्विधाः ।। स्मरणात्पूजनाच्चापि भवेयुर्नात्र संशयः ।। १८ ।। एवं वसिष्ठवाक्येन सा परं भुवि पप्रथे ।। शिवस्य भजनेनास्य स्मरणेनार्चनेन च ।। १९ ।। रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतः सदृशाः सुताः ।। जाता लोकेषु विख्याताः सर्वज्ञा शूरसंमताः ।।२०।। एवं दृष्ट्वा महारम्यं प्रासादं राजनिर्मितम् ।। उमा-महेश्वरीं मूर्ति राजामात्यौ पुपूजतुः ।। २१ ।। बिल्वपत्रैश्च संपूज्य अच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः ।। प्रदक्षिणीकृत्य गृहमीयतुः क्षणमात्रतः ।। २२ ।। एतदेव पुरा पुण्यं दैवाज्जातं तयोस्तदा ।। एवं पापसमाचारौ राज्यं कृत्वाथ मम्रतुः ।। २३ ।। बध्वा पाशैर्याम्यदूतैर्नीतौ तौ शमनान्तिकम् ।। चित्रगुप्तं समाहूय पप्रच्छ स शुभाशुभम् ।। २४ ।। तेनोक्तं नैतयोरस्ति पुण्यलेशो रवेः सुत ।। पापानां गणना नास्ति ततो दूतान् यमोऽब्रवीत् ।। २५ ।। वध्येतां वध्येतामेतौ क्षिप्येतां नरकेषु

---

१ असद्दृष्टम । २ दशरथेन ।

च ।। कुण्डेऽवीचिरये पात्यौ सहस्रं परिवत्सरान् ।। २६ ।। एकैकस्मिन् क्रमेणैवं कुण्डे भुक्ताघसञ्चयौ ।। मृत्युलोके ततो ह्येतौ पात्येतां नीचयोनिषु ।। २७ ।। अनयोः पुण्यलेशोऽस्ति दूताः शृणुत मन्मुखात् ।। प्रसङ्गार्दाचतो दृष्टो देव आभ्यामुमापतिः ।। २८ ।। तेन पुण्येन तत्रैतौ पापं व्यतितरिष्यतः ।। एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं दूतैर्बध्वा हतौ दृढम् ।। २९ ।। कुम्भीपाके शोणितोदे निरये रौरवेऽपि तौ ।। निक्षिप्तौ कालकूटे च क्रमशः शतवत्सरान् ।। ३० ।। तामिस्रे चान्धतामिस्रे पूयशोणित[1]कर्दमे ।। कण्टकैश्च क्षताङ्गौ तौ सन्तप्तौ तप्तवा[2]लुके ।। ३१ ।। खादितौ क्रिमिभिर्नीतौ भृशं शुनिमुखे ह्युभौ ।। असिपत्रवने घोरे ततो नीतावुभावपि ।। ३२ ।। यत्र शस्त्राभिघातेन वर्म भिद्येत पापिनाम् ।। ततस्तप्तशिलायां तौ निष्पिष्टौ घनघाततः ।। ३३ ।। भुक्त्वा तु नरकानेवं दुःखितौ बहुवासरम् ।। दुःखं शक्यते वक्तुं शेषेणैतत्कदाचन ।। ३४ ।। एवं बहुसहस्राणि भुक्त्वा भोगाननेकशः ।। निस्तीर्णभोगौ तौ पापशेषेण भुवमागतौ ।। ३५ ।। एको जातः काकयोनावुलूकोऽभूत्परोऽपि च ।। तत एको दर्दुरोऽभूदपरः सरठोऽभवत् ।। ३६ ।। तत एको विषधरोपरोऽभूद्वृश्चिकोऽपि च ।। तत्रापि कुरुतः पापं नानालोकविदंशतः ।। ३७ ।। शुनीमार्जारयोनौ तौ चातौ नकुलसूकरौ ।। वृकजम्बूकयोनौ तौ जातौ घोटकगर्दभौ ।। ३८ ।। तत उष्ट्रगजौ जातौ ततो नक्रमहाझषौ ।। ततो व्याघ्रमृगौ जातौ ततो वृषभकासरौ।।३९।।एवं नानायोनिगतौ जातौ तौ श्वपचान्त्यजौ ।। राक्षसीं भिल्लयोनिं च ततश्चान्ते समीयतुः ।। ४० ।। पिङ्गाक्षो दुर्बुद्धिरिति नाम्ना जातौ च भूतले ।। एकं पुण्यं तयोरासीन्मृगयां सर्पतोः क्वचित् ।। ४१ ।। शङ्करस्य च नमनं दर्शनं च प्रदक्षिणा ।। अर्चनं बिल्वपत्राद्यैस्तुष्ट आसीदुमापतिः ।। ४२ ।। अगाधं तत्तयोः पुण्यं पूर्वजन्मनि सञ्चितम् ।। तत्प्रभावात्तयोरासीत्पापमुक्तिस्तथा शृणु ।। ४३ ।। वने भ्रमन् राक्षसोऽसौ भिल्लं भक्षितुमागतः ।। स आरूढो बिल्ववृक्षं तत्पत्राणि च मस्तके ।। ४४ ।। पतितानि उमेशस्य तुष्टोऽभूत्स द्वयोरपि ।। दिव्यदेहं तयोर्दत्त्वा स्वर्लोकं प्रापयद्विभुः ।। ।। ४५ ।। एतत्ते कथितं पूर्वं जन्म कर्म च वै तयोः ।। बिल्वपत्रार्चनं देवं तुष्टोऽभूत्स उमापतिः ।। ४६ ।। तल्लक्ष पूजां कुर्याच्चेत्प्रसन्नो हि शिवो भवेत् ।। श्रीकामो बिल्वपत्रैश्च पूजयेच्च तथा शिवम् ।। ४७ ।। लक्षेण सर्वसिद्धिश्च नात्र कार्या विचारणा ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति सर्वशः ।। ४८ ।। अथ विप्र प्रवक्ष्यामि बिल्वपत्रैश्च पूजनम् ।। शम्भुप्रीतिकरं नृणां शिवभक्तिविवर्धनम्

---

१ निक्षिप्तावित्यर्थः । २ कृताविति शेषः ।

।। ४९ ।। वैशाखे श्रावणे वोर्जे बिल्वपत्रार्चनं स्मृतम् ।। दिनेदिने सहस्रेण अर्चये-द्बिल्वपत्रकैः ।। ५० ।। दशाहाधिकमासैस्तु त्रिभिः कुर्यात्ततो व्रती ।। विधिनोद्यापनं सम्यग्व्रतस्य परिपूर्तये ।। ५१ ।। आहूय ब्राह्मणान् शुद्धान् सुचन्द्रे च शुभे दिने ।। देवागारेऽथवा गोष्ठे शुद्धे वा स्वीयमन्दिरे ।। ५२ ।। यत्र चोद्यापनं कार्यं मण्डपं तत्र कारयेत् ।। वेदिका तत्र कर्तव्या मण्डपे च सुशोभने ।। ५३ ।। गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।। प्रविश्य मण्डपे तस्मिन्नाचार्येण द्विजैः सह ।। ।। ५४ ।। मासतिथ्यादि संकीर्त्य कुर्यात्स्वस्त्ययनं ततः ।। पुण्याहवाचनं कार्य-माचार्यवरणं तथा ।। ५५ ।। दक्षं ब्राह्मणमाहूय वेदवेदाङ्गपारगम् ।। आचार्यं वरयेत्पूर्वं तत एकादशर्त्विजः ।। ५६ ।। वस्त्रेणाच्छाद्य वेदीं तां तत्र स्तम्भविराजिताम् ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पट्टकूलादिवेष्टिताम् ।। ५७ ।। तन्मध्ये लिङ्गतो-भद्रं रचयेल्लक्षणान्वितम् ।। कुर्यात्तण्डुलकैलासं त्रिकूटं तस्य चोपरि ।। ५८ ।। कलशं स्थापयेत्तत्र ताम्रं वा मृन्मयं शुभम् ।। गङ्गोदकसमायुक्तं पञ्चरत्नसम-न्वितम् ।। ५९ ।। पञ्चपल्लवसंयुक्तं स्वर्णचन्दनसंयुतम् ।। वस्त्रयुग्मेन संवेष्टच कैलासं कलशं तथा ।। ६० ।। न्यसेत्तत्रोमया सार्धं शङ्करं लोकशङ्करम् ।। सौवर्णीं प्रतिमां कृत्वा मध्ये मन्त्रपुरःसरम् ।। ६१ ।। ब्रह्माणं दक्षिणे भागे सावित्र्या सह सुप्रभम् ।। कौबेर्यां स्थापयेद्विष्णुं लक्ष्म्या सह गरुत्मता ।। ६२ ।। यदुक्तं रुद्रकल्पेषु पूजनं तच्च कारयेत् ।। वेदशास्त्रपुराणैश्च रात्रिं तां गमयेत्व्रती ।। ।। ६३ ।। ततः प्रभातसमये नद्यां स्नात्वाशुचिर्भवेत् ।। स्थण्डिलं कारयेत्तत्र स्वशाखोक्तविधानतः ।। ६४ ।। हवनं च प्रकुर्वीत पायसाज्यतिलैः पृथक् ।। मूल-मन्त्रेण गायत्र्या शम्भोर्नामसहस्रकैः ।। ६५ ।। येन मन्त्रेण पूजा वा कृता तेनैव कारयेत्।। हवनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन तर्पणम्।।६६।। तर्पणं तद्दशांशेन कुर्यात्तिल-यवोदकैः।। शक्त्यभावे तु हवनमष्टोत्तरसहस्रकम्।।६७।। सौवर्णबिल्वपत्रेण पूजये-द्गिरिजापतिम् ।। आचार्यं पूजयेद्विप्रांस्तोषयेद्दक्षिणादिभिः ।। ६८ ।। पयस्विनीं च गां दद्याद्धिरण्येन सहैव तु ।। प्रतिमां च सवस्त्रां तां कलशं पर्वतं तथा ।। ६९ ।। दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्देवदेवं जगद्गुरुम् ।। अनेनैव विधानेन लक्षपूजां करोति यः ।। ७० ।। पुत्रपौत्रप्रपौत्रैश्च राज्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ।। य इदं पठते नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। तस्य देवो महादेवो ददाति विमलां गतिम् ।। ।।७१ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे विल्वदललक्षपूजनव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

लाख बेल पत्रोंसे शिवपूजा—व्यासजी बोले कि, पहिले जन्ममें भील और राक्षस कौन थे उनका शील और आचार क्या था ? हे ब्राह्मन् ; यह मुझे सुनाइये ।।१।। क्या नाम तथा कैसे सालोक्य पाया ? यह मुझे बता दीजिए, ब्रह्माजी बोले कि, यद्यपि दूसरेके दोष कहनेमें दोष हैं ।।२।। पर पूछनेपर कह दे, मत्सरसे न कहना चाहिये, विदर्भदेशमें एक मोदाशनामक नगर था ।।३।। वह तीनों लोकमें प्रसिद्ध कुबेरके

नगरके समान था । उसनगरमें भीमनामकमांसका व्यापार करनेवाला व्याध था ।।४।। वह स्वयं राज्यकार्य करता (यानी मन्त्री) था सुन्दर स्त्रियोंका भोग करता था, जिसस्त्रीको वह सुन्दर समझता था चाहे वह पतिवाली भी क्यों न हो ।।५।। उस रोती क्रन्दन करती हुई कोभी जबरदस्ती लाकर भोगता था । वह विषय-लंपट सुन्दर स्त्रियोंका वेष बना लिया करता था ।।६।। जो स्त्री उसकी दृष्टिमें आजाती वह उसका कहना मानती वह उसी वेषमें उसका आलिंगन चुंबन और सेवन करता था ।।७।। बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यधनको ले लेता था । दुष्टबुद्धि राजाभी वैसाही पापी था ।।८।। वह इसतरह पापमें रत रहनेवाला, पापी, कन्या माता और बहिनको भी संभोगमें नहीं छोडता था न उसे दयाही आती थी ।।९।। ब्रह्महत्या और बालवधको तो वह मानतेही नहीं थे, इसप्रकार वे पापी पापके पर्वतकी तरह ।।१०।। राजा और मन्त्री दोनों दुःसह दुष्ट बुद्धि रहे, उसके घरपर ब्राह्मण और संन्यासी कोईभी मांगने नहीं जाता था ।।११।। राज्यमें कोई अच्छा आदमी उनका नामभी नहीं लेता था, एक दिन दोनों शिकार खेलनेके लिये गहन वनमें घुसगये ।।१२।। उन्होंने अनेकोंही यूथ, पक्षियों और मृगोंको मारे । उन सबको नगरमें पहुँचा दोनों घोडेपर सवार हुए चले ।।१३।। मार्गमें शिवका महास्थान देखा जिसमें कि, शक्तिके साथ शिवजीकी महामूर्ति विराजती थी ।।१४।। यहां दशरथजीने पुत्रके लिये तप करते समय शिव मूर्ति स्थापित कराई थी तथा भक्तिसे देवदेव उमापतिको प्रत्यक्षभी कर लिया था ।।१५।। पञ्चाक्षर मंत्रको जपतेहुए बहुत दिनतक ध्यानकिया था । शिवजीने वरदेकर पदपदपै मनोरथ पूरे कियेथे ।।१६।। उससे वसिष्ठजीके हाथसे यह मूर्ति स्थापित कराई थी । तथा वह मंदिरभी उसी समयका बना हुआ था ।।१७।। शिवके कि, दर्शन स्मरण और पूजनसे मनुष्योंके चारों तरहके पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ।।१८।। वसिष्ठजीके इस वाक्यसे वह और भी भूमंडलपर प्रसिद्ध होगया ।।१९।। इस शिवके भजन स्मरण और अर्चनसे राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न जैसे लोक प्रसिद्ध सर्वज्ञवीर पुत्रपैदा हुए ।।२०।। राजाके बनाये बडे सुन्दर मंदिरको देख उन दोनोंने शिवपार्वतीजीकी पूजा की ।।२१।। विना छेदके कोमल कोमल बेलपत्र चढाये तथा प्रदक्षिणा करके घर चले आये ।।२२।। यही पुण्य उन्होंने दैवत् करलिया, बाकी तो पापही पाप किया, पीछे राज्य करते हुए मरगये ।।२३।। यमके दूत पाशमें बांधकर यमराजके पास ले आये, चित्रगुप्तसे बुलाकर अच्छा बुरा पूछा ।।२४।। चित्रगुप्तने यमसे कहा कि, इनका पुण्य तो लेशमात्रभी नहीं है पर पापोंकी कोश संख्या नहीं है, यह सुन दूतोंसे यमने कहा ।।२५।। कि हे दूतो इन्हें बांधो बांधो नरकोंमें पटक दो, अवीचि रयके कुण्डमें एक हजार वर्ष पडे रहने दो ।।२६।। इस तरह प्रत्येक कुण्डमें पापोंको भुगाकर इन्हें मृत्युलोकमें नीच योनियोंमें जन्म दो ।।२७।। हे दूतो ! सुनो इनका पुण्य लेशभी नहीं है इन्होंने प्रसंगसे शिवके दर्शन और पूजन किया है ।।२८।। उसी पुण्यसे ये वहां पापको पाकर जायेंगे, दूतोंने वचन सुनतेही उन्हें बांधा ।।२९।। कुंभीपाक, शोणितोद, निरय रौरव, कालकूट इनमें सौ वर्षतक क्रमसे पटका ।।३०।। तामिस्र, अन्धतामिस्र, पूयशोणित, कर्दम,इन में क्रमसे पटका, काटोंसे उनका शरीर क्षत विक्षतहुआ, तप्तवालुकामें वे तपाये गये ।।३१।। कीडोंने उन्हें खाया, शुनि मुखमें पटके गये, पीछे दोनों घोर असिपत्रवनमें डाले गये ।।३२।। जहां कि, शस्त्रके आघातसे पापियोंके मर्म विध जाते हैं पीछे तप्त शिलापर घनोंसे पीसे गये ।।३३।। इस तरह उन्होंने बहुत दिनतक नरक भोगे जिन्हें कि, किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता ।।३४।। कितने ही हजार वर्षतक नरककी यातना भोगकर नरकसे बाहिर किये पापशेषसे यहां आये ।।३५।। एक काक और दूसरा उल्लू बना, पीछे एक मेंडक दूसरा गिरगिट बना ।।३६।। पीछे वे बीछू और सांप बने, उस जन्ममें भी लोगोंको काटकर पापही करते रहे ।।३७।। कुत्ती बिल्ली और न्योरा सूकर बने, भेडिया और गीदड बने, पीछे घोडा और गदहा बने ।।३८।। ऊँट, हाथी, मगर और मच्छ बने, व्याघ्र और मृगबनकर वृषभ और कासर बने ।।३९।। इसी तरह अनेक योनियोंको भोग, श्वपच और अन्त्यज बने पीछे राक्षस और भीलबन गये ।।४०।। एकका नाम पिङ्गाक्ष तथा दूसरा दुर्बुद्धि था उन्होंने वहीं एक शिकार खेलते हुए पुण्य किया था कि, मार्ग जाते हुए शंकरको नमस्कार पूजा प्रदक्षिणा और बिल्व पत्रादिकोंसे अर्चन, उससे शिवजी भी तुष्ट हुए थे ।।४१।।४२।। इस

कारण यह उनका पुण्य अगाध था उसके प्रभावसे जैसे उनकी पापमुक्ति हुई उसे सुनिये ।।४३।। बनमें घूमता हुआ राक्षस भीलको खानेके लिए आया, वह बिल्वके वृक्षपर चढगया, उसके पत्ते पार्वती शिवके माथेपर ।।४४।। पडे, इससे दोनोंके ऊपर प्रसन्न हुए शिवने उन्हें दिव्य देहदेकर अपने लोक पहुंचा दिया ।।४५।। मैंने उनका पहिला जन्म और कर्म तुम्हें सुना दिया, बिल्वपत्र चढानेसे शिव प्रसन्न होगये ।।४६।। यदि शिवजीपर लाख बिल्वपत्र चढावे तो वे प्रसन्न होजाते हैं, लक्ष्मी चाहनेवालोंको बिल्वपत्रसे पूजा करनी चाहिए ।।४७।। लाखसे सर्व सिद्धि होजाती है । इसमें विचार न करना चाहिए, जिस कामको मनुष्य चाहता है वह उसे पाजाता है ।।४८।। हे विप्र ! अब बिल्वपत्रोंसे पूजन कहूंगा, जिससे शिवमें प्रीति होती तथा भक्ति बढती है ।।४९।। वैशाख, श्रावण और कार्तिकमें बिल्वपत्रसे पूजन करना चाहिये वह रोज एक हजारसे हो ।।५०।। तीन माह और दशदिनतक लगातार यह व्रत करे । उद्यापन---इसके पीछे विधिपूर्वक होना चाहिए जिसके कि, व्रत पूरा होजाय ।।५१।। अच्छे चन्द्रमा और अच्छे दिन शुद्ध ब्राह्मणोंको बुलावे देवागार शुद्ध, गोष्ठ वा अपने घर ।।५२।। जहां उद्यापन करे मंडप बनावे, उसमें वेदी बनावे ।।५३।। गाने बजाने और वेदपाठपूर्वक आचार्य और दूसरे ब्राह्मणोंके साथ मंडपमें प्रवेश करे ।।५४।। मास तिथि आदि कह संकल्प करे, स्वस्तिवाचन और पुण्याहवाचन हो, आचार्य्यका वरण करे ।।५५।। वेदवेदांगोंके जाननेवाले दक्ष ब्राह्मणको बुलाकर उसे आचार्य बनावे, ग्यारह ऋत्विज वरण करे ।।५६।। वेदीको वस्त्रसे ढककर फूलोंकी मंडपिका बनावे, उसे कूलपट्ट आदिसे वेष्टित करे ।।५७।। उसपर विधिपूर्वक लिंग तोभद्र रचे, उसपर चावलोंका कैलास पर्वत बनावे ।।५८।। उसपर मिट्टी तांबेका शुभ कलश बनावे, उसे गंगा जलसे भरे, पञ्चरत्न डाल ।।५९।। पञ्च पल्लव और सोना चन्दन डाले, कैलास और कलशको दो वस्त्रोंसे वेष्टित कर दे ।।६०।। उसपर उमासहित शिवजीकी स्थापना करे, सोनेकी प्रतिमा हो मंत्रके साथ करे ।।६१।। सावित्रीसहित ब्रह्माको दक्षिणमें, उत्तरमें लक्ष्मी और गरुड समेत विष्णुको करे ।।६२।। जो कुछ रुद्रकल्पमें पूजन विधिमें लिखी है, उसके अनुसार पूजन करे, उस रात्रिको वेदशास्त्र और पुराणोंके पाठसे व्यतीत करे ।।६३।। प्रभात नदीमें स्नान करके पवित्र हो, अपनी शाखाके अनुसार स्थण्डिल बनावे ।।६४।। पय आज्य और तिलसे सहन करे, शिवके मूलमंत्र शिवगायत्री या सहस्रनामसे ।।६५।। जिसके कि, पूजाकी गई हो उसीसे दशांश हवन करे, हवनका दशांश तर्पण होना चाहिए ।।६६।। वह कुश और तिलके पानीसे हो, यदि शक्ति न हो तो एक हजार आठही आहुति देदे ।।६७।। सोनेके बिल्वपत्रसे गिरिजापतिकी पूजा करे आचार्य और ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा दक्षिणाआदिसे सन्तुष्ट करे ।।६८।। सोनेके साथ दूध देनेवाली गाय दे, वस्त्रसहित प्रतिमा कलश और वस्त्र ।।६९।। देकर जगद्गुरुसे क्षमा मांगे, इस विधानसे जो लक्ष पूजा करता है ।।७०।। वह पुत्र पौत्र प्रपौत्र और राज्य पाता है । जो इसे श्रद्धा भक्तिके साथ पढता है उसे महादेव विमल गति देते हैं ।।७१।। यह की स्कन्धपुराणका कहा हुआ लाख बेलपत्रोंसे पूजनव्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथ शिवस्य नानालक्षपूजाविधिः

ऋषय ऊचुः ।। यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।। यदुद्दिश्य च कार्याणि तत्सर्वं कथितं त्वया ।। इदानीं लक्षपूजाया विधिं वद शिवस्य वै ।। शिवाख्यानपरो लोके त्वत्तोऽन्यो न हि विद्यते ।। कृपया व्यासदेवस्य सर्वज्ञोऽसि महामते ।। लोमश उवाच ।। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरान्तानि भो द्विजाः ।। माहात्म्यानि च शास्त्राणि कथितानि मया पुरा ।। इदानीं वक्तुमिच्छामि लक्षपूजां शिवस्य च ।। स्कन्देन च समाख्याता अगस्त्याय महामते ।। तेनैव कथिता पूजा मामग्रे लक्षपुष्पिका ।। यदृतौ यद्भवेत्पुष्पं शङ्करे तत्समर्पयेत् ।। श्रावणे

माधवे वोर्जे विदध्याल्लक्षपुष्पिकाम् ।। एकैकं मूलमन्त्रेण रुद्रमन्त्रेण वा पुनः ।। अथवा रुद्रसूक्तेन [1]सहस्रेणाथवा व्रती ।। अर्पयेत्पार्वतीनाथे नमो रुद्राय वा जपन् ।। अनेनैव प्रकारेण लक्षपूजां समर्पयेत् ।। ऋषय ऊचुः ।। यानि यानि च पुष्पाणि विशिष्टानि शिवार्चने ।। तानि सर्वाणि भो ब्रह्मन् कथयस्व यथातथम् ।। लोमश उवाच ।। बार्हतं कर्णिकारं च करवीरं तिलस्य[2] च ।। बिल्वपुष्पं च कल्हारमर्कं मन्दारमेव च ।। नीलोत्पलं च कमलं कुमुदं च कुशेशयम् ।। मालती चम्पकं चैव तथा मोगरकं शुभम् ।। तगरं शतपत्रं च सौवीरं मुनिसंज्ञितम् ।। जाती पाटलकं चैव पुन्नागं च विशिष्यते ।। कदम्बं च कुसुम्भं च अशोकं बकुलं तथा ।। पालाशं कोरटं चैव मुकुलं धत्तुरं तथा ।। एतान्यन्यानि पुष्पाणि विशिष्टानि शिवार्चने ।। एतेषां लक्षपूजां वै यः करोति नरोत्तमः ।। भुक्त्वा भोगान् स विपुलान् शिवेन सह मोदते ।। आयुष्कामेन कर्तव्यं चम्पकैः पूजनं महत् ।। विद्याकामेन कर्तव्यमर्कपुष्पैर्विशेषतः ।। पुत्रकामेन कर्तव्यं बार्हतौः पूजनं महत् ।। करबीरैर्जातिकुसुमैश्चम्पकैर्नागकेसरैः ।। बकुलीतिलपुन्नागैर्धनकामः प्रपूजयेत् ।। दुःस्वप्ननाशनार्थाय द्रोणपुष्पैस्तु पूजनम् ।। कल्हारैः कर्णिकारैश्च मन्दारैः कुसुमैः शुभैः ।। श्रीकामेन च कर्तव्यं बिल्वपुष्पैस्तु पूजनम् ।। विद्याकामे नकर्तव्यं शंकरस्य प्रपूजनम् ।। पालाशैः पाटलैश्चैव कदम्बकुसुमैस्तथा ।। महाव्याधिनिरासार्थं पारिजातैस्तु पूजनम् ।। वशीकरणकामेन सौवीरैस्तोषयेत्तु यः ।। तस्य विश्वं भवेद्वश्यं नात्र कार्या विचारणा ।। देवदानवगन्धर्वा वशीभवन्ति नान्यथा ।। पुत्रकामेन कर्तव्यं धत्तूरकुसुमैः शुभैः ।। एवं सर्वैश्च पुष्पैश्च सर्वकामार्थसिद्धये ।। पूजयेत्पार्वतीनाथं भक्तियुक्तेन चेतसा ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।। लक्षपुष्पैः पूजनेन प्रसन्नः शंकरो भवेत् ।। उद्यापनं प्रवक्ष्यामि व्रतस्य परिपूर्तये ।। आहूय ब्राह्मणान् शुद्धान् शुभे च तिथिवासरे ।। यत्र चोद्यापनं कार्यं मण्डलं तत्र कारयेत् ।। वेदिका च प्रकर्तव्या मण्डपे तत्र शोभने ।। गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।। प्रविश्य मण्डपे तस्मिन्नाचार्येण द्विजैः सह ।। तिथ्यृक्षपूर्वं सङ्कल्प्य कुर्यात्स्वस्त्ययनं ततः ।। पुण्याहवाचनं कार्यमाचार्यवरणं ततः ।। वेदिकाया तु कर्तव्यं स्वस्तिकं परमं शुभम् ।। कुर्यात्तण्डुलकैलासं त्रिकूटं तस्य चोपरि ।। तस्योपरि न्यसेत्कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा ।। पञ्चपल्लवसंयुक्तं पूर्णपात्रसमन्वितम् ।। वस्त्रयुग्मेन संवेष्टय कैलासं कलशं तथा ।। सौवर्णीं प्रतिमां कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि ।। महेशं स्थापयेन्मध्ये पार्वत्यासह सुप्रभम् ।। ब्रह्मणां दक्षिणे

१ सहस्रनामभिः । २ पुष्पमिति शेषः ।

भागे उदीच्यां विष्णुमेव च ।। यदुक्तं रुद्रकल्पे तु पूजनं तच्च कारयेत् ।। वेदशास्त्रपुराणेन रात्रौ जागरणं चरेत् ।। ततः प्रभातसमये नद्यां स्नात्वा शुभे जले ।। स्थण्डिलं कारयेत्तत्र स्वाशाखोक्तविधानतः ।। हवनं रुद्रमन्त्रेणपायसाज्यतिलैः पृथक् ।। प्रार्थयेच्छङ्करं देवं विरिञ्चि विष्णुना सह ।। सावित्री पार्वतीं चैव लक्ष्मीं गणपतिं तथा ।। स्कन्दभैरवचामुण्डान्परिवारांस्ततोऽर्चयेत् ।। नैवेद्यैर्विविधैश्चैव तोषयेद्गिरिजापतिम् ।। श्रेयः संपादनं कार्यमाचार्यपूजनं तथा ।। ऋत्विजः पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ।। गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैस्तोषयेद्ब्राह्मणांस्ततः ।। अभिषेकं ततः कुर्यात्पुराणश्रुतिचोदितम् ।। ततः शिवालये गत्वा सभार्योऽथो द्विजैः सह ।। स्नानं पञ्चामृतेनैवाभिषेकं रुद्रसूक्ततः ।। पूजां सुवर्णपुष्पैश्च ऋतुकालोद्भवैस्तथा ।। कारयेत्तस्य लिङ्गस्य स्वीयशक्त्यनुसारतः ।। वस्त्रयुग्मेन चाभ्यर्च्य दंपती भोजयेत्ततः ।। प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।। क्षमापयेन्महादेवं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।। महादेव जगन्नाथ भक्तानां कार्यकारक ।। त्वत्प्रसादमहं याचे शीघ्रं कार्यप्रदो भव ।। अनेनैव विधानेन लक्षपूजां करोति यः ।। पुत्रपौत्रप्रपौत्रैश्च राज्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ।। य इदं पठते नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। तस्य देवो महादेवो ददाति विपुलां मतिम् ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे लक्षपूजोद्यापनं संपूर्णम् ।।

शिवकी नानालक्षपूजा विधि---ऋषि बोले कि, जो भी कुछ पवित्र तीर्थ और स्थान हैं वह जिसका उद्देश लेकर करने चाहिए यह आपने बता दिया है । इस समय शिवकी लक्ष पूजा विधि कहिए क्यों कि, शिवके आख्यानोंको कहनेवाला आपसे अधिक और कोई नहीं है । आप व्यासदेवकी कृपासे सर्वज्ञ हैं, लोमश बोले कि, हे ब्राह्मणो ! पृथिवीसे लेकर समुद्रतक जितने तीर्थ हैं वे, उनके माहात्म्य और शास्त्र मैंने पहिले कहदिये हैं । इस समय मैं आपको शिवजीकी लक्ष पूजा सुनाता हूं । वह महात्मा स्कन्दजीने अगस्त्यजीके लिए कहीथी । उन्होंनेही लाख पुष्पोंकी पूजा मुझे सुनाई थी । जिस ऋतुमें जो पुष्प हो वह शिवपर चढावे । श्रावण वैशाख वा कातिकमें लाख पुष्प, मूल मंत्र वा रुद्रमंत्रसे अथवा रुद्रसूक्तसे अथवा सहस्रनामसे शिजीपर चढा दे, अथवा "ओम् नमो रुद्राय" इस मंत्रसे चढा दे । इसी तरह लक्ष पूजा पूरी करे । ऋषि बोले कि, शिवके पूजनेके जो जो विशेष फूल हैं, हे ब्रह्मन ! उन उन फूलोंको यथार्थरूपसे सुना दीजिए । लोमश बोले कि, बार्हत, कर्णिकार, तिल, बिल्व, कह्लार, अर्क, नीलोत्पल, कमल, कुमुद, कुशेशय, मालती, चंपक, मोगर, तगर, शतपत्र, सौवीर, मुनिनामक जाती, पाटल, पुन्नाग, कदंब, कुसुंभ, अशोक, बकुल, पलाश, कोरट, बकुल, धतूर इनके पुष्प शिव पूजनमें अच्छे हैं इनसे जो उत्तम पुरुष लक्ष पूजा करता है तो यहां अनेक तरहके भोगोंको भोगकर अन्तमें शिवके साथ आनन्द करता है । आयु चाहनेवालेको चंपक; विद्याकामीको आक, पुत्रकामीको बार्हत; धनकामीको करवीर जाती, चंपक, नागकेशर, बकुल, तिल, पुन्नाग, बुरे स्वप्नका नाश चाहनेवालेको द्रोणपुष्प; श्री चाहनेवालेको कह्लार, कर्णिकार, नन्दार, विद्याकामीको बिल्व, महाव्याधिके नाश चाहनेवालेंको पालाश; पाटल, कदम्ब; किसीको अपने वशमें चाहनेवालेको पारिजातके फूल शिवजीपर पूजाके समय चढाने चाहिए, जो सौवीरके फूल शिवजीपर चढावे तो और तो क्या उसके सब

१ कृत्वेति शेषः ।

विश्व वशमें होजाते हैं । इसमें विचार न करना चाहिये, उसके देव दानव और गन्धर्व सब वशमें होजाते हैं यह झूठी बात नहीं है । पुत्रकामीको धतूरेके फूलोंसे पूजन करना चाहिद्व । सब काम और अर्थोंकी सिद्धि करनेके लिए सबके फूलोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करें । ममुष्य जिस जिस कामको चाहता है वह उसे मिल जाताहै लाख पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करदेनेपर शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं । उद्यापन—कहता हूं व्रतकी पूर्तिके लिए, पवित्र शुभ दिनमें ब्राह्मणोंको बुलाकर जहां उद्यापन करना हो वहां वेदी बनवावे आचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणोंके साथ गाने बजाने और वेदपाठ होते हुएही उसमें प्रवेश करे । वहां तिथि नक्षत्रके साथ संकल्प करे, स्वस्तिपाठ हो, पुण्याहवाचन और आचार्य वरण हो, वेदीपर सुन्दर स्वस्तिक बनावे, उसपर चावलका त्रिकूट कैलास बनावे, उसपर तांबे या मिट्टीका कशल रखे, उसपर पंचपल्लव और पूर्णपात्र रखे, कैलास और कलश दोनोंको दो वस्त्रोंसे वेष्टित कर दे । उस कलशपर सोनेकी शिवपार्वतीजीकी सुन्दर मूर्ति बीचमें दक्षिण भागमें ब्रह्मा तथा उत्तरभागमें विष्णुकी स्थापित करे । रुद्रकल्पके विधानके अनुसार पूजन करावे वेदशास्त्र और पुराणोंसे रातमें जागरण करे । प्रभातमें नदीके पवित्र पानीमें स्नान करे । अपनी शाखाके विधानके अनुसार स्थंडिल करावे । रुद्र मंत्रसे पायस आज्य और तिलोंसे पृथक पृथक् हवन करे । पार्वती, शिव, सावित्री, ब्रह्मा, लक्ष्मीनारायण, गणेश इनकी प्रार्थना करे, पीछे स्कन्ध भैरव और चामुण्डा आदि परिवारोंका पूजन करे,अनेक तरहके नैवेद्योंसे गिरिजापतिको प्रसन्न करे, श्रेयका संपादन और आचार्य पूजन करे, वस्त्र और अलंकारोंसे ऋत्विजोंको तथा गौ भूमि और हिरण्य आदिसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करे । पुराण और श्रुतियोंका कहा हुआ अभिषेक करे। पीछे स्त्रीसहित शिवमंदिर जाकर पंचामृतसे स्नान और रुद्रसूक्तसे अभिषेक होना चाहिये । अपनी शक्तिके अनुसार ऋतुकालके तथा सोनेके फूलोंसे शिवलिङ्ग पूजा करे, दो वस्त्रोंसे अर्चकर दंपतियोंको भोजन करावे । प्रदक्षिणा और नमस्कार करे, हाथ जोडकर शिरपर रखे वारंवार निरालस होकर महादेवजीसे क्षमापान करावे कि, हे महादेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तोंके कामोंके करनेवाले ! नें आपका प्रसाद माँगता हूं आप शीघ्रही कार्य देनेवाले हो जाइये । जो इसी विधिके अनुसार लक्ष पूजा करता है वह बेटे, नाती और पोतियोंके साथ युक्त हो सदाके लिये राज्य पाता है । जो कोई इसे श्रद्धा भक्तिके साथ रोज पडता है उसे श्रीमहादेव अधिक मति देते हैं । यह श्रीस्कन्द-पुराणके उत्तर खण्डका कहा हुआ लाख फूलोंसे शिवपूजाका व्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथ तुलसीलक्षपूजाविधिः

तत्रादौ तुलसीग्रहणविधिः ।। तुलसीप्रार्थना—देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः ।। नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ।। इति तुलसीं संप्रार्थ्य ।। तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ।। केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ।। इति मन्त्रेण तुलसीपत्राणि संगृह्यततो विष्णवेऽर्पयेत् ।। अथ तद्विधिः ।। कृष्ण उवाच ।। अथ राजन्प्रवक्ष्यामि लक्ष श्री तुलसीव्रतम् ।। विष्णुप्रीतिकरं नृणां विष्णुभक्तिविवर्धनम् ।। तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम् ।। न स लिप्येत पापौघैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। सुवर्णभारमेकं तु रजतं च चतुर्गुणम् ।। तत्फलं समवाप्नोति तुलसीदलपूजनात् ।। रत्नवैडूर्यमुक्ताभिः प्रवालादिभिरर्चितः।। न तुष्यति तथा विष्णुस्तुलसीपूजनाद्यथा ।। तुलसीमञ्जरीभिस्तु पूजितो येन केशवः ।। आजन्मकृतपापस्य तेन संमार्जिता लिपिः ।। या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसिनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।। प्रत्यासत्ति

विधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता यस्यार्चा करणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ।। कार्तिके मासि कुर्वीत माघे वा माधवे तथा ।। दिनेदिने सहस्रं तु ह्यर्पयेत्तुलसीच्छदान् ।। एवं [1]मासत्रयं कुर्यात्तत उद्यापनं चरेत् ।। वैशाखे माघ ऊर्जे वा कुर्यादुद्यापनं क्रमात् ।। यस्मिन्मासे प्रकर्तव्यं दर्शने गुरुशुक्रयोः ।। शुभे दिने शुभर्क्षे च शुभलग्ने सुवासरे ।। आचार्यं वरयेदादौ वेदवेदाङ्गपारगम् ।। दान्तं शान्तं तथाऽसङ्गं निःस्वकं ब्रह्मचारिणम् ।। विधिज्ञं तत्त्ववेत्तारं शुचिष्मन्तं तपस्विनम् ।। स्वगृह्योक्तेन मार्गेण पूर्वेद्युः स्वस्तिवाचनम् ।। सौवर्णीं प्रतिमां विष्णोः शङ्खचक्रगदान्विताम् ।। तुलस्यायतनं चैव कुर्याद्धेमविनिर्मितम् ।। हेमादिनिर्मितं कुम्भं पूर्णपात्रसमन्वितम् ।। पुण्योदकैः पञ्चरत्नैः कुशदूर्वाप्रपूरितम् ।। तस्योपरि न्यसेद्विष्णुं लक्ष्मीतुलसिकान्वितम् ।। पूजां पुरुषसूक्तेन कुर्याद्ब्रह्मादिदेवताः ।। उपचारैः षोडशभिः पूजयेच्च व्रती तथा ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिना ।। ततः प्रातः समुत्थाय होमं कुर्याद्विधानतः ।। वैष्णवेन तु मन्त्रेण तिलाज्येन विशेषतः ।। पायसेन घृताक्तेन ह्यष्टोत्तरसहस्रकम् ।। आचार्याय सवत्सां गां दक्षिणावस्त्रसंयुताम्[2] ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्सहस्रं वाथ शक्तितः ।। शतं वाष्टाविंशतिं च श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।। तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्य न कारयेत् ।। एवं यः कुरुते मर्त्यो विष्णुसायुज्यमाव्रजेत् ।। विष्णुप्रीति करं यस्मात्तस्मात्सर्वव्रताधिकम् ।। तुलसीलक्षपूजोक्तं माहात्म्यं शृणुयान्नरः।। सकृद्वापि पठेन्नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।। होमभस्म समादाय रक्षणं त्वात्मनश्चरेत् ।। ब्रह्मराक्षसभूतानि पिशाच ग्रहराक्षसाः ।। पीडां तत्र न कुर्वन्ति होमभस्म तु यत्र वै ।। सर्पादिबाधके प्राप्ते गर्भिण्याश्चाविनिर्गमे ।। भस्मप्रक्षेपमात्रेण सर्वं नश्येद्भयं नृणाम् ।। इति श्रीभविष्यपुराणे लक्षतुलसीव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

तुलसीलक्ष पुजाविधि--कहते हैं । उसमेंभी सबसे पहिले तुलसीके ग्रहणकी विधि कहते हैं, 'देवैस्त्वम् इस मंत्रसे प्रार्थना करे, पीछे 'तुलस्यमृतजन्मासि' इससे तुलसीके पत्र लेकर पीछे विष्णुभगवान्पर चढा चाहियें । (अर्थ प्रदक्षिणा विधिमें कहचुके) तुलसीके पत्र चढानेकी विधि श्रीकृष्णजी बोले कि, हे राजन् ! अब मैं लक्ष तुलसी व्रतको कहता हूं यह विष्णुभगवान्को प्रसन्न करनेवाला तथा विष्णुभगवान्की प्रीतिको बढानेवाला है । जो मनुष्य तुलसीके पत्तोंसे भगवान्को पूजते हैं वे पापोंसे लिप्त नहीं होते । जैसे कमलका पत्ता पानीमें रहकरभी पानीसे निर्लिप्त रहता है, एक भार सोना और चार भार चांदी दियेका फल तुलसीदलोंसे पूजन करनेसे मिल जाता है । रत्न, वैदूर्य, मुक्ता और प्रवालोंसेभी पूजनेसे विष्णुभगवान् उतने नहीं प्रसन्न होते जितने कि, तुलसीदलके पूजनेसे होते हैं । तुलसीकी मंजरीसे जिसने विष्णुभगवान्को पूजा दिया उसने अपने जन्म भरके कियेकामोंकी लिपि धोडाली वह तुलसी दर्शन मात्रसे सब पापोंको नष्ट करती तथा छूनेसे शरीरको पवित्र करती वन्दना करतेही रोगोंको नष्ट करती पानी देनेसे मौतकोभी भयभीत करती और पूजा करनेसे मुक्त कर देती है लगानेसे कृष्णकी प्रत्यासत्ति करती है ऐसी तुलसीके लिये वारंवार नमस्कार है । कार्तिक, माघ या वैशाखके महीननेमें प्रति दिन एक हजार रोज तुलसीदल चढावे, तीन मास

१ दशदिनाधिकमिति शेषः । २ दद्यादिति शेषः ।

इसी तरह करके उद्यापन करे, वैशाख, माघ वा कार्तिक क्रमसे उद्यापन करे । जिस महीने में उद्यापन करे; उसमें गुरु और शुक्रके दर्शनमें शुभ दिन और नक्षत्र शुभ लग्न और दिनमें करे, वेद वेदांगोंके ज्ञाता आचार्यका वरण करे । वह शान्त, दान्त, असंग, निःस्वक, ब्रह्मचारी विधिका जाननेवाला, तत्ववेत्ता शुचि और तपस्वी हो । अपने गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार पहिले दिन करे । स्वस्ति वाचन करावे; शंख, चक्र गदा, पद्म लिये हुए सोनेकी विष्णुभगवान्की प्रतिमा बनावे, तुलसीका आयतनभी सोनेका हो, पूर्ण पात्रके साथ सोनेका कुंभ हो । उसमें पवित्र पानी भरा हो । पंचरत्न कुश और दूब पडे हों, उसपर लक्ष्मीजी और तुलसीजीके साथ विष्णुभगवान्को विराजमान करे । पुरुषसूक्तसे पूजा करे, ब्रह्मादिक देवोंकी सोलहों उपचारोंसे पूजा करे पुराणश्रवण आदिसे रातमें जागरण करे । प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक होम करे, वैष्णवमंत्रसे तिल आज्यसे एवं विशेष करके घीसे भीगी पायससे एवं हजार आठ आहुति दे । आचार्य्यको दक्षिणा दोवस्त्र और बछडेवाली गाय दे । अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन करावे,अथवा श्रद्धा भक्तिके साथ सौ वा अट्ठाईस जिमा दे, उन्हेंभी दक्षिणा दे, लोभ न करे, जो मनुष्य इस प्रकार करता है वह विष्णु-भगवान्के सायुज्यको पाता है, यह विष्णुभगवान्को प्रसन्न करनेवाला है, इस कारण सब व्रतोंसे अधिक है । तुलसीदलसे लक्षपूजाकेकहे माहात्म्यको जो मनुष्य सुनता है अथवा रोज एकवारभी पढ ले वह विष्णु-लोकको चला जाता है, होमकी भस्म लेकर अपने शरीरकी रक्षा करे । ब्रह्मराक्षस, भूत, पिशाच, ग्रह, राक्षस, होम की भस्म रहती है वहां पीडा नहीं करते, सर्व आदिकी बाधा तथा गर्भिणी आदिके प्रसवकालमें भस्मके प्रक्षेपमात्रसे मनुष्योंका सब भय मिटजाता है । यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ तुलसीव्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ॥

अथ विष्णोर्लक्षपुष्पपूजाविधिः

ऋषय ऊचुः ॥ यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ यदुद्दिश्य च कार्याणि तत्सर्वं कथितं त्वया ॥ इदानीं वद विष्णोश्च लक्षपुष्पार्चनं मुने ॥ लोमश उवाच ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरान्तानि भो द्विजाः ॥ माहात्म्यानि च सर्वाणि कथितानि मया पुरा ॥ इदानीं वक्तुमिच्छामि पुष्पैर्नानाविधैरहम् ॥ लक्षपूजां प्रवक्ष्यामि विष्णोरपिततेजसः ॥ पुष्पाणां लक्षपूजां तु कार्तिके च समाचरेत् ॥ माघे वा बाहुले वापि भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ यदृतौ यद्भवेत् पुष्पं विष्णवे तत्समर्पयेत् ॥ एकैकं मूलमन्त्रेण विष्णुसूक्तेन वा पुनः ॥ अथवा विष्णुगायत्र्या नाम्ना चैव प्रपूजयेत् ॥ विष्णोः सहस्रनाम्ना वै पुष्पाणि शृणुतानघाः ॥ अतसी कर्णिकारं च करवीरं तिलस्य च ॥ बार्हतं कैतकं चैव तथा मन्दारमेव च ॥ नीलोत्पलं सकुमुदं मालती चम्पकं तथा ॥ जाती पाटलकं चैव पुन्नागं च कदम्बकम् ॥ कल्हारं मोगरं चैव ह्यशोकं बकुलं तथा ॥ मुनिपुष्पाणि शस्तानि विष्णोरमिततेजसः ॥ पालाशं कण्टकीपुष्पं कमलं कोरटं तथा ॥ नीलपुष्पं धात्रिपुष्पं हरेः शस्तानि वै सदा ॥ एवं कुर्वन्ति ये भक्त्या ते यान्ति हरिमन्दिरम् ॥ आयुष्कामेन कर्तव्यमतसीधात्रिजैस्तथा ॥ पुत्रकामेन कर्तव्यं बृहतीपूजनं हरेः ॥ करवीरैर्जातिपुष्पैश्चम्पकैर्नागकेसरैः ॥ बकुलीतिलपुन्नागैर्धनकामेन पूजयेत् ॥ कल्हारैः कर्णिकारैश्च मन्दारैः कुसुमैः शुभैः ॥ विद्याकामेन कर्तव्यं विष्णोर्भक्त्या च पूजनम् ॥ पालाशैः पाटलैश्चैव कदम्बैः पूजनं महत् ॥ महाव्याधिविनाशार्थं

पारिजातैश्च पूजनम् ।। वशीकरणकामेन सौवीरैस्तोषयेद्धरिम् ।। तस्य विश्वं भवेद्वश्यं नात्र कार्या विचारणा ।। देवदानवगन्धर्वा वशमायान्ति नान्यथा ।। श्रीकामेन तु कर्तव्यं केतकीपूजनं महत् ।। एवं हि सर्वपुष्पैश्च सर्वकार्यार्थसिद्धये ।। लक्षपूजां प्रकुर्याच्च प्रसन्नोहि हरिर्भवेत् ।। उद्यापनं यत्र कार्यं मण्डपं तत्र कारयेत् आहूय ब्राह्मणान् सर्वान् सुनक्षत्रे शुभे दिने ।। वेदिका च प्रकर्तव्या मण्डपे तु शुभे दिने ।। गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।। प्रविश्य मण्डपं तत्र आचार्येण द्विजैः-सह ।। पुण्याहवाचनं कृत्वा आचार्यादीन्व[1]रेत्ततः ।। उपोष्य दिवसे तस्मिन् रात्रौ जागरणं चरेत् ।। वेदिकायां तु कर्तव्यं स्वस्तिकं परमाद्भुतम् ।। तन्मध्ये तण्डुलैः कुर्याच्छ्वेतद्वीपं सुशोभनम् ।। पञ्चपल्लवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन शोभितम् ।। तस्योपरि कुम्भं पूर्णपात्रेण संयुतम् ।। सौवर्णीं प्रतिमां तत्र स्थापयेच्च हरेर्विभोः ।। पूजां तत्र प्रकुर्वीत पञ्चामृतपुरःसरैः ।। धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्गीतवादित्रनृत्यकैः ।। वेदशास्त्रपुराणैश्च तां रात्रिं गमयेद्व्रती ।। ततः प्रभातसमये सुस्नातश्च शुचिर्भवेत् ।। स्थण्डिलं कारयेत्तत्र स्वशाखोक्तविधानतः ।। हवनं च प्रकुर्वीत पायसाज्यतिलैः पृथक् ।। मूलमन्त्रेण गायत्र्या विष्णोर्नामसहस्रकैः ।। येन[2] मन्त्रेण पूजा वा कृता तेनैव होमयेत् ।। शर्कराघृतपूर्णेनाचरुणा जुहुयात्ततः ।। एवं होमः प्रकर्तव्यो ह्यष्टोत्तरसहस्रकम् ।। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा पूर्णाहुतिमतः ।। परम् ।। श्रेयः संपादनं पश्चादाचार्यं पूजयेत्ततः ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।। आचार्यं पूजयेत्सम्यग्वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ।। पयस्विनीं च गां दद्याद्धिरण्यादि तथैव च ।। सवस्त्रां प्रतिमां तस्मै कुम्भद्वीपसमन्वितान् ।। दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्देवदेवं जनार्दनम् ।। येन येन प्रकुर्याच्च लक्षपूजां च विष्णवे ।। सौवर्णं चैव तत्पुष्पमर्पयेद्धरये ततः ।। ब्राह्मणांश्च सपत्नीकान् भूषणैस्तोषयेत्ततः ।। प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।। एवं यः कुरुते पूजां तस्य विष्णुः प्रसीदति ।। इति श्रीविष्णोर्लक्षपुष्पपूजाव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

विष्णु भगवान्‌की लाख फूलोंसे पूजा करनेकी विधिऋषि बोले कि, जो भी कुछ तीर्थ तथा पवित्र स्थान हैं जिसका उद्देश लेकर किये जाते हैं वह आपने कह दिया । हे मेने ! इस समय विष्णु भगवान्‌की लाख पुष्पोंसे पूजा करनेकी विधि कह दीजिये, लोमश बोले कि, हे द्विजो ! समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं उस सबके माहात्म्य में तुम्हें सुना चुका, इस समय विष्णुभगवान्‌की लाख फूलोंसे पूजा करनेकी विधि कहना चाहता हूं, विष्णु भगवान्‌की लाख पुष्पोंकी पूजा कार्तिकमें प्रारंभ करे माघ वा बाहुल (कार्तिक) में श्रद्धा भक्तिपूर्वक आरंभ कर दे, जिस ऋतुका जो पुष्प हो उसे विष्णु भगवान्‌की भेंट कर दे, विष्णु सूक्त वा मूलमंत्रसे विष्णु गायत्री अथवा नाम या सहस्रनामसे एक एक फूल चढाता जाय । उनके फूलोंको सुनिये अतसी, कर्णिकार, करवीर, तिल, बार्हत, कैतव, मन्दार, नीलोत्पल, कुमुद, मालती, चंपक, जाती, पाटलि पुन्नाग, कदंब, कल्हार, मोगर, अशोक, बकुल और मुनिपुष्प ये विष्णु भगवान्‌के पूजनमें अच्छे हैं । पालाश

१ वृणुयात् । २ पक्षान्तरमिदम् ।

कंटकी, कोरट, नीलपुष्प, धात्रीपुष्प, ये भी अच्छे हैं । इनसे जो पूजन करते हैं वे विष्णुलोकको चले जाते हैं। आयु चाहनेवालेको अतसी और धात्रीके फूलोंसे पूजा करनी चाहिये; विद्या चा० भक्तिपूर्वक पालाश, पाटल और कदम्बके फूलोंसे पू०; महाव्याधियोंका नाश चा० पारिजातके फूलोंसे पूह; वशीकरण चा० सौवीरके फूलोंसे पू०; उसके विश्ववशमें होजाता है, इसमें विचार करनेकी आवश्यकताही नहीं उसके देवदानव और गन्धर्वभी वश हो जाते हैं, श्री चाहनेवाले, केतकीके फूलोंसे पू० । सब कुछ चा० सबके फूलोंसे पूजा करनी चाहिये ।। लाख पुष्पोंसे पूजा करनेपर भगवान् प्रसन्न होजाते हैं । उद्यापन—जहां करना हो वहां मण्डप बनाना चाहिये । अच्छे नक्षत्र और दिनमें ब्राह्मणोंको बुलावे । मण्डपमें वेदी बनावे, आचार्य और ब्राह्मणोंको साथ ले गाने बजाने और वेदपाठके साथ मण्डपमें प्रवेश करे, पुण्याहवाचन कराकर आचार्यका वरण करे, दिनमें उपवास करके रातको जागर करे, वेदी पर सुन्दर स्वस्तिक बनावे, उसपर चावलोंसे सुन्दर श्वेत दीप बनावे, उसपर कुंभ स्थापित करे, पंचपल्लव डाले, दो सस्त्रोंसे वेष्टित करे, उसपर भगवान्की सोनेकी प्रतिमा स्थापित करे, पंचामृत पूर्वक भगवान्की पूजा करे, धूप, दीप नैवेद्य हों, गाने बजाने और नाचनेके साथ तथा वेद शास्त्र और पुराणोंके पाठसे उस रातको पूरी, करे । प्रभात कालमें स्नान करे । पवित्र हो, अपनी शाखाके विधानके अनुसार पायस आज्य और तिलोंसे हवन करे । मूलमंत्र गायत्री वा विष्णुसहस्र-नामसे अथवा जिस मंत्रसे पूजा की हो उससे आज्य पायस तिलोंसे पृथक् पृथक् हवन करे, अथवा घीसे भीगी हुई शर्कराका हवन करे, इस प्रकार एक हजार आठ आहुति दे । स्विष्टकृत् और पूर्णाहुति करे । श्रेय-संपादन करके आचार्यकी पूजा करे । ब्राह्मण भोजन कराकर, उन्हें दक्षिणा दे । वस्त्र और अलंकारोंसे आचार्यकी पूजा करे, दूध देनेवाली गाय और सोना आदिक भी दे । वस्त्र कुंभ और दीपसहित प्रतिमाको देकर देव देव जनार्दनसे क्षमा प्रार्थना करे, जिस जिस के फूलसे विष्णु भगवान्की पूजाकी हो उस उस का सोनेका फूल बनाकर विष्णु भगवान्की भेंट करे । सपत्नीक ब्राह्मणोंको भूषणसे प्रसन्न करे दोनों हाथ जोड शिरपर रखकर प्रदक्षिणा और नमस्कार करे, जो इस प्रकार पूजा करता है विष्णू भगवान् उसपर प्रसन्न होजाते हैं । यह श्री भगवान्की लाख फूलोंसे पूजा करनेका व्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथ बिल्ववर्तिव्रतविधिः

द्रौपद्युवाच ।। बिल्ववर्तिविधिं ब्रूहि दुर्वासः सर्वदर्शन ।। कस्मिनन्काले समारम्भः कस्मिश्चैव समापनम् ।। दुर्वासा उवाच ।। राजपुत्रि प्रवक्ष्यामि विधानं सर्वकामदम् ।। श्रद्धा वित्तं यदा स्याद्वै तदैव व्रतमारभेत् ।। कार्पासस्य स्वहस्तेन तन्तुं निष्कास्य यत्नतः ।। स्वकीयैर्वापि विप्राद्यैरंगुलीत्रयसंमिता ।। त्रिवृता शोभना चैव बिल्ववर्तिरुदाहृता ।। तां तु संवर्तयेद्वर्तिं स्वप्रदेशिनिसंमिताम् ।। एवं लक्षमिताः कार्याः शक्तौ कोटिमिता अपि ।। घृते निमज्य वा तैले स्थापयेत्ता-म्रपात्रके ।। स्थापयेन्मृन्मये वापि प्रत्यहं संख्ययान्विताः ।। श्रावणे माधवे माघे कार्तिके तु विशेषतः ।। दिनेदिने सहस्रं तु अर्पयेद्बिल्ववर्तिकाः ।। त्र्यम्बकेश्वर-मुद्दिश्य देवागारे विशेषतः ।। गङ्गातीरेऽथवा गोष्ठे यद्वा ब्राह्मणसन्निधौ ।। प्रज्वालयेत्तु पूजान्ते ब्रह्मलोकजिगीषया ।। नारी वा पुरुषो वापि भक्तियुक्तेन चेतसा ।। एकस्मिन्नेव दिवसे ज्वालयेद्यदि सम्भृतिः ।। एवं संपाद्य वैशाख्यां कार्तिक्यां वा विशेषतः ।। माघ्यां वाप्यथवा यस्यांकस्यांचित् पूर्णिमातिथौ ।। प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। गणेशं पूजयेत्स्वस्तिवाच्य नान्दीं

च कारयेत् ।। आचार्यं वरयेत्पश्चात्सर्वलक्षणसंयुतम् ।। देवागारेऽथवा गोष्ठे शुद्धे वा स्वीयमन्दिरे ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पट्टकूलादिवेष्टिताम् ।। तन्मध्ये लिङ्गतोभद्रं रचयेल्लक्षणान्वितम् ।। ततो वै रुद्रकोणे तु रचयेद्वेदिकां व्रती । वस्त्रेणाच्छादितां कृत्वा रचयेत्तत्र तण्डुलैः ।। अष्टपत्रान्वितं पद्मं कर्णिकाभिः समन्वितम् ।। कलशं स्थापयेत्तत्र अव्रणं सजलं तथा ।। ताम्रं वा मृन्मयं पात्रं तस्योपरि न्यसेत्सुधीः ।। तस्योपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् ।। सुवर्णनिर्मितं कृत्वा वृषभेण समन्वितम् ।। रजतस्य दीपपात्रं कृत्वा शक्त्या यथाविधि ।। सुवर्णवर्तिकां कृत्वा तन्मध्ये स्थापयेत्सुधीः ।। कृत्वा तु लिङ्गतोभद्रे ब्रह्माद्यावाहनं व्रती ।। ततः पूजां विनिर्वर्त्य महासंभारविस्तरैः ।। परमान्नं च नैवेद्यं भक्त्या देवाय दापयेत् ।। उपोष्य जागरं कुर्याद्रात्रौ सत्कथया मुदा ।। ततः प्रभाते विमले जले स्नात्वा प्रसन्नधीः ।। वर्तिसंख्यादशांशेन तर्पणं कारयेद्व्रती ।। तर्पणस्य दशांशेन होमं कुर्यात्प्रयत्नतः ।। तिलाज्यचरुभिर्बिल्वैः रुद्रमन्त्रेण सादरम् ।। अष्टोत्तरसहस्रं वाकुर्याच्छक्त्यनुसारतः ।।नमः शम्भव इत्येव मन्त्रोरुद्राक्षरैर्मितः ।। आचार्याय प्रदातव्यागौः सवत्सा पयस्विनी ।। विसर्जयेत्ततो देवं ब्रह्मादिसहितं पुनः ।। ब्रह्मादिमण्डलं मूर्तिं दद्यात्सोपस्करांतथा ।। यजमानमथाचार्यस्त्वाभिषिञ्चेद्गृहान्वितम्[1] ।। दद्याच्च भूयसीं कर्म समाप्याथ विचक्षणः ।। होमस्य तु दशांशेन ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।। दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो गृह्णीयादाशिषः शुभाः ।। वर्धमानं[2] रौप्यमयंहेमवर्ति समन्वितम् ।। अथवा कांस्यपात्रं च घृतेनापूरितं शुभम् ।। ब्राह्मणाय प्रदातव्यं दक्षिणासहितं शुभम् ।। ततो भुञ्जीत तच्छेषं शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः।।एवं द्रुपदराजेन्द्रपुत्रि सत्यव्रतेऽनघे ।। लक्षबिल्ववर्तिविधिस्तवाग्रे कथितो मया ।। यं कृत्वा भक्तिभावेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ।। दारिद्र्यतमसः सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। पुत्रपौत्रप्रपौत्रैश्च सुखं संप्राप्य भूतले ।। अन्ते दिव्यमानेन लभते ज्वलितं पदम् ।। नैषधाधिपतेर्भार्या भर्तृदर्शनलालसा ।। कृत्वा व्रतमिदं प्राप राज्यं भर्तृसुतान्वितम् ।। अन्याभिर्ऋषिपत्नीभिर्ऋषिभिश्चापितत्त्वगैः ।। कृतमेतत्व्रतं देवि स्वस्वकामार्थसिद्धये ।। राजपुत्रि महाभागे वनव्यसनदुःखिते ।। कुरुष्वैतद्व्रतं सम्यङ्मा कृथाः काललङ्घनम् ।। अयं कार्तिकमासश्च मासानामुत्तमोत्तमाः।। आगामिन्यां पौर्णमास्यामुद्यापनविधिं चर ।। सूत उवाच ।। इदं दुर्वाससाख्यातं द्रौपद्यै व्रतमुत्तमम् ।। ये करिष्यन्ति मनुजास्ते लभेयुःसमीहितम् ।। इति जैमिनीये आरण्यके बिल्ववर्तिव्रतं सोद्यापनम् ।।

---

१ गृहा दाराः । २ शरावम् ।

विल्ववर्तिव्रतविधि—द्रौपदीजी बोलीं कि, हे सर्वदर्शी दुर्वासा महाराज ! बिल्ववर्तीकी विधि कहिये, कब प्रारंभ तथा कब समाप्ति करे ? दुर्वासा बोले कि, हे राजकुमारी ! सब कामोंके देनेवाले विधानको कहता हूं, जब श्रद्धा और धन हो तबही इस व्रतको प्रारंभ कर दे । अपने हाथसे कपासके तन्तु सावधानीके साथ निकलकर अपनी अथवा ब्राह्मण आदिकी तीन अँगुलीके बराबर तिल्लर बत्ती बिल्ववर्ति' कही गई है । उसे अपने प्रदेश निके बराबर बाटले, ऐसी ही एक लाख बत्ती बनाले, शक्ति हो तो एक करोड बत्ती बनाले, उन्हें घी वा तेलसे डुबोकर कांसेके पात्रमें रख दे, अथवा उन्हें रोज गिनकर मिट्टीके पात्रमें रखदे, श्रावण, वैशाख, माघ या विशेष करके कार्तिकमें प्रतिदिन एक हजार बिल्ववर्ती अर्पित करदे, ये त्र्यंबके-श्वरका उद्देश लेकर देवागारमें चढा दे, गंगा किनारे गोष्ठ अथवा ब्राह्मणके पास ब्रह्मलोक जानेकी इच्छासे पूजाके अन्तमें स्त्री हो वा पुरुष हो भक्तिपूर्वक प्रज्वलित कर दे । यदि संभार हो तो एकदिन ही सब जलादे इस प्रकार इस व्रतको पूरा करे । उद्यापन—वैशाखी, माघी वा कार्तिकी वा और किसी पूर्णिमामें दिन प्रातःकाल स्नानकर पवित्र होकर करे, गणेश पूजन, स्वस्तिवाचन और नांदीश्राद्ध हो, आचार्यके रक्षणवाले पुरुषको आचार्यके रूपमें वरण करे, देवागार शुद्ध गोष्ठ वा अपने घर, फूलोंकी मंडपिका बनाकर उसे पट्टकूल आदिसे वेष्टित करे । उसपर विधिपूर्वक लिंगतोभद्र बनावे । उसके ईशानकोणमें एक वेदी बनावे । उसे कपडेसे ढककर उसपर तण्डुलोंसे मय कर्णिकाके अष्टदल कमल बनावे । उसपर वैध कलश स्थापित करे । उसमें तीर्थका पानी भरे । उसपर तांबे या मिट्टीका पात्र रखे । उसपर विधिपूर्वक सोनेके उमा शंकरको वृषभके साथ विराजमान करे । शक्तिके अनुसार चांदीका दीपक बना उसमें सोनेकी बत्ती रखे । लिंग-तोभद्रमें विधिपूर्वक ब्रह्मादिक देवोंका आवाहन करे । बडी तयारीके साथ पूजा पूरी करके परमान्न और नैवेद्य भक्ति पूर्वक देवको भेंट करे । उपवास करे । रातको अच्छीकथाओंको सुनताहुआ जागरण करे । निर्मल प्रभातमें स्नान एवं नित्यकर्मसे निवृत्त होकर बत्तीका दशवां भाग तर्पण करे । तर्पणका १० वाँ हिस्सा तिल आज्य चरु और बिल्वपत्रसे रुद्रमंत्रसे एक हजार आठ अथवा अपनी शक्तिके अनुसार कमज्यादा जो हासके आहुति दे । 'नमः शंभवे' यह मंत्र रुद्राक्षरोंसे मित हो, यह हवनमें वर्ताजाता है । बछडा सहित दुधारी गाय आचार्यको दे । ब्रह्मादि देवोंको विसर्जन करे, ब्रह्मादि मंडल और पूजाकी मूर्ति आचार्यको देदे । मंत्रोंसे विधिपूर्वक स्त्री सहित आचार्यका अभिषेक करे । कर्मकी समाप्तिमें बहुतसी दक्षिणा दे । होमका १।१० ब्राह्मण भोजन करावे । उन्हें दक्षिणा देकर आशीर्वाद ले । चांदीका सकोरा और सोनेका बत्ती बनावे । उसे ब्राह्मणको दे दे । अथवा कासेका पात्र घीसे भरकर दक्षिणासहित ब्राह्मणको दे, ब्राह्मण भोजनसे जो बाकी बचा हो उसे बन्धु एवंशिष्ट इष्टोंके साथ भोजन करे, हे द्रुपद राजेन्द्रकी पुत्रि ! हे सत्य व्रते ! हे अनघे ! इस प्रकार लाख विल्ववर्ति व्रत मैंने तुम्हें सुना दिया, स्त्री हो वा पुरुष इसे भक्तिभावसे करके दारिद्र्यके अंधकारसे शीघ्रही छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है, वह बेटे नाती और प्रपौत्रोंके साथ रह सुख भोगकर अन्तमें दिव्य विमानमें बैठ, प्रकाशशील लोकोंको पाता है । जब दमयन्तीको पतिके दर्शनकी इच्छा हुई तो उनसे इसी व्रतको किया था । इसके प्रभावसे उसे पति पुत्रोंके साथ राज्यकी प्राप्ति होगई । हे देवि ! दूसरी दूसरी सात्त्विक ऋषिपत्नियों और अन्योंमें अपने कामोंकी सिद्धिके लिए इसी व्रतको करके अपने मनोरथ पाये । हे महाभागे ! राजपुत्रि ! आपभी दुखोंसे दुःखी हैं इस व्रतको करें । व्यर्थ समय नष्ट न करें, यह सबमासोंमें उत्तम कार्तिकका महीना है । आगामी पौर्णमासीको उद्यापन कर डालना । सूतजी बोले कि, दुर्वासा महर्षिने यह उत्तम व्रत द्रौपदीको बताया था । जो मनुष्य इसव्रतको करेंगे उन्हें इष्टका लाभ होगा । यह श्री जैमिनीयके आरण्यकका कहा हुआ बिल्ववर्तिव्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथ रुद्रवर्तिव्रतविधिः

नारद उवाच ।। देवदेव जगन्नाथ जगदानन्दकारक ।। कौतहलपूर्वकं वै कञ्चित्पश्नं करोम्यहम् ।।१।। श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि नियमास्तथा।।तीर्थानि च मयादेव यज्ञदानान्यनेकशः ।। २ ।। नास्ति मे निश्चयो देव भ्रामितोऽहं त्वया

पुनः ।। कथयस्व महादेव यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम् ।। ३ ।। शिव उवाच ।। शृणु नारद यत्नेन व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। रुद्रवर्त्यभिधं पुण्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ।। ४ ।। सुखसंपत्करं चैव पुत्रराज्यसमृद्धिदम्।।शंकरप्रीतिजनकं शिवलोकप्रदं शुभम् ।।५।। स्वभर्त्रा सह नारीणां महास्नेहकरं परम् ।। शृणु नारद यत्नेन गिरिशो येनतुष्यति ।। ६ ।। दीपानां लक्षदानं यः कुर्यात्परमधार्मिकः ।। यावत्कालं प्रज्वलन्ति दीपास्तु शिवसन्निधौ ।। ७ ।। ब्रह्मणो युगसाहस्रं दाता स्वर्गे महीयते ।। कार्पासवर्तिका-युक्ता दीपा दत्ताः लिशवालये ।। ८ ।। सुचिरं तेऽपि कैलासोतिष्ठन्ति शिवमूर्तयः।। एवं हि बहवः सन्ति दीपाश्चद्विजसत्तम् ।। ९ ।। अधुना सम्प्रवक्ष्यामि यत्पूर्वैः कथितं तव ।। यत्कृत्वा कृतकृत्याः स्युर्देवासुरमुनीश्वराः ।। १० ।। एवं ज्ञात्वा न कुर्वन्ति' ते ज्ञेया दुःखभागिनः ।। रुद्रिवर्तिसमं नास्ति त्रिषु लोकेषु सुव्रतम् ।। ११ ।। अत एवं सदा कार्यं व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।। मयाख्यातं व्रतमिदं किमन्य-न्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। १२ ।। नारद उवाच ।।केन चीर्णं व्रतमिदं कथयस्व प्रसादतः।। पूजाविधिं च मे ब्रूहि उद्यापनसमन्वितम् ।। १३ ।। शिव उवाच ।। शृणु नारद देवर्षे यत्त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ।। तदहं ते प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते ।। १४ ।। क्षिप्रायास्तु तटे रम्ये पुरी चोज्जयिनी शुभा ।। तस्यामासीत्सुगन्धा।च वारस्त्री ह्यतिसुन्दरी ।। १५ ।। तया शुल्कं कृतं विप्र युवभिश्च सुदुःसहः ।। सुवर्णानां शतं साग्रंप्रतिज्ञातं च तैः कृतम् ।। १६ ।। युवानद्य तया विप्रा भ्रंशिताश्च सुगन्धया ।। राजानो राजपुत्राश्च नग्नीकृत्य पुनः पुनः ।। १७ ।। तेषां भूषा गृहीत्वा च धिक्-कृतास्ते सुगन्धया ।। एवं हि बहवो लोका शलुण्ठिताश्च सदा तया ।। १८ ।। कदाचित्सा गता क्षिप्रां कौतुकाविष्टमानसा ।। ददर्श च मनोरम्यामृषिभिः परिसेविताम् ।। ।। १९ ।। केचिद्ध्यानपरा विप्राः केचिज्जपपरायणाः ।। केचिच्छिवार्चका विप्राः केचिद्विष्णुप्रपूजकाः ।। २० ।। तेषां मध्ये वसिष्ठो हि तया दृष्टो महामुनिः ।। उपविष्टः कर्मसु बै कुशलो नीति मार्गवित् ।। २१ ।। तस्याधर्मेऽभवद्बुद्धिर्भाविपुण्यबलात्तदा ।। विगताशा जीवने सा विशयेषु विशेषतः ।। २२ ।। विनम्रकन्धरा भूत्वा प्रणिपत्य पुनःपुनः ।। स्वकर्मपरिहाराय पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ।। २३ ।। सुगन्धोवाच ।। अनाथनाथ विप्रेन्द्र सर्वं विद्याविशारदा।। प्रसीद पाहि मां देव शरणागतवत्सल ।। २४ ।। मया कृतानि विप्रेन्द्र पापानि सुबहूनिच ।। नाशाय तेषां पापानां कारणं ब्रूहि मे प्रभो ।। २५ ।। शिव उवाच ।। एवमुक्तस्तया विप्रो वसिष्ठो मुनिरादरात् ।। तथा ज्ञातं च तत्सर्वं तस्या कर्म पुरातनम् ।। २६ ।। ततोऽब्रवीत् स च मुनिर्वचस्तां सत्य संगरः ।। वसिष्ठ उवाच।।

१ ये इति शेषः ।

शृणु सुश्रोणि सुभगे तव पापस्य संक्षयः ।। २७ ।। येन जातेन पुण्येन तत्सर्वं कथयामि ते ।। यच्च तीर्थे महापुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।। २८ ।। प्रयागमिति विख्यातं सर्वदेवैश्च रक्षितम् ।। गत्वातत्र कुरुक्षेत्रे व्रतं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।। २९ ।। रुद्रवर्त्यभिधं पुण्यं शिवप्रीतिकरं परम् ।। कार्पासतन्तुभिः कार्या रुद्रवर्ती शिवप्रिया ।। ३० ।। स्वहस्तेन कर्तितव्यं सूत्रं श्वेतं दृढं शुभम् ।। एकादशैस्तन्तुभिश्च कारयेद्रुद्रवर्तिकाः ।। ३१ ।। लक्षसंख्यायुताश्चैव गव्याज्येन परिप्लुताः ।। सौवर्णे राजते ताम्रे मृन्मये वा नये दृढे ।। ३२ ।। पात्रे च स्थापयेद्वर्तीघृततैलेन पूरयेत् ।। दयाः शिवालये नित्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ।। ३३ ।। कृत्वा व्रतमिदं भद्रे प्राप्स्यसि त्वं परां गतिम् ।। शिव उवाच ।। ततः सा कोशमादाय भृत्यं चैव सुमित्रकम् ।। ३४ ।। आयाता तीर्थराजं वै दत्त्वा दानानि सर्वशः ।। व्रतं कृत्वा ययौ काश्यां सुमित्रेण समन्विता ।। ३५ ।। कृत्वा सर्वाणि तीर्थानि विश्वेशं प्रणिपत्य च ।। उषित्वा रजनीमेकां जागरश्च तया कृतः ।। ३६ ।। स्नात्वा चोत्तरवाहिन्यां दत्त्वा दानानि भूरिशः ।। ततश्चक्रेव्रतं विप्र वसिष्ठेनोदितं च यत् ।। ३७ ।। यथोक्तविधिना[1] पूर्वं तया चानुष्ठितं व्रतम् ।। ततः सा स्वशरीरेण तस्मिन् लिङ्गे लयं ययौ ।। ३८ ।। एवं या कुरुते नारी व्रतमेतत् सुदुर्लभम् ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।। ३९ ।। पुत्रान् पौत्रान्धनं धान्यं लभते नात्र संशयः ।। प्रसङ्गेनापि[2] वक्ष्यामि माणिक्यवर्तिसंज्ञकम्[3] ।।४०।। तस्या दानेन विप्रेन्द्र ममार्धासनभागिनी ।। जातास्ति मत्प्रिया सा हि यावदाभूतसंप्लवम् ।। ।। ४१ ।। अथ चोद्यापनं लक्ष्ये व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। प्रारभेत्कार्तिके माघे वैशाखे श्रावणे[4] तथा ।। ४२ ।। तेष्वेवोद्यापनं कार्यं यथोक्तविधिनाततः ।। अष्टकर्णिकया युक्तं मण्डलं कारयेच्छुभम् ।। ४३ ।। कलशं स्थापयेत्तत्र विधानेन समन्वितम् ।। रौप्यं ताम्रं मृन्मयं वा वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।। ४४ ।। तस्योपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम्।। सुवर्णनिर्मितं चैव वृषभेण समन्वितम् ।। ४५ ।। रजतस्य दीपपात्रं कृत्वा शक्त्या यथाविधि।। सुवर्णवर्तिकां कृत्वा तन्मध्ये स्थापयेत्सुधीः ।। ४६ ।। पूर्वोक्तेन विधानेन पूजां कृत्वा समाहितः ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा कथा श्रवणपूर्वकम् ।। ४७ ।। ततः प्रभाते विमले नद्यां स्नात्वा विधानतः ।। आचार्यं वरयेत्पूर्वं द्विजैरेकादशैः सह ।। ४८ ।। होमं चैव सुसंपाद्य तिलपायसबिल्वकैः ।। अष्टोत्तरसहस्रं वा अथवाष्टोत्तरं शतम् ।। ४९ ।। रुद्रसूक्तेनवा विप्र मूलमन्त्रेण वा पुनः ।। दीपान् घृतेन संयुक्तान्नरो दद्याच्छिवालये ।। ५० ।। स्वर्णवर्तियुतं दीपमाचार्याय निवेदयेत् ।।

---

१ प्रयोग इत्यर्थः । २ माणिक्यवर्त्तिव्रतविधिरुद्यापनादिकं च वक्ष्यमाणवायुपुराणोक्तसामकन्यलक्षवर्तिव्रतवद्बोध्यम् । ३ व्रतमिति शेषः । ४ मार्गशीर्षके इति वा पाठः । ५ पद्मांकार मित्यर्थः ।

ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा ब्राह्मणैः स्वस्तिवाचनम् ।। ५१ ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।। तस्मै देया सवत्सा च गौरेका सुपयस्विनी ।। ५२ ।। ।। ५२ ।। ऋत्विजः पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ।। ते चैव भोजनीयाश्च सपत्नीकाः प्रयत्नतः ।। ५३ ।। घृतपूर्णं रौप्य पात्रं कांस्यपात्रं तथैव वा ।। भक्त्या सुवर्णसहितामाचार्याय निवेदयेत् ।। ५४ ।। रुद्रपीठं सप्रतिममाचार्याय समर्पयेत् ।। कांस्यपात्रमिदं देव गोघृतेन समन्वितम् ।। ५५ ।। सुवर्णसंयुतं दद्यामतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।। महादेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहकारक ।।५६।। त्वत्प्रसादहं याचे शीघ्रं कामप्रदो भव ।। अनेनैव विधानेन रुद्रवर्तिं करोति यः।। ५७ ।। पुत्रपौत्रैः परिवृतो राज्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ।। एवं या कुरुते नारी सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५८।। अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेय शतस्य च ।। कथाश्रवणमात्रेण तत्फलं लभते नरः ।। ।। ५९ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे शिवनारदसंवादे रुद्रवर्तिव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

रुद्रवर्तिविधि।।नारदजी बोले कि, हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे जगत्के आनन्द देनेवाले ! मैं कुतूहलके साथ कुछ पूछता हूं ।।१।। हे देवदेवेश ! मैंने, व्रत, नियम, तीर्थ और यज्ञ दान अनेकों सुने ।।२।। मुझे निश्चय नहीं है। आपने मुझे सन्देहमें डाल दिया। हे महादेव ! जो उत्तम गोप्यव्रत हो उसे मुझे सुनाइये ।।३।। शिवजी बोले कि, हे नारद ! सब उपद्रवोंके नष्ट करनेवाले रुद्रवर्तीनामके पवित्र व्रतको प्रयत्नके साथ सुनो ।।४।। यह सुख संपत्तियोंका करनेवाला, पुत्रराज्य और सब समृद्धियोंका दाता, शिवको प्रसन्न करनेवाला और उनके लोककी देनेवाला है ।।५।। स्त्रियोंका पतिके साथ परम प्रेम कर देता है। हे नारद ! सुन, इससे गिरीश प्रसन्न हो जाते हैं ।।६।। जो परम धार्मिक एक लाख दीपक दान करता है वे दीपक जितने समय तक शिवजीके पास जलते हैं ।।७।। वह उतनेही ब्रह्मके हजार युग स्वर्ग लोकमें विराजता है। जिन्होंने कपासकी वत्तीके दीपक शिव मंदिरमें जलादिये ।।९।। वेभी शिवमूर्ति हो चिर कालतक कैलासपर विराजते हैं, हे द्विजमत्तम ! इस प्रकार बहुतसे दीपक हैं ।।९।। अब मैं तुम्हें वेही सुनाऊंगा जो कि, पहिले कहे थे, जिसे करके देव सुर और मुनीश्वर सब कृतकृत्य हो जाते हैं ।।१०।। जो यह जानकर भी नहीं करते उन्हें दुख भागी समझना चाहिये। रुद्रवर्तिके बराबर तीनों लोकोंमें कोई अच्छा व्रत नहीं है ।।११।। इस कारण इस दुर्लभ व्रतको सदा करना चाहिये। मैंने इस व्रतको बतादिया है अब और क्या सुनना चाहते हो ? ।।१२।। नारदजी बोले कि, यह व्रत पहिले किसने किया यह बतावें तथा इसकी विधि और उद्यापन भी कहा डालें ।।१३।। शिवजी बोले कि, हे देवर्षि नारद ! जो आप सुनना चाहते हैं सो सुनें, हे महामते ! उसीको मैं तुम्हें विस्तारके साथ सुनाऊंगा ।।१४।। क्षिप्रा नदीके किनारे एक उज्जयनी नामकी पुरी है, उसमें सुगन्धा नामकी एक परम सुन्दर वेश्या थी ।।१५।। उसने अपने मिलनेका सौ सुवर्णोंका शुल्कर रखा था। जिसे कोई भी साधारण युवक सह नहीं सकता था ।।१६।। उस सुगन्धाने अनेकों युवकोंको भ्रष्ट कर दिया तथा राजा और राजपुत्र बारंवार नंगेकर दिये ।।१७।। उनके भूषण ले लिये और पीछे उन्हें धिक्कारें तो इस तरह बहुतसे लोग तो इस दुःखके मारे भाग गये ।।१८।। एक दि वह तमासा देखनेके लिये क्षिप्रापर गई उसने नदीको देखा कि वह चारों ओरसे ऋषियोंसे सेवित हो रही है ।।१९।। कोई ध्यानमें लगकरहेथे तो कोई जप करनेमें तत्परथे। कुछ शिवपूजामें लगेथे तो कुछ एक विष्णु पूजा कर रहे थे ।।२०।। उनमें उसने महामुनि वसिष्ठजीको भी बैठा देखा जो कि, कर्मोंमें कुशल तथा नीतिका पथ जाननेवाले थे ।।२१।। उस वेश्याकी पूर्वजन्मके पुण्यसे धर्ममें बुद्धि हुई। जीना और विशेष करके विषय इन दोनोंकी आशाएं छोड दीं ।।२२।। शिर झुकाकर ऋषियोंको, वारंवार प्रणाम किया' अपने कर्मोंको परिहार करनेके लिये मुनिराजजीसे सुगन्धा पूछने लगी ।।२२।। कि

हे अनाथनाथ ! हे विप्रेन्द्र ! हे सब विद्याओंके जाननेवाले ! हे शरणागतोंके वत्सल ! हे देव ! मेरी रक्षा करिये ॥२४॥ हे विप्रेन्द्र ! मैंने बहुतसे पाप किये हैं । ये पाप कैसे नष्ट हों यह मुझे बताइये ॥२५॥ शिवजी बोले कि, उसके आदरके साथ इतना कहनेपर वसिष्ठजीने दिव्य दृष्टीसे उसके किये सब पाप देख लिये ॥२६॥ पीछे सत्यवादी मुनि उससे बोले कि, हे सुभगे सुश्रोणि ! तेरे पापका नाश ॥२७॥ जिस पुण्यसे होगा से मैं तुम्हें कहता हूं । उसे सावधानीके साथ सुन । जो परम पुण्यदाई तीर्थ, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है ॥२८॥ उसे प्रयाग कहते हैं उसकी सब देव रक्षा करते हैं, उस क्षेत्रमें जकार तीनों लोकोंको दुर्लभ इस व्रतको कर ॥२९॥ इसका नाम रुद्रवर्ति है, शिवको परम प्रसन्न करनेवाला है, कपासके तन्तुओंसे शिवकी प्यारी रुद्रवर्ती बनानी चाहिये ॥३०॥ अपनेही हाथसे सफेद मजबूत सूत काते, ग्यारह तन्तुओंकी रुद्रवर्ति बनावे ॥३१॥ एक लाख बनाकर गौके घीमें भिगोले, सोने चांदी ताम्बे या मिट्टीके मजबूत ॥३२॥ पात्रमें बत्ती रखकर घी या तेल भर दे, भक्तिके साथ रोजही शिवालयमें देनी चाहिये ॥३३॥ ऐ भद्रे ! तू इस व्रतको करके परागति पाजायगी । शिवजी बोले कि, इसके पीछे सुगन्धा सुमित्र भृत्य और धन साथ ले, तीर्थराज आई; खूब दान दिया, व्रत करके सुमित्रके साथ काशी चली आई ॥३५॥ सब तीर्थोंको करके विश्वेशको प्रणाम किया, एक रात उपवास करके जागरण किया ॥३६॥ उत्तरवाहिनीमें स्नान करके दान दिये, पीछे वसिष्ठजीने जो व्रत बताया था वह पूरा किया ॥३७॥ वसिष्ठजीने जैसी विधि बताई थीं, वे सब पूरी कीं पीछे वह उसी शरीरसे लिङ्गमें लय होगई ॥३८॥ जो स्त्री इस दुर्लभ व्रतको करती है वह जिन जिन कामोंको चाहती है वे सब उसे मिलजाते हैं ॥३९॥ उसे पुत्र पौत्र धनधान्य सब मिलजाते हैं । इससे तो सन्देहही नहीं है इस प्रसंगसे माणिक्यवर्तिव्रत—भी कहता हूं, उसके दानसे हे विप्रेन्द्र ! गौरी मेरे आधे आसनकी अधिकारिणी होगई और महाप्रलयतक मेरी प्यारी रहेगी ॥४१॥ उद्यापन—भी इस व्रतका, पूर्तिके लिये कहूंगा । इस व्रतको कार्तिक, माघ, वैशाख या श्रावणमें प्रारंभ करना चाहिये । कहीहुई विधिके अनुसार इन्हीं महीनोंमें उद्यापन करे । आठ कर्णिका युक्त पद्माकर मंडल बनावे, चांदी ताम्बे या मिट्टीका कलश पूर्णपात्रके साथ बनावे, उसे दो वस्त्रोंसे वेष्टित करे ॥४४॥ उसपर उमासहित शिवजीको स्थापित करे, वे सोनेके बने वृषभ-सहित हों ॥४५॥ शक्तिके अनुसार चांदीका दीपपात्र बना उसमें सोनेकी बत्ती रखे ॥४६॥ आचार्य्यको पहिले तथा पीछे ग्यारह ऋत्विजोंका वरण करे ॥४७॥ तिल, पायस और बिल्वसे एक हजार आठ वा एकसौ आठ आहुति ॥४८॥ ॥४९॥ रुद्र सूक्त वा मूल मंत्रसे दे, शिवालयमें घीके दीपक देने चाहिये ॥५०॥ उस सोनेकी बत्तीके तीपकको आचार्य्यके लिये देदे, पूर्णाहुति करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे ॥५१॥ वस्त्र अलंकार और आभूषणोंसे आचार्य्यको पूजे, उसे एवं बछडेवाली दुधारी गाय दे ॥५२॥ सुन्दर वस्त्र और अलंकारोंसे ऋत्विजोंका पूजन करे, तथा स्त्री समेत सबको भोजन करावे ॥५३॥ घीका भरा कांसे वा चांदीका पात्र सोने सहित भक्तिके साथ आचार्य्यको दे दे ॥५४॥ तथा प्रतिमासमेत रुद्रपीठकोभी आचार्य्य-के लिये दे, हे देव ! यह कांसेका पात्र गौ घृतके साथ ॥५५॥ सोने समेत देता हूं । मुझे शान्ति दे हे महादेव ! हे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले ! मैं आपकी कृपा चाहता हूं । मेरी इच्छाओं को शीघ्र पूरी कर । इस विधानसे जो रुद्रवर्ति करता है ॥५६॥५७॥ वह पुत्रपौत्रोंके साथ अच्छा अचल राज्य पाता है । जो स्त्री इस तरह इस व्रतको करती है वह सब पापोंसे छूट जाती है ॥५८॥ जो कोई इसकी कथाभी सुनता है वह एक हजार अश्वमेध और सौ वाजपेयका फल पाता है ॥५९॥ यह श्रीभविष्यपुराणका कहा शिवनारदके संवादरूपमें रुद्रवर्तिव्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ॥

अथ सामान्यतो लक्षवर्तिव्रतम्

वायुपुराणे—सूत उवाच ॥ आर्यावर्ते पुरा काचिद्वेश्याभूल्लक्षणाह्वया ॥ तस्या भुजङ्गः शूद्रोऽभूद्दासो नाम महाबली ॥ १ ॥ सा लक्षणा तु सुस्नाता स्थिता गोदावरीतटे ॥ बालवैधव्यदुःखेन रुदतीं च कुमारिकाम् ॥ २ ॥ मृतं पतिं पुरः स्थाप्य

बन्धभिः परिवारिताम् ।। विलपन्तीं ततो वीक्ष्य शनैस्तां प्रत्यपद्यत ।।३।। लुण्ठन्तीं भुवि कायेन मुहुर्घ्नन्तीमुरो बहु ।। जडानामपि कारुण्यं जायते तां प्रपश्यताम् ।। ।। ४ ।। तदा सा लक्षणा वाक्यं स्वभुजङ्गमुवाच ह ।। कुलजानां च नारीणां दशेयमतिदारुणा ।। ५ ।। अवस्थात्रयमेतासां तत्रेयं च सुदारुणा ।। कन्यात्वं जीवभर्तृत्वं विधवात्वमिति त्रिधा ।। ६ ।। पारवश्यं च नारीणां दुःखमामरणान्तिकम् मृतापत्यत्ववैधव्ये तथैवापुत्रता स्त्रियः ।। ७ ।। असह्यमेतत्त्रितयं वैधव्यं तत्र चोत्तरम् ।। बालेयं शोचतेऽतीव कस्येदं कर्मणः फलम् ।। ८ ।। निवर्तते वा केनैतत्को वा वेत्ति तथाविधम् ।। इत्येवं करुणाविष्टां पृच्छतीं लक्षणां तदा ।। ९ ।। उवाच दासनामाऽसौ भुजङ्गः सूनृतं वचः ।। भुजङ्ग उवाच ।। शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि धात्रा सृष्टाः पुरा द्विजाः ।। १० ।। देवानां चैव लोकानां हितार्थं मन्त्रकोविदाः ।। शास्त्रज्ञानात्स्वभावाच्च जीवानां यत्पुराकृतम् ।। ११ ।। जानन्ति कर्मजफलं प्रष्टव्यास्ते धृतव्रताः ।। भुजङ्गवचनं श्रुत्वा तथैवोमिति सा पुनः ।। १२ ।। तत्रागतं महावृद्धं याजकं नाम वै द्विजम् ।। पप्रच्छ तं दयालुं च प्रश्रयाद्दीनमानसा ।। १३ ।। लक्षणोवाच ।। मुने त्वहं दुराचारा कुलटा लक्षणाह्वया ।। तथापि त्वद्दयापात्रं पृच्छन्तीं मां सुबोधय ।। १४ ।। साधूनां समचित्तानां जनाः सर्वे समा भुवि ।। दुर्गन्धो वा सुगन्धो वा यथा वायोः समो भवेत् ।। १५ ।। मुने दशेयं नारीणां तृतीयातीव दुःसहा ।। कर्मणा जायते केन केन वाथ निवर्तते ।। १६ ।। एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन् कृपया वद सुव्रत ।। इति तस्या वचः श्रुत्वा याजको वाक्यमब्रवीत् ।। १७ ।। दैवे कर्मणि पित्र्ये च नार्यः पाकेषु संस्थिताः ।। अकस्माच्च रजो दृष्ट्वा स्पृष्टभाण्डाद्युपस्कराः ।। १८ ।। अज्ञानाद्वा भयाद्वापि कामाल्लोभात् क्वचित्स्त्रियः ।। अवेदयित्वा तिष्ठन्ति तेन दुष्यन्ति सत्क्रियाः ।। १९ ।। क्रियालोपकरा ह्येताः पापादस्माद्दुरत्ययात् ।। दशामिमां प्राप्नुवन्ति सर्वा अपि न संशयः।।२०।। बाल्ये वा यौवने वापि वार्धके वा कदाचन ।। तत्र या तु दुराचारा परानेवाभिकांक्षति ।। २१ ।। श्वश्र्वोश्च पतिबन्धूनां नित्यं वाचा सुदुःखिताः ।। 'एतत्सहायतो नारी वा दूषयति सत्क्रियाः ।। २२ ।। बाल्ये वैधव्यमाप्नोति सा नारी नात्र संशयः ।। लब्धा भर्त्रन्यतो गर्भं बालानामपि घातिनी ।। २३ ।। एतत्कर्मसहायेन रजसा दूषिता तु या ।। मृतापत्या तु सा भूत्वा वैधव्यं यौवने व्रजेत् ।। २४ ।। या नारी रजसा दुष्टा सर्वभाण्डादिसंकरम् ।। कुरुते यदि सा नारी वैधव्यं वार्धके व्रजेत् ।। २५ ।। या चानुकूल्यरहिता पतिधर्मेषु सर्वदा ।। बाल्ये वैधव्यमापन्ना गतिहीना भवत्यलम् ।। २६ ।। सर्वासामपि वैधव्यनिधानं पापसंभवः ।। शान्तिं तेऽत्र

१ वरसाहाय्यात् ।

प्रवक्ष्यामि कर्मणोस्यापि लक्षणे ।। २७ ।। कृते तु मुनिपञ्चम्या व्रते पापं रजोभवम् ।। क्षयं गच्छति नारीणामिति वेदविदो विदुः ।। २८ ।। सशूर्पं वायनं कृत्वा कृते लक्ष्मीव्रतादिके ।। समूलशेषं व्रजति रजोदोषो न संशयः ।। २९ ।। निर्मलं च भवत्याशु लक्षवर्तिव्रते कृते ।। रजसोत्थं महत्पापं नारीणां नात्र संशयः ।। ।। ३० ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ लक्षणा — मनसा शंकिता भूत्वा सादरं मुनिपुङ्गवम् ।। ३१ ।। साधु साधु महाभाग चित्तं मे भयविह्वलम् ।। लक्षवर्तिव्रतस्यास्य विधानं कीदृशं वद ।। ३२ ।। कस्मिन्मासे प्रकर्तव्यं [1]कस्मिश्चैव समर्पणम् ।। उद्यापनं कथं कार्यं किं फलं तस्य वा मुने ।। ३३ ।। तया पृष्टो याजकोऽपि लोकानां हितकाम्यया ।। फलं विधानं तत्सर्वं तदावोचन्महामुनिः ।। ३४ ।। लोमशस्य मुनीनां च संवादं कथयामि ते ।। कालो हि कार्तिको मासो माघो वैशाख एव वा ।। ३५ ।। सहस्रगणितं तत्तु व्रतमेतद्धि कार्तिके ।। तस्मात्कोटिगुणं भद्रे माघे मासि व्रतोत्तमम् ।। ३६ ।। तस्मादनन्तगुणितं फलं वैशाखमासि वै ।। एतन्मासत्रयं[2] कार्यं यस्मिन्मासे समाप्यते ।। ३७ ।। तस्मान्मासद्वयात्पूर्वं प्रारब्धव्यं व्रतं त्विदम् ।। अन्ते मासि प्रकुर्वीत समाप्तिं च विचक्षणः ।। ३८ सहस्रवर्तिभिः कुर्यादारार्तिं विष्णवेऽन्वहम् ।। गोघृतेनाथ तैलेन सम्यगन्यैर्मनोरमैः ।। ३९ ।। यस्मिन्मासे समाप्तिः स्यात्पूर्णिमायां च कारयेत् ।। उद्यापनं विधानेन व्रतसंपूर्तिकारणम् ।। ४० ।। प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पञ्चगव्यं तु प्राशयेत् ।। पुण्याहवाचनं कृत्वा वृत्वा चाचार्यमुत्तमम् ।। ४१ ।। त्रयोदशर्त्विजो भद्रे साग्निकान्वृणुयात्ततः ।। सतिलैश्च यवैः कुर्यादग्नेनयऋचा द्विजः ।।४२।। वर्त्या दशांशतः-कुर्यात्तर्पणं तु विचक्षणः ।। तर्पणस्य दशांशेन होमं कुर्याद्विधानतः ।। ४३ ।। तर्पणोक्तेन मन्त्रेण साज्येन पायसेन च ।। पालाशीभिः समिद्भिश्च होमयेच्च ततः परम् ।। ४४ ।। घृतं तु विष्णुगायत्र्या होमस्यायं विधिः स्मृतः ।। अष्टकर्णिकया युक्तं वेद्यां पद्मं तु संलिखेत् ।।४५।। कलशस्तत्र तु स्थाप्यः सपिधानः सवस्त्रकः ।। रौप्यस्ताम्रो मृन्मयो वा वस्त्रयुग्मेन वेष्टितः ।। ४६ ।। तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्म्या सह सुवर्णकम् ।। राजतं दीपपात्रं च स्वर्णवर्तिसमन्वितम् ।। ४७ ।। ततो मासाधिदेवांश्च स्थापयेद्देवसन्निधौ ।। कालो विष्णुस्तथा वह्नी रविर्दामोदरो हरिः ।। ४८ ।। रुद्रः शेषो जगव्द्यापी तेजोरूपी निशाकरः ।। निरञ्जनः फलाध्यक्षो विश्वरूपी जगत्प्रभुः ।। ४९ ।। स्वप्रकाशः स्वयं ज्योतिश्चतुर्व्यूहो जनाश्रयः ।। परं ब्रह्म विंशतिभिः पूजयेज्जगदीश्वरम् ।। ५० ।। शिरो ललाटं नेत्रे च कर्णौ नासां मुखं तथा ।। कण्ठं स्कन्धौ तथा बाहू स्तनो वक्षस्तथोदरम् ।। ५१ ।। नाभि

१ देवे इति शेषः ।२ दशदिनाधिकमिति शेषः ।

कटी च जघनमूरू जानू च गुल्फके ।। पादौ तदग्रे क्रमशो ह्यङ्गन्येतानि पूजयेत् ।। ।। ५२ ।। धूपदीपौ तथा दत्त्वा नैवेद्यं च निवेदयेत् ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्ब्राह्मणानृत्विजस्तथा ।। ५३ ।। गां प्रदद्यात्सवसां च सालंकारां गुणान्विताम् ।। त्रिंशत्पलं कांस्यपात्रं घृतेन परिपूरितम् ।। सुवर्णेन च संयुक्तमाचार्याय निवेदयेत् ।। ५४ ।। कांस्यं विष्णुमयं रौप्यं गोघृतेन समन्वितम् ।। सुवर्णवर्तिसंयुक्तमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।। ५५ ।। इति मन्त्रेण दद्यात् ।। अथवा तद्दशपलं तथा घृतसमान्वितम् ।। अथवा तु यथाशक्त्या दद्यादावश्यकं त्विदम् ।। ५६ ।। व्रताभावे च यो दद्यात्कांस्यं च घृतपूरितम् ।। यावज्जीवं सुखप्राप्तिर्भवत्येव न संशयः ।। ।। ५७ ।। रजोदोषाद्विमुक्ता स्यात्पौर्णमास्यां ददाति या ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।।५८।। या चैवं कुरुते नारी तस्याः पुण्यफलं शृणु ।। यानि चान्यानि पापानि रहस्येव कृतानि च ।। ५९ ।। नश्यन्ति तानि सर्वाणि व्रतस्यास्य प्रभावतः ।। चाण्डालगामिनी वापि तथा शूद्राभिमर्शिनी ।। ६० ।। कारुञ्जरजकादीनां गामिनी दुष्टचारिणी ।। ब्रह्मक्षत्रियवैश्येषु प्रतिलोमेषु गामिनी ।। ६१ ।। मातुलेयपितृव्यादिभ्रातृपुत्राभिगामिनी ।। बालघ्नी वा पितृघ्नी वा भ्रातृभ्रातृवधे रता ।। ६२ ।। गोघ्नी वा तस्करी वापि रजःसंकरकारिणी ।। वह्निदा गरदा चैव नित्यं चाप्रियवादिनी ।। ६३ ।। पत्यौ जीवति या नारी मृते वा व्यभिचारिणी ।। एवमादिमहापापैरावृतापि कुलाङ्गना ।। ६४ ।। कृत्वा चैतद्व्रतं पुण्यं मुच्यते नात्र संशयः ।। व्रतानामुत्तमं चैव स्त्रीणामावश्यकं त्विदम् ।। ६५ ।। एकार्तिकप्रदानेन विष्णोस्त्वमिततेजसः ।। कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागमकोयः ।। ६६।। तथैवात्युग्रपापानां कोटयोऽथ सहस्रशः ।। नश्यन्ति नात्र संदेहो नारीणां वानरस्य च ।।६७।। किं लक्षवर्तिभिर्विष्णोः कृते चारार्तिकार्पणे ।। किमत्र बहुनोक्तेन नानेन सदृशं व्रतम् ।। ६८ ।। पुरुषोऽपि व्रतं कृत्वा पूर्वोक्तैः पापसंचयैः ।। मुच्यते नात्र संदेहो मधुसूदनशासनात् ।। ६९ ।। एतत्सर्वं मयाख्यातं पृच्छन्त्यास्तव मानदे ।। व्रतं कुरु सुखं तिष्ठ यथा ते रोचते मनः ।। ।। ७० ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनःप्रपच्छ लक्षणा ।। अज्ञानाद्दुष्टभावाद्वा न विश्वासो ममेह वै ।। ७१ ।। प्रत्ययार्थं ततो ब्रह्मन् प्रत्यक्षं कुरु मेऽधुना ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा याजको वाक्यमब्रवीत् ।।७२।। कथं[1] ते प्रत्ययो भूयादिति तां करुणानिधिः ।। सा चोवाच पुनर्विप्रं विस्मयोत्फुल्ललोचना ।। ७३ ।। नववैधव्यमापन्ना रोदित्येषा कुमारिका ।। अस्याः पतिर्यथा जीवेद्वैधव्यं चैव नश्यति ।। ७४ ।। तथा कुरु मुनिश्रेष्ठ दया शमवतां धनम् ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मितो वाक्य-

---

१ ते प्रत्ययः कथं भूयादिति वाक्यं याजकोऽब्रवीदित्यन्वयः ।

मब्रवीत् ॥ ७५ ॥ अधुना मकरं प्राप्तो भास्करो लोकभास्करः ॥ माघोऽयं च वरो मासः सर्वत्र तु फलाधिकः ॥ ७६ ॥ अद्य गत्वा कुरु स्नानं [1]गङ्गायामघहारिणि ॥ स्नानं कृष्णार्पणं कृत्वा देहि तस्मै मृताय च ॥ ७७ ॥ तेन जीवेदयं नूनं सुरापो ब्रह्महापि वा ॥ यद्यप्ययं राजयक्ष्मरोगेण च मृतिं गतः ॥ ७८ ॥ तथापि माघमासस्य पुण्यादुज्जीवति ध्रुवम् ॥ दापयित्वा तथा वर्ति कांस्यपात्रं विधानतः ॥ ७९ ॥ जीवत्पतिर्भवेत्सा हि यावदामरणं ध्रुवम् ॥ लक्षणा तद्वचः श्रुत्वा जलं स्पृष्ट्वा च वाग्यता ॥ ८० ॥ स्नानं विष्णवर्पणं कृत्वा ददौ तस्मै फलं तदा ॥ तत्पुण्यस्य प्रभावेण तत्क्षणादेव सोत्थितः ॥ ८१ ॥ भुजङ्गं स्वं प्रेषयित्वाऽऽनाय्य पात्रं च कांस्यकम् ॥ कुमार्या दापयामास वैधव्यस्यापनुत्तये ॥ ८२ ॥ एतत्पुण्यप्रभावेण कुमारी सापि शोधना ॥ यावज्जीवं जीवपत्नी बभूव बहुपुत्रिका ॥ ८३ ॥ कुमारी शोभना नाम तत्पतिः कणभोजकः ॥ तद्बान्धवास्तथा सर्वे तुष्टुवुस्तां च लक्षणाम् ॥ ८४ ॥ याजकं च बहु स्तुत्वा जग्मुस्ते स्वनिकेतनम् ॥ लक्षणा सापि दासेन भुजङ्गेन च संयुता ॥ ८५ ॥ माघस्नानं तथा कृत्वा व्रतमेतच्चकार सा ॥ ततस्तु मरणं प्राप्तो दासस्तस्याः सहायकृत् ॥ ८६ ॥ गयोनाम महाराजश्चक्रवर्ती बभूव सः ॥ सा लक्षणा च तत्पत्नी सर्वलक्षणसंयुता ॥ ८७ ॥ बभूव लोकविख्याता जीवत्पत्नी सुपुत्रिका ॥ अनेनैव विधानेन लक्षवर्ति करोति यः ॥ ८८ ॥ पुत्रपौत्रैः परिवृतो राज्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ एवं या कुरुते नारी सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८९ ॥ लक्षवर्तिकथामेतां प्रीत्या श्रोष्यति मानवः ॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ॥ ९० ॥ [2]इति श्रीवायुपुराणे सामान्यतो लक्षवर्तिव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ॥

सामान्यरूपसे लक्षवर्ती व्रत-वायुपुराणमें लिखा है । सूतजी बोले कि, आर्य्यावर्त देशमें एक लक्षणानामक वेश्या थी । उसका यार महाबली 'दास' भुजंग नामक शूद्र था ॥१॥ एक दिन वह गोदावरीमें स्नान कर चुकी थी कि, उसने बालवैधव्यके दुखसे रोती हुई एक कुमारी देखी ॥२॥ मृतपति सामने था भाई बन्धु उसे घेरे बैठे थे, उसे रोते देख धीरेसे उसके पास पहुंची ॥३॥ वह वारंवार भूमिमें पछाड़ खाती तथा वारंवार छाती पीट रही थी । उसे देखकर और तो क्या जडों कोभी करुणा आती थी ॥४॥ उसी समय लक्षणा अपने यारसे बोली कि कुलीन स्त्रियोंकी यह दशा अति कठिन है ॥५॥ तीनों अवस्थाओंमें यह अवस्था बड़ी ही कठिन है । कन्यापना, सुहागिनपना तथा विधवापना ये तीन दशाएं हैं ॥६॥ जबतक जिन्दी रहती है परतंत्र रहती हैं इसी तरह वैधव्य बालक न होना या हो होकर मर जाना ये तीनों भी घोर दुखही हैं ॥७॥ यद्यपि ये तीनों असह्य हैं पर वैधव्य तो बड़ाही कठिन है, यह बालिका बड़ी फिकर कररही है, यह किस कर्मका फल है ? ॥८॥ वह कैसे निवृत्त हो उसके उपायको कौन जानता है । लक्षणा दयार्द्र होकर यह पूछ रही थी ॥९॥ उसका योग्य भुजंग सत्य वचन बोला कि, हे भद्रे ! सुन ब्रह्माजीने देव और लोकके कल्याणके लिये मंत्रवेत्ता ब्राह्मण वनाये थे, वे अपने शास्त्रके ज्ञानसे, स्वभावके वश हो किये गये जीवोंके कर्मोंको यथावत् जानते हैं उन्हें पूछना चाहिये । उसके ये वचन लक्षणाने स्वीकार किये ॥१०-१२॥ इतनेहीमें दैवात् वहां एक याजक-

१ अवहारिण्यामित्यर्थः । २ एतत्कथायां व्रतार्के फल श्रुत्यादो बहवोधिकाः श्लोकाःसन्ति ।

नामक वृद्ध ब्राह्मण चला आया, दयाके कारण दीन मन हुई वह उस दलालु ब्राह्मणसे पूछने लगी ।।१३।। कि हे मुने । मैं दुराचारिणी लक्षणा नामकी वेश्या भी हूं तो भी आपकी तो कृपाकी पात्रही हूं मैं कुछ पूछना चाहती हूं बता दीजिये ।।१४।। क्योंकि समतावाले साधुओंके लिये सब बराबर हैं जैसे वायु दुर्गन्धि और सुगन्धि दोनोंमें बराबर रहा है उसी तरह महात्मा सब जगह सम रहते हैं ।।१५।। हे मुने ! स्त्रियोंके वैधव्यकी दशा बड़ीही बुरी है यह किस कर्मसे होती है तथा कैसे जाती हे यह मुझे बता दीजिये ।।१६।। मुझे इसे विस्तारके साथ सुना दीजियें, ऐसे उसके वचन सुन याजक बोला ।।१७।। कि, जो स्त्री देव और पितरोंके लिये भोजन तयार कर रही हो किन्तु वहां अचानक रजस्वला होनेपर भी बर्तन भांडे आदि उपकारणको छूले ।।१८।। अज्ञान, भय, काम और कभी लोभके वश हो विनाबताए वहां बैठी रह जाय तो उसके वहां अच्छी क्रियाएं दूषित हो जाती हैं ।।१९।। क्रियालोपकारक इस घोरपापसे वह इस दशाको प्राप्त होती हे इसमें सन्देह नहीं है ।।२०।। बाल्य यौवन और बुढ़ापा किसीमें भी जो दुराचारिणी दूसरोंको चाहे ।।२१।। तथा सासससुर पति और बन्धुओंको कुवाक्य बोल कर दुखी करे परकी सहायतासे जो अच्छे कामोंको बिगाडे ।।२२।। वह बाल्यकालमें वैधव्य पा जाती है इसमे सन्देह नहीं है दूसरेका गर्भ ले लोकभयसे बालककी हत्या करे ।।२३।। इस कर्मके करनेवाली तथा जो रजसे उक्त प्रकारके दूषित हो वह मृतापत्या होती है यानी पहिले तो उसकी संतान मरती है जवानीमें विधवा होती है ।।२४।। जो स्त्री रजस्वलाहीकर देव पितर कार्य तथा पवित्र भोजनादिके बर्तनोंको छूती है, वह बुढ़ापेमें विधवा हो जाती है ।।२५।। जो स्त्री पति धर्मोमें अनुकूल नहीं रहती वह बाल्यकालमें विधवा होकर गतिहीन हो जाती है ।।२६।। सभी वैधव्योंका पाप कर्महो कारण है । हे लक्षणे ! मैं तुझे उस कर्मकी शान्ति बताता हूं ।।२७।। वेदके वेत्ता सज्जन ऐसा कहा करते हैं कि, ऋषि पंचमीके व्रतसे रजस्वला होकर जो दोष किए उनकी तो शान्ति हो जाती है ।।२८।। वह दोषसूर्य सहित वायना और लक्ष्मीव्रत करनेसे बिल्कुलही निःशेष हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ।।२९।। वह लक्षवर्तिव्रत करनेपर तो निर्मूलही हो जाता है इसमें संशयही क्या हें ? ।।३०।। याजकके वचन सुनकर फिर लक्षणा शंकित होकर मुनिपुंगवसे पूछने लगी ।।३१।। कि, हे महाभाग ! बहुत ठीक है । मेरा मन डरसे व्याकुल हो रहा है । लक्षवर्त्ति व्रतका विधान क्या है यह बताइये ।।३२।। किस मासमें करे किसमें देवके निमित्त समर्पण करे उसका कैसे उद्यापन तथा क्या फल होता है ? ।।३३।। उसका पूछा याजकने संसारके कल्याणकी इच्छासे फलविधान सब बतादिया क्योंकि, वह महामुनि था ।।३४।। तुझे मैं लोमश और मुनियोंमें जो संवाद हुआ था उसे सुनाता हूं उसके प्रारंभ करनेका समय, कार्तिक माघ या वैशाख है ।।३५।। हे भद्रे, यह व्रत कार्तिकमें हजार गुना तथा उससे कोटि गुना माघमासमें तथा उससे भी अनन्त गुना अधिक फल वैशाख मासमें होता है । इस व्रतको तीन महीना दशदिन करना चाहिए । जिस मासमें यह व्रत समाप्त होता है उससे दोमाससे भी पहिले इस व्रतको प्रारंभ करना चाहिए । अन्तके मासमें समाप्ति करनी चाहिए ।।३६–३८।। एक हजार बत्तियोंसे रोज विष्णु भगवान्‌की आरती करे, गोघृत वा तेल या और मनोहर तेल घी आदिसे बत्ती भिगोवे ।।३९।। जिस मासमें समाप्ति हो तब पूर्णिमामें ही होनी चाहिए । उद्यापन भी विधिके साथ होना चाहिए क्योंकि, इसीसे व्रतकी पूर्ति होती है ।।४०।। प्रातः स्नान कर पवित्र हो पंचगव्यका प्राशन करे, पुण्याहवाचन करावे । आचार्यका वरण करे ।।४१।। साग्निक तेरह ऋत्विजोंका वरण करे ।। तथा द्विज " अग्ने नय " इस ऋचासे तिलसहित यवोंका हवन करे ।।४२।। ओम् अग्ने नय सुपथाराये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराहमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्ति विधेम ।। हे अग्ने ! हमें अच्छे रास्तेसे ऐश्वर्यके लिए लेचलो हे देव ! आप हमारे सब कर्मोंको जानते हो मनकी कुटिलताको निकाल दो, मैं आपको वारम्वार प्रणाम करता हूं अथवा हे प्रकाशात्मक देव ! हमें उत्तरायण पथसे मोक्षको ले जाना, हमारे कुटिल पापोंको जला दो । आप हमारे किए हुए पवित्र कर्मोंको जानते हो हम आपके लिए वारम्वार नमस्कार करते हैं । बत्तीका दशांश तर्पण एवं तर्पण का दशांश होम करे ।।४३।। तर्पणकेही मन्त्र से घी मिली हुई पायस और पलाशकी समिधसे हवन करे ।।४४।। विष्णुगायत्रीसे घृत हवन करे । वेदीमें अष्ट कर्णिकाका पद्म लिखे ।।४५।। वहां सोने चांदीका कलश स्थापित करे दो वस्त्रोंसे वेष्टित करे, उसपर पूर्णपात्र रखे ।।४६।। उसपर सोनेके लक्ष्मी नारायण भगवान्‌को विराज-

मान करे, चांदीका दीपक सोनेको बत्ती डालकर रखे ॥४७॥ पीछे मासके अधिदेवोंको देवके पास स्थापित करे । काल, विष्णु, वह्नि, रवि, दामोदर, हरि, रुद्र, शेष, जगद्व्यापी, तेजोरूपी, निशाकर, निरंजन, फलाध्यक्ष, विरूश्वपी, जगत्प्रभु, स्वप्रकाश, स्वयंज्योति, चतुर्व्यूह, जनाश्रय, परंब्रह्म, इन बीस नामोंसे जगदीश्वरका पूजन करना चाहिए ॥४८–५०॥ शिर, ललाट, नेत्र, कर्ण, नासा, मुख, कंठ, स्कन्ध, बाहू, स्तन, वक्षः, उदर, नाभि, कटी, जघन, ऊरु, जानू, गुल्फ, पाद, इन अंगोंको चरणसे लेकर शिरतक पूजे ॥५१॥ ॥५२॥ धूपदीप देकर नैवेद्य निवेदन कर दे, पीछे आचार्य्य ब्राह्मण और ऋत्विजोंका पूजन करे ॥५३॥ वस्त्र और अलंकारोंसमेत सुशील गाय दे, तथा तीस पलका कांसेका पात्र घीसे भरा सोना डालकर आचार्य्यको दे ॥५४॥ गोघृतके साथ विष्णुमय कांस्य और रौप्य दीप सोनेकी बत्तीके साथ देता हूं इस कारण मुझे शान्ति प्रदान करें ॥५५॥ इस मंत्रसे दे, अथवा दस पलका गोघृतसे भर दे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार कम ज्यादा दे, पर दे कासेका पात्र अवश्य ॥५६॥ बिना व्रतके भी जो घीसे भरकर कांसेका पात्र दे उसे जिन्दगीभर सुख मिलता है इसमें सन्देह नहीं है ॥५७॥ जो पौर्णमासीमें दे दे वह रजके दोषसे मुक्त हो जाती है पीछे ब्राह्मण भोजन करावे लोभ न करे ॥५८॥ जो स्त्री ऐसे करती है उसके पुण्य फलको सुनिये, जो पाप गुप्त किए हैं ॥५९॥ वे सब पाप इस व्रतके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं। चाण्डालगामिनी शूद्रका अभिमर्श करनेवाली ॥६०॥ कारंज और रजकादिकोंके साथ गमन करनेवाली ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और प्रतिलोमोंमें गमन करनेवाली ॥६१॥ मामाके बेटा और चाचाके साथ गमन करनेवाली बालक और पिताकी घातक भ्राता और माताके वधमें लगी रहनेवाली ॥६२॥ गौघातकी, चोरी, रजका संकर करनेवाली, आग लगानेवाली जहर देनेवाली, झूठ बोलनेवाली ॥६३॥ पतिके जीवित रहते वा मरने पर व्यभिचार करनेवाली ऐसेही अनेकों पापोंसे ढके रहनेवाली कुलीन स्त्री ॥६४॥ इस पुण्य व्रतको करके सब पापोंसे छूट जाती है, इसमें सन्देह नहीं है, वह सब व्रतोंमें उत्तम है, स्त्रियोंको परम आवश्यक है ॥६५॥ विष्णुभगवान्‌को एक आरती देनेसे कोटिनब्रह्महत्या, अगम्यागमन ॥६६॥ हजारों लाखोंही दान पाप चाहे स्त्रीके हों चाहे पुरुष के हों नष्ट हो जाते हैं ॥६७॥ तब लाख बत्तियोंसे आरती करनेका तो पुण्यही क्या है । विशेष कहनेमें क्या है इसके समान कोई दूसरा व्रत नहीं है ॥६८॥ पुरुष भी इस व्रतको करके पहिले किये हुए पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है । यह भगवान्‌का शासन है ॥६९॥ हें मानके देनेवाली ! तूने जो पूछा वह मैंने बतादिया । व्रतकर सुवर्णपूर्वक रह जैसा कि, तेरा मन है ॥७०॥ उसके ये सचन सुनकर फिर लक्षणाने पूछा कि, अज्ञान अथवा दुष्टभावके कारण इसमें मेरा विश्वास नहीं हुआ है ॥७१॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे विश्वासके लिये मुझे प्रत्यक्ष करके दिखा दीजिये । दयालु याजक फिर उससे पूछने लगा कि, तुझे कैसे विश्वास हो, वह प्रसन्नताके मारे नेत्र खिलाकर बोली कि ॥७२॥७३॥ यह नई विधवा हुई कुमारी रो रही है, जैसे इसका पति जीवित हो और वैधव्य नष्ट हो जाय ॥७४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वैसेही करिये, क्योंकि शमवालोंका दयाही धन है । उसके ये वचन सुन विस्मित होकर बोला कि ॥७५॥ संसारको प्रकाश देनेवाला भास्कर इस समय मकर राशिपर प्राप्त हुआ है सब मासोंमेंअधिक फल देनेवाला यह माघ मास है ॥७६॥ अभी जाकर पापनाशिनी गंगामें स्नान कर स्नानको कृष्णार्पण करके उस पड़े हुए को दे दे ॥७७॥ चाहे यह सुरापी और ब्रह्महत्यारा हो चाहे इसकी राजयक्ष्मासे मौत हुई हो ॥७८॥ तो भी माघमासके पुण्यसे जी जायगा, बत्ती और कांसेका पात्र विधानके साथ देकर ॥७९॥ जीवन पर्य्यन्त सुहागिन रहेगी लक्षणाने उसके वचन सुनकर गंगास्नान और आचमन मौनके साथ किया ॥८०॥ स्नानको श्रीकृष्णार्पण करके उसका फल उसे दे दिया, उस पुण्यके प्रभावसे उसी समय वह मुरदा उठकर खड़ा हो गया ॥८१॥ अपने दोस्त (भुजंग) को भेज कांसेका बर्तन मंगाया वैधव्यके नाशके लिये कुमारीसे दिलाया ॥८२॥ वह सुन्दर कुमारी उसके पुण्यके प्रभावसे सुहागिन और अनेकों बेटोंवाली हुई ॥८३॥ शोभना कुमारी और कणभोजक उसका पति तथा उसके बान्धव सबने लक्षणाकी स्तुति की ॥८४॥ तथा याजककी भी अनेकों स्तुतियां करके सब अपने घर चले आये । लक्षणाने भी अपने सच्चे दोस्तके संग ॥८५॥ माघके स्नानके साथ स व्रतको किया, अपने समयपर उसकी सहायता करनेवाला दास मर गया ॥८६॥ वह ही गयनामक चक्र-

वर्ती राजा हुआ है। यही लक्षणा उस जन्ममें उसकी सुयोग्य धर्मपत्नी बनी है ॥८७॥ तथा बहुतसे पुत्रोंवाली सुहागिन होकर अनेकों वर्ष जीवित रही है। जो इस विधानसे लक्षवत्ती व्रत करता है ॥८८॥ वह बेटा नातियोंके साथ सदा रहनेवाला राज्य पाता है, जो स्त्री इस व्रतको कर लेती है वह सब पापोंसे छूट जाती है ॥८९॥ जो प्रीतिके साथ इस लक्षबत्ती व्रतकी कथा सुनता है वह भी उस फलको पा जाता है इसमें विचार न करना-चाहिए यह त्रिकालमें सत्य है ॥९०॥ यह श्रीवायु पुराणका कहा हुआ सामान्य रूपसे लक्षबत्ती व्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ॥

अथ विष्णुवर्तिव्रतं लिख्यते

युधिष्ठिर उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ संसारार्णवतारक ॥ वद मे सर्वपापघ्नं व्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥ यच्चाचरणमात्रेण जनानां सर्वकामदम् ॥ अस्ति किञ्चित्तव मतं यदि देव दयानिधे ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ लक्षवर्तिव्रतं वच्मि सर्वकामफलप्रदम् ॥ विष्णुवर्तीति विख्यातं शृणु राजन् समासतः ॥ शुभे तिथौ शुभे लग्ने ताराचन्द्रे च शोभने ॥ सम्यग्विशोध्य कार्पासं तृणधूलि विवर्जितम् ॥ तस्य सूत्रं विधायाशु चतुररंअगुलिका कृता ॥ पञ्चसूत्रयुता वर्तिर्विष्णुवर्तीति कथ्यते ॥ एवं कुर्याल्लक्षसंख्या गोघृतेन परिप्लुताः ॥ उद्दीपयेच्च विष्णवग्रे पात्रे राजतमृन्मये ॥ अथवा प्रत्यहं देयाः सहस्रद्वयसंमिताः ॥ एवं दिनानि पञ्चाशदन्ते चोद्यापनं चरेत् ॥ कुरुराज प्रयत्नेन सर्वपापप्रणाशनम्[1] ॥ भुक्त्वा यथेप्सितान् भोगानन्ते सायुज्यमाप्नुयात् ॥ पार्वत्या च पुरा पृष्टं शङ्कराय महात्मने ॥ तेनेदं कथितं देव्यै विष्णुवर्तिव्रतं शुभम् ॥ तया कृता विष्णुवर्तिर्लक्षसंख्या शुभप्रदा ॥ उद्दीपिता तथा भक्त्या सन्तुष्टोऽहं व्रतेन च ॥ दत्तं कैलासभवनं शङ्करेण च धारिता[2] ॥ कर्तव्यं तु प्रयत्नेन जनेन शुभमिच्छता ॥ येन चोद्दीपितो विष्णुः सर्वसौभाग्यदायकः ॥ स भवेत्पापनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ उद्यापनं यथार्थं त्वं शृणु राजन्समासतः ॥ कृतेन येन सकलं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ कार्तिक्यामथवा माघ्यां वैशाख्यां वा शुभे दिने ॥ प्रतिमां कारयेद्विष्णोः सौवर्णी माषमात्रतः ॥ कलशं कारयेत्ताम्रं पूर्णपात्रेण संयुतम् ॥ आचार्यं वरयेत्पूर्वं पञ्चऋत्विग्युतं व्रती ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वा गणेशं पूजयेत्ततः ॥ विधाय सर्वतोभद्रं पञ्चवर्णं यथाविधि ॥ स्थापयेत्प्रतिमां विष्णोः कलशे च नवे शुभे ॥ वस्त्रद्वयेन संवेष्टय पूजयेत् कलशोपरि ॥ पूजयेच्च यथाशक्त्या ब्रह्माद्या देवताः शुभाः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याच्छृणुयाद्वैष्णवीं कथाम् ॥ प्रभाते विमले स्नात्वा पुनः संपूज्य वै विभुम् ॥ प्रतिष्ठाप्य ततो वह्निं स्वगृह्योक्त विधानतः ॥ जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या सहस्रं पायसं शुभम् ॥ तर्पणं दशसाहस्रं मार्जनं शतमाचरेत् ॥ सौवर्णीं वर्तिकां कृत्वा पात्रे रजतसंभवे ॥ कार्पासवर्तिसंयुक्ता तया नीरायजये-

१ यः कुर्यात्स इति शेषः। २ अर्धाङ्गे शेषः।

द्धरिम् ।। आचार्यं पूजयित्वा तु मण्डलं तु निवेदयेत् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्सम्यक् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। इति विष्णुरहस्ये विष्णुर्वातिव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

विष्णुका लक्षबत्ती-व्रत-लिखते हैं, युधिष्ठिरजी बोले कि, हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे संसार सागरके पार करनेवाले ! जो सब व्रतोंमें उत्तम हो ऐसा कोई पाप नाशक व्रत कहिये, जो कि, करने मात्रसे मनुष्योंके सब मनोरथोंको पूरण करदे यदि आपका विचार हो तो । श्रीकृष्णजी बोले कि, सामान्य रूपसे विष्णु लक्षवर्त्ती व्रत कहता हूं, हे राजन् ! सावधान होकर सुन । अच्छे तिथि, लग्न, तारे, चन्द्र और दिनमें कपासको अपने हाथसे ही तृण और धूलिसे विहीन करदे, उसका सूत काते, चार आंगुरकी पचलरी बत्ती विष्णुवर्ती कहलाती है, ऐसी एक लाखबत्ती बनाकर गऊके घीमें डुबादे । पीछे उन्हें चांदी या मिट्टीके पात्रमें रखकर विष्णुभगवान्के सामने जलावे, अथवा दो हजार रोजके हिसाबसे पचास दिनतक जलावे, अन्तमें उद्यापन करे, हे कुरुराज ! जो इसे सावधानीसे करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं वह यहां यथेष्ट भोगोंको भोगकर अन्तमें सायुज्य पा जाता है, पहिले यह पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा तथा शिवजीने इसे पार्वतीजीको सुनाया था उन्होंने सुनकर इस शुभदायी व्रतको किया भक्तिके साथ वर्त्ती जलाई जिससे मैं प्रसन्न हुआ । शिवने घर कैलासका भार उनके सुपर्द किया तथा उसे अपने अर्धाङ्गमें धारण की शुभकांक्षी मनुष्यको इसे अवश्य करना चाहिये जिसने विष्णुभगवान्के स्थानपर लाख बत्ती जलाकर जगमगारकर दिया है वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोकमें जा विराजता है उद्यापन-भी यथार्थ रूपसे थोड़ेमेंही कहे देता हूं जिसके कि, कियेसे मनुष्य व्रतका पूरा फल पा जाता है । कार्तिकी माघी वा वैशाखीमें अच्छे दिन, सोनेकी एक माषकी विष्णुभगवान् प्रतिमा बनवावे,एक तांबेका कलश मय पूर्ण पात्रके हो,आचार्य्य और पांच ऋत्विजोंका वरण करे,पुण्याहवाचन कराके गणेशजीका पूजन करे पांच रंगका सर्वतोभद्र बनावे, विधिपूर्वक कलश स्थापित करे, उसे दो वस्त्रोंसे वेष्टित करे उसपर पूर्णपात्र रखकर विष्णुभगवान्की प्रतिमा स्थापित करे शक्तिके अनुसार पूजन करे, पीछे ब्रह्मादि देवोंको पूजे, रातको जागरण करे; विष्णुभगवान्की पवित्र कथाएं सुने प्रातःकाल स्नान ध्यान करके भगवान्का फिर पूजन करे, फिर गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार विष्णुगायत्रीसे एक हजार पायसकी आहुति दे, दश हजार तर्पण और सौ मार्जन करे, चांदीके पात्रमें सोनेकी बत्ती डाले, उसमें कपासकी बत्ती डालकर भगवान्का नीराजन करे, आचार्य्यका पूजन करके मंडल आचार्य्यको भेंट कर दे, ब्राह्मण भोजन कराकर आप भी मौनके साथ भोजन करे । यह विष्णुरहस्यका कहा हुआ विष्णुबत्तीव्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथ देहवर्तिव्रतं लिख्यते

सूत उवाच ।। कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।। पञ्चवक्त्रं दशभुजं शूलपाणिं त्रिनेत्रकम् ।। १ ।। कपालखट्वाङ्गधरं खड्गखेटकधारिणम् ।। पिनाकपाणिं देवेशं वरदाभयपाणिनम् ।। २ ।। भस्माङ्गव्यालशोभाढ्यं शशाङ्ककृतशेखरम् ।। कैलासशिखरावासं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।। ३ ।। क्रीडित्वा सुचिरं कालं गणेशादीन्विसृज्य च ।। विसृज्य देवताः सर्वा एकाकिनमवस्थितम् ।।४।। तं दृष्ट्वा देवदेवशं प्रहृष्टं चारुलोचनम् ।। अथापृच्छत्तदा देवी यद्गोप्यं व्रत मुत्तमम् ।। ।। ५ ।। देव्युवाच ।। दानधर्माननेकांश्च श्रुत्वा[1] तीर्थान्यनेकशः।। नास्ति मे निश्चयो देव भ्रामिताहं त्वया पुनः ।। ६ ।। व्रतानामुत्तमं देव कथयस्व मम प्रभो ।। येन चीर्णेन देवेशो मानुषैः प्राप्यते भुवि ।। ७ ।। स्वर्गापवर्गदं सौख्यं[2] नरकार्णवतारकम् ।। तदहं श्रोतुमिच्छामि मनुष्याणां हिताय च ।। ८ ।। येन श्रुतेन लोको-

१ स्थिताया इति शेषः ।२ सौख्यकरम् ।

ऽयं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। शिव उवाच ।। यन्न कस्याचिदाख्यातं नराणां मुक्तिदायकम् ।। ९ ।। शृणु देवि प्रयत्नेन कथयामि तवाखिलम्।। कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे मासि प्रयत्नतः ।। १० ।। पक्षयोरुभयोर्मध्ये शुभे योगे शुभे दिने ।। एकादश्यां त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषितः ।। ११ ।। कार्पासं निस्तृणं कृत्वा वर्ति कृत्वा प्रयत्नतः ।। पाप्तंगुष्ठशिखान्तं च स्वशरीरप्रमाणतः ।। १२ ।। सूत्रे निर्माय यत्नेन तन्तुत्रितयसंयुतम् ।। तस्य वर्तिं विधायाथ सम्यगाप्लाव्य गोवृते ।। १३ ।। दीपदानं प्रकुर्वीत प्रीतये मम चानघे ।। प्रत्यहं दापयेद्दीपं यावत्संवत्सरं भवेत् ।। १४ ।। अथवा एकमासे वा षष्टयुत्तरशतत्रयम् ।। दीपान्प्रज्वालयेद्भक्त्या मम सन्तोषहेतवे ।। १५ ।। उद्यापनं वत्सरान्ते कुर्याद्विभवसारतः ।। देहदीपसमं दानं न किञ्चिदिह विद्यते ।। १६ ।। महापापप्रशमनं स्वर्गसौख्यविवर्धनम् ।। अत्रेमां[1] कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।। १७ ।। शृणु देवि प्रयत्नेन कथां पौराणिकीं शुभाम् ।। ईश्वर उवाच ।। अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवा भार्यया सह ।। १८ ।। आत्मनो दुःखनाशार्थं पप्रच्छुः केशवं प्रति ।। युधिष्ठिर उवाच ।। केनोपायेन देवेश सङ्कटादुद्धराम्यहम्[2] ।। १९ ।। भुक्त्वा राज्यं च देहान्ते केन मुक्तिर्भवेन्मम ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। अस्तिगुह्यं महाराज व्रतं सर्वार्थदायकम् ।। २० ।। नारीणांच विशेषेण पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।। देहवर्तिः समाख्याता प्राणिनां सौख्यदायिका ।। २१ ।। आत्मदेहसमं सूत्रं तन्तुत्रितयसंयुतम् ।। तस्य वर्तिं विधायाशु आज्ये योज्य प्रदीपयेत् ।। २२ ।। एवं संवत्सरं पूर्णं दद्याच्छङ्करतुष्टये ।। अथवा मासमध्ये वा दिनमध्ये यथाविधि ।। २३ ।। नीराजयेन्महादेवं तेन तुष्यति शंकरः ।। ददाति विपुलान्भोगानन्ते सायुज्यदो भवेत् ।। २४ ।। उद्यापनं तथा कुर्यान्मण्डपं कारयेच्छुभम् ।। पुण्याहवाचनं कार्यमाचार्यं वरयेत्ततः ।। २५ ।। ऋत्विजश्च रुद्रसंख्यान्वृणुयाच्छिवतुष्टये ।। विरच्य सर्वतोभद्रं कलशं च नवं दृढम् ।। २६ ।। सौवर्णीं प्रतिमां तत्र भवानीशंकरस्य च ।। उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्कलशोपरि ।। २७ ।। दीपपात्रं राजतं हि वर्ति कृत्वा सुवर्णजाम् ।। त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ।। २८ ।। आचार्याय च तत्पीठं दद्याद्दक्षिणया युतम् ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।। २९ ।। इतिश्रुत्वा चकारासौ धर्मराजो नृपोत्तमः ।। इदं व्रतं महादेवि सर्वकामसमृद्धिदम् ।। कुरु त्वं च प्रयत्नेन सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।। ३० ।। इति स्कन्दपुराणे पार्वतीशंकरसंवादे देहवर्तिव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

---

१ पुरातनेतिहासरूपां पौराणिकीं शुभां कथां कथयिष्यामि शृण्वित्यन्वयः। २ आत्मानमिति शेषः ।

देहवर्तिव्रत-लिखते हैं, सूतजो बोले कि, कैलासके शिखरपर देवदेव जगद्गुरु बैठे थे, उस समय आपकी अकथनोय शोभा थी, पंचमुखी, दशमुखी, शूलपाणि, तीन नेत्रवाले ।।१।। कपाल और खट्वाङ्ग खड्ग और खेटक लिये हुए पिनाक हाथमें धारण किये वर और अभय मुद्रासे सुशोभित हाथोंवाले ।।२।। भस्म और व्यालोंसे सुशोभित और चन्द्रमाका शेखर बनाये हुए थे कैलासके तेजोमय शिखरपर बसनेवाले येही उस समय कोटि सूर्य्यकेसे चमकने लगते थे ।।३।। बहुत देरतक खेलकर गणेशादि सब देवोंका विसर्जन करके एकान्तमें बैठे हुए थे ।।४।। पार्वतीने इस प्रकार प्रसन्न चित्त बैठे हुए खिले नयनोंवाले शिवजीसे एक उत्तम गोप्य व्रत पूछा ।।५।। कि, मैं अनेकों दान, धर्म और तीर्थोंको किये सुने बैठी हूं, पर मुझे निश्चय नहीं है उनसे आपने मुझे वारंवार भ्रममेंही डाला है ।।६।। हे प्रभो ! कोई ऐसा उत्तम व्रत कहिये जिसके कि कियेसे मनुष्य भूमिपरही स्वर्ग, उपवर्ग और सौख्य पा जाता है तथा नरकके समुद्र से पार हो जाता है, मैं मनुष्योंके कल्याणके लिये सुनना चाहती हूं ।।७।।८।। जिसको सुनकर यह लोक शिवके सायुज्यको पा जाय । शिवजी बोले कि, हे देवि ! जो मुक्ति दायक व्रत मैंने किसीके लिये नहीं कहा है उसे सावधानीके साथ सुनो, मैं सब कहे देता हूं । उस व्रतको कार्तिक मार्गशीर्ष या माघमें प्रयत्नके साथ करे ।।९।।१०।। दोनों पक्षोंमें शुभ योग और दिनमें एकादशी त्रयोदशी और चतुर्दशीमें उपवास करे ।।११।। कपासको साफ करके उसे धुनो रुईके रूपमें बनाकर, सावधानीके साथ बत्ती बनावे, अपने पैरके अंगूठेसे लेकर शिखातक शरीरके बराबर ।।१२।। तीन लरका सूत बनाव उसकी बत्ती बना कर गोघृतमें अच्छी तरह डुबोदे ।।१३।। हे अनघे ! मेरी प्रसन्नताके लियें दीपदान करे । एक सालतक इसी तरह दीप दान करता रहे ।।१४।। अथवा एकही महीनामें ३६० दीपक मेरे संतोषके लिये भक्तिपूर्वक जलावे ।।१५।। उद्यापन-भी एकवर्ष पीछे अपने विभवके अनुसार करे । देहदीपके बराबर कोई दान नहीं है ।।१६।। वह महापापोंका शान्त करनेवाला तथा स्वर्गके सुखका बढ़ानेवाला है । इस विषयमें एक पुराना इतिहास सुनाता हूं ।।१७।। हे देवि ! सावधानीके साथ पुरानी पवित्र कथा सुन, प्रसिद्ध पाण्डव स्त्री सहित वनमें रह रहे थे ।।१८।। अपने दुखोंको मिटानेके लिये भगवान्से पूछने लगे । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे देवेश ! किस उपायसे संकटको पार करूं ।।१९।। एवं राज्यको भोगकर देहके अन्तमें मेरी कैसे मोक्ष हो ? श्रीकृष्णजी बोले कि, हे महाराज ! सब अर्थोंका देनेवाला एक गुप्त व्रत है ।।२०।। वह स्त्रियोंको विशेष करके बेटा नाती देनेवाला है । उसका नाम देहवर्त्ती है । प्राणियोंको सब सुखोंके देनेवाला है ।।२१।। तिल्लर हुआ शरीरके बराबर सूत्र बना उसे घीमें डालकर जलावे ।।२२।। इस तरह एक सालतक शिवजीकी प्रसन्नताके लिए दीपक दे ।।२३।। महादेवकी आरती करे । इससे शिवजी प्रसन्न होकर अनेकों भोगोंको दे अन्तमें सायुज्य देते हैं ।।२४।। उद्यापन-करे । सुन्दर मंडप बनावे पुण्याहवाचन और आचार्य वरण करे ।।२५।। शिवजीकी प्रसन्नताके लिए ग्यारह ऋत्विजोंका भी वरण करे । सर्वतोभद्र मण्डल बनावे । उसपर नवीन मजबूत कलश स्थापित करे ।।२६।। उमामहेश्वरकी सोनेकी प्रतिमा विराजमान करे । उसे सोलहों उपचारोंसे पूजे ।।२७।। चांदीका दीपक बना-उसमें सोनेकी बत्ती डाले ।" त्र्यम्बक" मंत्रसे एक सौ आठ आहुति दें ।।२८।। दक्षिणाके साथ उस पीठको आचार्यके लिए दे दे । ब्राह्मणोंको भोजन करावे । आप भी पवित्र होकर भोजन करे ।।२९।। धर्म राजने श्रीकृष्णजीसे सुनकर इस व्रतको विधिके साथ किया था । हे महादेवि ! आपको भी समृद्धि देनेवाले इस व्रतको अवश्य करना चाहिए । इसे प्रयत्नके साथ करके सब कामोंको पा जायगी ।।३०।। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहा हुआ पार्वती शिवके संवादके रूपमें देहवर्तिव्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथ विष्णुसूर्यलक्षनमस्कारविधिः

अम्बरीष उवाच ।। इक्ष्वाकूणां कुलगुरो ब्रह्मन् धर्मज्ञ सुव्रत ।। ब्रूहि पापक्षयकरं व्रतं सर्वोत्तमं मुने ।। ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य गुरुदारावमर्शिनः ।। सन्ध्याकर्मविहीनस्य तथा दुर्मार्गवर्तिनः ।। दासीवेश्यासङ्गिनश्च चाण्डालीगामिनस्तथा ।।

परस्वहारिणश्चापि देवद्रव्यापहारिणः ।। देवब्राह्मणवृत्तीनां छेदकस्य नरस्य च ।। रहस्यभेदकस्यापि रहस्यकृतपापिनः ।। पञ्चयज्ञविहीनस्य दुःशास्त्रनिरतस्य च ।। गुरुनिन्दादिसंश्रोतुर्गुरुद्रव्यापहारिणः ।। नारीणां च विशेषेण प्रायश्चित्तं महाव्रतम् ।। चतुर्वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिश्चैव निश्चितम् ।। वसिष्ठ उवाच ।। ब्रह्महत्यादि पापानां प्रायश्चित्तं यदीच्छसि ।। तदा लक्षनमस्कारव्रतं कुरु महीपते ।। संकीर्णकानां पापानां प्रायश्चित्तं यदीच्छसि ।। तदा लक्ष० ।। सङ्कलीकरणानां च मलिनीकरणस्य च ।। अपात्रीकरणानां च प्रायश्चित्तं यदीच्छसि ।। तदा लक्ष० ।। भ्रातृपत्नीसुतानां च गामिनः कामिनस्तथा ।। श्वश्रूस्वसातृबन्धूनामिच्छया गामिनस्तथा ।। सन्ध्याकर्मादित्यागस्य चाण्डाली गामिनस्तु वै ।। दासीवेश्यासङ्गिनश्च संक्षेयं यदि वाञ्छसि ।। तदा लक्ष० ।। परस्वहरणस्यापि देवस्वहरणस्य च ।। रहस्यभेदकस्यापि रहस्यकृतपापिनः ।। त्यागस्य पञ्चयज्ञानां दुःशास्त्राभिरतेस्तथा ।। गुरुनिन्दाश्रुतेश्चापि गुरुस्वहरणस्य च ।। लेह्यानां चैव चोष्याणां संक्षयं यदि वाञ्छसि ।। तदा ल० ।। कृतस्य जन्मसाहस्रैर्मेरुविन्ध्यसमस्य च ।। अत्युत्कटस्य पापस्य इह जन्मकृतस्य च ।। सर्वस्य पापजातस्य संक्षयं यदि वाञ्छसि ।। तदा लक्ष० महीपते ।। शृणु भूप विधिं लक्ष्ये स्मरणात्पापनाशनम् ।। चातुर्मासे तु सम्प्राप्ते केशवे शयनं गते ।। आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यां समाहितः ।। संकल्पं तु विधायादौ पुरतश्चक्रपाणिनः ।। अहं लक्षनमस्कारव्रतं कर्तुं समुद्यतः ।। निर्विघ्नेन व्रतं साङ्गं कुरु त्वं कृपया हरे ।। पापपंके निमग्नं मां पापरूपं दुरासदम् ।। व्रतेनानेन सुप्रीतः समुद्धर जगत्पते ।। इति संकल्प्य मनसा प्रारभेद्व्रतमुत्तमम् ।। विष्णवेऽथ सवित्रे च नमस्कारान्प्रयत्नतः ।। प्रातः स्नात्वासदा कुर्यान्मध्याह्नावधि वाग्यतः ।। यथासंख्यं प्रकुर्वीत कार्तिके तु समापयेत् ।। दुष्टशाकमथान्नं वा न भुञ्जीत कदाचन् ।। अनृतं न वदेत्क्वापि न ध्यायेत्पापपूरुषम् ।। देवार्चनं जपं होमं न त्यजेत्तु कथञ्चन ।। अतिथीन्पूजयेन्नित्यं स्वस्य शक्त्यनुसारतः ।। कार्तिके मासि संप्राप्ते पौर्णमास्यां ततः परम् ।। संस्थाप्य कलशं पूर्णं सवस्त्रं सपिधानकम् ।। विष्णोश्च प्रतिमां तत्र ससूर्यस्य सुवर्णजाम् ।। नामभिः केशवाद्यैश्च मित्राद्यैश्च प्रपूजयेत् ।। परमान्नं च नैवेद्यं कुर्यात्पश्चाच्च तर्पणम् ।। पौरुषेण च सूक्तेन तिलगोधूमतण्डुलैः ।। देवदेव जगन्नाथ सर्वव्रतफलप्रद ।। व्रतेनानेन सुप्रीतो गृहाणार्घ्यं मयार्पितम् ।। एवमर्घ्यत्रयं दद्यात्पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।। पौरुषेण च सूक्तेन शतमष्टोत्तरं चरुम् ।। आकृष्णेति सूर्याय शतमष्टोत्तरं हुनेत् ।। होमशेषं समाप्याथ पूर्णाहुतिमतः परम् ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दद्यादगोमिथुनं गुरोः ।। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छतं वा पञ्चविंश-

तिम् ।। दक्षिणां च यथाशक्त्या मण्डलं चैव दापयेत् ।। अनुज्ञातस्तु तत्रैव स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।। इदं पुण्यं व्रतं राजन्पापारण्यदवानलम् ।। सर्वकामप्रदं नृणां सद्योविष्णुप्रियङ्करम् ।। मोक्षप्रदं च कर्तॄणां ज्ञानमार्गप्रदं शुभम् ।। नानेन सदृशं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।। सर्वेषामाश्रमाणां च विहितं श्रुतिचोदितम् ।। नारीणां सधवानां च विधवानां विशेषतः ।। इति श्रीभविष्यपुराणे सूर्यविष्णुलक्षनमस्कारव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

विष्णु और सूर्यकी लाख प्रदक्षिणोओंकी विधि– अम्बरीष बोले कि; हे ब्रह्मन् ! हे इक्ष्वाकुओंके कुलगुरु ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे सुव्रत मुनि वसिष्ठ ! कोई पापोंका नाशक सर्वश्रेष्ठ व्रत कहिये। जोकि, ब्रह्महा, शराबी, गुरुदारगामी, संध्याकर्महीन, कुमार्गी, दासी और वेश्याके साथ संसर्ग करनेवाले, चंडाली गामी, पर द्रव्यके हरण करनेवाले, देव द्रव्यके हरनेवाले देव और ब्राह्मणोंकी वृत्ति छीननेवाले किसीकी गुप्त बातको कह देनेवाले, एकान्तके पापी, पंचयज्ञ हीन, बुरे, शास्त्रोंमें लगे रहनेवाले, गुरुकी निन्दा आदि सुननेवाले, गुरुके द्रव्यको हरनेवाले.इन पुरुषों के लिए तथा विशेष करके जो महाव्रत सब पापोंके प्रायश्चितके लिए चारों वेद और पुराणोंका निश्चय किया हुआ है । वसिष्ठजी बोले कि, हे राजन् ! जो ब्रह्महत्यादिक पापोंका प्रायश्चित करना चाहते हो तो लाख नमस्कारोंका व्रत प्रारंभ कर दीजिए, यदि संकीर्ण पापोंका प्रायश्चित करना चाहते हो तो लक्ष नमस्कार व्रत करिये । संकरीकरण पापोंका प्रायश्चित करना चाहते हो । तो लक्ष नमस्कार व्रत करिये । अपात्री करणोंका प्रा०; भ्रातृपत्नी और पुत्रीके सहवास तथा इनके कामी श्वश्रू और अपनी माताके बन्धुओंकी स्त्रियोंके साथ इच्छा पूर्वक गमन, करनेवाले संध्या कर्मका त्याग, चांडालीके साथ गमन, दासी और वैश्याके संगदोषका प्रायश्चित्त चाहते होतो ०; दूसरे और देवके धन हरण, भंडाफोर करने वाले, एकान्तके पापियोंके पाप, पंच यज्ञोंका त्याग, बुरे शास्त्रोंमें लगा रहना, गुरुकी निन्दा करना, गुरुका धन हरना एवं लेह्य और चोष्यदोषका प्रायश्चित चाहते हैं तो०; सहस्रोंजन्मोंके किए मेरु और विन्ध्यके बराबर हुए अत्युत्कट तथा इस जन्मके किए हुए सभीपापोंका यदिनाश चाहते होतो लक्ष नमस्कार व्रत करो । हे राजन् ! सुन, मैं उसकी ऐसी विधि कहता हूं कि, जिसके श्रवणमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं । जब चातुर्मासमें विष्णु शयन होता है उस आषाढ़ शुक्ला एकादशीके दिन भगवान्‌के सामने संकल्प करना चाहिये कि, मैं लाख नमस्कारों का व्रत करनेके लिए तयार हुआ हूं । हे हरे ! कृपा करके आप उसे निर्विघ्न पूरा कर दें, मैं पापके गारेमें डूबा हुआ दुरासद पापरूप हूं, हे जगत्पते ! इस व्रतसे प्रसन्न होकर मेरा उद्धार करिये । यह मनसे संकल्प करनेके पीछे उत्तम व्रतका प्रारंभ करे, विष्णु अथवा आदित्यके लिए प्रातः स्नानकरके मध्याह्नतक मौनहो वाणीसे नमस्कार करे, देवार्चनज़प और होमको कदापि न छोडे, अपनी शक्तिके अनुसार अतिथियोंका पूजन करे, इसके बाद कार्तिककी पौर्णमासीको वस्त्र और पूर्णपात्रके साथ विधिपूर्वक कलशस्थापित करके विष्णु और सूर्य्यकी प्रतिमाको स्थापित करे, केशवादि और मित्रादि नामोंसे पूजे, परमान्नका नैवेद्य करके पीछे पुरुषसूक्तके तर्पण करे । हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सब व्रतोंके फल देनेवाले ! इस व्रतसे प्रसन्न होकर मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करिये, इस मंत्रसे गोधूम तिल तण्डुल इनके तीन अर्घ्य दे । पुरुषसूक्तसे चरुकी एक सौ आठ आहुति दे । "आकृष्णेन" इस मंत्रसे सूर्य्यके एक सौ आठ आहुति दे । होम शेषको समाप्त करके पीछे पूर्णाहुति करे । आचार्यका पूजन करे, गुरुको गो मिथुन दे, सौ वा पच्चीस ब्राह्मणोंको भोजन करावे, शक्तिके अनुसार दक्षिणा और मंडल दे, आज्ञा लेकर भाई बन्धुओंके साथ भोजन करे, हे राजन् ! यह पवित्र व्रत पापोंके वनोंका तो साक्षात् दावानलही है, सब कामोंका देनेवाला है, शीघ्रही विष्णु भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला है, यह करनेवालोंको ज्ञानमार्गका देनेवाला एवं मोक्ष करनेवाला है, इसके बराबर तीनों लोकोंमें कोई नहीं है, यह सभी आश्रयोंके लिये श्रुतिने बताया है साधवा स्त्री तथा विशेष करके विधवाओंके लिये वह अवश्य करना चाहिये । यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ सूर्य्य और विष्णुभगवान्‌को लाख नमस्कार करनेका व्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ ।।

अथमङ्गलागौरीव्रतम्

एतच्च विवाहात्प्रथमे वत्सरे श्रावणमासे भौमवासरे प्रारभ्य पञ्चवर्षपर्यन्तं प्रतिवत्सरं श्रावणगतेषु चतुर्षु भौमवासरेषु कर्तव्यम् ।। तत्र प्रथमवत्सरे मातृगृहे, द्वितीयादिषु भर्तृगृहे कार्यम्।। तत्प्रकारश्च––प्रथमे वत्सरे देशकालौ सङ्कीर्त्य मम पुत्रपौत्रादिसन्ततिवृद्धयवैधव्यायुरादिसकल वृद्धिद्वारा श्रीमङ्गलागौरीप्रीत्यर्थं पञ्चवर्षपर्यन्तं मङ्गलागौरीव्रतं करिष्ये ।। इति व्रतसङ्कल्पं कृत्वा पीठोपरि गौरीं स्थापयित्वा तदग्रे लोकव्यवहारानुरोधेन पिष्टमयान् दृषदुपलादीन्निधाय गोधूमपिष्टमयं महान्तं दीपं षोडशतन्तुमयवर्तिसहितं घृतपूरितं प्रज्वालितं निधाय देशकालौ सङ्कीर्त्य मम पुत्रपौत्रादिसन्ततिवृद्धयवैधव्यायुरादिसकलवृद्धिद्वारा श्रीमङ्गलागौरीप्रीत्यर्थं व्रताङ्गत्वेन विहितं तत्कल्पोक्तप्रकारेण मङ्गलागौरीपूजनमहं करिष्ये ।। इति सङ्कल्प्य विभवानुसारेण पूजनं कुर्यात् ।। तद्यथा –कुङ्कुमगुरुलिप्ताङ्गां सर्वाभरणभूषिताम् ।। नीलकण्ठप्रियां गौरीं वन्देऽहं मङ्गलाह्वयाम् ।। ध्यानम् ।। अत्रागच्छ महादेवि सर्वलोकसुखप्रदे ।। यावद्व्रतमहं कुर्वे पुत्रपौत्रादिवृद्धये ।। आवाहनम् ।। राजतं चासनं दिव्यं रत्नमाणिक्यशोभितम् ।। मयानीतं गृहाण त्वं गौरि कामारिवल्लभे ।। आसनम् ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं पाद्यं सम्पादितं मया ।। गृहाण मङ्गले गौरि सर्वान्कामांश्च पूरय ।। पाद्यम् ।। गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया ।। गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा ।। अर्घ्यम् ।। कामारिवल्लभे देवि कुर्वाचमनमम्बिके।। निरन्तरमहं वन्दे चरणौ तव पार्वति ।। आचमनीयम् ।। पयोदधिघृतं चैव मधुशर्करया समम् ।। एतत्पञ्चामृतं देवि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। पञ्चामृतं० ।। जाह्नवीतोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम् ।। स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम् ।। स्नानम् ।। आचमनीयम् ।। वस्त्रं च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् ।। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ।। वस्त्रम् ।। कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नैः समन्वितम् ।। गृहाण त्वं मया दत्तं मङ्गले जगदीश्वरि ।। कञ्चुकीमुपवस्त्रं च ।। कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तुरीचन्दनैर्युतम् ।। विलेपनं महादेवि तुभ्यं दास्यामि भक्तितः ।। गन्धम् ।। रञ्जिताः कुङ्कुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः ।। ममैषां देवि दानेन प्रसन्ना भव पार्वति।। अक्षतान् ।। हरिद्रां कुङ्कुमंचैव सिन्दूरंकज्जलान्वितम् ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ।। सौभाग्यद्रव्याणि ।। सेवन्तिकावकुलचम्पकपाटलाब्जैः पुन्नागजातिकरवीररसालपुष्पैः ।। बिल्वप्रवालतुलसी दलमालतीभिस्त्वां पूजयामि जगदीश्वरि मे प्रसीद।। पुष्पाणि ।। अपामार्गपत्रपूर्वाधत्तूरपत्रनानाविधधान्यजीरकधान्याकानि प्रत्येकं षोडशषोडशसंख्यानि पञ्च-

बिल्वपत्राणि नाममन्त्रैरर्पयेत् ।। अथाङ्गपूजा–उमायै० पादौ पू० गौर्यै न० जङ्घे पू० ।। पार्वत्यै न० जानुनी पू० ।। जगद्धात्र्यै० ऊरू० पू० ।। जगत्प्रतिष्ठायै० कटी पू० ।। शान्तिरूपिण्यै० नाभि पू० ।। देव्यै न० उदरं पू० ।। लोकवन्द्यायै० स्तनौ पू० ।। काल्यै० कण्ठं पू० ।। शिवायै० मुखं पू० ।। भवान्यै० नेत्रे पू० ।। रुद्राण्यै० कर्णौ पू० ।। महादेव्यै० ललाटं पू० ।। मङ्गलदात्र्यै० शिरः पू० ।। पुत्रदायिन्यै० सर्वाङ्गं पूजयामि ।। देवद्रुमरसोद्भूतः कृष्णागुरुसमन्वितः ।। आघ्रयः सर्व देवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।धूपम् ।। त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजसां तेज उत्तमम्।। आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। दीपम् ।। अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्याम् ।। नैवेद्यम् ।। आचमनीयम् । करोद्वर्तनम् ।। फलं तांबूलम् ।। दक्षिणाम् ।। वज्रमाणिक्यवैडूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।। पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ।। भूषणम् ।। नीराजनम् ।। नमो देव्यैः ० पुष्पाञ्जलिं० ।। प्रदक्षिणा ।। नमस्कारः ।। पुत्रान्देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मङ्गले ।। अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। इति प्रार्थना ।। ततो वैणवपात्रे सौभाग्यद्रव्यादि निधाय ।। अन्नकञ्चुकिसंयुक्तं सवस्त्रफलदक्षिणम् ।। वायनं गौरि विप्राय ददामि प्रीतये तव ।। सौभाग्यारोग्यकामानां सर्वसंपत्समृद्धये ।। गौरीगिरीशतुष्टयर्थं वायनं ते ददाम्यहम् ।। इति मन्त्राभ्यां वायनम् ।। ततो मात्रे सौभाग्य द्रव्यसंयुक्तं लड्डुककञ्चुकीवस्त्रफलयुतं ताम्रपात्रं वायनं दद्यात् ।। ततो गोधूमपिष्टमयैः षोडशदीपैर्नीराजनं विधाय दीपभक्षणपूर्वकं लवणवर्जमन्नं भुक्त्वा रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्गौरीं विसर्जयेत् ।। इति मङ्गलागौरीपूजा ।। अथ कथा–युधिष्ठिर उवाच ।। नन्दनन्दन गोविन्द शृण्वतो बहुलाः कथाः ।। श्रु[१]ती ममोत्के पुत्रायुष्करं श्रोतुं मम व्रतम् ।। १ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। अवैधव्यकरं वक्ष्ये व्रतं चारिनिषूदन ।। शृणु त्वं सावधानः सन्कथां वक्ष्येपुरातनीम् ।। २ ।। कुण्डिनं नाम नगरं ख्यातस्तत्र द्विजप्रियः ।। आसीद्वणिग्धर्मपालो नाम्ना बहुधनोऽपिसः ।। ३ ।। सपत्नीको ह्यपुत्रोऽसौ नास्तीतिव्याकुलो हृदि ।। तस्य गेहे भस्मलिप्तो देहे रुद्राक्षधारकः ।। ४ ।। जटिलो भिक्षुको नित्यमागच्छन्प्रियदर्शनः ।। अन्नं नाङ्गीचकारासाविति दृष्ट्वाऽबलावदत् ।। ५ ।। स्वामिन्नयं सदायाति भिक्षुको जटिलो गृहे ।। न स्वीकरोत्यस्मदन्नमिति दृष्ट्वा ममाधिकम् ।। ६ ।। दुःखं प्रजायते नित्यं श्रुत्वा भार्या[१] वचोऽब्रवीत् ।। धर्मपाल उवाच ।। प्रिये कदाचिद्गुप्ता त्वं ससुवर्णाङ्गणे भव ।। ७ ।। यदा भिक्षार्थमायाति भिक्षोर्वस्त्रान्तरे त्वया । तदा तस्य प्रदेयानि सुवर्णानि प्रियेऽनघे ।। ८ ।।

---

१ श्रुति कर्णौ उत्के उत्कण्ठिते । १ इति भार्यावचःश्रुत्वेत्यन्वयः ।

अनन्तरं तस्य भार्याऽचीकरत्स्वामिनोदितम् ।। जटिलेन तु सा शप्ताऽपत्यं ते न भविष्यति ।। ९।। श्रुत्वा भिक्षोरिदं वाक्यंदुःखिता तमुवाच ह ।। स्वामिन् शप्ता त्वया [1]पापा शापादुद्धर संप्रति ।। १० ।। इत्युक्त्वा तस्य चरणौ ववन्दे दीन-भाषिणी ।। जटिल उवाच ।। भर्तुः समीपे वक्तव्यं त्वया पुत्रि ममाज्ञया ।। ११ ।। नीलवस्त्रः समारुह्य नीलाश्वं गच्छ काननम् ।। खननं तत्र कर्तव्यं यत्राश्वस्ते स्खलिष्यति ।। १२ ।। रम्यं पक्षिभिरायुक्तं मृगसंघ द्रुमाकुलम् ।। सुवर्णरचितं रत्नम्मणिक्यादिविभूषितम् ।। १३ ।। नानापुष्पैः समायुक्तं दृश्यं देवालयं ततः ।। वर्तते [2]तत्रभवती भवानी भक्तवत्सला ।। १४ ।। आराधय त्वं मनसा यथाविध्यु-द्धरिष्यति ।। त्वां भवानीति वचनं श्रुत्वा भिक्षोः सुखप्रदम् ।। १५ ।। ववन्दे तस्य चरणौ पुनः पुनररिन्दम ।। तदैव काले जटिलस्त्वन्तर्भूतो बभूव सः ।। १६ ।। सावदत्पतिमत्रेहि शृणु भिक्षूक्तमादरात् ।। यथोक्तमवदद्भर्ता तच्छ्रुत्वा वाक्य-मादरात् ।। १७ ।। नीलवस्त्रः समारुह्य नीलाश्वं प्रस्थितो वनम् ।। गच्छन्नाना-विधान्वृक्षान्पथि पश्यन्भयाकुलः ।। १८ ।। मृगान् सिंहान् दन्दशूकान् पथि पश्य-न्धयाकुलः ।। ददर्शासौ तडागं च [4]बाहुल्येन विराजितम् ।। १९ ।। रक्तनीलोत्प-लैश्चक्रवाकद्वन्द्वैश्च राजितम् ।। स्नानं चकार तत्रासौ तर्पणाद्यपि भूरिशः ।। ।। २० ।। पुनरश्वं समारुह्य जगाम गहनं वनम् ।। स्खलितं वाजितं पश्यन्नश्वादु-त्तीर्य तत्क्षणम् ।। २१ ।। चखान पृथिवीं तत्र यावद्देवालयं मुदा ।। ददर्श च महा-स्थूलं देवालयमसौ युतम् ।। २२ ।। रत्नैर्मुक्ताफलैश्चैव माणिक्यैश्चापि सर्वतः ।। पूजयामास जटिलवाक्यं स्मृत्वातिविस्मितः ।। २३ ।। सुवर्णयुक्तवस्त्राणि चन्द-नान्यक्षतान् शुभान् ।। चम्पकादीनि पुष्पाणि धूपं दीपं विशेषतः ।। २४ ।। नाना-पक्वान्नसंयुक्तं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।। नानाशाकैः समायुक्तं सदुग्धघृतशर्करम् ।। २५ ।। नैवेद्यं करषुद्धयर्थं चन्दनं मलयाद्रिजम् ।। सम्पाद्य तुष्टहृदयः फलता-म्बूलदक्षिणाः ।। २६ ।। श्रद्धया पूजयामास धर्मपालो महाधनः ।। जजाप मन्त्रान् गुप्तोऽसौ सगुणध्यानपूर्वकम् ।। २७ ।। देवी भक्तं समागत्य लोभयामास सादरम् ।। प्रसन्नावददत्रेयं पूजा संपादिता कथम् ।। २८ ।। येन संपादिता तस्मै ददामि वरम-द्भुतम् ।। इति श्रुत्वा धर्मपालो देव्यग्रे प्राञ्जलिः स्थितः ।। २९ ।। भगवत्युवाच।। धर्मपाल त्वया सम्यक् पूजा संपादितानघ ।। वरं याचय मद्भक्त ददामि बहुलं धनम् ।। ३० ।। धर्मपाल उवाच ।।। बहुला धनसंपत्तिर्वर्तते त्वत्प्रसादतः । अपत्यं प्राप्तुमिच्छामि पितृणां तारकं शुभम् ।। ३१ ।। आयाति भिक्षुको गेहे गृह्णाति न मदन्नकम् ।। तेन मे बहुलं दुःखं सभार्यस्योपजायते ।। ३२ ।। इति

१ पापा अहं त्वया शप्ता । २ तत्र । ३ पूज्या । ४ अतिशयेन ।

दीनवचः श्रुत्वादेवी वचनमब्रवीत् ।। देव्युवाच ।। धर्मपालक तेऽदृष्टेपत्यं नास्ति सुखप्रदम् ।। ३३ ।। तथापि किं याचयसिकन्यां विगतभर्तृकाम् ।। पुत्रमल्पायुषं वाथाप्यन्धं दीर्घायुषं सुतम् ।। ३४ ।। धर्मपाल उवाच ।। पुत्रमल्पायुषं देहितावता कृतकृत्यताम् ।। प्राप्नोमि चोद्धरिष्यामि पितृंश्च मम घोरगान् ।। ३५ ।। देव्युवाच ।। मत्पार्श्वे वर्तमानस्य नाभावारुह्य शुण्डिनः ।। ३६ ।। तत्पार्श्ववर्तिचूतस्य गृहीत्वा फलमद्भुतम् ।। पत्न्यै देयं ततः पुत्रो भविष्यति न संशयः ।। ३७ ।। इति देवीवचः श्रुत्वा गत्वा तत्पार्श्व एव च ।। नाभिं गजमुखस्याथारुह्य जग्राह मोहतः ।। ३८ ।। फलान्युत्तीर्य च ततः फलमेकं ददर्श सः ।। एवं पुनः पुनः कुर्वन् फलमेकं ददर्श सः ।। ३९ ।। क्षुब्धो गणपतिश्चाथ धर्मपालाय शप्तवान् ।। षोडशे वत्सरे प्राप्ते तेऽहिः पुत्रं दशिष्यति ।।४०।। धर्मपालः फलं सम्यक् वस्त्रे बद्ध्वागमद्गृहम् ।। फलंपत्न्यैददौ सापि भक्षयित्वा पतिव्रता ।। ४१ ।। गर्भं सा धारयामास पत्या सहासुसङ्गता ।। संपूर्णे नवमे मासे प्रासूत सुतमुत्तमम्।। ४२ ।। जातकर्म चकारास्य पिता सन्तुष्टमानसः ।। षष्ठीपूजां चकारास्याषष्ठे तु दिवसेततः ।। ४३ ।। द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते शिवनाम्नाऽऽजुहाव तम् ।। षष्ठे मासि चकारासावन्नप्राशनमद्भुतम् ।। ४४ ।। तृतीये वत्सरे चूडामष्टमेऽब्दे ह्यनुत्तमम् ।। कृत्वो पनयनं पार्थ विप्रोऽभूत्तुष्टमानसः ।। ४५ ।। दशमे वत्सरे प्राप्तेऽब्रवीद्भार्या पतिव्रता ।। भार्योवाच ।। बालकस्य विवाहोऽपि कर्तव्यः सुमुहूर्तके ।। ४६ ।। धर्मपाल उवाच ।। मया सङ्कल्पितं काश्यां गमनं बालकस्य तत् ।। कृत्वा समायातु ततो विवाहोऽस्य भविष्यति ।। ४७ ।। पुत्रोऽसौ प्रेषितस्तेन शालकेन समन्वितः ।। वाराणस्यां प्रस्थितोऽसौ गृहीत्वा बहुलं धनम् ।। ४८ ।। कुर्वन्तौ पथि सद्धर्मं प्रतिष्ठापुरमीयतुः।। क्रीडन्त्यः कन्यका दृष्टास्तत्र देशे मनोरमे ।। ४९ ।। तासां समाजे गौराङ्गी सुशीलानामाकन्यका ।। तया सह सखी काचिच्चकाराकलहं भृशम् ।। ५० ।। गलनं चाददौ तस्यै रण्डेऽभाग्ये मुहुर्मुहुः ।। सुशीलोवाच ।। सखि त्वया गालनं मे व्यर्थं दत्तं शुभानने ।। ५१ ।। जनन्या मे मानवत्याश्चास्ति गौरीव्रतं शुभम् ।। तस्य प्रसादात्सकलाः सम्बन्धिन्यः प्रियाः स्त्रियः ।। ५२ ।। आजन्माविधवा जाताः किं पुनः कन्यका ध्रुवम् ।। वक्ष्ये तस्य प्रभावं किं व्रतराजस्य भामिनि ।। ५३ ।। पूजने धूपगन्धोऽयं यत्र तत्र सुखं भवेत् ।। इति श्रुत्वा ततो वाक्यं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।। ५४ ।। मातुलश्चिन्तयामास बालकस्य प्रियं ततः ।। शतजीवी भवेदेष एतद्धस्ताक्षता यदि ।। ५५ ।। पतन्त्यमुष्य शिरसि विभाव्येति पुनः पुनः ।। सुशीलामेव पश्यन्स विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।। ५६ ।। सुशीला प्रस्थिता गेहे तदनु प्रस्थितावुभौ ।। स्वगृहं प्राप गौराङ्गी निकटे तद्गृहस्य तौ ।। ५७ ।। सत्तडागे रम्यदेशे

वासं चक्रतुरादरात् ।। विवाहकाले सम्प्राप्ते सुशीलाजनको हरिः ।। ५८ ।। विवाहोद्योगवान् जातो निश्चिकायाहरं वरम् ।। असमर्थं हरं दृष्ट्वा तन्मातापितरावुभौ ।। ५९ ।। ययाचतुः शिवंबद्धाञ्जली विनययुक्तकौ ।। वरपितरावुचतुः ।। उपस्थितो विवाहो नौ पुत्रस्याशुभया हरेः ।। ६० ।। सुशीलया कन्यययाऽयमसमर्थश्च दृश्यते ।। अतो देयः शिवः श्रीमान् लग्नकाले त्वया विभो ।। ६१ ।। लग्नं भविष्यति ततो देयोऽस्माभिः शिवस्तव ।। मातुल उवाच ।। अवश्यं लग्नकालेऽसौ शिवो ग्राह्यः प्रियंवदः प्रियंवदः ।।६२।। ततो मुहूर्ते सम्प्राते विवाहयकरोच्छिवः तत्रैव शयनं चक्रे ससुशीलः प्रियंवदः ।।६३।। स्वप्ने सा मङ्गलागौरी मातृरूपेण भास्वता ।। सुशीलामवदत्साध्वी हितं वचनमेव च ।। ६३ ।। गौर्युवाच ।। सुशीले तव गौराङ्गि भर्तुर्दंशार्थमागतः ।। महान्भुजङ्ग उत्तिष्ठ दुग्धं स्थापय तत्पुरः ।। ६५ ।। घटं च स्थापयाशु त्वं तन्ममध्ये स गमिष्यति ।। कूर्पासमङ्गान्निष्कास्य बन्धनीयस्त्वया घटः ।। ६६ ।। प्रातरुत्थायादेहि त्वं मात्रे वायनकं शुभम् ।। इति गौरीवचः श्रुत्वा सुशीला क्षणमुत्थिता ।। ६७ ।। ददर्शाग्ने निःश्वसन्तं कृष्णसर्पं महाभयम् ।। ततश्चकार गौर्युक्तं प्रवृत्ता निद्रितुं ततः ।। ६८ ।। उवाच वर आसन्नः क्षुल्लग्ना महती मम ।। भक्षणायाशु देहि त्वं लड्डुकादिकमुत्तमम् ।। ६९ ।। श्रुत्वेति वाक्यं पात्रे सा ददौ लड्डुकमुत्तमम् ।। भक्षयित्वा शिवो हैमे तस्मिन्पात्रेऽङ्गुलीयकम् ।। ७० ।। दत्त्वा तत्स्थापयामास स्थले गुप्ते शुभाननः ।। सुखेन श यनंचक्रे पृथिव्यां सर्वकोविदः ।। ७१ ।। ततः प्रभातसमये शिव आगाद्गृहं स्वकम् ।। स्नानशुद्धा सुशीला सा मात्रे वायनकं ददौ ।। ७२ ।। माता ददर्श तन्मध्ये मुक्ताहारमनुत्तमम् ।। ददौ प्रियायै कन्यायै सहसा तुष्टमानसा ।। ७३ ।। क्रीडाकाले तु सम्प्राप्ते हर आगात्तु मण्डपे ।। आदेशयत्सुशीलां तां क्रीडार्थं जननी ततः ।।७४।। सुशीलोवाच ।। नायं वरो मे जननि येन पाणिग्रहः[1] कृतः ।। अनेन सह नास्तीह क्रीडनेच्छा तथा न मे ।। ७५ ।। इति श्रुत्वा समाक्रान्तौ चिन्तया पितरौ ततः ।। अन्नदानमुपायं च कन्यापतिविशोधने ।। ७६ ।। तदारभ्य चक्रतुस्तौ पुराणोक्तविधानतः ।। सुशीलापादयोश्चक्रे क्षालनं मुद्रिकान्विता ।।७७।। जलधारां ददौ माता चन्दनं पुत्रको हरेः ।। हरिर्ददौ च ताम्बूलं भुभुजुस्तत्र मानवाः ।। ७८ ।। इति रीत्यान्नदानं तत्प्रवृत्तं भिक्षुसौख्यदम् ।। तावुभौ प्रस्थितौ काश्यां प्राप्तौ काशीं सुखप्रदाम् ।। ७९ ।। निर्मलाम्भसि गङ्गायाः स्नानं चक्रतुरादरात् ।। स्वर्गद्वारं प्रस्थितौ तौ कुर्वन्तौ धर्ममुत्तमम् ।।८०।। पीताम्बराणि ददतुर्भिक्षुकाणां गृहे गृहे ।। आशिषश्च ददुस्तस्मै चिरञ्जीवो भवेति ते ।। ८१ ।। विश्वेश्वरं समायातौ नत्वा स्तुत्वा पुनः पुनः ।। स्वयं गृहं प्रस्थितौ तौ शिवो मार्गे ततोऽवदत् ।। ८२ ।। शिव

१ पाणिग्रहणम् ।

उवाच ।। काये मे किञ्चिदस्वास्थ्यं मातुलं प्रतिभाति हि।। ततः प्राणोत्क्रमे तस्य यमदूता उपस्थिताः ।। ८३ ।। मङ्गलागौरिका चापि तेषां युद्धमभून्महत् ।। जित्वा तान्ममङ्गला प्राणान्ददौ तस्मै शिवाय च ।। ८४ ।। शिवोऽकस्मादुत्थितोऽसौ मातुलं प्रत्युवाच ह ।। स्वप्ने युद्धं मया दृष्टं मङ्गलायमभृत्ययोः ।। ८५ ।। जितास्ते मङ्गलागौर्या ततोहं शयनच्युतः ।। मातुल उवाच ।। यज्जातं शिव तज्जातं न स्मर्तव्यं त्वया पुनः ।। ८६ ।। गच्छाव आवां नगरे पितरौ द्रष्टुमुत्सुकौ प्रस्थितौ तौ ततस्तस्मात्प्रतिष्ठापुरमापतुः ।। ८७ ।। रम्ये तडागे तत्रैतौ पाकारम्भं विचक्रतुः ।। दृष्टौ तौ हरिदासीभिर्धैर्यौदार्यधरौ शुभौ ।। ८८ ।। दास्य ऊचुः ।। अन्नदानं हरेर्गेहे प्रवृत्तं तत्र गम्यताम् ।। उभावूचतुः ।। भो दास्यो यात्रिकावावां गच्छावो न क्वचिद्गृहे ।। ८९ ।। इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं दास्यो जग्मुः स्वकं गृहम् ।। स्वस्वामिनिकटे वाक्यमवदन्सादरं तदा ।। ९० ।। सर्वं दासीवचः श्रुत्वा तदर्थं प्रभुरादरात् ।। प्रेषयामास हस्तादिरत्नवस्त्राणि भूरिशः ।। ९१ ।। तद्दृष्ट्वा विस्मितौ तौ च जग्मतुश्च हरेर्गृहम् ।। हरिर्मातुलमभ्यर्च्य शिवं पूजितुमागतः ।। ९२ ।। क्षालयन्ति च सा कन्या चरणौ तस्य सत्रपा ।। अभूद्वरो मेऽयमिति जननीं प्रत्युवाच ह ।। ९३ ।। हरिः पप्रच्छ साश्चर्यं शिवं मङ्गलदर्शनम् ।। हरिरुवाच ।। किञ्चिच्चिह्नं तवास्त्यत्र ब्रूहि मे शिव दर्शय ।। ९४ ।। हरेस्तु तद्वचः श्रुत्वा शिवः सन्तुष्टमानसः ।। ममेदं चिह्नमस्तीहेत्युक्त्वा तद्गृहमागतः ।।९५ ।। तत आनीय तत्पात्रं[1] दर्शयामास सादरम् ।। तत्पात्रं च हरिर्दृष्ट्वा कन्यादानं चकार सः ।। ९६ ।। ददौ रत्नानि वस्त्राणि सुवर्णानि बहून्यपि ।। तामादाय प्रस्थितौ तौ ददतो बहुलं धनम् ।। ९७ ।। श्रावणे मासि सम्प्राप्ते व्रतं भौमे चकार सा ।। भुक्त्वा सर्वे प्रस्थितास्ते योजनं जग्मुरुत्तमाः ।। ९८ ।। सुशीलोवाच ।। गौरीविसर्जनंचापि दीपमानं तथैव च ।। कृत्वा गन्तव्यमस्माभिः पितरौ द्रष्टुमादरात् ।। ९९ ।। प्रत्युक्ता आगता यत्र गौर्या आवाहनं कृतम् ।। तदृशुस्तत्र सौवर्णं देवालयमनुत्तमम् ।। १०० ।। गौरीविसर्जनं दीपमानं सा च व्यचीकरत् ।। ततः सर्वे प्रस्थितास्ते पितरौ प्रष्टुमुत्सुकाः ।। १ ।। कुण्डिनासन्नदेशे तान्दृष्ट्वा विस्मयिनो जनाः ।। अब्रुवंस्ते धर्मपालं सोत्कण्ठं प्रियदर्शनाः ।। २ ।। जना ऊचुः ।। धर्मपालाद्य ते पुत्रः सभार्यः शालकस्तथा ।। समायातो वयं दृष्ट्वा अधुनैव समागताः ।। ३ ।। यावज्जना वदन्त्येवं तावत्सोऽपि समागतः ।। नमस्कारांश्चकारासौ पितृभ्यां पितृवल्लभः ।। ४ ।। मातुलोऽपि नतिं चक्रे भगिनीधर्मपालयोः ।। सुशीला श्वशुरं चापिश्वश्रूं नत्वा स्थिता तदा ।।५।। श्वश्रूरुवाच ।। सुशीले तद्व्रतं ब्रूहि यद्व्रतस्य

१ यत्र मुद्रिका स्थापिता तत् ।

प्रभावतः ।। आयुर्वृद्धिः शिशोर्मेऽपि जाता कमललोचने ।। ६ ।। सुशीलोवाच ।। न जानेऽहं व्रतं श्वश्रूर्जाने मानवतीहरौ ।। श्वशुरं धर्मपालं च श्वश्रूं च भवतीं तथा ।। ७ ।। मङ्गलां देवतां चैव वरं तु युवयोः सुतम् ।। इत्युक्त्वा च सुशीला सा बुभुजे स्वान्तर्हर्षिता ।।८।। कृष्ण उवाच ।। तस्माद्व्रतमिदं धर्म स्त्रीभिः कार्यं सदैव तु ।। युधिष्ठिर उवाच ।। फलमस्य श्रुतं कृष्ण विधानं ब्रूहि केशव ।। ९ ।। कृष्ण उवाच ।। विवाहात्प्रथमं वर्षमारभ्यापञ्चवत्सरम् ।। श्रावणे मासि भौमेषु चतुर्षु व्रतमाचरेत् ।। १० ।। प्रथमे वत्सरे मातुर्गेहे कर्तव्यमेव च ।। ततो भर्तृगृहे कार्यमवश्यं स्त्रीभिरादरात् ।। ११ ।। तत्र तु प्रथमे वर्षे संकल्प्य व्रतमुत्तमम् ।। रम्ये पीठे च संस्थाप्य मङ्गलां च तदग्रतः ।।१२।। गोधूमपिष्टरचितमुपलं दृषदं तथा ।। माहान्तमेकं दीपं च घृतेन परिपूरितम् ।। १३ ।। वर्त्या षोडशभिः सूत्रैः कृपया सहितं न्यसेत् ।। उपचारैः षोडशभिर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।। १४ ।। पत्रैः पुष्पैः षोडशभिर्नानाधान्यैश्च जीरकैः ।। धान्याकैस्तण्डुलैश्चैव स्वच्छैः षोडशसंख्यकैः ।। १५ ।। अपामार्गस्य पत्रैश्च दूर्वाधत्तूरपत्रकैः ।। सर्वैः षोडसंख्याकैर्बिल्वपत्रैश्च पञ्चभिः ।। १६ ।। पूजयेन्मङ्गलां गौरीमङ्गजां ततश्चरेत् ।। धूपादिकं निवेद्याथ वायनं तु समर्पयेत् ।। १७ ।। ब्राह्मणाय तथा मात्रेऽन्याभ्यश्चैव प्रयत्नतः ।। लड्डुकञ्चुकि संयुक्तं सवस्त्रफलदक्षिणम् ।। १८ ।। नीराजनं ततः कुर्याद्दीपैः षोडशसंख्यकैः । भोक्तव्या दीपकाश्चैव अन्नं लवणवर्जितम् ।। १९ ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः स्नात्वा समाहिता ।। विसर्जनं मङ्गलाया दीपमानं क्रमाच्चरेत् ।। १२० ।। पञ्चसंवत्सरेष्वेवं कर्तव्यं पतिमिच्छुभिः ।। युधिष्ठिर उवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि व्रतराजस्य केशव ।। २१ ।। यतो निरुद्यापनकं व्रतं निष्फलमुच्यते ।। कृष्ण उवाच ।। पञ्चमे वत्सरे प्राप्ते कुर्यादुद्यापनं शुभम् ।। २२ ।। श्रावणे मासि भौमेषु महाराज निबोध तत् ।। प्रातरुत्थाय सुस्नाता संकल्प्योद्यापनं ततः ।। २३ ।। आचार्य वरयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगम् ।। चतुःस्तम्भं चतुर्द्वारं कदलीस्तम्भमण्डितम् ।। २४ ।। घण्टिकाचामरयुतं मण्डपं तत्र कारयेत् ।। मध्ये वितानं बध्नीयात्पञ्चवर्णैरलंकृतम् ।। २५ ।। तन्मध्ये वेदिकां रम्यां चतुरस्रां तु कारयेत् ।। रौप्येण दृषदं कुर्यात्काञ्चनेनोपलं तथा ।। २६ ।। रौप्यहेम्नोरभावे तु पाषाणस्य विधीयते ।। तस्यां तु लिङ्गतोभद्रं लिखेद्रङ्गैश्च पञ्चभिः ।।२७।।तस्योपरि न्यसेद्व्रीहीन् द्रोणेन परिसंमितान् ।। सौवर्णं राजतं ताम्रं कलशं तत्र विन्यसेत् ।। २८ ।। पञ्चरत्नसमायुक्तं सर्वौषधिसमन्वितम् ।। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं वा वैणवं तथा ।। २९ ।। तत्र गौर्या न्यसेन्मूर्तिं काञ्चनेन विनिर्मिताम् ।। गौरीमिमायमन्त्रेण पूजयेन्मङ्गलां ततः ।। १३० ।। राजन् षोडशदीपैश्च डमर्वाकृतिपिष्टजैः ।। सूत्रैः षोडशभिर्युक्त-

वर्तिभिः सहितैर्नृप ।। ३१ ।। नीराज्य रौप्यदीपं च स्वर्णवर्तियुतं तथा ।। समर्प्य रात्रिं निनयेत्पुराणश्रवणादिभिः ।। ३२ ।। प्रातरग्निं प्रतिष्ठाप्य होमं कुर्याद्युधिष्ठिर ।। गौरीर्मिमायमन्त्रेण घृताक्षततिलैस्तथा ।। ३३ ।। बिल्वपत्रैरष्टशताहुतिभिश्च पृथक्पृथक् ।। शोडशाष्टौ च चतुरः सपत्नीकान्द्विजान्नृप ।। ३४ ।। वस्त्रादिभिश्च संसूज्य मात्रे दद्यात्तु वायनम् ।। पक्वान्नपूरितं ताम्रपात्रं वस्त्रादिसंयुतम् ।। ३५ ।। पीठं सोपस्करं दत्वा आचार्याय च गां तथा ।। ब्राह्मणान्परमान्नेन भोजयित्वा ततः स्वयम् ।। ३६ ।। भुञ्जीतेष्टजनैः सार्धं मौनेन तु युधिष्ठिर ।। एवं कृते विधानेऽस्मिन्नार्यवैधव्यमाप्नुयात् ।। इति भविष्यपुराणे मङ्गलागौरीव्रतं विध्युद्यापनसहितं संपूर्णम् ।।

मंगलागौरीव्रत–इसे विवाह होनेके पीछे पहिले वर्षके श्रावण मंगलवारसे प्रारंभ करके पांच वर्षतक हरएक वर्षमें करना चाहिये, पर श्रावणकेही प्रति मंगलवारको करना चाहिये, पहिले वर्ष माताके घर करे, पीछे पतिके घर करती रहे। व्रतविधि-पहिले साल देशकाल आदि कहकर पुत्र पौत्र आदि संततिकी वृद्धि सुहाग आयु आदि सबकी वृद्धिद्वारा श्रीमंगलागौरीकी प्रसन्नताके लिये पांच वर्षतक श्रीमंगलागौरीका व्रत मैं करूंगी तथा व्रतके अंगरूपसे कहा गया उसके संकल्पकी कही हुई रीतिके अनुसार मंगलागौरीका पूजन भी करूंगी ऐसा संकल्प करके अपने वैभवके अनुसार पूजन करे। पूजन-जिसके शरीरमें कुंकुम और अगरुका लेप हुआ है तथा सभी आभरणोंसे भूषित है ऐसी नीलकंठकी प्यारी मंगला गौरीकी मैं वन्दना करता हूं, इससे ध्यान; हे सब लोकोंको सुख देनेवाली महादेवि! मेरी पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धि करनेके लिये जबतक मैं व्रत करूं तबतक यहां आजा, इससे आवाहन; 'राजतं च' इससे आसन; ?'गन्धपुष्पाक्षतः' इससे पाद्य; 'गंधपुष्पाक्षतैर्युक्तम्' इससे अर्घ्य; 'कामारिवल्लभं' इससे आचमनीय; 'पयोदधिघृतम्' इससे पंचामृत स्नान, 'जाह्नवीतोय' इससे शुद्ध स्नान, आचमननीय; 'वस्त्रंच' इससे वस्त्र; 'कंचुकीमुपवस्त्रं च' इससे कुंचुकी और उपवस्त्र; 'कुंकुमागरु' इससे गन्ध; 'रंजिता कुंभमौघेन' इससे अक्षतः; 'हरिद्राम्' इससे सौभाग्य द्रव्य; 'सेवन्ति कावकुल' इससे पुष्प समर्पण करे ।। अपामार्गके पत्ते दूध धतूरेके पत्ते अनेकतरहके धान्य, जीरक, धान्याक ये हरएक सोलह सोलह और पांच बेलपत्र नाममंत्रोंसे अर्पण करे। अंगपूजा—उमाके लिये नमस्कार चरनोंको पूजती हैः गौरीके० जंघाओंको०; पार्वतीके० जानुओंको०; जगत्की धात्रीके० ऊरुओंको पू०; जगत्की प्रतिष्ठाके० कटीको०; शान्तिरूपिणीके०; नाभिको० देवीके० उदरको०; लोकवन्द्याके० स्तनको०; कालीके० कंठको; शिवाके० मुखको०; भवानीके० नेत्रोंको०; रुद्रानीके० कानोंको०; महादेवीके० ललाटको०; मंगलके देनेवालीके० शिरको०; पुत्रदायिनीके लिये नमस्कार सर्वांगको पूजता हूं ।। 'देवद्रुम' इससे धूप; 'त्वं ज्योतिः' इससे दीप; 'अन्नं चतुर्विधम्' इससे नैवेद्य; आचमनीय; करोद्वर्तन; फल; ताम्बूल; दक्षिणा; 'वज्रमाणिक्य' इससे भूषण; नीराजन; 'नमो देव्यै' इससे पुष्पांजलि; प्रदक्षिणा; नमस्कार; 'पुत्रान् देहि' इस मंत्रसे प्रार्थना समर्पण करे। इसके बाद बांसके पात्रमें अन्न और कांचली--अंगियाके साथ सौभाग्य द्रव्योंको रखकर, कहे कि, अन्न, कंचुकी, वस्त्र, फल और दक्षिणा समेत वायना हे गौरी! तेरी प्रसन्नताके लिये तथा सौभाग्य, आरोग्य काम और सब संपत्तिके लिये तथा सौभाग्य, आरोग्य काम और सब संपत्तियोंकी समृद्धिके लिये तथा गौरी गिरीशकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको देती हूं, इन मन्त्रोंसे वायना ब्राह्मणको देदेना चाहिये, पीछे माताके लिये ताम्बेके पात्रमें सौभाग्य द्रव्य लड्डू कांचली और वस्त्र रखकर देना चाहिये, गेहूंकी चूनके सोलह दीपकोंसे नीराजन करके दीपभक्षणके साथ बिना नमकका अन्न खाकर रातको जागरण करे प्रातः गौरीका विसर्जन करदे। यह मंगलागौरीकी पूजा पूरी हुई ।। कथा—युधिष्ठिरजी बोले कि, हे नन्दनन्दन! हे गोविन्द! बहुतसी कथाएं सुनते सुनते मेरे कान पुत्र और आयु आदि करनेवाले उत्तम व्रतके सुननेके लिये अकुला उठे हैं ।।१।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे वैरियोंके

मारनेवाले ! मैं सदा सुहाग देनेवाला व्रत कहता हूं ! आप सावधान होकर सुनें, इसपर एक पुरानी कथा कहता हूं ॥२॥ कुंडिननामके नगरमें ब्राह्मणोंका प्यारा धर्मपाल नामक धनाढ्य वैश्य रहता था ॥३॥ उसके कोई पुत्र नहीं था, इस कारण स्त्री सहित व्याकुल रहा आता था, उसके घर, शरीरमें भस्म लगाये रुद्राक्ष पहिने ॥४॥ जटाधारी सुहावना भिक्षुक रोज मांगने आया करता था, पर वह उनके घरसे भिक्षा नहीं लेता था, यह देख सेठानी बोली ॥५॥ हे स्वामिन् ! यह जटिल भिक्षुक हमारे घर हमेशा आता है पर हमारे अन्नको नहीं लेता यह देख मुझे रोजही अधिक दुःख होता है, यह सुन धर्मपाल अपनीस्त्रीसे बोला कि, हे प्यारी ! किसी दिन छिपकर तू सोना लेकर आंगनमें होजा ॥६॥७॥ जब वह भीख मांगने आवे तो उसकी झोलीमें सुवर्ण डाल देना ॥८॥ स्वामीके कथनके बाद उसकी स्त्रीने वैसाही किया; जटिलने शाप देदियाकि; तेरे अपत्य न होगा ॥९॥ भिक्षुकके इन वचनोंको सुन दुखित होकर बोली कि; आपने शाप तो दे दिया अब इसका उद्धारभी बता दीजिए ॥१०॥ ऐसा कहकर दीन वरन बोलती हुई उनके चरणोंमें गिरगई । तब वह जटिल बोला कि; मेरी आज्ञासे तुम अपने पतिसे कहना ॥११॥ कि, नीले वस्त्र पहिन नीले घाडेपर चढ वन चला जाय; जहां घोडा गिरजाय वहांही खोदना ॥१२॥ पक्षियोंसे युक्त सुन्दर मृग और वृक्षोंसे घिराहुआ सोनेका बना रत्न माणिक्यादिसे विभूषित हुआ ॥१३॥ अनेक फूलोंसे ढका एक देव मंदिर देखेगा, उसमें भक्त वत्सला भवानी विराजती है ॥१४॥ उसका विधिपूर्वक आराधना करनेसे शापोद्धार होजायगा ये सुखकारी वचन सुनकर उसने ॥१५॥ हे अरिन्दम ! बारंवार चरणवन्दना की । उसी समय वस जटिल तो अन्तर्धान होगया ॥१६॥ उसके कथनानुसार अपने पतिसे बोली कि, हे पतिदेव ! यहां पराधिये, भिक्षुकके वचन आदरके साथ सुनलें, इसके बीछे जो कुछ उसने कहा था वह सब यथावत् कह सुनाया, पतिने भी आदरके साथ सुन ॥१७॥ नीले वस्त्र पहिन नीले घोडेपर सवारी की, मार्गने चलता हुआ वह अनेक तरहके वृक्षोंको देखकर डरगया ॥१८॥ मृग, सिंह, माखी, मच्छर और बीछुओंको देखकर तो और भी घबरगया । अगाडी चलकर उसे एक तडाग मिला जो अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥१९॥ वह रक्त नील उत्पल और चकवोंसे निराला तीख रसा था, उनसे वहां स्नान और तर्पण आदि किये ॥२०॥ फिर घोडेपर चढकर गहन वनको चला गया, घोडेको स्खलित देखकर उसी क्षण घोडेसे उतर पडा ॥२१॥ वहां तबतक आनन्दके साथ खोदता रहा जबतक कि, देवालय न दीखा । पीछे वहां उसने बडे मोटे देवालय देखा जो चारों ओरसे रत्न मुक्ताफल और माणिक्योंसे सुशोभित था यह देख चकित हो जटीके वाक्यका स्मरण करके वसा पूजा की ॥२२॥२३॥ सुवर्णयुक्त वस्त्र, शुभचन्दन, अक्षत्, चंपक आदिके पुष्प, धूप, दीप ॥२४॥ तथा अनेकों पक्कान्नोंसहित छः रसोसे युक्त दुग्ध घृत और शक्कर समेत अनेकों शाकोंसहित नैवेद्य एवं कर शुद्धिके लिए मलयागिरी चन्दन और फल, ताम्बूल, दक्षिणा विधिपूर्वक समर्पण कर, परम प्रसन्न हुआ ॥२५॥ ॥२६॥ महाधनी धर्मपालके कमी क्या थी, श्रद्धाके साथ देवीका पूजन किया, सगुणके ध्यानके साथ बडे गुप्त मन्त्रोंका जप भी किया ॥२७॥ देवी भक्तके पास आ इसे लोभ देने लगी । प्रसन्न हो बोली कि, इसने यह पूजा कैसे की॥२८॥ जिसने यह पूजा की है उसे अद्भुत वर दूंगी, धर्मपाल यह सुनकर प्रसन्न हो देवीके आगे हाथ जोडकर खडा होगया ॥२९॥ भवानी बोली कि, हे निष्पाप धर्मपाल । तूने अच्छी तरस पूजा की है, हे मेरे प्यारे भक्त ! तू वर मांग, मैं तुझे बहुतसा धन देती हूं ॥ ३० ॥ धर्मपाल बोला कि आपकी कृपासे घर धन सम्पत्ति तो बहुत है, किन्तु मैं पितरोंके तारनेवाले सुयोग्य अपत्यको चाहता हूं ॥ ३१ ॥ क्योंकि, मेरे घर भिक्षुक आकर मेरे हाथकी भीख भी नहीं लेता, इससे मुझे और मेरी स्त्रीको बडा भारी कष्ट होता है ॥३२॥ उसके ये दीन वचन सुनकर देवी बोली कि, हे धर्मपाल ! तेरे भाग्यमें सुखदायक बेटा लिखा नहीं है ॥३३॥ तो भी आप क्या विधवा कन्या मांग रहे हो, या सुयोग्य अल्पायु पुत्र अथवा दीर्घायु अन्धा पुत्र मांगते हो ॥३४॥ धर्मपाल बोला कि, सुयोग्य अल्पायु पुत्र भी दे दो तो इतनेसे ही कृतकृत्य हो जाऊंगा, यदि पाजाऊँ दो नरकमें पडे पितरोंका उद्धार होजाय ॥३५॥ देवी बोली कि, मेरे पास तो यह शुण्डी बैठा हुआ है, इसकी नाभिपर चढकर ॥३६॥ समीपके आमसे अद्भुत फल ले जा । पत्नीको दे दे, इनसे पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है

।।३७।। देवोंके वचन सुनकर उसके पार्श्ववर्ती गणेशकी नाभिपर चढकर मोहसे बहुतसे फल तोडे ।।३८।। पर उतरकर देखा तो एकही दीखा, इस तरह कईबार उतरा चढा बहुतसे फल लिएपर एकही दीखा ।।३९।। यह देख गणपति बहुत क्षुब्ध हुए और उसे शाप दे दिया कि, सोलवीं सालमें तेरे पुत्रको साँप काट लेगा ।।४०।। धर्मपाल उस फलको अच्छी तरह कपडेमें बाँधकर घर ले आया, वह फल पत्नीको दिया, वह पतिव्रता उस फलको खाकर ।।४१।। पति सहवास करते ही गर्भवती होगई, महीना पूरे होते ही नौवें महीनामें उत्तम सुत पैदा किया ।।४२।। पिताने प्रसन्न होकर उसका जातकर्म कराया छठें दिन छठी पूजी ।।४३।। बारहवें दिन उसका शिवनाम रख दिया, छठे मास उसका अन्न प्राशन संस्कार कराया ।।४४।। तीसरे वर्ष चूडाकर्म तथा आठवें वर्ष उपनयन करके वह परम प्रसन्न हुआ।।४५।।जब वह दशवर्षका हुआ तो उसकी मा बोली कि, अच्छे दिन इस बालकका विवाह भी कर देना चाहिये ।।४६।। धर्मपाल बोला कि, मैंने बालकको काशी भेजनेका संकल्प कर रखा है, यह काशी होकर आजाय इसका विवाह होजायगा ।।४७।। स्त्रीसे यह कह सालेके साथ बेटाको काशी भेज दिया, वे दोनों बहुतसा धन साथ लेकर काशी चल दिये ।।४८।। मार्गमें धर्म करते हुए प्रतिष्ठापुर आये वहां भव्य जगहमें कन्याएँ खेलती देखीं ।।४९।। उनमें गौरवर्णकी एक सुशीला नामकी कन्या भी थी, उसके साथ उसकी सहेली लड़ गई ।।५०।। तू रांड अभागिन हो ऐसी बहुतसी गालियां भी दीं । तब उससे सुशीला बोली कि, ए अच्छे मुखवाली ! तूने मुझे व्यर्थ गालियां दी हैं ।।५१।। मेरी मानवती माने गौरी व्रत कर रखा है । उस व्रतके प्रसादसे उसके सम्बन्धकी सभी स्त्रियां ।।५२।। जन्मभर सुहासिन रहेंगी, उनकी लडकियोंकी तो बातही क्या है ? हे भामिनी ! मैं उस व्रतराजका प्रभाव बतलायी हूं ।।५३।। जहां जहाँ उसकी धूप जाती है, वहां वहां सुख होजाता है सुशीलाके इन वचनोंको सुनकर उसकी लडाई देखनेवाले माकी आंखें अचरजके मारे चोड गईं ।।५४।। यह सुन भानजेके साथ काशी जानेवाला मामा अपने भानजेका विचार करने लगा कि, यदि इस कुमारीके हाथसे इसके शिरपर अक्षत गिरजायें तो यह सौ वर्षकी आयुका होजाय ।।५५।। कैसे इस कन्याके हाथसे इसके शिरपर अक्षत पडें, यह बारंबार सोचने लगा तथा अचरज भरी चोडी आंखोंसे उसी सुशीलाको देखने लगा ।।५६।। सुशीला अपने घर चल दी उसके पीछे वे दोनों चलदिये, सुन्दरी सुशीला अपने घर चली गई वे उस घरके पास ही ।।५७।। वहां उत्तम तडागके किनारे अच्छी जगहपर रहने लगे विवाहके समय सुशीलाका बाप हरि ।।५८।। विवाहका उद्योग करने लगा, उसने हरको वर चुना, हरके माता पिताओंने हरको असमर्थ देखकर दोनों हाथ जोडकर शिवके मामाके पास पहुँचे और बोले कि, इस सुयोग्य हरिकी पुत्री सुशीलाके साथ हमारे लडकेका विवाह पक्का हो चुका है, पर यह असमर्थ दीखता है, इस कारण आप सिर्फ लग्नकालके लिए शिवको दे दीजिए ।।५९–६१।। लग्न होनेके बाद शिवको हम दे देंगे, मातुल बोला कि, आप लग्न कालके लिए अवश्य ही शिवको ले सकते हैं ।।६२ अच्छे मुहूर्तमें उन्होंने शिवके साथ सुशीलाका विवाह कर दिया, उसने वहीं सुशीलाके साथ शयन किया ।।६३।। स्वप्नमें मंगलागौरी माताका रूपधरकर सुशीलासे हितकारी वचन बोली ।।६४।। कि, हे गौरांगि सुशीले ! तेरे पतिको खानेके लिए बडा भारी काला साँप आया है । खडी हो, उसके सामने दूध रख दे ।।६५।। एक घट रख दे, वह उसके भीतर चला जायगा तू अपने शरीरसे वस्त्र निकालकर उसका मुंह बांध देना ।।६६।। गौरीके कहनेसे सुशीला उठकर क्या देखती है कि, वैसाही काला सांप फुंकार मार रहा है, जो कुछ गौरीने कहा था सुशीलाने वही किया । पीछे सो गई ।।६७।।६८।। पीछे समीपके पडा हुआ वर बोला कि, मुझे भूख लग रही है अच्छे अच्छे लड्डू खानेको दे दे ।।६९।। सुशीलाने सुनकर सोनेके पात्रमें लड्डू रखकर दिये । शिवने लड्डू खाकर उस पात्रमें अंगूठा पटक उस पात्रको किसी जगह छिपाकर रख दिया पीछे भूमिपर सुखपूर्वक सोया वह सब बातें जानता था ।।७०।।७१।। प्रातःकाल उठकर अपने घर चला आया । सुशीलाने स्नानकर शुद्ध हो वह घडेवाला दायना माको दे दिया ।।७२।। माताने जो उसे खोलकर देखा तो उसमें श्रेष्ठ मुक्ताहार मिला । उसने प्रसन्न हो वह अपनी प्यारी लडकीको ही दे दिया ।।७३।। खेलनेके समय हर मंडपमें आया । माताने खेलनेके लिए सुशीलाको आज्ञा दी ।।७४।। सुशीला बोली कि, जिसके साथ मेरा विवाह हुआ है वह यह नहीं है । इस कारण इसके साथ मेरी खेलनेकी भी इच्छा नहीं है

॥७५॥ यह सुन सुशीलाके मां बाप वहांसे चलदिये । कन्याके पतिको ढूंढनेका उपाय अन्नदान ही समझा ॥७६॥ उनको दान करनेकी विधि यह थी कि, उस दिनसे लेकर उन्होंने पुराणोंके कहे विधानके अनुसार सुशीलाके चरण धुलाये, मुद्रिकाके साथ ॥७७॥ जलधारा दी, हरिके पुत्रने चन्दन तथा हरिने ताम्बूल दिया मनुष्योंने खाया ॥७८॥ इत्यादि रीतिसे भिक्षुओंका सुखदाता उनका अन्नदान प्रवृत्त हुआ । इधरवे दोनों मामा भानजे दोनों सुखदायी काशीको चल दिये ॥७९॥ आदरके साथ गंगाके निर्मल पानीमें स्नान किया उत्तम धर्म करते हुए स्वर्गद्वार चल दिये ॥८०॥ भिक्षुओंकोस्थान स्थानमें पीतवस्त्र दिये तथा भिक्षुओंने शिवके लिये चिरंजीवी होनेका आशीर्वाद दिया ॥८१॥ विश्वेश्वरके स्थानमें जागर बारंबार नमस्कार स्तुतियां कीं पीछे अपने घरको चलदिये रास्तेमें शिव ममासे बोला कि ॥८२॥ मामाजी ! मुझे शरीरमें कुछ खराबी मालूम होती है । पीछे प्राणोंके उत्क्रमण होनेपर यमदूत आ उपस्थित हुए ॥८३॥ मंगलागौरीके साथ उनका खूब युद्ध हुआ । मंगलाने उन सबको जीत वे प्राण फिर शरीरमें डाल दिये ॥८४॥ अचानक शिव उठकर मामसे बोला कि, मैंने स्वप्नमें मंगलादेवी और यमके नौकरोंका युद्ध देखा था ॥८५॥ मंगला गौरीने उन सबको जीत लिया पीछे मैं नींदसे खडा होगया, मामा बोला कि, हे शिव ! जो होगया सो होगया उसे फिर याद न कर ॥८६॥ चलो नगर चलो वहां देखनेको उतावले हो रहे होंगे, वहांसे चले और प्रतिष्ठापुर पहुँचे ॥८७॥ जहां पहिले ठहरे थे वही रसोई बनाना प्रारंभ करदिया, हरिकी दासियोंनें देखा कि, दोनों धैर्य और उदारता धारण करनेवाले हैं ॥८८॥ दासी बोली कि, हरिके घरमें अन्नदान होता है वहां जाओ, वे बोले कि, हम राहगीर हैं किसीके घर नहीं जाते ॥८९॥ दासी उनके वचन सुनकर घर गई वहांकी सब बातें आदरके साथ स्वामीको सुनादीं ॥९०॥ दासियोंके सब वचन आदरके साथ सुनकर बहुतसे हाथी घोडे और रत्न वस्त्र फेज दिये ॥९१॥ यह देख दोनोंको बडा अचम्भा हुआ हरिके घर पहुंचे, हरि मामाको पूजकर शिवको पूजने गया ॥९२॥ चरण धोती हुई लडकी लज्जापूर्वक मासे बोली कि, यही मेरा वर है ॥९३॥ मंगलकारी दर्शनो वाले शिवसे आश्चर्य्यके साथ हरि पूछने लगा कि, हे शिव ! यदि यहां कोई तेरा चिह्न हो तो मुझे बतादे ॥९४॥ हरिके वचन सुन शिव बडा सन्तुष्ट हुआ मेरा यह चिह्न तुम्हारे घर है । यह कहकर सके घर आया ॥९५॥ वह पात्र जिसमें उसने अपनी मुद्रिका रखी थी, हरिकोदिखा दिया । जिसे देख हरिने कन्यादान कर दिया ॥९६॥ रत्न, वस्त्र, और बहुतसा सोना दिया, उस कन्याको साथ ले धनवान करते वह अपने नगर चल दिये ॥९७॥ श्रावण मंगलवार आजानेपर उनने व्रत किया वे सब भोजन करके एक योजन पहुंचे ॥९८॥ सुशीला बोली कि, गौरीविसर्जन तथा दीपमान करके पीछे हमें मा बाप देखने चलना चाहिये ॥९९॥ ऐसा कहकर जहाँ आइ थीं वहीं गौरीका आवाहन किया, वहां उन्होंनें सोनेका उत्तम देवालय देखा ॥१००॥ वहीं उसने गौरीका विसर्जन और दीपमान किया । वहांसे वे सब चल दिये । ये दोनों मा बाप तथा सास सुसरोंके देखनेके लिये व्याकुल हो उठे ॥१॥ जब वे कुंडिनपुरके पास पहुंचे तो वहांके आदमियोंने उन्हें देख अचरजके साथ जाकर धर्मपालसे कहा कि ॥१०२॥ हे धर्मपाल ! पत्नीके साथ तेया पुत्र तथा तेरा शाला हमने रास्तेमें आते देखे हैं, वे अभी तेरे पास आये जाते हैं ॥३॥ मनुष्य यह कहही रहे थे कि, इतनेमें वे सब भी वहीं पहुंचगये । मा बापके प्यारेने उन्हें जाकर प्रणाम किया ॥४॥ सास सुशीलासे बोली कि, हे सुशीले ! उस व्रतको कह जिस व्रतके प्रभावसे हे कमलनयनी ! मेरे बालकको उमर बढगई ॥५॥६॥ सुशीला बोली कि, मैं उस व्रतको नहीं जानती, मेरा मा बाप मानवती और हरि जानते हैं, मैं तो तुम्हें अपनी मानवती मा धर्मपालको अपना बाप हरि समझती हूं ॥७॥ आपका पुत्र मेरा वर है उसे मंगला देवीही मानती हूं, यह कह परम प्रसन्न हो मंगलाने भोजन किया ॥८॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे धर्मराज ! इस व्रतको स्त्रियोंको अवश्य ही करना चाहिये, युधिष्ठिरजी बोले कि ॥९॥१०॥ पहिले साल तो इसे माताके घरमें करे, पीछे आदरके साथ पतिके घर करती रहे ॥११॥ इनमें पहिले वर्ष व्रतका संकल्प करे, रम्य पीठपर मंगला देवीको अपने सामने विराजमान करे ॥१२॥ गेहूंके चूनके चकला लोढी बनावे एक बडा भारी चून दीपक सोलह बत्ती डालकर रखे, सोलहों उपचारोंसे गन्ध पुष्पादिकोंसे पूजे ॥१३॥ ॥१४॥ सोलहही पत्र सोलहहीं पुष्प तथा अनेक धान्य और जलिक, तथा सोलहही स्वच्छ धान्याक, तण्डुल

।।१५।। अपामार्ग और धतूरेके पत्ते वे सब सोलह सोलह रहने चाहिये तथा पांच बिल्वपत्र हों ।।१६।। तव साथ चीजोंसे मंगलागौरीका पूजन करके पीछें अङ्गपूजा करे धूप आदिक देकर वायना समर्पण करे ।।१७।। ब्राह्मण माता तथा औंनोके लिए भी कंचुकी वस्त्र फल दक्षिणा और लड्डू दे ।।१८।। सोलह दीपकोंसे आरती करे, दीपक और लवण रहित अन्नका भोजन करे ।।१९।। बातमें जगरण करके प्रातःकाल स्नान करे, क्रमशः मंगलाका विसर्जन वीपमान करे ।।२०।। पति चाहनेवालीको वह पाच वर्षतक करना चाहिये ।। युधिष्ठिर बोले कि, हे केशव ! उद्यापन कहिये क्योंकि विना उसके व्रत निष्फल होता है । श्रीकृष्णजी बोले कि, उद्यापन पांचवें वर्ष करे ।।२१।। वह श्रावण मासके मंगलवारमें करे, हे महाराज ! कंसे करना चाहिये यह मुझसे सुन; प्रातःकाल स्नान करके उद्यापनका संकल्प करे ।।२२।।२३।। वेदवेदाङ्गोंके जाननेवाले आचार्यका वरण करे । चार स्तंभ एवं चार द्वारवाला कदलीके स्तंभसे मंडित ।।२४।। घंटे और चामरोंसे सजा हुआ मंडप बनाना चाहिए । बीचमें वितान बांधे, पांच रंगोंसे सुशोभित कर ।।२५।। उसमें एक चौखूटो वेदी बनावे, चांतीका शिल तथा सोनेका लोढी बनावे ।।२६।। चांदी सोनेका अभाव होतो पाषाणके ही रखले उस वेदीपर पांच रंगोंसे लिंगतोभद्र लिखे ।।२७।। उसपर एक द्रोण घीहि रखे । सोना ,चांदी तांबाका कलश स्थापित करे ।।२८।। पंचरत्न तथा सब ओषधियां डाले उसपर तांबा या बांसका पात्र रखे ।।२९।। उसपर सोनेकी गौरीकी मूर्ति विराजमान करे "गौरी मिमाय" इस मंत्रसे मंगलाका पूजन करे ।।हे राजन् ! डमरुके आकृतिके सोलह चूनके दीपक बनावे ।।३०।। हे राजन् । उनमें सोलही सूतकी बत्ती डाले ।।३१।। उनसेआरती करे, चांदीका दीया और सोनेकी बत्तीका समर्पण करे उस रातको पुराणोंके श्रवण आदिसे बितावे ।।३२।। हे युधिष्ठिर ! प्रातःकाल अग्निकी प्रतिष्ठा करके होम करे । "गौरीर्मिमाय" इसमंत्रसे घृत अक्षत और तिलोंकी आहुति, दे ।।३३।। बिल्वपत्रोंकी एकसौ आठ आहुति पृथक् पृथक् दे, सोलह वा आठ सपत्नीक ब्राह्मणोंको ।।३४।। वस्त्रआदिसे पूजकर मा को वायना दे, वह पक्कान्नसे भरा हुआ ताम्बेका पात्र हो । उसके साथ वस्त्र आदि भी हों ।।१३५।। गऊ और उपस्कर सहित पीठ आचार्य्यके लिए दे, पीछे परमान्नसे ब्राह्मणभोजन करावे ।।३६।। पीछे हे युधिष्ठिर ! इष्ट जनोंके साथ मौन हो भोजन करे, ऐसा विधानके साथ किएसे स्त्री विधवा नहीं होती । यह श्रीभविष्यपुराणोक्त मंगलागौरीव्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ।।

अथ मौनव्रतम्

नन्दिकेश्वर उवाच ।। कथयस्व प्रसादेन व्रतं परमदुर्लभम् ।। येनासौ वरदो देवस्तुष्येन्मे षण्मुखाशु वै ।। १ ।। स्कन्द उवाच ।। शृणु नन्दिन्प्रवक्ष्यामि व्रतं परमदुर्लभम् ।। न कस्यचिन्मयाख्यातं त्वामेव कथयाम्यहम् ।।२।। येन सचीर्ण-मात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। शाकल्यनगरे रम्ये सोमशर्मा द्विजोत्तमः ।। ३ ।। सर्वदा दुःखितो दीनो द्रव्यहीनो बुभुक्षितः ।। तस्य कन्याद्वयं जातं सौन्दर्यशुभ-लक्षणम् ।। ४ ।। रूपलावण्यसंपन्नं गृहार्चनरतं सदा ।। ज्येष्ठा रूपवती नाम कनिष्ठा च सुपर्णिका ।। ५ ।। वत्सानां पालनार्थाय जग्मतुस्ते वनान्तरम् ।। सरोवरं तत्र हंसचक्रसारसमण्डितम् ।। ६ ।। कदलीपारिजातैश्च चम्पकैर्बिल्वकैस्तथा ।। रम्यं ददृशतुस्ते तु सर्वप्राणिसुखावहम् ।। ७ ।। तत्तीरे जलसंलग्नं लिङ्गमासीत्प्रतिष्ठि-तम् ।। तदर्चनं कुर्वतीनां देवस्त्रीणां कदम्बकम् ।। ८ ।। दृष्ट्वा तदग्रतो गत्वा नत्वा पप्रच्छतुश्च ते ।। किमिदं क्रियते देव्यः कथयध्वं दयान्विताः ।। ९ ।। ता ऊचुः क्रियतेऽस्माभिर्मौनव्रतमिदं शुभम् ।। तच्छ्रुत्वैवोचतुः कन्ये किं फलं को विधिस्तथा ।। १० ।। देवाङ्गना ऊचुः ।। शृणुतं कन्यके सम्यक् शिवप्रीतिकरं

व्रतम् ।। भाद्रशुक्लप्रतिपदि प्रातरुत्थाय वाग्यतः ।। ११ ।। सम्पादयेप्रयत्नेन पूजा-संभारमादृतः ।। नानाफलानि लड्डूकान् षोडशातिमनोहरान् ।। १२ ।। दधिभक्तं च भूपादीन् दूर्वादींश्च प्रकल्पयेत् ।। ततो गृहीत्वा तत्सर्वं मौनी द्विजपुरःसरः ।। १३ ।। गत्वा नदीं तडागं वा स्नायान्मृत्स्नानपूर्वकम् ।। काण्डैः षोडशभिर्युक्तां दूर्वामादाय कन्यके ।। १४ ।। सूत्रेण षोडशग्रन्थियुक्तेन सहितां तु ताम् ।। करे बद्ध्वा स्थावरे वा मृन्मये वापि भक्तितः।।१५।। लिङ्गे संपूजयेद्गुमुपचारैर्मनोरमैः।। दूर्वा षोडश संगृह्य शिवलिंगेऽर्चयेत्ततः ।। १६ ।। पक्वान्नफललड कदधिभक्तानि चार्पयेत् ।। ततः पूजां समाप्याथ ब्राह्मणान् पूजयेत्ततः ।। १७ ।। दधिभक्तं जल क्षिप्त्वा गृहीत्वा फललड का न्।। गृहं गत्वा ब्राह्मणांश्च भोजयीत तदाज्ञया ।।१८ ।। स्वयं भुञ्जीत च ततो धृतं मौनं विसर्जयेत् ।। एवं षोडशवर्षाणि विधायोद्यापनं चरेत् ।। १९ ।। एवं कृत्वा व्रतं सम्यग्वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ।। पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ।। २० ।। इहलोके सुखं भुक्त्वा कैलासे रमतेऽनिशम् ।। अस्माभिः कथितं ह्येतद्व्रतं पापप्रणाशनम् ।। २१ ।। एतत्कृत्वाऽस्मत्समक्षं पश्यतं फलमुत्तमम् ।। एतच्छ त्वा व्रतं ताभ्यां कृतं तत्सरसस्तटे ।। २२ ।। दधिभक्तं जले क्षिप्त्वा गृहीत्वा फललड कान् ।। आगत्य स्वगृहं कन्ये फलादीनि निधाय च ।।२३।। भुक्त्वा सुखं सुषुपस्तुस्तात्पिता प्रातरुत्थितः।। ददर्श फललड कान्सर्वान् हेममया-नथ ।। २४ ।। पप्रच्छ भीतः साश्चर्यं किमिदं कन्यके इति ।। तदा रूपवती प्राह न भेतव्यं त्वया पितः ।। २५ ।। आवाभ्यां ह्यो वने मौनव्रतं शंकरतुष्टिदम् ।। कृतं तस्य प्रभावेण सञ्जातमिदमद्भुतम् ।। २६ ।। स्कन्द उवाच ।। द्वितीयेऽह्नि पुन-स्ताभ्यां वत्सा नीता वनान्तरे ।। एतस्मिन्नन्तरे तत्र भ्रममाण इतस्ततः ।। २७ ।। प्रतापमुकुरो राजा मृगयासक्तमानसः ।। श्रान्तस्तृषार्तः संप्राप्तो यास्ते कन्यका-द्वयम् ।। २८ ।। अपृच्छदुदकं क्वास्ति तृषासंपीडितोऽस्म्यहम् ।। इन्युक्तवति राजेन्द्रे रूपवत्या मुदान्वितम् ।। २९ ।। आनीतं शीतलं वारि दधिसंयुतमोदनम् ।। राजा भुक्त्वा जलं पीत्वा परिवारेण संयुतः ।। ३० ।। पुनः प्रष्टुं समारेभे कस्य कन्ये सुलोचने ।। रूपवत्युवाच ।। सोमशर्मा द्विजो राजन् जानासि यदि वा न वा ।। ३१ ।। तस्यावां कन्यके वत्सचारणार्थमिहागते ।। इत्याकर्ण्य ततो राजा गत्वा स्वनगरं प्रति ।। ३२ ।। दूतान् संप्रेषयामास कन्यार्थी विप्रसंनिधौ ।। अथाजग्मुस्तु ते दूताः सोमशर्मगृहं प्रति ।। ३३ ।। ऊचुश्चाह्वयते राजा गच्छ विप्र महीपतिम् ।। तच्छ्रुत्वा निर्गतः शीघ्रं ब्राह्मणो राजगौरवात् ।। ३४ ।। दूतैः समं ततस्तैस्तु स राज्ञे संनिवेदितः ।। राज्ञा तु प्रार्थिता ज्येष्ठा रूपवत्यभिधा सुता ।। ३५ ।। राजाज्ञा-भङ्गभीत्यैव तस्मै प्रादात्स तां ततः ।। सुपर्णिकाकनिष्ठां तु द्विजाय श्रुतशीलिने

।। ३६ ।। कुलीनाय गुणाढ्याय निकटग्रामवासिने ।। पुण्यमाणवकाख्याय दत्त्वा तु स्वगृहं गतः ।। ३७ ।। राजानं तु वरं प्राप्य ज्येष्ठा रूपवती किला ।। ऐश्वर्यमदमत्ता तु व्रतं तत्याज मोहिता ।। ३८ ।। तेन दोषेण तस्यास्तु राज्यलक्ष्मीः क्षयं गता ।। कनिष्ठाया गृहे चैव राज्यं प्राप्तमनुत्तमम् ।। ३९ ।। कदाचित्सा रूपवती दारिद्र्यपरिपीडिता ।। याचितुं च सुवर्णाया आजगाम गृहं प्रति ।। ४० ।। तां दृष्ट्वा दुःखिता भूत्वा कनिष्ठा प्रत्युवाच ह ।। किमिदं तव दारिद्र्यं राज्यं कुत्र गतं च तत् ।। ४१ ।। तच्छ्रुत्वा रूपवत्याह शत्रुभिश्च दुरात्मभिः ।। हृतं सर्वस्वमस्माकं दारिद्रं पतितं गृहे ।। ४२ ।। व्रतभङ्गप्रभावेण प्राय एतदुपागतम् ।। इत्याकर्ण्य सुपर्णा सा धनकुम्भं ददौ तदा ।। ४३ ।। तं गृहीत्वा तु सा ज्येष्ठा निर्जगाम गृहं प्रति ।। मार्गे चौरैस्तदा नीतो धनकुम्भस्ततः पुनः ।। ४४ ।। सुपर्णाया गृहं प्राप्ता शोकाकुलितमानसा ।। पुनर्दृष्ट्वाथ तां ज्येष्ठां करुणापूर्ण मानसा ।। ४५ ।। वंशयष्टिं समादाय तस्यां स्वर्णं निधाय च ।। दत्त्वा सुपर्णा ज्येष्ठायै विससर्ज गृहं प्रति ।। ४६ ।। शनैः शनैस्ता गच्छन्तीं पथि चौराः समाययुः ।। वंशयष्टिं समादाय जग्मुस्ते च यथागतम् ।। ४७ ।। ज्येष्ठा तु शोकसम्पन्ना सुपर्णां पुनरागमत् ।। उवाच किं करोमीति कुपितः शंकरो मम ।। ४८ ।। तच्छ्रुत्वा तु सुपर्णा सा दण्डवत्प्रणिपत्य च ।। तस्या दुःखं पराकर्तुं शिवमस्तौद्दयान्विता ।। ४९।। सुपर्णोवाच ।। धन्याहं कृपया देव त्वदालोकनगौरवात् ।। त्वत्प्रसादान्महादेव मुच्येयं कर्मबन्धनात् ।। ५० ।। रक्ष रक्ष जगन्नाथ त्राहि मां भवसागरात् ।। दर्शनं देहि देवेश करुणाकर शंकर ।। ५१ ।। एतदाकर्ण्य भगवान् प्रत्यक्षं करुणानिधिः ।। सुपर्णां देवदेवेशो माभैर्माभैरभाषत ।। ५२ ।। नत्वा सुपर्णा तं प्राह श्रूयतां जगदीश्वर ।। ज्येष्ठया मे भगिन्या तु व्रतं त्यक्तं तवेश्वर ।। ५३ ।। रक्षितव्या जगन्नाथ यदि तुष्टोऽसि शंकर ।। ईश्वर उवाच ।। त्वद्भगिन्या तत्वजानन्त्या व्रतभङ्गो यतः कृतः ।। ५४ ।। अतस्तदस्तु संपूर्णं त्वद्भक्त्या मत्प्रसादतः ।। इत्युक्त्वा चैव देवेशो राज्यं दत्त्वा दिवं ययौ ।। पुनर्व्रतप्रभावेण राज्यं प्राप्तं तया पुनः ।। ५५ ।। नन्दिकेश्वर उवाच ।। देव केन प्रकारेण व्रतस्योद्यापनं वद ।। कथ्यतां श्रीमहाभाग व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। ५६ ।। स्कन्द उवाच ।। वर्षे तु षोडशे पूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। मासे भाद्रपदे शुक्ले पक्षे प्रतिपदातिथौ ।। ५७ ।। मण्डपं कारयेत्तत्र कदलीस्तम्भमण्डितम् ।। नानापुष्पैश्च शोभाढ्यां वेदिकां तत्र कारयेत् ।। ५८ ।। तन्मध्ये लिङ्गतोभद्रं पञ्चरङ्गैः समन्वितम् ।। कलशं स्थापयेत्तत्र हेम पात्र समन्वितम् ।। ५९ ।। तस्मिन् भवानीसहितं शम्भुं सौवर्णमर्चयेत् ।। पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च फलैर्ना-

नाविधैरपि ।। ६० ।। फलानि पिष्टलड्डूकान् दद्याद्विप्राय षोडश ।। ताम्बूलदक्षिणोपेतान् यथाशक्त्यर्चिताय च ।। ६१ ।। प्रसीद देवदेवेश चराचरजगद्गुरो ।। ईशानाय नमस्तुभ्यं व्योमव्यापिन्नमोऽस्तु ते ।। ६२ ।। इति क्षमाप्य देवेशं भक्त्या तत्परमानसः ।। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।। ६३ ।। ततः प्रभात उत्थाय स्नानं कृत्वा विधानतः ।। होमस्तत्र प्रकर्तव्यस्तिलैराज्येन संयुतैः ।।६४।। मूलमन्त्रेण विधिवदष्टोत्तरशतं बुधैः ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः ।। ६५ ।। धेनुं दद्यात्सवत्सां च वस्त्रालंकारसंयुताम् ।। पयस्विनीं कांस्यदोहां नानालंकारसंयुताम् ।। ६६ ।। ततः शैवान् संप्रपूज्य षोडशैव तपोधनान् ।। कौपीनानि बहिर्वासांस्तथा दद्यात्कमण्डलून् ।। ६७ ।। भक्त्या क्षमाप्य तान् सर्वान् व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। भोजनं तत्र दातव्यं लेह्यपेयसमन्वितम् ।। ६८ ।। दक्षिणां च ततो दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।। एवं विधिसमायुक्तः करोति व्रतमुत्तमम् ।। ६९ ।। राज्यं च लभते लोके पुत्रपौत्रैः समन्वितः ।। सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जितः ।।७०।। भुक्त्वा भोगान्यथाकाममन्ते गच्छेत् परं पदम् ।। लभते परमां मुक्तिं शिवलोके महीयते ।। ७१ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे मौनव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

मौनव्रत--नन्दिकेश्वर बोला कि, हे षण्मुख ! कृपा करके कोई ऐसा दुर्लभ व्रत कहिये जिसके कि, वरद देव शीघ्रही प्रसन्न होजायें ।।१।। स्कन्द बोले कि, हे नन्दिन् ! सुन; मैं एक परम दुर्लभ व्रत कहता हूं वह मैंने किसीसे नहीं कहा केवल तुमसेही कहूँगा ।।२।। जिसके कि, किए मात्रसे सब पापोंसे छूट जाता है । शाकल्यनगरमें एक सोमशर्म्मानामका उत्तम ब्राह्मण था ।।३।। पर वह था सदाकाही दुःखित दीन द्रव्यहीन और भूखा उसकी दोनों कन्याएँ सौन्दर्य्य आदि परम शुभ गुणोंसे सदा युक्त रहा करती थीं ।।४।। वह रूपलावण्यसे संपन्न होकर भी घरके कामोंको करनेमें लगी रहती थीं, बडीका नाम रूपवती तथा छोटीका नाम सुर्पाणका था ।।५।। वे दोनों बछडे चरानेके लिए जंगलमें चली गईं उन्होंने वहां एक सुन्दर सरोवर देखा, उसकी शोभा हंस सारस और चकवे बढा रहे थे ।।६।। कदली, पारिजात, चंपक और बिल्वके वृक्षोंसे उसकी शोभा और भी बढ रही थी, जिसे कि, देखकर सभीके सुख होता था दोनोंने उसे देखा ।।७।। उसके किनारे पानीसे लगा हुआ शिवलिंग था, देवस्त्रियां उसका पूजन कर रही थीं ।।८।। उन्हें देख दोनों लडकियां उनके पास पहुँची तथा प्रणाम करके पूछने लगीं कि, हे देवियो ! क्या कर रही हो ? यह कृपा करके बतला दीजिए ।।९।। वे बोलीं कि, हम मौन व्रत कर रहीं हैं, यह सुन फिर वे कन्याएँ पूछने लगीं कि, इसकी विधि और फल क्या है ? ।।१०।। देवियां बोलीं कि, ए कन्याओ ! सुनो, यह शिवजीको प्रसन्न करनेवाला व्रत है, भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाको प्रातःकाल उठ मौन हो ।।११।। आदरके साथ सावधानीपूर्वक पूजाके संभारोंको इकट्ठा करे, अनेक तरहके फल सुन्दरसोलह लड्डू ।।१२।। दधिभक्त, धूपादिक और दूध आदि तयार करे, उन सबको ले ब्राह्मणोंके पीछे पीछे नदी या तडागपर जाकर मृत्तिकाके साथ स्नानकरे, सोलह कांडोंसे युक्त दूब ले ।।१३।।१४।। सोलह गांठके सूताके साथ उसे हाथमें बांधकर, स्थावर या मिट्टीके लिंगमें भक्तिके साथ रम्य उपचारोंसे पूजे, सोलह दूब लेकर शिवलिंगपर चढावे ।।१५।।१६ पक्वान्न, फल, लड्डूक और दधिभक्त अर्पण करे, पूजा समाप्त करके ब्राह्मणोंको पूजे ।।१७।। दधिभक्तको पानीमें डाल फल और लड्डू ले घर आ उनकी आज्ञासे ब्राह्मण भोजन करावे ।।१८।। आप भोजन करे और पीछे मौन त्याग दे, इस तरह सोलह वर्ष करे । उद्यापनः--इसके पीछे करना चाहिये इस तरह करके वांछित फल पाता है । वह पुत्र पौत्र धनधान्य और समृद्धियाला होता है ।।१९।।२०।। इस लोकमें सुख भोगकर चिरकाल तक कैलासमें

रमण करता है । हमने पापनाशक व्रत तुम्हें सुना दिया ।।२१।। इसे करके हमारे सामनेही इसका फल देख लेना । देवाङ्गनाओंके इतना कहनेसे उन दोनों लडकियोंने उसी सरके किनारे उसी समय व्रत किया ।।२२।। दधि भक्त पानीमें डाल फल और लड्डू लेकर अपने घर चली आईं। फलादिक सब घर रख दिये ।।२३।। भोजन करके सोगईं, उनका पिता प्रातःकाल उठा देखा कि, फल और लड्डू सोनेके होगये हैं ।।२४।। वह चकित हो डरकर कन्याओंसे पूछने लगा कि, यह क्या बात है ? तब रूपवती बोली कि, हे पितः! आप डरें न ।।२५।। हम दोनोंने शिवके प्रसन्न करनेवाला मौनव्रत किया था । उस व्रतके प्रभावसे यह सब होगया है ।।२६।। स्कन्द बोले कि, दूसरे दिन फिर वे बछडे चराती हुईं उसी वनमें पहुंची वहां ही इधर उधर घूम ।।२७।। शिकार करता हुआ प्रतापमुकुर राजा देखा । वह थका प्यासा वहीं पहुंच गया । जहां कि वे दोनों लडकियां बैठी थीं ।।२८।। राजा पुछने लगा कि, पानी कहां है ? में प्यासा हूं राजाके इतना कहतेही रूपवतीने आनन्दके साथ ।।२९।। शीतल पानी और दधि मिलाहुआ ओदन लादिया, राजा और उसके साथियोंने खाया और पानी पिया ।।३०।। पीछे उनसे पूछने लगा कि, हे सुनयनी कन्याओ ! तुम किसकी हो ? रूपवती बोली कि, एक सोमशर्म्मा नामका ब्राह्मण है आप जानते हो वा न जानते हों ।।३१।। हम दोनों उसकी लडकी हैं बछडा चरानेके लिये यहां आई हैंराजा यह सुनकर नगरको चला गया ।।३२।। उनके कन्या लेनेकी इच्छासे अपने आदमी उसके पास भेजे उन्होंने सोमशर्म्माके घर आकर ।।३३।। कहा कि, आपको राजा बुला रहा है चलो । ब्राह्मण राजाकी आज्ञाके गौरवसे शीघ्रही चल दिया ।।३४।। उसके चारों ओर राजाके आदमी लगे हुए थे । उन्होंने कहदिया कि, लीजिये यह हाजिर है, राजाने उससे बडी रूपवती मांगी ।।३५।। उसनेभी हुकुम अदूलीके डरसे वह लडकी उसे देदी एवं जो उसकी छोटी लडकी थी उसे समीपके ग्रामके रहनेवाले कुलीन गुणी विद्वान वेदपाठी पुण्य माणवकको देदी और घर चला आया ।।३६।।३७।। बडी लडकी रूपवतीने राजाको पति पाकर ऐश्वर्यके मदमें मत्त हो मौनव्रत छोड दिया ।।३८।। ।।३८।। इस दोषसे उसकी राजलक्ष्मी नष्ट हो गई एवं छोटीके घर उत्तम राज्यकी प्राप्ति हुई ।।३९।। एक दिन रूपवती दारिद्रचसे दुःखी होकर भीख मांगनेके लिये सुपर्णाके घर चली आई ।।४०।। उसे देख छोटी बहिन बडी दुःखी हुई और बोली कि, यह दारिद्र्य कैसे आया तेरा राज्य कहां चला गया ? ।।४१।। यह सुन रूपवती बोली कि, दुरात्मा वैरियोंने सब हरलिया अब हमारे घरमें केवल दारिद्र्य पडा हुआ है ।।४२।। व्रतभंग करनेके कारणही यह सब हुआ है।यह सुन सुवर्णाने एक धनका कुंभ उसे देदिया ।।४३।। उसे लेकर बडी अपने घर चली आई, मार्गमें चोरोंने वह धनकुंभभी उससे छीन लिया ।।४४।। शोकसे व्याकुल हुई सुपर्णाके घर पहुंची बडी बहिनकी ये दशा देखकर छोटीको बडे दया आई ।।४५।। एक पोले बांसमें धन रखकर उसे देदिया और घरको विदा किया ।।४६।। वह धीरे जारही थी फिर चोरोंने घेर ली, वे उसकी वासकी लकडी लेकर जहांसे आये थे वहीं चलदिये ।।४७।। फिर शोकाभिभूत हो छोटी बहिन सुपर्णाके पास आई कि क्या करूं ? शिवजी मुझपर नाराज हैं ।।४८।। यह सुन सुपर्णा शिवजीको दण्डवत् करके बडी बहिनके दुखोंको दूर करनेके लिये शिवजीकी स्तुति कने लगी ।।४९।। कि, हे देव! आपकी कृपासे आपके दर्शन होजानेसे में धन्य होगई । हे महादेव ! आपकी कृपासे में कर्म बन्धनसे छूट जाऊं ।।५०।। हे जगन्नाथ बचाइये भवसागरसे रक्षा कलिये । हे करुणाकर शंकर ! हे देवेश ! दर्शन दीजिये ।।५१।। यह सुन करुणाके खजाने शिवजीने प्रत्यक्ष होकर सुवर्णासे कहा कि, डर न ।।५२।। सुपर्णा प्रणाम करके बोली कि, हे विश्वके स्वामिन् सुनिये हे ईश्वर ! मेरी बहिनने आपका व्रत छोड दिया ।।५३।। यदि आप मुझपर कृपा करते हैं तो उसकी रक्षा करिये, शिवजी बोले कि, तेरी बहिनने विना जाने व्रतभंग कर दिया है ।।५४।। इस कारण वह तेरी भक्ति और मेरी कृपासे पुरा होजाय, देवेश यह कह राज्य देकर दिव चले गये । व्रतके प्रभावसे उसे फिर राज्य मिलगया ।।५५।। नन्दिकेश्वर बोला कि, हे देव ! उद्यापन किस तरह करना चाहिये ? हे महाभाग यह बता दीजिये जिससे व्रत पूरा होजाय ।।५६।। स्कन्द बोले कि, सोलह वर्ष पूरे होनेपर उद्यापन करे, वह भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदामें हो ।।५७।। कदलीके स्तंभोंसे मंडित एक स्तंभ बनावे, उसे फलोंसे सजावे, उसमें सुन्दर वेदी बनावे ।।५८।। उसके बीचमें लिङ्गतोभद्र मंडल लिखे । वह पांच

रंगोंका हो । उसमें सोनेके पात्रके साथ कलश स्थापित करे ।।५९।। उसपर सोनेके गौरी शंकरको विराजमान करके अनेक तरहके पुष्प धूपदीप और फलोंसे पूजे।।६०।।सोलह फल और वेसनी लड्डू ब्राह्मणकोदे, ताम्बूल और शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे ।।६१।। हे देवदेवेश ! हे चराचर और जगत्के गुरु ! प्रसन्न होजा, तुझ ईशानके लिए नमस्कार है, हे व्योमके व्यापक ! तेरे लिए नमस्कार है ।।६२।। उनमें मन लगा भक्तिपूर्वक देवेशको प्रसन्न करके क्षमा प्रार्थना करे, मांगलिक गाने बजानेके साथ रातमें जगरण करे ।।६३।। प्रातः उठ स्नान करे, विधिके वाथ घी मिले तिलोंसे होम करे ।।६४।। मूलमंत्रसे विधिपूर्वक एकसौ आठ आहुति दे, पीछे वस्त्र अलंकार और भूषणोंसे आचार्य्यको पूजे ।।६५।। वस्त्र और अलंकार सहित बछडे सहित गौ दे, सह दुधारी हो, कांसेकी दोहनी साथ वे, अनेक तरहके अलंकार दे ।।६६।। सोलह तपस्वी शैवोंको पूजे, कौपीन अचला आदि तया क्रमंडलू दे ।।६७।। भक्तिभावके साय उनसे क्षमा मांग व्रतकी पूर्तिके लिए लेह्यपेयके साथ उन्हें भोजन दे ।।६८।; पीछे दक्षिणा दे, धनका लोभ न करे । जो उस विधिके साथ इस उत्तम व्रतको करता है ।।६९।। वह बेटा नातियोंके साथ अचलराज्य पाता है । वह सभी पाप और दोषों रहित हो जाता है ।।७०।। यहां अनेकों भव्य भोगोंको भोगकर अन्तमें परमपदको जाता है । वह परम-मुक्ति प्राप्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।।७१।। यह श्री भविष्यपुराणका कहा हुआ मौनव्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ।।

अथ पंचधान्यलक्षपूजा

देव्युवाच ।। देवदेव जगन्नाथ भवसागरतारक ।। सर्वकारण देवेश सर्वसिद्धि-प्रदायक ।। अहमेकं महागुह्यं प्रष्टुमिच्छामि शंकर ।। प्राप्ताहं केन पुण्येन त्वामाशु कथयस्म मे ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पृष्टं यत्तु त्वया प्रिये ।। पुण्यात् पुण्यतरं श्रेष्ठमिह मोक्षप्रदायकम् ।।त्वया यल्लक्षपूजाख्यं कृतं[1]यत्पूर्वजन्मनि।। तेन प्राप्तासि मां देवि सर्वैश्वर्यानुभाविनी ।। पार्वत्युवाच ।। महाश्चर्यकरं गुह्यं देवदेव जगत्पते ।। विस्तरेण च तत्सर्वमाशु मे कथय प्रभो ।। ईश्वर उवाच ।। धान्यानां वै लक्षपूजाविधिं वक्ष्ये च पार्वति ।। लोकानामुपकारार्थं सर्वसम्पत्करं शुभम् ।। श्रावणे कार्तिके वापि माघे वा माधवेऽपि वा ।। शुभे वाप्यथवान्यस्मिन्यदा भक्तिः शिवे नृणाम् ।। चित्तं वित्तं भवेद्यस्मिन् काले चैवार्जयेच्छिवम् ।। नित्यकर्म समाप्यादौ शुचिर्भूत्वा समाहितः ।। समभ्यर्च्य विधानेन लक्षपूजां समाचरेत् ।। पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण त्र्यम्बकेण तथैव च ।। शिवनाम्नाथवा कुर्यात्पूजनं पार्वती-पतेः ।। यवगोधूममुद्गाश्च तण्डुला वै तिलाः क्रमात् ।। पञ्चधान्यानि प्रोक्तानि शान्तिके देवपूजने ।। तण्डुलैश्च प्रकुर्वन्ति लक्षपूजाविधिं नराः ।। तेषां स्वर्गं च मोक्षं च प्रददातीह शंकरः ।।एवं तिलैः प्रकुर्वन्ति लक्षपूजाविधिं नराः ।। तेजस्विनो महाभागाः कुलेन च श्रुतेन वै ।। स्त्रीकामेन प्रकर्तव्यं गोधूमैः पूजनं महत् ।। उत्तमां स्त्रियमाप्नोति प्रसादाच्छंकरस्य च ।।पुत्रकामेन कर्तव्यं यवैः पूजनमुत्तमम् ।। अन्ते सायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।। वशीकरणकामेन कर्तव्यं मुद्गपूजनम् ।।

---

१ यत् व्रतम् ।

देवदानवगन्धर्वा वशीभवन्ति नान्यथा।। उक्तपूजां स्वयं कर्तुं यद्यशक्तो भवेत्तदा ।। कारयेद्ब्राह्मणद्वारा विधिना भक्तितत्परः।। पूजेयं पञ्चधान्यानां सर्वकामार्थसिद्धिदा ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।। समाप्तौ धान्यपूजाया उद्यापनविधिं चरेत् ।। आचार्यं वरयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगम् ।। पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पूजास्थाने समाहितः ।। सुवर्णप्रतिमां कृत्वा पार्वत्या शंकरस्य च ।। यथाशक्त्या नन्दिनं च रौप्यकेण तु कारयेत् ।। अभिषिच्य महादेवमुमया सहितं ततः ।। नवाम्बरे सिते शुद्धे स्थापयेत्पार्वतीपतिम् ।। समभ्यर्च्य द्विजैः सार्धं महापूजां समाचरेत् ।। यवगोधूममुद्गांश्च तिलान् हाटकनिर्मितान् ।। रौप्येण तण्डुलान् कृत्वा भक्तिभावपुरःसरम् ।। व्रतसम्पूर्णतासिद्ध्यै शंकरस्य समर्पयेत् ।। यत्र धान्यार्पणं कुर्यात्तत्रैव पूजनं स्मृतम् ।। लक्षसंख्याकृतं धान्यसमूहं तण्डुलादिकम् ।। सुवर्णरौप्यसहितं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।। अर्चनस्य दशांशेन ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।। तद्दशांशेन वै होमं कुर्याच्चरुतिलाज्यकैः ।। आचार्यं च सपत्नीकं तोषयेद्दक्षिणादिभिः ।। अशक्तश्चेन्नरो यस्तु पञ्चाशत्पञ्चविंशतिम् ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्तेन संपूर्णं तद्व्रतं भवेत्।। शक्तौ सत्यां न कुर्याच्चेत्पूजनं निष्फलं भवेत्।। ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या शिवपूजां विधानतः ।। भुक्त्वेह सकलान् भोगानन्ते सायुज्यमाप्नुयुः ।। एतत्ते कथितं गुह्यं मम सान्निध्यकारकम् ।। पुत्रपौत्रधनायुष्यसंपत्तिसुखदायकम् ।। कान्ता च सुभगा तस्य भवेद्धर्मे मतिः सदा ।। ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी तथैव गुरुतल्पगः ।। सद्यःपूतो भवेल्लक्षपूजनात्पार्वतीपतेः ।। इति श्रीभविष्यपुराणे सोद्यापनम् पञ्चधान्यलक्षपूजाविधानं समाप्तम् ।।

पञ्चधान्यलक्षपूजा—देवी, बोली कि, हे देवदेव ! हे जगन्नाथ । हे भवसागरको पार करनेवाले ! हे सबके कारण ! हे देवोंके स्वामी ! हे सभी सिद्धियोंके दाता ! हे शंकर ! मैं एक गुप्त व्रत पूछना चाहती हूं, मैं किस पुण्यसे आपको पागई ? वह मुझे शीघ्रही सुना दीजिए । शिवजी बोले कि, हे प्रिये ! जो तुमने पूछा है वह मैं तुम्हें सुनाता हूं वह सब पुण्योंसे भी श्रेष्ठ पुण्य है यहां मोक्षका देनेवाला है, जो तुमने पहिले जन्ममें लक्षपूजा व्रत किया था, हे सब ऐश्वर्य्योंका अनुभव करनेवाली देवि ! उसी पुण्यसे मुझे प्राप्त हुई है । पार्वतीजी बोली कि, हे जगत्के अधिपति देवदेव ! इस परमाश्चर्यकारी गुप्त व्रतको मुझे शीघ्रही विस्तारके साथ संसारके कल्याणके लिए सुना दीजिए । शिवजी बोले कि, हे पार्वती ! मैं धान्योंकी लक्ष पूजा विधि संसारके कल्याणके लिए कहता हूं, यह सभी संपत्तियोंका करनेवाला एवं सुखकारी है । श्रावण कार्तिक, माघ या वैशाखमें अथवा और किसी शुभ दिनमें जब मनुष्योंकी शिवमें भक्ति हो चित्त और धन हो उसी समय शिवपूजन प्रारंभ कर दे । सबसे पहिले नित्यकर्म करके पवित्र एवं एकाग्र हो, विधिके साथ पूजकर लक्षपूजा प्रारंभ करदे । पञ्चाक्षर या त्र्यंबकमंत्रसे शिवके नाममन्त्रसे शिवका पूजन करे । शान्तिके शिवपूजनमें यव,गोधूम, मुद्ग,तण्डुल और तिल ये क्रमसे पंच धान्य कहाते हैं, जो केवल तण्डुलोंसे भी लक्षपूजा विधि करते हैं उन्हें शिवजी स्वर्ग और मोक्ष देते हैं,जो तिलोंसे लक्षपूजा विधि करते हैं वे महाभाग तेजस्वी तथा प्रसिद्ध कुलसे सम्बन्ध करते हैं । स्त्री कामीको गोधूमोंसे बृहत् पूजन करना चाहिए, वह शिवजीकी कृपासे उत्तमा स्त्रीको पाता है,पुत्रकामीको यवोंसे पूजन करना चाहिये वह अन्तमें सायुज्य पाता

है, इसमें विचार ही न करना चाहिये । जो किसीको वश करना चाहे उसे मूँगसे पूजन करना चाहिए, उसके देव दानव और गन्धर्व सभी वश होजाते हैं यदि कही हुई पूजाके करनेमें आप अशक्त हो तो भक्तिपूर्वक विधिके साथ ब्राह्मणसे पूजन करावे यह पांच धानोंसे की गई पूजा सब सिद्धियोंके देनेवाली है, वह मनुष्य जो चाहता है, वही पाजाता है इस तरह विधिके साथ धान्य पूजा पूरी करे ।। उद्यापन—समाप्तिके बाद विधिके साथ होना चाहिए, वेदवेदाङ्गोंके जाननेवाले आचार्यका वरण करे, पूजाके साथमें फूलोंका छोटासा मंडप बनावे, सोनेकी शिव पार्वतीकी प्रतिमा बनावे, शक्तिके अनुसार ही चांदीका नन्दी बनावे, उमासहित शिवकाअभिषेक करे, सफेद नये शुद्धवस्त्रपर पार्वतीपतिको स्थापित करे, उनकी पूजा करके फिर ब्राह्मणोंके साथ महापूजाका प्रारंभ कर दे, यव गोधूम तिल और मूंग सोनेकी हो, तथा भक्तिभावके साथ चांदीके तण्डुल बनाये जायें, व्रतकी संपूर्तिके लिए ब्राह्मणोंकी भेंट करे । जहां धान्यका अर्पण करे, वहीं पूजन करना चाहिए, चांदीके चावल और सोनेके वे चारों एकलाख बनवाकर ब्राह्मणको दे दे पूजनका दशांश ब्राह्मण भोजन तथा उसकादशवां भाग चरु तिल घीसे हवन करे,दक्षिणा आदिसे सपत्नीक आचार्य्यको तुष्ट करे, यदि सामर्थ्य न हो तो पचास ब्राह्मणको जिमा दे । व्रतपूरा होजायगा, यदि शक्ति रहते भी न करे तो व्रत निष्फल होजायगा, जो मनुष्य विधानके साथ शिवपूजा करते हैं वे यहां भोगोंको भोगकर अन्तमें सायुज्यको पाते हैं । यह मेरे सानिध्यका देनेवाला गुह्य व्रत मैंने कह दिया यह पुत्र पौत्र धन आयु और संपत्तिका देनेवाला है उसकी स्त्री सुभग और सदा धर्ममें मति रहतीहै, ब्रह्महत्यारा, शराबी, गुरुतल्पगामी, शिवके लक्ष पूजनसे उसी समय पवित्र होजाता है । यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ पांच धानोंसे शिवजीकी लाख पूजा व्रत करनेका विधान उद्यापनसहित पुरा हु आ ।।

अथ शिवामुष्टिव्रतम्

शिवामुष्टिव्रतं स्त्रीणामुक्तं भविष्ये—देव्युवाच ।। देवदेव जगन्नाथ जगदानन्दकारक ।। कौतुकेनेप्सितं किंचिद्धर्मप्रश्नं करोम्यहम् ।। १ ।। श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि नियमास्तथा ।। महान्त्यपि च तीर्थानि यज्ञदानान्यनेकशः ।। २ ।। नास्ति मे निश्चयो देव भ्रामिताहं त्वया पुनः ।। कथयस्व महादेव यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम् ।। ३ ।। केन त्वं हि मया प्राप्तस्तपोदानव्रतादिना ।। अनादिमध्यनिधनो भर्ता चैव जगत्प्रभुः ।। ४ ।। शिव उवाच ।। शृणु देवि प्रयत्नेन व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। शिवामुष्टयभिधानं च सर्वोपद्रवनाशनम् ।। ५ ।। सुखसंपत्करं चैवं पुत्रराज्यसमृद्धिदम् ।। शंकरप्रीतिजनकं शिवस्थानप्रदायकम् ।। ६ ।। स्वभर्त्रा सह नारीणां महास्नेहकरं परम् ।। तेन व्रतप्रभावेण प्राप्तमर्धासनं प्रिये ।। ७ ।। इतिहासं पुरावृत्तं शृणु वै त्वं समाहिता ।। पुरा सरस्वतीतीरे विमलाख्या महापुरी ।। ८ ।। तत्र चन्द्रप्रभुर्नाम राजाऽभूद्धनदोपमः ।। तस्य स्त्री रूपलावण्यसौन्दर्यैः स्मरविभ्रमा ।। ९ ।। स हि चन्द्रप्रभू राजा कौतुकेन समन्वितः ।। माहात्म्यं शिवपूजायाः पत्नीं प्रत्यवदत्तदा।। १० ।। शृणु देवि विशालाक्षि भार्ये बालमृगेक्षणे ।। राज्ञश्च कस्यचित्सप्त पुत्रा जाता विशारदाः ।। ११ ।। तेषां मध्ये कश्चिदेकस्तस्य भार्या पतिव्रता ।। तस्याः काले हि सञ्जातौ द्वौ पुत्रौ लक्षणान्वितौ ।। १२ ।। एकां कन्यामसूतासौ सर्वलक्षणसंयुताम् ।। अप्रिया स्वामिने जाता सा राज्ञी वनमागता ।। १३ ।। सा कदाचिद्वनं गत्वा चारयन्ती गवां गणम् ।। तत्र शार्दूलवाराहवन-

माहिषकुञ्जरान् ।।१४।। दृष्ट्वा भयेन व्यथिता मूर्च्छिता निपपात ह ।। उत्थाय चैव बभ्राम तृषार्ता विपिने महत् ।।१५।। चकोरचक्रकारण्डचञ्चरीकशताकुलम् ।। उत्फुल्लपद्मकल्हारकुमुदोत्पलमण्डितम् ।। १६ ।। राजपत्नी तदा पूर्वं ददर्श च सरोवरम् ।। समासाद्य सरस्तीरं पीत्वा जलमनुत्तमम् ।। १७ ।। शिवं चोमामर्चयन्तं ददर्शाप्सरसां गणम् ।। किमेतदिति पप्रच्छ ता ऊचु र्योषितं प्रति ।। १८ ।। शिवामुष्टिव्रतमिदं क्रियतेऽस्माभिरुत्तमम् ।। सर्वसंपत्करं स्त्रीणां तत्कुरुष्व यतिव्रते ।। १९ ।। राजपत्न्युवाच ।। विधानं कीदृशं ब्रूत किं फलं चास्य तन्मम ।। ता ऊचुर्योषितः सर्वाः श्रावणे चेन्दुवासरे ।। २० ।। प्रारब्धव्यं व्रतमिदं शिवोऽर्च्यं पञ्चवत्सरान् ।। तच्छ्रुत्वा सापि जग्राह व्रतं नियममानसा ।। २१ ।। चतुर्षु चेन्दुवारेषु फलैर्धान्यैः प्रपूजयेत् ।। इन्दुवारे तु प्रथमे पूजयेच्च शिवापतिम् ।। २२ ।। तण्डुलैर्गोधूमतिलैर्मुद्गैरन्येषु पूजयेत् ।। धान्यानां सार्धमुष्टिं च प्रमाणं विद्धि भामिनि ।। २३ ।। नारिकेरं मातुलिङ्गं रम्भां कर्कटिकां तथा ।। चतुर्षु सोमवारेषु क्रमेण तु समर्पयेत् ।। २४ ।। श्रद्धया बहुपुष्पैश्च गन्धधूपैश्च दीपकैः ।। नानाप्रकारैर्नैवेद्यैः पूजयेद्गिरिजापतिम् ।। २५ ।। भर्त्रा सह कथां श्रुत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ।। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति भामिनि ।। २६ ।। ताभ्यः प्राप्य व्रतं राज्ञी शिवमभ्यर्च्य भक्तितः ।। चक्रे व्रतं तन्माहात्म्यात्पत्यु प्रियतराभवत् ।। २७ ।। तस्माद्व्रतमिदं देवि स्त्रीभिः कर्तव्यमद्भुतम् ।। श्रावणे मासि सोमेषु चतुर्षु च यथाविधि ।। २८ ।। देव्युवाच ।। उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवामुष्टयाः सुरेश्वर ।। भक्तितः श्रोतुमिच्छामि व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। २९ ।। महादेव उवाच ।। उद्यापनविधिं वक्ष्ये व्रतराजस्य शोभने।। यस्यानुष्ठानमात्रेण संपूर्णं हि व्रतं भवेत् ।। ३० ।। पञ्चमे वत्सरे प्राप्ते कुर्यादुद्यापनं शिवे ।। प्रातरुत्थाय सुस्नाता संकल्प्य व्रतमुत्तमम् ।। ३१ ।। चतुःस्तम्भं चतुर्द्वारं कदलीस्तम्भमण्डितम् ।। घण्टिकाचामरयुतं पल्लवाद्युपशोभितम् ।। ३२ ।। चन्दनागुरुकर्पूरैर्लेपितं मण्डपं शुभम् ।। मध्ये वितानं बध्नीयात्पञ्चवर्णैरलंकृतम् ।। ३३ ।। तन्मध्ये स्थापयेल्लिङ्गं पूजयेद्गिरिजापतिम् ।। रूप्येण तण्डुलं कृत्वा नालिकेरेण संयुतम् ।।३४।। गोधूमतिलमुद्गांश्च हाटकेन विनिर्मितान् ।। मातुलिङ्गरम्भाफलकर्कटीसहितान् शुभे ।। ३५ ।। एतैर्धान्यफलैर्देवि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।। नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्रायशूलिने ।। ३६ ।। नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे ।। ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः ।। ३७ ।। अन्येभ्यो विप्रवर्येभ्यो दक्षिणां च प्रयत्नतः ।। भूयसीं परया भक्त्या प्रदद्याच्छिवतुष्टये ।। ३८ ।। उद्दिश्य पार्वतीशं च

१ कुर्यादिति शेषः । २ पूजयेदिति शेषः ।

सर्वं कुर्यादतन्द्रितः ।। बन्धुभिः सह भुञ्जीत पतिपुत्रजनैः सह।। ३९ ।। एवं या कुरुते नारी व्रतराजं मनोहरम् ।। सौभाग्यमखिलं तस्याः सप्तजन्मस्वसंशयः ।। ४० ।। एतत्ते कथितं देवि तवाग्रे व्रतमुत्तमम् ।। कोटियज्ञकृतं पुण्यमस्यानुष्ठान मात्रतः ।। ४१ ।। जायते नात्र संदेह ऋषिभिः परिकीर्तनात् ।। ये शृण्वन्ति त्विमां भक्त्या कथां पापहरां शुभाम् ।। व्रतजं प्राप्नुवन्तीह तेऽपि पुण्यं न संशयः ।। ४२ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे गौरीशंकरसंवादे शिवामुष्टिव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।।

शिवामुष्टिव्रत—स्त्रियोंके लिए भविष्यपुराणमें कहा है । देवीने पूछा कि, हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे संसारको आनन्द देनेवाले ! मैं कौतुकके साथ कुछ धर्मका प्रश्न करती हूं ।।१।। हे देवेश ! मैंने बडे बडे व्रत नियम यज्ञ दान और तीर्थ सुने हैं ।।२।। हे देव ! मुझे निश्चय नहीं हुआ किन्तु, उनसे मैं और भी भ्रममें पडी हूं, हे महादेव ! जो उत्तम गोप्य व्रत हो उसे मुझे सुनाइये ।।३।। किस तप दान व्रत और समाधिसे मैंने आप अनादि अनिधन जगत्के स्वामीको पतिके रूपमें पाया ।।४।। शिवजी बोले कि, हे देवि ! सावधानीके साथ सुन, व्रतोंका एक उत्तम व्रत सुनाता हूँ । उसका नाम शिवामुष्टि है, वह सभी उपद्रवोंको नष्ट कनेवाला है ।।५।। सुख संपत्ति,पुत्र, राज्य और समृद्धिका देनेवाला है । शिवकी प्रीति पैदा करनेवाला तथा शिवके स्थानको देनेवाला है ।।६।। स्त्रियोंके लिए पतियोंके साथ परमस्नेह करानेवाला है, उसी व्रतके प्रभावसे हे प्रिये ! आपको मेरा आधा सिंहासन मिला है ।।७।। इसीपर मैं एक पुराना इतिहास कहता हूं मनलगाकर सुन । पहिले सरस्वती नदीके किनारे एक विमला नामकी पुरी थी ।।८।। उसमें कुबेरके बराबर धनी चन्द्रप्रभु नामके राजा राज्य करते थे, उसकी स्त्री रूप लावण्य और सौन्दर्य्यसे स्मरका विभ्रम बनी हुई थी ।।९।। एक दिन चन्द्रप्रभु राजाने कुतूहलसे शिवपूजाका माहात्म्य स्त्रीको भी सुनादिया ।।१०।। कि, हे बडे बडे नयनोंवाली बालक मृगकीसी चाहनकी देवि ! सुन, किसी राजाके परम बुद्धिमान् सात बेटे थे ।।११।। उनमें एक लडकेकी स्त्री पतिव्रता थी, उसमें उससे समयपर दो सुलक्षण पुत्र उत्पन्न हुए ।।१२।। उससे एक सब शुभ लक्षणोंवाली लडकी पैदा हुई ।। वह पतिको प्यारी न लगी इस कारण वन चली आई ।।१३।। कभी उसने बहुतसी गऊओंको चराते हुए वहां शार्दूल, बाराह, वनभैंसा और हाथी ।।१४।। देखे जिन्हें देखतेही दुःखी हो डरकर मूर्छित हो गिर पडी । फिर उठकर प्यासके मारी बडे भारी वनमें घूमने लगी ।।१५।। वहां उस रानीने एक ऐसा अपूर्व सर देखा जो सैंकडों चकोर, चक्र, कारंड और भौंरोंसे आकुल हो रहा था । खिलेहुए उत्पल पद्म, कल्हार और कुमुद उसकी निराली शोभाको और भी बढा रहे थे । वह उस सुहावनेसरके किनार पहुँची वहां उसने उसका उत्तम पानी पिया ।।१६।। ।।१७।। वहां उस रानीने बहुतसी अप्सराएं उमा पार्वतीका पूजन करते देखीं । जब उनसे पूछा तब उन्होंने रानीको बताया कि, ।।१८।। हम यह शिवामुष्टिव्रत कर रही हैं । यह स्त्रियोंको सब संपत्ति करनेवाला है । इस कारण हे पतिव्रते ! तूभी इसे कर ।।१९।। राजपत्नी बोली कि,उसका विधान और फल क्या है ? यह मुझे बता दीजिए । वे बोली कि, श्रावण सोमवार को ।।२०।। यह व्रत प्रारंभ करे । पांच वर्षतक शिवपूजन करे । यह सुनकर संयमित चित्तवाली राजपत्नीने उस व्रतको ग्रहण कर लिया ।।२१।। चारों सोमवारोंमें पहिले सोमवारको तो फल और धानसे पूजे ।।२२।। तण्डुल गोधूम तिल और मूंगोंसे दूसरे सोमवारोंमें पूजे । हे भामिनी ! धानोंका ढेड मूट्ठी प्रमाण समझ ।।२३।। नारिकेल, मातुलिंग, रंभा, कर्कटी इन चारों फलोंका क्रमसे चारों सोमवारोंमें समर्पण करे ।।२४।। श्रद्धाके साथ बहुतसे पुष्प गन्ध, धूप, दीप, और अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे पूजे ।।२५।। हार्दिक भक्तिसे पतिके साथ कथा सुने । हे भामिनि ! जो जिस कामको चाहता है वह उसे मिल जाता है ।।२६।। रानीने उन अप्सराओंसे व्रत पा भक्ति-भावसे शिवकी पूजा की, व्रत किया । इसके प्रभावसे वह पतिकी अत्यन्त प्यारी होगई ।।२७।। इस कारण हे देवि ! इस अद्भुत व्रतको श्रावणके चारों सोमवारोंमें स्त्रियोंको अवश्यही करना चाहिये ।।२८।। देवी

बोली कि, हे सुरेश्वर ! शिवामुष्टि व्रतका माहात्म्य सुना दीजिए । मैं व्रतकी पूर्तिके लिए भक्तिभावके साथ सुनना चाहती हूं।।२९।। महादेवजी बोले कि, उद्यापन भी इस व्रतराजका सुनाता हूं जिसके किएसे व्रतसंपूर्ण होजाता है ।।३०।। पांचवें वर्षमें उद्यापन करे, प्रातःकाल स्नान गरके संकल्प करे ।।३१।। चार स्तंभवाला चारद्वारका कलाके स्तंभोंसे मंडित घंटा और चामर लगा पल्लव आदिकोंसे सुशोभित ।।३२।।चन्दन अगरु और कपूरसे लिपा हुआ मंडप बनावे । बीचमें पञ्चरंगा वितान बांधे ।।३३।। उसके बीचमें शिवलिंग स्थापित करके गिरिजापतिका पूजन करना चाहिये, नारिकेल और तंडुल चांदीके हों ।।३४।। सोनेके बन मातुलिंग रंभाफल और कर्कटीसहित गोधूम तिल और मूंग हों ।।३५।। हे प्रिये ! इन धान और इन फलोंसे हे देवि ! इन मंत्रोंसे पूजे । पांच मुखवाले शूलधारी शान्त शिवके लिये नमस्कार है, नन्दी भृगी महाकाल आदि गणोंसहित शंभूके लिये सदा नमस्कार है । पीछे शक्तिके अनुसार वस्त्र अलंकार और भूषणोंसे तुष्ट करे, ब्राह्मणभोजन करावे ।।३६।। ।।३७।। दूसरे ब्राह्मणोंको भी परम भक्तिके साथ सावधानीसे बहुतसी दक्षिणाएं शिवकी तुष्टिके लिये दे ।।३८।। पार्वतीशका उद्देश लेकर यह सब निरालस होकर करे। पति पुत्र जन और भाईयोंके साथ भोजन करे ।।३९।। जो स्त्री इस तरह इस सुन्दर व्रतराजको करती है उसे निश्चयही सात जन्मतक पूरा सौभाग्य रहता है ।।४०।। दे देवि ! तेरे आगे मैंने यह उत्तम व्रत कह दिया है । इसके अनुष्ठान मात्रसे कोटि यज्ञका फल होता है ।। ४१ ।। क्योंकि, ऋषियोंने ऐसाही फल बताया है । जो कोई इस पापनाशक शुभ कथाको भक्तिभावके साथ सुनते हैं उन्हें भी यहां पुण्य मिलता है इसमें सन्देह नहीं है ।।४२।। श्रीभविष्य पुराणका कहा हुआ श्रीगौरीशंकरके संवादका शिवामुष्टिव्रत पूरा हुआ ।।

अथ हस्तिगौरीव्रतम्

सूत उवाच।। कुन्त्यां वनातुपेतायां हस्तिनापुरमुत्तमम् ।। मानितायां नरेन्द्रेण तनयैः पञ्चभिः सह ।। १ ।। तस्याः कुशलमन्वेष्टुमाजगाम स माधवः ।। अभिनन्द्य सुखासीनं देवदेवं जनार्दनम् ।। २ ।। उवाच कुन्ती सानन्दा सप्रश्रयमिदं वचः ।। कुन्त्युवाच ।। धन्यास्मि कृतकृत्यास्मि सनाथास्मि परन्तप ।। ३ ।। अहं सम्भाविता यस्मात्त्वया यदुकुलेश्वर ।। यदि मे सुप्रसन्नोऽसि तदाऽऽचक्ष्व व्रतं प्रभो ।। ४ ।। यद्विधानात्सुखं राज्यं प्राप्नुयां तनयैः सह ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कुन्ति ते कथयिष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।। ५ ।। यत्कृत्वा सुखसन्तानधनधान्यसमन्विता ।। विधूतदुष्कृता पुण्या सपुत्रा राज्यमाप्स्यसि ।। ६ ।। हस्तिगौरीव्रतं भद्रे कुरुष्व स्वस्थमानसा ।। यत्कृत्वा भक्तिभावेन लभते वाञ्छितं फलम् ।। ७ ।। कुन्त्युवाच ।। यदुक्तं ते व्रतं नाथ विधानं तस्य कीदृशम् ।। केन पूर्वं कृतं वीर तन्मे ब्रूहि जनार्दन ।। ८ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। कैलास-शिखरे पूर्वं हस्तसंस्थे दिवाकरे ।। प्रसुप्ता तु दिवा गौरी स्वप्ने शम्भुं ददर्श ह ।। ९ ।। अर्धदेहं वृषार्धेन अर्धचन्द्रकलान्वितम् ।। प्रबुद्धा सा तदा गौरी शिवसन्निधिमागमत् ।। १० ।। प्रणम्य देवदेवेशमिदमाह शुचिस्मिता ।। देव खण्डितदेहस्त्वं स्वप्न दृष्टो मया प्रभो ।। ११ ।। किमिदं तन्ममाचक्ष्व तप्यते मानसं मम ।। ईश्वर उवाच ।। देवि पूर्वं निषिद्धोऽपि हस्तऋक्षगते रवौ ।। १२ ।। स्वापो दिवा स विहितो दृष्टं तस्य फलं त्वया ।। शृणु देवि त्वया येन

१ सहितमिति शेष ।

खण्डितोऽहं विलोकितः ।। १३ ।। यदारब्धं व्रतं देवि ममाराधनकाम्यया ।। अपूर्णं तत्त्वया त्यक्तं मम नापि समर्पितम् ।। १४ ।। अपूर्णव्रतदोषेण दृष्टोऽहं तादृशस्त्वया ।। तत्कुरुष्वाधुना देवि हस्तिगौरीव्रतं शुभे ।।१५।। येनापूर्णव्रता नारी सम्पूर्णव्रततामियात् ।। लभते सर्वसम्पत्तिं पुत्रपौत्रसुखानि च ।। १६ ।। देव्युवाच ।। उपदिष्टं त्वया नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् ।। आरम्भोऽस्य कदा कार्यः को विधिः कस्य पूजनम् ।। १७ ।। ईश्वर उवाच ।। यस्मिन्नहनि हस्तर्क्षे उदयं प्राप्नुते रविः ।। तस्मिन्कुर्यात्प्रयत्नेन सौवर्णं कुञ्जरोत्तमम् ।। १८ ।। काञ्चनी प्रतिमा गौर्या हेरम्बस्य हरस्य च ।। तस्योपरि निधातव्या सर्वालंकारभूषिता।। १९ ।। अन्वहं काञ्चनैः पुष्पैः पूज्या मुक्ताफलैः शुभैः ।। नैवेद्यैश्चन्दनैश्चैव शृणुयात्प्रत्यहं कथाम् ।। २० ।। दिने चतुर्दशे प्राप्ते सुस्नाता शुचिमानसा ।। शुक्लवस्त्रधरा दान्ता भानवेऽर्घ्यं निवेद्य च ।। २१ ।। पूजागृहे सुसंलिप्ते स्थापयेत् प्रतिमां शुभाम् ।। स्वर्णभाजनयुग्मं च पक्वान्नैः पाचितैः शुभैः ।। २२।। त्रयोदशभिराढ्यं च वायनार्थं प्रकल्पयेत् ।। फलमूलानि चान्यानि शुभानि समुपाहरेत् ।। २३ ।। पूजयेत्स्वर्णकुसुमैः पुष्पैश्चान्यैः सुगन्धिभिः ।। देवीं चन्दनपुष्पैश्च तथा पत्राक्षतैः शुभैः ।। २४ ।। ध्यायेच्च हृदये गौरीं हरहेरंबसंयुताम् ।। शुभैस्त्रयोदशमितैः पक्वान्नैः पूरितं तु यत् ।। २५ ।। स्वर्णभाजनयुग्मं तत्पतिवत्न्यै समर्पयेत् ।। दक्षिणां च ततो दत्त्वा नत्वा देवीं विसर्जयेत् ।।२६।। व्रतं समाचरेदेवं यावद्वर्षं त्रयोदश ।। स्वर्णभाजनयुग्मं च प्रतिवर्षं विसर्जयेत् ।।२७।। ततश्चतुर्दशे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ।। शम्भुहेरंबसहिता गौरी हैमी गजस्थिता ।। २८ ।। पूर्वोक्तविधिनापूज्या वासराणि त्रयोदश ।। चतुर्दशदिने प्राप्ते संयता प्रातरुत्थिता ।।२९।। कृतोपवासनियमा सुस्नाता शुद्धवेश्मनि ।। स्थापयित्वा ततो देवी नक्तं कुर्यात्ततोऽर्चनम् ।। ३० ।। षड्विंशतिश्च पात्राणि पूर्वोक्तानि विधानतः ।। पूर्वोक्तैरेव पक्वान्नैर्विन्यसेच्च पृथक् पृथक् ।। ३१ ।। अन्यानि फलमूलानि पक्वान्नानि च कल्पयेत् ।। धूपदीपाक्षतैः पुष्पैश्चन्दनैर्वरवाससा ।। ३२ ।। भक्त्यासमर्चयेद्देवीं ततः पात्राणि तानि तु ।। प्रदद्यात्पतिवत्नीभ्यः प्रतिमां च सदक्षिणाम् ।।३३।। सुवृत्ताय सुशीलाय विप्राय प्रतिपादयेत् ।। स्वयं कथं पूजयामीति मा त्वं चित्ते व्यथां कुरु ।। ३४ ।। अनादिव्रतमेतद्धि नात्र कार्या विचारणा ।। देव्युवाच ।। सौवर्णप्रतिमाहस्तिपात्रपुष्पाणि कल्पितुम् ।।३५।। यस्या न शक्तिः सा नारी कथं कुर्याद्व्रतं विभो ।। ईश्वर उवाच।। अशक्तौ मृद्गजःकार्यः प्रतिमा चापि मृन्मयी ।। ३६ ।। पात्राणि वैणवान्येव पुष्पाणि ऋतुजानि च[2] ।। अक्षतैस्तण्डुलैश्चैव श्रद्धया

---

१ दद्यात् । २ कार्याणीति शेषः ।

फलमाप्यते ।। ३७ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। ततश्चक्रे व्रतं गौरी ह्यलभद्वाञ्छितं फलम् ।। पूर्णव्रताच सा जाता भाग्यसौभाग्यसंयुता ।।३८।। त्वमप्येतद्व्रतं कुन्ति कुरु श्रद्धासमन्विता ।। श्रुत्वा कृष्णवचः कुन्ती भृशं चिन्तातुराभवत् ।। ३९ ।। असमर्था करिष्यामि व्रतमेतत्कथं महत् ।।गान्धारी चापि तच्छ्रुत्वा व्रतं कर्तुं मनो दधे ।। ४० ।। साभिमानाऽऽदिशत्पुत्रानाहर्तुं मृदमुत्तमाम् ।। तस्याः शतेन पुत्राणामानीता शुभमृत्तिका ।। ४१ ।। कृत्वा वारणगां गौरीं सपुत्रां सशिवां तथा ।। व्रतं त्वरितमारेभे तन्निशम्य विषादिनी ।। ४२ ।। कुन्ती वाक्यमुवाचेदं गान्धारी पुण्यकारिणी ।। यस्याः पुत्रशतं शक्तं शासने वर्तते सदा ।। ४३ ।। मम पञ्चसुतास्तेऽपि न शक्ताः क्वापि कर्मणि ।। श्रुत्वा तदर्जुनः प्राह मा मार्तविमना भव ।। ४४ ।। किं मृत्प्रतिमया कार्यं त्वरया समुपाहरे ।। साक्षादिह हरं गौरीमैरावतमिभाननम् ।। ४५ ।। कृत्वा तत्पूजनं मातः सम्यक् फलमवाप्स्यसि ।। इत्युक्त्वा त्वरितं पार्थो गङ्गातीरं समाहितः ।। ४६ ।। तत्र तुष्टाव गौरीशं सूक्तैः श्रुति समीरितैः ।। तस्य तुष्टोऽभवच्छम्भुः [1]समयाचद्वरं ततः ।। ४७ ।। अर्जुन उवाच ।। देवदेव गजासीनो गौरीहेरम्बसंयुतः ।। गृहाण पूजामागत्य मम मातुगृहे विभो ।। ४८ ।। तथेत्युक्त्वा गृहं तस्य तद्विधो हर आगतः ।। साष्टाङ्गं प्रणता कुन्ती गौरीपूजा मथाकरोत् ।। ४९ ।। उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्यादिभिरुत्तमैः ।। तुष्टा च भक्तिभावेन सा गौरी सा ततोऽब्रवीत् ।। ५० ।। कुन्ति ते परितुष्टास्मि वरं वरय सुव्रते ।। कुन्त्युवाच ।। देहि मे सर्वसंपत्ति सर्वसौख्यं सदोत्सवम् ।। ५१ ।। प्रयच्छ मम पुत्राणां सदा राज्यमनामयम् ।। ममास्त्वव्याहता भक्तिस्त्वयि जन्मनि जन्मनि ।। ५२ ।। व्रतमेतत्तु यः कुर्यात्तव लोकमवाप्स्यति ।। न दारिद्रं न वैधव्यं न शोको नापि दुष्कृतम् ।। ५३ ।। न कृच्छ्रं नापि चापत्तिः कदाचित्संभविष्यति ।। तथेत्युक्त्वा ततो गौरी सगजान्तरिधीयत ।।५४।। एतद्व्रतं सकलदुःखविनाशदक्षं सौभाग्यराज्यफलसाधनमाचरन्ति ।। या योषितः सुखम नन्तमिहोपभुज्य गौरी समीपमुपयान्ति हि देहनाशे ।। ५५ ।। इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे हस्ति[2]गौरीव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।। अथ हस्तिगौरीपूजा—देशकालौ संकीर्त्य मम इह जन्मनिजन्मान्तरे चाखण्डसौभाग्यप्राप्तये पुत्रपौत्रराज्यकामनया हस्तिगौरीव्रताङ्गत्वेन विहितं हेरम्बशम्भुसहितगौरीपूजनं करिष्ये तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं स्वस्तिवाचनं च करिष्ये इति संकल्पः ।। हस्तिगौरीं सदा वन्दे हृदये भक्तवत्सलाम् ।। शिवाङ्गार्धस्थितामेकदन्तपुत्रेण शोभिताम् ।। ध्यायामि ।। आगच्छ भो हस्तिगौरि ऐरावत गजस्थिते ।। शंभुना च गणेशेन पार्षदैः स्वसखीगणैः ।। आवाहनम् ।। आसने स्वर्ण

१ अर्जुन इतिशेष : ।२ इदमेव गजगौरीव्रतत्वेन लोके प्रसिद्धम् ।

रत्नालये सर्वशोभासमन्विते ।। उपविश्य जगन्मातः प्रसादाभिमुखी भव ।।आसनम् ।। इदं गङ्गाजलं सम्यक् सुवर्णकलशे स्थितम् ।। पाद्यार्थं ते प्रयच्छामि क्षालयामि पदाम्बुजे ।। पाद्यम् ।। गन्धपुष्पाक्षतारक्तपुष्पतोयसमन्वितम् ।। स्वर्णाङ्गि स्वर्णपात्रस्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। अर्घ्यम् ।। कर्पूरैलामृगमदैः सुवासैरुपशोभितम् ।। आचम्यतां महादेवि शिरं विमलं जलम् ।। आचमनम् ।। नदीनदसमुद्भूतं पवित्रं निर्मलं जलम् ।।स्नानार्थं ते प्रयच्छामि प्रसीद जगदम्बिके ।। स्नानम् ।। पयो दधि घृतं चैव माक्षिकं शर्करायुतम् ।। पञ्चामृतं स्नानार्थमर्पये भक्तवत्सले ।। पञ्चामृतस्नानम् ।। मन्दाकिन्याः समानीतं हेमाम्भोरुहवासितम् ।। स्नानार्थं जलमानीतं गृहाण जगदम्बिके ।। शुद्धोदकस्नानम् ।। कौशेयं वसनं दिव्यं कंचुक्या च समन्वितम् ।। उपवस्त्रेण संयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ।। वस्त्रम् ।। यज्ञोपवीतम् ।। चन्दनं च महद्दिव्यं कुंकुमेन समन्वितम् ।। विलेपनं मया दत्तं गृहाण वरदा भव ।। चन्दनम् ।। कज्जलं चैव सिन्दूरं हरिद्राकुंकुमानि च ।। भक्त्यार्पितानि जे गौरि [1]सौभाग्यानि गृहाण भो ।। सौभाग्य द्रव्याणि।। नानाविधानि हृद्यानि सुगन्धीनि हरप्रिये ।। गृहाण सुमनांसीशे प्रसादाभिमुखी भव ।। पुष्पाणि ।। धूपं मनोहरं दिव्यं सुगन्धं देवताप्रियम् ।। दशाङ्गसहितं देवि मया दत्तं गृहाण भो ।। धूपम् ।। तमोहरं सर्वलोक चक्षुःसम्बोधकं सदा ।। दीपं गृहाण मातस्त्वमपराधशतापहे ।। दीपम् ।। नानाविधानि भक्ष्याणि व्यञ्जनानि हरप्रिये ।। गृहाण देवि नैवेद्यं सुखदं सर्वदेहिनाम् ।। नैवेद्यम् ।। गङ्गोदकं समानीतं मयाचमनहेतवे ।। तेनाचम्य महादेवि वरदा भव चण्डिके ।। आचम० । करोद्वर्तनम् ।। रम्भाफलं दाडिमं च मातुलिङ्गं च खर्जुरम् ।। नारिकेरं च जम्बीरं फलान्येतानि गृह्यताम् ।। फलानि ।। पूगीफलमिति ताम्बूलम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। नीराजयामि देवेशि कर्पूराद्यैश्च दीपकैः ।। हरहेरंबसंयुक्ता वरदा भव शोभने ।। नीराजनम् ।। यानिकानि च पा० ।। प्रदक्षिणाः ।। नानाविधानि पुष्पाणि बिल्वपत्रयुतानि च ।। दूर्वाङ्कुरैः संयुतानि ह्यञ्जलिस्था निगृह्यताम् ।। मन्त्रपुष्पम् ।। अपराधस० ।। नमस्कारः ।। यस्य स्मृत्येति प्रार्थना ।। उपायमि० ।। वायनम् ।। इति श्रीभविष्ये पुराणे हस्तिगौरीपूजाविधिः समाप्तः ।।

हस्तिगौरीव्रत—कुन्ती वनसे जब उत्तम हस्तिनापुर आगई तया पांचों पुत्रोंके साथ राजाने उसका मान किया ।।१।। तब उसकी कुशल पूछनेके लिये कृष्ण द्वारिकासे आये कुन्तीने अभिनन्दन किया । जब देवदेव जनार्दन सुख पूर्वक बैठ गये तब कुन्ती आनन्दमें आकर कुछ पूछने लगी कि, हे परंतप ! आज मैं धन्य हूं सनाथ हूं और कृतकृत्य होगई हूं ।।२।।३।। क्योंकि, हे यदुकुलेश्वर ! आपने मेरेपर कृपा की यदि

१ सौभाग्यदानीत्यर्थः ।

मुझपर पूरे प्रसन्न हूं तो कोई व्रत सुनावें ।।४।। जिसके कियेसे में पुत्रोंके साथ राज भोगूं ।श्रीकृष्ण बोले कि, हे कुन्ति ! में एक श्रेष्ठ व्रत कहता हूं ।।५।। जिसके कियेसे सुख सन्तान धन और धान्य होता है तथा उसीसे दुष्कृत और पापोंका निराकरण करके पुत्रोंके साथ राजके सुखका भोग करेगी ।।६।। स्वस्थचित्तके साथ हस्तिगौरीव्रत करिये जिसे कि, भक्तिभावके साथ करके वांछित फल मिल जाता है ।।७।। कुन्ती बोली कि, हे नाथ ! जो आपने व्रत कहा है उसका विधान क्या है ? हे वीर जनार्दन ! इसे पहिले किसने किया यह मुझे बतादे ।।८।। श्रीकृष्ण बोले कि, कैलासके शिखरपर पहिले जब कि, सूर्यनारायण हस्तनक्षत्र पर थे तब देवी गौरीने दिनमें सोती वार स्वप्न देखा ।।९।। कि, शिवजीका आधा देह वृषके अर्धभाग तथा आधादेह चन्द्रकलासे अन्वित था उसी समय पार्वतीकी नींद भंग हो गई और उठकर शिवजीके पास आई ।।१०।। देवदेव शिवजीको प्रणाम कर सुन्दर मन्दहास करते हुए कहा कि, हे देव ! मैंने आपको स्वप्नमें खंडित देहसे देखा है ।।११।। यह क्या बात है ? मुझे बता दीजिए क्योंकि, मेरा मन तप रहा है । शिव बोले कि, पहिलेही तुम्हें रोक दिया था कि, जब सूर्य्य हस्तनक्षत्रपर चला जाय ।।१२।। तो दिनमें न सोना ,उसका फल देख लिया यह उसीका फल है । हे देवि ! जिस कारण तुमने मुझे खंडित देखा वह मैं तुम्हें बताता हूं ।।१३।। जब तुमने मेरी आराधनाकी इच्छासे व्रत किया था वह तुमने बिनाही पूरा किये छोड दिया, मेरी भेंटभी नहीं किया ।।१४।। न पूरे कियेगये व्रतका जो दोष हुआ उसीसे आपने मुझे वैसा देखा—अब आप हस्तिगौरीव्रत करें ।।१५।। जिसके कियेसे अपूर्ण व्रत पूरा होजायगा तथा इसके कियेसे सब संपत्ति और बेटा नातियोंका सुख मिलता है ।।१६।। देवी बोली कि, हे नाथ । आपके उपदेश दिये हुए व्रतको करूंगी इसका कब आरंभ करे, इसको विधि क्या है, किसका पूजन होता है ? ।।१७।। शिव बोले कि, जिस दिन हस्त नक्षत्रपर सूर्य उदय हो उस दिन सोनेका उत्तम हाथी बनवावे । सोनेकी शिव पार्वती और गणेशकी सब अलंकारोंसे अलंकृत हुई प्रतिमाको उसके ऊपर विराजमान करे ।।१८।। १९।। प्रतिदिन सोनेके पुष्प मुक्ताफल नैवेद्य और चन्दनसे पूजे, प्रतिदिन कथा सुने ।।२०।। चौदहवें दिन पवित्र मनके साथ स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहिन शान्तिभावके साथ सूर्य्यको अर्घ्य दे ।।२१।। लिपे हुए पूजाघरमें प्रतिमाको विराजमान करे, दोनों सोनेके वर्तन शुभ पकाये हुए तरह तरहके पक्वान्नोंसे भरकर वायनेके लिये रख तथा और भी शुभ मूल फल लाकर रखे ।।२२।।२३।। सोनेके फूल तथा अनेक तरहके सुगन्धित फूलोंसे एवं शुभ चन्दन पत्र और अक्षतोंसे देवीका पूजन करे ।।२४।। हर और हेरंबके साथ गौरीका ध्यान करे, शुभ तरह तरहके पक्वान्नोंसे भरे हुए जो दोनों सोनेके पात्र थे उन्हें सुहागिन स्त्रीको दे दे, पीछे दक्षिणा देकर देवीका विर्जन करदे ।।२५।।२६।। इस तरह तेरह वर्ष इस व्रतको करे तथा प्रतिवर्ष सोनेके दोनों बर्तन देता चला जाय ।।२७।। उद्यापन—तो इसके पीछे चौदहवें वर्ष करना चाहिए, शिव और गणेशजीसहित गौरीकी स्वर्णमूर्ति सोनेके हाथीपर विराजमान करे ।।२८।। पहिली कही हुई रीतिसे तेरह दिनतक पूजन करे, इन दिनोंमें पूरे संयमके साथ रहे, पीछे सुबह ही उठकर ।।२९।। उपवासके नियमोंको करके स्नान करे, पीछे शुद्ध घरमें देवीकी स्थापना करके रातको देवीका पूजन करे ।।३०।। छब्बीस सोनेके पहिले जैसे पात्र तरह तरहके पक्वान्नोंसें भरकर अलग अलग रख दे।।३१।। दूसरे पके हुए फल मूल रखे । धूप, दीप, अक्षत, पुष्प, चन्दन और अच्छे कपडोंसे ।।३२।। भक्तिके साथ देवीका पूजन करे । पीछे उन पात्रोंको सुहागिन स्त्रियोंको दे दे, तथा दक्षिणासहित उस प्रतिमाको ।।३३।। सुवृत्तवाले सुशील ब्राह्मणके लिए दे दे । यदि तेरे मनमें यह बात हो कि, अपनी मूर्तिको कैसे पूजूं इस बातकी तो चिन्ता ही मत करना । क्योंकि, यह व्रत अनादि है । यह सुनकर देवी पूछने लगी कि, जिसकी शक्ति प्रतिमा हाथी पात्र और पुष्प ये सब सोनेके बनानेकी शक्ति न हो तो वह स्त्री इस व्रतको कैसे करे ? यह सुन शिवजी बोले कि, यदि शक्ति न हो तो मिट्टीके ही हाथी और प्रतिमा बनाले।।३४।।३६।। वांसके पात्र और ऋतुके पुष्प हों, अक्षत और तण्डुलोंद्वारा श्रद्धासे सब फल पाजाता है ।।३७।।श्रीकृष्ण बोले कि, इसके पीछे गौरीने यह व्रतकिया उसे इसके कियेसे उत्तम लाभ मिला, उसका व्रतपूरा होगया भाग्य और सौभाग्यसे युक्त होगई ।।३८।। हे कुन्ति ! तू भी इस व्रतको श्रद्धाके साथ कर । कृष्णजीके ये वचन सुनकर कुन्ती एकदम

चिन्तासे व्याकुल होगई ।।३९।। और बोली कि, मैं तो असमर्थ हूं इस बडे भारी व्रतको कैसे करूंगी ? वहां गान्धारी भी सुन रही थी । उसने भी इस व्रतको सुनकर करनेका विचार किया ।।४०।। उसने अभिमानके साथ अपने बेटोंको उत्तम मिट्टी लानेके लिए कह दिया, उसके सौ बेटे थे, अच्छी सुन्दर मिट्टी ले आये ।।४१।। मिट्टीका हाथी बना उसपर गणेश और शिवजीसहित शिवाको विराजमान किया । झट व्रत प्रारंभ करदिया। यह सुन कुन्तीको बड़ा भारी विषाद हुआ ।।४२।। कुन्ती बोली कि, गान्धारी पुण्यात्मा है, उसके सौ पुत्र सबाही उसके हुक्ममें रहते हैं ।।४३।। मेरे पांच बेटे हैं । वे भी किसीकाम लायक नहीं हैं, माके ऐसे वचन सुनकर अर्जुन बोला कि, ए मा ! उदास क्यों होती है ? ।।४४।। मिट्टीकी प्रतिमाका क्या करेगी आप अपने पूजनका सामान तयार करें, साक्षात् हरगौरी गणेश और ऐरावत हाथीको तेरे घर ही बुलाता हूं ।।४५।। उनका पूजन करके अच्छी तरह फल पाजायगी यह कहकर अर्जुन गंगा किनारे आया ।।४६।। श्रुतिके कहे शिव सूक्तोंसे शिवजीको प्रसन्न करने लगा, शिवजी प्रसन्न हुए उसने उनसे वर मांगा कि,।।४७।। हे देवदेव ! आप गणेश गौरी समेत हाथीपर चढकर मेरे घरपर आ मेरी माताकी पूजा ग्रहण करें ।।४८।। उसके इतने वर मांगनेपर शिवजी वैसेही उसके घर चले आये, कुन्तीने साष्टावङ्ग प्रणामकरके गौरीकी पूजा की ।।४९।। सोलहों उपचारोंसे तथा उत्तम नैवेद्योंसे गौरीको पूजकर भक्तिभावसे स्तुति की । पीछे भवानी कुन्तीसे बोली कि ।।५०।। हे कुन्ति ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हुई हूं, हे सुव्रते ! वर मांग । कुन्ति बोली कि, हे देवि ! मुझे सब संपत्ति सर्व सौख्य और सदा उत्सव दे ।।५१।। मेरे पुत्रोंको दुख रहित राज्य दे, जो सदा रहे, मेरी तो आपमें हर जन्ममें निरन्तर भक्ति हो ।।५२।। जो कोई आपके इस व्रतको करे वह आपके लोकको पाजाय। दारिद्रय, वैधव्य, शोक, और दुष्कृत ।।५३।। कष्ट और अति आफत कभी भी न हों । गौरीने कहा कि, अच्छा ऐसा ही होगा, पीछे गौरी देवी गज समेत अन्तर्धान हो गई ।।५४।। सब दुखोंके नाश करनेमें पूर्ण समर्थ तथा सौभाग्य और राज्यरूपी फलके साधन इस व्रतको जो कोई स्त्री करती है वह यहां अनन्तसुखोंको भोगकर शरीरके अन्तमें गौरीके समीप चली जाती है ।।५५।। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ हस्ति गौरीव्रत उद्यापनसहितपूरा हुआ ।। हस्तिगौरीपूजा—देश काल कहकर मेरे इस जन्म और दुसरे जन्मोंमें अखण्ड सौभाग्यको प्राप्तिके लिए तथा पुत्र पौत्र और राज्यकी कामनासे हस्तिगौरीव्रतके अंगरूपसे कहे गये गणेश और शिवसहित गौरीका पूजन मैं करूंगी पूजनके अंग होनेके कारण गणपतिपूजन और स्वस्तिवाचन भी करूंगी ऐसा संकल्प करे । मैं हृदयमें सदा हस्तिगौरीको वन्दना करती हूं । शिवके अर्धाङ्गमें स्थित तथा एक दांतके पुत्र गणेशसे सुशोभित रहती है । मैं हस्तिगौरीका ध्यान करती हूं इससे ध्यान; हे हस्ति गौरि ! शंभु गणेश पार्षद और सखीजनोंके साथ ऐरावत हाथीपर बैठी हुई आजा मैं ऐसी हस्ति गौरीका आवाहन करती हूं इससे आवाहन; सब शोभाओंसहित सोने और रत्नोंसे सुशोभित आसन पर हे जगत्की मात ! विराजमान होकर, कृपाकर इससे आसन; 'इदं गंगाजलम्' इससे पाद्य; 'गन्धपुष्पाक्षता' इससे अर्घ्य; 'कर्पूरैला' इससे आचमन; 'नन्दीनदस०' इससे स्नान; 'पयोदधि०; पञ्चामृतस्नान' 'मन्दाकिन्याः समानीतम्' शुद्धपानीसे स्नान, 'कौशेयं वसनं' ससे वस्त्र, यज्ञोपवीत; 'चन्दनं च' इससे चन्दन; 'कज्जलं' इससे सौभाग्यद्रव्य; 'नानाविधानि' इससे पुष्प; 'धूप मनोहरं' इससे धूप; 'तमोहरं' इससे दीप; 'नानाविधानि' इससे नैवेद्य, 'गंगोदकम्' आचमन; करोद्वर्तन; 'रंभाफलम्' इससे फल; 'पूगीफलम्; इससे ताम्बूल; 'हिरण्यगर्भ' इससे दक्षिणा; 'नीराजयामि' इससे नीराजन; 'यानि कानि च पापानि' इससे प्रदक्षिणा; 'नानाविधानि' इससे मन्त्रपुष्प; 'अपराधस०' इससे नमस्कार 'यस्य स्मृत्या' इससे प्रार्थना समर्पण करे । 'उपायनमि,' इससे वायना दे । यह श्रीभविष्यपुराणकी कही हस्तिगौरीकी पूजाविधि पूरी हुई ।।

अथ कूष्माण्डीव्रतम्

युधिष्ठिर उवाच ।। कृष्ण कृष्ण महाभाग ब्रह्मरुद्रादिवन्दिता ।। व्रत-धर्मास्त्वया प्रोक्ताः श्रुतास्ते सकला मया ।। १ ।। इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्रतमेकं कृपानिधे ।। कृतेन येन पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ।। २ ।। सन्ततिर्वर्धते नित्यं सौभाग्यं च धनादिकम् ।। अल्पायासं महापुण्यं सर्वकामसमृद्धिदम् ।। ३ ।। कथय-स्वेन्दिराकान्त कृपा यदि ममोपरि ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। साधु पृष्टं महाराज त्वया कुरुकुलोद्भव ।।४।। वच्मि सर्वं विधानेन यद्व्रतं जगतो हितम् ।। व्रतस्थानां महा-पुण्यं कूष्माण्डयाख्यमनुत्तमम् ।। ५ ।। तच्छृणुष्व महाभाग स्त्रीणांचापि सुखो-दयम्।।सर्वसंपत्करं राजन् पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।।६।। नारदेन यदाख्यातं चन्द्रसेनाय भूपते ।। आर्यावर्ते पुरा कश्चिच्चन्द्रसेनो महीमतिः ।। ७ ।। नारदं परिपप्रच्छ पुत्रपौत्रपदं व्रतम् ।। चन्द्रसेन उवाच ।। देवर्षे सर्वधर्मज्ञ सर्वलोकनमस्कृत ।। ८ ।। त्वत्समो नास्ति लोकेषु हितवक्ता परो नृणाम् ।। अद्य मद्भाग्ययोगेन संजातं दर्शनं तव ।। ९ ।। पृच्छाम्येकमिदानीं त्वामात्म श्रेयस्करं परम् ।। दानं धर्मं व्रतं वापि वद सत्पुत्रदायकम्।। १० ।। इदं राज्यं धनं वापि विना पुत्रेण मे प्रभो ।। निष्फलं मुनिशार्दूल कृपया सफलं कुरु ।। ११ ।। कृष्ण उवाच ।। इति तद्वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः ।। चन्द्रसेनमुवाचेदं व्रतं गोप्यं सुरैरपि ।। १२ ।। नारद उवाच ।। चन्द्रसेन महाभाग सुरुच्या प्रियया सह ।। व्रतं कुरु मया प्रोक्तं कूष्मांडयाः सर्व-सिद्धिदम् ।। १३ ।। कृतेन तेन राजेन्द्र भविष्यन्ति महाबलाः ।। सत्पुत्राः पर-धर्मज्ञा वीर्यवन्तो बहुश्रुताः ।। १४ ।। आयुष्मन्तोऽतिकुशला राज्यपालनतत्परः ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। तच्छ्रुत्वा नारदेनोक्तं चन्द्रसेनोऽतिधार्मिकः ।। १५ ।। व्रतं चकार कूष्माण्डयाः पुत्राणां प्राप्तये किल ।। अष्टौ जाताः सुतास्तस्य दिक्पाल-समतेजसः ।। १६ ।। सुरूपः सुमुखः शान्तः सुप्रसादोऽथ सोमकः ।। चन्द्रकेतुः सदानन्दः सुतन्तुश्च यथाक्रमात् ।। १७ ।। पुत्रैस्तैः सह धर्मात्मा सुरुच्या भार्यया सह ।। सन्तोषं परमं प्राप देवब्राह्मणपूजकः ।। १८ ।। कूष्माण्डीव्रतमाहात्म्याद्य-त्पुरा मनसीप्सितम् ।। तत्सर्वं प्राप्य राजेन्द्रः कृतकृत्यो बभूव ह ।। १९ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। त्वमपीदं व्रतं राजन्समाचर यथाविधि ।। द्रौपद्या सह धर्मज्ञ सर्वान्का-मानवाप्स्यसि ।। २० ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कर्तव्यं तु कदा कृष्ण विधिं तस्य वदस्व मे ।। कस्मिन्मासे तिथौ कस्यां रोपणीयाथवा भवेत् ।। २१ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। वैशाखस्यासिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप ।। शुचौ देशे स्थलं शोध्य कूष्माण्डीं रोपयेदथ ।। २२ ।। षण्मासं पूजयेन्नित्यं षण्मंत्रैर्नामभिः सह ।। ब्रह्मणा निर्मितासि त्वं सावित्र्या प्रतिपालिता ।। ईप्सितं मम देवि त्वं देहि सौभाग्यदे नमः

।। २३ ।। सौभाग्यदायै०।।आषाढे पूजयिष्ये त्वां मातः सर्वसुखाय हि।। आशां कुरुष्व सफलां सर्वकामप्रदे नमः ।। २४ ।। सर्वकामदायै०।। श्रावणे पूजयिष्यामि भक्तविघ्नविनाशिनि ।। कूष्माण्डीं बहुबीजाढ्यां पुत्रदे त्वां नमोऽस्तु ते ।। २५ ।। पुत्रदायै० ।। भद्रे भाद्रपदे शुभ्रे भद्रपीठोपरि स्थिते ।। पूजयिष्यामि मातस्त्वां धनदायै नमोनमः ।। २६ ।। धनदायै नमः ।। आश्विने पूजयिष्यामि बहुबीजप्रपूरिते ।। कूष्माण्डीनामसंयुक्ते फलदे त्वां नमोनमः ।। २७ ।। कूष्माण्ड्यै० कार्तिके पूजयिष्यामि सफलां सकलां शुभाम् ।। सुखदे शुभदे मातर्मोक्षदे त्वां नमोनमः ।। २८ ।। मोक्षदायै नमः ।। षण्मासं पूजयेदेवं कूष्माण्डीं धर्मनन्दन ।। उद्यापनं ततः कुर्याच्चतुर्दश्यां नराधिप ।। २९ ।। कूष्माण्डीं परितः कुर्यान्मण्डपं तोरणान्वितम् ।। चतुर्द्वारसमायुक्तं पताकाभिरलंकृतम् ।। ३० ।। तन्मूल[1] वेदिकां चैव चतुरस्रां तु कारयेत् ।। ततः कृत्वा स्वर्णमयीं कूष्माण्डीं सफलां शुभाम् ।। ३१ ।। सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तां पुष्पमालाभिरावृताम् ।। वेदिकायां स्थापयेत्तां वस्त्रालंकारभूषिताम् ।। ३२।। तदग्रे सर्वतोभद्रं नानारत्नैः प्रकल्पयेत् ।। तस्मिन् संपूजयद्भूप सर्वतोभद्रदेवताः ।। ३३ ।। तत्र[2] संस्थाप्य कलशं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।। अव्रणं फलसंयुक्तं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।। ३४ ।। जलप्रपूरितं गन्धपुष्पपल्लवसंयुतम् ।। तथैव स्थापयेद्ब्रह्मसावित्र्योः प्रतिमे शुभे ।। ३५ ।। सुवर्णनिर्मिते ब्रह्मजज्ञानमिति मंत्रतः।। प्रणोदेवीति मंत्रेण पूजयेत्ते तथैव च।। ३६।। षोडशैरुपचारैश्च कूष्मांडीं मूलमंत्रतः ।। कूष्माण्डयै कामदायिन्यै ब्रह्माण्यै ते नमोनमः ।। ३७ ।। नमोऽस्तु शिवरूपिण्यै सफलं कुरु मे व्रतम् ।। एवं कृत्वा महाराज पूजनं सर्वकामदम् ।। ३८ ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।। कथां श्रुत्वा विधानेन यथोक्तां राजसत्तम ।। ३९ ।। ततः प्रभाते पूर्णायां जुहुयात्तिलसर्पिषा ।। पूर्वोक्ताभ्यां च मंत्राभ्यामष्टोत्तरशताहुतीः ।। ४० ।। होमशेषं समाप्याथ आचार्यं पूजयेन्नृप ।। तोषयेच्च सपत्नीकं वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ।। ४१ ।। षड्विप्राश्चाथ संपूज्य दक्षिणावस्त्रभूषणैः ।। ततो दानं च कुर्वीत कूष्माण्ड्या दक्षिणायुतम् ।। ४२ ।। दानमंत्रः कूष्माण्डीं बहुबीजाढ्यां वस्त्रालंकारभूषिताम् ।। दक्षिणाकलशोपेतां हैमकूष्माण्डिसंयुताम् ।। ।। ४३ ।। सावित्रीब्राह्मसंप्रीत्यं गृहाण द्विजसत्तम ।। ततः पीठेन सह गां वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।। ४४ ।। व्रतसम्पूर्तिसिद्ध्यर्थमाचार्याय निवेदयेत् ।। ततश्च शक्त्या विप्रेन्द्रान् भोजयेद्भक्तिसंयुतः ।। ।। ४५ ।। दक्षिणां च ततो दद्याद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।। एवंकृते महाराज व्रते सर्व-

१ कूष्मांडीमूले ।२ सर्वतोभद्रे ।

सुखप्रदे ।। ईप्सितांल्लभते कामान्नात्र कार्या विचारणा ।। ४६ ।। इति श्रीपद्म-पुराणे कूष्माण्डीव्रतं सोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

कूष्माण्डीव्रत—लिखते हैं । युधिष्ठिरजी बोले कि, हे ब्रह्मा रुद्र आदिसे वन्दित महाभाग कृष्ण ! जो आपने व्रत धर्म कहे हैं वे मैंने सब सुन लिये हैं ।।१।। इस समय एक ऐसा व्रत सुनना चाहता हूं हे कृपानिधे जिसके कियेसे पाप उसी समय नष्ट हो जायें ।।२।। इससे सदाही सौभाग्य धन और सन्ततियाँ बढती हैं। थोडा परिश्रम और बड़ा भारी पुण्य है । सभी काम और समृद्धियोंका देनेवाला है ।।३।। हे लक्ष्मीके प्यारे ! यदि मुझपर कृपा हो तो । श्रीकृष्णजी बोले कि, कुरुवंशमें होनेवाले श्रेष्ठ राजन् ! तुमने अच्छा पूछा ।।४।। मैं उस व्रतको विधानके साथ कहता हूं । जिससे संसारका हित है जो व्रत करें उनको महापुण्य है वो श्रेष्ठ कूष्मांडीव्रत है ।।५।। हे महाराज ! सुनो वह स्त्रियोंके भी सुखका उदय है वो सब संपत्तियोंका करनेवाला तथा पुत्र पौत्रोंका बढानेवाला है ।।६।। नारदजीने इसे चन्द्रसेन राजाको कहा था। पहिले आर्य्यावर्त देशमें एक चन्द्रसेन नामके राजा थे ।।७।। उसने पुत्र पौत्रोंका देनेवाला एक व्रत नारदजीसे पूछा था चन्द्रसेन बोला कि, सब लोकोंसे वन्दित सभी धर्मोंके जाननेवाले हे देवर्षे नारद ! ।।८।। लोकोंमें आपके बराबर कोई वक्ता नहीं है । आज मेरे भाग्यसे आपके दर्शन हो गये ।।९।। मैं अपने परम कल्याणका करनेवाला एक धर्म पूछता हूं । कोई अच्छे पुत्रका दाता दान धर्म वा व्रत जो हो सो कहिये ।।१०।। हे मुनिशार्दूल ! कृपा करके इसे सफल करिये ।।११।। कृष्ण बोले कि, उनके ये वचन सुनकर मुनिसत्तम नारद चन्द्रसेनको ऐसा व्रत बताने लगे जिसे कि, देवताभी नहीं जानते थे ।।२५।। नारदजी बोले कि, हे महाभाग चन्द्रसेन ! तुम अपनी प्यारी पत्नी सुरुचिके साथ मेरे कहे हुए सभी सिद्धियोंके देनहारे कूष्मांडीके व्रतको करो ।।१३।। उसके कियेसे हे राजेन्द्र ! परम बलवान् धर्मज्ञ अनेकों शास्त्रोंके ज्ञाता पुत्र मिलेंगे ।।१४।। वे बडी उमरवाले कुशल और प्रजापालनमें तत्पर होंगे । श्रीकृष्णजी बोले कि, धार्मिक चन्द्रसेनने नारदजीके ऐसे वचन सुनकर ।।१५।। पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये कूष्मांडीका व्रत किया । इस व्रतके प्रभावसे उसके आठ पुत्र दिगपालकोंसे प्रतापी हुए ।।१६।। उनका सुरूप, सुमुख, शान्त, सुप्रसाद, सोमक, चन्द्रकेतु, सदानन्द और सुतन्तु नाम था ।।१७।। धर्मात्मा राजा उन पुत्रों और सुरुचि स्त्रीके साथ देव और ब्राह्मणोंकी सेवा करता हुआ परम सन्तोष को प्राप्त हुआ ।।१८।। इस कुष्मांडीके व्रतकेप्रभावसे वह सब मिलगया जिसे कि, वह चाहता था। इससे वो कृत्यकृत्य हो गया ।।१९।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे धर्मज्ञ ! हे राजन् ! तुम भी इस व्रतको विधिपूर्वक द्रौपतीके साथ करो कामोको पाजाओगे ।।२०।। युधिष्ठिरजी बोले कि, हे कृष्ण ! इस व्रतको कब करना चाहिये ? इसकी विधि मुझे कृपा करके बतादीजिये । किस मासकी किस तिथिमें कूष्मांडीका रोपण करना चाहिये श्रीकृष्णजी बोले कि, वैशाख शुक्ला चतुदर्शीका दिन पवित्र देशमें स्थल शुद्ध करके कूष्मांडी लगावे, रोज छः मासतक छमंत्र और नामोंसे पूजे । हे कूष्मांडि ! तुझे ब्रह्माने बनाया तथा सावित्रिने पाला है मेरे चाहे हुएको दे दे । हे सौभाग्योंके देनेवाली ! तेरे लिए नमस्कार है ।।२२।।२३।। सौभाग्योंके देनेवालीके लिए नमस्कार है । हे मात ! आषाढ मासमें सब सुखोंके लिए तुझे पूजूंगा, मेरी आशा सफल कर, हे सब कामोंके देनेवाली । तेरे लिए नमस्कार है ।।२४।। सब कामोंके देनेवालीके लिए नमस्कार है । हे भक्तोंके विघ्नोंको नष्ट करनेवाली ! श्रावणमें बहुतसे बीजोंवाली तुम कूष्माण्डीको पजूंगा, हे पुत्रोंके देनेवाली ! तेरे लिए नमस्कार है ।।२५।। पुत्रोंके देनेवालीके लिए नमस्कार है । हे भद्रपीठपर विराजी हुई भद्रे मात ! मैं तेरा भाद्रपदमें पूजन करती हूं, तुझ धनदाके लिए वारंवार नमस्कार है ।।२६।। धनदाके लिए नमस्कार । है बहुतसे बीजोंसे भरी हुई कूष्माण्डीनामसे संयुक्त तुझे आश्विनमें पूजती हूं, हे फलोंके देनेवाली ! तेरे लिए नमस्कार है ।।२७।। कूष्मांडीके लिए नमस्कार । हे सुख शुभ और मोक्षके देनेवाली मात ! तेरे लिए वारंवार नमस्कार है, कार्तिकमें सकल शुभ सफल तुझे पूजूंगी ।।२८।। मोक्षकी देनेवालीके लिए नमस्कार । हे धर्मवन्दन ! इस तरह मासतक कूष्माण्डीका पूजन करे ।। उद्यापन—इसके पीछे चतुर्दशीके दिन करे ।।२९।।

कूष्माण्डीके चारों ओर मंडप बनावे, तोरण और वन्दनवार लटकावे चार द्वार बनावे पताकाओंसे अलंकृत करे ।।३०।। उसके मूलमें चौकूटी वेदी बनावे, पीछे फल समेत सोनेकी कूष्माडी बनावे ।।३१।। उसे सौभाग्य द्रव्य और पुष्पमालाओंसे ढकदे, वस्त्र और अलंकारोंसे भूषित करके उसे वेदीपर स्थापित कर दे ।।३२।। उसके अनेक रंगोंका सर्वतोभद्र बनावे, उसमें उसके सब देवताओंका पूजन करे ।।३३।। उसपर कलश स्थापित करे, उसे दो वस्त्रोंसे वेष्टित कर दे, उसपर विधिपूर्वक कलश स्थापित करे उसमें फल और पञ्चरत्न डाले ।।३४।। जलसे भरे गन्ध, पुष्प, पल्लव डाले, उसपर ब्रह्माजी और सावित्रिकी सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान कर ।।३५।। "ब्रह्मजज्ञानम्" इस मंत्रसे ब्रह्माकी तथा "प्रणोदेवी" इस मंत्रसे सावित्रिकी पूजाकरे ।।३६।। मूलमंत्रसे सोलहो उपचारोंसे कूष्मांडीका पूजन करे "तुझ कामदायिनी ब्रह्माणी कुष्माण्डीके लिये वारंवार नमस्कार है । मेरे व्रतको सफल कर" हे महाराज ! इस तरह सब कामोंके करनेवाले पूजनको करके ।।३७।।३८।। रातको मांगलिक गाने बजानोंके साथ जागरण करे । हे राजसत्तम ! विधानके साथ कथा सुने ।।३९।। प्रातःकाल तिल घीसे पहिले कहे मन्त्रोंसे एकसौ आठ आहुति दे ।।४०।। होमशेषकी समाप्ति करके आचार्य्यका पूजन करे, वस्त्र और अलंकारोंसे समत्नीक आचार्य्यको पूर्ण प्रसन्न करे ।।४१।। दक्षिणा वस्त्र और भूषणोंसे छः ब्राह्मणोंका पूजन करे पीछे दक्षिणाके साथ कूष्माण्डीका दान कर दे ।।४२।। दानमन्त्रबहुतसे बीजोंसे भरीहुई तथा वस्त्र और अलंकारोंसे भूषित सोनेकी कूष्माण्डी और दक्षिणा तथा तथा कलशके साथ ब्रह्मा और सावित्रीकी प्रसन्नताके लिए देता हूं, हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! इसे ग्रहण कर, इसके बाद सिंहासनके साथ वस्त्र और अलंकारसे सुशोभित गऊको ।।४३।।४४।। व्रतकी पूर्तिके लिए आचार्य्यको भेंट कर दे । शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सुयोग्य ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।।४५।। पीछे व्रतकी पूर्तिके लिए दक्षिणा दे, हे महाराज, ! इस तरह सब सुखोंके देनेवाले इस व्रतके पूरा कर लेनेपर मनोरथोंको पाजाता है, इसमें विचार न करना चाहिये ।।४६।। यह श्रीपद्मपुराणका कहाहुआ कूष्माण्डीव्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ।।

अथ कर्कटीव्रतम्

ऋषय ऊचुः ।। कथितानि त्वया साधो श्रेयांसि सुबहून्यपि ।। आख्यानानि विचित्राणि चतुर्वर्गफलान्यपि ।। १ ।। पुण्यानि च व्रतान्यादौ तत्फलान्यपि भागशः।। स्वर्गसाधनभूतानि निःश्रेयसकराण्यपि ।। २ ।। तत्र यद्भवता प्रोक्तं योषिद्वैधव्यनाशनम् ।।पुत्रपौत्रादिजनकं भर्तुरारोग्यदायकम् ।। ३ ।। कामभोगप्रदं चान्यद्व्रतमस्तीति सूतज ।। तद्भवान्व्रतकं पुण्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ।। ४। ।येन चीर्णेन सर्वज्ञ न वैधव्यमवाप्नुयात् ।। ईप्सितांल्लभते कामान् भर्तुरायुश्च शाश्वतम् ।। ५ ।। एवं निशम्य मुनिवर्यवचो विशेषप्रश्नप्रहृष्टवदनः स तु सूतसूनुः ।। आनन्दयन्मुनिसदस्सुवचोमृतोदैः प्रोवाच शौनकमिदं बहुदीक्षिताग्र्यम् ।। ६ ।। सूत उवाच ।। साधुप्रश्नो महाभागा भवद्भिर्यं उदाहृतः ।। तद्वक्ष्ये च यथाज्ञानं श्रुतं वो जनकाद्ध्रुवम् ।। ७ ।। योषिन्मूलो हि संसारः पुंसः श्रेयोविधायकः ।। योषितोपि महाभागास्तारयन्ति निजं पतिम् ।। ८ ।। आपद्भ्यो नरकेभ्यश्च पातिव्रत्यपरायणाः ।। सीमन्तिन्यो धारयन्ति भुवनत्रयमण्डलम् ।। ९ ।। पातिव्रत्येन धर्मेण दमेन नियमेन च ।। भानुर्बिभेति सततं करैः स्प्रष्टुं पतिव्रताम् ।। १० ।। सा चेद्भर्तृयुता साध्वी तारयेद्भुवनत्रयम् ।। दैवादपि वियुक्ता स्यादशुचिस्तु सर्वैव

हि ।। ११ ।। अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यः प्राप्ता वैधव्यमङ्गना ।। जलहीना यथा गङ्गा प्राणहीना यथातनुः ।। १२ ।। दर्भहीना यथा सन्ध्या धर्महीना यथा क्रिया ।। सत्यहीना यथा वाणी नृपहीना यथा पुरी ।। १३ ।। भर्तृहीना तथा नारी भाति लोके न कुत्रचित् ।। तस्माद्वैधव्यशान्त्यर्थं यत्नः कार्यो हि योषिता ।। १४ ।। न प्रयत्नैर्बहुविधैर्वैधव्यं यान्ति योषितः ।। नानापुण्यैर्व्रतैर्वापि भूरिदानैरहर्निशम् ।। ।। १५ ।। तस्मादेकं व्रतं विप्रां योषिद्वैधव्यनाशनम् ।। कथयामीष्टफलदं संवादं शिवयोः शुभम् ।। १६ ।। पुराऽवन्तीपुरे ह्यासीद्धरिदीक्षितसंज्ञकः ।। वेदवेदाङ्गसम्पन्नः कौशिको द्विजसत्तमः ।। १७ ।। यज्वा विदिततत्त्वार्थो ज्ञानपोतो भवार्णवे ।। तस्य भार्या गुणवती सती सर्वगुणान्विता ।। १८ ।। पति शुश्रूषणरता तत्पदाम्बुनिषेविणी ।। भर्तुः सकाशात्प्राप्ता सा कन्या रत्नानि सप्त वै ।। १९ ।। वत्सरे वत्सरे सा वै वरिष्ठा सर्वयोषिताम् ।। ताः कन्या रूपसम्पन्ना ववृधुः पितृवेश्मनि ।। २० ।। इलामृता शुचिः शान्ता गुणज्ञा मलिनी ध्रुवा ।। रूपलावण्यसम्पन्नाः कन्यास्ताश्चारुहासिनीः ।। २१ ।। दृष्ट्वा ननन्दतुस्तौ हि दम्पती परया मुदा ।। ददौ पिता मुनीन्द्राय इलां सत्याय धीमते ।। २२ ।। विवाहमकरोद्यत्नात्प्रीत्या परमया युतः ।। जाते परिणये सोऽथ सत्यः पितृगृहे वसन् ।। २३ ।। कालधर्ममुपेयाय शीतज्वरप्रपीडितः ।। दिनानि पञ्च षट् चैवं भुक्त्वा विषयजं सुखम् ।। २४ ।। मृतेऽथ जामातरि सोऽपि दीक्षितो वत्सेति चुक्रोश सुदुःखपीडितः । हाहेति किं ते भगवन्विचेष्टितं दिनेश दुःखं मयि पातितं त्वया ।। २५ ।। विलपन्निति विप्राग्र्यो जामातुः समकारयत् ।। और्ध्वदेहिकसंस्कारं ददौ चापि तिलाञ्जलिम् ।। २६ ।। इला वैधव्यसम्पन्ना पन्नगीव श्वसन्मुखी ।। मूर्च्छा प्रपेदे सा बाला बालवैधव्यपीडिता ।। २७ ।। षडेवं चापि ताः सर्वा वैधव्यं प्रतिपेदिरे ।। मातुः शोककराश्चैव वैधव्येन प्रपीडिताः ।। २८ ।। पाणिपीडनवेलायां चरमाया द्विजोत्तमः ।। चिन्तादुःखार्णवे मग्नः कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।। २९ ।। यस्य यस्याथ निलये ह्यगमद्धरिदीक्षितः ।। ध्रुवां दातुं न शक्तोऽभूत्तां वरीतुं भयात्पुमान् ।। ३० ।। वयोवृद्धिं ध्रुवायाश्च वीक्ष्य चिन्तामवाप सः ।। ध्रुवामादाय सुश्रोणीं गतोऽरण्यं महद्ध्रुवम् ।। ३१ ।। रुतानि पक्षिणां यस्मिन्न सन्ति न च मानवाः ।। न भवन्त्यर्ककिरणा यस्मिन् शक्ताः प्रकाशितुम् ।। ३२ ।। अनेकमृगसंकीर्णं शार्दूलमृगसेवितम् ।। अन्यैश्च विविधैः सत्त्वैः सेव्यमानमहर्निशम् ।। ३३ ।। तत्रोपलं महानीलमपश्यच्च द्विजाग्रणीः ।। अस्मै कन्यां प्रदास्यामि संकल्पमकरोत्तदा ।। ३४ ।। चिन्तयित्वा मनस्येवमश्मने प्रददौ सुताम् ।। वेदोक्तेनैव विधिना पाणिग्राहमकारयत् ।। ३५ ।। त्वं धर्मचारिणी चास्य सुते भव भयं त्यज ।। भर्तृबुद्ध्या भज-

स्वैनमुपलं शुभमाप्स्यसि ।। ३६ ।। इति दत्त्वा सुतां तस्मै स द्विजोऽगात्स्वमन्दिरम् ।। कन्दमूलफलानां च मिषेणैव जगाम सः ।। ३७ ।। गते पितरि सा बाला दुःखशोकाकुलाभवत् ।। कुररीव वने सा तु चुक्रोश भृशदुःखिता ।। ३८ ।। किं कर्तव्यमिति तदा विचार्य च महोपले ।। दधार च दृढं भावं नन्वसौ मे पतिर्ध्रुवम् ।। ३९ ।। ननु देवाः प्रयच्छन्ति शिलाप्रतिकृतिस्थिताः ।। वाञ्छितार्थान्मनुष्याणां भावो हि फलदायकः ।। ४० ।। एतस्मिन्नन्तरे [1]कालो जगर्जोच्चैः पुरन्दरः ।। पपात चाशनिस्तस्मिन्महत्युपलमस्तके ।। ४१ ।। स भिन्नो वज्रघातेन चूर्णीभूतस्ततः क्षणात् ।। दृष्ट्वा ध्रुवापि तत्सर्वं पुनर्निन्दां चकार सा ।। ४२ ।। एतस्मिन्नेव काले तु पार्वत्या त्रिपुरान्तकः ।। युक्तो यदृच्छयागच्छव्द्योमयानेन मन्दरम् ।। ४३ ।। तां दृष्टवा रुदतीं बालां पार्वती प्राह शङ्करम् ।। पार्वत्युवाच ।। भगवन् कथमद्य स्त्री रोदितीयं कृपानिधे ।। ४४ ।। दीना दीनतरा नित्यं तत्सर्वं मे वद प्रभो ।। इति देव्या वचः श्रुत्वा प्रोवाच गिरिशः शिवाम् ।। ४५ ।। महादेव उवाच ।। देवि कौशिकदायादो हरिदीक्षितसंज्ञकः ।। तस्येयमात्मजा साध्वी वैधव्यमगमद्ध्रुवम् ।। ४६ ।। एवमस्याश्च सोदर्यः षडतीव मनोहराः ।। वैधव्यमापुः सर्वास्ताः पाणिग्रहणमात्रतः ।। ४७ ।। पित्रा दत्ता मुनीन्द्राणां पुत्रेभ्यो विपदांगताः ।। आसां ललाटगा रेखा दैवी वैधव्यदायिनी ।। ४८ ।। तां निराकर्तुकामोऽयं प्रस्तराय समर्पयत् ।। सोऽपि पञ्चत्वमापन्नो दैवी रेखा बलीयसी ।। ४९ ।। सर्वज्ञस्य वचः श्रुत्वा कृपाक्रान्ताब्रवीदुमा ।। पार्वत्युवाच ।। कर्मणा केन भगवन्वैधव्यं प्रापिताः सुताः ।। ५० ।। मुने रनुत्तमं ब्रूहि तत्पापं पूर्वजन्मजम् ।। कथं वा शुभजन्मासां भवेद्ध्रुवदनुग्रहात् ।। ५१ ।। गिरिजावचनं श्रुत्वा प्राह शम्भुर्यथोदितम् ।। पूर्वमेवं मुनेः पुत्र्यः सप्तासन् गुणशालिने ।। ५२ ।। पित्रा दत्ता मुनीन्द्राय मुनये विधिपूर्वकम् ।। मुनीन्द्रं प्राप्य भर्तारं सप्तासन् दुष्टचेतसः ।। ५३ ।। सापत्नभावाद्दुष्टास्ता नित्यं कलहतत्पराः ।। परस्परेर्ष्यया नित्यं भर्तुः सेवां न चक्रिरे ।। ५४ ।। स्वयं मिष्टान्नभोजिन्यो भर्तृद्वेषणतत्पराः ।। तेन तापेन संतप्तो गतोऽसौ स्वर्गमुत्तमम् ।। ५५ ।। सप्तापि च सपत्न्यस्ताः प्रत्यायाता यमालयम् ।। यामीश्च यातना भुक्त्वा दुःखिताः पुनरागताः ।। ५६ ।। इह जन्मनि कस्यापि कौशिकस्य सुताभवत् ।। रूपलावण्यसंपन्ना वैधव्यं प्रतिपेदिरे ।। ५७ ।। प्रलम्भितः पतिः पूर्वं तेन दोषेण वञ्चिताः ।। पतयो वञ्चयांचक्रुः कृत्वा वै पाणिपीडनम् ।। ५८ ।। इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा हिमाद्रितनयाब्रवीत् ।। पार्वत्युवाच ।। भवन्त्वेवंविधाः सर्वा भर्तृद्वेषणतत्पराः ।। ५९ ।। अस्मद्दृग्गोचरा चेयं

१ कालः कृष्णवर्णः पुरंदरो मेघः ।

नोपेक्ष्या करुणानिधे ।। एवमाकर्ण्य पार्वत्या वचनं त्रिपुरान्तकः ।। ६० ।। वैधव्य-भञ्जनं लोके कथयामास तद्व्रतम् ।। पुरन्ध्र्यो येन चीर्णेन वैधव्यं नाप्नुवन्ति हि ।। ६१ ।। शिव उवाच ।। उमे शृणुष्व व्रतकं योषिद्वैधव्यनाशनम् ।। तारणं सर्वपापानां योषितां च विशेषतः ।। ६२ ।। कर्कटीद्युमणौ कर्के फलं शीघ्रं भव-त्यतः ।। कर्कटी सफला ह्येषा वाञ्छितार्थप्रदायिनी ।। ६३ ।। तद्व्रतं तेऽभि-धास्यामि शृणु सुश्रोणि सादरम् ।। कर्कटीव्रतपुण्येन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।। ६४ ।। योषिद्वा पुरुषो वापि नात्र कार्या विचारणा ।। त्वमप्येतद्व्रतं सुभ्रु कुरुष्व मम सर्वदा ।। ६५ ।। कर्कटस्थे रवौ जाते श्रावणे मासि भामिनि ।। चन्द्र-वारे विशेषण स्त्रीभिः कार्यमिदं शुभम् ।। ६६ ।। प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा दन्तशुद्धिं विधाय च ।। कृत्वा च शतगण्डूषान् मुखदुर्गन्धिनाशने ।। ६७ ।। पञ्च-गव्यं गृहीत्वाथ व्रतसंकल्पमाचरेत् ।। आचार्यं वरयेत्प्राज्ञं शान्तं दान्तं कुटुम्बिनम् ।। ६८ ।। सर्वलक्षणसंपूर्णं वस्त्रैराभरणैस्तथा ।। मण्डपं कारयेत्पश्चाच्चतुर्द्वारं सतोरणम् ।। ६९ ।। तन्मध्ये भद्रपीठस्थां पूजयेदुमया सह ।। सौवर्णीं प्रतिमां शैवीं वृषभं रजतस्य च ।। ७० ।। कृत्वा च कर्कटीं यत्नात्सफलां काञ्चनीं शुभाम् ।। वस्त्रयुग्मेन संवेष्टच कुम्भोपरि निधाय च ।। ७१ ।। कल्पवल्लि महा-भागे सदा सौभाग्यदायिनि ।। प्रार्थयिष्ये व्रतादौ त्वां भर्तृश्रेयोऽभिवृद्धये ।। ७२ ।। इति संपूज्य तां तत्र कर्कटीं च शिवं तथा ।। उपचारैः षोडशभिर्भक्ति भावसमन्वितः ।। ७३ ।। नैवेद्यं सफलं दत्त्वा मत्वा तोषं च शोभने ।। एकादश-फलानां वै वायनं च प्रदापयेत् ।। ७४ ।। वेणुपात्रेण सहितं सताम्बूलं सदक्षिणम् ।। कर्कटीनाम या वल्ली विधात्रा निर्मिता पुरा ।। ७५ ।। मम तस्याः प्रदानेन सफ-लाश्च मनोरथाः ।। गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ।। ७६ ।। रात्रौ जागरणं कृत्वा सपत्नीको द्विजैः सह ।। प्रभाते विमले स्नात्वा प्रातः संध्यां विधाय च ।। ७७ ।। स्वशाखोक्तविधानेन होतव्यं कर्मसिद्धये ।। प्रधान पायसं सर्पिः सतिलं जुहुयाद्व्रती ।। ७८ ।। अष्टोत्तरसहस्रं तु शतमष्टोत्तरं तु वा ।। कद्रुद्राये-तिमंत्रेण श्रद्धया रुद्रपुष्टये ।। ७९ ।। गौरीर्मिमायेति तथा पार्वत्याः प्रीतये हुनेत् ।। होमकर्म समाप्याथ हुनेत्पूर्णाहुतिं तथा ।। ८० ।। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रा-लंकारभूषणैः ।। पयस्विनी सवत्सा गौर्वस्त्रालङ्कारभूषिता ।। ८१ ।। आचार्याय प्रदातव्या व्रतसंपूर्तिहेतवे ।। दश दानानि कुर्वीत शक्त्या वित्तानुसारतः ।। सव-स्त्रप्रतिमं कुम्भमाचार्याय निवेदयेत् ।। ८२ ।। दानमंत्र :– गृहाणेमां कर्कटीं त्वं द्विज स्वर्णेन निर्मिताम् ।। संपूर्णं मे व्रतं चास्तु दानेनास्याश्च शंकर ।। ८३ ।। इमं मंत्रं समुच्चार्य दद्यात्कर्कटिकां द्विजे ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चादुद्रसंख्यामितां-

स्तथा ।। ८४ ।। आशिषः प्रतिगृह्णीयाद्विजानां सुफलाप्तये ।। व्रतमेतद्वरं कान्ते भोगस्वर्गापवर्गदम् ।। ८५ ।। ध्रुवां कथय साध्वि त्वं व्रतं वैधव्यभञ्जनम् ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा विमानादवरुह्य च ।। ८६ ।। ध्रुवां सा कथयामास कृपां कृत्वा व्रतं शुभम् ।। स्वर्गं गता महेशानी ह्यनुकंप्य द्विजात्मजाम् ।। ८७ ।। ध्रुवापि च व्रतं चक्रे कान्तारे ऋषिमण्डले ।। तदैव दिव्यपुरुषः पाषाणादुत्थितः शुभः ।। ।। ८८ ।। सोपि द्विजः पूर्वपतिस्तस्या एव मृगीदृशः ।। वरयामास तां बालां तदद्भुतमिवाभवत् ।। ८९ ।। शापेन कस्यचित्सोऽपि पाषाणत्वमुपागतः ।। तौ दंपती बहून्वर्षान् भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।। ९० ।। पुत्रपौत्रसमृद्धिं च प्राप्तवन्तौ परं पदम् ।। सूत उवाच ।। एवं रहस्यं परमं कथितं वो मुनीन्द्रकाः ।।९१।। कथाश्रवणमात्रेण नारी सौभाग्यमाप्नुयात् ।। कर्तव्यं तु प्रयत्नेन चतुर्वर्णाभिरुत्तमम् ।। ९२ ।। इति श्रीस्कन्दपुराणे कर्कटीव्रतं सोद्यापनं संपूर्णम् ।। अथ कर्कटीपूजनम्।। तिथ्यादि संकीर्त्य मम अखण्डसौभाग्यप्राप्त्यर्थं पुत्रपौत्रादिसंतत्यै कर्कटीव्रताङ्गत्वेन उमासहित-शिव पूजनं कर्कटीपूजनं च करिष्ये ।। पञ्चवक्त्रं त्रिनयनमुमया सहितं शिवम् ।। शुद्धस्फटिकसंकाशं चिंतयेद्भक्तवत्सलम् ।। ध्यानम् ।। आवाहयामि देव त्वामस्मिन्स्थाने स्थिरो भव।। कर्कटीव्रतहेतोर्हि पार्वतीसहितः प्रभो ।। आवाहनम् ।। आसनं मणिसंयुक्तं चतुरस्रं समंततः ।। भक्त्या निवेदितं तुभ्यं गृहाण सुरसत्तम ।। आसनम् ।। देवदेव नमस्तेऽस्तु भक्तानामभयप्रद।। पाद्यं गृहाण देवेश पार्वतीसहितः प्रभो ।। पाद्यम् ।। गौरीवल्लभ देवेश त्रिपुरान्तक शङ्कर ।। भालनेत्र नमस्तेऽस्तु गृहाणार्घ्यं मम प्रभो ।। अर्घ्यम् ।। कांचने कलशे सुस्थं सुगंधं शीतलं जलम् ।। आचम्यतां महादेव पार्वत्या सहितः प्रभो ।। आचमनीयम् ।। पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करया युतम् ।। पंचामृतं ते स्नानार्थमर्पये भक्तवत्सल ।। पंचामृतस्नानम् ।। शुद्धोदकस्नानम् ।। गंगागोदावरीरेवासमुद्भूतं शिवं जलम् ।। स्नानार्थं ते मयानीतं गृहाण जगदीश्वर ।। स्नानम् ।। आचमनम् ।। चन्द्ररश्मिसमं शुभ्रं कार्पासेन विनिर्मितम् ।। देहसंरक्षणार्थाय वस्त्रं शंकर गृह्यताम् ।। वस्त्रम् ।। कार्पासतन्तुभिर्युक्तं विधात्रा निर्मितं पुरा ।। ब्राह्मण्यलक्षणं सूत्रमुपवीतं गृहाण भोः ।। उपवीतम् ।। श्रीखण्डं चन्दनं० ।। गन्धं०।। अक्षताश्च० ।। अक्षतान् ।। नानाविधानि पुष्पाणि बिल्वपत्रयुतानि च ।। पूजार्थं ते प्रयच्छापि गृहाण परमेश्वर ।। पुष्पाणि ।। वनस्पतिरसोद्भूतो० ।। धूपं० ।। साज्यं चेति दीपं०।। अन्नं चतुर्विधं स्वादुरसैः षड्भिः समन्वितम् ।। गृहाण पार्वतीकान्त कर्कटीसहितः प्रभो ।। नैवेद्यम् ।। उत्तरापोशनम् ।। करोद्वर्तनम् ।। इदं फलं महादेव कर्कटीसंभवं शुभम् ।। गृहाण वरदो भूत्वा पूजां मे सफलां कुरु ।। फलम् ।। पूगीफलम् ।। तांबू-

लम् ।। हिरण्यगर्भेति दक्षिणाम् ।। चक्षुर्दं सर्वलोकानान्तिमिरस्य निवारणम् सर्वं सौख्यकरं देव आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नीराजनम् ।। अशेषाघप्रशमन शितिकण्ठ नमोस्तु ते ।। मंत्रपुष्पं गृहाणेदमुमया सहितः प्रभो ।। मंत्रपुष्पम् ।। यानि कानि च पापानि० प्रदक्षिणा ।। नमस्ते देवदेवेश नमस्ते सुरवल्लभ।। व्रतसंपूर्तिकामश्च नमस्कारं करोम्यहम् ।। नमस्कारः ।। अपराधसहस्राणि० प्रार्थना ।। एवं शिवं संपूज्य कर्कटयै नम इति नाममंत्रेण कर्कटीं पूजयित्वा ततो वायनं दद्यात् ।। तद्यथा–कर्कटीव्रताङ्गविहितं ब्राह्मणाय वायनप्रदानमहं करिष्ये ।। ब्राह्मणं संपूज्यं ।। एकादशफलान्यद्धा कर्कटीसंभवानि भो ।। सतांबूलदक्षिणानि गृहाण द्विजसत्तम ।। वायनम् ।। विसर्जयामि शंभो त्वां कर्कटया उमया सह ।। पूजां च प्रतिगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम् ।। विसर्जनम् ।। इतिकर्कटीपूजा समाप्ता ।।

कर्कटीव्रत—ऋषि बोले कि, हे साधो ! आपने बहुतसे कल्याणकारी विचित्र आख्यान कहे तो कि, अर्थ, मोक्ष, काम, मोक्ष देनेवाले थे ।।१।। पुण्यव्रत और उनके फल भी विभाग करके समझाये जो कि, स्वर्गकी साधन तथा मोक्ष देनेवाले थे ।।२।। उसमें जो आपने कहा था कि, स्त्रियोंके वैधव्यको नष्ट करनेवाला तथा पुत्र पौत्र आदिको देनेवाला पतिको निरोग करनेवाला ।।३।। अनेक तहरके काम भोगोंको देनेवाला व्रत है अब आप उस पवित्र व्रतको पूरा सुना दें ।।४।। हे सर्वज्ञ ! जिसके किएसे वैधव्य नहीं मिलता, मन चाहे काम और पतिकी चिरायु मिलजाती है ।।५।। सूतजी मुनिवर्य्योंके ऐसे वचन सुनकर उनके प्रश्न विशेषसे एकदम प्रफुल्लित हो गये अमृतके समुद्र जैसे मीठे अपने वचनोंसे उन्हें आनंदित करते हुए अनेकों दीक्षितोंके अग्रगण्य ऋषि शौनकसे बोले कि, ।।६।। हे महाभागो ! आपने अच्छा प्रश्न किया । मैंने जैसा पितासे सुना है जैसा कि मैं जानता हूं वह आपको सुनाए देता हूं ।।७।। संसार स्त्रीके पीछेही है । पुरुषको श्रेयका करनेवाला है। सुयोग्य स्त्रियां अपने पतिको आपत्ति और नरकोंसे पार कर देती है। पातिव्रतमें तत्पर रहनेवाली सीमंतिनी तीनों भुवन मंडलोंको धारण करती हैं ।।८।।९।। पतिव्रत धर्म दम और नियमसे रहनेपर पतिव्रताको सूर्य्य भी किरणोसे छूनेमें डरता है ।।१०।। यदि वह पतिसे युक्त हो तो तीनोंलोकोंको पार करदे । यदि दैवगतिसे पतिसे वियुक्त हो जाय तो सदाही अपवित्र रहती है । सभी बुरे कर्मोंसे मिलकर स्त्रीको वैधव्य प्राप्त होता है । जलहीन गंगा, प्राणहीन शरीर, ।।११।।१२।। दर्भहीन संध्या, धर्महीन क्रिया, सत्यहीन वाणी, नृपहीन पुरी और पति विहीन स्त्री कभी अच्छी नहीं लगती । इस कारण वैधव्यकी शान्तिके लिये स्त्रियोंको प्रयत्न करना चाहिए ।।१३।।१४।। अनेकों प्रयत्न तथा रातदिनके पुण्य व्रत और दानोंसे स्त्रियोंका वैधव्य नष्ट नहीं होता ।।१५।। इस कारण हे विप्रो ! स्त्रियोंके वैधव्यका नष्ट करनेवाला एक व्रत कहतांहूं वह इष्ट फलका देनेवाला पार्वती शिवका शुभ संवाद है ।।१६।। पहिले अवन्तीपुरीमें एक कौशिक गोत्रीय वेद वेदाङ्गोंसे संपन्न हरिदीक्षित द्विज था ।।१७।। यह यज्ञके करनेवाला तथा सब तत्त्वोंका ज्ञाता था । संसार सागरके लिए तो ज्ञानकीही नौका था । सब गुणोंसे युक्त सती गुणवती नामकी उसकी स्त्री थी ।।१८।। वह पतिकी शुश्रूषामें रत तथा पतिकेही चरणोंका सेवन करनेवाली थी, उसने पतिसे सात कन्या रत्न पैदा किये । वह सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी, वे रूपसंपन्न कन्यायें पिताके घर पडने लगीं ।।१९।।२०।। इला, अमृता, शुचि. शान्ता, गुणाज्ञा, मालिनी और ध्रुवा ये उसकी कन्याओंके नाम थे । वे सब ही रम्य मन्दहासवाली एवं रूपलावण्यसे युक्त थीं ।।२१।। उन्हें देखकर मा बाप परम प्रसन्न होते थे, पिताने सत्यवादी परमबुद्धिमान मुनीन्द्र सत्यके लिये इला दे दी।।२२।।परम प्रसन्नताके साथ उनका विवाह करदिया, विबाह होनेके बाद सत्य पिताके घरपर

रहता हुआ ही ॥२३॥ शीतज्वरकी बीमारीसे मर गया, उसने कुल पांच छः दिन ही विषयका सुख भोगा था ॥२४॥ जमाईके मरजानेपर दीक्षित दुःखी होकर रोने लगा कि, हे ईश्वर ! तूने यह क्या किया ? हे दिनेश ! तूने यह क्या दुख मुझपर डाला ॥२५॥ हरि दीक्षितने रोते रोते जमाईका सब और्ध्वदेहिक संस्कार किया, तथा तिलांजलि दी ॥२६॥ वैधव्यको प्राप्त हुई इला साँपिनिकी तरह मुखसे गर्मश्वास ले रही थी वह बालवैधव्यके दुखसे मूर्च्छित हो गई ॥२७॥ इसी तरह उसकी छओं कन्याएँ विधवा हो गई । वह वैधव्यसे दुखी हुई माताको शोक पैदा करती हुई माताके घर ही रहती थीं ॥२८॥ सबसे छोटीके विवाहके समय चिन्ता और दुखके सागरमें डूबा रहनेके कारण कर्तव्य न समझ सका ॥२९॥ जिस जिसके घर हरिदिक्षित गया वहां वहां न तो वह देनेको समर्थ हुआ तथा न दूसरे व्याहनेको ही समर्थ हो सके ॥३०॥ ध्रुवाकी वयोवृद्धि देखकर उसे परम चिन्ता हुई वह एक दिन सुन्दरी ध्रुवाको साथ लेकर वन चल दिया ॥३१॥ न तो वहां पक्षी ही बोलते थे एवं न मनुष्य ही थे और तो क्या जहां सूर्य्यकी किरण भी प्रकाश नहीं कर सकती थी ॥३२॥ जो मृगोंसे संकीर्ण तथा शेरोंसे सेवित था दूसरे दूसरे भी सत्त्व उसमें रातदिन पडे रहते थे ॥३३॥ वहां उसने एक महानील उपल देख विचार किया कि, मैं इसको लडकी दूंगा ॥३४॥ यह विचारकर उसने वह लडकी उस पत्थरको व्याह दी तथा वेदकी विधिसे उसका विवाह भी कर दिया ॥३५॥ पीछे लडकीसे कहा कि, हे सुते ! तू इसकी धर्मचारिणी होजा, भय छोड तू इसे पतिबुद्धिसे भज, सभी कल्याणोंको पाजायगी ॥३६॥ इस तरह उस शिलाको पुत्री देकर ब्राह्मण कन्द मूल और फलोंके, बहाने घर चला आया ॥३७॥ पिताके चले जानेपर वह बालिका एकदम दुखी हो गई, वनमें दुखी होकर कुररीकी तरह रोने लगी ॥३८॥ में क्या करूं यह विचारकर उसने पत्थरपर भी दृढ भाव किया कि, यही मेरा पति है ॥३९॥ पत्थरकीमूर्ति बने हुए देव मनोरथोंको क्या पूरा नहीं करते ? करते हैं क्योंकि, भाव ही फलका देनेवाला है दूसरा कोई नहीं ॥४०॥ इसी समय काली घटाएं आकाशमें गर्जने लगीं बस शिलाके शिरपर बिजली गिरगई ॥४१॥ वह बिजली पडनेसे टूटगयी उसी समयचूर चूर हो गयी । ध्रुवा यह देखकर अपने भाग्यकी निन्दा करनेलगी उसी समय देवेच्छासे पार्वतीसहित महादेवजी आकाशयानसे मन्दराचल जा रहे थे ॥४२॥ ॥४३॥ उसे रोती देख पार्वती शिवजीसे बोली कि, हे भगवन् ! यह स्त्री इस समय क्यों रो रही है ? ॥४४॥ यह दीन एवं दीनोंकी भी दीन है यह मुझे बताइये । देवीके ये वचन सुन शिवजी पार्वतीजीसे बोले ॥४५॥ हे देवि ! एक कौशिक गोत्रिय हरिदीक्षित है, उसकी यह पतिव्रता पुत्री विधवा होगई है ॥४६॥ अत्यन्त सुन्दर इसकी बडी बहनें भी विवाह मात्र होते ही विधवा होगई हैं ॥४७॥ पिताने मुनीन्द्रोंके पुत्रोंको दीं, पर वे भी सभी विधवा होगईं इनके शिरमें वैधव्य देनेवाली दैवी रेखाएँ हैं ॥४८॥ उस रेखाको मिटानेके लिए यह पत्थरको व्याही थी, वह पत्थर भी मिट्टीमें मिल गया क्योंकि, दैवी रेखा बडी बलवती होती है ॥४९॥ सर्वज्ञके वचन सुनकर उमाकृपाके वशीभूत होकर बोली कि, हरिदीक्षितकी बेटियां कौनसे कर्मसे विधवा होगई ? ॥५०॥ हे शिव! मुनिपुत्रीके पहिले जन्मके पापोंको कहिये, आपकी कृपासे इनका शुभजन्म कैसे हो ? ॥५१॥ गिरिजाके वचन सुनकर शिवजी बोले कि, पहिले जन्ममें ये किसी सुयोग्य ब्राह्मणकी लडकियां थीं पिताने इन्हें एक गुणसंपन्न श्रेष्ठ मुनिको विधिपूर्वक व्याह दिया, उसको पतिके रूपमें पा इनके चित्त दुष्ट होगये ॥५२॥५३॥ आपसमें एक दूसरीको सौत समझकर लडने लगीं, रोज आपसकी ईर्ष्यामें लगी रहनेके कारण पतिकी सेवा न करसकीं ॥५४॥ स्वयं मिठाई उडाती थीं, पतिसे द्वेष करनेमें तत्पर रहती थीं, इस कारण पति तापसे सन्तप्त होकर वह मुनिराज स्वर्ग चला गया ॥५५॥ वे सातों सौतें भी मरकर यमलोक पहुँची, यमके दिये दुखोंको भोगकर दुखित हुई फिर यहां चली आई हैं ॥५६॥ इस जन्ममें भी वे कौशिककी पुत्रीबनी हैं रूप और लावण्यसे युक्त हैं, पर विधवा होती चली गई हैं ॥५७॥ इन्होंने पहिले पतिको ठगा था उस दोषसे ये भी ठगी गई हैं विवाह करके इनके पति इन्हें ठग गये हैं ॥५८॥ शिवजीके ऐसे वचन सुनकर गिरिजा बोली कि, ऐसी पतिके साथ द्वेष करनेमें तत्पर रहनेवाली भले ही विधवाएं हों ॥५९॥ पर यह हमारे सामने आई हुई हैं इस कारण उपेक्षाके योग्य नहीं है, शिवजीने पार्वतीजीके ऐसे

वचन सुनकर ॥६०॥ वैधव्यका नाश करनेवाला एक उत्तम व्रत कह डाला, पुरन्ध्री जिसके किएसे कभी विधवा नहीं होती ॥६१॥ हे उमे ! स्त्रियोंके वैधव्यको नष्ट करनेवाला तथा विशेष करके सब पापोंसे पार करनेवाला उत्तम व्रत सुन ॥६२॥ जब सूर्यदेव कर्कराशिपर आवें उस समय कर्कटी शीघ्र ही फल धारण करती है फल सहित कर्कटी सब मनोरथोंके पूरे करनेवाली है ॥६३॥ इस व्रतको कहता हूं आदरके साथ सुन, कर्कटी व्रतके पुण्यसे सब मनोरथोंको पाजायगें ॥६४॥ चाहें वे स्त्री पुरुष कोई भी क्यों न हों इसमें विचार करनेकी बात नहीं है, तुम भी इस व्रतको हमेशा किया करो ॥६५॥ श्रावण मासमें सूर्य्यके कर्कराशिपर होने पर सोमवारके दिन स्त्रियोंको यह व्रत करना चाहिये ॥६६॥ प्रातःकाल शुक्ल तिलोंसे स्नान करके दन्तशुद्धि करे, मुखकी दुर्गंधि मिटानेके लिए सौ कुल्ले करने चाहिए ॥६७॥ पञ्च गव्यको लेकर व्रतका संकल्प करे, आचार्य्यका वरण करे, वह प्राज्ञ; शान्त, दान्त, कुटुम्बी और ॥६८॥ सभी लक्षणोंसे संपूर्ण हो, उसे वस्त्र और आभरणोंसे पूजना चाहिये। चार द्वारका तोरणोंवाला मण्डप बनावे ॥६९॥ उसके बीच भद्र-पीठपर सोनेकी शिव पार्वती की प्रतिमा तथा चांदीके वृषभको विराजमान करे ॥७०॥ सोनेकी सफल कर्कटी बनाकर दो वस्त्रोंसे वेष्टित्त करे। फिर उसे कुंभपर रख दे ॥७१॥ हे महाभागे कल्पवल्लि ! हे सदाही सौभाग्यके देनेवाली ! मैं पतिके श्रेयकी वृद्धिके लिए व्रतके आदिमें तेरी प्रार्थना करती हूं ॥७२॥ इस प्रकार वहां कर्कटी और शिवको भक्तिभावके साथ सोलहों उपचारोंसे पूजे ॥७३॥ फलका नैवेद्य दे और तोष माने ग्यारह फलोंका वायना दे ॥७४॥ उसके साथ वेणुपात्र ताम्बूल और दक्षिणा दे "जो कर्कटी नामकी लता ब्रह्माजीने पहिले बनाई ॥७५॥ मेरे लिए उसका दान करनेसे सब मनोरथ सफल होजाते हैं," गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुराणोंके पठन आदिकोंसे ॥७६॥ रातमें जागरण करे। साथमें सपत्नीक ब्राह्मण हों, प्रातः स्नान सन्ध्या करे, अपनी शाखाके कहे हुए विधानके अनुसार कर्म सिद्धिके लिए हवन करे। पायस तो उसमें प्रधान हो घी और तिलोंको उसमें मिलाकर आहुति दे ॥७७॥७८॥ एक हजार आठ अथवा एकसौ आठ "कद्रुद्राय" इस मन्त्रसे रुद्रकी तुष्टिके लिए तथा ॥७९॥ "गौरीर्मिमाय "इस मन्त्रसे पार्वतीके प्रसन्नताके लिए हवन करे होमको समाप्त करके पूर्णाहुति दे ॥८०॥ वस्त्र अलंकार और आभूषणोंसे आचार्य्यका पूजन करे। उसे दुधारी बछडेवाली गाय वस्त्र और अलंकारोंसे भूषित करके दे ॥८१॥ क्यों कि, इसीसे व्रतकी पूर्ति होती है। शक्ति और धनके अनुसार दश दान करे वस्त्र और प्रतिमासहित कुंभ आचार्य्यको भेंट कर दे ॥८२॥ दानमन्त्र—हेद्विज ! इस सोनेकी बनी हुई कर्कटीको आप ग्रहण करें; हे शंकर ! इस दानसे मेरा व्रत संपूर्ण होजाय ॥८३॥ इस मन्त्रको बोलकर कर्कटी ब्राह्मणको दे दे, पीछे ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥८४॥ अच्छे फलकी प्राप्तिके लिए ब्राह्मणोंके आशीर्वाद ग्रहण करे, हे कान्ते ! यह व्रत श्रेष्ठ है भोग और अपवर्गका देनेवाला है ॥८५॥ इस वैधव्यनाशक व्रतको आप ध्रुवाको बतावें, शिवजीके ऐसे वचन सुनकर पार्वतीजी विमानसे उतरी ॥८६॥ तथा कृपा करके सब व्रत ध्रुवाको बता दिया, ब्राह्मणकी सुशीला कन्यापर कृपा करके पार्वतीजी स्वर्ग चली गई ॥८७॥ ध्रवाने वनमें ऋषिमण्डलमें उस व्रतको किया उसी समय उस पाषाणकी ढेरीसे दिव्य पुरुष प्रकट होगया ॥८८॥ वह भी ब्राह्मण था। उस मृगनयनीका पहिला पति था, उसे उसने वर लिया यह एक विचित्र बातकी होगई ॥८९॥ वह किसीके शापसे पत्थर हो गया था, वे दोनों स्त्री पुरुष बहुत दिनोंतक मन चाहे भोगोंको भोगकर ॥९०॥ यहां पुत्र पौत्र समृद्धि तथा अन्तमें परमपद पागये। सूतजी बोले कि, हे मुनीन्द्रो ! यह रहस्य मैंने आपको सुना दिया है ॥९१॥ इसकी कथा सुनने मात्रसे स्त्री सौभाग्य पाजाती है, चारों वर्णोंकी स्त्रियोंको इस व्रतको प्रयत्नके साथ करना चाहिये ॥९२॥ यह श्रीस्कन्दपुराणका कहाहुआ कर्कटीव्रत उद्यापनसहित पूरा हुआ ॥ कर्कटी-पूजन—तिथि मास आदिकोंको कहकर अखण्ड सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये तथा पुत्र पौत्र आदि संततिके लिये कर्कटीके व्रतके अंग होनेके कारण उमासहित शिव और कर्कटीका पूजन मैं करती हूं। 'पंचवक्त्रम्' इससे ध्यान; 'आवाहयामि' इससे आवाहन; 'आसनं मणिसंयुक्तम्' इससे आसन; 'देव देव नमस्ते' इससे पाद्य; 'गौरीवल्लभ' इससे अर्घ्यं; 'कांचन कलशे' इससे आचमनीय; पयोदधि' इससे पञ्चामृतस्नान; शुद्धोतक

स्नान; 'गंगा गोदावरी' स्नान; आचमन: 'चन्द्ररश्मिसमम्' वस्त्र; 'कार्पासतन्तुभि:' इससे उपवीत; 'श्रीखंडं चन्दनम् 'इससे गन्ध; 'अक्षताश्च इससे अक्षत; 'नानाविधानि' इससे पुष्प; 'वनस्पतिरसोद्भूत' इससे धूप; 'साज्यं च' इससे दीप' 'अन्नं चतुर्विधम्' इससे नैवेद्य; उत्तरापोशन; करोद्वर्तन; 'इदं फलम्' इससे फल; 'पूगीफलम्' इससे ताम्बूल 'हिरण्यगर्भ' इससे दक्षिणा; चक्षुर्दे सर्वलोकानाम् 'इससे नीराजन; 'अशेषाघ प्रशमन' इससे मंत्रपुष्प; यानि कानि च पापानि' इससे प्रदक्षिणा; 'नमस्ते देव देवेश' इससे नमस्कार; 'अपराधसहस्राणि' इससे प्रार्थना समर्पण करे इस तरह शिवको पूजकर 'कर्कंट्यै नम;' इस मंत्रसे कर्कटीकी पूजा करके पीछे वायना दे कि, कर्कटीव्रतके अंगरूपसे कहेगये वायनादानको मैं ब्राह्मणके लिये करुंगी यह संकल्प करे ब्राह्मणकी पूजे, हे ब्राह्मण ! ये ग्यारह फल कर्कटीसे पैदा हुए हैं, मैं उन्हें तांबूल और दक्षिणाके साथ तुझे देती हूं, हे द्विजसत्तम ! ग्रहण कर, इस मंत्रसे वायना दान करे ।। हे शंभो आपका उमा और कर्कटीके साथ विसर्जन करती हूं आप सब मेरी पूजा ग्रहण करके अपने मंदिर चले जायं, इससे विसर्जन करे । यह कर्कटीकी पूजा समाप्त हुई ।।

अथ विष्णुपंचकव्रतम्

सूत उवाच ।। द्वापरान्ते महाराजः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।। भ्रातृभिः सह धर्मात्मा द्रोणं भीष्मं तथा कुरून् ।। १ ।। पुत्रान्पौत्रांस्तथा भ्रातॄनन्यानपि महीपतीन् ।। राज्यस्य हेतवे हत्वा कुलक्षयमथाकरोत् ।। २ ।। हत्वा वंश्यान् कुरून् राजा पश्चात्तापेन तापितः ।। राजा कुरुमहीपालस्तत्पापक्षयकारणात् ।। ३ ।। चतुरङ्गबलोपेतो भ्रातृभिः परिवारितः ।। यत्र सम्यक् स्थितः कृष्णो द्वारवत्यां जगत्प्रभुः ।। ४ ।। स जगाम तदा तत्र प्रणम्य जगदीश्वरम् ।। कृष्णं तुष्टाव वचसा तेनापि प्रतिनन्दितः ।। ५ ।। पप्रच्छ कृष्णं वंश्यानां वधदोषप्रशान्तये ।। व्रतमेकं समाचक्ष्व येनायं प्रतिशाम्यति ।। ६ ।। कुलक्षयकृतं दोषं क्षीणं कर्तुं त्वमर्हसि ।। इति विज्ञापनं कृत्वा पश्चात्प्राह पुनर्नृपः ।।७।। युधिष्ठिर उवाच ।। यत्कृत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकपञ्चकात् ।। तद्व्रतं ब्रूहि गोविन्द यदि तुष्टोसि केशव ।। ८ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। साधुसाधु महाभाग श्रृणुष्वैकाग्रमानसः ।। येन संचीर्यमाणेन मुच्यते पञ्चपातकात् ।। ९ ।। तथा व्रतमिदं वक्ष्ये मम प्राणस्त्वमेव हि ।। निमित्तमात्रं भवता कुलक्षयः कृतो भुवि ।। १० ।। भाद्रस्य च सिते पक्षे द्वादश्यां श्रवणं यदा ।। तदारभ्य व्रतं कार्यं मार्गशीर्षेऽथवा नृप ।। ११ ।। एकादश्यामुपवसेत्प्रतिपक्षं च पर्वणि ।। श्रवणे च तथोपोष्य पूजयेद्गरुडध्वजम् ।। १२ ।। एवं वर्षं भवेद्यावत्तावत्संपूज्य केशवम् ।। उद्यापनं वत्सरान्ते कुर्वीत द्वादशीतिथौ ।। १३ ।। सौवर्णीः प्रतिमाः पञ्च कृत्वा विष्णोःस्वशक्तितः संस्थाप्य पञ्चकुम्भेषु सर्वतोभद्रमण्डले ।। १४ ।। तासां पूजां प्रकुर्वीत एभिर्नामपदैः पृथक् ।। जुहुयात्सघृतापूपान्देवेभ्यः श्रवणस्य च ।। १५ ।। पुरुषोत्तमः शार्ङ्गधन्वा तथैव गरुडध्वजः ।। गोवर्धनो ह्यनन्तश्च पुण्डरीकाक्ष एव च ।

१ आमीदितिशेषः। २ वक्ष्यमाणैः ।

।। १६ ।। तथा नित्यो वेदगर्भो यज्ञः पुरुष एव च ।। सुब्रह्मण्यो जयः शौरिरेताः श्रवणदेवताः ।। १७ ।। देवेभ्यः शुक्लैकादश्यां जुहूयाद्गुडपायसम् ।। केशवाद्यैर्द्वादशभिर्नामभिः श्रद्धया सुधीः ।। १८ ।। एताः सम्पूजयेच्छुक्लैकादश्यामधिदेवताः ।। पौर्णमास्याश्च देवेभ्यो जुहुयाद्घृतपायसम् ।। १९ ।। विधुःशशी शशाङ्कश्च चन्द्रः सीमस्तथोडुपः ।। मनोहरोमृतांशुश्च हिमांशुः पावनस्तथा ।। २० ।। निशाकरश्चन्द्रमाश्च पूर्णिमादेवताः क्रमात् ।। देवेभ्यः कृष्णैकादश्या हुनेत्पञ्चामृतोदनम् ।। २१ ।। संकर्षणादिनामानः कृष्णैकादशिदेवताः ।। अमावास्यादेवताभ्यो मुद्गौदनतिलाज्यकम् ।। २२ ।। जुहुयान्नृपशार्दूल अमावास्यास्तु देवताः ।। महीधरो जगन्नाथो देवेन्द्रो देवकीसुतः ।। २३ ।। चतुर्भुजो गदापाणिः सुरमीढः सुलोचनः ।। चार्वङ्गश्चक्रपाणिश्च सुरमित्रोऽसुरान्तकः ।। २४ ।। स्वाहाकारान्वितैरेतैश्चतुर्थ्यन्तैश्च होमयेत् । होमान्ते पूजयेद्वस्त्रैराचार्यं भूषणैः शुभैः । ।। २५ ।। भूमिं सस्यवतीं स्वर्णं सवत्सा गां पयस्विनीम् ।। गोमेदं पुष्पराग च वैदूर्यं चन्द्रनीलकम् ।। २६ ।। माणिक्यं च प्रदातव्यं पञ्चपातकनाशनम् ।। पञ्चमूर्तीः सुवर्णेन निर्मिताः पूजिताश्च याः ।। २७ ।। ताः सवस्त्राश्च सकला आचार्याय निवेदयेत् ।। इरावतीतिमन्त्रेण गां दद्यात्सुपयस्विनीम् ।। २८ ।। घृतवतीति सूक्तेन भूदानं कारयेत्ततः ।। तद्विष्णोरितिमन्त्रेण विष्णुमूर्तीः प्रदापयेत् ।। २९ ।। हिरण्यगर्भमन्त्रेण दातव्यं च हिरण्यकम् ।। ब्राह्मणान्भोजयेद्राजन्वैष्णवान् षष्टिसंज्ञकान् ।। ३० ।। नरो व्रतस्याचरणान्मुच्यते पञ्चपातकैः ।। ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च ।। ३१ ।। गुरुस्त्रीगमनं चैव तत्संसर्गश्च पञ्चमम् ।। अन्येभ्यो विविधेभ्यश्च पापेभ्यो मुच्यते नरः । ३२ ।। वसते चैव वैकुण्ठे यावद्विष्णुः सनातनः ।। इह लोके सुखासीनः पुत्रपौत्रादिसंयुतः ।।३३।। अविच्छिन्नं प्रियं भुक्त्वा अन्ते याति परां गतिम् ।। अत्रेतिहासं कथये शृणु त्वं पाण्डुनन्दन ।। ३४ ।। अयोध्यानगरे रम्ये त्रेतायां च नराधिपः ।। राजा दशरथो नाम शशास पृथिवीमिमाम् ।। ३५ ।। स राजा मृगयासक्तो जगाम गहनं वनम् ।। सरय्वानामनद्याः स तीरे गत्वा महावने ।। ३६ ।। धनुर्बाणयुतो रात्रौ स्थितोऽसौ मृगसाधने ।। अर्धरात्रौ व्यतीतायां तस्यास्तीरे मुनेः सुतः ।। ३७ ।। पितृभक्तिः सदाचारः ख्यातः श्रावणसंज्ञकः ।। अन्धौ च पितरौ तस्य तृषया पीडितौ तदा ।। ३८ ।। जलमानीयतां पुत्र ताभ्यां सम्प्रेषितः स तु ।। जलेन पूरितुं कुम्भमुद्युक्तोऽभूद्यदा नृप ।। ३९ ।। निशम्य राजा तच्छब्दं मुमोच शरमुत्तमम् ।। मृगबुद्ध्या च तेनैव घातितं बालकं चतम् ।। ४० ।। व्यलोकयत्तत्र राजा [2]ब्राह्मणं शंसितव्रतम् ।। आत्मानं ब्रह्महन्तारं

१ दद्यातिति शेषः । २ मत्वेति शेषः ।

ज्ञात्वा राजा सुदुःखितः ।। ४१ ।। तत्पापपरिहारार्थं नैमिषारण्यमागतः ।। दृष्ट्वा मुनीन् ज्ञानवृद्धान् प्रणिपत्य यथाक्रमम् ।। ४२ ।। शृण्वन्तु मुनयः सर्वे ब्रह्महत्या मया कृता ।। कथं पापाद्विमुच्येऽहं ब्रुवन्तु च महर्षयः ।।४३।। क्षणं ध्यात्वामहाभागा राजानमिदमब्रुवन् ।। ऋषय ऊचुः ।। राजन् रघुकुले श्रेष्ठ कुरुष्व व्रतमुत्तमम्।। ।। ४४ ।। विष्णुपञ्चकसंज्ञं च पञ्चपातकनाशनम् ।। मासे भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां श्रवणंयदि ।। ४५ ।। तदारभ्य व्रतं कार्यं मार्गशीर्षेऽथवा नृप ।। एकादशीद्वयं चैव श्रवणं पौर्णमासिका ।। ४६ ।। दर्शं चोपोषयेद्भक्त्या वर्षमेकं समाचरेत् ।। एकादशीद्वये विष्णुर्दैवतं श्रवणेऽपि च ।। ४७ ।। पौर्णमास्यां शशी चैव दर्शे विष्णुः सनातनः ।। द्वादशभिर्नामभिस्तं प्रत्येकं पूजयेद्व्रती ।। ४८ ।। उद्यापनं ततः कुर्यादादौ मध्ये प्रयत्नतः ।। अन्ते वापि प्रकर्तव्यं व्रतसाद्गुण्यहेतवे ।। ४९ ।। घृतापूपाश्च श्रवणे शु[1]क्ले तु गुडपायसम् ।। पायसाज्यं पौर्णिमास्यां कृ[2]ष्णे पञ्चामृतौदनम् ।। ५० ।। तिलैश्च दर्शे मुद्गान्नं होतव्यं सह सर्पिषा ।। अनेन विधिना राजन् कुरुष्व व्रतमुत्तमम् ।। ५१ ।। पापेभ्यो मुच्यसे सद्यः पुत्रपौत्रांश्च प्राप्स्यसि।। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम् ।। ५२ ।। राजा दशरथः सद्यो मुक्तो वै पातकात्ततः ।। इन्द्रो वृत्रवधान्मुक्तो ह्यहल्यादोषतः प्रभुः ।। ५३ ।। सुराचार्यो महाराज सुरापानाद्बृहस्पतिः ।। गुरुस्त्रीगमनाच्चन्द्रः सुवर्णहरणाद्बलिः ।।५४।। अन्यैरपि महीपालैर्दिलीपसगरादिभिः ।। महापातकजैर्दोषैर्विमुक्त्यर्थं कृतं तदा ।। ५५ ।। तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कुरुष्व व्रतमुत्तमम् ।। कुलक्षयकृतेभ्यश्च दोषेभ्यो मुच्यसे व्रतात् ।। ५६ ।। मा कुरुष्वात्र सन्देहं व्रतं कुरु यथोचितम् ।। उपाख्यानं च श्रोतव्यं यद्व्रते विष्णुपञ्चके ।। ५७ ।। ये च शृण्वन्ति सततं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः ।। सर्वे ते मुक्तिमायान्ति महापातकजाद्भयात् ।।५८।। कथानुवादको भक्त्या पूजनीयः सदा नरैः ।। तेन सन्तुष्यते विष्णुर्जगत्कर्ता जनार्दनः ।। ५९ ।। इति श्रीभविष्यपुराणे विष्णुपञ्चकव्रतकथा संपूर्णा ।।

अथोद्यापनविधिः – मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च ब्रह्महननमद्यपानसुवर्णस्तेयगुरुतल्पगमनागम्यागमनतत्संसर्गजनितोपपातकानां बुद्धिपूर्वकाणां महापातकानां लघुपातकानां प्रायश्चित्तार्थमाचरितस्य विष्णुपञ्चकव्रतस्य संपूर्णतासिद्ध्यर्थमुद्यापनं करिष्ये ।। पुण्याहं वाचयित्वा सर्वतोभद्रे ब्रह्मादिदेवता आवाह्य कलशे विष्णोः सुवर्णप्रतिमाः संस्थाप्य पूजयित्वा रात्रौ जागरणं कुर्यात् ।। प्रभाते स्नात्वा शुद्धदेशे स्थण्डिलं कृत्वा अग्निं प्रतिष्ठाप्य अन्वाधानं कुर्यात् ।। चक्षुषी-

१ शुक्लैकादश्याम् । २ कृष्णैकादश्याम् ।

त्यन्तमुक्त्वा अत्र प्रधानम् ।। पुरुषोत्तमं शार्ङ्गधन्वानं गरुडध्वजं गोवर्धनम् अनन्तं पुण्डरीकाक्षं नित्यं वेदगर्भं यज्ञपुरुषं सुब्रह्मण्यं जयं शौरिम् एताः श्रवणदेवताः अपूपद्रव्येण ।। १ ।। केशवादिदामोदरान्ता द्वादशदेवताः शुक्लैकादशीदेवताः गुडपायसेन ।। २ ।। विधुं शशिनं शशाङ्कं चन्द्रं सोमम् उडुपं मनोहरम् अमृतांशुं हिमांशुं पावनं निशाकरं चंद्रमसम् एताः पूर्णिमादेवताः घृतपायसेन ।। ३ ।। संकर्षणादिकृष्णान्ताः कृष्णैकादशीदेवताः पञ्चामृतौदनेन ।। ४ ।। महीधरं जगन्नाथं देवेन्द्रं देवकीसुतं चतुर्भुजं गदापाणिं सुरमीढं सुलोचनं चार्वङ्गं चक्रपाणिं सुरमित्रम् असुरान्तकम् एताः दर्शदेवताः तिलाज्यमुद्गौदनेन ।।५।। शेषेण स्विष्टकृतमित्युक्त्वा उक्तहोमं विधाय होमशेषं समाप्य आचार्यं पूजयित्वा पीठदानं कुर्यात् ।। ततो यथाशक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेत् ।। तेभ्यो वस्त्रालङ्कारान् दद्यात् । स्वयं वाग्यतो भूत्वा बन्धुभिः सह भुञ्जीत ।। इति विष्णुपञ्चकव्रतोद्यापनं संपूर्णम् ।।

विष्णुपंचकव्रत कथा—सूतजी बोले कि, द्वापरके अन्तमें भाइयोंके साथ कुन्तीपुत्र महाराज युधि-युधिष्ठिर, द्रोण, भीष्म, कुरु ।।१।। पुत्र, पौत्र, भाई तथा दूसरे राजाओंको राज्यके लिये मारकर पश्चात्तापसे जलने लगे उस पापको मिटानेके लिये भाई और सेनाको साथ लेकर वहां चले जहां कि, द्वारकामें कृष्ण भगवान् विराजते थे द्वारका पहुंचकर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणामकिया तथा स्तुतिकी तथा कृष्णजीने उसका अभिनन्दन किया ।।२–५।। वंशके लोगोंके दोषकी शान्तिके लिये कृष्णजीसे पूछने लगे कि, हे कृष्ण ! एक व्रत बताइये जिससे यह दोष नष्ट होजाय ।।६।। मेरे कुलके मारनेके दोषको आप नष्ट करें, यह बताकर फिर राजा युधिष्ठिरजी बोले कि, ।।७।। जिसके कियेसे मनुष्य पांचों महापापोंसे छूटजाय हे गोविन्द ! फिर राजा युधिष्ठिजजी बोले कि, ।।७।। जिसके कियेसे मनुष्य पांचों महापापापोंसे छूटजाय हे गोविन्द ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वह व्रत बना दीजिये ।।८।। श्रीकृष्णजी बोले कि, हे महाभाग ! बहुत अच्छा पूछा, आप एकाग्रचित्तसे सुन, जिस व्रतके कियेसे मनुष्य पांचों पापोंसे छूट जाता है ।।९।। आप मेरे प्राणही हैं इस कारण मैं एक व्रत कहता हूं, आपने तो निमित्तमात्र बनकर अपने कुलका नाश किया है, वास्तवमें आप कारण नही हैं ।।१०।। भाद्रपद शुक्ला द्वादशी श्रवण नक्षत्र हो, अथवा मार्गशीर्ष मासमें इसी तिथि नक्षत्रमें इस व्रतका प्रारंभ करना चाहिये ।।११।। प्रतिपक्षकी एकादशी और पर्वमें और श्रवणमें उपवास करके गरुडध्वजका पूजन करे ।।१२।। एक वर्षतक पूजा करे, संवत्सरके बाद द्वादशीके दिन उपवास करे ।।१३।। अपनी शक्तिके अनुसार विष्णुभगवान्की पांच सोनेकी प्रतिमा बनावे, उन्हें सर्वतोभद्रमंडलमें पांच कुंभोंपर स्थापित करके इननामोंसे भिन्नभिन्न पूजा करे, श्रवणके देवोंके लिए घृतसहित अपूप हवन करे ।।१४।।१५।। पुरुषोत्तम, शार्ङ्गधत्वा, गरुडध्वज, गोवर्धन, अनन्त, पुण्डरीकाक्ष, नित्य, वेदगर्भ, यज्ञ-पुरुष, सुब्रह्मण्य, जय, शौरि ये श्रवणके देवता हैं ।।१६।।१७।। शुक्ल एकादशीके देवोंके लिए गुडहहित पायस केशवादिक द्वादश नामोंसे श्रद्धाके साथ हवन करे ।।१८।। शुक्लाएकादशीके दिन इनकापूजन करे तथा पौर्णमासीके देवोंको घृतसहित पायसका हवन करे ।।१५।। विधु, शशी, शशाङ्क, चन्द्र, सोम, उडुप, मनोहर अमृतांशु, हिमांशु, पावन ।।२०।। निशाकर ये पूर्णिमाके देवता हैं । क्रमसे कृष्णा एकादशीके देवोंको पंचामृत और ओदनका हवन करे ।।२१।। संकर्षण आदिक नामवाले कृष्ण एकादशीके देवता हैं अमासस्याके देवताओंको मुद्गौदन तिल और आज्यका हवन करे । हे नृपशार्दूल ! अमासस्याके देवता तो महीधर, जगन्नाथ, देवेन्द्र देवकीसुत, चतुर्भुज, गदापाणि, सुरमीढ, सुलोचन, चार्वङ्ग, चक्रपाणि सुरमित्र, असुरान्तक ये हैं ।।२२–२४।।

इन नामोंको चतुर्थीका एक वचनान्त करके आदिमें ओम्' और अन्तमें स्वाहा लगाकर पीछे इनसे हवन करना चाहिये, होनकी समाप्ती होनेपर शुभ भूषणोंसे आचार्य्यका पूजन करे ॥२५॥ सस्यवाली भूमि स्वर्ण और दूध देनेवाले गाय, गोमेद, पुष्पराग, वैडूर्य्य, इन्द्रनील और माणिक्य देने चाहिये इनसे महापाप नष्ट होता है । सोनेकी जिन पांच मूर्तियोंको पूजा गया या उन्हें ॥२६॥२७॥ सस्त्रोंके साथ आचार्यको दे दे "इरावती" इस मंत्रसे दुधारी गाय दे ॥२८॥ "घृतवती" इससे भूदान करे "तद्विष्णोः' इस मंत्रसे विष्णुकी मूर्ति दे ॥२९॥ "हिरण्यगर्भ" इस मंत्रसे सोना दे, साठ वेष्णव ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥३०॥ मनुष्य इस व्रतको करके पांचों पापोंसे छूट जाता है । ब्रह्महत्या, सोनेकी चोरी॥३१॥ गुरुस्त्री गमन और इन चारों पापोंके पापियोंका संसर्ग ये पांच महापाप हि उनसे तथा और भी अनेक तहरके पापोंसे छूट जातां है ॥३२॥ जबतक सनातन विष्णु विराजते हैं तबतक वैकुण्ठमें रहता है तथा इस लोकमें पुत्र पौत्रके साथ सुखपूवक रहता है ॥३३॥ निर्वाध अपने प्रिय भोगोंको भोगकर अन्तमें परमगतिको पाजाता है । हे पाण्डु-नन्दन ! इस विषयपर एक इतिहास सुनाता हूं आप सावधान होकर सुनें ॥३४॥ त्रेतायुगमें अयोध्यानामके सुन्दर नगरमें दशरथ नामके एक योग्य चक्रवर्ती राजा थे ॥३५॥ वे एक दिन शिकार खेलनेके लिए गहनवन चले गये, सरयूनदीके किनारे महावनमें जा ॥३६॥ धनुष पर तीर चढाकर रातमें मृग मारमेके लिये स्थित होगये । आधीरात गये पीछें सरयूनदीके किनारे मुनिकुमार आ पहुँचा ॥३७॥ जो कि, पिताकी भक्ति तथा सदाचारके लिये परमप्रसिद्ध है श्रवण उसका नाम है उसके आँधरे मावापोंको प्यास लगी थी ॥३८॥ वह घडेमें पानी भरनेके लिए तयार हुआ ॥३९॥ उसके घड़ेके शब्दको सुन राजाने हाथी जानकर शब्दबेधी बाण छोडदिया वह उस बालकके लगा जिससे वह बालक किच्चाकर मरणासन्न हो गया ॥४०॥ राजाने जाकर देखा तो उसे वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण जैसा मिला, राजा अपनेको ब्रह्म हत्यारा जानकर बडादुखी हुआ ॥ ४१ ॥ वह उस पापके परिहारके लिए नैमिषारण्य आया, वहां ज्ञानवृद्ध मुनियोंको क्रमसे प्रणाम करके ॥ ४२ ॥ बोला कि, हे मुनिलोगो ! सुनो, मैंने ब्रह्महत्या जैसाही पाप किया, है, मैं कैसे उस पापसे छूटूं वह मुझे बतादीजिए ॥ ४३ ॥ थोडी देर ध्यान

१ यह वृत्त वाल्मीकिरामायणके अयोध्याकाण्डमें सर्ग ६३ और चौसठ सर्गमें आया है वहांही पचास और ५१ वें श्लोकमें श्रवण कुमार महाराज दशरथजीसे कह रहा है कि " ब्रह्महत्याकृतं पापं हृदया-दपनीयताम् । न द्विजातिरहं राजन् माभूते मनसो व्यथा शूद्रायामस्मिवैश्येजातो नरवराधिप ॥" ब्रह्महत्या कियेके पापको हे राजन् । हृदयसे निकाल दीजिये, मैं द्विजाति नहीं हूं इस कारण आपके मनको परिताप न होना चाहिये, हे नरवराधिप ! मुझे शुद्रामें वैश्यने पैदा किया है । इस वचनपर दृष्टिपात करतेही इस बातका पता चल जाता है कि, ब्राह्मण होना तो जहां तहां रहा द्विजाति भी नहीं था । यही कारण है कि ब्राह्मणं शंसितं-व्रतम् " यह व्रतराजमें आया है वहां मूलकी टिप्पणीमें ' मत्वा ' पद डाल दिया है कि, उसे ब्राह्मण मानकर ब्रह्महत्यासे डरा, पर मनुस्मृति अध्याय दशमें ऐसी सन्तानको अपसद यानी माकी जातिसे ऊंचा तथा पिताके सवर्ण पुत्रकी अपेक्षा हीन कहा है । पर उसके मा-बाप दोनों तपस्वी थे यहांतक कि, इन दोनों अन्धे माँ बापोंने अपने पुत्रको दिव्य लोकोंमें पहुंचा दिया है । मरे पीछे यह श्रवणकुमार दिव्यरूपसे इन्द्रके साथ आकर मा-बापोंसे बोला है, मैं आपकी सेवाके प्रतापसे इस दिव्यधामको पा गया हूँ आप भी इस शरीर त्यागके उपरान्त मेरेही पास आ जावोगे यह कहकर दिव्य विमानपर बैठ स्वर्ग चला गया है। इनकी उत्तम उपासना त्याग और तप एक ऋपिसे किसी तरह भी कम नहीं था न तपस्वी श्रवण कुमारही तपमें कम था आज भी वह पितृ भक्तिका ज्वलन्त उदाहरण होकर नाटकोंकी रंग मंचपर अभिनय किया जा रहा है तथा सिनेमा घरोंमें चित्र पटोंमें चित्रित हुआ समय समय पर सामने आ रहा है इस तपस्वीकी हत्या ब्रह्महत्यासे कम नहीं थी । क्योंकि यह द्विजवीर्यसे उत्पन्न हो विशेष धर्माचरण कर रहा था पर साक्षात् ब्राह्मण नहीं था । तो भी इसके दोष निवारणके लिये बड़ेसे बड़े प्रायश्चित्तकी आवश्यकता थी । इसीलिये महाराज दशरथने इसकी हत्यानिवारण करनेके लिये ब्रह्महत्याका प्रायश्चित किया था फिर भी तो शापसे पुत्रशोकमें प्राण देने पड़े ॥

करके महर्षि जन राजासे बोले कि, हे रघुकुलके श्रेष्ठ राजन् ! इस उत्तम व्रतको कर ॥४४॥ इसका नाम विष्णुपंचक है, वह पांचों महापापोंका नष्ट करनेवाला है । भाद्रपद शुक्ला द्वादशी श्रवण नक्षत्र हो तो इस व्रतका प्रारंभ करना चाहिये । अथवा मार्गशीर्षमें इस व्रतका प्रारंभ करे दोनों एकादशी श्रवण पौर्णमासी और दर्श उसमें उपवास करे एकवर्ष तक इस व्रतको करे । दोनों एकादशियोंमें दर्शमें और श्रवणमें जो जो देव और उनके नाम पीछे कहे गये हैं उनके प्रत्येक देवका पूजन करे तथा पौर्णमासीके दिन चन्द्रमाका उसके नामोंसे पूजन होना चाहिए ॥४५–४८॥ उद्यापन––इसकेपीछे करे आदि मध्य और अन्तमें व्रतको सफल करनेके लिये होता है ॥४९॥ घृत और अपूप श्रवणमें शुक्ला एकादशीके दिन पायस, पौर्णमासीको पायस और आज्य कृष्णएकादशीके दिन पंचामृत तिल और ओदन दर्शक दिन सर्पीके साथ मुद्गान्न हवन करे । हे राजन् ! इस बताईहुई विधिसे इस व्रतको करना चाहिये ॥५०॥५१॥ इस व्रतके प्रभावसे राजा दशरथ शीघ्रहीं उस पापसे छूट गये । इसी व्रतके प्रभावसे इन्द्र वृत्रवधके दोषसे मुक्त हुआ था, तथा अहल्याके दोषसे मुक्त हुआ ॥५२॥५३॥ इसी व्रतको करके सुराचार्य बृहस्पति सुरापानके दोषसे छूटे । गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेके चन्द्र तथा सोनेकी चोरीके दोषसे बलि छूटे थे ॥५४॥ दूसरे भी सगर दिलीपादि महाराजोंसे महापातकोंके दोषसे छूटनेके लिये इस व्रतको किया था, इस कारण हे राजेन्द्र ! आपभी इस उत्तम व्रतको करे कुल नष्ट करनेके दोषसे छूट जायेंगे तू सन्देह न कर यथोचित्त रीतिसे व्रतकर तथा इस व्रतकी कथाकोभी उस दिन सुनना ॥५५॥५६॥ जो द्विजोत्तम इस व्रतको कहते और सुनते हैं वे सब महपातकोंके दोषसे मुक्त होजाते हैं ॥५७॥५८॥ इस कथाके अनुवाद करनेवालेकाभी भक्तिसे पूजन करना चाहिये । इससे जगत्के करनेवाले जनार्दन विष्णुकी तुष्टि होती है ॥५९॥ यह श्रीभविष्यपुराणकी कही हुई विष्णुश्चकव्रतकी कथा संपूर्ण हुई ॥ उद्यापनविधि–इस जन्म तथा जन्मान्तरके किये ब्रह्महत्या, सुरापान, सोनेकी चोरी, गुरुतल्पगमन, अगम्याके साथ गमन, इन पापोंके पापियोंके साथ संसर्ग होनेका पाप–इनके समान पाप, उपपातक बुद्धि पूर्वक किये पाप, महापातक और लघू पातकोंके प्रायश्चित्तके लिये किये गये विष्णुपंचकव्रतकी संपूर्णताकी सिद्धिके लिये मैं उद्यापन करूंगा, ऐसा संकल्प करके पुण्याहवाचन कर सर्वतोभद्रमंडलपर ब्रह्मादिक देवोंका आवाहन करके कलशपर सोनेकी विष्णु प्रतिमाको स्थापित करके पूजे,रातको जागरण करे । प्रातःकाल उठ स्नान ध्यान आदि नित्य कर्म करके अग्निस्थापन कर अन्वाधान करे, "चक्षुषी" यहां तक तो पूर्वकी तरह करे, यहां प्रधान देवता–पुरुषोत्तम शार्ङ्गधन्वा, गरुडध्वज, गोवर्धन, अनन्त, पुण्डरीकाक्ष, नित्य वेदगर्ध, यज्ञपुरुष, सुब्रह्मण्य, जय और शौरि ये श्रवण देवता हैं, उन्हें अपूप द्रव्यसे ॥१॥ केशवसे लेकर दामोदरतक बारह शुक्ल एकादशीके देवताओंको गुड और पायससे ॥२॥ विधु शशि शशाङ्क, चन्द्र, सोम, उडुप, मनोहर, अमृतांशु, पावन, निशाकर, चन्द्रमास्, पौर्णिमासीके इन देवोंको घृत और पायससे ॥३॥ संकर्षणसे लेकर कृष्णतक कृष्णा एकादशीके देवताओंको पंचामृत और ओदनसे ॥४॥ महीधर, जगन्नाथ, देवन्द्र, देवकीसुत चतुर्भुज, गदामणि; सुरमीठ, सुलोचन, चार्वंग, चक्रपाणि, सुरमित्र, असुरान्तक, ये दर्शक देवताहैं इन्हें तिल आज्य और मुद्गके ओदनसे ॥५॥ आहुति दे शेषसे स्विष्टकृत करके कहे हुए होमको पूरा करे । होमशेषको समाप्त करे । आचार्यकी पूजा करके सिंहासन उन्हें देदे । पीछे शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे, उन्हें वस्त्र और अलंकार दे, आप मौन हो भाइयोंके साथ भोजन करे । यह विष्णुपंचक व्रतका उद्यापन संपूर्ण हुआ ॥

अथ कोटिदीपदानोद्यापनम्

स्कन्द उवाच ॥ रुद्रसंख्यान् शिवाया हर्निर्पयेद्दीपकोत्तमान् ॥ वर्षमेकं तदर्धं वा वर्षद्वयमथापि वा ॥ कोटिसङ्ख्यानर्द्धसंख्यांस्तदर्धं वा स्वशक्तितः ॥

१ कथा और माहात्म्य इन दोनोंका बड़ाईमें ही तात्पर्य हुआ करता है चाहे वस्तुस्थिति कुछ और ही हो । दयानन्दतिमिर भास्करमें इस विषयपर लिखा है बाकी और भी ऐसेही समझने जहां तात्पर्यार्थपर ध्यान विस्तारभयसे न दे यथाश्रुतही लिख दिया है जोकि सर्वसाधारण है ॥

तद्दीपदानसंपूर्त्यै कुर्यादुद्यापनं बुधः ।। उपवासं प्रकुर्वीत पूर्वस्मिन्दिवसे तदा ।। कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।। कृत्वा तु प्रतिमां शम्भोरुमया सहितस्य च ।। कलशे स्थापयेद्रात्रौ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।। आचार्यं वरयेत्तत्र अभिज्ञं वेदपारगम् ।। उपचारैः षोडशभिः पूजयित्वा पृथक्पृथक् ।। रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ।। प्रातःस्नानं विधायाग्निं संस्थाप्य विधिपूर्वकम् ।। तिलैर्यवैश्च चरुणा सर्पिषा बिल्वपत्रकैः ।। आज्यप्लुतैश्च प्रत्येकं सद्योजातादिमंत्रतः ।। शतमष्टोत्तरं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।। उमामहेश्वरं देवं पूजयेच्च पुनर्व्रती ।। प्रतिमां वस्त्रसहिता माचार्याय निवेदयेत् ।। सहिरण्यां सवत्सां च धेनुं दद्यात्प्रयत्नतः ।। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्वस्त्रालंकारभूषणैः ।। गुरोराज्ञां गृहीत्वा तु सेष्टो भुञ्जीत मानवः ।। अनेन विधिना यस्तु व्रतमेतत्समाचरेत् ।। स भुक्त्वा विपुलान् भोगान् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। एवं यः कुरुते मर्त्यः कोटिदीपप्रदीपनम् ।। नरो वाप्यथवा नारी सोऽश्नुते पदमव्ययम् ।। ज्ञानमुत्पद्यते तस्य संसारभयनाशनम् ।। बाल्येवयसि यत्पापं यौवने वापि यत्कृतम् ।। वार्धकेऽपि कृतं पापं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो भुक्त्वा भोगाननेकशः ।। सर्वान् कामानवाप्याथ सोऽश्नुते पदमव्ययम् ।। इति परमितिहासं पावनं तीर्थभूतं वृजिनविलयहेतुं यः शृणोतीह भक्त्या ।। स भवति खलु पूर्णः सर्वकामैरभीष्टैर्जयति च सुरलोकं दुर्लभं यज्ञसंघैः ।। इतिश्रीस्कन्दपुराणे कोटिदीपोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

कोटि दीपदानोद्यापन-स्कन्द बोले कि, अच्छे ग्यारहदीये दो एक वर्ष या छः मासतक रोज शिवजीके मंदिरमें जलावे कोटि, आध कोटि वा आधेके आधे अपनी उक्तिके अनुसार करे । उस दीपदानकी पूर्तिके लिये उद्यापन करे । पहिले दिन उपवास करे । कर्ष आधेकर्ष वा चौथाई कर्षकी उमा पार्वतीकी मूर्ति बनावे, विधिपूर्वक कलश स्थापित करके उसपर रातिमें उमामहेश्वरको स्थापित करदे, स्वस्तिवाचन करावे, सुयोग्य वेद वेदाङ्गोंके जाननेवाले आचार्य्यका वरण करे । सोलहों उपचारोंसे पृथक् पथक् पूजन करे । पुराणोंके श्र वणके साथ रातमें जागरण करे, प्रातःस्नान करे, विधिपूर्वक अग्निस्थापन करे, यस, चरु, सर्पी, बिल्वपत्र इन सबको घीसे भिगोकर प्रत्येककी "सद्योजातम्" इस मंत्रसे एकसौ आठ आहुति देकर शेषको पूरा करे, उमा महेश्वर देवकी फिर पूजा करे । सब सहित प्रतिमा सोना और बछडा समेत गऊ आचार्य्यके लिये दे । ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वस्त्र अलंकार और भूषणोंसे उनका सत्कार करे, गुरुकी आज्ञा लेकर इष्टमित्रों सहित भोजन करे, जो इस विधिके साथ व्रत करता है वह विपुल भोगोंको भोगकर अन्तमें सायुज्य पाता है । जो परम पवित्र करनेवाले तीर्थभूत सब पापोंके नष्ट करनेवाले इसके इतिहासको भक्तिके साथ सुनता है वह सब अभीष्ठोंसे परिपूर्ण होता है, जो अनेकों यज्ञोंसे भी न मिलसके, ऐसे अव्यय सुर लोकको चलाजाता है ।। यह श्रीस्कन्दपुराणका कहाहुआ कोटि दीप व्रतका उद्यापन पूरा हुआ ।।

अथ पार्थिवलिंगोद्यापनम्

नारद उवाच ।। कथं पार्थिवपूजाया विधिर्ज्ञेयः सुरेश्वर ।। किं फलं चास्य विज्ञेयं कथमुद्यापनं भवेत् ।। कियत्कालं च कर्तव्यं प्रारम्भश्च कदा भवेत् ।। कथयाशु महादेव लोकानामुपकारकम् ।। ईश्वर उवाच ।। धर्मार्थकाममोक्षार्थं पार्थिवं

पूजयेच्छिवम् ।। मृदमानीय शुद्धां वै शर्करावर्जित । शुभाम् ।। जलेनासिच्य शुद्धेन मर्दयित्वा निवेशयेत् ।। प्रारम्भोऽस्य प्रकर्तव्यो माघमासे सितेत'रे ।। चतुर्दश्यां विशेषेण सर्वकार्यार्थसिद्धये।। अथवा श्रावणे मासि इन्दुवारे शुभे ग्रहे ।। स्नात्वा सम्पूज्य गणपं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।। आजन्म पूजयेच्छम्भुं संवत्सरमथापि वा ।। सम्पाद्य सर्वसम्भारान् पूजयेन्मृन्मयं शिवम् ।। शिवेति मृदमादाय महेशो घट्टने स्मृतः ।। शम्भुः प्रोक्तः प्रतिष्ठायां पिनाकी प्राणने मतः ।। शशिशेखरः पूजायां वामदेवोपि धूपके ।। विरूपाक्षोऽपि विज्ञेयो दीपदाने विशेषतः ।। उपहारे कपर्दी स्यात्ताम्बूले शितिकण्ठकः ।। दक्षिणायामुमाकान्तो विसृष्टौ नीललोहितः ।। एवं पूजा प्रकर्तव्या तण्डुलैर्बिल्वपत्रकैः ।। संवत्सरे तु सम्पूर्णे उद्यापनविधिं चरेत् ।। आचार्यं वरयेत्पूर्वं ततो द्वादश ऋत्विजः ।। विरच्य लिङ्गतोभद्रं पञ्चवर्णैः शुभं ततः ।। ब्रह्मादिस्थापनं कृत्वा कलशं स्थापयेत्ततः ।। शिवप्रतिमां सौवर्णीं राजतं वृषभं तथा ।। वस्त्रद्वयेन संवेष्टच तत्र संस्थाप्य पूजयेत् ।। गीतवादित्रनिर्घोषैर्जागरं तत्रकारयेत् ।। स्तोत्रैश्च विविधः सूक्तैः स्तुवीत परमेश्वरम् ।। मृत्युंजतयेति मन्त्रेण ह्यथव। नाममन्त्रतः ।। लिङ्गसंख्यादशांशेन पायसं जुहुयाद्व्रती ।। तर्पणं च प्रकर्तव्यं तद्दशांशेन सर्वदा ।। मार्जनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन भो'जयेत् ।। आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।। धेनुं दद्यात्सवत्सां च शिवसन्तोषहेतवे ।। शिवरूपांश्च तान्विप्रान्दक्षिणावस्त्रसंयुतान् ।। पूजयित्वा विधानेन नमस्कुर्यात्पुनः पुनः ।। शिवपीठं च तत्सर्वमाचार्याय निवेदयेत् ।। शिवभक्त्यात्मकं यस्माज्जगदेतच्चराचरम् ।। तस्मादेतेन मे सर्वं करोतु भगवान् शिवः ।। कैलासवासी गिरिशो भगवान्भक्तवत्सलः । चराचरात्मको लिङ्गरूपी दिशतु वाञ्छितम् ।। इति प्रार्थ्य ततो विप्रान्नमस्कृत्वा विसर्जयेत्।। स्वयं भुञ्जीत वै भक्त्या बन्धुवर्गैः समन्वितः ।। इति ते कथितं विप्र सर्वकामार्थसिद्धियदम् ।। सोद्यापनं व्रतमिदं यः कुर्यात्प्रयतः स तु ।। शिवलोकं समासाद्य तत्रैव वसते चिरम् ।। इतिश्रीभविष्ये पुराणे पार्थिलिङ्गोद्यापनं सम्पूर्णम् ।।

पार्थिव लिङ्गोद्यापन—— नारदजी बोले कि, हे सुरेश्वर ! पार्थिवपूजाकी विधि जनना चाहता हूं, इसका क्या फल होता है, तथा कैसे उद्यापन किया जाय, कितने समयतक करे, कब प्रारंभ करे, हे महादेव !

---

१ कृष्णेपक्षे । २ ब्राह्मणानिति शेषः ।

इससे संसारका बडा कल्याण होगा, इस कारण शीघ्रही सुना दीजिए। शिवजी बोले कि, धर्म अर्थ काम और मोक्षके लिए पार्थिव शिवका पूजन करे, कँकरीरहित शुद्ध मिट्टी लाकर पानीसे भिगो दे। पवित्र हो मर्दकर पिण्ड बनाले, माघ मासके शुक्ला चतुर्दशीको इसका प्रारंभ करना चाहिए, इससे सब कार्य और अर्थोंकी सिद्धि होती है, अथवा श्रावण सोमवार शुभ ग्रहमें स्नान करके स्वस्तिवाचनके साथ अणेश पूजन करे जन्मभर या एक सालतक शिवजीका पूजन करे, सब पूजाका सामान इकट्ठा करके मिट्टीके शिवजीका पूजन करे, शिव इससे मिट्टी ले, महेश इससे मर्दन करे, प्रतिष्ठा शंभुसे, तथा प्राणमें पिनाकी, पूजामें शशिशेखर, धूपमें वामदेव, दीपदानमें विरूपाक्ष, उपहारमें कपर्दी, ताम्बूलमें शितिकण्ठ, दक्षिणामें उमाकान्त, विसृष्टिमें नील लोहित हो (कहे हुए नामोंके नाम मन्त्रोंसे ये कार्य करने चाहिये) इस तरह तण्डुल और बिल्वपत्रोंसे पूजा करनी चाहिए, संवत्सर पूरा हो जाने पर उद्यापन करे, आचार्य्यका वरण करे। पीछे बारह ऋत्विजोंको बरे, पांचरंगोंका लिंगतोभद्र बनावे, ब्रह्मादि देवोंको स्थापित करके कलश स्थापित करे। शिव-पार्वतीजीकी सोनेकी प्रतिमा तथा चाँदीका वृष हो, उन्हें दो वस्त्रोंसे वेष्टित करे, कलशपर स्थापित करके पूजे, गानेबजानेके शब्दोंके साथ जागरण करे, अनेक तरहके स्तोत्र और सूक्तोंसे परमेश्वरकी स्तुति करे, मृत्युंजय इससे वा नाममंत्रसे लिंग संख्याका दशवां हिस्सा पायस हवन करे, दशवां हिस्सा तर्पण करे, दशांश मार्जन और उसका दशांश ब्राह्मण भोजन करावे। वस्त्र अलंकार और आभूषणोंसे भक्तिभावके साथ आचार्य्यका पूजन करे, बछडेवाली गऊ शिवजीके सन्तोषके लिए दान करे; शिवरूपी उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा और वस्त्रके साथ विधिपूर्वक पूजकर वारंवार नमस्कार करे, शिवपीठ और सामान शिवभक्तिके साथ आचार्य्यके लिए दे दे। यह सब चराचर शिवात्मकही है, इस कारण इस दानसे मेरे यहाँ सब कुछ शिव भगवान् कर दें। कैलासवासी गिरीश भक्तवत्सल भगवान् ही लिंगरूपी और चर अचर बना हुआ है वही मेरी मनोकामनाओंको पूरा करे, यह प्रार्थना करके नमस्कार करे, पीछे ब्राह्मणों का विसर्जन कर दे। अपने भाई बन्धुओं के साथ भक्तिके साथ भोजन करें, हे विप्र! यह सब काम और अर्थोंकी सिद्धि देनेवाला व्रत सुना दिया, जो कोई इस व्रतको उद्यापन सिहित करेगा वह शिवलोकको पाकर चिरकालतक उसीमें निवास करेगा। यह श्रीभविष्यपुराणका कहा हुआ पार्थिवलिंगका उद्यापन पूरा हुआ॥

अनुक्रमणिकाध्यायः

ग्रन्थेऽस्मिन्व्रतराजे तु सुबोधायाविपश्चिताम्॥ बहून् प्रपञ्चितानर्थान्दर्शयामि यथाक्रमम्॥ व्रतस्य लक्षणं चादौ कालदेशौ ततः परम्॥ व्रताधिकारिणः पश्चाद्व्रतधर्मास्ततः परम्॥ उपवासस्य धर्माश्च हविष्याणि व्रते तथा॥ पञ्चरत्नस्वरूपं च पल्लवानां स्वरूपध्रुक्॥ पञ्चगव्यस्वरूपं च तन्मन्त्राश्च यथाक्रमम्॥ पञ्चामृतस्वरूपं च षड्सानां स्वरूपकम्॥ चतुःसमं सर्वगन्धयक्षकर्दमकौ तथा॥ सर्वौषध्यस्ततः प्रोक्ताः सौभाग्याष्टकमेव च॥ अष्टाङ्गार्घ्यो मण्डले तु कथितं वर्णपंचकम्॥कौतुकाख्यं मृतःसप्त धातवस्तत्समाः स्मृताःसप्त सप्तदशोक्तानि धान्यान्यष्टादशापि च॥शाकं दशविधं प्रोक्तं कुम्भलक्षणमेव च॥ अनादेशे होमसंख्या धान्यप्रतिनिधिस्तथा॥होमद्रव्यप्रतिनिधिर्मंत्रदेवतयोस्तथा॥

कथनं चाप्यनादेशो द्रव्यप्रतिनिधेस्तथा ।। पवित्रलक्षणं पश्चादिध्मेधांसि ततः परम् ।। धूपाश्चापि तथा प्रोक्ता द्रव्यभागप्रमाणतः ।। हैमरौप्यादिधातूनां धान्यानां मानमीरितम् ।। होमद्रव्यस्य मानं च ऋत्विजां वरणं तथा ।। व्रताङ्गो मधुपर्कश्च ऋत्विक्संख्या तथैव च ।। मण्डलं सर्वतोभद्रलिङ्गतोभद्रभेदतः ।। अथ मण्डलदेवाश्च मूर्त्यग्न्युत्तारणं तथा ।। प्रोक्ता प्राणप्रतिष्ठातुषोडशोपचार-पूजनम् ।। ततः प्रोक्तमग्निमुखं मुद्राणां लक्षणानि च ।। उपचारा अष्टत्रिंशदादयः कथितास्तथा ।। उद्वर्तने तथा स्नानपात्राचमनपात्रयोः ।। क्षिप्यमाणपदार्थानां निर्णयश्च यथाक्रमम् ।। उपचारार्थद्रव्यस्याभावे प्रतिनिधिः स्मृतः ।। वर्ज्यद्रव्याणि विष्णवादिपूजायां कथितानि च ।। तथा शंखस्य पूजायां ग्राह्याग्राह्यविचारणा ।। विधिश्चोद्यापने प्रोक्तो व्रतभङ्गे तथैव च ।। उपयुक्तपदार्थानामित्येवं परिभाष-णम् ।। अथ व्रतानि कथ्यन्ते प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।। चैत्रशुद्धप्रतिपदि संवत्सर-विधिः स्मृतः ।। व्रतमारोग्यप्रतिपद्विद्याप्रतिपदोस्तथा ।। तिलकं व्रतकं प्रोक्तं रोटकाख्यं व्रतं तथा ।। दौहित्रप्रतिपत्प्रोक्ता तत्रैव नवरात्रकम् ।। कथा द्यूतप्रतिपदो बलिप्रतिपदस्तथा ।। अन्नकूटकथा प्रोक्ता गोवर्धनमहोत्सवे ।। ततो यमद्वितीया वै भ्रातृसंज्ञा ततः परम् ।। तृतीयायां ततः प्रोक्तं सौभाग्यशयनव्रतम् ।। गौर्या दोलोत्सवः प्रोक्तो मनोरथतृतीयिका ।। अरुन्धतीव्रतं पश्चात्तृतीयाक्षय्यसंज्ञका ।। स्वर्णगौरीव्रतं प्रोक्तं ततस्तु हरितालिका ।। बृहद्गौरी ततः प्रोक्ता सौभाग्य-सुंदरीव्रतम् ।। चतुर्थ्यामथ संप्रोक्तं संकष्टाख्यव्रतं शुभम् ।। व्रतं दूर्वागणपतेर्द्विधा प्रोक्तं ततः परम् ।। सिद्धिविनायकव्रत स्यमन्ताख्यानमेव च ।। कपर्दीशव्रतं प्रोक्तं करकाख्यं ततः स्मृतम् ।। दशरथललिताया व्रतं गौर्यास्तथैवच ।। वरदाख्या ततो ज्ञेया चतुर्थी च ततःपरम् ।। संकष्ट हरणं प्रोक्तं चतुर्थ्यङ्गारकी तथा ।। व्रतं च नागपञ्चम्या नागदष्टव्रतं तथा ।। व्रतं च ऋषिपंचम्या उपाङ्गललिता तथा।। वसन्तपञ्चमी प्रोक्ता माघशुक्ले हरिप्रिया ।। आद्या तु ललिताषष्ठी कपिलाख्या ततः स्मृता ।। स्कन्दषष्ठी ततः प्रोक्ता चम्पाषष्ठी ततः स्मृता ।। गङ्गाख्या सप्तमी प्रोक्ता शीतलासप्तमी ततः ।। मुक्ताभरणसंज्ञाख्या सरस्वत्याश्च पूजनम् ।। रथसप्तमी तु विज्ञेया अचलासप्तमी तथा ।। पुत्रसंज्ञं च तत्रैव सप्तमीव्रतमुत्तमम् ।। बुधाष्टमी ततः प्रोक्त दशाफलाभिधाष्टमी ।। जन्माष्टमी ततः प्रोक्ता सैव

गोकुलसंज्ञका ।। ज्येष्ठाष्टमी ततो ज्ञेया दूर्वाष्टमी शुभप्रदा ।। महालक्ष्म्यास्ततः प्रोक्तं व्रतं षोडशवासरम् ।। महाष्टमी ततः प्रोक्ता तथाऽशोकाष्टमीव्रतम् ।। कालाष्टमी ततो ज्ञेया भैरवाख्या शिवप्रिया ।। विख्याता रामनवमी प्रोक्ता पापहरा शुभा ।। ततो वै रामनामस्य लेखनं पूजनं शुभम् ।। अदुःखनवमी प्रोक्ता भद्रकालीव्रतं तथा ।। नवरात्रव्रतं प्रोक्तं दुर्गापूजाविधिस्तथा ।। अक्षय्यनवमीसंज्ञा कार्तिके शुक्लपक्षके ।। ततो विवाहो धात्र्याश्च तुलस्याश्च शुभप्रदः ।। ततो दशहरास्तोत्रं व्रतं दशहरशुभम्।।आशादशम्यथ ख्याता व्रतं दशावतारकम्।।विजयादशमी प्रोक्ता तत एकादशीव्रतम् ।। अष्टानां द्वादशीनां च निर्णयः परिकीर्तितः ।। उद्यापनमथ प्रोक्तमेकादश्याः शुभप्रदम् ।। उद्यापनं शुक्लकृष्णैकादश्योश्च ततः परम् ।। गोपद्माख्यव्रतं प्रोक्तमेकादश्या व्रतं शुभम् ।। पुरुषोत्तममासस्य तथा भीष्माख्यपंचकम् ।। मार्गशीर्षस्य कृष्णाया एकदादश्या व्रतं शुभम् ।। उत्पत्ति नाम्न्याः कथितं तथा वैतरणीव्रतम्।। मार्गशीर्षादिषड्विंशत्येकादशीकथानकम् ।। द्वादश्यो ह्यथ कथ्यंते दमनाख्या शुभप्रदा ।।वैशाखीयो गयुक्ताचेद्व्यतीपाताभिधा मता ।। आषाढी पारणे ज्ञेया पवित्रारोपणं ततः ।। श्रवणद्वादशी ज्ञेया वामनाख्या ततः परम् ।। ततो ज्ञेया सुरूपा वै द्वादशी परिकीर्तिता ।। त्रयोदशी जया प्रोक्ता पार्वतीपूजने शुभा ।। गोत्रिरात्रव्रतं प्रोक्तं देशभेदाद्द्विधा स्मृतम् ।। अशोकाख्यं ततः प्रोक्तं महावारुणिकं ततः ।।शनिप्रदोषसंज्ञं च पक्ष संज्ञप्रदोषकम्।। अनंगाख्याभिधा ज्ञेया त्रयोदशी शुभा स्मृता।। चतुर्दशी मधौ प्रोक्ता स्नाने वै शिवः सन्निधौ ।। नृसिंहाख्या ततः प्रोक्ता ततोऽनंतचतुर्दशी ।। रंभाव्रतं ततः प्रोक्तनरकाख्या ततः परम् ।। वैकुंठाख्या ततः प्रोक्ता चतुर्दशी शिवप्रिया ।। शिवरात्रिस्ततो ज्ञेया शिवरात्रिव्रतादिकम् ।। पूर्णिमा वटसावित्री गोपद्माख्या ततः परम् ।। कोकिलाव्रतमाहात्म्यं ततो रक्षाभिधा स्मृता ।। उमामहेश्वरव्रतं पौर्णमास्यां शुभप्रदम् ।। कोजागरं ततः प्रोक्तं त्रिपुरोत्सवकं ततः ।। द्वात्रिंशी पूर्णिमा ज्ञेया होलिकाख्या ततः परम् ।। अमा पिठोरीसंज्ञाख्या लक्ष्मीसंज्ञा ततः परम् ।। गौरीतपोव्रतं प्रोक्तममा सोमवती तथा ।। अर्धोदयस्ततः प्रोक्तो ह्यमावास्यां विशेषतः ।। अतःपरं प्रवक्ष्यामि मलमासादिकं व्रतम् ।। स्वस्तिकाख्यं व्रतं पश्चात्पंचवर्णैः सुशोभितम् ।। रविवारव्रतं पश्चादाशादित्यव्रतं तथा ।। ततोदानफलं प्रोक्तं भानुवारे महाफलम् ।। सोमवारव्रतं पश्चात्काम्यं मोक्षं द्विधा तथा ।।

विशेषेणेन्दुवारे वै एकभुक्तव्रतं ततः ।। भौमवासरसंज्ञं च ततो वै भृगुवासरे ।। प्रोक्तं वरदलक्ष्म्याख्यं शनैश्चरव्रतं तथा ।। व्यतीपातव्रतं पश्चान्मासोपवासकं तथा ।। धारणापारणाख्यं च धान्यसंक्रांतिकं ततः ।। व्रतं लवणसंक्रांते भोग-संक्रमणस्य च ।। व्रतं च रूपसंक्रांतेस्तेजः संक्रमणस्य च ।। सौभाग्याख्या च संक्रांति-स्तांबूलाख्या ततः परम् ।। मनोरथाख्यसंक्रांतिरशोकाख्या ततः परम् ।। आयुः संक्रमणं प्रोक्तमायुर्वृद्धिकरं ततः ।। धनसंक्रमणे प्रोक्तं कृसरान्नेन भोजनम् ।। ततो मकरमासं वैवृतस्नानं रवेः स्मृतम् ।। घृतकंबलदानं च दधिमंथनमेव च ।। तांबूलस्य ततो दानं सोद्यापनमुदाहृतम् ।। मौनव्रतं ततो ज्ञेयं प्रपादानं ततः परम् ।। लक्ष पद्मव्रतं प्रोक्तं लक्षदीपास्तःपरम् ।। ततस्तु दूर्वामाहात्म्यं शिवलक्षपरिक्रमः प्रदक्षिणाविधिः प्रोक्तोह्यश्वत्थस्य बुधैस्ततः ।। विष्णुप्रदक्षिणाः प्रोक्तास्तुलस्याश्च ततः परम् ।। गौविप्राग्निहनुमल्लक्षप्रक्रमणं परम् ।। लक्ष बिल्वदलैर्लक्षनानापुष्पैश्च पूजनम् ।। तुलसीलक्षसंख्याका विष्णुपूजा ततःपरम् ।। बिल्ववर्तीरुद्रवर्तिर्लक्षव-र्तिस्ततः परम्।।सामान्यवर्तिसंज्ञं च विष्णुवर्तिस्ततः परम्।।देहवर्तिस्ततः प्रोक्ता सर्वपापौघनाशिनी ।। विष्णुसूर्यनमस्कारा लक्षसंख्यास्ततः परम् ।। व्रतं च मंगला-गौर्या मौनव्रतमतः परम् । पंचधान्याख्यपूजा वै शिवामुष्टिस्ततः परम् ।। हस्ति-गौरी ततो ज्ञेया कूष्माण्डी च ततः परम्।। कर्काटिकाव्रते ज्ञेयं विष्णुपंचकसंज्ञकम्।। कोटिदीपास्ततो ज्ञेयाः पार्थिवोद्यापनं ततः ।। शिवमस्तु सर्वजगतः परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।। दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र जनः सुखीभवतु ।।

इति श्रीविश्वनाथविरचिते व्रतराजेऽनुक्रमणिकाध्यायः समाप्तः ।।

'ग्रन्थेऽस्मिन्' यहाँसे लेकर 'सुखी भवतु' यहाँतक ग्रन्थकर्ता विश्वनाथजी श्लोकबद्ध व्रतराजकी अनुक्रमणिका सामान्य रूपसे लिखी है, पर हमने ग्रन्थके आदिमें ही ग्रन्थारंभसे भी पहिले अनुक्रमणिका हिन्दीमें विस्तारके साथ रख दी है, इस कारण यहाँ इन श्लोकोंका अर्थ करना पुनरुक्तिदोषसे उचित नहीं समझते । अनुक्रमणिकामें विस्तृत लिखा है वहाँहीदेख समझ लें ।।

[1]अथ सप्तधान्यलक्षपूजाविधिर्लिख्यते

तिलसाधलक्षसप्तकर्षैर्लक्षसंख्या भवति ।। तिललक्षपूजनाद्वर्षषष्टिसहस्रं स्वर्ग-

१ अथ सप्तधान्येत्यारभ्य लक्षपूजाविधिःसमाप्त इत्यतोग्रन्थः केनचिद्बहुश्रुतेन सप्तधान्यलक्ष-पूजाविधिः सप्तधान्यानां लक्ष संख्यापरिमाणं लक्षपूजनेनस्वर्गादिफलप्राप्तिकथनम् अग्रे लक्ष फलपूजाकथन तत्फलकथनं च तथा लक्षपूजोद्यापनकथनं स्वमत्या कल्पयित्वा लिखित इति प्रतिभाति । कुतः ? अनुक्रमणि कासमाप्त्यनन्तरमेतद्ग्रन्थस्य लेखनात् । धान्यादिलक्षपूजाविधेस्तत्तत्फलादेश्च पूर्वत्र कथनादितादृशसंख्या-परिमाणादिकथने तादृशग्रन्थाधारादर्शनाञ्ज्ञातस्तेनाधाररहितो लिखितो ग्रन्थस्तथैव स्थापितो न शोधन-पात्रीकृतः ।

वासः ।। १।। तण्डुलमणार्धेन लक्षः ।। तस्य पूजनाद्वर्षचत्वारिंशच्चन्द्रलोकवासः ।। ।। २ ।। मुद्गमणार्धेन लक्षः ।। तस्य पूजनाद्वर्षलक्षषष्टिस्वर्गवासः ।। ३ ।। माषमणार्धेन लक्षः ।। तस्य पूजनाद्वर्षसहस्रं स्वर्गवासः ।। ४ ।। तस्य पूजनाद्वर्षाशीतिस्वर्गवासः ।। ५ ।। यवमणेन लक्षः। । तस्य पूजनाद्वर्षं सहस्रपंचकं स्वर्गवासः ।। ६ ।। कर्पूरलक्षपूजनाच्छिवलोकं प्राप्य कल्पांतपर्यंतम् ।। पश्चाच्चक्रवर्ती ।। ७ ।। अथफलानां लक्षपूजा ।। कदलीफललक्षपूजनाद्वर्षसहस्रं स्वर्गवासः ।। पश्चाद्राजा भवेत् ।।१।। पूगीफललक्षपूजनाद्वर्षमेकंस्वर्गे वासः।। नारिंगीफललक्षपूजनाद्वर्षमेकं स्वर्गे वासः ।। २ ।। कर्कटीफलक्षजनपूाद्वर्षलक्षद्वयं स्वर्गेवासः ।। पश्चान्महाराजो भवेत् ।। ३ ।। जंबीर लक्षपूजननेन वर्षशतत्रयं शिवपुरे वासः ।। अनन्तपतिर्भवति ।। ४ ।। बीजपूर लक्षपूजनाद्वर्षलक्षचतुष्टयं शिवपुरे वासः ।। ।। ५ ।। लवपूजनाद्वर्षलक्षषट्कंशिवपुरे वासः ।। ६ ।। आखोटपूजनाद्वर्षसप्तलक्षक शिवपुरे वासः ।। पश्चाद्धनपुत्रादिप्राप्तिर्भवति ।। ७ ।। पनसलक्षपूजनाद्वर्षसहस्राष्टकं स्वर्गेवासः ।। ८ ।। रायफलपूजनाद्वर्षलक्षदशकं स्वर्गे वासः ।। पश्चात्पृथिवीशो भवति ।। ९ ।। सहकारलक्षपूजनात्कोटिवर्षं स्वर्गे वासः ।। ।। १० ।। जम्बूफलक्षपूजनेनवर्षकोटिपर्यन्तं स्वर्गे वासः ।। ११ ।। एलाफललक्षपूजनेन द्वादशसहस्रं स्वर्गे वासः ।। पश्चाच्चक्रवर्ती भवति ।। १२ ।। अखण्डबिल्वपत्रपत्रलक्षपूजनात्कल्पान्तं शिवपुरे वासः ।। १३ ।। जीरकलक्षपूजनात्सप्तजन्मपर्यन्तं सौभाग्यम् ।। पश्चाद्राज्यप्राप्तिः ।। १४ ।। इतिधान्यफ० लक्षपू० विधिः ।।

सप्त धान्योंसे लक्षपूजा विधि–तिलोंसे लक्ष पूजा करने पर साठ हजार वर्ष स्वर्गमें वास होता है ।। ।। १ ।। आधेमनके एक लाख तंदुल होते हैं, उनसे पूजन किये पीछे चालीस वर्ष चन्द्रलोकमें वास होता है ।। २ ।। आधमन मूंगका लक्ष होता है, इससे पूजन करनेपर साठ लाख वर्षश स्वर्गमें वास होता है ।। ३ ।। ।। ४ ।। आधमन माषका लक्ष होता है इसके पूजनसे हजार वर्ष स्वर्गवास होता है बीस कर्ष गेहूंका लाख होता है, इससे पूजनेसे अस्सी वर्ष स्वर्गवास होता है ।। ५ ।। मण यवका लक्ष होता है, उससे पूजनेसे पांच हजार वर्ष स्वर्गवास होता है ।। ६ ।। कपूरके लक्ष पूजनेसे कल्पतक शिवलोकमें रहकर पीछे चक्रवर्ती होता है ।।७।। फलोंकी लक्ष पूजा-कदली फलकी लक्ष पूजासे एक हजार वर्ष स्वर्गवास हो, पीछे राजा होता है ।। १ ।। पूगी फलकी लक्ष पूजासे एक वर्ष स्वर्गवास तथा नारंगीके फलकी लक्ष पूजासे एक वर्ष स्वर्गमें वास होता है ।। २ ।। ककंटी फलकी लक्ष पूजासे दो लाख वर्ष स्वर्गमें वास होता है, पीछे महाराज ोता है ।। ३ ।। जम्बीर फलकी लक्षपूजामें तीनसौ वर्ष शिवपुरमें वास और अनन्त पति होता है ।। ४ ।।

बीजपूरके लक्ष पूजनसे चार लाख वर्ष शिवपुरमें वास होता है ।। ५ ।। लवंगकी लक्ष पूजा होनेसे छः लाख वर्ष शिवपुरमें वास होता है ।। ६ ।। अखरोटसे पूजा करने पर सात लाख वर्ष शिवपुरमें वास होता है पीछे धन और पुत्रकी प्राप्ति होती है ।। ७ ।। पनससे लक्ष पूजा करनेपर आठ हजार वर्ष स्वर्गमें वास होता है । ।। ८ ।। रायफलके पूजनसे दश लाख वर्ष स्वर्गमें वास होता है, पीछे पृथिवीश होता है ।। ९ ।। सहकारकी लक्ष पूजासे कोटि वर्ष स्वर्गवास होता है ।। २० ।। जंबूफलकी लक्ष पूजामें कोटि स्वर्गवास होता है ।। ११ । एला फलके लक्ष पूजनसे बारह हार वर्ष स्वर्गवास होता है, पीछे चक्रवर्ती राजा होता है ।। २१ । अखण्ड बिल्वपत्रके लक्ष पूजनसे कल्पतक शिवपुरमें वास होता है ।। १३ ।। जीरकके लक्ष पूजनसे सात जन्मतक सौभाग्य होता है, पीछे राज्य प्राप्ति होती है ।। १४ ।। यह धान्यों और फलोंकी लक्ष पूजा, विधि पूरी हुई ।।

अथ लक्षपूजोद्यापनम्

यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं नारिकेलार्घ्यदानम् ।। गजध्वजपताकाशिवस्योपरि कार्या श्वेतवस्त्राच्छादनम् ।। तत्राचार्यलक्षणम्—ह्रस्वं च वृषलं चैवमतिदीर्घं जडं तथा ।। चेतसां चाभिषेक्तारं बधिरं हीनलिंगकम् ।। वेदहीनं दुराचारं मलिनं बहुभाषिणम् ।। निन्दकं पिशुनं दक्षमन्धकं च विवर्जयेत् ।। सपत्नीकं सपुत्रं च अनूचानमनिन्दकम् ।। कर्मज्ञं दोषरहितं सन्तुष्टंतु परीक्षयेत् ।। पूजान्ते च ततो होमं तिलद्रव्येण कारयेत् ।। ततस्त्वनंतरं पूजामाचार्येणैव कारयेत् ।। यद्द्वारे मत्तमातंगा वायुवेगास्तुरङ्गमाः ।। पूर्णेन्दुवदना नार्यो लक्षपूजाविधेः फलम् ।। नमः शिवाय शान्ताय सगणाय ससूनवे ।। निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ।। भूमौ स्खलितपदानां भूमिरेवाबलंबनम् ।। त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं मम ।। इति श्रीब्रह्मांडपुराणे लक्षपूजाविधिः ।। समाप्तः ।। श्रीसीतारामचंद्रार्पणमस्तु ।। ।। शुभंभवतु ।। ।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु

लक्षपूजाका उद्यापन—यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे, नारिकेलका अर्घ्य दे, गज़ ध्वज और पताका शिवजीपर करनी चाहिये, श्वेत वस्त्र उढाना चाहिये । आचार्यका लक्षण-सपत्नीक सपुत्र वेद पढा हुआ किसीकी निन्दा करनेवाला एवम् कर्मका जाननेवाला हो । कोई उसमें दोष न हो, सदा सन्तुष्ट रहनेवाला होयह परीक्षा करके देख लेना चाहिए । ह्रस्व, वृषल, अतिदीर्घ, जड, चेतसोंका अभिषेक्ता, बधिर, हीन लिंग. वेदहीन, दुराचार, मलिन, गप्पी निन्दा और पिशुनता करनेमें दक्ष और आँधेरको छोड देना चाहिए । पूजाके अन्तमें तिल द्रव्यसे होम करना चाहिए । इसके पीछे तो आचार्यसे ही पूजा करावे चो लक्ष पूजा विधि करता है उसके दरवाजेपर मत्त मातंग एवम् वायुके वेगवाले घोडे रहा करते हैं । स्त्रियां चन्द्रमुखी होती हैं यह इसका फल है । गण और पुत्र सहित शान्त शिवके लिए नमस्कार है । मैं अपना आत्म निवेदन आपके चरणोंमें करता हूँ । हे परमेश्वर ! तूही हमारी गति है । भूमिमें जिनका चरण फिसल गया है उसका भूमिही अवलम्बन है दूसरा नहीं है । आपके विषयमें हुए मेरे अपराधोंकी आपही शरण है । यह श्रीब्रह्माण्डपुराणकी कही हुई लक्ष पूजाविधि पूरी हुई । यह श्रीरामचन्द्रके चरणोंमें अर्पण हो ।

दृष्टान्यनेकतन्त्राणि गृहीता उचिता गिरः ।
सर्वेषां सारमुद्धृत्य वृत्तावस्यां प्रकाशितः ॥
सेयं सारमयी सिद्धा सरला सत्त्वसंश्रिता ।
शुद्धा श्रीरिव भूषाढ्या भुक्तिमुक्तिप्रदा शुभा ॥
व्रतिसंवेद्यरूपाय वरेण्याय व्रतात्मने ।
विवृतिर्व्रतराजस्य श्रीकृष्णाय समर्पिता ॥
राधिकाऽऽराधिते तत्त्वे दीनबन्धो ! त्वयि स्थिते ।
किं प्रार्थ्यं त्वां विना देव ! भक्तिस्तेऽतिगरीयसी ॥
अकिञ्चनोऽपि तुच्छोऽहं मायया भ्रामितोऽन्वहम् ।
प्राप्नुयां यदि ते दास्यं तदा स्यात् कृतकृत्यता ॥

निध्यष्टगोभूमितवैक्रमाब्दे
पौषेऽसिते सूर्य्यसुते गणेशे ॥
श्री दीपचन्द्रस्य सुतोऽस्य टीकां
श्री माधवाचार्य बुधो व्यलेखीत् ॥
सारासारविवेचनपटुरतिललिता सुगम्यसद्भावा ।
टीकेयं व्रतराजस्याच्युतचरणार्पिता लसतु ॥

सब विद्वानोंके किंकर एवं अनेकों ग्रन्थोंके लेखक रिचर्स स्कालर पं. माधवाचार्य्यकी बनाई हुई व्रतराजकी भाषाटीका समाप्त हुई ॥

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः । ।

समाप्तोऽयं व्रतराज

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--

खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाड़ी बम्बई नं० ४

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण—बम्बई.